दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, कालविनाशिनि काली जय जय।
उमा रमा ब्रह्माणी जय जय, राधा सीता रुक्मिणि जय जय॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय-जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश, जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवा-शिव जानकि-राम। गौरी-शंकर, सीताराम॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥
रघुपति राघव राजा राम। पतितपावन सीताराम॥

नारद-स्तवन

(रचयिता—श्रीयुगलसिंहजी एम्० ए०, बार-एट-लॉ)

हर उरमें, वीणा करमें, करते प्रभुका काज। धरा-गगनमें विचरण करते, नारद मुनि-सिरताज॥
प्राणिमात्रके हित-रत रहते, सबसे सम व्यवहार। नित्य असुर-सुर दोनों करते, नारदका सत्कार॥
रसना नाना नामोंका, हरिके करती पान। जगको नारद-वाणी देती, भक्ति-सुधाका दान॥
दिव्य गान जब नारद करते, निज वीणा झंकार। भव्य भाव भवमें भर जाता, बहती आनँद-धार॥
सब लोकोंमें फिर फिर करते, प्रभु-इच्छा साकार। नारद मुनि जगमें कहलाते, हरि-मनके अवतार॥
भक्ति-मार्ग सबको दिखलाना, मति-गतिके अनुसार। नारदका व्रत यही सर्वथा, हो प्रभुमय संसार॥
माधव मुग्ध हुए नारदपर, किया गुणोंका गान। अपरंपार भक्तकी लीला, उसके वस भगवान॥
ब्रह्मा-तनय भक्ति-रस-सागर, विद्याके आगार। जुगल जोड़ कर करते विनती, ऋषि-मुनि वारंवार॥

वार्षिक मूल्य भारतमें ७॥) विदेशमें १०) (१५ शिलिङ्ग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

इस अङ्कका मूल्य ७॥) विदेशमें १०) (१५ शिलिङ्ग)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—घनश्यामदास जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

वर्ष २८

श्रीहरिः

कल्याणके प्रेमी पाठकों और ग्राहक महानुभावोंसे

नम्र निवेदन

१–'कल्याण'का यह संक्षिप्त 'नारद-विष्णुपुराणाङ्क' है। यह अट्ठाईसवें वर्षका प्रथम अङ्क है। इस विशेषाङ्कमें भगवान्‌की अनेकों विचित्र लीलाएँ, तीर्थ-व्रतोंकी विलक्षण महिमा और उनके प्रसंगमें आयी हुई उपदेशप्रद कथाएँ, भक्तोंकी मधुर मनोहर उपदेशभरी विश्वासमयी जीवनियाँ; वेदके शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्यौतिप और छन्द—छहों अङ्गोंका उदाहरणसहित विशद वर्णन; भगवान् श्रीशिव, श्रीविष्णु, श्रीराम, कृष्ण, हनुमान् आदिकी उपासना; भगवान्‌के मनोहर ध्यान, प्रत्येक मासकी प्रत्येक तिथिके व्रत, श्रीगङ्गाजीकी उत्पत्ति, योग-भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, नाममाहात्म्य, सदाचार, वर्णाश्रमधर्म, दया, दान आदिके बड़े सुन्दर-सुन्दर प्रसङ्ग हैं। इस विशेषाङ्कमें ८०० पृष्ठोंकी ठोस सामग्री है और सैकड़ों सादे तथा बहुरंगे मनोहर चित्र हैं।

२–जिन सज्जनोंके रुपये मनीआर्डरद्वारा आ गये होंगे, उनके अङ्क जानेके बाद शेप ग्राहकोंके नाम वी. पी. भेजी जा सकेगी। अतः जिनको ग्राहक न रहना हो, वे कृपा करके मनाहीका एक कार्ड तुरंत डाल दें, ताकि वी. पी. भेजकर 'कल्याण'को व्यर्थका नुकसान न उठाना पड़े। उनके तीन पैसेके खर्चसे 'कल्याण'के कई आने बच जायँगे। आशा है, पुराने सम्बन्धके नाते वे इतना त्याग अवश्य स्वीकार करेंगे।

३–आजकल नये-नये उपद्रव तथा अशान्तिके कारण बन रहे हैं। इसलिये यदि किसी कारणवश आगेके अङ्क पूरे वर्षतक न भेजे जा सकें तो जितने अङ्क पहुँचें, उतनेमें ही मूल्य पूरा समझनेकी कृपा करें। केवल 'संक्षिप्त नारद-विष्णुपुराणाङ्क' का मूल्य भी ७॥) रुपया है।

४–मनीआर्डर-कूपनमें अपना पता और ग्राहक-नम्बर जरूर लिखें। ग्राहक-नम्बर याद न हों तो कम-से-कम 'पुराना ग्राहक' अवश्य लिख दें। नये ग्राहक हों तो 'नया ग्राहक' लिखनेकी कृपा करें।

५–ग्राहक-नम्बर न लिखनेसे आपका नाम 'नये ग्राहकों'में दर्ज हो जायगा। इससे आपकी सेवामें 'संक्षिप्त नारद-विष्णुपुराणाङ्क' नये नम्बरोंसे पहुँच जायगा और पुराने नम्बरकी वी० पी० भी चली जायगी। ऐसा भी हो सकता है कि उधरसे आपने रुपये भेजे हों और उनके हमारे पास पहुँचनेके पहले ही आपके नाम वी० पी० चली जाय। दोनों ही स्थितियोंमें आपसे यह प्रार्थना है कि आप कृपापूर्वक वी० पी० लौटायें नहीं, चेष्टा करके कृपया नया ग्राहक बनाकर उनका नाम-पता साफ-साफ हमें लिखनेकी कृपा करें। आप ऐसा करेंगे तो आपका 'कल्याण' नुकसानसे बचेगा और आप 'कल्याण'के प्रचारमें सहायता करके पुण्यके भागी बनेंगे। अगर नया ग्राहक न मिले तो वी० पी० नहीं छुड़ानी चाहिये।

६–'संक्षिप्त नारद-विष्णुपुराणाङ्क' सब ग्राहकोंके पास रजिस्टर्ड-पोस्टसे जायगा। हमलोग इस बार जल्दी-से-जल्दी भेजनेकी चेष्टा करेंगे तो भी सब अङ्कोंके जानेमें लगभग एक-डेढ़ महीना तो लग ही सकता है; इसलिये ग्राहक महोदयोंकी सेवामें 'विशेषाङ्क' नम्बरवार जायगा। यदि कुछ देर हो जाय, तो परिस्थिति समझकर कृपालु ग्राहकोंको हमें क्षमा करना चाहिये और धैर्य रखना चाहिये।

७–गीताप्रेस पोस्ट-आफिस अब 'डिलेवरी आफिस' हो गया है। अतः 'कल्याण' व्यवस्था-विभाग तथा सम्पादन-विभाग और गीताप्रेस तथा 'गीता-रामायण-परीक्षा-समिति' और 'गीता-रामायण-प्रचार-संघ' तथा 'साधक-संघ'के नाम भेजे जानेवाले सभी पत्र, पारसल, पैकेट, रजिस्ट्री, बीमा आदिपर केवल 'गोरखपुर' न लिखकर पो० गीताप्रेस (गोरखपुर) इस प्रकार लिखना चाहिये।

८–सजिल्द विशेषाङ्क वी० पी० द्वारा नहीं भेजे जायँगे। सजिल्द अङ्क चाहनेवाले ग्राहक १।) जिल्दखर्चसहित ८॥।) मनीआर्डरद्वारा भेजनेकी कृपा करें। सजिल्द अङ्क देरसे जायँगे। ग्राहक महानुभाव धैर्य रक्खें।

९–आपके विशेषाङ्कके लिफाफेपर आपका जो ग्राहक-नम्बर और पता लिखा गया है, उसे आप खूब सावधानीपूर्वक नोट कर लें। रजिस्ट्री या वी० पी० नम्बर भी नोट कर लेना चाहिये।

१०–डाक-विभागके नियमानुसार रजिस्ट्री तथा मनीआर्डर यथास्थान न पहुँचनेकी शिकायत छः मासके भीतर ही होनी चाहिये, अन्यथा वे लोग शिकायतपर विचार नहीं करते। अतः रुपया भेजनेके बाद यदि एक मासके भीतर आपको पोस्ट-आफिससे कार्यालयकी सहीयुक्त वापसी रसीद न मिले तो अपने पोस्ट-आफिसमें तुरंत शिकायत कर देनी चाहिये। रुपया भेजनेकी रसीद मिलनेके बाद दो मासके भीतर आपको 'कल्याण'की रजिस्ट्री न मिले तो कार्यालयको सूचना देनी चाहिये। जो सज्जन प्रतिमास रजिस्ट्रीसे अङ्क मँगाना चाहते हों उन्हें ।≈) प्रति अङ्क रजिस्ट्री-खर्चके लिये अलग भेजना चाहिये। दो मासके भीतर अगला अङ्क न प्राप्त होनेपर पोस्ट-आफिसको कड़ी शिकायत लिखनी चाहिये।

व्यवस्थापक—'कल्याण' पो० गीताप्रेस
(गोरखपुर) (उत्तर-प्रदेश)

श्रीगीता और रामायणकी परीक्षाएँ

श्रीगीता और रामचरितमानस—ये दो ऐसे ग्रन्थ हैं, जिनको प्रायः सभी श्रेणीके लोग विशेष आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। इसलिये समितिने इन ग्रन्थोंके द्वारा धार्मिक शिक्षा-प्रसार करनेके लिये परीक्षाओंकी व्यवस्था की है। उत्तीर्ण छात्रोंको पुरस्कार भी दिया जाता है। परीक्षाके लिये स्थान-स्थानपर केन्द्र स्थापित किये गये हैं। इस समय गीता-रामायण दोनोंके मिलाकर कुल ४५० केन्द्र हैं। विशेष जानकारीके लिये नीचेके पतेपर कार्ड लिखकर नियमावली मँगानेकी कृपा करें।

मन्त्री—श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

लेखसहित संक्षिप्त श्रीनारद-विष्णुमहापुराणकी विषय-सूची

श्रीनारदमहापुराण

पूर्वभाग

प्रथम पाद

द्वितीय पाद

तृतीय पाद

चतुर्थ पाद

उत्तरभाग

संक्षिप्त विष्णुपुराण

प्रथम अंश

द्वितीय अंश

तृतीय अंश

चतुर्थ अंश

पञ्चम अंश

षष्ठ अंश

चित्र-सूची

तिरंगे

इकरंगे (लाइन)

(नारदपुराण)

(विष्णुपुराण)

'श्रीगीता-रामायण-प्रचार-सङ्घ' तथा 'साधक-सङ्घ'

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस—ये दो विश्वसाहित्यके अमूल्य रत्न हैं। ये दोनों आशीर्वादात्मक प्रासादिक ग्रन्थ माने गये हैं और इनके प्रेमपूर्वक स्वाध्यायसे लोक-परलोकमें कल्याणकी प्राप्ति होती है। इन दोनों मङ्गलमय ग्रन्थोंके पारायणका अधिकाधिक प्रचार हो, इसीलिये गीता-रामायण-प्रचार-सङ्घकी स्थापना की गयी है। यह प्रचार-कार्य लगभग ५॥ वर्षसे चल रहा है। अबतक गीता-रामायणके पाठ करनेवाले सदस्योंकी संख्या लगभग ३०,००० हो चुकी है।

प्रत्येक स्त्री, पुरुष, बालक, युवा, वृद्ध तथा प्रत्येक वर्ण और आश्रमका मनुष्य सदस्य हो सकता है। इसके लिये किसी प्रकारका शुल्क (चन्दा) नहीं है, केवल प्रेमपूर्वक गीता और रामायणका प्रतिदिन पाठ करना होता है। इसके नियम और आवेदनपत्र आदि सङ्घ-कार्यालयसे मँगा सकते हैं। कार्यालयका पता है—मन्त्री—श्रीगीता-रामायण-प्रचार-सङ्घ, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

कल्याणके प्रत्येक पाठक-पाठिकासे मेरी सविनय प्रार्थना है कि वे 'साधक-सङ्घ' के भी सदस्य बनें और अपने बन्धु-बान्धवों, इष्ट-मित्रों एवं साथी-सङ्गियोंको प्रयत्न करके सदस्य बनानेकी कृपा करें। 'साधक-सङ्घ' का पता है—मन्त्री—साधक-सङ्घ, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

प्रार्थी—हनुमानप्रसाद पोद्दार, सम्पादक 'कल्याण'

कल्याणके प्राप्य विशेषाङ्क

(१) मानसाङ्क (पूरे चित्रोंसहित)-पृष्ठ ९४४, चित्र बहुरंगे सुनहरी ८, दुरंगे सुनहरी ४, तिरंगे ४६, दुरंगे ४, इकरंगे १२०, मूल्य ६॥) सजिल्द ७॥)।

(२) संक्षिप्त महाभारताङ्क–१७ वें वर्षकी पूरी फाइल दो जिल्दोंमें (सजिल्द)-पृष्ठ-संख्या १९१८, तिरंगे चित्र १२, इकरंगे लाइन चित्र ९७५ (फरमोंमें), मूल्य दोनों जिल्दोंका केवल १०)।

(३) हिंदू-संस्कृति-अङ्क–पृष्ठ ९०४, लेख-संख्या ३४३, कविता ४६, संगृहीत २९, चित्र २४८, मूल्य ६॥), साथमें अङ्क २-३ बिना मूल्य, ५ प्रतियाँ एक साथ लेनेपर १५) प्रतिशत कमीशन।

(४) भक्त-चरिताङ्क–पृष्ठ ९१८, लेख-संख्या ५५८, तिरंगे चित्र २९ तथा इकरंगे चित्र १८१, मूल्य ७॥) मात्र।

(५) बालक-अङ्क–पृष्ठ-संख्या ८१६, तिरंगे तथा सादे बहुसंख्यक चित्र, [illegible] मूल्य ७॥) मात्र।

'कल्याण' के प्राप्य अङ्क

वर्ष १९ वाँ—साधारण अङ्क—२, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११ और १२ मूल्य ।) प्रति

वर्ष २० वाँ—,, ,,—३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, ११ और १२ ,, ।) ,,

पुराने वर्षोंके साधारण अङ्क आधे मूल्यमें

वर्ष २१ वें के साधारण अङ्क—९, १०, ११, १२—कुल ४ चार अङ्क एक साथ मूल्य ॥=) रजिस्ट्रीखर्च ।=)

वर्ष २२ वें के ,, ,, —३, ४, ५, ८, ९, १०, ११—कुल ७ ,, ,, १=) ,, ,, ।=)

वर्ष २३ वें के ,, ,, —२, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११—कुल ८ ,, ,, ३॥) ,, ,, [illegible]

उपर्युक्त तीनों वर्षोंके कुल १९ अङ्क एक साथ रजिस्ट्रीखर्चसहित मूल्य ३॥=)

व्यवस्थापक—'कल्याण', पो० गीताप्रेस (गोरखपुर

श्रीहरिः

कल्याणके नियम

उद्देश्य—भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचारसमन्वित लेखोंद्वारा जनताको कल्याणके पथपर पहुँचानेका प्रयत्न करना इसका उद्देश्य है।

नियम

(१) भगवद्भक्ति, भक्तचरित, ज्ञान, वैराग्यादि ईश्वर-परक, कल्याणमार्गमें सहायक, अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत आक्षेपरहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख भेजनेका कोई सज्जन कष्ट न करें। लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने अथवा न छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख विना माँगे लौटाये नहीं जाते। **लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदाता नहीं हैं।**

(२) इसका डाकव्यय और विशेषाङ्कसहित अग्रिम वार्षिक मूल्य भारतवर्षमें ७॥) और भारतवर्षसे बाहरके लिये १०) (१५ शिलिङ्ग) नियत है। **विना अग्रिम मूल्य प्राप्त हुए पत्र प्रायः नहीं भेजा जाता।**

(३) 'कल्याण'का नया वर्ष सौर माघ या जनवरीसे आरम्भ होकर सौर पौष या दिसम्बरमें समाप्त होता है, अतः ग्राहक जनवरी-से ही बनाये जाते हैं। वर्षके किसी भी महीनेमें ग्राहक बनाये जा सकते हैं, किंतु जनवरीके अङ्कके बाद निकले हुए तबतकके सब अङ्क उन्हें लेने होंगे। 'कल्याण'के बीचके किसी अङ्कसे ग्राहक नहीं बनाये जाते; छः या तीन महीनेके लिये भी ग्राहक नहीं बनाये जाते।

(४) इसमें व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी दरमें प्रकाशित नहीं किये जाते।

(५) कार्यालयसे 'कल्याण' दो-तीन बार जाँच करके प्रत्येक ग्राहकके नामसे भेजा जाता है। यदि किसी मासका अङ्क समयपर न पहुँचे तो अपने डाकघरसे लिखा-पढी करनी चाहिये। वहाँसे जो उत्तर मिले, वह हमें भेज देना चाहिये। डाकघरका जवाब शिकायती पत्रके साथ न आनेसे दूसरी प्रति विना मूल्य मिलनेमें अड़चन हो सकती है।

(६) पता बदलनेकी सूचना कम-से-कम १५ दिन पहले कार्यालयमें पहुँच जानी चाहिये। **पत्र लिखते समय ग्राहक-संख्या, पुराना और नया नाम, पता साफ-साफ लिखना चाहिये।** महीने-दो-महीनोंके लिये बदलवाना हो, तो अपने पोस्टमास्टरको ही लिखकर प्रबन्ध कर लेना चाहिये। पता-बदलीकी सूचना न मिलनेपर अङ्क पुराने पतेसे चले जाने-की अवस्थामें दूसरी प्रति विना मूल्य न भेजी जा सकेगी।

(७) सौर माघ या जनवरीसे बननेवाले ग्राहकोंको रंग-बिरंगे चित्रोंवाला जनवरीका अङ्क (चालू वर्षका विशेषाङ्क) दिया जायगा। विशेषाङ्क ही जनवरीका तथा वर्षका पहला अङ्क होगा। फिर सौर पौष या दिसम्बरतक महीने-महीने नये अङ्क मिला करेंगे।

(८) सात आना एक संख्याका मूल्य मिलनेपर नमूना भेजा जाता है; ग्राहक बननेपर वह अङ्क न लें तो ।≈) बाद दिया जा सकता है।

आवश्यक सूचनाएँ

(९) 'कल्याण' में किसी प्रकारका कमीशन या 'कल्याण'-की किसीको एजेन्सी देनेका नियम नहीं है।

(१०) ग्राहकोंको अपना नाम-पता स्पष्ट लिखनेके साथ-साथ **ग्राहक-संख्या** अवश्य लिखनी चाहिये। पत्रमें आव-श्यकताका उल्लेख सर्वप्रथम करना चाहिये।

(११) पत्रके उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजना आवश्यक है। एक बातके लिये दुबारा पत्र देना हो तो उसमें पिछले पत्रकी तिथि तथा विषय भी देना चाहिये।

(१२) ग्राहकोंको चंदा मनीआर्डरद्वारा भेजना चाहिये। वी० पी० से अङ्क बहुत देरसे जा पाते हैं।

(१३) **प्रेस-विभाग और कल्याण-विभागको अलग-अलग समझकर अलग-अलग पत्रव्यवहार करना और रुपया आदि भेजना चाहिये।** 'कल्याण' के साथ पुस्तकें और चित्र नहीं भेजे जा सकते। प्रेससे १) से कमकी वी० पी० प्रायः नहीं भेजी जाती।

(१४) चालू वर्षके विशेषाङ्कके बदले पिछले वर्षोंके विशेषाङ्क नहीं दिये जाते।

(१५) मनीआर्डरके कूपनपर रुपयोंकी तादाद, रुपये भेजनेका मतलब, ग्राहक-नम्बर (नये ग्राहक हों तो 'नया' लिखें) पूरा पता आदि सब बातें साफ-साफ लिखनी चाहिये।

(१६) प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होनेकी सूचना, मनीआर्डर आदि **व्यवस्थापक "कल्याण" पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)** के नामसे और सम्पादकसे सम्बन्ध रखनेवाले पत्रादि **सम्पादक "कल्याण" पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)** के नामसे भेजने चाहिये।

(१७) स्वयं आकर ले जाने या एक साथ एकसे अधिक अङ्क रजिस्ट्रीसे या रेलसे मँगानेवालोंसे चंदा कुछ कम नहीं लिया जाता।

श्रीयुगलछवि

[पृष्ठ ४०५

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

यत्पादतोयं भवरोगवैद्यो यत्पादपांशुर्विमलत्वसिद्ध्यै ।
यन्नाम दुष्कर्मनिवारणाय तमप्रमेयं पुरुषं भजामि ॥

वर्ष २८ } गोरखपुर, सौर माघ २०१०, जनवरी १९५४ { संख्या १
पूर्ण संख्या ३२६

युगल छवि

जुगल छवि हरति हियेकी पीर ।
कीर्तिकुँअरि ब्रजराजकुँअर वर ठाढ़े जमुना तीर ॥
कल्पवृच्छकी छाँह, सुसीतल मंद सुगंध समीर ।
मुरली अधर, कमल कर कोमल, पीत नील-द्युति चीर ॥
मुक्ता मनि माला पन्ना गल सुमन मनोहर हार ।
भूषन विविध रत्न राजत तन, बेंदी तिलक उदार ॥
श्रवननि सुचि कुंडल झुर झूमक झलकत ज्योति अपार ।
मुसुकनि मधुर अमिय-दृग चितवनि बरसत सुधा सिंगार ॥

श्रेष्ठ भगवद्भक्त कौन है ?

ये हिताः सर्वजन्तूनां गतासूया अमत्सराः ।
वशिनो निस्पृहाः शान्तास्ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५० ॥
कर्मणा मनसा वाचा परपीडां न कुर्वते ।
अपरिग्रहशीलाश्च ते वै भागवताः स्मृताः ॥ ५१ ॥
सत्कथाश्रवणे येषां वर्तते सात्त्विकी मतिः ।
तद्भक्तविष्णुभक्ताश्च ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५२ ॥
मातापित्रोश्च शुश्रूषां कुर्वन्ति ये नरोत्तमाः ।
गङ्गाविश्वेश्वरधिया ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५३ ॥
व्रतिनां च यतीनां च परिचर्यापराश्च ये ।
वियुक्तपरनिन्दाश्च ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५५ ॥
सर्वेषां हितवाक्यानि ये वदन्ति नरोत्तमाः ।
ये गुणग्राहिणो लोके ते वै भागवताः स्मृताः ॥ ५६ ॥
आत्मवत् सर्वभूतानि ये पश्यन्ति नरोत्तमाः ।
तुल्याः शत्रुषु मित्रेषु ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५७ ॥
अन्येषामुदयं दृष्ट्वा येऽभिनन्दन्ति मानवाः ।
हरिनामपरा ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ६१ ॥
शिवे च परमेशे च विष्णौ च परमात्मनि ।
समबुद्ध्या प्रवर्तन्ते ते वै भागवताः स्मृताः ॥ ७२ ॥

(नारदपुराण १ । ५)

जो सब जीवोंके हितैषी हैं, जो दूसरोंका दोष नहीं देखते, जो किसीसे डाह नहीं करते, मन-इन्द्रियोंको वशमें रखते हैं, निःस्पृह और शान्त हैं, वे उत्तम भगवद्भक्त हैं। जो कर्म, मन और वचनसे दूसरोंको पीड़ा नहीं पहुँचाते, जिनका संग्रह करनेका स्वभाव नहीं है, वे भगवद्भक्त हैं। जिनकी सात्त्विकी बुद्धि उत्तम भगवत्कथा सुननेमें लगी रहती है तथा जो भगवान् और उनके भक्तोंके भी भक्त हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो श्रेष्ठ मनुष्य माता-पिताके प्रति गङ्गा और विश्वनाथका भाव रखकर उनकी सेवा करते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो व्रतधारियों और यतियोंकी सेवामें लगे रहते हैं और परायी निन्दा कभी नहीं करते, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो श्रेष्ठ पुरुष सबके लिये हितभरे वचन बोलते हैं और केवल गुणोंको ही ग्रहण करते हैं, वे इस लोकमें भगवद्भक्त हैं। जो श्रेष्ठ पुरुष समस्त जीवोंको अपने ही समान देखते हैं तथा शत्रु-मित्रमें भी समान भाव रखते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो मनुष्य दूसरोंका अभ्युदय देखकर प्रसन्न होते और सदा हरिनामपरायण रहते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं और जो परमेश्वर शिव एवं परमात्मा विष्णुके प्रति समबुद्धिसे वर्ताव करते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं।

नारद-महापुराण (बृहन्नारदीय पुराण) की महत्ता

(लेखक—स्वामीजी श्री १००८ श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज)

वेदाचार्य श्रीमत्कृष्णद्वैपायनप्रणीत अठारह पुराणोंमें 'श्रीनारदपुराण' जिसमें २५००० श्लोक हैं—अनेक विषयोंसे पूर्ण एवं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। समस्त तीर्थोंमें जैसे गङ्गा, वनोंमें वृन्दावन, पुरियोंमें वाराणसी, व्रतोंमें एकादशी श्रेष्ठ है, वैसे ही सब पुराणोंमें यह पुराण श्रेष्ठ है। इस पुराणरत्नका निरीक्षण करते हुए उसमें जो कल्याणावह, सर्वसाधारणमें अप्रसिद्ध और विलक्षण विषय दृष्टिगोचर हुए, उन्हें जनताजनार्दनके सामने उपहारस्वरूप प्रस्तुत किया जा रहा है। 'नारदपुराण' का परम तात्पर्य परमानन्दघन-भगवान् श्रीकृष्णमें है, क्योंकि उपक्रम और उपसंहारमें उन्हींका संकीर्तन हुआ है। उपक्रममें कहा गया है—

वन्दे वृन्दावनासीनमिन्दिरानन्दमन्दिरम्।
उपेन्द्रं सान्द्रकारुण्यं परानन्दं परात्परम्॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाख्या यस्यांशा लोकसाधकाः।
तमादिदेवं चिद्रूपं विशुद्धं परमं भजे॥

इस तरह सगुण और निर्गुण-भेदसे श्रीकृष्णके दोनों स्वरूपोंका वर्णन किया गया है। उपसंहार आगे बतलाया जायगा। भगवत्परायण भागवतोंकी वेद और वेदोक्त धर्मोंमें सर्वतोभावेन परिनिष्ठितता आवश्यक है। उसके बिना अनेकधा दोषों एवं उसके होनेपर बहुत-से गुणोंका वर्णन किया गया है। अपने आचारका पालन करते हुए जो हरिभक्तिमें तत्पर होता है, वह उस वैकुण्ठधामको प्राप्त करता है, जिसे विद्वान् देखते हैं—

स्वाचारमनतिक्रम्य हरिभक्तिपरो हि यः।
स याति विष्णुभवनं यद् वै पश्यन्ति सूरयः॥

जो अपने आचारसे हीन है, चाहे वह वेदान्तपारगामी ही क्यों न हो, वह पतित है; क्योंकि वह कर्मसे हीन है—

यः स्वाचारपरिभ्रष्टः साङ्गवेदान्तगोऽपि वा।
स एव पतितो ज्ञेयो यतः कर्मबहिष्कृतः॥

जो अपने आश्रम और आचारसे हीन है और हरिभक्ति-हरिध्यान करता है, तो वह भी निन्द्य है—

हरिभक्तिपरो वापि हरिध्यानपरोऽपि वा।
भ्रष्टो यः स्वाश्रमाचारात् पतितः सोऽभिधीयते॥

आचारसे हीन पुरुषको हरि या [illegible] वेद भी नहीं पवित्र कर सकते—

वेदो वा हरिभक्तिर्वा भक्तिर्वापि [illegible]।
आचारात् पतितं मूढं न पुनाति [illegible]॥

अपने आश्रम और आचारको छोड़ [illegible] तीन लोकमें कोई नहीं—

स्वाश्रमाचारमुत्सृज्य हरिभक्तिर्वतो [illegible]।
न तस्य त्रिषु लोकेषु [illegible]॥

भक्तिसे किये गये कर्म भगवान्को [illegible] होते हैं, अतः वे ही कर्म [illegible] हैं। [illegible] कर्मोंसे भगवान्की प्रसन्नता होनेपर ज्ञान और [illegible] सिद्ध होता है—

भक्त्या सिद्ध्यन्ति कर्माणि कर्मभिस्तुष्यते हरिः।
तस्मिंस्तुष्टे भवेज्ज्ञानं ज्ञानान्मोक्षमवाप्यते॥

वैष्णव और भागवत कौन हैं, इसपर [illegible] पत्तियाँ हैं; परंतु विविध सिद्धान्तोंपर [illegible] यही सिद्ध होता है कि [illegible] महातात्पर्यके विषय भगवान्के जो भक्त हैं, [illegible] हैं, क्योंकि 'वेवेष्टीति विष्णुः' इस व्युत्पत्तिसे [illegible] मुख्यतया विष्णुपदार्थ है। [illegible] है, वैसे ही शिवमन्त्रादिनिष्ठ भी वैष्णव ही हैं; [illegible] और शिवमें वस्तुतः अभेद है। [illegible] का विष्णात्मक परब्रह्ममें पर्यवसान है। [illegible] सभी वैदिक सुतरां वैष्णव और भागवत [illegible] हैं। 'नारदपुराण'में स्पष्ट ही बतलाया गया है कि [illegible] अर्चन आदिमें लगे रहते हैं, [illegible] शिव या विष्णुका नाम लेते हैं, [illegible] हैं, शिव या विष्णुमें जिनकी [illegible] हैं, [illegible] अग्निके आराधनमें लगे हैं, [illegible] वे भागवत हैं—

शिवप्रियाः शिवासक्ताः [illegible]।
त्रिपुण्ड्रधारिणो ये च ते वै भागवताः [illegible]।
व्याहरन्ति च नामानि हरेः [illegible]।
रुद्राक्षालंकृता ये च ते वै भागवताः [illegible]।

शिवे च परमेशे च विष्णौ च परमात्मनि ।
समबुद्ध्या प्रवर्तन्ते ते वै भागवताः स्मृताः ॥
शिवाग्निकार्यनिरताः पञ्चाक्षरजपे रताः ।
शिवध्यानरता ये च ते वै भागवताः स्मृताः ॥

इन भागवतोंके लिये सदाचारपालन अत्यावश्यक है, अन्यथा पातित्य बतलाया गया है। भगवान्‌का नामविक्रय करना पाप है। केवल कमाईकी दृष्टिसे पैसा लेकर संकीर्तन नामविक्रय ही है। भगवान्‌का नाम बेचनेवाले, संध्याकर्म छोड़ देनेवाले और दुष्प्रतिग्रह लेनेवालेको दान देना निष्फल बतलाया गया है—

नामविक्रयिणो विष्णोः संध्याकर्मोज्झितस्य च ।
दुष्प्रतिग्रहदग्धस्य दत्तं भवति निष्फलम् ॥

उच्छिष्ट भोजन भी निन्दित ही कहा गया है। उच्छिष्ट भोजन करने, मित्रोंके साथ द्रोह करनेवाले, जबतक चन्द्रमा और नक्षत्र हैं, तबतक तीव्र यातना भोगते हैं—

उच्छिष्टभोजिनो ये च मित्रद्रोहपराश्च ये ।
एतेषां यातनास्तीव्रा भवन्त्याचन्द्रतारकम् ॥
(पू० भा० १५)

इसके अतिरिक्त अपने वर्णाश्रमोचित धर्मको छोड़कर भक्तिमात्रोपजीवन अत्यन्त दोषावह बतलाया गया है, अतः जिससे स्वधर्ममें विरोध न आये, ऐसी भक्ति करनी चाहिये—

यः स्वधर्मं परित्यज्य भक्तिमात्रेण जीवति ।
न तस्य तुष्यते विष्णुराचारेणैव तुष्यति ॥
तस्मात् कार्या हरेर्भक्तिः स्वधर्मस्याविरोधिनी ।
स्वधर्महीना भक्तिश्चाप्यकृतैव प्रकीर्तिता ॥

भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिये कर्म करने चाहिये। निष्काम पुरुषको भी यथाविधि भगवत्प्रसादके लिये कर्म करते रहना चाहिये। अपने आश्रम और आचारसे शून्य पुरुष पतित ही हैं—

सदाचारपरो विप्रो वर्द्धते ब्रह्मतेजसा ।
विष्णुश्च तुष्टो भवति .... ॥

इन सब कथनोंसे यह कहना कि 'वैष्णवोंका अच्युत गोत्र है, उनके लिये कोई कर्म करना शेष नहीं रह जाता' खण्डित हो जाता है। श्रुतिस्मृतिप्रोक्त धर्मका अतिलङ्घन करनेवालेके लिये वैष्णवत्व असम्भव है। लोकका अतिलङ्घन करनेके बाद ही परम विरक्त ब्राह्मणका विधिपूर्वक तीव्र विविदिषासे सर्वकर्मत्यागलक्षण संन्यासमें अधिकार है—

ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा मद्भक्तो वानपेक्षकः ।
सलिङ्गानाश्रमांस्त्यक्त्वा चरेदविधिगोचरः ॥
विरक्तः प्रव्रजेद्धीमान् सरक्तश्चेद् गृहे वसेत् ।

इत्यादि स्मृतिके अनुसार स्त्री, पुत्र, धन आदिके अर्जनमें लगे हुए, संसारमें आसक्त, वैष्णवी दीक्षायुक्तके लिये भी कर्मका त्याग कर देनेपर पातित्य अवश्यम्भावी प्रतीत होता है। जो लोग यह उपदेश करते हैं कि 'अवैष्णवोंके लिये ही श्रौत-स्मार्त्त कर्मोंका विधान है, वैष्णवोंके लिये नहीं' वे उपेक्ष्य हैं; क्योंकि 'भारत' और 'गीता'में भी 'इष्टोऽसि मे दृढमिति' इत्यादिसे परमान्तरङ्ग भक्त अर्जुनके लिये भी भगवान्‌ने 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' इत्यादिसे श्रौतस्मार्त्तकर्मानुष्ठानका ही प्रतिपादन किया है। 'नारदपुराण'ने इन वचनोंसे यह बात स्पष्ट कर दी है। त्यागेच्छुको भगवत्प्रसन्नताके लिये अपने आश्रमानुसार वेदशास्त्रोक्त कर्मोंको करते रहना चाहिये, इससे अव्यय पद प्राप्त होता है। निष्काम हो या सकाम, उसे यथाविधि स्वोचित कर्म करना चाहिये। अपने आश्रमोचित आचारसे रहित व्यक्तिको विवेकी पुरुष पतित बतलाते हैं। भक्तियुक्त पुरुष सदाचारपरायण हो तो वह ब्रह्मतेजसे वृद्धिङ्गत होता है और उसपर भगवान् विष्णु संतुष्ट होते हैं। भारतवर्षमें जन्म पाकर भी जो अपने-आपको नहीं तार लेता, वह जबतक चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र वर्तमान रहते हैं, तबतक भयंकर नरकमें कष्ट पाता है—

वेदोदितानि कर्माणि कुर्यादीश्वरतुष्टये ।
यथाश्रमं त्यक्तुकामः प्राप्नोति पदमव्ययम् ॥
निष्कामो वा सकामो वा कुर्यात् कर्म यथाविधि ।
स्वाश्रमाचारशून्यश्च पतितः प्रोच्यते बुधैः ॥
सदाचारपरो विप्रो वर्द्धते ब्रह्मतेजसा ।
तस्य विष्णुश्च तुष्टः स्याद् भक्तियुक्तस्य नारद ॥
(अ० ३ श्लो० ७६–७८)

भारते जन्म सम्प्राप्य नात्मानं तारयेत्तु यः ।
पच्यते निरये घोरे स त्वाचन्द्रार्कतारकम् ॥

इस पुराणमें युगधर्मोंका वर्णन भी हुआ है। कलियुगमें कौन त्याज्य और कौन ग्राह्य धर्म है, यह भी बतलाया गया है। औचित्य-विचारपूर्वक वर्णोंको युगधर्मका ग्रहण करना चाहिये और जिनका स्मृति-धर्मोंसे विरोध न हो, उन देशाचारोंको भी ग्रहण करना चाहिये—

युगधर्माः परिग्राह्या वर्णैरेतैर्यथोचितम् ।
देशाचारास्तथा ग्राह्याः स्मृतिधर्माविरोधतः ॥
(अ० २४ श्लो० ११)

गुरोरवज्ञां साधूनां निन्दां भेदं हरौ हरे।
वेदनिन्दां हरेर्नामबलात् पापसमीहनम्॥
अर्थवादं हरेर्नाम्नि पाषण्डं नामसंग्रहे।
अलसे नास्तिके चैव हरिनामोपदेशनम्॥
नामविस्मरणं चापि नाम्न्यनादरमेव च।
संत्यजेद् दूरतो वत्स दोषानेतान् सुदारुणान्॥

'वाराहपुराण'में भी सौभाग्य-व्रतके प्रसङ्गमें श्रीशिव और श्रीविष्णुमें भेदबुद्धि रखना महान् दोष बतलाते हुए कहा गया है कि जो लक्ष्मी हैं, वह पार्वती ही हैं और जो श्रीहरि हैं, वे साक्षात् त्रिलोचन ही हैं, सब शास्त्रों, पुराणोंमें ऐसा प्रतिपादित है। इसके विपरीत जो कहता है, वह शास्त्रके विरुद्ध कहता है। ऐसी बात कहनेवाला मनुष्य रुद्र अर्थात् रौद्र है, दुःख देनेवाला है और ऐसा शास्त्र शास्त्र नहीं, काव्य है—अनादरणीय है। भगवान् विष्णु श्रीशिव और लक्ष्मी गौरी कही जाती हैं। इनमें परस्पर भेदको समझनेवाला सज्जनोंकी दृष्टिमें अधम कहा गया है। (स्वयं त्रिदेववचन है—) उसे नास्तिक समझो, वह सब धर्मोंसे बहिष्कृत है, जो हम तीनोंमें भेद करता है। (श्रीहर-वचन है—) वह पाप करनेवाला है, दुष्ट है, उसे दुर्गति मिलेगी, जो ब्रह्मा और विष्णुके स्वरूपसे मुझे भिन्न समझकर मेरा भजन करता है—

या श्रीः सा गिरिजा प्रोक्ता यो हरिः स त्रिलोचनः।
एवं सर्वेषु शास्त्रेषु पुराणेषु च गद्यते॥
एतस्मादन्यथा यस्तु ब्रूते शास्त्रं पृथक्कथा।
रुद्रो जनानां मर्त्यानां काव्यं शास्त्रं तु तद् भवेत्॥
विष्णुं रुद्रकृतं ब्रूयाच्छ्रीगौरीति निगद्यते।
एतयोरन्तरं यच्च सोऽधमः कथ्यते जनैः॥
तं नास्तिकं विजानीयात् सर्वधर्मबहिष्कृतम्।
यो भेदं कुरुतेऽस्माकं त्रयाणां द्विजसत्तम॥
स पापकारी दुष्टात्मा दुर्गतिं समवाप्नुयात्।
मां विष्णोर्व्यतिरिक्तं ये ब्रह्मणश्च द्विजोत्तम॥
भजन्ते पापकर्माणस्ते यान्ति नरके नराः॥

वैष्णवताके विचारमें कुछ लोग तो स्मार्तों (स्मृति-प्रधान कर्मशीलों) को छोड़कर केवल श्रौतों (वेदप्रधान कर्मतत्परों) को ही वैष्णव मानते हैं, परंतु यह ठीक नहीं है। गृह्यसूत्रों और मन्वादि वचनोंको छोड़कर श्रौतोंका कोई श्रौतत्व नहीं है, उन्हें भी गृह्यसूत्रादिप्रोक्त धर्मका अनुष्ठान अवश्य करना ही पडता है। वेदोंमें यज्ञोपवीतका स्वरूप, उसके बनानेका प्रकार, उपनयन-विवाह आदिके प्रकार नहीं बतलाये गये हैं और इन सबके बिना कैसा श्रौतत्व, कैसी वैदिकता? फिर मनु, व्यास, याज्ञवल्क्य प्रभृति वैदिक थे या अवैदिक? यदि अवैदिक तो जनताके प्रति उन्हें क्या प्रत्याशा होती? और यदि वैदिक तो ठीक ही है, फिर तो उनके द्वारा प्रतिपादित धर्म भी वैदिक ही हुए। ऐसी स्थितिमें श्रौतजनोंको उनकी उपेक्षा करना कैसे उचित है? बल्कि स्मार्त्त कर्मोंका अनुष्ठान करनेवाले भी श्रौताग्निहोत्र, दर्श-पूर्णमास, चातुर्मास्य और ज्योतिष्टोमादि श्रौत-कर्मोंका अनुष्ठान करते हुए विशेषतः श्रौत कहे जाते हैं। जो श्रौताधानादिसे रहित हैं, वे केवल स्मार्त हैं। वस्तुतः जो सब इच्छाओंसे विनिर्मुक्त हो चुके हैं, सब कर्मोंका संन्यास कर चुके हैं, ऐसे परिव्राजक वैष्णव कहे जाते हैं। इसीलिये इस (नारद) पुराणमें एकादशी-उपोषण-प्रसङ्गमें दशमीका स्मार्त्तोंको सूर्योदयवेध, श्रौतोंको अरुणोदयवेध और वैष्णवोंको अर्द्धरात्र-वेध निर्दिष्ट हुआ है। गृहस्थलोग किसी भी तरह वैष्णव-कोटिमें नहीं आ सकते, क्योंकि वे या तो श्रौत होंगे या स्मार्त्त; इसीलिये गृहस्थोंके लिये पहली और यतियोंके अर्थात् वैष्णवों-के लिये दूसरी एकादशीका व्रत विहित हुआ है। कहा गया है कि गृहस्थोंको पहली और यतियोंको दूसरी एकादशी करनी चाहिये, क्योंकि गृहस्थ सिद्धि चाहते हैं और यतीश्वर मोक्ष। द्वादशी यदि त्रयोदशीमें आ जाय, तो वह परा—दूसरी—एकादशी मानी जाती है। गृहस्थोंको वैसी स्थितिमें दशमी-विद्धा भी पहली ही एकादशीका व्रत करना चाहिये और यतियोंको तथा पति-पुत्ररहित स्त्रियोंको दूसरी एकादशी करनी चाहिये—

पूर्वा गृहस्थैः सा कार्या ह्युत्तरा यतिभिस्तथा।
गृहस्थाः सिद्धिमिच्छन्ति यतो मोक्षं यतीश्वराः॥
द्वादशी चेत् त्रयोदश्यामस्ति चेत् सा परा मता।
विद्धाप्येकादशी तत्र पूर्वा स्याद् गृहिणां तदा॥
यतिभिश्चोत्तरा ग्राह्या ह्यवीराभिस्तथैव च।

वहाँ यह भी कहा गया है कि दोनों ही पक्षकी एकादशी-का व्रत करना चाहिये—

एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि।

इससे यह स्पष्ट है कि 'कृष्ण पक्षकी एकादशीका व्रत गृहस्थ न करे' यह बात साधारण है। एकादशीव्रत करना तो अत्यावश्यक ही है।

अपने वर्ण और आश्रमके आचारानुसार श्रीहरिका समाराधन करके ही मनुष्य उन्हें जान सकता है। वह

आराधन किसका किया जाता है, इसका संक्षिप्त निर्देश निम्न पद्योंमें है—वृन्दावनमें समासीन, श्रीलक्ष्मीके आनन्दका स्थान, अत्यन्त कृपालु, आनन्दघन, सर्वातिशायी, लोक-साधनमें तत्पर ब्रह्मा, विष्णु, महेश नामक देवता जिसके अंश हैं, उन विशुद्ध, चित्स्वरूप आदिदेवका मैं वन्दन-भजन करता हूँ—

> वन्दे वृन्दावनासीनमिन्दिरानन्दमन्दिरम् ।
> उपेन्द्रं सान्द्रकारुण्यं परानन्दं परात्परम् ॥
> ब्रह्मविष्णुमहेशाख्या यस्यांशा लोकसाधकाः ।
> तमादिदेवं चिद्रूपं विशुद्धं परमं भजे ॥

उपास्यस्वरूपके विषयमें और भी कहा है—वह विशुद्ध, निर्गुण, नित्य और माया-मोहसे वर्जित है; परंतु निर्गुण होते हुए भी गुणवान्‌की तरह ज्ञात होता है—

> विशुद्धो निर्गुणो नित्यो मायामोहविवर्जितः ।
> निर्गुणोऽपि परानन्दो गुणवानिव भाति यः ॥

तत्त्वविचारकोंने मोक्षको उत्कृष्ट और ज्ञानसे प्राप्त करने योग्य माना है । ज्ञान भक्तिमूलक है तथा भक्ति शास्त्रोक्त कर्म करनेवालेको मिलती है—

> ज्ञानलभ्यं परं मोक्षमाहुस्तत्त्वार्थचिन्तकाः ।
> यज्ज्ञानं भक्तिमूलं च भक्तिः कर्मवतां तथा ॥

भक्ति किसे मिलती है, इसपर कहा गया है, हजारों जन्मोंमें जिसने अनेक दान, यज्ञ, तीर्थयात्रा आदि किये हैं, उसे श्रीहरिभक्ति मिलती है—

> दानादियज्ञा विविधास्तीर्थयात्रादयः कृताः ।
> येन जन्मसहस्रेषु तस्य भक्तिर्भवेद्धरौ ॥

भक्तिके लेशमात्रसे अक्षय परम धर्म होता है और उत्कृष्ट श्रद्धाके द्वारा समस्त पापोंका प्रशमन हो जाता है—

> अक्षयः परमो धर्मो भक्तिलेशेन जायते ।
> श्रद्धया परया चैव सर्वं पापं व्यपोहति ॥

सब पापोंके नष्ट होनेपर बुद्धि निर्मल हो जाती है और वही निर्मल बुद्धि पण्डितोंके द्वारा 'ज्ञान' कही गयी है—

> सर्वपापेषु नष्टेषु बुद्धिर्भवति निर्मला ।
> सैव बुद्धिः समाख्याता ज्ञानशब्देन सूरिभिः ॥

इस चेतन और जड जगत्‌में श्रेष्ठ पण्डितोंके साथ नित्य और अनित्य वस्तुका अच्छी तरह विचार करना चाहिये—

> चराचरात्मके लोके नित्यं चानित्यमेव च ।
> सम्यग् विचारयेद्धीमान् सद्भिः शास्त्रार्थकोविदैः ॥

निर्गुणको 'पर' कहा गया है और जिसमें अहंकारका मेल हो, वह 'अपर' । इन दोनोंके [illegible] कहा जाता है—

> परस्तु निर्गुणः प्रोक्तो [illegible] ।
> तयोरभेदविज्ञानं [illegible] ॥

आगे चलकर 'विष्णुमयता' [illegible] उपासक भावना करे कि वह सम्पूर्ण जगत् विष्णु है, [illegible] कारण विष्णु ही है और मैं भी विष्णु ही हूँ, इस प्रकार [illegible] या भावनाका नाम विष्णुमयता है—

> सर्वं जगदिदं विष्णुर्विष्णुः [illegible] ।
> अहं च विष्णुर्यज्ज्ञानं [illegible] ॥

इसमें 'समता' भी [illegible] है—[illegible] सर्वभूतमय हैं । वे परिपूर्ण हैं, इस प्रकार [illegible] नाम समता है—

> सर्वभूतमयो विष्णुः परिपूर्णः [illegible] ।
> [illegible]भेदेन या बुद्धिः समता सा [illegible] ॥

आत्मा और अनात्माके [illegible] अनुवाद करके पारमार्थिक अभेद कहा गया है—

'द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये'

आत्माके दो भेद बताये गये हैं—[illegible] पञ्चभूतात्मक देहरूप हृदयमें जो [illegible] और परमात्मा 'पर' है । इनके [illegible] रहनेवालेको क्षेत्रज्ञ कहा गया है—

> आत्मानं द्विविधं प्राहुः [illegible] ।
> पञ्चभूतात्मके देहे [illegible] ॥
> अपरः प्रोच्यते सद्भिः परमात्मा [illegible] ।
> शरीरं क्षेत्रमित्याहु [illegible] ॥

अव्यक्त, परम शुद्ध और परिपूर्ण है । [illegible] और परमात्माका अभेदविज्ञान हो [illegible] का पाश बन्धन छिन्न-भिन्न हो [illegible] है । एक, शुद्ध, अक्षर और नित्य है । [illegible] वह अभिन्न होनेपर भी भिन्न [illegible] होता है—

> अव्यक्तः परम शुद्धः परिपूर्णः [illegible] ।
> यदा [illegible]विज्ञानं [illegible] ॥
> भवेत्तदा मुनिश्रेष्ठ [illegible] ।
> एकः शुद्धाक्षरो नित्यः [illegible] ।
> [illegible] विज्ञानभेदेन [illegible] ॥

आत्मामें [illegible] और एक ही है । यह है—[illegible] हुआ है, वह एक ही है, [illegible] है—

एकमेवाद्वितीयं यत् परं ब्रह्म सनातनम्।
गीयमानं च वेदान्तैस्तस्मान्नास्ति परं द्विज॥

उस निर्गुण परात्मामें कर्तृत्व-भोक्तृत्व नहीं है, उसका रूप, वर्ण, कर्म, कार्य कुछ भी नहीं हैं—

न तस्य कर्म कार्यं वा रूपं वर्णमथापि वा।
कर्तृत्वं वापि भोक्तृत्वं निर्गुणस्य परात्मनः॥

शब्दब्रह्ममय जो महावाक्यादि हैं, उनके विचारसे उत्पन्न ज्ञान मोक्षका साधन है। सम्यक् ज्ञानसे रहित जीवोंको यह विविध भेदयुक्त जगत् दिखलायी पड़ता है, पर तत्त्वज्ञानी इसको परब्रह्मात्मक देखता है—

शब्दब्रह्ममयं यत्तन्महावाक्यादिकं द्विज।
तद्विचारोद्भवं ज्ञानं परं मोक्षस्य साधनम्॥
सम्यग्ज्ञानविहीनानां दृश्यते विविधं जगत्।
परमज्ञानिनामेतत् परब्रह्मात्मकं जगत्॥

परात्पर, निर्गुण, अद्वय, अव्यय, परमानन्दस्वरूप तत्त्व विज्ञानभेदके कारण अनेक रूपोंमें भासित होता है। माया-विशिष्ट प्राणी मायाके कारण परमात्मामें भेदका अवलोकन करते हैं। अतः योगकी सहायतासे मायाका त्याग करना चाहिये। विशुद्ध ज्ञान ही योग है। भेद-बुद्धिकी जनक माया न सत् है, न असत्, न उभयरूप, अतः वह अनिर्वाच्य कही जाती है। माया और अज्ञान एक ही पदार्थ है, अतः माया-को जीतनेवालोंका अज्ञान नष्ट हो जाता है। वस्तु-साक्षात्कार-के लिये मनकी स्थिरता अपेक्षित है। ध्येय वस्तुमें चित्त इस तरह स्थिर करना चाहिये कि ध्यान, ध्येय, ध्यातृभाव बिल्कुल नष्ट हो जाय। तभी ज्ञानामृतका प्राकट्य होता है, जिसके सेवनसे प्राणी अमृतत्वको प्राप्त हो जाता है। मायाके कारण ही परमात्म-तत्त्वमें गुणवत्ताकी प्रतीति होती है, वस्तुतः तो वह निर्गुण ही है—

निर्गुणोऽपि परो देवो ह्यज्ञानाद् गुणवानिव।
विभात्यज्ञाननाशे तु यथापूर्वं व्यवस्थितम्॥
(अ० ३३)

एक ही परमात्मतत्त्वमें कार्य-कारणादि प्रपञ्चोपहित होनेसे अन्तर्यामित्वादि व्यवहार होते हैं। कार्य-कारणात्मक जगत् विद्युत्की तरह क्षणिक सत्तावाला, केवल भावनामय अतः अपारमार्थिक है। कार्य-कारणातीत कूटस्थ ब्रह्म ही पारमार्थिक है। परमात्माकी प्रसन्नतासे ही उनकी प्राप्ति हो सकती है और उनकी प्रसन्नताका निदान स्वधर्माचरण है। स्त्रीके लिये पतिशुश्रूषा ही परमात्म-तुष्टिद्वारा मोक्ष-प्राप्तिका साधन है—

या तु नारी पतिप्राणा पतिपूजापरायणा।
तस्यास्तुष्टो जगन्नाथो ददाति स्वपदं मुने॥

प्रत्येक प्राणीको स्वयं ही यह विचार करना चाहिये कि मैं कौन हूँ, मेरा कर्तव्य क्या है, मेरा जन्म कैसे हो गया, मेरा वास्तविक स्वरूप कैसा है, जिसे मैं 'मेरा' कहता हूँ, क्या वह भ्रम तो नहीं है, अहंभाव तो मनका धर्म है, आत्माका नहीं। सनातन परब्रह्मतत्त्व एकमात्र ज्ञानसे ही वेद्य है, उस परिपूर्ण, परमानन्दके अतिरिक्त अन्य कुछ है ही नहीं। स्वप्रकाश, नित्य, अनन्त परमात्मामें क्रिया, जन्म आदि किस तरह सम्भव है—

स्वप्रकाशात्मनो विप्र नित्यस्य परमात्मनः।
अनन्तस्य क्रिया चैव कथं जन्म च कथ्यते॥

भगवान् विष्णुकी स्तुति

(रचयिता—श्रीसूरजचंदजी सत्यप्रेमी 'श्रीडाँगीजी')

जय जगके प्रतिपालक स्वामी!
शङ्ख-सुदर्शन-गदा-पद्म-धर, विष्णु चतुर्भुज अन्तर्यामी।
जय जगके प्रतिपालक स्वामी॥ध्रुव॥

परम धामके तुम आधवासी,
योगेश्वर ध्रुव सत्त्वविलासी।
सदा-सर्व-हितके शुभ कामी॥ जय जगके प्रति०॥१॥

श्यामल-रङ्ग-अङ्ग मन भाये,
पीताम्बरपर हार सुहाये।
शरणागत-प्रिय, शिव-सुख-धामी॥ जय जगके०॥२॥

सज्जन-रक्षक, दुर्जन-तक्षक,
अहङ्कारके पूरे भक्षक।
सुख-कर-वरद गरुड़पर गामी॥ जय जगके०॥३॥

कमल-नयन-प्रभु कमलाके पति,
दे दो अब तो हमें सुमति-गति।
हम नर तुम नारायण नामी॥ जय जगके०॥४॥

आत्मरूपमें हमें मिला दो,
चरणाम्बुज-मकरन्द पिला दो।
'सूर्यचन्द' सेवक निष्कामी॥ जय जगके०॥५॥

शङ्ख-सुदर्शन-गदा-पद्म-धर विष्णु-चतुर्भुज अन्तर्यामी।
जय जगके प्रतिपालक स्वामी॥

नारद और विष्णु महापुराणका एक संक्षिप्त अध्ययन

(लेखक—श्रीबालमुकुन्दजी मिश्र)

पुराणसाहित्यका भारतीय वाङ्मयमें अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान है, उसका एक अपना इतिहास है। वैसे पुराण स्वयं देश और राष्ट्रके कल्प-कल्पान्तरोंके धार्मिक इतिहास महाग्रन्थ हैं, पर उनका स्वयंका इतिहास भी, अष्टादश महापुराणोंको समझनेके लिये, जानना पहली आवश्यक बात है।

वेद-पुराण शास्त्रोंका वर्तमान रूप प्राचीनकालमें नहीं था। इस कल्पके प्रथम बार द्वापरयुगकी समाप्तिके समय, स्वयं स्वयम्भूने आदिम व्यासका कार्यभार अपने ऊपर ओट कर वेद-वेदाङ्गोंकी यथावत् संकलना कर, शास्त्रोंको सरल एवं सुलभ स्वरूप प्रदान किया, अर्थात् वर्तमान समयमें प्राप्य ग्रन्थके रूपमें परिणत किया।

उपर्युक्त शास्त्र-संकलनाके समयमें ही ऐतिहासिक और पौराणिक प्राचीनतम सामग्रीको अष्टादश पुराण ग्रन्थाकारमें संकलित किया गया।

शास्त्रीय सृष्टि-गणनाके अनुरूप वर्तमान कल्पका नाम 'वाराहकल्प' है और जिसके छः मन्वन्तर बीतकर इस समय सातवाँ 'वैवस्वत मन्वन्तर' चल रहा है। इस समय अठाईसवें कलियुगका यह युग है।

पौराणिक साहित्य-सिद्धान्तके अनुसार प्रत्येक द्वापरके अन्तमें और कलियुगके आरम्भमें व्यासदेव प्रकट होकर युगधर्मसे अव्यवस्थित एवं कालक्रमसे विशृङ्खल शास्त्रोंका क्रमबद्ध समीचीन संकलन करते हैं।

> कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य ततो नृप।
> व्यासरूपं विभुं कृत्वा संहरेत् स युगे युगे॥
> चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे सदा।
> तदष्टादशधा कृत्वा भूर्लोकेऽस्मिन् प्रभाषते॥
> तदर्थोऽत्र चतुर्लक्षः संक्षेपेण निवेशितः।
> पुराणानि दशाष्टौ च साम्प्रतं तदिहोच्यते॥
>
> (शिवपुराण, रेवामाहात्म्य)

इसी भावकी पुष्टि निम्न अवतरणसे भी स्पष्ट है—

> कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य तदा विभुः।
> व्यासरूपस्तदा ब्रह्मा संग्रहार्थं युगे युगे॥
> चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे जगौ।
> तदष्टादशधा कृत्वा भूर्लोकेऽस्मिन् प्रकाशितम्॥
>
> (पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अ० १। ५१, ५२)

'समयके प्रभाववश [illegible] के कारण व्यासस्वरूपी [illegible] संग्रहके निमित्त चार [illegible] (सम्पादन-सहित) [illegible] भागों, अष्टादश पुराणोंके [illegible] होते हैं।'

इस कल्पमें व्यतीत हुए [illegible] अबतक अट्ठाईस व्यास हो चुके हैं*। [illegible] श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास था, जिनकी [illegible] आज सौभाग्यवश हमें प्राप्त है। [illegible] आगामी [illegible] जो व्यास होंगे उनका नाम होगा—† अश्वत्थामा व्यास।

श्रीव्यासजीका वर्णन [illegible] साथ आया है। [illegible] यहाँ पर्याप्त है। व्यासजीका परिचय है—

'व्यास कोई एक व्यक्ति नहीं होता, [illegible] नवीन व्यास हुआ करते हैं। [illegible] किंतु पदवी है। गोलवृत्तमें जो [illegible] है, उसका नाम व्यास है। इसी प्रकार [illegible] निकल जाय उनका नाम वेदव्यास होता है। [illegible] हुए हैं, वे वेद और पुराण [illegible]।'
(युक्तिविशारद प० [illegible])

पुराणोंके वक्ता हैं—

> अष्टादशपुराणानां [illegible]।
>
> ([illegible])

'सत्यवतीनन्दन श्रीव्यासजी अठारह पुराणोंके [illegible]।'

वर्तमान [illegible] द्वारा सम्पादित, [illegible] लगभग पाँच हजार वर्षसे कुछ अधिक [illegible]।

वर्तमान [illegible] द्वारा ही [illegible] चर्चा प्रायः सभी पुराणोंमें [illegible] रूपोंमें आती है ‡।

---

* देवीभागवत १। ३। १८

† श्रीमद्भागवत १२। ६। ४७

महामहिम श्रीकृष्णद्वैपायनने अन्य श्रुति-वाङ्मय-शास्त्रोंके अनन्तर यदि 'पुराण'की रचना की तो इसका पुराण नाम कैसे संगत होगा ? इसका उत्तर निरुक्त देता है—वह पुरातन होनेके साथ ही नूतन है।

'पुराणं कस्मात्—पुरानवं भवति'
(निरुक्त ३ । १९ । २४)

'पुराणं पञ्चलक्षणम्'
(अमरकोश १ । ६ । ५)

और निम्न प्रमाणके अनुसार—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं विप्र पुराणं पञ्च लक्षणम्॥
(ब्रह्मवैवर्तपुराण)

१. सर्ग (तत्त्वोत्पत्तिज्ञान एवं सूक्ष्म रचना अर्थात् महाभूतोंकी सृष्टिका वर्णन), २. प्रतिसर्ग (सृष्टि-सृजन एवं विविध रचना अर्थात् सकल सृष्टिका वर्णन), ३. वंशका वर्णन, ४. मन्वन्तर (काल एवं समय-खण्ड अर्थात् कल्प-कल्पान्तरों, मन्वन्तरोंका वर्णन), ५. वंशानुचरित वंशोंके प्रधान विशिष्ट महापुरुषोंके चरित्रोंका वर्णन—पुराण इन पाँच लक्षणोंसे युक्त हैं।

पुराण आदिकालकी कृति है, जिसके सर्वप्रथम प्रकाशक श्रीब्रह्माजी हैं। उनसे मुनियोंने सुना और प्रत्येक कल्पमें देवता, ऋषि, मुनि आदिने पृथक्-पृथक् उनकी संहिताका निर्माण किया। अपने-अपने समयमें व्यासजी उन्हीं ऋषि-मुनि आदिकृत कृतियों एवं वाक्योंको संक्षेपमें सम्पादित कर और देवता-ऋषि-मुनि आदिके मतो-विचारोंको यथावत् रखकर, यत्र-तत्र आवश्यकतानुसार प्रसङ्ग आदिकी पूर्ति वा स्पष्टीकरणके लिये अपने वचनोंसहित पुराण-रचना करते हैं।

पुराणरचनामें विभिन्न समयका इतिहास तथा विभिन्न विद्वानोंके मत हैं। विभिन्न कल्पोंके धर्म तथा कथानकवचनोंके कारण पुराणोंकी कथाओंमें समानधर्मा भाषा, शैली, वर्णन एवं प्रसङ्गोंकी सर्वथा समता होनी सम्भव नहीं। कल्पादि भेदसे कथाओंमें अन्तरका आ जाना तो सम्भव है ही।

वर्तमान अष्टादश पुराण श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजीसे पूर्व-की ही मूलतः रचना है। महर्षि व्यासने तो पुराणोंका, पुरातन सामग्रीका—सम्पादन एक वृहत् विशाल महापुराणका योजनाबद्ध संक्षिप्तीकरण कर, अष्टादश महापुराणोंके विभागोंमें विभाजित कर अनुज आगतोंके लिये साहित्यका एक अनूप भण्डार प्रदान कर, हमें सदा-सर्वदाके लिये अपने प्रति कृतज्ञ और अनुगृहीत बना लिया है।

पुराणोंकी कथाओंमें मतभेदके विषयमें यह बात भी ध्यान देनेयोग्य है कि यदि कहीं एक-से दिखायी देनेवाले नाम, विषय, रूप, रचनाओंमें कुछ विभिन्नता है तो उसका कारण कल्प, मन्वन्तर-भेद ही समझना चाहिये, अर्थात् वे स्थल विभिन्न दो कल्पों-मन्वन्तरोंके हैं, एकके नहीं—इसीलिये उनमें भेद है। इस मतका स्पष्टीकरण निम्न वचनसे हो रहा है—

क्वचित् क्वचित्पुराणेषु विरोधो यदि लभ्यते।
कल्पभेदादिभिस्तत्र व्यवस्था सद्भिरिष्यते॥

'जहाँ कहीं कथाका भेद वा अन्तर्विरोध प्रतीत हो, वहाँ कल्पभेदसे व्यवस्था लगायी जाती है।'

विद्वानोंका भी इसी प्रकारका मत है—

जिस समय पुराण-संहिता निर्गत हुई थी, वह एक ही थी और व्यासजीने उसको संक्षेपमें अठारह भागोंसे समन्वित किया और पीछे सूत और उनके शिष्योंद्वारा उनके विभाग और कई प्रकारसे संस्कार हुए हैं।

फिर वे आगे लिखते हैं—

'ब्रह्माकी कही हुई और व्यासद्वारा संक्षिप्त की हुई उस आदिसंहितासे पुराणसंहिता संकलित हुई है।'
(म० म० प० ज्वालाप्रसाद मिश्रकृत 'अष्टादश-पुराण-दर्पण' उपोद्घात)

पुराणोंकी सख्या भारतीय साहित्यमें परम्परागत निश्चित रूपमें चली आ रही है, जो है—अठारह। इन अठारह महापुराणोंकी पहचानके लिये निम्न श्लोक, जिसमें सूत्ररूपमें महापुराणोंकी नामावली दी गयी है, महापुराणोंकी जानकारीके लिये अति उपयोगी है, जो इस प्रकार है—

'मद्वयं' 'भद्वयं चैव' 'ब्रत्रयं' 'वचतुष्टयम्'।
अ, ना, प, लिं, ग, कू, स्कानि पुराणानि पृथक् पृथक्॥
(देवीभागवत १ । ३ । २)

मकारादि दो–१ मत्स्य, २ मार्कण्डेय और भकारादि दो—१ भविष्य, २ भागवत।

ब्रकारादि तीन—१ ब्रह्म, २ ब्रह्मवैवर्त, ३ ब्रह्माण्ड और वकारादि चार—१ वायु (शिव), २ विष्णु, ३ वामन, ४ वाराह।

आद्य अक्षरोंके अनुसार १ अग्नि, २ नारद, ३ पद्म, ४ लिंग, ५ गरुड़, ६ कूर्म, ७ स्कन्द—ये विभिन्न सब पुराण कुल मिलाकर अठारह (महा) पुराण हैं।

वर्तमान विद्वानोंकी ऐसी मान्यता है कि अष्टादश पुराणोंके सही स्वरूपमें प्राप्त न होनेके कारण लक्षण-समन्वय-विवेचनकी दृष्टिसे इनको निम्न रूपोंमें विभाजित कर लेना उचित है—

१. पूर्ण पुराण।

२. सम्भाव्य पूर्ण पुराण।

रुक्माङ्गदकथा पुण्या मोहिन्युत्पत्तिकर्म च ।
वसुशापश्च मोहिन्यै पश्चादुद्धरणक्रिया ॥
गङ्गाकथा पुण्यतमा गयायात्रानुकीर्तनम् ।
काश्या माहात्म्यमतुलं पुरुषोत्तमवर्णनम् ॥
यात्राविधानं क्षेत्रस्य बह्वाख्यानसमन्वितम् ।
प्रयागस्याथ माहात्म्यं कुरुक्षेत्रस्य तत्परम् ॥
हरिद्वारस्य चाख्यानं कामोदाख्यानकं तथा ।
बदरीतीर्थमाहात्म्यं कामाख्यायास्तथैव च ॥
प्रभासस्य च माहात्म्यं पुराणाख्यानकं तथा ।
गौतमाख्यानकं पश्चाद् वेदपादस्तु वस्तुतः ॥
गोकर्णक्षेत्रमाहात्म्यं लक्ष्मणाख्यानकं तथा ।
सेतुमाहात्म्यकथनं नर्मदातीर्थवर्णनम् ॥
अवन्त्याश्चैव माहात्म्यं मथुरायास्ततः परम् ।
वृन्दावनस्य महिमा वसोर्ब्रह्मान्तिके गतिः ॥
मोहिनीचरितं पश्चादेवं वै नारदीयकम् ।

नारद-महापुराणमें—विविध ज्ञान-विज्ञानपूर्ण बातें, अनेक इतिहास-गाथाएँ, गोपनीय अनुष्ठान आदिके वर्णन, धर्मनिरूपण तथा भक्ति-महत्त्वपरक विलक्षण कथाएँ, व्याकरण, निरुक्त, ज्यौतिष, मन्त्र-विज्ञान, समस्त महापुराणोंका विवरण, बारह महीनोंकी तिथियोंके व्रतोंकी कथा, एकादशीव्रत-कथा तथा गङ्गा-माहात्म्य आदिका अलौकिक और महत्त्वपूर्ण व्याख्यान संगृहीत हैं ।

विषयको सरल बनानेकी दृष्टिसे भी नारदपुराणको विषयतारतम्यके अनुसार पूर्व और उत्तर—दो भागोंमें रक्खा गया है ।

पूर्वभागमें—सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार—इन ब्रह्मपुत्रोंका श्रीनारदजीके प्रति कथन है । ऐसा भी माना जाता है कि श्रीनारदजीका अपने इन ब्रह्मपुत्र चारों भाइयोंके प्रति कथन है ।

उत्तरभागमें—वसिष्ठद्वारा मान्धाताके प्रति कहा गया वर्णन है ।

पाश्चात्त्य संस्कृतज्ञ पण्डित एवं अनेक ग्रन्थोंके रूपान्तर और टीकाकार श्रीविल्सनके मतानुसार वर्तमानमें नारद-पुराणके ३,००० श्लोक ही प्राप्य हैं । सम्पूर्ण पुराण प्राप्य नहीं है और वे इसे महापुराण स्वीकार नहीं करते* ।

नारदपुराण जो इस समय उपलब्ध है, ऐसा प्रतीत होता है कि वह सम्पूर्णरूपमें प्राप्य है । विल्सनको गवेषणाके समय जिस पुराणकी प्रति मिली होगी, या तो वह अपूर्ण होगी, और यह भी सम्भव है जैसा कि उनके पुराणविवरण-को देखनेसे पता चलता है, उन्हें नारदपुराणके पूर्वभागमें १ से ३७ अध्यायोंमें जितना अंश है, वही भाग मिला—जिसके आधारपर उन्होंने अपनी सम्मति निर्धारित की—दिखायी देती है ।

डा० एच्० एच्० विल्सनके अनुसार 'नारदीयपुराण पुराणके लक्षणोंसे रहित है । वह आधुनिक भक्ति-ग्रन्थ है । वह १६ या १७ वीं शताब्दीका संगृहीत ग्रन्थ प्रतीत होता है ।

वृहन्नारदीयपुराण भी विष्णुकी स्तुति और वैष्णवोंके कर्तव्योंसे परिपूर्ण एक आधुनिक रचना है ।'

डा० विल्सनकी संस्कृत-साहित्य-सेवाओंके प्रति सम्मान प्रदर्शित करते हुए भी विनम्र शब्दोंमें यह कहना ही पड़ता है कि आदरणीय पाश्चात्त्य विद्वान्‌के इन भ्रामक मतोंसे हम सहमत नहीं है ।

विष्णुपुराण

विष्णुमहापुराणके प्रति वचन है—

वाराहकल्पवृत्तान्तं व्यासेन कथितं त्विह ।

और—

द्वितीयस्य परार्द्धस्य वर्तमानस्य वै द्विज ।
वाराह इति कल्पोऽयं प्रथमः परिकीर्तितः ॥
(मत्स्यपुराण १ । ३ । २५)

वाराहकल्प-प्रसङ्गके अनन्तर ही प्रकृत प्रस्तावमें (विष्णुपुराण) आरम्भ हुआ है ।

एक और श्लोक है—

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि पुराणं वैष्णवं महत् ।
त्रयोविंशतिसाहस्रं सर्वपातकनाशनम् ॥
(नारदपुराण पूर्व०, पाद ४ अ० ९४)

तेईस हजार श्लोकोंसे युक्त 'वैष्णव-महापुराण' का कीर्तन करता हूँ, श्रवण करो ।

सब पुराणोंमें वक्ता-श्रोता मिलते हैं; विष्णुपुराणके भी आदिम वक्ता हैं—महर्षि पराशर और लेखक हैं श्रीकृष्ण-द्वैपायन व्यास । निम्नश्लोक माननीय है ।

वाराहकल्पवृत्तान्तमधिकृत्य पराशरः ।

वाराहकल्पके वृत्तान्तको लक्ष्य करके जो वैष्णव धर्मों-को (विष्णुपुराण) महर्षि पराशरने कहा ।

ऋग्वेदके नौ सूक्तोंके द्रष्टा यही पराशर हैं*, ऐसी अनेक सनातनधर्मी पण्डितोंकी मान्यता है । पर आर्यसमाज और

* Dr. H. H. Wilson—VISHUNU PURAN By Hal—Vol. I, P.L.I

* पं० श्रीमाधवाचार्य शास्त्रीविरचित 'पुराण-दिग्दर्शन' प्रकाशन संवत् १९९०, पृष्ठ १०१ ।

प्राप्य हैं, जब कि इस पुराणकी श्लोक-संख्या अन्य पुराणोंमें २३,००० कही गयी है। यह स्मरण रहे कि डा० विलसन 'विष्णुधर्मोत्तर' को 'विष्णुपुराण' का उत्तरभाग स्वीकार नहीं करते।

पुराणमर्मज्ञ अनेक विद्वानोंकी यह भी धारणा है—

'''विष्णुधर्मोत्तरको विष्णुपुराणका उत्तरभाग कहकर ग्रहण करनेमें कोई भी दोष नहीं आता, परंतु प्रचलित विष्णुपुराण और विष्णुधर्मोत्तर एकत्र करनेसे भी १६,००० से अधिक श्लोक नहीं पाये जाते, इसमें भी न्यूनाधिक ७,००० कम पड़ते हैं, इतने श्लोक कहाँ गये ? उसका निर्णय करना हमारी क्षुद्र बुद्धिके लिये अगम्य है, तथापि प्रचलित 'धर्मोत्तर' पूरा ग्रन्थ नहीं ज्ञात होता।

आगे विष्णुपुराणकी संक्षिप्त-सी परिचयात्मक विवेचना करते हुए लेखकका कहना है—

'नारदपुराणमें जो लक्षण (विष्णुपुराणके) लिखे हैं, वे सब लक्षण भी प्रचलित विष्णुधर्ममें नहीं पाये जाते, जिस विष्णुधर्मका ज्योतिषांश लेकर ब्रह्मगुप्तने 'ब्रह्म-सिद्धान्त' की रचना की, नारदपुराणमें उसका परिचय होनेपर भी प्रचलित 'धर्मोत्तर' में उसके अधिकांशका अभाव है।'

विद्वान् लेखकने उपर्युक्त कथनके अनन्तर अपने वक्तव्यकी पाद-टिप्पणीमें कहा है—

काश्मीरसे प्राप्त 'विष्णु-धर्मोत्तर' में इसका अधिक परिचय पाया जाता है[1]।

उपर्युक्त पक्षकी ही पुष्टि निम्न अवतरणसे भी सिद्ध है—

गणनामें डा० विलसन एक गलती खा गये, वह यह है कि 'विष्णुधर्मोत्तर' को 'विष्णुपुराण' की गणनामें नहीं लिया, नारदीय-पुराणके वचनानुसार अथवा मुस्लिम-परिव्राजक अलबरुनीका लेख पढ़नेसे यह ज्ञात हो जाता है कि 'विष्णुधर्मोत्तर' विष्णुपुराणके अन्तर्गत तेईस सहस्र श्लोक-संख्यामें शामिल है। 'विष्णुधर्मोत्तर' विष्णुपुराणका उत्तरभाग है। प्रचलित 'विष्णुपुराण' और 'विष्णुधर्मोत्तर' इन दोनोंकी श्लोक-संख्या लगभग सोलह हजार है।

इसके आगे वर्तमान 'विष्णुपुराण' के विषयमें अपनी सम्मति प्रकट करते हुए विद्वान् लेखकका कहना है—

प्रचलित 'विष्णुधर्मोत्तर' जो मुद्रित हुआ है, वह पूर्ण नहीं है, अधूरा ही मिला है। 'नारदीय पुराण' में जितने लक्षण लिखे गये हैं, वे समस्त लक्षण 'विष्णुधर्मोत्तर' में नहीं हैं अर्थात् बहुत-से लक्षण उसमें विद्यमान हैं और बहुतोंका अभाव है[2]।

डा० एच्० एच्० विलसनके मतानुसार 'विष्णुपुराण' की रचना १०४५ ई०के आसपास हुई। (यह मत सर्वथा भ्रान्त है।)

कलिस्वरूप-आख्यान, कृष्ण-जन्माष्टमीव्रत-कथा, देवी-स्तुति, महादेव-स्तोत्र, लक्ष्मी-स्तोत्र, विष्णुपूजन, विष्णुशत-नामस्तोत्र, सिद्धलक्ष्मी-स्तोत्र, सूर्यस्तोत्र आदि अनेक पुस्तिकाएँ यत्र-तत्र स्थानोंसे प्रकाशित हुई हैं, जिनको विष्णुपुराणके अन्तर्गत कर प्रकारान्तरसे सम्बन्धित कहा जाता है। पर उन सबका उपलब्ध विष्णुपुराणसे कोई खास सम्बन्ध नहीं मिलता। यह भी सम्भव है कि उपर्युक्त फुटकर रूपमें पायी जानेवाली कृतियोंसे समावेशवाला अंश लुप्त हो गया हो, जिससे यह पुराण आज अधूरा रह गया है।

आलोच्य पुराणके विषयमें यह बात पण्डितोंके लिये विचारणीय है कि पुराणसाहित्यके सर्वाधिक एकमात्र प्रकाशक श्रीवेंकटेश्वर-यन्त्रालय, मुम्बई कार्यालयने 'विष्णु-महापुराण' श्रीधरस्वामी-टीका और दो खण्डोंमें 'विष्णुधर्मोत्तर-महापुराण' (मूल) को प्रकाशित किया है, जिनके आरम्भिक वचनोंमें ऐसी कोई बात नहीं कही गयी है जिससे यह बात स्पष्ट होता हो कि 'विष्णु' और 'विष्णुधर्मोत्तर' इन दोनों महाग्रन्थोंका परस्परमें क्या सम्बन्ध है। अभी इस विषयमें अनुसंधानकी बहुत गुंजाइश है।

विष्णु-महापुराणपर चित्सुखमुनि, जगन्नाथ पाठक, नृसिंह भट्ट, रत्नगर्भविष्णुचित्त, श्रीधरस्वामी, सूर्यकर मिश्र आदिकी टीकाएँ पायी जाती हैं और इसी महापुराणपर गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित श्रीमुनिलाल गुप्तका अनुवाद भी उल्लेखनीय और प्रशंसनीय है।

---

१. विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद मिश्रनिर्मित 'अष्टादशपुराण-दर्पण' प्रकाशन संवत् १९९३, पृष्ठ ११९।

२. युक्तिविशारद पं० कालूराम शास्त्रीनिर्मित 'पुराणवर्म' प्रथम संस्करण, पृष्ठ १२७।

पुराणोंसे परम कल्याणकी प्राप्ति

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

पुराण कल्याणके मूल स्रोत हैं। इनमें अतुल वैराग्य, ज्ञान, उपासना तथा सात्त्विक सिद्धियोंका भण्डार भरा है। गोस्वामीजीको पुराण प्राणोंसे भी अधिक प्यारे थे। पुराणोंके अध्ययनसे उनमें सभी दिव्य गुण आ गये और वे भक्ति, वैराग्य, ज्ञान, निर्मल विचार और दयाके मूर्तिमान् स्वरूप बन गये। नाना पुराणोंके प्रगाढ़ अध्ययनके बलपर उन्होंने 'रामचरितमानस'की वह दिव्य सुरसरिता बहायी, जिसमें स्नान कर संसाररूपी कटाहके विषम विषयरूपी तीक्ष्णोष्ण तैलमें पडा हुआ प्राणी तत्काल नैरुज्य लाभकर अद्भुत सुख, शान्ति एवं सिद्धि प्राप्त करता है। वैसे ही विरक्तशिरोमणि श्रीशुकदेवजीने श्रीमद्भागवत महापुराणकी दिव्य पवित्र अमृतमयी धारा प्रवाहित की। पुराणोंमें दिव्य मङ्गलमय भगवच्चरित्रोंका वर्णन है। यदि किसीकी उनके श्रवण, कीर्तनादिमें प्रगाढ श्रद्धा उत्पन्न हो गयी तो समझना चाहिये कि उसका काम बन गया। पर यह श्रद्धा अवश्य अत्यन्त सुदृढ़ होनी चाहिये। यह नहीं कि कथा सुन रहे हैं, ध्यान जूतेपर लगा है, अथवा राग-रंग, संगीत, वाद्यके अभावमें कथा अत्यन्त फीकी लग रही है—यह कथामें श्रद्धा नहीं, यह तो रागरंग, संगीत-वाद्यमें श्रद्धा हुई। सात्त्विक श्रद्धाका उदाहरण वायु-पुराणोक्त माघ-माहात्म्यका सुमेधा ब्राह्मण है, जिसने १०० वर्षतक पूर्ण नियमसे सम्पूर्ण पुराणोंकी कथा सुनी थी। कथा-श्रवणमें वैराग्य, भगवच्चरणाश्रय आवश्यक है, पर वैराग्य तथा साधकोंके सहज दोष क्रोध, ईर्ष्या, घृणादि कभी न होना चाहिये। अपितु प्रत्येक प्राणीको भगवत्स्वरूप मानकर मन-ही-मन नमस्कार करना चाहिये और सभीके प्रति अत्यन्त सद्भावना एवं सेवाका व्यवहार रखना चाहिये।

पुराणोंकी प्राचीनता और दिव्यता

पुराणोंमें सभी प्रकारकी अलौकिक सिद्धियोंका उल्लेख है। साथ ही उनके प्राप्तिके साधनों, तन्त्र-मन्त्रोंका भी साङ्गोपाङ्ग वर्णन है। विधिपूर्वक अनुष्ठान कर आज भी मनुष्य उन्हें सरलतासे प्राप्त कर सकता है। कुछ लोगोंकी कल्पना है कि पुराण अत्यन्त अर्वाचीन तथा साधारण मनुष्यरचित हैं। प्रमाणमें वे भूतपूर्व राजाओंकी वंशावली आदि उद्धृत करते हैं, किंतु यह ठीक नहीं। उनमें बहुत-सी भविष्यकी बातोंका भी उल्लेख है। इसे देखकर कोई आगेका मनुष्य भी इसी प्रकारकी आशङ्का कर सकता है। सम्भव है थोड़ी-बहुत गड़बड़ियाँ हुई हों, जो पुराणोंके पाठ-भेदसे द्योतित हैं; पर वे सर्वथा आधुनिक या लौकिक नहीं। वाल्मीकि-रामायणमें सुमन्त्रने सनत्कुमार-द्वारा पौराणिक कथा सुननेकी बात कही है[1]। आनन्द-रामायणमें जगह-जगह श्रीरामद्वारा पुराण-श्रवणकी चर्चा आती है[2]। पूज्य गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने भी—

'वेद पुरान वसिष्ठ बखानहिं। सुनहिं रामु जद्यपि सब जानहिं॥'

'वेद पुरान सुनहि मन लाई। आपु कहहि अनुजन्हि समुझाई॥'

इत्यादि चौपाइयोंमें इस तत्त्वका दिग्दर्शन कराया है। वस्तुतः पुराण सर्वथा अनादि हैं। श्रीव्यासद्वारा इनका प्रतिकल्पमें आविर्भाव होता है। धीरे-धीरे इनमें अस्त-व्यस्तता आने लगती है। उदाहरणार्थ आज मार्कण्डेय-पुराण, वाराह-पुराण आदिके बहुत-से अंश नष्ट हो गये। कोई यदि अबाध-दिव्य-ज्ञान-सम्पन्न तपस्वी हो तो इन्हें ठीक करे। इसीलिये प्रतिद्वापरमें भिन्न-भिन्न दिव्य ज्ञानमय व्यासोंकी चर्चा आती है।

नारद-पुराणका महत्त्व

यद्यपि पुराण सभी भगवान्‌के ही स्वरूप कहे जाते हैं। फिर भी छः पुराण सात्त्विक कहे गये हैं[3] और उनमें समस्त कल्याण-गुणगणनिलय प्रभुकी महिमा विशेष ढंगसे अधिकाधिक मात्रामें कही गयी है[4]। नारद-पुराण भी सात्त्विक पुराण है

---

१. 'श्रूयतां तत्पुरावृत्तं पुराणे च मया श्रुतम्।'
(बालकाण्ड ९।१)

२. 'शृण्वन् पुराणं पप्रच्छ श्रोतुं सर्वान् जनान् गुरुन्'।
(आनन्दरामा० राज्यकाण्ड उत्तरार्द्ध २१।१७)

३. वैष्णवं नारदीयं च तथा भागवतं शुभम्।
गारुडं च तथा पाद्मं वाराहं शुभदर्शने॥
सात्त्विकानि पुराणानि विज्ञेयानि शुभानि वै।
(देखिये पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, २६३।८२-८३, आनन्दाश्रम संस्करण)।

४. सात्त्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरेः।

और इसमें आद्योपान्त सच्चिदानन्दघन, परमानन्दकन्द विशुद्ध सत्त्वमूर्ति श्रीहरिकी लीलाओंका ही गान हुआ है। नारदपुराणका सिद्धान्त बड़ा ही हृदयग्राही तथा स्पष्ट है। परम पुरुषार्थ मोक्ष अथवा भगवत्प्राप्ति अथवा भगवत्प्रसादासिके लिये भक्ति ही सुगमतम उपाय है[1], किंतु नारदपुराणकी दृष्टिमें भक्तिके साथ वर्णाश्रम-धर्म एवं शास्त्रोक्त कर्तव्योंका पालन भी अत्यावश्यक है। कदाचारपरायण, सदाचारत्यागी भक्तपर भगवान् कभी प्रसन्न नहीं होते[2]। भक्तिहीन सत्क्रियाएँ भी इसी प्रकार निरर्थक एवं श्रममात्र होती हैं[3]। इसी प्रकार भूतद्रोही, क्रोधी, ईर्ष्यालु भक्तकी आराधना भी सफल नहीं होती[4]। यद्यपि कल्याणकृत् प्राणी, सुदुराचारी भी हो और वह अनन्यभावसे भगवद्भजन करता हो, तो उसका विनाश नहीं होता, उसकी दुर्गति नहीं होती और वह भी पीछे धर्मात्मा बनकर शान्तिलाभ करता ही है[5], फिर भी उसे तत्काल सिद्धि तो नहीं ही मिलती।

इसी तरह भगवन्नाम-जपसे सारी अलौकिक क्रिया, अवाङ्मनसगोचर, अकल्पित, दुर्लभ सिद्धियाँ भी प्राप्त होती हैं; किंतु इसे भी काम, क्रोध, ईर्ष्या, गुरु-अवज्ञा, साधुनिन्दा, हरि-हरमें भेद, नामके बलपर पापाचरण, नामके फलमें अर्थवादका भ्रम, नास्तिकोंको नाम-माहात्म्य बतलाना इत्यादि दोषोंसे बचाना चाहिये[6], यद्यपि इन नामजप-सम्बन्धी दस दोषोंका पद्मपुराण, वाराहपुराण, आनन्दरामायण, हरिभक्ति-विलास आदि ग्रन्थोंमें विस्तारपूर्वक निरूपण हुआ है और साधारण जनतामें भी—

'राम राम सब कोइ कहै दशरथ कहै न कोय।
एक बार दशरथ कहै, कोटि यज्ञ फल होय॥'

इस दोहेसे प्रसिद्धि है, फिर भी तथाकथित दोषोंसे ग्रस्त रहनेसे साधकोंको पूर्ण सिद्धि नहीं प्राप्त होती। ऐसे तो भगवन्नाममें प्रवृत्ति, तत्कारणभूत सत्सङ्ग एवं नर-शरीरकी प्राप्ति अथच तत्तद् दोषोंकी निवृत्ति एकमात्र भगवत्कृपापर ही अवलम्बित है, फिर भी शुभसंकल्पोंद्वारा परमेश्वरका वरण करना एवं शुभ कर्मोंमें प्रवृत्तिकी चेष्टा प्राणीके कल्याणके लिये, अत्यन्त अपेक्षित है, यह बात ब्रह्मसूत्रके 'परात्तु तच्छ्रुतेः' 'कृतप्रयत्नापेक्षः' 'वैषम्यनैर्घृण्यादि' सूत्रों, गीताके 'ददामि बुद्धियोगम्' आदि श्लोकोंमें अच्छी तरहसे बतलायी गयी है। नारदपुराणमें इस रहस्यपर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

---

१. यथा भूमिं समाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः। तथा भक्तिं समाश्रित्य सर्वकार्याणि साधयेत्॥
(पूर्वखण्ड ४।५)

२. हरिभक्तिपरो वापि हरिध्यानपरोऽपि वा। भ्रष्टो यः स्वाश्रमाचारात् पतितः सोऽभिधीयते॥
वेदो वा हरिभक्तिर्वा भक्तिर्वापि महेश्वरे। आचारात् पतितं मूढं न पुनाति द्विजोत्तम॥
(४।२४-२५)

३. अश्वमेधसहस्रं वा कर्म वेदोदितं कृतम्। तत्सर्वं निष्फलं ब्रह्मन् यदि भक्तिविवर्जितम्॥
(पू० भा० ४।११)

४. असूयोपेतमनसां भक्तिदानादि कर्म यत्। अवेहि निष्फलं ब्रह्मन् तेषां दूरतरो हरिः॥
(पू० भा० ४।१४)

५. न हि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति। (गी० ६।४०)
अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्। साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति। कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति। (गी० ९।३०-३१)

६. गुरोरवज्ञा साधूनां निन्दा भेदं हरौ हरे। वेदनिन्दा हरेर्नामबलात् पापसमीहनम्॥
अर्थवादं हरेर्नाम्नि पाषण्डं नामसंग्रहे। अलसे नास्तिके चैव हरिनामोपदेशनम्॥
नामविस्मरणं चापि नाम्न्यनादरमेव च। संत्यजेद्दूरतो वत्स दोषानेतान्सुदारुणान्॥
(ना० पू० भाग ८२।२२-२५)

भगीरथको भगवान् विष्णुके दर्शन

[पृष्ठ ६१

ॐ

श्रीपरमात्मने नम

श्रीगणेशाय नमः

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीनारदमहापुराण

पूर्वभाग

प्रथम पाद

सिद्धाश्रममें शौनकादि महर्षियोंका सूतजीसे प्रश्न तथा सूतजीके द्वारा नारदपुराणकी महिमा और विष्णुभक्तिके माहात्म्यका वर्णन

ॐ वेदव्यासाय नमः

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्॥ १॥

भगवान् नारायण, नरश्रेष्ठ नर तथा सरस्वतीदेवीको नमस्कार करके भगवदीय उत्कर्षका प्रतिपादन करनेवाले इतिहास-पुराणका पाठ करे।

वन्दे वृन्दावनासीनमिन्दिरानन्दमन्दिरम्।
उपेन्द्रं सान्द्रकारुण्यं परानन्दं परात्परम्॥ २॥

जो लक्ष्मीके आनन्द-निकेतन भगवान् विष्णुके अवतार-स्वरूप है, उस स्नेहयुक्त करुणाकी निधि परात्पर परमानन्द-स्वरूप पुरुषोत्तम वृन्दावनवासी श्रीकृष्णको मै प्रणाम करता हूँ।

ब्रह्मविष्णुमहेशाख्यं यस्यांशा लोकसाधका।
तमादिदेवं चिद्रूपं विशुद्धं परमं भजे॥ ३॥

ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव जिसके स्वरूप है तथा लोकपाल जिसके अंश हैं, उस विशुद्ध ज्ञानस्वरूप आदिदेव परमात्माकी मै आराधना करता हूँ।

नैमिषारण्य नामक विशाल वनमे महात्मा शौनक आदि ब्रह्मवादी मुनि मुक्तिकी इच्छासे तपस्यामे सलग्न थे। उन्होंने इन्द्रियोंको वशमे कर लिया था। उनका भोजन नियमित था। वे सच्चे संत थे और सत्यस्वरूप परमात्माकी प्राप्तिके लिये पुरुषार्थ करते थे। आदिपुरुष सनातन भगवान् विष्णुका वे बड़ी भक्तिसे यजन-पूजन करते रहते थे। उनमें ईर्ष्याका नाम नहीं था। वे सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता और समस्त लोकों-पर अनुग्रह करनेवाले थे। ममता और अहङ्कार उन्हें छू भी नहीं सके थे। उनका चित्त निरन्तर परमात्माके चिन्तनमें तत्पर रहता था। वे समस्त कामनाओंका त्याग करके सर्वथा निष्पाप हो गये थे। उनमें शम, दम आदि सद्गुणोंका सहज विकास था। काले मृगचर्मकी चादर ओढ़े, सिरपर जटा बढ़ाये तथा निरन्तर ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए वे महर्षिगण सदा परब्रह्म परमात्माका जप एवं कीर्तन करते थे। सूर्यके समान प्रतापी, धर्मशास्त्रोंका यथार्थ तत्त्व जाननेवाले वे सब मुनि नैमिषारण्यमें तप करते थे। उनमेंसे कुछ लोग यज्ञोंद्वारा यज्ञपति भगवान् विष्णुका यजन करते थे। कुछ लोग ज्ञानयोगके साधनोंद्वारा ज्ञानस्वरूप श्रीहरिकी उपासना करते थे और कुछ लोग भक्तिके मार्गपर चलते हुए परा-भक्तिके द्वारा भगवान् नारायणकी पूजा करते थे।

एक समय धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका उपाय जानने-की इच्छासे उन श्रेष्ठ महात्माओंने एक बड़ी भारी सभा की। उसमें छब्बीस हजार ऊर्ध्वरेता (नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले) मुनि सम्मिलित हुए थे। उनके शिष्य-प्रशिष्यों-

की संख्या तो बतायी ही नहीं जा सकती। पवित्र अन्तःकरण-वाले वे महातेजस्वी महर्षि लोकोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही एकत्र हुए थे। उनमें राग और मात्सर्यका सर्वथा अभाव था। वे शौनकजीसे यह पूछना चाहते थे कि इस पृथ्वीपर कौन-कौन-से पुण्यक्षेत्र एवं पवित्र तीर्थ हैं। त्रिविध तापसे पीड़ित चित्तवाले मनुष्योंको मुक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है। लोगोंको भगवान् विष्णुकी अविचल भक्ति कैसे प्राप्त होगी तथा सात्त्विक, राजस और तामस भेदसे तीन प्रकारके कर्मोंका फल किसके द्वारा प्राप्त होता है? उन मुनियोंको अपनेसे इस प्रकार प्रश्न करनेके लिये उद्यत देखकर उत्तम बुद्धिवाले शौनकजी विनयसे झुक गये और हाथ जोड़कर बोले।

शौनकजीने कहा—महर्षियो! पवित्र सिद्धाश्रमतीर्थमें पौराणिकोंमें श्रेष्ठ सूतजी रहते हैं। वे वहाँ अनेक प्रकारके यज्ञोंद्वारा विश्वरूप भगवान् विष्णुका यजन किया करते हैं। महामुनि सूतजी व्यासजीके शिष्य हैं। वे यह सब विषय अच्छी तरह जानते हैं। उनका नाम रोमहर्षण है। वे बड़े शान्त स्वभावके हैं और पुराणसंहिताके वक्ता हैं। भगवान् मधुसूदन प्रत्येक युगमें धर्मोंका ह्रास देखकर वेदव्यास रूपसे प्रकट होते और एक ही वेदके अनेक विभाग करते हैं। विप्रगण! हमने सब शास्त्रोंमें यह सुना है कि वेदव्यास मुनि साक्षात् भगवान् नारायण ही हैं। उन्हीं भगवान् व्यासने सूतजीको पुराणोंका उपदेश दिया है। परम बुद्धिमान् वेदव्यास-जीके द्वारा भलीभाँति उपदेश पाकर सूतजी सब धर्मोंके ज्ञाता हो गये हैं। संसारमें उनसे बढ़कर दूसरा कोई पुराणोंका ज्ञाता नहीं है; क्योंकि इस लोकमें सूतजी ही पुराणोंके तात्त्विक अर्थको जाननेवाले, सर्वज्ञ और बुद्धिमान् हैं। उनका स्वभाव शान्त है। वे मोक्षधर्मके ज्ञाता तो हैं ही, कर्म और भक्तिके विविध साधनोंको भी जानते हैं। मुनीश्वरो! वेद, वेदाङ्ग और शास्त्रोंका जो सारभूत तत्त्व है, वह सब मुनिवर व्यासने जगत्के हितके लिये पुराणोंमें बता दिया है और ज्ञानसागर सूतजी उन सबका यथार्थ तत्त्व जाननेमें कुशल हैं, इसलिये हमलोग उन्हींसे सब बातें पूछें।

इस प्रकार शौनकजीने मुनियोंसे जब अपना अभिप्राय निवेदन किया, तब वे सब महर्षि विद्वानोंमें श्रेष्ठ शौनकजीको आलिङ्गन करके बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें साधुवाद देने लगे। तदनन्तर सब मुनि वनके भीतर पवित्र सिद्धाश्रम तीर्थमें गये और वहाँ उन्होंने देखा कि सूतजी अग्निष्टोम यज्ञके द्वारा अनन्त अपराजित भगवान् नारायणका यजन कर रहे हैं। सूतजीने उन विख्यात तेजस्वी महात्माओंका यथोचित स्वागत-सत्कार किया। तत्पश्चात् उनसे नैमिषारण्यनिवासी मुनियोंने इस प्रकार पूछा—

ऋषि बोले—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले सूतजी! हम आपके यहाँ अतिथिरूपसे आये हैं, अतः आपसे आतिथ्य-सत्कार पानेके अधिकारी हैं। आप ज्ञान-दानरूपी पूजन-सामग्रीके द्वारा हमारा पूजन कीजिये। मुने! देवतालोग चन्द्रमाकी किरणोंसे निकला हुआ अमृत पीकर जीवन धारण करते हैं; परंतु इस पृथ्वीके देवता ब्राह्मण आपके मुखसे निकले हुए ज्ञानरूपी अमृतको पीकर तृप्त होते हैं। तात! हम यह जानना चाहते हैं कि यह सम्पूर्ण जगत् किससे उत्पन्न हुआ? इसका आधार और स्वरूप क्या है? यह किसमें स्थित है और किसमें इसका लय होगा? भगवान् विष्णु किस साधनसे प्रसन्न होते हैं? मनुष्योंद्वारा उनकी पूजा कैसे की जाती है? भिन्न-भिन्न वर्णों और आश्रमोंका आचार क्या है? अतिथिकी पूजा कैसे की जाती है, जिससे सब कर्म सफल हो जाते हैं? वह मोक्षका उपाय मनुष्योंको कैसे सुलभ है, पुरुषोंको भक्तिसे कौन-सा फल प्राप्त होता है और भक्तिका स्वरूप क्या है? मुनिश्रेष्ठ सूतजी! ये सब बातें आप हमें इस प्रकार समझाकर बतावें कि फिर इनके विषयमें कोई संदेह न रह जाय, आपके अमृतके समान वचनोंको सुननेके लिये किसके मनमें श्रद्धा नहीं होगी?

सूतजीने कहा—महर्षियो! आप सब लोग सुनें। आप लोगोंको जो अभीष्ट है, वह मैं बतलाता हूँ। सनकादि

मुनीश्वरोंने महात्मा नारदजीसे जिसका वर्णन किया था, वह नारदपुराण आप सुनें । यह वेदार्थसे परिपूर्ण है— इसमें वेदके सिद्धान्तोंका ही प्रतिपादन किया गया है । यह समस्त पापोंकी शान्ति तथा दुष्ट ग्रहोंकी बाधाका निवारण करनेवाला है । दुःस्वप्नोंका नाश करनेवाला, धर्मसम्मत तथा भोग एव मोक्षको देनेवाला है । इसमें भगवान् नारायणकी पवित्र कथाका वर्णन है । यह नारद-पुराण सब प्रकारके कल्याणकी प्राप्तिका हेतु है । धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षका भी कारण है । इसके द्वारा महान् फलोंकी भी प्राप्ति होती है, यह अपूर्व पुण्यफल प्रदान करनेवाला है । आप सब लोग एकाग्रचित्त होकर इस महापुराणको सुनें । महापातकों तथा उपपातकोंसे युक्त मनुष्य भी महर्षि व्यासप्रोक्त इस दिव्य पुराणका श्रवण करके शुद्धिको प्राप्त होते हैं । इसके एक अध्यायका पाठ करनेसे अश्वमेध यज्ञका और दो अध्यायोंके पाठसे राजसूय यज्ञका फल मिलता है । ब्राह्मणो ! ज्येष्ठके महीनेमें पूर्णिमा तिथिको मूल नक्षत्रका योग होनेपर मनुष्य इन्द्रिय-संयमपूर्वक मथुरा-पुरीकी यमुनाके जलमें स्नान करके निराहार व्रत रहे और विधिपूर्वक भगवान् श्रीकृष्णका पूजन करे तो इससे उसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, उसीको वह इस पुराणके तीन अध्यायों-का पाठ करके प्राप्त कर लेता है । इसके दस अध्यायोंका भक्तिभावसे श्रवण करके मनुष्य निर्वाण मोक्ष प्राप्त कर लेता है । यह पुराण कल्याण-प्राप्तिके साधनोंमें सबसे श्रेष्ठ है । पवित्र ग्रन्थोंमें इसका स्थान सर्वोत्तम है । यह बुरे स्वप्नोंका नाशक और परम पवित्र है । ब्रह्मर्षियो ! इसका यत्नपूर्वक श्रवण करना चाहिये । यदि मनुष्य श्रद्धापूर्वक इसके एक श्लोक या आधे श्लोकका भी पाठ कर ले तो वह महापातकोंके समूहसे तत्काल मुक्त हो जाता है ।

साधु पुरुषोंके समक्ष ही इस पुराणका वर्णन करना चाहिये; क्योंकि यह गोपनीयसे भी अत्यन्त गोपनीय है । भगवान् विष्णुके समक्ष, किसी पुण्य क्षेत्रमें तथा ब्राह्मण आदि द्विजातियोंके निकट इस पुराणकी कथा बाँचनी चाहिये । जिन्होंने काम-क्रोध आदि दोषोंको त्याग दिया है, जिनका मन भगवान् विष्णुकी भक्तिमें लगा है तथा जो सदाचारपरायण हैं, उन्हींको यह मोक्षसाधक पुराण सुनाना चाहिये । भगवान् विष्णु सर्वदेवमय हैं । वे अपना स्मरण करनेवाले भक्तोंकी समस्त पीडाओंका नाश कर देते हैं । श्रेष्ठ भक्तोंपर उनकी स्नेह-धारा सदा प्रवाहित होती रहती है । ब्राह्मणो ! भगवान् विष्णु केवल भक्तिसे ही संतुष्ट होते हैं दूसरे किसी उपायसे नहीं । उनके नामका बिना श्रद्धाके भी कीर्तन अथवा श्रवण कर लेनेपर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो अविनाशी वैकुण्ठ धामको प्राप्त कर लेता है । भगवान् मधुसूदन संसाररूपी भयङ्कर एवं दुर्गम वनको दग्ध करनेके लिये दावानलरूप हैं । महर्षियो ! भगवान् श्रीहरि अपना स्मरण करनेवाले पुरुषोंके सब पापोंका उसी क्षण नाश कर देते हैं । उनके तत्त्वका प्रकाश करनेवाले इस उत्तम पुराणका श्रवण अवश्य करना चाहिये । सुनने अथवा पाठ करनेसे भी यह पुराण सब पापोंका नाश करनेवाला है । ब्राह्मणो ! जिसकी बुद्धि भक्तिपूर्वक इस पुराणके सुननेमें लग जाती है, वही कृतकृत्य है । वही सम्पूर्ण शास्त्रोंका मर्मज्ञ पण्डित है तथा उसीके द्वारा किये हुए तप और पुण्यको मैं सफल मानता हूँ, क्योंकि बिना तप और पुण्यके इस पुराण-को सुननेमें प्रेम नहीं हो सकता । जो संसारका हित करनेवाले साधु पुरुष हैं, वे ही उत्तम कथाओंके कहने सुननेमें प्रवृत्त होते हैं । पापपरायण दुष्ट पुरुष तो सदा दूसरोंकी निन्दा और दूसरोंके साथ कलह करनेमें ही लगे रहते हैं । द्विजवरो ! जो नराधम पुराणोंमें अर्थवाद होनेकी शङ्का करते हैं, उनके किये हुए समस्त पुण्य नष्ट हो जाते हैं । विप्रवरो ! मोहग्रस्त मानव दूसरे-दूसरे कार्योंके साधनमें लगे रहते हैं, परंतु पुराण-श्रवणरूप पुण्यकर्मका अनुष्ठान नहीं करते हैं । श्रेष्ठ ब्राह्मणो ! जो मनुष्य बिना किसी परिश्रमके यहाँ अनन्त पुण्य प्राप्त करना चाहता हो, उसको भक्तिभावसे निश्चय ही पुराणोंका श्रवण करना चाहिये । जिस पुरुषकी चित्तवृत्ति पुराण सुननेमें लग जाती है, उसके पूर्वजन्मोपार्जित समस्त पाप निस्संदेह नष्ट हो जाते हैं । जो मानव सत्सङ्ग, देवपूजा, पुराणकथा और हितकारी उपदेशमें तत्पर रहता है, वह इस देहका नाश होनेपर भगवान् विष्णुके समान तेजस्वी स्वरूप धारण करके उन्हींके परम धाममें चला जाता है । अतः विप्रवरो ! आपलोग इस परम पवित्र नारद-पुराणका श्रवण करें । इसके श्रवण करनेसे मनुष्यका मन भगवान् विष्णुमें संलग्न होता है और वह जन्म मृत्यु तथा जरा आदिके बन्धनसे छूट जाता है ।

आदिदेव भगवान् नारायण श्रेष्ठ, वरणीय, वरदाता तथा पुराणपुरुष हैं । उन्होंने अपने प्रभावसे सम्पूर्ण लोकोंको व्याप्त कर रखा है । वे भक्तजनोंके

मनोवाञ्छित पदार्थको देनेवाले हैं। उनका स्मरण करके मनुष्य मोक्षपदको प्राप्त कर लेता है। ब्राह्मणो! जो ब्रह्मा, शिव तथा विष्णु आदि भिन्न-भिन्न रूप धारण करके इस जगत्‌की सृष्टि, संहार और पालन करते हैं, उन आदिदेव परम पुरुष परमेश्वरको अपने हृदयमें स्थापित करके मनुष्य मुक्ति पा लेता है। जो नाम और जाति आदिकी कल्पनाओंसे रहित हैं, सर्वश्रेष्ठ तत्त्वोंसे भी परम उत्कृष्ट हैं, परात्पर पुरुष हैं, उपनिषदोंके द्वारा जिनके तत्त्वका ज्ञान होता है तथा जो अपने प्रेमी भक्तोंके समक्ष ही सगुण-साकार रूपमें प्रकट होते हैं, उन्हीं परमेश्वरकी समस्त पुराणों और वेदोंके द्वारा स्तुति की जाती है। अतः जो सम्पूर्ण जगत्‌के ईश्वर, मोक्षस्वरूप, उपासनाके योग्य, अजन्मा, परम रहस्यरूप तथा समस्त पुरुषार्थोंके हेतु हैं, उन भगवान् विष्णुका स्मरण करके मनुष्य भवसागरसे पार हो जाता है। धर्मात्मा, श्रद्धालु, मुमुक्षु, यति तथा वीतराग पुरुष ही यह पुराण सुननेके अधिकारी हैं। उन्हींको इसका उपदेश करना चाहिये। पवित्र देशमें, देवमन्दिरके सभामण्डपमें, पुण्य-क्षेत्रमें, पुण्यतीर्थमें तथा देवताओं और ब्राह्मणोंके समीप पुराणका प्रवचन करना चाहिये। जो मनुष्य पुराण-कथाके बीचमें दूसरेसे बातचीत करता है, वह भयङ्कर नरकमें पड़ता है। जिसका चित्त एकाग्र नहीं है, वह सुनकर भी कुछ नहीं समझता। अतः एकचित्त होकर भगवत्कथामृतका पान करना चाहिये। जिसका मन इधर-उधर भटक रहा हो, उसे कथा-रसका आस्वादन कैसे हो सकता है? संसारमें चञ्चल चित्तवाले मनुष्यको क्या सुख मिलता है? अतः दुःखकी साधनभूत समस्त कामनाओंका त्याग करके एकाग्रचित्त हो भगवान् विष्णुका चिन्तन करना चाहिये। जिस किसी उपायसे भी यदि अविनाशी भगवान् नारायणका स्मरण किया जाय तो वे पातकी मनुष्यपर भी निस्सन्देह प्रसन्न हो जाते हैं। सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी तथा सर्वत्र व्यापक अविनाशी भगवान् विष्णुमें जिसकी भक्ति है, उसका जन्म सफल हो गया और मुक्ति उसके हाथमें है। विप्रवरो! भगवान् विष्णुके भजनमें संलग्न रहनेवाले पुरुषोंको धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थ प्राप्त होते हैं।

नारदजीद्वारा भगवान् विष्णुकी स्तुति

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! सनत्कुमारजीने महात्मा नारदको किस प्रकार सम्पूर्ण धर्मोंका उपदेश किया तथा उन दोनोंका समागम किस तरह हुआ? वे दोनों ब्रह्मवादी महात्मा किस स्थानमें स्थित होकर भगवान्‌की महिमाका गान करते थे? यह हमें बताइये।

सूतजी बोले—महात्मा सनक आदि ब्रह्माजीके मानस-पुत्र हैं। उनमें न ममता है और न अहङ्कार। वे सभी नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं। उनके नाम बतलाता हूँ, सुनिये। सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन—इन्हीं नामोंसे उनकी ख्याति है। वे चारों महात्मा भगवान् विष्णुके भक्त हैं तथा निरन्तर परब्रह्म परमात्माके चिन्तनमें तत्पर रहते हैं। उनका प्रभाव सहस्र सूर्योंके समान है। वे सत्यव्रती तथा मुमुक्षु हैं। एक दिनकी बात है, वे मेरुगिरिके शिखर-पर ब्रह्माजीकी सभामें जा रहे थे। मार्गमें उन्हें भगवान् विष्णुके चरणोंसे प्रकट हुई गङ्गाजीका दर्शन हुआ। यह उन्हें अभीष्ट था। गङ्गाजीका दर्शन करके वे चारों महात्मा उनकी सीता नामवाली धाराके जलमें स्नान करनेको उद्यत हुए। द्विजवरो! इसी समय देवर्षि नारदमुनि भी वहाँ आ पहुँचे और अपने बड़े भाइयोंको वहाँ स्नानके लिये उद्यत देख उन्हें हाथ जोडकर नमस्कार किया। उस समय वे प्रेम-भक्तिके साथ भगवान् मधुसूदनके नामोंका कीर्तन करने लगे—'नारायण! अच्युत! अनन्त! वासुदेव! जनार्दन! यज्ञेश! यज्ञपुरुष! कृष्ण! विष्णो! आपको नमस्कार है। कमल-नयन! कमलाकान्त! गङ्गाजनक! केशव! क्षीरसमुद्रमें शयन करनेवाले देवेश्वर! दामोदर! आपको नमस्कार है। श्रीराम! विष्णो! नृसिंह! वामन! प्रद्युम्न! संकर्षण! वासुदेव! अज! अनिरुद्ध! निर्मल प्रकाशस्वरूप! मुरारे! आप सब प्रकारके भयसे निरन्तर हमारी रक्षा कीजिये।' इस प्रकार उच्च स्वरसे हरिनामका उच्चारण करते हुए उन अग्रज मुनियोंको प्रणाम करके वे उनके पास बैठे और उन्हींके साथ प्रसन्नतापूर्वक वहाँ स्नान भी किया। सम्पूर्ण लोकोंका पाप दूर करनेवाली गङ्गाकी धारा सीताके जलमें स्नान करके उन निष्पाप मुनियोंने देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका तर्पण किया। फिर जलसे बाहर आकर संध्योपासन

आदि अपने नित्य नियमका पालन किया। तत्पश्चात् वे भगवान् नारायणके गुणोंसे सम्बन्ध रखनेवाली नाना प्रकारकी कथा-वार्ता करने लगे। उस मनोरम गङ्गातटपर सनकादि मुनियोंने जब अपना नित्यकर्म समाप्त कर लिया, तब देवर्षि नारदने अनेक प्रकारकी कथा-वार्ताके बीच उनसे इस प्रकार प्रश्न किया।

नारदजी बोले—मुनिवरो! आपलोग सर्वज्ञ हैं। सदा भगवान्‌के भजनमें तत्पर रहते हैं। आप सब-के-सब सनातन भगवान् जगदीश्वर हैं और जगत्‌के उद्धारमें तत्पर रहते हैं। दीन-दुखियोंके प्रति मैत्री भाव रखनेवाले आप महानुभावोंसे मैं कुछ प्रश्न पूछता हूँ, उसे बतायें। विद्वानो! मुझे भगवान्‌का लक्षण बताइये। यह सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गम जिनसे उत्पन्न हुआ है, भगवती गङ्गा जिनके चरणोंका धोवन हैं, वे भगवान् श्रीहरि कैसे जाने जाते हैं? मनुष्योंके मन, वाणी, शरीरसे किये हुए कर्म कैसे सफल होते हैं? सबको मान देनेवाले महात्माओ! ज्ञान और तपस्याका भी लक्षण बतलाइये। साथ ही अतिथि-पूजाका भी महत्त्व समझाइये, जिससे भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं। हे नाथ! इस प्रकारके और भी जो गुह्य सत्कर्म भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेवाले हैं, उन सबका मुझपर अनुग्रह करके यथार्थ रूपसे वर्णन कीजिये।

तदनन्तर नारदजी भगवान्‌की स्तुति करने लगे—'जो परसे भी परे परम प्रकाशस्वरूप परमात्मा सम्पूर्ण कार्य-कारणरूप जगत्‌में अन्तर्यामीरूपसे निवास करते हैं तथा जो सगुण और निर्गुणरूप हैं, उनको नमस्कार है। जो नामरूप आदिसे रहित हैं, परमात्मा जिनका नाम है, माया जिनकी शक्ति है, यह सम्पूर्ण विश्व जिनका स्वरूप है, जो योगियोंके ईश्वर, योगस्वरूप तथा योगगम्य हैं, उन सर्वव्यापी भगवान् विष्णुको नमस्कार है। जो ज्ञानस्वरूप, ज्ञानगम्य तथा सम्पूर्ण ज्ञानके एकमात्र हेतु हैं; ज्ञानेश्वर, ज्ञेय, ज्ञाता तथा विज्ञानसम्पत्तिरूप हैं, उन परमात्माको नमस्कार है। जो ध्यानस्वरूप, ध्यानगम्य तथा ध्यान करनेवाले साधकोंके पापका नाश करनेवाले हैं; जो ध्यानके ईश्वर, श्रेष्ठ बुद्धिसे युक्त तथा ध्याता, ध्येयस्वरूप हैं; उन परमेश्वरको नमस्कार है। सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि तथा ब्रह्मा आदि देवता, सिद्ध, यक्ष, असुर और नागगण जिनकी शक्तिसे संयुक्त होकर ही स्तुति करनेमें समर्थ होते हैं, जो अजन्मा, पुराणपुरुष, सत्यस्वरूप तथा स्तुतिके अधीश्वर हैं, उन परमात्माको मैं सर्वदा नमस्कार करता हूँ। ब्रह्मन्! जो ब्रह्माजीका रूप धारण करके संसारकी सृष्टि और विष्णुरूपसे जगत्‌का पालन करते हैं तथा कल्पका अन्त होनेपर जो रुद्र-रूप धारण करके संहारमें प्रवृत्त होते हैं और एकार्णवके जलमें अक्षयवटके पत्रपर शिशुरूपसे अपने चरणारविन्दका रसपान करते हुए शयन करते हैं, उन अजन्मा परमेश्वरका मैं भजन करता हूँ। जिनके नामका संकीर्तन करनेसे गजराज ग्राहके भयानक बन्धनसे मुक्त हो गया, जो प्रकाशस्वरूप देवता अपने परम पदमें नित्य विराजमान रहते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् विष्णुकी मैं शरण लेता हूँ। जो शिवकी भक्ति करनेवाले पुरुषोंके लिये शिवस्वरूप और विष्णुका ध्यान करनेवाले भक्तोंके लिये विष्णुस्वरूप हैं, जो संकल्पपूर्वक अपने देह-धारणमें स्वयं ही हेतु हैं, उन नित्य परमात्माकी मैं शरण लेता हूँ। जो केशी तथा नरकासुरका नाश करनेवाले हैं, जिन्होंने बाल्यावस्थामें अपने हाथके अग्रभागमें गिरिराज गोवर्धनको धारण किया था, पृथ्वीके भारका अपहरण जिनका स्वाभाविक विनोद है, उन दिव्य शक्तिसम्पन्न भगवान् वासुदेवको मैं सदा प्रणाम करता हूँ। जिन्होंने खम्भमें भयङ्कर नृसिंह-रूपसे अवतीर्ण हो पर्वतकी चट्टानके समान कठोर दैत्य हिरण्यकशिपुके वक्षःस्थलको विदीर्ण करके अपने भक्त प्रह्लादकी रक्षा की; उन अजन्मा परमेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। जो आकाश आदि तत्त्वोंसे विभूषित, परमात्मा नामसे प्रसिद्ध, निरञ्जन, नित्य, अमेय तत्त्व तथा कर्मरहित हैं, उन विश्वविधाता पुराणपुरुष

परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ। जो ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, अग्नि, वायु, मनुष्य, यक्ष, गन्धर्व, असुर तथा देवता आदि अपने विभिन्न स्वरूपोंके साथ स्थित हैं, जो एक अद्वितीय परमेश्वर हैं, उन आदिपुरुष परमात्माका मैं भजन करता हूँ। यह भेदयुक्त सम्पूर्ण जगत् जिनसे उत्पन्न हुआ है, जिनमें स्थित है और संहारकालमें जिनमें लीन हो जायगा, उन परमात्माकी मैं शरण लेता हूँ। जो विश्वरूपमें स्थित होकर यहाँ आसक्त-से प्रतीत होते हैं, परंतु वास्तवमें जो असङ्ग और परिपूर्ण हैं, उन परमेश्वरकी मैं शरण लेता हूँ। जो भगवान् सबके हृदयमें स्थित होकर भी मायासे मोहित चित्तवालोंके अनुभवमें नहीं आते तथा जो परम शुद्धस्वरूप हैं, उनकी मैं शरण लेता हूँ। जो लोग सब प्रकारकी आसक्तियोंसे दूर रहकर ध्यानयोगमें अपने मनको लगाये हुए हैं, उन्हें जो सर्वत्र ज्ञानस्वरूप प्रतीत होते हैं, उन परमात्माकी मैं शरण लेता हूँ। क्षीरसागरमें अमृतमन्थनके समय जिन्होंने देवताओंके हितके लिये मन्दराचलको अपनी पीठपर धारण किया था, उन कूर्म-रूपधारी भगवान् विष्णुकी मैं शरण लेता हूँ। जिन अनन्त परमात्माने अपनी दाढ़ोंके अग्रभाग-द्वारा एकार्णवके जलमें इस पृथ्वीका उद्धार करके सम्पूर्ण जगत्को स्थापित किया, उन वाराह-रूपधारी भगवान् विष्णुको मैं नमस्कार करता हूँ। अपने भक्त प्रह्लादकी रक्षा करते हुए जिन्होंने पर्वतकी शिलाके समान अत्यन्त कठोर वक्षवाले हिरण्यकशिपु दैत्यको विदीर्ण करके मार डाला था, उन भगवान् नृसिंहको मैं नमस्कार करता हूँ। विरोचन-कुमार बलिसे तीन पग भूमि पाकर जिन्होंने दो ही पगोंसे ब्रह्मलोकपर्यन्त सम्पूर्ण विश्वको माप लिया और उसे पुनः देवताओंको समर्पित कर दिया, उन अपराजित भगवान् वामनको मैं नमस्कार करता हूँ। हैहयराज सहस्रबाहु अर्जुनके अपराधसे जिन्होंने समस्त क्षत्रियकुलका इक्कीस बार संहार किया, उन जमदग्निनन्दन भगवान् परशुरामको नमस्कार है। जिन्होंने राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न—इन चार रूपोंमें प्रकट हो वानरोंकी सेनासे घिरकर राक्षस-दलका संहार किया था, उन भगवान् श्रीरामचन्द्रको मैं नमस्कार करता हूँ। जिन्होंने श्रीबलराम और श्रीकृष्ण इन दो स्वरूपोंको धारण करके पृथ्वीका भार उतारा और अपने यादवकुलका संहार कर दिया, उन भगवान् श्रीकृष्णका मैं भजन करता हूँ। भूः, भुवः, स्वः—तीनों लोकोंमें व्याप्त अपने हृदयमें साक्षात्कार करनेवाले निर्मल बुद्धरूप परमेश्वरका मैं भजन करता हूँ। कलियुगके अन्तमें अशुद्ध चित्तवाले पापियोंको तलवारकी तीखी धारसे मारकर जिन्होंने सत्ययुगके आदिमें धर्मकी स्थापना की है, उन कल्किस्वरूप भगवान् विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ। इस प्रकार जिनके अनेक स्वरूपोंकी गणना बड़े-बड़े विद्वान् करोड़ों वर्षोंमें भी नहीं कर सकते, उन भगवान् विष्णुका मैं भजन करता हूँ। जिनके नामकी महिमाका पार पानेमें सम्पूर्ण देवता, असुर और मनुष्य भी समर्थ नहीं हैं, उन परमेश्वरकी मैं एक क्षुद्र जीव किस प्रकार स्तुति करूँ। महापातकी मानव जिनके नामका श्रवण करनेमात्रसे ही पवित्र हो जाते हैं, उन भगवान्की स्तुति मुझ-जैसा अल्प-बुद्धिवाला व्यक्ति कैसे कर सकता है। जिनके नामका जिस किसी प्रकार कीर्त्तन अथवा श्रवण कर लेनेपर भी पापी पुरुष अत्यन्त शुद्ध हो जाते हैं और शुद्धात्मा मनुष्य मोक्षको प्राप्त कर लेते हैं, निष्पाप योगीजन अपने मनको बुद्धिमें स्थापित करके जिनका साक्षात्कार करते हैं, उन ज्ञानस्वरूप परमेश्वरकी मैं शरण लेता हूँ। सांख्ययोगी सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मारूपसे परिपूर्ण हुए जिन जरारहित आदिदेव श्रीहरिका साक्षात्कार करते हैं, उन ज्ञानस्वरूप भगवान्का मैं भजन करता हूँ। सम्पूर्ण जीव जिनके स्वरूप हैं, जो शान्तस्वरूप हैं, सबके साक्षी, ईश्वर, सहस्रों मस्तकोंसे सुशोभित तथा भावरूप हैं, उन भगवान् श्रीहरिकी मैं वन्दना करता हूँ। भूत और भविष्य चराचर जगत्को व्याप्त करके जो उससे दस अङ्गुल ऊपर स्थित हैं, उन जरा-मृत्युरहित परमेश्वरका मैं भजन करता हूँ। जो सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म, महान्से भी अत्यन्त महान् तथा गुह्यसे भी अत्यन्त गुह्य हैं, उन अजन्मा भगवान्को मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ। जो परमेश्वर ध्यान, चिन्तन, पूजन, श्रवण अथवा नमस्कार मात्र कर लेनेपर भी जीवको अपना परम पद दे देते हैं, उन भगवान् पुरुषोत्तमकी मैं वन्दना करता हूँ। इस प्रकार परम पुरुष परमेश्वरकी नारदजीके स्तुति करनेपर नारदसहित वे सनन्दन आदि मुनीश्वर बड़ी प्रसन्नताको प्राप्त हुए। उनके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू भर आये थे। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर परम पुरुष भगवान् विष्णुके उपर्युक्त स्तोत्रका पाठ करता है, वह सब पापोंसे शुद्धचित्त होकर भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है।

सृष्टिक्रमका संक्षिप्त वर्णन; द्वीप, समुद्र और भारतवर्षका वर्णन, भारतमें सत्कर्मानुष्ठानकी महत्ता तथा भगवदर्पणपूर्वक कर्म करनेकी आज्ञा

नारदजीने पूछा—सनकजी ! आदिदेव भगवान् विष्णुने पूर्वकालमें ब्रह्मा आदिकी किस प्रकार सृष्टि की ? यह बात मुझे बताइये; क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं।

श्रीसनकजीने कहा—देवर्षे ! भगवान् नारायण अविनाशी, अनन्त, सर्वव्यापी तथा निरञ्जन हैं। उन्होंने इस सम्पूर्ण चराचर जगत्‌को व्याप्त कर रक्खा है। स्वयंप्रकाश, जगन्मय महाविष्णुने आदिसृष्टिके समय भिन्न-भिन्न गुणोंका आश्रय लेकर अपनी तीन मूर्तियोंको प्रकट किया। पहले भगवान्‌ने अपने दाहिने अङ्गसे जगत्‌की सृष्टिके लिये प्रजापति ब्रह्माजीको प्रकट किया। फिर अपने मध्य अङ्गसे जगत्‌का संहार करनेवाले रुद्र-नामधारी शिवको उत्पन्न किया। साथ

ही इस जगत्‌का पालन करनेके लिये उन्होंने अपने बायें अङ्गसे अविनाशी भगवान् विष्णुको अभिव्यक्त किया। जरा-मृत्युसे रहित उन आदिदेव परमात्माको कुछ लोग 'शिव' नामसे पुकारते हैं। कोई सदा सत्यरूप 'विष्णु' कहते हैं और कुछ लोग उन्हें 'ब्रह्मा' बताते हैं। भगवान् विष्णुकी जो परा शक्ति है, वही जगत्‌रूपी कार्यका सम्पादन करनेवाली है। भाव और अभाव—दोनो उसीके स्वरूप है। वही भावरूपसे विद्या और अभावरूपसे अविद्या कहलाती है। जिस समय यह संसार महाविष्णुसे भिन्न प्रतीत होता है, उस समय अविद्या सिद्ध होती है; वही दुःखका कारण होती है। नारदजी! जब तुम्हारी ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय रूपकी उपाधि नष्ट हो जायगी और सब रूपोंमें एकमात्र भगवान् महाविष्णु ही हैं—ऐसी भावना बुद्धिमें होने लगेगी, उस समय विद्याका प्रकाश होगा। वह अभेद-बुद्धि ही विद्या कहलाती है। इस प्रकार महाविष्णुकी मायाशक्ति उनसे भिन्न प्रतीत होनेपर जन्म-मृत्युरूप संसार-बन्धनको देनेवाली होती है और वही यदि अभेद-बुद्धिसे देखी जाय तो संसार-बन्धनका नाश करनेवाली बन जाती है। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् भगवान् विष्णुकी शक्तिसे उत्पन्न हुआ है, इसलिये जङ्गम—जो चेष्टा करता है और स्थावर—जो चेष्टा नहीं करता, यह सम्पूर्ण विश्व भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है। जैसे घट, मठ आदि भिन्न भिन्न उपाधियोंके कारण आकाश भिन्न भिन्न रूपमें प्रतीत होता है, उसी प्रकार यह सम्पूर्ण जगत् अविद्यारूप उपाधिके योगसे भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है। मुने! जैसे भगवान् विष्णु सम्पूर्ण जगत्में व्यापक हैं, उसी प्रकार उनकी शक्ति भी व्यापक है; जैसे अङ्गारमें रहनेवाली दाहशक्ति अपने आश्रयमें व्याप्त होकर स्थित रहती है। कुछ लोग भगवान्‌की उस शक्तिको लक्ष्मी कहते हैं तथा कुछ लोग उसे उमा और भारती (सरस्वती) आदि नाम देते हैं। भगवान् विष्णुकी वह परा शक्ति जगत्‌की सृष्टि आदि करनेवाली है। वह व्यक्त और अव्यक्तरूपसे सम्पूर्ण जगत्‌को व्याप्त करके स्थित है। जो भगवान् अखिल विश्वकी रक्षा करते हैं, वे ही परम पुरुष नारायण देव हैं। अतः जो परात्पर अविनाशी तत्त्व है, परम पद भी वही है; वही अक्षर, निर्गुण, शुद्ध, सर्वत्र परिपूर्ण एवं सनातन परमात्मा हैं; वे परसे भी परे हैं। परमानन्दस्वरूप परमात्मा सब प्रकारकी उपाधियोंसे रहित हैं। एकमात्र ज्ञानयोगके द्वारा उनके तत्त्वका बोध होता है। वे सबके देव हैं। सत्, चित् और आनन्द ही उनका स्वरूप है। वे स्वयं प्रकाशमय परमात्मा नित्य शुद्ध स्वरूप हैं तथापि सत्त्व आदि गुणोंके भेदसे तीन स्वरूप धारण करते हैं। उनके ये ही तीनों स्वरूप जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहारके कारण होते हैं। मुने! जिस स्वरूपसे भगवान् इस जगत्‌की सृष्टि करते हैं, उसीका नाम ब्रह्मा है। वे ब्रह्माजी जिनके नाभिकमलसे उत्पन्न हुए हैं, वे ही आनन्दस्वरूप

परमात्मा विष्णु इस जगत्का पालन करते हैं। उनसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है। वे सम्पूर्ण जगत्के अन्तर्यामी आत्मा हैं। समस्त संसारमें वे ही व्याप्त हो रहे हैं। वे सबके साक्षी तथा निरञ्जन हैं। वे ही भिन्न और अभिन्न रूपमें स्थित परमेश्वर हैं। उन्हींकी शक्ति महामाया है, जो जगत्की सत्ताका विश्वास धारण कराती है। विश्वकी उत्पत्तिका आदिकारण होनेसे विद्वान् पुरुष उसे प्रकृति कहते हैं। आदिसृष्टिके समय लोकरचनाके लिये उद्यत हुए भगवान् महाविष्णुके प्रकृति, पुरुष और काल—ये तीन रूप प्रकट होते हैं। शुद्ध अन्तःकरणवाले ब्रह्मरूपसे जिसका साक्षात्कार करते हैं, जो विशुद्ध परम धाम कहलाता है, वही विष्णुका परम पद है। इसी प्रकार वे शुद्ध, अक्षर, अनन्त परमेश्वर ही कालरूपमें स्थित हैं। वे ही सत्त्व, रज, तम-रूप तीनों गुणोंमें विराज रहे हैं तथा गुणोंके आधार भी वे ही हैं। वे सर्वव्यापी परमात्मा ही इस जगत्के आदि-स्रष्टा हैं। जगद्गुरु पुरुषोत्तमके समीप स्थित हुई प्रकृति जब क्षोभ (चञ्चलता) को प्राप्त हुई, तो उससे महत्तत्त्वका प्रादुर्भाव हुआ; जिसे समष्टि-बुद्धि भी कहते हैं। फिर उस महत्तत्त्वसे अहंकार उत्पन्न हुआ। अहंकारसे सूक्ष्म तन्मात्राएँ और एकादश इन्द्रियाँ प्रकट हुईं। तत्पश्चात् तन्मात्राओंसे पञ्च महाभूत प्रकट हुए, जो इस स्थूल जगत्के कारण हैं। नारदजी! उन भूतोंके नाम हैं—आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी। ये क्रमशः एक-एकके कारण होते हैं।

तदनन्तर संसारकी सृष्टि करनेवाले भगवान् ब्रह्माजीने तामस सर्गकी रचना की। तिर्यग् योनिवाले पशु पक्षी तथा मृग आदि जन्तुओंको उत्पन्न किया। उस सर्गको पुरुषार्थका साधक न मानकर ब्रह्माजीने अपने सनातन स्वरूपसे देवताओंको (सात्त्विक सर्गको) उत्पन्न किया। तत्पश्चात् उन्होंने मनुष्योंकी (राजस सर्गकी) सृष्टि की। इसके बाद दक्ष आदि पुत्रोंको जन्म दिया, जो सृष्टिके कार्यमें तत्पर हुए। ब्रह्माजीके इन पुत्रोंसे देवताओं, असुरों तथा मनुष्योंसहित यह सम्पूर्ण जगत् भरा हुआ है। भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक तथा सत्यलोक—ये सात लोक क्रमशः एकके ऊपर एक स्थित हैं। विप्रवर! अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल तथा पाताल—ये सात पाताल क्रमशः एकके नीचे एक स्थित हैं। इन सब लोकोंमें रहनेवाले लोकपालोंको भी ब्रह्माजीने उत्पन्न किया। भिन्न-भिन्न देशोंके कुल पर्वतों और नदियोंकी भी सृष्टि की तथा वहाँके निवासियोंके लिये जीविका आदि सब आवश्यक वस्तुओंकी भी यथायोग्य व्यवस्था की। इस पृथ्वीके मध्यभागमें मेरु पर्वत है, जो समस्त देवताओंका निवासस्थान है। जहाँ पृथ्वीकी अन्तिम सीमा है, वहाँ लोकालोक पर्वतकी स्थिति है। मेरु तथा लोकालोक पर्वतके बीचमें सात समुद्र और सात द्वीप हैं। विप्रवर! प्रत्येक द्वीपमें सात-सात मुख्य पर्वत तथा निरन्तर जल प्रवाहित करनेवाली अनेक विख्यात नदियाँ भी हैं। वहाँके निवासी मनुष्य देवताओंके समान तेजस्वी होते हैं। जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक तथा पुष्कर—ये सात द्वीपोंके नाम हैं। वे सब-की-सब देवभूमियाँ हैं। ये सातो द्वीप सात समुद्रोंसे घिरे हुए हैं। क्षारोद, इक्षुरसोद, सुरोद, घृत, दधि, दुग्ध तथा स्वादु जलसे भरे हुए वे समुद्र उन्हीं नामोंसे प्रसिद्ध हैं। इन द्वीपों और समुद्रोंको क्रमशः पूर्व-पूर्वकी अपेक्षा उत्तरोत्तर दूने विस्तारवाले जानना चाहिये। ये सब लोकालोक पर्वततक स्थित हैं। क्षार समुद्रसे उत्तर और हिमालय पर्वतसे दक्षिणके प्रदेशको 'भारतवर्ष' समझना चाहिये। वह समस्त कर्मोंका फल देनेवाला है।

नारदजी! भारतवर्षमें मनुष्य जो सात्त्विक, राजसिक और तामसिक तीन प्रकारके कर्म करते हैं, उनका फल भोगभूमियोंमें क्रमशः भोगा जाता है। विप्रवर! भारतवर्षमें किया हुआ जो शुभ अथवा अशुभ कर्म है, उसका क्षणभङ्गुर (बचा हुआ) फल जीवोंद्वारा अन्यत्र भोगा जाता है। आज भी देवतालोग भारतभूमिमें जन्म लेनेकी इच्छा करते हैं। वे सोचते हैं 'हमलोग कब संचित किये हुए महान्, अक्षय, निर्मल एवं शुभ पुण्यके फलस्वरूप भारतवर्षकी भूमिपर जन्म लेंगे और कब वहाँ महान् पुण्य करके परम पदको प्राप्त होंगे। अथवा वहाँ नाना प्रकारके दान, भाँति-भाँतिके यज्ञ या तपस्याके द्वारा जगदीश्वर श्रीहरिकी आराधना करके उनके नित्यानन्दमय अनामय पदको कब प्राप्त कर लेंगे।' नारदजी! जो भारतभूमिमें जन्म लेकर भगवान् विष्णुकी आराधनामें लग जाता है, उसके समान पुण्यात्मा तीनों लोकोंमें कोई नहीं है। भगवान्के नाम और गुणोंका कीर्तन जिसका स्वभाव बन जाता है, जो भगवद्भक्तोंका प्रिय होता है अथवा जो महापुरुषोंकी सेवा-शुश्रूषा करता है, वह देवताओंके लिये भी वन्दनीय है। जो नित्य भगवान् विष्णुकी आराधनामें तत्पर है अथवा हरि-भक्तोंके

स्वागत-सत्कारमें संलग्न रहता है और उन्हें भोजन कराकर बचे हुए (श्रेष्ठ) अन्नका स्वयं सेवन करता है, वह भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त होता है। जो अहिंसा आदि धर्मोंके पालनमें तत्पर होकर शान्तभावसे रहता है और भगवान्‌के 'नारायण, कृष्ण तथा वासुदेव' आदि नामोंका उच्चारण करता है, वह श्रेष्ठ इन्द्रादि देवताओंके लिये भी वन्दनीय हैं। जो मानव 'शिव, नीलकण्ठ तथा शङ्कर' आदि नामोंद्वारा भगवान् शिवका स्मरण करता तथा सदा सम्पूर्ण जीवोंके हितमें संलग्न रहता है, वह (भी) देवताओंके लिये पूजनीय माना गया है। जो गुरुका भक्त, शिवका ध्यान करनेवाला, अपने आश्रम-धर्मके पालनमें तत्पर, दूसरोंके दोष न देखनेवाला, पवित्र तथा कार्यकुशल है, वह भी देवेश्वरोंद्वारा पूज्य होता है। जो ब्राह्मणोंका हित-साधन करता है, वर्णधर्म और आश्रमधर्ममें श्रद्धा रखता है तथा सदा वेदोंके स्वाध्यायमें तत्पर होता है, उसे 'पङ्क्तिपावन' मानना चाहिये। जो देवेश्वर भगवान् नारायण तथा शिवमें कोई भेद नहीं देखता, वह ब्रह्माजीके लिये भी सदा वन्दनीय है; फिर हमलोगोंकी तो बात ही क्या है? नारदजी! जो गौओंके प्रति क्षमाशील—उनपर क्रोध न करनेवाला, ब्रह्मचारी, परायी निन्दासे दूर रहनेवाला तथा संग्रहसे रहित है, वह भी देवताओंके लिये पूजनीय है। जो चोरी आदि दोषोंसे पराङ्मुख है, दूसरोंद्वारा किये हुए उपकारको याद रखता है, सत्य बोलता है, बाहर और भीतरसे पवित्र रहता है तथा दूसरोंकी भलाईके कार्यमें सदा संलग्न रहता है, वह देवता और असुर सबके लिये पूजनीय होता है। जिसकी बुद्धि वेदार्थ श्रवण करने, पुराणकी कथा सुनने तथा सत्सङ्गमें लगी होती है, वह भी इन्द्रादि देवताओंद्वारा वन्दनीय होता है। जो भारतवर्षमें रहकर श्रद्धापूर्वक पूर्वोक्त प्रकारके अनेकानेक सत्कर्म करता रहता है, वह हमलोगोंके लिये वन्दनीय है।

जो शीघ्र ही इन पुण्यात्माओंमेंसे किसी एककी श्रेणीमें अपने-आपको ले जानेकी चेष्टा नहीं करता, वह पापाचारी एवं मूढ ही है; उससे बढ़कर बुद्धिहीन दूसरा कोई नहीं है। जो भारतवर्षमें जन्म लेकर पुण्यकर्मोंसे विमुख होता है, वह अमृतका घड़ा छोड़कर विषके पात्रको अपनाता है। मुने! जो मनुष्य वेदों और स्मृतियोंमें बताये धर्मोंका आचरण करके अपने-आपको पवित्र नहीं करता, वही आत्महत्यारा तथा पापियोंका अगुआ है। मुनीश्वर! जो कर्मभूमि भारतवर्षका आश्रय लेकर धर्मका आचरण नहीं करता, वह वेदज्ञ महात्माओंद्वारा सबसे 'अधम' कहा गया है। जो शुभ-कर्मोंका परित्याग करके पाप-कर्मोंका सेवन करता है, वह कामधेनुको छोड़कर आकका दूध खोजता फिरता है। विप्रवर! इन्द्र आदि देवता भी अपने भोगोंके नाशसे भयभीत होकर भारतवर्षके भूभागकी प्रशंसा किया करते हैं। अतः भारतवर्षको सबसे अधिक पवित्र तथा उत्तम समझना चाहिये। यह देवताओंके लिये भी दुर्लभ तथा सब कर्मोंका फल देनेवाला है। जो इस पुण्यमय भूखण्डमें सत्कर्म करनेके लिये उद्यत होता है, उसके समान भाग्यशाली तीनों लोकोंमें दूसरा कोई नहीं है। जो इस भारतवर्षमें जन्म लेकर अपने कर्म-बन्धनको काट डालनेकी चेष्टा करता है, वह नररूपमें छिपा हुआ साक्षात् 'नारायण' है। जो परलोकमें उत्तम फल प्राप्त करनेकी इच्छा रखता है, उसे आलस्य छोड़कर सत्कर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये। उन कर्मोंको भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुको समर्पित कर देनेपर उनका फल अक्षय माना गया है। यदि कर्मफलोंकी ओरसे मनमें वैराग्य हो तो अपने पुण्यकर्मको भगवान् विष्णुमें प्रेम होनेके लिये उनके चरणोंमें समर्पित कर दे। ब्रह्मलोकतकके सभी लोक पुण्यक्षय होनेपर पुनर्जन्म देनेवाले होते हैं; परंतु जो कर्मोंका फल नहीं चाहता, वह भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त कर लेता है। भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये वेद-शास्त्रोंद्वारा बताये हुए आश्रमानुकूल कर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये। जिसने कर्म-फलकी कामना त्याग दी है, वह अविनाशी पदको प्राप्त होता है। मनुष्य निष्काम हो या सकाम, उसे विधि-पूर्वक कर्म अवश्य करना चाहिये। जो अपने वर्ण और आश्रमके कर्म छोड़ देता है, वह विद्वान् पुरुषोंद्वारा पतित कहा जाता है। नारदजी! सदाचारपरायण ब्राह्मण अपने ब्रह्मतेजके साथ वृद्धिको प्राप्त होता है। यदि वह भगवान्‌के चरणोंमें भक्ति रखता है तो उसपर भगवान् विष्णु बहुत प्रसन्न होते हैं। समस्त धर्मोंके फल भगवान् वासुदेव हैं, तपस्याका चरम लक्ष्य भी वासुदेव ही हैं, वासुदेवके तत्त्वको समझ लेना ही उत्तम ज्ञान है तथा वासुदेवको प्राप्त कर लेना ही उत्तम गति है। ब्रह्माजीसे लेकर कीटपर्यन्त यह सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गम जगत् वासुदेवस्वरूप है, उनसे भिन्न कुछ भी नहीं है। वे ही ब्रह्मा और शिव हैं, वे ही देवता, असुर तथा यज्ञरूप हैं; वे ही यह ब्रह्माण्ड भी हैं। उनसे भिन्न अपनी पृथक् सत्ता रखनेवाली दूसरी कोई वस्तु

नहीं है। जिनसे पर या अपर कोई वस्तु नहीं है तथा जिनसे अत्यन्त लघु और महान् भी कोई नहीं है। उन्हीं भगवान् विष्णुने इस विचित्र विश्वको व्याप्त कर रक्खा है, स्तुति करने योग्य उन देवाधिदेव श्रीहरिको सदा प्रणाम करना चाहिये *।

श्रद्धा-भक्ति, वर्णाश्रमोचित आचार तथा सत्सङ्गकी महिमा, मृकण्डु मुनिकी तपस्यासे संतुष्ट होकर भगवान्‌का मुनिको दर्शन तथा वरदान देना

श्रीसनकजी कहते हैं—नारद ! श्रद्धापूर्वक आचरणमें लाये हुए सब धर्म मनोवाञ्छित फल देनेवाले होते हैं। श्रद्धासे सब कुछ सिद्ध होता है और श्रद्धासे ही भगवान् श्रीहरि संतुष्ट होते हैं †। भक्तियोगका साधन भक्तिपूर्वक ही करना चाहिये तथा सत्कर्मोंका अनुष्ठान भी श्रद्धा-भक्तिसे ही करना चाहिये। विप्रवर नारद ! श्रद्धाहीन कर्म कभी सिद्ध नहीं होते। जैसे सूर्यका प्रकाश समस्त जीवोंकी चेष्टामें कारण होता है, उसी प्रकार भक्ति सम्पूर्ण सिद्धियोंका परम कारण है। जैसे जल सम्पूर्ण लोकोंका जीवन माना गया है, उसी प्रकार भक्ति सब प्रकारकी सिद्धियोंका जीवन है। जैसे सब जीव-जन्तु पृथ्वीका आश्रय लेकर जीवन धारण करते हैं, उसी प्रकार भक्तिका सहारा लेकर सब कार्योंका साधन करना चाहिये। श्रद्धालु पुरुषको धर्मका लाभ होता है, श्रद्धालु ही धन पाता है, श्रद्धासे ही कामनाओंकी सिद्धि होती है तथा श्रद्धालु पुरुष ही मोक्ष पाता है ‡। मुनिश्रेष्ठ ! दान, तपस्या अथवा बहुत दक्षिणावाले यज्ञ भी यदि भक्तिसे रहित हैं तो उनके द्वारा भगवान् विष्णु संतुष्ट नहीं होते हैं। मेरु पर्वतके बराबर सुवर्णकी करोड़ों सहस्र राशियोंका दान भी यदि बिना श्रद्धा-भक्तिके किया जाय तो वह निष्फल होता है। बिना भक्ति जो तपस्या की जाती है, वह केवल शरीरको सुखाना मात्र है; बिना भक्ति जो हविष्यका हवन किया जाता है, वह राखमें डाली हुई आहुतिके समान व्यर्थ है। श्रद्धा-भक्तिके साथ मनुष्य जो कुछ थोड़ा-सा भी सत्कर्म करता है, वह उसे अनन्त कालतक अक्षय सुख देनेवाला होता है। ब्रह्मन् ! वेदोक्त अश्वमेध यज्ञका एक सहस्र बार अनुष्ठान क्यों न किया जाय, यदि वह श्रद्धा-भक्तिसे रहित है तो सब-का-सब निष्फल होता है। भगवान्‌की उत्तम भक्ति मनुष्योंके लिये कामधेनुके समान मानी गयी है; उसके रहते हुए भी अज्ञानी मनुष्य संसाररूपी विषका पान करते हैं, यह कितने आश्चर्यकी बात है ! ब्रह्मपुत्र नारदजी ! इस असार संसारमें ये तीन बातें ही सार हैं—'भगवद्भक्तोंका सङ्ग, भगवान् विष्णुकी भक्ति और सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंको सहन करनेका स्वभाव §। ब्रह्मन् ! जिनके मनमें दूसरोंके दोष देखनेकी प्रवृत्ति है, उनके किये हुए भजन-दान आदि सभी कर्मोंको निष्फल जानो। भगवान् विष्णु उनसे बहुत दूर हैं। जो दूसरोंकी सम्पत्ति देखकर मन-ही-मन संतप्त होते हैं, जिनका चित्त पाखण्डपूर्ण आचारोंमें ही लगता है, वे व्यर्थ कर्म करनेवाले हैं। भगवान् श्रीहरि उनसे बहुत दूर हैं। जो बड़े-बड़े धर्मोंके विषयमें प्रश्न करते हैं, किंतु उन धर्मोंको झूठा बताते हैं और धर्म-कर्मके विषयमें जिनका मन श्रद्धा-भक्तिसे रहित है, ऐसे लोगोंसे भगवान् विष्णु बहुत दूर हैं। धर्मका प्रतिपादन वेदमें किया गया है और वेद साक्षात् परम पुरुष नारायणका

---

* वासुदेवपरो धर्मो वासुदेवपरं तपः। वासुदेवपरं ज्ञानं वासुदेवपरा गतिः॥
वासुदेवात्मकं सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम्। आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं तस्मादन्यन्न विद्यते॥
स एव धाता त्रिपुरान्तकश्च स एव देवासुरयज्ञरूपः। स एव ब्रह्माण्डमिदं ततोऽन्यन्न किंचिदस्ति व्यतिरिक्तरूपम्॥
यस्मात्परं नापरमस्ति किंचिद्यस्मादणीयान्न तथा महीयान्। व्याप्तं हि तेनेदमिदं विचित्रं तं देवदेवं प्रणमेत्समीड्यम्॥
(३। ८०—८३)

† श्रद्धापूर्वाः सर्वधर्मा मनोरथफलप्रदाः। श्रद्धया साध्यते सर्वं श्रद्धया तुष्यते हरिः॥ (४। १)

‡ श्रद्धावाँल्लभते धर्मं श्रद्धावानर्थमाप्नुयात्। श्रद्धया साध्यते कामः श्रद्धावान् मोक्षमाप्नुयात्॥ (४। ६)

§ हरिभक्तिः परा नृणां कामधेनूपमा स्मृता। तस्यां सत्यां पिबन्त्यज्ञाः संसारगरलं ह्यहो॥
असारभूते संसारे सारमेतदजात्मज। भगवद्भक्तसङ्गश्च हरिभक्तिस्तितिक्षुता॥
(४। १२-१३)

स्वरूप है। अतः वेदोंमें जो अश्रद्धा रखनेवाले हैं, उनसे भगवान् बहुत दूर हैं *। जिसके दिन धर्मानुष्ठानके बिना ही आते और चले जाते हैं, वह लुहारकी धौंकनीके समान साँस लेता हुआ भी जीवित नहीं है। ब्रह्मनन्दन! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चार पुरुषार्थ सनातन हैं। श्रद्धालु पुरुषोंको ही इनकी सिद्धि होती है; श्रद्धाहीनको नहीं †। जो मानव अपने वर्णाश्रमोचित आचारका उल्लङ्घन किये बिना ही भगवान् विष्णुकी भक्तिमें तत्पर है, वह उस वैकुण्ठधाममें जाता है, जिसका दर्शन बड़े-बड़े ज्ञानी भक्तोंको सुलभ होता है। मुनीश्वर! जो अपने आश्रमके अनुकूल वेदोक्त धर्मोंका पालन करते हुए भगवान् विष्णुके भजन-ध्यानमें लगा रहता है, वह परम पदको प्राप्त होता है। आचारसे धर्म प्रकट होता है और धर्मके स्वामी भगवान् विष्णु हैं। अतः जो अपने आश्रमके आचारमें संलग्न है, उसके द्वारा भगवान् श्रीहरि सर्वदा पूजित होते हैं ‡। जो छहों अङ्गोंसहित वेदों और उपनिषदोंका ज्ञाता होकर भी अपने वर्णाश्रमोचित आचारसे गिरा हुआ है, उसीको पतित समझना चाहिये; क्योंकि वह धर्म-कर्मसे भ्रष्ट हो चुका है। भगवान्की भक्तिमें तत्पर तथा भगवान् विष्णुके ध्यानमें लीन होकर भी जो अपने वर्णाश्रमोचित आचारसे भ्रष्ट हो, उसे पतित कहा जाता है। द्विजश्रेष्ठ! वेद, भगवान् विष्णुकी भक्ति अथवा शिवभक्ति भी आचार-भ्रष्ट मूढ पुरुषको पवित्र नहीं करती है। ब्रह्मन्! पुण्यक्षेत्रोंमें जाना, पवित्र तीर्थोंका सेवन करना अथवा भाँति-भाँतिके यज्ञोंका अनुष्ठान भी आचार-भ्रष्ट पुरुषकी रक्षा नहीं करता। आचारसे स्वर्ग प्राप्त होता है, आचारसे सुख मिलता है और आचारसे ही मोक्ष सुलभ होता है; आचारसे क्या नहीं मिलता?

साधुश्रेष्ठ! सम्पूर्ण आचारोंका, समस्त योगोंका तथा स्वयं हरिभक्तिका भी मूल कारण भक्ति ही मानी गयी है। सबको मनोवाञ्छित फल प्रदान करनेवाले भगवान् विष्णु भक्तिसे ही पूजित होते हैं। अतः भक्ति सम्पूर्ण लोकोंकी माता कही जाती है। जैसे सब जीव माताका ही आश्रय लेकर जीवन धारण करते हैं, उसी प्रकार समस्त धार्मिक पुरुष भक्तिका आश्रय लेकर जीते हैं। नारदजी! अपने वर्ण और आश्रमके आचारका पालन करनेमें लगे हुए पुरुषको यदि भगवान् विष्णुकी भक्ति प्राप्त हो जाय तो तीनों लोकोंमें उसके समान दूसरा कोई नहीं है। भक्तिसे कर्मोंकी सिद्धि होती है, उन कर्मोंसे भगवान् विष्णु संतुष्ट होते हैं, उनके संतुष्ट होनेपर ज्ञान प्राप्त होता है और ज्ञानसे मोक्ष मिलता है। भक्ति तो भगवद्भक्तोंके सङ्गसे प्राप्त होती है, किंतु भगवद्भक्तोंका सङ्ग मनुष्योंको पूर्वजन्मोंके संचित पुण्यसे ही मिलता है। जो वर्णाश्रमोचित कर्तव्यके पालनमें तत्पर, भगवद्भक्तिके सच्चे अभिलाषी तथा काम, क्रोध आदि दोषोंसे मुक्त हैं, वे ही सम्पूर्ण लोकोंको शिक्षा देनेवाले संत हैं *। ब्रह्मन्! जो पुण्यात्मा अथवा जितेन्द्रिय नहीं है, उन्हें परम उत्तम सत्सङ्गकी प्राप्ति नहीं होती। यदि सत्सङ्ग मिल जाय तो उसमें पूर्वजन्मोंके संचित पुण्यको ही कारण जानना चाहिये। जिसके पूर्वजन्मोंमें किये हुए समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, उसीको सत्सङ्ग सुलभ होता है; अन्यथा उसकी प्राप्ति असम्भव है। सूर्य अपनी किरणोंके समूहसे दिनमें बाहरके अन्धकारका नाश करते हैं, किंतु संत-महात्मा अपने उत्तम वचनरूपी किरणोंके समुदायसे सदा भीतरके अज्ञानान्धकारका नाश करते रहते हैं। संसारमें भगवद्भक्तिके लिये लालायित रहनेवाले पुरुष दुर्लभ हैं; उनका सङ्ग जिसे प्राप्त होता है, उसे सनातन शान्ति सुलभ होती है।

नारदजीने पूछा—भगवद्भक्त पुरुषोंका क्या लक्षण है? वे कैसा कर्म करते हैं तथा उन्हें कैसे लोककी प्राप्ति होती है? यह सब आप यथार्थरूपसे बताइये। [illegible] आप सुदर्शनचक्रधारी देवाधिदेव लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुके भक्त हैं। अतः आप ही ये सब बातें बतानेमें समर्थ हैं। आपसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है।

सनकजीने कहा—ब्रह्मन्! योगनिद्रासे मुक्त होनेपर जगदीश्वर भगवान् विष्णुने बुद्धिमान् महात्मा मार्कण्डेयजीको जिस परम गोपनीय रहस्यका उपदेश किया था, वही तुम्हें बतलाता हूँ, सुनो। ये जो परम ज्योतिःस्वरूप देवाधिदेव

* वेदप्रणिहितो धर्मो वेदो नारायण पर.।
तत्राश्रद्धापरा ये तु तेषा दूरतरो हरि.॥
(४ । १७)

† धर्मार्थकाममोक्षाख्या पुरुषार्था. सनातना।
श्रद्धावता हि सिध्यन्ति नान्यथा ब्रह्मनन्दन॥
(४ । १९)

‡ आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युत।
आश्रमाचारयुक्तेन पूजित· सर्वदा हरि.॥
(४ । २२)

* वर्णाश्रमाचाररता भगवद्भक्तिलालसा·।
कामादिदोषनिर्मुक्तास्ते सन्तो लोकशिक्षका·॥
(४ । [illegible])

गजानन भगवान् विष्णु हैं, वे ही जगत्-रूपमें प्रकट होते हैं। इस जगत्के स्रष्टा भी वे ही हैं। भगवान् शिव तथा ब्रह्माजी भी उन्हींके स्वरूप हैं। वे प्रलयकालमें भयंकर रुद्ररूपसे प्रकट होते हैं और समस्त ब्रह्माण्डको अपना ग्रास बनाते हैं। स्थावर-जङ्गमरूप सम्पूर्ण जगत् नष्ट होकर जब एकार्णवके जलमें विलीन हो जाता है, उस समय भगवान् विष्णु ही वटवृक्षके पत्रपर शिशुरूपमें शयन करते हैं। उनका एक-एक रोम असंख्य ब्रह्मा आदिसे विभूषित होता है। महाप्रलयके समय जब भगवान् वटपत्रपर सो रहे थे, उस समय उसी स्थानपर भगवान् नारायणके परम भक्त महाभाग मार्कण्डेयजी भगवान्की विविध लीलाओंका दर्शन करते हुए खड़े थे।

ऋषियोंने पूछा—मुने! हमने पहलेसे सुन रक्खा है कि उस महाभयंकर प्रलयकालमें स्थावर-जङ्गम समस्त प्राणी नष्ट हो गये थे और एकमात्र भगवान् श्रीहरि ही विराजमान थे। जब समस्त चराचर जगत् नष्ट होकर एकार्णवमें विलीन हो चुका था, तब सबको अपना ग्रास बनानेवाले श्रीहरिने मार्कण्डेय मुनिको किस लिये बचा रक्खा था? सूतजी! इस विषयको लेकर हमारे मनमें बड़ा कौतूहल हो रहा है। अतः इसका निवारण कीजिये। भगवान् विष्णुकी सुयश-सुधाका पान करनेमें किसे आलस्य हो सकता है!

सूतजी बोले—ब्राह्मणो! पूर्वकालमें मृकण्डु नामसे विख्यात एक महाभाग मुनि हो गये हैं। उन महातपस्वी महर्षिने शालग्राम नामक महान् तीर्थमें बड़ी भारी तपस्या की। ब्रह्मन्! उन्होंने दस हजार युगोंतक सनातन ब्रह्मका गुण-गान करते हुए उपवास किया। वे बड़े क्षमाशील, सत्यप्रतिज्ञ तथा जितेन्द्रिय थे। समस्त प्राणियोंको अपने समान देखते थे। उनके मनमें विषय-भोगोंके लिये तनिक भी कामना नहीं थी। वे सम्पूर्ण जीवोंके हितैषी तथा मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले थे। उन्होंने उक्त तीर्थमें बड़ी भारी तपस्या की। उनकी तपस्यासे शङ्कित हो इन्द्र आदि सब देवता उस समय अनामय परमेश्वर भगवान् नारायणकी शरणमें गये। क्षीरसागरके उत्तर तटपर जाकर देवताओंने देवदेवेश्वर जगद्गुरु पद्मनाभका इस प्रकार स्तवन किया।

देवता बोले—हे अविनाशी नारायण! हे अनन्त! हे शरणागतपालक! हम सब देवता मृकण्डु मुनिकी तपस्यासे भयभीत हो आपकी शरणमें आये हैं। आप हमारी रक्षा कीजिये। देवाधिदेवेश्वर! आपकी जय हो। शङ्ख और गदा धारण करनेवाले देवता! आपकी जय हो। यह सम्पूर्ण जगत् आपका स्वरूप है। आपको नमस्कार है। आप ही ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिके आदि कारण हैं। आपको नमस्कार है। देवदेवेश्वर! आपको नमस्कार है। लोकपाल! आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण जगत्की रक्षा करनेवाले! आपको नमस्कार है। लोकसाक्षिन्! आपको नमस्कार है। ध्यानगम्य! आपको नमस्कार है। ध्यानके हेतुभूत! ध्यानस्वरूप तथा ध्यानके साक्षी परमेश्वर! आपको नमस्कार है। पृथिवी आदि पाँच भूत आपके ही स्वरूप हैं; आपको नमस्कार है। आप चैतन्यरूप हैं; आपको नमस्कार है। आप सबसे ज्येष्ठ हैं, आपको नमस्कार है। आप शुद्धस्वरूप हैं, निर्गुण हैं तथा गुणरूप हैं; आपको नमस्कार है। निराकार-साकार तथा अनेक रूप धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। गौओं तथा ब्राह्मणोंके हितैषी! आपको नमस्कार है। जगत्का हित-साधन करनेवाले सच्चिदानन्दस्वरूप गोविन्द! आपको बार-बार नमस्कार है।

इस प्रकार देवताओंद्वारा की हुई स्तुतिको सुनकर शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् लक्ष्मीपतिने उन्हे प्रत्यक्ष दर्शन दिया। उनके नेत्र खिले हुए कमलदलके समान शोभा पा रहे थे। उनका करोड़ों सूर्योंके समान प्रभाव था। सब प्रकारके दिव्य आभूषणोंसे वे युक्त थे। भगवान्के वक्षःस्थलपर श्रीवत्सचिह्न सुशोभित हो रहा था। वे पीताम्बर धारण किये हुए थे। उनकी आकृति बड़ी सौम्य थी। बायें कंधेपर सुनहले रंगका यज्ञोपवीत चमक रहा था। बड़े-बड़े महर्षि उनकी स्तुति कर रहे थे तथा श्रेष्ठ पार्षद उन्हे सब ओरसे घेरकर खड़े थे। उनका दर्शन करके वे सम्पूर्ण देवता उनके तेजके समक्ष फीके पड़ गये और बड़ी प्रसन्नताके साथ पृथिवीपर लेटकर अपने आठों अङ्गोंसे उन्हें प्रणाम किया। तब प्रसन्न हुए भगवान् विष्णु प्रणाम करनेवाले इन्द्रादि देवताओंको आनन्दित करते हुए गम्भीर वाणीमें बोले।

श्रीभगवान्ने कहा—देवताओ! मैं जानता हूँ, मृकण्डु मुनिकी तपस्यासे तुम्हारे मनमें बड़ा खेद हो रहा है, परंतु वे महर्षि साधुपुरुषोंमें अग्रगण्य हैं। अतः तुम्हें कष्ट नहीं देंगे। श्रेष्ठ देवताओ! जो साधुपुरुष हैं, वे सम्पत्तिमें हो या विपत्तिमें, किसी प्रकार भी दूसरेको कष्ट नहीं देते। वे स्वप्नमें भी ऐसा नहीं करते। सज्जनो! जो मानव सम्पूर्ण जगत्का हित करनेवाला, दूसरोंके दोष न देखनेवाला तथा ईर्ष्यारहित है, वह इहलोक और परलोकमें

साधुपुरुषोंद्वारा 'निःशङ्क' कहा जाता है। सशङ्क व्यक्ति सदा दुखी रहता है और निःशङ्क पुरुष सुख पाता है। अतः तुमलोग निश्चिन्त होकर अपने-अपने घर जाओ। मृकण्डु मुनि तुम्हें कोई कष्ट नहीं देंगे। इसके सिवा तुम्हारी रक्षा करनेवाला मैं तो हूँ ही। अतः सुखपूर्वक विचरो।

इस प्रकार अलसीके फूलकी भाँति श्यामकान्तिवाले भगवान् विष्णु देवताओंको वर देकर उनके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गये। देवताओंका मन प्रसन्न हो गया। वे जैसे आये थे, उसी प्रकार स्वर्गको लौट गये। भगवान श्रीहरिने प्रसन्न होकर मृकण्डुको भी प्रत्यक्ष दर्शन दिया। जो स्वयप्रकाश, निरञ्जन एवं निराकार परब्रह्म हैं, वही अलसीके फूलके समान श्यामसुन्दर विग्रह धारण करके प्रकट हो गये। दिव्य आयुधोंसे सुशोभित उन पीताम्बरधारी भगवान् विष्णुको देखकर मृकण्डुमुनि आश्चर्य-चकित हो गये। उन्होंने ध्यानसे आँखें खोलकर देखा, भगवान् विष्णु सम्मुख विराजमान हैं। उनके मुखसे प्रसन्नता टपक रही है, वे शान्तभावसे स्थित हैं। जगत्‌का धारण-पोषण उन्हींके द्वारा होता है। यह सम्पूर्ण विश्व उन्हींका तेज है। भगवान्‌का दर्शन करके मुनिका शरीर पुलकित हो उठा। उनके नेत्रोंसे आनन्दके आँसू झरने लगे। उन्होंने पृथ्वीपर दण्डकी भाँति गिरकर उन देवाधिदेव सनातन परमात्माको प्रणाम

किया। फिर हर्षजनक आँसुओंसे भगवान्‌के दोनों चरण पखारते हुए वे सिरपर अञ्जलि बाँधे उनकी स्तुति करने लगे।

मृकण्डुजी बोले—परमात्मस्वरूप परमेश्वरको नमस्कार है। जो परसे भी अति परे हैं, जिनका पार पाना कठिन है, जो दूसरोंपर अनुग्रह करनेवाले तथा दूसरोंको संसार-सागरके उस पार पहुँचा देनेवाले हैं, उन भगवान् श्रीहरिको नमस्कार है। जो नाम और जाति आदिकी कल्पनाओंसे रहित हैं, जिनका स्वरूप शब्दादि विषयोंके दोषसे दूर है, जिनके अनेक स्वरूप हैं तथा जो तमोगुणसे सर्वथा शून्य हैं, उन स्तुति करने योग्य परमेश्वरका मैं भजन करता हूँ। जो वेदान्तवेद्य और पुराणपुरुष हैं, ब्रह्मा आदिसे लेकर सम्पूर्ण जगत् जिनका स्वरूप है, जिनकी कहीं भी उपमा नहीं है तथा जो भक्तजनोंपर अनुग्रह करनेवाले हैं, उन स्तवन करने योग्य आदिपरमेश्वरकी मैं आराधना करता हूँ। जिनके समस्त दोष दूर हो गये हैं, जो एकमात्र ध्यानमें स्थित रहते हैं, जिनकी कामना निवृत्त और मोह दूर हो गये हैं, ऐसे महात्मा पुरुष जिनका दर्शन करते हैं, संसार-बन्धनको नष्ट करनेवाले उन परम पवित्र परमात्माको मैं प्रणाम करता हूँ। जो स्मरणमात्रसे समस्त पीडाओंका नाश कर देते हैं, शरणमें आये हुए भक्तजनोंका पालन करते हैं, जो समस्त संसारके सेव्य हैं तथा सम्पूर्ण जगत् जिनके भीतर निवास करता है, उन करुणासागर परमेश्वर विष्णुको मैं नमस्कार करता हूँ।

महर्षि मृकण्डुके इस प्रकार स्तुति करनेपर शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् विष्णुको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने अपनी चार विशाल भुजाओंसे खींचकर मुनिको हृदयसे लगा लिया और अत्यन्त प्रेमपूर्वक कहा—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुने! तुम सर्वथा निष्पाप हो। तुम्हारी तपस्या और स्तुतिसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तुम कोई वर माँगो। सुव्रत! तुम्हारे मनको जो अभीष्ट हो, वही वर माँग लो।'

मृकण्डुने कहा—देवदेव! जगन्नाथ! मैं कृतार्थ हो गया, इसमें तनिक भी संशय नहीं है; क्योंकि जो पुण्यात्मा नहीं हैं, उनके लिये आपका दर्शन सर्वथा दुर्लभ है। ब्रह्मा आदि देवता तथा तीक्ष्ण व्रतका पालन करनेवाले योगीजन भी जिनका दर्शन नहीं कर पाते, धर्मनिष्ठ, यज्ञकी दीक्षा लेनेवाले यजमान, वीतराग साधक तथा ईर्ष्यारहित साधुओंको भी जिनका दर्शन दुर्लभ है, उन्हीं परम तेजोमय आप श्रीहरिका मैं दर्शन कर रहा हूँ, इससे बढ़कर दूसरा क्या वर माँगूँ? जगद्गुरु जनार्दन! मैं इतनेसे ही कृतार्थ हूँ।

अच्युत ! मरणासन्न मनुष्य भी आपके नामोंका स्मरण करनेमात्रसे आपके परम पदको प्राप्त कर लेते हैं; फिर जो आपका दर्शन कर लेता है, उनके लिये तो कहना ही क्या है !

श्रीभगवान् बोले—ब्रह्मन् ! तुमने ठीक कहा है। विद्वन् ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ, मेरा दर्शन कदापि व्यर्थ नहीं होगा। अतः तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट होकर मैं तुम्हारे यहाँ (अंशरूपसे) समस्त गुणोंसे युक्त, रूपवान् तथा दीर्घजीवी पुत्रके रूपमें उत्पन्न होऊँगा। मुनिश्रेष्ठ ! जिसके कुलमें मेरा जन्म होता है, उसका समस्त कुल मोक्षको प्राप्त कर लेता है। मेरे प्रसन्न होनेपर तीनों लोकोंमें कौन-सा कार्य असाध्य है।

ऐसा कहकर देवदेवेश्वर भगवान् विष्णु मृकण्डु मुनिके देखते-देखते अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर वे मुनि तपस्यासे निवृत्त हो गये।

मार्कण्डेयजीको पिताका उपदेश, समय-निरूपण, मार्कण्डेयद्वारा भगवान्‌की स्तुति और भगवान्‌का मार्कण्डेयजीको भगवद्भक्तोंके लक्षण बताकर वरदान देना

नारदजीने पूछा—ब्रह्मन् ! पुराणोंमें यह सुना जाता है कि चिरञ्जीवी महामुनि मार्कण्डेयने इस जगत्‌के प्रलय-कालमें भगवान् विष्णुकी मायाका दर्शन किया था, अतः इस विषयमें कहिये।

श्रीसनकजीने कहा—नारदजी ! मैं उस सनातन कथाका वर्णन करूँगा, आप सावधान होकर सुनें। मार्कण्डेय मुनिसे सम्बन्ध रखनेवाली यह कथा भगवान् विष्णुकी भक्तिसे परिपूर्ण है। साधुशिरोमणि मृकण्डुने तपस्यासे निवृत्त होनेके बाद भार्यासे विवाह करके प्रसन्नतापूर्वक गृहस्थधर्मका पालन आरम्भ किया। वे मन और इन्द्रियोंका संयम करके सदा प्रसन्न रहते और कृतार्थताका अनुभव करते थे। उनकी पत्नी बड़ी पवित्र, कार्यकुशल तथा निरन्तर पतिकी सेवामें तत्पर रहनेवाली थीं। वे मन, वाणी और शरीरसे भी पतिव्रत-धर्मका पालन करती थीं। समय आनेपर उन्होंने भगवान्‌के तेजोमय अंशसे युक्त गर्भ धारण किया और दस महीनेके बाद एक परम तेजस्वी पुत्रको जन्म दिया। महर्षि मृकण्डु उत्तम लक्षणोंसे सुशोभित पुत्रको देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने विधिपूर्वक मङ्गलमय जातकर्म-संस्कार सम्पन्न कराया। मुनिका वह पुत्र शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भाँति दिन-दिन बढ़ने लगा। विप्रवर ! तदनन्तर पाँचवें वर्षमें प्रसन्नतापूर्वक पुत्रका उपनयन-संस्कार करके मुनिने उसे वैदिक-धर्म-संहिताकी शिक्षा दी और कहा—'बेटा ! ब्राह्मणोंका दर्शन होनेपर सदा विधिपूर्वक उन्हें नमस्कार करना चाहिये। तीनों समय सूर्यको जलाञ्जलि देकर उनकी पूजा करना और वेदोंके स्वाध्यायपूर्वक वेदोक्त धर्मका पालन करते रहना चाहिये। ब्रह्मचर्य तथा तपस्याके द्वारा सदा श्रीहरिकी पूजा करनी चाहिये। दुष्ट पुरुषोंसे वार्तालाप आदि निषिद्ध कर्मको त्याग देना चाहिये। भगवान् विष्णुके भजनमें लगे हुए साधुपुरुषोंके साथ रहना चाहिये। किसीसे भी द्वेष रखना उचित नहीं है। सबके हितका साधन करना चाहिये। वत्स ! यज्ञ, अध्ययन और दान—ये कर्म तुम्हें सदा करने चाहिये।

इस प्रकार पिताका आदेश पाकर मुनीश्वर मार्कण्डेय नित्य-निरन्तर भगवान् विष्णुका चिन्तन करते हुए स्वधर्मका पालन करने लगे। महाभाग मार्कण्डेय बड़े धर्मानुरागी और दयालु थे। वे मनको वशमें रखनेवाले और सत्यप्रतिज्ञ थे। वे जितेन्द्रिय, शान्त, महाज्ञानी और सम्पूर्ण तत्त्वोंके मर्मज्ञ थे। उन्होंने भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये बड़ी भारी तपस्या की। बुद्धिमान् मार्कण्डेयके आराधना करनेपर जगदीश्वर भगवान् विष्णुने उन्हें पुराणसंहिता बनानेका वर दिया। चिरञ्जीवी मार्कण्डेयजी सुदर्शनचक्रधारी देवाधिदेव भगवान् विष्णुके महान् भक्त और उनके तेजके अंश (अ० ५ श्लो० ६) थे। ब्रह्मन् ! यह संसार जब एकार्णवके जलमें विलीन हो गया, उस समय भी उन्हें अपना प्रभाव दिखानेके लिये भगवान् विष्णुने उनका संहार नहीं किया। मृकण्डुपुत्र मार्कण्डेय बड़े बुद्धिमान् और विष्णुभक्त थे। भगवान् श्रीहरि स्वयं जबतक सोते रहे, तबतक मार्कण्डेयजी वहाँ खड़े रहे। उस समयका माप मैं बतला रहा हूँ, सुनिये। पंद्रह निमेषकी एक काष्ठा बतायी गयी है। नारदजी ! तीस काष्ठाकी एक कला समझनी चाहिये। तीस कलाका एक क्षण होता है और छः क्षणोंकी

एक घडी मानी गयी है। दो घड़ीका एक मुहूर्त्त और तीस मुहूर्त्तका एक दिन होता है। तीस दिनका एक मास होता है और एक मासमें दो पक्ष होते हैं। दो मासका एक ऋतु और तीन ऋतुओंका एक अयन माना गया है। दो अयनसे एक वर्ष बनता है, जो देवताओंका एक दिन है। उत्तरायण देवताओंका दिन है और दक्षिणायन उनकी रात्रि है। मनुष्योंके एक मासके बराबर पितरोंका एक दिन कहा जाता है। इसलिये सूर्य और चन्द्रमाके संयोगमें अर्थात् अमावस्याके दिन उत्तम पितृकल्प जानना चाहिये। बारह हजार दिव्य वर्षोंका एक दैवत युग होता है। दो हजार दैवत युगके बराबर ब्रह्माके एक दिन-रात्रिका मान है। वह मनुष्योंके लिये सृष्टि और प्रलय दोनों मिलकर ब्रह्माका दिन-रात-रूप एक कल्प है। इकहत्तर दिव्य चतुर्युगका एक मन्वन्तर होता है और चौदह मन्वन्तरोंसे ब्रह्माजीका एक दिन पूरा होता है। मुने! जितना बड़ा ब्रह्माजीका दिन होता है, उतनी ही बड़ी उनकी रात्रि भी बतायी गयी है। विप्रवर! ब्रह्माजीकी रात्रिके समय तीनों लोकोंका नाश हो जाता है। मानव वर्ष-गणनाके अनुसार उसका जो प्रमाण है, वह सुनो। मुने! एक हजार चतुर्युग (चार हजार युग) का ब्रह्माजीका एक दिन होता है। ऐसे ही तीस दिनोंका एक मास और बारह महीनोंका उनका एक वर्ष समझना चाहिये। ऐसे सौ वर्षोंमें उनकी आयु पूरी होती है। उनके काल-मानके अनुसार उनकी सम्पूर्ण आयुका समय दो परार्धका होता है। ब्रह्माजीका दो परार्ध भगवान् विष्णुके लिये एक दिन समझना चाहिये। इतनी ही बड़ी उनकी रात्रि भी बतायी गयी है। मृकण्डुनन्दन मार्कण्डेयजी उतने ही समयतक उस भयंकर एकार्णवके जलमें भगवान् विष्णुकी शक्तिसे बलवान् होकर सूखे पत्तेकी भाँति खड़े रहे। उस समय वे श्रीहरिके समीप परमात्मतत्त्वका ध्यान करते हुए स्थित थे।

तदनन्तर प्रलयकालका अन्त समय आनेपर योगनिद्रासे मुक्त हो श्रीहरिने ब्रह्माजीके रूपसे इस चराचर जगत्‌की रचना की। जलका उपसंहार और जगत्‌की नूतन सृष्टि देखकर मार्कण्डेयजी चकित हो गये। उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर श्रीहरिके चरणोंमें प्रणाम किया। महामुनि मार्कण्डेयने सिरपर अञ्जलि बाँधे नित्यानन्दस्वरूप श्रीहरिका प्रिय वचनोंद्वारा इस प्रकार स्तवन किया।

मार्कण्डेयजी बोले—जिनके सहस्रों मस्तक हैं, रोग-शोक आदि विकारसे जो सर्वथा रहित हैं, जिनका कोई आधार नहीं है (स्वय ही सबके आधार हैं) तथा जो सर्वत्र व्यापक हैं, मनुष्योंसे सदा प्रार्थित होनेवाले उन भगवान् नारायणदेवको मैं सदा प्रणाम करता हूँ। जो प्रमाणसे परे तथा जरावस्थासे रहित हैं, नित्य एवं सच्चिदानन्दस्वरूप हैं तथा जहाँ कोई तर्क या संकेत काम नहीं देता, उन भगवान् जनार्दनको मैं प्रणाम करता हूँ। जो परम अक्षर, नित्य, विश्वके आदिकारण तथा जगत्‌के उत्पत्तिस्थान हैं, उन सर्वतत्त्वमय शान्तस्वरूप भगवान् जनार्दनको मैं नमस्कार करता हूँ। जो पुरातन पुरुष सब प्रकारकी सिद्धियोंसे सम्पन्न और सम्पूर्ण ज्ञानके एकमात्र आश्रय हैं, जिनका स्वरूप परसे भी अति परे है, उन भगवान् जनार्दनको मैं नमस्कार करता हूँ। जो परम ज्योति, परम धाम तथा परम पवित्र पद हैं, जिनकी सर्वत्र [illegible] रूपता है, उन परमात्मा जनार्दनको मैं प्रणाम करता हूँ। सत्, चित् और आनन्द ही जिनका स्वरूप है, जो [illegible] ब्रह्मादि देवताओंके लिये भी परम पद हैं, उन [illegible] श्रेष्ठ सनातन भगवान् जनार्दनको मैं नमस्कार करता हूँ। जो सगुण, निर्गुण, शान्त, मायातीत और विशुद्ध [illegible] अधिपति हैं तथा जो रूपरहित होते हुए भी अनेक रूपवाले हैं, उन भगवान् जनार्दनको मैं प्रणाम करता हूँ। जो

भगवान् इस जगत्की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं, उन आदिदेव भगवान् जनार्दनको मैं नमस्कार करता हूँ। परेश ! परमानन्द ! शरणागतवत्सल ! दयासागर ! मेरी रक्षा कीजिये । मन वाणीसे अतीत परमेश्वर ! आपको नमस्कार है ।

विप्रवर नारदजी ! शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले जगद्गुरु भगवान् विष्णु इस प्रकार स्तुति करनेवाले मार्कण्डेयजीसे अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक बोले ।

श्रीभगवान्ने कहा—द्विजश्रेष्ठ ! संसारमें जो भक्त पुरुष मुझ भगवान्की भक्तिमें चित्त लगाये रहनेवाले हैं, उनपर संतुष्ट हो मैं सदा उनकी रक्षा करता हूँ; इसमें संदेह नहीं है । भगवद्भक्तरूपसे अपनेको छिपाकर मैं ही सदा सब लोकोंकी रक्षा करता हूँ ।

मार्कण्डेयजीने पूछा—भगवन् ! भगवद्भक्तके क्या लक्षण हैं ? किस कर्मसे मनुष्य भगवद्भक्त होते हैं, यह मैं सुनना चाहता हूँ; क्योंकि इस बातको जाननेके लिये मेरे मनमें बड़ी उत्कण्ठा है ।

श्रीभगवान्ने कहा—मुनिश्रेष्ठ ! भगवद्भक्तोंके लक्षण बतलाता हूँ, सुनो । उनके प्रभाव अथवा महिमाका वर्णन करोड़ों वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता । जो सम्पूर्ण जीवोंके हितैषी हैं, जिनमें दूसरोंके दोष देखनेकी आदत नहीं है, जो ईर्ष्यारहित, मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले, निष्काम एवं शान्त हैं, वे ही भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ माने गये हैं । जो मन, वाणी तथा क्रियाद्वारा दूसरोंको कभी पीड़ा नहीं देते तथा जिनमें संग्रह अथवा कुछ ग्रहण करनेका स्वभाव नहीं है, वे भगवद्भक्त माने गये हैं । जिनकी सात्त्विक बुद्धि उत्तम भगवत्सम्बन्धी कथा-वार्ता सुननेमें स्वभावतः लगी रहती है तथा जो भगवान् और उनके भक्तोंके भी भक्त होते हैं, वे श्रेष्ठ भक्त समझे जाते हैं । जो श्रेष्ठ मानव माता और पिताके प्रति गङ्गा और विश्वनाथका भाव रखकर उनकी सेवा करते हैं, वे भी श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं । जो भगवान्के पूजनमें रत हैं, जो इसमें सहायक होते हैं तथा जो भगवान्की पूजा देखकर उसका अनुमोदन करते हैं, वे उत्तम भगवद्भक्त हैं । जो व्रतियों तथा यतियोंकी सेवामें संलग्न तथा परायी निन्दासे दूर रहते हैं, वे श्रेष्ठ भागवत हैं । जो श्रेष्ठ मनुष्य सबके लिये हितकारक वचन बोलते हैं और सबके गुणोंको ही ग्रहण करनेवाले हैं, वे इस लोकमें भगवद्भक्त माने गये हैं । जो श्रेष्ठ मानव सब जीवोंको अपने ही समान देखते तथा शत्रु और मित्रमें भी समान भाव रखते हैं, वे उत्तम भगवद्भक्त हैं । जो धर्मशास्त्रके वक्ता, सत्यवादी तथा साधुपुरुषोंके सेवक हैं, वे भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ कहे गये हैं । जो पुराणोंकी व्याख्या करते, जो पुराण सुनते और पुराण-वक्तामें श्रद्धा-भक्ति रखते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं । जो मनुष्य सदा गौओं तथा ब्राह्मणोंकी सेवा करते और तीर्थयात्रामें लगे रहते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो मनुष्य दूसरोंका अभ्युदय देखकर प्रसन्न होते और भगवन्नामका जप करते रहते हैं, वे उत्तम भागवत हैं । जो बगीचे लगाते, तालाब और पोखरोंकी रक्षा करते तथा बावड़ी और कुएँ बनवाते हैं, वे उत्तम भक्त हैं । जो तालाब और देवमन्दिर बनवाते तथा गायत्री-मन्त्रके जपमें संलग्न रहते हैं, वे श्रेष्ठ भक्त हैं । जो हरिनामका आदर करते, उन्हें सुनकर अत्यन्त हर्षसे भर जाते और पुलकित हो उठते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं । जो मनुष्य तुलसीका बगीचा देखकर उसको नमस्कार करते और कानोंमें तुलसी काष्ठ धारण करते हैं, वे उत्तम भगवद्भक्त हैं । जो तुलसीकी गन्ध सूँघकर तथा उसकी जड़के समीपकी मिट्टीको सूँघकर प्रसन्न होते हैं, वे भी श्रेष्ठ भक्त हैं । जो वर्णाश्रम-धर्मके पालनमें तत्पर, अतिथियोंका सत्कार करनेवाले तथा वेदार्थके वक्ता होते हैं, वे श्रेष्ठ भागवत माने गये हैं । जो भगवान् शिवसे प्रेम रखनेवाले, शिवके चिन्तनमें ही आसक्त रहनेवाले तथा शिवके चरणोंकी पूजामें तत्पर एवं त्रिपुण्ड्र धारण करनेवाले हैं, वे भी श्रेष्ठ भक्त हैं । जो भगवान् विष्णु तथा परमात्मा शिवके नाम लेते तथा रुद्राक्षकी मालासे विभूषित होते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं । जो बहुत दक्षिणावाले यज्ञोंद्वारा महादेवजी अथवा भगवान् विष्णुका उत्तम भक्तिसे यजन करते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं । जो पढ़े हुए शास्त्रोंका दूसरोंके हितके लिये उपदेश करते और सर्वत्र गुण ही ग्रहण करते हैं, वे उत्तम भक्त माने गये हैं । परमेश्वर शिव तथा परमात्मा विष्णुमें जो समबुद्धिसे प्रवृत्त होते हैं, वे श्रेष्ठ भक्त माने गये हैं । जो शिवकी प्रसन्नताके लिये अग्निहोत्रमें तत्पर पञ्चाक्षर मन्त्रके जपमें संलग्न तथा शिवके ध्यानमें अनुरक्त रहते हैं, वे उत्तम भागवत हैं । जो जलदानमें तत्पर, अन्नदानमें संलग्न तथा एकादशीव्रतके पालनमें लगे रहनेवाले हैं, वे श्रेष्ठ भक्त हैं । जो गोदान करते, कन्यादानमें तत्पर रहते और मेरी प्रसन्नताके लिये सत्कर्म करते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं । विप्रवर मार्कण्डेय ! यहाँपर कुछ ही भगवद्भक्तोंका वर्णन किया है । मैं भी सौ करोड़ वर्षोंमें भी

उन सबका पूरा-पूरा वर्णन नहीं कर सकता । अतः विप्रवर ! तुम भी सदा उत्तम शीलसे युक्त होकर रहो । समस्त प्राणियोंको आश्रय दो । मन और इन्द्रियोंको वशमें रक्खो । सबके प्रति मैत्रीभाव रखते हुए धर्माचरणमें लगे रहो । पुनः महाप्रलय-कालतक सब धर्मोंका पालन करते हुए मेरे स्वरूपके ध्यानमें तत्पर रहकर तुम परम मोक्ष प्राप्त कर लोगे ।

'देवताओंके स्वामी दयासिन्धु भगवान् विष्णु अपने भक्त मार्कण्डेयको इस प्रकार वरदान देकर वहीं अन्तर्धान हो गये । महाभाग मार्कण्डेयजी सदा भगवान्‌के भजनमें लगे रहकर उत्तम धर्मका पालन करने लगे । उन्होंने अनेक प्रकारके यज्ञोंद्वारा विधिपूर्वक भगवान्‌का पूजन किया । [illegible] महाक्षेत्र शालग्रामतीर्थमें उत्तम तपस्या की और [illegible] ध्यानद्वारा कर्मबन्धनका नाश करके परम [illegible] लिया । इसलिये भगवान्‌की आराधना करनेवाला [illegible] समस्त प्राणियोंका हितकारी होता है । [illegible] वस्तुएँ पाना चाहता है, वह सब निस्संदेह प्राप्त कर [illegible] ।

सनकजी कहते हैं—विप्रवर नारद ! तुमने [illegible] कुछ पूछा था, उसके अनुसार यह सब [illegible] माहात्म्य मैंने तुम्हें बताया है । अब और क्या सुनना चाहते हो ?

गङ्गा-यमुना-संगम, प्रयाग, काशी तथा गङ्गा एवं गायत्रीकी महिमा

सूतजी कहते हैं—भगवान्‌की भक्तिका यह माहात्म्य सुनकर नारदजी बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने ज्ञान-विज्ञानके पारगामी सनक मुनिसे पुनः इस प्रकार प्रश्न किया ।

नारदजी बोले—मुने ! आप शास्त्रोंके पारदर्शी विद्वान् हैं । मुझपर बड़ी भारी दया करके यह ठीक-ठीक बताइये कि क्षेत्रोंमें उत्तम क्षेत्र तथा तीर्थोंमें उत्तम तीर्थ कौन है ?

सनकजीने कहा—ब्रह्मन् ! यह परम गोपनीय प्रसङ्ग है, सुनो । उत्तम क्षेत्रोंका यह वर्णन सब प्रकारकी सम्पत्तियोंको देनेवाला, श्रेष्ठ, बुरे स्वप्नोंका नाशक, पवित्र, धर्मानुकूल, पापहारी तथा शुभ है । मुनियोंको नित्य-निरन्तर इसका श्रवण करना चाहिये । गङ्गा और यमुनाका जो सङ्गम है, उसीको महर्षिलोग शास्त्रोंमे उत्तम क्षेत्र तथा तीर्थोंमें उत्तम तीर्थ कहते हैं । ब्रह्मा आदि समस्त देवता, मुनि तथा पुण्यकी इच्छा रखनेवाले सब मनुष्य श्वेत और श्याम जलसे भरे हुए उस सङ्गम-तीर्थका सेवन करते हैं । गङ्गाको परम पवित्र नदी समझना चाहिये; क्योंकि वह भगवान् विष्णुके चरणोंसे प्रकट हुई है । इसी प्रकार यमुना भी साक्षात् सूर्यकी पुत्री हैं । ब्रह्मन् ! इन दोनोंका समागम परम कल्याणकारी है । मुने ! नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गा स्मरणमात्रसे समस्त क्लेशोंका नाश करनेवाली, सम्पूर्ण पापोंको दूर करनेवाली तथा सारे उपद्रवोंको मिटा देनेवाली है । महामुने ! समुद्रपर्यन्त पृथ्वीपर जो-जो पुण्यक्षेत्र हैं, उन सबसे अधिक पुण्यतम क्षेत्र प्रयागको ही जानना चाहिये । जहाँ ब्रह्माजीने यज्ञद्वारा भगवान् लक्ष्मीपतिका यजन किया है तथा सब महर्षियोंने भी वहाँ नाना प्रकारके यज्ञ किये हैं । सब तीर्थोंमें स्नान करनेसे जो पुण्य प्राप्त होते हैं, [illegible] सब मिलकर गङ्गाजीके एक बूँद जलसे किये हुए अभिषेककी सोलहवीं कलाकी भी समता नहीं कर सकते । जो गङ्गासे सौ योजन दूर खड़ा होकर भी 'गङ्गा-गङ्गा' का उच्चारण करता है, वह भी सब पापोंसे मुक्त हो जाता है; फिर जो गङ्गामें स्नान करता है, उसके लिये तो कहना ही क्या है ! भगवान् विष्णुके चरणकमलोंसे प्रकट होकर भगवान् शिवके मस्तकपर विराजमान होनेवाली भगवती गङ्गा मुनियों और देवताओंके द्वारा भी भलीभाँति सेवन करने योग्य हैं, फिर साधारण मनुष्योंके लिये तो बात ही क्या है !* जो मनुष्य अपने ललाटमें जहाँ गङ्गाजीकी बालुका तिलक लगाते हैं, वहाँ अर्धचन्द्रके नीचे प्रकाशित होनेवाला तृतीय नेत्र समझना चाहिये । गङ्गामें किया हुआ स्नान महान् पुण्यदायक तथा देवताओंके लिये भी दुर्लभ है; वह भगवान् विष्णुका सारूप्य देनेवाला होता है—इससे बढ़कर उसकी महिमाके विषयमें और क्या कहा जा सकता है ! गङ्गामें स्नान करनेवाले पापी भी सब पापोंसे मुक्त हो श्रेष्ठ विमानपर बैठकर परम धाम वैकुण्ठको चले जाते हैं । जिन्होंने गङ्गामें स्नान किया है, वे महात्मा पुरुष पिता और माताके कुलकी बहुत-सी पीढ़ियोंका उद्धार करके भगवान् विष्णुके धाममें

* गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि ।
सोऽपि मुच्येत पापेभ्यः किमु गङ्गाभिषेकवान् ॥
विष्णुपादोद्भवा देवी विश्वेश्वरशिरःस्थिता ।
संसेव्या मुनिभिर्देवैः किं पुनः पामरैर्जनैः ॥
(ना० पूर्व० ६ । [illegible])

चले जाते हैं। ब्रह्मन्! जो गङ्गाजीका स्मरण करता है, उसने सब तीर्थोंमें स्नान और सभी पुण्य-क्षेत्रोंमें निवास कर लिया—इसमें संशय नहीं है। गङ्गा-स्नान किये हुए मनुष्यको देखकर पापी भी स्वर्गलोकका अधिकारी हो जाता है। उसके अङ्गोंका स्पर्श करनेमात्रसे वह देवताओंका अधिपति हो जाता है। गङ्गा, तुलसी, भगवान्‌के चरणोंमें अविचल भक्ति तथा धर्मोपदेशक सद्गुरुमें श्रद्धा—ये सब मनुष्योंके लिये अत्यन्त दुर्लभ हैं*। उत्तम धर्मका उपदेश देनेवाले गुरुके चरणोंकी धूल, गङ्गाजीकी मृत्तिका तथा तुलसीवृक्षके मूलभागकी मिट्टीको जो मनुष्य भक्तिपूर्वक अपने मस्तकपर धारण करता है, वह वैकुण्ठ धामको जाता है। जो मनुष्य मन-ही-मन यह अभिलाषा करता है कि मैं कब गङ्गाजीके समीप जाऊँगा और कब उनका दर्शन करूँगा, वह भी वैकुण्ठ धामको जाता है। ब्रह्मन्! दूसरी बातें बहुत कहनेसे क्या लाभ, साक्षात् भगवान् विष्णु भी सैकड़ों वर्षोंमें गङ्गाजीकी महिमाका वर्णन नहीं कर सकते। अहो! माया सारे जगत्‌को मोहमें डाले हुए है, यह कितनी अद्भुत बात है? क्योंकि गङ्गा और उसके नामके रहते हुए भी लोग नरकमें जाते हैं। गङ्गाजीका नाम संसार-दुःखका नाश करनेवाला बताया गया है। तुलसीके नाम तथा भगवान्‌की कथा कहनेवाले साधु पुरुषके प्रति की हुई भक्तिका भी यही फल है। जो एक बार भी 'गङ्गा' इस दो अक्षरका उच्चारण कर लेता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है†। परम पुण्यमयी इस गङ्गा नदीका यदि मेष, तुला और मकरकी संक्रान्तियोंमें (अर्थात् वैशाख, कार्तिक और माघके महीनोंमें) भक्तिपूर्वक सेवन किया जाय तो सेवन करनेवाले सम्पूर्ण जगत्‌को यह पवित्र कर देती है। द्विजश्रेष्ठ! गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा, नर्मदा, सरस्वती, तुङ्गभद्रा, कावेरी, यमुना, बाहुदा, वेत्रवती, ताम्रपर्णी तथा सरयू आदि सब तीर्थोंमें गङ्गाजी ही सबसे प्रधान मानी गयी है। जैसे सर्वव्यापी भगवान् विष्णु सम्पूर्ण जगत्‌को व्याप्त करके स्थित हैं, उसी प्रकार सब पापोंका नाश करनेवाली गङ्गादेवी सब तीर्थोंमें व्याप्त हैं। अहो! महान् आश्चर्य है! परम पावन जगदम्बा गङ्गा स्नान-पान आदिके द्वारा सम्पूर्ण संसारको पवित्र कर रही हैं, फिर सभी मनुष्य इनका सेवन क्यों नहीं करते?

इसी प्रकार विख्यात काशीपुरी भी तीर्थोंमें उत्तम तीर्थ और क्षेत्रोंमें उत्तम क्षेत्र है। समस्त देवता उसका सेवन करते हैं। इस लोकमें कानवाले पुरुषोंके वे ही दोनों कान धन्य हैं और वे ही बहुत-से शास्त्रोंका ज्ञान धारण करनेवाले हैं, जिनके द्वारा बारम्बार काशीका नाम श्रवण किया गया है। द्विजश्रेष्ठ! जो मनुष्य अविमुक्त क्षेत्र काशीका स्मरण करते हैं, वे सब पापोंका नाश करके भगवान् शिवके लोकमें चले जाते हैं। मनुष्य सौ योजन दूर रहकर भी यदि अविमुक्त क्षेत्रका स्मरण करता है तो वह बहुतेरे पातकोंसे भरा होनेपर भी भगवान् शिवके रोग-शोकरहित नित्य धामको चला जाता है। ब्रह्मन्! जो प्राण निकलते समय अविमुक्त क्षेत्रका स्मरण कर लेता है, वह भी सब पापोंसे छूटकर शिवधामको प्राप्त हो जाता है। काशीके गुणोंके विषयमें यहाँ बहुत कहनेसे क्या लाभ; जो काशीका नाम भी लेते हैं, उनसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों पुरुषार्थ दूर नहीं रहते। ब्रह्मन्! गङ्गा और यमुनाका सङ्गम (प्रयाग) तो काशीसे भी बढ़कर है; क्योंकि उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य परम गतिको प्राप्त कर लेते हैं। सूर्यके मकर राशिपर रहते समय जहाँ कहीं भी गङ्गामें स्नान किया जाय, वह स्नान-पान आदिके द्वारा सम्पूर्ण जगत्‌को पवित्र करती और अन्तमें इन्द्रलोक पहुँचाती है। लोकका कल्याण करनेवाले लिङ्ग-स्वरूप भगवान् शङ्कर भी जिस गङ्गाका सदा सेवन करते हैं, उसकी महिमाका पूरा-पूरा वर्णन कैसे किया जा सकता है? शिवलिङ्ग साक्षात् श्रीहरिरूप है और श्रीहरि साक्षात् शिव-लिङ्गरूप हैं। इन दोनोंमें थोड़ा भी अन्तर नहीं है। जो इनमें भेद करता है, उसकी बुद्धि खोटी है। अज्ञानके समुद्रमें डूबे हुए पापी मनुष्य ही आदि-अन्तरहित भगवान् विष्णु और शिवमें भेदभाव करते हैं। जो सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी

---

* गङ्गा च तुलसी चैव हरिभक्तिरचञ्चला ।
अत्यन्तदुर्लभा नृणां भक्तिर्धर्मप्रवक्तरि ॥
(ना० पूर्व० ६ । २१)

† गङ्गाया महिमा ब्रह्मन् वक्तुं वर्षशतैरपि ।
न शक्यते विष्णुनापि किमन्यैर्बहुभाषितैः ॥
अहो माया जगत्सर्वं मोहयत्येतदद्भुतम् ।
यतो वै नरकं यान्ति गङ्गानाम्नि स्थितेऽपि हि ॥
संसारदुःखविच्छेदि गङ्गानाम प्रकीर्तितम् ।
तथा तुलस्या भक्तिश्च हरिकीर्तिप्रवक्तरि ॥
सकृदप्युच्चरेद् यस्तु गङ्गेत्येवाक्षरद्वयम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥
(ना० पूर्व० ६ । २४-२७)

और कारणोंके भी कारण हैं, वे भगवान् विष्णु ही प्रलय-कालमें रुद्ररूप धारण करते हैं। ऐसा विद्वान् पुरुषोंका कथन है। भगवान् रुद्र ही विष्णुरूपसे सम्पूर्ण जगत्का पालन करते हैं। वे ही ब्रह्माजीके रूपमें संसारकी सृष्टि करते हैं तथा अन्तमें हररूपसे वे ही तीनों लोकोंका संहार करते हैं। जो मनुष्य भगवान् विष्णु, शिव तथा ब्रह्माजीमें भेद-बुद्धि करता है, वह अत्यन्त भयंकर नरकमें जाता है। जो भगवान् शिव, विष्णु और ब्रह्माजीको एक रूपसे देखता है, वह परमानन्दको प्राप्त होता है। यह शास्त्रोंका सिद्धान्त है। जो अनादि, सर्वज्ञ, जगत्के आदिस्रष्टा तथा सर्वत्र व्यापक हैं, वे भगवान् विष्णु ही शिवलिङ्गरूपसे काशीमें विद्यमान हैं। काशीपुरीका विश्वेश्वरलिङ्ग ज्योतिर्लिङ्ग कहलाता है। श्रेष्ठ मनुष्य उसका दर्शन करके परम ज्योतिको प्राप्त होता है। जिसने त्रिभुवनको पवित्र करनेवाली काशीपुरीकी परिक्रमा कर ली, उसके द्वारा समुद्र, पर्वत तथा सात द्वीपोंसहित पृथ्वीकी परिक्रमा हो गयी। धातु, मिट्टी, लकड़ी, पत्थर अथवा चित्र आदिसे निर्मित जो भगवान् शिव अथवा विष्णुकी निर्मल प्रतिमाएँ हैं, उन सबमें भगवान् विष्णु विद्यमान हैं। जहाँ तुलसीका बगीचा, कमलोंका वन और पुराणोंका पाठ हो, वहाँ भगवान् विष्णु स्थित रहते हैं। ब्रह्मन्! पुराणकी कथा सुननेमें जो प्रेम होता है, वह गङ्गास्नानके समान है तथा पुराणकी कथा कहनेवाले व्यासके प्रति जो भक्ति होती है, वह प्रयागके तुल्य मानी गयी है। जो पुराणोक्त धर्मका उपदेश देकर जन्म-मृत्युरूप संसार-सागरमें डूबे हुए जगत्का उद्धार करता है, वह साक्षात् श्रीहरिका स्वरूप बताया गया है। गङ्गाके समान कोई तीर्थ नहीं है, माताके समान कोई गुरु नहीं है, भगवान् विष्णुके समान कोई देवता नहीं है तथा गुरुसे बढ़कर कोई तत्त्व नहीं है*। जैसे चारों वर्णोंमें ब्राह्मण, नक्षत्रोंमें चन्द्रमा तथा सरोवरोंमें समुद्र श्रेष्ठ है, उसी प्रकार पुण्य तीर्थों और नदियोंमें गङ्गा सबसे श्रेष्ठ मानी गयी हैं। शान्तिके समान कोई बन्धु नहीं है, सत्यसे बढ़कर कोई तप नहीं है, मोक्षसे बड़ा कोई लाभ नहीं है और गङ्गाके समान कोई नदी नहीं है*। गङ्गाजीका [illegible] वनको भस्म करनेके लिये दावानल[illegible] हैं। [illegible] संसाररूपी रोगको दूर करनेवाली हैं, इसलिये [illegible] उनका सेवन करना चाहिये। गायत्री और गङ्गा दोनों समस्त पापोंको हर लेनेवाली मानी गयी हैं। [illegible] जो इन दोनोंके प्रति भक्तिभावसे रहित है, उसे [illegible] समझना चाहिये। गायत्री वेदोंकी माता है और [illegible] (गङ्गा) सम्पूर्ण जगत्की जननी हैं। ये दोनों [illegible] पापोंके नाशका कारण हैं। जिसपर गायत्री प्रसन्न होती हैं

उसपर गङ्गा भी प्रसन्न होती हैं। ये दोनों भगवान् [illegible] शक्तिसे सम्पन्न हैं, अतः सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धि [illegible] हैं। गङ्गा और गायत्री धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष— इन चारों पुरुषार्थोंके फलरूपमें प्रकट हुई हैं। ये दोनों निर्मल तथा परम उत्तम हैं और सम्पूर्ण लोकोंका [illegible] करनेके लिये प्रवृत्त हुई हैं। मनुष्योंके लिये गायत्री [illegible] गङ्गा दोनों अत्यन्त दुर्लभ हैं। इसी प्रकार तुलसीके प्रति [illegible] और भगवान् विष्णुके प्रति सात्त्विक भक्ति भी दुर्लभ है। अहो! महाभागा गङ्गा [illegible]

---

* नास्ति गङ्गासमं तीर्थं नास्ति मातृसमो गुरुः।
नास्ति विष्णुसमं दैवं नास्ति तत्त्वं गुरोः परम्॥
(ना० पूर्व० ६।७८)

* नास्ति शान्तिसमो [illegible]
नास्ति मोक्षसमो [illegible]
([illegible])

नाश करनेवाली, दर्शन करनेपर भगवान् विष्णुका लोक देनेवाली तथा जल पीनेपर भगवान्‌का सारूप्य प्रदान करनेवाली हैं। उनमें स्नान कर लेनेपर मनुष्य भगवान् विष्णुके उत्तम धामको जाते हैं *। जगत्‌का धारण-पोषण करनेवाले सर्वव्यापी सनातन भगवान् नारायण गङ्गा-स्नान करनेवाले मनुष्योंको मनोवाञ्छित फल देते हैं। जो श्रेष्ठ मानव गङ्गाजलके एक कणसे भी अभिषिक्त होता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो परम धामको प्राप्त कर लेता है। गङ्गाके जलबिन्दुका सेवन करनेमात्रसे राजा सगरकी संतति परम पदको प्राप्त हुई।

असूया-दोषके कारण राजा बाहुकी अवनति और पराजय तथा उनकी मृत्युके बाद रानीका और्व मुनिके आश्रममें रहना

नारदजीने पूछा—मुनिश्रेष्ठ! राजा सगर कौन थे? यह सब मुझे बतानेकी कृपा करें।

सनकजीने कहा—मुनिवर! गङ्गाजीका उत्तम माहात्म्य सुनिये, जिनके जलका स्पर्श होनेमात्रसे राजा सगरका कुल पवित्र हो गया और सम्पूर्ण लोकोंमें सबसे उत्तम वैकुण्ठ धामको चला गया। सूर्यवंशमें बाहु नामवाले एक राजा हो गये हैं। उनके पिताका नाम वृक था। बाहु बड़े धर्मपरायण राजा थे और सारी पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन करते थे। उन्होंने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य जीवोंको अपने-अपने धर्मकी मर्यादामें स्थापित किया था। महाराज बाहुने सातों द्वीपोंमें सात अश्वमेध यज्ञ किये और ब्राह्मणोंको गाय, भूमि, सुवर्ण तथा वस्त्र आदि देकर भलीभाँति तृप्त किया। नीतिशास्त्रके अनुसार उन्होंने चोर-डाकुओंको यथेष्ट दण्ड देकर शासनमें रक्खा और दूसरोंका संताप दूर करके अपनेको कृतार्थ माना। पृथ्वीपर बिना जोते-बोये अन्न पैदा होता और वह फल-फूलसे भरी रहती थी। मुनीश्वर! देवराज इन्द्र उनके राज्यकी भूमिपर समयानुसार वर्षा करते थे और पापाचारियोंका अन्त हो जानेके कारण वहाँकी प्रजा धर्मसे सुरक्षित रहती थी।

एक समय राजा बाहुके मनमें असूया (गुणोंमें दोष-दृष्टि) के साथ बड़ा भारी अहंकार उत्पन्न हुआ, जो सब सम्पत्तियोंका नाश करनेवाला तथा अपने विनाशका भी हेतु है। वे सोचने लगे—मैं समस्त लोकोंका पालन करनेवाला बलवान् राजा हूँ। मैंने बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान किया है। मुझसे पूजनीय दूसरा कौन है? मैं विद्वान् हूँ, श्रीमान् हूँ। मैंने सब शत्रुओंको जीत लिया है। मुझे वेद और वेदाङ्गोंके तत्त्वका ज्ञान है और नीतिशास्त्रका तो मैं बहुत बड़ा पण्डित हूँ। मुझे कोई जीत नहीं सकता। मेरे ऐश्वर्यको हानि नहीं पहुँचा सकता। इस पृथ्वीपर मुझसे बढ़कर दूसरा कौन है? इस प्रकार अहंकारके वशीभूत होनेपर उनके मनमें दूसरोंके प्रति दोषदृष्टि हो गयी। मुनीश्वर! दोषदृष्टि होनेसे उस राजाके हृदयमें काम प्रबल हो उठा। इन सब दोषोंके स्थिर होनेपर मनुष्यका विनाश होना निश्चित है। यौवन, धनसम्पत्ति, प्रभुता और अविवेक—इनमेंसे एक एक भी अनर्थका कारण होता है, फिर जहाँ ये चारों मौजूद हों वहाँके लिये क्या कहना †? विप्रवर! उनके भीतर बड़ी भारी असूया पैदा हो गयी, जो लोकका विरोध, अपने देहका नाश तथा सब सम्पत्तियोंका अन्त करनेवाली होती है। सुव्रत! असूयासे भरे हुए चित्तवाले पुरुषोंके पास यदि धन-सम्पत्ति मौजूद हो तो उसे भूसेकी आगमें वायुके संयोगके समान समझो। जिनका चित्त दूसरोंके दोष देखनेमें लगा होता है, जो पाखण्डपूर्ण आचारका पालन करते हैं तथा सदा कटुवचन बोला करते हैं, उन्हें इस लोकमें और परलोकमें भी सुख नहीं मिलता। जिनका मन असूया दोषसे दूषित है तथा जो सदा निष्ठुर भाषण किया करते हैं, उनके प्रियजन, पुत्र तथा भाई-बन्धु भी शत्रु बन जाते हैं। जो परायी स्त्रीको देखकर मन-ही-मन उसे प्राप्त करनेकी अभिलाषा करता है, वह अपनी सम्पत्तिका नाश करनेके लिये स्वयं ही कुठार बन गया है—इसमें संशय नहीं है। मुने! जो मनुष्य अपने कल्याणका नाश करनेके लिये प्रयत्न

* सा गङ्गा महाभागा स्मृता पापप्रणाशिनी। हरिलोकप्रदा दृष्टा पीता सारूप्यदायिनी।
यत्र स्नाता नरा यान्ति विष्णोः पदमनुत्तमम्॥ (ना० पूर्व० ६। ६७)

† यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकता। एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्॥ (ना० पूर्व० ७। १५)

करता है, वही दूसरोंका कल्याण देखकर अपनी कुत्सित बुद्धिके कारण उनसे डाह करने लगता है। ब्रह्मन्! जो मित्र, संतान, गृह, क्षेत्र, धन-धान्य और पशु—सबकी हानि देखना चाहता हो, वही सदा दूसरोंसे असूया करे।

तदनन्तर जब राजा बाहुका हृदय असूया-दोषसे दूषित हो जानेके कारण वे अत्यन्त उद्दण्ड हो गये, तब हैहय और तालजङ्घ-कुलके क्षत्रिय उनके प्रबल शत्रु बन गये। असूया होनेपर दूसरे जीवोंके साथ द्वेष बहुत बढ़ जाता है—इसमें संदेह नहीं है। असूयासे दूषित चित्तवाले उस राजाका अपने शत्रुओंके साथ लगातार एक मासतक भयंकर युद्ध होता रहा। अन्तमें वे अपने वैरी हैहय और तालजङ्घ नामवाले क्षत्रियोंसे परास्त हो गये। अतः दुखी होकर राजा बाहु अपनी गर्भवती पत्नीके साथ वनमें चले गये। वहाँ एक बहुत बड़ा तालाब देखकर उन्हें बड़ा संतोष हुआ; परंतु उनके मनमें तो असूया भरी हुई थी, इसलिये उनका भाव देखकर उस जलाशयके पक्षी भी इधर-उधर छिप गये। यह बडे आश्चर्यकी बात हुई। उस समय बड़ी उतावलीके साथ अपने घोंसलोंमें समाते हुए वे पक्षी इस प्रकार कह रहे थे—'अहो! बड़े कष्टकी बात है। यहाँ तो कोई भयानक पुरुष आ गया!' राजाने अपनी दोनों पत्नियोंके साथ उस सरोवरमें प्रवेश करके जल पीया और वृक्षके नीचे उसकी सुखद छायामें जा बैठे। नारदजी! गुणवान् मनुष्य कोई भी क्यों न हो, वह सबके लिये श्लाघ्य होता है और सब प्रकारकी सम्पत्तियोंसे युक्त होनेपर भी गुणहीन मनुष्य सदा लोगोंसे निन्दित ही होता है। द्विजश्रेष्ठ नारद! उस समय बाहुकी बहुत निन्दा हुई थी। वे संसारमें अपने पुरुषार्थ और यशका नाश करके मरे हुएकी भाँति वनमें रहते थे। अकीर्तिके समान कोई मृत्यु नहीं है। क्रोधके समान कोई शत्रु नहीं है। निन्दाके समान कोई पाप नहीं है और मोहके समान कोई भय नहीं है। असूयाके समान कोई अपकीर्ति नहीं है, कामके समान कोई आग नहीं है, रागके समान कोई बन्धन नहीं है और सङ्ग अथवा आसक्तिके समान कोई विष नहीं है *। इस प्रकार बहुत विलाप करके राजा बाहु अत्यन्त दुःखित हो गये। तदनन्तर संताप और बुढ़ापेके कारण उनका [illegible] गया। मुनिश्रेष्ठ! इस तरह बहुत समय बीतनेके बाद और्व मुनिके आश्रमके निकट रोगसे ग्रस्त होकर राजा [illegible] संसारसे चल बसे। उनकी छोटी पत्नी यद्यपि गर्भवती थी, तो भी दुःखसे आतुर हो दीर्घकालतक विलाप करके उसने पतिके साथ चितापर जल मरनेका विचार किया। इसी बीचमें परम बुद्धिमान् और्व मुनि, जो महान् तेजकी निधि थे, वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने उत्तम समाधिके द्वारा यह सब वृत्तान्त जान लिया था। मुनीश्वरगण तीनों कालोंके ज्ञाता होते हैं। वे असूयारहित महात्मा अपनी ज्ञानदृष्टिसे भूत, भविष्य और वर्तमान सब कुछ देख लेते हैं। परम पुण्यात्मा और्व मुनि अपनी तपस्याके कारण तेजकी राशि बन रहे थे। वे उसी स्थानपर आये, जहाँ राजा बाहुकी प्यारी पतिव्रता पत्नी खड़ी थी। मुनिश्रेष्ठ नारद! रानीको चितापर चढ़नेके लिये उद्यत देख मुनिवर और्व धर्मयुक्त वचन बोले।

और्वने कहा—महाराज बाहुकी प्यारी पत्नी! तू पतिव्रता है; किंतु चितापर चढ़नेका अत्यन्त दुःसाहस न कर। तेरे गर्भमें शत्रुओंका नाश करनेवाला बालक है। कल्याणमयी राजरानी! जिनकी संतान छोटी हो, जो गर्भवती हो, जिन्होंने अभी ऋतुकाल न देखा हो तथा जो रजस्वला हो, ऐसी स्त्रियाँ पतिके साथ चितापर नहीं चढ़तीं—उनके लिये चितारोहण निषिद्ध है। [illegible]

---

* नास्त्यकीर्तिसमो मृत्युर्नास्ति क्रोधसमो रिपुः।
नास्ति निन्दासमं पापं नास्ति मोहसमासवः॥
नास्त्यसूयासमाकीर्तिर्नास्ति कामसमोऽनलः।
नास्ति रागसमः पाशो नास्ति सङ्गसमं विषम्॥

(ना० पूर्व० ७। ४१-४२)

पुरुषोंने ब्रह्महत्या आदि पापोंका प्रायश्चित्त बताया है; शराबी और सुवर्णचोरका भी उद्धार होता है; किंतु जो गर्भके बच्चेकी हत्या करता है, उसके उद्धारका कोई उपाय नहीं है । सुभ्रु ! नास्तिक, कृतघ्न, धर्मत्यागी और विश्वासघातीके उद्धारका भी कोई उपाय नहीं है * । अतः शोभने ! तुझे यह महान् पाप नहीं करना चाहिये ।

मुनिके इस प्रकार कहनेपर पतिव्रता रानीको उनके वचनोंपर विश्वास हो गया और वह अत्यन्त दुःखसे पीड़ित हो अपने मरे हुए पतिके चरणकमलोंको पकड़कर विलाप करने लगी । महात्मा और्व सब शास्त्रोंके ज्ञाता थे । वे रानीसे पुनः बोले—'राजकुमारी ! तू रो मत, तुझे श्रेष्ठ राजलक्ष्मी प्राप्त होगी । महाभागे ! इस समय सज्जन पुरुषोंके सहयोगसे इस मृतक शरीरका दाह-संस्कार करना उचित है, अतः शोक त्यागकर तू समयोचित कार्य कर । पण्डित हो या मूर्ख, दरिद्र हो या धनवान् तथा दुराचारी हो या सदाचारी—सबपर मृत्युकी समान दृष्टि है । नगरमें हो या वनमें, समुद्रमें हो या पर्वतपर, जिस जीवने जो कर्म किया है, उसे उसका भोग अवश्य करना होगा । जैसे दुःख बिना बुलाये ही प्राणियोंके पास चले आते हैं, उसी प्रकार सुख भी आ सकते हैं—ऐसी मेरी मान्यता है । इस विषयमें दैव ही प्रबल है । पूर्वजन्मके जो जो कर्म हैं, उन्हीं-उन्हींको यहाँ भोगना पड़ता है । कमलानने ! जीव गर्भमें हों या बाल्यावस्थामें, जवानीमें हों या बुढ़ापेमें, उन्हें मृत्युके अधीन अवश्य होना पड़ता है । अतः सुमने ! इस दुःखको त्यागकर तू सुखी हो जा । पतिके अन्त्येष्टि-संस्कार कर और विवेकके द्वारा स्थिर हो जा । यह शरीर कर्मपाशमें बँधा हुआ तथा हजारों दुःख और व्याधियोंसे घिरा हुआ है । इसमें सुखका तो आभास ही मात्र है । क्लेश ही अधिक होता है ।'

परम बुद्धिमान् और्व मुनिने रानीको इस प्रकार समझा-बुझाकर उससे दाह-सम्बन्धी सब कार्य करवाये; फिर उसने शोक त्याग दिया और मुनीश्वरको प्रणाम करके कहा—'भगवन् ! आप-जैसे संत दूसरोंकी भलाईकी ही अभिलाषा रखते हैं—इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं । पृथ्वीपर जितने भी वृक्ष हैं, वे अपने उपभोगके लिये नहीं फलते—उनका फल दूसरोंके ही काम आता है । इसलिये जो दूसरोंके दुःखसे दुखी और दूसरोंकी प्रसन्नतासे प्रसन्न होता है, वही नर-रूपधारी जगदीश्वर नारायण है । संत पुरुष दूसरोंका दुःख दूर करनेके लिये शास्त्र सुनते हैं और अवसर आनेपर सबका दुःख दूर करनेके लिये शास्त्रोंके वचन कहते हैं । जहाँ संत रहते हैं, वहाँ दुःख नहीं सताता; क्योंकि जहाँ सूर्य है, वहाँ अन्धकार कैसे रह सकता है ?'

इस प्रकार कहकर रानीने उस तालाबके किनारे मुनिकी बतायी हुई विधिके अनुसार अपने पतिकी अन्य पारलौकिक क्रियाएँ सम्पन्न कीं । वहाँ और्व मुनिके स्थित होनेसे राजा बाहु तेजसे प्रकाशित होते हुए चितासे निकले और श्रेष्ठ विमानपर बैठकर मुनीश्वर और्वको प्रणाम करके परम धामको चले गये । जिनपर महापुरुषोंकी दृष्टि पड़ती है, वे महापातक या उपपातकसे युक्त होनेपर भी अवश्य परम पदको प्राप्त हो जाते हैं । पुण्यात्मा पुरुष यदि किसीके शरीरको, शरीरके भस्मको अथवा उसके धुएँको भी देख ले तो वह परम पदको प्राप्त होता है † । नारदजी ! पतिका श्राद्धकर्म करके रानी और्व मुनिके आश्रमपर गयी और अपनी सौतके साथ महर्षिकी सेवा करने लगी ।
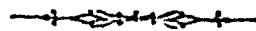
* [illegible] गर्भिणो [illegible]वन्तथा । [illegible] नागेदन्ति विना शुभे ॥
[illegible] प्रोक्ता निष्कृतिस्सुजनैः । [illegible] निन्दकस्यापि भ्रूणघ्नस्य न निष्कृतिः ॥
नास्तिकस्य कृतघ्नस्य धर्मोपेक्षकस्य च । विश्वासघातकस्यापि निष्कृतिर्नास्ति सुव्रते ॥
(ना० पूर्व० ७ । ५२—५४)

† महापातकयुक्ता वा युक्ता वा चोपपातकैः । परं पदं प्रयान्त्येव महद्भिरवलोकिताः ॥
कलेवरं वा तद्भस्म धूमं वापि सतत्तम । यदि पश्यति पुण्यात्मा स प्रयाति परां गतिम् ॥
(ना० पूर्व० ७ । ७४-७५)

सगरका जन्म तथा शत्रुविजय, कपिलके क्रोधसे सगर-पुत्रोंका विनाश तथा भगीरथद्वारा लायी हुई गङ्गाजीके स्पर्शसे उन सबका उद्धार

श्रीसनकजी कहते हैं—मुनीश्वर ! इस प्रकार राजा बाहुकी वे दोनों रानियाँ और्व मुनिके आश्रमपर रहकर प्रतिदिन भक्तिभावसे उनकी सेवा-शुश्रूषा करती रहीं । नारदजी ! इस तरह छः महीने बीत जानेपर राजाकी जो जेठी रानी थी, उसके मनमें सौतकी समृद्धि देखकर पापपूर्ण विचार उत्पन्न हुआ । अतः उस पापिनीने छोटी रानीको जहर दे दिया; किंतु छोटी रानी प्रतिदिन आश्रमकी भूमि लीपने आदिके द्वारा मुनिकी भलीभाँति सेवा करती थी, इसलिये उस पुण्यकर्मके प्रभावसे रानीपर उस विषका असर नहीं हुआ । तत्पश्चात् तीन मास और व्यतीत होनेपर रानीने शुभ समयमें विषके साथ ही एक पुत्रको जन्म दिया । मुनिकी सेवासे रानीके सब पाप नष्ट हो चुके थे । अहो ! लोकमें सत्सङ्गका कैसा माहात्म्य है ! वह कौन-सा पाप नष्ट नहीं कर सकता और सत्सङ्गके प्रभावसे पाप नष्ट हो जानेपर पुण्यात्मा मनुष्योंको कौन-सा सुख अधिक-से-अधिक नहीं मिल सकता ! जानकर और अनजानमें किया हुआ तथा दूसरोंसे कराया हुआ जो पाप है, उस सबको महात्मा पुरुषोंकी सेवा तत्काल नष्ट कर देती है । संसारमें सत्सङ्गके प्रभावसे जड भी पूज्य हो जाता है । जैसे भगवान् शंकरके द्वारा ललाटमें ग्रहण कर लिये जानेपर एक कलाका चन्द्रमा भी वन्दनीय हो गया । विप्रवर ! इहलोक और परलोकमें सत्सङ्ग मनुष्योंको सदा उत्तम समृद्धि प्रदान करता है, इसलिये संत पुरुष परम पूजनीय हैं । मुनीश्वर ! महात्मा पुरुषोंके गुणोंका वर्णन करनेमें कौन समर्थ है ? अहो ! उनके प्रभावसे गर्भमें पड़ा हुआ विष तीन मासतक पचता रहा। यह कैसी अद्भुत बात है ? तेजस्वी मुनि और्वने गर (विष) के सहित उत्पन्न हुए पुत्रको देखकर उसका जातकर्म-संस्कार किया और उस बालकका नाम सगर रक्खा । माताने बालक सगरका बड़े प्रेमसे पालन-पोषण किया । मुनीश्वर और्वने यथासमय उसके चूडाकर्म तथा यज्ञोपवीत संस्कार किये तथा राजाके लिये उपयोगी शास्त्रोंका उसे अध्ययन कराया । मुनि सब मन्त्रोंके ज्ञाता थे । उन्होंने देखा, सगर अब बाल्यावस्थासे कुछ ऊपर उठ चुका है और मन्त्रग्रहण करनेमें समर्थ है, तब उसे अस्त्र-शस्त्रोंकी मन्त्रसहित शिक्षा दी । नारदजी ! महर्षि और्वसे शिक्षा पाकर सगर बड़ा बलवान्, धर्मात्मा, कृतज्ञ, गुणवान् तथा परम बुद्धिमान् हो गया । धर्मज्ञ सगर अब प्रतिदिन अमित तेजस्वी और्व मुनिके लिये समिधा, कुशा, जल और फूल आदि लाने लगा । बालक बड़ा विनयी और सद्गुणोंका भण्डार था । एक दिन उसने अपनी माताको प्रणाम करके हाथ जोड़कर कहा ।

सगरने कहा—माँ ! मेरे पिताजी कहाँ चले गये हैं ? उनका क्या नाम है और वे किसके कुलमें उत्पन्न हुए हैं ? यह सब बातें मुझे बताओ । मेरे मनमें यह सुननेके लिये बड़ी उत्कण्ठा है । संसारमें जिनके पिता नहीं हैं, वे जीवित होकर भी मरे हुएके समान हैं । जिसके माता पिता नहीं हैं, उसे कोई सुख नहीं है । जैसे धर्महीन मूर्ख मनुष्य इस लोक और परलोकमें निन्दित होता है, वही दशा पितृहीन बालककी भी है । माता पितासे रहित अभागी, दरिद्र, पुत्रहीन तथा ऋणग्रस्त पुरुषका जन्म व्यर्थ है । जैसे चन्द्रमाके बिना रात्रि, कमलके बिना तालाब और पतिके बिना स्त्रीकी शोभा नहीं होती, उसी प्रकार पितृहीन बालक भी शोभा नहीं पाता । जैसे धर्महीन मनुष्य, कर्महीन गृहस्थ और गौ आदि पशुओंसे हीन वैश्यकी शोभा नहीं होती, वैसे ही पिताके बिना पुत्र सुशोभित नहीं होता । जैसे सत्यरहित वचन, साधु पुरुषोंसे रहित सभा तथा दयाशून्य तप व्यर्थ है, वही दशा पिताके बिना बालककी होती है । जैसे वृक्षके बिना वन, जलके बिना नदी और वेगहीन घोड़ा निरर्थक होता है, वैसी ही पिताके बिना बालककी दशा होती है * । माँ ! जैसे [illegible] मनुष्य लोकमें अत्यन्त लघु समझा जाता है, उसी प्रकार पितृहीन बालक बहुत दुःख उठाता है ।

---

* चन्द्रहीना यथा रात्रिः पद्महीनं यथा सरः ।
पतिहीना यथा नारी पितृहीनस्तथा शिशुः ॥
धर्महीनो यथा जन्तुः कर्महीनो यथा गृही ।
पशुहीनो यथा वैश्यस्तथा पित्रा विनार्भकः ॥
सत्यहीनं यथा वाक्यं साधुहीना यथा सभा ।
तपो यथा दयाहीनं तथा पित्रा विनार्भकः ॥
वृक्षहीनं यथारण्यं जलहीना यथा नदी ।
वेगहीनो यथा वाजी तथा पित्रा विनार्भकः ॥
(ना० पूर्व० [illegible])

पुत्रकी यह बात सुनकर रानी लंबी साँस खींचकर दुःखमें डूब गयी। उसने सगरके पूछनेपर उसे सब बातें ठीक-ठीक बता दीं। यह सब वृत्तान्त सुनकर सगरको बड़ा क्रोध हुआ। उनके नेत्र लाल हो गये। उन्होंने उसी समय प्रतिज्ञा की, 'मैं शत्रुओंका नाश कर डालूँगा।' फिर और्व मुनिकी परिक्रमा करके माताको प्रणाम किया और मुनिसे आज्ञा लेकर वहाँसे प्रस्थान किया। और्वके आश्रमसे निकलनेपर सत्यवादी एवं पवित्र राजकुमार सगरको उनके कुलपुरोहित महर्षि वसिष्ठ मिल गये। इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। अपने कुलगुरु महात्मा वसिष्ठको प्रणाम करके सगरने अपना सब समाचार बताया; यद्यपि वे ज्ञानदृष्टिसे सब कुछ पहलेसे ही जानते थे। राजा सगरने उन्हीं महर्षिसे ऐन्द्र, वारुण, ब्राह्म और आग्नेय अस्त्र तथा उत्तम खड्ग तथा वज्रके समान सुदृढ धनुष प्राप्त किया। तदनन्तर, शुद्ध हृदयवाले सगरने मुनिकी आज्ञा ले उनके आशीर्वादसे समादृत हो उन्हें प्रणाम करके तत्काल वहाँसे यात्रा की। शूरवीर सगरने एक ही धनुषसे अपने विरोधियोंको पुत्र-पौत्र और सेनासहित स्वर्गलोक पहुँचा दिया। उनके धनुषसे छूटे हुए अग्निसदृश बाणोंसे संतप्त होकर कितने ही शत्रु नष्ट हो गये और कितने ही भयभीत होकर भाग गये। शक, यवन तथा अन्य बहुत-से राजा प्राण बचानेकी इच्छासे तुरंत वसिष्ठ मुनिकी शरणमें गये। इस प्रकार भूमण्डलपर विजय प्राप्त करके बाहुपुत्र सगर शीघ्र ही आचार्य वसिष्ठके समीप आये। उन्हें अपने गुप्तचरोंसे यह बात मालूम हो गयी थी कि हमारे शत्रु गुरुजीकी शरणमें गये हैं। बाहुपुत्र सगरको आया हुआ सुनकर महर्षि वसिष्ठ शरणागत राजाओंकी रक्षा करने तथा अपने शिष्य सगरकी प्रसन्नताके लिये क्षणभर विचार करने लगे। फिर उन्होंने कितने ही राजाओंके सिर मुँड़वा दिये और कितने ही राजाओंकी दाढ़ी-मूँछ मुँड़वा दी। यह देखकर सगर हँस पड़े और अपने तपोनिधि गुरुसे इस प्रकार बोले।

सगरने कहा—गुरुदेव! आप इन दुराचारियोंकी क्यों रक्षा करते हैं। इन्होंने मेरे पिताके राज्यका अपहरण कर लिया था, अतः मैं सब प्रकारसे इनका संहार कर डालूँगा। जबतक दुष्ट मनुष्य तबतक दुष्टता करते हैं, जबतक कि उनकी शक्ति प्रबल होती है। इसलिये शत्रु यदि दास बनकर आवे, देखाएँ सौहार्द दिखावें और सब प्रकार प्रणाम करें तो कल्याणकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको उनपर विश्वास नहीं करना चाहिये। क्रूर मनुष्य पहले तो जीभसे बड़ी कठोर बातें बोलते हैं, किंतु जब निर्बल पड़ जाते हैं तो उसी जीभसे बड़ी करुणाजनक बातें कहने लगते हैं। जिसको अपने कल्याणकी इच्छा हो, वह नीतिशास्त्रका ज्ञाता पुरुष दुष्टोंके दम्भपूर्ण साधुभाव और दासभावपर कभी विश्वास न करे। नम्रता दिखाते हुए दुर्जन, कपटी मित्र और दुष्टस्वभाववाली स्त्रीपर विश्वास करनेवाला पुरुष मृत्युतुल्य खतरेमें ही है। अतः गुरुदेव! आप इनकी प्राणरक्षा न करें। ये रूप तो गौका-सा बनाकर आये हैं, परंतु इनका कर्म व्याघ्रोंके समान है। इन सब दुष्टोंका वध करके मैं आपकी कृपासे इस पृथ्वीका पालन करूँगा।

वसिष्ठ बोले—महाभाग! तुम्हें अनेकानेक साधुवाद है। सुव्रत! तुम ठीक कहते हो। फिर भी मेरी बात सुनकर तुम्हें पूर्ण शान्ति मिलेगी। राजन्! सभी जीव कर्मोंकी रस्सीमें बँधे हुए हैं, तथापि जो अपने पापोंसे ही मारे गये हैं, उन्हें फिर किसलिये मारते हो? यह शरीर पापसे उत्पन्न हुआ और पापसे ही बढ़ रहा है। इसे पापमूलक जानकर भी तुम क्यों इसका वध करनेको उद्यत हुए हो? तुम वीर क्षत्रिय हो। इस पापमूलक शरीरको मारकर तुम्हें कौन सी कीर्ति प्राप्त होगी? ऐसा विचारकर इन लोगोंको मत मारो।

गुरु वसिष्ठका यह वचन सुनकर सगरका क्रोध शान्त हो गया। उस समय मुनि भी सगरके शरीरपर अपना हाथ फेरते हुए बहुत प्रसन्न हुए। तदनन्तर महर्षि वसिष्ठने उत्तम व्रतका पालन करनेवाले अन्य मुनियोंके साथ महात्मा सगरका राज्याभिषेक किया। सगरकी दो स्त्रियाँ थीं—केशिनी और सुमति। नारदजी! वे दोनों विदर्भराज काश्यपकी कन्याएँ थीं। एक समय राजा सगरकी दोनों पत्नियोंद्वारा प्रार्थना करनेपर भृगुवंशी मन्त्रवेत्ता और्व मुनिने उन्हें पुत्र-प्राप्तिके लिये वर दिया। वे मुनीश्वर तीनों कालकी बातें जानते थे। उन्होंने क्षणभर ध्यानमें स्थित होकर केशिनी और सुमतिका हर्ष बढ़ाते हुए इस प्रकार कहा।

और्व बोले—महाभागे! तुम दोनोंमेंसे एक रानी तो एक ही पुत्र प्राप्त करेगी; किंतु वह वंशको चलानेवाला होगा। परंतु दूसरी केवल संतानविषयक इच्छाकी पूर्तिके लिये साठ हजार पुत्र पैदा करेगी। तुमलोग अपनी-अपनी रुचिके अनुसार इनमेंसे एक-एक वर माँग लो।

और्व मुनिका यह वचन सुनकर केशिनीने वंशपरम्पराके हेतुभूत एक ही पुत्रका वरदान माँगा तथा रानी सुमतिके

साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए। मुनिश्रेष्ठ! केशिनीके पुत्रका नाम था असमञ्जा। दुष्ट असमञ्जा उन्मत्तकी-सी चेष्टा करने लगा। उसकी देखा-देखी सगरके सभी पुत्र बुरे आचरण करने लगे। इन सबके दूषित कर्मोंको देखकर बाहुपुत्र राजा सगर बहुत दुखी हुए। उन्होंने अपने पुत्रोंके निन्दित कर्मपर भलीभाँति विचार किया। वे सोचने लगे—अहो! इस संसारमें दुष्टोंका सङ्ग अत्यन्त कष्ट देनेवाला है। तदनन्तर, असमञ्जाके अंशुमान् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो बड़ा धर्मात्मा, गुणवान् और शास्त्रोंका ज्ञाता था। वह सदा अपने पितामह राजा सगरके हितमें संलग्न रहता था। सगरके सभी दुराचारी पुत्र लोकमें उपद्रव करने लगे। वे धार्मिक अनुष्ठान करनेवाले लोगोंके कार्यमें सदा विघ्न डाला करते थे। वे दुष्ट राजकुमार सदा मद्यपान करते और पारिजात आदि दिव्य वृक्षोंके फूल लाकर अपने शरीरको सजाते थे। उन्होंने साधुपुरुषोंकी जीविका छीन ली और सदाचारका नाश कर डाला। यह सब देखकर इन्द्र आदि देवता अत्यन्त दुःखसे पीड़ित हो इन सगरपुत्रोंके नाशके लिये कोई उत्तम उपाय सोचने लगे। सब देवता कुछ निश्चय करके पातालकी गुफामें रहनेवाले देवदेवेश्वर भगवान् कपिलके समीप गये। कपिलजी अपने मनसे परमानन्दस्वरूप आत्माका ध्यान कर रहे थे। देवताओंने भूमिपर दण्डकी भाँति लेटकर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया और इस प्रकार स्तुति की।

देवता बोले—भगवन्! आप योगशक्तियोंसे सम्पन्न हैं, आपको नमस्कार है। आप साङ्ख्ययोगमें रत रहनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप नररूपमें छिपे हुए नारायण हैं, आपको नमस्कार है। संसाररूपी वनको भस्म करनेके लिये आप दावानलके समान हैं तथा धर्मपालनके लिये सेतुरूप हैं, आपको नमस्कार है। प्रभो! आप महान् वीतराग महात्मा हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। हम सब देवता सगरके पुत्रोंसे पीड़ित होकर आपकी शरणमें आये हैं। आप हमारी रक्षा करें।

कपिलजीने कहा—श्रेष्ठ देवगण! जो लोग इस जगत्में अपने यश, बल, धन और आयुका नाश चाहते हैं, वे ही लोगोंको पीड़ा देते हैं। जो सर्वदा मन, वाणी और क्रियाद्वारा दूसरोंको पीड़ा देते हैं, उन्हें दैव ही शीघ्र नष्ट कर देता है। थोड़े ही दिनोंमें इन सगरपुत्रोंका नाश हो जायगा।

महात्मा कपिल मुनिके ऐसा कहनेपर देवता [illegible] उन्हें प्रणाम करके स्वर्गलोकको चले गये। [illegible] राजा सगरने वसिष्ठ आदि महर्षियोंके सहयोगसे [illegible] अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान आरम्भ किया। [illegible] नियुक्त किये हुए घोड़ेको देवराज इन्द्रने चुरा लिया और पातालमें जहाँ कपिल मुनि रहते थे, वहीं [illegible] दिया। इन्द्रके द्वारा चुराये हुए उस अश्वको खोजनेके लिये सगरके सभी पुत्र आश्चर्यचकित होकर भू आदि लोकोंमें घूमने लगे। जब ऊपरके लोकोंमें कहीं भी उन्हें [illegible] दिखायी नहीं दिया, तब वे पातालमें जानेको उद्यत हुए। फिर तो सारी पृथ्वीको खोदना शुरू किया। [illegible] अलग-अलग एक-एक योजन भूमि खोद डाली। खोदी हुई मिट्टीको उन्होंने समुद्रके तटपर फेंक दिया और इसी द्वारसे वे सभी सगरपुत्र पाताललोकमें जा पहुँचे। [illegible] अविवेकी मदसे उन्मत्त हो रहे थे। पातालमें [illegible] उन्होंने अश्वको ढूँढना आरम्भ किया। खोजते-खोजते [illegible] उन्हें करोड़ों सूर्योंके समान प्रभावशाली महात्मा कपिलका दर्शन हुआ। वे ध्यानमें तन्मय थे। उनके पास ही वह घोड़ा भी दिखायी दिया। फिर तो वे सभी अत्यन्त [illegible] भर गये और मुनिको देखकर उन्हें मार डालनेका विचार करके वेगपूर्वक दौड़ते हुए उनपर टूट पड़े। उस समय आपसमें एक-दूसरेसे वे इस प्रकार कह रहे थे—'इसे मार डालो, मार डालो। बाँध लो, बाँध लो। पकड़ो, जल्दी पकड़ो। देखो न, घोड़ा चुराकर यहाँ साधु-महात्माओंकी भाँति ध्यान लगाये बैठा है। अहो! संसारमें ऐसे भी [illegible] हैं, जो बड़े-बड़े आडम्बर रचते हैं।' इस तरहकी बातें [illegible] हुए वे मुनीश्वर कपिलका उपहास करने लगे। [illegible] अपने समस्त इन्द्रियवर्ग और बुद्धिको आत्मामें स्थिर करके ध्यानमें तत्पर थे; अतः उनको इस करतूतका कुछ भी पता नहीं चला। सगरपुत्रोंकी मृत्यु निकट थी, इसलिये उन लोगोंकी बुद्धि मारी गयी थी। वे मुनिको [illegible] मारने लगे। कुछ लोगोंने उनकी बाँहें पकड़ लीं। तब मुनिकी समाधि भङ्ग हो गयी। उन्होंने विस्मित होकर लोकमें उपद्रव करनेवाले सगरपुत्रोंको लक्ष्य करके [illegible] युक्त यह वचन कहा—'जो ऐश्वर्यके मदसे उन्मत्त हैं, जो भूखसे पीड़ित हैं, जो कामी हैं तथा जो अहंकारसे मूढ़ हो रहे हैं—ऐसे मनुष्योंको विवेक नहीं होता*। [illegible]

* ऐश्वर्यमदमत्तानां क्षुधितानां च कामिनाम्।
अहङ्कारविमूढानां विवेको नैव जायते ॥ (ना० पूर्व० [illegible])

सज्जनोंको सताते हैं तो इसमें आश्चर्य क्या है ? नदीका वेग किनारेपर उगे हुए वृक्षोंको भी गिरा देता है। जहाँ धन है, जवानी है तथा परायी स्त्री भी है वहाँ सदा सब अन्धे और मूर्ख बने रहते हैं। दुष्टके पास लक्ष्मी हो तो वह लोकका विनाश करनेवाली ही होती है। जैसे वायु अग्निकी ज्वालाको बढ़ानेमे सहायक होता है और जैसे दूध साँपके विषको बढानेमे कारण होता है, उसी प्रकार दुष्टकी लक्ष्मी उसकी दुष्टताको बढ़ा देती है। अहो! धनके मदसे अन्धा हुआ मनुष्य देखते हुए भी नहीं देखता। यदि वह अपने हितको देखता है तभी वह वास्तवमें देखता है।'

ऐसा कहकर कपिलजीने कुपित हो अपने नेत्रोंसे आग प्रकट की। उस आगने समस्त सगरपुत्रोंको क्षणभरमें

जलाकर भस्म कर डाला। उनकी नेत्राग्निको देखकर पाताल-निवासी जीव शोकमें डूब गये और असमयमें प्रलय हुआ जानकर चीत्कार करने लगे। उस अग्निसे संतप्त हो सम्पूर्ण सर्प तथा राक्षस समुद्रमे शीघ्रतापूर्वक समा गये। अवश्य ही साधु-महात्माओंका कोप दुस्सह होता है।

तदनन्तर देवदूतने राजाके यज्ञमें आकर यजमान सगर-को वह सब समाचार बताया। राजा सगर सब शास्त्रोंके ज्ञाता थे। यह सब वृत्तान्त सुनकर उन्होंने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक कहा—दैवने ही उन दुष्टोंको दण्ड दे दिया। माता, पिता, भाई अथवा पुत्र जो भी पाप करता है, वही शत्रु माना गया है। जो पापमें प्रवृत्त होकर सब लोगोंके साथ विरोध करता है, उसे महान् शत्रु समझना चाहिये—यही शास्त्रोंका निर्णय है। मुनीश्वर नारदजी! राजा सगरने अपने पुत्रोंका नाश होनेपर भी शोक नहीं किया; क्योंकि दुराचारियोंकी मृत्यु साधु पुरुषोंके लिये संतोषका कारण होती है। 'पुत्रहीन पुरुषोंका यज्ञमें अधिकार नहीं है' धर्मशास्त्रकी ऐसी आज्ञा होनेके कारण महाराज सगरने अपने पौत्र अंशुमान्‌को ही दत्तक पुत्रके रूपमे गोद ले लिया। सारग्राही राजा सगरने बुद्धिमान् और विद्वानोंमे श्रेष्ठ अंशुमान्‌को अश्व ढूँढ़ लानेके कार्यमें नियुक्त किया। अंशुमान्‌ने उस गुफाके द्वारपर जाकर तेजोराशि मुनिवर कपिलको देखा और उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। फिर दोनों हाथोको जोड़कर वह विनयपूर्वक उनके सामने खड़ा हो गया और शान्तचित्त सनातन देवदेव कपिलसे इस प्रकार बोला।

अंशुमान्‌ने कहा—ब्रह्मन्! मेरे पिताके भाइयोंने यहाँ आकर जो दुष्टता की है, उसे आप क्षमा करें; क्योंकि साधु पुरुष सदा दूसरोंके उपकारमें लगे रहते हैं और क्षमा ही उनका बल है। संत-महात्मा दुष्ट जीवोंपर भी दया करते हैं। चन्द्रमा चाण्डालके घरसे अपनी चाँदनी खींच नहीं लेते हैं। सज्जन पुरुष दूसरोंसे सताये जानेपर भी सबके लिये सुखकारक ही होता है। देवताओंद्वारा अपनी अमृतमयी कलाके भक्षण किये जानेपर भी चन्द्रमा उन्हें परम संतोष ही देता है। चन्दनको काटा जाय या छेदा जाय, वह अपनी सुगन्धसे सबको सुवासित करता रहता है। साधु पुरुषोंका भी ऐसा ही स्वभाव होता है। पुरुषोत्तम! आपके गुणोंको जाननेवाले मुनीश्वरगण ऐसा मानते हैं कि आप क्षमा, तपस्या तथा धर्माचरणद्वारा समस्त लोकोको शिक्षा देनेके लिये इस भूतलपर अवतीर्ण हुए हैं। ब्रह्मन्! आपको नमस्कार है। मुने! आप ब्रह्मस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप स्वभावतः ब्राह्मणोंका हित करनेवाले हैं और सदा ब्रह्म-चिन्तनमें लगे रहते हैं, आपको नमस्कार है।

अंशुमान्‌के इस प्रकार स्तुति करनेपर कपिल मुनिका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। उस समय वे बोले—'निष्पाप राजकुमार! मै तुमपर प्रसन्न हूँ, वर माँगो।' मुनिके ऐसा कहनेपर अंशुमान्‌ने प्रणाम करके कहा—'भगवन्! हमारे इन पितरोंको ब्रह्मलोकमें पहुँचा दें।' तब कपिल मुनि अंशुमान्‌पर अत्यन्त प्रसन्न हो आदरपूर्वक बोले—

'राजकुमार ! तुम्हारा पौत्र यहाँ गङ्गाजीको लाकर अपने पितरोंको स्वर्गलोक पहुँचायेगा । वत्स ! तुम्हारे पौत्र भगीरथद्वारा लायी हुई पुण्यसलिला गङ्गा नदी इन सगरपुत्रोंके पाप धोकर इन्हें परम पदकी प्राप्ति करा देगी । बेटा ! इस घोड़ेको ले जाओ, जिससे तुम्हारे पितामहका यज्ञ पूर्ण हो जाय ।' तब अंशुमान् अपने पितामहके पास लौट गये और उन्हें अश्वसहित सब समाचार निवेदन किया । सगरने उस पशुके द्वारा ब्राह्मणोंके साथ वह यज्ञ पूर्ण किया और तपस्याद्वारा भगवान् विष्णुकी आराधना करके वे वैकुण्ठधामको चले गये । अंशुमान्के दिलीप नामक पुत्र हुआ [illegible] भगीरथका जन्म हुआ, जो दिव्य [illegible] भूतलपर ले आये । मुने ! भगीरथकी [illegible] ब्रह्माजीने उन्हें गङ्गा दे दी; किंतु भगीरथ, गङ्गा[illegible] कौन करेगा—इस विषयमें विचार करने लगे । [illegible] भगवान् शिवकी आराधना करके उनकी [illegible] देवनदी गङ्गाको पृथ्वीपर ले आये और उनके [illegible] कराकर पवित्र हुए पितरोंको उन्होंने दिव्य [illegible] पहुँचा दिया ।

बलिके द्वारा देवताओंकी पराजय तथा अदितिकी तपस्या

नारदजीने कहा—भाईजी ! यदि मैं आपकी कृपाका पात्र होऊँ तो भगवान् विष्णुके चरणोंके अग्रभागसे उत्पन्न हुई जो गङ्गा बतायी जाती हैं, उनकी उत्पत्तिकी कथा मुझसे कहिये ।

श्रीसनकजी बोले—निष्पाप नारदजी ! मैं गङ्गाकी उत्पत्ति बताता हूँ, सुनिये । वह कथा कहने और सुननेवालेके लिये भी पुण्यदायिनी है तथा सब पापोंका नाश करनेवाली है । कश्यप नामसे प्रसिद्ध एक मुनि हो गये हैं । वे ही इन्द्र आदि देवताओंके जनक हैं । दक्ष-पुत्री दिति और अदिति—ये दोनों उनकी पत्नियाँ हैं । अदिति देवताओंकी माता है और दिति दैत्योंकी जननी । ब्रह्मन् ! उन दोनोंके दो पुत्र हैं, वे सदा एक-दूसरेको जीतनेकी इच्छा रखते हैं । दितिका पुत्र आदिदैत्य हिरण्यकशिपु बड़ा बलवान् था । उसके पुत्र प्रह्लाद हुए । वे दैत्योंमें बड़े भारी संत थे । प्रह्लादका पुत्र विरोचन हुआ, जो ब्राह्मणभक्त था । विरोचनके पुत्र बलि हुए, जो अत्यन्त तेजस्वी और प्रतापी थे । मुने ! बलि ही दैत्योंके सेनापति हुए । वे बहुत बड़ी सेनाके साथ इस पृथ्वीका राज्य भोगते थे । समूची पृथ्वीको जीतकर स्वर्गको भी जीत लेनेका विचार कर वे युद्धमें प्रवृत्त हुए । उन्होंने विशाल सेनाके साथ देवलोकको प्रस्थान किया । देवशत्रु बलिने स्वर्गलोकमें पहुँचकर सिंहके समान पराक्रमी दैत्योंद्वारा इन्द्रकी राजधानीको घेर लिया । तब इन्द्र आदि देवता भी युद्धके लिये नगरसे बाहर निकले । तदनन्तर देवताओं और दैत्योंमें घोर युद्ध छिड़ गया । दैत्योंने देवताओंकी सेनापर बाणोंकी झड़ी लगा दी । [illegible] प्रकार देवता भी दैत्यसेनापर बाणवर्षा करने लगे । तदनन्तर दैत्यगण भी देवताओंपर नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंद्वारा घातक प्रहार करने लगे । [illegible] खड्ग, परशु, तोमर, परिघ, क्षुरिका, कुन्त, [illegible] मूसल, अङ्कुश, लाङ्गल, पट्टिश, शक्ति, [illegible] पाश, थप्पड़, मुक्के, शूल, नालीक, नाराच, दूरसे [illegible] योग्य अन्यान्य अस्त्र तथा मुद्गरोंसे देवताओंको [illegible] लगे । रथ, अश्व, गज और पैदल सेनाओंसे [illegible] हुआ वह युद्ध निरन्तर बढ़ने लगा । देवताओंने भी [illegible] पर अनेक प्रकारके अस्त्र चलाये । इस प्रकार [illegible] वर्षोंतक वह युद्ध चलता रहा । अन्तमें दैत्योंका [illegible] जानेके कारण देवता परास्त हो गये और [illegible] हो स्वर्गलोक छोड़कर भाग गये । वे मनुष्योंके [illegible] पृथ्वीपर विचरने लगे । विरोचनकुमार [illegible] नारायणकी शरण ले अव्याहत [illegible] महान् बलसे सम्पन्न हो त्रिभुवनका राज्य [illegible] उन्होंने भगवान् विष्णुकी प्रीतिके लिये [illegible] अश्वमेध यज्ञ किये । बलि स्वर्गमें [illegible] —दोनों पदोंका—उपभोग करते थे । [illegible] अपने पुत्रोंकी यह दशा देखकर बहुत दुःखी हुई । उन्होंने यह सोचकर कि अब मेरा यहाँ रहना व्यर्थ है, [illegible] प्रस्थान किया । वहाँ [illegible] तथा दैत्योंकी [illegible] चाहती हुई वे भगवान् विष्णुके [illegible]

कठोर तपस्या करने लगीं। कुछ कालतक वे निरन्तर बैठी ही रहीं। उसके बाद दीर्घकालतक दोनों पैरोंसे खड़ी रहीं। तदनन्तर, बहुत समयतक एक पैरसे और फिर उस एक पैरकी अँगुलियोंके ही बलपर खड़ी रहीं। कुछ कालतक तो वे फलाहार करती रहीं, फिर सूखे पत्ते खाकर रहने लगीं। उसके बाद बहुत दिनोंतक जल पीकर रहीं, फिर वायुके आहारपर रहने लगी और अन्तमे उन्होंने सर्वथा आहार त्याग दिया। नारदजी! अदिति अपने अन्तःकरणद्वारा सच्चिदानन्दघन परमात्माका ध्यान करती हुई एक हजार दिव्य वर्षोंतक तपस्यामे लगी रहीं।

तदनन्तर, दैत्योंने अदितिको ध्यानसे विचलित करनेके लिये अपनी दाढ़ोंके अग्रभागसे अग्नि प्रकट की, जिसने उस वनको क्षणभरमें जला दिया। उसका विस्तार सौ योजन था और वह नाना प्रकारके जीव-जन्तुओंसे भरा हुआ था। जो दैत्य अदितिका अपमान करनेके लिये गये थे, वे सब उसी अग्निसे जलकर भस्म हो गये। केवल देवमाता अदिति ही जीवित बची थीं, क्योंकि दैत्योंका विनाश और स्वजनोंपर

अनुकम्पा करनेवाले भगवान् विष्णुके सुदर्शन चक्रने उनकी रक्षा की थी।

अदितिको भगवद्दर्शन और वरप्राप्ति, वामनजीका अवतार, बलि-वामन-संवाद, भगवान्‌का तीन पैरसे समस्त ब्रह्माण्डको लेकर बलिको रसातल भेजना

नारदजीने पूछा—भाईजी! आपने यह बड़ी अद्भुत बात बतायी है। मैं जानना चाहता हूँ कि उस अग्निने अदितिको छोड़कर उन दैत्योंको ही क्षणभरमें कैसे जला दिया। आप अदितिके महान् सत्त्वका वर्णन कीजिये, जो विशेष आश्चर्यका कारण है; क्योंकि मुनीश्वर साधु पुरुष सदा दूसरोंको उपदेश देनेमें तत्पर रहते हैं।

सनकजीने कहा—नारदजी! जिनका मन भगवान्‌के भजनमें लगा हुआ है, ऐसे संतोंकी महिमा सुनिये। भगवान्‌के चिन्तनमे लगे हुए साधु पुरुषोंको बाधा देनेमें कौन समर्थ हो सकता है? जहाँ भगवान्‌का भक्त रहता है, वहाँ ब्रह्मा, विष्णु, शिव, देवता, सिद्ध, मुनीश्वर और साधु-संत नित्य निवास करते हैं। महाभाग! शान्तचित्तवाले हरिनामपरायण भक्तोंके भी हृदयमें भगवान् विष्णु सदा विराजते हैं, फिर जो निरन्तर उन्हींके ध्यानमें लगे हुए हैं, उनके विषयमें तो कहना ही क्या है? भगवान् शिवकी पूजामें लगा हुआ अथवा भगवान् विष्णुकी आराधनामे तत्पर हुआ भक्त पुरुष जहाँ रहता है, वहीं लक्ष्मी तथा सम्पूर्ण देवता निवास करते हैं। जहाँ भगवान् विष्णुकी उपासनामें संलग्न भक्त पुरुष वास करता है, वहाँ अग्नि बाधा नहीं पहुँचा सकती। राजा, चोर अथवा रोग-व्याधि भी कष्ट नहीं दे सकते हैं। प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ग्रह, बालग्रह, डाकिनी तथा राक्षस—ये भगवान् विष्णुकी आराधना करनेवाले पुरुषको पीड़ा नहीं दे सकते। जितेन्द्रिय, सबका हितकारी तथा धर्म-कर्मका पालन करनेवाला पुरुष जहाँ रहता है, वहीं सम्पूर्ण तीर्थ और देवता वास करते हैं। जहाँ एक या आधे पल भी योगी महात्मा पुरुष ठहरते हैं, वहीं सब श्रेय हैं, वहीं तीर्थ है, वही तपोवन है। जिनके नामकीर्तनसे, स्तोत्रपाठसे अथवा पूजनसे भी सब उपद्रव नष्ट हो जाते हैं, फिर उनके ध्यानसे उपद्रवोंका नाश हो, इसके लिये कहना ही क्या है? ब्रह्मन्! इस प्रकार दैत्योंद्वारा प्रकट की हुई उस अग्निसे दैत्योंसहित सारा वन दग्ध हो गया, किंतु देवमाता अदिति नहीं जलीं; क्योंकि वे भगवान् विष्णुके चक्रसे सुरक्षित थीं।

तदनन्तर, कमलदलके समान विकसित नेत्र और प्रसन्न मुखवाले शङ्ख, चक्र, गदाधारी भगवान् विष्णु अदितिके

समीप प्रकट हुए। उनके मुखपर मन्द-मन्द मुसकानकी छटा छा रही थी और चमकीले दाँतोंकी प्रभासे सम्पूर्ण दिशाएँ उद्भासित हो रही थीं। उन्होंने अपने पवित्र हाथसे कश्यपजीकी प्यारी पत्नी अदितिका स्पर्श करते हुए कहा।

श्रीभगवान् बोले—देवमाता! तुमने तपस्याद्वारा मेरी आराधना की है, इसलिये मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुमने बहुत समयतक कष्ट उठाया है। अब तुम्हारा कल्याण होगा, इसमें संदेह नहीं है। तुम्हारे मनमें जैसी रुचि हो, वह वर माँगो, मैं अवश्य दूँगा। भद्रे! भय न करो। महाभागे! तुम्हारा कल्याण अवश्य होगा।

देवाधिदेव भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेपर देवमाता अदितिने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और सम्पूर्ण जगत्‌को सुख देनेवाले उन परमेश्वरकी स्तुति की।

अदिति बोलीं—देवदेवेश्वर! सर्वव्यापी जनार्दन! आपको नमस्कार है। आप ही सत्त्व आदि गुणोंके भेदसे जगत्‌के पालन आदि व्यवहार चलानेके कारण हैं। आप रूपरहित होते हुए भी अनेक रूप धारण करते हैं। आप परमात्माको नमस्कार है। सबसे एकरूपता (अभिन्नता) ही आपका स्वरूप है। आप निर्गुण एवं गुणस्वरूप हैं। आपको नमस्कार है। आप सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी और परम ज्ञानरूप हैं। श्रेष्ठ भक्तजनोंके प्रति वात्सल्यभाव सदा आपकी शोभा बढ़ाता रहता है। आप मङ्गलमय परमात्माको नमस्कार है। मुनीश्वरगण जिनके अवतार-स्वरूपोंकी सदा पूजा करते हैं, उन आदिपुरुष भगवान्‌को मैं अपने मनोरथकी सिद्धिके लिये प्रणाम करती हूँ। जिन्हें श्रुतियाँ नहीं जानतीं, उनके ज्ञाता विद्वान् पुरुष भी नहीं जानते, जो इस जगत्‌के कारण हैं तथा मायाको साथ रखते हुए भी मायासे सर्वथा पृथक् हैं, उन भगवान्‌को नमस्कार करती हूँ। जिनकी अद्भुत कृपादृष्टि मायाको दूर भगा देनेवाली है, जो जगत्‌के कारण तथा जगत्-स्वरूप हैं, उन विश्ववन्दित भगवान्‌की मैं वन्दना करती हूँ। जिनके चरणारविन्दोंकी धूलके सेवनसे सुशोभित मस्तकवाले भक्तजन परम सिद्धिको प्राप्त हो चुके हैं, उन भगवान् कमलाकान्तको मैं नमस्कार करती हूँ। ब्रह्मा आदि देवता भी जिनकी महिमाको पूर्णरूपसे नहीं जानते तथा जो भक्तोंके अत्यन्त निकट रहते हैं, उन भक्तसङ्गी भगवान्‌को मैं प्रणाम करती हूँ। जो करुणासागर भगवान् जगत्‌के सङ्गका त्याग करके शान्त-भावसे रहनेवाले भक्तजनोंको अपना सङ्ग प्रदान करते हैं, उन सङ्गरहित श्रीहरिको मैं प्रणाम करती हूँ। जो यज्ञोंके स्वामी, यज्ञोंके भोक्ता, यज्ञकर्मोंमें स्थित रहने[illegible] यज्ञकर्मके बोधक तथा यज्ञोंके फलदाता हैं, उन भगवान्‌को मैं नमस्कार करती हूँ। पापात्मा अजामिल भी जिनके नामोच्चारणके पश्चात् परम धामको प्राप्त हो गया, उन लोक-साक्षी भगवान्‌को मैं प्रणाम करती हूँ। जो [illegible] और शिवरूपी विष्णु होकर इस जगत्‌के सञ्चालक हैं, उन जगद्गुरु भगवान् नारायणको मैं नमस्कार करती हूँ। ब्रह्मा आदि देवेश्वर भी जिनकी मायाके पाशमें बँधे होनेके कारण जिनके परमात्मभावको नहीं समझ पाते, उन भगवान् सर्वेश्वरको मैं प्रणाम करती हूँ। जो सबके हृदयकमलमें स्थित होकर भी अज्ञानी पुरुषोंको दूरस्थ-से प्रतीत होते हैं तथा जिनकी सत्ता प्रमाणोंसे परे है, उन ज्ञानसाक्षी परमेश्वरको मैं नमस्कार करती हूँ। जिनके मुखसे ब्राह्मण प्रकट हुआ है, दोनों भुजाओंसे क्षत्रियकी उत्पत्ति हुई है, जंघाओंसे वैश्य उत्पन्न हुआ है और दोनों चरणोंसे शूद्रका जन्म हुआ है; जिनके मनसे चन्द्रमा प्रकट हुआ है, नेत्रसे सूर्यका प्रादुर्भाव हुआ है; मुखसे अग्नि और इन्द्रकी तथा प्राणोंसे वायुकी उत्पत्ति हुई है; ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद जिनके स्वरूप हैं, जो सङ्गीतविषयक सातों स्वरोंसे भी [illegible] हैं, व्याकरण आदि छः अङ्ग भी जिनके स्वरूप हैं, उन्हीं आप परमेश्वरको मेरा बारंबार नमस्कार है। भगवन्! आप ही इन्द्र, वायु और चन्द्रमा हैं। आप ही ईशान (शिव) और आप ही यम हैं। अग्नि और निर्ऋति भी आप ही हैं। आप ही वरुण एवं सूर्य हैं। देवता, स्थावर वृक्ष आदि, पिशाच, राक्षस, सिद्ध, गन्धर्व, पर्वत, नदी, भूमि और समुद्र भी आपके स्वरूप हैं। आप ही जगदीश्वर हैं, [illegible] तत्त्व दूसरा कोई नहीं है। देव! सम्पूर्ण जगत् आपका ही स्वरूप है, इसलिये सदा आपको नमस्कार है। [illegible]! सर्वज्ञ! आप ही सम्पूर्ण भूतोंके आदिकारण हैं। वेद आपका ही स्वरूप है। जनार्दन! दैत्योंद्वारा सताये हुए मेरे पुत्रोंकी रक्षा कीजिये।

इस प्रकार स्तुति करके देवमाता अदितिने भगवान्‌को बारंबार प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा। उस समय आनन्दके आँसुओंसे उनका वक्षःस्थल भीग रहा था। (वे बोलीं—) 'देवेश! आप सबके आदिकारण हैं। मैं आपकी कृपाकी पात्र हूँ। मेरे देवलोकवासी पुत्रोंको [illegible] दीजिये। अन्तर्यामिन्! विश्वरूप! सर्वेश! [illegible]! लक्ष्मीपते! आपसे क्या छिपा हुआ है? प्रभो! [illegible]

पूछकर मुझे क्यों मोहमें डाल रहे हैं ? तथा आपकी आज्ञाका पालन करनेके लिये मेरे मनमें जो अभिलाषा है, वह आपको बताऊँगी । देवेश्वर ! मैं दैत्योंसे पीड़ित हो रही हूँ । मेरे पुत्र इस समय मेरी रक्षा न कर सकनेके कारण व्यर्थ हो गये हैं । मैं दैत्योंका भी वध करना नहीं चाहती, क्योंकि वे भी मेरे पुत्र ही हैं । सुरेश्वर ! उन दैत्योंको मारे बिना ही मेरे पुत्रोंको सम्पत्ति दे दीजिये ।' नारदजी ! अदितिके ऐसा कहनेपर देवदेवेश्वर भगवान् विष्णु पुनः बहुत प्रसन्न हुए और देवमाताको आनन्दित करते हुए आदरपूर्वक बोले ।

श्रीभगवान्‌ने कहा—देवि ! मैं प्रसन्न हूँ । तुम्हारा कल्याण हो । मैं स्वयं ही तुम्हारा पुत्र बनूँगा; क्योंकि सौतके पुत्रोंपर इतना वात्सल्य तुम्हारे सिवा अन्यत्र दुर्लभ है । तुमने जो स्तुति की है, उसको जो मनुष्य पढ़ेंगे, उन्हें श्रेष्ठ सम्पत्ति प्राप्त होगी और उनके पुत्र कभी हीन दशामें नहीं पड़ेंगे । जो अपने तथा दूसरेके पुत्रपर समानभाव रखता है, उसे कभी पुत्रका शोक नहीं होता—यह सनातन धर्म है* ।

अदिति बोलीं—देव ! आप सबके आदिकारण और परम पुरुष हैं । मैं आपको अपने गर्भमें धारण करनेमें असमर्थ हूँ । आपके एक-एक रोममें असंख्य ब्रह्माण्ड हैं । आप सबके ईश्वर तथा कारण हैं । प्रभो ! सम्पूर्ण देवता और श्रुतियाँ भी जिनके प्रभावको नहीं जानतीं, उन्हीं देवाधिदेव भगवान्‌को मैं गर्भमें कैसे धारण करूँगी ? आप सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म, अजन्मा तथा परात्पर परमेश्वर हैं । देव ! आप पुरुषोत्तमको मैं कैसे गर्भमें धारण करूँगी ? महापातकी मनुष्य भी जिनके नाम-स्मरणमात्रसे मुक्त हो जाता है, वे परमात्मा ग्राम्यजनोंके बीच जन्म कैसे धारण कर सकते हैं ? प्रभो ! जैसे आपके मत्स्य और शूकर अवतार हो गये हैं, वैसा ही यह भी होगा । विश्वेश ! आपकी लीलाको कौन जानता है ? देव ! मैं आपके चरणारविन्दोंमें प्रणत होकर आपके ही नाम-स्मरणमें लगी हुई सदा आपका ही चिन्तन करती हूँ । आपकी जैसी रुचि हो, वैसा करें ।

श्रीसनकजीने कहा—अदितिका वचन सुनकर देवताओंके भी देवता भगवान् जनार्दनने देवमाताको अभय-दान दिया और इस प्रकार कहा ।

श्रीभगवान् बोले—महाभागे ! तुमने सत्य कहा है । इसमें संशय नहीं है । शुभे ! तथापि मैं तुम्हें एक गोपनीयसे भी गोपनीय रहस्य बतलाता हूँ, सुनो । जो राग-द्वेषसे शून्य, दूसरोंमें कभी दोष नहीं देखनेवाले और दम्भसे दूर रहनेवाले मेरे शरणागत भक्त हैं, वे सदा मुझे धारण कर सकते हैं । जो दूसरोंको पीड़ा नहीं देते, भगवान् शिवके भजनमें लगे रहते और मेरी कथा सुननेमें अनुराग रखते हैं, वे सदा मुझे अपने हृदयमें धारण करते हैं । देवि ! जिन्होंने पति-भक्तिका आश्रय लिया है, पति ही जिनका प्राण है और जो आपसमें कभी डाह नहीं रखतीं, ऐसी पतिव्रता स्त्रियाँ भी सदा मुझे अपने भीतर धारण कर सकती हैं । जो माता-पिताका सेवक, गुरुभक्त, अतिथियोंका प्रेमी और ब्राह्मणोंका हितकारी है, वह सदा मुझे धारण करता है । जो सदा पुण्यतीर्थोंका सेवन करते, सत्सङ्गमें लगे रहते और स्वभावसे ही सम्पूर्ण जगत्‌पर कृपा रखते हैं, वे मुझे सदा अपने हृदयमें धारण करते हैं । जो परोपकारमें तत्पर, पराये धनके लोभसे विमुख और परायी स्त्रियोंके प्रति नपुंसक होते हैं, वे भी सदा मुझे अपने भीतर धारण करते हैं * । जो तुलसीकी उपासनामें लगे हैं, सदा भगवन्नामके जपमें तत्पर हैं और गौओंकी रक्षामें संलग्न रहते हैं, वे सदा मुझे हृदयमें धारण करते हैं । जो दान नहीं लेते, पराये अन्नका सेवन नहीं करते और स्वयं दूसरोंको अन्न और जलका दान देते हैं, वे भी सदा मुझे धारण करते हैं । देवि ! तुम तो सम्पूर्ण भूतोंके हितमें तत्पर पतिप्राणा साध्वी स्त्री हो, अतः मैं तुम्हारा पुत्र होकर तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा ।

देवमाता अदितिसे ऐसा कहकर देवदेवेश्वर भगवान्

* स्वात्मजे वान्यपुत्रे वा यः समत्वेन वर्तते ।
न तस्य पुत्रशोकः स्यादेष धर्मः सनातनः ॥
(ना० पूर्व० ११ । ४८)

* परोपकारनिरताः परद्रव्यपराङ्मुखाः ।
नपुंसकाः परस्त्रीषु ते वहन्ति च मां सदा ॥
(ना० पूर्व० ११ । ६२)

विष्णुने अपने कण्ठकी माला उतारकर उन्हें दे दी और अभयदान देकर वे वहाँसे अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर दक्षकुमारी देवमाता अदिति प्रसन्नचित्तसे भगवान् कमला-कान्तको पुनः प्रणाम करके अपने स्थानपर लौट आयीं। फिर समय आनेपर विश्ववन्दित महाभागा अदितिने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक सर्वलोकनमस्कृत पुत्रको जन्म दिया। वह बालक चन्द्रमण्डलके मध्य विराजमान और परम शान्त था। उसने एक हाथमें शङ्ख और दूसरेमें चक्र ले रक्खा था। तीसरे हाथमें अमृतका कलश और चौथेमें दधिमिश्रित अन्न था। यह भगवान्‌का सुप्रसिद्ध वामन अवतार था। भगवान् वामनकी कान्ति सहस्रों सूर्योंके समान उज्ज्वल थी। उनके नेत्र खिले हुए कमलके समान शोभा पा रहे थे। वे पीताम्बरधारी श्रीहरि सब प्रकारके दिव्य आभूषणोंसे विभूषित थे। सम्पूर्ण लोकोंके एकमात्र नायक, स्तोत्रोंद्वारा स्तवन करने योग्य तथा ऋषि-मुनियोंके ध्येय भगवान् विष्णुको प्रकट हुए जानकर महर्षि कश्यप हर्षसे विह्वल हो गये। उन्होंने भगवान्‌को प्रणाम करके हाथ जोड़कर इस प्रकार स्तुति करना आरम्भ किया।

कश्यपजी बोले—सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टिके कारणभूत! आप परमात्माको नमस्कार है, नमस्कार है। समस्त जगत्‌का पालन करनेवाले! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। देवताओंके स्वामी! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। दैत्योंका नाश करनेवाले देव! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। भक्तजनोंके प्रियतम! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। साधु पुरुष आपको अपनी चेष्टाओंसे प्रसन्न करते हैं; आपको नमस्कार है, नमस्कार है। दुष्टोंका नाश करनेवाले भगवान्‌को नमस्कार है, नमस्कार है। उन जगदीश्वरको नमस्कार है, नमस्कार है। कारणवश वामनस्वरूप धारण करनेवाले अमित पराक्रमी भगवान् नारायणको नमस्कार है, नमस्कार है। धनुष, चक्र, खड्ग और गदा धारण करनेवाले पुरुषोत्तमको नमस्कार है। क्षीरसागरमें निवास करनेवाले भगवान्‌को नमस्कार है। साधु-पुरुषोंके हृदयकमलमें विराजमान परमात्माको नमस्कार है। जिनकी अनन्त प्रभाकी सूर्य आदिसे तुलना नहीं की जा सकती, जो पुण्यकथामें आते और स्थित रहते हैं, उन भगवान्‌को नमस्कार है, नमस्कार है। सूर्य और चन्द्रमा आपके नेत्र हैं, आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप यज्ञोंका फल देनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप यज्ञके सम्पूर्ण अङ्गोंमें विराजित होते हैं, आपको नमस्कार है। साधु पुरुषोंके [illegible] आपको नमस्कार है। जगत्‌के कारणोंके भी कारण [illegible] नमस्कार है। प्राकृत शब्द, रूप आदिसे रहित [illegible] नमस्कार है। दिव्य सुख प्रदान करनेवाले आपको नमस्कार है। भक्तोंके हृदयमें वास करनेवाले आपको नमस्कार है। मत्स्यरूप धारण करके अज्ञानान्धकारका नाश करनेवाले आपको नमस्कार है। कच्छपरूपसे मन्दराचल धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। यज्ञवराहरूपधारी आपको नमस्कार है। हिरण्याक्षको विदीर्ण करनेवाले आपको नमस्कार है। वामन-रूपधारी आपको नमस्कार है। क्षत्रिय-कुलका संहार करनेवाले परशुरामरूपधारी आपको नमस्कार है। रावणका संहार करनेवाले श्रीराम-रूपधारी आपको नमस्कार है। [illegible] जिनके ज्येष्ठ भ्राता हैं, उन श्रीकृष्णावतारधारी आपको नमस्कार है। कमलाकान्त! आपको नमस्कार है। आप सबको सुख देनेवाले तथा स्मरणमात्र करनेसे सबकी पीड़ाओंका नाश करनेवाले हैं। आपको बारम्बार नमस्कार है। यज्ञेश! यज्ञस्थापक! यज्ञविघ्नविनाशक! यज्ञरूप! और यजमानरूप परमेश्वर! आप ही यज्ञके सम्पूर्ण अङ्ग हैं। मैं आपका यजन करता हूँ।

कश्यपजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर सम्पूर्ण लोकोंको पवित्र करनेवाले देवेश्वर वामन हँसकर कश्यपजीका हर्ष बढ़ाते हुए बोले।

श्रीभगवान्ने कहा—तात! तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। देवपूजित महर्षे! थोड़े ही दिनोंमें तुम्हारा सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध करूँगा। मैं पहले भी दो जन्मोंमें तुम्हारा पुत्र हुआ हूँ तथा अब इस जन्ममें भी तुम्हारा पुत्र होकर तुम्हें उत्तम सुखकी प्राप्ति कराऊँगा।

इधर दैत्यराज बलिने भी अपने गुरु शुक्राचार्य तथा अन्य मुनीश्वरोंके साथ दीर्घकालतक चलनेवाला बहुत बड़ा यज्ञ प्रारम्भ किया। उस यज्ञमें ब्रह्मवादी महर्षियोंने हविष्य ग्रहण करनेके लिये लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णुका आवाहन किया। जिसका ऐश्वर्य बहुत बढ़ा चढ़ा था, उस दैत्यराज बलिके महायज्ञमें माता पिताकी आज्ञासे ब्रह्मचारी वामनजी भी गये। वे अपनी मन्द मुसकानसे सब लोगोंका मन मोहे लेते थे। भक्तवत्सल वामनके रूपमें भगवान् विष्णु मानो बलिके हविष्यका प्रत्यक्ष भोग लगानेके लिये आये थे। दुराचारी हो या सदाचारी, मूर्ख हो या पण्डित, जो भक्तिभावसे युक्त है, उसके अन्तःकरणमें भगवान् विष्णु

सदा विराजमान रहते हैं। वामनजीको आते देख ज्ञान-दृष्टिवाले महर्षिगण उन्हें साक्षात् भगवान् नारायण जानकर सभासदोंसहित उनकी अगवानीमे गये। यह जानकर दैत्यगुरु शुक्राचार्य एकान्तमें बलिको कुछ सलाह देने लगे।

शुक्राचार्य बोले—दैत्यराज! सौम्य! तुम्हारी राज-लक्ष्मीका अपहरण करनेके लिये भगवान् विष्णु वामनरूपसे अदितिके पुत्र हुए हैं। वे तुम्हारे यज्ञमें आ रहे हैं। असुरेश्वर! तुम उन्हें कुछ न देना। तुम तो स्वयं विद्वान् हो। इस समय मेरा जो मत है, उसे सुनो। अपनी बुद्धि ही सुख देनेवाली होती है। गुरुकी बुद्धि विशेषरूपसे सुखद होती है। दूसरेकी बुद्धि विनाशका कारण होती है और स्त्रीकी बुद्धि तो प्रलय करनेवाली होती है।

बलिने कहा—गुरुदेव! आपको इस प्रकार धर्म-मार्गका विरोधी वचन नहीं कहना चाहिये। यदि साक्षात् भगवान् विष्णु मुझसे दान ग्रहण करते हैं तो इससे बढ़कर और क्या होगा? विद्वान् पुरुष भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये यज्ञ करते हैं, यदि साक्षात् विष्णु ही आकर हमारे हविष्यका भोग लगाते हैं तो संसारमें मुझसे बढ़कर भाग्य-शाली कौन होगा? पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु जीवको उत्तम भक्तिभावसे स्मरण कर लेनेसे ही पवित्र कर देते हैं। जिस किसी भी वस्तुसे उनकी पूजा की जाय, वे परम गति दे देते हैं। दूषित चित्तवाले पुरुषोंके स्मरण करनेपर भी भगवान् विष्णु उनके पापको वैसे ही हर लेते हैं, जैसे अग्निको विना इच्छा किये भी छू दिया जाय तो भी वह जला ही देती है। जिसकी जिह्वाके अग्र भागपर 'हरि' यह दो अक्षर वास करता है, वह पुनरावृत्तिरहित श्रीविष्णुधामको प्राप्त होता है*। जो राग आदि दोषोंसे दूर रहकर सदा भगवान् गोविन्दका ध्यान करता है, वह वैकुण्ठधाममें जाता है—यह मनीषी पुरुषोंका कथन है। महाभाग गुरुदेव! अग्नि अथवा ब्राह्मणके मुखमें भगवान् विष्णुके प्रति भक्ति-भाव रखते हुए जो हविष्यकी आहुति दी जाती है, उससे वे भगवान् प्रसन्न होते हैं। मै तो केवल भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये ही उत्तम यज्ञका अनुष्ठान करता हूँ। यदि स्वयं भगवान् यहाँ आ रहे हैं, तब तो मैं कृतार्थ हो गया—इसमें संशय नहीं है।

दैत्यराज बलि जब ऐसी बातें कह रहे थे, उसी समय वामनरूपधारी भगवान् विष्णुने यज्ञशालामें प्रवेश किया। वह स्थान होमयुक्त प्रज्वलित अग्निके कारण बड़ा मनोरम जान पड़ता था। करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान तथा सुडौल अङ्गोंके कारण परम सुन्दर वामनजीको देखकर राजा बलि सहर्ष खड़े हो गये और हाथ जोड़कर उनका

स्वागत किया। बैठनेके लिये आसन देकर उन्होंने वामन-रूपधारी भगवान्के चरण पखारे और उस चरणोदकको कुटुम्बसहित मस्तकपर धारण करके बड़े आनन्दका अनुभव किया। जगदाधार भगवान् विष्णुको विधिपूर्वक अर्घ्य देते-देते बलिके शरीरमे रोमाञ्च हो आया, नेत्रोंसे आनन्दके आँसू झरने लगे और वे इस प्रकार बोले।

बलिने कहा—आज मेरा जन्म सफल हुआ। आज मेरा यज्ञ सफल हुआ और मेरा यह जीवन भी सफल हो गया। मैं कृतार्थ हो गया—इसमें संदेह नहीं है। भगवन्! आज मेरे यहाँ अत्यन्त दुर्लभ अमोघ अमृतकी वर्षा हो गयी। आपके शुभागमन मात्रसे अनायास महान् उत्सव छा गया। इसमें संदेह नहीं कि ये सब ऋषि कृतार्थ हो गये। प्रभो! इन्होंने पहले जो तपस्या की थी, वह आज सफल हो गयी।

---

* हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः।
अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः॥
जिह्वाग्रे वसते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम्।
स विष्णुलोकमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥
(ना० पूर्व० ११। १००-१०१)

मैं कृतार्थ हूँ, कृतार्थ हूँ, कृतार्थ हूँ—इसमें संशय नहीं है। अतः भगवन्! आपको नमस्कार है, नमस्कार है और बारंबार नमस्कार है। आपकी आज्ञासे आपके आदेशका पालन करूँ—ऐसा विचार मेरे मनमें हो रहा है। अतः प्रभो! आप पूर्ण उत्साहके साथ मुझे अपनी सेवाके लिये आज्ञा दें।

यज्ञमें दीक्षित यजमान बलिके ऐसा कहनेपर भगवान् वामन हँसकर बोले—'राजन्! मुझे तपस्याके निमित्त रहनेके लिये तीन पग भूमि दे दो। भूमिदानका माहात्म्य महान् है। वैसा दान न हुआ है, न होगा। भूमिदान करनेवाला मनुष्य निश्चय ही परम मोक्ष पाता है। जिसने अग्निकी स्थापना की हो, उस श्रोत्रिय ब्राह्मणके लिये थोड़ी-सी भी भूमि दान करके मनुष्य पुनरावृत्तिरहित ब्रह्मलोकको प्राप्त कर लेता है। भूमिदाता सब कुछ देनेवाला कहा गया है। भूमिदान करनेवाला मोक्षका भागी होता है। भूमिदानको अतिदान समझना चाहिये। वह सब पापोंका नाश करनेवाला है। कोई महापातकसे युक्त अथवा समस्त पातकोंसे दूषित हो तो भी दस हाथ भूमिका दान करके सब पापोंसे छूट जाता है। जो सत्पात्रको भूमिदान करता है, वह सम्पूर्ण दानोंका फल पाता है। तीनों लोकोंमें भूमिदानके समान दूसरा कोई दान नहीं है। दैत्यराज! जो जीविकारहित ब्राह्मणको भूमिदान करता है, उसके पुण्यफलका वर्णन मैं सौ वर्षोंमें भी नहीं कर सकता। जो ईख, गेहूँ, धान और सुपारीके वृक्ष आदिसे युक्त भूमिका दान करता है, वह निश्चय ही श्रीविष्णुके समान है। जीविकाहीन, दरिद्र एवं कुटुम्बी ब्राह्मणको थोड़ी-सी भी भूमि देकर मनुष्य भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त कर लेता है। भूमिदान बहुत बड़ा दान है। उसे अतिदान कहा गया है। वह सम्पूर्ण पापोंका नाशक तथा मोक्षरूप फल देनेवाला है। इसलिये दैत्यराज! तुम सब धर्मोंके अनुष्ठानमें लगे रहकर मुझे तीन पग पृथ्वी दे दो। वहाँ रहकर मैं तपस्या करूँगा।'

भगवान्‌के ऐसा कहनेपर विरोचनकुमार बलि बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने ब्रह्मचारी वामनजीको भूमिदान करनेके लिये जलसे भरा कलश हाथमें लिया। सर्वव्यापी भगवान् विष्णु यह जान गये कि शुक्राचार्य इस कलशमें घुसकर जलकी धाराको रोक रहे हैं। अतः उन्होंने अपने हाथमें लिये हुए कुशके अग्रभागको उस कलशके मुखमें घुसेड़ दिया जिसने शुक्राचार्यके एक नेत्रको नष्ट कर दिया। इसके बाद उन्होंने शस्त्रके समान उस कुशके अग्रभागको आँखसे अलग किया। इतनेमें राजा बलिने भगवान् वामन-विष्णुको तीन पग पृथ्वीका दान कर दिया। तदनन्तर विश्वात्मा भगवान् उस समय बढ़ने लगे। उनका मस्तक ब्रह्मलोकतक पहुँच गया। अत्यन्त तेजस्वी विश्वरूप श्रीहरिने अपने दो पैरसे सारी भूमि नाप ली। उस समय उनका दूसरा पैर ब्रह्माण्डकटाह (शिखर) को छू गया और अँगूठेके अग्रभागके आघातसे फूटकर वह ब्रह्माण्ड दो भागोंमें बँट गया। उस छिद्रके द्वारा ब्रह्माण्डसे बाहरका जल अनेक धाराओंमें बहकर आने लगा। भगवान् विष्णुके चरणोंको धोकर निकला हुआ वह निर्मल गङ्गाजल सम्पूर्ण लोकोंको पवित्र करनेवाला था। ब्रह्माण्डके बाहर जिसका उद्गमस्थान है, वह श्रेष्ठ एवं पावन गङ्गाजल धारारूपमें प्रवाहित हुआ और ब्रह्मा आदि देवताओंको उसने पवित्र किया। फिर सप्तर्षियोंसे सेवित हो वह मेरुपर्वतके शिखरपर गिरा। वामनजीका यह अद्भुत कर्म देखकर ब्रह्मा आदि देवता, ऋषि तथा मनुष्य हर्षसे विह्वल हो उनकी स्तुति करने लगे।

देवता बोले—आप परमात्मस्वरूप परमेश्वरको नमस्कार है। आप परात्पर होते हुए भी अपरा प्रकृतिसे उत्पन्न जगत्‌का रूप धारण करते हैं। आपको नमस्कार है। आप ब्रह्मरूप हैं, आपकी मन-बुद्धि अपने ब्रह्मरूपमें ही रमण करती है। आप कहीं भी कुण्ठित न होनेवाले अद्भुत कर्मोंसे सुशोभित होते हैं। आपको नमस्कार है। परेश! परमानन्द! परमात्मन्! परात्पर! विश्वमूर्ते! प्रमाणातीत! आप सर्वात्माको नमस्कार है। आपके सब ओर नेत्र हैं, सब ओर भुजाएँ हैं, सब ओर मस्तक है और सब ओर गति है, आपको नमस्कार है।

ब्रह्मा आदि देवताओंद्वारा इस प्रकार स्तुति की जानेपर भगवान् महाविष्णुने स्वर्गवासी देवताओंको अभयदान दिया और वे देवाधिदेव सनातन श्रीहरि बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने एक पग भूमिकी पूर्तिके लिये विरोचनपुत्र दैत्यराज बलिको बाँध लिया, फिर उसे अपनी शरणमें आया जान रसातलका राज्य दे दिया और स्वयं भक्तके वशीभूत होकर बलिके द्वारपाल होकर रहने लगे।

नारदजीने पूछा—मुने! रसातल तो [illegible] परिपूर्ण भयंकर स्थान है। वहाँ भगवान् महाविष्णुने विरोचन-पुत्र बलिके लिये भोजन आदिकी क्या व्यवस्था की?

श्रीसनकजीने कहा—नारदजी! अग्निमें बिना मन्त्रके जो आहुति डाली जाती है और अपात्रको जो दान दि-

जाता है, वह सब कर्त्ताके लिये भयंकर होता है और वही राजा बलिके भोगका साधन बनता है। अपवित्र मनुष्यके द्वारा जो हविष्यका होम, दान और सत्कर्म किया जाता है, वह सब रसातलमें बलिके उपभोगके योग्य होता है और कर्त्ताको अधःपातरूप फल देनेवाला है। इस प्रकार भगवान् विष्णुने बलिदैत्यको रसातल-लोक और अभयदान देकर सम्पूर्ण देवताओंको स्वर्गका राज्य दे दिया। उस समय देवता उनका पूजन, महर्षिगण स्तवन और गन्धर्वलोग गुण-गान कर रहे थे। वे विराट् महाविष्णु पुनः वामनरूप हो गये। ब्रह्मवादी मुनियोंने भगवान्‌का यह महान् कर्म देखकर परस्पर मुसकराते हुए उन पुरुषोत्तमको प्रणाम किया। सम्पूर्ण भूतस्वरूप भगवान् विष्णु वामनरूप धारण करके सब लोगोंको मोहित करते हुए तपस्याके लिये वनमें चले गये। भगवान् विष्णुके चरणोंसे निकली हुई गङ्गादेवीका ऐसा प्रभाव है कि जिनके स्मरणमात्रसे मनुष्य सम्पूर्ण पातकोंसे मुक्त हो जाता है। जो इस गङ्गा-माहात्म्यको देवालय अथवा नदीके तटपर पढता या सुनता है, वह अश्वमेध-यज्ञका फल पाता है।
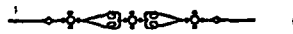
दानका पात्र, निष्फल दान, उत्तम-मध्यम-अधम दान, धर्मराज-भगीरथ-संवाद, ब्राह्मणको जीविका-दानका माहात्म्य तथा तडाग-निर्माणजनित पुण्यके विषयमें राजा वीरभद्रकी कथा

नारदजी बोले—भाईजी! मुझे गङ्गा-माहात्म्य सुननेकी इच्छा थी, सो तो सुन ली। वह सब पापोंका नाश करनेवाला है। अब मुझे दान एवं दानके पात्रका लक्षण बताइये।

श्रीसनकजीने कहा—देवर्षे! ब्राह्मण सभी वर्णोंका श्रेष्ठ गुरु है। जो दिये हुए दानको अक्षय बनाना चाहता हो, उसे ब्राह्मणको ही दान देना चाहिये। सदाचारी ब्राह्मण निर्भय होकर सबसे दान ले सकता है, किंतु क्षत्रिय और वैश्य कभी किसीसे दान ग्रहण न करें। जो ब्राह्मण क्रोधी, पुत्रहीन, दम्भाचार-परायण तथा अपने कर्मका त्याग करनेवाला है, उसको दिया हुआ दान निष्फल हो जाता है। जो परायी स्त्रीमें आसक्त, पराये धनका लोभी तथा नक्षत्रसूचक (ज्यौतिषी) है, उसे दिया हुआ दान भी निष्फल होता है। जिसके मनमें दूसरोंके दोष देखनेका दुर्गुण भरा है, जो कृतघ्न, कपटी और यज्ञके अनधिकारियोंसे यज्ञ करानेवाला है, उसको दिया हुआ दान भी निष्फल होता है। जो सदा माँगनेमें ही लगा रहता है, जो हिंसक, दुष्ट और रसका विक्रय करनेवाला है, उसे दिया हुआ दान भी निष्फल होता है। ब्रह्मन्! जो वेद, स्मृति तथा धर्मका विक्रय करनेवाला है, उसको दिया हुआ दान भी निष्फल होता है। जो गीत गाकर जीविका चलाता है, जिसकी स्त्री व्यभिचारिणी है तथा जो दूसरोंको कष्ट देनेवाला है, उसको दिया हुआ दान भी निष्फल होता है। जो तलवारसे जीविका चलाता है, जो स्याहीसे जीवन-निर्वाह करता है, जो जीविकाके लिये देवताकी पूजा स्वीकार करता है, जो समूचे गाँवका पुरोहित है तथा जो धावनका काम करता है, ऐसे लोगोंको दिया हुआ दान निष्फल होता है। जो दूसरोंके लिये रसोई बनानेका काम करता है, जो कविताद्वारा लोगोंकी झूठी प्रशंसा किया करता है, जो वैद्य एवं अभक्ष्य वस्तुओंका भक्षण करनेवाला है, उसको दिया हुआ दान भी निष्फल होता है। जो शूद्रोंका अन्न खाता, शूद्रोंके मुर्दे जलाता और व्यभिचारिणी स्त्रीकी संतानका अन्न भोजन करता है, उसको दिया हुआ दान भी निष्फल होता है। जो भगवान् विष्णुके नाम-जपको बेचता है, संध्याकर्मको त्यागनेवाला है तथा दूषित दान-ग्रहणसे दग्ध हो चुका है, उसे दिया हुआ दान भी निष्फल होता है। जो दिनमें सोता, दिनमें मैथुन करता और संध्याकालमें खाता है, उसे दिया हुआ दान भी निष्फल होता है। जो महापातकोंसे युक्त है, जिसे जाति-भाइयोंने समाजसे बाहर कर दिया है तथा जो कुण्ड (पतिके रहते हुए भी व्यभिचारसे उत्पन्न हुआ) और गोलक (पतिके मर जानेपर व्यभिचारसे पैदा हुआ) है, उसे दिया हुआ दान भी निष्फल होता है। जो परिवित्ति (छोटे भाईके विवाहित हो जानेपर भी स्वयं अविवाहित), शठ, परिवेत्ता (बड़े भाईके अविवाहित रहते हुए स्वय विवाह करनेवाला), स्त्रीके वशमें रहनेवाला और अत्यन्त दुष्ट है, उसको दिया हुआ दान भी निष्फल होता है। जो शराबी, मांसखोर, स्त्रीलम्पट, अत्यन्त लोभी, चोर और चुगली खानेवाला है, उसको दिया हुआ दान भी

निष्फल होता है। द्विजश्रेष्ठ! जो कोई भी पापपरायण और सज्जन पुरुषोंद्वारा सदा निन्दित हों, उनसे न तो दान लेना चाहिये और न दान देना ही चाहिये।

नारदजी! जो ब्राह्मण सत्कर्ममें लगा हुआ हो, उसे यत्नपूर्वक दान देना चाहिये। जो दान श्रद्धापूर्वक तथा भगवान् विष्णुके समर्पणपूर्वक दिया गया हो एवं जो उत्तम पात्रके याचना करनेपर दिया गया हो, वह दान अत्यन्त उत्तम है। नारदजी! इहलोक या परलोकके लाभका उद्देश्य रखकर जो सुपात्रको दान दिया जाता है, वह सकाम दान मध्यम माना गया है। जो दम्भसे, दूसरोंकी हिंसाके लिये, अविधिपूर्वक, क्रोधसे, अश्रद्धासे और अपात्रको दिया जाता है, वह दान अधम माना गया है। राजा बलिको सन्तुष्ट करनेके लिये यानी अपवित्र भावसे तथा अपात्रको किया हुआ दान अधम, स्वार्थ-सिद्धिके लिये किया हुआ दान मध्यम तथा भगवान्की प्रसन्नताके लिये किया हुआ दान उत्तम है—यह वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ज्ञानी पुरुष कहते हैं। दान, भोग और नाश—ये धनकी तीन प्रकारकी गतियाँ हैं। जो न दान करता है और न उपभोगमें लाता है, उसका धन केवल उसके नाशका कारण होता है। ब्रह्मन्! धनका फल है धर्म और धर्म वही है जो भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेवाला है। क्या वृक्ष जीवन धारण नहीं करते? वे भी इस जगत्में दूसरोंके हितके लिये जीते हैं। विप्रवर नारद! जहाँ वृक्ष भी अपनी जड़ों और फलोंके द्वारा दूसरोंका हित-साधन करते हैं, वहाँ यदि मनुष्य परोपकारी न हों तो वे मरे हुएके ही समान हैं। जो मरणशील मानव शरीरसे, धनसे अथवा मन और वाणीसे भी दूसरोंका उपकार नहीं करते, उन्हें महान् पापी समझना चाहिये। नारदजी! इस विषयमें मैं एक यथार्थ इतिहास सुनाता हूँ, सुनिये। उसमें दान आदिका लक्षण भी बताया जायगा, साथ ही उसमें गङ्गाजीका माहात्म्य भी आ जायगा, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। इस इतिहासमें भगीरथ और धर्मका पुण्यकारक संवाद है।

सगरके कुलमें भगीरथ नामवाले राजा हुए, जो सातों द्वीपों और समुद्रोंसहित इस पृथ्वीका शासन करते थे। वे सदा सब धर्मोंमें तत्पर, सत्य-प्रतिज्ञ और प्रतापी थे। कामदेवके समान रूपवान्, महान् यज्ञकर्त्ता और विद्वान् थे। वे राजा भगीरथ धैर्यमें हिमालय और धर्ममें धर्मराजकी समानता करते थे। उनमें सभी प्रकारके शुभ लक्षण भरे थे। मुने! वे सम्पूर्ण शास्त्रोंके पारगामी विद्वान्, सब सम्पत्तियोंसे युक्त और [illegible] अतिथियोंके सत्कारमें तत्पर [illegible] वासुदेवकी आराधनामें तत्पर रहते थे। [illegible] सद्गुणोंके भण्डार, सबके प्रति मैत्रीभाव [illegible] तथा उत्तम बुद्धिवाले थे। [illegible] ऐसे सद्गुणोंसे युक्त जानकर एक दिन [illegible] दर्शन करनेके लिये आये। राजाने [illegible] धर्मराजका शास्त्रीय विधिसे पूजन किया। [illegible] धर्मराज प्रसन्न होकर राजासे बोले।

धर्मराजने कहा—धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ राजा [illegible] तीनों लोकमें प्रसिद्ध हो। मैं धर्मराज [illegible] कीर्ति सुनकर तुम्हारे दर्शनके लिये आया हूँ। [illegible] तत्पर, सत्यवादी और सम्पूर्ण भूतोंके [illegible] उत्तम गुणोंके कारण देवता भी [illegible] भूपाल! जहाँ कीर्ति, नीति और सम्पत्ति [illegible] ही उत्तम गुण, साधु पुरुष तथा [illegible] राजन्! महाभाग! [illegible] तुम्हारा चरित्र बहुत सुन्दर है। [illegible] भी दुर्लभ है।

ऐसा कहनेवाले धर्मराजसे [illegible] प्रसन्न एवं विनीत भावसे [illegible] बोले।

भगीरथने कहा—भगवन्! आप सब धर्मोंके ज्ञाता हैं। परेश्वर! आप समदर्शी भी हैं। मैं जो कुछ पूछता हूँ, उसे मुझपर बड़ी भारी कृपा करके बताइये। धर्म कितने प्रकारके कहे गये हैं? धर्मात्मा पुरुषोंके कौन-से लोक हैं? यमलोकमें कितनी यातनाएँ बतायी गयी हैं और वे किन्हें प्राप्त होती हैं? महाभाग! कैसे लोग आपके द्वारा सम्मानित होते हैं और कौन लोग किस प्रकार आपके द्वारा दण्डनीय हैं? यह सब मुझे विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा करें।

धर्मराजने कहा—महाबुद्धे! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा। तुम्हारी बुद्धि निर्मल तथा ओजस्विनी है। मैं धर्म और अधर्मका यथार्थ वर्णन करता हूँ, तुम भक्तिपूर्वक सुनो। धर्म अनेक प्रकारके बताये गये हैं, जो पुण्यलोक प्रदान करनेवाले हैं। इसी प्रकार अधर्मजनित यातनाएँ भी असंख्य कही गयी हैं, जिनका दर्शन भी भयंकर है। अतः मैं संक्षेपसे ही धर्म और अधर्मका दिग्दर्शन कराऊँगा। ब्राह्मणोंको जीविका देना अत्यन्त पुण्यमय कहा गया है। इसी प्रकार अध्यात्मतत्त्वके ज्ञाता पुरुषको दिया हुआ दान अक्षय होता है। ब्राह्मण सम्पूर्ण देवताओंका स्वरूप बताया गया है, उसको जीविका देनेवाले मनुष्यके पुण्यका वर्णन करनेमें कौन समर्थ है? जो नित्य (सदाचारी) ब्राह्मणका हित करता है, उसने सम्पूर्ण यज्ञोंका अनुष्ठान कर लिया, वह सब तीर्थोंमें नहा चुका और उसने सब तपस्या पूरी कर ली। जो ब्राह्मणको जीविका देनेके लिये 'दो' कहकर दूसरेको प्रेरित करता है, वह भी उसके दानका फल प्राप्त कर लेता है।

जो स्वयं अथवा दूसरेके द्वारा तालाब बनवाता है उसके पुण्यकी संख्या बताना असम्भव है। राजन्! यदि एक राही भी पोखरेका जल पी ले तो उसके बनानेवाले पुरुषके सब पाप अवश्य नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य एक दिन भी भूमिपर जलका संग्रह एवं संरक्षण कर लेता है, वह सब पापोंसे छूटकर सौ वर्षोंतक स्वर्गलोकमें निवास करता है। जो मानव अपनी शक्तिभर तालाब खुदानेमें सहायता करता है, जो उसमें संतुष्ट होकर उसको प्रेरणा देता है, वह भी पोखरे बनानेका पुण्यफल पा लेता है। जो सरसों बराबर मिट्टी भी तालाबसे निकालकर बाहर फेंकता है, वह अनेकों पापोंसे मुक्त हो सौ वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करता है। नृपश्रेष्ठ! जिसपर देवता अथवा गुरुजन संतुष्ट होते हैं, वह पोखरा खुदानेके पुण्यका भागी होता है—यह सनातन श्रुति है।

नृपश्रेष्ठ! इस विषयमें मैं तुम्हें एक इतिहास बतलाता हूँ, जिसे सुनकर मनुष्य सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है—इसमें संशय नहीं है। गौडदेशमें अत्यन्त विख्यात वीरभद्र नामके एक राजा हो गये हैं। वे बड़े प्रतापी, विद्वान् तथा सदैव ब्राह्मणोंकी पूजा करनेवाले थे। वेद और शास्त्रोंकी आज्ञाके अनुसार कुलोचित सदाचारका वे सदा पालन करते और मित्रोंके अभ्युदयमें योग देते थे। उनकी परम सौभाग्यवती रानीका नाम चम्पकमञ्जरी था। उनके मुख्य मन्त्रीगण कर्तव्य और अकर्तव्यके विचारमें कुशल थे। वे सदा धर्मशास्त्रोंद्वारा धर्मका निर्णय किया करते थे। 'जो प्रायश्चित्त, चिकित्सा, ज्यौतिष तथा धर्मका निर्णय बिना शास्त्रके करता है, उसे ब्राह्मणघाती बताया गया है'—मन-ही-मन ऐसा सोचकर राजा सदा अपने आचार्योंसे मनु आदिके बताये हुए धर्मोंका विधिपूर्वक श्रवण किया करते थे। उनके राज्यमें कोई छोटे-से-छोटा मनुष्य भी अन्यायका आचरण नहीं करता था। उस राजाका धर्मपूर्वक पालित होनेवाला देश स्वर्गकी समता धारण करता था। वह शुभकारक उत्तम राज्यका आदर्श था।

एक दिन राजा वीरभद्र मन्त्री आदिके साथ शिकार खेलनेके लिये बहुत बड़े वनमें गये और दोपहरतक इधर-उधर घूमते रहे। वे अत्यन्त थक गये थे। भगीरथ! उस समय वहाँ राजाको एक छोटी-सी पोखरी दिखायी दी। वह भी सूखी हुई थी। उसे देखकर मन्त्रीने सोचा—पृथ्वीके ऊपर इस शिखरपर यह पोखरी किसने बनायी है? यहाँ कैसे जल सुलभ होगा, जिससे ये राजा वीरभद्र प्यास बुझाकर जीवन धारण करेंगे। नृपश्रेष्ठ! तदनन्तर मन्त्रीके मनमें उस पोखरीको खोदनेका विचार हुआ। उसने एक हाथका गड्ढा खोदकर उसमेंसे जल प्राप्त किया। राजन्! उस जलको पीनेसे राजा और उनके बुद्धिसागर नामक मन्त्रीको भी तृप्ति हुई। तब धर्म-अर्थके ज्ञाता बुद्धिसागरने राजासे कहा—'राजन्! यह पोखरी पहले वर्षाके जलसे भरी थी। अब इसके चारों ओर बाँध बना दें—ऐसी मेरी सम्मति है। देव! निष्पाप राजन्! आप इसका अनुमोदन करें और इसके लिये मुझे आज्ञा दें।' नृपश्रेष्ठ वीरभद्र अपने मन्त्रीकी यह बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और इस कामको करनेके लिये तैयार हो गये। उन्होंने अपने मन्त्री बुद्धिसागरको ही इस शुभ कार्यमें नियुक्त किया। तब राजाकी आज्ञासे अतिशय पुण्यात्मा बुद्धिसागर उस

पोखरीको सरोवर बनानेके कार्यमें लग गये। उसकी लंबाई और चौड़ाई चारों ओरसे पचास धनुषकी हो गयी। उसके चारों ओर पत्थरके घाट बन गये और उसमें अगाध जलराशि संचित हो गयी। ऐसी पोखरी बनाकर मन्त्रीने राजाको सब समाचार निवेदन किया। तबसे सब वनचर जीव और प्यासे पथिक उस पोखरीसे उत्तम जल पान करने लगे। फिर आयुकी समाप्ति होनेपर किसी समय मन्त्री बुद्धिसागरकी मृत्यु हो गयी। राजन्! वे मुझ धर्मराजके लोकमें गये। उनके लिये मैंने चित्रगुप्तसे धर्म पूछा, तब चित्रगुप्तने उनके पोखरी बनानेका सब कार्य मुझे बताया। साथ ही यह भी कहा कि ये राजाको धर्म-कार्यका स्वयं उपदेश करते थे, इसलिये इस धर्मविमानपर चढ़नेके अधिकारी हैं। राजन्! चित्रगुप्तके ऐसा कहनेपर मैंने बुद्धि-सागरको धर्मविमानपर चढ़नेकी आज्ञा दे दी। भगीरथ! फिर कालान्तरमें राजा वीरभद्र भी मृत्युके पश्चात् मेरे स्थानपर गये और प्रसन्नतापूर्वक मुझे नमस्कार किया। तब मैंने वहाँ उनके सम्पूर्ण धर्मोंके विषयमें भी प्रश्न किया। राजन्! मेरे पूछनेपर चित्रगुप्तने राजाके लिये भी पोखरे खुदानेसे होनेवाले धर्मकी बात बतायी। तब मैंने राजाको जिस प्रकार भलीभाँति समझाया, वह सुनो। (मैंने कहा—)

'भूपाल भगीरथ! पूर्वकालमें सैकतगिरिके शिखरपर उस लावक (एक प्रकारकी चिड़िया) पक्षीने जलके लिये अपनी चोंचसे दो अङ्गुल भूमि खोद ली थी। नृपश्रेष्ठ! तत्पश्चात् कालान्तरमें उस वाराहने अपनी थूथुनसे एक हाथ गहरा गड्ढा खोदा। तबसे उसमें [illegible]। [illegible] किसी समय उस काली (एक पक्षी) ने [illegible] दो हाथ गहरा कर दिया। [illegible] उसमें [illegible] जल टिकने लगा। वनके छोटे-छोटे जीव प्यास [illegible] उस जलको पीते थे। सुव्रत! उसके [illegible] हाथीने उस गड्ढेको तीन हाथ गहरा कर दिया। [illegible] अधिक जल संचित होकर तीन [illegible] जंगली जीव जन्तु उसको पीया करते थे। [illegible] जानेके बाद आप उस स्थानपर आये। [illegible] मिट्टी खोदकर आपने जल प्राप्त किया। [illegible] मन्त्री बुद्धिसागरके उपदेशसे आपने पचास धनुषकी [illegible] चौड़ाईमें उसे उतना ही गहरा खुदवाया। [illegible] बहुत जल संचित हो गया। इसके बाद पत्थरोंसे [illegible] घाट बँध जानेपर वह महान् सरोवर बन गया। [illegible] किनारेपर सब लोगोंके लिये उपकारी वृक्ष लगा दिये गये। [illegible] पोखरेके द्वारा अपने-अपने पुण्यसे ये पाँच जीव धर्म[illegible] आरूढ़ हुए हैं। अब छठे तुम भी उसपर चढ़ [illegible]।' भगीरथ! मेरा यह वचन सुनकर छठे राजा वीरभद्र भी उन पाँचके समान ही पुण्यभागी होकर उस धर्मविमान[illegible] बैठे। राजन्! इस प्रकार मैंने पोखरे बनानेसे [illegible] सम्पूर्ण फलका वर्णन किया। इसे सुनकर मनुष्य [illegible] लेकर मृत्युतकके पापसे मुक्त हो जाता है। जो [illegible] पूर्वक इस कथाको सुनता अथवा पढ़ता है, वह भी [illegible] बनानेके सम्पूर्ण पुण्यको प्राप्त कर लेता है।

तडाग और तुलसी आदिकी महिमा, भगवान् विष्णु और शिवके स्नान-पूजनका महत्त्व एवं विविध दानों तथा देवमन्दिरमें सेवा करनेका माहात्म्य

धर्मराज कहते हैं—राजन्! कासार (कच्चे पोखरे) बनानेपर तडाग (पक्के पोखरे) बनानेकी अपेक्षा आधा फल बताया गया है। कुएँ बनानेपर एक चौथाई फल जानना चाहिये। बावड़ी बनानेपर कमलोंसे भरे हुए सरोवरके बराबर पुण्य प्राप्त होता है। भूपाल! नहर निकालनेपर बावड़ीकी अपेक्षा सौगुना फल प्राप्त होता है। धनी पुरुष पत्थरसे मन्दिर या तालाब बनावे और दरिद्र पुरुष मिट्टीसे बनावे तो उन दोनोंको समान फल प्राप्त होता है। यह ब्रह्माजीका कथन है। धनी पुरुष एक नगर दान करे और गरीब एक हाथ भूमि दे; इन दोनोंके दानका समान फल है—ऐसा वेदवेत्ता पुरुष कहते हैं। जो धनी [illegible] फलके साधनभूत तडागका निर्माण करता है और दरिद्र [illegible] कुआँ बनवाता है, उन दोनोंका पुण्य समान [illegible]। जो बहुत-से प्राणियोंका उपकार [illegible] धर्मशाला बनवाता है, वह तीन पीढ़ियोंके [illegible] जाता है। राजन्! धेनु अथवा [illegible] आधे क्षण भी उस आश्रममें [illegible] उसके बनवानेवालेको स्वर्गलोकमें [illegible] है। [illegible] बगीचे लगाते, देवमन्दिर बनवाते [illegible] गाँव बसाते हैं, वे भगवान् विष्णुके [illegible]

है। जो तुलसीके मूलभागकी मिट्टीसे, गोपीचन्दनसे, चित्रकूटकी मिट्टीसे अथवा गङ्गाजीकी मृत्तिकासे ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगाता है, उसे प्राप्त होनेवाले पुण्यफलका वर्णन सुनो। वह श्रेष्ठ विमानपर बैठकर गन्धर्वों और अप्सराओंके समूहद्वारा अपने चरित्रका गान सुनता हुआ भगवान् विष्णुके धाममें आनन्द भोगता है। जो तुलसीके पौधेपर चुल्लूभर भी पानी डालता है, वह क्षीरसागर-निवासी भगवान् विष्णुके साथ तबतक निवास करता है, जबतक चन्द्रमा और तारे रहते हैं; तदनन्तर विष्णुमें लय हो जाता है। जो ब्राह्मणोंको कोमल तुलसीदल अर्पित करता है, वह तीन पीढ़ियोंके साथ ब्रह्मलोकमें जाता है। जो तुलसीके लिये काँटोंका आवरण या चहारदीवारी बनवाता है, वह भी इक्कीस पीढ़ियोंके साथ भगवान् विष्णुके धाममें आनन्दका अनुभव करता है। नरेश्वर! जो तुलसीके कोमल दलोंसे भगवान् विष्णुके चरणकमलोंकी पूजा करता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त होता है; उसका वहाँसे कभी पुनरागमन नहीं होता। पुष्प तथा चन्दनके जलसे भगवान् गोविन्दको भक्तिपूर्वक नहलाकर मनुष्य विष्णुधाममें जाता है। जो कपड़ेसे छाने हुए जलके द्वारा भगवान् लक्ष्मीपतिको स्नान कराता है, वह सब पापोंसे छूटकर भगवान् विष्णुके साथ सुखी होता है। जो सूर्यकी संक्रान्तिके दिन दूध आदिसे श्रीहरिको नहलाता है, वह इक्कीस पीढ़ियोंके साथ विष्णुलोकमें वास करता है। शुक्लपक्षमें चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा, एकादशी, रविवार, द्वादशी, पञ्चमी तिथि, सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण, मन्वादि तिथि, युगादितिथि, सूर्यके आधे उदयके समय, सूर्यके पुष्य-नक्षत्रपर रहते समय, रोहिणी और बुधके योगमें, शनि और रोहिणी तथा मङ्गल और अश्विनीके योगमें, शनि-अश्विनी, बुध-अश्विनी, शुक्र-रेवती योग, बुध-अनुराधा, श्रवण-सूर्य, सोमवार-श्रवण, हस्त-बृहस्पति, बुध-अष्टमी तथा बुध और आषाढ़ाके योगमें और दूसरे-दूसरे पवित्र दिनोंमें जो पुरुष शान्तचित्त, मौन और पवित्र होकर दूध, दही, घी और शहदसे श्रीविष्णुको स्नान कराता है, उसको प्राप्त होनेवाले फलका वर्णन सुनो। वह सब पापोंसे छूटकर सम्पूर्ण यज्ञोंका फल पाता और इक्कीस पीढ़ियोंके साथ वैकुण्ठधाममें निवास करता है। राजन्! फिर वहीं ज्ञान प्राप्त करके वह पुनरावृत्तिरहित और योगियोंके लिये भी दुर्लभ हरिका सायुज्य प्राप्त कर लेता है। भूपते! जो कृष्णपक्षमें चतुर्दशी तिथि और सोमवारके दिन भगवान् शङ्करको दूधसे नहलाता है, वह शिवका सायुज्य प्राप्त कर लेता है। अष्टमी अथवा सोमवारको भक्तिपूर्वक नारियलके जलसे भगवान् शिवको स्नान कराकर मनुष्य शिव-सायुज्यका अनुभव करता है। भूपते! शुक्लपक्षकी चतुर्दशी अथवा अष्टमीको घृत और मधुके द्वारा भगवान् शिवको स्नान कराकर मनुष्य उनका सारूप्य प्राप्त कर लेता है। तिलके तेलसे भगवान् विष्णु अथवा शिवको स्नान कराकर मनुष्य सात पीढ़ियोंके साथ उनका सारूप्य प्राप्त कर लेता है। जो शिवको भक्तिपूर्वक ईखके रससे स्नान कराता है, वह सात पीढ़ियोंके साथ एक कल्पतक भगवान् शिवके लोकमें निवास करता है। (फिर शिवका सायुज्य प्राप्त कर लेता है।)

नरेश! एकादशीके दिन सुगन्धित फूलोंसे भगवान् विष्णुकी पूजा करके मनुष्य दस हजार जन्मके पापोंसे छूट जाता और उनके परम धामको प्राप्त कर लेता है। महाराज! चम्पाके फूलोंसे भगवान् विष्णुकी और आकके फूलोंसे भगवान् शङ्करकी पूजा करके मनुष्य उन-उनका सालोक्य प्राप्त करता है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक भगवान् शङ्कर अथवा विष्णुको धूपमें घृतयुक्त गुग्गुल मिलाकर देता है, वह सब पापोंसे छूट जाता है। नृपश्रेष्ठ! जो भगवान् विष्णु अथवा शङ्करको तिलके तेलसे युक्त दीपदान करता है, वह समस्त कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। जो भगवान् शिव अथवा विष्णुको घीका दीपक देता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो गङ्गा-स्नानका फल पाता है।

जो-जो अभीष्ट वस्तुएँ हैं, वह सब ब्राह्मणको दान कर दे—ऐसा मनुष्य पुनर्जन्मसे रहित भगवान् विष्णुके धाममें जाता है। अन्न और जलके समान दूसरा कोई दान न हुआ है, न होगा। अन्नदान करनेवाला प्राणदाता कहा गया है और जो प्राणदाता है, वह सब कुछ देनेवाला है। नृपश्रेष्ठ! इसलिये अन्नदान करनेवालेको सम्पूर्ण दानोंका फल मिलता है। जलदान तत्काल संतुष्ट करनेवाला माना गया है। नृपश्रेष्ठ! इसलिये ब्रह्मवादी मनुष्योंने जलदानको अन्नदानसे श्रेष्ठ बताया है। महापातक अथवा उपपातकोंसे युक्त मनुष्य भी यदि जलदान करनेवाला है तो वह उन सब पापोंसे मुक्त हो जाता है, यह ब्रह्माजीका कथन है। शरीरको अन्नसे उत्पन्न कहा गया है। प्राणोंको भी अन्नजनित ही मानते हैं; अतः पृथ्वीपते! जो अन्नदान देनेवाला है, उसे प्राणदाता समझना चाहिये; क्योंकि जो-जो तृप्तिकारक दान है, वह समस्त मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाला है; अतः भूपाल! इस पृथ्वीपर अन्नदानके समान दूसरा कोई दान नहीं है। जो दरिद्र अथवा रोगी मनुष्यकी रक्षा करता है, उसपर प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु उसकी सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण कर

देते हैं। जो मन, वाणी और क्रियाद्वारा रोगीकी रक्षा करता है, वह सब पापोंसे छूटकर सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। महीपाल! जो ब्राह्मणको निवास-स्थान देता है, उसपर प्रसन्न हो देवेश्वर भगवान् विष्णु उसे अपना लोक देते हैं। जो ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणको दूध देनेवाली गाय दान करता है, वह ब्रह्मलोकमें जाता है तथा जो वेदवेत्ता ब्राह्मणको कपिला गाय दान देता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो रुद्र-स्वरूप हो जाता है। जो भयसे व्याकुलचित्तवाले पुरुषोंको अभय दान देता है, राजन्! उसके पुण्यफलका यथार्थ वर्णन करता हूँ, सुनो, एक ओर तो पूर्णरूपसे उत्तम दक्षिणा देकर सम्पन्न किये हुए सभी यज्ञ हैं और दूसरी ओर भयभीत मनुष्यकी प्राणरक्षा है (ये दोनों समान हैं)। महीपाल! जो भयविह्वल ब्राह्मणकी रक्षा करता है, वह सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान कर चुका और सम्पूर्ण यज्ञोंकी दीक्षा ले चुका। वस्त्रदान करनेवाला रुद्रलोकमें और कन्यादाता ब्रह्मलोकमें जाता है।

भूपते! कार्तिक अथवा आषाढ़की पूर्णिमाको जो मानव भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये वृषोत्सर्ग कर्म करता है, उसका फल सुनो—वह सात जन्मोंके पापोंसे मुक्त हो रुद्रका स्वरूप प्राप्त कर लेता है। नृपश्रेष्ठ! जो भैंसेको शिवलिङ्गसे चिह्नित करके छोड़ता है, उसे कभी यमयातना (नरक) नहीं प्राप्त होती। नृपसत्तम! जो शक्तिके अनुसार ताम्बूल दान करता है, उसपर प्रसन्न हो भगवान् विष्णु उसे आयु, यश तथा लक्ष्मी प्रदान करते हैं। दूध, दही, घी और मधुका दान करनेवाला मनुष्य दस हजार दिव्य वर्षोंतक स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। नृपोत्तम! ईख दान करनेवाला मनुष्य ब्रह्मलोकमें जाता है। गन्ध एवं पवित्र फल देनेवाला पुरुष भी ब्रह्मधाममें जाता है। गुड और ईखका रस देनेवाला मनुष्य क्षीरसागरको प्राप्त होता है। विद्यादान करनेसे मनुष्यको भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त होता है। विद्या-दान, भूमिदान और गोदान—ये उत्तम-से-उत्तम तीन दान क्रमशः जप, जोतने-बोनेकी सुविधा और दूध दुहनेके कारण नरकसे उद्धार करनेवाले होते हैं। नृपोत्तम! सम्पूर्ण दानोंमें विद्यादान श्रेष्ठ है। विद्यादानसे मनुष्य भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त कर लेता है। ईंधन दान करनेसे मनुष्यको उपपातकोंसे छुटकारा मिलता है। शालग्राम शिलाका दान महादान बताया गया है। उसका दान करके मनुष्य मोक्ष प्राप्त करता है। शिवलिङ्ग-दान भी ऐसा ही माना गया है। प्रभो! जो मनुष्य श्रेष्ठ पुरुषोंको घर दान देता है, राजन्! उसे गङ्गास्नानका फल अवश्य प्राप्त होता है।

नृपश्रेष्ठ! जो रत्नयुक्त सुवर्णका दान करता है, वह भोग और मोक्ष—दोनों प्राप्त कर लेता है; क्योंकि स्वर्णदान महादान माना गया है। माणिक्यदान करनेसे मनुष्य परम मोक्षको प्राप्त होता है। वज्रमणिके दानसे मानव इन्द्रलोकमें जाता है। मूँगा दान करनेसे स्वर्ग एवं रुद्रलोककी प्राप्ति होती है। सवारी देने और मुक्तादान करनेसे दाता चन्द्रलोक प्राप्त करता है। वैदूर्य और पद्मरागमणि देनेवाला मनुष्य रुद्रलोकमें जाता है। पद्मरागमणिके दानसे सर्वत्र सुखकी प्राप्ति होती है। राजन्! घोड़ा दान करनेवाला दीर्घकालके लिये अश्विनीकुमारोंके समीप जाता है। हाथी दान महादान है। उससे मनुष्य सब कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। सवारी दान करनेसे मनुष्य स्वर्गीय विमानमें बैठकर स्वर्गलोकमें जाता है। भैंस देनेवाला निस्संदेह अपमृत्युको जीत लेता है। गौओंको घास देनेसे रुद्रलोककी प्राप्ति होती है। महीपते! नमक देनेवाला पुरुष वरुणलोकमें जाता है।

जो अपने आश्रमोचित आचारके पालनमें संलग्न, सम्पूर्ण भूतोंके हितमें तत्पर तथा दम्भ और असूयासे रहित हैं, वे ब्रह्मलोकमें जाते हैं। जो वीतराग और ईर्ष्यारहित हो दूसरोंको परमार्थका उपदेश देते और स्वयं भी भगवान्‌के चरणोंकी आराधनामें लगे रहते हैं, वे वैकुण्ठधाममें जाते हैं। जो सत्सङ्गमें आनन्दका अनुभव करते, सत्कर्म करनेके लिये सदा उद्यत रहते और दूसरोंके अपवादसे मुँह मोड़ लेते हैं, वे विष्णुधाममें जाते हैं। जो सदा ब्राह्मणों और गौओंका हित साधन करते और परायी स्त्रियोंके सङ्गसे विमुख होते हैं, वे यमलोकका दर्शन नहीं करते। जिन्होंने इन्द्रियों और आहारको जीत लिया है, जो गायोंके प्रति क्षमाभाव रखनेवाले और सुशील हैं तथा जो ब्राह्मणोंपर भी क्षमाभाव रखते हैं, वे वैकुण्ठधाममें जाते हैं। जो अग्निका सेवन करनेवाले गुरुसेवक पुरुष हैं तथा जो पतिकी सेवामें संलग्न रहनेवाली स्त्रियाँ हैं, वे कभी जन्म-मरणरूप संसार-बन्धनमें नहीं पड़तीं। जो सदा देव-पूजामें तत्पर, हरिनामकी शरण लेनेवाले तथा प्रतिग्रहसे दूर रहते हैं, वे परम पदको प्राप्त होते हैं। नृपश्रेष्ठ! जो ब्राह्मणके अनाथ शवका दाह करते हैं, वे सहस्र अश्वमेध यज्ञोंका फल भोगते हैं। राजेन्द्र! जो पूजारहित शिवलिङ्गका पत्र, पुष्प, फल अथवा जलसे पूजन करता है, उसका फल सुनो—वह विमानपर बैठकर भगवान् शिवके समीप जाता है। जनेश्वर! जो कन्द-मूल और फलोंद्वारा निर्जन स्थानमें स्थित शिवलिङ्गका पूजन

करता है; वह पुनरावृत्तिरहित शिव-सायुज्यको प्राप्त करता

है। सूर्यवंशी भगीरथ ! जो पूजारहित विष्णु-प्रतिमाका जलसे भी पूजन करता है, उसे विष्णुका सालोक्य प्राप्त होता है। राजन् ! जो देवालयमे गोचर्मके बराबर भू-भागको भी जलसे सींचता है, वह स्वर्गलोक पाता है। जो देवमन्दिरकी भूमिको चन्दनमिश्रित जलसे सींचता है, वह जितने कणोको भिगोता है, उतने कल्पतक उस देवताके समीप निवास करता है। जो मनुष्य पत्थरके चूनेसे देवमन्दिरको लीपता है या उसमें स्वस्तिक आदिके चिह्न बनाता है, उसको अनन्त पुण्य प्राप्त होता है। जो भगवान् विष्णु या शङ्करके समीप अखण्ड दीपकी व्यवस्था करता है, उसको एक-एक क्षणमें अश्वमेध यज्ञका फल सुलभ होता है। भूमिपाल ! जो देवीके मन्दिरकी एक बार, सूर्यके मन्दिरकी सात बार, गणेशके मन्दिरकी तीन बार और विष्णु-मन्दिरकी चार बार परिक्रमा करता है, वह उन-उनके धाममे जाकर लाखों युगोतक सुख भोगता है। जो भक्तिभावसे भगवान् विष्णु, गौ तथा ब्राह्मणकी प्रदक्षिणा करता है, उसे पग-पगपर अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। जो काशीमें भगवान् शिवके लिङ्गका पूजन करके प्रणाम करता है, उसके लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं रह जाता, उसका फिर ससारमें जन्म नहीं होता। जो विधिपूर्वक भगवान् शङ्करकी दक्षिण और वाम परिक्रमा करता है, वह मनुष्य उनकी कृपासे स्वर्गसे नीचे नहीं आता। जो रोग-शोकसे रहित भगवान् नारायणकी स्तोत्रोंद्वारा स्तुति करता है, वह मनसे जो-जो चाहता है, उन सब कामनाओं-को प्राप्त कर लेता है। भूपाल ! जो भक्तिभावसे युक्त हो देवमन्दिरमे नृत्य अथवा गान करता है, वह रुद्रलोकमे जाकर मोक्षका भागी होता है। जो मनुष्य देवमन्दिरमे बाजा बजाते हैं, वे हंसयुक्त विमानपर आरूढ़ हो ब्रह्माजीके धाममे जाते हैं। जो लोग देवालयमें करताल बजाते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो दस हजार युगोंतक विमानचारी होते हैं। जो लोग भेरी, मृदङ्ग, पटह, मुरज और डिंडिम आदि बाजोद्वारा देवेश्वर भगवान् शिवको प्रसन्न करते है, उन्हे प्राप्त होनेवाले पुण्यफलका वर्णन सुनो। वे सम्पूर्ण कामनाओंसे पूजित हो स्वर्गलोकमे जाकर पाँच कल्पोंतक सुख भोगते हैं। राजन् ! जो मनुष्य देवमन्दिरमें शङ्खध्वनि करता है, वह सब पापोसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके साथ सुख भोगता है। जो भगवान् विष्णुके मन्दिरमे ताल और झाँझ आदिका शब्द करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। जो सबके साक्षी, निरञ्जन एवं ज्ञानस्वरूप भगवान् विष्णु हैं, वे संतुष्ट होनेपर सब धर्मोका यथायोग्य सम्पूर्ण फल देते हैं। भूपते ! जिन देवाधिदेव सुदर्शनचक्रधारी श्रीहरिके स्मरण-मात्रसे सम्पूर्ण कर्म सफल होते हैं, वे जगदीश्वर परमात्मा ही समस्त कर्मोंके फल हैं। पुण्यकर्म करनेवाले पुरुषोंद्वारा सदा स्मरण किये जानेपर वे भगवान् उनकी सब पीडाओंका नाश करते हैं। भगवान् विष्णुके उद्देश्यसे जो कुछ किया जाता है, वह अक्षय मोक्षका कारण होता है। भगवान् विष्णु ही धर्म हैं। धर्मके फल भी भगवान् विष्णु ही हैं। इसी प्रकार कर्म, कर्मोंके फल और उनके भोक्ता भी भगवान् विष्णु ही हैं। कार्य भी विष्णु है, करण भी विष्णु हैं। उनसे भिन्न कोई भी वस्तु नहीं है *।

---

* यो देवः सर्वदृग्विष्णुर्ज्ञानरूपी निरञ्जन. । मर्वधर्मफल पूर्णं सतुष्ट. प्रददाति च ॥
यस्य स्मरणमात्रेण देवदेवस्य चक्रिण. । सफलानि भवन्त्येव सर्वकर्माणि भूपते ॥
परमात्मा जगन्नाथ. सर्वकर्मफलप्रद । सत्कर्मकर्तृभिर्नित्य स्मृत सर्वार्तिनाशनः ।
तमुद्दिश्य कृतं यच्च तदानन्त्याय कल्पते ॥
धर्माणि विष्णुश्च फलानि विष्णु. कर्माणि विष्णुश्च फलानि भोक्ता । कार्यं च विष्णु' करणानि विष्णुरस्मान्न किंचिद् व्यतिरिक्तमस्ति ॥
(१३ । ५०—५३)

विविध प्रायश्चित्तका वर्णन, इष्टापूर्त्तका फल और सूतक, श्राद्ध तथा तर्पणका विवेचन
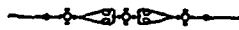
धर्मराज कहते हैं—नृपश्रेष्ठ ! अब मैं चारों वर्णोंके लिये वेदों और स्मृतियोंमें बताये हुए धर्मका क्रमशः वर्णन करता हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो । जो भोजन करते समय क्रोधमें या अज्ञानवश किसी अपवित्र वस्तुको या चाण्डाल एवं पतितको छू लेता है, उसके लिये प्रायश्चित्त बतलाता हूँ । वह क्रमानुसार अर्थात् अपवित्र वस्तुके स्पर्श करनेपर तीन रात और चाण्डाल या पतितका स्पर्श कर लेनेपर छः राततक पञ्चगव्यसे तीनों समय स्नान करे तो शुद्ध होता है। यदि कदाचित् भोजन करते समय ब्राह्मणके गुदासे मलस्राव हो जाय अथवा जूठे मुँह या अपवित्र रहनेपर ऐसी बात हो जाय तो उसकी शुद्धिका उपाय बतलाता हूँ । पहले वह ब्राह्मण शौच जाकर जलसे पवित्र होवे (अर्थात् शौच जाकर जलसे हाथ-पैरकी शुद्धि करके कुल्ला और स्नान करे) । तदनन्तर दिन-रात उपवास करके पञ्चगव्य पीनेसे शुद्ध होता है । यदि भोजन करते समय पेशाब हो जाय अथवा पेशाब करनेपर बिना शुद्ध हुए ही भोजन कर ले तो दिन-रात उपवास करे और अग्निमें घीकी आहुति दे । यदि भोजनके समय ब्राह्मण किसी भी निमित्तसे अपवित्र हो जाय तो उस समय ग्रासको जमीनपर रखकर स्नान करनेके पश्चात् शुद्ध होता है । यदि उस ग्रासको खा ले तो उपवास करनेपर शुद्ध होता है और यदि अपवित्र अवस्थामें वह सारा अन्न भोजन करके उठे तो तीन राततक वह अशुद्ध रहता है (अर्थात् तीन रात्रितक उपवास करनेसे शुद्ध होता है) । यदि भोजन करते-करते वमन हो जाय तो अस्वस्थ मनुष्य तीन सौ गायत्री-मन्त्रका जप करे और स्वस्थ मनुष्य तीन हजार गायत्री जपे, यही उसके लिये उत्तम प्रायश्चित्त है । यदि द्विज मल-मूत्र करनेपर चाण्डाल या डोमसे छू जाय तो वह त्रिरात्र व्रत करे और यदि भोजन करके जूठे मुँह छू जाय तो छः राततक व्रत करे । यदि रजस्वला और सूतिका स्त्रीको चाण्डाल छू ले तो तीन राततक व्रत करनेपर उनकी शुद्धि होती है—यह शातातप मुनिका वचन * है । यदि रजस्वला स्त्री कुत्तों, चाण्डालों अथवा कौओंसे छू जाय तो वह अशुद्ध अवस्थातक निराहार रहे; फिर समयपर (चौथे दिन) स्नान करनेसे वह शुद्ध होती है । यदि दो रजस्वलाएँ आपसमें एक-दूसरीका स्पर्श कर लेती हैं तो ब्रह्मकूर्च † पीनेसे उनकी शुद्धि होती है और ऊपरसे भी ब्रह्मकूर्चद्वारा उन्हें स्नान कराना चाहिये । जो जूठेसे छू जानेपर तुरत स्नान नहीं कर लेता, उसके लिये भी यही प्रायश्चित्त है । ऋतुकालमें मैथुन करनेवाले पुरुषको गर्भाधान होनेकी आशङ्कासे स्नान करनेका विधान है । बिना ऋतुके स्त्रीसङ्गम करनेपर म[illegible]

---

* इस प्रसङ्गके प्रायः अधिक श्लोक यम-स्मृतिसे और कुछ श्लोक वृद्ध शातातप-स्मृतिसे भी मिलते हैं ।

† पञ्चगव्य और कुशोदक मिलानेसे ब्रह्मकूर्च बनता है। उसकी विधि इस प्रकार है—पलाश या कमलके पत्तेमें अथवा ताँबे या सुवर्णके पात्रमें पञ्चगव्य सग्रह करना चाहिये । गायत्री-मन्त्रसे गोमूत्रका, 'गन्धद्वारा०' इस मन्त्रसे गोबरका, 'आप्यायस्व०' इस मन्त्रसे दूधका, 'दधिक्राव्णो०' इस मन्त्रसे दहीका, 'तेजोऽसि शुक्र०' इस मन्त्रसे घीका और 'देवस्य त्वा०' इस मन्त्रसे कुशोदकका सग्रह करे । चतुर्दशीको उपवास करके अमावास्याको उपर्युक्त वस्तुओंका संग्रह करे । गोमूत्र एक पल होना चाहिये । गोबर आधे अँगूठेके बराबर हो । दूधका मान सात पल और दहीका तीन पल है । घी और कुशोदक एक-एक पल बताये गये हैं । इस प्रकार इन सबको एकत्र करके परस्पर मिला दे । तत्पश्चात् सात-सात पत्तोंके तीन कुश लेकर जिनके अग्रभाग कटे न हों, उनसे उस पञ्चगव्यकी अग्निमें आहुति दे । आहुतिसे बचे हुए पञ्चगव्यको प्रणवसे आलोडन और प्रणवसे ही मन्थन करके प्रणवसे ही हाथमें ले तथा फिर प्रणवका ही उच्चारण करके उसे पी जाय । इस प्रकार तैयार किये हुए पञ्चगव्यको ब्रह्मकूर्च कहते हैं । स्त्री-शूद्रोंको ब्राह्मणके द्वारा पञ्चगव्य बनवाकर प्रणव उच्चारणके बिना ही पीना चाहिये । सर्वसाधारणके लिये ब्रह्मकूर्च-पानका मन्त्र यह है—

यत्त्वगस्थिगत पाप देहे तिष्ठति देहिनाम् । ब्रह्मकूर्चो दहेत्सर्वं प्रदीप्ताग्निरिवेन्धनम् ॥

([illegible] १८)

अर्थात् 'देहधारियोंके शरीरमें चमड़े और हड्डीतकमें जो पाप विद्यमान है, वह सब ब्रह्मकूर्च इस प्रकार जला देता है, जैसे प्रज्वलित आग इन्धनको जला डालती है ।'

मूत्रकी ही भाँति शुद्धि मानी गयी है। अर्थात् हाथ, मुँह आदि धोकर कुल्ला करना चाहिये। मैथुनकर्ममें लगे हुए पति-पत्नी दोनों ही अशुद्ध होते हैं, परंतु शय्यासे उठनेपर स्त्री तो शुद्ध हो जाती है, किंतु पुरुष स्नानके पूर्वतक अशुद्ध ही बना रहता है। जो लोग पतित न होनेपर भी अपने बन्धुजनोंका त्याग करते हैं, (राजाको उचित है कि) उन्हें उत्तम साहस*का दण्ड दे। यदि पिता पतित हो जाय तो उसके साथ इच्छानुसार बर्ताव करे। अर्थात् अपनी रुचिके अनुसार उसका त्याग और ग्रहण दोनों कर सकते हैं; किंतु माताका त्याग कभी न करे। जो रस्सी आदि साधनोंद्वारा फाँसी लगाकर आत्मघात करता है, वह यदि मर जाय तो उसके शरीरमें पवित्र वस्तुका लेप करा दे और यदि जीवित बच जाय तो राजा उससे दो सौ मुद्रा दण्ड ले। उसके पुत्र और मित्रोंपर एक-एक मुद्रा दण्ड लगावे और वे लोग शास्त्रीय विधिके अनुसार प्रायश्चित्त करें। जो मनुष्य मरनेके लिये जलमें प्रवेश करके अथवा फाँसी लगाकर मरनेसे बच जाते हैं, जो संन्यास ग्रहण करके और उपवास व्रत प्रारम्भ करके उसे त्याग देते हैं, जो विष पीकर अथवा ऊँचे स्थानसे गिर-कर मरनेकी चेष्टा करनेपर भी जीवित बच जाते हैं तथा जो शस्त्रका अपने ऊपर आघात करके भी मृत्युसे वञ्चित रह जाते हैं, वे सब सम्पूर्ण लोकसे बहिष्कृत हैं। इनके साथ भोजन या निवास नहीं करना चाहिये। ये सब-के-सब एक चान्द्रायण अथवा दो तप्तकृच्छ्रव्रत करनेसे शुद्ध होते हैं। कुत्ते, सियार और वानर आदि जन्तुओंके काटनेपर तथा मनुष्यद्वारा दाँतसे काटे जानेपर भी मनुष्य दिन, रात अथवा संध्या कोई भी समय क्यों न हो, तुरत स्नान कर लेनेपर शुद्ध हो जाता है। जो ब्राह्मण अज्ञानसे—अनजानमें किसी प्रकार चाण्डालका अन्न खा लेता है, वह गोमूत्र और यावकका आहार करके पंद्रह दिनमें शुद्ध होता है। गौ अथवा ब्राह्मणका घर जलाकर, फाँसी आदि लगाकर मरे हुए मनुष्यका स्पर्श करके तथा उसके बन्धनोंको काटकर ब्राह्मण अपनी शुद्धिके लिये एक कृच्छ्रव्रतका आचरण करे। माता, गुरुपत्नी, पुत्री, बहिन और पुत्रवधूसे समागम करनेवाला तो प्रज्वलित अग्निमें प्रवेश कर जाय। उसके लिये दूसरा कोई शुद्धिका उपाय नहीं है। रानी, संन्यासिनी, धाय, अपनेसे श्रेष्ठ वर्णकी स्त्री तथा समान गोत्रवाली स्त्रीके साथ समागम करनेपर मनुष्य दो कृच्छ्रव्रतका अनुष्ठान करे। पिताके गोत्र अथवा माताके गोत्रमें उत्पन्न होनेवाली अन्यान्य स्त्रियों तथा सभी परस्त्रियोंसे अनुचित सम्बन्ध रखनेवाला पुरुष उस पापसे हटकर अपनी शुद्धिके लिये कृच्छ्रशान्तपन-व्रत करे। द्विजगण खूब तपाये हुए कुशोदक-को केवल एक बार पाँच राततक पीकर वेश्यागमनके पापका निवारण करते हैं। गुरुतल्पगामीके लिये जो व्रत है, वही कुछ लोग गोघातकके लिये भी बताते हैं और कुछ विद्वान् अवकीर्णी (धर्मभ्रष्ट) के लिये भी उसी व्रतका विधान करते हैं। जो डंडेसे गौके ऊपर प्रहार करके उसे मार गिराता है, उसके लिये गोवधका जो सामान्य प्रायश्चित्त है, उससे दूना व्रत करनेका विधान है। तभी वह व्रत उसके पापको शुद्ध कर सकता है। गौको हाँकनेके लिये अँगूठेके बराबर मोटी, बाँहके बराबर बड़ी पल्लवयुक्त और गीली पतली डालका डंडा उचित बताया गया है। यदि गौओंके मारनेपर उनका गर्भ भी हो और वह मर जाय तो उनके लिये पृथक्-पृथक् एक-एक कृच्छ्रव्रत करे। यदि कोई काठ, ढेला, पत्थर अथवा किसी प्रकारके शस्त्रद्वारा गौओंको मार डाले तो भिन्न-भिन्न शस्त्रके लिये शास्त्रमें इस प्रकार प्रायश्चित्त बताया गया है। काष्ठसे मारनेपर शान्तपन-

---

* मनुष्य बलके अभिमानसे जो क्रूरतापूर्ण कर्म करता है, उसे 'साहस' कहते हैं। उसके तीन भेद हैं—प्रथम, मध्यम और उत्तम। फल, मूल, जल आदि और खेतकी सामग्रीको नष्ट करना 'प्रथम साहस' माना गया है। वस्त्र, पशु, अन्न, पान और घरकी सामग्री आदिकी लूट-खसोट करना 'मध्यम साहस' कहा गया है। जहर देकर या हथियारसे किसीको मारना, परायी स्त्रियोंसे बलात्कार करना तथा अन्यान्य प्राणनाशक कार्य करना 'उत्तम साहस'के अन्तर्गत है। प्रथम साहसका दण्ड है कम-से-कम सौ पण, मध्यम साहसका दण्ड कम-से-कम पाँच सौ पण हैं। उत्तम साहसमें कम-से-कम एक हजार पण दण्ड लगाया जाता है। इसके सिवा, अपराधीका वध या अङ्ग-भङ्ग अथवा सर्वस्व-हरण या नगरसे निर्वासन आदि भी 'उत्तम साहस'के दण्ड बताये गये हैं; जैसा कि नारद-स्मृतिमें कहा गया है—

तस्य दण्ड क्रियापेक्षः प्रथमस्य शतावरः।
मध्यमस्य तु शास्त्रज्ञैर्दृष्टः पञ्चशतावर॥
उत्तमे साहसे दण्डः सहस्रावर इष्यते।
वध. सर्वस्वहरण पुरान्निर्वासनाङ्कने॥
तदङ्गच्छेद इत्युक्तो दण्ड उत्तमसाहसे॥
(विवादपद ७–९)

व्रतका विधान है। ढेलेसे मारनेपर प्राजापत्यव्रत करना चाहिये। पत्थरसे आघात करनेपर तप्तकृच्छ्र और किसी शस्त्रसे मारनेपर अतिकृच्छ्रव्रत करना चाहिये। यदि कोई गौओं और ब्राह्मणोंके लिये (अच्छी नीयतसे) ओषधि, तेल एवं भोजन दे और उसके देनेके बाद उसकी मृत्यु हो जाय तो उस दशामें कोई प्रायश्चित्त नहीं है। तेल और दवा पीनेपर अथवा दवा खानेपर या शरीरमें धँसे हुए लोहे या काँटे आदिको निकालने-का प्रयत्न करनेपर मृत्यु हो जाय तो भी कोई प्रायश्चित्त नहीं है। चिकित्सा या दवा करनेके लिये बछड़ोंका कण्ठ बाँधनेसे अथवा शामको उनकी रक्षाके लिये उन्हें घरमें रोकने या बाँधनेसे भी कोई दोष नहीं होता।

(उपर्युक्त पापोंका प्रायश्चित्त करते समय मनुष्यको इस विधिसे मुण्डन कराना चाहिये)—एक पाद (चौथाई) प्रायश्चित्त करनेपर कुछ रोममात्र कटा देने चाहिये। दो पादके प्रायश्चित्तमें केवल दाढ़ी-मूँछ मुड़ा ले, तीन पादका प्रायश्चित्त करते समय शिखाके सिवा और सब बाल बनवा दे और पूरा प्रायश्चित्त करनेपर सब कुछ मुड़ा देना चाहिये। यदि स्त्रियोंको प्रायश्चित्त करना पड़े तो उनके सब केश समेटकर दो अंगुल कटा देना चाहिये। इसी प्रकार स्त्रियोंके सिर मुड़ानेका विधान है। स्त्रीके लिये सारे बाल कटाने और वीरासनसे बैठनेका नियम नहीं है। उनके लिये गोशालामें निवास करनेकी विधि नहीं है। यदि गौ कहीं जाती हो तो उसके पीछे नहीं जाना चाहिये। राजा, राजकुमार अथवा बहुत-से शास्त्रोंका ज्ञाता ब्राह्मण हो तो उन सबके लिये केश मुड़ाये बिना ही प्रायश्चित्त बताना चाहिये। उन्हें केशोंकी रक्षाके लिये दूने व्रतका पालन करनेकी आज्ञा दे। दूना व्रत करनेपर उसके लिये दक्षिणा भी दूनी ही होनी चाहिये। यदि ऐसा न करे तो हत्या करनेवालेका पाप नष्ट नहीं होता और दाता नरकमें पड़ता है। जो लोग वेद और स्मृतिके विरुद्ध व्रत-प्रायश्चित्त बताते हैं, वे धर्मपालनमें विघ्न डालनेवाले हैं। राजा उन्हें दण्डद्वारा पीडित करे, परंतु किसी कामना या स्वार्थसे मोहित होकर राजा उन्हें कदापि दण्ड न दे; नहीं तो, उनका पाप सौगुना होकर उस राजापर ही पड़ता है। तदनन्तर प्रायश्चित्त पूरा कर लेनेपर ब्राह्मणोंको भोजन करावे। बीस गाय और एक बैल उन्हें दक्षिणामें दे। यदि गौओंके अङ्गोंमें घाव होकर उसमें कीड़े पड़ जायँ अथवा मक्खी आदि लगने लगें और इन कारणोंसे उन गौओंकी मृत्यु हो जाय तो उन गायोंको रखनेवाला पुरुष आधे कृच्छ्र-व्रतका अनुष्ठान करे और अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणा दे। इस प्रकार प्रायश्चित्त करके श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन करावे और कम-से-कम एक माशा सुवर्ण दान करे तो शुद्धि होती है।

जलके भीतरकी, बाँबीकी, चूहेके बिलकी, ऊसर भूमिकी, रास्तेकी, श्मशान-भूमिकी तथा शौचसे बची हुई—ये सात प्रकारकी मृत्तिका काममें नहीं लानी चाहिये। ब्राह्मण-को प्रयत्नपूर्वक इष्टापूर्त कर्म करने चाहिये। इष्ट (यज्ञ-याग आदि) से वह स्वर्ग पाता है और पूर्त कर्मसे वह मोक्ष-सुखका भागी होता है। धनकी अपेक्षा रखनेवाले यज्ञ, दान आदि कर्म इष्ट कहलाते हैं और जलाशय बनवाना आदि कार्य पूर्त कहा जाता है। विशेषतः बगीचा, किसी देवताके लिये बने हुए तालाब, बावड़ी, कुआँ, पोखरा और देवमन्दिर—ये यदि गिरते या नष्ट होते हों तो जो इनका उद्धार करता है, वह पूर्तकर्मका फल भोगता है; क्योंकि ये सब पूर्त कर्म हैं। सफेद गायका मूत्र, काली गौका गोबर, ताँबेके रंगवाली गायका दूध, सफेद गायका दही और कपिला गायका घी—इन सब वस्तुओंको लेकर एकत्र करे तो वह पञ्चगव्य बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला होता है। कुशोंद्वारा लाये हुए तीर्थ-जल और नदी जलके साथ उक्त सभी द्रव्योंको पृथक्-पृथक् प्रणवमन्त्रसे लाकर प्रणव-द्वारा ही उन्हें उठावे, प्रणव-जप करते हुए ही उनका आलोडन करे और प्रणवके उच्चारणपूर्वक ही पीवे। पलाश वृक्षके बिचले पत्तेमें अथवा ताँबेके शुभ पात्रमें अथवा कमल-के पत्तेमें या मिट्टीके बर्तनमें कुशोदकसहित उस पञ्चगव्यको पीना चाहिये।

एक सूतकमें दूसरा सूतक उपस्थित हो जाय तो दूसरेमें दोष नहीं लगता। पहले सूतकके साथ ही उसकी शुद्धि हो जाती है। एक जननाशौचके साथ दूसरा जननाशौच और एक मरणाशौचके साथ दूसरा मरणाशौच भी शुद्ध हो जाता है। एक मासके भीतर गर्भस्राव हो तो तीन दिनका अशौच बताये। दो माससे ऊपर होनेपर जितने महीनेमें गर्भस्राव हो, उतनी ही रात्रियोंमें उसके अशौचकी निवृत्ति होती है। साध्वी रजस्वला स्त्री रज बंद हो जानेपर स्नानमात्रसे शुद्ध होती है। विवाहसे सातवें पदपर अर्थात् सप्तपदीकी विधि पूरी होनेपर अपने पितृ-सम्बन्धी गोत्रसे च्युत हो जाती है यानी उसके पतिका गोत्र हो जाता है, अतः उसके लिये श्राद्ध और तर्पण पतिके गोत्रसे ही करने चाहिये। पिण्ड-

दानमें पति और पत्नी दोनोंका उद्देश्य होता है; अतः प्रत्येक पिण्डमें दो नामसे संकल्प होना चाहिये। तात्पर्य यह है कि पिता या पितामह आदिको सपत्नीक विशेषण लगाकर पिण्डदान करना चाहिये। इस प्रकार छः व्यक्तियोंके लिये तीन पिण्ड देने योग्य हैं। ऐसा दाता मोहमें नहीं पड़ता। माता अपने पतिके साथ विश्वेदेवपूर्वक श्राद्धका उपभोग करती है। इसी प्रकार पितामही और प्रपितामही भी अपने-अपने पतिके ही साथ श्राद्ध-भोग करती हैं। प्रत्येक वर्षमें माता-पिताका एकोद्दिष्ट श्राद्धद्वारा सत्कार करे। उस वार्षिक श्राद्धमें विश्वेदेवका पूजन नहीं किया जाता। अतः उनके बिना ही वह श्राद्धभोजन करावे। उसमें एक ही पिण्ड दे। नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धिश्राद्ध तथा पार्वण—विद्वान् पुरुषोंको ये पाँच प्रकारके श्राद्ध जानने चाहिये। ग्रहण, संक्रान्ति, पूर्णिमा या अमावास्या पर्व, उत्सवकाल तथा महालयके अवसरपर मनुष्य तीन पिण्ड दे और मृत्युतिथिको एक ही पिण्ड दे। जिस कन्याका विवाह नहीं हुआ है, वह पिण्ड, गोत्र और सूतकके विषयमें पिताके गोत्रसे पृथक् नहीं है। पाणिग्रहण और मन्त्रोंद्वारा वह अपने पिताके गोत्रसे पृथक् होती है। जिस कन्याका विवाह जिस वर्णके साथ होता है, उसके समान उसे सूतक भी लगता है। उसके लिये पिण्ड और तर्पण भी उसी वर्णके अनुसार होने चाहिये। विवाह हो जानेपर चौथी रातमें वह पिण्ड, गोत्र और सूतकके विषयमें अपने पतिके साथ एक हो जाती है। मृत व्यक्तिके प्रति हितबुद्धि रखनेवाले बन्धुजनोंको शवदाहके प्रथम, द्वितीय, तृतीय अथवा चतुर्थ दिन अस्थि-संचय करना चाहिये अथवा ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंका अस्थि-संचय क्रमशः चौथे, पाँचवें, सातवें और नवें दिन भी कर्तव्य बताया गया है। जिस मृत व्यक्तिके लिये ग्यारहवें दिन वृषोत्सर्ग किया जाता है, वह प्रेतलोकसे मुक्त और स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। नाभिके बराबर जलमें खड़ा होकर मन-ही-मन यह चिन्तन करे कि मेरे पितर आवें और यह जलाञ्जलि ग्रहण करें। दोनों हाथोंको संयुक्त करके जलसे पूर्ण करे और गोशृङ्गमात्र जल उठाकर उसे पुनः जलमें डाल दे। जलमें दक्षिणकी ओर मुँह करके खड़ा हो आकाशमें जल गिराना चाहिये; क्योंकि पितरोंका स्थान आकाश और दिशा दक्षिण है। देवता आप (जल) कहे गये हैं और पितरोंका नाम भी आप है; अतः पितरोंके हितकी इच्छा रखनेवाला पुरुष उनके लिये जलमें ही जल दे। जो दिनमें सूर्यकी किरणोंसे तपता है, रातमें नक्षत्रोंके तेज तथा वायुका स्पर्श पाता है और दोनों संध्याओंके समय भी उक्त दोनों वस्तुओंका सम्पर्क लाभ करता है, वह जल सदा पवित्र माना गया है। जो अपने स्वाभाविक रूपमें हो, जिसमें किसी अपवित्र वस्तुका मेल न हुआ हो, वह जल सदा पवित्र है। ऐसा जल किसी पात्रमें हो या पृथ्वीपर, सदा शुद्ध माना गया है। देवताओं और पितरोंके लिये जलमें ही जलाञ्जलि दे और जो बिना संस्कारके ही मरे हैं, उनके लिये विद्वान् पुरुष भूमिपर जलाञ्जलि दे। श्राद्ध और होमके समय एक हाथसे पिण्ड एवं आहुति दे; किंतु तर्पणमें दोनों हाथोंसे जल देना चाहिये। यह शास्त्रोंद्वारा निश्चित धर्म है।

पापियोंको प्राप्त होनेवाली नरकोंकी यातनाओंका वर्णन, भगवद्भक्तिका निरूपण तथा धर्मराजके उपदेशसे भगीरथका गङ्गाजीको लानेके लिये उद्योग

धर्मराज कहते हैं—राजा भगीरथ! अब मैं पापोंके भेद और स्थूल यातनाओंका वर्णन करूँगा। तुम धैर्य धारण करके सुनो; क्योंकि नरक बड़े भयंकर होते हैं। जो दुरात्मा पापी सदा जिन नरकाग्नियोंमें पकाये जाते हैं, वे नरक पापका भयंकर फल देनेवाले हैं। मैं उन सबका वर्णन करता हूँ। उनके नाम इस प्रकार हैं—तपन, बालुका, रौरव, महारौरव, कुम्भ, कुम्भीपाक, निरुच्छ्वास, कालसूत्र, प्रमर्दन, भयकर असिपत्रवन, लालाभक्ष, हिमोत्कट, मूषावस्था, वसारूप, वैतरणी नदी, श्वभक्ष्य, मूत्रपान, पुरीषह्रद, तप्तशूल, तप्तशिला, शाल्मली वृक्ष, शोणित कूप, भयानक शोणित-भोजन, वह्निज्वालानिवेशन, शिलावृष्टि, शस्त्रवृष्टि, अग्निवृष्टि, क्षारोदक, उष्णतोय, तप्तायःपिण्डभक्षण, अधःशिरःशोषण, मरुप्रतपन, पाषाणवर्षा, कृमिभोजन, क्षारोदपान, भ्रमन, क्रकचदारण, पुरीष-लेपन, पुरीष-भोजन, महाघोर रेतःपान, सर्वसन्धिदाहन, धूमपान, पाशबन्ध, नानाशूलानुलेपन, अङ्गार-शयन, मुसलमर्दन, विविधकाष्ठयन्त्र, कर्षण, छेदन, पतनोत्पतन, गदादण्डादिपीडन, गजदन्तप्रहरण, नानासर्प-दंशन, नासामुखशीताम्बुसेचन, घोरक्षाराम्बुपान, लवण-

भक्षण, स्नायुच्छेद, स्नायुबन्ध, अस्थिच्छेद, क्षाराम्बुपूर्णरन्ध्र-प्रवेश, मास-भोजन, महाघोर पित्तपान, श्लेष्म-भोजन, वृक्षाग्रपातन, जलान्तर्मज्जन, पाषाणधारण, कण्टकोपरिशयन, पिपीलिकादंशन, वृश्चिकपीडन, व्याघ्रपीडा, शृगालीपीडा, महिष-पीडन, कर्दमशयन, दुर्गन्धपरिपूर्ण, बहुशस्त्रास्त्रशयन, महातिक्तनिषेवण, अत्युष्णतैलपान, महाकटुनिषेवण, कषायोदक-पान, तप्तपाषाण-तक्षण, अत्युष्णशीत-स्नान, दशन-शीर्णन, तप्तायःशयन और अयोभार-बन्धन। महाभाग! इस तरह करोड़ों प्रकारकी नरक-यातनाएँ होती हैं। जिनका सहस्रों वर्षोंमें भी मैं वर्णन नहीं कर सकता।

भूपाल! इन नरकोंमेंसे जिस पापीको जो प्राप्त होता है, वह सब मैं बतलाऊँगा। यह सब मेरे मुखसे सुनो। ब्रह्म-हत्यारा, शराबी, सुवर्णकी चोरी करनेवाला, गुरुपत्नीगामी—ये महापातकी हैं। इनसे संसर्ग रखनेवाला पाँचवाँ महापातकी है*। जो पङ्क्तिभेद करता, बलिवैश्वदेवहीन होनेके कारण व्यर्थ (केवल शरीरपोषणके लिये ही) पाक बनाता, सदा ब्राह्मणोंको लाञ्छित करता, ब्राह्मणों या गुरुजनोंपर हुक्म चलाता और वेद बेचता है, ये पाँच प्रकारके पापी ब्रह्म-घातक कहे गये हैं। 'मैं आपको धन आदि दूँगा' यह आशा देकर जो ब्राह्मणको बुलाता है और पीछे 'नहीं है' ऐसा कहकर उसे सूखा जवाब दे देता है, उसे ब्रह्म-हत्यारा कहा गया है। जो स्नान अथवा पूजनके लिये जाते हुए ब्राह्मणके कार्यमें विघ्न डालता है, उसे भी ब्रह्मघाती कहते हैं। जो परायी निन्दा और अपनी प्रशंसामें लगा रहता है तथा जो असत्य-भाषणमें रत रहता है, वह ब्रह्महत्यारा कहा गया है। अधर्मका अनुमोदन करनेवालेको भी ब्रह्मघाती कहते हैं। जो दूसरोंको उद्वेगमें डालता, दूसरोंके दोषोंकी चुगली खाता और पाखण्डपूर्ण आचारमें तत्पर रहता है, उसे ब्रह्महत्यारा बताया गया है। जो प्रतिदिन दान लेता, प्राणियोंके वधमें तत्पर रहता तथा अधर्मका अनुमोदन करता है, उसे भी ब्रह्मघाती कहा गया है। राजन्! इस तरह नाना प्रकारके पाप ब्रह्महत्याके तुल्य बताये गये है।

अब मदिरापानके समान पापका संक्षेपसे वर्णन करता हूँ। गणान्न-भोजन (कई जगहसे भोजन लेकर खाना), वेश्यासेवन करना और पतित पुरुषोंका अन्न भोजन करना सुरापानके तुल्य माना गया है। उपासनाका त्याग, देवल पुरुष (मन्दिरके पुजारी) का अन्न खाना तथा शराब पीनेवाली स्त्रीसे सम्बन्ध रखना मदिरापानके समान माना गया है। जो द्विज शूद्रके यहाँ भोजन करता है, उसे सब धर्मोंसे बहिष्कृत शराबी ही समझना चाहिये। जो शूद्रके आज्ञा-नुसार दासका कर्म करता है, वह नराधम ब्राह्मण मदिरा-पानके समान पापका भागी होता है। इस तरह अनेक प्रकारके पाप मदिरापानके तुल्य माने गये हैं।

अब मैं सुवर्णकी चोरीके समान पापका वर्णन करता हूँ, सुनो। कंद, मूल, फल, कस्तूरी, रेशमी वस्त्र तथा रत्नोंकी चोरीको सदा सुवर्णकी चोरीके ही समान माना गया है। ताँबा, लोहा, राँगा, काँस, घी, शहद और सुगन्धित द्रव्योंका अपहरण करना सुवर्णकी चोरीके समान माना गया है। सुपारी, जल, चन्दन तथा कपूरका अपहरण भी सुवर्णकी चोरीके समान है। श्राद्धका त्याग, धर्मकार्यका लोप करना और यति पुरुषोंकी निन्दा करना भी सुवर्णकी चोरीके समान माना गया है। भोजनके योग्य पदार्थोंका अपहरण, विविध प्रकारके अनाजोंकी चोरी तथा रुद्राक्षका अपहरण भी सुवर्णकी चोरीके समान माना गया है।

अब गुरुपत्नीगमनके समान पापका वर्णन किया जाता है। भगिनी, पुत्र-वधू तथा रजस्वला स्त्रीके साथ संगम करना गुरुपत्नीगमनके समान माना गया है। नीच जातिकी स्त्रीसे सम्बन्ध रखना, मदिरा पीनेवाली स्त्रीसे सहवास करना तथा परायी स्त्रीके साथ सम्भोग करना गुरुतल्पगमनके समान माना गया है। भाईकी स्त्रीके साथ गमन, मित्रकी स्त्रीका सेवन तथा अपनेपर विश्वास करनेवाली स्त्रीके सतीत्वका अपहरण भी गुरुतल्पगमनके समान माना गया है। असमयमें मैथुन कर्म करना, पुत्रीगमन करना तथा धर्मका लोप और शास्त्रकी निन्दा करना—यह सब गुरुपत्नीगमनके समान माना गया है। राजन्! इस प्रकारके पाप महापातक कहे गये हैं। इनमेंसे किसी एकके साथ भी संसर्ग रखनेवाला पुरुष उन्हींके समान हो जाता है। शान्तचित्त महर्षियोंने जिस किसी प्रकार प्रायश्चित्त आदिकी व्यवस्थाद्वारा इन पापोंके निवारणका उपाय देखा है।

भूपते! जो पाप प्रायश्चित्तसे रहित हैं, उनका वर्णन सुनो। वे पाप समस्त पापोंके तुल्य तथा बड़े भारी नरक देनेवाले हैं। ब्रह्महत्या आदि पापोंके निवारणका उपाय तो किसी प्रकार

---

* ब्रह्महा च सुरापी च स्तेयी च गुरुतल्पग ॥
महापातकिनस्त्वेते तत्संसर्गी च पञ्चम. ।
(१५ । २२-२३)

हो सकता है; परंतु जो ब्राह्मणसे द्वेष करता है, उसका कहीं भी निस्तार नहीं होता । नरेश्वर ! जो विश्वासघाती, कृतघ्न तथा शूद्रजातीय स्त्रीका सङ्ग करनेवाले हैं, उनका उद्धार कभी नहीं होता । जिनका शरीर निन्दित अन्नसे पुष्ट हुआ है तथा जिनका चित्त वेदोंकी निन्दामें ही रत है और जो भगवत्-कथा-वार्ता आदिकी निन्दा करते हैं, उनका इहलोक तथा परलोकमें कहीं भी उद्धार नहीं होता । प्रायश्चित्तहीन और भी बहुत-से पाप हैं, उनका परिचय मेरे नरक-वर्णनके साथ सुनो । जो महापातकी बताये गये हैं, वे उन प्रत्येक नरकमें एक-एक युग रहते हैं और अन्तमें इस पृथ्वीपर आकर वे सात जन्मोंतक गदहे होते हैं, तदनन्तर वे पापी दस जन्मोंतक घावसे भरे शरीरवाले कुत्ते होते हैं, फिर सौ वर्षोंतक उन्हें विष्ठाका कीडा होना पडता है । तदनन्तर बारह जन्मोंतक वे सर्प होते हैं । राजन् ! इसके बाद एक हजार जन्मोंतक वे मृग आदि पशु होते हैं । फिर सौ वर्षोंतक स्थावर (वृक्ष आदि) योनिमें जन्म लेते हैं । तत्पश्चात् उन्हें गोधा (गोह) का शरीर प्राप्त होता है । फिर सात जन्मोंतक वे पापाचारी चाण्डाल होते हैं । इसके बाद सोलह जन्मोंतक उन्हें नीच जातियोंमें जन्म लेना पड़ता है । फिर दो जन्मतक वे दरिद्र, रोगपीडित तथा सदा प्रतिग्रह लेनेवाले होते हैं, इससे उन्हें फिर नरकगामी होना पडता है । जिनका चित्त असूया (गुणोंमें दोषदृष्टि) से व्याप्त है, उनके लिये रौरव नरककी प्राप्ति बतायी गयी है । वहाँ दो कल्पोंतक स्थित रहकर वे सौ जन्मोंतक चाण्डाल होते हैं । जो गाय, अग्नि और ब्राह्मणके लिये 'न दो' ऐसा कहकर बाधा डालते हैं, वे सौ बार कुत्तोंकी योनिमें जन्म लेकर अन्तमें चाण्डालोंके घर उत्पन्न होते हैं । इसके बाद वे विष्ठाके कीड़े होते हैं । फिर तीन जन्मोंतक व्याघ्र होकर अन्तमें इक्कीस युगोंतक नरकमें पडे रहते हैं । जो परायी निन्दामें तत्पर, कटु-भाषी और दानमें विघ्न डालनेवाले होते हैं, उनके पापका यह फल है । चोर मुसल और ओखलीके द्वारा चूर्ण किये जाते हैं । उसके बाद उन्हें तीन वर्षोंतक तपाया हुआ पत्थर उठाना पडता है, तदनन्तर वे सात वर्षोंतक कालसूत्रसे विदीर्ण किये जाते हैं । उस समय पराये धनका अपहरण करनेवाले वे चोर अपने पाप कर्मके लिये शोक करते हुए कर्मके फलसे निरन्तर नरकाग्निमें पकाये जाते हैं । जो दूसरोंके दोष बताते या चुगुली खाते हैं, उन्हें जिस भयंकर नरककी प्राप्ति होती है; वह सुनो । उन्हें एक सहस्र युगतक तपाये हुए लोहेका पिण्ड भक्षण करना पड़ता है । अत्यन्त भयानक सँड़सोंसे उनकी जीभको पीड़ा दी जाती है और वे अत्यन्त घोर निरुच्छ्वास नामक नरकमें आधे कल्पतक निवास करते हैं । अब पर-स्त्री-लम्पट पुरुषोंको प्राप्त होनेवाले नरकका तुमसे वर्णन करता हूँ । तपाये हुए ताँबेकी स्त्रियाँ सुन्दर रूप और आभरणोंसे युक्त होकर उनके साथ हठपूर्वक दीर्घकालतक रमण करती हैं । उनका रूप वैसा ही होता है, जैसी स्त्रियोंके साथ वे इस लोकमें सम्बन्ध रखते रहे हैं । वह पुरुष उनके भयसे भागता है और वे बलपूर्वक उसे पकड लेती हैं तथा उसके पाप कर्मका परिचय देती हुई उन्हें क्रमशः विभिन्न नरकोंमें पहुँचाती हैं । भूपाल ! इस लोकमें जो स्त्रियाँ अपने पतिको त्यागकर दूसरे पुरुषकी सेवा स्वीकार करती हैं, उन्हें यमलोकमें तपाये हुए लोहेके बलवान् पुरुष लोहेकी तपी हुई शय्यापर बलपूर्वक गिराकर उनके साथ बहुत समयतक रमण करते हैं । उनसे छूटनेपर वे स्त्रियाँ अग्निके समान प्रज्वलित लोहेके खम्भेका आलिङ्गन करके एक हजार वर्षतक खडी रहती हैं । तत्पश्चात् उन्हें नमक मिलाये जलसे नहलाया जाता है और खारे पानीका ही सेवन कराया जाता है । उसके बाद वे सौ वर्षोंतक सभी नरकोंकी यातनाएँ भोगती हैं । जो मनुष्य ब्राह्मण, गौ और श्रेष्ठ क्षत्रिय राजाका इस लोकमें वध करता है, वह भी पाँच कल्पोंतक सम्पूर्ण यातनाओंको भोगता है । जो महापुरुषोंकी निन्दाको आदरपूर्वक सुनता है, उसका फल सुनो; ऐसे लोगोंके कानोंमें तपाये हुए लोहेकी बहुत-सी कीलें ठोंक दी जाती हैं । तत्पश्चात् कानोंके उन छिद्रोंमें अत्यन्त गरम किया हुआ तेल भर दिया जाता है । फिर वे कुम्भीपाक नरकमें पडते हैं । जो लोग भगवान् शिव और विष्णुसे विमुख एवं नास्तिक हैं, उनको मिलनेवाले फलोंका वर्णन करता हूँ । वे यमलोकमें करोड़ों वर्षोंतक केवल नमक खाते हैं । उसके बाद एक कल्पतक तपी हुई बालूसे पूर्ण रौरव नरकमें डाले जाते हैं । राजन् ! इसी प्रकार अन्य नरकोंमें भी वे पापाचारी जीव अपने पापोंका फल भोगते हैं । जो नराधम कोपपूर्ण दृष्टिसे ब्राह्मणोंकी ओर देखते हैं, उनकी आँखमें हजारों तपी हुई सूइयाँ चुभो दी जाती हैं । नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर वे नमकीन पानीकी धारासे भिगोये जाते हैं, इसके बाद उन पापकर्मियोंको भयंकर क्रकचों (आरों) से चीरा जाता है । राजन् ! जो लोग विश्वासघाती, मर्यादा तोडनेवाले तथा पराये अन्नके लोभी हैं, उन्हें जिस भयंकर नरककी प्राप्ति होती है, वह सुनो । वे अपना ही मांस खाते हैं और उनके

शरीरको वहाँ प्रतिदिन कुत्ते नोच खाते हैं। उन्हें सभी नरकोंमें एक-एक वर्ष निवास करना पड़ता है। जो सदा दान ही लिया करते हैं, जो केवल नक्षत्रोंके ही पढ़नेवाले (नक्षत्र-विद्यासे जीविका करनेवाले) हैं तथा जो सदा देवलक (पुजारी) का अन्न भोजन करते हैं, उनकी क्या दशा होती है, वह भी मुझसे सुनो। राजन्! वे पापसे पूर्ण जीव एक कल्पतक इन सभी यातनाओंमें पकाये जाते हैं और वे सदा दुःखी रहकर निरन्तर कष्ट भोगते रहते हैं। तत्पश्चात् कालसूत्रसे पीड़ित हो तेलमें डुबोये जाते हैं। फिर उन्हें नमकीन जलसे नहलाया जाता है और उन्हें मल-मूत्र खाना पड़ता है। इसके बाद वे पृथ्वीपर आकर म्लेच्छ जातिमें जन्म लेते हैं। जो सदा दूसरोंको उद्वेगमें डालनेवाले हैं, वे वैतरणी नदीमें जाते हैं। पञ्च महायज्ञोंका त्याग करनेवाले पुरुष लालाभक्ष नरकमें पड़ते हैं। वहाँ उन्हें लार खाना पड़ता है। उपासनाका त्याग करनेवाला पुरुष रौरव नरकमें जाता है। भूपाल! जो ब्राह्मणोंके गाँवसे 'कर' लेते हैं, वे जबतक चन्द्रमा और तारोंकी स्थिति रहती है, तबतक इन नरक-यातनाओंमें पकाये जाते हैं। जो राजा गाँवोंमें अधिक कर लगाता है, वह पाँच कल्पोंतक सहस्रों पीढ़ियोंके साथ नरक भोगता है। राजन्! जो पापी ब्राह्मणोंके गाँवसे कर लेनेकी अनुमति देता है, उसने मानो सहस्रों ब्रह्महत्याएँ कर डालीं। वह दो चतुर्युगीतक महाघोर कालसूत्रमें निवास करता है।

जो महापापी अयोनि (योनिसे भिन्न स्थान) वियोनि (विजातीय योनि) और पशुयोनिमें वीर्यत्याग करता है, वह यमलोकमें वीर्य ही भोजनके लिये पाता है। तत्पश्चात् चर्बीसे भरे हुए कुएँमें डाला जाकर वहाँ सात दिव्य वर्षोंतक केवल वीर्य भोजन करके रहता है। उसके बाद मनुष्य होकर सम्पूर्ण लोकोंमें निन्दाका पात्र बनता है। राजन्! जो उपवासके दिन दाँतुन करता है, वह चार युगोंतक व्याघ्रभक्ष नामक घोर नरकमें पड़ा रहता है, जिसमें व्याघ्र उसका मांस खाते हैं। जो अपने कर्मोंका परित्याग करनेवाला है, उसे विद्वान् पुरुष पाखण्डी कहते हैं। उसका साथ करनेवाला भी उसीके समान हो जाता है। वे दोनों अत्यन्त पापी हैं और सहस्रों कल्पोंतक क्रमशः नरक यातनाएँ भोगते हैं। राजन्! जो देवता-सम्बन्धी द्रव्यका अपहरण करनेवाले और गुरुका धन चुरानेवाले हैं, वे ब्रह्महत्याके समान पापका फल भोगते हैं। जो अनाथका धन हड़प लेते और अनाथसे द्वेष करते हैं, वे कोटिकल्पसहस्रोंतक नरकमें निवास करते हैं। जो स्त्रियों और शूद्रोंके समीप वेदाध्ययन करते हैं, उनके पापका फल बतलाता हूँ, ध्यान देकर सुनो। उनका सिर नीचे करके पैर ऊपर कर दिया जाता है और दोनों पैरोंको दो खंभोंमें काँटेसे जड़ दिया जाता है। फिर वे ब्रह्माजीके एक वर्षतक प्रतिदिन धुआँ पीकर रहते हैं। जो जल और देवमन्दिरमें तथा उनके समीप अपने शारीरिक मलका त्याग करता है, वह भ्रूणहत्याके समान अत्यन्त भयानक पापको प्राप्त होता है। जो ब्राह्मणका धन तथा सुगन्धित काष्ठ चुराते हैं, वे चन्द्रमा और तारोंकी स्थितिपर्यन्त घोर नरकमें पड़े रहते हैं। राजन्! ब्राह्मणके धनका अपहरण इहलोक और परलोकमें भी दुःख देनेवाला है। इस लोकमें तो वह धनका नाश करता है और परलोकमें नरककी प्राप्ति कराता है।

जो झूठी गवाही देता है, उसके पापका फल सुनो। वह जबतक चौदह इन्द्रोंका राज्य समाप्त होता है, तबतक सम्पूर्ण यातनाओंको भोगता रहता है। इस लोकमें उसके पुत्र-पौत्र नष्ट हो जाते हैं और परलोकमें वह रौरव तथा अन्य नरकोंको क्रमशः भोगता है। जो मनुष्य अत्यन्त क्रोधी और मिथ्यावादी हैं, उनके मुँहमें सर्पके समान जोंकें लग जाती हैं। इस अवस्थामें उन्हें साठ हजार वर्षोंतक रहना पड़ता है। तत्पश्चात् उन्हें खारे पानीसे नहलाया जाता है। मनुजेश्वर! जो ऋतुकालमें अपनी स्त्रीसे सहवास नहीं करते वे ब्रह्महत्याका फल पाते और घोर नरकमें पड़ते हैं। जो

किसीको अत्याचार करते देखकर शक्ति होते हुए भी उसका निवारण नहीं करता, वह भी उस अत्याचारके पापका भागी होता है और वे दोनों नरकमे पडते है। जो लोग पापियोंके पापोंकी गिनती करके दूसरोंको बताते हैं, वे पाप सत्य होनेपर भी उनके पापके भागी होते हैं। राजन्! यदि वे पाप झूठे निकले तो कहनेवालेको दूने पापका भागी होना पड़ता है। जो पापहीन पुरुषमें पापका आरोप करके उसकी निन्दा करता है, वह चन्द्रमा और तारोंके स्थिति-कालतक घोर नरकमे रहता है। जो व्रत लेकर उन्हें पूर्ण किये विना ही त्याग देता है, वह असिपत्रवनमें पीड़ा भोगकर पृथ्वीपर किसी अङ्गसे हीन होकर जन्म लेता है। जो मनुष्य दूसरोंद्वारा किये जानेवाले व्रतोंमें विघ्न डालता है, वह मनुष्य अत्यन्त दुःखदायक और भयंकर श्लेष्मभोजन नामक नरकमें, जहाँ कफ भोजन करना पड़ता है, जाता है। जो न्याय करने तथा धर्मकी शिक्षा देनेमें पक्षपात करता है, वह दस हजार प्रायश्चित्त कर ले तो भी उस पापसे उसका उद्धार नहीं होता*। जो अपने कटुवचनोंसे ब्राह्मणोंका अपमान करता है, वह ब्रह्महत्याको प्राप्त होता है और सम्पूर्ण नरकोंकी यातनाएँ भोगकर दस जन्मोंतक चाण्डाल होता है। जो ब्राह्मणको कोई चीज देते समय विघ्न डालता है, उसे ब्रह्महत्याके समान प्रायश्चित्त करना चाहिये। जो दूसरेका धन चुराकर दूसरोंको दान देता है, वह चुरानेवाला तो नरकमे जाता है और जिसका धन होता है, उसीको उस दानका फल मिलता है। जो कुछ देनेकी प्रतिज्ञा करके नहीं देता है, वह लालाभक्ष नरकमे जाता है। राजन्! जो संन्यासीकी निन्दा करता है, वह शिलायन्त्र नामक नरकमे जाता है। बगीचा काटनेवाले लोग इक्कीस युगोंतक श्वभोजन नामक नरकमें रहते है, जहाँ कुत्ते उनका मास नोचकर खाते हैं। फिर क्रमशः वह सभी नरकोंकी यातनाएँ भोगता है।

भूपते! जो देवमन्दिर तोड़ते, पोखरा नष्ट करते और फुलवारी उजाड़ देते हैं, वे जिस गतिको प्राप्त होते हैं, वह सुनो। वे इन सब यातनाओं (नरकों) में पृथक्-पृथक् पकाये जाते हैं। अन्तमें इक्कीस कल्पोंतक वे विष्ठाके कीड़े होते है। राजन्! उसके बाद वे सौ बार चाण्डालकी योनि-में जन्म लेते है। जो जूठा खाते और मित्रोंसे द्रोह करते हैं, उन्हे चन्द्रमा और सूर्यके स्थितिकालतक भयंकर नरक-यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। जो पितृयज्ञ और देवयज्ञका उच्छेद करते तथा वैदिक मार्गसे बाहर हो जाते हैं, वे पाखण्डीके नामसे प्रसिद्ध हैं। उन्हे सब प्रकारकी यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। राजा भगीरथ! इस प्रकार पापियोंके लिये अनेक प्रकारकी यातनाएँ हैं। प्रभो! मैं नरकों और उनकी यातनाओंकी गणना करनेमे असमर्थ हूँ। भूपते! पापों, यातनाओं तथा धर्मोंकी सख्या बतलानेके लिये संसारमें भगवान् विष्णुके सिवा दूसरा कौन समर्थ है? इन सब पापोंका धर्मशास्त्रकी विधिसे प्रायश्चित्त कर लेनेपर पाप-राशि नष्ट हो जाती है। धार्मिक कृत्योंमे जो न्यूनाधिकता रह जाती है, उसकी पूर्तिके लिये लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुके समीप पूर्वोक्त पापोंके प्रायश्चित्त करने चाहिये। गङ्गा,

तुलसी, सत्सङ्ग, हरिकीर्तन, किसीके दोष न देखना और हिंसासे दूर रहना—ये सब बातें पापोंका नाश करनेवाली होती है। भगवान् विष्णुको अर्पित किये हुए कर्म निश्चय ही सफल होते हैं। जो कर्म उन्हें अर्पित नहीं किये जाते, वे राखमें डाली हुई आहुतिके समान व्यर्थ होते हैं। नित्य, नैमित्तिक, काम्य तथा जो मोक्षके साधनभूत कर्म हैं, वे सब भगवान् विष्णुके समर्पित होनेपर सात्त्विक और सफल होते हैं।

भगवान् विष्णुकी उत्तम भक्ति सब पापोंका नाश करने-वाली है। नृपश्रेष्ठ! सात्त्विक, राजस और तामस आदि

* न्याये च धर्मशिक्षाया पक्षपात करोति यः।
न तस्य निष्कृतिर्भूय. प्रायश्चित्तायुतैरपि॥
(१५ । ११९)

भेदोंसे भक्ति दस* प्रकारकी जाननी चाहिये। वह पापरूपी वनको जलानेके लिये दावानलके समान है। राजन्! जो दूसरेका विनाश करनेके लिये भगवान् लक्ष्मीपतिका भजन किया जाता है, वह 'अधमा तामसी' भक्ति है; क्योंकि वह दुष्ट भाव धारण करनेवाली है। जो मनमें कपटबुद्धि रखकर, जैसे व्यभिचारिणी स्त्री अपने पतिकी सेवा करती है उस प्रकार, जगदीश्वर भगवान् नारायणका पूजन करता है, उसकी वह 'मध्यमा तामसी' भक्ति है। पृथ्वीपाल! जो दूसरोंको भगवान्‌की आराधनामें तत्पर देखकर ईर्ष्यावश स्वयं भी भगवान् श्रीहरिकी पूजा करता है, उसकी वह क्रिया 'उत्तमा तामसी' भक्ति मानी गयी है। जो धन-धान्य आदिकी याचना करते हुए परम श्रद्धाके साथ श्रीहरिकी अर्चना करता है, वह पूजा 'अधमा राजसी' भक्ति मानी गयी है। जो सम्पूर्ण लोकोंमें विख्यात कीर्तिका उद्देश्य रखकर परम भक्ति-भावसे भगवान्‌की आराधना करता है, उसकी वह क्रिया 'मध्यमा राजसी' भक्ति कही गयी है। पृथ्वीपते! जो सालोक्य और सारूप्य आदि पद प्राप्त करनेकी इच्छासे भगवान् विष्णुकी अर्चना करता है, उसके द्वारा की हुई वह पूजा 'उत्तमा राजसी' भक्ति कही गयी है। जो अपने किये हुए पापोंका नाश करनेके लिये पूर्ण श्रद्धाके साथ श्रीहरिकी पूजा करता है, उसकी की हुई वह पूजा 'अधमा सात्त्विकी' भक्ति मानी गयी है। 'यह भगवान् विष्णुको प्रिय है' ऐसा मानकर जो श्रद्धापूर्वक सेवा-शुश्रूषा करता है, उसकी वह सेवा 'मध्यमा सात्त्विकी' भक्ति है। राजन्! 'शास्त्रकी ऐसी ही आज्ञा है' यह मानकर जो दासकी भाँति भगवान् लक्ष्मीपतिकी पूजा-अर्चा करता है, उसकी वह भक्ति सब प्रकारकी भक्तियोंमें श्रेष्ठ 'उत्तमा सात्त्विकी' भक्ति मानी गयी है। जो भगवान् विष्णुकी थोड़ी-सी भी महिमा सुनकर परम संतुष्ट हो उनके ध्यानमें तन्मय हो जाता है, उसकी वह भक्ति 'उत्तमोत्तमा' मानी गयी है। 'मैं ही परम विष्णुरूप हूँ, मुझमें यह सम्पूर्ण जगत् स्थित है।' इस प्रकार जो सदा भगवान्‌से अपनेको अभिन्न देखता है, उसे उत्तमोत्तम भक्त समझना चाहिये†। यह दस प्रकारकी भक्ति संसार-बन्धनका नाश करनेवाली है। उसमें भी सात्त्विकी भक्ति सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फल देनेवाली है। इसलिये भूपाल! सुनो—संसारको जीतनेकी इच्छावाले उपासकको अपने कर्मका त्याग न करते हुए भगवान् जनार्दनकी भक्ति करनी चाहिये। जो स्वधर्मका परित्याग करके भक्तिमात्रसे जीवन धारण करता है, उसपर भगवान् विष्णु संतुष्ट नहीं होते। वे तो धर्माचरणसे संतुष्ट होते हैं। सम्पूर्ण आगमोंमें आचारको प्रथम स्थान दिया गया है। आचारसे धर्म प्रकट होता है और धर्मके स्वामी साक्षात् भगवान् विष्णु हैं*। इसलिये स्वधर्मका विरोध न करते हुए श्रीहरिकी भक्ति करनी चाहिये। सदाचार-शून्य मनुष्योंके धर्म भी सुख देनेवाले नहीं होते। स्वधर्म-पालनके विना की हुई भक्ति भी नहीं की हुईके समान कही गयी है। राजन्! तुमने जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने कह दिया। अतः तुम अपने धर्ममें तत्पर रहकर [illegible]

* पहले सात्त्विक, राजस और तामस—भेदसे भक्तिके तीन भेद हैं। फिर प्रत्येकके उत्तम, मध्यम और अधम—ये तीन भेद और होते हैं। इस प्रकार नौ भेद हुए। दसवाँ 'उत्तमोत्तमा परा भक्ति' है।

† यस्त्वन्यस्य विनाशार्थं भजनं श्रीपतेर्नृप।
सा तामस्यधमा भक्तिः खलभावधरा यतः॥
योऽर्चयेत्कैतवधिया स्वैरिणी स्वपतिं यथा।
नारायणं जगन्नाथं तामसी मध्यमा तु सा॥
देवपूजापरान् दृष्ट्वा मात्सर्याद् योऽर्चयेद्धरिम्।
सा भक्तिः पृथ्वीपाल तामसी चोत्तमा स्मृता॥
धनधान्यादिकं यस्तु प्रार्थयन्नर्चयेद्धरिम्।
श्रद्धया परया युक्तः सा राजस्यधमा स्मृता॥
यः सर्वलोकविख्यातकीर्तिमुद्दिश्य माधवम्।
अर्चयेत्परया भक्त्या सा मध्या राजसी मता॥
सालोक्यादि पदं यस्तु समुद्दिश्यार्चयेद्धरिम्।
सा राजस्युत्तमा भक्तिः कीर्तिता पृथिवीपते॥
यस्तु स्वकृतपापानां क्षयार्थं प्रार्चयेद्धरिम्।
श्रद्धया परयोपेतः सा सात्त्विक्यधमा स्मृता॥
हरेरिदं प्रियमिति शुश्रूषां कुरुते तु यः।
श्रद्धया संयुतो भूयः सात्त्विकी मध्यमा तु सा॥
विधिबुद्ध्यार्चयेद्यस्तु दासवच्छ्रीपतिं नृप।
भक्तीनां प्रवरा सा तु उत्तमा सात्त्विकी स्मृता॥
महिमानं हरेर्यस्तु किंचिच्छ्रुत्वापि यो नरः।
तन्मयत्वेन संतुष्टः सा भक्तिरुत्तमोत्तमा॥
अहमेव परो विष्णुर्मयि सर्वमिदं जगत्।
इति यः सततं पश्येत्तं विद्यादुत्तमोत्तमम्॥
(ना० पूर्व० १५। १४०—१५०)

* सर्वागमानामाचारः प्रथमं परिकल्पते।
आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः॥
(ना० पूर्व० १५। १५५)

स्वरूपवाले जनार्दन भगवान् नारायणका पूजन करो। इससे तुम्हें सनातन सुखकी प्राप्ति होगी। भगवान् शिव ही साक्षात् श्रीहरि हैं और श्रीहरि ही स्वयं शिव हैं। इन दोनोंमें भेद देखनेवाला दुष्ट पुरुष करोड़ों नरकोंमें जाता है। इसलिये भगवान् विष्णु और शिवको समान समझकर उनकी आराधना करो। इनमें भेददृष्टि करनेवाला मनुष्य इहलोक और परलोकमें भी दुःख पाता है।

जनेश्वर! मैं जिस कार्यके लिये तुम्हारे पास आया था, वह तुम्हें बतलाता हूँ। सुमते! सावधान होकर सुनो। राजन्! आत्मघातका पाप करनेवाले तुम्हारे पितामहगण महात्मा कपिलके क्रोधसे दग्ध हो गये हैं और इस समय वे नरकमें निवास करते हैं। महाभाग! गङ्गाजीको लानेका पराक्रम करके तुम उनका उद्धार करो। भूपते! गङ्गाजी निश्चय ही सब पापोंका नाश कर देती हैं। नृपश्रेष्ठ! मनुष्यके केश, हड्डी, नख, दाँत तथा शरीरकी भस्म भी यदि गङ्गाजीके शरीरसे छू जायँ तो वे भगवान् विष्णुके धाममें पहुँचा देती हैं। राजन्! जिसकी हड्डी अथवा भस्मको मनुष्य गङ्गाजीमें डाल देते है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् श्रीहरिके धाममें चला जाता है। भूपते! अबतक जितने भी पाप तुम्हें बताये गये हैं, वे सब गङ्गाजीके एक बिन्दुका अभिषेक होनेसे नष्ट हो जाते हैं।

श्रीसनकजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ नारद! धर्मात्मा महाराज भगीरथसे ऐसा कहकर धर्मराज तत्काल अन्तर्धान हो गये। तब सब शास्त्रोंके पारगामी महाबुद्धिमान् राजा भगीरथ सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य मन्त्रियोंको सौंपकर स्वय वनको चले गये। वहाँसे हिमालयपर जाकर नर-नारायणके आश्रमसे पश्चिमकी तरफ बर्फसे ढके हुए एक शिखरपर, जो सोलह योजन विस्तृत है, उन्होंने तपस्या की और त्रिभुवनपावनी गङ्गाको वे इस भूतलपर ले आये।

राजा भगीरथका भृगुजीके आश्रमपर जाकर सत्सङ्ग-लाभ करना तथा हिमालयपर घोर तपस्या करके भगवान् विष्णु और शिवकी कृपासे गङ्गाजीको लाकर पितरोंका उद्धार करना

नारदजीने पूछा—मुने! हिमालय पर्वतपर जाकर राजा भगीरथने क्या किया? वे गङ्गाजीको किस प्रकार ले आये? यह मुझे बतानेकी कृपा करें।

श्रीसनकजीने कहा—मुने! महाराज भगीरथ जटा और चीर धारण करके तपस्याके लिये हिमालयपर जाते हुए गोदावरी नदीके तटपर पहुँचे *। वहाँ उन्होंने महान् वनमें महर्षि भृगुका उत्तम आश्रम देखा, जो कृष्णसार मृगोंसे भरा हुआ था और चमरी गायोका समुदाय अपनी पूँछ हिलाकर मानो उस आश्रमको चँवर डुला रहा था। मालती, जूही, कुन्द, चम्पा और अश्वत्थ—उस आश्रमको विभूषित कर रहे थे। वहाँ चारों ओर भाँति-भाँतिके फूल खिले हुए थे। ऋषि-मुनियोंका समुदाय वहाँ निवास करता था। वेदों और शास्त्रोंका महान् घोष आकाशमें गूँज रहा था। महर्षि भृगुके ऐसे आश्रममें राजा भगीरथने प्रवेश किया। भृगुजी परब्रह्मके स्वरूपका प्रतिपादन कर रहे थे। शिष्योंकी मण्डली उन्हें घेरकर बैठी थी। तेजमें वे भगवान् सूर्यके समान थे। राजा भगीरथने वहाँ उनका दर्शन किया और उनके चरण-ग्रहण आदि विधिसे उन ब्राह्मणशिरोमणिकी

वन्दना की; साथ ही भृगुजीने भी सम्मानपूर्वक राजाका

* इस प्रसङ्गको देखनेसे यह जान पड़ता है कि उन दिनों राजा भगीरथ दक्षिण भारतमें गोदावरीसे भी कुछ दूर दक्षिणके किसी स्थानमें रहा करते थे। तभी उनके मार्गमें गोदावरी नदी आ सकी। सूर्यवंशियोंकी सुप्रसिद्ध राजधानी अयोध्यासे हिमालय जानेमें तो गोदावरीका मार्गमें आना सम्भव नहीं है

आतिथ्य-सत्कार किया। महर्षि भृगुके द्वारा आतिथ्य-सत्कार हो जानेपर राजा भगीरथ उन मुनीश्वरसे हाथ जोड़कर विनयपूर्वक बोले।

भगीरथने कहा—भगवन्! आप सब धर्मोंके ज्ञाता तथा सम्पूर्ण शास्त्रोंके विद्वान् हैं। मैं संसार-बन्धनके भयसे डरकर आपसे मनुष्योंके उद्धारका उपाय पूछता हूँ। सर्वज्ञ मुनिसत्तम! यदि मैं आपका कृपापात्र होऊँ तो जिस कर्मसे भगवान् संतुष्ट होते हैं, वह मुझे बताइये।

भृगुने कहा—राजन्! तुम्हारी अभिलाषा क्या है, यह मुझे मालूम हो गयी। तुम पुण्यात्माओंमें श्रेष्ठ हो। अन्यथा अपने समस्त कुलका उद्धार करनेकी योग्यता तुममें कैसे आती। भूपाल! जो कोई भी क्यों न हो, यदि वह शुभ कर्मके द्वारा अपने कुलके उद्धारकी इच्छा रखता है, तो उसे नररूपमें साक्षात् नारायण ही समझना चाहिये। राजेन्द्र! जिस कर्मसे प्रसन्न होकर देवेश्वर भगवान् विष्णु मनुष्योंको अभीष्ट फल प्रदान करते हैं, वह बतलाता हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो। राजन्! तुम सदा सत्यका पालन करो और अहिंसाधर्ममें स्थित रहो। सदा सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें लगे रहकर कभी भी झूठ न बोलो। दुष्टोंका साथ छोड़ दो। सत्सङ्गका सेवन करो। पुण्य करो और दिन-रात सनातन भगवान् विष्णुका स्मरण करते रहो। भगवान् महाविष्णुकी पूजा करो और उत्तम शान्तिका आश्रय लो। द्वादशाक्षर अथवा अष्टाक्षर मन्त्र जपो। इससे तुम्हारा कल्याण होगा।

भगीरथने पूछा—मुने! सत्य कैसा कहा गया है? सम्पूर्ण भूतोंका हित क्या है? अनृत (झूठ) किसे कहते हैं? दुष्ट कैसे होते हैं? कैसे लोगोंको साधु कहा गया है? तथा पुण्य कैसा होता है? भगवान् विष्णुका स्मरण कैसे करना चाहिये और उनकी पूजा कैसे होती है? मुने! शान्ति किसे कहा गया है? अष्टाक्षर मन्त्र क्या है? तत्त्वार्थके ज्ञाता महर्षे! द्वादशाक्षर मन्त्र क्या होता है? मुझपर बड़ी भारी कृपा करके इन सबकी व्याख्या करें।

भृगुने कहा—महाप्राज्ञ! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा। तुम्हारी बुद्धि बहुत उत्तम है। भूपाल! तुमने मुझसे जो कुछ पूछा है, वह सब तुम्हें बतलाता हूँ। विद्वान् पुरुष यथार्थ कथनको 'सत्य' कहते हैं। धर्मपरायण मनुष्योंको इस प्रकार सत्य बोलना चाहिये कि धर्मका विरोध न होने पाये। इसलिये साधु पुरुष देश, काल आदिका विचार करके स्वधर्मका विरोध न करते हुए जो यथार्थ वचन बोलते हैं, वह सत्य कहलाता है। राजन्! सम्पूर्ण जीवोंमेंसे किसीको भी जो क्लेश न देना है, उसीका नाम 'अहिंसा' है। वह सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाली बतायी गयी है। धर्मके कार्यमें सहायता पहुँचाना और अधर्मके कार्यका विरोध करना—इसे धर्मज्ञ पुरुष समस्त लोकोंका हितसाधन कहते हैं। धर्म और अधर्मका विचार न करके केवल अपनी इच्छाके अनुसार कहना असत्य है। उसे सब प्रकारके कल्याणका विरोधी समझना चाहिये। राजन्! जिनकी बुद्धि सदा कुमार्गमें लगी रहती है, जो सब लोगोंसे द्वेष रखनेवाले और मूर्ख हैं, उन्हें सम्पूर्ण धर्मोंसे बहिष्कृत दुष्ट पुरुष जानना चाहिये। जो लोग धर्म और अधर्मका विवेक करके वेदोक्त मार्गपर चलते हैं तथा सब लोगोंके हितमें संलग्न रहते हैं, उन्हें 'साधु' कहा गया है*। जो भगवान्की भक्तिमें सहायक है, साधु पुरुष जिसका पालन करते हैं तथा जो अपने लिये भी आनन्ददायक है, उसे 'धर्म' कहते हैं। यह सम्पूर्ण जगत् भगवान् विष्णुका स्वरूप है, विष्णु सबके कारण हैं और मैं भी विष्णु हूँ—यह जो ज्ञान है, उसीको 'भगवान् विष्णुका स्मरण' समझना चाहिये। भगवान् विष्णु सर्वदेवमय हैं, मैं विधिपूर्वक उनकी पूजा करूँगा; इस प्रकारसे जो श्रद्धा होती है, वह उनकी 'भक्ति' कही गयी है। श्रीविष्णु सर्वभूतस्वरूप हैं, सर्वत्र परिपूर्ण सनातन परमेश्वर हैं; इस प्रकार जो भगवान्के प्रति अभेद बुद्धि होती है, उसीका नाम 'समता' है। राजन्! शत्रु और मित्रोंके प्रति समान भाव हो, सम्पूर्ण इन्द्रियाँ अपने वशमें हों और दैववश जो कुछ मिल जाय, उसीमें संतोष रहे तो इस स्थितिको 'शान्ति' कहते हैं। राजन्! इस प्रकार तुम्हारे इन सभी प्रश्नोंकी व्याख्या हो गयी। ये सब विषय मनुष्योंको सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं और समस्त पापराशियोंका वेगपूर्वक नाश करनेके साधन हैं।

अष्टाक्षर मन्त्र सब पापोंका नाश करनेवाला है। राजेन्द्र! मैं उसका स्वरूप तुम्हें बतलाता हूँ। वह समस्त पुरुषार्थोंका एकमात्र साधन, भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेवाला तथा सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला है। 'ॐ नमो नारायणाय' यही अष्टाक्षर मन्त्र है। इसका जप करना चाहिये। महाराज! 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' यह

* धर्माधर्मविवेकेन वेदमार्गानुसारिणः ॥
सर्वलोकहितासक्ताः साधवः परिकीर्तिताः ।
(ना० पूर्व० १६ । १९-२०)

द्वादशाक्षर मन्त्र कहा गया है। राजन्! इन अष्टाक्षर और द्वादशाक्षर—दोनों मन्त्रोंका समान फल है। इनकी प्रवृत्ति और निवृत्ति—इन दोनों मार्गवालोंके लिये समता बतायी गयी है। इन दोनों मन्त्रोंके जपके लिये भगवान्‌का ध्यान इस प्रकार करना चाहिये। भगवान् नारायण अपने हाथोंमें शङ्ख और चक्र धारण किये शान्तभावसे विराजमान हैं। रोग और शोक उनका कभी स्पर्श नहीं करते। उनके वामाङ्कमें लक्ष्मीजी विराज रही हैं। वे सर्वशक्तिमान् प्रभु सबको अभयदान कर रहे हैं। उनके मस्तकपर किरीट और कानोंमें कुण्डल शोभा पाते हैं। वे नाना प्रकारके अलंकारोंसे सुशोभित हैं। गलेमें कौस्तुभ-मणि और वनमाला धारण किये हुए हैं। उनका वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्नसे चिह्नित है। वे पीताम्बरधारी भगवान् देवताओं और दानवोंसे भी वन्दित हैं। उनका आदि और अन्त नहीं है। वे सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंके देनेवाले हैं। इस प्रकार भगवान्‌का ध्यान करना चाहिये। वे अन्तर्यामी, ज्ञानस्वरूप, सर्वव्यापी तथा सनातन हैं। राजा भगीरथ! तुमने जो कुछ पूछा, वह सब इस रूपमें बताया गया है। तुम्हारा कल्याण हो। अब सुखपूर्वक तपस्यामें सिद्धि प्राप्त करनेके लिये जाओ।

महर्षि भृगुके ऐसा कहनेपर राजा भगीरथ बहुत प्रसन्न हुए और तपस्याके लिये वनमें गये। हिमालय पर्वतपर पहुँचकर वहाँके मनोहर पावन प्रदेशमें स्थित नादेश्वर महाक्षेत्रमें उन्होंने अत्यन्त दुष्कर तपस्या की। राजा तीनों काल स्नान करते। कन्द, मूल तथा फल खाकर रहते और उसीसे आये हुए अतिथियोंका सत्कार भी करते थे। वे प्रतिदिन होममें तत्पर रहते। सम्पूर्ण भूतोंके हितैषी होकर शान्तभावसे स्थित थे। उन्होंने भगवान् नारायणकी शरण ले रक्खी थी। पत्र, पुष्प, फल और जलसे वे तीनों काल श्रीहरिकी आराधना करते थे। इस प्रकार अत्यन्त धैर्यपूर्वक भगवान् नारायणका ध्यान करते हुए वे सूखे पत्ते खाकर रहने लगे। तदनन्तर परम धर्मात्मा राजा भगीरथने प्राणायाम करते हुए श्वास बंद करके तपस्या करना प्रारम्भ किया। जिनका कहीं अन्त नहीं है या जो किसीसे पराजित नहीं होते उन्हीं श्रीनारायण-देवका चिन्तन करते हुए वे साठ हजार वर्षोंतक श्वास रोके रहे। उस समय राजाकी नासिकाके छिद्रसे भयंकर अग्नि प्रकट हुई। उसे देखकर सब देवता थर्रा उठे और उस अग्निसे संतप्त होने लगे। फिर वे देवेश्वरगण क्षीरसागरके उत्तर तटपर जहाँ जगदीश्वर श्रीहरि निवास करते हैं, पहुँचकर भगवान् महाविष्णुकी शरणमें गये और शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले देवदेवेश्वर भगवान्‌की इस प्रकार स्तुति करने लगे।

देवताओंने कहा—जो जगत्‌के एकमात्र स्वामी तथा स्मरण करनेवाले भक्तजनोंकी समस्त पीड़ा दूर कर देनेवाले हैं, उन परमेश्वर श्रीविष्णुको हम नमस्कार करते हैं। ज्ञानी पुरुष उन्हें स्वभावतः शुद्ध, सर्वत्र परिपूर्ण एवं ज्ञानस्वरूप कहते हैं। श्रेष्ठ योगीजन जिनका सदा ध्यान करते हैं, जो परमात्मा अपनी इच्छाके अनुसार शरीर धारण करके देवताओं-का कार्य सिद्ध करते हैं, यह सम्पूर्ण जगत् जिनका स्वरूप है तथा जो जगत्‌के आदिस्वामी हैं, उन भगवान् पुरुषोत्तमको हम प्रणाम करते हैं। जिनके नामोंका संकीर्तन करनेमात्रसे दुष्ट पुरुषोंके भी समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं; जो सबके शासक, स्तवन करनेयोग्य एवं पुराणपुरुष हैं, उन भगवान् विष्णुको हम पुरुषार्थसिद्धिके लिये नमस्कार करते हैं। सूर्य आदि जिनके तेजसे प्रकाशित होते हैं और कभी भी जिनकी आज्ञा-का उल्लङ्घन नहीं करते, जो सम्पूर्ण देवताओंके अधीश्वर तथा पुरुषार्थरूप हैं, उन कालस्वरूप श्रीहरिको हम नमस्कार करते हैं। जिनकी आज्ञाके अनुसार ब्रह्माजी इस जगत्‌की सृष्टि करते हैं, रुद्र संहार करते हैं और ब्राह्मणलोग श्रुतियोंके द्वारा सब लोगोंको पवित्र करते हैं, जो गुणोंके भण्डार और सबके उपदेशक गुरु हैं, उन आदिदेव भगवान् विष्णुकी हम शरणमें आये हैं। जो सबसे श्रेष्ठ, वरण करनेयोग्य तथा मधु और कैटभको मारनेवाले हैं, देवता और दैत्य भी जिनकी चरणपादुकाका पूजन करते हैं, जो श्रेष्ठ भक्तोंकी मनोवाञ्छित कामनाओंकी सिद्धिके कारण हैं तथा एकमात्र ज्ञानद्वारा जिनके तत्त्वका बोध होता है, उन दिव्यशक्तिसम्पन्न भगवान्‌को हम प्रणाम करते हैं। जो आदि, मध्य और अन्तसे रहित, अजन्मा, अनादि, अविद्या नामक अन्धकारका नाश करनेवाले, सत्, चित्, परमानन्दघन स्वरूप तथा रूप आदिसे रहित हैं, उन भगवान् परमेश्वरको हम प्रणाम करते हैं। जो जलमें शयन करनेके कारण नारायण, सर्वव्यापी होनेसे विष्णु, अविनाशी होनेसे अनन्त और सबके शासक होनेसे ईश्वर कहलाते हैं, अपने श्रीअङ्गोंपर रेशमी पीताम्बर धारण करते हैं, ब्रह्मा तथा रुद्र आदि जिनकी सेवामें लगे रहते हैं, जो यज्ञके प्रेमी, यज्ञ करनेवाले, विशुद्ध, सर्वोत्तम एवं अव्यय हैं, उन भगवान् विष्णुको हम नमस्कार करते हैं।

इन्द्र आदि देवताओंके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् महाविष्णुने देवताओंको राजर्षि भगीरथका चरित्र बतलाया। नारदजी! फिर उन सबको आश्वासन तथा अभय देकर निरञ्जन-भगवान् विष्णु उस स्थानपर गये, जहाँ राजर्षि भगीरथ तपस्या-

करते थे। सम्पूर्ण जगत्के गुरु शङ्ख-चक्रधारी सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् श्रीहरिने राजा भगीरथको प्रत्यक्ष दर्शन दिया। राजाने देखा, सामने कमलनयन भगवान् विराजमान हैं। उनकी प्रभासे सम्पूर्ण दिग्दिगन्त उद्भासित हो रहा है। उनके अङ्गोंकी कान्ति अलसीके फूलकी भाँति श्याम है। कानोंमें झलमलाते हुए कुण्डल उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। चिकने घुँघराले केशोंवाले मुखारविन्दसे सुशोभित हैं। मस्तकपर जगमगाता हुआ मुकुट उनके स्वरूपको और भी प्रकाशपूर्ण किये देता है। वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न और कौस्तुभमणि है। वे वनमालासे विभूषित हैं। उनकी भुजाएँ बड़ी-बड़ी हैं। अङ्ग-अङ्गसे उदारता टपक रही है। उनके चरणारविन्द लोकेश ब्रह्माजीके द्वारा पूजित हैं। भगवान्की यह झाँकी देखकर राजा भगीरथ भूतलपर दण्डकी भाँति पड़ गये। उनका कंधा झुक गया और वे बार-बार प्रणाम करने लगे। उनका हृदय अत्यन्त हर्षसे भरा हुआ था। शरीरमें रोमाञ्च हो आया था और वे गद्गद कण्ठसे 'कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण, श्रीकृष्ण'—इस प्रकार उच्चारण कर रहे थे। अन्तर्यामी जगद्गुरु भगवान् विष्णु भगीरथपर प्रसन्न थे। उन भूतभावन भगवान्ने करुणासे भरकर कहा।

श्रीभगवान् बोले—महाभाग भगीरथ! तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा, तुम्हारे पूर्व पितामह मेरे लोकमें जायँगे। राजन्! भगवान् शिव मेरे दूसरे स्वरूप हैं। तुम यथाशक्ति स्तुति-पाठ करके उनका स्तवन करो। वे तुम्हारा सम्पूर्ण मनोरथ तत्काल सिद्ध करेंगे। जिन्होंने अपनी शरणमें आये हुए चन्द्रमाको स्वीकार किया है, वे बड़े शरणागतवत्सल हैं। अतः स्तोत्रोंद्वारा स्तवन करने योग्य उन सुखदाता ईशानकी तुम आराधना करो। अनादि अनन्तदेव महेश्वर सम्पूर्ण कामनाओं तथा फलोंके दाता हैं। राजन्! तुमसे भलीभाँति पूजित होकर वे शीघ्र तुम्हारा कल्याण करेंगे।

मुनिश्रेष्ठ नारद! तीनों लोकोंके स्वामी देवदेवेश्वर भगवान् अच्युत ऐसा कहकर अन्तर्धान हो गये। फिर वे राजा भगीरथ भी उठे। द्विजश्रेष्ठ! राजाके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगे—क्या यह सब स्वप्न था अथवा साक्षात् सत्यका ही दर्शन हुआ है। अब मैं क्या करूँ? इस प्रकार भ्रान्तचित्त हुए राजा भगीरथसे आकाश-वाणीने उच्च-स्वरसे कहा—'राजन्! यह सब अवश्य ही सत्य है। तुम चिन्ता न करो।' आकाशवाणी सुनकर भूपाल भगीरथने हम सबके कारण तथा समस्त देवताओंके स्वामी भगवान् शिवका भक्तिपूर्वक स्तवन किया।

भगीरथने कहा—मैं प्रणतजनोंकी पीड़ाका नाश करनेवाले विश्वनाथ शिवको प्रणाम करता हूँ। जो प्रमाणसे परे तथा प्रमाणरूप हैं, उन भगवान् ईशानको मैं नमस्कार करता हूँ। जो जगत्स्वरूप होते हुए भी [illegible] हैं, संसारकी सृष्टि, संहार और पालनके एकमात्र कारण हैं, उन भगवान् शिवको मैं प्रणाम करता हूँ। योगीश्वरगण जिनका आदि, मध्य और अन्तसे रहित अनन्त, [illegible] एवं अव्ययरूपसे चिन्तन करते हैं, उन [illegible] शिवको मैं प्रणाम करता हूँ। पशुपति भगवान् शिवको नमस्कार है। चैतन्यस्वरूप भगवान् शङ्करको नमस्कार है। [illegible] सामर्थ्य देनेवाले शिवको नमस्कार है। समस्त प्राणियोंके पालक भगवान् भूतनाथको नमस्कार है। प्रभो! आप हाथमें पिनाक धारण करते हैं। आपको नमस्कार है। त्रिशूलसे शोभित हाथवाले आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण भूत आपके स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। जगत्के अनेक रूप आपके ही रूप है। आप निर्गुण परमात्माको नमस्कार है। ध्यान-स्वरूप आपको नमस्कार है। ध्यानके साक्षी आपको नमस्कार है। ध्यानमें सम्यक् रूपसे स्थित आपको नमस्कार है तथा ध्यानसे ही अनुभवमें आनेवाले आपको नमस्कार है। जो अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित होनेवाले, महात्मा, परम-ज्योतिःस्वरूप तथा सनातन हैं, तत्त्वज्ञ पुरुष जिन्हें ज्ञान-नेत्रोंको प्रकाश देनेवाले सूर्य कहते हैं, जो उमाकान्त, नन्दिकेश्वर, नीलकण्ठ, सदाशिव, मृत्युञ्जय, महादेव, परात्पर एवं विभु कहे जाते हैं, परब्रह्म और शब्दब्रह्म जिनके स्वरूप हैं, उन समस्त जगत्के कारणभूत परमात्माको मैं प्रणाम करता हूँ। प्रभो! आप जटाजूट धारण करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। जिनसे समुद्र, नदियाँ, पर्वत, गन्धर्व, यक्ष, असुर, सिद्ध-समुदाय, स्थावर-जङ्गम, बड़े-छोटे, सत्-असत् तथा जड और चेतन—सबका प्रादुर्भाव हुआ है, योगी पुरुष जिनके चरणारविन्दोंमें नमस्कार करते हैं, जो सबके अन्तरात्मा, रूपहीन एवं ईश्वर हैं, उन स्वतन्त्र एक तथा गुणियोंके गुणस्वरूप भगवान् शिवको मैं नमस्कार प्रणाम करता हूँ, बार-बार मस्तक झुकाता हूँ।

सब लोगोंका कल्याण करनेवाले महादेव भगवान् शङ्कर इस प्रकार अपनी स्तुति सुनकर, जिनकी [illegible] है उन, राजा भगीरथके आगे प्रकट हुए। उनके पाँच मुख और दस भुजाएँ हैं। उन्होंने अर्धचन्द्रका मुकुट धारण

कर रक्खा है। उनके तीन नेत्र हैं। एक-एक अङ्गसे उदारता टपकती है। उन्होंने सर्पका यज्ञोपवीत पहन रक्खा है। उनका वक्षःस्थल विशाल तथा कान्ति हिमालयके समान उज्ज्वल है। गजचर्मका वस्त्र पहने हुए उन भगवान् शिवके चरणारविन्द समस्त देवताओंद्वारा पूजित हो रहे हैं। नारदजी! भगवान् शिवको इस रूपमें उपस्थित देख राजा भगीरथ उनके चरणोंके आगे दण्डकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े। फिर सहसा उठकर उन्होंने भगवान्‌के सम्मुख हाथ जोड़े और उनके महादेव तथा शंकर आदि नामोंका कीर्तन करते हुए प्रणाम किया। राजाकी भक्ति जानकर चन्द्रशेखर भगवान् शिव उनसे बोले—'राजन्! मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तुम इच्छानुसार वर माँगो। तुमने स्तोत्र और तपस्याद्वारा मुझे भलीभाँति संतुष्ट किया है।' भगवान् शिवके ऐसा कहनेपर राजाका हृदय प्रसन्नतासे खिल उठा और वे हाथ जोडकर जगदीश्वर शिवसे इस प्रकार बोले।

भगीरथने कहा—महेश्वर! यदि मैं वरदान देकर अनुगृहीत करने योग्य होऊँ तो हमारे पितरोंकी मुक्तिके लिये आप हमें गङ्गा प्रदान करें।

भगवान् शिव बोले—राजन्! मैंने तुम्हें गङ्गा दे दी। इससे तुम्हारे पितरोंको उत्तम गति प्राप्त होगी और तुम्हें भी परम मोक्ष मिलेगा।

यों कहकर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् जटाजूटधारी भगवान् शिवकी जटासे नीचे आकर जगत्‌को एकमात्र पावन करनेवाली गङ्गा समस्त जगत्‌को पवित्र करती हुई राजा भगीरथके पीछे-पीछे चलीं। मुने! तबसे परम निर्मल पापहारिणी गङ्गादेवी तीनों लोकोंमे भागीरथीके नामसे विख्यात हुईं। सगरके पुत्र पूर्वकालमें अपने ही पापके कारण जहाँ दग्ध हुए थे, उस स्थानको भी सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गाने अपने जलसे प्लावित कर दिया। सगर-पुत्रोंकी भस्म ज्यों ही गङ्गाजलसे प्रवाहित हुई, त्यों ही वे निष्पाप हो गये। पहले जो नरकमें डूबे हुए थे, उनका गङ्गाने उद्धार कर दिया। पूर्वकालमे यमराजने अत्यन्त कुपित होकर जिन्हें बड़ी भारी पीडा दी थी, वे ही गङ्गाजीके जलसे (उनके शरीरकी भस्म) आप्लावित होनेके कारण उन्हीं यमराजके द्वारा पूजित हुए। सगर-पुत्रोंको निष्पाप समझकर यमराजने उन्हें प्रणाम किया और विधिपूर्वक उनकी पूजा करके प्रसन्नतापूर्वक कहा—'राजकुमारो! आपलोग अत्यन्त भयंकर नरकसे उद्धार पा गये। अब इस विमानपर बैठकर भगवान् विष्णुके धाममें जाइये।' यमराजके ऐसा कहनेपर वे पापरहित महात्मा दिव्य देह धारण करके भगवान् विष्णुके लोकमें चले गये। भगवान् विष्णुके चरणोंके अग्रभागसे प्रकट हुई गङ्गाजीका ऐसा प्रभाव है। महापातकोंका नाश करनेवाली गङ्गा सम्पूर्ण लोकोंमे विख्यात हैं। यह पवित्र आख्यान महापातकोंका नाश करनेवाला है। जो इसे पढ़ता अथवा सुनता है, वह गङ्गास्नानका फल पाता है। जो इस पवित्र आख्यानको ब्राह्मणके सम्मुख कहता है, वह भगवान् विष्णुके पुनरावृत्तिरहित धाममें जाता है।

मार्गशीर्ष माससे लेकर कार्तिक मास पर्यन्त उद्यापनसहित शुक्लपक्षके द्वादशी-व्रतका वर्णन

ऋषि बोले—महाभाग सूतजी! आपको साधुवाद है। आपका हृदय अत्यन्त दयालु है। आपने कृपा करके सब पापोंका नाश करनेवाला उत्तम गङ्गा-माहात्म्य हमें सुनाया है। यह गङ्गा-माहात्म्य सुनकर देवर्षि नारदजीने मुनिश्रेष्ठ सनकजीसे कौन-सा प्रश्न किया? यह बताइये।

सूतजीने कहा—आप सब ऋषि सुनें। देवर्षि नारदने फिर जिस प्रकार प्रश्न किया था, वह बतलाऊँगा।

नारदजी बोले—मुने! आप भगवान् विष्णुके उन व्रतोंका वर्णन कीजिये, जिनका अनुष्ठान करनेसे भगवान् प्रसन्न होते हैं। जो भगवत्-सम्बन्धी व्रत, पूजन और ध्यानमें

तत्पर हो भगवान्‌का भजन करते हैं, उनको भगवान् विष्णु मुक्ति तो अनायास ही दे देते हैं, पर वे जल्दी किसीको भक्ति-योग नहीं देते । मुनिश्रेष्ठ ! आप भगवान् विष्णुके भक्त हैं । प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्गसम्बन्धी जो कर्म भगवान् श्रीहरिको प्रसन्न करनेवाला हो, उसका मुझसे वर्णन कीजिये ।

श्रीसनकजीने कहा—मुनिश्रेष्ठ ! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा । तुम भगवान् पुरुषोत्तमके भक्त हो, इसीलिये बार-बार उन शार्ङ्गधन्वा—श्रीहरिका चरित्र पूछते हो । मैं तुम्हें उन लोकोपकारी व्रतोंका उपदेश करता हूँ, जिनसे भगवान् श्रीहरि प्रसन्न होते हैं और साधकको अभय-दान देते हैं । जिस पुरुषपर यज्ञस्वरूप भगवान् जनार्दनकी प्रसन्नता हो जाती है, उसे इहलोक और परलोकमें सुख मिलता है तथा उसके तपकी वृद्धि होती है । महर्षिगण कहते हैं कि जिस किसी उपायद्वारा भी जो लोग भगवान् विष्णुकी आराधनामें लगे रहते हैं, वे परम पदको प्राप्त होते हैं । अगहन मासमें शुक्लपक्षकी द्वादशीको उपवास करके मनुष्य श्रद्धापूर्वक जलशायी भगवान् नारायणकी पूजा करे । मुनिश्रेष्ठ ! पहले दन्तधावन करके स्नान करे, फिर श्वेतवस्त्र धारण करके मौन हो गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप और नैवेद्य आदि उपचारोंद्वारा भक्ति-भावसे श्रीहरिका पूजन करना चाहिये । 'केशवाय नमस्तुभ्यम्' (केशव ! आपको नमस्कार है) इस मन्त्रद्वारा श्रीविष्णुकी पूजा करनी चाहिये । उसी मन्त्रसे प्रज्वलित अग्निमें घृतमिश्रित तिलकी एक सौ आठ आहुति देकर भगवान् शालग्रामके समीप रातमें जागरण करे । उस रात्रिमें ही सेरभर दूधसे रोग-शोकरहित भगवान् श्रीनारायणको स्नान करावे और गीत-वाद्य, नैवेद्य, भक्ष्य तथा भोज्य-पदार्थोंद्वारा महालक्ष्मीसहित उन भगवान् नारायणका भक्तिपूर्वक तीन समय पूजन करे । फिर सवेरे उठकर यथावश्यक शौच-स्नानादि कर्म करके पूर्ववत् मन-इन्द्रियोंको सयममें रखते हुए मौनभावसे पवित्रतापूर्वक भगवान्‌की पूजा करे । उसके बाद निम्नाङ्कित मन्त्रसे दक्षिणासहित घृतमिश्रित खीर और नारियलका फल भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको अर्पित करे—

> केशवः केशिहा देव. सर्वसम्पत्प्रदायक. ॥
> परमान्नप्रदानेन मम स्यादिष्टदायकः ।
>
> (१७ । २१-२२)

'जिन्होंने केशी दैत्यको मारा है तथा जो सब प्रकारकी सम्पत्ति देनेवाले हैं, वे भगवान् केशव यह उत्तम अन्न दान करनेसे मेरे लिये अभीष्ट वस्तुको देनेवाले हों ।'

तदनन्तर अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणभोजन कराये । उसके बाद भगवान् नारायणका चिन्तन करते हुए मौन होकर स्वयं भी भाई-बन्धुओंसहित भोजन करे । इस प्रकार जो भक्ति-भावसे भगवान् केशवकी उत्तम पूजा करता है, वह आठ पौण्डरीक यज्ञके समान फल पाता है । पौष मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको उपवास करके 'नमो नारायणाय' इस मन्त्रसे पवित्रतापूर्वक श्रीहरिका पूजन करे । दूधसे भगवान्‌को नहलाकर खीरका नैवेद्य अर्पण करे । रातमें तीनों समय श्रीहरिकी पूजामें संलग्न रहकर जागता रहे । गन्ध, मनोरम पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, नृत्य, गीत वाद्य आदि तथा स्तोत्रोंद्वारा श्रीहरिकी अर्चना करे । सवेरेकी पूजाके पश्चात् घृत और दक्षिणासहित खिचड़ी ब्राह्मणको दे (उस समय निम्नाङ्कित मन्त्र पढना चाहिये —)

> सर्वात्मा सर्वलोकेश. सर्वव्यापी सनातन ।
> नारायणः प्रसन्नः स्यात् कृशरान्नप्रदानतः ॥
>
> (१७ । २८)

'जो सबके आत्मा, सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वर तथा सर्वत्र व्यापक हैं, वे सनातन भगवान् श्रीनारायण यह खिचड़ी दान करनेसे मुझपर प्रसन्न हों ।'

इस मन्त्रसे ब्राह्मणको उत्तम दान देकर यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन करावे । फिर स्वयं बन्धु-बान्धवोंसहित भोजन करे । जो इस प्रकार भक्तिपूर्वक भगवान् नारायणदेवका पूजन करता है, वह आठ अग्निष्टोम यज्ञोंका सम्पूर्ण फल प्राप्त कर लेता है । माघ शुक्ला द्वादशीको भी पूर्ववत् उपवास करके 'नमस्ते माधवाय' इस मन्त्रसे अग्निमें आठ बार घीकी आहुति दे । उस दिन पूर्ववत् सेरभर दूधसे भगवान् माधवको स्नान करावे । फिर चित्तको एकाग्र करके गन्ध, पुष्प और अक्षत आदिसे पहलेकी तरह तीनों समय भक्ति-पूर्वक पूजन करते हुए रातमें जागरण करे । तत्पश्चात् प्रातःकालका कृत्य समाप्त करके पुनः श्रीमाधवकी अर्चना करे । अन्तमें सब पापोंसे छुटकारा पानेके लिये वस्त्र और दक्षिणासहित सेरभर तिल ब्राह्मणको इस मन्त्रसे दान करे—

> माधवः सर्वभूतात्मा [illegible] ।
> तिलदानेन महता सर्वान् कामान् प्रयच्छतु ॥
>
> (१७ । ३५)

'सम्पूर्ण कर्मोंका फल देनेवाले तथा समस्त भूतोंके आत्मा भगवान् लक्ष्मीपति तिलके इस महादानसे प्रसन्न होकर मेरी सब कामनाएँ पूरी करें।'

इस मन्त्रसे भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको तिल दान देकर भगवान् माधवका स्मरण करते हुए यथाशक्ति ब्राह्मणोंको

भोजन कराये। मुने! जो इस प्रकार भक्ति-भावसे तिलदानयुक्त व्रत करता है, वह सौ वाजपेय यज्ञके सम्पूर्ण फलको प्राप्त कर लेता है। फाल्गुनके शुक्लपक्षमें द्वादशीको उपवास करके व्रती पुरुष 'गोविन्दाय नमस्तुभ्यम्' इस मन्त्रसे भगवान्‌का पूजन करे और घृतमिश्रित तिलकी एक सौ आठ आहुति देकर पूर्वोक्त मानके अनुसार एक सेर दूधसे पवित्रतापूर्वक भगवान् गोविन्दको स्नान कराये। पूर्ववत् रातमें जागरण और तीनों समय पूजा करे। फिर प्रातःकालका शौच, स्नान आदि कर्म पूरा करके पुनः भगवान् गोविन्दकी पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् वस्त्र और दक्षिणासहित एक आढक (चार सेर) धान ब्राह्मणको दे और निम्नाङ्कित मन्त्रका पाठ करे—

नमो गोविन्द सर्वेश गोपिकाजनवल्लभ॥
अनेन धान्यदानेन प्रीतो भव जगद्गुरो।
(१७। ४१-४२)

'गोविन्द! सर्वेश्वर! गोपाङ्गनाओंके प्राणवल्लभ! जगद्गुरो! इस धान्यके दानसे आप मुझपर प्रसन्न हों।'

इस प्रकार भलीभाँति व्रतका पालन करके मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है और महान् यज्ञका पूरा पुण्य प्राप्त कर लेता है।

चैत्र मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको उपवास करके पहले बताये अनुसार 'नमोऽस्तु विष्णवे तुभ्यम्' इस मन्त्रसे भगवान्‌की पूजा करे। पूर्ववत् एक सेर दूधसे भगवान् विष्णुको स्नान करावे। विप्रवर! यदि शक्ति हो तो उसी प्रकार सेरभर घीसे भी आदरपूर्वक भगवान्‌को नहलावे तथा रातमे भी पहलेकी तरह जागरण और पूजन करे। तदनन्तर सवेरे उठकर प्रातःकालके आवश्यक कर्म पूरा करके मधु, घी और तिलमिश्रित हवनसामग्रीकी एक सौ आठ आहुति दे। उसके बाद ब्राह्मणको दक्षिणासहित एक आढक (चार सेर) चावल दान करे। (मन्त्र इस प्रकार है—)

प्राणरूपी महाविष्णुः प्राणदः सर्ववल्लभः॥
तण्डुलाढकदानेन प्रीयतां मे जनार्दनः।
(१७। ४७-४८)

'भगवान् महाविष्णु प्राणस्वरूप हैं। वे ही सबके प्रियतम और प्राणदाता हैं। इस एक आढक चावलके दानसे वे भगवान् जनार्दन मुझपर प्रसन्न हों।'

इस प्रकार भक्तिभावसे व्रतका पालन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और अत्यग्निष्टोम यज्ञके आठगुने फलको पाता है।

वैशाख शुक्ला द्वादशीको उपवास करके भक्तिपूर्वक देवेश्वर मधुसूदनको द्रोण (कलश) परिमित दूधसे स्नान करावे तथा रातमें तीन समय पूजन करते हुए जागरण करे। मधुसूदनकी विधिपूर्वक पूजा करके 'नमस्ते मधुहन्त्रे' इस मन्त्रसे घीकी एक सौ आठ आहुतिका होम करे। घीका उपयोग अपनी शक्तिके अनुसार करे। इससे पापरहित होकर मनुष्य आठ अश्वमेध यज्ञोंका फल पाता है।

ज्येष्ठ मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको उपवास करके एक आढक (चार सेर) दूधसे भगवान् त्रिविक्रमको स्नान करावे और 'नमस्त्रिविक्रमाय' इस मन्त्रसे भक्तिपूर्वक भगवान्‌का पूजन करे। खीरकी एक सौ आठ आहुति देकर होम करे। फिर रातमें जागरण करके भगवान्‌की पूजा करे। फिर प्रातःकृत्य करके पूजनके पश्चात् ब्राह्मणको दक्षिणा-सहित बीस पूआ दान करे। (दानका मन्त्र इस प्रकार है—)

देवदेव जगन्नाथ प्रसीद परमेश्वर ॥
उपायनं च संगृह्य ममाभीष्टप्रदो भव ।
(१७ । ५५-५६)

'देवदेव ! जगन्नाथ ! परमेश्वर ! आप मुझपर प्रसन्न होइये और यह भेंट ग्रहण करके मेरे अभीष्टकी सिद्धि कीजिये ।'

तत्पश्चात् यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उसके बाद स्वयं भी मौन होकर भोजन करे । ब्रह्मन् ! जो इस प्रकार भगवान् त्रिविक्रमका व्रत करता है, वह निष्पाप हो आठ यज्ञोंका फल पाता है ।

आषाढ़ शुक्ला द्वादशीको उपवास व्रत करनेवाला जितेन्द्रिय पुरुष पूर्ववत् एक आढक (चार सेर) दूधसे वामनजीको स्नान करावे । 'नमस्ते वामनाय' इस मन्त्रसे दूर्वा और घीकी एक सौ आठ आहुति देकर रातमें जागरण और वामनजीका पूजन करे । दक्षिणासहित दही, अन्न और नारियलका फल वामनजीकी पूजा करनेवाले ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक अर्पण करे । (मन्त्र इस प्रकार है—)

वामनो बुद्धिदो होता द्रव्यस्थो वामनः सदा ।
वामनस्तारकोऽस्माच्च वामनाय नमो नमः ॥
(१७ । ६१)

'वामन बुद्धिदाता हैं । वे ही होता हैं और द्रव्यमें भी सदा वामनजी स्थित रहते हैं । वामन ही इस संसार-सागरसे तारनेवाले हैं । वामनजीको बार-बार नमस्कार है ।'

इस मन्त्रसे दही-अन्नका दान करके यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन करावे । ऐसा करके मनुष्य सौ अग्निष्टोम यज्ञोंका फल पा लेता है ।

श्रावण मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको उपवास करनेवाला व्रती मधुमिश्रित दूधसे भगवान् श्रीधरको स्नान करावे और 'नमोऽस्तु श्रीधराय' इस मन्त्रसे गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि सामग्रियोंद्वारा क्रमशः पूजन करे । मुने ! तत्पश्चात् दही मिले हुए घीसे एक सौ आठ आहुति दे । फिर रातमें जागरण करके पूजाकी व्यवस्था करे और ब्राह्मणको परम उत्तम एक आढक (चार सेर) दूध दान करे । विप्रवर ! साथ ही सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके लिये वस्त्र और दक्षिणासहित सोनेके दो कुण्डल भी निम्नाङ्कित मन्त्रसे अर्पण करे ।

क्षीराब्धिशायिन् देवेश रमाकान्त जगत्पते ।
क्षीरदानेन सुप्रीतो भव सर्वसुखप्रदः ॥
(१७ । ६७)

'क्षीरसागरमें शयन करनेवाले देवेश्वर ! लक्ष्मीकान्त ! जगत्पते ! इस दुग्धदानसे आप अत्यन्त प्रसन्न हो सम्पूर्ण सुखोंके दाता होइये ।'

ब्राह्मणभोजन सुख देनेवाला है, इसलिये व्रती पुरुष यथाशक्ति भोजन करावे । ऐसा करनेसे एक हजार अश्वमेध यज्ञोंका फल प्राप्त होता है ।

भाद्रपद मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको उपवास करके एक द्रोण (कलश) दूधसे जगद्गुरु भगवान् हृषीकेशको स्नान करावे । 'हृषीकेश नमस्तुभ्यम्' इस मन्त्रसे मनुष्य भगवान्‌का पूजन करे । फिर मधुमिश्रित चरुसे एक सौ आठ आहुति दे । फिर पूर्ववत् जागरण आदि सारे सम्पन्न करके आत्मज्ञानी ब्राह्मणको डेढ़ आढक (छः सेर) गेहूँ और यथाशक्ति सुवर्णकी दक्षिणा दे । (मन्त्र इस प्रकार है—)

हृषीकेश नमस्तुभ्यं सर्वलोकैकहेतवे ।
मह्यं सर्वसुखं देहि गोधूमस्य प्रदानतः ॥
(१७ । ७८)

'इन्द्रियोंके स्वामी भगवान् हृषीकेश ! आप सम्पूर्ण लोकोंके एकमात्र कारण हैं । आपको नमस्कार है । इस गोधूम-दानसे प्रसन्न हो आप मुझे सब प्रकारके सुख दीजिये ।'

तत्पश्चात् यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भी मौन होकर भोजन करे । ऐसा करनेवाला पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो महान् यज्ञका फल पाता है ।

आश्विन मासकी शुक्ला द्वादशीको उपवास करके पवित्र हो भक्तिपूर्वक भगवान् पद्मनाभको दूधसे स्नान करावे । फिर 'नमस्ते पद्मनाभाय' इस मन्त्रसे यथाशक्ति तिल, चावल, जौ और घृतद्वारा होम एवं विधिपूर्वक पूजन करे । रातमें जागरणका कार्य सम्पन्न करके पुनः पूजन करे और ब्राह्मणको दक्षिणासहित एक पाव मधु दान करे । (मन्त्र इस प्रकार है—)

पद्मनाभ नमस्तुभ्यं सर्वलोकपितामह ।
मधुदानेन सुप्रीतो भव सर्वसुखप्रदः ॥
(१७ । [illegible])

'सम्पूर्ण लोकोंके पितामह पद्मनाभ ! आपको नमस्कार है । इस मधुदानसे अत्यन्त प्रसन्न हो आप मुझे सम्पूर्ण सुख प्रदान करें ।'

जो उत्तम बुद्धिवाला पुरुष इस प्रकार भक्तिभावसे पद्मनाभ-व्रतका पालन करता है, उसे निश्चय ही एक हजार महान् यज्ञोंका फल प्राप्त होता है।

कार्तिक शुक्ला द्वादशीको उपवास करके जितेन्द्रिय पुरुष एक आढक (चार सेर) दूध, दही अथवा उतने ही घीसे भक्तिपूर्वक भगवान् दामोदरको स्नान करावे। स्नान करानेका मन्त्र है—'ॐ नमो दामोदराय।' उसीसे मधु और घी मिलाये हुए तिलकी एक सौ आठ आहुति दे। फिर संयम-नियमपूर्वक तीनो समय श्रीहरिकी पूजामे तत्पर हो रातमें जागरण करे और प्रातःकाल आवश्यक कृत्योंसे निवृत्त हो मनोरम कमलके फूलोंद्वारा भगवान्की पूजा करे। उसके बाद घृतमिश्रित तिलोंके द्वारा पुनः एक सौ आठ आहुति दे और पाँच प्रकारके भक्ष्य पदार्थोंसे युक्त अन्न ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक दे। (मन्त्र इस प्रकार है—)

दामोदर जगन्नाथ सर्वकारणकारण।
त्राहि मां कृपया देव शरणागतपालक॥
(१७। ८३)

'दामोदर! जगन्नाथ! आप समस्त कारणोंके भी कारण हैं। शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले देव! कृपया मेरी रक्षा कीजिये।'

इस प्रकार कुटुम्बयुक्त श्रोत्रिय ब्राह्मणको दान और यथाशक्ति दक्षिणा देकर ब्राह्मणोको भी भोजन करावे। इस प्रकार व्रतका विधिपूर्वक पालन करके अपने बन्धुजनोंके साथ स्वय भी भोजन करे। इससे वह दो हजार अश्वमेध-यज्ञोंका फल पाता है।

मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार व्रतका पालन करनेवाला जो पुरुष परम उत्तम द्वादशी-व्रतका एक वर्षतक पूर्वोक्त विधिसे अनुष्ठान करता है, वह परम पदको प्राप्त होता है। जो एक मास या दो मासमे भक्तिपूर्वक उक्त व्रतका पालन करता है, वह उस-उस महीनेके बताये हुए फलको पाता है और हरिके परम पदको प्राप्त हो जाता है। मुनीश्वर! व्रती पुरुषको चाहिये कि वह एक वर्ष पूरा करके मार्गशीर्ष मासके शुक्लपक्षमें द्वादशी तिथिको व्रतका उद्यापन करे। प्रातःकाल शौचादिसे निवृत्त हो दन्तधावन और स्नान करके नित्य कृत्य करे। फिर श्वेतवस्त्र तथा श्वेत पुष्पोंकी माला धारण करे। श्वेत चन्दनका अनुलेपन करे। घरके आँगनमें एक दिव्य चौकोर एवं परम सुन्दर मण्डप बनावे। उसमें घण्टा और चँवर यथास्थान लगा दे। छोटी-छोटी घण्टियोंकी ध्वनिसे उस मण्डपको सुशोभित करे। फूलोंकी मालाओंसे उसको सजावे। ऊपरसे चँदोवा लगा दे और ध्वजा-पताकासे भी उस मण्डपको विभूषित करे। वह मण्डप श्वेतवस्त्रसे आच्छादित तथा दीपमालाओंसे आच्छादित होना चाहिये। उसके मध्यभागमें सर्वतोभद्र-मण्डल बनाकर उसे विविध रंगोसे भलीभाँति अलंकृत करे। सर्वतोभद्रके ऊपर जलसे भरे हुए बारह घड़े रक्खे। भलीभाँति शुद्ध किये हुए एक ही श्वेत वस्त्रसे उन सभी कलशोंको ढँक दे। वे सब कलश पञ्चरत्नसे युक्त होने चाहिये। ब्रह्मन्! व्रती पुरुष अपनी शक्तिके अनुसार सोने, चाँदी अथवा ताँबेकी भगवान् लक्ष्मीनारायणकी प्रतिमा बनावे और उसे मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए कलशके ऊपर स्थापित करे। द्विजश्रेष्ठ! जो प्रतिमा न बना सके, वह अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्ण अथवा उसका मूल्य वहाँ चढा दे। बुद्धिमान् पुरुष सभी व्रतोंमें उदार रहे। धनकी कंजूसी न करे। यदि वह कृपणता करता है तो उसकी आयु और धन-सम्पत्तिका क्षय होता है। पहले शेषनागकी शय्यापर शयन करनेवाले रोग-शोकसे रहित भगवान् लक्ष्मीनारायणका ध्यान करके उन्हें भक्तिपूर्वक पञ्चामृतसे स्नान करावे। फिर केशव आदि नामोंसे उनके लिये भिन्न-भिन्न उपचार चढावे। रातमे पुराण-कथा-श्रवण आदिके द्वारा जागरण करे। निद्राको जीते और उपवास-पूर्वक जितेन्द्रिय-भावसे रहकर अपने वैभवके अनुसार रातके प्रथम, द्वितीय और तृतीय प्रहरके अन्तमे तीन बार भगवान्की पूजा करे। तदनन्तर प्रातःकाल उठकर सबेरेके शौच-स्नान आदि आवश्यक कृत्य पूरे करके ब्राह्मणोंद्वारा व्याहृति-मन्त्रसे तिलकी एक हजार आहुतियाँ दिलावे। उसके बाद क्रमशः गन्ध, पुष्प आदि उपचारोसे पुनः भगवान्की पूजा करे तथा भगवान्के समक्ष पुराणकी कथा भी सुने। फिर बारह ब्राह्मणोंमेंसे प्रत्येकको दस-दस पूआ, घृत, दधिसहित अन्न तथा खीर दान करे। उसके साथ दक्षिणा भी दे। (दानका मन्त्र इस प्रकार है—)

देवदेव जगन्नाथ भक्तानुग्रहविग्रह।
गृहाणोपायनं कृष्ण सर्वाभीष्टप्रदो भव॥
(१७।१०३)

'भक्तोंपर कृपा करके अवतार—शरीर धारण करनेवाले देवदेव! जगदीश्वर! श्रीकृष्ण! आप यह भेंट ग्रहण कीजिये और मुझे सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुएँ दीजिये।'

इस मन्त्रसे भगवान्‌को भेंट अर्पण करके दोनों घुटने पृथ्वीपर टेककर व्रती पुरुष विनयसे नतमस्तक हो हाथ जोडकर इस प्रकार प्रार्थना करे—

नमो नमस्ते सुरराजराज
नमोऽस्तु ते देव जगन्निवास।
कुरुष्व सम्पूर्णफलं ममाद्य
नमोऽस्तु तुभ्यं पुरुषोत्तमाय॥
(१७। १०५)

'देवताओंके राजाधिराज ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। सम्पूर्ण जगत्‌के निवासस्थान नारायणदेव ! आपको नमस्कार है। आज मेरे इस व्रतको पूर्णतः सफल बनाइये। आप पुरुषोत्तमको नमस्कार है।'

इस प्रकार ब्राह्मणो तथा भगवान् पुरुषोत्तमसे प्रार्थना करे। तत्पश्चात् महालक्ष्मीसहित भगवान् विष्णुको निम्नाङ्कित मन्त्रसे अर्घ्य दे।

लक्ष्मीपते नमस्तुभ्यं क्षीरार्णवनिवासिने।
अर्घ्यं गृहाण देवेश लक्ष्म्या च सहितः प्रभो॥
यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्॥
(१७। १०७-१०८)

'लक्ष्मीपते ! क्षीरसागरमें निवास करनेवाले आपको नमस्कार है। देवेश्वर ! प्रभो ! आप लक्ष्मीजीके साथ यह अर्घ्य स्वीकार करें। जिनके स्मरण तथा नामोच्चारणसे तप तथा यज्ञकर्म आदिमें जो त्रुटि रह गयी हो उसकी पूर्ति हो जाती है, उन भगवान् अच्युतको मैं मस्तक झुकाता हूँ।

इस प्रकार देवेश्वर भगवान् विष्णुको यह सब व्रत निवेदन करके संयमशील व्रती पुरुष दक्षिणासहित प्रतिमा आचार्यको समर्पित करे। उसके बाद ब्राह्मणोंको भोजन करावे और यथाशक्ति दक्षिणा दे। फिर स्वयं भी कुटुम्बीजनोंके साथ मौन होकर भोजन करे। फिर सायंकालमें विद्वानोंके साथ बैठकर भगवान् विष्णुकी कथा सुने। नारदजी ! जो मनुष्य इस प्रकार द्वादशी-व्रत करता है, वह इहलोक और परलोकमें सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है तथा सब पापोंसे मुक्त हो अपनी इक्कीस पीढ़ियोंके साथ भगवान् विष्णुके धाममें जाता है, जहाँ जाकर कोई शोकका अनुभव नहीं करता। ब्रह्मन् ! जो इस उत्तम द्वादशी-व्रतको पढ़ता अथवा सुनता है, वह मनुष्य वाजपेय-यज्ञका फल पाता है।

मार्गशीर्ष पूर्णिमासे आरम्भ होनेवाले लक्ष्मीनारायणव्रतकी उद्यापनसहित विधि और महिमा

श्रीसनकजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ ! अब मैं दूसरे उत्तम व्रतका वर्णन करता हूँ, सुनिये। वह सब पापोंको दूर करनेवाला, पुण्यजनक तथा सम्पूर्ण दुःखोंका नाशक है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा स्त्री—इन सबकी समस्त मनोवाञ्छित कामनाओंको सफल करनेवाला तथा सम्पूर्ण व्रतोंका फल देनेवाला है। उस व्रतसे बुरे-बुरे स्वप्नोंका नाश हो जाता है। वह धर्मानुकूल व्रत दुष्ट ग्रहोंकी बाधाका निवारण करनेवाला है, उसका नाम है पूर्णिमाव्रत। वह परम उत्तम तथा सम्पूर्ण जगत्‌में विख्यात है। उसके पालनसे पापोंकी करोड़ों राशियाँ नष्ट हो जाती है।

मार्गशीर्ष मासके शुक्लपक्षकी पूर्णिमा तिथिको संयम-नियम-पूर्वक पवित्र हो शास्त्रीय आचारके अनुसार दन्तधावनपूर्वक स्नान करे; फिर श्वेत वस्त्र धारण करके शुद्ध हो मौनपूर्वक घर आवे। वहाँ हाथ-पैर धोकर आचमन करके भगवान् नारायणका स्मरण करे और संध्या-वन्दन, देवपूजा आदि नित्यकर्म करके संकल्पपूर्वक भक्तिभावसे भगवान् लक्ष्मी-

नारायणकी पूजा करे। व्रती पुरुष 'नमो नारायणाय' इस मन्त्रसे आवाहन, आसन तथा गन्ध, पुष्प आदि उपचारोंद्वारा भक्ति-तत्पर हो भगवान्‌की अर्चना करे और एकाग्रचित्त हो वह गीत, वाद्य, नृत्य, पुराण-पाठ तथा स्तोत्र आदिके द्वारा श्रीहरि-की आराधना करे। भगवान्‌के सामने चौकोर वेदी बनावे, जिसकी लंबाई-चौड़ाई लगभग एक हाथ हो। उसपर गृह्य-सूत्रमें बतायी हुई पद्धतिके अनुसार अग्निकी स्थापना करे और उसमें आज्यभागान्त होम करके पुरुषसूक्तके मन्त्रोंसे चरु, तिल तथा घृतद्वारा यथाशक्ति एक, दो, तीन बार होम करे। सम्पूर्ण पापोंकी निवृत्तिके लिये प्रयत्नपूर्वक होमकार्य सम्पन्न करना चाहिये। अपनी शाखाके गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार प्रायश्चित्त आदि सब कार्य करे। फिर विधिवत् होमकी समाप्ति करके विद्वान् पुरुष शान्तिसूक्तका जप करे। तत्पश्चात् भगवान्‌के समीप आकर पुनः उनकी पूजा करे और अपना उपवासव्रत भक्तिभावसे भगवान्‌के अर्पण करे।

पौर्णमास्यां निराहारः स्थित्वा देव तवाज्ञया।
भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष परेऽह्नि शरणं भव॥

(१८। १३)

'देव! पुण्डरीकाक्ष! मैं पूर्णिमाको निराहार रहकर दूसरे दिन आपकी आज्ञासे भोजन करूँगा। आप मेरे लिये शरण हों।'

इस प्रकार भगवान्‌को व्रत निवेदन करके संध्याको चन्द्रोदय होनेपर पृथ्वीपर दोनों घुटने टेककर श्वेत पुष्प, अक्षत, चन्दन और जलसहित अर्घ्य हाथमें ले चन्द्रदेवको समर्पित करे—

क्षीरोदार्णवसम्भूत अत्रिगोत्रसमुद्भव।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं रोहिणीनायक प्रभो॥

(१८। १५)

'भगवन् रोहिणीपते! आपका जन्म अत्रिकुलमें हुआ है और आप क्षीरसागरसे प्रकट हुए हैं। मेरे दिये हुए इस अर्घ्यको स्वीकार कीजिये।'

नारदजी! इस प्रकार चन्द्रदेवको अर्घ्य देकर पूर्वाभि-मुख खड़ा हो चन्द्रमाकी ओर देखते हुए हाथ जोड़कर प्रार्थना करे—

नमः शुक्लांशवे तुभ्यं द्विजराजाय ते नमः।
रोहिणीपतये तुभ्यं लक्ष्मीभ्रात्रे नमोऽस्तु ते॥

(१८। १७)

'भगवन्! आप श्वेत किरणोंसे सुशोभित होते हैं, आपको नमस्कार है। आप द्विजोंके राजा हैं, आपको नमस्कार है। आप रोहिणीके पति हैं, आपको नमस्कार है। आप लक्ष्मीजीके भाई हैं, आपको नमस्कार है।'

तदनन्तर पुराण-श्रवण आदिके द्वारा जितेन्द्रिय एवं शुद्ध भावसे रातभर जागरण करे। पाखण्डियोंकी दृष्टिसे दूर रहे। फिर प्रातःकाल उठकर अपने नित्य-नियमका विधिपूर्वक पालन करे। उसके बाद अपने वैभवके अनुसार पुनः भगवान्‌की पूजा करे। तत्पश्चात् यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन करावे और स्वयं भी शुद्धचित्त हो अपने भाई-बन्धुओं तथा भृत्य आदिके साथ भोजन करे। भोजनके समय मौन रहे। इसी प्रकार पौष आदि महीनोंमें भी पूर्णिमाको उपवास करके भक्ति-युक्त हो रोग-शोकरहित भगवान् नारायणकी पूजा-अर्चा करे। इस तरह एक वर्ष पूरा करके कार्तिककी पूर्णिमाके दिन उद्यापन करे। उद्यापनका विधान तुम्हें बतलाता हूँ। व्रती पुरुष एक परम सुन्दर चौकोर मङ्गलमय मण्डप बनवावे, जो पुष्प-लताओंसे सुशोभित तथा चँदोवा और ध्वजा-पताकासे सुसज्जित हो। वह मण्डप अनेक दीपकोंके प्रकाशसे व्याप्त होना चाहिये। उसकी शोभा बढ़ानेके लिये छोटी-छोटी घण्टिकाओंसे सुशोभित झालर लगा देनी चाहिये। उसमें किनारे-किनारे बड़े-बड़े शीशे और चँवर लगा देने चाहिये। कलशोंसे वह मण्डप घिरा रहे। मण्डपके मध्य भागमें पाँच रंगोंसे सुशोभित सर्वतोभद्र मण्डल बनावे। नारदजी! उस मण्डलपर जलसे भरा हुआ एक कलश स्थापित करे। फिर

---

१. अग्निस्थापनाके पश्चात् दायें हाथमें स्रुव लेकर दाहिना घुटना भूमिपर रखकर ब्रह्मासे अन्वारम्भ करके घृतकी जो चार आहुतियाँ दी जाती हैं, उनमेंसे दो आहुतियोंकी 'आघार' संज्ञा है और शेष दो आहुतियोंको 'आज्यभाग' कहते हैं। 'प्रजापतये स्वाहा' इस मन्त्रसे प्रजापतिके लिये जो घृतकी अविच्छिन्न धारा दी जाती है, वह 'पूर्व आघार' है। यह अग्निके उत्तरभागमें प्रज्वलित अग्निमें ही छोड़ी जाती है। इसी प्रकार अग्निके दक्षिणभागमें 'इन्द्राय स्वाहा' इस मन्त्रसे प्रज्वलित अग्निमें इन्द्रके लिये जो अविच्छिन्न घृतकी धारा दी जाती है, उसका नाम 'उत्तर आघार' है। इसके बाद अग्निके उत्तरार्ध-पूर्वार्धमें 'अग्नये स्वाहा' इस मन्त्रसे अग्निके लिये जो घृतकी एक आहुति दी जाती है, उसका नाम 'आग्नेय आज्यभाग' है और अग्निके दक्षिणार्ध-पूर्वार्धमें 'सोमाय स्वाहा' इस मन्त्रसे सोमके लिये दी जानेवाली आहुतिका नाम 'सौम्य आज्यभाग' है।

सुन्दर एवं महीन वस्त्रसे उस कलशको ढक दे। उसके ऊपर सोने, चाँदी अथवा ताँबेसे भगवान् लक्ष्मीनारायणकी परम सुन्दर प्रतिमा बनाकर स्थापित करे। तदनन्तर जितेन्द्रिय पुरुष भक्तिभावसे भगवान्को पञ्चामृतद्वारा स्नान करावे और क्रमशः गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि सामग्रियाँ तथा भक्ष्य, भोज्य आदि नैवेद्योंद्वारा उनकी पूजा करके उत्तम श्रद्धापूर्वक रातमें जागरण करे। दूसरे दिन प्रातःकाल पूर्ववत् भगवान् विष्णुकी विधिपूर्वक अर्चना करे। फिर दक्षिणासहित प्रतिमा आचार्यको दान कर दे और धन देकर ब्राह्मणोंको यथाशक्ति अवश्य भोजन करावे। उसके बाद श्रद्धायुक्त हो विद्वान् पुरुष यथाशक्ति तिल दान करे और तिलद्वारा विधिपूर्वक अग्निमें होम करे। जो मनुष्य इस प्रकार भगवान् लक्ष्मीनारायणका व्रत करता है, वह इस लोकमें पुत्र-पौत्रोंके साथ महान् भोग भोगकर सब पापोंसे मुक्त हो अपनी इक्कीस पीढ़ियोंके साथ भगवान्के वैकुण्ठधाममें जाता है, जो योगियोंके लिये भी दुर्लभ है।

श्रीविष्णुमन्दिरमें ध्वजारोपणकी विधि और महिमा

श्रीसनकजी कहते हैं—नारदजी! अब मैं ध्वजारोपण नामक दूसरे व्रतका वर्णन करूँगा, जो सब पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यस्वरूप तथा भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताका कारण है। जो भगवान् विष्णुके मन्दिरमें ध्वजारोपणका उत्तम कार्य करता है, वह ब्रह्मा आदि देवताओंद्वारा पूजित होता है। बहुत-सी दूसरी बातें कहनेसे क्या लाभ? जो कुटुम्बयुक्त ब्राह्मणको सुवर्णका एक हजार भार दान देता है, उसके उस दानका फल ध्वजारोपण-कर्मके बराबर ही होता है। परम उत्तम गङ्गा-स्नान, तुलसीकी सेवा अथवा शिवलिङ्गका पूजन—ये सब कर्म ही ध्वजारोपणकी समानता कर सकते हैं। ब्रह्मन्! यह ध्वजारोपण नामक कर्म अद्भुत है, अपूर्व है और आश्चर्यजनक है। यह सब पापोंको दूर करनेवाला है। ध्वजारोपण कार्यमें जो-जो कार्य आवश्यक है, उन सबको बतलाता हूँ, आप मेरे मुखसे सुनें।

कार्तिक मासके शुक्लपक्षमें दशमी तिथिको मनुष्य अपने मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए प्रयत्नपूर्वक दातुन करके स्नान करे। व्रत करनेवाला ब्राह्मण उस दिन एक समय भोजन करे, ब्रह्मचर्यसे रहे और धुले हुए शुद्ध वस्त्र धारण करके शुद्धतापूर्वक भगवान् नारायणके सामने उन्हींका स्मरण करते हुए रातमें शयन करे। तत्पश्चात् प्रातःकाल उठकर विधिपूर्वक स्नान और आचमन करके नित्यकर्म पूर्ण करनेके अनन्तर भगवान् विष्णुकी पूजा करे। चार ब्राह्मणोंके साथ स्वस्तिवाचन करके ध्वजारोपणके निमित्त नान्दीमुख-श्राद्ध करे। वस्त्रसहित ध्वज और स्तम्भका गायत्री-मन्त्रद्वारा प्रोक्षण (जलसे अभिषेक) करे। फिर उस ध्वजके वस्त्रमें सूर्य, गरुड और चन्द्रमाकी पूजा करे। ध्वजके दण्डमें धाता और विधाताका पूजन करे। हल्दी, अक्षत और गन्ध आदि सामग्रियोंसे विशेषतः श्वेत पुष्पोंसे पूजन करना चाहिये। तदनन्तर गोचर्म बराबर एक वेदी बनाकर उसे मिट्टी और गोबरसे लीपे। फिर अपनी शाखाके गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार पञ्चभू-संस्कारपूर्वक अग्निकी स्थापना करके क्रमशः आघार और आज्यभाग आदि होमकर्म करे। फिर घृतमिश्रित खीरकी एक सौ आठ आहुति दे। यह आहुति प्रधान देवता भगवान् विष्णुके उद्देश्यसे देनी चाहिये। (यथा 'ॐ नमो नारायणाय स्वाहा।') ब्रह्मन्!

इसके बाद पुरुषसूक्तके प्रथम मन्त्र[1], विष्णोर्नुकम्[2], इरावती[3], वैनतेयाय स्वाहा, सोमो[4] धेनुम् और उदुत्यं जातवेदसम्[5]—इन मन्त्रोंसे क्रमशः आठ-आठ आहुति अग्निमें डाले। तत्पश्चात् वहाँ यथाशक्ति 'विभ्राड् बृहत् पिबतु सोम्यं मधु' इत्यादि (यजु० ३३।३०) सूर्यदेवतासम्बन्धी मन्त्रों तथा 'शं नो मित्रः शं वरुणः' (यजु० ३६।९) इत्यादि शान्तिसूक्तके मन्त्रोंका पाठ या जप करे और पवित्रतापूर्वक भगवान् विष्णुके समीप रात्रिमें जागरण करे। दूसरे दिन प्रातःकाल नित्यकर्म समाप्त करके गन्ध, पुष्प आदिके द्वारा क्रमशः पहलेकी तरह ही भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर उस सुन्दर ध्वजको मङ्गलवाद्य, सूक्तपाठ, स्तोत्रगान और नृत्य आदि उत्सवके साथ भगवान् विष्णुके मन्दिरमें ले जाय। नारदजी! भगवान्‌के द्वारपर अथवा मन्दिरके शिखरपर खम्भेसहित उस ध्वजको प्रसन्नतापूर्वक दृढताके साथ स्थापित करे। फिर गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप आदि मनोहर उपचारों तथा भक्ष्य-भोज्य आदि पदार्थयुक्त नैवेद्योंसे भगवान् विष्णुकी पूजा करे। इस प्रकार उत्तम एवं सुन्दर ध्वजको देवालयमें स्थापित करके परिक्रमा करे।

इसके बाद भगवान्‌के सामने इस स्तोत्रका पाठ करे। पुण्डरीकाक्ष! कमलनयन! आपको नमस्कार है। विश्वभावन! आपको नमस्कार है। हृषीकेश! महापुरुष! सबके पूर्वज! आपको नमस्कार है। जिनसे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है, जिनमें यह सब प्रतिष्ठित है और प्रलयकाल आनेपर जिनमें ही इसका लय होगा, उन भगवान् विष्णुकी मैं शरण लेता हूँ। ब्रह्मा आदि देवता भी जिनके परम भाव (यथार्थ स्वरूप) को नहीं जानते और योगी भी जिन्हें नहीं देख पाते, उन ज्ञानस्वरूप श्रीहरिकी मैं वन्दना करता हूँ। अन्तरिक्ष जिनकी नाभि है, द्युलोक जिनका मस्तक है और पृथ्वी जिनका चरण है, उन विश्वरूप भगवान्‌को मैं प्रणाम करता हूँ। सम्पूर्ण दिशाएँ जिनके कान हैं, सूर्य और चन्द्रमा जिनके नेत्र हैं तथा ऋक्, साम और यजुर्वेद जिनसे प्रकाशित हुए हैं, उन ब्रह्मस्वरूप भगवान् विष्णुको मैं नमस्कार करता हूँ। जिनके मुखसे ब्राह्मण उत्पन्न हुए हैं, जिनकी भुजासे क्षत्रियोंकी उत्पत्ति हुई है, जिनके ऊरुसे वैश्य प्रकट हुए हैं और जिनके चरणोंसे शूद्रका जन्म हुआ है, विद्वान् लोग मायाके संयोगमात्रसे जिन्हें पुरुष कहते हैं, जो स्वभावतः निर्मल, शुद्ध, निर्विकार तथा दोषोंसे निर्लिप्त हैं, जिनका कहीं अन्त नहीं है, जो किसीसे पराजित नहीं होते और क्षीरसागरमें शयन करते हैं, श्रेष्ठ भक्तोंपर जिनकी स्नेहधारा सदा प्रवाहित होती रहती है तथा जो भक्तिसे ही सुलभ होते हैं, उन भगवान् विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ। पृथ्वी आदि पाँच भूत, तन्मात्राएँ, इन्द्रियाँ तथा सूक्ष्म और स्थूल सभी पदार्थ जिनसे अस्तित्व लाभ करते हैं, सब ओर मुखवाले उन सर्वव्यापी परमेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। जिन्हें सम्पूर्ण लोकोंमें उत्तम-से-उत्तम, निर्गुण, अत्यन्त सूक्ष्म, परम प्रकाशमय परब्रह्म कहा गया है, उन श्रीहरिको मैं बारंबार प्रणाम करता हूँ। योगीश्वरगण जिन्हें निर्विकार, अजन्मा, शुद्ध, सब ओर बाँहवाले तथा ईश्वर मानते हैं, जो समस्त कारणतत्त्वोंके भी कारण हैं, जो भगवान् सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तर्यामी आत्मा हैं, यह जगत् जिनका स्वरूप है तथा जो निर्गुण परमात्मा हैं, वे भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हों। जो मायासे मोहित चित्तवाले अज्ञानी पुरुषोंके लिये हृदयमें रहकर भी उनसे दूर बने हुए हैं और ज्ञानियोंके लिये जो सर्वत्र प्राप्त हैं, वे भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हों। चार[1], चार[2], दो[3], पाँच[4] और दो[5] अक्षरवाले मन्त्रोंसे जिनके लिये आहुति दी जाती है, वे विष्णु भगवान् मुझपर प्रसन्न हों। जो ज्ञानियों, कर्मयोगियों तथा भक्त पुरुषोंको उत्तम गति प्रदान करनेवाले हैं, वे विश्वपालक भगवान् मुझपर प्रसन्न हों। जगत्‌का कल्याण

---

१. सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिँ सर्वतः स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥
(यजु० ३१।१)

२. विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजाँसि।
यो अस्कभायदुत्तरँ सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायो विष्णवे त्वा॥
(यजु० ५।१८)

३. इरावती धेनुमती हि भूतँ सूयवसिनी मनवे दशस्या।
व्यस्कभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः स्वाहा॥
(यजु० ५।१६)

४. सोमो धेनुँ सोमो अर्वन्तमाशुँ सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति।
सादन्यं विदथ्यँ सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै॥
(यजु० ३४।२१)

५. उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यँ स्वाहा।
(यजु० ३३।३१)

१. ओश्रावय। २. अस्तु श्रौषट्। ३. यज। ४. ये यजामहे। ५. वषट्।

करनेके लिये श्रीहरि लीलापूर्वक जिन शरीरोंको धारण करते हैं, विद्वान् लोग उन सबकी पूजा करते हैं, वे लीलाविग्रहधारी भगवान् मुझपर प्रसन्न हों । ज्ञानी महात्मा जिन्हें सच्चिदानन्द-स्वरूप निर्गुण तथा गुणोंके अधिष्ठान मानते हैं, वे भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हों ।

इस प्रकार स्तुति करके भगवान् विष्णुको प्रणाम और ब्राह्मणोका पूजन करे । तत्पश्चात् दक्षिणा और वस्त्र आदिके द्वारा आचार्यकी भी पूजा करे । विप्रवर ! उसके बाद भक्तिभावसे पूर्ण होकर यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन करावे । फिर स्त्री-पुत्र और मित्र आदि बन्धुजनोंके साथ स्वयं भी भोजन करे तथा निरन्तर भगवान् नारायणके चिन्तनमें लगा रहे । नारदजी ! जितने क्षणोंतक उस ध्वजकी पताका वायुसे फहराती रहती है, आरोपण करनेवाले मनुष्यकी उतनी ही पाप-राशियाँ निस्संदेह नष्ट हो जाती हैं । महापातकोंसे युक्त अथवा सम्पूर्ण पातकोंसे दूषित पुरुष भी भगवान् विष्णुके मन्दिरमें ध्वजा फहराकर सब पातकोंसे मुक्त हो जाता है । जो धार्मिक पुरुष ध्वजाको आरोपित देखकर उसका अभिनन्दन करते हैं, वे सभी अनेकों महापातकोंसे मुक्त हो जाते हैं । भगवान् विष्णुके मन्दिरमें स्थापित किया हुआ ध्वज जब अपनी पताका फहराने लगता है, उस समय आधे पलमें ही वह उसे आरोपित करनेवाले पुरुषके सम्पूर्ण पापोंको नष्ट कर देता है ।

हरिपञ्चक-व्रतकी विधि और माहात्म्य

श्रीसनकजी कहते हैं—नारदजी ! अब मैं दूसरे व्रतका यथार्थरूपसे वर्णन करता हूँ, सुनिये । यह व्रत हरिपञ्चक नामसे प्रसिद्ध है और सम्पूर्ण लोकोंमें दुर्लभ है । मुनिश्रेष्ठ ! स्त्रियों तथा पुरुषोंके सम्पूर्ण दुःखोंका इससे निवारण हो जाता है तथा यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला एवं सम्पूर्ण मनोरथों और समस्त व्रतोंके फलको देनेवाला है ।

मार्गशीर्ष मासके शुक्लपक्षकी दशमी तिथिको मनुष्य अपने मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए शौच, दन्तधावन और स्नान करके शास्त्रविहित नित्यकर्म करे । फिर भलीभाँति देवपूजन तथा पञ्च महायज्ञोंका अनुष्ठान करके उस दिन नियमपूर्वक रहकर केवल एक समय भोजन करे । मुनीश्वर ! दूसरे दिन एकादशीको प्रातःकाल उठकर स्नान और नित्यकर्मसे निवृत्त होकर अपने घरपर भगवान् विष्णुकी पूजा करे । पञ्चामृतकी विधिसे देवदेवेश्वर श्रीहरिको स्नान करावे । तत्पश्चात् गन्ध, पुष्प आदिसे तथा धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल और परिक्रमाद्वारा उत्तम भक्तिभावके साथ क्रमशः भगवान्‌की अर्चना करे । देवदेवेश्वर भगवान्‌की भलीभाँति पूजा करके इस मन्त्रका उच्चारण करे—

नमस्ते ज्ञानरूपाय ज्ञानदाय नमोऽस्तु ते ॥
नमस्ते सर्वरूपाय सर्वसिद्धिप्रदायिने ।
(२१ । ८-९)

'प्रभो ! आप ज्ञानस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है । आप ज्ञानदाता हैं, आपको नमस्कार है । आप सर्वरूप तथा सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाले हैं, आपको नमस्कार है ।'

इस प्रकार सर्वव्यापी देवेश्वर भगवान् जनार्दनको प्रणाम करके आगे बताये जानेवाले मन्त्रके द्वारा अपना उपवास व्रत भगवान्‌को समर्पित करे—

पञ्चरात्रं निराहारो ह्यद्यप्रभृति केशव ॥
त्वदाज्ञया जगत्स्वामिन् ममाभीष्टप्रदो भव ।
(२१ । १०-११)

'सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी केशव ! आपकी आज्ञासे मैं आजसे पाँच राततक निराहार रहूँगा । आप मुझे मेरी अभीष्ट वस्तु प्रदान करें ।'

इस प्रकार भगवान्‌को उपवास समर्पित करके जितेन्द्रिय पुरुष रातमें जागरण करे । मुने ! एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी तथा पूर्णिमाको इन्द्रियसंयम एवं उपवासपूर्वक इसी प्रकार भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये । विप्रवर ! एकादशी तथा पूर्णिमाकी रात्रिमें ही जागरण करना चाहिये । पञ्चामृत आदि सामग्रियोंसे की जानेवाली पूजा तो पाँचों दिन समानरूपसे आवश्यक है; परंतु पूर्णिमाके दिन यथाशक्ति दूधके द्वारा भगवान् विष्णुको स्नान कराना चाहिये । साथ ही तिलका होम और दान भी करना चाहिये । तदनन्तर छठा दिन आनेपर अपना आश्रमोचित कर्म करके पञ्चगव्य पीकर विधिपूर्वक श्रीहरिकी पूजा करे । यदि अपने पास धन हो तो ब्राह्मणोंको बेरोक-टोक भोजन करावे । तदनन्तर भाई-बन्धुओंके साथ स्वयं भी मौन होकर भोजन करे । नारदजी ! इस प्रकार पौषसे लेकर कार्तिकतकके महीनोंमें भी शुक्लपक्षमें मनुष्य पूर्वोक्त विधिसे इस व्रतको करे । इस प्रकार

इस पापनाशक व्रतको एक वर्षतक करे। फिर मार्गशीर्ष मास आनेपर व्रती पुरुष उसका उद्यापन करे। ब्रह्मन्! एकादशीको पञ्चमीकी ही भाँति निराहार रहना चाहिये और द्वादशीको एकाग्रचित्त हो पञ्चगव्य पीना चाहिये। फिर गन्ध, पुष्प आदि सामग्रियोंसे देवदेव जनार्दनकी भलीभाँति पूजा करके जितेन्द्रिय पुरुष ब्राह्मणको भेंट दे। मुनीश्वर! मधु और घृतयुक्त खीर, फल, सुगन्धित जलसे भरा और वस्त्रसे ढका हुआ पञ्चरत्न और दक्षिणासहित कलश अध्यात्मतत्त्वके ज्ञाता ब्राह्मणको दान करे। (उस समय निम्नाङ्कितरूपसे प्रार्थना करे—)

सर्वात्मन् सर्वभूतेश सर्वव्यापिन् सनातन।
परमान्नप्रदानेन सुप्रीतो भव माधव ॥
(२१। २३)

'सबके आत्मा, सम्पूर्ण भूतोंके स्वामी, सर्वव्यापी, सनातन माधव! आप इस उत्तम अन्नके दानसे अत्यन्त प्रसन्न हों।'

इस मन्त्रसे खीर दान करके यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन करावे और स्वयं भी मौन होकर भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे। जो इस हरिपञ्चक नामक व्रतका पालन करता है, उसका ब्रह्मलोक अर्थात् परमात्माके परम धामसे कभी पुनरागमन नहीं होता। उत्तम मोक्षकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको यह व्रत अवश्य करना चाहिये। ब्रह्मन्! यह व्रत सम्पूर्ण पापरूपी दुर्गम वनको जलानेके लिये दावानलके समान है। जो मानव भगवान् नारायणके चिन्तनमें तत्पर हो भक्तिपूर्वक इस प्रसङ्गको सुनता है, वह महाघोर पातकोंसे मुक्त हो जाता है।

मासोपवास-व्रतकी विधि और महिमा

श्रीसनकजी कहते हैं—नारदजी! अब मैं मासोपवास नामक दूसरे श्रेष्ठ व्रतका वर्णन करूँगा; एकाग्रचित्त होकर सुनिये। वह सब पापोंको हर लेनेवाला, पवित्र तथा सब लोगोंका उपकार करनेवाला है। विप्रवर! आषाढ़, श्रावण, भादों अथवा आश्विन मासमें इस व्रतको करना चाहिये। इनमेंसे किसी एक मासके शुक्ल पक्षमें जितेन्द्रिय पुरुष पञ्चगव्य पीये और भगवान् विष्णुके समीप शयन करे। तदनन्तर प्रातःकाल उठकर नित्यकर्म समाप्त करनेके पश्चात् मन और इन्द्रियोंको वशमें करके क्रोधरहित हो, श्रद्धापूर्वक भगवान् विष्णुकी पूजा करे। विद्वानोंके साथ भगवान् विष्णुका यथोचित पूजन करके स्वस्तिवाचनपूर्वक यह संकल्प करे—

मासमेकं निराहारो ह्यद्यप्रभृति केशव।
मासान्ते पारणं कुर्वे देवदेव तवाज्ञया ॥
तपोरूप नमस्तुभ्यं तपसां फलदायक।
ममाभीष्टफलं देहि सर्वविघ्नान् निवारय ॥
(२२। ६-७)

'देवदेव! केशव! आजसे एक मासतक मैं निराहार रहकर मासके अन्तमें आपकी आज्ञासे पारण करूँगा। प्रभो! आप तपस्वरूप हैं और तपस्याके फल देनेवाले हैं। आपको नमस्कार है। आप मुझे अभीष्ट फल दें और मेरे सम्पूर्ण विघ्नोंका निवारण करें।'

इस प्रकार भगवान् विष्णुको शुभ मासव्रत समर्पण करके उस दिनसे लेकर महीनेके अन्ततक भगवान् विष्णुके मन्दिरमें निवास करे और प्रतिदिन पञ्चामृतकी विधिसे भगवान्को स्नान करावे। उस महीनेमें निरन्तर भगवान्के

मन्दिरमें दीप जलावे। नित्यप्रति अपामार्ग (ऊँगा—चिरचिरा) की दातुन करे और भगवान् नारायणके चिन्तनमें रत हो

विधिपूर्वक स्नान करे। तदनन्तर पहलेकी भाँति संयमपूर्वक भगवान् विष्णुको स्नान करावे और उनकी पूजा करे। इस प्रकार मासोपवास पूरा होनेपर भगवत्पूजनपूर्वक यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन करावे और भक्तिपूर्वक उन्हें दक्षिणा दे। फिर स्वयं भी इन्द्रियोंको वशमें करके बन्धुजनोंके साथ भोजन करे। इस प्रकार व्रती पुरुष तेरह बार मासोपवास अर्थात् प्रतिवर्ष एक मासोपवास-व्रत करता हुआ तेरह वर्षतक व्रत करे। उसके अन्तमें वेदवेत्ता ब्राह्मणको दक्षिणा-सहित गोदान करे। बारह ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक भोजन करावे और अपनी शक्तिके अनुसार उन्हें वस्त्र, आभूषण तथा दक्षिणा दे।

इस प्रकार जो मनुष्य इन्द्रियसंयमपूर्वक तेरह पराक पूर्ण कर लेता है, वह परमानन्द पदको प्राप्त होता है, जहाँ जाकर कोई शोक नहीं करता। मासोपवास-व्रतमें लगे हुए, गङ्गास्नानमें तत्पर तथा धर्ममार्गका उपदेश करनेवाले मनुष्य निस्संदेह मुक्त होते हैं। विधवा स्त्रियों, संन्यासियों, ब्रह्मचारियों और विशेषतः वानप्रस्थोंको यह मासोपवास-व्रत करना चाहिये। स्त्री हो या पुरुष, इस परम दुर्लभ व्रतका अनुष्ठान करके मोक्ष प्राप्त कर लेता है, जो योगियोंके लिये भी दुर्लभ है। गृहस्थ हो या वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी हो या संन्यासी तथा मूर्ख हो या पण्डित—इस प्रसङ्गको सुनकर कल्याणका भागी होता है। जो भगवान् नारायणकी शरण होकर इस पुण्यमय प्रसङ्गका वर्णन सुनता अथवा पढता है, वह पापोंसे मुक्त हो जाता है।

एकादशी-व्रतकी विधि और महिमा—भद्रशीलकी कथा

श्रीसनकजी कहते हैं—नारदजी! अब मैं इस अन्य व्रतका, जो तीनों लोकोंमें विख्यात है, वर्णन करूँगा। यह सब पापोंका नाश करनेवाला तथा सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाला है। इसका नाम है—एकादशी-व्रत। यह भगवान् विष्णुको विशेष प्रिय है। ब्रह्मन्! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और स्त्री—जो भी भक्तिपूर्वक इस व्रतका पालन करते हैं, उनको यह मोक्ष देनेवाला है। यह मनुष्योंको उनकी समस्त अभीष्ट वस्तुएँ प्रदान करता है। विप्रवर! सब प्रकारसे इस व्रतका पालन करना चाहिये; क्योंकि यह भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेवाला है। दोनो पक्षकी एकादशीको भोजन न करे। जो भोजन कर लेता है, वह इस लोकमें बड़ा भारी पापी है। परलोकमें उसे नरककी प्राप्ति होती है। मुनीश्वर! मनुष्य यदि मुक्तिकी अभिलाषा रखता है तो वह दशमी और द्वादशीको एक समय भोजन करे और एकादशीको सर्वथा निराहार रहे। महापातकों अथवा सब प्रकारके पातकोंसे युक्त मनुष्य भी यदि एकादशीको निराहार रहे तो वह परम गतिको प्राप्त होता है। एकादशी परम पुण्यमयी तिथि है। यह भगवान् विष्णुको बहुत प्रिय है। संसार-बन्धनका उच्छेद करनेकी इच्छावाले ब्राह्मणोंको सर्वथा इसका सेवन करना चाहिये। दशमीको प्रातःकाल उठकर दन्तधावनपूर्वक स्नान करे और इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए विधिपूर्वक भगवान् विष्णुका पूजन करे। रातमें भगवान् नारायणका चिन्तन करते हुए उन्हींके समीप शयन करे। एकादशीको सबेरे उठकर शौच-स्नानके अनन्तर गन्ध, पुष्प आदि सामग्रियोंद्वारा भगवान् विष्णुकी विधिपूर्वक पूजा करके इस प्रकार कहे—

> एकादश्यां निराहारः स्थित्वाहमपरेऽहनि।
> भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत॥
> (२३ । १५)

'कमलनयन अच्युत! आज एकादशीको निराहार रहकर मैं दूसरे दिन भोजन करूँगा। आप मेरे लिये शरण हों।'

सुदर्शनचक्रधारी देवदेव भगवान् विष्णुके समीप भक्तिभावसे उक्त मन्त्रका उच्चारण करके प्रसन्नचित्त हो उन्हें एकादशीका उपवास समर्पित करे। व्रती पुरुष जितेन्द्रिय रहकर भगवान् विष्णुके समक्ष गीत, वाद्य, नृत्य तथा पुराण-श्रवण आदिके द्वारा रातमें जागरण करे। तदनन्तर द्वादशीके दिन प्रातःकाल उठकर व्रतधारी पुरुष स्नान करके इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए विधिपूर्वक भगवान् विष्णुकी पूजा करे। विप्रवर! जो एकादशीके दिन भगवान् जनार्दनको पञ्चामृतसे स्नान कराकर द्वादशीको दूधसे स्नान कराता है, वह श्रीहरिका सायुज्य प्राप्त कर लेता है। (पूजनके पश्चात् इस प्रकार प्रार्थना करे—)

> अज्ञानतिमिरान्धस्य व्रतेनानेन केशव।
> प्रसीद सुमुखो भूत्वा ज्ञानदृष्टिप्रदो भव॥
> [illegible]

'केशव ! मैं अज्ञानरूपी तिमिर रोगसे अन्धा हो रहा हूँ। मेरे इस व्रतसे आप प्रसन्न हों और प्रसन्नमुख होकर मुझे ज्ञानदृष्टि प्रदान करें।'

विप्रवर ! इस प्रकार द्वादशीके दिन भगवान् लक्ष्मीपतिसे निवेदन करके एकाग्रचित्त हो यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उन्हें दक्षिणा दे। तत्पश्चात् अपने भाई-बन्धुओंके साथ भगवान् नारायणका चिन्तन करते हुए पञ्चमहायज्ञ (बलिवैश्वदेव) करके स्वयं भी मौनभावसे भोजन करे। जो इस प्रकार संयमपूर्वक पवित्र एकादशी-व्रतका पालन करता है, वह पुनरावृत्तिरहित वैकुण्ठधाममें जाता है। उपवास-व्रतमें तत्पर तथा धर्मकार्यमें संलग्न मनुष्य चाण्डालों और पतितोंकी ओर कभी न देखे। जो नास्तिक हैं, जिन्होंने मर्यादा भङ्ग की है तथा जो निन्दक और चुगले हैं, ऐसे लोगोंसे उपवास-व्रत करनेवाला पुरुष कभी बातचीत न करे। जो यज्ञके अनधिकारियोंसे यज्ञ करानेवाला है, उससे भी व्रती पुरुष कभी न बोले। जो कुण्ड (पतिके जीते-जी परपुरुषसे उत्पन्न किये हुए पुरुष) का अन्न खाता, देवता और ब्राह्मणसे विरोध रखता, पराये अन्नके लिये लालायित रहता और परायी स्त्रियोंमें आसक्त होता है, ऐसे मनुष्यका व्रती पुरुष वाणीमात्रसे भी आदर न करे। जो इस प्रकारके दोषोंसे रहित, शुद्ध, जितेन्द्रिय तथा सबके हितमें तत्पर है, वह उपवासपरायण होकर परम सिद्धिको प्राप्त कर लेता है। गङ्गाके समान कोई तीर्थ नहीं है। माताके समान कोई गुरु नहीं है। भगवान् विष्णुके समान कोई देवता नहीं है और उपवाससे बढ़कर कोई तप नहीं है। क्षमाके समान कोई माता नहीं है। कीर्तिके समान कोई धन नहीं है। ज्ञानके समान कोई लाभ नहीं है। धर्मके समान कोई पिता नहीं है। विवेकके समान कोई बन्धु नहीं है और एकादशीसे बढ़कर कोई व्रत नहीं है *।

इस विषयमें लोग भद्रशील और गालवमुनिके पुरातन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। पूर्वकालकी बात है, नर्मदाके तटपर गालव नामसे प्रसिद्ध एक सत्यपरायण मुनि रहते थे। वे शम (मनोनिग्रह) और दम (इन्द्रियसंयम) से सम्पन्न तथा तपस्याकी निधि थे। सिद्ध, चारण, गन्धर्व, यक्ष और विद्याधर आदि देवयोनिके लोग भी वहाँ विहार करते थे। वह स्थान कंद, मूल, फलोंसे परिपूर्ण था। वहाँ मुनियोंका बहुत बड़ा समुदाय निवास करता था। विप्रवर गालव वहाँ चिरकालसे निवास करते थे। उनके एक पुत्र हुआ जो भद्रशील नामसे विख्यात हुआ। वह बालक अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें रखता था। उसे अपने पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण था। वह महान् भाग्यशाली ऋषिकुमार निरन्तर भगवान् नारायणके भजन-चिन्तनमें ही लगा रहता था। महामति भद्रशील बालोचित क्रीडाके समय भी मिट्टीसे भगवान् विष्णुकी प्रतिमा बनाकर उसकी पूजा करता और अपने साथियोंको समझाता कि

'मनुष्योंको सदा भगवान् विष्णुकी आराधना करनी चाहिये और विद्वानोंको एकादशी-व्रतका भी पालन करना चाहिये।' मुनीश्वर ! भद्रशीलद्वारा इस प्रकार समझाये जानेपर उसके साथी शिशु भी मिट्टीसे भगवान्‌की प्रतिमा बनाकर एकत्र या अलग-अलग बैठ जाते और प्रसन्नतापूर्वक उसकी पूजा करते थे। इस तरह वे परम सौभाग्यशाली बालक भगवान् विष्णुके भजनमें तत्पर हो गये। भद्रशील भगवान् विष्णुको नमस्कार करके यही प्रार्थना करता था कि 'सम्पूर्ण जगत्‌का

---

* नास्ति गङ्गासमं तीर्थं नास्ति मातृसमो गुरुः।
नास्ति विष्णुसमं दैवं तपो नानशनात्परम्॥
नास्ति क्षमासमा माता नास्ति कीर्तिसमं धनम्।
नास्ति ज्ञानसमो लाभो न च धर्मसमः पिता॥
न विवेकसमो बन्धुर्नैकादश्याः परं व्रतम्।
(ना० पूर्व० २३। ३०—३२)

कल्याण हो।' खेलके समय वह दो घड़ी या एक घड़ी भी ध्यानस्थ हो एकादशी-व्रतका संकल्प करके भगवान् विष्णुको समर्पित करता था। अपने पुत्रको इस प्रकार उत्तम चरित्रसे युक्त देखकर तपोनिधि गालव मुनि बड़े विस्मित हुए और उसे हृदयसे लगाकर पूछने लगे।

गालव बोले—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महाभाग भद्रशील! तुम अपने कल्याणमय शील-स्वभावके कारण सचमुच भद्रशील हो। तुम्हारा जो मङ्गलमय चरित्र है, वह योगियोंके लिये भी दुर्लभ है। तुम सदा भगवान्‌की पूजामें तत्पर, सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें संलग्न तथा एकादशी-व्रतके पालनमें लगे रहनेवाले हो। शास्त्रनिषिद्ध कर्मोंसे तुम सदा दूर रहते हो। तुमपर सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंका प्रभाव नहीं पड़ता। तुममें ममता नहीं दिखायी देती और तुम शान्तभावसे भगवान्‌के ध्यानमें मग्न रहते हो। बेटा! अभी तुम बहुत छोटे हो तो भी तुम्हारी बुद्धि ऐसी किस प्रकार हुई; क्योंकि महापुरुषोंकी सेवाके बिना भगवान्‌की भक्ति प्रायः दुर्लभ होती है। इस जीवकी बुद्धि स्वभावतः अज्ञानयुक्त सकाम कर्मोंमें लगती है। तुम्हारी सब क्रिया अलौकिक कैसे हो रही है? सत्सङ्ग होनेपर भी पूर्व पुण्यकी अधिकतासे ही मनुष्योंमें भगवद्भक्तिका उदय होता है। अतः तुम्हारी अद्भुत स्थिति देखकर मैं बड़े विस्मयमें पड़ा हूँ और प्रसन्नतापूर्वक इसका कारण पूछता हूँ। अतः तुम्हें यह बताना चाहिये।

मुनिश्रेष्ठ! पिताके द्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर पूर्व-जन्मका स्मरण रखनेवाला पुण्यात्मा भद्रशील बहुत प्रसन्न हुआ। उसके मुखपर हास्यकी छटा छा गयी। उसने अपने अनुभवमें आयी हुई सब बातें पिताको ठीक-ठीक कह सुनायीं।

भद्रशील बोला—पिताजी! सुनिये। पूर्वजन्ममें मैंने जो कुछ अनुभव किया है, वह जातिस्मर होनेके कारण अब भी जानता हूँ। मुनिश्रेष्ठ! मैं पूर्वजन्ममें चन्द्रवंशी राजा था। मेरा नाम धर्मकीर्ति था और महर्षि दत्तात्रेयने मुझे शिक्षा दी थी। मैंने नौ हजार वर्षोंतक सम्पूर्ण पृथ्वीका पालन किया। पहले मैंने पुण्यकर्म भी बहुत-से किये थे, परंतु पीछे पाखण्डियोंसे बाधित होकर मैंने वैदिकमार्गको त्याग दिया। पाखण्डियोंकी कूट युक्तिका अवलम्बन करके मैंने भी सब यज्ञोंका विध्वंस किया। मुझे अधर्ममें तत्पर देख मेरे देशकी प्रजा भी सदैव पाप-कर्म करने लगी। उनमेंसे छठा अंश और मुझे मिलने लगा। इस प्रकार मैं सदा पापाचारपरायण हो दुर्व्यसनोंमें आसक्त रहने लगा। एक दिन शिकार खेलनेकी रुचिसे मैं सेनासहित एक वनमें गया और वहाँ भूख-प्याससे पीड़ित हो घूमता-घामता नर्मदाके तटपर आया। सूर्यकी तीखी धूपसे संतप्त होनेके कारण मैंने नर्मदाजीके जलमें स्नान किया। सेना किधर गयी, यह मैंने नहीं देखा। अकेला ही वहाँ भूखसे व्याकुल हो रहा था। संध्याके समय नर्मदा-तटके निवासी, जो एकादशी व्रत करनेवाले थे, वहाँ एकत्र हुए। उन सबको मैंने देखा। उन्हीं लोगोंके साथ निराहार रहकर बिना सेनाके ही मैं अकेला रातमें वहाँ जागरण करता रहा। और हे तात! जागरण समाप्त होनेपर मेरी वहीं मृत्यु हो गयी। तब बड़ी बड़ी दाढ़ोंसे भय उत्पन्न करनेवाले यमराजके दूतोंने मुझे बाँध लिया और अनेक प्रकारके क्लेशोंसे भरे हुए मार्गद्वारा यमराजके निकट पहुँचाया। वहाँ जाकर मैंने यमराजको देखा जो सबके प्रति समान बर्ताव करनेवाले हैं। तब यमराजने चित्रगुप्तको बुलाकर कहा—'विद्वन्! इसको दण्ड किस प्रकार कैसे करना है बताओ।' साधुशिरोमणे! धर्मराजके ऐसा कहनेपर चित्रगुप्तने देरतक विचार किया; फिर इस प्रकार कहा—'धर्मराज! यद्यपि यह सदा पापमें लगा रहा है, यह ठीक है, तथापि एक बात सुनिये। एकादशीको उपवास करनेवाला मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। नर्मदाके रमणीय तटपर एकादशीके दिन यह निराहार रहा है। वहाँ जागरण और उपवास करके यह सर्वथा निष्पाप हो गया है। इसने जो कोई भी बहुत-से पाप किये थे, वे सब उपवासके प्रभावसे नष्ट हो चुके हैं।' बुद्धिमान् चित्रगुप्तके ऐसा कहनेपर धर्मराज मेरे सामने काँपने लगे। उन्होंने भूमिपर दण्डकी भाँति पड़कर मुझे साष्टाङ्ग प्रणाम किया और भक्तिभावसे मेरी पूजा की। तदनन्तर धर्मराजने अपने सब दूतोंको बुलाकर इस प्रकार कहा।

धर्मराज बोले—'दूतो! मेरी बात सुनो। मैं तुम्हारे हितकी बड़ी उत्तम बात बतलाता हूँ। धर्ममें लगे हुए मनुष्योंको मेरे पास न लाया करो। जो भगवान् विष्णुके पूजनमें तत्पर, संयमी, कृतज्ञ, एकादशीव्रतपरायण तथा जितेन्द्रिय हैं और जो 'हे नारायण! हे अच्युत! हे हरे! मुझे शरण दीजिये' इस प्रकार शान्तभावसे निरन्तर कहते रहते हैं, ऐसे लोगोंको तुम तुरंत छोड़ देना। मैं तुम्हें जो सम्पूर्ण लोकोंके हितैषी तथा परम शान्तचित्त सदाचारी

हैं और जो नारायण! अच्युत! जनार्दन! कृष्ण! विष्णो! कमलाकान्त! ब्रह्मादिके पिता! शिव! शंकर! इत्यादि नामोंका नित्य कीर्तन किया करते हैं, उन्हें दूरसे ही त्याग दिया करो। उनपर मेरा शासन नहीं चलता। मेरे सेवको! जो अपना सम्पूर्ण कर्म भगवान् विष्णुको समर्पित कर देते हैं, उन्हींके भजनमें लगे रहते हैं, अपने वर्णाश्रमोचित आचारके मार्गमें स्थित हैं, गुरुजनोंकी सेवा किया करते हैं, सत्पात्रको दान देते, दीनोंकी रक्षा करते और निरन्तर भगवन्नामके जप-कीर्तनमें संलग्न रहते हैं, उनको भी त्याग देना। दूतगण! जो पाखण्डियोंके सङ्गसे रहित, ब्राह्मणोंके प्रति भक्ति रखनेवाले, सत्सङ्गके लोभी, अतिथि-सत्कारके प्रेमी, भगवान् शिव और विष्णुमें समता रखनेवाले तथा लोगोंके उपकारमें तत्पर हों, उन्हें त्याग देना। मेरे दूतो! जो लोग भगवान्की कथारूप अमृतके सेवनसे वञ्चित हैं, भगवान् विष्णुके चिन्तनमें मन लगाये रखनेवाले साधु-महात्माओंसे जो दूर रहते हैं, उन पापियोंको ही मेरे घरपर लाया करो। मेरे किङ्करो! जो माता और पिताको डाँटने-वाले, लोगोंसे द्वेष रखनेवाले, हितैषी जनोंका भी अहित करनेवाले, देवताकी सम्पत्तिके लोभी, दूसरे लोगोंका नाश करनेवाले तथा सदैव दूसरोंके अपराधमें ही तत्पर रहनेवाले हैं, उनको यहाँ पकड़कर लाओ। मेरे दूतो! जो एकादशी-व्रतसे विमुख, क्रूर स्वभाववाले, लोगोंको कलङ्क लगानेवाले, परनिन्दामें तत्पर, ग्रामका विनाश करनेवाले, श्रेष्ठ पुरुषोंसे वैर रखनेवाले तथा ब्राह्मणके धनका लोभ करनेवाले हैं, उनको यहाँ ले आओ। जो भगवान् विष्णुकी भक्तिसे मुँह मोड़ चुके हैं, शरणागतपालक भगवान् नारायणको प्रणाम नहीं करते हैं तथा जो मूर्ख मनुष्य कभी भगवान् विष्णुके मन्दिरमें नहीं जाते हैं, उन अतिशय पापमें रत रहनेवाले दुष्ट लोगोंको ही तुम बलपूर्वक पकड़कर यहाँ ले आओ।

इस प्रकार जब मैंने यमराजकी कही हुई बातें सुनीं तो पश्चात्तापसे दग्ध होकर अपने किये हुए उस निन्दित कर्मको स्मरण किया। पापकर्मके लिये पश्चात्ताप और श्रेष्ठ धर्मका श्रवण करनेसे मेरे सब पाप वहीं नष्ट हो गये। उसके बाद मैं उस पुण्यकर्मके प्रभावसे इन्द्रलोकमें गया। वहाँपर मैं सब प्रकारके भोगोंसे सम्पन्न रहा। सम्पूर्ण देवता मुझे नमस्कार करते थे। बहुत कालतक स्वर्गमें रहकर फिर वहाँसे मैं भूलोकमें आया। यहाँ भी आप-जैसे विष्णु-भक्तोंके कुलमें मेरा जन्म हुआ। मुनीश्वर! जातिस्मर होनेके कारण मैं यह सब बातें जानता हूँ। इसलिये मैं बालकोंके साथ भगवान् विष्णुके पूजनकी चेष्टा करता हूँ। पूर्वजन्ममें एकादशी-व्रतका ऐसा माहात्म्य है, यह बात मैं नहीं जान सका था। इस समय पूर्वजन्मकी बातोंकी स्मृतिके प्रभावसे मैंने एकादशी-व्रतको जान लिया है। पहले विवश होकर भी जो व्रत किया गया था, उसका यह फल मिला है। प्रभो! फिर जो भक्तिपूर्वक एकादशी-व्रत करते हैं, उनको क्या नहीं मिल सकता। अतः विप्रेन्द्र! मैं शुभ एकादशी-व्रतका पालन तथा प्रतिदिन भगवान् विष्णुकी पूजा करूँगा। भगवान्के परम धामको पानेकी आकाङ्क्षा ही इसमें हेतु है। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक एकादशी-व्रत करते हैं, उन्हें निश्चय ही परमानन्ददायक वैकुण्ठधाम प्राप्त होता है।' अपने पुत्रका ऐसा वचन सुनकर गालव मुनि बहुत प्रसन्न हुए। उन्हें बड़ा संतोष प्राप्त हुआ। उनका हृदय अत्यन्त हर्षसे भर गया। वे बोले—'वत्स! मेरा जन्म सफल हो गया। मेरा कुल भी पवित्र हो गया; क्योंकि तुम्हारे-जैसा विष्णुभक्त पुरुष मेरे घरमें पैदा हुआ है।' इस प्रकार पुत्रके उत्तम कर्मसे मन-ही-मन संतुष्ट होकर महर्षि गालवने उसे भगवान्की पूजाका विधान ठीक-ठीक समझाया। मुनिश्रेष्ठ नारद! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने ये सब बातें कुछ विस्तारके साथ तुम्हें बता दी हैं। तुम और क्या सुनना चाहते हो?

चारों वर्णों और द्विजका परिचय तथा विभिन्न वर्णोंके विशेष और सामान्य धर्मका वर्णन

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! सनकजीके मुखसे एकादशी-व्रतका यह माहात्म्य जो अप्रमेय, पवित्र, सर्वोत्तम तथा पापराशिको शान्त करनेवाला है, सुनकर ब्रह्मपुत्र नारदजी बड़े प्रसन्न हुए और फिर इस प्रकार बोले।

नारदजीने कहा—महर्षे! आप बड़े तत्त्वज्ञ हैं। आपने भगवान्की भक्ति देनेवाले तथा परम पुण्यमय व्रत-सम्बन्धी इस उपाख्यानका यथार्थरूपसे पूरा-पूरा वर्णन किया है। मुने! अब मैं चारों वर्णोंके आचारकी विधि और सम्पूर्ण आश्रमोंके आचार तथा प्रायश्चित्तकी विधि सुनना चाहता हूँ। महाभाग! मुझपर बड़ी भारी कृपा करके यह सब मुझे यथार्थरूपसे बताइये।

श्रीसनकजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! सुनिये। भक्तोंका प्रिय करनेवाले अविनाशी श्रीहरि वर्णाश्रम-धर्मका पालन करनेवाले पुरुषोंद्वारा जिस प्रकार पूजित होते हैं, वह सब बतलाता हूँ। मनु आदि स्मृतिकारोंने वर्ण और आश्रम-सम्बन्धी धर्मका जैसा वर्णन किया है, वह सब आपको

विधिपूर्वक बतलाता हूँ; क्योंकि आप भगवान्‌के भक्त हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये चार ही वर्ण कहे गये हैं। इन सबमें ब्राह्मण श्रेष्ठ है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये तीन द्विज कहे गये हैं। पहला जन्म मातासे और दूसरा उपनयन-संस्कारसे होता है। इन्हीं दो कारणोंसे तीनों वर्णोंके लोग द्विजत्व प्राप्त करते हैं। इन वर्णोंके लोगोंको अपने-अपने वर्णके अनुरूप सब धर्मोंका पालन करना चाहिये। अपने वर्णधर्मका त्याग करनेसे विद्वान् पुरुष उसे पाखण्डी कहते हैं। अपनी शाखाके गृह्यसूत्रमें बताये हुए कर्मका अनुष्ठान करनेवाला द्विज कृतकृत्य होता है, अन्यथा वह सब धर्मोंसे बहिष्कृत एवं पतित हो जाता है। इन वर्णोंको यथोचित युगधर्मका धारण करना चाहिये तथा स्मृतिधर्मके विरुद्ध न होनेपर देशाचार भी अवश्य ग्रहण करना चाहिये। मन, वाणी और क्रियाद्वारा यत्नपूर्वक धर्मका पालन करना चाहिये।

द्विजश्रेष्ठ! अब मैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके सामान्य कर्तव्योंका वर्णन करता हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो। ब्राह्मण ब्राह्मणोंको दान दे, यज्ञोंद्वारा देवताओंका यजन करे, जीविकाके लिये दूसरोंका यज्ञ करावे तथा दूसरोंको पढावे। जो यज्ञके अधिकारी हों, उन्हींका यज्ञ करावे। ब्राह्मणको नित्य जलसम्बन्धी क्रिया—स्नान-सध्या और तर्पण

करना चाहिये। वह वेदोंका स्वाध्याय तथा अग्निहोत्र करे। सम्पूर्ण लोकोंका हित करे, सदा मीठे वचन बोले और सदा भगवान् विष्णुकी पूजामें तत्पर रहे। द्विजश्रेष्ठ! क्षत्रिय भी ब्राह्मणोंको दान दे। वह भी वेदोंका स्वाध्याय और यज्ञोंद्वारा देवताओंका यजन करे। वह शस्त्रास्त्रोंके द्वारा जीविका चलावे और धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन करे। दुष्टोंको दण्ड दे और शिष्ट पुरुषोंकी रक्षा करे। द्विजनन्दन! वैश्यके लिये भी वेदोंका अध्ययन आवश्यक बताया गया है। इसके सिवा वह पशुओंका पालन, व्यापार तथा कृषिकर्म करे। सजातीय स्त्रीसे विवाह करे और धर्मोंका भलीभाँति पालन करता रहे। वह क्रय-विक्रय अथवा शिल्पकर्मद्वारा प्राप्त हुए धनसे जीविका चलावे। शूद्र भी ब्राह्मणोंको दान दे, किंतु पाकयज्ञोंद्वारा[1] यजन न करे। वह ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंकी सेवामें तत्पर रहे और अपनी स्त्रीसे ऋतुकाल-मे सहवास करे।

सब लोगोंका हित चाहना, सबसे मङ्गल भाषण करना, प्रिय वचन बोलना, किसीको कष्ट न पहुँचाना, मनको प्रसन्न रखना, सहनशील होना तथा घमंड न करना—यह सब मुनियोंने समस्त वर्णोंका सामान्य धर्म बतलाया है। अपने आश्रमोचित कर्मके पालनसे सब लोग सुनिपुण हो जाते हैं। ब्रह्मन्! आपत्तिकालमें ब्राह्मण क्षत्रियोचित आचारका आश्रय ले सकता है। इसी प्रकार अत्यन्त आर्त होनेपर क्षत्रिय भी वैश्यवृत्तिको ग्रहण कर सकता है, परंतु भारी-भारी आपत्ति आनेपर भी ब्राह्मण कभी शूद्रवृत्तिका आश्रय न ले। यदि कोई मूढ ब्राह्मण शूद्रवृत्ति ग्रहण करता है तो वह चाण्डालभावको प्राप्त होता है। मुनिश्रेष्ठ! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन तीनों वर्णोंके लिये ही चार आश्रम बताये गये हैं। कोई पाँचवाँ आश्रम सिद्ध नहीं होता। साधुशिरोमणे! ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी—ये ही चार आश्रम हैं। विप्रवर! इन्हीं चार आश्रमोंद्वारा उत्तम धर्मका आचरण किया जाता है। जिसका चित्त कर्मयोगमें लगा हुआ है, उसपर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं। जिनके मनमें कोई कामना नहीं है, जिनका चित्त शान्त है तथा जो अपने वर्ण-आश्रमोचित कर्मोंके पालनमें लगे रहते हैं, वे उस परम धामको प्राप्त होते हैं, जहाँसे पुनः इस संसारमें लौटकर आना नहीं पड़ता।

---

१. तैयार की हुई रसोईसे जो यज्ञ होते हैं, उन्हें 'पाकयज्ञ' कहते हैं। मनुस्मृतिमें चार प्रकारके पाकयज्ञ बताये हैं—वैश्वदेव होम, बलिकर्म, नित्यश्राद्ध और अतिथि-भोजन।

संस्कारोंके नियत काल, ब्रह्मचारीके धर्म, अनध्याय तथा वेदाध्ययनकी आवश्यकताका वर्णन
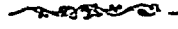
श्रीसनकजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ ! अब मैं विशेषरूपसे वर्ण और आश्रम-सम्बन्धी आचार और विधिका वर्णन करता हूँ, तुम सावधान होकर सुनो। जो स्वधर्मका त्याग करके परधर्मका पालन करता है, उसे पाखण्डी समझना चाहिये। द्विजोंके गर्भाधान आदि संस्कार वैदिक मन्त्रोक्त विधिसे करने चाहिये। स्त्रियोंके संस्कार यथासमय बिना मन्त्रके ही विधिपूर्वक करने चाहिये। प्रथम बार गर्भाधान होनेपर चौथे मासमे सीमन्तकर्म करना उत्तम माना गया है अथवा उसे छठे, सातवें या आठवें महीनेमें कराना चाहिये। पुत्रका जन्म होनेपर पिता वस्त्रसहित स्नान करके स्वस्तिवाचनपूर्वक नान्दीश्राद्ध तथा जातकर्म संस्कार करे। पुत्र-जन्मके अवसर-पर किया जानेवाला वृद्धिश्राद्ध सुवर्ण या रजतसे करना चाहिये। सूतक व्यतीत होनेपर पिता मौन होकर आभ्युदयिक श्राद्ध करनेके अनन्तर पुत्रका विधिपूर्वक नामकरण-संस्कार करे। विप्रवर ! जो स्पष्ट न हो, जिसका कोई अर्थ न बनता हो, जिसमें अधिक गुरु अक्षर आते हों अथवा जिसमें अक्षरोंकी संख्या विषम होती हो, ऐसा नाम न रक्खे। तीसरे वर्षमें चूड़ा-संस्कार उत्तम है। यदि उस समय न हो तो पाँचवें, छठे, सातवें अथवा आठवें वर्षमें भी गृह्यसूत्रमे बतायी हुई विधिके अनुसार उसे सम्पन्न कर लेना चाहिये। गर्भसे आठवें वर्षमें अथवा जन्मसे आठवें वर्षमें ब्राह्मणका उपनयन-संस्कार करना चाहिये। विद्वान् पुरुष सोलहवें वर्षतक उपनयनका गौणकाल वतलाते हैं।

गर्भसे ग्यारहवें वर्षमें क्षत्रियके उपनयनका मुख्यकाल है। उसके लिये बाईसवें वर्षतक गौणकाल निश्चित करते हैं। गर्भसे बारहवें वर्षमें वैश्यका उपनयन-संस्कार उचित कहा गया है। उसके लिये चौबीसवें वर्षतक गौणकाल वतलाते हैं। ब्राह्मणकी मेखला मूँजकी और क्षत्रियकी मेखला धनुषकी प्रत्यञ्चासे बनी हुई (सुतरी) तथा वैश्यकी मेखला भेड़के ऊनकी बनी होती है। ब्राह्मणके लिये पलाशका और क्षत्रियके लिये गूलरका तथा वैश्यके लिये बिल्वदण्ड विहित है। ब्राह्मणका दण्ड केशतक, क्षत्रियका ललाटके बराबर और वैश्यके दण्डकी ऊँचाई नासिकाके अग्रभागतककी बतायी है। ब्राह्मण आदि ब्रह्मचारियोंके लिये क्रमशः गेरुए, लाल और पीले रंगका वस्त्र बताया गया है। विप्रवर ! जिसका उपनयन-संस्कार किया गया हो, वह द्विज गुरुकी सेवामें तत्पर रहे और जबतक वेदाध्ययन समाप्त न हो जाय, तबतक गुरुके ही घरमें निवास करे। मुनीश्वर ! ब्रह्मचारी प्रातःकाल स्नान करे और प्रतिदिन सवेरे ही गुरुके लिये समिधा, कुशा और फल आदि ले आवे। मुनिश्रेष्ठ ! यज्ञोपवीत, मृगचर्म अथवा दण्ड जब नष्ट या अपवित्र हो जाय तो मन्त्रसे नूतन यज्ञोपवीत आदि धारण करके नष्ट-भ्रष्ट हुए पुराने यज्ञोपवीत आदिको जलमें फेंक दे। ब्रह्मचारीके लिये केवल भिक्षाके अन्नसे ही जीवन-निर्वाह करना बताया गया है। वह मन-इन्द्रियोंको संयममें रखकर श्रोत्रिय पुरुषके घरसे भिक्षा ले आवे। भिक्षा माँगते समय ब्राह्मण वाक्यके आदिमें, क्षत्रिय वाक्यके मध्यमें और वैश्य वाक्यके अन्तमें 'भवत्' शब्दका प्रयोग करे। जैसे—ब्राह्मण 'भवति ! भिक्षां मे देहि' (पूजनीय देवि ! मुझे भिक्षा दीजिये), क्षत्रिय 'भिक्षां भवति ! मे देहि' और वैश्य 'भिक्षां मे देहि भवति' कहे। जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी प्रतिदिन सायंकाल और प्रातःकाल शास्त्रीय विधिके अनुसार अग्निहोत्र (ब्रह्मयज्ञ) तथा तर्पण करे। जो अग्निहोत्रका परित्याग करता है, उसे विद्वान् पुरुष पतित कहते हैं। ब्रह्मयज्ञसे रहित ब्रह्मचारी ब्रह्महत्यारा कहा गया है। वह प्रतिदिन देवताकी पूजा और गुरुकी उत्तम सेवा करे। ब्रह्मचारी नित्यप्रति भिक्षाका ही अन्न भोजन करे। किसी एक घरका अन्न कभी न खाय। वह इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके घरसे भिक्षा लाकर गुरुको समर्पित कर दे और उनकी आज्ञासे मौन होकर भोजन करे। ब्रह्मचारी मधु, मांस, स्त्री, नमक, पान, दन्तधावन, उच्छिष्ट-भोजन, दिनका सोना तथा छाता लगाना आदि न करे। पादुका, चन्दन, माला, अनुलेपन, जलक्रीड़ा, नृत्य, गीत, वाद्य, परनिन्दा, दूसरोंको सताना, बहकी-बहकी बातें करना, अंजन लगाना, पाखण्डी लोगोंका साथ करना और शूद्रोंकी संगतिमें रहना आदि न करे।

वृद्ध पुरुषोंको क्रमशः प्रणाम करे। वृद्ध तीन प्रकारके होते हैं। एक ज्ञानवृद्ध, दूसरे तपोवृद्ध और तीसरे वयोवृद्ध हैं। जो गुरु वेद-शास्त्रोंके उपदेशसे आध्यात्मिक आदि दुःखोंका निवारण करते हैं, उन्हें पहले प्रणाम करे। प्रणाम करते समय द्विज बालक 'मैं अमुक हूँ' इस प्रकार अपना परिचय भी दे। ब्राह्मण किसी प्रकार क्षत्रिय आदिको प्रणाम न

करे । जो नास्तिक, धर्ममर्यादाको तोडनेवाला, कृतघ्न, ग्राम-पुरोहित, चोर और शठ हो, उसे ब्राह्मण होनेपर भी प्रणाम न करे । पाखण्डी, पतित, संस्कार-भ्रष्ट, नक्षत्रजीवी (ज्यौतिषी) तथा पातकीको भी प्रणाम न करे । पागल, शठ, धूर्त, दौडते हुए, अपवित्र, सिरमें तेल लगाये हुए तथा मन्त्रजप करते हुए पुरुषको भी प्रणाम नहीं करना चाहिये । जो झगडालू और क्रोधी हो, वमन कर रहा हो, पानीमें खड़ा हो, हाथमें भिक्षाका अन्न लिये हो और सो रहा हो, उसको भी प्रणाम न करे । स्त्रियोंमें जो पतिकी हत्या करनेवाली, रजस्वला, परपुरुषसे सम्बन्ध रखनेवाली, सूतिका, गर्भपात करनेवाली, कृतघ्न और क्रोधिनी हो, उसे कभी प्रणाम न करे । सभा, यज्ञशाला और देवमन्दिरमें भी एक-एक व्यक्तिके लिये किया जानेवाला नमस्कार पूर्वकृत पुण्यका नाश करता है । श्राद्ध, व्रत, दान, देवपूजा, यज्ञ और तर्पण करते हुए पुरुषको प्रणाम न करे; क्योंकि प्रणाम करनेपर जो शास्त्रीय विधिसे आशीर्वाद न दे सके, वह प्रणाम करने योग्य नहीं । बुद्धिमान् शिष्य दोनों पैर धोकर आचमन करके सदा गुरुके सामने बैठे और

उनके चरण पकडकर नमस्कार करे । फिर अध्ययन करे । अष्टमी, चतुर्दशी, प्रतिपदा, अमावास्या, पूर्णिमा, महाभरणी (भरणी-नक्षत्रके योगसे होनेवाले पर्वविशेष) श्रवणयुक्त द्वादशी, पितृपक्षकी द्वितीया, माघशुक्ला सप्तमी, आश्विन शुक्ला नवमी—इन तिथियोंमें तथा सूर्यके चारों

ओर घेरा लगनेपर एवं किसी श्रोत्रिय [illegible] पधारनेपर अध्ययन बंद रखना चाहिये । [illegible] श्रेष्ठ ब्राह्मणका स्वागत-सत्कार किया गया हो [illegible] साथ कलह बढ गया हो, उस दिन भी [illegible] चाहिये । देवर्षे ! सन्ध्याके समय [illegible] होनेपर, असमयमें वर्षा होनेपर [illegible] होनेपर, अपनेद्वारा किसी ब्राह्मणका [illegible] मन्वादि तिथियोंके आनेपर तथा युगादि [illegible] उपस्थित होनेपर सब कर्मोंके फलकी इच्छा रखनेवाला [illegible] भी द्विज अध्ययन न करे । वैशाख शुक्ला तृतीया [illegible] कृष्णा त्रयोदशी, कार्तिक शुक्ला नवमी तथा माघकी [illegible]— ये तिथियाँ युगादि कही गयी हैं । इनमें जो दान किया [illegible] है, उसके पुण्यको ये अक्षय बनानेवाली हैं * । [illegible] आश्विन शुक्ला नवमी, कार्तिक शुक्ला द्वादशी, [illegible] भाद्रपदमासकी तृतीया, आषाढ शुक्ला दशमी, [illegible] सप्तमी, श्रावण कृष्णा अष्टमी, आषाढ शुक्ला पूर्णिमा, [illegible] की अमावास्या, पौष शुक्ला एकादशी तथा [illegible] चैत्र और ज्येष्ठकी पूर्णिमा तिथियाँ—ये मन्वन्तरकी [illegible] तिथियाँ बतायी गयी हैं, जो दानके पुण्यको अक्षय बनानेवाली हैं † । द्विजोंको मन्वादि और युगादि तिथियोंमें श्राद्ध करना चाहिये । श्राद्धका निमन्त्रण हो जानेपर, [illegible]

---

* तृतीया माधवे शुक्ला [illegible] ।
कार्तिके नवमी शुक्ला माघे [illegible] ॥
एता युगाद्याः कथिता [illegible] ।
(ना० पूर्व० २५ । ५० ५१)

स्कन्दपुराणके अनुसार भिन्न-भिन्न युगकी [illegible] प्रकार हैं—कार्तिक शुक्ल नवमी सत्ययुगकी, [illegible] त्रेतायुगकी, माघकी पूर्णिमा द्वापरकी और [illegible] कलियुगकी आदितिथि है ।

† अश्वयुक्शुक्लनवमी कार्तिके [illegible] ।
तृतीया चैत्रमासस्य तथा [illegible] ॥
आषाढशुक्लदशमी [illegible] ।
श्रावणस्याष्टमी कृष्णा तथाषाढ [illegible] ॥
फाल्गुनस्य त्वमावास्या पौषस्यैकादशी [illegible] ।
कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्येष्ठ [illegible] ॥
मन्वादयः समाख्याता [illegible] ।
(ना० पूर्व० २५ । ५२—५५)

स्कन्दपुराणमें भी मन्वादि [illegible] इन श्लोकोंके क्रमसे भेद [illegible] ।

सूर्यग्रहणके दिन, उत्तरायण और दक्षिणायन प्रारम्भ होनेके दिन, भूकम्प होनेपर, गलग्रहमें और बादलोंके आनेसे अँधेरा हो जानेपर कभी अध्ययन न करे। नारदजी! इन सब अनध्यायोंमें जो अध्ययन करते हैं, उन मूढ पुरुषोंकी संतति, बुद्धि, यश, लक्ष्मी, आयु, बल तथा आरोग्यका साक्षात् यमराज नाश करते हैं। जो अनध्यायकालमें अध्ययन करता है, उसे ब्रह्म-हत्यारा समझना चाहिये। जो ब्राह्मण वेद-शास्त्रोंका अध्ययन न करके अन्य कर्मोंमें परिश्रम करता है, उसे शूद्रके तुल्य जानना चाहिये, वह नरकका प्रिय अतिथि है। वेदाध्ययनरहित ब्राह्मणके नित्य, नैमित्तिक, काम्य तथा दूसरे जो वैदिककर्म हैं, वे सब निष्फल होते हैं। भगवान् विष्णु शब्द-ब्रह्ममय हैं और वेद साक्षात् श्रीहरिका स्वरूप माना गया है। जो ब्राह्मण वेदोंका अध्ययन करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है।

विवाहके योग्य कन्या, विवाहके आठ भेद तथा गृहस्थोचित शिष्टाचारका वर्णन

धर्मनन्दनजी कहते हैं—नारदजी! वेदाध्ययनकालतक ब्रह्मचारी निरन्तर गुरुकी सेवामें लगा रहे, उसके बाद उनकी आज्ञा लेकर अग्निपरिग्रह (गार्हपत्य-अग्निकी स्थापना) करे। द्विज वेद, शास्त्र और वेदाङ्गोंका अध्ययन करके गुरुको दक्षिणा देकर अपने घर जाय। वहाँ उत्तम कुलमें उत्पन्न, रूप और लावण्यसे युक्त, सद्गुणवती तथा सुशीला और धर्मपरायणा कन्याके साथ विवाह करे। जो कन्या रोगिणी हो अथवा किसी विशेष रोगसे युक्त कुलमें उत्पन्न हुई हो, जिसके केश बहुत अधिक या कम हों, जो सर्वथा केशरहित हो और बहुत बोलनेवाली हो, उससे विद्वान् पुरुष विवाह न करे। जो क्रोध करनेवाली, बहुत नाटी, बहुत बड़े शरीरवाली, कुरूपा, किसी अङ्गसे हीन या अधिक अङ्गवाली, उन्मादिनी और चुगली करनेवाली हो तथा जो कुबड़ी हो, उससे भी विवाह न करे। जो सदा दूसरेके घरमें रहती हो, झगड़ालू हो, जिसकी मति भ्रान्त हो तथा जो निष्ठुर स्वभावकी हो, जो बहुत खानेवाली हो, जिसके दाँत और ओठ मोटे हों, जिसकी नाकमें घुर्घुराहटकी आवाज होती हो और जो धूर्त हो, उससे विद्वान् पुरुष विवाह न करे। जो सदा रोनेवाली हो, जिसके शरीरकी आभा श्वेत रंगकी हो, जो निन्दित, खाँसी और दमे आदिके रोगसे पीड़ित तथा अधिक सोनेवाली हो, जो अनर्थकारी वचन बोलती हो, लोगोंसे द्वेष रखती हो और चोरी करती हो, उससे विद्वान् पुरुष विवाह न करे। जिसकी नाक बड़ी हो, जो छल-कपट करनेवाली हो, जिसके शरीरमें अधिक रोएँ बढ़ गये हों तथा जो बहुत घमंडी और बगुलावृत्तिवाली (ऊपरसे साधु और भीतरसे दुष्ट हो), उससे भी विद्वान् पुरुष विवाह न करे।

मुनिश्रेष्ठ! ब्राह्म आदि आठ प्रकारके विवाह होते हैं, यह जानना चाहिये। इनमें पहला-पहला श्रेष्ठ है। पहलेवालेके अभावमें दूसरा श्रेष्ठ एवं ग्राह्य माना गया है। ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस तथा आठवाँ पैशाच विवाह है। श्रेष्ठ द्विजको ब्राह्मविवाहकी विधिसे विवाह करना चाहिये। अथवा दैवविवाहकी रीतिसे भी विवाह किया जा सकता है। कोई-कोई आर्ष विवाहको भी श्रेष्ठ बतलाते हैं। ब्रह्मन्! शेष प्राजापत्य आदि पाँच विवाह निन्दित हैं।

(अब गृहस्थ पुरुषका शिष्टाचार बताया जाता है—) दो यज्ञोपवीत तथा एक चादर धारण करे। कानोंमें सोनेके दो कुण्डल पहने। धोती दो रक्खे। सिरके बाल और नख कटाता रहे। पवित्रतापूर्वक रहे। स्वच्छ पगड़ी, छाता तथा चरणपादुका धारण करे। वेष ऐसा रक्खे जो देखनेमें प्रिय लगे। प्रतिदिन वेदोंका स्वाध्याय करे। शास्त्रोक्त आचारका पालन करे। दूसरोंका अन्न न खाय। दूसरोकी निन्दा छोड़ दे। पैरसे पैरको न दबाये, जूठी चीजको न लाँघे। दोनों हाथोंसे अपना सिर न खुजलाये। पूज्य पुरुष तथा देवालयको बायें करके न चले। देवपूजा, स्वाध्याय, आचमन, स्नान,

व्रत तथा श्राद्धकर्म आदिमें शिखाको खुली न रक्खे और एक वस्त्र धारण करके न रहे। गदहे आदिकी सवारी न करे। सूखा वाद-विवाद त्याग दे। परायी स्त्रीके पास कभी न जाय। ब्रह्मन्! गौ, पीपल तथा अग्निको भी अपनेसे बायें करके न जाय। इसी प्रकार चौराहेको, देववृक्षको, देवसम्बन्धी कुण्ड या सरोवरको तथा राजाको भी अपनेसे बायें करके न चले। दूसरोंके दोष देखना, डाह रखना और दिनमें सोना छोड़ दे। दूसरोंके पाप न कहे। अपना पुण्य प्रकट न करे। अपने नामको, जन्म-नक्षत्रको तथा मानको अत्यन्त गुप्त रक्खे। दुष्टोंके साथ निवास न करे। अशास्त्रीय बात न सुने। द्विजको मद्य, जूआ तथा गीतमें कभी आसक्ति नहीं रखनी चाहिये। गीली हड्डी, जूठी वस्तु, पतित तथा मुर्दा और कुत्तेको छूकर मनुष्य वस्त्रसहित स्नान कर ले। चिता, चिताकी लकड़ी, यूप, चाण्डालका स्पर्श कर लेनेपर मनुष्य वस्त्रसहित जलमें प्रवेश करे। दीपककी, खाटकी और शरीरकी छाया, केशका, वस्त्रका और चटाईका जल तथा बकरीके, झाड़ूके और बिल्लीके नीचेकी धूल—ये सब शुभ प्रारब्धको हर लेते हैं। सूपकी हवा, प्रेतके दाहका धुआँ, शूद्रके अन्नका भोजन तथा वृषलीके पतिका साथ दूरसे ही त्याग दे। असत् शास्त्रोंके अर्थका विचार, नख और केशोंका दाँतोंसे चबाना तथा नंगे होकर सोना सर्वदा छोड़ दे। सिरमें लगानेसे बचे हुए तेलको शरीरमें न लगावे। [illegible] ताम्बूल (चूनाके लगाये हुए पान) न [illegible] को न जगावे। अशुद्ध हुआ मनुष्य [illegible] और गुरुजनोंका पूजन न करे। बायें हाथसे [illegible] मुखसे जल न पीये। मुनीश्वर! गुरुकी [illegible] उनकी आज्ञा भी न टाले। योगी, ब्राह्मण [illegible] की कभी निन्दा न करे। द्विजको [illegible] गुप्त (रहस्य) की बातें कभी न करे। [illegible] को विधिपूर्वक याग करे। द्विजोंको [illegible] होम अवश्य करने चाहिये। जो [illegible] है उसे विद्वान् पुरुष [illegible] कहते हैं। [illegible] होनेके दिन, विषुवयोगमें (जब दिन रात बराबर होते हैं), [illegible] युगादि तिथियोंमें, अमावास्याको और प्रेतपक्ष [illegible] को अवश्य श्राद्ध करना चाहिये। नारदजी! [illegible] में, मृत्युकी तिथिको, तीनों [illegible] में आनेपर गृहस्थ पुरुष अवश्य श्राद्ध करे। [illegible] ब्राह्मण घरपर आ जाय या चन्द्रमा और [illegible] अथवा पुण्यक्षेत्र एवं तीर्थमें पहुँच जाय तो [illegible] निश्चय ही श्राद्ध करे। जो उपर्युक्त सदाचारका [illegible] भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं। द्विजश्रेष्ठ! भगवान् [illegible] प्रसन्न हो जानेपर क्या असाध्य रह जाता है?

गृहस्थ-सम्बन्धी शौचाचार, स्नान, संध्योपासन आदि तथा वानप्रस्थ और संन्यास-आश्रमके धर्म

श्रीसनकजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ! अब मैं गृहस्थका सदाचार बतलाता हूँ, सुनो। उन सदाचारोंके पालन करनेवाले पुरुषोंके सब पाप नष्ट हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है। ब्रह्मन्! गृहस्थ पुरुष ब्राह्ममुहूर्त (सूर्योदयसे पूर्वकी चार घड़ी) में उठकर जो पुरुषार्थ (मोक्ष) साधनकी विरोधिनी न हो, ऐसी जीविकाका चिन्तन करे। दिनमें या सन्ध्याके समय कानपर जनेऊ चढाकर उत्तरकी ओर मुँह करके मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये। यदि रातमें इसका अवसर आवे तो दक्षिणकी ओर मुँह करके बैठना चाहिये। द्विज सिरको वस्त्रसे ढककर और भूमिपर तृण बिछाकर शौचके लिये बैठे और उसके होनेतक मौन रहे। मार्गमें, गोशालामें, नदीके तटपर, पोखरे और घरके समीप, पेडकी छायामें, दुर्गम स्थानमें, अग्निके समीप, देवालयके निकट, बगीचेमें, जोते हुए खेतमें, चौराहेपर, ब्राह्मण, गाय, गुरुजन तथा स्त्रियोंके समीप; भूसी, अंगार, खप्पर या [illegible] तथा [illegible]—इत्यादि स्थानोंमें मल-मूत्र न करे। शौच (शुद्धि) [illegible] सदा यत्न करना चाहिये। शौच ही द्विजत्वका मूल [illegible]। [illegible] शौचाचारसे रहित हैं उसके सब कर्म निष्फल [illegible]। शौच दो प्रकारका कहा गया है—[illegible] बाह्य-शौच और दूसरा आभ्यन्तर-शौच। मिट्टी और जलसे जो [illegible] की जाती है वही बाह्य-शौच है। [illegible] पवित्रता है उसे ही आभ्यन्तर-शौच कहा गया है। [illegible] पश्चात् उठकर शुद्धिके लिये मिट्टी लावे। [illegible] फारसे उलाटी हुई तथा बावड़ी [illegible] मिट्टी शौचके लिये न लावे। [illegible]

* शौचे [illegible]
शौचाचारविहीन [illegible]
[illegible]

शुद्धिका सम्पादन करे। लिङ्गमें एक बार या तीन बार मिट्टी लगाकर धोये और अण्डकोषोंमें दो बार मिट्टी लगाकर जलसे धोये। मनीषी पुरुषोंने मूत्रत्यागके पश्चात् इस प्रकार शुद्धिका विधान किया है। लिङ्गमें एक बार, गुदा-द्वारमें पाँच बार, बायें हाथमें दस बार, फिर दोनों हाथोंमें सात बार तथा दोनों पैरोंमें तीन बार पृथक् मिट्टी लगानी और धोनी चाहिये। यह मल-त्यागके पश्चात् उसके लेप और दुर्गन्धको दूर करनेके लिये शुद्धिका विधान किया गया है। ब्रह्मचारियोंके लिये इससे दुगुने शौचका विधान है। वान-प्रस्थियोंके लिये तिगुना और संन्यासियोंके लिये गृहस्थकी अपेक्षा चौगुना शौच बताया गया है। मुनिश्रेष्ठ! कहीं रास्ते-में हो तो आधा ही पालन करे। रोगीके लिये या बड़ी भारी विपत्ति पड़नेपर भी नियमका बन्धन नहीं रहता। स्त्रियों और उपनयनरहित द्विजकुमारोंके लिये भी लेप और दुर्गन्ध दूर होनेतक ही शौचकी सीमा है। उसके बाद किसी श्रेष्ठ वृक्षकी छिलकेसहित लकड़ी लेकर उससे दाँतुन करे। बेल, असना, अपामार्ग (ऊँगा या चिरचिरा) नीम, आम और अर्क आदि वृक्षोंका दाँतुन होना चाहिये। पहले उसे जलसे धोकर निम्नाङ्कित मन्त्रसे अभिमन्त्रित करे—

> आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च।
> ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते॥
> (ना० पूर्व० २७। २५)

'वनस्पते! तुम हमें आयु, यश, बल, तेज, प्रजा, पशु, धन, वेद, बुद्धि तथा धारणाशक्ति प्रदान करो।'

कनिष्ठिकाके अग्रभागके समान मोटा और दस अंगुल लंबा दाँतुन ब्राह्मण करे। क्षत्रिय नौ अंगुल, वैश्य आठ अंगुल, शूद्र और स्त्रियोंको चार अंगुलका दाँतुन करना चाहिये। दाँतुन न मिलनेपर बारह कुल्लोंसे मुखशुद्धि कर लेनी चाहिये। उसके बाद नदी आदिके निर्मल जलमें स्नान करे। वहाँ तीर्थोंको प्रणाम करके सूर्यमण्डलमें भगवान् नारायणका आवाहन करे। फिर गन्ध आदिसे मण्डल बनाकर उन्हीं भगवान् जनार्दनका ध्यान करे। नारदजी! तदनन्तर पवित्र मन्त्रों और तीर्थोंका स्मरण करते हुए स्नान करना चाहिये—

> गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
> नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् संनिधिं कुरु॥
> पुष्कराद्यानि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा।
> आगच्छन्तु महाभागाः स्नानकाले सदा मम॥
> अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका।
> पुरी द्वारावती ज्ञेयाः सप्तैता मोक्षदायिकाः॥
> (ना० पूर्व० २७। ३३–३५)

'गङ्गा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु तथा कावेरी नामवाली नदियाँ इस जलमें निवास करें। पुष्कर आदि तीर्थ और गङ्गा आदि परम सौभाग्यवती नदियाँ सदा मेरे स्नानकालमें यहाँ पधारें। अयोध्या, मथुरा, हरद्वार, काशी, काञ्ची, अवन्ती (उज्जैन) और द्वारकापुरी इन सातोंको मोक्षदायिनी समझना चाहिये।'

तदनन्तर श्वासको रोके हुए पानीमें डुबकी लगावे और अघमर्षण सूक्तका जप करे। फिर स्नानाङ्ग-तर्पण करके आचमनके पश्चात् सूर्यदेवको अर्घ्य दे। नारदजी! उसके बाद सूर्य भगवान्का ध्यान करके जलसे बाहर निकलकर बिना फटा हुआ शुद्ध धौतवस्त्र धारण करे। ऊपरसे दूसरा वस्त्र (चादर) भी ओढ़ ले। तत्पश्चात् कुशासनपर बैठकर संध्याकर्म प्रारम्भ करे। ब्रह्मन्! ईशानकोणकी ओर मुख करके गायत्री-मन्त्रसे आचमन करे, फिर 'ऋतञ्च' इत्यादि मन्त्रका उच्चारण करके विद्वान् पुरुष दुबारा आचमन करे। तदनन्तर अपने चारों ओर जल छिड़ककर अपने-आपको उस जलसे आवेष्टित करे। अपने शरीरपर भी जल सींचे। फिर प्राणायामका संकल्प लेकर प्रणवका उच्चारण करनेके बाद प्रणवसहित सातों व्याहृतियोंके तथा गायत्री-मन्त्रके ऋषि, छन्द और देवताओंका स्मरण[1] करते हुए (विनियोग करते हुए) भूः आदि सात व्याहृतियोंद्वारा मस्तकपर जलसे अभिषेक करे। तत्पश्चात् मन्त्रज्ञ पुरुष पृथक्-पृथक् करन्यास और अङ्गन्यास करे। पहले हृदयमें प्रणवका न्यास करके मस्तकपर भूःका न्यास करे। फिर शिखामें भुवःका, कवचमें स्वःका, नेत्रोंमें भूर्भुवःका तथा दिशाओंमें भूर्भुवः स्वः इन तीनो

---

१. ॐकारसहित व्याहृतियोंका, गायत्री-मन्त्रका तथा शिरोमन्त्रका विनियोग या उनके ऋषि, छन्द और देवताओंका स्मरण इस प्रकार है—

ॐकारस्य ब्रह्म ऋषिर्दैवी गायत्री छन्दः परमात्मा देवता, सप्त-व्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपङ्क्तित्रिष्टुब्जगत्य-श्छन्दांस्यग्निवायुसूर्यबृहस्पतिवरुणेन्द्रविश्वेदेवा देवताः, तत्सवितुरिति विश्वामित्रऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता, आपो ज्योतिरिति शिरसः प्रजापतिर्ऋषिर्यजुश्छन्दो ब्रह्माग्निवायुसूर्या देवताः प्राणायामे विनियोगः।

व्याहृतियोंका और अस्त्रका न्यास करे। तीन बार हथेलीपर ताल देना ही अस्त्रन्यास है*। तदनन्तर प्रातःकाल कमलके आसनपर विराजमान संध्या (गायत्री) देवीका आवाहन करे।

सबको वर देनेवाली तीन अक्षरोंसे युक्त ब्रह्मवादिनी गायत्री देवी! तुम वेदोंकी माता तथा ब्रह्मयोनि हो! तुम्हें नमस्कार है †। मध्याह्नकालमें वृषभपर आरूढ़ हुई, श्वेतवस्त्रसमावृत सावित्रीका आवाहन करे। जो रुद्रयोनि तथा रुद्रवादिनी है *। सायकालके समय गरुडपर चढ़ी हुई पीताम्बरसे आच्छादित विष्णुयोनि एवं विष्णुवादिनी सरस्वती देवीका आवाहन करना चाहिये †। प्रणव, सात व्याहृति, त्रिपदा गायत्री तथा शिरःशिखा मन्त्र—इन सबका उच्चारण करते हुए क्रमशः पूरक, कुम्भक और विरेचन करे। प्राणायाममें बायीं नासिकाके छिद्रसे वायुको धीरे-धीरे अपने भीतर भरना चाहिये। फिर क्रमशः कुम्भक करके विरेचन-द्वारा उसे बाहर निकालना चाहिये ‡। तत्पश्चात् प्रातःकालकी संध्यामें 'सूर्यश्च मा' इत्यादि मन्त्र पढ़कर दो बार आचमन करे। मध्याह्नकालमें 'आपः पुनन्तु' इत्यादिसे और सायं सध्यामें 'अग्निश्च मा' इत्यादि मन्त्रसे आचमन करना

* आधुनिक संध्याकी प्रतियोंमें न्यासकी विधि सूर्योपस्थानके बाद दी हुई है। परंतु नारदपुराणके अनुसार प्राणायामके पहले तथा जपके पहले भी न्यास करना चाहिये। मूलमें करन्यास और अङ्गन्यास दोनोंकी चर्चा की गयी है। पर विधि केवल अङ्गन्यासकी ही दी गयी है। जिसका प्रयोग इस प्रकार होता है—

ॐ हृदयाय नम । ॐ भू. शिरसे स्वाहा। ॐ भुव. शिखायै वषट्। ॐ स्व. कवचाय हुम्। ॐ भूर्भुव नेत्राभ्या वौषट्। ॐ भूर्भुवः स्वः अस्त्राय फट्।

उपर्युक्त छ. मन्त्रवाक्य अङ्गन्यासके हैं। इनमेंसे पहले वाक्यका उच्चारण करके दाहिने हाथकी हथेलीसे हृदयका स्पर्श करे। दूसरे वाक्यको पढ़कर अँगूठेसे मस्तकका स्पर्श करना चाहिये। तीसरे वाक्यका उच्चारण करके अगुलियोंके अग्रभागसे शिखाका स्पर्श करे। चतुर्थ वाक्य पढ़कर दाहिने हाथकी अगुलियोंसे बायीं भुजाका और बायें हाथको अंगुलियोंसे दाहिनी भुजाका स्पर्श करे। पञ्चम वाक्यसे अनामिका और अङ्गुष्ठद्वारा दोनों नेत्रोंका स्पर्श करना चाहिये। छठा वाक्य बोलकर दाहिने हाथको बायीं ओरसे पीछेकी ओर ले जाकर दाहिने ओरसे आगेकी ओर ले आवे। तर्जनी तथा मध्यमा अंगुलियोंसे बायें हाथकी हथेलीपर ताली बजावे। अङ्गन्याससे पहले करन्यास करना चाहिये। करन्यास-वाक्य इस प्रकार हो सकते हैं—

ॐ अङ्गुष्ठाभ्या नम । ॐ भू तर्जनीभ्या नम.। ॐ भुव. मध्यमाभ्या नम'। ॐ स्व अनामिकाभ्या नम। ॐ भूर्भुव कनिष्ठिकाभ्या नम। ॐ भूर्भुवः स्व. करतलकरपृष्ठाभ्या नम.।

इनमें प्रथम वाक्य बोलकर दोनों तर्जनीसे दोनों अङ्गुष्ठोंका, द्वितीय वाक्य बोलकर दोनों अङ्गुष्ठोंसे दोनों तर्जनोका, तृतीय वाक्यसे अङ्गुष्ठोंद्वारा ही दोनों मध्यमाओंका, चतुर्थ वाक्यसे दोनों अनामिकाओं-का, पञ्चम वाक्यसे दोनों कनिष्ठिकाओंका और छठे वाक्यसे दोनों हथेलियों तथा उनके पृष्ठभागोंका परस्पर स्पर्श करना चाहिये।

† आगच्छ वरदे देवि त्र्यक्षरे ब्रह्मवादिनि।
गायत्रिच्छन्दसां मातर्ब्रह्मयोने नमोऽस्तु ते॥
(ना० पूर्व० २७। ४३-४४)

* मध्याह्ने वृषभारूढा शुक्लाम्बरसमावृताम्।
सावित्रीं रुद्रयोनिं चावाहयेद्रुद्रवादिनीम्॥

† सायं तु गरुडारूढा पीताम्बरसमावृनाम्।
सरस्वतीं विष्णुयोनिमाह्वयेद् विष्णुवादिनीम्॥
(ना० पूर्व० २७। ४४-४६)

‡ प्राणायाम-मन्त्र और उसकी विधि इस प्रकार है—

ॐ भू· ॐ भुव. ॐ स्व. ॐ मह ॐ जन ॐ तप ॐ सत्यम् ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो न प्रचोदयात्। ॐ आपो ज्योती रसोऽमृत ब्रह्म भूर्भुव. स्वरोम्॥

पहले दाहिने हाथके अङ्गुष्ठसे नासिकाका दायाँ छिद्र बद करके बायें छिद्रसे वायुको अंदर खींचे। साथ ही नाभिदेशमें नीलकमलदल-के समान श्यामवर्ण चतुर्भुज भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए प्राणायाम-मन्त्रका तीन बार पाठ कर जाय। (यदि तीन बार पाठ न हो सके तो एक ही बार पाठ करे और अधिकके लिये अभ्यास बढावे।) इसको पूरक कहते हैं। पूरकके पश्चात् अनामिका और कनिष्ठिका अगुलियोंसे नासिकाके बायें छिद्रको भी बद करके तबतक श्वास रोके रहे, जबतक कि प्राणायाम-मन्त्रका तीन बार (या शक्तिके अनुसार एक बार) पाठ न हो जाय। इस समय हृदयके बीच कमलासनपर विराजमान अरुण-गौरमिश्रित वर्णवाले चतुर्मुख ब्रह्माजीका ध्यान करे। यह कुम्भक क्रिया है। इसके बाद अँगूठा हटाकर नासिकाके दाहिने छिद्रसे वायुको धीरे-धीरे तबतक बाहर निकाले जबतक प्राणायाम-मन्त्रका तीन (या एक) बार पाठ न हो जाय। इस समय शुद्ध स्फटिकके समान श्वेत वर्णवाले त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकरका ध्यान करे। यह रेचक क्रिया है, यह सब मिलकर एक प्राणायाम कहलाता है।

चाहिये। इसके बाद 'आपो हि ष्ठा मयो भुवः' इत्यादि तीन ऋचाओंद्वारा मार्जन करे। फिर—

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु। दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि। यं च वयं द्विष्मः।

—इस मन्त्रको पढ़ते हुए हथेलीमें जल लेकर नासिकासे उसका स्पर्श कराये और भीतरके काम-क्रोधादि शत्रु उस जलमें आ गये, ऐसी भावना करके दूर फेंक दे। इस प्रकार शत्रुवर्गको दूर भगाकर 'द्रुपदादिव मुमुचानः' इत्यादि मन्त्रसे अभिमन्त्रित जलको अपने सिरपर डाले। उसके बाद 'ऋतञ्च सत्यम्' इत्यादि मन्त्रसे अघमर्षण करके 'अन्तश्चरसि' इत्यादि मन्त्रद्वारा एक ही बार जलका आचमन करे। देवर्षे! तदनन्तर सूर्यदेवको विधिपूर्वक गन्ध, पुष्प और जलकी अञ्जलि दे। प्रातःकाल स्वस्तिकाकार अञ्जलि बाँधकर भगवान् सूर्यका उपस्थान करे। मध्याह्नकालमें दोनों भुजाओंको ऊपर उठाकर और सायंकाल बाँहें नीचे करके उपस्थान करे। इस प्रकार प्रातः आदि तीनों समयके लिये पृथक्-पृथक् विधि है। नारदजी! सूर्योपस्थानके समय 'उदुत्यं जातवेदसम्' 'चित्रं देवानामुदगादनीकम्' 'तच्चक्षुर्देवहितम्' इन तीन ऋचाओंका जप करे। इसके सिवा सूर्यदेवता-सम्बन्धी अन्य मन्त्रोंका, शिवसम्बन्धी मन्त्रोंका तथा विष्णु-देवता-सम्बन्धी मन्त्रोंका भी जप किया जा सकता है। सूर्योपस्थानके बाद 'तेजोऽसि' तथा 'गायत्र्यस्येकपदी' इत्यादि मन्त्रोंको पढ़कर भगवान् सविताके तेजःस्वरूप गायत्रीकी अथवा परमात्म-तेजकी स्तुति—प्रार्थना करे। तदनन्तर पुनः तीन बार अंगन्यास करके ब्रह्मा, रुद्र तथा विष्णुकी स्वरूपभूता शक्तियोंका चिन्तन करे। (प्रातःकाल ब्रह्माकी, मध्याह्नमें रुद्रकी और सायकाल विष्णुकी शक्तिरूपसे क्रमशः गायत्री, सावित्री और सरस्वतीका चिन्तन करना चाहिये। उनका क्रमशः ध्यान इस प्रकार है—)

ब्रह्माणी चतुराननाक्षवलयं कुम्भं करैः स्रुक्स्रुवौ
बिभ्राणा त्वरुणेन्दुकान्तिवदना ऋग्रूपिणी बालिका।
हंसारोहणकेलिखण्खण्मणेर्बिम्बार्चिता भूषिता
गायत्री परिभाविता भवतु नः संपत्समृद्ध्यै सदा॥
(ना० पूर्व० । २७ । ५५)

'प्रातःकालमें गायत्री देवी ऋग्वेदस्वरूपा बालिकाके रूपमे विराज रही हैं। ये ब्रह्माजीकी शक्ति हैं। इनके चार मुख हैं। इन्होंने अपने हाथोंमे अक्षवलय, कलश, स्रुक् और स्रुवा धारण कर रक्खा है। इनके मुखकी कान्ति अरुण चन्द्रमाके समान कमनीय है। ये हंसपर चढनेकी क्रीड़ा कर रही हैं। उस समय इनके मणिमय आभूषण खनखन करने लगते हैं। मणिके बिम्बोंसे ये कूजित और विभूषित हैं। ऐसी गायत्रीदेवी हमारे ध्यानकी विषय होकर दैवी सम्पत्ति बढ़ानेमें सहायक हों।'

रुद्राणी नवयौवना त्रिनयना वैयाघ्रचर्माम्बरा
खट्वाङ्गत्रिशिखाक्षसूत्रवलयाऽभीतिः श्रियै चास्तु नः।
विद्युद्दामजटाकलापविलसद्बालेन्दुमौलिर्मुदा
सावित्री वृषवाहना सिततनुर्ध्येया यजूरूपिणी॥
(ना० पूर्व० । २७ । ५६)

'मध्याह्नकालमें वही गायत्री 'सावित्री' नाम धारण करती हैं। ये रुद्रकी शक्ति हैं। नूतन यौवनसे सम्पन्न हैं। इनके तीन नेत्र हैं। व्याघ्रका चर्म इन्होंने वस्त्रके रूपमें धारण कर रक्खा है। इनके हाथोंमें खट्वाङ्ग, त्रिशूल, अक्षवलय और अभयकी मुद्रा है। तेजोमयी विद्युत्के समान देदीप्यमान जटामे बालचन्द्रमाका मुकुट शोभा पा रहा है। ये आनन्दमें मग्न हैं। वृषभ इनका वाहन है। शरीरका रंग (कपूरके समान) गौर है और यजुर्वेद इनका स्वरूप है। इस रूपमें ध्यान करने योग्य सावित्री हमारे ऐश्वर्यकी वृद्धि करें।'

ध्येया सा च सरस्वती भगवती पीताम्बरालङ्कृता
श्यामा श्यामतनुर्जरा परिलसद्गात्राञ्चिता वैष्णवी।

प्रातःकाल मध्याह्न सायंकाल

गायत्रीका ध्यान

ताक्ष्यस्था मणिनूपुराङ्गदलसद्ग्रैवेयभूषोज्ज्वला
हस्तालङ्कृतशङ्खचक्रसुगदापद्मा श्रियै चास्तु नः॥
(ना० पूर्व० २७। ५७)

'सायंकालमें वही गायत्री विष्णुशक्ति भगवती सरस्वतीका रूप धारण करती हैं। उनके श्रीअङ्ग पीताम्बरसे अलङ्कृत होते हैं। उनका रंग-रूप श्याम है। शरीरका एक-एक अवयव श्याम है। विभिन्न अङ्गोंमें जरावस्थाके लक्षण प्रकट होकर उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। वे गरुडपर बैठी हैं। मणिमय नूपुर, भुजबंद और सुन्दर हार, हमेल आदि भूषणोंसे उनकी स्वाभाविक प्रभा और बढ़ गयी है। उनके हाथोंमें शङ्ख, चक्र और उत्तम गदा और पद्म सुशोभित हैं। इस रूपमें ध्यान करने योग्य सरस्वतीदेवी हमारी श्रीवृद्धि करें।'

इस प्रकार ध्यान करके गायत्री मन्त्रका जप करे। प्रातः और मध्याह्नकालमें खड़े होकर तथा सायंकालमें बैठकर भक्तिभावसे गायत्रीके ध्यानमें ही मनको लगाये हुए जप करना चाहिये। प्रति समयकी सध्योपासनामें गायत्रीदेवीका एक हजार जप उत्तम, एक सौ जप मध्यम तथा कम-से-कम दस बार जप साधारण माना गया है। आरम्भमें प्रणव फिर भूर्भुवः स्वः उसके बाद तत्सवितुः इत्यादि त्रिपदा गायत्री—यही जपने योग्य गायत्री मन्त्रका स्वरूप है। मुने! ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और यतिके द्वारा जो गायत्री मन्त्रका जप होता है, उसमें छः प्रणव लगावे अथवा आदि-अन्तमें प्रणव लगाकर मन्त्रको उसमें संपुटित कर दे। परंतु गृहस्थके लिये केवल आदिमें एक प्रणव लगानेका नियम है। ऐसा ही मन्त्र उसके लिये जपने योग्य है। तदनन्तर यथाशक्ति जप करके उसे भगवान् सूर्यको निवेदित करे। फिर गायत्री तथा सूर्यदेवताके लिये एक-एक अञ्जलि जल छोड़े। तत्पश्चात् 'उत्तरे[1] शिखरे देवि' इत्यादि मन्त्रसे गायत्रीदेवीका विसर्जन करते हुए कहे—'देवि! श्रीब्रह्मा, शिव तथा भगवान् विष्णुकी अनुमति लेकर सादर पधारो।' इसके बाद दिशाओं और दिग्देवताओंको हाथ जोडकर प्रणाम करनेके अनन्तर प्रातःकाल आदिका दूसरा कर्म भी विधिपूर्वक सम्पन्न करे। देवर्षे! गृहस्थ पुरुष तो प्रातःकाल और मध्याह्नकालमें स्नान करे। परतु वानप्रस्थी तथा संन्यासीको तीनों समय स्नान करना चाहिये। जो रोग आदिसे कष्ट पा रहे हों उनके लिये तथा पथिकोंके लिये एक ही बार स्नानका विधान किया गया है। मुनीश्वर! सध्योपासनके अनन्तर द्विज हाथमें कुश धारण करके ब्रह्मयज्ञ करे। यदि दिनमें बताये गये कर्म प्रमादवश न किये गये हों तो रातके पहले पहरमें उन्हें क्रमशः पूर्ण कर लेना चाहिये। जो धूर्त बुद्धिवाला द्विज आपत्तिकाल न होनेपर भी संध्योपासन नहीं करता, उसे सब धर्मोंसे भ्रष्ट एवं पाखण्डी समझना चाहिये। जो कपटपूर्ण झूठी युक्ति देनेमें चतुर होनेके कारण सध्या आदि कर्मोंको अनावश्यक बताते हुए उनका त्याग करता है उसे महापातकियोंका सिरमौर समझना चाहिये *।

सध्योपासनाके बाद विधिपूर्वक देवपूजा तथा बलिवैश्वदेव-कर्म करना चाहिये। उस समय आये हुए अतिथिका अन्न आदिसे भलीभाँति सत्कार करना चाहिये। उनके आनेपर मीठे वचन बोलना चाहिये। उन्हे घरमे ठहरनेके लिये स्थान देकर अन्न-जल अथवा कन्द-मूल-फलसे

उनकी पूजा करनी चाहिये। जिसके घरसे अतिथि निराश होकर लौटता है वह उसे अपना पाप दे बदलेमें उसका पुण्य लेकर चला जाता है। जिसका नाम और गोत्र पहलेसे ज्ञात न हो और जो दूसरे गाँवसे आया हो, ऐसे व्यक्तिको विद्वान्

1. तैत्तिरीय आरण्यकमें 'उत्तमे शिखरे' ऐसा पाठ मिलता है। इस पुराणमें 'उत्तरे शिखरे' आया है।

* यस्तु संध्यादिकर्माणि कूटयुक्तिविशारद.।
परित्यजति त विद्यान्महापातकिना वरम्॥
(ना० पूर्व० २७। ६८)

पुरुष अतिथि कहते हैं। उसका श्रीविष्णुकी भाँति पूजन करना चाहिये*। ब्रह्मन्! प्रतिदिन पितरोंकी तृप्तिके उद्देश्यसे अपने ग्रामके निवासी एक श्रोत्रिय एवं वैष्णव ब्राह्मणको अन्न आदिसे तृप्त करना चाहिये। जो पञ्चमहायज्ञोंका त्यागी है, उसे विद्वान् लोग ब्रह्महत्यारा कहते हैं। इसलिये प्रतिदिन प्रयत्नपूर्वक पञ्चमहायज्ञोंका अनुष्ठान करना चाहिये। देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ तथा ब्रह्मयज्ञ—इनको पञ्चयज्ञ कहते हैं। भृत्य और मित्रादिवर्गके साथ स्वयं मौन होकर भोजन करना चाहिये। द्विज कभी अभक्ष्य पदार्थको न खाय। सुपात्र व्यक्तिका त्याग न करे, उसे अवश्य भोजन करावे। जो अपने आसनपर पैर रखकर अथवा आधा वस्त्र पहनकर भोजन करता है या मुखसे उगले हुए अन्नको खाता है, विद्वान् पुरुष उसे 'शराबी' कहते हैं। जो आधा खाये हुए मोदक, फल और प्रत्यक्ष नमकको पुनः खाता है, वह गोमासभोजी कहा जाता है। द्विजको चाहिये कि वह पानी पीते, आचमन करते तथा भक्ष्य पदार्थोंका भोजन करते समय मुखसे आवाज न करे। यदि वह उस समय मुँहसे आवाज करता है तो नरकगामी होता है। मौन होकर अन्नकी निन्दा न करते हुए हितकर अन्नका भोजन करना चाहिये। भोजनके पहले एक बार जलका आचमन करे और इस प्रकार कहे 'अमृतोपस्तरणमसि' (हे अमृतरूप जल! तू भोजनका आश्रय अथवा आसन है)। फिर भोजनके अन्तमें एक बार जल पीये और कहे—'अमृतापिधानम् असि' (हे अमृत! तू भोजनका आवरण—उसे ढकनेवाला है)। पहले प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान—इनके निमित्त अन्नकी पाँच आहुतियाँ अपने मुखमें डालकर आचमन कर ले†। उसके बाद भोजन आरम्भ करे। विप्रवर नारदजी! इस प्रकार भोजनके पश्चात् आचमन करके शास्त्रचिन्तनमें तत्पर होना चाहिये। रातमें भी आये हुए अतिथिका यथाशक्ति भोजन, आसन तथा शयनसे अथवा कन्द-मूल-फल आदिसे सत्कार करे। मुने! इस प्रकार गृहस्थ पुरुष सदा सदाचारका पालन करे। जिस समय वह सदाचार-को त्याग देता है उस समय प्रायश्चित्तका भागी होता है।

साधुशिरोमणे! अपने शरीरको सफेद बाल आदि दोषोंसे युक्त देखकर अपनी पत्नीको पुत्रोंके संरक्षणमें छोड़ दे। स्वयं घरसे विरक्त होकर वनमें चला जाय अथवा पत्नी-को भी साथ ही लेता जाय। वहाँ तीनों समय स्नान करे। नख, दाढ़ी, मूँछ और जटा धारण किये रहे। नीचे भूमिपर सोये। ब्रह्मचर्यका पालन करे और पञ्च महायज्ञोंके अनुष्ठानमें तत्पर रहे। प्रतिदिन फल-मूलका भोजन करे और स्वाध्यायमें लगा रहे। भगवान् विष्णुके भजनमें संलग्न होकर सब प्राणियोंके प्रति दयाभाव रक्खे। गाँवमें पैदा हुए फल-फूलको त्याग दे। प्रतिदिन आठ ग्रास भोजन करे तथा रातमें उपवासपूर्वक रहे। वानप्रस्थ-आश्रममें रहनेवाला द्विज उबटन, तेल, मैथुन, निद्रा और आलस्य त्याग दे। वानप्रस्थी पुरुष शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् नारायणका चिन्तन तथा चान्द्रायण आदि तपोमय व्रत करे। सर्दी-गरमी आदि द्वन्द्वोंको सहन करे। सदा अग्निकी सेवा (अग्निहोत्र) में संलग्न रहे।

जब मनमें सब वस्तुओंकी ओरसे वैराग्य हो जाय तभी संन्यास ग्रहण करे, अन्यथा वह पतित हो जाता है। संन्यासीको वेदान्तके अभ्यासमें तत्पर, शान्त, संयमी और जितेन्द्रिय, द्वन्द्वोंसे रहित तथा ममता और अहंकारसे शून्य रहना चाहिये। वह शम-दम आदि गुणोंसे युक्त तथा काम-क्रोधादि दोषोंसे दूर रहे। संन्यासी द्विज नग्न रहे या पुराना कौपीन पहने। उसे अपना मस्तक मुँड़ाये रहना चाहिये। वह शत्रु-मित्र तथा मान-अपमानमें समान भाव रक्खे। गाँवमें एक रात और नगरमें अधिक-से-अधिक तीन रात रहे। संन्यासी सदा भिक्षासे ही जीवन-निर्वाह करे। किसी एकके घरका अन्न खानेवाला न हो। जब चूल्हेकी आग बुझ जाय, घरके लोगोंका खाना-पीना हो गया हो, कोई बाकी न हो, उस समय किसी उत्तम द्विजके घरमें, जहाँ लड़ाई-झगड़ा न हो, भिक्षाके लिये संन्यासीको जाना चाहिये। संन्यासी तीनों काल स्नान और भगवान् नारायणका ध्यान करे। और मनको जीतकर इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए प्रतिदिन प्रणवका जप करता रहे। अगर कोई लम्पट संन्यासी कभी एक व्यक्तिका अन्न खाकर रहने लगे तो दस हजार प्रायश्चित्त करनेपर भी उसका उद्धार नहीं दिखायी देता। ब्रह्मन्! यदि संन्यासी लोभवश केवल शरीरके ही पालन-

---

* अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते।
स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति॥
अज्ञातगोत्रनामानं अन्यग्रामादुपागतम्।
विपश्चितोऽतिथिं प्राहुर्विष्णुवत् तं प्रपूजयेत्॥
(ना० पूर्व० २७। ७२-७३)

† प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा—इस प्रकार कहता हुआ पाँच ग्रास ले।

पोषणमें लगा रहे तो उसे चाण्डालके समान समझना चाहिये। सभी वर्णों और आश्रमोंमें उसकी निन्दा होती है। संन्यासी अपने आत्मस्वरूप भगवान् नारायणका चिन्तन करे। जो रोग-शोकसे रहित, द्वन्द्वोंसे परे, ममताशून्य, शान्त, मायातीत, ईर्ष्यारहित, अव्यय, परिपूर्ण, सच्चिदानन्दस्वरूप ज्ञानमय, निर्मल, परम ज्योतिर्मय, सनातन, अविकारी, अनादि, अनन्त, जगत्‌की चिन्मयताके कारण गुणातीत तथा परात्पर परमात्मा हैं, उन्हींका नित्य ध्यान करना चाहिये। वह उपनिषद्-वाक्योंका पाठ एवं वेदान्तशास्त्रके अर्थका विचार करता रहे। जितेन्द्रिय रहकर सदा सहस्रों मस्तकवाले भगवान् श्रीहरिका ध्यान करे। जो ईर्ष्या छोड़कर इस प्रकार भगवान्‌के ध्यानमें तत्पर रहता है, वह परमानन्दस्वरूप उत्कृष्ट सनातन ज्योतिको प्राप्त होता है। जो द्विज इस तरह क्रमशः आश्रमसम्बन्धी आचारोंका पालन करता है वह परम धाममें जाता है। वहाँ जाकर कोई शोक नहीं करता। वर्ण और आश्रम-सम्बन्धी धर्मके पालनमें तत्पर एवं सब पापोंसे रहित भगवद्भक्त भगवान् विष्णुके परम धामको प्राप्त होते हैं।

श्राद्धकी विधि तथा उसके विषयमें अनेक ज्ञातव्य विषयोंका वर्णन

श्रीसनकजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ! मैं श्राद्धकी उत्तम विधिका वर्णन करता हूँ, सुनो। उसे सुनकर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। पिताकी क्षयाह तिथिके पहले दिन स्नान करके एक समय भोजन करे। जमीनपर सोये, ब्रह्मचर्यका पालन करे तथा रातमें ब्राह्मणोंको निमन्त्रण दे। श्राद्धकर्ता पुरुष दातुँन करना, पान खाना, तेल और उबटन लगाना, मैथुन, औषध-सेवन तथा दूसरोंके अन्नका भोजन अवश्य त्याग दे। रास्ता चलना, दूसरे गाँव जाना, कलह, क्रोध और मैथुन करना, बोझ ढोना तथा दिनमें सोना—ये सब कार्य श्राद्धकर्ता और श्राद्धभोक्ताको छोड़ देने चाहिये। यदि श्राद्धमें निमन्त्रित पुरुष मैथुन करता है तो वह ब्रह्महत्याको प्राप्त होता और नरकमें जाता है। श्राद्धमें वेदके ज्ञाता और वैष्णव ब्राह्मणको नियुक्त करना चाहिये। जो अपने वर्ण और आश्रमधर्मके पालनमें तत्पर, परम शान्त, उत्तम कुलमें उत्पन्न, राग-द्वेषसे रहित, पुराणोंके अर्थज्ञानमें निपुण, सब प्राणियोंपर दया करनेवाला, देवपूजापरायण, स्मृतियोंका तत्त्व जाननेमें कुशल, वेदान्त-तत्त्वका ज्ञाता, सम्पूर्ण लोकोंके हितमें संलग्न, कृतज्ञ, उत्तम गुणयुक्त, गुरुजनोंकी सेवामें तत्पर तथा उत्तम शास्त्रवचनोंद्वारा धर्मका उपदेश देनेवाला हो, उसे श्राद्धमें निमन्त्रित करे।

किसी अङ्गसे हीन अथवा अधिक अङ्गवाला, कदर्य, रोगी, कोढ़ी, बुरे नखोंवाला, अपने व्रतको खण्डित करनेवाला, ज्योतिषी, मुर्दा जलानेवाला, कुत्सित वचन बोलनेवाला, परिवेत्ता (बड़े भाईके अविवाहित रहते हुए स्वयं विवाह करनेवाला), देवल, दुष्ट, निन्दक, असहनशील, धूर्त, गाँवभरका पुरोहित, असत्-शास्त्रोंमे अनुराग रखनेवाला, वृषली[1]पति, कुण्डगोलक, यज्ञके अनधिकारियोंसे यज्ञ करानेवाला, पाखण्डपूर्ण आचरणवाला, अकारण सिर मुँडानेवाला, परायी स्त्री और पराये धनका लोभ रखनेवाला, भगवान् विष्णुकी भक्तिसे रहित, भगवान् शिवकी भक्तिसे विमुख, वेद बेचनेवाला, व्रतका विक्रय करनेवाला, स्मृतियों तथा मन्त्रोंको बेचनेवाला, गवैया, मनुष्योंकी झूठी प्रशंसाके लिये कविता करनेवाला, वैद्यक-शास्त्रसे जीविका चलानेवाला, वेदनिन्दक, गाँव और वनमें आग लगानेवाला, अत्यन्त कामी, रस बेचनेवाला, झूठी युक्ति देनेमें तत्पर रहनेवाला—ये सब ब्राह्मण यत्नपूर्वक श्राद्धमे त्याग देनेयोग्य हैं। श्राद्धसे एक दिन पहले या श्राद्धके दिन ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। श्राद्धकर्ता पुरुष हाथमें कुश लेकर इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए विद्वान् ब्राह्मणको निमन्त्रण दे और इस प्रकार कहे 'हे साधुशिरोमणे! श्राद्धमें अपना समय देकर मुझपर कृपा प्रसाद करें।'

तदनन्तर प्रातःकाल उठकर सबेरेका नित्यकर्म समाप्त करके विद्वान् पुरुष कुतपकालमे * श्राद्ध प्रारम्भ करे। दिनके आठवें मुहूर्तमें जब सूर्यका तेज कुछ मन्द हो जाता है, उस समयको कुतपकाल कहते है। उसमें पितरोंकी तृप्तिके लिये दिया हुआ दान अक्षय होता है। ब्रह्माजीने पितरोंको अपराह्णकाल ही दिया है। मुनिश्रेष्ठ! विभिन्न द्रव्योंके साथ जो कव्य असमयमें पितरोंके लिये दिया जाता है, उसे राक्षसका भाग समझना चाहिये। वह पितरोंके पास नहीं पहुँच पाता है। सायंकालमे दिया हुआ कव्य राक्षसका भाग हो जाता है। उसे देनेवाला नरकमें पडता है और

[1] वृषली शूद्रजातिकी स्त्रीको कहते हैं। स्मृतियोंके अनुसार जो कन्या अविवाहित अवस्थामें अपने पिताके यहाँ रजस्वला हो जाती है उसकी भी वृषली संज्ञा होती है।

* सम्पूर्ण दिन १५ मुहूर्तका होता है। उनमें आठवाँ मुहूर्त मध्याह्नके बाद आता है। वही पितरोंके श्राद्धके लिये उत्तम माना गया है, उसीका नाम 'कुतप' है।

उसको भोजन करनेवाला भी नरकगामी होता है। ब्रह्मन्! यदि निधनतिथिका मान पहले दिन एक दण्ड ही हो और दूसरे दिन वह अपराह्णतक व्याप्त हो तो विद्वान् पुरुषको दूसरे ही दिन श्राद्ध करना चाहिये। किन्तु मृत्युतिथि यदि दोनों दिन अपराह्णकालमें व्याप्त हो तो क्षयपक्षमे पूर्वतिथिको श्राद्धमें ग्रहण करना चाहिये और वृद्धिपक्षमे परतिथिको। यदि पहले दिन क्षयाहतिथि चार घड़ी हो और दूसरे दिन वह सायंकालतक व्याप्त हो तो श्राद्धके लिये दूसरे दिनवाली तिथि ही उत्तम मानी गयी है। द्विजोत्तम! निमन्त्रित ब्राह्मणोंके एकत्र होनेपर प्रायश्चित्तसे शुद्ध हृदयवाला श्राद्धकर्ता पुरुष उनसे श्राद्धके लिये आज्ञा ले। ब्राह्मणोंसे श्राद्धके लिये आज्ञा मिल जानेपर श्राद्धकर्ता पुरुष फिर उनमेंसे दोको विश्वेदेव श्राद्धके लिये और तीनको विधिपूर्वक पितृश्राद्धके लिये पुनः निमन्त्रित करे। अथवा देवश्राद्ध तथा पितृश्राद्धके लिये एक-एक ब्राह्मणको ही निमन्त्रित करे। श्राद्धके लिये आज्ञा लेकर एक-एक मण्डल बनावे। ब्राह्मणके लिये चौकोर, क्षत्रियके लिये त्रिकोण तथा वैश्यके लिये गोल मण्डल बनाना आवश्यक समझना चाहिये, और शूद्रको मण्डल न बनाकर केवल भूमिको सींच देना चाहिये। योग्य ब्राह्मणोंके अभावमे भाईको, पुत्रको अथवा अपने आपको ही श्राद्धमें नियुक्त करे। परतु वेदशास्त्रके ज्ञानसे रहित ब्राह्मणको श्राद्धमे नियुक्त न करे। ब्राह्मणोंके पैर धोकर उन्हें आचमन करावे और नियत आसनपर बैठाकर भगवान् विष्णुका स्मरण करते

हुए उनकी विधिपूर्वक पूजा करे। ब्राह्मणोंके बीचमे तथा श्राद्धमण्डपके द्वारदेशमे श्राद्धकर्ता पुरुष 'अपहता असुरा रक्षा५सि वेदिषदः।' इस ऋचाका उच्चारण करते हुए तिल बिखेरे। जौ और कुशोंद्वारा विश्वेदेवोंको आसन दे। हाथमें जौ और कुश लेकर कहे—'विश्वेषां देवानाम् इदम् आसनम्' ऐसा कहकर विश्वेदेवोके बैठनेके लिये आसनरूपसे उस कुशाको रख दे और प्रार्थना करे—हे विश्वेदेवो! आपलोग इस देवश्राद्धमे अपना क्षण (समय) दें और प्रतीक्षा करें। अक्षय्योदक और आसन समर्पणके वाक्यमें विश्वेदेवों और पितरोंके लिये षष्ठी विभक्तिका प्रयोग करना चाहिये। आवाहनवाक्यमें द्वितीया विभक्ति बतायी गयी है। अन्न समर्पणके वाक्यमें चतुर्थी विभक्तिका प्रयोग होना चाहिये। शेष कार्य सम्बोधनपूर्वक करना चाहिये। कुशकी पवित्रीसे युक्त दो पात्र लेकर उनमें 'शं नो देवी' इत्यादि ऋचाका उच्चारण करके जल डाले। फिर 'यवोऽसि' इत्यादि मन्त्र बोलकर उसमें जव डाले। उसके बाद चुपचाप बिना मन्त्रके ही गन्ध और पुष्प छोड़ दे। इस प्रकार अर्घ्यपात्र तैयार हो जानेपर 'विश्वेदेवाः स' इत्यादि मन्त्रसे विश्वेदेवोंका आवाहन करे। तदनन्तर 'या दिव्या आपः' इत्यादि मन्त्रसे अर्घ्यको अभिमन्त्रित करके एकाग्रचित्त हो पितृ और मातामहसम्बन्धी विश्वेदेवोंको संकल्पपूर्वक क्रमशः अर्घ्य दे। उसके बाद गन्ध, पत्र, पुष्प, यज्ञोपवीत, धूप, दीप आदिके द्वारा उन देवताओंका पूजन करे। तत्पश्चात् विश्वेदेवोंसे आज्ञा लेकर पितृगणोंका पूजन करे। उनके लिये सदा तिलयुक्त कुशोंवाला आसन देना चाहिये। उन्हे अर्घ्य देनेके लिये द्विज पूर्ववत् तीन पात्र रक्खे। 'शं नो देवी०' इत्यादि मन्त्रसे जल डालकर 'तिलोऽसि सोमदैवत्यो' इत्यादि मन्त्रसे तिल डाले। फिर 'उशन्तस्त्वा' इत्यादि मन्त्रद्वारा पितरोंका आवाहन करके ब्राह्मण एकाग्रचित्त हो 'या दिव्या आपः' इत्यादि मन्त्रसे अर्घ्यको अभिमन्त्रित करके पूर्ववत् संकल्पपूर्वक पितरोंको समर्पित करे (अर्घ्यपात्रको उलटकर पितरोंके वामभागमें रखना चाहिये।) साधुशिरोमणे! तदनन्तर गन्ध, पत्र, पुष्प, धूप, दीप, वस्त्र और आभूषणसे अपनी शक्तिके अनुसार उन सबकी पूजा करे। तत्पश्चात् विद्वान् पुरुष घृतसहित अन्नका ग्रास ले 'अग्नौ करिष्ये' (अग्निमें होम करूँगा) ऐसा कहकर उन ब्राह्मणोसे इसके लिये आज्ञा ले। मुने! 'करवै'—अथवा 'करवाणि' (करूँ?) ऐसा कहकर श्राद्धकर्ताके पूछनेपर ब्राह्मण लोग

'कुरुष्व' 'क्रियताम्' अथवा 'कुरु' (करो) ऐसा कहे। इसके बाद अपनी शाखाके गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार उपासनाग्निकी स्थापना करके उसमें पूर्वोक्त अन्नके ग्रासकी दो आहुतियाँ डाले। उस समय 'सोमाय पितृमते स्वधा नमः' ऐसा उच्चारण करे। फिर 'अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः' ऐसा उच्चारण करे। विद्वान् पुरुष अन्तमें स्वधाकी जगह स्वाहा लगाकर भी पितृयज्ञकी भाँति आहुति दे सकते हैं। इन्हीं दो आहुतियोंसे पितरोंको अक्षय तृप्ति प्राप्त होती है। अग्निके अभावमें अर्थात् यजमानके अग्निहोत्री न होनेपर ब्राह्मणके हाथमें दानरूप होम करनेका विधान है[1]। ब्रह्मन्! जैसा आचार हो, उसके अनुसार ब्राह्मणके हाथ या अग्निमें उक्त होम करना चाहिये। पार्वण उपस्थित होनेपर अग्निको दूर नहीं करना चाहिये। विप्रवर! यदि पार्वण उपस्थित होनेपर अपनी उपास्य अग्नि दूर हो तो पहले नूतन अग्निकी स्थापना करके उसमें होम आदि आवश्यक कार्य करनेके पश्चात् विद्वान् पुरुष उस अग्निका विसर्जन कर दे। यदि क्षयाह (निधनदिन) तिथि प्राप्त हो और उपासनाग्नि दूर हो तो अपने अग्निहोत्री द्विज भाइयोंसे विधिपूर्वक श्राद्धकर्म सम्पन्न करावे। द्विजश्रेष्ठ! श्राद्धकर्ता प्राचीनावीती होकर (जनेऊको दाहिने कंधेपर करके) अग्निमें होम करे और होमावशिष्ट अन्नको ब्राह्मणके पात्रोंमें भगवत्स्मरणपूर्वक डाले। फिर स्वादिष्ट भक्ष्य, भोज्य, लेह्य आदिके द्वारा ब्राह्मणोंका पूजन करे। तदनन्तर एकाग्रचित्त हो विश्वेदेव और पितर—दोनोंके लिये अन्न परोसे। उस समय इस प्रकार प्रार्थना करे—

> आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः॥
> ये यत्र विहिताः श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते।
> (ना० पूर्व० २८। ५७-५८)

'महान् बलवान् महाभाग विश्वेदेवगण यहाँ पधारें और जो जिस श्राद्धमें विहित हों वे उसके लिये सावधान रहें।'

इस प्रकार विश्वेदेवोंसे प्रार्थना करे। 'ये देवासः' इत्यादि मन्त्रसे भी उनकी अभ्यर्थना करनी चाहिये। देवपक्षके ब्राह्मणोंसे भी ऐसी ही प्रार्थना करे। उसके बाद 'ये चेह पितरो' इत्यादि मन्त्रसे पितरोंकी अभ्यर्थना करके निम्नाङ्कित मन्त्रसे उनको नमस्कार करे।

> अमूर्तानां च मूर्तानां पितॄणां दीप्ततेजसाम्॥
> नमस्यामि सदा तेषां ध्यानिनां योगचक्षुषाम्।
> (ना० पूर्व० २८। ५९-६०)

'जिनका तेज सब ओर प्रकाशित हो रहा है, जो ध्यानपरायण तथा योगदृष्टिसे सम्पन्न हैं, उन मूर्त पितरोंको तथा अमूर्त पितरोंको भी मैं सदा नमस्कार करता हूँ।'

इस प्रकार पितरोंको प्रणाम करके श्राद्धकर्ता पुरुष भगवान् नारायणका चिन्तन करते हुए दिये हुए हविष्य तथा श्राद्धकर्मको भगवान् विष्णुकी सेवामें समर्पित कर दे। इसके बाद वे सब ब्राह्मण मौन होकर भोजन प्रारम्भ करें। यदि कोई ब्राह्मण उस समय हँसता या बात करता है तो वह हविष्य राक्षसका भाग हो जाता है। पाक आदिकी प्रशंसा (या निन्दा) न करे। सर्वथा मौन रहे। भोजनपात्रको हाथसे स्पर्श किये हुए ही भोजन करे। यदि कोई श्राद्धमें नियुक्त हुआ ब्राह्मण पात्रको सर्वथा छोड़ देता है तो उसे श्राद्धहन्ता जानना चाहिये। वह नरकमें पड़ता है। भोजन करनेवाले ब्राह्मणोंमेंसे कुछ लोग यदि एक दूसरेका स्पर्श कर लें और अन्नका त्याग न करके उसे खा लें तो उस स्पर्शजनित दोषका निवारण करनेके लिये उन्हें आठ सौ गायत्री-मन्त्रका जप करना चाहिये। जब ब्राह्मणलोग भोजन करते हों उस समय श्राद्धकर्ता पुरुष श्रद्धापूर्वक कभी पराजित न होनेवाले अविनाशी भगवान् नारायणका स्मरण करे। रक्षोघ्नमन्त्र[2], वैष्णवसूक्त[3] तथा विशेषतः पितृसम्बन्धी[4] मन्त्रोंका पाठ करे। इसके सिवा पुरुषसूक्त[5], त्रिणाचिकेत[6]

---

१. आजकल अपात्रक पार्वण आदि श्राद्धोंमें अग्नौकरण होमकी दोनों आहुतियाँ पुटकस्थित जलमें डाली जाती है। परंतु प्राचीन मत उपासनाग्निमें ही हवन करनेका है। आश्वलायनका वचन है 'अग्नौकरणहोमं तु कुर्यादौपासनानले' और अग्निके अभावमें पितृस्वरूप ब्राह्मणोंके हाथमें हवन करनेका विधान है जैसा कि आश्वलायनका वचन है। 'जुहुयात् पितृपाणिषु' अतः नारदपुराणका मूलोक्तवचन अन्य स्मृतिकारोंके मतसे भी मिलता-जुलता है।

२. 'ॐ अपहता असुरा रक्षाꣳसि वेदिषद' इत्यादि।

३. 'इदं विष्णुर्विचक्रमे' 'विष्णो कर्माणि पश्यत' 'विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा' 'विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचम्' 'विष्णो रराटमसि विष्णो'।

४. 'आयन्तु नः पितरः' 'उदीरतामवर' 'ये चेह पितरो' 'ऊर्जं वहन्तीरमृत' इत्यादि।

५. 'सहस्रशीर्षा पुरुष' इत्यादि।

६. द्वितीय कठके अन्तर्गत 'अयं वाव यः पवते' इत्यादि तीन अनुवाक।

त्रिमधु[1], त्रिसुपर्ण[2], पवमानसूक्त तथा यजुर्वेद और सामवेदके मन्त्रोंका जप करे। अन्यान्य पुण्यदायक प्रसङ्गोंका चिन्तन करे। इतिहास, पुराण तथा धर्मशास्त्रोंका भी पाठ करे। नारदजी! जबतक ब्राह्मणलोग भोजन करें तबतक इन सबका जप या पाठ करना चाहिये। जब वे भोजन कर लें, उस समय परोसनेवाले पात्रमे बचा हुआ उच्छिष्टके समीप भूमिपर बिखेर दे। यह विकिरान्न[3] कहलाता है।

उस समय 'मधुवाता ऋतायते' इत्यादि सूक्तका जप करे। नारदजी! इसके बाद श्राद्धकर्ता पुरुष स्वयं दोनों पैर धोकर भलीभाँति आचमन कर ले। फिर ब्राह्मणोंके आचमन कर लेनेपर पिण्डदान करे। स्वस्तिवाचन कराकर अक्षय्योदक दे (तर्पण करे)। उसे देकर एकाग्रचित्त होकर ब्राह्मणोंका अभिवादन करे। उलटे हुए अर्घ्यपात्रोंको सीधा करके ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे और उनसे स्वस्तिवाचनपूर्वक आशीर्वाद ले। जो द्विज अर्घ्यपात्रको हिलाये या सीधा किये बिना (दक्षिणा लेते और) स्वस्तिवाचन करते हैं, उनके पितर एक वर्षतक उच्छिष्ट भोजन करते हैं। स्मृति-कथित 'गोत्रं नो वर्धताम्' 'दातारो नोऽभिवर्धन्ताम्' इत्यादि वचन कहकर ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद ग्रहण करे। तदनन्तर उन्हे प्रणाम करे और उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा, गन्ध एवं ताम्बूल अर्पित करे। उलटे हुए अर्घ्यपात्रको उत्तान करनेके बाद हाथमें लेकर स्वधाका उच्चारण करे। फिर 'वाजे वाजे' इत्यादि ऋचाको पढ़कर पितरोंका, देवताओंका विसर्जन करे।

श्राद्ध-भोजन करनेवाला ब्राह्मण तथा श्राद्धकर्ता यजमान दोनों उस रातमें मैथुनका त्याग करें। उस दिन स्वाध्याय तथा रास्ता चलनेका कार्य यत्नपूर्वक छोड़ दे। जो कहीं जानेके लिये यात्रा कर रहा हो, जिसे कोई रोग हो तथा जो धनहीन हो, वह पुरुष पाक न बनाकर कच्चे अन्नसे श्राद्ध करे और जिसकी पत्नी रजस्वला होनेसे स्पर्श करने योग्य न हो वह दक्षिणारूपसे सुवर्ण देकर श्राद्धकार्य सम्पन्न करे। यदि धनका अभाव हो और ब्राह्मण भी न मिलें तो बुद्धिमान् पुरुष केवल अन्नका पाक बनाकर पितृसूक्तके मन्त्रसे उसका होम करे। ब्रह्मन्! यदि उसके पास अन्नमय हविष्यका अभाव हो तो यथाशक्ति घास लेआकर पितरोंकी तृप्तिके उद्देश्यसे गौओंको अर्पण करे। अथवा स्नान करके विधिपूर्वक तिल और जलसे पितरोंका तर्पण करे। अथवा विद्वान् पुरुष निर्जन वनमें चला जाय और मै महापापी दरिद्र हूँ—यह कहते हुए उच्चस्वरसे रुदन करे। मुनीश्वर! जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करते हैं वे सम्पत्तिशाली होते हैं और उनकी संतान-परम्पराका नाश नहीं होता। जो श्राद्धमें पितरोंका पूजन करते हैं, उनके द्वारा साक्षात् भगवान् विष्णु पूजित होते हैं और जगदीश्वर भगवान् विष्णुके पूजित होनेपर सब देवता संतुष्ट हो जाते हैं। देवता, पितर, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, सिद्ध और मनुष्यके रूपमें सनातन भगवान् विष्णु ही विराजमान हैं। उन्हींसे यह स्थावर-जगमरूप जगत् उत्पन्न हुआ है। अतः दाता और भोक्ता सब भगवान् विष्णु ही हैं। भगवान् विष्णु सम्पूर्ण जगत्के आधार सर्वभूतस्वरूप तथा अविनाशी हैं। उनके स्वभावकी कहीं भी तुलना नहीं है, वे ही हव्य और कव्यके भोक्ता हैं। एकमात्र भगवान् जनार्दन ही परब्रह्म परमात्मा कहलाते हैं। मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार तुमसे श्राद्धकी उत्तम विधिका वर्णन किया गया। इस विधिसे श्राद्ध करनेवालोंका पाप तत्काल नष्ट हो जाता है। जो श्रेष्ठ द्विज श्राद्धकालमें भक्तिपूर्वक इस प्रसंगका पाठ करता है, उसके पितर संतुष्ट होते हैं और संतति बढ़ती है।

१. 'मधुवाता' इत्यादि तीन ऋचाएँ।

२. 'ब्रह्ममेतु माम्' इत्यादि तीन अनुवाक।

३. विकिरान्न उन पितरोंका भाग है जो आगमें जलकर मर गये हों अथवा जिनका दाह-संस्कार न हुआ हो। पितृसम्बन्धी ब्राह्मणके आगे उनके जूठनके समीप दक्षिणाग्र कुश बिछाकर परोसनेकी थालीमें बचे अन्नको बिखेर देना चाहिये। फिर तिल और जल लेकर निम्नाङ्कित श्लोक पढ़ते हुए वह अन्न समर्पित करना चाहिये।

अग्निदग्धाश्च ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम। भूमौ दत्तेन तोयेन तृप्ता यान्तु परां गतिम्॥

(याज्ञ० आचार० २४१वें श्लोककी मिताक्षरा टीका)

व्रत, दान और श्राद्ध आदिके लिये तिथियोंका निर्णय

श्रीसनकजी कहते हैं—ब्रह्मन् ! श्रुतियों और स्मृतियोंमें कहे हुए जो व्रत, दान और अन्य वैदिक कर्म हैं वे यदि अनिर्णीत (अनिश्चित) तिथियोंमें किये जायँ तो उनका कोई फल नहीं होता । एकादशी, अष्टमी, षष्ठी, पूर्णिमा, चतुर्दशी, अमावास्या और तृतीया—ये पर-तिथिमे विद्ध (संयुक्त) होनेपर उपवास और व्रत आदिमें श्रेष्ठ मानी जाती हैं । पूर्व-तिथिसे सयुक्त होनेपर ये व्रत आदिमें ग्राह्य नहीं होती हैं । कोई-कोई आचार्य कृष्णपक्षमें सप्तमी, चतुर्दशी, तृतीया और नवमीको पूर्वतिथिसे विद्ध होनेपर भी श्रेष्ठ कहते हैं । परंतु सम्पूर्ण व्रत आदिमें शुक्लपक्ष ही उत्तम माना गया है और अपराह्णकी अपेक्षा पूर्वाह्णको व्रतमें ग्रहण करनेयोग्य काल बताया गया है; क्यों कि वह उससे अत्यन्त श्रेष्ठ है । रात्रि-व्रतमें सदा वही तिथि ग्रहण करनी चाहिये जो प्रदोषकालतक मौजूद रहे । दिनके व्रतमें दिनव्यापिनी तिथियाँ ही व्रतादि कर्म करनेके लिये पवित्र मानी गयी हैं । इसी प्रकार रात्रि-व्रतोंमें तिथियोंके साथ रात्रिका संयोग बड़ा श्रेष्ठ माना गया है । श्रवण द्वादशीके व्रतमें सूर्योदयव्यापिनी द्वादशी ग्रहण करनी चाहिये । सूर्य-ग्रहण और चन्द्रग्रहणमें जबतक ग्रहण लगा रहे तबतककी तिथि जप आदिमें ग्रहण करने योग्य है ।

अब सम्पूर्ण संक्रान्तियोंमें होनेवाले पुण्यकालका वर्णन किया जाता है । सूर्यकी संक्रान्तियोंमें स्नान, दान और जप आदि करनेवालोंको अक्षय फल प्राप्त होता है । इन संक्रान्तियोंमें कर्ककी संक्रान्तिको दक्षिणायन सक्रम जानना चाहिये । कर्ककी संक्रान्तिमे विद्वान् लोग पहलेकी तीस घड़ीको पुण्यकाल मानते हैं । वृष, वृश्चिक, सिंह और कुम्भ राशिकी संक्रान्तियोंमे पहलेके आठ मुहूर्त्त (सोलह घड़ी) स्नान और जप आदिमे ग्राह्य हैं । और तुला तथा मेषकी संक्रान्तियोंमें पूर्व और परकी दस-दस घड़ियाँ स्नान आदिके लिये श्रेष्ठ मानी गयी हैं । इनमें दिया हुआ दान अक्षय होता है । ब्रह्मन् ! कन्या, मिथुन, मीन और धनकी संक्रान्तियोंमें बादकी सोलह घटिकाएँ पुण्यदायक जाननी चाहिये । मकर-संक्रान्तिको उत्तरायण सक्रम कहा गया है । इसमें पूर्वकी चालीस और बादकी तीस घड़ियाँ स्नान-दान आदिके लिये पवित्र मानी गयी हैं । विप्रवर ! यदि सूर्य और चन्द्रमा ग्रहण लगे हुए ही अस्त हो जायँ तो दूसरे दिन उनका शुद्ध मण्डल देखकर ही भोजन करना चाहिये ।

धर्मकी इच्छा रखनेवाले विद्वानोंने अमावास्या दो प्रकारकी बतायी है—सिनीवाली और कुहू । जिसमे चन्द्रमाकी कला देखी जाती है वह चतुर्दशीयुक्त अमावास्या सिनीवाली कही जाती है और जिसमे चन्द्रमाकी कलाका सर्वथा क्षय हो जाता है वह चतुर्दशीयुक्त अमावास्या कुहू मानी गयी है* । अग्निहोत्री द्विजोंको श्राद्धकर्ममें सिनीवाली अमावास्याको ही ग्रहण करना चाहिये तथा स्त्रियों, शूद्रों और अग्निरहित द्विजोंको कुहूमें श्राद्ध करना चाहिये । यदि अमावास्या तिथि अपराह्णकालमे व्याप्त हो तो क्षय (मृत्युकर्म) में पूर्व-तिथि और वृद्धि (जन्म-कर्म) में उत्तर-तिथिको ग्रहण करना चाहिये । यदि अमावास्या मध्याह्नकालके बाद प्रतीत हो तो शास्त्रकुशल साधु पुरुषोंने उसे भूतविद्धा (चतुर्दशीसे संयुक्त) कहा है । जब तिथिका अत्यन्त क्षय होनेसे दूसरे दिन वह

---
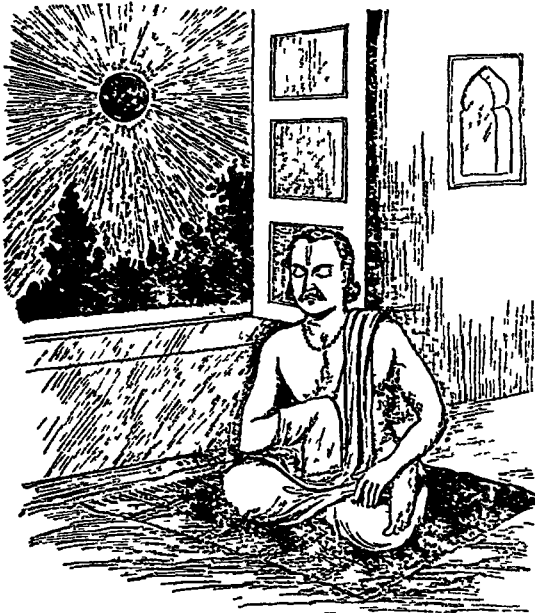
* अमावास्याके तीन विभाग हैं—सिनीवाली, दर्श और कुहू । चतुर्दशीका अन्तिम प्रहर और अमावास्याके आठ प्रहर इस प्रकार यह नौ प्रहरका समय चन्द्रमाके क्षयका काल माना गया है । इनमेंसे पहले दो प्रहरोंमें चन्द्रमाकी कला विराजमान रहती है अत. उसे सिनीवाली कहते हैं और अन्तिम दो प्रहरोंमें चन्द्रमाकी कलाका पूर्णतः क्षय हो जाता है । अत उसीका नाम कुहू है और बीचके जो शेष पाँच प्रहर हैं उनका नाम दर्श है ।

अपराह्णव्यापिनी न हो तब (पूर्व दिनकी) सायंकाल-व्यापिनी सिनीवाली तिथिको ही श्राद्धमें ग्रहण करना चाहिये। यदि तिथिकी अतिशय वृद्धि होनेपर वह दूसरे दिन अपराह्ण-कालतक चली गयी हो तो चतुर्दशी-विद्धा अमावास्याको त्याग दे और कुहूको ही श्राद्धकर्ममें ग्रहण करे। यदि अमावास्या तिथि एक मध्याह्नसे लेकर दूसरे मध्याह्नतक व्याप्त हो तो इच्छानुसार पूर्व या पर-दिनकी तिथिको ग्रहण करे।

मुनिश्रेष्ठ! अब मैं सम्पूर्ण पर्वोंपर होनेवाले अन्वाधान (अग्निस्थापन) का वर्णन करता हूँ। प्रतिपदाके दिन याग करना चाहिये। पर्वके अन्तिम चतुर्थांश और प्रतिपदाके प्रथम तीन अंशको मनीषी पुरुषोंने यागका समय बताया है। यागका आरम्भ प्रातःकाल करना चाहिये। विप्रवर! यदि अमावास्या और पूर्णिमा दोनों मध्याह्नकालमें व्याप्त हों तो दूसरे ही दिन यागका मुख्य काल नियत किया जाता है। यदि अमावास्या और पूर्णिमा दूसरे दिन सङ्गवकाल (प्रातःकालसे छः घडी) के बाद हो तो दूसरे ही दिन पुण्यकाल होता है। तिथिक्षयमे भी ऐसी ही व्यवस्था जाननी चाहिये। सभी लोगोंको दशमीरहित एकादशी तिथि व्रतमें ग्रहण करनी चाहिये। दशमीयुक्त एकादशी तीन जन्मोंके कमाये हुए पुण्यका नाश कर देती है। यदि एकादशी द्वादशीमें एक कला भी प्रतीत हो और सम्पूर्ण दिन द्वादशी हो और द्वादशी भी त्रयोदशीमें मिली हुई हो तो दूसरे दिनकी तिथि (द्वादशी) ही उत्तम मानी गयी है। यदि सम्पूर्ण दिन शुद्ध एकादशी हो और द्वादशीमे भी उसका संयोग प्राप्त होता हो तथा रात्रिके अन्तमें त्रयोदशी आ जाय तो उस विषयमें निर्णय बतलाता हूँ। पहले दिनकी एकादशी गृहस्थोको करनी चाहिये और दूसरे दिनकी विरक्तोंको। यदि कलाभर भी द्वादशी न रहनेसे पारणाका अवसर न मिलता हो तो उस दशामे दशमीविद्धा एकादशीको भी उपवास-व्रत करना चाहिये। यदि शुक्ल या कृष्णपक्षमें दो एकादशियाँ हों तो पहली गृहस्थोंके लिये और दूसरी विरक्त यतियोंके लिये ग्राह्य मानी गयी है। यदि दिनभर दशमीयुक्त एकादशी हो और दिनकी समाप्तिके समय द्वादशीमें भी कुछ एकादशी हो तो सबके लिये दूसरे ही दिन (द्वादशी) व्रत बताया गया है। यदि दूसरे दिन द्वादशी न हो तो पहले दिनकी दशमीविद्धा एकादशी भी व्रतमें ग्राह्य है। और यदि दूसरे दिन द्वादशी है तो पहले दिनकी दशमीविद्धा एकादशी भी निषिद्ध ही है (इसलिये ऐसी परिस्थितिमें द्वादशीको व्रत करना चाहिये)। यदि एक ही दिन एकादशी, द्वादशी तथा रातके अन्तिम भागमें त्रयोदशी भी आ जाय तो त्रयोदशीमे पारणा करनेपर बारह द्वादशियोंका पुण्य होता है। यदि द्वादशीके दिन कलामात्र ही एकादशी हो और त्रयोदशीमें द्वादशीका योग हो या न हो तो गृहस्थोंके पहले दिनकी विद्धा एकादशी भी व्रतमें ग्रहण करनी चाहिये। और विरक्त साधुओं तथा विधवाओंको दूसरे दिनकी तिथि (द्वादशी) स्वीकार करनी चाहिये। यदि पूरे दिनभर शुद्ध एकादशी हो, द्वादशीमें उसका तनिक भी योग न हो तथा द्वादशी त्रयोदशीमें संयुक्त हो तो वहाँ कैसे व्रत रहना चाहिये—इसका उत्तर देते हैं—गृहस्थोंको पूर्वकी (एकादशी) तिथिमें व्रती रहना चाहिये और विरक्त साधुओंको दूसरे दिनकी (द्वादशी) तिथिमे। कोई-कोई विद्वान् ऐसा कहते हैं कि सब लोगोंको दूसरे दिनकी तिथिमे ही भक्तिपूर्वक उपवास करना चाहिये। जब एकादशी दशमीसे विद्ध हो, द्वादशीमे उसकी प्रतीति न हो और द्वादशी त्रयोदशीसे संयुक्त हो तो उस दशामें सबको शुद्ध द्वादशी तिथिमें उपवास करना चाहिये—इसमे संशय नहीं है। कुछ लोग पूर्व तिथिमे व्रत कहते हैं; किंतु उनका मत ठीक नहीं है।

जो रविवारको दिनमे, अमावास्या और पूर्णिमाको रातमें, चतुर्दशी और अष्टमी तिथिको दिनमें तथा एकादशी तिथिको दिन और रात दोनोमें भोजन कर लेता है, उसे प्रायश्चित्तरूपमे चान्द्रायण व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। सूर्यग्रहण प्राप्त होनेपर तीन पहर पहलेसे ही भोजन न करे। यदि कोई कर लेता है तो वह मदिरा पीनेवालेके समान होता है। मुनिश्रेष्ठ! यदि अग्न्याधान और दर्शपौर्णमास आदि यागके बीच चन्द्रग्रहण अथवा सूर्यग्रहण हो जाय तो यज्ञकर्ता पुरुषोको प्रायश्चित्त करना चाहिये। ब्रह्मन्! चन्द्रग्रहणमे 'दशमे सोमः' 'आप्यायस्व' तथा 'सोमपास्ते' इन तीन मन्त्रोंसे हवन करें। और सूर्यग्रहण होनेपर हवन करनेके लिये 'उदुत्यं जातवेदसम्' 'आसत्येन' 'उद्वय तमसः'—ये तीन मन्त्र बताये गये हैं। जो पण्डित इस प्रकार स्मृतिमार्गसे तिथिका निर्णय करके व्रत आदि करता है उसे अक्षय फल प्राप्त होता है। वेदमें जिसका प्रतिपादन किया गया है वह धर्म है। धर्मसे भगवान् विष्णु सतुष्ट होते हैं। अतः धर्म-परायण मनुष्य भगवान् विष्णुके परम धाममें जाते हैं। जो धर्माचरण करना चाहते हैं, वे साक्षात् भगवान् कृष्णके स्वरूप हैं। अतः संसाररूपी रोग उन्हे कोई बाधा नहीं पहुँचाता।

विविध पापोंके प्रायश्चित्तका विधान तथा भगवान् विष्णुके आराधनकी महिमा

श्रीसनकजी कहते हैं—नारदजी! अब मैं प्रायश्चित्तकी विधिका वर्णन करूँगा, सुनिये! सम्पूर्ण धर्मोंका फल चाहनेवाले पुरुषोंको काम-क्रोधसे रहित धर्मशास्त्रविशारद ब्राह्मणोंसे धर्मकी बात पूछनी चाहिये। विप्रवर! जो लोग भगवान् नारायणसे विमुख हैं, उनके द्वारा किये हुए प्रायश्चित्त उन्हे पवित्र नहीं करते; ठीक उसी तरह जैसे मदिराके पात्रको नदियाँ भी पवित्र नहीं कर सकतीं। ब्रह्महत्यारा, मदिरा पीनेवाला, स्वर्ण आदि वस्तुओंकी चोरी करनेवाला तथा गुरुपत्नीगामी—ये चार महापातकी कहे गये हैं। तथा इनके साथ सम्पर्क करनेवाला पुरुष पाँचवाँ महापातकी है। जो इनके साथ एक वर्षतक सोने, बैठने और भोजन करने आदिका सम्बन्ध रखते हुए निवास करता है, उसे भी सब कर्मोंसे पतित समझना चाहिये। अज्ञातवश ब्राह्मणहत्या हो जानेपर चीर-वस्त्र और जटा धारण करे और अपने द्वारा मारे गये ब्राह्मणकी कोई वस्तु ध्वज-दण्डमें बाँधकर उसे लिये हुए वनमें घूमे। वहाँ जंगली फल-मूलोंका आहार करते हुए निवास करे। दिनमें एक बार परिमित भोजन करे। तीनों समय स्नान और विधिपूर्वक सध्या करता रहे। अध्ययन और अध्यापन आदि कार्य छोड़ दे। निरन्तर भगवान् विष्णुका चिन्तन करता रहे। नित्य ब्रह्मचर्यका पालन करे और गन्ध एवं माला आदि भोग्य वस्तुओंको छोड दे। तीर्थों तथा पवित्र आश्रमोंमें निवास करे। यदि वनमें फल-मूलोंसे जीविका न चले तो गाँवोंमें जाकर भिक्षा माँगे। इस प्रकार श्रीहरिका चिन्तन करते हुए बारह वर्षका व्रत करे। इससे ब्रह्महत्यारा शुद्ध होता और ब्राह्मणोचित कर्म करनेके योग्य हो जाता है। व्रतके बीचमें यदि हिंसक जन्तुओं अथवा रोगोंसे उसकी मृत्यु हो जाय तो वह शुद्ध हो जाता है। यदि गौओं अथवा ब्राह्मणोंके लिये प्राण त्याग दे या श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दस हजार उत्तम गायोंका दान करे तो इससे भी उसकी शुद्धि होती है। इनमेंसे एक भी प्रायश्चित्त करके ब्रह्महत्यारा पापसे मुक्त हो सकता है।

यज्ञमें दीक्षित क्षत्रियका वध करके भी ब्रह्महत्याका ही व्रत करे अथवा प्रज्वलित अग्निमें प्रवेश कर जाय या किसी ऊँचे स्थानसे वायुके झोंके खाकर गिर जाय। यज्ञमें दीक्षित ब्राह्मणकी हत्या करनेपर दुगुने व्रतका आचरण करे। आचार्य आदिकी हत्या हो जानेपर चौगुना व्रत बतलाया गया है। नाममात्रके ब्राह्मणकी हत्या हो जाय तो एक वर्षतक व्रत करे। ब्रह्मन्! इस प्रकार ब्राह्मणके लिये प्रायश्चित्तकी विधि बतलायी गयी है। यदि क्षत्रियके द्वारा उपर्युक्त पाप हो जाय तो उसके लिये दुगुना और वैश्यके लिये तीनगुना प्रायश्चित्त बताया गया है। जो शूद्र ब्राह्मणका वध करता है उसे विद्वान् पुरुष मुशल्य (मूसलसे मार डालने योग्य) मानते हैं। राजाको ही उसे दण्ड देना चाहिये। यही शास्त्रोंका निर्णय है। ब्राह्मणीके वधमें आधा और ब्राह्मण-कन्याके वधमें चौथाई प्रायश्चित्त कहा गया है। जिनका यज्ञोपवीत संस्कार न हुआ हो, ऐसे ब्राह्मण बालकोंका वध करनेपर भी चौथाई व्रत करे। यदि ब्राह्मण क्षत्रियका वध कर डाले तो वह छः वर्षोंतक कृच्छ्रव्रतका आचरण करे। वैश्यको मारनेपर तीन वर्ष और शूद्रको मारनेपर एक वर्षतक व्रत करे। यज्ञमे दीक्षित ब्राह्मणकी धर्मपत्नीका वध करनेपर आठ वर्षोंतक ब्रह्महत्याका व्रत करे। मुनिश्रेष्ठ! वृद्ध, रोगी, स्त्री और बालकोंके लिये सर्वत्र आधे प्रायश्चित्तका विधान बताया गया है।

सुरा मुख्य तीन प्रकारकी जाननी चाहिये। गौड़ी (गुड़से तैयार की हुई), पैष्टी (चावलों आदिके आटेसे बनायी हुई) तथा माध्वी (फूलके रस, अगूर या महुवेसे बनायी हुई)। नारदजी! चारों वर्णोंके पुरुषो तथा स्त्रियोंको इनमेंसे कोई भी सुरा नहीं पीनी चाहिये। मुने! शराब पीनेवाला द्विज स्नान करके गीले वस्त्र पहने हुए मनको एकाग्र करके भगवान् नारायणका निरन्तर स्मरण करे और दूध, घी अथवा गोमूत्रको तपाये हुए लोहेके समान गरम करके पी जाय, फिर (जीवित रहे तो) जल पीवे। वह भी लौहपात्र अथवा आयसपात्रमे पीये, या ताँबेके पात्रसे पीकर मृत्युको प्राप्त हो जाय। ऐसा करनेपर ही मदिरा पीनेवाला द्विज उस पापसे मुक्त होता है। अनजानमे पानी समझकर जो द्विज शराब पी ले तो विधिपूर्वक ब्रह्महत्याका व्रत करे; किंतु उसके चिह्नोंको न धारण करे। यदि रोग-निवृत्तिके लिये औषध-सेवनकी दृष्टिसे कोई द्विज शराब पी ले तो उसका फिर उपनयन-संस्कार करके उससे दो

चान्द्रायण व्रत कराने चाहिये। शराबसे छुवाये हुए पात्रमें भोजन करना, जिसमें कभी शराब रक्खी गयी हो उस पात्रका जल पीना तथा शराबसे भीगी हुई वस्तुको खाना, यह सब शराब पीनेके ही समान बताया गया है। ताड़, कटहल, अंगूर, खजूर और महुआसे तैयार की हुई तथा पत्थरसे आटेको पीसकर बनायी हुई अरिष्ट, मैरेय और नारियलसे निकाली हुई, गुड़की बनी हुई तथा माध्वी—ये ग्यारह प्रकारकी मदिराएँ बतायी गयी हैं। (उपर्युक्त तीन प्रकारकी मदिराके ही ये ग्यारह भेद हैं।) इनमेंसे किसी भी मद्यको ब्राह्मण कभी न पीवें। यदि द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) अज्ञानवश इनमेंसे किसी एकको पी ले तो फिरसे अपना उपनयन-संस्कार कराकर तप्तकृच्छ्र व्रतका आचरण करे।

जो सामने या परोक्षमें बलपूर्वक या चोरीसे दूसरोंके धनको ले लेता है, उसका यह कर्म विद्वान् पुरुषोंद्वारा स्तेय (चोरी) कहा गया है। मनु आदिने सुवर्णके मापकी परिभाषा इस प्रकार की है। विप्रवर! वह मान (माप) आगे कहे जानेवाले प्रायश्चित्तकी उक्तिका साधन है। अतः उसका वर्णन करता हूँ; सुनिये! झरोखेके छिद्रसे घरमें आयी हुई सूर्यकी जो किरणें हैं, उनमेंसे जो उत्पन्न सूक्ष्म धूलिकण उड़ता दिखायी देता है, उसे विद्वान् पुरुष त्रसरेणु कहते हैं। वही त्रसरेणुका माप है। आठ त्रसरेणुओंका एक निष्क होता है और तीन निष्कोंका एक राजसर्षप (राई) बताया गया है। तीन राजसर्षपोंका एक गौरसर्षप (पीली सरसों) होता है। और छः गौरसर्षपोंका एक यव कहा जाता है। तीन यवका एक कृष्णल होता है। पाँच कृष्णलका एक माष (माशा) माना गया है। नारदजी! १६ माशेके बराबर एक सुवर्ण होता है। यदि कोई मूर्खतासे सुवर्णके बराबर ब्राह्मणके धनका अर्थात् १६ माशा सोनेका अपहरण कर लेता है तो उसे पूर्ववत् १२ वर्षोंतक कपाल और ध्वजके चिह्नोंसे रहित ब्रह्महत्या-व्रत करना चाहिये। गुरुजनों, यज्ञ करनेवाले धर्मनिष्ठ पुरुषों तथा श्रोत्रिय ब्राह्मणोंके सुवर्णको चुरा लेनेपर इस प्रकार प्रायश्चित्त करे। पहले उस पापके कारण बहुत पश्चात्ताप करे, फिर सम्पूर्ण शरीरमें घीका लेप करे और कंडेसे अपने शरीरको ढककर

आग लगाकर जल मरे। तभी वह उस चोरीसे मुक्त होता है। यदि कोई क्षत्रिय ब्राह्मणके धनको चुरा ले और पश्चात्ताप होनेपर फिर उसे वहीं लौटा दे तो उसके लिये प्रायश्चित्त-की विधि मुझसे सुनिये। ब्रह्मर्षे! वह बारह दिनोंतक उपवासपूर्वक सान्तपन व्रत करके शुद्ध होता है। रत्न, सिंहासन, मनुष्य, स्त्री, दूध देनेवाली गाय तथा भूमि आदि पदार्थ भी स्वर्णके ही समान माने गये हैं। इनकी चोरी करनेपर आधा प्रायश्चित्त कहा है। राजसर्षप (राई) बराबर सोनेकी चोरी करनेपर चार प्राणायाम करने चाहिये। गौरसर्षप बराबर स्वर्णका अपहरण कर लेनेपर विद्वान् पुरुष स्नान करके विधिपूर्वक ८००० गायत्रीका जप करे। जौ बराबर स्वर्णको चुरानेपर द्विज यदि प्रातःकालसे लेकर सायंकालतक वेदमाता गायत्रीका जप करे तो उससे शुद्ध होता है। कृष्णल बराबर स्वर्णकी चोरी करनेपर मनुष्य सान्तपन व्रत करे। यदि एक माशाके बराबर सोना चुरा ले तो वह एक वर्षतक गोमूत्रमें पकाया हुआ जौ खाकर रहे तो शुद्ध होता है। मुनीश्वर! पूरे १६ माशा सोनेकी चोरी करनेपर मनुष्य एकाग्रचित्त हो १२ वर्षोंतक ब्रह्महत्याका व्रत करे।

अब गुरुपत्नीगामी पुरुषोंके लिये प्रायश्चित्तका वर्णन किया जाता है। यदि मनुष्य अज्ञानवश माता अथवा सौतेली माता-से समागम कर ले तो लोगोंपर अपना पाप प्रकट करते हुए

स्वयं ही अपने अण्डकोशको काट डाले । और हाथमें उस अण्डकोशको लिये हुए नैर्ऋत्य कोणमें चलता जाय । जाते समय मार्गमें कभी सुख-दुःखका विचार न करे । जो इस प्रकार किसी यात्रीकी ओर न देखते हुए प्राणान्त होनेतक चलता जाता है, वह पापसे शुद्ध होता है । अथवा अपने पाप-को बताते हुए किसी ऊँचे स्थानसे हवाके झोंकेके साथ कूद पड़े । यदि बिना विचारे अपने वर्णकी या अपनेसे उत्तम वर्ण-की स्त्रीके साथ समागम कर ले तो एकाग्रचित्त हो बारह वर्षों-तक ब्रह्महत्याका व्रत करे । द्विजश्रेष्ठ ! जो बिना जाने हुए कई बार समान वर्ण या उत्तम वर्णवाली स्त्रीसे समागम कर ले तो वह कंडेकी आगमें जलकर शुद्धिको प्राप्त होता है । यदि वीर्यपातसे पहले ही माताके साथ समागमसे निवृत्त हो जाय तो ब्रह्महत्याका व्रत करे और यदि वीर्यपात हो जाय तो अपने शरीरको अग्निमें जला दे । यदि अपने वर्णकी तथा अपनेसे उत्तम वर्णकी स्त्रीके साथ समागम करनेवाला पुरुष वीर्यपातसे पहले ही निवृत्त हो जाय तो भगवान् विष्णुका चिन्तन करते हुए नौ वर्षोंतक ब्रह्महत्याका व्रत करे । मनुष्य यदि कामसे मोहित होकर मौसी, बूआ, गुरुपत्नी, सास, चाची, मामी और पुत्रीसे समागम कर ले तो दो दिनतक समागम करनेपर उसे विधि-पूर्वक ब्रह्महत्याका व्रत करना चाहिये और तीन दिन-तक सम्भोग करनेपर वह आगमें जल जाय, तभी शुद्ध होता है, अन्यथा नहीं । मुनीश्वर ! जो कामके अधीन हो चाण्डाली, पुष्कसी (भीलजातिकी स्त्री), पुत्रवधू, बहिन, मित्रपत्नी तथा शिष्यकी स्त्रीसे समागम करता है, वह छः वर्षोंतक ब्रह्म-हत्याका व्रत करे *।

अब महापातकी पुरुषोंके साथ संसर्गका प्रायश्चित्त बतलाया जाता है । ब्रह्महत्यारे आदि चार प्रकारके महा-पातकियोंमेंसे जिसके साथ जिस पुरुषका संसर्ग होता है, वह उसके लिये विहित प्रायश्चित्त व्रतका पालन करके निश्चय ही शुद्ध हो जाता है । जो बिना जाने पाँच राततक इनके साथ रह लेता है, उसे विधिपूर्वक प्राजापत्य कृच्छ्र नामक व्रत करना चाहिये । बारह दिनोंतक उनके साथ संसर्ग हो जाय तो उसका प्रायश्चित्त महासान्तपन व्रत बताया गया है । और पंद्रह दिनोंतक महापातकियोंका साथ कर लेनेपर मनुष्य बारह दिनतक उपवास करे । एक मासतक संसर्ग करनेपर पराक व्रत और तीन मासतक संसर्ग हो तो चान्द्रायण व्रतका विधान है । छः महीनेतक महापातकी मनुष्योंका सग करके मनुष्य दो चान्द्रायण व्रतका अनुष्ठान करे । एक वर्षसे कुछ कम समयतक उनका सङ्ग करनेपर छः महीनेतक चान्द्रायण व्रतका पालन करे और यदि जान-बूझकर महापातकी पुरुषोंका सङ्ग किया जाय तो क्रमशः इन सबका प्रायश्चित्त ऊपर बताये हुए प्रायश्चित्त-से तीनगुना बताया गया है। मेढ़क, नेवला, कौआ, सूअर, चूहा, बिल्ली, बकरी, भेड़, कुत्ता और मुर्गा—इनमेंसे किसीका वध करनेपर ब्राह्मण अर्धकृच्छ्र व्रतका आचरण करे और घोड़ेकी हत्या करनेवाला मनुष्य अतिकृच्छ्र व्रतका पालन करे । हाथीकी हत्या करनेपर तप्तकृच्छ्र और गोहत्या करनेपर पराक व्रत करनेका विधान है । यदि स्वेच्छासे जान-बूझकर गौओंका वध किया जाय तो मनीषी पुरुषोंने उसकी शुद्धिका कोई भी उपाय नहीं देखा है । पीनेयोग्य वस्तु, शय्या, आसन, फूल, फल, मूल तथा भक्ष्य और भोज्य पदार्थोंकी चोरीके पापका शोधन करनेवाला प्रायश्चित्त पञ्चगव्यका पान कहा गया है । सूखे काठ, तिनके, वृक्ष, गुड़, चमड़ा, वस्त्र और मांस—इनकी चोरी करनेपर तीन रात उपवास करना चाहिये । टिटिहरी, चकवा, हंस, कारण्डव, उल्लू, सारस, कबूतर, जलमुर्गा, तोता, नीलकण्ठ, बगुला, सूँस और कछुआ इनमेंसे किसीको भी मारनेपर बारह दिनोंतक उपवास करना चाहिये । वीर्य, मल और मूत्र खा लेनेपर प्राजापत्य व्रत करे । शूद्रका जूठा खानेपर तीन चान्द्रायण व्रत करनेका विधान है । रजस्वला स्त्री, चाण्डाल, महापातकी, सूतिका, पतित, उच्छिष्ट वस्तु आदिका स्पर्श कर लेनेपर वस्त्रसहित स्नान करे और घृत पीवे । नारदजी ! इसके सिवा आठ सौ गायत्रीका जप करे, तब वह शुद्धचित्त होता है । ब्राह्मणों और देवताओंकी निन्दा सब पापोंसे बड़ा पाप है । विद्वानोंने जो-जो पाप महापातकके समान बताये हैं, उन सबका इसी प्रकार विधिपूर्वक प्रायश्चित्त करना चाहिये । जो भगवान् नारायणकी शरण लेकर प्रायश्चित्त करता है, उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं ।

जो राग-द्वेष आदिसे मुक्त हो पापोंके लिये प्रायश्चित्त करता है, समस्त प्राणियोंके प्रति दयाभाव रखता है और भगवान् विष्णुके स्मरणमें तत्पर रहता है वह महापातकोंसे अथवा सम्पूर्ण पातकोंसे युक्त हो तो भी उसे सब पापोंसे मुक्त ही समझना चाहिये । क्योंकि वह भगवान् विष्णुके भजनमें लगा हुआ है । जो मानव अनादि, अनन्त, विश्वरूप तथा रोग शोकसे रहित

* ये महापाप समाजमें प्राय बहुत ही कम होते हैं, परन्तु प्रायश्चित्त-विधानमें तो लाखों-करोड़ोंमेंसे एक भी मनुष्यसे यदि वैसा पाप बनता है तो उसका भी प्रायश्चित्त बताना चाहिये इसीलिये शास्त्रका यह कठिन दण्ड-विधान है ।

भगवान् नारायणका चिन्तन करता है, वह करोड़ों पापोंसे मुक्त हो जाता है। साधु पुरुषोंके हृदयमें विराजमान भगवान् विष्णुका स्मरण, पूजन, ध्यान अथवा नमस्कार किया जाय तो वे सब पापोंका निश्चय ही नाश कर देते हैं। जो किसीके सम्पर्कसे अथवा मोहवश भी भगवान् विष्णुका पूजन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो उनके वैकुण्ठधाममें जाता है। नारदजी! भगवान् विष्णुके एक बार स्मरण करनेसे सम्पूर्ण क्लेशोंकी राशि नष्ट हो जाती है। तथा उसी मनुष्यको स्वर्गादि भोगोंकी प्राप्ति होती है'—यह स्वय ही अनुमान हो जाता है। मनुष्य-जन्म बडा दुर्लभ है। जो लोग इसे पाते हैं, वे धन्य हैं। मानव-जन्म मिलनेपर भी भगवान्की भक्ति और भी दुर्लभ बतायी गयी है, इसलिये बिजलीकी तरह चञ्चल (क्षणभङ्गुर) एवं दुर्लभ मानव-जन्मको पाकर भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुका भजन करना चाहिये। वे भगवान् ही अज्ञानी जीवोंको अज्ञानमय बन्धनसे छुडानेवाले हैं। भगवान्के भजनसे सब विघ्न नष्ट हो जाते हैं। तथा मनकी शुद्धि होती है। भगवान् जनार्दनके पूजित होनेपर मनुष्य

परम मोक्ष प्राप्त कर लेता है। भगवान्की आराधनामे लगे हुए मनुष्योंके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक सनातन पुरुषार्थ अवश्य सिद्ध होते हैं। इसमे संशय नहीं है *।

अरे! पुत्र, स्त्री, घर, खेत, धन और धान्य नाम धारण करनेवाली मानवी वृत्तिको पाकर तू घमण्ड न कर। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, परापवाद और निन्दाका सर्वथा त्याग करके भक्तिपूर्वक भगवान् श्रीहरिका भजन कर। सारे व्यापार छोड़कर भगवान् जनार्दनकी आराधनामें लग जा। यमपुरीके वे वृक्ष समीप ही दिखायी देते हैं। जबतक बुढापा नहीं आता, मृत्यु भी जबतक नहीं आ पहुँचती है और इन्द्रियाँ जबतक शिथिल नहीं हो जातीं तभीतक भगवान् विष्णुकी आराधना कर लेनी चाहिये। यह शरीर नाशवान् है। बुद्धिमान् पुरुप इसपर कभी विश्वास न करे। मौत सदा निकट रहती है। धन-वैभव अत्यन्त चञ्चल है और शरीर कुछ ही समयमे मृत्युका ग्रास बन जानेवाला है। अतः अभिमान छोड़ दे। महाभाग! संयोगका अन्त वियोग ही है। यहाँ सब कुछ क्षणभङ्गुर है—यह जानकर भगवान् जनार्दनकी पूजा कर। मनुष्य आशासे कष्ट पाता है। उसके लिये मोक्ष अत्यन्त दुर्लभ है। जो भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुका भजन करता है, वह महापातकी होनेपर भी उस परम धामको जाता है, जहाँ जाकर किसीको शोक नहीं होता। साधुशिरोमणे! सम्पूर्ण तीर्थ, समस्त यज्ञ और अङ्गोंसहित सब वेद भी भगवान् नारायणके पूजनकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हो सकते *। जो लोग भगवान् विष्णुकी

---

*यस्तु रागादिनिर्मुक्तो ह्यनुतापसमन्वितः ॥
सर्वभूतदयायुक्तो विष्णुस्मरणतत्पर. ।
महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकै. ॥
विमुक्त एव पापेभ्यो ज्ञेयो विष्णुपरो यत. ।
नारायणमनाद्यन्तं विश्वाकारमनामयम् ॥
यस्तु संस्मरते मर्त्य. स मुक्त. पापकोटिभिः ।
स्मृतो वा पूजितो वापि ध्यात प्रणमितोऽपि वा ॥
नाशयत्येव पापानि विष्णुर्हृद्गमन सताम् ।
सम्पर्काद्यदि वा मोहाद्यस्तु पूजयते हरिम् ॥
सर्वपापविनिर्मुक्त स प्रयाति हरे. पदम् ।
सकृत्संस्मरणाद्विष्णोर्नश्यन्ति क्लेशसंचया. ॥
स्वर्गादिभोगप्राप्तिस्तु तस्य विप्रानुमीयते ।
मानुषं दुर्लभ जन्म प्राप्यते यैर्मुनीश्वर ॥
तत्रापि हरिभक्तिस्तु दुर्लभा परिकीर्तिता ।
तस्मात्तडिल्लतालोल मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम् ॥
हरि सम्पूजयेद्भक्त्या पशुपाशविमोचनम् ।
सर्वेऽन्तराया नश्यन्ति मन शुद्धिश्च जायते ॥
पर मोक्षं लभेच्चैव पूजिते तु जनार्दने ।
धर्मार्थकाममोक्षाख्याः पुरुपार्था. सनातना ॥
हरिपूजापराणा तु सिध्यन्ति नात्र संशय. ।
(ना० पूर्व० ३०। ९२—१०२)

* सर्वतीर्थानि यज्ञाश्च साङ्गा वेदाश्च सत्तम ॥
नारायणार्चनस्यैते कला नार्हन्ति षोडशीम् ।
(ना० पूर्व० ३०। ११०-१११)

भक्तिसे वञ्चित हैं, उन्हें वेद, यज्ञ और शास्त्रोंसे क्या लाभ हुआ ? उन्होंने तीर्थोंकी सेवा करके क्या पाया तथा उनके तप और व्रतसे भी क्या होनेवाला है ? जो अनन्तस्वरूप, निरीह, ॐकारबोध्य, वरेण्य, वेदान्तवेद्य तथा संसाररूपी रोगके वैद्य भगवान् विष्णुका यजन करते हैं, वे मनुष्य उन्हीं भगवान् अच्युतके वैकुण्ठधाममें जाते हैं । जो अनादि, आत्मा, अनन्तशक्तिसम्पन्न, जगत्‌के आधार, देवताओंके आराध्य तथा ज्योतिःस्वरूप परम पुरुष भगवान् अच्युतका स्मरण करता है, वह नर अपने नित्यसखा नारायणको प्राप्त कर लेता है ।

यमलोकके मार्गमें पापियोंके कष्ट तथा पुण्यात्माओंके सुखका वर्णन एवं कल्पान्तरमें भी कर्मोंके भोगका प्रतिपादन

श्रीसनकजी बोले—ब्रह्मन् ! सुनिये । मैं अत्यन्त दुर्गम यमलोकके मार्गका वर्णन करता हूँ । वह पुण्यात्माओंके लिये सुखद और पापियोंके लिये भयदायक है । मुनीश्वर ! प्राचीन ज्ञानी पुरुषोंने यमलोकके मार्गका विस्तार छियासी हजार योजन बताया है । जो मनुष्य यहाँ दान करनेवाले होते हैं, वे उस मार्गमें सुखसे जाते हैं, और जो धर्मसे हीन हैं, वे अत्यन्त पीडित होकर बड़े दुःखसे यात्रा करते हैं । पापी मनुष्य उस मार्गपर दीनभावसे जोर-जोरसे रोते-चिल्लाते जाते हैं—वे अत्यन्त भयभीत और नंगे होते हैं । उनके कण्ठ, ओठ और तालु सूख जाते हैं । यमराजके दूत चाबुक आदिसे तथा अनेक प्रकारके आयुधोंसे उनपर आघात करते रहते हैं । और वे इधर-उधर भागते हुए बड़े कष्टसे उस पथपर चल पाते हैं । वहाँ कहीं कीचड है, कहीं जलती हुई आग है, कहीं तपायी हुई बालू बिछी है, कहीं तीखी धारवाली शिलाएँ हैं । कहीं काँटेदार वृक्ष हैं और कहीं ऐसे-ऐसे पहाड हैं, जिनकी शिलाओंपर चढना अत्यन्त दुःखदायक होता है । कहीं काँटोंकी बहुत बड़ी बाड लगी हुई है, कहीं-कहीं कन्दरामें प्रवेश करना पड़ता है । उस मार्गमें कहीं कंकड हैं, कहीं ढेले हैं और कहीं सुईके समान काँटे बिछे हैं तथा कहीं बाघ गरजते रहते हैं । नारदजी ! इस प्रकार पापी मनुष्य—भाँति-भाँतिके क्लेश उठाते हुए यात्रा करते हैं । कोई पाशमें बँधे होते हैं, कोई अङ्कुशोंसे खींचे जाते हैं और किन्हींकी पीठपर अस्त्र-शस्त्रोंकी मार पड़ती रहती है । इस दुर्दशाके साथ पापी उस मार्गपर जाते हैं । किन्हींकी नाक छेदकर उसमें नकेल डाल दी जाती है और उसीको पकड़कर खींचा जाता है । कोई आँतोंसे बँधे रहते हैं और कुछ पापी अपने शिश्नके अग्रभागसे लोहेका भारी भार ढोते हुए यात्रा करते हैं । कोई नासिकाके अग्रभागद्वारा लोहेका दो भार ढोते हैं और कोई पापी दोनों कानोंसे दो लौहभार वहन करते हुए उस मार्गपर चलते हैं । कोई अत्यन्त उच्छ्वास लेते हैं और किन्हींकी आँखें ढक दी जाती हैं । उस मार्गमें कहीं विश्रामके लिये छाया और पीनेके लिये जलतक नहीं है । अतः पापी लोग जानकर या अनजानमें किये हुए अपने पाप-कर्मोंके लिये शोक करते हुए अत्यन्त दुःखसे यात्रा करते हैं ।

नारदजी ! जो उत्तम बुद्धिवाले मानव धर्मनिष्ठ और दानशील होते हैं, वे अत्यन्त सुखी होकर धर्मराजके लोककी यात्रा करते हैं । मुनिश्रेष्ठ ! अन्न देनेवाले स्वादिष्ट अन्नका भोजन करते हुए जाते हैं । जिन्होंने जल दान किया है, वे भी अत्यन्त सुखी होकर उत्तम दूध पीते हुए यात्रा करते हैं । मट्ठा और दही दान करनेवाले तत्सम्बन्धी भोग प्राप्त करते हैं । द्विजश्रेष्ठ ! घृत, मधु और दूधका दान करनेवाले पुरुष सुधापान करते हुए धर्ममन्दिरको जाते हैं । साग देनेवाला खीर खाता है और दीप देनेवाला सम्पूर्ण दिशाओंको

प्रकाशित करते हुए जाता है। मुनिप्रवर! वस्त्र-दान करनेवाला पुरुष दिव्य वस्त्रोंसे विभूषित होकर यात्रा करता है। जिसने आभूषण दान किया है, वह उस मार्गपर देवताओंके मुखसे अपनी स्तुति सुनता हुआ जाता है। गोदानके पुण्यसे मनुष्य सब प्रकारके सुख-भोगसे सम्पन्न होकर जाता है। द्विजश्रेष्ठ! घोड़े, हाथी तथा रथकी सवारीका दान करनेवाला पुरुष

सम्पूर्ण भोगोंसे युक्त विमानद्वारा धर्मराजके मन्दिरको जाता है। जिस श्रेष्ठ पुरुषने माता-पिताकी सेवा-शुश्रूषा की है, वह देवताओंसे पूजित हो प्रसन्नचित्त होकर धर्मराजके घर जाता है। जो यतियों, व्रतधारियों तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी सेवा करता है, वह बड़े सुखसे धर्मलोकको जाता है। जो सम्पूर्ण भूतोंके प्रति दयाभाव रखता है, वह द्विज देवताओंसे पूजित हो सर्वभोगसमन्वित विमानद्वारा यात्रा करता है। जो विद्यादानमें तत्पर रहता है, वह ब्रह्माजीसे पूजित होता हुआ जाता है। पुराण-पाठ करनेवाला पुरुष मुनीश्वरोंद्वारा अपनी स्तुति सुनता हुआ यात्रा करता है। इस प्रकार धर्मपरायण पुरुष सुखपूर्वक धर्मराजके निवासस्थानको जाते हैं। उस समय धर्मराज चार भुजाओंसे युक्त हो शङ्ख, चक्र, गदा और खड्ग धारण करके बड़े स्नेहसे मित्रकी भाँति उस पुण्यात्मा पुरुषकी पूजा करते हैं और इस प्रकार कहते हैं—'हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ पुण्यात्मा पुरुषो! जो मानव-जन्म पाकर पुण्य नहीं करता है, वही पापियोंमें बड़ा है और वह आत्मघात करता है। जो अनित्य मानव-जन्म पाकर उसके द्वारा नित्य वस्तु (धर्म) का साधन नहीं करता, वह घोर नरकमें जाता है। उससे बढ़कर जड और कौन होगा? यह शरीर यातनारूप (दुःखरूप) है और मल आदिके द्वारा अपवित्र है। जो इसपर (इसकी स्थिरतापर) विश्वास करता है, उसे आत्मघाती समझना चाहिये। सब भूतोंमे प्राणधारी श्रेष्ठ हैं। उनमें भी जो (पशु-पक्षी आदि) बुद्धिसे जीवन-निर्वाह करते हैं, वे श्रेष्ठ हैं। उनसे भी मनुष्य श्रेष्ठ है। मनुष्योंमें ब्राह्मण, ब्राह्मणोंमे विद्वान् और विद्वानोंमे अचञ्चल बुद्धिवाले पुरुष श्रेष्ठ है। अचञ्चल बुद्धिवाले पुरुषोंमे कर्तव्यका पालन करनेवाले श्रेष्ठ हैं और कर्तव्य-पालकोंमें भी ब्रह्मवादी (वेदका कथन करनेवाले) पुरुष श्रेष्ठ है। ब्रह्मवादियोंमें भी वह श्रेष्ठ कहा जाता है, जो ममता आदि दोषोंसे रहित हो। इनकी अपेक्षा भी उस पुरुषको श्रेष्ठ समझना चाहिये, जो सदा भगवान्‌के ध्यानमें तत्पर रहता है। इसलिये सर्वथा प्रयत्न करके (सदाचार और ईश्वरकी भक्तिरूप) धर्मका संग्रह करना चाहिये। धर्मात्मा जीव सर्वत्र पूजित होता है इसमें संशय नहीं है। तुम लोग सम्पूर्ण भोगोंसे सम्पन्न पुण्यलोकमें जाओ। यदि कोई पाप है तो पीछे यहीं आकर उसका फल भोगना।'

ऐसा कहकर यमराज उन पुण्यात्माओंकी पूजा करके उन्हें सद्गतिको पहुँचा देते है और पापियोंको बुलाकर उन्हें कालदण्डसे डराते हुए फटकारते है। उस समय उनकी आवाज प्रलयकालके मेघके समान भयकर होती है और उनके शरीरकी कान्ति कज्जलगिरिके समान जान पडती है। उनके अस्त्र-शस्त्र बिजलीकी भाँति चमकते हैं, जिनके कारण वे बड़े भयंकर जान पड़ते हैं। उनके बत्तीस भुजाएँ हो जाती हैं। शरीरका विस्तार तीन योजनका होता है। उनकी लाल-लाल और भयकर आँखें बावड़ीके समान जान पडती हैं। सब दूत यमराजके समान भयंकर होकर गरजने लगते हैं। उन्हें देखकर पापी जीव थर-थर काँपने लगते है और अपने-अपने कर्मोंका विचार करके शोकग्रस्त हो जाते है। उस समय यमकी आज्ञासे चित्रगुप्त उन सब पापियोंसे कहते हैं—'अरे ओ दुराचारी पापात्माओ! तुम सब लोग अभिमानसे दूषित हो रहे हो। तुम अविवेकियोंने काम, क्रोध आदिसे दूषित अहंकारयुक्त चित्तसे किसलिये पापका आचरण किया है। पहले तो बड़े हर्षमें भरकर तुम लोगोंने पाप किये हैं, अब उसी प्रकार नरककी यातनाएँ भी भोगनी चाहिये। अपने कुटुम्ब, मित्र

और स्त्रीके लिये जैसा पाप तुमने किया है, उसीके अनुसार कर्मवश तुम यहाँ आ पहुँचे हो। अब अत्यन्त दुखी क्यों हो रहे हो? तुम्हीं सोचो, जब पहले तुमने पापाचार किया था, उस समय यह भी क्यों नहीं विचार लिया कि यमराज इसका दण्ड अवश्य देंगे। कोई दरिद्र हो या धनी, मूर्ख हो या पण्डित और कायर हो या वीर—यमराज सबके साथ समान बर्ताव करनेवाले हैं।' चित्रगुप्तका यह वचन सुनकर वे पापी भयभीत हो अपने कर्मोंके लिये शोक करते हुए चुपचाप खड़े रह जाते हैं। तब यमराजकी आज्ञाका पालन करनेवाले क्रूर, क्रोधी और भयंकर दूत इन पापियोंको बलपूर्वक पकड़कर नरकोंमें फेंक देते हैं। वहाँ अपने पापोंका फल भोगकर अन्तमें शेष पापके फलस्वरूप वे भूतलपर आकर स्थावर आदि योनियोंमें जन्म लेते हैं।

नारदजीने कहा—भगवन्! मेरे मनमें एक संदेह पैदा हो गया है। आपने ही कहा है कि जो लोग ग्राम-दान आदि पुण्यकर्म करते हैं, उन्हें कोटिसहस्र कल्पोंतक उनका महान् भोग प्राप्त होता रहता है। दूसरी ओर यह भी आपने बताया है कि प्राकृत प्रलयमें सम्पूर्ण लोकोंका नाश हो जाता है और एकमात्र भगवान् विष्णु ही शेष रह जाते हैं। अतः मुझे यह संशय हुआ है कि प्रलयकालतक जीवके पुण्य और पापभोगकी क्या समाप्ति नहीं होती? आप इस संदेहका निवारण करनेयोग्य हैं।

श्रीसनकजी बोले—महाप्राज्ञ! भगवान् नारायण अविनाशी, अनन्त, परमप्रकाशस्वरूप और सनातन पुरुष हैं। वे विशुद्ध, निर्गुण, नित्य और माया-मोहसे रहित हैं। परमानन्दस्वरूप श्रीहरि निर्गुण होते हुए भी सगुण-से प्रतीत होते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि रूपोंमें व्यक्त होकर भेदवान्-से दिखायी देते हैं। वे ही मायाके संयोगसे सम्पूर्ण जगत्का कार्य करते हैं। वे ही श्रीहरि ब्रह्माजीके रूपमें सृष्टि और विष्णुरूपसे जगत्का पालन करते हैं और अन्तमें भगवान् रुद्रके रूपमें वे ही सबको अपना ग्रास बनाते हैं। यह निश्चित सत्य है। प्रलयकाल व्यतीत होनेपर भगवान् जनार्दनने शेषशय्यासे उठकर ब्रह्माजीके रूपसे सम्पूर्ण चराचर विश्वकी पूर्व कल्पोंके अनुसार सृष्टि की है। विप्रवर! पूर्व कल्पोंमें जो-जो स्थावर-जङ्गम जीव जहाँ-जहाँ स्थित थे, नूतन कल्पमें ब्रह्माजी उस सम्पूर्ण जगत्की पूर्ववत् सृष्टि कर देते हैं। अतः साधुशिरोमणे! किये हुए पापों और पुण्योंका अक्षय फल अवश्य भोगना पड़ता है (प्रलय हो जानेपर जीवके जिन कर्मोंका फल शेष रह जाता है, दूसरे कल्पमें नयी सृष्टि होनेपर वह जीव पुनः अपने पुरातन कर्मोंका भोग भोगता है) कोई भी कर्म सौ करोड़ कल्पोंमें भी बिना भोगे नष्ट नहीं होता। अपने किये हुए शुभ और अशुभ कर्मोंका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है*।

पापी जीवोंके स्थावर आदि योनियोंमें जन्म लेने और दुःख भोगनेकी अवस्थाका वर्णन

श्रीसनकजी कहते हैं—इस प्रकार कर्मपाशमें बँधे हुए जीव स्वर्ग आदि पुण्यस्थानोंमें पुण्यकर्मोंका फल भोगकर तथा नरक-यातनाओंमें पापोंका अत्यन्त दुःखमय फल भोगकर क्षीण हुए कर्मोंके अवशेष भागसे इस लोकमें आकर स्थावर आदि योनियोंमें जन्म लेते हैं। वृक्ष, गुल्म, लता, वल्ली और पर्वत तथा तृण—ये स्थावरके नामसे विख्यात हैं। स्थावर जीव महामोहसे आच्छन्न होते हैं। स्थावर योनियोंमें उनकी स्थिति इस प्रकार होती है। पहले वे बीजरूपसे पृथ्वीमें बोये जाते हैं। फिर जलसे सींचनेके पश्चात् मूलभावको प्राप्त होते हैं। उस मूलसे अङ्कुरकी उत्पत्ति होती है। अङ्कुरसे पत्ते, तने और पतली डाली आदि प्रकट होते हैं। उन शाखाओंसे कलियाँ और कलियोंसे फूल प्रकट होते हैं। उन फूलोंसे ही वे धान्य वृक्ष फलवान् होते हैं। स्थावर-योनिमें जो बड़े-बड़े वृक्ष होते हैं, वे भी दीर्घकालतक काटने, दावानलमें जलने तथा सर्दी-गरमी लगने आदिके महान् दुःखका अनुभव करके मर जाते हैं। तदनन्तर वे जीव कीट आदि योनियोंमें उत्पन्न होकर सदा अतिशय दुःख उठाते रहते हैं। अपनेसे बलवान् प्राणियोंद्वारा पीड़ा प्राप्त होनेपर वे उसका निवारण करनेमें असमर्थ होते हैं। शीत और वायु आदिके भारी क्लेश भोगते हैं। और नित्य भूखसे पीड़ित हो मल-मूत्र आदिमें विचरते हुए दुःख-पर-दुःख उठाते रहते हैं। तदनन्तर इसी क्रमसे पशुयोनिमें आकर अपनेसे बलवान् पशुओंकी बाधासे भयभीत रहते हुए वे जीव अकारण भी भारी उद्वेगसे कष्ट पाते रहते हैं। उन्हें हवा,

* नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि। अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥
(ना० पूर्व० ३१। ६९-७०)

पानी आदिका महान् कष्ट सहन करना पड़ता है। अण्डज (पक्षी) की योनिमें भी वे कभी वायु पीकर रहते हैं और कभी मास तथा अपवित्र वस्तुएँ खाते हैं। ग्रामीण पशुओंकी योनिमें आनेपर भी उन्हे कभी भार ढोने, रस्सी आदिसे बाँधे जाने, डंडोंसे पीटे जाने तथा हल आदि धारण करनेके समस्त दुःख भोगने पडते हैं। इस प्रकार बहुत-सी योनियोंमें क्रमशः भ्रमण करके वे जीव मनुष्य-जन्म पाते हैं। कोई पुण्यविशेषके कारण बिना क्रमके भी शीघ्र मनुष्य-योनि प्राप्त कर लेते हैं। मनुष्य-जन्म पाकर भी नीची जातियोंमें नीच पुरुषोंकी टहल बजानेवाले, दरिद्र, अङ्गहीन तथा अधिक अङ्गवाले इत्यादि होकर वे कष्ट और अपमान उठाते हैं तथा अत्यन्त दुःखसे पूर्ण ज्वर, ताप, शीत, गुल्मरोग, पादरोग, नेत्ररोग, शिरदर्द, गर्भ-वेदना तथा पसलीमें दर्द होने आदिके भारी कष्ट भोगते हैं।

मनुष्यजन्ममें भी जब स्त्री और पुरुष मैथुन करते हैं, उस समय वीर्य निकलकर जब जरायु (गर्भाशय) में प्रवेश करता है, उसी समय जीव अपने कर्मोंके वशीभूत हो उस वीर्यके साथ गर्भाशयमें प्रविष्ट हो रज-वीर्यके कललमें स्थित होता है। वह वीर्य जीवके प्रवेश करनेके पाँच दिन बाद कलल-रूपमें परिणत होता है। फिर पंद्रह दिनके बाद वह पलल (मासपिण्डकी-सी स्थिति) भावको प्राप्त हो एक महीनेमें प्रादेशमात्र बडा हो जाता है। तबसे लेकर पूर्ण चेतनाका अभाव होनेपर भी माताके उदरमें दुस्सह ताप और क्लेश होनेसे वह एक स्थानपर स्थिर न रह सकनेके कारण वायुकी प्रेरणासे इधर-उधर भ्रमण करता है। फिर दूसरा महीना पूर्ण होनेपर वह मनुष्यके-से आकारको पाता है। तीसरे महीनेकी पूर्णता होनेपर उसके हाथ-पैर आदि अवयव प्रकट होते हैं और चार महीने बीत जानेपर उसके सब अवयवोंकी सन्धिका भेद ज्ञात होने लगता है। पाँच महीनेपर अँगुलियों-में नख प्रकट होते हैं। छः मास पूरे हो जानेपर नखोंकी सन्धि स्पष्ट हो जाती है। उसकी नाभिमें जो नाल होती है उसीके द्वारा अन्नका रस पाकर वह पुष्ट होता है। उसके सारे अंग अपवित्र मल-मूत्र आदिसे भींगे रहते हैं। जरायुमे उसका शरीर बँधा होता है और वह माताके रक्त, हड्डी, कीड़े, वसा, मज्जा, स्नायु और केश आदिसे दूषित तथा घृणित शरीरमें निवास करता है। माताके खाये हुए कड़वे, खट्टे, नमकीन तथा अधिक गरम भोजनसे वह अत्यन्त दग्ध होता रहता है। इस दुरवस्थामे अपने-आपको देखकर वह देहधारी जीव पूर्वजन्मोंकी स्मृतिके प्रभावसे पहलेके अनुभव किये हुए नरकके दुःखोंको भी स्मरण करता और आन्तरिक दुःखसे अधिकाधिक जलने लगता है। 'अहो! मैं बड़ा पापी हूँ! कामसे अन्धा होनेके कारण परायी स्त्रियोंको हरकर उनके साथ सम्भोग करके मैंने बडे-बडे पाप किये हैं। उन पापोंसे अकेला मैं ही ऐसे ऐसे नरकोंका कष्ट भोगता रहा। फिर स्थावर आदि योनियोमें महान् दुःख भोगकर अब मानव-योनिमें आया हूँ। आन्तरिक दुःख तथा बाह्य संतापसे दग्ध हो रहा हूँ। अहो! देहधारियोंको कितना दुःख उठाना पड़ता है। शरीर पापसे ही उत्पन्न होता है। इसलिये पाप नहीं करना चाहिये। मैंने कुटुम्ब, मित्र और स्त्रीके लिये दूसरोका धन चुराया है। उसी पापसे आज गर्भकी झिल्लीमें बँधा हुआ जल रहा हूँ। पूर्वजन्ममे दूसरोका धन देखकर ईर्ष्यावश जला करता था; इसीलिये मैं पापी जीव इस समय भी गर्भकी आगसे निरन्तर दग्ध हो रहा हूँ। मन, वाणी और शरीरसे मैंने दूसरोंको बहुत पीड़ा दी थी। उस पापसे आज मै अकेला ही अत्यन्त दुखी होकर जल रहा हूँ।' इस प्रकार वह गर्भस्थ जीव नाना प्रकारसे विलाप करके स्वयं ही अपने आपको इस प्रकार आश्वासन देता है--'अब मै जन्म लेनेके बाद सत्सङ्ग तथा भगवान् विष्णुकी कथाका श्रवण करके विशुद्ध-चित्त हो सत्कर्मोंका अनुष्ठान करूँगा और सम्पूर्ण जगत्के अन्तरात्मा तथा अपनी शक्तिके प्रभावसे अखिल विश्वकी सृष्टि करनेवाले सत्य-ज्ञानानन्दस्वरूप लक्ष्मीपति भगवान् नारायणके उन युगल-चरणारविन्दोंका भक्तिपूर्वक पूजन करूँगा। जिनकी समस्त देवता, असुर, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, नाग, मुनि तथा किन्नर-समुदाय आराधना करते रहते हैं। भगवान्के वे चरण दुस्सह संसार-बन्धनके मूलोच्छेदके हेतु हैं। वेदोंके रहस्यभूत उपनिषदोंद्वारा उनकी महिमाका स्पष्ट ज्ञान होता है। वे ही सम्पूर्ण जगत्के आश्रय हैं। मैं उन्हीं भगवच्चरणा-रविन्दोंको अपने हृदयमें रखकर अत्यन्त दुःखसे भरे हुए संसारको लाँघ जाऊँगा।' इस प्रकार वह मनमें भावना करता है।

नारदजी! जब माताके प्रसवका समय आता है, उस समय वह गर्भस्थ जीव वायुसे अत्यन्त पीड़ित हो माताको भी दुःख देता हुआ कर्मपाशसे बँधकर जबरदस्ती योनिमार्गसे निकलता है। निकलते समय सम्पूर्ण नरक-यातनाओंका

१. अँगूठेकी नोकसे लेकर तर्जनीकी नोकतककी लम्बाईको प्रादेश कहते हैं।

भोग उसे एक ही साथ भोगना पडता है। बाहरकी वायुका स्पर्श होते ही उसकी स्मरणशक्ति नष्ट हो जाती है। फिर वह जीव बाल्यावस्थाको प्राप्त होता है। उसमें भी अपने ही मल-मूत्रमें उसका शरीर लिपटा रहता है। आध्यात्मिक आदि त्रिविध दुःखोंसे पीडित होकर भी वह कुछ नहीं बता सकता। उसके रोनेपर लोग यह समझते हैं कि यह भूख-प्याससे कष्ट पा रहा है, इसे दूध आदि देना चाहिये। और इसी मान्यताके अनुसार वे लोग प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार वह अनेक प्रकारके शारीरिक कष्ट-भोगका अनुभव करता है। मच्छरों और खटमलोंके काट लेनेपर वह उन्हें हटानेमें असमर्थ होता है। शैशवसे बाल्यावस्थामें पहुँचकर वहाँ माता-पिता और गुरुकी डाँट सुनता और चपत खाता

है। वह बहुत-से निरर्थक कार्योंमें लगा रहता है। उन कार्योंके सफल न होनेपर वह मानसिक कष्ट पाता है। इस प्रकार बाल्य-जीवनमें अनेक प्रकारके कष्टोंका अनुभव करता है। तत्पश्चात् तरुणावस्थामें आनेपर जीव धनोपार्जन करते हैं। कमाये हुए धनकी रक्षा करनेमें लगे रहते हैं। उस धनके नष्ट या खर्च हो जानेपर अत्यन्त दुखी होते हैं। मायासे मोहित रहते हैं। उनका अन्तःकरण काम-क्रोधादिसे दूषित हो जाता है। वे सदा दूसरोंके गुणोंमें भी दोष ही देखा करते हैं। पराये धन और परायी स्त्रीको हड़प लेनेके प्रयत्नमें लगे रहते हैं। पुत्र, मित्र और स्त्री आदिके भरण-पोषणके लिये क्या उपाय किया जाय अब इस बड़े हुए कुटुम्बका कैसे निर्वाह होगा? मेरे मूल-धन नहीं है (अतः व्यापार नहीं हो सकता), इ वर्षा भी नहीं हो रही है (अतः खेतीसे क्या आ की जाय), मेरी घरवालीके बच्चे अभी बहुत छो (अतः उनसे काम-काजमें कोई मदद नहीं मिल सकती इधर मैं भी रोगी हो चला और निर्धन ही रह गया। विचार न करनेसे खेती-बारी नष्ट हो गयी। बच्चे रोज करते हैं। मेरा घर टूट-फूट गया। कोई जीविका भी मिलती। राजाकी ओरसे भी अत्यन्त दुःसह दुःख प्राप्त रहा है। शत्रु रोज मेरा पीछा करते हैं। मैं इन्हें कैसे जीतूँ इस प्रकार चिन्तासे व्याकुल तथा अपने दुःखको दूर कर असमर्थ हो, वे कहते हैं—विधाताको धिक्कार है। उ मुझ भाग्यहीनको पैदा ही क्यों किया? इसी तरह जीव वृद्धावस्थाको प्राप्त होता है तो उसका बल घटने लगता बाल सफेद हो जाते हैं और जरावस्थाके कारण सारे शरी झुर्रियाँ पड़ जाती हैं। अनेक प्रकारके रोग उसे पीड़ा लगते हैं। उसका एक-एक अंग काँपता रहता है। और खाँसी आदिसे वह पीड़ित होता है। कीचड़से भ हुई आँखें चञ्चल एवं कातर हो उठती हैं। कफसे भर जाता है। पुत्र और पत्नी आदि भी उसे ताड़ना हैं। मैं कब मर जाऊँगा—इस चिन्तासे वह व्याकुल उठता है और सोचने लगता है कि मेरे मर जानेके यदि दूसरोंने मेरा धन हड़प लिया तो मेरे पुत्र आदि जीवन-निर्वाह कैसे होगा? इस प्रकार ममता और दुः डूबा हुआ वह लंबी साँसें खींचता है और अपनी आ किये हुए कर्मोंको बार-बार स्मरण करता है तथा क्षणमें भूल जाता है। फिर जब मृत्युकाल निकट आत तो वह रोगसे पीड़ित हो आन्तरिक संतापसे व्याकुल जाता है। मेरे कमाये हुए धन आदि किसके अधिन होंगे—इस चिन्तामें पड़कर उसकी आँखोंमें आँसू भर हैं। कण्ठ घुरघुराने लगता है और इस दशामें शरीरसे निकल जाते हैं। फिर यमदूतोंकी डाँट-फटकार सुनता वह जीव पाशमें बँधकर पूर्ववत् नरक आदिके कष्ट भो है। जिस प्रकार सुवर्ण आदि धातु तबतक आगमें त जाते हैं जबतक कि उनकी मैल नहीं जल जाती। उसी प्र सब जीवधारी कर्मोंके क्षय होनेतक अत्यन्त कष्ट भोगने

द्विजश्रेष्ठ! इसलिये संसाररूपी दावानलके तापसे

मनुष्य परम ज्ञानका अभ्यास करे। ज्ञानसे वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है। ज्ञानशून्य मनुष्य पशु कहे गये हैं। अतः संसार-बन्धनसे मुक्त होनेके लिये परम ज्ञानका अभ्यास करे *। सब कर्मोंको सिद्ध करनेवाले मानव-जन्मको पाकर भी जो भगवान् विष्णुकी सेवा नहीं करता, उससे बढ़कर मूर्ख कौन हो सकता है? मुनिश्रेष्ठ! सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंके दाता जगदीश्वर भगवान् विष्णुके रहते हुए भी मनुष्य ज्ञानरहित होकर नरकोंमे पकाये जाते हैं—यह कितने आश्चर्यकी बात है। जिससे मल-मूत्रका स्रोत बहता रहता है, ऐसे इस क्षणभङ्गुर शरीरमें अज्ञानी पुरुष महान् मोहसे आच्छन्न होनेके कारण नित्यताकी भावना करते हैं। जो मनुष्य मांस तथा रक्त आदिसे भरे हुए उस घृणित शरीरको पाकर संसार-बन्धनका नाश करनेवाले भगवान् विष्णुका भजन नहीं करता, वह अत्यन्त पातकी है। ब्रह्मन्! मूर्खता या अज्ञान अत्यन्त कष्टकारक है, महान् दुःख देनेवाला है, परंतु भगवान्के ध्यानमें लगा हुआ चाण्डाल भी ज्ञान प्राप्त करके महान् सुखी हो जाता है। मनुष्यका जन्म दुर्लभ है। देवता भी उसके लिये प्रार्थना करते हैं। अतः उसे पाकर विद्वान् पुरुष परलोक सुधारनेका यत्न करे †। जो अध्यात्म-ज्ञानसे सम्पन्न तथा भगवान्की आराधनामें तत्पर रहनेवाले हैं, वे पुनरावृत्तिरहित परम धामको पा लेते हैं। जिनसे यह सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न हुआ है, जिनसे चेतना पाता है और जिनमें ही इसका लय होता है, वे भगवान् विष्णु ही संसार-बन्धनसे छुड़ानेवाले हैं। जो अनन्त परमेश्वर निर्गुण होते हुए भी सगुण-से प्रतीत होते हैं, उन देवेश्वर श्रीहरिकी पूजा-अर्चा करके मनुष्य संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है।

मोक्षप्राप्तिका उपाय, भगवान् विष्णु ही मोक्षदाता हैं—इसका प्रतिपादन, योग तथा उसके अङ्गोंका निरूपण

नारदजीने पूछा—भगवन्! कर्मसे देह मिलता है। देहधारी जीव कामनासे बँधता है। कामसे वह लोभके वशीभूत होता है और लोभसे क्रोधके अधीन हो जाता है। क्रोधसे धर्मका नाश होता है। धर्मके नाशसे बुद्धि बिगड़ जाती है और जिसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है, वह मनुष्य पुनः पाप करने लगता है। अतः देह ही पापकी जड़ है तथा उसीकी पापकर्ममे प्रवृत्ति होती है, इसलिये मनुष्य इस देहके भ्रमको त्यागकर जिस प्रकार मोक्षका भागी हो सके, वह उपाय बताइये।

श्रीसनकजीने कहा—महाप्राज्ञ! सुव्रत! जिनकी आज्ञासे ब्रह्माजी सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि, विष्णु पालन तथा रुद्र संहार करते हैं, महत्तत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त सभी तत्त्व जिनके प्रभावसे उत्पन्न हुए हैं, उन रोग-शोकसे रहित सर्वव्यापी भगवान् नारायणको ही मोक्षदाता जानना चाहिये। सम्पूर्ण चराचर जगत् जिनसे भिन्न नहीं है तथा जो जरा और मृत्युसे परे हैं, उस तेज प्रभाववाले भगवान् नारायणका ध्यान करके मनुष्य दुःखसे मुक्त हो जाता है। जो विकार-रहित, अजन्मा, शुद्ध, स्वयंप्रकाश, निरञ्जन, ज्ञानरूप तथा सच्चिदानन्दमय है, ब्रह्मा आदि देवता जिनके अवतार-स्वरूपोंकी सदा आराधना करते हैं, वे श्रीहरि ही सनातन स्थान (परम धाम या मोक्ष) के दाता हैं। ऐसा जानना चाहिये। जो निर्गुण होकर भी सम्पूर्ण गुणोंके आधार हैं, लोकोपर अनुग्रह करनेके लिये विविध रूप धारण करते हैं और सबके हृदयाकाशमें विराजमान तथा सर्वत्र परिपूर्ण हैं, जिनकी कहीं भी उपमा नहीं है तथा जो सबके आधार हैं, उन भगवान्की शरणमें जाना चाहिये। जो कल्पके अन्तमें सबको अपने भीतर समेटकर स्वयं जलमे शयन करते है, वेदार्थके ज्ञाता तथा कर्मकाण्डके विद्वान् नाना प्रकारके यज्ञोंद्वारा जिनका यजन करते हैं, वे ही भगवान् कर्मफलके दाता हैं और निष्कामभावसे कर्म

* तस्मात्संसारदावाग्नितापार्तो द्विजसत्तम। अभ्यसेत्परमं ज्ञानं ज्ञानान्मोक्षमवाप्नुयात्॥
ज्ञानशून्या नरा ये तु पशवः परिकीर्तिताः। तस्मात्संसारमोक्षाय परं ज्ञानं समभ्यसेत्॥
(ना० पूर्व० ३२। ३९-४०)

† दुर्लभं मानुषं जन्म प्रार्थ्यते त्रिदशैरपि। तल्लब्ध्वा परलोकार्थं यत्नं कुर्याद् विचक्षणः॥
(ना० पूर्व० ३२। ४७)

करनेवालोंको वे ही मोक्ष देते है। जो ध्यान, प्रणाम अथवा भक्तिपूर्वक पूजन करनेपर अपना सनातन स्थान वैकुण्ठ प्रदान करते हैं, उन दयालु भगवान्‌की आराधना करनी चाहिये । मुनीश्वर ! जिनके चरणारविन्दोंकी पूजा करके देहाभिमानी जीव भी शीघ्र ही अमृतत्व (मोक्ष) प्राप्त कर लेते हैं, उन्हींको ज्ञानीजन पुरुषोत्तम मानते है। जो आनन्दस्वरूप, जरारहित, परमज्योतिर्मय, सनातन एवं परात्पर ब्रह्म हैं, वही भगवान् विष्णुका सुप्रसिद्ध परम पद है। जो अद्वैत, निर्गुण, नित्य, अद्वितीय, अनुपम, परिपूर्ण तथा ज्ञानमय ब्रह्म है, उसीको साधु पुरुष मोक्षका साधन मानते हैं। जो योगी पुरुष योगमार्गकी विधिसे ऐसे परम तत्त्वकी उपासना करता है वह परम पदको प्राप्त होता है। जो सब प्रकारकी आसक्तियोंका त्याग करनेवाला, शम-दम आदि गुणोंसे युक्त और काम आदि दोषोंसे रहित है, वह योगी परम पदको पाता है।

नारदजीने पूछा—वक्ताओंमें श्रेष्ठ ! किस कर्मसे योगियोंके योगकी सिद्धि होती है ? वह उपाय यथार्थरूपसे मुझे बताइये।

श्रीसनकजीने कहा—तत्त्वार्थका विचार करनेवाले ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि परम मोक्ष ज्ञानसे ही प्राप्त होने योग्य है । उस ज्ञानका मूल है भक्ति और भक्ति प्राप्त होती है (भगवदर्थ) कर्म करनेवालोंको । भक्तिका लेशमात्र होनेसे भी अक्षय परम धर्म सम्पन्न होता है । उत्कृष्ट श्रद्धासे सब पाप नष्ट हो जाते हैं। सब पापोंका नाश होनेपर निर्मल बुद्धिका उदय होता है। वह निर्मल बुद्धि ही ज्ञानी पुरुषोंद्वारा ज्ञानके नामसे बतायी गयी है। ज्ञानको मोक्ष देनेवाला कहा गया है। वैसा ज्ञान योगियोंको होता है। कर्मयोग और ज्ञानयोग—इस प्रकार दो प्रकारका योग कहा गया है । कर्मयोगके बिना मनुष्योंका ज्ञानयोग सिद्ध नहीं होता, अतः क्रिया (कर्म) योगमें तत्पर होकर श्रद्धापूर्वक भगवान् श्रीहरिकी पूजा करनी चाहिये । ब्राह्मण, भूमि, अग्नि, सूर्य, जल, धातु, हृदय तथा चित्र नामवाली—ये भगवान् केशवकी आठ प्रतिमाएँ हैं। इनमें भक्तिपूर्वक भगवान्‌का पूजन करना चाहिये। अतः मन, वाणी और क्रियाद्वारा दूसरोंको पीडा न देते हुए भक्तिभावसे संयुक्त हो सर्वव्यापी भगवान् विष्णुकी पूजा करे । अहिंसा, सत्य, क्रोधका अभाव, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, ईर्ष्याका त्याग तथा दया—ये सद्गुण ज्ञानयोग और कर्मयोग—दोनोंमें समानरूपसे आवश्यक हैं*। यह चराचर विश्व सनातन भगवान् विष्णुका ही स्वरूप है। ऐसा मनसे निश्चय करके उक्त दोनों योगोंका अभ्यास करे। जो मनीषी पुरुष समस्त प्राणियोंको अपने आत्माके ही समान मानते हैं, वे ही देवाधिदेव चक्र-सुदर्शनधारी भगवान् विष्णुके परम भावको जानते हैं। जो असूया (दूसरोंके दोष देखने) में संलग्न हो तपस्या, पूजा और ध्यानमें प्रवृत्त होता है, उसकी वह तपस्या, पूजा और ध्यान सब व्यर्थ होते हैं। इसलिये शम, दम आदि गुणोंके साधनमें लगकर विधिपूर्वक क्रियायोगमें तत्पर हो मनुष्य अपनी मुक्तिके लिये सर्व-स्वरूप भगवान् विष्णुकी पूजा करे। जो सम्पूर्ण लोकोंके हितसाधनमें तत्पर हो मन, वाणी और क्रियाद्वारा देवेश्वर भगवान् विष्णुका भलीभाँति पूजन करता है, जो जगत्के कारणभूत, सर्वान्तर्यामी एवं सर्वपापहारी सर्वव्यापी भगवान् विष्णुकी स्तोत्र आदिके द्वारा स्तुति करता है, वह कर्मयोगी कहा जाता है। उपवास आदि व्रत, पुराणश्रवण आदि सत्कर्म तथा पुष्प आदि सामग्रियोंसे जो भगवान् विष्णुकी पूजा की जाती है, उसे क्रियायोग कहा गया है। इस प्रकार जो भगवान् विष्णुमें भक्ति रखकर क्रियायोगमें मन लगानेवाले हैं, उनके पूर्वजन्मोंके किये हुए समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। पापोंके नष्ट होनेसे जिसकी बुद्धि शुद्ध हो जाती है, वह उत्तम ज्ञानकी इच्छा रखता है; क्योंकि ज्ञान मोक्ष देनेवाला है—ऐसा जानना चाहिये। अब मैं तुम्हें ज्ञान-प्राप्तिका उपाय बतलाता हूँ।

बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह शास्त्रार्थविशारद साधु-पुरुषोंके सहयोगसे इस चराचर विश्वमें स्थित नित्य और अनित्य वस्तुका भलीभाँति विचार करे । संसारके सभी पदार्थ अनित्य हैं। केवल भगवान् श्रीहरि नित्य माने गये हैं। अतः अनित्य वस्तुओंका परित्याग करके नित्य श्रीहरिका ही आश्रय लेना चाहिये। इहलोक और परलोकके जितने भोग हैं, उनकी ओरसे विरक्त होना चाहिये। जो भोगोंसे विरक्त नहीं होता, वह संसारमें फँस जाता है। जो मानव जगत्के अनित्य पदार्थोंमें आसक्त होता है, उसके संसार-बन्धनका नाश कभी नहीं होता। अतः शम, दम आदि गुणोंसे सम्पन्न हो मुक्तिकी इच्छा रखकर ज्ञान-प्राप्तिके लिये साधन करे। जो शम (दम, तितिक्षा, उपरति, श्रद्धा और समाधान) आदि गुणोंसे शून्य है, उसे ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती। जो राग-द्वेषसे

* अहिंसा सत्यमक्रोधो ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ ।
अनीर्ष्या च दया चैव योगयोरुभयोः समाः ॥
(ना० पूर्व० ३३ । ३७)

रहित, शमादि गुणोंसे सम्पन्न तथा प्रतिदिन भगवान् विष्णुके ध्यानमें तत्पर है, उसीको 'मुमुक्षु' कहते हैं। इन चार (नित्यानित्यावस्तुविचार, वैराग्य, षट् सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व—) साधनोंसे मनुष्य विशुद्धबुद्धि कहा जाता है। ऐसा पुरुष सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति दयाभाव रखते हुए सदा सर्व-

व्यापी भगवान् विष्णुका ध्यान करे। ब्रह्मन्! क्षर-अक्षर (जड-चेतन) स्वरूप सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त करके भगवान् नारायण विराजमान हैं। ऐसा जो जानता है, उसका ज्ञान योगज माना गया है। अतः मै योगका उपाय बतलाता हूँ। जो संसार-बन्धनको दूर करनेवाला है।

पर और अपर-भेदसे आत्मा दो प्रकारका कहा गया है। अथर्ववेदकी श्रुति भी कहती है कि दो ब्रह्म जाननेयोग्य हैं। पर आत्मा अथवा परब्रह्मको निर्गुण बताया गया है तथा अपर आत्मा या अपरब्रह्म अहंकार-युक्त (जीवात्मा) कहा गया है। इन दोनोंके अभेदका ज्ञान 'ज्ञानयोग' कहलाता है। इस पाञ्चभौतिक शरीरके भीतर हृदयदेशमें जो साक्षीरूपमें स्थित है, उसे साधु पुरुषोंने अपरात्मा कहा है तथा परमात्मा पर (श्रेष्ठ) माने गये हैं। शरीरको क्षेत्र कहते हैं। जो क्षेत्रमें स्थित आत्मा है, वह क्षेत्रज्ञ कहलाता है। परमात्मा अव्यक्त, शुद्ध एवं सर्वत्र परिपूर्ण कहा गया है। मुनिश्रेष्ठ! जब जीवात्मा और परमात्माके अभेदका ज्ञान हो जाता है, तब अपरात्माके बन्धनका नाश होता है। परमात्मा एक, शुद्ध, अविनाशी, नित्य एवं जगन्मय हैं। वे मनुष्योंके बुद्धिभेदसे भेदवान्-से दिखायी देते हैं। ब्रह्मन्! उपनिषदोंद्वारा वर्णित जो एक अद्वितीय सनातन परब्रह्म परमात्मा हैं, उनसे भिन्न कोई वस्तु नहीं है*। उन निर्गुण परमात्माका न कोई रूप है, न रंग है, न कर्तव्य कर्म है और न कर्तृत्व या भोक्तृत्व ही है। वे सब कारणोंके भी आदिकारण हैं, सम्पूर्ण तेजोके प्रकाशक परम तेज हैं। उनसे भिन्न दूसरी कोई वस्तु नहीं है। मुक्तिके लिये उन्हीं परमात्माका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। ब्रह्मन्! शब्दब्रह्ममय जो महावाक्य आदि हैं अर्थात् वेदवर्णित जो 'तत्त्वमसि' 'सोऽहमस्मि' इत्यादि महावाक्य हैं, उनपर विचार करनेसे जीवात्मा और परमात्माका अभेद ज्ञान प्रकाशित होता है, वह मुक्तिका सर्वश्रेष्ठ साधन है। नारदजी! जो उत्तम ज्ञानसे हीन हैं, उन्हें यह जगत् नाना भेदोंसे युक्त दिखायी देता है, परंतु परम ज्ञानियोंकी दृष्टिमें यह सब पर-ब्रह्मरूप है। परमानन्दस्वरूप, परात्पर, अविनाशी एवं निर्गुण परमात्मा एक ही हैं, किंतु बुद्धिभेदसे वे भिन्न-भिन्न अनेक रूप धारण करनेवाले प्रतीत होते हैं। द्विजश्रेष्ठ! जिनके ऊपर मायाका पर्दा पड़ा है, वे मायाके कारण परमात्मामें भेद देखते हैं, अतः मुक्तिकी इच्छा रखनेवाला पुरुष योगके बलसे मायाको निस्सार समझकर त्याग दे। माया न सद्रूप है, न असद्रूप, न सद्-असद् उभयरूप है, अतः उसे अनिर्वाच्य (किसी रूपमे भी न कहने योग्य) समझना चाहिये। वह केवल भेदबुद्धि प्रदान करनेवाली है। मुनिश्रेष्ठ! अज्ञान शब्दसे मायाका ही बोध होता है, अतः जो मायाको जीत लेते हैं, उनके अज्ञानका नाश हो जाता है†। ज्ञान शब्दसे सनातन परब्रह्म-

---

* यदा त्वभेदविज्ञानं जीवात्मपरमात्मनोः।
भवेत्तदा मुनिश्रेष्ठ पाशच्छेदोऽपरात्मन.॥
एक शुद्धोऽक्षरो नित्य. परमात्मा जगन्मय.।
नृणा विज्ञानभेदेन भेदवानिव लक्ष्यते॥
एकमेवाद्वितीय यत्पर ब्रह्म सनातनम्।
गीयमानं च वेदान्तैस्तस्मान्नास्ति परं द्विज॥
(ना० पूर्व० ३३।६०—६२)

† एक एव परानन्दो निर्गुणः परतः पर.।
भाति विज्ञानभेदेन बहुरूपधरोऽव्यय.॥
मायिनो मायया भेद पश्यन्ति परमात्मनि।
तस्मान्माया त्यजेद्योगान्मुमुक्षुर्द्विजसत्तम॥

का ही प्रतिपादन किया जाता है, क्योंकि ज्ञानियोंके हृदयमें निरन्तर परमात्मा प्रकाशित होते रहते हैं। मुनिश्रेष्ठ! योगी पुरुष योगके द्वारा अज्ञानका नाश करे। योग आठ अङ्गोंसे सिद्ध होता है; अतः मैं उन आठों अङ्गोंका यथार्थरूपसे वर्णन करता हूँ।

मुनिवर नारद! यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—ये योगके आठ अङ्ग हैं*। मुनीश्वर! अब क्रमशः संक्षेपसे इनके लक्षण बतलाता हूँ। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अक्रोध और अनसूया—ये संक्षेपसे यम बताये गये हैं। सम्पूर्ण प्राणियोंमेंसे किसीको (कभी किंचिन्मात्र) भी जो कष्ट न पहुँचानेका भाव है, उसे सत्पुरुषोंने 'अहिंसा' कहा है। 'अहिंसा' योगमार्गमें सिद्धि प्रदान करनेवाली है। मुनिश्रेष्ठ! धर्म और अधर्मका विचार रखते हुए जो यथार्थ बात कही जाती है, उसे श्रेष्ठ पुरुष 'सत्य' कहते हैं। चोरीसे या बलपूर्वक जो दूसरेके धनको हड़प लेना है, वह साधु-पुरुषोंद्वारा 'स्तेय' कहा गया है। इसके विपरीत किसीकी वस्तुको न लेना 'अस्तेय' है। सब प्रकारसे मैथुनका त्याग 'ब्रह्मचर्य' कहा गया है। मुनीश्वर! आपत्तिकालमें भी द्रव्योंका संग्रह न करना 'अपरिग्रह' कहा गया है। वह योगमार्गमें उत्तम सिद्धि प्रदान करनेवाला है। जो अपना उत्कर्ष जताते हुए किसीके प्रति अत्यन्त कठोर वचन बोलता है, उसके उस क्रूरतापूर्ण भावको धर्मज्ञ पुरुष 'क्रोध' कहते हैं, इसके विपरीत शान्तभावका नाम 'अक्रोध' है। धन आदिके द्वारा किसीको बढ़ते देखकर डाहके कारण जो मनमें संताप होता है, उसे साधु पुरुषोंने 'असूया' (ईर्ष्या) कहा है; इस असूयाका त्याग ही 'अनसूया' है। देवर्षे! इस प्रकार संक्षेपसे 'यम' बताये गये हैं। नारदजी! अब मैं तुम्हें 'नियम' बतला रहा हूँ, सुनो। तप, स्वाध्याय, संतोष, शौच, भगवान् विष्णुकी आराधना तथा सन्ध्योपासन आदि नियम कहे गये हैं। जिसमें चान्द्रायण आदि व्रतोंके द्वारा शरीरको कृश किया जाता है, उसे साधु पुरुषोंने 'तप' कहा है। वह योगका उत्तम साधन है। ब्रह्मन्! ॐकार, उपनिषद्, द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय), अष्टाक्षर मन्त्र (ॐ नमो नारायणाय) तथा तत्त्वमसि आदि महावाक्योंके समुदायका जो जप, अध्ययन एवं विचार है, उसे 'स्वाध्याय' कहा गया है। वह भी योगका उत्तम साधन है। जो मूढ़ उपर्युक्त स्वाध्याय छोड़ देता है, उसका योग सिद्ध नहीं होता। किंतु योगके बिना भी केवल स्वाध्यायमात्रसे मनुष्योंके पापका नाश हो जाता है। स्वाध्यायसे संतुष्ट किये हुए इष्टदेवता प्रसन्न होते हैं। विप्रवर! जप तीन प्रकारका कहा गया है—वाचिक, उपांशु और मानस। इन तीन भेदोंमें भी पूर्व-पूर्वकी अपेक्षा उत्तर-उत्तर श्रेष्ठ है। विधिपूर्वक अक्षर और पदको स्पष्ट बोलते हुए जो मन्त्रका उच्चारण किया जाता है, उसे 'वाचिक' जप बताया गया है। वह सम्पूर्ण यज्ञोंका फल देनेवाला है। कुछ मन्द स्वरमें मन्त्रका उच्चारण करते समय एक पदसे दूसरे पदका विभाग करते जाना 'उपांशु' जप कहा गया है। वह पहलेकी अपेक्षा दूना महत्त्व रखता है। मन-ही-मन अक्षरोंकी श्रेणीका चिन्तन करते हुए जो उसके अर्थपर विचार किया जाता है, वह 'मानस' जप कहा गया है। मानस जप योगसिद्धि देनेवाला है*। जपमें स्तुति करनेवाले पुरुषपर इष्टदेव नित्य प्रसन्न रहते हैं, इसलिये स्वाध्यायपरायण मनुष्य सम्पूर्ण मनोरथोंको पा लेता है। प्रारब्धके अनुसार जो कुछ मिल जाय, उसीमें प्रसन्न रहना 'संतोष' कहलाता है। संतोषहीन पुरुष कहीं सुख नहीं पाता। भोगोंकी कामना भोग्य वस्तुओंको भोग करनेसे शान्त नहीं होती, अपितु इससे भी अधिक भोग मुझे कब मिलेगा—इस प्रकार कामना बढ़ती रहती है। अतः कामनाका त्याग करके दैवात् जो कुछ मिले, उसीसे संतुष्ट रहकर मनुष्यको धर्मके पालनमें लगे रहना चाहिये। बाह्यशौच और आभ्यन्तर शौचके भेदसे 'शौच' दो प्रकारका माना गया है। मिट्टी और जलसे जो शरीरको शुद्ध किया जाता है, वह बाह्यशौच है और अन्तःकरणके भावकी जो शुद्धि है उसे आभ्यन्तरशौच कहा गया है। मुनिश्रेष्ठ! आन्तरिक शुद्धिसे

नासद्रूपा न सद्रूपा माया नैवोभयात्मिका।
अनिर्वाच्या ततो ज्ञेया भेदबुद्धिप्रदायिनी॥
मायैवाज्ञानशब्देन बुद्ध्यते मुनिसत्तम।
तस्मादज्ञानविच्छेदो भवेद्वै जितमायिनाम्॥
(ना० पूर्व० ३३। ६७-७०)

* यमाश्च नियमाश्चैव आसनानि च सत्तम।
प्राणायामः प्रत्याहारो धारणा ध्यानमेव च॥
समाधिश्च मुनिश्रेष्ठ योगाङ्गानि यथाक्रमम्।
(ना० पूर्व० ३३। ७३-७४)

* धिया यदक्षरश्रेण्या तत्तदर्थविचारणम्।
स जपो मानसः प्रोक्तो योगसिद्धिप्रदायकः॥
(ना० पूर्व० ३३। ९५)

हीन पुरुषोंद्वारा जो नाना प्रकारके यज्ञ किये जाते हैं, वे राखमें डाली हुई आहुतिके समान निष्फल होते हैं। अतः राग आदि सब दोषोंका त्याग करके सुखी होना चाहिये। हजारों भार मिट्टी और करोड़ों घड़े जलसे शरीरकी शुद्धि कर लेनेपर भी जिसका अन्तःकरण दूषित है, वह चाण्डालके ही समान अपवित्र माना गया है। जो आन्तरिक शुद्धिसे रहित होकर केवल बाहरसे शरीरको शुद्ध करता है, वह ऊपरसे सजाये हुए मदिरापात्रकी भाँति अपवित्र ही है, उसे शान्ति नहीं मिलती। जो मानसिक शुद्धिसे हीन होकर तीर्थयात्रा करते हैं, उन्हें वे तीर्थ उसी तरह पवित्र नहीं करते जैसे मदिरासे भरे हुए पात्रको नदियाँ। मुनिश्रेष्ठ! जो वाणीसे धर्मोंका उपदेश करता और मनसे पापकी इच्छा रखता है, उसे महापातकियोंका सिरमौर समझना चाहिये। जिनका अन्तःकरण शुद्ध है, वे यदि परम उत्तम धर्ममार्गका आचरण करते हैं तो उसका फल अक्षय एवं सुखदायक जानना चाहिये। मन, वाणी और क्रियाद्वारा स्तुति, कथा-श्रवण तथा पूजा करनेसे भगवान् विष्णुमें जिसकी दृढ़ भक्ति हो गयी है, उसकी वह भक्ति भी भगवान् विष्णुकी 'आराधना' कही गयी है। (तथा संध्योपासना तो प्रसिद्ध ही है)। नारदजी! इस प्रकार मैंने यम और नियमोंको संक्षेपसे समझाया। इनके द्वारा जिनका चित्त शुद्ध हो गया है, उनके मोक्ष हस्तगत ही है—ऐसा माना जाता है। यम और नियमोंद्वारा बुद्धिको स्थिर करके जितेन्द्रिय पुरुष योग-साधनाके अनुकूल उत्तम आसनका विधिपूर्वक अभ्यास करे।

पद्मासन, स्वस्तिकासन, पीठासन, सिंहासन, कुक्कुटासन, कुञ्जरासन, कूर्मासन, वज्रासन, वाराहासन, मृगासन, चैलिकासन, क्रौञ्चासन, नालिकासन, सर्वतोभद्रासन, वृषभासन, नागासन, मत्स्यासन, व्याघ्रासन, अर्धचन्द्रासन, दण्डवातासन, शैलासन, खड्गासन, मुद्गरासन, मकरासन, त्रिपथासन, काष्ठासन, स्थाणुआसन, वैकर्णिकासन, भौमासन और वीरासन—ये सब योगसाधनके हेतु हैं। मुनीश्वरोंने ये तीस आसन बताये हैं। साधक पुरुष शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वोंसे पृथक् हो ईर्ष्या-द्वेष छोड़कर गुरुदेवके चरणोंमें भक्ति रखते हुए उपर्युक्त आसनोंमेंसे किसी एकको सिद्ध करके प्राणोंको जीतनेका अभ्यास करे। जहाँ मनुष्योंकी भीड न हो और किसी प्रकारका कोलाहल न होता हो, ऐसे एकान्त स्थानमें पूर्व, उत्तर अथवा पश्चिमकी ओर मुँह करके अभ्यासपूर्वक प्राणोंको जीते—प्राणायामका अभ्यास करे। शरीरके भीतर स्थित वायुका नाम प्राण है। उसके विग्रह (वशमें करनेकी चेष्टा) को आयाम कहते हैं। यही 'प्राणायाम' कहा गया है। उसके दो भेद बताये गये हैं—एक अगर्भ प्राणायाम और दूसरा सगर्भ प्राणायाम, इनमें दूसरा श्रेष्ठ है। जप और ध्यानके बिना जो प्राणायाम किया जाता है, वह अगर्भ है और जप तथा ध्यानके सहित किये जानेवाले प्राणायामको सगर्भ कहते हैं। मनीषी पुरुषोंने इस दो भेदोंवाले प्राणायामको रेचक, पूरक, कुम्भक और शून्यकके भेदसे चार प्रकारका बताया है। जीवोंकी दाहिनी नाड़ीका नाम पिङ्गला है। उसके देवता सूर्य हैं। उसे पितृयोनि भी कहते हैं। इसी प्रकार बायीं नाड़ीका नाम इडा है, जिसे देवयोनि भी कहते हैं। मुनिश्रेष्ठ! चन्द्रमाको उसका अधिदेवता समझो। इन दोनोंके मध्यभागमें सुषुम्ना नाड़ी है। यह अत्यन्त सूक्ष्म और परम गुह्य है। ब्रह्माजीको इसका अधिदेवता जानना चाहिये। नासिकाके बायें छिद्रसे वायुको बाहर निकाले। रेचन करने (निकालने) के कारण इसका नाम 'रेचक' है, फिर नासिकाके दाहिने छिद्रसे वायुको अपने भीतर भरे। वायुको पूर्ण करने (भरने) के कारण इसे 'पूरक' कहा गया है। अपने देहमें भरी हुई वायुको रोके रहे, छोड़े नहीं और भरे हुए कुम्भ (घड़े) की भाँति स्थिरभावसे बैठा रहे। कुम्भकी भाँति स्थित होनेके कारण इस प्राणायामका नाम 'कुम्भक' है। बाहरकी वायुको न तो भीतरकी ओर ग्रहण करे और न भीतरकी वायुको बाहर निकाले। जैसे हो, वैसे ही स्थित रहे। इस तरहके प्राणायामको 'शून्यक' समझो। जैसे मतवाले गजराजको धीरे-धीरे वशमें किया जाता है, उसी प्रकार प्राणको धीरे-धीरे जीतना चाहिये। अन्यथा बड़े-बड़े भयङ्कर रोग हो जाते हैं। जो योगी क्रमशः वायुको जीतनेका अभ्यास करता है, वह निष्पाप हो जाता है और सब पापोंसे मुक्त होनेपर वह ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है।

मुनीश्वर! जो विषयोंमें फँसी हुई इन्द्रियोंको विषयोंसे सर्वथा समेटकर अपने भीतर रोके रहता है, उसके इस प्रयत्नका नाम 'प्रत्याहार' है। ब्रह्मन्! जिन्होंने प्रत्याहारद्वारा अपनी इन्द्रियोंको जीत लिया है, वे महात्मा पुरुष ध्यान न करनेपर भी पुनरावृत्तिरहित परब्रह्म पदको प्राप्त कर लेते हैं। जो इन्द्रियसमुदायको वशमें किये बिना ही ध्यानमें तत्पर होता है, उसे मूर्ख समझो; क्योंकि उसका ध्यान सिद्ध नहीं होता। मनुष्य जिस-जिस वस्तुको देखता है, उसे अपने आत्मामें आत्मस्वरूप समझे। और प्रत्याहारद्वारा वशमें की हुई इन्द्रियोंको अपने आत्मामें ही अन्तर्मुख करके धारण करे। इस प्रकार इन्द्रियोंको जो आत्मामें धारण करना है, उसीको 'धारणा' कहते हैं। योग

(प्रत्याहार) से इन्द्रियोंके समुदायको जीतकर धारणाद्वारा उन इन्द्रियोंको दृढतापूर्वक हृदयमें धारण कर लेनेके पश्चात् साधक उन परमात्माका ध्यान करे, जो सबका धारण-पोषण करनेवाले हैं और जो कभी अपनी महिमासे च्युत नहीं होते। सम्पूर्ण विश्व उन्हींका स्वरूप है। वे सर्वत्र व्यापक होनेसे विष्णु कहलाते हैं। समस्त लोकोंके एकमात्र कारण वे ही हैं। उनके नेत्र विकसित कमलदलके समान सुशोभित हैं। मनोहर कुण्डल उनके कानोंकी शोभा बढाते हैं। उनकी भुजाएँ विशाल हैं। अङ्ग-अङ्गसे उदारता सूचित होती है। सब प्रकारके आभूषण उनके सुन्दर विग्रहकी शोभा बढ़ाते हैं। उन्होंने पीताम्बर धारण कर रक्खा है। वे दिव्यशक्तिसे सम्पन्न हैं। उन्होंने स्वर्णमय यज्ञोपवीत धारण किया है। गलेमें तुलसीकी माला पहन रक्खी है। कौस्तुभमणिसे उनकी शोभा और बढ़ गयी है। वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न सुशोभित है। देवता और असुर सभी भगवान्‌के चरणोंमें मस्तक नवा रहे हैं। बारह अगुल विस्तृत तथा आठ दलोंसे विभूषित अपने हृदयकमलके आसनपर विराजमान सर्वव्यापी अव्यक्तस्वरूप परात्पर परमात्माका उपर्युक्तरूपसे ध्यान करना चाहिये। ध्येय वस्तुमें चित्तकी वृत्तिका एकाकार हो जाना ही साधु पुरुषोंद्वारा 'ध्यान' कहा गया है। दो घड़ी ध्यान करके भी मनुष्य परम मोक्षको प्राप्त कर लेता है। ध्यानसे पाप नष्ट होते हैं। ध्यानसे मोक्ष मिलता है। ध्यानसे भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं तथा ध्यानसे सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि हो जाती है*। भगवान् महाविष्णुके जो-जो स्वरूप हैं, उनमेंसे किसीका भी एकाग्रतापूर्वक ध्यान करे। उस ध्यानसे संतुष्ट होकर भगवान् विष्णु निश्चय ही मोक्ष देते हैं। साधुशिरोमणे! ध्येय वस्तुमें मनको इस प्रकार स्थिर कर देना चाहिये कि ध्याता, ध्यान और ध्येयकी त्रिपुटीका तनिक भी भान न रह जाय। तब ज्ञानरूपी अमृतके सेवनसे अमृतत्व (परमात्मा) को प्राप्त होता है।

निरन्तर ध्यान करनेसे ध्येय वस्तुके साथ अपना अभेद भाव स्पष्ट अनुभव हो जाता है। जिसकी सब इन्द्रियाँ विषयोंसे निवृत्त हो जाती हैं, और वह परमानन्दसे पूर्ण हो वायुशून्य स्थानमें जलते हुए दीपककी भाँति अविचलभावसे ध्यानमें स्थित हो जाता है, तो उसकी इस ध्येयाकार स्थितिको 'समाधि' कहते हैं। नारदजी! योगी पुरुष समाधि-अवस्थामें न देखता है, न सुनता है, न सूँघता है, न स्पर्श करता है और न वह कुछ बोलता ही है। उस अवस्थामें योगियोंको सम्पूर्ण उपाधियोंसे मुक्त, शुद्ध, निर्मल, सच्चिदानन्दस्वरूप तथा अविचल आत्माका साक्षात्कार होता है। विद्वान् नारदजी! यह आत्मा परम ज्योतिर्मय तथा अमेय है। जो मायाके अधीन हैं, उन्हींको वह मायायुक्त-सा प्रतीत होता है। उस मायाका निवारण होनेपर वह निर्मल ब्रह्मरूपमें प्रकाशित होता है। वह ब्रह्म एक, अद्वितीय, परमज्योतिस्वरूप, निरञ्जन तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तर्यामी आत्मारूपमें स्थित है। परमात्मा सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म और महान्‌से भी अनन्त महान् है। वह सनातन परमेश्वर समस्त विश्वका कारण है। ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ पुरुष परम पवित्र परात्पर ब्रह्मरूपमें उनका दर्शन करते हैं। अकारसे लेकर हकारतकके भिन्न-भिन्न वर्णोंके रूपमें स्थित अनादि पुराणपुरुष परमात्माको ही शब्दब्रह्म कहा गया है और जो विशुद्ध, अक्षर, नित्य, पूर्ण, हृदयाकाशके मध्य विराजमान अथवा आकाशमें व्याप्त, आनन्दमय, निर्मल एवं शान्त तत्त्व है, उसीको 'परब्रह्म परमात्मा' कहते हैं, योगीलोग अपने हृदयमें जिन अजन्मा, शुद्ध, विकाररहित, सनातन परमात्माका दर्शन करते हैं, उन्हींका नाम परब्रह्म है।

मुनिश्रेष्ठ! अब दूसरा ध्यान बतलाता हूँ, सुनो। परमात्माका यह ध्यान संसार-तापसे सतत मनुष्योंको अमृतकी वर्षाके समान शान्ति प्रदान करनेवाला है। परमानन्दस्वरूप भगवान् नारायण प्रणवमें स्थित हैं—ऐसा चिन्तन करे। उनकी कहीं उपमा नहीं है। वे प्रणवकी अर्धमात्राके ऊपर विराजमान नादस्वरूप हैं। अकार ब्रह्माजीका रूप है, उकार भगवान् विष्णुका स्वरूप है, मकार रुद्ररूप है तथा अर्धमात्रा निर्गुण

परब्रह्म परमात्मस्वरूप है। अकार, उकार और मकार—ये प्रणवकी तीन मात्राएँ कही गयी हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव—ये तीन क्रमशः उनके देवता हैं। इन सबका समन्वयरूप जो

* ध्यानात्पापानि नश्यन्ति ध्यानान्मोक्षं च विन्दति।
ध्यानात्प्रसीदति हरिर्ध्यानात्सर्वार्थसाधनम्॥
(ना० पूर्व० ३३। ७३)

ॐकार है, वह परब्रह्म परमात्माका बोध करानेवाला है । परब्रह्म परमात्मा वाच्य हैं और प्रणव उनका वाचक माना गया है । नारदजी ! इन दोनोंमें वाच्य-वाचक-सम्बन्ध उपचारसे ही कहा गया है । जो प्रतिदिन प्रणवका जप करते हैं, वे सम्पूर्ण पातकोंसे मुक्त हो जाते हैं तथा जो निरन्तर उसीके अभ्यासमें लगे रहते हैं, वे परम मोक्ष पाते हैं । जो ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप प्रणव-मन्त्रका जप करता है, उसे अपने अन्तःकरणमें कोटि-कोटि सूर्योंके समान निर्मल तेजका ध्यान करना चाहिये अथवा प्रणव-जपके समय शालग्रामशिला या किसी भगवत्प्रतिमाके स्वरूपका ध्यान करना चाहिये । अथवा जो-जो पापनाशक तीर्थादिक वस्तु हैं, उसी-उसीका अपने हृदयमें चिन्तन करना चाहिये । मुनीश्वर ! यह वैष्णवज्ञान तुम्हे बताया गया है । इसे जानकर योगीश्वर पुरुष उत्तम मोक्ष पा लेता है । जो एकाग्रचित्त होकर इस प्रसङ्गको पढता अथवा सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुका सालोक्य प्राप्त कर लेता है ।

भवबन्धनसे मुक्तिके लिये भगवान् विष्णुके भजनका उपदेश

नारदजीने कहा—हे सर्वज्ञ महामुने ! सबके स्वामी देवदेव भगवान् जनार्दन जिस प्रकार संतुष्ट होते हैं, वह उपाय मुझे बताइये ।

श्रीसनकजी बोले—नारदजी ! यदि मुक्ति चाहते हो तो सच्चिदानन्दस्वरूप परमदेव भगवान् नारायणका सम्पूर्ण चित्तसे भजन करो । भगवान् विष्णुकी शरण लेनेवाले मनुष्यको शत्रु मार नहीं सकते, ग्रह पीड़ा नहीं दे सकते तथा राक्षस उसकी ओर ऑख उठाकर नहीं देख सकते । भगवान् जनार्दनमें जिसकी दृढ़ भक्ति है, उसके सम्पूर्ण श्रेय सिद्ध हो जाते हैं । अतः भक्त पुरुष सबसे बढ़कर है । मनुष्योंके उन्हीं पैरोंको सफल जानना चाहिये, जो भगवान् विष्णुके मन्दिरमें दर्शनके लिये जाते हैं । उन्हीं हाथोंको

सफल समझना चाहिये, जो भगवान् विष्णुकी पूजामें तत्पर होते हैं । पुरुषोंके उन्हीं नेत्रोंको पूर्णतः सफल जानना चाहिये, जो भगवान् जनार्दनका दर्शन करते हैं । साधु-पुरुषोने उसी जिह्वाको सफल बताया है, जो निरन्तर हरिनामके जप और कीर्तनमें लगी रहती है । मैं सत्य कहता हूँ, हितकी बात कहता हूँ और बार-बार सम्पूर्ण शास्त्रोंका सार बतलाता हूँ—इस असार संसारमें केवल श्रीहरिकी आराधना ही सत्य है । यह संसारबन्धन अत्यन्त दृढ़ है और महान् मोहमें डालनेवाला है । भगवद्भक्तिरूपी कुठारसे इसको काटकर अत्यन्त सुखी हो जाओ । वही मन सार्थक है, जो भगवान् विष्णुके चिन्तनमें लगता है, तथा वे ही दोनों कान समस्त जगत्के लिये वन्दनीय हैं, जो भगवत्-कथाकी सुधाधारासे परिपूर्ण रहते हैं । नारदजी ! जो आनन्दस्वरूप, अक्षर एवं जाग्रत् आदि तीनो अवस्थाओंसे रहित तथा हृदयमें विराजमान हैं, उन्हीं भगवान्का तुम निरन्तर भजन करो । मुनिश्रेष्ठ ! जिनका अन्तःकरण शुद्ध नहीं है—ऐसे लोग भगवान्के स्थान या स्वरूपका न तो वर्णन कर सकते हैं और न दर्शन ही । विप्रवर ! यह स्थावर-जंगमरूप जगत् केवल भावनामय है और बिजलीके समान चञ्चल है । अतः इसकी ओरसे विरक्त होकर भगवान् जनार्दनका भजन करो ।

जिनमे अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह विद्यमान हैं, उन्हींपर जगदीश्वर श्रीहरि संतुष्ट होते हैं । जो सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति दयाभाव रखता है और ब्राह्मणोंके आदर-सत्कारमें तत्पर रहता है, उसपर जगदीश्वर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं । जो भगवान् और उनके भक्तोंकी कथामे प्रेम रखता है, स्वयं भगवान्की कथा कहता है, साधु-महात्माओंका संग करता है और मनमें अहङ्कार नहीं लाता, उसपर भगवान्

विष्णु प्रसन्न रहते हैं। जो भूख-प्यास और लड़खड़ाकर गिरने आदिके अवसरोंपर भी सदा भगवान् विष्णुके नामका उच्चारण करता है, उसपर भगवान् अधोक्षज (विष्णु) प्रसन्न होते हैं। मुने! जो स्त्री पतिको प्राणके समान समझकर उनके आदर-सत्कारमें सदा लगी रहती है, उसपर प्रसन्न हो जगदीश्वर श्रीहरि उसे अपना परम धाम दे देते हैं। जो ईर्ष्या तथा दोषदृष्टिसे रहित होकर अहङ्कारसे दूर रहते हैं और सदा देवाराधन किया करते हैं, उनपर भगवान् केशव प्रसन्न होते हैं। अतः देवर्षे! सुनो, तुम सदा श्रीहरिका भजन करो। शरीर मृत्युसे जुड़ा हुआ है। जीवन अत्यन्त चञ्चल है। धनपर राजा आदिके द्वारा बराबर बाधा आती रहती है और सम्पत्तियाँ क्षणभरमे नष्ट हो जानेवाली हैं। देवर्षे! क्या तुम नहीं देखते कि आधी आयु तो नींदसे ही नष्ट हो जाती है और कुछ आयु भोजन आदिमें समाप्त हो जाती है। आयुका कुछ भाग बचपनमें, कुछ विषय-भोगोंमें और कुछ बुढापेमें व्यर्थ बीत जाता है। फिर तुम धर्मका आचरण कब करोगे? बचपन और बुढ़ापेमे भगवान्‌की आराधना नहीं हो सकती, अतः अहङ्कार छोड़कर युवावस्थामें ही धर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये। मुने! यह शरीर मृत्युका निवासस्थान और आपत्तियोंका सबसे बड़ा अड्डा है। शरीर रोगोंका घर है। यह मल आदिसे सदा दूषित रहता है। फिर मनुष्य इसे सदा रहनेवाला समझकर व्यर्थ पाप क्यों करते हैं। यह संसार असार है। इसमें नाना प्रकारके दुःख भरे हुए हैं। निश्चय ही यह मृत्युसे व्याप्त है, अतः इसपर विश्वास नहीं करना चाहिये। इसलिये विप्रवर! सुनो, मैं यह सत्य कहता हूँ—देह-बन्धनकी निवृत्तिके लिये भगवान् विष्णुकी ही पूजा करनी चाहिये। अभिमान और लोभ त्यागकर काम-क्रोधसे रहित होकर सदा भगवान् विष्णुका भजन करो। क्योंकि मनुष्यजन्म अत्यन्त दुर्लभ है।

सत्तम! (अधिकाश) जीवोंको कोटि सहस्र जन्मोंतक स्थावर आदि योनियोंमें भटकनेके बाद कभी किसी प्रकार मनुष्यशरीर मिलता है। साधु-शिरोमणे! मनुष्यजन्ममें भी देवाराधनकी बुद्धि, दानकी बुद्धि और योगसाधनाकी बुद्धिका प्राप्त होना मनुष्योंके पूर्वजन्मकी तपस्याका फल है। जो दुर्लभ मानव-शरीर पाकर एक बार भी श्रीहरिकी पूजा नहीं करता, उससे बढ़कर मूर्ख, जड़बुद्धि कौन है? दुर्लभ मानव-जन्म पाकर जो भगवान् विष्णुकी पूजा नहीं करते, उन महामूर्ख मनुष्योंमें विवेक कहाँ है? ब्रह्मन्! जगदीश्वर भगवान् विष्णु आराधना करनेपर मनोवाञ्छित फल देते हैं। फिर संसार-रूप अग्निमें जला हुआ कौन मानव उनकी पूजा नहीं करेगा? मुनिश्रेष्ठ! विष्णुभक्त चाण्डाल भी भक्तिहीन द्विजसे बढ़कर है। अतः काम, क्रोध आदिको त्यागकर अविनाशी भगवान् नारायणका भजन करना चाहिये। उनके प्रसन्न होनेपर सब संतुष्ट होते हैं; क्योंकि वे भगवान् श्रीहरि ही सबके भीतर विद्यमान हैं। जैसे सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गम जगत् आकाशसे व्याप्त है, उसी प्रकार इस चराचर विश्वको भगवान् विष्णुने व्याप्त कर रक्खा है। भगवान् विष्णुके भजनसे जन्म और मृत्यु दोनोंका नाश हो जाता है। ध्यान, स्मरण, पूजन अथवा प्रणाममात्र कर लेनेपर भगवान् जनार्दन जीवके संसारबन्धनको काट देते हैं। ब्रह्मर्षे! उनके नामका उच्चारण करनेमात्रसे महापातकोंका नाश हो जाता है और उनकी विधिपूर्वक पूजा करके तो मनुष्य मोक्षका भागी होता है। ब्रह्मन्! यह बड़े आश्चर्यकी बात है, बड़ी अद्भुत बात है और बड़ी विचित्र बात है कि भगवान् विष्णुके नामके रहते हुए भी लोग जन्म-मृत्युरूप संसारमें चक्कर काटते हैं *। जबतक इन्द्रियाँ शिथिल नहीं होतीं और जबतक रोग-व्याधि नहीं सताते, तभीतक भगवान् विष्णुकी आराधना कर लेनी चाहिये। जीव जब माताके गर्भसे निकलता है, तभी मृत्यु उसके साथ हो लेती है। अतः सबको धर्मपालनमें लग जाना चाहिये। अहो! बड़े कष्टकी बात है, बड़े कष्टकी बात है, बड़े कष्टकी बात है कि यह जीव इस शरीरको नाशवान् समझकर भी धर्मका आचरण नहीं करता।

नारदजी! बाँह उठाकर यह सत्य-सत्य और पुनः सत्य बात दुहराई जाती है कि पाखण्डपूर्ण आचरणका त्याग करके मनुष्य भगवान् वासुदेवकी आराधनामें लग जाय। क्रोध मानसिक संतापका कारण है। क्रोध संसारबन्धनमें डालनेवाला है और क्रोध सब धर्मोंका नाश करनेवाला है। अतः क्रोधको छोड़ देना चाहिये। काम इस जन्मका मूल कारण है, काम पाप करानेमे हेतु है और काम यशका नाश करनेवाला है। अतः कामको भी त्याग देना चाहिये। मात्सर्य समस्त दुःखसमुदायका कारण माना गया है, वह नरकोंका भी

* अहो चित्रमहो चित्रमहो चित्रमिदं द्विज।
हरिनाम्नि स्थिते लोकः संसारे परिवर्तते॥
(ना० पूर्व० ३४। ४८)

साधन है, अतः उसे भी त्याग देना चाहिये *। मन ही मनुष्योंके बन्धन और मोक्षका कारण है। अतः मनको परमात्मामें लगाकर सुखी हो जाना चाहिये। अहो! मनुष्यों-का धैर्य कितना अद्भुत, कितना विचित्र तथा कितना आश्चर्य-जनक है कि जगदीश्वर भगवान् विष्णुके होते हुए भी वे मद-से उन्मत्त होकर उनका भजन नहीं करते हैं †। सबका धारण-पोषण करनेवाले जगदीश्वर भगवान् अच्युतकी आराधना किये बिना संसार-सागरमें डूबे हुए मनुष्य कैसे पार जा सकेंगे? अच्युत, अनन्त और गोविन्द—इन नामोंके उच्चारणरूप औषधसे सब रोग नष्ट हो जाते हैं। यह मैं सत्य कहता हूँ, सत्य कहता हूँ ‡। जो लोग नारायण! जगन्नाथ! वासुदेव! जनार्दन! आदि नामोंका नित्य उच्चारण किया करते हैं, वे सर्वत्र वन्दनीय हैं। देवर्षे! दुष्ट चित्तवाले मनुष्योंकी कितनी भारी मूर्खता है कि वे अपने हृदयमें विराजमान भगवान् विष्णुको नहीं जानते हैं। मुनिश्रेष्ठ! नारद! सुनो, मैं बार-बार इस बातको दुहराता हूँ, भगवान् विष्णु श्रद्धालु जनोंपर ही सतुष्ट होते हैं, अधिक धन और भाई-बन्धुवालोंपर नहीं। इहलोक और परलोकमें सुख चाहने-वाला मनुष्य सदा श्रीहरिकी पूजा करे तथा इहलोक और परलोकमें दुःख चाहनेवाला मनुष्य दूसरोंकी निन्दामे तत्पर रहे। जो देवाधिदेव भगवान् जनार्दनकी भक्तिसे रहित हैं, ऐसे मनुष्योंके जन्मको धिक्कार है। जिसे सत्पात्रके लिये दान नहीं दिया जाता, उस धनको बारंबार धिक्कार है। मुनिश्रेष्ठ! जो शरीर भगवान् विष्णुको नमस्कार नहीं करता, उसे पाप-की खान समझना चाहिये। जिसने सुपात्रको दान न देकर जो कुछ द्रव्य जोड़ रक्खा है, वह लोकमें चोरीसे रखे हुए धनकी भाँति निन्दनीय है। संसारी मनुष्य बिजलीके समान चञ्चल धन-सम्पत्तिसे मतवाले हो रहे हैं। वे जीवोंके अज्ञान-मय पाशको दूर करनेवाले जगदीश्वर श्रीहरिकी आराधना नहीं करते हैं।

दैवी और आसुरी सृष्टिके भेदसे सृष्टि दो प्रकारकी बतायी गयी है। जहाँ भगवान्की भक्ति (और सदाचार) है, वह दैवी सृष्टि है और जो भक्ति (और सदाचार) से हीन है, वह आसुरी सृष्टि है। अतः विप्रवर नारद! सुनो, भगवान् विष्णु-के भजनमें लगे हुए मनुष्य सर्वत्र श्रेष्ठ कहे गये हैं, क्योंकि भक्ति अत्यन्त दुर्लभ है। जो ईर्ष्या और द्वेषसे रहित, ब्राह्मणों-की रक्षामे तत्पर तथा काम आदि दोषोंसे दूर हैं, उनपर भगवान् विष्णु संतुष्ट होते हैं।

वेदमालिको जानन्ति मुनिका उपदेश तथा वेदमालिकी मुक्ति

श्रीसनकजी कहते हैं—नारद! जिन्होंने योगके द्वारा काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह और मात्सर्यरूपी छः शत्रुओंको जीत लिया है तथा जो अहङ्कारशून्य और शान्त हैं, ऐसे ज्ञानी महात्मा ज्ञानस्वरूप अविनाशी श्रीहरिका ज्ञानयोगके द्वारा यजन करते हैं। जो व्रत, दान, तपस्या, यज्ञ तथा तीर्थस्नान करके विशुद्ध हो गये हैं, वे कर्मयोगी महापुरुष कर्मयोगके द्वारा भगवान् अच्युतका पूजन करते हैं। जो लोभी, दुर्व्यसनोंमें आसक्त और अज्ञानी हैं, वे जगदीश्वर श्रीहरिकी आराधना नहीं करते। वे मूढ अपनेको अजर-अमर समझते हैं; किंतु वास्तवमें मनुष्योंमें वे कीड़ेके समान जीवन बिताते हैं। जो बिजलीकी लकीरके समान क्षणभरमें चमककर लुप्त हो जानेवाली है, ऐसी लक्ष्मीके मदसे उन्मत्त हो व्यर्थ अहंकारसे दूषित चित्तवाले मनुष्य सब प्रकारसे कल्याण करनेवाले जगदीश्वर भगवान् विष्णुकी पूजा नहीं करते हैं। जो भगवद्धर्मके पालनमें तत्पर, शान्त, श्रीहरिके चरणारविन्दोंकी सेवा करनेवाले तथा सम्पूर्ण जगत्पर अनुग्रह रखनेवाले हैं, ऐसे तो कोई बिरले महात्मा ही दैवयोगसे उत्पन्न हो जाते हैं। जो मन, वाणी और क्रियाद्वारा भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुकी आराधना करता है, वह समस्त लोकोमे परम उत्तम, परम धामको जाता है। इस विषयमें इस प्राचीन इतिहासका

* काममूलमिदं जन्म कामः पापस्य कारणम्। यशःक्षयकरः कामस्तस्मात्तं परिवर्जयेत्॥
सर्वेषामेव दुःखानां मात्सर्यं कारणं स्मृतम्। नरकाणां साधनं च तस्मात्तदपि संत्यजेत्॥
(ना० पूर्व० ३४। ५६-५७)

† अहो धैर्यमहो धैर्यमहो धैर्यमहो नृणाम्। विष्णौ स्थिते जगन्नाथे न भजन्ति मदोद्धताः॥
(ना० पूर्व० ३४। ५९)

‡ अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात्। नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥ (ना० पूर्व० ३४। ६१)

उदाहरण दिया करते हैं जिसे पढने और सुननेवालोंके समस्त पापोंका नाश हो जाता है ।

नारदजी ! प्राचीन कालकी बात है । रैवतमन्वन्तरमें वेदमालि नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण रहते थे, जो वेदों और वेदाङ्गोंके पारदर्शी विद्वान् थे । उनके मनमें सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति दया भरी हुई थी । वे सदा भगवान्‌की पूजामें लगे रहते थे; किंतु आगे चलकर वे स्त्री, पुत्र और मित्रोंके लिये धनोपार्जन करनेमें सलग्न हो गये । जो वस्तु नहीं बेचनी चाहिये, उसको भी वे बेचने लगे । उन्होंने रसका भी विक्रय किया । वे चाण्डाल आदिसे भी बात करते और उनका दिया हुआ दान ग्रहण करते थे । उन्होंने पैसे लेकर तपस्या और व्रतोंका विक्रय किया और तीर्थयात्रा भी वे दूसरोंके लिये ही करते थे । यह सब उन्होंने अपनी स्त्रीको संतुष्ट करनेके लिये ही किया । विप्रवर ! इसी तरह कुछ समय बीत जानेपर ब्राह्मणके दो जुड़वे पुत्र हुए, जिनका नाम था—यज्ञमाली और सुमाली । वे दोनो बड़े सुन्दर थे । तदनन्तर पिता उन दोनों बालकोंका बड़े स्नेह और वात्सल्यसे अनेक प्रकारके साधनोंद्वारा पालन-पोषण करने लगे । वेदमालिने अनेक उपायोंसे यत्नपूर्वक धन एकत्र किया और एक दिन मेरे पास कितना धन है यह जाननेके लिये उसने अपने धनको गिनना प्रारम्भ किया । उसका धन संख्यामें बहुत ही अधिक था । इस प्रकार धनकी स्वयं गणना करके वह हर्षसे फूल उठा । साथ ही उस अर्थकी चिन्तासे उन्हे बडा विस्मय भी हुआ । वे सोचने लगे—मैंने नीच पुरुषोंसे दान लेकर, न बेचने योग्य वस्तुओका विक्रय करके तथा तपस्या आदिको भी बेचकर यह प्रचुर धन पैदा किया है । किंतु मेरी अत्यन्त दुःसह तृष्णा अब भी शान्त नहीं हुई । अहो ! मै तो समझता हूँ, यह तृष्णा बहुत बड़ा कष्ट है, समस्त क्लेशोंका कारण भी यही है । इसके कारण मनुष्य यदि समस्त कामनाओंको प्राप्त कर ले तो भी पुनः दूसरी वस्तुओंकी अभिलाषा करने लगता है । जरावस्था (बुढ़ापे) मे आनेपर मनुष्यके केश पक जाते है, दाँत गल जाते हैं, आँख और कान भी जीर्ण हो जाते हैं; किंतु एक तृष्णा ही तरुण-सी होती जाती है * । मेरी सारी इन्द्रियाँ शिथिल हो रही हैं, बुढापेने मेरे बलको भी नष्ट कर दिया, किंतु तृष्णा तरुणी हो और भी प्रबल हो उठी है । जिसके मनमें कष्टदायिनी तृष्णा मौजूद है, वह विद्वान् होनेपर भी मूर्ख हो जाता है । परम शान्त होनेपर भी अत्यन्त क्रोधी हो जाता है और बुद्धिमान् होनेपर भी अत्यन्त मूढबुद्धि हो जाता है । आशा मनुष्योंके लिये अजेय शत्रुकी भाँति भयंकर है । अतः विद्वान् पुरुष यदि शाश्वत सुख चाहे तो आशाको त्याग दे । बल हो, तेज हो, विद्या हो, यश हो, सम्मान हो, नित्य वृद्धि हो रही हो और उत्तम कुलमें जन्म हुआ हो तो भी यदि मनमें आशा, तृष्णा बनी हुई है तो वह बड़े वेगसे इन सबपर पानी फेर देती है * । मैंने बड़े क्लेशसे यह धन कमाया है । अब मेरा शरीर भी गल गया । बुढापेने मेरे बलको नष्ट कर दिया । अतः अब मै उत्साहपूर्वक परलोक सुधारनेका यत्न करूँगा । विप्रवर ! ऐसा निश्चय करके वेदमालि धर्मके मार्गपर चलने लगे । उन्होंने उसी क्षण उस सारे धनको चार भागोंमें बाँटा । अपने द्वारा पैदा किये उस धनमेंसे दो भाग तो ब्राह्मणने स्वयं रख लिये और शेष दो भाग दोनो पुत्रोंको दे दिये । तदनन्तर अपने किये हुए पापोंका नाश करनेकी इच्छासे उन्होंने जगह जगह पौसले, पोखरे बगीचे और बहुत-से देवमन्दिर बनाये तथा गङ्गाजीके तटपर अन्न आदिका दान भी किया ।

इस प्रकार सम्पूर्ण धनका दान करके भगवान् विष्णुके प्रति भक्तिभावसे युक्त हो वे तपस्याके लिये नर-नारायणके आश्रम बदरीवनमें गये । वहाँ उन्होंने एक अत्यन्त रमणीय आश्रम देखा, जहाँ बहुत-से ऋषि-मुनि रहते थे । फल और फूलोंसे भरे हुए वृक्षसमूह उस आश्रमकी शोभा बढा रहे थे । शास्त्र चिन्तनमें तत्पर भगवत्सेवापरायण तथा परब्रह्म परमेश्वरकी स्तुतिमें सलग्न अनेक वृद्ध महर्षि उस आश्रमकी श्रीवृद्धि कर रहे थे । वेदमालिने वहाँ जाकर जानन्ति नामवाले एक मुनिका दर्शन किया, जो शिष्योंसे घिरे बैठे थे और उन्हें परब्रह्म तत्त्वका उपदेश कर रहे थे । वे मुनि महान् तेजके पुञ्ज से जान पडते थे । उनमें शम, दम आदि सभी गुण विराजमान थे । राग आदि दोषोंका सर्वथा अभाव था । वे सूखे पत्ते खाकर रहा करते थे । वेदमालिने मुनिको देखकर उन्हे प्रणाम किया । मुने ! जानन्तिने कन्द, मूल और फल

* जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः ।
चक्षुःश्रोत्रे च जीर्येते तृष्णैका तरुणायते ॥
(ना० पूर्व० १५ । २१)

* आशा भयंकरी पुंसामजेयारातिसंनिभा ।
तस्मादाशां त्यजेत्प्राज्ञो यदीच्छेच्छाश्वतं सुखम् ॥
बलं तेजो यशश्चैव विद्या मानं च वृद्धताम् ।
तथैव सत्कुले जन्म आशा हन्त्यतिवेगतः ॥
(ना० पूर्व० १५ । २४-२५)

आदि सामग्रियोंद्वारा नारायण-बुद्धिसे अतिथि वेदमालिका पूजन किया। आतिथ्यसत्कार हो जानेपर वेदमालिने हाथ जोड़ विनयसे मस्तक झुकाकर वक्ताओंमें श्रेष्ठ महर्षिसे कहा—भगवन्! मैं कृतकृत्य हो गया। आज मेरे सब पाप दूर हो गये। महाभाग! आप विद्वान् हैं। ज्ञान देकर मेरा उद्धार कीजिये। ऐसा कहनेपर मुनिश्रेष्ठ जानन्ति बोले—

ब्रह्मन्! तुम प्रतिदिन सर्वश्रेष्ठ भगवान् विष्णुका भजन करो। सर्वशक्तिमान् श्रीनारायणका चिन्तन करते रहो। दूसरोंकी निन्दा और चुगली कभी न करो। महामते! सदा परोपकार-में लगे रहो। भगवान् विष्णुकी पूजामें मन लगाओ और मूर्खोंसे मिलना-जुलना छोड़ दो। काम, क्रोध, लोभ, मोह,

मद और मात्सर्य छोड़कर लोकको अपने आत्माके समान देखो—इससे तुम्हें शान्ति मिलेगी। ईर्ष्या, दोषदृष्टि तथा दूसरेकी निन्दा भूलकर भी न करो। पाखण्डपूर्ण आचार, अहङ्कार और क्रूरताका सर्वथा त्याग करो। सब प्राणियोंपर दया तथा साधु पुरुषोंकी सेवा करते रहो। अपने किये हुए धर्मोंको पूछनेपर भी दूसरोंपर प्रकट न करो। दूसरोंको अत्याचार करते देखो, यदि शक्ति हो तो उन्हें रोको, लापरवाही न करो। अपने कुटुम्बका विरोध न करते हुए सदा अतिथियोंका स्वागत-सत्कार करो। पत्र, पुष्प, फल अथवा दूर्वा अथवा पल्लवोंद्वारा निष्कामभावसे जगदीश्वर भगवान् नारायणकी पूजा करो। देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका विधिपूर्वक तर्पण करो। विप्रवर! विधिपूर्वक अग्निकी सेवा भी करते रहो। देवमन्दिरमें प्रतिदिन झाड़ू लगाया करो और एकाग्रचित्त होकर उसकी लिपाई-पुताई भी किया करो। देवमन्दिरकी दीवारमें जहाँ-कहीं कुछ टूट-फूट गया हो, उसकी मरम्मत कराते रहो। मन्दिरमें प्रवेशका जो मार्ग हो उसे पताका और पुष्प आदिसे सुशोभित करो और भगवान् विष्णुके गृहमें दीपक जलाया करो। प्रतिदिन यथाशक्ति पुराणकी कथा सुनो। उसका पाठ करो और वेदान्तका स्वाध्याय करते रहो। ऐसा करनेपर तुम्हें परम उत्तम ज्ञान प्राप्त होगा। ज्ञानसे समस्त पापोका निश्चय ही निवारण एवं मोक्ष हो जाता है।

जानन्ति मुनिके इस प्रकार उपदेश देनेपर परम बुद्धिमान् वेदमालि उसी प्रकार ज्ञानके साधनमें लगे रहे। वे अपने आपमें ही परमात्मा भगवान् अच्युतका दर्शन करके बहुत प्रसन्न हुए। मैं ही उपाधिरहित स्वयंप्रकाश निर्मल ब्रह्म हूँ—ऐसा निश्चय करनेपर उन्हें परम शान्ति प्राप्त हुई।

भगवान् विष्णुके भजनकी महिमा—सत्सङ्ग तथा भगवान्के चरणोदकसे एक व्याधका उद्धार

श्रीसनकजी कहते हैं—विप्रवर! भगवान् लक्ष्मीपति विष्णुके माहात्म्यका वर्णन फिर सुनो। भगवान्की अमृतमयी कथा सुननेके लिये किसके मनमें प्रेम और उत्साह नहीं होता? जो विषयभोगमें अन्धे हो रहे हैं, जिनका चित्त ममतासे व्याकुल है, उन मनुष्योंके सम्पूर्ण पापोंका नाश भगवान्के एक ही नामका स्मरण कर देता है। जो भगवान्-की पूजासे दूर रहते, वेदोंका विरोध करते और गौ तथा ब्राह्मणोंसे द्वेष रखते हैं वे राक्षस कहे गये हैं *। जो भगवान् विष्णुकी आराधनामे लगे रहकर सम्पूर्ण लोकोंपर अनुग्रह रखते तथा धर्मकार्यमें सदा तत्पर रहते है, वे साक्षात् भगवान विष्णुके स्वरूप माने गये हैं। जिनका चित्त भगवान् विष्णुकी

* हरिपूजाविहानाश्च वेदविद्वेषिणस्तथा।
गोद्विजद्वेषनिरता राक्षसाः परिकीर्तिताः॥
(ना० पूर्व० ३७।५)

आराधनामें लगा हुआ है, उनके करोड़ों जन्मोंका पाप क्षणभरमें नष्ट हो जाता है; फिर उनके मनमें पापका विचार कैसे उठ सकता है ? भगवान् विष्णुकी आराधना विषयान्ध मनुष्योंके भी सम्पूर्ण दुःखोंका नाश करनेवाली कही गयी है। वह भोग और मोक्ष देनेवाली है। जो मनुष्य किसीके सङ्गसे, स्नेहसे, भयसे, लोभसे अथवा अज्ञानसे भी भगवान् विष्णुकी उपासना करता है, वह अक्षय सुखका भागी होता है *। जो भगवान् विष्णुके चरणोदकका एक कण भी पी लेता है, वह सब तीर्थोंमें स्नान कर चुका। भगवान्‌को वह अत्यन्त प्रिय होता है। भगवान् विष्णुका चरणोदक अकालमृत्युका निवारण, समस्त रोगोंका नाश और सम्पूर्ण दुःखोंकी शान्ति करनेवाला माना गया है †।

इस विषयमें भी ज्ञानी पुरुष यह प्राचीन इतिहास कहा करते हैं, इसे पढने और सुननेवालोंके सम्पूर्ण पापोंका नाश हो जाता है। प्राचीन सत्ययुगकी बात है, गुलिक नामसे प्रसिद्ध एक व्याध था; वह परायी स्त्री और पराये धनको हड़प लेनेके लिये सदा उद्यत रहता था। वह सदा दूसरोंकी निन्दा किया करता था। जीव-जन्तुओंको भारी सङ्कटमें डालना उसका नित्यका काम था। उसने सैकड़ों गौओं और हजारों ब्राह्मणोंकी हत्या की थी। नारदजी ! व्याधोंका सरदार गुलिक देवसम्पत्तिको हड़पने तथा दूसरोंका धन लूट लेनेके लिये सदा कमर कसे रहता था। उसने बहुत-से बड़े भारी-भारी पाप किये थे। जीव-जन्तुओंके लिये वह यमराजके समान था। एक दिन वह महापापी व्याध सौवीर नरेशके नगरमें गया, जो सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे भरा-पूरा था। उसके उपवनमें भगवान् विष्णुका एक बड़ा सुन्दर मन्दिर था, जो सोनेके कलशोंसे छाया गया था। उसे देखकर व्याधको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने निश्चय किया, यहाँ बहुत-से सुवर्ण-कलश हैं, उन सबको चुराऊँगा। ऐसा विचारकर व्याध चोरीके लिये लोलुप हो उठा और मन्दिरके भीतर गया। वहाँ उसने एक श्रेष्ठ ब्राह्मणको देखा, जो परम शान्त और तत्त्वार्थ-ज्ञानमें निपुण थे। उनका नाम उत्तङ्क था। वे भगवान् विष्णुकी सेवा-पूजा कर रहे थे। उत्तङ्क तपस्याकी निधि थे। वे एकान्तवासी, दयालु, निःस्पृह तथा भगवान्‌के ध्यानमें परायण थे। मुने ! उस व्याधने उन्हें अपनी चोरीमें विघ्न डालनेवाला समझा। वह देवताका सम्पूर्ण धन हड़प लेनेके लिये आया हुआ अत्यन्त साहसी लुटेरा था और मदसे उन्मत्त हो रहा था। उसने हाथमें तलवार उठा ली और उत्तङ्कजीको मार डालनेका उद्योग आरम्भ किया। मुनि-(को भूमिपर गिराकर उन)की छातीको एक पैरसे दबाकर उसने एक हाथसे उनकी जटाएँ पकड़ लीं और उन्हें मार डालनेका विचार किया। इस अवस्थामें उस व्याधको देखकर उत्तङ्कजीने कहा।

उत्तङ्क बोले—अरे ओ साधु पुरुष ! तुम व्यर्थ ही मुझे मार रहे हो। मैं तो निरपराध हूँ। महामते ! बताओ तो सही, मैंने तुम्हारा क्या अपराध किया है। लोकमें शक्तिशाली पुरुष अपराधियोंको दण्ड देते हैं, किंतु सज्जन पुरुष पापियोंको भी अकारण नहीं मारते हैं। जिनके चित्तमें शान्ति विराज रही है, वे साधु पुरुष अपनेसे विरोध रखनेवाले मूर्खोंमें भी जो गुण विद्यमान हैं, उन्हींपर दृष्टि रखकर उनका विरोध नहीं करते हैं। जो मनुष्य अनेक बार सताये जानेपर भी क्षमा करता है, उसे उत्तम कहा गया है। वह भगवान् विष्णुको सदा ही अत्यन्त प्रिय है। जिनकी बुद्धि सदा दूसरोंके हितमें लगी हुई है, वे साधु पुरुष मृत्युकाल आनेपर भी किसीसे वैर नहीं करते। चन्दनका वृक्ष काटे जानेपर भी कुठारकी धारको सुगन्धित ही करता है। मृग तृणसे, मछलियाँ जलसे तथा सज्जन पुरुष संतोषसे जीवन-निर्वाह करते हैं, परंतु संसारमें क्रमशः तीन प्रकारके व्यक्ति इनके साथ भी अकारण वैर रखनेवाले होते हैं—व्याध, धीवर और चुगलखोर *। अहो ! माया बड़ी प्रबल है। वह समस्त जगत्‌को मोहमें डाल देती है। तभी तो लोग पुत्र-मित्र और स्त्रीके लिये सबको दुखी करते रहते हैं। तुमने दूसरोंका धन लूटकर अपनी स्त्रीका पालन-पोषण किया है, परंतु अन्तकालमें मनुष्य सबको छोड़कर अकेला ही परलोककी यात्रा करता है। मेरी माता, मेरे पिता, मेरी पत्नी, मेरे पुत्र और मेरी यह वस्तु—इस प्रकारकी ममता प्राणियोंको व्यर्थ पीड़ा देती रहती है। पुरुष जबतक धन कमाता है, तभीतक भाई-बन्धु उसके

---

* सङ्गात्स्नेहाद् भयाल्लोभादज्ञानाद्वापि यो नरः।
विष्णोरुपासनं कुर्यात्सोऽक्षयं सुखमश्नुते॥
(ना० पूर्व० ३७। १४)

† अकालमृत्युशमनं सर्वव्याधिविनाशनम्।
सर्वदुःखोपशमनं हरिपादोदकं स्मृतम्॥
(ना० पूर्व० ३७। १६)

* मृगमीनसज्जनानां तृणजलसंतोषविहितवृत्तीनाम्।
लुब्धकधीवरपिशुना निष्कारणवैरिणो जगति॥
(ना० पूर्व० ३७। ३८)

सम्बन्ध रखते हैं, परंतु इहलोक और परलोकमें केवल धर्म और अधर्म ही सदा उसके साथ रहते हैं, वहाँ दूसरा कोई साथी नहीं है *। धर्म और अधर्मसे कमाये हुए धनके द्वारा जिसने जिन लोगोंका पालन-पोषण किया है, वे ही मरनेपर उसे आगके मुखमे झोंककर स्वय घी मिलाया हुआ अन्न खाते हैं। पापी मनुष्योंकी कामना रोज बढ़ती है और पुण्यात्मा पुरुषोंकी कामना प्रतिदिन क्षीण होती है। लोग सदा धन आदिके उपार्जनमे व्यर्थ ही व्याकुल रहते हैं। 'जो होनेवाला है, वह होकर ही रहता है और जो नहीं होनेवाला है, वह कभी नहीं होता' जिनकी बुद्धिमें ऐसा निश्चय होता है, उन्हें चिन्ता कभी नहीं सताती †। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् दैवके अधीन है; अतः दैव ही जन्म और मृत्युको जानता है, दूसरा नहीं। अहो! ममतासे व्याकुल चित्तवाले मनुष्योंका दुःख महान् है; क्योंकि वे बड़े-बड़े पाप करके भी दूसरोका यत्नपूर्वक पालन करते हैं। मनुष्यके कमाये हुए सम्पूर्ण धनको सदा सब भाई-बन्धु भोगते हैं, किंतु वह मूर्ख अपने पापोंका फल स्वयं अकेला ही भोगता है ‡।

ऐसा कहते हुए महर्षि उत्तङ्कको गुलिकने छोड़ दिया। फिर वह भयसे व्याकुल हो उठा और हाथ जोडकर बार-बार कहने लगा—'मेरा अपराध क्षमा कीजिये।' सत्सङ्गके प्रभावसे तथा भगवद्विग्रहका सामीप्य मिल जानेसे व्याधका सारा पाप नष्ट हो गया। उसे अपनी करनीपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ और वह इस प्रकार बोला—'विप्रवर! मैने बहुत बड़े-बड़े पाप किये हैं। वे सब आपके दर्शनसे नष्ट हो गये। अहो! मेरी बुद्धि सदा पापमें ही लगी रही और मैं शरीरसे भी सदा महान् पापोंका ही आचरण करता रहा। अब मेरा उद्धार कैसे होगा? भगवन्! मैं किसकी शरणमें जाऊँ? पूर्वजन्ममे किये हुए पापोंके कारण मेरा व्याधके कुलमें जन्म हुआ।

अब इस जीवनमे भी ढेर-के-ढेर पाप करके मैं किस गतिको प्राप्त होऊँगा? अहो! मेरी आयु शीघ्रतापूर्वक नष्ट हो रही है। मैंने पापोंके निवारणके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं किया, अतः उन पापोका फल मैं कितने जन्मोंतक भोगूँगा?'—

इस प्रकार स्वयं ही अपनी निन्दा करते हुए उस व्याधने आन्तरिक संतापकी अग्निसे झुलसकर तुरंत प्राण त्याग दिये। व्याधको गिरा हुआ देख महर्षि उत्तङ्कको बडी दया आयी और उन महाबुद्धिमान् मुनिने भगवान् विष्णुके चरणोदकसे उसके शरीरको सींच दिया। भगवान्‌के चरणोदकका स्पर्श पाकर उसके पाप नष्ट हो गये और वह व्याध दिव्य शरीरसे दिव्य विमानपर बैठकर मुनिसे इस प्रकार बोला।

गुलिकने कहा—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुनिश्रेष्ठ उत्तङ्कजी! आप मेरे गुरु हैं। आपके ही प्रसादसे मुझे इन महापातकोंसे छुटकारा मिला है। मुनीश्वर! आपके उपदेशसे मेरा संताप दूर हो गया और सम्पूर्ण पाप भी तुरंत नष्ट हो गये। मुने! आपने मेरे ऊपर जो भगवान्‌का चरणोदक छिड़का है, उसके प्रभावसे आज मुझे आपने भगवान् विष्णुके परम पदको पहुँचा दिया। विप्रवर! आपके द्वारा इस पापमय शरीरसे मेरा उद्धार हो गया; इसलिये मैं आपके चरणोंमें मस्तक नवाता हूँ। विद्वन्! मेरे किये हुए अपराधको आप क्षमा करें।

ऐसा कहकर उसने मुनिवर उत्तङ्कपर दिव्य पुष्पोंकी

---

* यावदर्जयति द्रव्य बान्धवास्तावदेव हि।
धर्माधर्मौ सहैवास्तामिहामुत्र न चापरः॥
(ना० पूर्व० ३७। ४२)

† यद्भावि तद्भवत्येव यदभाव्य न तद्भवेत्।
इति निश्चितबुद्धीना न चिन्ता बाधते क्वचित्॥
(ना० पूर्व० ३७। ४७)

‡ अर्जित च धन सर्वं भुञ्जते बान्धवाः सदा।
स्वयमेकतमो मूढस्तत्पापफलमश्नुते॥
(ना० पूर्व० ३७। ५१)

वर्षा की और विमानसे उतरकर तीन बार परिक्रमा करके उन्हें नमस्कार किया। तदनन्तर पुनः उस दिव्य विमानपर चढ़कर गुलिक भगवान् विष्णुके धामको चला गया। यह सब प्रत्यक्ष देखकर तपोनिधि उत्तङ्कजी बड़े विस्मयमें पड़े और उन्होंने सिरपर अञ्जलि रखकर लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुका स्तवन किया। उनके द्वारा स्तुति करनेपर भगवान् महाविष्णुने उन्हें उत्तम वर दिया और उस वरसे उत्तङ्कजी भी परम पदको प्राप्त हो गये।

उत्तङ्कके द्वारा भगवान् विष्णुकी स्तुति और भगवान्की आज्ञासे उनका नारायणाश्रममें जाकर मुक्त होना

नारदजीने पूछा—महाभाग! वह कौन-सा स्तोत्र था और उसके द्वारा भगवान् विष्णु किस प्रकार संतुष्ट हुए? पुण्यात्मा पुरुष उत्तङ्कजीने भगवान्से कैसा वर प्राप्त किया?

श्रीसनकजीने कहा—भगवान् विष्णुके ध्यानमें तत्पर रहनेवाले विप्रवर उत्तङ्कने उस समय भगवान्के चरणोदकका माहात्म्य देखकर उनकी भक्तिभावसे स्तुति की।

उत्तङ्कजी बोले—जो सम्पूर्ण जगत्के निवासस्थान और उसके एकमात्र बन्धु हैं, उन आदिदेव भगवान् नारायणको मैं नमस्कार करता हूँ। जो स्मरण करनेमात्रसे भक्तजनोंकी सारी पीड़ा नष्ट कर देते हैं, अपने हाथोंमें चक्र, कमल, शार्ङ्गधनुष और खड्ग धारण करनेवाले उन महाविष्णुकी मैं शरण लेता हूँ। जिनकी नाभिसे प्रकट हुए कमलसे उत्पन्न होकर ब्रह्माजी इन सम्पूर्ण लोकोंके समुदायकी सृष्टि करते हैं और जिनके क्रोधसे प्रकट हुए भगवान् रुद्र इस जगत्का संहार किया करते हैं, उन आदिदेव भगवान् विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ। जो लक्ष्मीजीके पति हैं, जिनके कमलदलके समान विशाल नेत्र हैं, जिनकी शक्ति अद्भुत है, जो सम्पूर्ण जगत्के एकमात्र कारण तथा वेदान्तवेद्य पुराणपुरुष हैं, उन तेजोराशि भगवान् विष्णुकी मैं शरण लेता हूँ। जो सबके आत्मा, अविनाशी और सर्वव्यापी हैं, जिनका नाम अच्युत है, जो ज्ञानस्वरूप तथा ज्ञानियोंको शरण देनेवाले हैं, एकमात्र ज्ञानसे ही जिनके तत्त्वका बोध होता है, जिनका कोई आदि नहीं है, यह व्यष्टि और समष्टि जगत् जिनका ही स्वरूप है, वे भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हों। जिनके बल और पराक्रमका अन्त नहीं है, जो गुण और जातिसे हीन तथा गुणस्वरूप हैं, ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ, नित्य तथा शरणागतोंकी पीड़ा दूर करनेवाले हैं, वे दयासागर परमात्मा मुझे वर प्रदान करें। जो स्थूल और सूक्ष्म आदि विशेष भेदोंसे युक्त जगत्की यथायोग्य रचना करके अपने बनाये हुए उस जगत्में स्वयं ही अन्तर्यामीरूपसे प्रविष्ट हुए हैं, वह परमेश्वर आप ही हैं। हे अनन्त शक्ति-सम्पन्न परमात्मन्! वह सब जगत् आप ही हैं; क्योंकि आपसे भिन्न दूसरी कोई वस्तु नहीं है। भगवन्! आपका जो शुद्ध स्वरूप है वह इन्द्रियातीत, मायाशून्य, गुण और जाति आदिसे रहित, निरञ्जन, निर्मल और अप्रमेय है। ज्ञानी संत-महात्मा उस परमार्थ-स्वरूपका दर्शन करते हैं। जैसे एक ही सुवर्णसे अनेक आभूषण बनते हैं और उपाधिके भेदसे उनके नाम और रूपमें भेद हो जाता है, उसी प्रकार सबके आत्मस्वरूप एक ही सर्वेश्वर उपाधि-भेदसे मानो भिन्न-भिन्न रूपोंमें दृष्टिगोचर होते हैं। जिनकी मायासे मोहित चित्तवाले अज्ञानी पुरुष आत्मारूपसे प्रसिद्ध होते हुए भी उनका दर्शन नहीं कर पाते और मायासे रहित होनेपर वे ही उन सर्वात्मा परमेश्वरको अपने ही आत्माके रूपमें देखने लगते हैं, जो सर्वत्र व्यापक, ज्योतिःस्वरूप तथा उपमारहित हैं, उन विष्णु-भगवान्को मैं प्रणाम करता हूँ। यह सारा जगत् जिनसे प्रकट हुआ है, जिनके ही आधारपर स्थित है और जिनसे ही इसे चेतनता प्राप्त हुई है और जिनका ही यह स्वरूप है, उनको नमस्कार है। जो प्रमाणकी पहुँचसे परे हैं, जिनका दूसरा कोई आधार नहीं है, जो स्वयं ही आधार और आधेयरूप हैं, उन परमानन्दमय चैतन्यस्वरूप भगवान् वासुदेवको मैं नमस्कार करता हूँ। सबकी हृदयगुहामें जिनका निवास है, जो देवस्वरूप तथा योगियोंद्वारा सेवित हैं और प्रणवमें उसके अर्थ एवं अधिदेवतारूपमें जिनकी स्थिति है, उन योगमार्गके आदिकारण परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ। जो नादस्वरूप, नादके बीज, प्रणवरूप, सत्स्वरूप अविनाशी तथा सच्चिदानन्दमय हैं, उन तीक्ष्ण चक्र धारण करनेवाले भगवान् विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ। जो जरा आदिसे रहित, इस जगत्के साक्षी, मन-वाणीके अगोचर, निरञ्जन तथा अनन्त नामसे प्रसिद्ध हैं, उन विष्णुरूप भगवान्को मैं प्रणाम करता हूँ। इन्द्रिय, मन, बुद्धि, सत्त्व, तेज, बल, धृति

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ—इन सबको भगवान् वासुदेवका स्वरूप कहा गया है। विद्या और अविद्या भी उन्हींके रूप हैं। वे ही परात्पर परमात्मा कहे गये हैं। जिनका आदि और अन्त नहीं है तथा जो सबका धारण-पोषण करनेवाले हैं, उन शान्तस्वरूप भगवान् अच्युतकी जो महात्मा शरण लेते हैं, उन्हें सनातन मोक्ष प्राप्त होता है। जो श्रेष्ठ, वरण करने योग्य, वरदाता, पुराण, पुरुष, सनातन, सर्वगत तथा सर्वस्वरूप हैं, उन भगवान्‌को मैं पुनः प्रणाम करता हूँ, पुनः प्रणाम करता हूँ, पुनः प्रणाम करता हूँ, पुनः प्रणाम करता हूँ। जिनका चरणोदक संसाररूपी रोगको दूर करनेवाला वैद्य है, जिनके चरणोंकी धूल निर्मलता (अन्तःशुद्धि) का साधन है तथा जिनका नाम समस्त पापोंका निवारण करनेवाला है, उन अप्रमेय पुरुष श्रीहरिकी मै आराधना करता हूँ। जो सद्‌रूप, असद्‌रूप, सदसद्‌रूप और उन सबसे विलक्षण हैं तथा जो श्रेष्ठ एवं श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठतर हैं, उन अविनाशी भगवान् विष्णुका मैं भजन करता हूँ। जो निरञ्जन, निराकार, सर्वत्र परिपूर्ण परमव्योममें विराजमान, विद्या और अविद्यासे परे तथा हृदयकमलमें अन्तर्यामीरूपसे निवास करनेवाले हैं, जो स्वयंप्रकाश, अनिर्देश्य (जाति, गुण और क्रिया आदिसे रहित), महान्‌से भी परम महान्, सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म, अजन्मा, सब प्रकारकी उपाधियोंसे रहित, नित्य, परमानन्द और सनातन परब्रह्म हैं, उन जगन्निवास भगवान् विष्णुकी मैं शरण लेता हूँ। क्रियानिष्ठ भक्त जिनका भजन करते हैं, योगीजन समाधिमें जिनका दर्शन करते हैं, तथा जो पूज्यसे भी परम पूज्य एवं शान्त हैं, उन भगवान् श्रीहरिकी मैं शरण लेता हूँ। विद्वान् पुरुष भी जिन्हें देख नहीं पाते, जो इस सम्पूर्ण जगत्‌को व्याप्त करके स्थित और सबसे श्रेष्ठ हैं, उन नित्य अविनाशी विभुको मैं प्रणाम करता हूँ। अन्तःकरणके संयोगसे जिन्हें जीव कहा जाता है और अविद्याके कार्यसे रहित होनेपर जो परमात्मा कहलाते हैं, यह सम्पूर्ण जगत् जिनका स्वरूप है, जो सबके कारण, समस्त कर्मोंके फलदाता, श्रेष्ठ, वरण करने योग्य तथा अजन्मा हैं, उन परात्पर भगवान्‌को मै प्रणाम करता हूँ। जो सर्वज्ञ, सर्वगत, सर्वान्तर्यामी, ज्ञानस्वरूप, ज्ञानके आश्रय तथा ज्ञानमें स्थित हैं, उन सर्वव्यापी श्रीहरिका मै भजन करता हूँ। जो वेदोंके निधि हैं, वेदान्तके विज्ञानद्वारा जिनके परमार्थस्वरूपका भलीभाँति निश्चय होता है, सूर्य और चन्द्रमाके तुल्य जिनके प्रकाशमान नेत्र हैं, जो ऐश्वर्यशाली इन्द्ररूप हैं, आकाशमें विचरनेवाले पक्षी एवं ग्रह-नक्षत्र आदि जिनके स्वरूप हैं तथा जो खगपति (गरुड़) स्वरूप हैं, उन भगवान् मुरारिको मैं प्रणाम करता हूँ। जो सबके ईश्वर, सबमें व्यापक, महान् वेदस्वरूप, वेद-वेत्ताओंमें श्रेष्ठ, वाणी और मनकी पहुँचसे परे, अनन्त शक्तिसम्पन्न तथा एकमात्र ज्ञानके ही द्वारा जानने योग्य हैं, उन परम पुरुष श्रीहरिका मैं भजन करता हूँ। जिनकी सत्ता सर्वत्र परिपूर्ण है, जो इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम, ईशान, सूर्य तथा इन्द्र आदिके द्वारा स्वयं ही सब लोकोंकी रक्षा करते हैं, उन अप्रमेय परमेश्वरकी मैं शरण लेता हूँ। जिनके सहस्रों मस्तक, सहस्रों पैर, सहस्रों भुजाएँ और सहस्रों नेत्र हैं, जो सम्पूर्ण यज्ञोंसे सेवित तथा सबको संतोष प्रदान करनेवाले हैं, उन उग्रशक्तिसम्पन्न आदिपुरुष श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ। जो कालस्वरूप, काल-विभागके हेतु, तीनों गुणोंसे अतीत, गुणज्ञ, गुणप्रिय, कामना पूर्ण करनेवाले, सङ्गरहित, अतीन्द्रिय, विश्वपालक, तृष्णाहीन, निरीह, श्रेष्ठ, मनके द्वारा भी अगम्य, मनोमय और अन्नमय स्वरूप, सबमें व्याप्त, विज्ञानसे सम्पन्न तथा शक्तिशाली हैं, जो वाणीके विषय नहीं हो सकते तथा जो सबके प्राणस्वरूप हैं, उन भगवान्‌का मैं भजन करता हूँ। जिनके रूपको, जिनके बल और प्रभावको, जिनके विविध कर्मोंको तथा जिनके प्रमाणको ब्रह्मा आदि देवता भी नहीं जानते, उन आत्मस्वरूप श्रीहरिकी स्तुति मैं कैसे कर सकता हूँ ? मैं संसार-समुद्रमे गिरा हुआ एक दीन मनुष्य हूँ, मोहसे व्याकुल हूँ, सैकड़ों कामनाओंने मुझे बाँध रक्खा है। मैं अकीर्तिभागी, चुगला, कृतघ्न, सदा अपवित्र, पापपरायण तथा अत्यन्त क्रोधी हूँ। दयासागर ! मुझ भयभीतकी रक्षा कीजिये। मैं बार-बार आपकी शरण लेता हूँ *।

---

* नतोऽस्मि नारायणमादिदेवं जगन्निवासं जगदेकबन्धुम्।
चक्राब्जशार्ङ्गासिधरं महान्तं स्मृतार्तिनिघ्नं शरणं प्रपद्ये ॥
यन्नाभिजाब्जप्रभवो विधाता सृजत्यमुं लोकसमुच्चयं च।
यत्क्रोधजो हन्ति जगच्च रुद्रस्तमादिदेवं प्रणतोऽस्मि विष्णुम् ॥
पद्मापतिं पद्मदलायताक्षं विचित्रवीर्यं निखिलैकहेतुम्।
वेदान्तवेद्यं पुरुषं पुराणं तेजोनिधिं विष्णुमहं प्रपन्नः ॥
आत्माक्षरः सर्वगतोऽच्युताख्यो ज्ञानात्मको ज्ञानविदां शरण्यः।
ज्ञानैकवेद्यो भगवाननादिः प्रसीदतां व्यष्टिसमष्टिरूपः ॥
अनन्तवीर्यो गुणजातिहीनो गुणात्मको ज्ञानविदां वरिष्ठः।
नित्यः प्रपन्नार्तिहरः परात्मा दयाम्बुधिर्मे वरदस्तु भूयात् ॥

महर्षि उत्तङ्कके द्वारा इस प्रकार प्रसन्न किये जानेपर परम दयालु तथा तेजोनिधि भगवान् लक्ष्मीपतिने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। उनके श्रीअङ्गोंकी कान्ति अलसीके फूलकी भाँति श्याम थी। दोनों नेत्र खिले हुए कमलकी शोभा धारण करते थे। मस्तकपर किरीट, दोनों कानोंमें कुण्डल, गलेमें हार और भुजाओंमें केयूरकी अपूर्व शोभा हो रही थी। उन्होंने वक्षःस्थलपर श्रीवत्सचिह्न और कौस्तुभमणि धारण कर रक्खी थी। सुवर्णमय यज्ञोपवीत उनके बायें कंधेपर सुशोभित हो रहा था। नाकमें पहनी हुई मुक्तामणिकी प्रभासे उनके श्रीअङ्गोंकी श्याम कान्ति और बढ गयी थी। वे श्रीनारायणदेव पीताम्बर धारण करके वनमालासे विभूषित हो रहे थे। तुलसीके कोमल दलोंसे उनके चरणारविन्दोंकी अर्चना की गयी थी। उनके श्रीविग्रहका महान् प्रकाश सब ओर छा रहा था। कटिप्रदेशमें किंकिणी और चरणोंमें नूपुर आदि आभूषण उनकी शोभा बढा रहे थे। उनकी फहराती हुई ध्वजामें गरुड़का चिह्न सुशोभित था। इस रूपमें भगवान्का दर्शन करके विप्रवर उत्तङ्कने पृथ्वीपर दण्डकी भाँति पड़कर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम

य स्थूलसूक्ष्मादिविशेषभेदैर्जगद्यथावत्स्वकृत प्रविष्ट. ।
त्वमेव तत्सर्वमनन्तसार. त्वत्त पर नास्ति यत परात्मन् ॥
अगोचर यत्तव शुद्धरूप मायाविहीन गुणजातिहीनम् ।
निरञ्जन निर्मलमप्रमेय पश्यन्ति सन्त. परमार्थसञ्ज्ञम् ॥
एकेन हेम्नैव विभूषणानि यातानि भेदत्वमुपाधिभेदात् ।
तथैव सर्वेश्वर एक एव प्रदृश्यते भिन्न इवाखिलात्मा ॥
यन्मायया मोहितचेतसस्त पश्यन्ति नात्मानमपि प्रसिद्धम् ।
त एव मायारहितास्तदेव पश्यन्ति सर्वात्मकमात्मरूपम् ॥
विभु ज्योतिरनौपम्य विष्णुसञ्ज्ञ नमाम्यहम् ।
समस्तमेतदुद्भूत यतो यत्र प्रतिष्ठितम् ॥
यतश्चैतन्यमायात यद्रूप तस्य वै नम ।
अप्रमेयमनाधारमाधाराधेयरूपकम् ॥
परमानन्दचिन्मात्र वासुदेवं नतोऽस्म्यहम् ।
हृद्गुहानिलय देवं योगिभि परिसेवितम् ॥
योगानामादिभूत त नमामि प्रणवस्थितम् ।
नादात्मक नादबीजं प्रणवात्मकमव्ययम् ॥
सद्भाव सच्चिदानन्द त वन्दे तिग्मचक्रिणम् ।
अजर साक्षिण त्वस्य ह्यवाङ्मनसगोचरम् ॥
निरञ्जनमनन्ताख्य विष्णुरूप नतोऽस्म्यहम् ।
इन्द्रियाणि मनो बुद्धि सत्त्व तेजो बलं धृति. ॥
वासुदेवात्मकान्याहु क्षेत्र क्षेत्रज्ञमेव च ।
विद्याविद्यात्मक प्राहु. परात्परतर तथा ॥
अनादिनिधन शान्त सर्वधातारमच्युतम् ।
ये प्रपन्ना महात्मानस्तेषा मुक्तिर्हि शाश्वती ॥
वर वरेण्य वरद पुराण
सनातन सर्वगत समस्तम् ।
नतोऽस्मि भूयोऽपि नतोऽस्मि भूयो
नतोऽस्मि भूयोऽपि नतोऽस्मि भूय. ॥
यत्पादतोय भवरोगवैद्यो यत्पादपाशुर्विमलत्वसिद्ध्यै ।
यन्नाम दुष्कर्मनिवारणाय तमप्रमेय पुरुष भजामि ॥
सद्रूप तमसद्रूप सदसद्रूपमव्ययम् ।
तत्तद्विलक्षण श्रेष्ठ श्रेष्ठाच्छ्रेष्ठतर भजे ॥
निरञ्जन निराकार पूर्णमाकाशमध्यगम् ।
पर च विद्याविद्याभ्या हृदम्बुजनिवासिनम् ॥
स्वप्रकाशमनिर्देश्य महतां च महत्तरम् ।
अणोरणीयासमज सर्वोपाधिविवर्जितम् ॥
यन्नित्य परमानन्द पर ब्रह्म सनातनम् ।
विष्णुसंज्ञ जगद्धाम तमस्मि शरण गत. ॥
य भजन्ति क्रियानिष्ठा य पश्यन्ति च योगिन ।
पूज्यात्पूज्यतर शान्त गतोऽस्मि शरण प्रभुम् ॥
य न पश्यन्ति विद्वासो य एतद् व्याप्य तिष्ठति ।
सर्वस्मादधिकं नित्य नतोऽस्मि विभुमव्ययम् ॥
अन्त करणसयोगाज्जीव इत्युच्यते च य ।
अविद्याकार्यरहितः परमात्मेति गीयते ॥
सर्वात्मकं सर्वहेतु सर्वकर्मफलप्रदम् ।
वर वरेण्यमजन प्रणतोऽस्मि परात्परम् ॥
सर्वज्ञ सर्वग शान्त सर्वान्तर्यामिण हरिम् ।
ज्ञानात्मक ज्ञाननिधिं ज्ञानसस्थं विभु भजे ॥
नमाम्यहं वेदनिधिं मुरारिं वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थम् ।
सूर्येन्दुवत्प्रोज्ज्वलनेत्रमिन्द्र खगस्वरूपं च पतिस्वरूपम् ॥
सर्वेश्वर सर्वगत महान्त वेदात्मक वेदविदा वरिष्ठम् ।
त वाङ्मनोऽचिन्त्यमनन्तशक्तिं ज्ञानैकवेद्य पुरुषं भजामि ॥
इन्द्राग्निकालासुरपाशिवायुसोमेशमार्तण्डपुरन्दराद्यै. ।
य पाति लोकान्परिपूर्णभावस्तमप्रमेयं शरण प्रपद्ये ॥
सहस्रशीर्ष च सहस्रपादं सहस्रबाहु च सहस्रनेत्रम् ।
समस्तयज्ञै. परिजुष्टमाद्यं नतोऽस्मि तुष्टिप्रदमुग्रवीर्यम् ॥
कालात्मक कालविभागहेतु गुणत्रयातीतमहं गुणज्ञम् ।
गुणप्रिय कामदमस्तसङ्गमतीन्द्रिय विश्वभुजं वितृष्णम् ॥
निरीहमग्र्य मनसाप्यगम्यं मनोमय चान्नमयं निरूढम् ।
विज्ञानभेद प्रतिपन्नकल्पं न वाङ्मयं प्राणमय भजामि ॥
न यस्य रूप न बलप्रभावौ न यस्य कर्माणि न यत्प्रमाणम् ।
जानन्ति देवा कमलोद्भवाद्या स्तोष्याम्यहं त कथमात्मरूपम्॥
ससारसिन्धौ पतित कदर्यं मोहाकुल कामशतेन बद्धम् ।
अकीर्तिभाजं पिशुन कृतघ्नं सदाशुचिं पापरत प्रमन्युम् ।
दयाम्बुधे पाहि भयाकुल मा पुन पुनस्त्वा शरणं प्रपद्ये ॥
(ना० पूर्व० ३८ । ३—२८)

किया* और आनन्दके आँसुओंसे श्रीहरिके दोनों चरणोंको

नहला दिया। फिर वे एकाग्रचित्त होकर बोले—'मुरारे ! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये।' तब परम दयालु भगवान् महाविष्णुने मुनिश्रेष्ठ उत्तङ्कको उठाकर छातीसे लगा लिया और कहा—'वत्स ! कोई वर माँगो। साधुशिरोमणे ! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, अतः तुम्हारे लिये कुछ भी असम्भव नहीं है।' भगवान् चक्रपाणिके इस कथनको सुनकर महर्षि उत्तङ्कने पुनः प्रणाम किया और उन देवाधिदेव जनार्दनसे इस प्रकार कहा—'भगवन् ! मुझे मोहमें क्यों डालते हैं ? देव ! मुझे दूसरे वरोंसे क्या प्रयोजन है ? मेरी तो जन्म-जन्मान्तरोंमें भी आपके चरणोंमें ही अविचल भक्ति बनी रहे।' तब जगदीश्वर भगवान् विष्णुने 'एवमस्तु' (ऐसा ही होगा) यह कहकर शङ्खके सिरेसे उत्तङ्कजीके शरीरका स्पर्श कराया और उन्हें वह दिव्य ज्ञान दे दिया, जो योगियोंके लिये भी दुर्लभ है। तदनन्तर पुनः स्तुति करते हुए विप्रवर उत्तङ्कसे देवदेव जनार्दनने उनके सिरपर हाथ रखकर मुसकराते हुए कहा।

श्रीभगवान् बोले—जो मनुष्य तुम्हारे द्वारा किये हुए स्तोत्रका सदा पाठ करेगा, वह सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त करके अन्तमें मोक्षका भागी होगा।

नारदजी ! ब्राह्मणसे ऐसा कहकर भगवान् लक्ष्मीपति वहीं अन्तर्धान हो गये। फिर उत्तङ्कजी भी वहाँसे बदरिकाश्रमको चले गये। अतः सदा देवाधिदेव भगवान् विष्णुकी भक्ति करनी चाहिये। हरिभक्ति श्रेष्ठ कही गयी है। वह सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाली है। मुने ! नरनारायणके आश्रममें जाकर उत्तङ्कजी क्रियायोगमें तत्पर हो प्रतिदिन भक्तिभावसे भगवान् माधवकी आराधना करने लगे। वे ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न थे। उनका द्वैतभ्रम नाश हो चुका था। अतः उन्होंने भगवान् विष्णुके दुर्लभ परम पदको प्राप्त कर लिया। भक्तोंका सम्मान बढ़ानेवाले जगदीश्वर भगवान् नारायण पूजन, नमस्कार अथवा स्मरण कर लेनेपर भी जीवको मोक्ष प्रदान करते हैं†। अतः इहलोक और परलोकमें सुख चाहनेवाला मनुष्य अनन्त, अपराजित श्रीनारायणदेवका भक्तिपूर्वक पूजन करे। जो इस उपाख्यानको पढता अथवा एकाग्रचित्त होकर सुनता है, वह भी सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके धाममें जाता है।

भगवान् विष्णुके भजन-पूजनकी महिमा

श्रीसनकजी कहते हैं—विप्रवर नारद ! अब पुनः भगवान् विष्णुका माहात्म्य सुनो; वह सर्व पापहारी, पवित्र तथा मनुष्योंको भोग और मोक्ष देनेवाला है। अहो ! संसारमें भगवान् विष्णुकी कथा अद्भुत है। वह श्रोता, वक्ता तथा विशेषतः भक्तजनोंके पापोंका नाश तथा पुण्यका सम्पादन करनेवाली है। जो श्रेष्ठ मानव भगवद्भक्तिका रसास्वादन करके प्रसन्न होते हैं, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ। उनका सङ्ग करनेसे साधारण मनुष्य भी मोक्षका भागी होता है। मुनिश्रेष्ठ ! जो संसार-सागरके पार जाना चाहता हो, वह भगवद्भक्तोंके भक्तोंकी सेवा करे, क्योंकि वे सब पापोंको हर लेनेवाले हैं। दर्शन, स्मरण, पूजन, ध्यान अथवा प्रणाममात्र कर लेनेपर भगवान् गोविन्द दुस्तर भवसागरसे उद्धार कर

* अतसीपुष्पसकाशं फुल्लपङ्कजलोचनम्। किरीटिनं कुण्डलिनं हारकेयूरभूषितम् ॥
श्रीवत्सकौस्तुभधरं हेमयज्ञोपवीतिनम्। नासाविन्यस्तमुक्ताभवर्धमानतनुच्छविम् ॥
पीताम्बरधरं देवं वनमालाविभूषितम्। तुलसीकोमलदलैरर्चिताङ्घ्रिं महाद्युतिम् ॥
किङ्किणीनूपुराद्यैश्च शोभितं गरुडध्वजम्। दृष्ट्वा ननाम विप्रेन्द्रो दण्डवत्क्षितिमण्डले ॥
(ना० पूर्व० ३८। ४०-४३)

† पूजितो नमितो वापि संस्मृतो वापि मोक्षदः। नारायणो जगन्नाथो भक्तानां मानवर्द्धनः ॥
(ना० पूर्व० ३८। ५७)

देते हैं। जो सोते, खाते, चलते, ठहरते, उठते और बोलते हुए भी भगवान् विष्णुके नामका चिन्तन करता है, उसे प्रतिदिन बारंबार नमस्कार है। जिनका मन भगवान् विष्णुकी भक्तिमें अनुरक्त है, उनका अहोभाग्य है, अहोभाग्य है; क्योंकि योगियोंके लिये भी दुर्लभ मुक्ति उन भक्तोंके हाथमें ही रहती है* ।

विप्रवर नारद! जानकर या बिना जाने भी जो लोग भगवान्‌की पूजा करते हैं, उन्हें अविनाशी भगवान् नारायण अवश्य मोक्ष देते हैं। सब भाई बन्धु अनित्य है। धन-वैभव भी सदा रहनेवाला नहीं है और मृत्यु सदा समीप खडी रहती है—यह सोचकर धर्मका संचय करना चाहिये† । मूर्खलोग मदसे उन्मत्त होकर व्यर्थ गर्व करते हैं। जब शरीरका ही विनाश निकट है तो धन आदिकी तो बात ही क्या कही जाय? तुलसीकी सेवा दुर्लभ है, साधु-पुरुषोंका सङ्ग दुर्लभ है और सम्पूर्ण भूतोंके प्रति दयाभाव भी किसी विरलेको ही सुलभ होता है। सत्सङ्ग, तुलसीकी सेवा तथा भगवान् विष्णुकी भक्ति ये सभी दुर्लभ हैं। दुर्लभ मनुष्यशरीरको पाकर विद्वान् पुरुष उसे व्यर्थ न गँवाये। जगदीश्वर श्रीहरिकी पूजा करे। द्विजोत्तम! इस संसारमे यही सार है। मनुष्य यदि दुस्तर भवसागरके पार जाना चाहता है तो वह भगवान्‌के भजनमे तत्पर हो जाय। यही रसायन है। भैया! भगवान् गोविन्दका आश्रय लो। प्रिय मित्र! इस कार्यमें विलम्ब न करो; क्योंकि यमराजका नगर निकट ही है। जो महात्मा पुरुष सबके आधार, सम्पूर्ण जगत्‌के कारण तथा समस्त प्राणियोंके अन्तर्यामी भगवान् विष्णुकी शरण ले चुके हैं, वे निस्सन्देह कृतार्थ हो गये हैं। जो लोग प्रणतजनोंकी पीड़ाका नाश करनेवाले भगवान् महाविष्णुकी पूजा करते हैं, वे वन्दनीय हैं। जो विष्णुभक्त पुरुष निष्कामभावसे परमेश्वर श्रीहरिका यजन करते हैं, वे इक्कीस पीढ़ियोंके साथ वैकुण्ठधाममें जाते हैं। जो कुछ भी न चाहनेवाले महात्मा भगवद्भक्तको जल अथवा फल देते हैं, वे ही भगवान्‌के प्रेमी हैं। जो कामनारहित होकर भगवान् विष्णुके भक्तों तथा भगवान् विष्णुका भी पूजन करते हैं, वे ही अपने चरणोंकी धूलसे सम्पूर्ण विश्वको पवित्र करते हैं‡ । जिसके घरमे सदा भगवत्पूजापरायण पुरुष निवास करता है, वहीं सम्पूर्ण देवता तथा साक्षात् श्रीहरि विराजमान होते हैं। ब्रह्मन्! जिसके घरमें तुलसी पूजित होती हैं, वहाँ प्रतिदिन सब प्रकारके श्रेयकी वृद्धि होती है। जहाँ शालग्राम-शिलारूपमे भगवान् केशव निवास करते है, वहाँ भूत, वेताल आदि ग्रह बाधा नहीं पहुँचाते। जहाँ शालग्रामशिला विद्यमान है, वह स्थान तीर्थ है, तपोवन है, क्योंकि शालग्रामशिलामे साक्षात् भगवान् मधुसूदन निवास करते हैं। ब्रह्मन्! पुराण, न्याय, मीमासा, धर्मशास्त्र तथा छः अङ्गोंसहित वेद—ये सब भगवान् विष्णुके स्वरूप कहे गये है। जो भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुकी चार बार परिक्रमा कर लेते हैं, वे भी उस परम पद-

को प्राप्त होते हैं, जहाँ समस्त कर्मबन्धनोंका नाश हो जाता है§ ।

---

* ससारसागर तर्तुं य इच्छेन्मुनिपुङ्गव। स भजेद्धरिभक्ताना भक्तान्वै पापहारिण ॥
दृष्ट. स्मृत पूजितो वा ध्यात प्रणमितोऽपि वा। समुद्धरति गोविन्दो दुस्तराद् भवसागरात् ॥
स्वपन् भुञ्जन् व्रजस्तिष्ठन्नुत्तिष्ठश्च वदंस्तथा। चिन्तयेद्यो हरेर्नाम तस्मै नित्यं नमो नम ॥
अहो भाग्यमहो भाग्य विष्णुभक्तिरतात्मनाम्। येषा मुक्ति करस्थैव योगिनामपि दुर्लभा ॥
(ना० पूर्व० ३९। ५—८)

† अनित्या बान्धवा. सर्वे विभवो नैव शाश्वत.। नित्य सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥
(ना० पूर्व० ३९। ४९)

‡ ये यजन्ति स्पृहाशून्या हरिभक्तान् हरिं तथा। त एव भुवन सर्वं पुनन्ति स्वाङ्घ्रिपांसुना ॥ (ना० पूर्व० ३९। ६४)

§ भक्त्या कुर्वन्ति ये विष्णो. प्रदक्षिणचतुष्टयम्। तेऽपि यान्ति पर स्थान सर्वकर्मनिबर्हणम् ॥ (ना० पूर्व० ३९। ७१)

इन्द्र और सुधर्मका संवाद, विभिन्न मन्वन्तरोंके इन्द्र और देवताओंका वर्णन, तथा भगवद्-भजनका माहात्म्य

श्रीसनकजी कहते हैं—मुने ! इसके बाद मैं भगवान् विष्णुकी विभूतिस्वरूप मनु और इन्द्र आदिका वर्णन करूँगा। इस वैष्णवी विभूतिका श्रवण अथवा कीर्तन करनेवाले पुरुषोंका पाप तत्काल नष्ट हो जाता है।

एक समय वैवस्वत मन्वन्तरके भीतर ही गुरु बृहस्पति और देवताओंसहित इन्द्र सुधर्मके निवास-स्थानपर गये। देवर्षे ! बृहस्पतिजीके साथ देवराजको आया देख सुधर्मने

आदरपूर्वक उनकी यथायोग्य पूजा की। सुधर्मसे पूजित हो इन्द्रने विनयपूर्वक कहा।

इन्द्र बोले—विद्वन् ! यदि आप बीते हुए ब्रह्मकल्पका वृत्तान्त जानते हैं तो बताइये। मैं यही पूछनेके लिये गुरुजीके साथ आया हूँ।

देवराज इन्द्रके ऐसा कहनेपर सुधर्म हँस पड़ा और उसने विनयपूर्वक पूर्वकल्पकी सब बातोंका विधिवत् वर्णन किया।

सुधर्मने कहा—इन्द्र ! एक सहस्र चतुर्युगीका ब्रह्माजीका एक दिन होता है और उनके एक दिनमें चौदह मनु, चौदह इन्द्र तथा पृथक्-पृथक् अनेक प्रकारके देवता हुआ करते हैं। वासव ! सभी इन्द्र और मनु आदि तेज, लक्ष्मी, प्रभाव और बलमें समान ही होते हैं। मैं नाम बतलाता हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो। स्वायम्भुव मनु हुए। तदनन्तर क्रमशः स्वारोचि तामस, रैवत, चाक्षुष, सातवें वैवस्वत मनु, सावर्णि और नवें दक्षसावर्णि हैं। दसवें ब्रह्मसावर्णि और ग्यारहवेंका धर्मसावर्णि है। बारहवें रुद्रसावर्णि तथा तेरहवें रोचमान हुए मनुका नाम भौत्य बताया गया है। ये चौदह

देवराज ! अब मैं देवताओं और इन्द्रोका वर्ण सुनो। स्वयम्भू मन्वन्तरमे देवतालोग यामके नाम थे। उनके परम बुद्धिमान् इन्द्रकी शचीपति नाम थी। स्वारोचिष मन्वन्तरमें पारावत और तु देवता थे। उनके स्वामी इन्द्रका नाम विपश्चित सब प्रकारकी सम्पदाओंसे समृद्ध थे। तीसरे उ मन्वन्तरमे सुधामा, सत्य, शिव तथा प्रतर्दन नाम थे। उनके इन्द्र सुशान्ति नामसे प्रसिद्ध थे। चौ मन्वन्तरमें सुपार, हरि, सत्य और सुधी—ये थे*। शक्र ! उन देवताओंके इन्द्रका नाम उस था। पाँचवें (रैवत) मन्वन्तरमें अमिताभ थे और पाँचवे देवराजका नाम विभु कहा गया (चाक्षुष) मन्वन्तरमें आर्य आदि देवता बताये उन सबके इन्द्रका नाम मनोजव था। इस सात मन्वन्तरमें आदित्य, वसु तथा रुद्र आदि देव सम्पूर्ण भोगोंसे सम्पन्न आप ही इन्द्र हैं। आपका पुरन्दर बताया गया है। आठवें सूर्यसावर्णि अप्रमेय तथा सुतप आदि होनेवाले देवता बताये भगवान् विष्णुकी आराधनाके प्रभावसे राजा बलि होंगे। नवें दक्षसावर्णि मन्वन्तरमें पार आदि

---

* विष्णुपुराणमें भी तामस मन्वन्तरके ये ही गये हैं। वहाँका मूल पाठ इस प्रकार है—

तामसस्यान्तरे देवाः सुपारा. हरयस्तथा
सत्याश्च सुधियश्चैव सप्तविंशतिका गुणाः
शिबिरिन्द्रस्तथा चासीत्…

(३ । १ ।

मार्कण्डेयपुराणमें तामस मन्वन्तरके देवता सत्य, तथा सुरूप बताये गये हैं और इन्द्रका नाम 'शिखी' क

और उनके इन्द्रका नाम अद्भुत बताया जाता है । दसवें ब्रह्मसावर्णि मन्वन्तरमें सुवासन आदि देवता कहे गये हैं। उनके इन्द्रका नाम शान्ति होगा । ग्यारहवें धर्मसावर्णि मन्वन्तरमें विहङ्गम आदि देवता होंगे और उनके इन्द्र वृष नामसे प्रसिद्ध होंगे । बारहवें रुद्रसावर्णि मन्वन्तरमें हरित आदि देवता तथा ऋतुधामा नामवाले इन्द्र होंगे । तेरहवें रोचमान या रौच्यनामक मन्वन्तरमें सुत्रामा आदि देवता होंगे । उनके महापराक्रमी इन्द्रका नाम दिवस्पति कहा जाता है । चौदहवें भौत्य मन्वन्तरमें चाक्षुप आदि देवता होंगे और उनके इन्द्रकी शुचि नामसे प्रसिद्धि होगी। देवराज ! इस प्रकार मैंने भूत और भविष्य मनु, इन्द्र तथा देवताओंका यथार्थ वर्णन किया है । ये सब ब्रह्माजीके एक दिनमें अपने अधिकारका उपभोग करते हैं । सम्पूर्ण लोकों तथा सभी स्वर्गोंमें एक ही तरहकी सृष्टि कही गयी है । उस सृष्टिके विधाता बहुत हैं । उनकी संख्या यहाँ कौन जानता है ? देवराज ! मेरे ब्रह्मलोकमें रहते समय बहुतसे ब्रह्मा आये और चले गये । आज मैं उनकी संख्या बतानेमें असमर्थ हूँ । इस स्वर्गलोकमें आकर भी मेरा जितना समय बीता है, उसको सुनो—अबतक चार मनु बीत गये, किंतु मेरी समृद्धिका विस्तार बढ़ता ही गया । प्रभो ! अभी मुझे सौ करोड़ युगोंतक यहीं रहना है । तत्पश्चात् मैं कर्मभूमिको जाऊँगा ।'

महात्मा सुधर्मके ऐसा कहनेपर देवराज मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए और निरन्तर भगवान् विष्णुकी आराधनामें लग गये । यद्यपि देवतालोग स्वर्गका सुख भोगते हैं तथापि वे सब इस भारतवर्षमें जन्म पानेके लिये लालायित रहते हैं । जो भगवान् नारायणकी पूजा करते हैं, उन महात्माओंकी पूजा सदा ब्रह्मा आदि देवता किया करते हैं । जो महात्मा सब प्रकारके संग्रह-परिग्रहका त्याग करके निरन्तर भगवान् नारायणके चिन्तनमें लगे रहते हैं, उन्हें भयङ्कर संसारका बन्धन कैसे प्राप्त हो सकता है ? यदि कोई उन महापुरुषोंके सङ्गका लोभ रखते हैं तो वे भी मोक्षके भागी हो जाते हैं। जो मानव प्रतिदिन सब प्रकारकी आसक्तियोंका त्याग करके गरुडवाहन भगवान् नारायणकी अर्चना करते हैं, वे सम्पूर्ण पापराशियोंसे सर्वथा मुक्त होकर हर्षपूर्ण हृदयसे भगवान् विष्णुके कल्याणमय पदको प्राप्त होते हैं । जो मनुष्य आसक्तिरहित तथा पर-अवर (उत्तम-मध्यम, शुभ-अशुभ) के ज्ञाता हैं और निरन्तर देवगुरु भगवान् नारायणका चिन्तन करते रहते हैं, उस ध्यानसे उनके अन्तःकरणकी सारी पापराशि नष्ट हो जाती है और वे फिर कभी माताके स्तनोंका दूध नहीं पीते । जो मानव भगवान्‌की कथा श्रवण करके अपने समस्त दोष-दुर्गुण दूर कर चुके हैं और जिनका चित्त भगवान् श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंकी आराधनामें अनुरक्त है, वे अपने शरीरके सङ्ग अथवा सम्भाषणसे भी संसारको पवित्र करते हैं। अतः सदा श्रीहरिकी ही पूजा करनी चाहिये । ब्रह्मन् ! जैसे नीची भूमिमें इधर-उधरका सारा जल (सिमट-सिमटकर) एकत्र हो जाता है, उसी प्रकार जहाँ भगवत्पूजापरायण शुद्धचित्त महापुरुष रहते हैं, वहीं सम्पूर्ण कल्याणका वास होता है *। भगवान् विष्णु ही सबसे श्रेष्ठ बन्धु हैं । वे ही सर्वोत्तम गति हैं । अतः उन्हींकी निरन्तर पूजा करनी चाहिये, क्योंकि वे ही सबकी चेतनाके कारण हैं । मुनिश्रेष्ठ ! तुम स्वर्ग और मोक्षफलके दाता सदानन्दस्वरूप निरामय भगवान् श्रीहरिकी पूजा करो । इससे तुम्हें परम कल्याणकी प्राप्ति होगी ।

चारों युगोंकी स्थितिका संक्षेपसे तथा कलिधर्मका विस्तारसे वर्णन एवं भगवन्नामकी अद्भुत महिमाका प्रतिपादन

नारदजीने कहा—मुने ! आप तात्त्विक अर्थोंके ज्ञानमें निपुण हैं । अब मैं युगोंकी स्थितिका परिचय सुनना चाहता हूँ ।

श्रीसनकजीने कहा—महाप्राज्ञ ! साधुवाद, तुमने बहुत अच्छी बात पूछी है । मुने ! तुम सम्पूर्ण लोकोंका उपकार करनेवाले हो । अच्छा, अब मैं समस्त जगत्‌के लिये उपकारी युग-धर्मका वर्णन आरम्भ करता हूँ । किसी समय तो पृथ्वीपर उत्तम धर्मकी वृद्धि होती है और किसी समय वही विनाशको प्राप्त होने लगता है । साधुशिरोमणे ! सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—ये चार युग माने गये हैं;

* ये मानवा हरिकथाश्रवणात्तदोषा कृष्णाङ्घ्रिपद्मभजने रतचेतनाश्च ।
ते वै पुनन्ति च जगन्ति शरीरसङ्गात् सम्भाषणादपि ततो हरिरेव पूज्यः ॥
हरिपूजापरा यत्र महान्तः शुद्धबुद्धयः । तत्रैव सकलं भद्रं यथा निम्ने जलं द्विज ॥ (ना० पूर्व० ४०।५२-५४)

इनकी आयु बारह हजार दिव्य वर्षोंकी समझनी चाहिये। वे चारों युग उतने ही सौ वर्षोंकी संध्या और संध्यांशसे युक्त होते हैं। इनकी काल-संख्या सदा एक-सी ही जाननी चाहिये। पहले युगको सत्ययुग कहते हैं, दूसरेका नाम त्रेता है, तीसरेका नाम द्वापर है और अन्तिम युगको कलियुग कहते हैं। इसी क्रमसे इनका आगमन होता है। विप्रवर! सत्ययुगमें देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस तथा सर्पोंका भेद नहीं था। उस समय सब-के-सब देवताओंके समान स्वभाववाले थे। सब प्रसन्न और धर्मनिष्ठ थे। कृतयुगमें क्रय-विक्रयका व्यापार और वेदोंका विभाग नहीं था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—सभी अपने-अपने कर्तव्यके पालनमें तत्पर रहकर सदा भगवान् नारायणकी उपासना करते थे। सभी अपनी योग्यताके अनुसार तपस्या और ध्यानमें लगे रहते थे। उनमें काम, क्रोध आदि दोष नहीं थे। सब लोग शम-दम आदि सद्गुणोंमें तत्पर थे। सबका मन धर्मसाधनमें लगा रहता था। किसीमें ईर्ष्या तथा दूसरोंके दोष देखनेका स्वभाव नहीं था। सभी लोग दम्भ और पाखण्डसे दूर रहते थे। सत्ययुगके सभी द्विज सत्यवादी, चारों आश्रमोंके धर्मका पालन करनेवाले, वेदाध्ययनसम्पन्न तथा सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञानमें निपुण थे। चारों आश्रमोंवाले अपने-अपने कर्मोंके द्वारा कामना और फलासक्तिका त्याग करके परम गतिको प्राप्त होते थे। सत्ययुगमें भगवान् नारायणका श्रीविग्रह अत्यन्त निर्मल एवं शुक्लवर्णका होता है। मुनिश्रेष्ठ! त्रेतामें धर्म एक पादसे हीन हो जाता है। (सत्ययुगकी अपेक्षा एक चौथाई कम लोग धर्मका पालन करते हैं) भगवान्‌के शरीरका वर्ण लाल हो जाता है। उस समय जनताको कुछ क्लेश भी होने लगता है। त्रेतामें सभी द्विज क्रियायोगमें तत्पर रहते हैं। यज्ञ-कर्ममें उनकी निष्ठा होती है। वे नियमपूर्वक सत्य बोलते, भगवान्‌का ध्यान करते, दान देते और न्याययुक्त प्रतिग्रह भी स्वीकार करते हैं। मुनीश्वर! द्वापरमें धर्मके दो ही पैर रह जाते हैं। भगवान् विष्णुका वर्ण पीला हो जाता है और वेदके चार विभाग हो जाते हैं। द्विजोत्तम! उस समय कोई-कोई असत्य भी बोलने लगते हैं। ब्राह्मण आदि वर्णोंमेंसे कुछ लोगोंमें राग-द्वेष आदि दुर्गुण आ जाते हैं। विप्रवर! कुछ लोग स्वर्ग और अपवर्गके लिये यज्ञ करते हैं, कोई धनादिकी कामनाओंमें आसक्त हो जाते हैं और कुछ लोगोंका हृदय पापसे मलिन हो जाता है। द्विजश्रेष्ठ! द्वापरमें धर्म और अधर्म दोनोंकी स्थिति समान होती है। अधर्मके प्रभावसे उस समयकी प्रजा क्षीण होने लगती है। मुनीश्वर! कितने ही लोग द्वापर आनेपर अल्पायु भी होंगे। ब्रह्मन्! कुछ लोग दूसरोंको पुण्यमें तत्पर देखकर उनसे डाह करने लगेंगे। कलियुग आनेपर धर्मका एक ही पैर शेष रह जाता है। इस तामस युगके प्राप्त होनेपर भगवान् श्रीहरि श्याम रंगके हो जाते हैं। उसमें कोई विरला ही धर्मात्मा यज्ञोंका अनुष्ठान करता है और कोई महान् पुण्यात्मा ही क्रियायोगमें तत्पर रहता है। उस समय धर्मपरायण मनुष्यको देखकर सब लोग ईर्ष्या और निन्दा करते हैं। कलियुगमें व्रत और सदाचार नष्ट हो जाते हैं। ज्ञान और यज्ञ आदिकी भी यही दशा होती है। उस समय अधर्मका प्रचार होनेसे जगत्‌में उपद्रव होते रहते हैं। सब लोग दूसरोंके दोष बतानेवाले और स्वयं पाखण्डपूर्ण आचारमें तत्पर होते हैं।

नारदजीने कहा—मुने! आपने संक्षेपसे ही युगधर्मोंका वर्णन किया है, कृपया कलिका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये; क्योंकि आप धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ हैं। मुनिश्रेष्ठ! कलियुगमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रोंका खान-पान और आचार-व्यवहार कैसा होगा?

श्रीसनकजीने कहा—सब लोकोंका उपकार करनेवाले मुनिश्रेष्ठ! सुनो, मैं कलि-धर्मोंका यथार्थ एवं विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूँ। कलि बड़ा भयङ्कर युग है। उसमें सब प्रकारके पातकोंका सम्मिश्रण होता है अर्थात् पापोंकी बहुलता होनेके कारण एक पापमें दूसरा पाप शामिल हो जाता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र धर्मसे मुँह मोड़ लेते हैं। घोर कलियुग प्राप्त होनेपर सभी द्विज वेदोंसे विमुख हो जाते हैं। सभी किसी-न-किसी बहानेसे धर्ममें लगते हैं। सब दूसरोंके दोष बताया करते हैं। सबका अन्तःकरण व्यर्थ अहङ्कारसे दूषित होता है। पण्डित लोग भी सत्यसे दूर रहते हैं। 'मैं ही सबसे बड़ा हूँ' इस प्रकार सभी परस्पर विवाद करते हैं। सब मनुष्य अधर्ममें आसक्त और वितण्डावादी होते हैं। इन्हीं कारणोंसे कलियुगमें सब लोग स्वल्पायु होंगे। ब्रह्मन्! थोड़ी आयु होनेके कारण मनुष्य शास्त्रोंका अध्ययन नहीं कर सकेंगे और विद्याध्ययनशून्य होंगे। उनके द्वारा बार-बार अधर्मपूर्ण बर्ताव होता है। उस समयकी समस्त पापपरायण प्रजा अवस्था-क्रमके विपरीत मरने लगेगी। ब्राह्मण आदि सभी वर्णके लोगोंमें परस्पर संकरता आ जायगी। मूढ़ मनुष्य काम-क्रोधके वशीभूत हो व्यर्थके संतापसे पीड़ित होंगे। कलियुगमें सब वर्णोंके लोग शूद्रके समान हो जायँगे। उत्तम नीच हो जायँगे और नीच उत्तम। शासकगण केवल धन-संग्रहमें लग जायँगे और अन्याय-

पूर्ण बर्ताव करेंगे। वे अधिक कर लगाकर प्रजाको पीड़ा देंगे। द्विज लोग शूद्रोंके मुर्दे ढोने लगेंगे और पति अपनी धर्मपत्नियोंके होते हुए भी व्यभिचारमें फँसकर परायी स्त्रियोंसे संगमन करेंगे। पुत्र पितासे और सारी स्त्रियाँ पतिसे द्वेष करेंगी। सब लोग परस्त्रीलम्पट और पराये धनमें आसक्त होंगे। मछलीके मांससे जीवन-निर्वाह करेंगे और बकरी तथा भेड़का भी दूध दुहेंगे। नारदजी! घोर कलियुगमें सब मनुष्य पापपरायण हो जायँगे। सभी लोग श्रेष्ठ पुरुषोंमें दोष देखेंगे और उनका उपहास करेंगे। नदियोंके तटपर भी कुदालसे खोदकर अनाज बोयेंगे। पृथ्वी फलहीन हो जायगी। बीज और फूल भी नष्ट हो जायँगे। युवतियाँ प्रायः वेश्याओंके लावण्य और स्वभावको अपने लिये आदर्श मानकर उसकी अभिलाषा करेंगी। ब्राह्मण धर्म बेचनेवाले होंगे, स्त्रियाँ अपना शरीर बेचेंगी अर्थात् वेश्यावृत्ति करेंगी तथा दूसरे द्विज वेदोंका विक्रय करनेवाले और शूद्रोंके-से आचरणमें तत्पर होंगे। लोग श्रेष्ठ पुरुषों और विधवाओंके भी धन चुरा लेंगे। ब्राह्मण धनके लिये लोलुप होकर व्रतोंका पालन नहीं करेंगे। लोग व्यर्थके वाद-विवादमें फँसकर धर्मका आचरण छोड़ बैठेंगे। द्विजलोग केवल दम्भके लिये पितरोंका श्राद्ध आदि कार्य करेंगे। नीच मनुष्य अपात्रोंको ही दान देंगे और केवल दूधके लोभसे गौओंसे प्रेम करेंगे। विप्रगण स्नान-शौच आदि क्रिया छोड़ देंगे। अधम द्विज असमयमें (मुख्यकाल बिताकर) संध्या आदि कर्म करेंगे। मनुष्य साधुओं तथा ब्राह्मणोंकी निन्दामें तत्पर रहेंगे।

नारदजी! प्रायः किसीका मन भगवान् विष्णुके भजनमें नहीं लगेगा। द्विजलोग यज्ञ नहीं करेंगे तथा दुष्ट राजकर्मचारी धनके लिये द्विजोंको भी पीटेंगे। मुने! घोर कलियुगमें सब लोग दानसे मुँह मोड़ लेंगे और ब्राह्मण पतितोंका दिया हुआ दान भी ग्रहण कर लेंगे। कलिके प्रथम पादमें भी मनुष्य भगवान् विष्णुकी निन्दा करेंगे और युगके अन्तिम भागमें तो कोई भगवान्‌का नामतक नहीं लेगा। कलिमें द्विजलोग शूद्रोंकी स्त्रियोंसे संगम करेंगे, विधवाओंसे व्यभिचारके लिये लालायित होंगे और शूद्रोंके घरकी बनी हुई रसोई भोजन करेंगे। वेदोक्त सन्मार्गका त्याग करके कुमार्गपर चलने लगेंगे और चारों आश्रमोंकी निन्दा करते हुए पाखण्डी हो जायँगे। शूद्रलोग द्विजोंकी सेवा नहीं करेंगे। और पाखण्ड-चिह्न धारण करके वे द्विजातियोंके धर्मको अपनायेंगे। गेरुआ वस्त्र पहने, जटा बढ़ाये और शरीरमें भस्म रमाये शूद्रलोग झूठी युक्तियाँ देकर धर्मका उपदेश करेंगे। दूषित अन्तःकरणवाले शूद्र संन्यासी बनेंगे। मुने! कलियुगमें लोग केवल सूदसे जीवन-निर्वाह करनेवाले होंगे। धर्महीन अधम मनुष्य पाखण्डी, कापालिक एवं भिक्षु बनेंगे। द्विजश्रेष्ठ! शूद्र ऊँचे आसनपर बैठकर द्विजोंको धर्मका उपदेश करेंगे। ये तथा और भी बहुत-से पाखण्ड-मत प्रचलित होंगे, जो प्रायः वेदोंकी निन्दा करेंगे। कलिमें प्रायः धर्मके विध्वंसक मनुष्य गाने-बजानेमें कुशल तथा शूद्रोंके धर्मका आश्रय लेनेवाले होंगे। सबके पास थोड़ा धन होगा। प्रायः सभी व्यर्थके चिह्न धारण करनेवाले और वृथा अहंकारसे दूषित होंगे। कलिके नीच मनुष्य दूसरोंका धन हड़पनेवाले होंगे। प्रायः सभी सदा दान लेंगे और उनका स्वभाव जगत्‌को बुरे मार्गपर ले जानेवाला होगा। सभी अपनी प्रशंसा और दूसरोंकी निन्दा करनेवाले होंगे। नारदजी! कलियुगमें अधर्म ही लोगोंका भाई-बन्धु होगा। वे सब-के-सब विश्वासघाती, क्रूर और दयाधर्मसे शून्य होंगे। विप्रवर! घोर कलियुगमें बड़ी-से-बड़ी आयु सोलह वर्षकी होगी और पाँच वर्षकी कन्याके बच्चा पैदा होगा। लोग सात या आठ वर्षकी अवस्थामें जवान कहलायेंगे। सभी अपने कर्मका त्याग करनेवाले, कृतघ्न तथा धर्मयुक्त आजीविकाको भंग करनेवाले होंगे। कलियुगमें द्विज प्रतिदिन भीख माँगनेवाले होंगे। वे दूसरोंका अपमान करेंगे और दूसरोंके ही घरमें रहकर प्रसन्न होंगे। इसी प्रकार दूसरोंकी निन्दामें तत्पर तथा व्यर्थ विश्वास दिलानेवाले लोग सदा पिता, माता और पुत्रोंकी निन्दा करेंगे। वाणीसे धर्मकी बात करेंगे, किंतु उनका मन पापमें आसक्त होगा। धन, विद्या और जवानीके नशेमें मतवाले हो सब लोग दुःख भोगते रहेंगे। रोग-व्याधि, चोर-डाकू तथा अकालसे पीड़ित होंगे। सबके मनमें अत्यन्त कपट भरा होगा और अपने अपराधका विचार न करके स्वयं ही दूसरोंपर दोषारोपण करेंगे। पापी मनुष्य धर्ममार्गका सञ्चालन करनेवाले धर्मपरायण पुरुषका तिरस्कार करेंगे। कलियुग आनेपर म्लेच्छ जातिके राजा होंगे। शूद्र लोग भिक्षासे जीवन-निर्वाह करनेवाले होंगे और द्विज उनकी सेवा-शुश्रूषामें संलग्न रहेंगे। इस संकटकालमें न कोई शिष्य होगा, न गुरु; न पुत्र होगा, न पिता और न पत्नी होगी न पति। कलियुगमें धनीलोग भी याचक होंगे और द्विजलोग रसका विक्रय करेंगे। धर्मका चोला पहने हुए मुनिवेषधारी द्विज नहीं बेचनेयोग्य वस्तुओंका विक्रय तथा अगम्या स्त्री

साथ समागम करेंगे। मुने! नरकके अधिकारी द्विज वेदों और धर्मशास्त्रोंकी निन्दा करते हुए शूद्रवृत्तिसे ही जीवन-निर्वाह करेंगे।

कलियुगमें सभी मनुष्य अनावृष्टिसे भयभीत होकर आकाशकी ओर आँखें लगाये रहेंगे और क्षुधाके भयसे कातर बने रहेंगे। उस अकालके समय मनुष्य कन्द, पत्ते और फल खाकर रहेंगे और अनावृष्टिसे अत्यन्त दुःखित होकर आत्मघात कर लेंगे। कलियुगमें सब लोग कामवेदनासे पीडित, नाटे शरीरवाले, लोभी, अधर्मपरायण, मन्दभाग्य तथा अधिक संतानवाले होंगे। स्त्रियाँ अपने शरीरका ही पोषण करनेवाली तथा वेश्याओंके सौन्दर्य और स्वभावको अपनानेवाली होंगी। वे पतिके वचनोका अनादर करके सदा दूसरोंके घरमें निवास करेंगी। अच्छे कुलोकी स्त्रियाँ भी दुराचारिणी होकर सदा दुराचारियोंसे ही स्नेह करेंगी और अपने पुरुषोंके प्रति असद्व्यवहार करनेवाली होंगी। चोर आदिके भयसे डरे हुए लोग अपनी रक्षाके लिये काष्ठ-यन्त्र अर्थात् काठके मजबूत किवाड़ बनायेंगे। दुर्भिक्ष और करकी पीड़ासे अत्यन्त पीडित हुए मनुष्य दुखी होकर गेहूँ और जौ आदि अन्नसे सम्पन्न देशमें चले जायँगे। लोग हृदयमे निषिद्ध कर्मका सकल्प लेकर ऊपरसे शुभ वचन बोलेंगे। अपने कार्यकी सिद्धि होनेतक ही लोग बन्धुता (सौहार्द) प्रकट करेंगे। संन्यासी भी मित्र आदिके स्नेह-सम्बन्धसे बँधे रहेंगे और अन्न-संग्रहके लिये लोगोंको चेले बनायेंगे। स्त्रियाँ दोनों हाथोंसे सिर खुजलाती हुई बडोकी तथा पतिकी आज्ञाका उल्लङ्घन करेंगी। जिस समय द्विज पाखण्डी लोगोंका साथ करके पाखण्डपूर्ण बातें करनेवाले हो जायँगे, उस समय कलियुगका वेग और बढ़ेगा। जब द्विज-जातिकी प्रजा यज्ञ और होम करना छोड देगी, उसी समयसे बुद्धिमान् पुरुषोंको कलियुगकी वृद्धिका अनुमान कर लेना चाहिये।

नारदजी! कलियुगके बढ़नेसे पापकी वृद्धि होगी और छोटे बालकोंकी भी मृत्यु होने लगेगी। सम्पूर्ण धर्मोंके नष्ट हो जानेपर यह जगत् श्रीहीन हो जायगा। विप्रवर! इस प्रकार मैंने तुम्हें कलिका स्वरूप बतलाया है। जो लोग भगवान् विष्णुकी भक्तिमे तत्पर हैं, उन्हें यह कलियुग कभी बाधा नहीं देता। सत्ययुगमें तपस्याको, त्रेतामें भगवान्के ध्यानको,

द्वापरमें यज्ञको और कलियुगमें एकमात्र दानको ही श्रेष्ठ बताया गया है। सत्ययुगमे जो पुण्यकर्म दस वर्षोंमें सिद्ध होता है, त्रेतामें एक वर्ष और द्वापरमें एक मासमें जो धर्म सफल होता है, वही कलियुगमें एक ही दिन-रातमें सिद्ध हो जाता है। सत्ययुगमें ध्यान, त्रेतामें यज्ञोंद्वारा यजन और द्वापरमें भगवान्का पूजन करके मनुष्य जिस फलको पाता है, उसे ही कलियुगमें केवल भगवान् केशवका कीर्तन करके पा लेता है *। जो मनुष्य दिन-रात भगवान् विष्णुके नामका कीर्तन अथवा उनकी पूजा करते हैं, उन्हे कलियुग बाधा नहीं देता है। जो मानव निष्काम अथवा सकामभावसे 'नमो नारायणाय'का कीर्तन करते हैं, उनको कलियुग बाधा नहीं देता। घोर कलियुग आनेपर भी सम्पूर्ण जगत्के आधार एवं परमार्थस्वरूप भगवान् विष्णुका ध्यान करनेवाला कभी कष्ट नहीं पाता। अहो! सम्पूर्ण धर्मोंसे रहित भयंकर कलियुग प्राप्त होनेपर जिन्होंने एक बार भी भगवान् केशवका पूजन कर लिया है, वे बड़े सौभाग्यशाली हैं। कलियुगमे वेदोक्त कर्मोंका अनुष्ठान करते समय जो कमी-बेशी रह जाती

---

* यत्कृते दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां शरदा च यत्।
द्वापरे यच्च मासेन ह्यहोरात्रेण तत्कलौ॥
ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्॥
(ना० पूर्व० ४१। ९१-९२)

है, उस दोषके निवारणपूर्वक कर्ममें पूर्णता लानेवाला यहाँ केवल भगवान्‌का स्मरण ही है। जो लोग प्रतिदिन 'हरे! केशव! गोविन्द! जगन्मय! वासुदेव!' इस प्रकार कीर्तन करते हैं, उन्हें कलियुग बाधा नहीं पहुँचाता*। अथवा जो 'शिव! शङ्कर! रुद्र! ईश! नीलकण्ठ! त्रिलोचन!' इत्यादि महादेवजीके नामोंका उच्चारण करते हैं, उन्हें भी कलियुग बाधा नहीं देता। नारदजी! 'महादेव! विरूपाक्ष! गङ्गाधर! मृड! और अव्यय!' इस प्रकार जो शिव-नामोंका कीर्तन करते हैं, वे कृतार्थ हो जाते हैं—अथवा जो 'जनार्दन! जगन्नाथ! पीताम्बरधर! अच्युत!' इत्यादि विष्णु-नामोंका उच्चारण करते हैं, उन्हें इस संसारमे कलियुगसे भय नहीं है। विप्रवर! घोर कलियुग आनेपर संसारमें मनुष्योंको पुत्र, स्त्री और धन आदि तो सुलभ है, किंतु भगवान् विष्णुकी भक्ति दुर्लभ है। जो वेदमार्गसे बहिष्कृत, पापकर्मपरायण तथा मानसिक शुद्धिसे रहित हैं, ऐसे लोगोंका उद्धार केवल भगवान्‌के नामसे ही होता है। मनुष्यको चाहिये कि अपने अधिकारके अनुसार यथाशक्ति सम्पूर्ण वैदिक कर्मोंका अनुष्ठान करके उन्हें—भगवान् महाविष्णुको समर्पित कर दे और स्वयं उन्हीं नारायणदेवकी शरण होकर रहे। परमात्मा महाविष्णुको समर्पित किये हुए कर्म उनके स्मरणमात्रसे निश्चय ही पूर्ण हो जाते हैं। नारदजी! जो भगवान् विष्णुके स्मरणमें लगे हैं और जिनका चित्त भगवान् शिवके नाममें अनुरक्त है, उनके समस्त कर्म अवश्य पूर्ण हो जाते हैं। भगवन्नाममें अनुरक्तचित्तवाले पुरुषोंका अहोभाग्य है, अहोभाग्य है। वे देवताओंके लिये भी पूज्य हैं। इसके अतिरिक्त अन्य अधिक बातें करनेसे क्या लाभ? अतः मैं सम्पूर्ण लोकोंके हितकी ही बात कहता हूँ कि भगवन्नामपरायण मनुष्योंको कलियुग कभी बाधा नहीं दे सकता। भगवान् विष्णुका नाम ही, नाम ही मेरा जीवन है। कलियुगमें दूसरी कोई गति नहीं है, नहीं है, नहीं है।†

प्रथम पाद सम्पूर्ण

---

* न्यूनातिरिक्तदोषाणां कलौ वेदोक्तकर्मणाम्। हरिस्मरणमेवात्र सम्पूर्णत्वविधायकम्॥
हरे केशव गोविन्द वासुदेव जगन्मय। इतीरयन्ति ये नित्यं न हि तान्बाधते कलिः॥
(ना० पूर्व० ४१। ९९-१००)

† हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्। कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥
(ना० पूर्व० ४१। ११५)

द्वितीय पाद

सृष्टितत्त्वका वर्णन, जीवकी सत्ताका प्रतिपादन और आश्रमोंके आचारका निरूपण

श्रीनारदजीने पूछा—सनन्दनजी ! इस स्थावर-जङ्गमरूप जगत्की उत्पत्ति किससे हुई है और प्रलयके समय यह किसमें लीन होता है ?

श्रीसनन्दनजी बोले—नारदजी ! सुनो, मैं भरद्वाजके पूछनेपर भृगुजीने जो शास्त्र बताया है, वही कहता हूँ ।

भृगुजी बोले—भरद्वाज ! महर्षियोंने जिन पूर्वपुरुषको मानस-नामसे जाना और सुना है, वे आदि-अन्तसे रहित देव 'अव्यक्त' नामसे विख्यात हैं । वे अव्यक्त पुरुष शाश्वत, अक्षय एवं अविनाशी हैं; उन्हींसे उत्पन्न होकर सम्पूर्ण भूत-प्राणी जन्म और मृत्युको प्राप्त होते हैं । उन स्वयम्भू भगवान् नारायणने अपनी नाभिसे तेजोमय दिव्य कमल प्रकट किया । उस कमलसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए जो वेदस्वरूप हैं, उनका दूसरा नाम विधि है । उन्होंने ही सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीरकी रचना की है । इस प्रकार इस विराट् विश्वके रूपमें साक्षात् भगवान् विष्णु ही विराज रहे हैं, जो अनन्त नामसे विख्यात हैं । वे सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मारूपसे स्थित हैं । जिनका अन्तःकरण शुद्ध नहीं है, ऐसे पुरुषोंके लिये उनका ज्ञान होना अत्यन्त कठिन है ।

भरद्वाजजीने पूछा—जीव क्या है और कैसा है ? यह मैं जानना चाहता हूँ । रक्त और मांसके संघात (समूह) तथा मेद-स्नायु और अस्थियोंके संग्रहरूप इस शरीरके नष्ट होनेपर तो जीव कहीं नहीं दिखायी देता ।

भृगुने कहा—मुने ! साधारणतया पाँच भूतोंसे निर्मित किसी भी शरीरको यहाँ एकमात्र अन्तरात्मा धारण करता है । वही गन्ध, रस, शब्द, स्पर्श, रूप तथा अन्य गुणोंका भी अनुभव करता है । अन्तरात्मा सम्पूर्ण अङ्गोंमे व्याप्त रहता है । वही इसमें होनेवाले सुख-दुःखका भी अनुभव करता है । इस शरीरके पाँचों तत्त्व जब अलग-अलग हो जाते हैं, तब वह इस देहको त्यागकर अदृश्य हो जाता है । चेतनता जीवका गुण बतलाया जाता है । वह स्वयं चेष्टा करता है और सबको चेष्टामें लगाता है । मुने ! देहका नाश होनेसे जीवका नाश नहीं होता । जो लोग देहके नाशसे जीवके नाशकी बात कहते हैं, वे अज्ञानी हैं और उनका यह कथन मिथ्या है । जीव तो इस देहसे दूसरी देहमें चला जाता है । तत्त्वदर्शी पुरुष अपनी तीव्र और सूक्ष्म बुद्धिसे ही उसका दर्शन करते हैं । विद्वान् पुरुष शुद्ध एवं सात्त्विक आहार करके सदा रातके पहले और पिछले पहरमें योगयुक्त तथा विशुद्ध चित्त होकर अपने भीतर ही आत्माका दर्शन करता है ।

मनुष्यको सब प्रकारके उपायोंसे लोभ और क्रोधको काबूमें करना चाहिये । सब ज्ञानोंमें यही पवित्र ज्ञान है और यही आत्मसंयम है । लोभ और क्रोध सदा मनुष्यके श्रेयका विनाश करनेको उद्यत रहते हैं । अतः सर्वथा उनका त्याग करना चाहिये । क्रोधसे सदा लक्ष्मीको बचावे और मात्सर्यसे तपकी रक्षा करे । मान और अपमानसे विद्याको बचावे तथा प्रमादसे आत्माकी रक्षा करे । ब्रह्मन् ! जिसके सभी कार्य कामनाओंके बन्धनसे रहित होते हैं तथा त्यागके लिये जिसने अपने सर्वस्वकी आहुति दे दी है, वही त्यागी और बुद्धिमान् है । किसी भी प्राणीकी हिंसा न करे, सबसे मैत्रीभाव निभाता रहे और संग्रहका त्याग करके बुद्धिके द्वारा अपनी इन्द्रियोंको जीते । ऐसा कार्य करे जिसमें शोकके लिये स्थान न हो तथा जो इहलोक और परलोकमें भी भयदायक न हो । सदा तपस्यामें लगे रहकर इन्द्रियोंका दमन तथा मनका निग्रह करते हुए मुनिवृत्तिसे रहे । आसक्तिके जितने विषय हैं, उन सबमें अनासक्त रहे और जो किसीसे पराजित नहीं हुआ, उस परमेश्वरको जीतने (जानने या प्राप्त करने) की इच्छा रक्खे । इन्द्रियोंसे जिन-जिन वस्तुओंका ग्रहण होता है, वह सब व्यक्त है । यही व्यक्तकी परिभाषा है । जो अनुमानके द्वारा कुछ-कुछ जानी जाय उस इन्द्रियातीत वस्तुको अव्यक्त जानना चाहिये । जबतक (ज्ञानकी कमीके कारण) पूरा विश्वास न हो जाय तबतक ज्ञेयस्वरूप परमात्माका मनन करते रहना चाहिये और पूर्ण विश्वास हो जानेपर मनको उसमें लगाना चाहिये अर्थात् ध्यान करना चाहिये । प्राणायामके द्वारा मनको वशमें करे और संसारकी किसी भी वस्तुका चिन्तन न करे । ब्रह्मन् ! सत्य ही व्रत, तपस्या तथा पवित्रता है, सत्य ही प्रजाकी सृष्टि करता है । सत्यसे ही यह लोक धारण किया जाता है और सत्यसे ही मनुष्य

स्वर्गलोकमें जाते है *। असत्य तमोगुणका स्वरूप है, तमोगुण मनुष्यको नीचे (नरकमें) ले जाता है। तमोगुणसे ग्रस्त मनुष्य अज्ञानान्धकारसे आवृत होनेके कारण ज्ञानमय प्रकाशको नहीं देख पाते। नरकको तम और दुष्प्रकाश कहते हैं। इहलोककी सृष्टि शारीरिक और मानसिक दुःखोंसे परिपूर्ण है। यहाँ जो सुख हैं वे भी भविष्यमें दुःखको ही लानेवाले हैं। जगत्‌को इन सुख-दुःखोंसे सयुक्त देखकर विद्वान् पुरुष मोहित नहीं होते। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह दुःखसे छूटनेका प्रयत्न करे। प्राणियोंको इहलोक और परलोकमें प्राप्त होनेवाला जो सुख है, वह अनित्य है। मोक्षरूपी फलसे बढ़कर कोई सुख नहीं है। अतः उसीकी अभिलाषा करनी चाहिये। धर्मके लिये जो शम-दमादि सद्गुणोंका सम्पादन किया जाता है, उसका उद्देश्य भी सुखकी प्राप्ति ही है। सुखरूप प्रयोजनकी सिद्धिके लिये ही सभी कर्मोंका आरम्भ किया जाता है। किंतु अनृत (झूठ) से तमोगुणका प्रादुर्भाव होता है। फिर उस तमोगुणसे ग्रस्त मनुष्य अधर्मके ही पीछे चलते हैं, धर्मपर नहीं चलते। वे क्रोध, लोभ, मोह, हिंसा और असत्य आदिसे आच्छादित होकर न तो इस लोकमे सुख पाते हैं, न परलोकमें ही। नाना प्रकारके रोग, व्याधि और उग्र तापसे पीडित होते है। वध, बन्धनजनित क्लेश आदिसे तथा भूख, प्यास और परिश्रमजनित संतापसे संतप्त रहते हैं। वर्षा, आँधी, अधिक गरमी और अधिक सर्दीके भयसे चिन्तित होते हैं। शारीरिक दुःखोंसे दुखी तथा बन्धु-धन आदिके नाश अथवा वियोगसे प्राप्त होनेवाले मानसिक शोकोंसे व्याकुल रहते हैं और जरा तथा मृत्युजनित कष्टसे या अन्य इसी प्रकारके क्लेशोसे पीडित रहा करते हैं। स्वर्गलोकमें जबतक जीव रहता है सदा उसे सुख ही मिलता है। इस लोकमें सुख और दुःख दोनों हैं। नरकमें केवल दुःख-ही-दुःख बताया गया है। वास्तविक सुख तो वह परमपद-स्वरूप मोक्ष ही है।

भरद्वाजजी बोले—ब्रह्मर्षियोंने पूर्वकालमे जो चार आश्रमोंका विधान किया है, उन आश्रमोंके अपने-अपने आचार क्या है ? यह बतानेकी कृपा करे।

भृगुजीने कहा—मुने ! जगत्‌का हित-साधन करनेवाले भगवान् ब्रह्माजीने पहलेसे ही धर्मकी रक्षाके लिये चार आश्रमोंका उपदेश किया है। उनमेंसे गुरुकुलमें निवास ही पहला आश्रम बतलाया जाता है। इस आश्रममें शौच, संस्कार, नियम तथा व्रतके नियमपूर्वक पालनमें चित्त लगाकर दोनों संध्याओंके समय उपासना करनी चाहिये। सूर्यदेव तथा अग्निदेवका उपस्थान करे। आलस्य छोड़कर गुरुको प्रणाम करे। गुरुमुखसे वेदका श्रवण और अभ्यास करके अपने अन्तःकरणको पवित्र करे। तीनों समय स्नान करके ब्रह्मचर्यपालन, अग्निहोत्र तथा गुरु-शुश्रूषा करे। प्रतिदिन भिक्षा माँगे और भिक्षामें जो कुछ प्राप्त हो, वह सब गुरुके अर्पित कर दे तथा अपने अन्तरात्माको भी गुरुके चरणोंमें अर्पित कर दे। गुरुके वचन और आज्ञाका पालन करनेमें कभी प्रतिकूलता न दिखाये—सदा आज्ञापालनके लिये तैयार रहे तथा गुरुकी कृपासे प्राप्त हुए वेद-शास्त्रोंके स्वाध्यायमें तत्पर रहे। इस विषयमें यह श्लोक प्रसिद्ध है—जो द्विज गुरुकी आराधना करके वेदका ज्ञान प्राप्त करता है, उसे स्वर्गरूप फलकी उपलब्धि होती है और उसका सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध हो जाता है।

दूसरे आश्रमको गार्हस्थ्य कहते हैं। उसके सदाचारका जो स्वरूप है, उसकी पूर्णरूपसे व्याख्या करेंगे। जो गुरुकुलसे लौटे हुए सदाचारपरायण स्नातक हैं और धर्मानुष्ठानका फल चाहते हैं, उनके लिये गृहस्थ-आश्रमका विधान है। इसमे धर्म, अर्थ और काम—तीनोंकी प्राप्ति होती है। यहाँ त्रिवर्ग-साधनकी अपेक्षा रखकर निन्दित कर्मके परित्यागपूर्वक उत्तम (न्याययुक्त) कर्मसे धनोपार्जन करे। वेदोंके स्वाध्यायद्वारा उपलब्ध हुई प्रतिष्ठासे अथवा ब्रह्मर्षिनिर्मित मार्गसे प्राप्त हुए धनके द्वारा या समुद्रसे उपलब्ध हुए द्रव्यद्वारा अथवा नियमोंके अभ्यास तथा देवताके कृपा-प्रसादसे मिली हुई सम्पत्तिद्वारा गृहस्थ पुरुष अपनी गृहस्थी चलावे। गृहस्थ-आश्रमको सम्पूर्ण आश्रमोंका मूल कहते हैं। गुरुकुलमें निवास करनेवाले ब्रह्मचारी, सन्यासी तथा अन्य लोग जो सङ्कल्पित व्रत, नियम एवं धर्मका अनुष्ठान करनेवाले हैं, उन सबका आधार गृहस्थ-आश्रम है। उनके अतिरिक्त भी गृहस्थ-आश्रममे भिक्षा और बलिवैश्व आदिका वितरण चलता रहता है। वानप्रस्थोंके लिये भी आवश्यक द्रव्य-सामग्री गृहस्थ-आश्रमसे ही प्राप्त होती है। प्रायः ये श्रेष्ठ पुरुष उत्तम पथ्य अन्नका सेवन करते हुए स्वाध्यायके प्रसङ्गसे अथवा तीर्थयात्राके लिये देश-दर्शनके निमित्त इस पृथ्वीपर घूमते रहते हैं। गृहस्थको उचित है कि उठकर उनकी अगवानी करे, उनके चरणोंमें

---

* सत्य व्रत तप. शौच सत्य विसृजते प्रजा ॥
सत्येन धार्यते लोक स्व. सत्येनैव गच्छति ।
(ना० पूर्व० ४३ । ८१-८२)

मस्तक झुकाये, उनसे ईर्ष्यारहित वचन बोले, उनके लिये आवश्यक वस्तुओंका दान करे, उन्हें सुख और सत्कारपूर्वक

आसन दे तथा उनके लिये सुखसे सोने और खाने-पीनेकी सुव्यवस्था करे। इस विषयमें यह श्लोक है—जिसके घरसे अतिथि निराश होकर लौट जाता है, उसे वह अपना पाप दे उसका पुण्य लेकर चला जाता है *। इसके सिवा, इस आश्रममें यज्ञ-कर्मोंद्वारा देवता तृप्त होते हैं, श्राद्ध एवं तर्पणसे पितरोंकी तृप्ति होती है, विद्याके बार-बार श्रवण और धारणसे ऋषि संतुष्ट होते हैं और संतानोत्पादनसे प्रजापतिको प्रसन्नता होती है। इस विषयमें ये दो श्लोक हैं—इस आश्रममें सम्पूर्ण भूतोंके लिये वात्सल्यका भाव होता है। देवता और अतिथियोंका वाणीद्वारा स्तवन किया जाता है। इसमें दूसरोंको सताना, कष्ट देना या कठोरता करना निन्दित है। इसी तरह दूसरोंकी अवहेलना तथा अपनेमें अहंकार और दम्भका होना भी निन्दित ही माना गया है। अहिंसा, सत्य और अक्रोध—ये सभी आश्रमके लिये तप हैं। जिसके गृहस्थ-आश्रममें प्रतिदिन धर्म, अर्थ, कामरूप त्रिवर्गका सम्पादन होता है, वह इस लोकमें सुखका अनुभव करके श्रेष्ठ पुरुषोंकी गतिको प्राप्त होता है। जो गृहस्थ उञ्छवृत्तिसे रहकर अपने धर्मके पालनमें तत्पर है और काम्यसुखको त्याग चुका है, उसके लिये स्वर्गलोक दुर्लभ नहीं है।

वानप्रस्थी भी धर्मका अनुष्ठान करते हुए पुण्य तीर्थों तथा नदियों और झरनोंके आसपास रहते हैं; वनोंमें रहकर तपस्या करते और घूमते हैं। ग्रामीण वस्त्र, भोजन और उपभोगका वे त्याग कर देते हैं। जंगली अन्न, फल, मूल और पत्तोंका परिमित एवं नियमित भोजन करते हैं। अपने स्थानपर ही बैठते हैं और पृथ्वी, पत्थर, सिकता, कंकड़ तथा बालूपर सो जाते हैं। काश, कुश, मृगचर्म तथा वल्कलसे ही अपने शरीरको ढकते हैं। केश, दाढ़ी, मूँछ, नख तथा लोम धारण किये रहते हैं। नियत समयपर स्नान करते और शुष्क बलिवैश्व एवं होमका शास्त्रोक्त समयपर अनुष्ठान करते हैं। समिधा, कुशा, पुष्प-संचय तथा सम्मार्जन आदि कार्योंमें ही ही विश्राम पाते हैं। सर्दी, गरमी तथा वायुके आघातसे उनके शरीरकी सारी त्वचाएँ फटी होती हैं। अनेक प्रकारके नियम और योगचर्याके अनुष्ठानसे उनके शरीरका मास और रक्त सूख जाता है और वे अस्थि-चर्मावशिष्ट होकर धैर्यपूर्वक सत्त्वगुणके योगसे शरीर धारण करते हैं। जो ब्रह्मर्षियोंद्वारा विहित इस व्रतचर्याका नियमपूर्वक पालन करता है, वह अग्निकी भाँति सम्पूर्ण दोषोंको जला देता है और दुर्जय लोकोंपर अधिकार प्राप्त कर लेता है।

अब सन्यासियोंका आचार बतलाया जाता है। धन, स्त्री तथा राजोचित सामग्रियोंमें जो अपना स्नेह बना हुआ है, उस स्नेह-बन्धनको काटकर तथा अग्निहोत्र आदि कर्मोंका विधिपूर्वक त्याग करके विरक्त एवं जिज्ञासु पुरुष संन्यासी होते हैं। वे ढेले, पत्थर और सुवर्णको समान समझते हैं। धर्म, अर्थ और काममयी प्रवृत्तियोंमें उनकी बुद्धि आसक्त नहीं होती। शत्रु, मित्र और उदासीनोंके प्रति उनकी दृष्टि समान रहती है। वे स्थावर, जरायुज, अण्डज और स्वेदज प्राणियोंके प्रति मन, वाणी और क्रियाद्वारा कभी द्रोह नहीं करते। उनका कोई एक निवासस्थान नहीं होता। वे पर्वत, नदी-तट, वृक्षमूल तथा देवमन्दिर आदि स्थानोंमें ठहरते और विचरते हुए कभी किसी समूहके पास जाकर रहते हैं अथवा नगर या गाँवमें विश्राम करते हैं। क्रोध, दर्प, लोभ, मोह, कृपणता, दम्भ, निन्दा तथा अभिमानके कारण उनसे कभी हिंसा नहीं होती। इस विषयमें ये श्लोक हैं—जो मुनि सम्पूर्ण भूतोंको अभयदान देकर स्वच्छन्द विचरता है, उसको कभी उन सब

* अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते।
स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति॥
(ना० पूर्व० ४३। ११३)

प्राणियोंसे भय नहीं होता *। ब्राह्मण संन्यासी अग्निहोत्रको अपने शरीरमें स्थापित करके शरीररूपी अग्निको तृप्त करनेके लिये भिक्षान्नरूपी हविष्यकी आहुति अपने मुखमें डालता है और उसी शरीरसंचित अग्निद्वारा उत्तम लोकोंमें जाता है। अपने संकल्पके अनुसार बुद्धिको संयममें रखनेवाला जो पवित्र ब्राह्मण शास्त्रोक्तविधिसे सन्यास-आश्रममें विचरता है, वह ईंधनरहित अग्निकी भाँति परम शान्तिमय ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है।

उत्तम लोक, अध्यात्मतत्त्व तथा ध्यानयोगका वर्णन

भरद्वाजजी बोले—महर्षे! इस लोकसे उत्तम एक लोक यानी प्रदेश सुना जाता है। मैं उस उत्तम लोकको जानना चाहता हूँ। आप उसके विषयमें बतलानेकी कृपा करें।

भृगुजीने कहा—उत्तरमें हिमालयके पास सर्वगुण-सम्पन्न पुण्यमय प्रदेश है, जो पुण्यदायक, क्षेमकारक और कमनीय है। वही 'उत्तम लोक' कहा जाता है। वहाँके मनुष्य पापकर्मसे रहित, पवित्र, अत्यन्त निर्मल, लोभ-मोहसे शून्य तथा उपद्रवरहित हैं। वह प्रदेश स्वर्गके समान है। वहाँ सात्त्विक शुभ गुण बताये गये हैं। वहाँ समय आनेपर ही मृत्यु होती है (अकाल मृत्यु नहीं होती)। रोग वहाँके मनुष्योंका स्पर्श नहीं करता। वहाँ किसीके मनमें परायी स्त्रीके लिये लोभ नहीं होता। सब लोग अपनी ही स्त्रीसे प्रेम रखनेवाले हैं। उस देशमें धनके लिये दूसरोंका वध नहीं किया जाता। उस प्रदेशमें अधर्म अच्छा नहीं माना जाता। किसीको धर्मविषयक संदेह नहीं होता। वहाँ किये हुए कर्मका फल प्रत्यक्ष मिलता है। इस लोकमें तो किन्हींके पास जीवन-निर्वाहमात्रके लिये सब सामग्री उपलब्ध है और कोई-कोई बड़े परिश्रमसे जीविका चलाते हैं। यहाँ कुछ लोग धर्मपरायण हैं, कुछ लोग शठता करनेवाले हैं, कोई सुखी है, कोई दुखी; कोई धनवान् है, कोई निर्धन। इस लोकमें परिश्रम, भय, मोह और तीव्र क्षुधाका कष्ट प्राप्त होता है। मनुष्योंके मनमें धनके लिये लोभ रहता है, जिससे अज्ञानी पुरुष मोहित होते हैं। कपट, शठता, चोरी, परनिन्दा, दोषदृष्टि, दूसरोंपर चोट करना, हिंसा, चुगली तथा मिथ्याभाषण—इन दुर्गुणोंका जो सेवन करता है, उसकी तपस्या नष्ट होती है। जो विद्वान् इनका आचरण नहीं करता उसकी तपस्या बढ़ती है। इस लोकमें धर्म और अधर्म-सम्बन्धी कर्मके लिये नाना प्रकारकी चिन्ता करनी पड़ती है। लोकमें यह कर्मभूमि है। यहाँ शुभ और अशुभ कर्म करके मनुष्य शुभ कर्मोंका शुभ फल और अशुभ कर्मोंका अशुभ फल पाता है। पूर्वकालमें यहाँ प्रजापति ब्रह्मा, अन्यान्य देवता तथा महर्षियोंने यज्ञ और तपस्या करके पवित्र हो ब्रह्मलोक प्राप्त किया था। पृथ्वीका उत्तरी भाग सबसे अधिक पवित्र और शुभ है। यहाँ जो पुण्य कर्म करनेवाले मनुष्य हैं, वे यदि सत्कार (शुभ फल) चाहते हैं तो पृथ्वीके उस भागमें जन्म पाते हैं। कुछ लोग कर्मानुसार पशु-पक्षी आदिकी योनियोंमें जन्म लेते हैं; दूसरे लोग क्षीणायु होकर यहीं भूतलपर नष्ट हो जाते हैं। जो एक दूसरेको खा जानेके लिये उद्यत रहते हैं, ऐसे लोभ और मोहमें डूबे हुए मनुष्य यहीं चक्कर लगाते रहते हैं, उत्तर दिशाको नहीं जाते। जो गुरुजनोंकी सेवा करते और इन्द्रियसंयमपूर्वक ब्रह्मचर्यके पालनमें तत्पर होते हैं, वे मनीषी पुरुष सम्पूर्ण लोकोंका मार्ग जानते हैं। इस प्रकार मैंने ब्रह्माजीके बताये हुए धर्मका संक्षेपसे वर्णन किया है। जो जगत्के धर्म और अधर्मको जानता है, वही बुद्धिमान् है।

भरद्वाजजीने कहा—तपोधन! पुरुषके शरीरमें अध्यात्म-नामसे जिस वस्तुका चिन्तन किया जाता है, वह अध्यात्म क्या है और कैसा है। यह मुझे बताइये।

भृगुजी बोले—ब्रह्मर्षे! जिस अध्यात्मके विषयमें पूछ रहे हो, उसकी व्याख्या करता हूँ। तात! वह अतिशय कल्याणकारी सुखस्वरूप है। अध्यात्मज्ञानका जो फल मिलता है—वह है सम्पूर्ण प्राणियोंका हित। पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और पाँचवाँ तेज—ये पाँच महाभूत हैं, जो सब प्राणियोंकी

* अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा यश्चरते मुनिः। न तस्य सर्वभूतेभ्यो भयमुत्पद्यते क्वचित्॥ (महा० पूर्व० [illegible])

उत्पत्ति और लयके स्थान हैं। जो भूत जिससे उत्पन्न होते हैं, वे फिर उसीमे लीन हो जाते हैं। जैसे समुद्रसे लहरें उठती हैं और फिर उसीमे लीन हो जाती हैं, उसी प्रकार ये महाभूत क्रमशः अपने-अपने कारणरूप अन्य भूतोंसे उत्पन्न होते और प्रलयकाल आनेपर फिर उन्हींमें लीन हो जाते हैं। जैसे कछुआ अपने अङ्गोंको फैलाकर फिर उन्हें समेट लेता है, उसी प्रकार भूतात्मा परमेश्वर अपने रचे हुए भूतोंको पुनः अपनेमे लीन करते हैं। महाभूत पाँच ही हैं। सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति करनेवाले परमात्माने समस्त प्राणियोमे उन्हीं पाँचों भूतोंको भलीभाँति नियुक्त किया है, किंतु जीव उन परमात्माको नहीं देखता है।

शब्द, कान और शरीरके छिद्र—ये तीनो आकाशसे प्रकट हुए हैं। स्पर्श, चेष्टा और त्वचा—ये तीन वायुके कार्य हैं। रूप, नेत्र और पाक–इन तीन रूपोमे तेजकी उपलब्धि कही जाती है। रस, क्लेद (गीलापन) और जिह्वा—ये तीन जलके गुण बताये गये हैं। गन्ध, नासिका और शरीर–ये तीन भूमिके कार्य हैं। इन्द्रियरूपमे पाँच ही महाभूत हैं और छठा मन है। इस प्रकार श्रोत्रादि पाँच इन्द्रियोंका और मनका ही परिचय दिया गया है। बुद्धिको सातवाँ तत्त्व कहा गया है। क्षेत्रज्ञ आठवाँ है। कान सुननेके लिये और त्वचा स्पर्शका अनुभव करनेके लिये है। रसका आस्वादन करनेके लिये रसना (जिह्वा) और गन्ध ग्रहण करनेके लिये नासिका है। नेत्रका काम देखना है। मन संदेह करता है। बुद्धि निश्चय करनेके लिये है और क्षेत्रज्ञ साक्षीकी भाँति स्थित है। दोनो पैरोंसे ऊपर सिरतक—जो कुछ भी नीचे-ऊपर है, सबको वह क्षेत्रज्ञ ही देखता है। क्षेत्रज्ञ (आत्मा) व्यापक है। इसने इस सम्पूर्ण शरीरको बाहर-भीतरसे व्याप्त कर रक्खा है। पुरुष ज्ञाता है और सम्पूर्ण इन्द्रियाँ उसके लिये ज्ञेय हैं। तम, रज और सत्त्व—ये सारे भाव पुरुषके आश्रित हैं। जो मनुष्य इस अध्यात्मज्ञानको जान लेता है, वह भूतोंके आवागमनका विचार करके धीरे-धीरे उत्तम शान्ति पा लेता है। पुरुष जिससे देखता है, वह नेत्र है। जिससे सुनता है, उसे श्रोत्र (कान) कहते हैं। जिससे सूँघता है, उसका नाम घ्राण (नासिका) है। वह जिह्वासे रसका अनुभव करता है और त्वचासे स्पर्शको जानता है। बुद्धि सदा ज्ञान या निश्चय कराती है। पुरुष जिससे कुछ इच्छा करता है, वह मन है। बुद्धि इन सबका अधिष्ठान है। अतः पाँच विषय और पाँच इन्द्रियाँ उससे पृथक् कही गयी हैं। इन सबका अधिष्ठाता चेतन क्षेत्रज्ञ इनसे नहीं देखा जाता।

प्रीति या प्रसन्नता सत्त्वगुणका कार्य है। शोक रजोगुण और क्रोध तमोगुण है। इस प्रकार ये तीन भाव है। लोकमे जो-जो भाव हैं, वे सब इन तीनो गुणोंमें आबद्ध हैं। सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण सदा प्राणियोके भीतर रहते हैं। इसलिये सब जीवोंमें सात्त्विकी, राजसी और तामसी–यह तीन प्रकारकी अनुभूति देखी जाती है। तुम्हारे शरीर अथवा मनमें जो कुछ प्रसन्नतासे संयुक्त है, वह सब सात्त्विक भाव है। मुनिश्रेष्ठ! जो कुछ भी दुःखसे संयुक्त और मनको अप्रसन्न करनेवाला है, उसे रजोगुणका ही प्रकाश समझो। इससे अतिरिक्त जो कुछ मोहसे संयुक्त हो और उसका आधार व्यक्त न हो तथा जो ज्ञानमें न आता हो, वह तमोगुण है–ऐसा निश्चय करे। हर्ष, प्रीति, आनन्द, सुख एवं चित्तकी शान्ति—इन भावोंको सात्त्विक गुण समझना चाहिये। असंतोष, परिताप, शोक, लोभ तथा असहनशीलता—ये रजोगुणके चिह्न हैं। अपमान, मोह, प्रमाद, स्वप्न, तन्द्रा आदि भाव तमोगुणके ही भिन्न-भिन्न कार्य हैं। जो बहुधा दोषकी ओर जाता है, उस मनके दो स्वरूप हैं—याचना करना और संशय। जिसका मन अपने अधीन है, वह इस लोकमें तो सुखी होता ही है, मरनेके बाद परलोकमें भी उसे सुख मिलता है।

सत्त्व (बुद्धि) तथा क्षेत्रज्ञ (पुरुष) ये दोनों सूक्ष्म हैं। जिसे इन दोनोंका अन्तर (पार्थक्य) ज्ञात हो जाता है, वह भी इहलोक और परलोकमें सुखका भागी होता है। इनमें एक तो गुणोंकी सृष्टि करता है और एक नहीं करता। सत्त्व आदि गुण आत्माको नहीं जानते, किंतु आत्मा सब प्रकारसे गुणोंको जानता है। यद्यपि पुरुष गुणोंका द्रष्टा मात्र है, तथापि बुद्धिके संसर्गसे वह अपनेको उनका स्रष्टा मानता है। इस प्रकार सत्त्व और पुरुषका संयोग हुआ है; किंतु इनका पार्थक्य निश्चित है। जब बुद्धि मनके द्वारा इन्द्रियरूपी घोड़ोंकी रास

खींचती है और भलीभाँति काबूमें रखती है, उस समय आत्मा प्रकाशित होने लगता है। जो मुनि प्राकृत कर्मोंका त्याग करके सदा आत्मामें ही रमण करता है, वह सम्पूर्ण भूतोंका आत्मा होकर उत्तम गतिको प्राप्त होता है। जैसे जलचर पक्षी जलसे लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार शुद्धबुद्धि-पुरुष लिप्त नहीं होता। वह सम्पूर्ण प्राणियोंमें अनासक्त भावसे रहता है। इस प्रकार अपनी बुद्धिद्वारा विचार करके मनुष्य अनासक्त भावसे व्यवहार करे। वह हर्ष-शोकसे रहित हो सभी अवस्थाओंमें सम रहे। ईर्ष्या-द्वेषको त्याग दे। बुद्धि और चेतनकी एकता है, यही हृदयकी सुदृढ ग्रन्थि है। इसको खोलकर विद्वान् पुरुष सुखी हो जाय और संशयका उच्छेद करके सदाके लिये शोक त्याग दे। जैसे मलिन मनुष्य गङ्गामें स्नान करके शुद्ध होते हैं, उसी प्रकार श्रेष्ठ विद्वान् इस ज्ञानगङ्गामें गोता लगाकर निर्मल हो जाते हैं—ऐसा जानो। इस तरह जो मनुष्य इस उत्तम अध्यात्म-ज्ञानको जानते हैं, वे कैवल्यको प्राप्त होते हैं। ऐसा समझकर सब मनुष्य सम्पूर्ण भूतोंके आवागमनपर दृष्टि रखते हुए बुद्धिपूर्वक विचार करे। इससे धीरे-धीरे शान्ति प्राप्त होती है। जिनका अन्तःकरण पवित्र नहीं है, वे मनुष्य भिन्न-भिन्न विषयोंकी ओर प्रवृत्त हुई इन्द्रियोंमें यदि पृथक्-पृथक् आत्माकी खोज करना चाहें तो उन्हें इस प्रकार आत्माका साक्षात्कार नहीं हो सकता। आत्मा तो इन सब इन्द्रिय, मन और बुद्धिका साक्षी होनेके कारण उनसे परे है—ऐसा जान लेनेपर भी मनुष्य ज्ञानी हो सकता है। इस तत्त्वको जान लेनेपर मनीषी पुरुष अपनेको कृतकृत्य मानते हैं। अज्ञानी पुरुषोंको जो महान् भय प्राप्त होता है, वह ज्ञानियोंको नहीं प्राप्त होता। जो फलकी इच्छा और आसक्तिका त्याग करके कर्म करता है, वह अपने पूर्वकृत कर्मबन्धनको जला देता है। ऐसा पुरुष यदि कर्म करता है तो उसका किया हुआ कर्म प्रिय अथवा अप्रिय फल नहीं उत्पन्न कर सकता। यदि मनुष्य अपनी आयुभर लोकको सताता है, तो कर्ममें लगे हुए उस पुरुषका वह अशुभ कर्म उसके लिये यहाँ अशुभ फल ही उत्पन्न करता है। देखो, कुशल (पुण्य) कर्म करनेसे कोई भी शोकमें नहीं पड़ता, परंतु यदि उससे पाप बनता है तो सदाके लिये भयपूर्ण स्थान प्राप्त होता है।

भरद्वाजजी बोले—ब्रह्मन्! मुझे अभयपदकी सिद्धिके लिये ध्यानयोग बताइये। जिस तत्त्वको जानकर मनुष्य आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीनों तापोंसे मुक्त हो जाता है, उसका मुझे उपदेश कीजिये।

भृगुजीने कहा—मुने! मैं तुम्हें ध्यानयोग बतलाता हूँ। (यद्यपि) वह चार प्रकारका है (किंतु यहाँ एक ही बताया जाता है), जिसे जानकर महर्षिगण इस जगत्में शाश्वत सिद्धिको प्राप्त होते हैं। योगी लोग भलीभाँति अभ्यासमें लाये हुए ध्यानका जिस प्रकार अनुष्ठान करते हैं, वैसा ही ध्यान करके ज्ञानतृप्त महर्षिगण संसारदोषसे मुक्त हो गये हैं। उन मुक्त पुरुषोंका पुनः इस संसारमें आगमन नहीं होता। वे जन्मदोषसे रहित हो अपने शुद्ध स्वरूपमें स्थित हो गये हैं। उनपर शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वोंका प्रभाव नहीं पड़ता। वे सदा अपने विशुद्ध स्वरूपमें स्थित, सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त तथा परिग्रहशून्य हैं। अनासक्ति आदि गुण मनको शान्ति प्रदान करनेवाले हैं।

अनेक प्रकारकी चिन्ताओंसे पीडित मनको ध्यानके द्वारा एकाग्र करके ध्येय वस्तुमें स्थित करे। इन्द्रिय-समुदायको सब ओरसे समेट करके ध्यानयोगी मुनि काठकी भाँति स्थित हो जाय। कानसे किसी शब्दको न ग्रहण करे। त्वचासे स्पर्शका अनुभव न करे। नेत्रसे रूप न देखे तथा जिह्वासे रसोंका आस्वादन न करे। नासिकाद्वारा सब प्रकारके गन्धोंको ग्रहण करना भी त्याग दे। पाँचों विषय पाँचों इन्द्रियोंको मथ डालनेवाले हैं। ध्यानयोगी पुरुष ध्यानके द्वारा इन विषयोंकी अभिलाषा छोड़ दे। तत्पश्चात्

मनाक्त एवं बुद्धिमान् पुरुष पाँच इन्द्रियोंको मनमें लीन करके पाँचों इन्द्रियोंसहित इधर-उधर भटकनेवाले मनको ध्येय वस्तुमें एकाग्र करे । मन चारों ओर विचरण करनेवाला है । उसका कोई दृढ़ आधार नहीं है । पाँचों इन्द्रियोंके द्वार उसके निकलनेके मार्ग हैं । वह अजितेन्द्रिय पुरुषके लिये बलवान् और जितेन्द्रियके लिये निर्बल है । धीर पुरुष पूर्वोक्त ध्यानके साधनमें शीघ्रतापूर्वक मनको एकाग्र करे । जब वह इन्द्रिय और मनको अपने वशमें कर लेता है तो उसका पूर्वोक्त ध्यान सिद्ध हो जाता है । इस प्रकार मैंने यहाँ प्रथम ध्यानमार्गका वर्णन किया है ।

इसके बाद पहलेसे वशमें किया हुआ मनसहित इन्द्रियवर्ग पुनः अवसर पाकर स्फुरित होता है, ठीक इसी तरह जैसे बादलमें बिजली चमकती है । जिस प्रकार पत्तेपर रखी हुई जलकी बूँद सब ओरसे चञ्चल एवं अस्थिर होती है, उसी प्रकार प्रथम ध्यानमार्गमें साधकका चित्त भी चञ्चल होता है । क्षण-भरके लिये कभी एकाग्र होकर कुछ देर ध्यानमार्गमें स्थिर होता है, फिर भ्रान्त होकर वायुकी भाँति आकाशमें दौड़ लगाने लगता है । परंतु ध्यानयोगका ज्ञाता पुरुष इससे ऊबे नहीं । वह क्लेश, चिन्ता, ईर्ष्या और आलस्यका त्याग करके पुनः ध्यानके द्वारा चित्तको एकाग्र करे । प्रथम ध्यानमार्ग-पर चलनेवाले मुनिके हृदयमें विचार, वितर्क एवं विवेककी उत्पत्ति होती है । मन उद्विग्न होनेपर उसका समाधान करे । ध्यानयोगी मुनि कभी उससे खिन्न या उदासीन न हो । ध्यानद्वारा अपना हित-साधन अवश्य करे । इन इन्द्रियोंको धीरे-धीरे शान्त करनेका प्रयत्न करे । क्रमशः इनका उपसंहार करे । ऐसा करनेपर इनकी पूर्णरूपसे शान्ति हो जायगी । मुनीश्वर ! प्रथम ध्यानमार्गमें पाँचों इन्द्रियों और मनको स्थापित करके नित्य अभ्यास करनेसे ये स्वयं शान्त हो जाते हैं । इस प्रकार आत्मसंयम करनेवाले पुरुषको जिस सुखकी प्राप्ति होती है, वह किसी लौकिक पुरुषार्थ और प्रारब्धसे नहीं मिलता । उस सुखके प्राप्त होनेपर मनुष्य ध्यानके साधनमें रम जाता है । इस प्रकार ध्यानका अभ्यास करनेवाले योगीजन निरामय मोक्षको प्राप्त होते हैं ।

सनन्दनजी कहते हैं—ब्रह्मन् ! महर्षि भृगुके इस प्रकार कहनेपर परम धर्मात्मा एवं प्रतापी भरद्वाज मुनि बड़े विस्मित हुए और उन्होंने भृगुजीकी बड़ी प्रशंसा की ।

पञ्चशिखका राजा जनकको उपदेश

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो ! सनन्दनजीका मोक्ष-धर्मसम्बन्धी वचन सुनकर तत्त्वज्ञ नारदजीने पुनः अध्यात्म-विषयक उत्तम बात पूछी ।

नारदजी बोले—महाभाग ! मैंने आपके बताये हुए अध्यात्म और ध्यानविषयक मोक्ष-शास्त्रको सुना, यह सब बार-बार सुननेपर भी मुझे तृप्ति नहीं हो रही है (अधिकाधिक सुननेकी इच्छा बढ़ती जा रही है) । सर्वज्ञ मुने ! जीव अविद्याके बन्धनसे जिस प्रकार मुक्त होता है, वह उपाय बताइये । साधु पुरुषोंने जिसका आश्रय ले रखा है, उस मोक्ष-धर्मका पुनः वर्णन कीजिये ।

सनन्दनजीने कहा—नारद ! इस विषयमें विद्वान् पुरुष इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं । जिससे यह ज्ञात होता है कि मिथिलानरेश जनकने किस प्रकार मोक्ष प्राप्त किया था । यह उस समयकी बात है, जब मिथिलामें जनकवंशी राजा जनदेवका राज्य था । जनदेव सदा ब्रह्मकी प्राप्ति करानेवाले धर्मोंका ही चिन्तन किया करते थे । उनके दरबारमें एक सौ आचार्य बराबर रहा करते थे, जो उन्हें भिन्न-भिन्न आश्रमोंके धर्मोंका उपदेश देते रहते थे । 'इस शरीरको त्याग देनेके पश्चात् जीवकी सत्ता रहती है या नहीं ? अथवा देह-त्यागके बाद उसका पुनर्जन्म होता है या नहीं ?' इस विषयमें उन आचार्योंका जो सुनिश्चित सिद्धान्त था, वे लोग आत्मतत्त्वके विषयमें जैसा विचार उपस्थित करते थे, उससे शास्त्रानुयायी राजा जनदेवको विशेष संतोष नहीं होता था । एक बार कपिलाके पुत्र महामुनि पञ्चशिख सम्पूर्ण पृथ्वीकी परिक्रमा करते हुए मिथिलामें आ पहुँचे । वे सम्पूर्ण संन्यास-धर्मोंके ज्ञाता और तत्त्वज्ञानके निर्णयमें एक सुनिश्चित सिद्धान्तके पोषक थे । उनके मनमें किसी प्रकारका संदेह नहीं था । वे निर्द्वन्द्व होकर विचरा करते थे । उन्हें ऋषियोंमें अद्वितीय बताया जाता है । कामना तो उन्हें छू भी नहीं गयी थी । वे मनुष्योंके हृदयमें अपने उपदेशद्वारा अत्यन्त दुर्लभ सनातन सुखकी प्रतिष्ठा करना चाहते थे । सांख्यके विद्वान् तो उन्हें साक्षात् प्रजापति महर्षि कपिलका ही स्वरूप समझते हैं । उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो सांख्यशास्त्रके प्रवर्तक भगवान् कपिल स्वयं पञ्चशिखके रूपमें आकर लोगोंको आश्चर्यमें डाल रहे हैं । उन्हें आसुरि मुनिका प्रथम शिष्य और चिरञ्जीवी बताया जाता है । एक समय उन्होंने महर्षि कपिलके मतका अनुसरण करनेवाले मुनियोंकी विशाल मण्डलीमें जाकर सबमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित परमार्थस्वरूप अव्यक्त ब्रह्मके विषयमें निवेदन किया था और क्षेत्र तथा

क्षेत्रज्ञका अन्तर स्पष्ट रूपसे जान लिया था। यही नहीं, जो एकमात्र अक्षर एवं अविनाशी ब्रह्म नाना रूपोंमें दिखायी देता है, उसका ज्ञान भी आसुरिने उस मुनिमण्डलीमें प्राप्त किया था, उन्हींके शिष्य पञ्चशिख थे, जो देव-कोटिके पुरुष होते हुए भी मानवीके दूधसे पले थे। कपिला नामकी एक ब्राह्मणी थी, जो पति-पुत्र आदि कुटुम्बके साथ रहती थी; उसीके पुत्रभावको प्राप्त होकर वे उसके स्तनोंका दूध पीते थे। अतः कपिलाका दूध पीनेके कारण उनकी कापिलेय संज्ञा हुई। उन्होंने नैष्ठिक (ब्रह्ममें निष्ठा रखनेवाली) बुद्धि प्राप्त की थी। कापिलेयकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें यह बात मुझे भगवान् ब्रह्माजीने बतायी थी। उनके कपिलापुत्र कहलाने और सर्वज्ञ होनेका यही उत्तम वृत्तान्त है। धर्मज्ञ पञ्चशिखने उत्तम ज्ञान प्राप्त किया था। वे राजा जनकको सौ आचार्योंपर समानभावसे अनुरक्त जानकर उनके दरबारमें गये। वहाँ जाकर उन्होंने अपने युक्तियुक्त वचनोंसे उन सब आचार्योंको मोहित कर दिया। उस समय महाराज जनक कपिलानन्दन पञ्चशिखका ज्ञान देखकर उनके प्रति आकृष्ट हो गये और अपने सौ आचार्योंको छोड़कर उन्हींके पीछे चलने लगे। तब मुनिवर पञ्चशिखने राजाको धर्मानुसार चरणोंमें पड़ा देख उन्हें योग्य अधिकारी मानकर परम मोक्षका

उपदेश किया, जिसका सांख्य-शास्त्रमें वर्णन है। उन्होंने 'जातिनिर्वेद'[1] का वर्णन करके 'कर्मनिर्वेद'[2] का उपदेश किया। तत्पश्चात् 'सर्वनिर्वेद'[3] की बात बतायी। उन्होंने कहा—जिसके लिये धर्मका आचरण किया जाता है, जो कर्मोंके फलका उदय होनेपर प्राप्त होता है, वह इहलोक या परलोकका भोग नश्वर है। उसपर आस्था करना उचित नहीं। वह मोहरूप चञ्चल और अस्थिर है।

कुछ नास्तिक ऐसा कहा करते हैं कि 'देहरूपी आत्माका विनाश प्रत्यक्ष देखा जा रहा है, सम्पूर्ण लोक इसका साक्षी है; फिर भी यदि कोई शास्त्र-प्रमाणकी ओट लेकर देहसे भिन्न आत्माकी सत्ताका प्रतिपादन करता है तो वह परास्त ही है; क्योंकि उसका कथन लोकानुभवके विरुद्ध है। आत्माके स्वरूपका अभाव हो जाना ही उसकी मृत्यु है। जो लोग मोहवश आत्माको देहसे भिन्न मानते हैं, उनकी यह मान्यता ठीक नहीं है। यदि ऐसी वस्तुका भी अस्तित्व मान लिया जाय, जो लोकमें सम्भव नहीं है अर्थात् यदि शास्त्रके आधारपर यह स्वीकार किया जाय कि शरीरसे भिन्न कोई अजर-अमर आत्मा है, जो स्वर्ग आदि लोकोंमें दिव्य सुख भोगता है, तब तो बंदीलोग, जो राजाको अजर-अमर कहते हैं, उनकी वह बात भी ठीक माननी पड़ेगी। सारांश यह है कि जैसे बंदीलोग आशीर्वादमें उपचारतः राजाको अजर-अमर कहते हैं, उसी प्रकार शास्त्रका वह वचन भी औपचारिक ही है। नीरोग शरीरको ही अजर-अमर और यहाँके प्रत्यक्ष सुख-भोगको ही स्वर्गीय सुख कहा गया है। यदि आत्मा है या नहीं—यह संशय उपस्थित होनेपर अनुमानसे उसके अस्तित्वका साधन किया जाय तो उसके लिये कोई ऐसा ज्ञापक हेतु नहीं उपलब्ध होता, जो कहीं व्यभिचरित न होता हो; फिर किस अनुमानका आश्रय लेकर लोक-व्यवहारका निश्चय किया जा सकता है। अनुमान और आगम—इन दोनों प्रमाणोंका मूल्य प्रत्यक्ष प्रमाण है। आगम या अनुमान यदि प्रत्यक्ष अनुभवके विरुद्ध है तो वह कुछ भी नहीं है, उसकी प्रामाणिकता स्वीकार नहीं की जा

१. जन्मके समय गर्भवास आदिके कारण जो [illegible] उसपर विचार करके शरीरसे वैराग्य होना [illegible]। २. कर्मजनित क्लेश—नाना योनियोंकी [illegible] यातनाका विचार करके पाप तथा [illegible] 'कर्मनिर्वेद' है। ३. [illegible] भोगोंकी क्षणभंगुरता [illegible] सब ओरसे विरक्त होना 'सर्वनिर्वेद' [illegible]।

सकती। जिस किसी भी अनुमानमें ईश्वर, अदृष्ट अथवा नित्य आत्माकी सिद्धिके लिये की हुई भावना भी व्यर्थ है; अतः नास्तिकोंके मतमें शरीरसे भिन्न जीवका अस्तित्व नहीं है, यह बात स्थिर हुई। जैसे वटवृक्षके बीजमें पत्र, पुष्प, फल, मूल तथा त्वचा आदि अन्तर्हित होते हैं, जैसे गायके द्वारा खायी हुई घासमेंसे घी, दूध आदि प्रकट हो जाते हैं तथा जिस प्रकार अनेक औषध-द्रव्योंका पाक एवं अधिवासन करनेसे उसमें नशा पैदा करनेवाली शक्ति आ जाती है, उसी प्रकार वीर्यमें ही शरीर आदिके साथ चेतनता भी प्रकट होती है।'

(इस नास्तिक मतका खण्डन इस प्रकार समझना चाहिये) मरे हुए शरीरमें जो चेतनताका अतिक्रमण देखा जाता है, वही देहातिरिक्त आत्माके अस्तित्वमें प्रमाण है। यदि चेतनता देहका ही धर्म होता तो मृतक शरीरमें भी उसकी उपलब्धि होती। मृत्युके पश्चात् कुछ कालतक शरीर तो रहता है पर उसमें चेतनता नहीं रहती। अतः चेतन आत्मा शरीरसे भिन्न है—यह सिद्ध होता है। नास्तिक भी रोग आदिकी निवृत्तिके लिये मन्त्रजप तथा तान्त्रिक-पद्धतिसे देवता आदिकी आराधना करते हैं। वह देवता क्या है? यदि पाञ्चभौतिक है तो घट आदिकी भाँति उसका दर्शन होना चाहिये और यदि वह भौतिक पदार्थोंसे भिन्न है तो चेतनकी सत्ता स्वतः सिद्ध हो गयी। अतः देहसे भिन्न आत्मा है—यह प्रत्यक्ष अनुभवसे सिद्ध हो जाता है; और देह ही आत्मा है, यह प्रत्यक्ष अनुभवके विरुद्ध जान पड़ता है। यदि शरीरकी मृत्युके साथ आत्माकी भी मृत्यु मान ली जाय, तब तो उसके किये हुए कर्मोंका भी नाश मानना पड़ेगा; फिर तो उसके शुभाशुभ कर्मोंका फल भोगनेवाला कोई नहीं रह जायगा और देहकी उत्पत्तिमें अकृताभ्यागम (बिना किये हुए कर्मका ही भोग प्राप्त हुआ ऐसा) माननेका प्रसङ्ग उपस्थित होगा। ये सब प्रमाण यह सिद्ध करते हैं कि देहातिरिक्त चेतन आत्माकी सत्ता अवश्य है। नास्तिकोंकी ओरसे जो हेतुभूत दृष्टान्त दिये गये हैं, वे मूर्त पदार्थ हैं। मूर्त जड-पदार्थसे मूर्त जड-पदार्थकी ही उत्पत्ति होती है—यही उनके द्वारा सिद्ध होता है। जैसे काष्ठमे अग्निकी उत्पत्ति आदि।

पञ्चभूतोंमे आत्माकी उत्पत्तिकी भाँति यदि मूर्तसे अमूर्तकी उत्पत्ति मानी जाय तो पृथ्वी आदि मूर्त भूतोंसे अमूर्त आकाशकी भी उत्पत्ति स्वीकार करनी पड़ेगी, जो असम्भव है। अतः स्थूल भूतोंके संयोगसे अमूर्त चेतन आत्माकी उत्पत्ति सर्वथा असम्भव है।

आत्माकी सत्ता न माननेपर लोकयात्राका निर्वाह नहीं होगा। दान, धर्मके फलकी प्राप्तिके लिये कोई आस्था नहीं रहेगी; क्योंकि वैदिक शब्द तथा लौकिक व्यवहार सब आत्माको ही सुख देनेके लिये हैं। इस प्रकार मनमें अनेक प्रकारके तर्क उठते हैं और उन तर्कों तथा युक्तियोंसे आत्माकी सत्ता या असत्ताका निर्धारण कुछ भी होता नहीं दिखायी देता। इस प्रकार विचार करते हुए भिन्न-भिन्न मतोंकी ओर दौड़नेवाले लोगोंकी बुद्धि कहीं एक जगह प्रवेश करती है और वहीं वृक्षकी भाँति जड़ जमाये जीर्ण हो जाती है। इस प्रकार अर्थ और अनर्थसे सभी प्राणी दुखी रहते हैं। केवल शास्त्र ही उन्हें खींचकर राहपर लाते हैं, ठीक उसी तरह, जैसे महावत हाथीपर अङ्कुश रखकर उन्हें काबूमें किये रहते हैं। बहुतसे शुष्क हृदयवाले लोग ऐसे विषयोंकी लिप्सा रखते हैं, जो अत्यन्त सुखदायक हों; किंतु इस लिप्सामें उन्हें भारी-से-भारी दुःखोंका ही सामना करना पड़ता है और अन्तमें वे भोगोंको छोड़कर मृत्युके ग्रास बन जाते हैं। जो एक दिन नष्ट होनेवाला है, जिसके जीवनका कुछ ठिकाना नहीं, ऐसे अनित्य शरीरको पाकर इन बन्धु-बान्धवों तथा स्त्री-पुत्रादिसे क्या लाभ है? यह सोचकर जो मनुष्य इन सबको क्षणभरमे वैराग्यपूर्वक त्यागकर चल देता है, उसे मृत्युके बाद फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। पृथ्वी, आकाश, जल, अग्नि और वायु—ये सदा शरीरकी रक्षा करते रहते हैं, इस बातको अच्छी तरह समझ लेनेपर इसके प्रति आसक्ति कैसे हो सकती है? जो एक दिन मृत्युके मुखमें पड़नेवाला है, ऐसे शरीरमें सुख कहाँ?

पञ्चशिखने फिर कहा—राजन्! अब मैं उस परम उत्तम साङ्ख्यशास्त्रका वर्णन करता हूँ, जिसका नाम है—सम्यङ्मन (मनको संदेहरहित करनेवाला); उसमें त्यागकी प्रधानता है। तुम ध्यान देकर सुनो। उसका उपदेश तुम्हारे मोक्षमे सहायक होगा। जो लोग मुक्तिके लिये प्रयत्नशील हों, उन सबको चाहिये कि सम्पूर्ण सकाम कर्मोंका और धन आदिका भी त्याग करे। जो त्याग किये बिना व्यर्थ ही विनीत (शम-दमादि साधनोंमें तत्पर) होनेका झूठा दावा करते हैं, उन्हें दुःख देनेवाले अविद्यारूप क्लेश प्राप्त होते रहते हैं। शास्त्रोंमें द्रव्यका त्याग

करनेके लिये यज्ञ आदि कर्म, भोगका त्याग करनेके लिये व्रत, दैहिक सुखोंके त्यागके लिये तप और सब कुछ त्यागनेके लिये योगके अनुष्ठानकी आज्ञा दी गयी है। यही त्यागकी सीमा है। सर्वस्व-त्यागका यह एकमात्र मार्ग ही दुःखोंसे छुटकारा पानेके लिये उत्तम बताया गया है। इसका आश्रय न लेनेवालोंको दुर्गति भोगनी पड़ती है।

छठे मनसहित पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ बतायी हैं, जिनकी स्थिति बुद्धिमें है; इनका वर्णन करके पाँच कर्मेन्द्रियोंका निरूपण करता हूँ। दोनों हाथ काम करनेवाली इन्द्रिय हैं। दोनों पैर चलने-फिरनेका कार्य करनेवाली इन्द्रिय हैं। लिङ्ग मैथुन-जनक सुख और संतानोत्पादन आदिके लिये है। गुद नामक इन्द्रियका कार्य मलत्याग करना है। वाक् इन्द्रिय शब्द-विशेषका उच्चारण करनेके लिये है। मनको इन पाँचोंसे संयुक्त माना गया है। इस प्रकार पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और मन—ये सब मिलकर ग्यारह इन्द्रियाँ हैं। इन सबको मनरूप जानकर बुद्धिके द्वारा शीघ्र इनका त्याग कर देना चाहिये। श्रवणकालमें श्रोत्ररूपी इन्द्रिय, शब्द-रूपी विषय और चित्तरूपी कर्ता—इन तीनका संयोग होता है। इसी प्रकार स्पर्श, रूप, रस तथा गन्धके अनुभवकालमें भी इन्द्रिय, विषय एवं मनका संयोग अपेक्षित है। इस तरह तीन-तीनके पाँच समुदाय हैं। ये सब गुण कहे गये हैं। इनसे शब्दादि विषयोंका ग्रहण होता है और इसीके लिये ये कर्ता, कर्म और करणरूपी त्रिविध भाव बारी-बारीसे उपस्थित होते हैं। इनमेंसे एक-एकके सात्त्विक, राजस और तामस तीन-तीन भेद होते हैं। हर्ष, प्रीति, आनन्द, सुख और चित्तकी शान्ति—ये सब भाव बिना किसी कारणके हों या किसी कारणवश हों*, सात्त्विक गुण माने गये हैं। असंतोष, संताप, शोक, लोभ तथा क्षमाका अभाव—ये किसी कारणसे हों या अकारण—रजोगुणके चिह्न हैं। अविवेक, मोह, प्रमाद, स्वप्न और आलस्य—ये किसी तरह भी क्यों न हों, तमोगुणके ही नाना रूप हैं†।

जो इस मोक्ष-विद्याको जानकर सावधानीके साथ आत्म-तत्त्वका अनुसंधान करता है, वह जलसे कमलके पत्तेकी भाँति कर्मके अनिष्ट फलोंसे कभी लिप्त नहीं होता। संतानोंके प्रति आसक्ति और भिन्न-भिन्न देवताओंके लिये सकाम यज्ञोंका अनुष्ठान—ये सब मनुष्यके लिये नाना प्रकारके दृढ़ बन्धन हैं। जब वह इन बन्धनोंसे छूटकर दुःख-सुखकी चिन्ता छोड़ देता है, उस समय सर्वश्रेष्ठ गति (मुक्ति) प्राप्त कर लेता है। श्रुतिके महावाक्योंका विचार और शास्त्रमें बताये हुए मङ्गलमय साधनोंका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य जरा तथा मृत्युके भयसे रहित होकर सुखसे रहता है। जब पुण्य और पापका क्षय तथा उनसे मिलनेवाले सुख-दुःखादि फलोंका नाश हो जाता है, उस समय सब वस्तुओंकी आसक्तिसे रहित पुरुष आकाशके समान निर्लेप एवं निर्गुण आत्माका साक्षात्कार कर लेता है। जो शरीरमें आसक्ति न रखकर उसके प्रति अपनेपनका अभिमान त्याग देता है, वह दुःखसे छूट जाता है। जैसे वृक्षके प्रति आसक्ति न रखनेवाला पक्षी जलमें गिरते हुए वृक्षको छोड़कर उड़ जाता है, उसी प्रकार जो शरीरकी आसक्तिको छोड़ चुका है, वह मुक्त पुरुष सुख और दुःख दोनोंका त्याग करके उत्तम गतिको प्राप्त होता है।

आचार्य पञ्चशिखके बताये हुए इस अमृतमय ज्ञानको सुनकर राजा जनक उसे पूर्णरूपसे विचार करके एक निश्चित सिद्धान्तपर पहुँच गये और शोकरहित हो बड़े सुखसे रहने लगे। फिर तो उनकी स्थिति ऐसी हो गयी कि एक बार मिथिलानगरीको आगसे जलती देखकर भूपालने स्वयं यह उद्गार प्रकट किया कि 'इस नगरके जलनेसे मेरा कुछ भी नहीं जलता।' महामुनि नारदजी! इस अध्यायमें मोक्ष-तत्त्वका निर्णय किया गया है। जो सदा इसका स्वाध्याय और चिन्तन करता रहता है, वह दुःख-शोकसे रहित हो कभी किसी प्रकारके उपद्रवका अनुभव नहीं करता तथा जिस प्रकार राजा जनक पञ्चशिखके समागमसे इस ज्ञानको पाकर मुक्त हो गये थे, उसी प्रकार वह भी मोक्ष प्राप्त करता है।

---

* मनमें हर्ष, प्रीति आदि भावोंका उदय जब किसी अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति आदिसे होता है तो उसे कारणवश हुआ कहा गया है और जब वैराग्य आदिसे स्वतः उक्त भावोंका उदय हो तो उसे अकारण माना गया है।

† महाभारत शान्तिपर्व अध्याय २१८ और २१९ में भी यही प्रसङ्ग आया है। २१९ के २८ वें श्लोकतक यह प्रसङ्ग ज्यों-का-त्यों है। इसके आगे महाभारतमें पद्रह श्लोक अधिक हैं, जो इस प्रसङ्गकी दृष्टिसे अत्यन्त आवश्यक हैं। नारदपुराणके [illegible] के बाद ही उन श्लोकोंका भाव अपेक्षित है। अतः प्रसङ्गकी पूर्तिके लिये यहाँ उन श्लोकोंसे इतना संक्षिप्त भाव दिया [illegible]।

त्रिविध तापोंसे छूटनेका उपाय, भगवान् तथा वासुदेव आदि शब्दोंकी व्याख्या, परा और अपरा विद्याका निरूपण, खाण्डिक्य और केशिध्वजकी कथा, केशिध्वजद्वारा अविद्याके बीजका प्रतिपादन

सूतजी कहते हैं—महर्षियो ! उत्तम अध्यात्मज्ञान सुनकर उदारबुद्धि नारदजी बड़े प्रसन्न हुए । उन्होंने पुनः प्रश्न किया ।

नारदजी बोले—दयानिधे ! मैं आपकी शरणमें हूँ । मुने ! मनुष्यको आध्यात्मिक आदि तीनों तापोंका अनुभव न हो, वह उपाय मुझे बतलाइये ।

सनन्दनजीने कहा—विद्वन् ! गर्भमें, जन्मकालमें और बुढ़ापा आदि अवस्थाओंमें प्रकट होनेवाले जो तीन प्रकारके दुःख-समुदाय हैं, उनकी एकमात्र अमोघ एवं अनिवार्य ओषधि भगवान्‌की प्राप्ति ही मानी गयी है । जब भगवत्प्राप्ति होती है, उस समय ऐसे लोकोत्तर आनन्दकी अभिव्यक्ति होती है, जिससे बढ़कर सुख और आह्लाद कहीं है ही नहीं । यही उस भगवत्प्राप्तिकी पहचान है । अतः विद्वान् मनुष्योंको भगवान्‌की प्राप्तिके लिये अवश्य प्रयत्न करना चाहिये । महामुने ! भगवत्प्राप्तिके दो ही उपाय बताये गये हैं—ज्ञान और (निष्काम) कर्म । ज्ञान भी दो प्रकारका कहा जाता है । एक तो शास्त्रके अध्ययन और अनुशीलनसे प्राप्त होता है और दूसरा विवेकसे प्रकट होता है । शब्दब्रह्म अर्थात् वेदका ज्ञान शास्त्रज्ञान है और परब्रह्म परमात्माका बोध विवेकजन्य ज्ञान है । मुनिश्रेष्ठ ! मनुजीने भी वेदार्थका स्मरण करके इस विषयमें जो कुछ कहा है, उसे मैं स्पष्ट बताता हूँ—सुनो । जानने योग्य ब्रह्म दो प्रकारका है—एक शब्दब्रह्म और दूसरा परब्रह्म । जो शब्दब्रह्म (शास्त्रज्ञान) में पारङ्गत हो जाता है, वह विवेकजन्य ज्ञानद्वारा परब्रह्मको प्राप्त कर लेता है* । अथर्ववेदकी श्रुति कहती है कि दो प्रकारकी विद्याएँ जानने योग्य हैं—परा और अपरा । परासे निर्गुण-सगुणरूप परमात्माकी प्राप्ति होती है । जो अव्यक्त, अजर, चेष्टारहित, अजन्मा, अविनाशी, अनिर्देश्य (नाम आदिसे रहित), रूपहीन, हाथ-पैर आदि अङ्गोंसे शून्य, व्यापक, सर्वगत, नित्य, भूतोंका आदिकारण तथा स्वयं कारणहीन है, जिससे सम्पूर्ण व्याप्य वस्तुएँ व्याप्त हैं, समस्त जगत् जिससे प्रकट हुआ है एवं ज्ञानीजन ज्ञानदृष्टिसे जिसका साक्षात्कार करते हैं, वही परमधाम-स्वरूप ब्रह्म है । मोक्षकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको उसीका ध्यान करना चाहिये । वही वेदवाक्योंद्वारा प्रतिपादित, अतिसूक्ष्म भगवान् विष्णुका परम पद है । परमात्माका वह स्वरूप ही 'भगवत्' शब्दका वाच्यार्थ है और 'भगवत्' शब्द उस अविनाशी परमात्माका वाचक कहा गया है । इस प्रकार जिसका स्वरूप बतलाया गया है, वही परमात्माका यथार्थ तत्त्व है । जिससे उसका ठीक-ठीक बोध होता है, वही परा विद्या अथवा परम ज्ञान है । इससे भिन्न जो तीनों वेद हैं, उन्हें अपर ज्ञान या अपरा विद्या कहा गया है ।

ब्रह्मन् ! यद्यपि वह ब्रह्म किसी शब्द या वाणीका विषय नहीं है, तथापि उपासनाके लिये 'भगवान्' इस नामसे उसका कथन किया जाता है । देवर्षे ! जो समस्त कारणोंका भी कारण है, उस परम शुद्ध महाभूति नामवाले परब्रह्मके लिये ही भगवत् शब्दका प्रयोग हुआ है । 'भगवत्' शब्दके 'भ' कारके दो अर्थ हैं—सम्भर्ता (भरण-पोषण

'शब्दका आधार श्रोत्रेन्द्रिय है और श्रोत्रेन्द्रियका आधार आकाश है, अतः वह आकाशरूप ही है । इसी प्रकार त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका भी क्रमशः स्पर्श, रूप, रस और गन्धका आश्रय तथा अपने आधारभूत महाभूतोंके स्वरूप हैं । इन सबका अधिष्ठान है मन; इसलिये सब-के-सब मनःस्वरूप हैं । क्योंकि जब सब इन्द्रियोंका कार्य एक समय आरम्भ होता है तब उन सबके विषयोंको एक साथ अनुभव करनेके लिये मन ही सबमें अनुगतरूपसे उपस्थित रहता है; अतः मनको ग्यारहवीं इन्द्रिय कहा गया है और बुद्धि बारहवीं मानी गयी है । इस प्रकार समस्त प्राणी अनादि अविद्याके कारण स्वभावतः व्यवहारपरायण हो रहे हैं । ऐसी दशामें ज्ञानद्वारा अविद्याकी निवृत्ति हो जाती है । तब केवल सनातन आत्मा ही रह जाता है । जैसे नद और नदियाँ समुद्रमें मिलकर अपने नाम-रूपको त्याग देती हैं, उसी प्रकार समस्त प्राणी अपने नाम और रूपको त्यागकर महत्स्वरूपमें प्रतिष्ठित होते हैं । यही उनका मोक्ष है ।

* द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत् । शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥

(ना० पूर्व० ४६ । ८)

करनेवाला) तथा भर्त्ता (धारण करनेवाला) । मुने ! 'ग' कारके तीन अर्थ हैं—गमयिता (प्रेरक), नेता (सञ्चालक) तथा स्रष्टा (जगत्की सृष्टि करनेवाला) । 'भ' और 'ग' के योगसे 'भग' शब्द बनता है, जिसका अर्थ इस प्रकार है—सम्पूर्ण ऐश्वर्य, सम्पूर्ण धर्म, सम्पूर्ण यश, सम्पूर्ण श्री, सम्पूर्ण ज्ञान तथा सम्पूर्ण वैराग्य—इन छःका नाम 'भग' है* । उस सर्वात्मा परमेश्वरमें सम्पूर्ण भूत-प्राणी निवास करते हैं, तथा वह स्वयं भी सब भूतोंमें वास करता है, इसलिये वह अव्यय परमात्मा ही 'व'कारका अर्थ है । साधुशिरोमणे ! इस प्रकार 'भगवान्' यह महान् शब्द परब्रह्म-स्वरूप भगवान् वासुदेवका ही बोध करानेवाला है । पूज्य-पदका जो अर्थ है, उसको सूचित करनेकी परिभाषासे युक्त यह भगवत् शब्द परमात्माके लिये तो प्रधानरूपसे प्रयुक्त होता है और दूसरोंके लिये गौणरूपसे । जो सब प्राणियोंकी उत्पत्ति और प्रलयको, आवागमनको तथा विद्या और अविद्याको जानता है, वही भगवान् कहलाने योग्य है । त्याग करने योग्य अवगुण आदिको छोड़कर जो अलौकिक ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज आदि सद्गुण हैं, वे सभी भगवत् शब्दके वाच्यार्थ हैं । उन परमात्मामें सम्पूर्ण भूत वास करते हैं और वह भी समस्त भूतोंमें निवास करता है, इसीलिये उसे 'वासुदेव' कहा गया है† । पूर्वकालमें खाण्डिक्य जनकसे उनके पूछनेपर केशिध्वजने भगवान् अनन्तके वासुदेव नामकी यथार्थ व्याख्या इस प्रकार की थी । परमात्मा सम्पूर्ण भूतोंमें वास करते हैं और वे भूतप्राणी भी उनके भीतर रहते हैं तथा वे परमात्मा ही जगत्के धारण-पोषण करनेवाले और स्रष्टा हैं; अतः उन सर्वशक्तिमान् प्रभुको 'वासुदेव' कहा गया है* । मुने ! जो सम्पूर्ण जगत्के आत्मा तथा समस्त आवरणोंसे परे हैं, वे परमात्मा सम्पूर्ण भूतोंकी प्रकृति, प्राकृत विकार तथा गुण और दोषोंसे ऊपर उठे हुए हैं । पृथ्वी और आकाशके बीचमें जो कुछ स्थित है, वह सब उन्हींसे व्याप्त है । सम्पूर्ण कल्याणमय गुण उनके स्वरूप हैं । उन्होंने अपनी शक्तिके लेशमात्रसे सम्पूर्ण भूतसमुदायको व्याप्त कर रखा है । वे अपनी इच्छामात्रसे मनके अनुकूल अनेक शरीर धारण करते हैं और सारे जगत्का हित-साधन करते रहते हैं । वे तेज, बल, ऐश्वर्य, महान् ज्ञान, उत्तम वीर्य और शक्ति आदि गुणोंकी एकमात्र राशि हैं । प्रकृति आदिसे भी परे हैं और उन समस्त कार्य-कारणोंके स्वामी परमेश्वरमें समस्त क्लेशोंका सर्वथा अभाव है । वे सबका शासन करनेवाले ईश्वर हैं । व्यष्टि और समष्टि जगत् उन्हींका स्वरूप है । वे ही व्यक्त हैं और वे ही अव्यक्त । वे सबके स्वामी, सम्पूर्ण सृष्टिके ज्ञाता, सर्वशक्तिमान् तथा परमेश्वर नामसे प्रसिद्ध हैं । जिसके द्वारा निर्दोष, विशुद्ध निर्मल तथा एकरूप परमात्माके स्वरूपका साक्षात्कार अथवा बोध होता है, उसीका नाम ज्ञान है और इसके विपरीत जो कुछ है, वह अज्ञान कहा गया है । भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन स्वाध्याय और संयमसे होता है । ब्रह्मकी प्राप्तिका कारण होनेसे वेदका भी नाम ब्रह्म ही है । इसीलिये वेदोंका स्वाध्याय किया जाता है । स्वाध्यायसे योगका अनुष्ठान करे और योगसे स्वाध्यायका अभ्यास करे । इस प्रकार स्वाध्याय और योग—दोनों साधनोंका सम्पादन होनेसे परमात्मा प्रकाशित होते हैं । उनका दर्शन करनेके लिये स्वाध्याय और योग दोनों नेत्र हैं ।

नारदजीने पूछा—भगवन् ! जिसके जान लेनेपर मैं सर्वाधार परमेश्वरका दर्शन कर सकूँ, उस योगको मैं जानना चाहता हूँ । कृपा करके उसका वर्णन कीजिये ।

सनन्दनजीने कहा—पूर्वकालमें केशिध्वजने महात्मा खाण्डिक्य जनकको जिस प्रकार योगका उपदेश दिया था, वही मैं तुम्हें बतलाता हूँ ।

नारदजीने पूछा—ब्रह्मन् ! खाण्डिक्य और केशिध्वज कौन थे ? तथा उनमें योगसम्बन्धी बातचीत किस प्रकार हुई थी ?

---

* ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥
(ना० पूर्व० ४६ । १७)

† उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामागतिं गतिम् ।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ॥
ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः ।
भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः ॥
सर्वाणि तत्र भूतानि वसन्ति परमात्मनि ।
भूतेषु वसनादेव वासुदेवस्ततः स्मृतः ॥
(ना० पूर्व० ४६ । २१—२३)

* भूतेषु वसते सोऽन्तर्वसन्त्यत्र च तानि यः ।
धाता विधाता जगतां वासुदेवस्ततः प्रभुः ॥
(ना० पूर्व० ४६ । २४)

सनन्दनजीने कहा—नारदजी ! पूर्वकालमें धर्मध्वज जनक नामक एक राजा हो गये हैं। उनके बड़े पुत्रका नाम अमितध्वज था। उसके छोटे भाई कृतध्वजके नामसे विख्यात थे। राजा कृतध्वज सदा अध्यात्मचिन्तनमे ही अनुरक्त रहते थे। कृतध्वजके पुत्र केशिध्वज हुए। ब्रह्मन् ! वे अपने सद्ज्ञानके कारण धन्य हो गये थे। अमितध्वजके पुत्रका नाम खाण्डिक्य जनक था। खाण्डिक्य कर्मकाण्डमें निपुण थे। एक समय केशिध्वजने खाण्डिक्यको परास्त करके उन्हें राज्यसिंहासनसे उतार दिया। राज्यसे भ्रष्ट होनेपर खाण्डिक्य थोड़ी-सी साधन-सामग्री लेकर पुरोहित और मन्त्रियोंके साथ एक दुर्गम वनमें चले गये। इधर केशिध्वजने ज्ञाननिष्ठ होते हुए भी निष्कामभावसे अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान किया। योगवेत्ताओंमे श्रेष्ठ नारदजी ! एक समय केशिध्वज जब यज्ञमे लगे हुए थे, उनकी दूध देनेवाली गायको निर्जन वनमें किसी भयङ्कर व्याघ्रने मार डाला। व्याघ्रद्वारा गौको मारी गयी जानकर राजाने ऋत्विजोंसे इसका प्रायश्चित्त पूछा—'इस विषयमे क्या करना चाहिये ?' ऋत्विज बोले—'महाराज ! हम नहीं जानते। आप कशेरुसे पूछिये।' नारदजी ! जब राजाने कशेरुसे यह बात पूछी तो उन्होंने भी वैसा ही उत्तर देते हुए कहा—'राजेन्द्र ! मैं इस विषयमें कुछ नहीं जानता। आप शुनकसे पूछिये, वे जानते होंगे।' तब राजाने शुनकके पास जाकर यही प्रश्न किया। मुने ! प्रश्न सुनकर शुनकने भी वैसा ही उत्तर दिया—'राजन् ! इस विषयमें न तो कशेरु कुछ जानते हैं और न मैं। इस समय पृथ्वीपर दूसरा कोई भी इसका ज्ञाता नहीं है। एक ही व्यक्ति इस बातको जानता है, वह है तुम्हारा शत्रु 'खाण्डिक्य', जिसे तुमने परास्त किया है।' मुने ! शुनककी यह बात सुनकर राजाने कहा—'अच्छा तो अब मैं अपने शत्रुसे ही यह बात पूछनेके लिये जाता हूँ। यदि वह मुझे मार देगा तो भी इस यज्ञका फल तो प्राप्त ही हो जायगा। मुनिश्रेष्ठ ! यदि मेरा वह शत्रु पूछनेपर मुझे प्रायश्चित्त बतला देगा तब तो यह यज्ञ साङ्गोपाङ्ग पूर्ण होगा ही।' ऐसा कहकर राजा केशिध्वज काला मृगचर्म धारण किये रथपर बैठे और जहाँ महाराज खाण्डिक्य रहते थे, उस वनमें गये। खाण्डिक्यने अपने उस शत्रुको आते देख धनुष चढ़ा लिया और क्रोधसे आँखें लाल करके कहा।

खाण्डिक्य बोले—अरे ! क्या तू काले मृगचर्मको कवचके रूपमें धारण करके हमें मारेगा ?

केशिध्वजने कहा—खाण्डिक्यजी ! मै आपसे एक संदेह पूछनेके लिये आया हूँ। आपको मारनेके लिये नहीं आया हूँ।

तदनन्तर परम बुद्धिमान् खाण्डिक्यने अपने समस्त मन्त्रियों और पुरोहितके साथ एकान्तमे सलाह की। मन्त्रियोंने कहा—'यह शत्रु इस समय हमारे वशमें है, अतः इसे मार डालना चाहिये। इसके मारे जानेपर यह सारी पृथ्वी आपके अधीन हो जायगी।' यह सुनकर खाण्डिक्य उन सबसे बोले—'निःसंदेह ऐसी ही बात है। इसके मारे जानेपर यह सारी पृथ्वी अवश्य मेरे अधीन हो जायगी। परंतु इसे पारलौकिक विजय प्राप्त होगी और मुझे सम्पूर्ण पृथ्वी। यदि इसे न मारूँ तो पारलौकिक विजय मेरी होगी और इसे सारी पृथ्वी मिलेगी। पारलौकिक विजय अनन्तकालके लिये होती है तथा पृथ्वीकी जीत थोड़े ही दिन रहती है। इसलिये मैं तो इसे मारूँगा नहीं। यह जो कुछ पूछेगा उसे बतलाऊँगा।' ऐसा निश्चय करके खाण्डिक्य जनक अपने शत्रुके समीप गये और इस प्रकार बोले—'तुम्हें जो कुछ पूछना हो वह सब पूछ लो, मैं बताऊँगा।' नारदजी ! खाण्डिक्यके ऐसा कहनेपर केशिध्वजने होमसम्बन्धी गायके मारे जानेका सब वृत्तान्त ठीक-ठीक बता दिया और उसके लिये कोई व्रतरूप प्रायश्चित्त पूछा। मुने ! खाण्डिक्यने भी वह सम्पूर्ण प्रायश्चित्त जिसका कि उसके लिये विधान था, केशिध्वजको विधिपूर्वक बता दिया। सब बातें जान लेनेपर महात्मा

खाण्डिक्यकी आज्ञा ले केशिध्वजने यज्ञभूमिको प्रस्थान किया और वहाँ पहुँचकर क्रमशः प्रायश्चित्तका सारा कार्य पूर्ण किया। फिर धीरे-धीरे यज्ञ समाप्त होनेपर राजाने अवभृथ-स्नान किया। तत्पश्चात् कृतकार्य होकर राजा केशिध्वजने मन-ही-मन सोचा—'मैंने सम्पूर्ण ऋत्विजोंका पूजन तथा सब सदस्योंका सम्मान किया। साथ ही याचकोंको भी उनकी मनोवाञ्छित वस्तुएँ दीं। इस लोकके अनुसार जो कुछ कर्तव्य था वह सब मैंने पूरा किया। तथापि न जाने क्यों मेरे मनमें ऐसा अनुभव होता है कि मेरा कोई कर्तव्य अधूरा रह गया है।' इस प्रकार सोचते-सोचते राजाके ध्यानमें यह बात आयी कि मैंने अभीतक खाण्डिक्यजीको गुरुदक्षिणा नहीं दी है। नारदजी! तब वे रथपर बैठकर फिर उसी दुर्गम वनमें गये, जहाँ खाण्डिक्य रहते थे। खाण्डिक्यने पुनः उन्हें आते देख हथियार उठा लिया। यह देख राजा केशिध्वजने कहा—'खाण्डिक्यजी! क्रोध न कीजिये। मैं आपका अहित करनेके लिये नहीं, गुरुदक्षिणा देनेके लिये आया हूँ। आपके उपदेशके अनुसार मैंने अपना यज्ञ भली-भाँति पूरा कर लिया है। अतः अब मैं आपको गुरुदक्षिणा देना चाहता हूँ। आपकी जो इच्छा हो, माँग लीजिये।'

उनके ऐसा कहनेपर खाण्डिक्यने पुनः अपने मन्त्रियोंसे सलाह ली और कहा—'यह मुझे गुरुदक्षिणा देना चाहता है, मैं इससे क्या माँगूँ?' मन्त्रियोंने कहा—'आप इससे सम्पूर्ण राज्य माँग लीजिये।' तब राजा खाण्डिक्यने उन मन्त्रियोंसे हँसकर कहा—'पृथ्वीका राज्य तो थोड़े ही समयतक रहनेवाला है, उसे मेरे-जैसे लोग कैसे माँग सकते हैं? आपका कथन भी ठीक ही है, क्योंकि आपलोग स्वार्थ-साधनके मन्त्री हैं। परमार्थ क्या और कैसा है? इस विषयमें आपलोगोंको विशेष ज्ञान नहीं है।' ऐसा कहकर वे राजा केशिध्वजके पास आये और इस प्रकार बोले—'क्या तुम निश्चय ही गुरुदक्षिणा दोगे?' उन्होंने कहा—'जी हाँ।' उनके ऐसा कहनेपर खाण्डिक्यने कहा—'आप अध्यात्मज्ञानरूप परमार्थ-विद्याके ज्ञाता हैं। यदि मुझे अवश्य ही गुरुदक्षिणा देना चाहते हैं तो जो कर्म सम्पूर्ण क्लेशोंका नाश करनेमें समर्थ हो, उसका उपदेश कीजिये।'

केशिध्वजने पूछा—राजन्! आपने मेरा निष्कण्टक राज्य क्यों नहीं माँगा? क्योंकि क्षत्रियोंके लिये राज्य मिलनेसे बढ़कर प्रिय वस्तु और कोई नहीं है।

खाण्डिक्य बोले—केशिध्वजजी! मैंने आपका सम्पूर्ण राज्य क्यों नहीं माँगा, इसका कारण सुनिये। विद्वान् पुरुष राज्यकी इच्छा नहीं करते। क्षत्रियोंका यह धर्म है कि वे प्रजाकी रक्षा करें और अपने राज्यके विरोधियोंका धर्म-युद्धके द्वारा वध करें। मैं इस कर्तव्यके पालनमें असमर्थ हो गया था, इसलिये यदि आपने मेरे राज्यका अपहरण कर लिया है तो इसमें कोई दोषकी बात नहीं है। यह राजकार्य अविद्या ही है। यदि समझपूर्वक इसका त्याग न किया जाय तो यह बन्धनका ही कारण होती है। यह राज्यकी चाह जन्मान्तरके कर्मोंद्वारा प्राप्त सुख-भोगके लिये होती है। अतः मुझे राज्य लेनेका अधिकार नहीं है। इसके सिवा क्षत्रियोंका किसीसे याचना करना धर्म नहीं है। यह साधु पुरुषोंका मत है। इसलिये अविद्याके अन्तर्गत जो आपका यह राज्य है उसकी याचना मैंने नहीं की है। जिनका चित्त ममतासे आकृष्ट है और जो अहंकाररूपी मदिराका पान करके उन्मत्त हो रहे हैं, वे अज्ञानी पुरुष ही राज्यकी अभिलाषा करते हैं।

केशिध्वजने कहा—मैं भी विद्यासे मृत्युके पार जाने-की इच्छा रखकर कर्तव्यबुद्धिसे राज्यकी रक्षा और निष्काम-भावसे अनेक प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान करता हूँ। कुलनन्दन! बड़े सौभाग्यकी बात है कि आपका मन विवेकरूपी धनसे सम्पन्न हुआ है, अतः आप अविद्याका स्वरूप सुनें—अविद्यारूपी वृक्षकी उत्पत्तिका जो बीज है, वह दो प्रकारका है—अनात्मामें आत्मबुद्धि और जो अपना नहीं है उसे अपना मानना अर्थात् अहंता और ममता।

जिसकी बुद्धि शुद्ध नहीं है तथा जो मोहरूपी अन्धकारसे आवृत हो रहा है, वह देहाभिमानी जीव इस पाञ्चभौतिक शरीरमें 'मैं' और 'मेरे' पनकी दृढ़ भावना कर लेता है, परंतु जब आत्मा आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी आदिसे सर्वथा पृथक् है तो कौन बुद्धिमान् पुरुष शरीरमें आत्मबुद्धि करेगा? जब आत्मा देहसे परे है तो देहके उपभोगमें आनेवाले गृह और क्षेत्र आदिको कौन बुद्धिमान् पुरुष 'यह मेरा है' ऐसा कहकर अपना मान सकता है? इस प्रकार इस शरीरके अनात्मा होनेसे इसके द्वारा उत्पन्न किये हुए पुत्र, पौत्र आदिमें भी कौन विद्वान् अपनापन करेगा! मनुष्य सारे कर्म शरीरके उपभोगके लिये ही करता है, किंतु जब यह देह पुरुषसे भिन्न है तो वे कर्म केवल बन्धनके ही कारण होते हैं। जैसे मिट्टीके घरको मनुष्य मिट्टी और जलसे ही लीपते-पोतते हैं, उसी प्रकार यह पार्थिव शरीर भी मिट्टी और जलकी सहायतासे ही स्थिर रहता है। यदि पञ्चभूतोंका बना हुआ यह शरीर पाञ्चभौतिक पदार्थोंसे ही पुष्ट होता है

तो इसमें पुरुषके लिये कौन-सी गर्व करनेकी बात है। यह जीव अनेक सहस्र जन्मोंसे संसाररूपी मार्गपर चल रहा है और वासनारूपी धूलसे आच्छादित होकर केवल मोहरूपी श्रमको प्राप्त होता है। सौम्य! जिस समय ज्ञानरूपी गरम जलसे इसकी वह वासनारूपी धूल धो दी जाती है, उसी समय इस संसारमार्गके पथिकका मोहरूपी श्रम शान्त हो जाता है। उस मोहरूपी श्रमके शान्त होनेपर पुरुषका अन्तःकरण निर्मल होता है और वह निरतिशय परम निर्वाण-पदको प्राप्त कर लेता है। यह ज्ञानमय विशुद्ध आत्मा निर्वाण-स्वरूप ही है। इस प्रकार मैंने आपको अविद्याका बीज बतलाया है। अविद्याजनित क्लेशोंको नष्ट करनेके लिये योगके सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं है।

मुक्तिप्रद योगका वर्णन

सनन्दनजी कहते हैं—नारदजी! केशिध्वजके इस अध्यात्मज्ञानसे युक्त अमृतमय वचनको सुनकर खाण्डिक्यने पुनः उन्हे प्रेरित करते हुए कहा।

खाण्डिक्य बोले—योगवेत्ताओंमे श्रेष्ठ महाभाग केशिध्वज! आप निमिवशमें योगशास्त्रके विशेषज्ञ हैं अतः आप उस योगका वर्णन कीजिये।

केशिध्वजने कहा—खाण्डिक्यजी! मै योगका स्वरूप बतलाता हूँ, सुनिये। उस योगमें स्थित होनेपर मुनि ब्रह्ममे लीन होकर फिर अपने स्वरूपसे च्युत नहीं होता। मन ही मनुष्योंके बन्धन और मोक्षका कारण है। विषयोंमें आसक्त होनेपर वह बन्धनका कारण होता है और विषयोसे दूर हटकर वही मोक्षका साधक बन जाता है*। अतः विवेक-ज्ञानसम्पन्न विद्वान् पुरुष मनको विषयोंसे हटाकर परमेश्वरका चिन्तन करे। जैसे चुम्बक अपनी शक्तिसे लोहेको खींचकर अपनेमें संयुक्त कर लेता है, उसी प्रकार ब्रह्मचिन्तन करने-वाले मुनिके चित्तको परमात्मा अपने स्वरूपमें लीन कर लेता है। आत्मज्ञानके उपायभूत जो यम-नियम आदि साधन हैं, उनकी अपेक्षा रखनेवाली जो मनकी विशिष्ट गति है, उसका ब्रह्मके साथ संयोग होना ही 'योग' कहलाता है। जिसका योग इस प्रकारकी विशेषतावाले धर्मसे युक्त होता है, वह योगी 'मुमुक्षु' कहलाता है। पहले-पहल योगका अभ्यास करनेवाला योगी 'युञ्जान' कहलाता है। और जब उसे परब्रह्म परमात्मा-की प्राप्ति हो जाती है, तब वह 'विनिष्पन्नसमाधि' (युक्त) कहलाता है। यदि किसी विघ्नदोषसे उस पूर्वोक्त योगी (युञ्जान) का चित्त दूषित हो जाता है तो दूसरे जन्मोंमें उस योगभ्रष्टकी अभ्यास करते रहनेसे मुक्ति हो जाती है। 'विनिष्पन्नसमाधि' योगी योगकी अग्निसे अपनी सम्पूर्ण कर्मराशिको भस्म कर डालता है। इसलिये उसी जन्ममें शीघ्र मुक्ति प्राप्त कर लेता है। योगीको चाहिये कि वह अपने चित्तको योगसाधनके योग्य बनाते हुए ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य, अस्तेय तथा अपरिग्रहका निष्कामभावसे सेवन करे। ये पाँच यम हैं। इनके साथ शौच, सतोष, तप, स्वाध्याय तथा परब्रह्म परमात्मामें मनको लगाना—इन पाँच नियमों-का पालन करे। इस प्रकार ये पाँच यम और पाँच नियम बताये गये हैं। सकामभावसे इनका सेवन किया जाय तो ये विशिष्ट फल देनेवाले होते हैं और निष्कामभावसे किया जाय तो मोक्ष प्रदान करते हैं।

यत्नशील साधकको उचित है कि स्वस्तिक, सिद्ध, पद्म आदि आसनोंमेंसे किसी एकका आश्रय ले यम और नियम नामक गुणोसे सम्पन्न हो नियमपूर्वक योगाभ्यास करे। अभ्याससे साधक जो प्राणवायुको वशमे करता है, उस क्रियाको प्राणायाम समझना चाहिये। उसके दो भेद हैं—सबीज और निर्बीज (जिसमे भगवान्के नाम और रूपका आलम्बन हो, वह सबीज प्राणायाम है, और जिसमें ऐसा कोई आलम्बन नहीं है, वह निर्बीज प्राणायाम कहलाता है)। साधु पुरुषोंके उपदेशसे प्राणायामका साधन करते समय जब योगीके प्राण और अपान एक दूसरेका पराभव करते (दबाते) है, तब क्रमशः रेचक और पूरक नामक दो प्राणायाम होते हैं। और इन दोनोंका एक ही समय सयम (निरोध) करनेसे कुम्भक नामक तीसरा प्राणायाम होता है*। राजन्! जब योगी सबीज प्राणायामका अभ्यास

* मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो.।
बन्धस्य विषयासङ्गि मुक्तेर्निर्विषयं तथा ॥
(ना० पूर्व० ४७। ४)

* प्राणायामके तीन अङ्ग हैं—पूरक, रेचक और कुम्भक। नासिकाके एक छिद्रको बद करके दूसरेसे जो वायुको भीतर भरा जाता है, इस क्रियाको पूरक कहते है, इसमें प्राणवायुका दबाव

करता है, तब उसका आलम्बन सर्वव्यापी अनन्तस्वरूप भगवान् विष्णुका साकाररूप होता है। योगवेत्ता पुरुष प्रत्याहारका अभ्यास (इन्द्रियोंको विषयोंकी ओरसे समेटकर अपने भीतर लानेका प्रयत्न) करते हुए शब्दादि विषयोंमें अनुरक्त हुई इन्द्रियोंको रोककर उन्हें अपने चित्तकी अनुगामिनी बनावे। ऐसा करनेसे अत्यन्त चञ्चल इन्द्रियाँ भलीभाँति वशमें हो जाती हैं। यदि इन्द्रियाँ वशमें नहीं हैं तो कोई योगी उनके द्वारा योगका साधन नहीं कर सकता। प्राणायामसे प्राण-अपानरूप वायु और प्रत्याहारसे इन्द्रियोंको अपने वशमें करके चित्तको उसके शुभ आश्रयमें स्थिर करे।

खाण्डिक्यने पूछा—महाभाग! बताइये, चित्तका वह शुभ आश्रय क्या है, जिसका अवलम्बन करके वह सम्पूर्ण दोषोंकी उत्पत्तिको नष्ट कर देता है।

केशिध्वजने कहा—राजन्! चित्तका आश्रय ब्रह्म है। उसके दो स्वरूप हैं—मूर्त और अमूर्त अथवा अपर और पर। भूपाल! संसारमें तीन प्रकारकी भावनाएँ हैं और उन भावनाओंके कारण यह जगत् तीन प्रकारका कहा जाता है। पहली भावनाका नाम 'कर्मभावना' है, दूसरीका 'ब्रह्मभावना' है और तीसरी 'उभयात्मिका भावना' है। इनमेंसे पहलीमें कर्मकी भावना होनेके कारण वह 'कर्मभावात्मिका' है, दूसरीमें ब्रह्मकी भावना होनेसे वह 'ब्रह्मभावात्मिका' कहलाती है और तीसरीमें दोनों प्रकारकी भावना होनेसे उसको 'उभयात्मिका' कहते हैं। इस तरह तीन प्रकारकी भावात्मक भावनाएँ हैं। ज्ञानी नरेश! सनक आदि सिद्ध पुरुष सदा ब्रह्मभावनासे युक्त होते हैं। उनसे भिन्न जो देवताओंसे लेकर स्थावर-जङ्गमपर्यन्त सम्पूर्ण प्राणी हैं, वे कर्मभावनासे युक्त होते हैं। हिरण्यगर्भ, प्रजापति आदि सच्चिदानन्द ब्रह्मका बोध और सृष्टिरचनादि कर्मोंका अधिकार—दोनोंसे युक्त हैं अतः उनमें ब्रह्मभावना एवं कर्मभावना दोनोंकी ही उपलब्धि होती है।

राजन्! जबतक विशेष भेदज्ञानके हेतुभूत सम्पूर्ण कर्म क्षीण नहीं हो जाते, तभीतक भेददर्शी मनुष्योंकी दृष्टिमें यह विश्व तथा परब्रह्म भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं। जहाँ सम्पूर्ण भेदोंका अभाव हो जाता है, जो केवल सत् है और वाणीका अविषय है तथा जो स्वयं ही अनुभवस्वरूप है, वही ब्रह्मज्ञान कहा गया है*। वही अजन्मा एवं निराकार विष्णुका परम स्वरूप है, जो उनके विश्वरूपसे सर्वथा विलक्षण है। राजन्! योगका साधक पहले उस निर्विशेष स्वरूपका चिन्तन नहीं कर सकता, इसलिये उसे श्रीहरिके विश्वमय स्थूलरूपका ही चिन्तन करना चाहिये। भगवान् हिरण्यगर्भ, इन्द्र, प्रजापति, मरुद्गण, वसु, रुद्र, सूर्य, तारे, ग्रह, गन्धर्व, यक्ष और दैत्य आदि समस्त देवयोनियाँ; मनुष्य, पशु, पर्वत, समुद्र, नदी, वृक्ष, सम्पूर्ण भूत तथा प्रधानसे लेकर विशेषपर्यन्त उन भूतोंके कारण तथा चेतन-अचेतन, एक पैर, दो पैर और अनेक पैरवाले जीव तथा बिना पैरवाले प्राणी—ये सब भगवान् विष्णुके त्रिविध भावनात्मक रूप हैं। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् परब्रह्मस्वरूप भगवान् विष्णुका उनकी शक्तिसे सम्पन्न 'विश्व' नामक रूप है।

शक्ति तीन प्रकारकी बतलायी गयी है—परा, अपरा और कर्मशक्ति। भगवान् विष्णुको 'पराशक्ति' कहा गया है। 'क्षेत्रज्ञ' अपराशक्ति है तथा अविद्याको कर्मनामक तीसरी शक्ति माना गया है। राजन्! क्षेत्रज्ञ शक्ति सब शरीरोंमें व्याप्त है, परन्तु वह इस [illegible] संसारमें अविद्या नामक शक्तिसे आवृत हो अत्यन्त विस्तारको प्राप्त होनेवाले सम्पूर्ण सांसारिक क्लेश भोगा करती है। [illegible] बुद्धिमान् नरेश! उस अविद्या-शक्तिसे तिरोहित होनेके कारण वह क्षेत्रज्ञ-शक्ति सम्पूर्ण प्राणियोंमें तारतम्यसे दिखायी देती है। वह प्राणहीन जड पदार्थोंमें बहुत कम है। उनसे अधिक वृक्ष पर्वत आदि स्थावरोंमें स्थित है। स्थावरोंसे अधिक सर्प आदि जीवोंमें और उनसे भी अधिक पक्षियोंमें अभिव्यक्त हुई है। पक्षियोंकी अपेक्षा उन शक्तिसे मृग [illegible]

पड़नेसे अपानवायु नीचेकी ओर दबती है, यही प्राणके द्वारा अपानका पराभव है। जब नासिकाके दूसरे छिद्रको बंद करके पहलेसे वायुको बाहर निकाला जाता है, उसे रेचक कहते हैं। इसमें प्राणवायुके बाहर निकलनेसे अपानवायु ऊपरको उठती है, यही अपानद्वारा प्राणका पराभव है। भीतर भरी हुई वायुको जब नासिकाके दोनों छिद्र बंद करके कुछ कालतक रोका जाता है, उस समय प्राण और अपान दोनों नियत स्थान और सीमामें अवरुद्ध रहते हैं। यही इन दोनोंका संयम या निरोध है। इसीका नाम कुम्भक है।

* अक्षीणेषु समस्तेषु विशेषज्ञानकर्मसु।
विश्वमेतत् परं चान्यद् भेदभिन्नदृशां नृप॥
प्रत्यस्तमितभेदं यत् सत्तामात्रमगोचरम्।
वचसामात्मसंवेद्यं तज्ज्ञानं ब्रह्मसंज्ञितम्॥
([illegible])

चढ़े हैं और मृगोंसे अधिक पशु हैं। पशुओंकी अपेक्षा मनुष्य परम पुरुष भगवान्‌की उस क्षेत्रज्ञ-शक्तिसे अधिक प्रभावित हैं। मनुष्योंसे भी बढ़े हुए नाग, गन्धर्व, यक्ष आदि देवता हैं। देवताओंसे भी इन्द्र और इन्द्रसे भी प्रजापति उस शक्तिमें बढ़े हैं। प्रजापतिकी अपेक्षा भी हिरण्यगर्भ ब्रह्माजीमें भगवान्‌की उस शक्तिका विशेष प्रकाश हुआ है। राजन्! ये सम्पूर्ण रूप उस परमेश्वरके ही शरीर हैं। क्योंकि ये सब आकाशकी भाँति उनकी शक्तिसे व्याप्त हैं। महामते! विष्णु नामक ब्रह्मका दूसरा अमूर्त्त (निराकार) रूप है, जिसका योगीलोग ध्यान करते हैं और विद्वान् पुरुष जिसे 'सत्' कहते हैं। जनेश्वर! भगवान्‌का वही रूप अपनी लीलासे देव, तिर्यक् और मनुष्य आदि चेष्टाओंसे युक्त सर्वशक्तिमय रूप धारण करता है। इन रूपोंमें अप्रमेय भगवान्‌की जो व्यापक एवं अव्याहत चेष्टा होती है, वह सम्पूर्ण जगत्‌के उपकारके लिये ही होती है, कर्मजन्य नहीं होती। राजन्! योगके साधकको आत्मशुद्धिके लिये विश्वरूप भगवान्‌के उस सर्वपापनाशक स्वरूपका ही चिन्तन करना चाहिये। जैसे वायुका सहयोग पाकर प्रज्वलित हुई अग्नि ऊँची लपटें उठाकर तृणसमूहको भस्म कर डालती है, उसी प्रकार योगियोंके चित्तमें विराजमान भगवान् विष्णु उनके समस्त पापोंको जला डालते हैं। इसलिये सम्पूर्ण शक्तियोंके आधारभूत भगवान् विष्णुमें चित्तको स्थिर करे—यही शुद्ध धारणा है।

राजन्! तीनों भावनाओंसे अतीत भगवान् विष्णु ही योगियोंकी मुक्तिके लिये इनके सब ओर जानेवाले चञ्चल चित्तके शुभ आश्रय हैं। पुरुषसिंह! भगवान्‌के अतिरिक्त जो मनके दूसरे आश्रय सम्पूर्ण देवता आदि हैं, वे सब अशुद्ध हैं। भगवान्‌का मूर्त्तरूप चित्तको दूसरे सम्पूर्ण आश्रयोंसे निःस्पृह कर देता है—चित्तको जो भगवान्‌में धारण करना—स्थिरतापूर्वक लगाना है, इसे ही 'धारणा' समझना चाहिये। नरेश! बिना किसी आधारके धारणा नहीं हो सकती; अतः भगवान्‌के सगुण-साकार स्वरूपका जिस प्रकार चिन्तन करना चाहिये, वह बतलाता हूँ; सुनो। भगवान्‌का मुख प्रसन्न एवं मनोहर है। उनके नेत्र विकसित कमलदलके समान विशाल एवं सुन्दर हैं। दोनों कपोल बड़े ही सुहावने और चिकने हैं। ललाट चौड़ा और प्रकाशसे उद्भासित है। उनके दोनों कान बराबर हैं और उनमें धारण किये हुए मनोहर कुण्डल कंधेके समीपतक लटक रहे हैं। ग्रीवा शङ्खकी-सी शोभा धारण करती है। विशाल वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न सुशोभित है। उनके उदरमें तिरङ्गाकार त्रिवली तथा गहरी नाभि है। भगवान् विष्णु बड़ी-बड़ी चार अथवा आठ भुजाएँ धारण करते हैं। उनके दोनों ऊरु तथा जंघे समान भावसे स्थित हैं। और मनोहर चरणारविन्द हमारे सम्मुख स्थिरभावसे खड़े हैं। उन्होंने स्वच्छ पीताम्बर धारण कर रक्खा है। इस प्रकार उन ब्रह्मस्वरूप भगवान् विष्णुका चिन्तन करना चाहिये। उनके मस्तकपर किरीट, गलेमें हार, भुजाओंमें केयूर और हाथोंमें कड़े आदि आभूषण उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। शार्ङ्ग धनुष, पाञ्चजन्य शङ्ख, कौमोदकी गदा, नन्दक खड्ग, सुदर्शन चक्र, अक्षमाला तथा वरद

और अभयकी मुद्रा—ये सब भगवान्‌के करकमलोंकी शोभा बढ़ाते हैं। उनकी अंगुलियोंमें रत्नमयी मुद्रिकाएँ शोभा दे रही हैं। राजन्! इस प्रकार योगी भगवान्‌के मनोहर स्वरूपमें अपना चित्त लगाकर तबतक उसका चिन्तन करता रहे, जबतक उसी स्वरूपमें उसकी धारणा दृढ़ न हो जाय। चलते-फिरते, उठते-बैठते, अथवा अपनी इच्छाके अनुसार दूसरा कोई कार्य करते समय भी जब वह धारणा चित्तसे अलग न हो, तब उसे सिद्ध हुई मानना चाहिये।

इसके दृढ़ होनेपर बुद्धिमान् पुरुष भगवान्‌के ऐसे स्वरूपका चिन्तन करे, जिसमें शङ्ख, चक्र, गदा तथा शार्ङ्ग धनुष आदि आयुध न हों। वह स्वरूप परम शान्त तथा अक्षमाला

एवं यज्ञोपवीतसे विभूषित हो। जब यह धारणा भी पूर्ववत् स्थिर हो जाय तो भगवान्‌के किरीट, केयूर आदि आभूषणोंसे रहित स्वरूपका चिन्तन करे। तत्पश्चात् विद्वान् साधक अपने चित्तसे भगवान्‌के किसी एक अवयव (चरण या मुखारविन्द) का ध्यान करे। तदनन्तर अवयवोंका चिन्तन छोड़कर केवल अवयवी भगवान्‌के ध्यानमें तत्पर हो जाय। राजन्! जिसमें भगवान्‌के स्वरूपकी ही प्रतीति होती है, ऐसी जो अन्य वस्तुओंकी इच्छासे रहित ध्येयाकार चित्तकी एक अनवरत धारा है, उसीको 'ध्यान' कहते हैं। वह अपने पूर्व यम-नियम आदि छः अङ्गोंसे निष्पन्न होता है। उस ध्येय पदार्थका ही जो मनके द्वारा सिद्ध होनेयोग्य कल्पनाहीन (ध्याता, ध्येय और ध्यानकी त्रिपुटीसे रहित) स्वरूप ग्रहण किया जाता है, उसे ही 'समाधि' कहते हैं*। राजन्! प्राप्त करनेयोग्य वस्तु है परब्रह्म परमात्मा और उसके समीप पहुँचानेवाला सहायक है पूर्वोक्त समाधिजनित विज्ञान तथा उस परमात्मातक पहुँचनेका पात्र है सम्पूर्ण कामनाओंसे रहित आत्मा। क्षेत्रज्ञ कर्ता है और ज्ञान करण है; अतः उस ज्ञानरूपी करणके द्वारा वह प्रापक विज्ञान उस क्षेत्रज्ञका मुक्तिरूप कार्य सिद्ध करके कृतकृत्य होकर निवृत्त हो जाता है। उस समय वह भगवद्भावमयी भावनासे पूर्ण हो परमात्मासे अभिन्न हो जाता है। वास्तवमें क्षेत्रज्ञ और परमात्माका भेद तो अज्ञानजनित ही है। भेद उत्पन्न करनेवाले अज्ञानके सर्वथा नष्ट हो जानेपर आत्मा और ब्रह्ममें भेद नहीं रह जाता। उस दशामें भेदबुद्धि कौन करेगा। खाण्डिक्यजी! इस प्रकार आपके प्रश्नके अनुसार मैंने संक्षेप और [illegible] योगका वर्णन किया। अब मैं आपका दूसरा कौन [illegible]

खाण्डिक्य बोले—राजन्! आपने योगद्वारा [illegible] भावको प्राप्त करनेके उपायका वर्णन किया। इससे मेरा [illegible] कार्य सम्पन्न हो गया। आज आपके उपदेशसे मेरे [illegible] सारी मलिनता नष्ट हो गयी। मैंने जो 'मेरे' शब्दका प्रयोग किया, यह भी असत्य ही है, अन्यथा ज्ञेय तत्त्वको [illegible] ज्ञानी पुरुष तो यह भी नहीं कह सकते। 'मैं' और 'मेरा' यह बुद्धि तथा अहंता-ममताका व्यवहार भी अविद्या ही है। परमार्थ वस्तु तो अनिर्वचनीय है, क्योंकि वह वाणीका विषय नहीं है†। केशिध्वजजी! आपने जो इस अविनाशी [illegible] योगका वर्णन किया है, इसके द्वारा मेरे कल्याणके लिये [illegible] सब कुछ कर दिया।

सनन्दनजी कहते हैं—ब्रह्मन्! तदनन्तर [illegible] खाण्डिक्यने यथोचितरूपसे महाराज केशिध्वजका पूजन [illegible] और वे उनसे सम्मानित होकर पुनः अपनी राजधानीमें [illegible] आये। खाण्डिक्य भगवान् विष्णुमें चित्त लगाकर [illegible] योगसिद्धिके लिये विशालापुरी (बदरिकाश्रम) को [illegible] गये। वहाँ यम-नियम आदि गुणोंसे युक्त हो उन्होंने भगवान्‌की अनन्यभावसे उपासना की और अन्तमें [illegible] निर्मल परब्रह्म परमात्मा भगवान् विष्णुमें लीन हो गये। नारदजी! तुमने आध्यात्मिक आदि तीनों तापोंकी [illegible] लिये जो उपाय पूछा था, वह सब मैंने बताया।

राजा भरतका मृगशरीरमें आसक्तिके कारण मृग होना, फिर ज्ञानसम्पन्न ब्राह्मण होकर जडवृत्तिसे रहना, जडभरत और सौवीरनरेशका संवाद

नारदजी बोले—महाभाग! मैंने आध्यात्मिक आदि तीनों तापोंकी चिकित्साका उपाय सुन लिया तथापि मेरा मन अभी भ्रममें भटक रहा है। वह शीघ्रतापूर्वक स्थिर नहीं हो पाता। ब्रह्मन्! आप दूसरोंको मान देनेवाले हैं। बताइये, यदि दुष्टलोग किसीके मनके विपरीत बर्ताव करें तो मनुष्य उसे कैसे सह सकता है?

सूतजी कहते हैं—नारदजीका यह [illegible] ब्रह्मपुत्र सनन्दनजीको बड़ा हर्ष हुआ। उन्हें [illegible] चरित्रका स्मरण हो आया और वे इस प्रकार बोले।

सनन्दनजीने कहा—नारदजी! मैं इस विषयमें [illegible] प्राचीन इतिहास कहूँगा, जिसे सुनकर तुम्हारे [illegible] बड़ी स्थिरता प्राप्त होगी। मुनिश्रेष्ठ! प्राचीन [illegible]

* तद्रूपप्रत्यया चैकसंततिश्चान्यनि:स्पृहा। तद्ध्यानं प्रथमैरङ्गैः षड्भिर्निष्पाद्यते नृप॥
तस्यैव कल्पनाहीनं स्वरूपग्रहणं हि यत्। मनसा ध्याननिष्पाद्यं समाधिः सोऽभिधीयते॥ (ना० पूर्व० ४७।६६-[illegible])

† अहं ममेत्यविद्येयं व्यवहारस्तथानयोः। परमार्थस्त्वसंलाप्यो वचसां गोचरो न यः॥ (ना० पूर्व० [illegible])

नामसे प्रसिद्ध एक राजा हुए थे, जो ऋषभदेवजीके पुत्र थे और जिनके नामपर इस देशको 'भारतवर्ष' कहते हैं। राजा भरतने बाप-दादोंके क्रमसे चले आते हुए राज्यको पाकर उसका धर्मपूर्वक पालन किया। जैसे पिता अपने पुत्रको संतुष्ट करता है, उसी प्रकार वे प्रजाको प्रसन्न रखते थे। उन्होंने नाना प्रकारके यज्ञोका अनुष्ठान करके सर्वदेवस्वरूप भगवान् विष्णुका यजन किया। वे सदा भगवान्‌का ही चिन्तन करते और उन्हींमे मन लगाकर नाना सत्कर्मोंमें लगे रहते थे। तदनन्तर पुत्रोको जन्म देकर विद्वान् राजा भरत विषयोसे विरक्त हो गये और राज्य त्यागकर पुलस्त्य एवं पुलह मुनिके आश्रमको चले गये। उन महर्षियोका आश्रम शालग्राम नामक महाक्षेत्रमे था। मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले बहुत-से साधक उस तीर्थका सेवन करते थे। मुने! वहीं राजा भरत तपस्यामे संलग्न हो यथाशक्ति पूजन-सामग्री जुटाकर उसके द्वारा भक्तिभावसे भगवान् महाविष्णुकी आराधना करने लगे। नारदजी! वे प्रतिदिन प्रातःकाल निर्मल जलमे स्नान करते तथा अविनाशी परब्रह्मकी स्तुति एवं प्रणवसहित वेद-मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए भक्तिपूर्वक सूर्यदेवका उपस्थान करते थे। तदनन्तर आश्रमपर लौटते और अपने ही लाये हुए समिधा, कुशा तथा मिट्टी आदि द्रव्योंसे और फल, फूल, तुलसीदल एव स्वच्छ जलसे एकाग्रतापूर्वक जगदीश्वर भगवान् वासुदेवकी पूजा करते थे। भगवान्‌की पूजाके समय वे भक्तिके प्रवाहमे डूब जाते थे।

एक दिनकी बात है, महाभाग राजा भरत प्रातःकाल स्नान करके एकाग्रचित्त हो जप करते हुए तीन मुहूर्त्त (छः घड़ी) तक शालग्रामीके जलमें खड़े रहे। ब्रह्मन्! इसी समय एक प्यासी हरिणी जल पीनेके लिये अकेली ही वनसे नदीके तटपर आयी। उसका प्रसवकाल निकट था। वह प्रायः जल पी चुकी थी, इतनेमे ही सब प्राणियोको भय देनेवाली सिंहकी गर्जना उच्चस्वरसे सुनायी पडी। फिर तो वह उस सिंहनादसे भयभीत हो नदीके तटकी ओर उछल पड़ी। बहुत ऊँचाईकी ओर उछलनेसे उसका गर्भ नदीमे ही गिर पड़ा और तरङ्गमालाओंमें डूबता-उतराता हुआ वेगसे बहने लगा। राजा भरतने गर्भसे गिरे हुए उस मृगके बच्चेको दयावश उठा लिया। मुनीश्वर! उधर वह हरिणी गर्भ गिरनेके अत्यन्त दुःखसे और बहुत ऊँचे चढनेके परिश्रमसे थककर एक स्थानपर गिर पड़ी और वहीं मर गयी। उस हरिणीको मरी हुई देख तपस्वी राजा भरत मृगके बच्चेको

लिये हुए अपने आश्रमपर आये और प्रतिदिन उसक पालन-पोषण करने लगे। मुने! उनसे पोषित होकर व मृगका बच्चा बढ़ने लगा। उस मृगमें राजाका चित्त जैस आसक्त हो गया था, वैसा भगवान्‌मे भी नहीं हुआ उन्होंने अपने राज्य और पुत्रोंको छोड़ा, समस्त भा बन्धुओंको भी त्याग दिया, परंतु इस हरिनके बच्चेमें ममत पैदा कर ली। उनका चित्त मृगकी ममताके वशीभूत ह गया था; इसलिये उनकी समाधि भङ्ग हो गयी। तदनन्त कुछ समय बीतनेपर राजा भरत मृत्युको प्राप्त हुए। उ समय जैसे पुत्र पिताको देखता है, उसी प्रकार वह मृगक बच्चा आँसू बहाते हुए उनकी ओर देख रहा था। राजा भ प्राणोंका त्याग करते समय उस मृगकी ही ओर देख र थे। द्विजश्रेष्ठ! मृगकी भावना करनेके कारण राजा भर दूसरे जन्ममे मृग हो गये। किंतु पूर्वजन्मकी बातोंका स्मर होनेसे उनके मनमें संसारकी ओरसे वैराग्य हो गया। अपनी माँको त्यागकर पुनः शालग्राम-तीर्थमे आये और सू घास तथा सूखे पत्ते खाकर शरीरका पोषण करने लगे। ऐस करनेसे मृग-शरीरकी प्राप्ति करानेवाले कर्मका प्रायश्चित्त ह गया; अतः वहीं अपने शरीरका त्याग करके वे जातिस (पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण करनेवाले) ब्राह्मणके रूप उत्पन्न हुए। सदाचारी योगियोंके श्रेष्ठ एवं शुद्ध कुल

उनका जन्म हुआ। वे सम्पूर्ण विज्ञानसे सम्पन्न तथा समस्त शास्त्रोंके तत्त्वज्ञ हुए।

मुनिश्रेष्ठ! उन्होंने आत्माको प्रकृतिसे परे देखा। महामुने! वे आत्मज्ञानसम्पन्न होनेके कारण देवता आदि सम्पूर्ण भूतोंको अपनेसे अभिन्न देखते थे। उपनयन-संस्कार हो जानेपर वे गुरुके पढ़ाये हुए वेद-शास्त्रका अध्ययन नहीं करते थे। किन्हीं वैदिक कर्मोंकी ओर ध्यान नहीं देते और न शास्त्रोंका उपदेश ही ग्रहण करते थे। जब कोई उनसे बहुत पूछ-ताछ करता तो वे जडके समान गँवारोंकी-सी बोलीमें कोई बात कह देते थे। उनका शरीर मैला-कुचैला होनेसे निन्दित प्रतीत होता था। मुने! वे सदा मलिन वस्त्र पहना करते थे। इन सब कारणोंसे वहाँके समस्त नागरिक उनका अपमान किया करते थे। सम्मान योगसम्पत्तिकी अधिक हानि करता है और दूसरे लोगोंसे अपमानित होनेवाला योगी योगमार्गमें शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है—ऐसा विचार करके वे परम बुद्धिमान् ब्राह्मण जन-साधारणमें अपने-आपको जड और उन्मत्त-सा ही प्रकट करते थे, भीगे हुए चने और उड़द, बड़े, साग, जंगली फल और अन्नके दाने आदि जो-जो सामयिक खाद्य वस्तु मिल जाती, उसीको बहुत मानकर खा लेते थे। पिताकी मृत्यु होनेपर भाई-भतीजे और बन्धु-बान्धवोंने उनसे खेती-बारीका काम कराना आरम्भ किया। उन्हींके दिये हुए सड़े-गले अन्नसे उनके शरीरका पोषण होने लगा। उनका एक-एक अङ्ग बैलके समान मोटा था और काम-काजमें वे जडकी भाँति जुते रहते थे। भोजनमात्र ही उनका वेतन था; इसलिये सब लोग उनसे अपना काम निकाल लिया करते थे।

ब्रह्मन्! एक समय सौवीर-राजने शिविकापर आरूढ हो इक्षुमती नदीके किनारे महर्षि कपिलके श्रेष्ठ आश्रमपर जानेका निश्चय किया था। वे मोक्षधर्मके ज्ञाता महामुनि कपिलसे यह पूछना चाहते थे कि इस दुःखमय संसारमें मनुष्योंके लिये कल्याणकारी साधन क्या है? उस दिन राजाकी बेगारमें बहुत-से दूसरे मनुष्य भी पकड़े गये थे। उन्हींके बीच भरतमुनि भी बेगारमें पकड़कर लाये गये। नारदजी! वे सम्पूर्ण ज्ञानके एकमात्र भाजन थे। उन्हें पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण था; अतः वे अपने पापमय प्रारब्धका क्षय करनेके लिये उस शिविकाको कंधेपर उठाकर ढोने लगे। बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ जडभरतजी (क्षुद्र जीवोंको बचानेके लिये) चार हाथ आगेकी भूमि देखते हुए मन्दगतिसे चलते थे; किंतु उनके सिवा दूसरे कहार जल्दी-जल्दी चल रहे थे। राजाने देखा कि पालकी समान गतिसे नहीं चल रही है, तो उन्होंने कहा—'अरे पालकी ढोनेवाले कहारो! यह क्या करते हो? सब लोग एक साथ समान गतिसे चलो।' किंतु इतना कहनेपर भी जब शिविकाकी गति पुनः वैसी ही विषम दिखायी दी, तब राजाने डाँटकर पूछा—'अरे! यह क्या है? तुमलोग मेरी आज्ञाके विपरीत चलते हो!' राजाके बार-बार ऐसे वचन सुनकर पालकी ढोनेवाले कहारोंने जडभरतकी ओर संकेत करके कहा—'यही धीरे-धीरे चलता है।'

राजाने पूछा—अरे! क्या तू थक गया? अभी तो थोड़ी ही दूरतक तूने मेरी पालकी ढोयी है। क्या तुझसे यह परिश्रम सहन नहीं होता। वैसे तो तू बड़ा मोटा-ताजा दिखायी देता है।

ब्राह्मणने कहा—राजन्! न मैं मोटा हूँ और न मैंने आपकी पालकी ही ढोयी है। न तो मैं थका हूँ और न मुझे कोई परिश्रम ही होता है। इस पालकीको ढोनेवाला कोई दूसरा ही है।

राजा बोले—मोटा तो तू प्रत्यक्ष दिखायी देता है और पालकी तेरे ऊपर अब भी मौजूद है और बोझ ढोनेमें देहधारियोंका परिश्रम तो होता ही है।

ब्राह्मणने कहा—राजन्! इस विषयमें मेरी बात सुनो। 'सबसे नीचे पृथ्वी है, पृथ्वीपर दो पैर हैं, दोनों पैरोंपर दो जङ्घे हैं, उन जङ्घोंपर दो ऊरु हैं तथा उनके ऊपर उदर है। फिर उदरके ऊपर छाती, भुजाएँ और कंधे हैं और कंधोंपर यह पालकी रक्खी गयी है। ऐसी दशामें मेरे ऊपर भार कैसे रहा? पालकीमें भी जिसे तुम्हारा कहा जाता है, वह शरीर रक्खा हुआ है। राजन्! मैं, तुम और अन्य सब जीव पञ्चभूतोंद्वारा ही ढोये जाते हैं तथा यह भूतवर्ग भी गुणोंके प्रवाहमें पड़कर ही बहा जा रहा है। पृथ्वीपते! ये सत्त्व आदि गुण भी कर्मोंके वशीभूत हैं और यह कर्म समस्त जीवोंमें अविद्याद्वारा ही संचित है। आत्मा तो शुद्ध, अक्षर, शान्त, निर्गुण और प्रकृतिसे परे है। वह एक ही सम्पूर्ण जीवोंमें व्याप्त है। उसकी वृद्धि अथवा ह्रास कभी नहीं होता। जब आत्मामें न तो वृद्धि होती है और न ह्रास ही, तब तुमने किस युक्तिसे यह बात कही है कि तू मोटा है। यदि क्रमशः पृथ्वी, पैर, जङ्घा, ऊरु, कटि तथा उदर

आदि अङ्गोंपर स्थित हुए कंधेके ऊपर रक्खी हुई यह शिविका मेरे लिये भाररूप हो सकती है तो उसी प्रकार तुम्हारे लिये भी तो हो सकती है। राजन्! इस युक्तिसे तो अन्य समस्त जीवोंने भी न केवल पालकी उठा रक्खी है, बल्कि सम्पूर्ण पर्वत, वृक्ष, गृह और पृथ्वी आदिका भार भी अपने ऊपर ले रक्खा है। राजन्! जिस द्रव्यसे यह पालकी बनी हुई है, उसीसे यह तुम्हारा, मेरा अथवा अन्य सबका शरीर भी बना है, जिसमें सबने ममता बढ़ा रक्खी है।

सनन्दनजी कहते हैं—ऐसा कहकर वे ब्राह्मणदेवता कंधेपर पालकी लिये मौन हो गये। तब राजाने भी तुरंत पृथ्वीपर उतरकर उनके दोनों चरण पकड़ लिये।

राजाने कहा—हे विप्रवर! यह पालकी छोड़कर आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये और बताइये, यह छद्मवेश धारण किये हुए आप कौन हैं? किसके पुत्र हैं? अथवा आपके यहाँ आगमनका क्या कारण है? यह सब आप मुझसे कहिये।

ब्राह्मण बोले—भूपाल! सुनो—मैं कौन हूँ, यह बात बतायी नहीं जा सकती और तुमने जो यहाँ आनेका कारण पूछा, उसके उत्तरमें यह निवेदन है कि कहीं भी आने-जानेका कर्म कर्मफलके उपभोगके लिये ही हुआ करता है। धर्मा-धर्मजनित सुख-दुःखोंका उपभोग करनेके लिये ही जीव देह आदि धारण करता है। भूपाल! सब जीवोंकी सम्पूर्ण अवस्थाओंके कारण केवल उनके धर्म और अधर्म ही हैं।

राजाने कहा—इसमें संदेह नहीं कि सब कर्मोंके धर्म और अधर्म ही कारण हैं और कर्मफलके उपभोगके लिये एक देहसे दूसरी देहमें जाना होता है, किंतु आपने जो यह कहा कि 'मैं कौन हूँ' यह बात बतायी नहीं जा सकती, इसी बातको सुननेकी मुझे इच्छा हो रही है।

ब्राह्मण बोले—राजन्! 'अहं' शब्दका उच्चारण जिह्वा, दन्त, ओठ और तालु ही करते हैं, किंतु ये सब 'अहं' नहीं हैं; क्योंकि ये सब उस शब्दके उच्चारणमात्रमें हेतु हैं। तो क्या इन जिह्वा आदि कारणोंके द्वारा यह वाणी ही स्वयं अपनेको 'अहं' कहती है? नहीं; अतः ऐसी स्थितिमें 'तू मोटा है' ऐसा कहना कदापि उचित नहीं। राजन्! सिर और हाथ-पैर आदि लक्षणोंवाला यह शरीर आत्मासे पृथक् ही है; अतः इस 'अहं' शब्दका प्रयोग मैं कहाँ और किसके लिये करूँ? नृपश्रेष्ठ! यदि मुझसे भिन्न कोई और भी सजातीय आत्मा हो तो भी 'यह मैं हूँ और यह अन्य है'—ऐसा कहना उचित हो सकता था। जब सम्पूर्ण शरीरोंमें एक ही आत्मा विराजमान है, तब 'आप कौन हैं और मैं कौन हूँ' इत्यादि प्रश्नवाक्य व्यर्थ ही हैं। नरेश! 'तुम राजा हो, यह पालकी है और ये सामने पालकी ढोनेवाले खड़े हैं तथा यह जगत् आपके अधिकारमें है'—ऐसा जो कहा जाता है, वह वास्तवमें सत्य नहीं है। वृक्षसे लकड़ी पैदा हुई और उससे यह पालकी बनी, जिसपर तुम बैठते हो। यदि इसे पालकी ही कहा जाय तो इसका 'वृक्ष' नाम अथवा 'लकड़ी' नाम कहाँ चला गया? यह तुम्हारे सेवकगण ऐसा नहीं कहते कि महाराज पेड़पर चढ़े हुए हैं और न कोई तुम्हें लकड़ीपर ही चढ़ा हुआ बतलाता है। सब लोग पालकीमें ही बैठा हुआ बतलाते हैं; किंतु पालकी क्या है—लकड़ियोंका समुदाय। वही अपने लिये एक विशेष नामका आश्रय लेकर स्थित है। नृपश्रेष्ठ! इसमेंसे लकड़ियोंके समूहको अलग कर दो और फिर खोजो—तुम्हारी पालकी कहाँ है? इसी प्रकार छातेकी शलाकाओं (तिल्लियों) को पृथक् करके विचार करो, छाता नामकी वस्तु कहाँ चली गयी? यही न्याय तुम्हारे और मेरे ऊपर लागू होता है (अर्थात् मेरे और तुम्हारे शरीर भी पञ्चभूतसे अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं हैं)। पुरुष, स्त्री, गाय, बकरी, घोड़ा, हाथी, पक्षी और वृक्ष आदि लौकिक नाम कर्मजनित विभिन्न शरीरोंके लिये ही रक्खे गये हैं—ऐसा जानना चाहिये। भूपाल! आत्मा न देवता है, न मनुष्य है, न पशु है और न वृक्ष ही है। ये सब तो शरीरोंकी आकृतियोंके भेद हैं, जो भिन्न-भिन्न कर्मोंके अनुसार उत्पन्न हुए हैं। राजन्! लोकमें जो राजा, राजाके सिपाही तथा और भी जो-जो ऐसी वस्तुएँ हैं, वे सब काल्पनिक हैं, सत्य नहीं हैं। नरेश! जो वस्तु परिणाम आदिके कारण होनेवाली किसी नयी संज्ञाको कालान्तरमें भी नहीं प्राप्त होती, वही पारमार्थिक वस्तु है। विचार करो, वह क्या है? तुम समस्त प्रजाके लिये राजा हो, अपने पिताके पुत्र हो, शत्रुके लिये शत्रु हो, पत्नीके लिये पति और पुत्रके लिये पिता हो। भूपाल! बताओ, मैं तुम्हें क्या कहूँ? महीपते! तुम क्या हो? यह सिर हो या ग्रीवा अथवा पेट या पैर आदिमेंसे कोई हो तथा ये सिर आदि भी तुम्हारे क्या हैं? पृथ्वीपते! तुम सम्पूर्ण अवयवोंसे पृथक् स्थित होकर भलीभाँति विचार करो कि मैं कौन हूँ। नरेश! आत्म-तत्त्व जब इस प्रकार स्थित है, जब सबसे पृथक् करके ही उसका प्रतिपादन किया जा सकता है, तो मैं उसे 'अहं' इस नामसे कैसे बता सकता हूँ?

जडभरत और सौवीरनरेशका संवाद—परमार्थका निरूपण तथा ऋभुका निदाघको अद्वैतज्ञानका उपदेश

सनन्दनजी कहते हैं—नारदजी! ब्राह्मणका परमार्थयुक्त वचन सुनकर सौवीर-नरेशने विनयसे नम्र होकर कहा।

राजा बोले—विप्रवर! आपने सम्पूर्ण जीवोंमें व्याप्त जिस विवेक-विज्ञानका दर्शन कराया है, वह प्रकृतिसे परे ब्रह्मका

ही स्वरूप है। परंतु आपने जो यह कहा कि मैं पालकी नहीं ढोता हूँ और न मुझपर पालकीका भार ही है। जिसने यह पालकी उठा रक्खी है, वह शरीर मुझसे भिन्न है। जीवोंकी प्रवृत्ति गुणोकी प्रेरणासे होती है और ये गुण कर्मोंसे प्रेरित होकर प्रवृत्त होते है। इसमें मेरा कर्तृत्व क्या है? परमार्थके ज्ञाता द्विजश्रेष्ठ! आपकी वह बात कानमें पड़ते ही मेरा मन परमार्थका जिज्ञासु होकर उसे प्राप्त करनेके लिये विह्वल हो उठा है। महाभाग द्विज! मैं पहलेसे ही महर्षि कपिलके पास जाकर यह पूछनेके लिये उद्यत हुआ था कि इस जगत्‌मे श्रेय क्या है, यह मुझे बताइये। किंतु इसके बीचमें ही आपने जो ये बाते कही हैं, उन्हें सुनकर मेरा मन परमार्थ-श्रवणके लिये आपकी ओर दौड़ रहा है। महर्षि कपिलजी सर्वभूतस्वरूप भगवान् विष्णुके अंश हैं और संसारके मोहका नाश करनेके लिये इस पृथ्वीपर उनका आगमन हुआ है—ऐसा मुझे जान पड़ता है। वे ही भगवान् कपिल मेरे हितकी कामनासे यहाँ आपके रूपमें प्रत्यक्ष प्रकट हुए हैं, तभी तो आप ऐसा भाषण कर रहे हैं। अतः ब्रह्मन्! मेरे मोक्षलाभ करनेके लिये जो परम श्रेय हो, वह मुझे बताइये, क्योंकि आप सम्पूर्ण विज्ञानमय जलकी तरंगोंके समुद्र जान पड़ते हैं।

ब्राह्मणने कहा—भूपाल! क्या तुम श्रेयकी ही बात पूछते हो? या परमार्थ जाननेके लिये प्रश्न करते हो? राजन्! जो मनुष्य देवताकी आराधना करके धन-सम्पत्ति चाहता है, पुत्र तथा राज्य (एवं स्वर्ग) की अभिलाषा करता है, उसके लिये तो वे ही वस्तुएँ श्रेय हैं; परंतु विवेकी पुरुषके लिये परमात्माकी प्राप्ति ही श्रेय है। स्वर्गलोकरूप फल देनेवाला जो यज्ञ आदि कर्म है, वह भी श्रेय ही है; परंतु प्रधान श्रेय तो उसके फलकी इच्छा न करनेमें ही है। भूपाल! योगयुक्त तथा अन्य पुरुषोंको भी सदा परमात्माका चिन्तन करना चाहिये; क्योंकि परमात्माका संयोगरूप जो श्रेय है, वही वास्तविक श्रेय है। इस प्रकार श्रेय तो अनेक हैं, सैकड़ों और हजारों प्रकारके हैं; किंतु वे सब परमार्थ नहीं हैं। परमार्थ मैं बतलाता हूँ, सुनो—यदि धन ही परमार्थ होता तो धर्मके लिये उसका त्याग क्यों किया जाता तथा भोगोंकी प्राप्तिके लिये उसका व्यय क्यों किया जाता? नरेश्वर! यदि इस संसारमें राज्य आदिकी प्राप्तिको परमार्थ कहा जाय तो वे कभी रहते हैं और कभी नहीं रहते हैं; इसलिये परमार्थको भी आगमापायी मानना पड़ेगा। यदि ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके मन्त्रोंसे सम्पन्न होनेवाले यज्ञकर्मको तुम परमार्थ मानो तो उसके विषयमें मैं जो कहता हूँ, उसे सुनो। राजन्! कारणभूत मृत्तिकासे जो कार्य उत्पन्न होता है, वह कारणका अनुगमन करनेसे मृत्तिकास्वरूप ही समझा जाता है। इस न्यायसे समिधा, घृत और कुशा आदि विनाशशील द्रव्योंद्वारा जो क्रिया सम्पादित होती है, वह भी अवश्य ही विनाशशील होगी; परंतु विद्वान् पुरुष परमार्थको अविनाशी मानते हैं। जो क्रिया नाशवान् पदार्थोंसे सम्पन्न होती है, वह और उसका फल दोनों निस्संदेह नाशवान् होते हैं। यदि निष्काम भावसे किया जानेवाला कर्म स्वर्गादि फल न देनेके कारण परमार्थ माना जाय तो मेरे विचारसे वह परमार्थभूत मोक्षका साधनमात्र है और साधन कभी परमार्थ हो नहीं सकता (क्योंकि वह साध्य माना गया है)।

राजन्! यदि आत्माके ध्यानको ही परमार्थ नाम दिया जाय तो वह दूसरोंसे आत्माका भेद करनेवाला है; किंतु परमार्थमें भेद नहीं होता। अतः राजन्! निस्संदेह ये सब श्रेय ही हैं, परमार्थ नहीं। भूपाल! अब मैं संक्षेपसे परमार्थका वर्णन करता हूँ, सुनो—

नरेश्वर! आत्मा एक, व्यापक, सम, शुद्ध, निर्गुण और प्रकृतिसे परे है, उसमें जन्म और वृद्धि आदि विकार नहीं हैं। वह सर्वत्र व्यापक तथा परम ज्ञानमय है। असत् नाम और जाति आदिसे उस सर्वव्यापक परमात्माका न कभी सयोग हुआ, न है और न होगा ही। वह अपने और दूसरेके शरीरोंमें विद्यमान रहते हुए भी एक ही है। इस प्रकारका जो विशेष ज्ञान है, वही परमार्थ है। द्वैत-भावना रखनेवाले पुरुष तो अपरमार्थदर्शी ही हैं। जैसे बाँसुरीमें एक ही वायु अभेदभावसे व्याप्त है; किंतु उसके छिद्रोंके भेदसे उसमें षड्ज, ऋषभ आदि स्वरोंका भेद हो जाता है, उसी प्रकार उस एक ही परमात्माके देव, मनुष्य आदि अनेक भेद प्रतीत होते हैं। उस भेदकी स्थिति तो अविद्याके आवरणतक ही सीमित है। राजन्! इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास सुनो—

निदाघ नामक ब्राह्मणको उपदेश देते हुए महामुनि ऋभुने जो कुछ कहा था, उसीका इसमें वर्णन है। परमेष्ठी ब्रह्माजीके एक ऋभु नामक पुत्र हुए। भूपते! वे स्वभावसे ही परमार्थतत्त्वके ज्ञाता थे। पूर्वकालमें पुलस्त्यमुनिके पुत्र निदाघ उनके शिष्य हुए थे। ऋभुने बड़ी प्रसन्नताके साथ निदाघको सम्पूर्ण तत्त्वज्ञानका उपदेश दिया था। समस्त ज्ञानप्रधान शास्त्रोंका उपदेश प्राप्त कर लेनेपर भी निदाघकी अद्वैतमें निष्ठा नहीं हुई। नरेश्वर! ऋभुने निदाघकी इस स्थितिको ताड़ लिया था। देविका नदीके तटपर वीरनागर नामक एक अत्यन्त समृद्धिशाली और परम रमणीय नगर था, उसे महर्षि पुलस्त्यने बसाया था। उसी नगरमें पहले महर्षि ऋभुके शिष्य योगवेत्ता निदाघ निवास करते थे। उनके वहाँ रहते हुए जब एक हजार दिव्य वर्ष व्यतीत हो गये, तब महर्षि ऋभु अपने शिष्य निदाघको देखनेके लिये उनके नगरमें गये। निदाघ बलिवैश्वदेवके अन्तमें द्वारपर बैठकर अतिथियोंकी प्रतीक्षा कर रहे थे। वे ऋभुको पाद्य और अर्घ्य देकर अपने घरमें ले गये और हाथ-पैर धुलाकर उन्हें आसनपर बिठाया। तत्पश्चात् द्विजश्रेष्ठ निदाघने आदरपूर्वक कहा—'विप्रवर! अब भोजन कीजिये।'

ऋभु बोले—द्विजश्रेष्ठ! आपके घरमें भोजन करने योग्य जो-जो अन्न प्रस्तुत हो, उसका नाम बतलाइये।

निदाघने कहा—द्विजश्रेष्ठ! मेरे घरमें सत्तू, जौकी लपसी और बाटी बनी हैं। आपको इनमेंसे जो कुछ रुचे, वही इच्छानुसार भोजन कीजिये।

ऋभु बोले—ब्रह्मन्! इन सबमें मेरी रुचि नहीं है। मुझे तो मीठा अन्न दो। हलुआ, खीर और खाँड़के बने हुए पदार्थ भोजन कराओ।

निदाघने अपनी स्त्रीसे कहा—शोभने! हमारे घरमें जो अच्छी-से-अच्छी भोजन-सामग्री उपलब्ध हो, उसके द्वारा इन अतिथि-देवताके लिये मिष्टान्न बनाओ।

पतिके ऐसा कहनेपर ब्राह्मणपत्नीने स्वामीकी आज्ञाका आदर करते हुए ब्राह्मण-देवताके लिये मीठा भोजन तैयार किया। राजन्! महामुनि ऋभुके इच्छानुसार मिष्टान्न भोजन कर लेनेपर निदाघने विनीतभावसे खड़े होकर पूछा।

निदाघ बोले—ब्रह्मन्! कहिये, भोजनसे आपको भलीभाँति तृप्ति हुई? आप संतुष्ट हो गये न? अब आपका चित्त पूर्णतः स्वस्थ है न? विप्रवर! आप कहाँके रहनेवाले हैं, कहाँ जानेको उद्यत हैं और कहाँसे आपका आगमन हुआ है? यह सब बताइये।

ऋभुने कहा—ब्रह्मन्! जिसे भूख लगती है, उसीको अन्न भोजन करनेपर तृप्ति भी होती है। मुझे तो न कभी भूख लगी और न तृप्ति हुई। फिर मुझसे क्यों पूछते हो? जठराग्निसे पार्थिव धातु (पहलेके खाये हुए पदार्थ) के पच जानेपर क्षुधाकी प्रतीति होती है। इसी प्रकार पिये हुए जलके क्षीण हो जानेपर मनुष्योंको प्यासका अनुभव होता है। द्विज! ये भूख और प्यास देहके ही धर्म हैं, मेरे नहीं। अतः मुझे कभी भूख लगनेकी सम्भावना ही नहीं है। इसलिये मुझे तो सर्वदा तृप्ति रहती ही है। ब्रह्मन्! मनकी स्वस्थता और संतोष—ये दोनों चित्तके धर्म (विकार) हैं। अतः आत्मा इन धर्मोंसे संयुक्त नहीं होता और तुमने जो यह पूछा है कि आपका निवास कहाँ है, आप कहाँ जायँगे और आप कहाँसे आते हैं—इन तीनों प्रश्नोंके विषयमें मेरा मत सुनो। आत्मा सबमें व्याप्त है। यह आकाशकी भाँति सर्वव्यापक है, अतः इसके विषयमें कहाँसे आये, कहाँ रहते हैं और कहाँ जायँगे—यह प्रश्न कैसे सार्थक हो सकता है? इसलिये मैं न जानेवाला हूँ और न आनेवाला। (तू, मैं

और अन्यका भेद भी शरीरको लेकर ही है) वास्तवमें न तू तू है, न अन्य अन्य है और न मैं मैं हूँ (केवल विशुद्ध आत्मा ही सर्वत्र विराजमान है)। इसी प्रकार मीठा भी मीठा नहीं है। मैंने जो तुमसे मिष्टान्नके लिये पूछा था उसमें भी मेरा यही भाव था कि देखूँ, ये क्या कहते हैं। द्विजश्रेष्ठ! इस विषयमें मेरा विचार सुनो। मीठा अन्न भी तृप्त हो जानेके बाद मीठा नहीं लगता तो वही उद्वेगजनक हो जाता है। कभी-कभी जो मीठा नहीं है, वह भी मीठा लगता है अर्थात् अधिक भूख होनेपर फीका अन्न भी मीठा (अमृतके समान) लगता है। ऐसा कौन-सा अन्न है, जो आदि, मध्य और अन्त—तीनों कालमें रुचिकर ही हो। जैसे मिट्टीका घर मिट्टीसे लिपनेपर स्थिर होता है, उसी प्रकार यह पार्थिव शरीर पार्थिव परमाणुओंसे पुष्ट होता है। जौ, गेहूँ, मूँग, घी, तेल, दूध, दही, गुड़ और फल आदि सभी भोज्य-पदार्थ पार्थिव परमाणु ही तो हैं (इनमेंसे कौन स्वादिष्ट है और कौन नहीं)। अतः ऐसा समझकर जो मीठे और बे-मीठेका विचार करनेवाला है, उस मनको तुम्हें समदर्शी बनाना चाहिये; क्योंकि समता ही मोक्षका उपाय है।

राजन्! ऋभुके ये परमार्थयुक्त वचन सुनकर महाभाग निदाघने उन्हें प्रणाम करके कहा—'ब्रह्मन्! आप प्रसन्न होइये और बताइये, मेरा हितसाधन करनेके लिये यहाँ पधारे हुए आप कौन हैं? आपके इन वचनोंको सुनकर मेरा सम्पूर्ण मोह नष्ट हो गया है।'

ऋभु बोले—द्विजश्रेष्ठ! मैं तुम्हारा आचार्य ऋभु हूँ और तुम्हें तत्त्वको समझनेवाली बुद्धि देनेके लिये यहाँ आया था। अब मैं जाता हूँ। जो कुछ परमार्थ है, वह सब मैंने तुम्हें बता दिया। इस प्रकार परमार्थ-तत्त्वका विचार करते हुए तुम इस सम्पूर्ण जगत्‌को एकमात्र वासुदेवसंज्ञक परमात्माका स्वरूप समझो। इसमें भेदका सर्वथा अभाव है।

ब्राह्मण जडभरत कहते हैं—तदनन्तर निदाघने 'बहुत अच्छा' कहकर गुरुदेवको प्रणाम किया और बड़ी भक्तिसे उनकी पूजा की। तत्पश्चात् वे निदाघकी इच्छा न होनेपर भी वहाँसे चले गये। नरेश्वर! तदनन्तर एक सहस्र दिव्य वर्ष बीतनेके बाद गुरुदेव महर्षि ऋभु निदाघको ज्ञानोपदेश करनेके लिये पुनः उसी नगरमें आये। उन्होंने नगरसे बाहर ही निदाघको देखा। वहाँका राजा बहुत बड़ी सेना आदिके साथ धूम-धामसे नगरमें प्रवेश कर रहा था और निदाघ मनुष्योंकी भीड़-भाड़से दूर हटकर खड़े थे। वे जंगलसे समिधा और कुशा लेकर आये थे और भूख-प्याससे [illegible] था। निदाघको देखकर ऋभु उनके समीप गये और [illegible] करके बोले—'बाबाजी! आप यहाँ एकान्तमें कैसे [illegible]'

निदाघ बोले—विप्रवर! आज इस रमणीय [illegible] यहाँके राजा प्रवेश करना चाहते हैं। अतः यहाँ [illegible] यह बहुत बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गयी है। इसीलिये मैं [illegible] खड़ा हूँ।

ऋभुने पूछा—द्विजश्रेष्ठ! आप यहाँकी बातोंसे [illegible] मालूम होते हैं। अतः बताइये, यहाँ राजा कौन है और [illegible] लोग कौन हैं?

निदाघ बोले—यह जो पर्वतशिखरके समान [illegible] और मतवाले गजराजपर चढ़ा हुआ है, वही राजा है और दूसरे लोग उसके परिजन हैं।
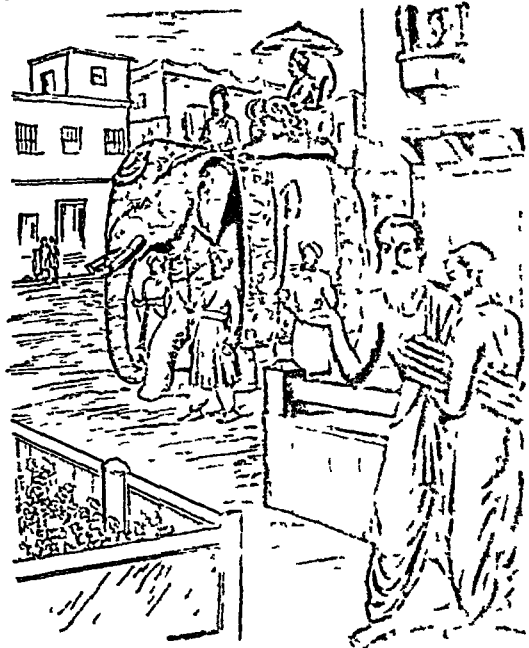
ऋभुने पूछा—महाभाग! मैंने हाथी [illegible] ही साथ देखा है। आपने विशेषरूपसे [illegible] चिह्न नहीं बताया, इसलिये मैं पहचान न [illegible]। आप इनकी विशेषता बतलाइये। मैं जानना चाहता हूँ [illegible] इनमें कौन राजा है और कौन हाथी?

निदाघ बोले—ब्रह्मन्! इनमें [illegible] हाथी है और इसके ऊपर वे राजा बैठे हैं। [illegible] वाहन है और दूसरा सवार! [illegible] कौन नहीं जानता?

ऋभुने पूछा—ब्रह्मन्! जिस प्रकार मैं अच्छी तरह समझ सकूँ, उस तरह मुझे समझाइये। 'नीचे' इस शब्दका क्या अभिप्राय है और 'ऊपर' किसे कहते हैं?

ब्राह्मण जडभरत कहते हैं—ऋभुके ऐसा कहनेपर निदाघ सहसा उनके ऊपर चढ़ गये और इस प्रकार बोले—'सुनिये, आप मुझसे जो कुछ पूछ रहे हैं, वह अब समझाकर कहता हूँ। इस समय मैं राजाकी भाँति ऊपर हूँ और श्रीमान् गजराजकी भाँति नीचे। ब्राह्मणदेव! आपको भलीभाँति समझानेके लिये ही मैंने यह दृष्टान्त दिखाया है।

ऋभुने कहा—द्विजश्रेष्ठ! यदि आप राजाके समान हैं और मैं हाथीके समान हूँ तो यह बताइये कि आप कौन हैं और मैं कौन हूँ?

ब्राह्मण कहते हैं—ऋभुके ऐसा कहनेपर निदाघने तुरंत ही उनके दोनों चरणोंमें मस्तक नवाया और कहा—'भगवन्! आप निश्चय ही मेरे आचार्यपाद महर्षि ऋभु हैं; क्योंकि दूसरेका हृदय इस प्रकार अद्वैत-संस्कारसे सम्पन्न नहीं है, जैसा कि मेरे आचार्यका। अतः मेरा विश्वास है, आप मेरे गुरुजी ही यहाँ पधारे हुए हैं।

ऋभुने कहा—निदाघ! पहले तुमने मेरी बड़ी सेवा शुश्रूषा की है। इसलिये अत्यन्त स्नेहवश मैं तुम्हें उपदेश देनेके लिये तुम्हारा आचार्य ऋभु ही यहाँ आया हूँ। महामते! समस्त पदार्थोंमें अद्वैत आत्मबुद्धि होना ही परमार्थका सार है। मैंने तुम्हे संक्षेपसे उसका उपदेश कर दिया।

ब्राह्मण जडभरत कहते हैं—विद्वान् गुरु महर्षि ऋभु निदाघसे ऐसा कहकर चले गये। निदाघ भी उनके उपदेशसे अद्वैतपरायण हो गये और सम्पूर्ण प्राणियोंको अपनेसे अभिन्न देखने लगे। ब्रह्मर्षि निदाघने इस प्रकार ब्रह्मपरायण होकर परम मोक्ष प्राप्त कर लिया। धर्मज्ञ नरेश! इसी प्रकार तुम भी आत्माको सबमें व्याप्त जानते हुए अपनेमें तथा शत्रु और मित्रमे समान भाव रक्खो।

सनन्दनजी कहते हैं—ब्राह्मणके ऐसा कहनेपर राजाओंमें श्रेष्ठ सौवीरनरेशने परमार्थकी ओर दृष्टि रखकर भेदबुद्धि त्याग दी और वे ब्राह्मण भी पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण करके बोधयुक्त हो उसी जन्ममें मुक्त हो गये। मुनीश्वर नारद! इस प्रकार मैंने तुम्हें परमार्थरूप यह अध्यात्मज्ञान बताया है। इसे सुननेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंको भी यह मुक्ति प्रदान करनेवाला है।

शिक्षा-निरूपण

सूतजी कहते हैं—सनन्दनजीका ऐसा वचन सुनकर नारदजी अतृप्त-से रह गये। वे और भी सुननेके लिये उत्सुक होकर भाई सनन्दनजीसे बोले।

नारदजीने कहा—भगवन्! मैंने आपसे जो कुछ पूछा है, वह सब आपने बता दिया। तथापि भगवत्सम्बन्धी चर्चाको बारंबार सुनकर भी मेरा मन तृप्त नहीं होता—अधिकाधिक सुननेके लिये उत्कण्ठित हो रहा है। सुना जाता है, परम धर्मज्ञ व्यास-पुत्र शुकदेवजीने आन्तरिक और बाह्य—सभी भोगोंसे पूर्णतः विरक्त होकर बड़ी भारी सिद्धि प्राप्त कर ली। ब्रह्मन्! महात्माओंकी सेवा (सत्सङ्ग) किये बिना प्रायः पुरुषको विज्ञान (तत्त्व-ज्ञान) नहीं प्राप्त होता, किंतु व्यासनन्दन शुकदेवने बाल्यावस्थामें ही ज्ञान पा लिया; यह कैसे सम्भव हुआ? महाभाग! आप मोक्षशास्त्रके तत्त्वको जाननेवाले हैं। मैं सुनना चाहता हूँ, आप मुझसे शुकदेवजी-का रहस्यमय जन्म और कर्म कहिये।

सनन्दनजी बोले—नारद! सुनो, मैं शुकदेवजीकी उत्पत्तिका वृत्तान्त संक्षेपसे कहूँगा। मुने! इस वृत्तान्तको सुनकर मनुष्य ब्रह्मतत्त्वका ज्ञाता हो सकता है। अधिक आयु हो जानेसे, बाल पक जानेसे, धनसे अथवा बन्धु-बान्धवोंसे कोई बड़ा नहीं होता। ऋषि-मुनियोंने यह धर्मपूर्ण निश्चय किया है कि हमलोगोंमें जो 'अनूचान' हो, वही महान् है।

नारदजीने पूछा—सबको मान देनेवाले विप्रवर! पुरुष 'अनूचान' कैसे होता है? वह उपाय मुझे बताइये; क्योंकि उसे सुननेके लिये मेरे मनमे बड़ा कौतूहल है।

सनन्दनजी बोले—नारद! सुनो, मैं अनूचानका लक्षण बताता हूँ, जिसे जानकर मनुष्य अङ्गोंसहित वेदोंका ज्ञाता होता है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्यौतिष तथा छन्दःशास्त्र—इन छःको विद्वान् पुरुष वेदाङ्ग कहते हैं। धर्मका प्रतिपादन करनेमे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद—ये चार वेद ही प्रमाण बताये गये हैं। जो श्रेष्ठ द्विज गुरुसे छहो अङ्गोंसहित वेदोंका अध्ययन भलीभाँति करता है, वह 'अनूचान' होता है; अन्यथा करोड़ों ग्रन्थ बाँच लेनेसे भी कोई 'अनूचान' नहीं कहला सकता।

नारदजीने कहा—मानद! आप अङ्गोंसहित इन

सम्पूर्ण वेदोंके महापण्डित हैं। अतः मुझे अङ्गों और वेदोंका लक्षण विस्तारपूर्वक बताइये।

सनन्दनजी बोले—ब्रह्मन्! तुमने मुझपर प्रश्नका यह अनुपम भार रख दिया। मैं संक्षेपसे इन सबके सुनिश्चित सार-सिद्धान्तका वर्णन करूँगा। वेदवेत्ता ब्रह्मर्षियोंने वेदोंकी शिक्षामे स्वरको प्रधान कहा है; अतः स्वरका वर्णन करता हूँ, सुनो—स्वर-शास्त्रोंके निश्चयके अनुसार विशेषरूपसे आर्चिक (ऋक्सम्बन्धी), गाथिक (गाथा-सम्बन्धी) और सामिक (सामसम्बन्धी) स्वर-व्यवधानका प्रयोग करना चाहिये। ऋचाओंमे एकका अन्तर देकर स्वर होता है। गाथाओंमे दोके व्यवधानसे और साम-मन्त्रोमे तीनके व्यवधानसे स्वर होता है। स्वरोंका इतना ही व्यवधान सर्वत्र जानना चाहिये। ऋक्, साम और यजुर्वेदके अङ्गभूत जो याज्य, स्तोत्र, करण और मन्त्र आदि याज्ञिकोंद्वारा यज्ञोंमें प्रयुक्त होते हैं, शिक्षा-शास्त्रका ज्ञान न होनेसे उनमे विस्वर (विरुद्ध स्वरका उच्चारण) हो जाता है। मन्त्र यदि यथार्थ स्वर और वर्णसे हीन हो तो मिथ्या-प्रयुक्त होनेके कारण वह उस अभीष्ट अर्थका बोध नहीं कराता; इतना ही नहीं, वह वाक्-रूपी वज्र यजमानकी हिंसा कर देता है—जैसे 'इन्द्रशत्रु' यह पद स्वरभेदजनित अपराधके कारण यजमानके लिये ही अनिष्टकारी हो गया *। सम्पूर्ण वाङ्मयके उच्चारणके लिये वक्षःस्थल, कण्ठ और सिर—ये तीन स्थान हैं। इन तीनोंको सवन कहते हैं, अर्थात् वक्षःस्थानमें नीच स्वरसे जो शब्दोच्चारण होता है, उसे प्रातःसवन कहते हैं; कण्ठस्थानमे मध्यम स्वरसे किये हुए शब्दोच्चारणका नाम माध्यन्दिन-सवन है तथा मस्तकरूप स्थानमे उच्च स्वरसे जो शब्दोच्चारण होता है, उसे तृतीयसवन कहते हैं। अधरोत्तरभेद-से सप्तस्वरात्मक सामके भी पूर्वोक्त तीन ही स्थान हैं। उरोभाग, कण्ठ तथा सिर—ये सातों स्वरोंके विचरण-स्थान हैं। किंतु उरःस्थलमें मन्द्र और अतिस्वारकी ठीक अभिव्यक्ति न होनेसे उसे सातों स्वरोंका विचरण-स्थान नहीं [illegible] सकता; तथापि अध्ययनाध्यापनके लिये वैसा [illegible] गया है। (ठीक अभिव्यक्ति न होनेपर भी उपांशु [illegible] प्रयोगमें वर्ण तथा स्वरका सूक्ष्म उच्चारण तो होता ही है।) कठ, कलाप, तैत्तिरीय तथा आह्वरक शाखाओंमें और ऋग्[illegible] तथा सामवेदमें प्रथम स्वरका उच्चारण करना चाहिये। ऋग्वेदकी प्रवृत्ति दूसरे और तीसरे स्वरके द्वारा होती है। लौकिक व्यवहारमें उच्च और मध्यमका संघात-स्वर होता है। आह्वरक शाखावाले तृतीय तथा प्रथममें उच्चारित स्वरोंका प्रयोग करते हैं। तैत्तिरीय शाखावाले द्वितीयसे लेकर पञ्चम[illegible] चार स्वरोंका उच्चारण करते हैं। सामगान [illegible] विद्वान् प्रथम (षड्ज), द्वितीय (ऋषभ), तृतीय (गान्धार), चतुर्थ (मध्यम), मन्द्र (पञ्चम), [illegible] (धैवत) तथा अतिस्वार (निषाद)—इन सातों स्वरोंका प्रयोग करते हैं। द्वितीय और प्रथम—ये ताण्डी (ता[illegible] पञ्चविंशादि ब्राह्मणके अध्येता कौथुम आदि शाखा[illegible]) तथा भाल्लवी (छन्दोग शाखावाले) विद्वानोंके स्वर [illegible]। तथा शतपथ ब्राह्मणमें आये हुए ये दोनों स्वर वाज[illegible] शाखावालोंके द्वारा भी प्रयुक्त होते हैं। ये सब वेदोंमें प्रयुक्त होनेवाले स्वर विशेषरूपसे बताये गये हैं। इस प्रकार [illegible] वैदिक स्वर-संचार कहा गया है।

अब मैं सामवेदके स्वर-सञ्चारका वर्णन करूँगा। [illegible] छन्दोग विद्वान् सामगानमे तथा ऋक्पाठमें जिन स्वरों[illegible] उपयोग करते हैं, उनका यहाँ विशेषरूपसे निरूपण [illegible] जाता है। यहाँ श्लोक थोड़े होंगे, किंतु उनमें अर्थ [illegible] अधिक होगा। यह उत्तम वेदाङ्गका विषय [illegible] श्रवण करनेयोग्य है। नारद! मैंने तुम्हें [illegible] तान, राग, स्वर, ग्राम तथा मूर्च्छनाओंका [illegible] है, जो परम पवित्र, पावन तथा पुण्यमय है। [illegible] ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके स्वरोंका [illegible] इसे ही शिक्षा कहते हैं। सात स्वर, तीन ग्राम, [illegible] मूर्च्छना और उनचास तान—इन सबको स्वर[illegible] गया है। षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, [illegible] तथा सातवाँ निषाद—ये सात स्वर हैं। षड्ज, [illegible] गान्धार—ये तीन ग्राम कहे गये हैं। भूर्लोकसे षड्ज [illegible] होता है, भुवर्लोकसे मध्यम प्रकट होता है [illegible] स्वर्लोकसे गान्धारका प्रादुर्भाव होता है। [illegible]

---

* तैत्तिरीय शाखाकी कृष्णयजु संहिताके द्वितीयकाण्डमें पञ्चम प्रपाठकके द्वितीय अनुवाकको प्रथम पञ्चाशतीमें मन्त्र आया है—'स्वाहेन्द्रशत्रुर्वर्धस्व।' पौराणिक कथाके अनुसार त्वष्टा प्रजा-पतिने 'इन्द्रके शत्रु' वृत्रके अभ्युदयके लिये इस मन्त्रका उच्चारण किया था। 'इन्द्रस्य शत्रुः' इस विग्रहके अनुसार षष्ठी-समासमें समासान्तप्रयुक्त अन्तोदात्तका उच्चारण अभीष्ट था, परंतु प्रयोगमे पूर्वपदप्रकृतिस्वर—आद्युदात्त बोला गया, अतः वह बहुव्रीहिके अर्थका प्रकाशक हो गया। इसलिये 'इन्द्र है शत्रु (संहारक) जिसका वह' ऐसा अर्थ निकलनेके कारण वृत्रासुर ही इन्द्रके हाथसे मारा गया।

स्थान हैं। स्वरोंके राग-विशेषसे ग्रामोंके विविध राग कहे गये हैं। साम-गान करनेवाले विद्वान् मध्यम ग्राममें बीस, षड्जग्राममें चौदह तथा गान्धारग्राममें पंद्रह तान स्वीकार करते हैं। नन्दी, विशाला, सुमुखी, चित्रा, चित्रवती, सुखा तथा बला—ये देवताओंकी सात मूर्च्छनाएँ जाननी चाहिये। आप्यायिनी, विश्वभृता, चन्द्रा, हेमा, कपर्दिनी, मैत्री तथा बार्हती—ये पितरोंकी सात मूर्च्छनाएँ हैं। षड्जस्वरमें उत्तर मन्द्रा, ऋषभमें अभिरूढता (या अभिरुद्गता) तथा गान्धारमें अश्वक्रान्ता नामवाली तीसरी मूर्च्छना मानी गयी है। मध्यमस्वरमें सौवीरा, पञ्चममें हृषिका तथा धैवतमें उत्तरायता नामकी मूर्च्छना जाननी चाहिये। निषादस्वरमें रजनी नामक मूर्च्छनाको जाने। ये ऋषियोंकी सात मूर्च्छनाएँ हैं। गन्धर्वगण देवताओंकी सात मूर्च्छनाओंका आश्रय लेते हैं। यक्षलोग पितरोंकी सात मूर्च्छनाएँ अपनाते हैं, इसमें संशय नहीं है। ऋषियोंकी जो सात मूर्च्छनाएँ हैं, उन्हे लौकिक कहा गया है—उनका अनुसरण मनुष्य करते हैं। षड्जस्वर देवताओंको और ऋषभस्वर ऋषि-मुनियोंको तृप्त करता है। गान्धारस्वर पितरोंको, मध्यमस्वर गन्धर्वोंको तथा पञ्चमस्वर देवताओं, पितरों एवं महर्षियोंको भी संतुष्ट करता है। निषादस्वर यक्षोंको तथा धैवत सम्पूर्ण भूत-समुदायको तृप्त करता है। गानकी गुणवृत्ति दस प्रकारकी है अर्थात् लौकिक-वैदिक गान दस गुणोंसे युक्त हैं। रक्त, पूर्ण, अलंकृत, प्रसन्न, व्यक्त, विक्रुष्ट, श्लक्ष्ण, सम, सुकुमार तथा मधुर—ये ही वे दसों गुण हैं। वेणु, वीणा तथा पुरुषके स्वर जहाँ एक-में मिलकर अभिन्न-से प्रतीत होते हैं और उससे जो रञ्जन होता है, उसका नाम 'रक्त' है। स्वर तथा श्रुतिकी पूर्ति करनेसे तथा छन्द एवं पादाक्षरोंके संयोग (स्पष्ट उच्चारण) से जो गुण प्रकट होता है, उसे 'पूर्ण' कहते हैं। कण्ठ अर्थात् प्रथम स्थानमें जो स्वर स्थित है, उसे नीचे करके हृदयमें स्थापित करना और ऊँचे करके सिरमें ले जाना—यह 'अलंकृत' कहलाता है। जिसमें कण्ठका गद्गदभाव निकल गया है और किसी प्रकारकी शङ्का नहीं रह गयी है, वह 'प्रसन्न' नामक गुण है। जिसमें पद, पदार्थ, प्रकृति, विकार, आगम, लोप, कृदन्त, तद्धित, समास, धातु, निपात, उपसर्ग, स्वर, लिङ्ग, वृत्ति, वार्तिक, विभक्त्यर्थ तथा एकवचन, बहु-वचन आदिका भलीभाँति उपपादन हो, उसे 'व्यक्त' कहते हैं। जिसके पद और अक्षर स्पष्ट हों तथा जो उच्चस्वरसे बोला गया हो, उसका नाम 'विक्रुष्ट' है। द्रुत (जल्दबाजी) और बिलम्बित—दोनों दोषोंसे रहित, उच्च, नीच, प्लुत, समाहार, हेल, ताल और उपनय आदि उपपत्तियोंसे युक्त गीतको 'श्लक्ष्ण' कहते हैं। स्वरोंके अवाप-निर्वाप (चढाव-उतार) के जो प्रदेश हैं, उनका व्यवहित स्थानोंमें जो समावेश होता है, उसीका नाम 'सम' है। पद, वर्ण, स्वर तथा कुहरण (अव्यक्त अक्षरोंको कण्ठ दबाकर बोलना)—ये सभी जिसमें मृदु—कोमल हों, उस गीतको 'सुकुमार' कहा गया है। स्वभावसे ही मुखसे निकले हुए ललित पद एवं अक्षरोंके गुणसे सम्पन्न गीत 'मधुर' कहलाता है। इस प्रकार गान इन दस गुणोंसे युक्त होता है।

इसके विपरीत गीतके दोष बताये जाते हैं—इस विषय-में ये श्लोक कहे गये हैं। शङ्कित, भीषण, भीत, उद्घुष्ट, आनुनासिक, काकस्वर, मूर्द्धगत (अत्यन्त उच्चस्वरसे सिरतक चढ़ाया हुआ अपूर्णगान), स्थान-विवर्जित, विस्वर, विरस, विश्लिष्ट, विषमाहत, व्याकुल तथा तालहीन—ये चौदह गीतके दोष हैं। आचार्यलोग समगानकी इच्छा करते हैं। पण्डितलोग पदच्छेद (प्रत्येक पदका विभाग) चाहते हैं। स्त्रियाँ मधुर गीतकी अभिलाषा करती हैं और दूसरे लोग विक्रुष्ट (पद और अक्षरके विभागपूर्वक उच्चस्वरसे उच्चारित) गीत सुनना चाहते हैं। षड्जस्वरका रंग कमलपत्रके समान हरा है। ऋषभस्वर तोतेके समान कुछ पीलापन लिये हरे रंगका है। गान्धार सुवर्णके समान कान्तिवाला है। मध्यमस्वर कुन्दके सदृश श्वेतवर्णका है। पञ्चमस्वरका रंग श्याम है। धैवत-को पीले रंगका माना गया है। निषादस्वरमें सभी रग मिले हुए हैं। इस प्रकार ये स्वरोंके वर्ण कहे गये हैं। पञ्चम, मध्यम और षड्ज—ये तीनों स्वर ब्राह्मण माने गये हैं। ऋषभ और धैवत ये दोनों ही क्षत्रिय हैं। गान्धार तथा निषाद—ये दोनों स्वर आधे वैश्य कहे गये है। और पतित होनेके कारण ये आधे शूद्र हैं। इसमें संशय नहीं है। जहाँ ऋषभके अनन्तर प्रकट हुए षड्जके साथ धैवतसहित पञ्चमस्वर मध्यम-रागमें प्राप्त होता है, उस निषादसहित स्वरग्रामको 'षाडव' या 'षाड्जव' जानना चाहिये। यदि मध्यमस्वरमें पञ्चमका विराम हो और अन्तरस्वर गान्धार हो जाय तथा उसके बाद क्रमसे ऋषभ, निषाद एवं पञ्चमका उदय हो तो उस पञ्चम-को भी ऐसा ही (षाडव या षाड्जव) समझे। यदि मध्यमस्वर-का आरम्भ होनेपर गान्धारका आधिपत्य (वृद्धि) हो जाय, निषादस्वर बारंबार जाता-आता रहे, धैवतका एक ही बार उच्चारण होनेके कारण वह दुर्बलावस्थामें रहे तथा षड्ज और ऋषभकी अन्य पाँचोंके समान ही स्थिति हो तो उसे 'मध्यम-

ग्राम' कहते हैं । जहाँ आरम्भमें षड्ज हो और निषादका थोड़ा-सा स्पर्श किया गया हो तथा गान्धारका अधिक उच्चारण हुआ हो, साथ ही धैवतस्वरका कम्पन—पातन देखा जाता हो तथा उसके बाद दूसरे स्वरोंका यथारुचि गान किया गया हो, उसे 'षड्जग्राम' कहा गया है । जहाँ आरम्भमें षड्ज हो और इसके बाद अन्तरस्वर-संयुक्त काकली देखी जाती हो अर्थात् चार बार केवल निषादका ही श्रवण होता हो, पञ्चम स्वरमें स्थित उस आधारयुक्त गीतको 'श्रुति कैशिक' जानना चाहिये । जब पूर्वोक्त कैशिक नामक गीतको सब स्वरोंसे संयुक्त करके मध्यमसे उसका आरम्भ किया जाय और मध्यममें ही उसकी स्थापना हो तो वह 'कैशिक मध्यम' नामक ग्रामराग होता है । जहाँ पूर्वोक्त काकली देखी जाती हो और प्रधानता पञ्चम स्वरकी हो तथा शेष दूसरे-दूसरे स्वर सामान्य स्थितिमें हो तो कश्यप ऋषि उसे मध्यम ग्रामजनित 'कैशिक राग' कहते हैं । विद्वान् पुरुष 'गा'का अर्थ गेय मानते हैं और 'ध'का अर्थ कलापूर्वक बाजा बजाना कहते हैं और रेफसहित 'व'का अर्थ वाद्य-सामग्री कहते हैं । यही 'गान्धर्व' शब्दका लक्ष्यार्थ है । जो सामगान करनेवाले विद्वानोंका प्रथम स्वर है, वही वेणुका मध्यम स्वर कहा गया है । जो उनका द्वितीय स्वर है, वही वेणुका गान्धार स्वर है और जो उनका तृतीय है, वही वेणुका ऋषभ स्वर माना गया है । सामग विद्वानोंके चौथे स्वरको वेणुका षड्ज कहा गया है । उनका पञ्चम वेणुका धैवत होता है । उनके छठेको वेणुका निषाद समझना चाहिये और उनका सातवाँ ही वेणुका पञ्चम माना गया है । मोर षड्ज स्वरमें बोलता है । गाये ऋषभ स्वरमें रँभाती हैं, भेड़ और बकरियाँ गान्धार स्वरमें बोलती हैं । तथा क्रौञ्च (कुरर) पक्षी मध्यम स्वरमें बोलता है । जब साधारणरूपसे सब प्रकारके फूल खिलने लगते हैं, उस वसन्त ऋतुमें कोयल पञ्चम स्वरमें बोलती है । घोड़ा धैवत स्वरमें हिनहिनाता है और हाथी निषाद स्वरमें चिग्घाड़ता है । षड्ज स्वर कण्ठसे प्रकट होता है । ऋषभ मस्तकसे उत्पन्न होता है, गान्धारका उच्चारण मुखसहित नासिकासे होता है और मध्यम स्वर हृदयसे प्रकट होता है । पञ्चम स्वरका उत्थान छाती, सिर और कण्ठसे होता है । धैवतको ललाटसे उत्पन्न जानना चाहिये तथा निषादका प्राकट्य सम्पूर्ण संधियोंसे होता है । षड्ज स्वर नासिका, कण्ठ, वक्षःस्थल, तालु, जिह्वा तथा दाँतोंके आश्रित है । इन छः अङ्गोंसे उसका जन्म होता है । इसलिये उसे 'षड्ज' कहा गया है । नाभिसे उठी हुई वायु कण्ठ और मस्तकमे टकराकर वृषभके समान गर्जना करती है । [illegible] प्रकट हुए स्वरका नाम 'ऋषभ' है । नाभिसे उठी हुई वायु कण्ठ और सिरसे टकराकर पवित्र गन्ध लिये हुए बहती है । इस कारण उसे 'गान्धार' कहते हैं । नाभिसे उठी हुई वायु ऊरु तथा हृदयमें टकराकर नाभिस्थानमें आकर मध्यवर्ती होती है । अतः उससे निकले हुए स्वरका नाम 'मध्यम' होता है । नाभिसे उठी हुई वायु वक्ष, हृदय, कण्ठ और सिरसे टकराकर इन पाँचों स्थानोंसे स्वरके साथ प्रकट होती है । इसलिये उस स्वरका नाम 'पञ्चम' रक्खा गया है । अन्य विद्वान् धैवत और निषाद—इन दो स्वरोंको छोड़कर शेष पाँच स्वरोंको पाँचों स्थानोंसे प्रकट मानते हैं । पाँचों स्थानोंमें स्थित होनेके कारण इन सब स्थानोंसे धारण किया जाता है । षड्ज स्वर अग्निके द्वारा गाया गया है । ऋषभ ब्रह्माजीके द्वारा गाया गया है । गान्धारका गान सोमने और मध्यम स्वरका गान विष्णुने किया है । नारदजी ! पञ्चम स्वरका गान तो [illegible] इस बातको स्मरण करो । धैवत और निषाद—इन दो स्वरोंको तुम्बुरुने गाया है । विद्वान् पुरुषोंने ब्रह्माजीको [illegible] षड्ज स्वरका देवता कहा है । ऋषभका प्रभाव [illegible] उद्दीप्त है, इसलिये अग्निदेव ही उसके देवता हैं । [illegible] गान करनेपर गौएँ संतुष्ट होती हैं, [illegible] इसी कारण गौएँ ही उसकी अधिष्ठात्री देवी हैं । [illegible] सुनकर गौएँ पास आती हैं, [illegible] । [illegible] स्वरके देवता सोम हैं, जिन्हें ब्राह्मणोंका राजा [illegible] है । जैसे चन्द्रमा शुक्लपक्षमें बढ़ता है और कृष्णपक्षमें घटता है, उसी प्रकार स्वरग्राममें प्राप्त होनेपर [illegible] ह्रास होता और वृद्धि होती है तथा [illegible] जहाँ अतिसंधि होती है, वह धैवत है । [illegible] धैवतत्वका विधान किया गया है । निषादमें सब स्वरोंका निषादन (अन्तर्भाव) होता है, इसीलिये [illegible] कहलाता है । यह सब स्वरोंको [illegible] उसी तरह, जैसे सूर्य सब नक्षत्रोंको [illegible] क्योंकि सूर्य ही इसके अधिदेवता हैं ।

काठकी वीणा तथा [illegible] प्रकारकी वीणाएँ होती हैं । नारद ! [illegible] होती हैं, उनका [illegible] सुनो । [illegible] जिसपर सामगान करनेवाले [illegible] और अङ्गुलमें [illegible] है ।

उसमें अपने दोनों हाथोंको संयममें रखकर उन्हें घुटनोंपर रक्खे और गुरुका अनुकरण करे, जिससे भिन्न बुद्धि न हो। पहले प्रणवका उच्चारण करे, फिर व्याहृतियोंका। तदनन्तर गायत्रीमन्त्रका उच्चारण करके सामगान प्रारम्भ करे। सब अंगुलियोंको फैलाकर स्वरमण्डलका आरोपण करे। अंगुलियोंसे अङ्गुष्ठका और अङ्गुष्ठसे अंगुलियोंका स्पर्श कदापि न करे। अंगुलियोंको विलगाकर न रक्खे और उनके मूलभागका भी स्पर्श न करे, सदा उन अंगुलियोंके मध्यपर्वमें अँगूठेके अग्रभागसे स्पर्श करना चाहिये। विभागके ज्ञाता पुरुषको चाहिये कि मात्रा-द्विमात्रा-वृद्धिके विभागके लिये बायें हाथकी अंगुलियोंसे द्विमात्रका दर्शन कराता रहे। जहाँ त्रिरेखा देखी जाय, वहाँ संधिका निर्देश करे; वह पर्व है, ऐसा जानना चाहिये। शेष अन्तर-अन्तर है। साममन्त्रमें (प्रथम और द्वितीय स्वरके बीच) जौके बराबर अन्तर करे तथा ऋचाओंमें तिलके बराबर अन्तर करे। मध्यम पर्वोंमें भलीभाँति निविष्ट किये हुए स्वरोंका ही निवेश करे। विद्वान् पुरुष वहाँ शरीरके किसी अवयवको कँपाये नहीं। नीचेके अङ्ग—ऊरु, जङ्घा आदिको सुखपूर्वक रखकर उनपर दोनो हाथोको प्रचलित परिपाटीके अनुसार रक्खे (अर्थात् दाहिने हाथको गायके कानके समान रक्खे और बायेंको उत्तानभावसे रक्खे)। जैसे बादलोंमें बिजली मणिमय सूत्रकी भाँति चमकती दिखायी देती है, यही विवृत्तियों (पदादि विभागो)के छेद—विलगाव—स्पष्ट निर्देश-का दृष्टान्त है। जैसे सिरके बालोंपर कैंची चलती है और बालोंको पृथक् कर देती है, उसी प्रकार पद और स्वर आदिका पृथक्-पृथक् विभागपूर्वक बोध कराना चाहिये। जैसे कछुआ अपने सब अङ्गोंको समेट लेता है, उसी प्रकार अन्य सब चेष्टाओको विलीन करके मन और दृष्टि देकर विद्वान् पुरुष स्वस्थ, शान्त तथा निर्भीक होकर वर्णोंका उच्चारण करे। मन्त्रका उच्चारण करते समय नाककी सीधमें पूर्व दिशाकी ओर गोकर्णके समान आकृतिमें हाथको उठाये रक्खे और हाथके अग्रभागपर दृष्टि रखते हुए शास्त्रके अर्थका निरन्तर चिन्तन करता रहे। मन्त्र-वाक्यको हाथ और मुख दोनोंसे साथ-साथ भली-भाँति प्रचारित करे। वर्णोंका जिस प्रकार द्रुतादि वृत्तिसे आरम्भमें उच्चारण करे, उसी प्रकार उन्हें समाप्त भी करे। (एक ही मन्त्रमें दो वृत्तियोंकी योजना न करे।) अभ्याघात, निर्घात, प्रगान तथा कम्पन न करे, समभावसे साममन्त्रोंका गान करे। जैसे आकाशमें श्येन पक्षी सम गतिसे उडता है, जैसे जलमें विचरती हुई मछलियों अथवा आकाशमें उडते हुए पक्षियोंके मार्गका विशेष रूपसे पता नहीं चलता, उसी प्रकार सामगानमें स्वरगत श्रुतिके विशेष स्वरूपका अवधारण नहीं होता। सामान्यतः गीतमात्रकी उपलब्धि होती है। जैसे दहीमे घी अथवा काठके भीतर अग्नि छिपी रहती है और प्रयत्नसे उसकी उपलब्धि भी होती है, उसी प्रकार स्वरगत श्रुति भी गीतमें छिपी रहती है, प्रयत्नसे उसके विशेष स्वरूपकी भी उपलब्धि होती है। प्रथम स्वरसे दूसरे स्वरपर जो स्वर-संक्रमण होता है, उसे प्रथम स्वरसे संधि रखते हुए ही करे, विच्छेद करके न करे और न वेगसे ही करे। जैसे छाया एवं धूप सूक्ष्म गतिसे धीरे-धीरे एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जाते हैं—न तो पूर्वस्थानसे सहसा सम्बन्ध तोड़ते हैं और न नये स्थानपर ही वेगसे जाते हैं, उसी प्रकार स्वर-संक्रमण भी सम तथा अविच्छिन्न भावसे करे। जब प्रथम स्वरको खींचते हुए द्वितीय स्वर होता है, तब उसे 'कर्षण' कहते हैं। विद्वान् पुरुष निम्नाङ्कित छः दोषोंसे युक्त कर्षणका त्याग करे, अनागत तथा अतिक्रान्त अवस्थामें कर्षण न करे। द्वितीय स्वरके आरम्भसे पहले उसकी अनागत अवस्था है, प्रथम स्वरका सर्वथा व्यतीत हो जाना उसकी अतिक्रान्तावस्था है; इन दोनों स्थितियोंमें प्रथम स्वरका कर्षण न करे। प्रथम मात्राका विच्छेद करके भी कर्षण न करे। उसे विप्रमाहत—कम्पित करके भी द्वितीय स्वरपर न जाय। कर्षणकालमे तीन मात्रासे अधिक स्वरका विस्तार न करे। अस्थितान्तका त्याग करे अर्थात् द्वितीय स्वरमें भी त्रिमात्रायुक्त स्थिति करनी चाहिये, न कि दो मात्रासे ही युक्त। जो स्वर स्थानसे च्युत होकर अपने स्थानका अतिवर्तन (लङ्घन) करता है, उसे सामगान करनेवाले विद्वान् 'विस्वर' कहते हैं और वीणा बजाकर गानेवाले गायक उसे 'विरक्त' नाम देते हैं। स्वयं अभ्यास करनेके लिये द्रुतवृत्तिसे मन्त्रोच्चारण करे। प्रयोगके लिये मध्यम वृत्तिका आश्रय ले और शिष्योंके उपदेशके लिये विलम्बित वृत्तिका अवलम्बन करे। इस प्रकार शिक्षाशास्त्रोक्त विधिसे जितने ग्रन्थ (सामगान) को ग्रहण किया है, वह विद्वान् द्विज ग्रन्थोच्चारणकी शिक्षा लेनेवाले शिष्योंको हाथसे ही अध्ययन कराये।

क्रुष्ट (सप्तम एवं पञ्चम) स्वरका स्थान मस्तकमें है। प्रथम (षड्ज) स्वरका स्थान ललाटमे है। द्वितीय (ऋषभ) स्वरका स्थान दोनों भौहोके मध्यमें हैं। तृतीय (गान्धार) स्वरका स्थान दोनों कानोंमें हैं। चतुर्थ (मध्यम) स्वरका स्थान कण्ठ है। मन्द्र (पञ्चम) का स्थान रसना बतायी

जाती है। (मन्द्रस्योरसि तूच्यते—इस पाठके अनुसार उसका स्थान वक्षःस्थल भी है।) अतिस्वार नामवाले नीच स्वर (निषाद) का स्थान हृदयमें बताया जाता है। अङ्गुष्ठके शिरोभागमें क्रुष्ट (सप्तम-पञ्चम) का न्यास करना चाहिये। अङ्गुष्ठमें ही प्रथम स्वरका भी स्थान बताया गया है। तर्जनीमें गान्धार तथा मध्यमामें ऋषभकी स्थिति है। अनामिकामें षड्ज और कनिष्ठिकामें धैवत हैं। कनिष्ठाके नीचे मूल भागमें निषाद स्वरकी स्थिति बताये। मन्द्र स्वरसे सर्वथा पृथक् न होनेसे निषाद 'अपर्व' है। उसका पृथक् ज्ञान न होनेके कारण उसे 'असंज्ञ' कहा गया है तथा उसमें लिङ्ग, वचन आदिका सम्बन्ध न होनेसे उसे 'अव्यय' भी कहते हैं। अतः मन्द्र ही मन्दीभूत होकर 'परिस्वार' (निषाद) कहा गया है। क्रुष्ट स्वरसे देवता जीवन धारण करते हैं और प्रथमसे मनुष्य; द्वितीय स्वरसे पशु तथा तृतीयसे गन्धर्व और अप्सराएँ जीवन धारण करती हैं। अण्डज (पक्षी) तथा पितृगण चतुर्थ-स्वरजीवी होते हैं। पिशाच, असुर तथा राक्षस मन्द्रस्वरसे जीवन-निर्वाह करते हैं। नीच अतिस्वार (निषाद) से स्थावर-जङ्गमरूप जगत् जीवन धारण करता है। इस प्रकार सामिक स्वरसे सभी प्राणी जीवन धारण करते हैं।

जो दीप्ता, आयता, करुणा, मृदु तथा मध्यम श्रुतियोंका विशेषज्ञ नहीं है, वह आचार्य कहलानेका अधिकारी नहीं है। मन्द्र (पञ्चम), द्वितीय, चतुर्थ, अतिस्वार (षष्ठ) और तृतीय—इन पाँच स्वरोंकी श्रुति 'दीप्ता' कही गयी है। (प्रथमकी श्रुति मृदु है) और सप्तमकी श्रुति 'करुणा' है। अन्य जो 'मृदु', 'मध्यमा' और 'आयता' नामवाली श्रुतियाँ हैं, वे द्वितीय स्वरमें होती हैं। मैं उन सबके पृथक्-पृथक् लक्षण बताता हूँ। नीच अर्थात् तृतीय स्वर परे रहते द्वितीय स्वरकी आयता श्रुति होती है, विपर्यय अर्थात् चतुर्थ स्वर परे रहनेपर उक्त स्वरकी मृदुभूता श्रुति होती है। अपना स्वर परे हो और स्वरान्तर परे न हो तो उसकी मध्यमा श्रुति होती है। यह सब विचारकर सामस्वरका प्रयोग करना चाहिये। क्रुष्ट स्वर परे होनेपर द्वितीय स्वरमें स्थित जो श्रुति है, उसे 'दीप्ता' समझे। प्रथम स्वरमें हो तो वह 'मृदु' श्रुति मानी गयी है। यदि चतुर्थ स्वरमें हो तो वही श्रुति मृदु कहलाती है। तथा मन्द्र स्वरमें हो तो दीप्ता होती है। सामकी समाप्ति होनेपर जिस किसी भी स्वरमें स्थित श्रुति दीप्ता ही होती है। स्वरके समाप्त होनेसे पहले आयतादि श्रुतिका प्रयोग न करे। स्वर समान होनेपर [illegible] गानका विच्छेद न हो जाय, दो स्वरोंके [illegible] प्रयोग न करे। ह्रस्व तथा दीर्घ [illegible] भी श्रुति नहीं करनी चाहिये। ([illegible] कर्तव्य है) तथा जहाँ घुट-संज्ञक स्वर हो, [illegible] प्रयोग न करे। तालव्य इकारका 'आ' 'इ' [illegible] और 'आ उ' भाव होता है, ये दो प्रकारकी [illegible]। तथा ऊष्म वर्ण 'श ष स' के साथ जो त्रिविध [illegible] है—ये सब मिलकर पाँच स्थान हैं; इन [illegible] स्वर जानना चाहिये (इनमें श्रुति नहीं करनी चाहिये)। श्रुतिस्थानोंमें जहाँ स्वर और स्वरान्तर समान न [illegible] हों तथा जो ह्रस्व, दीर्घ एवं 'घुट' [illegible] रहित हैं, उनमें श्रुति नहीं करनी चाहिये। [illegible] ही श्रुतिवत् कार्य होता है।

(सामव्यतिरिक्त स्थलोंमें) उदात्त स्वरमें 'दीप्ता' नामवाली श्रुतिको जाने। स्वरितमें भी विद्वान् लोग 'दीप्ता' की ही स्थिति मानते हैं। अनुदात्तमें 'मृदु' श्रुति करनी चाहिये। गान्धर्व गानमें श्रुतिका अभाव होनेपर भी स्वरको ही श्रुतिके समान करना चाहिये, वहाँ स्वरमें ही [illegible] वैभव निहित है। उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, प्रचय तथा निघात—ये पाँच स्वरभेद होते हैं।

इसके बाद मैं आर्चिकके तीन स्वरोंका प्रतिपादन करता हूँ। पहला उदात्त, दूसरा अनुदात्त और तीसरा स्वरित है। जिसको उदात्त कहा गया है, वही स्वरितसे परे हो तो [illegible] पुरुष उसे प्रचय कहते हैं। वहाँ दूसरा कोई स्वरान्तर नहीं होता। स्वरितके दो भेद हैं—वर्णस्वार तथा [illegible]। इसी प्रकार वर्ण भी मात्रिक एवं उच्चरित [illegible] होता है। प्रचय-स्वाररूप प्रचयका दर्शन होनेसे उसे [illegible] प्रकारका जानना चाहिये। यह क्या, [illegible] है, इसका ज्ञान पदसे प्राप्त करना चाहिये। [illegible] स्वरोंका श्रवण करावे। आचार्योंने पुत्रों और शिष्योंके [illegible] इच्छासे ही इस शिक्षाशास्त्रका प्रणयन किया है। [illegible] (उदात्त) से कोई उच्चतर नहीं है और [illegible] ([illegible]) से नीचतर नहीं है। फिर [illegible] संज्ञा दी जाती है, उसमें स्वारका क्या स्थान है [illegible]

---

१. स्वरितसे [illegible] है। २. प्रचय परे हो तो स्वरित [illegible] संज्ञा होती है। प्रचय न हो, [illegible]

उत्तरमें कहते हैं—) उच्च (उदात्त) और नीच (अनुदात्त) के मध्यमें जो 'साधारण' यह श्रुति है, उसीको शिक्षाशास्त्रके विद्वान् स्वार-संज्ञामें 'स्वार' नामसे जानते हैं। उदात्तमें निषाद और गान्धार स्वर हैं, अनुदात्तमें ऋषभ और धैवत स्वर हैं। और ये—षड्ज, मध्यम तथा पञ्चम—स्वरितमें प्रकट होते हैं। जिसके परे 'क' और 'ख' हैं तथा जो जिह्वामूलीयरूप प्रयोजनको सिद्ध करनेवाली है, उस 'ऊष्मा' (≍क≍ख) को 'मात्रा' जाने। वह अपने स्वरूपसे ही 'कला' है (किसी दूसरे वर्णका अवयव नहीं है। इसे उपध्मानीयका भी उपलक्षण मानना चाहिये)।

जात्य, क्षैप्र, अभिनिहित, तैरव्यञ्जन, तिरोविराम, प्रश्लिष्ट तथा सातवाँ पादवृत्त—ये सात स्वार हैं। अब मैं इन सब स्वारोंका पृथक्-पृथक् लक्षण बतलाता हूँ। लक्षण कहकर उन सबके यथायोग्य उदाहरण भी बताऊँगा। जो अक्षर 'य' कार और 'व' कारके साथ स्वरित होता है तथा जिसके आगे उदात्त नहीं होता, वह 'जात्य' स्वार कहलाता है। जब उदात्त 'इ' वर्ण और'उ'वर्ण कहीं पदादि अनुदात्त अकार परे रहते सन्धि होनेपर 'य' 'व' के रूपमें परिणत हो स्वरित होते हैं, तो वहाँ सदा 'क्षैप्र' स्वारका लक्षण समझना चाहिये। 'ए' और 'ओ' इन दो उदात्त स्वरोंसे परे जो वकारसहित अकार निहित (अनुदात्तरूपमें निपातित) हो और उसका जहाँ लोप (एकार या उकारमें अनुप्रवेश) होता है, उसे 'अभिनिहित' स्वार माना जाता है। छन्दमें जहाँ कहीं या जो कोई भी ऐसा स्वरित होता है, जिसके पूर्वमें उदात्त हो, तो वह सर्व बहुस्वार—(सर्वत्र बहुलतासे होनेवाला स्वर) 'तैरव्यञ्जन' कहलाता है। यदि उदात्त अवग्रह हो और अवग्रहसे परे अनन्तर स्वरित हो, तो उसे 'तिरोविराम' समझना चाहिये। जहाँ उदात्त इकारको अनुदात्त इकारसे संयुक्त देखो, वहाँ विचार लो कि 'प्रश्लिष्ट' स्वार है। जहाँ स्वर अक्षर अकारादिमें स्वरित हो और पूर्वपदके साथ संहिता विभक्त हो, उसे पादवृत्त स्वारका शास्त्रोक्त लक्षण समझना चाहिये।

'जात्य' स्वारका उदाहरण है—'स जात्येन' इत्यादि। श्रुच्री+अग्ने=श्रुच्यग्ने आदि स्थलोंमें 'क्षैप्र' स्वार है। 'ते मन्वत' इत्यादिमें 'अभिनिहित' स्वार जानना चाहिये। ऊ+ ऊतये=ऊतये, वि+ईतये=वीतये इत्यादिमें 'तैरव्यञ्जन' नामक स्वार है। 'विस्कभिते विस्कभिते' आदि स्थलोंमें 'तिरोविराम' है। 'हि इन्द्र गिर्वणः'='हीन्द्र०' इत्यादिमें 'प्रश्लिष्ट' स्वार है। 'क ईम् कईं वेद' इत्यादिमें 'पादवृत्त' नामक स्वार है। इस प्रकार ये सब सात स्वार हैं।

जात्य स्वरोंको छोड़कर एक पूर्ववर्ती उदात्त अक्षरसे परे जो भी अक्षर हो, उसकी स्वरित संज्ञा होती है। यह स्वरितका सामान्य लक्षण बताया जाता है। पूर्वोक्त चार स्वार उदात्त अथवा एक अनुदात्त परे रहनेपर शाश्वतः 'कम्प' उत्पन्न करते हैं। (जिसका स्वरूप चल हो, उस स्वारका नाम कम्प है) इसका उदाहरण है 'जुह्वभिः।' 'उप त्वा जुहू' 'उप त्वा जुह्वो मम' इत्यादि। पूर्वपद इकारान्त हो और परे उकारकी स्थिति हो तो मेधावी पुरुष वहाँ 'ह्रस्व कम्प' जाने—इसमें संशय नहीं है। यदि उकारद्वययुक्त पद परे हो तो इकारान्त पदमें दीर्घ कम्प जानना चाहिये। इसका दृष्टान्त है—'शग्ध्यूषू' इत्यादि। तीन दीर्घ कम्प जानने चाहिये, जो संध्यक्षरोंमें होते हैं। उनके क्रमशः उदाहरण ये हैं—मन्या। पथ्या। न इन्द्राभ्याम्। शेष ह्रस्व कहे गये हैं। जब अनेक उदात्तोंके बाद कोई अनुदात्त प्रत्यय हो तो एक उदात्त परे रहते दूसरे-तीसरे उदात्तकी 'शिवकम्प' संज्ञा होती है अर्थात् वह शिवकम्पसंज्ञक आद्युदात्त होता है। किंतु वह उदात्त प्रत्यय होना चाहिये। जहाँ दो, तीन, चार आदि उदात्त अक्षर हों, नीच—अनुदात्त हो और उससे पूर्व उच्च अर्थात् उदात्त हो और वह भी पूर्ववर्ती उदात्त या उदात्तोंसे परे हो तो वहाँ विद्वान् पुरुष 'उदात्त' मानते हैं। रेफ या हकारमें कहीं द्वित्व नहीं होता—दो रेफ या दो हकारका प्रयोग एक साथ नहीं होता। कवर्ग आदि वर्गोंके दूसरे और चौथे अक्षरोंमें भी कभी द्वित्व नहीं होता। वर्गके चौथे अक्षरको तीसरेके द्वारा और दूसरेको प्रथमके द्वारा पीडित न करे। आदि, मध्य और अन्त्य (क, ग, ङ आदि)को अपने ही अक्षरसे पीडित (संयुक्त) करे। यदि संयोगदशामें अनन्त्य (जो अन्तिम वर्ण नहीं है, वह गकार आदि) वर्ण पहले हो और नकारादि अन्त्य वर्ण बादमें हो तो मध्यमें यम (य व र ल ञ म ङ ण न) अक्षर स्थित होता है, वह पूर्ववर्ती अक्षरका सवर्ण हुआ करता है। पूर्ववर्ती श ष स तथा य र ल व—इन अक्षरोंसे संयुक्त वर्गान्त्य वर्णोंको देखकर यम निवृत्त हो जाते हैं—ठीक वैसे ही, जैसे चोर-डाकुओंको देखकर राही अपने मार्गसे लौट जाते हैं। संहितामें जब वर्गके तीसरे और चौथे अक्षर सयुक्त हों तो पदकालमें चतुर्थ अक्षरसे ही आरम्भ करके उत्तर पद होगा। दूसरे, तीसरे और हकार —इन सबका संयोग हो तो उत्तरपद हकारादि ही होगा।

अनुस्वार, उपध्मानीय तथा जिह्वामूलीयके अक्षर किसी पदमें नहीं जाते, उनका दो बार उच्चारण नहीं होता । यदि पूर्वमें र या ह अक्षरसे संयोग हो तो परवर्ती अक्षरका द्वित्व हो जाता है । जहाँ संयोगमें स्वरित हो तथा उद्धृत (नीचेसे ऊपर जाने) में और पतन (ऊँचेसे नीचे जाने) में स्वरित हो, वहाँ पूर्वाङ्गको आदिमें करके (नीचमें उच्चत्व लाकर) पराङ्गके आदिमें स्वरितका सन्निवेश करे । संयोगके विरत (विभक्त) होनेपर जो उत्तरपदसे असंयुक्त व्यञ्जन दिखायी दे, उसे पूर्वाङ्ग जानना चाहिये । तथा जिस व्यञ्जनसे उत्तरपदका आरम्भ हो, उसे पराङ्ग समझे । संयोगसे परवर्ती भागको स्वरयुक्त करना चाहिये; क्योंकि वह उत्तम एवं संयोगका नायक है, वहीं प्रधानतया स्वरकी विश्रान्ति होती है । तथा व्यञ्जन संयुक्त वर्णका पूर्व अक्षर स्वरित है; उसे बिना स्वरके ही बोलना चाहिये । अनुस्वार, पदान्त, प्रत्यय तथा सवर्णपद परे रहनेपर होनेवाला द्वित्व तथा रेफस्वरूप स्वरभक्ति—यह सब पूर्वाङ्ग कहलाता है । पादादिमें, पदादिमें, संयोग तथा अवग्रहोंमें भी 'य'कारके द्वित्वका प्रयोग करना चाहिये; उसे 'य्य' शब्द जानना चाहिये । अन्यत्र 'य' केवल 'य'के रूपमें ही रहता है । पदादिमें रहते हुए भी विच्छेद (विभाग) न होनेपर अथवा संयोगके अन्तमें स्थित होनेपर र् ह् रेफविशिष्ट य—इनको छोड़कर अन्य वर्णोंका अयादेश (द्वित्वाभाव) देखा जाता है । स्वयं संयोगयुक्त अक्षरको गुरु जानना चाहिये । अनुस्वारयुक्त तथा विसर्गयुक्त वर्णका गुरु होना तो स्पष्ट ही है । शेष अणु (ह्रस्व) है । 'ह्रि' 'गोः' इनमें प्रथम संयुक्त और दूसरा विसर्गयुक्त है । संयोग और विसर्ग दोनोंके आदि अक्षरका गुरुत्व भी स्पष्ट है । जो उदात्त है, वह उदात्त ही रहता है; जो स्वरित है, वह पदमें नीच (अनुदात्त) होता है । जो अनुदात्त है, वह तो अनुदात्त रहता ही है; जो प्रचयस्थ स्वर है, वह भी अनुदात्त हो जाता है । विभिन्न मन्त्रोंमें आये हुए 'अग्नि.' 'सुतः' 'मित्रम्' 'इदम्' 'वयम्' 'अया' 'वह्ना' 'प्रियम्' 'दूतम्' 'घृतम्' 'चित्तम्' तथा 'अभि' —ये पद नीच (अर्थात् अनुदात्तसे आरम्भ) होते हैं । 'अर्क' 'सुत' 'यज्ञ' 'कलश' 'शत' तथा 'पवित्र'—इन शब्दोंमें अनुदात्तसे श्रुतिका उच्चारण प्रारम्भ किया जाता है । 'हरि', 'वरुण', 'वरेण्य', 'धारा' तथा 'पुरुष'—इन शब्दोंमें रेफयुक्त स्वर ही स्वरित होता है । 'विश्वानर' शब्दमें नकारयुक्त और अन्यत्र 'नर' शब्दोंमें रेफयुक्त स्वर ही स्वरित होता है । परंतु 'उदुत्तमं त्व वरुण' इत्यादि वरुण-सम्बन्धी दो मन्त्रमें 'व'कार ही स्वरित होता है, रेफ नहीं । 'उरु धारा मरं कृतम्' 'उरु धारेव दोहते' [illegible] 'धाकार' ही स्वरित होता है रेफ नहीं । ([illegible] अपवाद है) ह्रस्व या दीर्घ जो [illegible] उसकी पहली आधी मात्रा उदात्त होती है और [illegible] मात्रा उससे परे अनुदात्त होती है । ([illegible] है—'तस्यादित उदात्तमर्धह्रस्वम्' ।) [illegible] अभिनीतके विषयमें जो [illegible] प्रयोग [illegible] को दीर्घके समान करे और ह्रस्व [illegible] । [illegible] जितना समय लगता है [illegible] है । [illegible] ऐसा मानते हैं कि बिजली [illegible] हो जाती है, वह एक 'मात्रा'का मान है । [illegible] ऐसा मत है कि [illegible] अथवा [illegible] लगता है, उतने कालकी एक मात्रा होती है । [illegible] अवग्रह (विग्रह या पदविच्छेद) [illegible] संहितायुक्त ही रहते; क्योंकि [illegible] होता है, उसी स्वरको उस [illegible] है । सर्वत्र, पुत्र, मित्र, [illegible] वेद, सत्पति, गोपति, वृत्रहा, [illegible] (अवग्रहके योग्य) हैं । 'स्वर्णर' [illegible] 'देवतातये', 'चिकिति.', 'ऋतुभम'—[illegible] होनेके कारण पण्डितलोग अवग्रह नहीं [illegible] नियोगसे चार प्रकारकी विवृत्तियाँ मानती [illegible] मत है । अब तुम इससे उनके नाम सुनो—[illegible] वत्सानुसारिणी पाकवती और पिपीलिका । [illegible] ह्रस्व और उत्तरपदमें दीर्घ [illegible] अनुगत होनेके कारण 'वत्सानुसृता' [illegible] जिसमें पहले ही पदमें दीर्घ और उत्तर पदमें [illegible] 'वत्सानुसारिणी' विवृत्ति है । जहाँ दोनों पदोंमें [illegible] 'पाकवती' कहलाती है तथा जिसके दोनों पदोंमें दीर्घ [illegible] 'पिपीलिका' कही गयी है । इन चारों विवृत्तियोंमें [illegible] का अन्तर होता है । दूसरोंके मतमें [illegible] है और किन्हींके मतमें अणु मात्रा है । [illegible] जिनके आदिमें हो, ऐसे प्रत्यय परे [illegible] भावको प्राप्त होता है । [illegible] होता है और स्वर्गवर्ग परे हो तो [illegible] वर्णको प्राप्त होता है । नकारान्त पद पूर्वमें [illegible] हो तो नकारके द्वारा पूर्ववर्ती [illegible] अतः उसे 'रक्त' कहते हैं ([illegible]) यदि नकारान्त पद पूर्वमें हो और [illegible]

परे हों तो पूर्वकी आधी मात्रा—अणु मात्रा अनुरञ्जित होती है। पूर्वमें स्वरसे संयुक्त हलन्त नकार यदि पदान्तमें स्थित हो और उसके परे भी पद हो तो वह चार रूपोंसे युक्त होता है। कहीं वह रेफ होता है, कहीं रग (या रक्त) बनता है, कहीं उसका लोप और कहीं अनुस्वार हो जाता है (यथा 'भवाश्विनोति'में रेफ होता है। 'महाँ ३ असि' में रंग है। 'महाँ इन्द्र' में न का लोप हुआ है। पूर्वका अनुनासिक या अनुस्वार हुआ है)। 'रग' हृदयसे उठता है, कांस्यके वाद्यकी भाँति उसकी ध्वनि होती है। वह मृदु तथा दो मात्राका (दीर्घ) होता है। दधन्वाँ २ यह उदाहरण है। नारद ! जैसे सौराष्ट्र देशकी नारी 'अरा' बोलती है, उसी प्रकार 'रंग' का प्रयोग करना चाहिये—यह मेरा मत है। नाम, आख्यात, उपसर्ग तथा निपात—इन चार प्रकारके पदोंके अन्तमें स्वरपूर्वक ग ड द ब ङ ण न म ष स—ये दस अक्षर 'पदान्त' कहे गये हैं। उदात्त स्वर, अनुदात्त स्वर और स्वरित स्वर जहाँ भी स्थित हों, व्यञ्जन उनका अनुसरण करते हैं। आचार्यलोग तीनों स्वरोंकी ही प्रधानता बताते हैं। व्यञ्जनोंको तो मणियोंके समान समझे और स्वरको सूत्रके समान; जैसे बलवान् राजा दुर्बलके राज्यको हड़प लेता है, उसी प्रकार बलवान् दुर्बल व्यञ्जनको हर लेता है। ओभाव, विवृत्ति, श, ष, स, र, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय—ये ऊष्माकी आठ गतियाँ हैं। ऊष्मा (सकार) इन आठ भावोंमें परिणत होता है। संहितामें जो स्वर-प्रत्यया विवृत्ति होती है, वहाँ विसर्ग समझे अथवा उसका तालव्य होता है। जिसकी उपधामें संध्यक्षर (ए, ओ, ऐ, औ) हो ऐसी सन्धिमें यदि य और व लोपको प्राप्त हुए हों तो वहाँ व्यञ्जननामक विवृत्ति और स्वरनामक प्रतिसंहिता होती हैं। जहाँ ऊष्मान्त विरत हो और सन्धिमें 'व' होता हो, वहाँ जो विवृत्ति होती है, उसे 'स्वर विवृत्ति' नामसे कहना चाहिये। यदि 'ओ' भावका प्रसंधान हो तो उत्तर पद ऋकारादि होता है; वैसे प्रसंधानको स्वरान्त जानना चाहिये। इससे भिन्न ऊष्माका प्रसंधान होता है (यथा 'वायो ऋ' इति। यहाँ ओभावका प्रसंधान है। 'क इह' यहाँ ऊष्माका प्रसंधान है)। जब श ष स आदि परे हों, उस समय यदि प्रथम (वर्गके पहले अक्षर) और उत्तम (वर्गके अन्तिम अक्षर) पदान्तमें स्थित हो तो वे द्वितीय स्थानको प्राप्त होते हैं। ऊष्मसंयुक्त होनेपर अर्थात् सकारादि परे होनेपर प्रथम जो तकार आदि अक्षर हैं, उनको द्वितीय (थकार आदि) की भाँति दिखाये—थकार आदिकी भाँति उच्चारण करे, उन्हें स्पष्टतः थकार आदिके रूपमें ही न समझ ले। उदाहरणके लिये—'मत्स्यः', 'क्षुरः' और 'अप्सराः' आदि उदाहरण हैं। लौकिक श्लोक आदिमें छन्दका ज्ञान करानेके लिये तीन हेतु हैं—छन्दोमान, वृत्त और पादस्थान (पदान्त)। परंतु ऋचाएँ स्वभावतः गायत्री आदि छन्दोंसे आवृत हैं। उनकी पाद-गणना या गुरु, लघु एवं अक्षरोंकी गणना तो छन्दोविभागको समझनेके लिये ही है; उन लक्षणोंके अनुसार ही ऋचाएँ हों, यह नियम नहीं है। लौकिक छन्द ही पाद और अक्षर-गणनाके अनुसार होते हैं। ऋवर्ण और स्वरभक्तिमें जो रेफ है, उसे अक्षरान्तर मानकर छन्दकी अक्षरगणना या मात्रागणनामें सम्मिलित करे। किंतु स्वरभक्तियोंमें प्रत्ययके साथ रेफरहित अक्षरकी गणना करे। ऋवर्णमें रेफरूप व्यञ्जनकी प्रतीति पृथक् होती है और स्वररूप अक्षरकी प्रतीति अलग होती है। यदि 'ऋ' से ऊष्माका संयोग न हो तो उस ऋकारको लघु अक्षर जाने। जहाँ ऊष्मा (शकार आदि) से संयुक्त होकर ऋकार पीड़ित होता है, उस ऋवर्णको ही स्वर होनेपर भी गुरु समझना चाहिये; यहाँ 'तृचम्' उदाहरण है। (यहाँ ऋकार लघु है।) ऋषभ, गृहीत, बृहस्पति, पृथिवी तथा निर्ऋति—इन पाँच शब्दोंमें ऋकार स्वर ही है, इसमें संशय नहीं है। श, ष, स, ह, र—ये जिसके आदिमें हों, ऐसे पदमें द्विपद सन्धि होनेपर कहीं 'इ' और 'उ' से रहित एकपदा स्वरभक्ति होती है, वह क्रमवियुक्त होती है। स्वरभक्ति दो प्रकारकी कही गयी है—ऋकार तथा रेफ। उसे अक्षरचिन्तकोंने क्रमशः 'स्वरोदा' और 'व्यञ्जनोदा' नाम दिया है। श, ष, स के विषयमें स्वरोदया एवं विवृता स्वरभक्ति मानी गयी है और हकारके विषयमें विद्वान् लोग व्यञ्जनोदया एवं संवृता स्वरभक्ति निश्चित करते हैं (दोनोंके क्रमशः उदाहरण हैं—'ऊर्षति, अर्हति')। स्वरभक्तिका प्रयोग करनेवाला पुरुष तीन दोषोंको त्याग दे—इकार, उकार तथा ग्रस्तदोष। जिससे परे संयोग हो और जिससे परे छ हो, जो विसर्गसे युक्त हो, द्विमात्रिक (दीर्घ) हो, अवसानमें हो, अनुस्वारयुक्त हो तथा घुडन्त हो—ये सब लघु नहीं माने जाते।

पथ्या (आर्या) छन्दके प्रथम और तृतीय पाद बारह मात्राके होते हैं। द्वितीय पाद अठारह मात्राका होता है और अन्तिम (चतुर्थ) पाद पंद्रह मात्राका होता है। यह पथ्याका लक्षण बताया गया; जो इससे भिन्न है, उसका नाम विपुला है। अक्षरमें जो ह्रस्व है, उससे परे यदि संयोग

न हो तो उसकी 'लघु' संज्ञा होती है। यदि ह्रस्वसे परे संयोग हो तो उसे गुरु समझे तथा दीर्घ अक्षरोंको भी गुरु जाने। जहाँ स्वरके आते ही विवृति देखी जाती हो, वहाँ गुरु स्वर जानना चाहिये; वहाँ लघुकी सत्ता नहीं है। पदोंके जो स्वर हैं, उनके आठ प्रकार जानने चाहिये—अन्तोदात्त, आद्युदात्त, उदात्त, अनुदात्त, नीचस्वरित, मध्योदात्त, स्वरित तथा द्विरुदात्त—ये आठ पद-संज्ञाएँ हैं। 'अग्निर्वृत्राणि' इसमें 'अग्निः' अन्तोदात्त है। 'सोमः पवते' इसमें 'सोमः' आद्युदात्त है। 'प्र वो यह्वम्' इसमें 'प्र' उदात्त और 'वः' अनुदात्त है। 'बलं न्युब्जं वीर्यम्' इसमें 'वीर्यम्' नीचस्वरित है। 'हविषा विधेम' इसमें 'हविषा' मध्योदात्त है। 'भूर्भुवः स्वः' इसमें 'स्वः' स्वरित है। 'वनस्पतिः' में 'व'कार और 'स्प' दो उदात्त होनेसे यह द्विरुदात्तका उदाहरण है। नाममें अन्तर एवं मध्यमें उदात्त होता है। निपातमें अनुदात्त होता है। उपसर्गमें आद्य स्वरसे परे स्वरित होता है तथा आख्यातमें दो अनुदात्त होते हैं। स्वरितसे परे जो धार्य अक्षर हैं (यथा 'निहोता सत्सि' इसमें 'ता' स्वरित है, उससे परे 'सत्सि' ये धार्य अक्षर हैं), वे सब प्रचयस्थान हैं; क्योंकि 'स्वरित' प्रचित होता है। वहाँ आदिस्वरितका निघात स्वर होता है। जहाँ प्रचय देखा जाय, वहाँ विद्वान् पुरुष स्वरका निघात करे। जहाँ केवल मृदु स्वरित हो, वहाँ निघात न करे। आचार्य-कर्म पाँच प्रकारका होता है—मुख, न्यास, करण, प्रतिज्ञा तथा उच्चारण। इस विषयमें कहते हैं, सप्रतिज्ञ उच्चारण ही श्रेय है। जिस किसी भी वर्णका करण (शिक्षादि शास्त्र) नहीं उपलब्ध होता हो, वहाँ प्रतिज्ञा (गुरुपरम्परागत निश्चय) का निर्वाह करना चाहिये; क्योंकि करण प्रतिज्ञारूप ही है। नारद! तुम, तुम्बुरु, वसिष्ठजी तथा विश्वावसु आदि गन्धर्व भी सामके विषयमें शिक्षाशास्त्रोक्त सम्पूर्ण लक्षणोंको स्वरकी सूक्ष्मताके कारण नहीं जान पाते।

जठराग्निकी सदा रक्षा करे। हितकर (पथ्य) भोजन करे। भोजन पच जानेपर उषःकालमें नींदसे उठ जाय और ब्रह्मका चिन्तन करे। शरत्कालमें जो विषुवद्योग (जिस समय दिन-रात बराबर होते हैं) आता है, उसके बीतनेके बाद जबतक वसन्त ऋतुकी मध्यम रात्रि उपस्थित न हो जाय तबतक वेदोंके स्वाध्यायके लिये उषःकालमें उठना चाहिये। सबेरे उठकर मौनभावसे आम, पलाश, बिल्व, अपामार्ग, अथवा शिरीष—इनमेंसे किसी वृक्षकी टहनी लेकर उससे दाँतुन करे। खैर, कदम्ब, करवीर तथा करंजकी भी दाँतुन ग्राह्य है। काँटे तथा दूधवाले सभी वृक्ष पवित्र और यशस्वी माने गये हैं। उनकी दाँतुनसे इस पुरुषकी वागिन्द्रियमें सूक्ष्मता (कफकी कमी होकर सरलतापूर्वक शब्दोच्चारणकी शक्ति) तथा मधुरता (मीठी आवाज) आती है। वह व्यक्ति प्रत्येक वर्णका स्पष्ट उच्चारण कर लेता है, जैसी कि 'प्राचीनौदवज्रि' नामक आचार्यकी मान्यता है। शिष्यको चाहिये वह नमकके साथ सदा त्रिफलाचूर्ण भक्षण करे। यह त्रिफला जठराग्निको प्रज्वलित करनेवाली तथा मेधा (धारणशक्ति) को बढ़ानेवाली है। स्वर और वर्णके स्पष्ट उच्चारणमें भी सहयोग करनेवाली है। पहले जठरानलकी उपासना अर्थात्—मल-मूत्रादिका त्याग करके आवश्यक धर्मों (दाँतुन, स्नान, संध्योपासन) का अनुष्ठान करनेके अनन्तर मधु और घी पीकर शुद्ध हो वेदका पाठ करे। पहले सात मन्त्रोंको उपांशुभावसे (बिना स्पष्ट बोले) पढ़े, उसके बाद मन्द्रस्वरमें वेदपाठ आरम्भ करके यथेष्ट स्वरसे मन्त्रोच्चारण करे। यह सब शाखाओंके लिये विधि है। प्रातःकाल ऐसी वाणीका उच्चारण न करे, जो प्राणोंका उपरोध करती हो; क्योंकि प्राणोपरोधसे वैस्वर्य (विपरीत स्वरका उच्चारण) हो जाता है। इतना ही नहीं, उससे स्वर और व्यञ्जनका माधुर्य भी लुप्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। कुतीर्थसे प्राप्त हुई दग्ध (अपवित्र) वस्तुको जो दुर्जन पुरुष खा लेते हैं, उनका उसके दोषसे उद्धार नहीं होता—ठीक उसी तरह, जैसे पापरूप सर्पके विषसे जीवनकी रक्षा नहीं हो पाती। इसी प्रकार कुतीर्थ (बुरे अध्यापक) से प्राप्त हुआ जो दग्ध (निष्फल) अध्ययन है, उसे जो लोग अशुद्ध वर्णोंके उच्चारणपूर्वक भक्षण (ग्रहण) करते हैं, उनका पापरूपी सर्पके विषकी भाँति पापी उपाध्यायसे मिले हुए उस कुत्सित अध्ययनके दोषसे छुटकारा नहीं होता। उत्तम आचार्यसे प्राप्त अध्ययनको ग्रहण करके अच्छी तरह अभ्याससे लाया जाय तो वह शिष्यमें सुप्रतिष्ठित होता है और उसके द्वारा सुन्दर मुख एवं शोभन स्वरसे उच्चरित वेदकी बड़ी शोभा होती है। जो नाक, आँख, कान आदिके विकृत होनेसे विकराल दिखायी देता है, जिसके ओठ [illegible] लंबे हैं, जो सब बात नाकसे ही बोलता है, जो [illegible] बोलता है अथवा जिसकी जीभ बँधी-सी रहती है, [illegible] रुक-रुककर बोलता है, वह वेदमन्त्रोंके [illegible] नहीं है। जिसका चित्त एकाग्र है, [illegible]

जिसके दाँत तथा ओष्ठ सुन्दर हैं, ऐसा व्यक्ति यदि स्नानसे शुद्ध हो गाना छोड दे तो वह मन्त्राक्षरोंका ठीक प्रयोग कर सकता है। जो अत्यन्त क्रोधी, स्तब्ध, आलसी तथा रोगी हैं और जिनका मन इधर-उधर फैला हुआ है, वे पाँच प्रकारके मनुष्य विद्या ग्रहण नहीं कर पाते। विद्या धीरे-धीरे पढी जाती है। धन धीरे-धीरे कमाया जाता है, पर्वतपर धीरे-धीरे चढ़ना चाहिये। मार्गका अनुसरण भी धीरे-धीरे ही करे और एक दिनमें एक योजनसे अधिक न चले। चीटी धीरे-धीरे चलकर सहस्रों योजन चली जाती है। किंतु गरुड भी यदि चलना शुरू न करे तो वह एक पग भी आगे नहीं जा सकता। पापीकी पापदूषित वाणी प्रयोगों (वेदमन्त्रों) का उच्चारण नहीं कर सकती—, ठीक उसी तरह, जैसे बातचीतमें चतुर सुलोचना रमणी बहरेके आगे कुछ नहीं कह सकती*। जो उपांशु (सूक्ष्म) उच्चारण करता है, जो उच्चारणमें जल्दबाजी करता है तथा जो डरता हुआ-सा अध्ययन करता है, वह सहस्र रूपों (शब्दोच्चारण) के विषयमें सदा संदेहमें ही पडा रहता है। जिसने केवल पुस्तकके भरोसे पढा है, गुरुके समीप अध्ययन नहीं किया है, वह सभामें सम्मानित नहीं होता—वैसे ही, जैसे जारपुरुषसे गर्भ धारण करनेवाली स्त्री समाजमे प्रतिष्ठा नहीं पाती। प्रतिदिन व्यय किये जानेपर अञ्जनकी पर्वतराशिका भी क्षय हो जाता है और दीमकोंके द्वारा थोड़ी-थोड़ी मिट्टीके संग्रहसे भी बहुत ऊँचा वल्मीक बन जाता है, इस दृष्टान्तको सामने रखते हुए दान और अध्ययनादि सत्कर्मोंमें लगे रहकर जीवनके प्रत्येक दिनको सफल बनावे—व्यर्थ न बीतने दे। कीड़े चिकने धूलकणोंसे जो बहुत ऊँचा वल्मीक बना लेते हैं, उसमें उनके बलका प्रभाव नहीं है, उद्योग ही कारण है। विद्याको सहस्रों बार अभ्यासमें लाया जाय और सैकड़ों बार शिष्योंको उसे पढाया जाय, तब वह उसी प्रकार जिह्वाके अग्रभागपर आ जायगी, जैसे जल ऊँचे स्थानसे नीचे स्थानमें स्वयं बह आता है। अच्छी जातिके घोड़े आधी रातमें भी आधी ही नींद सोते हैं अथवा वे आधी रातमें सिर्फ एक पहर सोते हैं, उन्हींकी भाँति विद्यार्थियोंके नेत्रोंमें चिरकालतक निद्रा नहीं ठहरती। विद्यार्थी भोजनमें आसक्त होकर अध्ययनमें विलम्ब न करे। नारीके मोहमें न फँसे। विद्याकी अभिलाषा रखनेवाला छात्र आवश्यकता हो तो गरुड़ और हंसकी भाँति बहुत दूरतक भी चला जाय। विद्यार्थी जनसमूहसे उसी तरह डरे, जैसे सर्पसे डरता है। दोस्ती बढ़ानेके व्यसनको नरक समझकर उससे भी दूर रहे। स्त्रियोंसे उसी तरह बचकर रहे, जैसे राक्षसियोंसे। इस तरह करनेवाला पुरुष ही विद्या प्राप्त कर सकता है। शठ प्रकृतिके मनुष्य विद्यारूप अर्थकी सिद्धि नहीं कर पाते। कायर तथा अहंकारी भी विद्या एवं धनका उपार्जन नहीं कर पाते। लोकापवादसे डरनेवाले लोग भी विद्या और धनसे वञ्चित रह जाते हैं तथा 'जो आज नहीं कल' करते हुए सदा आगामी दिनकी प्रतीक्षामें बैठे रहते हैं, वे भी न विद्या पढ पाते हैं न धन ही लाभ करते हैं। जैसे खनतीसे धरती खोदनेवाला पुरुष एक दिन अवश्य पानी प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार गुरुकी निरन्तर सेवा करनेवाला छात्र गुरुमें स्थित विद्याको अवश्य ग्रहण कर लेता है। गुरुसेवासे विद्या प्राप्त होती है अथवा बहुत धन व्यय करनेसे उनकी प्राप्ति होती है। अथवा एक विद्या देनेसे दूसरी विद्या मिलती है; अन्यथा उसकी प्राप्ति नहीं होती। यद्यपि बुद्धिके गुणोंसे सेवा किये बिना भी विद्या प्राप्त हो जाती है; तथापि वन्ध्या युवतीकी भाँति वह सफल नहीं होती। नारद! इस प्रकार मैंने तुमसे शिक्षाग्रन्थका संक्षेपसे वर्णन किया है। इस आदि-वेदाङ्गको जानकर मनुष्य ब्रह्मभावकी प्राप्तिके योग्य हो जाता है। (पूर्वभाग-द्वितीय पाद अध्याय ५०)

वेदके द्वितीय अङ्ग कल्पका वर्णन—गणेशपूजन, ग्रहशान्ति तथा श्राद्धका निरूपण

सनन्दनजी कहते हैं—मुनीश्वर! अब मैं कल्पग्रन्थका वर्णन करता हूँ; जिसके विज्ञानमात्रसे मनुष्य कर्ममें कुशल हो जाता है। कल्प पाँच प्रकारके माने गये हैं—नक्षत्रकल्प, वेदकल्प, संहिता-कल्प, आङ्गिरसकल्प और शान्तिकल्प। नक्षत्रकल्पमें नक्षत्रोंके स्वामीका विस्तारपूर्वक यथार्थ वर्णन किया गया है; वह यहाँ भी जानने योग्य है। मुनीश्वर!

* शिक्षा-संग्रहमें जो नारदी-शिक्षा संकलित हुई है, उसमें इस श्लोकका पाठ इस प्रकार है—

न हि पाप्मिहता वाणी प्रयोगान् वक्तुमर्हति। बधिरस्येव तरुण्या विदग्धा वामलोचना॥

वेदकल्पमें ऋगादि-विधानका विस्तारसे वर्णन है—जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी सिद्धिके लिये कहा गया है। संहिता-कल्पमें तत्त्वदर्शी मुनियोंने मन्त्रोंके ऋषि, छन्द और देवताओंका निर्देश किया है । आङ्गिरसकल्पमें स्वयं ब्रह्माजीने अभिचार-विधिसे विस्तारपूर्वक छः कर्मोंका वर्णन किया है । मुनिश्रेष्ठ ! शान्तिकल्पमें दिव्य, भौम और अन्तरिक्ष-सम्बन्धी उत्पातोंकी पृथक्-पृथक् शान्ति बतायी गयी है । यह संक्षेपसे कल्पके स्वरूपका परिचय दिया गया है, अन्य शाखाओंमें इसका विशेषरूपसे पृथक्-पृथक् निरूपण किया गया है । द्विजश्रेष्ठ ! गृह्यकल्प सबके लिये उपयोगी है, अतः इस समय उसीका वर्णन करूँगा । सावधान होकर सुनो । पूर्वकालमें 'ॐकार' और 'अथ' शब्द—ये दोनों ब्रह्माजीके कण्ठका भेदन करके निकले थे, अतः ये मङ्गल-सूचक हैं । जो शास्त्रोक्त कर्मोंका अनुष्ठान करके उन्हें ऊँचे उठाना चाहता है, वह 'अथ' शब्दका प्रयोग करे । इससे वह कर्म अक्षय होता है । परिसमूहनके लिये परिगणित शाखावाले कुश कहे गये हैं, न्यून या अधिक संख्यामें उन्हें ग्रहण करनेपर वे अभीष्ट कर्मको निष्फल कर देते हैं । पृथ्वीपर जो कृमि, कीट और पतंग आदि भ्रमण करते हैं, उनकी रक्षाके लिये परिसमूहन कहा गया है । ब्रह्मन् ! वेदीपर जो तीन रेखाएँ कही गयी हैं, उनको बराबर बनाना चाहिये; उन्हें न्यूनाधिक नहीं करना चाहिये; ऐसा ही शास्त्रका कथन है । नारद ! यह पृथ्वी मधु और कैटभ नामवाले दैत्योंके मेदेसे व्याप्त है, इसलिये इसे गोबरसे लीपना चाहिये । जो गाय वन्ध्या, दुष्टा, दीनाङ्गी और मृतवत्सा (जिसके बछड़े मर जाते हों, ऐसी) हो, उसका गोबर यज्ञके कार्यमें नहीं लाना चाहिये, ऐसी शास्त्रकी आज्ञा है । विप्रवर ! जो पतङ्ग आदि भयंकर जीव सदा आकाशमें उड़ते रहते हैं, उनपर प्रहार करनेके लिये वेदीसे मिट्टी उठानेका विधान है । स्रुवाके मूल-भागसे अथवा कुशसे वेदीपर रेखा करनी चाहिये । इसका उद्देश्य है अस्थि, कण्टक, तुष-केशादिसे शुद्धि । ऐसा ब्रह्माजीका कथन है । द्विजश्रेष्ठ ! सब देवता और पितर जलस्वरूप हैं, अतः विधिज्ञ ऋषि-मुनियोंने जलसे वेदीका प्रोक्षण करनेकी आज्ञा दी है । सौभाग्यवती स्त्रियोंके द्वारा ही अग्नि लानेका विधान है । शुभदायक मृण्मय पात्रको जलसे धोकर उसमें अग्नि रखकर लानी चाहिये । वेदीपर रक्खा हुआ अमृतकलश दैत्योंद्वारा हड़प लिया गया, यह देखकर ब्रह्मा आदि सब देवताओंने वेदीकी रक्षाके लिये उसपर समिधासहित अग्निकी स्थापना की । नारद ! यज्ञसे दक्षिण दिशामें दानव आदि स्थित होते हैं; अतः उनसे [illegible] वेदीसे दक्षिण दिशामें स्थापित करना चाहिये । नारद ! उत्तर दिशामें प्रणीता-प्रोक्षणी आदि [illegible] । पश्चिममें यजमान रहे और पूर्वदिशामें सब ब्राह्मणोंको [illegible] चाहिये । जुएमें, व्यापारमें और [illegible] उदासीनचित्त हो जाय तो उसका यह कर्म नष्ट हो [illegible] है—यही वास्तविक स्थिति है । यज्ञकर्ममें अपनी ही [illegible] विद्वान् ब्राह्मणोंको ब्रह्मा और आचार्य बनाना चाहिये । अन्य ऋत्विजोंके लिये कोई नियम नहीं है। [illegible] उनका पूजन करना चाहिये । तीन-तीन अंगुलकी दो पवित्री होनी चाहिये । चार अंगुलकी एक प्रोक्षणी, तीन अंगुलकी एक आज्यस्थाली और छः अंगुलकी चरुस्थाली होनी चाहिये । दो अंगुलका एक उपयमन कुश और एक अंगुलका सम्मार्जन कुश रक्खे । स्रुव छः अंगुलका और स्रुक् साढ़े तीन अंगुलका बताया गया है । समिधाएँ प्रादेशमात्र (अँगूठेसे लेकर तर्जनीके शिरोभागतकके नापकी) हों । [illegible] अंगुलका हो । प्रोक्षणीके उत्तर भागमें प्रणीतापात्र रहे और वह आठ अंगुलका हो । जो कोई भी तीर्थ ([illegible]), समुद्र और सरिताएँ हैं, वे सब प्रणीता पात्रमें स्थित होते हैं; अतः उसे जलसे भर दे । द्विजश्रेष्ठ ! [illegible] कही जाती है; अतः विद्वान् पुरुष उसके चारों ओर कुश बिछाकर उसके ऊपर अग्निस्थापन करे । [illegible] विष्णुका चक्र और महादेवजीका त्रिशूल—ये तीनों [illegible] तीन 'पवित्रच्छेदन' बनते हैं । पवित्रीसे ही प्रोक्षणीको प्रणीता के जलसे संयुक्त करना चाहिये । अतः पवित्र-निर्माण [illegible] पुण्यदायक कर्म कहा गया है । आज्यस्थाली [illegible] बनानी चाहिये । कुम्हारके चाकपर गढ़ा हुआ मिट्टीका पात्र 'आसुर' कहा गया है । वही हाथसे बनाया हुआ—[illegible] पात्र आदि हो तो उसे 'दैविक' माना गया है । स्रुवसे शुभ और अशुभ सभी कर्म होते हैं । अतः [illegible] लिये उसे अग्निमें तपानेका विधान है । स्रुवको यदि अग्रभागकी ओरसे थाम लिया जाय तो स्वामीकी मृत्यु होती है । मध्यमें पकड़ा जाय तो प्रजा एवं संतानका नाश होता है और मूलभागमें उसे पकड़नेसे होताकी मृत्यु होती है, [illegible] विचार कर उसे हाथमें धारण करना चाहिये । अग्नि, सूर्य, सोम, विरञ्चि (ब्रह्माजी), वायु तथा यम— [illegible] स्रुवके एक-एक अंगुलमें स्थित हैं । अग्नि [illegible] नाश करनेवाले हैं, सूर्य रोगकारक होते हैं । [illegible] फल नहीं है । ब्रह्माजी सब कामना [illegible]

वृद्धिदाता हैं और यमराज मृत्युदायक माने गये हैं । (अतः स्रुवको मूलभागकी ओर तीन अंगुल छोड़कर चौथे-पाँचवें अंगुलपर पकड़ना चाहिये) । सम्मार्जन और उपयमन नामक दो कुश बनाने चाहिये । इनमेंसे सम्मार्जन कुश सात शाखा (कुश) का और उपयमन कुश पाँचका होता है । स्रुव तथा स्रुक्निर्माण करनेके लिये श्रीपर्णी (गंभारी), शमी, खदिर, विकङ्कत (कँटाई) और पलाश—ये पाँच प्रकारके काष्ठ शुभ जानने चाहिये । हाथभरका स्रुवा उत्तम माना गया है और तीस अंगुलका स्रुक् । यह ब्राह्मणोंके स्रुव और स्रुक्के विषयमे बताया गया है; अन्य वर्णवालोंके लिये एक अंगुल छोटा रखनेका विधान है । नारद ! शूद्रों, पतितो तथा गर्दभ आदि जीवोंके दृष्टि-दोषका निवारण करनेके लिये सब पात्रोंके प्रोक्षणकी विधि है । विप्रवर ! पूर्णपात्र-दान किये बिना यज्ञमें छिद्र उत्पन्न हो जाता है और पूर्णपात्रकी विधि कर देनेपर यज्ञकी पूर्ति हो जाती है । आठ मुट्ठीका 'किञ्चित्' होता है, चार किञ्चित्का 'पुष्कल' होता है और चार पुष्कलका एक 'पूर्णपात्र' होता है, ऐसा विद्वानोका मत है । होमकाल प्राप्त होनेपर अन्यत्र कहीं आसन नहीं देना चाहिये । दिया जाय तो अग्निदेव अतृप्त होते और दारुण शाप देते हैं । 'आधार' नामकी दो आहुतियाँ अग्निदेवकी नासिका कही गयी हैं । 'आज्यभाग' नामवाली दो आहुतियाँ उनके नेत्र हैं । 'प्राजापत्य' आहुतिको मुख कहा गया है और व्याहृति होमको कटिभाग बताया गया है । पञ्चवारुण होमको दो हाथ, दो पैर और मस्तक कहते हैं । विप्रवर ! 'स्विष्टकृत्' होम तथा पूर्णाहुति—ये दो आहुतियाँ दोनों कान हैं । अग्निदेवके दो मुख, एक हृदय, चार कान, दो नाक, दो मस्तक, छः नेत्र, पिङ्गल वर्ण और सात जिह्वाएँ हैं । उनके वाम भागमे तीन और दक्षिण भागमे चार हाथ हैं । स्रुक्, स्रुवा, अक्षमाला और शक्ति—ये सब उनके दाहिने हाथोंमे हैं । उनके तीन मेखला और तीन पैर हैं । वे घृतपात्र लिये हुए हैं । दो चँवर धारण करते हैं । भेड़पर चढ़े हुए हैं । उनके चार सींग हैं । बालसूर्यके समान उनकी अरुण कान्ति है । वे यज्ञोपवीत धारण करके जटा और कुण्डलोंसे सुशोभित हैं । इस प्रकार अग्निके स्वरूपका ध्यान करके होमकर्म प्रारम्भ करे । दूध, दही, घी और घृतपक्व या तैलपक्व पदार्थका जो हाथसे हवन करता है, वह ब्राह्मण ब्रह्महत्यारा होता है (इन सबका स्रुवासे होम करना चाहिये) । मनुष्य जो अन्न खाता है, उसके देवता भी वही अन्न खाते हैं । सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके लिये हविष्यमें तिलका भाग अधिक रखना उत्तम माना गया है । होममें तीन प्रकारकी मुद्राएँ बतायी गयी हैं—मृगी, हंसी और सूकरी । अभिचार-कर्ममें सूकरी-मुद्राका उपयोग होता है और शुभ-कर्ममें मृगी तथा हंसी नामवाली मुद्राएँ उपयोगमें लायी जाती हैं । सब अंगुलियोंसे सूकरी-मुद्रा बनती है । हंसी-मुद्रामें कनिष्ठिका अंगुलि मुक्त रहती है और मृगी नामवाली मुद्रा केवल मध्यमा, अनामिका और अङ्गुष्ठद्वारा सम्पन्न होनेवाली कही गयी है । पूर्वोक्त प्रमाणवाली आहुतिको पाँचों अंगुलियोंसे लेकर उसके द्वारा अन्य ऋत्विजोंके साथ हवन करे । हवन-सामग्रीमें दही, मधु और घी मिलाया हुआ तिल होना चाहिये । पुण्यकर्मोंमें संलग्न होनेपर अपनी अनामिका अंगुलिमें कुशोंकी पवित्री अवश्य धारण करनी चाहिये ।

भगवान् रुद्र और ब्रह्माजीने गणेशजीको 'गणपति' पदपर बिठाया और कर्मोंमें विघ्न डालनेका कार्य उन्हें सौंप रखा है । वे विघ्नेश विनायक जिसपर सवार होते हैं, उस पुरुषके लक्षण सुनो । वह स्वप्नमें बहुत अगाध जलमें प्रवेश कर जाता है, मूँड मुड़ाये मनुष्योंको तथा गेरुआ वस्त्र धारण करनेवाले पुरुषोंको देखता है । कच्चा मांस खानेवाले गृध्रादि पक्षियों तथा व्याघ्र आदि पशुओंपर चढ़ता है । एक स्थानपर चाण्डालों, गदहों और ऊँटोंके साथ उनसे घिरा हुआ बैठता है । चलते समय भी अपने-आपको शत्रुओंसे अनुगत मानता है—उसे ऐसा भान होता है कि शत्रु मेरा पीछा कर रहे हैं । (जाग्रत्-अवस्थामें भी) उसका चित्त विक्षिप्त रहता है । उसके द्वारा किये हुए प्रत्येक कार्यका आरम्भ निष्फल होता है । वह अकारण खिन्न रहता है । विघ्नराजका सताया हुआ मनुष्य राजाका पुत्र होकर भी राज्य नहीं पाता । कुमारी कन्या अनुकूल पति नहीं पाती, विवाहिता स्त्रीको अभीष्ट पुत्रकी प्राप्ति नहीं होती । श्रोत्रियको आचार्यपद नहीं मिलता । शिष्य स्वाध्याय नहीं कर पाता, वैश्यको व्यापारमें और किसानको खेतीमें लाभ नहीं हो पाता ।

ऐसे पुरुषको किसी पवित्र दिन एवं शुभ मुहूर्तमें विधिपूर्वक स्नान कराना चाहिये । पीली सरसों पीसकर उसे घीसे ढीला करे और उस मनुष्यके शरीरमें उसीका उबटन लगाये । प्रियङ्गु, नागकेसर आदि सब प्रकारकी ओषधियों और चन्दन, अगुरु, कस्तूरी आदि सब प्रकारकी सुगन्धित वस्तुओंको उसके मस्तकमें लगाये । फिर उसे भद्रासनपर बिठाकर उसके लिये ब्राह्मणोंसे शुभ स्वस्तिवाचन (पुण्याहवाचन) कराये । अश्वशाला,

गजशाला, वल्मीक (बाँबी), नदीसङ्गम तथा जलाशयसे लायी हुई पाँच प्रकारकी मिट्टी, गोरोचन, गन्ध (चन्दन, कुङ्कुम, अगुरु आदि) और गुग्गुल—ये सब वस्तुएँ जलमें छोड़े और उसी जलमें छोडे, जो गहरे और कभी न सूखनेवाले जलाशयसे एक रंगके चार नये कलशोंद्वारा लाया गया हो। तदनन्तर लाल रंगके वृषभचर्मपर भद्रासन[1] स्थापित करे। (इसी भद्रासनपर यजमानको बैठाकर ब्राह्मणोंसे पूर्वोक्त स्वस्तिवाचन कराना चाहिये। इसके सिवा स्वस्तिवाँचनके अनन्तर जिनके पति और पुत्र जीवित हों, ऐसी सुवेशधारिणी स्त्रियोंद्वारा मङ्गल-गान कराते हुए पूर्वदिशावर्ती कलशको लेकर आचार्य निम्नाङ्कित मन्त्रसे यजमानका अभिषेक करे—)

सहस्राक्षं शतधारमृषिभिः पावनं कृतम्।
तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमान्यः पुनन्तु ते॥

'जो सहस्रों नेत्रों (अनेक प्रकारकी शक्तियों) से युक्त है, जिसकी सैकड़ों धाराएँ (बहुत-से प्रवाह) हैं और जिसे महर्षियोंने पावन बनाया है, उस पवित्र जलसे मैं तुम्हारा अभिषेक करता हूँ। पावमानी ऋचाएँ तथा यह पवित्र जल तुम्हें पवित्र करें (और विनायकजनित विघ्नकी शान्ति हो)।'

(तदनन्तर दक्षिण दिशामें स्थित द्वितीय कलश लेकर नीचे लिखे मन्त्रको पढ़ते हुए अभिषेक करे—)

भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः।
भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः॥

'राजा वरुण, सूर्य, बृहस्पति, इन्द्र, वायु तथा सप्तर्षिगण तुम्हें कल्याण प्रदान करें।'

(फिर तीसरा पश्चिम-कलश लेकर निम्नाङ्कित मन्त्रसे अभिषेक करे—)

यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्धनि।
ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद् घ्नन्तु सर्वदा॥

'तुम्हारे केशोंमें, सीमन्तमें, मस्तकपर, ललाटमें, कानोंमें और नेत्रोंमें भी जो दुर्भाग्य (या अमङ्गल) है — [illegible] सदाके लिये जल शान्त करें।'

(तत्पश्चात् चौथा [illegible] लेकर पूर्वोक्त [illegible] अभिषेक करे। इस प्रकार स्नान करनेवाले यजमानके [illegible] पर बायें हाथमें लिये हुए कुशोंसे [illegible] सुवासे सरसोंका तेल उठाकर डाले। उस समय निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़े—) 'ॐ मिताय स्वाहा। ॐ [illegible] स्वाहा। ॐ शालाय स्वाहा। ॐ कटंकटाय स्वाहा। ॐ कूष्माण्डाय स्वाहा। ॐ राजपुत्राय स्वाहा।' तदनन्तर [illegible] लौकिक अग्निमें भी स्थालीपाककी विधिसे चरु [illegible] उक्त छः मन्त्रोंसे ही उसी अग्निमें हवन करे। [illegible] चरुद्वारा बलिमन्त्रोंको पढ़कर इन्द्रादि दिक्पालोंको [illegible] अर्पित करे। तत्पश्चात् कृताकृत आदि उपहार [illegible] विनायकको अर्पित करके उनके [illegible] पार्वतीको भी उपहार भेंट करे। फिर पुष्पादि [illegible] 'तत्पुरुषाय विद्महे। वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो [illegible] प्रचोदयात्।' इस मन्त्रसे गणेशजीको और [illegible] कामसालिन्यै धीमहि। तन्नो गौरी प्रचोदयात्।' [illegible] अम्बिकादेवीको नमस्कार करे। फिर [illegible] उपस्थान करे। उपस्थानसे पूर्व फूल और [illegible] दूर्वा, सरसों और पुष्पसे पूर्ण अञ्जलि अर्पण करे। ([illegible] मन्त्र इस प्रकार है—)

रूपं देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे।
पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वकामांश्च देहि मे॥

'भगवति! मुझे रूप दो, यश दो [illegible] करो, पुत्र दो, धन दो और सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण [illegible]।'

पार्वतीजीका उपस्थान करके धूप, दीप, गन्ध, [illegible] अनुलेप और नैवेद्य आदिके द्वारा [illegible] शङ्करकी पूजा करे। तदनन्तर श्वेत वस्त्र [illegible] चन्दन और मालासे अलंकृत हो [illegible] और गुरुको भी दक्षिणासहित दो वस्त्र अर्पित करे।

इस प्रकार विनायककी पूजा करके [illegible] पुष्टि, वृद्धि तथा आयुकी इच्छा [illegible] ग्रहोंकी भी पूजा करनी चाहिये। सूर्य, [illegible] गुरु, शुक्र, शनि, राहु तथा केतु—इन [illegible] स्थापना करनी चाहिये। सूर्यकी प्रतिमा [illegible] रजत (या स्फटिक) से, [illegible]

---

१. पूर्वोक्त गन्ध-औषधादिसहित चार कलशोंमें आम्र आदिके पल्लव रखकर उनके कण्ठमें माला पहनाये, उन्हें चन्दनसे चर्चित करे और नूतन वस्त्रसे विभूषित करके उन कलशोंको पूर्वादि चारों दिशाओंमें स्थापित कर दे। फिर पवित्र एवं लिपी-पुती वेदीपर पाँच रंगोंसे स्वस्तिक बनाकर लाल रंगका वृषभचर्म, जिसका लोम उत्तरकी ओर तथा ग्रीवा पूर्वकी ओर हो, बिछाये और उसके ऊपर श्वेत वस्त्रसे आच्छादित काष्ठनिर्मित आसन रखे। यही भद्रासन है।

सुवर्णसे, गुरुकी सुवर्णसे, शुक्रकी रजतसे, शनिकी लोहेसे तथा राहु-केतुकी सीसेसे बनाये, इससे शुभकी प्राप्ति होती है। अथवा वस्त्रपर उनके-उनके रंगके अनुसार वर्णकसे उनका चित्र अङ्कित कर लेना चाहिये। अथवा मण्डल बनाकर उनमें गन्ध (चन्दन-कुङ्कुम आदि) से ग्रहोंकी आकृति बना ले। ग्रहोंके रंगके अनुसार ही उन्हें फूल और वस्त्र भी देने चाहिये। सबके लिये गन्ध, बलि, धूप और गुग्गुल देना चाहिये। प्रत्येक ग्रहके लिये (अग्निस्थापन-पूर्वक) समन्त्रक चरुका होम करना चाहिये। 'आ कृष्णेन रजसा०' इत्यादि सूर्य देवताके, 'इमं देवाः' इत्यादि चन्द्रमाके, 'अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्०' इत्यादि मङ्गलके, 'उद्बुध्यस्व०' इत्यादि मन्त्र बुधके, 'बृहस्पते अति यदर्यः' इत्यादि मन्त्र बृहस्पतिके, 'अन्नात् परिस्रुतो०' इत्यादि मन्त्र शुक्रके, 'शन्नो देवी०' इत्यादि मन्त्र शनैश्चरके, 'काण्डात् काण्डम्' इत्यादि मन्त्र राहुके और 'केतु कृण्वन्नकेतवे०' इत्यादि मन्त्र केतुके हैं। आक, पलाश, खैर, अपामार्ग, पीपल, गूलर, शमी, दूर्वा और कुशा—ये क्रमशः सूर्य आदि ग्रहोंकी समिधा हैं। सूर्यादि ग्रहोंमेंसे प्रत्येकके लिये एक सौ आठ या अट्ठाईस बार मधु, घी, दही अथवा खीरकी आहुति देनी चाहिये। गुड़ मिलाया हुआ भात, खीर, हविष्य (मुनि-अन्न), दूध मिलाया हुआ साठीके चावलका भात, दही-भात, घी-भात, तिलचूर्णमिश्रित भात, माष (उड़द) मिलाया हुआ भात और खिचड़ी—इनको ग्रहके क्रमानुसार विद्वान् पुरुष ब्राह्मणके लिये भोजन दे। अपनी शक्तिके अनुसार यथाप्राप्त वस्तुओंसे ब्राह्मणोंका विधिपूर्वक सत्कार करके उनके लिये क्रमशः धेनु, शङ्ख, बैल, सुवर्ण, वस्त्र, अश्व, काली गौ, लोहा और बकरा—ये वस्तुएँ दक्षिणामें दे। ये ग्रहोंकी दक्षिणाएँ बतायी गयी हैं। जिस-जिस पुरुषके लिये जो ग्रह जब अष्टम आदि दुष्ट स्थानोंमें स्थित हो, वह पुरुष उस ग्रहकी उस समय विशेष यत्नपूर्वक पूजा करे। ब्रह्माजीने इन ग्रहोंको वर दिया है कि 'जो तुम्हारी पूजा करें, उनकी तुम भी पूजा (मनोरथपूर्तिपूर्वक सम्मान) करना। राजाओंके धन और जातिका उत्कर्ष तथा जगत्‌की जन्म-मृत्यु भी ग्रहोंके ही अधीन है; अतः ग्रह सभीके लिये पूजनीय हैं। जो सदा सूर्यदेवकी पूजा, एवं स्कन्दस्वामीको तथा महागणपतिको तिलक करता है, वह सिद्धिको प्राप्त होता है। इतना ही नहीं, उसे प्रत्येक कर्ममें सफलता एवं उत्तम लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। जो मातृयाग किये बिना ग्रहपूजन करता है, उसपर मातृकाएँ कुपित होती हैं और उसके प्रत्येक कार्यमें विघ्न डालती हैं। शुभकी इच्छा रखनेवाले मनुष्योंको 'वसोः पवित्रम्' इस मन्त्रसे वसुधारा समर्पित करके प्रत्येक माङ्गलिक कर्ममें गौरी आदि मातृकाओं-की पूजा करनी चाहिये। उनके नाम ये हैं—गौरी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, मातृकाएँ, वैधृति, धृति, पुष्टि, हृष्टि और तुष्टि। इनके साथ अपनी कुलदेवी और गणेशजी अधिक हैं। वृद्धिके अवसरोंपर इन सोलह मातृकाओंकी अवश्य पूजा करनी चाहिये। इन सबकी प्रसन्नताके लिये क्रमशः आवाहन, पाद्य, अर्घ्य, (आचमनीय), स्नान, (वस्त्र), चन्दन, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, फल, नैवेद्य, आचमनीय, ताम्बूल, पूगीफल, आरती तथा दक्षिणा—ये उपचार समर्पित करने चाहिये।

अब मैं पितृकल्पका वर्णन करूँगा, जो धन और संततिकी वृद्धि करनेवाला है। अमावास्या, अष्टका, वृद्धि (विवाहादिका अवसर), कृष्णपक्ष, दोनों अयनोंके आरम्भका दिन, श्राद्धीय द्रव्यकी उपस्थिति, उत्तम ब्राह्मणकी प्राप्ति, विषुवत् योग, सूर्यकी संक्रान्ति, व्यतीपात योग, गजच्छाया, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण तथा श्राद्धके लिये रुचिका होना—ये सभी श्राद्धके समय अथवा अवसर कहे गये हैं। सम्पूर्ण वेदोंके ज्ञानमें अग्रगण्य, श्रोत्रिय, ब्रह्मवेत्ता, युवक, मन्त्र और ब्राह्मणरूप वेदका तत्त्वज्ञ, ज्येष्ठ सामका गान करनेवाला, त्रिमधु[1], त्रिसुपर्ण[2], भानजा, ऋत्विक्, जामाता, यजमान, श्वशुर, मामा, त्रिणाचिकेत[3], दौहित्र, शिष्य, सम्बन्धी, बान्धव, कर्मनिष्ठ, तपोनिष्ठ, पञ्चाग्निसेवी[4], ब्रह्मचारी तथा पिता-माताके भक्त ब्राह्मण श्राद्धकी सम्पत्ति हैं। रोगी, न्यूनाङ्ग, अधिकाङ्ग, काना, पुनर्भूकी संतान, अवकीर्णी (ब्रह्मचर्य-आश्रममें रहते हुए ब्रह्मचर्य भंग करनेवाला), कुण्ड (पतिके जीते-जी पर-पुरुषसे उत्पन्न की हुई संतान), गोलक (पतिकी मृत्युके बाद जारज संतान), खराब नखवाला, काले दाँतवाला, वेतन लेकर पढ़ानेवाला, नपुंसक, कन्याको कलङ्कित करने-वाला, स्वयं जिसपर दोषारोपण किया गया हो वह, मित्र-द्रोही, चुगलखोर, सोमरस बेचनेवाला, बड़े भाईके अविवाहित रहते विवाह करनेवाला, माता, पिता और गुरुका त्याग

---

१. 'मधु वाता' इत्यादि तीन ऋचाओंका जप और तदनुकूल व्रतका आचरण करनेवाला। २. त्रिसौपर्णी ऋचाओंका अध्येता और तत्सम्बन्धी व्रतका पालन करनेवाला। ३. त्रिणाचिकेत-संज्ञक त्रिविध अग्निविद्याको जाननेवाला और तदनुकूल व्रतका पालक। ४. सभ्य, आवसथ्य तथा त्रिणाचिकेत—इन पाँच अग्नियोंका उपासक।

करनेवाला, कुण्ड और गोलकका अन्न खानेवाला, शूद्रसे उत्पन्न, एक पतिको छोड़कर आयी हुई स्त्रीका पति, चोर और कर्मभ्रष्ट—ये ब्राह्मण श्राद्धमें निन्दित हैं (अतः इनका त्याग करना चाहिये)।

श्राद्धकर्ता पुरुष मन और इन्द्रियोंको वशमें रखकर, पवित्र हो, श्राद्धसे एक दिन पहले ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। उन ब्राह्मणोंको भी उसी समयसे मन, वाणी, शरीर तथा क्रियाद्वारा पूर्ण सयमशील रहना चाहिये। श्राद्धके दिन अपराह्नकालमें आये हुए ब्राह्मणोंका स्वागतपूर्वक पूजन करे। स्वयं हाथमें कुशकी पवित्री धारण किये रहे। जब ब्राह्मण-लोग आचमन कर लें, तब उन्हें आसनपर विठाये। देवकार्यमें अपनी शक्तिके अनुसार युग्म (दो, चार, छः आदि संख्यावाले) ब्राह्मणोंको और श्राद्धमे अयुग्म (एक, तीन, पॉच, आदि संख्यावाले) ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। सब ओरसे घिरे हुए गोबर आदिसे लिपे-पुते पवित्र स्थानमें, जहॉ दक्षिण दिशाकी ओर भूमि कुछ नीची हो, श्राद्ध करना चाहिये। वैश्वदेव-श्राद्धमें दो ब्राह्मणोंको पूर्वाभिमुख विठाये और पितृकार्यमें तीन ब्राह्मणोंको उत्तराभिमुख। अथवा दोनोंमें एक-एक ब्राह्मणको ही सम्मिलित करे। मातामहोंके श्राद्धमें भी ऐसा ही करना चाहिये। अर्थात् दो वैश्वदेवश्राद्धमें और तीन मातामहादि श्राद्धमें अथवा उभयपक्षमें एक-ही-एक ब्राह्मण रक्खे।

वैश्वदेव-श्राद्धके लिये ब्राह्मणका हाथ धुलानेके निमित्त उसके हाथमें जल दे और आसनके लिये कुश दे। फिर ब्राह्मणसे पूछे—'मैं विश्वेदेवोंका आवाहन करना चाहता हूँ।' तब ब्राह्मण आज्ञा दें—'आवाहन करो।' इस प्रकार उनकी आज्ञा पाकर 'विश्वेदेवास आगत' इत्यादि ऋचा पढकर विश्वेदेवोंका आवाहन करे। तब ब्राह्मणके समीपकी भूमिपर जौ विखेरे। फिर पवित्रीयुक्त अर्घ्यपात्रमें 'शं नो देवी—' इस मन्त्रसे जल छोड़े, 'यवोऽसि' इत्यादिसे जौ डाले, फिर विना मन्त्रके ही गन्ध और पुष्प भी छोड़ दे। तत्पश्चात् 'या दिव्या आपः' इस मन्त्रसे अर्घ्यको अभिमन्त्रित करके ब्राह्मणके हाथमें संकल्पपूर्वक अर्घ्य दे और कहे—'अमुकश्राद्धे विश्वेदेवाः! इद वो हस्तार्घ्यं नमः।' यों कहकर वह अर्घ्यजल कुशयुक्त ब्राह्मणके हाथमें या कुशपर गिरा दे। तत्पश्चात् हाथ धोनेके लिये जल देकर क्रमशः गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा आच्छादन वस्त्र अर्पण करे; पुनः हस्तशुद्धिके लिये जल दे। (विश्वेदेवोंको जो कुछ भी दे, सव्यभावसे उत्तराभिमुख होकर दे और पितरोंको प्रत्येक वस्तु अपसव्यभावसे दक्षिणाभिमुख होकर देनी चाहिये)।

वैश्वदेवकाण्डके अनन्तर यज्ञोपवीत अपसव्य करके पिता आदि तीनके लिये तीन द्विगुण-भुग्न कुशोंको उनके आसनके लिये अप्रदक्षिण क्रमसे दे। फिर पूर्ववत् ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर 'उशन्तस्त्वा' इत्यादि मन्त्रसे पितरोंका आवाहन करके 'आयन्तु नः' इत्यादिका जप करे। 'अपहता असुरा रक्षाᳬसि वेदिषदः' यह मन्त्र पढ़ सब ओर तिल विखेरे। वैश्वदेव-श्राद्धमें जो कार्य जैसे किया जाता है, वही पितृश्राद्धमें तिलसे करना चाहिये। अर्घ्य आदि पूर्ववत् करे। संस्रव (ब्राह्मणके हाथसे चुए हुए जल) पितृपात्रमें ग्रहण करके भूमिपर दक्षिणाग्र कुश रखकर उसके ऊपर उस पात्रको अधोमुख करके ढुलका दे और कहे 'पितृभ्यः स्थानमसि।' फिर उसके ऊपर अर्घ्यपात्र और पवित्र आदि रखकर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि पितरोंको निवेदित करे।

इसके बाद 'अग्नौ करण' कर्म करे। घीसे तर किया हुआ अन्न लेकर ब्राह्मणोंसे पूछे—'अग्नौ करिष्ये' (मैं अग्निमें इसकी आहुति देना चाहता हूँ)। तब ब्राह्मण इसके लिये आज्ञा दें। इस प्रकार आज्ञा लेकर वह पिण्डपितृयज्ञ-की भाँति उस अन्नकी दो आहुति दे (उस समय ये दो मन्त्र क्रमशः पढ़े—अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा नमः। सोमाय पितृमते स्वाहा नमः)। फिर होमशेष अन्नको एकाग्रचित्त होकर यथाप्राप्त पात्रोंमें—विशेषतः चॉदीके पात्रोंमें परोसे। इस प्रकार अन्न परोसकर 'पृथिवी ते पात्र द्यौरपिधानम्' -इत्यादि मन्त्र पढ़कर पात्रको अभिमन्त्रित करे। फिर 'इदं विष्णुः' इत्यादि मन्त्रका उच्चारण करके अन्नमें ब्राह्मणके अँगूठेका स्पर्श कराये। तदनन्तर तीनों व्याहृतियोंसहित गायत्रीमन्त्र तथा 'मधु वाता' इत्यादि तीन ऋचाओंका जप करे और ब्राह्मणोंसे कहे—'आप सुखपूर्वक अन्न ग्रहण करें।' फिर वे ब्राह्मण भी मौन होकर प्रसन्नतापूर्वक भोजन करें। उस समय यजमान क्रोध और उतावलीको त्याग दे और जबतक ब्राह्मणलोग पूर्णतः तृप्त न हो जायँ, तबतक पूछ-पूछकर प्रिय अन्न और हविष्य उन्हें परोसता रहे। उस समय पूर्वोक्त मन्त्रोंका तथा पावमानी आदि ऋचाओंका जप या पाठ करते रहना चाहिये। तत्पश्चात् अन्न लेकर ब्राह्मणोंसे पूछे, 'क्या आप पूर्ण तृप्त हो गये?' ब्राह्मण कहें—'हॉ, हम तृप्त हो गये।' यजमान फिर पूछे—'शेष अन्न क्या किया जाय?' ब्राह्मण कहें—'इष्टजनोंके साथ भोजन करो।' उनकी इस आज्ञाको 'बहुत अच्छा' कहकर

स्वीकार करे। फिर हाथमें लिये हुए अन्नको ब्राह्मणोंके आगे उनकी जूठनके पास ही दक्षिणाग्र कुश भूमिपर रखकर उन कुशोंपर तिल-जल छोड़कर वह अन्न रख दे। उस समय 'ये अग्निदग्धाः' इत्यादि मन्त्रका पाठ करे। फिर ब्राह्मणोंके हाथमें कुल्ला करनेके लिये एक-एक बार जल दे। फिर पिण्डके लिये तैयार किया हुआ सारा अन्न लेकर दक्षिणाभिमुख हो पिण्डपितृयज्ञ-कल्पके अनुसार तिलसहित पिण्डदान करे। इसी प्रकार मातामह आदिके लिये पिण्ड दे। फिर ब्राह्मणोंके आचमनार्थ जल दे, तदनन्तर ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराये और उनके हाथमें जल देकर उनसे प्रार्थनापूर्वक कहे—आपलोग 'अक्षय्यमस्तु' कहें। तब ब्राह्मण 'अक्षय्यम् अस्तु' बोलें। इसके बाद उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा देकर कहे—'अब मैं स्वधावाचन कराऊँगा।' ब्राह्मण कहें, 'स्वधावाचन कराओ।' इस प्रकार उनकी आज्ञा पाकर पितरों और मातामहादिके लिये आप यह स्वधावाचन करें, ऐसा कहे। तब ब्राह्मण बोलें—'अस्तु स्वधा।' इसके अनन्तर पृथ्वीपर जल सींचे और 'विश्वेदेवाः प्रीयन्ताम्' यों कहे। ब्राह्मण भी इस वाक्यको दुहरायें—'प्रीयन्तां विश्वेदेवाः।' तदनन्तर ब्राह्मणोंकी आज्ञासे श्राद्धकर्ता निम्नाङ्कित मन्त्रका जप करे—

दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च।
श्रद्धा च नो मा विगमद् बहु देयं च नोऽस्त्विति ॥

'मेरे दाता बढ़ें। वेद और संतति बढ़े। हमारी श्रद्धा कम न हो और हमारे पास दानके लिये बहुत धन हो।'

यह कहकर ब्राह्मणोंसे नम्रतापूर्वक प्रिय वचन बोले और उन्हें प्रणाम करके विसर्जन करे—'वाजे-वाजे' इत्यादि ऋचाओंको पढ़कर प्रसन्नतापूर्वक विसर्जन करे। पहले पितरोंका, फिर विश्वेदेवोंका विसर्जन करना चाहिये। पहले जिस अर्घ्यपात्रमें संस्रवका जल डाला गया था, उस पितृपात्रको उत्तान करके ब्राह्मणोंको विदा करना चाहिये। ग्रामकी सीमातक ब्राह्मणोंके पीछे-पीछे जाकर उनके कहनेपर उनकी परिक्रमा करके लौटे और पितृसेवित श्राद्धान्नको इष्टजनोंके साथ भोजन करे। उस रात्रिमें यजमान और ब्राह्मण—दोनोंको ब्रह्मचारी रहना चाहिये।

इसी प्रकार पुत्र-जन्म और विवाहादि वृद्धिके अवसरोंपर प्रदक्षिणावृत्तिसे नान्दीमुख पितरोंका यजन करे। दही और बेर मिले हुए अन्नका पिण्ड दे और तिलसे किये जानेवाले सब कार्य जौसे करे। एकोद्दिष्ट श्राद्ध बिना वैश्वदेवके होता है। उसमें एक ही अर्घ्यपात्र तथा एक ही पवित्रक दिया जाता है। इसमें आवाहन और अग्नौकरणकी क्रिया नहीं होती। सब कार्य जनेऊको अपसव्य रखकर किये जाते हैं। 'अक्षय्यमस्तु' के स्थानमें 'उपतिष्ठताम्' का प्रयोग करे। 'वाजे-वाजे' इस मन्त्रसे ब्राह्मणका विसर्जन करते समय 'अभिरम्यताम्' यों कहे और वे ब्राह्मणलोग 'अभिरताः स्मः' ऐसा उत्तर दें। सपिण्डीकरण श्राद्धमें पूर्वोक्त विधिसे अर्घ्यसिद्धिके लिये गन्ध, जल और तिलसे युक्त चार अर्घ्यपात्र तैयार करे। (इनमेंसे तीन तो पितरोंके पात्र हैं और एक प्रेतका पात्र होता है।) इनमें प्रेतके पात्रका जल पितरोंके पात्रोंमें डाले। उस समय 'ये समाना' इत्यादि दो मन्त्रोंका उच्चारण करे। शेष क्रिया पूर्ववत् करे। यह सपिण्डीकरण और एकोद्दिष्ट श्राद्ध माताके लिये भी करना चाहिये। जिसका सपिण्डीकरणश्राद्ध वर्ष पूर्ण होनेसे पहले हो जाता है, उसके लिये एक वर्षतक ब्राह्मणको सान्नोदक कुम्भदान देते रहना चाहिये। एक वर्षतक प्रतिमास मृत्यु-तिथिको एकोद्दिष्ट करना चाहिये; फिर प्रत्येक वर्षमें एक बार क्षयाहतिथिको एकोद्दिष्ट करना उचित है। प्रथम एकोद्दिष्ट तो मरनेके बाद ग्यारहवें दिन किया जाता है। सभी श्राद्धोंमें पिण्डोंको गाय, बकरे अथवा लेनेकी इच्छावाले ब्राह्मणोंको दे देना चाहिये। अथवा उन्हें अग्निमें या अगाध जलमें डाल देना चाहिये। जबतक ब्राह्मणलोग भोजन करके वहाँसे उठ न जायँ, तबतक उच्छिष्ट स्थानपर झाड़ू न लगाये। श्राद्धमें हविष्यान्नके दानसे एक मासतक और खीर देनेसे एक वर्षतक पितरोंकी तृप्ति बनी रहती है। भाद्रपद कृष्णा त्रयोदशीको विशेषतः मघा नक्षत्रका योग होनेपर जो कुछ पितरोंके निमित्त दिया जाता है, वह अक्षय होता है। एक चतुर्दशीको छोड़कर प्रतिपदासे अमावास्यातककी चौदह तिथियोंमें श्राद्ध-दान करनेवाला पुरुष क्रमशः इन चौदह फलोंको पाता है—रूप-शीलयुक्त कन्या, बुद्धिमान् तथा रूपवान् दामाद, पशु, श्रेष्ठ पुत्र, द्यूत-विजय, खेतीमें लाभ, व्यापारमें लाभ, दो खुर और एक खुरवाले पशु, ब्रह्मतेजसे सम्पन्न पुत्र, सुवर्ण, रजत, कुप्यक (त्रपु-सीसा आदि), जाति-भाइयोंमें श्रेष्ठता और सम्पूर्ण मनोरथ। जो लोग शस्त्रद्वारा मारे गये हों, उन्हींके लिये उस चतुर्दशी तिथिको श्राद्ध प्रदान किया जाता है। स्वर्ग, संतान, ओज, शौर्य, क्षेत्र, बल, पुत्र, श्रेष्ठता, सौभाग्य, समृद्धि, प्रधानता, शुभ, प्रवृत्तचक्रता (अप्रतिहत शासन), वाणिज्य आदि, नीरोगता, यश, शोकहीनता, परम गति, धन, वेद, चिकित्सामें सफलता, कुप्य (त्रपु-सीसा आदि), गौ, बकरी,

भेड़, अश्व तथा आयु—इन सत्ताईस प्रकारके काम्य पदार्थोंको क्रमशः वही पाता है, जो कृत्तिकासे लेकर भरणीपर्यन्त प्रत्येक नक्षत्रमें विधिपूर्वक श्राद्ध करता है तथा आस्तिक, श्रद्धालु एवं मद-मात्सर्य आदि दोषोंसे रहित होता है। वसु, रुद्र और आदित्य—ये तीन प्रकारके पितर श्राद्धके देवता हैं। ये श्राद्धसे संतुष्ट किये जानेपर मनुष्योंके पितरोंको तृप्त करते हैं। जब पितर तृप्त होते हैं, तब वे मनुष्योंको आयु, प्रजा, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष, सुख तथा राज्य प्रदान करते हैं। इस प्रकार मैंने कल्पाध्यायका विषय थोड़ेमें बताया है। वेद तथा पुराणान्तरसे विशेष बातें जाननी चाहिये। [illegible] ! जो विद्वान् इस कल्पाध्यायका चिन्तन करता है, वह इस लोकमें कर्म-कुशल होता है और परलोकमें शुभ गति [illegible] है। जो मनुष्य देवकार्य तथा पितृकार्यमें इस [illegible] भक्तिपूर्वक श्रवण करता है, वह धन और [illegible] पूरा [illegible] है। इतना ही नहीं, वह इस लोकमें धन, विद्या, [illegible] और [illegible] पाता है तथा परलोकमें उसे [illegible] गति प्राप्त होती है। [illegible] वेदके मुखस्वरूप व्याकरणका [illegible] [illegible] चित्त होकर सुनो। (पूर्वभाग द्वितीय पाद [illegible] ५१)

व्याकरण शास्त्रका वर्णन

सनन्दन उवाच

अथ व्याकरणं वक्ष्ये संक्षेपात्तव नारद।
सिद्धरूपप्रबन्धेन मुखं वेदस्य साम्प्रतम्॥ १॥

सनन्दनजी कहते हैं—अब मैं शब्दोंके सिद्धरूपोंका उल्लेख करते हुए तुमसे संक्षेपमें व्याकरणका वर्णन करता हूँ; क्योंकि व्याकरण वेदका मुख है॥ १॥

सुप्तिङन्तं पदं विप्र सुपां सप्त विभक्तयः।
स्वौजसः प्रथमा प्रोक्ता सा प्रातिपदिकात्मिका॥ २॥

विप्रवर! सुबन्त और तिङन्त पदको शब्द कहते हैं (जिसके अन्तमें 'सुप्' प्रत्यय हो, वह सुबन्त कहलाता है)। सुप्की सात विभक्तियाँ हैं। उनमेंसे प्रथमा (पहली) विभक्ति सु, औ, जस्—इस प्रकार बतायी गयी है ('सु' प्रथमाका एकवचन है, 'औ' द्विवचन है और 'जस्' बहुवचन है)। प्रथमा विभक्ति प्रातिपदिक (नाम) स्वरूप मानी गयी है॥ २॥

सम्बोधने च लिङ्गादावुक्ते कर्मणि कर्तरि।
अर्थवत्प्रातिपदिकं [illegible]॥ ३॥

सम्बोधनमें प्रथमा विभक्तिका प्रयोग होता है, [illegible] पदिकके अतिरिक्त लिङ्ग, परिमाण और [illegible] कराना हो, वहाँ भी प्रथमा विभक्तिका ही प्रयोग [illegible] है। उक्त कर्ममें (जहाँ कर्म वाच्य हो, उसमें) [illegible] (जहाँ कर्ता वाच्य हो, उसमें) भी प्रथमा [illegible] प्रयोग होता है। धातु और प्रत्ययसे रहित [illegible] प्रातिपदिक संज्ञा होती है॥ ३॥

अमौशसो द्वितीया स्यात्तत्कर्म [illegible] च यत्।
द्वितीया कर्मणि प्रोक्तान्तरान्तरेण [illegible]॥ ४॥

अम्, औ, शस्—यह द्वितीया विभक्ति है ([illegible] 'अम्' आदिको क्रमशः एकवचन, द्विवचन और [illegible] समझना चाहिये)। जो किया जाता है, उसे कर्म [illegible] है।

---

१. राम, हरिम्, पितु, रमाया, ज्ञानम् इत्यादि। २. तिङ् विभक्ति जिसके अन्तमें हो, उसे तिङन्त कहते हैं। तिङ्के दो विभाग हैं—परस्मैपद और आत्मनेपद। इन दोनोंमें तीन पुरुष होते हैं—प्रथम, मध्यम तथा उत्तम। प्रत्येक पुरुषमें तीन वचन होते हैं—एकवचन, द्विवचन और बहुवचन। परस्मैपदके प्रथम पुरुषसम्बन्धी प्रत्यय इस प्रकार हैं 'तिप्, तस्, अन्ति।' ये क्रमशः एकवचन, द्विवचन तथा बहुवचन हैं। इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिये। आत्मनेपदके प्रथम पुरुषमें 'ते, आते, अन्ते' ये प्रत्यय होते हैं। इस प्रकार दोनों पदोंके तीनों पुरुषसम्बन्धी प्रत्ययोंका मूलमें ही उल्लेख हुआ है। यहाँ संक्षेपसे दिग्दर्शन कराया गया है। 'ति' से लेकर 'महे' तकके [illegible] जिसके अन्तमें हो, वह 'तिङन्त' है। [illegible] उदाहरण—'भवति' (होता है), [illegible] (जायगा), 'पचते' (पकाता है) इत्यादि।

१. 'सम्बोधनमें प्रथमा विभक्तिका प्रयोग होता है'—[illegible] राम' इत्यादि। २ [illegible] उदाहरण 'द्रोणो मति' (एक द्रोण धान [illegible]) [illegible] 'द्वौ' [illegible]। ५. 'हरि सेव्यते' ([illegible] होते हैं), [illegible] सेवित है) इत्यादि। ६. [illegible] धातुसे रहित [illegible]

अनुक्त कर्ममें[1] द्वितीया विभक्तिका प्रयोग कहा गया है (कर्तृवाच्य वाक्योंमें कर्म अनुक्त होता है, वहाँ उसकी प्रधानता नहीं रहती, इसीलिये उसे 'अनुक्त' कहा गया है)। 'अन्तरा', 'अन्तरेण'[2] इन शब्दोका जिसके साथ संयोग या अन्वय हो, उस शब्दमें द्वितीया विभक्तिका प्रयोग करना चाहिये ॥४॥

टाभ्याम्भिसस्तृतीया स्यात्करणे कर्तरीरिता।
येन क्रियते तत्करणं स कर्ता स्यात्करोति यः ॥ ५ ॥

'टा', 'भ्याम्', 'भिस्'—यह तृतीया विभक्ति है (यहाँ भी पूर्ववत् एकवचन आदिका विभाग समझना चाहिये)। करणमे[3] और अनुक्त[4] कर्तामें तृतीया विभक्ति बतायी गयी है। जिसकी सहायतासे कार्य किया जाता है, उसका नाम करण है और जो कार्य करता है, उसे कर्ता कहते हैं (जिस वाक्यमें कर्मकी प्रधानता होती है, वहाँ कर्ता अनुक्त माना गया है) ॥५॥

ङेभ्याम्भ्यसश्चतुर्थी स्यात्सम्प्रदाने च कारके।
यस्मै दित्सां धारयेद्वै रोचते सम्प्रदानकम् ॥ ६ ॥

'ङे', 'भ्याम्' 'भ्यस्'—यह चतुर्थी विभक्ति है। इसका प्रयोग सम्प्रदान कारकमें होता है। जिस व्यक्तिको कोई वस्तु देनेकी इच्छा मनमें धारण की जाय, उसकी 'सम्प्रदान'[5] संज्ञा होती है तथा जिसको कोई वस्तु रुचिकर प्रतीत होती है, वह भी सम्प्रदान है (सम्प्रदानमें चतुर्थी विभक्ति होती है) ॥६॥

पञ्चमी स्यान्ङसिभ्याम्भ्यो ह्यपादाने च कारके।
यतोऽपैति समादत्ते अपादाने च यं यतः ॥ ७ ॥

'ङसि' 'भ्याम्', 'भ्यस्' यह पञ्चमी विभक्ति है। इसका प्रयोग अपादान कारकमें होता है। जहाँसे कोई जाता है, जिससे कोई किसी वस्तुको लेता है तथा जिस स्थानसे कोई वस्तु अलग की जाती या स्वतः अलग होती है, विभाग या अलगावकी उस सीमाको अपादान[2] कारक कहते हैं ॥७॥

ङसोसामश्च षष्ठी स्यात्स्वामिसम्बन्धमुख्यके।
ङ्योस्सुपः सप्तमी तु स्यात्सा चाधिकरणे भवेत् ॥ ८ ॥

'ङस्', 'ओस्', 'आम्'—यह षष्ठी विभक्ति है। जहाँ स्वामी-सेवक आदि सम्बन्धकी[3] प्रधानता हो, वहाँ (भेदकमें) षष्ठी विभक्तिका प्रयोग होता है। 'ङि', 'ओस्' 'सुप्'—यह सप्तमी विभक्ति है। इसका प्रयोग अधिकरण[4] कारकमें होता है ॥८॥

आधारे चापि विप्रेन्द्र रक्षार्थानां प्रयोगतः।
ईप्सितं चानीप्सिताद् यत्तदपादानकं स्मृतम् ॥ ९ ॥

विप्रवर! आधारमें[5] भी सप्तमी होती है। भयार्थक[6] तथा रक्षार्थक[7] धातुओंका प्रयोग होनेपर भयके कारणकी अपादान संज्ञा होती है। इसी प्रकार वारणार्थक[8] धातुओंका

पदिक संज्ञा होकर न लोप न हो जाय। प्रत्ययरहित कहनेका कारण यह है कि 'हरिषु', 'करोषि' इत्यादिमें भी 'सु' की प्रातिपदिक संज्ञा न हो जाय। यदि प्रातिपदिक संज्ञा हो जाती तो औत्सर्गिक एकवचन लाकर पदसंज्ञा करनेपर उक्त उदाहरणोंमें दन्त्य 'स' के स्थानमें मूर्धन्य 'ष' नहीं हो पाता; क्योंकि पदादि 'स' कारके स्थानमें 'ष' कार होनेका निषेध है। प्रत्ययके निषेधसे प्रत्ययान्तका भी निषेध समझना चाहिये। इससे 'हरिषु' इत्यादि समुदायकी प्रातिपदिक संज्ञा नहीं होगी। सार्थक शब्दकी ही प्रातिपदिक संज्ञा होती है, निरर्थककी नहीं। इसलिये 'धनम्, वनम्' इत्यादिमें प्रत्येक अक्षरकी अलग-अलग 'प्रातिपदिक' संज्ञा नहीं हो सकती।

१. 'हरिं भजति' (श्रीहरिको भजता है) इत्यादि वाक्योंमें 'हरि' इत्यादि पद अनुक्त हैं; इसलिये उनमें द्वितीया विभक्तिका प्रयोग होता है। २. इसका उदाहरण है 'अन्तरा त्वा मा हरिः' (तुम्हारे और मेरे भीतर भी भगवान् हैं)। 'अन्तरेण हरिं न सुखम्' (भगवान्‌के विना सुख नहीं है) इत्यादि। ३-४. 'रामेण बाणेन हतो वाली' (श्रीरामने बाणसे वालीको मारा) इस वाक्यमें राम अनुक्त कर्ता हैं और बाण करण। अत इन दोनोंमें तृतीया विभक्तिका प्रयोग हुआ है। ५. 'ब्राह्मणाय गां ददाति' (ब्राह्मणको गाय देता है) इस वाक्यमें ब्राह्मण सम्प्रदान है, इसलिये उसमें चतुर्थी हुई है।

१. इसका उदाहरण है—'हरये रोचते भक्तिः' (भगवान्‌को भक्ति पसंद है)। २. इसके उदाहरण इस प्रकार हैं—'ग्रामादपैति' (गाँवसे दूर जाता है), 'देवदत्तः यज्ञदत्तात् पुस्तकं समादत्ते' (देवदत्त यज्ञदत्तसे पुस्तक लेता है), 'पात्रात् ओदनं गृह्णाति' (बर्तनसे भात लेता है), 'अश्वात् पतति' (घोड़ेसे गिरता है), 'पर्वतात् नदी निस्सरति' (पर्वतसे नदी निकलती है) इत्यादि। ३. 'गृहस्य स्वामी' (घरके स्वामी), 'राज्ञः सेवकः' (राजाका सेवक), 'दशरथस्य पुत्रः' (दशरथके पुत्र), 'सीतायाः पतिः' (सीताके पति) इत्यादि। ४. 'गृहे वसति' (घरमें रहता है)। ५. आधार तीन प्रकारके हैं—औपश्लेषिक वैषयिक और अभिव्यापक। इनके क्रमशः उदाहरण इस प्रकार हैं—'कटे आस्ते' (चटाईपर बैठता है), 'मोक्षे इच्छा अस्ति' (मोक्षविषयक इच्छा है), 'सर्वस्मिन् आत्मा अस्ति' (सबमें आत्मा है) ६. 'चौराद्बिभेति' (चोरीसे डरता है)। ७. 'पापाद् रक्षति' (पापसे बचाता है)। ८. 'यवेभ्यो गां वारयति' (जौसे गायको हटाता है)।

भगवान् श्रीरामका ध्यान [पृष्ठ ३६१

भगवान रामका सरयूतटका ध्यान [पृष्ठ ३७२

श्रीसीताजीका ध्यान [पृष्ठ ३७३
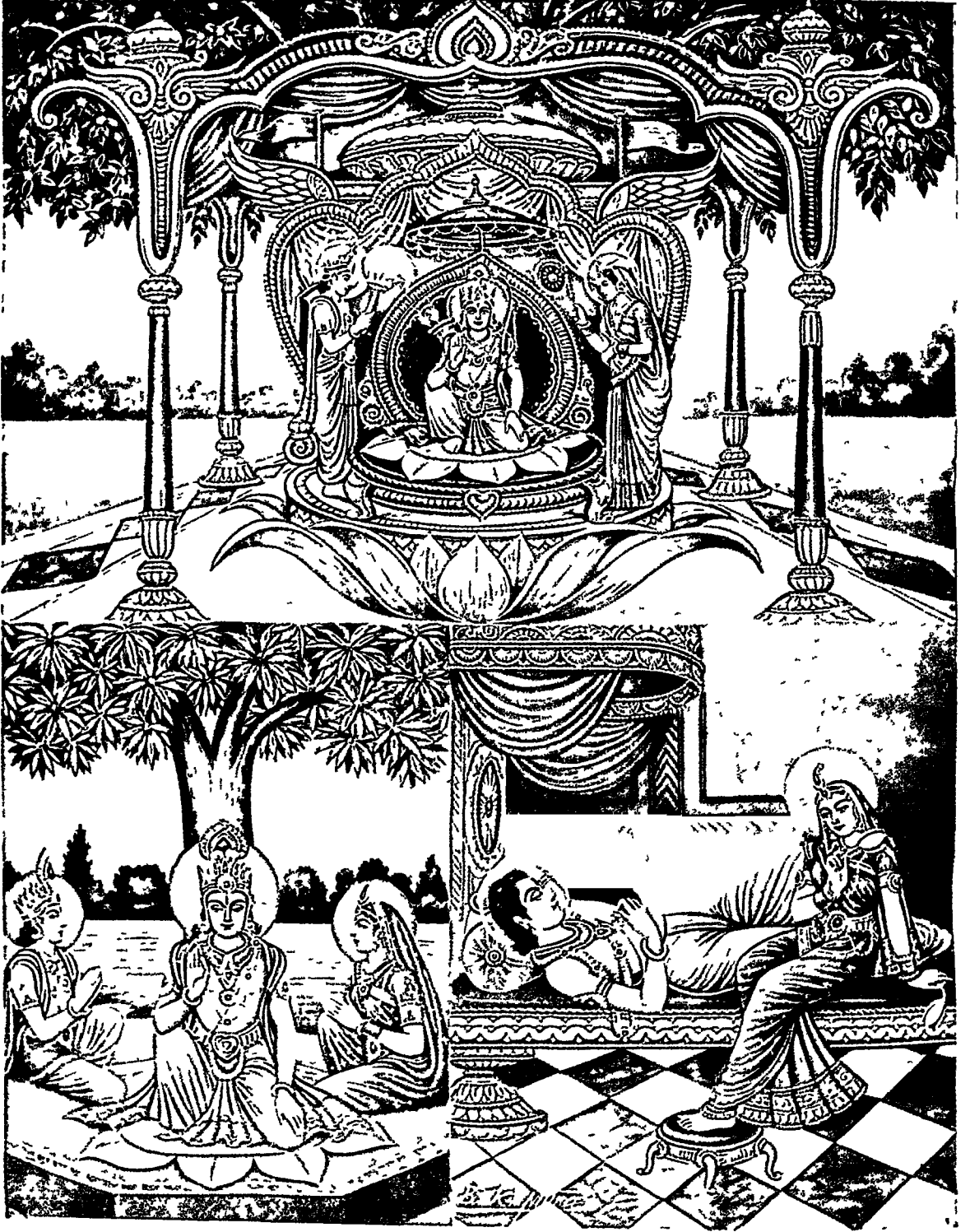
प्रयोग होनेपर अनीप्सितसे (जो अभीष्ट नहीं है, उससे) रक्षणीय जो,अभीष्ट वस्तु है, उसकी अपादान संज्ञा होती है ॥९॥

पञ्चमी पर्यपाङ्योगे इतरर्तेऽन्यदिङ्मुखे।
एतैर्योगे द्वितीया स्यात्कर्मप्रवचनीयकैः ॥१०॥

परि, अप, आङ्, इतर, ऋते, अन्य (आरात्) तथा दिग्वाचक शब्द—इन सबके योगमें भी पञ्चमी विभक्ति होती है। 'कर्मप्रवचनीय' संज्ञावाले शब्दोंके साथ योग होनेपर द्वितीया विभक्ति होती है ॥१०॥

लक्षणेत्थंभूतेऽभिरभागे चानुपरिप्रति।
अन्तरेषु सहार्थे च हीने ह्युपश्च कथ्यते ॥११॥

लक्षण, इत्थम्भूताख्यान, भाग तथा वीप्सा—इन सबकी अभिव्यक्तिके लिये प्रयुक्त हुए प्रति, परि, अनु—इन अव्ययोंकी 'कर्मप्रवचनीय' संज्ञा होती है। 'भाग' अर्थको छोड़कर शेष जो लक्षण आदि अर्थ हैं, उनकी अभिव्यक्तिके लिये प्रयुक्त होनेवाला 'अभि' अव्यय भी 'कर्मप्रवचनीय' होता है। हीन अर्थको प्रकाशित करनेवाला 'अनु' तथा 'हीन' और 'अधिक' अर्थोंको प्रकट करनेके लिये प्रयुक्त 'उप' अव्यय भी 'कर्मप्रवचनीय' होते हैं। अन्तर अर्थात् मध्य अर्थ तथा सहार्थ यानी तृतीया विभक्तिका अर्थ व्यक्त करनेके लिये प्रयुक्त हुआ 'अनु' शब्द भी 'कर्मप्रवचनीय' है। (इन सबके योगमें द्वितीया विभक्ति होती है) ॥११॥

द्वितीया च चतुर्थी स्याच्चेष्टायां गतिकर्मणि।
अप्राणिषु विभक्ती द्वे मन्यकर्मण्यनादरे ॥१२॥

गत्यर्थक धातुओंके कर्ममें द्वितीया और चतुर्थी दोनों विभक्तियाँ प्रयुक्त होती हैं, यदि गमनकी चेष्टा प्रकट होती हो। (परंतु मार्ग या उसका वाचक शब्द यदि गत्यर्थक धातुका कर्म हो तो उसमें चतुर्थी नहीं होती, केवल द्वितीया होती है। यह चतुर्थीका निषेध तभी लागू होता है, जब पथिक मार्गपर चल रहा हो। यदि वह गलत रास्तेसे जाकर अच्छा रास्ता पकड़ना चाहता हो तब चतुर्थीका प्रयोग भी हो ही सकता है) [illegible] 'मन्' धातुका कर्म यदि कोई प्राणिभिन्न वस्तु हो और अनादर अर्थ प्रकट करना हो तो उसमें भी द्वितीया और चतुर्थी दोनों विभक्तियाँ होती हैं ॥१२॥

नमःस्वस्तिस्वधास्वाहालंवषड्योग ईरिता।
चतुर्थी चैव तादर्थ्ये तुमर्थाद्भाववाचिनः ॥१३॥

नमः, स्वस्ति, स्वधा, स्वाहा, अलम्, वषट्—इन अव्यय शब्दोंके योगमें चतुर्थी विभक्तिका प्रयोग [illegible]

१—'परि हरेः संसारः' (श्रीहरिसे संसार अलग है), 'अप हरेः सर्वे दोषाः' (सब दोष भगवान्‌से दूर हैं), 'आ मुक्तेः संसारः' (जबतक मोक्ष न हो, तबतक संसार है), 'इतरः कृष्णात्' (कृष्णसे भिन्न), 'ऋते भगवतः' (भगवान्‌के बिना), 'अन्य श्रीरामात्' (श्रीरामसे भिन्न), 'आरात् वनात्' (वनसे दूर या समीप), 'पूर्वो ग्रामात्' (गाँवसे पूर्व) इत्यादि उदाहरण समझने चाहिये। २. उदाहरण—'वृक्षं प्रति परि अनु वा विद्योतते विद्युत्' (वृक्षकी ओर बिजली चमकती है)। यहाँ वृक्षके प्रकाशित होनेसे बिजलीकी चमकका ज्ञान होता है, अतः वृक्ष लक्षण है। किसीके मतमें विद्युत्‌का विद्योतन ही लक्षण है, इसे व्यक्त करनेवाले प्रति, परि अथवा अनु किसीके भी योगमें द्वितीया ही होगी। ३. 'भक्तो विष्णुं प्रति, परि, अनु वा।' (यह श्रीविष्णुका भक्त है)। यहाँ इत्थं भूतका अर्थ है किसी विशेषणको प्राप्त। भक्तत्वरूप विशेषणको प्राप्त पुरुषके कथनमें प्रयुक्त प्रति आदि अव्यय कर्मप्रवचनीय होकर 'विष्णु' शब्दसे युक्त हो उसमें द्वितीया विभक्ति लाते हैं। ४. लक्ष्मीर्हरिं प्रति, परि, अनु वा। इसका अर्थ हुआ लक्ष्मीजी भगवान् श्रीहरिकी वस्तु हैं, उनपर उन्हींका अधिकार है, वे श्रीहरिका भाग हैं। ५. मूलमें 'वीप्सा' का प्रयोग न होनेपर भी 'लक्षणेत्थंभूत०' (पा० सू० १।४।९०) सूत्रके आधारपर उसका ग्रहण किया गया है। उसका अर्थ है व्याप्ति। उदाहरण है—'वृक्षं वृक्षं प्रति सिञ्चति' (एक-एक पेड़को सींचता है), 'परि सिञ्चति, अनु सिञ्चति' का भी प्रयोग हो सकता है। ६. उदाहरण—हरिमभि वर्तते।

१. 'अनु हरिं सुराः' इसका अर्थ है—[illegible] 'अधिक' अर्थमें जहाँ 'उप' है, वहाँ [illegible] अर्थमें जहाँ 'उप' है, उसके योगमें द्वितीया होती है। [illegible] सुराः'—देवता भगवान्‌से हीन हैं। २. उदाहरण—[illegible] भगवान् हृदयके भीतर हैं। ४—उदाहरण—[illegible] नद्या सह सम्बद्धेत्यर्थः (सेना नदीके [illegible]) [illegible] 'ग्रामं ग्रामाय वा गच्छति' (गाँवको जाता है) [illegible] 'पन्थानं गच्छति' (राह जाता है)। [illegible] गच्छति' (अच्छी राह पकड़नेके लिये [illegible] ८. यथा—'न त्वा [illegible] मन्ये, [illegible] बराबर भी नहीं समझता)। [illegible] को छोड़कर 'नौका, अन्न, शुक, [illegible] इनको [illegible] देना चाहिये। [illegible] प्राणिभिन्न होनेपर भी चतुर्थी नहीं [illegible] त्वां शुने मन्ये' इत्यादि [illegible]

है[1]। तादर्थ्यमें अर्थात् जिस वस्तुके लिये कोई कार्य किया जाता है, उस 'वस्तु'के बोधक शब्दमें चतुर्थी विभक्ति होती है[2]। 'तुमुन्' के अर्थमें प्रयुक्त अव्ययभिन्न भावार्थक प्रत्ययान्त शब्दमें भी चतुर्थी विभक्तिका ही प्रयोग होना चाहिये[3]॥१३॥

तृतीया सहयोगे स्यात्कुत्सितेऽङ्गे विशेषणे।
काले भावे सप्तमी स्यादेतैर्योगे च षष्ठ्यपि ॥१४॥
स्वामीश्वराधिपतिभिः साक्षिदायादसूतकैः।
निर्धारणे द्वे विभक्ती षष्ठी हेतुप्रयोगके ॥१५॥

'सह' तथा उसके पर्यायवाची शब्दोंसे योग होनेपर तृतीया विभक्ति होती है[4] (इसी प्रकार सदृशार्थक शब्दोंके योगमें भी तृतीया होती है)। यदि कोई विकृत अङ्ग विशेषण-रूपसे प्रयुक्त हुआ हो तो उसमें भी तृतीया विभक्ति होती है[6]। जहाँ एक क्रियाके होते समय दूसरी क्रिया लक्षित होती हो, वहाँ सप्तमी विभक्ति होती है[7]। 'स्वामी', 'ईश्वर', 'अधिपति', 'साक्षी', 'दायाद', 'प्रसूत' (तथा 'प्रतिभू')—इन शब्दोंके योगमें सप्तमी और षष्ठी दोनों विभक्तियाँ होती हैं[8]। जिस समुदायमेंसे किसी एककी जाति-सम्बन्धी, गुण-सम्बन्धी, क्रिया-सम्बन्धी अथवा किसी विशेष नामवाले व्यक्तिसम्बन्धी विशेषताका निश्चय करना हो, उस समुदायबोधक शब्दमें सप्तमी और षष्ठी दोनों विभक्तियाँ होती हैं[9]। 'हेतु' शब्दका प्रयोग करके यदि हेत्वर्थका प्रकाशन किया जाय तो षष्ठी विभक्ति होती है[1]॥१४-१५॥

स्मृत्यर्थकर्मणि तथा करोतेः प्रतियत्नके।
हिंसार्थानां प्रयोगे च कृति कर्मणि कर्तरि ॥१६॥

स्मरणार्थक क्रियाओंके कर्ममें शेषषष्ठी होती है[2]। 'कृ' धातुके कर्ममें भी शेषषष्ठीका विधान है; यदि प्रतियत्न (गुणाधान या संस्कार) सूचित होता हो[3]। 'हिंसा' अर्थ-वाले धातुओंका प्रयोग होनेपर उनके कर्ममें शेषषष्ठी होती है[4]। कृदन्त शब्दका योग होनेपर कर्ता और कर्ममें षष्ठी होती है[5]॥१६॥

न कर्तृकर्मणोः षष्ठी निष्ठादिप्रतिपादने।
एता वै द्विविधा ज्ञेयाः सुबादिषु विभक्तिषु।
भूवादिषु तिङन्तेषु लकारा दश वै स्मृताः ॥१७॥

यदि निष्ठा आदिका प्रतिपादन करनेवाले प्रत्ययोंसे युक्त शब्दका प्रयोग हो तो कर्ता और कर्ममें षष्ठी नहीं होती[6]। ये विभक्तियाँ दो प्रकारकी जाननी चाहिये—सुप् और तिङ्। ऊपर सुबादि विभक्तियोंके विषयमें वर्णन किया गया है। क्रियावाचक 'भू' 'वा' आदि शब्द ही तिङ् विभक्तियोंके

---

१ क्रमशः उदाहरण इस प्रकार हैं—'हरये नमः। स्वस्ति प्रजाभ्यः। अग्नये स्वाहा। पितृभ्यः स्वधा। अलं मल्लो मल्लाय। वषट् इन्द्राय। २. यथा—'मुक्तये हरिं भजति (मोक्षके लिये भगवान्का भजन करता है)। ३. यागाय याति—यष्टुं यातीत्यर्थः (यज्ञके लिये जाता है)। ४. यथा—पुत्रेण सहागतः पिता (पुत्रके साथ पिता आया है)। यहाँ 'सह' के योगमें तृतीया हुई है। इसी प्रकार 'साकम्', 'सार्धम्', 'समम्'—इन शब्दोंके योगमें भी तृतीया जाननी चाहिये। ५. 'सदृश', 'तुल्य', 'सम', 'निभ', 'सदृक्ष', 'नीकाश', 'संकाश', 'उपमित' आदि शब्द सदृशार्थक हैं; इनके योगमें भी तृतीया होती है, यथा—मेघेन सदृशः श्यामो हरिः (भगवान् विष्णु मेघके समान श्याम हैं)। ६. यथा—अक्ष्णा काणः (आँखका काना), कर्णेन बधिरः (कानका बहरा), पादेन खञ्जः (पैरका लँगड़ा) इत्यादि। ७. यथा—गोषु दुह्यमानासु गतः (जब गौएँ दुही जाती थीं, उस समय गया)। ८. गवां गोषु वा स्वामी। मनुष्याणाम् मनुष्येषु वा ईश्वरः—इत्यादि उदाहरण हैं। ९ यथा—नृणां नृषु वा ब्राह्मणः श्रेष्ठः। गवां गोषु वा कृष्णा बहुक्षीरा। गच्छतां गच्छत्सु वा धावन् शीघ्रः। छात्राणां छात्रेषु वा मैत्रः पटुः—ये उदाहरण हैं।

१ यथा—अन्नस्य हेतोर्वसति। २. मातुः स्मरति, मातुः स्मरणम् आदि उदाहरण हैं। शेषत्वेन विवक्षित होनेपर ही षष्ठी होती है। विवक्षा न होनेपर 'मातरं स्मरति' इस प्रकार द्वितीया विभक्ति ही होगी। ३. उदाहरण—एधो दकस्योपस्करणम्—एधो दकस्योपस्कुरुते। ४. महर्षि पाणिनिने यहाँ—'जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषां हिंसायाम्' (२। ३। ५६) इस सूत्रद्वारा हिंसा-अर्थमें परिगणित धातुओंको ही ग्रहण किया है। उदाहरणके लिये 'चौरस्योज्जासनम्' 'चौरस्य प्रणिहननम्, निहननं, प्रहणनं वा।' 'चौरस्योन्नाटनम्।' 'चौरस्य क्राथनम्।' 'चौरस्य पेषणं वा।' इत्यादि प्रयोग हैं। ५. यथा—'कृष्णस्य कृतिः' यहाँ 'कृष्ण' कर्ता है, उसमें षष्ठी हुई है। 'जगतः कर्ता कृष्णः' इसमें 'जगत्' कर्म है, यहाँ कर्ममें षष्ठी हुई है। ६. आदि पदसे 'न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थ-तृनाम्' (पा. सू. २। ३। ६९) इस सूत्रमें निर्दिष्ट स्थलोंको ग्रहण करना चाहिये। निष्ठाका उदाहरण यह है—'विष्णुना हता दैत्याः' (विष्णुसे दैत्य मारे गये)। 'दैत्यान् हतवान् विष्णुः' (दैत्योंको विष्णुने मारा)। इसमें कृदन्त शब्दका योग होनेसे विष्णुशब्दमें षष्ठीकी प्राप्ति थी, जो इस निषेधसे बाधित हो गयी।

साथ संयुक्त होनेपर तिङन्त कहे गये हैं। इनमें दस लकार बताये गये हैं ॥१७॥

तिप्तसन्तीति प्रथमो मध्यः सिप्थसथ उत्तमः।
मिब्वसमः परस्मै तु पदानां चात्मनेपदम् ॥१८॥

(प्रत्येक लकारमें परस्मैपद और आत्मनेपद—ये दो पद होते हैं। प्रत्येक पदमें प्रथम, मध्यम और उत्तम—ये तीन पुरुष होते हैं।) 'तिप्' 'तस्' 'अन्ति' यह प्रथम पुरुष है। 'सिप्' 'थस्' 'थ'—यह मध्यम पुरुष है तथा 'मिप्' 'वस्' 'मस्' यह उत्तम पुरुष है (प्रत्येक पुरुषमें जो तीन-तीन प्रत्यय हैं, वे क्रमशः एकवचन, द्विवचन और बहुवचन हैं)। ये सब परस्मैपदके प्रत्यय हैं। अब आत्मनेपद बताया जाता है ॥१८॥

ते आतेऽन्ते प्रथमो मध्यः से आथे ध्वे तथोत्तमः।
ए वहे महे आदेशा ज्ञेया ह्यन्ये लिडादिषु ॥१९॥

'ते' 'आते' 'अन्ते' यह प्रथम पुरुष है। 'से' 'आथे' 'ध्वे' यह मध्यम पुरुष है। 'ए' 'वहे' 'महे' यह उत्तम पुरुष है। ये 'लट्' लकारके स्थानमें होनेवाले आदेश हैं। 'लिट्' आदि लकारोंके स्थानमें होनेवाले प्रत्ययरूप, आदेश दूसरे हैं, उन्हें (अन्य व्याकरणसम्बन्धी ग्रन्थोंसे) जानना चाहिये ॥१९॥

नाम्नि प्रयुज्यमाने तु प्रथमः पुरुषो भवेत्।
मध्यमो युष्मदि प्रोक्त उत्तमः पुरुषोऽस्मदि ॥२०॥

जहाँ 'युष्मद्', 'अस्मद्' शब्दोंके अतिरिक्त अन्य कोई भी नाम (संज्ञा-शब्द) उक्त कर्ता या उक्त कर्मके रूपमें प्रयुक्त होता हो, वहाँ प्रथम पुरुष होता है। 'युष्मद्' शब्द उक्त कर्ता या उक्त कर्मके रूपमें प्रयुक्त हो तो मध्यम पुरुष होता है और 'अस्मद्' शब्दका उक्त कर्ता या उक्त कर्मके रूपमें प्रयोग हो तो उत्तम पुरुष कहा गया है ॥२०॥

भूवाद्या धातवः प्रोक्ताः सनाद्यन्तास्तथा ततः।
लडीरितो वर्तमाने भूतेऽनद्यतने तथा ॥२१॥
मास्मयोगे च लङ्वाच्यो लोडाशिषि च धातुतः।
विध्यादौ स्यादाशिषि च लिङिति द्विविधो मुने ॥२२॥

क्रिया-बोधक 'भू' 'वा' आदि शब्दोंको 'धातु' कहा गया है। 'सन्' आदि प्रत्यय जिनके अन्तमें हों, उनकी भी धातु-संज्ञा है। धातुओंसे वर्तमानकालमें लट् [illegible] अनद्यतन (आजसे पहलेके) भूतकालमें लङ् [illegible] 'मा' और 'स्म' इन दोनोंके योगमें लङ् ([illegible]) होता है, यह बताना चाहिये। आशीर्वाद और विधि [illegible] धातुसे लोट् लकारका विधान है। विधि आदि [illegible] आशीर्वादमें लिङ् लकारका भी प्रयोग होता है, [illegible] लिङ् और आशिष् लिङ्के धातु-[illegible] मुने! इसीलिये यह दो प्रकारका [illegible] ॥२१-२२॥

लिडतीते परोक्षे स्याच्छ्वस्तने लुट् भविष्यति।
स्यादेवाद्यतने लृट् च भविष्यति तु धातुतः ॥२३॥

परोक्ष भूतकालमें लिट् लकारका प्रयोग [illegible]। [illegible] बाद होनेवाले भविष्यमें 'लुट्' का प्रयोग [illegible] आज होनेवाले भविष्यमें (तथा [illegible]) धातुसे लृट् लकार होता है ॥२३॥

भूते लुङतिपत्तौ च क्रियाया लृङ् प्रकीर्तितः।
सिद्धोदाहरणं विद्धि संहितादिषु सत्तम ॥२४॥

सामान्य भूतकालमें लुङ् लकारका प्रयोग [illegible] हेतुहेतुमद्भाव आदि जो लिङ्के निमित्त हैं, [illegible] भविष्य-अर्थमें लृङ् लकारका प्रयोग होता है [illegible] क्रियाकी असिद्धि सूचित होती हो तभी ऐसा होता [illegible] मुने! [अब संधिका प्रकरण [illegible] हैं— संधिके सिद्ध उदाहरण संहिता [illegible] समझो ॥२४॥

दण्डाग्रं च दधीदं च मधूदकं पितृषभः।
होतृकारस्तथा सेद [illegible] [illegible] ॥२५॥
गङ्गोदकं तवल्कार ऋणार्णं च [illegible]।
शीतार्तश्च मुनिश्रेष्ठ सैन्द्र [illegible] ॥२६॥

पहले स्वर-संधिके उदाहरण [illegible] दण्ड+अग्रम्=दण्डाग्रम् (डंडेका [illegible]) [illegible] दधीदम् (यह दही)। [illegible] ([illegible])। पितृ+ऋषभः=पितृषभः ([illegible]) होतृ+लृकारः=होतॢकारः (होताका लृकार) [illegible] [illegible] है।

१ लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लेट्, लोट्, लङ्, लिङ्, लुङ्, लृङ्—ये दस लकार हैं। इनमेंसे पाँचवें लकारका प्रयोग केवल वेदमें होता है। २. सन्, क्यच्, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], णिच्, यङ्, यक्, आय, ईयङ् तथा णिङ्—ये बारह प्रत्यय [illegible]

१. [illegible]

[illegible]

'मनीषा'के साथ 'लाङ्गलीषा' भी सिद्धसंधि है ।* मुनीश्वर ! गङ्गा+उदकम्=गङ्गोदकम् (गङ्गाजल); तव+ऌकारः= तवल्कारः (तुम्हारा ऌकार); सा+इयम्=सेयम् (वह यह— स्त्री) ।† स+ऐन्द्रः=सैन्द्रः (वह इन्द्रका भाग) । स+औकारः= सौकारः (वह औकार) । ऋण+ऋणम्=ऋणार्णम् (ऋणके लिये ऋण) । शीत+ऋतः=शीतार्तः (शीतसे युक्त) । कृष्ण+एकत्वम्=कृष्णैकत्वम् (कृष्णकी एकता) । गङ्गा+ ओघः=गङ्गौघः (गङ्गाकी जलराशिका प्रवाह)—ये वृद्धि-संधिके उदाहरण हैं‡ ॥२५-२६॥

वध्वासनं पित्रर्थो नायको लवणस्तथा ।
त आद्या विष्णवे ह्यत्र तस्मा अर्घो गुरा अधः ॥२७॥

दधि+अत्र=दध्यत्र (यहाँ दही है); वधू+आसनम्= वध्वासनम् (वहूका आसन); पितृ+अर्थः=पित्रर्थः (पिताका

अ, इ, उ, ऋ और ऌ—ये स्वर दीर्घ हों या ह्रस्व, यदि अपने सवर्ण स्वरको समीप एवं परवर्ती पायें तो दोनों मिल जाते हैं और उन दोनोंके स्थानपर एक ही दीर्घस्वर हो जाता है । ऋ और ऌ असमान प्रतीत होनेपर भी परस्पर सवर्ण माने गये हैं । अतः ऋ+ऌ के मिलनेपर एक ही 'ॠ' बनता है, जैसा कि 'होतॄकारः'में दिखाया गया है ।

* लाङ्गल+ईषा=लाङ्गलीषा । मनस्+ईषा=मनीषा । ये ही इनके पदच्छेद हैं । पहलेमें 'लाङ्गल' शब्दके अन्तका 'अ' ईषाके ईकारमें मिलकर तद्रूप हो गया है । दूसरेमें 'मनस्' के अन्तका 'अस्' भाग ईषाके ईकारका स्वरूप बन गया है । ऐसी संधिको पररूप कहते हैं । 'मनीषा' का अर्थ बुद्धि और 'लाङ्गलीषा' का अर्थ हरिस—हलका ईषादण्ड है । वार्तिककारने मनीषा आदि शब्दोंको 'शकन्धू' आदि गण (समुदाय) में सम्मिलित किया है । ऐसे शब्द जो प्राचीन ग्रन्थोंमें प्रयुक्त हुए हैं और जिनके साधनकी कोई विशेष पद्धति नहीं है, उन्हें निपातनात् सिद्ध माना गया है ।

† ये गुणसंधिके उदाहरण हैं । नियम यह है कि 'अ' या 'आ' से परे 'इ' 'उ' अथवा 'ऋ' हों तो वह क्रमशः 'ए' 'ओ' अथवा 'अर्' रूप धारण करता है । ये आदेश दो अक्षरोंके स्थानपर अकेले होते हैं ।

‡ नियम यह है कि 'अ' अथवा 'आ' से परे 'ए', 'ओ' अथवा 'ऋ' हो तो दो अक्षरोंके स्थानपर क्रमशः 'ऐ', 'औ' एवं 'आर्' आदेश होते हैं । 'ए' या 'ओ' की जगह 'ऐ' 'औ' हों तो भी वैसा ही रूप बनता है । 'ऋ' के स्थानमें 'आर्' होनेके स्थल परिगणित हैं ।

धन); ऌ+आकृतिः=लाकृतिः (देवजातिकी माताका स्वरूप)— ये यण्संधिके उदाहरण हैं ।* (हरे+ए=हरये—भगवान्‌के लिये) । नै+अकः=नायकः (स्वामी) । लो+अणः=लवणः (नमक) । (पौ+अकः=पावकः—अग्नि)—ये अयादि संधि कहलाते हैं ।† ते+आद्याः=त आद्याः (वे प्रथम हैं) । विष्णो+ एह्यत्र=विष्ण एह्यत्र (भगवन् विष्णो ! यहाँ पधारिये) । तस्मै+ अर्घः=तस्मा अर्घः (उनके लिये अर्घ्य) । गुरौ+अधः=गुरा अधः (गुरुके समीप नीचे) । इन उदाहरणोंमें यलोप और वलोप हुए हैं‡ ॥२७॥

हरेऽव विष्णोऽवेत्येपादसो मादप्यमी अघाः ।
शौरी एतौ विष्णू इमौ दुर्गे अमू नो अर्जुनः ॥२८॥
आ एवं च प्रकृत्यैते तिष्ठन्ति मुनिसत्तम ।

हरे+अव=हरेऽव (भगवन् ! रक्षा कीजिये) । विष्णो+अव= विष्णोऽव (विष्णो ! रक्षा कीजिये) । यह पूर्वरूप सन्धि है §। अदस् शब्दसम्बन्धी मकारसे परे यदि दीर्घ 'ई' और 'ऊ' हों तो वे ज्यों-के-त्यों रह जाते हैं । इस अवस्थाको प्रकृतिभाव कहते हैं । जैसे अमी+अघाः (ये पापी हैं)×, शौरी+एतौ= (ये दोनों श्रीकृष्ण-बलराम हैं), विष्णू+इमौ= (ये दोनों विष्णुरूप हैं), दुर्गे+अमू=(ये दोनों दुर्गारूप हैं) । ये भी प्रकृतिभावके ही उदाहरण हैं÷ । नो+अर्जुनः (अर्जुन नहीं

* नियम यह है कि 'इ' 'उ' 'ऋ' 'ऌ'—ये चार अक्षर दीर्घ हों या ह्रस्व, इनसे परे कोई भी असवर्ण (असमान) स्वर होनेपर इन 'इ' कार आदिके स्थानपर क्रमशः य्, व्, र्, ल् आदेश होते हैं ।

† नियम यह है कि 'ए','ओ','ऐ', 'औ'—इनसे परे कोई भी स्वर हो तो इनके स्थानमें क्रमशः 'अय्, अव्, आय् और आव्' आदेश होते हैं ।

‡ नियम यह है कि कोई भी स्वर परे रहनेपर अवर्णपूर्वक पदान्त य, व का लोप हो जाता है । यहाँ पूर्वोक्त नियमानुसार पहले अय्, अव् आदि आदेश होते हैं, फिर अभी बताये हुए नियम के अनुसार य, व का लोप हो जाता है । यहाँ 'य'-लोप या 'व'-लोप होनेपर 'त आद्या' 'विष्ण एह्यत्र' आदिमें पुनः दीर्घ एवं गुण आदि सन्धि नहीं हो सकती; क्योंकि इन सन्धियोंकी दृष्टिमें य-लोप, व-लोप असिद्ध हैं; इसलिये इनकी प्रवृत्ति ही नहीं होती । सारांश यह कि इन स्थलोंमें पुनः सन्धिका निषेध है ।

§ नियम यह है कि पदान्त एकार और ओकारके बाद यदि ह्रस्व अकार हो तो वह पूर्ववर्ती स्वरमें मिल जाता है ।

× इस उदाहरणमें यण्सन्धि प्राप्त हुई थी, किंतु अभी बताये हुए नियमके अनुसार प्रकृतिभाव होनेसे सन्धि नहीं हुई ।

÷ पूर्वके दो उदाहरणोंमें यण्की और अन्तिम उदाहरणमें पूर्वरूप-

है); आ+एवम् (ऐसा ही है)—इनमें भी सन्धि नहीं होती*। मुनिश्रेष्ठ नारद ! 'अमी+अत्रा:' से लेकर यहाँतकके सभी उदाहरण ऐसे हैं, जो अपनी प्रकृतावस्थामें ही रहते हैं ॥२८½॥

षडत्र षण्मातरश्च वाक्शूरो वाग्घरिस्तथा ॥२९॥

अब व्यञ्जन सन्धिके उदाहरण दिये जाते हैं। षट्+अत्र= षडत्र (यहाँ छः हैं)। षट्+मातरः=षण्मातरः (छः माताएँ)। वाक्+शूरः=वाक्छूरः (बोलनेमें बहादुर)। वाक्+हरिः=वाग्घरिः (वाणीरूप भगवान्) ॥ २९ ॥

हरिश्शेते विभुश्चिन्त्यस्तच्छेदो यच्चरस्तथा।
प्रश्नस्त्वथ हरिष्षष्ठः कृष्णष्टीकत इत्यपि ॥३०॥

हरिस्+शेते=हरिश्शेते (श्रीहरि शयन करते हैं)। विभुस्+चिन्त्यः=विभुश्चिन्त्यः (सर्वव्यापी परमेश्वर चिन्तन करने योग्य हैं)। तत्+शेदः=तच्छेदः (उसका [illegible])। यत्+चरः=यच्चरः (जिसमें चलनेवाला)। प्रच्+नः=प्रश्नः (सवाल)। हरिस्+षष्ठः=हरिष्षष्ठः (श्रीहरि छठे हैं) [illegible] कृष्णः+टीकते=कृष्णष्टीकते (श्रीकृष्ण जाते हैं) इत्यादि ॥[illegible]

भवान्षष्ठश्च षट् सन्तः षट् ते तल्लेप एव च।
चक्रिंश्छिन्धि भवाञ्शौरिर्भवाञ्शौरिरित्यपि ॥[illegible]॥

भवान्+षष्ठः (आप छठे हैं)। इसमें पूर्व नियमसे [illegible] प्राप्त होनेपर तवर्गका टवर्ग नहीं होता [illegible]। [illegible] सन्तः (छः सत्पुरुष) और षट् ते (वे छः हैं) [illegible] भी ष्टुत्व नहीं हुआ है †। तत्+लेपः=तल्लेपः ‡ (उसका लेप)। चक्रिन्+छिन्धि=चक्रिंश्छिन्धि § (चक्रधारी प्रभो! [illegible]

[illegible] की प्राप्ति थी, परंतु सन्धिका निषेध हो गया। नियम यह है कि ईकारान्त, ऊकारान्त और एकारान्त द्विवचनान्त प्रकृतिभाव होता है, अतः यहाँ सन्धि नहीं होती है।

* पहलेमें पूर्वरूप और दूसरेमें वृद्धि-सन्धिकी प्राप्ति थी; परंतु प्रकृतिभाव हो गया। नियम यह है कि ओकारान्त निपात और एक स्वरवाले निपात जैसे हैं, वैसे ही रह जाते हैं।

१. इसमें षट् के 'ट्' की जगह ड् हुआ है। नियम यह है कि ज, ग, घ, ट, ध, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स—इनमेंसे यदि कोई अक्षर पदान्तमें हो तो उसके स्थानमें ज, ब, ग, ड, द—इनमेंसे कोई अक्षर योग्यताके अनुसार होता है। योग्यताका अभिप्राय स्थानकी समानतासे है। जैसे 'ट' का स्थान मूर्धा है, अतः उसकी जगह मूर्धा स्थानका ड अक्षर ही हुआ। ज, ब आदिके स्थान भिन्न हैं, इसलिये वे नहीं हुए। २. इसमें 'ट्' की जगह 'ण्' आदेश हुआ है। क से लेकर म तकके किसी भी अक्षरके बाद यदि अनुनासिक वर्ण (ङ, ञ, ण, न, म) हों तो पूर्ववर्ती अक्षर यदि पदान्तमें हो तो उसके स्थानमें अनुनासिक हो जाता है। जो अक्षर जिस वर्गका है, उसके स्थानमें उसी वर्गका पाँचवाँ अक्षर अनुनासिक होता है। इसीलिये उक्त उदाहरणमें 'ट्' की जगह उसी वर्गका पाँचवाँ अक्षर 'ण्' हुआ। ३ यहाँ 'श' के स्थानमें 'छ्' हुआ है। ऊपर लिखे हुए 'श' से 'प' तक के अक्षरोंके बाद यदि 'श्' हो तो उसकी जगह 'छ्' हो जाता है; किंतु उस 'श' के बाद कोई स्वर अथवा 'ह, य, व, र' ये अक्षर होने चाहिये। यही इस सन्धिका नियम है। ४. उपर्युक्त 'श' से 'प' तकके अक्षरोंके बाद यदि 'ह' हो तो उस 'ह्' के स्थानमें पूर्ववर्ती अक्षरके वर्गका चौथा वर्ण हो जाता है। इस नियमके अनुसार उक्त उदाहरणमें 'ग्' के बाद 'ह्' होनेसे 'ह्' के स्थानमें सवर्गका चौथा अक्षर 'घ्' हो गया है और 'क्' की जगह पूर्वोक्त नियमानुसार 'ग्' हो गया।

१-२-३-४ सकार और चवर्गका [illegible] होनेपर [illegible] और तवर्गके स्थानमें क्रमशः शकार और चवर्ग होते हैं। इस नियमके अनुसार पूर्व दो उदाहरणोंमें 'स्' की जगह 'श्' हुआ है और शेष दोमें तवर्गकी जगह चवर्ग हुआ है। शेष के शकारका छकार हुआ है। नियम [illegible] है। ५. श के बाद तवर्ग हो तो उसकी जगह चवर्ग नहीं [illegible] 'प्रश्न' में न ज्यों-का-त्यों रह गया है। [illegible] वर्गसे संयोग होनेपर सकार और तवर्गके [illegible] टवर्ग होते हैं। इस नियमके अनुसार दोनों उदाहरणोंमें [illegible] जगह 'ष' हुआ है।

* क्योंकि षकार परे रहनेपर तवर्गके टवर्ग होनेका [illegible]

† क्योंकि पदान्त टवर्गसे पर नाम्-भिन्न [illegible] स्थानमें षकार और टवर्ग नहीं होते। ऐसा नियम है।

‡ यहाँ तकारके स्थानमें लकार [illegible] यह है कि लकार परे रहनेपर तवर्गके स्थानमें 'ल्' हो [illegible]

§ इसमें 'न्' के स्थानमें 'रु', [illegible] 'स्' होकर फिर छकारके योगमें [illegible] उससे पूर्व अनुस्वार या अनुनासिक हुआ [illegible] छ, ठ, थ, च, ट, त—[illegible] और उसके पूर्व [illegible] अनुस्वार [illegible] है।

मेरा बन्धन काटिये)। भवान्+शौरिः=भवाञ्छौरिः, भवाञ्शौरिः इह (आप श्रीकृष्ण यहाँ हैं), (भवाञ्छौरिःभवाञ्च्शौरिः) इन पदच्छेदमें ये चार रूप बनते हैं * ॥ ३१ ॥

सम्यङ्ङनन्तोऽङ्गच्छाया कृष्णं वन्दे मुनीश्वर ।
तेजांसि मंस्यते गङ्गा हरिश्छेत्तामरश्शिवः ॥ ३२ ॥

सम्यङ्+अनन्तः=सम्यङ्ङनन्तः (अच्छे शेषनाग), सुगण्+ईशः=सुगण्णीशः (अच्छे गणकोंके स्वामी)। सन्+अच्युतः= सन्नच्युतः† (नित्य सत्स्वरूप श्रीहरि)।अङ्ग+छाया=अङ्गच्छाया[1] (शरीरकी परछाईं)। कृष्णम्+वन्दे=कृष्णं वन्दे (श्रीकृष्णको प्रणाम करता हूँ)। तेजान्+सि=तेजांसि (तेज), मन्+स्यते=मंस्यते (मानेंगे)। गं+गा=गङ्गा (देवनदी गङ्गा)।

मुनीश्वर नारद ! यहाँतक व्यञ्जन-सन्धिका वर्णन हुआ। अब विसर्ग-सन्धि प्रारम्भ करते हैं। हरिः+छेत्ता=हरिश्छेत्ता (श्रीहरि बन्धन काटनेवाले हैं)। अमरः+शिवः=अमरश्शिवः (भगवान् शिव अमर हैं) ॥ ३२ ॥

रामᳶ काम्यः कृपᳶ पूज्यो हरिः पूज्योऽर्च्य एव हि ।
रामो दृष्टोऽबला अत्र सुप्ता दृष्टा इमा यतः ॥ ३३ ॥

रामः+काम्यः=रामᳶ काम्यः (श्रीराम कमनीय हैं)। कृपः+पूज्यः=कृपᳶपूज्यः (कृपाचार्य पूज्य हैं)। पूज्यस्+अर्च्यः=पूज्योऽर्च्यः[2] (पूजनीय और अर्चनीय)। रामस्+दृष्टः=रामो दृष्टः (राम देखे गये हैं)। अबलास्+अत्र=अबला अत्र (यहाँ अबलाएँ हैं)। सुप्तास्+दृष्टाः=सुप्ता दृष्टाः (सोयी देखी गयीं)। इमास्+अतः=इमायतः(ये स्त्रियाँ हैं, अतः)॥ ३३ ॥

विष्णुर्नम्यो रविरयं गीᳶ फलं प्रातरच्युतः ।
भक्तैर्वन्द्योऽप्यन्तरात्मा भो भो एष हरिस्तथा ।
एष शार्ङ्गी सैष रामः संहितैवं प्रकीर्तिता ॥ ३४ ॥

विष्णुः+नम्यः=विष्णुर्नम्यः (श्रीविष्णु प्रणामके योग्य हैं)। रविः+अयम्=रविरयम् (ये सूर्य हैं)। गीः+फलम्= गीᳶफलम् (वाणीका फल)। प्रातर्+अच्युतः=प्रातरच्युतः (प्रातःकाल श्रीहरि)। भक्तैस्+वन्द्यः=भक्तैर्वन्द्यः (भक्तजनोंके द्वारा वन्दनीय हैं)। अन्तर्+आत्मा=अन्तरात्मा (जीवात्मा या अन्तर्यामी परमात्मा)। भोस्+भोः=भो भोः (हे हे)—ये सब उदाहरण पूर्वोक्त नियमोंसे ही बन जाते हैं। एषस्+हरिः= एष हरिः (ये श्रीहरि हैं)। एषस्+शार्ङ्गी=एष शार्ङ्गी (ये शार्ङ्गधारी हरि हैं)। सस्+एषस्+रामः=सैष

* नियम यह है कि शकार परे रहनेपर नान्त पदके आगे 'त्' बढ़ जाता है। शेष परिवर्तन पूर्वोक्त नियमके अनुसार होते हैं।

† इन उदाहरणोंमें ङ्, ण्, न् एकसे दो हो गये हैं। नियम यह है कि ह्रस्वसे परे यदि 'ङ्' 'ण्' या 'न्' हो और उसके बाद भी कोई स्वर हो तो वे एकसे दो हो जाते हैं।

१. यहाँ छ के पहले आधा च् बढ़ गया है। नियम यह है कि ह्रस्वसे परे छ होनेपर उसके पहले आधा च् बढ़ जाता है। २. यहाँ म् के स्थानमें अनुस्वार हो गया है। कोई भी हल् अक्षर परे हो तो पदान्तमें स्थित म् का अनुस्वार हो जाता है। ३. यहाँ अपदान्त न् का अनुस्वार हुआ है। नियम यह है कि झल् परे रहनेपर अपदान्त न् म् का अनुस्वार होता है। झल्में इतने अक्षर आते हैं—झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स, ह। ४. यहाँ अपदान्त अनुस्वारका परसवर्ण हुआ है। र, श, ष, स, ह—इनको छोड़कर कोई भी हल् अक्षर परे रहनेपर अपदान्त अनुस्वारका नित्य परसवर्ण (परवर्ती अक्षरके वर्गका पञ्चम वर्ण) होता है—यह नियम है। ५. इन दोनों उदाहरणोंमें विसर्गके स्थानमें दन्त्य 'स्' होकर श्चुत्व सन्धिके नियमसे तालव्य 'श्' हो गया। नियम यह है कि विसर्गके स्थानमें स् हो जाता है खर् परे रहनेपर। उपर्युक्त अक्षरोंमें ख से स तकके अक्षरोंको खर कहते हैं।

१. यहाँ विसर्गके स्थानमें ᳶ ऐसा चिह्न हो गया है। विसर्गके बाद क, ख या प, फ होनेपर विसर्गकी यह अवस्था होती है। २. यहाँ 'स्' के स्थानमें 'रु' होकर 'रु' के स्थानमें 'उ' हुआ है। फिर गुणसन्धिके नियमसे ओकार होनेपर 'अर्च्य.' के अकारका पूर्वरूप हो गया है। यहाँ नया नियम यह जानना है कि पदान्त 'स्' के स्थानमें 'रु' होता है और अप्लुत अकारसे परे होनेपर उस 'रु' का 'उ' हो जाता है। ऐसा तभी होता है, जब उस 'रु' के बाद भी कोई अप्लुत अकार या 'हश्' हो। ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द,—इन अक्षरोंके समुदायको 'हश्' कहते हैं। ३ यहाँ अभी बताये गये नियमके अनुसार 'स' को 'रु' करके फिर उसका उत्व हुआ। तत्पश्चात् गुण होकर 'रामो' बना। ४. इन सब उदाहरणोंमें 'स्' के स्थानमें पूर्ववत् 'रु' होता है, फिर 'रु' के स्थानमें 'य्' होकर पूर्व दो उदाहरणोंमें उसका लोप हो जाता है। और अन्तिम उदाहरणमें 'य्' 'अ' में मिल जाता है। यहाँ स्मरण रखने योग्य नियम यह है—भो, भगो, अघो तथा अवर्णपूर्वक 'रु' के स्थानमें 'य्' होता है अश् परे रहनेपर। और हल् परे रहनेपर उस 'य' का लोप हो जाता है। सम्पूर्ण स्वरवर्ण तथा ह, य, व, र, ल, ञ, म, ङ, ण, न, झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द—ये सभी अक्षर 'अश्' के अन्तर्गत हैं। ५ एतत् और तत् शब्दोंसे परे 'सु' विभक्तिके 'स'

रामः (वही ये श्रीराम हैं)। इस प्रकार संहिता (सन्धि)का प्रकरण बताया गया ॥ ३४ ॥

(अब सुबन्तका प्रकरण आरम्भ करते हुए पहले स्वरान्त शब्दोंका शुद्ध रूप देते हैं। उसमें भी एक श्लोकद्वारा मङ्गलाचरणके लिये श्रीरामका स्मरण करते हुए 'राम' शब्दके प्रायः सभी विभक्तियोंके एक-एक रूपका उल्लेख करते हैं—)

रामेणाभिहितं करोमि सततं* रामं भजे सादरं
रामेणापहृतं समस्तदुरितं रामाय तुभ्यं नमः।
रामान्मुक्तिरभीप्सिता मम सदा रामस्य दासोऽस्म्यहं
रामे रज्यतु मे मनः सुविशदं हे राम तुभ्यं नमः ॥३५॥

'मैं श्रीरामके द्वारा दिये हुए आदेशका सदा पालन करता हूँ। श्रीरामका आदरपूर्वक भजन करता हूँ। रामने (मेरा) सारा पाप हर लिया। भगवन् श्रीराम! तुम्हें नमस्कार है। मुझे श्रीरामसे मोक्षकी प्राप्ति अभीष्ट है। मैं सदाके लिये श्रीरामका दास हूँ। मेरा निर्मल मन श्रीराममें अनुरक्त हो। हे श्रीराम! तुम्हें नमस्कार है[2] ॥ ३५ ॥

सर्व इत्यादिका गोपाः सखा चैव पतिर्हरिः ॥३६॥

सर्व आदि शब्द सर्वनाम† माने जाते हैं[3]। 'गोपाः'का अर्थ है गौओंका पालन करनेवाले। सखाका अर्थ है मित्र। यह 'सखि' शब्दका रूप है[2]। पतिका अर्थ है स्वामी। हरि शब्दका अर्थ है भगवान् विष्णु ॥३६॥

सुधीर्भानुः स्वयम्भूश्च कर्ता रा गौर्नु नाविति।
अनड्वान्गोधुग्लिट् च द्वौ त्रयश्चत्वार एव च ॥३७॥

जो उत्तम धीसे सम्पन्न हो, उसे सुधी कहते हैं। भानुका अर्थ है सूर्य और किरण। स्वयम्भूका अर्थ है स्वयं प्रकट होनेवाला। इसका प्रयोग प्रायः ब्रह्माजीके लिये होता है। काम करनेवालेको कर्ता कहते हैं। यह 'कर्तृ' शब्दका रूप है[8]। 'रै' शब्द धनका वाचक

कारका लोप हो जाता है हल् परे रहनेपर। इस नियमके अनुसार यहाँ स्' का लोप हो गया है।

१. यहाँ 'एष रामः' की सिद्धि तो पूर्ववत् हो जाती है, किंतु 'सस्' के 'सु' का लोप करनेके लिये एक विशेष नियम है—'सस्' के 'सु' का लोप होता है अच् परे रहनेपर, यदि उसके लोप होनेके बाद ही श्लोकके पादकी पूर्ति होती हो तब। जैसे—सैष रामः समायाति (वही ये श्रीराम आते हैं)।

* कहीं-कहीं इस मन्त्रका पाठ इस प्रकार मिलता है—'रामो राजमणिः सदा विजयते।' प्रथमा विभक्तिके रूपकी दृष्टिसे यही पाठ ठीक जान पड़ता है।

२. 'राम' शब्दका रूप सब विभक्तियोंमें इस प्रकार समझना चाहिये—रामः रामौ रामाः। रामम् रामौ रामान्। रामेण रामाभ्याम् रामैः। रामाय रामाभ्याम् रामेभ्यः। रामाद् रामाभ्याम् रामेभ्यः। रामस्य रामयोः रामाणाम्। रामे रामयोः रामेषु। हे राम हे रामौ हे रामाः।

† इसी प्रकरणमें आगे (श्लोक ४७-४८ में) सर्वनाम शब्द गिनाये गये हैं।

३. इनमें सर्व शब्दका रूप इस प्रकार है—सर्वः सर्वौ सर्वे। सर्वम् सर्वौ सर्वान्। सर्वेण सर्वाभ्याम् सर्वैः। सर्वस्मै सर्वाभ्याम् सर्वेभ्यः। सर्वस्मात् सर्वाभ्याम् सर्वेभ्यः। सर्वस्य सर्वयोः सर्वेषाम्। सर्वस्मिन् सर्वयोः सर्वेषु। अन्य सर्वनामोंके रूप भी प्रायः ऐसे ही होते हैं।

१. इसके रूप इस प्रकार हैं—गोपाः गोपौ गोपाः। गोपाम् गोपौ गोपः। गोपा गोपाभ्याम् गोपाभिः। गोपे गोपाभ्याम् गोपाभ्यः। गोपः गोपाभ्याम् गोपाभ्यः। गोपः गोपोः गोपाम्। गोपि गोपोः गोपासु। हे गोपाः हे गोपौ हे गोपाः। २. सखि शब्दके पूरे रूप इस प्रकार हैं—सखा सखायौ सखायः। सखायम् सखायौ सखीन्। सख्या सखिभ्याम् सखिभिः। सख्ये सखिभ्याम् सखिभ्यः। सख्युः सखिभ्याम् सखिभ्यः। सख्युः सख्योः सखीनाम्। सख्यौ सख्योः सखिषु। हे सखे हे सखायौ हे सखायः। ३. इसके दो विभक्तियोंमें रूप इस प्रकार होते हैं—पतिः पती पतयः। पतिम् पती पतीन्। शेष विभक्तियोंमें [illegible] शब्दके समान रूप होते हैं। [illegible] पाय—इस प्रकार रूप जानने चाहिये। ४. इसके रूप इस प्रकार हैं—हरिः हरी हरयः। हरिम् हरी हरीन्। हरिणा हरिभ्याम् हरिभिः। हरये हरिभ्याम् हरिभ्यः। हरेः हरिभ्याम् हरिभ्यः। हरेः हर्योः हरीणाम्। हरौ हर्योः हरिषु। हे हरे हे हरी हे हरयः। ५. इसके रूप इस प्रकार हैं—सुधीः सुधियौ सुधियः। सुधियम् सुधियौ सुधियः। सुधिया सुधीभ्याम् सुधीभिः। सुधिये सुधीभ्याम् सुधीभ्यः। सुधियः सुधीभ्याम् सुधीभ्यः। सुधियः सुधियोः सुधियाम्। सुधियि सुधियोः सुधीषु। हे सुधीः हे सुधियौ हे सुधियः। ६. इसके रूप इस प्रकार हैं—भानुः भानू भानवः। भानुम् भानू भानून्। भानुना [illegible] भानुभिः। भानवे [illegible]। [illegible] भानौ भान्वोः भानुषु। हे भानो हे भानू हे भानवः। ७. [illegible] रूप इस प्रकार हैं—स्वयम्भूः स्वयम्भुवौ [illegible]। स्वयम्भुवम्। स्वयम्भुवा [illegible] स्वयम्भुवे [illegible]। स्वयम्भुवि स्वयम्भुवोः [illegible]। ८. इसके पूरे रूप इस प्रकार हैं—कर्ता कर्तारौ कर्तारः। कर्तारम् [illegible]

है[1]। पुँल्लिङ्गमें 'गो' शब्दका अर्थ बैल होता है और स्त्रीलिङ्गमें गाय। 'नौ' शब्द नौकाका वाचक है[3]। यहाँतक स्वरान्त पुँल्लिङ्ग शब्दोंके रूप दिये गये हैं।

अब हलन्त पुँल्लिङ्ग शब्दोंके रूप दिये जा रहे हैं। गाड़ी खींचनेवाले बैलको अनड्वान् कहते हैं। यह अनडुह्-शब्दका रूप है[4]। गाय दुहनेवालेको गोधुक् कहते हैं। मूल शब्द गोदुह् है[5]। लिह् शब्दका अर्थ है चाटनेवाला। 'द्वि' शब्द संख्या दोका; 'त्रि' शब्द तीनका और 'चतुर्' शब्द चारका वाचक है। इनमेंसे पहला केवल द्विवचनमें और शेष दोनों केवल बहुवचनमें प्रयुक्त होते हैं[7] ॥३७॥

राजा पन्थास्तथा दण्डी ब्रह्महा पञ्च चाष्ट च।
अष्टौ अयं मुने सम्राट् सुराड्विभ्रद्वपुष्मतः ॥३८॥

राजा राजन्-शब्दका रूप है[1]। पन्थाः कहते हैं मार्गको। यह पथिन् शब्दका रूप है[2]। जो दण्ड धारण करे, उसे दण्डी कहते हैं[3]। ब्रह्महन् शब्द ब्राह्मणघातीके अर्थमें प्रयुक्त होता है[4]। पञ्चन्-शब्द पाँचका और अष्टन् शब्द आठका वाचक है। ये दोनों बहुवचनान्त होते हैं[5]। अयम्का अर्थ है यह; यह 'इदम्' शब्दका रूप है[6]। 'सम्राट्' कहते हैं बादशाह या चक्रवर्ती राजाको[7]। सुराज् शब्दके रूप—सुराट् सुराजौ सुराजः इत्यादि हैं। शेष रूप सम्राज् शब्दकी भाँति जानने चाहिये। इसका अर्थ है—अच्छा राजा। बिभ्रत्का अर्थ है धारण-पोषण करनेवाला। वपुष्मत् (वपुष्मान्) का अर्थ है शरीरधारी ॥३८॥

कर्त्रे कर्तृभ्य. २। कर्तुः २। कर्त्रोः २ कर्तॄणाम्। कर्तरि कर्तृषु। हे कर्तः हे कर्तारौ हे कर्तारः।

१. उसके रूप इस प्रकार हैं—राः रायौ २ रायः २। रायम्। राया राभ्याम् ३ राभिः। राये राभ्य. २। रायः २। रायोः २ रायाम्। रायि रासु। सम्बोधने प्रथमावत्। २. दोनों लिङ्गोंमें इसके एक-से ही रूप होते हैं, जो इस प्रकार हैं—गौः गावौ २ गाव.। गाम् गा.। गवा गोभ्याम् ३ गोभिः। गवे गोभ्य. २। गोः २। गवोः २ गवाम्। गवि गोषु। हे गौः हे गावौ हे गावः। ३. इसका प्रयोग स्त्रीलिङ्गमें होता है, तथापि यहाँ पुंलिङ्गके प्रकरणमें इसे लिखा गया है, प्रकरणके अनुसार 'मुनौ' शब्द यहाँ ग्रहण करना चाहिये। इसके रूप इस प्रकार हैं—नौः नावौ २ नाव' २। नावम्। नावा नौभ्याम् ३ नौभि'। नावे नौभ्यः २। नावः २। नावोः २ नावाम्। नावि नौषु। ४. इसके पूरे रूप इस प्रकार हैं—अनड्वान् अनड्वाहौ २ अनड्वाहः। अनड्वाहम् अनडुह.। अनडुहा अनडुद्भ्याम् ३ अनडुद्भिः। अनडुहे अनडुद्भ्यः २। अनडुहः २। अनडुहोः २ अनडुहाम्। अनडुहि अनडुत्सु। सम्बोधनके एकवचनमें हे अनड्वन्। ५. इसके रूप इस प्रकार होते हैं—गोधुक् गोधुग् गोदुहौ २ गोदुहः २। गोदुहम्। गोदुहा गोधुग्भ्याम् ३ गोधुग्भि.। गोदुहे गोधुग्भ्यः २। गोदुहः २। गोदुहोः २ गोदुहाम्। गोदुहि गोधुक्षु। ६. इसके रूप इस प्रकार हैं—लिट् लिड् लिहौ २ लिहः २। लिहम्। लिहा लिड्भ्याम् ३ लिड्भि। लिहे लिड्भ्यः २। लिहः २। लिहोः २ लिहाम्। लिहि लिट्सु, लिट्त्सु। ७. रूप क्रमशः इस प्रकार हैं—द्वौ २ द्वाभ्याम् ३ द्वयोः २। त्रयः। त्रीन्। त्रिभिः। त्रिभ्यः २। त्रयाणाम्। त्रिषु। चत्वारः। चतुरः। चतुर्भिः। चतुर्भ्यः २। चतुर्णाम्। चतुर्षु।

१. इसके पूरे रूप इस प्रकार हैं—राजा राजानौ २ राजान.। राजानम् राज्ञः। राज्ञा राजभ्याम् ३ राजभिः। राज्ञे राजभ्यः २। राज्ञः २। राज्ञोः २ राज्ञाम्। राज्ञि राजनि राजसु। हे राजन् हे राजानौ हे राजानः। २. शेष रूप इस प्रकार समझने चाहिये—पन्थानौ २ पन्थानः। पन्थानम् पथः। पथा पथिभ्याम् ३ पथिभि.। पथे पथिभ्यः २। पथ. २। पथोः २ पथाम्। पथि पथिषु। ३. इसका मूल शब्द दण्डिन् है, जिसके रूप इस प्रकार हैं—दण्डी दण्डिनौ २ दण्डिनः २। दण्डिनम्। दण्डिना दण्डिभ्याम् ३ दण्डिभि.। दण्डिने दण्डिभ्यः २। दण्डिनः २। दण्डिनोः २ दण्डिनाम्। दण्डिनि दण्डिषु। हे दण्डिन्। ४. इसके रूप इस प्रकार हैं—ब्रह्महा ब्रह्महणौ २ ब्रह्महण.। ब्रह्महणम् ब्रह्मघ्नः। ब्रह्मघ्ना ब्रह्महभ्याम् ब्रह्महभि'। ब्रह्मघ्ने ब्रह्महभ्य २। ब्रह्मघ्न २। ब्रह्मघ्नोः २ ब्रह्मघ्नाम्। ब्रह्मघ्नि ब्रह्महसु। ५. इनके रूप इस प्रकार हैं—पञ्च २। पञ्चभिः। पञ्चभ्य. २। पञ्चानाम्। पञ्चसु। अष्टौ २ अष्ट २। अष्टाभिः अष्टभिः। अष्टाभ्यः २ अष्टभ्यः २। अष्टानाम्। अष्टासु अष्टसु। ६. इसके पूरे रूप इस प्रकार हैं—अयम् इमौ इमे। इमम् इमौ इमान्। अनेन आभ्याम् ३ एभिः। अस्मै एभ्यः। अस्मात्। अस्य अनयोः २ एषाम्। अस्मिन् एषु। ७. सम्राज् शब्दके रूप इस प्रकार हैं—सम्राट् सम्राड् सम्राजौ २ सम्राज.२। सम्राजम्। सम्राजा सम्राड्भ्याम् ३ सम्राड्भि.। सम्राजे सम्राड्भ्यः २। सम्राजः २। सम्राजोः २ सम्राजाम्। सम्राजि सम्राट्सु सम्राट्त्सु। ८. इसके रूप इस प्रकार हैं—बिभ्रत् बिभ्रतौ२ बिभ्रतः २। बिभ्रतम्। बिभ्रता बिभ्रद्भ्याम् ३ बिभ्रद्भिः। बिभ्रते बिभ्रद्भ्यः २। बिभ्रत' २। बिभ्रतोः २ बिभ्रताम्। बिभ्रति बिभ्रत्सु। ९. इस शब्दके रूप इस प्रकार हैं—वपुष्मान् वपुष्मन्तौ २ वपुष्मन्तः। वपुष्मन्तम् वपुष्मतः। वपुष्मता वपुष्मद्भ्याम् ३ वपुष्मद्भिः। वपुष्मते वपुष्मद्भ्यः २। वपुष्मतः २।

प्रत्यङ् पुमान्महान् धीमान् विद्वान्पट् पिपठीश्च दोः।
उशनासाविमे प्रोक्ताः पुंस्यज्झल्विरामकाः ॥३९॥

प्रत्यञ्च्-शब्दका अर्थ है प्रतिकूल या पीछे जानेवाला। 'भीतरकी ओर' भी अर्थ है[1]। पुमान्का अर्थ है पुरुष, जो पुंस्-शब्दका रूप है[2]। महान् कहते हैं श्रेष्ठको[3]। धीमान्-का अर्थ है बुद्धिमान्। (धीमत्-शब्दके रूप वपुष्मत् शब्दकी भाँति जानने चाहिये।) विद्वान्का अर्थ है पण्डित[4]। षष् शब्द छःका वाचक और बहुवचनान्त है। (इसके रूप इस प्रकार हैं—षट् षड् २। षड्भिः। षड्भ्यः २। षण्णाम्। षट्सु षट्त्सु।) जो पढ़नेकी इच्छा करे, उसे 'पिपठीः[5]' कहते हैं। दोःका अर्थ है भुजा[6]। उशनाका अर्थ है शुक्राचार्य[7]। अदस्-शब्दका अर्थ है[8] 'यह' या 'वह'। ये अजन्त (स्वरान्त) और हलन्त पुँल्लिङ्ग शब्द कहे गये ॥ ३९ ॥

राधा सर्वा गतिर्गोपी स्त्री श्रीर्धेनुर्वधूः स्वसा।
गौर्नौरुपानद्द्यौर्गीर्वा ककुप्संवित्तु या क्वचित् ॥४०॥

अब स्त्रीलिङ्ग शब्दोंका दिग्दर्शन कराते हैं। राधाका अर्थ है, भगवान् श्रीकृष्णकी आह्लादिनी शक्ति, जो उनकी भी आराध्या होनेसे 'राधा' कहलाती हैं[1]। सर्वाका अर्थ है, सर्व (स्त्री)[2]। 'गतिः'का अर्थ है—गमन, मोक्ष-प्राप्ति या ज्ञान[3]। 'गोपी' शब्द प्रेम-भक्तिकी आचार्यरूपा गोपिकाओंका वाचक है[4]। स्त्रीका अर्थ है नारी[5]। 'श्री' शब्द लक्ष्मीका वाचक है[6]। धेनुका अर्थ दूध देनेवाली गाय है[7]। वधूका अर्थ है जाया अथवा पुत्रवधू[8]। स्वसा कहते हैं बहिनको।

वपुष्मतोः २ वपुष्मताम्। वपुष्मति वपुष्मत्सु। हे वपुष्मन्।

१. इसके रूप इस प्रकार हैं—प्रत्यङ् प्रत्यञ्चौ २ प्रत्यञ्चः। प्रत्यञ्चम् प्रतीचः। प्रतीचा प्रत्यग्भ्याम् ३ प्रत्यग्भिः। प्रतीचे प्रत्यग्भ्यः २। प्रतीचः २। प्रतीचोः २ प्रतीचाम्। प्रतीचि प्रत्यक्षु। २. इसके पूरे रूप इस प्रकार हैं—पुमान् पुमांसौ २ पुमांसः। पुमांसम् पुंसः। पुंसा पुम्भ्याम् ३ पुम्भिः। पुंसे पुम्भ्यः २। पुंसः २। पुंसोः २ पुंसाम्। पुंसि पुंसु। हे पुमन्! ३. महत्-शब्दके रूप इस प्रकार हैं—महान् महान्तौ २ महान्तः। महान्तम् महतः। महता महद्भ्याम् ३ महद्भिः। महते महद्भ्यः २। महतः २। महतोः २ महताम्। महति महत्सु। ४. विद्वस्-शब्दके रूप इस प्रकार जानने चाहिये—विद्वान् विद्वांसौ२ विद्वांसः। विद्वांसम् विदुषः। विदुषा विद्वद्भ्याम् ३ विद्वद्भिः। विदुषे विद्वद्भ्यः २। विदुषः २। विदुषोः २ विदुषाम्। विदुषि विद्वत्सु। हे विद्वन्। ५. इसके पूरे रूप इस प्रकार हैं—पिपठीः पिपठिषौ २ पिपठिषः। पिपठिषम् पिपठिषः। पिपठिषा पिपठीर्भ्याम् ३ पिपठीर्भिः। पिपठिषे पिपठीर्भ्यः २। पिपठिषः २। पिपठिषोः २ पिपठिषाम्। पिपठिषि पिपठीष्षु पिपठीःषु। ६. दोष्-शब्दके रूप इस प्रकार हैं—दोः दोषौ २ दोषः। दोषम् दोष्णः दोषः। दोष्णा दोषा दोर्भ्याम् ३ दोर्भिः। दोष्णे दोषे दोर्भ्यः २। दोष्णः २ दोषः २। दोष्णोः २ दोषोः २ दोष्णाम् दोषाम्। दोष्णि दोषि दोष्षु दोःषु। ७. उशनस्-शब्दके रूप इस प्रकार हैं—उशना उशनसौ २ उशनसः २। उशनसम्। उशनसा उशनोभ्याम् ३ उशनोभिः। उशनसे उशनोभ्यः २। उशनसः २। उशनसोः २ उशनसाम्। उशनसि उशनस्सु उशनःसु। ८. इसके रूप इस प्रकार हैं—असौ अमू अमी। अमुम् अमू अमून्। अमुना अमूभ्याम् अमीभिः। अमुष्मै अमूभ्याम् अमीभ्यः। अमुष्मात् अमूभ्याम् अमीभ्यः। अमुष्य अमुयोः अमीषाम्। अमुष्मिन् अमुयोः अमीषु।

१. इसके रूप यों हैं—राधा राधे राधाः। राधाम् राधे राधाः। राधया राधाभ्याम् राधाभिः। राधायै राधाभ्याम् राधाभ्यः। राधायाः राधाभ्याम् राधाभ्यः। राधायाः राधयोः राधानाम्। राधायाम् राधयोः राधासु। हे राधे हे राधे हे राधाः। २. इस शब्दके रूप इस प्रकार हैं। चतुर्थीके एकवचनमें—सर्वस्यै। पञ्चमी और षष्ठीके एकवचनमें—सर्वस्याः। षष्ठीके बहुवचनमें—सर्वासाम्। सप्तमीके एकवचनमें—सर्वस्याम्। शेष सभी रूप 'राधा' शब्दकी ही भाँति होंगे। ३. गति शब्दके रूप यों समझने चाहिये—गतिः गती गतयः। गतिम् गती गतीः। गत्या गतिभ्याम् ३ गतिभिः। गत्यै गतये गतिभ्यः २। गत्याः २ गतेः २। गत्योः २ गतीनाम्। गत्याम् गतौ गतिषु। हे गते हे गती हे गतयः। ४. गोपी-शब्दके रूप इस प्रकार हैं—गोपी गोप्यौ २ गोप्यः। गोपीम् गोपीः। गोप्या गोपीभ्याम् ३ गोपीभिः। गोप्यै गोपीभ्यः २। गोप्याः २ गोप्योः २ गोपीनाम्। गोप्याम् गोपीषु। हे गोपि हे गोप्यौ हे गोप्यः। ५. इस शब्दके रूप इस प्रकार हैं—स्त्री स्त्रियौ २ स्त्रियः। स्त्रियम् स्त्रीम् स्त्रियः स्त्रीः। स्त्रिया स्त्रीभ्याम् ३। स्त्रीभिः। स्त्रियै स्त्रीभ्यः २। स्त्रियाः २। स्त्रियोः २ स्त्रीणाम्। स्त्रियाम् स्त्रीषु। हे स्त्रि हे स्त्रियौ हे स्त्रियः। ६. इसके रूप इस प्रकार हैं—श्रीः श्रियौ २ श्रियः २। श्रियम्। श्रिया श्रीभ्याम् ३ श्रीभिः। श्रियै श्रिये श्रीभ्यः २। श्रियाः २। श्रियः २। श्रियोः २ श्रीणाम् श्रियाम्। श्रियाम् श्रियि श्रीषु। हे श्रीः हे श्रियौ हे श्रियः। ७ इसके रूप गति इत्यादिकी तरह होंगे। यथा—धेनुः धेनू धेनवः। धेन्वै धेनवे इत्यादि। ८. इस शब्दके रूप इस प्रकार हैं—वधूः वध्वौ वध्वः। शेष रूप गोपी-शब्दकी तरह समझने चाहिये। वहाँ 'ई' के स्थानमें 'य्' होता है यहाँ 'ऊ' के स्थानमें 'व्' होगा। इतना ही अन्तर है। ९. इसके रूप कर्तृ-शब्दके समान होते हैं। केवल द्वितीयाके बहुवचनमें 'स्वसॄः' ऐसा रूप होता है—इतना ही अन्तर है।

गो-शब्दका रूप स्त्रीलिङ्गमें भी पुँल्लिङ्गके समान होता है। नौ-शब्दका रूप पहले दिया जा चुका है। उपानह्[1] शब्द जूतेका वाचक है। द्यौः[2] स्वर्गका वाचक है। ककुभ्[3] शब्द दिशाका वाचक है। संविद्[4]-शब्द बुद्धि एवं ज्ञानका वाचक है ॥ ४० ॥

रुग्विडुद्भाः स्त्रियां तपः कुलं सोमपमक्षि च।
ग्रामण्यम्बु खलप्वेवं कर्तृ चातिरि वातिनु ॥४१॥

रुक्[5] नाम है रोगका । विट्[6]-शब्द वैश्यका वाचक है। उद्भाः[7] का अर्थ है उत्तम प्रकाश या प्रकाशित होनेवाली। ये शब्द स्त्री-लिङ्गमें प्रयुक्त होते हैं।

अब नपुंसकलिङ्ग शब्दोंका परिचय देते हैं। तपस्[8]-शब्द तपस्याका वाचक है। कुल[9]-शब्द वंश या समुदायका वाचक है। सोमप[10]-शब्दका अर्थ है सोमपान करनेवाला। अक्षिका[11] अर्थ है आँख। गाँवके नेताको ग्रामणी[12] कहते हैं। अम्बु[1]-शब्द जलका वाचक है। खलपू[2] का अर्थ है खलिहान या भूमि साफ करनेवाला। कर्तृ[3]-शब्द कर्ताका वाचक है। जो धनकी सीमाको लाँघ गया हो, उस कुलको अतिरि कहते हैं। जो पानी नावकी शक्तिसे बाहर हो, जिसे नावसे भी पार करना असम्भव हो, उसे 'अतिनु[5]' कहते हैं ॥ ४१ ॥

स्वनडुच्च विमलद्यु वाश्चत्वारीदमेव च।
एतद्ब्रह्माहश्च दण्डी असृक्किञ्चित्त्यदादि च ॥४२

जिस कुल या गृहमें गाड़ी खींचनेवाले अच्छे बैल हों, उसको 'स्वनडुत्' कहते हैं। जिस दिन आकाश साफ हो, उस दिनको विमलद्यु कहते हैं। वार्-शब्द जलका वाचक है। चतुर्

१. उसके रूप इस प्रकार हैं—उपानत् उपानद् उपानहौ २ उपानहः २। उपानहम्। उपानहा उपानद्भ्याम् ३ उपानद्भिः। उपानहे उपानद्भ्यः २। उपानह. २। उपानहोः २ उपानहाम्। उपानहि उपानत्सु। २. दिव्-शब्दके रूप गो-शब्दके समान समझने चाहिये। ३. इसके रूप—ककुप् ककुब् ककुभौ २ ककुभ. २। ककुभम्। ककुभा ककुब्भ्याम् इत्यादि है। सप्तमीके बहुवचनमें ककुप्सु रूप होता है। ४. इसके रूप—संवित् संविद् संविदौ संविदः इत्यादि है। ५. इसके रूप हैं—रुक् रुग् रुजौ २ रुज. २। रुजम्। रुजा रुग्भ्याम् इत्यादि। ६. इसके रूप हैं—विट् विड् विशौ विशः इत्यादि। ७. इसके रूप हैं—उद्भाः उद्भासौ उद्भासः इत्यादि। ८. नपुंसकलिङ्गमें प्रथमा और द्वितीया विभक्तिके रूप एकसे ही होते हैं और तृतीयासे लेकर सप्तमीतकके रूप पुँल्लिङ्गके समान होते हैं। तपस्-शब्दके रूप इस प्रकार समझने चाहिये—तपः तपसी तपांसि। ये तीनों रूप प्रथमा और द्वितीया विभक्तिमें प्रयुक्त होते हैं। शेष रूप उशनस्के समान होंगे। ९. रूप ये हैं—कुलम् कुले कुलानि। शेष रामवत्। १०. प्रथमा-द्वितीया विभक्तियोंमें इसके रूप हैं—सोमपम् सोमपे सोमपानि। शेष रामवत्। ११. इसके रूप प्रथम दो विभक्तियोंमें हैं—अक्षि अक्षिणी अक्षीणि। शेष पाँच विभक्तियोंके एकवचनमें क्रमशः इस प्रकार रूप हैं—अक्ष्णा। अक्ष्णे। अक्ष्णः। अक्ष्णः। अक्ष्णि अक्षणि। शेष रूप हरि-शब्दके समान जानने चाहिये। १२. पुँल्लिङ्गमें इसके रूप ग्रामणीः ग्रामण्यौ ग्रामण्यः इत्यादि होते हैं। यदि कोई कुल (खानदान) गाँवका अगुआ हो तो यह शब्द नपुंसकलिङ्गमें प्रयुक्त होता है। उस दशामें इसके रूप इस प्रकार होंगे—ग्रामणि ग्रामणिनी ग्रामणीनि। तृतीयासे सप्तमीतकके एकवचनमें 'ग्रामण्या ग्रामणिना। ग्रामण्ये ग्रामणिने। ग्रामण्य. २ ग्रामणिन. २। ग्रामण्याम् ग्रामणिनि—ये रूप हैं। शेष रूप पुँल्लिङ्गवत् होते हैं।

१. इसके रूप—अम्बु अम्बुनी अम्बूनि इत्यादि हैं। तृतीयासे सप्तमीतकके एकवचनमें क्रमशः अम्बुना। अम्बुने। अम्बुन. २ अम्बुनि—ये रूप होते हैं। शेष रूप भानुवत् हैं। २. पुँल्लिङ्गमें इसके रूप 'खलपूः खलप्वौ खलप्वः' इत्यादि होते हैं। जब यह किसी साधन या औजारका वाचक होता है तो नपुंसकमें प्रयुक्त होता है। उसमें इसके रूप इस प्रकार हैं—खलपु खलपुनी खलपूनि। इसमें भी तृतीयासे सप्तमीतक एकवचनमें 'खलपुना खलपुने, खलपुनः २, खलपुनि' ये रूप अधिक होते हैं। शेष रूप पुँल्लिङ्गवत् हैं। ३. इसका रूप पुँल्लिङ्गमें बताया गया है। नपुंसकमें 'कर्तृ कर्तृणी कर्तॄणि' ये रूप होते हैं। तृतीयासे सप्तमीतकके एकवचनमें दो-दो रूप होते हैं। यथा—कर्तृणा कर्त्रा। कर्तृणे कर्त्रे। कर्तृणः २ कर्तुः २। कर्तृणि कर्तरि। शेष रूप पुँल्लिङ्गवत् हैं। ४. इसके 'अतिरि अतिरिणी अतिरीणि' ये रूप हैं। तृतीया विभक्तिसे इस प्रकार रूप चलते हैं—अतिरिणा, अतिराभ्याम् अतिराभिः। अतिरिणे अतिराभ्यः २। अतिरिण २। अतिरिणोः अतिरीणाम्। अतिरिणि अतिरासु। ५. इसके रूप इस प्रकार हैं—'अतिनु अतिनुनी अतिनूनि। तृतीयासे सप्तमीतकके एकवचनमें—'अतिनुना, अतिनुने, अतिनुनः २, अतिनुनि' ये रूप होते हैं। शेष भानुवत्। ६. रूप इस प्रकार हैं—स्वनडुत् स्वनडुही स्वनड्वांहि। शेष पुँल्लिङ्गवत्। ७. रूप इस प्रकार हैं—विमलद्यु विमलदिवी विमलदिवि। तृतीया आदि विभक्तियोंमें 'विमलदिवा विमलद्युभ्याम्' इत्यादि रूप होते हैं। ८. इसके रूप इस प्रकार हैं—

शब्दका रूप नपुंसकलिङ्गमें केवल प्रथमा और द्वितीयामें 'चत्वारि' होता है, शेष पुँल्लिङ्गवत्। इदम्-शब्दके रूप नपुंसकमें इस प्रकार हैं—इदम् इमे इमानि, शेष पुँल्लिङ्गवत्। एतत्-शब्दके रूप पुँल्लिङ्गमें—एषः एतौ एते इत्यादि सर्व-शब्दके समान होते हैं। नपुंसकमें केवल प्रथम दो विभक्तियोंमें ये रूप हैं—एतत् एते एतानि। ब्रह्मन्-शब्दके रूप नपुंसकमें 'ब्रह्म ब्रह्मणी ब्रह्माणि' हैं। शेष पुँल्लिङ्गवत्[1]। अहन्-शब्द दिनका वाचक है[2]। दण्डिन्-शब्दके नपुंसकमें 'दण्डि दण्डिनी दण्डीनि' ये रूप हैं। शेष पुँल्लिङ्गवत्। असृज्[3]-शब्द रक्तका वाचक है। किम्-शब्दके रूप पुँल्लिङ्गमें 'कः कौ के' इत्यादि सर्ववत् होते हैं। नपुंसकमें केवल प्रथम दो विभक्तियोंमें 'किम् के कानि' ये रूप होते हैं। चित्-शब्दके रूप 'चित् चिती चिन्ति, चिता चिद्भ्याम् चिद्भिः' इत्यादि होते हैं। त्यद् आदि[4] शब्दोंके रूप पुँल्लिङ्गमें 'स्यः त्यौ ते' इत्यादि सर्ववत् होते हैं। नपुंसकमें 'त्यत् त्ये त्यानि' ये रूप होते हैं॥४२॥

> एतद् वेभिद्गवाग् गवाङ् गोअग् गोङ् गोग् गोङ्।
> तिर्यग्यकृच्छकृच्चैव ददद्भवत्पचत्तुदत्॥४३॥

(इदम् और) एतत्-शब्दके रूप अन्वादेशमें[5] द्वितीया, टा और ओस् विभक्तियोंमें कुछ भिन्न होते हैं। पुँल्लिङ्गमे 'एनम् एनौ एनान्, एनेन एनयोः।' नपुंसकमें 'एनत् एने एनानि' ये रूप हैं। अन्वादेश न होनेपर पूर्वोक्त रूप होते हैं। वेभित्-शब्दके रूप इस प्रकार हैं—'वेभित् वेभिद् वेभिदी वेभिदि (यहाँ नुम् नहीं होता)। वेभिदा वेभिद्भ्याम् वेभिद्भिः' इत्यादि। गवाक्-शब्दके रूप गति और पूजा अर्थके भेदसे अनेक होते हैं। गति-पक्षमे गवाक्का अर्थ है गायके पास जानेवाला और पूजा-पक्षमें उसका अर्थ है गो-पूजक। प्रथमा और द्वितीया विभक्तियोंमें उसके [illegible] रूप इस प्रकार हैं—एकवचनमें ये नौ रूप होते हैं—गवाक् गवाग् गोअक् गोअग् गोक् गोग् गवाङ् गोअङ् गोङ्। द्विवचनमें चार रूप होते हैं—गोची गवाञ्ची गोअञ्ची गोञ्ची। बहुवचनमें तीन रूप हैं—गवाञ्चि गोअञ्चि और गोञ्चि। प्रथमा और द्वितीया विभक्तियोंमें ये ही रूप होते हैं। तृतीयासे लेकर सप्तमीके एकवचनमें सर्वत्र चार-चार रूप होते हैं—'गोचा गवाञ्चा गोअञ्चा गोञ्चा' इत्यादि। भ्याम्-भिस् और भ्यस्में छः-छः रूप होते हैं—गवाग्भ्याम् गोअग्भ्याम् गोग्भ्याम्, गवाङ्भ्याम्, गोअङ्भ्याम् गोङ्भ्याम् इत्यादि। सप्तमीके बहुवचनमें भी नौ रूप होते हैं—गवाङ्क्षु, गोअङ्क्षु गोङ्क्षु, गवाङ्षु गोअङ्षु गोङ्षु, गवाक्षु गोअक्षु गोक्षु। इस प्रकार कुल एक सौ नौ रूप होते हैं[1]। तिर्यक्[2]-शब्द पशु-पक्षियोंका वाचक है। यकृत्[3]-शब्द कलेजा तथा उससे सम्बन्ध रखनेवाली बीमारीका बोधक है। शकृत्[4]-शब्द विष्ठाका वाचक है। ददत्-शब्दका रूप पुँल्लिङ्गमें बिभ्रत् शब्दकी तरह होता है। नपुंसकमें 'ददत्, ददती, ददन्ति ददति' ये रूप होते हैं। शेष पुँल्लिङ्गवत्। भवत्[5] शब्दका अर्थ है- पूज्य। शतृ प्रत्ययान्त 'भवत्' शब्दके रूप पुँल्लिङ्गमें 'भवन् भवन्तौ भवन्तः' इत्यादि होते हैं। शेष पूर्ववत्। स्त्रीलिङ्गमें 'भवन्ती भवन्त्यौ भवन्त्यः' इत्यादि गोपीके समान रूप हैं। नपुंसकमें पूर्ववत् हैं। पचत्-शब्दका रूप सभी लिङ्गोंमें शतृ-प्रत्ययान्त 'भवत्' शब्दके समान होता है। तुदत्-शब्द पुँल्लिङ्गमें पचत्-शब्दके ही समान है। स्त्रीलिङ्गमें ङीप् प्रत्यय होनेपर उसके दो रूप होते हैं—तुदती और तुदन्ती, फिर इन दोनोंके रूप

'वा वारी वारि। वारा वार्भ्याम् वार्भिः' इत्यादि।

१. पुँल्लिङ्गमें इसके सब रूप इस प्रकार हैं—ब्रह्मा, ब्रह्माणौ, ब्रह्माणः। ब्रह्माणम् ब्रह्माणौ ब्रह्मणः। ब्रह्मणा ब्रह्मभ्याम् ब्रह्मभिः। ब्रह्मणे ब्रह्मभ्याम् ब्रह्मभ्यः। ब्रह्मणः ब्रह्मभ्याम् ब्रह्मभ्यः। ब्रह्मणः ब्रह्मणोः ब्रह्मणाम्। ब्रह्मणि ब्रह्मणोः ब्रह्मसु। २. इसके रूप इस प्रकार हैं—'अहः अह्नी अहानि। अह्ना अहोभ्याम् अहोभिः' इत्यादि। सप्तमीके एकवचनमें अह्नि, अहनि—ये दो रूप होते हैं। ३ इसके रूप इस प्रकार हैं—'असृक् असृजी असृञ्जि। असृजा असृग्भ्याम् असृग्भिः' इत्यादि। ४. त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि—ये त्यदादि कहलाते हैं। ५. एकके विषयमें दुबारा की हुई चर्चा अन्वादेश है, जैसे—'यह आया, इसे भोजन दो' इस वाक्यमें 'इसे' अन्वादेश हुआ।

१. कुछ मनीषी विद्वान् इसमें ५२७ रूपोंकी उद्भावना करते हैं। २. पुँल्लिङ्गमें इसके 'तिर्यङ् तिर्यञ्चौ' इत्यादि प्राङ् शब्दकी तरह रूप होते हैं। द्वितीयाके बहुवचनमें 'तिरश्चः' रूप होता है। तृतीया आदिमें 'तिरश्चा तिर्यग्भ्याम्' इत्यादि रूप होते हैं। नपुंसकमें 'तिर्यक् तिरश्ची तिर्यञ्चि' रूप होते हैं। पूजार्थमें 'तिर्यङ् तिर्यञ्ची तिर्यञ्चि' रूप होते हैं। शेष पुँल्लिङ्गवत्। ३. इसके रूप होते हैं—यकृत् यकृती यकृन्ति। यकृता यकृद्भ्याम् इत्यादि। 'यकन्' आदेश होनेपर 'यकानि' रूप केवल 'शस्' विभक्तिमें होता है। तृतीया आदिके एकवचनमें 'यक्ना' आदि रूप भी होते हैं। ४. इसके रूप भी यकृत्-शब्दकी भाँति होते हैं। ५. इसके तीनों लिङ्गोंमें रूप होते हैं। पुँल्लिङ्गमें 'भवान् भवन्तौ [illegible]' इत्यादि 'श्रीमत्' शब्दके समान रूप हैं। [illegible]

गोपी-शब्दकी भाँति चलते हैं। नपुंसकमें प्रथम दो विभक्तियों-के रूप इस प्रकार हैं—तुदत् तुदती तुदन्ती तुदन्ति। शेष पुँल्लिङ्गवत् ॥४३॥

दीव्यद्धनुश्च पिपठीः पयोऽदःसुपुमांसि च।
गुणद्रव्यक्रियायोगांस्त्रिलिङ्गांश्च कति ब्रुवे ॥४४॥

दीव्यत्-शब्दके रूप सभी लिङ्गोंमें पचत्‌के समान हैं। धनुष्-शब्दके रूप इस प्रकार हैं—धनुः धनुषी धनूंषि। धनुषा धनुर्भ्याम् इत्यादि। पिपठिष्-शब्दके रूप नपुंसकमें इस प्रकार हैं—'पिपठीः पिपठिषी पिपठिषि' शेष पुँल्लिङ्गवत्। पयस्-शब्दके रूप तपस्-शब्दके समान होते हैं। यह दूध और जलका वाचक है। अदस्-शब्दके[1] पुँल्लिङ्ग रूप बताये जा चुके हैं। जिस कुलमें अच्छे पुरुष होते हैं, उसे सुपुम्[2] कहते हैं। अब हम कुछ ऐसे शब्दोंका वर्णन करते हैं, जो गुण, द्रव्य और क्रियाके सम्बन्धसे तीनों लिङ्गोंमे प्रयुक्त होते हैं॥४४॥

शुक्तः कीलालपाश्चैव शुचिश्च ग्रामणीः सुधीः।
पटुः स्वयम्भूः कर्ता च माता चैव पिता च ना ॥४५॥
सत्यानायुरपुंसश्च मतभ्रमरदीर्घपात्।
धनाढ्यसोम्यौ चागर्हंस्तादृक् स्वर्णमथो बहु ॥४६॥

शुक्त[3], कीलालपा, शुचि, ग्रामणी, सुधी, पटु, स्वयम्भू तथा कर्ता* । मातृ-शब्द यदि परिच्छेत्तृवाचक हो तो तीनों लिङ्गोंमें प्रयुक्त होता है। इसके पुँल्लिङ्गरूप—माता, मातारौ, मातारः' इत्यादि; नपुंसकरूप—'मातृ, मातृणी, मातॄणि' इत्यादि और स्त्रीलिङ्गरूप—'मात्री, मात्र्यौ, मात्र्यः' हैं। जननीवाची मातृ-शब्द नित्य-स्त्रीलिङ्ग है। इसके रूप इस प्रकार हैं—'माता मातरौ मातरः। मातरम् मातरौ मातॄः' इत्यादि। इसके शेष रूप स्वसृ-शब्दके समान हैं। पितृ-शब्द यदि कुलका विशेषण हो तो नपुंसकमें प्रयुक्त हो सकता है। अन्यथा वह नित्यपुँल्लिङ्ग है। इसके रूप 'पिता पितरौ पितरः। पितरम् पितरौ पितॄन्' इत्यादि हैं। शेष कर्तृशब्दके समान समझने चाहिये। नृ-शब्द नित्यपुँल्लिङ्ग है और उसके सभी रूप पितृ-शब्दके समान हैं। केवल षष्ठीके बहुवचनमें इसके दो रूप होते हैं 'नृणाम्, नॄणाम्।'

सत्य, अनायुष्, अपुंस्, मत, भ्रमर, दीर्घपात्, धनाढ्य, सोम्य, अगर्ह, तादृक्, स्वर्ण, बहु—ये शब्द भी तीनों लिङ्गोंमें प्रयुक्त होते हैं † ॥४६॥

भवत्यौ भवत्यः' इत्यादि गोपी-शब्दके समान रूप होते हैं। नपुंसकमें दो विभक्तियोंमें उसके 'भवत् भवती भवन्ति' रूप होते हैं। शेष पुँल्लिङ्गवत्।

१. स्त्रीलिङ्गमें इसके पूरे रूप इस प्रकार हैं—असौ अमू अमूः। अमूम् अमू अमूः। अमुया अमूभ्याम् ३ अमूभिः। अमुष्यै अमूभ्यः २। अमुष्याः २। अमुयोः २ अमूषाम्। अमुष्याम् अमूषु॥ नपुंसकलिङ्गमें प्रथम दो विभक्तियोंके रूप 'अदः अमू अमूनि' हैं। शेष पुँल्लिङ्गवत्। २. सुपुम् सुपुंसी सुपुमांसि। शेष विभक्तियोंमें पुंस्-शब्दकी तरह रूप होते हैं। ३. 'शुक्त' (सीप या सुतुही) शब्दके पुँल्लिङ्गरूप—शुक्तः शुक्तौ शुक्ताः। शुक्तं शुक्तौ शुक्तान्। शुक्तेन शुक्ताभ्यां शुक्तैः। शुक्ताय शुक्ताभ्याम् शुक्तेभ्यः। शुक्तात् शुक्ताभ्यां शुक्तेभ्यः। शुक्तस्य शुक्तयोः शुक्तानाम्। शुक्ते शुक्तयोः शुक्तेषु। हे शुक्त शुक्तौ शुक्ताः। इस प्रकार हैं। स्त्रीलिङ्गमें 'शुक्ता शुक्ते शुक्ताः' इत्यादि राधाके समान रूप हैं। नपुंसकमें 'शुक्तं शुक्ते शुक्तानि' ये प्रथमा और द्वितीया विभक्तिके रूप हैं। शेष पुँल्लिङ्गवत् रूप हैं।

* 'कीलालपा' (जल पीनेवाला) के सभी रूप गोपाके समान हैं। और नपुंसकमें कुलके समान रूप होते हैं। 'शुचि' (पवित्र) शब्दके पुँल्लिङ्गरूप हरिके समान हैं। स्त्री-लिङ्गरूप 'गति' के समान और नपुंसकरूप 'वारि' के समान हैं। ग्रामणी (ग्रामका नेता) के पुँल्लिङ्गरूप बताये गये हैं। स्त्री-लिङ्गरूप भी प्रायः वे ही हैं। नपुंसकके भी बताये जा चुके हैं। 'सुधी' शब्दका अर्थ है श्रेष्ठ बुद्धिवाला तथा विद्वान्। पुँल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्गमें 'सुधीः सुधियौ, सुधियः' इत्यादि रूप होते हैं। नपुंसकमें 'सुधि, सुधिनी, सुधीनि' इत्यादि रूप हैं। 'पटु' (समर्थ) के पुँल्लिङ्ग रूप 'भानु' के समान, स्त्रीलिङ्ग 'धेनु' के समान और नपुंसकरूप 'पटु पटुनी पटूनि' हैं; शेष भानुवत्। 'स्वयम्भू' (ब्रह्मा) के पुँल्लिङ्गरूप बताये गये हैं, स्त्रीलिङ्गमें भी वैसे ही होते हैं। नपुंसकमें 'स्वयम्भु स्वयम्भुनी स्वयम्भूनि' रूप होते हैं। शेष पुँल्लिङ्गवत्। 'कर्तृ' शब्दके पुँल्लिङ्ग और नपुंसक रूप बताये गये हैं। स्त्रीलिङ्गमें 'गोपी' शब्दके समान 'कर्त्री' शब्दके रूप चलते हैं।

† 'सत्य' शब्द जब सामान्यतः सत्य भाषणके अर्थमें आता है, तब नपुंसक होता है और विशेषणरूपमें प्रयुक्त होनेपर विशेष्यके अनुसार तीनों लिङ्गोंमें प्रयुक्त होता है। इसके पुँल्लिङ्गरूप—सत्य सत्यौ सत्याः—इत्यादि रामवत् हैं। स्त्रीलिङ्ग-रूप—राधाके समान

सर्वं विश्वोभये चोभौ अन्यान्यतरेतराणि च ॥४७॥
डतरो डतमो नेमस्त्वत्समौ त्वसिमावपि ।
पूर्वः परावरौ चैव दक्षिणश्चोत्तराधरौ ॥४८॥
अपरः स्वोऽन्तरस्त्यत्तद्यावेतत्किममावयम् ।
युष्मदस्मच प्रथमश्चरमोऽल्पस्तथार्धकः ॥४९॥
नेमः कतिपयो द्वे निपाताः स्वराद्यस्तथा ।
उपसर्गविभक्तिस्वरप्रतिरूपाश्चाव्ययाः ॥५०॥

अब सर्वनामशब्दोंको सूचित करते हैं—सर्व, विश्व, उभय, उभ, अन्य, अन्यतर, इतर, डतर, डतम, नेम, त्व, त्वत्, सम, सिम, पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अधर, अपर, स्व, अन्तर, त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, किम्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवत् । ये सर्वनाम हैं और इनके रूप प्रायः सर्व-शब्दके समान ही हैं । प्रथम, चरम, तय, अल्प, अर्ध, कतिपय और नेम—इन शब्दोंके [illegible] बहुवचनमें दो रूप होते हैं यथा—प्रथमे प्रथमाः [illegible] चरमाः इत्यादि ।

स्वरादि और निपात तथा उपसर्ग- विभक्ति [illegible] प्रतिरूपक शब्द अव्ययसंज्ञक होते हैं ॥४८-५०॥

तद्धिताश्चाप्यपत्यार्थे पाण्डवः श्रैधरस्तथा ।
गार्ग्यो नाडायनात्रेयौ गाङ्गेयः पैतृष्वस्रीय ॥५१॥

अब तद्धित प्रत्ययान्त शब्दोंका उल्लेख करते हैं । निम्नाङ्कित शब्द अपत्यार्थक तद्धित [illegible] प्रयुक्त होते हैं । पाण्डव, श्रैधर, गार्ग्य, नाडायन, आत्रेय, गाङ्गेय, पैतृष्वस्रीय ॥५१॥

देवतार्थे चेदमर्थे ऐन्द्रं ब्राह्मो हविर्गिरि ।
धुरि साधुर्धौरेयः [illegible] ॥५२॥

निम्नाङ्कित शब्द देवतार्थक और इदमर्थक [illegible] प्रयुक्त हुए हैं । यथा—ऐन्द्र हविः, ब्राह्मी गिरिः । [illegible] कर्तामें तद्धित प्रत्यय होते हैं—[illegible] जो धुर अर्थात् भारको वहन [illegible] है । [illegible]

हैं—सत्या सत्ये सत्याः । नपुंसकरूप—'सत्यम् सत्ये सत्यानि' हैं । शेष रामवत् । 'अनायुष्' शब्दका अर्थ है आयुहीन । पुँल्लिङ्गमें—'अनायु , अनायुषौ, अनायुषः' इत्यादि । स्त्रीलिङ्गमें भी ये ही रूप हैं । नपुंसकलिङ्गमें 'अनायु- अनायुषी अनायूंषि' इत्यादि । 'अपुंस्' का अर्थ है, पुरुषरहित । पुँल्लिङ्गमें—अपुमान् इत्यादि, स्त्रीलिङ्गमें 'अपुंस्का' आदि तथा नपुंसकमें 'अपुम्' इत्यादि रूप होते हैं । मतका अर्थ है—'अभिमत, राय' आदि । 'मत । मता । मतम्' ये क्रमशः पुँल्लिङ्ग आदिके रूप हैं । 'भ्रमर'का अर्थ है भौंरा या घूमकर शब्द करनेवाला । पुँल्लिङ्गमें भ्रमरः, स्त्रीलिङ्गमें भ्रमरी, नपुंसकमें, भ्रमरम्, इत्यादि रूप होते हैं । जिसके पैर बड़े हों, वह 'दीर्घपात्' है । तीनों लिङ्गोंमें 'दीर्घपाद्' यही प्रथम रूप है । 'धनाढ्य' का अर्थ है धनी । धनाढ्य , धनाढ्या, धनाढ्यम्—ये क्रमशः तीनों लिङ्गोंके प्रथम रूप हैं । 'सौम्य' का अर्थ है शान्त, मृदु स्वभाववाला । रूप धनाढ्यके ही तुल्य है । 'अगर्ह' का अर्थ है निन्दारहित । रूप पूर्ववत् है । 'तादृश्' शब्दका अर्थ है, 'वैसा' । इसके 'तादृक् तादृशौ तादृशः' इत्यादि पुँल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्गमें रूप होते हैं, नपुंसकमें तादृक् तादृशी तादृंशि रूप होते हैं । स्वर्णका अर्थ है सोना । रूप धनाढ्यवत् है । तीनों लिङ्गोंमें 'बहु' के रूप क्रमशः बहव । बह्व्य । बहूनि इत्यादि हैं ।

१. प्राय इसलिये कहा गया कि कुछ शब्दोंके रूपमें कहीं-कहीं अन्तर है । जैसे पूर्व पर अवर दक्षिण अपर उत्तर अधर—ये व्यवस्था और असंज्ञामें ही सर्वनाम माने जाते हैं । जहाँ संज्ञा हो अथवा व्यवस्थाभिन्न अर्थमें इन शब्दोंका प्रयोग हो वहाँ इनका रूप 'सर्व' शब्दके समान न होकर 'राम' शब्दके समान हो जाता है । यथा—दक्षिणाः गायकाः , उत्तराः कुरवः । यहाँ दक्षिण-शब्द कुशल अर्थमें और उत्तर-शब्द देशकी संज्ञामें प्रयुक्त हुए हैं । व्यवस्था और असंज्ञामें यद्यपि ये सर्वनामसंज्ञक होते हैं, तथापि प्रथमाके बहुवचनमें तथा पञ्चमी और सप्तमीके [illegible] वैकल्पिक होता है । अब इन [illegible] सर्ववत् दूसरा रामवत् । यथा—पूर्वे पूर्वाः [illegible] पूर्वे इत्यादि । [illegible] अर्थमें 'स्व' शब्दका रूप भी पूर्वादि [illegible] बाह्य और परिधानीय ([illegible] शब्दका रूप भी पूर्वादिके ही समान [illegible] शब्द प्रयुक्त है । अब [illegible] हैं, यथा—[illegible]

[illegible] इनके [illegible]

[illegible]

शब्द कर्म है और वहन-क्रियामें संयुक्त भी है, अतः उससे 'एय' यह तद्धित प्रत्यय हुआ। आदि स्वरकी वृद्धि हुई और 'धौरेय' शब्द सिद्ध हुआ। इसी प्रकार कुङ्कुमेन रक्तं वस्त्रम्—इसमें कुङ्कुम-शब्द 'रँगना' क्रियाका कर्ता है और वह उसमें संयुक्त भी है। अतः उससे तद्धित अण् प्रत्यय होकर आदिपदकी वृद्धि हुई और 'कौङ्कुम' शब्द सिद्ध हुआ ॥५२॥

भवाद्यर्थे तु कानीनः क्षत्रियो वैदिकः स्वकः।
स्वार्थे चौरस्तु तुल्यार्थे चन्द्रवन्मुखमीक्षते ॥५३॥

अब 'भव' आदि अर्थोंमें होनेवाले तद्धित प्रत्ययोंका उदाहरण देते हैं—कन्यायां भवः कानीनः। जो अविवाहिता कन्यासे उत्पन्न हुए हों, उन्हें 'कानीन'[1] कहते हैं। क्षत्रस्यापत्यं जातिः क्षत्रियः। क्षत्रकुलसे उत्पन्न उसी जातिका बालक 'क्षत्रिय'[2] कहलाता है। वेदे भवः वैदिकः। इक्-प्रत्यय और आदि-स्वरकी वृद्धि हुई है। स्व एव स्वकः। यहाँ स्वार्थमें 'क' प्रत्यय है। चोर एव चौरः, स्वार्थमें अण् प्रत्यय हुआ है। तुल्य अर्थमें वत् प्रत्यय होता है। यथा—चन्द्रवन्मुखमीक्षते—चन्द्रमाके समान मुँह देखता है। चन्द्र+वत्=चन्द्रवत् ॥५३॥

ब्राह्मणत्वं ब्राह्मणता भावे ब्राह्मण्यमेव च।
गोमान्धनी च धनवानस्त्यर्थे प्रमितौ कियान् ॥५४॥

भाव-अर्थमें त्व, ता और य प्रत्यय होते हैं यथा—ब्राह्मणस्य भावः ब्राह्मणत्वम्, ब्राह्मणता, ब्राह्मण्यम्। अस्त्यर्थमें मतुप् और इन् प्रत्यय होते हैं—गौः अस्यास्ति इति गोमान्। धनमस्यास्ति इति धनी (जिसके पास गौ हो, वह 'गोमान्', जिसके पास धन हो, वह 'धनी' है[3])। अकारान्त, मकारान्त तथा मकारोपध शब्दसे एवं झयन्त शब्दसे परे मत्के 'म' का 'व' हो जाता है—यथा धनमस्यास्ति इति धनवान्। परिमाण अर्थमें 'इदम्', 'किम्', 'यत्', 'तत्', 'एतत्'—इन शब्दोंसे वतुप् प्रत्यय होता है, किंतु 'इदम्' और 'किम्' शब्दोंसे परे वतुप्के वकारका 'इय्' आदेश हो जाता है। दृक्, दृश, वतु—ये परे हों तो इदम्के स्थान में 'ई' तथा 'किम्'के स्थानमे 'कि' हो जाते हैं। किं परिमाणं यस्य स कियान्—यहाँ परिमाण-अर्थमें वतुप्-प्रत्यय, इयादेश तथा किभाव करनेसे कियान् बनता है। इसका अर्थ है—'कितना' ॥५४॥

जातार्थे तुंदिलः श्रद्धालुरौन्नत्ये तु दन्तुरः।
स्रग्वी तपस्वी मेधावी मायाव्यस्त्यर्थ एव च ॥५५॥

अब जातार्थमें होनेवाले प्रत्ययोंका उदाहरण देते हैं। तुन्दः संजातः अस्य तुन्दिलः। जिसको तोंद हो जाय, उसे 'तुन्दिल' कहते हैं। तुन्द+इल=तुन्दिल। श्रद्धा संजाता अस्य इति श्रद्धालुः। श्रद्धा+ आलु। (इसी प्रकार दयालु, कृपालु आदि बनते हैं।) दाँतोंकी ऊँचाई व्यक्त करनेके लिये दन्त-शब्दसे उर-प्रत्यय होता है। उन्नताः दन्ता अस्य इति दन्तुरः (ऊँचे दाँतवाला)। अस्, माया, मेधा तथा स्रज्—इन शब्दों-से अस्त्यर्थमें विन् प्रत्यय होता है। इनके उदाहरण क्रमसे तपस्वी, मायावी, मेधावी (बुद्धिमान्) और स्रग्वी हैं। स्रग्वीका अर्थ माला धारण करनेवाला है ॥५५॥

वाचालश्चैव वाचाटो बहुकुत्सितभाषिणि।
ईषदपरिसमाप्तौ कल्पब्देशीय एव च ॥५६॥

खराब बातें अधिक बोलनेवालेके अर्थमें वाच् शब्दसे 'आल' और 'आट' प्रत्यय होते हैं। कुत्सितं बहु भाषते इति वाचालः, वाचाटः। ईषत् (अल्प) और असमाप्तिके अर्थमें कल्पप्, देश्य और देशीय प्रत्यय होते हैं ॥५६॥

कविकल्पः कविदेश्यः प्रकारवचने तथा।
पटुजातीयः कुत्सायां वैद्यपाशः प्रशंसने ॥५७॥
वैद्यरूपो भूतपूर्वे मतो दृष्टचरो मुने।
प्राचुर्यादिष्वन्नमयो मृन्मयः स्त्रीमयस्तथा ॥५८॥

जैसे—ईषत् ऊनः कविः कविकल्पः, कविदेश्यः, कविदेशीयः। जहाँ प्रकार बतलाना हो, वहाँ किम् और सर्वनाम आदि शब्दोंसे 'था' प्रत्यय होता है। तेन प्रकारेण तथा। तत्+था=तथा। त्यदादि शब्दोंका अन्तिम हल् निवृत्त होकर वे अकारान्त हो जाते हैं, विभक्ति परे रहनेपर। (था, दा, त्र, तस् आदि प्रत्यय विभक्तिरूप माने गये हैं)। इस नियमके अनुसार तत्के स्थानमें त हो जानेसे 'तथा' बना। जहाँ किसी विशेष प्रकारके व्यक्तिका प्रतिपादन हो, वहाँ जातीय प्रत्यय होता है। यथा—पटुप्रकारः—पटुजातीयः। पटु-शब्दसे जातीय-प्रत्यय हुआ। किसीकी हीनता प्रकाशित करनेके लिये संज्ञाशब्दसे पाश प्रत्यय होता है। जैसे—कुत्सितो वैद्यः वैद्यपाशः (खराब वैद्य)। प्रशंसा

१. महर्षि व्यास और कर्ण कानीन थे। कन्या-शब्दसे अण् होनेपर कन्या-शब्दके स्थानमें कनीन आदेश होता है और आदिपदकी वृद्धि होनेसे कानीन बनता है। २. क्षत्र+इय=क्षत्रिय। 'त्र' के 'अ' का लोप होकर वह 'इय'के 'इ' में मिला है। ३. मतुप्में उप्का लोप हो जाता है, फिर धीमान्-शब्दकी तरह रूप चलते हैं। धनिन्-शब्दका रूप [illegible]इन्-शब्दके समान समझना चाहिये।

अर्थमें रूप प्रत्यय होता है। यथा—प्रशस्तो वैद्यः वैद्यरूपः (उत्तम वैद्य)। मुनिवर नारदजी ! भूतपूर्व अर्थको व्यक्त करनेके लिये चर प्रत्यय होता है। यथा—पूर्वं दृष्टो दृष्टचरः (पहलेका देखा हुआ)।

प्राचुर्य (अधिकता) और विकारार्थ आदि व्यक्त करनेके लिये मय प्रत्यय होता है। जैसे—अन्नमयो यज्ञः। जिसमें अधिक अन्न व्यय किया जाय, वह अन्नमय यज्ञ है। यहाँ अन्न-शब्दसे मय-प्रत्यय हुआ। इसी प्रकार मृन्मयः अश्वः (मिट्टीका घोड़ा) तथा स्त्रीमयः पुरुषः इत्यादि उदाहरण समझने चाहिये ॥५७-५८॥

जातार्थे लज्जितोऽत्यर्थे श्रेयाञ्छ्रेष्ठश्च नारद।
कृष्णतरः शुक्लतमः किम आख्यानतोऽव्ययात् ॥५९॥
किन्तरां चैवातितरामपि ह्युच्चैस्तरामपि।
परिमाणे जानुदघ्नं जानुद्वयसमित्यपि ॥६०॥

जात-अर्थमें तारकादि शब्दोंसे इत प्रत्यय होता है। यथा—लज्जा संजाता अस्य इति लज्जितः[1] (जिसके मनमें लज्जा पैदा हो गयी हो, उसे लज्जित कहते हैं)। नारदजी ! यदि बहुतोंमेंसे किसी एककी अधिक विशेषता बतानी हो तो तम और इष्ठ प्रत्यय होते हैं और दोमेंसे एककी विशेषता बतलानी हो तो तर और ईयसु प्रत्यय होते हैं। ईयसुमें उकार इत्संज्ञक है। अयम् एषा अतिशयेन प्रशस्यः श्रेष्ठः[2] (यह इन सबमें अधिक प्रशंसनीय है, अतः श्रेष्ठ है)। द्वयोः प्रशस्यः श्रेयान् (दोमेंसे जो एक अधिक प्रशंसनीय है, वह श्रेयान् कहलाता है। यहाँ भी प्रशस्य+ईयस्=श्रेयस् (पूर्ववत् श्र आदेश हुआ)। इसके रूप श्रेयान् श्रेयांसौ श्रेयांसः। श्रेयांसम् श्रेयांसौ श्रेयसः। श्रेयसा श्रेयोभ्याम् श्रेयोभिः इत्यादि। इसी प्रकार जो दोमेंसे एक अधिक कृष्ण है, उसे कृष्णतर और जो बहुतोंमेंसे एक अधिक शुक्ल है, उसे शुक्लतम कहते हैं। कृष्ण+तर=कृष्णतर। शुक्ल+तम=शुक्लतम। किम्, क्रिया-वाचक शब्द (तिङन्त) और अव्ययसे परे जो तम और तर प्रत्यय हैं, उनके अन्तमें आम् लग जाता है। उदाहरण-के लिये किंतराम्, अतितराम् तथा उच्चैस्तराम् इत्यादि प्रयोग हैं। प्रमाण (जल आदिके माप) व्यक्त करनेके लिये द्वयस, दघ्न और मात्र प्रत्यय होते हैं। जानु प्रमाणम् अस्य [illegible] जानुदघ्नं [illegible] ([illegible] जलको जानुदघ्न कहते हैं) [illegible] जानुद्वयसम् और जानुमात्रम्—ये प्रयोग [illegible] ॥

जानुमात्रं च निर्धारे बहूनां च [illegible]।
कतम [illegible] ॥६१॥
द्वितीयश्च तृतीयश्च चतुर्थं [illegible]।
एकादश कतिपयथ [illegible] ॥६२॥

दोमेंसे एकका और बहुतोंमेंसे [illegible] 'किम्' 'यत्' और 'तत्' शब्दोंसे [illegible] होते हैं। यथा—भवतोः कतरः [illegible] ([illegible] श्याम है ?) भवतां कतमः श्रीमान् ? ([illegible] है ?)। संख्या (गणना) [illegible] करनेके लिये द्वि-शब्दसे द्वितीय, त्रि-शब्दसे तृतीय, चतुर् [illegible] चतुर्थ और षष्-शब्दसे षष्ठ रूप बनते हैं। [illegible] इस प्रकार है—दूसरा, तीसरा, चौथा और छठा। [illegible] सप्तन्, अष्टन्, नवन् और दशन्—[illegible] मिटाकर 'म'कार बढ़ जाता है, जिससे [illegible] नवम, दशम रूप बनते हैं। एकादशन् [illegible] अर्थमें 'न' कारका लोप होकर [illegible] जाते हैं, जिनके 'राम' शब्दके समान रूप [illegible] एकादशः द्वादशः इत्यादि। नारदजी ! [illegible] शब्दोंसे थ-प्रत्यय होता है, जिससे कतिथ और [illegible] पद बनते हैं ॥६१-६२॥

विंशश्च त्रिंशत्तितमस्[illegible] [illegible]।
द्वेधा द्वैधा द्विधा [illegible] ॥६३॥

बीसवेंके अर्थमें विंश [illegible] रूप होते हैं। शत आदि [illegible]

---

१. ईकार और तद्धित परे रहनेपर भसंज्ञक इवर्ण और अवर्णका लोप हो जाता है, इस नियमके अनुसार 'लज्जा+इत' इस स्थितिमें 'आ'का लोप हो जाता है। २. प्रशस्य+इष्ठ=श्रेष्ठ (प्रशस्य-शब्दके स्थानमें श्र-आदेश हो जाता है, फिर गुण करनेसे श्रेष्ठ-शब्द बनता है)।

१. किम्+तर, किम्+तम [illegible] प्रत्यय परे रहनेपर [illegible] स्वर और उससे बादके [illegible] होकर [illegible] कत्+अतम [illegible] कतर, कतम [illegible] इस [illegible] बनता है। २. [illegible] रूप होते हैं। [illegible] है। इसके [illegible]

मास, अर्धमास एवं संवत्सर शब्दोंसे) नित्य 'तम' प्रत्यय होता है। यथा—शततमः(एकशततमः;मासतमः;अर्धमासतमः; संवत्सरतमः)। मुनीश्वर ! क्रियाके प्रकारका बोध करानेके लिये संख्यावाचक शब्दसे स्वार्थमें धा-प्रत्यय होता है— जैसे (एकधा) द्विधा, त्रिधा इत्यादि ॥ ६३ ॥

क्रियावृत्तौ पञ्चकृत्वो द्विस्त्रिर्बहुश इत्यपि।
द्वितयं त्रितयं चापि संख्यायां हि द्वयं त्रयम् ॥६४॥

क्रियाकी आवृत्तिका बोध करानेके लिये कृत्वस् प्रत्यय होता है और 'स' कारका विसर्ग हो जाता है। यथा—पञ्चकृत्वः (पाँच बार), द्विः, त्रिः (दो बार, तीन बार)। बहु-शब्दसे 'धा, शस् एवं कृत्वस्' तीनों ही प्रत्यय होते हैं—यथा बहुधा, बहुशः, बहुकृत्वः। संख्याके अवयवका बोध करानेके लिये तय प्रत्यय होता है। उदाहरणके लिये द्वितय, त्रितय, चतुष्टय और पञ्चतय आदि शब्द हैं। द्वि और त्रि शब्दोंसे आगे जो 'तय' प्रत्यय है, उसके स्थानमें विकल्पसे अय हो जाता है; फिर द्वि और त्रि शब्दके इकारका लोप होनेसे द्वय, त्रय शब्द बनते हैं ॥ ६४ ॥

कुटीरश्च शमीरश्च शुण्डारोऽल्पार्थके मतः।
स्त्रैणः पौंस्नस्तुण्डिभश्च वृन्दारककृषीवलौ ॥६५॥

कुटी, शमी और शुण्डा शब्दसे छोटेपनका बोध करानेके लिये 'र' प्रत्यय होता है। छोटी कुटीको कुटीर कहते हैं। कुटी+र=कुटीरः। इसी प्रकार छोटी शमीको शमीर और छोटी शुण्डाको शुण्डार कहते हैं। शुण्डा-शब्द हाथीकी सूँड और मद्यशाला (शराबखाने) का बोधक है। स्त्री और पुंस् शब्दोंसे नञ् प्रत्यय होता है। आदि-स्वरकी वृद्धि होती है। ञकार इत्संज्ञक है। नके स्थानमें ण होता है। इस प्रकार स्त्रैण शब्द बनता है। जिस पुरुषमें स्त्रीका स्वभाव हो तथा जो स्त्रीमें अधिक आसक्त हो, उसे स्त्रैण कहते हैं। पुंस्+न, आदिवृद्धि=पौंस्न (पुरुषसम्बन्धी)। तुण्डि आदि शब्दोंसे अस्त्यर्थमें भ-प्रत्यय होता है। तुण्डि+भ=तुण्डिभः (बढ़ी हुई नाभिवाला)। शृङ्ग और वृन्द शब्दोंसे अस्त्यर्थमें 'आरक' प्रत्यय होता है। शृङ्ग+आरक= शृङ्गारकः (पर्वत)। वृन्द+आरक=वृन्दारकः (देवता)। रजस् और कृषि आदि शब्दोंसे 'वल' प्रत्यय होता है, रजस्वला स्त्री, कृषीवलः (किसान) ॥ ६५ ॥

मलिनो विकटो गोमी भौरिकिविधमुत्कटम्।
अवटीटोऽवनाटश्च निविडं चेक्षुशाकिनम् ॥६६॥
निविरीसमैषुकारिभक्तं विद्याचणस्तथा।
विद्याचञ्चुर्बहुतिथं पर्वतः शृङ्गिणस्तथा ॥६७॥
स्वामी विषमं रूप्यं चोपत्यकाधित्यका तथा।
चिल्लश्च चिपिटं चिक्कं वातूलः कुतुपस्तथा ॥६८॥
बल्लूलश्च हिमेलुश्च कहिकश्चोपडस्ततः।
ऊर्णायुश्च मरुत्तश्चैकाकी चर्मण्वती तथा ॥६९॥
ज्योत्स्ना तमिस्राऽष्ठीवच्च कक्षीवद्रुमण्वती।
आसन्दीवच्च चक्रीवत्तूष्णीकां जल्पतक्यपि ॥७०॥

मल-शब्दसे अस्त्यर्थमें इन प्रत्यय होता है। मलम् अस्यास्ति इति मलिनः (मलयुक्त)। मल+इन अकार-लोप=मलिन। सम्, प्र, उद् और वि—इनसे कट प्रत्यय होता है,—यथा सङ्कटः, प्रकटः, उत्कटः, विकटः। गो-शब्दसे मिन्-प्रत्यय होता है अस्त्यर्थमें—गो+मिन्=गोमी (जिसके पास गौएँ हों, वह पुरुष)। ज्योत्स्ना (चाँदनी), तमिस्रा (अँधेरी रात), शृङ्गिण, (शृङ्गवाला), ऊर्जस्विन् (ओजस्वी), ऊर्जस्वल, गोमिन्, मलिन और मलीमस (मलिन)—ये शब्द मत्वर्थमें निपातन-सिद्ध हैं। 'भौरिकिविधम्' इसकी व्युत्पत्ति यों है—भौरिकीणां विषयो देशः—भौरिकिविधम् (भौरिकि नामवाले वर्ग-विशेषके लोगोंका देश)। ऐषुकारीणाम् विषयो देशः— ऐषुकारिभक्तम् (ऐषुकारि—बाण बनानेवाले लोगोंका देश)। इन दोनों उदाहरणोंमें क्रमशः 'विध' एवं 'भक्त' प्रत्यय हुए हैं। भौरिक्यादि तथा ऐषुकार्यादि शब्दोंसे 'विध' एवं 'भक्त' प्रत्यय होनेका नियम है। उत्कटम्—इसकी सिद्धिका नियम पहले बताया गया है, नासिकाकी निचाई

प्रयोग न हो तो केवल तम प्रत्ययका विधान है। यथा— सप्ततितम, अशीतितमः, नवतितमः इत्यादि। आदिमें संख्या लग जानेपर तो 'विंशः विंशतितमः' की भाँति दो-दो रूप होते ही हैं— जैसे एकषष्ट. एकषष्टितमः इत्यादि।

१. द्वि और त्रि शब्दोंके इकारका विकल्पसे एकार भी हो जाता है। यथा—द्वेधा, त्रेधा। द्वि और त्रि शब्दोंसे धमुञ् प्रत्यय और आदिस्वरकी वृद्धि—ये दो कार्य और भी होते हैं। यथा—द्वैधम्, त्रैधम्। २. था, धा, त्र, तस्, कृत्वस् आदि प्रत्यय जिन शब्दोंके अन्तमें लगते हैं, वे तद्धितान्त अव्यय माने जाते हैं। ३. द्वि, त्रि और चतुर् शब्दोंसे कृत्वस् न होकर केवल 'सुच्' प्रत्यय होता है। इसमें केवल 'स' रहता है और 'उ'कार तथा 'च'कारकी 'इत्संज्ञा' हो जाती है। प्रयोगमें स-कारका विसर्ग हो जाता है। चतुर्-शब्दके आगे सका लोप होता है और 'र' का विसर्ग हो जाता है। इस प्रकार क्रमशः द्विः त्रिः चतुः—ये रूप बनते हैं। ये तीनों अव्यय हैं।

व्यक्त करनेके लिये 'अव' उपसर्गसे 'टीट,' 'नाट' और 'भ्रट' प्रत्यय होते हैं। तथा नि उपसर्गसे 'विड' और 'बिरीस' प्रत्यय होते हैं। इसके सिवा निसे 'इन' और 'पिट' प्रत्यय भी होते हैं। इन-प्रत्यय परे होनेपर निके स्थानमें चिक् आदेश हो जाता है और पिट-प्रत्यय परे होनेपर 'नि'के स्थानमें 'चि' आदेश होता है। मूलोक्त उदाहरण इस प्रकार हैं—अवटीटः, अवनाटः (अवभ्रटः)=नीची नाकवाला पुरुष। निविडम् (नीची नाक), निबिरीसम्, चिकिनम्, चिपिटम्, चिक्कम्, इन सबका अर्थ नीची नाक है। जिसकी आँखसे पानी आता हो, उसको 'चिल्ल' और 'पिल्ल' कहते हैं। ल प्रत्यय है और क्लिन्न-शब्द प्रकृति है—जिसके स्थानमें चिल्ल और पिल्ल आदेश हुए हैं। पैदा करनेवाले खेतके अर्थमें पैदावार-वाचक शब्दसे शाकट और शाकिन प्रत्यय होते हैं। जैसे 'इक्षुशाकटम्' 'इक्षुशाकिनम्'। उसके द्वारा विख्यात है, इस अर्थमें चञ्चु और चण प्रत्यय होते हैं। जो विद्यासे विख्यात है, उसे 'विद्याचण' और 'विद्याचञ्चु' कहते हैं। बहु आदि शब्दोंसे 'तिथ' प्रत्यय होता है, पूरण अर्थमें। बहूनां पूरणम् इति=बहुतिथम्। शृङ्गिण-शब्द पर्वतका वाचक है, इसे निपात-सिद्ध बताया जा चुका है। ऐश्वर्य-वाचक स्व-शब्दसे आमिन् प्रत्यय होता है—स्व+आमिन्= स्वामी (अधीश्वर या मालिक)। 'रूप' शब्दसे आहत और प्रशंसा अर्थमें 'य' प्रत्यय होता है। यथा विषमम्, आहतं वा रूपमस्यास्तीति—रूप्यः कार्षापणः (खराब पैसा), रूप्यम् आभूषणम् (खराब आभूषण) इत्यादि। 'उप' और 'अधि'से त्यक प्रत्यय होता है, क्रमशः समीप एवं ऊँचाईकी भूमिका बोधक होनेपर। पर्वतके पासकी भूमिको 'उपत्यका' (तराई) कहते हैं और पर्वतके ऊपरकी (ऊँची) भूमिको 'अधित्यका' कहते हैं। 'वात' शब्दसे 'ऊल' प्रत्यय होता है, असहन एवं समूहके अर्थमें। वात न सहते वातूलः। जो हवा न सह सके, वह 'वातूल' है। वात+ऊल, अलोप= वातूलः। वातके समूह (आँधी)को भी 'वातूल' कहते हैं। 'कुतू' शब्दसे 'डुप' प्रत्यय होता है, डकार इत्संज्ञक, टिलोप। ह्रस्वा कुतूः कुतुपः (चमड़ेका तैलपात्र—कुप्पी)। बलं न सहते (बल नहीं सहता)—इस अर्थमें बल-शब्दसे ऊल-प्रत्यय होता है। बल+ऊल=बलूलः। हिमं न सहते (हिमको नहीं सहता) इस अर्थमें हिमसे एलु प्रत्यय होता है। हिम+ एलु=हिमेलुः। अनुकम्पा-अर्थमें मनुष्यके नामवाचक शब्दसे इक एवं अड आदि प्रत्यय होते हैं तथा स्वरादि प्रत्यय परे रहनेपर पूर्ववर्ती शब्दके द्वितीय स्वरसे आगेके सभी अक्षर लुप्त हो जाते हैं। यदि द्वितीय स्वर सन्धि-अक्षर हो तो उसका भी लोप हो जाता है। इन सब नियमोंके अनुसार ये दो उदाहरण हैं—अनुकम्पित. कहोडः=कहिकः। अनुकम्पितः उपेन्द्रदत्तः=उपडः। 'ऊर्णायु.'का अर्थ है ऊनवाला जीव (भेड़ आदि) अथवा ऊनी कम्बल आदि। 'ऊर्णा'से युस् प्रत्यय होकर 'ऊर्णायुः' बना है। पर्व और मरुत् शब्दोंसे त प्रत्यय होता है। पर्व+त=पर्वत' (पहाड़)। मरुत्+त= मरुत्तः (मरुआ नामक पौधा अथवा महाराज मरुत्त)। एक शब्दसे असहाय अर्थमें आकिनिच्, कन् और इनका लुक्, ये तीनों कार्य बारी-बारीसे होते हैं। एक+आकिनिच्=एकाकी। एक+कन्=एककः। कन्का लोप होनेपर एकः। इन सबका अर्थ—अकेला, असहाय है। चर्मण्वती एक नदीका नाम है। (इसमें चर्मन् शब्दसे मतुप्, मकारको वकारादेश, न-लोपका अभाव और णत्व आदि कार्य निपातसिद्ध हैं। स्त्रीलिङ्गबोधक ङीप् प्रत्यय हुआ है)। 'ज्योत्स्ना' और 'तमिस्रा' निपात-सिद्ध हैं, यह बात पहलेके प्रसङ्गमें कही गयी है। इसी प्रकार अष्ठीवत्, कक्षीवत्, रुमण्वत्, आसन्दीवत् तथा चक्रीवत्—ये शब्द भी निपातसिद्ध हैं। यथा— आसन्दीवान् ग्रामः, अष्ठीवान् नाम ऋषिः, चक्रीवान् नाम राजा, कक्षीवान् नाम ऋषिः, रुमण्वान् नाम पर्वतः। तूष्णीं शब्दसे काम् प्रत्यय होता है, अकच्के प्रसङ्गमें। तूष्णीकाम् आस्ते (चुप बैठता है)। मित् होनेसे अन्तिम स्वरके बाद होता है। तिङन्त, अव्यय और सर्वनामसे टिके पहले अकच् होता है, चकार इत्संज्ञक है। इस नियमके अनुसार [illegible] इस तिङन्त पदके स्थानमें [illegible] (बोलता है) रूप बनता है॥ ६६-७०॥

> कंव कम्भश्च [illegible]।
> कन्त. [illegible] ॥७१॥
> शन्ति शन्तु' [illegible]।

कम् और शम्—ये मकारान्त अव्यय हैं। [illegible] जल और सुख है, [illegible] सुख है। [illegible] प्रत्यय होते हैं—व, भ, युस्, ति, तु, त और यस्, [illegible] और यस्का सकार इत्संज्ञक है। [illegible] इस प्रकार हैं—कंव, कम्भः, कंयुः, [illegible] कंयः। शंवः, शम्भः, शंयुः, शन्ति, शन्तुः, [illegible] अहम्—यह मकारान्त अव्यय [illegible] है और शुभम्—यह मकारान्त [illegible] है। इनसे युस् प्रत्यय होता है, [illegible]

अहंयुः (अहंकारवान्), शुभम्+युः=शुभंयुः (शुभयुक्त पुरुष) ॥ ७१ ॥

भवति बभूव भविता भविष्यति भवत्वभवद्भवेच्चापि ॥७२॥
भूयादभूदभविष्यल्लादावेतानि रूपाणि ।
अत्ति जघासात्तात्स्यत्यत्त्वादददद्यादद्घिरघसदात्स्यत् ॥७३॥

(अब तिङन्तप्रकरण प्रारम्भ करके कुछ धातुओंके रूपोंका दिग्दर्शन कराते हैं। वैयाकरणोंने दस प्रकारके धातु-समुदाय माने हैं, उन्हें 'नवगणी या दसगणी'के नामसे जाना जाता है। उनके नाम हैं—भ्वादि, अदादि, जुहोत्यादि, दिवादि, स्वादि, तुदादि, रुधादि, तनादि, क्र्यादि तथा चुरादि। भ्वादिगणके सभी धातुओंके रूप प्रायः एक प्रकार एवं एक शैलीके होते हैं, दूसरे-दूसरे गणोंके धातु भी अपने-अपने ढंगमें एक ही तरहके होते हैं। यहाँ सभी गणोंके एक-एक धातुके नौ लकारोंमें एक-एक रूप दिया जाता है। शेष धातु और उनके रूपोंका ज्ञान विद्वान् गुरुसे प्राप्त करना चाहिये।) 'भू' धातुके लट् लकारमें 'भवति भवतः भवन्ति' इत्यादि रूप बनते हैं। लिट् लकारमें 'बभूव बभूवतुः बभूवुः' इत्यादि, लुट्में 'भविता भवितारौ भवितारः' इत्यादि, लृट्में 'भविष्यति भविष्यतः भविष्यन्ति' इत्यादि, लोट्में 'भवतु भवतात् भवताद्, भवताम् भवन्तु' इत्यादि, लङ् लकारमे 'अभवत् अभवताम् अभवन्' इत्यादि, विधिलिङ्में 'भवेत् भवेताम् भवेयुः' इत्यादि, आशिष् लिङ्में 'भूयात् भूयास्ताम् भूयासुः' इत्यादि, लुङ्में 'अभूत् अभूताम् अभूवन्' इत्यादि तथा लृङ् लकारमें 'अभविष्यत् अभविष्यताम् अभविष्यन्' इत्यादि—ये सब रूप होते हैं। 'भू' धातुका अर्थ सत्ता है, भवतिका अर्थ 'होता है'—ऐसा किया जाता है। अब अदादि गणके 'अद्' धातुका पूर्ववत् प्रत्येक लकारमें एक-एक रूप दिया जाता है, 'अद्' धातु भक्षण अर्थमें प्रयुक्त होता है। अत्ति। जघास। अत्ता। अत्स्यति। अत्तु। आदत्। अद्यात्। अद्यात्। अघसत्। आत्स्यत् ॥ ७२-७३ ॥

जुहोति जुहाव जुहवाञ्चकार होता होष्यति जुहोतु ।
अजुहोज्जुहुयाद्धूयादहौषीदहोष्यद्दीव्यति ।
दिदेव देविता देविष्यति दीव्यतु चादीव्यद्दीव्येद्दीव्याद्वै ७४
अदेवीददेविष्यत्सुनोति सुषाव सोता सोष्यति वै ।
सुनोत्वसुनोत्सुनुयात्सूयादसावीदसोष्यत्तुदति च ॥७५॥
तुतोद तोत्ता तोत्स्यति तुदत्वतुदत्तुदेत्तुद्याद्धि ।
अतौत्सीदतोत्स्यद्रिति च रुणद्धि रुरोध रोद्धा रोत्स्यति वै ७६
रुणद्ध्वरुणद्रुन्ध्याद्रुध्यादरौत्सीदरोत्स्यच्च ।
तनोति ततान तनिता तनिष्यति तनोत्वतनोत्तनुयाद्धि ७७
तन्यादतनीच्चातानीदतनिष्यत्क्रीणाति चिक्राय क्रेता
क्रेष्यति क्रीणात्विति च। अक्रीणात्क्रीणीयात्क्रीयादक्रैषीद्-
क्रेष्यच्चोरयति चोरयामास चोरयिता चोरयिष्यति
चोरयत्वचोरयच्चोरयेच्चोर्यादचूचुरदचोरयिष्यदित्येवं दश
वै गणाः ॥ ७८ ॥

जुहोत्यादि गणमें 'हु' धातु प्रधान है। इसका प्रयोग अग्निमें आहुति डालनेके अर्थमें या देवताको तृप्त करनेके अर्थमें होता है। इसका प्रत्येक लकारमे रूप इस प्रकार है—जुहोति। जुहाव, जुहवाञ्चकार, जुहवाम्बभूव, जुहवामास। होता। होष्यति। जुहोतु। अजुहोत्। जुहुयात्। हूयात्। अहौषीत्। अहोष्यत्। दिवादि गणमें 'दिव्' धातु प्रधान है। इसके अनेक अर्थ हैं—क्रीडा, विजयकी इच्छा, व्यवहार, द्युति, स्तुति, मोद, मद, स्वप्न, कान्ति और गति। इसके रूप पूर्ववत् विभिन्न लकारोंमें इस प्रकार हैं—दीव्यति। दिदेव। देविता। देविष्यति। दीव्यतु। अदीव्यत्। दीव्येत्। दीव्यात्। अदेवीत्। अदेविष्यत्। स्वादिगणमें 'सु' धातु प्रधान है। यह मूलतः षुञ् धातुके नामसे प्रसिद्ध है। इसका अर्थ है अभिषव अर्थात् नहलाना, रस निचोड़ना, नहाना एवं सोमरस निकालना। रूप इस प्रकार हैं—सुनोति। सुषाव। सोता। सोष्यति। सुनोतु। असुनोत्। सुनुयात्। सूयात्। असावीत्। असोष्यत्। ये परस्मैपदके रूप हैं; आत्मनेपदमे सुनुते, 'सुषुवे' इत्यादि रूप होते हैं। तुदादिगणमें 'तुद्' धातु प्रधान है, जिसका अर्थ है पीड़ा देना। रूप इस प्रकार हैं—तुदति। तुतोद। तोत्ता। तोत्स्यति। तुदतु। अतुदत्। तुदेत्। तुद्यात्। अतौत्सीत्। अतोत्स्यत्। रुधादिगणमें 'रुध्'[1] धातु प्रधान है, जिसका अर्थ है—रूँधना, बाड़ लगाना, घेरा डालना या रोकना। रूप इस प्रकार हैं—रुणद्धि। रुरोध। रोद्धा। रोत्स्यति। रुणद्धु। अरुणत्। रुन्ध्यात्। रुद्ध्यात्। अरौत्सीत्। अरोत्स्यत्। तनादिगणमें 'तन्' धातु प्रधान है। इसका अर्थ है विस्तार करना, फैलाना; रूप इस प्रकार हैं—तनोति। ततान। तनिता। तनिष्यति। तनोतु।

---

१. यह उभयपदी धातु है। मूलमें केवल परस्मैपदीय रूप दिया गया है। इसका आत्मनेपदीय रूप इस प्रकार है—रुन्धे। रुरुधे। रोद्धा। रोत्स्यते। रुन्धाम्। अरुन्ध। रुन्धीत। रोत्सीष्ट। अरुद्ध। अरोत्स्यत।

अतनोत् । तनुयात् । तन्यात् । अतनीत्, अतानीत् । अतनिष्यत् । क्र्यादिमें क्री धातु प्रधान है—जिसका अर्थ है खरीदना, एक द्रव्य देकर दूसरा द्रव्य लेना । रूप इस प्रकार हैं—क्रीणाति । चिक्राय । क्रेता । क्रेष्यति । क्रीणातु । अक्रीणात् । क्रीणीयात् । क्रीयात् । अक्रैषीत्[२] । अक्रेष्यत् । चुरादिगणमें चुर् धातु प्रधान है, जिसका अर्थ है चुराना; रूप इस प्रकार हैं—चोरयति । चोरयामास, चोरयाञ्चकार, चोरयाम्बभूव । चोरयिता । चोरयिष्यति । चोरयतु । अचोरयत् । चोरयेत् । चोर्यात् । अचूचुरत् । अचोरयिष्यत्[३] । इस प्रकार ये धातुओंके दस गण माने गये हैं ॥७४—७८॥

प्रयोजके भावयति सनीच्छायां बुभूषति ।
क्रियासमभिहारे तु पण्डितो बोभूयते मुने ॥७९॥

प्रयोजकके व्यापारमें प्रत्येक धातुसे णिच् प्रत्यय होता है । 'च'कार और 'ण'कार इत्संज्ञक हैं । णिच् प्रत्यय परे रहनेपर स्वरान्त अङ्गकी वृद्धि होती है । भू से णिच् करनेपर भू+इ बना; फिर वृद्धि और आव् आदेश करनेपर भावि बना, उससे धातुसम्बन्धी अन्य कार्य करनेपर भावयति रूप बनता है । जो कर्ताको प्रेरणा दे, उसे प्रयोजक कहते हैं । जैसे—'चैत्रः पण्डितो भवति' । (चैत्र पण्डित होता है), 'तं मैत्रः अध्यापनादिना प्रेरयति' (उसे मैत्र पढाने आदिके द्वारा पण्डित होनेमें प्रेरणा देता है) । इस वाक्यमें चैत्र प्रयोज्य कर्ता है और मैत्र प्रयोजक कर्ता है । इस प्रयोजकके व्यापारमें ही णिच् प्रत्यय होता है; इसलिये उसीके अनुसार प्रथम, मध्यम आदि पुरुषकी व्यवस्था एवं क्रिया होती है । प्रयोज्य कर्ता प्रयोजकके व्यापारमें कर्म बन जाता है, इसलिये उसमें द्वितीया विभक्ति होती है और प्रयोजक कर्तामें प्रथमा विभक्ति । यथा—'मैत्रः चैत्रं पण्डितं भावयति (मैत्र चैत्रको पण्डित बनानेमे योग देता है) । इसी प्रकार अन्य धातुओंसे भी प्रेरणार्थक प्रत्यय होता है । यथा—'छात्रः पठति, गुरुः प्रेरयति [illegible] गुरुः छात्रं पाठयति' ([illegible] है, गुरु उसे प्रेरित करता है [illegible] पढाता है) ।

इच्छा अर्थमें 'सन्' प्रत्यय होता है [illegible] बुभूषति' (होनेकी इच्छा करता है) । इसी प्रकार [illegible] आदि अन्य धातुओंसे भी इच्छा अर्थमें [illegible] ([illegible] इच्छा करता है), जिगमिषति (जाना चाहता है)—[illegible] सन्नन्त रूप होते हैं । मुने ! क्रिया-समभिहारमें [illegible] हलादि धातुसे 'यङ्' प्रत्यय होता है । [illegible] भू-धातुसे यङ्-प्रत्यय होनेपर धातुका द्वित्व होता है । [illegible] सन् और यङ् परे रहनेपर धातुके द्वित्व होने ([illegible] जाने) का नियम है । फिर धातु-[illegible] अन्य कार्य करनेपर बोभूयते रूप बनता है । यथा—'देवदत्तः पण्डितो बोभूयते' (देवदत्त बड़ा भारी पण्डित हो रहा है) । 'बार-बार या 'अधिक' अर्थका बोध कराना ही क्रियासमभिहार कहलाता है । इस तरहके प्रयोगको यङन्त कहते हैं । पठ् और गम् आदि धातुओंसे यङ् प्रत्यय करनेपर पापठ्यते, (बार-बार या बहुत पढ़ता है) । जङ्गम्यते (बार-बार या बहुत जाता है) इत्यादि रूप होते हैं ॥७९॥

तथा यङ्लुकि विप्रेन्द्र बोभवीति च पठ्यते ।
पुत्रीयतीत्यात्मनीच्छायां तथाचारेऽपि नारद ।
अनुदात्तङितो धातोः क्रियाविनिमये तथा ॥८०॥

यङ्-प्रत्ययका लुक् (लोप होना) भी देखा जाता है । उस दशामें बोभवीति, बोभोति, पापठीति और जङ्गमीति इत्यादि रूप होते हैं । इन रूपोंको यङ्लुगन्त रूप कहते हैं । अर्थ यङन्तके ही समान होते हैं । 'आत्मनः पुत्रम् इच्छति' (अपने लिये पुत्र चाहता है) । इस वाक्यमें पुत्रकी इच्छा [illegible] होती है । ऐसे स्थलोंमें इच्छा [illegible] कर्मभूत [illegible] क्यच् प्रत्यय होता है । ककार और चकारकी इत्संज्ञा होती है । उपर्युक्त उदाहरणमें पुत्र-शब्दसे क्यच् प्रत्यय करनेपर [illegible] इस अवस्थामें पुत्रमें त्रके अकारका ई हो जाता है । फिर 'पुत्रीय' की धातुसंज्ञा करके तिङन्तके समान रूप [illegible] हैं । [illegible] 'पुत्रीयति' इत्यादि रूप होते हैं । [illegible]—अपने लिये पुत्र चाहता है । ऐसे प्रयोगको नामधातु [illegible] हैं । नारदजी ! कर्मभूत उपमानवाचक [illegible] भी क्यच् होता है । यथा—[illegible] छात्रम्' (गुरुजी छात्रके साथ [illegible] करते हैं) । [illegible] अब आत्मनेपदका प्रकरण [illegible] करते हैं । [illegible]

---

१. यह भी उभयपदीय धातु है । इसका आत्मनेपदीय रूप इस प्रकार है—तनुते । तेने । तनिता । तनिष्यते । तनुताम् । अतनुत । तन्वीत । तनिषीष्ट । अतत, अतनिष्ट । अतनिष्यत । २. इसका आत्मनेपदीय रूप इस प्रकार है—क्रीणीते । चिक्रिये । क्रेता । क्रेष्यते । क्रीणीताम् । अक्रीणीत । क्रीणीत । क्रेषीष्ट । अक्रेष्ट । अक्रेष्यत । ३. इसका आत्मनेपदीय रूप इस प्रकार है—चोरयते । चोरयाञ्चक्रे, चोरयामासे चोरयाम्बभूवे । चोरयिता । चोरयिष्यते । चोरयताम् । अचोरयत । चोरयेत । चोरयिषीष्ट । अचूचुरत । अचोरयिष्यत ।

अनुदात्त स्वर और ङकारकी इत्संज्ञा होती है, उनसे आत्मनेपदके प्रत्यय होते हैं । यथा—एधते, वर्धते इत्यादि । ये अनुदात्तेत् हैं । त्रैङ् पालने—यह ङित् धातु है, इसके केवल आत्मनेपदमें 'त्रायते' इत्यादि रूप होते हैं । जहाँ क्रियाका विनिमय व्यक्त होता हो, वहाँ भी आत्मनेपद होता है । यथा—व्यतिलुनीते (दूसरेके योग्य लवनरूप कार्य दूसरा करता है) ॥ ८० ॥

निविशादेस्तथा विप्र विजानीयात्मनेपदम् ।
परस्मैपदमाख्यातं शेषात्कर्तरि शाब्दिकैः ॥८१॥

विप्रवर ! निपूर्वक 'विश्' एवं वि और परापूर्वक 'जि' इत्यादि धातुओंमें भी आत्मनेपद ही जानो । यथा—निविशते, विजयते, पराजयते इत्यादि । भाव और कर्ममें प्रत्यय होनेपर भी आत्मनेपद ही होता है । आत्मनेपदके जितने निमित्त हैं, उन्हें छोड़कर शेष धातुओंसे कर्तामें परस्मैपद होता है—ऐसा वैयाकरणोंका कथन है ॥ ८१ ॥

ञित्स्वरितेतश्च उभे यक्च स्याद्भावकर्मणोः ।

जिन धातुओंमें 'स्वरित' और 'ञ्'की इत्संज्ञा हुई हो, उनसे परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों होते हैं । यथा—'खनति, खनते; श्रयति, श्रयते' इत्यादि ।

(अब भाव-कर्म-प्रकरण आरम्भ करते हैं—) भाव और कर्ममें धातुसे यक् प्रत्यय होता है । भावमें प्रत्यय होनेपर क्रियामें केवल औत्सर्गिक एकवचन होता है और सदा प्रथम पुरुषके ही एकवचनका रूप लिया जाता है । उस दशामें कर्ता तृतीयान्त होता है । भू धातुसे भावमें प्रत्यय करनेपर 'भूयते' रूप होता है । वाक्यमें उसका प्रयोग इस प्रकार है—'त्वया मया अन्यैश्च भूयते' । सकर्मक धातुसे कर्ममें प्रत्यय होनेपर कर्म उक्त हो जाता है, अतः उसमें प्रथमा विभक्ति होती है और अनुक्त कर्तामें तृतीया विभक्तिका प्रयोग होता है । कर्मके अनुसार ही क्रियामें पुरुष और वचनकी व्यवस्था होती है । यथा—चैत्रः आनन्दमनुभवति इति कर्मणि प्रत्यये चैत्रेणानन्दोऽनुभूयते, (चैत्रसे आनन्दका अनुभव किया जाता या आनन्द भोगा जाता है) चैत्रस्त्वामनुभवति, चैत्रेण त्वमनुभूयसे, (चैत्रसे तुम अनुभव किये जाते हो) चैत्रो मामनुभवति, चैत्रेणाहमनुभूये (चैत्रसे मैं अनुभव किया जाता हूँ) इत्यादि उदाहरण भावकर्मके हैं ।

सौकर्यातिशयं चैव यदा द्योतयितुं मुने ॥८२॥
विवक्ष्यते न व्यापारो लक्ष्ये कर्तुस्तदापरे ।
लभन्ते कर्तृतां पश्य पच्यते ह्योदनः स्वयम् ॥८३॥
साध्वसिश्छिनत्त्येवं स्थाली पचति वै मुने ।
धातोः सकर्मकात्कर्तृकर्मणोरपि प्रत्ययाः ॥८४॥

मुने ! जब अतिशय सौकर्य प्रकाशित करनेके लिये लक्ष्यमें कर्ताके व्यापारकी विवक्षा नहीं रह जाती, तब कर्म और करण आदि दूसरे कारक ही कर्तृभावको प्राप्त होते हैं । यथा—चैत्रो वह्निना स्थाल्यामोदनं पचति (चैत्र आगसे बटलोईमें भात पकाता है)—इस वाक्यमें जब चैत्रके कर्तृत्वकी विवक्षा न रहे और करण आदिके कर्तृत्वकी विवक्षा हो जाय तो वे ही कर्ता हो जाते हैं और तदनुकूल क्रिया होती है । यथा—'वह्निः पचति' (आग पकाती है) । यहाँ करण ही कर्तारूपमें प्रयुक्त हुआ है । 'स्थाली पचति' (बटलोई पकाती है)—यहाँ अधिकरण ही कर्ताके रूपमें प्रयुक्त हुआ है । 'ओदनः स्वयं पच्यते' (भात स्वयं पकता है)—यहाँ कर्म ही कर्तारूपमें प्रयुक्त हुआ है । जब कर्म ही कर्तारूपमें प्रयुक्त हो तो कर्तामें लकार होता है; परंतु कर्मवद्भाव होनेसे यक् और आत्मनेपद आदि ही होते हैं । अतः 'पचति' न होकर 'पच्यते' रूप होता है । ऐसे प्रयोगको कर्मकर्तृप्रकरणके अन्तर्गत मानते हैं । दूसरा उदाहरण इस प्रकार है । 'असिना साधु छिनत्ति' (तलवारसे अच्छी तरह काटता है)—इस वाक्यमें उपर्युक्त नियमानुसार करणमें कर्तृत्वकी विवक्षा होनेपर ऐसा वाक्य बनेगा—साधु असिश्छिनत्ति (तलवार अच्छा काटती है) । मुने ! सकर्मक धातु भी कर्मकर्तामें अकर्मक हो जाता है, अतः उससे भाव तथा कर्तामें भी लकार होता है । यथा भावे—पच्यते ओदनेन । कर्तरि—पच्यते ओदनः । सम्प्रदान और अपादान कारकोंमें कर्तृत्वकी विवक्षा कभी नहीं की जाती; क्योंकि यह अनुभवके विरुद्ध है । सामान्य स्थितिमें सकर्मक धातुसे 'कर्ता' और 'कर्म' में प्रत्यय होते हैं ॥ ८२—८४ ॥

तस्माद् वाकर्मकाद्विप्र भावे कर्तरि कीर्तिताः ।
फलव्यापारयोरेकनिष्ठतायामकर्मकः ॥८५॥
धातुस्तयोर्धर्मिभेदे सकर्मक उदाहृतः ।
गौणे कर्मणि दुह्यादेः प्रधाने नीहृकृष्वहाम् ॥८६॥
बुद्धिभक्षार्थयोः शब्दकर्मकाणां निजेच्छया ।
प्रयोज्यकर्मण्यन्येषां ण्यन्तानां लादयो मताः ॥८७॥

विप्रवर ! वही धातु यदि अकर्मक हो तो उससे 'भाव' और 'कर्ता' में प्रत्यय कहे गये हैं ।

सभी धातुओंके फल और व्यापार—ये दो अर्थ हैं । ये दोनों जहाँ एकमात्र कर्तामें ही मौजूद हों, उन धातुओंको

अकर्मक कहते हैं। जैसे—भू-धातुका अर्थ सत्ता है। सत्ताका तात्पर्य है—आत्मधारणानुकूल व्यापार। इसमें आत्मधारणरूप फल और तदनुकूल व्यापार दोनों केवल कर्तामें ही स्थित हैं; अतः भू-धातु अकर्मक है।

जहाँ फल और व्यापार दोनों भिन्न-भिन्न धर्मोंमें स्थित हों, वहाँ धातुको सकर्मक माना गया है। जैसे—'पच्' धातुका अर्थ है—विक्लित्त्यनुकूल व्यापार (चावल आदिको गलानेके अनुरूप प्रयत्न)। इसमें विक्लित्ति (गलना) यह फल है, जो चावलमें होता है और इसके अनुकूल जो चूल्हेमें आग जलाने आदिका व्यापार है, वह कर्तामें है; अतः 'पच्' धातु सकर्मक हुआ। 'दुह' आदि धातुओंके दो कर्म होते हैं। यथा—'गां दोग्धि पयः' (गायसे दूध दुहता है)—इसमें गाय गौण कर्म है और दूध प्रधान कर्म। दुह आदि धातुओंके गौण कर्ममें ही प्रत्यय होता है। यथा—'गौर्दुह्यते पयः; बलिर्याच्यते वसुधाम्' इत्यादि। नी, हृ, कृष् और वह्—इन चार धातुओंके प्रधान कर्ममें प्रत्यय होता है। यथा—'अजा ग्रामं नयति'—इस वाक्यमें अजा प्रधान कर्म और ग्राम गौण कर्म है। प्रधान कर्ममें प्रत्यय होनेपर वाक्यका स्वरूप इस प्रकार होगा—अजा ग्रामं नीयते। ज्ञानार्थक और भक्षणार्थक धातुओंके एवं शब्दकर्मक धातुओंके ण्यन्त होनेपर उनसे प्रधान या अप्रधान किसी भी कर्ममें अपनी इच्छाके अनुसार प्रत्यय कर सकते हैं। यथा—बोध्यते माणवकं धर्मः, माणवको धर्मम् इति वा। अन्य गत्यर्थक एवं अकर्मक धातुओंके ण्यन्त होनेपर उनके प्रयोज्य कर्ममें लकार आदि प्रत्यय माने गये हैं। यथा—मासमास्यते माणवकः ॥ ८५-८७ ॥

> फलव्यापारयोर्धातुराश्रये तु तिङः स्मृताः।
> फले प्रधानं व्यापारस्तिङर्थस्तु विशेषणम् ॥८८॥

धातु फल और व्यापाररूप अर्थोंका बोधक होता है। जैसे—भू-धातु आत्मधारणरूप फल और तदनुकूल व्यापारका बोधक है। फल और व्यापार दोनोंका जो आश्रय है, उसमें अर्थात् कर्ता एवं कर्ममें (तथा भावमें भी) तिङ्-प्रत्यय होते हैं। फलमें व्यापारकी ही प्रधानता है, तिङर्थरूप जो फल है, वह उस व्यापारका विशेषण होता है। जैसे—'पचति' इस क्रियाद्वारा चावल आदिके गलनेका प्रतिपादन होता है। यहाँ विक्लित्तिरूप फलके अनुकूल जो अग्निप्रज्वालन और फूत्कारादि व्यापार हैं, उनके आश्रयभूत कर्तामें प्रत्यय हुआ है। 'ओदनः पच्यते' इत्यादिमें फलाश्रयभूत कर्ममें तिङ्-प्रत्यय होनेके कारण ओदनमें प्रथमा विभक्ति है ॥ ८८ ॥

> एधितव्यमेधनीयमिति कृत्ये निदर्शनम्।
> भावे कर्मणि कृत्याः स्युः कृतः कर्तरि कीर्तिताः ॥८९॥
> कर्ता कारक इत्याद्या भूते भूतादि कीर्तितम्।
> गम्यादि गम्ये निर्दिष्टं शेषमद्यतने मतम् ॥९०॥

(अब कृदन्त-प्रकरण प्रारम्भ करते हैं—कृत् प्रत्यय जिसके अन्तमें हो, वह कृदन्त है। ण्वुल्, तृच्, अच् आदि प्रत्यय 'कृत्' कहलाते हैं। कृत् प्रत्ययोंमेंसे जो कृत्य, क्त और खलर्थ प्रत्यय हैं, वे केवल भाव और कर्ममें ही होते हैं। तव्यत्, तव्य, अनीयर्, केलिमर् आदि प्रत्यय कृत्य कहलाते हैं। घञ् आदि प्रत्यय भाव, करण और अधिकरणमें होते हैं। सामान्यतः कृत् प्रत्यय 'कर्ता' में प्रयुक्त होते हैं। यहाँ पहले कृत्य प्रत्ययोंके उदाहरण देते हैं—) एधितव्यम् और एधनीयम्—ये कृत्य प्रत्ययके उदाहरण हैं। 'कृत्य' भाव और कर्ममें तथा 'कृत्' कर्तामें बताये गये हैं। त्वया मया अन्यैश्च एधितव्यम्, यहाँ भावमें तव्य और अनीयर् प्रत्यय हुए हैं। कर्ममें प्रत्ययका उदाहरण इस प्रकार समझना चाहिये। 'छात्रेण पुस्तकं पठनीयम्' 'ग्रन्थः पठितव्यः' इत्यादि कर्ममें प्रत्यय होनेसे कर्तामें तृतीया विभक्ति और कर्ममें प्रथमा विभक्ति हुई है। कर्ता, कारकः इत्यादि 'कृत्' प्रत्ययके उदाहरण हैं। यथा—'रामः कर्ता' 'कृष्णः कारकः' यहाँ कर्तामें 'तृच्' और 'ण्वुल्' प्रत्यय हुए हैं। वुके स्थानमें अक आदेश होता है। ण्, ल्, च् आदिकी इत्संज्ञा होती है। 'क्त' और 'क्तवतु' ये प्रत्यय भूतकालमें होते हैं। यथा—भूत, भूतवान् इत्यादि; और 'गम्य' आदि शब्द भविष्यत् अर्थमें निर्दिष्ट हुए हैं। शेष शब्द वर्तमान कालमें प्रयुक्त होने योग्य माने गये हैं ॥ ८९-९० ॥

> अधिस्त्र्यव्ययीभावे यथाशक्ति च कीर्तितम्।
> रामाश्रितस्तत्पुरुषे धान्यार्थो यूपदारु च ॥९१॥
> व्याघ्रभी राजपुरुषोऽक्षशौण्डो द्विगुरुच्यते।
> पञ्चगवं दशग्रामी त्रिफलेति तु [illegible] ॥९२॥

अब समासका प्रकरण आरम्भ करते हैं—[illegible] प्रकारके माने गये हैं—अव्ययीभाव, [illegible] और द्वन्द्व। 'तत्पुरुष' का एक [illegible]

---

१. दुह्, याच्, पच्, दण्ड्, रुध्, प्रच्छ्, चि, ब्रू, शास्, जि, मथ्, मुष्—ये दुह् आदिके अन्तर्गत हैं, इनके दो कर्म होते हैं। इसी प्रकार नी, हृ, कृष् और वह्—इनके भी दो कर्म होते हैं।

और कर्मधारयका एक विशिष्ट भेद 'द्विगु' है। भूतपूर्वः इत्यादि स्थलोंमें जो समास है, उसका कोई नाम नहीं निर्देश किया जा सकता। अतः उसे केवल समासमात्र जानना चाहिये। जिसमें प्रथम पद अव्यय हो, वह समास अव्ययीभाव होता है। अथवा अव्ययीभावके अधिकारमें जो समासविधायक वचन हैं, उनके अनुसार जहाँ समास हुआ है, वह अव्ययीभाव समास है। अव्ययीभाव अव्ययसंज्ञक होता है। अतः सभी विभक्तियोंमें उसका समान रूप है। अकारान्त अव्ययीभावमें विभक्तियोंका 'अम्' आदेश हो जाता है, परंतु पञ्चमी विभक्तिको छोड़कर ऐसा होता है। तृतीया और सप्तमीमें भी अम्भाव वैकल्पिक है। यथा अपदिशम्, अपदिशे इत्यादि। अधिस्त्रि और यथाशक्ति आदि पद अव्ययीभाव समासके अन्तर्गत बताये गये हैं। द्वितीयान्तसे लेकर सप्तम्यन्त तकके पद सुबन्तके साथ समस्त होते हैं और वह समास तत्पुरुष होता है। तत्पुरुषके उदाहरण इस प्रकार हैं—रामम्+आश्रितः=रामाश्रितः। धान्येन+अर्थः=धान्यार्थः। यूपाय+दारु=यूपदारु। व्याघ्रात्+भीः=व्याघ्रभीः। राज्ञः+पुरुषः=राजपुरुषः। अक्षेषु+शौण्डः=अक्षशौण्डः इत्यादि। जिसमें संख्यावाचक शब्द पूर्वमें हो, वह 'द्विगु' कहा गया है। पञ्चाना गवा समाहारः पञ्चगवम्। दशानां ग्रामाणा समाहारः दशग्रामी (यहाँ स्त्रीलिङ्गसूचक 'ङीप्' प्रत्यय हुआ है)। त्रयाणा फलाना समाहारः त्रिफला। (इसमें स्त्रीत्वसूचक 'टाप्' प्रत्यय हुआ है।) त्रिफला-शब्द आँवले, हर्रे और बहेड़ेके लिये रूढ (प्रसिद्ध) है ॥ ९१-९२ ॥

> नीलोत्पलं महापष्ठी तुल्यार्थे कर्मधारयः।
> अब्राह्मणो नञि प्रोक्तः कुम्भकारादिकः कृतः ॥९३॥

समानाधिकरण तत्पुरुषकी 'कर्मधारय' संज्ञा होती है। उसके दोनों पद प्रायः विशेष्य-विशेषण होते हैं। विशेषणवाचक शब्दका प्रयोग प्रायः पहले होता है। नीलं च तत् उत्पलं च =नीलोत्पलम्, महती चासौ षष्ठी च=महाषष्ठी। 'जहाँ 'न' शब्द किसी सुबन्तके साथ समस्त होता है, वह 'नञ् तत्पुरुष' कहलाता है। न ब्राह्मणः अब्राह्मणः इत्यादि। कुम्भकार आदि पदोंमें 'उपपद तत्पुरुष' समास है ॥ ९३ ॥

> अन्यार्थे तु बहुव्रीहिर्ग्राम. प्राप्तोदको द्विज।
> पञ्चगू रूपवद्भार्यो मध्याह्न. ससुतादिकः ॥९४॥

विप्रवर ! जहाँ अन्य अर्थकी प्रधानता हो, उस समासकी बहुव्रीहिमें गणना होती है। प्राप्तम् उदकं यं स प्राप्तोदको ग्रामः (जहाँ जल पहुँचा हो, वह ग्राम 'प्राप्तोदक' है)। इसी तरह—पञ्च गावो यस्य स पञ्चगुः। रूपवती भार्या यस्य स रूपवद्भार्यः। मध्याह्नः-पद तत्पुरुष समास है। 'सुतेन सह आगतः ससुतः' आदि पद बहुव्रीहि समासके अन्तर्गत हैं ॥ ९४ ॥

> समुच्चये गुरुं चेशं भजस्वान्वाचये त्वट।
> भिक्षामानय गां चापि वाक्यमेवानयोर्भवेत् ॥९५॥

चार्थमें द्वन्द्व समास होता है। 'च' के चार अर्थ हैं—समुच्चय, अन्वाचय, इतरेतरयोग और समाहार। परस्पर निरपेक्ष अनेक पदोंका एकमें अन्वय होना 'समुच्चय' कहलाता है। समुच्चयमें 'ईशं गुरुं च भजस्व' यह वाक्य है। इसमें ईश और गुरु दोनों स्वतन्त्ररूपसे 'भज' इस क्रियापदसे अन्वित होते हैं। ईश-पदका क्रियाके साथ अन्वय हो जानेपर पुनः क्रियापदकी आवृत्ति करके गुरुपदका भी उसमे अन्वय होता है। यही उन दोनोंकी निरपेक्षता है। समास साकाङ्क्ष पदोंमें होता है। अतः समुच्चय-वाक्यमें द्वन्द्व समास नहीं होता है। जहाँ एक प्रधान और दूसरा अप्रधानरूपसे अन्वित हो, वहाँ अन्वाचय होता है—जैसे-'भिक्षामट गाञ्चानय' इस वाक्यमें भिक्षाके लिये गमन प्रधान है और गौका लाना अप्रधान या आनुषङ्गिक कार्य है। अतः एकार्थीभावरूप सामर्थ्य न होनेसे अन्वाचयमें भी द्वन्द्व समास नहीं होता। समुच्चय और अन्वाचयमें वाक्यमात्रका ही प्रयोग होता है ॥ ९५ ॥

> इतरेतरयोगे तु रामकृष्णौ समाहृतौ।
> रामकृष्णं द्विज द्वौ द्वौ ब्रह्म चैकमुपास्यते ॥९६॥

उद्भूत अवयव-भेद-समूहरूप परस्पर अपेक्षा रखनेवाले सम्मिलित पदोंका एकधर्मावच्छिन्नमें अन्वय होना इतरेतरयोग कहलाता है। अतः इसमे सामर्थ्य होनेके कारण समास होता है—यथा 'रामकृष्णौ भज' इस वाक्यमें रामश्च-कृष्णश्च=रामकृष्णौ इस प्रकार समास है। इतरेतरयोग द्वन्द्वमें समस्यमान पदार्थगत संख्याका समुदायमें आरोप होता है। इसलिये वहाँ द्विवचनान्त या बहुवचनान्तका प्रयोग देखा जाता है। समूहको समाहार कहते हैं। वहाँ अवयवगत भेद तिरोहित होता है। यथा रामश्च कृष्णश्चेत्यनयोः समाहारः रामकृष्णम्। समाहार द्वन्द्वमे अवयवगत संख्या समुदायमें आरोपित नहीं होती। इसलिये एकत्व-बुद्धिसे एकवचनान्तका प्रयोग किया

जाता है। समाहारमें नपुंसकलिङ्ग होता है। विप्रवर! इतरेतरयोगमें राम और कृष्ण दोनों दो हैं और समाहारमें उनकी एकता है, इसलिये कि समाहारमें उन्हें एक मानकर उनकी उपासना की जाती है ॥ १६ ॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने द्वितीयपादे व्याकरणनिरूपणं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

निरुक्त-वर्णन

सनन्दनजी कहते हैं—अब मैं निरुक्तका वर्णन करता हूँ, जो वेदका कर्णरूप उत्तम अङ्ग है। यह वैदिक धातुरूप है, इसे पाँच प्रकारका बताया गया है ॥१॥ उसमें कहीं वर्णका आगम होता है, कहीं वर्णका विपर्यय होता है, कहीं वर्णोंका विकार होता है और कहीं वर्णका नाश माना गया है ॥२॥ नारद! जहाँ वर्णोंके विकार अथवा नाशद्वारा जो धातुके साथ विशेष अर्थका प्रकाशक संयोग होता है, वह पाँचवाँ उत्तम योग कहा गया है ॥३॥ वर्णके आगमसे 'हंसः'[1] पदकी सिद्धि होती है। वर्णोंके विपर्यय (अदल-बदल) से 'सिंहः'[2] पद सिद्ध होता है। वर्णविकारसे 'गूढोत्मा'[3] की सिद्धि होती है। वर्णनाशसे 'पृषोदरः'[4] सिद्ध होता है ॥४॥ 'भ्रमर'[5] आदि शब्दोंमें पाँचवाँ योग समझना चाहिये। वेदोंमें लौकिक नियमोंका विकल्प या विपर्यय कहा गया है। यहाँ 'पुनर्वसु'[6] पदको उदाहरणके रूपमें रखना चाहिये ॥५॥ 'नभस्वत्' में 'वत्' प्रत्यय परे रहते भसंज्ञा हो जानेसे 'स' का रुत्व नहीं हुआ। (वार्तिक भी है—नभोऽङ्गिरोमनुषां वत्युपसंख्यानम्) 'वृषन् अश्वो यस्य सः' इस विग्रहमें बहुव्रीहि समास होनेपर 'वृषन्+अश्वः' इस अवस्थामें अन्तर्वर्तिनी विभक्तिका आश्रय लेकर पदसंज्ञा करके नकारका लोप प्राप्त था, किंतु 'वृषन् वस्वश्वयोः' इस वार्तिकके नियमानुसार भसंज्ञा हो जानेसे न लोप नहीं हुआ; अतः 'वृषणश्वः' यही वैदिक प्रयोग है। (लोकमें 'वृषाश्वः' होता है।) कहीं-कहीं आत्मनेपदके स्थानमें परस्मैपदका प्रयोग होता है। यथा—'प्रतीपमन्य ऊर्मिर्युध्यति' यहाँ 'युध्यते' होना चाहिये, किंतु परस्मैपदका प्रयोग किया गया है। प्र आदि उपसर्ग यदि धातुके पहले हों तो उनकी उपसर्ग एवं गतिसंज्ञा होती है; किंतु वेदमें वे धातुके बादमें या व्यवधान देकर प्रयुक्त होनेपर भी 'उपसर्ग' एवं 'गति' कहलाते हैं—यथा 'हरिभ्यां याह्योक आ। आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि।' यहाँ 'आयाहि' के अर्थमें 'याहि+आ' का व्यवहित तथा पर प्रयोग है। दूसरे उदाहरणमें आ+याहिके बीचमें बहुत-से पदोंका व्यवधान है ॥ ६ ॥ वेदमें विभक्तियोंका विपर्यास देखा जाता है, जैसे—दध्ना जुहोति: यहाँ 'दधि' शब्द 'हु' धातुका कर्म है, उसमें द्वितीया होनी चाहिये; किंतु 'तृतीया च होश्छन्दसि' इस नियमके अनुसार कर्ममें तृतीया हो गयी है।

---

१. 'हन्तीति हंस' इस व्युत्पत्तिके अनुसार हन्-धातुके आगे ('वृतॄवदिहनि०' इत्यादि उणादि सूत्रसे) 'सच्' प्रत्यय होनेसे 'हंस' शब्द बनता है। २. हिंसि हिंसायाम्' इस धातुसे 'हिनस्तीति' व्युत्पत्तिके अनुसार कर्तामें अच् प्रत्यय करनेपर 'हिंस' बनता है, फिर 'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्' के आदेशानुसार 'ह' के स्थानमें 'स' और 'स' के स्थानमें 'ह' आ जानेसे 'सिंहः' पद सिद्ध होता है। ३. 'गूढ+आत्मा' इस अवस्थामें 'आ' विकृत हो 'उ' के रूपमें परिणत हुआ और गुण होनेसे 'गूढोत्मा' बना। (एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते)। ४. 'पृषोदरः' में 'पृषद्+उदर.' यह पदच्छेद है। 'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्' के आदेशानुसार 'त्' का लोप (नाश) हुआ तथा गुण होनेसे 'पृषोदर.' सिद्ध हुआ है। ५. 'भ्रमतीति भ्रमर.' यहाँ 'भ्रमु चलने' धातुसे 'अर्तिकमिभ्रमि-चमिदेविवासिभ्यश्चित्' इस उणादि सूत्रके अनुसार 'अर' प्रत्यय होनेसे 'भ्रमर' शब्द सिद्ध होता है। किंतु निरुक्तके अनुसार 'भ्रमन् रौति' इस व्युत्पत्तिके अनुसार 'भ्रमर' शब्द बनता है। इसमें 'भ्रम्+ अत्+ रु+अच्' इस अवस्थामें [illegible] 'भ्रमर'की सिद्धि होती है। ६. लौकिक प्रयोगमें 'पुनर्वसु' शब्द नित्य द्विवचनान्त है, किंतु वेदमें 'छन्दसि पुनर्वस्वोरेकवचनम्' इस नियमानुसार इसका एकवचनान्त प्रयोग भी होता है।

'विभाषर्जोश्छन्दसि' के नियमानुसार इष्ठ, इमन् और ईयसुन् परे रहनेपर ऋजुके 'ऋ' के स्थानमें 'र' होता है। 'ऋजु+इष्ठ' इस अवस्थामें ऋके स्थानमें 'र' तथा उकार लोप होनेसे 'रजिष्ठ' शब्द बना है। 'त्रिपञ्चकम्'—त्रीणि पञ्चकानि यत्र तत् 'त्रिपञ्चकम्' इस विग्रहके अनुसार बहुव्रीहिसमास करनेपर 'त्रिपञ्चकम्' की सिद्धि होती है। 'हिरण्ययेन सविता रथेन' इस मन्त्र-वाक्यमें 'ऋत्व्यवास्त्व्य' आदि सूत्रके अनुसार हिरण्य-शब्दसे 'मयट्' प्रत्यय और उसके 'म' का लोप निपातन किया जाता है। इससे 'हिरण्यय' शब्दकी सिद्धि होती है। 'इतरम्'—वेदमें इतर शब्दसे 'अद्ड' का निषेध है। अतः 'सु' का 'अम्' आदेश होनेसे 'इतरम्' पद सिद्ध होता है। यथा 'वार्त्रघ्नमितरम्'। 'परमे व्योमन्' यहाँ 'व्योमनि' रूप प्राप्त था; किंतु 'सुपा सुलुक्' इत्यादि नियमसे ङि-विभक्तिका लुक् हो गया ॥ १२ ॥ 'उर्विया' की जगह 'उरुणा' रूप प्राप्त था। 'टा' का 'इया' आदेश होनेसे 'उर्विया' रूप बना। 'इयाडियाजीकाराणामुपसंख्यानम्' इस वार्तिकसे यहाँ 'इयाज्' हुआ है। 'स्वप्नया' के स्थानमें 'स्वप्नेन' यह रूप प्राप्त था, किंतु 'सुपा सुलुक्०' इत्यादि नियमके अनुसार 'टा' का 'अयाच्' हो गया; अतः 'स्वप्नया' रूप बना। 'वारयध्वम्' रूप प्राप्त था, किंतु 'ध्वमो ध्वात्' सूत्रसे 'ध्वम्' के स्थानमें 'ध्वात्' आदेश होनेसे 'वारयध्वात्' हो गया। 'अदुहत' के स्थानमें 'अदुह्न' यह वैदिक प्रयोग है। 'लोपस्त आत्मनेपदेषु' इस सूत्रसे तलोप और 'बहुलं छन्दसि' से रुट्का आगम हुआ है। 'वै' पादपूर्तिके लिये है। 'अवधिषम्' यह रूप प्राप्त था, इसके स्थानमें 'वधीं' रूप हुआ है। यहाँ 'अम्'का म् आदेश और अडागमका अभाव तथा 'ईट्' का आगम हुआ है—वधीं वृत्रम्। 'यजध्वैनं'—यहाँ 'यजध्वम्+ एनम्' इस दशामें 'ध्वम्' के म् का लोप होकर वृद्धि होनेसे उक्त रूपकी सिद्धि हुई है। 'तमो भरन्त एमसि'—यहाँ 'इमः' के स्थानमें 'इदन्तो मसि' इस सूत्रके अनुसार 'एमसि' रूप हुआ है। 'स्विन्नः स्नात्वी मलादिव'—इस मन्त्रमें 'स्नात्वा' रूप प्राप्त था; किंतु 'स्नात्व्यादयश्च'—इस सूत्रके अनुसार उसके स्थानमें 'स्नात्वी' निपातन हुआ। 'गत्वाय'—गत्वाके स्थानमें 'क्त्वो यक्' सूत्रके अनुसार 'यक्'का आगम होनेसे उक्त पद सिद्ध होता है। 'अस्थभिः'मे अस्थि-शब्दके 'इ'को अनङ् आदेश होकर नलोप हो गया है। 'छन्दस्यपि दृश्यते' इस नियमसे हलादि विभक्ति परे रहनेपर भी 'अनङ्' आदेश होता है ॥ १३ ॥ 'गोनाम्' यहाँ आम्-विभक्ति परे रहते नुट्का आगम हुआ है। किसी छन्दके पादान्तमें गो शब्द [illegible] प्राप्त [illegible] वहाँ नुट्का आगम हो जाता है। [illegible] छन्दसि'से प्राप्त हुए 'हु' आदेशका [illegible] हुआ है। 'ततुरि', 'जगुरि' [illegible] छन्दसि' के नियमसे निपातनद्वारा [illegible] 'ग्नु' अदनेका निष्ठान्त [illegible] किंतु निपातनसे [illegible] हो गया है। [illegible] भी समझना चाहिये। [illegible] वचनं०' इत्यादिसे वैकल्पिक [illegible] अभावमें यण् होनेसे [illegible] यह दधातिके स्थानमें निपातित [illegible] 'दधद्रत्नानि दाशुषे' यह मन्त्र है। [illegible] मध्यम पुरुषका एकवचन [illegible] अभाव निपातित हुआ है। [illegible] रूप प्राप्त था। 'मीनातेर्निगमे' [illegible] अवीवृधत्'—'नित्यं छन्दसि' [illegible] ऋवर्णका 'ऋ'—भाव [illegible] ॥ १४ ॥ [illegible] यहाँ दीर्घका निषेध होता है। [illegible] अर्थमें क्यच् परे रहते [illegible] होता है। 'दुरस्युः' यह निपातनात् [illegible] प्रकार 'द्रविणस्युः' इत्यादि भी हैं। [illegible] धातुका 'हि' आदेश [illegible] 'घुमास्था०' इत्यादि सूत्रसे 'आ' [illegible] अतः 'हित्वा' और 'हीत्वा' दोनों [illegible] धातुसे क्तप्रत्यय परे होनेपर [illegible] निपातन [illegible] इससे 'सुधितम्' रूप बनता है—[illegible] वक्षणासु।' 'दाधर्ति', 'दर्धर्ति' और [illegible] निपातनसे सिद्ध है। [illegible] अव धातुसे अनुन् [illegible] 'शोभनमवो येषां ते स्ववसः' [illegible] व्युत्पत्ति है। [illegible] भकारादि प्रत्यय परे [illegible] 'त्' हो जाता है। [illegible] नियमसे [illegible] 'वृष्टिः नमूप [illegible] स्थानमें 'धिन्व' निपातित [illegible] इस्ते ॥ १५ ॥ [illegible] पादपूर्तिके लिये 'म' [illegible]

'गंभार' यहाँ 'छन्दसीरः' से 'मतुप्' के 'म' का 'व' हुआ है। 'आग्निमन्तः' में अग्नि-शब्दसे मतुप्, 'छन्दस्यपि दृश्यते' से अनङ् आदेश तथा 'अनो नुट्' से 'नुट्' का आगम हुआ है। 'सुपथिन्तरः' में 'नाद्घस्य' से 'नुट्' का आगम विशेष मार्ग है। 'रथीतरः' में 'ईद्रथिनः' से 'ई' हुआ है। 'नसत्तम्'में नञ्पूर्वक सद्-धातुसे निष्ठामें नत्वका अभाव निपातित हुआ है। इसी प्रकार सूत्रोक्त 'निपत्त' आदि शब्दोंको जानना चाहिये। 'अम्नरेव'—इसमें 'अम्नस्' शब्द ईषत् अर्थमें है। वेदमें सकारका वैकल्पिक रेफ निपातित हुआ है। 'भुवरथो इति' यहाँ 'भुवश्च महाव्याहृतेः' से भुवस्के 'स्'का 'र्' हुआ है ॥ १६ ॥ 'ब्रूहि' यहाँ 'ब्रूहि प्रेष्य०' इत्यादि सूत्रसे उकार प्लुत हुआ है। यथा—अग्नयेऽनुब्रू ३ हि। 'अग्नामावास्येत्या ३ त्थ' यहाँ 'निगृह्यानुयोगे च' इस सूत्रसे वाक्यके टिका प्लुतभाव होता है। 'अग्नीत्प्रेषणे परस्य च' इस सूत्रसे आदि और परका भी प्लुत होता है। उदाहरणके लिये 'ओ ३ श्रा ३ वय' इत्यादि पद है। इन सबमें प्लुत हुआ है। 'दाश्वान्' आदि पद क्वसु-प्रत्ययान्त निपातित होते हैं। 'स्वतवान्' शब्दके नकारका विकल्पसे 'रु' होता है, पायु-शब्द परे रहनेपर—'स्वतवाँः पायुरग्ने।' 'त्रिभिष्ट्वं देव सवितः।' यहाँ 'त्रिभिस्+त्वम्' इस दशामें 'युष्मत्तत्ततक्षुःष्वन्तःपादम्' इस सूत्रमें 'स्' के स्थानमें 'ष्' होकर ष्टुत्व होनेसे 'त्रिभिष्ट्वम्' बनता है। 'नृभिष्टुतः' यहाँ 'स्तुतस्तोमयोश्छन्दसि' इस सूत्रसे 'नृभिस्' के 'स्' का 'ष्' होकर ष्टुत्व हुआ है ॥ १७ ॥ 'अभीषुणः' यहाँ 'सुञः' सूत्रसे 'स्'का 'ष्' हुआ है। 'ऋतापाहम्' में 'सहेः पृतनर्ताभ्यां च' सूत्रसे 'स्' का मूर्धन्य आदेश हुआ है। 'न्यषीदत्' यहाँ भी 'निव्यभिभ्योऽड्व्यवाये वा छन्दसि' इस सूत्रसे 'स' का मूर्धन्य हुआ है। 'नृमणाः' इस पदमें 'छन्दस्यृदवग्रहात्' सूत्रसे 'न' का 'ण' हुआ है। बाहुलक चार प्रकारके होते हैं—कहीं प्रवृत्ति होती है, कहीं अप्रवृत्ति होती है, कहीं वैकल्पिक विधि है और कहीं अन्यथाभाव होता है। इस प्रकार सम्पूर्ण वैदिक पद-समुदाय सिद्ध है। क्रियावाची 'भू' 'वा' आदि शब्दोंकी 'धातु' संज्ञा जाननी चाहिये। 'भू' आदि धातु परस्मैपदी माने गये हैं ॥ १८-१९ ॥ 'एध' आदि छत्तीस धातु उदात्त एवं आत्मनेपदी हैं (इन्हें 'अनुदात्तेत्' माना गया है)। मुने! 'अत' आदि अड़तीस धातु परस्मैपदी हैं ॥ २० ॥ 'शीकृ' आदि बयालीस धातु आत्मनेपदमें परिगणित हुए हैं। 'फक्क' आदि पचास धातु उदात्तेत् (परस्मैपदी) कहे गये हैं ॥ २१ ॥ 'वर्च' आदि इक्कीस धातु अनुदात्तेत् (आत्मनेपदी) बताये गये हैं। 'गुपू' आदि बयालीस धातु 'उदात्तेत्' (परस्मैपदी) कहे गये हैं ॥ २२ ॥ 'घिणि' आदि दस धातु शाब्दिकोंद्वारा 'अनुदात्तेत्' कहे गये हैं। 'अण्' आदि सत्ताईस धातु 'उदात्तेत्' बताये गये हैं ॥ २३ ॥ 'अय' आदि चौतीस धातु वैयाकरणोंद्वारा अनुदात्तेत् (आत्मनेपदी) माने गये हैं। 'मव्य' आदि बहत्तर धातु उदात्तानुबन्धी कहे गये हैं ॥ २४ ॥ 'धावु' धातु अकेला ही 'स्वरितेत्' कहा गया है। 'क्षुध्' आदि बावन धातु 'अनुदात्तेत्' कहे गये हैं ॥ २५ ॥ 'घुषिर्' आदि अठासी धातु 'उदात्तेत्' माने गये हैं। 'द्युत' आदि बाईस धातु 'अनुदात्तेत्' स्वीकार किये गये हैं ॥ २६ ॥ घटादिमें तेरह धातु 'षित्' और 'अनुदात्तेत्' कहे गये हैं। तदनन्तर 'ज्वर' आदि बावन धातु उदात्त बताये गये हैं ॥ २७ ॥ 'राजृ' धातु 'स्वरितेत्' है। उसके बाद 'भ्राजृ, भ्राशृ और भ्लाशृ'—ये तीन धातु 'अनुदात्तेत्' कहे गये हैं। तदनन्तर 'स्यमु' धातुसे लेकर आगे सभी आद्युदात्त एवं उदात्तेत् (परस्मैपदी) हैं ॥ २८ ॥ फिर एकमात्र 'षह' धातु 'अनुदात्तेत्' तथा अकेला 'रम' धातु 'आत्मनेपदी' है। उसके बाद 'सद' आदि तीन धातु 'उदात्तेत्' हैं। फिर 'कुच' आदि चार धातु भी 'उदात्तेत्' (परस्मैपदी) ही हैं ॥ २९ ॥ इसके बाद 'हिक्क' आदि पैंतीस धातु 'स्वरितेत्' हैं। 'श्रिञ्' धातु स्वरितेत् है। 'भृञ्' आदि चार धातु भी स्वरितेत् ही हैं ॥ ३० ॥ 'घेट्' आदि छियालीस धातु परस्मैपदी कहे गये हैं। 'स्मिङ्' आदि अठारह धातु आत्मनेपदी माने गये हैं ॥ ३१ ॥ फिर 'पूङ्' आदि तीन धातु अनुदात्तेत् कहे गये हैं। 'ह्वृ' धातु परस्मैपदी है। फिर 'गुप'से लेकर तीन धातु आत्मनेपदी हैं ॥ ३२ ॥ 'रभ' आदि धातु अनुदात्तेत् हैं और 'ञिक्ष्विदा' उदात्तेत् है। स्कम्भु आदि पन्द्रह धातु परस्मैपदी हैं ॥ ३३ ॥ 'कित' धातु 'उदात्तेत्' है। 'दान' 'शान' ये दो धातु उभयपदी हैं। 'पच' आदि नौ धातु स्वरितेत् (उभयपदी) हैं। ये परस्मैपदी (और आत्मनेपदी दोनों) माने गये हैं ॥ ३४ ॥ फिर तीन स्वरितेत् धातु हैं। परिभाषणार्थक 'वद' और 'वच' धातु परस्मैपदी हैं। ये एक हजार छः धातु भ्वादि कहे गये हैं ॥ ३५ ॥

'अद' और 'हन्' धातु परस्मैपदी कहे गये हैं। 'द्विष' आदि चार धातु स्वरितेत् माने गये हैं ॥ ३६ ॥ यहाँ केवल 'चक्षिङ्' धातु आत्मनेपदी कहा गया है। फिर 'ईर'

आदि तेरह धातु अनुदात्तेत् हैं ॥ ३७ ॥ मुने ! वैयाकरणोंने 'पूङ्' और 'ञीङ्'—इन दो धातुओंको आत्मनेपदी कहा है। फिर 'पु' आदि सात धातु परस्मैपदी बताये गये हैं ॥३८॥ मुनीश्वर ! यहाँ एक 'उर्णुञ्' धातु स्वरितेत् कहा गया है। 'ग्रु' आदि तीन धातु परस्मैपदी बताये गये हैं ॥ ३९ ॥ नारद ! केवल 'ष्टुञ्' धातुको शाब्दिकोंने उभयपदी कहा है ॥ ४० ॥ 'रा' आदि अठारह धातु परस्मैपदी माने गये हैं। नारद ! फिर केवल 'इङ्' धातु आत्मनेपदी कहा गया है। ॥४१॥ उसके बाद 'विद' आदि चार धातु परस्मैपदी माने गये हैं। 'ञिष्वप् शये' यह धातु परस्मैपदी कहा गया है ॥ ४२ ॥ मुने ! 'श्वस' आदि धातु मैंने तुम्हें परस्मैपदी कहे हैं। 'दीधीङ्' और 'वेवीङ्' ये दो धातु आत्मनेपदी माने गये है ॥४३॥ 'षस' आदि तीन धातु 'उदात्तेत्' हैं। मुनिश्रेष्ठ ! 'चर्करीतं च' यह यङ्लुगन्तका प्रतीक है। यह अदादि माना गया है। 'ह्नुङ्' धातु अनुदात्तेत् कहा गया है ॥४४॥ इस प्रकार अदादि गणमें तिहत्तर धातु बताये गये हैं।

'हु' आदि चार धातु (हु, भी, ह्री और पृ) परस्मैपदी माने गये हैं ॥ ४५ ॥ 'भृञ्' धातु स्वरितेत् और 'ओहाक्' धातु उदात्तेत् है। 'माङ्' और 'ओहाङ्'—ये दोनों धातु अनुदात्तेत् हैं। दानार्थक 'दा' और धारणार्थक 'धा'—इनमें स्वरितकी इत्संज्ञा हुई है ॥ ४६ ॥ 'णिजिर्' आदि तीन धातु स्वरितेत् कहे गये हैं। 'घृ' आदि बारह धातु परस्मैपदी माने गये हैं ॥ ४७ ॥ इस प्रकार ह्वादि (जुहोत्यादि) गणमें बाईस धातु कहे गये हैं।

'दिव्' आदि पचीस धातु परस्मैपदी कहे गये हैं ॥४८॥ नारद ! 'षूङ्' और 'दूङ्'—ये आत्मनेपदी हैं। 'पूङ्' आदि सात धातु ओदित् और आत्मनेपदी माने गये हैं ॥ ४९ ॥ विप्रवर ! 'लीङ्' आदि धातु यहाँ आत्मनेपदी बताये गये हैं। स्यति (षो) आदि चार धातु परस्मैपदी हैं ॥ ५० ॥ मुने ! 'जनी' आदि पंद्रह धातु आत्मनेपदी हैं। 'मृष' आदि पाँच धातु 'स्वरितेत्' कहे गये हैं ॥५१॥ 'पद' आदि ग्यारह धातु आत्मनेपदी है। यहाँ वृद्धि अर्थमें ही अकर्मक 'राध' धातुका ग्रहण है। यह स्वादि और चुरादिगणमें भी पढ़ा गया है ॥ ५२ ॥ राध आदि तेरह धातु उदात्तेत् कहे गये हैं। तत्पश्चात् रध आदि आठ धातु परस्मैपदी बताये गये हैं ॥ ५३ ॥ शम आदि छियालीस धातु उदात्तेत् कहे गये हैं। इस प्रकार दिवादिमें एक सौ चालीस धातु माने गये हैं ॥ ५४ ॥

'षु' आदि नौ धातु स्वरितेत् कहे गये हैं [illegible] आदि सात धातु परस्मैपदी बताये गये हैं [illegible] और 'ष्टिघ' ये दो धातु अनुदात्तेत् कहे गये हैं। [illegible] आदि चौदह धातुओंको परस्मैपदी [illegible] विप्रवर ! स्वादिगणमें कुल बत्तीस धातु [illegible]

मुनिश्रेष्ठ ! 'तुद' आदि छः स्वरितेत् हैं ॥ [illegible] ॥ [illegible] धातु उदात्तेत् हैं और 'जुषी' आदि [illegible] हैं। 'व्रश्च' आदि एक सौ पाँच धातु उदात्तेत् [illegible] ॥ ५८ ॥ मुनीश्वर ! यहाँ [illegible] बताया गया है। 'णू' आदि [illegible] गये हैं ॥ ५९ ॥ [illegible] है। यहाँ कुटादिगणकी पूर्ति हुई है। [illegible] ये आत्मनेपदी धातु हैं। [illegible] परस्मैपदमें गिने गये हैं ॥ ६० ॥ [illegible] आत्मनेपदी कहे गये हैं। [illegible] धातु परस्मैपदी बताये गये हैं ॥ ६१ ॥ [illegible] आदि छः धातु स्वरितेत् कहे गये हैं। [illegible] आदि तीन धातु परस्मैपदी हैं ॥ ६२ ॥ [illegible] तुदादिमें एक सौ सनातन धातु हैं।

'रुध' आदि नौ धातु स्वरितेत् हैं। [illegible] है। 'ञिइन्धी' से तीन धातु [illegible] तत्पश्चात् 'शिष' 'पिष' आदि [illegible] प्रकार रुधादि गणमें [illegible] धातु हैं ॥ [illegible] ॥

'तनु' धातुसे [illegible] धातु [illegible] 'मनु' और 'वनु'—ये दोनों [illegible] हैं। [illegible] स्वरितेत् कहा गया है ॥ ६५ ॥ [illegible] ने तनादिगणमें दस धातुओंको [illegible]

'क्री' आदि सात धातु उभयपदी हैं। [illegible] आदि चार सौत्र (सूत्रोक्त) धातु [illegible] आदि [illegible] धातु उदात्तेत् [illegible] ॥ ६६-६७ ॥ [illegible] आत्मनेपदी हैं। [illegible] आदि [illegible] धातु [illegible] 'ग्रह' धातु स्वरितेत् है ॥ ६८ ॥ [illegible] क्र्यादिगणमें बावन धातु गिने हैं।

[illegible] आदि [illegible] गये हैं ॥ ६९ ॥ मुने ! 'चित' आदि [illegible] आत्मनेपदी माने गये हैं। [illegible] णित् (उभयपदी) कहे गये हैं [illegible]

अदुरादीन अदन्त धातु भी उभयपदी ही हैं । 'पद' आदि दस धातु आत्मनेपदमें परिगणित हुए हैं ॥ ७१ ॥ यहाँ सूत्र आदि आठ धातुओंको भी मनीषी पुरुषोंने उभयपदी कहा है । प्रातिपदिकसे धात्वर्थमें णिच् और प्रायः सब बातें इष्ठ प्रत्ययकी भाँति होती हैं । तात्पर्य यह कि 'इष्ठ' प्रत्यय परे रहते जैसे प्रातिपदिक, पुंवद्भाव, रभाव, टिलोप, विन्मतुल्लोप, यणादिलोप, प्र, स्थ, स्फ आदि आदेश और भसंज्ञा आदि कार्य होते हैं, उसी प्रकार 'णि' परे रहते भी सब कार्य होंगे ॥ ७२ ॥ 'उसे करता है' अथवा उसे कहता है' इस अर्थमें भी प्रातिपदिकसे णिच् प्रत्यय होता है । प्रयोजक व्यापारमें प्रेषण आदि वाच्य हो तो धातुसे णिच् होता है । कर्तृ-व्यापारके लिये जो करण है, उससे धात्वर्थमें णिच् होता है । चित्र आदि आठ धातु उदात्तेत् हैं । किंतु 'संग्राम' धातुको शब्दशास्त्रके विद्वानोंने अनुदात्तेत् माना है । स्तोम आदि सोलह धातु अदन्त धातुओंके निदर्शन हैं ॥ ७३-७४ ॥ 'बहुलमेतन्निदर्शनम्'—इसमें जो बहुल शब्द आया है, उससे अन्य जो सूत्रोक्त लौकिक और वैदिक धातु हैं, उन सबका ग्रहण होता है । सभी धातु सब गणोंमें हैं और सबके अनेक अर्थ हैं ॥ ७५ ॥ इन धातुओंके अतिरिक्त सनादि[1] प्रत्यय जिनके अन्तमें हों, उनकी भी धातु-संज्ञा होती है । नामधातु भी धातु ही हैं । नारद ! इस प्रकार अनन्त धातुओंकी उद्भावना हो सकती है । यहाँ संक्षेपसे सब कुछ बताया गया है । इसका विस्तार तत्सम्बन्धी ग्रन्थोंमें है ॥ ७६ ॥

(उपदेशावस्थामें एकाच् अनुदात्त धातुसे परे वलादि आर्धधातुकको इट्का आगम नहीं होता । जिनमें यह निषेध लागू होता है, उन धातुओंको 'अनिट्' कहते हैं । उन्हीं अनिट् या एकाच् अनुदात्त धातुओंका यहाँ संग्रह किया जाता है—) अजन्त धातुओंमें—ऊकारान्त, ॠकारान्त, यु, रु, क्ष्णु, शीङ्, स्नु, नु, क्षु, श्वि, डीङ्, श्रिञ्, वृङ्, वृञ्—इन सबको छोड़कर शेष सभी अनुदात्त (अर्थात् अनिट्) माने गये हैं ॥ ७७ ॥ शक्ल, पच्, मुच्, रिच्, वच्, विच्, सिच्, प्रच्छ, त्यज्, निजिर्, भज्, भञ्ज्, भुज्, भ्रस्ज्, मस्ज्, यज्, युज्, रुज्, रञ्ज्, विजिर्, स्वञ्ज्, सञ्ज्, सृज् ॥ ७८ ॥ अद्, क्षुद्, खिद्, छिद्, तुद्, नुद्, पद्, भिद्, विद् (सत्ता), विद् (विचारणे), शद्, सद्, स्विद्, स्कन्द्, हद्, क्रुध्, क्षुध्, बुध् ॥ ७९ ॥ बन्ध्, युध्, रुध्, राध्, व्यध्, शुध्, साध्, सिध्, मन् (दिवादि), हन्, आप्, क्षिप्, क्षुप्, तप्, तिप्, स्तृप्, दृप् ॥ ८० ॥ लिप्, लुप्, वप्, शप्, स्वप्, सृप्, यभ्, रभ्, लभ्, गम्, नम्, यम्, रम्, क्रुश्, दश्, दिश्, दृश्, मृश्, रिश्, रुश्, लिश्, विश्, स्पृश्, कृष् ॥ ८१ ॥ त्विष्, तुष्, द्विष्, दुष्, पुष्, पिष्, विष्, शिष्, शुष्, श्लिष्, घस्, वस्, दह्, दिह्, दुह्, नह्, मिह्, रुह्, लिह् तथा वह् ॥ ८२ ॥

ये हलन्तोंमें एक सौ दो धातु अनुदात्त माने गये हैं । 'च' आदिकी निपात संज्ञा होती है । 'प्र' आदि उपसर्ग 'गति' कहलाते हैं । भिन्न-भिन्न दिशा, देश और कालमें प्रकट हुए शब्द अनेक अर्थोंके बोधक होते हैं । विप्रवर ! वे देश-कालके भेदसे सभी लिङ्गोंमें प्रयुक्त होते हैं । यहाँ गणपाठ, सूत्रपाठ, धातुपाठ तथा अनुनासिकपाठ—'पारायण' कहा गया है । नारद ! वैदिक और लौकिक सभी शब्द नित्यसिद्ध हैं ॥ ८३—८५ ॥ फिर वैयाकरणोंद्वारा जो शब्दोंका संग्रह किया जाता है, उसमें उन शब्दोंका पारायण ही मुख्य हेतु है (पारायण-जनित पुण्यलाभके लिये ही उनका संकलन होता है) । सिद्ध शब्दोंका ही प्रकृति, प्रत्यय, आदेश और आगम आदिके द्वारा लघुमार्गसे सम्यक् निरूपण किया जाता है । इस प्रकार तुमसे निरुक्तका यत्किंचित् ही वर्णन किया गया है । नारद ! इसका पूर्णरूपसे वर्णन तो कोई भी कर ही नहीं सकता ॥ ८६—८८ ॥ (पूर्वभाग द्वितीयपाद अध्याय ५३)

---

[1] सन्, क्यच्, काम्यच्, क्यङ्, क्यष्, आचारक्विप्, णिच्, यङ्, यक्, आय, ईयङ्, णिङ्—ये बारह प्रत्यय सनादि कहलाते हैं ।

त्रिस्कन्ध ज्यौतिषके वर्णन-प्रसङ्गमें गणितविषयका प्रतिपादन

सनन्दन उवाच

ज्यौतिषाङ्गं प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ब्रह्मणा पुरा।
यस्य विज्ञानमात्रेण धर्मसिद्धिर्भवेन्नृणाम्॥ १॥
त्रिस्कन्धं ज्यौतिषं शास्त्रं चतुर्लक्षमुदाहृतम्।
गणितं जातकं विप्र संहितास्कन्धसंज्ञितम्॥ २॥
गणिते परिकर्माणि खगमध्यस्फुटक्रिये।
अनुयोगश्चन्द्रसूर्यग्रहणं चोदयास्तकम्॥ ३॥
छाया शृङ्गोन्नतियुती पातसाधनमीरितम्।

श्रीसनन्दनजी कहते हैं—देवर्षे ! अब मैं ज्यौतिष नामक वेदाङ्गका वर्णन करूँगा, जिसका पूर्वकालमें साक्षात् ब्रह्माजीने उपदेश किया है तथा जिसके विज्ञानमात्रसे मनुष्योंके धर्मकी सिद्धि हो सकती है॥ १॥ ब्रह्मन् ! ज्यौतिषशास्त्र चार लाख श्लोकोंका बताया गया है। उसके तीन[1] स्कन्ध हैं, जिनके नाम ये हैं—गणित (सिद्धान्त), जातक (होरा) और संहिता॥ २॥ गणितमें परिकर्म*, ग्रहोंके मध्यम एवं स्पष्ट करनेकी रीतियाँ बतायी गयी हैं। इसके सिवा अनुयोग (देश, दिशा और कालका ज्ञान), चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, उदय, अस्त, छायाधिकार, चन्द्र-शृङ्गोन्नति[2], ग्रहयुति (ग्रहोंका योग) तथा पात (महापात—सूर्य-चन्द्रमाके क्रान्तिसाम्य) का साधन-प्रकार कहा गया है॥ ३½॥

जातके राशिभेदाश्च ग्रहयोनिवियोनिजे॥ ४॥
निषेकजन्मारिष्टानि ह्यायुर्दायो दशाक्रमः।
कर्माजीवं चाष्टवर्गो राजयोगाश्च नाभसाः॥ ५॥
चन्द्रयोगाः प्रव्रज्याख्या राशिशीलं च दृक्फलम्।
ग्रहभावफलं चैवाश्रययोगप्रकीर्णके॥ ६॥
अनिष्टयोगाः स्त्रीजन्मफलं निर्याणमेव च।
नष्टजन्मविधानं च तथा द्रेष्काणलक्षणम्॥ ७॥

जातकस्कन्धमें राशिभेद, ग्रहयोनि, (ग्रहोंकी जाति, रूप और गुण आदि) वियोनिज ([illegible]), गर्भाधान, जन्म, अरिष्ट, आयुर्दाय, दशाक्रम, कर्माजीव (आजीविका), अष्टवर्ग, राजयोग, नाभसयोग, चन्द्रयोग, प्रव्रज्यायोग, राशिशील, [illegible] फल, आश्रययोग, प्रकीर्ण, अनिष्टयोग, स्त्रीजातक, निर्याण (मृत्युविषयक विचार), नष्टजन्मविधान ([illegible] जन्म कालको जाननेका प्रकार) तथा द्रेष्काण [illegible]—इन सब विषयोंका वर्णन है॥ ४–७॥

संहितास्कन्धरूपं च ग्रहचारोऽब्दलक्षणम्।
तिथिवासरनक्षत्रयोगतिथ्यर्द्धसंज्ञकाः॥ ८॥
मुहूर्तोपग्रहाः सूर्यसंक्रान्तिर्गोचरः क्रमात्।
चन्द्रताराबलं चैव सर्वलग्नार्तवाह्वयः॥ ९॥
आधानपुंससीमन्तजातनामान्नभुक्तयः।
चौलं कर्णच्छिदा मौञ्जी क्षुरिकाबन्धनं तथा॥ १०॥
समावर्तनवैवाहप्रतिष्ठासद्मलक्षणम्।
यात्रा प्रवेशनं सद्योवृष्टिः कर्मविलक्षणम्॥ ११॥
उत्पत्तिलक्षणं चैव सर्वं संक्षेपतो ब्रुवे।

अब संहितास्कन्धके स्वरूपका वर्णन [illegible] ग्रहचार (ग्रहोंकी गति), [illegible] तिथि, दिन, [illegible] करण, मुहूर्त, उपग्रह, सूर्यसंक्रान्ति, [illegible] ताराका बल, सम्पूर्ण लग्नों तथा ऋतुदर्शनका [illegible] पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, [illegible] चूडाकरण, कर्णवेध, उपनयन, मौञ्जीबन्धन, [illegible] क्षुरिकाबन्धन, समावर्तन, विवाह, प्रतिष्ठा, [illegible] गृहप्रवेश, तत्काल वृष्टिज्ञान [illegible] लक्षण—इन सब विषयोंका [illegible] वर्णन [illegible]॥ ८–११½॥

एकं दश शतं चैव सहस्रमयुतक्रमात्॥ १२॥
प्रयुतं कोटिसंज्ञां चार्बुदमब्जं च खर्वकम्।
निखर्वं च महापद्मं शङ्कुर्जलधिरेव च॥ १३॥
अन्त्यं मध्यं परार्द्धं च संज्ञा दशगुणोत्तराः।
क्रमादुत्क्रमतो वापि योगः कार्योऽन्तरं तथा॥ १४॥

---

१. किसी-किसीके मतसे ज्यौतिषके पाँच स्कन्ध हैं—सिद्धान्त, होरा, संहिता, स्वर और सामुद्रिक। सिद्धान्तको ही गणित कहते हैं। होराका ही दूसरा नाम जातक है।

* योग, अन्तर, गुणन, भजन, वर्ग, वर्गमूल, घन और घनमूल—ये परिकर्म कहे गये हैं।

२. द्वितीयाको जो चन्द्रोदय होता है, उसमें कभी चन्द्रमाका दक्षिण सींग और कभी उत्तर सींग (नोक) ऊपरको उठा रहता है, उसीको 'चन्द्रशृङ्गोन्नति' कहा गया है। ज्यौतिषमें उसके परिणाम-का विचार किया गया है।

१. [illegible]

हन्याद्गुणेन गुण्यं स्यात्तेनैवोपान्तिमादिकान् ।
शुद्धयेद्यो यद्गुणश्च भाज्यान्त्यात्तत्फलं मुने ॥१५॥

[अब गणितका प्रकरण प्रारम्भ किया जाता है-] एक (इकाई), दश (दहाई), शत (सैकड़ा), सहस्र (हजार), अयुत (दस हजार), लक्ष (लाख), प्रयुत (दस लाख), कोटि (करोड़), अर्बुद (दस करोड़), अब्ज (अरब), खर्व (दस अरब), निखर्व (खर्व), महापद्म (दस खर्व), शङ्कु (नील), जलधि (दस नील), अन्त्य (पद्म), मध्य (दस पद्म), परार्ध (शङ्ख) इत्यादि संख्याबोधक संज्ञाएँ उत्तरोत्तर दसगुनी मानी गयी हैं। यथास्थानीय अङ्कोंका योग या अन्तर क्रम या व्युत्क्रमसे करना चाहिये* ॥ १२-१४ ॥ गुण्यके अन्तिम अङ्कको गुणकसे गुणना चाहिये। फिर उसके पार्श्ववर्ती अङ्कको भी उसी गुणकसे गुणना चाहिये। इस तरह आदि अङ्कतक गुणन करनेपर गुणनफल प्राप्त हो जाता है†, मुने! इसी प्रकार भागफल जाननेके लिये भी यत्न करे। जितने अङ्कसे भाजकके साथ गुणा करनेपर भाज्यमेंसे घट जाय, वही अङ्क लब्धि अथवा भागफल होता है* ॥ १५ ॥

समाङ्कघातो वर्गः स्यात्तमेवाहुः कृतिं बुधा. ।
अन्त्यात्तु विषमात्यक्त्वा कृतिं मूलं न्यसेत्पृथक् ॥१६॥
द्विगुणेनामुना भक्ते फलं मूले न्यसेत्क्रमात् ।
तत्कृतिं च त्यजेद्विप्र मूलेन विभजेत्पुनः ॥१७॥
एवं मुहुर्वर्गमूलं जायते च मुनीश्वर ।

दो समान अङ्कोंके गुणनफलको वर्ग कहा गया है। विद्वान् पुरुष उसीको कृति कहते हैं। (जैसे ४ का वर्ग ४×४=१६ और ९ का वर्ग ९×९=८१ होता है) † [वर्गमूल जाननेके लिये दाहिने अङ्कसे लेकर बायें अङ्कतक अर्थात् आदिसे अन्ततक विषम और समका चिह्न कर देना चाहिये। खड़ी लकीरको विषमका और पड़ीको समका चिह्न माना गया है]। अन्तिम विषममे जितने वर्ग घट सकें उतने घटा देना चाहिये। उस वर्गका मूल लेना और उसे पृथक् रख देना चाहिये ॥ १६ ॥ फिर द्विगुणित मूलसे सम अङ्कमें भाग दे और जो लब्धि आवे उसका वर्ग विषममें घटा दे, फिर उसे दूना करके पङ्क्तिमे रख दे। मुनीश्वर! इस प्रकार बार-बार करनेसे पङ्क्तिका आधा वर्गमूल होता है ॥ १७½ ॥

---

* यथा—२+५+३२+१९३+१८+१०+१००—इन्हें क्रम या व्युत्क्रम (इकाई या सैकडाकी ओर) से जोड़ा जाय, समान स्थानीय अङ्कोंका परस्पर योग किया जाय—अर्थात् इकाईको इकाईके साथ और दहाई आदिको दहाई आदिके साथ जोड़ा जाय तो सर्वथा योगफल ३६० ही होगा। इसी प्रकार १००००—३६० इसमें ३६० को १०००० के नीचे लिखकर पूर्ववत् समान स्थानीय अङ्कमेंसे उसी स्थानवाले अङ्कको क्रम या व्युत्क्रमसे भी घटाया जाय तो शेष सर्वथा ९६४० ही होगा।

† यहाँपर 'अङ्काना वामतो गति.' इस उक्तिके अनुसार आदि-अन्त समझने चाहिये। जैसे—'१३५×१२' इसमें १३५ गुण्य है और १२ गुणक है। गुण्यका अन्तिम अङ्क हुआ १ उसमें १२ से गुणा पहले होगा, फिर उसके बादवाले ३ के साथ फिर ५ के साथ। यथा— १२ / ३६ / ६० / १६२० वास्तवमें यह गुणन-शैली उस समयकी है, जब लोग धूल बिछाकर उसपर अङ्गुलिसे गणित किया करते थे। आधुनिक शैली उससे भिन्न है। रूप-विभाग और स्थान-विभागसे इस गुणनके अनेक प्रकार हो जाते हैं; इसका विस्तार लीलावतीमें देखना चाहिये।

* १६२०÷१२=१३५ भागफल हुआ। जैसे—

भाजक भाज्य भागफल
१२)१६२०(१३५
१२
४२
३६
६०
६०
×

† वर्ग या कृति निकालनेके और भी बहुत-से प्रकार लीलावतीमें दिये गये हैं।

१. जैसे १६३८४ का वर्गमूल उपर्युक्त विधिसे निकालनेपर १२८ आता है—

```
|_|_|
१६३८४
१
×६
 ४
 २३
 ४
 १९८
 १९२
   ६४
   ६४
   ×
```

१२८
२५६ पंक्ति

अङ्कोंको स्थापनकर दायेंसे बायें तरफ खड़ी-पड़ी रेखा देकर विषम-सम अङ्क समझना चाहिये।

समत्र्यङ्कहतिः प्रोक्तो घनस्तत्र विधिः पदे ॥१८॥
प्रोच्यते विषमं त्वाद्यं समे द्वे च ततः परम्।
विशोध्यं विषमादन्त्याद्घनं तन्मूलमुच्यते ॥१९॥
त्रिनिघ्न्यास्तं मूलकृत्या समं मूले न्यसेत्फलम्।
तत्कृतिश्चान्त्यनिहतान्त्रिघ्नी चापि विशोधयेत् ॥२०॥
घनं च विषमादेवं घनमूलं मुहुर्भवेत्।

समान तीन अङ्कोंके गुणनफलको 'घन'[1] कहा गया है। अब घनमूल निकालनेकी विधि बतायी जाती है—दाहिनेके प्रथम अङ्कपर घन या विषमका चिह्न (खड़ी लकीरके रूपमें) लगावे, उसके वामभागमें पार्श्ववर्ती दो अङ्कोंपर (पड़ी लकीरके रूपमें) अघन या समका चिह्न लगावे। इसी प्रकार अन्तिम अङ्कतक एक घन (विषम) और दो अघन (सम) के चिह्न लगाने चाहिये। अन्तिम या विषम घनमें जितने घन घट सकें उतने घटा दे। उस घनको अलग रक्खे। उसका घनमूल ले और उस घनमूलका वर्ग करे, फिर उसमें तीनसे गुणा करे। उससे आदि अङ्कमें भाग दे, लब्धिको अलग लिख ले, उस लब्धिका वर्ग करे और उसमें अन्त्य (प्रथम मूलाङ्क) एवं तीनसे गुणा करे, फिर उसके बादके अङ्कमें उसे घटा दे तथा अलग रखी हुई लब्धिके घनको अगले घनअङ्कमें घटा दे, इस प्रकार बार-बार करनेसे घनमूल[2] सिद्ध होता है ॥ १८–२०½ ॥

अन्योन्यहारनिहतौ हरांशौ तु समच्छिदा ॥२१॥
लवा लवघ्नाश्च हरा हरघ्ना हि सवर्णनम्।
भागप्रभागे विज्ञेयं मुने शास्त्रार्थचिन्तकैः ॥२२॥
अनुबन्धेऽपवाहे चैकस्य चेदधिकोनकः।
भागास्तलस्थहारेण हारं स्वांशाधिकेन तान् ॥२३॥
ऊनेन चापि गुणयेद्धनर्णं चिन्तयेत्तथा।
कार्यस्तुल्यहरांशानां योगश्चाप्यन्तरं मुने ॥२४॥
अहारराशौ रूपं तु कल्पयेद्धरमप्यथ।
अंशाहतिश्छेदघातहृद्भिन्नगुणने फलम् ॥२५॥
छेदं चापि लवं विद्वन्परिवर्त्य हरस्य च।
शेषः कार्यो भागहारे कर्तव्यो गुणनाविधिः ॥२६॥

भिन्न अङ्कोंके परस्पर हरसे हर (भाजक) और अंश (भाज्य) दोनोंको गुण देनेसे सबके नीचे बराबर हर हो जाता है[3]। भागप्रभागमें अंशको अंशसे और हरको हरसे गुणा करना चाहिये। भागानुबन्ध एवं भागापवाहमें* यदि एक अङ्क अपने अंशसे अधिक या ऊन होवे तो [illegible] हरसे ऊपरवाले हरको गुण देना चाहिये। उसके बाद अपने अंशसे अधिक ऊन किये हुए हरसे (अर्थात् भागानुबन्धमें हर अंशका योग करके और भागापवाहमें हर अंशका अन्तर करके) अंशको गुण देना चाहिये।

---

१. जैसे ३ का घन हुआ ३×३×३=२७।

२ उदाहरण इस प्रकार है—

१९६८३ का घनमूल निकालना है। मूलोक्त विधिके अनुसार इसकी क्रिया इस प्रकार होगी—

```
                 १।९६८३।
                  ८
२×२×३=       १२ )११६( २७ = घनमूल
                  ८४
                 ३२८
७×७×२×३=         २९४
                 ३४३
७×७×७=           ३४३
                 ०००
```

८ घन, इसका मूल २
२ का वर्ग = ४
४ × ३ = १२
७ का वर्ग ४९
४९ × २ = ९८
९८ × ३ = २९४

३ यथा—$\frac{1}{2}$, $\frac{1}{3}$, $\frac{1}{4}$ यहाँ परस्पर हरसे हर और अंश दोनोंको गुणित किया जाता है। [illegible] अपने सिवा दूसरे हर और अंशको ही गुणित करता है। जैसे—

$\frac{1}{2}$, $\frac{2}{6}$, $\frac{2}{8}$

$\frac{3}{6}$, $\frac{2}{6}$, $\frac{6}{24}$

$\frac{12}{24}$, $\frac{8}{24}$, $\frac{6}{24}$

इस प्रकार सबका हर समान हो जाता है [illegible] भिन्नाङ्कोंका योग या अन्तर किया जाता है। यथा—

$$\frac{1}{2}+\frac{1}{3}+\frac{1}{4}=\frac{12+8+6}{24}=\frac{26}{24}=\frac{13}{12}।$$

* किसी भागको जोड़नेको भागानुबन्ध और घटानेको भागापवाह कहते हैं।

ऐसा करनेसे भागानुबन्ध और भागापवाहका फल सिद्ध होगा । जिसके नीचे हर न हो उसके नीचे एक हरकी कल्पना करनी चाहिये । भिन्न गुणन-साधनमें अंश-अंशका गुणन करना और हर-हरके गुणनसे भाग देना चाहिये । इससे भिन्न गुणनमें फलकी सिद्धि होगी । (यथा $\frac{२}{७}\times\frac{३}{८}$ यहाँ २ और ३ अंश हैं और ७, ८ हर हैं, इनमें अंश-अंशसे गुणा करनेपर २×३=६ हुआ और हर-हरके गुणनसे ७×८=५६ हुआ । फिर ६÷५६ करनेसे $\frac{६}{५६}$ जिसे दोसे काटनेपर $\frac{३}{२८}$ उत्तर हुआ) ॥ २१–२५ ॥ विद्वन् ! भिन्न-संख्याके भागमें भाजकके हर और अंशको परिवर्तित कर (हरको अंश और अंशको हर बनाकर) फिर भाज्यके हर-अंशके साथ गुणन-क्रिया करनी चाहिये, इससे भागफल सिद्ध होता है । (यथा $\frac{३}{८}\div\frac{४}{५}$ में हर और अंशके परिवर्तनसे $\frac{३}{८}\times\frac{५}{४}=\frac{१५}{३२}$ यही भागफल हुआ) ॥ २६ ॥

हरांशयोः कृती वर्गे घनौ घनविधौ मुने ।
पदसिद्धयै पदे कुर्यादथो खं सर्वतश्च खम् ॥२७॥

भिन्नाङ्कके वर्गादि-साधनमें यदि वर्ग करना हो तो हर और अंश दोनोंका वर्ग करे तथा घन करना हो तो दोनोंका घन करे । इसी प्रकार वर्गमूल निकालना हो तो दोनोंका वर्गमूल और घनमूल निकालना हो तो भी दोनोंका घनमूल निकालना चाहिये । (यथा—$\frac{३}{७}$का वर्ग हुआ $\frac{९}{४९}$ और मूल हुआ $\frac{३}{७}$, इसी प्रकार $\frac{३}{७}$का घन हुआ $\frac{२७}{३४३}$ और मूल हुआ $\frac{३}{७}$) ॥ २७ ॥

छेदं गुणं गुणं छेदं वर्गं मूलं पदं कृतिम् ।
ऋणं स्वं स्वमृणं कुर्याद्दृश्ये राशिप्रसिद्धये ॥२८॥
अथ स्वांशाधिकोने तु लवाढ्योनो हरो हरः ।
अंशस्त्वविकृतस्तत्र विलोमे शेषमुक्तवत् ॥२९॥

विलोमविधिसे राशि जाननेके लिये दृश्यमें हरको गुणक, गुणकको हर, वर्गको मूल, मूलको वर्ग, ऋणको धन और धनको ऋण बनाकर अन्तमे उलटी क्रिया करनेसे राशि (इष्ट संख्या) सिद्ध होती है । विशेषता यह है कि जहाँ अपना अंश जोडा गया हो वहाँ हरमें अशको जोड़कर और जहाँ अपना अंश घटाया गया हो, वहाँ हरमें अंशको घटाकर हर कल्पना करे और अंश ज्यों-का-त्यों रहे । फिर दृश्य राशिमें विलोम क्रिया उक्त रीतिसे करे तो राशि सिद्ध होती है* ॥२८-२९॥

उद्दिष्टराशिः संक्षुण्णो हृतोंऽशै रहितो युतः ।
इष्टघ्नदृष्टमेतेन भक्तं राशिरितीरितम् ॥३०॥

अभीष्ट संख्या जाननेके लिये इष्ट राशिकी कल्पना करनी चाहिये । फिर प्रश्नकर्ताके कथनानुसार उस राशिको गुणा करे या भाग दे । कोई अंश घटानेको कहा गया हो तो घटावे और जोड़नेको कहा गया हो तो जोड़ दे अर्थात् प्रश्नमें जो-जो क्रियाएँ कही गयी हों, वे इष्टराशिमें करके फिर जो राशि निष्पन्न हो, उससे कल्पित इष्ट-गुणित दृष्टमें भाग दे, उसमे जो लब्धि हो, वही इष्ट राशि है† ॥३०॥

---

१. उदाहरणके लिये यह प्रश्न है—$\frac{१}{८}$का $\frac{१}{३}$ उसमेंसे घटाओ और शेषका $\frac{१}{२}$ उसी शेषमें जोड़ो, इसकी न्यास-विधि (लिखनेकी रीति) इस प्रकार होगी—

$\frac{१}{८}$
$-\frac{१}{३}$
$+\frac{१}{२}$ $\frac{१\times३\times२}{८\times२\times३}=\frac{१}{८}$ उत्तर हुआ ।

* उदाहरणके लिये यह प्रश्न लीजिये—वह कौन-सी संख्या है, जिसको तीनसे गुणा करके उसमें अपना $\frac{३}{४}$ जोड़ देते हैं, फिर सातका भाग देते हैं, पुनः अपना $\frac{१}{३}$ घटा देते हैं, फिर उसका वर्ग करते हैं, पुनः उसमें ५२ घटाकर उसका मूल लेते हैं, उसमें ८ जोड़कर १०का भाग देते हैं तो २ लब्धि होती है । उस संख्या अथवा राशिको निकालना है । इसमें मूलोक्त नियमके अनुसार इस प्रकार क्रिया की जायगी—

गुणक	३	हर	८४÷३=२८ राशि
धन	$\frac{३}{४}$ अपना $\frac{३}{७}$	ऋण	१४७−६३=८४
हर	७	गुणक	२१×७=१४७
ऋण	$\frac{१}{३}$ अपना $\frac{१}{२}$	धन	१४+७=२१
वर्ग	=	मूल	१९६= १४
ऋण	५२	धन	१४४+५२=१९६
मूल	=	वर्ग	१२=१४४
धन	८	ऋण	२०−८=१२
हर	१०	गुणक	२×१०=२०
		दृश्य	२

अतः विलोम गणितकी विधिसे वह संख्या २८ निश्चित हुई ।

† इसको स्पष्टरूपसे जाननेके लिये यह उदाहरणात्मक प्रश्न प्रस्तुत किया जाता है—वह कौन-सी संख्या है, जिसे ५ से गुणा करके उसमें उसीका तृतीयांश घटाकर दससे भाग देनेपर जो लब्धि हो उसमें राशिके $\frac{१}{३}$, $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{४}$ भाग जोडनेसे ६८ होता है । इसमें गुणक ५ । ऊन $\frac{१}{३}$ । हर १० । युक्त होनेवाले राश्यश $\frac{१}{३}$, $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{४}$ और दृश्य संख्या ६८ है । कल्पना कीजिये कि इष्ट राशि ३ है । इसमें प्रश्नकर्ताके कथनानुसार ५ से गुणा किया तो १५, इसमें अपना $\frac{१}{३}$ अर्थात् ५ घटा दिया तो १० हुआ । इसमें दससे भाग दिया तो १ लब्धि अङ्क हुआ, उसमें कल्पित राशि ३के $\frac{१}{३}$, $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{४}$ जोड़नेसे $\frac{१}{१}+\frac{३}{३}+\frac{३}{२}+\frac{३}{४}=\frac{१२+१२+१८+९}{१२}=\frac{५१}{१२}=\frac{१७}{४}$ हुआ । फिर दृश्य ६८ में कल्पित इष्ट ३ से गुणा किया और $\frac{१७}{४}$से भाग दिया तो $\frac{६८\times३\times४}{१७}=४८$ यही इष्ट संख्या हुई ।

योगोऽन्तरेणोनयुतोऽर्धितो राशी तु संक्रमे।
राश्यन्तरहृतं वर्गान्तरं योगस्ततश्च तौ ॥३१॥

संक्रमण-गणितमें (यदि दो संख्याओंका योग और अन्तर ज्ञात हो तो) योगको दो जगह लिखकर एक जगह अन्तरको जोडकर आधा करे तो एक संख्याका ज्ञान होगा और दूसरी जगह अन्तरको घटाकर आधा करे तो दूसरी संख्या ज्ञात होगी—इस प्रकार दोनों राशियाँ (संख्याएँ) ज्ञात हो जाती हैं*। वर्गसंक्रमणमें (यदि दो संख्याओंका वर्गान्तर तथा अन्तर ज्ञात हो तो) वर्गान्तरमें अन्तरसे भाग देनेपर जो लब्धि आती है, वही उनका योग है; योगका ज्ञान हो जानेपर फिर पूर्वोक्त प्रकारसे दोनों संख्याओंका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये † ॥ ३१ ॥

गजघ्नीष्टकृतिर्व्येका दलिता चेष्टभाजिता।
एकोऽस्य वर्गो दलितः सैको राशिः परो मतः ॥३२॥
द्विगुणेष्टहृतं रूपं सेष्टं प्राग्रूपकं परम्।
वर्गयोगान्तरे व्येके राश्योर्वर्गौ स्त एतयोः ॥३३॥
इष्टवर्गकृतिश्चेष्टघनोऽष्टघ्नौ च सैककः।
आद्यः स्यातामुभे व्यक्ते गणितेऽव्यक्त एव च ॥३४॥

वर्गकर्मगणितमें‡ इष्टका वर्ग करके उसमें आठसे गुणा करे, फिर एक घटा दे, उसका आधा करे। तत्पश्चात्—उसमें इष्टसे भाग दे तो एक राशि ज्ञात होगी। फिर उसका वर्ग करके आधा करे और उसमें एक जोड दे तो दूसरी संख्या ज्ञात होगी § ॥ ३२ ॥ अथवा कोई इष्ट-कल्पना करके उस द्विगुणित इष्टसे १ में भाग देकर लब्धिमें इष्टको जोड़े तो प्रथम संख्या होगी और दूसरी संख्या १ होगी। ये दोनों संख्याएँ वे ही होंगी, जिनके वर्गोंके योग और अन्तरमें एक घटानेपर भी वर्गाङ्क ही शेष रहता है ×॥ ३३ ॥ किसी इष्टके वर्गका वर्ग तथा पृथक् उसीका घन करके दोनोंको पृथक्-पृथक् आठसे गुणा करे। फिर पहलेमें एक जोडे तो दोनों संख्याएँ ज्ञात होंगी। यह विधि व्यक्त और अव्यक्त दोनों गणितोंमें उपयुक्त है+ ॥ ३४ ॥

गुणघ्नमूलोनयुते सगुणार्द्धकृतेः पदम्।
दृष्टस्य च गुणार्द्धोनयुतं वर्गीकृतं गुणः ॥३५॥
यदा लवोनयुग्राशिर्दृश्यं भागोनयुग्भुवा।
भक्तं तथा मूलगुणं ताभ्यां साध्योऽथ व्यक्तवत् ॥३६॥

गुणकर्म अपने इष्टाङ्कगुणित मूलसे ऊन या युत राशि यदि कोई संख्या दृश्य हुई हो तो मूल गुणकके आधेका वर्ग दृश्य-संख्यामें जोड़कर मूल लेना चाहिये। उसमें क्रमसे मूल गुणकके आधा जोड़ना और घटाना चाहिये। (अर्थात् जहाँ इष्टगुणितमूलसे ऊन होकर दृश्य हो वहाँ गुणकार्धको जोड़ना तथा यदि इष्टगुणितमूलसे युत होकर दृश्य हो तो उक्त मूलमें गुणकार्ध घटाना चाहिये।

---

* जैसे किसीने पूछा—वे दोनों कौन-सी संख्याएँ हैं, जिनका योग १०१ और अन्तर २५ है? तब नीचे लिखे अनुसार क्रिया—

१०१	१०१
२५ जोड़ा	२५ घटाया
१२६÷२=६३	७६÷२=३८ उत्तर—वे दोनों संख्याएँ ६३ एवं ३८ हैं।

† उदाहरणके लिये यह प्रश्न है—जिन दो संख्याओंका अन्तर ८ और वर्गान्तर ४०० है, वे दो संख्याएँ बतलाओ। [illegible] यह योग हुआ ५०+८÷२=२९ एक संख्या। ५०—८÷२=२१ दूसरी संख्या हुई। अथवा वर्गान्तरमें [illegible] अन्तर ज्ञात होगा। यथा—४००÷५०=८ यह राश्यन्तर है। फिर पूर्वोक्त प्रक्रियासे दोनों राशियाँ ज्ञात होंगी।

‡ जहाँ किन्हीं दो संख्याओंका वर्गयोग और वर्गान्तर करके दोनोंमें पृथक्-पृथक् १ घटानेपर भी वर्गाङ्क ही शेष रहता है, उसे 'वर्गकर्म' कहते हैं।

§ कल्पना कीजिये कि इष्ट $\frac{1}{2}$ है, उसका वर्ग हुआ $\frac{1}{4}$ उसको आठसे गुणा किया तो २ हुआ। उसमें १ घटाया तथा आधा किया तो $\frac{1}{2}$ हुआ, उसमें इष्ट $\frac{1}{2}$ से भाग दिया तो १ हुआ—यह प्रथम संख्या है। उसका वर्ग किया तो एक ही हुआ। इसका आधा करनेसे $\frac{1}{2}$ हुआ। इसमें एक जोडनेसे $\frac{3}{2}$ हुआ यह दूसरी संख्या हुई।

× कल्पना कीजिये कि इष्ट १ है, उसको दोसे गुणा किया तो २ हुआ, उससे १ में भाग दिया तो $1 \div 2 = \frac{1 \times 1}{2} = \frac{1}{2}$ हुआ, उसमें इष्ट १ जोड दिया तो $1\frac{1}{2} = \frac{3}{2}$ प्रथम संख्या निकल आयी और दूसरी संख्या १ है ही।

+ कल्पना कीजिये कि इष्ट २ है। इसके वर्गका वर्ग हुआ १६ और उसका घन हुआ ८। दोनोंको अलग-अलग ८ से गुणा करनेपर एक हुआ १२८ और दूसरा हुआ ६४। यहाँ पहलेमें १ जोड़नेसे १२९ हुआ, यह पहली संख्या १२९ और ६४ दूसरी संख्या हुई।

फिर उसका वर्ग कर लेनेसे प्रश्नकर्ताकी अभीष्ट राशि (सख्या) सिद्ध होती है।* यदि राशि मूलोन या मूलयुक्त होकर पुनः अपने किसी भागसे भी ऊन या युत होकर दृश्य होती हो तो उस भागको १ में ऊन या युत कर (यदि भाग ऊन हुआ हो तो घटा करके और यदि युत हुआ हो तो जोड़ करके) उसके द्वारा पृथक्-पृथक् दृश्य और मूल गुणकमें भाग दे, फिर इस नूतन दृश्य और मूलगुणकसे पूर्ववत् राशिका साधन करना चाहिये ॥ ३५-३६ ॥

प्रमाणेच्छे सजातीये आद्यन्ते मध्यगं फलम्।
इच्छाघ्नमाद्यहृत्स्वेष्टं फलं व्यस्ते विपर्ययात् ॥३७॥

(त्रैराशिकमें) प्रमाण और इच्छा ये समान जातिके होते हैं, इन्हें आदि और अन्तमें रक्खे, फल भिन्न जातिका है, अतः उसे मध्यमे स्थापित करे। फलको इच्छासे गुणा करके प्रमाणके द्वारा भाग देनेसे लब्धि इष्टफल होती है। (यह क्रमत्रैराशिक बताया गया है।) व्यस्त त्रैराशिकमें इससे विपरीत क्रिया करनी चाहिये। अर्थात् प्रमाण-फलको प्रमाणसे गुणा करके इच्छासे भाग देनेपर लब्धि इष्टफल होती है। (प्रमाण, प्रमाण-फल और इच्छा—इन तीन राशियोंको जानकर इच्छाफल जाननेकी क्रियाको त्रैराशिक कहते हैं।)* ॥ ३७ ॥

---

* यदि कोई पूछे—किसी हस-समूहके मूलका सप्तगुणित आधा ($\frac{७}{२}$) भाग सरोवरके तटपर चला गया और बचे हुए २ हस जलमें ही क्रीडा करते देखे गये तो उन हंसोंकी कुल सख्या कितनी थी ? यहाँ मूल गुणक $\frac{७}{२}$ है। दृष्ट सख्या २ है। गुणार्ध हुआ $\frac{७}{४}$ उसका वर्ग हुआ $\frac{४९}{१६}$ उससे दृष्ट २ का योग करनेपर $\frac{८१}{१६}$ हुआ। इसका मूल हुआ $\frac{९}{४}$ फिर इसे गुणार्ध $\frac{७}{४}$ से युक्त किया तो $\frac{१६}{४}$=४ हुआ, इसका वर्ग किया तो १६ हुआ, यही हसकुलका मान है। (यह मूलोन दृष्टका उदाहरण है।)

भागोन दृष्टका उदाहरण इस प्रकार है—किसी व्यक्तिने अपने धनका आधा $\frac{१}{२}$ अपने पुत्रको दिया और धन-सख्याके मूलका १२ गुना भाग अपनी स्त्रीको दे दिया। इसके बाद उसके पास १०८०) बच गये तो बताओ उसके सम्पूर्ण धनकी सख्या क्या है ?

उत्तर—इस प्रश्नमें मूलगुणक १२ है और $\frac{१}{२}$ भागसे ऊन दृष्ट १०८० है। अत. मूल श्लोकमें वर्णित रीतिके अनुसार भागको एकमें घटानेसे $१-\frac{१}{२}=\frac{१}{२}$ हुआ। इससे मूल गुणक १२ और दृश्य १०८० में भाग देनेसे क्रमश नवीन मूलगुणक २४ और नवीन दृश्य २१६० हुआ। पुन. उपर्युक्त रीतिसे इस मूलगुणकके आधे १२ के वर्ग १४४ को दृश्यमें जोड़नेसे २३०४ हुआ। इसके मूल ४८ में गुणक २४ के आधे १२ को जोड़नेसे ६० हुआ और उसका वर्ग ३६०० हुआ; यही उत्तर है।

भागयुत दृष्टका उदाहरण—एक भगवद्भक्त प्रात:काल जितनी सख्यामें हरिनामका जप करते हैं, उस संख्याके पञ्चमांशमें उसी जपसख्याके मूलका १२ गुना जोडनेसे जो सख्या हो, उतना जप सायंकालमें करते हैं, यदि दोनों समयकी जपसख्या मिलकर १३२०० है तो प्रात.काल और सायंकालकी पृथक् पृथक् जपसख्या बताइये।

उत्तर—यहाँ मूलगुणक १२ और भाग $\frac{१}{५}$ से युत दृष्ट १३२०० है। अतः उक्त रीतिके अनुसार भागको १ में जोड़ा गया तो $\frac{६}{५}$ हुआ। इससे मूलगुणक १२ और दृश्य १३२०० में भाग देनेपर नवीन मूलगुणक १० और नवीन दृश्य ११००० हुआ। उपर्युक्त रीतिके अनुसार गुणकके आधे ५ के वर्ग २५ को नवीन दृश्यमें जोडनेपर ११०२५ हुआ। इसका मूल १०५ हुआ। इसमें नवीन गुणकके आधे ५ को घटानेसे १०० हुआ। इसका वर्ग १०००० है। यही प्रात कालकी जपसंख्या हुई। शेष ३२०० सायकालकी जपसंख्या हुई।

* उदाहरणके लिये यह प्रश्न है—यदि पाँच रुपयेमें १०० आम मिलते हैं तो सात रुपयेमें कितने मिलेंगे ? इस प्रश्नमें ५ प्रमाण है, १०० प्रमाण-फल है और ७ इच्छा है। प्रमाण और इच्छा एक जाति (रुपया) तथा प्रमाण-फल भिन्न जाति (आम) है। आदिमें प्रमाण, मध्यमें फल और अन्तमें इच्छाको स्थापना की गयी—५) में १०० आम तो ७) में कितने ? यहाँ प्रमाण-फल १०० को इच्छासे गुणा करके प्रमाणसे भाग दिया जायगा तो $\frac{१००\times७}{५}$=१४० यह इच्छाफल हुआ (अर्थात् सात रुपयेके १४० आम हुए)।

जहाँ इच्छाकी वृद्धिमें फलकी वृद्धि और इच्छाके ह्रासमें फलका ह्रास हो, वहाँ क्रम-त्रैराशिक होता है। जहाँ इच्छाकी वृद्धिमे फलका ह्रास और इच्छाके ह्रासमें फलकी वृद्धि हो, वहाँ व्यस्तत्रैराशिक होता है। वैसे स्थलोंमें प्रमाणफलको प्रमाणसे गुणा करके उसमें इच्छाके द्वारा भाग देनेसे इच्छाफल होता है। इस प्रकारके व्यस्त-त्रैराशिकके कुछ परिगणित स्थल हैं—'जीवानां वयसो मौल्ये तौल्ये वर्णस्य हैमने। भागहारे च राशीना व्यस्त त्रैराशिकं भवेत् ॥' अर्थात् जीवोंकी वयसके मूल्यमें, उत्तमके साथ अधम मोलवाले सोनेके तौलमें तथा किसी सख्यामें भिन्न-भिन्न भाजकसे भाग देनेमें व्यस्त-त्रैराशिक होता है। एक उदाहरण लीजिये—३ आदमी मिलकर १० दिनमें एक काम पूरा करते हैं तो १५ आदमी 'कितने दिनमें करेंगे ? यहाँ १०×३÷१५ करनेसे उत्तर आया २; अत. २ दिनमें काम पूरा करेंगे।

पञ्चराश्यादिकेऽन्योन्यपक्षं कृत्वा फलच्छिदाम् ।
बहुराशिवधे भक्ते फलं स्वल्पवधेन च ॥३८॥
इष्टकर्मविधेर्मूलं च्युतं मिश्रात्कलान्तरम् ।
मानघ्नकालश्चातीतकालघ्नफलसंहृताः ॥३९॥
स्वयोगभक्ता मिश्रघ्ना: सम्प्रयुक्तदलानि च ।

पञ्चराशिक, सप्तराशिक (नवराशिक, एकादशराशिक) आदिमें फल और हरोंको परस्पर पक्षमें परिवर्तन [illegible]। प्रमाण-पक्षवालेको इच्छा-पक्षमें और इच्छा-पक्षवालेको प्रमाण-[illegible] कर) अधिक राशियोंके घातमें अल्पराशिके घातसे भाग देनेपर जो लब्धि आवे, वही इच्छाफल है* ॥ ३८ ॥ मिश्रधनको [illegible] मानकर इष्टकर्मसे मूलधनका ज्ञान करे। उसको मिश्रधनमें घटानेसे कलान्तर(सूद) समझना चाहिये।† अपने-अपने प्रमा[illegible]

---

* इसका प्रश्नात्मक उदाहरण इस प्रकार है—यदि १ मासमें १००) के ५) ब्याज होते हैं तो १२ महीनेमें १६) के कितने होंगे ? इसका न्यास इस प्रकार है—

प्रमाण-पक्ष	इच्छा-पक्ष		अल्प	बहुत
१	१२	परस्पर पक्षनयन करके इस	१	१२
१००	१६	प्रकार न्यास किया गया।	१००	१६
५	०		०	५

बहुराशिके घात (गुणन) से—१२×१६×५=९६०

अल्पराशिके घात (गुणन) से—१×१००=१००

९६०÷१००=९ $\frac{६०}{१००}$=९ $\frac{३}{५}$ रुपये ब्याज हुए।

इसी तरह मूलधन तथा ब्याज जानकर काल बताना चाहिये और काल तथा ब्याज जानकर मूलधन बताना चाहिये।

सप्तराशिकका उदाहरण इस प्रकार है—यदि ४ हाथ चौड़ी और ८ हाथ लम्बी १० दरियोंका मूल्य १००) रुपया है तो ८ हाथ चौड़ी तथा १० हाथ लम्बी २० दरियोंका मूल्य क्या होगा ?

प्रमाण-पक्ष	इच्छा-पक्ष		अल्पराशि	बहुराशि
४	८	अन्योन्य पक्ष-नयनसे	४	८
८	१०		८	१०
१०	२०		१०	२०
१००				१००

श्लोकोक्त रीतिके अनुसार $\frac{८×१०×२०×१००}{४×८×१०}$=५००) पाँच सौ रुपये। यही उत्तर हुआ। इसी प्रकार नवराशिक आदिको भी जानना चाहिये।

† उदाहरण यह है—१ मासमें १००) के ५) ब्याजके हिसाबसे यदि बारह मासमें मूलधनसहित ब्याज १०००) हुआ तो [illegible] अलग मूलधन और ब्याजकी संख्या बताओ। इष्टकर्मसे मूलधन जाननेके लिये इष्ट ५ कल्पित मूलधन और इष्ट १० [illegible] यहाँ कल्पित मूलधनसे पञ्चराशिकद्वारा ब्याज जाननेके लिये न्यास—

१	१२	परस्पर पक्षनयनसे	१	१२	बहुराशिके घात (गुणन)में अल्पराशिके
१००	५		१००	५	घात (गुणन)से भाग देनेपर
५	×		×	५	$\frac{१२×५×५}{१००}$=३

३ कल्पित ब्याज हुआ। कल्पित मिश्रधन ५+३=८, इससे इष्टगुणित द्रव्यमें भाग देनेसे उत्तर मूलधन $\frac{१०००×५}{८}$=[illegible]

धनसे अपने-अपने कालको गुणा करना, उसमें अपने-अपने व्यतीत काल और फलके घात (गुणा)से भाग देना, लब्धिको पृथक् रहने देना, उन सबमे उन्हींके योगका पृथक् पृथक् भाग देना तथा सबको मिश्रधनसे गुणा कर देना चाहिये। फिर क्रमसे प्रयुक्त व्यापारमें लगाये हुए धनखण्डके प्रमाण ज्ञात होते हैं* ॥ ३९½ ॥

बहुराशिफलात् स्वल्पराशिमासफलं बहु ॥४०॥
चेद्राशिजफलं मासफलाहतिहृतं चयः ।

पञ्चराशिकादिमे फल और हरको अन्योन्य पक्षनयन करनेसे इच्छा-पक्षमे फलके चले जानेसे इच्छापक्ष बहुराशि और प्रमाण-पक्ष स्वल्पराशि माना गया है। इसी गणितके उदाहरणमें जब इच्छाफल जानकर मूलधन जानना होगा तो फलोंको परस्पर पक्षमें परिवर्तन करनेसे प्रमाणपक्ष (स्वल्पराशि) का फल ही बहुराशि (इच्छापक्ष) से अधिक होगा वहाँ राशिजफलको इष्टमास और प्रमाण-फलके गुणनसे भाग देनेपर मूलधन होता है† ॥ ४०½ ॥

इसको मिश्रधन १००० में घटानेसे ३७५) ब्याजके हुए। संक्षेपसे इस प्रकार न्यास करना चाहिये—

१	१२	लब्धिक्रमसे मूल ६२५)
१००	१०००	ब्याज ३७५)
५	०	

अथवा इष्टकर्मसे कल्पित इष्ट १

पूर्वोक्त रीतिसे कलान्तर (सूद) $\frac{३}{५}$ इससे युक्त $१=\frac{८}{५}$

$$१०००\div\frac{८}{५}=\frac{१०००\times५}{८}=६२५) \text{ मूलधन}$$

$$१०००-६२५=३७५) \text{ ब्याज}$$

* उदाहरणके लिये यह प्रश्न है—किसीने अपने ९४) रुपये मूलधनके तीन भाग करके एक भागको माहवारी पाँच रुपये सैकडे ब्याज, दूसरे भागको तीन रुपये और तीसरे भागको चार रुपये सैकडे ब्याजपर दिया। क्रमशः तीनों भागोंमें सात, दस और पाँच मासमें बराबर ब्याज मिले तो तीनों भागोंकी अलग-अलग संख्या बताओ।

भाग १	भाग २	भाग ३	मिश्रधन(सम्मिलित मूलधन)
प्रमाणकाल १ व्यतीतकाल ७	प्र० का० १ व्य० का० १०	प्र० का० १ व्य० का० ५	९४
प्रमाण धन १००	प्रमाण धन १००	प्रमाण धन १००	
प्रमाण फल ५	प्रमाण फल ३	प्रमाण फल ४	

अपने प्रमाणकाल और प्रमाणधनके गुणनफलमें व्यतीतकाल और प्रमाण फलके गुणनफलसे भाग देनेपर—

$$\frac{१००\times१=१००}{७\times५=३५}=\frac{२०}{७} \quad\Big|\quad \frac{१००\times१}{३\times१०}=\frac{१००}{३०}=\frac{१०}{३} \quad\Big|\quad \frac{१००\times१}{४\times५}=\frac{१००}{२०}=\frac{५}{१}$$

इनमें इनके योग $\frac{२३५}{२१}$ से भाग देने और मिश्रधन (९४) से गुणा करनेपर पृथक्-पृथक् भाग इस प्रकार होते हैं—

$\frac{२०}{७}-\frac{२३५}{२१}$, $\frac{२०}{७}\times\frac{२१}{२३५}\times\frac{९४}{}=२४$ यह प्रथम भाग हुआ।

$\frac{१}{२३५}\times\frac{९४}{}=२८$ यह द्वितीय भाग हुआ।

$\frac{५}{१}-\frac{२३५}{२१}$, $\frac{५}{१}\times\frac{२१}{२३५}\times\frac{९४}{}=४२$ यह तृतीय भाग हुआ।

† उदाहरण—एक मासमें १००) मूलधनका ५) रुपया ब्याज होता है तो १२ मासमें १६ रुपयेका कितना होगा?

उत्तरार्थ न्यास—

प्रमाण	इच्छा
१	१२
१००	१६
५	×

अन्योन्य पक्षनयनसे

स्वल्प राशि	बहुराशि
१	१२
१००	१६
	५

श्लोकोक्त रीतिके अनुसार—$\frac{१२\times१६\times५}{१००}=\frac{४८}{५}=$ इच्छाफल।

क्षेपा मिश्रहताः क्षेपयोगभक्ताः फलानि च ॥४१॥
भलेच्छिद्रोंऽशैस्तैर्मिश्रे रूपं कालश्च पूर्तिकृत्।

प्रक्षेप (पूँजीके टुकड़े) को पृथक्-पृथक् मिश्रधनसे गुण देना और उसमें प्रक्षेपके योगसे भाग देना चाहिये। इससे पृथक्-पृथक् फल ज्ञात होते हैं।* वापी आदि पूरणके प्रश्नमें—अपने-अपने अंशोंसे हरमें भाग देना, फिर उन सबके योगसे १ में भाग देनेपर वापीके भरनेके समयका ज्ञान होता है†॥ ४१½ ॥

गुणो गच्छेऽसमे व्येके समे वर्गोऽर्द्धितेऽन्ततः ॥४२॥
यद् गच्छान्तफलं व्यस्तं गुणवर्गभवं हि तत्।
व्येकं व्येकगुणाप्तं च प्राद्यनं मान [illegible] ॥४३॥

(द्विगुणचयादि-वृद्धिमें फलका साधन)—([illegible] त्रिगुण आदि चय हो [illegible]) पद यदि विषम [illegible] ५, ७ आदि) हो तो उसमें १ घटाकर गुणक [illegible] पद सम हो तो आधा करके वर्गचिह्न [illegible] एक घटाने और आधा करनेमें भी जब विषमाङ्क हो तब गुणकचिह्न, जब समाङ्क हो तब वर्गचिह्न [illegible] जबतक पदकी कुल संख्या समाप्त न हो [illegible] रहना चाहिये। फिर अन्त्य चिह्नसे उलटा गुणन और वर्ग[illegible] साधन करके आद्य चिह्नतक जो फल हो, उसमें १ घटा[illegible]

इसी उदाहरणमें मूलधन जाननेके लिये—

न्यास—

प्रमाण पक्ष	इच्छा पक्ष
मास १	१२ मास
धनराशि १००	×
फल ५	४८=इच्छाफल (४ थी राशि)

यहाँ फल और हरके अन्योन्य पक्षनयन करनेसे—

बहुराशि	स्वल्पराशि
प्रमाण	इच्छा
मास १	१२
धन १००	×
४८	५
	५

"बहुराशिफलात्" इत्यादि ४० वें श्लोकके अनुसार

$$\frac{१\times१००\times४८}{१२\times५\times५}=१६=\text{मूलधन}।$$

* मान लीजिये कि ३ व्यापारियोंके क्रमसे ५१, ६८, ८५ रुपये मूलधन हैं। तीनोंने एक [illegible] ३००) रुपये प्राप्त किये तो इन तीनोंके पृथक्-पृथक् कितने धन होंगे ? यहाँ मूलोक्त नियमके अनुसार प्रक्षेपों ([illegible]) मिश्रधन ३०० से गुणाकर प्रक्षेपोंके योग २०४ के द्वारा भाग देनेपर लब्धिक्रमसे तीनोंके पृथक्-पृथक् [illegible] हुए। [illegible]

भाग$=\frac{५१\times३००}{२०४}=७५$। द्वितीयका भाग$=\frac{६८\times३००}{२०४}=१००$। तृतीयका भाग$=\frac{८५\times३००}{२०४}=१२५$।

† कल्पना कीजिये कि एक झरना या नल किसी तालाबको १ दिन (१२ घंटे)में, दूसरा १/२ दिनमें, [illegible] दिनमें अलग-अलग खोलनेपर भर देता है तो यदि चारों एक ही साथ खोल दिये जायँ तो दिनके कितने भागमें [illegible]

मूलोक्त रीतिसे अपने-अपने अंशसे हरमें भाग देनेसे [illegible] इनके योग [illegible] १ दिनके १२ वें भागमें (१ घंटेमें) तालाब भर जायगा।

शेषमें एकोन गुणकसे भाग देना चाहिये। लब्धिको आदि अङ्कसे गुणा करनेपर सर्वधन होता है* ॥ ४२-४३ ॥

भुजकोटिकृतेर्योगमूलं कर्णश्च दोर्भवेत्।
श्रुतिकोटिकृतेरन्तः पदं दोःकर्णवर्गयोः ॥४४॥
विवराद् यत्पदं कोटि. क्षेत्रे त्रिचतुरस्रके।
राश्योरन्तरवर्गेण द्विघ्ने घाते युते तयोः ॥४५॥
वर्गयोगोऽथ योगान्तर्हतिर्वर्गान्तरं भवेत्।

(क्षेत्रव्यवहार-प्रकरण)—भुज और कोटिके वर्गयोगका मूल कर्ण होता है, भुज और कर्णके वर्गान्तरका मूल कोटि होता है तथा कोटि एवं कर्णके वर्गान्तरका मूल भुज होता है—यह बात त्रिभुज अथवा चतुर्भुज क्षेत्रके लिये कही गयी है †। अथवा राशिके अन्तरवर्गमे उन्हीं दोनों राशियोंका द्विगुणित घात (गुणनफल) जोड़ दें तो वर्गयोग होता है अथवा उन्हीं दोनों राशियोंके योगान्तरका घात वर्गान्तर होता है‡ ॥ ४४-४५½ ॥

---

* कल्पना कीजिये कि किसी दाताने किसी याचकको पहले दिन २ रुपये देकर उसके बाद प्रतिदिन द्विगुणित करके देनेका निश्चय किया तो बताइये कि उसने ३० दिनमें कितने रुपये दान किये।

उत्तर—यहाँ आदि=२, गुणात्मकचय=२, पद=३० है। पद सम अंक है। अतः आधा करके १५ के स्थानमें वर्गचिह्न लगाया, यह विषमाङ्क हुआ, अत उसमें १ घटाकर १४ के स्थानमें गुणकचिह्न लिखा। फिर यह सम हो गया, अत. आधा ७ करके वर्गचिह्न किया, इस प्रकार पद-संख्याकी समाप्तिपर्यन्त न्यास किया। न्याम देखिये—

न्यास.—

१५	वर्ग	१०७३७४१८२४
१४	गुण	३२७६८
७	वर्ग	१६३८४
६	गुण	१२८
३	वर्ग	६४
२	गुण	८
१	वर्ग	४
०	गुण	२

अन्तमें गुणचिह्न हुआ। वहाँ गुणकाङ्क २ को रखकर उल्टा प्रथम चिह्नतक गुणक-वर्गज फल-साधन किया तो १०७३७४१८२४ हुआ।

इसमें एक घटाकर एकोनगुण (१) से भाग देकर आदि (२) से गुणा किया तो २,१४,७४,८३,६४६ रुपये सर्वधन हुआ।

† लीलावती (क्षेत्रव्यवहार श्लोक १,२) में इस विषयको इस प्रकार स्पष्ट किया है—'त्रिभुज या चतुर्भुजमें जब एक भुजपर दूसरा भुज लम्बरूप हो, उन दोनोंमें एक (नीचेकी पड़ी रेखा) को 'भुज' और दूसरी (ऊपरकी खड़ी रेखा) को 'कोटि' कहते हैं। तथा उन दोनोंके वर्गयोग मूलको 'कर्ण' कहते हैं। भुज और कर्णका वर्गान्तर मूल कोटि तथा कोटि और कर्णका वर्गान्तर मूल भुज होता है। यथा—'क, ग, च' यह एक त्रिभुज है। 'क, ग' इस रेखाको कोटि कहते हैं। 'ग, च' इस रेखाका नाम भुज है, 'क, च' का नाम कर्ण है।
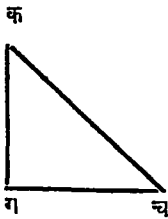
उदाहरण—जैसे प्रश्न हुआ कि जिस जात्य त्रिभुजमें कोटि= ४, भुज=३ है वहाँका कर्णमान क्या होगा? तथा भुज और कर्ण जानकर कोटि बताओ और कोटि, कर्ण जानकर भुज बताओ।

उक्त रीतिसे ४ का वर्ग १६ और ३ का वर्ग ९, दोनोंके योग २५ का मूल ५ यह कर्ण हुआ। एव कर्ण ५ और भुज ३, इन दोनोंके वर्गान्तर २५−९=१६, इसका मूल ४ कोटि हुई तथा कर्णके वर्ग २५ में कोटिके वर्ग १६ को घटाकर शेष ९ का मूल ३ भुज हुआ।

इसी प्रकार सर्वत्र जानना चाहिये।

‡ जैसे ३ और ४ ये दो राशियाँ हैं। इन दोनोंके दूने गुणनफलमें ३×४×२=२४ में दोनों राशियोंका अन्तर वर्ग $(४-३)^2$= $(१)^2$=१ मिलानेसे २४+१=२५ यह दोनों राशियोंके वर्गयोग $(३)^2+(४)^2$=९+१६=२५ के बराबर है तथा उन्हीं दोनों राशियोंके योगान्तर घात (३+४)×(४−३)=७×१=७ यह दोनों राशियोंके वर्गान्तर १६−९=७ के बराबर है। (² यह निशान वर्गका है)।

व्यास आकृतिसंक्षुण्णोऽद्र्यासः स्यात्परिधिर्मुने ॥४६॥*
ज्याव्यासयोगविवराहतमूलोनितोऽर्द्धित. ।
व्यास. शरः शरोनाच्च व्यासाच्छरगुणात्पदम् ॥४७॥
द्विघ्नं जीवाथ जीवार्द्धवर्गे शरहृते युते ।
व्यासो वृत्ते भवेदेवं प्रोक्तं गणितकोविदै. ॥४८॥

मुने ! व्यासको २२से गुण देना और [illegible] भाग देना [illegible] इससे स्थूल परिधिका ज्ञान होता है* ॥ ४६ ॥ ज्या ([illegible]) [illegible] व्यासका योग एक जगह रखना और अन्तरको दूसरी [illegible]

* नारदपुराणके इस गणितविभागमें क्षेत्रव्यवहारकी चर्चामात्र होकर दूसरे विषय आ गये हैं; त्रिभुजादि क्षेत्रफलका विवेचन न होनेसे यह प्रकरण अधूरा-सा लगता है । जान पड़ता है, इस विषयके श्लोक लेखकके प्रमादसे छूट गये हैं, अत· टिप्पणीमें संक्षेपत उक्त न्यूनताकी पूर्ति की जाती है ।

त्रिभुजे भुजयोर्योगस्तदन्तरगुणो हृत ।
भुवा लब्ध्या युतोना भूर्द्विष्ठा च दलिता पृथक् ॥
आबाधे भुजयोर्ज्ञेये क्रमशश्चाधिकाल्पयो ।
स्वाबाधाभुजयोर्वर्गान्तरान्मूलं च लम्बक ॥
लम्बभूमिहतेरर्धं प्रस्फुट त्रिभुजे फलम् ।
ततो बहुभुजान्त.स्थत्रिभुजेभ्यश्च तत्फलम् ॥

(त्रिभुजादि क्षेत्रफलानयन) त्रिभुजका फल जानना हो तो उसके तीन भुजोंमें एकको भूमि और शेष दोको भुज मानकर क्रिया करे । यथा—दोनों भुजके योगको उन्हीं दोनोंके अन्तरसे गुणा करके गुणनफलमें भूमिसे भाग देनेपर जो लब्धि हो, उसको भूमिमें जोड़कर आधा करे तो बड़े भुजकी 'आबाधा' होती है और उसी लब्धिको भूमिमें घटाकर आधा करनेसे लघुभुजकी 'आबाधा' होती है । अपने-अपने भुज और आबाधाके 'वर्गान्तर' करके शेषका मूल लेनेसे लम्बका मान प्रकट होता है । लम्ब और भूमिके गुणनफलका आधा त्रिभुजका क्षेत्रफल होता है ।

उदाहरण—कल्पना कीजिये कि किसी त्रिभुजमें तीनों भुजोंके मान क्रमसे १३, १४, १५ हैं तो उस त्रिभुजका क्षेत्रफल क्या होगा ? तो यहाँ १४ को भूमि और १३, १५ को भुज मानकर क्रिया होगी । यथा—दोनों भुजके योग २८ को उन्हीं दोनोंके अन्तर २ से गुणा करनेपर ५६ हुआ । इसमें भूमि १४ के द्वारा भाग देनेसे लब्धि ४ हुई । इस चारको भूमि १४ में जोड़कर आधा करनेसे ९ हुआ—यह बड़े भुजकी 'आबाधा'का मान है । एव भूमिमें लब्धिको घटाकर आधा करनेसे ५ हुआ । यह लघुभुजकी 'आबाधा' हुई । भुज और आबाधाके वर्गान्तर (२२५—८१=१४४) अथवा (१६९—२५=१४४) का मूल १२ हुआ । यह लम्बका मान है । लम्ब और भूमिके गुणनफल (१२×१४)=१६८ का आधा ८४ हुआ, यह उक्त त्रिभुजका क्षेत्रफल है ।

इस प्रकार त्रिभुज फलानयनकी [illegible] एक कोणसे दूसरे कोणतक [illegible] भूमि और [illegible] दो भुजोंको भुज मानकर फल निकाला [illegible] । [illegible] त्रिभुजोंके फलको जोड़नेसे क्षेत्रफलकी सिद्धि हो[illegible] ३ त्रिभुज बनेंगे और उन तीनों त्रिभुजोंके फलोंका [illegible] सिद्ध होगा । इसी प्रकार षड्भुज आदि [illegible] ।

विशेष वक्तव्य—तीन रेखाओंसे [illegible] कहलाता है । उन तीनों रेखाओंमें [illegible] भूमि [illegible] दोनों बगलकी दो रेखाओंको 'भुज' कहते हैं ।

(लम्ब—) ऊपरके कोणसे भूमितक [illegible] कहते हैं ।

(आबाधा—) लम्बसे विभक्त भूमिके [illegible] दोनों ओर हैं) दोनों भुजोंकी 'आबाधा' [illegible] । [illegible] क्षेत्रमें स्पष्ट देखिये—

वृत्तक्षेत्रमें परिधि और व्यासके [illegible] होता है । जैसे—

[illegible]

* जैसे पूछा गया कि [illegible] परिधिका मान क्या होगा तथा जिसमें ४४ [illegible] मान क्या होगा ? तो [illegible] गुणा करके गुणनफलमें ७से भाग देनेपर [illegible] स्थूल हुआ ।
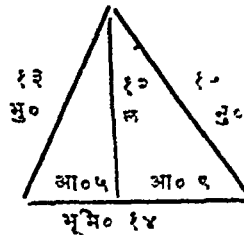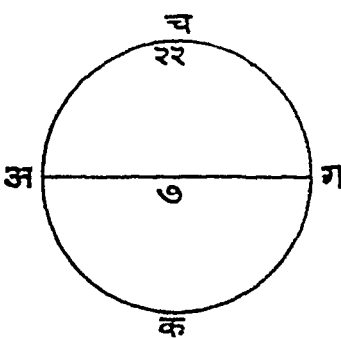
रखना चाहिये । फिर इन दोनोंका घात (गुणा) करना चाहिये । उस गुणनका मूल लेना और उसको व्यासमें घटा देना चाहिये । फिर उसका आधा करे, वही 'शर' होगा । व्यासमे शरको घटाना, अन्तरको शरसे गुण देना, उसका मूल लेना और उसे दूना करना चाहिये तो 'जीवा' हो जायगी । जीवाका आधा करके उसका वर्ग करना, शरसे भाग देना और लब्धिमें शरको जोड़ देना चाहिये, तो व्यासका मान होगा *॥ ४७-४८ ॥

चापोननिघ्नः परिधिः प्रागाख्यः परिधेः कृतेः ।
तुर्यांशेन शरघ्नेनाद्योनेनाद्यं चतुर्गणम् ॥४९॥
व्यासघ्नं प्रभजेद्विप्र ज्यका संजायते स्फुटा ।
ज्याङ्घ्रीपुघ्नो वृत्तवर्गोऽङ्घिघ्नव्यासाढ्यमौर्विहृत् ॥५०॥
लब्धोनवृत्तवर्गाङ्घ्रेः पदेऽर्धात्पतिते धनुः ।

परिधिसे चापको घटाकर शेषमे चापसे ही गुणा करनेपर गुणनफल 'प्रथम' कहलाता है । परिधिका वर्ग करना, उसका चौथा भाग लेना, उसे पाँचसे गुणा करना और उसमे 'प्रथम'को घटा देना चाहिये, यह भाजक होगा । चतुर्गुणित व्यासको प्रथमसे गुण देना, यह भाज्य हुआ । भाज्यमें भाजकसे भाग देना, यह जीवा हो जायगी †॥ ४९½ ॥

व्यासको चारसे गुणा करके उसमें जीवाको जोड़ देना, यह भाजक हुआ । परिधिके वर्गको जीवाकी चौथाई और पाँचसे गुण देना, यह भाज्य हुआ । भाजकसे भाज्यमें भाग देना, जो लब्धि आवे, उसे परिधिवर्गके चतुर्थांशमे घटा देना और शेषका मूल लेना, उसे वृत्त (परिधि) के आधेमें घटा देनेपर तो धनु (चाप) होगा * ॥ ५०½ ॥

---

* उदाहरणार्थ प्रश्न—जिस 'वृत्त'का 'व्यास' १० है, उसमें यदि 'जीवा'का मान ६ है तो 'शर' का मान क्या होगा ? 'शर' का ज्ञान हो तो जीवा बताओ तथा 'जीवा' और 'शर' जानकर व्यासका मान बताओ ।

उत्तर-क्रिया—मूलोक्त नियमके अनुसार व्यास और जीवाका योग १०+६=१६ हुआ। व्यास और जीवाका अन्तर १०—६=४ हुआ । दोनोंका गुणनफल १६×४=६४ हुआ । इसका मूल ८ हुआ । इसे व्यास १० में घटाया तो २ हुआ । इसका आधा किया तो १ 'शर' (बाण) हुआ । व्यास १० मे शर १ घटाया तो ९ हुआ । इसे शर १ से गुणा किया तो ९ हुआ । इसका मूल लिया तो ३ हुआ । इसे द्विगुण किया तो ६ जीवाका प्रमाण हुआ । इसी तरह 'जीवा' और 'शर' का ज्ञान होनेपर जीवा ६ के आधे ३ का वर्ग किया तो ९ हुआ । इसमें शर १ से भाग दिया और लब्धिमें शरको जोड़ दिया तो $\frac{९}{१}+\frac{१}{१}$=१० हुआ । यही व्यासका मान है ।
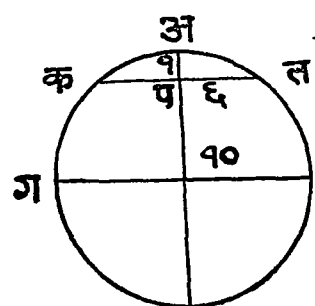
† उदाहरण—जिस वृत्तका व्यासार्ध १२० (अर्थात् व्यास २४०) है, उस वृत्तके अष्टादशांश क्रमसे १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ से गुणित यदि चापमान हों तो अलग-अलग सबकी जीवा बताओ ।

उत्तर-क्रिया—व्यासमान २४० । इसपरसे परिधि ७५४ । इसका अठारहवाँ भाग ४२ क्रमसे एकादि गुणित ४२, ८४, १२६, १६८, २१०, २५२, २९४, ३३६ और ३७८—ये ९ प्रकारके चाप-मान हुए । मूल-सूत्रके अनुसार इन चाप और परिधिपरसे जो जीवाओंके मान होंगे, वे ही किसी तुल्याङ्कसे अपवर्तित चाप और अपवर्तित परिधिसे भी होंगे । अत ४२ से अपवर्तन करनेपर परिधि १८ तथा चाप-मान १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ हुए । अब प्रथम जीवामान साधन करना है, तो प्रथम अपवर्तित चाप १ को परिधिसे घटाकर शेपको चाप १ से गुणा करनेपर १७ यह 'प्रथम' या 'आद्य' सज्ञक हुआ । तथा परिधिवर्ग चतुर्थांशको ५ से गुणा कर $\frac{३२४×५}{४}$=४०५ इसमें आद्य १७ को घटाकर शेप ३८८ से चतुर्गुणित व्यासद्वारा गुणित 'प्रथम' में भाग देनेसे $\frac{२४०×४×१७}{३८८}$=४२ लब्धि हुई । यह (स्वल्पान्तरसे) प्रथम जीवा हुई । एव द्वितीय चाप २ को परिधिमें घटाकर शेपको चापसे गुणा कर देनेपर ३२ यह 'प्रथम' या 'आद्य' हुआ । इसे पञ्चगुणित परिधिवर्गके चतुर्थांश ४०५ में घटाकर शेप ३७३ से चतुर्गुणित व्यासद्वारा गुणित 'प्रथम'में भाग देनेपर $\frac{२४०×४×३२}{३७३}$=८२ लब्धि हुई । स्वल्पान्तरसे यही द्वितीय जीवा हुई । इसी प्रकार अन्य जीवाका भी साधन करना चाहिये ।

* अब जीवा-मान जानकर चापमान जाननेकी विधि बताते हैं— जैसे प्रश्न हुआ कि २४० व्यासवाले वृत्तमें जीवामान ४२ और ८२ हैं तो इनके चापमान क्या होंगे ? (उत्तर-क्रिया—) यथा—जीवा ८२ । वृत्त व्यास २४० । यहाँ लाघवके लिये परिधिमान अपवर्तित ही लिया, अत इसपरसे भी चापमान अपवर्तित ही आवेंगे । अब श्लोकानुसार परिधिवर्ग ३२४ को जीवाके चतुर्थांश $\frac{८२}{४}$ और ५ से गुणा करनेपर $\frac{३२४×८२×५}{४}$ =८१×८२×५=३३२१० हुआ । इसमें चतुर्गुणित व्याससे युक्त जीवा १०४२ द्वारा भाग देनेपर लब्धि स्वल्पान्तरसे ३२ हुई ।

स्थूलमध्याण्वन्नवेधो वृत्ताङ्कांशेशभागिकः ॥५१॥
वृत्ताङ्गांशकृतिर्वेधनिघ्नी घनकरा मिता।
वारिण्यासहतं दैर्घ्यं वेधाङ्गुलहतं पुनः ॥५२॥
खखेन्दुरामविहृतं मानं द्रोणादि वारिणः।
विस्तारायामवेधानामङ्गुल्योऽन्योन्यताडिताः ॥५३॥
रसाङ्काश्राब्धिभिर्भक्ता धान्ये द्रोणादिका मितिः।
उत्सेधव्यासदैर्घ्याणामङ्गुलान्यश्मनो द्विज ॥५४॥
मिथोघ्नानि भजेत्खाक्षेशैर्द्रोणादिर्मितिर्भवेत्।
विस्ताराद्यङ्गुलान्येवं मिथोघ्नान्ययसां भवेत् ॥५५॥
बाणेभमार्गणैर्लब्धं द्रोणाद्यं मानमादिशेत्।

(अन्नादि राशि-व्यवहार) राशि-व्यवहारमें स्थूल, मध्यम, सूक्ष्म, अन्नराशियोंमे क्रमशः उनकी परिधिका नवमांश, दशमांश और एकादशांश वेध होता है। परिधिका षष्ठांश लेकर उसका वर्ग करना और उसे वेधसे गुण देना चाहिये। उसका नाम 'घनहस्त' होगा *। जलके व्यास (चौड़ाई)से लम्बाईको गुण देना, फिर उसीको गहराईके अंगुल-मानसे गुण देना तथा ३१०० से भाग देना चाहिये। इससे जलका द्रोणात्मक मान ज्ञात होगा * ॥ ५१—५२½ ॥ चौड़ाई, गहराई [illegible] लंबाईके अंगुलात्मक मानको परस्पर गुणा देना और उसमें ४०९६से भाग देना तो अन्नका द्रोणादि मान होगा †। [illegible] व्यास (चौड़ाई) और लंबाईके अंगुलात्मक मानको परस्पर गुणा देना और ११५० से भाग देना चाहिये। यह [illegible] द्रोणात्मक मान होगा। ‡ विस्तार आदिके अंगुलात्मक मानको परस्पर गुणा करना चाहिये और ५८५ से भाग देना चाहिये, तो लब्धि लोहेके द्रोणात्मक मानकी सूचक होती है § ॥ ५३—५५½ ॥

इसे परिधिवर्गके चतुर्थांश ८१ में घटानेसे ४९ हुआ। इसका मूल ७ हुआ। इसे अपवर्तित परिधिके आधे ९ में घटानेसे शेष २ यह अपवर्तित द्वितीय चाप हुआ। अत. अपवर्तनाङ्क ४२ से गुणा कर देनेपर वास्तविक चाप २×४२=८४ हुआ।

* उदाहरणके लिये प्रश्न—समतल भूमिमें रखे हुए स्थूल धान्यकी परिधि यदि ६० हाथ है तो उसमें कितने घनहस्त (खारी-प्रमाण) होंगे? तथा सूक्ष्म धान्य और मध्यम धान्यकी परिधि भी यदि ६० हाथ हो तो उनके अलग-अलग खारी-प्रमाण क्या होंगे?

उत्तर-क्रिया—मूलोक्त नियमके अनुसार परिधि-मानका दशमांश ६ यह मध्यम धान्यका वेध हुआ। परिधिके षष्ठांश १० के वर्गको वेधसे गुणा करनेपर १००×६=६०० घनहस्त-मान हुए। एवं सूक्ष्म धान्यका वेध $\frac{६०}{११}$ है। इससे परिधिके षष्ठांशके वर्ग १०० को गुण देनेसे सूक्ष्म धान्यके घनहस्त-मान $\frac{६०००}{११}$ $=१४५\frac{५}{११}$ हुए। तथा स्थूल धान्यका वेध $\frac{६०}{९}$ है। इससे परिधिके षष्ठांशके वर्गको गुण देनेपर स्थूल धान्यके घनहस्त-मान $\frac{६०००}{९}=६६६\frac{२}{३}$ हुए।

* उदाहरणार्थ प्रश्न—किसी बावलीकी लंबाई ६२ हाथ, चौड़ाई २० हाथ और गहराई १० हाथ है तो बताओ, उस बावलीमें कितने द्रोण जल है?

उत्तर—यहाँ मूलोक्त नियमके अनुसार इस प्रकार क्रिया करना चाहिये—पहले हाथके मानको अंगुलके मानमें परिणत करनेके लिये उसे २४ से गुणा करना चाहिये। ६२×२४=१४८८ अंगुल लंबाई है। २०×२४=४८० अंगुल चौड़ाई है। १०×२४=२४० अंगुल गहराई है। इन तीनोंके परस्पर गुणनसे १४८८×४८०×२४०=१७१४१७६०० गुणनफल हुआ। इसमें ३१०० से भाग दिया तो $\frac{१७१४१७६००}{३१००}$=५५२९६ लब्धि हुई। इतने ही द्रोण जल उस बावलीमें है।

† उदाहरणके लिये प्रश्न—किसी अन्नराशिकी लंबाई ६४ अंगुल, चौड़ाई ३२ अंगुल और ऊँचाई १६ अंगुल है तो उसका द्रोणात्मक मान क्या है? अर्थात् वह अन्नराशि कितने द्रोण होगी?

मूलकथित नियमके अनुसार ६४×३२×१६ इनको परस्पर गुणनसे ३२७६८ गुणनफल हुआ। इसमें ४०९६ से भाग देनेपर $\frac{३२७६८}{४०९६}$=८ लब्धि हुई। उत्तर निकला कि वह अन्नराशि ८ द्रोण है।

‡ उदाहरणके लिये प्रश्न—किसी पत्थरके टुकड़ेकी लंबाई २३, चौड़ाई २० और ऊँचाई १० अंगुल है तो वह कितने द्रोण वजनका है? (उत्तर) मूलोक्त नियमके अनुसार [illegible] परस्पर गुणित किया—२३×२०×१० तो गुणनफल [illegible] हुआ। इसमें ११५० से भाग देनेपर लब्धि ४ हुई। [illegible] द्रोण उस पत्थरके टुकड़ेका मान होगा।

§ जैसे किसीने पूछा—किसी [illegible] लंबाई [illegible] अंगुल, चौड़ाई १०० अंगुल और ऊँचाई ५ अंगुल है [illegible] वजन कितने द्रोण होगा? (उत्तर) [illegible]

दीपशङ्कुतलच्छिद्रघ्नः शङ्कुर्भा भवेन्मुने ॥५६॥
नरोनदीपकशिखौच्यभक्तो ह्यथ भोद्धृते ।
शङ्कौ नृदीपाधश्छिद्रघ्ने दीपौच्च्यं नरान्विते ॥५७॥
विशङ्कुदीपौच्च्यगुणा छाया शङ्कूद्धृता भवेत् ।
दीपशङ्क्वन्तरं चाथच्छायाग्रविवरघ्नभा ॥५८॥
मानान्तरहृता भूमिः स्यादथो भूनराहतिः ।
प्रभाप्ता जायते दीपशिखौच्च्यं स्यात्त्रिराशिकात् ॥५९॥
एतत्संक्षेपतः प्रोक्तं गणिते परिकर्मकम् ।
ग्रहमध्यादिकं वक्ष्ये गणिते नातिविस्तरात् ॥६०॥

छाया-साधनमे प्रदीप और शङ्कुतलका जो अन्तर हो उससे शङ्कुको गुण देना और दीपककी ऊँचाईमें शङ्कुको घटाकर उससे उस गुणित शङ्कुमें भाग देना तो छायाका मान होगा[1]। शङ्कु और दीपतलके अन्तरसे शङ्कुको गुण देना और छायासे भाग देना; फिर लब्धिमे शङ्कुको जोड़ देना तो दीपककी ऊँचाई हो जायगी[1]। शङ्कुरहित दीपककी ऊँचाईसे छायाको गुण देना और शङ्कुसे भाग देना तो शङ्कु तथा दीपकका अन्तर ज्ञात होगा[2]। छायाग्रके अन्तरसे छायाको गुण देना और छायाके प्रमाणान्तरसे भाग देना तो 'भू' होगी। 'भू' और शङ्कुका घात (गुणा) करना और छायासे भाग देना तो दीपककी ऊँचाई होगी[3]। उपर्युक्त

गुणित किया—$११७\times१००\times५=५८५००$ इस गुणनफलमें ५८५ से भाग दिया—$\frac{५८५००}{५८५}=१००$ लब्धि हुई। अतः १०० द्रोण उस लोहेका परिमाण है।

१. उदाहरणके लिये यह प्रश्न है—शङ्कु और दीपके बीचकी भूमिका मान ३ हाथ और दीपककी ऊँचाई $\frac{७}{२}$ हाथ है तो बारह अगुल ($\frac{१}{२}$ हाथ) शङ्कुकी छाया क्या होगी ?

इस क्षेत्रमें 'अ' से 'उ' तक दीपककी ऊँचाई है। 'ग' से 'त' तक शङ्कु है। 'अ' 'त'='क' 'ग'=शङ्कु और दीपतलका अन्तर है।
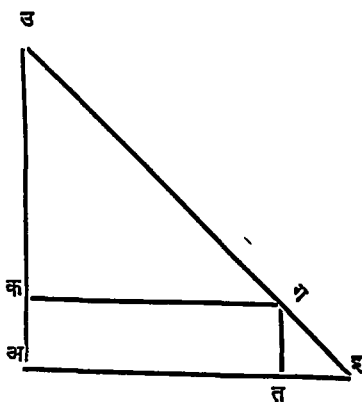
यहाँ शङ्कुको शङ्कु-दीपान्तर-भूमि-मानसे गुणा किया तो $\frac{१}{२}\times३=\frac{३}{२}$ यह गुणनफल हुआ। फिर दीपककी ऊँचाईमें शङ्कुको घटाया तो $\frac{७}{२}-\frac{१}{२}=३$ यह शेष हुआ। पूर्वोक्त गुणनफल $\frac{३}{२}$ में शङ्कु घटायी हुई दीपककी ऊँचाई ३ से भाग दिया तो $\frac{१}{२}$ लब्धि हुई। यही छायाका मान है।

१. यदि शङ्कु $\frac{१}{२}$ हाथ, शङ्कुदीपान्तर भूमि ३ हाथ और छाया १६ अंगुल है तो दीपकी ऊँचाई कितनी होगी ? इस प्रश्नका उत्तर यों है—शङ्कुको शङ्कुदीपान्तरसे गुणा किया तो $\frac{१}{२}\times३=\frac{३}{२}$ हुआ। इसमें छाया १६ अगुल अर्थात् $\frac{२}{३}$ हाथसे भाग दिया तो $\frac{३}{२}\div\frac{२}{३}=\frac{३}{२}\times\frac{३}{२}=\frac{९}{४}$ हुआ। इसमें शङ्कु $\frac{१}{२}$ को जोड दिया तो $\frac{११}{४}=२\frac{३}{४}$ हाथ दीपककी ऊँचाई हुई।

२. उपर्युक्त दीपककी ऊँचाई $\frac{११}{४}$ में से शङ्कु $\frac{१}{२}$ को घटाया तो $\frac{११}{४}-\frac{१}{२}=\frac{९}{४}$ शेष हुआ। इससे छायाको गुणित किया तो $\frac{९}{४}\times\frac{२}{३}=\frac{३}{२}$ हुआ, इसमें शङ्कुसे भाग दिया तो ३ लब्धि हुई। अत. शङ्कु और दीपके बीचकी भूमि ३ हाथकी है।

३. अभ्यासार्थ प्रश्न—१२ अगुलके शङ्कुकी छाया १२ अगुल थी, फिर उसी शङ्कुको छायाग्रकी ओर २ हाथ बढ़ाकर रखनेसे दूसरी छाया १६ अंगुल हुई तो छायाग्र और दीपतलके बीचकी भूमिका मान कितना होगा ? तथा दीपकी ऊँचाई कितनी होगी ?

उत्तर—यहाँ प्रथम शङ्कुसे दूसरे शङ्कुतक भूमिका मान २ हाथ। प्रथम छाया $\frac{१}{२}$ हाथ, द्वितीय छाया $\frac{२}{३}$ हाथ। शङ्कु-अन्तर २ में प्रथम छाया $\frac{१}{२}$ को घटाकर शेष $\frac{३}{२}$ में द्वितीय छाया $\frac{२}{३}$ को जोडनेसे $\frac{१३}{६}$ यह छायाग्रोंका अन्तर हुआ। तथा छायान्तर $\frac{२}{३}-\frac{१}{२}=\frac{१}{६}$ हुआ। अब मूलोक्त नियमके अनुसार प्रथम छाया $\frac{१}{२}$ को छायाग्रान्तरसे गुणा किया तो $\frac{१}{२}\times\frac{१३}{६}=\frac{१३}{१२}$ हुआ। इसमें छायान्तर $\frac{१}{६}$ से भाग दिया तो $\frac{१३}{१२}\times\frac{६}{१}=\frac{१३}{२}$ (या $६\frac{१}{२}$) यह प्रथम भूमिमान हुआ। इसी प्रकार द्वितीय छाया $\frac{२}{३}$ से छायाग्रान्तर $\frac{१३}{६}$ को गुणा करके छायान्तर $\frac{१}{६}$ से भाग देनेपर द्वितीय भूमिमान $\frac{२६}{३}$ हुआ। तथा प्रथम भूमिमान $\frac{१३}{२}$ को शङ्कुसे गुणा कर गुणनफल $\frac{१३}{४}$ में प्रथम छायासे भाग देनेपर लब्धि $\frac{१३}{२}$ यह दीपककी ऊँचाई हुई। इसी प्रकार द्वितीय भूमिसे भी दीपककी ऊँचाई इतनी ही होती है।
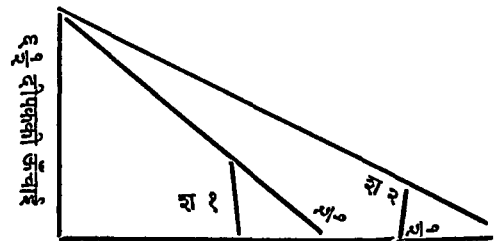
सब बातोंका ज्ञान त्रैराशिकसे ही होता है। यह परिकर्म-गणित मैंने संक्षेपसे कहा। अब ग्रहका मध्यादिक गणित बताता हूँ, वह भी अधिक विस्तारसे नहीं ॥५६-६०॥

युगमानं स्मृतं विप्र खचतुष्करदार्णवाः।
तद्दशांशास्तु चत्वार. कृताख्यं पदमुच्यते ॥६१॥
त्रयस्त्रेता द्वापरो द्वौ कलिरेक. प्रकीर्तितः।
मनु. कृताब्दसहिता युगानामेकसप्तति. ॥६२॥
विधेर्दिने स्युर्विप्रेन्द्र मनवस्तु चतुर्दश।
तावत्येव निशा तस्य विप्रेन्द्र परिकीर्तिता ॥६३॥
स्वयम्भुवः सृष्टिगतानब्दान्संपिण्ड्य नारद।
खचरानयनं कार्यमथवेष्टयुगादितः ॥६४॥

विप्रवर! चारों युगोंका सम्मिलित मान तैंतालीस लाख बीस हजार वर्ष बतलाया गया है। उसके दशांशमें चारका गुणा करनेपर सत्ययुग नामक पाद होगा। (उसका मान १७ लाख २८ हजार वर्ष है)। दशांशमें तीनका गुणा करनेपर (१२९६००० वर्ष) त्रेता नामक पाद होता है। दशांशमें दोका गुणा करनेपर (८६४००० वर्ष) द्वापर नामक पाद होता है और उक्त दशांशको एकगुना ही रखनेपर (४३२००० वर्ष) कलियुग नामक पाद कहा गया है। कृताब्दसहित (एक सत्ययुग अधिक) इकहत्तर चतुर्युगका एक मन्वन्तर होता है ॥ ६१-६२ ॥ ब्रह्मन्! ब्रह्माजीके एक दिनमें चौदह मनु होते हैं और उतने ही समयकी उनकी एक रात्रि होती है ॥ ६३ ॥ नारद! ब्रह्माजीके वर्तमान कल्पमें जितने वर्ष बीत गये हैं, उन्हें एकत्र करके ग्रहानयन (ग्रहसाधन) करना चाहिये। अथवा इष्ट युगादिसे ग्रह-साधन करे ॥ ६४ ॥

युगे सूर्यज्ञशुक्राणां खचतुष्करदार्णवाः।
कुजार्किगुरुशीघ्राणां भगणाः पूर्वयायिनाम् ॥६५॥
इन्दो रसाग्नित्रित्रीषुसप्तभूधरमार्गणाः।
दस्रत्र्यष्टरसाङ्काक्षिलोचनानि कुजस्य तु ॥६६॥
बुधशीघ्रस्य शून्यर्तुखाद्रित्र्यङ्कनगेन्दवः।
बृहस्पते. खदस्राक्षिवेदषड्वह्नयस्तथा ॥६७॥
सितशीघ्रस्य षट्सप्तत्रियमाश्विखभूधराः।
शनेर्भुजङ्गषट्पञ्चरसवेदनिशाकराः ॥६८॥
चन्द्रोच्चस्याग्निशून्याश्विवसुसर्पार्णवा युगे।
वामं पातस्य वस्वग्नियमाश्विशिखिदस्रकाः ॥६९॥

एक युगमे पूर्व दिशाकी ओर चलते हुए सूर्य, बुध और शुक्रके ४३२०००० 'भगण' होते है। तथा मङ्गल, शनि और बृहस्पतिके शीघ्रोच्च भगण भी उतने ही होते हैं॥ ६५ ॥ एक युगमें चन्द्रमाके भगण ५७७५३३३६ होते हैं। भौमके २२९६८३२, बुधके शीघ्रोच्चके १७९३७०६०, बृहस्पतिके ३६४२२०, शुक्रके शीघ्रोच्चके ७०२२३७६, शनिके १४६५६८ तथा चन्द्रमाके उच्चके भगण ४८८२०३ होते हैं। चन्द्रमाके पातकी वामगतिसम्बन्धी भगणोंकी संख्या २३२२३८ है ॥६६-६९॥

उदयादुदयं भानोर्भूमिसावनवासरा।
वसुद्व्यष्टाद्रिरूपाङ्कसप्ताद्रितिथयो युगे ॥७०॥
षड्वह्नित्रिहुताशाङ्कतिथयश्चाधिमासका.।
तिथिक्षया यमार्थाश्विद्व्यष्टव्योमशराश्विन· ॥७१॥
खचतुष्कसमुद्राष्टकुपञ्च रविमासका।
षट्त्र्यग्नित्रयवेदाग्निपञ्च शुभ्रांशुमासका· ॥७२॥
प्राग्गतेः सूर्यमन्दस्य कल्पे सप्ताष्टवह्नयः।
कौजस्य वेदखयमा बौधस्याष्टर्तुवह्नय. ॥७३॥
खखरन्ध्राणि जैवस्य शौक्रस्यार्थगुणेषव।
गोऽग्नयः शनिमन्दस्य पातानामथ वामतः ॥७४॥
मनुदस्रास्तु कौजस्य बौधस्याष्टाष्टसागराः।
कृताद्रिचन्द्रा जैवस्य शौक्रस्याग्निखनन्दका. ॥७५॥
शनिपातस्य भगणाः कल्पे यमरसर्तव.।

सूर्यके एक उदयसे दूसरे उदयपर्यन्त जो दिनका मान होता है, उसे भौमवासर या सावन वासर कहते हैं। वे एक महायुग(चतुर्युग)में १५७७९१७८२८ होते हैं। (चान्द्र दिवस १६०३०००८० होते हैं)। अधिमास १५९३३३६ होते हैं तथा तिथिक्षय २५०८२२५२ होते हैं ॥ ७०-७१ ॥ रविमासोंकी संख्या ५१८४०००० है। चान्द्र मास ५३४३३३३६ होते हैं ॥ ७२ ॥ पूर्वाभिमुख गतिसे चलनेवाले एक कल्पमें सूर्यके मन्दोच्च भगण ३८७, मङ्गलके मन्दोच्च भगण २०४, बुधके मन्दोच्च ३६८, गुरुके मन्दोच्च ९००, शुक्रके मन्दोच्च ५३५ तथा शनिके मन्दोच्च भगण ३९ होते हैं। अब मङ्गल आदि ग्रहोंके पातोंकी विलोमगति (पश्चिम गमन) के अनुसार एक कल्पमें होनेवाले भगण बताये जाते हैं ॥७३-७४॥ भौमपातके भगण २१४, बुधपातके भगण ४८८, गुरुपातके भगण १७४, भृगुपातके भगण ९०३ तथा शनिपातके भगण ६६२ होते हैं ॥ ७५½ ॥

वर्तमानयुगे याता वत्सरा भगणाभिधा· ॥७६॥
मासीकृता युता मासैर्मधुशुक्लादिभिर्गतैः।
पृथक्स्थास्तेऽधिमासघ्ना सूर्यमासविभाजिता· ॥७७॥
लब्धाधिमासकैर्युक्ता दिनीकृत्य दिनान्विता.।
द्विष्ठास्तिथिक्षयाभ्यस्ताश्चान्द्रवासरभाजिता· ॥७८॥

लब्धोनरात्रिरहिता लङ्कायामार्द्धरात्रिकः ।
सावनो द्युगणः सूर्याद् दिनमासाब्दपास्ततः ॥७९॥
सप्तभिः क्षयितः शेषः सूर्याद्यो वासरेश्वरः ।
मासाब्ददिनसंख्याप्तं द्वित्रिघ्नं रूपसंयुतम् ॥८०॥
सप्तोद्धृतावशेषौ तौ विज्ञेयौ मासवर्षपौ ।

वर्तमान युग (जिस युगमें, जिस समयके अहर्गण या ग्रहादिका ज्ञान करना हो उस समय) में सृष्टयादि काल या युगादिकालसे अबतक जितने वर्ष बीत चुके हों, वे सूर्यके भगण होते हैं । भगणको बारहसे गुणा करके मास बनाना चाहिये । उसमें 'वर्तमान वर्षके' चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे लेकर वर्तमान मासतक जितने मास बीते हों, उनकी सख्या जोडकर योग-फलको दो स्थानोंमें रखना चाहिये । द्वितीय स्थानमें रक्खे हुए मासगणको युगके उपर्युक्त अधिमासोंकी संख्यासे गुणा करके गुणनफलमे युगके सूर्यमासोंकी संख्यासे भाग दे । फिर जो लब्धि हो, उसे अधिमासकी संख्या माने और उसको प्रथम स्थानस्थित मासगणमें जोड़े । (योगफल बीते हुए चान्द्र-मासोंकी सख्याका सूचक होता है) उस सख्याको तीससे गुणा करे (तो गुणनफल तिथि-संख्याका सूचक होता है), उसमें वर्तमान मासकी शुक्ल प्रतिपदासे इष्टतिथितककी संख्या जोड़े, (जोडनेसे चान्द्रदिनकी संख्या ज्ञात होती है) इसको भी दो स्थानोंमे रक्खे । दूसरे स्थानमें स्थित संख्याको युगके लिये कथित तिथिक्षय-सख्यासे गुणा करे । गुणनफलमें युगकी चान्द्रदिन (तिथि) संख्याके द्वारा भाग दे । जो लब्धि हो, वही तिथिक्षय-संख्या है, उसको प्रथम स्थानमें स्थित चान्द्र दिन-संख्यामेंसे घटा दे तो अभीष्ट दिनका लंकार्धरात्रि-कालिक सावन दिनगण (अहर्गण) होता है *। इससे दिन-पति, मासपति और वर्षपतिका ज्ञान करे ॥ ७६—७९ ॥

यथा—दिनगणमें ७ से भाग देनेपर शेष बचे हुए १ आदि संख्याके अनुसार रवि आदि वारपति समझने चाहिये। तथा दिनगणमे ३० से भाग देकर लब्धिको २ से गुणा करके गुणनफलमें १ जोड़ दे । फिर उसमें ७ से भाग देकर १ आदि शेष होनेपर रवि आदि मासपति समझे । इसी प्रकार दिनगणमें ३६० से भाग देकर लब्धिको ३ से गुणा करके गुणनफलमें १ जोडे, फिर उसमें ७ से भाग देनेपर १ आदि शेष संख्याके अनुसार रवि आदि 'वर्तमान' वर्षपति होते हैं* ॥ ८०½ ॥

ग्रहस्य भगणाभ्यस्तो दिनराशिः कुवासरैः ॥८१॥
विभाजितो मध्यगत्या भगणादिर्ग्रहो भवेत् ।
एवं स्वशीघ्रमन्दोच्चा ये प्रोक्ताः पूर्वयायिनः ॥८२॥
विलोमगतयः पातास्तद्वच्चक्राद् विशोधिताः ।

(**मध्यमग्रहज्ञान**)—युगके लिये कथित भगणकी संख्यासे दिनगणको गुणा करे । गुणनफलमें युगकी कुदिन

---

* इस प्रकार अहर्गण-साधनमें कदाचित् एक दिन अधिक या न्यून भी होता है, उस स्थितिमें १ घटाकर या जोडकर अहर्गण ग्रहण करे ।

कलियुगादिसे अहर्गणका उदाहरण—शाके १८७५ कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा शुक्रवारको अहर्गण बनाना है तो कलियुगादिसे गत युधिष्ठिरसवत्की वर्षसख्या ३१७९ में शाके १८७५ जोड़नेसे ५०५४ हुआ, इसको १२ से गुणा करनेसे ६०६४८ हुआ। इसमें चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे गत मास-सख्या ७ जोड़नेपर ६०६५५ सौर-मासगण हुए । इसको पृथक् युगकी अधिमास-सख्या १५९३३३६ से गुणा करनेपर ९६६४३७९५०८० हुआ। इसमें युगकी सौर माससख्या ५१८४०००० से भाग देनेपर लब्धि अधिमास-सख्या १८६४ को पृथक्स्थित सौर मासगण ६०६५५ में जोडनेसे ६२५१९ यह चान्द्रमास सख्या हुई । इसको ३० से गुणा करके गुणनफलमें तिथि-सख्या १५ जोड़नेसे १८७५५८५ यह चान्द्र दिन-संख्या हुई । इसको युगकी क्षय-तिथिसंख्या २५०८२२५२ से गुणा करके गुणनफल ४७०४३८९५६१७४२० में युगकी चान्द्र दिनसख्या १६०३०००० ८० से भाग देनेपर लब्धि तिथिक्षय-सख्या २९३४७ को उपर्युक्त चान्द्रदिन-संख्या १८७५५८५ में घटानेसे १८४६२३८ अहर्गण हुए । इसमें ७ का भाग देनेसे २ शेष बचते हैं; जिससे शुक्र आदि गणनाके अनुसार शनिवार आता है, किंतु होना चाहिये १ शेष (शुक्रवार), इसलिये इसमें १ घटाकर वास्तविक अहर्गण १८४६२३७ हुआ । प्रस्तुत उदाहरणमें पूर्णिमाका क्षय होनेके कारण १ दिनका अन्तर पडा है ।

* कलियुगके आदिमें शुक्रवार था, इसलिये कलियुगादि अहर्गणमें ७ का भाग देनेसे १ आदि शेष होनेपर शुक्र आदि वारपति होते हैं। मासपति जाननेके लिये अहर्गण १८४६२३७ में ३० से भाग देकर लब्धि ६१५४१ को २ से गुणा करनेपर १२३०८२ हुआ। इसमें १ जोडकर ७ का भाग देनेसे शेष २ रहे, अत. शुक्रसे द्वितीय शनि वर्तमान मासपति हुआ ।

एव अहर्गणमें ३६० का भाग देकर लब्धि ५१२८ को ३ से गुणा कर गुणनफल १५३८४ में १ जोड़कर १५३८५ हुआ । इसमें ७ का भाग देनेसे शेष ६ रहे, अत शुक्रादि गणनासे बुध वर्तमान वर्षपति हुआ ।

(सावनदिन)-संख्यासे भाग देनेपर भगणादि * ग्रह लंकार्धरात्रिकालिक होता है। इसी प्रकार पूर्वाभिमुख गतिवाले जो शीघ्रोच्च और मन्दोच्च कहे गये हैं, उनके भगणके द्वारा उनका भी साधन होता है † ॥ ८१-८२ ॥ विलोम (पश्चिमाभिमुख) गतिवाले जो ग्रहोंके पात-भगण कहे गये हैं, उनके द्वारा इसी प्रकार जो पात सिद्ध हों, उनको १२ राशिमें घटानेसे शेषको मेषादि क्रमसे राश्यादि पात समझना चाहिये ‡॥ ८२½ ॥

योजनानि शतान्यष्टौ भूकर्णो द्विगुणानि तु ॥८३॥
तद्वर्गतो दशगुणात्पदं भूपरिधिर्भवेत् ।
लम्बज्याघ्नस्त्रिजीवाप्तः स्फुटो भूपरिधिः स्वकः ॥८४॥

(भूपरिधिप्रमाण)—पृथ्वीका व्यास १६०० योजन है। इस (१६००) के वर्गको १० से गुणा करके गुणनफलका मूल भूमध्यपरिधि होता है; अर्थात् वर्गमूलकी जो संख्या हो, उतने योजनकी पृथ्वीकी परिधि जाननी चाहिये। इस भूमध्य-परिधिकी संख्याको अपने-अपने लम्बांश-ज्यासे गुणा करके उसमें त्रिज्या (३४३८) से भाग देकर जो लब्धि हो वह स्पष्ट भूपरिधिकी योजन-संख्या होती है *॥ ८३-८४ ॥

तेन देशान्तराभ्यस्ता ग्रहभुक्तिर्विभाजिता ।
कलादि तत्फलं प्राच्यां ग्रहेभ्यः परिशोधयेत् ॥८५॥
रेखाप्रतीचीसंस्थाने प्रक्षिपेत्स्युः स्वदेशजाः ।
राक्षमालयदेवौकःशैलयोर्मध्यसूत्रगाः ॥८६॥

---

* प्रथम लब्धि भगण होती है। शेषको १२ से गुणा करके गुणनफलमें युग-कुदिनसे भाग देनेपर जो लब्धि होगी, वह राशि है। पुन शेषको ३० से गुणा करके गुणनफलमें युग-कुदिनसे भाग देनेपर जो लब्धि हो वह अंश है। अंश-शेषको ६० से गुणा करके गुणनफलमें कुदिनका भाग देनेसे लब्धि कला होती है। कला-शेषको ६० से गुणा करके पूर्ववत् युग-कुदिनसे भाग देनेपर जो लब्धि हो, वह विकला होती है। इनमें भगणको छोड़कर राश्यादि ही ग्रह कहलाता है। इस प्रकार मध्यम ग्रह होता है।

† उदाहरण—जैसे युगके सूर्यभगण ४३२०००० को अहर्गण १८४६०३७ से गुणा करनेपर ७९७५७४३८४०००० हुआ। इसमें युगके कुदिन १५७७९१७८२८ से भाग देनेपर लब्ध भगण ५०५४ हुए। शेष ९४७१३७२८८ को १२ से गुणा कर गुणनफल ११३६५६४७४५६ में कुदिनका भाग देनेसे लब्धि राशि ७ हुई। राशिशेष ३२०२२२६६० को ३० से गुणा करके गुणनफल ९६०६६७९८०० में कुदिनका भाग देनेसे लब्ध अंश ६ हुआ। अंश-शेप १३९१७२८३२ को ६० से गुणा करके गुणनफल ८३५०३६९९२० में कुदिनसे भाग देनेपर लब्धिकला ५ हुई। कलाशेष ४६०७८०७८० को ६० से गुणा कर गुणनफल २७६४६८४६८०० में कुदिनका भाग देनेसे लब्धि विकला १८ हुई। एव भगण प्रयोजनमें नहीं आता है, इसलिये उसको छोड़कर राश्यादि फल ७ । ६ । ५ । १८ यह लङ्कार्धरात्रिकालिक मध्यम सूर्य हुआ। इसी प्रकार अपने-अपने भगणद्वारा मध्य ग्रह, उच्च और पातका साधन होता है। तथा पातकी विपरीत गति होती है। अहर्गणद्वारा साधित पातको १२ राशिमें घटानेसे शेषको मेषादि क्रमसे राश्यादि पात समझना चाहिये, यह बात आगे कही जायगी।

‡ इस प्रकार साधित ग्रह रेखादेशीय होता है। इसमें आगे कहे हुए देशान्तर-संस्कार करनेसे स्वदेशीय मध्यम ग्रह होता है।

* यथा—१६०० के वर्गको १० से गुणा करनेसे २,५६,००००० हुआ। इसका मूल (स्वल्पान्तरसे) ५०५८ हुआ। इतना ही योजन स्थूलमानसे मध्यभूपरिधिका प्रमाण है।

गोरखपुरमें स्पष्ट भूपरिधि-साधन—यदि [illegible] ६३ । १५ है, तो उसका ज्या आगे ९३, ९७ [illegible] के अनुसार ३०७० हुई। मध्यभूपरिधि ५०५८ को [illegible] ३०७० से गुणा कर गुणनफल [illegible] में त्रिज्या ३४३८ का भाग देनेसे लब्धि ४५१६ स्पष्ट भूपरिधि हुई।

देशान्तर-कालज्ञान इस प्रकार होता है—[illegible] सिद्ध चन्द्रग्रहण-स्पर्शकालसे जितने घटी-पल [illegible], उतना ही घटादिको रेखादेशसे 'पूर्व देशान्तर' [illegible] ग्रहणका स्पर्श होता है, उतनी घटी [illegible] पश्चिम देशान्तर [illegible]। गोरखपुरमें इस प्रकारसे [illegible] घटी और १० पल पूर्वदेशान्तर [illegible]।

इस देशान्तर-पलसे देशान्तर-योजन [illegible] होता है—जैसे ३६०० पलमें स्पष्ट भूपरिधि-योजन ४५१६ [illegible] तो देशान्तर-पलमें कितना होगा [illegible] में देशान्तर ७३ पल [illegible]

$$\frac{४५१६ \times ७३}{३६००} = ९१$$ हुआ। [illegible] होता है।

रेखादेशसे गोरखपुरमें पूर्व देशान्तर [illegible] सूर्यकी मध्यगति ५९ । ८ है [illegible] में स्पष्ट भूपरिधि-योजन ४५१६ है [illegible] १ । ११ हुई। [illegible] में पूर्व देशान्तर होनेसे [illegible] यह [illegible]

अवन्तिकारोहितकं यथा सन्निहितं सरः ।
वारप्रवृत्तिः प्राग्देशे क्षपार्द्धेऽभ्यधिके भवेत् ॥८७॥
तद्देशान्तरनाडीभिः पश्चादूने विनिर्दिशेत् ।

(**ग्रहोंमें देशान्तर-संस्कार**)—ग्रहकी कलादि मध्यमगतिको देशान्तर-योजन (रेखादेशसे जितने योजन पूर्व या पश्चिम अपना स्थान हो उस) से गुणा करके गुणनफलमे 'स्पष्टभूपरिधि-योजन' के द्वारा भाग देनेपर जो लब्धि हो, वह कला आदि है । उस लब्धिको रेखासे पूर्व देशमें पूर्वसाधित ग्रहमे घटानेसे और पश्चिम देशमे जोड़नेसे स्वस्थानीय अर्धरात्रिकालिक ग्रह होता है *॥ ८५½ ॥

(**रेखा-देश**)—लङ्कासे सुमेरुपर्वतपर्यन्त याम्योत्तर रेखामें जो-जो देश (स्थान) हैं, वे रेखा-देश कहलाते हैं । जैसे उज्जयिनी, रोहितक, कुरुक्षेत्र आदि ॥ ८६½ ॥

(**वार-प्रवृत्ति**)—भूमध्यरेखासे पूर्वदेशमे रेखा-देशीय मध्यरात्रिसे, देशान्तर घटीतुल्य पीछे और रेखासे पश्चिम देशमें मध्यरात्रिसे देशान्तर घटीतुल्य पूर्व ही वारप्रवृत्ति (रवि-आदि वारोंका आरम्भ) होती है †॥ ८७½ ॥

इष्टनाडीगुणा भुक्तिः षष्ट्या भक्ता कलादिकम् ॥८८॥
गते शोद्ध्यं तथा योज्यं गम्ये तात्कालिको ग्रहः ।
भचक्रलिप्ताशीत्यंशं परमं दक्षिणोत्तरम् ॥८९॥
विक्षिप्यते स्वपातेन स्वक्रान्त्यन्तादनुष्णगुः ।
तन्नवांशं द्विगुणितं जीवस्त्रिगुणितं कुजः ॥९०॥
बुधशुक्रार्कजाः पातैर्विक्षिप्यन्ते चतुर्गुणम् ।

(**इष्टकालमें मध्यम ग्रह जाननेकी विधि**)—मध्यरात्रिसे जितनी घड़ी बाद ग्रह बनाना हो, उस संख्यासे ग्रहकी कलादि गतिको गुणा करके गुणनफलमें ६०से भाग देकर लब्धितुल्य कलादि फलको पूर्वसाधित ग्रहमें जोड़नेसे तथा जितनी घडी मध्यरात्रिसे पूर्व ग्रह बनाना हो, उतनी संख्यासे गतिको गुणा करके गुणनफलमे ६०से भाग देकर कलादि फलको पूर्वसाधित ग्रहमें घटानेसे इष्टकालिक ग्रह होता है ‡॥ ८८½ ॥

(**चन्द्रादि ग्रहोंके परम विक्षेप**)—भचक्रकला (२१६००) के ८० वॉ भाग (२७०) कलापर्यन्त क्रान्तिवृत्त (सूर्यके मार्ग) से परम दक्षिण और उत्तर चन्द्रमा विक्षिप्त होता (हटता) है । एवं गुरु ६० कला, मङ्गल ९० कला, बुध, शुक्र और शनि—ये तीनों १२० कलापर्यन्त क्रान्तिवृत्तसे दक्षिण और उत्तर हटते रहते हैं§ ॥ ८९-९०½ ॥

राशिलिप्ताष्टमो भागः प्रथमं ज्यार्द्धमुच्यते ॥९१॥
तत्तद्विभक्तलब्धोनमिश्रितं तद् द्वितीयकम् ।
आद्येनैवं क्रमात्पिण्डान्भक्त्वा लब्धोनसंयुताः ॥९२॥
खण्डकाः स्युश्चतुर्विंशज्यार्द्धपिण्डाः क्रमादमी ।
परमापक्रमज्या तु सप्तरन्ध्रगुणेन्दवः ॥९३॥
तद्गुणा ज्या त्रिजीवाप्ता तच्चापं क्रान्तिरुच्यते ।

(**अभीष्ट जीवासाधनके लिये उपयोगी २४ जीवा साधन**)—१ राशि-कला १८०० का आठवॉ भाग

---

* पात (राहु) में देशान्तरसंस्कार विपरीत होता है ।

† रेखा-देशके मध्यरात्रि-समयसे ही सृष्टिका आरम्भ माना गया है; इसलिये रेखा-देशके मध्यरात्रि-समयमें ही वारप्रवेश होता है ।

‡ मान लीजिये, शुक्रवार मध्यरात्रिकालिक ग्रह जानकर अग्रिम प्रात छ· बजेका मध्यम सूर्य बनाना है तो—इष्टकाल ६ घटा (१५ घडी) हुआ । इसलिये सूर्यकी कलादि गति ५९ । ८ को १५ से गुणा करके ६० का भाग देनेसे लब्धि १४ कला ४७ विकलाको मध्यरात्रिके सूर्य ७ । ६ । ४ । ७ में जोड़नेसे ७ । ६ । १८ । ५४—यह शनिवारके प्रात. छ. बजेका मध्यम सूर्य हुआ ।

§ सूर्य और अन्य ग्रहोंके मार्गोंका योगस्थान (चौराहा) पात कहलाता है । जब ग्रह अपने मार्गपर चलता हुआ पात-स्थानमें आता है, उस समय वह क्रान्तिवृत्तमें होनेके कारण अपने स्थानमें ही होता है, क्योंकि सब ग्रहोंके स्थान क्रान्तिवृत्तमें ही होते हैं । पात-स्थानसे आगे-पीछे होनेपर क्रान्तिवृत्तसे जितनी दूर विक्षिप्त होते (हटते) हैं, उतना उस ग्रहका 'विक्षेप' (शर) कहलाता है । सूर्यके मार्गको 'क्रान्तिमण्डल' और अन्य ग्रहोंके मार्गको उन-उन ग्रहोंका 'विमण्डल' कहते हैं तथा चन्द्रमाके पातस्थानको ही 'राहु' और 'केतु' कहते हैं ।

(२२५ कला) प्रथम जीवार्ध* होता है। उस (प्रथम जीवार्ध) से प्रथम जीवार्धमें भाग देकर लब्धिको प्रथम जीवार्धमें ही घटाकर शेष (प्रथमखण्ड) को प्रथम जीवार्धमें ही जोड़नेसे द्वितीय जीवार्ध होता है। इसी प्रकार प्रथम जीवासे ही द्वितीय जीवामें भाग देकर लब्धिको द्वितीय खण्डमें घटाकर शेषको द्वितीय जीवार्धमें जोड़नेसे तृतीय जीवार्ध होता है। इसी तरह आगे भी क्रिया करनेसे क्रमशः २४ जीवार्ध सिद्ध † होते हैं ॥ ९१-९२½ ॥

इस प्रकार सूर्यकी परमक्रान्तिज्या १३९७ होती है। इस (परमक्रान्तिज्या) से ग्रहकी ज्या (भुजज्या) को गुणा करके त्रिज्यासे भाग देनेसे [illegible] है। उसका चाप बनानेसे [illegible] ([illegible]) है ॥ ९३½ ॥

ग्रहं संशोध्य मन्दोच्चात्तथा शीघ्राद्वि[illegible]।
शेषं केन्द्रपदं तस्माद्[illegible] [illegible]।
गताद्भुजज्याविषमे गम्यात्कोटिः [illegible]।
युग्मे तु गम्याद्बाहुज्या कोटिज्या तु गतात् [illegible]।
लिप्तास्तत्त्वयमैर्भक्ता लब्धं ज्यापिण्डकं [illegible] ॥ [illegible]
गतगम्यान्तराभ्यस्तं [illegible]।
तदवाप्तफलं योज्यं ज्यापिण्डे गतसंज्ञके ॥ [illegible]

* जीवा, ज्या, शिञ्जिनी, मौर्वी, गुण, रज्जु—ये पर्यायवाचक शब्द हैं। ज्यौतिषमें चाप [illegible] हैं, क्योंकि ग्रहका मार्ग वृत्ताकार है। [illegible] कहलाता है। जैसे अ, ग, प, ल, [illegible] है। इसमें अ-क, अ-ग आदि परिधिखण्ड [illegible] है। [illegible] इ, क चाप है तो अ, क सरलरेखा अ, इ, क [illegible] है। तथा अ, त सरलरेखा अ, इ, क चापका [illegible] अ, इ, क चापका जीवार्ध या ज्यार्ध कहलाती है। [illegible] भी कहते हैं। गणितमें अर्धज्या (ज्यार्ध) से [illegible] है, इसलिये ज्यौतिषग्रन्थमें ज्यार्धको ही ज्या=जीवा=[illegible] हैं। वे जीवार्ध या जीवा वृत्तके चतुर्थांशमें [illegible] चतुर्थांशको पद कहा गया है। [illegible] ४ [illegible] है। १, ३ विषम और २, ४ सम पद कहलाते हैं।
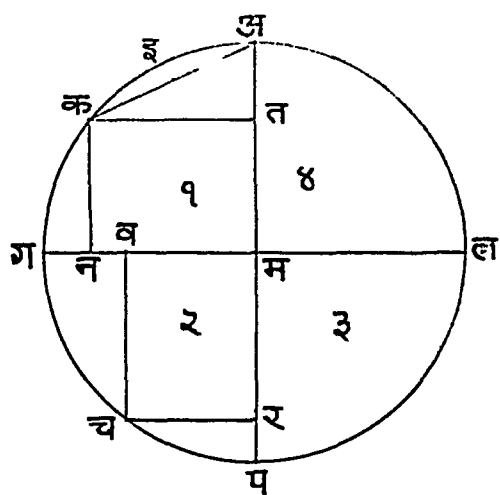
वृत्तकी सम्पूर्ण परिधिमें १२ राशि या ३६० अंश होते हैं, इसलिये एक-एक पदमें तीन-तीन राशि या [illegible] होते हैं। प्रथम और तृतीय पदमें गत चापको भुज और गम्य चापको कोटि कहते हैं। तथा द्वितीय और चतुर्थ पदमें गत चापको कोटि [illegible] चापको ही भुज कहते हैं। जैसे—प्रथम पदमें 'अ क'=भुज और 'क ग'=कोटि है। तथा द्वितीय पदमें [illegible] भुज है। प्रत्येक पदमें चापको ९० अंशमें घटानेसे शेष उस चापकी कोटि होती है, इसलिये [illegible] क न सरल रेखा कोटिज्या है। एवं सम (द्वितीय) पदमें च र भुजज्या और च व कोटिज्या कहलाती है। [illegible] पदमें भुजज्या और कोटिज्या समझनी चाहिये। केवल 'ज्या' शब्दसे सर्वत्र भुजज्या ही समझी जाती है।

† उदाहरण—जैसे—प्रथमज्या २२५में प्रथमज्या २२५से भाग देकर लब्धि १ को प्रथमज्यामें घटाया २२४ (प्रथम खण्ड) हुआ। इसको प्रथमज्यामें जोड़नेसे २२४+२२५=४४९ यह द्वितीय जीवा हुई। द्वितीय जीवा ४४९ में [illegible] भाग देकर लब्धि २ को प्रथम खण्ड २२४में घटानेसे शेष २२२ द्वितीय खण्ड हुआ, इसको द्वितीय जीवामें जोड़नेसे ६७१ [illegible] हुई। फिर तृतीय जीवामें प्रथमज्यासे भाग देकर लब्धि ३ को द्वितीय खण्डमें घटानेसे शेष २१९ [illegible] हुआ, [illegible] ६७१में जोड़नेसे ८९० यह चतुर्थ जीवा हुई। इसी प्रकार आगे भी साधन करनेपर निम्नाङ्कित [illegible] हैं—
२२५, ४४९, ६७१, ८९०, ११०५, १३१५, १५२०, १७१९, १९१०, २०९३, [illegible], [illegible], [illegible], २७२८, २८५९, २९७८, ३०८४, ३१७७, ३२५६, ३३२१, ३३७२, ३४०९, ३४३१ [illegible] (३ राशिमें) २४ ज्यार्ध-पिण्ड हैं।

स्यादुत्क्रमज्या विधिरयमुत्क्रमज्यास्वपि स्मृतः।
ज्यां प्रोह्य शेषं तत्त्वाश्विहतं तद्विवरोद्धृतम् ॥९८॥
संख्यातत्त्वाश्विसंवर्गे संयोज्य धनुरुच्यते।

('भुजज्या' और 'कोटिज्या' बनानेकी रीति—) ग्रहोंको अपने-अपने मन्दोच्चमें घटानेसे शेष उस ग्रहका 'मन्द केन्द्र' तथा शीघ्रोच्चमें घटानेसे शेष उस ग्रहका 'शीघ्र केन्द्र' कहलाता है। उस राश्यादि केन्द्रकी 'भुजज्या' और 'कोटिज्या' बनानी चाहिये। विषम (१, ३) पदमें 'गत' चापकी जीवा भुजज्या और 'गम्य' चापकी जीवा कोटिज्या कहलाती है।* सम (२, ४) पदमें 'गम्य' चापकी जीवा 'भुजज्या' और 'गत' चापकी जीवा 'कोटिज्या' होती है† ॥ ९४-९५½ ॥

(इष्टज्या-साधन-विधि)—जितने राश्यादि चापकी जीवा बनाना हो, उसकी कला बनाकर उसमें २२५से भाग देकर जो लब्धि हो, उतनी संख्या (सिद्ध २४ ज्या-पिण्डमें) गत ज्यापिण्डकी संख्या समझे। शेष कलाको 'गत ज्या' और 'गम्य ज्या' के अन्तरसे गुणा करके २२५ से भाग देकर लब्ध कलादिको 'गत ज्या'-पिण्डमें जोडनेसे 'अभीष्ट ज्या' होती है। 'उत्क्रमज्या' भी इसी विधिसे बनायी जाती है* ॥ ९६—९७½ ॥

(जीवासे चाप बनानेकी विधि)—इष्ट जीवाकी कलामे सिद्ध जीवापिण्डोमेंसे जितनी संख्यावाली जीवा घटे, उसको घटाना चाहिये। शेष कलाको २२५ से गुणा करके गुणनफलमें गत, गम्य जीवाके अन्तरसे भाग देकर जो लब्धि कलादि हो, उसको घटायी हुई सिद्ध-जीवा-संख्यासे गुणित २२५ मे जोड़नेसे इष्टज्याका चाप होता है† ॥ ९८½ ॥

रवेर्मन्दपरिध्यंशा मनवः शीतगो रदाः ॥९९॥
युग्मान्ते विषमान्ते तु नखलिप्तोनितास्तयोः।
युग्मान्तेऽर्थाद्रयः खाग्निसुराः सूर्या नवार्णवाः ॥१००॥
ओजे द्व्यगा वसुयमा रदा रुद्रा गजाब्धयः।
कुजादीनामतः शैघ्र्या युग्मान्तेऽर्थाग्निदस्रकाः ॥१०१॥
गुणाग्निचन्द्राः खनगा द्विरसाक्षीणि गोऽग्नयः।
ओजान्ते द्वित्रियमला द्विविश्वे यमपर्वताः ॥१०२॥
खर्तुदस्रा वियद्वेदाः शीघ्रकर्मणि कीर्तिताः।
ओजयुग्मान्तरगुणा भुजज्या त्रिज्ययोद्धृता ॥१०३॥
युग्मवृत्ते धनर्णं स्यादोजादूनाधिके स्फुटम्।

(रवि और चन्द्रमाके मन्दपरिध्यंश)—समपदके अन्तमे सूर्यके १४ अंश और चन्द्रमाके ३२ अंश मन्दपरिधि मान होते हैं। और विषमपदके अन्तमे २० कला कम अर्थात् सूर्यके १३।४० और चन्द्रमाके ३१।४० मन्दपरिध्यंश हैं ॥ ९९½ ॥

(मङ्गलादि ग्रहोंकी मन्द और शीघ्र परिधि)—समपदान्तमे मङ्गलके ७५, बुधके ३०, गुरुके ३३, शुक्रके

---

* ३ राशि (९० अंश) का १ पद होता है। उस पदमें 'गत' चापको घटानेसे शेष 'गम्य' चाप कहलाता है। जैसे सूर्यराश्यादि ८।१०।१५।२५ है, उसका मन्दोच्च २।१७।३५।४० है, तो मन्दोच्चमें सूर्यको घटानेसे राश्यादि शेष ६।७।१७।१५ केन्द्र हुआ। यहाँ केन्द्र ६ राशिसे अधिक है, अत तृतीय (विषम) पदमें पड़ा। इसलिये तृतीय पदके गतांशादि ७।१७।१५ को ९० अंशमें घटानेसे अंशादि ८२।४२।४५—ये 'गम्य' अंशादि हुए।

† जैसे स्वल्पान्तरसे सूर्यका मन्दोच्च २।१७।४८।५४ है। इसमें मध्यम सूर्य ७।६।१८।५४ को घटानेसे शेष ७।११।३०।० यह मन्द केन्द्र हुआ। यह ६ राशिसे अधिक होनेके कारण तुलादिमें पड़ा तथा तृतीय पदमें होनेके कारण इसमें ६ राशि घटाकर शेष १।११।३०।० यह भुज हुआ। इसको ९० अंश (३ राशि) में घटानेसे शेष १।१८।३०।० यह कोटि हुई।

भुजज्या बनानेके लिये आगे कही हुई रीतिसे राश्यादि भुज १।११।३० को कला बनानेसे २४९० कला हुई। इसमें २२५से भाग देनेपर लब्धि गतज्या ११ हुई। शेष २५ को गतज्या, एष्यज्या (११ वीं और १२ वीं ज्या) के अन्तर (२४३१—२२६७)=१६४ से गुणा करनेपर २४६० हुआ। इसमें २२५ का भाग देनेपर लब्धि ११ कलाको गतज्या २२६७ में जोड़नेसे सूर्यकी भुजज्या २२७८ हुई। इसी प्रकार कोटिकी कलाद्वारा कोटिज्या २६७५ हुई।

* जैसे परम क्रान्ति २४ अंशका कला १४४० में २२५ का भाग देनेसे लब्धि ६ 'गतज्या'-संख्या हुई, जिसका प्रमाण १३१५ है। शेष कला ९० को 'गतज्या' 'एष्यज्या'के अन्तर (१५२०—१३१५=२०५)मे गुणा कर उसमें २२५ से भाग देनेपर लब्धि ८२को गतज्या १३१५ में जोड़नेसे १३९७ यह परम क्रान्ति (२४अंश) की ज्या हुई।

† जैसे परमक्रान्तिज्याका चाप बनाना है, तो परमक्रान्तिज्या १३९७ में कथित छठी जीवा १३१५ को घटाकर शेष ८२ को २२५ से गुणा कर गत, गम्य ज्याके अन्तर २०५ से भाग देनेपर लब्धि ९० को ६×२२५=१३५० में जोड़नेसे १४४० हुआ। इसको अंश बनानेसे २४ परम क्रान्ति-अंश हुए।

१२ और शनिके ४९ तथा विषमपदान्तमें मङ्गलके ७२, बुधके २८, गुरुके ३२, शुक्रके ११ और शनिके ४८ मन्द परिध्यंश हैं। इसी प्रकार समपदके अन्तमें मङ्गलके २३५, बुधके १३३, गुरुके ७०, शुक्रके २६२ और शनिके ३९ तथा विषमपदान्तमें मङ्गलके २३२, बुधके १३२, गुरुके ७२, शुक्रके २६० और शनिके ४० शीघ्र परिध्यंश कहे गये हैं॥ १००—१०२½ ॥

(अभीष्ट स्थानमें परिधिसाधन—) अभीष्ट स्थानमें मन्द या शीघ्र परिधि बनानी हो तो उस ग्रहकी भुजज्याको विषम-समपदान्त-परिधिके अन्तरसे गुणा करके गुणनफलमे त्रिज्या (३४३८) से भाग देकर जो अंशादि लब्धि हो, उसको समपदान्त-परिधिमें जोडने या घटानेसे (विषमपदान्तसे समपदान्त कम हो तो जोडने अन्यथा घटानेसे) इष्टस्थानमे स्पष्ट मन्द या शीघ्र परिध्यंश होते हैं*॥ १०३½ ॥

> तद्गुणे भुजकोटिज्ये भगणांशविभाजिते ॥१०४॥
> तद्भुजज्याफलधनुर्मान्दं लिप्तादिकं फलम् ।
> शैघ्र्यं कोटिफलं केन्द्रे मकरादौ धनं स्मृतम् ॥१०५॥
> संशोध्यं तु त्रिजीवायां कर्क्यादौ कोटिजं फलम् ।
> तद्बाहुफलवर्गैक्यान्मूलं कर्णश्चलाभिधः ॥१०६॥
> त्रिज्याभ्यस्तं भुजफलं चलकर्णविभाजितम् ।
> लब्धस्य चापं लिप्तादिफलं शैघ्र्यमिदं स्मृतम् ॥१०७॥
> एतदाद्ये कुजादीनां चतुर्थे चैव कर्मणि ।
> मान्दं कर्मैकमर्केन्द्वोर्भौमादीनामथोच्यते ॥१०८॥
> शैघ्र्यं मान्दं पुनर्मान्दं शैघ्र्यं चत्वार्यनुक्रमात् ।

(भुजफल-कोटिफल-साधन—) इस प्रकार साधित स्पष्ट परिधिसे ग्रहकी 'भुजज्या' और 'कोटिज्या' को पृथक्-पृथक् गुणा करके भगणांश (३६०) से भाग देकर लब्ध (भुजज्यासे) भुजफल और (कोटिज्यासे) कोटिफल होते हैं। एवं मन्द परिधिद्वारा मन्दफल और शीघ्र परिधिद्वारा शीघ्र-फल समझने चाहिये। यहाँ मन्द परिधिवश भुजज्याद्वारा जो भुजफल आवे, उसका चाप बनानेसे मन्द कलादि फल होता है†॥ १०४½ ॥

(शीघ्र कर्णसाधन—) पूर्वोक्ति [illegible] द्वारा जो कोटिफल आवे, उसको मकरादि केन्द्र [illegible] त्रिज्या (३४३८) में जोड़े। कर्कादि केन्द्र [illegible] जोड़ या घटाकर जो फल हो, उसके वर्ग [illegible] वर्गको जोड़ दे। फिर उसका मूल लेनेसे [illegible] है॥ १०५-१०६ ॥

(शीघ्र-फलसाधन—) पूर्वविधि [illegible] भुजफलको त्रिज्यासे गुणा करके [illegible] जो कलादि लब्धि हो उसके चाप बनानेसे [illegible] होता है। यह शीघ्रफल मङ्गलादि ५ ग्रहोंमें प्रथम [illegible] कर्ममें संस्कृत (धन या ऋण) किया जाता है॥ १०७ [illegible] ॥

रवि और चन्द्रमामें केवल एक ही [illegible] (धन या ऋण) किया जाता है। [illegible] ५ ग्रहोंके संस्कारका वर्णन करता हूँ। उनमें प्रथम [illegible] द्वितीय मन्दफलका, तृतीय भी मन्दफलका [illegible] शीघ्रफलका संस्कार किया जाता है॥ १०८ [illegible] ॥

> अजादिकेन्द्रे सर्वेषां शैघ्र्ये मान्दे च [illegible] ॥१०९॥
> धनं ग्रहाणां लिप्तादि तुलादावृणमेव [illegible] ।
> अर्कबाहुफलाभ्यस्ता ग्रहभुक्तिर्विभाजिता ॥११०॥
> भचक्रकलिकाभिस्तु लिप्ता [illegible] ।

(संस्कारविधि—) शीघ्र या मन्द केन्द्र [illegible] राशिके भीतर) हो तो [illegible] हैं। यदि तुलादि केन्द्र (६ राशि [illegible] जाते हैं॥ १०९½ ॥

(रविभुजफल-संस्कार—) [illegible] कलाको पृथक्-पृथक् सूर्यके मन्द भुजफल [illegible] उसमें २१६०० के द्वारा भाग देनेसे जो [illegible] उसको पूर्वसाधित उदयान्तर [illegible] संस्कार (मन्दफल धन हो तो धन, ऋण [illegible]) करना चाहिये। इससे स्पष्ट सूर्योदय [illegible] ॥ ११० [illegible] ॥

---

* जैसे—सूर्यकी भुजज्या २२७८ को विषम-सम परिधिके अन्तर २० से गुणा करनेपर ४५५६० हुआ। इसमें ३४३८ का भाग देनेसे लब्धि १३ कलाको समपदान्त परिधि-अंश १४ में घटानेसे १३। ४७ सूर्यकी स्पष्ट मन्द परिधि हुई।

† जैसे—सूर्यकी भुजज्या २२७८ को स्पष्ट मन्दपरिधि १३। ४७से गुणा कर ३१३९८। २६ हुआ। इसमें ३६० का भाग देनेसे लब्धि कलादि ८७। १३ यह भुजफल हुआ। यह २२५ से कम है, अत: इसका चाप भी इतना ही हुआ [illegible] मन्दफल हुआ। इसको [illegible] इसको तुलादि केन्द्र होनेके कारण [illegible] में घटानेसे शेष ७। ४। ५९। ४१ [illegible]

* पूर्वसाधित [illegible] होता है। उसको स्पष्ट [illegible] संस्कार किया जाता है। [illegible]

स्वमन्दभुक्तिसंशुद्धेर्मध्यभुक्तेर्निशापतेः ॥१११॥
ग्रहभुक्तेः फलं कार्यं ग्रहवन्मन्दकर्मणि ।
दोर्ज्यान्तरगुणा भुक्तिस्तत्त्वनेत्रोद्धृता पुनः ॥११२॥
स्वमन्दपरिधिक्षुण्णा भगणांशोद्धृताः कलाः ।
कर्कादौ तु धनं तत्र मकरादावृणं स्मृतम् ॥११३॥
मन्दस्फुटीकृतां भुक्तिं प्रोज्झ्य शीघ्रोच्चभुक्तितः ।
तच्छेषं विवरेणाथ हन्यात्त्रिज्यान्त्यकर्णयोः ॥११४॥
चलकर्णहृतं भुक्तौ कर्णे त्रिज्याधिके धनम् ।
ऋणमूनेऽधिके प्रोज्झ्य शेषं वक्रगतिर्भवेत् ॥११५॥

(स्पष्टग्रहगतिसाधनार्थ गतिफल—) चन्द्रमध्यगतिमें चन्द्रमन्दोच्चगतिको घटाकर उससे (अर्थात् चन्द्रकेन्द्र-गतिसे) तथा अन्य ग्रहोंकी (स्वल्पान्तरसे) अपनी-अपनी गतिसे ही मन्दस्पष्टगतिसाधनमें फल साधन करे। यथा—उक्त गति (चन्द्रकी केन्द्रगति और अन्य ग्रहोंकी गति) को दोर्ज्यान्तर (गम्यज्या और गतज्याके अन्तर) से गुणा करके उसको २२५ के द्वारा भाग देकर लब्धिको अपनी-अपनी मन्दपरिधिसे गुणा करके भगणांश (३६०) के द्वारा भाग देनेसे जो कलादि फल लब्धि हो, उसको कर्कादि (३ से ऊपर ९ राशिके भीतर) केन्द्र हो तो मध्यगतिमें धन करने (जोडने) तथा मकरादि (९ राशिसे ऊपर ३ राशितक) केन्द्र हो तो घटानेसे मन्दस्पष्ट गति होती है।* पुनः इस मन्दस्पष्ट गतिको अपनी शीघ्रोच्च गतिमें घटाकर शेषको त्रिज्या तथा अन्तिम शीघ्रकर्णके अन्तरसे गुणा करके पूर्वसाधित शीघ्रकर्णके द्वारा भाग देनेसे जो लब्धि (कलादि) हो, उसको यदि कर्ण त्रिज्यासे अधिक हो तो मन्दस्पष्ट गतिमें धन करने (जोडने) और अल्प हो तो घटानेसे स्पष्ट गति होती है। यदि साधित ऋणगतिफल मन्दस्पष्ट गतिसे अधिक हो तो उसी (ऋणगतिफल) में मन्द-स्पष्ट गतिको घटाकर जो बचे, वह वक्रगति होती है। इस स्थितिमें वह ग्रह वक्र-गति रहता है* ॥ १११–११५ ॥

कृतर्तुचन्द्रैर्वेदेन्द्रैः शून्यत्र्येकैर्गुणाष्टिभिः ।
शररुद्रैश्चतुर्थेषु केन्द्रांशैर्भूसुतादयः ॥११६॥
वक्रिणश्चक्रशुद्धैस्तैरंशैरुज्झन्ति वक्रताम् ।
क्रान्तिज्या विषुवद्भाघ्नी क्षितिज्या द्वादशोद्धृता ॥११७॥
त्रिज्यागुणा दिनव्यासभक्ता चापं चरासवः ।
तत्कार्मुकमुदक्क्रान्तौ धनहीने पृथक् स्थिते ॥११८॥
स्वाहोरात्रचतुर्भागे दिनरात्रिदले स्मृते ।
याम्यक्रान्तौ विपर्यस्ते द्विगुणे तु दिनक्षपे ॥११९॥

(ग्रहोंकी वक्र केन्द्रांश-संख्या—) मङ्गल अपने चतुर्थ शीघ्रकेन्द्रांश १६४ में, बुध १४४ केन्द्रांशमें, गुरु १३० केन्द्रांशमें, शुक्र १६२ केन्द्रांशमें और शनि ११५ शीघ्र-केन्द्रांशमें वक्रगति होता है। अपने-अपने वक्रकेन्द्रांश-को ३६० में घटानेसे शेषके तुल्य केन्द्रांश होनेपर फिर वह मार्ग-गति होता है† ॥ ११६½ ॥

(कालज्ञान—) रवि-क्रान्तिज्याको पलभा‡से गुणा करके गुणनफलमें १२ से भाग देनेपर लब्धि 'कुज्या' होती है। उस (कुज्या) को त्रिज्यासे गुणा करके द्युज्या (क्रान्तिकी कोटिज्या) से भाग देकर लब्धि (चरज्या) के चाप बनानेसे चरासु § होते हैं। उस चर-चापको यदि उत्तर

सूर्यकी स्पष्टगति ६० । ४७से गुणा करनेपर ५३०१ । २० हुआ। इसमें २१६०० का भाग देनेसे लब्धि कलादि ० । १५ अर्थात् १५ विकलाको स्पष्ट सूर्यमें मन्दफल ऋण होनेके कारण घटानेसे स्पष्ट सूर्योदयकालिक स्पष्ट सूर्य ७ । ४ । ५१ । २६ हुआ।

* ग्रहोंकी केन्द्रगतिके द्वारा मन्दस्पष्टगतिफल साधन होता है। वहाँ चन्द्रमाकी अधिक गति होनेके कारण केन्द्रगति ग्रहण की जाती है। अन्य ग्रहकी १ दिनमें मन्दोच्च गति शून्य होनेके कारण ग्रहगतिके तुल्य ही केन्द्रगति होती है। तथा रवि और चन्द्रमाकी मन्दस्पष्ट गति ही स्पष्ट गति होती है। मङ्गलादि ग्रहोंके शीघ्रोच्चवश शीघ्र गतिफलका पुन संस्कार करनेसे स्पष्ट गति होती है।

* जैसे सूर्यकी गति ५९ । ८ को गत-एष्यज्याके अन्तर १६४ से (जो भुजज्यासाधनमें गतैष्यज्यान्तर हुआ था) गुणा करनेपर ९३९७ । ५२ हुआ। इसमें २२५ से भाग देनेपर लब्धिकला ४३ को मन्दपरिधि १३ । ४७ से गुणा करके गुणनफल ५९०। ४१ मे ३६० से भाग देनेपर लब्धिकलादि गतिफल १ । ३९ हुआ। इसको कर्कादि केन्द्र होनेके कारण सूर्यकी मध्यगति ५९ । ८ में जोडनेसे ६० । ४७ यह मन्दस्पष्ट गति हुई, यही सूर्यकी स्पष्ट गति भी होती है।

† जैसे मङ्गलके वक्रकेन्द्रांश १६४ को ३६० में घटानेसे शेष १९६ मार्ग-केन्द्रांश हुए। इससे सिद्ध हुआ कि जब मङ्गलका शीघ्रकेन्द्रांश १६४ से १९६ तक रहता है, तबतक मङ्गल वक्र रहता है। इसी प्रकार सब ग्रहोंके मार्गकेन्द्रांश समझने चाहिये।

‡ ३० घडीका दिन हो तो उस दिनके दोपहरमें बारह अङ्गुल शङ्कुकी छायाका नाम 'पलभा' है।

§ दीर्घ अक्षरके दस बार उच्चारणमें जितना समय लगता है, उतना काल १ असु (प्राण) कहलाता है। ६ असुका १ पल

क्रान्ति हो तो १५ घटीमें जोड़नेसे दिनार्ध और १५ घटीमें घटानेसे रात्र्यर्ध होता है। दक्षिणक्रान्ति हो तो विपरीत (यानी १५ घटीमें घटानेसे दिनार्ध और जोड़नेसे रात्र्यर्ध) होता है। दिनार्धको दूना करनेसे दिनमान और रात्र्यर्धको दूना करनेसे रात्रिमान होता है* ॥११७-११९॥

भभोगोऽष्टशतीलिप्ताः खाश्विशैलास्तथा तिथेः।
ग्रहलिप्ता भभोगाप्ता भानि भुक्त्या दिनादिकम् ॥१२०॥

रवीन्दुयोगलिप्ताभ्यो योगा भभोगभाजिताः।
गतगम्याश्च षष्टिघ्न्यो भुक्तियोगाप्तनाडिकाः ॥१२१॥
अर्कोनचन्द्रलिप्ताभ्यस्तिथयो भोगभाजिताः।
गता गम्याश्च षष्टिघ्न्यो नाड्यो भुक्त्यन्तरोद्धृताः ॥१२२॥

(पञ्चाङ्ग-साधन—) ८०० कला एक-एक नक्षत्रका और ७२० कला एक-एक तिथिका भोगमान होता है। (अतः ग्रह किस नक्षत्रमें है, यह जानना हो तो) [illegible] ग्रहको कलात्मक बनाकर उसमें भभोग (८००) के द्वारा भाग देनेसे जो लब्धि हो, उसके अनुसार अश्विनी आदि गतनक्षत्र समझने चाहिये। शेष कलाओंसे [illegible] द्वारा उसकी गत और गम्यघटी समझना चाहिये* ॥१२०॥

उदयकालिक स्पष्टरवि और चन्द्रका योग करके उसकी कलामें भभोग (८००) के द्वारा भाग देकर लब्धि गत विष्कम्भ आदि योग होते हैं। शेष वर्तमान योगकी गत कला है। उसको ८०० में घटा देनेसे गम्यकला होती है। उस गत और गम्यकलाको ६० से गुणा करके उसमें रवि और चन्द्रकी गति-कलाके योगसे भाग देनेपर गत और गम्यघटी होती हैं† ॥ १२१ ॥

और ६० पलकी १ घड़ी होती है। अतः चरासुमें ६ के भाग देकर, पल बनाकर दिनमान साधन करना चाहिये।

* क्रान्ति बनानेमें अयनांश जोड़ना होता है, इसलिये १३० वें श्लोकके अनुसार अयनांश-साधन किया जाता है। अहर्गण १८४६२३७ को ६०० से गुणा कर गुणनफल ११०७७४२२०० में युग-कुदिन १५७७९१७८२८ से भाग देनेपर लब्धि राश्यादि ८। १२। ४४ हुई। इसके भुज २। १२। ४४ के अंशादि ७२। ४४ को ३ से गुणा कर गुणनफल २१८। १२ में १० से भाग देनेपर लब्धि अंशादि २१। ४९। १२ यह अयनांश हुआ। इस अयनांशको स्पष्टसूर्य ७। ४। ५१। १२ में जोड़नेसे सायन सूर्य ७। २६। ४०। २४ हुआ, इसका भुज १। २६। ४०। २४ है और इस भुजकी ज्या २८७२ हुई। इस भुजज्याको परमक्रान्तिज्या १३९७ से गुणा कर गुणनफल ४०१२१८४ में त्रिज्या ३४३८ से भाग देनेपर लब्धि ११६७ क्रान्तिज्या हुई। इसकी चापकला ११९१ के अंश १९। ५१ क्रान्त्यंश हुए। इनको ९० अंशमें घटानेसे शेष ७०। ९ क्रान्तिका कोटिचाप हुआ। इसकी ज्या ३२३३ हुई, इसको द्युज्या कहते हैं।

गोरखपुरकी पलभा ६ के वर्ग ३६ को १२ के वर्ग १४४ में जोड़नेसे १८० हुआ। इसका मूल स्वल्पान्तरसे १३+½ पलकर्ण हुआ। क्रान्तिज्या ११६७ को पलभा ६ से गुणा कर गुणनफल ७००२ में १२ से भाग देनेपर लब्धि स्वल्पान्तरसे ५८३ कुज्या हुई। इसको त्रिज्या ३४३८ से गुणा कर गुणनफल २००४३५४ में द्युज्या ३२३३ से भाग देनेपर लब्धि ६२० चरज्या हुई। इसका चाप ६२६ यह चरासु हुआ, इसमें ६ से भाग देनेपर लब्ध चरपल १०४ हुए, इनकी घड़ी १। ४४ हुई। इसको सायनसूर्यके दक्षिणगोलमें रहनेके कारण १५ घड़ीमें घटानेसे १३। १६ यह दिनार्ध और चरको १५ घड़ीमें जोड़नेसे रात्र्यर्ध १६। ४४ हुआ। दिनार्धको दूना करनेसे घट्यादि २६। ३२ दिनमान हुआ तथा रात्र्यर्धको दूना करनेसे ३३। २८ रात्रिमान हुआ।

* उदाहरण—जैसे स्पष्टचन्द्रमाकी गति ८१९, [illegible] १५। २५ है, तो इसको कलात्मक बनानेसे ४२१५। [illegible] कलामें ८०० के द्वारा भाग देनेसे लब्धि ५ हुई। [illegible] अश्विनीसे ५ वें मृगशिराका सूचक है। [illegible] वर्तमान आर्द्रा नक्षत्रकी गतकला हुई। इसको भभोग (८००) में घटानेसे शेष ५८४। ३५ यह आर्द्राकी गम्यकला हुई। इस प्रकार उदयकालिक चन्द्रकलासे नक्षत्रकी [illegible] नक्षत्रकी गम्यघटी साधनकर पञ्चाङ्गमें लिखा [illegible] है। त्रैराशिक इस प्रकार है—यदि चन्द्रगतिकलामें [illegible] गम्यकलामें क्या? इसका उत्तर [illegible] देखिये। तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण—इन ५ को [illegible] कहते हैं। स्पष्टचन्द्रमाके उस दैनिक [illegible] नक्षत्र होता है। अर्थात् वही नक्षत्र पञ्चाङ्गमें [illegible] है।

† योग-साधन—स्पष्टसूर्य और चन्द्रमाके योग [illegible] ४० की कला १४३९७। ४० में ८०० से भाग देनेपर [illegible] १७ गत योग व्यतीपात हुआ, शेष ७९७। ४० [illegible] वरीयान् योगका भुक्त हुआ। इसको ८०० [illegible] २। २० वरीयान्का शेष हुआ। [illegible] ४० और शेष [illegible]

स्पष्टचन्द्रमें स्पष्टसूर्यको घटाकर शेष राश्यादिकी कला बनाकर उसमें तिथिभोग (७२०) से भाग देनेपर लब्धि गततिथि-संख्या होती है। शेष वर्तमान तिथिकी गतकला है। उसको ७२० मे घटानेसे गम्यकला होती है। गत और गम्यकलाको पृथक् ६० से गुणाकर चन्द्र और रविके स्पष्ट गत्यन्तरसे भाग देकर लब्धि-क्रमसे भुक्त (गत) और गम्य घटी होती हैं। (पञ्चाङ्गमें वर्तमान तिथिके आगे गम्यघटी लिखी जाती है)* ॥ १२२ ॥

तिथयः शुक्लप्रतिपदो याता द्विघ्ना नगोद्धृताः।
शेषं बवो बालवश्च कौलवस्तैतिलो गरः ॥१२३॥
वणिजश्च भवेद्विष्टिः कृष्णभूतापरार्द्धतः।
शकुनिर्नागश्च चतुष्पदः किंस्तुघ्नमेव च ॥१२४॥

(तिथिमें करण जाननेकी रीति—) शुक्लपक्षकी प्रतिपदादि गत-तिथि-संख्याको दूना करके ७ के द्वारा भाग देनेसे १ आदि शेषमें क्रमसे १ बव, २ बालव, ३ कौलव, ४ तैतिल, ५ गर, ६ वणिज, ७ विष्टि (भद्रा)—ये करण वर्तमान तिथिके पूर्वार्धमें होते हैं*। (ये ७ करण शुक्ल प्रतिपदाके उत्तरार्धसे कृष्ण १४ के पूर्वार्धतक (२८) तिथियोंमें ८ आवृत्ति कर आते हैं। इसलिये ये ७ चर करण कहलाते हैं।) कृष्णपक्ष १४ के उत्तरार्धमें शुक्ल प्रतिपदाके पूर्वार्धतक, क्रम से १ शकुनि, २ नाग, ३ चतुष्पद और ४ किंस्तुघ्न—ये चार स्थिर करण होते हैं† ॥ १२३-१२४ ॥

शिलातलेऽम्बुसंशुद्धे वज्रलेपेऽपि वा समे।
तत्र शङ्क्वङ्गुलैरिष्टैः समं मण्डलमालिखेत् ॥१२५॥
तन्मध्ये स्थापयेच्छङ्कुं कल्पनाद्द्वादशाङ्गुलम्।
तच्छायाग्रं स्पृशेद्यत्र वृत्ते पूर्वापरार्द्धयोः ॥१२६॥
तत्र बिन्दुं विधायोभौ वृत्ते पूर्वापराभिधौ।
तन्मध्ये तिमिना रेखा कर्त्तव्या दक्षिणोत्तरा ॥१२७॥
याम्योत्तरदिशोर्मध्ये तिमिना पूर्वपश्चिमा।
दिङ्मध्यमत्स्यैः संसाध्या विदिशस्तद्वदेव हि ॥१२८॥
चतुरस्रं बहिः कुर्यात्सूत्रैर्मध्याद्विनिःसृतैः।
भुजसूत्राङ्गुलैस्तत्र दत्तैरिष्टप्रभा स्मृता ॥१२९॥
प्राक्पश्चिमाश्रिता रेखा प्रोच्यते सममण्डले।
उन्मण्डले च विषुवण्मण्डले परिकीर्त्यते ॥१३०॥
रेखा प्राच्यपरा साध्या विषुवद्भाग्रगा तथा।
इष्टच्छायाविषुवतोर्मध्यमग्राभिधीयते ॥१३१॥

(दिक्साधन—) जलसे संशोधित (परीक्षित) शिलातल या वज्रलेप (सिमेण्ट) से सम बनाये हुए भूतलमें जिस अङ्गुलमानसे शङ्कु बनाया गया हो, उसी अङ्गुलमानसे अभीष्ट त्रिज्याङ्गुलसे वृत्त बनाकर उसके मध्य (केन्द्र) में समान द्वादश विभाग (कल्पित अङ्गुल) से बने हुए शङ्कुकी

गुणा कर गुणनफलमें सूर्य और चन्द्रमाकी गतिके योग ८७६। ३६ से भाग देनेपर लब्धि क्रमश भुक्त घड़ी-पल ५४। ३५ और भोग्य घड़ी-पल ०। ९ हुई।

* जैसे आर्द्रा नक्षत्रकी गम्यकला ५८४। ३५ है तो उसको ६० से गुणा करनेसे गुणनफल ३५०७५में चन्द्रगतिकला ८१९ से भाग देनेपर लब्धि घट्यादि ४२। ४९ यह आर्द्राका गम्य (उदयसे आगेका) मान हुआ।

तिथि-साधन—यदि उदयकालमें चन्द्रमा ६। २४। १५। ३, सूर्य १। ५। ४२। ३७, चन्द्रगति ८१९। ०, सूर्य-गति ५७। ३६ है तो चन्द्रमा ६। २४। १५। ३ में सूर्य १। ५। ४२। ३७ को घटानेसे शेष ५। १८। ३२। २६ की कला १०११२। २६ में ७२० से भाग देनेपर लब्धि १४ गत तिथि हुई; शेष ०। ३२। २६ पूर्णिमाकी गत कलादि है। इसको ७२० कलामें घटानेसे शेष ६८७। ३४ पूर्णिमाकी भोग्य कलादि हुई। गत कला ३२। २६ को ६० से गुणा कर गुणनफल १९४६ में चन्द्रमा और सूर्यकी गत्यन्तरकला ७६१। २४ से भाग देनेपर लब्ध घड़ी-पल २। ३३ पूर्णिमा तिथिका भुक्त हुआ। तथा भोग्य कला ६८७। ३४ को ६० से गुणाकर गुणनफल ४१२५४ में गत्यन्तरकला ७६१। २४ से भाग देनेपर लब्ध घट्यादि ५४। १२ पूर्णिमा तिथिका भोग्य (सूर्योदयसे आगेका मान) हुआ।

* जैसे शुक्लपक्षकी द्वादशीमें करणका ज्ञान प्राप्त करना है तो गत तिथि-संख्या ११ को दूना करनेसे २२ हुआ। इसमें ७ से भाग देनेपर शेष १ रहा। अत. द्वादशीके पूर्वार्धमें बव और उत्तरार्धमें बालव नामक करण हुआ। कृष्ण पक्षकी तिथि-सख्यामें १५ जोडकर तिथि-सख्या ग्रहण करनी चाहिये। जैसे कृष्ण पक्षकी द्वादशीमें करण जानना हो तो गत तिथि-सख्या २६ को २ से गुणा करके गुणनफल ५२ में ७ से भाग देनेपर शेष ३ रहा। अतः द्वादशीके पूर्वार्धमें तीसरा कौलव और उत्तरार्धमें चौथा तैतिल नामक करण हुआ।

† तिथिमानका आधा करण कहलाता है। इसलिये एक-एक तिथिमें २, २ करण होते हैं। बवादि ७ चर करण और शकुनि आदि ४ स्थिर करण हैं।

स्थापना करे। उस शङ्कुकी छायाका अग्र भाग दिनके पूर्वार्धमें जहाँ वृत्त-परिधिमें स्पर्श करे, वहाँ पश्चिम विन्दु जाने और दिनके उत्तरार्धमें फिर उसी शङ्कुकी छायाका अग्रभाग जहाँ वृत्त-परिधिको स्पर्श करे, वहाँ पूर्व विन्दु समझे। इस प्रकार पूर्व और पश्चिम विन्दुका ज्ञान करे। अर्थात् उन दोनों विन्दुओंमें एक सरल रेखा खींचनेसे पूर्वापर-रेखा होगी। उस पूर्वापर-रेखाके दोनों अग्रोंको केन्द्र मानकर दो वृत्तार्ध बनानेसे मत्स्याकार होगा। उसके मुख एवं पुच्छमें रेखा करनेसे दक्षिणोत्तर-रेखा होगी। यह दक्षिणोत्तररेखा केन्द्रविन्दुमें होकर जाती है। यह रेखा जहाँ वृत्तमें स्पर्श करे, वहाँ दक्षिण तथा उत्तर दिशाके विन्दु समझे। फिर इस दक्षिणोत्तर-रेखापर पूर्व-युक्तिसे मत्स्योत्पादनद्वारा पूर्वापर-रेखा बनावे तो यह रेखा केन्द्रविन्दुमें होकर ठीक पूर्व और पश्चिम-विन्दु-का वृत्तमें स्पर्श करेगी। इस प्रकार चार दिशाओंको जानकर पुनः दो-दो दिशाओंके मध्यविन्दुसे मत्स्योत्पादनद्वारा विदिशाओं (कोणों) का ज्ञान करना चाहिये ॥ १२५—१२८ ॥

(इस प्रकार वृत्तमें दिशाओंका ज्ञान होनेपर) वृत्तके बाहर चारों दिशाओंके विन्दुओंसे स्पर्शरेखाद्वारा चतुरस्र (चतुर्भुज) बनावे। वृत्तके मध्यकेन्द्रसे भुजाङ्गुलतुल्य (भुजकी दिशामें उत्तर या दक्षिण) विन्दुपर छायारेखा होती है। उस छायारेखाको पूर्वापर-रेखाके समानान्तर बनावे। पूर्वापर-रेखा, पूर्वापर-वृत्त, उन्मण्डल और नाडी वृत्तके धरातलमें होती है। इसलिये क्षितिज धरातलगत वृत्तके केन्द्रसे पूर्वापर रेखा खींचकर फिर पलभाग्र विन्दुगत पूर्वापरके समानान्तर रेखा बनावे। इस प्रकार दृष्ट-छायाग्रगत तथा पलभा रेखाके बीच (अन्तर) को 'अग्रा' कहते हैं ॥ १२९–१३१ ॥

> शङ्कुच्छायाकृतियुतेर्मूलं कर्णोऽस्य वर्गतः।
> प्रोज्झ्य शङ्कुकृतिं मूलं छाया शङ्कुर्विपर्ययात् ॥ १३२ ॥

शङ्कु (१२) के वर्गमें छायाके वर्गको जोडकर मूल लेनेसे छायाकर्ण होता है और छायाकर्णके वर्गमें शङ्कुके वर्ग-को घटानेसे मूल छाया होती है तथा छायाके वर्ग घटानेसे मूल शङ्कु होता है *॥ १३२ ॥

> त्रिंशत्कृत्यो युगे भानां चक्रं प्राक् परिलम्बते।
> तद्गुणाद्भूदिनैर्भक्ताद् द्युगणाद्यदवाप्यते ॥ १३३ ॥
> तद्दोस्त्रिघ्नाद्दशाप्तांशा विज्ञेया अयनाभिधाः।
> तत्संस्कृताद्ग्रहात्क्रान्तिच्छायाचरदलादिकम् ॥ १३४ ॥

(**अयनांश-साधन—**) एक युगमें राशिचक्र सम्पातादि स्थानसे पूर्व और पश्चिमको ६०० बार चलित होता है। जो उसके भगण कहलाते हैं। इसलिये अहर्गणको ६०० से गुणा करके युगके कुदिनसे भाग देकर राश्यादि-फलसे भुज बनावे। उस भुजको ३ से गुणा करके १० के द्वारा भाग दे तो लब्धि अयनांश होती है। इस अयनांशको अहर्गणद्वारा साधित ग्रहमें जोड़कर क्रान्ति, छाया और चरखण्ड आदि बनाने चाहिये *॥ १३३-१३४ ॥

> शङ्कुच्छायाहते त्रिज्ये विषुवत्कर्णभाजिते।
> लम्बाक्षज्ये तयोश्चापे लम्बाक्षौ दक्षिणौ सदा ॥ १३५ ॥
> स्वाक्षार्कापक्रमयुतिर्दिक्साम्येऽन्तरमन्यथा।
> शेषा नतांशाः सूर्यस्य तद्बाहुज्या च कोटिजा ॥ १३६ ॥
> शङ्कुमानाङ्गुलाभ्यस्ते भुजत्रिज्ये यथाक्रमम्।
> कोटिज्यया विभज्याप्ते छायाकर्णावहर्दले ॥ १३७ ॥

(**लम्बांश और अक्षांश-साधन—**) शङ्कु (१२) और पलभाको पृथक्-पृथक् त्रिज्यासे गुणा करके उसमें पल-कर्णसे भाग देनेपर लब्धि क्रमशः 'लम्बज्या' और 'अक्षज्या' होती है। दोनोंके चाप बनानेसे 'लम्बांश' और 'अक्षांश' होते हैं। इनकी दिशा सर्वदा दक्षिण समझी जाती है †॥ १३५ ॥

(**सूर्य-ज्ञानसे मध्याह्न-छाया-साधन—**) अपने अक्षांश और सूर्यके क्रान्त्यंश दोनों एक दिशाकी ओर हों तो योग करनेसे और यदि भिन्न दिशाके हों तो दोनोंको अन्तर करनेसे शेष सूर्यका 'नतांश' होता है। उस 'नतांश' की 'भुजज्या' और 'कोटिज्या' बनावे। भुजज्या और त्रिज्याको पृथक्-पृथक् शङ्कुमान (१२) से गुणा करके उसमें कोटि-ज्यासे भाग देनेपर लब्धि क्रमशः मध्याह्नकालमें छाया और छायाकर्णके मानका सूचक होती है ‡॥ १३६–१३७ ॥

---

* क्योंकि शङ्कुकोटि, छायाभुज और इन्हीं दोनोंके वर्गयोगका मूल छायाकर्ण कहलाता है।

* अयनांश-साधनका उदाहरण काल-मापनमें पहले बताया जा चुका है।

† जैसे—१२ अङ्गुल शङ्कुको त्रिज्या ३४३८ से गुणा कर गुणनफल ४१२५६ में पलकर्ण १३+$\frac{२}{५}$=$\frac{६७}{५}$ से भाग देनेपर लब्धि ३०७९ लम्बज्या हुई, इसकी चापकला ३८१४ में ६० से भाग देनेपर अंशादि ६३ । ३४ लम्बांश हुआ। इसको ९० में घटानेसे २६ । २६ अक्षांश हुआ।

‡ यदि मध्याह्नकालिक रव्यादि ० । ९ । ५१ सायन सूर्य है तो उस दिन गोरखपुरमें मध्याह्नकालिक छाया [illegible]

उत्तर—सायन सूर्य ० । ९ । ५१ [illegible] की ज्या ५८७ को परमक्रान्तिज्या [illegible] से गुणा [illegible]

स्वाक्षार्कनतभागानां दिक्साम्येऽन्तरमन्यथा ।
दिग्भेदेऽपक्रमः शेषस्तस्य ज्या त्रिज्यया हता ॥१३८॥
परमापक्रमज्याप्ता चापं मेषादिगो रविः ।
कर्क्यादौ प्रोज्झ्य चक्रार्द्धात्तुलादौ भार्धसंयुतात् ॥१३९॥
मृगादौ प्रोज्झ्य चक्रात्तु मध्याह्नेऽर्कः स्फुटो भवेत् ।
तन्मान्दमसकृद्वामं फलं मध्यो दिवाकरः ॥१४०॥

मध्याह्न-छायासे सूर्यसाधन—अपने 'अक्षांश' और मध्याह्नकालिक सूर्यके 'नतांश' दोनों एक दिशाके हों तो अन्तर करनेसे और यदि भिन्न दिशाके हों तो योग करनेसे जो फल हो, वह सूर्यकी 'क्रान्ति' होती है। 'क्रान्तिज्या' को 'त्रिज्या'से गुणा करके उसमें 'परमक्रान्तिज्या' (१३९७) से भाग देनेपर लब्धि सूर्यकी 'भुजज्या' होती है । उसके चाप बनाकर मेषादि ३ राशिमें सूर्य हों तो वही स्पष्ट सूर्य होता है* । कर्कादि ३ राशिमें हों तो उस चापको ६ राशिमें घटानेसे, तुलादि ३ राशिमे हों तो ६ राशिमें जोडनेसे और मकरादि ३ राशिमें हो तो १२ राशिमें घटानेसे जो योग या अन्तर हो, वह मध्याह्नमें स्पष्ट सूर्य होता है । उस स्पष्ट सूर्यसे विपरीत क्रियाद्वारा मन्दफल-साधन कर बार-बार संस्कार करनेसे मध्यम सूर्यका ज्ञान होता है ॥ १३८—१४० ॥

ग्रहोदयप्राणहता खखाष्टैकोद्धृता गतिः ।
चक्रासवो लब्धयुताः स्वाहोरात्रासवः स्मृताः ॥१४१॥

ग्रहोंके अहोरात्र-मान—जिस राशिमें तत्काल ग्रह हो, उस राशिके उदयमानसे उस ग्रहकी गतिको गुणा करके उसमें १८०० से भाग देकर लब्ध असुको 'अहोरात्रासु' (२१६००) में जोडनेपर उस ग्रहका अहोरात्रमान होता है ।(असुसे पल और घड़ी बना लेनी चाहिये ।)*॥ १४१॥

त्रिभद्युकर्णार्द्धगुणाः स्वाहोरात्रार्द्धभाजिताः ।
क्रमादेकद्वित्रिभज्यास्तच्चापानि पृथक्-पृथक् ॥१४२॥
स्वाधोऽधः प्रविशोध्याथ मेषाल्लङ्कोदयासवः ।
खागाष्टयोऽर्थगोऽगैकाः शरत्र्यङ्कहिमांशवः ॥१४३॥
स्वदेशचरखण्डोना भवन्तीष्टोदयासवः ।
व्यस्ता व्यस्तैर्युताः स्वैः स्वैः कर्कटाद्यास्ततस्त्रयः ॥१४४॥
उत्क्रमेण षडेवैते भवन्तीष्टास्तुलादयः ।

राशियोंके उदयमान—१ राशि, २ राशि, ३ राशि-की ज्याको पृथक्-पृथक् 'परमाल्पद्युज्या' (परमक्रान्तिकी कोटिज्या) से गुणा करके उसमे अपनी-अपनी द्युज्या (क्रान्तिकोटिज्या) से भाग देकर लब्धियोंके चाप बनावे । उनमें प्रथम चाप मेषका उदय (लङ्कोदय)-मान होता है। प्रथम चापको द्वितीय चापमें घटानेपर शेष वृषका उदयमान

गुणनफल ८२००३९ में त्रिज्या ३४३८ का भाग देनेसे लब्धि सूर्यकी क्रान्तिज्या २३८ कलाका चाप भी स्वल्पान्तरसे इतना ही हुआ । अत इसके अंश बनानेसे ३ । ५८ यह सूर्यकी अंशादि क्रान्ति सूर्यके उत्तर गोलमें होनेके कारण उत्तरकी हुई । अत अक्षांश २६ । २६ और क्रान्त्यंश ३ । ५८ का अन्तर करनेसे २२ । २८ यह नतांश हुआ । इसको ९० अंशमें घटानेसे नतांश की कोटि ६७ । ३२ हुई । नतांशकी भुजज्या १३०८ और कोटिज्या ३१७८ हुई । भुजज्या १३०८ को १२ से गुणा कर गुणनफल १५६९६ में कोटिज्यासे भाग देनेपर लब्धि स्वल्पान्तरसे ५ अङ्गुल मध्याह्नकालिक छायाका प्रमाण हुआ।

* गोरखपुरमें सायन मेष-सङ्क्रान्तिके बाद वैशाख कृष्णपक्षमें यदि मध्याह्नके समय १२अङ्गुल शङ्कुकी छाया ५ अङ्गुल उत्तर दिशा-की है तो उस दिन राश्यादि स्पष्ट सूर्य क्या होगा ?

उत्तर—छाया ५ के वर्ग २५ में शङ्कु१२का वर्ग १४४ जोड़नेसे १६९ हुआ। इसका वर्गमूल १३ छाया-कर्ण हुआ । छाया ५ को त्रिज्यासे गुणा करके गुणनफल ३४३८×५=१७१९० छाया-कर्ण १३ का भाग देनेसे लब्धि १३२२ सूर्यकी नतज्या हुई । इसका चाप १३५८ हुआ। इसको अंशात्मक बनानेसे २२ । ३८ सूर्यका नतांश हुआ । यह उत्तर छाया होनेके कारण दक्षिण दिशाका हुआ । अत· इसको गोरखपुरके अक्षांश २६ । २६ में घटानेसे ३ । ४८ यह सूर्यकी क्रान्ति हुई, इसको कला २२८ की ज्या भी इतनी ही हुई। इस क्रान्तिज्या २२८ को त्रिज्यासे गुणा करके गुणन-फलमें परमक्रान्तिज्या १३९७ से भाग देनेपर लब्धि ५६१ सूर्यकी भुजज्या हुई । इसकी चापकला ५६३ को अंशादि बनाने से ० । ९ । २३ राश्यादि सूर्य हुआ, यही मेषादि ३ राशिके भीतर होनेके कारण उस दिन मध्याह्नकालिक सायनसूर्य हुआ ।

* जैसे स्पष्ट सूर्य ० । ९ । ५१ । १५ हो, उसकी गतिकला ५८ हो तो उसको मेषके स्वदेशोदयमान १३१० असुसे गुणा करके गुणनफल ७५९८० में १८०० से भाग देनेपर लब्धि ४२ असु हुई। उसको अहोरात्रासु (२१६००) में जोड़नेसे २१६४२ असु सूर्यके अहोरात्रका प्रमाण हुआ । इसका पल बनानेसे ३६०७ अर्थात् नाक्षत्र अहोरात्रसे सूर्यका अहोरात्र ७ पल अधिक हुआ । इसी प्रकार सब ग्रहोंके अहोरात्रमान समझे ।

होता है एवं द्वितीय चापको तृतीय चापमें घटाकर जो शेष रहे, वह मिथुनका लङ्कोदयमान होता है। यथा—१६७० असु मेषका, १७९५ वृषका तथा १९३५ मिथुनका सिद्ध लङ्कोदयमान है*। इन तीनोंमें क्रमसे अपने देशीय तीनों चरखण्डोंको घटावे तो क्रमशः तीनों अपने देशके मेष आदि तीन राशियोंके उदयमान होते हैं। पुनः उन्हीं तीनों लङ्कोदयमानोंको उत्क्रमसे रखकर—इन तीनोंमें अपने देशके तीनों चरखण्डोंको उत्क्रमसे जोडनेपर कर्क आदि ३ राशियोंके स्वदेशोदयमान होते हैं एवं मेषादि कन्यापर्यन्त ६ राशियोंके उदयमान सिद्ध होते हैं। पुनः ये ही उत्क्रमसे तुलादि ६ राशियोंके मान होते हैं† ॥ १४२—१४४½ ॥

गतभोग्यासवः कार्याः सायनात् स्वेष्टभास्करात् ॥१४५॥
स्वोदयासुहता भुक्तभोग्या भक्ताः खवह्निभिः।
अभीष्टघटिकासुभ्यो भोग्यासून्प्रविशोधयेत् ॥१४६॥
तद्वदेवैष्यलग्नासूनेवं यातांस्तथोत्क्रमात्।
शेषं चेत् त्रिंशताभ्यस्तमशुद्धेन विभाजितम् ॥१४७॥
भागयुक्तं च हीनं च व्ययनांशं तनुः कुजे।

लग्न-साधन—इष्टकालिक सायनांश सूर्यके भुक्तांश और भोग्यांशद्वारा 'भुक्तासु' और 'भोग्यासु'का साधन करना चाहिये। (यथा—भुक्तांशको सायन सूर्यके स्वदेशोदयमानसे गुणा करके ३० का भाग देनेपर लब्धि 'भुक्तासु' और भोग्यांशको स्वदेशोदयमानसे गुणा करके उसमे ३० के द्वारा भाग देनेपर लब्धि 'भोग्यासु' होते हैं। इष्ट घटीके 'असु' बनाकर उसमें 'भोग्यासु' को घटावे, घटाकर जो शेष बचे, उसमें अग्रिम राशियोंमेंसे जितनेके स्वदेशोदयमान घटें, उतने घटावे। (अथवा) इसी प्रकार 'इष्टासु' में 'भुक्तासु' घटाकर शेषमे, गत राशियोंके उत्क्रमसे उनके जितने स्वदेशोदयमान घटें, घटावे। जिस राशितकका मान घट जाय, वहाँतक 'शुद्ध' और जिसका मान नहीं घटे, वह 'अशुद्ध' संज्ञक होती है। बचे हुए 'इष्टासु' को ३० से गुणा करके 'अशुद्ध' राशिके उदयमानसे भाग देकर लब्ध अंशादिको (भोग्य-क्रम-विधि हो तो) शुद्ध राशिसंख्यामें जोडने और (भुक्त-उत्क्रम-विधि हो तो) अशुद्ध राशिकी संख्यामें घटानेसे 'सायन लग्न' होता है। उसमें अयनांश घटानेसे फल-कथनोपयुक्त उदयलग्न होता है* ॥ १४५—१४७½ ॥

---

* राशियोंके लङ्कोदयमान-साधनका उदाहरण—एक राशि (१८०० कला) की ज्या १७१९ उसकी द्युज्या ३३५१ तथा परमाल्पद्युज्या ३१३९ कला है तो एक राशिज्या १७१९ को परमाल्पद्युज्या ३१३९ से गुणा करके गुणनफल ५३९५९४१ में एक राशिकी द्युज्या ३३५१ से भाग देकर लब्धि एक राशि उदयज्या १६१० हुई। इसका चाप मेषका उदयासु स्वल्पान्तरसे १६७० हुआ। इसी प्रकार आगे अपनी-अपनी ज्या और द्युज्यासे साधन करके राशियोंके उदयासु लिखे गये हैं। यथा—

	लङ्कोदयासु		चरासु		स्वदेशोदयासु	
मेष	१६७०	−	३६०	=	१३१०	मीन
वृष	१७९५	−	२८८	=	१५०७	कुम्भ
मिथुन	१९३५	−	१२०	=	१८१५	मकर
कर्क	१९३५	+	१२०	=	३०५५	धनु
सिंह	१७९५	+	२८८	=	२०८३	वृश्चिक
कन्या	१६७०	+	३६०	=	२०३०	तुला

ये उदयमान असुसंख्यामें हैं। इनमें ६ के भाग देनेसे पलात्मक होते हैं। यथा—मेषोदयासु=१६७०, अत मेषोदयपल= $\frac{१६७०}{६}$ =२७८ स्वल्पान्तरसे। एव अन्य मान निम्नाङ्कित चित्रमें देखिये।

† उदाहरण—पलमान ६ हैं, वहां चरखण्ड-क्रमसे पलात्मक ६०।४८।२० हुए। इनको क्रम-उत्क्रमसे पलात्मक लङ्कोदयमें घटाने और जोड़नेसे ६ पलभादेशीय (स्वदेशोदय) मान हुए। चक्रमें देखिये—

	लङ्कोदय		चरखण्ड		स्वदेशोदय	
मे.	२७८	−	६०	=	२१८	मी.
वृ.	२९९	−	४८	=	२५१	कुं.
मि.	३२३	−	२०	=	३०३	म.
क.	३२३	+	२०	=	३४३	ध.
सिं.	२९९	+	४८	=	३४७	वृ.
क.	२७८	+	६०	=	३३८	तु.

* जैसे—यदि कल्पित अयनांश १८। १० और सूर्य १। ५। ५२।४० है तो उनका योग सायन सूर्य १।२४।२।४० हुआ। इष्ट काल घड़ी-पल १० । २० है । अतः सूर्यके वृषराशि-भोग्यांश ५। ५७। २० और इष्ट कालासु ३७२० हुए। सूर्यके भोग्यांश

प्राक् पश्चान्नतनाडीभिस्तद्वल्लङ्कोदयासुभिः ॥१४८॥
भानौ क्षयधने कृत्वा मध्यलग्नं तदा भवेत्।
भोग्यासूनूनकस्याथ भुक्तासूनधिकस्य च ॥१४९॥
सपिण्ड्यान्तरलग्नासूनेवं स्यात्कालसाधनम्।

(मध्य-दशम लग्न-साधन—) इसी प्रकार पूर्व 'नतकालासु' से लङ्कोदयद्वारा अंशादि साधन करके उसको सूर्यमें घटानेसे तथा पश्चिम 'नतकालासु' और लङ्कोदयद्वारा (त्रैराशिकसे) अंशादि साधन करके सूर्यमें जोडनेसे मध्य (दशम=आकाशमध्य) लग्न होता है* ॥ १४८½ ॥

(लग्न और स्पष्ट-सूर्यको जानकर इष्टकाल-साधन—) लग्न और सूर्य इन दोनोंमें जो ऊन (पीछे) हो, उसके 'भोग्यांश' द्वारा 'भोग्यासु' और जो अधिक (आगे) हो उसके भुक्तांशद्वारा 'भुक्तासु' साधनकर दोनोंको जोडे तथा उसमे उन दोनों (लग्न और सूर्य) के * बीचमें जो राशियाँ हों, उनके उदयासुओंको जोड़े तो 'इष्टकालासु' होते हैं† ॥ १४९½ ॥

विराह्वर्कभुजांशाश्चेदिन्द्राल्पाः स्याद्ग्रहो विधोः ॥१५०॥
तेंऽशाः शिवघ्नाः शैलाप्ता व्यग्वर्कांशः शरोऽङ्गुलैः।
अर्के विधुर्विधुं भूभा छादयत्यथ छन्नकम् ॥१५१॥
छाद्यच्छादकमानार्धं शरोनं ग्राह्यवर्जितम्।
तत् खच्छन्नं च मानैक्यार्धं शराढ्यं दशाहतम् ॥१५२॥
छन्नघ्नमस्मान्मूलं तु स्वाङ्गोनं ग्लौवपुर्हृतम्।
स्थित्यर्द्धं घटिकादि स्याद् व्यगुवाह्वंशसंमितैः ॥१५३॥
इष्टैः पलैस्तदूनाढ्यं व्यगावूनेऽर्कषड्गृहात्।
तदन्यथाधिके तस्मिन्नेवं स्पष्टे मुखान्त्यगे ॥१५४॥

५ । ५७ । २० को वृषराशिके स्वोदयासु संख्या १५०७ से गुणा करनेपर ३७२० । ८५८९९ । ३०१४० को ६० से सवर्णन करनेपर ८९७५ । १ । २० हुआ । इसमें ३० का भाग देनेसे लब्धि २९९ । १० । ३ भोग्यासु हुई । इसको इष्टकालासु ३७२० में घटानेसे ३४२० । ४९ । ५७ हुआ । इसमें वृषके परवती मिथुनके स्वोदयासु १८१५ को घटानेसे शेष १६०५ । ४९ । ५७ हुआ । इसमें कर्कका स्वोदयासु-मान २०५५ नहीं घटता है, इसलिये कर्कराशि अशुद्ध और मिथुन शुद्ध संज्ञक हुआ । शेष असु १६०५ । ४९ । ५७ को ३० से गुणा करनेपर ४८१७४ । ५८ । ३० हुआ । इसमें अशुद्ध कर्कके स्वोदयमान २०५५ का भाग देनेसे लब्ध अंशादि २३ । २६ । ३२ में शुद्धराशि (मिथुन) संख्या ३ जोडनेसे ३ । २३ । २६ । ३२ हुआ । इसमें अयनांश १८ । १० को घटानेसे २ । ५ । १६ । ३२ यह लग्न हुआ ।

लग्न बनानेमें विशेषता यह है कि यदि सूर्योदयसे इष्टकालद्वारा लग्न बनाना हो तो सायन सूर्यके भोग्यांशद्वारा तथा इष्टकालको ६० घडीमें घटाकर शेषकालद्वारा बनाना हो तो सूर्यके भुक्तांशद्वारा ही उपर्युक्त विधिसे लग्न बनाना चाहिये ।

* उदाहरण—यदि पूर्व 'नतकालासु' ३७५० और 'सायनसूर्य' ६ । ५ । ४ । १० है तो भुक्त-प्रकारसे और 'लङ्कोदय द्वारा दशम लग्नका साधन इस प्रकार होगा—सूर्यके 'भुक्तांश' ५ । ४ । १० को तुलाराशिके 'लङ्कोदय' १६७० से गुणा करनेपर गुणनफल ८४६५ हुआ । इसमें ३० का भाग देनेसे भागफल २८२ सूर्यके भुक्तासु हुए । इनको 'नतकालासु' ३७५० में घटानेसे शेष ३४६८ रहा । उसमें सूर्यसे पीछेकी कन्याराशिके लङ्कोदयासु १७९५ को घटानेपर शेष १६७३ रहा । इसमें सिंहका लङ्कोदयासु १७९५ नहीं घटता है, अत यह सिंह अशुद्ध संज्ञक हुआ । अब शेष असु १६७३ को ३० से गुणा करके गुणनफल ५०१९० में अशुद्ध उदयासु १७९५ का भाग देनेसे लब्ध अंशादि २७ । ५७ । ३९ हुए । इनको अशुद्ध राशिसंख्या ५ में घटानेपर शेष ४ । २ । २ । २१ सायन दशम लग्न हुआ ।

* यहाँ आगे रहनेवाला अधिक और पीछे रहनेवाला ऊन समझा जाता है । एवं दोनोंके अन्तर ६ राशिसे अल्पवाला ग्रहण करना चाहिये । यदि सूर्य अधिक रहे तो रात्रि शेष इष्टकाल समझना चाहिये ।

† उदाहरणार्थ प्रश्न—यदि सायनसूर्य १ । २४ । ४५ । ० और सायन लग्न ३ । ५ । २० । ३० है तो इष्टकाल क्या होगा ?

उत्तर—यहाँ लग्न अधिक है, इसलिये लग्नके भुक्तांश ५ । २० । ३० को कर्कराशिके 'स्वदेशोदयासु' २०५५ से गुणा करनेपर गुणनफल १०९७० हुआ । उसमें ३० का भाग देनेपर ३६५ । ५४=३६६ लग्नके 'भुक्तासु' हुए । तथा सूर्यके भोग्यांश ५ । १५ । ० को वृषराशिके 'स्वदेशोदयासु' १५०७ से गुणा कर गुणनफल ७९११ में ३० से भाग देनेपर लब्ध सूर्यके भोग्यासु २६४ हुए । लग्नके 'भुक्तासु' ३६६ और सूर्यके 'भोग्यासु' २६४ के योग ६३० में मध्यकी राशि मिथुनके 'स्वदेशोदयासु' १८१५ जोडनेसे २४४५ 'इष्टकालासु' हुए । इनमें ६ का भाग देनेपर लब्धि पल ४०७ । ३० हुए । इनमे ६० का भाग देनेपर लब्ध घट्यादि ६ । ४७ । ३० सूर्योदयसे इष्टकाल हुआ ।

(ग्रहण-साधन—) पर्वान्त * कालमें स्पष्ट सूर्य, चन्द्र और राहुका साधन करे। सूर्यमें राहुको घटाकर जो शेष बचे, उसके भुजांश यदि १४ से अल्प हो तो चन्द्रग्रहण की सम्भावना समझे ॥१५०॥ उन भुजांशोंको ११ से गुणा कर ७ से भाग देनेपर लब्धि-अङ्क अङ्गुलादि 'शर' होता है ॥१५०½॥

सूर्यको चन्द्रमा और चन्द्रमाको भूभा (पृथिवीकी छाया) छादित करती है। इसलिये सूर्यग्रहणमें सूर्य छाद्य और चन्द्रमा छादक तथा चन्द्रग्रहणमें चन्द्रमा छाद्य; भूभा छादक (ग्रहणकर्त्री) है—ऐसा समझना चाहिये। अब छन्न (ग्रास) मान कहते हैं—छाद्य और छादकके बिम्बमानका

* चन्द्रग्रहणमें पूर्णिमा और सूर्यग्रहणमें अमावास्या पर्व कहलाता है।

† सूर्य और चन्द्रग्रहणका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—ग्रह जिस मार्गमें घूमता हुआ पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करता है, वह (मार्ग) उस ग्रहकी कक्षा कहलाता है। पृथ्वीसे सूर्यकी कक्षा दूर और चन्द्रकी कक्षा समीप है। इसलिये सूर्य और पृथ्वीके बीचमें ही चन्द्रमा घूमता रहता है।

जिस दिशामें सूर्य रहता है, उससे विरुद्ध या सामनेकी दिशामें पृथ्वीकी छाया रहती है। जिस प्रकार सूर्य घूमता है, उसी प्रकार उक्त छाया भी घूमती है और उसकी लंबाई चन्द्रकक्षासे आगेतक बढ़ी हुई होती है। पृथ्वी गोल होनेके कारण चन्द्रकक्षामें पृथ्वीकी छाया भी गोलाकार ही होती है। वह सूर्यसे सर्वदा ६ राशिपर ही घूमती रहती है।

चन्द्रमा अपनी कक्षामें घूमता हुआ जब सूर्यके साथ एक दक्षिणोत्तर रेखामें स्थित होता है, उस समय दर्शान्त (अमावास्याके अन्त और शुक्ल प्रतिपदाके आरम्भकी संधि) काल कहलाता है। तथा जब सूर्यसे चन्द्रमा ६ राशि आगे पहुँच जाता है, उस समयको पूर्णिमान्त काल कहते हैं।

चन्द्रमाका बिम्ब जलमय है, उसके जिस भागपर सूर्यकी किरणें पड़ती हैं, वह भाग तेजोपुञ्ज (उज्ज्वल) [illegible] है। [illegible] उसके द्वारा रात्रिमें भी अन्धकारका निवारण होता है।

सर्वग्रास चन्द्र-ग्रहणका दृश्य
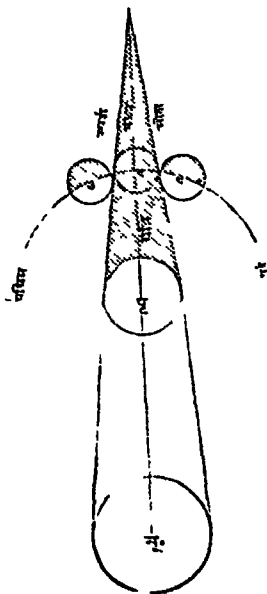
ऊपर कहा गया है कि सूर्यसे ६ राशिपर पृथ्वीकी छाया घूमती है [illegible] सूर्यसे ६ राशिपर पहुँचनेपर पूर्णिमा होती है, इसलिये जिस पूर्णिमाको [illegible] छायासे अगल-बगल होकर चला जाता है, उसमें चन्द्रग्रहण नहीं होता है। [illegible] चन्द्रमा पृथ्वीकी छायामें पड़ जाता है, उस समय [illegible] चन्द्रमा पूर्ण अदृश्य हो जाता है और वह 'सर्वग्रास' या [illegible] जिस पूर्णिमामें चन्द्रमाका कुछ ही भाग पृथ्वीकी छायामें पड़ता है, [illegible] अदृश्य होनेके कारण उसे 'खण्डग्रहण' कहते हैं। इसलिये चन्द्रग्रहण [illegible]

(सूर्यग्रहण—) ऊपर बताया गया है कि चन्द्रमा [illegible] है और जब सूर्यके समीप एक दक्षिणोत्तर रेखामें रहता है, [illegible] सूर्यकी किरणें पड़ती हैं (नीचेके भागमें जिसे हम देखते हैं, [illegible] अमावास्याके दिन हमें चन्द्रमाका दर्शन नहीं होता है। रात्रिमें [illegible] पृथ्वीके नीचे चला जाता है।

जिस अमावास्याको पृथ्वी और सूर्यके बीचमें चन्द्रमा [illegible] आच्छादित होकर सूर्यका बिम्ब अदृश्य हो जाता है, तब [illegible]

योग करके उसके आधेमें 'शर' घटानेसे 'छन्न' (ग्रास) मान होता है । यदि ग्रासमान ग्राह्य (छाद्य) से अधिक हो तो उसमें छाद्यको घटाकर जो शेष बचे, उतना खच्छन्न (खग्रास) समझना चाहिये* ।

आवृत होनेपर वह अदृश्य होता है । इस प्रकार चन्द्रबिम्बसे जब सूर्यका सम्पूर्ण या न्यूनाधिक भाग अदृश्य होता है तो क्रमशः उसे 'सर्वग्रास' या 'खण्ड सूर्यग्रहण' कहते हैं ।

खण्ड सूर्यग्रहणका दृश्य
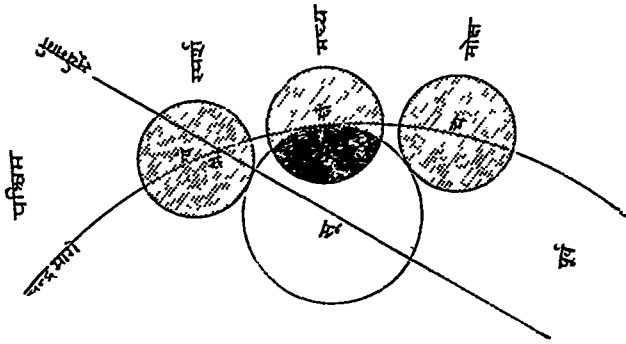
सूर्यग्रहण
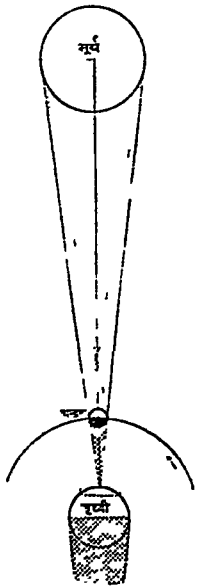
अमावास्यामें चन्द्रमाकी छाया पृथ्वीकी ओर होती है, उस छायामें जो भूभाग पड़ता है, उसके लिये सम्पूर्ण सूर्य-बिम्ब अदृश्य हो जाता है, अतः वहाँ सर्वग्रास सूर्यग्रहण होता है; अन्यत्र खण्ड-ग्रास । चित्र देखिये ।

पुराणोंमें जो सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहणमें राहु कारण बतलाया गया है, वह इस अभिप्रायसे है—अमृत-मन्थनके समय जब राहुका सिर काटकर अलग कर दिया गया, उस समय अमृत पीनेके कारण उसका मरण नहीं हुआ । वह एकसे दो हो गया । ब्रह्माजीने उन दोनोंमेंसे एक (राहु) को चन्द्रमाकी छायामें और दूसरे (केतु)को पृथ्वीकी छायामें रहनेके लिये स्थान दिया । अतः ग्रहण-समयमें राहु और केतु सूर्य और चन्द्रमाके समीप ही रहता है। अतः छायारूप राहु-केतुके द्वारा ही ग्रहणका वर्णन किया गया है ।

* मान लीजिये—पूर्णिमान्तकाल घट्यादि ४० । ४८ और उस समयका स्पष्ट सूर्य राश्यादि ८ । ० । १२ । ६, चन्द्रमा २ । ० । १२ । १ तथा राहु ७ । २८ । २३ । १८ है तो स्पष्ट सूर्य ८ । ० । १२ । ६ में राहु ७ । २८ । २३ । १८ को घटानेसे ० । १ । ४८ । ४८ व्यगु हुआ, यह ३ राशिसे कम है, अतः इसका भुजांश इतना ही अर्थात् १ । ४८ । ४८ हुआ । यह १४ अंशसे कम है, इसलिये ग्रहणकी सम्भावना निश्चित हुई । व्यगुके भुजांश १ । ४८ । ४८ को ११ से गुणा करके गुणनफल १९ । ५६ । ४८ में ७ का भाग देनेपर भागफल २ । ५० 'शर' हुआ । यह व्यगुके उत्तर गोलमें होनेके कारण उत्तर दिशाका हुआ ।

यहाँ श्रीसनन्दन मुनिने चन्द्रादिके मध्यम बिम्ब प्रसिद्ध होनेसे स्पष्ट बिम्बका साधन-प्रकार नहीं कहा है । अतः सरलतापूर्वक समझनेके लिये चन्द्र, रवि और भूभा (पृथ्वीकी छाया)के बिम्ब-साधनका प्रकार यहाँ दिखलाया जाता है ।

मानैक्यार्ध (छाद्य-छादकके बिम्ब-योगार्ध) में शर जोड़कर १० से गुणा करे। फिर ग्रासमानसे गुणा करके गुणनफलका जो मूल हो उसमें अपना षष्ठांश घटाकर शेषमें चन्द्र-बिम्बसे भाग देनेपर लब्धि-प्राप्त घटी आदिको स्थित्यर्ध* समझे। इस स्थित्यर्धको दो स्थानोंमें रक्खे। व्यगु (व्यग्वर्क—राहु घटाया हुआ सूर्य) यदि ६ या १२ राशिसे ऊन हो तो द्विगुणित व्यगु भुजांशतुल्य पलको प्रथम स्थानगत स्थित्यर्धमें घटावे और द्वितीय स्थानवालेमें जोड़े। यदि व्यगु ६ या १२ से अधिक हो तो विपरीत क्रमसे (प्रथम स्थानमें जोड़ने और द्वितीय स्थानमें घटाने [illegible] मोक्षकालिक स्पष्ट स्थित्यर्ध होते हैं ॥ १५१—१५४ ॥

> ग्रासे नगाहते [illegible] स्थितिर्नोपया।
> पूर्णान्तं मध्यमत्र [illegible] त्रिभोनरन्द ॥१५५॥
> पृथक् तत्कान्त्यक्षभागसंस्कृतां [illegible]।
> तद् द्विष्टयंशकृतिर्हिंसी [illegible] ॥१५६॥
> त्रिभोनाद्धार्कविश्लेषाशोनघ्नाः [illegible]।
> हराप्ता लम्बनं [illegible] ॥१५७॥
> विश्वघ्नलम्बनकलाढ्योनस्तु तिथिवद् व्यगु।
> शरोऽन्तो लम्बनं पद्घ्नं [illegible] ॥१५८॥
> नतांशान्दशांशोनाघ्ना [illegible]।
> मार्ष्टेन्दुलिप्तै. पद्भिस्तु भक्ता नतिर्नं [illegible] ॥१५९॥
> तयोनाढ्यो [illegible]।
> ततस्तत्कालिकस्थित्यर्धे [illegible] ॥१६०॥
> अंशास्तैर्नित्रिभं [illegible]।
> विधाय ताभ्यां संसाध्ये लम्बने पूर्ववत् [illegible] ॥१६१॥
> पूर्वोक्ते संस्कृते ताभ्यां स्थित्यर्द्धे [illegible] स्फुटे।
> ताभ्यां हीनयुतो मध्यदर्श. [illegible] ॥१६२॥

(ग्रहणका विशोपक (बिम्बा) फल—) [illegible] ग्रासमानको २० से गुणा करके गुणनफलमें [illegible] छाद्यमानसे भाग दे. जो लब्धि आवे [illegible] विशोपक [illegible] होता है†।

> गतिर्द्विघ्नीशाप्ताङ्गुलमुखतनु स्याद् [illegible]
> विधोर्भुक्तिर्वेदाद्रिभिरपहृता बिम्बमुदितम्।
> नृपाश्वोना चान्द्रीगतिरपहृता लोचनकरै
> रदाढ्या भूभा स्यादिनगतिनगांशेन रहिता ॥
>
> (श्रीविश्वनाथ दैवज्ञ)

'सूर्यकी गतिको २ से गुणा करके गुणनफलमें ११ से भाग देनेपर जो लब्धि आवे, उतना ही सूर्यका अङ्गुलादि बिम्बमान होता है तथा चन्द्रमाकी गतिकलामें ७४से भाग देनेपर जो लब्धि हो, उतने अङ्गुलादि चन्द्रबिम्बका मान होता है। चन्द्रमाकी गतिमें ७१६ घटाकर शेषमें २२से भाग देनेपर लब्धिको ३२में जोड़े, फिर उसमें सूर्यगतिके सप्तमांशको घटानेसे भूभा (पृथ्वीकी छाया) होती है।'

यथा—स्पष्ट सूर्यगति ६१। ११ और चन्द्रगति ८२४। ५ है तो उक्त रीतिसे सूर्यगतिके द्विगुणित १२२। २२ में ११ से भाग देनेपर भागफल ११। ७ सूर्यबिम्ब हुआ। तथा चन्द्रगति ८२४। ५ में ७४से भाग देनेपर भागफल ११। ८ चन्द्रबिम्ब हुआ। चन्द्रगति ८२४। ५ में ७१६ घटाकर शेष १०८। ५ में २२से भाग देनेपर लब्धि ४। ५५ में ३२ जोड़नेसे ३६। ५५ हुआ, इसमें सूर्यगति ६१। ११ का सप्तमांश ८। ४४ घटानेसे शेष २८। ११ भूभाका बिम्ब हुआ। अब छाद्य (चन्द्र) और छादक (भूभा)के बिम्बके योग ११। ८+२८। ११=३९। १९ के आधे १९। ३९ मे पूर्वसाधित शर २। ५० को घटानेसे शेष १६। ४९ ग्रासमान हुआ, यह छाद्य (चन्द्र) बिम्बसे अधिक है, अत· इसमें चन्द्रबिम्ब ११। ८ को घटानेसे शेष ५। ४१ खग्रास हुआ।

* स्पर्शकालसे मोक्षकालका जो अन्तर है, उसे स्थिति कहते हैं। अत· उसका आधा मध्यम स्थित्यर्ध कहलाता है। स्पर्शकालसे मध्यकालतक स्पर्शस्थित्यर्ध और मध्यकालसे मोक्षकालतक मोक्षस्थित्यर्ध कहलाता है।

* जैसे—छाद्य (चन्द्र) और छादक (भूभा) के बिम्बयोग ३९। १९ के आधे १९। ३९ में शर २। ५० [illegible] २२। २९ हुआ, इसको १० से गुणा करनेसे गुणनफल [illegible] ५० को ग्रासमान १६। ४९ से [illegible] ५० हुआ। इसके मूल ६[illegible] १५ को घटानेपर शेष ७[illegible] भाग दिया तो लब्धि घट्यादि [illegible]

[illegible] गुणनफल ३। ३७। ३६ [illegible] इन पलोंको व्यगु (राहु घटे हुए सूर्य) [illegible] अधिक होनेके कारण [illegible] ४। ४५ [illegible] हुआ।

† जैसे—ग्रासमान १६। ४९ [illegible] गुणनफल ३३६। [illegible]

(सूर्यग्रहणमें विशेष लम्बन-घटी-साधन—) पर्वान्तकालमें ग्रहणका मध्य होता है। सूर्यग्रहणमें दर्शान्त कालिक लग्न बनाकर उसमें तीन राशि घटानेसे 'वित्रिभ' या 'त्रिभोन' लग्न कहलाता है। उसको पृथक् रखकर उसकी क्रान्ति और अक्षांशके संस्कार (एक दिशामें योग, भिन्न दिशामें अन्तर) करनेसे 'नतांश' होता है। उसका २२ वाँ भाग करके वर्ग करना चाहिये। यदि २ से कम हो तो उसीमें, यदि २ से अधिक हो जाय तो २ घटाकर शेषके आधेको उसी (वर्ग) में जोडकर पुनः १२ में जोड़नेसे 'हार' होता है। 'त्रिभोन' लग्न और सूर्यके अन्तरांशके दशमांशको १४ में घटाकर शेषको उसी दशमांशसे गुणा करे। उसमें पूर्वसाधित हारसे भाग देनेपर लब्धितुल्य घट्यादि लम्बन होता है। यह (लम्बन) यदि वित्रिभ सूर्यसे अधिक हो तो धन, अल्प हो तो ऋण होता है। अर्थात् साधित दर्शान्तकालमें इस लम्बनको जोड़ने-घटानेसे पृष्ठस्थानीय दर्शान्तकाल होता है ॥ १५५—१५७ ॥

घट्यादि लम्बनको १३ से गुणा करनेपर गुणनफल कलादि होता है। उसको व्यग्वर्कमें जोड़ या घटाकर 'शर' बनावे तो (पृष्ठीय दर्शान्तकालिक) शर (स्पष्ट) होता है। तथा घट्यादि लम्बनको ६ से गुणा करके गुणनफलको अंशादि मानकर वित्रिभमें जोड़ या घटाकर नतांश-साधन करे। नतांशके दशमांशको १८ में घटाकर शेषको उसी दशमांशसे गुणा करे; गुणनफलको ६ अंश १८ कलामें घटाकर जो शेष बचे, उससे गुणनफलमें ही भाग देनेसे लब्धि अङ्गुलादि नतांशकी दिशाकी ही नति होती है। इस नति और पूर्व साधित शर दोनोंके संस्कार (भिन्न दिशा हो तो अन्तर, एक दिशा हो तो योग) से स्पष्ट शर होता है। सूर्य-ग्रहणमें उसी शरसे ग्रास और स्थित्यर्ध बनावे। स्थित्यर्धको ६ से गुणा करके अंशादि गुणनफलको वित्रिभमें घटावे और दूसरे स्थानमे जोड़े। इन दोनों परसे पूर्वविधिसे पृथक् लम्बनसाधन करके क्रमशः पूर्वविधिसे साधित स्पर्श और मोक्ष-कालमें संस्कार करनेसे स्पष्ट पृष्ठस्थानीय स्पर्श और मोक्षकाल होते हैं* ॥ १५८—१६२ ॥

अर्का घना विश्व ईशा नवपञ्चदशांशकाः।
कालांशास्तैरूनयुक्ते रवौ ह्यस्तोदयौ विधोः ॥१६३॥

लब्ध ग्रहणविंशोपक बल ३० । १३ हुआ। जब विंशोपक २० होता है तो ग्रहणका पुराणोक्त साधारण फल होता है। यदि विंशोपक २० से कम हो तो कथित फल बलके अनुसार अल्प और २० से अधिक हो तो कथित फल अधिक होता है।

* उदाहरण—जहाँ दक्षिण अक्षांश २५ । २६ । ४२, स्पष्ट दर्शान्तकाल घडी-पल १३ । ४, दर्शान्तकालिक स्पष्ट सूर्य ८ । ५ । २६ । २५, स्पष्ट चन्द्रमा ८ । ५ । २६ । २०, राहु २ । ११ । ४१ । १८, स्पष्ट सूर्यगति ६१ । १५ और स्पष्ट चन्द्रगति ७२६ । ३० है तो उक्त घटी-पलको इष्ट मानकर लग्न बनानेसे ११ । २ । ४६ । १७ लग्न हुआ। इसमें ३ राशि घटानेपर त्रिभोन लग्न (वित्रिभ) ८ । २ । ४६ । १७ हुआ। पूर्वोक्त रीतिके अनुसार साधन करनेपर इसकी क्रान्ति २३ । ३८ । १० हुई, यह वित्रिभके दक्षिण गोलमें होनेके कारण दक्षिण दिशाकी हुई। अतः इसको दक्षिण दिशाके अक्षांश २५ । २६ । ४२ में जोडनेपर ४९ । ४ । ५२ नतांश हुए। उक्त नतांशके २२ वें भाग २ । १३ । ५१ का वर्ग करनेपर ४ । ५८ हुआ, यह २ से अधिक है, इसलिये इसमें २ को घटानेपर शेष २ । ५८ हुआ। इसके आधे १ । २९ को उसी वर्ग ४ । ५८ में जोड़नेसे ६ । २७ हुआ। इसे १२ में जोड़नेपर १८ । २७ 'हार' हुआ। तथा वित्रिभ लग्न ८ । २ । ४६ । १७ और सूर्य ८ । ५ । २६ । २५ के अन्तरांश २ । ४० । ८ का दशमांश ० । १६ हुआ। इसको १४ में घटानेपर शेष १३ । ४४ रहा। इसको उसी दशमांश ० । १६ से गुणा करनेपर गुणनफल ३ । ३९ हुआ। इसमें हार १८ । २७ का भाग देनेपर भागफल ० । ११ हुआ; यह (ग्यारह पल) लम्बन हुआ। सूर्यसे वित्रिभ अल्प होनेके कारण दर्शान्त घटी १३ । ४ में इस लम्बन ११ पलको घटानेसे पृष्ठस्थानीय घट्यादि दर्शान्तकाल १२ । ५३ हुआ।

अब घट्यादि ० । ११ लम्बनको १३ से गुणा किया तो गुणनफल २ । २३ कलादि हुआ। उक्त लम्बनके ऋण होनेके कारण सूर्य ८ । ५ । २६ । २५ में राहु २ । ११ । ४१ । १८ का अन्तर करनेसे व्यग्वर्क ५ । २३ । ४५ । ७ हुआ। इसमें २ । २३ कलादिको घटानेपर ५ । २३ । ४२ । ४४ पृष्ठ-स्थानीय व्यग्वर्क हुआ। इसको ६ राशिमें घटानेपर शेष ० । ६ । १७ । १६ यही भुजांश हुआ। इसको पूर्वोक्त शर-साधन-विधिके अनुसार ११ से गुणा करके ७ का भाग देनेपर लब्ध अङ्गुलादि ९ । ५२ शर हुआ। यह व्यगुके उत्तर गोलमें (६ राशिसे कम) होनेके कारण उत्तर दिशाका हुआ।

फिर लम्बन ० । ११ को ६ से गुणा करनेपर गुणनफल अंशादि १ । ६ को (ऋणलम्बन होनेके कारण) वित्रिभ लग्न ८ । २ । ४६ । १७ में घटानेपर ८ । १ । ४० । १७ हुआ। इससे क्रान्ति-साधन-विधिके अनुसार दक्षिण दिशाकी क्रान्ति २३ । ३४ ।

दृष्ट्वा तत्रां खेटबिम्बं दृगौच्चं लम्बमेक्ष्य च ।
तल्लम्बपातबिम्बान्तर्दृगौच्याप्तरविप्रभा ॥१६४॥

३५ हुई । इसको दक्षिण दिशाके अक्षांश २५ । २६ । ४२ में जोड़नेसे ४९ । १ । १७ दक्षिण दिशाका पृष्ठ्यानीय (स्पष्ट) नतांश हुआ । इस नतांशमें १० का भाग देनेपर लब्ध कलादि ४ । ५४ को १८ में घटानेसे शेष १३ । ६ रहा । इसको उक्त दशमांश ४ । ५४ से ही गुणा करनेपर ६४ । ११ कलादि हुआ, इसके अंश १ । ४ । ११ को ६ अंश १८ कलामें घटानेपर ५ । १३ । ४९ हुआ । इससे उपर्युक्त गुणनफल ६४ । ११ में भाग देनेपर लब्धि १२ । १८ अङ्गुलादि नति हुई । दक्षिण नतांश होनेके कारण इसकी दिशा दक्षिण हुई और पूर्वसाधित अङ्गुलादि शर ९ । ५२ यह उत्तर दिशाका है, अत भिन्न दिशा होनेके कारण दोनोंका अन्तर २ । २६ अङ्गुलादि स्पष्ट शर हुआ । इस स्पष्ट शरके द्वारा चन्द्रग्रहणकी भाँति ग्रासमान आदि साधन करनेके लिये सूर्य-स्पष्ट गति ६१ । १५ को २ से गुणा कर गुणनफलमें ११ का भाग देनेपर सूर्यबिम्ब ११ । ८ हुआ और चन्द्रस्पष्ट गति ७२६ । ३० में ७४ का भाग देनेपर चन्द्रबिम्ब ९ । ४९ हुआ । इन दोनोंके योगका आधा किया तो १० । २८ हुआ, उसमें स्पष्ट शर २ । २६ को घटानेपर शेष अङ्गुलादि ८ । २ यह ग्रासमान हुआ ।

अब स्थिति-घटी-साधन करनेके लिये सूर्य और चन्द्रके बिम्ब-योगार्ध १० । २८ में स्पष्ट शर २ । २६ को जोड़नेपर योगफल १२ । ५४ हुआ । इसको १० से गुणा करके गुणनफल १२९ । ० को ग्रासमान ८ । २ से गुणा किया तो गुणनफल १०३६ । १८ हुआ । इसके मूल ३२ । ११ में इसीके पञ्चांश ५ । २२ को घटानेपर शेष २६ । ४९ में चन्द्रबिम्ब ९ । ४९ का भाग देनेपर लब्धि घट्यादि २ । ४४ स्थिति-घटी हुई ।

अब स्थिति-घटी २ । ४४ को ६ से गुणा करके गुणनफल अंशादि १६ । २४ को वित्रिभ लग्न ८ । २ । ४६ । १७ में घटानेसे ७ । १६ । २२ । १७ स्पर्शकालिक वित्रिभ हुआ । तथा दर्शान्त-कालकी गति ६१ । १५ को स्थितिघटी २ । ४४ द्वारा गुणा करके गुणनफल १६७ में ६० का भाग देनेपर लब्धि २ । ४७ को दर्शान्तकालिक सूर्य ८ । ५ । २६ । २५ में घटानेपर स्पर्श-कालिक सूर्य ८ । ५ । २३ । ३८ हुआ । इन स्पर्शकालिक सूर्य और वित्रिभ लग्नके द्वारा पूर्वदर्शित विधिसे स्पर्शकालिक लम्बन १ । १७ घट्यादि हुआ ।

इसी प्रकार स्थितिघटी २ । ४४ को ६ से गुणा करनेपर अंशादि फल १६ । २४ को वित्रिभ लग्न ८ । २ । ४६ । १७ में

(ग्रहोंके उदयास्तकालांश—) १२, १७, १३, ११, ९, १५ ये क्रमसे चन्द्र, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र और शनिके कालांश हैं । [illegible] ग्रह होते हैं [illegible] तो उदय होता है । ([illegible] भीतर सूर्यसे पीछे या आगे [illegible] सान्निध्यवश अस्त (अदृश्य) [illegible]) ॥ १६३ ॥

(ग्रहोंके प्रतिबिम्बद्वारा छायासाधन—) [illegible] भूमिमें रखे हुए दर्पण आदिमें [illegible] दृष्टिस्थानसे भूमिपर्यन्त [illegible] मान समझे । [illegible] और प्रतिबिम्बके [illegible] दृष्टिकी ऊँचाईसे भाग देकर [illegible] उस समय उस ग्रहकी छायाका प्रमाण होता है ॥ १६४ ॥

अस्ते सायकाः [illegible] ।
शरेन्द्वासोत्तराणां [illegible] ॥१६५॥
षोडशातिथिर्हीना [illegible] ।
व्यस्तेषु क्रान्तिभागैश्च [illegible] ॥१६६॥

जोड़नेसे मोक्षकालिक वित्रिभ लग्न ८ । १९ । [illegible] हुआ । एवं सूर्यगति ६१ । १५ को स्थितिघटी २ । ४४ से गुणा करनेपर गुणनफल १६७ में ६० का भाग देनेपर [illegible] २ । ४७ [illegible] सूर्य ८ । ५ । २६ । २५ में जोड़नेसे मोक्षकालिक [illegible] ८ । ५ । २९ । १२ हुआ । इन दोनों ([illegible]) के द्वारा पूर्वकथित विधिसे मोक्षकालिक लम्बन [illegible] अधिक होनेके कारण) [illegible] ० । ५६ हुआ ।

अब, दर्शान्तकाल १३ । ४ में [illegible] घटानेसे १० । २० [illegible] लम्बन १ । १७ को घटानेसे ९ । [illegible] स्पर्शकाल हुआ तथा [illegible] ० । ५६ जोड़नेपर १६ । [illegible]

[illegible] ७२ अङ्गुल [illegible] अङ्गुल है, तो [illegible] ७२ से [illegible]

=१६ अङ्गुल [illegible] हुआ ।

इस प्रकार [illegible]

[illegible]

संस्कारदिक्कं वलनमङ्गुलाद्यं प्रजायते ।
स्वेष्वंशोनाः सितं तिथ्यो वलनाशोन्नतं विधोः ॥१६७॥
शृङ्गमन्यन्नतं वाच्यं वलनाङ्गुललेखनात् ।

(**चन्द्रशृङ्गोन्नति-ज्ञान—**) सूर्यास्त-समयमें सावयव गत और एष्य तिथिका साधन करे । उस सावयव तिथिको १६ से गुणा करके उसमें तिथिके वर्गको घटाकर शेषको स्वदेशीय पलभासे गुणा करे । गुणनफलमें १५ से भाग देकर लब्धि (फल) की दिशा उत्तर समझे । उसमें सूर्यकी क्रान्तिका यथोक्त संस्कार (एक दिशामे योग, भिन्न दिशामे अन्तर) करे । तथा चन्द्रमाके शर और क्रान्तिका विपरीत संस्कार करके जो फल हो उसमें द्विगुणित तिथिसे भाग देनेपर जितनी लब्धि हो, उतना अङ्गुल सस्कार-दिशाका वलन होता है । चन्द्रमासे जिस दिशामें सूर्य रहता है, वही संस्कारकी दिशा समझी जाती है । तिथिमें अपना पञ्चमाश घटानेसे शुक्ल (चन्द्रके श्वेत भाग) का अङ्गुलादि मान होता है । वलनकी जो दिशा होती है, उस दिशाका चन्द्रशृङ्ग उन्नत और अन्य दिशामें नत होता है । तदनुसार परिलेख करना चाहिये *॥ १६५—१६७½ ॥

पञ्चत्वेंगाङ्गविशिखाः कर्णशेषहताः पृथक् ॥१६८॥
प्रकृत्यार्काङ्गसिद्धाग्निभक्ता लब्धोनसंयुताः ।
त्रिज्याधिकोने श्रवणे वपूंषि त्रिहृताः कुजात् ॥१६९॥
ऋज्वोरनृज्वोर्विवरं गत्यन्तरविभाजितम् ।
वक्रर्ज्वोर्गतियोगाप्तं गम्येऽतीते दिनादिकम् ॥१७०॥
स्वनत्या संस्कृतौ स्वेषू दिक्साम्येऽन्येऽन्तरं युतिः ।
याम्योदक्खेटविवरं मानैक्यार्धाल्पकं यदा ॥१७१॥
तदा भेदो लम्बनाद्यं स्फुटार्थं सूर्यपर्ववत् ।

(**ग्रहयुति-ज्ञानार्थ मङ्गलादि पाँच ग्रहोंके विम्ब-साधन—**) मङ्गलादिके ५, ६, ७, ९, ५ इन मध्यम-विम्बमानोंको क्रमसे मङ्गलादि ग्रहोंके कर्णशेष (त्रिज्या और अपने-अपने शीघ्र कर्णके अन्तर) से गुणा करके गुणनफलको २ स्थानोमे रक्खे । एक स्थानमें क्रमसे मङ्गलादि ग्रहके २१, १२, ६, २४ और ३ का भाग देकर लब्धिको द्वितीय स्थानमें स्थित गुणनफलमें, यदि कर्ण त्रिज्यासे * अधिक हो तो घटावे, यदि त्रिज्यासे अल्प हो तो जोड़े, फिर उसमें ३ से भाग देनेपर क्रमशः मङ्गलादि ग्रहोंके विम्व-प्रमाण हाते हैं ।†

(**ग्रहोंकी युतिके गत-गम्य दिन-साधन—**) जिन दो ग्रहोंके युतिकालका ज्ञान करना हो, वे दोनों मार्गी हों, अथवा दोनों वक्री हों तो दोनों ग्रहोंकी अन्तर-कलामें दोनोंकी गत्यन्तर-कलासे भाग देना चाहिये । यदि एक वक्र और एक मार्गी हो तो दोनोकी गति-योगकलासे भाग देना चाहिये । फिर जो लब्धि आवे, वह ग्रहयुतिके गत या गम्य दिनादि है ।‡

---

* उदाहरण—शुक्लपक्षकी द्वितीयामें सायंकालिक चन्द्रमाकी शृङ्गोन्नति जाननेके लिये मान लीजिये उस समयकी सावयव (घड़ीसहित) तिथि २ । ३०, सूर्यकी उत्तरक्रान्ति १०, चन्द्रमाका उत्तर शर ५ और चन्द्रमाकी उत्तरक्रान्ति ६ हो तो कथित रीतिसे सावयव तिथि २ । ३० को १६ से गुणा कर गुणनफल ४० में सावयव तिथिके वर्ग ६ । १५ को घटानेसे शेष ३३ । ४५ रहा, इसको पलभा ६ से गुणा कर गुणनफल २०२ । ३० में १५ से भाग देनेपर लब्धि १३ । ३० यह उत्तर दिशाका फल हुआ । इसमें सूर्यकी उत्तरक्रान्ति १० (एक दिशा होनेके कारण) जोडनेसे २३ । ३० हुआ । तथा (एक दिशा होनेके कारण) चन्द्रमाके उत्तर शर ५ और उत्तरक्रान्ति ६ इन दोनोंके योग ११ को उत्तर दिशाके फल १३ । ३० में विपरीत सरकार करने (घटाने) से शेष २ । ३० रहा । इसमें द्विगुणित तिथि २ । ३० ×२=५ से भाग देनेपर लब्ध अङ्गलादि ० । ३० स्पष्ट वलन हुआ; यह चन्द्रमासे सूर्यकी दक्षिण दिशामें होनेके कारण दक्षिण दिशाका हुआ । एव सावयव तिथि २ । ३० में अपना पञ्चमाश ० । ३० घटानेसे २ । ० अङ्गुलादि शुक्लमान हुआ । इस प्रकार उस दिन दक्षिण दिशाका चन्द्रशृङ्ग उन्नत हुआ ।

* यहाँ त्रिज्याका प्रमाण ११ ग्रहण करना चाहिये ।

† जैसे—यदि मङ्गलका शीघ्रकर्ण १३ है तो त्रिज्या ११ और कर्ण १३ के अन्तर २ से मङ्गलके मध्यम विम्बमान ५ को गुणा करनेपर १० हुआ, इसमें २१ का भाग देकर भागफल ० । २९ को (त्रिज्यासे कर्णके अधिक होनेके कारण) गुणनफल १० में घटानेपर शेष ९ । ३१ में ३ का भाग दिया तो फल अङ्गुलादि ३ । १० मङ्गलका स्पष्ट विम्बमान हुआ । इसी प्रकार अन्य ग्रहोंका भी जान लेना चाहिये ।

‡ जैसे—मङ्गल और शुक्रका युतिसमय जानना है ता कल्पना कीजिये कि उस दिन स्पष्ट मङ्गल ७ । १५ । २० । २५, मङ्गलकी स्पष्ट गति ४० । १२, स्पष्ट शुक्र ७ । १० । ३० । २५ तथा शुक्रकी स्पष्ट गति ७० । १२ है तो यहाँ शीघ्र (अधिक)

(ग्रहोंकी युतिमें भेद-ज्ञान—) जिन दो ग्रहोंकी युति होती हो, उन दोनोंके अपनी-अपनी नतिसे संस्कृत शर (भूपृष्ठस्थानाभिप्रायिक शर) एक दिशाके हों तो अन्तर, यदि भिन्न दिशाके हों तो योग करनेसे दोनों ग्रहोंका अन्तर (दक्षिणोत्तरान्तर) होता है । यह अन्तर यदि दोनोंके विम्बमान-योगार्धसे अल्प हो तो उनके योगमें भेद (एकसे दूसरा आच्छादित) होता है । इसलिये इनमें नीचेवालेको छादक और ऊपरवालेको छाद्य मानकर सूर्य-ग्रहणके समान ही लम्बन, ग्रासमान आदि साधन करना चाहिये* ॥ १६८—१७१½ ॥

> एकायनगतौ स्यातां सूर्याचन्द्रमसौ यदा ।
> तद्युते मण्डले क्रान्त्योस्तुल्यत्वे वैधृताभिधः ॥१७२॥
> विपरीतायनगतौ चन्द्रार्कौ क्रान्तिलिप्तिकाः ।
> समास्तदा व्यतीपातो भगणार्द्धे तयोर्युतौ ॥१७३॥
> भास्करेन्द्वोर्भचक्रान्तश्चक्रार्धावधि संस्थयोः ।
> दृक्तुल्यसाधितांशादियुक्तयोः स्वावपक्रमौ ॥१७४॥
> अथौजपदगस्येन्दोः क्रान्तिर्विक्षेपसंस्कृता ।
> यदि स्यादधिका भानोः क्रान्तेः पातो गतस्तदा ॥१७५॥
> न्यूना चेत्स्यात्तदा भावी वामं युग्मपदस्य च ।
> पदान्यत्वं विधोः क्रान्तिर्विक्षेपाच्चेद् विशुद्ध्यति ॥१७६॥
> क्रान्त्योर्ज्ये त्रिज्ययाभ्यस्ते परमापक्रमोद्धृते ।
> तच्चापान्तरमर्द्धं वा योज्यं भाविनि शीतगौ ॥१७७॥
> शोध्यं चन्द्राद्गते पाते तत्सूर्यगतिताडितम् ।
> चन्द्रभुक्त्या हृतं भानौ लिप्तादि शशिवत्फलम् ॥१७८॥
> तद्वच्छशाङ्कपातस्य फलं देयं विपर्ययात् ।
> कर्मैतदसकृत्तावत्क्रान्ती यावत्समे तयो. ॥१७९॥

(पाताधिकार—पातकी संज्ञा—) जब सूर्य और चन्द्रमा दोनों एक ही अयन (याम्यायन—दक्षिणायन अथवा सौम्यायन—उत्तरायण) में हों तथा उन दोनोंके राश्यादि योग १२ राशि हो तो उस स्थितिमें दोनोंके क्रान्ति-साम्य होनेपर वैधृति नामका पात कहलाता है । तथा जब दोनों भिन्न (पृथक्-पृथक्) अयनमें हों और दोनोंका योग ६ राशि हो तो उस स्थितिमें दोनोंके क्रान्तिसाम्य होनेपर व्यतीपात नामक पात होता है ।

जब सूर्य-चन्द्रका अन्तर चक्र (०) या ६ राशि हो उस समयमें तात्कालिक अयनांशादिसे युक्त सूर्य और चन्द्रमाकी अपनी-अपनी क्रान्तिका साधन करे । यदि शरसंस्कृत चन्द्रमाकी क्रान्ति (स्पष्ट क्रान्ति) तात्कालिक सूर्यकी क्रान्तिसे अधिक हो तथा चन्द्रमा यदि विषम पदमें हो तो पातकालको गत (बीता हुआ) समझना चाहिये । यदि विषमपदस्थ चन्द्रमाकी शरसंस्कृत क्रान्ति सूर्यकी क्रान्तिसे अल्प हो तो पातकालको भावी (होनेवाला) समझना चाहिये । यदि चन्द्रमा समपदमें हो तो इससे विपरीत (सूर्यकी क्रान्तिसे चन्द्रमाकी स्पष्ट क्रान्ति अधिक हो तो भावी, अल्प हो तो गत) पातकाल समझे । यदि स्पष्ट क्रान्ति बनानेमें चन्द्रमाके शरमें क्रान्ति घटायी जाय तो इस स्थितिमें चन्द्रमाके बिम्ब और स्थानमें पदकी भिन्नता होती है ।

(स्फुट-क्रान्ति-साम्य-ज्ञान-प्रकार—) सूर्य और चन्द्रमा दोनोंकी 'क्रान्तिज्या' को त्रिज्यासे गुणा करके उसमें परम क्रान्तिज्यासे भाग देकर जो लब्धियाँ हों उन दोनोंके चाप बनावे । उन दोनों चापोंका जो अन्तर हो उसको सम्पूर्ण या अर्ध (कुछ न्यून) करके गम्य पात हो तो चन्द्रमामें जोड़े, गतपात हो तो घटावे । पुनः उपर्युक्त चापके अन्तर या उसके खण्डको सूर्यकी गतिसे गुणा करके गुणनफलमें चन्द्रगतिसे भाग देकर जो लब्धि (कलादि) हो, उसको चन्द्रमाके समान ही सूर्यमें संस्कार करे (गम्यपात हो तो जोड़े, गतपात हो तो घटावे) । इसी प्रकार (पूर्वोक्त चापान्तर-खण्डको चन्द्रपातकी गतिसे गुणा करके उसमें चन्द्रगतिसे भाग देकर) लब्धिरूप चन्द्रपातके कलादि फलको चन्द्रपात (राहु) में विपरीत संस्कार करे (गत पातमें जोड़े, गम्य पातमें घटावे) तो पातकालासन्न स्पष्ट सूर्य, चन्द्रमा और चन्द्रपात होते हैं । फिर इन तीनों (सूर्य, चन्द्र और चन्द्रपात)

गतिवाला शुक्र मङ्गलसे अल्प (पीछे) है, अत. दोनोंकी युति भावी है—ऐसा निश्चित हुआ । ये दोनों मार्गी हों तो उक्त रीतिसे मङ्गल ७ । १५ । २० । २५ में शुक्र ७ । १० । ३० । २५ को घटाकर शेष ० । ४ । ५ कलामें शुक्रगति ७० । १२ और मङ्गलगति ४० । १२ के अन्तर ३० गत्यन्तर-कलासे भाग देनेपर लब्धि ० । ९ । ४० गम्य दिनादि हुई अर्थात् इतने समयके बाद योग होनेवाला है ।

* जब दो ग्रहोंके क्रान्तिवृत्तमें एक ही स्थान (पूर्वापर अन्तरका अभाव) होता है, तब उन दोनोंकी युति (योग) समझी जाती है । ग्रहोंके इस प्रकार परस्पर योगसे शुभाशुभ फल संहितास्कन्धमें कहा गया है । इसीलिये ग्रहयुति-समयका ज्ञान आवश्यक है ।

के द्वारा उपर्युक्त क्रियाको तबतक बार-बार करता रहे जबतक दोनोंकी क्रान्ति सम न हो जाय * ॥१७२-१७९॥

क्रान्त्योः समत्वे पातोऽथ प्रक्षिप्तांशोनिते विधौ ।
हीनेऽर्द्धरात्रिकाद्यातो भावी तात्कालिकेऽधिके ॥१८०॥
स्थिरीकृतार्द्धरात्रेन्द्वोर्द्वयोर्विवरलिप्तिकाः ।
षष्टिघ्न्यश्चन्द्रभुक्त्याप्ताः पातकालस्य नाडिकाः ॥१८१॥

इस प्रकार क्रान्ति-साम्य होनेपर पात समझना चाहिये। यदि उपर्युक्त क्रियाद्वारा प्राप्त अंशादिसे युक्त या हीन किया हुआ चन्द्रमा अर्धरात्रिकालिक साधित चन्द्रमासे अल्प (पीछे) हो तो पातकालको 'गत' समझे और यदि अधिक (आगे) हो तो पातकालको भावी समझे ।

(अर्धरात्रिसे गत, गम्य पातकालका ज्ञान—) उपर्युक्त क्रियाद्वारा स्थिरीकृत (पातकालिक) चन्द्रमा और अर्धरात्रिकालिक चन्द्रमा जो हों इन दोनोंकी अन्तरकलाको ६० से गुणा करके गुणनफलमें चन्द्रकी गति-कलासे भाग देनेपर जो लब्धि हो, उतनी घटी अर्धरात्रिसे पीछे या आगे (गत पातमें पीछे, गम्य पातमें आगे) तक पातकालकी घड़ी समझी जाती है * ॥ १८०-१८१ ॥

---

* यदि सायन सूर्य ५ । २६ । ४० । ० सायन चन्द्र ० । २ । ५ । ०, पात (राहु) ० । ५ । २५ । ०, सूर्यगति ६० । १५, चन्द्रगति ७८३ । १५ और राहु-गति ३ । ११ है तो चन्द्र ० । २ । ५ । ० और पात ० । ५ । २५ । ० के योग ० । ७ । ३० सपातचन्द्रकी भुजकला ४५० की ज्या ४४९ हुई । इसको चन्द्रमाके परम शर २७० से गुणा कर गुणनफल १२१२३०में त्रिज्या ३४३८से भाग देनेपर लब्धि चन्द्रमाकी शरकला ३६ हुई; इसका चाप भी इतना ही हुआ । केवल चन्द्रमा ० । २ । ५ । ० की भुजज्या १२५ कलाको परमक्रान्तिज्या १३९७ से गुणा कर गुणनफल १७४६२५में त्रिज्या ३४३८ का भाग देनेपर लब्धि ५० चन्द्रमाकी क्रान्तिज्या हुई; इसका चाप भी इतना ही हुआ । अत. चन्द्रमाके शर ३६ और क्रान्ति ५०का योग करनेसे ८६ चन्द्रमाकी स्पष्ट क्रान्ति हुई ।

तथा राश्यादि सूर्य ५ । २६ । ४० । ० को ६ राशिमें घटानेपर भुज ० । ३ । २० । ० की कला २००की ज्या इतनी ही हुई । इसको परमक्रान्तिज्या १३९७ से गुणा कर गुणनफल २७९४००में त्रिज्या ३४३८का भाग देनेपर लब्धि ८१ सूर्यकी क्रान्तिज्या हुई; इसका चाप भी इतना ही होनेके कारण यही सूर्यकी क्रान्ति हुई ।

सूर्यकी क्रान्तिसे विषम (प्रथम) पदस्थित चन्द्रमाकी क्रान्ति अधिक है, इसलिये यहाँ गतपात निश्चित हुआ तथा सूर्य और चन्द्रमाके भिन्न अयन (चन्द्रमाके उत्तरायण और सूर्यके दक्षिणायन) में होने एव दोनोंके राश्यादियोग ६ राशि होनेके कारण इस क्रान्तिसाम्यका नाम व्यतीपात हुआ ।

अव, चन्द्र-क्रान्ति-ज्या ८६ को त्रिज्या ३४३८से गुणा कर गुणनफल २९५६६८में परमक्रान्तिज्या १३९७ का भाग देनेपर लब्धि २११ चन्द्रमाकी भुजज्या हुई, इसका चाप भी स्वल्पान्तरसे इतना ही हुआ। एव सूर्यकी क्रान्तिज्या ८१को त्रिज्या ३४३८से गुणा कर गुणनफल २७८४७८में परमक्रान्तिज्या १३९७ का भाग देनेपर लब्धि सूर्यकी भुजज्या १९२ हुई, इसका चाप भी इतना ही हुआ ।

सूर्य और चन्द्रमाके चापोंका अन्तर करनेसे (२११-१९२=) १९ कला हुई । इसके आधे (स्वल्पान्तरसे) १० को मध्यरात्रि-कालिक चन्द्रमा ० । २ । ५ । ० में घटानेसे पातासन्नकालिक चन्द्रमा ० । १ । ५५ । ० हुआ । तथा उसी अन्तरार्धकला १० को सूर्यकी गति ६० । १५ से गुणा कर गुणनफल ६०२ । ३० में चन्द्रगति ७८३ । १५ का भाग देनेपर लब्धिफल १ कलाको मध्य-रात्रिकालिक सूर्य ५ । २६ । ४० में घटानेसे ५ । २६ । ३९ हुआ । एव उसी अन्तरार्धकला १० को राहुकी गति ३ । ११ से गुणा कर गुणनफल ३१ । ५० में चन्द्रगति ७८३ । १५ का भाग देनेपर लब्धि ० हुई । इसका विपरीत संस्कार करनेपर भी मध्यरात्रिकालिक राहुके तुल्य ही तत्कालीन राहु ० । ५ । २५ हुआ ।

अब, पातासन्नकालिक चन्द्र ० । १ । ५५ । ०, सूर्य ५ । २६ । ३९ । ० और राहु ० । ५ । २५ । ० रहे । इनके द्वारा पुनः क्रान्ति-साधन किया जाता है । चन्द्रमा ० । १ । ५५ । ० की भुजज्या ११५ को परमक्रान्तिज्या १३९७ से गुणा कर गुणनफल १६०६५५ में त्रिज्या ३४३८ का भाग देनेपर लब्धि ४६ चन्द्रक्रान्तिज्या हुई; इसका चाप भी इतना ही हुआ । तथा चन्द्र ० । १ । ५५ । ० और राहु ० । ५ । २५ । ० का योग करनेसे सपातचन्द्र ० । ७ । २० की भुजज्या ४४० को चन्द्रके परमशर २७० से गुणा कर गुणनफल ११८८०० में त्रिज्या ३४३८ का भाग देनेपर लब्धि (स्वल्पान्तरसे) ३५ चन्द्रशरज्या हुई, इसका चाप बनानेसे इतना ही चन्द्रशर हुआ । चन्द्रशर ३५ को चन्द्रक्रान्ति ४६ में जोड़नेसे ८१ कला हुई, इसका अंश बनानेसे १ । २१ चन्द्रमाकी स्पष्टक्रान्ति हुई । एव तत्कालीन सूर्य ५ । २६ । ३९ की भुजज्या २०१ को परमक्रान्तिज्या १३९७ से गुणा कर गुणनफल २८०७९७ में त्रिज्या ३४३८ का भाग देनेपर लब्धि ८१ सूर्यकी क्रान्तिज्या हुई, इसका चाप भी इतना ही हुआ । इसको अंशात्मक बनानेसे १ । २१ सूर्यकी क्रान्ति हुई । अत· यहाँ सूर्य और चन्द्रमाकी क्रान्तियोंमें समता हुई ।

* क्रान्तिसाम्य (पात) काल-साधन—मध्यकालिक चन्द्रमा ० । २ । ५ । ० और स्थिरीकृत क्रान्तिसाम्य-(पात)कालिक चन्द्रमा ० । १ । ५५ । ० की अन्तरकला १० को ६० से गुणा कर गुणनफल ६०० में चन्द्रगति ७८३ । १५ का भाग देनेपर (स्वल्पान्तरसे) लब्धि १ घड़ी हुई । इसको (गतपात होनेके कारण) मध्यरात्रि घड़ी ४५ । १५ में घटानेसे शेष ४४ । १५ पातका मध्यकाल हुआ ।

रवीन्द्वोर्मानयोगार्द्धं षष्ट्या संगुण्य भाजयेत् ।
तयोर्भुक्त्यन्तरेणाप्तं स्थित्यर्धं नाडिकादि तत् ॥१८२॥
पातकालः स्फुटो मध्यः सोऽपि स्थित्यर्द्धवर्जितः ।
तस्य सम्भवकालः स्यात्तत्संयुक्तोऽन्त्यसंज्ञितः ॥१८३॥
आद्यन्तकालयोर्मध्यः कालो ज्ञेयोऽतिदारुणः ।
प्रज्वलज्ज्वलनाकारः सर्वकर्मसु गर्हितः ॥१८४॥
इत्येतद्गणिते किञ्चित्प्रोक्तं संक्षेपतो द्विज ।
जातकं वच्मि समयाद्राशिसंज्ञापुरःसरम् ॥१८५॥

(पातके स्थितिकाल, आरम्भ तथा अन्तकालका साधन—) सूर्य तथा चन्द्रमाके बिम्बयोगार्धको ६० से गुणा करके गुणनफलमें सूर्य-चन्द्रमाकी [illegible] देकर जो लब्धि हो वह पातकी स्थिति [illegible] इसको पातके स्पष्ट [illegible] होता है और जोड़नेसे अन्तकाल होता है [illegible] कालसे अन्तकालतक जो [illegible] अग्निके समान अत्यन्त दारुण ([illegible]) सब कार्योंमें निषिद्ध है । [illegible] स्कन्धमें संक्षेपसे कुछ (उपयोगी) [illegible] दिया है । अब ([illegible]) [illegible] पूर्वक जातकका वर्णन करूँगा ॥ १८२—१८५ ॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने द्वितीयपादे ज्यौतिषगणितवर्णनं नाम [illegible] ॥ ५४ ॥

त्रिस्कन्ध ज्यौतिषका जातकस्कन्ध

सनन्दनजी कहते हैं—नारद ! मेष आदि राशियाँ कालपुरुषके क्रमशः मस्तक, मुख, बाहु, हृदय, उदर, कटि, वस्ति (पेंड़ू), लिङ्ग, ऊरु, जानु, जङ्घा और दोनों चरण हैं ॥ १ ॥ मङ्गल, शुक्र, बुध, चन्द्रमा, सूर्य, बुध, शुक्र, मङ्गल, गुरु, शनि, शनि तथा गुरु—ये क्रमशः मेष आदि राशियोंके अधीश्वर (स्वामी) हैं ॥ २ ॥ विषम राशियोंमें पहले सूर्यकी, फिर चन्द्रमाकी होरा बीतती है तथा सम राशियोंमें पहले चन्द्रमाकी, फिर सूर्यकी होरा बीतती है । आदिके दश अंशतक उसी राशिका द्रेष्काण होता है और उस राशिके स्वामी ही उस द्रेष्काणके स्वामी होते हैं । ग्यारहसे बीसवें अंशतक उस राशिसे पाँचवीं राशिका द्रेष्काण होता है और उसके स्वामी ही उस द्रेष्काणके स्वामी होते हैं; इसी प्रकार अन्तिम दश अंश (अर्थात् २१ से ३० वें अंशतक) उस राशिसे नवम राशिका द्रेष्काण होता है और उसीके स्वामी उस द्रेष्काणके स्वामी कहे गये हैं ॥ ३ ॥ विषम राशियोंमें पहले पाँच अंशतक मङ्गल, फिर पाँच अंशतक शनि, फिर [illegible] अंशतक बृहस्पति, फिर सात अंशतक बुध और [illegible] तक शुक्र त्रिंशांशेश कहे गये हैं । सम राशियोंमें [illegible] क्रमसे पहले पाँच अंशतक शुक्र, फिर सात [illegible] आठ अंशतक बृहस्पति, फिर पाँच अंशतक शनि और [illegible] पाँच अंशतक मङ्गल त्रिंशांशेश बताये गये हैं ॥ [illegible] आदि राशियोंके नवमांश मेष, मकर, तुला और [illegible] होते हैं । (यथा—मेष, सिंह, धनुके मेषसे; वृष [illegible] मकरके मकरसे; मिथुन, तुला और कुम्भके [illegible] कर्क, वृश्चिक और मीनके नवमांश [illegible] हैं) [illegible] अंशके द्वादशांश होते हैं, जो अपनी राशिसे प्रारम्भ [illegible] अन्तिम राशिपर पूरे होते हैं और उन उन राशियोंके [illegible] उन द्वादशांशोंके स्वामी कहे गये हैं । इस प्रकार [illegible] होरा आदि षड्वर्ग† कहलाते हैं ॥ ५ ॥

वृष, मेष, धनु, कर्क, मिथुन और मकर—[illegible]

* क्रान्ति-साम्य-साधनमें कथित सूर्यकी गति ६० । १५ द्वारा सूर्यबिम्ब १० । ५७ हुआ एवं चन्द्रमाकी ९८३ । [illegible] बिम्ब १० । ३५ हुआ । इन दोनोंके योग २० । ९२ के आधे १० । ४६ को ६० से गुणा कर [illegible] ६४६ [illegible] चन्द्रमाकी गतिके अन्तर ७२३ से भाग देनेपर लब्धि (स्वल्पान्तरसे) १ घड़ी हुई, यह पातका [illegible] ४४ । १५ में घटानेसे शेष ४३ । १५ आरम्भकाल एवं जोड़नेसे ४५ । १५ पातका अन्तकाल हुआ ।

† गृह (राशि), होरा, द्रेष्काण, नवमांश, द्वादशांश तथा त्रिंशांश—ये षड्वर्ग कहे गये हैं । जिन [illegible] ग्रहोंके घर हैं । एक राशिमें ३० अंश होते हैं । उनमेंसे पंद्रह अंशकी एक होरा होती है । एक राशिमें दो होरा [illegible] द्रेष्काण होता है, अतः एक राशिमें तीन द्रेष्काण व्यतीत होते हैं । ३⅓ अंशका एक नवमांश होता है । [illegible] अंशका एक द्वादशांश होता है; राशिमें बारह द्वादशांश होते हैं । एक-एक अंशका त्रिंशांश होता है, [illegible]

राशि-स्वामी-[illegible]-चक्र

राशि	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	[illegible]
स्वामी	मङ्गल	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	मङ्गल	गुरु	शनि	शनि	[illegible]

हैं अर्थात् रातमें बली माने गये हैं—ये पृष्ठभागसे उदय लेने-के कारण पृष्ठोदय कहलाते हैं (किंतु मिथुन पृष्ठोदय नहीं है)। शेष राशियोंकी दिन संज्ञा है (वे दिनमें बली और शीर्षोदय माने गये हैं); मीन राशिको उभयोदय कहा गया है। मेष आदि

(राश्यर्ध) होरा—ज्ञानार्थ-चक्र

होरा-अंश	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
१—१५ तक	रवि	चन्द्र	रवि	चन्द्र	रवि	चन्द्र	रवि	चन्द्र	रवि	चन्द्र	रवि	चन्द्र
१८—३० तक	चन्द्र	रवि	चन्द्र	रवि	चन्द्र	रवि	चन्द्र	रवि	चन्द्र	रवि	चन्द्र	रवि

(राशितृतीयांश) द्रेष्काण—ज्ञानार्थ-चक्र

	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	
१—१० तक	१ मङ्गल	२ शुक्र	३ बुध	४ चन्द्र	५ सूर्य	६ बुध	७ शुक्र	८ मङ्गल	९ गुरु	१० शनि	११ शनि	१२ गुरु	राशि स्वामी
११—२० तक	५ सूर्य	६ बुध	७ शुक्र	८ मङ्गल	९ गुरु	१० शनि	११ शनि	१२ गुरु	१ मङ्गल	२ शुक्र	३ बुध	४ चन्द्र	राशि स्वामी
२१—३० तक	९ गुरु	१० शनि	११ शनि	१२ गुरु	१ मङ्गल	२ शुक्र	३ बुध	४ चन्द्र	५ सूर्य	६ बुध	७ शुक्र	८ मङ्गल	राशि स्वामी

राशियोंमें नवमांश-ज्ञानार्थ-चक्र

अंश-कला	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
३।२०	१ मङ्गल	१० शनि	७ शुक्र	४ चन्द्र	१ मङ्गल	१० शनि	७ शुक्र	४ चन्द्र	१ मङ्गल	१० शनि	७ शुक्र	४ चन्द्र
६।४०	२ शुक्र	११ शनि	८ मङ्गल	५ रवि	२ शुक्र	११ शनि	८ मङ्गल	५ रवि	२ शुक्र	११ शनि	८ मङ्गल	५ रवि
१०।०	३ बुध	१२ गुरु	९ गुरु	६ बुध	३ बुध	१२ गुरु	९ गुरु	६ बुध	३ बुध	१२ गुरु	९ गुरु	६ बुध
१३।२०	४ चन्द्र	१ मङ्गल	१० शनि	७ शुक्र	४ चन्द्र	१ मङ्गल	१० शनि	७ शुक्र	४ चन्द्र	१ मङ्गल	१० शनि	७ शुक्र
१६।४०	५ सूर्य	२ शुक्र	११ शनि	८ मङ्गल	५ सूर्य	२ शुक्र	११ शनि	८ मङ्गल	५ सूर्य	२ शुक्र	११ शनि	८ मङ्गल
२०।०	६ बुध	३ बुध	१२ गुरु	९ गुरु	६ बुध	३ बुध	१२ गुरु	९ गुरु	६ बुध	३ बुध	१२ गुरु	९ गुरु
२३।२०	७ शुक्र	४ चन्द्र	१ मङ्गल	१० शनि	७ शुक्र	४ चन्द्र	१ मङ्गल	१० शनि	७ शुक्र	४ चन्द्र	१ मङ्गल	१० शनि
२६।४०	८ मङ्गल	५ रवि	२ शुक्र	११ शनि	८ मङ्गल	५ रवि	२ शुक्र	११ शनि	८ मङ्गल	५ रवि	२ शुक्र	११ शनि
३०।० तक	९ गुरु	६ बुध	३ बुध	१२ गुरु	९ गुरु	६ बुध	३ बुध	१२ गुरु	९ गुरु	६ बुध	३ बुध	१२ गुरु

कन्या, मकर दक्षिणमें; मिथुन, तुला, कुम्भ पश्चिममें और कर्क, वृश्चिक, मीन उत्तरमें स्थित हैं) * । ये सब अपनी-अपनी दिशामें रहती हैं ॥ ७ ॥ सूर्यका उच्च मेष, चन्द्रमाका वृष, मङ्गलका मकर, बुधका कन्या, गुरुका कर्क, शुक्रका मीन तथा शनिका उच्च तुला है । सूर्यका मेषमें १०अंश, चन्द्रमाका वृषमें ३ अंश, मङ्गलका मकरमें २८ अंश, बुधका कन्यामें १५ अंश, गुरुका कर्कमे ५ अंश, शुक्रका मीनमें २७ अंश तथा शनिका तुलामें २० अंश उच्चांश (परमोच्च) है ॥ ८ ॥ सूर्यादि ग्रहोंकी जो उच्च राशियाँ कही गयी हैं, उनसे सातवीं राशि उन ग्रहोंका नीच स्थान है ।

चरमें पूर्व नवमांश वर्गोत्तम है। स्थिरमें मध्य (पाँचवाँ) नवमांश और द्विस्वभावमें अन्तिम (नवाँ) नवमांश वर्गोत्तम है । तनु (लग्न) आदि बारह भाव हैं ॥ ९ ॥ सूर्यका सिंह, चन्द्रमाका वृष, मङ्गलका मेष, बुधका कन्या, गुरुका धन, शुक्रका तुला और शनिका कुम्भ यह मूल त्रिकोण कहा गया है। चतुर्थ और अष्टमभावका नाम चतुरस्र है । नवम और पञ्चमका नाम त्रिकोण है ॥१०॥ द्वादश, अष्टम और षष्ठका नाम त्रिक है; लग्न चतुर्थ, सप्तम और दशमका नाम केन्द्र है । द्विपद, जलचर, कीट और पशु—ये राशियाँ क्रमशः केन्द्रमे बली होती हैं (अर्थात् द्विपद लग्नमें, जलचर चतुर्थमे, कीट सातवेंमें और पशु दसवेंमें बलवान् माने गये हैं) ॥११॥ केन्द्रके बादके स्थान (२, ५, ८, ११ ये) 'पणफर' कहे गये हैं । उसके बादके ३, ६, ९, १२—ये आपोक्लिम कहलाते है । मेषका स्वरूप रक्तवर्ण, वृषका श्वेत, मिथुनका शुकके समान·हरित, कर्कका पाटल (गुलाबी), सिंहका धूम्र, कन्याका पाण्डु (गौर), तुलाका चितकबरा, वृश्चिकका कृष्णवर्ण, धनुका पीत, मकरका पिङ्ग, कुम्भका बभ्रु (नेवले) के सदृश और मीनका स्वच्छ वर्ण है। इस प्रकार मेषसे लेकर सब राशियोंकी कान्तिका वर्णन किया गया है। सब राशियाँ स्वामीकी दिशाकी ओर झुकी रहती हैं। सूर्याश्रित राशिसे दूसरेका नाम 'वेशि' है ॥१२-१३॥

* मेषादि राशियोंके रूप-गुण आदिका बोधक चक्र

राशियाँ	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
अङ्गमें स्थान	मस्तक	मुख	भुज	हृदय	पेट	कमर	पेडू	लिङ्ग	ऊरु	जानु	जङ्घा	पैर
अधिपति	मङ्गल	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	मङ्गल	गुरु	शनि	शनि	गुरु
बलका समय	रात्रि	रात्रि	रात्रि	रात्रि	दिन	दिन	दिन	दिन	रात्रि	रात्रि	दिन	दिन
उदय	पृष्ठोदय	पृष्ठोदय	शीर्षोदय	पृष्ठोदय	शीर्षोदय	शीर्षोदय	शीर्षोदय	शीर्षोदय	पृष्ठोदय	पृष्ठोदय	शीर्षोदय	उभयोदय
शील	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य
पुं-स्त्रीत्व	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री
स्वभाव	चर	स्थिर	द्विस्वभाव	चर	स्थिर	द्विस्वभाव	चर	स्थिर	द्विस्व०	चर	स्थिर	द्विस्व०
दिशा	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर
द्विपदादि	चतुष्पद	चतुष्पद	द्विपद	जलकीट	चतुष्पद	द्विपद	द्विपद	कीट	१५ द्वि०, १५ च०	१५ च०, १५ जल	द्विपद	जलचर
वर्ण	रक्त	श्वेत	हरित	गुलाबी	धूम्र	गौर	चित्र	कृष्ण	पीत	पिङ्ग	भूरा	स्वच्छ
जाति	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	ब्राह्मण

(ग्रहोंके शील, गुण आदिका निरूपण—) सूर्यदेव कालपुरुषके आत्मा, चन्द्रमा मन, मङ्गल पराक्रम, बुध वाणी, गुरु ज्ञान एवं सुख, शुक्र काम और शनैश्चर दुःख हैं ॥ १४ ॥ सूर्य-चन्द्रमा राजा, मङ्गल सेनापति, बुध राजकुमार, बृहस्पति तथा शुक्र मन्त्री और शनैश्चर सेवक या दूत हैं, यह ज्यौतिष शास्त्रके श्रेष्ठ विद्वानोंका मत है ॥१५॥ सूर्यादि ग्रहोंके वर्ण इस प्रकार हैं। सूर्यका ताम्र, चन्द्रमाका शुक्ल, मङ्गलका रक्त, बुधका हरित, बृहस्पतिका पीत, शुक्रका चित्र (चितकबरा) तथा शनैश्चरका काला है। अग्नि, जल, कार्तिकेय, हरि, इन्द्र, इन्द्राणी और ब्रह्मा—ये सूर्यादि ग्रहोंके स्वामी हैं ॥१६॥ सूर्य, शुक्र, मङ्गल, राहु, शनि, चन्द्रमा, बुध तथा बृहस्पति—ये क्रमशः पूर्व, अग्निकोण, दक्षिण, नैर्ऋत्यकोण, पश्चिम, वायव्यकोण, उत्तर तथा ईशानकोणके स्वामी हैं। क्षीण चन्द्रमा, सूर्य, मङ्गल और शनि—ये पापग्रह हैं—इनसे युक्त होनेपर बुध भी पापग्रह हो जाता है ॥१७॥ बुध और शनि नपुंसक ग्रह हैं। शुक्र और चन्द्रमा स्त्रीग्रह हैं। शेष सभी (रवि, मङ्गल, गुरु) ग्रह पुरुष हैं। मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र तथा शनि—ये क्रमशः अग्नि, भूमि, आकाश, जल तथा वायु—इन तत्त्वोंके स्वामी हैं ॥१८॥ शुक्र और गुरु ब्राह्मण वर्णके स्वामी हैं। भौम तथा रवि क्षत्रिय वर्णके स्वामी हैं। चन्द्रमा वैश्य वर्णके तथा बुध शूद्र वर्णके अधिपति हैं। शनि अन्त्यजोंके तथा राहु म्लेच्छोंके स्वामी हैं ॥१९॥ चन्द्रमा, सूर्य और बृहस्पति सत्त्वगुणके, बुध और शुक्र रजोगुणके तथा मङ्गल और शनैश्चर तमोगुणके स्वामी हैं। सूर्य देवताओंके, चन्द्रमा जलके, मङ्गल अग्निके, बुध क्रीडा-विहारके, बृहस्पति भूमिके, शुक्र कोषके, शनैश्चर शयनके तथा राहु ऊसरके स्वामी हैं ॥२०॥ स्थूल (मोटे सूतसे बना हुआ), नवीन, अग्निसे जला हुआ, जलसे भीगा हुआ, मध्यम (न नया न पुराना), सुदृढ (मजबूत) तथा फटा हुआ, इस प्रकार क्रमसे सूर्य आदि ग्रहोंका वस्त्र है। ताम्र (ताँबा), मणि, सुवर्ण, काँसा, चाँदी, मोती और लोहा—ये क्रमशः सूर्य आदि ग्रहोंके धातु हैं। शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद् और हेमन्त—ये क्रमसे शनि, शुक्र, मङ्गल, चन्द्र, बुध तथा गुरुकी ऋतु हैं। लग्नमें जिस ग्रहका द्रेष्काण हो, उस ग्रहकी ऋतु समझी जाती है * ॥२१-२२॥

(ग्रहोंकी दृष्टि—) नारद ! सभी ग्रह अपने-अपने आश्रितस्थानसे ३, १० स्थानको एक चरणसे; ५, ९ स्थानको दो चरणसे; ४, ८ स्थानको तीन चरणसे और सप्तम स्थानको चार चरणसे देखते हैं। किंतु ३, १० स्थानको शनि; ५, ९ को

* सूर्यके द्रेष्काणसे ग्रीष्मऋतु समझी जाती है। सूर्य आदि ग्रहोंके जाति, शील आदिको निम्नाङ्कित चक्रमें देखिये—

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
जाति	क्षत्रिय	वैश्य	क्षत्रिय	शूद्र	ब्राह्मण	ब्राह्मण	अन्त्यज
शील	तीक्ष्ण	मृदु	क्रूर	मिश्र	सौम्य	सौम्य	क्रूर
पु०,स्त्री, नपुंसक	पुरुष	स्त्री	पुरुष	नपुंसक	पुरुष	स्त्री	नपुंसक
दिशा	पूर्व	वायव्य	दक्षिण	उत्तर	ऐशान्य	आग्नेय	दक्षिण
गृह	सिंह	कर्क	मेष-वृश्चिक	मिथुन कन्या	धनु-मीन	वृष-तुला	मकर-कुम्भ
गुण	सत्त्व	सत्त्व	तम	रज	सत्त्व	रज	तम
स्थान	देवालय	जलाशय	अग्निशाला	क्रीडास्थान	भूमि	[illegible]	[illegible]
आत्मादि	आत्मा	मन	बल	वाणी	ज्ञान सुख	कन्दर्प	दुःख
देवता	अग्नि	जल	कार्तिकेय	विष्णु	इन्द्र	इन्द्राणी	[illegible]
द्रव्य	ताम्र	मणि	सुवर्ण	काँसा	चाँदी	मोती	लोहा
धातु	अस्थि	शोणित	मज्जा	त्वचा	वसा	वीर्य	[illegible]
अधिकार	राजा	राजा	सेनापति	युवराज	प्रधानमन्त्री	मन्त्री	[illegible]

गुरु तथा ४, ८को मङ्गल पूर्ण दृष्टिसे ही देखते हैं। अन्य ग्रह केवल सप्तम स्थानको ही पूर्ण दृष्टि (चारो चरणो) से देखते हैं ॥२३॥

(ग्रहोंके कालमान–) अयन (६ मास), मुहूर्त (२ घडी), अहोरात्र, ऋतु (२ मास), मास, पक्ष तथा वर्ष—ये क्रमसे सूर्य आदि ग्रहोके कालमान हैं। तथा कटु (मिर्च आदि), लवण, तिक्त (निम्बादि), मिश्र (सब रसोका मेल), मधुर, आम्ल (खट्टा) और कषाय (कसैला) ये क्रमशः सूर्य आदि ग्रहोंके रस हैं ॥ २४ ॥

(ग्रहोंकी स्वाभाविक बहुसम्मत मैत्री–) ग्रहोके जो अपने-अपने मूल त्रिकोण स्थान कहे गये हैं, उस (मूल त्रिकोण) स्थानसे २, १२, ५, ९, ८, ४ इन स्थानोंके तथा अपने उच्च स्थानोंके स्वामी ग्रह मित्र होते हैं और इनसे भिन्न (मूल त्रिकोणसे १, ३, ६, ७, १०, ११) स्थानोंके स्वामी शत्रु होते हैं।

(मतान्तरसे ग्रह-मैत्री–) सूर्यका बृहस्पति, चन्द्रके गुरु-बुध, मङ्गलके शुक्र-बुध, बुधके रविको छोड़कर शेष सब ग्रह, गुरुके मङ्गलको छोड़कर सब ग्रह, शुक्रके चन्द्र-रविको छोडकर अन्य सब ग्रह और शनिके मङ्गल-चन्द्र-रविको छोड़कर शेष सभी ग्रह मित्र होते हैं। यह मत अन्य विद्वानोंद्वारा स्वीकृत है।

(ग्रहोंकी तात्कालिक मैत्री–) उस-उस समयमे जो-जो दो ग्रह २, १२। ३, ११। ४, १०—इन स्थानोंमें हों वे भी परस्पर तात्कालिक मित्र होते हैं। (इनसे भिन्न स्थानमे स्थित ग्रह तात्कालिक शत्रु होते हैं) इस प्रकार स्वाभाविक मैत्रीमे (मूल त्रिकोणसे जिन स्थानोंके स्वामीको मित्र कहा गया है—उनमें) २ स्थानोंके स्वामीको मित्र, एक स्थानके स्वामीको सम और अनुक्त स्थानके स्वामीको शत्रु समझे। तदनन्तर तात्कालिक मित्र और शत्रुका विचार करके दोनोंके अनुसार अधिमित्र, मित्र, सम, शत्रु और अधिशत्रुका निश्चय करना चाहिये * ॥ २५—२७ ॥

(ग्रहोंके बलका कथन–) अपने-अपने उच्च, मूलत्रिकोण, गृह और नवमांशमें ग्रहोंके स्थानसम्बन्धी बल होते हैं। बुध और गुरुको पूर्व (उदय-लग्न) में, रवि और मङ्गलको दक्षिण (दशम भाव) में, शनिको पश्चिम (सप्तम भाव) में और चन्द्र तथा शुक्रको उत्तर (चतुर्थ भाव) में दिक्सम्बन्धी बल प्राप्त होता है। रवि और चन्द्रमा उत्तरायण (मकरसे ६ राशि) में रहनेपर तथा अन्य ग्रह वक्र और समागममें (चन्द्रमाके साथ) होनेपर चेष्टाबलसे युक्त समझे जाते है। तथा जिन दो ग्रहोंमें युति होती है, उनमें उत्तर दिशामें रहनेवाला भी चेष्टाबलसे सम्पन्न समझा जाता है॥ २८-२९ ॥ चन्द्रमा, मङ्गल और शनि ये रात्रिमें, बुध दिन और रात्रि दोनोंमें तथा अन्य ग्रह (रवि, गुरु और शुक्र) दिनमें बली होते हैं।

* यथा—दोनों प्रकारोंसे जो ग्रह मित्र हो वह अधिमित्र, जो मित्र और सम हो वह मित्र, जो मित्र और शत्रु हो वह सम, जो शत्रु और सम हो वह शत्रु तथा जो दोनों प्रकारोंसे शत्रु हो, वह अधिशत्रु होता है। इस तरह ग्रहमैत्री पाँच प्रकारकी मानी गयी है।

ग्रहोंकी नैसर्गिक मैत्रीका बोधक चक्र

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
मित्र	चं. मं. गु.	बु. सू.	चं. सू. गु.	शु. सू.	सू. मं. च.	बु. श.	शु. बु.
सम	बु.	मं. गु. शु. श.	शु श.	मं. गु. श.	श.	मं. गु.	गु.
शत्रु	शु. श.	×	बु.	चं.	बु. शु.	सू. चं.	सू. चं. मं.

जैसे—इस कुण्डलीमें सूर्यसे द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ स्थानमें क्रमश. बुध, शुक्र और मङ्गल हैं। इसलिये ये तीनों सूर्यके

कृष्णपक्षमें पापग्रह और शुक्लपक्षमें शुभग्रह बली होते हैं। इस प्रकार विद्वानोंने ग्रहोंका कालसम्बन्धी बल माना है॥३०॥ शनि, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, चन्द्रमा तथा रवि—ये उत्तरोत्तर बली होते हैं। इस प्रकार यह ग्रहोंका नैसर्गिक (स्वाभाविक) बल है॥ ३०½ ॥

(वियोनि जन्म-ज्ञान–) (प्रश्न, आधान या जन्म-समयमें) यदि पापग्रह निर्बल हों, शुभग्रह बलवान् हों, नपुंसक (बुध, शनि) केन्द्रमें हों तथा लग्नपर शनि या बुधकी दृष्टि हो तो तात्कालिक चन्द्रमा जिस राशिके द्वादशांशमें हो, उस राशिके सदृश वियोनि (मानवेतर प्राणी) का जन्म जानना चाहिये। अर्थात् चन्द्रमा यदि वियोनि राशिके द्वादशांशमें हो तब वियोनि प्राणियोंका जन्म समझना चाहिये। अथवा पापग्रह अपने नवमांशमें और शुभग्रह अन्य ग्रहोंके नवमांशमें हो तथा निर्बल वियोनि राशि लग्नमें हो तो भी विद्वान् [illegible] वियोनि — मानवेतर जीवके ही जन्मका प्रतिपादन करे ॥ ३१-३२½ ॥

(वियोनिके अङ्गोंमें राशिस्थान–) १ [illegible] २ मुख, गला (गर्दन), ३ पैर, [illegible], ४ पीठ, ५ [illegible], ६ दोनों पार्श्व, ७ पेट, ८ गुदा-मार्ग, ९ पिछले पैर, १० लिङ्ग, ११ अण्डकोश, १२ चूतड़ तथा पुच्छ—[illegible] चतुष्पद आदि (पशु-पक्षी) के अङ्गोंमें मेषादि राशियोंके स्थान हैं ॥ ३४ ॥

(वियोनि वर्ण-ज्ञान)–लग्नमें जिस ग्रहका योग हो उस ग्रहके समान और यदि किसीका योग न हो तो लग्नके नवमांश (राशि-राशिपति) के समान वियोनि का वर्ण (श्याम, गौर आदि रंग) कहना चाहिये। [illegible] ग्रहोंके योग या दृष्टि हों तो उनमें जो बली हो या जितने बली हों, उनके सदृश वर्ण कहना चाहिये। लग्नके सप्तम भावमें [illegible] हो तो उस ग्रहके समान (उस ग्रहका जैसा वर्ण [illegible] वैसा) चिह्न उस वियोनिके पीठ आदि अङ्गोंमें जानना चाहिये ॥ ३५ ॥

(पक्षिजन्म-ज्ञान–) ग्रहयुत लग्नमें पक्षि[illegible] हो अथवा बुधका नवमांश हो या चरराशिका नवमांश हो तथा उसपर शनि या चन्द्रमा अथवा दोनोंकी दृष्टि हो तो क्रमशः शनि और चन्द्रमाकी दृष्टिसे स्थलचर और जलचर पक्षीका जन्म समझना चाहिये ॥ ३६ ॥

(वृक्षादि जन्म-ज्ञान–) यदि लग्न, चन्द्र, गुरु और सूर्य—ये चारों निर्बल हों तो वृक्षोंका जन्म जानना चाहिये। स्थल या जल-सम्बन्धी वृक्षोंके भेद लग्नांश[illegible] समझने चाहिये[2]। उस स्थल या जलचर नवांशका स्वामी लग्नसे जितने नवमांश आगे हो उतनी ही [illegible] वृक्षोंकी संख्या जाननी चाहिये ॥ ३७-३८ ॥ यदि [illegible] के स्वामी सूर्य हों तो अन्तःसार ([illegible]) शनि हो तो दुर्भग (किसी उपयोगमें न [illegible] कुकुस, फरहद आदि खोटे वृक्ष), चन्द्रमा हो तो [illegible] वृक्ष, मङ्गल हो तो काँटेवाले, गुरु हो तो [illegible] आदि), बुध हो तो विफल ([illegible]) वृक्ष, शुक्र हो तो पुष्पके वृक्ष ([illegible])।

मित्र हुए तथा अन्य ग्रह शत्रु हुए। इसी प्रकार चन्द्रमासे तृतीय, चतुर्थ, एकादश और दशम स्थानमें शनि, गुरु, शुक्र और मङ्गल हैं इसलिये ये चारों चन्द्रमाके तात्कालिक मित्र हुए, अन्य ग्रह शत्रु हुए। इस तरह सब ग्रहोंकी तात्कालिक मैत्री चक्रमें देखिये—

तात्कालिक मैत्रीका बोधक चक्र

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
मित्र	म.बु.शु.	मं.गु. शु.श.	सू.चं. गु.शु.	सू.च. मं.शु.	च.श.	सू.मं. च.बु.	च.गु.
शत्रु	च.गु.श.	सू.बु.	गु.श.	गु.श	सू.म. बु.शु.	गु.श.	सू.म. बु.शु.

तात्कालिक और नैसर्गिक मैत्री-चक्र लिखकर उसमें पञ्चधा मैत्री इस प्रकार देखी जाती है। यथा—सूर्यका चन्द्रमा नैसर्गिक मित्र है तथा तात्कालिक शत्रु हुआ है, अतः चन्द्रमा सूर्यका सम हुआ। मङ्गल नैसर्गिक मित्र और तात्कालिक मित्र है, अतः अधिमित्र हुआ। बुध नैसर्गिक सम और तात्कालिक मित्र है, अतः मित्र ही रहा। गुरु नैसर्गिक मित्र और तात्कालिक शत्रु है, अतः सम हुआ। शुक्र नैसर्गिक शत्रु और तात्कालिक मित्र है, अतः सम हुआ। शनि नैसर्गिक शत्रु और तात्कालिक भी शत्रु है, अतः शनि सूर्यका अधिशत्रु हुआ। इसी प्रकार इन दोनों चक्रोंसे सब ग्रहोंकी पञ्चधा मैत्री देखकर ही उन्हें परस्पर मित्र, शत्रु या सम समझना चाहिये।

---

१. पक्षिद्रेष्काणका [illegible]

२. [illegible] जल-राशिका अंश हो तो [illegible] हैं।

जन्म समझना चाहिये। चन्द्रमाके अंशपति होनेसे समस्त चिकने वृक्ष (देवदारु आदि) तथा मङ्गलके अंशपति होनेपर कड़ुए वृक्ष (निम्बादि) का भी जन्म समझना चाहिये। यदि शुभग्रह अशुभ राशिमें हो तो खराब भूमिसे सुन्दर वृक्ष और पापग्रह शुभ राशिमें हो तो सुन्दर भूमिमें खराब वृक्षका जन्म देता है। इससे अर्थतः यह बात निकली कि यदि कोई शुभ ग्रह अंशपति हो और वह शुभराशिमें स्थित हो तो सुन्दर भूमिमें सुन्दर वृक्षका जन्म होता है और यदि पापग्रह अंशपति होकर पापराशिमें स्थित हो तो खराब भूमिमे कुत्सित वृक्षका जन्म होता है। इसके सिवा, वह अंशपति अपने नवमांशसे आगे जितनी संख्यापर अन्य नवमांशमें हो, उतनी ही संख्यामें और उतने ही प्रकारके वृक्षोंका जन्म समझना चाहिये ॥३९-४०½॥

(आधान-ज्ञान–) प्रतिमास मङ्गल और चन्द्रमाके हेतुसे स्त्रीको ऋतुधर्म हुआ करता है। जिस समय चन्द्रमा स्त्रीकी राशिसे नेष्ट (अनुपचय) स्थानमें हो और शुभ पुरुषग्रह (बृहस्पति) से देखा जाता हो तथा पुरुषकी राशिसे अन्यथा (इष्ट= उपचय* स्थानमें) हो और बृहस्पतिसे दृष्ट हो तो उस स्त्रीको पुरुषका संयोग प्राप्त होता है।† आधान-लग्नसे सप्तम भावपर पापग्रहका योग या दृष्टि हो तो रोषपूर्वक और शुभग्रहका योग एवं दृष्टि हो तो प्रसन्नतापूर्वक पति-पत्नीका संयोग होता है ॥ ४१-४२ ॥ आधानकालमें शुक्र, रवि, चन्द्रमा और मङ्गल अपने-अपने नवमांशमें हों, गुरु लग्नसे केन्द्र या त्रिकोणमें हो तो वीर्यवान् पुरुषको निश्चय ही संतान होती है ॥४३ ॥ यदि सूर्यसे सप्तम भावमें मङ्गल और शनि हों तो वे पुरुषके लिये तथा चन्द्रमासे सप्तममें हों तो स्त्रीके लिये रोगप्रद होते हैं। सूर्यसे १२, २ में शनि और मङ्गल हों तो पुरुषके लिये और चन्द्रमासे १२, २ में ये दोनों हों तो स्त्रीके लिये घातक होते हैं। अथवा इन (शनि-मङ्गल) में एकसे युत और अन्यसे दृष्ट रवि हो तो वह पुरुषके लिये और चन्द्रमा यदि एकसे युत तथा अन्यसे दृष्ट हो तो वह स्त्रीके लिये घातक होता है ॥ ४४ ॥

दिनमें गर्भाधान हो तो शुक्र मातृग्रह और सूर्य पितृग्रह होते हैं। रात्रिमें गर्भाधान हो तो चन्द्रमा मातृग्रह और शनि पितृग्रह होते हैं। पितृग्रह यदि विषम राशिमें हो तो पिताके लिये और मातृग्रह सम राशिमें हो तो माताके लिये शुभकारक होता है। यदि पापग्रह बारहवें भावमे स्थित होकर पापग्रहसे देखा जाता और शुभग्रहसे न देखा जाता हो, अथवा लग्नमें शनि हो तथा उसपर क्षीण चन्द्रमा और मङ्गलकी दृष्टि हो तो गर्भाधान होनेसे स्त्रीका मरण होता है। लग्न और चन्द्रमा दोनों या इनमेंसे एक भी दो पापग्रहोंके बीचमें हो तो गर्भाधान होनेपर स्त्री गर्भके सहित (साथ ही) या पृथक् मृत्युको प्राप्त होती है। लग्न अथवा चन्द्रमासे चतुर्थ स्थानमें पापग्रह हो, मङ्गल अष्टम भावमें हो अथवा लग्नसे ४, १२ वें स्थानमें मङ्गल और शनि हों तथा चन्द्रमा क्षीण हो तो भी गर्भवती स्त्रीका मरण होता है। यदि लग्नमे मङ्गल और सप्तममें रवि हों तो गर्भवती स्त्रीका शस्त्रद्वारा मरण होता है। गर्भाधानकालमे जिस मासका स्वामी अस्त हो, उस मासमें गर्भका स्राव होता है; इसलिये इस प्रकारके लग्नको गर्भाधानमें त्याग देना चाहिये ॥ ४५–४९ ॥

आधानकालिक लग्न या चन्द्रमाके साथ अथवा इन दोनोंसे ५, ९, ७, ४, १० वें स्थानमें सब शुभग्रह हों और ३, ६, ११ भावमें सब पापग्रह हों तथा लग्न और चन्द्रमापर सूर्यकी दृष्टि हो तो गर्भ सुखी रहता है ॥५० ॥ रवि, गुरु, चन्द्रमा और लग्न—ये विषम राशि एव विषम नवमांशमें हों अथवा रवि और गुरु विषम राशिमे स्थित हो तो पुत्रका जन्म समझना चाहिये। उक्त सभी ग्रह यदि सम-राशि और सम-नवमांशमें हों अथवा मङ्गल, चन्द्रमा और शुक्र—ये सम-राशिमें हों तो विज्ञजनोंको कन्याका जन्म समझना चाहिये। अथवा वे सब द्विस्वभाव राशिमे हों और बुधसे देखे जाते हों तो अपने-अपने पक्षके यमल (जुड़वीं संतान) के जन्मकारक होते हैं। अर्थात् पुरुषग्रह दो पुत्रोंके और स्त्रीग्रह दो कन्याओंके जन्मदायक होते हैं। (यदि दोनो प्रकारके ग्रह हो तो एक पुत्र और एक कन्याका जन्म समझना चाहिये।) लग्नसे विषम (३, ५ आदि) स्थानोमे स्थित शनि भी पुत्रजन्म-कारक होता है ॥ ५१–५३ ॥

क्रमशः विषम एवं सम-राशिमें स्थित रवि और चन्द्रमा

---

* जन्मराशिसे ३। ६। १०। ११ ये उपचय तथा अन्य स्थान अनुपचय कहलाते हैं।

† आशय यह है कि चन्द्रमा जलमय और मङ्गल रक्त एवं पित्त प्रकृतिका है। इसलिये ये दोनों रजोधर्मके हेतु होते हैं। जिस समय स्त्रीके अनुपचय-स्थानमें चन्द्रमा हो, उस समय यदि उसपर मङ्गलकी दृष्टि होती है तो वह रज गर्भधारणमें समर्थ होता है। यदि उसपर गुरुकी भी दृष्टि हो जाय तो उस स्त्रीको पुरुषके सयोगसे निश्चय ही सत्पुत्रकी प्राप्ति होती है।

अथवा बुध और शनि एक-दूसरेको देखते हों, अथवा सम-राशिस्थ सूर्यको विषम-राशिस्थ मङ्गल देखता हो, या विषम-सम राशिस्थ लग्न एवं चन्द्रमापर मङ्गलकी दृष्टि हो, अथवा चन्द्रमा सम राशि और लग्न विषम राशिमें स्थित हो तथा उनपर मङ्गलकी दृष्टि हो, अथवा लग्न, चन्द्रमा और शुक्र—ये तीनों पुरुषराशिके नवमांशमें हों तो इन सब योगोंमें नपुंसकका जन्म होता है ॥ ५४½ ॥

शुक्र और चन्द्रमा सम राशिमें हों तथा बुध, मङ्गल, लग्न और बृहस्पति विषम राशिमें स्थित होकर पुरुषग्रहसे देखे जाते हों अथवा लग्न एवं चन्द्रमा समराशिमें हों या पूर्वोक्त बुध, मङ्गल, लग्न एवं गुरु समराशिमें हों तो ये यमल (जुड़वी) संतानको जन्म देनेवाले होते हैं ॥५५½॥

यदि बुध अपने (मिथुन या कन्याके) नवमांशमें स्थित होकर द्विस्वभाव राशिस्थ ग्रह और लग्नको देखता हो तो गर्भमें तीन संतानोंकी स्थिति समझनी चाहिये। उनमें दो तो बुध–नवमांशके सदृश होंगे और एक लग्नांश-के सदृश। यदि बुध और लग्न दोनों तुल्य नवमांशमें हों तो तीनों संतानोंको एक-सा ही समझना चाहिये[1] ॥५६½॥

यदि धनु-राशिका अन्तिमांश लग्न हो, उसी अंशमें बली ग्रह स्थित हों और बलवान् बुध या शनिसे देखे जाते हों, तो गर्भमें बहुत (तीनसे अधिक) संतानोंकी स्थिति समझनी चाहिये ॥ ५७½ ॥

(गर्भमासोंके अधिपति–) शुक्र, मङ्गल, बृहस्पति, सूर्य, चन्द्रमा, शनि, बुध, आधान-लग्नेश, सूर्य और चन्द्रमा*—ये गर्भाधानकालसे लेकर प्रसवपर्यन्त १० मासोंके क्रमशः स्वामी हैं। आधानसमयमें जो ग्रह बलवान् या निर्बल होता है, उसके मासमें उसी प्रकार शुभ या अशुभ फल होता है ॥ ५८½ ॥ बुध त्रिकोण (५, ९) में हो और अन्य ग्रह निर्बल हों तो गर्भस्थ शिशुके दो मुख, चार पैर और चार हाथ होते हैं। चन्द्रमा वृषमें हो और अन्य सब पापग्रह राशि-संधिमें हों तो बालक गूँगा होता है। यदि उक्त ग्रहोंपर शुभ ग्रहोंकी दृष्टि हो तो वह बालक अधिक दिनोंमें बोलता है ॥ ५९–६० ॥ मङ्गल और शनि यदि [illegible] राशि नवमांशमें हों तो शिशु गर्भमें ही दाँत [illegible] है। चन्द्रमा कर्कराशिमें होकर लग्नमें हो तथा उसपर शनि और मङ्गलकी दृष्टि हो तो गर्भस्थ शिशु कुबड़ा होता है। [illegible] राशि लग्नमें हो और उसपर शनि, चन्द्रमा तथा मङ्गलकी दृष्टि हो तो गर्भका बालक पङ्गु होता है। [illegible] और चन्द्रमा राशिसंधिमें हों और उनपर शुभ ग्रहकी दृष्टि न हो तो गर्भस्थ शिशु जड (मूर्ख) होता है। [illegible] अंश लग्नमें हो और उसपर शनि, चन्द्रमा तथा [illegible] दृष्टि हो तो गर्भका बच्चा वामन (बौना) होता है। [illegible] नवम लग्नके द्रेष्काणमें पापग्रह हों तो [illegible] पैर, मस्तक और हाथसे रहित होता है ॥ ६१–६२ ॥

गर्भाधानके समय यदि सिंह लग्नमें सूर्य और चन्द्रमा हों तथा उनपर शनि और मङ्गलकी दृष्टि हो तो शिशु नेत्रहीन होता है। यदि शुभ और पापग्रह दोनोंकी दृष्टि हो तो आँखमें फूली होती है। यदि लग्नसे बारहवें भावमें चन्द्रमा हो तो बालकका वाम नेत्र और सूर्य हो तो दक्षिण [illegible] होता है। ऊपर जो अशुभ योग कहे गये हैं, उनपर शुभग्रहकी दृष्टि हो तो उन योगोंके फल पूर्ण नहीं होते हैं ([illegible] परिस्थितिमें देवाराधन एवं चिकित्सा आदि [illegible] फलका निवारण हो जाता है) ॥ ६३½ ॥

यदि आधानलग्नमें शनिका नवमांश हो और शनि सप्तम भावमें हो तो तीन वर्षपर प्रसव होता है। यदि [illegible] स्थितिमें चन्द्रमा हो (अर्थात् लग्नमें चन्द्रमाका नवमांश हो और चन्द्रमा सप्तम भावमें स्थित हो) तो [illegible] प्रसव होता है। इन योगोंका विचार जन्मकालमें भी करना चाहिये ॥ ६४–६५ ॥ आधानकालमें [illegible] चन्द्रमा हो, उससे उतनी ही संख्या आगे [illegible] जानेपर बालकका जन्म होता है। [illegible] दोसे गुणा करके उसमें ५ से भाग [illegible] मानकी सूचक होती है० ॥ ६६–६७ ॥

---

1. अर्थात् या तो तीनों पुत्र हैं या तीनों कन्याएँ ही हैं, ऐसा समझे। अन्यथा बुध पुरुष नवमांशमें हो तो दो पुत्र और एक कन्या, स्त्री नवमांशमें हो तो दो कन्या और एक पुत्र समझे।

* अन्य जातकग्रन्थोंमें ९, १० मासके स्वामी क्रमसे चन्द्र और सूर्य कहे गये हैं। यहाँ उससे विपरीत है।

० इस विषयको स्पष्ट [illegible] जाता है। [illegible] इसमें [illegible] ([illegible]) [illegible] तत्कालीन चन्द्रमा राशि [illegible] है। यहाँ चन्द्रमा [illegible] चौथा द्वादशांश [illegible]

(जन्मस्थान—) (शिशुकी जन्म-कुण्डलीमें) यदि चन्द्रमा जन्मलग्नको नहीं देखता हो तो पिताके परोक्षमें बालकका जन्म समझना चाहिये । इसी योगमें यदि सूर्य चर राशिमे मध्य (दशम) भावसे आगे (११,१२) में अथवा पीछे (९,८) में हो तो पिताके विदेश रहनेपर पुत्रका जन्म समझना चाहिये । (इससे यह सिद्ध होता है कि यदि सूर्य स्थिर राशिमें हो तो स्वदेशमें रहते हुए पिताके परोक्षमें और द्विस्वभाव राशिमें हो तो स्वदेश और परदेशके मध्य स्थानमें पिताके रहनेपर बालकका जन्म होता है ।)

लग्नमें शनि और सप्तम भावमें मङ्गल हो अथवा बुध और शुक्रके बीचमें चन्द्रमा हो तो भी पिताके परोक्षमें शिशुका जन्म समझना चाहिये । पापग्रहकी राशिवाले लग्नमें चन्द्रमा हो अथवा वह वृश्चिकके द्रेष्काणमें हो तथा शुभग्रह २, ११ भावमें स्थित हों तो सर्पका या सर्पसे वेष्टित मनुष्यका जन्म समझना चाहिये ॥ ६८-७० ॥

मुनिश्रेष्ठ ! यदि सूर्य चतुष्पद राशिमें हो और शेष ग्रह बलयुक्त हों तो एक ही कोशमें लिपटे हुए दो शिशुओंका जन्म समझना चाहिये । शनि या मङ्गलसे युक्त सिंह, वृष या मेष लग्न हो तो लग्नके नवमांशकी राशि जिस अङ्गकी हो, उस अङ्गमे नालसे लिपटे हुए शिशुका जन्म समझना चाहिये ।

यदि लग्न और चन्द्रमापर गुरुकी दृष्टि न हो अथवा चन्द्रमा सूर्यसे संयुक्त हो तथा उसे गुरु नहीं देखता हो अथवा चन्द्रमा पापग्रह और सूर्यसे संयुक्त हो तो शिशुको पर-पुरुषके वीर्यसे उत्पन्न समझना चाहिये । यदि दो पापग्रह पापराशिमें स्थित होकर सूर्यसे सप्तम भावमें हों तो सूर्यके चर आदि राशिके अनुसार विदेश, स्वदेश या मार्गमे बालकका जन्म समझना चाहिये । पूर्ण चन्द्रमा अपनी राशिमें हो, बुध लग्नमें हो, शुभग्रह चतुर्थ भावमें हो अथवा जलचर राशि लग्न हो और उससे सप्तम स्थानमें चन्द्रमा हो तो नौकापर शिशुका जन्म समझना चाहिये । नारद ! यदि जलचर राशि लग्नको जलचर राशिस्थ पूर्ण चन्द्रमा देखता हो अथवा वह १०, ४ या लग्नमें हो तो जलमें प्रसव होता है, इसमें संशय नहीं । यदि लग्न और चन्द्रमासे शनि बारहवें भावमें हों, उसपर पापग्रहकी दृष्टि हो तो बालकका कारागारमें जन्म होता है । तथा कर्क या वृश्चिक लग्नमें शनि हो और उसपर चन्द्रमाकी दृष्टि हो तो गड्ढेमें बालकका जन्म समझना चाहिये । जलचर राशिस्थ शनि लग्नमें हो तथा उसपर बुध, सूर्य या चन्द्रमाकी दृष्टि हो तो क्रमशः क्रीड़ास्थान, देवालय और ऊसर भूमिमें शिशुका प्रसव समझना चाहिये । यदि मङ्गल बलवान् होकर लग्नगत शनिको देखता हो तो श्मशान-भूमिमें, चन्द्रमा और शुक्र देखते हों तो रम्य स्थानमें, गुरु देखता हो तो अग्निहोत्रगृहमें, सूर्य देखता हो तो राजगृह,

---

वृषमें दैनिक चन्द्रमाके आनेपर दसवें मास फाल्गुनमें बालकका जन्म होगा, ऐसा फल समझना चाहिये । किंतु कृत्तिकाके तीन चरण, रोहिणीके चारों चरण तथा मृगशिराके दो चरण, इस प्रकार नौ चरणोंकी वृष राशि होती है । उस दशामें किस नक्षत्रके किस चरणमें चन्द्रमाके आनेपर जन्म होगा, यह प्रश्न उठ सकता है । अब इसका समाधान किया जाता है—पूर्वोक्त चन्द्रमाकी राश्यादिमें भुक्त द्वादशांशमान (९ । ३० । १०)—(७ । ३०)= (२ । ० । १०)=(१२० । १०)=१२० कला (स्वल्पान्तरसे) मान लिया गया । "अर्धाल्पे त्याज्यमर्धाधिके रूपं ग्राह्यम्" इस नियमसे (१०) को छोड़ दिया । यहाँपर एक द्वादशांश-खण्डपर एक राशि प्रमाण होता है—यह स्पष्ट है । इसी आधारपर (१२० कला) सम्बन्धी चरणमान अनुपातसे ला रहे हैं, जब कि एक द्वादशांश खण्डकला-प्रमाण (२ । ३०)=(१५० कला) में एक राशिका कलामान १८०० पाते हैं तो १२० में कितना होगा—इस तरह $\frac{१८००\times१२०}{१५०}$=१२×१२०=१४४० । एक राशिमें नौ चरण होते हैं और एक चरणका कलामान २०० कला होता है, अतः चरण जाननेके लिये $\frac{१४४०}{२००}$=७+$\frac{४०}{२००}$(७$\frac{१}{५}$) । यहाँ लब्धि और शेषपर दृष्टिपात करनेसे यह ज्ञात होता है कि वृषराशिके आठवें चरणमें अर्थात् मृगशिरा नक्षत्रके प्रथम चरणमें चन्द्रमाका प्रवेश होनेपर बालकका जन्म होगा ।

जन्मका इष्टकाल जाननेकी विधि—गर्भाधानकालिक लग्न ९ । १० । २५ । ० है । इसमें मकरराशिका चौथा नवमांश है, जो उससे चतुर्थ मेषराशिका है । मेषराशि रातमें बली होती है, अत. रातमें जन्म होगा । इसलिये रात्रिगत इष्टकालका ज्ञान करना चाहिये । यहाँपर राशियोंकी दिन-रात्रि-संज्ञाके अनुसार एक नवमांशका प्रमाण दिन या रात्रिका पूरा प्रमाण होता है । अत· त्रैराशिक क्रिया की गयी—एक नवमांश प्रमाण (३ अंश २० कला=२०० कला) में गर्भाधान रात्रिमान यदि २८ । ० दण्ड मिलता है तो लग्नके चतुर्थ नवमांशके भुक्त कलामान २५में कितना होगा ? इस तरह $\frac{२८\times२५}{२००}$=३ । ३०घट्यादि मान हुआ । अर्थात् ३ दण्ड ३० पल रात बीतनेपर जन्म होगा, ऐसा निश्चय हुआ । इसी तरह अन्य उदाहरणोंको भी समझना चाहिये ।

जिस अङ्गकी राशिमें पापग्रह हो, उस अङ्गमें व्रण और यदि उसपर शुभ ग्रहकी दृष्टि हो तो उस अङ्गमें चिह्न (तिल मसक आदि) समझना चाहिये । पापग्रह अपनी राशि या नवमांशमें, अथवा स्थिर राशिमें हो तो जन्मके साथ ही व्रण होता है अन्यथा उस ग्रहकी दशा-अन्तर्दशामे आगे चलकर व्रण होता है । शनिके स्थानमें वात या पत्थरके आघातसे, मङ्गलके स्थानमें विष, शस्त्र और अग्निसे, बुधके स्थानमे पृथ्वी (मिट्टी) के आघातसे, सूर्याश्रित अङ्गमे काष्ठ और पशुसे, क्षीण चन्द्राश्रित अङ्गमें सींगवाले पशु और जलचरके आघातसे व्रण होता है । जिस अङ्गकी राशिमे तीन पापग्रह हों, उस अङ्गमें निश्चितरूपसे व्रण होता ही है । षष्ठ भावमें पापग्रह हो तो उस राशिके आश्रित अङ्गमें व्रण होता है । यदि उसपर शुभग्रहकी दृष्टि हो तो उस अङ्गमें तिल या मसा होता है । यदि शुभग्रहका योग हो तो उस अङ्गमें चिह्न (दाग) मात्र होता है ॥९४–९६½॥

(ग्रहोंके स्वरूप और गुणका वर्णन—) सूर्यकी आकृति चतुरस्र* है, शरीरकी कान्ति और नेत्र पिङ्गल हैं । पित्तप्रधान प्रकृति है और उनके मस्तकपर थोड़े-से केश हैं । चन्द्रमाका आकार गोल है, उनकी प्रकृतिमें वात और कफकी प्रधानता है, वे पण्डित और मृदुभाषी हैं तथा उनके नेत्र बड़े सुन्दर है । मङ्गलकी दृष्टि क्रूर है, युवावस्था है, पित्त-प्रधान प्रकृति है और वह चञ्चल स्वभावका है । बुधकी प्रकृतिमें कफ, पित्त और वातकी प्रधानता है, वह हास्यप्रिय और अनेकार्थक शब्द बोलनेवाला है । बृहस्पतिकी अङ्ग-कान्ति, केश और नेत्र पिङ्गल हैं, उनका शरीर बड़ा है, प्रकृतिमें कफकी प्रधानता है और वे बड़े बुद्धिमान् हैं । शुक्रके अङ्ग और नेत्र सुन्दर है, मस्तकपर काले घुँघराले केश हैं और वे सर्वदा सुखी रहनेवाले हैं । शनिका शरीर लंबा और नेत्र कपिश वर्णके हैं, उनकी वातप्रधान प्रकृति है, उनके केश कठोर हैं और वे बडे आलसी हैं ॥९७–१००॥

(ग्रहोंके धातु—) स्नायु (शिरा), हड्डी, शोणित, त्वचा, वीर्य, वसा और मज्जा ये क्रमशः शनि, सूर्य, चन्द्र, बुध, शुक्र, गुरु और मङ्गलके धातु हैं ॥१०१॥

(अरिष्टकथन—) चन्द्रमा, लग्न और पापग्रह—ये राशिके अन्तिमांशमें हों अथवा चन्द्रमा और तीनों पापग्रह ये लग्नादि चारों केन्द्रोंमें हों तथा कर्क लग्न हो तो जातककी मृत्यु होती है । दो पापग्रह लग्न और सप्तम भावमें हो तथा चन्द्रमा एक पापग्रहसे युक्त हो और उसपर शुभग्रहकी दृष्टि न हो तो शिशुका शीघ्र मरण होता है ॥ १०२-१०३ ॥ क्षीण चन्द्रमा १२ वें भावमे हो, पापग्रह लग्न और अष्टम भावमें हो तथा शुभग्रह केन्द्रमें न हों तो उत्पन्न शिशुकी मृत्यु होती है । अथवा पापयुक्त चन्द्रमा सप्तम, द्वादश या लग्नमें स्थित हो तथा उसपर केन्द्रसे भिन्नस्थानमे स्थित शुभग्रहकी दृष्टि न हो तो जातककी मृत्यु होती है । यदि चन्द्रमा ६, ८ स्थानमें रहकर पापग्रहसे देखा जाता हो तो शिशुका शीघ्र मरण होता है । शुभग्रहसे दृष्ट हो तो ८ वर्षमे और शुभ तथा पापग्रह दोनोंसे दृष्ट हो तो ४ वर्षमें जातककी मृत्यु हो जाती है । क्षीण चन्द्रमा लग्नमें तथा पापग्रह ८, १, ४, ७, १० में स्थित हों तो उत्पन्न बालकका मरण होता है । अथवा दो पापग्रहोंके बीचमें होकर चन्द्रमा ४, ७, ८ स्थानमें स्थित हो या लग्न ही दो पापग्रहोंके बीचमें हो तो जातककी मृत्यु होती है । पापग्रह ७, ८ में हों और उनपर शुभग्रहकी दृष्टि न हो तो माता-सहित शिशुकी मृत्यु होती है । राशिके अन्तिमांशमें चन्द्रमा पापग्रहसे अदृष्ट हो तथा पापग्रह त्रिकोण (५,९) में हो अथवा लग्नमे चन्द्रमा और सप्तममें पापग्रह हो तो शिशुका मरण होता है । राहुग्रस्त चन्द्रमा पापग्रहसे युक्त हो और मङ्गल अष्टम स्थानमें स्थित हो तो माता और शिशु दोनोकी मृत्यु होती है । इसी प्रकार राहुग्रस्त सूर्य यदि पापग्रहसे युक्त हो तथा बली पापग्रह अष्टम भावमे स्थित हो तो माता और शिशुका शस्त्रसे मरण होता है ॥ १०४—१०९ ॥

(आयुर्दायकथन—) चन्द्रमा और बृहस्पतिसे युक्त कर्क लग्न हो, बुध और शुक्र केन्द्रमे हों और शेष ग्रह (रवि, मङ्गल एवं शनि) ३, ६, ११ स्थानमें हों तो ऐसे योगमें उत्पन्न जातककी आयु बहुत अधिक होती है । मीन लग्नमें मीनका नवमांश हो, बुध वृषमें २५ कलापर हो तथा शेष सब ग्रह अपने-अपने उच्च स्थानमें हों तो जातककी आयु परम (१२० वर्ष ५ दिनकी) होती है । लग्नेश बली होकर केन्द्रमें हो, उसपर शुभग्रहकी दृष्टि हो तो बालक धनसहित दीर्घायु होता है । चन्द्रमा अपने उच्चमें हो, शुभग्रह अपनी राशिमें हों, बली लग्नेश लग्नमें हो तो जातककी ६० वर्षकी आयु होती है । केन्द्रमें शुभग्रह हों और अष्टम भाव शुद्ध (ग्रहरहित) हो तो ७० वर्षकी आयु होती है । शुभग्रह अपने-अपने मूल त्रिकोणमें हों, गुरु अपने उच्चमें हो तथा लग्नेश बलवान् हों तो ८० वर्षकी आयु होती है । सबल शुभग्रह केन्द्रमें हों और अष्टम भावमें कोई ग्रह न हो तो ३० वर्षकी आयु होती है । अष्टमेश नवम भावमें हों, बृहस्पति अष्टम भावमें रहकर पापग्रहसे दृष्ट हो तो २४ वर्षकी आयु होती है । लग्नेश और अष्टमेश दोनो अष्टम भावमें स्थित हों तो २७ वर्षकी आयु होती है । लग्नमें पापग्रहसहित बृहस्पति हो, उसपर चन्द्रमाकी दृष्टि हो तथा अष्टममें कोई ग्रह न हो तो २२ वर्षकी आयु समझनी चाहिये ।

* जिसकी लंबाई-चौडाई बराबर हो, वह चौकोर वस्तु 'चतुरस्र' कहलाती है ।

शनि नवम भाव या लग्नमें हो, शुक्र केन्द्रमें हो और चन्द्रमा १२ या ९ में हो तो १०० वर्षकी आयु होती है। बृहस्पति कर्कमें होकर केन्द्रमें हो अथवा बृहस्पति और शुक्र दोनों केन्द्रमें हों तो १०० वर्षकी आयु समझनी चाहिये। अष्टमेश लग्नमें हो और अष्टम भावमें शुभग्रह न हो तो ४० वर्षकी आयु होती है। लग्नेश अष्टम भावमें और अष्टमेश लग्नमें हों तो ५ वर्षकी आयु होती है। शुक्र और बृहस्पति एक राशिमें हों अथवा बुध और चन्द्रमा लग्न या अष्टम भावमें हों तो ५० वर्षकी आयु होती है ॥ ११०—११८ ॥

मुने! मैंने इस प्रकार ग्रहयोग-सम्बन्धसे आयुर्दायका प्रमाण कहा है। अब गणितद्वारा स्पष्टायुर्दायका वर्णन करता हूँ। (सूर्य, चन्द्रमा और लग्नमेंसे) यदि सूर्य अधिक बली हो तो पिण्डायु, चन्द्रमा बली हो तो निसर्गायु और लग्न बली हो तो अंशायुका साधन करना चाहिये। उसका साधन-प्रकार मैं बतलाता हूँ ॥ ११९½ ॥

(पिण्डायु और निसर्गायुका साधन—) सूर्य आदि ग्रह अपने-अपने उच्चमें हों तो क्रमशः १९, २५, १५, १२, १५, २१ और २० वर्ष पिण्डायुके प्रमाण होते हैं तथा २०, १, २, ९, १८, २०, ५० ये क्रमशः सूर्यादि ग्रहोंके निसर्गायुर्दायके प्रमाण होते हैं ॥ १२०-१२१ ॥

पिण्डायु और निसर्गायुमें आयु-साधन करना हो तो राश्यादि ग्रहमें अपने उच्चको घटाना चाहिये। यदि वह ६ राशिसे अल्प हो तो उसको १२ राशिमें घटाकर ग्रहण करें। उसके अंश बनानेसे वह आयुर्दाय-साधनमें उपयोगी होता है। जो ग्रह शत्रुके गृहमें हो उनका [illegible] वह ग्रह वक्रगति न हो तभी [illegible] वक्रगति हो तो शत्रुगृहके [illegible] चाहिये) तथा शनि और शुक्रको [illegible] तो उनके अंशोंमें आधा [illegible] शुक्र अस्त हो तो भी उनके [illegible] चाहिये।) यदि किसी ग्रहके [illegible] शत्रुगृहमें हो और अस्त भी हो) तो [illegible] मान करें (अर्थात् [illegible] यदि लग्नमें पापग्रह हो तो [illegible] अंशादिसे आयुर्दाय [illegible] का भाग देकर [illegible] प्रकार पापग्रहके [illegible] का योग या दृष्टि हो [illegible] इस तरह आगे बताये [illegible] योग्य स्पष्ट अंश उपलब्ध होते हैं ॥ [illegible] ॥

(पिण्डायु-साधन—) [illegible] पूर्वोक्त गुणक (उच्चस्थ वर्षसंख्या १९ [illegible] गुणनफलमें ३६० से भाग [illegible] शेषको १२ से गुणा करके ३६० से भाग [illegible] संख्या होती है। पुनः शेषको ३० से [illegible] द्वारा भाग देनेपर [illegible] दिन-संख्या [illegible] से गुणा कर ३६० से भाग देनेपर [illegible] होगी* ॥ १२६-१२७ ॥

१. 'पिण्डायु' वह है, जिसमें उच्च और नीच स्थानमें आयुके पिण्ड (मान-संख्या) [illegible] इष्टस्थानस्थित ग्रहसे आयुका साधन किया जाता है।

२. 'निसर्गायु' वह है, जो ग्रहोंके निसर्ग (स्वभाव) से ही सिद्ध है, [illegible]

* यदि लग्न-राश्यादि ३ । १५ । २० । ३० और स्पष्ट सूर्य १० । १५ । १० । [illegible]

ग्रहोंका उच्चादिबोधक चक्र

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
उच्चराशि	०	१	९	५	३	११	६
„ अंश	१०	३	२८	१५	५	२७	२०
नीचराशि	६	७	३	११	९	५	०
„ अंश	१०	३	२८	१५	५	२७	२०
आयु पिण्ड	१९	२५	१५	१२	१५	२१	२०

राश्यादिमें [illegible] १० । ५ । १० । [illegible] इसलिये [illegible] सूर्य [illegible] [illegible] गुणा करनेपर [illegible] का भाग देनेपर [illegible] [illegible] ३६ [illegible] [illegible]

३६० का भाग देनेपर लब्ध दिन ८ हुए। शेष ९६ को ६० से गुणा [illegible]

(लग्नायु-साधन—) लग्नकी राशियोंको छोड़कर अंशादि-को कला बनाकर २०० से भाग देनेपर लब्धि वर्ष-संख्या होगी। शेषको १२ से गुणाकर २०० से भाग देनेपर लब्धि मास-संख्या होगी। पुनः पूर्ववत् ३० आदिसे गुणा करके हरसे भाग देनेपर लब्धि दिनादिकी सूचक होगी* ॥ १२८½ ॥

(अंशायुर्दाय-साधन—) लग्नसहित ग्रहोके पृथक्-पृथक् अंश बनाकर ४० से भाग देकर जो शेष बचे उसे आयुर्दाय-साधनोपयोगी अंशादि समझे; उसमें जो विशेष संस्कार कर्तव्य है, उसका वर्णन करता हूँ। लग्नमें ग्रहको घटावे। यदि शेष ६ राशिसे अल्प हो तो उसमें निम्नाङ्कित संस्कार विशेष करना चाहिये, अन्यथा नहीं। यदि घटाया हुआ ग्रह ६ राशिसे अल्प और १ राशिसे अधिक हो तो उन अंशोंसे ३० में भाग देकर लब्धिको १ में घटावे और शेषको गुणक समझे। यदि ग्रह घटाया हुआ लग्न १ राशिसे अल्प हो तो उन्हीं अंशोंमें ३० का भाग देकर लब्धिको १ में घटानेसे शेप गुणक होता है। इस प्रकार शुभग्रहके गुणकको आधा करके गुणक समझे और पाप-ग्रहके समस्त गुणकोंको ग्रहण करे। फिर इस प्रकारके गुणकोंसे उपर्युक्त आयुर्दायके अंशको गुणा करे तो संस्कृत अंश होता है। यह संस्कार कहा गया है। इस संस्कृत आयुर्दायके अंशको कलात्मक बनाकर २०० से भाग देकर लब्धिको वर्ष समझे। फिर शेपको १२ से गुणा करके गुणनफलमे २०० का भाग देनेसे लब्धिको मास समझे। तत्पश्चात् शेषमें ३० आदिसे गुणा करके २०० का भाग देनेसे लब्धिको दिन एवं घटी आदि समझे†।

लग्नके आयुर्दाय अंशादिको ३ से गुणा करके गुणनफलमें १० का भाग देनेसे जो लब्धि हो, वह वर्ष है। फिर शेषको १२ आदिसे गुणा करके १० से भाग देनेपर जो लब्धि हो उसे मासादि समझे। (लग्नकी आयुमें इतनी विशेषता है कि) यदि लग्न सबल हो तो लग्नकी जितनी भुक्त राशि-संख्या हो उतने वर्ष और अधिक जोड़े। तथा अंशादिको २ से गुणा करके ५ का भाग देकर लब्धिको मास समझकर उसे भी जोड़े तथा शेषको ३० आदिसे गुणा करके हरसे भाग देकर जो लब्धि आवे, उसके तुल्य दिनादि रूप फल

---

१६ हुई, शेप ० रहा। इस प्रकार सूर्यसे आयुमान वर्षादि १६। १। ८। १६। ० हुआ। इसी तरह सब ग्रहोंका आयु-साधन कर लेना चाहिये।

* लग्नायु-साधन—लग्नकी राशिको छोड़कर अंशादि १५। २०। ३० को कलात्मक बनानेसे ९२०। ३० हुआ। इसमें २०० का भाग देनेपर लब्ध वर्ष ४ हुए। शेष १२०। ३० को १२ से गुणा करनेपर गुणनफल १४४६। ० में २०० का भाग देनेसे लब्ध मास ७ हुए। शेष ४६ को ३० से गुणा करके गुणनफल १३८० में २०० का भाग देनेपर लब्ध दिन ६ हुए। शेष १८० को ६० से गुणा करनेपर गुणनफल १०८०० में २०० का भाग देनेसे लब्धि ५४ घड़ी हुई। इस प्रकार लग्नायुमान वर्षादि ४। ७। ६। ५४। ० हुआ।

१. 'अंशायु' वह है, जो ग्रहोंके अंश (नवमांश) द्वारा अनुपातसे जानी जाती है।

† अंशायु-साधन—स्पष्ट राश्यादि सूर्य १०। १५। १०। २० को अंशात्मक बनानेसे ३१५। १०। २०में ४० का भाग देनेपर शेष ३५। १०। २० हुआ। यह साधनोपयोगी अंशादि हुआ। इसमें संस्कारविशेष करनेके लिये सूर्य १०। १५। १०। २० लग्न ३। १५। २०। ३०में न घट सकनेके कारण नियमानुसार १२ राशिमें जोड़कर घटानेसे शेप ५। ०। १०। १० यह ६ राशिसे कम और १ राशिसे अधिक है, इसलिये इस शेपके अंशादि १५०। १०। १० से ३० में भाग देनेपर लब्ध अंश ० हुआ। शेप ३० को ६० से गुणा कर गुणनफल १८००में उक्त भाजकका भाग देनेपर लब्धि-कला ११ हुई। शेष १४८। ८। १० को ६० से गुणा कर गुणनफल ८८८८। १०में उक्त अंशादि भाजकसे भाग देनेपर तृतीय लब्धि ५९ हुई। इस प्रकार लब्धिमान अंशादि ०। ११। १५ हुआ। इसको १ अंशमें घटानेसे शेष ०। ४८। १ यह गुणक हुआ। सूर्य पापग्रह है, अत इस गुणकसे आयु-साधनोपयोगी अंशादि ३५। १०। २० को गुणा करनेपर गुणनफल २८। ८। ५१ यह संस्कृत अंशादि हुआ। इसको कलात्मक बनानेसे १६८८। ५१ हुआ। इसमें २००का भाग देनेपर लब्ध वर्ष ८ हुए। शेप ८८। ५१ को १२ आदिसे गुणा कर गुणनफलमें २००का भाग देकर पूर्ववत् मासादि निकालनेसे आयुमान वर्षादि ८। ५। ९। ५५। ४८ हुआ।

भी जोड़े तो लग्नायु स्पष्ट होती है*। यह क्रिया पिण्डायु और निसर्गायुमें नहीं की जाती है ॥ १२९—१३५½ ॥

(दशा-निरूपण—)लग्न, सूर्य और चन्द्रमा—इन तीनोंमें जो अधिक बली है, प्रथम उसीकी दशा होती है। फिर उससे केन्द्रस्थित ग्रहोंकी, तदनन्तर 'पणफर' स्थित ग्रहोंकी, तत्पश्चात् 'आपोक्लिम' स्थित ग्रहोंकी दशा होती है। केन्द्रादि-स्थित ग्रहोंमें बलके अनुसार ही पूर्व-पूर्व दशा होती है। एक स्थानमें स्थित दो या तीन ग्रहोंमें यदि बलकी समानता हो तो उनमें जिसकी अधिक आयु हो उसकी प्रथम दशा होती है। आयुके वर्षादिमें भी समता हो तो जिस ग्रहका सूर्य-सान्निध्यसे प्रथम उदय हुआ हो, उसकी प्रथम दशा होती है ॥ १३६-१३७ ॥

(अन्तर्दशा-कथन—)दशापति पूर्णदशाका पाचक होता है, तथापि उसके साथ रहनेवाला ग्रह आधे (½) का, दशापतिसे त्रिकोण (५, ९) में रहनेवाला तृतीयांश (⅓) का, सप्तममें रहनेवाला सप्तमांश (1/7) का, चतुरस्र (४ । ८) में रहनेवाला चतुर्थांश (¼) अन्तर्दशाका पाचक होता है। इससे सिद्ध है कि इन स्थानोंसे भिन्न स्थानमें स्थित ग्रहोंकी अन्तर्दशा नहीं होती है ॥ १३८½ ॥

(अन्तर्दशा-साधनके गुणक—)मूल दशापतिका ८४, उसके साथ रहनेवालेका ४२, त्रिकोणमें रहनेवालेका २८, सप्तममें रहनेवालेका १२ तथा चतुर्थ-अष्टममें रहनेवालेका २१ गुणक कहा गया है। वर्षादि रूप दशा प्रमाणको अपने अपने गुणकसे गुणा करके सब गुणकोंके योगसे भाग देनेपर जो लब्धि आवे, वह वर्ष होता है। शेषको १२, ३० आदिसे गुणा करके गुणनफलमें गुणकके योगसे भाग देनेपर जो लब्धि

---

* लग्नका लग्नायु-साधन—लग्न ३ । १५ । २० । ३० है [illegible] अंशादि बनानेसे १०५ । २० । ३० हुए। इनमें १० का [illegible] देनेपर बचे हुए २५ । २० । ३०को १२ से गुणा करके गुणनफल ७६ । १ । ३०में १०का भाग दिया तो लब्ध ७ वर्ष हुए। शेष ६ । १ । ३०को १२से गुणा करके गुणनफल ७२ । १८ । ०में १० का भाग देनेपर लब्ध ७ मास हुए। [illegible] २ । १८को ३०से गुणा कर गुणनफल ६९ । ० में १०का भाग देनेपर लब्ध ६ दिन हुए। शेष ९को ६० से गुणा कर गुणनफल ५४०में १० का भाग देनेपर लब्धि ५४ घड़ी हुई। [illegible] लग्नका लग्नायुर्दायमान वर्षादि ७ । ७ । ६ । ५४ । ० हुआ

होता है ॥ १४२-१४३ ॥ पहले जिस ग्रहके जो द्रव्य बताये गये हैं, भाव और राशियोमे जो उन ग्रहोंकी दृष्टि तथा योगका फल कहा गया है एव आजीविका आदि जो-जो फल बताये गये हैं, उन सबका विचार उस ग्रहकी दशामें करना चाहिये। जो ग्रह पापदशामे प्रवेशके समय अपने शत्रुसे देखा जाता हो, वह विपत्तिकारक (अत्यन्त अशुभ फल देनेवाला) होता है तथा जो शुभग्रह मित्रसे दृष्ट हो और शुभवर्गमें रहकर तत्काल बलवान् हो, वह सब आपत्ति (दुष्ट फल) को नष्ट कर देता है। जिसका (आगे बताया जानेवाला) अष्टक वर्गज फल पूर्ण शुभ हो तथा जो ग्रह लग्न या चन्द्रमासे १, ३, ६, १०, ११ में, स्वोच्च स्थानमें, स्वराशिमें, अपने मूल त्रिकोणमें तथा मित्रकी राशिमें हो, उसका अशुभ फल भी मध्यम हो जाता है, मध्यम फल श्रेष्ठ हो जाता है तथा शुभ फल तो अत्यन्त श्रेष्ठ होता है। यदि वह ग्रह इससे भिन्न स्थानमें हो, तो उसके पाप-फलकी वृद्धि होती है और उसका शुभ फल भी अल्प हो जाता है। इन फलोंको भी ग्रहके बलाबलको समझकर तदनुसार स्वल्प या अधिक समझना चाहिये ॥ १४४—१४८ ॥

(लग्न-दशा-फल—) चर लग्नमें प्रथम, द्वितीय, तृतीय द्रेष्काण हो तो क्रमसे लग्नकी दशा शुभ, मध्यम और अशुभ फल देनेवाली होती है। द्विस्वभाव लग्न हो तो इससे विपरीत फल होता है (अर्थात् प्रथमादि द्रेष्काणमे क्रमसे अशुभ, मध्यम और शुभ फल देनेवाली दशा होती है)। स्थिर लग्न हो तो प्रथमादि द्रेष्काणमें अशुभ, शुभ और मध्यम फल देनेवाली दशा होती है। लग्न यदि अपने स्वामी, गुरु और बुधसे युक्त एवं दृष्ट हो तो उसकी दशा शुभप्रद होती है। यदि वह पापग्रहसे युक्त या दृष्ट हो अथवा पापके मध्यमें हो तो उसकी दशा अशुभ फल देनेवाली होती है ॥१४९-१५०॥

(अष्टक-वर्ग-कथन—) सूर्य जन्म-कालिक स्वाश्रित राशिसे १।२।१०।४।८।११।९।७ इन स्थानोंमें शुभ होता है। मङ्गल और शनिसे भी इन्हीं स्थानोंमे रहनेपर वह शुभ होता है। शुक्रसे ७।१२।६ मे, गुरुसे ९।५।११।६ में, चन्द्रमासे १०।३।११।६ में, बुधसे इन्हीं १०।३।११।६ स्थानोंमे और १२।५।९ में भी वह शुभ होता है। लग्नसे ३।६।१०।११।१२।४ इन स्थानोंमें सूर्य शुभ होता है ॥ १५१-१५२ ॥

चन्द्रमा लग्नसे ६, ३, १०, ११ स्थानोंमें; मङ्गलसे २, ५, ९ सहित इन्हीं ६, ३, १०, ११ स्थानोंमें; अपने स्थानसे ३, ६, १०, ११, ७, १ में; सूर्यसे ३, ६, १०, ११, ७, ८ में; शनिसे ६, ३, ११, ५ में; बुधसे ५, ३, ८, १, ४, ७, १० में; गुरुसे १, ४, ७, १०, ८, ११, १२ में और शुक्रसे ४, ५, ९, ३, ११, ७, १० इन स्थानोंमें शुभ होता है ॥ १५३-१५४ ॥

मङ्गल सूर्यसे ३, ६, १०, ११, ५ में; लग्नसे ३, ६, १०, ११, १ में; चन्द्रमासे ३, ६, ११ में; अपने आश्रित स्थानसे १, ४, ७, १०, ८, ११, २ में; शनिसे ९, ८, ११, १, ४, ७, १० में; बुधसे ६, ३, ५, ११ में; शुक्रसे ६, ११, २, ८ में और गुरुसे १०, ११, १२, ६ स्थानोंमें शुभ होता है ॥ १५५-१५६ ॥

बुध शुक्रसे ५, ३ सहित २, १, ८, ९, ४, ११ स्थानोंमें; शनि और मङ्गलसे १०, ७ सहित २, १, ८, ९, ४ और ११ वें स्थानमें; गुरुसे १२, ६, ११, ८ वें स्थानोंमें; सूर्यसे ९, ११, ६, ५, १२ वें स्थानोंमें; अपने आश्रित स्थानसे १, ३, १०, ९, ११, ६, ५, १२ वें स्थानोंमें; चन्द्रमासे ६, १०, ११, ८, ४, १० में और लग्नसे १ तथा पूर्वोक्त ६, १०, ११, ८, ४, १० स्थानोंमें शुभ होता है ॥ १५७-१५८ ॥

गुरु मङ्गलसे १०, २, ८, १, ७, ४, ११ स्थानोंमें; अपने आश्रित स्थानसे ३ सहित पूर्वोक्त (१०, २, ८, १, ७, ४, ११) स्थानोंमें; सूर्यसे ३, ९ सहित पूर्वोक्त (१०, २, ८, १, ७, ४, ११) स्थानोंमें; शुक्रसे ५, २, ९, १०, ११, ६ में; चन्द्रमासे २, ११, ५, ९, ७ में; शनिसे ५, ३, ६, १२ मे; बुधसे ९, ४, ५, ६, २, १०, १, ११ में तथा लग्नसे ७ सहित पूर्वोक्त (९, ४, ५, ६, २, १०, १, ११) स्थानोंमें शुभ होता है ॥ १५९-१६० ॥

शुक्र लग्नसे १, २, ३, ४, ५, ११, ८, ९ स्थानोंमें; चन्द्रमासे भी इन्हीं स्थानों (१, २, ३, ४, ५, ११, ८, ९) में और १२ वें स्थानमें; अपने आश्रित स्थानसे १० सहित उक्त (१, २, ३, ४, ५, ११, ८, ९) स्थानोंमें; शनिसे ३, ५, ९, ४, १०, ८, ११ स्थानोंमें; सूर्यसे ८, ११, १२ स्थानोंमें; गुरुसे ९, ८, ५, १०, ११ स्थानोंमें; बुधसे ५, ३, ११, ६, ९ स्थानोंमें और मङ्गलसे ३, ६, ९, ५, ११ तथा बारहवें स्थानोंमे शुभ होता है ॥ १६१-१६२ ॥

शनि अपने आश्रित स्थानसे ३, ५, ११, ६ में; मङ्गलसे १०, १२ सहित पूर्वोक्त (३, ५, ११, ६) स्थानोंमें;

लग्नमें हों तो इन चारों लग्नोंमें जन्म लेनेवाले बालक राजा होते हैं। लग्न अथवा चन्द्रमा वर्गोत्तम नवमांशमें हो और उसपर ४, ५ या ६ ग्रहकी दृष्टि हो तो इसके २२ भेदमें २२ प्रकारके राजयोग होते हैं। मङ्गल अपने उच्चमें हो, रवि और चन्द्रमा धनराशिमें हों और मकरस्थ शनि लग्नमें हो तो जातक राजा होता है। उच्च (मेष) का रवि लग्नमें हो, चन्द्रमासहित शनि सप्तमभावमें हो, बृहस्पति अपनी राशि (धनु या मीन) में हो तो जन्म लेनेवाला राजा होता है ॥ १७०-१७१ ॥ शनि अथवा चन्द्रमा अपने उच्चराशिका होकर लग्नमें हों, षष्ठ भावमें सूर्य और बुध हों, शुक्र तुलामें, मङ्गल मेषमें और गुरु कर्कमें हो तो इन दोनों लग्नोंमें जन्म लेनेसे शिशु राजा होते हैं। उच्चस्थ* मङ्गल यदि चन्द्रमाके साथ लग्नमें हो तो भी जातक राजा होता है। चन्द्रमा वृष लग्नमें हो और सूर्य, गुरु तथा शनि ये क्रमसे ४, ७, १० वें स्थानमें हों तो जातक राजा होता है। मकर लग्नमें शनि हो और लग्नसे ३, ६, ९ एवं १२ वें भावमें क्रमशः चन्द्रमा, मङ्गल, बुध तथा बृहस्पति हों तो जन्म लेनेवाला बालक राजा होता है ॥ १७२-१७३ ॥

गुरुसहित चन्द्रमा धनमें और मङ्गल मकरमें हों तथा बुध या शुक्र अपने उच्चमें स्थित होकर लग्नमें विद्यमान हों तो उन दोनों योगोंमें जन्म लेनेवाला शिशु राजा होता है। बृहस्पतिसहित कर्क लग्न हो, बुध, चन्द्रमा तथा शुक्र तीनों ११ वें भावमें हों और सूर्य मेषमें हो तो जातक राजा होता है। चन्द्रमासहित मीन लग्न हो, सूर्य, शनि, मङ्गल—ये क्रमसे सिंह, कुम्भ और मकरमें हों तो उत्पन्न बालक राजा होता है। मङ्गलसहित मेष लग्न हो, बृहस्पति कर्कमें हो अथवा कर्कस्थ बृहस्पति लग्नमें हो तो जातक नरेश होता है। मङ्गल और शनि पञ्चमभावमें, गुरु, चन्द्रमा तथा शुक्र चतुर्थ भावमें और बुध कन्या लग्नमें हो तो जन्म लेनेवाला शिशु राजा होता है ॥ १७४–१७६ ॥ मकर लग्नमें शनि हो तथा मेष, कर्क, सिंह ये अपने-अपने स्वामीसे युक्त हों, शुक्र तुलामें और बुध मिथुनमें हों तो बालक यशस्वी राजा होता है ॥ १७७ ॥ मुनीश्वर ! इन बताये हुए योगोंमें जन्म लेनेवाला जिस किसीका पुत्र भी राजा होता है। तथा आगे जो योग बताये जायँगे, उनमें जन्म लेनेवाले राजकुमारको ही राजा समझना चाहिये। (यदि अन्य व्यक्ति इस योगमें उत्पन्न हुआ हो तो वह राजाके तुल्य होता है, राजा नहीं।) ॥ १७८ ॥

तीन या अधिक ग्रह बली होकर अपने-अपने उच्च या मूल त्रिकोणमें हों तो बालक राजा होता है। सिंहमें सूर्य, मेष लग्नमें चन्द्रमा, मकरमें मङ्गल, कुम्भमें शनि और धनुमें बृहस्पति हो तो उत्पन्न शिशु भूपाल होता है। मुने ! शुक्र अपनी राशिमें होकर चतुर्थ स्थानमें स्थित हों, चन्द्रमा नवमभावमें रहकर शुभ ग्रहसे दृष्ट या युक्त हों तथा शेष ग्रह ३, १, ११ वें भावमें विद्यमान हों तो जातक इस वसुधाका अधीश्वर होता है। बुध सबल होकर लग्नमें स्थित हों, बलवान् शुभग्रह नवमभावमें स्थित हों तथा शेष ग्रह ९, ५, ३, ६, १० और ११ वें भावमें हो तो उत्पन्न बालक धर्मात्मा नरेश होता है। चन्द्रमा, शनि और बृहस्पति क्रमशः दसवें, ग्यारहवें तथा लग्नमें स्थित हों, बुध और मङ्गल द्वितीय भावमें तथा शुक्र और रवि चतुर्थभावमें स्थित हों तो जातक भूपाल होता है। वृष लग्नमें चन्द्रमा, द्वितीयमें गुरु, ११वेंमें शनि तथा शेष ग्रह भी स्थित हों तो बालक नरेश होता है ॥ १७९—१८३ ॥

चतुर्थ भावमें गुरु, १० वें भावमें रवि और चन्द्रमा, लग्नमें शनि और ११ वें भावमें शेष ग्रह हों तो उत्पन्न शिशु राजा होता है। मङ्गल और शनि लग्नमें हों, चन्द्रमा, गुरु, शुक्र, रवि और बुध—ये क्रमसे ४, ७, ९, १० और ११ वेंमें हों तो ये सब ग्रह ऐसे बालकको जन्म देते हैं, जो भावी नरेश होता है। मुनीश्वर ! ऊपर कहे हुए योगोंमें उत्पन्न मनुष्यके दशम भाव या लग्नमें जो ग्रह हो, उसकी दशा-अन्तर्दशा आनेपर उसे राज्यकी प्राप्ति होती है। इन दोनों स्थानोंमें ग्रह न हो तो जन्म-समयमें जो ग्रह बलवान् हो, उसकी दशामें राज्यलाभ समझना चाहिये तथा जो ग्रह जन्म-समयमें शत्रु-राशि या अपनी नीच राशिमें हो, उसकी राशिमें क्लेश, पीड़ा आदिकी प्राप्ति होती है ॥ १८४-१८५½ ॥

(नाभस[1] योग-कथन—) समीपवर्ती दो केन्द्रस्थानोंमें ही (रविसे शनिपर्यन्त) सब ग्रह हों तो 'गदा' नामक

* पहले उच्चस्थ मङ्गलादिके लग्नमें रहनेसे 'राजयोग' कहा गया है। इसलिये यहाँ भी जो चन्द्रमासहित मङ्गलको लग्नमें स्थित कहा गया है, उससे उनके उच्चस्थभावकी ही अनुवृत्ति समझनी चाहिये। अन्य मुनियोंने मकरस्थ मङ्गलके लग्नमें होनेसे 'राजयोग' कहा है।

१. नाभस योग अनेक होते हैं। इन योगोंमें राहु और केतुको छोड़कर केवल सूर्य आदि सात ग्रह ही लिये गये हैं।

योग होता है । केवल लग्न और सप्तम दो ही स्थानोंमें सब ग्रह हों तो 'शकट' योग होता है । दशम और चतुर्थमें ही सब ग्रहोंकी स्थिति हो तो 'विहग' (पक्षी) योग होता है । ५, ९ और लग्न—इन तीन ही स्थानोंमें सब ग्रह हों तो 'शृङ्गाटक' योग होता है । इसी प्रकार यदि लग्नभिन्न स्थानसे त्रिकोण स्थानोंमें ही सब ग्रह हों तो 'हल' नामक योग होता है ॥ १८६-१८७ ॥ लग्न और सप्तममें सब शुभ-ग्रह हों अथवा चतुर्थ-दशममें सब पापग्रह हों तो दोनों स्थितियोंमें 'वज्र' योग होता है । इसके विपरीत यदि लग्न, सप्तममें सब पापग्रह अथवा चतुर्थ, दशममें सब शुभग्रह हों तो 'यव' योग होता है । यदि चारों केन्द्रों-में सब (शुभ और पाप) ग्रह मिलकर बैठे हों तो 'कमल' योग होता है और केन्द्रस्थानसे बाहर (चारों पणफर अथवा चारों आपोक्लिमस्थानोंमें) ही सब ग्रह स्थित हों तो 'वापी' नामक योग होता है ॥ १८८ ॥ लग्नसे लगातार ४ स्थान (१, २, ३, ४) में ही सब ग्रह मौजूद हों तो 'यूप' योग होता है । चतुर्थसे चार स्थान (४, ५, ६, ७) में ही सब ग्रह स्थित हों तो 'शर' योग होता है । सप्तमसे ४ स्थान (७, ८, ९, १०) में ही सब ग्रहोंकी स्थिति हो तो 'शक्ति' योग होता है और दशमसे ४ स्थान (१०, ११, १२, १) में ही सब ग्रह मौजूद हों तो 'दण्ड' योग होता है ॥१८९॥ लग्नसे क्रमशः सात स्थानों (१, २, ३, ४, ५, ६, ७) में सब ग्रह हों तो 'नौका' योग, चतुर्थभावसे आरम्भ करके लगातार सात स्थानोंमें सातों ग्रह हों तो 'कूट' योग, सप्तम-भावसे आरम्भ करके लगातार सात स्थानोंमें सातों ग्रह विद्यमान हों तो 'छत्र' योग और दशमसे आरम्भ करके सात स्थानोंमें सब ग्रह स्थित हों तो 'चाप' नामक योग होता है । इसी प्रकार केन्द्रभिन्न स्थानसे आरम्भ करके लगातार सात स्थानोंमें सब ग्रह हों तो 'अर्धचन्द्र' नामक योग होता है ॥ १९० ॥

लग्नसे आरम्भ करके एक स्थानका अन्तर देकर क्रमशः (१, ३, ५, ७, ९ और ११ इन) ६ स्थानोंमें ही सब ग्रह स्थित हों तो 'चक्र' नामक योग होता है और द्वितीय भावसे लेकर एक स्थानका अन्तर देकर क्रमशः ६ स्थानों (२, ४, ६, ८, १०, १२) में ही सब ग्रह मौजूद हों तो 'समुद्र' नामक योग होता है ।

७ से १ [illegible] वीणा आदि [illegible] स्थानोंमें सब [illegible] हों तो 'दाम', ५ [illegible] स्थानोंमें सब ग्रह [illegible] 'शूल', २ स्थानोंमें [illegible] में सब ग्रह हों तो [illegible] चरराशिमें हों तो [illegible] और द्विस्वभावमें हों तो [illegible] शुभग्रह केन्द्रस्थानोंमें हों तो [illegible] स्थानोंमें हों तो 'सर्प' नामक योग [illegible]

(इन योगोंमें जन्म लेनेवालोंके फल) [illegible] में जन्म लेनेवाला [illegible] (यात्रा करने या घूमने फिरने) [illegible] मुसलयोगमें उत्पन्न शिशु धन [illegible] नलयोगमें उत्पन्न पुरुष [illegible] है । मालायोगमें पैदा हुआ [illegible] योगमें उत्पन्न पुरुष दुःखसे पीड़ित [illegible] योगमें जिसका जन्म हुआ हो [illegible] तथा सङ्गीत और नृत्यमें [illegible] उत्पन्न मनुष्य दाता और [illegible] उत्पन्न धनवान् और सुखी होता है । [illegible] पैदा हुआ [illegible] उत्पन्न पुरुष शूरवीर, [illegible] अधन (धनहीन) होता है । [illegible] पाखण्डी तथा [illegible] होता है ॥ १९५-१९६ ॥

[illegible] भी [illegible] है । [illegible] योगोंमें [illegible] होता है । [illegible] सुन्दर शरीरवाला तथा [illegible] शूरवीर होता है ॥ १९७ ॥ [illegible] भागी और [illegible] निर्धन ही [illegible] लेनेवाला मनुष्य [illegible] ([illegible]) होता है [illegible]

दूसरोंको कष्ट देनेवाला और गोपनीय स्थानोंका स्वामी होता है। शक्तियोगमें उत्पन्न नीच, आलसी और निर्धन होता है तथा दण्डयोगमें उत्पन्न पुरुष अपने प्रियजनोंसे वियोगका कष्ट भोगता है ॥ १९८-१९९ ॥

(चन्द्रयोगका कथन—) यदि चन्द्रमासे द्वितीयमें सूर्यको छोड़कर कोई भी अन्य ग्रह हो तो 'सुनफा' योग होता है। द्वादशमें हो तो 'अनफा' और दोनों (२, १२) स्थानोंमें ग्रह हों तो 'दुरुधरा' योग समझना चाहिये, अन्यथा (अर्थात् २, १२ में कोई ग्रह नहीं हो तो) 'केमद्रुम' योग होता है ॥ २०० ॥

(उक्त योगोंका फल—) सुनफा-योगमें जन्म लेनेवाला पुरुष अपने भुजबलसे उपार्जित धनका भोगी, दाता, धनवान् और सुखी होता है। अनफा-योगमें उत्पन्न मनुष्य रोगहीन, सुशील, विख्यात और सुन्दर रूपवाला होता है। दुरुधरामें जन्म लेनेवाला भोगी, सुखी, धनवान्, दाता और विषयोंसे निःस्पृह होता है तथा 'केमद्रुम' योगमें उत्पन्न मनुष्य अत्यन्त मलिन, दुखी, नीच और निर्धन होता है ॥ २०१-२०२ ॥

(द्विग्रहयोगफल—) मुने ! सूर्य यदि चन्द्रमासे युक्त हो तो भाँति-भाँतिके यन्त्र (मशीन) और पत्थरके कार्यमें कुशल बनाता है। मङ्गलसे युक्त हो तो वह बालकको नीच कर्ममें लगाता है, बुधसे युक्त हो तो यशस्वी, कार्यकुशल, विद्वान् एवं धनी बनाता है, गुरुसे युक्त हो तो दूसरोंके कार्य करनेवाला, शुक्रसे युक्त हो तो धातुओं (ताँबा आदि) के कार्यमें निपुण तथा पात्र-निर्माण-कलाका जानकार बनाता है ॥ २०३-२०४ ॥

चन्द्रमा यदि मङ्गलसे युक्त हो तो जातक कूट वस्तु (नकली सामान), स्त्री और आसव-अरिष्टादिका क्रय-विक्रय करनेवाला तथा माताका द्रोही होता है। बुधके साथ चन्द्रमा हो तो उत्पन्न शिशुको धनी, कार्यकुशल तथा विनय और कीर्तिसे युक्त करता है; गुरुसे युक्त हो तो चञ्चलबुद्धि, कुलमें मुख्य, पराक्रमी और अधिक धनवान् बनाता है। मुने ! यदि शुक्रसे युक्त चन्द्रमा हो तो बालकको वस्त्रनिर्माण-कलाका ज्ञाता बनाता है और यदि शनिसे युक्त हो तो वह बालकको ऐसी स्त्रीके पेटसे उत्पन्न कराता है, जिसने पतिके मरनेपर या जीतेजी दूसरे पतिसे सम्बन्ध स्थापित कर लिया हो ॥ २०५-२०६ ॥

मङ्गल यदि बुधसे युक्त हो तो उत्पन्न हुआ बालक बाहुसे युद्ध करनेवाला (पहलवान) होता है। गुरुसे युक्त हो तो नगरका मालिक, शुक्रसे युक्त हो तो जूआ खेलनेवाला तथा गायोंको पालनेवाला और शनिसे युक्त हो तो मिथ्यावादी तथा जुआरी होता है ॥ २०७ ॥

नारद ! बुध यदि बृहस्पतिसे युक्त हो तो उत्पन्न शिशु नृत्य और सङ्गीतका प्रेमी होता है। शुक्रसे युक्त हो तो मायावी और शनिसे युक्त हो तो उत्पन्न मनुष्य लोभी और क्रूर होता है ॥ २०८ ॥

गुरु यदि शुक्रसे युक्त हो तो मनुष्य विद्वान्, शनिसे युक्त हो तो रसोइया अथवा घडा बनानेवाला (कुम्हार) होता है। शुक्र यदि शनिके साथ हो तो मन्द दृष्टिवाला तथा स्त्रीके आश्रयसे धनोपार्जन करनेवाला होता है ॥ २०९ ॥

(प्रव्रज्यायोग—) यदि जन्म-समयमें चार या चारसे अधिक ग्रह एक स्थानमें बलवान् हों तो मनुष्य गृहत्यागी संन्यासी होता है। उन ग्रहोंमें मङ्गल, बुध, गुरु, चन्द्रमा, शुक्र, शनि और सूर्य बली हों तो मनुष्य क्रमशः शाक्य (रक्त-वस्त्रधारी बौद्ध), आजीवक (दण्डी), भिक्षु (यती), वृद्ध (वृद्धश्रावक), चरक (चक्रधारी), अह्नी (नग्न) और फलाहारी होता है। प्रव्रज्याकारक ग्रह यदि अन्य ग्रहसे पराजित हो तो मनुष्य उस प्रव्रज्यासे गिर जाता है। यदि प्रव्रज्याकारक ग्रह सूर्य-सान्निध्यवश अस्त हो तो मनुष्य उसकी दीक्षा ही नहीं लेता और यदि वह ग्रह बलवान् हो तो उसकी 'प्रव्रज्या' में प्रीति रहती है। जन्मराशीशको यदि अन्य ग्रह नहीं देखता हो और जन्मराशीश यदि शनिको देखता हो अथवा निर्बल जन्मराशीशको शनि देखता हो या शनिके द्रेष्काण अथवा मङ्गल या शनिके नवमांशमें चन्द्रमा हो और उसपर शनिकी दृष्टि हो तो इन योगोंमें विरक्त होकर गृहत्याग करनेवाला पुरुष संन्यास-धर्मकी दीक्षा लेता है ॥ २१०—२१३ ॥

(अश्विन्यादि नक्षत्रोंमें जन्मका फल—) अश्विनी नक्षत्रमें जन्म हो तो बालक सुन्दर रूपवाला और भूषणप्रिय होता है। भरणीमें उत्पन्न शिशु सब कार्य करनेमें समर्थ और सत्यवक्ता होता है। कृत्तिकामें जन्म लेनेवाला अमिताहारी, परस्त्रीमें आसक्त, स्थिरबुद्धि और प्रियवक्ता होता है। रोहिणीमें पैदा हुआ मनुष्य धनवान्; मृगशिरामें भोगी; आर्द्रामें हिंसास्वभाववाला, शठ और अपराधी; पुनर्वसुमें जितेन्द्रिय, रोगी और सुशील तथा पुष्यमें कवि और सुखी होता है ॥ २१४-२१५ ॥ आश्लेषा नक्षत्रमें उत्पन्न मनुष्य धूर्त, शठ, कृतघ्न, नीच

और खान-पानका विचार न रखनेवाला होता है। मघामें भोगी, धनी तथा देवादिका भक्त होता है। पूर्वा फाल्गुनीमें दाता और प्रियवक्ता होता है। उत्तरा फाल्गुनीमें धनी और भोगी; हस्तमें चोरस्वभाव, ढीठ और निर्लज्ज तथा चित्रामें नाना प्रकारके वस्त्र धारण करनेवाला और सुन्दर नेत्रोंसे युक्त होता है। स्वातीमें जन्म लेनेवाला मनुष्य धर्मात्मा और दयालु होता है। विशाखामें लोभी, चतुर और क्रोधी, अनुराधामें भ्रमणशील और विदेशवासी; ज्येष्ठामे धर्मात्मा और सतोषी तथा मूलमें धनी-मानी और सुखी होता है। पूर्वाषाढमें मानी, सुखी और दृष्ट; उत्तराषाढमें विनयी और धर्मात्मा; श्रवणमें धनी, सुखी और लोकमें विख्यात तथा धनिष्ठामें दानी, शूरवीर और धनवान् होता है। शतभिषामें शत्रुको जीतनेवाला और व्यसनमें आसक्त; पूर्वभाद्रपदमें स्त्रीके वशीभूत और धनवान्; उत्तर-भाद्रपदमें वक्ता, सुखी और सुन्दर तथा रेवतीमे जन्म लेने-वाला शूरवीर, धनवान् और पवित्र हृदयवाला होता है ॥ २१६—२२० ॥

(मेषादि चन्द्रराशिमें जन्मका फल—) मेषराशिमें जन्म लेनेवाला कामी, शूरवीर और कृतज्ञ; वृषमें सुन्दर, दानी और क्षमावान्; मिथुनमें स्त्रीभोगासक्त, द्यूतविद्याको जाननेवाला तथा कर्कराशिमें स्त्रीके वशीभूत और छोटे शरीरवाला होता है। सिंहराशिमें स्त्रीद्वेषी, क्रोधी, मानी, पराक्रमी, स्थिरबुद्धि और सुखी होता है। कन्या-राशिमें धर्मात्मा, कोमल शरीरवाला तथा सुबुद्धि होता है। तुलाराशिमें उत्पन्न पुरुष पण्डित, ऊँचे कदवाला और धनवान् होता है। वृश्चिक राशिमे जन्म लेनेवाला रोगी, लोकमें पूज्य और क्षत (आघात) युक्त होता है। धनुमें जन्म लेनेवाला कवि, शिल्पज्ञ और धनवान्; मकरमें कार्य करनेमें अनुत्साही, व्यर्थ घूमनेवाला और सुन्दर नेत्रोंसे युक्त; कुम्भमें परस्त्री और परधन हरण करनेके स्वभाववाला तथा मीनमें धनु—सदृश (कवि और शिल्पज्ञ) होता है॥ २२१—२२३ ॥

यदि चन्द्रमाकी राशि बली हो तथा राशिका स्वामी और चन्द्रमा दोनों बलवान् हो तो ऊपर कहे हुए फल पूर्णरूपसे सघटित होते हैं—ऐसा समझना चाहिये। अन्यथा विपरीत फल (अर्थात् निर्बल हो तो फलका अभाव या बलके अनुसार फलमे भी तारतम्य) जानना चाहिये। इसी प्रकार अन्य ग्रहोंकी राशिके अनुसार फलका विचार करना चाहिये ॥ २२४ ॥

(सूर्यादि ग्रह-राशि-फल—) सूर्य यदि मेषराशिमें हो तो जातक लोकमें विख्यात होता है। वृषमें हो तो स्त्रीका द्वेषी, मिथुनमें हो तो धनवान्, कर्कमें हो तो उग्र स्वभाववाला, सिंहमें हो तो मूर्ख, कन्यामें हो तो कवि, तुलामें हो तो कलवार, वृश्चिकमें हो तो धनवान्, धनुमें हो तो लोकपूज्य, मकरमें हो तो लोभी, कुम्भमें हो तो निर्धन और मीनमे हो तो जातक सुखसे रहित होता है ॥२२५॥

मङ्गल यदि सिंहमें हो तो जातक निर्धन, कर्कमें हो तो धनवान्, स्वराशि (मेष, वृश्चिक) मे हो तो भ्रमणशील, बुधराशि(कन्या-मिथुन)में हो तो कृतज्ञ, गुरुराशि (धनु-मीन) में हो तो विख्यात, शुक्रराशि (वृष-तुला) मे हो तो परस्त्रीमें आसक्त, मकरमे हो तो बहुत पुत्र और धनवाला तथा कुम्भमें हो तो दुखी, दुष्ट और मिथ्यास्वभाववाला होता है ॥२२६½॥

बुध यदि सूर्यकी राशि (सिंह) में हो तो स्त्रीका द्वेषी, चन्द्रराशि (कर्क) में हो तो अपने परिजनोंका द्वेषी; मङ्गलकी राशि (मेष-वृश्चिक) में हो तो निर्धन और सत्वहीन, अपनी राशि (मिथुन-कन्या) में हो तो बुद्धिमान् और धनवान्, गुरुकी राशि (धनु-मीन) मे हो तो मान और धनसे युक्त, शुक्रकी राशि (वृष-तुला) में हो तो पुत्र और स्त्रीसे सम्पन्न तथा शनिकी राशि (मकर-कुम्भ) में हो तो ऋणी होता है ॥२२७½॥

गुरु यदि सिंहमें हो तो सेनापति, कर्कमें हो तो स्त्री-पुत्रादिसे युक्त एवं धनी, मङ्गलकी राशि (मेष वृश्चिक) में हो तो धनी और क्षमाशील, बुधकी राशि (मिथुन कन्या) में हो तो वस्त्रादि विभवसे युक्त, अपनी राशि (धनु मीन) में हो तो मण्डल (जिला) का मालिक, शुक्रकी राशि (वृष-तुला) में हो तो धनी और सुखी तथा शनिकी राशि (मकर-कुम्भ)में हो तो मकरमें ऋणवान् और कुम्भमें धनवान् होता है ॥२२८½॥

शुक्र सिंहमें हो तो जातक स्त्रीद्वारा धन-लाभ करने-वाला, कर्कमें हो तो घमण्ड और शोकसे युक्त, मङ्गलकी राशि (मेष-वृश्चिक) में हो तो बन्धुओंसे द्वेष रखनेवाला, बुधकी राशि (मिथुन-कर्क) में हो तो धनी और [illegible], गुरुकी राशि (धन-मीन) में हो तो धनी और पण्डित, अपनी राशि (वृष-तुला) में हो तो धनवान् और [illegible] तथा शनिकी राशि (मकर-कुम्भ) में हो तो स्त्रीसे पराजित होता है ॥२२९½॥

शनि यदि सिंहमें हो तो पुत्र और धनसे रहित, कर्कमें हो तो धन और संतानसे हीन, मङ्गलकी राशि

(मेष-वृश्चिक) में हो तो निर्बुद्धि और मित्रहीन, बुधकी राशि (मिथुन-कन्या) में हो तो प्रधान रक्षक, गुरुकी राशि (धन-मीन) में हो तो सुपुत्र, उत्तम स्त्री और धनसे युक्त, शुक्रकी राशि (वृष-तुला) में हो तो राजा और अपनी राशि (मकर-कुम्भ) में हो तो जातक ग्रामका अधिपति होता है ॥२३०½॥

(चन्द्रपर दृष्टिका फल—) मेषस्थित चन्द्रमापर मङ्गल आदि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो जातक क्रमसे राजा, पण्डित, गुणवान्, चोर स्वभाव तथा निर्धन* होता है ॥२३१॥

वृषस्थ चन्द्रमापर मङ्गल आदि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो क्रमसे निर्धन, चोर-स्वभाव, राजा, पण्डित तथा प्रेष्य (भृत्य) होता है। मिथुन राशिमें स्थित चन्द्रमापर मङ्गल आदि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो मनुष्य क्रमशः धातुओंसे आजीविका करनेवाला, राजा, पण्डित, निर्भय, वस्त्र बनानेवाला तथा धनहीन होता है। अपनी राशि (कर्क) में स्थित चन्द्रमापर यदि मङ्गलादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो जन्म लेनेवाला शिशु क्रमशः योद्धा, कवि, पण्डित, धनी, धातुसे जीविका करनेवाला तथा नेत्ररोगी होता है। सिंहराशिस्थ चन्द्रमापर यदि बुधादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो मनुष्य क्रमशः ज्यौतिषी, धनवान्, लोकमें पूज्य, नाई, राजा तथा नरेश होता है। कन्या-राशिस्थित चन्द्रमापर बुध आदि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो शुभग्रहों (बुध, गुरु, शुक्र) की दृष्टि होनेपर जातक क्रमशः राजा, सेनापति एवं निपुण होता है और अशुभ (शनि, मङ्गल, रवि) की दृष्टि होनेपर स्त्रीके आश्रयसे जीविका करनेवाला होता है। तुला-राशिस्थ चन्द्रमापर यदि बुध आदि (बुध, गुरु, शुक्र) की दृष्टि हो तो उत्पन्न बालक क्रमसे भूपति, सोनार और व्यापारी होता है तथा शेषग्रह (शनि, रवि और मङ्गल) की दृष्टि होनेपर वह हिंसाके स्वभाववाला होता है ॥२३२—२३४॥ वृश्चिक-राशिस्थ चन्द्रमापर बुध आदि ग्रहोंकी दृष्टि होनेपर क्रमसे जातक दो संतानका पिता, मृदुस्वभाव, वस्त्रादिकी रँगाई करनेवाला, अङ्गहीन, निर्धन और भूमिपति होता है। धन-राशिस्थ चन्द्रमापर बुध आदि शुभग्रहोंकी दृष्टि हो तो उत्पन्न बालक क्रमशः अपने कुल, पृथ्वी तथा जनसमूहका पालक होता है। शेष ग्रहों (शनि, रवि तथा मङ्गल) की दृष्टि हो तो जातक दम्भी और शठ होता है ॥२३५॥ मकर-राशिस्थित चन्द्रमापर बुध आदिकी दृष्टि हो तो वह क्रमशः भूमिपति, पण्डित, धनी, लोकमें पूज्य, भूपति तथा परस्त्रीमें आसक्त होता है। कुम्भ-राशिस्थ चन्द्रमापर भी उक्त ग्रहोंकी दृष्टि होनेपर इसी प्रकार (मकर-राशिस्थके समान) फल समझना चाहिये। मीन-राशिस्थ चन्द्रमापर शुभग्रहों (बुध, गुरु और शुक्र)की दृष्टि हो तो जातक क्रमशः हास्यप्रिय, राजा और पण्डित होता है। (तथा शेष ग्रहों (पापग्रहों) की दृष्टि होनेपर अनिष्ट फल समझना चाहिये।) ॥ २३६ ॥ होरा (लग्न) के स्वामीकी होरामे स्थित चन्द्रमापर उसी होरामें स्थित ग्रहोंकी दृष्टि हो तो वह शुभप्रद होता है। जिस तृतीयांश (द्रेष्काण) में चन्द्रमा हो उसके स्वामीसे तथा मित्र-राशिस्थ ग्रहोंसे युक्त या दृष्ट चन्द्रमा शुभप्रद होता है। प्रत्येक राशिमें स्थित चन्द्रमापर ग्रहोंकी दृष्टि होनेसे जो-जो फल कहे गये हैं, उन राशियोंके द्वादशांशमें स्थित चन्द्रमापर भी उन-उन ग्रहोंकी दृष्टि होनेसे वे ही फल प्राप्त होते हैं।

अब नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर भिन्न-भिन्न ग्रहोंकी दृष्टिसे प्राप्त होनेवाले फलोंका वर्णन करता हूँ। मङ्गलके नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर यदि सूर्यादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो जातक क्रमशः* ग्राम या नगरका रक्षक, हिंसाके स्वभाववाला, युद्धमें निपुण, भूपति, धनवान् तथा झगड़ालू होता है। शुक्रके नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर सूर्यादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो उत्पन्न बालक क्रमशः मूर्ख, परस्त्रीमें आसक्त, सुखी, काव्यकर्ता, सुखी तथा परस्त्रीमें आसक्ति रखनेवाला होता है। बुधके नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर यदि सूर्यादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो बालक क्रमशः नर्तक, चोरस्वभाव, पण्डित, मन्त्री, सङ्गीतज्ञ तथा शिल्पकार होता है। अपने (कर्क) नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर यदि सूर्यादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो वह छोटे शरीरवाला, धनवान्, तपस्वी, लोभी, अपनी स्त्रीकी कमाईपर पलनेवाला तथा कर्तव्यपरायण होता है। सूर्यके नवमांश (सिंह) मे स्थित चन्द्रमापर यदि सूर्यादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो बालक क्रमशः क्रोधी, राजमन्त्री, निधिपति या मन्त्री, राजा, हिंसाके स्वभाववाला तथा पुत्रहीन होता है। गुरुके नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर सूर्यादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो बालक क्रमशः हास्यप्रिय, रणमें कुशल, बलवान्, मन्त्री,

---

* मङ्गलकी दृष्टिसे भूप, बुधकी दृष्टिसे ज्ञ (पण्डित), गुरुकी दृष्टिसे गुणी, शुक्रकी दृष्टिसे चोर-स्वभाव तथा शनिकी दृष्टिसे अस्व (निर्धन) कहा गया है। सूर्यकी दृष्टिका फल अनुक्त होनेके कारण उसे शनिके ही तुल्य समझना चाहिये।

* सूर्यादि क्रममें सूर्य, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि इस प्रकार ६ ग्रह तथा बुधादिमें बुध, गुरु, शुक्र, शनि, रवि, मङ्गल इस प्रकार ६ ग्रह समझने चाहिये।

धर्मात्मा तथा धर्मशील होता है। शनिके नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर यदि सूर्यादि ग्रहोंकी दृष्टि हो तो जातक क्रमशः अल्पसंतति, दुखी, अभिमानी, अपने कार्यमें तत्पर, दुष्ट स्त्रीका पति तथा कृपण होता है। जिस प्रकार मेषादि राशि या उसके नवमांशमें स्थित चन्द्रमापर सूर्यादि ग्रहोंके दृष्टि-फल कहे गये हैं, इसी प्रकार मेषादि राशि या नवमांशमें स्थित सूर्यपर चन्द्रादि ग्रहोंकी दृष्टिसे भी प्राप्त होनेवाले फल समझने चाहिये ॥२३७–२४३॥

(फलोंमें न्यूनाधिक्य—) चन्द्रमा यदि वर्गोत्तम नवमांशमें हो तो पूर्वोक्त शुभ फल पूर्ण, अपने नवमांशमें हो तो मध्यम (आधा) और अन्य नवमांशमें हो तो अल्प समझना चाहिये। (इसीसे यह भी सिद्ध हो जाता है कि जो अशुभ फल कहे गये हैं, वे भी विपरीत दशामें विपरीत होते हैं अर्थात् वर्गोत्तममें चन्द्रमा हो तो अशुभ फल अल्प, अपने नवमांशमें हो तो आधा और अन्य नवमांशमें हो तो पूर्ण होते हैं।) राशि और नवमांशके फलोंमे भिन्नता होनेपर यदि नवमांशका स्वामी बली हो तो वह राशिफलको रोककर ही फल देता है ॥२४४½॥

(द्वादश भावगत ग्रहोंके फल—) सूर्य यदि लग्नमें हो तो शिशु शूरवीर, दीर्घसूत्री (देरसे काम करनेके स्वभाववाला), दुर्बल दृष्टिवाला और निर्दय होता है। यदि मेषमें रहकर लग्नमें हो तो धनवान् और नेत्ररोगी होता है और सिंह लग्नमें हो तो रात्र्यन्ध (रतौंधीवाला), तुलालग्नमे हो तो अंधा और निर्धन होता है। कर्क लग्नमें हो तो जातककी आँखमें फूली होती है।

द्वितीय भावमें सूर्य हो तो बालक बहुत धनी, राजदण्ड पानेवाला और मुखका रोगी होता है। तृतीय स्थानमें हो तो पण्डित और पराक्रमी होता है। चतुर्थ स्थानमें सूर्य हो तो सुखहीन और पीडायुक्त होता है। सूर्य पञ्चम भावमें हो तो मनुष्य धनहीन और पुत्रहीन होता है। षष्ठ भावमें हो तो बलवान् और शत्रुओंको जीतनेवाला होता है। सप्तम भावमें स्थित हो तो मनुष्य अपनी स्त्रीसे पराजित होता है। अष्टम भावमें हो तो उसके पुत्र थोड़े होते हैं और उसे दिखायी भी कम ही देता है। नवम भावमें हो तो जातक पुत्रवान्, धनवान् और सुखी होता है। दशम भावमें हो तो विद्वान् और पराक्रमी तथा एकादश भावमें हो तो अधिक धनवान् और मानी होता है। यदि द्वादश भावमें सूर्य हो तो उत्पन्न बालक नीच और धनहीन होता है॥२४५–२४९॥

चन्द्रमा यदि मेष लग्नमें हो तो जातक गूँगा, बहिरा, अंधा और दूसरोंका दास होता है। वृष लग्नमें हो तो वह धनी होता है। द्वितीय भावमें हो तो विद्वान् और धनवान्, तृतीय भावमें हो तो हिंसाके स्वभाववाला, चतुर्थ स्थानमें हो तो उस भावके लिये कहे हुए फलों (सुख गृहादि) से सम्पन्न, पञ्चम भावमें हो तो कन्यारूप सन्तानवाला और आलसी होता है। छठे भावमें हो तो बालक मन्दाग्निका रोगी होता है, उसे अभीष्ट भोग बहुत कम मिलते हैं तथा वह उग्र स्वभावका होता है। सप्तम भावमें हो तो जातक ईर्ष्यावान् और अत्यन्त कामी होता है। अष्टम भावमें हो तो रोगसे पीड़ित, नवम भावमें हो तो मित्र और धनसे युक्त, दशम भावमें हो तो धर्मात्मा, बुद्धिमान् और धनवान् होता है। एकादश भावमें हो तो उत्पन्न शिशु विख्यात, बुद्धिमान् और धनवान् होता है तथा द्वादश भावमें हो तो जातक क्षुद्र और अङ्गहीन होता है ॥२५०–२५२½॥

मङ्गल लग्नमें हो तो उत्पन्न शिशु क्षत शरीरवाला होता है। द्वितीय भावमें हो तो वह कदन्नभोजी[1] तथा नवम भावमें हो तो पापस्वभाव होता है। इनसे भिन्न (३, ४, ५, ६, ७, ८, १०, ११, १२) स्थानोंमें यदि मङ्गल हो तो उसके फल सूर्यके समान ही होते हैं ॥ २५३½ ॥

बुध लग्नमें हो तो जातक पण्डित होता है। द्वितीय भावमें हो तो शिशु धनवान्, तृतीय भावमें हो तो दुष्ट-स्वभाव, चतुर्थ भावमें हो तो पण्डित, पञ्चम भावमें हो तो राजमन्त्री, षष्ठ भावमें हो तो शत्रुहीन, सप्तममें हो तो धर्मज्ञाता, अष्टम भावमें हो तो विख्यात गुणवाला और शेष (९, १०, ११, १२) भावोंमें हो तो जैसे सूर्यके फल कहे गये हैं वैसे ही उसके फल भी समझने चाहिये ॥ २५४½ ॥

बृहस्पति लग्नमें हो तो जातक विद्वान्, द्वितीय भावमें हो तो प्रियभाषी, तृतीय भावमें हो तो कृपण, चतुर्थमें हो तो सुखी, पञ्चममें हो तो विज्ञ, षष्ठमें हो तो शत्रुरहित, सप्तममें हो तो सम्पत्तियुक्त, अष्टममें हो तो नीच स्वभाववाला, नवममें हो तो तपस्वी, दशममें हो तो धनवान्, एकादशमें हो तो नित्य लाभ करनेवाला और द्वादशमें हो तो दुष्ट हृदयवाला होता है ॥ २५५½ ॥ शुक्र लग्नमें हो तो जातक कामी और सुखी, सप्तम भावमें हो तो कामी

1. कोदो, मडुआ आदि निम्नश्रेणीके अन्नको कदन्न (कुअन्न) कहते हैं।

और पापग्रह हों तो जातक वंशका नाशक होता है। अर्थात् उसका वंश नष्ट हो जाता है। बुध जिस द्रेष्काणमें हो उसपर यदि केन्द्र-स्थित शनिकी दृष्टि हो तो जातक शिल्पकलामें कुशल होता है। शुक्र यदि शनिके नवमांशमें होकर द्वादश भावमें स्थित हो तो जातक दासीका पुत्र होता है। सूर्य और चन्द्रमा दोनों सप्तम भावमे रहकर शनिसे दृष्ट हो तो जातक नीच स्वभाववाला होता है। शुक्र और मङ्गल दोनो सप्तम भावमे स्थित हो और उनपर पापग्रहकी दृष्टि हो तो जातक वातरोगी होता है। कर्क या वृश्चिकके नवमांशमें स्थित चन्द्रमा यदि पापग्रहसे युक्त हो तो बालक गुप्त रोगसे ग्रस्त होता है। चन्द्रमा यदि पापग्रहोके बीचमें रहकर लग्नमें स्थित हो तो उत्पन्न शिशु कुष्ठरोगी होता है। चन्द्रमा दशम भावमें, मङ्गल सप्तम भावमें और शनि यदि वेशि (सूर्यसे द्वितीय) स्थानमें हो तो जातक विकल (अङ्गहीन) होता है। सूर्य और चन्द्रमा दोनो परस्पर नवमांशमें हों तो बालक शूलरोगी होता है। यदि दोनों किसी एक ही स्थानमें हों तो कृश (क्षीणशरीर) होता है। यदि सूर्य, चन्द्रमा, मङ्गल और शनि—ये चारों क्रमशः ८, ६, २, १२ भावोंमें स्थित हों-तो इनमें जो बली हो, उस ग्रहके दोष (कफ, पित्त और वात-सम्बन्धी विकार) से जातक नेत्रहीन होता है। यदि ९, ११, ३, ५—इन भावोंमें पापग्रह हों तथा उनपर शुभग्रहकी दृष्टि नहीं हो तो वे उत्पन्न शिशुके लिये कर्णरोग उत्पन्न करनेवाले होते हैं। सप्तम भावमें स्थित पापग्रह यदि शुभग्रहसे दृष्ट न हों तो वे दन्तरोग उत्पन्न करते हैं। लग्नमें गुरु और सप्तम भावमें शनि हो तो जातक वातरोगसे पीडित होता है। ४ या ७ भावमें मङ्गल और लग्नमें बृहस्पति हो अथवा शनि लग्नमें और मङ्गल ९, ५, ७ भावमें हो अथवा बुधसहित चन्द्रमा १२ भावमें हो तो जातक उन्मादरोगसे पीडित होता है ॥ २८५–२९३½ ॥

यदि ५, ९, २ और १२ भावोंमें पापग्रह हो तो उस जातकको बन्धन प्राप्त होता है (उसे जेलका कष्ट भोगना पडता है)। लग्नमें जैसी राशि हो उसके अनुकूल ही बन्धन समझना चाहिये। (जैसे चतुष्पद राशि लग्न हो तो रस्सीसे बँधकर, द्विपदराशि लग्न हो तो बेड़ीसे बँधकर तथा जलचर राशि लग्न हो तो विना बन्धनके ही वह जेलमें रहता है।) यदि सर्प, शृङ्खला, पाशसंज्ञक द्रेष्काण लग्नमें हों तथा उनपर बली पापग्रहकी दृष्टि हो तो भी पूर्वोक्त प्रकारसे बन्धन प्राप्त होता है। मण्डल (परिवेष) युक्त चन्द्रमा यदि शनिसे युक्त और मङ्गलसे देखा जाता हो तो जातक मृगी रोगसे पीड़ित, अप्रियभाषी और क्षयरोगसे युक्त होता है। मण्डल (परिवेष) युक्त चन्द्रमा यदि दशम भावस्थित सूर्य, शनि और मङ्गलसे दृष्ट हो तो जातक भृत्य (दूसरेका नौकर) होता है; उनमें भी एकसे दृष्ट हो तो श्रेष्ठ, दोसे दृष्ट हो तो मध्यम और तीनोसे दृष्ट हो तो अधम भृत्य होता है ॥ २९४–२९६ ॥

(स्त्रीजातककी विशेषता–) ऊपर कहे हुए पुरुषजातकके जो-जो फल स्त्री-जातकमें सम्भव हो वे वैसे योगमे उत्पन्न स्त्रीमात्रके लिये समझने चाहिये। जो फल स्त्रीमें असम्भव हो, वे सब उसके पतिमें समझने चाहिये। स्त्रीके स्वामीकी मृत्युका विचार अष्टम भावसे, शरीरके शुभाशुभ फलका विचार लग्न और चन्द्रमासे तथा सौभाग्य और पतिके स्वरूप, गुण आदिका विचार सप्तम भावसे करना चाहिये ॥ २९७½ ॥ स्त्रीके जन्मसमयमें लग्न और चन्द्रमा दोनों समराशि और सम नवमांशमें हों तो वह स्त्री अपनी प्रकृति (स्त्रीस्वभाव) से युक्त होती है। यदि उन दोनों (लग्न और चन्द्रमा) पर शुभग्रहकी दृष्टि हो तो वह सुशीलतारूप आभूषणसे विभूषित होती है। यदि वे दोनों (लग्न तथा चन्द्रमा) विषमराशि और विषम नवमांशमें हों तो वह स्त्री पुरुषसदृश आकार और स्वभाववाली होती है। यदि उन दोनोपर पापग्रहकी दृष्टि हो तो स्त्री पाप-स्वभाववाली और गुणहीना होती है ॥ २९८½ ॥

लग्न और चन्द्रमाके आश्रित मङ्गलकी राशि (मेष-वृश्चिक) में यदि मङ्गलका त्रिंशांश हो तो वह स्त्री बाल्यावस्थामें ही दुष्ट-स्वभाववाली होती है। शनिका त्रिंशांश हो तो दासी होती है। गुरुका त्रिंशांश हो तो सच्चरित्रा, बुधका त्रिंशांश हो तो मायावती (धूर्त) और शुक्रका त्रिंशांश हो तो वह उतावली होती है। शुक्रराशि (वृष-तुला) में स्थित लग्न या चन्द्रमामें मङ्गलका त्रिंशांश हो तो नारी बुरे स्वभाववाली, शनिका त्रिंशांश हो तो पुनर्भू* (दूसरा पति करनेवाली), गुरुका त्रिंशांश हो तो गुणवती, बुधका त्रिंशांश हो तो कलाओंको जाननेवाली और शुक्रका त्रिंशांश हो तो लोकमें विख्यात होती है। बुधराशि (मिथुन-कन्या) मे स्थित लग्न या चन्द्रमामे यदि मङ्गलका त्रिंशांश हो तो मायावती, शनिका हो तो हीजड़ी, गुरुका हो तो पतिव्रता, बुधका हो तो गुणवती और शुक्रका हो तो चञ्चला होती है। चन्द्र-राशि (कर्क)

* 'पुनर्भू' कहनेसे यह सिद्ध हुआ कि उसका जन्म शूद्रकुलमें होता है, क्योंकि-शूद्रजातिमें स्त्रीके पुनर्विवाहकी प्रथा है।

में स्थित लग्न या चन्द्रमामें यदि मङ्गलका त्रिंशांश हो तो नारी स्वेच्छाचारिणी, शनिका हो तो पतिके लिये घातक, गुरुका हो तो गुणवती, बुधका हो तो शिल्पकला जाननेवाली और शुक्रका त्रिंशांश हो तो नीच स्वभाववाली होती है। सिंहराशिस्थ लग्न या चन्द्रमामें यदि मङ्गलका त्रिंशांश हो तो पुरुषके समान आचरण करनेवाली, शनिका हो तो कुलटा स्वभाववाली, गुरुका हो तो रानी, बुधका हो तो पुरुषसदृश बुद्धिवाली और शुक्रका त्रिंशांश हो तो अगम्यगामिनी होती है। गुरुराशि (धनु-मीन)-स्थित लग्न या चन्द्रमामें मङ्गलका त्रिंशांश हो तो नारी गुणवती, शनिका हो तो भोगोंमें अल्प आसक्तिवाली, गुरुका हो तो गुणवती, बुधका हो तो ज्ञानवती और शुक्रका त्रिंशांश हो तो पतिव्रता होती है। शनिराशि (मकर-कुम्भ) स्थित लग्न या चन्द्रमामें मङ्गलका त्रिंशांश हो तो स्त्री दासी, शनिका हो तो नीच पुरुषमें आसक्त, गुरुका हो तो पतिव्रता, बुधका हो तो दुष्ट-स्वभाववाली और शुक्रका त्रिंशांश हो तो संतान-हीना होती है। इस प्रकार लग्न और चन्द्राश्रित राशियोंके फल ग्रहोंके बलके अनुसार न्यून या अधिक समझने चाहिये ॥ २९९½—३०४ ॥

शुक्र और शनि ये दोनो परस्पर नवमांशमें (शुक्रके नवमांशमें शनि और शनिके नवमांशमें शुक्र) हो अथवा शुक्रराशि (वृष-तुला) लग्नमें कुम्भका नवमांश हो तो इन दोनों योगोंमें जन्म लेनेवाली स्त्री कामाग्निसे संतप्त हो स्त्रियोंसे भी क्रीड़ा करती है ॥३०५॥

(पतिभाव—) स्त्रीके जन्मलग्नसे सप्तम भावमें कोई ग्रह नहीं हो तो उसका पति कुत्सित होता है। सप्तम स्थान निर्बल हो और उसपर शुभग्रहकी दृष्टि नहीं हो तो उस स्त्रीका पति नपुंसक होता है। सप्तम स्थानमें बुध और शनि हों तो भी पति नपुंसक होता है। यदि सप्तम भावमें चरराशि हो तो उसका पति परदेशवासी होता है। सप्तम भावमें सूर्य हो तो उस स्त्रीको पति त्याग देता है। मङ्गल हो तो वह स्त्री बालविधवा होती है। शनि सप्तम भावमें पापग्रहसे दृष्ट हो तो वह स्त्री कन्या (अविवाहिता) रहकर ही वृद्धावस्थाको प्राप्त होती है ॥ ३०६-३०७ ॥

यदि सप्तम भावमें एकसे अधिक पापग्रह हों तो भी स्त्री विधवा होती है, शुभ और पाप दोनो हों तो वह पुनर्भू होती है। यदि सप्तम भावमें पापग्रह निर्बल हो और उसपर शुभ ग्रहकी दृष्टि न हो तो भी स्त्री अपने पतिद्वारा त्याग दी जाती है, अन्यथा शुभग्रहकी दृष्टि होनेपर वह पतिप्रिया होती है ॥ ३०८ ॥

मङ्गलके नवमांशमें शुक्र और शुक्रके नवमांशमें म[illegible] हो तो वह स्त्री परपुरुषमें आसक्त होती है। इन योगोंमें चन्द्रमा यदि सप्तम भावमें हो तो वह अपने पतिकी [illegible] करती है ॥ ३०९ ॥

यदि चन्द्रमा और शुक्रसे संयुक्त शनि एवं म[illegible] राशि (मकर, कुम्भ, मेष और वृश्चिक) लग्नमें हो तो वह स्त्री कुलटा-स्वभाववाली होती है। यदि उस लग्नपर पापग्रहकी दृष्टि हो तो वह स्त्री अपनी माता सहित कुलटा—स्वभाववाली होती है। यदि सप्तम [illegible] मङ्गलका नवमांश हो और उसपर शनिकी दृष्टि हो तो वह नारी रोगयुक्त योनिवाली होती है। यदि सप्तम भा[illegible] शुभग्रहका नवमांश हो तब तो वह पतिकी प्यारी होती है। शनिकी राशि या नवमांश सप्तम भावमें हो तो उस स्त्रीका पति वृद्ध और मूर्ख होता है। सप्तम भावमें मङ्गलकी राशि या नवमांश हो तो उसका पति स्त्रीलोलुप और क्रोधी होता है। बुधकी राशि या नवमांश हो तो विद्वान् और सब [illegible] निपुण होता है। गुरुकी राशि या नवमांश हो तो जितेन्द्रिय और गुणी होता है। चन्द्रमाकी राशि या नवमांश हो तो कामी और कोमल होता है। शुक्रकी राशि या नवमांश हो तो भाग्यवान् तथा मनोहर स्वरूपवाला होता है। सूर्यकी राशि या नवमांश सप्तम भावमें हो तो उस स्त्रीका पति [illegible] कोमल और अधिक कार्य करनेवाला होता है ॥ ३१०—३१२½ ॥

शुक्र और चन्द्रमा लग्नमें हों तो वह स्त्री [illegible] तथा ईर्ष्यावाली होती है। यदि बुध और चन्द्रमा लग्नमें हों तो कलाओंको जाननेवाली तथा सुख और गुणोंसे युक्त होती है। शुक्र और बुध लग्नमें हों तो सौभाग्यवती, कलाओंको [illegible] वाली और अत्यन्त सुन्दरी होती है। लग्नमें तीन शुभग्रह हों तो वह अनेक प्रकारके सुख, धन और गुणोंसे युक्त होती है ॥ ३१३—३१४½ ॥

पापग्रह अष्टम भावमें हो तो वह स्त्री [illegible] नवमांशमें हो उस ग्रहके पूर्वकथित [illegible] विधवा होती है। यदि द्वितीय भावमें शुभग्रह हों तो [illegible] स्वयं ही स्वामीके सम्मुख मृत्युको प्राप्त होती है। [illegible] वृश्चिक, सिंह या वृष राशिमें चन्द्रमा हो तो स्त्री [illegible] वाली होती है। यदि शनि [illegible] और बुध ये तीनों निर्बल हों तथा [illegible] ([illegible] और गुरु) सबल होकर [illegible] कुरूपा होती है ॥ ३१५—३१७ ॥

गुरु, मङ्गल, शुक्र, बुध ये चारों बली होकर समराशि लग्नमें स्थित हों तो वह स्त्री अनेक शास्त्रोंको और ब्रह्मको जाननेवाली तथा लोकमें विख्यात होती है ॥ ३१८ ॥

जिस स्त्रीके जन्मलग्नसे सप्तममें पापग्रह हो और नवम भावमें कोई ग्रह हो तो स्त्री पूर्वकथित नवमस्थ ग्रहजनित प्रव्रज्याको प्राप्त होती है। इन (कहे हुए) विषयोंका विवाह, वरण या प्रश्नकालमें भी विचार करना चाहिये ॥ ३१९ ॥

(निर्याण (मृत्यु) विचार-)लग्नसे अष्टम भावको जो-जो ग्रह देखते हैं, उनमें जो बलवान् हो उसके धातु (कफ, पित्त या वात) के प्रकोपसे जातक (स्त्री-पुरुष) का मरण होता है। अष्टम भावमें जो राशि हो, वह काल पुरुषके जिस अङ्ग (मस्तकादि) में पड़ती हो; उस अङ्गमें रोग होनेसे जातककी मृत्यु होती है। बहुत ग्रहोंकी दृष्टि या योग हो तो उन-उन ग्रहोंसे सम्बन्ध रखनेवाले रोगोंसे मरण होता है। यथा अष्टममे सूर्य हों तो अग्निसे, चन्द्रमा हों तो जलसे, मङ्गल हों तो शस्त्रघातसे, बुध हों तो ज्वरसे, गुरु हों तो अज्ञात रोगसे, शुक्र हों तो प्याससे और शनि हों तो भूखसे मरण होता है। तथा अष्टम भावमें चर राशि हो तो परदेशमें, स्थिर राशि हो तो स्वस्थानमें और द्विस्वभाव राशि हो तो मार्गमें मृत्यु होती है। सूर्य और मङ्गल यदि १०, ४ भावमें हों तो पर्वत आदि ऊँचे स्थानसे गिरकर मनुष्यकी मृत्यु होती है ॥ ३२०—३२२ ॥

४, ७, १० भावोंमें यदि शनि, चन्द्र, मङ्गल हों तो कूपमें गिरकर मरण होता है। कन्या-राशिमें रवि और चन्द्रमा दोनों हों, उनपर पापग्रहकी दृष्टि हो तो अपने सम्बन्धीके द्वारा मरण होता है। यदि उभयोदय (मीन) लग्नमें चन्द्रमा और सूर्य दोनों हों तो जलमें मरण होता है। यदि मङ्गलकी राशिमें स्थित चन्द्रमा दो पापग्रहोंके बीचमें हो तो शस्त्र या अग्निसे मृत्यु होती है ॥ ३२३-३२४ ॥

मकरमें चन्द्रमा और कर्कमें शनि हों तो जलोदररोगसे मरण होता है। कन्याराशिमें स्थित चन्द्रमा दो पापग्रहोंके बीचमें हों तो रक्तशोषरोगसे मृत्यु होती है। यदि दो पापग्रहोंके बीचमें स्थित चन्द्रमा, शनिकी राशि (मकर और कुम्भ) में हों तो रज्जु (रस्सी), अग्नि अथवा ऊँचे स्थानसे गिरकर मृत्यु होती है। ५, ९ भावोंमें पापग्रह हो और उनपर शुभग्रहकी दृष्टि न हो तो बन्धनसे मृत्यु होती है। अष्टम भावमें पाश, सर्प या निगड द्रेष्काण हो तो भी बन्धनसे ही मृत्यु होती है। पापग्रहके साथ बैठा हुआ चन्द्रमा यदि कन्याराशिमें होकर सप्तम भावमें स्थित हो तथा मेषमें शुक्र और लग्नमें सूर्य हो तो अपने घरमें स्त्रीके निमित्तसे मरण होता है। चतुर्थ भावमें मङ्गल या सूर्य हों, दशम भावमें शनि हो और लग्न, ५, ९ भावोंमें पापग्रहसहित चन्द्रमा हो अथवा चतुर्थ भावमें सूर्य और दशममें मङ्गल रहकर क्षीण चन्द्रमासे दृष्ट हों तो इन योगोंमें काष्ठसे आहत होकर मनुष्यकी मृत्यु होती है। यदि ८, १०, लग्न तथा ४ भावोंमे क्षीण चन्द्रमा, मङ्गल, शनि और सूर्य हों तो लाठीके प्रहारसे मृत्यु होती है। यदि वे ही (क्षीण चन्द्रमा, मङ्गल, शनि तथा सूर्य) १०, ९, लग्न और ५ भावोमे हों तो मुद्गर आदिके आघातसे मृत्यु होती है। यदि ४, ७, १० भावोंमें क्रमशः मङ्गल, रवि और शनि हों तो शस्त्र, अग्नि तथा राजाके द्वारा मृत्यु होती है। यदि शनि, चन्द्रमा और मङ्गल— ये २, ४, १० भावोंमें हों तो कीड़ोंके क्षतसे शरीरका पतन (मरण) होता है। यदि दशम भावमें सूर्य और चतुर्थ भावमें मङ्गल हों तो सवारीपरसे गिरनेके कारण मृत्यु होती है। यदि क्षीण चन्द्रमाके साथ मङ्गल सप्तम भावमें हो तो यन्त्र (मशीन) के आघातसे मृत्यु होती है। यदि मङ्गल, शनि और चन्द्रमा—ये तुला, मेष तथा शनिकी राशि (मकर-कुम्भ) में हों अथवा क्षीण चन्द्रमा, सूर्य और मङ्गल—ये १०, ७, ४ भावोंमें स्थित हो तो विष्ठाके समीप मृत्यु होती है। क्षीण चन्द्रमापर मङ्गलकी दृष्टि हो और शनि सप्तम भावमें हो तो गुह्य (बवासीर आदि) रोग या कीड़ा, शस्त्र, अग्नि अथवा काष्ठके आघातसे मरण होता है। मङ्गलसहित सूर्य सप्तम भावमें, शनि अष्टममें और क्षीण चन्द्रमा चतुर्थ भावमें हों तो पक्षीद्वारा मरण होता है। यदि लग्न, ५, ८, ९ भावोंमें सूर्य, मङ्गल, शनि और चन्द्रमा हों तो पर्वत-शिखरसे गिरनेके कारण अथवा वज्रपातसे या दीवार गिरनेसे मृत्यु होती है ॥ ३२५—३३५ ॥

लग्नसे २२ वाँ द्रेष्काण अर्थात् अष्टम भावका द्रेष्काण जो हो उसका स्वामी अथवा अष्टम भावका स्वामी—ये दोनों या इनमेंसे जो बली हो वह अपने गुणोंसे (पूर्वोक्त अग्नि-शस्त्रादिद्वारा) मनुष्यके लिये मरणकारक होता है। लग्नमें जो नवमांश होता है, उसका स्वामी जो ग्रह हो उसके समानस्थान (अर्थात् वह जिस राशिमें हो उस राशिका जैसा स्थान बताया गया है, वैसे स्थान) तथा उसपर जिस ग्रहका योग या दृष्टि हो उसके समान स्थानमे, परदेशमें मनुष्यका मरण होता है तथा लग्नके जितने अंश अनुदित

(भोग्य) हों, उन अंशोंमें जितने समय हों* उतने समय-तक मरणकालमें मोह होता है। यदि उसपर अपने स्वामीकी दृष्टि हो तो उससे द्विगुणित और शुभग्रहकी दृष्टि हो तो उससे त्रिगुणित समयपर्यन्त मोह होता है। इस विषयकी अन्य बातें अपनी बुद्धिसे विचारकर समझनी चाहिये ॥३३६-३३७½॥

(शव-परिणाम—) अष्टम स्थानमें जिस प्रकारका द्रेष्काण हो उसके अनुसार देहधारीकी मृत्यु और उसके शवके परिणामपर विचार करना चाहिये। यथा—अग्नि (पापग्रह) का द्रेष्काण हो तो मृत्युके बाद उसका शव जलाकर भस्म किया जाता है। जल (सौम्य) द्रेष्काण हो तो जलमें फेंका जानेपर वह वहीं गल जाता है। यदि सौम्य द्रेष्काण पापग्रहसे युक्त या पाप द्रेष्काण शुभग्रहसे युक्त हो तो मुर्दा न जलाया जाता है, न जलमें गलाया जाता है, अपितु सूर्यकिरण और हवासे सूख जाता है। यदि सर्प द्रेष्काण† अष्टम भावमें हो तो उस मुर्देको गीदड़ और कौए आदि नोंचकर खाते हैं ॥ ३३८½ ॥

(पूर्वजन्मस्थिति—) सूर्य और चन्द्रमामें जो अधिक बलवान् हो, वह जिस द्रेष्काणमें स्थित हो उस द्रेष्काणके स्वामीके अनुसार पूर्वजन्मकी स्थिति समझी जाती है। यथा—उक्त द्रेष्काण-का स्वामी गुरु हो तो जातक पूर्वजन्ममें देवलोकमें था। चन्द्रमा या शुक्र द्रेष्काणका स्वामी हो तो वह पितृलोकमें था। सूर्य या मङ्गल द्रेष्काणका स्वामी हो तो वह जातक पहले जन्ममें भी मर्त्यलोकमें ही था और शनि या बुध हो तो वह पहले नरकलोकमें रहा है—ऐसा समझना चाहिये। यदि उक्त द्रेष्काणका स्वामी अपने उच्चमें हो तो जातक पूर्वजन्ममें देवादि लोकमें श्रेष्ठ था। यदि उच्च और नीचके मध्यमें हो तो उस लोकमें उसकी मध्यम स्थिति थी और यदि अपने नीचमें हो तो वह उस लोकमें निम्नकोटिकी अवस्थामें था—ऐसा उच्च और नीच स्थानके तारतम्यसे समझना चाहिये।

(गति—भावी जन्मकी स्थिति—) षष्ठ और अष्टम भावके द्रेष्काणोंके स्वामीमेंसे जो अधिक बली हो, मरनेके बाद जातक उसी ग्रहके (पूर्वदर्शित) लोकमें जाता है तथा सप्तम स्थानमें स्थित ग्रह बली हो तो वह अपने लोकमें ले जाता है।

(मोक्षयोग—) यदि बृहस्पति अपने उच्चमें होकर ६, १, ४, ७, ८, १० अथवा १२ में शुभग्रहके नवमांशमें हो और अन्य ग्रह निर्बल हों तो मरण होनेपर मनुष्यका मोक्ष होता है। यह योग जन्म और मरण दोनों कालोंमें देखना चाहिये ॥३३९-३४१½॥

(अज्ञात जन्म-समयको जाननेका प्रकार—) जिस व्यक्तिके आधान या जन्मका समय अज्ञात हो, उसके प्रश्न-लग्नसे जन्म-समय समझना चाहिये। प्रश्न-लग्नके पूर्वार्ध (१५ अंशतक) में उत्तरायण और उत्तरार्ध (१५ अंशके बाद) में दक्षिणायन जन्मका समय समझना चाहिये। त्र्यंश (द्रेष्काण) द्वारा क्रमशः लग्न, ५, ९ राशिमें गुरु समझकर फिर प्रश्नकर्ताके वयस्के अनुसार वर्षमानकी कल्पना करनी चाहिये*। लग्नमें सूर्य हो तो ग्रीष्मऋतु अन्यथा अन्य ग्रहोंके ऋतुका वर्णन पहले किया जा चुका है। अयन और ऋतुमें भिन्नता हो तो चन्द्रमा, बुध और गुरुकी ऋतुओंके स्थानमें क्रमसे शुक्र, मङ्गल, शनिकी ऋतु परिवर्तित करके समझना चाहिये तथा ऋतु सर्वदा सूर्यकी राशिसे ही (सौरमाससे ही) ग्रहण करनी चाहिये। इस प्रकार अयन और ऋतुके ज्ञान होनेपर लग्नके द्रेष्काणमें पूर्वार्ध हो तो ऋतुका प्रथम मास, उत्तरार्ध हो तो द्वितीय मास समझना चाहिये तथा द्रेष्काणके पूर्वार्ध या उत्तरार्धसे

---

* ३० अंशोंमें मध्यममानसे दो घंटा (५ घटी) समय होता है, उसी अनुपातसे समय समझना चाहिये।

† आगे (पृष्ठ २७१ में) द्रेष्काणके स्वरूप देखिये।

* अर्थात् लग्नमें प्रथम द्रेष्काण हो तो प्रश्नकर्ताके [illegible] लग्नराशिमें ही गुरु था, द्वितीय द्रेष्काण हो तो प्रश्नलग्नसे ५वीं राशिमें, तृतीय द्रेष्काण हो तो प्रश्नलग्नसे ९वीं राशिमें [illegible] गुरुकी स्थिति समझे। फिर वर्तमान समयमें गुरुकी [illegible] गिनकर वर्ष-संख्या बनावे। इस प्रकार [illegible] १२ से [illegible] होगी। इतने वर्षका वयस् यदि प्रश्नकर्ताके अनुमानसे ठीक हो तो ठीक माने, नहीं तो उस संख्यामें १२ [illegible]। [illegible] प्रश्नकर्ताके वयस्के अनुसार वर्ष-संख्याका अनुमान हो [illegible] उस संख्याको वर्तमान संवत्में घटानेसे प्रश्नकर्ताका [illegible] होगा। उस संवत्में गुरु उस राशिमें मिलेगा [illegible]। [illegible] आगे मिले या पीछे। जहाँ उस राशिमें गुरु मिले, [illegible] जन्म-संवत्सर समझना चाहिये। [illegible] करना चाहिये।

भुक्तांशोंसे अनुपात * द्वारा तिथि (सूर्यके गत अंशादि) का ज्ञान करना चाहिये ॥३४२-३४४½॥

* अनुपात इस प्रकार है कि ५ अंशकी कला (३००)में ३० तिथि (अंश) हैं तो भुक्त द्रेष्काणार्धांशकी कलामें क्या होंगी ?

इसकी उत्तर-क्रिया नीचे देखिये—

मान लीजिये, किसी अनाथ-बालकको अपने जन्म-समयका ज्ञान नहीं है। उसकी उम्र अनुमानसे ८ या ९-वर्षकी प्रतीत होती है। उसने अपना जन्म-समय जाननेके लिये संवत् २०१० ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा गुरुवारको प्रश्न किया। उस समयकी लग्न-राश्यादि २। १४। ४५। है और बृहस्पति-राश्यादि १। १८। २। ५ (वृष राशिमें) है। यहाँ लग्नमें द्वितीय द्रेष्काण है, अत. लग्न (मिथुन) से पाँचवीं तुला राशिमें उसके जन्मसमयमें बृहस्पतिकी स्थिति ज्ञात हुई। प्रश्न—समयका बृहस्पति वृषमें है, जो तुलासे ८ वीं संख्यामें है, इसलिये गत वर्ष-संख्या ७ हुई, इससे ज्ञात हुआ कि आजसे ७, १९ तथा ३१ इत्यादि वर्ष पूर्व बृहस्पतिकी तुलामें स्थिति हो सकती है, क्योंकि बृहस्पति एक राशिमें एक वर्ष रहता है। परंतु इन (७, १९, ३१) संख्याओंमें ७ संख्या ही प्रश्नकर्त्ताकी उम्रके समीप होनेके कारण आजसे ७ वर्ष पूर्व जन्म-समय स्थिर हुआ। इसलिये प्रश्न-संवत् २०१० में ७ घटानेसे शेष २००३ जन्मका संवत् निश्चित हुआ। उस संवत्के पञ्चाङ्गको देखा तो तुलामें बृहस्पतिकी स्थिति ज्ञात हुई। राशिके पूर्वार्धमें प्रश्नलग्न है, अत जन्मका समय उत्तरायण सिद्ध हुआ। तथा प्रश्नलग्नमें शुक्रका द्रेष्काण है, अत वसन्त ऋतु होनेका निश्चय हुआ। प्रश्नकालमें द्वितीय द्रेष्काणका पूर्वार्ध होनेके कारण वसन्त ऋतुका प्रथम मास (सौर चैत्र) जन्मका मास निश्चित हुआ।

फिर प्रश्नलग्नस्थ द्रेष्काणके गतांशादि ४। ४५। ० की कला २८५ को ३० से गुणा कर गुणनफल ८५५० में ३०० का भाग देनेसे लब्ध २८। ३० यह मीनमें सूर्यके भुक्तांश हुए। अत मेषसे ११ वीं राशि जोड़नेपर जन्मकालका स्पष्ट सूर्य ११। २८। ३० हुआ। यह चैत्र शुक्ला ११-शुक्रवारको मिलता है, अत प्रश्नकर्ताका वही जन्म-मास और संवत् निश्चित हुआ।

अब इष्टकाल जाननेके लिये उस दिन उदयकालिक स्पष्ट सूर्य-राश्यादि ११। २८। १५। २० तथा सूर्यकी गति ५८। ४५ है तो निश्चित किये हुए जन्मकालिक सूर्य ११। २८। ३०। ० और उदयकालिक सूर्य ११। २८। १५। २० के अन्तर १४। ४० कलाको ६० से गुणा कर गुणनफल ८८० में सूर्यकी गति ५८। ४५ का भाग देनेपर लब्धि घट्यादि १४। ५९ हुई। यह जन्मके सूर्यसे अधिक होनेके कारण उदयकालके बादका इष्टकाल हुआ। इसके द्वारा तात्कालिक अन्य ग्रह और लग्नादि द्वादश भावोंका साधन करके जो जन्म-पत्र बनता है, वह नष्ट जन्मपत्र कहलाता है, उससे भी असली जन्म-पत्रके समान ही फल घटित होता है।

(दिन-रात्रि जन्म-ज्ञान—) प्रश्न-लग्नमें दिन-सञ्ज्ञक, रात्रि-संज्ञक राशियाँ हों तो विलोमक्रमसे (दिन-संज्ञक राशिमें रात्रि और रात्रिसंज्ञक राशिमें दिन) जन्मका समय समझना चाहिये और लग्नके अंशादिसे अनुपात * द्वारा इष्ट घट्यादिको समझना चाहिये।

(जन्म-लग्नज्ञान—) केवल जन्म-लग्न जाननेके लिये प्रश्नकर्ता प्रश्न करे तो लग्नसे (१, ५, ९में) जो राशि बली हो, वही उसका जन्म-लग्न समझना चाहिये अथवा वह जिस अङ्गका स्पर्श करते हुए प्रश्न करे, उस अङ्गकी राशिको ही जन्म-लग्न कहना चाहिये।

(जन्म-राशि-ज्ञान—) जन्म-राशि जाननेके लिये प्रश्न करे तो प्रश्न-लग्नसे जितने आगे चन्द्रमा हो, चन्द्रमासे उतने ही आगे जो राशि हो वह पूछनेवालेकी जन्मराशि समझनी चाहिये ॥ ३४५-३४६ ॥

(प्रकारान्तरसे अज्ञात जन्मकालादिका ज्ञान —) प्रश्नलग्नमें वृष या सिंह हो तो लग्नराश्यादिको कलात्मक बनाकर १० से गुणा करे। मिथुन या वृश्चिक हो तो ८ से, मेष या तुला हो तो ७ से, मकर या कन्या हो तो ५ से गुणा करे। शेष राशियों (कर्क, धन, कुम्भ, मीन) मेंसे कोई लग्न हो तो उसकी कलाको अपनी संख्यासे (जैसे कर्कको ४ से) गुणा करे। यदि लग्नमें ग्रह हो तो फिर उसी गुणन-फलको ग्रहगुणकोंसे भी गुणा करे। जैसे—बृहस्पति हो तो १० से, मङ्गल हो तो ८ से, शुक्र हो तो ७ से, बुध हो तो ५ से, अन्य ग्रह (रवि, शनि और चन्द्रमा) हों तो ५ से गुणा करे। इस प्रकार लग्नकी राशिके अनुसार गुणन तो निश्चित ही रहता है। यदि उसमें ग्रह हो तभी ग्रहका गुणन भी करना चाहिये। जितने ग्रह हों, सबके गुणकसे गुणा करना चाहिये इस प्रकार गुणनफलको ध्रुवपिण्ड मानकर उसको ७ से गुणाकर २७ के द्वारा भाग देकर १ आदि शेषके अनुसार अश्विनी आदि जन्म-नक्षत्र समझने चाहिये। इस

* यहाँ अनुपात ऐसा है कि ३० अंशमें दिनमान या रात्रि-मानकी घटी तो लग्न भुक्तांशमें क्या ?

प्रणालीमें विशेषता यह है कि उक्त रीतिसे आयी हुई संख्या-मे कभी ९ जोडकर और कभी ९ घटाकर नक्षत्र लिया जाता है।* तथा उक्त ध्रुवपिण्डको १० से गुणा करके गुणनफलसे वर्ष, ऋतु और मास समझे।† पक्ष और तिथि जाननी हो तो ध्रुवपिण्डको ८ से गुणा करके २ से भाग देकर एक शेष हो तो शुक्लपक्ष और दो शेष हो तो कृष्णपक्ष समझे। इसमें भी ९ जोड या घटाकर ग्रहण करना चाहिये। अर्थात् गुणनफलमें ९ जोड़ या ९ घटाकर भाग देना चाहिये। इसी प्रकार पक्षज्ञान होनेपर गुणनफलमें ही १५ से भाग देकर शेषके अनुसार प्रतिपदा आदि तिथि समझे तथा अहोरात्र जानना हो तो ध्रुवपिण्डको ७ से गुणा करके दोसे भाग देकर एक शेष हो तो दिन और दो शेष हो तो रात्रि समझे। लग्न-नवांश, इष्ट-घडी तथा होरा जानना हो तो ध्रुवपिण्डको ५ से गुणा करके अपने-अपने विकल्पसे (अर्थात् लग्न जाननेके लिये १२ से, इष्ट घडी‡ जाननेके लिये ६० से (अथवा दिन या रात्रिका ज्ञान होनेपर दिनमान या रात्रिमान-घटीसे), नवमांशके लिये ९ से तथा होराके लिये २ से भाग देकर शेषद्वारा उसका ज्ञान करना चाहिये। इस प्रकार जिनके जन्म-समय आदिका ज्ञान न हो उनके लिये इन सब बातोंका विचार करना चाहिये ॥ [illegible] ॥

(द्रेष्काणका स्वरूप-) हाथमें फरसा लिये हुए काले रंगका पुरुष, जिसकी आँखें लाल हों और जो सब जीवोंकी रक्षा करनेमें समर्थ हो, मेषके प्रथम द्रेष्काणका स्वरूप है। प्याससे पीडित एक पैरसे चलनेवाला, घोड़ेके समान मुख, लाल वस्त्रधारी और घड़ेके समान आकार—यह मेषके द्वितीय द्रेष्काणका स्वरूप है। कपिलवर्ण, क्रूरदृष्टि, क्रूरस्वभाव, लाल वस्त्रधारी और अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग करनेवाला—यह मेषके तृतीय द्रेष्काणका स्वरूप है। भूख और प्याससे पीडित, कटे-छँटे घुँघराले केश तथा दूधके समान धवल वस्त्र—यह वृषके प्रथम द्रेष्काणका स्वरूप है। मलिनशरीर, भूखसे पीडित, बकरेके समान मुख और कृषि आदि कार्योंमें कुशल—यह वृषके दूसरे द्रेष्काणका स्वरूप है। हाथीके समान विशालकाय, शरभके[1] समान पैर, पिङ्गल वर्ण और व्याकुल चित्त—यह वृषके तीसरे द्रेष्काणका स्वरूप है। सुईसे सीने-पिरोनेका काम करनेवाली, रूपवती, सुशीला तथा संतानहीना नारी, जिसने हाथको ऊपर उठा रखा है, मिथुनका प्रथम द्रेष्काण है। कवच और धनुष धारण किये हुए उपवनमें क्रीडा करनेकी इच्छासे उपस्थित [illegible]

* ९ जोडने-घटानेका नियम यह है कि प्रश्नलग्नमें प्रथम द्रेष्काण हो तो ९ जोड़कर, तीसरा द्रेष्काण हो तो ९ घटाकर तथा मध्य द्रेष्काण हो तो यथाप्राप्त नक्षत्र ग्रहण करे।

† यथा—गुणनफलमें १२० का भाग देकर शेष तुल्य वर्ष तथा इसी गुणनफलमें ६ का भाग देकर शेषके अनुसार शिशिरादि ऋतु जाने एवं मास जानना हो तो गुणनफलमें १२ से भाग देकर शेष तुल्य चैत्रादि मास समझे। यदि ऋतुज्ञान होनेपर मास जानना हो तो उक्त गुणनफलमें दोसे भाग देकर एक शेषमें प्रथम और २ शेषमें द्वितीय मास समझे।

‡ जैसे—संवत् २०१० चैत्र शुक्ला ५ गुरुवारको अनुमानतः ३० वर्षकी अवस्थावाले किसी पुरुषने अपना अज्ञात जन्म-समय जाननेके लिये प्रश्न किया। उस समयकी लग्न-(वृष) राश्यादि १।५।२९ है और लग्नमें कोई ग्रह नहीं है तो लग्न-राश्यादिकी २१२९ कलाको वृषलग्नके गुणाङ्क १० से गुणा करनेपर २१२९० यह ध्रुवपिण्ड हुआ। लग्नमें कोई ग्रह नहीं है, अतः दूसरा गुणक नहीं प्राप्त हुआ। अब प्रश्नकर्ताकी गत वर्ष-संख्या जाननेके लिये ध्रुवपिण्डको फिर १० से गुणा करके गुणनफल २१२९०० में १२० का भाग देनेसे शेष २० वर्ष-संख्या हुई; परंतु यह संख्या अनुमानसे कुछ न्यून है, अतः लग्नमें प्रथम द्रेष्काण होनेके कारण आगत शेषमें ९ जोडनेसे २९ हुआ। यही सम्भावित वर्ष होनेके कारण प्रश्नकर्ताके जन्मसे गत वर्ष हुए। इस संख्याको वर्तमान संवत् २०१० में घटानेपर शेष १९८१ यह प्रश्नकर्ताका जन्म-संवत् हुआ। पुनः मास जाननेके लिये दशगुणित ध्रुवपिण्डमें ९ जोड़ा गया तो २१२९०९ हुआ। इसमें १२ का भाग देनेसे शेष ५ रहा। अतः चैत्रसे पाँचवाँ श्रावण जन्म-मास हुआ। पक्ष जाननेके लिये ध्रुवपिण्ड २१२९० को ८ से गुणा कर गुणनफल १७०३२० में ९ जोड़कर २ का भाग देनेसे १ शेष रहनेके कारण शुक्लपक्ष हुआ। तिथि जाननेके लिये उसी अष्टगुणित एवं नवयुत ध्रुवपिण्ड १७०३२९ में १५ का भाग देनेपर शेष ४ रहा, अतः चतुर्थी तिथि हुई। इष्ट घडी जाननेके लिये ध्रुवपिण्ड २१२९० को ५ से गुणा कर गुणनफल-में ९ जोड़कर योगफल १०६४५९ में ६० का भाग देनेसे शेष १९ रहा। यही इष्ट घड़ी हुई। इस प्रकार संवत् १९८१ [illegible] शुक्ला ४ को गतघटी १९ (घड़ी बीतनेपर) प्रश्नकर्ताका [illegible] निश्चित हुआ।

१. पुराणोंमें शरभके आठ पैर कहे गये हैं और [illegible] सिंहसे भी अधिक बलिष्ठ एवं भयङ्कर बताया गया है [illegible] अब कहीं उपलब्ध नहीं होता। [illegible]

मुखवाला पुरुष मिथुनका दूसरा द्रेष्काण है। नृत्य आदिकी कलामें प्रवीण, वरुणके समान रत्नोंके अनन्त भण्डारसे भरा-पूरा, धनुर्धर वीर पुरुष मिथुनका तीसरा द्रेष्काण है। गणेश-जीके समान कण्ठ, शूकरके सदृश मुख, शरभके-से पैर और वनमें रहनेवाला—यह कर्कके प्रथम द्रेष्काणका रूप है। सिरपर सर्प धारण किये, पलाशकी शाखा पकड़कर रोती हुई कर्कशा स्त्री—यह कर्कके दूसरे द्रेष्काणका स्वरूप है। चिपटा मुख, सर्पसे वेष्टित, स्त्रीकी खोजमें नौकापर बैठकर जलमें यात्रा करनेवाला पुरुष—यह कर्कके तीसरे द्रेष्काणका रूप है ॥ ३५१-३५६ ॥ सेमलके वृक्षके नीचे गीदड़ और गीधको लेकर रोता हुआ कुत्ते-जैसा मनुष्य—यह सिंहके प्रथम द्रेष्काण-का स्वरूप है। धनुष और कृष्ण मृगचर्म धारण किये, सिंह-सदृश पराक्रमी तथा घोड़ेके समान आकृतिवाला मनुष्य—यह सिंहके दूसरे द्रेष्काणका स्वरूप है। फल और भोज्यपदार्थ रखने-वाला, लंबी दाढ़ीसे सुशोभित, भालू-जैसा मुख और वानरोंके-से चपल स्वभाववाला मनुष्य—सिंहके तृतीय द्रेष्काणका रूप है। फूलसे भरे कलशवाली, विद्याभिलाषिणी, मलिन वस्त्र-धारिणी कुमारी कन्या—यह कन्या राशिके प्रथम द्रेष्काणका स्वरूप है। हाथमें धनुष, आय-व्ययका हिसाब रखनेवाला, श्याम-वर्ण शरीर, लेखनकार्यमें चतुर तथा रोएँसे भरा मनुष्य—यह कन्या राशिके दूसरे द्रेष्काणका स्वरूप है। गोरे अङ्गोंपर धुले हुए स्वच्छ वस्त्र, ऊँचा कद, हाथमें कलश लेकर देव-मन्दिरकी ओर जाती हुई स्त्री—यह कन्या राशिके तीसरे द्रेष्काणका परिचय है ॥ ३५७-३५९ ॥ हाथमें तराजू और बटखरे लिये बाजारमें वस्तुएँ तौलनेवाला तथा बर्तन-भाँड़ोंकी कीमत कूतनेवाला पुरुष तुलाराशिका प्रथम द्रेष्काण है। हाथमें कलश लिये भूख-प्याससे व्याकुल तथा गीधके समान मुखवाला पुरुष, जो स्त्री-पुत्रके साथ विचरता है, तुलाका दूसरा द्रेष्काण है। हाथमें धनुष लिये हरिनका पीछा करनेवाला, किन्नरके समान चेष्टावाला, सुवर्णकवचधारी पुरुष तुलाका तृतीय द्रेष्काण है। एक नारी, जिसके पैर नाना प्रकारके सर्प लिपटे होनेसे श्वेत दिखायी देते हैं, समुद्रसे किनारेकी ओर जा रही है, यही वृश्चिकके प्रथम द्रेष्काणका रूप है। जिसके सब अङ्ग सर्पोंसे ढके हैं और आकृति कछुएके समान है तथा जो स्वामीके लिये सुखकी इच्छा करनेवाली है; ऐसी स्त्री वृश्चिकका दूसरा द्रेष्काण है। मलयगिरिका निवासी सिंह, जिसकी मुखाकृति कछुए-जैसी है, कुत्ते, शूकर और हरिन आदिको डरा रहा है, वही वृश्चिक-का तीसरा द्रेष्काण है ॥ ३६०–३६२ ॥ मनुष्यके समान मुख, घोड़े-जैसा शरीर, हाथमें धनुष लेकर तपस्वी और यज्ञों-की रक्षा करनेवाला पुरुष धनुराशिका प्रथम द्रेष्काण है। चम्पापुष्पके समान कान्तिवाली, आसनपर बैठी हुई, समुद्र-के रत्नोंको बढ़ानेवाली, मझोले कदकी स्त्री धनुका दूसरा द्रेष्काण है। दाढ़ी-मूँछ बढ़ाये, आसनपर बैठा हुआ, चम्पा-पुष्पके सदृश कान्तिमान्, दण्ड, पट्ट-वस्त्र और मृगचर्म धारण करनेवाला पुरुष धनुका तीसरा द्रेष्काण है। मगरके समान दाँत, रोएँसे भरा शरीर तथा सूअर-जैसी आकृतिवाला पुरुष मकरका प्रथम द्रेष्काण है। कमलदलके समान नेत्रों-वाली, आभूषण-प्रिया श्यामा स्त्री मकरका दूसरा द्रेष्काण है। हाथमें धनुष, कम्बल, कलश और कवच धारण करनेवाला किन्नरके समान पुरुष मकरका तीसरा द्रेष्काण है। ॥ ३६३–३६६ ॥ गीधके समान मुख, तेल, घी और मधु पीनेकी इच्छावाला, कम्बलधारी पुरुष कुम्भका प्रथम द्रेष्काण है। हाथमें लोहा, शरीरमें आभूषण तथा मस्तकपर भाँड़ (बर्तन) लिये मलिन वस्त्र पहनकर जली गाड़ीपर बैठी हुई स्त्री कुम्भका दूसरा द्रेष्काण है। कानमें बड़े-बड़े रोम, शरीरमें श्याम कान्ति, मस्तकपर किरीट तथा हाथमें फल-पत्र धारण करनेवाला बर्तनका व्यापारी कुम्भका तीसरा द्रेष्काण है। भूषण बनानेके लिये नाना प्रकारके रत्नोंको हाथमें लेकर समुद्रमें नौकापर बैठा हुआ पुरुष मीनका प्रथम द्रेष्काण है। जिसके मुखकी कान्ति चम्पाके पुष्पके सदृश मनोहर है, वह अपने परिवारके साथ नौकापर बैठकर समुद्रके बीचसे तटकी ओर आती हुई स्त्री मीनका दूसरा द्रेष्काण है। गड्ढेके समीप तथा चोर और अग्निसे पीड़ित होकर रोता हुआ, सर्पसे वेष्टित, नग्न शरीरवाला पुरुष मीन राशिका तीसरा द्रेष्काण है। इस प्रकार मेषादि बारहों राशियोंमें होनेवाले छत्तीस द्रेष्काणोंके रूप क्रमसे बताये गये हैं। मुनिश्रेष्ठ नारद ! यह संक्षेपमें जातक नामक स्कन्ध कहा गया है। अब लोक-व्यवहारके लिये उपयोगी संहितास्कन्धका वर्णन सुनो—॥ ३६७–३७० ॥ (पूर्वभाग द्वितीय पाद अध्याय ५५)

त्रिस्कन्ध ज्यौतिषका संहिताप्रकरण (विविध उपयोगी विषयोंका वर्णन)

सनन्दनजी बोले—नारदजी ! चैत्रादि मासोंमें क्रमशः मेषादि राशियोंमें सूर्यकी संक्रान्ति होती है *। चैत्र शुक्ल प्रतिपदाके आरम्भमें जो वार (दिन) हो, वही ग्रह उस (चान्द्र) वर्षका राजा होता है। सूर्यके मेषराशिप्रवेशके समय जो वार हो, वह सेनापति (या मन्त्री) होता है। कर्क राशिकी संक्रान्तिके समय जो वार हो, वह सस्य (धान्य) का अधिपति होता है। उक्त वर्ष आदिका अधिपति यदि सूर्य हो तो वह मध्यम (शुभ और अशुभ दोनों) फल देता है। चन्द्रमा हो तो उत्तम फल देता है। मङ्गल अधिपति हो तो अनिष्ट (अशुभ) फल देनेवाला होता है। बुध, गुरु और शुक्र—ये तीनो अति उत्तम (शुभ) फलकी प्राप्ति करानेवाले होते हैं। शनि अधिपति हो तो अशुभ फल होता है। इन ग्रहोंके बलाबल देखकर तदनुसार इनके न्यून या पूर्ण फल समझने चाहिये ॥ १–३ ॥

(धूमकेतु—पुच्छलतारा आदिके फल—) यदि कदाचित् कहींसे सूर्य-मण्डलमें दण्ड (लाठी), कबन्ध (मस्तक-हीन शरीर) कौआ या कीलके आकारवाले केतु (चिह्न) देखनेमें आवे, तो वहाँ व्याधि, भ्रान्ति तथा चोरोंके उपद्रवसे धनका नाश होता है। छत्र, ध्वज, पताका या सजल मेघ-खण्डसदृश अथवा स्फुलिङ्ग (अग्निकण) सहित धूम सूर्य-मण्डलमें दीख पड़े, तो उस देशका नाश होता है। शुक्ल, लाल, पीला अथवा काला सूर्यमण्डल दीखनेमें आवे, तो क्रमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णोंको पीड़ा होती है। मुनिवर ! यदि दो, तीन या चार प्रकारके रंग सूर्य-मण्डलमें दीख पड़ें, तो राजाओंका नाश होता है। यदि सूर्यकी ऊर्ध्वगामिनी किरण लाल रंगकी दीख पड़े, तो सेनापतिका नाश होता है। यदि उसका पीला वर्ण हो तो राजकुमारका, श्वेत वर्ण हो तो राजपुरोहितका तथा उसके अनेक वर्ण हो तो प्रजाजनोंका नाश होता है। इसी तरह धूम्र वर्ण हो तो राजाका और पिशङ्ग (कपिल) वर्ण हो तो मेघका नाश होता है। यदि सूर्यकी उक्त किरणें नीचेकी ओर हो, तो संसारका नाश होता है ॥ ४–७½ ॥

सूर्य शिशिर ऋतु (माघ फाल्गुन) में [illegible] (लाल) दीख पड़े, तो संसारके लिये शुभ ([illegible]) होता है। ऐसे ही वसन्त (चैत्र-वैशाख) में [illegible], ग्रीष्ममें पाण्डु (श्वेत-पीत-मिश्रित)-वर्ण, वर्षामें [illegible], शरद्-ऋतुमें कमलवर्ण तथा हेमन्तमें [illegible] दिखायी दे, तो उसे शुभप्रद समझना चाहिये। [illegible] नारद ! यदि शीतकालमें (अगहनसे फाल्गुनतक) सूर्य-बिम्ब पीला, वर्षामें (श्रावणसे कार्तिकतक) श्वेत ([illegible]) तथा ग्रीष्ममें (चैत्रसे आषाढ़तक) [illegible] पड़े, तो क्रमसे रोग, अनावृष्टि तथा भय उपस्थित करनेवाला होता है। यदि कदाचित् सूर्यका [illegible] इन्द्रधनुषके सदृश दीख पड़े तो राजाओंमें [illegible] बढ़ता है। खरगोशके रक्तके सदृश सूर्यका [illegible] हो तो शीघ्र ही राजाओंमें महायुद्ध प्रारम्भ होता है। यदि [illegible] वर्ण मोरकी पाँखके समान हो, तो वहाँ बारह वर्षतक [illegible] नहीं होती है। यदि सूर्य कभी चन्द्रमाके समान [illegible] दे, तो वहाँके राजाको जीतकर दूसरा राजा राज्य करता है। यदि सूर्य श्याम रंगका दीख पड़े तो [illegible] भय होता है। भस्म समान दीख पड़े तो समूचे राष्ट्रपर भय उपस्थित होता है और यदि सूर्यमण्डलमें छिद्र दिखायी दे तो [illegible] सबसे बड़े सम्राट्की मृत्यु होती है। [illegible] वाला सूर्य देखनेसे भूखमरीका भय उपस्थित करता है। [illegible] सदृश आकारवाला सूर्य ग्राम तथा नगरोंका नाश करता है। छत्राकार सूर्य उदित हो तो [illegible] नाश और [illegible] खण्डित दीख पड़े तो राजाका नाश होता है ॥ ८–१४ ॥

यदि सूर्योदय या सूर्यास्तके समय बिजलीकी [illegible] और वज्रपात एवं उल्कापात हो तो [illegible] राजाओंमें परस्पर युद्ध होता है। यदि [illegible] दिनतक दिनमें सूर्यपर तथा रातमें चन्द्रमापर परिवेष ([illegible]) हो अथवा उदय और अस्त-समयमें [illegible] दिखायी दे, तो राजाका परिवर्तन होता है ॥ [illegible] ॥ उदय या अस्तके समय यदि सूर्य [illegible] या गदहे, ऊँट आदिके सदृश [illegible] खण्डित-सा प्रतीत हो, तो राजाओंमें युद्ध होता है ॥ [illegible] ॥

(चन्द्रशृङ्गोन्नति-फल—) [illegible]

---

* जैसे मेषमें सूर्यके रहते जो अमावास्या होती है, वहाँ चैत्र-की समाप्ति समझी जाती है एवं वृषादिके सूर्यमें वैशाखादि मास समझना चाहिये।

(द्वितीया-तिथिको उदयकालमें) चन्द्रमाका दक्षिण शृङ्ग उन्नत (ऊपर उठा) हो, तो वह शुभप्रद होता है। मिथुन और मकरमें यदि उत्तर शृङ्ग उन्नत हो, तो उसे श्रेष्ठ समझना चाहिये। कुम्भ और वृषमें यदि दोनों शृङ्ग सम हों तो शुभ है। कर्क और धनुमे यदि शृङ्ग शरसदृश हो, तो शुभ है। वृश्चिक और सिंहमें भी धनुष-सदृश हो तो शुभ है तथा तुला और कन्यामे यदि चन्द्रमाका शृङ्ग शूलके सदृश दीख पड़े तो शुभ फल समझना चाहिये। इससे विपरीत स्थितिमें चन्द्रमाका उदय हो, तो उस मासमे पृथ्वीपर दुर्भिक्ष, राजाओंमें परस्पर विरोध तथा युद्ध आदि अशुभ फल प्रकट होते हैं ॥ १८-१९½ ॥

पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ़, मूल और ज्येष्ठा—इन नक्षत्रोंमें चन्द्रमा यदि दक्षिण दिशामें हो* तो जलचर, वनचर और सर्पका नाश तथा अग्निका भय होता है। विशाखा और अनुराधामे यदि दक्षिणभागमें हो तो पापफल देनेवाला होता है। मघा और विशाखामें यदि चन्द्रमा मध्यभागमें होकर चले तो भी सौम्य (शुभ) प्रद होता है। रेवतीसे मृगशिरापर्यन्त ६ नक्षत्र 'अनागत', आर्द्रासे अनुराधापर्यन्त बारह नक्षत्र 'मध्ययोगी' और वासव (ज्येष्ठा) से नौ नक्षत्र 'गतयोगी' हैं। इनमे भी चन्द्रमा उत्तर भागमें रहनेपर शुभप्रद होता है ॥ २०—२२½ ॥

भरणी, ज्येष्ठा, आश्लेषा, आर्द्रा, शतभिषा और स्वाती—ये अर्धभोग (४०० कला), ध्रुव (तीनों उत्तरा, रोहिणी), पुनर्वसु और विशाखा—ये सार्धैकभोग (१२०० कला) तथा अन्य नक्षत्र सम (पूर्ण) भोग (८०० कला) हैं†। साधारणतया चन्द्रमाकी दक्षिण शृङ्गोन्नति अशुभ और उत्तर शृङ्गोन्नति शुभप्रद है। तिथिके अनुसार चन्द्रमामें शुक्ल न होकर यदि शुक्लतामे हानि (कमी) हो, तो प्रजाके कार्योंमे हानि और शुक्लतामें वृद्धि (अधिकता) हो, तो प्रजाजनकी वृद्धि होती है*। समतामे समता समझनी चाहिये। यदि चन्द्रमाका बिम्ब मध्यम मानसे विशाल (बड़ा) देखनेमें आवे तो सुभिक्षकारक (सस्ती लानेवाला) और छोटा दीख पड़े तो दुर्भिक्षकारक (महँगी या अकाल लानेवाला) होता है। चन्द्रमाका शृङ्ग अधोमुख हो, तो शस्त्रका भय लाता है। दण्डाकार हो तो कलह (राजा-प्रजामें युद्ध) होता है। चन्द्रमाका शृङ्ग अथवा बिम्ब मङ्गलादि ग्रहों (मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र तथा शनि) से आहत (भेदित) दीख पड़े तो क्रमशः क्षेम, अन्नादि, वर्षा, राजा और प्रजाका नाश होता है ॥ २३—२६½ ॥

(भौम-चार-फल—) जिस नक्षत्रमें मङ्गलका उदय हो, उससे सातवे, आठवें या नवे नक्षत्रमे वक्र हो तो वह 'उष्ण' नामक वक्र होता है। उसमे प्रजाको पीड़ा और अग्निका भय प्राप्त होता है। यदि उदयके नक्षत्रसे दसवें, ग्यारहवें तथा बारहवें नक्षत्रमे मङ्गल वक्र हो तो वह 'अश्रमुख' नामक वक्र होता है। उसमे अन्न और वर्षाका नाश होता है। यदि तेरहवें या चौदहवें नक्षत्रमें वक्र हो तो 'व्यालमुख' वक्र कहलाता है। उसमें भी अन्न और वर्षाका नाश होता है। पन्द्रहवें या सोलहवें नक्षत्रमें वक्र हो तो 'रुधिरमुख' वक्र कहलाता है। उसमें मङ्गल दुर्भिक्ष, क्षुधा तथा रोगको बढाता है। १७ वे या १८ वें नक्षत्रमे वक्र हो तो वह 'मुसल' नामक वक्र होता है। उससे धन-धान्यका नाश तथा दुर्भिक्षका भय होता है। यदि मङ्गल पूर्वाफाल्गुनी या उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें उदित होकर उत्तराषाढमे वक्र हो तथा रोहिणीमे अस्त हो तो तीनों लोकोंके लिये नाशकारी होता है। यदि मङ्गल श्रवणमें उदित होकर पुष्यमे वक्रगति हो तो धनकी हानि करनेवाला होता है ॥ २७—३३ ॥

मङ्गल जिस दिशामे उदित होता है, उस दिशाके राजाके लिये भयकारक होता है। यदि मघा-नक्षत्रके मध्य होकर चलता हुआ मङ्गल उसीमें वक्र हो जाय तो अवर्षण (वर्षाका अभाव) और शस्त्रका भय लाता है तथा राजाके लिये विनाशकारी होता है। यदि मङ्गल मघा, विशाखा या रोहिणीके योगताराका भेदन

* दिशाका ज्ञान तात्कालिक शरके ज्ञानसे होता है। इसकी विधि पृष्ठ २३६ में देखिये।

† राशि-मण्डलमें सब नक्षत्रोंका भोग ८०० कलाके बराबर है। परन्तु प्रत्येक नक्षत्रविभागमें योगताराका स्थान जहाँ पड़ता है, वहाँ उसका भोग-स्थान कहलाता है। वह छ. नक्षत्रोंमें मध्यभागमें पड़ता है और छ. नक्षत्रोंमें आगे बढ जाता है। जिसका वास्तविक मान क्रमसे ३९५ कला १७ विकला और ११८५ कला ५२ विकला हैं, जो स्वल्पान्तरमे ४०० और १२०० मान लिये गये हैं। क्रमश इन्हें ही अनागत और गतयोगी कहा गया है। शेष नक्षत्रोंके भोगस्थान अन्तिमागमें ही पड़ते हैं, अत इनके मान ८०० कला हैं। ये ही मध्ययोगी हैं।

* प्रतिपदाके अन्तमें (शुक्ल-द्वितीयारम्भमें) चन्द्रमा दृश्य हो तो समता, उससे पश्चात् दृश्य हो तो हानि और पूर्व दृश्य हो तो वृद्धि समझी जाती है।

करके चले तो दुर्भिक्ष, मरण तथा रोग लानेवाला होता है। उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तर भाद्रपद, रोहिणी, मूल, श्रवण और मृगशिरा—इन नक्षत्रोंके बीचमें तथा रोहिणीके दक्षिण होकर मङ्गल चले तो अनावृष्टिकारक होता है। मङ्गल सब नक्षत्रोंके उत्तर होकर चले तो शुभप्रद है और दक्षिण होकर चले तो अशुभ फल देनेवाला तथा प्रजामें कलह उत्पन्न करनेवाला होता है ॥ ३४—३७½ ॥

(बुध-चार-फल—) यदि कदाचित् आँधी, मेघ आदि उत्पात न होनेपर (शुद्ध आकाशमें) भी बुधका उदय देखनेमें न आवे तो अनावृष्टि, अग्निभय, अनर्थ और राजाओंमें युद्धकी सम्भावना समझनी चाहिये। धनिष्ठा, श्रवण, उत्तराषाढ, मृगशिरा और रोहिणीमें चलता हुआ बुध यदि उन नक्षत्रोंके योगताराओंका भेदन करे तो वह लोकमें बाधा और अनावृष्टि आदिके द्वारा भयकारी होता है। यदि आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा और मघा—इन नक्षत्रोंमें बुध दृश्य हो तो दुर्भिक्ष, कलह, रोग तथा अनावृष्टि आदिका भय उपस्थित करनेवाला होता है। हस्तसे छः (हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा तथा ज्येष्ठा) नक्षत्रोंमें बुधके रहनेसे लोकमें कल्याण, सुभिक्ष तथा आरोग्य होता है। उत्तर भाद्रपद, उत्तरा फाल्गुनी, कृत्तिका और भरणीमें विचरनेवाला बुध वैद्य, घोड़े और व्यापारियोंका नाश करनेवाला होता है। पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढ और पूर्व भाद्रपदमें विचरता हुआ बुध यदि इन नक्षत्रोंके योगताराओंका भेदन करे तो क्षुधा, शस्त्र, अग्नि और चोरोंसे प्राणियोंको भय प्राप्त होता है ॥ ३८—४३½ ॥

भरणी, कृत्तिका, रोहिणी और स्वाती—इन नक्षत्रोंमे बुधकी गति 'प्राकृतिकी' कही गयी है। आर्द्रा, मृगशिरा, आश्लेषा और मघा—इन नक्षत्रोंमें बुधकी गति [illegible] मानी गयी है। पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, [illegible] पुनर्वसु—इनमें बुधकी '[illegible]' गति कही गयी। [illegible] भाद्रपद, उत्तर भाद्रपद, रेवती और अश्विनी—इनमें बुध की 'तीक्ष्णा' गति होती है। उत्तराषाढ़, पूर्वाषाढ़ और [illegible] उनकी 'योगान्तिका' गति मानी गयी है। [illegible] धनिष्ठा और शतभिषामें 'घोरा' गति और विशाखा, [illegible] तथा हस्त—इन नक्षत्रोंमें बुधकी '[illegible]' गति होती है। इन प्राकृत आदि सात प्रकारकी गतियोंमें [illegible] जितने दिनतक बुध दृश्य रहता है, उतने ही दिन उसके [illegible] होनेपर अदृश्य रहता है। उन दिनोंकी संख्या क्रमशः ४०, ३०, २२, १८, ९, १५ और ११ है। बुध जब प्राकृत गतिमें रहता है, तब संसारमें कल्याण, आरोग्य और सुभिक्ष (अन्न-वस्त्र आदिकी वृद्धि) करता है। मिश्र और [illegible] गतिमें मध्यम फल देता है तथा अन्य गतियोंमें अनावृष्टि (दुर्भिक्ष) कारक होता है। वैशाख, श्रावण, पौष और आषाढ़में उदित होनेपर बुध पापरूप फल देता है और अन्य मासोंमें उदित होनेपर वह शुभ फल देता है। आश्विन और कार्तिकमें बुधका उदय हो तो शस्त्र, दुर्भिक्ष और अग्निका भय प्राप्त होता है। यदि उदित हुए बुधकी कान्ति चाँदी अथवा स्फटिकके समान स्वच्छ हो तो वह [illegible] होता है ॥ ४४—५२ ॥

(बृहस्पति-चार-फल—) कृत्तिका आदि दो दो नक्षत्रोंके आश्रयसे कार्तिक आदि मास होते हैं, परन्तु अन्तिम (आश्विन), पञ्चम (फाल्गुन) और [illegible] (भाद्रपद)—ये तीन नक्षत्रोंसे पूर्ण होते हैं*। इसी प्रकार बृहस्पतिका जिन नक्षत्रोंमें उदय होता है, उन नक्षत्रोंके

* कृत्तिका आदि नक्षत्रोंमें पूर्णिमा होनेसे मासोंके कार्तिक आदि नाम होते हैं। नीचे चक्रमें देखिये—

कार्तिक	मार्गशीर्ष	पौष	माघ	फाल्गुन	चैत्र	वैशाख	ज्येष्ठ	आषाढ़	श्रावण	भाद्रपद	आश्विन
कृत्तिका रोहिणी	मृगशिरा आर्द्रा	पुनर्वसु पुष्य	आश्लेषा मघा	पूर्वाफाल्गुनी उत्तराफाल्गुनी हस्त	चित्रा स्वाती	विशाखा अनुराधा	ज्येष्ठा मूल	पूर्वाषाढ़ उत्तराषाढ़	श्रवण धनिष्ठा	शतभिषा पूर्वभाद्रपद उत्तरभाद्रपद	रेवती अश्विनी भरणी
२	२	२	२	३	२	२	२	२	२	३	३

(मासके अनुसार ही) संवत्सरोंके नाम होते हैं। उन संवत्सरोंमें कार्तिक और मार्गशीर्ष नामक संवत्सर प्राणियोंके लिये अशुभ फलदायक होते हैं। पौष और माघ नामक संवत्सर शुभ फल देनेवाले होते हैं। फाल्गुन और चैत्र नामक संवत्सर मध्यम (शुभ-अशुभ दोनों) फल देते हैं। वैशाख शुभप्रद और ज्येष्ठ मध्यम फल देनेवाला होता है। आषाढ़ मध्यम और श्रावण श्रेष्ठ होता है तथा भाद्रपद भी कभी श्रेष्ठ होता है और कभी नहीं होता; परंतु आश्विन संवत्सर तो प्रजाजनोंके लिये अत्यन्त श्रेष्ठ होता है। मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार संवत्सरोंका फल समझना चाहिये ॥ ५३—५५½ ॥

बृहस्पति जब नक्षत्रोंके उत्तर होकर चलता है, तब संसारमें कल्याण, आरोग्य तथा सुभिक्ष करनेवाला होता है। जब नक्षत्रोंके दक्षिण होकर चलता है, तब विपरीत परिणाम (अशुभ, रोगवृद्धि तथा दुर्भिक्ष) उपस्थित करता है तथा जब मध्य होकर चलता है, उस समय मध्यम फल प्रस्तुत करता है। गुरुका बिम्ब यदि पीतवर्ण, अग्निसदृश, श्याम, हरित और लाल दिखायी दे तो प्रजाजनोंमें क्रमशः व्याधि, अग्नि, चोर, शस्त्र और अस्त्र*का भय उपस्थित होता है। यदि गुरुका वर्ण धूएँके समान हो तो वह अनावृष्टिकारक होता है। यदि गुरु दिनमें (प्रातः-सायं छोड़कर) दृश्य हो तो राजाका नाश, रोगभय अथवा राष्ट्रका विनाश होता है। कृत्तिका तथा रोहिणी ये संवत्सरके शरीर हैं। पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ ये दोनों नाभि हैं, आर्द्रा हृदय और मघा संवत्सरका पुष्प है। यदि शरीर पापग्रहसे पीड़ित हो तो दुर्भिक्ष, अग्नि और वायुका भय उपस्थित होता है। नाभि पापग्रहसे युक्त हो तो क्षुधा और तृषासे पीडा होती है। पुष्प पापग्रहसे आक्रान्त हो तो मूल और फलोंका नाश होता है। यदि हृदय-नक्षत्र पापग्रहसे पीडित हो तो अन्नादिका नाश होता है। शरीर आदि शुभग्रहसे संयुक्त हों तो सुभिक्ष और कल्याणादि शुभ फल प्राप्त होते हैं ॥ ५६—६१ ॥ यदि मघा आदि नक्षत्रोंमें बृहस्पति हो तो वह क्रमशः शस्य-वृद्धि, प्रजामे आरोग्य, युद्ध, अनावृष्टि, द्विजातियोको पीड़ा, गौओंको सुख, राजाओंको सुख, स्त्री-समाजको सुख, वायुका अवरोध, अनावृष्टि, सर्पभय, सुवृष्टि, स्वास्थ्य, उत्सववृद्धि, महार्घ, सम्पत्तिकी वृद्धि, देशका नाश, अतिवृष्टि, निर्वैरता, रोग-वृद्धि, भयकी हानि, रोग-भय, अन्नकी वृद्धि, वर्षा, रोगकी वृद्धि, धान्यकी वृद्धि और अनावृष्टिरूप फल देता है ॥ ६२—६४ ॥

(शुक्र-चार-फल—)शुक्रके तीन मार्ग हैं— सौम्य (उत्तर), मध्य और याम्य (दक्षिण)। इनमेंसे प्रत्येकमें तीन-तीन वीथियाँ हैं और एक-एक वीथीमे बारी-बारीसे तीन-तीन नक्षत्र आते हैं। इन नक्षत्रोंको अश्विनीसे आरम्भ करके जानना चाहिये। इस प्रकार उत्तरसे दक्षिणतक शुक्रके मार्गमें क्रमशः नाग, इभ, ऐरावत, वृष, उष्ट्र, खर, मृग, अज तथा दहन—ये नौ वीथियाँ हैं† ॥ ६५-६६ ॥ उत्तरमार्गकी तीन वीथियोंमें विचरण करनेवाला शुक्र धान्य, धन, वृष्टि और शस्य (अन्नकी फसल)—इन सब वस्तुओंको पुष्ट एवं परिपूर्ण करता है। मध्यमार्गकी जो तीन वीथियाँ हैं, उनमें शुक्रके जानेसे सब अशुभ ही फल प्राप्त होते हैं। मघासे पाँच नक्षत्रोंमें जब शुक्र जाता है तो पूर्व दिशामें उठा हुआ मेघ सुवृष्टि-

* जो हाथमें धारण किये हुए ही चलाया जाता है, वह शस्त्र है; जैसे तलवार आदि; तथा जो हाथसे फेंककर चलाया जाता है, वह अस्त्र कहलाता है, जैसे बाण और बंदूककी गोली आदि।

† शुक्रके ३ मार्ग और ९ वीथियाँ इस प्रकार हैं—

मार्ग	सौम्य १			मध्यम २			याम्य ३		
नक्षत्र	अश्विनी भरणी कृत्तिका	रोहिणी मृगशिरा आर्द्रा	पुनर्वसु पुष्य आश्लेषा	मघा पूर्वाफाल्गुनी उत्तराफाल्गुनी	हस्त चित्रा स्वाती	विशाखा अनुराधा ज्येष्ठा	मूल पूर्वाषाढ उत्तराषाढ	श्रवण धनिष्ठा शतभिषा	पूर्व भाद्रपद उत्तर भाद्रपद रेवती
वीथी	१ नाग	२ इभ	३ ऐरावत	४ वृष	५ उष्ट्र	६ खर	७ मृग	८ अज	९ दहन

कारक तथा शुभप्रद होता है। स्वातीसे तीन नक्षत्रतक जब शुक्र रहता है, तब पश्चिम दिशा (देश)में मेघ सुवृष्टिकारक और शुभदायक होता है। शेष सब नक्षत्रोंमें उसका फल विपरीत (अनावृष्टि और दुर्भिक्ष करनेवाला) होता है। शुक्र जब बुधके साथ रहता है तो सुवृष्टिकारक होता है। कृष्णपक्ष-की अष्टमी, चतुर्दशी और अमावास्यामें यदि शुक्रका उदय या अस्त हो तो पृथ्वी जलसे परिपूर्ण होती है। गुरु और शुक्र परस्पर सप्तम राशिमें हों तथा एक पूर्व वीथीमें और दूसरा पश्चिम वीथीमें विद्यमान हो तो वे दोनों देशमें अनावृष्टि तथा दुर्भिक्ष लानेवाले और राजाओंमें परस्पर युद्ध करानेवाले होते हैं। मङ्गल, बुध, गुरु और शनि यदि शुक्रसे आगे होते हैं तो युद्ध, अतिवायु, दुर्भिक्ष और अनावृष्टि करनेवाले होते हैं ॥ ६७—७२ ॥ पूर्वाषाढ़, अनुराधा, उत्तरा फाल्गुनी, आश्लेषा, ज्येष्ठा—इन नक्षत्रोंमें शुक्र हो तो वह सुभिक्षकारक होता है। मूलमें हो तो शस्त्र-भय और अनावृष्टि देनेवाला होता है। उत्तर भाद्रपद और रेवतीमें शुक्रके रहनेपर भय प्राप्त होता है ॥ ७३ ॥

(**शनि-चार-फल**—) श्रवण, स्वाती, हस्त, आर्द्रा, भरणी और पूर्वा फाल्गुनी—इन नक्षत्रोंमें विचरनेवाला शनि मनुष्योंके लिये सुभिक्ष, आरोग्य तथा खेतीकी उपज बढ़ाने-वाला होता है ॥ ७४ ॥ जन्मनक्षत्रसे प्रारम्भ करके मनुष्या-कृति शनि-चक्रके मुखमें एक, गुदामें दो, सिरमें तीन, नेत्रों-में दो, हृदयमें पाँच, बायें हाथमें चार, बायें पैरमें तीन, दक्षिण पादमें तीन तथा दक्षिण हाथमें चार—इस तरह नक्षत्रोंकी स्थापना करे। शनिका वर्तमान नक्षत्र जिस अङ्गमें पड़े, उसका फल निम्नलिखितरूपसे जानना चाहिये। शनि-नक्षत्र मुखमें हो तो रोग, गुदामें हो तो लाभ, सिरमें हो तो हानि, नेत्रमें हो तो लाभ, हृदयमें हो तो सुख, बायें हाथमें हो तो बन्धन, बायें पैरमें हो तो परिश्रम, दाहिने पैरमें हो तो श्रेष्ठ यात्रा और दाहिने हाथमें हो तो धन-लाभ होता है। इस प्रकार क्रमशः फल कहे गये हैं ॥ ७५—७७ ॥ बहुधा वक्रगामी होनेपर शनि इन फलोंकी प्राप्ति कराता ही है। यदि वह सम मार्गपर हो तो फल भी मध्यम होता है और यदि वह शीघ्रगति हो तो उत्तम फल प्राप्त होते हैं ॥ ७८ ॥

(**राहु-चार-फल**—) भगवान् विष्णुने अपने चक्रसे राहुका मस्तक काट दिया तो भी अमृत पी लेनेके कारण उसकी मृत्यु नहीं हुई; अतः उसे ग्रहके पदपर प्रतिष्ठित कर लिया गया ॥ ७९ ॥ वह ब्रह्माजीके वरसे सम्पूर्ण पर्वों (पूर्णिमा और अमावास्या) के समय चन्द्रमा और सूर्यको पीड़ा देता है; किन्तु 'शर' तथा 'अवनति' अधिक होनेके कारण वह उन दोनोंसे दूर ही रहता है ॥ ८० ॥ एक सूर्यग्रहणके बाद दूसरे सूर्यग्रहणका तथा एक चन्द्रग्रहणके बाद दूसरे चन्द्रग्रहण-का विचार छः मासपर पुनः कर लेना चाहिये। प्रति छः मासपर क्रमशः ब्रह्मादि सात देवता पर्वेश (ग्रहणके अधिपति) होते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—ब्रह्मा, चन्द्रमा, इन्द्र, कुबेर, वरुण, अग्नि तथा यम। ब्राह्मपर्वमें ग्रहण होनेपर पशु, धान्य और द्विजोंकी वृद्धि होती है ॥ ८१-८२ ॥ चन्द्रपर्वमें ग्रहण हो तो भी ऐसा ही फल होता है; विशेषता इतनी ही है कि लोगोंको कफसे पीड़ा होती है। इन्द्रपर्वमें ग्रहण होनेपर राजाओंमें विरोध, जगत्‌में दुःख तथा खेती-बारीका नाश होता है। वारुणपर्वमें ग्रहण होनेपर राजाओंका अमङ्गल और प्रजाजनोंका कल्याण होता है ॥ ८३-८४ ॥ अग्निपर्वमें ग्रहण हो तो वृष्टि, धान्यवृद्धि तथा कल्याणकी प्राप्ति होती है और यमपर्वमें ग्रहण होनेपर वर्षाका अभाव, खेतीकी हानि तथा दुर्भिक्षरूप फल प्राप्त होते हैं ॥ ८५ ॥ वेलाहीन समयमें अर्थात् वेलासे पहले ग्रहण हो तो खेतीकी हानि तथा राजाओंको दारुण भय प्राप्त होता है। और 'अतिवेल' कालमें अर्थात् वेला बिताकर ग्रहण हो* तो फूलोंकी हानि होती है, जगत्‌में भय होता है और खेती चौपट हो जाती है ॥ ८६ ॥ जब एक ही मासमें चन्द्रमा-सूर्य—दोनोंका ग्रहण हो तो राजाओंमें विरोध होता है तथा धन और वृष्टिका विनाश होता है ॥ ८७ ॥ ग्रहण लगे हुए चन्द्रमा और सूर्यका उदय अथवा अस्त हो तो वे राजाओं और धान्योंका विनाश करने-वाले होते हैं। यदि चन्द्रमा और सूर्यका सर्वग्रास ग्रहण हो तो वे भूखमरी, रोग तथा अग्निका भय उपस्थित करने-वाले होते हैं ॥ ८८ ॥ उत्तरायणमें ग्रहण हो तो ब्राह्मणों और क्षत्रियोंकी हानि होती है तथा दक्षिणायनमें ग्रहण होनेपर अन्य वर्णके लोगोंको हानि पहुँचती है। सूर्य या चन्द्रमाके बिम्बके उत्तर, पूर्व आदि भागमें यदि राहुका दर्शन हो (ग्रहण देखनेमें आवे) तो वह क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंको हानि पहुँचाता है ॥ ८९ ॥ इसी तरह ग्रहणके ग्रास और मोक्षके भी दस दस भेद होते हैं; जिनको ठीक-ठीक देवता भी नहीं जान सकते, फिर साधारण मनुष्योंकी क्या बात है।

---

* गणितसे ग्रहणका जो समय प्राप्त होता है, उससे पहले ग्रहण होना 'वेलाहीन' है और उसके विलम्बसे जो ग्रहण होता है, वह 'अतिवेल' कहलाता है।

क्या है ॥ ९० ॥ गणितद्वारा ग्रहोंको लाकर उनके 'चार' (गतिमान, स्पर्श और मोक्ष कालकी स्थिति) पर विचार करना चाहिये। जिससे उन ग्रहोंद्वारा ग्रहणकालके शुभ और अशुभ लक्षण (फल) को हम देख और जान सकें ॥९१॥ अतः बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि उस समयका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये अनुसंधान करे। धूम-केतु आदि तारोंका उदय और अस्त मनुष्योंके लिये उत्पातरूप होता है ॥ ९२ ॥ वे उत्पात दिव्य, भौम और आन्तरिक्ष भेदसे तीन प्रकारके हैं। वे शुभ और अशुभ दोनों प्रकारके फल देनेवाले हैं। आकाशमें यज्ञकी ध्वजा, अस्त्र-शस्त्र, भवन और बड़े हाथीके सदृश तथा खंभा, त्रिशूल और अङ्कुश—इन वस्तुओंके समान जो केतु दिखायी देते हैं, उन्हें 'आन्तरिक्ष' उत्पात कहते हैं। साधारण ताराके समान उदित होकर किसी नक्षत्र-के साथ केतु हो तो 'दिव्य' उत्पात कहा गया है। भूलोकसे सम्बन्ध रखनेवाले (भूकम्प आदि) उत्पातोंको 'भौम' उत्पात कहते हैं ॥ ९३-९४ ॥ केतुतारा एक होकर भी प्राणियोंको अशुभ फल देनेके लिये भिन्न-भिन्न रूप धारण करता है। जितने दिनोंतक आकाशमें विविधरूपधारी केतु देखनेमें आता है, उतने ही मास या सौर वर्षोंतक वह अपना शुभाशुभ फल देता है। जो दिव्य केतु हैं, वे सदा प्राणियों-को विविध फल देनेवाले होते हैं ॥ ९५-९६ ॥ ह्रस्व, चिकना और प्रसन्न (स्वच्छ) श्वेत रङ्गका केतु सुवृष्टि देता है। शीघ्र अस्त होनेवाला विशाल केतु अवृष्टि देता है ॥ ९७ ॥ इन्द्रधनुषके समान कान्तिवाला धूमकेतु तारा अनिष्ट फल देता है। दो, तीन या चार रूपोंमें प्रकट त्रिशूलके समान आकारवाला केतु राष्ट्रका विनाशक होता है ॥ ९८ ॥ पूर्व तथा पश्चिम दिशामें सूर्य-सम्बन्धी केतु मणि, हार एवं सुवर्णके समान देदीप्यमान दिखायी दे तो उन दिशाओंके राजाओं-की हानि होती है ॥ ९९ ॥ पलाश, बिम्बफल, रक्त और तोतेकी चोंच आदिके समान वर्णका केतु अग्निकोणमें उदित हो तो शुभ फल देनेवाला होता है ॥ १०० ॥ भूमिसम्बन्धी केतुओंकी कान्ति जल एवं तेलके समान होती है। वे भूखमरीका भय देनेवाले हैं। चन्द्रजनित केतुओंका वर्ण श्वेत होता है। वे सुभिक्ष और कल्याण प्रदान करनेवाले होते हैं ॥१०१॥ ब्रह्मदण्डसे उत्पन्न तथा तीन रंग और तीन अवस्थाओंसे युक्त धूमकेतु नामक पितामहजनित (आन्तरिक्ष) केतु प्रजाओंका विनाश करनेवाला माना गया है ॥ १०२ ॥ यदि ईशानकोणमें श्वेतवर्णके शुक्रजनित केतु उदित हों तो वे अनिष्ट फल देनेवाले होते हैं। शिखारहित एवं कनकनामसे प्रसिद्ध शनैश्चरसम्बन्धी केतु भी अनिष्ट फलदायक हैं ॥ १०३ ॥ गुरुसम्बन्धी केतुओंकी विकच संज्ञा है। वे दक्षिण दिशामें प्रकट होनेपर भी अभीष्ट-साधक माने गये हैं। उसी दिशामें सूक्ष्म तथा शुक्लवर्ण-वाले बुधसम्बन्धी केतु हो तो वे चोर तथा रोगका भय प्रदान करनेवाले हैं ॥ १०४ ॥ कुङ्कुमनामसे प्रसिद्ध मङ्गल-सम्बन्धी केतु लाल रंगके होते हैं। उनकी आकृति सूर्यके समान होती है। वे भी उक्त दिशामें उदित होनेपर अनिष्ट-दायक होते हैं। अग्निके समान कान्तिवाले अग्निसम्बन्धी केतु विश्वरूप नामसे प्रसिद्ध हैं। वे अग्निकोणमें उदित होनेपर सुखद होते हैं ॥ १०५ ॥ श्याम वर्णवाले सूर्यसम्बन्धी केतु अरुण कहलाते हैं। वे पाप अर्थात् दुःख देनेवाले होते हैं। रीछके समान रंगवाले शुक्रसम्बन्धी केतु शुभदायक होते हैं ॥ १०६ ॥ कृत्तिका तारामें उदित हुआ धूमकेतु निश्चय ही प्रजाजनोंका नाश करता है। राजमहल, वृक्ष और पर्वतपर प्रकट हुआ केतु राजाओंका नाश करनेवाला होता है ॥ १०७ ॥ कुमुद पुष्पके समान वर्णवाला कौमुद नामक केतु सुभिक्ष लानेवाला होता है। सन्ध्याकाल-में मस्तकसहित उदित हुआ गोलाकार केतु अनिष्ट फल देनेवाला होता है ॥ १०८ ॥

(कालमान—) ब्राह्म, दैव, मानव, पित्र्य, सौर, सावन, चान्द्र, नाक्षत्र तथा बार्हस्पत्य—ये नौ मान होते हैं ॥ १०९ ॥ इस लोकमें इन नौ मानोंमेंसे पाँचके ही द्वारा व्यवहार होता है। किंतु उन नवों मानोंका व्यवहारके अनुसार पृथक्-पृथक् कार्य बताया जायगा। ॥ ११० ॥ सौर मानसे ग्रहोंकी सब प्रकारकी गति (भगणादि) जाननी चाहिये। वर्षाका समय तथा स्त्रीके प्रसवका समय सावन मानसे ही ग्रहण किया जाता है ॥ १११ ॥ वर्षोंके भीतरका घटीमान आदि नाक्षत्र मानसे ही लिया जाता है। यज्ञोपवीत, मुण्डन, तिथि एवं वर्षेशका निर्णय तथा पर्व, उपवास आदिका निश्चय चान्द्र मानसे किया जाता है। बार्हस्पत्य मानसे प्रभवादि संवत्सरका स्वरूप ग्रहण किया जाता है ॥ ११२-११३ ॥ उन-उन मानोंके अनुसार बारह महीनो-का उनका अपना-अपना विभिन्न वर्ष होता है। बृहस्पतिकी अपनी मध्यम गतिसे प्रभव आदि नामवाले साठ संवत्सर होते हैं ॥ ११४ ॥ प्रभव, विभव, शुक्ल, प्रमोद, प्रजापति, अङ्गिरा, श्रीमुख, भाव, युवा, धाता, ईश्वर, बहुधान्य,

प्रमाथी, विक्रम, वृष, चित्रभानु, सुभानु, तारण, पार्थिव, व्यय, सर्वजित्, सर्वधारी, विरोधी, विकृत, खर, नन्दन, विजय, जय, मन्मथ, दुर्मुख, हेमलम्ब, विलम्ब, विकारी, शर्वरी, प्लव, शुभकृत्, शोभन, क्रोधी, विश्वावसु, पराभव, प्लवङ्ग, कीलक, सौम्य, समान, विरोधकृत्, परिभावी, प्रमादी, आनन्द, राक्षस, अनल, पिङ्गल, कालयुक्त, सिद्धार्थ, रौद्र, दुर्मति, दुन्दुभि, रुधिरोद्गारी, रक्ताक्ष, क्रोधन तथा क्षय—ये साठ संवत्सर जानने चाहिये । ये सभी अपने नामके अनुरूप फल देनेवाले हैं। पाँच वर्षोंका युग होता है। इस तरह साठ संवत्सरोंमें बारह युग होते हैं ॥ ११५-१२१ ॥ उन युगोंके स्वामी क्रमशः इस प्रकार जानने चाहिये—विष्णु, बृहस्पति, इन्द्र, लोहित, त्वष्टा, अहिर्बुध्न्य, पितर, विश्वेदेव, चन्द्रमा, इन्द्राग्नि, अश्विनीकुमार तथा भग। इसी प्रकार युगके भीतर जो पाँच वर्ष होते हैं, उनके स्वामी क्रमशः अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, ब्रह्मा और शिव हैं ॥ १२२-१२३ ॥

संवत्सरके राजा, मन्त्री तथा धान्येशरूप ग्रहोंके बलाबल-का विचार करके तथा उनकी तात्कालिक स्थितिको भी भलीभाँति जानकर संवत्सरका फल समझना चाहिये ॥ १२४ ॥ मकरादि छः राशियोंमें छः मासतक सूर्यके भोगसे सौम्यायन (उत्तरायण) होता है। वह देवताओंका दिन और कर्कादि छः राशियोंमें छः मासतक सूर्यके भोगसे दक्षिणायन होता है, वह देवताओंकी रात्रि है ॥ १२५ ॥ गृहप्रवेश, विवाह, प्रतिष्ठा तथा यज्ञोपवीत आदि शुभ कर्म माघ आदि उत्तरायण-के मासोंमें करने चाहिये ॥ १२६ ॥ दक्षिणायनमें उक्त कार्य गर्हित (त्याज्य) माना गया है, अत्यन्त आवश्यकता हो तो उस समय पूजा आदि यत्न करनेसे शुभ होता है*। माघसे दो-दो मासोंकी शिशिरादि छः ऋतुएँ होती हैं ॥ १२७ ॥ मकरसे दो-दो राशियोंमें सूर्यभोगके अनुसार क्रमशः शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म—ये तीन ऋतुएँ उत्तरायणमें होती हैं, और कर्कसे दो-दो राशियोंमें सूर्यभोगके अनुसार क्रमशः वर्षा, शरद् और हेमन्त—ये तीन ऋतुएँ दक्षिणायनमें होती हैं ॥ १२८ ॥ शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे अमावास्यातक 'चान्द्र मास' होता है। सूर्यकी एक संक्रान्तिसे दूसरी संक्रान्ति-तक 'सौर मास' होता है। तीस दिनोंका एक 'सावन मास' होता है, और चन्द्रमाद्वारा सब नक्षत्रोंके उपभोगमें जितने दिन लगते हैं उतने अर्थात् २७ दिनोंका एक 'नाक्षत्र मास' होता है ॥ १२९ ॥ मधु, माधव, शुक्र, शुचि, नभ, नभस्य, इष, ऊर्ज, सहा, सहस्य, तप और तपस्य—ये चैत्रादि बारह मासोंकी संज्ञाएँ हैं। जिस मासकी पौर्णमासी जिस नक्षत्रसे युक्त हो, उस नक्षत्रके नामसे ही उस मासका नाम करण होता है। (जैसे जिस मासकी पूर्णिमा चित्रा नक्षत्र से युक्त होती है, उस मासका नाम 'चैत्र' होता है और वह पौर्णमासी भी उसी नामसे विख्यात होती है, जैसे चैत्री, वैशाखी आदि।) प्रत्येक मासके दो पक्ष क्रमशः देव पक्ष और पितृपक्ष हैं, अन्य विद्वान् उन्हें शुक्ल एवं कृष्ण पक्ष कहते हैं ॥ १३०-१३२ ॥ वे दोनों पक्ष शुभाशुभ कार्योंमें सदा उपयुक्त माने जाते हैं। ब्रह्मा, अग्नि, विरञ्चि, विष्णु, गौरी, गणेश, यम, सर्प, चन्द्रमा, कार्तिकेय, सूर्य, इन्द्र, महेन्द्र, वासव, नाग, दुर्गा, दण्डधर, शिव, विष्णु, हरि, रवि, काम, शंकर, कलाधर, यम, चन्द्रमा (विष्णु, काम और शिव)—ये सब शुक्ल प्रतिपदासे लेकर क्रमशः उनतीस तिथियोंके स्वामी होते हैं। अमावास्या नामक तिथिके स्वामी पितर माने गये हैं।

(तिथियोंकी नन्दादि पाँच संज्ञा—) प्रतिपदा आदि तिथियोंकी क्रमशः नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा—ये पाँच संज्ञाएँ मानी गयी हैं। पंद्रह तिथियोंमें इनकी तीन आवृत्ति करके इनका पृथक्-पृथक् नाम प्राप्त करना चाहिये । शुक्लपक्षमें प्रथम आवृत्तिकी (१, २, ३, ४, ५—ये) तिथियाँ अधम द्वितीय आवृत्तिकी (६, ७, ८, ९, १०—ये) तिथियाँ मध्यम और तृतीय आवृत्तिकी (११, १२, १३, १४, १५—ये) तिथियाँ शुभ होती हैं। इसी प्रकार कृष्णपक्ष-की प्रथम आवृत्तिकी नन्दादि तिथियाँ इष्ट (शुभ), द्वितीय आवृत्तिकी मध्यम और तृतीय आवृत्तिकी अनिष्टप्रद (अधम) होती हैं। दोनों पक्षोंकी ८, १२, ६, ४, ९, १४—ये तिथियाँ पक्षरन्ध्र कही गयी हैं। इन्हें अत्यन्त रूक्ष कहा गया है। इनमें क्रमशः आरम्भकी ४, १४, ९, ९, २५ और ५ घड़ियाँ सब शुभ कार्योंमें त्याग देने योग्य हैं। अमावास्या और नवमीको छोड़कर अन्य सब विषम तिथियाँ (३, ५, ७, ११, १३) सब कार्योंमें प्रशस्त हैं । शुक्लपक्षकी प्रतिपदा मध्यम है (कृष्ण पक्षकी प्रतिपदा शुभ है)।

षष्ठीमें तैल, अष्टमीमें मांस*, चतुर्दशीमें क्षौर तथा पूर्णिमा और अमावास्यामें स्त्रीका सेवन त्याज्य है। अमावास्या, षष्ठी, प्रतिपदा, द्वादशी, सभी पर्व और नवमी—इन तिथियोंमें कभी दाँतन नहीं करना चाहिये। व्यतीपात, संक्रान्ति, एकादशी, पर्व, रवि और मङ्गलवार तथा षष्ठी तिथि

---

* 'मार्गशीर्षमपीच्छन्ति विवाहे केऽपि कोविदाः।'
'कुछ विद्वान् अगहनमें भी विवाह होना ठीक मानते हैं' इस मान्यताके अनुसार 'अगहन'में दक्षिणायन होनेपर भी विवाह हो सकता है।

* मांस तो सबके लिये सदा ही त्याज्य है, परंतु जो मांसाहारी हैं उन्हें भी अष्टमीको तो मांस त्याग ही देना चाहिये।

और वैधृति-योगमें अभ्यञ्जन (उबटन) का निषेध है। जो मनुष्य दशमी तिथिमें आँवलेसे स्नान करता है, उसको पुत्रकी हानि उठानी पड़ती है। त्रयोदशीको आँवलेसे स्नान करनेपर धनका नाश होता है और द्वितीयाको उससे स्नान करनेवालोंके धन और पुत्र दोनोंका नाश होता है। इसमें संशय नहीं है। अमावास्या, नवमी और सप्तमी—इन तीन तिथियोंमें आँवलेसे स्नान करनेवालोंके कुलका विनाश होता है॥ १३३—१४४½ ॥

जो पूर्णिमा दिनमें पूर्ण चन्द्रमासे युक्त हो (अर्थात् जिसमे रात्रिके समय चन्द्रमा कलाहीन हो) वह पूर्णिमा 'अनुमती' कहलाती है और जो रात्रिमें पूर्ण चन्द्रमासे युक्त हो वह 'राका' कहलाती है। इसी प्रकार अमावास्या भी दो प्रकारकी होती है। जिसमे चन्द्रमाकी किंचित् कलाका अंश शेष रहता है, वह 'सिनीवाली' कही गयी है तथा जिसमें चन्द्रमाकी सम्पूर्ण कला लुप्त हो जाती है, वह अमावास्या 'कुहू' कहलाती है * ॥ १४५-१४६ ॥

(युगादि तिथियाँ—) कार्तिक शुक्लपक्षकी नवमी सत्ययुगकी आदि तिथि है (इसी दिन सत्ययुगका प्रारम्भ हुआ था), वैशाख शुक्लपक्षकी पुण्यमयी तृतीया त्रेतायुगकी आदि तिथि है। माघकी अमावास्या द्वापरयुगकी आदि तिथि और भाद्रपद कृष्णा त्रयोदशी कलियुगकी आदि तिथि है। (ये सब तिथियाँ अति पुण्य देनेवाली कही गयी हैं) ॥ १४७-१४८ ॥

(मन्वादि तिथियाँ—) कार्तिकशुक्ला द्वादशी, आश्विनशुक्ला नवमी, चैत्रशुक्ला तृतीया, भाद्रपदशुक्ला तृतीया, पौषशुक्ला एकादशी, आषाढ़शुक्ला दशमी, माघशुक्ला सप्तमी, भाद्रपदकृष्णा अष्टमी, श्रावणकी अमावास्या, फाल्गुनकी पूर्णिमा, आषाढ़की पूर्णिमा, कार्तिककी पूर्णिमा, ज्येष्ठकी पौर्णमासी और चैत्रकी पूर्णिमा—ये चौदह मन्वादि तिथियाँ हैं। ये सब तिथियाँ मनुष्योंके लिये पितृकर्म (पार्वण-श्राद्ध) मे अत्यन्त पुण्य देनेवाली हैं ॥ १४९—१५१½ ॥

(गजच्छाया-योग—) भादोंके¹ कृष्णपक्षकी (शुक्लादि क्रमसे भाद्रकृष्ण और कृष्णादि क्रमसे आश्विन कृष्ण पक्षकी) त्रयोदशीमें यदि सूर्य हस्त-नक्षत्रमें और चन्द्रमा मघामे हो तो 'गजच्छाया' नामक योग होता है; जो पितरोके पार्वणादि श्राद्ध कर्ममें अत्यन्त पुण्य प्रदान करनेवाला है ॥ १५२½ ॥

किसी एक दिनमें तीन तिथियोंका स्पर्श हो तो क्षयतिथि तथा एक ही तिथिका तीन दिनमे स्पर्श हो तो अधिक तिथि (अधितिथि) होती है। ये दोनों ही निन्दित हैं। जिस दिन सूर्योदयसे सूर्यास्तपर्यन्त जो तिथि रहती है, उस दिन वह अखण्ड तिथि कहलाती है। यदि सूर्यास्तसे पूर्व ही समाप्त होती है तो वह खण्ड तिथि कही जाती है॥१५३-१५४½॥

(क्षणतिथिकथन—) प्रत्येक तिथिमें तिथिमानका पंद्रहवाँ भाग क्षणतिथि कहलाता है। (अर्थात् प्रत्येक तिथिमें उसी तिथिसे आरम्भ करके पंद्रह तिथियोंके अन्तर्भोग होते हैं।) तथा उन क्षणतिथियोंका भी आधा क्षण तिथ्यर्ध (क्षण करण) होता है* ॥ १५५½ ॥

(वारप्रकरण—) रवि स्थिर, सोम चर, मङ्गल क्रूर, बुध अखिल (सम्पूर्ण), गुरु लघु, शुक्र मृदु और शनि तीक्ष्ण धर्मवाला है।

(वारोंमें तेल लगानेका फल—) जो मनुष्य रविवारको तेल लगाता है, वह रोगी होता है। सोमवारको तेल लगानेसे कान्ति बढ़ती है। मङ्गलको व्याधि होती है। बुधको तैलाभ्यङ्गसे सौभाग्यकी वृद्धि होती है। गुरुवारको सौभाग्यकी हानि होती है, शुक्रवारको भी हानि होती है तथा शनिवारको तेल लगानेसे धन-सम्पत्तिकी वृद्धि होती है ॥ १५६–१५८ ॥

(रवि आदि वारोंका आरम्भकाल—) जिस समय लङ्कामें (भूमध्यरेखापर) सूर्योदय होता है, उसी समयसे सर्वत्र रवि आदि वारोंका आरम्भ होता है। उस समयसे देशान्तर (लङ्कोदयकालसे अपने उदय कालका अन्तर) और चरार्ध घटीतुल्य आगे या पीछे अन्य देशमे सूर्योदय हुआ करता है† ॥ १५९ ॥

* अमावास्या प्रायः दो दिन हुआ करती है। उनमें प्रथम दिनकी सिनीवाली और दूसरे दिनकी कुहू होती है। चतुर्दशीयुक्त अमावास्याका क्षय न हो तो वह सिनीवाली होती है।

१ 'अमावास्यान्त' मासकी दृष्टिसे यहाँ भादोंका कृष्णपक्ष कहा गया है। जहाँ पूर्णिमान्त मास माना जाता है, वहाँके लिये इस भादोंका अर्थ आश्विन समझना चाहिये।

* जैसे प्रतिपदाका भोगमान (आरम्भसे अन्ततक) ६० घड़ी है तो उस तिथिमें आरम्भसे ४ घड़ी प्रतिपदा है, उसके बादकी ४ घड़ी द्वितीया है और उसके बादकी ४ घड़ी तृतीया है। इसी प्रकार आगे भी चतुर्थी आदि सब तिथि प्राप्त होती हैं। इसी तरह द्वितीयामें भी द्वितीया आदि सब तिथियोंका भोग समझना चाहिये तथा क्षणतिथिमें भी २-२ घड़ी क्षणकरणका मान समझना चाहिये। इसका प्रयोजन यह है कि जिस तिथिमें जो कार्य शुभ या अशुभ कहा गया है, वह क्षणतिथिमें भी शुभ या अशुभ समझना चाहिये। जैसे चतुर्दशीमें क्षौर कराना अशुभ कहा गया है तो तृतीया आदि अन्य तिथियोंमें भी जब चतुर्दशी क्षणतिथिके रूपमें प्राप्त हो तो उसमें क्षौर कराना अशुभ होता है तथा चतुर्दशीमें भी आवश्यक हो तो अन्य तिथिके भोगसमयमें क्षौर करानेमें दोष नहीं समझा जायगा। विशेष आवश्यक शुभ कार्यमें ही तिथि और क्षणतिथिका विचार करना चाहिये।

† इससे सिद्ध होता है कि अपने-अपने सूर्योदयकालसे देशान्तर और चरार्धकाल आगे या पीछे वारप्रवेश हुआ करता है।

भगवान् श्री कृष्णका ध्यान [पृ २८१

जो ग्रह बलवान् होता है, उसके वारमें जो कोई भी काय किया जाता है, वह सिद्ध हुआ करता है; किंतु जो ग्रह बलहीन (जातक-अध्यायमें कहे हुए बलसे रहित) होता है, उसके वारमें बहुत यत्न करनेपर भी कार्य सिद्ध नहीं होता है ॥ १६० ॥ सोम, बुध, बृहस्पति और शुक्र सम्पूर्ण शुभ कार्योंमें शुभप्रद होते हैं, अन्य वार (शनि, रवि और मङ्गल) क्रूर कर्ममें इष्टसिद्धिदायक होते हैं ॥ १६१ ॥

सूर्यका वर्ण लाल है, चन्द्रमा गौर वर्णके हैं, मङ्गल अधिक लाल हैं, बुधकी कान्ति दूर्वादलके समान श्याम है, गुरुका वर्ण सुवर्णके सदृश पीत है, शुक्र श्वेत और शनि कृष्ण वर्णके हैं, इसलिये उन ग्रहोंके वारोंमें उनके गुण और वर्णके अनुरूप कार्य ही सिद्ध एवं हितकर होते हैं।

(निन्द्य मुहूर्त—) [illegible] ४; सोममें ६, ४, ७ [illegible] ५; गुरुवारमें [illegible] १, ८ [illegible] शनिमें १, ६, ८—ये [illegible] और वारवेला कहे गये हैं। [illegible] समझना चाहिये ॥ १६२–१६५ ॥

(प्रत्येक वारमें क्षणवार-कथन—) [illegible] जानना हो उस वारमें प्रथम क्षणवार [illegible] है। उससे छठे [illegible] द्वितीय [illegible] इस प्रकार छठे-छठेके क्रमसे दिन [illegible] (कालहोरा या होरा) होते हैं। [illegible] ढाई-ढाई घटी (या १ घंटा) है ॥ १६६–१६७ ॥

* दिन-रातमें होरा जाननेका चक्र—

होरा	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
१	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
२	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु
३	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मङ्गल
४	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि
५	शनि	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र
६	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मङ्गल	बुध
७	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम
८	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
९	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु
१०	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम	[illegible]
११	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि
१२	शनि	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र
१३	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मङ्गल	बुध
१४	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम
१५	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
१६	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु
१७	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मङ्गल
१८	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि
१९	शनि	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र
२०	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम	मङ्गल	बुध
२१	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम
२२	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
२३	शुक्र	शनि	रवि	सोम	[illegible]	बुध	[illegible]
२४	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रवि	सोम	[illegible]

क्षणवार (होरेश) जाननेका प्रकार यह है कि जिस दिन होरेश (क्षणवार) का विचार [illegible] है, उस दिनका प्रथम घंटा उसी दिनका क्षणवार होता है। इससे आगे उससे छठे-छठे दिनका [illegible] है।

(क्षणवारका प्रयोजन—) जिस वारमें जो कर्म शुभ या अशुभ कहा गया है, वह उसके क्षणवारमें भी उसी प्रकार शुभ या अशुभ समझना चाहिये ॥ १६७½ ॥

(नक्षत्राधिपति-कथन—) १ दस्र (अश्विनीकुमार), २ यम, ३ अग्नि, ४ ब्रह्मा, ५ चन्द्र, ६ शिव, ७ अदिति, ८ गुरु, ९ सर्प, १० पितर, ११ भग, १२ अर्यमा, १३ सूर्य, १४ विश्वकर्मा, १५ वायु, १६ इन्द्र और अग्नि, १७ मित्र, १८ इन्द्र, १९ राक्षस (निर्ऋति), २० जल, २१ विश्वेदेव, २२ ब्रह्मा, २३ विष्णु, २४ वसु, २५ वरुण, २६ अजैकपाद, २७ अहिर्बुध्न्य और २८ पूषा—ये क्रमशः (अभिजित्सहित) अश्विनी आदि २८ नक्षत्रोंके स्वामी कहे गये हैं ॥ १६८–१७० ॥

(नक्षत्रोंके मुख—) पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढ़, पूर्व भाद्रपद, मघा, आश्लेषा, कृत्तिका, विशाखा, भरणी, मूल—ये नौ नक्षत्र अधोमुख (नीचे मुखवाले) हैं । इनमें बिलप्रवेश (कुआँ, भूविवर या पाताल आदिमें जाना), गणित, भूत-साधन, लेखन, शिल्प (चित्र आदि) कला, कुआँ खोदना तथा गाड़े हुए धनको निकालना आदि सब कार्य सिद्ध होते हैं ॥ १७१–१७२ ॥

अनुराधा, मृगशिरा, चित्रा, हस्त, ज्येष्ठा, पुनर्वसु, रेवती, अश्विनी और स्वाती—ये नौ नक्षत्र तिर्यक् (सामने) मुखवाले हैं । इनमें हल जोतना, यात्रा करना, गाड़ी बनाना, पत्र लिखकर भेजना, हाथी, ऊँट आदिकी सवारी करना, गदहे, बैल आदिसे चलनेवाले रथ बनाना, नौकापर चलना तथा भैंस, घोड़े आदि-सम्बन्धी कार्य करने चाहिये ॥ १७३–१७४ ॥

रोहिणी, श्रवण, आर्द्रा, पुष्य, शतभिषा, धनिष्ठा, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ तथा उत्तर भाद्रपद—ये नौ नक्षत्र ऊर्ध्वमुख (ऊपर मुखवाले) कहे गये हैं । इनमें राज्याभिषेक, मङ्गल (विवाहादि)-कार्य, गजारोहण, ध्वजारोपण, मन्दिर-निर्माण, तोरण (फाटक) बनाना, बगीचे लगाना और चहारदीवारी बनवाना आदि कार्य सिद्ध होते हैं ॥१७५–१७६॥

(नक्षत्रोंकी ध्रुवादि संज्ञा—) रोहिणी, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ और उत्तर भाद्रपद—ये ध्रुवनामक नक्षत्र हैं । हस्त, अश्विनी और पुष्य—ये क्षिप्रसंज्ञक हैं । विशाखा और कृत्तिका—ये दोनों साधारणसंज्ञक हैं । धनिष्ठा, पुनर्वसु, शतभिषा, स्वाती और श्रवण—ये चरसंज्ञक हैं । मृगशिरा, अनुराधा, चित्रा तथा रेवती—ये मृदुनामक नक्षत्र हैं । पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढ, पूर्व भाद्रपद और भरणी—ये उग्रसंज्ञक नक्षत्र हैं । मूल, आर्द्रा, आश्लेषा और ज्येष्ठा—ये तीक्ष्णनामक नक्षत्र हैं । ये सब अपने नामके अनुसार ही फल देते हैं (इसलिये इन नक्षत्रोंमें इनके नामके अनुरूप ही कार्य करने चाहिये) ॥१७७–१७८½ ॥

(कर्णवेध-मुहूर्त—) चित्रा, पुनर्वसु, श्रवण, हस्त, रेवती, अश्विनी, अनुराधा, धनिष्ठा, मृगशिरा और पुष्य—इन नक्षत्रोंमें कर्णवेध हितकर होता है ।

(हाथी और घोड़े सम्बन्धी कार्य—) अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा और स्वाती—इनमें तथा स्थिरसंज्ञक नक्षत्रोंमें हाथीसम्बन्धी सब कृत्य करने चाहिये; तथा इन्हीं नक्षत्रोंमें घोड़ेके भी सब कृत्य शुभ होते हैं; किंतु रविवारको इन कृत्योंका त्याग कर देना चाहिये ॥ १७९–१८१ ॥

(अन्य पशुकृत्य—) चित्रा, शतभिषा, रोहिणी तथा तीनों उत्तरा—इन नक्षत्रोंमें पशुओंको कहींसे लाना या ले जाना शुभ है । परंतु अमावास्या, अष्टमी और चतुर्दशीको कदापि पशुओंका कोई कृत्य नहीं करना चाहिये ॥ १८२ ॥

(प्रथम हलप्रवाह—हल जोतना—) मृदु, ध्रुव, क्षिप्र और चरसंज्ञक नक्षत्र, विशाखा, मघा और मूल—इन नक्षत्रोंमें बैलोंद्वारा प्रथम बार हल जोतना शुभ होता है । सूर्य जिस नक्षत्रमे हो, उससे पिछले नक्षत्रसे तीन नक्षत्र हलके आदि (मूल) में रहते हैं । इनमे प्रथम वार हल जोतने-जुतानेसे बैलका नाश होता है । उसके आगे तीन नक्षत्र हलके अग्रभागमें रहते हैं । इनमें हल जोतनेसे वृद्धि होती है । उससे आगेके पाँच नक्षत्र उत्तर पार्श्वमें रहते हैं, इनमें लक्ष्मीप्राप्ति होती है । तीन शूलोंमें नौ नक्षत्र रहते हैं; इनमे हल जोतनेसे कृषककी मृत्यु होती है । उससे आगे पाँच नक्षत्रोंमें सम्पत्तिकी वृद्धि होती है; फिर उससे आगेके तीन नक्षत्रोंमें प्रथम बार हल जोतनेसे श्रेष्ठ फल प्राप्त होते हैं ॥ १८३–१८५ ॥

(बीज-वपन—) मृदु, ध्रुव और क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्र, मघा, स्वाती, धनिष्ठा और मूल—इनमें धान्यके बीज बोना श्रेष्ठ होता है । इस बीज-वपनमें राहु जिस नक्षत्रमें हो, उससे तीन नक्षत्र लाङ्गल-चक्रके अग्रभागमे रहते हैं । इन तीनोंमें बीज-वपनसे धान्यका नाश होता है । उससे आगेके तीन नक्षत्र

जैसे रविवारमें वारप्रवेश-कालसे पहला घंटा रविका, दूसरा घंटा रविसे छठे शुक्रका, तीसरा घंटा शुक्रसे छठे बुधका इत्यादि क्रमसे ऊपर चक्रमें देखिये ।

गलेमें रहते हैं, उनमें बीज-वपनसे जलकी अल्पता होती है। उससे आगेके बारह नक्षत्र उदरमें रहते हैं, उनमें बीज बोनेसे धान्यकी वृद्धि होती है। उससे आगेके चार नक्षत्र लाङ्गूलमें रहते हैं, इनमें निस्तण्डुलत्व होता है (अर्थात् धानमें दाने नहीं लगते, केवल भूसीमात्र रह जाती है)। उससे आगेके पाँच नक्षत्र नाभिमें रहते हैं, इनमें प्रथम बीज-वपनसे अग्निभय प्राप्त होता है। इस चक्रका विचार बीज-वपनमें अवश्य करना चाहिये ॥ १८६–१८८ ॥

(रोगविमुक्तका स्नान–) स्थिरसंज्ञक, पुनर्वसु, आश्लेषा, रेवती, मघा और स्वाती—इन नक्षत्रोंमें तथा सोम और शुक्रके दिन रोगमुक्त पुरुषको पहले-पहल स्नान नहीं करना चाहिये ॥ १८९ ॥

(नृत्यारम्भ–) उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ, उत्तर भाद्रपद, अनुराधा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, शतभिषा, पुष्य, हस्त और रेवती—इन नक्षत्रोंमें नृत्यारम्भ (नाट्य-विद्याका प्रारम्भ) उत्तम कहा गया है ॥ १९० ॥

रेवतीसे छः नक्षत्र पूर्वार्धयोगी, आर्द्रासे बारह नक्षत्र मध्ययोगी और धनिष्ठासे नौ नक्षत्र परार्धयोगी हैं। इनमेंसे पूर्वयोगीमें यदि वर और कन्या—दोनोंके नक्षत्र पड़ते हों तो स्त्रीका स्वामीमें अधिक प्रेम होता है। मध्ययोगीमें हों तो दोनोंमें परस्पर समान प्रेम होता है और परार्धयोगीमें दोनोंके नक्षत्र हों तो स्त्रीमें पतिका अधिक प्रेम होता है ॥ १९१½ ॥

(बृहत्, सम और अधम नक्षत्र–) शतभिषा, आर्द्रा, आश्लेषा, स्वाती, भरणी और ज्येष्ठा—ये छः नक्षत्र जघन्य (अधम) कहे गये हैं। ध्रुवसंज्ञक, पुनर्वसु और विशाखा—ये नक्षत्र बृहत् (श्रेष्ठ) कहलाते हैं तथा अन्य नक्षत्र समसंज्ञक हैं। इनका विंशोपक मान क्रमशः ३०, ९० और ६० घड़ी कहा गया है* ॥ १९२–१९३ ॥ यदि द्वितीया तिथिको बृहत्संज्ञक नक्षत्रमें चन्द्रोदय हो तो अन्नका भाव सस्ता होता है। समसंज्ञक नक्षत्रमें चन्द्रदर्शन हो तो अन्नादिके भावमें समता होती है और जघन्यसंज्ञक नक्षत्रमे चन्द्रोदय हो तो उस महीनेमें अन्नका भाव महँगा हो जाता है ॥ १९३½ ॥

(यात्रा करनेवालेको जय तथा पराजय देनेवाले नक्षत्र–) अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिरा, पुष्य, [illegible] श्रवण, तीनों उत्तरा, पूर्वा फाल्गुनी, मघा, [illegible]— इतने नक्षत्र कुलसंज्ञक हैं। रोहिणी, ज्येष्ठा, पुनर्वसु, [illegible], रेवती, हस्त, अनुराधा, पूर्व भाद्रपद, भरणी और [illegible] नक्षत्र अकुलसंज्ञक हैं। [illegible]। इनमें कुलसंज्ञक नक्षत्रोंमें विजयकी इच्छासे यात्रा करनेवाले राजाकी पराजय होती है। अकुलसंज्ञक नक्षत्रोंमें यात्रा करनेसे वह निश्चय ही शत्रुपर विजय प्राप्त करता है और कुलाकुलसंज्ञक नक्षत्रोंमें युद्धार्थ यात्रा करनेवाले [illegible], साथ सन्धि होती है। अथवा यदि युद्ध हुआ तो भी दोनोंकी समानता सिद्ध होती है (किसी एक पक्षकी हार या जीत नहीं होती) ॥ १९४–१९७½ ॥

(त्रिपुष्कर, द्विपुष्कर योग–) रवि, शनि या मङ्गलवारमें भद्रा, (२, ७, १२) तिथि तथा विषम चरणवाले नक्षत्र (कृत्तिका पुनर्वसु, उत्तरा फाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढ और पूर्व भाद्रपद) हों तो (इन तीनोंके संयोगसे) 'त्रिपुष्कर'नामक योग होता है। तथा इन्हीं रवि, शनि और मङ्गलवार एवं भद्रा तिथियोंमें दो चरणवाले नक्षत्र (मृगशिरा, चित्रा और धनिष्ठा) हों तो 'द्विपुष्कर' योग होता है। त्रिपुष्करयोग त्रिगुणित (तीन गुने) और द्विपुष्करयोग द्विगुणित (दुगुने) लाभ और हानिको देनेवाले हैं। अतः इनमें किसी वस्तुकी हानि हो तो इस दोषकी शान्तिके लिये तीन गोदान या तीन गौओंका मूल्य तथा द्विपुष्कर दोषकी शान्तिके लिये दो गोदान या दो गौओंका मूल्य ब्राह्मणोंको देना चाहिये। इससे उक्त (तिथि, वार और) नक्षत्र-सम्बन्धी दोषका निवारण हो जाता है ॥१९८–१९९½ ॥

(पुष्य नक्षत्रकी प्रशंसा–) पापग्रहसे विद्ध या युक्त होनेपर भी पुष्य नक्षत्र बलवान् होता है और [illegible] छोड़कर वह सब शुभ कर्मोंमें [illegible] है ॥ २००½ ॥

(नक्षत्रोंमें योग-ताराओंकी संख्या–) [illegible] आदि (अभिजित्सहित) अट्ठाईस नक्षत्रोंमें क्रमशः [illegible] ६, ५, ३, १, ४, ३, ५, ५, २, २, ५, १, १, ४, ४, ३, ११, २, २, ३, ३, ४, १००, २, २ और ३२ योगताराएँ होती हैं। अपने अपने [illegible] अनेक ताराओंका पुञ्ज होता है, उनमें जो [illegible]

---

* वास्तवमें किसी भी नक्षत्रका ५६ घटीसे कम और ६६ घटीसे अधिक काल-मान नहीं होता। यहाँ जो 'बृहत्' संज्ञक नक्षत्रोंका ९० घटी (४५ मुहूर्त), समसंज्ञक नक्षत्रोंका ६० घटी (३० मुहूर्त) और जघन्यसंज्ञक नक्षत्रोंका ३० घटी (१५ मुहूर्त) समय बताया गया है, वह क्रमशः सस्ती, समता और महँगीका सूचक है।

* [illegible] और [illegible] कुलाकुलमें लिया गया है।

(चमकीली) ताराएँ दीख पड़ती हैं, वे ही योगताराएँ कहलाती हैं ॥ २०१—२०३ ॥

(नक्षत्रोंसे वृक्षोंकी उत्पत्ति—) जितने भी वृष अर्थात् श्रेष्ठ वृक्ष हैं, उनकी उत्पत्ति अश्विनीसे हुई है। भरणीसे यमक (जुड़े हुए दो) वृक्ष, कृत्तिकासे उदुम्बर (गूलर), रोहिणीसे जामुन, मृगशिरासे खैर, आर्द्रासे काली पाकर, पुनर्वसुसे बाँस, पुष्यसे पीपल, आश्लेपासे नागकेसर, मघासे बरगद, पूर्वा फाल्गुनीसे पलाश, उत्तरा फाल्गुनीसे रुद्राक्षका वृक्ष, हस्तसे अरिष्ट (रीठीका वृक्ष), चित्रासे श्रीवृक्ष (बेल), स्वातीसे अर्जुन वृक्ष, विशाखासे विकङ्कत (जिसकी लकडीसे कलछियाँ बनती हैं), अनुराधासे बकुल (मौलश्री), ज्येष्ठासे विष्टिवृक्ष, मूलसे सर्ज (शालका वृक्ष), पूर्वापाढसे वञ्जुल (अशोक), उत्तराषाढसे कटहल, श्रवणसे आक, धनिष्ठासे शमीवृक्ष, शतभिषासे कदम्ब, पूर्व भाद्रपदसे आम्रवृक्ष, उत्तर भाद्रपदसे पिचुमन्द (नीमका पेड़) तथा रेवतीसे महुआकी उत्पत्ति हुई है। इस प्रकार ये नक्षत्रसम्बन्धी वृक्ष कहे गये हैं ॥ २०४—२१० ॥

जब जिस नक्षत्रमें शनैश्चर विद्यमान हो, उस समय उस नक्षत्रसम्बन्धी वृक्षका यत्नपूर्वक पूजन करना चाहिये ॥२११½॥

(योगोंके स्वामी—) यम, विश्वेदेव, चन्द्र, ब्रह्मा, गुरु, चन्द्र, इन्द्र, जल, सर्प, अग्नि, सूर्य, भूमि, रुद्र, ब्रह्मा, वरुण, गणेश, रुद्र, कुबेर, विश्वकर्मा, मित्र, षडानन, सावित्री, कमला, गौरी, अश्विनीकुमार, पितर और अदिति—ये क्रमशः विष्कम्भ आदि सत्ताईस योगोंके स्वामी हैं ॥२१२½ ॥

(निन्द्य योग—) वैधृति और व्यतीपात—ये दोनों महापात हैं, इन दोनोंको शुभ कार्योंमें सदा त्याग देना चाहिये। परिघ योगका पूर्वार्ध और वज्रयोगके आरम्भकी तीन घड़ियाँ, गण्ड और अतिगण्डकी छः घड़ी, व्याघात योगकी ९ घड़ी और शूल योगकी ५ घडी सब शुभ कार्योंमें निन्दित हैं।

(खार्जूरचक्र—) इन नौ निन्द्य योगों (वैधृति, व्यतीपात, परिघ, विष्कम्भ, वज्र, गण्ड, अतिगण्ड, व्याघात और शूल) मे क्रमशः पुनर्वसु, मृगशिरा, मघा, आश्लेपा, अश्विनी, मूल, अनुराधा, पुष्य और चित्रा—ये नौ मूर्धा (मस्तक) के नक्षत्र माने गये हैं। एक ऊर्ध्वरेखा लिखे, फिर उसके उपर तेरह तिरछी रेखाएँ अङ्कित करे। यह खार्जूरचक्र कहलाता है। इस चक्रमें ऊपर कहे हुए निन्द्य योगोंमें उनके मूर्धगत नक्षत्रको रेखाके मस्तकके ऊपर लिखकर क्रमशः २८ नक्षत्रोंको लिखे। इसमें यदि सूर्य और चन्द्रमा एक रेखामें विभिन्न भागमें पड़ें तो उन दोनोंका परस्परका दृष्टिपात 'एकार्गल' दोष कहलाता है, जो शुभ-कार्यमें त्याज्य है, परतु यदि सूर्य और चन्द्रमामें कोई एक अभिजित्‌में हो तो वेध-दोष नहीं होता है ॥२१३—२१७½॥

(प्रत्येक योगमें अन्तर्भोग—) १२ पलरहित २ घड़ीके मानसे एक-एक योगमें सत्ताईस योग बीतते हैं ॥२१८½॥

(करणके स्वामी और शुभाशुभ-विभाग—) इन्द्र, ब्रह्मा, मित्र, विश्वकर्मा, भूमि, हरितप्रिया (लक्ष्मी), कीनाश (यम), कलि, रुद्र, सर्प तथा मरुत्—ये ग्यारह देवता, क्रमशः बव आदि (बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज, विष्टि, शकुनि, चतुष्पद, नाग और किंस्तुघ्न—इन) ग्यारह करणोंके स्वामी हैं। इनमें बवसे लेकर छः करण शुभ होते हैं। किंतु 'विष्टि' नामक करण क्रमसे आया हो या विपरीतक्रमसे, किसी भी दशामे वह मङ्गलकार्यमें शुभ नहीं है ॥ २१९—२२०½ ॥

(विष्टिके अङ्गोंमें घटी और फल—) विष्टिके मुखमें पाँच घटी, गलेमें एक, हृदयमें ग्यारह, नाभिमे चार, कटिमें छः और पुच्छमे तीन घडियाँ होती हैं। मुखकी घड़ियोंमें कार्य आरम्भ करनेसे कार्यकी हानि होती है। गलेकी घड़ीमें मृत्यु, हृदयकी घड़ीमें निर्धनता, कटिकी घड़ीमे उन्मत्तता, नाभिकी घड़ीमे पतन तथा पुच्छकी घडीमें कार्य करनेसे निश्चय ही विजय (सिद्धि) प्राप्त होती है। भद्राके बाद जो चार स्थिर करण हैं, वे मध्यम हैं, विशेषतः नाग और चतुष्पद ॥ २२१—२२३ ॥

(मुहूर्त-कथन—) दिनमें क्रमशः रुद्र, सर्प, मित्र, पितर, वसु, जल, विश्वेदेव, विधि (अभिजित्), ब्रह्मा, इन्द्र, इन्द्राग्नि, राक्षस, वरुण, अर्यमा और भग—ये पंद्रह मुहूर्त जानने चाहिये। रात्रिमे शिव, अजपाद, अहिर्बुध्न्य, पूषा, अश्विनीकुमार, यम, अग्नि, ब्रह्मा, चन्द्रमा, अदिति, बृहस्पति, विष्णु, सूर्य, विश्वकर्मा और वायु—ये क्रमशः पंद्रह मुहूर्त व्यतीत होते हैं। दिनमानका पंद्रहवाँ भाग दिनके मुहूर्तका मान है और रात्रिमानका पंद्रहवाँ भाग रात्रिके मुहूर्तका मान समझना चाहिये; इनसे दिन तथा रात्रिमे क्षण-नक्षत्रका विचार करे* ॥ २२४—२२६½ ॥

* उदाहरण—जिस समय ब्रह्माका मुहूर्त हो, उस समय उसीका क्षण-नक्षत्र होता है। जैसे—दिनमें नवाँ मुहूर्त ब्रह्माका है और दिनमान ३० घडीका है तो १६ घड़ीके बाद १८ घडीतक ब्रह्माजीके ही नक्षत्र (रोहिणी) को क्षण नक्षत्र समझना चाहिये। इसलिये दिनमें नवम मुहूर्त ब्राह्म या रौहिण कहलाता है, जो श्राद्धमें श्रेष्ठ माना गया है।

(वारोंमें निन्द्य मुहूर्त—) रविवारको अर्यमा, सोमवारको ब्राह्म तथा राक्षस, मङ्गलवारको पितर और अग्नि, बुधवारको अभिजित्, गुरुवारको राक्षस और जल, शुक्रवारको ब्राह्म और पितर तथा शनिवारको शिव और सर्प मुहूर्त निन्द्य माने गये हैं; इसलिये इन्हें शुभ कार्योंमें त्याग देना चाहिये ॥ २२७-२२८ ॥

(मुहूर्तका विशेष प्रयोजन—) जिस-जिस नक्षत्रमें यात्रा आदि जो जो कर्म शुभ या अशुभ कहे गये हैं, वे कार्य उस-उस नक्षत्रके स्वामीके मुहूर्तमें भी शुभ या अशुभ होते हैं। ऐसा समझकर उस मुहूर्तमें सदा वैसे कार्य करने या त्याग देने चाहिये ॥ २२९ ॥

(भूकम्पादि संज्ञाओंसे युक्त नक्षत्र—) सूर्य जिस नक्षत्रमें हो, उससे सातवें नक्षत्रकी भूकम्प, पाँचवेंकी विद्युत्, आठवेंकी शूल, दसवेंकी अशनि, अठारहवेंकी केतु, पन्द्रहवेंकी दण्ड, उन्नीसवेंकी उल्का, चौदहवेंकी निर्घातपात, इक्कीसवेंकी मोह, बाईसवेंकी निर्घात, तेईसवेंकी कम्प, चौबीसवेंकी कुलिश तथा पचीसवेंकी परिवेष संज्ञा समझनी चाहिये; इन संज्ञाओंसे युक्त चन्द्र-नक्षत्रोंमें शुभ कर्म नहीं करने चाहिये ॥ २३०—२३२½ ॥

सूर्यके नक्षत्रसे आश्लेषा, मघा, चित्रा, अनुराधा, रेवती तथा श्रवणतककी जितनी संख्या हो, उतनी ही यदि अश्विनीसे चन्द्र-नक्षत्रतककी संख्या हो तो उसपर दुष्टयोगका सम्पात अर्थात् रुद्रके प्रचण्ड अस्त्रका प्रहार होता है। अतः उसका नाम 'चण्डीशचण्डायुध' योग है। उसमें शुभ कर्म नहीं करना चाहिये ॥ २३३—२३४½ ॥

(क्रकचयोग—) प्रतिपदादि तिथिकी तथा रवि आदि वारकी संख्या मिलानेसे यदि १३ हो तो वह क्रकचयोग होता है, जो शुभ कार्यमें अत्यन्त निन्दित माना गया है ॥ २३५½ ॥

(संवर्तयोग—) रविवारको सप्तमी और बुधवारको प्रतिपदा हो तो संवर्तयोग जानना चाहिये। यह शुभ कार्यको नष्ट करनेवाला है ॥ २३६½ ॥

(आनन्दादि योग—) १ आनन्द, २ कालदण्ड, ३ धूम्र, ४ धाता, ५ सुधाकर (सौम्य), ६ ध्वाङ्क्ष, ७ केतु, ८ श्रीवत्स, ९ वज्र, १० मुद्गर, ११ छत्र, १२ मित्र, १३ मानस, १४ पद्म, १५ लुम्ब, १६ उत्पात, १७ मृत्यु, १८ काण, १९ सिद्धि, २० शुभ, २१ अमृत, २२ मुसल, २३ अन्तक (गद), २४ कुञ्जर (मातङ्ग), २५ राक्षस, २६ चर, २७ सुस्थिर और २८ वर्धमान—ये [illegible] २८ योग अपने-अपने नामके समान ही फल देनेवाले [illegible]।

(इन योगोंको जाननेकी रीति) [illegible] अश्विनी नक्षत्रसे, सोमवारको मृगशिरासे, [illegible] आश्लेषासे, बुधवारको हस्तसे, गुरुवारको अनुराधासे, शुक्रवारको उत्तराषाढसे और शनिवारको शतभिषासे [illegible] करके उस दिनके नक्षत्रतक गणना करनेपर जो संख्या हो, उसी संख्यावाला योग उस दिन होगा * ॥ २३७—२४१ ॥

(सिद्धियोग—) रविवारको हस्त, सोमवारको मृगशिरा, मङ्गलवारको अश्विनी, बुधवारको अनुराधा, [illegible] पुष्य, शुक्रवारको रेवती और शनिवारको रोहिणी हो तो सिद्धियोग होता है ॥ २४२½ ॥

रवि और मङ्गलवारको नन्दा (१ । ६ । ११), [illegible] और सोमवारको भद्रा (२ । ७ । १२); बुधवारको जया (३ । ८ । १३); गुरुवारको रिक्ता (४ । ९ । १४) और शनिवारको पूर्णा (५ । १० । १५) हो तो मृत्युयोग† होता है। अतः इसमें शुभ कर्म न करे ॥ २४३½ ॥

(सिद्धयोग—) शुक्रवारको नन्दा, बुधवारको भद्रा, मङ्गलवारको जया, शनिवारको रिक्ता और गुरुवारको पूर्णा तिथि हो तो सिद्धयोग कहा गया है ॥ २४४½ ॥

(दग्धयोग—) सोमवारको एकादशी, गुरुवारको षष्ठी, बुधवारको तृतीया, शुक्रवारको अष्टमी, शनिवारको नवमी तथा मङ्गलवारको पञ्चमी तिथि हो तो दग्धयोग कहा गया है ॥ २४५-२४६ ॥

(ग्रहोंके जन्मनक्षत्र—) रविवारको भरणी, सोमवारको चित्रा, मङ्गलवारको उत्तराषाढ, बुधवारको धनिष्ठा, गुरुवारको उत्तरा फाल्गुनी, शुक्रवारको ज्येष्ठा और शनिवारको रेवती—ये क्रमशः सूर्यादि ग्रहोंके जन्मनक्षत्र [illegible] शुभ कार्यके विनाशक होते हैं ॥ २४७½ ॥

यदि रवि आदि वारोंमें विशाखा [illegible] हो अर्थात् रविवारको विशाखा, सोमको पूर्वाषाढ़ा, [illegible]

---

* संक्षिप्त उदाहरण—जैसे रविवारको [illegible] आनन्द, भरणी हो तो कालदण्ड इत्यादि। सोमवारको [illegible] तो आनन्द, आर्द्रा हो तो कालदण्ड। ऐसे ही [illegible] आश्लेषादिसे गिनकर योगोंका निश्चय करना चाहिये।

† अन्य संहिताओंमें इनका नाम [illegible] वैसा लिखा गया है। मूलमें कोई नाम न देकर [illegible] है और इनमें शुभ कर्मको त्याज्य कहा है।

मङ्गलको धनिष्ठासे, बुधको रेवतीसे, गुरुवारको रोहिणीसे, शुक्रको पुष्यसे और शनिको उत्तरा फाल्गुनीसे चार-चार नक्षत्र हों तो क्रमशः उत्पात, मृत्यु, काण तथा सिद्ध नामक योग कहे गये हैं ॥ २४८½ ॥

(**परिहार—**) ये जो ऊपर तिथि और वारके संयोगसे तथा वार और नक्षत्रके संयोगसे अनिष्टकारक योग बताये गये हैं, वे सब हूणोंके देश—भारतके पश्चिमोत्तर-भागमें, बंगालमें और नैपाल देशमें ही त्याज्य हैं। अन्य देशोंमें ये अत्यन्त शुभप्रद होते हैं ॥ २४९½ ॥

(**सूर्यसंक्रान्तिकथन—**) रवि आदि वारोंमें सूर्यकी संक्रान्ति होनेपर क्रमशः घोरा, ध्वाङ्क्षी, महोदरी, मन्दा, मन्दाकिनी, मिश्रा तथा राक्षसी—ये संक्रान्तिके नाम होते हैं। उक्त घोरा आदि संक्रान्तियाँ क्रमशः शूद्र, चोर, वैश्य, ब्राह्मण, क्षत्रिय, गौ आदि पशु तथा चारों वर्णोंसे अतिरिक्त मनुष्योंको सुख देनेवाली होती हैं। यदि सूर्यकी संक्रान्ति पूर्वाह्णमें हो तो वह क्षत्रियोंको हानि पहुँचाती है। मध्याह्नमें हो तो ब्राह्मणोंको, अपराह्णमें हो तो वैश्योंको, सूर्यास्त-समयमें हो तो शूद्रोंको, रात्रिके प्रथम प्रहरमें हो तो पिशाचोंको, द्वितीय प्रहरमें हो तो निशाचरोंको, तृतीय प्रहरमें हो तो नाट्यकारोंको, चतुर्थ प्रहरमें हो तो गोपालकोंको और सूर्योदयसमयमें हो तो लिङ्गधारियों (वेशधारी बहुरूपियों, पाखण्डियों अथवा आश्रम या सम्प्रदायके चिह्न धारण करनेवालों) को हानि पहुँचाती है ॥ २५०-२५३½ ॥

यदि सूर्यकी मेष-संक्रान्ति दिनमें हो तो संसारमें अनर्थ और कलह पैदा करनेवाली है। रात्रिमें मेष-संक्रान्ति हो तो अनुपम सुख और सुभिक्ष होता है तथा दोनों संध्याओंके समय हो तो वह वृष्टिका नाश करनेवाली है ॥ २५४½ ॥

(**करण-संक्रान्तिवश सूर्यके वाहन-भोजनादि—**) बव आदि ग्यारह करणोंमें संक्रान्ति होनेपर क्रमशः १ सिंह, २ बाघ, ३ सूअर, ४ गदहा, ५ हाथी, ६ भैंसा, ७ घोड़ा, ८ कुत्ता, ९ बकरा, १० बैल और ११ मुर्गा—ये सूर्यके वाहन होते हैं तथा १ भुशुण्डी, २ गदा, ३ तलवार, ४ लाठी, ५ धनुष, ६ बरछी, ७ कुन्त (भाला), ८ पाश, ९ अङ्कुश, १० अस्त्र (जो फेंका जाता है) और ११ बाण—इन्हें क्रमशः सूर्यदेव अपने हाथोंमें धारण करते हैं। १ अन्न, २ खीर, ३ भिक्षान्न, ४ पकवान, ५ दूध, ६ दही, ७ मिठाई, ८ गुड़, ९ मधु, १० घृत और ११ चीनी—ये बव आदिकी संक्रान्तिमें क्रमशः भगवान् सूर्यके हविष्य (भोजन) होते हैं ॥ २५५-२५७½ ॥

(**सूर्यकी स्थिति—**) बव, वणिज, विष्टि, बालव और गर—इन करणोंमें सूर्य बैठे हुए, कौलव, शकुनि और किंस्तुघ्न—इन करणोंमें खड़े हुए तथा चतुष्पद, तैतिल और नाग—इन तीन करणोंमें सोते हुए, संक्रान्ति करते (एक राशिसे दूसरी राशिमे जाते) हों तो इन तीनों अवस्थाओंकी संक्रान्तिमें प्रजाको क्रमशः धर्म, आयु और वर्षाके विषयमें समान, श्रेष्ठ और अनिष्ट फल प्राप्त होते हैं तथा ऊपर कहे हुए अस्त्र, वाहन और भोजन तथा उससे आजीविका या व्यवहार करनेवाले मनुष्यादि प्राणियोंका अनिष्ट होता है एवं जिस प्रकार सोये, बैठे, खड़े हुए संक्रान्ति होती है, उसी प्रकार सोये, बैठे और खड़े हुए प्राणियोंका अनिष्ट होता है ॥ २५८-२६०½ ॥

नक्षत्रोंकी अन्धाक्षादि संज्ञाएँ—रोहिणी नक्षत्रसे आरम्भ करके चार-चार नक्षत्रोंको क्रमशः अन्ध, मन्द-नेत्र, मध्यनेत्र और सुलोचन माने और पुनः आगे इसी क्रमसे सूर्यके नक्षत्रतक गिनकर नक्षत्रोंकी अन्ध आदि चार संज्ञाएँ समझे *।

(**संक्रान्तिकी विशेष संज्ञा—**) स्थिर राशियों (वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ) में सूर्यकी संक्रान्तिका नाम 'विष्णुपदी', द्विस्वभाव राशियों (मिथुन, कन्या, धनु और मीन) में 'षडशीतिमुखा', तुला और मेषमें 'विषुव' (विषुवत्), मकरमें 'सौम्यायन' और कर्कमें 'याम्यायन' संज्ञा होती है ॥ २६१-२६३½ ॥

* नीचे चक्रमें स्पष्ट देखिये—

अन्धाक्ष	रोहिणी	पुष्य	उत्तरा फाल्गुनी	विशाखा	पूर्वाषाढ	धनिष्ठा	रेवती
मन्दाक्ष	मृगशिरा	आश्लेषा	हस्त	अनुराधा	उत्तराषाढ	शतभिषा	अश्विनी
मध्याक्ष	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्येष्ठा	अभिजित्	पूर्व भाद्रपद	भरणी
सुलोचन	पुनर्वसु	पूर्वा फाल्गुनी	स्वाती	मूल	श्रवण	उत्तर भाद्रपद	कृत्तिका

(पुण्यकाल—)याम्यायन और स्थिर राशियोंकी (विष्णुपद) सक्रान्तिमें संक्रान्तिकालसे पूर्व १६ घड़ी, द्विस्वभाव राशियोंकी षडशीतिमुखा और सौम्यायन-सक्रान्तिमें संक्रान्तिकालके पश्चात् १६ घडी तथा विषुवत् (मेष, तुला) सक्रान्तिमें मध्य (सक्रान्ति-कालसे ८ पूर्व और ८ पश्चात्) की १६ घड़ीका समय पुण्यदायक होता है ॥ २६४ ॥

सूर्योदयसे पूर्वकी तीन घडी प्रातःसंध्या तथा सूर्यास्तके बादकी तीन घड़ी सायंसंध्या कहलाती है। यदि सायंसंध्यामें याम्यायन या सौम्यायन कोई सक्रान्ति हो तो पूर्व दिनमें और प्रातःसंध्यामें सक्रान्ति हो तो पर दिनमें सूर्योदयके बाद पुण्यकाल होता है ॥ २६५ ॥

जब सूर्यकी संक्रान्ति होती है, उस समय प्रत्येक मनुष्यके लिये जैसा शुभ या अशुभ चन्द्रमा होता है, उसीके अनुसार इस महीनेमें मनुष्योंको चन्द्रमाका शुभ या अशुभ फल प्राप्त होता है ॥ २६६ ॥ किसी संक्रान्तिके बाद सूर्य जितने अंश भोगकर उस संक्रान्तिके आगे अयनसंक्रान्ति करे, उतने समयतक संक्रान्ति या ग्रहणका जो नक्षत्र हो, वह तथा उसके आगे-पीछेवाले दोनो नक्षत्र उपनयन और विवाहादि शुभ कार्योंमें अशुभ होते हैं। संक्रान्ति या ग्रहणजनित अनिष्ट फलों (दोषों) की शान्तिके लिये तिलोंकी ढेरीपर तीन त्रिशूलवाला त्रिकोण-चक्र लिखे और उसपर यथाशक्ति सुवर्ण रखकर ब्राह्मणोंको दान दे ॥ २६७–२६९ ॥

(ग्रह-गोचर—)ताराके बलसे चन्द्रमा बली होता है और चन्द्रमाके बली होनेपर सूर्य बली हो जाता है तथा संक्रमणकारी सूर्यके बली होनेसे अन्य सब ग्रह भी बली समझे जाते हैं* ॥ २७० ॥

मुनीश्वर! अपनी जन्मराशिसे ३, ११, १०, ६ स्थानमें सूर्य शुभ होता है; परंतु यदि क्रमशः जन्मराशिसे ही ९, ५, ४ तथा १२ वें स्थानमें स्थित शनिके अतिरिक्त अन्य ग्रहोंसे वह विद्ध न हो तभी शुभ होता है*। इसी प्रकार चन्द्रमा जन्मराशिसे ७, ६, ११, १, १० तथा ३ में शुभ होते हैं; यदि क्रमशः २, १२, ८, ५, ४ और ९ वेंमें स्थित बुधसे भिन्न ग्रहोंसे विद्ध न हो। मङ्गल जन्मराशिसे ३, ११, ६ में शुभ है; यदि क्रमशः १२, ५ तथा ९ वें स्थानमें स्थित अन्य ग्रहसे विद्ध न हो। शनि भी अपनी जन्मराशिसे इन्हीं ३, ११, ६ स्थानोंमें शुभ है; यदि क्रमशः १२, ५, ९ स्थानोंमें स्थित सूर्यके सिवा अन्य ग्रहोंसे विद्ध न हों। बुध अपनी जन्मराशिसे २, ४, ६, ८, १० और ११ स्थानोंमें शुभ है; यदि क्रमशः ५, ३, ९, १, ८ और १२ स्थानोंमें स्थित चन्द्रमाके सिवा अन्य किसी ग्रहसे विद्ध न हों। मुनीश्वर! गुरु जन्मराशिसे २, ११, ९, ५ और ७ इन स्थानोंमें शुभ होते हैं; यदि क्रमशः १२, ८, १०, ४ और ३ स्थानोंमें स्थित अन्य किसी ग्रहसे विद्ध न हो। इसी प्रकार शुक्र भी जन्मराशिसे १, २, ३, ४, ५, ८, ९, १२ तथा ११ स्थानोंमें शुभ होते हैं; यदि क्रमशः ८, ७, १, १०, ९, ५, ११, ६, ३ स्थानोंमें स्थित अन्य ग्रहसे विद्ध न हों† ॥ २७१-२७६ ॥

जो ग्रह गोचरमें वेधयुक्त हो जाता है, वह शुभ या अशुभ फलको नहीं देता; इसलिये वेधका विचार करके ही शुभ या अशुभ फल समझना चाहिये ॥ २७७ ॥ वामवेध होने (वेध स्थानमें ग्रह और शुभ स्थानमें अन्य ग्रहके होने) से दुष्ट (अशुभ) ग्रह भी शुभ कारक हो जाता है। यदि दुष्ट ग्रह भी शुभग्रहसे दृष्ट हो तो शुभ-कारक हो जाता है तथा शुभप्रद ग्रह भी पापग्रहसे दृष्ट हो तो अनिष्ट फल देता है। शुभ और पाप दोनों ग्रह यदि अपने शत्रुके

---

* भाव यह है कि तारा और ग्रहके बलको देखकर किसी कार्यको आरम्भ करनेका आदेश है। यदि अपनी तारा बलवती हो तो निर्बल चन्द्रमा भी बली माना जाता है तथा रविशुद्धिविचारसे यदि अपने चन्द्रमा बली हों तो निर्बल सूर्य भी बली हो जाते हैं एवं सूर्यके बली होनेपर अन्य ग्रह अनिष्ट भी हों तो इष्टसाधक हो जाते हैं। इसलिये इन्हीं तीनों (तारा, चन्द्रमा तथा रवि) के बल देखे जाते हैं।

* सब ग्रहोंके जितने शुभ स्थान कहे गये हैं, क्रमशः उतने ही उनके वेध-स्थान भी कहे गये हैं। जैसे सूर्य [illegible] शुभ होता है, किंतु यदि नवेंमें कोई ग्रह हो तो विद्ध हो [illegible] है, इसी प्रकार अन्य शुभ-स्थान और वेध-स्थान समझने चाहिये।

† भाव यह है कि ऊपर जो ग्रहोंके शुभ और वेध-स्थान कहे गये हैं, उनमें मनुष्योंको अपनी-अपनी जन्मराशिसे शुभ स्थानोंमें ग्रहोंके जानेसे शुभ फल और वेध-स्थान [illegible] फल प्राप्त होते हैं। विशेषता यह है कि [illegible] भी यदि उन ग्रहोंके वेधस्थानोंमें [illegible] नहीं होते हैं, तथा शुभ और वेध स्थानमें [illegible] ग्रह मध्यम फल देनेवाले होते हैं। [illegible] कहते हैं।

देखे जाते हों अथवा नीच राशिमें या अपने शत्रुकी राशिमे हों तो निष्फल हो जाते हैं। इसी प्रकार जो ग्रह अस्त हो वह भी अपने शुभ या अशुभ फलको नहीं देता है। ग्रह यदि दुष्ट-स्थानमें हो तो यत्नपूर्वक उसकी शान्ति कर लेनी चाहिये। हानि और लाभ ग्रहोंके ही अधीन हैं, इसलिये ग्रहोंकी विशेष यत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये ॥२७८-२८०½॥

सूर्य आदि नवग्रहोंकी तुष्टिके लिये क्रमशः मणि (पद्मराग-लाल), मुक्ता (मोती), विद्रुम (मूँगा), मरकत (पन्ना), पुष्पराग (पोखराज), वज्र (हीरा), नीलम, गोमेद-रत्न एवं वैदूर्य (लहसनिया) धारण करना चाहिये ॥ २८१-२८२ ॥

(चन्द्र-शुद्धिमें विशेषता-) शुक्ल पक्षके प्रथम दिन प्रतिपदामें जिस व्यक्तिके चन्द्रमा शुभ होते हैं, उसके लिये शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष दोनों ही शुभद होते हैं। अन्यथा (यदि शुक्ल प्रतिपदामें चन्द्रमा अशुभ हो तो) दोनों पक्ष अशुभ ही होते हैं। (पहले जो जन्मराशिसे २, ९, ५ वें चन्द्रमाको अशुभ कहा गया है, वह केवल कृष्ण-पक्षमें ही होता है।) शुक्ल पक्षमे २, ९ तथा ५ वें स्थानमें स्थित चन्द्रमा भी शुभप्रद ही होता है, यदि वह ६, ८, १२वें स्थानोंमें स्थित अन्य ग्रहोंसे विद्ध न हो ॥ २८३-२८४ ॥

(तारा-विचार-) अपने-अपने जन्मनक्षत्रसे नौ नक्षत्रोंतक गिने तो क्रमशः १ जन्म, २ सम्पत्, ३ विपत्, ४ क्षेम, ५ प्रत्यरि, ६ साधक, ७ वध, ८ मित्र तथा ९ परम मित्र—इस प्रकार ९ ताराएँ होती है। फिर इसी प्रकार आगे गिननेपर १० से १८ तक तथा १९से २७ तक क्रमशः वे ही ९ ताराएँ होंगी। इनमें १, ३, ५ और ७वीं तारा अपने नामके अनुसार अनिष्ट फल देनेवाली होती है। इन चारों ताराओंमें इनके दोषकी शान्तिके लिये ब्राह्मणोंको क्रमशः शाक, गुड़, लवण और तिलसहित सुवर्णका दान देना चाहिये। कृष्ण-पक्षमें तारा बलवती होती है और शुक्ल पक्षमे चन्द्रमा बलवान् होता है ॥२८५-२८७ ॥

(चन्द्रमाकी अवस्था-) प्रत्येक राशिमे चन्द्रमाकी बारह-बारह अवस्थाएँ होती हैं, जो यात्रा तथा विवाह आदि शुभ कार्योंमें अपने नामके सदृश ही फल देती हैं।

(अवस्थाका ज्ञान-) अभीष्ट दिनमे गत नक्षत्र-संख्याको ६० से गुणा करके उसमें वर्तमान नक्षत्रकी भुक्त (भयात) घड़ीको जोड़ दे, योगफलको चारसे गुणा करके गुणनफलमें ४५ का भाग दे। जो लब्धि आवे, उसमे पुनः १२ से भाग देनेपर १ आदि शेषके अनुसार मेषादि राशियोमें क्रमशः प्रवास, नष्ट, मृत, जय, हास्य, रति, मुदा, सुप्ति, भुक्ति, ज्वर, कम्प और सुस्थिति—ये बारह गत अवस्थाएँ सूचित होती है*। ये अपने-अपने नामके समान फल देनेवाली होती है ॥ २८८-२८९ ॥

(मेषादि लग्नोंमें कर्तव्य-) पट्ट-बन्धन (राजसिंहासन, राजमुकुट आदि धारण), यात्रा, उग्र कर्म, संधि, विग्रह, आभूषणधारण, धातु, खानसम्बन्धी कार्य और युद्धकर्म—ये सब मेष लग्नमें आरम्भ करनेसे सिद्ध होते हैं ॥२९०॥ वृष लग्नमें विवाह आदि मङ्गलकर्म, गृहारम्भ आदि स्थिर-कर्म, जलाशय, गृहप्रवेश, कृषि, वाणिज्य तथा पशुपालन आदि कार्य सिद्ध होते हैं ॥ २९१ ॥ मिथुन लग्नमें कला, विज्ञान, शिल्प, आभूषण, युद्ध, सश्रव (कीर्ति-साधक कर्म), राज-कार्य, विवाह, राज्याभिषेक आदि कार्य करने चाहिये ॥ २९२ ॥ कर्क लग्नमे वापी, कूप, तड़ाग, जल रोकनेके लिये बाँध, जल निकालनेके लिये नाली बनाना, पौष्टिक कर्म, चित्रकारी तथा लेखन आदि कार्य करने चाहिये ॥ २९३ ॥ सिंह लग्नमें ईख तथा धान्यसम्बन्धी सब कार्य, वाणिज्य (क्रय-विक्रय), हाट, कृषिकर्म तथा सेवा आदि कर्म, स्थिर कार्य, साहस, युद्ध तथा आभूषण बनाना आदि कार्य सम्पन्न होते हैं ॥ २९४ ॥ कन्या लग्नमें विद्यारम्भ, शिल्पकर्म, ओषधिनिर्माण एवं सेवन, आभूषण-निर्माण और उसका धारण, समस्त चर और स्थिर कार्य, पौष्टिक कर्म तथा विवाहादि समस्त शुभ कार्य करने चाहिये ॥२९५ ॥ तुला लग्नमें कृषिकर्म, व्यापार, यात्रा, पशुपालन, विवाह-उपनयनादि संस्कार तथा तौलसम्बन्धी जितने कार्य हैं, वे सब सिद्ध होते है ॥ २९६ ॥ वृश्चिक लग्नमें गृहारम्भादि समस्त स्थिर कार्य, राजसेवा, राज्याभिषेक, गोपनीय और स्थिर

* जैसे रोहिणी नक्षत्रकी १२ घटी बीत जानेपर चन्द्रमाकी क्या अवस्था होगी? यह जानना है तो गत नक्षत्र-संख्या ३ को ६० से गुणा करके गुणनफल १८० में रोहिणीकी गत (भुक्त) घटी १२ जोड़नेसे १९२ हुआ। इसे चारसे गुणा करके गुणनफल ७६८ में ४५ का भाग देनेपर लब्धि १७ हुई। इसमें पुनः १२से भाग देनेपर शेष ५ रहा। अतः उस समय पाँच अवस्थाएँ गत होकर छठी अवस्था वर्तमान है। वृष राशिमें नष्ट आदिके क्रमसे गणना होती है; अतः उक्त गणनासे छठी अवस्था 'मुदा' सूचित होती है।

कर्मोंका आरम्भ करना चाहिये ॥ २९७ ॥ धनु लग्नमें उपनयन, विवाह, यात्रा, अश्वकृत्य, गजकृत्य, शिल्पकला तथा चर, स्थिर और मिश्रित कार्योंको करना चाहिये ॥२९८॥ मकर लग्नमें धनुष बनाना, उसमें प्रत्यञ्चा बाँधना, बाण छोड़ना, अस्त्र बनाना और चलाना, कृषि, गोपालन, अश्वकृत्य, गजकृत्य तथा पशुओंका क्रय-विक्रय और दास आदिकी नियुक्ति—ये सब कार्य करने चाहिये ॥ २९९ ॥ कुम्भ लग्नमें कृषि, वाणिज्य, पशुपालन, जलाशय, शिल्पकर्म, कला आदि, जलपात्र (कलश आदि) तथा अस्त्र-शस्त्रका निर्माण आदि कार्य करना चाहिये ॥ ३०० ॥ मीन लग्नमें उपनयन, विवाह, राज्याभिषेक, जलाशयकी प्रतिष्ठा, गृहप्रवेश, भूषण, जलपात्रनिर्माण तथा अश्वसम्बन्धी कृत्य शुभ होते हैं ॥ ३०१ ॥

इस प्रकार मेषादि लग्नोंके शुद्ध (शुभ स्वामीसे युक्त या दृष्ट) रहनेसे शुभ कार्य सिद्ध होते हैं। पापग्रहसे युक्त या दृष्ट लग्न हो तो उसमें केवल क्रूर कर्म ही सिद्ध होते हैं, शुभ कर्म नहीं ॥ ३०२ ॥

वृष, मिथुन, कर्क, कन्या, मीन, तुला और धनु—ये शुभग्रहकी राशि होनेके कारण शुभ हैं तथा अन्य (मेष, सिंह, वृश्चिक, मकर और कुम्भ—ये) पापराशियाँ हैं ॥ ३०३ ॥ लग्नपर जैसे (शुभ या अशुभ) ग्रहोंका योग या दृष्टि हो उसके अनुसार ही लग्न अपना फल देता है। यदि लग्नमें ग्रहके योग या दृष्टिका अभाव हो तो लग्न अपने स्वभावके अनुकूल फल देता है ॥ ३०४ ॥ किसी लग्नके आरम्भमें कार्यका आरम्भ होनेपर उसका पूर्ण फल मिलता है। लग्नके मध्यमें मध्यम और अन्तमें अल्प फल प्राप्त होता है। यह बात सब लग्नोंमें समझनी चाहिये ॥ ३०५ ॥ कार्यकर्ताके लिये सर्वत्र पहले लग्नबल, उसके बाद चन्द्रबल देखना चाहिये। चन्द्रमा यदि बली हो और सप्तम भावमें स्थित हो तो सब ग्रह बलवान् समझे जाते हैं ॥ ३०६ ॥ चन्द्रमाका बल आधार और अन्य ग्रहोंके बल आधेय हैं। आधारके बलपर ही आधेय स्थिर रहता है ॥ ३०७ ॥ यदि चन्द्रमा शुभदायक हो तो सब ग्रह शुभ फल देनेवाले होते है। यदि चन्द्रमा अशुभ हो तो अन्य सब ग्रह भी अशुभ फल देनेवाले हो जाते है। लेकिन धन-स्थानके स्वामीको छोडकर ही यह नियम लागू होता है, क्योंकि यदि धनेश शुभ हो तो वह चन्द्रमाके अशुभ होनेपर भी अपने शुभ फलको ही देता है ॥ ३०८ ॥

लग्नके जितने अंश उदित हो गये (क्षितिजसे ऊपर आ गये) हों; उनमें जो ग्रह हो वह लग्नके फलको देता है। [illegible] सिद्ध होता है कि लग्नके जितने भाग [illegible] रहनेवाला ग्रह लग्नभावका फल देता है तथा [illegible] तो लग्नराशिमें रहता हुआ भी आगे-पीछे [illegible] है। लग्नके कथित अंशसे जो ग्रह आगे [illegible] द्वितीय भावका फल देता है। इस प्रकार [illegible] स्थिति और फलकी कल्पना करनी चाहिये। [illegible] लग्न तो थोड़े दिनोंमें नहीं मिल सकता, अतः [illegible] अधिक गुणोंसे युक्त लग्नको ही सब [illegible] करना चाहिये; क्योंकि अधिक दोषोंसे युक्त [illegible] भी शुद्ध नहीं कर सकते; इसलिये थोड़े दोषसे युक्त होनेपर भी अधिक गुणवाला लग्न-काल हितकर होता है ॥ ३०९–३११ ॥

(स्त्रियोंके प्रथम रजोदर्शन-) अमावास्या, [illegible] (४, ९, १४), ८, ६, १२ और प्रतिपदा—इन तिथियोंमें परिघ योगके पूर्वार्धमें, व्यतीपात और वैधृतिके [illegible] समय, सूर्य और चन्द्रके ग्रहणकालमें तथा विष्टि (भद्रा) में स्त्रीका प्रथम मासिक धर्म अशुभ होता है। रवि आदि वारोंमें प्रथम रजोदर्शन हो तो वह स्त्री क्रमशः रोगयुक्ता, पतिकी प्रिया, दुःखयुक्ता, पुत्रवती, भोगवती, पतिव्रता एवं [illegible] होती है ॥ ३१२–३१४ ॥ भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, पूर्वा फाल्गुनी, आश्लेषा, विशाखा, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढ़ और पूर्व भाद्रपद—ये नक्षत्र तथा चैत्र, कार्तिक, आषाढ़ और पौष—ये मास प्रथम मासिकधर्ममें अनिष्टकारक [illegible] हैं। भद्रा, सूर्यकी सक्रान्ति, निद्रा अवस्था—[illegible] ग्रहण तथा चन्द्रग्रहण—ये सब प्रथम मासिकधर्ममें शुभ नहीं हैं। अशुभ योग, निन्द्य नक्षत्र तथा निन्दित दिनमें प्रथम मासिकधर्म हो तो वह स्त्री कुल्टा स्वभाववाली होती है ॥ ३१५-३१६ ॥ इसलिये इन सब दोषोंकी शान्तिके [illegible] पुरुषको चाहिये कि वह तिल, घृत और दूर्वा [illegible] द्वारा १०८ बार आहुति करे तथा सुवर्णदान, [illegible] तिलदान करे ॥ ३१७ ॥

(गर्भाधान-संस्कार-) मासिकधर्मसे [illegible] रात्रियाँ गर्भाधानमें त्याज्य हैं। [illegible] विषमराशि और विषम नवमांशमें हो [illegible] ([illegible] मङ्गल तथा बृहस्पति) की दृष्टि हो तो [illegible] ४, ६, ८, १०, १२) तिथियोंमें [illegible] मघा—इन नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य [illegible] अनम्र (सबल) होकर [illegible] ॥ ३१८ [illegible]

(पुंसवन और सीमन्तोन्नयन–) प्रथम गर्भ स्थिर हो जानेपर तृतीय या द्वितीय मासमें पुंसवन कर्म करे। उसी प्रकार ४, ६ या ८ वें मासमें उस मासके स्वामी जब बली हों तथा स्त्री-पुरुष दोनोंको चन्द्रमा और ताराका बल प्राप्त हो तो सीमन्त-कर्म करना चाहिये। रिक्ता तिथि और पर्वको छोड़कर अन्य तिथियोंमें ही उसको करनेकी विधि है। मङ्गल, बृहस्पति तथा रविवारमें, तीक्ष्ण और मिश्रसंज्ञक नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य नक्षत्रोंमें जब चन्द्रमा विषमराशि और विषमराशिके नवमांशमें हो, लग्नसे अष्टम स्थान शुद्ध (ग्रहवर्जित) हो, स्त्री-पुरुषके जन्म-लग्नसे अष्टम राशिलग्न न हो तथा लग्नमें शुभग्रहका योग और दृष्टि हो, पापग्रहकी दृष्टि न हो एवं शुभग्रह लग्नसे ५, १, ४, ७, ९,१० में और पापग्रह ६, ११ तथा ३ में हों एवं चन्द्रमा १२, ८ तथा लग्नसे अन्य स्थानोंमें हो तो उक्त दोनों कर्म (पुंसवन और सीमन्तोन्नयन) करने चाहिये ॥ ३२०–३२४ ॥ यदि एक भी बलवान् पापग्रह लग्नसे १२, ५ और ८ भावमें हो तो वह सीमन्तिनी स्त्री अथवा उसके गर्भका नाश कर देता है ॥ ३२५ ॥

(जातकर्म और नामकर्म–) जन्मके समयमें ही जातकर्म कर लेना चाहिये। किसी प्रतिबन्धकवश उस समय न कर सके तो सूतक बीतनेपर भी उक्त लग्नमें पितरोंका पूजन (नान्दीमुख कर्म) करके बालकका जातकर्म-संस्कार अवश्य करना चाहिये एवं सूतक बीतनेपर अपने-अपने कुलकी रीतिके अनुसार बालकका नामकरण-संस्कार भी करना चाहिये। भलीभाँति सोच-विचारकर देवता आदिका वाचक, मङ्गलदायक एवं उत्तम नाम रखना चाहिये। यदि देश-कालादि-जन्य किसी प्रतिबन्धसे समयपर कर्म न हो सके तो समयके बाद जब गुरु और शुक्रका उदय हो, तब उत्तरायणमें चर, स्थिर, मृदु और क्षिप्र संज्ञक नक्षत्रोंमें शुभग्रहके वार (सोम, बुध, गुरु और शुक्र) में पिता और बालकके चन्द्रबल और ताराबल प्राप्त होनेपर शुभ लग्न और शुभ नवांशमें, लग्नसे अष्टम भावमें कोई ग्रह न हो तब बालकका जातकर्म और नामकर्म-संस्कार करने चाहिये ॥ ३२६–३२९½ ॥

(अन्न-प्राशन–) बालकोंका जन्मसे ६वें या ८वें मासमें और बालिकाओंका जन्मसे ५वें या ७वें मासमें अन्नप्राशनकर्म शुभ होता है। परंतु रिक्ता (४, ९, १४), तिथिक्षय, नन्दा (१, ६, ११), १२, ८—इन तिथियोंको छोड़कर (अन्य तिथियोंमें) शुभ दिनमें चर, स्थिर, मृदु और क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्रमें लग्नसे अष्टम और दशम स्थान शुद्ध (ग्रहरहित) होनेपर शुभ नवांशयुक्त शुभ राशिलग्नमें, लग्नपर शुभ-ग्रहका योग या दृष्टि होनेपर जब पापग्रह लग्नसे ३, ६, ११ भावमें और शुभग्रह १, ४, ७, १०, ५, ९ भावमें हो तथा चन्द्रमा १२, ६, ८ स्थानसे भिन्न स्थानमें हो तो पूर्वाह्न-समयमें बालकोंका अन्नप्राशनकर्म शुभ होता है ॥ ३३०–३३४ ॥

(चूडाकरण–) बालकोंके जन्मसमयसे तीसरे या पाँचवें वर्षमें अथवा अपने कुलके आचार-व्यवहारके अनुसार अन्य वर्षमासमें भी उत्तरायणमें, जब गुरु और शुक्र उदित हों (अस्त न हों), पर्व तथा रिक्तासे अन्य तिथियोंमें, शुक्र, गुरु, सोमवारमें, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, मृगशिरा, ज्येष्ठा, रेवती, हस्त, चित्रा, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा—इन नक्षत्रोंमें अपने-अपने गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार चूडाकरणकर्म करना चाहिये। राजाओंके पट्टबन्धन, बालकोके चूडा-करण, अन्नप्राशन और उपनयनमें जन्म-नक्षत्र प्रशस्त (उत्तम) होता है। अन्य कर्मोंमें जन्म-नक्षत्र अशुभ कहा गया है। लग्नसे अष्टम स्थान शुद्ध हो, शुभ राशि लग्न हो, उसमें शुभग्रहका नवमांश हो तथा जन्म-राशि या जन्मलग्नसे अष्टम राशिलग्न न हो, चन्द्रमा लग्नसे ६, ८, १२ स्थानोंसे भिन्न स्थानोंमें हो, शुभग्रह २, ५, ९, १, ४, ७, १० भावमें हों तथा पापग्रह ३, ६, ११ भावमें हों तो चूडाकरण कर्म प्रशस्त होता है ॥ ३३५–३३९½ ॥

(सामान्य क्षौर-कर्म–) तेल लगाकर तथा प्रातः और सायं संध्याके समयमें क्षौर नहीं कराना चाहिये। इसी प्रकार मङ्गलवारको तथा रात्रिमें भी क्षौरका निषेध है। दिनमें भी भोजनके बाद क्षौर नहीं कराना चाहिये। युद्धयात्रामें भी क्षौर कराना वर्जित है। शय्यापर बैठकर या चन्दनादि लगाकर क्षौर नहीं कराना चाहिये। जिस दिन कहींकी यात्रा करनी हो उस दिन भी क्षौर न करावे तथा क्षौर कराने-के बाद उससे नवें दिन भी क्षौर न करावे। राजाओंके लिये क्षौर करानेके बाद उससे ५ वें-५वें दिन क्षौर करानेका विधान है। चूडाकरणमें जो नक्षत्र-वार आदि कहे गये हैं, उन्हीं नक्षत्रों और वार आदिमें अथवा कभी भी क्षौरमें विहित नक्षत्र और वारके उदय (मुहूर्त एवं क्षण) में क्षौर कराना शुभ होता है ॥ ३४०–३४१½ ॥

(क्षौरकर्ममें विशेष–) राजा अथवा ब्राह्मणोंकी आज्ञासे यज्ञमें, माता-पिताके मरणमें, जेलसे छूटनेपर तथा विवाहके

अवसरपर निषिद्ध नक्षत्र, वार एवं तिथि आदिमें भी क्षौर कराना शुभप्रद कहा गया है। समस्त मङ्गल कार्योंमें, मङ्गलार्थ इष्ट देवताके समीप क्षुरोंको अर्पण करना चाहिये*॥३४२-३४३॥

(**उपनयन**—) जिस दिन उपनयनका मुहूर्त स्थिर हो, उससे पूर्व ९ वें, ७ वें, ५ वें या तीसरे दिन उपनयनके लिये विहित नक्षत्र (या उस नक्षत्रके मुहूर्त) में शुभ वार और शुभ लग्नमें अपने घरोंको चँदोवा, पताका और तोरण आदिसे अच्छी तरह अलंकृत करके, ब्राह्मणोंद्वारा आशीर्वचन, पुण्याहवाचन आदि पुण्य कार्य कराकर, सौभाग्यवती स्त्रियोंके साथ, माङ्गलिक बाजा बजवाते और मङ्गल गान करते-कराते हुए घरसे पूर्वोत्तर-दिशा (ईशानकोण) में जाकर पवित्र स्थानसे चिकनी मिट्टी खोदकर ले ले और पुनः उसी प्रकार गीत-वाद्यके साथ घर लौट आवे। वहाँ मिट्टी या बाँसके बर्तनमें उस मिट्टीको रखकर उसमें अनेक वस्तुओंसे युक्त और भाँति-भाँतिके पुष्पोंसे सुशोभित पवित्र जल डाले। (इसी प्रकार और भी अपने कुलके अनुरूप आचारका पालन करे) ॥ ३४४—३४७ ॥ गर्भाधान अथवा जन्मसे आठवें वर्षमें ब्राह्मण-बालकोंका, ग्यारहवें वर्षमें क्षत्रिय-बालकोंका और बारहवें वर्षमें वैश्य-बालकोंका मौञ्जीबन्धन (यज्ञोपवीत-संस्कार) होना चाहिये ॥ ३४८ ॥ जन्मसे पाँचवें वर्षमें यज्ञोपवीत-संस्कार करनेपर बालक वेद-शास्त्र-विशारद तथा श्रीसम्पन्न होता है। इसलिये उसमें ब्राह्मण-बालकका उपनयन-संस्कार करना चाहिये ॥३४९॥ शुक्र और बृहस्पति निर्बल हों तब भी वे बालकके लिये शुभदायक होते हैं। अतः शास्त्रोक्त वर्षमें उपनयनसंस्कार अवश्य करना चाहिये। शास्त्रने जिस वर्षमें उपनयनकी आज्ञा नहीं दी है, उसमें वह संस्कार नहीं करना चाहिये ॥ ३५० ॥ गुरु, शुक्र तथा अपने वेदकी शाखाके स्वामी—ये दृश्य हों—अस्त न हुए हों तो उत्तरायणमें उपनयनसंस्कार करना उचित है। बृहस्पति, शुक्र, मङ्गल और बुध—ये क्रमशः ऋक्, यजुः, साम और अथर्ववेदके अधिपति हैं ॥ ३५१ ॥ शरद्, ग्रीष्म और वसन्त—ये व्युत्क्रमसे द्विजातियोंके उपनयनका मुख्य काल हैं अर्थात् शरद् ऋतु वैश्योंके, ग्रीष्म क्षत्रियोंके और वसन्त ब्राह्मणोंके उपनयनका मुख्य काल है। माघ आदि पाँच महीनोंमें उन सबके लिये उपनयनका साधारण काल है ॥ ३५२ ॥ माघ मासमें जिसका उपनयन [illegible] अपने कुलोचित आचार तथा धर्मका [illegible] होता है। फाल्गुनमें यज्ञोपवीत धारण करनेवाला [illegible] धनवान् होता है। चैत्रमें उपनयन होनेपर ब्रह्मचारी [illegible] वेदाङ्गोंका पारगामी विद्वान् होता है ॥ ३५३ ॥ वैशाख [illegible] में जिसका उपनयन हो, वह धनवान् तथा वेद [illegible] विविध विद्याओंमें निपुण होता है और ज्येष्ठमें [illegible] लेनेवाला द्विज विधिज्ञोंमें श्रेष्ठ और [illegible] होता है ॥ ३५४ ॥

शुक्ल पक्षमें द्वितीया तृतीया, पञ्चमी, त्रयोदशी, दशमी और सप्तमी तिथियाँ यज्ञोपवीतसंस्कारके लिये ग्राह्य हैं। एकादशी, षष्ठी और द्वादशी—ये तिथियाँ अधिक श्रेष्ठ हैं। शेष तिथियोंको मध्यम माना गया है। कृष्ण पक्षमें द्वितीया, तृतीया और पञ्चमी ग्राह्य हैं। अन्य तिथियाँ [illegible] निन्दित हैं ॥ ३५५-३५६ ॥ हस्त, चित्रा, स्वाती, रेवती, [illegible] आर्द्रा, पुनर्वसु, तीनों उत्तरा, श्रवण, धनिष्ठा शतभिषा, अश्विनी, अनुराधा तथा रोहिणी—ये नक्षत्र उपनयन-संस्कारके लिये उत्तम हैं ॥ ३५७ ॥ जन्मनक्षत्रसे दसवाँ 'कर्म' संज्ञक है, सोलहवाँ '[illegible]' नक्षत्र है, [illegible] 'समुदय' नक्षत्र है, तेईसवाँ 'विनाश' [illegible] और पचीसवाँ 'मानस' है। इनमें शुभ कर्म नहीं आरम्भ करने [illegible]। गुरु, बुध और शुक्र—इन तीनोंके वार उपनयनमें [illegible] हैं। सोमवार और रविवार ये मध्यम माने गये हैं। शेष दो वार मङ्गल और शनैश्चर निन्दित हैं। दिनके तीन भाग [illegible] उसके आदि भागमें देवसम्बन्धी कर्म ([illegible]) करने चाहिये ॥ ३५८-३६० ॥ द्वितीय भागमें मनुष्य-सम्बन्धी कार्य (अतिथि-सत्कार आदि) [illegible] और तृतीय भागमें पैतृक कर्म (श्राद्ध तर्पणादि) [illegible] करना चाहिये। गुरु, शुक्र और अपनी [illegible] अधिपति अपनी नीच राशिमें या उसके [illegible] अपने शत्रुकी राशिमें या उसके [illegible] हों तो उस समय यज्ञोपवीत लेनेवाला द्विज [illegible] रहित होता है। इसी प्रकार अपनी [illegible] एवं शुक्र यदि अपने अधिशत्रु [illegible] स्थित हों तो ब्रह्मचर्यव्रत (यज्ञोपवीत) [illegible] महापातकी होता है। गुरु, शुक्र एवं अपनी [illegible] ग्रह यदि अपनी उच्च राशि या उसके [illegible] अपनी राशि या उसके किसी [illegible] ([illegible] ७,१०) या त्रिकोण (५, ९) में स्थित हों तो [illegible]

---

* चूडाकरण या उपनयनमें क्षुरसे ही कार्य होता है, इसलिये उसके रक्षार्थ लोग अपने-अपने कुलदेवताके पास क्षुरको समर्पण करते हैं।

यज्ञोपवीत लेनेवाला ब्रह्मचारी अत्यन्त धनवान् तथा वेद-वेदाङ्गोंका पारङ्गत विद्वान् होता है ॥ ३६१—३६४ ॥ यदि गुरु, शुक्र अथवा शाखाधिपति परमोच्च स्थानमें हों और मृत्यु (आठवाँ) स्थान शुद्ध हो तो उस समय ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण करनेवाला द्विज वेद-शास्त्रमें 'निष्णात' होता है ॥ ३६५ ॥ गुरु, शुक्र अथवा शाखाधिपति यदि अपने अधिमित्रगृहमें या उसके उच्च गृहमें अथवा उसके अंशमें स्थित हों तो यज्ञोपवीत लेनेवाला ब्रह्मचारी विद्या तथा धनसे सम्पन्न होता है ॥३६६॥ शाखाधिपतिका दिन हो, बालकको शाखाधिपतिका बल प्राप्त हो तथा शाखाधिपतिका ही लग्न हो—ये तीन बातें उपनयनसंस्कार-में दुर्लभ हैं ॥ ३६७ ॥ उससे चतुर्थांशमें चन्द्रमा हों तो यज्ञोपवीत लेनेवाला बालक विद्यामें निपुण होता है; किंतु यदि वह पापग्रहके अंशमें अथवा अपने अंशमें हो तो यज्ञोपवीती द्विज सदा दरिद्र और दुखी रहता है ॥ ३६८ ॥ जब श्रवणादि नक्षत्रमे विद्यमान चन्द्रमा कर्कके अंश-विशेषमें स्थित हो तो ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण करनेवाला द्विज वेद, शास्त्र तथा धन-धान्य-समृद्धिसे सम्पन्न होता है ॥ ३६९ ॥ शुभ लग्न हो, शुभग्रहका अंश चल रहा हो, मृत्युस्थान शुद्ध हो तथा लग्न और मृत्यु-स्थान शुभग्रहोंसे संयुक्त हो अथवा उनपर शुभग्रहोंकी दृष्टि हो, अभीष्ट स्थानमें स्थित बृहस्पति, सूर्य और चन्द्रमा आदि पाँच बलवान् ग्रहोंसे लग्न-स्थान संयुक्त या दृष्ट हो अथवा स्थान आदिके बलसे पूर्ण चार ही शुभग्रहयुक्त ग्रहोंद्वारा लग्नस्थान देखा जाता हो, और वह इक्कीस महादोषोंसे रहित हो तो यज्ञोपवीत लेना शुभ है। शुभ-ग्रहोंसे संयुक्त या दृष्ट सभी राशियाँ शुभ हैं ॥ ३७०—३७२ ॥ वे शुभ राशियाँ शुभ ग्रहके नवांशमें हों तो व्रतबन्ध (यज्ञोपवीत) में ग्राह्य हैं, किंतु कर्कराशिका अंश शुभ ग्रहसे युक्त तथा दृष्ट हो तो भी कभी ग्रहण करने योग्य नहीं है ॥३७३॥ इसलिये वृष और मिथुनके अंश तथा तुला और कन्याके अंश शुभ हैं। इस प्रकार लग्नगत नवांश होनेपर व्रतबन्ध उत्तम बताया गया है ॥ ३७४ ॥ तीसरे, छठे और ग्यारहवें स्थानमें पापग्रह हों, छठा, आठवाँ और बारहवाँ स्थान शुभ-ग्रहसे खाली हो और चन्द्रमा छठे, आठवें, लग्न तथा बारहवें स्थानमें न हों तो उपनयन शुभ होता है ॥ ३७५ ॥ चन्द्रमा अपने उच्च स्थानमें होकर भी यदि व्रती पुरुषके व्रतबन्ध-मुहूर्त-सम्बन्धी लग्नमें स्थित हो तो वह उस बालकको निर्धन और क्षयका रोगी बना देता है ॥ ३७६ ॥ यदि सूर्य केन्द्र-स्थानमें प्रकाशित हों तो यज्ञोपवीत लेनेवाले बालकके पिताका नाश हो जाता है। पाँच दोषोंसे रहित लग्न उपनयनमें शुभदायक होता है ॥ ३७७ ॥ वसन्त ऋतुके सिवा और कभी कृष्णपक्षमें, गलग्रहमें, अनध्यायके दिन, भद्रामें तथा षष्ठीको बालकका उपनयन-संस्कार नहीं होना चाहिये ॥ ३७८ ॥ त्रयोदशीसे लेकर चार, सप्तमीसे लेकर तीन दिन और चतुर्थी ये आठ गलग्रह अशुभ कहे गये हैं ॥ ३७९ ॥

(क्षुरिका-बन्धनकर्म—) अब मैं क्षत्रियोंके लिये क्षुरिकाबन्धन कर्मका वर्णन करूँगा जो विवाहके पहले सम्पन्न होता है। विवाहके लिये कहे हुए मासोंमें, शुक्लपक्षमें, जब कि बृहस्पति, शुक्र और मङ्गल अस्त न हों, चन्द्रमा और ताराका बल प्राप्त हो, उस समय मौञ्जीबन्धनके लिये बतायी हुई तिथियोंमें, मङ्गलवारको छोड़कर शेष सभी दिनोंमें यह कर्म किया जाता है। कर्ताका लग्नगत नवांश यदि अष्टमोदयसे रहित न हो, अष्टम शुद्ध हो; चन्द्रमा छठे, आठवें और बारहवेंमें न होकर लग्नमे स्थित हों; शुभग्रह दूसरे, पाँचवें, नवें, लग्न, चतुर्थ, सप्तम और दशम स्थानोंमें हों; पापग्रह तीसरे, ग्यारहवें और छठे स्थानमें हों तो देवताओं और पितरोंकी पूजा करके क्षुरिका-बन्धनकर्म करना चाहिये ॥ ३८०—३८३ ॥ पहले देवताओं-के समीप क्षुरिका (कटार)की भलीभाँति पूजा करे। तत्पश्चात् शुभ लक्षणोंसे युक्त उस क्षुरिकाको उत्तम लग्नमें अपनी कटिमे बाँधे ॥ ३८४ ॥ क्षुरिकाकी लम्बाईके आधे (मध्यभाग) पर जो विस्तारमान हो उससे क्षुरिकाके विभाग करे। वे छेदखण्ड (विभाग) क्रमसे ध्वज आदि आय कहलाते हैं। उनकी आठ संज्ञाएँ हैं—ध्वज, धूम्र, सिंह, श्वा, वृष, गर्दभ, गज और ध्वाङ्क्ष। ध्वज नामक आयमें शत्रुका नाश होता है ॥ ३८५ ॥ धूम्र आयमें घात, सिंह नामक आयमें जय, श्वा (कुत्ता) नामक आयमें रोग, वृष आयमें धनलाभ, गर्दभ आयमें अत्यन्त दुःखकी प्राप्ति, गज आयमें अत्यन्त प्रसन्नता और ध्वाङ्क्ष नामक आयमें धनका नाश होता है। खड्ग और छुरीके मापको अपने अङ्गुलसे गिने ॥ ३८६-३८७ ॥ मापके अङ्गुलोंमेंसे ग्यारहसे अधिक हो तो ग्यारह घटा दे। फिर शेष अङ्गुलोंके क्रमशः फल इस प्रकार हैं ॥ ३८८ ॥ पुत्र-लाभ, शत्रुवध, स्त्रीलाभ, शुभगमन, अर्थहानि, अर्थवृद्धि, प्रीति, सिद्धि, जय और स्तुति ॥ ३८९ ॥

छुरी या तलवारमे यदि ध्वज अथवा वृष आय-विभागके पूर्वभाग* मे नष्ट (भङ्ग) हो, तथा सिंह और गज-आय-

* छुरी या तलवारकी मुट्ठीकी ओर पूर्व और अग्रकी ओर अन्त समझना चाहिये।

के मध्यभागमें तथा कुक्कुर और काक-आयके अन्तिम भागमें एवं धूम्र और गर्दभ आयके अन्तिम भागमें नष्ट हो जाय तो शुभ नहीं होता है। (अतः ऐसी छुरी या तलवारका परित्याग कर देना चाहिये; यह बात अर्थतः सिद्ध होती है) ॥ ३९०½ ॥

(समावर्तन-) उत्तरायणमें जब गुरु और शुक्र दोनों उदित हों, चित्रा, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ, उत्तर भाद्रपद, पुनर्वसु, पुष्य, रेवती, श्रवण, अनुराधा, रोहिणी—ये नक्षत्र हों तथा रवि, सोम, बुध, गुरु और शुक्रवारमेंसे कोई वार हो तो इन्हीं रवि आदि पाँच ग्रहोंकी राशि, लग्न और नवमांशमें, प्रतिपदा, पर्व, रिक्ता, अमावास्या तथा सप्तमीसे तीन तिथि—इन सब तिथियोंको छोड़कर अन्य तिथियोंमें गुरुकुलसे अध्ययन समाप्त करके घरको लौटनेवाले जितेन्द्रिय द्विजकुमार-का समावर्तन-संस्कार (मुण्डन हवन आदि) करना चाहिये ॥ ३९१-३९३½ ॥

(विवाहकथन-) विप्रवर ! सब आश्रमोंमें यह गृहस्थाश्रम ही श्रेष्ठ है। उसमें भी जब सुशीला धर्मपत्नी प्राप्त हो तभी सुख होता है। स्त्रीको सुशीलताकी प्राप्ति तभी होती है, जब विवाहकालिक लग्न शुभ हो। इसलिये मैं साक्षात् ब्रह्माजीद्वारा कथित लग्न-शुद्धिको विचार करके कहता हूँ ॥ ३९४–३९५½ ॥

प्रथमतः कन्यादान करनेवालाको चाहिये कि वे किसी शुभ दिनको अपनी अञ्जलिमें पान, फूल, फल और द्रव्य आदि लेकर ज्यौतिषशास्त्रके ज्ञाता समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, प्रसन्नचित्त तथा सुखपूर्वक बैठे हुए विद्वान् ब्राह्मणके समीप जाय और उन्हें देवताके समान मानकर भक्तिपूर्वक प्रणाम करके अपनी कन्याके विवाह-लग्नके विषयमें पूछे ॥ ३९६–३९७ ॥

(ज्यौतिषीको चाहिये कि उस समय लग्न और ग्रह स्पष्ट करके देखे-) यदि प्रश्नलग्नमें पापग्रह हो या लग्नसे सप्तम भावमें मङ्गल हो तो जिसके लिये प्रश्न किया गया है, उस कन्या और वरको ८ वर्षके भीतर ही घातक अरिष्ट प्राप्त होगा, ऐसा समझना चाहिये। यदि लग्नमें चन्द्रमा और उससे सप्तम भावमें मङ्गल हो तो ८ वर्षके भीतर ही उस कन्याके पतिको घातक कष्ट प्राप्त होगा—ऐसा समझे। यदि लग्नसे पञ्चम भावमें पापग्रह हो और वह नीचराशिमें पापग्रहसे देखा जाता हो तो वह कन्या कुलटा स्वभाववाली अथवा मृतवत्सा होती है, इसमें संशय नहीं है ॥ ३९८–४०० ॥ यदि प्रश्नलग्नसे ३, ५, ७, ११ और १० वें भावमें चन्द्रमा हो तथा उसपर गुरुकी दृष्टि हो तो समझना चाहिये कि उस कन्याको शीघ्र ही पतिकी प्राप्ति होगी ॥ ४०१ ॥ यदि प्रश्नलग्नमें तुला, वृष या कर्क राशि हो तथा वह शुक्र और चन्द्रमासे युक्त हो तो निश्चय ही प्रश्न करनेपर वरके लिये कन्या (पत्नी) लाभ होता है अथवा सम राशि लग्न हो, उसमें समराशिका द्रेष्काण हो और सम राशिका नवमांश तथा उसपर चन्द्रमा और शुक्रकी दृष्टि हो तो वरको पत्नीकी प्राप्ति होती है ॥ ४०२–४०३ ॥

इसी प्रकार यदि प्रश्नलग्नमें पुरुषराशि और पुरुषराशि-का नवमांश हो तथा उसपर पुरुषग्रह (रवि, मङ्गल और गुरु) की दृष्टि हो तो जिनके लिये प्रश्न किया गया है, उन कन्याओंको पतिकी प्राप्ति होती है ॥ ४०४ ॥

यदि प्रश्नसमयमें कृष्णपक्ष हो और चन्द्रमा सम राशिमें होकर लग्नसे छठे या आठवें भावमें पापग्रहसे देखा जाता हो तो (निकट भविष्यमें) विवाह-सम्बन्ध नहीं हो पाता है ॥ ४०५ ॥ यदि प्रश्नकालमें शुभ निमित्त और शुभ शकुन देखने सुननेमें आवें तो वर-कन्याके लिये शुभ होता है तथा यदि निमित्त एवं शकुन आदि अशुभ हो तो अशुभ फल होता है ॥ ४०६ ॥

(कन्या-वरण-) पञ्चाङ्ग (तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण) से शुद्ध दिनमें यदि वर और कन्याको चन्द्रबल तथा ताराबल प्राप्त हो तो विवाहके लिये विहित नक्षत्र या उत्तम मुहूर्तमें वरको चाहिये कि अपने कुलके श्रेष्ठ जनोंके साथ गीत, वाद्यकी ध्वनि और ब्राह्मणोंके आशीर्वचन (शान्ति-स्वस्तिपाठ) आदिसे युक्त होकर विविध आभूषण, शुभ वस्त्र, फूल, फल, पान, अक्षत, चन्दन और सुगन्धादि लेकर कन्याके घर जाय और विनीत भावसे कन्याका वरण करे। (कन्याका वरण वरके बड़े भाई अथवा गुरुजनको करना चाहिये।) इसके बाद कन्याका पिता प्रसन्नचित्त होकर अभीष्ट वरको कन्या दान करे ॥ ४०७–४०९ ॥

कन्याके पिताको चाहिये कि अपनी कन्याको [illegible] कुल, शील, वयस्, रूप, धन और विद्यासे युक्त [illegible] वयसमें छोटी रूपवती अपनी कन्या दे। [illegible] सब गुणोंकी आश्रयभूता, तीनों लोकोंमें सबसे अधिक सुन्दरी, दिव्य गन्ध, माला और वस्त्रसे सुशोभित [illegible] से युक्त तथा सब आभूषणोंसे [illegible] दसों दिशाओंको प्रकाशित करती हुई, [illegible] सुसेविता सर्वगुणसम्पन्ना नारी (लक्ष्मी) [illegible]

करके उनसे प्रार्थना करे—'हे देवि! हे इन्द्राणि! हे देवेन्द्र-प्रियभामिनि! आपको मेरा नमस्कार है। देवि! इस विवाहमें आप सौभाग्य, आरोग्य और पुत्र प्रदान करें।' इस प्रकार प्रार्थना करके पूजाके बाद विधानपूर्वक ऊपर कहे हुए गुणयुक्त वरके लिये अपनी कुमारी कन्याका दान करे॥ ४१०—४१४॥

(कन्या-वरकी वर्षशुद्धि—) कन्याके जन्मसमयसे सम वर्षोंमें और वरके जन्मसमयसे विषम वर्षोंमें होनेवाला विवाह उन दोनोंके प्रेम और प्रसन्नताको बढ़ानेवाला होता है। इससे विपरीत (कन्याके विषम और वरके सम वर्षमें) विवाह वर-कन्या दोनोंके लिये घातक होता है॥ ४१५॥

(विवाहविहित मास—) माघ, फाल्गुन, वैशाख और ज्येष्ठ—ये चार मास विवाहमें श्रेष्ठ तथा कार्तिक और मार्गशीर्ष ये दो मास मध्यम हैं। अन्य मास निन्दित हैं॥ ४१६॥

सूर्य जब आर्द्रा नक्षत्रमें प्रवेश करे तबसे दस नक्षत्रतक (अर्थात् आर्द्रासे स्वातीतकके नक्षत्रोंमें जबतक सूर्य रहें तबतक) विवाह, देवताकी प्रतिष्ठा और उपनयन नहीं करने चाहिये। बृहस्पति और शुक्र जब अस्त हों, बाल अथवा वृद्ध हों तथा केवल बृहस्पति सिंहराशि या उसके नवमांशमें हों, उस समय भी ऊपर कहे हुए शुभ कार्य नहीं करने चाहिये॥ ४१७—४१८॥

(गुरु तथा शुक्रके बाल्य और वृद्धत्व—) शुक्र जब पश्चिममें उदय होता है तो दस दिन और पूर्वमें उदय होता है तो तीन दिनतक बालक रहता है तथा जब पश्चिममें अस्त होनेको रहता है तो अस्तसे पाँच दिन पहले और पूर्वमें अस्त होनेसे पंद्रह दिन पहले वृद्ध हो जाता है। गुरु उदयके बाद पंद्रह दिन बालक और अस्तसे पहले पंद्रह दिन वृद्ध रहता है॥ ४१९॥

जबतक भगवान् हृषीकेश शयनावस्थामें हों तबतक तथा भगवान्‌के उत्सव (उत्थान या जन्मदिन) में भी अन्य मङ्गलकार्य नहीं करने चाहिये॥ ४२०॥ पहले गर्भके पुत्र और कन्याके जन्ममास, जन्मनक्षत्र और जन्म तिथि-वारमें भी विवाह नहीं करना चाहिये। आद्य गर्भकी कन्या और आद्य गर्भके वरका परस्पर विवाह नहीं कराना चाहिये तथा वर-कन्यामें कोई एक ही ज्येष्ठ (आद्य गर्भका) हो तो ज्येष्ठ मासमें विवाह श्रेष्ठ है। यदि दोनों ज्येष्ठ हों तो ज्येष्ठ मासमें विवाह अनिष्टकारक कहा गया है॥ ४२१—४२२॥

(विवाहमें वर्ज्य—) भूकम्पादि उत्पात तथा सर्वग्रास सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण हो तो उसके बाद सात दिनतकका समय शुभ नहीं है। यदि खण्डग्रहण हो तो उसके बाद तीन दिन अशुभ होते हैं। तीन दिनका स्पर्श करनेवाली (वृद्धि) तिथि, क्षयतिथि तथा ग्रस्तास्त (ग्रहण लगे चन्द्र, सूर्यका अस्त) हो तो पूर्वके तीन दिन अच्छे नहीं माने जाते हैं। यदि ग्रहण लगे हुए सूर्य, चन्द्रका उदय हो तो बादके तीन दिन अशुभ होते हैं। संध्यासमयमें ग्रहण हो तो पहले और बादके भी तीन-तीन दिन अनिष्टकारक हैं तथा मध्य रात्रिमें ग्रहण हो तो सात दिन (तीन पहलेके और तीन बादके और एक ग्रहणवाला दिन) अशुभ होते हैं॥ ४२३—४२४॥ मासके अन्तिम दिन, रिक्ता, अष्टमी, व्यतीपात और वैधृतियोग सम्पूर्ण तथा परिघ योगका पूर्वार्ध—ये विवाहमें वर्जित हैं॥ ४२५॥

(विहित नक्षत्र—) रेवती, रोहिणी, तीनों उत्तरा, अनुराधा, स्वाती, मृगशिरा, हस्त, मघा और मूल—ये ग्यारह नक्षत्र वेधरहित हों तो इन्हींमें स्त्रीका विवाह शुभ कहा गया है॥ ४२६॥ विवाहमें वरको सूर्यका और कन्याको बृहस्पतिका बल अवश्य प्राप्त होना चाहिये। यदि ये दोनों अनिष्टकारक हों तो यत्नपूर्वक इनकी पूजा करनी चाहिये॥ ४२७॥ गोचर, वेध और अष्टकवर्ग-सम्बन्धी बल उत्तरोत्तर अधिक है*। इसलिये गोचरबल स्थूल (साधारण) माना जाता है। अर्थात् ग्रहोंका अष्टकवर्ग-बल ग्रहण करना चाहिये। प्रथम तो वर-कन्याके चन्द्रबल और ताराबल देखने चाहिये। उसके बाद पञ्चाङ्ग (तिथि, वार आदि) के बल देखे। तिथिमें एक, वारमें दो, नक्षत्रमें तीन, योगमें चार और करणमें पाँच गुने बल होते हैं। इन सबकी अपेक्षा मुहूर्त बली होता है। मुहूर्तसे भी लग्न, लग्नसे भी होरा (राश्यर्ध), होरासे द्रेष्काण, द्रेष्काणसे नवमांश, नवमांशसे भी द्वादशांश तथा उससे भी त्रिंशांश † बली होता है। इसलिये इन सबके बल देखने चाहिये॥ ४२८—४३१॥

१. आषाढ़ शुक्ला ११ से कार्तिक शुक्ला ११ तक भगवान् हृषीकेशके शयनका काल है।

* अर्थात् गोचरबल एक, वेधबल दो और अष्टकवर्गबल तीनके बराबर है।

† जातक-अध्यायमें देखिये। अभिप्राय यह है कि नक्षत्रविहित (गुणयुक्त) न मिले तो उसका मुहूर्त लेना चाहिये। यदि लग्न-राशि निर्बल हो तो उसके नवमांश आदिका बल देखकर निर्बल लग्नको भी प्रशस्त समझना चाहिये।

विवाहमें शुभग्रहसे युक्त या दृष्ट होनेपर सब राशि प्रशस्त हैं। चन्द्रमा, सूर्य, बुध, बृहस्पति तथा शुक्र आदि पाँच ग्रह जिस राशिके इष्ट हों, वह लग्न शुभप्रद होता है। यदि चार ग्रह भी बली हों तो भी उन्हें शुभप्रद ही समझना चाहिये ॥ ४३२–४३३ ॥

मुने! जामित्र (लग्नसे सप्तम स्थान) शुद्ध (ग्रहवर्जित) हो तथा लग्न इक्कीस दोषोंसे रहित हो तो उसे विवाहमें ग्रहण करना चाहिये। अब मैं उन इक्कीस दोषोंके नाम, स्वरूप और फलका संक्षेपसे वर्णन करता हूँ, सुनो—॥ ४३४½ ॥

(**विवाहके इक्कीस दोष—**) पञ्चाङ्ग-शुद्धिका न होना, यह प्रथम दोष कहा गया है। उदयास्तकी शुद्धिका न होना २, उस दिन सूर्यकी संक्रान्तिका होना ३, पापग्रहका षड्वर्गमें रहना ४, लग्नसे छठे भावमें शुक्रकी स्थिति ५, अष्टममें मङ्गलका रहना ६, गण्डान्त होना ७, कर्तरीयोग ८, बारहवें, छठे और आठवें चन्द्रमाका होना तथा चन्द्रमाके साथ किसी अन्य ग्रहका होना ९, वर-कन्याकी जन्मराशिसे अष्टम राशि लग्न हो या दैनिक चन्द्रराशि हो १०, विषघटी ११, दुर्मुहूर्त १२, वार-दोष १३, खार्जूर १४, नक्षत्रैक-चरण १५, ग्रहण और उत्पातके नक्षत्र १६, पापग्रहसे विद्ध नक्षत्र १७, पापसे युक्त नक्षत्र १८, पापग्रहका नवमांश १९, महापात २० और वैधृति २१—विवाहमें ये २१ दोष कहे गये हैं ॥ ४३५–४३८½ ॥

मुने! तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण—इन पाँचोंका मेल पञ्चाङ्ग कहलाता है। उसकी शुद्धि पञ्चाङ्गशुद्धि कहलाती है। जिस दिन पञ्चाङ्गके दोष हों, उस दिन विवाह-लग्न बनाना निरर्थक है। इस प्रकारका लग्न यदि पाँच इष्ट ग्रहोंसे युक्त हो तो भी उसको विषमिश्रित दूधके समान त्याग देना चाहिये ॥ ४३९–४४०½ ॥ लग्न या उसके नवमांश अपने-अपने स्वामीसे युक्त या दृष्ट न हों अथवा परस्पर (लग्नेशसे नवमांश और नवमांशपतिसे लग्नेश) युक्त या दृष्ट न हों अथवा अपने स्वामीके शुभग्रह मित्रसे युक्त या दृष्ट न हों तो वरके लिये घातक होते हैं *। इसी प्रकार लग्नसे सप्तम और उसके नवमांशमें भी ये दोनों यदि अपने-अपने स्वामीसे अथवा परस्पर युक्त या दृष्ट नहीं हों या अपने-अपने स्वामीके शुभ मित्रसे युक्त या दृष्ट न हों तो उस दशामें विवाह होनेपर वह वधूके लिये घातक है ॥ ४४१–४४२½ ॥

सूर्यकी संक्रान्तिके समयसे पूर्व और पश्चात् सोलह घड़ी विवाह आदि शुभ कार्योंमें त्याज्य हैं। लग्नका षड्वर्ग (राशि, होरा, द्रेष्काण, नवमांश, द्वादशांश तथा त्रिंशांश) शुभ हो तो विवाह देवप्रतिष्ठा आदि कार्योंमें श्रेष्ठ माना गया है ॥ ४४३–४४४ ॥

लग्नसे छठे स्थानमें शुक्र हो तो वह 'भृगुषट्क' नामक दोष कहलाता है। उच्चस्थ और शुभ ग्रहसे युक्त होनेपर भी उस लग्नको सदा त्याग देना चाहिये। लग्नसे अष्टम स्थानमें मङ्गल हो तो यह 'भौम महादोष' कहलाता है। यदि मङ्गल उच्चमें हो और तीन शुभ ग्रह लग्नमें हों तो इस लग्नका त्याग नहीं करना चाहिये (अर्थात् ऐसी स्थितिमें अष्टम मङ्गलका दोष नष्ट हो जाता है) ॥४४५-४४६॥

(**गण्डान्तदोष—**) पूर्णा (५, १०, १५) तिथियोंके अन्त और नन्दा (१, ६, ११) तिथियोंकी आदिकी सन्धिमें दो घड़ी 'तिथिगण्डान्त दोष' कहलाता है। वह जन्म, यात्रा, उपनयन और विवाहादि शुभ कार्योंमें घातक कहा गया है ॥४४७॥ कर्क लग्नके अन्त और सिंह लग्नके आदिकी सन्धिमें, वृश्चिक और धनुकी सन्धिमें तथा मीन और मेष लग्नकी सन्धिमें आधा घड़ी 'लग्नगण्डान्त' कहलाता है। वह भी घातक होता है ॥४४८॥ आश्लेषाके अन्तका चतुर्थ चरण और मघाका प्रथम चरण तथा ज्येष्ठाके अन्तकी १६ घड़ी और मूलका प्रथम चरण एवं रेवती नक्षत्रके अन्तकी ग्यारह घड़ी और अश्विनीका प्रथम चरण—इस प्रकार इन दो-दो नक्षत्रोंकी सन्धिका काल 'नक्षत्रगण्डान्त' कहलाता है। ये तीनों प्रकारके गण्डान्त महाक्रूर होते हैं ॥४४७–४४९½॥

(**कर्तरीदोष—**) लग्नसे बारहवेंमें मार्गी और द्वितीयमें वक्री दोनों पापग्रह हों तो लग्नमें आगे-पीछे दोनों ओरसे जानेके कारण यह 'कर्तरीदोष' कहलाता है। इसमें विवाह होनेसे यह कर्तरीदोष वर-वधू दोनोंके गलेको छुरी चलानेवाला (उनका अनिष्ट करनेवाला) होता है। ऐसे कर्तरीदोषसे युक्त लग्नका परित्याग कर देना चाहिये ॥४५०-४५१॥

(**लग्न-दोष—**) यदि लग्नसे छठे, आठवें तथा बारहवेंमें चन्द्रमा हो तो यह 'लग्नदोष' कहलाता है। ऐसा लग्न शुभग्रहों तथा अन्य सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त होनेपर भी दोषयुक्त होता है। वह लग्न बृहस्पति और शुक्रसे युक्त हो तथा चन्द्रमा उच्च, नीच, मित्र या शत्रुराशिमें (कहीं भी) हो तो भी यत्नपूर्वक त्याग देने योग्य है, क्योंकि वह सब गुणोंसे युक्त होनेपर भी वर-वधूके लिये घातक कहा गया है ॥४५१-४५३½ ॥

---

* यहाँ घातक शब्द अशुभ-सूचक समझना चाहिये। अर्थात् ऐसे लग्नमें वरको अशुभ फल प्राप्त होता है।

(सग्रहदोष—) चन्द्रमा यदि किसी ग्रहसे युक्त हो तो 'सग्रह' नामक दोष होता है। इस दोषमें भी विवाह नहीं करना चाहिये। चन्द्रमा यदि सूर्यसे युक्त हो तो दरिद्रता, मङ्गलसे युक्त हो तो घात अथवा रोग, बुधसे युक्त हो तो अनपत्यता (संतानहानि), गुरुसे युक्त हो तो दौर्भाग्य, शुक्रसे युक्त हो तो पति-पत्नीमें शत्रुता, शनिसे युक्त हो तो प्रव्रज्या (घरका त्याग), राहुसे युक्त हो तो सर्वस्वहानि और केतुसे युक्त हो तो कष्ट और दरिद्रता होती है ॥४५४-४५७॥

(पापग्रहकी निन्दा और शुभग्रहोंकी प्रशंसा—) मुने! इस प्रकार सग्रहदोषमें चन्द्रमा यदि पापग्रहसे युक्त हो तो वर-वधू दोनोके लिये घातक होता है। यदि वह शुभग्रहोसे युक्त हो तो उस स्थितिमें यदि उच्च या मित्रकी राशिमे चन्द्रमा हो तो लग्न दोषयुक्त रहनेपर भी वर-वधूके लिये कल्याणकारी होता है। परंतु चन्द्रमा स्वोच्चमें या स्वराशिमे अथवा मित्रकी राशिमें रहनेपर भी यदि पापग्रहसे युक्त हो तो वर-वधू दोनोंके लिये घातक होता है ॥४५८-४५९½॥

(अष्टमराशि लग्नदोष—) वर या वधूके जन्म-लग्नसे अथवा उनकी जन्मराशिसे अष्टमराशि विवाह-लग्नमे पड़े तो यह दोष भी वर और वधूके लिये घातक होता है। वह राशि या वह लग्न शुभग्रहसे युक्त हो तो भी उस लग्नको, उस नवमांशसे युक्त लग्नको अथवा उसके स्वामीको यत्नपूर्वक त्याग देना चाहिये ॥४६०-४६१½॥

(द्वादश राशिदोष—) वर-वधूके जन्म-लग्न या जन्मराशिसे द्वादश राशि यदि विवाहलग्नमें पड़े तो वर-वधूके धनकी हानि होती है। इसलिये उस लग्नको, उसके नवमांश-को और उसके स्वामीको भी त्याग देना चाहिये ॥४६२½॥

(जन्मलग्न और जन्मराशिकी प्रशंसा—) जन्म-राशि और जन्मलग्नका उदय विवाहमें शुभ होता है तथा दोनोंके उपचय (३, ६, १०, ११) स्थान यदि विवाह लग्नमें हो तो अत्यन्त शुभप्रद होते हैं ॥ ४६३½ ॥

(विषघटी ध्रुवाङ्क—) अश्विनीका ध्रुवाङ्क ५०, भरणीका २४, कृत्तिकाका ३०, रोहिणीका ५४, मृगशिराका १३, आर्द्राका २१, पुनर्वसुका ३०, पुष्यका २०, आश्लेषाका ३२, मघाका ३०, पूर्वा फाल्गुनीका २०, उत्तरा फाल्गुनीका १८, हस्तका २१, चित्राका २०, स्वातीका १४, विशाखाका १४, अनुराधाका १०, ज्येष्ठाका १४, मूलका ५६, पूर्वाषाढका २४, उत्तरा-षाढका २०, श्रवणका १०, धनिष्ठाका १०, शतभिषाका १८, पूर्व भाद्रपदका १६, उत्तर भाद्रपदका २४ और रेवतीका ध्रुवाङ्क ३० है। इन अश्विनी आदि नक्षत्रोके अपने-अपने ध्रुवाङ्क तुल्य घड़ीके बाद ४ घड़ीतक विषघटी होती है। विवाह आदि शुभ कार्योंमें विषघटिकाओंका त्याग करना चाहिये* ॥ ४६४-४६८ ॥

रवि आदि वारोंमें जो मुहूर्त निन्दित कहा गया है, वह यदि अन्य लाख गुणोंसे युक्त हो तो भी विवाह आदि शुभ कार्योंमें वर्जनीय ही है ॥४६९॥ रवि आदि दिनोंमें जो जो वार-दोष कहे गये हैं, वे अन्य सब गुणोसे युक्त हों तो भी शुभ कार्यमें वर्जनीय हैं ॥ ४७० ॥

नक्षत्रके जिस चरणमें पूर्वोक्त 'एकार्गल दोष' हो, उस चरण (नवांश) से युक्त जो लग्न हो उसमें यदि गुरु, शुक्रका योग हो तो भी विषयुक्त दूधके समान उसको त्याग देना चाहिये ॥ ४७१ ॥

ग्रहण तथा उत्पातसे दूषित नक्षत्रको तीन ऋतु (छः मास) तक शुभ कार्यमें छोड़ देना चाहिये। जब चन्द्रमा उस नक्षत्रको भोगकर छोड़ दे तो वह नक्षत्र जली हुई लकड़ीके समान निष्फल हो जाता है अर्थात् दोष-कारक नहीं रह जाता। शुभ कार्योंमें ग्रहसे विद्ध और पापग्रहसे युक्त सम्पूर्ण नक्षत्रको मदिरामिश्रित पञ्चगव्यके समान त्याग देना चाहिये; परतु यदि नक्षत्र शुभग्रहसे विद्ध हो तो उसका विद्ध चरणमात्र त्याज्य है, सम्पूर्ण नक्षत्र नहीं; किंतु पापग्रहसे विद्ध नक्षत्र शुभकार्यमें सम्पूर्ण रूपसे त्याग देने योग्य है ॥ ४७२-४७४ ॥

(विहित नवमांश—) वृष, तुला, मिथुन, कन्या

* विशेष—यदि नक्षत्रका मान ६० घड़ी हो तब इतने ध्रुवाङ्क और उसके पद्रहवें भाग चार घटीतक 'विषघटी'का अवस्थान मध्यममानके अनुसार कहा गया है। इससे यह स्वयं सिद्ध होता है कि यदि नक्षत्रका मान ६० घड़ीसे अधिक या अल्प होगा तो विषघटीका मान और ध्रुवाङ्क भी उसी अनुपातसे अधिक या कम हो जायगा तथा स्पष्ट भभोगमानका पद्रहवाँ भाग ही विषघटीका स्पष्ट मान होगा।

मान लीजिये कि पुनर्वसुका भभोगमान ५६ घड़ी है तो त्रैराशिकसे अनुपात निकालिये। यदि ६० घड़ीमें ३० ध्रुवाङ्क तो इष्ट भभोग ५६ घड़ीमें क्या होगा ? इस प्रकार ५६ से ३० को गुणा करके ६० के द्वारा भाग देनेसे लब्धि २८ पुनर्वसुका स्पष्ट ध्रुवाङ्क हुआ तथा भभोग ५६ का पद्रहवाँ भाग ३ घड़ी ४४ पल स्पष्ट 'विषघटी' हुई। इसलिये २८ घड़ीके बाद ३ घड़ी ४ पलतक विषघटी रहेगी।

और धनका उत्तरार्ध तथा इन राशियोंके नवमांश विवाह-लग्नमें शुभप्रद हैं । किसी भी लग्नमें अन्तिम नवमांश यदि वर्गोत्तम हो तभी उसे शुभप्रद समझना चाहिये* । अन्यथा विवाहलग्नका अन्तिम नवमांश (२६ अंश ४० कलाके बाद) अशुभ होता है । यहाँ अन्य नवमांश नहीं ग्रहण करने चाहिये; क्योंकि वे कुनवांश कहलाते हैं । लग्नमें कुनवांश हो तो अन्य सब गुणोंसे युक्त होनेपर भी वह त्याज्य है । जिस दिन महापात (सूर्य-चन्द्रमाका क्रान्ति-साम्य) हो, वह दिन भी शुभ कार्यमें छोड़ देने योग्य है; क्योंकि वह अन्य सब गुणोंसे युक्त होनेपर भी वर-वधूके लिये घातक होता है । इन दोषोंसे भिन्न विद्युत्, नीहार (कुहरा) और वृष्टि आदि दोष, जिनका अभी वर्णन नहीं किया गया है, 'स्वल्पदोष' कहलाते हैं ॥ ४७५—४७८ ॥

(**लघुदोष**–) विद्युत्, नीहार, वृष्टि, प्रतिसूर्य (दो सूर्य-सा दीखना), परिवेष (घेरा), इन्द्रधनुष, घनगर्जन, लत्ता, उपग्रह[1], पात, मासदग्ध[2] तिथि, दग्ध, अन्ध, बधिर तथा पङ्गु—इन राशियोंके लग्न,[3] एवं छोटे-छोटे और भी अनेक दोष हैं; अब उनकी व्यवस्थाका प्रतिपादन किया जाता है ॥ ४७९-४८० ॥

विद्युत् (बिजली), नीहार (कुहरा या पाला), वृष्टि (वर्षा)—ये यदि असमयमें हों तभी दोष समझे जाते हैं । यदि समयपर हों (जैसे जाड़ेके दिनमें [illegible] वर्षा ऋतुमें वर्षा हो तथा सघन मेघमें बिजली चमके) तो वह शुभ ही समझे जाते हैं ॥ ४८१ ॥ यदि बृहस्पति, शुक्र अथवा बुध इनमेंसे एक भी केन्द्रमें हों तो उन सब दोषोंको नष्ट कर देते हैं । इसमें संशय नहीं है ॥ ४८२ ॥

(**पञ्चशलाका-वेध**–) पाँच रेखाएँ पड़ी और पाँच रेखाएँ खड़ी खींचकर दो दो रेखाएँ कोणोंमें खींचने (बनाने) से पञ्चशलाका-चक्र* बनता है । इस चक्रके ईशान कोणकी दूसरी रेखामें कृत्तिकाको लिखकर आगे प्रदक्षिण क्रमसे रोहिणी आदि अभिजित्सहित सम्पूर्ण नक्षत्रोंका उल्लेख करे । जिस रेखामें ग्रह हो, उसी रेखाकी दूसरी ओरवाला नक्षत्र विद्ध समझा जाता है[1] ॥ ४८३½ ॥

(**लत्तादोष**–) सूर्य आदि† ग्रह क्रमशः अपने आश्रित नक्षत्रसे आगे और पीछे ‡ १२, २२, ३, ७, ६, ५, ८ तथा ९वें दैनिक नक्षत्रको लातासे दूषित करते हैं, इसलिये इसका नाम 'लत्तादोष' है ।

(**पातदोष**–) सूर्य जिस नक्षत्रमें हो उससे आश्लेषा, मघा, रेवती, चित्रा, अनुराधा और श्रवणतककी जितनी संख्या हो, उतनी ही यदि अश्विनीसे दिन नक्षत्रतक गिननेसे संख्या हो तो वह नक्षत्र पातदोषसे दूषित समझा जाता है ॥ ४८४-४८५½ ॥

---

* किसी भी राशिमें अपना ही नवमांश हो तो वह वर्गोत्तम कहलाता है । जैसे मेषमें मेषका नवमांश तथा वृषमें वृषका नवमांश इत्यादि ।

१. सूर्य जिस नक्षत्रमें वर्तमान हो, उससे ५, ७, ८, १०, १४, १५, १८, १९, २१, २२, २३, २४, २५—इन संख्याओंके किसी भी नक्षत्रमें चन्द्रमा हो तो 'उपग्रहदोष' कहलाता है ।

२. सूर्य यदि धनु या मीनमें हो तो द्वितीया, वृष या कुम्भमें हो तो चतुर्थी, कर्क या मेषमें हो तो षष्ठी, कन्या या मिथुनमें हो तो अष्टमी, सिंह या वृश्चिकमें हो तो दशमी तथा तुला या मकरमें हो तो द्वादशी 'दग्ध तिथि' कहलाती है ।

३. कुम्भ, मीन, वृष, मिथुन, मेष, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु और कर्क—ये क्रमशः चैत्र आदि मासोंमें 'दग्ध राशियाँ' हैं ।

तुला और वृश्चिक—ये दोनों केवल दिनमें तथा धनु और मकर—ये दोनों केवल रात्रिमें 'बधिर' होते हैं । एवं मेष, वृष और सिंह—ये तीनों दिनमें तथा मिथुन, कर्क, कन्या—ये तीनों रात्रिमें 'अन्ध' होते हैं ।

दिनमें कुम्भ और रात्रिमें मीन 'पङ्गु' होते हैं ।

* पञ्चशलाकाचक्र—

१. जैसे—श्रवणमें कोई ग्रह हो तो मघा नक्षत्र [illegible] जायगा ।

† सूर्य, पूर्ण चन्द्र, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु ।

‡ इनमें सूर्य अपनेसे आगे और पूर्ण चन्द्र पीछे, [illegible] आगे और बुध पीछेके नक्षत्रोंको दूषित करते हैं । [illegible] समझना चाहिये ।

(परिहार-) सौराष्ट्र (काठियावाड़) और शाल्वदेशमें लत्तादोष वर्जित है। कलिङ्ग (जगन्नाथपुरीसे कृष्णा नदीतकके भूभाग), वङ्ग (बङ्गाल), वाह्लिक (बलख) और कुरु (कुरुक्षेत्र) देशमें पातदोष त्याज्य हैं; अन्य देशोंमें ये दोष त्याज्य नहीं हैं ॥ ४८६-४८७ ॥ मासदग्ध तिथि तथा दग्ध लग्न—ये मध्यदेश (प्रयागसे पश्चिम, कुरुक्षेत्रसे पूर्व, विन्ध्य और हिमालयके मध्य) में वर्जित हैं। अन्य देशोंमें ये दूषित नहीं हैं ॥४८८॥ पङ्गु, अन्ध, काण लग्न तथा मासोंमें जो शून्य राशियाँ कही गयी हैं, वे गौड़ (बङ्गालसे भुवनेश्वरतक) और मालव (मालवा) देशमें त्याज्य हैं। अन्य देशोंमे निन्दित नहीं हैं ॥ ४८९ ॥

(विशेष-) अधिक दोषोंमें दुष्ट कालको तो ब्रह्माजी भी शुभ नहीं बना सकते हैं; इसलिये जिसमे थोड़ा दोष और अधिक गुण हों, ऐसा काल ग्रहण करना चाहिये ॥४९०॥

(वेदी और मण्डप-) इस प्रकार वर-वधूके लिये शुभप्रद उत्तम समयमें श्रेष्ठ लग्नका निरीक्षण (खोज) करना चाहिये। तदनन्तर एक हाथ ऊँची, चार हाथ लंबी और चार हाथ चौड़ी उत्तर दिशामें नत (कुछ नीची) वेदी बनाकर सुन्दर चिकने चार खम्भोंका एक मण्डप तैयार करे, जिसमें चारों ओर सोपान (सीढ़ियाँ) बनायी गयी हों। मण्डप भी पूर्व-उत्तरमें निम्न हो। वहाँ चारों तरफ कदलीस्तम्भ गड़े हों। वह मण्डप शुक आदि पक्षियोंके चित्रोंसे सुशोभित हो तथा वेदी नाना प्रकारके माङ्गलिक चित्र-युक्त कलशोंसे विचित्र शोभा धारण कर रही हो। भाँति-भाँतिके वन्दनवार तथा अनेक प्रकारके फूलोंके शृङ्गारसे वह स्थान सजाया गया हो। ऐसे मण्डपके बीच बनी हुई वेदीपर, जहाँ ब्राह्मणलोग स्वस्तिवाचनपूर्वक आशीर्वाद देते हों, जो पुण्यशीला स्त्रियों तथा दिव्य समारोहोंसे अत्यन्त मनोरम जान पड़ती हो तथा नृत्य, वाद्य और माङ्गलिक गीतोंकी ध्वनिसे जो हृदय-को आनन्द प्रदान कर रही हो, वर और वधूको विवाहके लिये बिठावे ॥ ४९१-४९५ ॥

(वर-वधूकी कुण्डलीका मिलान-) आठ प्रकारके भकूट, नक्षत्र, राशि, राशिस्वामी, योनि तथा वर्ण आदि सब गुण यदि ऋजु (अनुकूल या शुभ) हों तो ये पुत्र-पौत्रादिका सुख प्रदान करनेवाले होते हैं ॥ ४९६ ॥

वर और कन्या दोनोंकी राशि और नक्षत्र भिन्न हों तो उन दोनोंका विवाह उत्तम होता है। दोनोंकी राशि भिन्न और नक्षत्र एक हो तो उनका विवाह मध्यम होता है और यदि दोनोंका एक ही नक्षत्र, एक ही राशि हो तो उन दोनोंका विवाह प्राणसंकट उपस्थित करनेवाला होता है ॥ ४९७½ ॥

(स्त्रीदूर दोष-) कन्याके नक्षत्रसे प्रथम नवक (नौ नक्षत्रों) के भीतर वरका नक्षत्र हो तो यह 'स्त्रीदूर' नामक दोष कहलाता है; जो अत्यन्त निन्दित है। द्वितीय नवक (१० से १८ तक) के भीतर हो तो मध्यम कहा गया है। यदि तृतीय नवक (१९ से २७ तक) के भीतर हो तो उन दोनोंका विवाह श्रेष्ठ कहा गया है ॥ ४९८½ ॥

(गणविचार-) पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढ़, पूर्व भाद्रपद, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तर भाद्रपद, रोहिणी, भरणी और आर्द्रा—ये नक्षत्र मनुष्यगण हैं। श्रवण, पुनर्वसु, हस्त, स्वाती, रेवती, अनुराधा, अश्विनी, पुष्य और मृगशिरा—ये देवगण हैं तथा मघा, चित्रा, विशाखा, कृत्तिका, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, शतभिषा, मूल और आश्लेषा—ये नक्षत्र राक्षस-गण हैं ॥४९९—५०१॥ यदि वर और कन्याके नक्षत्र किसी एक ही गणमें हों तो दोनोंमें परस्पर सब प्रकारसे प्रेम बढ़ता है। यदि एकका मनुष्यगण और दूसरेका देवगण हो तो दोनोंमें मध्यम प्रेम होता है तथा यदि एकका राक्षस और दूसरेका देव या मनुष्यगण हो तो वर-वधू दोनोंको मृत्युतुल्य क्लेश प्राप्त होता है ॥ ५०२ ॥

(राशिकूट-) वर और कन्याकी राशियोंको परस्पर गिननेसे यदि वे छठी और आठवीं संख्यामें पड़ती हों तो दोनोंके लिये घातक हैं। यदि पाँचवीं और नवीं संख्यामें हों तो संतानकी हानि होती है। यदि दूसरी और बारहवीं संख्या-मे हों तो वर-वधू दोनों निर्धन होते हैं। इनसे भिन्न संख्यामें हों तो दोनोंमे परस्पर प्रेम होता है ॥ ५०३ ॥

(परिहार-) द्विर्द्वादश (२, १२) और नवपञ्चम (९,५) दोषमें यदि दोनोंकी राशियोंका एक ही स्वामी हो अथवा दोनोंके राशिस्वामियोंमें मित्रता हो तो विवाह शुभ कहा गया है। परंतु षडष्टक (६, ८) में दोनोंके स्वामी एक होनेपर भी विवाह शुभदायक नहीं होता है ॥ ५०४ ॥

(योनिकूट—) १ अश्व, २ गज, ३ मेष, ४ सर्प, ५ सर्प, ६ श्वान, ७ मार्जार, ८ मेष, ९ मार्जार, १० मूषक, ११ मूषक, १२ गौ, १३ महिष, १४ व्याघ्र, १५ महिष, १६ व्याघ्र, १७ मृग, १८ मृग, १९ श्वान, २० वानर, २१ नकुल, २२ नकुल, २३ वानर, २४ सिंह, २५ अश्व, २६ सिंह, २७ गौ तथा २८ गज—ये क्रमशः अश्विनीसे लेकर रेवतीतक (अभिजित्सहित) अट्ठाईस नक्षत्रोंकी योनियाँ हैं ॥ ५०५—५०६ ॥ इनमें श्वान और मृगमें, नकुल और सर्पमें, मेष और वानरमें, सिंह और गजमें, गौ और व्याघ्रमें, मूषक और मार्जारमें तथा महिष और अश्वमें परस्पर भारी शत्रुता होती है ॥ ५०७ ॥

(वर्णकूट—) मीन, वृश्चिक और कर्कराशि ब्राह्मण वर्ण हैं, इनके बादवाले क्रमशः क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण

हैं* । (एक वर्णके वर और वधूमें तो विवाह स्वयंसिद्ध है ही) पुरुष-राशिके वर्णसे स्त्री-राशिका वर्ण हीन हो तो भी विवाह शुभ माना गया है । इससे विपरीत (अर्थात् पुरुष-राशिके वर्णसे स्त्रीराशिका वर्ण श्रेष्ठ) हो तो अशुभ समझना चाहिये ॥ ५०८ ॥

(नाडीविचार—) चार चरणवाले नक्षत्र (अश्विनी, भरणी, रोहिणी, आर्द्रा, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वा फाल्गुनी, हस्त, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ, श्रवण, शतभिषा, उत्तर भाद्रपद, रेवती—इन) में उत्पन्न कन्याके लिये अश्विनीसे आरम्भ करके रेवतीतक तीन पर्वोंपर क्रम-उत्क्रम† से गिनकर नाड़ी समझे । तीन चरणवाले (कृत्तिका, पुनर्वसु, उत्तरा फाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढ और पूर्व भाद्रपद) नक्षत्रोंमें उत्पन्न कन्याके लिये कृत्तिकासे लेकर भरणीतक क्रम-उत्क्रमसे‡ चार पर्वोंपर गिनकर नाड़ीका ज्ञान प्राप्त करे तथा दो चरणोंवाले (मृगशिरा, चित्रा, धनिष्ठा) नक्षत्रोंमें उत्पन्न कन्याकी नाड़ी जाननेके लिये मृगशिरासे लेकर रोहिणीतक पाँच पर्वोंपर क्रम-उत्क्रमसे§ गिने । यदि वर और वधू दोनोंके नक्षत्र एक पर्वपर पड़ें तो वे उनके लिये घातक हैं और भिन्न पर्वोंपर पड़ें तो उन्हें शुभ समझना चाहिये ॥ ५०९ ॥

---

* राशियोंके वर्णको स्पष्ट समझनेके लिये यह कोष्ठ देखें—

मीन	मेष	वृष	मिथुन
कर्क	सिंह	कन्या	तुला
वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ
ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र

† त्रिनाडी—

१	अश्विनी	आर्द्रा	पुनर्वसु	उत्तरा फाल्गुनी	हस्त	ज्येष्ठा	मूल	शतभिषा	पूर्व भाद्रपद
२	भरणी	मृगशिरा	पुष्य	पूर्वा फाल्गुनी	चित्रा	अनुराधा	पूर्वाषाढ	धनिष्ठा	उत्तर भाद्रपद
३	कृत्तिका	रोहिणी	आश्लेषा	मघा	स्वाती	विशाखा	उत्तराषाढ	श्रवण	रेवती

‡ चतुर्नाडी—

१	कृत्तिका	मघा	पूर्वा फाल्गुनी	ज्येष्ठा	मूल	उत्तर भाद्रपद	रेवती
२	रोहिणी	आश्लेषा	उत्तरा फाल्गुनी	अनुराधा	पूर्वाषाढ	पूर्व भाद्रपद	अश्विनी
३	मृगशिरा	पुष्य	हस्त	विशाखा	उत्तराषाढ	शतभिषा	भरणी
४	आर्द्रा	पुनर्वसु	चित्रा	स्वाती	श्रवण	धनिष्ठा	×

§ पञ्चनाडी—

१	मृगशिरा	चित्रा	स्वाती	शतभिषा	पूर्व भाद्रपद	×
२	आर्द्रा	हस्त	विशाखा	धनिष्ठा	उत्तर भाद्रपद	×
३	पुनर्वसु	उत्तरा फाल्गुनी	अनुराधा	श्रवण	रेवती	×
४	पुष्य	पूर्वा फाल्गुनी	ज्येष्ठा	उत्तराषाढ	अश्विनी	भरणी
५	आश्लेषा	मघा	मूल	पूर्वाषाढ	कृत्तिका	रोहिणी

वर और कन्याकी कुण्डली मिलानेके लिये जो वश्य, योनि, राशिकूट, योनिकूट, वर्णकूट तथा नाडी आदिका वर्णन किया गया है, इन सबके सुगमतापूर्वक जानने तथा उनके गुणोंको समझनेके लिये निम्नाङ्कित चक्रोंपर दृष्टिपात कीजिये—

शतपदचक्र

नक्षत्र	अ.	भ.	कृ.	रो.	मृ.	आ.	पु.	पु.	आश्ले	म.	पू. फा.	उ. फा.	ह.	चि.
चरण	चू. चे. चो. ला.	ली. लू. ले. लो.	अ. इ उ ए.	ओ वा वी. वू.	वे. वो का. की.	कु. घ. ङ. छ.	के का. हा. हो.	हू हे. हो. डा.	डी. डू. डे. डो.	म. मी. मू. मे.	मो. टा. टी. टू.	टे. टो. पा. पी.	पू. ष. ण. ठ.	पे. पो. रा. री.
राशि	मे.	मे.	मे. १ वृ. ३	वृ.	वृ. २ मि. २	मि.	मि. ३ क १	क.	क.	सिं.	सिं.	सिं. १ क. ३	क.	क. २ तु. २
वर्ण	क्ष.	क्ष.	क्ष. १ वै. ३	वै.	वै. २ शू. २	शू.	शू. ३ ब्रा. १	ब्रा.	ब्रा.	क्ष.	क्ष.	क्ष. १ वै. ३	वै.	वै. २ शू. २
वश्य	च.	च.	च.	च.	च. २ न. २	न.	न. ३ ज. १	ज.	ज.	व.	व.	व. १ न ३	न.	न.
योनि	अश्व.	गज.	छाग.	सर्प.	सर्प.	श्वान.	मार्जार.	छाग.	मार्जार.	मूषक	मूषक.	गौ.	महिष.	व्याघ्र.
राशीश	म.	मं.	मं. १ शु. ३	शु.	शु. २ बु. २	बु.	बु. ३ च. १	च.	च.	सू.	सू.	सू. १ बु. ३	बु.	बु. २ शु. २
गण	दे.	म.	रा.	म.	दे.	म.	दे.	दे.	रा.	रा.	म.	म.	दे.	रा.
नाडी	आ.	म.	अं.	अं.	म.	आ.	आ.	म.	अं.	अं.	म.	आ.	आ.	म.

नक्षत्र	स्वा.	वि.	अ.	ज्ये.	मू.	पू. षा.	उ. षा.	श्र.	ध.	श.	पू. भा.	उ. भा.	रे.
चरण	रू. रे. रो. ता	ती. तू. ते. तो.	न. नी. नू. ने.	नो या यि. यू.	ये. यो. भ. भी.	भू ध. फ ढ.	भे. भो. ज. जी.	खी. खू खे. खो.	ग. गी. गू गे.	गो. स. सी. सू.	से. सो द. दी.	दू. थ. झ. ञ.	दे. दो. च. ची.
राशि	तु.	तु. ३ वृ. १	वृ.	वृ	ध.	ध.	ध. १ म. ३	म.	म. २ कु. २	कुं	कु. ३ मी. १	मी.	मी.
वर्ण	शू.	शू. ३ ब्रा १	ब्रा.	ब्रा.	क्ष.	क्ष.	क्ष. १ वै. ३	वै.	वै. २ शू. २	शू.	शू. ३ ब्रा. १	ब्रा.	ब्रा.
वश्य	न.	न. ३ की १	की.	की.	न.	।।न. ३।।च.	च.	१।।च. २।।ज.	ज. २ न. २	न.	न. ३ ज. १	ज.	ज.
योनि	महिष.	व्याघ्र.	मृग.	मृग.	श्वान.	वानर	नकुल.	वानर.	सिंह.	अश्व.	सिंह.	गौ.	गज.
राशीश	शु.	शु ३ मं. १	मं.	मं.	बृ.	बृ.	बृ. १ श ३	श.	श.	श.	श. ३ बृ. १	बृ.	बृ.
गण	दे.	रा.	दे.	रा.	रा.	म.	म.	दे.	रा.	रा.	म.	म.	दे.
नाडी	अं.	अं.	म.	आ.	आ.	म.	अं.	अं.	म.	आ.	आ.	म.	अं.

६ गणगुण । वर

कन्या	दे.	म.	रा.
देव	६	५	१
मनुष्य	६	६	०
राक्षस	०	०	६

८ नाडी-गुण । वर

कन्या	आ.	म.	अ.
आदि	०	८	८
मध्य	८	०	८
अन्त	८	८	०

७ भकूटगुण

	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
मे.	७	०	७	७	०	०	७	०	०	७	७	०
वृ.	०	७	०	७	७	०	०	७	०	०	७	७
मि.	७	०	७	०	७	७	०	०	७	०	०	७
क	७	७	०	७	०	७	७	०	०	७	०	०
सिं.	०	७	७	०	७	०	७	७	०	०	७	०
क	०	०	७	७	०	७	०	७	७	०	०	७
तु.	७	०	०	७	७	०	७	०	७	७	०	०
वृ	०	७	०	०	७	७	०	७	०	७	७	०
ध.	०	०	७	०	०	७	७	०	७	०	७	७
म.	७	०	०	७	०	०	७	७	०	७	०	७
कु.	७	७	०	०	७	०	०	७	७	०	७	०
मी.	०	७	७	०	०	७	०	०	७	७	०	७

३ तारागुण । वर

कन्या	१	२	३	४	५	६	७	८	९
१	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
२	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
३	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥	१॥
४	३	३	१	३	१॥	३	१॥	३	[illegible]
५	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥	१॥
६	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
७	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥	१॥
८	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
९	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३

५ ग्रहमैत्रीगुण । वर

कन्या	सू.	च.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.
सूर्य	५	५	५	४	५	[illegible]	[illegible]
चन्द्र	५	५	४	१	४	॥	॥
मङ्गल	५	४	५	॥	[illegible]	३	॥
बुध	४	१	॥	५	॥	५	[illegible]
गुरु	५	४	५	॥	५	॥	[illegible]
शुक्र	०	॥	३	५	॥	[illegible]	[illegible]
शनि	०	॥	॥	४	३	[illegible]	[illegible]

४ योनिगुण । वर

	अश्व	गज	मेष	सर्प	श्वान	मार्जार	मूषक	गौ	महिष	व्याघ्र	मृग	वानर	नकुल	सिंह
अश्व	४	२	३	२	२	३	३	२	०	१	३	२	२	१
गज	२	४	३	२	२	३	३	३	३	१	३	२	२	०
मेष	३	३	४	२	२	३	३	३	३	१	३	०	१	१
सर्प	२	२	२	४	२	१	१	२	२	२	२	१	०	२
श्वान	२	२	२	२	४	१	१	२	२	२	०	२	२	२
मार्जार	३	३	३	१	१	४	०	३	३	२	३	२	२	२
मूषक	३	२	२	१	२	०	४	३	३	२	३	२	१	२
गौ	२	३	३	२	२	३	३	४	३	०	३	२	२	१
महिष	०	३	३	२	२	३	३	३	४	१	३	२	२	१
व्याघ्र	१	१	१	२	२	२	२	०	१	४	१	२	२	३
मृग	३	३	३	२	०	३	३	३	३	१	४	२	२	१
वानर	२	२	०	१	२	२	२	२	२	२	२	४	२	२
नकुल	२	२	२	०	२	[illegible]	१	२	२	२	२	२	[illegible]	२
सिंह	१	०	१	२	२	२	२	१	१	३	१	२	२	४

१ विवाहमें वर्णगुण । वर

कन्या	ब्रा.	क्ष.	वै.	शू.
ब्राह्मण	१	०	०	०
क्षत्रिय	१	१	०	०
वैश्य	१	१	१	०
शूद्र	१	१	१	१

२ वश्यगुण । वर

कन्या	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	१	१		
मानव	[illegible]	[illegible]	१		[illegible]
[illegible]	[illegible]	॥	[illegible]	[illegible]	
[illegible]					
[illegible]	१				

जन्मकालिक ग्रहोंकी स्थिति तथा जन्म-नक्षत्रसम्बन्धी आठ प्रकारके कूटद्वारा वर-वधूकी कुण्डलीका मिलान किया जाता है। यदि जन्मलग्न या जन्म-राशि (चन्द्रमा) से १, ४, ७, ८ या १२ वें स्थानमें मङ्गल या अन्य पापग्रह वरकी कुण्डलीमें हों तो पत्नीके लिये और कन्याकी कुण्डलीमें हों तो वरके लिये अनिष्टकारी होते हैं । यदि दोनोंकी कुण्डलियोंमें उक्त स्थानोंमें पापग्रहकी संख्या समान हो तो उक्त दोष नहीं माना जाता है । उदाहरणके लिये—

वरकी कुण्डली — कन्याकी कुण्डली
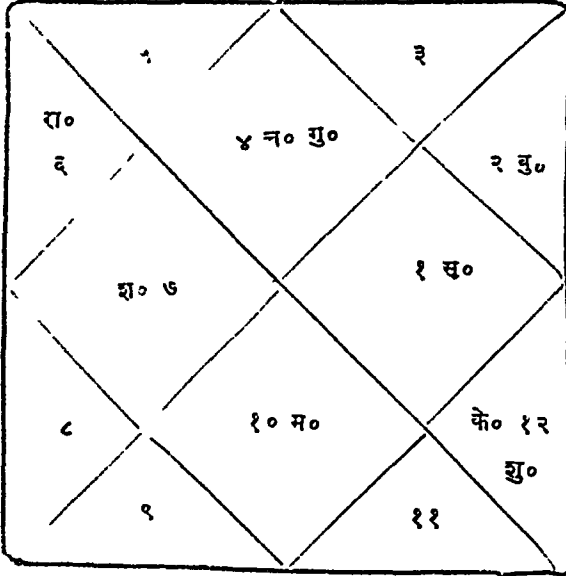
पुनर्वसुके चतुर्थ चरणमें जन्म — पूर्वा फाल्गुनीके प्रथम चरणमें जन्म
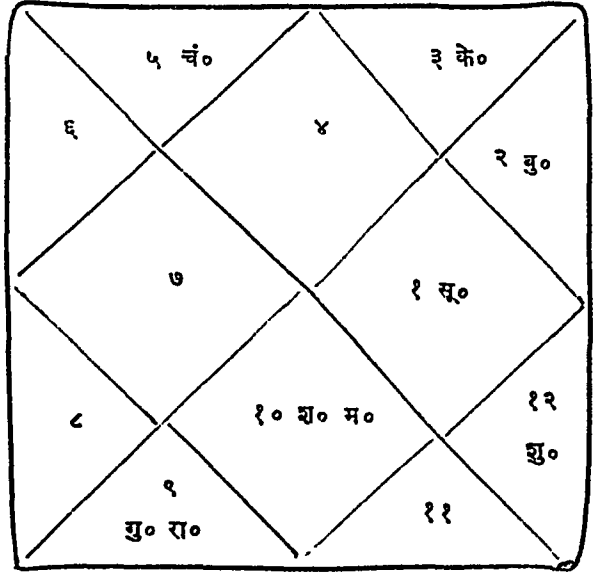
यहाँ वरकी कुण्डलीमें ४ थे और ७ वें स्थानमें शनि और मङ्गल दो पापग्रह हैं तथा कन्याकी कुण्डलीमें भी ७ वें स्थानमें शनि, मङ्गल हैं, जिससे दोनोंके परस्पर माङ्गलिक दोष नष्ट होनेके कारण इन दोनोंका वैवाहिक सम्बन्ध श्रेष्ठ सिद्ध होता है। यहाँ भकूटके गुण इस प्रकार हैं—

	वर	कन्या	गुण
१ वर्ण—	ब्राह्मण	क्षत्रिय	१
२ वश्य—	जलचर	वनचर	०
३ तारा—	५	६	१॥
४ योनि—	मार्जार	मूषक	०
५ ग्रह (राशीश)—	चन्द्र	सूर्य	५
६ गण—	देव	मनुष्य	६
७ भकूट—	२	१२	०
८ नाड़ी—	१	२	८
		गुणोंका योग=	२१॥

इस तरह नक्षत्रमेलापकमें भी गुणोंका योग २१॥ है । अठारहसे अधिक होनेके कारण इन दोनोंका विवाह-सम्बन्ध श्रेष्ठ सिद्ध होता है ।

इसी प्रकार अन्य कुण्डलियोंसे भी ग्रह और नक्षत्रका मेल देखकर विवाहका निर्णय करना चाहिये ।

(विवाहोंके भेद—) ऊपर बताये हुए शुभ समयमें (१) प्राजापत्य, (२) ब्राह्म, (३) दैव और (४) आर्ष—ये चार प्रकारके विवाह करने चाहिये। ये ही चारों विवाह उपर्युक्त फल देनेवाले होते हैं। इससे अतिरिक्त जो गान्धर्व, आसुर, पैशाच तथा राक्षस विवाह हैं, वे तो सब समय समान ही फल देनेवाले होते हैं ॥ ५१०-५११ ॥

(अभिजित् और गोधूलि लग्न—) सूर्योदय-कालमें जो लग्न रहता है, उससे चतुर्थ लग्नका नाम अभिजित् है और सातवाँ गोधूलि-लग्न कहलाता है। ये दोनों विवाहमें पुत्र-पौत्रकी वृद्धि करनेवाले होते हैं ॥ ५१२ ॥ पूर्व तथा कलिङ्ग देशवासियोंके लिये गोधूलि-लग्न प्रधान है और अभिजित्-लग्न तो सब देशोंके लिये मुख्य कहा गया है, क्योंकि वह सब दोषोंका नाश करनेवाला है ॥ ५१३ ॥

(अभिजित्-प्रशंसा—) सूर्यके मध्य आकाशमें जानेपर अभिजित् मुहूर्त होता है, वह समस्त दोषोंको नष्ट कर देता है, ठीक उसी तरह, जैसे त्रिपुरासुरको श्रीशिवजीने नष्ट किया था ॥ ५१४ ॥

पुत्रका विवाह करनेके बाद छः मासोंके भीतर पुत्रीका विवाह नहीं करना चाहिये। एक पुत्र या पुत्रीका विवाह करनेके बाद दूसरे पुत्रका उपनयन भी नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार एक मङ्गल कार्य करनेके बाद छः मासोंके भीतर दूसरा मङ्गल कार्य नहीं करना चाहिये। एक गर्भसे उत्पन्न दो कन्याओंका विवाह यदि छः मासके भीतर हो तो निश्चय ही तीन वर्षके भीतर उनमेंसे एक विधवा होती है ॥ ५१५-५१६ ॥ अपने पुत्रके साथ जिसकी पुत्रीका विवाह हो, फिर उसके पुत्रके साथ अपनी पुत्रीका विवाह करना 'प्रत्युद्वाह' कहलाता है। ऐसा कभी नहीं करना चाहिये तथा किसी एक ही वरको अपनी दो कन्याएँ नहीं देनी चाहिये। दो सहोदर वरोंको दो सहोदरा कन्याएँ नहीं देनी चाहिये। दो सहोदरोंका एक ही दिन (एक साथ) विवाह या मुण्डन नहीं करना चाहिये ॥ ५१७½ ॥

(गण्डान्त-दोष—) पूर्वकथित गण्डान्तमें यदि दिनमें बालकका जन्म हो तो वह पिताका, रात्रिमें जन्म हो तो माताका और संध्या (सायं या प्रातः) कालमें जन्म हो तो वह अपने शरीरके लिये घातक होता है। गण्डका यह परिणाम अन्यथा नहीं होता है। मूलमें उत्पन्न होनेवाली संतान पुत्र हो या कन्या, श्वशुरके लिये घातक होती है, किंतु मूलके चतुर्थ चरणमें जन्म लेनेवाला बालक श्वशुरका नाश नहीं करता है तथा आश्लेषाके प्रथम चरणमें [illegible] बालक भी पिताका या श्वशुरका [illegible] नहीं होता है। ज्येष्ठाके अन्तिम चरणमें उत्पन्न [illegible] श्वशुरके लिये घातक होता है, कन्या नहीं। [illegible] पूर्वाषाढ़ या मूलमें उत्पन्न कन्या भी [illegible] नाश करनेवाली नहीं होती है। ज्येष्ठा नक्षत्रमें उत्पन्न कन्या अपने पतिके बड़े भाईके लिये और [illegible] लेनेवाली कन्या अपने देवरके लिये घातक होती है ॥ ५१८—५२१ ॥

(वधू-प्रवेश-) विवाहके दिनसे ६, ८, १० और ७ वें दिनमें वधू-प्रवेश (पतिगृहमें प्रथम प्रवेश) हो तो वह सम्पत्तिकी वृद्धि करनेवाला होता है। द्वितीय वर्ष, [illegible] जन्मलग्न और जन्मदिनको छोड़कर अन्य [illegible] शुक्र रहनेपर भी वैवाहिक यात्रा (वधू-प्रवेश) शुभ होती है ॥ ५२२-५२३ ॥

(देव-प्रतिष्ठा-) उत्तरायणमें, बृहस्पति और शुक्र उदित हों तो चैत्रको छोड़कर माघ आदि पाँच मासोंके शुक्ल पक्षमें और कृष्ण पक्षमें भी प्रारम्भसे आठ दिनतक सब देवताओंकी स्थापना शुभदायक होती है। जिस देवताकी जो तिथि है, उसमें उस देवताकी और २, ३, ५, ६, ७, १०, ११, १२, १३ तथा पूर्णिमा—इन तिथियोंमें सब देवताओंकी स्थापना शुभ होती है। तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, मृगशिरा, रेवती, हस्त, चित्रा, स्वाती, पुष्य, अश्विनी, रोहिणी, [illegible] श्रवण, अनुराधा और धनिष्ठा—इन नक्षत्रोंमें तथा मङ्गलवारको छोड़कर अन्य वारोंमें देवप्रतिष्ठा करनी चाहिये। स्थापना करनेवाले (यजमान) के लिये सूर्य, तारा और चन्द्रमा बलवान् हों, उस दिनके [illegible] शुभ समय, शुभ लग्न और शुभ नवमांशमें [illegible] जन्मराशिसे अष्टम राशिको छोड़कर अन्य लग्नोंमें देवताओंकी प्रतिष्ठा शुभदायक होती है ॥ ५२४—५२९ ॥

मेष आदि सब राशियाँ शुभ ग्रहसे युक्त या दृष्ट हों तो देवस्थापनके लिये श्रेष्ठ समझी जाती हैं। [illegible] पञ्चाङ्ग (तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण) शुभ होने चाहिये और लग्नसे अष्टम स्थान भी शुद्ध ([illegible]) होना आवश्यक है ॥ ५३० ॥ (१) लग्नमें [illegible] राहु, केतु और शनि कर्ताके लिये [illegible] होते हैं [illegible] (बुध, गुरु और शुक्र) [illegible] सुखोंको देनेवाले होते हैं (२) [illegible]

अनिष्ट फल देनेवाले और शुभ ग्रह धनकी वृद्धि करनेवाले होते हैं। (३) तृतीय भावमें शुभ और पाप सब ग्रह पुत्र-पौत्रादि सुखको बढ़ानेवाले होते हैं। (४) चतुर्थ भावमें शुभ ग्रह शुभ-फल और पापग्रह पाप-फलको देते हैं। (५) पञ्चम भावमें पापग्रह कष्टदायक और शुभ ग्रह पुत्रादि सुख देनेवाले होते हैं। (६) षष्ठ भावमें शुभ ग्रह शत्रुको घटानेवाले और पापग्रह शत्रुके लिये घातक होते हैं। (७) सप्तम भावमें पापग्रह रोगकारक और शुभ ग्रह शुभ फल देनेवाले होते हैं। (८) अष्टम भावमें शुभ ग्रह और पापग्रह सभी कर्ता (यजमान)के लिये घातक होते हैं। (९) नवम भावमें पापग्रह हों तो वे धर्मको नष्ट करनेवाले हैं और शुभ ग्रह शुभ फल देनेवाले होते हैं। (१०) दशम भावमें पापग्रह दुःखदायक और शुभ ग्रह सुयशकी वृद्धि करनेवाले होते हैं। (११) एकादश स्थानमें पाप और शुभ सब ग्रह सब प्रकारसे लाभकारक ही होते हैं। (१२) लग्नसे द्वादश स्थानमें पाप या शुभ सभी ग्रह व्यय (खर्च) को बढ़ानेवाले होते हैं ॥ ५३१–५३६ ॥

(प्रतिष्ठामें अन्य विशेष बात–) प्रतिष्ठा करानेवाले पुरोहित (या आचार्य) को अर्थज्ञान न हो तो यजमानका अनिष्ट होता है। मन्त्रोंका अशुद्ध उच्चारण हो तो ऋत्विजों (यज्ञ करानेवाले) का और कर्म विधिहीन हो तो कर्ताकी स्त्रीका अनिष्ट होता है। इसलिये नारद! देव-प्रतिष्ठाके समान दूसरा शत्रु भी नहीं है। यदि लग्नमें अधिक गुण हों और थोड़े-से दोष हों तो उसमें देवताओंकी प्रतिष्ठा कर लेनी चाहिये। इससे कर्ता (यजमान) के अभीष्ट मनोरथकी सिद्धि होती है। मुने! अब मैं संक्षेपसे ग्राम, मन्दिर तथा गृह आदिके निर्माणकी बात बताता हूँ ॥ ५३७–५३९ ॥

(गृहनिर्माणके विषयमें ज्ञातव्य बातें–) गृह आदि बनाना हो तो पहले गन्ध, वर्ण, रस तथा आकृतिके द्वारा क्षेत्र (भूमि) की परीक्षा कर लेनी चाहिये। यदि उस स्थानकी मिट्टीमें मधु (शहद) के समान गन्ध हो तो ब्राह्मणोंके, पुष्पसदृश गन्ध हो तो क्षत्रियोंके, आम्ल (खटाई) के समान गन्ध हो तो वैश्योंके और मासकी-सी गन्ध हो तो वह स्थान शूद्रोंके बसनेयोग्य जानना चाहिये। वहाँकी मिट्टीका रंग श्वेत हो तो ब्राह्मणोंके, लाल हो तो क्षत्रियोंके, पीत (पीला) हो तो वैश्योंके और कृष्ण (काला) हो तो वह शूद्रोंके निवासके योग्य है। यदि वहाँकी मिट्टीका स्वाद मधुर हो तो ब्राह्मणोंके, कड़ुआ (मिर्चके समान) हो तो क्षत्रियोंके, तिक्त हो तो वैश्योंके और कषाय (कसैला) स्वाद हो तो उस स्थानको शूद्रोंके निवास करने योग्य समझना चाहिये ॥ ५४०-५४१ ॥ ईशान, पूर्व और उत्तर दिशामें प्लव (नीची) भूमि सबके लिये अत्यन्त वृद्धि देनेवाली होती है। अन्य दिशाओंमें प्लव (नीची) भूमि सबके लिये हानि करनेवाली होती है ॥ ५४२ ॥

(गृहभूमि-परीक्षा–) जिस स्थानमें घर बनाना हो वहाँ अरत्नि (कोहिनीसे कनिष्ठा अङ्गुलितक) के बराबर लम्बाई, चौड़ाई और गहराई करके कुण्ड बनावे। फिर उसे उसी खोदी हुई मिट्टीसे भरे। यदि भरनेसे मिट्टी शेष बच जाय तो उस स्थानमें वास करनेसे सम्पत्तिकी वृद्धि होती है। यदि मिट्टी कम हो जाय तो वहाँ रहनेसे सम्पत्तिकी हानि होती है। यदि सारी मिट्टीसे वह कुण्ड भर जाय तो मध्यम फल समझना चाहिये ॥ ५४३ ॥ अथवा उसी प्रकार अरत्निके मापका कुण्ड बनाकर सायंकाल उसको जलसे पूरित कर दे और प्रातःकाल देखे; यदि कुण्डमें जल अवशिष्ट हो तो उस स्थानमें वृद्धि होगी। यदि कीचड़ (गीली मिट्टी) ही बची हो तो मध्यम फल है और यदि कुण्डकी भूमिमें दरार पड़ गयी हो तो उस स्थानमें वास करनेसे हानि होगी ॥ ५४४ ॥

मुने! इस प्रकार निवास करनेयोग्य स्थानकी भलीभाँति परीक्षा करके उक्त लक्षणयुक्त भूमिमें दिक्साधन (दिशाओं-का ज्ञान) करनेके लिये समतल भूमिमें वृत्त (गोल रेखा) बनावे। वृत्तके मध्य भागमें द्वादशाङ्गुल शङ्कु (बारह विभाग या पर्वमें युक्त एक सीधी लकडी) की स्थापना करे और दिक्साधनविधिसे दिशाओंका ज्ञान करे। फिर कर्ताके नामके अनुसार षड्वर्ग शुद्ध क्षेत्रफल (वास्तुभूमिकी लम्बाई-चौड़ाईका गुणनफल) ठीक करके अभीष्ट लम्बाई-चौड़ाईके बराबर (दिशासाधित रेखानुसार) चतुर्भुज बनावे। उस चतुर्भुज रेखामार्गपर सुन्दर प्राकार (चहारदीवारी) बनावे। लम्बाई और चौड़ाईमें पूर्व आदि चारों दिशाओंमें आठ-आठ द्वारके भाग होते हैं। प्रदक्षिणक्रमसे उनके निम्नाङ्कित फल हैं। (जैसे पूर्वभागमें उत्तरसे दक्षिणतक) १. हानि,

२. निर्धनता, ३. धनलाभ, ४. राजसम्मान, ५. बहुत धन, ६. अति चोरी, ७. अति क्रोध तथा ८. भय—ये क्रमशः आठ द्वारोंके फल हैं। दक्षिण दिशामें क्रमशः १. मरण, २. बन्धन, ३. भय, ४. धनलाभ, ५. धनवृद्धि, ६. निर्भयता, ७. व्याधिभय तथा ८. निर्बलता—ये (पूर्वसे पश्चिमतकके) आठ द्वारोंके फल हैं। पश्चिम दिशामें क्रमशः १. पुत्रहानि, २. शत्रुवृद्धि, ३. लक्ष्मीप्राप्ति, ४. धनलाभ, ५. सौभाग्य, ६. अति दौर्भाग्य, ७. दुःख तथा ८. शोक—ये दक्षिणसे उत्तरतकके आठ द्वारोंके फल हैं। इसी प्रकार उत्तर दिशामें (पश्चिमसे पूर्वतक) १. स्त्री-हानि, २. निर्बलता, ३. हानि, ४. धान्यलाभ, ५. धनागम, ६. सम्पत्ति-वृद्धि, ७. भय तथा ८. रोग—ये क्रमशः आठ द्वारोंके फल हैं ॥ ५४५—५५२ ॥

इसी तरह पूर्व आदि दिशाओंके गृहादिमें भी द्वार और उसके फल समझने चाहिये। द्वारका जितना विस्तार (चौड़ाई) हो, उससे दुगुनी ऊँची किवाड़ें बनाकर उन्हें घरमें (चहार-दीवारीके) दक्षिण या पश्चिम भागमें लगावे ॥ ५५३ ॥ चहार-दीवारीके भीतर जितनी भूमि हो, उसके इक्यासी पद (समान खण्ड) बनावे। उनके बीचके नौ खण्डोंमें ब्रह्माका स्थान समझे। यह गृहनिर्माणमें अत्यन्त निन्दित है। चहारदीवारीसे मिले हुए जो चारों ओरके ३२ भाग हैं, वे पिशाचांश कहलाते हैं। उनमें घर बनाना दुःख, शोक और भय देनेवाला होता है। शेष अंशों (पदों) में घर बनाये जायँ तो पुत्र, पौत्र और धनकी वृद्धि करनेवाले होते हैं ॥ ५५४-५५५½ ॥

वास्तुभूमिकी दिशा-विदिशाओंकी रेखा वास्तुकी शिरा कहलाती है। एवं ब्रह्मभाग, पिशाचभाग तथा शिराका जहाँ-जहाँ योग हो वहाँ-वहाँ वास्तुकी मर्मसन्धि समझनी चाहिये। वह मर्मसन्धि गृहारम्भ तथा गृहप्रवेशमें अनिष्टकारक समझी जाती है ॥ ५५६-५५७½ ॥

(गृहारम्भमें प्रशस्त मास—) मार्गशीर्ष, फाल्गुन, वैशाख, माघ, श्रावण और कार्तिक—ये मास गृहारम्भमें पुत्र, आरोग्य और धन देनेवाले होते हैं ॥ ५५८½ ॥

(दिशाओंमें वर्ग और वर्गेश—) पूर्व आदि आठों दिशाओंमें क्रमशः अकारादि आठ वर्ग होते हैं। इन दिशावर्गोंके क्रमशः गरुड, मार्जार, सिंह, श्वान, सर्प, मूषक, गज और शशक (खरगोश)—ये योनियाँ होती हैं। इन योनि-वर्गोंमें अपनेसे पाँचवें वर्गवाले परस्पर शत्रु होते हैं* ॥ [illegible] ॥

(जिस ग्राममें या जिस दिशामें घर [illegible] साध्य तथा घर बनानेवाला साधक [illegible] कहलाता है। इसको ध्यानमें रखना चाहिये।) [illegible] की वर्गसंख्याको लिखकर, उसके [illegible] ([illegible]) साधककी वर्गसंख्या लिखे। उसमें आठका भाग [illegible] शेष बचे, वह साधकका धन होता है। [illegible] (अर्थात् साधककी वर्गसंख्याके दायें भागमें [illegible] संख्या रखकर जो संख्या बने, उसमें आठसे भाग [illegible]) साधकका ऋण होता है। इस प्रकार [illegible]

---

* दिशा और वर्ग जाननेका चक्र, यथा—

उदाहरण—अवर्ग (अ इ उ [illegible]) [illegible] और गरुडयोनि है। वहाँसे क्रमशः [illegible] (पश्चिम) में तवर्ग और सर्प इन [illegible] शत्रु हैं। इस प्रकार परस्पर सम्मुख दिशामें शत्रु होते हैं। [illegible] (क ख ग घ ङ) की दिशा [illegible] और योनि मार्जार ([illegible]) है। चवर्ग (च छ ज झ ञ) की दक्षिण दिशा [illegible] है। टवर्ग (ट ठ ड ढ ण) की नैर्ऋत्य दिशा [illegible] है। तवर्ग (त थ द ध न) की पश्चिम दिशा [illegible] पवर्ग (प फ ब भ म) की वायव्य दिशा और मूषक ([illegible]) योनि है। यवर्ग (य र ल व) की उत्तर दिशा [illegible] योनि है। शवर्ग (श ष स ह) की ईशान दिशा [illegible] (खरगोश) योनि है। इसका प्रयोजन [illegible] नामके आदि अक्षरसे अपना [illegible] ज्ञान करे। शत्रु-दिशामें अपने [illegible] अर्थात् उन दिशाके घरमें स्वयं वास न [illegible] जाकर वास न करे इत्यादि। इसके [illegible] कहे गये हैं।

और धन-संख्या अधिक हो तो शुभ माने (अर्थात् उस ग्राम या उस दिशामें बनाया हुआ घर रहने योग्य है, ऐसा समझे)* ॥ ५६१-५६१क॥

इसी प्रकार साधकके नक्षत्रसे साध्यके नक्षत्रतक गिनकर जो संख्या हो उसको चारसे गुणा करके गुणनफलमें सातसे भाग दे तो शेष साधकका धन होता है ॥ ५६२ ॥

(वास्तुभूमि तथा घरके धन, ऋण, आय, नक्षत्र, वार और अंशके ज्ञानका साधन—) वास्तुभूमि या घरकी चौड़ाईको लम्बाईसे गुणा करनेपर गुणनफल 'पद' कहलाता है । उस (पद) को (६ स्थानोंमें रखकर) क्रमशः ८, ३, ९, ८, ९, ६ से गुणा करे और गुणनफलमें क्रमशः १२, ८, ८, २७, ७, ९ से भाग दे । फिर जो शेष बचें, वे क्रमशः धन, ऋण, आय, नक्षत्र, वार तथा अंश होते हैं । धन अधिक हो तो वह घर शुभ होता है । यदि ऋण अधिक हो तो अशुभ होता है तथा विषम (१, ३, ५, ७) आय शुभ और सम (२, ४, ६, ८) आय अशुभ होता है । घरका जो नक्षत्र हो, वहाँसे अपने नामके नक्षत्रतक गिनकर जो संख्या हो, उसमे ९ से भाग दे । फिर यदि शेष (तारा) ३ बचे तो धनका नाश होता है । ५ बचे तो यशकी हानि होती है और ७ बचे तो गृहकर्ताका ही मरण होता है । घरकी राशि और अपनी राशि गिननेपर परस्पर २, १२ हो तो धनहानि होती है; ९,५ हो तो पुत्रकी हानि होती है और ६, ८ हो तो अनिष्ट होता है; अन्य संख्या हो तो शुभ समझना चाहिये । सूर्य और मङ्गलके वार तथा अंश हो तो उस घरमें अग्निभय होता है । अन्य वार-अंश हो तो सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंकी सिद्धि होती है ।†॥५६३—५६७॥

(वास्तु पुरुषकी स्थिति—) भादों आदि तीन-तीन मासोंमें क्रमशः पूर्व आदि दिशाओंकी ओर मस्तक करके बायीं करवटसे सोये हुए महासर्पस्वरूप 'चर' नामक वास्तुपुरुष प्रदक्षिणक्रमसे विचरण करते रहते हैं । जिस समय जिस दिशामें वास्तुपुरुषका मस्तक हो, उस समय उसी दिशामे घरका दरवाजा बनाना चाहिये । मुखसे विपरीत दिशामें घरका दरवाजा बनानेसे रोग, शोक और भय होते हैं । किंतु यदि घरमें चारों दिशाओंमे द्वार हो तो यह दोष नहीं होता है ॥ ५६८—५७० ॥

गृहारम्भकालमें नींवके भीतर हाथभरके गड्ढेमे स्थापित करनेके लिये सोना, पवित्र स्थानकी रेणु (धूलि), धान्य और सेवारसहित ईंट घरके भीतर संग्रह करके रक्खे । घरकी जितनी लंबाई हो, उसके मध्यभागमे वास्तुपुरुषकी नाभि रहती है । उसके तीन अङ्गुल नीचे (वास्तु पुरुषके पुच्छ-भागकी ओर) कुक्षि रहती है । उसमें शङ्कुका न्यास करनेसे पुत्र आदिकी वृद्धि होती है ॥ ५७१-५७२ ॥

(शङ्कुप्रमाण—) खदिर (खैर), अर्जुन, शाल (शाखू), युगपत्र (कचनार), रक्तचन्दन, पलाश, रक्तशाल, विशाल आदि वृक्षोंमेंसे किसीकी लकड़ीसे शङ्कु बनता है । ब्राह्मणादि वर्णोंके लिये क्रमशः २४, २३, २० और १६ अङ्गुलके शङ्कु होने चाहिये । उस शङ्कुके बराबर-बराबर तीन भाग करके ऊपरवाले भागमें चतुष्कोण, मध्यवाले भागमें अष्टकोण और नीचेवाले (तृतीय) भागमे बिना कोणका (गोलाकार) उसका स्वरूप होना उचित है । इस प्रकार उत्तम लक्षणोंसे युक्त कोमल और छेदरहित शङ्कु शुभ दिनमें बनावे । उसको षड्वर्गद्वारा शुद्ध सूत्रसे सूत्रित * भूमि (गृहक्षेत्र) मे मृदु,

* उदाहरण—विचार करना है कि 'जयनारायण' नामक व्यक्तिको गोरखपुरमें बसने या व्यापार करनेमें किस प्रकारका लाभ होगा ? तो साध्य (गोरखपुर) की वर्गसंख्या २ के बायें भागमें साधक (जयनारायण) का वर्गसंख्या ३ रखनेसे ३२ हुआ । इनमें ८ से भाग देनेपर शून्य अर्थात् ८ बचा, यह साधक (जयनारायण) का धन हुआ तथा इससे विपरीत वर्गसंख्या २३ को रखकर इसमें ८ का भाग देनेसे शेष ७ बचा । यह साधक (जयनारायण) का ऋण हुआ । यहाँ ऋण ७ से धन ८ अधिक है; अतः जयनारायणके लिये गोरखपुर निवास करनेयोग्य है—यह सिद्ध हुआ । तात्पर्य यह कि जयनारायणको गोरखपुरमें ८ लाभ और ७ खर्च होता रहेगा ।

† उदाहरण—मान लीजिये, घरकी लंबाई २५ हाथ और चौड़ाई १५ हाथ है तो इनको परस्पर गुणा करनेसे ३७५ यह पद हुआ । इसको ८ से गुणा करनेपर गुणनफल ३००० हुआ । इसमें १२ का भाग देनेपर शेष ० अर्थात् १२ धन हुआ । फिर पदको ३ से गुणा किया तो ११२५ हुआ । इसमें ८से भाग देकर शेष ५ ऋण हुआ । पुन. पद ३७५ को ९ से गुणा किया तो ३३७५ हुआ । इसमें ८ से भाग देनेपर शेष ७ आय हुआ । इसी तरह पदको ८ से गुणा करनेपर ३००० हुआ । इसमें २७ से भाग दिया तो शेष ३ नक्षत्र हुआ । फिर पदको ९ से गुणा किया तो ३३७५ हुआ । इसमें ७ से भाग देनेपर शेष १ वार हुआ । पुन. पद ३७५ को ६ से गुणा किया तो २२५० हुआ । इसमें ९ से भाग देनेपर शेष ० अर्थात् ९ अंश हुआ । यहाँ सब वस्तुएँ शुभ हैं, केवल वार १ रवि हुआ । इसलिये इस प्रकारके घरमें सब कुछ रहते हुए भी अग्निका भय रहेगा; ऐसा समझना चाहिये, इसलिये ऐसा पद देखकर लेना चाहिये, जिसमें सर्वथा शुभ हो ।

* पूर्वोक्त आय और षड्वर्गादिसे शोधित गृहके चारों ओरकी लंबाई-चौड़ाईके प्रमाण-तुल्य सूत्रसे घिरी हुई भूमिको ही यहाँ सूत्रित कहा है ।

ध्रुव, क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्रोंमें, अमावास्या और रिक्ताको छोड़कर अन्य तिथियोंमें, रविवार, मङ्गलवार तथा चर लग्नको छोड़कर अन्य वारों और अन्य (स्थिर या द्विस्वभाव) लग्नोंमे, जब पापग्रह लग्नमें न हो, अष्टम स्थान शुद्ध (ग्रहरहित) हो; शुभ राशि लग्न हो और उसमे शुभ नवमांश हो, उस लग्नमें शुभग्रहका संयोग या दृष्टि हो; ऐसे समय (शुभलग्न) मे ब्राह्मणोंद्वारा पुण्याहवाचन कराते हुए माङ्गलिक वाद्य और सौभाग्यवती स्त्रियोंके मङ्गलगीत आदिके साथ मुहूर्त बतानेवाले दैवज्ञ (ज्यौतिपके विद्वान् ब्राह्मण) के पूजन (सत्कार) पूर्वक कुक्षिस्थानमें शङ्कुकी स्थापना करे। लग्नसे केन्द्र और त्रिकोणमें शुभ ग्रह तथा ३, ६, ११ में पापग्रह और चन्द्रमा हो तो यह शङ्कुस्थापन श्रेष्ठ है ॥ ५७३–५७९½ ॥

घरके छः भेद होते हैं—१ एकशाला, २ द्विशाला, ३ त्रिशाला, ४ चतुश्शाला, ५ सप्तशाला तथा ६ दशशाला। इन छहों शालाओंमेंसे प्रत्येकके १६ भेद होते हैं। उन सब भेदोंके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—१ ध्रुव, २ धान्य, ३ जय, ४ नन्द, ५ खर, ६ कान्त, ७ मनोरम, ८ सुमुख, ९ दुर्मुख, १० क्रूर, ११ शत्रुद, १२ स्वर्णद, १३ क्षय, १४ आक्रन्द, १५ विपुल और १६ वाँ विजय नामक गृह होता है। चार अक्षरोंके प्रस्तारके भेदसे [illegible] गृहोंकी गणना करनी चाहिये ॥ ५८०–५८२½ ॥

(प्रस्तारभेद–) प्रथम ४ गुरु (ऽ) चिह्न [illegible] उनमें प्रथम गुरुके नीचे लघु (।) चिह्न लिखे। [illegible] जैसा ऊपर हो उसी प्रकारके गुरु या लघु चिह्न [illegible] फिर उसके नीचे (तीसरी पङ्क्तिमें) प्रथम गुरु [illegible] नीचे लघु चिह्न लिखकर आगे (दाहिने भागमें) [illegible] गुरु या लघु हो वैसा ही चिह्न लिखे तथा पीछे ([illegible]) गुरुचिह्नसे पूरा करे। इसी प्रकार पुनः पुनः [illegible] जाय जबतक कि पंक्ति (प्रस्तार) में [illegible] जाय। इस प्रकार चार दिशा होनेसे [illegible] ४ [illegible] भेद होते हैं। प्रत्येक भेदमें चारों चिह्नोंको [illegible] पूर्व आदि दिशा समझकर जहाँ जहाँ लघु चिह्न [illegible] घरका द्वार और अलिन्द (द्वारके आगेका भाग=[illegible]) बनाना चाहिये। इस प्रकार पूर्वादि दिशाओंमें [illegible] भेदोंसे १६ प्रकारके घर होते हैं * ॥ ५८३–५८४½ ॥

वास्तुभूमिकी पूर्वदिशामें स्नानगृह, अग्निकोणमें पाक गृह (रसोईघर), दक्षिणमे शयनगृह, नैर्ऋत्यकोणमें शस्त्रागार, पश्चिममें भोजनगृह, वायुकोणमें [illegible]

* प्रस्तारस्वरूप—

संख्या	स्वरूप पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	नाम	द्वारकी दिशा
१	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ध्रुव	ऊर्ध्व (ऊपर)
२	।	ऽ	ऽ	ऽ	धान्य	पूर्व
३	ऽ	।	ऽ	ऽ	जय	दक्षिण
४	।	।	ऽ	ऽ	नन्द	पूर्व-दक्षिण
५	ऽ	ऽ	।	ऽ	खर	पश्चिम
६	।	ऽ	।	ऽ	कान्त	पूर्व-पश्चिम
७	ऽ	।	।	ऽ	मनोरम	दक्षिण-पश्चिम
८	।	।	।	ऽ	सुमुख	पूर्व-दक्षिण-पश्चिम
९	ऽ	ऽ	ऽ	।	दुर्मुख	उत्तर
१०	।	ऽ	ऽ	।	क्रूर	पूर्व-उत्तर
११	ऽ	।	ऽ	।	शत्रुद	दक्षिण-उत्तर
१२	।	।	ऽ	।	स्वर्णद	पूर्व-दक्षिण-उत्तर
१३	ऽ	ऽ	।	।	क्षय	पश्चिम-उत्तर
१४	।	ऽ	।	।	आक्रन्द	पूर्व-पश्चिम-उत्तर
१५	ऽ	।	।	।	विपुल	दक्षिण-पश्चिम-उत्तर
१६	।	।	।	।	विजय	पूर्व-दक्षिण-पश्चिम-उत्तर

रखनेका घर, उत्तरमें देवताओंका गृह और ईशानकोणमें स्नानगृह (स्नान) बनाना चाहिये तथा आग्नेयकोणसे आरम्भ करके उक्त दो-दो घरोंके बीच क्रमशः मन्थन (दूध-दहीसे घृत निकालने) का, घृत रखनेका, पैखानेका, विद्याभ्यास-का, स्त्रीसहवासका, औषधका और शृङ्गारकी सामग्री रखनेका घर बनाना शुभ कहा गया है। अतः इन सब घरोंमें उन-उन सब वस्तुओंको रखना चाहिये ॥ ५८५—५८८½ ॥

(आयोंके नाम और दिशा—) पूर्वादि आठ दिशाओं-में क्रमसे ध्वज, धूम्र, सिंह, श्वान, वृष, खर (गदहा), गज और ध्वाक्ष (काक)—ये आठ आय होते हैं ॥ ५८९½ ॥

(घरके समीप निन्द्य वृक्ष—) पाकर, गूलर, आम, नीम, बहेड़ा तथा काँटेवाले और दुग्धवाले सब वृक्ष, पीपल, कपित्थ (कैथ), अगस्त्य वृक्ष, सिन्धुवार (निर्गुण्डी) और इमली—ये सब वृक्ष घरके समीप निन्दित कहे गये हैं। विशेषतः घरके दक्षिण और पश्चिम-भागमें ये सब वृक्ष हों तो धन आदिका नाश करनेवाले होते हैं ॥ ५९०-५९१½ ॥

(गृह-प्रमाण—) घरके स्तम्भ (खम्भे) घरके पैर होते हैं। इसलिये वे समसंख्या (४, ६, ८ आदि) में होनेपर ही उत्तम कहे गये हैं; विषम संख्यामें नहीं। घरको न तो अधिक ऊँचा ही करना चाहिये, न अधिक नीचा ही। इसलिये अपनी इच्छा (निर्वाह) के अनुसार भित्ति (दीवार) की ऊँचाई करनी चाहिये। घरके ऊपर जो घर (दूसरा मंजिल) बनाया जाता है, उसमें भी इस प्रकारका विचार करना चाहिये। घरोंकी ऊँचाईके प्रमाण आठ प्रकारके कहे गये हैं, जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—१ पाञ्चाल, २ वैदेह, ३ कौरव, ४ कुजन्यक[1], ५ मागध, ६ शूरसेन, ७ गान्धार और ८ आवन्तिक। जहाँ घरकी ऊँचाई उसकी चौड़ाईसे सवागुनी अधिक होती है, वह भूतलसे ऊपरतकका पाञ्चालमान कहलाता है, फिर उसी ऊँचाईको उत्तरोत्तर सवागुनी बढ़ानेसे वैदेह आदि सब मान होते हैं। इनमें पाञ्चालमान तो सर्वसाधारण जनोंके लिये शुभ है। ब्राह्मणोंके लिये आवन्तिक मान, क्षत्रियोंके लिये गान्धारमान तथा वैश्योंके लिये कौजन्यमान है। इस प्रकार ब्राह्मणादि वर्णोंके लिये यथोत्तर गृहमान समझना चाहिये तथा दूसरे मंजिल और तीसरे मंजिलके मकानमें भी पानीका बहाव पहले बताये अनुसार ही बनाना चाहिये[1] ॥ ५९२—५९८ ॥

(घरमें प्रशस्त आय—) ध्वज अथवा गज आयमें ऊँट और हाथीके रहनेके लिये घर बनवावे तथा अन्य सब पशुओंके घर भी उसी (ध्वज और गज) आयमें बनाने चाहिये। द्वार, शय्या, आसन, छाता और ध्वजा—इन सबोंके निर्माणके लिये सिंह, वृष अथवा ध्वज आय होने चाहिये ॥ ५९९½ ॥

अब मैं नूतनगृहमें प्रवेशके लिये वास्तुपूजाकी विधि बताता हूँ—घरके मध्यभागमें तन्दुल (चावल) पर पूर्वसे पश्चिमकी ओर एक-एक हाथ लम्बी दस रेखाएँ खींचे। फिर उत्तरसे दक्षिणकी ओर भी उतनी ही लम्बी-चौड़ी दस रेखाएँ बनावे। इस प्रकार उसमें बराबर-बराबर ८१ पद (कोष्ठ) होते हैं। उनमें आगे बताये जानेवाले ४५ देवताओंका यथोक्त स्थानमें नामोल्लेख करे। बत्तीस देवता बाहर (प्रान्तके कोष्ठोंमें) और तेरह देवता भीतर पूजनीय होते हैं। उन ४५ देवताओंके स्थान और नामका क्रमशः वर्णन करता हूँ। किनारेके बत्तीस कोष्ठोंमें ईशान कोणसे आरम्भ करके क्रमशः बत्तीस देवता पूज्य हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—कृपीट योनि(अग्नि) १, पर्जन्य २, जयन्त ३, इन्द्र ४, सूर्य ५, सत्य ६, भृश ७, आकाश ८, वायु ९, पूषा १०, अनृत (वितथ) ११, गृहक्षत[2] १२, यम १३, गन्धर्व १४, भृङ्गराज १५, मृग १६, पितर १७, दौवारिक १८, सुग्रीव १९, पुष्प-दन्त २०, वरुण २१, असुर २२, शेष २३, राजयक्ष्मा[3] २४, रोग २५, अहि २६, मुख्य २७, भल्लाटक २८, सोम २९, सर्प ३०, अदिति ३१ और दिति ३२—ये चारों किनारोंके देवता हैं। ईशान, अग्नि, नैर्ऋत्य और वायुकोणके देवोंके समीप क्रमशः आप ३३, सावित्र ३४, जय ३५, तथा रुद्र ३६ के पद हैं। ब्रह्माके चारों ओर पूर्व आदि आठों दिशाओंमें क्रमशः अर्यमा ३७, सविता ३८, विवस्वान् ३९, विबुधाधिप ४०, मित्र ४१, राजयक्ष्मा ४२, पृथ्वीधर ४३, आपवत्स ४४ हैं और मध्यके नव पदोंमें ब्रह्माजी (४५) को स्थापित करना चाहिये। इस प्रकार सब पदोंमें ये पैंतालीस देवता पूजनीय होते हैं। जैसे ईशान-कोणमें

---

१. मूलमें 'कुजन्यकम्' पाठ है; परन्तु कुजन्य कोई प्रसिद्ध देश नहीं है; इसलिये प्रतीत होता है कि यहाँ 'कान्यकुब्जकम्' के स्थानमें 'कुब्जकन्यकम्' था। फिर लेखकादिके दोषसे 'कुजन्यकम्' हो गया है।

१. पूर्व या उत्तर प्लवभूमिमें घर बनाना प्रशस्त कहा गया है। यदि नीचेके तल्लेमें पूर्व दिशामें जलस्राव हो तो ऊपरके मंजिलमें भी पूर्व दिशामें ही जलस्राव होना चाहिये। २-३. अन्य संहितामें १२ वाँ गृहक्षत, २४ वाँ पापयक्ष्मा कहा गया है।

आप, आपवत्स, पर्जन्य, अग्नि और दिति—ये पाँच देव एकपद होते हैं, उसी प्रकार अन्य कोणोंके पाँच-पाँच देवता भी एक-पदके भागी हैं। अन्य जो बाह्य-पङ्क्तिके (जयन्त, इन्द्र आदि) बीस देवता हैं, वे सब द्विपद (दो-दो पदोंके भागी) हैं तथा ब्रह्मासे पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशामें जो अर्यमा, विवस्वान्, मित्र और पृथ्वीधर—ये चार देवता हैं, वे त्रिपद (तीन-तीन पदोंके भागी) हैं; अतः वास्तु-विधिके ज्ञाता विद्वान् पुरुषको चाहिये कि ब्रह्माजीसहित इन एकपद, द्विपद तथा त्रिपद देवताओंका वास्तुमन्त्रोंद्वारा दूर्वा, दही, अक्षत, फूल, चन्दन, धूप, दीप और नैवेद्यादिसे विधिवत् पूजन करे। अथवा ब्राह्ममन्त्रसे आवाहनादि षोडश (या पञ्च) उपचारोंद्वारा उन्हें दो श्वेत वस्त्र समर्पित करे * ॥ ६००—६१३ ॥ नैवेद्यमें तीन प्रकारके (भक्ष्य, भोज्य, लेह्य) अन्न माङ्गलिक गीत और वाद्यके साथ अर्पण करे। अन्तमें ताम्बूल (पान-सोपारी) अर्पण करके वास्तुपुरुषकी इस प्रकार प्रार्थना करे ॥ ६१४ ॥

वास्तुपुरुष नमस्तेऽस्तु भूशय्याभिरत प्रभो।
मद्गृहं धनधान्यादिसमृद्धं कुरु सर्वदा॥

'भूमिशय्यापर शयन करनेवाले वास्तुपुरुष ! आपको मेरा नमस्कार है। प्रभो ! आप मेरे घरको धन-धान्य आदिसे सम्पन्न कीजिये।'

इस प्रकार प्रार्थना करके देवताके समक्ष पूजा करानेवाले (पुरोहित) को यथाशक्ति दक्षिणा दे तथा अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें भी दक्षिणा दे। जो मनुष्य सावधान होकर गृहारम्भ या गृहप्रवेशके समय इस विधिसे वास्तु-पूजा करता है, वह आरोग्य, पुत्र, धन और धान्य प्राप्त करके सुखी होता है। जो मनुष्य वास्तु-पूजा न

* एकाशीतिपद वास्तुचक्र—

शिखी १	पर्जन्य २	जयन्त ३	इन्द्र ४	सूर्य ५	सत्य ६	भृश ७	आकाश ८	वायु ९
दिति ३२	आप ३३	जयन्त	इन्द्र	सूर्य	सत्य	भृश	सावित्र ३४	पूषा १०
अदिति ३१	अदिति	४४ आपवत्स	अर्यमा	३७ अर्यमा	अर्यमा	३८ सविता	वितथ	वितथ ११
सर्प ३०	सर्प	पृथ्वीधर				विवस्वान्	गृहक्षत	गृहक्षत १२
सोम २९	सोम	पृथ्वीधर ४३		४५ ब्रह्मा		विवस्वान् ३९	यम	यम १३
भल्लाटक २८	भल्लाटक	पृथ्वीधर				विवस्वान्	गन्धर्व	गन्धर्व १४
मुख्य २७	मुख्य	राजयक्ष्मा ४२	मित्र	मित्र ४१	मित्र	विबुधाधिप ४०	भृङ्ग	भृङ्ग १५
अहि २६	रुद्र ३६	शेष	असुर	वरुण	पुष्पदन्त	सुग्रीव	मृग २५	मृग १६
रोग २५	राजयक्ष्मा २४	शेष २३	असुर २२	वरुण २१	पुष्पदन्त २०	सुग्रीव १९	दौवारिक १८	पितृ १७

करके नये घरमें प्रवेश करता है, वह नाना प्रकारके रोग, क्लेश और संकट प्राप्त करता है ॥ ६१५—६१८ ॥

जिसमें किंवाड़े न लगी हों, जिसे ऊपरसे छत आदिके द्वारा छाया न गया हो तथा जिसके लिये (पूर्वोक्त रूपसे वास्तुपूजन करके) देवताओंको बलि (नैवेद्य) और ब्राह्मण आदि-को भोजन न दिया गया हो, ऐसे नूतन गृहमें कभी प्रवेश न करे; क्योंकि वह विपत्तियोंकी खान (स्थान) होता है ॥ ६१९ ॥

(यात्रा-प्रकरण—) अब मैं जिस प्रकारसे यात्रा करनेपर वह राजा तथा अन्य जनोंके लिये अभीष्ट फलकी सिद्धि करानेवाली होती है, उस विधिका वर्णन करता हूँ। जिनके जन्म-समयका ठीक-ठीक ज्ञान है, उन राजाओं तथा अन्य जनोंको उस विधिसे यात्रा करनेपर उत्तम फलकी प्राप्ति होती है। जिन मनुष्योंका जन्मसमय अज्ञात है, उनको तो घुणाक्षर न्यायसे ही कभी फलकी प्राप्ति हो जाती है, तथापि उनको भी प्रश्न-लग्नसे तथा निमित्त और शकुन आदिद्वारा शुभा-शुभ देखकर यात्रा करनेसे अभीष्ट फलका लाभ होता है ॥ ६२०-६२१ ॥

(यात्रामें निषिद्ध तिथियाँ—) षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी, चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णिमा और शुक्ल पक्षकी प्रतिपदा—इन तिथियोंमें यात्रा करनेसे दरिद्रता तथा अनिष्टकी प्राप्ति होती है ॥ ६२२ ॥

(विहित नक्षत्र—) अनुराधा, पुनर्वसु, मृगशिरा, हस्त, रेवती, अश्विनी, श्रवण, पुष्य और धनिष्ठा—इन नक्षत्रोंमें यदि अपने जन्म-नक्षत्रसे सातवीं, पाँचवीं और तीसरी तारा न हो तो यात्रा अभीष्ट फलको देनेवाली होती है ॥ ६२३ ॥

(दिशाशूल—) शनि और सोमवारके दिन पूर्व दिशाकी ओर न जाय, गुरुवारको दक्षिण न जाय, शुक्र और रविवारको पश्चिम न जाय तथा बुध और मङ्गलको उत्तर दिशाकी यात्रा न करे ॥ ६२४ ॥ ज्येष्ठा, पूर्व भाद्रपद, रोहिणी और उत्तरा फाल्गुनी—ये नक्षत्र क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशामें शूल होते हैं।

(सर्वदिग्गमन नक्षत्र—) अनुराधा, हस्त, पुष्य और अश्विनी—ये चार नक्षत्र सब दिशाओंकी यात्रामें प्रशस्त हैं ॥ ६२५ ॥

(दिग्द्वार-नक्षत्र—) कृत्तिकासे आरम्भ करके सात-सात नक्षत्रसमूह पूर्वादि दिशाओंमें रहते हैं। तथा अग्निकोणसे वायुकोणतक परिघदण्ड रहता है; अतः इस प्रकार यात्रा करनी चाहिये, जिससे परिघदण्डका लङ्घन न हो * ॥ ६२६ ॥

पूर्वके नक्षत्रोंमें अग्निकोणकी यात्रा करे। इसी प्रकार दक्षिणके नक्षत्रोंमें अग्निकोण तथा पश्चिम और उत्तरके नक्षत्रोंमें वायुकोणकी यात्रा कर सकते हैं।

(दिशाओंकी राशियाँ—) पूर्व आदि चार दिशाओंमें मेष आदि १२ राशियाँ पुनः-पुनः (तीन आवृत्तिसे) आती हैं † ॥ ६२७ ॥

---

१. जैसे घुन (कीटविशेष) काठको खोदता रहता है तो उसमें कभी अक्षरादि अक्षरका स्वरूप अकस्मात् बन जाता है; उसी प्रकार जो अपने जन्मसमयसे अपरिचित हैं वे लग्न आदिको न जानकर भी यात्रा करते-करते कभी संयोगवश शुभ फलके भागी हो जाते हैं।

* पूर्व नक्षत्रमें पश्चिम या दक्षिण जानेसे परिघदण्डका लङ्घन होगा। चक्र देखिये—

(पूर्व)

कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य आश्लेषा

भरणी, अश्विनी, रेवती, उत्तर भाद्रपद, पूर्व भाद्रपद, शतभिष, धनिष्ठा

मघा, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा

परिघदण्ड

श्रवण, अभिजित्, उत्तराषाढ, पूर्वाषाढ, मूल, ज्येष्ठा, अनुराधा,

† दिग्राशिबोधकचक्र—

(पूर्व)

	मेष, १	सिंह, ५	धनु, ९	
मीन १२				२ वृष
वृश्चिक ८				६ कन्या
कर्क ४				१० मकर
	कुम्भ ११	तुला ७	मिथुन ३	

(ललाटिकयोग—)जिस दिशामें यात्रा करनी हो, उस दिशाका स्वामी ललाटगत (सामने) हो तो यात्रा करनेवाला लौटकर नहीं आता है। पूर्व दिशामें यात्रा करनेवालेको लग्नमें यदि सूर्य हो तो वह ललाटगत माना जाता है। यदि शुक्र लग्नसे ग्यारहवें या बारहवें स्थानमें हों तो अग्निकोणमें यात्रा करनेसे, मङ्गल दशम भावमें हो तो दक्षिण-यात्रा करनेसे, राहु नवें और आठवें भागमें हो तो नैर्ऋत्य कोणकी यात्रासे, शनि सप्तम भावमें हो तो पश्चिम-यात्रासे, चन्द्रमा पाँचवें और छठे भावमें हो तो वायुकोणकी यात्रासे, बुध चतुर्थ भावमे हो तो उत्तरकी यात्रासे, गुरु तीसरे और दूसरे भावमें हो तो ईशानकोणकी यात्रा करनेसे ललाटगत होते हैं। जो मनुष्य जीवनकी इच्छा रखता हो, वह इस ललाटयोगको त्यागकर यात्रा करे ॥ ६२८—६३२ ॥

लग्नमें वक्रगति ग्रह या उसके षड्वर्ग (राशि-होरादि) हों तो यात्रा करनेवाले राजाओंकी पराजय होती है ॥ ६३३ ॥

जब जिस अयन* में सूर्य और चन्द्रमा दोनों हों, उस समय उस दिशाकी यात्रा शुभ फल देनेवाली होती है। यदि दोनों भिन्न अयनमे हों तो जिस अयनमें सूर्य हों उधर दिनमें तथा जिस अयनमें चन्द्रमा हों उधर रात्रिमें यात्रा शुभ होती है। अन्यथा यात्रा करनेसे यात्रीकी पराजय होती है ॥ ६३४ ॥

(शुक्रदोष—) शुक्र अस्त हों तो यात्रामे हानि होती है। यदि वह सम्मुख हो तो यात्रा करनेसे पराजय होती है। सम्मुख शुक्रके दोषको कोई भी ग्रह नहीं हटा सकता है। किंतु वशिष्ठ, कश्यप, अत्रि, भरद्वाज और गौतम—इन पाँच गोत्रवालोंको सम्मुख शुक्रका दोष नहीं होता है। यदि एक ग्रामके भीतर ही यात्रा करनी हो या विवाहमे जाना हो या दुर्भिक्ष होनेपर अथवा राजाओंमे युद्ध होनेपर तथा राजा या ब्राह्मणोका कोप होनेपर कहीं जाना पड़े तो इन अवस्थाओंमे सम्मुख शुक्रका दोष नही होता है। शुक्र यदि नीच राशिमे या शत्रुराशिमे अथवा वक्रगति या पराजित† हो तो यात्रा करनेवालोंकी पराजय होती है। यदि शुक्र अपनी उच्चराशि (मीन) मे हो तो यात्रामे विजय होती है ॥ ६३५—६३८ ॥

अपने जन्मलग्न या जन्मराशिसे अष्टम राशि या लग्नमें तथा शत्रुकी राशिसे छठी राशिमें या लग्नमें अथवा इन दोनोंके स्वामी जिस राशिमें हों, उस लग्न या राशिमें यात्रा करनेवाले की मृत्यु होती है। परंतु यदि जन्मलग्नराशिपति और अष्टम राशिपतिमें परस्पर मैत्री हो तो उक्त अष्टमराशिजन्य दोष स्वयं नष्ट हो जाता है ॥ ६३९-६४० ॥

द्विस्वभाव लग्न यदि पापग्रहसे युक्त या दृष्ट हो तो यात्रामें पराजय होती है। तथा स्थिर राशि पापग्रहसे युक्त न हो तो भी वह यात्रालग्नमें अशुभ है यदि स्थिर राशि लग्नमें शुभग्रहका योग या दृष्टि हो तो शुभ फल होता है ॥ ६४१ ॥

धनिष्ठा नक्षत्रके उत्तरार्धसे आरम्भ करके (रेवती-पर्यन्त) पाँच नक्षत्रोंमे गृहार्थ तृण-काष्ठोंका संग्रह, दक्षिणकी यात्रा, शय्या (तकिया, पलङ्ग आदि) का बनाना, घरको छवाना आदि कार्य नहीं करने चाहिये ॥ ६४२ ॥

यदि यात्रालग्नमें जन्मलग्न, जन्मराशि या इन दोनोंके स्वामी हों अथवा जन्मलग्न या जन्मराशिसे ३, ६, ११, १० वीं राशि हो तो शत्रुओंका नाश होता है ॥ ६४३ ॥

यदि शीर्षोदय (मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, कुम्भ) तथा दिग्द्वार (यात्राकी दिशा) की राशि लग्नमें हो अथवा किसी भी लग्नमें शुभग्रहके वर्ग (राशि-होरादि) हों तो यात्रा करनेवाले राजाके शत्रुओंका नाश होता है ॥ ६४४ ॥

शत्रुके जन्मलग्न या जन्मराशिसे अष्टम राशि या इन दोनोंके स्वामी जिस राशिमें हों वह राशि यात्रालग्नमें हो तो शत्रुका नाश होता है ॥ ६४५ ॥

मीन लग्नमें या लग्नगत मीनके नवमांशमें यात्रा करनेसे मार्ग (रास्ता) टेढ़ा हो जाता है। (अर्थात् घूमना पड़ता है।) तथा कुम्भलग्न और लग्नगत कुम्भका नवमांश भी यात्रामें अत्यन्त निन्दित है ॥ ६४६ ॥

जलचर राशि (कर्क, मीन) का [illegible] नवमांश लग्नमें हो तो नौकाद्वारा नदी [illegible] शुभ होती है ॥ ६४६ ॥

(लग्नभावोंकी संज्ञा—) १ तनु ([illegible] २ कोश (धन) ३ धन्वी (पराक्रम, [illegible]

---

* मकरसे ६ राशि उत्तरायण है। इनमें सूर्य-चन्द्रमा हों तो उत्तरको यात्रा शुभ होती है, क्योंकि दोनों सम्मुख होते हैं। इससे सिद्ध होता है कि यदि सूर्य और चन्द्रमा दाहिने भागमें पड़ें तो भी यात्रा शुभ हो सकती है। इसलिये उस समय पश्चिम यात्रा भी शुभ ही समझनी चाहिये। एवं कर्कसे छः राशि दक्षिणायन समझें।

† जब मङ्गलादि ग्रहोंमें किन्हीं दो ग्रहोंकी एक राशिमें अंशकला बराबर हो तो दोनोंमें युद्ध समझा जाता है। उन दोनोंमें जो उत्तर रहता है, वह विजयी [illegible] होता है।

(सवारी, माता), ५ मन्त्र (विद्या, सन्तान); ६ शत्रु (रोग, मामा); ७ मार्ग (यात्रा, पति-पत्नी); ८ आयु (मृत्यु); ९ मन (अन्तःकरण, भाग्य); १० व्यापार (व्यवसाय, पिता); ११ प्राप्ति (लाभ); १२ अप्राप्ति (व्यय)—ये क्रमसे लग्न आदि १२ स्थानोंकी संज्ञाएँ हैं ॥ ६४७-६४८ ॥

पापग्रह (शनि, रवि, मङ्गल, राहु तथा केतु—ये) तीसरे और ग्यारहवेंको छोड़कर अन्य सब भावोंमें जानेसे भाव-फलको नष्ट कर देते हैं।* तीसरे और ग्यारहवें भावमें जानेसे वे उन दोनों भावोंको पुष्ट करते हैं। सूर्य और मङ्गल ये दोनों दशम भावको भी नष्ट नहीं करते, अपितु दशम भावमें जानेसे उस भाव फल (व्यापार, पिता, राज्य तथा कर्म) को पुष्ट ही करते हैं और शुभग्रह (चन्द्र, बुध, गुरु तथा शुक्र) जिस भावमें जाते हैं, उस भावफलको पुष्ट ही करते हैं; केवल षष्ठ (६) भावमें जानेसे उस भावफल (शत्रु और रोग) को नष्ट करते हैं ॥ ६४९ ॥ शुभ ग्रहोंमें शुक्र सप्तम भावको और चन्द्रमा लग्न एवं अष्टम (१, ८) को पुष्ट नहीं करते हैं। (अपितु नष्ट ही करते हैं।)

(अभिजित्-प्रशंसा—) अभिजित् मुहूर्त (दिनका मध्यकाल=१२ बजेसे १ घड़ी आगे और १ घड़ी पीछे) अभीष्ट फल सिद्ध करनेवाला योग है। यह दक्षिण दिशाकी यात्रा छोड़कर अन्य दिशाओंकी यात्रामें शुभ फल देता है। इस (अभिजित् मुहूर्त) में पञ्चाङ्ग (तिथि-वारादि) शुभ न हो तो भी यात्रामें वह उत्तम फल देनेवाला होता है ॥ ६५०-६५१ ॥

(यात्रा-योग—) लग्न और ग्रहोंकी स्थितिसे नाना प्रकारके यात्रा-योग होते हैं। अब उन योगोंका वर्णन करता हूँ, क्योंकि राजाओं (क्षत्रियों) को योगबलसे ही अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती है। ब्राह्मणोंको नक्षत्रबलसे तथा अन्य मनुष्योंको मुहूर्त-बलसे इष्टसिद्धि होती है। तस्करोंको शकुनबलसे अपने अभीष्टकी प्राप्ति होती है ॥ ६५२½ ॥ शुक्र, बुध और बृहस्पति—इन तीनोंमेंसे कोई भी यदि केन्द्र या त्रिकोणमें हो तो योग कहलाता है। यदि उनमेंसे दो ग्रह केन्द्र या त्रिकोणमें हों तो 'अधियोग' कहलाता है तथा यदि तीनों लग्नसे केन्द्र (१,४,७,१०) या त्रिकोण (९,५) में हों तो योगाधियोग कहलाता है ॥ ६५३½ ॥ योगमें यात्रा करनेवालोंका कल्याण होता है। अधियोगमें यात्रा करनेसे विजय प्राप्त होती है और योगाधियोगमें यात्रा करनेवालेको कल्याण, विजय तथा सम्पत्तिका भी लाभ होता है ॥ ६५४½ ॥ लग्नसे दसवें स्थानमें चन्द्रमा, षष्ठ स्थानमें शनि और लग्नमें सूर्य हों तो इस समयमें यात्रा करनेवाले राजाको विजय तथा शत्रुकी सम्पत्ति भी प्राप्त होती है ॥ ६५५½ ॥ शुक्र, रवि, बुध, शनि और मङ्गल—ये पाँचों ग्रह क्रमसे लग्न चतुर्थ, सप्तम, तृतीय और षष्ठ भावमें हों तो यात्रा करनेवाले राजाके सम्मुख आये हुए शत्रुगण आगमें पड़ी हुई लाहकी भाँति नष्ट हो जाते हैं ॥ ६५६½ ॥ बृहस्पति लग्नमें और अन्य ग्रह यदि दूसरे और ग्यारहवें भावमें हों तो इस योगमें यात्रा करनेवाले राजाके शत्रुओंकी सेना यमराजके घर पहुँच जाती है ॥ ६५७½ ॥ यदि लग्नमें शुक्र, ग्यारहवेंमें रवि और चतुर्थ भावमें चन्द्रमा हो तो इस योगमें यात्रा करनेवाला राजा अपने शत्रुओंको उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे हाथियोंके झुंडको सिंह ॥ ६५८½ ॥

अपने उच्च (मीन) में स्थित शुक्र लग्नमें हो अथवा अपने उच्च (वृष) का चन्द्रमा लाभ (११) भावमें स्थित हो तो यात्रा करनेवाला नरेश अपने शत्रुकी सेनाको उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे भगवान् श्रीकृष्णने पूतनाको नष्ट किया था ॥ ६५९½ ॥ यदि यात्राके समय शुभ ग्रह केन्द्रमें या त्रिकोणमें हों तथा पापग्रह तीसरे, छठे और ग्यारहवें स्थानमें हों तो यात्रा करनेवाले राजाके शत्रुकी लक्ष्मी अभिसारिकाकी भाँति उसके समीप आ जाती है ॥ ६६०½ ॥ गुरु, रवि और चन्द्रमा—ये क्रमशः लग्न, ६ और ८ में हों तो यात्रा करनेवाले राजाके सामने दुर्जनोंकी मैत्रीके समान शत्रुओंकी सेना नहीं ठहरती है ॥ ६६१½ ॥ यदि लग्नसे ३, ६, ११में पापग्रह हों और शुभ ग्रह बलवान् होकर अपने उच्चादि स्थानमें (स्थित) हों तो शत्रुकी भूमि यात्रा करनेवाले राजाके हाथमें आ जाती है ॥ ६६२½ ॥ अपने उच्च (कर्क) में स्थित बृहस्पति यदि लग्नमें हों और चन्द्रमा ११ भावमें स्थित हों तो यात्रा करनेवाला नरेश अपने शत्रुको उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे त्रिपुरासुरको श्रीशिवजीने नष्ट किया था ॥ ६६३½ ॥ शीर्षोदय (मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, कुम्भ) राशिमें स्थित शुक्र यदि लग्नमें हों और गुरु ग्यारहवें स्थानमें हों तो यात्रा करनेवाला पुरुष तारकासुरको कार्तिकेयकी

---

* यदि पापग्रह लग्न (तनुभाव) में रहता है तो शरीरमें [illegible] तथा धन-भावमें धनका नाश करता है। किंतु यदि तीसरेमें रहता है तो पराक्रमको और ग्यारहवेंमें रहता है तो लाभको पुष्ट करता है।

भाँति अपने शत्रुको नष्ट कर देता है ॥ ६६४½ ॥ गुरु लग्नमें और शुक्र किसी केन्द्र या त्रिकोणमें हों तो यात्री नरेश अपने शत्रुओंको वैसे ही भस्म कर देता है जैसे वनको दावानल ॥ ६६५½ ॥ यदि बुध लग्नमें और अन्य शुभ ग्रह किसी केन्द्रमें हों तथा नक्षत्र भी अनुकूल हो तो उसमें यात्रा करनेवाला राजा अपने शत्रुओंको वैसे ही सोख लेता है, जैसे सूर्यकी किरणें ग्रीष्म ऋतुमें क्षुद्र नदियोंको सोख लेती हैं ॥ ६६६½ ॥ सम्पूर्ण शुभ ग्रह केन्द्र या त्रिकोणमें हों तथा सूर्य या चन्द्रमा ग्यारहवें भावमें स्थित हों तो यात्रा करनेवाला नरेश अन्धकारको सूर्यकी भाँति अपने शत्रुको नष्ट कर देता है ॥ ६६७½ ॥

शुभ ग्रह यदि अपनी राशिमें स्थित होकर केन्द्र (१, ४, ७, १०), त्रिकोण (५, ९) तथा आय (११) भावमें हो तो यात्रा करनेवाला राजा रूईको अग्निके समान अपने शत्रुओंको जलाकर भस्म कर देता है ॥ ६६८½ ॥ चन्द्रमा दसवें भावमें और बृहस्पति केन्द्रमें हों तो उसमें यात्रा करनेवाला राजा अपने सम्पूर्ण शत्रुओंको उसी प्रकार नष्ट कर देता है जैसे प्रणवसहित पञ्चाक्षरमन्त्र (ॐ नमः शिवाय) पाप-समूहका नाश कर देता है ॥ ६६९½ ॥ अकेला शुक्र भी यदि वर्गोत्तम नवमांशगत लग्नमें स्थित हो तो उसमें भी यात्रा करनेसे राजा अपने शत्रुओंको उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे पापोंको श्रीभगवान्‌का स्मरण ॥ ६७०½ ॥ शुभ ग्रह केन्द्र या त्रिकोणमें हों तथा चन्द्रमा यदि वर्गोत्तम नवमांशमें हो तो यात्रा करनेसे राजा अपने शत्रुओंको उसी प्रकार सपरिवार नष्ट करता है, जैसे इन्द्र पर्वतोंको ॥ ६७१½ ॥ बृहस्पति अथवा शुक्र अपने मित्रकी राशिमें होकर केन्द्र या त्रिकोणमें हों तो ऐसे समयमें यात्रा करनेवाला भूपाल सर्पोंको गरुड़के समान अपने शत्रुओंको अवश्य नष्ट कर देता है ॥ ६७२½ ॥ यदि एक भी शुभ ग्रह वर्गोत्तम नवमांशमें स्थित होकर केन्द्रमें हो तो यात्रा करनेवाला नरेश पाप-समूहोंको गङ्गाजीके समान अपने शत्रुओंको क्षणभरमें नष्ट कर देता है ॥ ६७३½ ॥ जो राजा शत्रुओंको जीतनेके लिये उपर्युक्त राजयोगोंमें यात्रा करता है, उसका कोपानल शत्रुओंकी स्त्रियोंके अश्रुजलसे शान्त होता है ॥ ६७४½ ॥ आश्विन मासके शुक्लपक्षकी दशमी तिथि विजया कहलाती है। उसमें जो यात्रा करता है, उसे अपने शत्रुओंपर विजय प्राप्त होती है। अथवा शत्रुओंसे सन्धि (मेल) हो जाती है। किसी भी दशामें उसकी पराजय नहीं होती है ॥ ६७५½ ॥

(मनोजय-प्रशंसा—) यात्रा आदि सभी कार्योंमें निमित्त और शकुन आदि (लग्न एवं ग्रहयोग) [illegible] (मनको वशमें तथा प्रसन्न रखना) प्रबल है। [illegible] पुरुषोंके लिये यत्नपूर्वक [illegible] मनोजय ही प्रधान [illegible] होता है ॥ ६७६½ ॥

(यात्रामें प्रतिबन्ध—) यदि [illegible] विवाह, प्रतिष्ठा या सूतक उपस्थित हो तो [illegible] रखनेवालोंको बिना उत्सवको समाप्त किये यात्रा नहीं करनी चाहिये ॥ ६७७½ ॥

(यात्रामें अपशकुन—) [illegible] दो भैंसों या चूहोंमें लड़ाई हो, [illegible] मासिक धर्म हुआ हो, वस्त्र आदि [illegible] पड़े, किसीपर क्रोध हो जाय या मुखसे दुर्वचन [illegible] उस दशामें राजाको यात्रा नहीं करनी चाहिये ॥ ६७८½ ॥

(दिशा, वार तथा नक्षत्र दोहद* —) [illegible] मिश्रित अन्न खाकर पूर्व दिशाकी यात्रा करे, [illegible] हुआ अन्न खाकर दक्षिण दिशाको जाय और [illegible] खाकर उत्तर दिशाकी यात्रा करे तो निश्चय ही [illegible] विजय पाता है। रविवारको [illegible] ([illegible] मिला हुआ दही), सोमवारको खीर, [illegible] बुधवारको दूध, गुरुवारको दही, [illegible] शनिवारको तिल और भात खाकर यात्रा करे तो शत्रुओंको जीत लेता है। अश्विनीमें कुल्माष ([illegible]), भरणीमें तिल, कृत्तिकामें उड़द, रोहिणीमें गायका दही, मृगशिरामें गायका घी, आर्द्रामें गायका दूध, [illegible] मघामें नीलकण्ठका दर्शन, [illegible] (साठी धान) के चावलका भात, चित्रामें प्रियङ्गु (कँगनी), [illegible] (मालपूआ), अनुराधामें फल ([illegible]) उत्तराषाढ़में शाल्य (अगहनी धानका चावल), [illegible] हविष्य, श्रवणमें कृशरान्न (खिचड़ी), [illegible] जौका आटा, उत्तर भाद्रपदमें खिचड़ी [illegible] खाकर राजा यदि हाथी, घोड़े, रथ या [illegible] ([illegible])

* दोहद— [illegible] प्राप्तिसे मन प्रसन्न हो जाता है, [illegible] पूर्व दिशाका [illegible] देखा जाता है कि [illegible] जायँ। रविवारका [illegible] मिश्री और [illegible] मिला हुआ दही) [illegible] अन्य वारोंमें भी [illegible] आदिका दोष नष्ट हो जाता है।

पर बैठकर यात्रा करे तो वह शत्रुओंपर विजय पाता है और उसका अभीष्ट सिद्ध होता है ॥ ६७९—६८४ ॥

(यात्राविधि—) प्रज्वलित अग्निमें तिलोंसे हवन करके जिस दिशामें जाना हो, उस दिशाके स्वामीको उन्हींके समान रंगवाले वस्त्र, गन्ध तथा पुष्प आदि उपचार अर्पण करके उन दिशाओंके मन्त्रोंद्वारा विधिपूर्वक उनका पूजन करे । फिर अपने इष्टदेव और ब्राह्मणोंको प्रणाम करके ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद लेकर राजाको यात्रा करनी चाहिये ॥ ६८५½ ॥

(दिक्पालोंके स्वरूपका ध्यान—) (१ पूर्व दिशाके स्वामी) देवराज इन्द्र शची देवीके साथ ऐरावतपर आरूढ हो बड़ी शोभा पा रहे हैं । उनके हाथमें वज्र है । उनकी कान्ति सुवर्ण-सदृश है तथा वे दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हैं । (२ अग्निकोणके अधीश्वर) अग्निदेवके सात हाथ, सात जिह्वाएँ और छः मुख हैं । वे भेड़पर सवार हैं, उनकी कान्ति लाल है, वे स्वाहा देवीके प्रियतम हैं तथा स्रुक्-स्रुवा और नाना प्रकारके आयुध धारण करते हैं । (३ दक्षिण दिशाके स्वामी) यमराजका दण्ड ही अस्त्र है । उनकी आँखें लाल हैं और वे भैंसेपर आरूढ हैं । उनके शरीरका रङ्ग कुछ लाली लिये हुए साँवला है । वे ऊपरकी ओर मुँह किये हुए हैं तथा शुभस्वरूप हैं । (४ नैर्ऋत्यकोणके अधिपति) निर्ऋतिका वर्ण नील है । वे अपने हाथोंमें ढाल और तलवार लिये रहते हैं; मनुष्य ही उनका वाहन है । उनकी आँखें भयंकर तथा केश ऊपरकी ओर उठे हुए हैं । वे सामर्थ्यशाली हैं और उनकी गर्दन बहुत बड़ी है । (५ पश्चिम दिशाके स्वामी) वरुणकी अङ्गकान्ति पीली है । वे नागपाश धारण करते हैं । ग्राह उनका वाहन है । वे कालिकादेवीके प्राणनाथ हैं और रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित हैं । (६ वायव्य कोणके अधिपति) वायुदेव काले रङ्गके मृगपर आरूढ हैं । अञ्जनीके पति हैं, वे समस्त प्राणियोंके प्राणस्वरूप हैं । उनकी दो भुजाएँ हैं और वे हाथमें दण्ड धारण करते हैं । इस प्रकार उनका ध्यान और पूजन करे । (७ उत्तर दिशाके स्वामी) कुबेर घोड़ेपर सवार हैं । उनकी दो भुजाएँ हैं । वे हाथमें खड्ग धारण करते हैं । उनकी अङ्गकान्ति सुवर्णके सदृश है । वे चित्ररेखा देवीके प्राणवल्लभ तथा यक्षों और गन्धर्वोंके राजा हैं । (८ ईशानकोणके स्वामी) गौरीपति भगवान् शङ्कर हाथमें पिनाक लिये वृषभपर आरूढ हैं । वे सबमें श्रेष्ठ देवता हैं । उनकी अङ्गकान्ति श्वेत है । माथेपर चन्द्रमाका मुकुट सुशोभित होता है और सर्पमय यज्ञोपवीत धारण करते हैं । (इस प्रकार इन सब दिक्पालोंका ध्यान और पूजन करना चाहिये)॥ ६८६—६९३½ ॥

(प्रस्थानविधि—)यदि किसी आवश्यक कार्यवश निश्चित यात्रा-लग्नमें राजा स्वयं न जा सके तो छत्र, ध्वजा, शस्त्र, अस्त्र या वाहनमेंसे किसी एक वस्तुको यात्राके निर्धारित समयमें घरसे निकालकर जिस दिशामें जाना हो उसी दिशाकी ओर दूर रखा दे । अपने स्थानसे निर्गमस्थान (प्रस्थान रखनेकी जगह) २०० दण्ड (चार हाथकी लग्गी) से दूर होना उचित है । अथवा चालीस या कम-से-कम बारह दण्डकी दूरी होनी आवश्यक है । राजा स्वयं प्रस्तुत होकर जाय तो किसी एक स्थानमें सात दिन न ठहरे । अन्य (राजमन्त्री तथा साधारण) जन भी प्रस्थान करके एक स्थानमें छः या पाँच दिन न ठहरे । यदि इससे अधिक ठहरना पड़े तो उसके बाद दूसरा शुभ मुहूर्त और उत्तम लग्न विचारकर यात्रा करे ॥ ६९४–६९६½ ॥

असमयमें (पौषसे चैत्रपर्यन्त) बिजली चमके, मेघकी गर्जना हो या वर्षा होने लगे तथा त्रिविध (दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम) उत्पात होने लग जाय तो राजाको सात राततक अन्य स्थानोंकी यात्रा नहीं करनी चाहिये ॥ ६९७½ ॥

(शकुन—)यात्राकालमें रला नामक पक्षी, चूहा, सियारिन, कौआ तथा कबूतर—इनके शब्द वामभागमें सुनायी दें तो शुभ होता है । छछुंदर, पिंगला (उल्लू), पल्ली और गदहा—ये यात्राके समय वामभागमें हों तो श्रेष्ठ हैं । कोयल, तोता और भरदूल आदि पक्षी यदि दाहिने भागमें आ जायँ तो श्रेष्ठ हैं । काले रंगको छोड़कर अन्य सब रंगोंके चौपाये यदि वाम भागमें दीख पड़ें तो श्रेष्ठ हैं तथा यात्रासमयमें कृकलास (गिरगिट) का दर्शन शुभ नहीं है ॥ ६९८–७०० ॥

यात्राकालमें सूअर, खरगोश, गोधा (गोह) और सर्पोंकी चर्चा शुभ होती है, किंतु किसी भूली हुई वस्तुको खोजनेके लिये जाना हो तो इनकी चर्चा अच्छी नहीं होती है । वानर और भालुओंकी चर्चाका विपरीत फल होता है ॥ ७०१ ॥

यात्रामें मोर, बकरा, नेवला, नीलकण्ठ और कबूतर दीख जायँ तो इनके दर्शनमात्रसे शुभ होता है; परंतु लौटकर अपने नगरमें आने या घरमें प्रवेश करनेके समय ये दर्शन

दें तो सब अशुभ ही समझना चाहिये। यात्राकालमें रोदन-शब्द-रहित कोई शव (मुर्दा) सामने दीख पड़े तो यात्राके उद्देश्यकी सिद्धि होती है। परंतु लौटकर घर आने तथा नवीन गृहमें प्रवेश करनेके समय यदि रोदन शब्दके साथ मुर्दा दीख पड़े तो वह घातक होता है ॥७०२-७०३ ॥

(अपशकुन—) यात्राके समय पतित, नपुंसक, जटाधारी, पागल, औषध आदि खाकर वमन (उलटी) करनेवाला, शरीरमें तेल लगानेवाला, वसा, हड्डी, चर्म, अङ्गार (ज्वाला-रहित अग्नि), दीर्घ रोगी, गुड़, कपास (रूई), नमक, प्रश्न (पूछने या टोकनेका शब्द), तृण, गिरगिट, वन्ध्या स्त्री, कुबड़ा, गेरुआ वस्त्रधारी, खुले केशवाला, भूखा तथा नंगा—ये सब सामने उपस्थित हो जायँ तो अभीष्ट-सिद्धि नहीं होती है ॥ ७०४-७०५ ॥

(शुभ शकुन—) प्रज्वलित अग्नि, सुन्दर घोड़ा, राज-सिंहासन, सुन्दरी स्त्री, चन्दन आदिकी सुगन्ध, फल, अक्षत, छत्र, चामर, डोली या पालकी, राजा, खाद्य पदार्थ, ईख, फल, चिकनी मिट्टी, अन्न, शहद, घृत, दही, गोबर, चूना, धुला हुआ वस्त्र, शङ्ख, श्वेत बैल, ध्वजा, सौभाग्यवती स्त्री, भरा हुआ कलश, रत्न (हीरा, मोती आदि), भृङ्गार (गड़ुआ), गौ, ब्राह्मण, नगाड़ा, मृदङ्ग, दुन्दुभि, घण्टा तथा वीणा (बाँसुरी) आदि वाद्योंके शब्द, वेदमन्त्र एवं मङ्गल गीत आदिके शब्द—ये सब यात्राके समय यदि देखने या सुननेमें आवें तो यात्रा करनेवाले लोगोंके सब कार्य सिद्ध करते हैं ॥७०६–७०९॥

(अपशकुन-परिहार—) यात्राके समय प्रथम बार अपशकुन हो तो खड़ा होकर इष्टदेवका स्मरण करके फिर चले। दूसरा अपशकुन हो तो ब्राह्मणोंकी पूजा (वस्त्र, द्रव्य आदिसे उनका सत्कार) करके चले। यदि तीसरी बार अपशकुन हो जाय तो यात्रा स्थगित कर देनी चाहिये ॥७१०॥

(छींकके फल—) यात्राके समय सभी दिशाओंकी छींक निन्दित है। गौकी छींक घातक होती है; किंतु बालक, वृद्ध, रोगी या कफवाले मनुष्यकी छींक निष्फल होती है ॥ ७११ ॥

परस्त्रियोंका स्पर्श करनेवाला तथा ब्राह्मण और देवताके धन-का अपहरण करनेवाला तथा अपने छोड़े हुए हाथी और घोड़ेको बाँध लेनेवाला, शत्रु यदि सामने आ जाय तो राजा उसे अवश्य मार डाले; परंतु स्त्रियों तथा शस्त्रहीन मनुष्योंपर कदापि हाथ न उठावे ॥ ७१२ ॥

(गृह-प्रवेश—) नये घरमें प्रवेश [illegible] हो तो उत्तरायणके शुभ मुहूर्तमें करे। [illegible] वास्तु-पूजा और बलि (नैवेद्य) अर्पण करके [illegible] करना चाहिये ॥ ७१३ ॥

(गृह-प्रवेशमें विहित मास—) माघ, फाल्गुन, वैशाख और ज्येष्ठ—इन चार मासोंमें गृहप्रवेश [illegible]। तथा अगहन और कार्तिक इन दो मासोंमें मध्यम [illegible] है।

(विहित नक्षत्र—) मृगशिरा, पु[illegible] चित्रा, अनुराधा और स्थिर-संज्ञक (तीनों उत्तरा और रोहिणी) नक्षत्रोंमें बृहस्पति और शुक्र दोनों उदित हों तब रवि और मङ्गलको छोड़कर अन्य वारोंमें [illegible] (४, ९, १४) तथा अमावास्या छोड़कर अन्य तिथियोंमें [illegible] समय गृहप्रवेश शुभप्रद होता है। चन्द्रबल और [illegible] सहित उपद्रवरहित दिनके पूर्वाह्न भागमें स्थिर [illegible] नवमांशयुक्त स्थिर लग्नमें जब लग्नसे अष्टम स्थान शुद्ध (ग्रहरहित) हो, शुभग्रह त्रिकोण या केन्द्रमें हों, [illegible] ३, ६, ११ भावोंमें हों और चन्द्रमा [illegible] भिन्न स्थानोंमें हो, तब गृहप्रवेश करनेवाले यजमानकी [illegible] जन्मलग्न या इन दोनोंसे उपचय (३, ६, १०, ११ [illegible] राशिके गृहप्रवेश लग्नमें विद्यमान होनेपर [illegible] और सम्पत्तिकी वृद्धि होती है। [illegible] समयमें गृहप्रवेश किया जाय तो घोर [illegible] होती है ॥ ७१४–७१९ ॥

(प्रवेश-विधि—) जिस नूतन घरमें प्रवेश करना हो उसको चित्र आदिसे सजाकर [illegible] अलङ्कृत करके वेद-ध्वनि, शान्तिपाठ, सौभाग्यवती स्त्रियों [illegible] माङ्गलिक गीत तथा वाद्य आदिके शब्दोंके [illegible] भागमें रखकर जलसे भरे हुए कलशको आगे करके [illegible] करना चाहिये ॥ ७२० ॥

(वृष्टि-विचार—) वर्षा-प्रवेश ([illegible] प्रवेश) के समय यदि शुभ ग्रह हों, [illegible] या लग्नसे केन्द्र (१, ४, ७, १०) में [illegible] ग्रहसे देखे जाते हों तो अधिक वृष्टि होती है। [illegible] समय चन्द्रमापर पापग्रहकी दृष्टि हो तो [illegible] वृष्टि समझनी चाहिये। ([illegible] चन्द्रमापर पाप और शुभ दोनों ग्रहोंकी दृष्टि हो [illegible] वृष्टि होती है।) जिस प्रकार [illegible] प्रकार उस समय शुक्रसे भी [illegible]

सूर्यके आर्द्रा-प्रवेशके समय चन्द्रमा और शुक्र दोनोंकी स्थिति देखकर तारतम्यसे फल समझना चाहिये) ॥७२१-७२२॥

वर्षाकालमे आर्द्रासे स्वातीतक सूर्यके रहनेपर चन्द्रमा यदि शुक्रसे सप्तम स्थानमे अथवा शनिसे पञ्चम, नवम तथा सप्तम स्थानमें हो, उसपर शुभ ग्रहकी दृष्टि पड़े तो उस समय अवश्य वर्षा होती है ॥ ७२३ ॥

यदि बुध और शुक्र समीपवर्ती (एक राशिमे स्थित) हों तो तत्काल वर्षा होती है । किंतु उन दोनों (बुध और शुक्र) के बीचमें सूर्य हों तो वृष्टिका अभाव होता है ॥७२४॥

यदि मघा आदि पाँच नक्षत्रोंमें शुक्र पूर्व दिशामें उदित हों और स्वातीसे तीन नक्षत्रों (स्वाती, विशाखा, अनुराधा) में शुक्र पश्चिम दिशामें उदित हों तो निश्चय ही वर्षा होती है। इससे विपरीत हो तो वर्षा नहीं समझनी चाहिये॥ ७२५ ॥

यदि सूर्यके समीप (एक राशिके भीतर होकर) कोई ग्रह आगे या पीछे पडते हों तो वे वर्षा अवश्य करते हैं; किंतु उनकी गति वक्र न हुई हो तभी ऐसा होता है ॥७२६॥

दक्षिण गोल (तुलासे मीनतक) में शुक्र यदि सूर्यसे वाम भागमें पड़े तो वृष्टिकारक होता है । उदय या अस्तके समय यदि आर्द्रामे सूर्यका प्रवेश हो तो भी वर्षा होती है ॥७२७॥

यदि सूर्यका आर्द्रा-प्रवेश सन्ध्याके समय हो तो शस्य (धान)की वृद्धि होती है । यदि रात्रिमें हो तो मनुष्योंको सब प्रकारकी सम्पत्ति प्राप्त होती है । यदि प्रवेशकालमें चन्द्रमा, गुरु, बुध एवं शुक्रसे आर्द्रा भेदित हो तो क्रमशः अल्पवृष्टि, धान्य-हानि, अनावृष्टि और धान्य-वृद्धि होती है; इसमे संशय नही है । यदि ये चारों चन्द्र, बुध, गुरु और शुक्र प्रवेश-लग्नसे केन्द्रमें पड़ते हों तो ईति (खेतीके टिड्डी आदि सब उपद्रव) का नाश होता है ॥ ७२८-७२९ ॥

यदि सूर्य पूर्वाषाढ नक्षत्रमे प्रवेशके समय मेघोंसे आच्छन्न हो तो आर्द्रासे मूलतक प्रतिदिन वर्षा होती है ॥७३० ॥

यदि रेवतीमें सूर्यके प्रवेश करते समय वर्षा हो जाय तो उससे दस नक्षत्र (रेवतीसे आश्लेषा) तक वर्षा नहीं होती है । सिंह-प्रवेशमें लग्न यदि मङ्गलसे भिन्न (भेदित) हो, कर्क-प्रवेशमे अभिन्न हो एव कन्या-प्रवेशमें भिन्न हो तो उत्तम वृष्टि होती है ॥ ७३१½ ॥ उत्तर भाद्रपद पूर्वधान्य, रेवती परधान्य तथा भरणी सर्वधान्य नक्षत्र है । अश्विनीको सर्वधान्योंका नाशक नक्षत्र कहा गया है । वर्षाकाल (चातुर्मास्य) में पश्चिम उदित हुए शुक्र यदि गुरुसे सप्तम राशिमें निर्बल हों तो आर्द्रासे सात नक्षत्रतक प्रतिदिन अतिवृष्टि होती है । चन्द्रमण्डलमें परिवेष (घेरा) हो और उत्तर दिशामे बिजली दीख पड़े या मेढकोंके शब्द सुनायी पड़ें तो निश्चय ही वर्षा होती है । पश्चिम भागमें लटका हुआ मेघ यदि आकाशके बीचमें होकर दक्षिण दिशामें जाय तो शीघ्र वर्षा होती है । बिलाव अपने नाखूनोसे धरतीको खोदे, लोहे (तथा ताँबे और कासी आदि) में मल जमने लगे अथवा बहुत-से बालक मिलकर सड़कोंपर पुल बाँधें तो ये वर्षाके सूचक चिह्न हैं ।

चींटीकी पङ्क्ति छिन्न-भिन्न हो जाय, आकाशमें बहुतेरे जुगुनू दीख पड़े तथा सर्पोंका वृक्षपर चढना और प्रसन्न होना देखा जाय तो ये सब दुर्वृष्टि-सूचक हैं ।

उदय या अस्त समयमे यदि सूर्य या चन्द्रमाका रंग बदला हुआ जान पड़े या उनकी कान्ति मधुके समान दीख पड़े तथा बड़े जोरकी हवा चलने लगे तो अतिवृष्टि होती है ॥ ७३२—७३८½ ॥

(पृथ्वीके आधार कूर्मके अङ्ग-विभाग-) कूर्म देवता पूर्वकी ओर मुख करके स्थित हैं, उनके नव अङ्गोंमे इस भारत भूमिके नौ विभाग करके प्रत्येक खण्डमें प्रदक्षिण-क्रमसे विभिन्न मण्डलों (देशों) को समझे । अन्तर्वेदी (मध्यभाग) में पाञ्चालदेश स्थित है, वही कूर्म भगवान्‌का नाभिमण्डल है । मगध और लाट देश पूर्व दिशामें विद्यमान हैं, वे ही उनका मुखमण्डल हैं । स्त्री, कलिङ्ग और किरात देश भुजा हैं । अवन्ती, द्रविड और भिल्लदेश उनका दाहिना पार्श्व हैं । गौड, कौंकण, शाल्व, आन्ध्र और पौण्ड्रदेश ये सब देश दोनों अगले पैर हैं । सिन्ध, काशी, महाराष्ट्र तथा सौराष्ट्र देश पुच्छ-भाग हैं । पुलिन्द चीन, यवन और गुर्जर—ये सब देश दोनों पिछले पैर हैं । कुरु, काश्मीर, मद्र तथा मत्स्य-देश वाम पार्श्व हैं । खस (नेपाल) अङ्ग, वङ्ग, बाह्लीक और काम्बोज—ये दोनो हाथ हैं ॥ ७३९—७४४ ॥

इन नवों अङ्गोंमें क्रमशः कृत्तिका आदि तीन-तीन नक्षत्रोंका न्यास करे । जिस अङ्गके नक्षत्रमे पापग्रह रहते हैं, उस अङ्गके देशोंमे तबतक अशुभ फल होता है और जिस अङ्गके नक्षत्रोंमें शुभ ग्रह रहते हैं, उस अङ्गके देशोंमें शुभ फल होते हैं ॥ ७४५ ॥

(मूर्ति-प्रतिमा-विकार-) देवताओंकी प्रतिमा यदि नीचे गिर पड़े, जले, बार-बार रोये, गाये, पसीनेसे तर हो जाय, हँसे, अग्नि, धुआँ, तेल, शोणित, दूध या

जलका वमन करे, अधोमुख हो जाय, एक स्थानसे दूसरे स्थानमें चली जाय तथा इसी तरहकी अनेक अद्भुत बातें दीख पड़ें तो यह प्रतिमा विकार कहलाता है। यह विकार अशुभ फलका सूचक होता है।

(विविध विकार—) यदि आकाशमें गन्धर्वनगर (ग्रामके समान आकार), दिनमें ताराओंका दर्शन, उल्कापतन, काठ, तृण और शोणितकी वर्षा, गन्धर्वोंका दर्शन, दिग्दाह, दिशाओंमें धूम छा जाना, दिन या रात्रिमें भूकम्प होना, बिना आगके स्फुलिङ्ग (अङ्गार) दीखना, बिना लकड़ीके आगका जलना, रात्रिमें इन्द्रधनुष या परिवेष (घेरा) दीखना पर्वत या वृक्षादिके ऊपर उजला कौआ दिखायी देना तथा आगकी चिनगारियोंका प्रकट होना आदि बातें दिखायी देने लगें, गौ, हाथी और घोड़ेके दो या तीन मस्तकवाला बच्चा पैदा हो, प्रातःकाल एक साथ ही चारों दिशाओंमें अरुणोदय-सा प्रतीत हो, गाँवोंमें गीदड़ोंका दिनमें वास हो, धूम-केतुओंका दर्शन होने [illegible] का और दिनमें कबूतरोंका क्रन्दन हो तो ये [illegible] हैं। वृक्षोंमें बिना समयके फूल या फल दीख पड़ें तो [illegible] काट देना चाहिये और उसकी शान्ति [illegible]। इस प्रकारके और भी जो बड़े-बड़े उत्पात [illegible] वे स्थान (देश या ग्राम) का नाश [illegible] हैं। कितने ही उत्पात घातक होते हैं; कितने ही [illegible] भय उपस्थित करते हैं। कितने ही उत्पातों [illegible] मृत्यु, हानि, कीर्ति, सुख दुःख और ऐश्वर्यकी भी प्राप्ति होती है। यदि वल्मीक (दीमककी मिट्टीका ढेर) [illegible] दीख पड़े तो धनकी हानि होती है। द्विज[illegible]! [illegible] सभी उत्पातोंमें यत्नपूर्वक [illegible] विधिसे शान्ति [illegible] कर लेनी चाहिये। नारदजी! इस प्रकार [illegible] ज्योतिषशास्त्रका वर्णन किया है। अब [illegible] श्रेष्ठ छन्दःशास्त्रका परिचय देता हूँ ॥ ३४६-३५८ ॥ (पूर्वभाग द्वितीय पाद अध्याय ५६)

छन्दःशास्त्रका संक्षिप्त परिचय*

सनन्दनजी कहते हैं—नारद! छन्द दो प्रकारके बताये जाते हैं—वैदिक[1] और लौकिक[2]। [illegible]

---

* शास्त्रकारोंने द्विजातियोंके लिये छहों अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेदोंके अध्ययनका आदेश दिया है। [illegible] अङ्ग है। इसे वेदका चरण माना गया है—छन्दः पादौ तु वेदस्य। (पा० शि० ४१) '[illegible]भा यजति, [illegible] स्तौति।' (पिं० सूत्रवृत्ति अध्याय १) (अनुष्टुप्‌से यजन करे, बृहती छन्दद्वारा गान करे, गायत्री छन्दसे स्तुति करे) [illegible] श्रवण होनेसे छन्दका ज्ञान परम आवश्यक सिद्ध होता है। छन्द न जाननेसे प्रत्यवाय भी होता है, [illegible] है—'यो ह वा अविदितार्षेयच्छन्दोदैवतविनियोगेन ब्राह्मणेन मन्त्रेण याजयति वाध्यापयति वा [illegible] प्रमीयते वा पापीयान् भवति यातयामान्यस्य छन्दांसि भवन्ति।' (पिं० सूत्रवृत्ति अध्याय १) ([illegible] विनियोगको जाने बिना ब्राह्मणमन्त्रसे यज्ञ कराता और शिष्योंको पढ़ाता है, वह ठूँठे काठके समान हो जाता है, [illegible] वेदोक्त आयुका पूरा उपभोग न करके बीचमें ही मृत्युको प्राप्त होता है अथवा महान् पापका भागी होता है। [illegible] वेदपाठ यातयाम (प्रभाव-शून्य व्यर्थ) हो जाते हैं), इसलिये छन्दका ज्ञान अवश्य प्राप्त करना चाहिये। [illegible] छन्दःशास्त्रका आरम्भ हुआ है।

१. वेदमन्त्रोंमें जो गायत्री, अनुष्टुप्, बृहती और त्रिष्टुप् आदि छन्द प्रयुक्त हुए हैं, उनको वैदिक छन्द कहते हैं। [illegible]—

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

—यह गायत्री छन्द है।

२. इतिहास, पुराण, काव्य आदिके पद्योंमें प्रयुक्त जो छन्द हैं, वे लौकिक कहे गये हैं। यथा—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

—यह 'श्लोक' अनुष्टुप् छन्द है।

भेदसे वे लौकिक या वैदिक छन्द भी पुनः दो-दो प्रकारके हो जाते हैं (मात्रिक[1] छन्द और वर्णिक[2] छन्द) ॥ १ ॥ छन्दःशास्त्रके विद्वानोंने मगण, यगण, रगण, सगण, तगण, जगण, भगण और नगण तथा गुरु एवं लघु—इन्हींको छन्दोंकी सिद्धिमें कारण बताया है ॥ २ ॥ जिसमें सभी अर्थात् तीनों अक्षर गुरु हो उसे मगण (SSS) कहा गया है। जिसका आदि अक्षर लघु (और शेष दो अक्षर गुरु) हो, वह यगण (ISS) माना गया है। जिसका मध्यवर्ती अक्षर लघु हो, वह रगण (SIS) और जिसका अन्तिम अक्षर गुरु हो, वह सगण (IIS) है ॥ ३ ॥ जिसमें अन्तिम अक्षर लघु हो, वह तगण (SSI) कहा गया है, जहाँ मध्य गुरु हो, वह जगण (ISI) और जिसमें आदि गुरु हो, वह भगण (SII) है। मुने! जिसमें तीनों अक्षर लघु हों, वह नगण (III) कहा गया है। तीन अक्षरोंके समुदायका नाम गण है* ॥ ४ ॥ आर्या आदि छन्दोंमें चार मात्रावाले पाँच गण कहे गये हैं, जो चार लघुवाले गणसे युक्त हैं†। यदि लघु अक्षरसे परे संयोग, विसर्ग और

१. परिगणित मात्राओंसे पूर्ण होनेवाले छन्दोंको मात्रिक कहते हैं। जैसे—आर्या छन्दके प्रथम और तृतीय पाद बारह मात्राओंसे, द्वितीय पाद अठारह मात्राओंसे और चतुर्थ पाद पंद्रह मात्राओंसे पूर्ण होते हैं आर्याके पूर्वार्ध सदृश उत्तरार्ध भी हो तो 'गीति' और उत्तरार्ध सदृश पूर्वार्ध हो तो 'उपगीति' छन्द होते है।

आर्याका उदाहरण—

वृन्दावने सलील वल्गुद्रुमकाण्डनिहिततनुयष्टिः। स्मेरमुखार्पितवेणुः कृष्णो यदि मनसि कः स्वर्गः॥

२. परिगणित अक्षरोंसे सिद्ध होनेवाले छन्दोंको 'वर्णिक' कहते हैं। यथा—

जयन्ति गोविन्दमुखारविन्दे मरन्दसान्द्राधरमन्दहासा। चित्ते चिदानन्दमय तमोघ्नममन्दमिन्दुद्रवमुद्गिरन्त.॥

—यह इन्द्रवज्रा-उपेन्द्रवज्राके मेलसे बना हुआ उपजातिनामक छन्द है।

* गणोंके सम्बन्धमें कुछ ज्ञातव्य बातें निम्नाङ्कित कोष्ठकसे जाननी चाहिये—

गणनाम	मगण	यगण	रगण	सगण	तगण	जगण	भगण	नगण
स्वरूप	S S S	I S S	S I S	I I S	S S I	I S I	S I I	I I I
देवता	पृथ्वी	जल	अग्नि	वायु	आकाश	सूर्य	चन्द्रमा	स्वर्ग
फल	लक्ष्मी-वृद्धि	वृद्धि या अभ्युदय	विनाश	भ्रमण	धन-नाश	रोग	सुयश	आयु
मित्र आदि संज्ञाएँ	मित्र	भृत्य	शत्रु	शत्रु	उदासीन	उदासीन	भृत्य	मित्र

यदि काव्यमें ऐसे छन्दको चुना गया, जो जगण आदि अनिष्टकारी गणोंसे संयुक्त हो तो उसकी शान्तिके लिये प्रारम्भमें भगवद्वाचक एवं देवतावाचक शब्दोंका प्रयोग करना चाहिये; जैसा कि भामहका वचन है—

देवतावाचका. शब्दा ये च भद्रादिवाचका। ते सर्वे नैव निन्द्याः स्युर्लिपितो गणतोऽपि वा॥ (पिङ्गलसूत्रकी हलायुध-वृत्तिसे उद्धृत)

'जो देवतावाचक और मङ्गलादिवाचक शब्द हैं, वे सब लिपिदोष या गणदोषसे भी निन्दित नहीं होते।' (उनके द्वारा उक्त दोषोंका निवारण हो जाता है)

† यथा—

सर्वगुरु	अन्त्यगुरु	मध्यगुरु	आदिगुरु	चतुर्लघु
SS	IIS	ISI	SII	IIII
१	२	३	४	५

इन भेदोंके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—कर्ण, करतल, पयोधर, वसुचरण और विप्र।

अनुस्वार हो तो वह लघुकी दीर्घताका बोधक होता है* । इस छन्दःशास्त्रमें 'ग'का अर्थ गुरु या दीर्घ माना गया है और 'ल'का अर्थ लघु समझा जाता है। पद्य या श्लोकके एक चौथाई भागको पाद कहते हैं। विच्छेद या विरामका नाम 'यति' है ॥ ५-६ ॥ नारद ! वृत्त (छन्द) के तीन भेद माने गये हैं—सम वृत्त, अर्धसम वृत्त तथा विषम वृत्त । जिसके चारों चरणोंमें समान लक्षण लक्षित होता हो, वह सम वृत्त कहलाता है ॥ ७ ॥ जिसके प्रथम और तीसरे चरणोंमें एवं दूसरे तथा चौथे चरणोंमें समान लक्षण हों, वह अर्धसम वृत्त है। जिसके चारों चरणोंमें एक-दूसरेसे भिन्न [illegible] लक्षित होते हों, वह विषम वृत्त है ॥ ८ ॥ [illegible] पादसे आरम्भ करके एक-एक [illegible] बढ़ाते [illegible], छब्बीस अक्षरका पाद पूर्ण हो तदनन्तर पृथक्-पृथक् [illegible] बनते हैं। छब्बीस अक्षरसे अधिकका [illegible] होनेपर [illegible] वृष्टिप्रपात आदि दण्डक बनते हैं। तीन या छः [illegible]

---

* जैसे—राम । रामः । रामस्य । यहाँ 'राम' शब्दके 'म' में ह्रस्व अकार है, तथापि उसमें अनुस्वार और विसर्गका सम्बन्ध होनेसे वह दीर्घ ही माना जाता है। इसी प्रकार 'स्य' यह संयुक्त अक्षर परे होनेसे 'रामस्य'में मकारके परवर्ती अकारको दीर्घ समझा जाता है। पादके अन्तमें जो लघु अक्षर हो, वह भी विकल्पसे 'गुरु' माना जाता है।

१. सम वृत्तका उदाहरण—

मुखे ते ताम्बूलं नयनयुगले कज्जलकला
ललाटे काश्मीरं विलसति गले मौक्तिकलता ।
स्फुरत्काञ्ची शाटी पृथुकटितटे हाटकमयी
भजामि त्वां गौरीं नगपतिकिशोरीमविरतम् ॥

(इस 'शिखरिणी' छन्दके चारों चरणोंमें एक समान ह्रस्व-दीर्घवाले सत्रह-सत्रह अक्षर हैं ।)

२. अर्धसम वृत्तका उदाहरण—

I IIIIIS ISISS IIIISIISISISS

त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं रविकरगौरवराम्बरं दधाने ।
वपुरलककुलावृताननाब्जं विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या ॥

यह 'पुष्पिताग्रा' छन्द है। इसके प्रथम और तृतीय चरण एक समान लक्षणवाले बारह-बारह अक्षरके हैं। उनमें २ नगण, १ रगण और १ यगण हैं और द्वितीय तथा चतुर्थ चरणमें एक-से लक्षणवाले तेरह-तेरह अक्षर हैं। इनमें १ नगण, २ जगण, १ रगण और १ गुरु हैं।

अर्धसम वृत्तोंमें 'पुष्पिताग्रा' के अतिरिक्त हरिणप्लुता तथा वैतालीय या वियोगिनी आदि और भी अनेक छन्द होते हैं। वैतालीय अथवा वियोगिनीके प्रथम और तृतीय चरणोंमें २ सगण, १ जगण और १ गुरु होते हैं। द्वितीय और चतुर्थ चरणोंमें १ सगण, १ भगण, १ रगण, १ लघु और १ गुरु होते हैं। पादान्तमें विराम होता है।

उदाहरण—

IISI ISISI S
जगदन्य विचिन्तनद [illegible]

IISS IISI SIS
परिपूर्णां [illegible] [illegible] ।

अगाधपरम्परा [illegible]

न हि [illegible] [illegible] ।

'हरिणप्लुता' (में विषम पादोंमें ३ सगण, १ लघु, १ गुरु होते हैं और सम पादोंमें १ नगण, २ भगण और १ रगण होते हैं। इसके दूसरे चौथे पाद द्रुतविलम्बितके ही [illegible] हैं।)

उदाहरण—

IISIISIISIS IIISIISIISIS

स्फुटफेनचया हरिणप्लुता बलिमनोज्ञतटा [illegible] [illegible] ।
कलहंसकुलारवशालिनी विहरति [illegible] [illegible] ।

१. विषम वृत्तका उदाहरण—

नलिनेक्षण [illegible] च [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] ।

(—इस 'उद्गता' नामक छन्दमें चारों चरणोंमें [illegible] लक्षण हैं। इसके प्रथम पादमें स, ज, स, ल, २ में न, स, ज, ग, ३ में भ, न, ज, ल, ग और ४ में स, ज, स, ज, ग होते हैं।)

२. छब्बीस अक्षरोंसे अधिकका एक-एक चरण होनेपर छन्द बनता है उसे दण्डक कहते हैं। [illegible] का नाम चण्डवृष्टिप्रपात है। इसमें दो नगण और [illegible] होते हैं। पादान्तमें विराम होता है।

उदाहरण—

इह हि भवति [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

३. आचार्य पिङ्गलके मतसे [illegible] उल्लेख नहीं हुआ है, ऐसे छन्दोंके [illegible] तीन पाद या छः पादके छन्दोंको [illegible] किसी विशेष [illegible] या उदाहरण [illegible]

होती है। अब क्रमशः एकसे छब्बीस अक्षरतकके पादवाले छन्दोंकी संज्ञा सुनो—॥९-१०॥ उक्ता, अत्युक्ता, मध्या, प्रतिष्ठा, सुप्रतिष्ठा, गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप्, जगती, अतिजगती, शक्वरी, अतिशक्वरी, अष्टि, अत्यष्टि, धृति, विधृति (या अतिधृति), कृति, प्रकृति, आकृति, विकृति, संकृति, अतिकृति या अभिकृति तथा उत्कृति* ॥११—१३॥

* (१) जिसके प्रत्येक चरणमें एक-एक अक्षर हो, उस छन्दका नाम 'उक्ता' है। इसके दो भेद होते हैं। पहला गुरु अक्षरोंसे बनता है, दूसरा लघु अक्षरोंसे। गुरु अक्षरोंसे जो छन्द बनता है, उसका नाम पिङ्गलाचार्यने 'श्री' रक्खा है। उदाहरण—'विष्णुं वन्दे।' लघु अक्षरोंवाले उक्ता छन्दका उदाहरण 'हरिरिह' समझना चाहिये।

(२) जिसके प्रत्येक चरणमें दो-दो अक्षरोंकी संयोजना हो, वह 'अत्युक्ता' नामक छन्द है। प्रस्तारसे इसके चार भेद हो सकते हैं। यहाँ विस्तारभयसे केवल एक प्रथम भेद 'स्त्री'का उदाहरण दिया जाता है। दो गुरु अक्षरोंवाले चार पदोंसे जो छन्द बनता है, उसको 'स्त्री' कहते हैं।

उदाहरण—

SS
'अन्यस्त्रीभि. सङ्गस्त्याज्यः।'

(३) तीन-तीन अक्षरोंके चार पादोंसे 'मध्या' नामक छन्द बनता है। प्रस्तारसे उसके भेदोंकी संख्या आठ होती है। इसके प्रथम भेदका, जिसमें तीनों अक्षर गुरु होते हैं, आचार्य पिङ्गलने 'नारी' नाम नियत किया है।

उदाहरण—

SSS
१—'सर्वासां नारीणाम्। भर्ता स्यादाराध्यः॥'

SIS
२—'प्राणन. प्रेयसी। राधिका श्रीपतेः॥'

यह दूसरा उदाहरण मध्याका तृतीय भेद है। इसे 'मृगी' छन्द कहते हैं। इसके प्रत्येक चरणमें एक-एक रगण होता है।

(४) चार-चार अक्षरोंके चार पादवाले छन्द-समूहका नाम 'प्रतिष्ठा' है। प्रस्तारसे इसके सोलह भेद होते हैं। इसके प्रथम भेदका नाम 'कन्या' है। उदाहरण पढ़िये—

SSSS
भास्वत्कन्या सैका धन्या।
यस्याः कूले कृष्णोऽखेलत्॥

(५) पाँच-पाँच अक्षरके चार पादवाले छन्दसमुदायका नाम 'सुप्रतिष्ठा' है। प्रस्तारसे इसके बत्तीस भेद होते हैं। इनमें सातवाँ भेद 'पङ्क्ति' है, उसे यहाँ बतलाया जाता है। भगण तथा दो गुरु अक्षरोंसे पङ्क्ति छन्दकी सिद्धि होती है।

उदाहरण—

SIISS
कृष्णसनाथा तर्णकपङ्क्तिः।
यामुनकच्छे चारु चचार॥

(६) जिसके चारों चरणोंमें छः-छः अक्षर हों, उस छन्द-समूहका नाम गायत्री है। प्रस्तारसे इसके चौंसठ भेद होते हैं। इसके प्रथम भेदका नाम विद्युल्लेखा, तेरहवें भेदका नाम तनुमध्या, सोलहवेंका नाम शशिवदना तथा उन्तीसवेंका नाम वसुमती है। यहाँ केवल इन्हीं चारोंका उल्लेख किया जाता है। दो मगण (SSSSSS) होनेसे विद्युल्लेखा, एक तगण (SSI) और एक यगण (ISS) होनेसे तनुमध्या, एक नगण (III) और एक यगण (ISS) होनेसे शशिवदना तथा एक तगण (SSI) और एक सगण (IIS) होनेसे वसुमती नामक छन्द बनता है। उदाहरण क्रमशः इस प्रकार है—

'विद्युल्लेखा'—

SSSSSS
गोगोपीगोपानां प्रेयांसं प्राणेशम्।
विद्युल्लेखावस्त्रं वन्देऽहं गोविन्दम्॥

'तनुमध्या'—

SS IISS
प्रीत्या प्रतिवेल नानाविधखेलम्।
सेवे गततन्द्रं वृन्दावनचन्द्रम्॥

'शशिवदना'—

IIIISS
परमसुदारं विपिनविहारम्।
भज प्रतिपालं व्रजपशुबालम्॥

'वसुमती'—

SSIIIS
भक्तार्तिकदनं संसिद्धिसदनम्।
नौमीन्दुवदनं गोविन्दमधुना॥

(७) सात-सात अक्षरोंके चार पादवाले छन्दसमुदायको 'उष्णिक्' कहा गया है, प्रस्तारसे इसके एक सौ अट्ठाईस भेद होते हैं। इनमेंसे पचीसवाँ भेद 'मदलेखा' और तीसवाँ भेद 'कुमार-ललिता'के नामसे प्रसिद्ध हैं। मगण, सगण तथा एक गुरु—इन सात

अक्षरोंसे 'मदलेखा' तथा जगण, सगण और एक गुरुसे 'कुमार-ललिता'छन्दकी सिद्धि होती है। प्रथमका उदाहरण यों है—

SS S।।SS SSS।।SS
रङ्गे बाहुविरुग्णाद् दन्तीन्द्रान्मदलेखा।
लग्नाभून्मुरशत्रौ कस्तूरीरसचर्चा॥

(८) आठ अक्षरवाले चार पदोंसे जो छन्द बनते हैं, उनकी जातिवाचक संज्ञा 'अनुष्टुप्' है। प्रस्तारसे अनुष्टुप्के दो सौ छप्पन भेद होते हैं। इसके विद्युन्माला, माणवकाक्रीड, चित्रपदा, हंसरुत, प्रमाणिका या नगस्वरूपिणी, समानिका, श्लोक तथा वितान आदि अनेक भेद-प्रभेद हैं। श्लोकछन्दके प्रत्येक चरणमें छठा अक्षर गुरु और पाँचवाँ लघु होता है। प्रथम और तृतीय चरणोंमें सातवाँ अक्षर दीर्घ होता है और द्वितीय तथा चतुर्थ चरणोंमें वह ह्रस्व हुआ करता है। शेष अक्षरोंका विशेष नियम न होनेसे इस श्लोकछन्दके भी बहुतसे अवान्तर भेद हो जाते हैं। उपर्युक्त छन्दोंमें विद्युन्माला अनुष्टुप्का प्रथम भेद है, क्योंकि उसमें सभी अक्षर गुरु होते हैं। इसमें चार-चार अक्षरोंपर विराम होता है। प्रमाणिका या नग-स्वरूपिणी छियासीवाँ भेद है। इसमें जगण, रगण १ लघु तथा १ गुरु होते हैं। प्रमाणिका और समानिकाके सिवा अनुष्टुप्के जितने भेद हैं, वे सब वितानके अन्तर्गत माने जाते हैं। यहाँ विद्युन्माला, नगस्वरूपिणी, श्लोक (अनुष्टुप्) तथा माणवकाक्रीडका एक-एक उदाहरण दिया जाता है—

'विद्युन्माला'—

SSSSSS SS
विद्युन्मालालोलान् भोगान् मुक्त्वा मुक्तौ यत्नं कुर्यात्।
ध्यानोत्पन्नं निःसामान्यं सौख्यं भोक्तुं यद्याकाङ्क्षेत्॥

'नगस्वरूपिणी'—

शिवताण्डवस्तोत्र 'नगस्वरूपिणी' छन्दमें ही लिखा गया है। उसके एक-एक पद्यमें दो-दो नगस्वरूपिणी छन्द आ गये हैं। कुछ लोग उस संयुक्तछन्दको 'पञ्चचामर' आदि नाम देते हैं। इसमें ज. र. ज. र. ज. और १ गुरु होते हैं। उदाहरण यह है—

।S।S।S।S।S।S ।S।S
जटाकटाहसंभ्रमभ्रमन्निलिम्पनिर्झरी-
विलोलवीचिवल्लरीविराजमानमूर्द्धनि।
धगद्धगद्धगज्ज्वलल्ललाटपट्टपावके
किशोरचन्द्रशेखरे रतिः प्रतिक्षणं मम॥

'श्लोक'—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

माणवकाक्रीडमें भगण, तगण, एक लघु और एक गुरु होते हैं। जैसे—

S।।S S।।S
आदिगतं तुर्यगतं पञ्चमकं चान्त्यगतम्।
स्याद् गुरु चेत् तत् कथितं माणवकाक्रीडमिदम्॥

(९) नौ-नौ अक्षरोंके चार चरणोंमें सिद्ध होनेवाले छन्द-समूहका नाम 'बृहती' है। प्रस्तारसे इसके पाँच सौ बारह भेद होते हैं। इनके 'हलमुखी' (१ रगण १ नगण १ सगण) तथा 'भुजङ्गशिशुभृता' (२ नगण १ मगण) भेद यहाँ बतलाये जाते हैं। इनमें एक तो ७५१ वाँ भेद है और दूसरा ६४ वाँ। उदाहरण क्रमशः यों हैं—

S।S।।।।।S
१—हस्तयोर्मधुरमुरली धारयन्धवलवदने।
सन्निवेश्य स्वगमृतं संसृजञ्जयति स हरिः॥

।।।। ।।SSS
२—प्रणमत नयनाराम विकचकुवलयदलानम्।
अघहरयमुनातीरे भुजगगिरिमभि [illegible]॥

(१०) दस अक्षरके पादवाले छन्द-समुदायको 'पङ्क्ति' कहते हैं। प्रस्तारसे इसके १०२४ भेद होते हैं। इनके शुद्धविराट्, पणव, रुक्मवती, मयूरसारिणी, मत्ता, मनोरमा, [illegible], उपस्थिता तथा चम्पकमाला आदि अनेक अवान्तर भेद हैं। शुद्ध-विराट् पङ्क्तिका ३४५ वाँ भेद है। यहाँ शुद्धविराट् (मगण, सगण, जगण, १ गुरु) तथा चम्पकमालाके उदाहरण दिये जाते हैं—

SS S।। S। S।S
विश्वं तिष्ठति कुक्षिकोटरे
वक्त्रे यस्य सरस्वती [illegible]।
सर्वेषां प्रपितामहो गुरुः
[illegible] शुद्धविराट् [illegible]।

'चम्पकमाला'के प्रत्येक पादमें भगण, मगण, सगण और एक गुरु होते हैं तथा पाँच-पाँच अक्षरोंपर विराम होता है। प्रत्येक चरणमें इसके अन्तिम अक्षरको कम कर देनेसे 'मणिवन्ध' छन्द हो जाता है।

उदाहरण—

SI IS SSII SS
सौम्य गुरु स्यादाद्यचतुर्थं पञ्चमषष्ठं चान्त्यमुपान्त्यम्।
इन्द्रियवाणैर्यत्र विरामः सा कथनीया चम्पकमाला ॥

(११) ग्यारह-ग्यारह अक्षरके चार चरणोंसे जिस छन्दसमुदायकी सिद्धि होती है, उसका नाम त्रिष्टुप् है। प्रस्तारसे इसके २०४८ भेद होते हैं। त्रिष्टुप्के ही अनेक अवान्तर भेद इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, दोधक, शालिनी, रथोद्धता और स्वागता आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं। ये त्रिष्टुप्के किस सख्यावाले भेद हैं? इसका ज्ञान मूलोक्त रीतिसे कर लेना चाहिये। यहाँ उक्त सात छन्दोंके लक्षण और उदाहरण क्रमशः प्रस्तुत किये जाते हैं; क्योंकि प्राचीन और अर्वाचीन ग्रन्थोंमें इनके प्रयोग अधिक मिलते हैं।

(१) 'इन्द्रवज्रा छन्द'—(में २ तगण, १ जगण और २ गुरु होते हैं—)

SSISS IISISS
निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदु खसंज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥

(२) 'उपेन्द्रवज्रा'—(में १ जगण, १ तगण, १ जगण और दो गुरु होते हैं।) इन्द्रवज्राके प्रत्येक चरणका पहला अक्षर ह्रस्व हो जाय तो उपेन्द्रवज्रा-छन्द बन जाता है।

ISI SS I IS ISS
त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥

(३) इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा—दोनोंके मेलसे जो छन्द बनता है, उसका नाम उपजाति है। उपजातिमें कोई चरण या पाद इन्द्रवज्राका होता है, तो कोई उपेन्द्रवज्राका। प्रस्तारवश उपजातिके चौदह भेद होते हैं। उन भेदोंके नाम इस प्रकार हैं—कीर्ति, वाणी, माला, शाला, हसी, माया, जाया, बाला, आर्द्रा, भद्रा, प्रेमा, रामा, ऋद्धि तथा बुद्धि। इनका स्वरूप निम्नाङ्कित चक्रमें देखिये—

१	इ.	इ.	इ.	इ.	शुद्धा	इन्द्रवज्रा
२	उ.	इ.	इ.	इ.	१ उपजाति	कीर्ति
३	इ.	उ.	इ.	इ.	२	वाणी
४	उ.	उ.	इ.	इ.	३	माला
५	इ.	इ.	उ.	इ.	४	शाला
६	उ.	इ.	उ.	इ.	५	हसी
७	इ.	उ.	उ.	इ.	६	माया
८	उ.	उ.	उ.	इ.	७	जाया
९	इ.	इ.	इ.	उ.	८	बाला
१०	उ.	इ.	इ.	उ.	९	आर्द्रा
११	इ.	उ.	इ.	उ.	१०	भद्रा
१२	उ.	उ.	इ.	उ.	११	प्रेमा
१३	इ.	इ.	उ.	उ.	१२	रामा
१४	उ.	इ.	उ.	उ.	१३	ऋद्धिः
१५	इ.	उ.	उ.	उ.	१४	बुद्धिः
१६	उ.	उ.	उ.	उ.	शुद्धा	उपेन्द्रवज्रा

उदाहरण—

SSISS IISI SS
तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥

पूर्वोक्त चक्रके अनुसार यह 'उपजाति' का बुद्धिनामक भेद है। इसीको विपरीतपूर्वा और आख्यानकी भी कहते हैं। इसमें पहला चरण इन्द्रवज्राका और शेष तीन चरण उपेन्द्रवज्राके हैं।

'द्रुतविलम्बित' (में नगण, भगण, भगण, रगण—ये चार गण होते हैं। पादान्तमें यति होती है।)

उदाहरण—

III SIIS IIS IS
विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रम.।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥

'तोटकवृत्त'—(में चार सगण होते हैं और पादान्तमें विराम हुआ करता है—)

उदाहरण—

IIS IIS IIS IIS
अधर मधुर वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम्।
हृदयं मधुर गमन मधुर मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥

'भुजङ्गप्रयात'—(में चार यगण और पादान्तमें विराम होते हैं—)

उदाहरण—

IS SISSISSISS
अय त्वत्कथामृष्टपीयूपनद्यां
मनोवारणः क्लेशदावाग्निदग्ध.।
तृपार्तोऽवगाढो न ससार दावं
न निष्क्रामति ब्रह्मसम्पन्नवन्न.॥

'स्रग्विणी'—(में चार रगण तथा पादान्तमें विराम होते हैं—)

उदाहरण—

SIS S ISSI SS IS
स्वागत ते प्रसीदेश तुभ्यं नमः
श्रीनिवास श्रिया कान्तया त्राहि न·।
त्वामृतेऽधीश नाङ्गैर्मखः शोभते
शीर्पहीन. कवन्धो यथा पूरुष.॥

'प्रमिताक्षरा'—(में सगण, जगण, सगण, सगण तथा पादान्तमें विराम होते हैं—)

उदाहरण—

IISIS IIISIIS
परिशुद्धवाक्यरचनातिशयं
परिषिञ्चती श्रवणयोरमृतम्।
प्रमिताक्षरापि विपुलार्थवती
कविभारती हरति मे हृदयम् ॥

'वैश्वदेवी'—(में २ मगण और २ यगण होते हैं तथा पाँचवें, सातवें अक्षरोंपर विराम होता है—)

उदाहरण—

SSSSS S ISSISS
अर्चामन्येपा त्वं विहायामराणा-
मद्वैतेनैकं विष्णुमभ्यर्च भक्त्या।
तत्राशेपात्मन्यर्चिते भाविनी ते
भ्रात सम्पन्नाऽऽराधना वैश्वदेवी ॥

उपर्युक्त छन्दोंके अतिरिक्त बृहतीके अन्य भेद पुट, जलोद्धतगति, नत, कुसुमविचित्रा, चञ्चलाक्षिका, कान्तोत्पीडा, वाहिनी, नवमालिनी, चन्द्रवर्त्म, प्रमुदितवदना, प्रियवदा, मणिमाला, ललिता, मोहितोज्ज्वला, जलधरमाला, प्रभा, मालती तथा अभिनव तामरस आदिके भी लक्षण और उदाहरण ग्रन्थान्तरोंमें मिलते हैं।

(१३) तेरह-तेरह अक्षरोंके चार पादोंसे सम्पन्न होनेवाले छन्द-समूहका नाम अतिजगती है। प्रस्तारसे इसके ८१९२ भेद होते हैं। अतिजगतीके भेदोंमें ही एक 'प्रहर्पिणी' नामक भेद है। इसके प्रत्येक पादमें मगण, नगण, जगण, रगण तथा एक गुरु होते हैं। तीन तथा दस अक्षरोंपर यति होती है।

उदाहरण—

SSS IIIISISISS
जागर्ति प्रसभविपाकसंविधात्री
श्रीविष्णोर्ललितकपोलजा नदी चेत्।
संकीर्णे यदि भवितास्ति को विपादः
संवाद. सकलजगत्पितामहेन ॥

इसके सिवा क्षमा, अतिरुचिरा मत्तमयूर, गौरी, मञ्जुभाषिणी और चन्द्रिका आदि भेद भी ग्रन्थान्तरोंमें वर्णित हैं। उनके उदाहरण वहीं देखने चाहिये।

(१४) चौदह-चौदह अक्षरोंके चार पादोंवाले छन्दसमुदायको 'शक्वरी' कहते हैं। प्रस्तारसे इसके १६३८४ भेद होते हैं। इसके भेदोंमें वसन्ततिलका नामक छन्द यहाँ बतलाया जाता है। इसमें तगण, भगण, २ जगण और २ गुरु होते हैं। पादान्तमें विराम होता है। वसन्ततिलकाको ही कुछ विद्वान् सिंहोन्नता और उद्धर्पिणी भी कहते हैं।

उदाहरण—

S SIS I I IS I I S I S S
या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप-
प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो
धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयाना ॥

इसके सिवा असम्बाधा, अपराजिता तथा प्रहरणकलिता आदि और भी अनेक भेद हैं। उनमेंसे प्रहरणकलिताका उदाहरण यहाँ दिया जाता है, प्रहरणकलितामें २ नगण, १ भगण, १ नगण, १ लघु, १ गुरु होते हैं। सात-सात अक्षरोंपर विराम होता है।

यथा—

I I I I I I S I I I I I I S
सुरमुनिमनुजैरुपचितचरणां
रिपुभयचकितत्रिभुवनशरणाम् ।
प्रणमत महिषासुरवधकुपिता
प्रहरणकलिता पशुपतिदयिताम् ॥

(१५) पद्रह-पद्रह अक्षरोंके चार चरणोंसे सिद्ध होनेवाले छन्दोंका नाम 'अतिशक्वरी' है। प्रस्तारसे इसके ३२७६८ भेद होते हैं। इन भेदोंमें चन्द्रावर्ता और मालिनी—ये दो ही यहाँ बताये जाते हैं। ४ नगण और १ सगणसे चन्द्रावर्ता छन्द बनता है। इसमें सात और आठ अक्षरोंपर विराम है। यदि छ और नौ अक्षरोंपर विराम हो तो इसका नाम माला होता है। इसी तरह आठ और सात अक्षरोंपर विराम होनेसे उसकी 'मणिनिकर' संज्ञा होती है। चन्द्रावर्ताका उदाहरण इस प्रकार है—

I I I I I I I I I I I I I I S
पटुजवपवनचलितजललहरी-
तरलितविहगनिचयरवमुखरम् ।
विकसितकमलसुरभिशुचिसलिल
प्रविशति हरिरिह शरदि शुभसरः ॥

'मालिनी'—(में २ नगण, १ मगण और २ भगण होते हैं। इसमें सात और आठ अक्षरोंपर विराम होता है—)

उदाहरण—

I I I I I I S S S I S S I S S
असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी ।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥

(१६) सोलह-सोलह अक्षरोंके [illegible] छन्दका नाम 'अष्टि' है। प्रस्तारसे इसके [illegible] ६५५३६ होते हैं। इसके भेदोंमें [illegible] दिये जाते हैं। एकका नाम है [illegible] नाम है वाणिनी। [illegible] तथा एक गुरु होते हैं। [illegible]

S I I S I S I I I I I I I I I S
यो [illegible]
[illegible] ।
किं [illegible]
[illegible]

'वाणिनी' (में नगण, जगण, [illegible] होते हैं—)

उदाहरण—

I I I I S I S I I I S I S I S
[illegible]
तव [illegible] ।
भवजल[illegible]
[illegible] ।

(१७) सत्रह-सत्रह अक्षरोंके [illegible] नाम 'अत्यष्टि' है। प्रस्तारसे [illegible] इसके भेदोंमेंसे केवल हरिणी, [illegible] शिखरिणीके लक्षण और उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं।

'हरिणी' (के प्रत्येक चरणमें नगण, [illegible] मगण, एक लघु तथा एक गुरु होते हैं। [illegible] विराम होता है।)

I I I I I S S S S S I S I I S I S
न [illegible]
[illegible] ।
[illegible]
[illegible]

पृथ्वी (के प्रत्येक पादमें [illegible] एक लघु, एक गुरु होते हैं। [illegible]

I S I I I S I S I I I S I S S I S
[illegible]
[illegible]

त्वया कृतपरिग्रहे रघुपतेऽद्य सिंहासने
नितान्तनिरवग्रहा फलवती च पृथ्वी कृता ॥

'वशपत्रपतित' (में भगण, रगण, नगण, भगण, नगण, एक लघु, एक गुरु होते हैं । दस-सात अक्षरोंपर विराम होता है ।)

SI ISI SI IIS II IIIIS
अद्य कुरुष्व कर्म सुकृतं यदि परदिवसे
मित्र विधेयमस्ति भवत. किमु चिरयसि तत् ।
जीवितमल्पकालकलनाल्घुतरतरल
नश्यति वशपत्रपतितं हिमसलिलमिव ॥

'मन्दाक्रान्ता' (में मगण, भगण, नगण, तगण, तगण और दो गुरु होते हैं । ४, ६, ७ अक्षरोंपर विराम होता है । (इसके प्रत्येक चरणके अन्तिम सात अक्षर कम कर देनेपर 'हसी' छन्द बन जाता है ।)

SSSS IIIIIS SIS SISS
बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयो. कर्णिकारं
बिभ्रद्वास कनककपिश वैजयन्तीं च मालाम् ।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै-
र्वृन्दारण्य स्वपदरमण प्राविशद् गीतकीर्ति ॥

'शिखरिणी' (में यगण, मगण, सगण, नगण, भगण, एक लघु, एक गुरु होते हैं तथा ६, ११ अक्षरोंपर विराम होता है ।)

ISS SS S IIIIIS SIIIS
महिम्न. पार ते परमविदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिर. ।
अथावाच्यः सर्व स्वमतिपरिणामावधि गृणन्
ममाप्येष स्तोत्रे हर निरपवाद. परिकरः ॥

(१८) अठारह-अठारह अक्षरोंके चार चरणोंसे बननेवाले छन्द-समूहकी संज्ञा 'धृति' कही गयी है । प्रस्तारसे इसके २६२१४४ भेद होते हैं । उनमेंसे एक ही भेद 'कुसुमितलतावेल्लिता' नामक छन्दका लक्षण और उदाहरण दिया जाता है । इसमें मगण, तगण, नगण और तीन भगण होते हैं । ५, ६, ७ अक्षरोंपर विराम होता है ।

उदाहरण—

SSSSS IIIIISSISSISS
धन्यानामेता. कुसुमितलतावेल्लितोत्फुल्लवृक्षा·
सोत्कण्ठं कूजत्परभृतकलालापकोलाहलिन्य. ।
मध्वादौ माद्यन्मधुकरकलोद्गीतझङ्काररम्या
ग्रामान्त स्रोत·परिसरभुव. प्रीतिमुत्पादयन्ति ॥

(१९) उन्नीस-उन्नीस अक्षरोंके चार चरणोंसे सिद्ध होनेवाले छन्द-समुदायको विधृति या अतिधृति कहते हैं । प्रस्तारसे इसके ५२४२८८ भेद होते हैं । इनमेंसे एक भेद 'शार्दूलविक्रीडित' नामसे प्रसिद्ध है, जिसमें मगण, सगण, जगण, सगण, दो तगण और एक गुरु होते हैं तथा बारह और सात अक्षरोंपर विराम होता है ।

उदाहरण—

S SSIISISIIIS SSI SS IS
यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुत. स्तुन्वन्ति दिव्यै· स्तवै-
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति य सामगा. ।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्त न विदु सुरासुरगणा देवाय तस्मै नम. ॥

(२०) बीस-बीस अक्षरोंके चार पादोंसे निष्पन्न होनेवाले छन्दसमूहका नाम कृति है । प्रस्तारसे इसके १०४८५७६ भेद होते हैं । उनमेंसे २ के लक्षण और उदाहरण यहाँ बतलाये जाते हैं । पहलेका सुवदना और दूसरेका नाम वृत्त है । सुवदनामें मगण, रगण, भगण, नगण, यगण, भगण, १ लघु और १ गुरु होते हैं । ७, ७, ६ अक्षरोंपर विराम होता है ।

उदाहरण—

S SSSISSII IIIISSSIIIS
या पीनोद्गाढतुङ्गस्तनजघनघनाभोगालसगति-
र्यस्याः कर्णावतसोत्पलरुचिजयिनी दीर्घे च नयने ।
श्यामा सीमन्तिनीना तिलकमिव मुखे या च त्रिभुवने
प्रत्यक्ष पार्वती मे भवतु भगवती स्नेहात्सुवदना ॥

'वृत्त' (में एक गुरु, एक लघुके क्रमसे २० अक्षर होते हैं । पादान्तमें विराम होता है ।)

उदाहरण—

SISISISISI SIS ISISISI
जन्तुमात्रदु.खकारि कर्म निर्मितं भवत्यनर्थहेतु
तेन सर्वमात्मतुल्यमीक्षमाण उत्तम सुख लभस्व ।
विद्धि बुद्धिपूर्वक ममोपदेशवाक्यमेतदादरेण
वृत्तमेतदुत्तमं महाकुलप्रसूतजन्मना हिताय ॥

(२१) इक्कीस-इक्कीस अक्षरोंके चार पादोंमें पूर्ण होनेवाले छन्दोंकी जातिवाचक सज्ञा 'प्रकृति' है । प्रस्तारसे इसके २०९७१५२ भेद होते हैं । इनमेंसे एक भेद 'स्रग्धरा'के नामसे प्रसिद्ध है । इसमें मगण, रगण, भगण, नगण और तीन यगण होते हैं । सात-सात अक्षरोंपर विराम होते हैं ।

उदाहरण—

SSSSISSIIIII ISSISSISS
ब्रह्माण्ड खण्डयन्ती हरशिरसि जटावल्लिमुल्लासयन्ती
स्वर्लोकादापतन्ती कनकगिरिगुहागण्डशैलात्स्खलन्ती ।

क्षोणीपृष्ठे लुठन्ती दुरितचयचमूर्निर्भरं भर्त्सयन्ती
पाथोधिं पूरयन्ती सुरनगरसरित्पावनी नः पुनातु ॥

(२२) बाईस-बाईस अक्षरोंके चार पादोंसे परिपूर्ण होनेवाले छन्दोंका नाम 'आकृति' है। प्रस्तारसे इनकी भेद-संख्या ४१९४३०४ होती है। इसके एक भेद 'भद्रक' का उदाहरण यहाँ दिया जाता है। भद्रकके प्रत्येक पादमें भगण, रगण, नगण, रगण, नगण, रगण, नगण, एक गुरु होते हैं। दस, बारह अक्षरोंपर विराम होता है।

SII SIS IIIS IS I II S ISIIIS
भद्रकगीतिभिः सकृदपि स्तुवन्ति भव ये भवन्तमभव
भक्तिभरावनम्रशिरसः प्रणम्य तव पादयोः सुकृतिनः।
ते परमेश्वरस्य पदवीमवाप्य सुखमाप्नुवन्ति विपुलं
मर्त्यभुवं स्पृशन्ति न पुनर्मनोहरसुरावलीपरिवृताः ॥

(२३) तेईस-तेईस अक्षरोंके चार चरणोंसे सिद्ध होनेवाले छन्दसमुदायको 'विकृति' कहते हैं। प्रस्तारसे इसके ८३८८६०८ भेद होते हैं। इनमें 'अश्वललित' और 'मत्ताक्रीडा' नामक दो छन्दोंके उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं। प्रत्येक पादमें नगण, जगण, भगण, जगण, भगण, जगण, भगण, १ लघु, १ गुरु होनेसे 'अश्वललित' छन्द होता है।

III ISISIIIS IS III SIS IIIS
पवनविधूतवीचिचपलं विलोकयति जीवितं तनुभृतां
वपुरपि हीयमानमनिशं जरावनितया वशीकृतमिदम्।
सपदि निपीडनव्यतिकरं यमादिव नराधिपान्नरपशुः
परवनितामवेक्ष्य कुरुते तथापि हतबुद्धिरश्वललितम् ॥

'मत्ताक्रीडा' (में २ मगण, १ तगण, ४ नगण, १ लघु, १ गुरु होते हैं। आठ और पद्रह अक्षरोंपर विराम होता है।)

SS SS SSSS IIIIIIIIIIIIIS
वन्दे देवं श्रीगोविन्दं प्रणयपरवशमतिकरुणहृदयं
मात्रा बद्धं दाम्ना साम्ना स्तुतमपि सुतमिव निजमिह सभयम्।
हन्तु याऽऽगात्तस्यै मातुर्व्यतरदतुलनिजगतिमतिविमलां
गा गोपीर्गोपान् योऽगोपायदिह विधृतगिरिरपघनिनयननः ॥

(२४) चौबीस-चौबीस अक्षरोंके चार चरणोंसे जो छन्द बनते हैं, उनका नाम 'संकृति' है। प्रस्तारसे इसके १६७७७२१६ भेद होते हैं। इनमें 'तन्वी' नामक छन्दका उदाहरण दिया जाता है। उसमें भगण, तगण, नगण, सगण, २ भगण, नगण, यगण होते हैं। ५, ७, १२ अक्षरोंपर विराम होता है।

उदाहरण—

SIISS IIIIIIS SIISI III II SS
नाथ तवाहं तव पदकमल [illegible]
नाम सुधाम्भोरुह [illegible] ।
प्रेमिजना ये प्रभुगुण [illegible]
देव दयां दर्शय [illegible] ॥

(२५) पचीस-पचीस [illegible] 'अभिकृति' या 'अतिकृति' [illegible] ३३५५४४३२ भेद होते हैं। इनमेंसे एक [illegible] है। उनके प्रत्येक चरणमें [illegible] ४ [illegible] तथा १ गुरु होते हैं। ५, ५, ८, ७ [illegible] विराम होता है।

उदाहरण—

SII SSSIISS II IIIIII II IIIS
माधव भक्ति देहविभक्ति नय [illegible]
सहर पाप [illegible] ।
मोहन रूप [illegible]
[illegible]

(२६) छब्बीस-छब्बीस [illegible] बनते हैं, उनका जातिवाचक [illegible] है। [illegible] ६७१०८८६४ भेद होते हैं। [illegible] एकका नाम 'भुजङ्गविजृम्भित' और [illegible] है।

'भुजङ्गविजृम्भित' (में २ मगण, १ [illegible] १ सगण, १ लघु, १ गुरु होते हैं। ८, ११, ७ [illegible] विराम होता है।)

उदाहरण—

SSSS SSSSIIIIIIIIIIS IS II SIS
[illegible]
चारुप्रेङ्खच्चूडावर्हं [illegible]
[illegible]
पायाद्वरिकृष्णः [illegible]

'अपवाह' (में प्रत्येक [illegible] २ गुरु होते हैं। ९, ६, ६, ५ [illegible] विराम होता है।

उदाहरण—

SSS IIIIIIIIIIIIIIIIII S SS
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

ये छन्दोंकी संज्ञाएँ हैं, प्रस्तारसे* इनके अनेक भेद होते हैं। सम्पूर्ण गुरु अक्षरवाले पादमें प्रथम गुरुके नीचे लघु लिखना चाहिये; फिर दाहिनी ओरकी पङ्क्तिको ऊपरकी पङ्क्तिके समान भर दे। तात्पर्य यह कि शेष स्थानोंमें ऊपरके अनुसार गुरु-लघु आदि भरे। इस क्रियाको बराबर करता जाय। इसे करते हुए ऊनस्थान अर्थात् बायीं ओरके शेष स्थानमें गुरु ही लिखे। यह क्रिया तबतक करता रहे, जबतक कि सभी लघु अक्षरोंकी प्राप्ति न हो जाय। इसे प्रस्तार कहा गया है † ॥ १४-१५ ॥ (प्रस्तार नष्ट हो जानेपर यदि उसके किसी भेदका स्वरूप जानना हो तो उसे जाननेकी विधिको 'नष्ट प्रत्यय' कहते हैं।) यदि नष्ट अङ्क सम है तो उसके लिये एक लघु लिखे और उसका आधा भी यदि सम हो तो उसके लिये पुनः एक लघु लिखे। यदि नष्ट अङ्क विषम हो तो उसके लिये एक गुरु लिखे और उसमें एक जोड़कर आधा करे। वह आधा भी यदि विषम हो तो उसके लिये भी गुरु ही लिखे। यह क्रिया तबतक करता रहे जबतक अभीष्ट अक्षरोंका पाद प्राप्त न हो जाय‡। (प्रस्तारके किसी भेदका स्वरूप तो ज्ञात हो; किंतु संख्या ज्ञात न हो तो उसके जाननेकी विधिको 'उद्दिष्ट' कहते हैं।) उद्दिष्टमें गुरु-लघु-बोधक जो चिह्न हों, उनमें पहले अक्षरपर एक लिखे और क्रमशः दूसरे अक्षरोंपर दूने अङ्क लिखता जाय; फिर लघुके ऊपर जो अङ्क हों, उन्हें जोड़कर उसमें एक और मिला दे तथा वही उद्दिष्ट स्वरूपकी संख्या बतावे। ऐसा पुराणवेत्ता विद्वानोंका कथन है*। (अमुक छन्दके प्रस्तारमें एक गुरुवाले या एक लघुवाले, दो लघुवाले या दो गुरुवाले, तीन लघुवाले या तीन गुरुवाले भेद कितने हो सकते हैं; यह पृथक्-पृथक् जाननेकी जो प्रक्रिया है, उसे 'एकद्व्यादिलगक्रिया' कहते हैं।) छन्दके अक्षरोंकी जो संख्या हो, उसमें एक अधिक जोड़कर उतने ही एकाङ्क ऊपर-नीचेके क्रमसे लिखे। उन एकाङ्कोंको ऊपरकी अन्य पङ्क्तिमें जोड़ दे; किंतु अन्त्यके समीपवर्ती अङ्कको न जोड़े और ऊपरके एक-एक अङ्कको त्याग दे। ऊपरके सर्व गुरुवाले पहले भेदसे नीचेतक गिने। इस रीतिसे प्रथम भेद सर्वगुरु, दूसरा भेद एक गुरु और तीसरा भेद द्विगुरु होता है। इसी तरह नीचेसे ऊपरकी ओर ध्यान देनेसे सबसे नीचेका सर्वलघु, उसके ऊपरका एक लघु, तीसरा भेद द्विलघु इत्यादि होता है। इस प्रकार एकद्व्यादिलगक्रिया जाननी चाहिये। ‡ लगक्रियाके अङ्कोको

---

* छन्द शास्त्रमें छ प्रत्यय होते हैं—१ प्रस्तार, २ नष्ट, ३ उद्दिष्ट, ४ एकद्व्यादिलगक्रिया, ५ सख्यान और छठा अध्वयोग। प्रस्तारका अर्थ है फैलाव, अमुक संख्यायुक्त अक्षरोंसे बने हुए पादवाले छन्दके कितने और कौन-कौनसे भेद हो सकते हैं? इस प्रश्नका समाधान करनेके लिये जो क्रिया की जाती है, उसका नाम प्रस्तार है। नष्ट आदिका स्वरूप आगे बतायेंगे।

† उदाहरणके लिये चार अक्षरके पादवाले छन्दका मूलोक्त रीतिसे प्रस्तार अङ्कित किया जाता है—

१—SSSS	९—SSSI
२—ISSS	१०—ISSI
३—SISS	११—SISI
४—IISS	१२—IISI
५—SSIS	१३—SSII
६—ISIS	१४—ISII
७—SIIS	१५—SIII
८—IIIS	१६—IIII

‡ जैसे किसीके द्वारा पूछा जाय कि चार अक्षरके पादवाले छन्दका छठा भेद क्या है? तो इसमें छठा अङ्क सम है; अतः उसके लिये प्रथम एक लघु होगा (।), फिर छ का आधा करनेपर तीन विषम अङ्क हुआ, अतः उसके लिये एक गुरु (S) लिखा। अब तीनमें एक जोडकर आधा किया तो दो सम अङ्क हुआ, अतः उसके लिये फिर एक लघु (।) लिखा। उस दोका आधा किया तो एक विषम अङ्क हुआ, अतः उसके लिये एक गुरु (S) लिखा। सब मिलकर (ISIS) ऐसा हुआ। अतः चार अक्षरवाले छन्दके छठे भेदमें प्रत्येक पादमें प्रथम अक्षर लघु, दूसरा गुरु, तीसरा लघु और चौथा गुरु होगा।

* जैसे कोई पूछे कि चार अक्षरके पादवाले छन्दमें जहाँ प्रथम तीन गुरु और अन्तमें एक लघु हो तो उसकी संख्या क्या है अर्थात् वह उस छन्दका कौन-सा भेद है? इसको जाननेके लिये पहले उद्दिष्टके गुरु-लघुको निम्नाङ्कित रीतिसे अङ्कित करके उनके ऊपर क्रमशः द्विगुण अङ्क स्थापित करे—

१	२	४	८
S	S	S	I

तत्पश्चात् केवल लघुके अङ्क ८ में एक और जोड़ दिया गया तो ९ हुआ। यही उद्दिष्टकी संख्या है। अर्थात् वह उस छन्दका नवाँ भेद है।

† निम्नाङ्कित कोष्ठकसे यह बात स्पष्ट हो जाती है—

अर्थात् चार अक्षरवाले छन्दके प्रस्तारमें ४ लघुवाला १ भेद, एक गुरु तीन लघुवाला ४ भेद, २ गुरु और दो लघुवाला ६ भेद, तीन गुरु और १ लघुवाला ४ भेद और चार गुरुवाला १ भेद होगा।

जोड़ देनेसे उस छन्दके प्रस्तारकी पूरी संख्या ज्ञात हो जाती है। यही संख्यान प्रत्यय कहलाता है, अथवा उद्दिष्टपर दिये हुए अङ्कोंको जोड़कर उसमें एकका योग कर दिया जाय तो वह भी प्रस्तारकी पूरी संख्याको प्रकट कर देता है*। छन्दके प्रस्तारको अङ्कित करनेके लिये जो स्थानका नियमन किया जाता है, उसे अध्वयोग प्रत्यय कहते हैं। प्रस्तारकी जो संख्या है, उसे दूना करके एक घटा देनेसे जो अङ्क [illegible] है, [illegible] अंगुलका उसके प्रस्तारके लिये अध्वा या स्थान [illegible] है ॥ १६–२० ॥ मुने ! यह छन्दोंका किंचित् [illegible] गया है। प्रस्तारद्वारा प्रतिपादित होनेवाले उनके [illegible] प्रभेदोंकी संख्या अनन्त है ॥ २१ ॥

(पूर्वभाग द्वितीय पाद अध्याय ५७)

शुकदेवजीका मिथिलागमन, राजभवनमें युवतियोंद्वारा उनकी सेवा, राजा जनकके द्वारा शुकदेवजीका सत्कार और शुकदेवजीके साथ उनका मोक्षविषयक संवाद

श्रीसनन्दनजीने कहा—नारदजी ! एक दिन मोक्ष-धर्मका ही विचार करते हुए शुकदेवजी पिता व्यासदेवके समीप गये और उन्हें प्रणाम करके बोले—'भगवन् ! आप मोक्ष-धर्ममें निपुण हैं, अतः मुझे ऐसा उपदेश दीजिये, जिससे मेरे मनको परम शान्ति प्राप्त हो।' मुने ! पुत्रकी यह बात सुनकर महर्षि व्यासने उनसे कहा—'वत्स ! नाना प्रकारके धर्मोंका भी तत्त्व समझो और मोक्षशास्त्रका अध्ययन करो।' तब शुकने पिताकी आज्ञासे सम्पूर्ण योगशास्त्र और कपिलप्रोक्त साख्यशास्त्रका अध्ययन किया। जब व्यासजीने समझ लिया कि मेरा पुत्र ब्रह्मतेजसे सम्पन्न, शक्तिमान् तथा मोक्षशास्त्रमें कुशल हो गया है, तब उन्होंने कहा—'बेटा ! अब तुम मिथिलानरेश जनकके समीप जाओ, राजा जनक तुम्हें मोक्ष-तत्त्व पूर्णरूपसे बतलायेंगे।' पिताके आदेशसे शुकदेवजी धर्मकी निष्ठा और मोक्षके परम आश्रयके सम्बन्धमें प्रश्न करनेके लिये मिथिलापति राजा जनकके पास जाने लगे। जाते समय व्यासजीने फिर कहा—'वत्स ! जिस मार्गमें साधारण मनुष्य चलते हों, उसीसे तुम भी यात्रा करना। मनमें विस्मय अथवा अभिमानको स्थान न देना। अपनी योगशक्तिके प्रभावसे अन्तरिक्षमार्गद्वारा कदापि यात्रा न करना। सरल भावसे ही वहाँ जाना। मार्गमें सुख-सुविधा न देखना, विशेष व्यक्तियों या स्थानोंकी खोज न करना; क्योंकि वे आसक्ति बढ़ानेवाले होते हैं। 'राजा जनक शिष्य और यजमान हैं'—ऐसा समझकर उनके सामने अहंकार न प्रकट करना। उनके वशमें रहना। वे तुम्हारे संदेह-का निवारण करेंगे। राजा जनक धर्ममें निपुण तथा मोक्ष-शास्त्रमें कुशल हैं। वे मेरे शिष्य हैं, तो भी तुम्हारे लिये जो आज्ञा दें, उसका निस्संदिग्ध होकर पालन करना।'

पिताके ऐसा कहनेपर धर्मात्मा शुकदेव मुनि मिथिला गये। यद्यपि समुद्रोंसहित सम्पूर्ण पृथ्वीको वे आकाशमार्गसे ही [illegible] सकते थे, तथापि पैदल ही गये। महामुनि शुक विदेहनगरमें पहुँचे। पहले राजद्वारपर पहुँचते ही द्वारपालोंने उन्हें भीतर जानेसे रोका; किंतु इससे उनके मनमें कोई ग्लानि नहीं हुई। नारदजी ! महायोगी शुक भूख-प्याससे रहित हो वहीं धूपमें जा बैठे और ध्यानमें स्थित हो गये। उन द्वारपालोंमेंसे एकको अपने व्यवहारपर बड़ा शोक हुआ। उसने देखा, शुकदेवजी दोपहरके सूर्यकी भाँति वहाँ स्थित हो रहे हैं, तब हाथ जोड़कर प्रणाम किया और विधिपूर्वक उनका पूजन [illegible] राजमहलकी दूसरी कक्षामें उनका प्रवेश कराया। वहाँ चैत्र-रथ वनके समान एक विशाल उपवन था, [illegible] अन्तःपुरसे था। वह वन बड़ा रमणीय था। [illegible] शुकदेवजीको सारा उपवन दिखाकर एक सुन्दर [illegible] बिठाया तथा राजा जनकको इसकी सूचना दी। [illegible] राजाने जब सुना कि शुकदेवजी मेरे पास आये हैं तो उनके हार्दिक भावको समझनेके उद्देश्यसे उनकी [illegible]

---

* यथा—चार अक्षरके प्रस्तारमें लगक्रियाके अङ्क १+४+६+४+१ होते हैं इनका योग सोलह होता है। [illegible] पादवाले छन्दके सोलह भेद होंगे अथवा उद्दिष्टके अङ्क हैं १+२+४+८ इनका योग हुआ १५, इनमें [illegible] संख्या १६ प्रकट हो जाती है।

सी युवतियोंको नियुक्त किया । उन सबके वेश बड़े मनोहर थे । वे सब-की-सब तरुणी और देखनेमें मनको प्रिय लगनेवाली थीं । उन्होंने लाल रंगके महीन एवं रंगीन वस्त्र धारण कर रक्खे थे । उनके अङ्गोंमें तपाये हुए शुद्ध सुवर्णके आभूषण
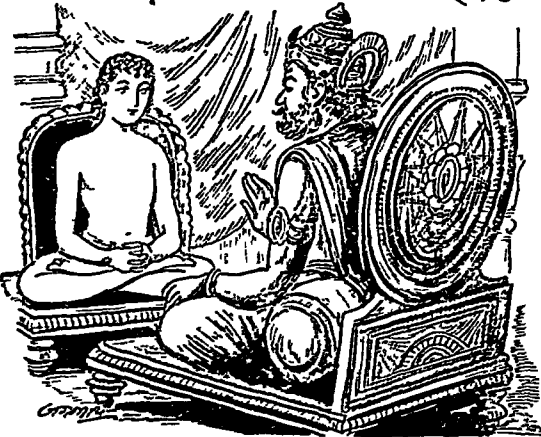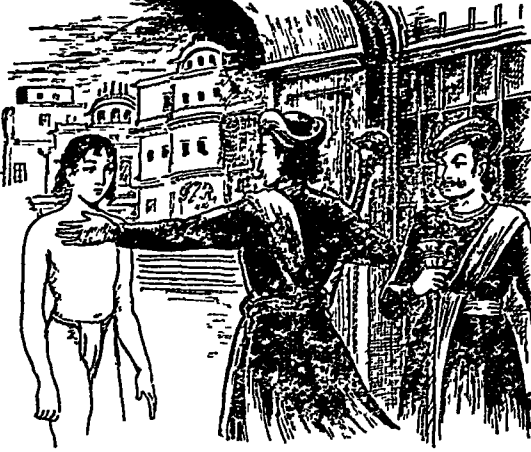
चमक रहे थे । वे बातचीतमें बड़ी चतुर तथा समस्त कलाओंमें कुशल थीं । उनकी संख्या पचाससे अधिक थी । उन सबने शुकदेवजीके लिये पाद्य, अर्घ्य आदि प्रस्तुत किये तथा देश और कालके अनुसार प्राप्त हुआ उत्तम अन्न भोजन कराकर उन्हें तृप्त किया । नारदजी ! जब वे भोजन कर चुके तो उनमेंसे एक-एक युवतीने शुकदेवजीको अपने साथ लेकर उन्हें वह अन्तःपुरका वन दिखलाया। फिर मनके भावोंको समझनेवाली वे सब युवतियाँ हँसती, गाती हुई उदारचित्तवाले शुकदेव मुनिकी परिचर्या करने लगीं । शुकदेवमुनिका अन्तःकरण परम शुद्ध था । वे क्रोध और इन्द्रियोंको जीत चुके थे तथा निरन्तर ध्यानमें ही स्थित रहते थे । उनके मनमें न हर्ष होता था, न क्रोध । संध्याका समय होनेपर शुकदेवजीने हाथ-पैर धोकर संध्योपासना की । फिर वे पवित्र आसनपर बैठे और उसी मोक्षधर्मके विषयमें विचार करने लगे । रातके पहले पहरमे वे ध्यान लगाये बैठे रहे । दूसरे और तीसरे पहरमें भगवान् शुकने न्यायपूर्वक निद्राको स्वीकार किया । फिर प्रातःकाल ब्रह्मवेलामें ही उठकर उन्होंने शौच-स्नान किया । तदनन्तर स्त्रियोंसे घिरे होनेपर भी परम बुद्धिमान् शुक पुनः ध्यानमें ही लग गये । नारदजी ! इसी विधिसे उन्होंने वह शेष दिन और सम्पूर्ण रात्रि राजकुलमें व्यतीत की ।

द्विजश्रेष्ठ ! तदनन्तर मन्त्रियोंसहित राजा जनक पुरोहित तथा अन्तःपुरकी स्त्रियोंको आगे करके मस्तकपर अर्घ्यपात्र लिये गुरुपुत्र शुकदेवजीके समीप गये । उन्होंने सम्पूर्ण रत्नोंसे विभूषित एक महान् सिंहासन लेकर गुरुपुत्र शुकदेवजीको अर्पित किया । व्यासनन्दन शुक जब उस आसनपर विराजमान हुए, तब राजाने पहले उन्हें पाद्य अर्पण किया, उसके बाद अर्घ्यसहित गाय निवेदन की । महातेजस्वी द्विजोत्तम शुकने मन्त्रोच्चारणपूर्वक की हुई उस पूजाको स्वीकार करके राजाका कुशल-मङ्गल पूछा । राजाका हृदय और परिजन सभी उदार थे । वे भी गुरुपुत्रसे कुशल-समाचार बताकर उनकी आज्ञा ले भूमिपर बैठे । तत्पश्चात् व्यासनन्दन शुकसे कुशल-मङ्गल पूछकर विधिज्ञ राजाने प्रश्न किया—'ब्रह्मन् ! किसलिये आपका यहाँ शुभागमन हुआ है ?'

शुकदेवजी बोले—राजन् ! आपका कल्याण हो ! पिताजीने मुझसे कहा है कि 'मेरे यजमान विदेहराज जनक मोक्षधर्मके तत्त्वको जाननेमें कुशल हैं । तुम उन्हींके पास जाओ । तुम्हारे हृदयमें प्रवृत्ति या निवृत्तिके विषयमें जो भी संदेह होगा, उसका वे शीघ्र ही निवारण कर देंगे । इसमें संशय नहीं है ।' अतः मैं पिताजीकी आज्ञासे आपके समीप

अपना हार्दिक संशय मिटानेके लिये यहाँ आया हूँ। आप धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ हैं। मुझे यथावत् उपदेश देनेकी कृपा करें। ब्राह्मणका इस जगत्‌में क्या कर्तव्य है? तथा मोक्षका स्वरूप कैसा है? उसे ज्ञान या तपस्या किस साधनसे प्राप्त करना चाहिये?

राजा जनकने कहा—ब्रह्मन्! इस जगत्‌में जन्मसे लेकर जीवनपर्यन्त ब्राह्मणका जो कर्तव्य है, वह बतलाता हूँ, सुनो—तात! उपनयन-संस्कारके पश्चात् ब्राह्मण-बालकको वेदोंके स्वाध्यायमें लग जाना चाहिये। वह तपस्या, गुरुसेवा और ब्रह्मचर्य-पालनमें संलग्न रहे। होम तथा श्राद्ध-तर्पण-द्वारा देवताओं और पितरोंके ऋणसे मुक्त हो। किसीकी निन्दा न करे। सम्पूर्ण वेदोंका नियमपूर्वक अध्ययन पूरा करके गुरुको दक्षिणा दे, फिर उनकी आज्ञा लेकर द्विज-बालक अपने घरको लौटे। समावर्तन-संस्कारके पश्चात् गुरुकुलसे लौटा हुआ ब्राह्मणकुमार विवाह करके अपनी ही पत्नीमें अनुराग रखते हुए गृहस्थ-आश्रममें निवास करे। किसीके दोष न देखे। न्यायपूर्वक बर्ताव करे। अग्निकी स्थापना करके प्रतिदिन आदरपूर्वक अग्निहोत्र करे। पुत्र और पौत्रोंकी उत्पत्ति हो जानेपर वानप्रस्थ-आश्रममें रहे और पहलेकी स्थापित अग्निका ही विधिपूर्वक आहुतिद्वारा पूजन करे। वानप्रस्थीको भी अतिथि-सेवामें प्रेम रखना चाहिये। तदनन्तर धर्मज्ञ पुरुष वनमें न्यायपूर्वक सम्पूर्ण अग्नियोंको (भावनाद्वारा) अपने भीतर ही लीन करके वीतराग हो ब्रह्मचिन्तनपरायण संन्यास-आश्रममें निवास करे और शीत, उष्ण आदि द्वन्द्वोंको धैर्यपूर्वक सहन करे।

शुकदेवजीने पूछा—राजन्! यदि किसीको ब्रह्मचर्य-आश्रममें ही सनातन ज्ञान-विज्ञानकी प्राप्ति हो जाय और हृदयके राग-द्वेष आदि द्वन्द्व दूर हो गये हों तो भी उसके लिये क्या शेष तीन आश्रमोंमें निवास करना अत्यन्त आवश्यक है? इस संदेहके विषयमें मैं आपसे पूछ रहा हूँ। आप बतानेकी कृपा करें।

राजा जनकने कहा—ब्रह्मन्! जैसे ज्ञान-विज्ञानके बिना मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती, उसी प्रकार सद्गुरुसे सम्बन्ध हुए बिना ज्ञानकी उपलब्धि भी नहीं होती। गुरु इस संसार-सागरसे पार उतारनेवाले हैं और उनका दिया हुआ ज्ञान नौकाके समान बताया गया है। लोककी धार्मिक मर्यादाका उच्छेद न हो और कर्मानुष्ठानकी परम्पराका भी नाश न होने पावे, इसके लिये पहलेके विद्वान् [illegible] पालन करते थे। [illegible] अनुष्ठान करते हुए शुभाशुभ कर्मोंको [illegible] जानेपर यहीं मोक्ष प्राप्त हो जाता है। [illegible] करते-करते जब सम्पूर्ण इन्द्रियाँ [illegible] हो [illegible] है, [illegible] अन्तःकरणवाला पुरुष प्रथम [illegible] ज्ञान प्राप्त कर लेता है। उसे [illegible] ही तत्त्वका साक्षात्कार एवं मुक्ति सुलभ हो [illegible] को चाहनेवाले जीवन्मुक्त विद्वान्‌के लिये [illegible] जानेकी क्या आवश्यकता है। विद्वान्‌को चाहिये कि [illegible] और तामस दोषोंका परित्याग कर दे और [illegible] आश्रय लेकर बुद्धिके द्वारा आत्माका दर्शन करे। जो सम्पूर्ण भूतोंको अपनेमें और अपनेको सम्पूर्ण भूतोंमें स्थित [illegible] है, वह संसारमें रहकर भी उसके दोषोंसे लिप्त नहीं होता और अक्षय पदको प्राप्त कर लेता है। [illegible] इस विषयमें राजा ययातिकी कही हुई गाथा सुनो—

जिसे मोक्ष-शास्त्रमें निपुण विद्वान् [illegible] किये हुए हैं, अपने भीतर ही उस आत्मज्योतिका [illegible] है, अन्यत्र नहीं। वह ज्योति सम्पूर्ण प्राणियोंमें [illegible] समान रूपसे स्थित है। समाधिमें अपने [illegible] भलीभाँति एकाग्र करनेवाला पुरुष उसको स्वयं देख [illegible] है। जिससे दूसरा कोई प्राणी नहीं डरता, जो स्वयं किसी दूसरे प्राणीसे भयभीत नहीं होता तथा जो इच्छा और द्वेषसे रहित हो गया है, वह ब्रह्मभावको प्राप्त हो जाता है। [illegible] मनुष्य मन, वाणी और क्रियाद्वारा किसी [illegible] बुराई नहीं करता, उस समय वह ब्रह्मरूप हो जाता है। जब मोहमें डालनेवाली ईर्ष्या, काम और [illegible] पुरुष अपने आपको तपमें लगा देता है, [illegible] ब्रह्मानन्दका अनुभव होता है। [illegible] योग्य विषयोंमें तथा सम्पूर्ण प्राणियोंमें [illegible] समानभाव हो जाय और सुख-दुःख आदि द्वन्द्व [illegible] चित्तपर प्रभाव न डाल सकें, [illegible] हो जाता है। [illegible] निन्दा-स्तुति, [illegible] सुख-दुःख, सर्दी-गरमी, अर्थ-अनर्थ, [illegible] जीवन-मरणमें समान दृष्टि हो जाती है, [illegible] ब्रह्मभावको प्राप्त हो जाता है। [illegible] फैलाकर फिर समेट लेता है, [illegible]

इन्द्रियोंपर नियन्त्रण रखना चाहिये*। जिस प्रकार अन्धकारसे व्याप्त हुआ घर दीपकके प्रकाशसे स्पष्ट दीख पड़ता है, उसी तरह बुद्धिरूपी दीपककी सहायतासे आत्माका दर्शन हो सकता है। बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ शुकदेवजी! उपर्युक्त सारी बातें मुझे आपमें दिखायी देती हैं। इनके अतिरिक्त जो कुछ भी जानने योग्य विषय है, उसे आप ठीक-ठीक जानते हैं। ब्रह्मर्षे! मैं आपको अच्छी तरह जानता हूँ। आप अपने पिताजीकी कृपा और शिक्षाके कारण विषयोंसे परे हो गये हैं। उन्हीं महामुनि गुरुदेवकी कृपासे मुझे भी यह दिव्य विज्ञान प्राप्त हुआ है, जिससे मैं आपकी स्थितिको पहचानता हूँ। आपका विज्ञान, आपकी गति और आपका ऐश्वर्य—ये सब अधिक हैं। किंतु आपको इस बातका पता नहीं है। ब्रह्मन्! आपको ज्ञान हो चुका है और आपकी बुद्धि भी स्थिर है; साथ ही आपमें लोलुपता भी नहीं है; परंतु विशुद्ध निश्चयके बिना किसीको भी परब्रह्मकी प्राप्ति नहीं होती। आप सुख-दुःखमे कोई अन्तर नहीं समझते। आपके मनमें तनिक भी लोभ नहीं है। आपको न नाच देखनेकी उत्कण्ठा होती है, न गीत सुननेकी। आपका कहीं भी राग है ही नहीं। न तो बन्धुओंके प्रति आपकी आसक्ति है न भयदायक पदार्थोंसे भय। महाभाग! मैं देखता हूँ—आपकी दृष्टिमें अपनी निन्दा और स्तुति एक-सी है। मैं तथा दूसरे मनीषी विद्वान् भी आपको अक्षय एवं अनामय पथ (मोक्षमार्ग) पर स्थित मानते हैं। विप्रवर! इस लोकमें ब्राह्मण होनेका जो फल है और मोक्षका जो स्वरूप है, उसीमें आपकी स्थिति है।

सनन्दनजी कहते हैं—नारद! राजा जनककी यह बात सुनकर शुद्ध अन्तःकरणवाले शुकदेवजी एक दृढ निश्चयपर पहुँच गये और बुद्धिके द्वारा आत्माका साक्षात्कार करके उसीमें स्थित होकर कृतार्थ हो गये। उस समय उन्हें परम आनन्द और परम शान्तिका अनुभव हुआ। इसके बाद वे हिमालय पर्वतको लक्ष्य करके चुपचाप उत्तर दिशाकी ओर चल दिये और वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपने पिता व्यासजीको देखा, जो पैल आदि शिष्योंको वैदिकसंहिता पढ़ा रहे थे। शुद्ध अन्तःकरणवाले शुकदेव अपनी दिव्य प्रभासे सूर्यके समान प्रकाशित हो रहे थे। उन्होने प्रसन्नचित्त होकर बड़े आदरसे पिताके चरणोंमें प्रणाम किया। तदनन्तर उदार-बुद्धि शुकने राजा जनकके साथ जो मोक्षसाधनविषयक संवाद हुआ था, वह सब अपने पिताको बताया। उसे सुनकर वेदोंका विस्तार करनेवाले व्यासजीने हर्षोल्लासपूर्ण हृदयसे पुत्रको छातीसे लगा लिया और अपने पास बिठाया। तत्पश्चात् पैल आदि ब्राह्मण व्यासजीसे वेदोंका अध्ययन करके उस शैलशिखरसे पृथ्वीपर आये और यज्ञ कराने तथा वेद पढ़ानेके कार्यमें संलग्न हो गये।

व्यासजीका शुकदेवको अनध्यायका कारण बताते हुए 'प्रवह' आदि सात वायुओंका परिचय देना तथा सनत्कुमारका शुकको ज्ञानोपदेश

सनन्दनजी कहते हैं—नारदजी! जब पैल आदि ब्राह्मण पर्वतसे नीचे उतर आये, तब पुत्रसहित परम बुद्धिमान् भगवान् व्यास एकान्तमें मौनभावसे ध्यान लगाकर बैठ गये। उस समय आकाशवाणीने पुत्रसहित व्यासजीको सम्बोधित करके कहा—'वसिष्ठ-कुलमें उत्पन्न महर्षि व्यास! इस समय वेद-ध्वनि क्यों नहीं हो रही है? तुम अकेले कुछ चिन्तन करते हुए-से चुपचाप ध्यान लगाये क्यों बैठे हो? इस समय वेदोच्चारणकी ध्वनिसे रहित होकर यह पर्वत सुशोभित नहीं हो रहा है। अतः भगवन्! अपने वेदज्ञ पुत्रके साथ परम प्रसन्नचित्त हो सदा वेदोंका स्वाध्याय करो।'

* न बिभेति परो यस्मान्न बिभेति पराच्च य। यश्च नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते स तु॥
यदा भावं न कुरुते सर्वभूतेषु पापकम्। कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥
संयोज्य तपसाऽऽत्मानमीर्ष्यामुत्सृज्य मोहिनीम्। त्यक्त्वा कामं च लोभं च ततो ब्रह्मत्वमश्नुते॥
यदा श्रव्ये च दृश्ये च सर्वभूतेषु चाव्ययम्। समो भवति निर्द्वन्द्वो ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥
यदा स्तुतिं च निन्दां च समत्वेन च पश्यति। काञ्चनं चायसं चैव सुखदुःखे तथैव च॥
शीतमुष्णं तथैवार्थमनर्थं प्रियमप्रियम्। जीवितं मरणं चैव ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥
प्रसार्येह यथाङ्गानि कूर्मः संहरते पुनः। तथेन्द्रियाणि मनसा संयन्तव्यानि भिक्षुणा॥
(ना० पूर्व० ५९। २९—३५)

आकाशवाणीद्वारा उच्चारित यह वचन सुनकर व्यासजीने अपने पुत्र शुकदेवजीके साथ वेदोंकी आवृत्ति आरम्भ कर दी । द्विजश्रेष्ठ ! वे दोनों पिता-पुत्र दीर्घकालतक वेदोंका पारायण करते रहे । इसी बीचमें एक दिन समुद्री हवासे प्रेरित होकर बड़े जोरकी आँधी उठी । इसे अनध्यायका हेतु समझकर व्यासजीने पुत्रको वेदोंके स्वाध्यायसे रोक दिया । तब उन्होंने पितासे पूछा—'भगवन् ! यह इतने जोरकी हवा क्यों उठी थी ? वायुदेवकी यह सारी चेष्टा आप बतानेकी कृपा करें ।'

शुकदेवजीकी यह बात सुनकर व्यासजी अनध्यायके निमित्तस्वरूप वायुके विषयमें इस प्रकार बोले—'बेटा ! तुम्हें दिव्यदृष्टि उत्पन्न हुई है, तुम्हारा मन स्वतः निर्मल है । तुम तमोगुण तथा रजोगुणसे दूर एवं सत्यमें प्रतिष्ठित हुए हो, अतः अपने हृदयमें वेदोंका विचार करके स्वय ही बुद्धि-द्वारा अनध्यायके कारणरूप वायुके विषयमें आलोचना करो ।

पृथ्वी और अन्तरिक्षमें जो वायु चलती है, उसके सात मार्ग हैं । जो धूम तथा गरमीसे उत्पन्न बादल-समूहों और ओलोंको इधर-से-उधर ले जाता है, वह प्रथम मार्गमें प्रवाहित होनेवाला 'प्रवह' नामक प्रथम वायु है । जो आकाशमे रसकी मात्राओं और बिजली आदिकी उत्पत्तिके लिये प्रकट होता है, वह महान् तेजसे सम्पन्न द्वितीय वायु 'आवह' नामसे प्रसिद्ध है और बड़ी भारी आवाजके साथ बहता है । जो सदा सोम-सूर्य आदि [illegible] उदय एवं उद्भव करता है, मनीषी पुरुष [illegible] जिसे उदान कहते हैं, जो चारों समुद्रोंसे जल [illegible] और उसे ऊपर उठाकर 'जीमूतों' को देता है [illegible] जीमूतोंको जलसे संयुक्त करके उन्हें 'पर्जन्य' के [illegible] करता है, वह महान् वायु 'उद्वह' कहलाता है । [illegible] प्रेरित होकर अनेक प्रकारके नीले महामेघ घटा बाँधकर [illegible] बरसाना आरम्भ करते हैं तथा जो देवताओंके [illegible] जानेवाले विमानोंको स्वयं ही वहन करता है, वह पर्वतोंका मान मर्दन करनेवाला चतुर्थ वायु 'संवह' नामसे प्रसिद्ध है । जो रूक्षभावसे वेगपूर्वक बहकर वृक्षोंको तोड़ता और उखाड़ फेंकता है तथा जिसके द्वारा संगठित हुए प्रलयकालीन मेघ 'बलाहक' संज्ञा धारण करते हैं, जिसका संचरण भयानक उत्पात लानेवाला है तथा जो अपने साथ मेघोंकी घटाएँ लिये चलता है, वह [illegible] वेगवान् पञ्चम वायु 'विवह' कहा गया है । जिसके आधारपर आकाशमें दिव्य जल प्रवाहित होते हैं, जो आकाशगङ्गाके पवित्र जलको धारण करके स्थित है और जिसके द्वारा दूरसे ही प्रतिहत होकर सहस्रों किरणोंके उत्पत्तिस्थान सूर्यदेव एक ही किरणसे युक्त प्रतीत होते हैं, जिनसे यह पृथ्वी प्रकाशित होती है तथा अमृतकी दिव्यनिधि चन्द्रमा भी जिससे पोषण होता है, उस छठे वायुका नाम '[illegible]' है, वह सम्पूर्ण विजयशील तत्त्वोंमें श्रेष्ठ है । जो अन्तकालमें सम्पूर्ण प्राणियोंके प्राणोंको शरीरसे निकालता है, जिसके इस प्राणनिष्कासनरूप मार्गका मृत्यु तथा वैवस्वत यम अनुगमन मात्र करते हैं, सदा अध्यात्मचिन्तनमें लगी हुई [illegible] बुद्धिके द्वारा भलीभाँति विचार या अनुसंधान करनेवाले ध्यानाभ्यासपरायण पुरुषोंको जो अमृतत्व देनेमें समर्थ है, जिसमें स्थित होकर प्रजापति दक्षके [illegible] सम्पूर्ण दिशाओंके अन्तमें पहुँच गये तथा जिससे [illegible] जल तिरोहित होकर वर्षा बंद हो जाती है, वह [illegible] वायु 'परावह' नामसे प्रसिद्ध है । [illegible] करना सबके लिये कठिन है । इस प्रकार ये [illegible] दितिके परम अद्भुत पुत्र हैं । [illegible] । वे [illegible] जगह विचरते रहते हैं; किंतु बड़े [illegible] वायुके वेगसे आज यह पर्वतोंसे [illegible] काँप उठा है । बेटा ! यह वायु [illegible] जब कभी सहसा यह निःश्वास [illegible]

सारा जगत् व्यथित हो उठता है। इसलिये ब्रह्मवेत्ता पुरुष प्रचण्ड वायु (आँधी) चलनेपर वेदका पाठ नहीं करते हैं। वेद भी भगवान्‌का निःश्वास ही है। उस समय वेद-पाठ करनेपर वायुसे वायुको क्षोभ प्राप्त होता है।

अनध्यायके विषयमें यह बात कहकर पराशरनन्दन भगवान् व्यास अपने पुत्र शुकदेवसे बोले—'अब तुम वेद-पाठ करो।' यों कहकर वे आकाशगङ्गाके तटपर गये। जब व्यासजी स्नान करने चले गये तब ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ शुकदेवजी वेदोंका स्वाध्याय करने लगे। वे वेद और वेदाङ्गोंके पारङ्गत विद्वान् थे। नारदजी! व्यासपुत्र शुकदेवजी जब स्वाध्यायमें लगे हुए थे उसी समय वहाँ भगवान् सनत्कुमार एकान्तमें उनके पास आये*। व्यासनन्दन शुकने ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारजीका उठकर स्वागत-सत्कार किया। विप्रेन्द्र! तत्पश्चात् ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ सनत्कुमारजीने शुकदेवजीसे कहा—'महाभाग! महातेजस्वी व्यासपुत्र! क्या कर रहे हो?'

शुकदेवजी बोले—ब्रह्मकुमार! इस समय मैं वेदोंके स्वाध्यायमें लगा हूँ। मेरे किसी अज्ञात पुण्यके फलसे आपका दर्शन प्राप्त हुआ है। अतः महाभाग! मैं आपसे किसी ऐसे तत्त्वके विषयमें पूछना चाहता हूँ जो मोक्षरूपी पुरुषार्थका साधक हो। अतः आप कृपापूर्वक बतावें, जिससे मुझे भी उसका ज्ञान हो।

सनत्कुमारजीने कहा—ब्रह्मन्! विद्याके समान कोई नेत्र नहीं है, सत्यके तुल्य कोई तपस्या नहीं है, रागके समान कोई दुःख नहीं है और त्यागके सदृश कोई सुख नहीं है। पाप-कर्मसे दूर रहना, सदा पुण्यका सञ्चय करते रहना, साधु पुरुषोंके बर्तावको अपनाना और उत्तम सदाचारका पालन करना—यह सर्वोत्तम श्रेयका साधन है। जहाँ सुखका नाम भी नहीं है, ऐसे मानवशरीरको पाकर जो विषयोंमें आसक्त होता है, वह मोहमें डूब जाता है। विषयोंका संयोग दुःखरूप है, वह कभी दुःखसे छुटकारा नहीं दिला सकता। आसक्त मनुष्यकी बुद्धि चञ्चल हो जाती है और मोहजालका विस्तार करनेवाली होती है। जो उस मोहजालसे घिर जाता है, वह इस लोक और परलोकमें भी दुःखका ही भागी होता है। जो अपना कल्याण चाहता हो, उसे सभी उपायोंसे काम और क्रोधको काबूमें करना चाहिये, क्योंकि वे दोनों दोष मनुष्यके श्रेयका विनाश करनेके लिये उद्यत रहते हैं। मनुष्यको चाहिये कि तपको क्रोधसे, सम्पत्तिको डाहसे, विद्याको मान-अपमानसे और अपनेको प्रमादसे बचावे। क्रूरस्वभावका परित्याग सबसे बड़ा धर्म है। क्षमा सबसे महान् बल है। आत्मज्ञान सर्वोत्तम ज्ञान है और सत्य ही सबसे बढ़कर हितका साधन है*। सत्य बोलना सबसे श्रेष्ठ है, किंतु हितकारक बात कहना सत्यसे भी बढ़कर है। जिससे प्राणियोंका अत्यन्त हित होता हो, उसीको मैं सत्य मानता हूँ। जो नये-नये कर्म आरम्भ करनेका संकल्प छोड़ चुका है, जिसके मनमें कोई कामना नहीं है, जो किसी वस्तुका संग्रह नहीं करता तथा जिसने सब कुछ त्याग दिया है, वही विद्वान् है और वही पण्डित है। जो अपने वशमें की हुई इन्द्रियोंके द्वारा अनासक्तभावसे विषयोंका अनुभव करता है, जिसके अन्तःकरणमें सदा शान्ति विराजती है, जो निर्विकार एवं एकाग्रचित्त है तथा जो आत्मीय कहलानेवाले शरीर और इन्द्रियोंके साथ रहकर भी उनसे एकाकार न होकर विलग-सा ही रहता है, वह सब बन्धनोंसे छूटकर शीघ्र ही परम कल्याण प्राप्त कर लेता है। मुने! जिसकी किसी भी प्राणीकी ओर दृष्टि नहीं जाती, जो किसीका स्पर्श तथा किसीसे बातचीत नहीं करता, उसे महान् श्रेयकी प्राप्ति होती है। किसी भी जीवकी हिंसा न करे। सब प्राणियोंके साथ मित्रतापूर्ण बर्ताव करे। इस जन्म (अथवा शरीर) को लेकर किसीके साथ वैरभाव न करे। जो आत्मतत्त्वका ज्ञाता तथा मनको वशमें रखनेवाला है, उसे चाहिये कि किसी भी वस्तुका संग्रह न करे। मनमें पूर्ण संतोष रक्खे। कामना तथा चपलताको त्याग दे। इससे परम कल्याणकी सिद्धि होती है। जिन्होंने भोगोंका परित्याग कर दिया है, वे कभी शोकमें नहीं पड़ते, इसलिये प्रत्येक मनुष्यको भोगासक्तिका त्याग करना चाहिये। जो किसीसे भी पराजित न होनेवाले परमात्माको जीतना चाहता हो, उसे तपस्वी, जितेन्द्रिय, मननशील, संयतचित्त तथा सम्पूर्ण विषयोंमें अनासक्त होना चाहिये। जो ब्राह्मण त्रिगुणात्मक विषयोंमें

* यहाँ सनत्कुमारजीने शुकदेवजीसे मिलकर उनको जो उपदेश दिया है वह या तो वनकके उपदेश देनेके पूर्वका प्रसङ्ग समझना चाहिये अथवा ऐसा समझना चाहिये कि यह उपदेश सनत्कुमारजीने संसारके हितके लिये शुकदेवजीको निमित्त बनाकर दिया है।

* नित्यं क्रोधात्तपो रक्षेच्छ्रियं रक्षेच्च मत्सरात्।
विद्यां मानावमानाभ्यामात्मानं तु प्रमादतः॥
आनृशंस्यं परो धर्मः क्षमा च परमं बलम्।
आत्मज्ञानं परं ज्ञानं सत्यं हि परमं हितम्॥
(ना० पूर्व० ६० । ४८-४९)

आसक्त न होकर सदा एकान्तवास करता है, वह बहुत शीघ्र सर्वोत्तम सुख (मोक्ष) प्राप्त कर लेता है। मुने! जो मैथुनमें सुख समझनेवाले प्राणियोंके बीचमें रहकर भी (स्त्रियोंसे रहित) अकेले रहनेमें ही आनन्द मानता है, उसे ज्ञानानन्दसे तृप्त समझना चाहिये। जो ज्ञानानन्दसे पूर्णतः तृप्त है, वह शोकमें नहीं पड़ता। जीव सदा कर्मोंके अधीन रहता है, वह शुभ कर्मोंसे देवता होता है, शुभ और अशुभ दोनोंके आचरणसे मनुष्ययोनिमें जन्म पाता है तथा केवल अशुभ कर्मोंसे पशु-पक्षी आदि नीच योनियोंमें जन्म ग्रहण करता है। उन-उन योनियोंमें जीवको सदा जरा-मृत्यु तथा नाना प्रकारके दुःखोंका शिकार होना पड़ता है। इस प्रकार संसारमें जन्म लेनेवाला प्रत्येक प्राणी संतापकी आगमें पकाया जाता है।

यहाँ विभिन्न वस्तुओंके संग्रह-परिग्रहकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि संग्रहसे महान् दोष प्रकट होता है। रेशमका कीड़ा अपने संग्रहके कारण ही बन्धनमें पड़ता है। स्त्री, पुत्र आदि कुटुम्बमें आसक्त रहनेवाले जीव उसी प्रकार कष्ट पाते हैं, जैसे जंगलके बूढ़े हाथी तालाबके दलदलमें फँसकर दुःख भोगते हैं। जैसे महान् जालमें फँसकर पानीके बाहर आये हुए मत्स्य तड़पते हैं उसी प्रकार स्नेह-जालमें फँसकर अत्यन्त कष्ट उठाते हुए इन प्राणियोंकी ओर दृष्टिपात करो। कुटुम्ब, पुत्र, स्त्री, शरीर और द्रव्यका संग्रह, यह सब कुछ करता है, [illegible] है। यहाँ अपना क्या है ? केवल पुण्य और पाप। अर्थ ([illegible] की प्राप्तिके लिये विद्या, कर्म, पवित्रता और [illegible] ज्ञानका सहारा लिया जाता है। जब अर्थकी सिद्धि ([illegible] की प्राप्ति) हो जाती है तो मनुष्य [illegible] हो जाता है। [illegible] रहनेवाले मनुष्यकी विषयोंके प्रति जो आसक्ति होती है, [illegible] उसे बाँधनेवाली रस्सीके समान है। पुण्यात्मा [illegible] रस्सीको काटकर आगे परमार्थके पथपर बढ़ जाते हैं, [illegible] पापी जीव उसे नहीं काट पाते। यह संसार एक नदीके [illegible] है। रूप इसका किनारा, मन स्रोत, स्पर्श द्वीप और रस ही प्रवाह है। गन्ध इस नदीका कीचड़, शब्द जल और स्वर्ग-रूपी दुर्गम घाट है। इस नदीको मनुष्य-शरीररूपी नौकाकी सहायतासे पार किया जा सकता है। क्षमा इसको खेनेवाले डाँड और धर्म इसको स्थिर करनेवाला लंगर है। [illegible] सक्तिके त्यागरूपी शीघ्रगामी वायुद्वारा ही इस नदीको पार किया जा सकता है। इसलिये तुम कर्मोंसे निवृत्त, सब प्रकार के बन्धनोंसे मुक्त, सर्वज्ञ, सर्वविजयी, सिद्ध तथा भाव-[illegible] से रहित हो जाओ। बहुतसे ज्ञानी पुरुष संयम और तप[illegible] बलसे नवीन बन्धनोंका उच्छेद करके नित्य सुख [illegible] अबाधसिद्धि (मुक्ति) को प्राप्त हो चुके हैं।

शुकदेवजीको सनत्कुमारका उपदेश

सनत्कुमारजी कहते हैं—शुकदेव! शास्त्र शोकको दूर करनेवाला है। वह शान्तिकारक तथा कल्याणमय है। अपने शोकका नाश करनेके लिये शास्त्रका श्रवण करनेसे उत्तम बुद्धि प्राप्त होती है। उसके मिलनेपर मनुष्य सुखी एवं अभ्युदयशील होता है। शोकके हजारों और भयके सैकड़ों स्थान हैं। वे प्रतिदिन मूढ मनुष्यपर ही अपना प्रभाव डालते हैं। विद्वान् पुरुषपर उनका जोर नहीं चलता*। अल्प बुद्धिवाले मनुष्य ही अप्रिय वस्तुके संयोग और प्रिय वस्तुके वियोगसे मन-ही-मन दुखी होते हैं। जो वस्तु भूतकालके गर्भमें छिप गयी (नष्ट हो गयी), उसके गुणोंका स्मरण नहीं करना चाहिये; क्योंकि जो आदरपूर्वक उसके गुणोंका चिन्तन करता है, वह उसकी आसक्तिके बन्धनसे मुक्त नहीं हो पाता। जहाँ चित्तकी आसक्ति बढ़ने लगे, वहीं दोषदृष्टि करनी चाहिये और उसे अनिष्टकी [illegible] समझना चाहिये। ऐसा करनेपर उसका शीघ्र ही [illegible] हो जाता है। जो बीती बातके लिये शोक करता है, [illegible] अर्थ और यशकी प्राप्ति नहीं होती। वह [illegible] दुःखमात्र उठाता है। उससे अभाव दूर नहीं होता। सभी प्राणियोंको उत्तम पदार्थोंसे संयोग और वियोग प्राप्त हो[illegible] रहते हैं। किसी एकपर ही यह शोकका अवसर नहीं [illegible]। जो मनुष्य भूतकालमें मरे हुए किसी [illegible] हुई किसी वस्तुके लिये निरन्तर शोक करता है, [illegible] दुःखसे दूसरे दुःखको प्राप्त होता है। इस प्रकार [illegible] अनर्थ भोगने पड़ते हैं। यदि कोई [illegible] दुःख उपस्थित हो जाय तथा उसे दूर करनेमें कोई [illegible] काम न दे सके, तो उसके लिये चिन्ता न करनी चाहिये। दुःख दूर करनेकी [illegible]

* शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम्॥
(ना० पूर्व० ६१।२)

बार-बार चिन्तन न किया जाय। चिन्तन करनेसे वह घटता नहीं, बल्कि और बढ़ता ही जाता है। इसलिये मानसिक दुःखको बुद्धिके विचारसे और शारीरिक कष्टको औषध-सेवनद्वारा नष्ट करना चाहिये। शास्त्रज्ञानके प्रभावसे ही ऐसा होना सम्भव है। दुःख पड़नेपर बालकोंकी तरह रोना उचित नहीं है। रूप, यौवन, जीवन, धन-संग्रह, आरोग्य तथा प्रियजनोंका सहवास—ये सब अनित्य हैं। विद्वान् पुरुषको इनमें आसक्त नहीं होना चाहिये। आये हुए संकटके लिये शोक करना उचित नहीं है। यदि उस संकटको टालनेका कोई उपाय दिखलायी दे तो शोक छोड़कर उसे ही करना चाहिये। इसमें संदेह नहीं कि जीवनमें सुखकी अपेक्षा दुःख ही अधिक होता है तथापि जरा और मृत्युके दुःख महान् हैं, अतः उनसे अपने प्रिय आत्माका उद्धार करे। शारीरिक और मानसिक रोग सुदृढ़ धनुष धारण करनेवाले वीर पुरुषके छोड़े हुए तीखी धारवाले बाणोंकी तरह शरीरको पीड़ित करते हैं। तृष्णासे व्यथित, दुखी एवं विवश होकर जीनेकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यका नाशवान् शरीर क्षण-क्षणमें विनाशको प्राप्त हो रहा है। जैसे नदियोंका प्रवाह आगेकी ओर ही बढ़ता जाता है, पीछेकी ओर नहीं लौटता, उसी प्रकार रात और दिन भी मनुष्योंकी आयुका अपहरण करते हुए एक-एक करके बीतते चले जा रहे हैं। यदि जीवके किये हुए कर्मोंका फल पराधीन न होता तो वह जो चाहता, उसकी वही कामना पूरी हो जाती। बड़े-बड़े संयमी, चतुर और बुद्धिमान् मनुष्य भी अपने कर्मोंके फलसे वञ्चित होते देखे जाते हैं तथा गुणहीन, मूर्ख और नीच पुरुष भी किसीके आशीर्वाद बिना ही समस्त कामनाओंसे सम्पन्न दिखायी देते हैं। कोई-कोई मनुष्य तो सदा प्राणियोंकी हिंसामें ही लगा रहता है और संसारको धोखा दिया करता है, किंतु कहीं-कहीं ऐसा पुरुष भी सुखी देखा जाता है। कितने ही ऐसे हैं, जो कोई काम न करके चुपचाप बैठे रहते हैं, फिर भी उनके पास लक्ष्मी अपने-आप पहुँच जाती है और कुछ लोग बहुत-से कार्य करते हैं, फिर भी मनचाही वस्तु नहीं पाते। इसमें पुरुषका प्रारब्ध ही प्रधान है। देखो, वीर्य अन्यत्र पैदा होता है और अन्यत्र जाकर संतान उत्पन्न करता है। कभी तो वह योनिमें पहुँचकर गर्भ धारण करानेमें समर्थ होता है और कभी नहीं होता। कितने ही लोग पुत्र-पौत्रकी इच्छा रखकर उसकी सिद्धिके लिये यत्न करते रहते हैं, तो भी उनके संतान नहीं होती और कितने ही मनुष्य संतानको क्रोधमें भरा हुआ साँप समझकर सदा उससे डरते रहते हैं तो भी उनके यहाँ दीर्घजीवी पुत्र उत्पन्न हो जाता है, मानो वह स्वयं किसी प्रकार परलोकसे आकर प्रकट हो गया हो। कितने ही गर्भ ऐसे हैं, जो पुत्रकी अभिलाषा रखनेवाले दीन स्त्री-पुरुषों-द्वारा देवताओंकी पूजा और तपस्या करके प्राप्त किये जाते हैं और दस महीनेतक माताके उदरमें धारण किये जानेके बाद जन्म लेनेपर कुलाङ्गार निकल जाते हैं। उन्हीं माङ्गलिक कृत्योंसे प्राप्त हुए बहुत-से ऐसे पुत्र हैं, जो जन्म लेनेके साथ ही पिताके संचित किये हुए अपार धन-धान्य और विपुल भोगोंके अधिकारी होते हैं। (इन सबमें प्रारब्ध ही प्रधान है।)

जो सुख और दुःख दोनोंकी चिन्ता छोड़ देता है, वह अविनाशी ब्रह्मको प्राप्त होता है और परमानन्दका अनुभव करता है। धनके उपार्जनमें बड़ा कष्ट होता है, उसकी रक्षामें भी सुख नहीं है तथा उसके खर्च करनेमें भी क्लेश ही होता है, अतः धनको प्रत्येक दशामें दुःखदायक समझकर उसके नष्ट होनेपर चिन्ता नहीं करनी चाहिये। मनुष्य धनका संग्रह करते-करते पहलेकी अपेक्षा ऊँची स्थितिको प्राप्त करके भी कभी तृप्त नहीं होते, वे और अधिक धन कमानेकी आशा लिये हुए ही मर जाते हैं। इसलिये विद्वान् पुरुष सदा संतुष्ट रहते हैं (वे धनकी तृष्णामें नहीं पड़ते)। संग्रहका अन्त है विनाश, सांसारिक ऐश्वर्यकी उन्नतिका अन्त है उस ऐश्वर्यकी अवनति। संयोगका अन्त है वियोग और जीवनका अन्त है मरण। तृष्णाका कभी अन्त नहीं होता। संतोष ही परम सुख है। अतः पण्डितजन इस लोकमें संतोषको ही उत्तम धन कहते हैं। आयु निरन्तर बीती जा रही है। वह पलभर भी विश्राम नहीं लेती। जब अपना शरीर ही अनित्य है, तब इस संसारकी दूसरी किस वस्तुको नित्य समझा जाय। जो मनुष्य सब प्राणियोंके भीतर मनसे परे परमात्माकी स्थिति जानकर उन्हींका चिन्तन करते हैं, वे संसारयात्रा समाप्त होनेपर परमपदका साक्षात्कार करते हुए शोकके पार हो जाते हैं।

जैसे वनमें नयी-नयी घासकी खोजमें विचरते हुए अतृप्त पशुको सहसा व्याघ्र आकर दबोच लेता है, उसी प्रकार भोगोंकी खोजमें लगे हुए अतृप्त मनुष्यको मृत्यु उठा ले जाती है। इसलिये इस दुःखसे छुटकारा पानेका उपाय अवश्य सोचना चाहिये। जो शोक छोड़कर साधन आरम्भ

करता है और किसी व्यसनमें आसक्त नहीं होता, उसकी मुक्ति हो जाती है। धनी हो या निर्धन, सबको उपभोगकालमें ही शब्द, स्पर्श, रूप, रस और उत्तम गन्ध आदि विषयोंमें किञ्चित् सुखका अनुभव होता है। उपभोगके पश्चात उनमें कुछ नहीं रहता। प्राणियोंको एक-दूसरेसे संयोग होनेके पहले कोई दुःख नहीं होता। जब संयोगके बाद प्रियका वियोग होता है तभी सबको दुःख हुआ करता है; अतः विवेकी पुरुषको अपने स्वरूपमें स्थित होकर कभी भी शोक नहीं करना चाहिये। धैर्यके द्वारा शिश्न और उदरकी, नेत्रद्वारा हाथ और पैरकी, मनके द्वारा आँख और कानकी तथा सद्विद्याके द्वारा मन और वाणीकी रक्षा करनी चाहिये। जो पूजनीय तथा अन्य मनुष्योंमें आसक्ति हटाकर शान्त-भावसे विचरण करता है, वही सुखी और वही विद्वान् है। जो अध्यात्म-विद्यामें अनुरक्त, निष्काम तथा भोगासक्तिसे दूर है और सदा अकेला ही [illegible] होता है। जब मनुष्य [illegible] समझने लगता है [illegible] पुरुषार्थ भी उसकी [illegible] ज्ञानप्राप्तिके लिये व्यग्रचित्त [illegible] यत्न करनेवाला पुरुष कभी [illegible]।

सनन्दनजी कहते हैं—[illegible] पढ़कर उनकी अनुमति [illegible] महामुनि [illegible] सादर पूजित हो वहाँसे चल दिये। [illegible] भी अपनी स्वरूपस्थितिको [illegible] अनुसंधान करनेके लिये उत्सुक [illegible] पितासे मिलकर महामुनि शुकने उनको [illegible] उनकी परिक्रमा करके वे कैलासपर्वतको [illegible]।

श्रीशुकदेवजीकी ऊर्ध्वगति, श्वेतद्वीप तथा वैकुण्ठधाममें जाकर शुकदेवजीके द्वारा भगवान् विष्णुकी स्तुति और भगवान्‌की आज्ञासे शुकदेवजीका व्यासजीके पास आकर भागवतशास्त्र पढ़ना

सनन्दनजीने कहा—देवर्षे! कैलास-पर्वतपर जाकर सूर्यके उदय होनेपर विद्वान् शुकदेव हाथ-पैरोंको यथोचित रीतिसे रखकर विनीतभावसे पूर्वकी ओर मुँह करके बैठे और योगमें लग गये। उस समय उन्होंने सब प्रकारके सङ्गोंसे रहित परमात्माका दर्शन किया। यों उस परमात्माका साक्षात्कार करके शुकदेवजी खूब खुलकर हँसे। फिर वे वायुके समान आकाशमें विचरने लगे। उस समय उनका तेज उदयकालीन अरुणके समान प्रकाशित हो रहा था। वे मन और वायुके समान आगे बढ़ रहे थे। उस समय सबने अपनी शक्ति तथा रीति-नीतिके अनुसार उनका पूजन किया। देवताओंने उनपर दिव्य पुष्पोंकी वर्षा की। उन्हें इस प्रकार ऊपर उठते देख गन्धर्व, अप्सरा, महर्षि तथा सिद्धगण सब आश्चर्यसे चकित हो उठे। तत्पश्चात् वे नित्य निर्गुण एवं लिङ्गरहित ब्रह्मपदमें स्थित हो गये। उस समय उनका तेज धूमरहित अग्निकी भाँति उद्दीप्त हो रहा था। आगे बढ़नेपर शुकदेवजीने पर्वतके दो अनुपम शिखर देखे, जिनमें एक तो हिमालयके समान श्वेत तथा दूसरा मेरुके समान पीतवर्ण था। एक रजतमय था और दूसरा सुवर्णमय। दोनों एक दूसरेसे सटे हुए और सुन्दर थे। नारद! इनका विस्तार ऊपरकी ओर तथा अगल-बगलमें सौ-सौ योजनका था। शुकदेवजी दोनों शिखरोंके बीचमें सहसा आगे निकल गये। वह श्रेष्ठ पर्वत उनकी गतिको रोक न सका। उस समय शुकदेवजी वायुलोकसे ऊपर अन्तरिक्षमें यात्रा करते हुए अपना प्रभाव दिखाकर सर्वस्वरूप हो सम्पूर्ण लोकोंमें विचरण करने लगे। परम योगेश्वर शुकदेवजी [illegible] जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने पहले भगवान् [illegible] प्रभाव देखा। तत्पश्चात् जिन्हें वेदकी श्रुतियाँ भी [illegible] फिरती हैं, उन देवाधिदेव जनार्दनका साक्षात् दर्शन किया। दर्शनके अनन्तर शुकदेवजीने भगवान्‌की स्तुति की। [illegible] उनकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान् बोले।

श्रीभगवान्‌ने कहा—योगीन्द्र! [illegible] के लिये भी अदृश्य होकर रहता हूँ, फिर भी तुमने [illegible] दर्शन कर लिया है। ब्रह्मचारी शुक! तुम [illegible] बताये हुए योगके द्वारा सिद्ध हो चुके हो। [illegible] मार्गमें स्थित होकर इच्छानुसार सम्पूर्ण लोकोंमें [illegible]।

विप्रवर! भगवान् वासुदेवका [illegible] उन्हें प्रणाम करके अखिलविश्ववन्दित [illegible] नारद! वैकुण्ठलोक विशाल [illegible] है। उसे विरजा नामकी दिव्य नदी [illegible] रक्खा है। उस दिव्य धामके [illegible] लोक प्रकाशित हो रहे हैं। वहाँ [illegible] बनी हैं, जो [illegible] मूँगेके बने हुए हैं, जिनमें सुवर्ण [illegible] [illegible] निर्मल [illegible] चार भुजाधारी होते हैं। [illegible] शोभा बढ़ाते हैं। [illegible] हैं। उनकी [illegible] उनमेंसे किसीने नहीं [illegible]।

गये। वहाँ उन्होंने सिद्ध-समुदायके द्वारा निरन्तर सेवित देवाधिदेव भगवान् विष्णुका दर्शन किया। उनके चार भुजाएँ थीं। वे शान्त एवं प्रसन्नमुख दिखायी देते थे। उनके श्रीअङ्गोंपर रेशमी पीताम्बर शोभा पा रहा था। शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म मूर्तिमान् होकर भगवान्‌की सेवामें उपस्थित थे। उनके वक्षःस्थलमें भगवती लक्ष्मी विराज रही थीं और कौस्तुभमणिसे वे प्रकाशित हो रहे थे। उनके कटिभागमें करधनी, बायें कंधेपर यज्ञोपवीत, हाथोंमें कड़े तथा भुजाओंमें अङ्गद सुशोभित थे। माथेपर मण्डलाकार किरीट और चरणोंमें नूपुर शोभा दे रहे थे। भगवान् मधुसूदनका दर्शन करके शुकदेवने भक्तिभावसे उनकी स्तुति की।

शुकदेवजी बोले—सम्पूर्ण लोकोंके एकमात्र साक्षी आप भगवान् वासुदेवको नमस्कार है। सम्पूर्ण जगत्‌के बीज-स्वरूप, सर्वत्र परिपूर्ण एवं निश्चल आत्मरूप आपको नमस्कार है। वासुकि नागकी शय्यापर शयन करनेवाले श्वेतद्वीपनिवासी श्रीहरिको नमस्कार है। आप हंस, मत्स्य, वाराह तथा नरसिंहरूप धारण करनेवाले हैं। ध्रुवके आराध्यदेव भी आप ही हैं। आप सांख्य और योग दोनोंके स्वामी हैं। आपको नमस्कार है। चारों सनकादि आपके ही अवतार हैं। आपने ही कच्छप और पृथुरूप धारण किया है। आत्मानन्द ही आपका स्वरूप है। आप ही नाभिपुत्र ऋषभदेवजीके रूपमें प्रकट हुए हैं। जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले आप ही हैं। आपको नमस्कार है। भृगुनन्दन परशुराम, रघुनन्दन श्रीराम, परात्पर श्रीकृष्ण, वेदव्यास, बुद्ध तथा कल्कि भी आपके ही स्वरूप हैं। आपको नमस्कार है। कृष्ण, बलभद्र, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इन चार व्यूहोंके रूपमें आप ही विराज रहे हैं। जानने और चिन्तन करनेयोग्य परमात्मा भी आप ही हैं। नर-नारायण, शिपिविष्ट तथा विष्णु नामसे प्रसिद्ध आपको नमस्कार है। सत्य ही आपका धाम है। आप धामरहित हैं। गरुड आपके ही स्वरूप हैं। आप स्वयंप्रकाश, ऋभु (देवता), उत्तम व्रतका पालन करनेके लिये विख्यात, उत्कृष्ट धामवाले और अजित् हैं। आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण विश्व आपका स्वरूप है। आप ही विश्वरूपमें प्रकट हैं। सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले भी आप ही हैं। यज्ञ और उसके भोक्ता, स्थूल और सूक्ष्म तथा याचना करनेवाले वामनरूप आपको नमस्कार है। सूर्य और चन्द्रमा आपके नेत्र हैं। साहस, ओज और बल आपसे भिन्न नहीं हैं। आप यज्ञोंद्वारा यजन करने योग्य, साक्षी, अजन्मा तथा अनेक हाथ, पैर और मस्तकवाले हैं। आपको नमस्कार है। आप लक्ष्मीके स्वामी, उनके निवासस्थान तथा भक्तोंके अधीन रहनेवाले हैं। आप शार्ङ्गनामक धनुष धारण करते हैं। आठ* प्रकृतियोंके अधिपति, ब्रह्मा तथा अनन्त शक्तियोंसे सम्पन्न आप परमेश्वरको नमस्कार है। बृहदारण्यक उपनिषद्‌के द्वारा आपके तत्त्वका बोध होता है। आप इन्द्रियोंके प्रेरक तथा जगत्स्रष्टा ब्रह्मा हैं। आपके नेत्र विकसित कमलके समान हैं। क्षेत्रज्ञके रूपमें आप ही प्रकाशित हो रहे हैं। आपको नमस्कार है। गोविन्द, जगत्कर्ता, जगन्नाथ, योगी, सत्य, सत्यप्रतिज्ञ, वैकुण्ठ और अच्युतरूप आपको नमस्कार है। अधोक्षज, धर्म, वामन, त्रिधातु, तेजःपुञ्ज धारण करनेवाले, विष्णु, अनन्त एवं कपिलरूप आपको नमस्कार है। आप ही विरिञ्चि नामसे प्रसिद्ध ब्रह्माजी हैं। तीन शिखरोंवाला त्रिकूट पर्वत आपका ही स्वरूप है। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद आपके अभिन्न विग्रह हैं। एक सींगवाले शृङ्गी ऋषि भी आपकी ही विभूति हैं। आपका यश परम पवित्र है तथा सम्पूर्ण वेद-शास्त्र आपसे ही प्रकट हुए हैं। आपको नमस्कार है। आप वृषाकपि (धर्मको अविचल रूपसे स्थापित करनेवाले विष्णु, शिव और इन्द्र) हैं। सम्पूर्ण समृद्धियोंसे सम्पन्न तथा प्रभु-सर्वशक्तिमान् हैं। यह सम्पूर्ण विश्व आपकी ही रचना है। भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक आपके ही स्वरूप हैं। आप दैत्योंका नाश करनेवाले तथा निर्गुण रूप हैं। आपको नमस्कार है। आप निरञ्जन, नित्य, अव्यय और अक्षररूप

* गीताके अनुसार आठ प्रकृतियोंके नाम इस प्रकार हैं—भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा अहङ्कार।

तृतीय पाद

शैवदर्शन* के अनुसार पति, पशु एवं पाश आदिका वर्णन तथा दीक्षाकी महत्ता

शौनकजी बोले—साधु सूतजी ! आप सम्पूर्ण शास्त्रोंके विज्ञ पण्डित हैं । विद्वन् ! आपने हमलोगोंको श्रीकृष्ण-कथारूपी अमृतका पान कराया है । भगवान्‌के प्रेमी भक्त देवर्षि नारदजीने सनन्दनके मुखसे मोक्षधर्मोंका वर्णन सुनकर पुनः क्या पूछा ? ब्रह्माजीके मानस-पुत्र सनकादि मुनीश्वर उत्तम सिद्धपुरुष हैं । वे लोगोंके उद्धारमें तत्पर होकर सम्पूर्ण जगत्‌में विचरते रहते हैं । महाभाग ! श्रीनारदजी भी सदा श्रीकृष्णके भजनमें संलग्न रहते हैं और उन्हींके शरणागत भक्त हैं । उन सनकादि और नारदका समागम होनेपर सम्पूर्ण लोकोंको पवित्र करनेवाली कौन-सी कल्याणमयी कथा हुई, यह बतानेकी कृपा करें ?

सूतजीने कहा—भृगुश्रेष्ठ ! सनन्दनजीके द्वारा प्रतिपादित सनातन मोक्षधर्मोंका वर्णन सुनकर नारदजीने पुनः उन मुनियोंसे पूछा ।

नारदजी बोले—मुनीश्वरो ! किन मन्त्रोंसे भगवान् विष्णुकी आराधना की जानी चाहिये । श्रीविष्णुके चरणारविन्दोंकी शरण लेनेवाले भक्तजनोंको किन देवताओंकी पूजा करनी चाहिये । विप्रवरो ! भागवततन्त्रका तथा गुरु और शिष्यके सम्बन्धको स्थापित करके उन्हें अपने-अपने कर्तव्यके पालनकी प्रेरणा देनेवाली दीक्षाका वर्णन कीजिये । तथा साधकोंद्वारा पालन करने योग्य प्रातःकाल आदिके जो-जो कृत्य हों, उन सबको भी हमें बताइये । जिन महीनोंमें जप, होम आदि जिन-जिन कर्मोंके अनुष्ठानसे परमात्मा श्रीहरि प्रसन्न होते हैं, उनका आपलोग मुझसे वर्णन करें ।

सूतजी कहते हैं—महात्मा नारदका यह वचन सुनकर सनत्कुमारजी बोले ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—नारद ! सुनो, मैं तुमसे भागवततन्त्रका वर्णन करूँगा । जिसे जानकर साधक निर्मल भक्तिके द्वारा अविनाशी भगवान् विष्णुको प्राप्त कर लेता है । (अब पहले शैवतन्त्रका वर्णन करते हैं ।) शैव-महातन्त्रमें तीन पदार्थ और चार पादोंका वर्णन है, ऐसा विद्वान् पुरुष कहते हैं । भोग, मोक्ष, क्रिया और चर्या—ये शैवमहातन्त्रमें चार पाद (साधन) कहे गये हैं । पदार्थ तीन ही हैं—पशुपति, पशु तथा पाश; इनमें एकमात्र शिवस्वरूप परमात्मा ही 'पशुपति' हैं और जीवोंको 'पशु' कहा गया है । नारद ! देखो, जबतक स्वरूपके अज्ञानको सूचित करनेवाले मोह आदिसे सम्बन्ध बना रहता है, तबतक इन सब जीवोंकी 'पशु' संज्ञा मानी गयी है । उनका पशुत्व द्वैतभावसे युक्त है । इन पशुओंके जो पाश अर्थात् बन्धन हैं, वे पाँच प्रकारके माने गये हैं । उनमेंसे प्रत्येकका लक्षण बताया जायगा । पशुके तीन भेद हैं—'विज्ञानाकल', 'प्रलयाकल' और 'सकल' । इनमें प्रथम अर्थात् 'विज्ञानाकल पशु'

---

* 'शैव-महातन्त्र'के 'शैवागम', 'शैवदर्शन' तथा 'पाशुपत-दर्शन' आदि अनेक नाम हैं । इस अध्यायमें इसीके निगूढ़ तत्त्वोंका विशद विवेचन किया गया है । यहाँ भूमिकारूपसे उक्त दर्शनकी कुछ मोटी-मोटी बातें प्रस्तुत की जाती हैं, जिनसे पाशुपतसिद्धान्त और इस अध्यायमें वर्णित विषयको हृदयङ्गम करनेमें सुविधा होगी । शैवागमके अनुसार तीन पदार्थ (पशु, पाश तथा पशुपति) और चार पाद या साधन (विद्या, क्रिया, योग तथा चर्या) हैं । जैसा कि तन्त्र-तत्त्वज्ञोंका कथन है—'त्रिपदार्थं चतुष्पादं महातन्त्रम् '

गुरुसे नियमपूर्वक मन्त्रोपदेश लेनेको दीक्षा कहते हैं । यह दीक्षा मन्त्र, मन्त्रेश्वर और विद्येश्वर आदि पशुओंके ज्ञानके विना नहीं हो सकती । इसी ज्ञानसे पशु, पाश तथा पशुपतिका ठीक-ठीक निर्णय होता है; अत. परमपुरुषार्थकी हेतुभूता दीक्षामें उपकारक उक्त ज्ञानका प्रतिपादन करनेवाले प्रथम पादका नाम 'विद्या' है । भिन्न-भिन्न अधिकारियोंके अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकारकी दीक्षा होती है । अतः अनेक प्रकारकी साङ्गोपाङ्ग दीक्षाओंके विधि-विधानका परिचय करानेवाले द्वितीय पादको 'क्रिया'पाद कहा गया है । परंतु यम, नियम, आसन आदि अष्टाङ्गयोगके विना अभीष्टप्राप्ति नहीं हो सकती, अत क्रियापादके पश्चात् 'योग' नामक तीसरे पादकी आवश्यकता समझकर उसका प्रतिपादन किया गया है । योगकी सिद्धि भी तभी होती है, जब शास्त्रविहित कर्मोंका अनुष्ठान और निषिद्ध कर्मोंका सर्वथा त्याग हो, अतः इन सब कर्मोंके प्रतिपादक 'चर्या' नामक चतुर्थ पादका वर्णन है ।

'मल' संयुक्त (मलरूप पाशसे आबद्ध) होता है। दूसरा 'प्रलयाकल पशु' 'मल' और 'कर्म'—इन दो पाशोंसे संयुक्त (बद्ध) होता है। तीसरा अर्थात् 'सकल पशु' 'मल', 'माया' तथा 'कर्म'—इन तीन पाशोंसे बँधा हुआ कहा गया है। उक्त त्रिविध पशुओंमें जो पहला—विज्ञानाकल है, उसके दो भेद होते हैं—'समाप्त-कलुष' और 'असमाप्त-कलुष'। दूसरे—प्रलयाकल पशुके भी दो भेद कहे गये हैं—'पक्व-मल' और 'अपक्व-मल' (अर्थात् पक्वपाशद्वय और अपक्वपाशद्वय)। विज्ञानाकल और प्रलयाकल ये दोनों जीव (पशु) शुद्ध मार्गपर स्थित होते हैं और सकल जीव कला आदि तत्त्वोंके अधीन होकर विभिन्न लोकोंमें कर्मानुसार प्राप्त हुए तिर्यक्-मनुष्यादि शरीरोंमें भ्रमण करता है। पाश पाँच प्रकारके बताये गये हैं—'मलज', 'कर्मज', 'मायेय' (मायाजन्य), 'तिरोधानशक्तिज' और 'विन्दुज'। जैसे भूसी चावलको ढके रहती है, उसी प्रकार एक भी 'मल' पुरुषकी अनेक शक्ति—दृक्-शक्ति (ज्ञान) और क्रियाशक्तिका आच्छादन कर लेता है और वही जीवात्माओंके लिये देहान्तरकी प्राप्तिमें कारण होता है। धर्म और अधर्मका नाम है कर्म, जो विचित्र फल-भोग प्रदान करनेवाला है। यह 'कर्म' प्रवाहरूपसे नित्य है। बीजाङ्कुरन्यायसे इसकी स्थिति अनादि मानी गयी है। इस प्रकार ये प्रथम दो (मलज और कर्मज) पाश बताये गये। ब्रह्मन्! अब 'मायेय' आदि पाशोंका वर्णन सुनो।

('विन्दुज पाश' अपरमुक्ति-स्वरूप है और शिव-स्वरूपकी प्राप्ति करानेवाला है, उसका स्वरूप यह है—) सत्, चित् और आनन्द जिनका स्वरूपभूत वैभव है, वे एकमात्र सर्वव्यापी सनातन परमात्मा ही सबके कारण तथा सम्पूर्ण जीवोंके पतिरूपसे विराज रहे हैं। जो मनमें तो आता है किंतु प्रकट नहीं होता और संसारसे निवृत्ति (वैराग्य) प्रदान करता है; तथा दृक्-शक्ति और क्रियाशक्तिके रूपमें जो स्वयं ही विद्यमान है, वह उत्कृष्ट शैव तेज है। इसके सिवा, जिस शक्तिसे समर्थ होकर जीव परमात्माके समीप दिव्य भोगसे

पति या पशुपति

करने, न करने और अन्यथा करनेमें समर्थ, नित्य, निर्गुण, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, सर्वथा स्वतन्त्र, परम सर्वज्ञ, परम ऐश्वर्य-स्वरूप, नित्यमुक्त, नित्य-निर्मल, निरतिशय ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिसे सम्पन्न तथा सबपर अनुग्रह करनेवाले भगवान् महेश्वर परम शिव ही पति या पशुपति हैं। महेश्वरके पाँच कृत्य हैं—सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव तथा अनुग्रह। यद्यपि विद्येश्वर इत्यादि मुक्त जीव भी शिवभावको प्राप्त हो जाते हैं, किंतु ये सब स्वतन्त्र नहीं होते, अपितु परमेश्वरके अधीन रहते हैं। उपासनाके लिये जहाँ परमेश्वर शिवके साकार रूपका वर्णन है, वहाँ भी उनका शरीर प्राकृत नहीं है। वह निर्मल तथा कर्मादि बन्धनोंसे निर्मुक्त होनेके कारण शाक्त (शक्तिस्वरूप एवं चिन्मय) है। उपनिषदोंमें महेश्वरके मन्त्रमय स्वरूपका वर्णन है। शैवदर्शनमें यह बात स्पष्ट शब्दोंमें कही गयी है—'मलाद्यसम्भवाच्छाक्तं वपुर्नैतादृशं प्रभोः।' 'तद्वपुः पञ्चभिर्मन्त्रैः।' इत्यादि।

पशु

जीवात्मा या क्षेत्रज्ञका ही नाम 'पशु' है। पशु उसे कहते हैं जो पाशोंद्वारा बँधा हो—'पाशनाच्च पशवः।' जीव भी पाशबद्ध है, इसीसे उसे पशु कहते हैं। वह वस्तुतः अणु नहीं, व्यापक है। नित्य है। 'आत्मनो विभुनित्यता' यह शैवतन्त्रकी स्पष्ट घोषणा है; परंतु पशु (जीव) दशामें यह परिच्छिन्न और सीमित शक्तिसे युक्त है, तथापि यह 'सांख्य'के पुरुषकी भाँति अकर्ता भी नहीं है; क्योंकि पाशोंसे मुक्त होकर शिवत्वको प्राप्त हो जानेपर यह भी निरतिशय ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिसे सम्पन्न हो जाता है। पशु तीन प्रकारका है—'विज्ञानाकल', 'प्रलयाकल' तथा 'सकल'। (१) जो परमात्माके स्वरूपको पहचानकर जप, ध्यान तथा सन्यासद्वारा अथवा भोगद्वारा कर्मोंका क्षय कर डालता है और कर्मोंका क्षय हो जानेके कारण जिसको शरीर और इन्द्रिय आदिका कोई बन्धन नहीं रहता, उसमें केवल मलरूपी पाश (बन्धन) रह जाता है, उसे 'विज्ञानाकल' कहते हैं। मल तीन प्रकारके होते हैं, आणव-मल, कर्मज-मल तथा मायेय मल। विज्ञानाकलमें केवल आणव मल रहता है। वह विज्ञान (तत्त्वज्ञान) द्वारा अकल—कलारहित (कलादि भोग-बन्धनोंसे शून्य) हो जाता है, इसलिये उसकी 'विज्ञानाकल' संज्ञा होती है। (२) जिस जीवात्माके देह, इन्द्रिय आदि प्रलयकालमें लीन हो जाते हैं, इससे उसमें मायेय मल तो नहीं रहता, परंतु आणव और कर्म—ये दो मलरूपी पाश (बन्धन) रह जाते हैं, वह प्रलयकालमें ही अकल (कलारहित) होनेके कारण 'प्रलयाकल' कहलाता है। (३) जिस जीवात्मामें आणव, मायेय और कर्मज—तीनों मल (पाश) रहते हैं, वह कला आदि भोग-बन्धनोंसे युक्त होनेके कारण 'सकल' कहा गया है।

सम्पन्न होता और पशु-समुदायकी कोटिसे सदाके लिये मुक्त हो जाता है; परमात्माकी उस एकान्तस्वरूपा आद्या शक्तिको चिद्रूपा कहते हैं। उस चिद्रूपा शक्तिसे उत्कर्षको प्राप्त हुआ 'बिन्दु' दृक् (ज्ञान) और क्रिया-स्वरूप होकर शिव-नामसे प्रतिपादित होता है, उसीको सम्पूर्ण तत्त्वोंका कारण बताया गया है। वह सर्वत्र व्यापक तथा अविनाशी है। उसीमें संनिहित हुई इच्छा आदि सम्पूर्ण शक्तियाँ उसके सकाशसे अपना-अपना कार्य करती हैं। मुने! इसलिये यह सबपर अनुग्रह करनेवाला है। जड और चेतनपर अनुग्रह करनेके लिये विश्वकी सृष्टि करते समय इसका प्रथम उन्मेष नादके रूपमें हुआ है, जो शान्ति आदिसे युक्त तथा भुवन-स्वरूप है। विप्रवर! वह शक्ति-तत्त्व सावयव बताया गया है। इससे ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिका तथा उत्कर्ष और अपकर्षका प्रसार एवं अभाव होता है; अतः यह तत्त्व सदा शिवरूप है। जहाँ दृक्-शक्ति तिरोहित होती है और क्रियाशक्ति बढ जाती है, वह ईश्वर नामक तत्त्व कहा गया है; जो समस्त मनोरथोंका साधक है, जहाँ क्रियाशक्तिका तिरोभाव और ज्ञानशक्तिका उद्रेक होता है, वह विद्यातत्त्व कहलाता है। जो ज्ञानस्वरूप एव प्रकाशक है। नाद, बिन्दु और सकल—ये सत्-नामक तत्त्वके आश्रित हैं। आठ विद्येश्वरगण ईशतत्त्वके और सात करोड 'मन्त्र' गण विद्यातत्त्वके आश्रित हैं। ये सब तत्त्व शुद्धमार्गके नामसे कहे गये हैं। यहाँ ईश्वर साक्षात् निमित्त कारण हैं। वे ही बिन्दु-रूपसे सुशोभित हो यहाँ उपादानकारण बनते हैं। पाँच प्रकारके जो पाश हैं, उनका कोई समय न होनेके कारण उनका कोई निश्चित क्रम नहीं है; उनका व्यापार देखकर ही उनकी कल्पना की जाती है। वास्तवमें विचित्र शक्तियोंसे युक्त एक ही शिव नामक तत्त्व विराजमान है। वह शक्तियुक्त होनेसे 'शाक्त' कहा गया है। अन्तःकरणकी वृत्तियोंके भेदसे ही अनेक प्रकारकी कल्पनाएँ की गयी हैं, प्रभु शिव जड-चेतन-पर अनुग्रह करनेके लिये विविध रूप धारण करके अनादि मलसे आबद्ध जीवोंपर कृपा करते हैं। सबपर दया करने-वाले शिव सम्पूर्ण जीवोंको, भोग-और मोक्ष तथा जडवर्गको अपने व्यापारमें लगनेकी शक्ति-सामर्थ्य देते हैं। भगवान् शिवके समान रूपका हो जाना ही मोक्ष है, यही चेतन जीवों-पर ईश्वरका अनुग्रह है! कर्म अनादि होनेके कारण सदा वर्तमान रहते हैं; अतः उनका भोग किये बिना भी भगवत्कृपासे मोक्ष हो जाता है। इसीलिये भगवान् शङ्करको अनुग्राहक (कृपा करनेवाला) कहा गया है। अविनाशी प्रभु जीवोंके भोगके लिये सूक्ष्म करणोद्वारा अनायास ही जगत्‌की उत्पत्ति करते हैं। कोई भी कर्ता किसी भी कार्यमें उपादान और करणोंके बिना नहीं देखा जाता।

(अब 'मायापाश' का प्रसङ्ग है—)यहाँ शक्तियाँ ही करण हैं। मायाको उपादान माना गया है। वह नित्य, एक और कल्याणमयी है। उसका न आदि है न अन्त; वह माया अपनी शक्तिद्वारा मनुष्यों और लोकोंकी उत्पत्तिका सामान्य कारण है। माया अपने कर्मोंद्वारा स्वभावतः मोहजनक होती है। उससे भिन्न 'परा माया' है, जो सूक्ष्म एव व्यापक है। इन विकारयुक्त कार्योंसे वह सर्वथा परे मानी गयी है। विद्या-के स्वामी भगवान् शिव जीवके कर्मोको देखकर अपनी शक्तियोंसे मायाको क्षोभमें डालते और जीवोंके भोगके लिये मायाके द्वारा

विज्ञानाकल पशु (जीव) के भी दो भेद हैं—'समाप्त-कलुष' और 'असमाप्त-कलुष'। (१) जीवात्मा जो कर्म करता है, उस प्रत्येक कर्मकी तह मलपर जमती रहती है। इसी कारण उस मलका परिपाक नहीं होने पाता, किंतु जब कर्मोंका त्याग हो जाता है, तब तह न जमनेके कारण मलका परिपाक हो जाता है और जीवात्माके सारे कलुष समाप्त हो जाते हैं, इसीलिये वह 'समाप्त-कलुष' कहलाता है। ऐसे जीवात्माओंको भगवान् आठ प्रकारके 'विद्येश्वर' पदपर पहुँचा देते हैं, उनके नाम ये हैं—

'अनन्तश्चैव सूक्ष्मश्च तथैव च शिवोत्तमः। एकनेत्रस्तथैवैकरुद्रश्चापि त्रिमूर्तिकः॥
श्रीकण्ठश्च शिखण्डी च प्रोक्ता विद्येश्वरा इमे।'

(१) अनन्त, (२) सूक्ष्म, (३) शिवोत्तम, (४) एकनेत्र, (५) एकरुद्र, (६) त्रिमूर्ति, (७) श्रीकण्ठ और (८) शिखण्डी।

(२) 'असमाप्त-कलुष' वे हैं, जिनकी कलुषराशि अभी समाप्त नहीं हुई है। ऐसे जीवात्माओंको परमेश्वर 'मन्त्र' स्वरूप दे देता है। कर्म तथा शरीरसे रहित किंतु मलरूपी पाशमें बँधे हुए जीवात्मा ही मन्त्र हैं और इनकी संख्या ७ करोड है। ये सब अन्य जीवात्माओंपर अपनी कृपा करते रहते हैं। तत्त्व-प्रकाश नामक ग्रन्थमें उपर्युक्त विषयके संग्राहक श्लोक इस प्रकार हैं—

पशवस्त्रिविधाः प्रोक्ता विज्ञानप्रलयाकलौ सकलः। मलयुक्तस्तत्राद्यो मलकर्मयुतो द्वितीयः स्यात्।
मलमायाकर्मयुतः सकलस्तेषु द्विधा भवेदाद्यः। आद्यः समाप्तकलुषोऽसमाप्तकलुषो द्वितीयः स्यात्।
आद्याननुगृह्य शिवो विद्येशत्वे नियोजयत्यष्टौ। मन्त्रांश्च करोत्यपरान् ते चोक्ताः कोटयः सप्त॥

ही शरीर एवं इन्द्रियोंकी सृष्टि करते हैं। अनेक शक्तियोंसे सम्पन्न माया पहले कालतत्त्वकी सृष्टि करती है। भूत, भविष्य और वर्तमान जगत्‌का सकलन तथा लय करती है। तदनन्तर माया नियमन-शक्तिस्वरूपा नियतिकी सृष्टि करती है। यह सबको नियममें रखती है; इसलिये नियति कही गयी है। तत्पश्चात् सम्पूर्ण विश्वको मोहमें डालनेवाली आदि-अन्तरहित नित्या माया 'कला' तत्त्वको जन्म देती है; क्योंकि एक ओरसे मनुष्योंके मलकी कलना करके वह उनमें कर्तृत्व-शक्ति प्रकट करती है; इसीलिये इसका नाम कला है। यह कला ही 'काल' और 'नियति'के सहयोगसे पृथ्वीपर्यन्त अपना सारा व्यापार करती है। वही पुरुषको विषयोंका दर्शन अनुभव करानेके लिये प्रकाशस्वरूप 'विद्या'नामक तत्त्व उत्पन्न करती है। विद्या अपने कर्मसे ज्ञानशक्तिके आवरणका भेदन करके जीवात्माओंको विषयोंका दर्शन कराती है, इसलिये वह कारण मानी गयी है; क्योंकि वह विद्या भोग्य उत्पन्न करती है, जिससे पुरुष उद्बुद्धशक्ति होकर परम करणके द्वारा महत्-तत्त्व आदिको प्रेरित करके भोग्य, भोग और भोक्ताकी उद्भावना करता है। अतः वह विद्या परम करण है। भोक्ता पुरुषको भोग्य वस्तुकी प्रतीति करानेसे विद्याको 'करण' कहा गया है। बुद्धिके द्वारा जो चेतन-जीवको विषयका अनुभव होता है, उसीको 'भोग' कहते हैं। संक्षेपसे विषयाकारा बुद्धि ही सुख-दुःख आदिके रूपमें परिणत होती है। भोक्ताको भोग्य वस्तुका अनुभव अपने आप ही होता है। विद्या उसमें सहायकमात्र होती है। यद्यपि बुद्धि सूर्यकी भाँति प्रकाशमात्र करनेवाली है, तथापि कर्मरूप होनेके कारण उसमें स्वयं कर्तृत्व नहीं है। वह करणान्तरोंकी अपेक्षासे ही पुरुषको विषयोंका अनुभव करानेमें समर्थ होती है। पुरुष स्वयं ही करण आदिसे सम्बन्ध स्थापित करता और भोगोंकी उत्कण्ठासे स्वयं ही बुद्धि आदिको प्रेरित करता है। साथ ही उन बुद्धि आदिकी शुभाशुभ चेष्टाओंसे प्राप्त होनेवाले फलका उसीको भोग करना पड़ता है। इसलिये पुरुषका कर्तृत्व सिद्ध होता है। यदि उसमें कर्तृत्व न स्वीकार किया जाय तो उसके भोक्तृत्वका कथन भी व्यर्थ होता है। इसके सिवा, प्रधान पुरुषके द्वारा आचरित सब कर्म निष्फल हो जाता। यदि पुरुष करण आदिका प्रेरक न हो और उसमें कर्तृत्वका अभाव हो तो उसके द्वारा भोग भी असम्भव ही है। इसलिये पुरुष ही यहाँ प्रवर्तक है। उसका करण आदिका प्रेरक होना विद्याके द्वारा ही सम्भव माना गया है।

तदनन्तर कला दृढ़ वज्रलेपके सदृश रागको उत्पन्न करती है, जिससे उस वज्रलेप-रागयुक्त पुरुषमें भोग्य वस्तुके लिये क्रियाप्रवृत्ति उत्पन्न होती है इसलिये इसका नाम राग है। इन सब तत्त्वोंसे जब यह आत्मा भोक्तृत्व दशामें पहुँचाया जाता है, तब वह पुरुष नाम धारण करता है। तत्पश्चात् कला ही अव्यक्त प्रकृतिको जन्म देती है। जो पुरुषके लिये भोग उपस्थित करती है, वह अव्यक्त ही गुणमय सप्तग्रन्थि[1] विधानका कारण है। इसमें गुणोंका विभाग नहीं है; जैसे आधारमें पृथ्वी आदिके भागका विभाग नहीं होता। उनका जो आधार है, वह भी अव्यक्त ही कहलाता है। गुण तीन ही हैं। उनका अव्यक्तसे ही प्राकट्य होता है। उनके नाम हैं—सत्त्व, रज और तम। गुणोंसे ही बुद्धि इन्द्रिय-व्यापारका नियमन और विषयोंका निश्चय करती है। गुणसे त्रिविध क्रमके अनुसार बुद्धि भी सात्त्विक, राजस और तामस भेदसे तीन प्रकारकी कही गयी है। महत्-तत्त्वसे अहंकार उत्पन्न होता है, जो अहंभावकी वृत्तिसे युक्त होता है। इस अहंकारके ही सम्भेद (इन्द्रिय और देवता आदिके रूपमें परिणति) से विषय व्यवहारमें आते हैं। अहंकार सत्त्वादि

१. कला, काल, नियति, विद्या, राग, प्रकृति और गुण—ये सात ग्रन्थियाँ हैं, यही आन्तरिक भोग-साधन कहे गये हैं।

'प्रलयाकल' भी दो प्रकारके होते हैं—'पक्वपाशद्वय' और 'अपक्वपाशद्वय'। (१) जिनके मल तथा कर्मरूपी दोनों पाशोंका परिपाक हो गया है, वे 'पक्वपाशद्वय' मोक्षको प्राप्त हो जाते हैं। (२) 'अपक्वपाशद्वय' जीव पुर्यष्टक देह धारण करके नाना प्रकारके कर्मोंको करते हुए नाना योनियोंमें घूमा करते हैं।

'सकल' जीवोंके भी दो भेद हैं—'पक्व-कलुष' और 'अपक्वकलुष'। (१) जैसे-जैसे जीवात्माके मल, कर्म तथा माया—इन पाशोंका परिपाक बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे ये सब पाश शक्तिहीन होते जाते हैं। तब ये पक्व-कलुष जीवात्मा 'मन्त्रेश्वर' कहलाते हैं। सात करोड़ मन्त्ररूपी जीव-विशेषोंके, जिनका ऊपर वर्णन हो चुका है, अधिकारी ये ही ११८ मन्त्रेश्वर जीव हैं। (२) अपक्वकलुष जीव भवकूपमें गिरते हैं।

पाश

नारदपुराणमें शैव-महातन्त्रकी मान्यताके अनुसार पाँच प्रकारके पाश बताये गये हैं—(१) मलज (२) कर्मज, (३) मायेय (मायाजन्य), (४) तिरोधान-शक्तिज और (५) बिन्दुज। आधुनिक शैवदर्शनमें चार प्रकारके पाशोंका उल्लेख है—मल, रोध, कर्म तथा माया। रो-

गुणोंके भेदसे तीन प्रकारका होता है। उन तीनोंके नाम हैं—तैजस, राजस और तामस अहंकार। उनमें तैजस अहंकारमे मनसहित ज्ञानेन्द्रियाँ प्रकट हुई है। जो सत्त्वगुणके प्रकाशसे युक्त होकर विषयोंका बोध कराती हैं। क्रियाके हेतुभूत राजस अहंकारसे कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं। तामस अहकारसे पाँच तन्मात्राएँ उत्पन्न होती है, जो पाँचों भूतोंकी उत्पत्तिमे कारण हैं। इनमें मन इच्छा और संकल्पके व्यापारवाला है। अतः वह दो विकारोंसे युक्त है। वह बाह्य इन्द्रियोंका रूप धारण करके, जो उसके लिये सर्वथा उचित है, सदा भोक्ताके लिये भोगका उत्पादक होता है। मन अपने संकल्पसे हृदयके भीतर स्थित रहकर इन्द्रियोंमें विषय-ग्रहणकी शक्ति उत्पन्न करता है; इसलिये उसे अन्तःकरण कहते हैं। मन, बुद्धि और अहंकार—ये अन्तःकरणके तीन भेद हैं। इच्छा, बोध और संरम्भ (गर्व या अहंभाव)—ये क्रमशः इनकी तीन वृत्तियाँ है।

कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका—ये ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। मुने! शब्द आदि इनके ग्राह्य-विषय जानने चाहिये। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये शब्दादि विषय माने गये हैं। वाणी, हाथ, पैर, गुदा और लिङ्ग—ये पॉच कर्मेन्द्रियॉ हैं। ये बोलने, ग्रहण करने, चलने, मल-त्याग करने और मैथुनजनित आनन्दकी उपलब्धिरूपी कर्मोंकी सिद्धिके करण हैं; क्योंकि कोई भी क्रिया करणोंके विना नहीं हो सकती। कार्यमें लगाकर दस प्रकारके करणोंद्वारा चेष्टा की जाती है। व्यापक होनेके कारण कार्यका आश्रय लेकर सब इन्द्रियॉ चेष्टा करती हैं, इसलिये उनका नाम करण है। आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—ये पॉच तन्मात्राएँ हैं। इन तन्मात्राओंसे ही आकाश आदि पॉच भूत प्रकट होते हैं, जो एक-एक विशेष गुणके कारण प्रसिद्ध हैं। शब्द आकाशका मुख्य गुण है; किंतु यह पाँचों भूतोंमें सामान्य रूपसे उपलब्ध होता है। स्पर्श वायुका विशेष गुण है; किंतु वह वायु आदि चारों भूतोंमे विद्यमान है। रूप तेजका विशेष गुण है, जो तेज आदि तीनों भूतोंमें उपलब्ध है। रस जलका विशेष गुण है, जो जल और पृथ्वी दोनोमें विद्यमान है तथा गन्ध नामक गुण केवल पृथ्वीमें ही उपलब्ध होता है। इन पॉचो भूतोंके कार्य क्रमशः इस प्रकार हैं—अवकाश, चेष्टा, पाक, संग्रह और धारण। वायुमें न शीत स्पर्श है न उष्ण, जलमे शीतल स्पर्श है, तेजमें उष्ण स्पर्श है, अग्निमे भास्वर शुक्लरूप है और जलमें अभास्वर शुक्ल। पृथ्वीमें शुक्ल आदि अनेक वर्ण हैं। रूप केवल तीन भूतोंमें है। जलमे केवल मधुर-रस है और पृथ्वीमे छः प्रकारका रस है। पृथ्वीमें दो प्रकारकी गन्ध कही गयी है—सुरभि तथा असुरभि। तन्मात्राओंमें उनके भूतोंके ही गुण हैं। करण और पोषण यह भूतसमुदायकी विशेषता है। परमात्मतत्त्व निर्विशेष है। ये पॉचों भूत सब ओर व्याप्त हैं। सम्पूर्ण चराचर जगत् पञ्चभूतमय है। शरीरमे जो इन पॉचों भूतोका संनिवेश है, उसका निरूपण किया जाता है। देहके भीतर जो हड्डी, मास, केश, त्वचा, नख और दाँत आदि हैं, वे पृथ्वीके अंश हैं। मूत्र, रक्त, कफ, स्वेद और शुक्र आदिमे जलकी स्थिति है। हृदयमे, नेत्रोंमें और पित्तमें तेजकी स्थिति है; क्योंकि वहाँ उसके उष्णत्व और प्रकाश आदि धर्मोंका दर्शन होता है। शरीरमें प्राण आदि वृत्तियोंके भेदसे वायुकी स्थिति मानी गयी है। सम्पूर्ण नाड़ियों तथा गर्भाशयमें आकाशतत्त्व व्याप्त है। कलासे लेकर पृथ्वीपर्यन्त यह तत्त्वसमुदाय सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका साधन है। प्रत्येक शरीरमे भी यह नियत है। भोग-भेदसे इसका निश्चय किया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक पुरुषमें नियति-कला आदि तत्त्व कर्मवश प्राप्त हुए सम्पूर्ण शरीरोंमें

शक्ति या तिरोधानशक्ति एक ही वस्तु है। 'विन्दु' मायास्वरूप है, वह 'शिव-तत्त्व' नामसे भी जानने योग्य है। यद्यपि शिवपदप्राप्ति-रूप परम मोक्षकी अपेक्षासे वह भी पाश ही है, तथापि विद्येश्वरादि पदकी प्राप्तिमें परम हेतु होनेके कारण विन्दु-शक्तिको 'अपरा मुक्ति' कहा गया है, अत.-उसे आधुनिक शैवदर्शनमें 'पाश' नाम नहीं दिया गया है। इसलिये यहाँ शेष चार पाशों (मल, कर्म, रोध और माया) के ही स्वरूपका विचार किया जाता है—(१) जो आत्माकी स्वाभाविक ज्ञान तथा क्रिया-शक्तिको ढक ले, वह 'मल' (अर्थात् अज्ञान) कहलाता है। यह मल आत्मस्वरूपका केवल आच्छादन ही नहीं करता; किंतु जीवात्माको बलपूर्वक दुष्कर्मोंमें प्रवृत्त करनेवाला पाश भी यही है। (२) प्रत्येक वस्तुमें जो सामर्थ्य है, उसे 'शिव-शक्ति' कहते हैं, जैसे अग्निमें दाहक-शक्ति। यह शक्ति जैसे पदार्थमें रहती है, वैसा ही भला, बुरा स्वरूप धारण कर लेती है, अतः पाशमें रहती हुई यह शक्ति जब आत्माके स्वरूपको ढक लेती है, तब यह 'रोध-शक्ति' या 'तिरोधान-पाश' कहलाती है। इस अवस्थामें जीव शरीरको आत्मा मानकर शरीरके पोषणमें लगा रहता है, आत्माके उद्धारका प्रयत्न नहीं करता। (३) फलकी इच्छासे किये हुए 'धर्माधर्म' रूप कर्मोंको ही 'कर्मपाश' कहते हैं। (४) जिस शक्तिमें प्रलयके समय सब कुछ लीन हो जाता है तथा सृष्टिके समय जिसमेंसे सब कुछ उत्पन्न हो जाता है, वह 'मायापाश' है। अत. इन पाशोंमें बँधा हुआ पशु जब तत्त्वज्ञानद्वारा इनका उच्छेद कर डालता है, तभी वह परम शिवतत्त्व अर्थात् पशुपतिपदको प्राप्त होता है।

विचरते हैं। यह 'मायेय पाश' कहलाता है। जिससे यह सम्पूर्ण जगत् आवृत है। पृथ्वीसे लेकर कलापर्यन्त सम्पूर्ण तत्त्व-समुदाय अशुद्धमार्ग माना गया है।

(अब 'निरोध-शक्तिज' पाशका वर्णन है—) भूमण्डलमें वह स्थावर-जङ्गमरूपसे विद्यमान है। पर्वत और वृक्ष आदिको स्थावर कहते हैं। जङ्गमके तीन भेद हैं—स्वेदज, अण्डज और जरायुज। चराचर भूतोंमें चौरासी लाख योनियाँ हैं। उन सबमें भ्रमण करता हुआ जीव कभी कर्मवश मनुष्य-शरीर प्राप्त कर लेता है, जो सबसे उत्तम और सम्पूर्ण पुरुषार्थोंका साधक है। उसमें भी भारतवर्षमें ब्राह्मण आदि द्विजोंके कुलमें तो महान् पुण्यसे ही जन्म होता है। ऐसा जन्म अत्यन्त दुर्लभ है। जन्म इस प्रकार होता है। पहले स्त्री-पुरुषका संयोग होता है, फिर रज-वीर्यके योगसे एक बिन्दु गर्भाशयमें प्रवेश करता है। वह बिन्दु द्वयात्मक होता है—इसमें स्त्री और पुरुष—दोनोंके रज-वीर्यका सम्मिश्रण होता है। उस समय रजकी अधिकता होनेपर कन्याका जन्म होता है और वीर्यकी मात्रा अधिक होनेपर पुत्रकी उत्पत्ति होती है। उसमें मल, कर्म आदि पाशसे बँधा हुआ कोई आत्मा जीवभावको प्राप्त होता है, वह (मल, माया और कर्म त्रिविध पाशसे युक्त होनेके कारण) 'सकल' कहा गया है। गर्भमें माताके खाये हुए अन्न-पान आदिसे पोषित होकर उसका शरीर पक्ष-मास आदि कालसे बढ़ता रहता है। उसका शरीर जरायुसे ढका होता है और अनेक प्रकारके दुःख आदिसे उसे पीड़ा पहुँचती रहती है। इस प्रकार गर्भमें स्थित जीव अपने पूर्वजन्मके शुभाशुभ कर्मोंका स्मरण करके बार-बार दुःखमग्न एवं पीड़ित होता रहता है। फिर समयानुसार वह बालक स्वयं पीड़ित होकर माताको भी पीड़ा देता हुआ नीचे मुँह किये योनिरन्ध्रसे बाहर निकलता है। बाहर आकर वह क्षणभर निश्चेष्ट रहता है। फिर रोना चाहता है। तदनन्तर क्रमशः प्रतिदिन बढ़ता हुआ बाल्य, पौगण्ड आदि अवस्थाओंसे [illegible] में जा पहुँचता है। इस [illegible] क्रमसे प्रादुर्भाव होता है। [illegible] करनेवाले दुर्लभ मानव-जीवनको [illegible] उद्धार नहीं करता। [illegible] आहार, निद्रा, भय और मैथुन—[illegible] जीवोंके लिये सामान्य [illegible] है। [illegible] पाशोंमें फँसा हुआ है, [illegible] है। [illegible] उच्छेद करना [illegible] मनुष्योंका [illegible] है।

बन्धनाशका उपाय

पाशबन्धनका विच्छेद दीक्षासे [illegible] विच्छेद करनेके लिये मन्त्रदीक्षा [illegible] ज्ञान-शक्तिसे अपने बन्धनका [illegible] स्थित हुआ पुरुष निर्विकार (मोक्ष) को [illegible] जो अपनी शक्तिस्वरूपा दृष्टिसे [illegible] दर्शन करता है और [illegible] रहता है, वह अपना और दूसरोंका [illegible] है। [illegible] सूर्यकी शक्तिरूपी किरणोंसे [illegible] पुरुष आवरणको [illegible] शिवका साक्षात्कार करता है। [illegible] वृत्ति है, वह निरोध (देही) [illegible] कारण महेश्वरको प्रसन्न करनेके [illegible] ही पाशका उच्छेद [illegible] विधिसे मन्त्रदीक्षा [illegible] अपने वर्णके अनुरूप [illegible] कर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये। [illegible] सम्बन्धी आचारोंका मनसे [illegible] आश्रममें दीक्षित होकर [illegible]

दीक्षा

दीक्षा ही शिवत्व-प्राप्तिका साधन है। सर्वानुग्राहक परमेश्वर ही आचार्य रूपसे [illegible] शिवतत्त्वकी प्राप्ति कराते हैं; ऐसा ही कहा भी है—

'योजयति परे तत्त्वे स दीक्षयाऽऽचार्यमूर्तिस्थः।'

'अपक्व-पाशद्वय प्रलयाकल' जीव तथा 'अपक्व-[illegible] सकल' [illegible] बुद्धि, अहंकार—इन आठ तत्त्वोंसे युक्त होनेके कारण पुर्यष्टक कहलाता है। पुर्यष्टक शरीर [illegible] अन्तर्भोगके साधनभूत कला, काल, नियति, विद्या, राग, प्रकृति और गुण—ये [illegible] चार अन्तःकरण और पाँच शब्द आदि विषय—ये [illegible] दयालु भगवान् महेश्वर भुवनेश्वर या लोकपाल बना देते हैं।

नारदपुराणके इस अध्यायमें इन्हीं उपर्युक्त तत्त्वोंका क्रम या [illegible] पढ़ना और हृदयङ्गम करना चाहिये।

धर्मोंका निरन्तर पालन करे। इस प्रकार किये हुए कर्म भी बन्धनकारक नहीं होते। मन्त्रानुष्ठानजनित एक ही कर्म फलदायक होता है। दीक्षित पुरुष जिन-जिन लोकोंके भोगोंकी इच्छा करता है, मन्त्राराधनकी सामर्थ्यसे वह उन सबका उपभोग करके मोक्ष प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य दीक्षा ग्रहण करके नित्य और नैमित्तिक कर्मोंका पालन नहीं करता, उसे कुछ कालतक पिशाचयोनिमें रहना पड़ता है। अतः दीक्षित पुरुष नित्य-नैमित्तिक आदि कर्म अवश्य करे। नित्य-नैमित्तिक आचारका पालन करनेवाले मनुष्यको उसकी दीक्षामें त्रुटि न आनेके कारण तत्काल मोक्ष प्राप्त होता है। दीक्षाके द्वारा गुरुके स्वरूपमें स्थित होकर भगवान् शिव सबपर अनुग्रह करते हैं। जो लोक-परलोकके स्वार्थमें आसक्त होकर कृत्रिम गुरुभक्तिका प्रदर्शन करता है, वह सब कुछ करनेपर भी विफलताको ही प्राप्त होता है और उसे पग-पगपर प्रायश्चित्तका भागी होना पड़ता है। जो मन, वाणी और क्रियाद्वारा गुरुभक्तिमें तत्पर है, उसे प्रायश्चित्त नहीं प्राप्त होता और पग-पगपर सिद्धि लाभ होता है। यदि शिष्य गुरुभक्तिसे सम्पन्न और सर्वस्व समर्पण करनेवाला हो तो उसके प्रति मिथ्या मन्त्रका प्रयोग करनेवाला गुरु प्रायश्चित्तका भागी होता है*। (पूर्व० ६३ अध्याय)

* इस 'तृतीय पाद'में अधिकांश सकाम अनुष्ठानोंका प्रसङ्ग है। इसमें देवताओंके तथा भगवान्‌के विभिन्न स्वरूपोंके ध्यान-पूजनका निरूपण है तथा आराधनकी सुन्दर-सुन्दर विधियाँ बतलायी गयी हैं। उन विधियोंके अनुसार श्रद्धा-विश्वासपूर्वक अनुष्ठान करनेसे उल्लिखित फल अवश्य मिलता है। जैसे विविध तापोंकी निवृत्ति तथा इष्ट पदार्थोंकी प्राप्तिके लिये अन्यान्य आधिभौतिक साधन हैं, वैसे ही ये आधिदैविक साधन भी हैं एवं ये भौतिक साधनोंकी अपेक्षा अधिक निर्दोष तथा सहज हैं और प्रतिबन्धकका नाश करके नवीन प्रारब्धके निर्माणमें हेतु होनेके कारण ये उनकी अपेक्षा अधिक लाभप्रद हैं ही। और स्वयं भगवान्‌का तो सकाम आराधन करनेपर (यदि वे उचित समझें तो कामनाकी पूर्ति करके अथवा पूर्ति न करके भी) अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा अन्तमें अपनी प्राप्ति करा देते हैं, इस दृष्टिसे इस प्रसङ्गकी निश्चय ही बड़ी उपादेयता है।

तथापि अल्पायु मनुष्यके लिये यह विचारणीय है कि अपने जीवनको क्या सांसारिक भोगपदार्थोंकी प्राप्तिके प्रयत्न और उनके उपभोगमें लगाना ही इष्ट है? मनुष्य-जीवन क्षणभङ्गुर है और वह है केवल भगवत्प्राप्तिके लिये ही। संसारके भोग तो प्रत्येक योनिमें ही प्रारब्धानुसार प्राप्त होते हैं और उनका उपभोग भी जीव करता ही है। मनुष्य-जीवन भी यदि उन्हीं क्षणभंगुर, नाशवान्, दुःखयोनि और जीवको जन्म-मरणके चक्रमें डालनेवाले भोगपदार्थोंके लिये सकाम उपासनामें ही लगा दिया जाय तो यह बुद्धिमानीका कार्य नहीं है। जो कृपामय भगवान् परम दुर्लभ मोक्षको या स्वयं अपने-आपको देनेके लिये प्रस्तुत हैं, उनसे दुःखपरिणामी और अनित्य भोग माँगना भगवान्‌के तत्त्वको और भक्तिके महत्त्वको न समझना ही है। जो पुरुष किसी वस्तुको प्राप्त करनेकी इच्छासे भगवान्‌को भजता है, उसका ध्येय वह वस्तु है, भगवान् नहीं है। वह वस्तु साध्य है और भगवान् तथा उनकी भक्ति साधन है। यदि किसी मङ्गलकारी कारणवश ही उसके अभीष्टकी प्राप्तिमें देर होगी तो वह भगवान्‌की भक्तिको छोड़ दे सकता है। अतएव सकाम भावसे की हुई उपासना एक प्रकारसे काम्य वस्तुकी ही उपासना है, भगवान्‌की नहीं। इस बातको भलीभाँति समझ लेना चाहिये और अपनी रुचिके अनुसार भगवान्‌की उपासना इस प्रसङ्गमें आयी हुई पद्धतिके अनुकूल अवश्य करनी चाहिये, पर वह करनी चाहिये--निष्काम प्रेमभावसे केवल भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये ही। इसीमें मनुष्य-जन्मकी सार्थकता है।

इसके अतिरिक्त यह बात भी है कि सकाम अनुष्ठानका फल प्रतिबन्धककी प्रबलता और सरलताके अनुसार विलम्बसे या शीघ्र होता है। एक आदमीको किसी अमुक वस्तुकी या स्थितिकी आवश्यकता है। वह उसके लिये सकाम उपासना करता है। यदि उस वस्तु या स्थितिकी प्राप्तिमें बाधक पूर्वजन्मका कर्म बहुत अधिक प्रबल होता है तो एक ही अनुष्ठानसे अभीष्ट फल नहीं मिलता। बार-बार अनुष्ठान करने पड़ते हैं। आजकलके सकामी पुरुषमें इतना धैर्य नहीं हो सकता और फलतः वह देवतामें ही अविश्वास कर बैठता है तथा उसकी अवज्ञा करने लगता है, इससे लाभके बदले उसकी उलटी हानि हो जाती है। फिर सकाम साधना वही सफल होती है जिसमें विधिका पूरा-पूरा साङ्गोपाङ्ग पालन हुआ हो तथा कर्म, देवता और फलमें पूर्ण श्रद्धा हो। विधि और श्रद्धाके अभावमें भी फल नहीं होता और आजके युगके मनुष्योंमें अधिकांश ऐसे हैं जो मनमाना फल तो तुरंत चाहते हैं पर श्रद्धा और विधिकी आवश्यकता नहीं समझते। अतः उनको भी उक्त फल नहीं मिलता। इन सब दृष्टियोंसे भी सकामभावमें देवतामें, देवाराधनमें अश्रद्धातक होनेकी सम्भावना रहती है, फिर यदि कहीं कुछ फल मिलता भी है तो वह अनित्य, क्षणभङ्गुर और दुःख देनेवाला ही होता है। अतएव बुद्धिमान् पुरुषको सकाम भावका सर्वथा त्याग ही करना चाहिये।—सम्पादक

मन्त्रके सम्बन्धमें अनेक ज्ञातव्य बातें, मन्त्रके विविध दोष तथा उनके [illegible]

सनत्कुमारजी कहते हैं—अब मैं जीवोंके पाश-समुदायका उच्छेद करनेके लिये अभीष्ट सिद्धि प्रदान करनेवाली दीक्षा-विधिका वर्णन करूँगा, जो मन्त्रोंको शक्ति प्रदान करनेवाली है। दीक्षा दिव्यभावको देती है और पापोंका क्षय करती है। इसीलिये सम्पूर्ण आगमोंके विद्वानोंने उसे दीक्षा कहा है। मननका अर्थ है सर्वज्ञता और त्राणका अर्थ है संसारी जीवपर अनुग्रह करना। इस मनन और त्राणधर्मसे युक्त होनेके कारण मन्त्रका मन्त्र नाम सार्थक होता है।

मन्त्रोंके लिंगभेद

मन्त्र तीन प्रकारके होते हैं—स्त्री, पुरुष और नपुंसक। स्त्री-मन्त्र वे हैं जिनके अन्तमें दो 'ठ' अर्थात् 'स्वाहा' लगे हों। जिनके अन्तमें 'हुम्' और 'फट्' हैं वे पुरुष-मन्त्र कहे गये हैं। जिनके अन्तमें 'नमः' लगा होता है, वे मन्त्र नपुंसक हैं। इस प्रकार मन्त्रोंकी जातियाँ बतायी गयी हैं। सभी मन्त्रोंके देवता पुरुष हैं और सभी विद्याओंकी स्त्री देवता मानी गयी है। वे त्रिविध मन्त्र छः कर्मोंमें[1] प्रयुक्त होते हैं। जिनमें प्रणवान्त रेफ (रा) और स्वाहाका प्रयोग हो, वे मन्त्र आग्नेय (अग्निसम्बन्धी) कहे गये हैं। मुने! जो मन्त्र भृगु-बीज (सं) और पीयूष-बीज (व) से युक्त हैं, वे सौम्य (सोमसम्बन्धी) कहे गये हैं। इस प्रकार मनीषी पुरुषोंको सभी मन्त्र अग्नीषोमात्मक जानने चाहिये। जब श्वास पिङ्गला नाड़ीमें स्थित हो अर्थात् दाहिनी साँस चलती हो तो आग्नेय मन्त्र जाग्रत् होते हैं और जब श्वास इडा नाड़ीमें स्थित हो अर्थात् बायीं साँस चलती हो तो सोम-सम्बन्धी मन्त्र जागरूक होते हैं। जब इडा और पिङ्गला दोनों नाड़ियोंमें साँस चलती हो अर्थात् बायाँ और दाहिना दोनों स्वर समानभावसे चलते हों तो सभी मन्त्र जाग्रत् होते हैं। यदि मन्त्रके सोते समय उसका जप किया जाय तो वह अनर्थरूप फल देनेवाला है। प्रत्येक मन्त्रका उच्चारण करते समय उनका श्वास रोककर उच्चारण न करे। अनुलोमक्रममें विन्दु (अनुस्वार) युक्त और विलोमक्रममें विसर्गसंयुक्त मन्त्रोंका उच्चारण करे। यदि जगा हुआ मन्त्र देवताको जाग्रत् कर सका तो वह शीघ्र सिद्धि देनेवाला होता है और

इस मालासे जपा हुआ [illegible] कर्ममें आग्नेय मन्त्रका [illegible] मन्त्र सौम्य [illegible] होते हैं। [illegible] भेद—ये मन्त्रोंकी तीन [illegible] शान्त मन्त्र भी '[illegible]' [illegible] धारण कर लेता है।

मन्त्रोंके दोष

छिन्ना आदि दोषोंसे [illegible] नहीं कर पाते। [illegible] वर्णहीन, नेत्रहीन, [illegible] शील, मलिन, तिरस्कृत, [illegible] मूर्छित, हतवीर्य, [illegible] प्रौढ, वृद्ध, निस्त्रिंशक, [illegible] निरंशक, सत्त्वहीन, [illegible] मोहित, क्षुधार्त, अतिदीप्त [illegible] पीडित (लज्जित), [illegible] अतिवृद्ध, अतिनिर्मल तथा [illegible] बताये गये हैं। अब मैं इनके [illegible] मन्त्रके आदि, मध्य और अन्तमें [illegible] सहित तीन-चार [illegible] हो वह मन्त्र 'छिन्न' कहलाता है। [illegible] अन्तमें दो बार भूबीज [illegible] उस मन्त्रको [illegible] सिद्धिदायक होता है। [illegible] जिस मन्त्रमें आदि [illegible] कर्मोंमें तीन जो मन्त्र है [illegible] वह दीर्घकालसे [illegible] (वर्ण), [illegible] बीज (रो) [illegible] उन मन्त्रोंको [illegible] आदि, मध्य और अन्तमें [illegible] बधिर (वर्णहीन) [illegible] और अनुस्वार न हो [illegible] और अन्तमें [illegible]

---

1. शान्ति, वश्य, स्तम्भन, द्वेष, उच्चाटन और मारण—ये छः कर्म हैं। (मन्त्रमहोदधि)

हो अथवा हंस और चन्द्रविन्दु या सकार, फकार अथवा हुं हो तथा जिसमें मा, प्रा और नमामि पद न हो वह मन्त्र 'कीलित' माना गया है। इसी प्रकार मध्यमें और अन्तमें भी वे दोनों पद न हों तथा जिसमें फट् और लकार न हों, वह मन्त्र 'स्तम्भित' माना गया है, जो सिद्धिमें रुकावट डालनेवाला है। जिस मन्त्रके अन्तमें अग्नि (रं) बीज वायु (य) बीजके साथ हो तथा जो सात अक्षरोंसे युक्त* दिखायी देता हो वह 'दग्ध' संज्ञक मन्त्र है। जिसमें दो, तीन, छः या आठ अक्षरोंके साथ अस्त्र (फट्) दिखायी दे, उस मन्त्रको 'त्रस्त' जानना चाहिये। जिसके मुखभागमें प्रणवरहित हकार अथवा शक्ति हो वही मन्त्र 'भीत' कहा गया है। जिसके आदि, मध्य और अन्तमें चार म हों वह मन्त्र 'मलिन' माना गया है। वह अत्यन्त क्लेशसे सिद्धिदायक होता है। जिस मन्त्रके मध्यभागमें द अक्षर और अन्तमें दो क्रोध (हुं हुं) बीज हों और उनके साथ अस्त्र (फट्) भी हो, तो वह मन्त्र 'तिरस्कृत' कहा गया है। जिसके अन्तमें 'म' और 'य' तथा 'हृदय' हो और मध्यमें वषट् एवं वौषट् हो वह मन्त्र 'भेदित' कहा गया है। उसे त्याग देना चाहिये; क्योंकि वह बड़े क्लेशसे फल देनेवाला होता है। जो तीन अक्षरसे युक्त तथा हंसहीन है, उस मन्त्रको 'सुषुप्त' कहा गया है। जो विद्या अथवा मन्त्र सतरह अक्षरोंसे युक्त हो तथा जिसके आदिमें पाँच बार फट्का प्रयोग हुआ हो उसे 'मदोन्मत्त' माना गया है। जिसके मध्य भागमें फट्का प्रयोग हो उस मन्त्रको 'मूर्छित' कहा गया है। जिसके विरामस्थानमें अस्त्र (फट्) का प्रयोग हो वह 'हृतवीर्य' कहा जाता है। मन्त्रके आदि, मध्य और अन्तमें चार अस्त्र (फट्) का प्रयोग हो तो उसे 'भ्रान्त' जानना चाहिये। जो मन्त्र अठारह अथवा बीस अक्षरवाला होकर कामबीज (क्लीं) से युक्त होकर साथ ही उसमें हृदय, लेख और अङ्कुशके भी बीज हों तो उसे 'प्रध्वस्त' कहा गया है। सात अक्षरवाला मन्त्र 'बालक', आठ अक्षरवाला 'कुमार', सोलह अक्षरोंवाला 'युवा', चौबीस अक्षरोंवाला 'प्रौढ' तथा बीस, चौसठ, सौ और चार सौ अक्षरोंका मन्त्र 'वृद्ध' कहा गया है। प्रणवसहित नवार्ण मन्त्रको 'निस्त्रिंश' कहते हैं। जिसके अन्तमें हृदय (नमः) कहा गया हो, मध्यमें शिरोमन्त्र (स्वाहा) का उच्चारण होता हो और अन्तमें शिखा (वषट्), वर्म (हुं), नेत्र (वौषट्) और अस्त्र (फट्) देखे जाते हों तथा जो शिव एवं शक्ति अक्षरोंसे हीन हो, उस मन्त्रको 'निर्बीज' माना गया है। जिसके आदि, मध्य और अन्तमें छः बार फट्का प्रयोग देखा जाता हो, वह मन्त्र 'सिद्धिहीन' होता है। पाँच अक्षरके मन्त्रको 'मन्द' और एकाक्षर मन्त्रको 'कूट' कहते हैं। उसीको 'निरंशक' भी कहा गया है। दो अक्षरका मन्त्र 'सत्त्वहीन', चार अक्षरका मन्त्र 'केकर' और छः या साढ़े सात अक्षरका मन्त्र 'बीजहीन' कहा गया हैं। साढ़े बारह अक्षरके मन्त्रको 'धूमित' माना गया है। वह निन्दित है। साढ़े तीन बीजसे युक्त बीस, तीस तथा इक्कीस अक्षरका मन्त्र 'आलिङ्गित' कहा गया है। जिसमें दन्तस्थानीय अक्षर हों वह मन्त्र 'मोहित' बताया गया है। चौबीस या सत्ताईस अक्षरके मन्त्रको 'क्षुधार्त' जानना चाहिये। वह मन्त्र सिद्धिसे रहित होता है। ग्यारह, पचीस अथवा तेईस अक्षरका मन्त्र 'दृप्त' कहलाता है। छब्बीस, छत्तीस तथा उनतीस अक्षरके मन्त्रको 'हीनाङ्ग' माना गया है। अट्ठाईस और इकतीस अक्षरका मन्त्र 'अत्यन्त क्रूर' (और 'अति क्रुद्ध') जानना चाहिये, वह सम्पूर्ण कर्मोंमें निन्दित माना गया है। चालीस अक्षरसे लेकर तिरसठ अक्षरोंतकका जो मन्त्र है, उसे 'व्रीडित' (लज्जित) समझना चाहिये। वह सब कार्योंकी सिद्धिमें समर्थ नहीं होता। पैंसठ अक्षरके मन्त्रोंको 'शान्तमानस' जानना चाहिये। मुनीश्वर! पैंसठ अक्षरोंसे लेकर निन्यानवे अक्षरोंतकके जो मन्त्र हैं, उन्हें 'स्थानभ्रष्ट' जानना चाहिये। तेरह या पंद्रह अक्षरोंके जो मन्त्र हैं, उन्हें सर्वतन्त्र-विशारद विद्वानोंने 'विकल' कहा है। सौ, डेढ़ सौ, दो सौ, दो सौ इक्यानबे अथवा तीन सौ अक्षरोंके जो मन्त्र होते हैं, वे 'निःस्नेह' कहे गये है। ब्रह्मन्! चार सौसे लेकर एक हजार अक्षरतकके मन्त्र प्रयोगमें 'अत्यन्त वृद्ध' माने गये हैं। उन्हें शिथिल कहा गया है। जिनमें एक हजारसे भी अधिक अक्षर हों, उन मन्त्रोंको 'पीडित' बताया गया है। उनसे अधिक अक्षरवाले मन्त्रोंको स्तोत्ररूप माना गया है। इस प्रकारके मन्त्र दोषयुक्त कहे गये हैं।

अब मैं 'छिन्न' आदि दोषोंसे दूषित मन्त्रोंका साधन बताता हूँ। जो योनिमुद्रासनसे बैठकर एकाग्रचित्त हो जिस किसी भी मन्त्रका जप करता है, उसे सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। बायें पैरकी एड़ीको गुदाके सहारे रखकर दाहिने पैरकी एड़ीको ध्वज (लिङ्ग) के ऊपर रक्खे तो इस प्रकार योनिमुद्राबन्ध नामक उत्तम आसन होता है।

---

* 'ससर्ग' पाठ माननेपर यह अर्थ होगा—'जो 'म' अक्षरसे युक्त हो।'

आचार्य और शिष्यके लक्षण

जो कुलपरम्पराके क्रमसे प्राप्त हुआ हो, नित्य मन्त्र-जपके अनुष्ठानमें तत्पर हो, गुरुकी आज्ञाके पालनमें अनुरक्त हो तथा अभिषेकयुक्त हो; शान्त, कुलीन और जितेन्द्रिय हो, मन्त्र और तन्त्रके तात्त्विक अर्थका ज्ञाता तथा निग्रहानुग्रहमें समर्थ हो; किसीसे किसी वस्तुकी अपेक्षा न रखता हो, मननशील, इन्द्रियसंयमी, हितवचन बोलनेवाला, विद्वान्, तत्त्व निकालनेमें चतुर, विनयी हो; किसी-न-किसी आश्रमकी मर्यादामें स्थित, ध्यानपरायण, संशय-निवारण करनेवाला, परम बुद्धिमान् [illegible] ... जो शान्त, [illegible] ... शम दम आदि [illegible] ... या हृदयवान्, [illegible] ... शुद्धचित्त, शुद्ध [illegible] ... हो, [illegible] ... [illegible]

मन्त्रशोधन, दीक्षाविधि, पञ्चदेवपूजा तथा जपपूर्वक इष्टदेव और आत्मचिन्तनका [illegible]

सनत्कुमारजी कहते हैं—गुरुको चाहिये कि वह शिष्यकी परीक्षा लेकर मन्त्रका शोधन करे। पूर्वसे पश्चिम और दक्षिणसे उत्तर (रंगमें डुबोये हुए) पाँच पाँच सूत गिरावे (तात्पर्य यह है कि पाँच खड़ी रेखाएँ खींचकर उनके ऊपर पाँच पड़ी रेखाएँ खींचे)। इस प्रकार चार-चार कोष्ठोंके चार समुदाय बनेंगे। उनमेंसे पहले चौकेके प्रथम कोष्ठमें एक, दूसरेके प्रथममें दो, तीसरेके प्रथममें तीन और चौथेके प्रथममें चार लिखे। (इसी क्रमसे आगेकी संख्याएँ भी लिख ले।) प्रथम कोष्ठमें 'अ' लिखकर उसके आग्नेय कोणमें उससे पाँचवाँ अक्षर लिखे। इस प्रकार सभी कोष्ठोंमें क्रमशः अक्षरोंको लिखकर बुद्धिमान् पुरुष मन्त्रका संशोधन करे। साधकके नामका आदि-अक्षर जिस कोष्ठमें हो, वहाँसे लेकर जहाँ मन्त्रका आदि-अक्षर हो उस कोष्ठतक प्रदक्षिण-क्रमसे गिनना चाहिये। यदि उसी चौकमें मन्त्रका आदि-अक्षर हो, जिसमें नामका आदि-अक्षर है तो वह 'सिद्ध चौक' कहा जायगा। उससे प्रदक्षिण क्रमसे गिननेपर यदि द्वितीय चौकमें मन्त्रका आदि-अक्षर हो तो वह 'साध्य' कहा गया है। इसी प्रकार तीसरा चौक 'सुसिद्ध' और चौथा चौक 'अरि' नामसे प्रसिद्ध है। यदि साधकके नामसम्बन्धी और मन्त्र-सम्बन्धी आदि-अक्षर प्रथम चौकके पहले ही कोष्ठमें पड़े हों तो वह मन्त्र 'सिद्धसिद्ध' माना गया है। यदि मन्त्रवर्ण प्रथम चौकके द्वितीय कोष्ठमें पड़ा हो तो वह 'सिद्धसाध्य' कहा गया है। प्रथमके तृतीय कोष्ठमें हो तो 'सिद्धसुसिद्ध' होगा और चौथेमें हो तो 'सिद्धारि' कहलावेगा। नामाक्षरयुक्त चौकसे दूसरे चौकमें यदि मन्त्रका अक्षर हो तो पहले जहाँ नामका अक्षर था वहाँसे उस कोष्ठसे आरम्भ करके क्रमशः पूर्ववत् गणना करे। [illegible] चतुर्थ कोष्ठमें [illegible] 'साध्यसाध्य', [illegible] तीसरे चौकमें मन्त्रका [illegible] रीतिसे गणना करनी चाहिये। [illegible] कोष्ठोंके अनुसार [illegible] साध्य' 'सुसिद्धसुसिद्ध' तथा [illegible] चौथे चौकमें मन्त्राक्षर हो तो [illegible] गणना करे। चतुर्थ चौकके प्रथम [illegible] उस मन्त्रकी 'अरिसिद्ध' [illegible] अरि' [illegible] होगी। [illegible] उतनी ही [illegible] सिद्धसाध्य मन्त्र दूनी [illegible] सिद्धसुसिद्ध मन्त्र [illegible] सिद्ध हो जाता। [illegible] करता है। [illegible] होता है। [illegible] साध्यसिद्ध भी [illegible] साध्यारि मन्त्र [illegible] जाते ही [illegible] सिद्ध होता है। [illegible] जाता है और [illegible] [illegible] नष्ट होता है। [illegible] [illegible] [illegible]

अकथह नामक चक्र सबमें प्रधान है; इसलिये यही तुम्हें बताया गया है* ।

इस प्रकार मन्त्रका भलीभाँति शोधन करके शुद्ध समय और पवित्र स्थानमें गुरु शिष्यको दीक्षा दे । अब दीक्षाका विधान बताया जाता है । प्रातःकाल नित्यकर्म करके पहले गुरुचरणोंकी पादुकाको प्रणाम करे । तत्पश्चात् आदरपूर्वक वस्त्र आदिके द्वारा भक्तिभावसे सद्गुरुकी पूजा करके उनसे अभीष्ट मन्त्रके लिये प्रार्थना करे । तदनन्तर गुरु संतुष्टचित्त हो स्वस्तिवाचनपूर्वक मण्डल आदि विधान करके शिष्यके साथ पवित्र हो यज्ञमण्डपमें प्रवेश करे । फिर सामान्य अर्घ्य जलसे द्वारका अभिषेक करके अस्त्र-मन्त्रोंसे दिव्य विघ्नोंका निवारण करे; इसके बाद आकाशमें स्थित विघ्नोंका जलसे पूजन करके निराकरण करे । भूमिसम्बन्धी विघ्नोंको तीन बार ताली बजाकर हटावे, तत्पश्चात् कार्य प्रारम्भ करे । भिन्न-भिन्न रंगोंद्वारा शास्त्रोक्तविधिसे सर्वतोभद्रमण्डलकी रचना करके उसमें वह्निमण्डल और उसकी कलाओंका पूजन करे । तत्पश्चात् अस्त्र-मन्त्रका उच्चारण करके धोये हुए यथाशक्तिनिर्मित कलशकी वहाँ विधिपूर्वक स्थापना करके सूर्यकी कलाका यजन करे । विलोममातृकाके मूलका उच्चारण करते हुए शुद्ध जलसे कलशको भरे और उसके भीतर सोमकी कलाओंका विधिपूर्वक पूजन करे । धूम्रा, अर्चि, ऊष्मा, ज्वलिनी, ज्वालिनी, विस्फुलिङ्गिनी, सुश्री, सुरूपा, कपिला तथा हव्य-कव्यवाहा—ये अग्निकी दस कलाएँ कही गयी हैं । अब सूर्यकी बारह कलाएँ बतायी जाती हैं—तपिनी, तापिनी, धूम्रा, मरीचि, ज्वालिनी, रुचि, सुषुम्णा, भोगदा, विश्वा, बोधिनी, धारिणी तथा क्षमा । चन्द्रमाकी कलाओंके नाम इस प्रकार जानने चाहिये—अमृता, मानदा, पूषा, तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिनी, चन्द्रिका, कान्ति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अङ्गदा, पूर्णा और पूर्णामृता । ये सोलह चन्द्रमाकी कलाएँ कही गयी हैं ।

कलशको दो वस्त्रोंसे लपेट करके उसके भीतर सर्वौषधि डाले । फिर नौ रत्न छोड़कर पञ्चपल्लव डाले । कटहल, आम, बड़, पीपल और बकुल—इन पाँच वृक्षोंके पल्लवोंको यहाँ पञ्चपल्लव माना गया है । मोती, माणिक्य, वैदूर्य, गोमेद, वज्र, विद्रुम (मूँगा), पद्मराग, मरकत तथा नीलमणि—इन नौ रत्नोंको क्रमशः कलशमें छोड़कर उसमें इष्ट देवताका आवाहन करे और मन्त्रवेत्ता आचार्य विधि-पूर्वक देवपूजाका कार्य सम्पन्न करके वस्त्राभूषणोंसे विभूषित शिष्यको वेदीपर बिठावे और प्रोक्षणीके जलसे उसका अभिषेक करे । फिर उसके शरीरमें विधिपूर्वक भूतशुद्धि आदि करके न्यासोंके द्वारा शरीरशुद्धि करे और मस्तकमें पल्लव मन्त्रोंका न्यास करके एक सौ आठ मूलमन्त्रद्वारा अभिमन्त्रित जलसे प्रिय शिष्यका अभिषेक करे । उस समय मन-ही-मन मूलमन्त्र-का जप करते रहना चाहिये । अवशिष्ट जलसे आचमन करके शिष्य दूसरा वस्त्र धारण करे और गुरुको विधिपूर्वक प्रणाम करके पवित्र हो उनके सामने बैठे । तदनन्तर गुरु शिष्यके मस्तकपर हाथ देकर जिस मन्त्रकी दीक्षा देनी हो, उसका विधिपूर्वक एक सौ आठ बार जप करे । 'समः अस्तु' (शिष्य मेरे समान हो) इस भावसे शिष्यको अक्षर-दान करे । तब शिष्य गुरुकी पूजा करे । इसके बाद गुरु शिष्यके मस्तकपर चन्दनयुक्त हाथ रखकर एकाग्रचित्त हो, उसके कानमें आठ बार मन्त्र कहे । इस प्रकार मन्त्रका उपदेश पाकर शिष्य भी गुरुके चरणोंमें गिर जाय । उस समय गुरु इस प्रकार कहे, 'बेटा ! उठो । तुम बन्धनमुक्त हो गये । विधिपूर्वक सदाचारी बनो । तुम्हें सदा कीर्ति, श्री, कान्ति, पुत्र, आयु, बल और आरोग्य प्राप्त हो ।' तब शिष्य उठकर गन्ध आदिके द्वारा गुरुकी पूजा करे और उनके लिये दक्षिणा दे । इस

* मूलमें बतायी हुई रीतिसे कोष्ठक बनाकर उनमें अक्षरोंको लिखनेपर प्रथम कोष्ठकमें 'अ क थ ह' अक्षर आते हैं । इन्हींके नामपर इस चक्रको 'अकथह' चक्र कहते हैं । इसका रेखाचित्र नीचे दिया जाता है—

अकथह-चक्र

१ अ क थ ह	२ उ ङ प	३ आ ख द	४ ऊ च फ
५ ओ ड ब	६ ऌ झ म	७ औ ढ श	८ ॡ ञ य
९ ई घ न	१० ऋ ज भ	११ इ ग ध	१२ ॠ छ व
१३ अः त स	१४ ऐ ठ ल	१५ अं ण ष	१६ ए ट र

प्रकार गुरुमन्त्र पाकर शिष्य उसी समयसे गुरुसेवामें लग जाय। बीचमें अपने इष्टदेवका पूजन करे और उन्हें पुष्पाञ्जलि देकर अग्नि, निर्ऋति और वायुकोणका क्रमशः पूजन करे। जब मध्यमें भगवान् विष्णुका पूजन करे तो उनके चारों ओर क्रमशः गणेश, सूर्य, देवी तथा शिवकी पूजा करे और जब मध्यमें भगवान् शङ्करकी पूजा करे तो उनके पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः सूर्य, गणेश, देवी तथा विष्णुका पूजन करे। जब मध्यमें देवीकी पूजा करे तो उनके चारों ओर शिव, गणेश, सूर्य और विष्णुकी पूजा करे। जब मध्यमें गणेशकी पूजा करे तो उनके चारों ओर क्रमशः शिव, देवी, सूर्य और विष्णुकी पूजा करे और जब मध्यभागमें सूर्यकी पूजा करे तो पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः गणेश, विष्णु, देवी और शिवकी पूजा करे। इस प्रकार प्रतिदिन आदरपूर्वक पञ्चदेवोंका पूजन करना चाहिये।

विद्वान् पुरुषको चाहिये कि ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर लघुशङ्का आदि आवश्यक कार्य कर ले और यदि लघुशङ्का आदि न लगी हो तो शय्यापर बैठे-बैठे ही अपने गुरुदेवको नमस्कार करे—तदनन्तर पादुकामन्त्रका दस बार जप और समर्पण करके गुरुदेवको पुनः प्रणाम और उनका स्तवन करे।

फिर मूलाधारसे ब्रह्मरन्ध्रतक मूलविद्याका चिन्तन करे। मूलाधारसे निम्नभागमें गोलाकार वायुमण्डल है, उसमें वायुका बीज 'य' कार स्थित है। उस बीजसे वायु प्रवाहित हो रही है। उससे ऊपर अग्निका त्रिकोणमण्डल है। उसमें जो अग्निका बीज 'र'कार है, उससे आग प्रकट हो रही है। उक्त वायु तथा अग्निके साथ मूलाधारमें स्थित शरीरवाली कुलकुण्डलिनीका ध्यान करे, जो सोये हुए सर्पके समान आकारवाली है। वह स्वयं भूलिङ्गको आवेष्टित करके सो रही है। देखनेमें वह कमलकी नालके समान जान पड़ती है। वह अत्यन्त पतली है और उसके अङ्गोंसे करोड़ों विद्युतोंकी-सी प्रभा छिटक रही है। इस प्रकार कुलकुण्डलिनीका ध्यान करके भावनात्मक कूर्च (कूँची) के द्वारा उसे जगाकर उठाये और सुषुम्णा नाड़ीके मार्गसे क्रमशः छः चक्रोंका भेदन करनेवाली उस कुण्डलिनीको गुरुकी बतायी हुई विधिके अनुसार विद्वान् पुरुष ब्रह्मरन्ध्रतक ले जाय और वहाँके अमृतमें निमग्न करके आत्माका चिन्तन करे। मानो आत्मा उसके प्रभापुञ्जसे व्याप्त है। वह निर्मल, चिन्मय तथा देह आदिसे परे है। फिर उस कुण्डलिनीको अपने स्थानपर पहुँचाकर हृदयमें इष्टदेवका चिन्तन करे और मानसिक

[illegible]

क्रमशः 'व भ म य र ल' ये अक्षर अङ्कित हैं। उसमें कमलजन्मा ब्रह्माजी हंसारूढ़ होकर विराजमान हैं। उनके वामाङ्ग-भागमें उनकी ब्राह्मीशक्ति सुशोभित हैं। वे विद्याके अधिपति हैं। स्रुवा और अक्षमाला उनके हाथोंकी शोभा बढ़ाती हैं। ऐसे ब्रह्माजीको छः हजार जप निवेदन करे। मणिपूर चक्रमें दशदल कमल विद्यमान है। उसके प्रत्येक दलपर क्रमशः 'ड ढ ण त थ द ध न प फ' ये अक्षर अङ्कित हैं। उसकी प्रभा विद्युद्विलसित मेघके समान है। उसमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण करनेवाले भगवान् विष्णु लक्ष्मीसहित विराजमान हैं। उन्हें छः हजार जप अर्पण करे। अनाहत चक्रमें द्वादशदल कमल विद्यमान है। इसके प्रत्येक दलपर क्रमशः 'क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ' ये अक्षर अङ्कित हैं। उसका वर्ण शुक्ल है। उसमें शूल, अभय, वर और अमृतकलश धारण करनेवाले वृषभारूढ़ भगवान् रुद्र विराज रहे हैं। उनके वामाङ्ग-भागमें उनकी शक्ति पार्वती देवी विद्यमान हैं। वे विद्याके अधिपति हैं। विद्वान् पुरुष उन रुद्रदेवको छः हजार जप निवेदन करे। विशुद्ध चक्र षोडशदल कमलसे युक्त है। उसके प्रत्येक दलपर क्रमशः स्वरवर्ण (अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः) अङ्कित हैं। वह चक्र शुक्ल वर्णका है। उसमें महाज्योतिसे प्रकाशित होनेवाले इन्द्रियाधिपति ईश्वर विराजमान हैं, जो प्राणशक्तिसे युक्त हैं। उन्हें एक सहस्र जप अर्पण करे। आज्ञाचक्रमें दो दलोंवाला कमल है, उसके दलोंमें क्रमशः 'ह' और 'क्ष' अङ्कित हैं; उसमें पराशक्तिसे युक्त जगद्गुरु सदाशिव विराजमान हैं; उन्हें एक सहस्र जप अर्पण करे। सहस्रार-चक्रमें सहस्र दलोंसे युक्त महाकमल विद्यमान है, उसमें नाद-बिन्दुसहित समस्त मातृकावर्ण विराजमान हैं। उसमें स्थित वर और अभययुक्त हाथोंवाले परम आदिगुरुको एक सहस्र जप निवेदन करे। फिर चुल्लूमें जल लेकर इस प्रकार कहे—'स्वभावतः होते रहनेवाले इक्कीस हजार छः सौ अजपा जपका पूर्वोक्तरूपसे विभागपूर्वक संकल्प करनेके कारण मोक्षदाता भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हों।' इस अजपा गायत्रीके सकल्पमात्रसे मनुष्य बड़े-बड़े पापोंसे मुक्त हो जाता है। 'मैं ब्रह्म ही हूँ, संसारी जीव नहीं हूँ। नित्यमुक्त हूँ, शोक मेरा स्पर्श नहीं कर सकता। मैं सच्चिदानन्द-स्वरूप हूँ।' इस प्रकार अपने आपके विषयमें चिन्तन करे। तदनन्तर दैहिक कृत्य और देवार्चन करे। उसका विधान और सदाचारका लक्षण मैं बताऊँगा। (पूर्व० ६५ अध्याय)

शौचाचार, स्नान, संध्या-तर्पण, पूजागृहमें देवताओंका पूजन, केशव-कीर्त्यादि मातृका-न्यास, श्रीकण्ठमातृका, गणेशमातृका, कलामातृका आदि न्यासोंका वर्णन

सनत्कुमारजी कहते हैं—तदनन्तर बायीं या दाहिनी जिस ओरकी साँस चलती हो, उसी ओरका बायाँ अथवा दाहिना पैर पृथ्वीपर उतारे और इस प्रकार प्रार्थना करे—

समुद्रमेखले देवि पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे ॥ ६६।१-२

'पृथ्वी देवि! समुद्र तुम्हारी मेखला (कटिबन्ध) और पर्वत स्तनमण्डल हैं। विष्णुपत्नि! तुम्हें नमस्कार है, मैंने जो तुम्हें चरणोंसे स्पर्श किया है, मेरे इस अपराधको क्षमा करो।'

इस प्रकार भूदेवीसे क्षमा-प्रार्थना करके विधिपूर्वक विचरण करे। तदनन्तर गाँवसे नैर्ऋत्य कोणमें जाकर इस मन्त्रका उच्चारण करे—

गच्छन्तु ऋषयो देवाः पिशाचा ये च गुह्यकाः।
पितृभूतगणाः सर्वे करिष्ये मलमोचनम् ॥ ३-४

'यहाँ जो ऋषि, देवता, पिशाच, गुह्यक, पितर तथा भूतगण हों, वे चले जायँ, मैं यहाँ मल-त्याग करूँगा।'

ऐसा कहकर तीन बार ताली बजावे और सिरको वस्त्रसे आच्छादित करके मलत्याग करे। रात हो तो दक्षिणकी ओर मुँह करके बैठे और दिनमें उत्तरकी ओर मुँह करके मलत्याग करे। तत्पश्चात् मिट्टी और जलसे शुद्धि करे। लिङ्गमें एक बार, गुदामें तीन बार, बायें हाथमें दस बार, फिर दोनों हाथोंमें सात बार तथा पैरोंमें तीन बार मिट्टी लगावे। इस प्रकार शौच-सम्पादन करके बारह बार जलसे कुल्ला करे। उसके बाद दाँतुनके लिये निम्नाङ्कित मन्त्रसे वनस्पतिकी प्रार्थना करे—

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च।
श्रियं प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते ॥ ८

'वनस्पते! तुम हमें आयु, बल, यश, तेज, संतान,

पशु, धन, लक्ष्मी, प्रज्ञा (ज्ञानशक्ति) तथा मेधा (धारणशक्ति) दो ।'

इस प्रकार प्रार्थना करके मन्त्रका साधक बारह अंगुलकी दाँतुन लेकर एकाग्रचित्त हो उससे दाँत और मुखकी शुद्धि करे । तत्पश्चात् नदी आदिमें नहानेके लिये जाय, उस समय देवताके गुणोंका कीर्तन करता रहे । जलाशयमें जाकर उसको नमस्कार करके स्नानोपयोगी वस्तु-वस्त्र आदिको तटपर रखकर मूल (इष्ट) मन्त्रसे[1] अभिमन्त्रित मिट्टी लेकर उसे कटिसे पैरतकके अङ्गोंमें लगावे और फिर जलाशयके जलसे उसे धो डाले । तदनन्तर पाँच बार जलसे पैरोंको धोकर जलके भीतर प्रवेश करे और नाभितकके जलमें पहुँचकर खड़ा हो जाय। उसके बाद जलाशयकी मिट्टी लेकर बायें हाथकी कलाई, हथेली और उसके अग्रभागमें लगावे और अंगुलीसे जलाशयकी मिट्टी लेकर मन्त्रज्ञ विद्वान् अस्त्र (फट्) के उच्चारणद्वारा उसे अपने ऊपर घुमाकर छोड़ दे । फिर हथेलीकी मिट्टीको छः अङ्गोंमें उनके मन्त्रोंद्वारा लगावे । तदनन्तर डुबकी लगाकर भलीभाँति उन अङ्गोंको धो डाले । यह जल-स्नान बताया गया है । इसके बाद सम्पूर्ण जगत्को अपने इष्टदेवका स्वरूप मानकर आन्तरिक स्नान करे । अनन्त सूर्यके समान तेजस्वी तथा अपने आभूषण और आयुधोंसे सम्पन्न मन्त्रमूर्ति भगवान्का चिन्तन करके यह भावना करे कि उनके चरणोदकसे प्रकट हुई दिव्य धारा ब्रह्मरन्ध्रसे मेरे शरीरमें प्रवेश कर रही है । फिर उस धारासे शरीरके भीतरका सारा मल भावनाद्वारा ही धो डाले । ऐसा करनेसे मन्त्रका साधक तत्काल रजोगुणसे रहित हो स्वच्छ स्फटिकके समान शुद्ध हो जाता है । तत्पश्चात् मन्त्रसाधक शास्त्रोक्तविधिसे स्नान करके एकाग्रचित्त हो मन्त्र-स्नान करे । उसका विधान बताया जाता है । पहले देश-कालका नाम लेकर संकल्प करे, फिर प्राणायाम और षडङ्ग-न्यास करके दोनों हाथोंसे मुष्टिकी मुद्रा बनाकर सूर्यमण्डलसे आते हुए तीर्थोंका आवाहन करे ।

ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवे ।
तेन सत्येन मे देव देहि तीर्थं दिवाकर ॥
गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन् संनिधिं कुरु ॥
(पू० ६६ । २५-२७)

'सूर्यदेव ! ब्रह्माण्डके भीतर जितने तीर्थ हैं, उन सबका आपकी किरणें स्पर्श करती हैं । दिवाकर ! इस सत्यके अनुसार मेरे लिये यहाँ सब तीर्थ प्रदान कीजिये । गङ्गे, यमुने, गोदावरि, सरस्वति, नर्मदे, सिन्धु, कावेरि ! आप इस जलमें निवास करें ।'

इस प्रकार जलमें सब तीर्थोंका आवाहन करके उन्हें सुधाबीज (व) से युक्त करे । फिर गो-मुद्रासे उनका अमृतीकरण करके उन्हें कवचसे अवगुण्ठित करे । फिर अस्त्रद्वारा संरक्षण करके चक्रमुद्राका प्रदर्शन करे । तत्पश्चात् उस जलमें विद्वान् पुरुष अग्नि, सूर्य और चन्द्रमाके मण्डलोंका चिन्तन करे । फिर सूर्यमन्त्र और अमृतबीजके द्वारा उस जलको अभिमन्त्रित करे । तदनन्तर मूल मन्त्रसे ग्यारह बार अभिमन्त्रित करके उसके मध्यभागमें पूजा-यन्त्रकी भावना करे और हृदयसे देवताका आवाहन करके स्नान कराकर मानसिक उपचारसे उनकी पूजा करे । इष्टदेव सिंहासनपर विराजमान हैं, इस भावनासे उन्हें नमस्कार करके विद्वान् पुरुष उस जलको प्रणाम करे—

आधारः सर्वभूतानां विष्णोरतुलतेजसः ।
तद्रूपाश्च ततो जाता आपस्ताः प्रणमाम्यहम् ॥
(३० । ३३)

'जल सम्पूर्ण भूतोंका और अतुल तेजस्वी भगवान् विष्णुका आधार है । अतः वह विष्णुस्वरूप है, इसलिये मैं उसे प्रणाम करता हूँ ।'

इस प्रकार नमस्कार करके साधक अपने शरीरके सात छिद्रोंको बंद करके जलमें डुबकी लगावे और उसमें मूल-मन्त्रका इष्टदेवके स्वरूपमें ध्यान करे । तीन बार डुबकी लगावे और ऊपर आवे । तत्पश्चात् दोनों हाथोंको घटकी मुद्रामें रखकर उसके द्वारा सिरको सींचे ।

फिर श्रीशालग्रामशिलाका जल (भगवच्चरणामृत) पान करे । कभी इसके विरुद्ध आचरण न करे । यह शास्त्रका नियत विधान है । तदनन्तर मन्त्रका साधक अपने इष्टदेवका सूर्यमण्डलमें विसर्जन करके तटपर आवे और पहलेके वस्त्र धोकर दो शुद्ध वस्त्र (धोती और अँगोछा) धारण करके विद्वान् पुरुष संध्या आदि करे । रोगादिके कारण स्नानादिमें असमर्थ हो, वह वहाँ जलसे स्नान न करके मन्त्र-स्नान करे अथवा अशक्त मनुष्य भस्म या धूलसे स्नान करे । तदनन्तर शुभ आसनपर बैठकर संध्यादि कर्म करे । 'ॐ केशवाय नमः' 'ॐ नारायणाय नमः' 'ॐ माधवाय नमः' इन मन्त्रोंसे तीन बार जलका आचमन करे । 'ॐ गोविन्दाय नमः' 'ॐ विष्णवे नमः'—इन मन्त्रोंका उच्चारण करके दोनों हाथ धो ले । फिर 'ॐ मधुसूदनाय

1. अपने इष्टदेवके अभीष्ट मन्त्रको ही यहाँ मूलमन्त्र कहा है ।

नमः' 'ॐ त्रिविक्रमाय नमः' से दोनों ओठोंका मार्जन करे। तत्पश्चात् 'ॐ वामनाय नमः' 'ॐ श्रीधराय नमः' से मुख और दोनों हाथोंका स्पर्श करे। 'ॐ हृषीकेशाय नमः' 'ॐ पद्मनाभाय नमः' से दोनों चरणोंका स्पर्श करे। 'ॐ दामोदराय नमः' से मूर्धा (मस्तक) का, 'ॐ संकर्षणाय नमः' से मुखका, 'ॐ वासुदेवाय नमः' 'ॐ प्रद्युम्नाय नमः' से क्रमशः दायीं-बायीं नासिकाका स्पर्श करे। 'ॐ अनिरुद्धाय नमः' 'ॐ पुरुषोत्तमाय नमः' से पूर्ववत् दोनों नेत्रोंका तथा 'ॐ अधोक्षजाय नमः', 'ॐ नृसिंहाय नमः' से दोनों कानोंका स्पर्श करे। 'ॐ अच्युताय नमः' से नाभिका, 'ॐ जनार्दनाय नमः' से वक्षःस्थलका तथा 'ॐ हरये नमः', 'ॐ विष्णवे नमः' से दोनों कंधोंका स्पर्श करे। यह वैष्णव आचमनकी विधि है। आदिमें प्रणव और अन्तमें चतुर्थीका एकवचन तथा नमः पद जोड़कर पूर्वोक्त केशव आदि नामोंद्वारा मुख आदिका स्पर्श करना चाहिये। मुख और नासिकाका स्पर्श तर्जनी अंगुलिसे करे। नेत्रो तथा कानोंका स्पर्श अनामिकाद्वारा करे तथा नाभिदेशका स्पर्श कनिष्ठा अंगुलिसे करे। अङ्गुष्ठका स्पर्श सभी अङ्गोंमें करना चाहिये। 'स्वाहा' पद अन्तमें जोड़कर चतुर्थ्यन्त आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्वका उच्चारण करके जो आचमन किया जाता है, उसे शैव आचमन कहा गया है। आदिमें क्रमशः दीर्घत्रय, अनुस्वार और ह अर्थात्—हा हीं हू जोड़कर स्वाहान्त आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्व शब्दोंके उच्चारणपूर्वक किये हुए आचमनको तो शैव कहते हैं और आदिमें क्रमशः 'ऐं, ह्रीं, श्रीं' इस बीजके साथ स्वाहान्त उक्त नामोंका उच्चारण करके किये हुए आचमनको शाक्त आचमन कहा गया है। ब्रह्मन्! वाग्बीज (ऐं), लज्जाबीज (ह्रीं) और श्रीबीज (श्रीं) का प्रारम्भमें प्रयोग करनेसे वह आचमन अभीष्ट अर्थको देनेवाला होता है।

तदनन्तर ललाटमें सुन्दर गदाकी-सी आकृतिवाला तिलक लगावे। हृदयमें नन्दक नामक खड्गकी और दोनों बाँहोंपर क्रमशः शङ्ख और चक्रकी आकृति बनावे। उत्तम बुद्धिवाला वैष्णव पुरुष क्रमशः मस्तक, कर्णमूल, पार्श्वभाग, पीठ, नाभि तथा ककुद्में भी शार्ङ्ग नामक धनुष तथा बाणका न्यास करे। इस प्रकार वैष्णव पुरुष तीर्थजनित मृत्तिका (गोपीचन्दन) आदिसे तिलक करे। अथवा शैवजन त्र्यम्बकमन्त्रसे अग्निहोत्रका भस्म लेकर 'अग्निरिति भस्म' इत्यादि मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके तत्पुरुष, अघोर, सद्योजात, वामदेव और ईशान—इन नामोंद्वारा क्रमशः ललाट, कंधे, उदर, भुजा और हृदयमें पाँच जगह त्रिपुण्ड्र लगावे। शक्तिके उपासकको त्रिकोणकी आकृतिका अथवा स्त्रियाँ जैसे बेंदी लगाती हैं, उस तरहका तिलक करना चाहिये। वैदिकी सध्या करनेके बाद मन्त्रका साधक विधिवत् आचमन करके तान्त्रिकी संध्या करे। पूर्ववत् जलमें तीर्थोंका आवाहन कर ले। तत्पश्चात् कुशासे तीन बार पृथ्वीपर जल छिड़के। फिर उसी जलसे सात बार अपने मस्तकपर अभिषेक करे। फिर प्राणायाम और षडङ्गन्यास करके बायें हाथमें जल लेकर उसे दाहिने हाथसे ढक ले। और मन्त्रज्ञ पुरुष आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वीके बीजमन्त्रोंद्वारा* उसे अभिमन्त्रित करके तत्त्वमुद्रा-पूर्वक हाथसे चूते हुए जलबिन्दुओंद्वारा मूलमन्त्रसे अपने मस्तकको सात बार सींचे, फिर शेष जलको मन्त्रका साधक बीजाक्षरोंसे अभिमन्त्रित करके नासिकाके समीप ले आवे। उस तेजोमय जलको भावनाद्वारा इडा नाडीसे भीतर खींचकर उसके अन्तरके सारे मलोंको धो डाले, फिर कृष्णवर्णमें परिणत हुए उस जलको पिङ्गला नाड़ीसे बाहर निकाले और अपने आगे वज्रमय प्रस्तरकी कल्पना करके अस्त्रमन्त्र (फट्) का उच्चारण करते हुए उस जलको उसीपर दे मारे। यह सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला अघमर्षण कहा गया है। फिर मन्त्रवेत्ता पुरुष हाथ-पैर धोकर पूर्ववत् आचमन करके खड़ा हो ताँबेके पात्रमें पुष्प-चन्दन आदि डालकर मूलान्त मन्त्रका उच्चारण करते हुए सूर्यमण्डलमें विराजमान इष्टदेवको अर्घ्य दे। इस प्रकार तीन बार अर्घ्य देकर रविमण्डलमें स्थित आराध्यदेवका ध्यान करे। तत्पश्चात् अपने-अपने कल्पमें बतायी हुई गायत्रीका एक सौ आठ या अट्ठाईस बार जप करे। जपके अन्तमे 'गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं' इत्यादि मन्त्रसे वह जप समर्पित करे, तदनन्तर गायत्रीका ध्यान करे।

फिर विधिज्ञ पुरुष देवताओं, ऋषियों तथा अपने पितरोंका तर्पण करके कल्पोक्त पद्धतिसे अपने इष्टदेवका भी

१. हां आत्मतत्त्वाय स्वाहा। हीं विद्यातत्त्वाय स्वाहा। हूं शिवतत्त्वाय स्वाहा। ये शैव आचमन-मन्त्र हैं।

२. ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा। ह्रीं विद्यातत्त्वाय स्वाहा। श्रीं शिवतत्त्वाय स्वाहा। ये शाक्त आचमन-मन्त्र हैं।

* हं यं रं वं लं—ये क्रमशः आकाश आदि तत्त्वोंके बीज हैं।

तर्पण करे। तत्पश्चात् गुरुपङ्क्तिका तर्पण करके अङ्गों, आयुधों और आवरणोंसहित विनतानन्दन गरुडका 'साङ्गं सावरणं सायुधं वैनतेयं तर्पयामि' ऐसा कहकर तर्पण करे। इसके बाद नारद, पर्वत, जिष्णु, निशठ, उद्धव, दारुक, विष्वक्सेन तथा शैलेयका वैष्णव पुरुष तर्पण करे। विप्रेन्द्र! इस प्रकार तर्पण करके विवस्वान् सूर्यको अर्घ्य दे पूजाघरमें आकर हाथ-पैर धोकर आचमन करे। फिर अग्निहोत्रमें स्थित गार्हपत्य आदि अग्नियोंकी तृप्तिके लिये हवन करके यत्नपूर्वक उनकी उपासना करके पूजाके स्थानमें आकर द्वार-पूजा प्रारम्भ करे। द्वारकी ऊपरी शाखामें गणेशजीकी, दक्षिण भागमें महालक्ष्मीकी, वाम भागमें सरस्वतीकी, दक्षिणमें पुनः विघ्नराज गणेशकी, वाम भागमें क्षेत्रपालकी, दक्षिणमें गङ्गाकी, वाम भागमें यमुनाकी, दक्षिणमें धाताकी, वाम भागमें विधाताकी, दक्षिणमें शङ्खनिधिकी तथा वाम भागमें पद्मनिधिकी पूजा करे। तत्पश्चात् विद्वान् पुरुष तत्तत्कल्पोक्त द्वारपालोंकी पूजा करे। नन्द, सुनन्द, चण्ड, प्रचण्ड, प्रचल, बल, भद्र तथा सुभद्र ये वैष्णव द्वारपाल हैं। नन्दी, भृङ्गी, रिटि, स्कन्द, गणेश, उमामहेश्वर, नन्दीवृषभ तथा महाकाल—ये शैव द्वारपाल हैं। ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी आदि जो आठ मातृका शक्तियाँ हैं, वे स्वयं ही द्वारपालिका हैं। इन सबके नामके आदि-अक्षरमें अनुस्वार लगाकर उसे नामके पहले बोलना चाहिये। नामके चतुर्थी विभक्त्यन्त रूपके बाद नमः लगाना चाहिये। यथा—'नं नन्दाय नमः' इत्यादि। इन्हीं नाममन्त्रोंसे इन सबकी पूजा करनी चाहिये।

वैष्णव-मातृका-न्यास

इसके बाद बुद्धिमान् पुरुष पवित्र हो मन और इन्द्रियोंके संयमपूर्वक आसनपर बैठकर आचमन करे और यत्नपूर्वक स्वर्ग, अन्तरिक्ष तथा पृथ्वीके विघ्नोंका निवारण करनेके अनन्तर श्रेष्ठ वैष्णव पुरुष केशव-कीर्त्यादि मातृका-न्यास करे। कीर्तिसहित केशव, कान्तिसहित नारायण, तुष्टिके साथ माधव, पुष्टिके साथ गोविन्द, धृतिके साथ विष्णु, शान्तिके साथ मधुसूदन, क्रियाके साथ त्रिविक्रम, दयाके साथ वामन, मेधाके साथ श्रीधर, हर्षाके साथ हृषीकेश, पद्मनाभके साथ श्रद्धा, दामोदरके साथ लज्जा, लक्ष्मीसहित वासुदेव, सरस्वतीसहित संकर्षण, प्रीतिके साथ प्रद्युम्न, रतिके साथ अनिरुद्ध, जयाके साथ चक्री, दुर्गाके साथ गदी, प्रभाके साथ शार्ङ्गी, सत्याके साथ खड्गी, चण्डाके साथ शङ्खी, वाणीके साथ हली, विलासिनीके साथ मुसली, विजयाके साथ शूली, विरजाके साथ पाशी, विश्वाके साथ अङ्कुशी, विनदाके साथ मुकुन्द, सुनन्दाके साथ नन्दज, स्मृतिके साथ नन्दी, वृद्धिके साथ नर, समृद्धिके साथ नरकजित्, शुद्धिके साथ हरि, बुद्धिके साथ कृष्ण, भुक्तिके साथ सत्य, मुक्तिके साथ सात्वत, क्षमासहित शौरि, रमासहित शूर, उमासहित जनार्दन (शिव) क्लेदिनीसहित भूधर, क्लिन्नाके साथ विश्वमूर्ति, वसुधाके साथ वैकुण्ठ, वसुदाके साथ पुरुषोत्तम, पराके साथ बली, परायणाके साथ बलानुज, सूक्ष्माके साथ बाल, संध्याके साथ वृषघ्न, प्रज्ञाके साथ वृष, प्रभाके साथ हंस, निशाके साथ वराह, अमोघाके साथ विमल तथा विद्युत्के साथ नृसिंहका न्यास करे। इस केशवादि मातृकान्यासके नारायण ऋषि, अमृतगर्भा गायत्री छन्द और विष्णु देवता हैं। भगवान् विष्णु चक्र आदि आयुधोंसे सुशोभित हैं, उन्होंने हाथोंमें कमल और दर्पण ले रक्खा है, वे श्रीहरि श्रीलक्ष्मीजीके साथ शोभा पा रहे हैं, उनकी अङ्गकान्ति विद्युत्के समान प्रकाशमान है और वे अनेक प्रकारके दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हैं; ऐसे भगवान् विष्णुका मैं भजन करता हूँ। इस प्रकार ध्यान करके शक्ति (ह्रीं), श्री (श्रीं) तथा काम (क्लीं) बीजसे सम्पुटित 'अ' आदि एक एक अक्षरका ललाट आदिमें न्यास करे। उसके साथ आदिमें प्रणव लगाकर श्रीविष्णु और उनकी शक्तिके चतुर्थ्यन्त नाम बोलकर अन्तमें 'नमः' पद जोड़कर बोले।*

एक अक्षर 'अ'का ललाटमें, फिर एक अक्षर 'आ'का मुखमें, दो अक्षर 'इ' और 'ई'का क्रमशः दाहिने और बायें नेत्रमें और दो अक्षर 'उ' 'ऊ'का क्रमशः दाहिने बायें कानमें न्यास करे। दो अक्षर 'ऋ' 'ॠ'का दायीं बायीं नासिकामें, दो अक्षर 'ऌ' 'ॡ'का दायें-बायें कपोलोंमें, दो अक्षर 'ए' 'ऐ'का ऊपर-नीचेके ओठोंमें, दो अक्षर 'ओ' 'औ'का ऊपर-नीचेकी दन्तपङ्क्तिमें, एक अक्षर 'अं'

---

* उदाहरणके लिये एक वाक्ययोजना दी जाती है—'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अं ह्रीं श्रीं क्लीं केशवकीर्तिभ्यां नमः (ललाटे)' ऐसा कहकर ललाटका स्पर्श करे। इसी प्रकार 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं आं ह्रीं श्रीं क्लीं नारायणकान्तिभ्यां नमः (मुखे)' ऐसा कहकर मुखका स्पर्श करे। ललाट, मुख आदि जिन-जिन अङ्गोंमें मातृका वर्णोंका न्यास करना है, उनका निर्देश मूलमें किया जा रहा है। इन सबके लिये उपर्युक्त रीतिसे वाक्ययोजना करनी चाहिये। इसमें द्विवचन-विभक्ति [illegible] का अन्तमें प्रयोग देखा जानेके कारण [illegible] पूर्वनिपात नहीं किया गया।

का जिह्वामूलमें तथा एक अक्षर 'अः' का ग्रीवामें न्यास करे। दाहिनी बाँहमें कवर्गका और बायीं बाँहमें चवर्गका न्यास करे। टवर्ग और तवर्गका दोनों पैरोंमें तथा 'प' और 'फ' का दोनों कुक्षियोंमें न्यास करे। पृष्ठवंशमें 'ब' का, नाभिमें 'भ' का और हृदयमें 'म' का न्यास करे। 'य' आदि सात अक्षरोंका शरीरकी सात धातुओंमें, 'ह' का प्राणमें तथा 'ळ' का आत्मामें न्यास करे। 'क्ष' का क्रोधमें न्यास करना चाहिये। इस प्रकार क्रमसे मातृका वर्णोंका न्यास करके मनुष्य भगवान् विष्णुकी पूजामें समर्थ होता है।

शैव-मातृका-न्यास

[भगवान् शिवके उपासकको केशव-कीर्त्यादि मातृका-न्यासकी भाँति श्रीकण्ठेशादि मातृका-न्यास करना चाहिये।] पूर्णोदरीके साथ श्रीकण्ठेशका, विरजाके साथ अनन्तेशका, शाल्मलीके साथ सूक्ष्मेशका, लोलाक्षीके साथ त्रिमूर्तीशका, वर्तुलाक्षीके साथ महेशका और दीर्घघोणाके साथ अर्घीशका न्यास करे*। दीर्घमुखीके साथ भारभूतीशका, गोमुखीके साथ तिथीश-का, दीर्घजिह्वाके साथ स्थाण्वीशका, कुण्डोदरीके साथ हरेशका, ऊर्ध्वकेशीके साथ झिण्टीशका, विकृतास्याके साथ भौतिकेशका, ज्वालामुखीके साथ सद्योजातेशका, उल्कामुखीके साथ अनुग्रहेशका, आस्याके साथ अक्रूरका, विद्याके साथ महासेन-का, महाकालीके साथ क्रोधीशका, सरस्वतीके साथ चण्डेशका, सिद्धगौरीके साथ पञ्चान्तकेशका, त्रैलोक्यविद्याके साथ शिवोत्तमेशका, मन्त्र-शक्तिके साथ एकरुद्रेशका, कमठीके साथ कूर्मेशका, भूतमाताके साथ एकनेत्रेशका, लम्बोदरीके साथ चतुर्वक्त्रेशका, द्राविणीके साथ अजेशका, नागरीके साथ सर्वेशका, खेचरीके साथ सोमेशका, मर्यादाके साथ लाङ्गलीशका, दारुकेशके साथ रूपिणीका तथा वीरिणीके साथ अर्धनारीशका न्यास करना चाहिये। काकोदरीके साथ उमाकान्त (उमेश)का और पूतनाके साथ आषाढीश-का न्यास करे। भद्रकालीके साथ दण्डीशका, योगिनीके साथ अत्रीशका, शङ्खिनीके साथ मीनेशका, तर्जनीके साथ मेषेशका, कालरात्रिके साथ लोहितेशका, कुब्जनीके साथ शिखीशका, कपर्दिनीके साथ छलगण्डेशका, वज्राके साथ द्विरण्डेशका, जया-के साथ महाबलेशका, सुमुखेश्वरीके साथ बलीशका, रेवतीके साथ भुजङ्गेशका, माध्वीके साथ पिनाकीशका, वारुणीके सा खड्गीशका, वायवीके साथ बकेशका, विदारणीके सा श्वेतोरस्केशका, सहजाके साथ भृग्वीशका, लक्ष्मीके सा लकुलीशका, व्यापिनीके साथ शिवेशका तथा महामाया साथ संवर्तकेशका न्यास करे। यह श्रीकण्ठमातृका कही ग है। जहाँ 'ईश' पद न कहा गया हो, वहाँ सर्वत्र उस योजना कर लेनी चाहिये। इस श्रीकण्ठमातृका-न्यास दक्षिणामूर्ति ऋषि और गायत्री छन्द कहा गया है। अर्धनारीश्व देवता है और सम्पूर्ण मनोरथोंकी प्राप्तिके लिये इसका विनियो कहा गया है। इसके हल् बीज और स्वर शक्तियाँ हैं। भृ (स)में स्थित आकाश (ह) को छः दीर्घोंसे युक्त कर उसके द्वारा अङ्गन्यास करे*। इसके बाद भगवान् शङ्कर इस प्रकार ध्यान करे। उनका श्रीविग्रह बन्धूकपुष्प प सुवर्णके समान है। वे अपने हाथोंमें वर, अक्षमाला, अङ्कु और पाश धारण करते हैं। उनके मस्तकपर अर्धचन्द्रका मुकु सुशोभित है। उनके तीन नेत्र हैं तथा सम्पूर्ण देवता उन चरणोंकी वन्दना करते हैं।

गाणपत्य-मातृका-न्यास

इस प्रकार शिवशक्तिका ध्यान करके अन्तमें चतु विभक्ति और नमः पद जोड़कर तथा आदिमें गणेशजी अपना बीज लगाकर मातृकास्थलमें एक-एक मातृका वर्णके स शक्तिसहित गणेशजीका न्यास करे। ह्रीके साथ विघ्नेश त श्रीके साथ विघ्नराजका न्यास करे†। पुष्टिके साथ विनाय शान्तिके साथ शिवोत्तम, स्वस्तिसहित विघ्नकृत्, सरस्व सहित विघ्नहर्ता, स्वाहासहित गणनाथ, सुमेधासहित एकदन् कान्तिसहित द्विदन्त, कामिनीसहित गजमुख, मोहिनीसहि निरञ्जन, नटीसहित कपर्दी, पार्वतीसहित दीर्घजिह्व, ज्वालि सहित शङ्कुकर्ण, नन्दासहित वृषध्वज, सुरेशीसहित गणनाय कामरूपिणीके साथ गजेन्द्र, उमाके साथ शूर्पकर्ण, तेजोवत साथ विरोचन, सतीके साथ लम्बोदर, विघ्नेशीके साथ महानन सुरूपिणीसहित चतुर्मूर्ति, कामदासहित सदाशिव, मदजिह्वास आमोद, भूतिसहित दुर्मुख, भौतिकीके साथ सुमुख, सित साथ प्रमोद, रमाके साथ एकपाद, महिषीके साथ द्विजि

---

* उदाहरणके लिये वाक्यप्रयोग इस प्रकार है—ह्सौं अं श्रीकण्ठेशपूर्णोदरीभ्यां नमः (ललाटे)। ह्सौं आं अनन्तेश-विरजाभ्यां नमः (मुखवृत्ते) इत्यादि।

* ह्सां हृदयाय नमः। ह्सीं शिरसे स्वाहा। ह्सूं शि वषट्। ह्सैं कवचाय हुम्। ह्सौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ह्सः अस्त्राय फ

† गं अं विघ्नेशह्रीभ्यां नमः (ललाटे), गं आं विघ्नर श्रीभ्यां नमः (मुखवृत्ते) इत्यादि रूपसे वाक्ययोजना लेनी चाहिये।

जृम्भिनीके साथ शूर, विकर्णाके साथ वीर, भ्रुकुटीसहित षण्मुख, लज्जाके साथ वरद, दीर्घघोणाके साथ वामदेवेश, धनुर्धरीके साथ वक्रतुण्ड, यामिनीके साथ द्विरण्ड, रात्रिसहित सेनानी, ग्रामणीसहित कामान्ध, शशिप्रभाके साथ मत्त, लोलनेत्राके साथ विमत्त, चञ्चलाके साथ मत्तवाह, दीप्तिके साथ जटी, सुभगाके साथ मुण्डी, दुर्भगाके साथ खड्गी, शिवाके साथ वरेण्य, भगाके साथ वृषकेतन, भगिनीके साथ भक्तप्रिय, भोगिनीके साथ गणेश, सुभगाके साथ मेघनाद, कालरात्रिसहित व्यापी तथा कालिकाके साथ गणेशका अपने अङ्गोंमें न्यास करना चाहिये। इस प्रकार विघ्नेश-मातृकाका वर्णन किया गया है। गणेशमातृकाके गण ऋषि कहे गये हैं। निचृद् गायत्री छन्द है तथा शक्तिसहित गणेश्वर देवता हैं। छः दीर्घ स्वरोंसे युक्त गणेशबीज (गां गीं गूं गैं गौं गः) के द्वारा अङ्गन्यास करके उनका इस प्रकार ध्यान करे—गणेशजी अपने चारों भुजाओंमें क्रमशः पाश, अङ्कुश, अभय और वर धारण किये हुए हैं, उनकी पत्नी सिद्धि हाथमें कमल ले उनसे सटकर बैठी हैं, उनका शरीर रक्तवर्णका है तथा उनके तीन नेत्र हैं, ऐसे गणपतिका मैं भजन करता हूँ। इस प्रकार ध्यान करके स्वकीय बीजको पूर्वाक्षरके रूपमें रखकर उक्त मातृकान्यास करना चाहिये।

कला-मातृका-न्यास

(अब कला-मातृकान्यास बताया जाता है—) निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति, इन्धिका, दीपिका, रोचिका, मोचिका, परा, सूक्ष्मा, असूक्ष्मा, अमृता, ज्ञानामृता, आप्यायिनी, व्यापिनी, व्योमरूपा, अनन्ता, सृष्टि, समृद्धिका, स्मृति, मेधा, कान्ति, लक्ष्मी, द्युति, स्थिरा, स्थिति, सिद्धि, जरा, पालिनी, क्षान्ति, ईश्वरी, रति, कामिका, वरदा, ह्लादिनी, प्रीति, दीर्घा, तीक्ष्णा, रौद्रा, निद्रा, तन्द्रा, क्षुधा, क्रोधिनी, क्रियाकारी, मृत्यु, पीता, श्वेता, असिता और अनन्ता—इस प्रकार कलामातृका कही गयी हैं। भक्त पुरुष उन-उन मातृकाओंका न्यास करे। इस न्यासवृन्दके प्रजापति ऋषि कहे गये हैं। इसका छन्द गायत्री और देवता शारदा हैं। ह्रस्व और दीर्घ स्वरके बीचमें प्रणव रखकर उसीके द्वारा षडङ्गन्यास करे (यथा—अं ॐ आं हृदयाय नमः, इं ॐ ईं शिरसे स्वाहा, उं ॐ ऊं शिखायै वषट्, एं ॐ ऐं कवचाय हुम्, ओं ॐ औं नेत्रत्रयाय वौषट्, अं ॐ अः अस्त्राय फट्)। विद्वान् पुरुष मोतियोंके आभूषणोंसे विभूषित पञ्चमुखी शारदादेवीका भजन (ध्यान) करे। उनके तीन नेत्र हैं तथा वे अपने हाथोंमें पद्म, चक्र, गुण (त्रिशूल अथवा पाश) तथा एण (मृगचर्म) धारण करती हैं। इस प्रकार ध्यान करके ॐपूर्वक चतुर्थ्यन्त कलायुक्त मातृकाका न्यास करे (यथा—ॐ अं निवृत्त्यै नमः ललाटे, ॐ आं प्रतिष्ठायै नमः मुखवृत्ते इत्यादि)। तदनन्तर मूलमन्त्रके छहों अङ्गोंका न्यास करना चाहिये। 'हृदय' आदि चतुर्थ्यन्त पदमें अङ्गन्यास-सम्बन्धी जातियोंका संयोग करके न्यास करे। 'नमः', 'स्वाहा', 'वषट्', 'हुम्', 'वौषट्' और 'फट्' ये छः जातियाँ कही गयी हैं (अर्थात् हृदयाय नमः, शिरसे स्वाहा, शिखायै वषट्, कवचाय हुम्, नेत्रत्रयाय वौषट्, अस्त्राय फट्—इस प्रकार संयोजना करे)। तत्पश्चात् आयुध और आभूषणोंसहित इष्टदेवका ध्यान करके उनकी मूर्तिमें छः अङ्गोंका न्यास करनेके पश्चात् पूजन प्रारम्भ करे। (पूर्व० ६६ अध्याय)

देवपूजनकी विधि

सनत्कुमारजी कहते हैं—अब मैं साधकोंका अभीष्ट मनोरथ सिद्ध करनेवाली देवपूजाका वर्णन करता हूँ। अपने बाम भागमें त्रिकोण अथवा चतुष्कोणकी रचना करके उसकी पूजा करे और अस्त्र-मन्त्रद्वारा उसपर जल छिड़के। तत्पश्चात् हृदयसे आधारशक्तिकी भावना करके उसमें अग्निमण्डलका पूजन करे। फिर अस्त्रबीजसे पात्र धोकर आधारस्थानमें चमस रखकर उसमें सूर्यमण्डलकी भावना करे। विलोम मातृका मूलका उच्चारण करते हुए उस पात्रको जलसे भरे। फिर उसमें चन्द्रमण्डलकी पूजा करके पूर्ववत् उसमें तीर्थोंका आवाहन करे। तदनन्तर धेनु-मुद्रासे अमृतीकरण करके कवचसे उसको आच्छादित करे। फिर अस्त्रसे उसका संरक्षण करके उसके ऊपर आठ बार प्रणवका जप करे। यह साधकोंके लिये सर्वसिद्धिदायक सामान्य अर्घ्य बताया गया है। फिर साधक उस जलमेंसे किञ्चित् निकालकर उससे अपने आपको तथा सम्पूर्ण पूजन-सामग्रियोंपर पृथक्-पृथक् छिड़के। अपने वाम भागमें आगेकी ओर एक त्रिकोण मण्डल अङ्कित करे। उस त्रिकोणको षट्कोणसे आवृत करके उसको वृत्ताकार रेखासे घेर दे, फिर उसको चतुष्कोण रेखासे आवृत करके

अर्घ्य जलसे अभिषेक करे। तत्पश्चात् श्रेष्ठ साधक शङ्खमुद्रासे स्तम्भन करे। आग्नेय आदि चार कोणोंमें हृदय, सिर, शिखा और कवच (भुजमूल)—इन चार अङ्गोंकी पूजा करके मध्यभागमें नेत्रकी तथा दिशाओंमें अस्त्रकी (पुष्पाक्षत आदि-से) पूजा करे। फिर त्रिकोण मण्डलके मध्यमें स्थित आधार-शक्तिका मूलखण्डत्रयसे पूजन करे। इस प्रकार विधिवत् पूजन करके अस्त्र (फट्) के उच्चारणपूर्वक प्रक्षालित की हुई त्रिपादिका (तिरपाई) स्थापित करके निम्नाङ्कित मन्त्रसे उसकी पूजा करे। 'मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने ····· देवतार्घ्यपात्रासनाय नमः' आधारपूजनके लिये यह चौबीस अक्षरोंका मन्त्र है। तत्पश्चात् शङ्खको तत्सम्बन्धी मन्त्रद्वारा धोकर उसे स्थापित करनेके अनन्तर उसकी पूजा करे। शङ्खके स्थापनका मन्त्र इस प्रकार है, पहले तार (ॐ) है, फिर काम (क्लीं) है, उसके बाद 'महा' शब्द है, तत्पश्चात् 'जलचराय' है। फिर वर्म (हुम्), 'फट्' 'स्वाहा' 'पाञ्चजन्याय' तथा हृदय (नमः पद) है। पूरा मन्त्र इस प्रकार समझना चाहिये—'ॐ क्लीं महाजलचराय हुं फट् स्वाहा पाञ्चजन्याय नमः।' इसके बाद 'ॐ अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने ···· देवार्घ्यपात्राय नमः' इस तेईस अक्षरवाले मन्त्रसे शङ्खकी पूजा करनी चाहिये। (इष्टदेवका नाम जोड़नेसे अक्षर-संख्या पूरी होती है।) उस मन्त्रसे पूजन करनेके अनन्तर उसमें सूर्यकी बारह कलाओंका क्रमशः पूजन करे। तत्पश्चात् विलोमक्रमसे मूलमातृका वर्णोंका उच्चारण करते हुए शुद्ध जलसे शङ्खको भर दे और उसकी निम्नाङ्कित मन्त्रसे पूजा करे—'ॐ सोममण्डलाय षोडशकलात्मने देवार्घ्यामृताय नमः'। अर्घ्यपूजनके लिये यही मन्त्र है। फिर उस जलमें चन्द्रमाकी सोलह कलाओंकी पूजा करे। तदनन्तर पहले बताये अनुसार 'गङ्गे च यमुने चैव' इत्यादि मन्त्रसे सब तीर्थोंका उसमें आवाहन करके धेनुमुद्रा[1]द्वारा उसका अमृतीकरण[1] करे और मत्स्यमुद्रा[2]द्वारा उसे आच्छादित करे। फिर कवच (हुं बीज) द्वारा अवगुण्ठन[3] करके पुनः अस्त्र (फट्) द्वारा उसकी रक्षा करे। तदनन्तर इष्टदेवका चिन्तन करके मुद्रा प्रदर्शन करे। शङ्ख[4], मुसल[5], चक्र[6], परमीकरण[7], महीमुद्रा[8] तथा योनिमुद्रा[9]का विद्वान् पुरुष क्रमशः प्रदर्शन करावे।

---

१. धेनुमुद्राका लक्षण इस प्रकार है—

> वामाङ्गुलीना मध्येषु दक्षिणाङ्गुलिकास्तथा।
> संयोज्य तर्जनीं दक्षा मध्यमानामयोस्तथा॥
> दक्षमध्यमयोर्वामां तर्जनीं च नियोजयेत्।
> वामयानामया दक्षकनिष्ठां च नियोजयेत्॥
> दक्षयानामया वामां कनिष्ठा च नियोजयेत्।
> विहिताधोमुखी चैषा धेनुमुद्रा प्रकीर्तिता॥

'बायें हाथकी अंगुलियोंके बीचमें दाहिने हाथकी अंगुलियोंको संयुक्त करके दाहिनी तर्जनीको मध्यमाके बीचमें लगावे। दाहिने हाथकी मध्यमामें बायें हाथकी तर्जनीको मिलावे। फिर बायें हाथकी अनामिकासे दाहिने हाथकी कनिष्ठिका और दाहिने हाथकी अनामिकाके साथ बायें हाथकी कनिष्ठिकाको संयुक्त करे। फिर इन सबका मुख नीचेकी ओर करे—यही धेनुमुद्रा कही गयी है।'

१. अमृतीकरणकी विधि यह है 'वं' इस अमृतबीजका उच्चारण करके उक्त धेनुमुद्राको दिखावे। २ मत्स्यमुद्रा इस प्रकार है—बायें हाथके पृष्ठ भागपर दाहिने हाथकी हथेली रक्खे। दोनों अँगूठोंको फैलाये रक्खे। ३. बायीं मुट्ठी इस प्रकार बाँध ले, जिससे तर्जनी अंगुली निकली रहे, इस प्रकारकी मुट्ठीको शङ्खके ऊपर घुमाना अवगुण्ठनी मुद्रा है। ४. शङ्खमुद्राका लक्षण इस प्रकार है—बायें अँगूठेको दाहिनी मुट्ठीसे पकड़ ले। मुट्ठी उत्तान करके अँगूठेको फैला दे। बायें हाथकी चारों अंगुलियोंको सटी हुई रक्खे और उन्हें फैलाकर दाहिने अँगूठेसे सटा दे। यह शङ्खकी मुद्रा ऐश्वर्य देनेवाली है। ५. मुसलमुद्रा—

> मुष्टिं कृत्वा तु हस्ताभ्यां वामस्योपरि दक्षिणम्।
> कुर्यान्मुसलमुद्रेयं सर्वविघ्नविनाशिनी॥

दोनों हाथोंकी मुट्ठी बाँधकर बायींके ऊपर दाहिनी मुट्ठी रख दे। यह सब विघ्नोंका नाश करनेवाली मुसलमुद्रा कही गयी है। ६. चक्रमुद्रा—

> हस्तौ च सम्मुखौ कृत्वा सुभुग्नौ सुप्रसारितौ।
> कनिष्ठाङ्गुष्ठकौ लग्नौ मुद्रैषा चक्रसंज्ञिका॥

दोनों हाथोंको आमने-सामने करके उन्हें भलीभाँति फैलाकर मोड़ दे और दोनों कनिष्ठिकाओं तथा अँगूठोंको परस्पर सटा दे। यह चक्रमुद्रा है। ७. दोनों हाथोंकी अंगुलियोंको परस्पर सटाकर हाथोंको अलग रक्खे—यही परमीकरण मुद्रा है।

८. महामुद्रा—

> अन्योऽन्यग्रथिताङ्गुष्ठा प्रसारितकराङ्गुली।
> महामुद्रेयमुदिता परमीकरणे बुधैः॥

अँगूठोंको परस्पर ग्रथित करके दोनों हाथोंकी अंगुलियोंको फैला दे। विद्वानोंने इसीको परमीकरणमें महामुद्रा कहा है। ९. दोनों हाथोंको उत्तान रखते हुए दायें हाथकी अनामिकासे बायें हाथकी तर्जनीको और बायें हाथकी अनामिकासे

गारुड़ी[1] और गालिनी[2]—ये दो मुद्राएँ मुख्य कही गयी हैं। गन्ध-पुष्प आदिसे वहाँ देवताका पूजन और स्मरण करे। आठ बार मूल मन्त्रका तथा आठ बार प्रणवका जप करे। शङ्खसे दक्षिण दिशाकी ओर प्रोक्षणीपात्र रक्खे। शङ्खका थोड़ा-सा जल प्रोक्षणीपात्रमें डालकर उससे अपने ऊपर तीन बार अभिषेक करे। उस समय क्रमशः इन तीन मन्त्रोंका उच्चारण करे—'ॐ आत्मतत्त्वात्मने नमः, ॐ विद्यातत्त्वात्मने नमः, ॐ शिवतत्त्वात्मने नमः।' विद्वान् पुरुष इन मन्त्रों-द्वारा अपने साथ ही उस मण्डलका भी विधिवत् प्रोक्षण करे और उसमें पुष्प तथा अक्षत भी बिखेरे। अथवा मूलगायत्रीसे पूजाद्रव्योंका प्रोक्षण करे। फिर किसी आधार(चौकी) पर पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय तथा मधुपर्कके लिये अपने आगे अनेक पात्र विधिवत् रख ले। श्यामाक (सावाँ), दूर्वा, कमल, विष्णु-क्रान्ता नामक ओषधि और जल इनके मेलसे भगवान्‌के लिये पाद्य बनता है। फूल, अक्षत, जौ, कुशाग्र, तिल, सरसों, गन्ध तथा दूर्वादल, इनके द्वारा भगवान्‌के लिये अर्घ्य देनेकी विधि है। आचमनके लिये शुद्ध जलमें जायफल, कंकोल और लवङ्ग मिलाकर रखना चाहिये। मधु, घी और दहीके मेलसे मधुपर्क बनता है। अथवा एक पात्रमें पाद्य आदिकी व्यवस्था करे। भगवान् शङ्कर और सूर्यदेवके पूजनमें शङ्खमय पात्र अच्छा नहीं माना गया है। श्वेत, रक्त, अरुण, पीत, श्याम, रक्त, शुक्ल, असित (काली)—वस्त्र धारण करनेवाली और हाथमें अभयकी मुद्रासे युक्त पीठ-शक्तियोंका ध्यान करना चाहिये। सुवर्ण आदिसे बनकर लिखे हुए यन्त्रमें, शालग्राम-शिलामें, मणिमें अथवा विधिपूर्वक स्थापित की हुई प्रतिमामें इष्टदेवकी पूजा करनी चाहिये। घरमें प्रतिदिन पूजाके लिये वही प्रतिमा कल्याणदायिनी होती है जो स्वर्ण आदि धातुओंकी बनी हो और कम-से-कम अँगूठेके बराबर तथा अधिक-से-अधिक एक बित्तेकी हो। जो टेढ़ी हो, जली हुई हो, खण्डित हो, जिसका मस्तक या आँख फूटी हुई हो अथवा जिसे चाण्डाल आदि अस्पृश्य मनुष्योंने छू दिया हो, वैसी प्रतिमाकी पूजा नहीं करनी चाहिये। अथवा समस्त शुभ लक्षणोंसे सुशोभित बाण आदि लिङ्गमें पूजा करे। या मूलमन्त्रके उच्चारणपूर्वक मूर्तिका निर्माण करके इष्टदेवके शास्त्रोक्त स्वरूपका ध्यान करे। फिर उसमें देवता-का परिवारसहित आवाहन करके पूजा करे। शालग्राम-शिलामें तथा पहले स्थापित की हुई देवप्रतिमामें आवाहन और विसर्जन नहीं किये जाते।

तदनन्तर पुष्पाञ्जलि लेकर इष्टदेवका ध्यान करते हुए इस मन्त्रका उच्चारण करे—

आत्मसंस्थमजं शुद्धं त्वामहं परमेश्वर।
अरण्यामिव हव्याशं मूर्तावावाहयाम्यहम्॥
तवेयं हि महामूर्तिस्तस्यां त्वां सर्वगं प्रभो।
भक्तस्नेहसमाकृष्टं दीपवत्स्थापयाम्यहम्॥
सर्वान्तर्यामिणे देव सर्वबीजमयं शुभम्।
स्वात्मस्थाय परं शुद्धमासनं कल्पयाम्यहम्॥
अनन्या तव देवेश मूर्तिशक्तिरियं प्रभो।
सांनिध्यं कुरु तस्यां त्वं भक्तानुग्रहकारक॥
अज्ञानादुत मत्तत्वाद् वैकल्यात्साधनस्य च।
यदपूर्णं भवेत् कृत्यं तथाप्यभिमुखो भव॥
दृशा पीयूषवर्षिण्या पूरयन् यज्ञविष्टरे।
मूर्तौ वा यज्ञसम्पूर्त्यै स्थितो भव महेश्वर॥
अभक्तवाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रदूरायितद्युते।
स्वतेजःपञ्जरेणाशु वेष्टितो भव सर्वतः॥
यस्य दर्शनमिच्छन्ति देवाः स्वाभीष्टसिद्धये।
तस्मै ते परमेशाय स्वागतं स्वागतं च मे॥
कृतार्थोऽनुगृहीतोऽस्मि सफलं जीवितं मम।
आगतो देवदेवेशः सुस्वागतमिदं पुनः॥'

(ना० पूर्व० ६७ । ३७-४५)

दायें हाथकी तर्जनीको पकड़ ले और दोनों मध्यमाओं तथा कनिष्ठिकाओंको परस्पर सटी रखकर दोनों अङ्गुष्ठोंको तर्जनीके मूलसे मिलाये रक्खे—यही योनिमुद्रा है।

१. गरुडमुद्राका लक्षण इस प्रकार है—

सम्मुखौ तु करौ कृत्वा ग्रन्थयित्वा कनिष्ठिके।
पुनश्चाधोमुखे कृत्वा तर्जन्यौ योजयेत्तयोः॥
मध्यमानामिके द्वे तु पक्षाविव विचालयेत्।
मुद्रैषा पक्षिराजस्य सर्वविघ्ननिवारिणी॥

(मन्त्रमहोदधि)

दोनों हाथोंको सम्मुख करके दोनों कनिष्ठिकाओंको परस्पर बद्ध कर दे और अधोमुख करके उनमें तर्जनियोंको मिला दे। फिर मध्यमा और अनामिकाओंको पाँखकी भाँति हिलावे। यह गरुडमुद्रा सब विघ्नोंका निवारण करनेवाली है।

२. कनिष्ठाङ्गुष्ठकौ सक्तौ करयोरितरेतरम्।
तर्जनीमध्यमानामाः संहता भुग्नवर्जिता॥

दोनों हाथोंकी कनिष्ठिका और अँगूठे परस्पर सटे रहें और तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका अंगुलियाँ सीधी-सीधी रहकर परस्पर मिली रहें। यह गालिनी मुद्रा कही गयी है।

परमेश्वर ! आप अपने आपमें स्थित, अजन्मा एवं शुद्ध-बुद्ध-स्वरूप हैं। जैसे अरणीमें अग्नि छिपी हुई है, उसी प्रकार इस मूर्तिमें आप गूढ़रूपसे व्याप्त हैं, मैं आपका आवाहन करता हूँ। प्रभो ! यह आपकी महामूर्ति है, मै इसके भीतर आप सर्वव्यापी परमात्माको, जो कि भक्तके प्रति स्नेहवश स्वयं खिंच आये हैं, दीपकी भाँति स्थापित करता हूँ। देव ! अपने अन्तःकरणमें स्थित आप सर्वान्तर्यामी प्रभुके लिये मैं सर्वबीजमय, शुभ एवं शुद्ध आसन प्रस्तुत करता हूँ। देवेश ! यह आपकी अनन्य मूर्ति-शक्ति है। भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले प्रभो ! आप इसमें निवास कीजिये। अज्ञानसे, प्रमादसे अथवा साधनहीनताके कारण यदि मेरा यह अनुष्ठान अपूर्ण रह जाय तो भी आप अवश्य सम्मुख हों। महेश्वर ! आप अपनी सुधावर्षिणी दृष्टिद्वारा सब त्रुटियोंको पूर्ण करते हुए यज्ञकी पूर्णताके लिये इस यज्ञासनपर अथवा मूर्तिमें स्थित होइये। आपका प्रकाश या तेज अभक्त जनोंके मन, वचन, नेत्र और कानसे कोसों दूर है। भगवन् ! आप सब ओर अपने तेजःपुञ्जसे शीघ्र आवृत हो जाइये। देवतालोग अपने अभीष्ट मनोरथकी सिद्धिके लिये सदा जिनका दर्शन चाहते हैं, उन्हीं आप परमेश्वरके लिये मेरा बारंबार स्वागत है, स्वागत है। देवदेवेश्वर प्रभु आ गये। मैं कृतार्थ हो गया। मुझपर बड़ी कृपा हुई। आज मेरा जीवन सफल हो गया। मैं पुनः इस शुभागमनके लिये प्रभुका स्वागत करता हूँ।

पाद्य

यद्भक्तिलेशसम्पर्कात् परमानन्दसम्भवः।
तस्मै ते चरणाब्जाय पाद्यं शुद्धाय कल्प्यते ॥४६॥

जिनकी लेशमात्र भक्तिका सम्पर्क होनेसे परमानन्दका समुद्र उमड़ आता है, आपके उन शुद्ध चरण-कमलोंके लिये पाद्य प्रस्तुत किया जाता है।

अर्घ्य

तापत्रयहरं दिव्यं परमानन्दलक्षणम्।
तापत्रयविनिर्मुक्त्यै तवार्घ्यं कल्पयाम्यहम् ॥४८॥

देव ! मैं तीन प्रकारके तापोंसे छुटकारा पानेके लिये आपकी सेवामें त्रितापहारी परमानन्द-स्वरूप दिव्य अर्घ्य अर्पण करता हूँ।

आचमनीय

वेदानामपि वेदाय देवानां देवतात्मने।
आचामं कल्पयामीश शुद्धानां शुद्धिहेतवे ॥४७॥

भगवन् ! आप वेदोंके भी वेद और देवताओंके भी देवता हैं। शुद्ध पुरुषोंकी भी परम शुद्धिके हेतु हैं। मैं आपके लिये आचमनीय प्रस्तुत करता हूँ।

मधुपर्क

सर्वकालुष्यहीनाय परिपूर्णसुखात्मने।
मधुपर्कमिदं देव कल्पयामि प्रसीद मे ॥४९॥

देव ! आप सम्पूर्ण कलुषतासे रहित तथा परिपूर्ण सुखस्वरूप हैं, मै आपके लिये मधुपर्क अर्पण करता हूँ। मुझपर प्रसन्न होइये।

पुनराचमनीय

उच्छिष्टोऽप्यशुचिर्वापि यस्य स्मरणमात्रतः।
शुद्धिमाप्नोति तस्मै ते पुनराचमनीयकम् ॥५०॥

जिनके स्मरण करनेमात्रसे जूँठा या अपवित्र मनुष्य भी शुद्धि प्राप्त कर लेता है, उन्हीं आप परमेश्वरके लिये पुनः आचमनार्थ (जल) उपस्थित करता हूँ।

स्नेह (तैल)

स्नेहं गृहाण स्नेहेन लोकनाथ महाशय।
सर्वलोकेषु शुद्धात्मन् ददामि स्नेहमुत्तमम् ॥५१॥

जगदीश्वर ! आपका अन्तःकरण विशाल है। सम्पूर्ण लोकोंमें आप ही शुद्ध-बुद्ध आत्मा हैं, मै आपको यह उत्तम स्नेह (तैल) अर्पण करता हूँ, आप इस स्नेहको स्नेहपूर्वक ग्रहण कीजिये।

स्नान

परमानन्दबोधाब्धिनिमग्ननिजमूर्तये।
साङ्गोपाङ्गमिदं स्नानं कल्पयाम्यहमीश ते ॥५२॥

ईश ! आपका निज स्वरूप तो निरन्तर परमानन्दमय ज्ञानके अगाध महासागरमें निमग्न रहता है, (आपके लिये बाह्य स्नानकी क्या आवश्यकता है ?) तथापि मैं आपके लिये यह साङ्गोपाङ्ग स्नानकी व्यवस्था करता हूँ।

अभिषेक

सहस्रं वा शतं वापि यथाशक्त्यादरेण च।
गन्धपुष्पादिकैरीश मनुना चाभिषिञ्चये ॥५३॥

ईश ! मैं आदरपूर्वक यथाशक्ति गन्ध-पुष्प आदिसे तथा मन्त्रद्वारा सहस्र अथवा सौ बार आपका अभिषेक करता हूँ।

वस्त्र

मायाचित्रपटच्छन्ननिजगुह्योरुतेजसे।
निरावरणविज्ञान वासस्ते कल्पयाम्यहम् ॥५४॥

निरावृतविज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! आपने मायारूप विचित्र पटके द्वारा अपने महान् तेजको छिपा रक्खा है । मैं आपके लिये वस्त्र अर्पण करता हूँ ।

उत्तरीय

यमाश्रित्य महामाया जगत्सम्मोहिनी सदा ।
तस्मै ते परमेशाय कल्पयाम्युत्तरीयकम् ॥ ५५ ॥

जिनके आश्रित रहकर भगवती महामाया सदा सम्पूर्ण जगत्को मोहित किया करती है, उन्हीं आप परमेश्वरके लिये मैं उत्तरीय अर्पण करता हूँ ।

दुर्गा देवी, भगवान् सूर्य तथा गणेशजीके लिये लाल वस्त्र अर्पण करना चाहिये । भगवान् विष्णुको पीत वस्त्र और भगवान् शिवको श्वेत वस्त्र चढ़ाना चाहिये । तेल आदिसे दूषित फटे-पुराने मलिन वस्त्रको त्याग दे ।

यज्ञोपवीत

यस्य शक्तित्रयेणेदं सम्प्रीतमखिलं जगत् ।
यज्ञसूत्राय तस्मै ते यज्ञसूत्रं प्रकल्पये ॥ ५७ ॥

जिनकी त्रिविध शक्तियोंसे यह सम्पूर्ण जगत् सदा तृप्त रहता है, जो स्वयं ही यज्ञसूत्ररूप हैं, उन्हीं आप प्रभुको मैं यज्ञसूत्र अर्पण करता हूँ ।

भूषण

स्वभावसुन्दराङ्गाय नानाशक्त्याश्रयाय ते ।
भूषणानि विचित्राणि कल्पयाम्यमरार्चित ॥ ५८ ॥

देवपूजित प्रभो ! आपके श्रीअङ्ग स्वभावसे ही परम सुन्दर हैं । आप नाना शक्तियोंके आश्रय हैं, मैं आपको ये विचित्र आभूषण अर्पण करता हूँ ।

गन्ध

परमानन्दसौरभ्यपरिपूर्णदिगन्तरम् ।
गृहाण परमं गन्धं कृपया परमेश्वर ॥ ५९ ॥

परमेश्वर ! जिसने अपनी परमानन्दमयी सुगन्धसे सम्पूर्ण दिशाओंको भर दिया है, उस परम उत्तम दिव्य गन्धको आप कृपापूर्वक स्वीकार करें ।

पुष्प

तुरीयवनसम्भूतं नानागुणमनोहरम् ।
असन्दसौरभं पुष्पं गृह्यतामिदमुत्तमम् ॥ ६० ॥

प्रभो ! तीनों अवस्थाओंसे परे तुरीयरूपी वनमें प्रकट हुए इस परम उत्तम दिव्य पुष्पको ग्रहण कीजिये । यह अनेक प्रकारके गुणोंके कारण अत्यन्त मनोहर है । इसकी सुगन्ध कभी मन्द नहीं होती ।

केतकी, कुटज, कुन्द, बन्धूक (दुपहरिया), मदार, जवा तथा मालती—ये फूल भगवान् शङ्करको नहीं चढ़ाने चाहिये । मातुलिङ्ग (बिजौरा नीबू) और तगर भगवान् सूर्यको नहीं चढ़ावे । दूर्वा, आक और मदार—ये तीन दुर्गाजीको अर्पण न करे तथा गणेश-पूजनमें तुलसीको सर्वथा त्याग दे । कमल, दौना, मरुआ, कुश, विष्णुक्रान्ता, पान, दूर्वा, अपामार्ग, अनार, आँवला और अगस्त्यके पत्तोंसे देवपूजा करनी चाहिये । केला, बेर, आँवला, इमली, बिजौरा, आम, अनार, जम्बीर, जामुन और कटहल नामक वृक्षके फलोंसे विद्वान् पुरुष देवताकी पूजा करे । सूखे पत्तों, फूलों और फलोंसे कभी देवताका पूजन न करे । मुने ! आँवला, खैर, बिल्व और तमालके पत्र यदि छिन्न-भिन्न भी हों तो विद्वान् पुरुष उन्हें दूषित नहीं कहते । कमल और आँवला तीन दिनोंतक शुद्ध रहता है । तुलसीदल और बिल्वपत्र ये सदा शुद्ध होते हैं । पलाश और कासके फूलोंसे तथा तमाल, तुलसी, आँवला और दूर्वाके पत्तोंसे कभी जगदम्बा दुर्गाजीकी पूजा न करे । फूल, फल और पत्रको देवतापर अधोमुख करके न चढ़ावे । ब्रह्मन् ! पत्र-पुष्प आदि जिस रूपमें उत्पन्न हों उसी रूपमें उन्हें देवतापर चढ़ाना चाहिये ।

धूप

वनस्पतिरसं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम् ।
आघ्रेयं देवदेवेश धूपं भक्त्या गृहाण मे ॥ ७१ ॥

देवदेवेश्वर ! यह सूँघने योग्य धूप भक्तिपूर्वक आपकी सेवामें अर्पित है, इसे ग्रहण करें । यह वनस्पतिका सुगन्ध-युक्त परम मनोहर दिव्य रस है ।

दीप

सुप्रकाशं महादीपं सर्वदा तिमिरापहम् ।
घृतवर्तिसमायुक्तं गृहाण मम सत्कृतम् ॥ ७२ ॥

भगवन् ! यह घीकी बत्तीसे युक्त महान् दीप सत्कारपूर्वक आपकी सेवामें समर्पित है । यह उत्तम प्रकाशसे युक्त और सदा अन्धकार दूर करनेवाला है । आप इसे स्वीकार करें ।

नैवेद्य

अन्नं चतुर्विधं स्वादु रसैः षड्भिः समन्वितम् ।
भक्त्या गृहाण मे देव नैवेद्यं तुष्टिदं सदा ॥ ७३ ॥

देव ! यह छः रसोंसे युक्त चार प्रकारका स्वादिष्ट अन्न

भक्तिपूर्वक नैवेद्यके रूपमें समर्पित है; यह सदा संतोष प्रदान करनेवाला है। आप इसे ग्रहण करें।

ताम्बूल

नागवल्लीदलं श्रेष्ठं पूगखादिरचूर्णयुक्।
कर्पूरादिसुगन्धाढ्यं यद्दत्तं तद् गृहाण मे ॥ ७४ ॥

प्रभो! यह उत्तम पान सुपारी, कत्था और चूनासे संयुक्त है, इसमें कपूर आदि सुगन्धित वस्तु डाली गयी है; यह जो आपकी सेवामें अर्पित है, इसे मुझसे ग्रहण करें।

तत्पश्चात् पुष्पाञ्जलि दे और आवरण पूजा करे। जिस दिशाकी ओर मुँह करके पूजन करे उसीको पूर्व दिशा समझे और उससे भिन्न दसों दिशाओंका निश्चय करे। कमलके केसरोंमें अग्निकोण आदिसे आरम्भ करके हृदय आदि अङ्गोंकी पूजा करे। अपने आगे नेत्रकी और सब दिशाओंमें अस्त्रकी अङ्ग-मन्त्रोंद्वारा क्रमशः पूजा करे। क्रमशः शुक्ल, श्वेत, सित, श्याम, कृष्ण तथा रक्त वर्णवाली अङ्गशक्तियोंका अपनी-अपनी दिशाओंमें ध्यान करना चाहिये। उन सबके हाथमें वर और अभयकी मुद्रा सुशोभित है। 'अमुक आवरणके अन्तर्वर्ती देवताओंकी पूजा करता हूँ' ऐसा कहे। तत्पश्चात् अलंकार, अङ्ग, परिचारक, वाहन तथा आयुधोंसहित समस्त देवताओंकी पूजा करके यह कहे 'उपर्युक्त सब देवता पूजित तथा तर्पित होकर वरदायक हों'। मूलमन्त्रके अन्तमें निम्नाङ्कित वाक्यका उच्चारण करके इष्टदेवको पूजा समर्पित करे—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यममुकावरणार्चनम् ॥८१-८२॥

'शरणागतवत्सल! मुझे अभीष्टसिद्धि प्रदान कीजिये। मैं आपको भक्तिपूर्वक अमुक आवरणकी पूजा समर्पित करता हूँ। (अमुकके स्थानपर 'प्रथम' या 'द्वितीय' आदि पद बोलना चाहिये)।'

ऐसा कहकर इष्टदेवके मस्तकपर पुष्पाञ्जलि बिखेरे। तदनन्तर कल्पोक्त आवरणोंकी क्रमशः पूजा करनी चाहिये। आयुध और वाहनोंसहित इन्द्र आदि ही आवरण देवता हैं। उनका अपनी-अपनी दिशाओंमें पूजन करे। इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम, ईशान, ब्रह्मा तथा नागराज अनन्त—ये दस देवता अथवा दिक्पाल प्रथम आवरणके देवता हैं। ऐरावत, भेड़, भैंसा, प्रेत, तिमि (मगर), मृग, अश्व, वृषभ, हंस और कच्छप—ये विद्वानोंद्वारा इन्द्रादि देवताओंके वाहन माने गये हैं, जो द्वितीय आवरणमें पूजित होते हैं। वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अङ्कुश, गदा, त्रिशूल, कमल और चक्र—ये क्रमशः इन्द्रादिके आयुध हैं (जो तृतीय आवरणमें पूजित होते हैं)। इस प्रकार आवरणपूजा समाप्त करके भगवान्की आरती करे। फिर शङ्खका जल चारों ओर छिड़ककर ऊपर बाँह उठाये हुए भगवान्का नाम लेकर नृत्य करे और दण्डकी भाँति पृथ्वीपर पड़कर साष्टाङ्ग प्रणाम करे। उसके बाद उठकर अपने इष्टदेवकी प्रार्थना करे। प्रार्थनाके पश्चात् दक्षिण भागमें वेदी बनाकर उसका संस्कार करे। मूलमन्त्रसे ईक्षण, अस्त्र (फट्) द्वारा प्रोक्षण और कुशोंसे ताड़न (मार्जन) करके कवच (हुम्) के द्वारा पुनः वेदीका अभिषेक करे। उसके बाद वेदीकी पूजा करके उसपर अग्निकी स्थापना करे। फिर अग्निको प्रज्वलित करके उसमें इष्टदेवका ध्यान करते हुए आहुति दे। समस्त महाव्याहृतियोंसे चार बार घीकी आहुति देकर उत्तम साधक भात, तिल अथवा घृतयुक्त खीरद्वारा पचीस आहुति करे। फिर व्याहृतिसे होम करके गन्ध आदिके द्वारा पुनः इष्टदेवकी पूजा करे। भगवान्की मूर्तिमें अग्निके लीन होनेकी भावना करे। उसके बाद निम्नाङ्कित प्रार्थना पढ़कर अग्निका विसर्जन करे—

भो भो वह्ने महाशक्ते सर्वकर्मप्रसाधक।
कर्मान्तरेऽपि सम्प्राप्ते सांनिध्यं कुरु सादरम् ॥ ९३ ॥

हे अग्निदेव! आपकी शक्ति बहुत बड़ी है आप सम्पूर्ण कर्मोंकी सिद्धि करानेवाले हैं। कोई दूसरा कार्य प्राप्त होनेपर भी आप यहाँ सादर पधारें।

इस प्रकार विसर्जन करके अग्निदेवताके लिये आचमनार्थ जल दे। फिर बचे हुए हविष्यसे इष्टदेवको, पूर्वोक्त पार्षदोंको भी गन्ध, पुष्प और अक्षतसहित बलि दे। इसके बाद सब दिशाओंमें योगिनी आदिको बलि अर्पण करे।

ये रौद्रा रौद्रकर्माणो रौद्रस्थाननिवासिनः।
योगिन्यो ह्युग्ररूपाश्च गणानामधिपाश्च ये ॥
विघ्नभूतास्तथा चान्ये दिग्विदिक्षु समाश्रिताः।
सर्वे ते प्रीतमनसः प्रतिगृह्णन्त्विमं बलिम् ॥
(९५–९७)

जो भयंकर है, जिनके कर्म भयकर हैं, जो भयंकर स्थानोंमें निवास करते हैं, जो उग्र रूपवाली योगिनियाँ हैं, जो गणोंके स्वामी तथा विघ्नस्वरूप हैं और प्रत्येक दिशा तथा विदिशामें स्थित हैं, वे सब प्रसन्नचित्त होकर यह बलि ग्रहण करें।

इस प्रकार आठों दिशाओंमें बलि अर्पण करके पुनः भूतबलि दे। तत्पश्चात् धेनुमुद्राद्वारा जलका अमृतीकरण करके इष्टदेवताके हाथमें पुनः आचमनीयके लिये जल दे। फिर मूर्तिमें स्थित देवताका विसर्जन करके पुनः उस मूर्तिमें ही उनको प्रतिष्ठित करे। तत्पश्चात् भगवत्प्रसादभोजी पार्षदको नैवेद्य दे। महादेवजीके 'चण्डेश' भगवान् विष्णुके 'विष्वक्सेन' सूर्यके 'चण्डांशु' गणेशजीके 'वक्रतुण्ड' और भगवती दुर्गाकी 'उच्छिष्ट चाण्डाली'—ये सब उच्छिष्ट-भोजी कहे गये हैं।

तदनन्तर मूलमन्त्रके ऋषि आदिका स्मरण करके मूलसे ही षडङ्ग-न्यास करे और यथाशक्ति मन्त्रका जप करके देवताको अर्पित करे।

गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादात्त्वयि स्थिता॥ १०२॥

'देव! आप गुह्यसे अतिगुह्य वस्तुकी भी रक्षा करनेवाले हैं। आप मेरेद्वारा किये गये इस जपको ग्रहण करें। आपके प्रसादसे आपके भीतर रहनेवाली सिद्धि मुझे प्राप्त हो।'

इसके बाद पराङ्मुख अर्घ्य देकर फूलोंसे पूजा करे। पूजनके पश्चात् प्रणाम करना चाहिये। दोनों हाथोंसे, दोनों पैरोंसे, दोनों घुटनोंसे, छातीसे, मस्तकसे, नेत्रोंसे, मनसे और वाणीसे जो नमस्कार किया जाता है उसे 'अष्टाङ्ग प्रणाम' कहा गया है। दोनों बाहुओंसे, घुटनोंसे, छातीसे, मस्तकसे जो प्रणाम किया जाता है, वह पञ्चाङ्ग प्रणाम है। पूजामें ये दोनों अष्टाङ्ग और पञ्चाङ्ग प्रणाम श्रेष्ठ माने गये हैं। मन्त्रका साधक दण्डवत्-प्रणाम करके भगवान्‌की परिक्रमा करे। भगवान् विष्णुकी चार बार, भगवान् शङ्करकी आधी बार, भगवती दुर्गाकी एक बार, सूर्यकी सात बार और गणेशजीकी तीन बार परिक्रमा करनी चाहिये। तत्पश्चात् मन्त्रोपासक भक्तिपूर्वक स्तोत्र-पाठ करे। इसके बाद इस प्रकार कहे—

'ॐ इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्नेन यत्स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा। मां मदीयं च सकलं विष्णवे ते समर्पये ॐ तत्सत्।*

यह विद्वानोंने 'ब्रह्मार्पण मन्त्र' कहा है। इसका आदि प्रणव है। उसके बाद किसी अवस्थामें भी मनुष्यको भगवान्‌को आत्म-समर्पण करना चाहिये। इसके बाद नीचे लिखे अनुसार क्षमा-प्रार्थना करे—

अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा वैकल्यात् साधनस्य च।
यन्न्यूनमतिरिक्तं वा तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि॥
द्रव्यहीनं क्रियाहीनं मन्त्रहीनं मयानघ।
कृतं यत्तत् क्षमस्वेश कृपया त्वं दयानिधे॥
यन्मया क्रियते कर्म जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु।
तत्सर्वं तावकी पूजा भूयाद् भूत्यै च मे प्रभो॥
भूमौ स्खलितपादानां भूमिरेवावलम्बनम्।
त्वयि जातापराधानां त्वमेव शरणं प्रभो॥
अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम।
तस्मात् कारुण्यभावेन क्षमस्व परमेश्वर॥
अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया।
दासोऽयमिति मां मत्वा क्षमस्व जगतां पते॥
आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम्।
पूजां चैव न जानामि त्वं गतिः परमेश्वर॥

(ना० पू० ६७। ११०—११७)

'भगवन्! अज्ञानसे, प्रमादसे तथा साधनकी कमीके कारण मेरे द्वारा जो न्यूनता या अधिकताका दोष बन गया हो, उसे आप क्षमा करेंगे। ईश्वर! दयानिधे! मैंने जो द्रव्यहीन, क्रियाहीन तथा मन्त्रहीन विधिविरुद्ध कर्म किया है, उसे आप कृपापूर्वक क्षमा करें। प्रभो! मैंने जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति-अवस्थाओंमें जो कर्म किया है, वह सब आपकी पूजारूप हो जाय और मेरे लिये कल्याणकारी हो। धरतीपर जो लड़खड़ाकर गिरते हैं, उनको सहारा देनेवाली भी धरती ही है, उसी प्रकार आपके प्रति अपराध करनेवाले मनुष्योंके लिये भी आप ही शरणदाता हैं। परमेश्वर! आपके सिवा दूसरा कोई शरण नहीं है। आप ही मेरे शरणदाता हैं। अतः करुणापूर्वक मेरी त्रुटियोंको क्षमा करें। जगन्नाथ! मेरेद्वारा रात दिन सहस्रों अपराध बनते हैं। 'यह मेरा दास है।' ऐसा समझकर क्षमा करें। परमेश्वर! मैं आवाहन करना नहीं जानता, विसर्जन भी नहीं जानता और पूजा करना भी अच्छी तरह नहीं जानता। आप ही मेरी गति हैं—सहारे हैं।'

* इसका भावार्थ इस प्रकार है—'इससे पहले प्राण, बुद्धि, देहधर्मके अधिकारसे जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओंमें मनसे, वाणीसे, दोनों हाथोंसे, चरणोंसे, उदरसे, लिङ्गसे मैंने जो कुछ सोचा है, जो बात कही है तथा जो कर्म किया है, वह सब ब्रह्मार्पण हो, स्वाहा। मैं अपनेको और अपने सर्वस्वको आप श्रीविष्णुकी सेवामें समर्पित करता हूँ। ॐ तत्सत्।'

इस प्रकार प्रार्थना करके मन्त्रका साधक मूलमन्त्र पढ़कर विसर्जनके लिये नीचे लिखे श्लोकका पाठ करे और पुष्पाञ्जलि दे—

गच्छ गच्छ परं स्थानं जगदीश जगन्मय ।
यत्र ब्रह्मादयो देवा जानन्ति च सदाशिवः ॥ ३१८ ॥

'जगदीश ! जगन्मय ! आप अपने उस परम धामको पधारिये, जिसे ब्रह्मा आदि देवता तथा भगवान् शिव भी नहीं जानते हैं ।'

इस प्रकार पुष्पाञ्जलि देकर संहार-मुद्राके द्वारा भगवान्‌को उनके अङ्गभूत पार्षदोंसहित सुषुम्णा नाडीके मार्गसे अपने हृदयकमलमें स्थापित करके पुष्प सूँघकर विद्वान् पुरुष भगवान्‌का विसर्जन करे । दो शङ्ख, दो चक्रशिला (गोमती-चक्र), दो शिवलिङ्ग, दो गणेशमूर्ति, दो सूर्यप्रतिमा और दुर्गाजीकी तीन प्रतिमाओंका पूजन एक घरमें नहीं करना चाहिये; अन्यथा दुःखकी प्राप्ति होती है । इसके बाद निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़कर भगवान्‌का चरणामृत पान करे—

अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम् ।
सर्वपापक्षयकरं विष्णुपादोदकं शुभम् ॥१२१-१२२॥

'भगवान् विष्णुका शुभ चरणामृत अकालमृत्युका अपहरण, सम्पूर्ण व्याधियोंका नाश तथा समस्त पापोंका संहार करनेवाला है ।'

भिन्न-भिन्न देवताओंके भक्तोंको चाहिये कि वे अपने आराध्यदेवको निवेदित किये हुए नैवेद्य-प्रसादको ग्रहण करें। भगवान् शिवको निवेदित निर्माल्य—पत्र, पुष्प, फल और जल ग्रहण करने योग्य नहीं है, किंतु शालग्राम-शिलाका स्पर्श होनेसे वह सब पवित्र (ग्राह्य) हो जाता है ।

पूजाके पाँच प्रकार

नारद ! सबने पाँच प्रकारकी पूजा बतायी है—आतुरी, सौतिकी, त्रासी, साधनाभाविनी तथा दौर्बोधी । इनके लक्षणोंका मुझसे क्रमशः वर्णन सुनो—रोग आदिसे युक्त मनुष्य न स्नान करे, न जप करे और न पूजन ही करे । आराध्यदेवकी पूजा, प्रतिमा अथवा सूर्यमण्डलका दर्शन एवं प्रणाम करके मन्त्र-स्मरणपूर्वक उनके लिये पुष्पाञ्जलि दे । फिर जब रोग निवृत्त हो जाय, तो स्नान और नमस्कार करके गुरुकी पूजा करे और उनसे प्रार्थना करे—'जगन्नाथ ! जगत्पूज्य ! दयानिधे ! आपके प्रसादसे मुझे पूजा छोड़नेका दोष न लगे ।' तत्पश्चात् यथाशक्ति ब्राह्मणोंका भी पूजन करके उन्हें दक्षिणा आदिसे संतुष्ट करे और उनसे आशीर्वाद लेकर पूर्ववत् भगवान्‌की पूजा करे । यह 'आतुरी पूजा' कही गयी है । अब सौतिकी पूजा बतायी जाती है । सूतक दो प्रकारका कहा गया है—जातसूतक और मृतसूतक । दोनों ही सूतकोंमें एकाग्रचित्त हो मानसी संध्या करके मनसे ही भगवान्‌का पूजन और मनसे ही मन्त्रका जप करे । फिर सूतक बीत जानेपर पूर्ववत् गुरु और ब्राह्मणोंका पूजन करके उनसे आशीर्वाद लेकर सदाकी भाँति पूजाका क्रम प्रारम्भ कर दे* । यह 'सौतिकी पूजा' कही गयी । अब त्रासी पूजा बतायी जाती है । दुष्टोंसे त्रासको प्राप्त हुआ मनुष्य यथाप्राप्त उपचारोंसे अथवा मानसिक उपचारोंसे भगवान्‌की पूजा करे । यह 'त्रासी पूजा' कही गयी है । पूजा-साधन-सामग्री जुटानेकी शक्ति न होनेपर यथाप्राप्त पत्र, पुष्प और फलका संग्रह करके उन्हींके द्वारा या मानसोपचारसे भगवान्‌का पूजन करे । यह 'साधनाभाविनी' पूजा कही गयी है । नारद ! अब दौर्बोधी पूजाका परिचय सुनो—स्त्री, वृद्ध, बालक और मूर्ख मनुष्य अपने स्वल्प ज्ञानके अनुसार जिस किसी क्रमसे जो भी पूजा करते हैं, उसे 'दौर्बोधी' पूजा कहते हैं । इस प्रकार साधकको जिस किसी तरह भी सम्भव हो, देवपूजा करनी चाहिये । देवपूजाके बाद बलिवैश्वदेव आदि करके श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराये । तत्पश्चात् भगवान्‌को अर्पित किया हुआ प्रसाद स्वयं स्वजनोंके साथ भोजन करे । फिर आचमन एवं मुख-शुद्धि करके कुछ देर विश्राम करे । फिर स्वजनोंके साथ बैठकर पुराण तथा इतिहास सुने । जो सब कल्पों(सम्पूर्ण पूजा-विधियों)के सम्पादनमें समर्थ होकर भी अनुकल्प (पीछे बताये हुए अपूर्ण विधान) का अनुष्ठान करता है, उस उपासकको सम्पूर्ण फलकी प्राप्ति नहीं होती है । (पूर्व० ६७ अध्याय)

---

* तत्र स्नात्वा मानसीं तु कृत्वा संध्यां समाहितः । मनसैव यजेद् देवं मनसैव जपेन्मनुम् ॥
निवृत्ते सूतके प्राग्वत् सम्पूज्य च गुरुं द्विजान् । तेभ्यश्चाशिषमादाय ततो नित्यक्रमं चरेत् ॥
(ना० पूर्व० ६७ । १२१-१२२

श्रीमहाविष्णुसम्बन्धी अष्टाक्षर, द्वादशाक्षर आदि विविध मन्त्रोंके अनुष्ठानकी विधि

सनत्कुमारजी कहते हैं—नारद ! अब मैं महाविष्णुके मन्त्रोंका वर्णन करता हूँ, जो लोकमें अत्यन्त दुर्लभ हैं। जिन्हें पाकर मनुष्य शीघ्र ही अपने अभीष्ट वस्तुओंको प्राप्त कर लेते हैं। जिनके उच्चारणमात्रसे ही राशि-राशि पाप नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्मा आदि भी जिन मन्त्रोंका ज्ञान प्राप्त करके ही संसारकी सृष्टिमें समर्थ होते हैं। प्रणव और नमःपूर्वक ङे विभक्त्यन्त 'नारायण' पद हो तो 'ॐ नमो नारायणाय' यह अष्टाक्षर मन्त्र होता है। साध्य नारायण इसके ऋषि हैं, गायत्री छन्द है, अविनाशी भगवान् विष्णु देवता हैं, ॐ बीज है, नमः शक्ति है तथा सम्पूर्ण मनोरथोंकी प्राप्तिके लिये इसका विनियोग किया जाता है। इसका पञ्चाङ्ग-न्यास इस प्रकार है—क्रुद्धोल्काय हृदयाय नमः, महोल्काय शिरसे स्वाहा, वीरोल्काय शिखायै वषट्, अत्युल्काय कवचाय हुं, सहस्रोल्काय अस्त्राय फट्। इस प्रकार पञ्चाङ्गकी कल्पना करनी चाहिये। फिर मन्त्रके छः वर्णोंसे षडङ्ग-न्यास करके शेष दो मन्त्राक्षरोंका कुक्षि तथा पृष्ठभागमें न्यास करे। इसके बाद सुदर्शन-मन्त्रसे दिग्बन्ध करना चाहिये। 'ॐ नमः सुदर्शनाय अस्त्राय फट्' यह बारह अक्षरोंका मन्त्र 'सुदर्शन-मन्त्र' कहा गया है।

अब मैं विभूतिपञ्जर नामक दशावृत्तिमय न्यासका वर्णन करता हूँ। मूल मन्त्रके अक्षरोंका अपने शरीरके मूलाधार हृदय, मुख, दोनों भुजा तथा दोनों चरणोंके मूलभाग तथा नासिकामें न्यास करे। यह प्रथम आवृत्ति कही गयी है। कण्ठ, नाभि, हृदय, दोनों स्तन, दोनों पार्श्वभाग तथा पृष्ठभागमें पुनः मन्त्राक्षरोंका न्यास करे। यह द्वितीय आवृत्ति बतायी गयी है। मूर्धा, मुख, दोनो नेत्र, दोनों श्रवण तथा नासिका-छिद्रोंमे मन्त्राक्षरोंका न्यास करे। यह तृतीय आवृत्ति है। दोनों भुजाओं और दोनों पैरोंकी सटी हुई अगुलियोंमे चौथी आवृत्तिका न्यास करे। धातु, प्राण और हृदयमें पाँचवीं आवृत्तिका न्यास करे। सिर, नेत्र, मुख और हृदय, कुक्षि, ऊरु, जङ्घा तथा दोनों पैरोंमे विद्वान् पुरुष एक-एक करके क्रमशः मन्त्र-वर्णोंका न्यास करे। (यह छठी, सातवीं, आठवीं आवृत्ति है) हृदय, कधा, ऊरु तथा चरणोंमे मन्त्रके चार वर्णोंका न्यास करे। शेष वर्णोंका चक्र, शङ्ख, गदा और कमलकी मुद्रा बनाकर उनमें न्यास करे (यह नवम, दशम आवृत्ति है)। यह सर्वश्रेष्ठ न्यास विभूति-पञ्जर नामसे विख्यात है। मूलके एक-एक अक्षरको अनुस्वारसे युक्त करके उसके दोनों ओर प्रणवका सम्पुट लगाकर न्यास करे अथवा आदिमें प्रणव और अन्तमें नमः लगाकर मन्त्राक्षरोंका न्यास करे। ऐसा दूसरे विद्वानोंका कथन है।

तत्पश्चात् बारह आदित्योंसहित द्वादश मूर्तियोंका न्यास करे। ये बारह मूर्तियाँ आदिमें द्वादशाक्षरके एक-एक मन्त्रसे युक्त होती हैं और इनके साथ बारह आदित्योंका सयोग होता है। यह अष्टाक्षर-मन्त्र अष्टप्रकृतिरूप बताया गया है। इसमें नाम और आत्माका योग होनेसे द्वादशाक्षर होता है[1]। ललाट, कुक्षि, हृदय, कण्ठ, दक्षिण पार्श्व, दक्षिण अंस, गल दक्षिण भाग, वाम पार्श्व, वाम अंस, गल वामभाग, पृष्ठभाग तथा ककुद्—इन बारह अङ्गोंमें मन्त्रसाधक क्रमशः बारह मूर्तियोंका न्यास करे। केशवका धाताके साथ ललाटमें न्यास करके नारायणका अर्यमाके साथ कुक्षिमें, माधवका मित्रके साथ हृदयमें तथा गोविन्दका वरुणके साथ कण्ठकूपमें न्यास करे। विष्णुका अंशुके साथ, मधुसूदनका भगके साथ, त्रिविक्रमका विवस्वान्के साथ, वामनका इन्द्रके साथ, श्रीधरका पूषाके साथ और हृषीकेशका पर्जन्यके साथ न्यास करे। पद्मनाभका त्वष्टाके साथ तथा दामोदरका विष्णुके साथ न्यास करे*।

---

१. आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा तथा ज्ञानात्मा—ये चार आत्मा हैं।

* यह मूर्तिपञ्जर-न्यास कहलाता है। इसका प्रयोग इस प्रकार है—

ललाटे—ॐ अन् केशवाय धात्रे नमः।

कुक्षौ—ॐ नन् आन् नारायणाय अर्यम्णे नमः।

हृदि—ॐ मोन् इन् माधवाय मित्राय नमः।

कण्ठकूपे—ॐ भन् ईन् गोविन्दाय वरुणाय नमः।

दक्षिणपार्श्वे—ॐ गन् उन् विष्णवे अंशवे नमः।

दक्षिणांसे—ॐ वन् ऊन् मधुसूदनाय भगाय नमः।

गलदक्षिणभागे—ॐ तेन् ऋन् त्रिविक्रमाय विवस्वते नमः।

वामपार्श्वे—ॐ वान् ॠन् वामनाय इन्द्राय नमः।

वामांसे—ॐ सुन् लृन् श्रीधराय पूष्णे नमः।

गलवामभागे—ॐ देन् लॄन् हृषीकेशाय पर्जन्याय नमः।

पृष्ठे—ॐ वान् एन् पद्मनाभाय त्वष्ट्रे नमः।

ककुदि—ॐ यन् ऐन् दामोदराय विष्णवे नमः।

तत्पश्चात् द्वादशाक्षर-मन्त्रका सम्पूर्ण निरमें न्यास करे। इसके बाद विद्वान् पुरुष किरीट मन्त्रके द्वारा व्यापक-न्यास करे। किरीट मन्त्र प्रणवके अतिरिक्त पैंसठ अक्षरका बताया गया है—'ॐ किरीटकेयूरहारमकरकुण्डल-शङ्खचक्रगदाम्भोजहस्तपीताम्बरधरश्रीवत्साङ्कितवक्षःस्थलश्रीभूमि-सहितस्वात्मज्योतिर्मयदीप्तकराय सहस्रादित्यतेजसे नमः।' इस प्रकार न्यासविधि करके सर्वव्यापी भगवान् नारायणका ध्यान करे।

उद्यत्कोट्यर्कसदृशं शङ्खं चक्रं गदाम्बुजम्।
दधतं च करैर्भूमिश्रीभ्यां पार्श्वद्वयाञ्चितम्॥
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुक्तकन्धरम्।
हारकेयूरवलयाङ्गदं पीताम्बरं स्मरेत्॥

(पू० तृ० ७० । ३२-३३)

जिनकी दिव्य कान्ति उदय-कालके कोटि-कोटि सूर्योंके सदृश है, जो अपने चार भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा और कमल धारण करते हैं, भूदेवी तथा श्रीदेवी जिनके उभय पार्श्वकी शोभा बढ़ा रही हैं, जिनका वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्नसे सुशोभित है, जो अपने गलेमें चमकीली कौस्तुभमणि धारण करते हैं और हार, केयूर, वलय तथा अंगद आदि दिव्य आभूषण जिनके श्रीअङ्गोंमें पड़कर धन्य हो रहे हैं, उन पीताम्बरधारी भगवान् विष्णुका चिन्तन करना चाहिये।

इन्द्रियोंको वशमें रखकर मन्त्रमें जितने वर्ण हैं, उतने लाख मन्त्रका विधिवत् जप करे। प्रथम लाख मन्त्रके जपसे निश्चय ही आत्मशुद्धि होती है। दो लाख जप पूर्ण होनेपर साधकको मन्त्र-शुद्धि प्राप्त होती है। तीन लाखके जपसे साधक स्वर्गलोक प्राप्त कर लेता है। चार लाखके जपसे मनुष्य भगवान् विष्णुके समीप जाता है। पाँच लाखके जपसे निर्मल ज्ञान प्राप्त होता है। छठे लाखके जपसे मन्त्र-साधककी बुद्धि भगवान् विष्णुमें स्थिर हो जाती है। सात लाखके जपसे मन्त्रोपासक श्रीविष्णुका सारूप्य प्राप्त कर लेता है। आठ लाखका जप पूर्ण कर लेनेपर मन्त्र-जप करनेवाला पुरुष निर्वाण (परम शान्ति एव मोक्ष) को प्राप्त होता है। इस प्रकार जप करके विद्वान् पुरुष मधुराक्त कमलोंद्वारा मन्त्रसंस्कृत अग्निमें दशांश होम करे। मण्डूकसे लेकर परतत्त्वपर्यन्त सबका पीठपर यत्नपूर्वक पूजन करे। विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशाना तथा नवीं अनुग्रहा—ये नौ पीठशक्तियाँ हैं। (इन सबका पूजन करना चाहिये।) इसके बाद 'ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसयोगयोगपद्म-पीठाय नमः' यह छत्तीस अक्षरका पीठमन्त्र है, इससे भगवान्‌को आसन देना चाहिये। मूलमन्त्रसे मूर्ति-निर्माण कराकर उसमें भगवान्‌का आवाहन करके पूजा करे। पहले कमलके केसरोंमें मन्त्रसम्बन्धी छः अङ्गोंका पूजन करना चाहिये। इसके बाद अष्टदल कमलके पूर्व आदि दलोंमें क्रमशः वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्धका और आग्नेय आदि कोणोंमें क्रमशः उनकी शक्तियोंका पूजन करे। उनके नाम इस प्रकार हैं—शान्ति, श्री, रति तथा सरस्वती। इनकी क्रमशः पूजा करनी चाहिये। वासुदेवकी अङ्गकान्ति सुवर्णके समान है। सकर्षण पीत वर्णके हैं। प्रद्युम्न तमालके समान श्याम और अनिरुद्ध इन्द्रनील मणिके सदृश हैं। ये सब-के-सब पीताम्बर धारण करते हैं। इनके चार भुजाएँ हैं। ये शङ्ख, चक्र, गदा और कमल धारण करनेवाले हैं। शान्तिका वर्ण श्वेत, श्रीका वर्ण सुवर्ण-गौर, सरस्वतीका रंग गोदुग्धके समान उज्ज्वल तथा रतिका वर्ण दूर्वादलके समान श्याम है। इस प्रकार ये सब शक्तियाँ हैं। कमलदलोंके अग्रभागमें चक्र, शङ्ख, गदा, कमल, कौस्तुभमणि, मुसल, खड्ग और वनमालाका क्रमशः पूजन करे। चक्रका रंग लाल, शङ्खका रंग चन्द्रमाके समान श्वेत, गदाका पीला, कमलका सुवर्णके समान, कौस्तुभका श्याम, मुसलका काला, तलवारका श्वेत और वनमालाका उज्ज्वल है। इनके बाह्यभागमें

भगवान्‌के सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े हुए कुंकुम वर्णवाले पक्षिराज गरुड़का पूजन करे । तत्पश्चात् क्रमशः दक्षिण पार्श्वमें शङ्खनिधि और वाम पार्श्वमें पद्मनिधिकी पूजा करे । इनका वर्ण क्रमशः मोती और माणिक्यके समान है । पश्चिममें ध्वजकी पूजा करे । अग्निकोणमें रक्तवर्णके विघ्न (गणेश) का, नैर्ऋत्य कोणमे श्याम वर्णवाले आर्यका, वायव्यकोणमें श्यामवर्ण दुर्गाका तथा ईशान कोणमें पीतवर्णके सेनानीका पूजन करना चाहिये । इनके बाह्यभागमे विद्वान् पुरुष इन्द्र आदि लोकपालोंका उनके आयुधोंसहित पूजन करे । जो इस प्रकार आवरणों-सहित अविनाशी भगवान् विष्णुका पूजन करता है, वह इस लोकमे सम्पूर्ण भोगोंका उपभोग करके अन्तमें भगवान् विष्णुके धामको जाता है । खेत, धान्य और सुवर्णकी प्राप्तिके लिये धरणीदेवीका चिन्तन करे । उनकी कान्ति दूर्वादलके समान श्याम है और वे अपने हाथोंमे धानकी बाल लिये रहती हैं । देवाधिदेव भगवान्‌के दक्षिणभागमे पूर्णचन्द्रमाके समान मुख-वाली वीणा-पुस्तकधारिणी सरस्वतीदेवीका चिन्तन करे । वे क्षीरसागरके फेनपुञ्जकी भाँति उज्ज्वल दो वस्त्र धारण करती हैं । जो सरस्वतीदेवीके साथ परात्पर भगवान् विष्णुका ध्यान करता है, वह वेद और वेदाङ्गोंका तत्त्वज्ञ तथा सर्वज्ञोंमें श्रेष्ठ होता है ।

जो प्रतिदिन प्रातःकाल पचीस बार (ॐ नमो नारायणाय) इस अष्टाक्षर मन्त्रका जप करके जल पीता है, वह सब पापोंसे मुक्त, ज्ञानवान् तथा नीरोग होता है । चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके समय उपवासपूर्वक ब्राह्मी घृतका स्पर्श करके उक्त मन्त्रका आठ हजार जप करनेके पश्चात् ग्रहण शुद्ध होनेपर श्रेष्ठ साधक उस घृतको पी ले । ऐसा करनेसे वह मेधा (धारणशक्ति), कवित्वशक्ति तथा वाक्सिद्धि प्राप्त कर लेता है । यह नारायणमन्त्र सब मन्त्रोंमें उत्तम-से-उत्तम है । नारद ! यह सम्पूर्ण सिद्धियोंका घर है, अतः मैंने तुम्हें इसका उपदेश किया है । 'नारायणाय' पदके अन्तमे 'विद्महे' पदका उच्चारण करे । फिर 'हे' [illegible] (वासुदेवाय) का उच्चारण करे, उसके बाद [illegible] बोले । अन्तमें 'तन्नो विष्णु प्रचोदयात्' [illegible] उच्चारण करे । यह (ॐ नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात) विष्णुगायत्री बतायी गयी है, जो सब पापोंका नाश करनेवाली है ।

तार (ॐ), हृदय (नमः) भगवान् [illegible] विभक्तिमे एकवचनान्त रूप (भगवते) तथा [illegible] द्वादशाक्षर (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) [illegible] जो भोग और मोक्ष देनेवाला है । स्त्री और शूद्रोंको [illegible] यह मन्त्र जपना चाहिये और द्विजातियोंके [illegible] इसके जपका विधान है । इस मन्त्रके प्रजापति ऋषि, गायत्री छन्द, वासुदेव देवता, ॐ बीज और नमः शक्ति है । इस मन्त्रके एक, दो, चार और पाँच अक्षरों तथा सम्पूर्ण [illegible] द्वारा पञ्चाङ्ग-न्यास करना चाहिये ।

यहाँ भी पूर्वोक्तरूपसे ही ध्यान करना चाहिये । इस मन्त्रके बारह लाख जपका विधान है । [illegible] जपके दशांशका हवन करना चाहिये । पूर्वोक्त पीठपर [illegible] से मूर्तिकी कल्पना करके मन्त्रसाधक उस मूर्तिमें [illegible] वासुदेवका आवाहन और पूजन करे । पहले [illegible] पूजा करके वासुदेव आदि व्यूहोंकी पूजा करनी चाहिये । [illegible] शान्ति आदि शक्तियोंका पूजन करना उचित है । [illegible] आदिका पूर्व आदि दिशाओंमें और शान्ति आदि [illegible] अग्नि आदि कोणोंमें पूजन करना चाहिये । [illegible] केशवादि द्वादश मूर्तियोंकी पूजा बतायी गयी है । [illegible] और पञ्चम आवरणमें इन्द्रादि दिक्पालों और उनके [illegible] की पूजा करे । इनकी पूजाका ध्यान [illegible] है । [illegible] पाँच आवरणोंसहित अविनाशी भगवान् विष्णुकी पूजा [illegible] मनुष्य सम्पूर्ण मनोरथोंको पाता और अन्तमें भगवान् विष्णुके लोकमे जाता है ।

भगवान् श्रीराम, सीता, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न-सम्बन्धी विविध मन्त्रोंके अनुष्ठानकी संक्षिप्त विधि

सनत्कुमारजी कहते हैं—नारद ! अब भगवान् श्रीरामके मन्त्र बताये जाते है, जो सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं और जिनकी उपासनासे मनुष्य भवसागरके पार हो जाते हैं । सब उत्तम मन्त्रोमे वैष्णव-मन्त्र श्रेष्ठ बताया जाता है । गणेश, सूर्य, दुर्गा और शिव-सम्बन्धी मन्त्रोंकी अपेक्षा वैष्णव-मन्त्र शीघ्र अभीष्ट सिद्ध करनेवाला है । वैष्णव-मन्त्रोंमें भी राम-मन्त्रोंके फल अधिक हैं । गणपति आदि मन्त्रोंकी अपेक्षा राममन्त्र कोटि-कोटिगुने अधिक महत्त्व रखते हैं । विष्णु-शय्या (आ) के ऊपर विराजमान अग्नि (र) [illegible] चन्द्रमा (ं अनुस्वार) से विभूषित हो और उसके [illegible] 'रामाय नमः'—ये दो पद हों तो यह (रां [illegible]) मन्त्र महान् पापोंकी राशिका नाश करनेवाला है । [illegible] सम्बन्धी सम्पूर्ण मन्त्रोंमें यह [illegible] जानकर और बिना जाने किये हुए [illegible] सब इस मन्त्रके उच्चारणसे [illegible] इसमें संशय नहीं है । इस मन्त्रके [illegible]

श्रीराम देवता, ग बीज और नमः शक्ति है। सम्पूर्ण मनोरथों-की प्राप्तिके लिये इसका विनियोग किया जाता है। छः दीर्घस्वरोंसे युक्त बीजमन्त्रद्वारा षडङ्गन्यास करे। फिर पीठन्यास आदि करके हृदयमें रघुनाथजीका इस प्रकार ध्यान करे—

> कालाम्भोधरकान्तं च वीरासनसमास्थितम्।
> ज्ञानमुद्रां दक्षहस्ते दधतं जानुनीतरम्॥
> सरोरुहकरां सीतां विद्युदाभां च पार्श्वगाम्।
> पश्यन्तीं रामवक्त्राब्जं विविधाकल्पभूषिताम्॥
> (७३ । १०-१२)

'भगवान् श्रीरामकी अङ्गकान्ति मेघकी काली घटाके समान श्याम है। वे वीरासन लगाकर बैठे हैं। दाहिने हाथमें ज्ञानमुद्रा धारण करके उन्होंने अपने बायें हाथको बायें घुटनेपर रख छोड़ा है। उनके वामपार्श्वमें विद्युत्‌के समान कान्तिमती और नाना प्रकारके वस्त्राभूषणोंसे विभूषित सीता-देवी विराजमान हैं। उनके हाथमें कमल है और वे अपने प्राणवल्लभ श्रीरामचन्द्रजीका मुखारविन्द निहार रही हैं।'

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक छः लाख जप करे और कमलोंद्वारा प्रज्वलित अग्निमें दशांश होम करे। तत्पश्चात् ब्राह्मण-भोजन करावे। मूलमन्त्रसे इष्टदेवकी मूर्ति बनाकर उसमें भगवान्‌का आवाहन और प्रतिष्ठा करके साधक विमलादि शक्तियोंसे संयुक्त वैष्णवपीठपर उनकी पूजा करे। भगवान् श्रीरामके वामभागमें बैठी हुई सीतादेवी-की उन्हींके मन्त्रसे पूजा करनी चाहिये। 'श्रीसीतायै स्वाहा' यह जानकी-मन्त्र है। भगवान् श्रीरामके अग्रभागमें शार्ङ्ग-धनुषकी पूजा करके दोनों पार्श्वभागोंमें बाणोंकी अर्चना करे। केसरोंमें छः अङ्गोंकी पूजा करके दलोंमें हनुमान् आदि-की अर्चना करे। हनुमान्, सुग्रीव, भरत, विभीषण, लक्ष्मण, अङ्गद, शत्रुघ्न तथा जाम्बवान्—इनका क्रमशः पूजन करना चाहिये। हनुमान्‌जी भगवान्‌के आगे पुस्तक लेकर बाँच रहे हैं। श्रीरामके दोनों पार्श्वमें भरत और शत्रुघ्न चँवर लेकर खड़े हैं। लक्ष्मणजी पीछे खड़े होकर दोनों हाथोंसे भगवान्‌के ऊपर छत्र लगाये हुए हैं। इस प्रकार ध्यानपूर्वक उन सब-की पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर अष्टदलोंके अग्रभागमें सृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रपाल (अथवा राष्ट्रवर्धन), अकोप, धर्मपाल तथा सुमन्त्रकी पूजा करके उनके बाह्यभागमें इन्द्र आदि देवताओंका आयुधोंसहित पूजन करे। इस प्रकार भगवान् श्रीरामकी आराधना करके मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। घृताक्त शतपर्वांसे आहुति करनेवाला पुरुष दीर्घायु तथा नीरोग होता है। लाल कमलोंके होमसे मनोवाञ्छित धन प्राप्त होता है। पलाशके फूलोंसे हवन करके मनुष्य मेधावी होता है। जो प्रतिदिन प्रातःकाल पूर्वोक्त षडक्षर-मन्त्रसे अभिमन्त्रित जल पीता है, वह एक वर्षमें कविसम्राट् हो जाता है। श्रीराममन्त्रसे अभिमन्त्रित अन्न भोजन करे। इससे बड़े-बड़े रोग शान्त हो जाते हैं। रोगके लिये बतायी हुई ओषधिका उक्त मन्त्रद्वारा हवन करनेसे मनुष्य क्षणभरमें रोगमुक्त हो जाता है। प्रतिदिन दूध पीकर नदीके तटपर या गोशालामें एक लाख जप करे और घृतयुक्त खीरसे आहुति करे तो वह मनुष्य विद्यानिधि होता है। जिसका आधिपत्य (प्रभुत्व) नष्ट हो गया है, ऐसा मनुष्य यदि शाकाहारी होकर जलके भीतर एक लाख जप करे और बेलके फूलोंकी दशांश आहुति दे तो उसी समय वह अपनी खोयी हुई प्रभुता पुनः प्राप्त कर लेता है। इसमें संशय नहीं है। गङ्गा-तटके समीप उपवासपूर्वक रहकर मनुष्य यदि एक लाख जप करे और त्रिमधुयुक्त कमलों अथवा बेलके फूलोंसे दशांश आहुति करे तो राज्यलक्ष्मी प्राप्त कर लेता है। मार्गशीर्षमासमें कन्द-मूल-फलके आहारपर रहकर जलमें खड़ा हो एक लाख जप करे और प्रज्वलित अग्निमें खीरसे दशांश होम करे तो उस मनुष्यको भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके समान पुत्र एवं पौत्र प्राप्त होता है।

इस मन्त्रराजके और भी बहुत-से प्रयोग हैं। पहले षट्कोण बनावे। उसके बाह्यभागमें अष्टदल कमल अङ्कित करे। उसके भी बाह्यभागमें द्वादशदल कमल लिखे। छः कोणोंमें विद्वान् पुरुष मन्त्रके छः अक्षरोंका उल्लेख करे। अष्टदल कमलमें भी प्रणवसम्पुटित उक्त मन्त्रके आठ अक्षरोंका

उल्लेख करे । द्वादशदल कमलमें कामवीज (क्लीं) लिखे । मध्यभागमें मन्त्रसे आवृत नामका उल्लेख करे । बाह्यभागमें सुदर्शन मन्त्रसे और दिशाओंमें युग्मवीज (रा श्रीं) से यन्त्रको आवृत करे । उसका भूपुर वज्रसे सुशोभित हो । कोण कन्दर्प, अङ्कुश, पाश और भूमिसे सुशोभित हो । यह यन्त्रराज माना गया है । भोजपत्रपर अष्टगन्धसे ऊपर बताये अनुसार यन्त्र लिखकर छः कोणोंके ऊपर दलोंका आवेष्टन रहे । अष्टदल कमलके केसरोंमे विद्वान् पुरुष युग्म बीजसे आवृत दो-दो स्वरोंका उल्लेख करे । यन्त्रके बाह्यभागमें मातृकावर्णोंका उल्लेख करे । साथ ही प्राण-प्रतिष्ठाका मन्त्र भी लिखे । मन्त्रोपासक किसी शुभ दिनको कण्ठमें, दाहिनी भुजामे अथवा मस्तकपर इस यन्त्रको धारण करे । इससे वह सम्पूर्ण पातकोंसे मुक्त हो जाता है । स्व बीज (रा), काम (क्लीं), सत्य (ह्रीं), वाक् (ऐं), लक्ष्मी (श्रीं), तार (ॐ) इन छः प्रकारके बीजोंसे पृथक्-पृथक् जुड़नेपर पाँच वर्णोंका 'रामाय नमः' मन्त्र छः भेदोंसे युक्त षडक्षर होता है । (यथा—रा रामाय नमः, क्लीं रामाय नमः, ह्रीं रामाय नमः इत्यादि) यह छः प्रकारका षडक्षर मन्त्र धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारों फलोंको देनेवाला है । इन छहोंके क्रमशः ब्रह्मा, सम्मोहन, सत्य, दक्षिणामूर्ति, अगस्त्य तथा श्रीशिव—ये ऋषि बताये गये हैं अथवा क्लीं आदिके विश्वामित्र मुनि माने गये हैं । इनका छन्द गायत्री है, देवता श्रीरामचन्द्रजी हैं, आदिमे लगे हुए रा क्लीं आदि बीज है और अन्तिम नमः पद शक्ति है । मन्त्रके छः अक्षरोंसे षडङ्ग-न्यास करना चाहिये । अथवा छः दीर्घ स्वरोंसे युक्त बीजाक्षरोंद्वारा न्यास करे । मन्त्रके अक्षरोका पूर्ववत् न्यास करना चाहिये ।

ध्यान

ध्यायेत्कल्पतरोर्मूले सुवर्णमयमण्डपे ।
पुष्पकाख्यविमानान्त:सिंहासनपरिच्छदे ॥
पद्मे वसुदले देवमिन्द्रनीलसमप्रभम् ।
वीरासनसमासीनं ज्ञानमुद्रोपशोभितम् ॥
वामोरुन्यस्ततद्धस्तं सीतालक्ष्मणसेवितम् ।
रत्नाकल्पं विभुं ध्यात्वा वर्णलक्षं जपेन्मनुम् ॥
यद्वा स्मारादिमन्त्राणां जपार्थं च हरिं स्मरेत् । [illegible]

भगवान्‌का इस प्रकार ध्यान करे । [illegible] विशाल मण्डप बना हुआ है । उसके भीतर सुन्दर [illegible]

विमानमें एक दिव्य सिंहासन बिछा हुआ है। उसपर अष्टदल कमलका आसन है, जिसके ऊपर इन्द्रनील मणिके समान श्याम कान्तिवाले भगवान् श्रीरामचन्द्र वीरासनसे बैठे हुए हैं। उनका दाहिना हाथ ज्ञानमुद्रामें सुशोभित है और बायें हाथको उन्होंने बायीं जाँघपर रख छोड़ा है। भगवती सीता तथा सेवाव्रती लक्ष्मण उनकी सेवामें जुटे हुए हैं। वे सर्वव्यापी भगवान् रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित हैं। इस प्रकार ध्यान करके छः अक्षरोंकी संख्याके अनुसार छः लाख मन्त्र जप करे अथवा वर्ण आदिसे युक्त मन्त्रोंके साधनमें जथाभ श्रीहरिका चिन्तन करे।

पूजन तथा लौकिक प्रयोग सब पूर्वोक्त षडक्षर मन्त्रके ही समान करने चाहिये। 'ॐ रामचन्द्राय नमः' 'ॐ रामभद्राय नमः।' ये दो अष्टाक्षर मन्त्र हैं। इनके अन्तमें भी 'ॐ' जोड़ दिया जाय तो ये नवाक्षर हो जाते हैं। इनका सब पूजनादि कर्म मन्त्रोपासक षडक्षर मन्त्रकी ही भाँति करे। 'हुं जानकीवल्लभाय स्वाहा' यह दस अक्षरोंवाला महामन्त्र है। इसके वसिष्ठ ऋषि, स्वराट् छन्द, सीतापति देवता, हुं बीज तथा स्वाहा शक्ति है (इन सबका यथास्थान न्यास करना चाहिये)। वर्ण बीजसे क्रमशः षडङ्गन्यास करे। मन्त्रके दस अक्षरोंका क्रमशः मस्तक, ललाट, भ्रूमध्य, तालु, कण्ठ, हृदय, नाभि, ऊरु, जानु और चरण—इन दस अङ्गोंमें न्यास करे।

ध्यान

अयोध्यानगरे रत्नचित्रसौवर्णमण्डपे।
मन्दारपुष्पैराबद्धविताने तोरणान्विते॥
सिंहासनसमासीनं पुष्पकोपरि राघवम्।
रक्षोभिर्हरिभिर्देवैः सुविमानगतैः शुभैः॥
संस्तूयमानं मुनिभिः प्रह्वैश्च परिसेवितम्।
सीतालंकृतवामाङ्गं लक्ष्मणेनोपशोभितम्॥
श्यामं प्रसन्नवदनं सर्वाभरणभूषितम्।
(६८–७१)

दिव्य अयोध्या-नगरमें रत्नोंसे चित्रित एक सुवर्णम मण्डप है, जिसमें मन्दारके फूलोंसे चँदोवा बनाया गया है उसमें तोरण लगे हुए हैं, उसके भीतर पुष्पक विमान एक दिव्य सिंहासनके ऊपर राघवेन्द्र श्रीराम बैठे हुए हैं उस सुन्दर विमानमें एकत्र हो शुभस्वरूप देवता, वान राक्षस और विनीत महर्षिगण भगवान्की स्तुति और परिच करते हैं। श्रीराघवेन्द्रके वाम भागमें भगवती सीता विराजम हो उस वामाङ्गकी शोभा बढ़ाती हैं। भगवान्का दाहि

भाग लक्ष्मणजीसे सुशोभित है, श्रीरघुनाथजीकी कान्ति श्याम है, उनका मुख प्रसन्न है तथा वे समस्त आभूषणोंसे विभूषित हैं।

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक एकाग्रचित्त हो दस लाख जप करे। कमल-पुष्पोंद्वारा दशांश होम और पूजन षडक्षर मन्त्रके समान है। 'रामाय धनुष्पाणये स्वाहा।' यह दशाक्षर मन्त्र है। इसके ब्रह्मा ऋषि हैं, विराट् छन्द है तथा राक्षसमर्दन श्रीरामचन्द्रजी देवता कहे गये हैं। मन्त्रका आदि अक्षर अर्थात् 'रा' यह बीज है और स्वाहा शक्ति है। बीजके द्वारा षडङ्ग-न्यास करे। वर्णन्यास, ध्यान, पुरश्चरण तथा पूजन आदि कार्य दशाक्षर मन्त्रके लिये पहले बताये अनुसार करे। इसके जपमें धनुष-बाण धारण करनेवाले भगवान् श्रीरामका ध्यान करना चाहिये। तार (ॐ) के पश्चात् 'नमो भगवते रामचन्द्राय' अथवा 'रामभद्राय' ये दो प्रकारके द्वादशाक्षर मन्त्र हैं। इनके ऋषि और ध्यान आदि पूर्ववत् हैं। श्रीपूर्वक, जयपूर्वक तथा जय-जयपूर्वक 'राम' नाम हो*। यह (श्रीराम जय राम जय जय राम) तेरह अक्षरोंका मन्त्र है। इसके ब्रह्मा ऋषि, विराट् छन्द तथा [illegible] करनेवाले भगवान् श्रीराम देवता कहे गये हैं। [illegible] दो-दो आवृत्ति करके षडङ्ग-न्यास करे†। [illegible] सब कार्य दशाक्षर मन्त्रके समान करे।

'ॐ नमो भगवते रामाय [illegible]' यह अठारह अक्षरोंका मन्त्र है। इसके [illegible] छन्द, श्रीराम देवता, ॐ बीज और 'नमः' शक्ति है। [illegible] एक, दो, चार, तीन, छः और दो [illegible] एकाग्रचित्त हो षडङ्ग-न्यास करे।

ध्यान

नि शाणभेरीपटहशङ्खतुर्यादिनि [illegible] ॥
प्रवृत्तनृत्ये परितो [illegible] ।
चन्दनागुरुकस्तूरीकर्पूरगन्धिनुवासिते ॥
सिंहासने समासीनं पुष्पकोपरि [illegible] ।
सौमित्रिसीतासहितं [illegible] ॥
चापबाणधरं श्यामं [illegible] ।
हत्वा रावणमायान्तं [illegible] ॥

* श्रीपूर्वं जयपूर्वं च तद्द्विधा रामनाम च ॥ ७६ ॥
त्रयोदशाक्षरो मन्त्रो मुनिर्ब्रह्मा विराट् स्मृतम्। छन्दस्तु देवता प्रोक्तो [illegible]

† यथा—'श्रीराम' हृदयाय नमः। 'श्रीराम' शिरसे स्वाहा। 'जय राम' शिखायै वषट्। [illegible] राम' नेत्राभ्यां वौषट्। 'जय जय राम' अस्त्राय फट्। पुराणमें इसका समर्थक मूल श्लोक इस प्रकार है—
षडङ्गानि प्रकुर्वीत [illegible] ।

भगवान् राघवेन्द्र रावणको मारकर त्रिलोकीकी रक्षा करके लौट रहे हैं। वे सीता और लक्ष्मणके साथ पुष्पक-विमानमें सिंहासनपर बैठे हैं। उनका मस्तक जटाओंके मुकुटसे सुशोभित है। उनका वर्ण श्याम है और उन्होंने धनुष-बाण धारण कर रक्खा है। उनकी विजयके उपलक्षमें निशान, भेरी, पटह, शङ्ख और तुरही आदिकी ध्वनियोंके साथ-साथ नृत्य आरम्भ हो गया है। चारों ओर जय-जयकार तथा मङ्गल-पाठ हो रहा है। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कपूर आदिकी मधुर गन्ध छा रही है।

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक मन्त्रकी अक्षर-संख्याके अनुसार अठारह लाख जप करे और घृतमिश्रित खीरकी दशांश आहुति करके पूर्ववत् पूजन करे।

ॐ रां श्रीं रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम।
दशास्यान्तक मां रक्ष देहि मे परमां श्रियम्॥*

यह पैंतीस अक्षरोंका मन्त्र है। बीजाक्षरोंसे विलग होनेपर बत्तीस अक्षरोंका मन्त्र होता है। यह अभीष्ट फल देनेवाला है। इसके विश्वामित्र ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, रामभद्र देवता, रा बीज और श्री शक्ति है। मन्त्रके चार पादोंके आदिमें तीनों बीज लगाकर उन पादों तथा सम्पूर्ण मन्त्रके द्वारा मन्त्रज्ञ पुरुष पञ्चाङ्ग-न्यास करके मन्त्रके एक-एक अक्षरका क्रमशः समस्त अङ्गोंमें न्यास करे। इसके ध्यान और पूजन आदि सब कार्य पूर्ववत् करे। इस मन्त्रका पुरश्चरण तीन लाखका है। इसमें खीरसे हवन करनेका विधान है। पीतवर्णवाले श्रीरामका ध्यान करके एकाग्रचित्त हो एक लाख जप करे, फिर कमलके फूलोंसे दशांश हवन करके मनुष्य धन पाकर अत्यन्त धनवान् हो जाता है।

'ॐ ह्रीं श्रीं श्रीं दाशरथाय नमः' यह ग्यारह अक्षरोंका मन्त्र है। इसके ऋषि आदि तथा पूजन आदि पूर्ववत् हैं। 'त्रैलोक्यनाथाय नमः' यह आठ अक्षरोंका मन्त्र है। इसके भी न्यास, ध्यान और पूजन आदि सब कार्य पूर्ववत् हैं। 'रामाय नमः' यह पञ्चाक्षर मन्त्र है। इसके ऋषि, ध्यान और पूजन आदि सब कार्य षडक्षर मन्त्रकी ही भाँति होते हैं। 'रामचन्द्राय स्वाहा', 'रामभद्राय स्वाहा'— ये दो मन्त्र कहे गये हैं। इसके ऋषि और पूजन आदि पूर्ववत् हैं। अग्नि (र्) शेष (आ) से युक्त हो और उसका मस्तक चन्द्रमा (ं) से विभूषित हो तो वह रघुनाथजीका एकाक्षर मन्त्र (रां) है। जो द्वितीय कल्पवृक्षके समान है। इसके ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द और श्रीराम देवता हैं। छः दीर्घ स्वरोंसे युक्त मन्त्रद्वारा षडङ्ग-न्यास करे।

सरयूतीरमन्दारवेदिकापङ्कजासने॥
श्यामं वीरासनासीनं ज्ञानमुद्रोपशोभितम्।
वामोरुन्यस्ततद्धस्तं सीतालक्ष्मणसंयुतम्॥
अवेक्षमाणमात्मानं मन्मथामिततेजसम्।
शुद्धस्फटिकसंकाशं केवलं मोक्षकाङ्क्षया॥
चिन्तयेत् परमात्मानमृतुलक्षं जपेन्मनुम्। (१०५—१०८)

* श्रीरामतापनीयोपनिषद्में यही मन्त्र इस प्रकार है—
रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम।
भो दशास्यान्तकास्माकं रक्षां देहि श्रियं च ते॥

'सरयूके तटपर मन्दार (कल्पवृक्ष) के नीचे एक वेदिका बनी हुई है और उसके ऊपर एक कमलका आसन बिछा हुआ है। जिसपर श्यामवर्णवाले भगवान् श्रीराम वीरासनसे बैठे हैं। उनका दाहिना हाथ ज्ञानमुद्रासे सुशोभित है। उन्होंने अपने बायें ऊरुपर बायाँ हाथ रख छोड़ा है। उनके वामभागमें सीता और दाहिने भागमें लक्ष्मणजी हैं। भगवान् श्रीरामका अमित तेज कामदेवसे भी अत्यधिक सुन्दर है। वे शुद्ध स्फटिकके समान निर्मल तथा अद्वितीय आत्माका ध्यानद्वारा साक्षात्कार कर रहे हैं। ऐसे परमात्मा श्रीरामका केवल मोक्षकी इच्छासे चिन्तन करे और छः लाख मन्त्रका जप करे।'

इसके होम और नित्य-पूजन आदि सब कार्य षडक्षर मन्त्रकी ही भाँति हैं। वह्नि (र्), शेष (आ) के आसन-पर विराजमान हो और उसके बाद भान्त (म) हो तो केवल दो अक्षरका मन्त्र (राम) होता है। इसके ऋषि, ध्यान और पूजन आदि सब कार्य एकाक्षर मन्त्रकी ही भाँति जानने चाहिये। तार (ॐ), माया (ह्रीं), रमा (श्रीं), अनङ्ग (क्लीं), अस्त्र (फट्) तथा स्व बीज (रा) इनके साथ पृथक्-पृथक् जुड़ा हुआ द्व्यक्षर मन्त्र (राम) छः भेदोंसे युक्त त्र्यक्षर मन्त्रराज होता है। यह सम्पूर्ण अभीष्ट पदार्थोंको देनेवाला है। द्व्यक्षर मन्त्रके अन्तमें 'चन्द्र' और 'भद्र' शब्द जोड़ा जाय तो दो प्रकारका चतुरक्षर मन्त्र होता है। इन सबके ऋषि, ध्यान और पूजन आदि एकाक्षर-मन्त्रमें बताये अनुसार हैं। तार (ॐ), चतुर्थ्यन्त राम शब्द (रामाय), वर्म (हु), अस्त्र (फट्), वह्निवल्लभा (स्वाहा)—यह (ॐ रामाय हु फट् स्वाहा) आठ अक्षरोंका महामन्त्र है। इसके ऋषि और पूजन आदि षडक्षर मन्त्रके समान हैं। 'तार (ॐ) हृत् (नमः) ब्रह्मण्यसेव्याय रामायाकुण्ठतेजसे। उत्तमश्लोकधुर्याय स्व (न्य) भृगु (स्) कामिका (त) दण्डार्पिताङ्घ्रये।' यह ('ॐ नमः ब्रह्मण्यसेव्याय रामायाकुण्ठतेजसे। उत्तमश्लोक धुर्याय न्यस्त-दण्डार्पिताङ्घ्रये') तैंतीस अक्षरोंका मन्त्र कहा गया है। इसके शुक्र ऋषि, अनुष्टुप् छन्द और श्रीराम देवता हैं। इस मन्त्र-के चारों पादों तथा सम्पूर्ण मन्त्रसे पञ्चाङ्ग-न्यास करना चाहिये। शेष सब कार्य षडक्षर मन्त्रकी भाँति करे। जो साधक मन्त्र सिद्ध कर लेता है, उसे भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त होते हैं। उसके सब पापोंका नाश हो जाता है। 'दाशरथाय विद्महे। सीतावल्लभाय धीमहि। तन्नो रामः प्रचोदयात्।' यह राम-गायत्री कही गयी है, जो सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाली है।

पद्मा (श्रीं) ङे विभक्त्यन्त सीता शब्द (सीतायै) और अन्तमें ठद्वय (स्वाहा)—यह (श्रीं सीतायै स्वाहा) षडक्षर सीता-मन्त्र है। इसके वाल्मीकि ऋषि, गायत्री छन्द, भगवती सीता देवता, श्रीं बीज तथा 'स्वाहा' शक्ति है। छः दीर्घस्वरोंसे युक्त बीजाक्षरद्वारा षडङ्ग-न्यास करे।

> ततो ध्यायेन्महादेवीं सीतां त्रैलोक्यपूजिताम्।
> तप्तहाटकवर्णाभां पद्मयुग्मं करद्वये ॥
> सद्रत्नभूषणस्फूर्जद्दिव्यदेहां शुभात्मिकाम्।
> नानावस्त्रां शशिमुखीं पद्माक्षीं मुदितान्तराम्।
> पश्यन्तीं राघवं पुण्यं शय्यायां षड्गुणेश्वरीम् ॥
> (१३३—१३५)

'तदनन्तर त्रिभुवनपूजित महादेवी सीताका ध्यान करे। तपाये हुए सुवर्णके समान उनकी कान्ति है। उनके दोनों हाथोंमें दो कमलपुष्प शोभा पा रहे हैं। उनका दिव्य-शरीर उत्तम रत्नमय आभूषणोंसे प्रकाशित हो रहा है। वे मङ्गलमयी सीता भाँति-भाँतिके वस्त्रोंसे सुशोभित हैं। उनका मुख चन्द्रमाको लज्जित कर रहा है। नेत्र कमलोंकी शोभा धारण करते हैं। अन्तःकरण आनन्दसे उल्लसित है। वे ऐश्वर्य आदि छः गुणोंकी अधीश्वरी हैं और शय्यापर अपने प्राणवल्लभ पुण्यमय श्रीरामचन्द्रको अनुरागपूर्ण दृष्टिसे निहार रही हैं।'

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक छः लाख मन्त्रका जप करे और खिले हुए कमलोंद्वारा दशांश आहुति दे। पूर्वोक्त पीठपर उनकी पूजा करनी चाहिये। मूलमन्त्रसे मूर्ति निर्माण करके उसमें जनकनन्दिनी किशोरीजीका आवाहन और स्थापन करे। फिर विधिवत् पूजन करके उनके दाहिने भागमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी अर्चना करे। तदनन्तर अग्रभागमें हनुमान्जीकी और पृष्ठभागमें लक्ष्मणजीकी पूजा करके छः कोणोंमें हृदयादि अङ्गोंका पूजन करे। फिर आठ दलोंमें मुख्य मन्त्रियोंका, उनके बाह्यभागमें इन्द्र आदि लोकेश्वरोंका और उनके भी बाह्यभागमें वज्र आदि आयुधोंका पूजन करके मनुष्य सम्पूर्ण सिद्धियोंका स्वामी हो जाता है। अधिक कहनेसे क्या लाभ! श्रीकिशोरीजीकी आराधनासे मनुष्य सौभाग्य, पुत्र-पौत्र, परम सुख, धन-धान्य तथा मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

इन्दु (ं अनुस्वार) युक्त [illegible]

[illegible] (लं लक्ष्मणाय नमः) सात अक्षरोंका मन्त्र है। इसके अगस्त्य ऋषि, गायत्री छन्द, महावीर लक्ष्मण देवता, 'लं' बीज और 'नमः' शक्ति है। छः दीर्घ स्वरोंसे युक्त बीजद्वारा षडङ्ग न्यास करे।

ध्यान

> द्विभुजं स्वर्णरुचिरतनुं पद्मनिभेक्षणम्।
> धनुर्बाणकरं रामं सेवासंसक्तमानसम् ॥१४४॥

'जिनके दो भुजाएँ हैं, जिनकी अङ्गकान्ति सुवर्णके समान सुन्दर है। नेत्र कमलदलके सदृश हैं। हाथोंमें धनुष-बाण हैं तथा श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें जिनका मन सदा संलग्न रहता है (उन श्रीलक्ष्मणजीकी मैं आराधना करता हूँ)।'

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक सात लाख जप करे और मधुसे सींची हुई खीरसे आहुति देकर श्रीरामपीठपर श्रीलक्ष्मणजीका पूजन करे। श्रीरामजीकी ही भाँति श्रीलक्ष्मण-जीका भी पूजन किया जाता है। यदि श्रीरामचन्द्रजीके पूजन-का सम्पूर्ण फल प्राप्त करनेकी निश्चित इच्छा हो तो यत्नपूर्वक श्रीलक्ष्मणजीका आदरसहित पूजन करना चाहिये। श्रीरामचन्द्र-जीके बहुत-से भिन्न-भिन्न मन्त्र हैं, जो सिद्धि देनेवाले हैं। अतः उनके साधकोंको सदा श्रीलक्ष्मणजीकी शुभ आराधना करनी चाहिये। मुक्तिकी इच्छावाले मनुष्यको एकाग्रचित्त होकर आलस्यरहित हो लक्ष्मणजीके मन्त्रका एक हजार आठ या एक सौ आठ बार जप करना चाहिये। जो नित्य एकान्त-में बैठकर लक्ष्मणजीके मन्त्रका जप करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। यह लक्ष्मण-मन्त्र जयप्रधान है। राज्यकी प्राप्तिका एक-मात्र साधन है। जो नित्यकर्म करके शुद्ध भावसे तीनों समय लक्ष्मणजीके मन्त्रका जप करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त होता है। जो विधिपूर्वक मन्त्रकी दीक्षा लेकर सद्गुणोंसे युक्त और पाप-रहित हो अपने आचारका नियमपूर्वक पालन करता, मनको वशमें रखता और घरमें रहते हुए भी जितेन्द्रिय होता है, इहलोकके भोगोंकी इच्छा न रखकर निष्कामभावसे भगवान् लक्ष्मणका पूजन करता है, वह समस्त पुण्य-पापके समुदायको दग्ध करके शुद्ध चित्त हो पुनरागमनके चक्करमें न पड़कर सनातनपदको प्राप्त होता है। सकाम भाववाला पुरुष मनोवाञ्छित वस्तुओंको पाकर और मनके अनुरूप भोगोंका उपभोग करके दीर्घ कालतक पूर्व-जन्मोंकी स्मृतिसे युक्त रहकर भगवान् विष्णुके परम धाममें जाता है। निद्रा (भ) चन्द्र (अनुस्वार) से युक्त हो और उसके बाद 'भरताय नमः' ये दो पद हों तो सात अक्षरका मन्त्र होता है। इस 'भं भरताय नमः' मन्त्रके ऋषि और पूजन आदि पूर्ववत् हैं। वक (श) इन्दु (अनुस्वार) से युक्त हो उसके बाद ङे विभक्त्यन्त शत्रुघ्न शब्द हो और अन्तमें हृदय (नमः) हो तो 'शं शत्रुघ्नाय नमः' यह सात अक्षरों-का शत्रुघ्न मन्त्र होता है, जो सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि प्रदान करनेवाला है। (ना० पूर्व० अध्याय ७३)

विविध मन्त्रोंद्वारा श्रीहनुमान्‌जीकी उपासना, दीपदानविधि और काम-नाशक भूतविद्रावण-मन्त्रोंका वर्णन

सनत्कुमारजी कहते हैं—विप्रवर! अब हनुमान्‌जी-के मन्त्रोंका वर्णन किया जाता है, जो समस्त अभीष्ट वस्तुओं-को देनेवाले हैं और जिनकी आराधना करके मनुष्य हनुमान्-जीके ही समान आचरणवाले हो जाते हैं। मनुस्वर (औ) तथा इन्दु (अनुस्वार) से युक्त गगन (ह) अर्थात् 'हौं' यह प्रथम बीज है। ह् स् फ् र् और अनुस्वार ये भग (ए) से युक्त हों अर्थात् 'ह्स्फ्रें' यह दूसरा बीज है। ख् फ् र् ये भग (ए) और इन्दु (अनुस्वार) से युक्त हों अर्थात् 'ख्फ्रें' यह तीसरा बीज कहा गया है। वियत् (ह्) भृगु (स्) अग्नि (र्) मनु (औ) और इन्दु (अनुस्वार) इन सबका संयुक्त रूप 'ह्स्रौं' यह चौथा बीज है। भग (ए) और चन्द्र (अनुस्वार) से युक्त वियत् (ह्) भृगु (स्) ख् फ् तथा अग्नि (र्) हों अर्थात् 'ह्स्ख्फ्रें' यह पाँचवाँ बीज है। मनु (औ) और इन्दु (अनुस्वार) से युक्त ह् स् अर्थात् 'ह्सौं' यह छठा बीज है। तदनन्तर ङे विभक्त्यन्त हनुमत् शब्द (हनुमते) और अन्तमें हृदय (नमः) यह (हौं ह्स्फ्रें ख्फ्रें ह्स्रौं ह्स्ख्फ्रें ह्सौं हनुमते नमः) बारह अक्षरोंवाला महामन्त्रराज कहा गया है। इस मन्त्रके श्रीरामचन्द्रजी ऋषि हैं और जगती छन्द कहा गया है। इसके देवता हनुमान्‌जी हैं। 'ह्सौं' बीज है, 'ह्स्फ्रें' शक्ति है। छः

बीजोंसे षडङ्ग-न्यास करना चाहिये। मस्तक, ललाट, दोनों नेत्र, मुख, कण्ठ, दोनों बाहु, हृदय, कुक्षि, नाभि, लिङ्ग, दोनो जानु, दोनो चरण इनमें क्रमशः मन्त्रके बारह अक्षरोंका न्यास करे। छः बीज और दो पद इन आठोंका क्रमशः मस्तक, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, ऊरु, जङ्घा और चरणोंमें न्यास करे। तदनन्तर अञ्जनीनन्दन कपीश्वर हनुमान्जीका इस प्रकार ध्यान करे—

उद्यत्कोट्यर्कसंकाशं जगत्प्रक्षोभकारकम्।
श्रीरामाङ्घ्रिध्याननिष्ठं सुग्रीवप्रमुखार्चितम्॥
वित्रासयन्तं नादेन राक्षसान् मारुतिं भजेत्।९-१०।

उदयकालीन करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी हनुमान्जी सम्पूर्ण जगत्को क्षोभमें डालनेकी शक्ति रखते हैं, सुग्रीव आदि प्रमुख वानर वीर उनका समादर करते हैं। वे राघवेन्द्र श्रीरामके चरणारविन्दोंके चिन्तनमें निरन्तर सलग्न हैं और अपने सिंहनादसे सम्पूर्ण राक्षसोंको भयभीत कर रहे हैं। ऐसे पवनकुमार हनुमान्जीका भजन करना चाहिये।

इस प्रकार ध्यान करके जितेन्द्रिय पुरुष बारह हजार मन्त्र-जप करे। फिर दही, दूध और घी मिलाये हुए धानकी दशांश आहुति दे। पूर्वोक्त वैष्णवपीठपर मूलमन्त्रसे मूर्तिकी कल्पना करके उसमें हनुमान्जीका आवाहन-स्थापनपूर्वक पाद्यादि उपचारोंसे पूजन करे। केसरोंमें हृदयादि अङ्गोंकी पूजा करके अष्टदल कमलके आठ दलोंमें हनुमान्जीके निम्नाङ्कित आठ नामोंकी पूजा करे—रामभक्त, महातेजा, कपिराज, महाबल, द्रोणाद्रिहारक, मेरुपीठार्चनकारक, दक्षिणाशाभास्कर तथा सर्वविघ्नविनाशक॥ (रामभक्ताय नमः, महातेजसे नमः, कपिराजाय नमः, महाबलाय नमः, द्रोणाद्रिहारकाय नमः, मेरुपीठार्चनकारकाय नमः, दक्षिणाशाभास्कराय नमः, सर्वविघ्नविनाशकाय नमः) इस प्रकार नामोंकी पूजा करके दलोंके अग्रभागमें क्रमशः सुग्रीव, अङ्गद, नील, जाम्बवान्, नल, सुषेण, द्विविद तथा मैन्दकी पूजा करे। तत्पश्चात् लोकपालों तथा उनके वज्र आदि आयुधोंकी पूजा करे। ऐसा करनेसे मन्त्र सिद्ध हो जाता है। जो मानव लगातार दस दिनोंतक रातमें नौ सौ मन्त्र-जप करता है, उसके राजभय और शत्रुभय नष्ट हो जाते हैं। एक सौ आठ बार मन्त्रसे अभिमन्त्रित किया हुआ जल विषका नाश करनेवाला होता है। भूत, अपस्मार (मिरगी) और कृत्या (मारण आदिके प्रयोग) से ज्वर उत्पन्न हो तो उक्त मन्त्रसे अभिमन्त्रित भस्म अथवा जलसे क्रोधपूर्वक ज्वरग्रस्त पुरुषपर प्रहार करे। ऐसा करनेपर वह मनुष्य तीन दिनमें [illegible] सुख पाता है। हनुमान्जीके उक्त मन्त्रसे अभिमन्त्रित [illegible] या जल खा-पीकर मनुष्य सब रोगोंसे [illegible] तत्क्षण सुखी हो जाता है। उक्त मन्त्रसे [illegible] भस्मको अपने अङ्गोंमें लगाकर अथवा उससे [illegible] जलको पीकर जो मन्त्रोपासक युद्धके लिये [illegible] शस्त्रोंके समुदायसे पीड़ित नहीं होता। [illegible] घाव हुआ हो, या फोड़ा फूटकर बहता हो, [illegible] रोग फूटा हो, तीन बार मन्त्र जपकर अभिमन्त्रित [illegible] भस्मसे उनपर स्पर्श कराते ही वे सभी [illegible] इसमें संशय नहीं है। [illegible] वृक्षकी जड़को ले आकर उसके द्वारा हनुमान्जीकी [illegible] प्रतिमा बनावे; फिर उसमें प्राण-प्रतिष्ठा करे, सिन्दूर [illegible] उसकी पूजा करे। तत्पश्चात् उस प्रतिमाका मुख [illegible] करके मन्त्रोच्चारणपूर्वक उसे दरवाजेपर गाड़ दे। [illegible] ग्रह, अभिचार, रोग, अग्नि, विष, चोर तथा राजा [illegible] उपद्रव कभी उस घरमें नहीं आते और वह घर [illegible] प्रतिदिन धन-पुत्र आदिसे अभ्युदयको प्राप्त होता रहता है।

विशुद्ध अन्तःकरणवाला पुरुष अष्टमी या चतुर्दशीको [illegible] वार या रविवारके दिन किसी तख्तेपर तैलयुक्त [illegible] हनुमान्जीकी सुन्दर तथा समस्त शुभ [illegible] एक प्रतिमा बनावे। वाम भागमें तेल और दाहिने [illegible] घीका दीपक जलाकर रक्खे। फिर मन्त्रज्ञ [illegible] उक्त प्रतिमामें हनुमान्जीका आवाहन करे। [illegible] पश्चात् प्राण-प्रतिष्ठा करके उन्हें पाद्य, अर्घ्य आदि [illegible] करे। लाल चन्दन, लाल फूल तथा सिन्दूर [illegible] उनकी पूजा करे। धूप और दीप देकर नैवेद्य निवेदन [illegible]। मन्त्रवेत्ता उपासक मूलमन्त्रसे पूआ, [illegible] बड़े, पकौड़ी आदि भोज्य पदार्थोंको [illegible] फिर सत्ताईस पानके पत्तोंसे तीन तीन [illegible] भीतर सुपारी आदि रखकर मुख-शुद्धिके लिये [illegible] अर्पण करे। मन्त्रज्ञ साधक इस प्रकार [illegible] हजार मन्त्रका जप करे। तत्पश्चात् विद्वान् पुरुष [illegible] करके नाना प्रकारसे हनुमान्जीकी स्तुति [illegible] अभीष्ट मनोरथ उनसे निवेदन करे [illegible] विसर्जन करे। इसके बाद नैवेद्य लगाये हुए [illegible] ब्राह्मणोंको भोजन करावे और चढ़ाये हुए [illegible] बाँटकर दे दे। विद्वान् पुरुष [illegible]

ब्राह्मणोंको दक्षिणा भी देकर विदा करे। तत्पश्चात् इष्ट बन्धु-जनोंके साथ स्वयं भी मौन होकर भोजन करे। उस दिन पृथ्वीपर शयन और ब्रह्मचर्यका पालन करे। जो मानव इस प्रकार आराधना करता है, वह कपीश्वर हनुमान्‌जीके प्रसादसे शीघ्र ही सम्पूर्ण कामनाओंको अवश्य प्राप्त कर लेता है।

भूमिपर हनुमान्‌जीका चित्र अङ्कित करे और उनके अग्रभागमें मन्त्रका उल्लेख करे। साथ ही साध्यवस्तु या व्यक्तिका द्वितीयान्त नाम लिखकर उसके आगे 'विमोचय विमोचय' लिखे। लिखकर उसे बायें हाथसे मिटा दे, उसके बाद फिर लिखे। इस प्रकार एक सौ आठ बार लिख-लिखकर उसे पुनः मिटावे। ऐसा करनेपर महान् कारागारसे वह शीघ्र मुक्त हो जाता है। ज्वरमें दूर्वा, गुरुच, दही, दूध अथवा घृतसे होम करे। शूल रोग होनेपर करंज या वातारि (एरंड) की समिधाओंको तेलमें डुबोकर उनके द्वारा होम करे अथवा शेफालिका (सिंदुवार) की तैलसिक्त समिधाओंसे प्रयत्नपूर्वक होम करना चाहिये। सौभाग्यसिद्धिके लिये चन्दन, कपूर, रोचना, इलायची और लवंगकी आहुति दे। वस्त्रकी प्राप्तिके लिये सुगन्धित पुष्पोंसे हवन करे। विभिन्न धान्योंकी प्राप्तिके लिये उन्हीं धान्योंसे होम करना चाहिये। धान्यके होमसे धान्य प्राप्त होता है और अन्नके होमसे अन्नकी वृद्धि होती है। तिल, घी, दूध और मधुकी आहुति देनेसे गाय-भैंसकी वृद्धि होती है। अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता है ? विष और व्याधिके निवारणमें, शान्तिकर्ममें, भूतजनित भय और संकटमें, युद्धमें, दैवी क्षति प्राप्त होनेपर, बन्धनसे छूटनेमें और महान् वनमें पड़ जानेपर आदि सभीमें यह सिद्ध किया हुआ मन्त्र मनुष्योंको निश्चय ही कल्याण प्रदान करता है।

द्वादशाक्षर मन्त्रमें जो अन्तिम छः अक्षर (हनुमते नमः) हैं इनको और आदि बीज (हौं) को छोड़कर शेष बचे हुए पाँच बीजोंका जो पञ्चाक्षर मन्त्र बनता है, वह सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाला है। इसके श्रीरामचन्द्रजी ऋषि, गायत्री छन्द और हनुमान् देवता कहे गये हैं। सम्पूर्ण कामनाओंकी प्राप्तिके लिये इसका विनियोग किया जाता है। इसके पाँच बीजों तथा सम्पूर्ण मन्त्रसे षडङ्ग-न्यास करे। रामदूत, लक्ष्मण-प्राणदाता, अञ्जनीसुत, सीताशोक-विनाशन तथा लङ्काप्रासाद-भञ्जन—ये पाँच नाम हैं, इनके पहले 'हनुमत्' यह नाम और है। हनुमत् आदि पाँच नामोंके आदिमें पाँच बीज और अन्तमें डे विभक्ति लगायी जाती है। अन्तिम नामके साथ उन पाँचों बीज जुड़ते हैं, ये ही षडङ्ग-न्यासके छः मन्त्र हैं *। इसके ध्यान-पूजन आदि कार्य पूर्वोक्त द्वादशाक्षर मन्त्रके समान ही हैं।

प्रणव (ॐ), वाग्भव (ऐं), पद्मा (श्रीं) तीन दीर्घ स्वरोंसे युक्त मायाबीज (ह्रां ह्रीं ह्रूं) तथा पाँच कूट (ह्स्फ्रें, ख्फ्रें, ह्स्त्रौं, ह्स्ख्फ्रें, ह्सौं) यह ग्यारह अक्षरोंका मन्त्र सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला है। इसके भी ध्यान-पूजन आदि सब कार्य पूर्ववत् होते हैं। इस मन्त्रकी आराधना की जाय तो यह समस्त अभीष्ट मनोरथोंको देनेवाला है। 'नमो भगवते आञ्जनेयाय महाबलाय स्वाहा।' यह अठारह अक्षरोंका मन्त्र है। इसके ईश्वर ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, पवनकुमार हनुमान् देवता, हं बीज और स्वाहा शक्ति है, ऐसा मनीषी पुरुषोंका कथन है। 'आञ्जनेयाय नमः' का हृदयमें, 'रुद्रमूर्तये नमः' का सिरमें, 'वायुपुत्राय नमः' का शिखामें, 'अग्निगर्भाय नमः' का कवचमें, 'रामदूताय नमः' का नेत्रोंमें तथा 'ब्रह्मास्त्राय नमः'के अस्त्रस्थानमें न्यास करे। इस प्रकार न्यास-विधि कही गयी है।

ध्यान

तप्तचामीकरनिभं भीघ्नं संविहिताञ्जलिम्।
चलत्कुण्डलदीप्तास्यं पद्माक्षं मारुतिं स्मरेत्॥

* यथा 'ह्स्फ्रें हनुमते नम, हृदयाय नम.। ख्फ्रें रामभक्ताय नम शिरसे स्वाहा। ह्स्त्रौं लक्ष्मणप्राणदात्रे नमः शिखायै वषट्।

जिनकी दिव्य कान्ति तपाये हुए सुवर्णके समान है, जो भयका नाश करनेवाले हैं, जिन्होंने अपने प्रभु (श्रीराम) का चिन्तन करके उनके लिये अञ्जलि बाँध रक्खी है, जिनका सुन्दर मुख हिलते हुए कुण्डलोंसे उद्भासित हो रहा है तथा जिनके नेत्र कमलके समान शोभायमान हैं, उन पवनकुमार हनुमान्‌जीका ध्यान करे।

इस प्रकार ध्यान करके दस हजार मन्त्र-जप करे। तत्पश्चात् घृतमिश्रित तिलसे दशांश होम करे। पूर्वोक्त रीतिसे वैष्णव-पीठपर पूजन करे। प्रतिदिन केवल रातमें भोजनका नियम लेकर जितेन्द्रिय-भावसे एक सौ आठ बार जप करे तो मनुष्य छोटे-मोटे रोगोंसे छूट जाता है, इसमें संशय नहीं है। बड़े भारी रोगोंसे मुक्त होनेके लिये तो प्रतिदिन एक हजार जप करना चाहिये। सुग्रीवके साथ श्रीरामकी मित्रता कराते हुए हनुमान्‌जीका ध्यान करके जो दस हजार मन्त्र-जप करता है, वह परस्पर द्वेष रखनेवाले दो विरोधियोंमें संधि करा सकता है। जो यात्राके समय हनुमान्‌जीका स्मरण करते हुए मन्त्र-जप करता है, उसके बाद यात्रा करता है, वह शीघ्र ही अपना अभीष्ट-साधन करके घर लौट आता है। जो अपने घरमें मन्त्र-जप करते हुए सदा हनुमान्‌जीकी आराधना करता है, वह आरोग्य, लक्ष्मी तथा कान्ति पाता है और किसी प्रकारके उपद्रवमें नहीं पड़ता। वनमें यदि इस मन्त्रका स्मरण किया जाय तो यह व्याघ्र आदि हिंसक जंतुओं तथा चोर-डाकुओंसे रक्षा करता है। सोते समय शय्यापर एकाग्रचित्त होकर इस मन्त्रका स्मरण करना चाहिये। जो ऐसा करता है, उसे दुःस्वप्न और चोर आदिका भय कभी नहीं होता।

वियत् (ह) इन्दु (अनुस्वार) से युक्त हो, उसके बाद 'हनुमते रुद्रात्मकाय' ये दो पद हों, फिर वर्म (हुं) और अस्त्र (फट्) हो तो (हं हनुमते रुद्रात्मकाय हुं फट्) यह बारह अक्षरोंका महामन्त्र होता है, जो अणिमा आदि अष्ट [illegible] इसके श्रीरामचन्द्रजी ऋषि, जगती छन्द, श्रीहनुमान्‌जी देवता [illegible] और 'हुम्' शक्ति कही गयी है। छः दीर्घस्वरोंसे युक्त बीज ([illegible] हें हौं हः) के द्वारा षडङ्ग-न्यास करे।

ध्यान

महाशैलं समुत्पाट्य धावन्तं रावणं प्रति ॥
लाक्षारसारुणं रौद्रं कालान्तकयमोपमम् ।
ज्वलदग्निसमं जैत्रं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥
अङ्गदाद्यैर्महावीरैर्वेष्टितं रुद्ररूपिणम् ।
तिष्ठ तिष्ठ रणे दुष्ट सृजन्तं घोरनिःस्वनम् ॥
शैवरूपिणमभ्यर्च्य ध्यात्वा लक्षं जपेन्मनुम् । [illegible]

हनुमान्‌जी एक बहुत बड़ा पर्वत उखाड़कर [illegible]

ह्स्ख्फ्रें अञ्जनीसुताय नमः कवचाय हुम्। 'ह्स्रौं सीताशोकविनाशाय नमः नेत्रत्रयाय वौषट्। ह्स्ख्फ्रें ख्फ्रें ह्स्रौं ह्स्ख्फ्रें ह्सौं लङ्काप्रासादभञ्जनाय नमः अस्त्राय फट्।

दौड़ रहे हैं। वे लाख (महावर) के रंगके समान अरुण-वर्ण हैं। काल, अन्तक तथा यमके समान भयंकर जान पड़ते हैं। उनका तेज प्रज्वलित अग्निके समान है। वे विजयशील तथा करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी हैं। अंगद आदि महावीर उन्हें चारों ओरसे घेरकर चलते हैं। वे साक्षात् रुद्र-स्वरूप हैं। भयंकर सिंहनाद करते हुए वे रावणसे कहते हैं—'अरे ओ दुष्ट! युद्धमें खड़ा रह, खड़ा तो रह!' इस प्रकार शिवावतार भगवान् हनुमान्‌जीका ध्यान और पूजन करके एक लाख मन्त्रका जप करे।

तदनन्तर दूध, दही, घी मिलाये चावलसे दशांश होम करे। विमलादि शक्तियोंसे युक्त पूर्वोक्त वैष्णवपीठपर मूल मन्त्रसे मूर्ति-कल्पना करके हनुमान्‌जीकी पूजा करनी चाहिये। एकमात्र ध्यान करनेसे भी मनुष्योंको सिद्धि प्राप्त होती है। इसमें संशय नहीं है। अब मैं लोकहितकी इच्छासे इस मन्त्र-का साधन बतलाता हूँ। हनुमान्‌जीका साधन पुण्यमय है, वह बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। यह लोकमें अत्यन्त गुह्यतम रहस्य है और शीघ्र उत्तम सिद्धि प्रदान करनेवाला है। इसके प्रसादसे मन्त्र-साधक पुरुष तीनों लोकोंमें विजयी होता है। प्रातःकाल स्नान करके नदीके तटपर कुशासनपर बैठे और मूल-मन्त्रसे प्राणायाम तथा षडङ्ग-न्यास सब कार्य करे। फिर सीतासहित भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करके उन्हें आठ बार पुष्पाञ्जलि अर्पित करे। तत्पश्चात् घिसे हुए लाल चन्दनसे उसीकी शलाकाद्वारा ताम्र-पात्रमें अष्टदल कमल लिखे। कमलकी कर्णिकामें मन्त्र लिखे। उसमें कपीश्वर हनुमान्‌जीका आवाहन करे। मूल-मन्त्रसे मूर्ति-निर्माण करके ध्यान तथा आवाहनपूर्वक पाद्य आदि उपचार अर्पण करे। गन्ध, पुष्प आदि सब सामग्री मूल-मन्त्रसे ही निवेदन करके कमल-के केसरोंमें छः अङ्गों (हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र तथा अस्त्र) का पूजन करके आठ दलोंमें सुग्रीव आदिका पूजन करे। सुग्रीव, लक्ष्मण, अंगद, नल, नील, जाम्बवान्, कुमुद और केसरीका एक-एक दलमें पूजन करना चाहिये। तदनन्तर इन्द्र आदि दिक्पालों तथा वज्र आदि आयुधों-का पूजन करे। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध होनेपर मन्त्रोपासक पुरुष अपनी अभीष्ट कामनाओंको सिद्ध कर सकता है।

नदीके तटपर, किसी वनमें, पर्वतपर अथवा कहीं भी एकान्त प्रदेशमें श्रेष्ठ साधक भूमि-ग्रहणपूर्वक साधन प्रारम्भ करे। आहार, श्वास, वाणी और इन्द्रियोंपर संयम रक्खे। दिग्बन्ध आदि करके न्यास और ध्यान आदिका सम्यक् सम्पादन करनेके पश्चात् पूर्ववत् पूजन करके उक्त मन्त्रराजका एक लाख जप करे। एक लाख जप पूर्ण हो जानेपर दूसरे दिन सबेरे साधक महान् पूजन करे। उस दिन एकाग्रचित्तसे पवननन्दन हनुमान्‌जीका सम्यक् ध्यान करके दिन-रात जपमें लगा रहे। तबतक जप करता रहे, जबतक दर्शन न हो जाय। साधकको सुदृढ जानकर आधी रातके समय पवननन्दन हनुमान्‌जी अत्यन्त प्रसन्न हो उसके सामने जाते हैं। कपीश्वर हनुमान्‌जी उस साधकको इच्छानुसार वर देते हैं; वर पाकर वह श्रेष्ठ साधक अपनी मौजसे इधर-उधर विचरता रहता है। यह पुण्यमय साधन देवताओंके लिये भी दुर्लभ है; क्योंकि गूढ़ रहस्यरूप है। मैंने सम्पूर्ण लोकोंके हितकी इच्छासे इसे यहाँ प्रकाशित किया है।

इसी प्रकार साधक अपने लिये हितकर अन्यान्य प्रयोगों-का भी अनुष्ठान करे। इन्दु (अनुस्वार) युक्त वियत् (ह) अर्थात् 'हं' के पश्चात् ङे विभक्त्यन्त पवननन्दन शब्द हो और अन्तमें वह्निप्रिया (स्वाहा) हो तो (ह पवननन्दनाय स्वाहा) यह दस अक्षरका मन्त्र होता है, जो सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला है। इसके ऋषि आदि भी पहले बताये अनुसार हैं। षडङ्ग-न्यास भी पूर्ववत् करने चाहिये।

ध्यान

ध्यायेद्रणे हनूमन्तं सूर्यकोटिसमप्रभम्।
धावन्तं रावणं जेतुं दृष्ट्वा सत्वरमुत्थितम्॥
लक्ष्मणं च महावीरं पतितं रणभूतले।
गुरुं च क्रोधमुत्पाद्य ग्रहीतुं गुरुपर्वतम्॥
हाहाकारैः सदर्पैश्च कम्पयन्तं जगत्त्रयम्।
आब्रह्माण्डं समाव्याप्य कृत्वा भीमं कलेवरम्॥
(७४ । १४५–१४७)

लङ्काकी रणभूमिमें महावीर लक्ष्मणको गिरा देख हनुमान्‌जी तुरंत उठ खड़े हुए हैं, वे हृदयमें महान् क्रोध भरकर एक विशाल एवं भारी पर्वतको उठाने तथा रावणको मार गिरानेके लिये वेगसे दौड़ पड़े हैं। उनका तेज करोड़ों सूर्योंकी प्रभाको लज्जित कर रहा है। वे ब्रह्माण्डव्यापी भयंकर एवं विराट् शरीर धारण करके दर्पपूर्ण हुंकारसे तीनों लोकोंको कम्पित किये देते हैं। इस प्रकार युद्ध-भूमिमें हनुमान्‌जीका चिन्तन करना चाहिये।

ध्यानके पश्चात् विद्वान् साधक एक लाख जप और पूर्ववत् दशांश हवन करे। इस मन्त्रका भी विधिवत् पूजन पहले-जैसा ही बताया गया है। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध होनेपर मन्त्रोपासक अपना हित-साधन कर सकता है। इस श्रेष्ठ

मन्त्रका साधन भी गोपनीय रहस्य ही है। सब तन्त्रोंमें इसे अत्यन्त गोप्य बताया गया है। इसका उपदेश हर एकको नहीं देना चाहिये। ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर शौचादि नित्यकर्म करके पवित्र हो नदीके तटपर जाकर तीर्थके आवाहनपूर्वक स्नान करे। स्नानके समय आठ बार मूलमन्त्रकी आवृत्ति करे। तत्पश्चात् बारह बार मन्त्र पढ़कर अपने ऊपर जल छिड़के। इस प्रकार स्नान, सध्या, तर्पण आदि करके गङ्गाजी-के तटपर, पर्वतपर अथवा वनमें भूमिग्रहणपूर्वक अकारादि स्वरवर्णोंका उच्चारण करके पूरक, 'क' से लेकर 'म' तक के पाँचवर्गके अक्षरोंसे कुम्भक तथा 'य' से लेकर अवशेष वर्णोंका उच्चारण करके रेचक करना चाहिये। इस प्रकार प्राणायाम करके भूत-शुद्धिसे लेकर पीठन्यासतकके सब कार्य करे। फिर पूर्वोक्त रीतिसे कपीश्वर हनुमान्‌जीका ध्यान और पूजन करके उनके आगे बैठकर साधक प्रतिदिन आदरपूर्वक दस हजार मन्त्र-जप करे। सातवें दिन विशेषरूपसे पूजन करे। उस दिन मन्त्रसाधक एकाग्रचित्तसे दिन-रात जप करे। रातके तीन पहर बीत जानेपर चौथे पहरमें महान् भय दिखा-कर कपीश्वर पवननन्दन हनुमान्‌जी अवश्य साधकके सम्मुख पधारते है और उसे अभीष्ट वर देते हैं। साधक अपनी रुचिके अनुसार विद्या, धन, राज्य अथवा विजय तत्काल प्राप्त कर लेता है। यह सर्वथा सत्य है, इसमे संशयका लेश भी नहीं है। वह इहलोकमें सम्पूर्ण कामनाओका उपभोग करके अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

सद्योजात (ओ) सहित दो वायु (य् य् =यो यो) 'हनूमन्त'का उच्चारण करे। फिर 'फल' के अन्तमें 'फ' तथा नेत्र (इ) युक्त क्रिया (ल) एवं कामिका (त) का उच्चारण करे। तत्पश्चात् 'धगधगित' बोलकर 'आयुराप' पदका उच्चारण करे, तदनन्तर लोहित (प) तथा 'रुडाह' का उच्चारण करना चाहिये। (पूरा मन्त्र इस प्रकार है— 'ॐ यो यो हनूमन्त फलफलित धगधगित आयुराप परुडाह') यह पचीस अक्षरका मन्त्र है। इसके भी ऋषि आदि पूर्वोक्त ही है। 'प्लीहा' रोग दूर करनेवाले वानरराज हनुमान्‌जी इसके देवता कहे गये हैं। 'प्लीहा' रोगसे युक्त पेटपर पानका पत्ता रखे, उसके ऊपर आठ पर्व लपेटा हुआ वस्त्र रखकर उसे ढक दे। तत्पश्चात् श्रेष्ठ साधक हनुमान्‌जीका स्मरण करके उस वस्त्रके ऊपर एक बॉसका टुकड़ा डाल दे। इसके बाद बेरके वृक्षकी लकड़ीसे बनी हुई छड़ी लेकर उसे जंगली पत्थरसे प्रकट हुई आगमें उक्त मन्त्रसे सात बार तपावे, फिर उस छड़ीसे पेटपर रखे हुए बाँसके टुकड़ेपर सात बार प्रहार करे। इससे मनुष्योंका प्लीहा रोग अवश्य ही नष्ट हो जाता है।

'ॐ नमो भगवते आञ्जनेयाय [illegible] [illegible] त्रोटय बन्धमोक्षं कुरु कुरु स्वाहा।'

यह एक मन्त्र है। इसके ईश्वर ऋषि [illegible] छन्द, शृङ्खलामोचक पवनपुत्र श्रीमान् हनुमान् देवता [illegible] बीज और स्वाहा शक्ति है। बन्धनसे छूटनेके लिये इसका विनियोग किया जाता है। छः दीर्घ स्वर तथा रेफयुक्त बीजमन्त्रोंसे षडङ्ग न्यास करे (यथा—ह्रां हृदयाय नमः ह्रीं शिरसे स्वाहा इत्यादि)।

ध्यान

वामे शैलं वैरिभिदं विशुद्धं टङ्कमन्यतः।
दधानं स्वर्णवर्णं च ध्यायेत कुण्डलिनं हरिम्॥

(७४। १६९-१७०)

'बायें हाथमें वैरियोंको विदीर्ण करनेवाला पर्वत तथा दायें हाथमें विशुद्ध टंक धारण करनेवाले, सुवर्णके समान कान्तिमान्, कुण्डल-मण्डित वानरराज हनूमानजीका ध्यान करे।'

इस प्रकार ध्यान करके एक लाख मन्त्रका जप तथा आम्र-पल्लवसे दशांश हवन करे। विद्वानोंने इसके पूजन आदिकी विधि पूर्ववत् बतायी है। महान् कारागारमें पड़ा हुआ मनुष्य दस हजार जप करे। इससे वह कारागारसे [illegible] हो [illegible] सुखका भागी होता है।

अब मैं बन्धनसे छुड़ानेवाले शुभ हनुमत् मन्त्रका वर्णन करता हूँ। अष्टदल कमलके भीतर षट्कोण बनावे। उसकी कर्णिकामें साध्य पुरुषका नाम लिखे। [illegible] कोणोंमें 'ॐ आञ्जनेयाय' का उल्लेख करे। आठों दलोंमें 'ॐ [illegible]' लिखे। गोरोचन और कुङ्कुमसे यह उत्तम मन्त्र लिखकर मस्तकपर धारण करके बन्धनसे छूटनेके लिये उक्त मन्त्रका दस हजार जप करे। इस मन्त्रको प्रतिदिन [illegible] लिखकर मन्त्रज्ञ पुरुष दाहिने हाथसे मिटावे। बारह बार लिखने और मिटानेसे मन्त्राराधक महान् कारागारसे छुटकारा पा जाता है। गगन (ह) नेत्र (इ) युक्त [illegible] ([illegible]) अर्थात् '[illegible]' पदके पश्चात् दो बार 'मर्कट' शब्द बोलकर [illegible] ([illegible]) सहित तोय (व) अर्थात् 'वा' का उच्चारण करे। [illegible] पद बोले। फिर 'परिमुञ्चति मुञ्चति शृङ्खलिकाम्' का उच्चारण करे। (पूरा मन्त्र इस प्रकार है—ह्रौं मर्कट मर्कट [illegible] परिमुञ्चति मुञ्चति शृङ्खलिकाम्) यह चौबीस [illegible] मन्त्र है। विद्वान् पुरुष इस मन्त्रको दायें हाथसे [illegible] लिखकर मिटा दे और एक सौ आठ बार [illegible]। ऐसा करनेपर कैदमें पड़ा हुआ मनुष्य तीन [illegible] छूट [illegible] है। इसमें संशय नहीं है। इसके ऋषि आदि [illegible] हैं।

हवन आदि कार्य भी पूर्ववत् करे । इसका एक लाख जप और शुभ द्रव्योंसे दशांश हवन करना चाहिये । मन्त्रसाधक पुरुष इस प्रकार कपीश्वर वायुपुत्र हनुमानजीकी आराधना करता है, वह उन सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है, जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ हैं । अञ्जनीनन्दन हनुमान्जीकी उपासना की जाय तो वे धन, धान्य, पुत्र, पौत्र, अतुल सौभाग्य, यश, मेधा, विद्या, प्रभा, राज्य तथा विवादमें विजय प्रदान करते हैं । सिद्धि तथा विजय देते हैं ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—अब मैं हनुमान्जीके लिये रहस्यसहित दीपदान-विधिका वर्णन करता हूँ । जिसको जान लेनेमात्रसे साधक सिद्ध हो जाता है । दीपपात्रका प्रमाण, तैलका मान, द्रव्य-प्रमाण तथा तन्तु (बत्ती) का मान—इन सबका क्रमशः वर्णन किया जायगा । स्थानभेद-मन्त्र, पृथक्-पृथक् दीपदान-मन्त्र आदिका भी वर्णन होगा । पुष्पसे वासित तैलके द्वारा दिया हुआ दीपक सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला माना गया है । किसी पथिकके आनेपर उसकी सेवाके लिये तिलका तैल अर्पण किया जाय तो वह लक्ष्मी-प्राप्तिका कारण होता है । सरसोंका तेल रोग नाश करनेवाला है, ऐसा कर्मकुशल विद्वानोंका कथन है । गेहूँ, तिल, उड़द, मूँग और चावल—ये पञ्चधान्य कहे गये हैं । हनुमान्जीके लिये सदा इनका दीप देना चाहिये । पञ्चधान्यका आटा बहुत सुन्दर होता है । वह दीपदानमें सदा सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला कहा गया है ।

सन्धिमें तीन प्रकारके आटेका दीप देना उचित है, लक्ष्मीप्राप्तिके लिये कस्तूरीका दीप विहित है, कन्याप्राप्तिके लिये इलायची, लौंग, कपूर और कस्तूरीका दीपक बताया गया है । सख्य सम्पादन करनेके लिये भी इन्हीं वस्तुओंका दीप देना चाहिये । इन सब वस्तुओंके न मिलनेपर पञ्चधान्य श्रेष्ठ माना गया है । आठ मुट्ठीका एक किञ्चित् होता है, आठ किञ्चित्का एक पुष्कल होता है । चार पुष्कलका एक आढक बताया गया है, चार आढकका द्रोण और चार द्रोणकी खारी होती है । चार खारीको प्रस्थ कहते हैं अथवा यहाँ दूसरे प्रकारसे मान बताया जाता है । दो पलका एक प्रसृत होता है, दो प्रसृतका कुडव माना गया है, चार कुडवका एक प्रस्थ और चार प्रस्थका आढक होता है । चार आढकका द्रोण और चार द्रोणकी खारी होती है । इन क्रमसे षट्कर्मोपयोगी पात्रमें ये मान समझने चाहिये । पाँच, सात तथा नौ—ये क्रमशः दीपकके प्रमाण हैं, सुगन्धित तेलसे जलनेवाले दीपकका कोई मान नहीं है । उसका मान अपनी रुचिके अनुसार ही माना गया है । तैलोंके नित्य पात्रमें केवल बत्तीका विशेष नियम होता है । सोमवारको धान्य लेकर उसे जलमें डुबोकर रक्खे । फिर प्रमाणके अनुसार कुमारी कन्याके हाथसे उसको पिसाना चाहिये । पीसे हुएको शुद्ध पात्रमें रखकर नदीके जलसे उसकी पिण्डी बनानी चाहिये । उसीसे शुद्ध एवं एकाग्रचित्त होकर दीपपात्र बनावे । जिस समय दीपक जलाया जाता हो, हनुमत्कवचका पाठ करे । मङ्गलवारको शुद्ध भूमिपर रखकर दीपदान करे । कूट बीज ग्यारह बताये गये हैं, अतः उतने ही तन्तु ग्राह्य हैं । पात्रके लिये कोई नियम नहीं है । मार्गमें जो दीपक जलाये जाते हैं, उनकी बत्तीमें इक्कीस तन्तु होने चाहिये । हनुमान्जीके दीपदानमें लाल सूत ग्राह्य बताया गया है । कूटकी जितनी संख्या हो उतना ही पल तेल दीपकमें डालना चाहिये । गुरुकार्यमें ग्यारह पलसे लाभ होता है । नित्यकर्ममें पाँच पल तेल आवश्यक बताया गया है । अथवा अपने मनकी जैसी रुचि हो उतना ही तेलका मान रक्खे । नित्य-नैमित्तिक कर्मोंके अवसरपर हनुमान्जीकी प्रतिमाके समीप अथवा शिवमन्दिरमें दीपदान कराना चाहिये ।

हनुमान्जीके दीपदानमें जो कोई विशेष बात है उसे मैं यहाँ बता रहा हूँ । देव-प्रतिमाके आगे, प्रमोदके अवसरपर, ग्रहोंके निमित्त, भूतोंके निमित्त, गृहोंमें और चौराहोंपर—इन छः स्थलोंमें दीप दिलाना चाहिये । स्फटिकमय शिवलिङ्गके समीप, शालग्राम-शिलाके निकट हनुमान्जीके लिये किया हुआ दीपदान नाना प्रकारके भोग और लक्ष्मीकी प्राप्तिका हेतु कहा गया है । विघ्न तथा महान् संकटोंका नाश करनेके लिये गणेशजीके निकट हनुमान्जीके उद्देश्यसे दीपदान करे । भयंकर विष तथा व्याधिका भय उपस्थित होनेपर हनुमद्विग्रहके समीप दीपदानका विधान है । व्याधिनाशके लिये तथा दुष्ट ग्रहोंकी दृष्टिसे रक्षाके लिये चौराहेपर दीप देना चाहिये । बन्धनसे छूटनेके लिये राजद्वारपर अथवा कारागारके समीप दीप देना उचित है । सम्पूर्ण कार्योंकी सिद्धिके लिये पीपल और बड़के मूलभागमें दीप देना चाहिये । भय-निवारण और विवाद-शान्तिके लिये, गृहसंकट और युद्ध-संकटकी निवृत्तिके लिये और विष, व्याधि और ज्वरको उतारनेके लिये, भूतग्रहका निवारण करने, कृत्यासे छुटकारा पाने तथा कटे हुएको जोड़नेके लिये, दुर्गम एवं भारी वनमें, व्याघ्र, हाथी तथा सम्पूर्ण जीवोंके आक्रमणसे बचनेके लिये,

सदाके लिये बन्धनसे छूटनेके लिये, पथिकके आगमनमें, आने-जानेके मार्गमें तथा राजद्वारपर हनुमान्‌जीके लिये दीपदान आवश्यक बताया गया है। ग्यारह, इक्कीस और पिण्ड—तीन प्रकारका मण्डलमान होता है। पाँच, सात अथवा नौ—इन्हें लघुमान कहा गया है। दीप-दानके समय दूध, दही, माखन अथवा गोबरसे हनुमान्‌जीकी प्रतिमा बनानेका विधान किया गया है। सिंहके समान पराक्रमी वीरवर हनुमान्‌जीको दक्षिणाभिमुख करके उनके पैरको रीछपर रक्खा हुआ दिखावे। उनका मस्तक किरीटसे सुशोभित होना चाहिये। सुन्दर वस्त्र, पीठ अथवा दीवारपर हनुमान्‌जीकी प्रतिमा अङ्कित करनी चाहिये। कूटादिमें तथा नित्य दीपमें द्वादशाक्षर मन्त्रका प्रयोग करना चाहिये।

गोबरसे लिपी हुई भूमिपर एकाग्रचित्त हो षट्कोण अङ्कित करे। उसके बाह्यभागमें अष्टदल कमल बनावे तथा उसके भी बाह्यभागमें भूपुर-रेखा खींचे। उस कमलमें दीपक रक्खे। शैव अथवा वैष्णव पीठपर अञ्जनीनन्दन हनुमान्‌जीकी पूजा करे। छः कोणोंके अन्तरालमें 'ह्रौं ह्स्फ्रें ख्फ्रें ह्स्रौं ह्स्ख्फ्रें ह्सौं,' इन छः कूटोंका उल्लेख करे। छहों कोणोंमें बीजसहित छः अङ्गोंको लिखे। मध्यमें सौम्यका उल्लेख करे और उसीमें पवननन्दन हनुमान्‌जीकी पूजा करके छः कोणोंमें छः अङ्गों तथा छः नामोंकी पहले बताये अनुसार पूजा करे। कमलके अष्टदलोंमें क्रमशः इन वानरोंकी पूजा करनी चाहिये। सुग्रीवाय नमः, अङ्गदाय नमः, सुषेणाय नमः, नलाय नमः, नीलाय नमः, जाम्बवते नमः, प्रहस्ताय नमः, सुवेषाय नमः। तत्पश्चात् षडङ्ग देवताओंका पूजन करे। अञ्जनापुत्राय नमः, रुद्रमूर्तये नमः, वायुसुताय नमः, जानकीजीवनाय नमः, रामदूताय नमः, ब्रह्मास्त्रनिवारणाय नमः। पञ्चोपचार (गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य) से इन सबका पूजन करके कुश और जल हाथमें लेकर देश-कालके उच्चारणपूर्वक दीपदानका संकल्प करे। उसके बाद दीप-मन्त्र बोले। श्रेष्ठ साधक उत्तराभिमुख हो उस मन्त्रको कूट संख्याके बराबर (छः बार) जप कर हाथमें लिये हुए जलको भूमिपर गिरा दे। तदनन्तर दोनों हाथ जोड़कर यथाशक्ति मन्त्रजप करे। फिर इस प्रकार कहे—'हनुमान्‌जी! उत्तराभिमुख अर्पित किये हुए इस श्रेष्ठ दीपकसे प्रसन्न होकर आप ऐसी कृपा करें, जिससे मेरे सारे मनोरथ पूर्ण हो जायँ।'

इस प्रकार ये तेरह द्रव्य उपयुक्त होते हैं—गोबर, मिट्टी, मषी, आलता, सिंदूर, लाल चन्दन, श्वेत चन्दन, मधु, कस्तूरी, दही, दूध, मक्खन और [illegible] प्रकारके बताये गये हैं—[illegible] और [illegible]। [illegible] द्रव्यकी पुनः प्राप्तिके लिये दीपदान करना हो तो [illegible] गोबरका उपयोग आवश्यक माना गया है। [illegible] गये हुए पथिकके आगमन, [illegible] रक्षा, चोर आदिके भयसे [illegible] आदि [illegible] उत्तम कहा गया है। यह भी भूमिपर [illegible] लेना चाहिये। जब [illegible] आकाशमेंसे ही उसे रोक लेना चाहिये।

मिट्टी चार प्रकारकी [illegible] लाल और काली। उनमें [illegible] आदि ग्राह्य हैं; अन्य [illegible] सुपरिचित हैं। विद्वान् पुरुष [illegible] बनाकर उसके मध्यभागमें भैंसके गोबरसे [illegible] बनावे। मन्त्रोपासक एकाग्रचित्त हो बीज और [illegible] से उनकी पूँछ अङ्कित करे। [illegible] से तिलक करे। [illegible] के समान [illegible] वृक्षकी गोंदसे बना हो, निवेदन करे। [illegible] तेलका दीपक जलाकर अर्पण करे। इसके बाद ([illegible]) श्रेष्ठ साधक दही भातका नैवेद्य निवेदन करे। [illegible] तीन बार शेष (आ) सहित विष (म) का उच्चारण करे। ऐसा करनेपर खोयी हुई भैंसों, गौओं तथा [illegible] प्राप्ति हो जाती है। चोर आदि दुष्ट [illegible] भय प्राप्त होनेपर 'ताल' मे चार दरवाजेका सुन्दर [illegible]। पूर्वके द्वारपर हाथीकी मूर्ति बिठावे और [illegible] की, पश्चिम द्वारपर सर्प और उत्तर [illegible]। इसी प्रकार क्रमसे पूर्वादि द्वारोंपर [illegible] मुद्गर अङ्कित करके मध्य भागमें भैंसके गोबरसे मूर्ति [illegible]। उसके हाथमें डमरू धारण करावे और [illegible] करे कि मूर्तिमें ऐसा भाव प्रकट हो मानो [illegible] देख रही है। उसे दूधसे नहलाकर [illegible] लगावे। चमेलीके फूलोंसे उसकी पूजा [illegible] दे। [illegible] (ह), दीपिका (ऊ) और इन्दु ([illegible]) 'हूं' और शस्त्र (फट्) [illegible]। इस प्रकार सात दिन करके मनुष्य [illegible] हो जाता है। उक्त दोनों प्रयोगोंका [illegible]

* [illegible]

आदरपूर्वक करना चाहिये। शत्रुसेनासे भय प्राप्त होनेपर गोबरसे मण्डल बनाकर उसके भीतर थोड़ा घुसा हुआ ताड़का वृक्ष अङ्कित करे। उसपरसे लटकती हुई हनुमान्‌जीकी प्रतिमा गोबरसे बनावे। उनके बायें हाथमें तालका अग्रभाग और दाहिनेमें ज्ञान-मुद्रा हो। ताड़की जड़से एक हाथ दूर अपनी दिशामें एक चौकोर मण्डल बनावे। उसके मध्यभागमें मूर्ति अङ्कित करे। उसका मुख दक्षिणकी ओर हो, वह हनुमन्मूर्ति बहुत सुन्दर बनी हो, हृदयमें अञ्जलि बाँधे बैठी हो। जलसे उसको स्नान कराकर यथासम्भव गन्ध आदि उपचार अर्पण करे। फिर घृतमिश्रित खिचड़ीका नैवेद्य निवेदन करे और उसके आगे 'किलि-किलि' का जप बताया गया है। प्रतिदिन ऐसा ही करे। ऐसा करनेपर पथिकोंका शीघ्र समागम होता है।

जो प्रतिदिन विधिपूर्वक हनुमान्‌जीको दीप देता है, उसके लिये तीनों लोकोंमें कुछ भी असाध्य नहीं है। जिसके हृदयमें दुष्टता भरी हो, जिसकी बुद्धि दुष्टताका ही चिन्तन करती हो, जो शिष्य होकर भी विनयशून्य और चुगला हो, ऐसे मनुष्यको कभी इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। कृतघ्नको कदापि इस रहस्यका उपदेश न दे। जिसके शील-स्वभावकी भलीभाँति परीक्षा कर ली गयी हो, उस साधु पुरुषको ही इसका उपदेश देना चाहिये।

अब मैं तत्त्वज्ञान प्रदान करनेवाले दूसरे मन्त्रका वर्णन करूँगा। 'तार (ॐ) नमो हनुमते' इतना कहकर तीन बार जाठर (म) का उच्चारण करे। फिर 'दनक्षोभम्' कह-कहकर दो बार 'संहर' यह क्रियापद बोले। उसके बाद 'आत्म तत्त्वम्' बोलकर दो बार 'प्रकाशय' का उच्चारण करे। उसके बाद वर्म (हुं), अस्त्र (फट्) और वह्निजाया (स्वाहा) का उच्चारण करे। (पूरा मन्त्र यों है—ॐ नमो हनुमते मम मदनक्षोभं संहर संहर आत्मतत्त्वं प्रकाशय प्रकाशय हुं फट् स्वाहा) यह साढ़े छत्तीस अक्षरोंका मन्त्र है। इसके वसिष्ठ मुनि, अनुष्टुप् छन्द और हनुमान् देवता हैं। सात सात, छः, चार, आठ तथा चार मन्त्राक्षरोंद्वारा षडङ्ग-न्यास करके कपीश्वर हनुमान्‌जीका इस प्रकार ध्यान करे—

जानुस्थवामबाहुं च ज्ञानमुद्रापरं हृदि।
अध्यात्मचिन्तमासीनं कदलीवनमध्यगम्॥
बालार्ककोटिप्रतिमं ध्यायेज्ज्ञानप्रदं हरिम्।
(७५। ९५-९६)

'हनुमान्‌जीका बायाँ हाथ घुटनेपर रक्खा हुआ है। दाहिना हाथ ज्ञानमुद्रामें स्थित हो हृदयसे लगा है। वे अध्यात्मतत्त्वका चिन्तन करते हुए कदलीवनमें बैठे हुए हैं। उनकी कान्ति उदयकालके कोटि-कोटि सूर्योंके समान है। ऐसे ज्ञानदाता श्रीहनुमान्‌जीका ध्यान करना चाहिये।'

इस प्रकार ध्यान करके एक लाख जप करे और घृत-सहित तिलकी दशांश आहुति दे, फिर पूर्वोक्त पीठपर पूर्ववत् प्रभु श्रीहनुमान्‌जीका पूजन करे। यह मन्त्र-जप किये जानेपर निश्चय ही कामविकारका नाश करता है और साधक कपीश्वर हनुमान्‌जीके प्रसादसे तत्त्वज्ञान प्राप्त कर लेता है।

अब मैं भूत भगानेवाले दूसरे उत्कृष्ट मन्त्रका वर्णन करता हूँ। 'ॐ श्रीं महाञ्जनाय पवनपुत्रावेशयावेशय ॐ श्रीहनुमते फट्।' यह पचीस अक्षरका मन्त्र है। इस मन्त्रके ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द, हनुमान् देवता, श्रीं बीज और फट् शक्ति कही गयी है। छः दीर्घस्वरोंसे युक्त बीजद्वारा षडङ्ग-न्यास करे।

ध्यान

आञ्जनेयं पाटलास्यं स्वर्णाद्रिसमविग्रहम्।
पारिजातद्रुमूलस्थं चिन्तयेत् साधकोत्तमः॥
(७५। १०२)

'जिसका मुख लाल और शरीर सुवर्णगिरिके सदृश कान्तिमान् है, जो पारिजात (कल्पवृक्ष) के नीचे उसके

मूलभागमें बैठे हुए हैं, उन अञ्जनीनन्दन हनुमान्‌जीका श्रेष्ठ साधक चिन्तन करे।'

इस प्रकार ध्यान करके एक लाख जप करे और मधु, घी एवं शक्कर मिलाये हुए तिलसे दशांश होम करे। विद्वान् पुरुष पूर्वोक्त पीठपर पूर्वोक्त रीतिसे पूजन करे। मन्त्रोपासक इस मन्त्रद्वारा यदि ग्रहग्रस्त पुरुषको झाड़ दे तो वह ग्रह चीखता-चिल्लाता हुआ उस पुरुषको छोड़कर भाग जाता है। इन मन्त्रोंको सदा गुप्त रखना चाहिये। जहाँ-तहाँ सबके सामने इन्हें प्रकाशमें नहीं लाना चाहिये। खूब जाँचे-बूझे हुए शिष्यको अथवा अपने पुत्रको ही इनका उपदेश करना चाहिये। (ना० पूर्व० ७४-७५)

भगवान् श्रीकृष्ण-सम्बन्धी मन्त्रोंकी अनुष्ठानविधि तथा विविध प्रयोग

सनत्कुमारजीने कहा—नारद! अब मैं भोग और मोक्षरूप फल देनेवाले श्रीकृष्ण-मन्त्रोंका वर्णन करूँगा; काम (क्लीं) के विभक्त्यन्त कृष्ण और गोविन्द पद (कृष्णाय गोविन्दाय) फिर 'गोपीजनवल्लभाय स्वाहा' (क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा) यह अठारह अक्षरोंका मन्त्र है, जिसकी अधिष्ठात्री देवी दुर्गाजी हैं। इस मन्त्रके नारद ऋषि, गायत्री छन्द, परमात्मा श्रीकृष्ण देवता, क्लीं बीज और स्वाहा शक्ति है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंकी सिद्धिके लिये इसका विनियोग किया जाता है। श्रेष्ठ साधक ऋषिका सिरमें, छन्दका मुखमें, देवताका हृदयमें, बीजका गुह्यमें और शक्तिका चरणोंमें न्यास करे*। मन्त्रके चार, चार, चार, चार और दो अक्षरोंसे पञ्चाङ्ग-न्यास† करके फिर तत्त्व-न्यास करे। तत्पश्चात् हृदयकमलमें क्रमशः द्वादशकला-व्याप्त सूर्यमण्डल, षोडशकलाव्याप्त चन्द्रमण्डल तथा दशकलाव्याप्त अग्निमण्डलका न्यास करे। साथ ही मन्त्रके पदोंमें स्थित आठ, आठ और दो अक्षरोंका भी क्रमशः उन मण्डलोंके साथ योग करके उन सबका हृदयमें न्यास करे (यथा—क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय अं द्वादशकलाव्याप्त-सूर्यमण्डलात्मने नमः, गोपीजनवल्लभाय ॐ षोडशकलाव्याप्त-चन्द्रमण्डलात्मने नमः स्वाहा, मं दशकलाव्याप्तवह्निमण्डलात्मने नमः—हृत्पुण्डरीके)। तत्पश्चात् आकाशादिके स्थलोंमें अर्थात् मूर्द्धा, मुख, हृदय, गुह्य तथा चरणोंमें क्रमशः वासुदेव आदिका न्यास करे। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा नारायण—ये वासुदेव आदि कहलाते हैं। ये क्रमशः परमेष्ठी आदिसे युक्त हैं। परमेष्ठि पुरुष, शौच, विश्व, निवृत्ति तथा सर्व—ये परमेष्ठ्यादि कहे गये हैं। परमेष्ठि पुरुष आदि क्रमशः श्वेतवर्ण, अनिलवर्ण, अग्निवर्ण, अम्बुवर्ण तथा भूमिवर्णके हैं। इन सबका पूर्ववत् न्यास करे (यथा—श्वेतवर्णपरमेष्ठिपुरुषात्मने वासुदेवाय नमः मूर्ध्नि। अनिलवर्णशौचात्मने संकर्षणाय नमः मुखे। अग्निवर्णविश्वात्मने प्रद्युम्नाय नमः हृदये। अम्बुवर्णनिवृत्त्यात्मनेऽनिरुद्धाय नमः गुह्ये। भूमिवर्णसर्वात्मने नारायणाय नमः पादयोः।) ॐ क्षौं कोपतत्त्वात्मने नृसिंहाय नमः इति सर्वाङ्गे। इस प्रकार सम्पूर्ण अङ्गमें न्यास करे। यह तत्त्व-न्यास कहा गया है। इसी प्रकार श्रेष्ठ साधकोंको यह जानना चाहिये कि वासुदेव आदि नामोंके विभक्त्यन्त रूप ही न्यासमें ग्राह्य हैं। तदनन्तर सनातन पुरुष मूलमन्त्रको चार बार पढ़कर पूरक, छः बार पढ़कर कुम्भक और दो बार पढ़कर रेचक करते हुए प्राणायाम सम्पन्न करे। कुछ आचार्योंका यहाँ यह कथन है कि प्राणायामके पश्चात् पीठन्यास करके दूसरे न्यासोंका अनुष्ठान करे। आगे बतायी जानेवाली विधिके अनुसार दशतत्त्वादि न्यास करके विद्वान् पुरुष मूर्तिपञ्जर नामक न्यास करे। फिर [illegible] बुद्धिमान् साधक सर्वाङ्गमें व्यापक न्यास करके प्रारम्भ [illegible] मन्त्रको तीन बार दोनों हाथोंकी पाँचों अङ्गुलियोंमें [illegible] (विन्यस्त) करे। उसके बाद तीन बार पञ्चाङ्ग-न्यास करे। तदनन्तर मूलमन्त्रको पढ़कर सिरसे लेकर पैरतक [illegible] न्यास करे। फिर केवल प्रणवद्वारा एक बार व्यापक न्यास करके मन्त्रन्यास करे। इसके बाद [illegible] गुह्य और चरणद्वय—इनमें [illegible] अन्तमें 'नमः' लगाकर न्यास करे ([illegible]

---

* नारदर्षये नमः शिरसि, गायत्रीछन्दसे नमः मुखे, श्रीकृष्ण-परमात्मदेवतायै नमः हृदि, क्लींबीजाय नमः गुह्ये, स्वाहाशक्तये नमः पादयोः—यह ऋष्यादि न्यास है।

† पञ्चाङ्ग-न्यास इस प्रकार है—क्लीं कृष्णाय हृदयाय नमः। गोविन्दाय शिरसे स्वाहा। 'गोपीजन' शिखायै वषट्, 'वल्लभाय' कवचाय हुं, 'स्वाहा' अस्त्राय फट्।

कृष्णाय नमः मूर्ध्नि । गोविन्दाय नमः हृदये । गोपीजनवल्लभाय नमः गुह्ये । स्वाहा नमः पादयोः)। पुनः मूर्ति आदि न्यास करके पूर्वोक्त पञ्चाङ्ग-न्यास करे ।

अब मैं सब न्यासोंमें उत्तमोत्तम परमगुह्य न्यासका वर्णन करता हूँ, जिसके विधान मात्रसे मनुष्य जीवन्मुक्त तथा अणिमा आदि आठों सिद्धियोंका अधीश्वर हो जाता है, जिसकी आराधनासे मन्त्रोपासक श्रीकृष्णका सांनिध्य प्राप्त कर लेता है। प्रणवादि व्याहृतियोंसे सम्पुटित मन्त्रका और मन्त्रसे सम्पुटित प्रणवादिका तथा गायत्रीसे सम्पुटित मन्त्रका और मन्त्रसे सम्पुटित गायत्रीका मातृकास्थलमें न्यास करे। मातृका-सम्पुटित मूलका और मूलसे सम्पुटित मातृका वर्णोंका श्रेष्ठ साधक क्रमशः न्यास करे। विद्वान् पुरुष पहले मातृका वर्णका नियतस्थलमें न्यास कर ले। उसके बाद पूर्वोक्त न्यास करने चाहिये। इस तरह उपर्युक्त छः प्रकारके न्यास करे। यह षोढान्यास कहा गया है। इस श्रेष्ठ न्यासके अनुष्ठानसे साधक साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णके समान हो जाता है। न्याससे सम्पुटित पुरुषको देखकर सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर और देवता भी उसे नमस्कार करते हैं। फिर इस भूतलपर मनुष्योंके लिये तो कहना ही क्या है? तत्पश्चात् 'ॐ नमः सुदर्शनाय अस्त्राय फट्' इस मन्त्रसे दिग्बन्ध करे। इसके बाद अपने हृदयमें सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाले इष्टदेवका इस प्रकार ध्यान करे—

उत्फुल्लकुसुमव्रातनम्रशाखैर्वरद्रुमैः ।
सस्मेरमञ्जरीवृन्दवल्लरीवेष्टितैः शुभैः ॥
गलत्परागधूलीभिः सुरभीकृतदिङ्मुखैः ।
स्मरेच्छिशिरितं वृन्दावनं मन्त्री समाहितः ॥
उन्मीलन्नवकञ्जालिविगलन्मधुसञ्चयैः ।
लुब्धान्तःकरणैर्गुञ्जद्द्विरेफपटलैः शुभम् ॥
मरालपरभृत्कीरकपोतनिकरैर्मुहुः ।
मुखरीकृतमानृत्यन्मायूरकुलमञ्जुलम् ॥
कालिन्द्या लोलकल्लोलविप्रुषैर्मन्दवाहिभिः ।
उन्निद्राम्बुरुहव्रातरजोभिर्धूसरैः शिवैः ॥
प्रदीपितस्मरं गोष्ठसुन्दरीमृदुवाससाम् ।
विलोलनपरैः संसेवितं वा तैर्निरन्तरम् ॥
स्मरेत्तदन्ते गीर्वाणभूरुहं सुमनोहरम् ।
तदधः स्वर्णवेदीं च रत्नपीठमनुत्तमम् ॥
रत्नकुट्टिमपीठेऽस्मिन्नरुणं कमलं स्मरेत् ।
अष्टपत्रं च तन्मध्ये मुकुन्दं संस्मरेत्स्थितम् ॥
फुल्लेन्दीवरकान्तं च केकिबर्हावतंसकम् ।
पीतांशुकं चन्द्रमुखं सरसीरुहनेत्रकम् ॥
कौस्तुभोद्भासिताङ्गं च श्रीवत्साङ्कं सुभूषितम् ।
व्रजस्त्रीनेत्रकमलाभ्यर्चितं गोगणावृतम् ॥
गोपवृन्दयुतं वंशीं वादयन्तं स्मरेत्सुधीः ।

(४०—५०)

'मन्त्रोपासक एकाग्रचित्त होकर श्रीवृन्दावनका चिन्तन करे, जो शुभ एवं सुन्दर हरे-भरे वृक्षोंसे परिपूर्ण तथा शीतल है। उन वृक्षोंकी शाखाएँ खिले हुए कुसुम समूहोंके भारसे झुकी हुई हैं। उनपर प्रफुल्ल मञ्जरियोंसे युक्त विकसित लतावल्लरियाँ फैली हुई हैं। वे वृक्ष झड़ते हुए पुष्पपरागरूप धूलिकणोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको सुवासित करते रहते हैं, वहाँ खिलते हुए नूतन कमल-वनोंसे निकलती मधुधाराओंके संचयसे लुभाये अन्तःकरणवाले भ्रमरोंका समुदाय मनोहर गुञ्जार करता रहता है। हंस, कोकिल, शुक और पारावत आदि पक्षियोंका समूह बारंबार कलरव करते हुए वृन्दावन-को कोलाहलपूर्ण किये रहता है। चारों ओर नृत्य करते मोरोंके झुंडसे वह वन अत्यन्त मनोरम जान पड़ता है। कालिन्दीकी चञ्चल लहरोंसे नीर-बिन्दुओंको लेकर मन्द-मन्द गतिसे प्रवाहित होनेवाली शीतल सुखद वायु प्रफुल्ल पङ्कजोंके पराग-पुञ्जसे धूसर हो रही है। व्रजसुन्दरियोंके मृदुल वसनाञ्चलोंको वह चञ्चल किये देती है और इस प्रकार मनमें प्रेमोन्मादका उद्दीपन करती हुई वह मन्द वायु वृन्दावनका निरन्तर सेवन करती रहती है। उस वनके भीतर एक अत्यन्त मनोहर कल्पवृक्षका चिन्तन करे, जिसके नीचे सुवर्णमयी वेदीपर परम उत्तम रत्नमय पीठ शोभा पाता है। वहाँकी प्राङ्गण-भूमि भी रत्नोंसे आबद्ध है। उस रत्नमय पीठपर लाल रंगके अष्टदलकमलकी भावना करे, जिसके मध्यभागमें श्रीमुकुन्द विराजमान हैं। उनके स्वरूपका इस प्रकार ध्यान करे—उनकी अङ्ग-कान्ति विकसित नील कमलके समान श्याम है। वे मोर-पङ्खका मुकुट पहने हुए हैं, कटिभागमें पीताम्बर शोभा पा रहा है, उनका मुख चन्द्रमाको लज्जित कर रहा है, नेत्र खिले हुए कमलोंकी शोभा छीने लेते हैं, उनका सम्पूर्ण अङ्ग कौस्तुभमणिकी प्रभासे उद्भासित हो रहा है, वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न सुशोभित है। वे परम सुन्दर दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हैं, व्रजसुन्दरियाँ मानो अपने नेत्रकमलोंके उपहारसे उनकी पूजा करती हैं, गौएँ उन्हें सब ओरसे घेरकर खड़ी हैं,

गोपवृन्द उनके साथ हैं और वे वंशी बजा रहे हैं। विद्वान् पुरुप भगवान्का चिन्तन करे।'

बुद्धिमान् साधक इस तरह ध्यान करके पहले बीस हजार मन्त्र-जप करे। फिर एकाग्र-चित्त हो अरुण कमल-कुसुमोंकी दशांश आहुति दे। तत्पश्चात् समाहित होकर मन्त्र-सिद्धिके लिये पाँच लाख जप करे। लाल कमलोंकी आहुति देकर साधक सम्पूर्ण सिद्धियोंका स्वामी हो जाता है। पूर्वोक्त वैष्णव पीठपर मूलमन्त्रसे मूर्ति-निर्माण करके उसमें गोपीजनमनोहर श्यामसुन्दर श्रीकृष्णका आवाहन और पूजन करे। मुखमें वेणुकी पूजा करके, वक्षःस्थलमें वनमाला, कौस्तुभ तथा श्रीवत्सका पूजन करे। इसके बाद पुष्पाञ्जलि चढावे। तत्पश्चात् बुद्धिमान् उपासक देवेश्वर श्रीकृष्णका चिन्तन करते हुए उनके दक्षिण भागमें श्वेतचन्दन-चर्चित श्वेत तुलसीको तथा वाम भागमें रक्तचन्दन-चर्चित लाल तुलसीको समर्पित करे। इसके बाद दो अश्वमार (कनेर) पुष्पोंसे उनके हृदय और मस्तककी पूजा करे। तदनन्तर शीर्षभागमें विधिपूर्वक दो कमलपुष्प समर्पित करे। तत्पश्चात् उनके सम्पूर्ण अङ्गोंमें दो तुलसीदल, दो कमलपुष्प और दो अश्वमार-(श्वेत-रक्त कनेर) कुसुम चढाकर फिर सब प्रकारके पुष्प अर्पण करे। गोपाल श्रीकृष्णके दक्षिण भागमें अविनाशी निर्मल चैतन्यस्वरूप भगवान् वासुदेवका तथा वाम भागमें रजोगुणस्वरूपा नित्य अनुरक्ता रुक्मिणी देवीका पूजन करे। इस प्रकार गोपालका भलीभाँति पूजन करके आवरण देवताओंकी पूजा करे। दाम, सुदाम, वसुदाम और किंकिणी—इनका क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तरमें पूजन करे। दाम आदि शब्दोंके आदिमें प्रणव और अन्तमें 'ङे' विभक्ति तथा नमः पद जोड़ने चाहिये। (यथा—ॐ दामाय नमः इत्यादि, यदि दाम शब्द नान्त हो तो 'दाम्ने नमः' यह रूप होगा) अग्नि, नैर्ऋत्य, वायव्य तथा ईशान कोणोंमें क्रमशः हृदय, सिर, शिखा तथा कवचका पूजन करके सम्पूर्ण दिशाओंमें अस्त्रोंका पूजन करे। फिर आठों दलोंमें रुक्मिणी आदि पटरानियोंकी पूजा करे। रुक्मिणी, सत्यभामा, नाग्निजिती, सुविन्दा, मित्रविन्दा, लक्ष्मणा, जाम्बवती तथा सुशीला*। ये सब-की-सब सुन्दर, सुरम्य एवं विचित्र वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हैं। तदनन्तर अष्टदलोंके अग्रभागमें वसुदेव-देवकी, नन्द-यशोदा, बलभद्र-सुभद्रा तथा गोप और गोपियोंका पूजन करे। इन सबके मन बुद्धि तथा [illegible] दोनों पिता वसुदेव और नन्द [illegible] वर्णके हैं। माताएँ (देवकी और यशोदा) [illegible] दिव्य वस्त्र, दिव्यानुराग तथा दिव्य [illegible] हैं। दोनोंने चरु तथा खीर [illegible] देवकीका रंग लाल है और यशोदा [illegible] सुन्दर हार और मणिमय कुण्डलों [illegible] है। बलरामजी शङ्ख तथा चन्द्रमाके समान [illegible] वे मूसल और हल धारण करते हैं। उनके [illegible] रंगका वस्त्र सुशोभित होता है। [illegible] शोभा पाता है। भगवान्की जो [illegible] सुभद्रा है। उसके आभूषण भी भद्र (मङ्गल) [illegible] एक हाथमें वर और दूसरेमें अभय है। [illegible] करती हैं। गोपगणोंके हाथमें वेणु, वीणा, [illegible] शङ्ख और सींग आदि हैं। गोपियोंके [illegible] प्रकारके खाद्य पदार्थ हैं। इन सबके [illegible] आदि कल्पवृक्षोंकी पूजा करे। मन्दार, सन्तान, [illegible] कल्पवृक्ष और हरिचन्दन (ये ही उन वृक्षोंके नाम [illegible])। उक्त पाँच वृक्षोंसे चारकी चारों दिशाओंमें और [illegible] मध्यभागमें पूजा करके उनके बाह्यभागमें इन्द्र आदि [illegible] और उनके वज्र आदि अस्त्रोंकी पूजा करे। [illegible] श्रीकृष्णके आठ नामोंद्वारा उनका [illegible] करना चाहिये। वे नाम इस प्रकार हैं—कृष्ण, [illegible] नारायण, यदुश्रेष्ठ, वार्ष्णेय, धर्मपालक तथा [illegible] भूभारहारी। विद्वान् पुरुषोंको सम्पूर्ण [illegible] लिये तथा संसार-सागरसे पार होनेके लिये इन [illegible] असुरारि श्रीकृष्णकी आराधना करनी चाहिये।

अब मैं भगवान् श्रीकृष्णके त्रिकाल पूजनका [illegible] हूँ, जो समस्त मनोरथोंकी सिद्धि प्रदान करनेवाला है।

प्रातःकालिक ध्यान

श्रीमदुद्यानसंवीतहैमभूरत्नमण्डपे [illegible]
लसत्कल्पद्रुमाध [illegible]
सुत्रामरत्नसंकाशं गुडस्निग्धा[illegible] [illegible]
चलत्कनककुण्डलोल्लसितचारुगण्ड[illegible]
सुघोणधरमञ्जुलस्मित[illegible] [illegible]।
स्फुरद्विमलरत्नयुक्कनकसूत्रनद्धं [illegible]
सुवर्णपरिनिष्पिदनं सुकरसौन्दर्ये [illegible]।

* अन्यत्र सुशीला और सुविन्दाके स्थानमें भद्रा और कालिन्दी—ये दो नाम उपलब्ध होते हैं।

मधुद्रुमश्रीरतले धेनुवृन्दा
सुपुष्टाङ्गमव्यापदाकल्पदीप्तम् ।
कटीरन्ध्रके धारयद्दान्तयुग्मं
विनद्धं क्वणत्किङ्किणीजालदाम्ना ॥
हसन्तं हसद्बन्धुजीवप्रसून-
प्रभापाणिपादाम्बुजोदारकान्त्या ।
दधानं करे दक्षिणे पायसान्नं
सुहैयंगवीनं तथा वामहस्ते ॥
लसद्गोपगोपीगवां वृन्दमध्ये
स्थितं वासवाद्यैः सुरैरर्चिताङ्घ्रिम् ।
महीभारभूतामरारातियूथां-
स्ततः पूतनादीन् निहन्तुं प्रवृत्तम् ॥
(ना० पूर्व० ८० । ७५—८०)

'एक सुन्दर उद्यानसे घिरी हुई सुवर्णमयी भूमिपर रत्नमय मण्डप बना हुआ है। वहाँ शोभायमान कल्पवृक्षके नीचे स्थित रत्ननिर्मित कमलयुक्त पीठपर एक सुन्दर शिशु विराजमान है, जिसकी अङ्गकान्ति इन्द्रनीलमणिके समान श्याम है। उसके काले-काले केश चिकने और घुँघराले हैं। उसके मनोहर कपोल हिलते हुए स्वर्णमय कुण्डलोंसे अत्यन्त सुन्दर लगते हैं, उसकी नासिका बड़ी सुघड़ है। उस सुन्दर बालकके मुखारविन्दपर मन्द मुसकानकी अद्भुत छटा छा रही है। वह सोनेके तारमें गुँथा और सोनेसे ही मँढ़ा हुआ सुन्दर बघनखा धारण करता है, जिसमें परम उज्ज्वल चमकीले रत्न जड़े हुए हैं। गोधूलिसे धूसर वक्षःस्थलपर धारण किये हुए स्वर्णमय आभूषणोंसे उसकी दीप्ति बहुत बढ़ी हुई है। उसका एक-एक अङ्ग अत्यन्त पुष्ट है। उसकी दोनों पिण्डलियोंका अन्तिम भाग अत्यन्त मनोहर है। उसने अपने कटिभागमें घुँघरूदार करधनीकी लड़ बाँध रखी है, जिससे मधुर झनकार होती रहती है। खिले हुए बन्धुजीव (दुपहरिया) के फूलकी अरुण प्रभासे युक्त करारविन्द और चरणारविन्दोंकी उदार कान्तिसे सुशोभित वह शिशु मन्द-मन्द हँस रहा है। उसने दाहिने हाथमें खीर और बायें हाथमें तुरंतका निकाला हुआ माखन ले रक्खा है। ग्वालों, गोपसुन्दरियों और गौओंकी मण्डलीमें स्थित होकर वह बड़ी शोभा पा रहा है। इन्द्र आदि देवता उसके चरणोंकी समाराधना करते हैं। वह पृथ्वीके भारभूत दैत्यसमुदाय पूतना आदिका संहार करनेमें लगा है।'

इस प्रकार ध्यान करके पूर्ववत् एकाग्रचित्त हो भगवान्‌का पूजन करे। दही और गुड़का नैवेद्य लगाकर एक हजार मन्त्र-जप करे। इसी प्रकार मध्याह्नकालमें नारदादि मुनिगणों और देवताओंसे पूजित विशिष्ट रूपधारी भगवान् श्रीकृष्णका पूजन करे।

मध्याह्नकालिक ध्यान

लसद्गोपगोपीगवां वृन्दमध्य-
स्थितं सान्द्रमेघप्रभं सुन्दराङ्गम् ।
शिखण्डिच्छदापीडमब्जायताक्षं
लसच्चिल्लिकं पूर्णचन्द्राननं च ॥
चलत्कुण्डलोल्लासिगण्डस्थलश्री-
भरं सुन्दरं मन्दहासं सुनासम् ।
सुकार्तस्वराभाम्बरं दिव्यभूषं
क्वणत्किङ्किणीजालमत्तानुलेपम् ॥
वेणुं धमन्तं स्वकरे दधानं
सव्ये दरं यष्टिमुदारवेषम् ।
दक्षे तथैवेप्सितदानदक्षं
ध्यात्वार्चयेन्नन्दजमिन्दिराप्त्यै ॥
(ना० पूर्व० ८० । ८१—८५)

'जो सुन्दर गोप, गोपाङ्गनाओं तथा गौओंके मध्य विराजमान हैं, स्निग्ध मेघके समान जिनकी श्याम छवि है, जिनका एक-एक अङ्ग बहुत सुन्दर है, जो मयूरपिच्छका मुकुट धारण करते हैं, जिनके नेत्र कमलदलके समान विशाल हैं, भौंहोंका मध्यभाग शोभासम्पन्न है और मुख पूर्ण चन्द्रमाको भी लज्जित कर रहा है, हिलते और झलमलाते हुए कमनीय कुण्डलोंसे उल्लसित कपोलोंपर जो शोभाकी राशि धारण करते हैं, जिनकी नासिका मनोहर है, जो मन्द-मन्द हँसते हुए बड़े सुन्दर जान पड़ते हैं; जिनका वस्त्र तपाये हुए सुवर्णके समान कान्तिमान् और आभूषण दिव्य हैं, कटिभागमें धारण की हुई जिनकी क्षुद्र घण्टिकाओंसे मधुर झनकार हो रहा है, जिन्होंने दिव्य अङ्गराग धारण किया है, जो अपने हाथमें लेकर मुरली बजा रहे हैं, जिनके बायें हाथमें शङ्ख और दाहिने हाथमें छड़ी है, जिनकी वेष-भूषासे उदारता टपक रही है, जो मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करनेमें दक्ष हैं उन नन्दनन्दन श्रीकृष्णका ध्यान करके लक्ष्मीप्राप्तिके लिये उनका पूजन करे।'

इस प्रकार ध्यान करके श्रेष्ठ वैष्णव पुरुष पूर्ववत् भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा करे। पूआ, खीर तथा अन्य भक्ष्य भोज्य पदार्थोंका नैवेद्य अर्पण करे। घृतयुक्त खीरकी एक सौ आठ आहुति देकर प्रत्येक दिशामें उसीसे बलि अर्पण करे। तत्पश्चात् आचमन करे। इसके बाद एक हजार आठ बार उत्तम मन्त्र-जप करे। जो उत्तम वैष्णव मध्याह्नकालमें इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णका पूजन करता है, [illegible] करते हैं और वह मनुष्य सब लोगोंका प्रिय होता है। [illegible] आयु, लक्ष्मी तथा सुन्दर कान्तिसे सुशोभित [illegible] साथ अभ्युदयको प्राप्त होता है। [illegible] सा काल है, इस विषयमें मतभेद है। [illegible] पूजाको सायंकालमें करने योग्य बताते हैं और [illegible]। दशाक्षर मन्त्रसे पूजा करनी हो तो [illegible]। [illegible] करनी हो तो सायंकालमें करे। [illegible] कहते हैं कि दोनों प्रकारके मन्त्रोंसे दोनों ही [illegible] करनी चाहिये।

सायंकालिक ध्यान

सायंकालमें भगवान् श्रीकृष्ण [illegible] सुन्दर भवनके भीतर विराजमान हैं, जो [illegible] उद्यानसे सुशोभित है। वह श्रेष्ठ भवन [illegible] गृहोंसे अलंकृत है। उसके चारों ओर निर्मल [illegible] सरोवर सुशोभित हैं। हंस, सारस आदि पक्षियोंसे [illegible] कमल और उत्पल आदि पुष्प उन सरोवरोंकी शोभा [illegible] हैं। उक्त भवनमें एक शोभासम्पन्न मणिमय [illegible] है, जो उदय-कालीन सूर्यदेवके समान अरुण प्रकाशसे प्रकाशित हो [illegible] है। उस मण्डपके भीतर सुवर्णमय [illegible] सिंहासन है, जिसपर त्रिभुवनमोहन श्रीकृष्ण बैठे हैं। [illegible]

आत्मतत्त्वका निर्णय [illegible]

[illegible] है । भगवान् श्यामसुन्दर उन मुनियों-को [illegible] दर्शन करा रहे हैं । उनकी [illegible] नीलकमलके समान श्याम है । दोनों [illegible] कमलदल, समान विशाल हैं । सिरपर स्निग्ध [illegible] संयुक्त सुन्दर किरीट सुशोभित है । गलेमें वनमाला शोभा पा रही है । प्रसन्न मुखारविन्द मनको मोहे लेता है । [illegible] कुण्डल झलमला रहे हैं । वक्षःस्थल-में श्रीवत्सका चिह्न है । वहाँ कौस्तुभमणि अपनी प्रभा बिखेर रही है । उनका स्वरूप अत्यन्त मनोहर है । उनका वक्षःस्थल [illegible] अनुलेपसे सुनहली प्रभा धारण करता है । वे रेशमी पीताम्बर पहने हुए हैं, विभिन्न अङ्गोंमें हार, बाजूबंद, कड़े और करधनी आदि आभूषण उन्हें अलङ्कृत कर रहे हैं । उन्होंने पृथ्वीका भारी भार उतार दिया । उनका हृदय परमानन्दसे परिपूर्ण है तथा उनके चारों हाथ शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे सुशोभित हैं* ।

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक भगवान्‌की पूजा करे । हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र और अस्त्र इनके द्वारा प्रथम आवरण बनता है । रुक्मिणी आदि पटरानियोंद्वारा द्वितीय आवरण सम्पन्न होता है । तृतीय आवरणमें नारद, पर्वत, विष्णु, निशठ, उद्धव, दारुक, विष्वक्सेन तथा सात्यकि हैं, इनका आठ दिशाओंमें और विनतानन्दन गरुड़का भगवान्‌के सम्मुख पूजन करे । चौथे आवरणमें लोकपालोंके साथ और पाँचवें आवरणमें वज्र आदि आयुधोंके साथ उत्तम वैष्णव भगवत्पूजनका कार्य सम्पन्न करे । इस प्रकार विधिपूर्वक पूजा करके खीरका नैवेद्य अर्पण करे । फिर जलमें सॉइमिश्रित दूधकी भावना करके उस जलद्वारा तर्पण करे । उसके बाद मन्त्रोपासक पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करते हुए मूलमन्त्रका एक सौ आठ बार जप करे । तीनों कालकी पूजाओंमें अथवा केवल मध्याह्नकालमें ही होम करे । आसनसे लेकर विशेषार्घ्यपर्यन्त सम्पूर्ण पूजा पूरी करके विद्वान् पुरुष भगवान्‌की स्तुति और नमस्कार करे । फिर भगवान्‌को आत्मसमर्पण करके उनका विसर्जन करनेके पश्चात् अपने हृदयकमलमें उनकी स्थापना करे और तन्मय होकर पुनः आत्मस्वरूप भगवान्‌की पूजा करे । जो प्रतिदिन इस प्रकार सायंकालमें भगवान् वासुदेवकी पूजा करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको पाकर अन्तमें परम गतिको प्राप्त होता है ।

रात्रिकालिक ध्यान

रात्रौ चेन्मदनाक्रान्तचेतसं नन्दनन्दनम् ।
यजेद्रासपरिश्रान्तं गोपीमण्डलमध्यगम् ॥
विकसत्कुन्दकह्लारमल्लिकाकुसुमोद्भवैः ।
रजोभिर्धूसरैर्मन्दमारुतैः शिशिरीकृते ॥
उन्मीलन्नवकैरवालिविगलन्माध्वीकलुब्धान्तर-
भ्राम्यन्मत्तमिलिन्दगीतललिते सन्मल्लिकोज्जृम्भिते
पीयूषांशुकरैर्विशालितहरिद्प्रान्ते सरोहांप
कालिन्दीपुलिनाङ्गणे स्मितमुखं वेणुं रणन्तं मुहु
अन्तस्तोयलसन्नवाम्बुदघटासंघट्टकारत्विषं
चञ्चच्चिल्लिकमम्बुजायतदृशं बिम्बाधरं सुन्दरं
मायूरच्छदबद्धमौलिविलसद्धम्मिल्लमालं घन
दीप्यत्कुण्डलरत्नरश्मिविलसद्गण्डद्वयोद्भासितम्
काञ्चीनूपुरहारकङ्कणलसत्केयूरभूषान्वितं
गोपीनां द्वितयान्तरे सुललितं वन्यप्रसूनस्रज
अन्योन्यं विनिबद्धगोपदयितादोर्वल्लिवीतं ...
द्रासक्रीडनलोलुपं मनसिजाक्रान्तं मुकुन्दं भजे
विविधश्रुतिभिन्नमनोज्ञतरस्वरसप्तकमूर्छनतानगणैः
भ्रमनाणममुमिरदारमणिस्फुटमण्डनशिञ्जितचारुतनुम्
इतरेतरबद्धकरप्रमदागणकल्पितरासविहारविधौ
मणिशङ्कुगमप्यमुना वपुषा बहुधा विहितस्वकदिव्यतनु
(ना० पूर्व० ८० । १०७—१)

'रात्रिमें पूजन करना हो तो भगवान्‌का ध्यान इस

* मायया द्वारवत्यां तु निर्माणानोपशोभिते ।
अष्ट[illegible]भवनैर्भास्वरमण्डिते ॥
[illegible]कल्पपलशालिनि ।
[illegible]भवनोत्तमे ॥
[illegible]मणिमण्डपे ।
[illegible]श्रीरायमोहनम् ॥
[illegible]परिपूर्णनानाभ्यवनितायै ।
[illegible] धाम [illegible] परमक्षरम् ॥
[illegible]पद्मपत्रायतेक्षणम् ।
[illegible]वनमालिनम् ॥
[illegible]स्फुरन्मकरकुण्डलम् ।
[illegible] सुमनोहरम् ॥
[illegible]पीताम्बरवाससम् ।
[illegible] ॥
[illegible] सुशोभितम् ।
[illegible] ॥
(ना० पूर्व० ८० । १२—१९)

करे— भगवान् नन्दनन्दनने अपने हृदयमें प्रेमको आश्रय दे रक्खा है। वे रासक्रीडामें संलग्न हो मानो थक गये हैं और गोपाङ्गनाओंकी मण्डलीके मध्यभागमें विराज रहे हैं। उस समय यमुनाजीका पुलिन-प्राङ्गण अमृतमय किरणोंवाले चन्द्रदेवकी धवल ज्योत्स्नासे उद्भासित हो रहा है। वहाँका प्रान्त अत्यन्त हरा-भरा एवं भगवत्प्रेमका उद्दीपक हो रहा है। खिले हुए कुन्द, कह्लार और मल्लिका आदि कुसुमोंके पराग-पुञ्जसे धूसरित मन्द-मन्द वायु प्रवाहित होकर उस पुलिन-प्राङ्गणको शीतल बना रही है। खिले हुए नूतन कुमुदोंके मादक मकरन्दका पान करके उन्मत्त हृदयवाले भ्रमर इधर-उधर भ्रमण करते हुए मधुर गुञ्जारव फैला रहे हैं; जिससे वह वनप्रान्त अत्यन्त मनोहर प्रतीत होता है। वहाँ सब ओर सुन्दर चमेलीकी सुगन्ध फैल रही है। ऐसे मनोहर कालिन्दी-तटपर श्यामसुन्दर मुखसे मन्द-मन्द मुसकानकी प्रभा बिखेरते हुए बारबार मुरली बजा रहे हैं। उनकी अङ्गकान्ति भीतर जलसे भरे हुए नूतन मेघोंकी श्याम घटासे टक्कर ले रही है। भौंहोंका मध्यभाग कुछ चञ्चल हो उठा है। दोनों नेत्र विकसित कमलदलके समान विशाल हैं। लाल-लाल अधर बिम्बफलको लजा रहे हैं। भगवान्‌की वह झाँकी बड़ी ही सुन्दर है। माथेपर मोरपंखका मुकुट है, जिससे उनके बँधे हुए केशोंकी चोटी बड़ी सुहावनी लग रही है। उनके दोनों कपोल हिलते हुए चमकीले कुण्डलोंमें जटित रत्नोंकी किरणोंसे उद्भासित हो रहे हैं और उन कपोलोंसे श्यामसुन्दर-का सौन्दर्य और भी बढ़ गया है। वे करधनी, नूपुर, हार, कंगन और सुन्दर भुजबंद आदि आभूषणोंसे विभूषित हो प्रत्येक दो गोपीके बीचमें खड़े होकर अपनी मनमोहिनी झाँकी दिखा रहे हैं। गलेमें वन्यपुष्पोंका हार सुशोभित है। एक दूसरीसे अपनी बाहोंको मिलाये हुए नृत्य करनेवाली गोपाङ्गनाओंकी बाहु-वल्लरियोंसे वे घिरे हुए हैं। इस प्रकार परम सुन्दर शोभामयी दिव्य रासलीलाके लिये सदा उत्सुक रहनेवाले प्रेमके आश्रयभूत भगवान् मुकुन्दका भजन करे। वे नाना प्रकारकी श्रुतियोंके भेदसे युक्त परम मनोहर सात स्वरोंकी मूर्च्छना और तानोंके साथ-साथ गोपाङ्गनाओंसे [illegible] मणिमय स्वच्छ आभूषणोंसे [illegible] मनोहर अङ्ग ही झनझनकर हो उठा [illegible] बाँधकर मण्डलाकार खड़ी हुई गोपाङ्गनाओं [illegible] रासलीलामण्डलकी रचनामें यद्यपि भगवान् [illegible] मणिमय मेरुकी भाँति स्थित हैं तथापि [illegible] अपने बहुत-से दिव्य स्वरूप प्रकट कर [illegible] ([illegible] स्वरूपोंसे प्रत्येक दो गोपीके बीचमें [illegible])।'

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक [illegible] हृदयादि अङ्गोंद्वारा प्रथम आवरणकी [illegible] सम्पत्तिकी इच्छा रखनेवाला [illegible] आदि सोलह जोड़ोंकी गन्धपुष्पोंद्वारा [illegible] नामके आदिमें क्रमशः सोलह स्वरोंको [illegible] तदनन्तर इन्द्र आदि दिक्पालों और [illegible] पूजा करे। एक मोटा, गोल और चिकना [illegible] ऊँचाई एक बित्तेकी हो, पृथ्वीमें गाड़ दे [illegible] दबाकर एक दूसरेसे हाथ मिलाकर उसके चारों ओर [illegible] देना रासगोष्ठी कही गयी है। इस प्रकार [illegible] और मिश्री मिलाकर भगवान्‌को नैवेद्य [illegible] सोलह प्याले लेकर उनमें मिश्री मिलाये हुए [illegible] पूर्वोक्त जोड़ोंको क्रमशः अर्पण करे। [illegible]

१. सगीतमें किसी सप्तकके बाईस भागोंमेंसे एक भाग अथवा किसी स्वरके एक अंशको श्रुति कहते हैं। स्वरका आरम्भ और अन्त इसीसे होता है। षड्जमें चार, ऋषभमें तीन, गान्धारमें दो, मध्यम और पञ्चममें चार-चार, धैवतमें तीन और निषादमें दो श्रुतियाँ होती हैं।

२. सगीतमें एक ग्रामसे दूसरे ग्रामतक जानेमें सातों स्वरोंका जो आरोहावरोह होता है, [illegible] सातवें भागको ही मूर्च्छना [illegible] समय गलेको कँपकँपाने [illegible] मूर्च्छना [illegible] स्वरके सूक्ष्म विरामका नाम मूर्च्छना है। [illegible] इक्कीस मूर्च्छनाएँ होती हैं।

१. मूर्च्छना आदिद्वारा [illegible] हैं। सगीत दामोदरके [illegible] ४९ तानोंसे भी ८३०० कूट तान [illegible] कूट तानोंकी संख्या ५०४० [illegible]

* केशव-कीर्ति, [illegible] विष्णु-[illegible], मधुसूदन [illegible] मेधा, हृषीकेश-[illegible] संकर्षण-[illegible], [illegible] और [illegible] हैं। इनके आदिमें क्रमशः [illegible] जो जो [illegible] इन सोलह स्वरोंके [illegible] चाहिये। यथा—[illegible] कान्त्यै नमः' इत्यादि। इन्हीं [illegible]

करके मन्त्रोपासक एक हजार मन्त्र-जप करे। तत्पश्चात् स्तुति, नमस्कार और प्रार्थना करके पूजनका शेष कार्य भी समाप्त करे। इस प्रकार जो उपासक भगवान् श्रीकृष्णका पूजन करता है, वह समृद्धिका आश्रय होता है तथा अणिमा आदि आठ सिद्धियोंका स्वामी हो जाता है; इसमें संशय नहीं है। इहलोकमें वह विविध भोगोंका उपभोग करके अन्तमें भगवान् विष्णुके धाममें जाता है। इस तरह पूजा आदिके द्वारा मन्त्रके सिद्ध होनेपर अभीष्ट मनोरथोंकी सिद्धि करे। अथवा विद्वान् पुरुष अट्ठाईस बार मन्त्र-जपपूर्वक तीनों समय भगवान्‌की पूजा करे। उस-उस कालमें कथित परिवारों (आवरण देवताओं) का भी तर्पण करे। प्रातःकाल गुड़-मिश्रित दहीसे, मध्याह्नकालमे मक्खनयुक्त दूधसे और सायंकालमें मिश्री मिलाये हुए दूधसे श्रेष्ठ वैष्णव तर्पण करे। मन्त्रके अन्तमें तर्पणीय देवताओंके नामोंमे द्वितीया विभक्ति जोड़कर अन्तमें 'तर्पयामि' पदका प्रयोग करे। तत्पश्चात् शेष पूजा पूरी करे। भगवत्प्रसादस्वरूप जलसे अपने आपको सींचकर उस जलको पीये। उससे तृप्त होकर देवताका विसर्जन करके तन्मय हो मन्त्र-जप करे।

अब सकामभावसे किये जानेवाले तर्पणोंमें आवश्यक द्रव्य बताये जाते हैं। शास्त्रोक्त विधानसम्बन्धी उन वस्तुओका आश्रय लेकर उनमेंसे किसी एकका भी सेवन करे। खीर, दही वड़ा, घी, गुड़ मिला हुआ अन्न, खिचड़ी, दूध, दही, केला, मोचा, चिंचा (इमली), चीनी, पूआ, मोदक, खील (लाजा), चावल, मक्खन—ये सोलह द्रव्य ब्रह्मा आदिके द्वारा तर्पणोपयोगी बताये गये हैं। जो प्रातःकाल अन्तमें लाजा और पहले चावल तथा मिश्री अर्पित करके चौहत्तर बार तर्पण करता है, साथ ही भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंका ध्यान करता रहता है, वह मन्त्रोपासक अभीष्ट वस्तुको प्राप्त कर लेता है। धारोष्ण तथा पके हुए दूधसे—मक्खन, दही, दूध और आमके रस, घी, मोटी चीनी, मधु और कीलल (शर्बत) इन नौ द्रव्योंमेंसे प्रत्येकके द्वारा बारह बार तर्पण करे। इस प्रकार जो श्रेष्ठ वैष्णव एक सौ आठ बार तर्पण करता है, वह पूर्वोक्त फलका भागी होता है। बहुत कहनेसे क्या लाभ ? वह तर्पण सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला है। मिश्री मिलाये हुए धारोष्ण दुग्धकी भावनासे जलद्वारा श्रीकृष्णका तर्पण करके गाँवको जानेवाला साधक वहाँ अपने पारिवारिक लोगोंके साथ धन, वस्त्र एवं भोज्य पदार्थ प्राप्त कर लेता है। मन्त्रोपासक जितनी बार तर्पण करे, उतनी ही संख्यामे जप करे। वह तर्पणसे ही सम्पूर्ण कार्य सिद्ध कर लेता है।

अब मैं साधकोंके हितके लिये सकाम होमका वर्णन करता हूँ। उत्तम श्रीकी अभिलाषा रखनेवाला मन्त्रोपासक बेलके फूलोंसे होम करे। घृत और अन्नकी वृद्धिके लिये घृतयुक्त अन्नकी आहुति दे।

अब मैं एक उत्तम रहस्यका वर्णन करता हूँ, जो मनुष्योंको मोक्ष प्रदान करनेवाला है। साधक अपने हृदय-कमलमे भगवान् देवकीनन्दनका इस प्रकार ध्यान करे—

श्रीमत्कुन्देन्दुगौरं सरसिजनयनं शङ्खचक्रे गदाब्जे
बिभ्राणं हस्तपद्मैर्नवनलिनलसन्मालया दीप्यमानम्।
वन्दे वेद्यं मुनीन्द्रैः कणिकमणिलसद्दिव्यभूषाभिरामं
दिव्याङ्गालेपभासं सकलभयहरं पीतवस्त्रं मुरारिम्॥
(ना० पूर्व० ८०।१५०)

'जो कुन्द और चन्द्रमाके समान सुन्दर गौरवर्णके हैं, जिनके नेत्र कमलकी शोभाको लज्जित कर रहे हैं, जो अपने करारविन्दोंमे शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण करते हैं, नूतन कमलोंकी सुन्दर मालासे सुशोभित हैं, छोटी-छोटी मणियोसे जटित सुन्दर दिव्य आभूषण जिनके अनुपम सौन्दर्य-माधुर्यको और बढा रहे हैं तथा जिनके श्रीअङ्गोंमें दिव्य अङ्गराग शोभा पा रहा है, उन मुनीन्द्रवेद्य, सकल भयहारी, पीताम्बरधारी मुरारिकी मै वन्दना करता हूँ।'

इस प्रकार ध्यान करके आदिपुरुष श्रीकृष्णको अपने

विकसित हृदयकमलके आसनपर विराजमान देखे और यह भावना करे कि वे घनीभूत मेघोंकी श्याम घटा तथा अद्भुत सुवर्णकी-सी नील एवं पीत प्रभा धारण करते हैं। इस चिन्तनके साथ साधक बारह लाख मन्त्रका जप करे। दो प्रकारके मन्त्रोंमेंसे एकका, जो प्रणवसम्पुटित है, जप करना चाहिये। फिर दूधवाले वृक्षोंकी समिधाओंसे बारह हजार आहुति दे अथवा मधु-घृत एवं मिश्रीमिश्रित खीरसे होम करे। इस प्रकार मन्त्रोपासक अपने हृदयकमलमें लोकेश्वरोंके भी आराध्यदेव भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करते हुए प्रतिदिन तीन हजार मन्त्रका जप करे। फिर सायंकालके लिये बतायी हुई विधिसे भलीभाँति पूजा करके साधक भगवत्-चिन्तनमें संलग्न हो पुनः पूर्वोक्त रीतिसे हवन करे। जो विद्वान् इस तरह गोपालनन्दन श्रीकृष्णका नित्य भजन करता है, वह भवसागरसे पार हो परमपदको प्राप्त होता है।

पहले दो त्रिभुज अङ्कित करे; जिसमें एक ऊर्ध्वमुख और दूसरा अधोमुख हो। एकके ऊपर दूसरा त्रिकोण होना चाहिये। इस प्रकार छः कोण हो जायँगे। कोण बाह्य भागमें होंगे। उनके बीचमें जो षट्कोण चक्र होगा, उसे अग्निपुर कहते हैं। उस अग्निपुरकी कर्णिका (मध्यभाग) में 'क्लीं' यह बीजमन्त्र अङ्कित करे। उसके साथ साध्य पुरुष एवं कार्यका भी उल्लेख करे। बहिर्गत कोणोंके विवरमें षडक्षर मन्त्र लिखे। छः कोणोंके ऊपर एक गोलाकार रेखा खींचकर उसके बाह्यभागमें दस-दल कमल अङ्कित करे। उन दस दलोंके केसरोंमें एक-एकमें दो-दो अक्षरके क्रमसे

'ह्रीं' और 'श्रीं' पूर्वक अष्टादशाक्षर मन्त्रके [illegible] करे। तदनन्तर दलोंके [illegible] एक-एक अक्षरको लिखे। [illegible] दस-दल चक्रको भूपुरसे (चौकोर [illegible]) [illegible] भूपुरमें अस्त्रोंके स्थानमें कामबीज (क्लीं) [illegible] करे। इस यन्त्रको सोनेके पत्रपर [illegible] गोरोचनद्वारा लिखकर इसकी गुटिका बना ले। [illegible] गोपाल-यन्त्र है। यह सम्पूर्ण [illegible] गया है। जो रक्षा, यश, पुत्र, पृथ्वी [illegible] और सौभाग्यकी इच्छा रखनेवाले हों [illegible] निरन्तर यह यन्त्र धारण करना चाहिये। [illegible] करके मन्त्रजपपूर्वक इसे धारण करना उचित है। [illegible] लोकोंको वशमें करनेके लिये एकमात्र [illegible] उपाय है। इसकी महती शक्ति [illegible] है।
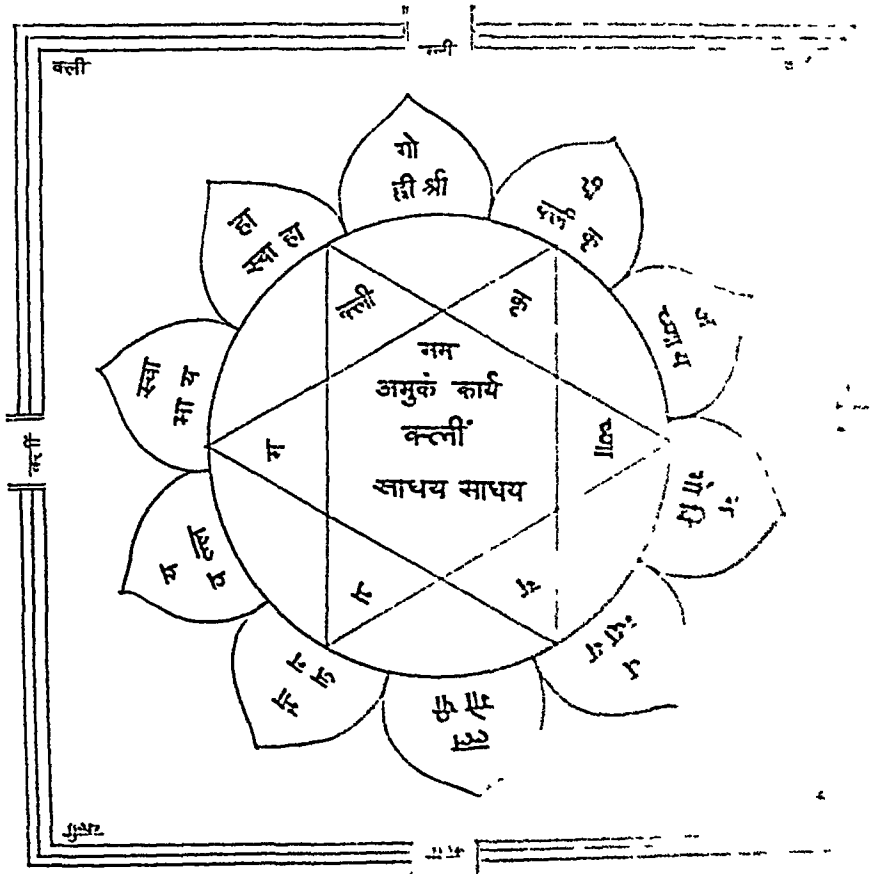
स्मर (क्लीं), त्रिविक्रम (ऋ) युक्त चक्री (क्) अर्थात् कृ, इसके पश्चात् ष्णाय तथा हृत् (नमः)—यह (क्लीं कृष्णाय नमः) षडक्षर-मन्त्र कहा गया है जो सम्पूर्ण मनोरथोंको सिद्ध करनेवाला है। वाराह (ह्), अग्नि (र्), शान्ति (ई) और इन्दु (ं-अनुस्वार)—ये सब मिलकर मायाबीज 'ह्रीं' कहे गये हैं। मृत्यु (श्), वह्नि (र्), गोविन्द (ई) और चन्द्र (ं-अनुस्वार) से युक्त हो तो श्री-बीज—'श्रीं' कहा गया है। इन दोनों बीजोंसे युक्त होनेपर अष्टादशाक्षर मन्त्र (ह्रीं श्रीं क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजन-वल्लभाय स्वाहा) बीस अक्षरोंका हो जाता है। शालग्राममें, मणिमें, यन्त्रमें, मण्डलमे तथा प्रतिमाओंमें ही सदा श्रीहरिकी पूजा करनी चाहिये; केवल भूमिपर नहीं। जो इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी आराधना करता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है। बीस अक्षरवाले मन्त्रके ब्रह्मा ऋषि हैं। छन्दका नाम गायत्री है। श्रीकृष्ण देवता हैं; क्लीं बीज है। और विद्वान् पुरुषोंने स्वाहाको शक्ति कहा है। तीन, तीन, चार, चार, चार तथा दो मन्त्राक्षरोंद्वारा षडङ्ग-न्यास करे। मूलमन्त्रसे व्यापक न्यास करके मन्त्रसे सम्पुटित मातृका वर्णोंका उनके नियत स्थानोंमें एकाग्रतापूर्वक न्यास करे। फिर दस तत्त्वोंका न्यास करके मूलमन्त्रद्वारा व्यापक करे। तदनन्तर देवभावकी सिद्धि (इष्टदेवके साथ तन्मयता) प्राप्त करनेके लिये मन्त्र-न्यास करे। मूर्तिपञ्जर नामक न्यास पूर्ववत् करे। फिर षडङ्ग-न्यास करके हृदयकमलमें भगवान् श्रीकृष्णका इस प्रकार ध्यान करे।

द्वारकापुरीमे सहस्रों सूर्योंके समान प्रकाशमान सुन्दर महलों और बहुतेरे कल्पवृक्षोंसे घिरा हुआ एक मणिमय मण्डप है, जिसके खंभे अग्निके समान जाज्वल्यमान रत्नोंके बने हुए हैं। उसके द्वार, तोरण और दीवारें सभी प्रकाशमान मणियोंद्वारा निर्मित हैं। वहाँ खिले हुए सुन्दर पुष्पोंके चित्रोंसे सुशोभित चँदोवोंमें मोतियोंकी झालरें लटक रही हैं। मण्डपका मध्यभाग अनेक प्रकारके रत्नोंसे निर्मित हुआ है, जो पद्मराग मणिमयी भूमिसे सुशोभित है। वहाँ एक कल्पवृक्ष है, जिससे निरन्तर दिव्य रत्नोंकी धारावाहिक वृष्टि होती रहती है। उस वृक्षके नीचे प्रज्वलित रत्नमय प्रदीपोंकी पङ्क्तियोंसे चारों ओर दिव्य प्रकाश छाया रहता है। वहीं मणिमय सिंहासनपर दिव्य कमलका आसन है, जो उदयकालीन सूर्यके समान अरुण प्रभासे उद्भासित हो रहा है। उस आसनपर विराजमान भगवान् श्रीकृष्णका चिन्तन करे, जो तपाये हुए सुवर्णके समान तेजस्वी हैं। उनका प्रकाश समानरूपसे सदा उदित रहनेवाले कोटि-कोटि चन्द्रमा, सूर्य और विद्युत्‌के समान है। वे सर्वाङ्गसुन्दर, सौम्य तथा समस्त आभूषणोंसे विभूषित हैं। उनके श्रीअङ्गोंपर पीताम्बर शोभा पाता है। उनके चार हाथ क्रमशः शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे सुशोभित हैं। वे पल्लवकी छविको छीन लेनेवाले अपने बायें चरणारविन्दके अग्रभागसे कलशका स्पर्श कर रहे हैं; जिससे बिना किसी आघातके रत्नमयी धाराएँ उछलकर गिर रही हैं। उनके दाहिने भागमें रुक्मिणी और वामभागमें सत्यभामा खड़ी होकर अपने हाथोंमें दिव्य कलश ले उनसे निकलती हुई रत्नराशिमयी जलधाराओंसे उन (भगवान् श्रीकृष्ण) के मस्तकपर अभिषेक कर रही हैं। नाग्नजिती (सत्या) और सुनन्दा ये उक्त देवियोंके समीप खड़ी हो उन्हें एकके बाद दूसरा कलश अर्पण कर रही हैं। इन दोनोंको क्रमशः दायें और वामभागमें खड़ी हुई मित्रविन्दा और लक्ष्मणा कलश दे रही हैं और इनके भी दक्षिण वामभागमे खड़ी जाम्बवती और सुशीला रत्नमयी नदीसे रत्नपूर्ण कलश भरकर उनके हाथोंमें दे रही हैं। इनके बाह्यभागमे चारों ओर खड़ी हुई सोलह सहस्र श्रीकृष्णवल्लभाओंका ध्यान करे, जो सुवर्ण एवं रत्नमयी धाराओंसे युक्त कलशोंसे सुशोभित हो रही हैं। उनके बाह्यभागमें आठ निधियाँ हैं, जो धनसे वहाँ वसुधाको भरपूर किये देती हैं। उनके बाह्यभागमें सब वृष्णिवंशी विद्यमान हैं और पहलेकी भाँति स्वर आदि भी हैं।

इस प्रकार ध्यान करके पाँच लाख जप करे और लाल कमलोंद्वारा दशांश होम करके पूर्वोक्त वैष्णवपीठपर भगवान्‌का पूजन करे।

पूर्ववत् पीठकी पूजा करनेके पश्चात् मूलमन्त्रसे मूर्तिकी कल्पना करके उसमें भक्तिपूर्वक भगवान् श्रीकृष्णका आवाहन करे और उसमें पूर्णताकी भावना-से पूजा करे। आसनसे लेकर आभूषणतक भगवान्‌को अर्पण करके फिर न्यासक्रमसे आराधना करे। सृष्टि, स्थिति, षडङ्ग, किरीट, कुण्डलद्वय, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, वनमाला, श्रीवत्स तथा कौस्तुभ—इन सबका गन्ध-पुष्पसे पूजन करके श्रेष्ठ वैष्णव मूलमन्त्रद्वारा छः कोणोंमें छः अङ्गोंका और पूर्वादि दलोंमें क्रमशः वासुदेव आदि तथा कोणोंमें शान्ति आदिका क्रमशः पूजन करे। तत्पश्चात् श्रेष्ठ साधक दलोंके अग्रभागमें आठों पटरानियोंका पूजन करे। तदनन्तर

सोलह हजार श्रीकृष्णपत्नियोंकी एक ही साथ पूजा करे। इसके बाद इन्द्र, नील, मुकुन्द, कराल, आनन्द, कच्छप, शङ्ख और पद्म—इन आठ निधियोंका क्रमशः पूजन करे। उनके बाह्यभागमें इन्द्र आदि लोकपालों तथा वज्र आदि आयुधोंकी पूजा करे। इस प्रकार सात आवरणोंसे घिरे हुए श्रीकृष्णका आदरपूर्वक पूजन करके दही, खाँड़ और घी मिले हुए दुग्धमिश्रित अन्नका नैवेद्य लगाकर उन्हें तृप्त करे। तदनन्तर दिव्योपचार समर्पित करके स्तुति और नमस्कारके पश्चात् परिवारगणों (आवरण देवताओं) के साथ भगवान् केशवका अपने हृदयमें विसर्जन करे। भगवान्‌को अपनेमें बिठाकर भगवत्स्वरूप आत्माका पूजन करके विद्वान् पुरुष तन्मय होकर विचरे। रत्नाभिषेकयुक्त ध्यानमें वर्णित भगवत्स्वरूपकी पूजा बीस अक्षरवाले मन्त्रके आश्रित है। इस प्रकार जो मन्त्रकी आराधना करता है, वह समृद्धिका आश्रय होता है। जो जप, होम, पूजन और ध्यान करते हुए उक्त मन्त्रका जप करता है, उसका घर रत्नों, सुवर्णों तथा धन-धान्योंसे निरन्तर परिपूर्ण होता रहता है। यह विशाल पृथ्वी उसके हाथमें आ जाती है और वह सब प्रकारके शस्योंसे सम्पन्न होती है। साधक पुत्रों और मित्रोंसे भरा-पूरा रहता है और अन्तमें परमगतिको प्राप्त होता है। उक्त मन्त्रसे साधक इस प्रकारके अनेक प्रयोगोंका साधन कर सकता है। अब मैं सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाले मन्त्रराज दशाक्षरका वर्णन करता हूँ।

स्मृति (ग्) यह सद्य (ओ) से युक्त हो और लोहित (प्) वामनेत्र (ई) से संलग्न हो। इसके बाद 'जनवल्लभा' ये अक्षरसमुदाय हों। तत्पश्चात् पवन (य) हो और अन्तमें अग्निप्रिया (स्वाहा) हो तो यह (गोपीजनवल्लभाय स्वाहा) दशाक्षर मन्त्र कहा गया है। इसके नारद ऋषि, विराट् छन्द, श्रीकृष्ण देवता, क्लीं बीज और स्वाहा शक्ति है। यह बात मनीषी पुरुषोंने बतायी है। आचक्र, विचक्र, सुचक्र, त्रैलोक्यरक्षणचक्र तथा असुरान्तकचक्र इन शब्दोंके अन्तमें 'ङे' विभक्ति और स्वाहा पद जोड़कर इन पञ्चविध चक्रोंद्वारा पञ्चाङ्ग-न्यास करे*। तदनन्तर प्रणवसम्पुटित मन्त्र पढ़कर तीन बार दोनों हाथोंमें व्यापक-न्यास करे। तत्पश्चात् मन्त्रके प्रत्येक अक्षरको अनुस्वारयुक्त करके उनके आदिमें प्रणव और अन्तमें नमः जोड़कर उनका दाहिने अंगूठेसे लेकर बायें अंगूठेतक अंगुलियोंमें न्यास करे*। यह सृष्टिन्यास बताया गया है। अब स्थितिन्यास बताया जाता है। विद्वान् पुरुष स्थितिन्यासमें बायें [illegible] दाहिनी कनिष्ठातक पूर्वोक्तरूपसे मन्त्राक्षरोंका न्यास करे। संहारन्यासमें बायें अंगूठेसे दाहिने अंगूठेतक उन मन्त्राक्षरोंका न्यास करना चाहिये। यह संहारन्यास [illegible] नाश करनेवाला कहा गया है। [illegible] ब्रह्मचारियोंको चाहिये कि वे स्थिति और संहारन्यास पहले करके अन्तमें सृष्टिन्यास करें; क्योंकि वह विद्या प्रदान करनेवाला है। गृहस्थोंके लिये अन्तमें स्थितिन्यास करना उचित है। (उन्हें सृष्टि और संहारन्यास पहले कर लेना चाहिये।) क्योंकि स्थितिन्यास काम्यादिस्वरूप (कामनापूरक) है। विरक्त मुनीश्वरोंको [illegible] अन्तमें संहारन्यास करना चाहिये। तदनन्तर [illegible] पुनः स्थितिक्रमसे मन्त्राक्षरोंका अंगुलियोंमें न्यास करे। तत्पश्चात् पुनः पूर्वोक्त चक्रोंद्वारा हाथोंमें पञ्चाङ्ग-न्यास करे। (यथा— ॐ आचक्राय स्वाहा अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ विचक्राय स्वाहा तर्जनीभ्यां नमः। ॐ सुचक्राय स्वाहा मध्यमाभ्यां नमः। ॐ त्रैलोक्यरक्षणचक्राय स्वाहा अनामिकाभ्यां नमः। ॐ असुरान्तकचक्राय स्वाहा कनिष्ठिकाभ्यां नमः) तदनन्तर विद्वान् पुरुष मूल-मन्त्रसे सम्पुटित अनुस्वारयुक्त मातृका वर्णोंका मातृकान्यासके स्थानोंमें विनीतभावसे न्यास करे। उसके बाद प्रणवसम्पुटित मूल-मन्त्रका उच्चारण करके व्यापकन्यास करे। तत्पश्चात् पूर्वोक्त मूर्तिपञ्जर नामक न्यास करे। उसके बाद क्रमशः दशाङ्ग-न्यास और पञ्चाङ्ग-न्यास करे। दशाङ्ग-न्यासकी विधि इस प्रकार है—हृदय, मस्तक, शिखा, सर्वाङ्ग, सम्पूर्ण दिशा, दक्षिणपार्श्व, वाम पार्श्व, कटि, पृष्ठ तथा मूर्धा—इन स्थानोंमें [illegible] मन्त्रके एक-एक अक्षरका न्यास करे। फिर [illegible] पूर्वोक्त चक्रोंद्वारा पुनः पूर्ववत् पञ्चाङ्ग-न्यास करे। [illegible]

---

* न्यास-वाक्यका प्रयोग इस प्रकार है—

ॐ आचक्राय स्वाहा हृदयाय नमः।

ॐ विचक्राय स्वाहा शिरसे स्वाहा।

ॐ सुचक्राय स्वाहा शिखायै वषट्।

ॐ त्रैलोक्यरक्षणचक्राय स्वाहा कवचाय हुम्।

ॐ असुरान्तकचक्राय स्वाहा अस्त्राय फट्।

* यथा—ॐ गों नमः, दक्षिणाङ्गुष्ठपर्वसु। ॐ [illegible] नमः, दक्षिण तर्जनीपर्वसु। ॐ जं नमः, दक्षिणमध्यमापर्वसु। ॐ [illegible] नमः, दक्षिणानामिकापर्वसु। ॐ वं नमः, दक्षिणकनिष्ठिकापर्वसु। ॐ [illegible] नमः, वामकनिष्ठिकापर्वसु। ॐ [illegible] नमः, वामानामिकापर्वसु। ॐ यं नमः, वाममध्यमापर्वसु। ॐ [illegible] नमः, वामतर्जनीपर्वसु। ॐ हां नमः, वामाङ्गुष्ठपर्वसु।

अष्टादशाक्षरमन्त्रके लिये बताये हुए अन्य प्रकारके न्यासोंका भी यहाँ संग्रह कर लेना चाहिये। तदनन्तर विद्वान् पुरुष किरीट-मन्त्रसे व्यापकन्यास करे। फिर श्रेष्ठ साधक वेणु और विल्व आदिकी मुद्रा दिखाये। फिर सुदर्शन-मन्त्रसे दिग्बन्ध करे। अङ्गुष्ठको छोड़कर शेष अंगुलियाँ यदि सीधी रहे तो यह हृदयमुद्रा कही गयी है। शिरोमुद्रा भी ऐसी ही होती है। अङ्गुष्ठको नीचे करके जो मुट्ठी बाँधी जाती है, उसका नाम शिखामुद्रा है। हाथकी अंगुलियोको फैलाना यह वरुणमुद्रा कही गयी है। बाणकी मुट्ठीकी तरह उठी हुई दोनों भुजाओंके अङ्गुष्ठ और तर्जनीसे चुटकी बजाकर उसकी ध्वनिको सब ओर फैलाना, इसे अस्त्रमुद्रा कहा गया है। तर्जनी और मध्यमा—ये दो अंगुलियाँ नेत्रमुद्रा हैं। (जहाँ तीन नेत्रका न्यास करना हो, वहाँ तर्जनी, मध्यमाके साथ अनामिका अंगुलिको भी लेकर नेत्रत्रयका प्रदर्शन कराया जाता है।) बायें हाथका अँगूठा ओष्ठमें लगा हो। उसकी कनिष्ठिका अंगुली दाहिने हाथके अंगूठेसे सटी हो, दाहिने हाथकी कनिष्ठिका फैली हुई हो और उसकी तर्जनी, मध्यमा और अनामिका अंगुलियाँ कुछ सिकोड़कर हिलायी जाती हों तो यह वेणुमुद्रा कही गयी है। यह अत्यन्त गुप्त होनेके साथ ही भगवान् श्रीकृष्णको बहुत प्रिय है। वनमाला, श्रीवत्स और कौस्तुभ नामक मुद्राएँ प्रसिद्ध हैं; अतः उनका वर्णन नहीं किया जाता है*। बायें अंगूठेको ऊर्ध्वमुख खड़ा करके उसे दाहिने हाथके अंगूठेसे बाँध ले और उसके अग्र-भागको दाहिने हाथकी अंगुलियोंसे दबाकर फिर उन अंगुलियोको बायें हाथकी अंगुलियोंसे खूब कसकर बाँध ले और उसे अपने हृदयकमलमें स्थापित करे। साथ ही काम-बीज (क्लीं) का उच्चारण करता रहे। मुनीश्वरोंने उसे परम गोपनीय विल्वमुद्रा कहा है। यह सम्पूर्ण सुखोंकी प्राप्ति करानेवाली है। मन, वाणी और शरीरसे जो पाप किया गया हो, वह सब इस मुद्राके ज्ञानमात्रसे नष्ट हो जायगा। मन्त्रका ध्यान, जप और पूर्वोक्तरूपसे त्रिकाल पूजन करना चाहिये। दशाक्षर तथा अष्टादशाक्षर आदि सब मन्त्रोंमें एक ही क्रम बताया गया है। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध होनेपर मन्त्रोपासक उससे नाना प्रकारके लौकिक अथवा पारलौकिक प्रयोग कर सकता है।

चेचक, फोड़े या ज्वर आदिसे जब जलन और मूर्च्छा हो रही हो, तो उक्तरूपसे ही श्रीकृष्णका ध्यान करके रोगीके मस्तकके समीप मन्त्र-जप करे। इससे ज्वरग्रस्त मनुष्य निश्चय ही उस ज्वरसे मुक्त हो जाता है। इसी प्रकार पूर्वोक्त ध्यान करके अग्निमें भगवान्‌की पूजा करे और गुरुचिके चार-चार अंगुलके टुकडोंद्वारा दस हजार आहुति दे तो ज्वरकी शान्ति हो जाती है। ज्वरसे पीड़ित मनुष्यके ज्वरसे शान्तिके लिये बाणोंसे छिदे हुए भीष्मपितामहका तथा संताप दूर करनेवाले श्रीहरिका ध्यान करके रोगीका स्पर्श करते हुए मन्त्रजप करे। सान्दीपनि मुनिको पुत्र देते हुए श्रीकृष्णका ध्यान करके पूर्वोक्त रूपसे गुरुचिके टुकड़ोसे दस हजार आहुति दे। इससे अपमृत्युका निवारण होता है। जिसके पुत्र मर गये थे, ऐसे ब्राह्मणको उसके पुत्र अर्पण करते हुए अर्जुनसहित श्रीकृष्णका ध्यान करके एक लाख मन्त्र-जप करे। इससे पुत्र-पौत्र आदिकी वृद्धि होती है। घी, चीनी और मधुमें मिलाये हुए पुत्रजीवके फलोंसे उसीकी समिधाद्वारा प्रज्वलित हुई अग्निमें दस हजार आहुति देनेपर मनुष्य दीर्घायु पुत्र पाता है। दुधैले वृक्षके काढ़ेसे भरे हुए कलशकी रातमे पूजा करके प्रातःकाल दस हजार मन्त्र जपे और उसके रसके जलसे स्त्री-का अभिषेक करे। बारह दिनोंतक ऐसा करनेपर वन्ध्या स्त्री भी दीर्घायु पुत्र प्राप्त कर लेती है। पुत्रकी इच्छा रखनेवाली स्त्री प्रातःकाल मौन होकर पीपलके पत्तेके दोनेमे रक्खे हुए जलको एक सौ आठ बार मन्त्रके जपसे अभिमन्त्रित कराकर पीये। एक मासतक ऐसा करके वन्ध्या स्त्री भी समस्त शुभ

---

* वनमाला आदि मुद्राओंका लक्षण इस प्रकार है—

स्पृशेत्कण्ठादिपादान्तं तर्जन्याङ्गुष्ठनिष्ठया।
करद्वयेन तु भवेन्मुद्रेयं वनमालिका॥

दोनों हाथोंकी तर्जनी और अंगूठेको सटाकर उनके द्वारा कण्ठसे लेकर चरणतकका स्पर्श करे। इसे वनमाला नामक मुद्रा कहा गया है।

अन्योन्यस्पृष्टकरयोर्मध्यमानामिकाङ्गुली।
अङ्गुष्ठेन तु बध्नीयात् कनिष्ठामूलसश्रिते॥
तर्जन्यौ कारयेदेषा मुद्रा श्रीवत्ससञ्ज्ञिका।

आपसमें सटे हुए दोनों हाथोंकी मध्यमा और अनामिका अंगुलियोंको अंगूठेसे बाँधे और तर्जनी अंगुलियोंको कनिष्ठा अंगुलियोंके मूल-भागसे संलग्न करे। इसका नाम श्रीवत्समुद्रा है।

दक्षिणस्यानामिकाङ्गुष्ठसलग्ना कनिष्ठिकाम्।
कनिष्ठयान्यया बद्ध्वा तर्जन्या दक्षया तथा॥
वामानामा च बध्नीयाद्दक्षाङ्गुष्ठस्य मूलके।
अङ्गुष्ठमध्यमे वामे सयोज्य सरलाः परा॥
चतस्रोऽप्यग्रसलग्ना मुद्रा कौस्तुभसंज्ञिका।

दाहिने हाथकी अनामिका और अङ्गुष्ठसे सटी हुई कनिष्ठिका अंगुलिको बायें हाथकी कनिष्ठिकासे बाँध ले। दाहिनी तर्जनीसे बायीं अनामिकाको बाँधे, दाहिने अंगूठेके मूल-भागमें बायें अङ्गुष्ठ और मध्यमाको संयुक्त करे। शेष अंगुलियोंको सीधी रक्खे। चारों अंगुलियोंके अग्रभाग परस्पर मिले हों, यह कौस्तुभमुद्रा है।

लक्षणोंसे सम्पन्न पुत्र प्राप्त कर लेती है। बेरके वृक्षोंसे भरे हुए शुभ एवं दिव्य आश्रममें स्थित हो अपने करकमलोंसे घंटाकर्णके शरीरका स्पर्श करते हुए श्रीकृष्णका ध्यान करके घी, चीनी और मधु मिलाये हुए तिलोंसे एक लाख आहुति दे। ऐसा करनेसे महान् पापी भी तत्काल पवित्र हो जाता है। पारिजात-हरण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करके एक लाख मन्त्र जपे। जो ऐसा करता है, उसकी सर्वत्र विजय होती है। पराजय कभी नहीं होती है। श्रेष्ठ मनुष्यको चाहिये कि वह पार्थको गीताका उपदेश करते हुए हाथमें व्याख्यानकी मुद्रासे युक्त रथारूढ श्रीकृष्णका ध्यान करे। उस ध्यानके साथ मन्त्र जपे। इससे धर्मकी वृद्धि होती है। मधुसे सने हुए पलाशके फूलोंसे एक लाख आहुति दे। इससे विद्याकी प्राप्ति होती है। राष्ट्र, पुर, ग्राम, वस्तु तथा शरीरकी रक्षाके लिये विश्वरूपधारी श्रीकृष्णका ध्यान करे—'उनकी कान्ति उदयकालीन करोड़ों सूर्योंके समान [illegible] एवं तेजस्वरूप है, सच्चिदानन्दस्वरूप [illegible] स्वर्णके समान है, उनके [illegible] अग्निके सदृश प्रकाशित हो रहे हैं [illegible] विभूषित हैं। उन्होंने नाना प्रकारके [illegible] रक्खे हैं। सम्पूर्ण आकाशको [illegible] प्रकार ध्यान करके एकाग्रचित्त [illegible] करे। इससे पूर्वोक्त [illegible] वैष्णव सद्गुरुसे दीक्षा लेकर [illegible] करता है, वह अणिमा आदि [illegible] है। उसके दर्शनमात्रसे वादी [illegible] घरमें हो या सभामें उसके [illegible] है। वह इस लोकमें नाना प्रकारके [illegible] अन्तमें श्रीकृष्णधामको जाता है। ([illegible])

श्रीकृष्णसम्बन्धी विविध मन्त्रों तथा व्याससम्बन्धी मन्त्रकी अनुष्ठानविधि

श्रीसनत्कुमारजी कहते हैं—मुनीश्वर! अब मैं श्रीकृष्णसम्बन्धी मन्त्रोंके भेद बतलाता हूँ, जिनकी आराधना करके मनुष्य अपना अभीष्ट सिद्ध कर लेते हैं। दशाक्षर मन्त्रके तीन नूतन भेद हैं—'ह्रीं श्रीं क्लीं'—इन तीन बीजोंके साथ 'गोपीजनवल्लभाय स्वाहा' यह प्रथम भेद है। 'श्रीं ह्रीं क्लीं'—इस क्रमसे बीज जोड़नेपर दूसरा भेद होता है। 'क्लीं ह्रीं श्रीं'—इस क्रमसे बीज-मन्त्र जोड़नेपर तीसरा भेद बनता है। इनके नारद ऋषि और गायत्री छन्द हैं तथा मनुष्योंकी सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले गोविन्द श्रीकृष्ण इसके देवता हैं। इन तीनों मन्त्रोंका अङ्गन्यास पूर्ववत् चक्रोंद्वारा करना चाहिये। तत्पश्चात् किरीट-मन्त्रसे व्यापक-न्यास करे, फिर सुदर्शन-मन्त्रसे दिग्बन्ध करे। आदि-मन्त्रमें बीस अक्षरवाले मन्त्रकी ही भाँति ध्यान-पूजन आदि करे। द्वितीय मन्त्रमें दशाक्षर-मन्त्रके लिये कहे हुए ध्यान-पूजन आदिका आश्रय ले। तृतीय मन्त्रमें विद्वान् पुरुष एकाग्रचित्त होकर श्रीहरिका इस प्रकार ध्यान करे—भगवान् अपनी छः भुजाओंमें क्रमशः शङ्ख, चक्र, धनुष, बाण, पाश तथा अङ्कुश धारण करते हैं और शेष दो भुजाओंसे वेणु लेकर बजा रहे हैं। उनका वर्ण लाल है। वे श्रीकृष्ण साक्षात् सूर्यरूपसे प्रकाशित होते हैं। इस प्रकार ध्यान करके बुद्धिमान् पुरुष पाँच लाख जप करे और घृतयुक्त खीरसे दशांश आहुति दे। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध हो जानेपर मन्त्रोपासक पुरुष उसके द्वारा पूर्ववत् सकाम प्रयोग कर सकता है। 'श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय स्वाहा' यह बारह अक्षरोंका मन्त्र है। इसके ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द और श्रीकृष्ण देवता हैं। [illegible] बीजों तथा तीन, चार एवं दो [illegible] बीस अक्षरवाले मन्त्रकी भाँति इसके भी ध्यान [illegible] पूजन आदि करने चाहिये। यह मन्त्र [illegible] फलोंको देनेवाला है।

दशाक्षर-मन्त्र (गोपीजनवल्लभाय [illegible])

श्रीं ह्रीं क्लीं तथा अन्तमें [illegible] मन्त्र बनता है। इसी प्रकार [illegible] बारह अक्षरोंका मन्त्र होता है। [illegible] अङ्गन्यास करे, फिर भगवान्‌का ध्यान करके [illegible] करे और घीसे दशांश होम करे। [illegible] सिद्ध हो जाते हैं। सिद्ध होनेपर [illegible] कामनाओं, समस्त सम्पदाओं तथा [illegible] अष्टादशाक्षर-मन्त्रके अन्तमें [illegible] यह पुत्र तथा धन देनेवाला [illegible] ऋषि, गायत्री छन्द और [illegible] बीज [illegible] है और [illegible] दीर्घ स्वरोंसे युक्त [illegible] हाथमें खीर और बायें हाथमें [illegible] गोपीपुत्र श्रीकृष्ण मेरी रक्षा करें। [illegible] करके बत्तीस लाख मन्त्र जपे और [illegible] मिली हुई खीरसे दशांश [illegible] वैष्णवपीठपर [illegible] समस्ते आकार [illegible] कुमारविन्दने [illegible]

हुआ माखन देकर तर्पण करे। पुत्रकी इच्छा रखनेवाला पुरुष यदि इस प्रकार तर्पण करे तो वह वर्षभरमें पुत्र प्राप्त कर लेता है। वह जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करता है, वह सब उसे तर्पणसे ही प्राप्त हो जाती है।

वाक् (ऐं), काम (क्लीं) के विभक्त्यन्त कृष्ण शब्द (कृष्णाय) तत्पश्चात् माया (ह्रीं), उसके बाद 'गोविन्दाय' फिर रमा (श्रीं) तदनन्तर दशाक्षर-मन्त्र (गोपीजनवल्लभाय स्वाहा) उद्धृत करे, फिर ह् और स् ये दोनों ओकार और विसर्गसे संयुक्त होकर अन्तमें जुड़ जायँ तो (ऐं क्लीं कृष्णाय ह्रीं गोविन्दाय श्रीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा ह्सौं) बाईस अक्षरका मन्त्र होता है, जो वागीशत्व प्रदान करनेवाला है। इसके नारद ऋषि, गायत्री छन्द, विद्यादाता गोपाल देवता, क्लीं बीज और ऐं शक्ति है। विद्याप्राप्तिके लिये इसका विनियोग किया जाता है। इसका ध्यान इस प्रकार है—जो वाम भागके ऊपरवाले हाथमें उत्तम विद्या-पुस्तक और दाहिने भागके ऊपरवाले हाथमें स्फटिक मणिकी मातृकामयी अक्षमाला धारण करते हैं। इसी प्रकार नीचेके दोनों हाथोंमें शब्दब्रह्ममयी मुरली लेकर बजाते हैं, जिनके श्रीअङ्गोंमें गायत्री छन्दमय पीताम्बर सुशोभित है, जो श्यामवर्ण कोमल कान्तिमान् मयूरपिच्छमय मुकुट धारण करनेवाले, सर्वज्ञ तथा मुनिवरोंद्वारा सेवित हैं, उन श्रीकृष्णका चिन्तन करे। इस प्रकार लीला करनेवाले भुवनेश्वर श्रीकृष्णका ध्यान करके चार लाख मन्त्र-जप करे और पलासके फूलोंसे दशांश आहुति देकर मन्त्रोपासक बीस अक्षरवाले मन्त्रके लिये कहे हुए विधानके अनुसार पूजन करे। इस प्रकार जो मन्त्रकी उपासना करता है, वह वागीश्वर हो जाता है। उसके बिना देखे हुए शास्त्र भी गङ्गाकी लहरोंके समान स्वतः प्रस्तुत हो जाते हैं

'ॐ कृष्ण कृष्ण महाकृष्ण सर्वज्ञ त्वं प्रसीद मे। रमारमण विद्येश विद्यामाशु प्रयच्छ मे॥' (हे कृष्ण! हे कृष्ण ! हे महाकृष्ण! आप सर्वज्ञ हैं। मुझपर प्रसन्न होइये। हे रमारमण! हे विद्येश्वर! मुझे शीघ्र विद्या दीजिये।) यह तैंतीस अक्षरोंवाला महाविद्याप्रद मन्त्र है। इसके नारद ऋषि, अनुष्टुप् छन्द और श्रीकृष्ण देवता हैं। मन्त्रके चारों चरणों और सम्पूर्ण मन्त्रसे पञ्चाङ्ग-न्यास करके श्रीहरिका ध्यान करे।

ध्यान

दिव्योद्याने विवस्वत्प्रतिममणिमये मण्डपे योगपीठे
मध्ये यः सर्ववेदान्तमयसुरतरोः संनिविष्टो मुकुन्दः।
वेदैः कल्पद्रुरूपैः शिखरिशतसमालंबिकोशैश्चतुर्भि-
र्न्यायैस्तर्कैः पुराणैः स्मृतिभिरभिवृतस्तादृशैश्चामराद्यैः॥
दद्याद्बिभ्रत्कराग्रैरपि दरमुरलीपुष्पबाणेक्षुचापा-
नक्षस्पृक्पूर्णकुम्भौ स्मरललितवपुर्दिव्यभूषाङ्गरागः।
व्याख्यां वामे वितन्वन् स्फुटरुचिरपदो वेणुना विश्वमात्रे
शब्दब्रह्मोद्भवेन श्रियमरुणरुचिर्वल्लवीवल्लभो नः॥
(ना० पूर्व० ८१। ३४-३५)

एक दिव्य उद्यान है, उसके भीतर सूर्यके समान प्रकाशमान मणिमय मण्डप है, जहाँ सर्व वेदान्तमय कल्पवृक्षके नीचे योगपीठ नामक दिव्य सिंहासन है, जिसके मध्यभागमें भगवान् मुकुन्द विराजमान हैं। कल्पवृक्षरूपी चार वेद जिसके कोप सौ पर्वतोंको सहारा देनेवाले हैं, उन्हें घेरकर स्थित हैं। छत्र, चँवर आदिके रूपमें सुशोभित न्याय, तर्क, पुराण तथा स्मृतियोंसे भगवान् आवृत हैं। वे अपने हाथोंके अग्रभागमें शङ्ख, मुरली, पुष्पमय बाण और ईखके धनुप धारण करते हैं। अक्षमाला और भरे हुए दो कलश उन्होंने ले रक्खे हैं; उनका दिव्य विग्रह कामदेवसे भी अधिक मनोहर है। वे दिव्य आभूषण तथा दिव्य अङ्गराग धारण करते हैं। शब्दब्रह्मसे प्रकट हुई तथा बायें हाथमें ली हुई वेणुद्वारा स्पष्ट एवं रुचिर पदका उच्चारण करते हुए विश्वमात्रमे विशद व्याख्याका विस्तार करते हैं। उनकी अङ्ग-कान्ति अरुण वर्णकी है, ऐसे गोपीवल्लभ श्रीकृष्ण हमे लक्ष्मी प्रदान करें।

इस प्रकार ध्यान करके एक लाख जप करे और खीरसे दशांश आहुति दे। मन्त्रज्ञ पुरुष इसका पूजन आदि अष्टादशाक्षर मन्त्रकी भाँति करे।

'ॐ नमो भगवते नन्दपुत्राय आनन्दवपुषे गोपीजनवल्लभाय स्वाहा।' यह अट्ठाईस अक्षरोंका मन्त्र है। जो सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला है।

'नन्दपुत्राय श्यामलाङ्गाय बालवपुषे कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा।' यह बत्तीस अक्षरोंका मन्त्र है। इन दोनों मन्त्रोंके नारद ऋषि हैं, पहलेका उष्णिक्, दूसरेका अनुष्टुप् छन्द है। देवता नन्दनन्दन श्रीकृष्ण हैं। समस्त कामनाओंकी प्राप्तिके लिये इसका विनियोग किया जाता है। चक्रोंद्वारा पञ्चाङ्गन्यास करे तथा हृदयादि अङ्गों, इन्द्रादि दिक्पालों और उनके वज्र आदि आयुधोंसहित भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये। फिर ध्यान करके एक लाख मन्त्र-जप और खीरसे दशांश हवन करे। इन सिद्ध मन्त्रोंद्वारा मन्त्रोपासक अपने अभीष्टकी सिद्धि कर सकता है।

'लीलादण्ड गोपीजनसंसक्तदोर्दण्ड बालरूप मेघश्याम भगवन् विष्णो स्वाहा' यह उन्तीस अक्षरोंका मन्त्र है। इसके नारद ऋषि, अनुष्टुप् छन्द और [illegible] देवता कहे गये हैं। चौदह, चार, चार, तीन तथा [illegible] मन्त्राक्षरोंद्वारा क्रमशः पञ्चाङ्ग-न्यास करे।

ध्यान

सम्मोहयंश्च निजवामकरस्थलीला-
दण्डेन गोपयुवतीः परसुन्दरीश्च।
दिश्यान्निजप्रियसखांसगदक्षहस्तो
देवः श्रियं निहतकंस उरुक्रमो नः॥
(ना० पूर्व० ८१।८८)

'जो अपने बायें हाथमें लिये हुए [illegible] भाँतिके खेल दिखाकर परम सुन्दरी गोपाङ्गनाओंका मन [illegible] लेते हैं, जिनका दाहिना हाथ अपने प्रिय सखाके कंधेपर है, वे कंसविनाशक महापराक्रमी भगवान् श्रीकृष्ण हमें लक्ष्मी प्रदान करें।'

इस प्रकार ध्यान करके एक लाख जप और [illegible] तथा मधुमें सने हुए तिल और चावलोंसे दशांश हवन करे। तत्पश्चात् पूर्वोक्त पीठपर अङ्ग, दिक्पाल तथा आयुधोंसहित श्रीहरिका पूजन करे। जो प्रतिदिन [illegible]

हरि'की आराधना करता है, वह सम्पूर्ण लोकोंद्वारा पूजित होता है और उसके घरमे लक्ष्मीका स्थिर निवास होता है। सद्य (ओ) पर स्थित स्मृति (ग्) अर्थात् 'गो', केशव (अ) युक्त तोय (व्) अर्थात् 'व', धरायुग (ल्ल), 'भाय,' अग्निवल्लभा (स्वाहा)—यह (गोवल्लभाय स्वाहा) मन्त्र सात अक्षरोंका है और सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला है। इसके नारद ऋषि, उष्णिक् छन्द तथा गोवल्लभ श्रीकृष्ण देवता हैं। पूर्ववत् चक्र-मन्त्रोंद्वारा पञ्चाङ्ग-न्यास करे।

ध्यान

ध्येयो हरिः स कपिलागणमध्यसंस्थ-
स्ता आह्वयन् दधददक्षिणदोःस्थवेणुम्।
पाशं सयष्टिमपरत्र पयोदनीलः
पीताम्बरोऽहिरिपुपिच्छकृतावतंसः ॥
(ना० पूर्व० ८१। ६०)

'जो कपिला गायोंके बीचमें खड़े हो उनको पुकारते हैं, बायें हाथमें मुरली और दाये हाथमें रस्सी और लाठी लिये हुए हैं, जिनकी अङ्गकान्ति मेघके समान श्याम है, जो पीत-वस्त्र और मोर-पंखका मुकुट धारण करते हैं, उन श्यामसुन्दर श्रीहरिका ध्यान करना चाहिये।'

ध्यानके बाद, सात लाख मन्त्र-जप और गोदुग्धसे दशांश हवन करे। पूर्वोक्त वैष्णवपीठपर पूजन करे। अङ्गों-द्वारा प्रथम आवरण होता है। द्वितीय आवरणमे—सुवर्ण-पिङ्गला, गौर-पिङ्गला, रक्त-पिङ्गला, गुड-पिङ्गला, बभ्रु-वर्णा, उत्तमा कपिला, चतुष्कपिङ्गला तथा शुभ एवं उत्तम पीत-पिङ्गला—इन आठ गायोंके समुदायकी पूजा करके तीसरे और चौथे आवरणोंमें इन्द्रादि लोकेशों तथा वज्र आदि आयुधों-का पूजन करे।

इस प्रकार पूजन करके मन्त्र सिद्ध कर लेनेपर मन्त्रज्ञ पुरुष उसके द्वारा कामना-पूर्तिके लिये प्रयोग करे। जो प्रति-दिन गोदुग्धसे एक सौ आठ आहुति देता है, वह पंद्रह दिनमे ही गोसमुदायसहित मुक्त हो जाता है। दशाक्षर मन्त्र-मे भी यह विधि है। 'ॐ नमो भगवते श्रीगोविन्दाय' यह द्वादशाक्षर मन्त्र कहा गया है। इसके नारद ऋषि माने गये हैं। छन्द गायत्री है और गोविन्द देवता कहे गये हैं। एक, दो, चार और पॉच अक्षरो तथा सम्पूर्ण मन्त्रसे पञ्चाङ्ग-न्यास करे।

ध्यान

ध्यायेत् कल्पद्रुमूलाश्रितमणिविलसद्दिव्यसिंहासनस्थं
मेघश्यामं पिशङ्गांशुकमतिसुभगं शङ्खवेत्रे कराभ्याम्।
बिभ्राणं गोसहस्रैर्वृतममरपतिं प्रौढहस्तैककुम्भ-
प्रश्च्योतत्सौधधारास्नपितमभिनवाम्भोजपत्राभनेत्रम् ॥

'दिव्य कल्पवृक्षके नीचे मूलभागके समीप नाना प्रकारकी मणियोसे सुशोभित दिव्य सिंहासनपर भगवान् श्रीकृष्ण विराज रहे हैं। उनकी अङ्गकान्ति मेघके समान श्याम है। वे पीताम्बर धारण किये अत्यन्त सुन्दर लग रहे हैं। अपने दोनों हाथोंमे उन्होंने शङ्ख और बेंत ले रक्खे है। सहस्रों गायें उन्हे घेरकर खडी हैं। वे सम्पूर्ण देवताओंके प्रतिपालक हैं। एक प्रौढ व्यक्तिके हाथोंमें एक कलश है, उससे अमृतकी धारा झर रही है और उसीसे भगवान् स्नान कर

'बाल गोपालकी पाँच वर्षकी अवस्था है, वे अत्यन्त चपल गतिसे ऑगनमें दौड़ रहे हैं, उनके नेत्र भी बड़े चञ्चल हैं, किङ्किणी, वलय, हार और नूपुर आदि आभूषण विभिन्न अङ्गोंकी शोभा बढ़ा रहे हैं, ऐसे सुन्दर गोपबालकको नमस्कार करो।'

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक आठ लाख जप और पलाशकी समिधाओं अथवा खीरसे दशांश हवन करे। पूर्वोक्त वैष्णवपीठपर मूलमन्त्रसे मूर्तिका संकल्प करके उसमें मन्त्रसाधक स्थिरचित्त हो भगवान् श्रीकृष्णका आवाहन और पूजन करे। चारों दिशा-विदिशाओंमें जो केसर हैं, उनमें अङ्गोंकी पूजा करे। फिर दिशाओंमे वासुदेव, बलभद्र, प्रद्युम्न और अनिरुद्धका तथा कोणोंमें रुक्मिणी, सत्यभामा, लक्ष्मणा और जाम्बवतीका पूजन करे। इनके बाह्यभागोंमें लोकेशों और आयुधोंकी पूजा करनी चाहिये। ऐसा करनेसे मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

तार (ॐ), श्री (श्रीं), भुवना (ह्रीं), काम (क्लीं), ङे विभक्त्यन्त श्रीकृष्ण शब्द अर्थात् 'श्रीकृष्णाय' ऐसा ही गोविन्द पद (गोविन्दाय), फिर 'गोपीजनवल्लभाय' तत्पश्चात् तीन पद्मा (श्रीं श्रीं श्रीं)—यह (ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं श्रीकृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय श्रीं श्रीं श्रीं) तेईस अक्षरोंका मन्त्र है। इसके ऋषि आदि भी पूर्वोक्त ही हैं। सिद्ध गोपालका स्मरण करना चाहिये।

ध्यान

माधवीमण्डपासीनौ गरुडेनाभिपालितौ।
दिव्यक्रीडासु निरतौ रामकृष्णौ स्मरन् जपेत्॥ ८७॥

जो माधवीलतामय मण्डपमें बैठकर दिव्य क्रीडाओंमें तत्पर हैं, श्रीगरुडजी जिनकी रक्षा कर रहे हैं, उन श्रीबलराम तथा श्रीकृष्णका चिन्तन करते हुए मन्त्र-जप करना चाहिये।

श्रेष्ठ वैष्णवोंको पूर्ववत् पूजन करना चाहिये। चक्री (क्) आठवें स्वर (ॠ) से युक्त हो और उसके साथ विसर्ग भी हो तो 'कॄः' यह एकाक्षर मन्त्र होता है। 'कृष्ण' यह दो अक्षरोंका मन्त्र है। इसके आदिमें क्लीं जोड़नेपर 'क्लीं कृष्ण' यह तीन अक्षरोंका मन्त्र बनता है। वही ङे विभक्त्यन्त होनेपर चार अक्षरोंका 'क्लीं कृष्णाय' मन्त्र होता है। 'कृष्णाय नमः' यह पञ्चाक्षर मन्त्र है। 'क्लीं' सम्पुटित कृष्ण पद भी अपर पञ्चाक्षर मन्त्र है; यथा—क्लीं कृष्णाय क्लीं। 'गोपालाय स्वाहा' यह षडक्षर मन्त्र कहा गया है। 'क्लीं कृष्णाय स्वाहा' यह भी दूसरा षडक्षर मन्त्र है। 'कृष्णाय गोविन्दाय' यह सप्ताक्षर मन्त्र सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला है। 'श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय क्लीं' यह दूसरा सप्ताक्षर मन्त्र है। 'कृष्णाय गोविन्दाय नमः' यह दूसरा नवाक्षर मन्त्र है। 'क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय क्लीं' यह भी इतर नवाक्षर मन्त्र है। 'क्लीं ग्लौं क्लीं श्यामलाङ्गाय नमः' यह दशाक्षर सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला है। 'बालवपुषे कृष्णाय स्वाहा' यह दूसरा दशाक्षर मन्त्र है। 'बालवपुषे क्लीं कृष्णाय स्वाहा' यह एकादशाक्षर मन्त्र है। तदनन्तर गोपीजन-मनोहर श्रीकृष्णका इस प्रकार ध्यान करे—

'जो अर्जुनके साथ रथपर बैठे हैं और क्षीरसागरसे लाकर ब्राह्मणके मरे पुत्रको उन्हें वापस दे रहे हैं, उन वसुदेव-नन्दन श्रीकृष्णका चिन्तन करना चाहिये।'

इसका एक लाख जप और घी, चीनी तथा मधु-मेवा आदि मधुर पदार्थोंमें सने हुए तिलोंसे दस हजार होम करे। पूर्वोक्त वैष्णवपीठपर अङ्ग, दिक्पाल तथा आयुधों-सहित श्रीकृष्णकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध कर लेनेपर वन्ध्या स्त्रीके भी पुत्र उत्पन्न हो सकता है। 'ॐ ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा' यह दूसरा अष्टाक्षर मन्त्र है। इस पञ्चब्रह्मात्मक मन्त्रके ब्रह्मा ऋषि, परमा गायत्री छन्द तथा परम ज्योतिःस्वरूप परब्रह्म देवता कहे गये हैं। प्रणव बीज है और स्वाहा शक्ति कही गयी है। 'स्वाहा' हृदयाय नमः। सोऽहं शिरसे स्वाहा। हंसः शिखायै वषट्। हृल्लेखा कवचाय हुम्। ॐ नेत्राभ्यां वौषट्। 'हरिहर' अस्त्राय फट्। इस प्रकार अङ्गन्यास करे।

स ब्रह्मा स शिवो विप्र स हरिः सैव देवराट्।
स सर्वरूपः सर्वाख्यः सोऽक्षरः परमः स्वराट्॥
(ना० पूर्व० ८१। १०७)

'विप्रवर! वे श्रीकृष्ण ही ब्रह्मा हैं, वे ही शिव हैं, वे ही विष्णु और वे ही देवराज इन्द्र हैं। वे ही सब रूपोंमें हैं तथा सब नाम उन्हींके हैं। वे ही स्वयं प्रकाशमान अविनाशी परमात्मा हैं।'

इस प्रकार ध्यान करके आठ लाख जप और दशांश होम करे। इनकी पूजा प्रणवात्मक पीठपर अङ्ग और आवरणदेवताओंके साथ करनी चाहिये। नारद! इस प्रकार मन्त्र सिद्ध हो जानेपर साधक-शिरोमणि पुरुषको 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्योंका विकल्परहित ज्ञान प्राप्त होता है।

'क्लीं हृषीकेशाय नमः' यह अष्टाक्षर मन्त्र है। इसके ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द और हृषीकेश देवता हैं। सम्पूर्ण मनोरथोंकी प्राप्तिके लिये इसका विनियोग किया जाता है। क्लीं बीज है तथा 'आय' शक्ति कही गयी है। बीजमन्त्रसे ही षडङ्ग-न्यास करके ध्यान करे। अथवा पुरुषोत्तम मन्त्रके लिये कही हुई सब बातें इसके लिये भी समझनी चाहिये। इसका एक लाख जप तथा घृतसे दस हजार होम करे। संमोहिनी कुसुमोंसे तर्पण करना सम्पू॰ कामनाओंकी प्राप्ति करानेवाला कहा गया है। 'श्रीं श्रीधराय त्रैलोक्यमोहनाय नमः' यह चौदह अक्षरोंका मन्त्र है। इसके ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द, श्रीधर देवता, श्रीं बीज और 'आय' शक्ति है। बीजसे ही षडङ्ग-न्यास करे। इसमें भी पुरुषोत्तम मन्त्रकी ही भाँति ध्यान-पूजन आदि कहे गये हैं। एक लाख जप और घीसे ही दशांश होमका विधान है। सुगन्धित श्वेत पुष्पोंसे पूजा और होम आदि करे। विप्रेन्द्र! ऐसा करनेपर वह साक्षात् श्रीधरस्वरूप हो जाता है। 'अच्युतानन्त-गोविन्दाय नमः' यह एक मन्त्र है और 'अच्युताय नमः, अनन्ताय नमः, गोविन्दाय नमः' ये तीन मन्त्र हैं। प्रथमके शौनक ऋषि और विराट् छन्द है। शेष तीन मन्त्रोंके क्रमशः पराशर, व्यास और नारद ऋषि हैं। छन्द इनका भी विराट् ही है। परब्रह्मस्वरूप श्रीहरि इन सब मन्त्रोंके देवता हैं। साधक इनके बीज और शक्ति भी पूर्वोक्त ही समझे।

ध्यान

शङ्खचक्रधरं देवं चतुर्बाहुं किरीटिनम्॥
सर्वैरप्यायुधैर्युक्तं गरुडोपरि संस्थितम्।
सनकादिमुनीन्द्रैस्तु सर्वदेवैरुपासितम्॥
श्रीभूमिसहितं देवमुदयादित्यसन्निभम्।
प्रातरुद्यत्सहस्रांशुमण्डलोपमकुण्डलम्॥
सर्वलोकस्य रक्षार्थमनन्तं नित्यमेव हि।
अभयं वरदं देवं प्रयच्छन्तं मुदान्वितम्॥
(ना० पूर्व० ८१। १२०—१२३)

'भगवान् अच्युत शङ्ख और चक्र धारण करते हैं। वे द्युतिमान् होनेसे 'देव' कहे गये हैं। उनके चार बाहें हैं। वे किरीटसे सुशोभित हैं। उनके हाथोंमें सब प्रकारके आयुध हैं। वे गरुड़की पीठपर बैठे हैं। सनक आदि मुनीश्वर तथा सम्पूर्ण देवता उनकी उपासना करते हैं। उनके उभय पार्श्वमें श्रीदेवी तथा भूदेवी हैं। वे उदयकालीन सूर्यके समान तेजस्वी हैं। उनके कानोंके कमनीय कुण्डल प्रातःकाल उगते हुए सूर्यदेवके मण्डलके समान अरुण प्रकाशसे सुशोभित हैं। वे वरदायक देवता हैं, सदा परमानन्दसे परिपूर्ण रहते हैं और सम्पूर्ण विश्वकी रक्षाके लिये सदा ही सबको अभय प्रदान करते हैं। उनका कहीं किसी कालमें भी अन्त नहीं होता।'

इस प्रकार ध्यान करके एकाग्रचित्त हो वैष्णवपीठपर भगवान्की पूर्ववत् पूजा करे। इनका प्रथम आवरण अङ्गों-द्वारा सम्पन्न होता है। चक्र, शङ्ख, गदा, खड्ग, मुसल, धनुष, पाश तथा अङ्कुश—इनसे द्वितीय आवरण बनता है। सनकादि चार महात्मा तथा पराशर, व्यास, नारद और शौनकसे तृतीय आवरण होता है। लोकपालोंद्वारा चौथा आवरण पूरा होता है। (पाँचवें आवरणमें वज्र आदि आयुधोंकी पूजा होती है।) इस मन्त्रका एक लाख जप और घृतसे दशांश हवन किया जाता है। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध हो जानेपर मन्त्रोपासक कामनापूर्तिके लिये मन्त्रके प्रयोग भी कर सकता है। बेलके पेड़के नीचे उसकी जड़के समीप बैठकर देवेश्वर भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए रोगीका स्मरण करे और उसका स्पर्श करके दस हजार मन्त्र जपे। ब्रह्मन्! वह स्पर्श करके, जप करके अथवा साध्यका मन-ही-मन स्मरण करके या मण्डल बनाकर रोगियोंको रोगसे मुक्त कर सकता है।

बाल (व्), पवन (य्) ये दोनों अक्षर दीर्घ आकार और अनुस्वारसे युक्त हों और शिरोग (एकार) से युक्त जल (व्) हो, तत्पश्चात् अत्रि अर्थात् दकार हो और उसके बाद 'व्यासाय' पदके अन्तमें हृदय (नमः) का प्रयोग हो तो यह (व्यां वेदव्यासाय नमः) अष्टाक्षर मन्त्र बनता है। यह मन्त्र सबकी रक्षा करे। इसके ब्रह्मा ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, सत्यवतीनन्दन व्यास देवता, व्यां बीज और नमः शक्ति है। दीर्घस्वरोंसे युक्त बीजाक्षर (व्यां व्यीं व्यूं व्यैं व्यौं व्यः) द्वारा अङ्गन्यास करना चाहिये।

ध्यान

व्याख्यामुद्रिकया लसत्करतलं सद्योगपीठस्थितं
वामे जानुतले दधानमपरं हस्तं सुविद्यानिधिम्।
विप्रव्रातवृतं प्रसन्नमनसं पाथोरुहाङ्गद्युतिं
पाराशर्यमतीव पुण्यचरितं व्यासं स्मरेत्सिद्धये॥
(ना० पू० ८१।११६)

'जिनका दाहिना हाथ व्याख्याकी मुद्रासे सुशोभित है, जो उत्तम योगपीठासनपर विराजमान हैं, जिन्होंने अपना बायाँ हाथ बायें घुटनेपर रख छोड़ा है, जो उत्तम विद्याके भण्डार, ब्राह्मणसमूहसे घिरे हुए तथा प्रसन्नचित्त हैं, जिनकी अङ्गकान्ति कमलके समान तथा चरित्र अत्यन्त पुण्यमय है, उन पराशरनन्दन वेदव्यासका सिद्धिके लिये चिन्तन करे। आठ हजार मन्त्रजप और खीरसे दशांश होम करे। पूर्वोक्त पीठपर व्यासका पूजन करे। पहले अङ्गोंकी पूजा करनी चाहिये। पूर्व आदि चार दिशाओंमें क्रमशः पैल, वैशम्पायन, जैमिनि और सुमन्तका तथा ईशान आदि कोणोंमें क्रमशः श्रीशुकदेव, रोमहर्षण, उग्रश्रवा तथा अन्य मुनियोंका पूजन करे। इनके बाह्यभागमें इन्द्र आदि दिक्पालों और वज्र आदि आयुधोंकी पूजा करे। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध कर लेनेपर मन्त्रोपासक पुरुष कवित्वशक्ति, सुन्दर संतान, व्याख्यान-शक्ति, कीर्ति तथा सम्पदाओंकी निधि प्राप्त कर लेता है।

श्रीनारदजीको भगवान् शङ्करसे प्राप्त हुए युगलशरणागति-मन्त्र तथा राधाकृष्ण-युगलसहस्रनामस्तोत्रका वर्णन

सनत्कुमारजी कहते हैं—नारद! क्या तुम जानते हो कि पूर्व-जन्ममें तुमने साक्षात् भगवान् शङ्करसे युगल-मन्त्रका उपदेश प्राप्त किया था। श्रीकृष्ण-मन्त्रका रहस्य, जिसे तुम भूल चुके हो, स्मरण तो करो।

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! परम बुद्धिमान् सनत्कुमारजीके द्वारा ऐसा कहनेपर देवर्षि नारदने ध्यानमें स्थित हो अपने पूर्व-जन्मके चिरन्तन चरित्रको शीघ्र जान लिया। तब उन्होंने मुखसे आन्तरिक प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा—'भगवन्! पूर्व-कल्पका और वृत्तान्त तो मुझे स्मरण हो आया है; परंतु युगल-मन्त्रका लाभ किस प्रकार हुआ, यह याद नहीं आता।' महात्मा नारदका यह वचन सुनकर भगवान् सनत्कुमारने सब बातें यथावत्-रूपसे बतलाना आरम्भ किया।

सनत्कुमारजी बोले—ब्रह्मन्! सुनो, इस सारस्वत कल्पसे पचीसवें कल्प पूर्वकी बात है, तुम कश्यपजीके पुत्र होकर उत्पन्न हुए थे। उस समय भी तुम्हारा नाम नारद ही था। एक दिन तुम भगवान् श्रीकृष्णका परम तत्त्व पूछनेके लिये कैलास पर्वतपर भगवान् शिवके समीप गये। वहाँ तुम्हारे प्रश्न करनेपर, महादेवजीने स्वयं जिसका साक्षात्कार किया था, श्रीहरिकी नित्य-लीलासे सम्बन्ध रखनेवाले उस परम रहस्यका तुमसे यथार्थरूपमें वर्णन किया। तब तुमने श्रीहरिकी नित्य-लीलाका दर्शन करनेके लिये भगवान् शङ्करसे पुनः प्रार्थना की। तब भगवान् सदाशिव इस प्रकार बोले—'गोपीजनवल्लभचरणाञ्छरणं प्रपद्ये'[1] यह मन्त्र है। इस मन्त्रके सुरभि ऋषि, गायत्री छन्द और गोपीवल्लभ भगवान् श्रीकृष्ण देवता कहे गये हैं, 'प्रपन्नोऽस्मि' ऐसा कहकर भगवान्‌की शरणागतिरूप भक्ति प्राप्त करनेके लिये इसका विनियोग बताया गया है। विप्रवर! इसका सिद्धादि-शोधन नहीं होता। इसके लिये न्यासकी कल्पना भी नहीं की गयी है। केवल इस मन्त्रका चिन्तन ही भगवान्‌की नित्य लीलाको तत्काल प्रकाशित कर देता है। गुरुसे मन्त्र ग्रहण करके उनमे भक्तिभाव रखते हुए अपने धर्मपालनमें संलग्न हो गुरुदेवकी अपने ऊपर पूर्ण कृपा समझे और सेवाओंसे गुरुको संतुष्ट करे। साधुपुरुषोंके धर्मोंकी, जो शरणागतोंके भयको दूर करनेवाले हैं, शिक्षा ले। इहलोक और परलोककी चिन्ता छोड़कर उन सिद्धिदायक धर्मोंको अपनावे। 'इहलोक-का सुख, भोग और आयु पूर्वकर्मोंके अधीन हैं, कर्मानुसार उनकी व्यवस्था भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं ही करेंगे।' ऐसा दृढ़ विचार कर अपने मन और बुद्धिके द्वारा निरन्तर नित्यलीलापरायण श्रीकृष्णका चिन्तन करे। दिव्य अर्चाविग्रहोंके रूपमें भी भगवान्‌का अवतार होता है। अतः उन विग्रहोंकी सेवा-पूजा-द्वारा सदा श्रीकृष्णकी आराधना करे। भगवान्‌की शरण चाहनेवाले प्रपन्न भक्तोंको अनन्यभावसे उनका चिन्तन करना चाहिये और विद्वानोंको भगवान्‌का आश्रय रखकर देह-गेह आदिकी ओरसे उदासीन रहना चाहिये। गुरुकी अवहेलना, साधु-महात्माओंकी निन्दा, भगवान् शिव और विष्णुमें भेद करना, वेदनिन्दा, भगवन्नामके बलपर पापाचार करना, भगवन्नामकी महिमाको अर्थवाद समझना, नाम लेनेमे पाखण्ड फैलाना, आलसी और नास्तिकको भगवन्नामका उपदेश देना,

१. गोपीजनवल्लभ श्रीराधाकृष्णके चरणोंकी शरण लेता हूँ।

इन्द्रियोंके नियन्ता और प्रेरक, ३६. **क्रीडामनुजबालकः**=लीलाके लिये मनुष्य-बालकका रूप धारण किये हुए।

३७. **लीलाविध्वस्तशकटः**=अनायास ही चरणोंके स्पर्शसे छकड़ेको उलटकर उसमे स्थित असुरका नाश करनेवाले, ३८. **वेदमन्त्राभिषेचितः**=यशोदा मैयाकी प्रेरणासे बालारिष्टनिवारणके लिये ब्राह्मणोंद्वारा वेदमन्त्रसे अभिषिक्त, ३९. **यशोदानन्दनः**=यशोदा मैयाको आनन्द देनेवाले, ४०. **कान्तः**=कमनीय स्वरूप, ४१. **मुनिकोटिनिषेवितः**=करोड़ों मुनियोंद्वारा सेवित।

४२. **नित्यं मधुवनावासी**=मधुवनमें नित्य निवास करनेवाले, ४३. **वैकुण्ठः**=वैकुण्ठधामके अधिपति विष्णु, ४४. **सम्भवः**=सबकी उत्पत्तिके स्थान, ४५. **क्रतुः**=यज्ञस्वरूप, ४६. **रमापतिः**=लक्ष्मीपति, ४७. **यदुपतिः**=यदुवंशियोंके स्वामी, ४८. **मुरारिः**=मुर दैत्यके नाशक, ४९. **मधुसूदनः**=मधुनामक दैत्यको मारनेवाले।

५०. **माधवः**=यदुवंशान्तर्गत मधुकुलमें प्रकट, ५१. **मानहारी**=अभिमान और अहंकारका नाश करनेवाले, ५२. **श्रीपतिः**=लक्ष्मीके स्वामी, ५३. **भूधरः**=शेषनाग-रूपसे पृथ्वीको धारण करनेवाले, ५४. **प्रभुः**=सर्वसमर्थ, ५५. **बृहद्वनमहालीलः**=महावनमें बड़ी-बड़ी लीलाएँ करनेवाले, ५६. **नन्दसूनुः**=नन्दजीके पुत्र, ५७. **महासनः**=अनन्त शेषरूपी महान् आसनपर विराजनेवाले।

५८. **तृणावर्तप्राणहारी**=तृणावर्त नामक दैत्यको मारनेवाले, ५९. **यशोदाविस्मयप्रदः**=अपनी अद्भुत लीलाओंसे यशोदा मैयाको आश्चर्यमें डाल देनेवाले, ६०. **त्रैलोक्यवक्त्रः**=अपने मुखमे तीनों लोकोंको दिखानेवाले, ६१. **पद्माक्षः**=विकसित कमलदलके समान विशाल नेत्रोंवाले, ६२. **पद्महस्तः**=हाथमें कमल धारण करनेवाले, ६३. **प्रियङ्करः**=सबका प्रिय कार्य करनेवाले।

६४. **ब्रह्मण्यः**=ब्राह्मण-हितकारी, ६५. **धर्मगोप्ता**=धर्मकी रक्षा करनेवाले, ६६. **भूपतिः**=पृथ्वीके स्वामी, ६७. **श्रीधरः**=वक्षःस्थलमे लक्ष्मीको धारण करनेवाले, ६८. **स्वराट्**=स्वयप्रकाश, ६९. **अजाध्यक्षः**=ब्रह्माजीके स्वामी, ७०. **शिवाध्यक्षः**=भगवान् शिवके स्वामी, ७१. **धर्माध्यक्षः**=धर्मके अधिपति, ७२. **महेश्वरः**=परमेश्वर।

७३. **वेदान्तवेद्यः**=उपनिषदोंद्वारा जाननेयोग्य परमात्मा, ७४. **ब्रह्मस्थः**=वेदमे स्थित, ७५. **प्रजापतिः**=सम्पूर्ण जीवोंके पालक, ७६. **अमोघदृक्**=जिनकी दृष्टि कभी चूकती नहीं ऐसे सर्वसाक्षी, ७७. **गोपीकरावलम्बी**=गोपियोंके हाथको पकड़कर नाचनेवाले, ७८. **गोपबालकसुप्रियः**=गोपबालकोंके अत्यन्त प्रियतम।

७९. **बलानुयायी**=बलरामजीका अनुकरण करनेवाले, ८०. **बलवान्**=बली, ८१. **श्रीदामप्रियः**=श्रीदामाके प्रिय सखा, ८२. **आत्मवान्**=मनको वशमें करनेवाले, ८३. **गोपीगृहाङ्गणरतिः**=गोपियोके घर और आँगनमें खेलनेवाले, ८४. **भद्रः**=कल्याणस्वरूप, ८५. **सुश्लोकमङ्गलः**=अपने लोकपावन सुयशसे सबका मङ्गल करनेवाले।

८६. **नवनीतहरः**=माखनका हरण करनेवाले, ८७. **बालः**=बाल्यावस्थासे विभूषित, ८८. **नवनीतप्रियाशनः**=मक्खन जिनका प्यारा भोजन है, ८९. **बालवृन्दी**=गोप-बालकोंके समुदायको साथ रखनेवाले, ९०. **मर्कवृन्दी**=वानरोंके झुंडके साथ खेलनेवाले, ९१. **चकिताक्षः**=आश्चर्य-युक्त चञ्चल नेत्रोंसे देखनेवाले, ९२. **पलायितः**=मैयाकी साँटीके भयसे भाग जानेवाले।

९३. **यशोदातर्जितः**=यशोदा मैयाकी डाँट सहनेवाले, ९४. **कम्पी**=मैया मारेगी इस भयसे काँपनेवाले, ९५. **मायारुदितशोभनः**=लीलाकृत रुदनसे सुशोभित, ९६. **दामोदरः**=मैयाद्वारा रस्सीसे कमरमें बाँधे जानेवाले, ९७. **अप्रमेयात्मा**=जिसकी कोई माप नहीं ऐसे स्वरूपसे युक्त, ९८. **दयालुः**=सबपर दया करनेवाले, ९९. **भक्तवत्सलः**=भक्तोंसे प्यार करनेवाले।

१००. **उलूखले सुबद्धः**=ऊखलमें अच्छी तरह बँधे हुए, १०१. **नम्रशिरा**=झुके मस्तकवाले, १०२. **गोपीकदर्थितः**=गोपियोंद्वारा यशोदा मैयाके पास जिनके बाल-चापल्यकी शिकायत की गयी है वे, १०३. **वृक्षभङ्गी**=यमलार्जुन नामक वृक्षोंको भङ्ग करनेवाले, १०४. **शोकभङ्गी**=स्वयं सुरक्षित रहकर स्वजनोंका शोक-भङ्ग करनेवाले, १०५. **धनदात्मजमोक्षणः**=कुबेरपुत्रोंका उद्धार करनेवाले।

१०६. **देवर्षिवचनश्लाघी**=देवर्षि नारदके वचनका आदर करनेवाले, १०७. **भक्तवात्सल्यसागरः**=भक्तवत्सलताके समुद्र, १०८. **व्रजकोलाहलकरः**=अपनी बालोचित क्रीड़ाओंसे व्रजमें कोलाहल मचा देनेवाले, १०९. **व्रजानन्दविवर्धनः**=व्रजवासियोंके आनन्दकी वृद्धि करनेवाले।

११०. **गोपात्मा**=गोपस्वरूप, १११. **प्रेरकः**=इन्द्रिय,

विदीर्ण करनेवाले, १८०. **गोपगोप्ता**=ग्वालोंके रक्षक, १८१. **दावाग्निपरिशोषकः**=दावानलका शोषण करनेवाले।

१८२. **गोपकन्यावस्त्रहारी**=गोपकुमारियोंके चीर हरण करनेवाले, १८३. **गोपकन्यावरप्रदः**=गोपकन्याओंको वर देनेवाले, १८४. **यज्ञपत्न्यन्नभोजी**=यज्ञपत्नियोंके अन्न भोजन करनेवाले, १८५. **मुनिमानापहारकः**=अपनेको मुनि माननेवाले ब्राह्मणोंके अभिमानको दूर करनेवाले ।

१८६. **जलेशमानमथनः**=जलके स्वामी वरुणका मान-मर्दन करनेवाले, १८७. **नन्दगोपालजीवनः**=अजगरसे छुडाकर नन्दगोपको जीवन देनेवाले, १८८. **गन्धर्वशापमोक्ता**=अजगररूपमें आये हुए गन्धर्व(विद्याधर)को शापसे छुडानेवाले, १८९. **शङ्खचूडशिरोहरः**=शङ्खचूड नामक गुह्यकका मस्तक काट लेनेवाले ।

१९०. **वंशीवटी**=वंशीवटके समीप लीला करनेवाले, १९१. **वेणुवादी**=वंशी बजानेवाले, १९२. **गोपीचिन्तापहारकः**=गोपियोंकी चिन्ताको दूर करनेवाले, १९३. **सर्वगोप्ता**=सबके रक्षक, १९४. **समाह्वानः**=सबके द्वारा पुकारे जानेवाले, १९५. **सर्वगोपीमनोरथः**=सम्पूर्ण गोपाङ्गनाओंके अभीष्ट ।

१९६. **व्यङ्ग्यधर्मप्रवक्ता**=व्यङ्ग्योक्तिद्वारा धर्मका उपदेश देनेवाले, १९७. **गोपीमण्डलमोहनः**=गोपसुन्दरियोंके समुदायको मोहित करनेवाले, १९८. **रासक्रीडारसास्वादी**=रासक्रीडाके रसका आस्वादन करनेवाले, १९९. **रसिकः**=रसका अनुभव करनेवाले, २००. **राधिकाधवः**=श्रीराधाके प्राणनाथ ।

२०१. **किशोरीप्राणनाथः**=श्रीकिशोरीजीके प्राणवल्लभ, २०२. **वृषभानुसुताप्रियः**=वृषभानुनन्दिनीके प्यारे, २०३. **सर्वगोपीजनानन्दी**=सम्पूर्ण गोपीजनोंको आनन्द देनेवाले, २०४. **गोपीजनविमोहनः**=गोपाङ्गनाओंके मनको मोह लेनेवाले ।

२०५. **गोपिकागीतचरितः**=गोपाङ्गनाओंद्वारा गाये हुए पावन चरित्रवाले, २०६. **गोपीनर्तनलालसः**=गोपियोंके रासनृत्यकी अभिलाषा रखनेवाले, २०७. **गोपीस्कन्धाश्रितकरः**=गोपीके कंधेपर हाथ रखकर चलनेवाले, २०८. **गोपिकाचुम्बनप्रियः**=यशोदा आदि मातृस्थानीया वात्सल्यवती गोपियोंके द्वारा किया जानेवाला मुखचुम्बन जिन्हे प्रिय है वे श्यामसुन्दर ।

२०९. **गोपिकामार्जितमुखः**=गोपाङ्गनाएँ अपने अञ्चलसे जिनका मुख पोंछती है वे, २१०. **गोपीव्यजनवीजितः**=गोपियाँ जिन्हें पंखा डुलाकर आराम पहुँचाती हैं वे, २११. **गोपिकाकेशसंस्कारी**=गोपिकाके केशोंको सँवारनेवाले, २१२. **गोपिकापुष्पसंस्तरः**=गोपिकाका फूलोंसे शृङ्गार करनेवाले ।

२१३. **गोपिकाहृदयालम्बी**=गोपीके हृदयका आश्रय लेनेवाले, २१४. **गोपीवहनतत्परः**=गोपी (श्रीराधा) को कंधेपर बिठाकर ढोनेके लिये प्रस्तुत, २१५. **गोपिकामदहारी**=गोपाङ्गनाओंके अभिमानको चूर्ण करनेवाले, २१६. **गोपिकापरमार्जितः**=गोपाङ्गनाओंको परम फलके रूपमें प्राप्त ।

२१७. **गोपिकाकृतसल्लीलः**=रासलीलामें अन्तर्धान हो जानेपर गोपिकाओंने जिनकी पवित्र लीलाओंका अनुकरण किया था वे श्रीकृष्ण, २१८. **गोपिकासंस्मृतप्रियः**=गोपिकाओंद्वारा निरन्तर चिन्तन किये जानेवाले प्रियतम, २१९. **गोपिकावन्दितपदः**=गोपाङ्गनाओंद्वारा वन्दित चरणोंवाले, २२०. **गोपिकावशवर्तनः**=गोपसुन्दरियोंके वशमें रहनेवाले।

२२१. **राधापराजितः**=श्रीराधारानीसे हार मान लेनेवाले, २२२. **श्रीमान्**=शोभाशाली, २२३. **निकुञ्जे सुविहारवान्**=वृन्दावनके कुञ्जमें सुन्दर लीला करनेवाले, २२४. **कुञ्जप्रियः**=निकुञ्जके प्रेमी, २२५. **कुञ्जवासी**=कुञ्जमे निवास करनेवाले, २२६. **वृन्दावनविकाशनः**=वृन्दावनको प्रकाशित करनेवाले ।

२२७. **यमुनाजलसिक्ताङ्गः**=यमुनाजीके जलसे अभिषिक्त अङ्गोंवाले, २२८. **यमुनासौख्यदायकः**=यमुनाजीको सुख देनेवाले, २२९. **शशिसंस्तम्भनः**=रासलीलाकी रात्रिमें चन्द्रमाकी गतिको रोक देनेवाले, २३०. **शूरः**=अखण्ड शौर्यसम्पन्न, २३१. **कामी**=प्रेमी भक्तोंसे मिलनेकी कामनावाले, २३२. **कामविमोहनः**=अपनी दिव्य लीलाओंसे कामदेवको विमोहित कर देनेवाले ।

२३३. **कामाद्यः**=कामदेवके आदिकारण, २३४. **कामनाथः**=कामके स्वामी, २३५. **काममानसभेदनः**=कामदेवके भी हृदयका भेदन करनेवाले, २३६. **कामदः**=इच्छानुरूप भोग देनेवाले, २३७. **कामरूपः**=भक्तजनोंकी कामनाके अनुरूप रूप धारण करनेवाले, २३८. **कामिनीकामसंचयः**=गोपकामिनियोंके प्रेमका सग्रह करनेवाले ।

२३९. **नित्यक्रीडः**=नित्य खेल करनेवाले, २४०. **महालीलः**=महती लीला करनेवाले, २४१. **सर्वः**=सर्वस्वरूप, २४२. **सर्वगतः**=सर्वत्र व्यापक, २४३. **परमात्मा**=परब्रह्मस्वरूप, २४४. **पराधीशः**=परमेश्वर, २४५. **सर्वकारणकारणः**=समस्त कारणोंके भी कारण ।

३१९. **संकर्षणसहाध्यायी**=बलरामजीके सहपाठी, ३२०. **सुदामसुहृत्**=सुदामा ब्राह्मणके सखा, ३२१. **विद्यानिधिः**=विद्याके भण्डार, ३२२. **कलाकोषः**=सम्पूर्ण कलाओंके कोषागार, ३२३. **मृतपुत्रप्रदः**=मरे हुए गुरुपुत्रोंको यमलोकसे जीवित लाकर गुरुकी सेवामें अर्पित करनेवाले।

३२४. **चक्री**=सुदर्शन चक्रधारी, ३२५. **पाञ्चजनी**=पाञ्चजन्य शङ्ख धारण करनेवाले, ३२६. **सर्वनारकिमोचनः**=सम्पूर्ण नरकवासियोंका उद्धार करनेवाले, ३२७. **यमार्चितः**=यमराजद्वारा पूजित, ३२८. **परः**=सर्वोत्कृष्ट, ३२९. **देवः**=द्युतिमान्, ३३०. **नामोच्चारवशः**=अपने नामके उच्चारणमात्रसे वशमें हो जानेवाले, ३३१. **अच्युतः**=अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले।

३३२. **कुब्जाविलासी**=कुब्जाके कुबड़ेपनको मिटानेकी लीला करनेवाले, ३३३. **सुभगः**=पूर्ण सौभाग्यशाली, ३३४. **दीनबन्धुः**=दीन-दुखियों और असहायोंके बन्धु, ३३५. **अनूपमः**=जिनके समान दूसरा कोई नहीं, ३३६. **अक्रूरगृहगोप्ता**=अक्रूरके गृहकी रक्षा करनेवाले, ३३७. **प्रतिज्ञापालकः**=प्रतिज्ञाका पालन करनेवाले, ३३८. **शुभः**=शुभस्वरूप।

३३९. **जरासन्धजयी**=सत्रह बार जरासन्धको जीतनेवाले, ३४०. **विद्वान्**=सर्वज्ञ, ३४१. **यवनान्तः**=कालयवनका अन्त करनेवाले, ३४२. **द्विजाश्रयः**=द्विजोंके आश्रय, ३४३. **मुचुकुन्दप्रियकरः**=मुचुकुन्दका प्रिय करनेवाले, ३४४. **जरासन्धपलायितः**=अठारहवीं बारके युद्धमें जरासन्धके सामनेसे युद्ध छोड़कर भाग जानेवाले।

३४५. **द्वारकाजनकः**=द्वारकापुरीको प्रकट करनेवाले, ३४६. **गूढः**=मानवरूपमे छिपे हुए परमात्मा, ३४७. **ब्रह्मण्यः**=ब्राह्मणभक्त, ३४८. **सत्यसंगरः**=सत्यप्रतिज्ञ, ३४९. **लीलाधरः**=लीलाधारी, ३५०. **प्रियकरः**=सबका प्रिय करनेवाले, ३५१. **विश्वकर्मा**=बहुत प्रकारके कर्म करनेवाले, ३५२. **यशप्रदः**=दूसरोंको यश देनेवाले।

३५३. **रुक्मिणीप्रियसंदेशः**=रुक्मिणीको प्रिय संदेश देनेवाले, ३५४. **रुक्मिशोकविवर्धनः**=रुक्मीका शोक बढ़ानेवाले, ३५५. **चैद्यशोकालयः**=शिशुपालके लिये शोकके भण्डार, ३५६. **श्रेष्ठः**=उत्तम गुणसम्पन्न, ३५७. **दुष्टराजन्यनाशनः**=दुष्ट राजाओंका नाश करनेवाले।

३५८. **रुक्मिवैरूप्यकरणः**=रुक्मीके आधे बाल मुड़ाकर उसे कुरूप बना देनेवाले, ३५९. **रुक्मिणीवचने रतः**=रुक्मिणीके वचनका पालन करनेमें तत्पर, ३६०. **बलभद्रवचोग्राही**=बलभद्रजीकी आज्ञा माननेवाले, ३६१. **मुक्तरुक्मी**=रुक्मीको जीवित छोड़ देनेवाले, ३६२. **जनार्दनः**=भक्तोंद्वारा याचित।

३६३. **रुक्मिणीप्राणनाथः**=रुक्मिणीके प्राणवल्लभ, ३६४. **सत्यभामापतिः**=सत्यभामाके स्वामी, ३६५. **स्वयं भक्तपक्षी**=स्वयं ही भक्तोंका पक्ष लेनेवाले, ३६६. **भक्तिवश्यः**=भक्तिसे वशमें हो जानेवाले, ३६७. **अक्रूरमणिदायकः**=अक्रूरजीको स्यमन्तकमणि देनेवाले।

३६८. **शतधन्वप्राणहारी**=शतधन्वाके प्राण लेनेवाले, ३६९. **ऋक्षराजसुताप्रियः**=रीछोंके राजा जाम्बवान्‌की पुत्रीके प्रियतम पति, ३७०. **सत्राजित्तनयाकान्तः**=सत्राजित्‌की सुपुत्री सत्यभामाके प्राणवल्लभ, ३७१. **मित्रविन्दापहारकः**=मित्रविन्दाका अपहरण करनेवाले।

३७२. **सत्यापतिः**=नग्नजित्‌की पुत्री सत्याके स्वामी, ३७३. **लक्ष्मणाजित्**=स्वयंवरमें लक्ष्मणाको जीतनेवाले, ३७४. **पूज्यः**=पूजाके योग्य, ३७५. **भद्राप्रियङ्करः**=भद्राका प्रिय करनेवाले, ३७६. **नरकासुरघाती**=नरकासुरका वध करनेवाले, ३७७. **लीलाकन्याहरः**=लीलापूर्वक षोडश सहस्र कन्याओंको नरकासुरकी कैदसे छुड़ाकर अपने साथ ले जानेवाले, ३७८. **जयी**=विजयशील।

३७९. **मुरारिः**=मुर दैत्यका नाश करनेवाले, ३८०. **मदनेशः**=कामदेवपर भी शासन करनेवाले, ३८१. **धरित्रीदुःखनाशनः**=धरतीका दुःख दूर करनेवाले, ३८२. **वैनतेयी**=गरुड़के स्वामी, ३८३. **स्वर्गगामी**=पारिजातके लिये स्वर्गलोककी यात्रा करनेवाले, ३८४. **अदित्याः कुण्डलप्रदः**=अदितिको कुण्डल देनेवाले।

३८५. **इन्द्रार्चितः**=इन्द्रके द्वारा पूजित, ३८६. **रमाकान्तः**=लक्ष्मीके प्रियतम, ३८७. **वज्रिभार्याप्रपूजितः**=इन्द्रपत्नी शचीके द्वारा पूजित, ३८८. **पारिजातापहारी**=पारिजात वृक्षका अपहरण करनेवाले, ३८९. **शक्रमानापहारकः**=इन्द्रका अभिमान चूर्ण करनेवाले।

३९०. **प्रद्युम्नजनकः**=प्रद्युम्नके पिता, ३९१. **साम्बतातः**=साम्बके पिता, ३९२. **बहुसुतः**=अधिक पुत्रोंवाले, ३९३. **विधुः**=विष्णुस्वरूप, ३९४. **गर्गाचार्यः**=गर्गमुनिको आचार्य बनानेवाले, ३९५. **सत्यगतिः**=सत्यसे ही प्राप्त होनेवाले, ३९६. **धर्माधारः**=धर्मके आश्रय, ३९७. **धराधरः**=पृथ्वीको धारण करनेवाले।

४६६. भाण्डीरवटसंवासी=भाण्डीर वटके नीचे निवास करनेवाले, **४६७. नित्यं वंशीवटस्थितः**=वंशीवटपर सदा स्थित रहनेवाले, **४६८. नन्दग्रामकृतावासः**=नन्दगॉवमें निवास करनेवाले, **४६९. वृषभानुगृहप्रियः**=वृषभानुजीके गृहको प्रिय माननेवाले।

४७०. गृहीतकामिनीरूपः=मोहिनीका रूप धारण करनेवाले, **४७१. नित्यं रासविलासकृत्**=नित्य रासलीला करनेवाले, **४७२. वल्लवीजनसंगोप्ता**=गोपाङ्गनाओंके रक्षक, **४७३. वल्लवीजनवल्लभः**=गोपीजनोंके प्रियतम।

४७४. देवशर्मकृपाकर्ता=देवशर्मापर कृपा करनेवाले, **४७५. कल्पपादपसंस्थितः**=कल्पवृक्षके नीचे रहनेवाले, **४७६. शिलानुगन्धनिलयः**=शिलामय सुगन्धित भवनमें निवास करनेवाले, **४७७. पादचारी**=पैदल चलनेवाले, **४७८. घनच्छविः**=मेघके समान श्यामकान्तिवाले।

४७९. अतसीकुसुमप्रख्यः=तीसीके फूलके-से वर्णवाले, **४८०. सदा लक्ष्मीकृपाकरः**=लक्ष्मीजीपर सदा कृपा करनेवाले, **४८१. त्रिपुरारिप्रियकरः**=महादेवजीका प्रिय करनेवाले, **४८२. उग्रधन्वा**=भयङ्कर धनुषवाले, **४८३. अपराजितः**=किसीसे भी परास्त न होनेवाले।

४८४. षड्धुरध्वंसकर्ता=षड्धुरका नाश करनेवाले, **४८५. निकुम्भप्राणहारकः**=निकुम्भके प्राणोंको हरनेवाले, **४८६. वज्रनाभपुरध्वंसी**=वज्रनाभपुरका ध्वंस करनेवाले, **४८७. पौण्ड्रकप्राणहारकः**=पौण्ड्रकके प्राणोंका अन्त करनेवाले।

४८८. बहुलाश्वप्रीतिकर्ता=मिथिलाके राजा बहुलाश्वपर प्रेम करनेवाले, **४८९. द्विजवर्यप्रियङ्करः**=श्रेष्ठ ब्राह्मण भक्तशिरोमणि श्रुतदेवका प्रिय करनेवाले, **४९०. शिवसंकटहारी**=भगवान् शिवका संकट टालनेवाले, **४९१. वृकासुरविनाशनः**=वृकासुरका नाश करनेवाले।

४९२. भृगुसत्कारकारी=भृगुजीका सत्कार करनेवाले, **४९३. शिवसात्त्विकताप्रदः**=भगवान् शिवको सात्त्विकता देनेवाले, **४९४. गोकर्णपूजकः**=गोकर्णकी पूजा करनेवाले, **४९५. साम्बकुष्ठविध्वंसकारणः**=साम्बकी कोढ़का नाश करनेवाले।

४९६. वेदस्तुतः=वेदोंके द्वारा स्तुत, **४९७. वेदवेत्ता**=वेदज्ञ, **४९८. यदुवंशविवर्धनः**=यदुकुलको बढ़ानेवाले, **४९९. यदुवंशविनाशी**=यदुकुलका संहार करनेवाले, **५००. उद्धवोद्धारकारकः**=उद्धवका उद्धार करनेवाले।

५०१. राधा=श्रीकृष्णकी आराध्या देवी, उन्हींकी आह्लादिनी शक्ति, **५०२. राधिका**=श्रीकृष्णकी आराधना करनेवाली वृषभानुपुत्री, **५०३. आनन्दा**=आनन्दस्वरूपा, **५०४. वृषभानुजा**=वृषभानुगोपकी कन्या, **५०५. वृन्दावनेश्वरी**=वृन्दावनकी स्वामिनी, **५०६. पुण्या**=पुण्यमयी, **५०७. कृष्णमानसहारिणी**=श्रीकृष्णका चित्त चुरानेवाली।

५०८. प्रगल्भा=प्रतिभा, साहस, निर्भयता और उदार बुद्धिसे सम्पन्न, **५०९. चतुरा**=चतुराईसे युक्त, **५१०. कामा**=प्रेमस्वरूपा, **५११. कामिनी**=एकमात्र श्रीकृष्णको चाहनेवाली, **५१२. हरिमोहिनी**=श्रीकृष्णको मोहित करनेवाली, **५१३. ललिता**=मनोहर सौन्दर्यसे सुशोभित, **५१४. मधुरा**=माधुर्य भावसे युक्त, **५१५. माध्वी**=मधुमयी, **५१६. किशोरी**=नित्यकिशोरावस्थासे युक्त, **५१७. कनकप्रभा**=सुवर्णके समान कान्तिवाली।

५१८. जितचन्द्रा=मुखके सौन्दर्यसे चन्द्रमाको भी परास्त करनेवाली, **५१९. जितमृगा**=चञ्चल चकित नेत्रोंकी शोभासे मृगको भी मात करनेवाली, **५२०. जितसिंहा**=सूक्ष्म कटि-भागकी कमनीयतासे मृगराज सिंहके भी मदको चूर्ण करनेवाली, **५२१. जितद्विपा**=मन्द-मन्द गतिसे गजेन्द्रका भी गर्व खर्व करनेवाली, **५२२. जितरम्भा**=ऊरुओंकी स्निग्धतासे कदलीको भी तिरस्कृत करनेवाली, **५२३. जितपिका**=अपने मधुर कण्ठस्वरसे कोयलको भी तिरस्कृत करनेवाली, **५२४. गोविन्दहृदयोद्भवा**=श्रीकृष्णके हृदयसे प्रकट हुई।

५२५. जितबिम्बा=अपने अधरकी अरुणिमासे बिम्बफलको भी तिरस्कृत करनेवाली, **५२६. जितशुका**=नुकीली नासिकाकी शोभासे तोतेको भी लज्जा देनेवाली, **५२७. जितपद्मा**=अपने अनिर्वचनीय रूप-लावण्यसे लक्ष्मीको भी लज्जित करनेवाली, **५२८. कुमारिका**=नित्य कुमारी, **५२९. श्रीकृष्णाकर्षणा**=श्रीकृष्णको अपनी ओर खींचनेवाली, **५३०. देवी**=दिव्यस्वरूपा, **५३१. नित्ययुग्मस्वरूपिणी**=नित्य युगलरूपा।

५३२. नित्यं विहारिणी=श्यामसुन्दरके साथ नित्य लीला करनेवाली, **५३३. कान्ता**=नन्दनन्दनकी प्रियतमा, **५३४. रसिका**=प्रेमरसका आस्वादन करनेवाली, **५३५. कृष्णवल्लभा**=श्रीकृष्णप्रिया, **५३६. आमोदिनी**=श्रीकृष्णको आमोद प्रदान करनेवाली, **५३७. मोदवती**=मोदमयी, **५३८. नन्दनन्दनभूषिता**=नन्दनन्दन श्रीकृष्णके द्वारा जिनका शृङ्गार किया गया है।

हुई; ६१३. **कृष्णा**=कृष्णस्वरूपा, ६१४. **विश्वा**=विश्वस्वरूपा, ६१५. **हरिप्रिया**=श्रीकृष्णकी प्रेयसी, ६१६. **अजागम्या**=ब्रह्माजीके लिये अगम्य, ६१७. **भवागम्या**=महादेवजीके लिये अगम्य, ६१८. **गोवर्धनकृतालया**=गोवर्धन पर्वतपर निवास करनेवाली।

६१९. **यमुनातीरनिलया**=यमुनातटपर रहनेवाली, ६२०. **शश्वद्गोविन्दजल्पिनी**=सदा श्रीकृष्ण गोविन्दकी रट लगानेवाली, ६२१. **शश्वन्मानवती**=नित्य मानिनी, ६२२. **स्निग्धा**=स्नेहमयी, ६२३. **श्रीकृष्णपरिवन्दिता**=श्रीकृष्णके द्वारा नित्य वन्दित।

६२४. **कृष्णस्तुता**=श्रीकृष्णके द्वारा जिनका गुणगान किया गया है, ६२५. **कृष्णव्रता**=श्रीकृष्णपरायणा, ६२६. **श्रीकृष्णहृदयालया**=श्रीकृष्णके हृदयमें निवास करनेवाली, ६२७. **देवद्रुमफला**=कल्पवृक्षके समान मनोवाञ्छित फल देनेवाली, ६२८. **सेव्या**=सेवन करनेयोग्य, ६२९. **वृन्दावनरसालया**=वृन्दावनके रसमें निमग्न रहनेवाली।

६३०. **कोटितीर्थमयी**=कोटितीर्थ-स्वरूपा, ६३१. **सत्या**=सत्यस्वरूपा, ६३२. **कोटितीर्थफलप्रदा**=करोड़ों तीर्थोंका फल देनेवाली, ६३३. **कोटियोगसुदुष्प्राप्या**=करोडों योगसाधनोंसे भी दुर्लभ, ६३४. **कोटियज्ञदुराश्रया**=कोटि यज्ञोंसे भी जिनकी शरणागति प्राप्त होनी कठिन है।

६३५. **मनसा**=मनसा नामसे प्रसिद्ध, ६३६. **शशिलेखा**=श्रीकृष्णरूपी चन्द्रमाकी कला, ६३७. **श्रीकोटिसुभगा**=कोटि लक्ष्मीके समान सौभाग्यवती, ६३८. **अनघा**=पापशून्य, ६३९. **कोटिमुक्तसुखा**=करोड़ों मुक्तात्माओंके समान सुखी, ६४०. **सौम्या**=सौम्यस्वरूपा, ६४१. **लक्ष्मीकोटिविलासिनी**=करोड़ों लक्ष्मियोंके समान विलासवती।

६४२. **तिलोत्तमा**=ठोढ़ीमें तिलके आकारकी बेंदी या चिह्न होनेके कारण अतिशय उत्तम सौन्दर्ययुक्त, ६४३. **त्रिकालस्था**=भूत, भविष्य, वर्तमान—तीनों कालोंमें विद्यमान, ६४४. **त्रिकालज्ञा**=तीनों कालोंकी घटनाओंको जाननेवाली, ६४५. **अधीश्वरी**=स्वामिनी, ६४६. **त्रिवेदज्ञा**=तीनों वेदोंको जाननेवाली, ६४७. **त्रिलोकज्ञा**=तीनों लोकोंको जाननेवाली, ६४८. **तुरीयान्तनिवासिनी**=जाग्रत्से लेकर तुरीयापर्यन्त सब अवस्थाओंमें निवास करनेवाली।

६४९. **दुर्गाराध्या**=उमाके द्वारा आराध्य, ६५०. **रमाराध्या**=लक्ष्मीकी आराध्य देवी, ६५१. **विश्वाराध्या**=सम्पूर्ण जगत्के लिये आराधनीया, ६५२. **चिदात्मिका**=चेतनस्वरूपा, ६५३. **देवाराध्या**=देवताओंकी आराध्य देवी, ६५४. **पराराध्या**=परम आराध्य देवी, ६५५. **ब्रह्माराध्या**=ब्रह्माजीके द्वारा उपास्य, ६५६. **परात्मिका**=परमात्मस्वरूपा।

६५७. **शिवाराध्या**=भगवान् शिवके लिये आराध्य, ६५८. **प्रेमसाध्या**=प्रेमसे प्राप्त होनेयोग्य, ६५९. **भक्ताराध्या**=भक्तोंकी उपास्य देवी, ६६०. **रसात्मिका**=रसस्वरूपा, ६६१. **कृष्णप्राणार्पिणी**=श्रीकृष्णको जीवन देनेवाली, ६६२. **भामा**=मानिनी, ६६३. **शुद्धप्रेमविलासिनी**=विशुद्ध प्रेमसे सुशोभित होनेवाली।

६६४. **कृष्णाराध्या**=श्रीकृष्णकी आराध्यदेवी, ६६५. **भक्तिसाध्या**=अनन्य भक्तिसे प्राप्त होनेवाली, ६६६. **भक्तवृन्दनिषेविता**=भक्त-समुदायसे सेविता, ६६७. **विश्वाधारा**=सम्पूर्ण जगत्को आश्रय देनेवाली, ६६८. **कृपाधारा**=कृपाकी आधारभूमि, ६६९. **जीवाधारा**=सम्पूर्ण जीवोंको आश्रय देनेवाली, ६७०. **अतिनायिका**=सम्पूर्ण नायिकाओंसे उत्कृष्ट।

६७१. **शुद्धप्रेममयी**=विशुद्ध अनुराग-स्वरूपा, ६७२. **लज्जा**=मूर्तिमती लज्जा, ६७३. **नित्यसिद्धा**=सदा, बिना किसी साधनके, स्वतःसिद्ध, ६७४. **शिरोमणिः**=गोपाङ्गनाओंकी शिरोमणि, ६७५. **दिव्यरूपा**=दिव्य रूपवाली, ६७६. **दिव्यभोगा**=दिव्यभोगोंसे सम्पन्न, ६७७. **दिव्यवेषा**=अलौकिक वेषभूषाओंसे सुशोभित, ६७८. **मुदान्विता**=सदा आनन्द-मग्न रहनेवाली।

६७९. **दिव्याङ्गनावृन्दसारा**=दिव्य युवतियोंके समुदायकी सार-सर्वस्वरूपा, ६८०. **नित्यनूतनयौवना**=नित्य नवीन यौवनसे युक्त, ६८१. **परब्रह्मावृता**=परब्रह्म परमात्मासे आवृत, ६८२. **ध्येया**=ध्यान करनेयोग्य, ६८३. **महारूपा**=परम सुन्दर रूपवाली, ६८४. **महोज्ज्वला**=परमोज्ज्वल प्रकाशमयी।

६८५. **कोटिसूर्यप्रभा**=करोडों सूर्योंकी प्रभासे उद्भासित, ६८६. **कोटिचन्द्रबिम्बाधिकच्छविः**=कोटि चन्द्रमण्डलसे अधिक छविवाली, ६८७. **कोमलामृतवाक्**=कोमल एवं अमृतके समान मधुर वचनवाली, ६८८. **आद्या**=आदिदेवी, ६८९. **वेदाद्या**=वेदोंकी आदिकारणस्वरूपा, ६९०. **वेददुर्लभा**=वेदोंकी भी पहुँचसे परे।

६९१. **कृष्णासक्ता**=श्रीकृष्णमें अनुरक्त, ६९२.

७६२. **विमलादिनिषेव्या**=विमला, उत्कर्षिणी आदि सखियोंद्वारा सेव्य, ७६३. **ललिताद्यर्चिता**=ललिता आदि सखियोंसे पूजित, ७६४. **सती**=उत्तम शील और सदाचारसे सम्पन्न, ७६५. **पद्मवृन्दस्थिता**=कमलवनमें निवास करनेवाली, ७६६. **हृष्टा**=हर्षसे युक्त, ७६७.**त्रिपुरापरिसेविता**=त्रिपुरसुन्दरीके द्वारा सेवित ।

७६८. **वृन्दावत्यर्चिता**=वृन्दावती देवीके द्वारा पूजित, ७६९. **श्रद्धा**=श्रद्धास्वरूपा, ७७०. **दुर्ज्ञेया**=बुद्धिकी पहुँचसे परे, ७७१. **भक्तवल्लभा**=भक्तप्रिया, ७७२. **दुर्लभा**=दुष्प्राप्य, ७७३. **सान्द्रसौख्यात्मा**=घनीभूत सुखस्वरूपा, ७७४. **श्रेयोहेतुः**=कल्याणकी प्राप्तिमे हेतु, ७७५. **सुभोगदा**=मुक्तिप्रद भोग देनेवाली ।

७७६. **सारङ्गा**=श्रीकृष्णप्रेमकी प्यासी चातकी, ७७७. **शारदा**=सरस्वतीस्वरूपा, ७७८. **बोधा**=ज्ञानमयी, ७७९. **सद्वृन्दावनचारिणी**=सुन्दर वृन्दावनमें विचरनेवाली, ७८०. **ब्रह्मानन्दा**=ब्रह्मानन्दस्वरूपा, ७८१. **चिदानन्दा**=चिदानन्दमयी, ७८२. **ध्यानानन्दा**=श्रीकृष्ण-ध्यानजनित आनन्दमें मग्न, ७८३. **अर्धमात्रिका**=अर्धमात्रास्वरूपा ।

७८४. **गन्धर्वा**=गानविद्यामें प्रवीण, ७८५.**सुरतज्ञा**=सुरतकलाको जाननेवाली, ७८६. **गोविन्दप्राणसङ्गमा**=गोविन्दके साथ एक प्राण होकर रहनेवाली, ७८७. **कृष्णाङ्गभूषणा**=श्रीकृष्णके अङ्गोंको विभूषित करनेवाली, ७८८. **रत्नभूषणा**=रत्नमय आभूषण धारण करनेवाली, ७८९. **स्वर्णभूषिता**=सोनेके आभूषणोंसे विभूषित ।

७९०. **श्रीकृष्णहृदयावासा**=श्रीकृष्णके हृदयमन्दिरमें निवास करनेवाली, ७९१. **मुक्ताकनकनासिका**=नासिकामें मुक्तायुक्त सुवर्णके आभूषण धारण करनेवाली, ७९२. **सद्रत्नकङ्कणयुता**=हाथोंमे सुन्दर रत्नजटित कंगन पहननेवाली, ७९३. **श्रीमन्नीलगिरिस्थिता**=शोभाशाली नीलाचलपर विराजमान ।

७९४. **स्वर्णनूपुरसम्पन्ना**=सोनेके नूपुरोंसे सुशोभित, ७९५. **स्वर्णकिङ्किणिमण्डिता**=सुवर्णकी किङ्किणी (करधनी) से अलंकृत, ७९६. **अशेषरासकुतुका**=महारासके लिये उत्कण्ठित रहनेवाली, ७९७. **रम्भोरुः**=केलेके समान जंघावाली, ७९८. **तनुमध्यमा**=क्षीण कटिवाली ।

७९९.**पराकृतिः**=सर्वोत्कृष्ट आकृतिवाली, ८००. **परानन्दा**=परमानन्दस्वरूपा, ८०१. **परस्वर्गविहारिणी**=स्वर्गसे भी परे गोलोक धाममें विहार करनेवाली, ८०२. **प्रसूनकवरी**=वेणीमें फूलोंके हार गूँथनेवाली, ८०३.**चित्रा**=विचित्र शोभामयी, ८०४. **महासिन्दूरसुन्दरी**=उत्तम सिन्दूरसे अति सुन्दर प्रतीत होनेवाली ।

८०५. **कैशोरवयसा**=किशोरावस्थासे युक्त, ८०६. **बाला**=मुग्धा, ८०७. **प्रमदाकुलशेखरा**=रमणीकुल-शिरोमणि, ८०८. **कृष्णाधरसुधास्वादा**=श्रीकृष्णनामरूपी सुधाका अधरोंके द्वारा नित्य आस्वादन करनेवाली, ८०९. **श्यामप्रेमविनोदिनी**=श्रीकृष्णप्रेमसे ही मनोरञ्जन करनेवाली ।

८१०. **शिखिपिच्छलसच्चूडा**=मयूर-पंखसे सुशोभित केशोंवाली, ८११. **स्वर्णचम्पकभूषिता**=स्वर्णचम्पाके आभूषणोंसे विभूषित, ८१२. **कुङ्कुमालक्तकस्तूरीमण्डिता**=रोली, महावर और कस्तूरीके शृङ्गारसे सुशोभित, ८१३. **अपराजिता**=कभी परास्त न होनेवाली ।

८१४. **हेमहारान्विता**=सुवर्णके हारसे अलङ्कृत, ८१५. **पुष्पहाराढ्या**=पुष्पमालासे मण्डित, ८१६. **रसवती**=प्रेम-रसमयी, ८१७. **माधुर्यमधुरा**=माधुर्य भावके कारण मधुर, ८१८. **पद्मा**=पद्मानामसे प्रसिद्ध, ८१९. **पद्महस्ता**=हाथमें कमल धारण करनेवाली, ८२०. **सुविश्रुता**=अति विख्यात ।

८२१. **भ्रूभङ्गभङ्कोदण्डकटाक्षसरसन्धिनी**=श्रीकृष्णके प्रति तिरछी भौंहरूपी सुदृढ़ धनुषपर कटाक्षरूपी बाणोंका संधान करनेवाली, ८२२. **शेषदेवशिरःस्था**=शेषजीके मस्तकपर पृथ्वीके रूपमें स्थित, ८२३. **नित्यस्थलविहारिणी**=नित्य लीलास्थलियोंमें विचरनेवाली ।

८२४. **कारुण्यजलमध्यस्था**=करुणारूपी जलराशिके मध्य विराजमान, ८२५. **नित्यमत्ता**=सदा प्रेममें मतवाली, ८२६. **अधिरोहिणी**=उन्नतिकी साधनरूपा, ८२७. **अष्टभाषावती**=आठ भाषाओंको जाननेवाली, ८२८. **अष्टनायिका**=ललिता आदि आठ सखियोंकी स्वामिनी, ८२९. **लक्षणान्विता**=उत्तम लक्षणोंसे युक्त ।

८३०. **सुनीतिज्ञा**=अच्छी नीतिको जाननेवाली ८३१. **श्रुतिज्ञा**=श्रुतिको जाननेवाली, ८३२. **सर्वज्ञा**=सब कुछ जाननेवाली, ८३३. **दुःखहारिणी**=दुःखोंको हरण करनेवाली, ८३४. **रजोगुणेश्वरी**=रजोगुणकी स्वामिनी, ८३५. **शरच्चन्द्रनिभानना**=शरद् ऋतुके चन्द्रमाकी भाँति मनोहर मुखवाली ।

८३६. **केतकीकुसुमाभासा**=केतकीके पुष्पकी-सी आभावाली, ८३७. **सदासिन्धुवनस्थिता**=सदा सिन्धु-वन-

में रहनेवाली, ८३८. हेमपुष्पाधिककरा=सुवर्ण-पुष्पसे अधिक कमनीय हाथवाली, ८३९. पञ्चशक्तिमयी=पञ्चविध-शक्तिसे सम्पन्न, ८४०. हिता=हितकारिणी ।

८४१. स्तनकुम्भी=कुम्भके समान स्तनवाली, ८४२. नराढ्या=पुरुषोत्तम श्रीकृष्णसे संयुक्त, ८४३. क्षीणापुण्या=पापरहित, ८४४. यशस्विनी=कीर्तिमती, ८४५. वैराज-सूर्यजननी=विराट् ब्रह्माण्डके प्रकाशक सूर्यको जन्म देनेवाली, ८४६. श्रीशा=लक्ष्मीकी भी स्वामिनी, ८४७. भुवन-मोहिनी=सम्पूर्ण भुवनोंको मोहित करनेवाली ।

८४८. महाशोभा=परम शोभाशालिनी, ८४९. महा-माया=महामायास्वरूपा, ८५०. महाकान्तिः=अनन्त कान्ति-से सुशोभित, ८५१. महास्मृतिः=महती स्मरणशक्तिस्वरूपा, ८५२. महामोहा=महामोहमयी, ८५३. महाविद्या=भगवत्प्राप्ति करानेवाली श्रेष्ठ विद्या, ८५४. महाकीर्तिः=विशाल कीर्तिवाली, ८५५. महारतिः=अत्यन्तानुरागस्वरूपा ।

८५६. महाधैर्या=अत्यन्त धीर स्वभाववाली, ८५७. महावीर्या=महान् पराक्रमसे सम्पन्न, ८५८. महाशक्तिः=महाशक्ति, ८५९. महाद्युतिः=परमप्रकाशवती, ८६०. महा-गौरी=अत्यन्त गौर वर्णवाली, ८६१. महासम्पत्=परम सम्पत्तिरूपा, ८६२. महाभोगविलासिनी=महान् भोग-विलाससे युक्त ।

८६३. समया=अत्यन्त निकटवर्तिनी, ८६४. भक्तिदा=भक्ति देनेवाली, ८६५. अशोका=शोकरहित, ८६६. वात्सल्यरसदायिनी=वात्सल्यरस देनेवाली, ८६७. सुहृद्भक्तिप्रदा=सुहृद् जनोंको भक्ति देनेवाली, ८६८. स्वच्छा=निर्मल, ८६९. माधुर्यरसवर्षिणी=माधुर्यरसकी वर्षा करनेवाली ।

८७०. भावभक्तिप्रदा=भावभक्ति प्रदान करनेवाली, ८७१. शुद्धप्रेमभक्तिविधायिनी=शुद्ध प्रेमलक्षणा भक्तिका विधान करनेवाली, ८७२. गोपरामा=गोपकुलकी रमणी, ८७३. अभिरामा=सर्व-सुन्दरी, ८७४. क्रीडारामा=श्यामसुन्दरके साथ लीलामें रत रहनेवाली, ८७५. परेश्वरी=परमेश्वरी ।

८७६. नित्यरामा=नित्य वस्तुमें रमण करनेवाली, ८७७. आत्मरामा=आत्मामें रमण करनेवाली, ८७८. कृष्णरामा=श्रीकृष्णके चिन्तनमें रमण करनेवाली, ८७९. रमेश्वरी=लक्ष्मीकी अधीश्वरी, ८८०. एकानेकजग-द्व्याप्ता=एक होकर भी अनेक रूपसे जगत्में व्याप्त,

८८१. विश्वलीलाप्रकाशिनी=[illegible] बाह्यलीलाको प्रकाशित करनेवाली ।

८८२. सरस्वतीशा=सरस्वतीकी स्वामिनी, ८८३. दुर्गेशा=दुर्गाकी स्वामिनी, ८८४. जगदीशा=[illegible] स्वामिनी, ८८५. जगद्विधिः=जगत्‌की [illegible], ८८६. विष्णुवंशनिवासा=वैष्णवकुलमें निवास [illegible], ८८७. विष्णुवंशसमुद्भवा=वैष्णवकुलमें प्रकट [illegible] ।

८८८. विष्णुवंशस्तुता=वैष्णवकुलके द्वारा [illegible], ८८९. कर्त्री=स्वतन्त्र कर्तृत्वशक्तिसे सम्पन्न, ८९०. सदा विष्णुवंशावनी=सदा वैष्णवकुलकी रक्षा [illegible], ८९१. आरामस्था=उपवनमें रहनेवाली, ८९२. वनस्था=वृन्दावनमें निवास करनेवाली, ८९३. सूर्यपुत्र्यवगाहिनी=यमुनामें स्नान करनेवाली ।

८९४. प्रीतिस्था=प्रेममें निवास करनेवाली, ८९५. नित्ययन्त्रस्था=नित्य-यन्त्रमें स्थित रहनेवाली, ८९६. गोलोकस्था=गोलोकधाममें स्थित, ८९७. विभूतिदा=ऐश्वर्य देनेवाली, ८९८. स्वानुभूतिस्थिता=[illegible] अनुभूतिमें प्रकट होनेवाली, ८९९. अव्यक्ता=[illegible] स्वरूपा, ९००. सर्वलोकनिवासिनी=[illegible] निवास करनेवाली ।

९०१. अमृता=अमृतस्वरूपा, ९०२. अद्भुता=[illegible] रूप और भावसे सम्पन्न, ९०३. श्रीमन्नारायणसमीडिता=लक्ष्मीसहित भगवान् नारायणके द्वारा स्तुत, ९०४. अक्षरा=अक्षरस्वरूपा, ९०५. कूटस्था=[illegible], ९०६. महापुरुषसम्भवा=महापुरुषोंसे प्रकट [illegible] ।

९०७. औदार्यभावसाध्या=औदार्यपूर्ण [illegible] प्राप्त होनेवाली, ९०८. स्थूलसूक्ष्मातिरूपिणी=[illegible] विलक्षण चिदानन्दमय स्वरूपवाली, ९०९. शिरीषपुष्पमृदुला=सिरसके फूलोंसे भी अधिक कोमल, ९१०. गाङ्गेयमुकुरप्रभा=[illegible] एवं दर्पणके समान [illegible] ।

९११. नीलोत्पलजिताक्षी=[illegible] नीलकमलको परास्त करनेवाली, ९१२. सद्रत्नकवरीयुता=सुन्दर रत्नोंसे अलंकृत चोटीवाली, ९१३. प्रेमपर्यङ्कनिलया=प्रेमरूपी पर्यङ्कपर शयन [illegible], ९१४. तेजोमण्डलमध्यगा=तेजःपुञ्जके भीतर [illegible] ।

९१५. कृष्णाङ्गगोपनाभेदा=[illegible] छिपानेके लिये उनसे अभिन्न [illegible], ९१६. लीलावरणनायिका=[illegible]

वाली प्रधान नायिका, ९१७. **सुधासिन्धुसमुल्लासा**=प्रेमसुधाके समुद्रको समुल्लसित करनेवाली, ९१८. **अमृतस्यन्दविधायिनी**=अमृतरसका स्रोत बहानेवाली।

९१९. **कृष्णचित्ता**=अपना चित्त श्रीकृष्णको समर्पित कर देनेवाली, ९२०. **रासचित्ता**=श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये रासमे मन लगानेवाली, ९२१. **प्रेमचित्ता**=श्रीकृष्ण-प्रेममें मनको निमग्न रखनेवाली, ९२२. **हरिप्रिया**=श्रीकृष्णकी प्रेयसी, ९२३. **अचिन्तनगुणग्रामा**=अचिन्त्य गुण-समुदायवाली, ९२४. **कृष्णलीला**=श्रीकृष्णलीलास्वरूपा, ९२५. **मलापहा**=मनकी मलिनता एवं पाप-तापको धो बहानेवाली।

९२६. **राससिन्धुशशाङ्का**=रासरूपी समुद्रको उल्लसित करनेके लिये पूर्ण चन्द्रमाकी भाँति प्रकाशित, ९२७. **रासमण्डलमण्डिनी**=अपनी उपस्थितिसे रासमण्डलकी अत्यन्त शोभा बढ़ानेवाली, ९२८. **नतव्रता**=विनम्र स्वभाववाली, ९२९. **श्रीहरीच्छासुमूर्तिः**=श्रीकृष्ण-इच्छाकी सुन्दर मूर्ति, ९३०. **सुरवन्दिता**=देवताओंद्वारा वन्दित।

९३१. **गोपीचूडामणिः**=गोपाङ्गनाशिरोमणि, ९३२. **गोपीगणेड्या**=गोपियोंके समुदायद्वारा स्तुत, ९३३. **विरजाधिका**=गोलोकमें विरजासे अधिक सम्मानित पदपर स्थित, ९३४. **गोपप्रेष्ठा**=गोपाल श्यामसुन्दरकी प्रियतमा, ९३५. **गोपकन्या**=वृषभानुगोपकी पुत्री, ९३६. **गोपनारी**=गोपकी वधू, ९३७. **सुगोपिका**=श्रेष्ठ गोपी।

९३८. **गोपधामा**=गोलोक धाममें विराजमान, ९३९. **सुदामाम्बा**=सुदामागोपके प्रति मातृ-स्नेह रखनेवाली, ९४०. **गोपाली**=गोपी, ९४१. **गोपमोहिनी**=गोपाल श्रीकृष्णको मोहनेवाली, ९४२. **गोपभूपा**=गोपाल श्यामसुन्दर ही जिनके आभूषण हैं, ९४३. **कृष्णभूषा**=श्रीकृष्णको विभूषित करनेवाली, ९४४. **श्रीवृन्दावनचन्द्रिका**=श्रीवृन्दावनकी चाँदनी।

९४५. **वीणादिघोषनिरता**=वीणा आदिको बजानेमें संलग्न, ९४६. **रासोत्सवविकासिनी**=रासोत्सवका विकास करनेवाली, ९४७. **कृष्णचेष्टा**=श्रीकृष्णके अनुरूप चेष्टा करनेवाली, ९४८. **अपरिज्ञाता**=पहचानमें न आनेवाली, ९४९. **कोटिकन्दर्पमोहिनी**=करोड़ों कामदेवोंको मोहित करनेवाली।

९५०. **श्रीकृष्णगुणगानाढ्या**=श्रीकृष्णके गुणोंका गान करनेमें तत्पर, ९५१. **देवसुन्दरिमोहिनी**=देव-सुन्दरियोंको मोहनेवाली, ९५२. **कृष्णचन्द्रमनोज्ञा**=श्रीकृष्णचन्द्रके मनोभावको जाननेवाली, ९५३. **कृष्णदेव-सहोदरी**=योगमाया रूपसे श्रीयशोदाके गर्भसे उत्पन्न होनेवाली।

९५४. **कृष्णाभिलाषिणी**=श्रीकृष्ण-मिलनकी इच्छा रखनेवाली, ९५५. **कृष्णप्रेमानुग्रहवाञ्छिनी**=श्रीकृष्णके प्रेम और अनुग्रहको चाहनेवाली, ९५६. **क्षेमा**=क्षेमस्वरूपा, ९५७. **मधुरालापा**=मीठे वचन बोलनेवाली, ९५८. **भ्रवोमाया**=भौंहोंसे मायाको प्रकट करनेवाली, ९५९. **सुभद्रिका**=परम कल्याणमयी।

९६०. **प्रकृतिः**=श्रीकृष्णकी स्वरूपभूता ह्लादिनी शक्ति, ९६१. **परमानन्दा**=परमानन्दस्वरूपा, ९६२. **नीपद्रुम-तलस्थिता**=कदम्बवृक्षके नीचे खड़ी होनेवाली, ९६३. **कृपाकटाक्षा**=कृपापूर्ण कटाक्षवाली, ९६४. **विम्बोष्ठी**=विम्बफलके समान लाल ओठवाली, ९६५. **रम्भा**=सर्वाधिक सुन्दरी होनेके कारण रम्भा नामसे प्रसिद्ध, ९६६. **चारु-नितम्बिनी**=मनोहर नितम्बवाली।

९६७. **स्मरकेलिनिधाना**=प्रेमलीलाकी निधि, ९६८. **गण्डताटङ्कमण्डिता**=कपोलोंपर कर्णभूषणोंसे अलंकृत, ९६९. **हेमाद्रिकान्तिरुचिरा**=सुवर्णगिरि मेरुकी कान्तिके समान सुनहरी कान्तिसे सुशोभित परम सुन्दरी, ९७०. **प्रेमाढ्या**=प्रेमसे परिपूर्ण, ९७१. **मदमन्थरा**=प्रेममदसे मन्द-गतिवाली।

९७२. **कृष्णचिन्ता**=श्रीकृष्णका चिन्तन करनेवाली, ९७३. **प्रेमचिन्ता**=श्रीकृष्ण-प्रेमका चिन्तन करनेवाली, ९७४. **रतिचिन्ता**=श्रीकृष्णरतिका चिन्तन करनेवाली, ९७५. **कृष्णदा**=श्रीकृष्णकी प्राप्ति करानेवाली, ९७६. **रासचिन्ता**=श्रीकृष्णके साथ रासका चिन्तन करनेवाली, ९७७. **भावचिन्ता**=प्रेम-भावका चिन्तन करनेवाली, ९७८. **शुद्धचिन्ता**=विशुद्ध चिन्तनवाली, ९७९. **महा-रसा**=अतिशय प्रेमस्वरूपा।

९८०. **कृष्णादृष्टित्रुटियुगा**=श्रीकृष्णको देखे बिना क्षणभरके विलम्बको भी एक युगके समान माननेवाली, ९८१. **दृष्टिपक्ष्मविनिन्दिनी**=श्रीकृष्णका दर्शन करते समय बाधा देनेवाली आँखकी पलकोंकी निन्दा करनेवाली, ९८२. **कन्दर्पजननी**=कामदेवको जन्म देनेवाली, ९८३. **मुख्या**=

सर्वप्रधाना, ९८४. वैकुण्ठगतिदायिनी=वैकुण्ठ धामकी प्राप्ति करानेवाली ।

९८५. रासभावा=रासमण्डलमें आविर्भूत होनेवाली, ९८६. प्रियाश्लिष्टा=प्रियतम श्यामसुन्दरके द्वारा आश्लिष्ट, ९८७. प्रेष्ठा=श्रीकृष्णकी प्रेयसी, ९८८. -प्रथम-नायिका=श्रीकृष्णकी प्रधान नायिका, ९८९. शुद्धा=शुद्ध-स्वरूपा, ९९०. सुधादेहिनी=प्रेमामृतमय शरीरवाली, ९९१. श्रीरामा=लक्ष्मीके समान सुन्दर, ९९२. रसमञ्जरी=श्रीकृष्णप्रेम-रसको प्रकट करनेके लिये मञ्जरीके समान ।

९९३. सुप्रभावा=उत्तम प्रभावसे युक्त, ९९४. शुभाचारा=शुभ आचरणवाली, ९९५. स्वर्नदी-नर्मदाम्बिका=गङ्गा तथा नर्मदाकी जननी, ९९६. गोमती-चन्द्रभागेड्या=गोमती और चन्द्रभागाके द्वारा स्तवनीय, ९९७. सरयूताम्रपर्णिसूः=सरयू तथा ताम्रपर्णी नदीको प्रकट करनेवाली ।

९९८. निष्कलङ्कचरित्रा=कलङ्कशून्य चरित्रवाली, ९९९. निर्गुणा=गुणातीत, १०००. नि[illegible]स्वरूपा । नारद ! यह राधा[illegible] सहस्रनाम स्तोत्र है ।

इसका प्रयत्नपूर्वक पाठ करना चाहिये । [illegible] रसकी प्राप्ति करानेवाला है । [illegible] देता है । अभिलषित भोगोंको देनेवाला [illegible] यह राधा-माधवकी भक्ति देनेवाला है । [illegible] कभी कुण्ठित नहीं होती तथा जो [illegible] सिन्धुमें नित्य विहार—सतत [illegible] भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है । [illegible] सृष्टि करती हैं । वे ही जगत्के पालनमें तत्पर [illegible] वे ही अन्तकालमें जगत्का संहार करनेवाली हैं । [illegible] अधीश्वरी तथा सबकी जननी हैं । मुनीश्वर ! [illegible] श्रीराधाकृष्णका सहस्रनाम मैंने तुम्हें बताया है । [illegible] सहस्रनाम भोग और मोक्ष देनेवाला है । (नारदपुराण [illegible] भाग अध्याय ८२)

॥ तृतीय पाद सम्पूर्ण ॥
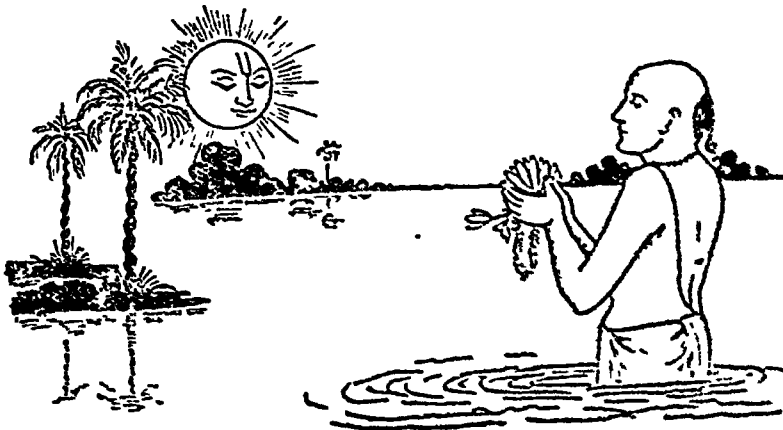
चतुर्थ पाद

नारद-सनातन-संवाद, ब्रह्माजीका मरीचिको ब्रह्मपुराणकी अनुक्रमणिका तथा उसके पाठश्रवण एवं दानका फल बताना

देवर्षि नारद विनीतभावसे सनातनजीको प्रणाम करके बोले—ब्रह्मन्! आप पुराणवेत्ताओंमे श्रेष्ठ और ज्ञान-विज्ञानमें तत्पर हैं, अतः मुझे पुराणोके विभागका पूर्णरूपसे परिचय कराइये, जिसके श्रवण करनेपर सब कुछ सुन लिया जाता है, जिसका ज्ञान होनेपर सब कुछ ज्ञात हो जाता है और जिसे कर लेनेपर सब कुछ किया हुआ हो जाता है। पुराणोंके स्वाध्यायसे वर्णों और आश्रमोंके आचार-धर्मका साक्षात्कार हो जाता है। प्रभो! पुराण कितने हैं? उनकी संख्या कितनी है? और उनके श्लोकोंका मान क्या है? उन पुराणोंमे कौन-कौन-से आख्यान वर्णित हैं? यह सब मुझे बताइये। चारों वर्णोंसे सम्बन्ध रखनेवाली नाना प्रकारके व्रत आदिकी कथाएँ भी कहिये। सृष्टिक्रमसे विभिन्न वंशोंमें उत्पन्न हुए सत्पुरुषोंकी जीवनकथाको भी भलीभाँति प्रकाशित कीजिये; क्योंकि भगवन्! आपसे अधिक दूसरा कोई पौराणिक उपाख्यानोंका जानकार नहीं है। इसलिये सब संदेहोंका निराकरण करनेवाले पुराणोंका आप मुझसे वर्णन कीजिये।

सूतजी बोले—ब्राह्मणो! तदनन्तर नारदजीका वचन सुनकर वक्ताओंमें श्रेष्ठ सनातनजी एक क्षण भगवान् नारायणका ध्यान करके बोले।

सनातनजीने कहा—मुनिश्रेष्ठ! तुम्हें बार-बार साधुवाद है। पुराणोंका उपाख्यान जाननेके लिये जो तुम्हें निष्ठायुक्त बुद्धि प्राप्त हुई है, वह सम्पूर्ण लोकोंका उपकार करनेवाली है। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने पुत्रस्नेहसे परिपूर्ण चित्त होकर मरीचि आदि ऋषियोंसे इस विषयमें जो कुछ कहा था, उसीका तुमसे वर्णन करता हूँ। एक समय ब्रह्माजीके पुत्र मरीचिने, जो स्वाध्याय और शास्त्रज्ञानसे सम्पन्न तथा वेद-वेदाङ्गोंके पारङ्गत विद्वान् हैं, अपने पिता लोकस्रष्टा ब्रह्माजीके पास जाकर उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। दूसरोंको मान देनेवाले मुनीश्वर! प्रणामके पश्चात् उन्होंने भी निर्मल पौराणिक उपाख्यानके विषयमे, जैसा कि तुम पूछते हो, यही प्रश्न किया था।

मरीचिने कहा—भगवन्! देवदेवेश्वर! आप सम्पूर्ण लोकोंकी उत्पत्ति और लयके कारण हैं। सर्वज्ञ, सबका कल्याण करनेवाले तथा सबके साक्षी हैं। आपको नमस्कार है। पिताजी! मुझे पुराणोंके बीज, लक्षण, प्रमाण, वक्ता और श्रोता बताइये। मैं वह सब सुननेको उत्सुक हूँ।

ब्रह्माजीने कहा—वत्स! सुनो, मैं पुराणोंका संग्रह बतला रहा हूँ, जिसके जान लेनेपर चर और अचरसहित सम्पूर्ण वाङ्मयका ज्ञान हो जाता है। मानद! सब कल्पोंमें एक ही पुराण था, जिसका विस्तार सौ करोड़ श्लोकोंमें था। वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारो पुरुषार्थोंका बीज माना गया है। सब शास्त्रोंकी प्रवृत्ति पुराणसे ही हुई है, अतः समयानुसार लोकमें पुराणोंका ग्रहण न होता देख परम बुद्धिमान् भगवान् विष्णु प्रत्येक युगमें व्यासरूपसे प्रकट होते हैं। वे प्रत्येक द्वापरमें चार लाख श्लोकोके पुराणका संग्रह करके उसके अठारह विभाग कर देते हैं और भूलोकमें उन्हींका प्रचार करते हैं। आज भी देवलोकमे सौ करोड़ श्लोकोंका विस्तृत पुराण विद्यमान है। उसीके सारभागका चार लाख श्लोकोंद्वारा वर्णन किया जाता है। ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, वायुपुराण, भागवतपुराण, नारदपुराण, मार्कण्डेयपुराण, अग्निपुराण, भविष्यपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, लिङ्गपुराण, वाराहपुराण, स्कन्दपुराण, वामनपुराण, कूर्मपुराण, मत्स्य-

पुराण, गरुडपुराण तथा ब्रह्माण्डपुराण—ये अठारह पुराण हैं। अब सूत्ररूपसे एक-एकका कथानक तथा उसके वक्ता और श्रोताके नाम संक्षेपसे बतलाता हूँ। एकाग्रचित्त होकर सुनो। वेदवेत्ता महात्मा व्यासजीने सम्पूर्ण लोकोंके हितके लिये पहले ब्रह्मपुराणका संकलन किया। वह सब पुराणोंमें प्रथम और धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष देनेवाला है। उसमें नाना प्रकारके आख्यान और इतिहास हैं। उसकी श्लोक-संख्या दस हजार बतायी जाती है। मुनीश्वर! उसमें देवताओं, असुरों और दक्ष आदि प्रजापतियोंकी उत्पत्ति कही गयी है। तदनन्तर उसमें लोकेश्वर भगवान् सूर्यके पुण्यमय वंशका वर्णन किया गया है, जो महापातकोंका नाश करनेवाला है। उसी वंशमें परमानन्दस्वरूप तथा चतुर्व्यूहावतारी भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके अवतारकी कथा कही गयी है। तदनन्तर उस पुराणमें चन्द्रवंशका वर्णन आया है और जगदीश्वर श्रीकृष्णके पापनाशक चरित्रका भी वर्णन किया गया है। सम्पूर्ण द्वीपों, समस्त वर्षों तथा पाताल और स्वर्गलोकका वर्णन भी उस पुराणमें देखा जाता है। नरकोंका वर्णन, सूर्यदेवकी स्तुति और कथा एवं पार्वतीजीके जन्म तथा विवाहका प्रतिपादन किया गया है। तदनन्तर दक्ष प्रजापतिकी कथा और एकाम्रकक्षेत्रका वर्णन है। नारद! इस प्रकार इस ब्रह्मपुराणके पूर्व भागका निरूपण किया गया है। इसके उत्तर भागमें तीर्थयात्रा-विधिपूर्वक पुरुषोत्तम क्षेत्रका विस्तारके साथ वर्णन किया गया है। इसीमें श्रीकृष्णचरित्रका [illegible] हुआ है। यमलोकका वर्णन तथा [illegible] इस उत्तर भागमें ही वर्णों और आश्रमोंके [illegible] निरूपण किया गया है। वैष्णव [illegible] निरूपण तथा प्रलयका भी वर्णन [illegible] है। [illegible] सांख्यसिद्धान्तोंका प्रतिपादन [illegible] पुराणकी प्रशंसा आदि विषय आये हैं। [illegible] भागोंसे युक्त ब्रह्मपुराणका वर्णन किया गया है, [illegible] का नाशक और सब प्रकारके सुख देनेवाला है। [illegible] और शौनकका संवाद है। यह पुराण भोग और [illegible] है। जो इस पुराणको लिखकर वैशाखकी पूर्णिमाको [illegible] वस्त्र और आभूषणोंद्वारा पौराणिक ब्राह्मणकी पूजा करके [illegible] सुवर्ण और जलधेनुसहित इसे लिखे हुए पुराणका [illegible] दान करता है, वह चन्द्रमा, सूर्य और तारोंकी स्थिति [illegible] ब्रह्मलोकमें वास करता है। ब्रह्मन्! जो ब्रह्मपुराणकी इस अनुक्रमणिका (विषय-सूची) का पाठ [illegible] है, वह भी समस्त पुराणके पाठ और श्रवणका फल पा [illegible] है। जो अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए हविष्यान्न भोजन करते हुए नियमपूर्वक समूचे ब्रह्मपुराणका श्रवण करता है, [illegible] ब्रह्मपदको प्राप्त होता है। वत्स! इस विषयमें अधिक [illegible] से क्या लाभ? इस पुराणके कीर्तनसे मनुष्य जो-जो [illegible] है, वह सब पा लेता है।

पद्मपुराणका लक्षण तथा उसमें वर्णित विषयोंकी अनुक्रमणिका

ब्रह्माजी कहते हैं—बेटा! सुनो, अब मैं पद्मपुराणका वर्णन करता हूँ। जो मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक इसका पाठ और श्रवण करते हैं, उन्हें यह महान् पुण्य देनेवाला है। जैसे सम्पूर्ण देहधारी मनुष्य पाँच ज्ञानेन्द्रियोंसे युक्त बताया जाता है, उसी प्रकार यह पापनाशक पद्मपुराण पाँच खण्डोंसे युक्त कहा गया है। ब्रह्मन्! जिसमें महर्षि पुलस्त्यने भीष्मको सृष्टि आदिके क्रमसे नाना प्रकारके उपाख्यान और इतिहास आदिके साथ विस्तारपूर्वक धर्मका उपदेश किया है। जहाँ पुष्करतीर्थका माहात्म्य विस्तारपूर्वक कहा गया है, जिसमें ब्रह्म-यज्ञकी विधि, वेदपाठ आदिका लक्षण, नाना प्रकारके दानों और व्रतोंका पृथक्-पृथक् निरूपण, पार्वतीका विवाह, तारकासुरका विस्तृत उपाख्यान तथा गौ आदिका माहात्म्य है, जो सबको पुण्य देनेवाला है, जिसमें कालकेय आदि दैत्योंके वधकी पृथक्-पृथक् कथा दी गयी है तथा द्विजश्रेष्ठ! जहाँ ग्रहोंके पूजन और दानकी विधि भी [illegible] गयी है, वह महात्मा श्रीव्यासजीके द्वारा [illegible] 'सृष्टि-खण्ड' है।

पिता-माता आदिकी पूजनीयताके विषयमें [illegible] प्राचीन कथा, सुव्रतकी कथा, वृत्रासुरके वधकी कथा, [illegible] वेन और सुनीथाकी कथा, सुकलाका उपाख्यान, [illegible] आख्यान, पिताकी सेवाके विषयमें [illegible] कथा, ययातिचरित्र, गुरुतीर्थका निरूपण, [illegible] के संवादमें अत्यन्त आश्चर्यजनक [illegible] कथा, हुण्ड दैत्यका वध, कामोदाकी कथा, [illegible] वध, महात्मा च्यवनके साथ [illegible] सिद्धोपाख्यान और इस खण्डके [illegible]

विषय जिसमें कहे गये हों, वह सूत-शौनक-संवादरूप ग्रन्थ 'भूमिखण्ड' कहा गया है।

जहाँ सौति तथा महर्षियोंके संवादरूपसे ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति बतायी गयी है, पृथ्वीसहित सम्पूर्ण लोकोंकी स्थिति और तीर्थोंका वर्णन किया गया है। तदनन्तर जहाँ नर्मदाजीकी उत्पत्ति-कथा और उनके तीर्थोंका पृथक्-पृथक् वर्णन है, जिसमें कुरुक्षेत्र आदि तीर्थोंकी पुण्यमयी कथा कही गयी है, कालिन्दीकी पुण्यकथा, काशीमाहात्म्यवर्णन तथा गया और प्रयागके पुण्यमय माहात्म्यका निरूपण है, वर्ण और आश्रमके अनुकूल कर्मयोगका निरूपण, पुण्यकर्मकी कथाको लेकर व्यास-जैमिनि-संवाद, समुद्र-मन्थनकी कथा, व्रतसम्बन्धी उपाख्यान, तदनन्तर कातिकके अन्तिम पाँच दिन (भीष्मपञ्चक) का माहात्म्य तथा सर्वापराधनिवारक स्तोत्र—ये सब विषय जहाँ आये हैं, वह 'स्वर्गखण्ड' कहा गया है। ब्रह्मन्! यह सब पातकोंका नाश करनेवाला है।

रामाश्वमेधके प्रसङ्गमें प्रथम रामका राज्याभिषेक, अगस्त्य आदि महर्षियोंका आगमन, पुलस्त्यवंशका वर्णन, अश्वमेधका उपदेश, अश्वमेधीय अश्वका पृथ्वीपर विचरण, अनेक राजाओंकी पुण्यमयी कथा, जगन्नाथजीकी महिमाका निरूपण, वृन्दावनका सर्वपापनाशक माहात्म्य, कृष्णावतारधारी श्रीहरिकी नित्य लीलाओंका कथन, वैशाखस्नानकी महिमा, स्नान-दान और पूजनका फल, भूमि-वाराह-संवाद, यम और ब्राह्मणकी कथा, राजदूतोंका संवाद, श्रीकृष्णस्तोत्रका निरूपण, शिवशम्भु-समागम, दधीचिकी कथा, भस्मका अनुपम माहात्म्य, उत्तम शिव-माहात्म्य, देवरातसुतोपाख्यान, पुराणवेत्ताकी प्रशंसा, गौतमका उपाख्यान और शिवगीता तथा कल्पान्तरमें भरद्वाज-आश्रममें श्रीरामकथा आदि विषय 'पातालखण्ड'के अन्तर्गत हैं। जो सदा इसका श्रवण और पाठ करते हैं, उनके सब पापोंका नाश करके यह उन्हें सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंकी प्राप्ति कराता है।

पाँचवें खण्डमें पहले भगवान् शिवके द्वारा गौरीदेवीके प्रति कहा हुआ पर्वतोपाख्यान है। तत्पश्चात् जालन्धरकी कथा, श्रीशैल आदिका माहात्म्यकीर्तन और राजा सगरकी पुण्यमयी कथा है। उसके बाद गङ्गा, प्रयाग, काशी और गयाका अधिक पुण्यदायक माहात्म्य कहा गया है। फिर अन्नादि दानका माहात्म्य और महाद्वादशीव्रतका उल्लेख है। तत्पश्चात् चौबीस एकादशियोंका पृथक्-पृथक् माहात्म्य कहा गया है। फिर विष्णुधर्मका निरूपण और विष्णुसहस्रनामका वर्णन है। उसके बाद कार्तिकव्रतका माहात्म्य, माघस्नानका फल तथा जम्बूद्वीपके तीर्थोंकी पापनाशक महिमाका वर्णन है। फिर साभ्रमती (साबरमती) का माहात्म्य, नृसिंहोत्पत्तिकथा, देवशर्मा आदिका उपाख्यान और गीतामाहात्म्यका वर्णन है। तदनन्तर भक्तिका आख्यान, श्रीमद्भागवतका माहात्म्य और अनेक तीर्थोंकी कथासे युक्त इन्द्रप्रस्थकी महिमा है। इसके बाद मन्त्ररत्नका कथन, त्रिपादविभूतिका वर्णन तथा मत्स्य आदि अवतारोंकी पुण्यमयी अवतार-कथा है। तत्पश्चात् अष्टोत्तरशत दिव्य राम-नाम और उसके माहात्म्यका वर्णन है। वाडव! फिर महर्षि भृगुद्वारा भगवान् विष्णुके वैभवकी परीक्षाका उल्लेख है। इस प्रकार यह पाँचवाँ 'उत्तरखण्ड' कहा गया है, जो सब प्रकारके पुण्य देनेवाला है। जो श्रेष्ठ मानव पाँच खण्डोंसे युक्त पद्मपुराणका श्रवण करता है, वह इस लोकमें मनोवाञ्छित भोगोंको भोगकर वैष्णव धामको प्राप्त कर लेता है। यह पद्मपुराण पचपन हजार श्लोकोंसे युक्त है। मानद! जो इस पुराणको लिखवाकर पुराणज्ञ ब्राह्मणका

भलीभाँति सत्कार करके ज्येष्ठकी पूर्णिमाको स्वर्णमय कमलके साथ इस लिखित पुराणका उक्त पुराणवेत्ता ब्राह्मणको दान करता है, वह सम्पूर्ण देवताओंसे वन्दित होकर वैष्णव धामको चला जाता है। जो पद्मपुराणकी इस अनुक्रमणिकाका पाठ तथा श्रवण करता है, वह भी सम्पूर्ण पद्मपुराणके श्रवणजनित फलको प्राप्त कर लेता है।

विष्णुपुराणका स्वरूप और विषयानुक्रमणिका

श्रीब्रह्माजी कहते हैं—वत्स ! सुनो, अब मैं वैष्णव महापुराणका वर्णन करता हूँ। इसकी श्लोक-संख्या तेईस हजार है। यह सब पातकोंका नाश करनेवाला है। इसके पूर्वभागमें शक्तिनन्दन पराशरजीने मैत्रेयको छः अंश सुनाये हैं, उनमेंसे प्रथम अंशमें इस पुराणकी अवतरणिका दी गयी है। आदिकारण सर्ग, देवता आदिकी उत्पत्ति, समुद्र-मन्थनकी कथा, दक्ष आदिके वंशका वर्णन, ध्रुव तथा पृथुके चरित्र, प्राचेतसका उपाख्यान, प्रह्लादकी कथा और ब्रह्माजीके द्वारा देव, तिर्यक्, मनुष्य आदि वर्गोंके प्रधान-प्रधान व्यक्तियोंको पृथक्-पृथक् राज्याधिकार दिये जानेका वर्णन—इन सब विषयोंको प्रथम अंश कहा गया है।

प्रियव्रतके वंशका वर्णन, द्वीपों और वर्षोंका वर्णन, पाताल और नरकोंका कथन, सात स्वर्गोंका निरूपण, पृथक्-पृथक् लक्षणोंसे युक्त सूर्य आदि ग्रहोंकी गतिका प्रतिपादन, भरत-चरित्र, मुक्तिमार्ग-निदर्शन तथा निदाघ एवं ऋभुका संवाद—ये सब विषय द्वितीय अंशके अन्तर्गत कहे गये हैं।

मन्वन्तरोंका वर्णन, वेदव्यासका अवतार तथा इसके बाद नरकसे उद्धार करनेवाला कर्म कहा गया है। सगर और और्वके संवादमें सब धर्मोंका निरूपण, श्राद्धकल्प तथा वर्णाश्रमधर्म, सदाचार-निरूपण तथा मायामोहकी कथा—यह सब विषय तीसरे अंशमें बताया गया है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है।

मुनिश्रेष्ठ ! सूर्यवंशकी पवित्र कथा, चन्द्रवंशका वर्णन तथा नाना प्रकारके राजाओंका वृत्तान्त चतुर्थ अंशके अन्तर्गत है।

श्रीकृष्णावतारविषयक प्रश्न, गोकुलकी कथा, बाल्यावस्थामें श्रीकृष्णद्वारा पूतना आदिका वध, कुमारावस्थामें अघासुर आदिकी हिंसा, किशोरावस्थामें कंसका वध, मथुरापुरीकी लीला, तदनन्तर युवावस्थामें द्वारकाकी लीलाएँ, समस्त दैत्योंका वध, भगवान्‌के पृथक्-पृथक् विवाह, द्वारकामें रहकर योगीश्वरोंके भी ईश्वर जगन्नाथ श्रीकृष्णके द्वारा शत्रुओंके वध आदिके साथ-साथ पृथ्वीका भार उतारा जाना और अष्टावक्रजीका उपाख्यान—ये सब बातें पाँचवें अंशके अन्तर्गत हैं।

कलियुगका चरित्र, चार प्रकारके महाप्रलय तथा केशिध्वजके द्वारा खाण्डिक्य जनकको ब्रह्मज्ञानका उपदेश इत्यादि विषयोंको छठा अंश कहा गया है।

इसके बाद विष्णुपुराणका उत्तर भाग प्रारम्भ होता है, जिसमें शौनक आदिके द्वारा आदरपूर्वक पूछे जानेपर सूतजीने सनातन 'विष्णुधर्मोत्तर' नामसे प्रसिद्ध नाना प्रकारके धर्मोंकी कथाएँ कही हैं। अनेकानेक पुण्य-व्रत, यम-नियम, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, वेदान्त, ज्यौतिष, वंशवर्णनके प्रकरण, स्तोत्र, मन्त्र तथा सब लोगोंका उपकार करनेवाली नाना प्रकारकी विद्याएँ सुनायी हैं। यह विष्णुपुराण है, जिसमें सब शास्त्रोंके सिद्धान्तका संग्रह हुआ है। इसमें वेदव्यासजीने वाराहकल्पका वृत्तान्त कहा है। जो मनुष्य भक्ति और आदरके साथ विष्णुपुराणको पढ़ते और सुनते हैं, वे दोनों यहाँ मनोवाञ्छित भोग भोगकर विष्णुलोकमें चले जाते हैं। जो इस पुराणको लिखकर या स्वयं लिखकर आषाढ़की पूर्णिमाको घृतमयी धेनुके साथ पुराणार्थवेत्ता विष्णुभक्त ब्राह्मणको दान करता है, वह सूर्यके समान तेजस्वी विमानद्वारा वैकुण्ठधाममें जाता है। ब्रह्मन् ! जो विष्णुपुराणकी इस विषयानुक्रमणिकाको कहता या सुनता है, वह समूचे पुराणके पठन एवं श्रवणका फल पाता है।

वायुपुराणका परिचय तथा उसके दान एवं श्रवण आदिका फल

ब्रह्माजी कहते हैं—ब्रह्मन् ! सुनो, अब मैं वायुपुराणका लक्षण बतलाता हूँ, जिसके श्रवण करनेपर परमात्मा भगवान् शिवका धाम प्राप्त होता है। यह पुराण चौबीस हजार श्लोकोंका बतलाया गया है। जिसमें वायुदेवने श्वेतकल्पके प्रसङ्गसे धर्मोंका उपदेश किया है, उसे वायुपुराण कहा गया है। वह पूर्व और उत्तर दो भागोंसे युक्त है। ब्रह्मन् ! जिसमें सर्ग आदिका लक्षण विस्तारपूर्वक बतलाया गया है, जहाँ भिन्न-भिन्न मन्वन्तरोंमें राजाओंके वंशका वर्णन है और जहाँ गयासुरके वधकी कथा विस्तारके साथ कही गयी है, जिसमें सब मासोंका माहात्म्य बताकर माघमासका अधिक फल कहा गया है, जहाँ दानधर्म तथा राजधर्म अधिक विस्तारसे कहे गये हैं, जिसमें पृथ्वी, पाताल, दिशा और आकाशमें विचरनेवाले जीवोंके और व्रत आदिके सम्बन्धमें निर्णय किया गया है, वह वायुपुराणका पूर्वभाग कहा गया है।

मुनीश्वर ! उसके उत्तरभागमें नर्मदाके तीर्थोंका वर्णन है और विस्तारके साथ शिवसंहिता कही गयी है। जो भगवान् सम्पूर्ण देवताओंके लिये दुर्जेय और सनातन हैं, वे शिव नर्मदाके तटपर सदा सर्वतोभावेन निवास करते हैं, [illegible] यह नर्मदाका [illegible]

ब्रह्मा है, यही विष्णु है और यही सर्वोत्कृष्ट साक्षात् शिव है। यह नर्मदाजल ही निराकार ब्रह्म तथा कैवल्य मोक्ष है।

निश्चय ही भगवान् शिवने समस्त लोकोंका हित करनेके लिये अपने शरीरसे इस नर्मदा नदीके रूपमें किसी दिव्य शक्तिको ही धरतीपर उतारा है। जो नर्मदाके उत्तर तटपर निवास करते हैं, वे भगवान् रुद्रके अनुचर होते हैं और जिनका दक्षिण तटपर निवास है, वे भगवान् विष्णुके लोकमें जाते हैं। ॐकारेश्वरसे लेकर पश्चिम समुद्रतक नर्मदा नदीमें दूसरी नदियोंके पैंतीस पापनाशक संगम हैं, उनमेंसे ग्यारह तो उत्तर तटपर हैं और तेईस दक्षिण तटपर। पैंतीसवाँ तो स्वयं नर्मदा और समुद्रका संगम कहा गया है। नर्मदाके दोनों तटोंपर इन संगमोंके साथ चार सौ प्रसिद्ध तीर्थ हैं। मुनीश्वर! इनके सिवा अन्य साधारण तीर्थ तो रेवाके दोनों तटोंपर पग-पगपर विद्यमान हैं, जिनकी संख्या साठ करोड़ साठ हजार है। यह परमात्मा शिवकी संहिता परम पुण्यमयी है, जिसमें वायुदेवताने नर्मदाके चरित्रका वर्णन किया है। जो इस पुराणको लिखकर गुड़मयी धेनुके साथ श्रावणकी पूर्णिमाको भक्तिपूर्वक कुटुम्बी ब्राह्मणके हाथमें दान देता है, वह चौदह इन्द्रोंके राज्यकालतक रुद्रलोकमें निवास करता है। जो मनुष्य नियमपूर्वक हविष्य भोजन करते हुए इस वायुपुराणको सुनाता अथवा सुनता है, वह साक्षात् रुद्र है, इसमें संशय नहीं है। जो इस अनुक्रमणिकाको सुनता और सुनाता है, वह भी समस्त पुराणके श्रवणका फल पा लेता है।

श्रीमद्भागवतका परिचय, माहात्म्य तथा दानजनित फल

ब्रह्माजी कहते हैं—मरीचे! सुनो, वेदव्यासजीने जो वेदतुल्य श्रीमद्भागवत नामक महापुराणका सम्पादन किया है, वह अठारह हजार श्लोकोंका बतलाया गया है। यह पुराण सब पापोंका नाश करनेवाला है। यह बारह शाखाओंसे युक्त कल्पवृक्षस्वरूप है। विप्रवर! इसमें विश्वरूप भगवान्‌का ही प्रतिपादन किया गया है। इसके पहले स्कन्धमे सूत और शौनकादि ऋषियोंके समागमका प्रसंग उठाकर व्यासजी तथा पाण्डवोंके पवित्र चरित्रका वर्णन किया गया है। इसके बाद परीक्षित्के जन्मसे लेकर प्रायोपवेशनतककी कथा कही गयी है। यहींतक प्रथमस्कन्धका विषय है। फिर परीक्षित्-शुकसंवादमें स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकारकी धारणाओंका निरूपण है। तदनन्तर ब्रह्म-नारद-संवादमें भगवान्‌के अवतारसम्बन्धी अमृतोपम चरित्रोंका वर्णन है। फिर पुराणका लक्षण कहा गया है। बुद्धिमान् व्यासजीने यह द्वितीय स्कन्धका विषय बताया है, जो सृष्टिके कारणतत्त्वोंकी उत्पत्तिका प्रतिपादक है। तत्पश्चात् विदुरका चरित्र, मैत्रेयजीके साथ विदुरका समागम, परमात्मा ब्रह्मसे सृष्टिक्रमका निरूपण और महर्षि कपिलद्वारा कहा हुआ सांख्य—यह सब विषय तृतीय स्कन्धके अन्तर्गत बताया गया है। तदनन्तर पहले सतीचरित्र, फिर ध्रुवका चरित्र, तत्पश्चात् राजा पृथुका पवित्र उपाख्यान, फिर राजा प्राचीनबर्हिष्‌की कथा—यह सब विसर्गविषयक परम उत्तम चौथा स्कन्ध कहा गया है। राजा प्रियव्रत और उनके पुत्रोंका पुण्यदायक चरित्र, ब्रह्माण्डके अन्तर्गत विभिन्न लोकोंका वर्णन तथा नरकोंकी स्थिति—यह संस्थानविषयक पाँचवाँ स्कन्ध है। अजामिलका चरित्र, दक्ष प्रजापतिद्वारा की हुई सृष्टिका निरूपण, वृत्रासुरकी कथा और मरुद्गणोंका पुण्यदायक जन्म—यह सब व्यासजीके द्वारा छठा स्कन्ध कहा गया है। वत्स! प्रह्लादका पुण्यचरित्र और वर्णाश्रम-धर्मका निरूपण यह सातवाँ स्कन्ध बताया गया है। यह 'ऊति' अथवा कर्मवासनाविषयक स्कन्ध है। इसमें उसीका प्रतिपादन किया गया है। तत्पश्चात् मन्वन्तरनिरूपणके प्रसंगमें गजेन्द्रमोक्षकी कथा; समुद्रमन्थन, बलिके ऐश्वर्यकी वृद्धि और उनका बन्धन तथा मत्स्यावतार-चरित्र—यह आठवाँ स्कन्ध कहा गया है। महामते! सूर्यवंश-

का वर्णन और चन्द्रवंशका निरूपण—यह वंशानुचरित-विषयक नवाँ स्कन्ध बताया गया है। श्रीकृष्णका बालचरित, कुमारावस्थाकी लीलाएँ, व्रजमें निवास, किशोरावस्थाकी लीलाएँ, मथुरामें निवास, युवावस्था, द्वारकामें निवास, और भूभारहरण—यह निरोधविषयक दसवाँ स्कन्ध है। नारद-वसुदेव-संवाद, यदु-दत्तात्रेय-संवाद और श्रीकृष्णके साथ उद्धवका संवाद, आपसके कलहसे यादवोंका संहार—यह सब मुक्तिविषयक ग्यारहवाँ स्कन्ध है। भविष्य राजाओंका वर्णन, कलिधर्मका निर्देश, राजा परीक्षित्‌के मोक्षका प्रसङ्ग, वेदोंकी शाखाओंका विभाजन, मार्कण्डेयजीकी तपस्या, सूर्यदेवकी विभूतियोंका वर्णन, तत्पश्चात् भागवती विभूतिका वर्णन और अन्तमें पुराणोंकी श्लोक-संख्याका प्रतिपादन—यह सब आश्रयविषयक बारहवाँ स्कन्ध है। वत्स! इस प्रकार तुम्हें श्रीमद्भागवतका परिचय दिया गया है। यह वक्ता, श्रोता, उपदेशक, अनुमोदक और सहायक—सबको भक्ति, भोग और मोक्ष देनेवाला है। जो भगवान्‌की भक्ति चाहता हो, वह भाद्रपदकी पूर्णिमाको सोनेके सिंहासनके साथ इस भागवतका भगवद्भक्त ब्राह्मणको प्रेमपूर्वक दान करे। उसके पहले

वस्त्र और सुवर्ण आदिके द्वारा ब्राह्मणकी पूजा कर लेनी चाहिये। जो मनुष्य भागवतकी इस विषयानुक्रमणिकाका दूसरेको श्रवण कराता अथवा स्वयं सुनता है, वह सम्पूर्ण पुराणके श्रवणका उत्तम फल प्राप्त कर लेता है।

नारदपुराणकी विषय-सूची, इसके पाठ, श्रवण और दानका फल

ब्रह्माजी कहते हैं—ब्रह्मन्! सुनो, अब मैं नारदीय पुराणका वर्णन करता हूँ। इसमें पचीस हजार श्लोक हैं। इसमें बृहत्कल्पकी कथाका आश्रय लिया गया है। इसमें पूर्व-भागके प्रथम पादमें पहले सूत-शौनक-संवाद है; फिर सृष्टिका संक्षेपसे वर्णन है। फिर महात्मा सनकके द्वारा नाना प्रकारके धर्मोंकी पुण्यमयी कथाएँ कही गयी हैं। पहले पादका नाम 'प्रवृत्तिधर्म' है। दूसरा पाद 'मोक्षधर्म'के नामसे प्रसिद्ध है। उसमें मोक्षके उपायोंका वर्णन है। वेदाङ्गोंका वर्णन और शुकदेवजीकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग विस्तारके साथ आया है। सनन्दनजीने महात्मा नारदको इस द्वितीय पादका उपदेश किया है। तृतीय पादमें सनत्कुमार मुनिने नारदजीको महा-तन्त्रवर्णित 'पशुपाशविमोक्ष'का उपदेश दिया है, फिर गणेश, सूर्य, विष्णु, शिव और शक्ति आदिके मन्त्रोंका शोधन, दीक्षा मन्त्रोद्धार, पूजन, प्रयोग, कवच, सहस्रनाम और स्तोत्रका क्रमशः वर्णन किया है। तदनन्तर चतुर्थ पादमें सनातन मुनिने नारदजीसे पुराणोंका [illegible] उनकी श्लोक-संख्या [illegible] पृथक् पृथक् फल बताया है। साथ ही उन [illegible] समय भी नियत किया है। इसके बाद चैत्र [illegible] पृथक् प्रतिपदा आदि तिथियोंका [illegible] है। यह 'बृहदाख्यान' नामक पूर्वभाग [illegible] है। [illegible] उत्तर भागमें एकादशी [illegible] उत्तरमें महर्षि वसिष्ठके साथ राजा [illegible] किया गया है। तत्पश्चात् राजा [illegible] मोहिनीकी उत्पत्ति, उसके [illegible] लिये शाप, फिर शापसे उसके उद्धार [illegible] पुण्यतम कथा, गयायात्रा-वर्णन, [illegible] पुरुषोत्तमक्षेत्रका वर्णन, उस क्षेत्रकी [illegible] अनेक उपाख्यान, प्रयाग, कुरुक्षेत्र [illegible] कामोदाकी कथा, बदरीतीर्थका माहात्म्य, [illegible]

प्रभासक्षेत्रकी महिमा, पुष्करक्षेत्रका माहात्म्य, गौतममुनिका आख्यान, वेदपादस्तोत्र, गोकर्णक्षेत्रका माहात्म्य, लक्ष्मणजीकी कथा, सेतुमाहात्म्यकथन, नर्मदाके तीर्थोंका वर्णन, अवन्तीपुरीकी महिमा, तदनन्तर मथुरा-माहात्म्य, वृन्दावनकी महिमा, वसुका ब्रह्माके निकट जाना, तत्पश्चात् मोहिनीका तीर्थोंमें भ्रमण आदि विषय हैं। इस प्रकार यह सब नारदमहापुराण है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक एकाग्रचित्त हो इस पुराणको सुनता अथवा सुनाता है, वह ब्रह्मलोकमे जाता है। जो आश्विनकी पूर्णिमाके दिन सात धेनुओंके साथ इस पुराणका श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दान करता है, वह निश्चय ही मोक्ष पाता है। जो एकचित्त होकर नारदपुराणकी इस अनुक्रमणिकाका वर्णन अथवा श्रवण करता है, वह भी स्वर्गलोकमें जाता है।

मार्कण्डेयपुराणका परिचय तथा उसके श्रवण एवं दानका माहात्म्य

श्रीब्रह्माजी कहते हैं—मुने! अब मैं तुम्हें मार्कण्डेय-पुराणका परिचय देता हूँ। यह महापुराण पढ़ने और सुननेवाले पुरुषोंके लिये सदा पुण्यदायक है। जिसमे पक्षियोंको प्रवचनका अधिकारी बनाकर उनके द्वारा सब धर्मोंका निरूपण किया गया है, वह मार्कण्डेयपुराण नौ हजार श्लोकोंका है, ऐसा कहा जाता है। इसमें पहले मार्कण्डेयमुनिके समीप जैमिनिके प्रश्नका वर्णन है। फिर धर्मसंज्ञक पक्षियोंके जन्मकी कथा कही गयी है। फिर उनके पूर्वजन्मकी कथा और देवराज इन्द्रके कारण उन्हें शापरूप विकारकी प्राप्तिका कथन है। तदनन्तर बलभद्रजीकी तीर्थयात्रा, द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंकी कथा, हरिश्चन्द्रकी पुण्यमयी कथा, आडी और बक पक्षियोंका युद्ध, पिता और पुत्रका उपाख्यान, दत्तात्रेयजीकी कथा, महान् आख्यानसहित हैहयचरित्र, अलर्कचरित्रके साथ मदालसाकी कथा, नौ प्रकारकी सृष्टिका पुण्यमय वर्णन, कल्पान्तकालका निर्देश, यक्ष-सृष्टि-निरूपण, रुद्र आदिकी सृष्टि, द्वीपचर्याका वर्णन, मनुओंकी अनेक पापनाशक कथाओंका कीर्तन और उन्हींमें दुर्गाजीकी अत्यन्त पुण्यदायिनी कथा है, जो आठवें मन्वन्तरके प्रसङ्गमें कही गयी है। तत्पश्चात् तीन वेदोंके तेजसे प्रणवकी उत्पत्ति, सूर्यदेवके जन्मकी कथा, उनका माहात्म्य, वैवस्वत मनुके वंशका वर्णन, वत्सप्रीका चरित्र, तदनन्तर महात्मा खनित्रकी

पुण्यमयी कथा, राजा अविक्षित्का चरित्र, किमिच्छिक व्रतका वर्णन, नरिष्यन्त-चरित्र, इक्ष्वाकु-चरित्र, नल-चरित्र, श्रीरामचन्द्रजीकी उत्तम कथा, कुशके वंशका वर्णन, सोमवंशका वर्णन, पुरूरवाकी पुण्यमयी कथा, नहुषका अद्भुत वृत्तान्त, ययातिका पवित्र चरित्र, यदुवंशका वर्णन, श्रीकृष्णकी बाल-लीला, उनकी मथुरा और द्वारकाकी लीलाएँ, सब अवतारोंकी कथा, सांख्यमतका वर्णन, प्रपञ्चके मिथ्यात्वका वर्णन, मार्कण्डेयजीका चरित्र तथा पुराणश्रवण आदिका फल—ये सब विषय हैं। वत्स! जो मनुष्य इस [illegible] भक्तिभावसे आदरपूर्वक श्रवण करता है, वह [illegible] पाता है। जो इसकी व्याख्या करता है, वह [illegible] लोकमें जाता है। जो इसे लिखकर [illegible] के साथ कार्तिककी पूर्णिमाके दिन [illegible] है, वह ब्रह्मपदको प्राप्त कर लेता है। जो [illegible] विषयसूचीको सुनता अथवा सुनाता है, वह [illegible] फल पाता है।

अग्निपुराणकी अनुक्रमणिका तथा उसके पाठ, श्रवण एवं दानका फल

श्रीब्रह्माजी कहते हैं—अब मैं अग्निपुराणका वर्णन करता हूँ। जिसमें अग्निदेवने महर्षि वसिष्ठसे ईशान-कल्पका वर्णन किया है, वह अग्निपुराण पंद्रह हजार श्लोकोंसे पूर्ण है। उसमें अनेक प्रकारके चरित्र हैं। यह पुराण अद्भुत है। जो लोग इसका पाठ और श्रवण करते हैं, उनके समस्त पापोंको यह हर लेनेवाला है। इसमें पहले पुराणविषयक प्रश्न है, फिर सब अवतारोंकी कथा कही गयी है। तत्पश्चात् सृष्टिका प्रकरण और विष्णुपूजा आदिका वर्णन है। तदनन्तर अग्निकार्य, मन्त्र, मुद्रादिलक्षण, सर्वदीक्षाविधान और अभिषेकनिरूपण है। इसके बाद मण्डल आदिका लक्षण, कुशापामार्जन, पवित्रारोपणविधि, देवालयविधि, शालग्राम आदिकी पूजा तथा मूर्तियोंके पृथक्-पृथक् चिह्नका वर्णन है। फिर न्यास आदिका विधान, प्रतिष्ठा, पूर्तकर्म, विनायक आदिका पूजन, नाना प्रकारकी दीक्षाओंकी विधि, सर्वदेव-प्रतिष्ठा, ब्रह्माण्डका वर्णन, गङ्गादि तीर्थोंका माहात्म्य, द्वीप और वर्षका वर्णन, ऊपर और नीचेके लोकोंकी रचना, ज्योतिश्चक्रका निरूपण, ज्योतिःशास्त्र, युद्धजयार्णव, षट्कर्म, मन्त्र, यन्त्र, औषधसमूह, कुब्जिका आदिकी पूजा, छः प्रकारकी न्यासविधि, कोटिहोमविधि, मन्वन्तरनिरूपण, ब्रह्मचर्यादि आश्रमोंके धर्म, श्राद्धकल्पविधि, ग्रहयज्ञ, श्रौत-स्मार्तकर्म, प्रायश्चित्तवर्णन, तिथि-व्रत आदिका वर्णन, वार-व्रतका कथन, नक्षत्रव्रतकी विधिका प्रतिपादन, मासिक व्रतका निर्देश, उत्तम दीपदानविधि, नवव्यूहपूजन, नरक-निरूपण, व्रतों और दानोंकी विधिका प्रतिपादन, नाडीचक्रका संक्षिप्त वर्णन, संध्याकी उत्तम विधि, गायत्रीके अर्थका निर्देश, लिङ्गस्तोत्र, राज्याभिषेकके मन्त्रका प्रतिपादन, राजाओंके धार्मिक कृत्य, स्वप्नसम्बन्धी विचारका अध्याय (या प्रसङ्ग), शकुन आदिका निरूपण, मण्डल आदिका निर्देश, रत्नदीक्षा-विधि, रामोक्त नीतिका वर्णन, रत्नोंके लक्षण, धनुर्विद्या, व्यवहारदर्शन, देवासुरसंग्रामकी कथा, आयुर्वेद-निरूपण, गज आदिकी चिकित्सा, उनके रोगोंकी शान्ति, [illegible], मनुष्यादि चिकित्सा, नाना प्रकारकी पूजा [illegible], [illegible] प्रकारकी शान्ति, छन्दःशास्त्र, साहित्य, [illegible] कोष, सिद्ध शब्दानुशासन (व्याकरण), स्वर्गादि [illegible] युक्त कोश, प्रलयका लक्षण, शारीरक (वेदान्त) [illegible] निरूपण, नरक-वर्णन, योगशास्त्र, ब्रह्मज्ञान तथा पुराण[illegible] का फल—इन विषयोंका प्रतिपादन हुआ है। [illegible] अग्निपुराण कहा गया है। जो अग्निपुराणको [illegible] सुवर्णमय कमल और तिलमयी धेनुके साथ मार्गशीर्षकी पूर्णि[illegible]

के दिन पौराणिक ब्राह्मणको [illegible] स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। [illegible] अनुक्रमणिका बतायी गयी है, [illegible] मनुष्योंको इहलोक और [illegible] है।

भविष्यपुराणका परिचय तथा उसके पाठ, श्रवण एवं दानका माहात्म्य

ब्रह्माजी कहते हैं—अब मैं तुम्हें सब प्रकारकी सिद्धि प्रदान करनेवाले भविष्यपुराणका वर्णन करता हूँ, जो सब लोगोंके अभीष्ट मनोरथको सिद्ध करनेवाला है; जिसमे मैं ब्रह्मा सम्पूर्ण देवताओंका आदि स्रष्टा बताया गया हूँ। पूर्वकालमें सृष्टिके लिये स्वयम्भू मनु उत्पन्न हुए। उन्होंने मुझे प्रणाम करके सर्वार्थसाधक धर्मके विषयमे प्रश्न किया। तब मैंने प्रसन्न होकर उन्हें धर्मसंहिताका उपदेश किया। परम बुद्धिमान् व्यास जब पुराणोंका विस्तार करने लगे तो उन्होंने उस धर्मसंहिताके पाँच विभाग किये। उनमें नाना प्रकारकी आश्चर्यजनक कथाओंसे युक्त अघोरकल्पका वृत्तान्त है। उस पुराणमे पहला पर्व 'ब्रह्मपर्व'के नामसे प्रसिद्ध है। इसीमें ग्रन्थका उपक्रम है। सूत-शौनक-संवादमें पुराणविषयक प्रश्न है। इसमे अधिकतर सूर्यदेवका ही चरित्र है। अन्य सब उपाख्यान भी इसमें आये हैं। इसमें सृष्टि आदिके लक्षण बताये गये हैं। शास्त्रोंका तो यह सर्वस्वरूप है। इसमे पुस्तक, लेखक और लेख्यका भी लक्षण दिया गया है। सब प्रकारके संस्कारोंका भी लक्षण बताया गया है। पक्षकी आदि सात तिथियोंके सात कल्प कहे गये हैं। अष्टमी आदि तिथियोंके शेष आठ कल्प 'वैष्णवपर्व'में बताये गये हैं। 'शैवपर्व'मे ब्रह्मपर्वसे भिन्न कथाएँ हैं। 'सौरपर्व'मे अन्तिम कथाओंका सम्बन्ध देखा जाता है। तत्पश्चात् 'प्रतिसर्ग पर्व' है, जिसमे पुराणके उपसंहारका वर्णन है। यह नाना प्रकारके उपाख्यानोंसे युक्त पाँचवाँ पर्व है। इन पाँच पर्वोंमेंसे पहलेमें मुझ ब्रह्माकी महिमा अधिक है। दूसरे और तीसरे पर्वोंमें धर्म, काम और मोक्ष विषयको लेकर क्रमशः भगवान् विष्णु तथा शिवकी महिमाका वर्णन है। चौथे पर्वमें सूर्यदेवकी महिमाका प्रतिपादन किया गया है। अन्तिम या पाँचवाँ पर्व प्रतिसर्ग नामसे प्रसिद्ध है। इसमे सब प्रकारकी कथाएँ हैं। बुद्धिमान् व्यासजीने इस पर्वका भविष्यकी कथाओंके साथ उल्लेख किया है। भविष्यपुराणकी श्लोक-संख्या चौदह हजार बतायी गयी है। इसमे ब्रह्मा, विष्णु आदि सब देवताओंकी समताका प्रतिपादन किया गया है। ब्रह्म सर्वत्र सम है। गुणोंके तारतम्यसे उसमें विषमता प्रतीत होती है। ऐसा श्रुतिका कथन है। जो विद्वान् ईर्ष्या-द्वेष छोड़कर सुवर्ण, वस्त्र, माला, आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और भक्ष्य-भोज्य आदि नैवेद्योंसे विधिपूर्वक वाचक और पुस्तककी पूजा करता है और भविष्यपुराणकी पुस्तकको लिखकर गुड़धेनुके साथ पौषकी पूर्णिमाको उसका दान

करता है, तथा जो जितेन्द्रिय, निराहार अथवा एक समय हविष्यभोजी एव एकाग्रचित्त होकर इस पुराणका पाठ और श्रवण करता है, वह भयंकर पातकोंसे मुक्त होकर ब्रह्मलोकमें चला जाता है। जो भविष्यपुराणकी इस अनुक्रमणिकाका पाठ अथवा श्रवण करता है, वह भी भोग एवं मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

ब्रह्मवैवर्तपुराणका परिचय तथा उसके पाठ, श्रवण एवं दान आदिकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—वत्स! सुनो, अब मैं तुम्हें दसवें पुराण ब्रह्मवैवर्तका परिचय देता हूँ, जो वेदमार्गका साक्षात्कार करानेवाला है। जहाँ देवर्षि नारदको उनके प्रार्थना करनेपर भगवान् सावर्णिने सम्पूर्ण पुराणोक्त विषयका उपदेश किया था। यह पुराण अलौकिक एवं धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका सारभूत है। इसके पाठ और श्रवणसे भगवान् विष्णु और शिवमें प्रीति होती है। उन दोनोंमें अभेद-सिद्धिके लिये इस उत्तम ब्रह्मवैवर्तपुराणका उपदेश किया गया है। मैंने रथन्तर कल्पका जो वृत्तान्त बताया था, उसीको वेदवेत्ता व्यासने संक्षिप्त करके शतकोटिपुराणमें

कहा है। व्यासजीने ब्रह्मवैवर्तपुराणके चार भाग किये हैं, जिनके नाम हैं—'ब्रह्मखण्ड' 'प्रकृतिखण्ड' 'गणेशखण्ड' और 'श्रीकृष्णखण्ड'। इन चारों खण्डोंसे युक्त यह पुराण अठारह हजार श्लोकोंका बताया गया है। उसमें सूत और महर्षियोंके संवादमें पुराणका उपक्रम है। उसमें पहला प्रकरण सृष्टि-वर्णनका है। फिर नारदके और मेरे महान् विवादका वर्णन है, जिसमें दोनोंका पराभव हुआ था। मरीचे! फिर नारदका शिवलोकगमन और भगवान् शिवसे नारदमुनिको ज्ञानकी प्राप्तिका कथन है। तदनन्तर शिवजीके कहनेसे ज्ञानलाभके लिये सावर्णिके सिद्धसेवित आश्रममें, जो परम पुण्यमय तथा त्रिलोकीको आश्चर्यमें डालनेवाला था, नारदजीके जानेकी बात कही गयी है। यह 'ब्रह्मखण्ड' है, जो श्रवण करनेपर सब पापोंका नाश कर देता है। तदनन्तर नारद-सावर्णि-संवादका वर्णन है। इसमें श्रीकृष्णका माहात्म्य तथा नाना प्रकारके आख्यान और कथाएँ हैं। प्रकृतिकी अंशभूत कलाओंके माहात्म्य और पूजन आदिका विस्तारपूर्वक यथावत् वर्णन किया गया है। यह 'प्रकृतिखण्ड' है जो श्रवण करनेपर ऐश्वर्य प्रदान करता है। तदनन्तर गणेशजन्मके विषयमें प्रश्न किया गया है। पार्वतीजीके द्वारा पुण्यकनामक महाव्रतके अनुष्ठानकी चर्चा है। तत्पश्चात् कार्तिकेय और गणेशजीकी उत्पत्ति कही गयी है। इसके बाद कार्तवीर्य अर्जुन और जमदग्निनन्दन परशुरामजीके अद्भुत चरित्रका वर्णन है, फिर गणेश और परशुरामजीमें जो महान् विवाद हुआ था, उसका उल्लेख किया गया है। यह 'गणेशखण्ड' है, जो सब विघ्नोंका नाश करनेवाला है। तदनन्तर [illegible] उनके जन्मकी अद्भुत कथा है। [illegible] पूतना आदिके वधकी [illegible] श्रीकृष्णकी बाल्यावस्था और [illegible] लीलाओंका वर्णन है। [illegible] गोपसुन्दरियोंके साथ श्रीकृष्णकी [illegible] रहस्यमें श्रीराधाके साथ उनकी [illegible] प्रतिपादन किया गया है। [illegible] श्रीकृष्णके मथुरागमनकी कथा है। [illegible] जानेके बाद श्रीकृष्णके द्विजोचित [illegible] फिर काश्य गोत्रोत्पन्न सान्दीपनि मुनिसे [illegible] अद्भुत कथा है। तदनन्तर [illegible] द्वारकागमन तथा वहाँ उनके द्वारा [illegible] आदिके वधकी अद्भुत लीलाओंका वर्णन है। [illegible] 'श्रीकृष्णखण्ड' है, जो पढ़ने, सुनने, [illegible] अथवा नमस्कार करनेपर भी [illegible] खण्डन करनेवाला है। व्यासजीके द्वारा [illegible] और अलौकिक ब्रह्मवैवर्तपुराणका पाठ [illegible] करनेवाला मनुष्य ज्ञान-विज्ञानका नाश [illegible] संसार-सागरसे मुक्त हो जाता है। [illegible] लिखकर माघकी पूर्णिमाको [illegible] करता है, वह अज्ञानजनित [illegible] लेता है। जो इस विषय-सूचीको [illegible] वह भी भगवान् श्रीकृष्णकी [illegible] पा लेता है।

लिङ्गपुराणका परिचय तथा उसके पाठ, श्रवण एवं दानका फल

ब्रह्माजी कहते हैं—बेटा! सुनो, अब मैं लिङ्गपुराणका वर्णन करता हूँ, जो पढ़ने तथा सुननेवालोंको भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। भगवान् शङ्करने अग्निलिङ्गमें स्थित होकर अग्नि-कल्पकी कथाका आश्रय ले धर्म आदिकी सिद्धिके लिये मुझे जिस लिङ्गपुराणका उपदेश किया था, उसीको व्यासदेवने दो भागोंमें बाँटकर कहा है। अनेक प्रकारके उपाख्यानोंसे विचित्र प्रतीत होनेवाला यह लिङ्ग-पुराण ग्यारह हजार श्लोकोंसे युक्त है और भगवान् शिवकी महिमाका सूचक है। यह सब पुराणोंमें श्रेष्ठ तथा त्रिलोकीका सारभूत है। पुराणके आरम्भमें पहले प्रश्न है। फिर संक्षेपसे सृष्टिका वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् योगाख्यान और कल्पाख्यानका वर्णन है। इसके बाद लिङ्गके प्रादुर्भाव और उसकी पूजाकी विधि बतायी गयी है। फिर सनत्कुमार और शैल आदिका पवित्र संवाद है। [illegible] युगधर्मनिरूपण, भुवन-कोश-वर्णन तथा [illegible] वंशका परिचय है। तत्पश्चात् [illegible] त्रिपुरकी कथा, लिङ्गप्रतिष्ठा तथा [illegible] है। भगवान् शिवके [illegible] चरित्र, दानों तथा [illegible] वर्णन है। फिर [illegible] कथा, वाराह-चरित्र, नृसिंह-चरित्र और [illegible] है। तदनन्तर [illegible] और पार्वतीके [illegible] कथा, भगवान् शिवके [illegible] कहा है। ये सब [illegible] मुने! इसके बाद [illegible] कथा तथा सनत्कुमार और [illegible]

शिव-माहात्म्यके साथ स्नान, याग आदिका वर्णन, सूर्यपूजाकी विधि तथा मुक्तिदायिनी शिवपूजाका वर्णन है। तदनन्तर अनेक प्रकारके दान कहे गये हैं। फिर श्राद्ध-प्रकरण और प्रतिष्ठातन्त्रका वर्णन है। तत्पश्चात् अघोरकीर्तन, व्रजेश्वरी महाविद्या, गायत्री-महिमा, त्र्यम्बक-माहात्म्य और पुराणश्रवणके फलका वर्णन है। इस प्रकार मैंने तुम्हें व्यासरचित लिङ्गपुराण-के उत्तरभागका परिचय दिया है। यह भगवान् रुद्रके माहात्म्यका सूचक है। जो इस पुराणको लिखकर फाल्गुनकी पूर्णिमाको तिलधेनुके साथ ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक इसका दान करता है, वह जरा-मृत्युरहित शिवसायुज्य प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य पापनाशक लिङ्गपुराणका पाठ या श्रवण करता है, वह इस लोकमें उत्तम भोग भोगकर अन्तमें शिवलोकको चला जाता है। वे दोनों भगवान् शिवके भक्त हैं और गिरिजावल्लभ शिवके प्रसादसे इहलोक और परलोकका यथावत् उपभोग करते हैं, इसमें तनिक भी संशय नहीं है।

वाराह-पुराणका लक्षण तथा उसके पाठ, श्रवण एवं दानका माहात्म्य

श्रीब्रह्माजी कहते हैं—वत्स! सुनो, अब मैं वाराह-पुराणका वर्णन करता हूँ। यह दो भागोंसे युक्त है और सनातन भगवान् विष्णुके माहात्म्यका सूचक है। पूर्वकालमें मेरे द्वारा निर्मित जो मानव-कल्पका प्रसङ्ग है, उसीको विद्वानों-में श्रेष्ठ साक्षात् नारायणस्वरूप वेदव्यासने भूतलपर इस पुराणमें लिपिबद्ध किया है। वाराहपुराणकी श्लोक-संख्या चौबीस हजार है। इसमें सबसे पहले पृथ्वी और वाराह भगवान्‌का शुभ संवाद है। तदनन्तर आदि सत्ययुगके वृत्तान्तमें रैभ्यका चरित्र है। फिर दुर्जयके चरित्र और श्राद्धकल्पका वर्णन है। तत्पश्चात् महातपाका आख्यान, गौरीकी उत्पत्ति, विनायक, नागगण, सेनानी (कार्तिकेय), आदित्यगण, देवी, धनद तथा वृषका आख्यान है। उसके बाद सत्यतपाके व्रतकी कथा दी गयी है। तदनन्तर अगस्त्य-गीता तथा रुद्रगीता कही गयी है। महिषासुरके विध्वंसमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र—तीनोंकी शक्तियोंका माहात्म्य प्रकट किया गया है। तत्पश्चात् पर्वाध्याय, श्वेतोपाख्यान, गोप्रदानिक इत्यादि सत्ययुगका वृत्तान्त मैंने प्रथम भागमें दिखाया है। फिर भगवद्धर्ममें व्रत और तीर्थोंकी कथाएँ हैं। बत्तीस अपराधोंका शारीरिक प्रायश्चित्त बताया गया है। प्रायः सभी तीर्थोंके पृथक्-पृथक् माहात्म्यका वर्णन है। मथुराकी महिमा विशेषरूपसे दी गयी है। उसके बाद श्राद्ध आदिकी विधि है। तदनन्तर ऋषिपुत्रके प्रसङ्गसे यमलोकका वर्णन, कर्मविपाक एवं विष्णुव्रतका निरूपण है। गोकर्णके पापनाशक माहात्म्यका भी वर्णन किया गया है। इस प्रकार वाराहपुराण-का यह पूर्वभाग कहा गया है। उत्तर भागमें पुलस्त्य और पुरुराजके संवादमें विस्तारके साथ सब तीर्थोंके माहात्म्यका पृथक्-पृथक् वर्णन है। फिर सम्पूर्ण धर्मोंकी व्याख्या और पुष्कर नामक पुण्य-पर्वका भी वर्णन है। इस प्रकार मैंने तुम्हें पापनाशक वाराहपुराणका परिचय दिया है। यह पढने और सुननेवालोंके मनमें भगवद्भक्ति बढानेवाला है। जो मनुष्य इस पुराणको लिखकर और सोनेकी गरुड़-प्रतिमा

बनवाकर तिलधेनुके साथ चैत्रकी पूर्णिमाके दिन भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको दान देता है, वह देवताओं तथा महर्षियोंसे वन्दित होकर भगवान् विष्णुका धाम प्राप्त कर लेता है। जो वाराह-पुराणकी इस अनुक्रमणिकाका श्रवण या पाठ करता है, वह भी भगवान् विष्णुके चरणोंमें संसार-बन्धनका नाश करनेवाली भक्ति प्राप्त कर लेता है।

स्कन्दपुराणकी विषयानुक्रमणिका, इस पुराणके पाठ, श्रवण एवं दानका माहात्म्य

श्रीब्रह्माजी कहते हैं—वत्स ! सुनो, अब मैं स्कन्दपुराणका वर्णन करता हूँ, जिसके पद-पदमें साक्षात् महादेवजी स्थित हैं । मैंने शतकोटि पुराणमें जो शिवकी महिमाका वर्णन किया है, उसके सारभूत अर्थका व्यासजीने स्कन्दपुराणमें वर्णन किया है । उसमें सात खण्ड किये गये हैं । सब पापोंका नाश करनेवाला स्कन्दपुराण इक्यासी हजार श्लोकोंसे युक्त है । जो इसका श्रवण अथवा पाठ करता है, वह साक्षात् भगवान् शिव ही है । इसमें स्कन्दके द्वारा उन शैव धर्मोंका प्रतिपादन किया गया है, जो तत्पुरुष कल्पमें प्रचलित थे । वे सब प्रकारकी सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं । इसके पहले खण्डका नाम 'माहेश्वर-खण्ड' है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है । इसमें बारह हजारसे कुछ कम श्लोक हैं । यह परम पवित्र तथा विशाल कथाओंसे परिपूर्ण है । इसमें सैकड़ों उत्तम चरित्र हैं तथा यह खण्ड स्कन्द-स्वामीके माहात्म्यका सूचक है । माहेश्वर-खण्डके भीतर केदारमाहात्म्यमें पुराणका आरम्भ हुआ है । इसमें पहले दक्षयज्ञकी कथा है । इसके बाद शिवलिङ्ग-पूजनका फल बताया गया है । इसके बाद समुद्र-मन्थनकी कथा और देवराज इन्द्रके चरित्रका वर्णन है । फिर पार्वतीका उपाख्यान और उनके विवाहका प्रसङ्ग है । तत्पश्चात् कुमारस्कन्दकी उत्पत्ति और तारकासुरके साथ उनके युद्धका वर्णन है । फिर पाशुपतका उपाख्यान और चण्डकी कथा है । फिर दूतकी नियुक्तिका कथन और नारदजीके साथ समागमका वृत्तान्त है । उसके बाद कुमार-माहात्म्यके प्रसङ्गमें पञ्चतीर्थकी कथा है । धर्मवर्मा राजाकी कथा तथा नदियों और समुद्रका वर्णन है । तदनन्तर इन्द्रद्युम्न और नाड़ीजङ्घकी कथा है । फिर महीनदीके प्रादुर्भाव और दमनककी कथा है । तत्पश्चात् मही-सागर-संगम और कुमारेशका वृत्तान्त है । इसके बाद नाना प्रकारके उपाख्यानोंसहित तारकयुद्ध और तारकासुरके वधका वर्णन है । फिर पञ्चलिङ्ग-स्थापनकी कथा आयी है । तदनन्तर द्वीपोंका पुण्यमय वर्णन, ऊपरके लोकोंकी स्थिति, ब्रह्माण्डकी स्थिति और उसका मान तथा बर्करेशकी कथा है । महाकालका प्रादुर्भाव और उसकी परम अद्भुत कथा है । फिर वासुदेवका माहात्म्य और कोटितीर्थका वर्णन है । तदनन्तर गुप्तक्षेत्रमें नाना तीर्थोंका आख्यान कहा गया है । पाण्डवोंकी पुण्यमयी कथा और बर्बरीककी सहायतासे महाविद्याके साधनका प्रसङ्ग है । [illegible] समाप्ति है । तदनन्तर [illegible] और ब्रह्माजीका संवाद है । [illegible] वहाँके भिन्न-भिन्न तीर्थोंका वर्णन है । [illegible] और उसके वधका परम अद्भुत प्रसङ्ग [illegible] । [illegible] पर्वतपर भगवान् शिवका नित्य निवास [illegible] प्रकार स्कन्दपुराणमें यह अद्भुत माहेश्वर [illegible]

दूसरा 'वैष्णव-खण्ड' है । अब उसके [illegible] मुझसे श्रवण करो । पहले भूमि-वाराह [illegible] है, जिसमें वेङ्कटाचलका पापनाशक माहात्म्य [illegible] है । फिर कमलाकी पवित्र कथा और श्रीनिवासकी [illegible] है । तदनन्तर कुम्हारकी कथा तथा सुवर्णमुखरी [illegible] माहात्म्यका वर्णन है । फिर अनेक [illegible] भरद्वाजकी अद्भुत कथा है । इसके बाद [illegible] पापनाशक संवादका वर्णन है । फिर [illegible] पुरुषोत्तमक्षेत्रका माहात्म्य कहा गया है । तत्पश्चात् [illegible]

[illegible] जीकी कथा, राजा अम्बरीषका वृत्तान्त, इन्द्रद्युम्न [illegible] और विद्यापतिकी शुभ [illegible] है । [illegible] बाद जैमिनि और नारदका आख्यान है, फिर [illegible] और नृसिंहका वर्णन है । तदनन्तर [illegible]

और राजाका ब्रह्मलोकमें गमन कहा गया है। तत्पश्चात् रथयात्रा-विधि और जप तथा स्नानकी विधि कही गयी है। फिर दक्षिणामूर्तिका उपाख्यान और गुण्डिचाकी कथा है। रथ-रक्षाकी विधि और भगवान्‌के शयनोत्सवका वर्णन है। इसके बाद राजा श्वेतका उपाख्यान कहा गया है। फिर पृथु-उत्सवका निरूपण है। भगवान्‌के दोलोत्सव तथा सावत्सरिक-व्रतका वर्णन है। तदनन्तर उद्दालकके नियोगसे भगवान् विष्णुकी निष्काम पूजाका प्रतिपादन किया गया है। फिर मोक्ष-साधन बताकर नाना प्रकारके योगोंका निरूपण किया गया है। तत्पश्चात् दशावतारकी कथा और स्नान आदिका वर्णन है। इसके बाद बदरिकाश्रम-तीर्थका पाप-नाशक माहात्म्य बताया गया है। उस प्रसङ्गमें अग्नि आदि तीर्थों और गरुड़-शिलाकी महिमा है। वहाँ भगवान्‌के निवासका कारण बताया गया है। फिर कपालमोचन-तीर्थ, पञ्चधारा-तीर्थ और मेरुसंस्थानकी कथा है। तदनन्तर कार्तिकमासका माहात्म्य प्रारम्भ होता है। उसमें मदनालसके माहात्म्यका वर्णन है। धूम्रकेशका उपाख्यान और कार्तिक मासमें प्रत्येक दिनके कृत्यका वर्णन है। अन्तमें भीष्मपञ्चक-व्रतका प्रतिपादन किया गया है, जो भोग और मोक्ष देनेवाला है।

तत्पश्चात् मार्गशीर्षके माहात्म्यमें स्नानकी विधि बतायी गयी है। फिर पुण्ड्रादि-कीर्तन और माला-धारणका पुण्य कहा गया है। भगवान्‌को पञ्चामृतसे स्नान करानेका तथा घण्टा बजाने आदिका पुण्य फल बताया गया है। नाना प्रकारके फूलोंसे भगवत्पूजनका फल और तुलसीदलका माहात्म्य कहा गया है। भगवान्‌को नैवेद्य लगानेकी महिमा, एकादशीके दिन कीर्तन, अखण्ड एकादशी-व्रत रहनेका पुण्य और एकादशीकी रातमें जागरण करनेका फल बताया गया है। इसके बाद मत्स्योत्सवका विधान और नाममाहात्म्यका कीर्तन है। भगवान्‌के ध्यान आदिका पुण्य तथा मथुराका माहात्म्य बताया गया है। मथुरातीर्थका उत्तम माहात्म्य अलग कहा गया है और वहाँके बारह वनोंकी महिमाका वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् इस पुराणमें श्रीमद्भागवतके उत्तम माहात्म्यका प्रतिपादन किया गया है। इस प्रसङ्गमें वज्रनाभ और शाण्डिल्यके संवादका उल्लेख किया गया है, जो व्रजकी आन्तरिक लीलाओंका प्रकाशक है। तदनन्तर माघ मासमें स्नान, दान और जप करनेका माहात्म्य बताया गया है, जो नाना प्रकारके आख्यानोंसे युक्त है। माघ-माहात्म्यका दस अध्यायोंमें प्रतिपादन किया गया है। तत्पश्चात् वैशाख-माहात्म्यमें शय्यादान आदिका फल कहा गया है। फिर जलदानकी विधि, कामोपाख्यान, शुकदेव-चरित, व्याधकी अद्भुत कथा और अक्षयतृतीया आदिके पुण्यका विशेषरूपसे वर्णन है। इसके बाद अयोध्या-माहात्म्य प्रारम्भ करके उसमें चक्रतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ, ऋणमोचनतीर्थ, पापमोचन-तीर्थ, सहस्रधारातीर्थ, स्वर्गद्वारतीर्थ, चन्द्रहरितीर्थ, धर्महरि-तीर्थ, स्वर्णवृष्टितीर्थकी कथा और तिलोदा-सरयू-सगमका वर्णन है। तदनन्तर सीताकुण्ड, गुप्तहरितीर्थ, सरयू-घाघरा-संगम, गोप्रचारतीर्थ, क्षीरोदकतीर्थ और बृहस्पतिकुण्ड आदि पाँच तीर्थोंकी महिमाका प्रतिपादन किया गया है। तत्पश्चात् घोपार्क आदि तेरह तीर्थोंका वर्णन है। फिर गया-कूपके सर्वपापनाशक माहात्म्यका कथन है। तदनन्तर माण्डव्याश्रम आदि, अजित आदि तथा मानस आदि तीर्थोंका वर्णन किया गया है। इस प्रकार यह दूसरा वैष्णव-खण्ड कहा गया है।

मरीचे! इसके बाद परम पुण्यदायक 'ब्रह्म-खण्ड'का वर्णन सुनो, जिसमें पहले सेतुमाहात्म्य प्रारम्भ करके वहाँके स्नान और दर्शनका फल बताया गया है। फिर गालवकी तपस्या तथा राक्षसकी कथा है। तत्पश्चात् देवीपत्तनमें चक्र-तीर्थ आदिकी महिमा, वेतालतीर्थका माहात्म्य और पापनाश आदिका वर्णन है। मङ्गल आदि तीर्थोंका माहात्म्य, ब्रह्मकुण्ड आदिका वर्णन, हनुमत्कुण्डकी महिमा तथा अगस्त्यतीर्थके फलका कथन है। रामतीर्थ आदिका वर्णन, लक्ष्मीतीर्थका निरूपण, शङ्ख आदि तीर्थोंकी महिमा तथा साध्यामृत आदि तीर्थोंके प्रभावका वर्णन है। इसके बाद धनुष्कोटि आदिका माहात्म्य, क्षीरकुण्ड आदिकी महिमा तथा गायत्री आदि तीर्थोंके माहात्म्यका वर्णन है। फिर रामेश्वरकी महिमा, तत्त्वज्ञानका उपदेश तथा सेतु-यात्रा-विधिका वर्णन है, जो मनुष्योंको मोक्ष देनेवाला है। तत्पश्चात् धर्मारण्यका उत्तम माहात्म्य बताया गया है, जिसमें भगवान् शिवने स्कन्दको तत्त्वका उपदेश किया है। फिर धर्मारण्यका प्रादुर्भाव, उसके पुण्यका वर्णन, कर्मसिद्धिका उपाख्यान तथा ऋषिवंशका निरूपण है। तदनन्तर वहाँ अप्सरा-सम्बन्धी मुख्य तीर्थोंका माहात्म्य कहा गया है। इसके बाद वर्णाश्रम-धर्मके तत्त्वका निरूपण किया गया है। तदनन्तर देवस्थान-विभाग और बकुलादित्यकी शुभ कथाका वर्णन है। वहाँ छत्रानन्दा, शान्ता, श्रीमाता, मतङ्गिनी और पुण्यदा—ये पाँच देवियाँ सदा स्थित बतायी गयी हैं। इसके बाद वहाँ इन्द्रेश्वर आदिकी

महिमा तथा द्वारका आदिका निरूपण है। लोहासुरकी कथा, गङ्गाकूपका वर्णन, श्रीरामचन्द्रजीका चरित्र तथा सत्यमन्दिरका वर्णन है। फिर जीर्णोद्धारकी महिमाका कथन, आसनदान, जातिभेद-वर्णन तथा स्मृति-धर्मका निरूपण है। तत्पश्चात् अनेक उपाख्यानोंसे युक्त वैष्णव-धर्मोंका वर्णन है। तदनन्तर पुण्यमय चातुर्मास्यका माहात्म्य प्रारम्भ करके उसमें पालन करने योग्य सब धर्मोंका निरूपण किया गया है। फिर दानकी प्रशंसा, व्रतकी महिमा, तपस्या और पूजाका माहात्म्य तथा सच्छूद्रका कथन है। तदनन्तर प्रकृतियोंके भेदका वर्णन, शालग्रामके तत्त्वका निरूपण, तारकासुरके वधका उपाय, गरुड़-पूजनकी महिमा, विष्णुको शाप, वृक्षभावकी प्राप्ति, पार्वतीका अनुनय, भगवान् शिवका ताण्डवनृत्य, राम-नामकी महिमाका निरूपण, शिव-लिङ्गपतनकी कथा, पैजवन शूद्रकी कथा, पार्वतीजीका जन्म और चरित्र, तारकासुरका अद्भुत वध, प्रणवके ऐश्वर्यका कथन, तारकासुरके चरित्रका पुनर्वर्णन, दक्ष-यज्ञकी समाप्ति, द्वादशाक्षर-मन्त्रका निरूपण, ज्ञानयोगका वर्णन, द्वादश सूर्योंकी महिमा तथा चातुर्मास्य-माहात्म्यके श्रवण आदिके पुण्यका वर्णन किया गया है, जो मनुष्योंके लिये कल्याणदायक है। तदनन्तर ब्राह्मोत्तर भागमें भगवान् शिवकी अद्भुत महिमा, पञ्चाक्षरमन्त्रके माहात्म्य तथा गोकर्णकी महिमाका वर्णन है। तत्पश्चात् शिवरात्रिकी महिमा, प्रदोषव्रतका वर्णन तथा सोमवार-व्रतकी महिमा एवं सीमन्तिनीकी कथा है। फिर भद्रायुकी उत्पत्तिका वर्णन, सदाचार-निरूपण, शिवकवचका उपदेश, भद्रायुके विवाहका वर्णन, भद्रायुकी महिमा, भस्म-माहात्म्य-वर्णन, शबरका उपाख्यान, उमा-महेश्वर-व्रतकी महिमा, रुद्राक्षका माहात्म्य, रुद्राध्यायके पुण्य तथा ब्रह्मखण्डके श्रवण आदिकी पुण्यमयी महिमाका वर्णन है। इस प्रकार यह ब्रह्म-खण्ड बताया गया है।

इसके बाद चौथा परम उत्तम 'काशी-खण्ड' है, जिसमें विन्ध्यपर्वत और नारदजीके संवादका वर्णन है। फिर सत्यलोकका प्रभाव, अगस्त्यके आश्रममें देवताओंका आगमन, पतिव्रताचरित्र तथा तीर्थयात्राकी प्रशंसा है। तदनन्तर सप्तपुरीका वर्णन, संयमिनीका निरूपण, शिवशर्माको सूर्य, इन्द्र और अग्निके लोककी प्राप्तिका उल्लेख है। अग्निका प्रादुर्भाव, निर्ऋति तथा वरुणकी उत्पत्ति, गन्धवती, अलकापुरी और ईशानपुरीके उद्भवका वर्णन, चन्द्र, सूर्य, बुध, मङ्गल तथा बृहस्पतिके लोक, ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, ध्रुवलोक और तपोलोकका वर्णन है। [illegible] पुण्यमयी कथा, सत्यलोकका निरीक्षण, [illegible] मणिकर्णिकाकी उत्पत्ति, गङ्गाजीका प्रभाव, [illegible] काशीपुरीकी प्रशंसा, भैरवका आविर्भाव, [illegible] ज्ञानवापीका उद्भव, कलावतीकी कथा, [illegible] ब्रह्मचारीका आख्यान, [illegible] निर्देश, अविमुक्तेश्वरका वर्णन, [illegible] दिवोदासकी पुण्यमयी कथा, काशीका वर्णन, [illegible] गणपतिका प्रादुर्भाव, विष्णुमायाका प्रपञ्च, [illegible] पञ्चनदतीर्थकी उत्पत्ति, बिन्दुमाधवका प्राकट्य, [illegible] काशीका वैष्णवतीर्थ कहलाना; फिर शूलपाणि [illegible] काशीमें आगमन, जैगीषव्यके साथ संवाद, [illegible] ज्येष्ठेश्वर नाम होना, क्षेत्राख्यान, कन्दुकेश्वर और [illegible] प्रादुर्भाव, शैलेश्वर, रत्नेश्वर तथा [illegible] देवताओंका अधिष्ठान, दुर्गासुरका पराक्रम, दुर्गाकी [illegible] ॐकारेश्वरका वर्णन, पुनः ॐकारका माहात्म्य, [illegible] प्रादुर्भाव, केदारेश्वरका आख्यान, धर्मेश्वरकी कथा, [illegible] भुजाका प्राकट्य, वीरेश्वरका आख्यान, [illegible] विश्वकर्मेश्वरकी महिमा, दक्षयज्ञोद्भव, [illegible] आदिका माहात्म्य, पराशरनन्दन [illegible] स्तम्भन, क्षेत्रके तीर्थोंका समुदाय, [illegible] विश्वनाथजीका वैभव, तदनन्तर काशीकी यात्रा और [illegible] वर्णन—ये काशीखण्डके विषय हैं।

तदनन्तर पाँचवें 'अवन्तीखण्ड'का वर्णन सुनो। [illegible] महाकालवनका आख्यान, [illegible] प्रायश्चित्तविधि, अग्निकी उत्पत्ति, [illegible] देवदीक्षा, नाना प्रकारके पातकोंका नाश [illegible] कपालमोचनकी कथा, [illegible] सर्वपापनाशक तीर्थ, [illegible] कुटुम्बेश, विद्याधरेश्वर तथा [illegible] तत्पश्चात् स्वर्गद्वार, [illegible] शङ्करादित्य, पापनाशन [illegible] अनंगतीर्थ, [illegible] कलकलेश्वर, महाकालेश्वरयात्रा, [illegible] नक्षत्रेश्वरतीर्थका उपाख्यान, [illegible] तीर्थ, एकपादतीर्थ, [illegible] आदि तीर्थ, मार्कण्डेश्वरतीर्थ, [illegible] नरकान्तकतीर्थ, केदारेश्वर, रामेश्वर, [illegible]

नरादित्यतीर्थ, केशवादित्य, शक्तिभेदतीर्थ, स्वर्णसारमुखतीर्थ, ॐकारेश्वर आदि तीर्थ, अन्धकासुरके द्वारा स्तुति-कीर्तन, कालवनमें शिवलिङ्गोंकी संख्या तथा स्वर्णशृङ्गेश्वर-तीर्थका वर्णन है। फिर कुशस्थली, अवन्ती एवं उज्जयिनीपुरीके पद्मावती, कुमुद्वती, अमरावती, विशाला तथा प्रतिकल्पा—इन नामोंका उल्लेख है। इनका उच्चारण ज्वरकी शान्ति करनेवाला है। तत्पश्चात् शिप्रामें स्नान आदिका फल, नागोंद्वारा की हुई भगवान् शिवकी स्तुति, हिरण्याक्षवधकी कथा, सुन्दरकुण्डकतीर्थ, नीलगङ्गा, पुष्करतीर्थ, विन्ध्यवासन-तीर्थ, पुरुषोत्तमतीर्थ, अघनाशनतीर्थ, गोमतीतीर्थ, वामनकुण्ड, विष्णुसहस्रनाम, वीरेश्वर सरोवर, कालभैरवतीर्थ, नागपञ्चमीकी महिमा, नृसिंहजयन्ती, कुटुम्बेश्वरयात्रा, देवसाधककीर्तन, कर्कराज नामक तीर्थ, विघ्नेशादितीर्थ और सुरोहनतीर्थका वर्णन किया गया है। रुद्रकुण्ड आदिमें अनेक तीर्थोंका निरूपण किया गया है। तदनन्तर आठ तीर्थोंकी पुण्यमयी यात्राका वर्णन है। इसके बाद नर्मदानदीका माहात्म्य बतलाया गया है जिसमें धर्मपुत्र युधिष्ठिरके वैराग्य तथा मार्कण्डेयजीके साथ उनके समागमका वर्णन है।

तदनन्तर पहलेके प्रलयकालीन अनुभवका वर्णन, अमृत-कीर्तन, कल्प-कल्पमें नर्मदाके पृथक्-पृथक् नामोंका वर्णन, नर्मदाजीका आर्षस्तोत्र, कालरात्रिकी कथा, महादेवजीकी स्तुति, पृथक् कल्पकी अद्भुत कथा, विशल्याकी कथा, जालेश्वरकी कथा, गौरीव्रतका वर्णन, त्रिपुरदाहकी कथा, देहपातविधि, कावेरी-सङ्गम, दारुतीर्थ, ब्रह्मावर्त, ईश्वरकथा, अग्नितीर्थ, सूर्यतीर्थ, मेघनादादितीर्थ, दारुकतीर्थ, देवतीर्थ, नर्मदेशतीर्थ, कपिलातीर्थ, करञ्जकतीर्थ, कुण्डलेशतीर्थ, पिप्पलादतीर्थ, विमलेश्वरतीर्थ, शूलभेदनतीर्थ, शचीहरणकी कथा, अन्धकका वध, शूलभेदोद्भवतीर्थ, पृथक्-पृथक् दानधर्म, दीर्घतपाकी कथा, ऋष्यशृङ्गका उपाख्यान, चित्रसेनकी पुण्यमयी कथा, काशिराजका मोक्ष, देवशिलाकी कथा, शबरीतीर्थ, पवित्र व्याधोपाख्यान, पुष्करिणीतीर्थ, अर्कतीर्थ, आदित्येश्वरतीर्थ, शक्रतीर्थ, करोटिकतीर्थ, कुमारेश्वरतीर्थ, अगस्त्येश्वरतीर्थ, आनन्देश्वरतीर्थ, मातृतीर्थ, लोकेश्वर, धनदेश्वर, मङ्गलेश्वर तथा कामजतीर्थ, नागेश्वरतीर्थ, गोपारतीर्थ, गौतमतीर्थ, शङ्खचूडतीर्थ, नारदेश्वरतीर्थ, नन्दिकेश्वरतीर्थ, वरुणेश्वर-तीर्थ, दधिस्कन्दादितीर्थ, हनुमदीश्वरतीर्थ, रामेश्वर आदि तीर्थ, सोमेश्वर, पिङ्गलेश्वर, ऋणमोक्षेश्वर, कपिलेश्वर, पूतिकेश्वर, जलेशय, चण्डार्क, यमतीर्थ, काल्होडीश्वर, नन्दिकेश्वर, नारायणेश्वर, कोटीश्वर, व्यासतीर्थ, प्रभासतीर्थ, नागेश्वरतीर्थ, संकर्षणतीर्थ, प्रश्रयेश्वरतीर्थ, पुण्यमय एरण्डी-सङ्गमतीर्थ, सुवर्णशिलतीर्थ, करञ्जतीर्थ, कामरतीर्थ, भाण्डीरतीर्थ, रोहिणीभवतीर्थ, चक्रतीर्थ, धौतपापतीर्थ, आङ्गिरसतीर्थ, कोटितीर्थ, अन्योन्यतीर्थ, अङ्गारतीर्थ, त्रिलोचनतीर्थ, इन्द्रेशतीर्थ, कम्बुकेशतीर्थ, सोमेशतीर्थ, कोहलेशतीर्थ, नर्मदातीर्थ, अर्कतीर्थ, आग्नेयतीर्थ, उत्तम भार्गवेश्वरतीर्थ, ब्राह्मतीर्थ, दैवतीर्थ, मार्गेशतीर्थ, आदिवाराहेश्वर, रामेश्वरतीर्थ, सिद्धेश्वरतीर्थ, अहल्यातीर्थ, कंकटेश्वरतीर्थ, शक्रतीर्थ, सोमतीर्थ, नादेशतीर्थ, कोयेश तीर्थ, रुक्मिणीसम्भवतीर्थ, योजनेशतीर्थ, वराहेशतीर्थ, द्वादशीतीर्थ, शिवतीर्थ, सिद्धेश्वरतीर्थ, मङ्गलेश्वरतीर्थ, लिङ्गवाराहतीर्थ, कुण्डेशतीर्थ, श्वेतवाराहतीर्थ, भार्गवेश तीर्थ, रवीश्वरतीर्थ, शुक्ल आदि तीर्थ, हुङ्कारस्वामितीर्थ, सङ्गमेश्वरतीर्थ, नहुषेश्वरतीर्थ, मोक्षणतीर्थ, पञ्चगोपदतीर्थ, नागशावकतीर्थ, सिद्धेशतीर्थ, मार्कण्डेयतीर्थ, अक्रूरतीर्थ, कामोदतीर्थ, शूलारोपतीर्थ, माण्डव्यतीर्थ, गोपकेश्वरतीर्थ, कपिलेश्वरतीर्थ, पिङ्गलेश्वरतीर्थ, भूतेश्वरतीर्थ, गङ्गातीर्थ, गौतमतीर्थ, अश्वमेधतीर्थ, भृगुकच्छतीर्थ, पापनाशक केदारेशतीर्थ, कलकलेश (या कनखलेश) तीर्थ, जालेशतीर्थ, शालग्रामतीर्थ, वराहतीर्थ, चन्द्रप्रभासतीर्थ, आदित्यतीर्थ, श्रीपदतीर्थ, हंसतीर्थ, मूलस्थानतीर्थ, शूलेश्वरतीर्थ, उग्रतीर्थ, चित्रदैवकतीर्थ, शिखीश्वरतीर्थ, कोटितीर्थ, दशकन्यतीर्थ, सुवर्णतीर्थ, ऋणमोचनतीर्थ, भारभूतितीर्थ, पुङ्खमुण्डित तीर्थ, आमलेशतीर्थ, कपालेशतीर्थ, शृङ्गेरण्डीतीर्थ, कोटितीर्थ और लोटलेशतीर्थ आदिका वर्णन है। इसके बाद फलस्तुति कही गयी है। तदनन्तर कृमिजङ्गलमाहात्म्यके प्रसङ्गमें रोहिताश्वकी कथा, धुन्धुमारका उपाख्यान, उसके वधका उपाय, धुन्धु-वध, चित्रवहका उद्भव, उसकी महिमा, चण्डीशका प्रभाव, रतीश्वर, केदारेश्वर, लक्षतीर्थ, विष्णुपदी तीर्थ, मुखारतीर्थ, च्यवनान्धतीर्थ, ब्रह्मसरोवर, चक्रतीर्थ, ललितोपाख्यान, बहुगोमुखतीर्थ, रुद्रावर्ततीर्थ, मार्कण्डेय-तीर्थ, पापनाशकतीर्थ, श्रवणेशतीर्थ, शुद्धपटतीर्थ, देवान्धुप्रेततीर्थ, जिह्वोदतीर्थका प्राकट्य, शिवोद्भेदतीर्थ और फल-श्रुति—इन विषयोंका वर्णन है। यह सब अवन्ती-खण्ड-का वर्णन किया गया है, जो श्रोताओंके पापका नाश करनेवाला है।

इसके अनन्तर 'नागर-खण्डका' परिचय दिया जाता है।

नारायणके स्वरूपका निरूपण, तप्तकुण्डकी महिमा तथा मूलचण्डीश्वरका वर्णन है। चतुर्मुख गणेश और कलम्बेश्वर-की कथा, गोपालस्वामी, बकुलस्वामी और मरुद्गणकी भी कथा है। तत्पश्चात् क्षेमादित्य, उन्नतविघ्नेश, तलस्वामी, कालमेघ, रुक्मिणी, दुर्वासेश्वर, भद्रेश्वर, शङ्खावर्त, मोक्षतीर्थ, गोष्पदतीर्थ, अच्युतगृह, जालेश्वर, ॐकारेश्वर, चण्डीश्वर, आशापुरनिवासी विघ्नेश और कलाकुण्डकी अद्भुत कथा है। कपिलेश्वर और जरद्गव शिवकी भी विचित्र कथाका उल्लेख है। नलेश्वर, कर्कोटकेश्वर, हाटकेश्वर, नारदेश्वर, यन्त्रभूषा, दुर्गकूट और गणेशकी कथाका भी उल्लेख है। सुपर्णभैरवी और एलभैरवी तथा भल्लतीर्थकी भी महिमा है। तत्पश्चात् कर्दमालतीर्थ और गुप्त सोमनाथका वर्णन है। इसके बाद बहुस्वर्णेश्वर, शृङ्गेश्वर, कोटीश्वर, मार्कण्डेश्वर, कोटीश तथा दामोदरगृहकी माहात्म्य-कथा है। तदनन्तर स्वर्णरेखा, ब्रह्मकुण्ड, कुन्तीश्वर, भीमेश्वर, मृगीकुण्ड तथा सर्वस्व—ये वस्त्रापथक्षेत्रमें कहे गये हैं। तत्पश्चात् दुर्गाभल्लेश, गङ्गेश, रैवतेश, अर्बुदेश्वर, अचलेश्वर, नागतीर्थ, वसिष्ठाश्रम, भद्रकर्ण, त्रिनेत्र, केदार, तीर्थागमन, कोटीश्वर, रूपतीर्थ और हृषीकेश—ये अद्भुत माहात्म्यकथाएँ हैं। इसके बाद सिद्धेश्वर, शुक्रेश्वर, मणिकर्णीश्वर, पङ्कुतीर्थ, यमतीर्थ और वाराहीतीर्थ आदिके माहात्म्यका वर्णन है। फिर चन्द्रप्रभास, पिण्डोदक, श्रीमाता, शुक्लतीर्थ, कात्यायनीदेवी, पिण्डारकतीर्थ, कनखल-तीर्थ, चक्रतीर्थ, मानुपतीर्थ, कपिलाग्नितीर्थ तथा रक्तानुबन्ध आदि माहात्म्यकथाका उल्लेख है। तदनन्तर गणेशतीर्थ, पार्थेश्वरतीर्थ और उज्ज्वलतीर्थकी यात्रामें चण्डीस्थान, नागोद्भव, शिवकुण्ड, महेशतीर्थ तथा कामेश्वरका माहात्म्य-वर्णन और मार्कण्डेयजीकी उत्पत्तिकथा है। फिर उद्दालकेश और सिद्धेशके समीपवर्ती तीर्थोंकी पृथक्-पृथक् कथाएँ हैं। इसके बाद श्रीदेवमाताकी उत्पत्ति, व्यास और गौतमतीर्थकी कथा, कुलसन्तारतीर्थका माहात्म्य तथा रामतीर्थ एवं कोटि-तीर्थकी महिमा है। चन्द्रोद्भेदतीर्थ, ईशानतीर्थ और ब्रह्मस्थानकी उत्पत्तिका अद्भुत माहात्म्य तथा त्रिपुष्कर, रुद्रहृद और गुहेश्वरकी शुभ कथा है। तत्पश्चात् अविमुक्त-की महिमा, उमामहेश्वरका माहात्म्य, महौजाका प्रभाव और जम्बूतीर्थका महत्त्व कहा गया है। गङ्गाधर और मिश्रककी कथा एवं फलस्तुतिका भी वर्णन है। तदनन्तर द्वारका-माहात्म्यके प्रसङ्गमें चन्द्रशर्माकी कथा है। जागरण और पूजन आदिका आख्यान, एकादशीव्रतकी महिमा, महाद्वादशी-का आख्यान, प्रह्लाद और ऋषियोंका समागम, दुर्वासाका उपाख्यान, यात्राकी प्रारम्भिक विधि, गोमतीकी उत्पत्तिकथा, उसमें स्नान आदिका फल, चक्रतीर्थका माहात्म्य, गोमती-सागर-सङ्गम, सनकादि कुण्डका आख्यान, नृगतीर्थकी कथा, गोप्रचारकी पुण्यमयी कथा, गोपियोंका द्वारकामें आगमन, गोपीसरोवरका आख्यान, ब्रह्मतीर्थ आदिका कीर्तन, पाँच नदियोंके आगमनकी कथा, अनेक प्रकारके उपाख्यान, शिवलिङ्ग, गदातीर्थ और श्रीकृष्णपूजन आदिका वर्णन है। त्रिविक्रम-मूर्तिका वर्णन, दुर्वासा और श्रीकृष्ण-संवाद, कुश दैत्यके वधकी कथा, विशेष पूजनका फल, गोमती और द्वारकामें तीर्थोंके आगमनका वर्णन, श्रीकृष्णमन्दिरका दर्शन, द्वारवतीमें अभिषेक, वहाँ तीर्थोंके निवासकी कथा और द्वारकाके पुण्य-का वर्णन है। ब्राह्मणो! इस प्रकार सर्वोत्तम कथाओंसे युक्त शिवमाहात्म्य-प्रतिपादक स्कन्दपुराणमें यह सातवाँ प्रभासखण्ड बताया गया है। जो इसे लिखकर सुवर्णमय त्रिशूलके साथ

माघकी पूर्णिमाके दिन सत्कारपूर्वक ब्राह्मणको दान देता है, वह सदा भगवान् शिवके लोकमें आनन्दका भागी होता है।

वामनपुराणकी विषयसूची और उस पुराणके श्रवण, पठन एवं दानका माहात्म्य

ब्रह्माजी कहते हैं—वत्स ! सुनो, अब मैं त्रिविक्रम-चरित्रसे युक्त वामनपुराणका वर्णन करता हूँ । इसकी श्लोक-संख्या दस हजार है । इसमें कूर्म कल्पके वृत्तान्तका वर्णन है और त्रिवर्णकी कथा है । यह पुराण दो भागोंसे युक्त है और वक्ता-श्रोता दोनोंके लिये शुभकारक है । इसमें पहले पुराणके विषयमें प्रश्न है । फिर ब्रह्माजीके शिरश्छेदकी कथा, कपाल-मोचनका आख्यान और दक्ष-यज्ञ-विध्वंसका वर्णन है । तत्पश्चात् भगवान् हरकी कालरूप संज्ञा, मदनदहन, प्रह्लाद-नारायणयुद्ध, देवासुर-संग्राम, सुकेशी और सूर्यकी कथा, काम्यव्रतका वर्णन, श्रीदुर्गाचरित्र, तपतीचरित्र, कुरुक्षेत्र-वर्णन, अनुपम सत्या-माहात्म्य, पार्वती-जन्मकी कथा, तपती-का विवाह, गौरी-उपाख्यान, कौशिकी-उपाख्यान, कुमारचरित, अन्धकवधकी कथा, साध्योपाख्यान, जाबालिचरित, अरजा-की अद्भुत कथा, अन्धकासुर और भगवान् शङ्करका युद्ध, अन्धकको गणत्वकी प्राप्ति, मरुद्गणोंके जन्मकी कथा, राजा बलिका चरित्र, लक्ष्मी-चरित्र, त्रिविक्रम-चरित्र, प्रह्लादकी तीर्थ-यात्रा और उसमें अनेक मङ्गलमयी कथाएँ, धुन्धु-चरित, प्रेतो-पाख्यान, नक्षत्र पुरुषकी कथा, श्रीदामाका चरित्र, त्रिविक्रम-चरित्रके अन्तमें ब्रह्माजीके द्वारा कहा हुआ उत्तम स्तोत्र तथा प्रह्लाद और बलिके संवादमें सुतललोकमें श्रीहरिकी प्रशंसा-का उल्लेख है । ब्रह्मन् ! इस प्रकार मैंने तुम्हें इस पुराणका पूर्वभाग बताया है । अब इस वामनपुराणके उत्तरभागका श्रवण करो । उत्तरभागमें चार संहिताएँ हैं । ये पृथक्-पृथक् एक-एक सहस्र श्लोकोंसे युक्त हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं—माहेश्वरी, भागवती, सौरी और गाणेश्वरी । माहेश्वरी संहितामें श्रीकृष्ण तथा उनके भक्तोंका वर्णन है । भागवती संहितामें जगदम्बाके अवतारकी अद्भुत कथा दी गयी है । सौरी संहितामें भगवान् सूर्यकी पापनाशक महिमाका वर्णन है । गाणेश्वरी संहितामें भगवान् शिव तथा गणेशजीके चरित्रका वर्णन किया गया है । यह वामन नामक उत्तम [illegible] पुराण महर्षि पुलस्त्यने महात्मा नारदजीसे कहा है । फिर नारदजीसे महात्मा व्यासको प्राप्त हुआ है और व्यासजीसे उनके शिष्य रोमहर्षणको मिला है । रोमहर्षणजी नैमिषारण्य-निवासी शौनकादि ब्रह्मर्षियोंसे यह पुराण कहेंगे । इस प्रकार यह मङ्गलमय वामनपुराण परम्परासे प्राप्त हुआ है । जो इस-का पाठ और श्रवण करते हैं, वे भी परम गतिको प्राप्त होते हैं । जो इस पुराणको लिखकर शरत्कालके विषुव योगमें वेदवेत्ता ब्राह्मणको घृतधेनुके साथ [illegible] दान करता है, वह अपने पितरोंको नरकसे निकालकर स्वर्गमें पहुँचा देता है और स्वयं भी अनेक प्रकारके भोगोंका उपभोग करके देह-त्यागके पश्चात् वह भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त कर लेता है ।

कूर्मपुराणकी संक्षिप्त विषय-सूची और उसके पाठ, श्रवण तथा दानका माहात्म्य

ब्रह्माजी कहते हैं—वत्स मरीचे ! अब तुम कूर्मपुराण-का परिचय सुनो। इसमें लक्ष्मी-कल्पका वृत्तान्त है। इस पुराण-में कूर्मरूपधारी दयामय श्रीहरिने इन्द्रद्युम्नके प्रसङ्गसे महर्षियोंको धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका पृथक्-पृथक् माहात्म्य सुनाया है। यह शुभ पुराण चार संहिताओंमें विभक्त है। इसकी श्लोक-संख्या सतरह हजार है। मुने ! इसमें अनेक प्रकारकी कथाओंके प्रसङ्गसे मनुष्योंको सद्गति प्रदान करनेवाले नाना प्रकारके ब्राह्मणधर्म बताये गये हैं। इसके पूर्वभागमें पहले पुराणका उपक्रम है। तत्पश्चात् लक्ष्मी और इन्द्रद्युम्नका संवाद, कूर्म और महर्षियोंकी वार्ता, वर्णाश्रमसम्बन्धी आचारका कथन, जगत्‌की उत्पत्तिका वर्णन, संक्षेपसे कालसंख्याका निरूपण, प्रलयके अन्तमें भगवान्‌का स्तवन, [illegible] वर्णन, शङ्करजीका चरित्र, पार्वतीसहस्रनाम, [illegible] भृगुवंशवर्णन, स्वायम्भुव मनु तथा [illegible] दक्षयज्ञका विध्वंस, दक्षसृष्टि-कथन, [illegible] अत्रिवंशका परिचय, श्रीकृष्णका शुभ चरित्र, [illegible] श्रीकृष्ण-संवाद, व्यास-पाण्डव-संवाद, युगधर्म-वर्णन, [illegible] जैमिनिकी कथा, काशी एवं प्रयागका माहात्म्य, [illegible] का वर्णन और वैदिक शाखाका निरूपण है। इस पुराणके उत्तरभागमें पहले ईश्वरीय गीता फिर [illegible] प्रकारके धर्मोंका उपदेश दिया गया है। [illegible] प्रकारके तीर्थोंका पृथक्-पृथक् माहात्म्य [illegible] है।

तदनन्तर प्रतिसर्गका वर्णन है। यह 'ब्राह्मीसंहिता' कही गयी है। इसके बाद 'भागवती-संहिता'के विषयोंका निरूपण है, जिसमें वर्णोंकी पृथक्-पृथक् वृत्ति बतायी गयी है। इसके प्रथम पादमें ब्राह्मणोंकी सदाचाररूप स्थिति बतायी गयी है, जो भोग और सुख बढ़ानेवाली है। द्वितीय पादमें क्षत्रियोंकी वृत्तिका भलीभाँति निरूपण किया गया है, जिसका आश्रय लेकर मनुष्य अपने पापोंका यहीं नाश करके स्वर्गलोकमें चला जाता है। तृतीय पादमें वैश्योंकी चार प्रकारकी वृत्ति कही गयी है, जिसके सम्यक् आचरणसे उत्तम गतिकी प्राप्ति होती है। उसी प्रकार इसके चतुर्थ पादमें शूद्रोंकी वृत्ति कही गयी है, जिससे मनुष्योंके कल्याणकी वृद्धि करनेवाले भगवान् लक्ष्मीपति संतुष्ट होते हैं। तदनन्तर भागवती संहिताके पाँचवें पादमें संकरजातियोंकी वृत्ति कही गयी है, जिसके आचरणसे वह भविष्यमें उत्तम गतिको पा लेता है। मुने! इस प्रकार द्वितीय संहिता पाँच पादोंसे युक्त कही गयी है। इस उत्तरभागमें तीसरी संहिता 'सौरी-संहिता' कहलाती है, जो मनुष्योंका कार्य सिद्ध करनेवाली है। वह सकाम भाववाले मनुष्योंको छः प्रकारसे षट्कर्मसिद्धिका बोध कराती है। चौथी 'वैष्णवी-संहिता' है, जो मोक्ष देनेवाली कही गयी है। यह चार पदोंवाली संहिता द्विजातियोंके लिये ब्रह्मस्वरूप है। वे क्रमशः छः, चार, दो और पाँच हजार श्लोकोंकी बतायी गयी हैं। यह कूर्मपुराण धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप फल देनेवाला है, जो पढ़ने और सुननेवाले मनुष्योंको सर्वोत्तम गति प्रदान करता है। जो मनुष्य इस पुराणको लिखकर अयनारम्भके दिन

सोनेकी कच्छपमूर्तिके साथ ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक इसका दान करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है।

मत्स्यपुराणकी विषय-सूची तथा इस पुराणके पाठ, श्रवण और दानका माहात्म्य

ब्रह्माजी कहते हैं—द्विजश्रेष्ठ! अब मैं तुम्हें मत्स्यपुराणका परिचय देता हूँ, जिसमें वेदवेत्ता व्यासजीने इस भूतलपर सात कल्पोंके वृत्तान्तको संक्षिप्त करके कहा है। नृसिंहवर्णन आरम्भ करके चौदह हजार श्लोकोंका मत्स्यपुराण कहा गया है। मनु और मत्स्यका संवाद, ब्रह्माण्डका वर्णन, ब्रह्मा, देवता और असुरोंकी उत्पत्ति, मरुद्गणका प्रादुर्भाव, मदनद्वादशी, लोकपालपूजा, मन्वन्तर-वर्णन, राजा पृथुके राज्यका वर्णन, सूर्य और वैवस्वत मनुकी उत्पत्ति, बुध-संगमन, पितृवंशका वर्णन, श्राद्धकाल, पितृतीर्थ-प्रचार, सोमकी उत्पत्ति, सोमवंशका कथन, राजा ययातिका चरित्र, कार्तवीर्य अर्जुनका चरित्र, सृष्टिवंश-वर्णन, भृगुशाप, भगवान् विष्णुका पृथ्वीपर दस बार जन्म (अवतार), पूरुवंशका कीर्तन, हुताशनवंशका वर्णन, पहले क्रियायोग, फिर पुराणकीर्तन, नक्षत्रव्रत, पुरुषव्रत, मार्तण्डशयनव्रत, श्रीकृष्णाष्टमीव्रत, रोहिणीचन्द्र-

नामक व्रत, तड़ागविधिकी महिमा, वृक्षोत्सर्ग, सौभाग्यशयनव्रत, अगस्त्य-व्रत, अनन्ततृतीया-व्रत, रसकल्याणिनी-व्रत, आनन्द-करी-व्रत, सारस्वत-व्रत, उपरागाभिषेक (ग्रहणस्नान) विधि, सप्तमीशयनव्रत, भीमद्वादशी, अनङ्गशयन-व्रत, अशून्यशयन-व्रत, अङ्गारक-व्रत, सप्तमीसप्तक-व्रत, विशोकद्वादशी-व्रत, दस प्रकारका मेरुप्रदान, ग्रहशान्ति, ग्रह-स्वरूपकथा, शिवचतुर्दशी, सर्वफलत्याग, रविवार-व्रत, संक्रान्तिस्नान, विभूतिद्वादशी-व्रत, षष्ठीव्रत-माहात्म्य, स्नानविधिका वर्णन, प्रयागका माहात्म्य, द्वीप और लोकोंका वर्णन, अन्तरिक्षमें गमन, ध्रुवकी महिमा, देवेश्वरोंके भवन, त्रिपुरका प्रकाशन, श्रेष्ठ पितरोंकी महिमा, मन्वन्तर-निर्णय, चारों युगोंकी उत्पत्ति, युगधर्म-निरूपण, वज्राङ्गकी उत्पत्ति, तारकासुरकी उत्पत्ति, तारकासुरका माहात्म्य, ब्रह्मदेवानुकीर्तन, पार्वतीका प्राकट्य, शिवतपोवन, मदनदेह-दाह, रतिशोक, गौरी-तपोवन, शिवका गौरीको प्रसन्न करना, पार्वती तथा ऋषियोंका सवाद, पार्वतीविवाह-मङ्गल, कुमार कार्तिकेयका जन्म, कुमारकी विजय, तारकासुरका भयंकर वध, नृसिंह भगवान्‌की कथा, ब्रह्माजीकी सृष्टि, अन्धकासुरका वध, वाराणसी-माहात्म्य, नर्मदा-माहात्म्य, प्रवर-गणना, पितृ-गाथाका कीर्तन, उभयमुखी गौका दान, काले मृगचर्मका दान, सावित्रीकी कथा, राजधर्मका वर्णन, नाना प्रकारके उत्पातोंका कथन, ग्रहणान्त, यात्रानिमित्तक वर्णन, स्वप्नमङ्गल-कीर्तन, ब्राह्मण और वाराहका माहात्म्य, समुद्र-मन्थन, काल-

कूटकी शान्ति, देवासुर-संग्राम, वास्तुविद्या, प्रति[illegible], देवमन्दिर-निर्माण, प्रासादलक्षण, [illegible] राजाओंका वर्णन, महादानवर्णन तथा [illegible]—इन [illegible] विषयोंका इस पुराणमें वर्णन किया गया है । [illegible] कल्याणकारी तथा आयु और कीर्ति बढ़ानेवाले इस [illegible] पाठ अथवा श्रवण करता है, वह भगवान् [illegible] जाता है । जो इस पुराणको लिखकर [illegible] और गौके साथ विषुव योगमें ब्राह्मणको [illegible] दान देता है, वह परम पदको प्राप्त होता है ।
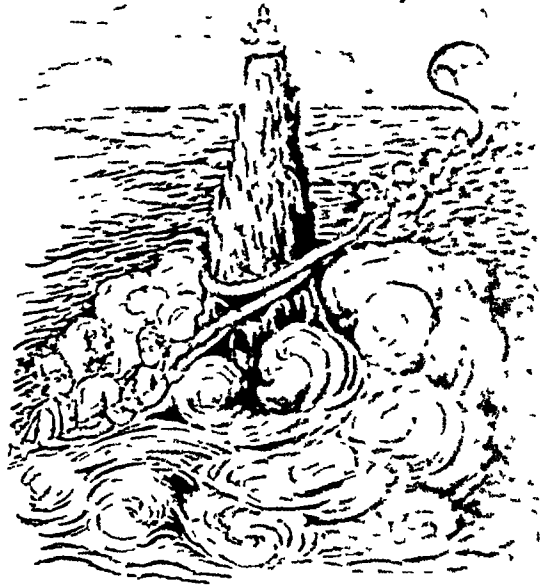
गरुडपुराणकी विषय-सूची और पुराणके पाठ, श्रवण और दानकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—मरीचे ! सुनो, अब मैं मङ्गलमय गरुडपुराणका वर्णन करता हूँ । गरुडके पूछनेपर गरुडासन भगवान् विष्णुने उन्हें तार्क्ष्य-कल्पकी कथासे युक्त उन्नीस हजार श्लोकोंका गरुडपुराण सुनाया था । इसमें पहले पुराणको आरम्भ करनेके लिये प्रश्न किया गया है । फिर संक्षेपसे सृष्टिका वर्णन है । तत्पश्चात् सूर्य आदिके पूजनकी विधि, दीक्षाविधि, श्राद्ध-पूजा, नवव्यूहपूजाकी विधि, वैष्णव-पञ्जर, योगाध्याय, विष्णुसहस्रनामकीर्तन, विष्णु-ध्यान, सूर्यपूजा, मृत्युञ्जय-पूजा, मालामन्त्र, शिवार्चा, गोपालपूजा, त्रैलोक्यमोहन श्रीधरपूजा, विष्णु-अर्चा, पञ्च-तत्त्वार्चा, चक्रार्चा, देवपूजा, न्यास आदि, संध्योपासन, दुर्गार्चन, सुरार्चन, महेश्वर-पूजा, [illegible] ध्यान, वास्तुमान, प्रासादल[illegible], [illegible] विधि, अष्टाङ्गयोग, दानधर्म, प्रायश्चित्त[illegible] नरकोंका वर्णन, सूर्यव्यूह, [illegible] स्वरज्ञान, नूतनरत्नपरीक्षा, [illegible] माहात्म्य, पृथक्-पृथक् [illegible] उपाख्यान, वर्णधर्म, द्रव्यशुद्धि, [illegible] प्रायश्चित्त, आश्रम, जननाशौच, [illegible] सूर्यवंश, सोमवंश, [illegible] भारताख्यान, आयुर्वेदनिदान, [illegible] रोगनाशक विष्णुकवच, गरुडकवच, [illegible]

चूडामणि, अश्वायुर्वेदकीर्तन, ओषधियोंके नामका कीर्तन, व्याकरणका ऊहापोह, छन्दःशास्त्र, सदाचार, स्नानविधि, तर्पण, बलिवैश्वदेव, संध्या, पार्वणकर्म, नित्यश्राद्ध, सपिण्डन, धर्मसार, पापोंका प्रायश्चित्त, प्रतिसंक्रम, युगधर्म, कर्मफल, योगशास्त्र, विष्णुभक्ति, श्रीहरिको नमस्कार करनेका फल, विष्णुमहिमा, नृसिंहस्तोत्र, ज्ञानामृत, गुह्याष्टकस्तोत्र, विष्ण्वर्चन-स्तोत्र, वेदान्त और सांख्यका सिद्धान्त, ब्रह्मज्ञान, आत्मानन्द, गीतासार तथा फलवर्णन—ये विषय कहे गये हैं। यह गरुडपुराणका पूर्वखण्ड बताया गया है।

इसीके उत्तरखण्डमें सबसे पहले प्रेतकल्पका वर्णन है। मरीचे! उसमें गरुडके पूछनेपर भगवान् विष्णुने पहले धर्मके महत्त्वको प्रकट किया है, जो योगियोंकी उत्तम गतिका कारण है। फिर दान आदिका फल तथा और्ध्वदेहिक कर्म बताया गया है। तत्पश्चात् यमलोकके मार्गका वर्णन किया गया है। इसी प्रसंगमें षोडश श्राद्धके फलको सूचित करनेवाले वृत्तान्तका वर्णन है। यमलोकके मार्गसे छूटनेका उपाय और धर्मराजके वैभवका कथन है। इसके बाद प्रेतकी पीड़ाओंका वर्णन, प्रेतचिह्न-निरूपण, प्रेतचरितवर्णन तथा प्रेतत्वप्राप्तिके कारणका उल्लेख किया गया है। तदनन्तर प्रेतकृत्यका विचार, सपिण्डीकरणका कथन, प्रेतत्वसे मुक्त होनेका कथन, मोक्षसाधक दान, आवश्यक एवं उत्तम दान, प्रेतको सुख देनेवाले कार्योंका ऊहापोह, शारीरक निर्देश, यमलोक-वर्णन, प्रेतत्वसे उद्धारका कथन, कर्म करनेके अधिकारीका निर्णय, मृत्युसे पहलेके कर्तव्यका वर्णन, मृत्युसे पीछेके कर्मका निरूपण, मध्यषोडश श्राद्ध, स्वर्गप्राप्ति करानेवाले कर्त्तव्यका ऊहापोह, सूतककी दिन-संख्या, नारायणबलि कर्म, वृषोत्सर्गका माहात्म्य, निषिद्ध कर्मका त्याग, दुर्मृत्युके अवसरपर किये जानेवाले कर्मका वर्णन, मनुष्योंके कर्मका फल, विष्णुध्यान और मोक्षके लिये कर्तव्य और अकर्तव्यका विचार, स्वर्गकी प्राप्तिके लिये विहित कर्मका वर्णन, स्वर्गीय सुखका निरूपण, भूलोकवर्णन, नीचेके सात लोकोंका वर्णन, ऊपरके पाँच लोकोंका वर्णन, ब्रह्माण्डकी स्थितिका निरूपण, ब्रह्माण्डके अनेक चरित्र, ब्रह्म और जीवका निरूपण, आत्यन्तिक प्रलयका वर्णन तथा फलस्तुतिका निरूपण है। यही गरुड नामक पुराण है, जो कीर्तन और श्रवण करनेपर वक्ता और श्रोता मनुष्योंके पापका शमन करके उन्हें भोग और मोक्ष देनेवाला है। जो इस पुराणको लिखकर दो सुवर्णमयी हंसप्रतिमाके साथ विषुव योगमें ब्राह्मणको दान देता है, वह स्वर्गलोकमें जाता है।

ब्रह्माण्डपुराणका परिचय, संक्षिप्त विषय-सूची, पुराण-परम्परा, उसके पाठ, श्रवण एवं दानका फल

ब्रह्माजी कहते हैं—वत्स! सुनो, अब मैं ब्रह्माण्ड-पुराणका वर्णन करता हूँ, जो भविष्यकल्पोंकी कथासे युक्त और बारह हजार श्लोकोंसे परिपूर्ण है। इसके चार पाद हैं। पहला 'प्रक्रियापाद', दूसरा 'अनुषङ्गपाद', तीसरा 'उपोद्घात-पाद' और चौथा 'उपसंहारपाद' है। पहलेके दो पादोंको पूर्वभाग कहा गया है। तृतीय पाद ही मध्यम भाग है और चतुर्थ पाद उत्तरभाग माना गया है। पूर्वभागके प्रक्रिया-पादमें पहले कर्तव्यका उपदेश, नैमिषका आख्यान, हिरण्यगर्भकी उत्पत्ति और लोकरचना इत्यादि विषय वर्णित हैं। मानद! यह पूर्वभागका प्रथम पाद (प्रक्रियापाद) है।

अब द्वितीय (अनुषङ्ग) पादका वर्णन सुनो, इसमें कल्प तथा मन्वन्तरका वर्णन है। तत्पश्चात् लोकज्ञान, मानुषी-सृष्टिकथन, रुद्रसृष्टिवर्णन, महादेवविभूति, ऋषि-सर्ग, अग्निविजय, कालसद्भाव-वर्णन, प्रियव्रतवंशका परिचय,

पृथ्वीका दैर्घ्य और विस्तार, भारतवर्षका वर्णन, फिर अन्य वर्षोंका वर्णन, जम्बू आदि सात द्वीपोंका परिचय, नीचेके लोकों—पातालोंका वर्णन, भूर्भुवः आदि ऊपरके लोकोंका वर्णन, ग्रहोंकी गतिका विश्लेषण, आदित्यव्यूहका कथन, देवग्रहानुकीर्तन, भगवान् शिवके नीलकण्ठ नाम पड़नेका कथन, महादेवजीका वैभव, अमावास्याका वर्णन, युगतत्त्व-निरूपण, यज्ञप्रवर्त्तन, अन्तिम दो युगोंका कार्य, युगके अनुसार प्रजाका लक्षण, ऋषिप्रवर-वर्णन, वेदव्यसन-वर्णन, स्वायम्भुव मन्वन्तरका निरूपण, शेषमन्वन्तरका कथन, पृथ्वीदोहन, चाक्षुष और वर्तमान मन्वन्तरके सर्गका वर्णन है। इस प्रकार यह पूर्वभागका द्वितीय पाद कहा गया।

अब मध्यमभागके उपोद्घातपादमें वर्णित विषय कहे जाते हैं। उसमें पहले सप्तर्षियोंका वर्णन, प्रजापतिवंशका निरूपण, उससे देवता आदिकी उत्पत्ति, तदनन्तर विजयकी अभिलाषा और मरुद्गणोंकी उत्पत्तिका कथन है। कश्यपकी संतानोंका वर्णन, ऋषिवंशनिरूपण, पितृकल्पका कथन, श्राद्धकल्पका वर्णन, वैवस्वतमनुकी उत्पत्ति, उनकी सृष्टि, मनुपुत्रोंका वंश, गान्धर्वनिरूपण, इक्ष्वाकुवंशवर्णन, महात्मा अत्रिके वंशका कथन, अमावसुके वंशका वर्णन, रजिका अद्भुत चरित्र, ययातिचरित, यदुवंशनिरूपण, कार्तवीर्यचरित, परशुरामचरित, वृष्णिवंशका वर्णन, सगरकी उत्पत्ति, भार्गवका चरित्र, कार्तवीर्यवधसम्बन्धी कथा, सगरका चरित्र, भार्गव (और्व) की कथा, देवासुर-संग्रामकी कथा, कृष्णा-वतारवर्णन, शुक्राचार्यकृत इन्द्रका पवित्र स्तोत्र, विष्णुमाहात्म्य-कथन, बलिवंशनिरूपण तथा कलियुगमें होनेवाले राजाओंका चरित्र—यह मध्यमभागका तीसरा उपोद्घातपाद है।

अब उत्तरभागके चौथे उपसंहारपादका वर्णन करता हूँ। इसमें वैवस्वत मन्वन्तरकी कथा विस्तारके साथ ज्यों-की-त्यों दी गयी है। जो कथा पहले ही कह दी गयी है, वह यहाँ संक्षेपसे बतायी जाती है। भविष्यमें होनेवाले मनुओंका चरित्र भी कहा गया है। तदनन्तर कल्पके प्रलयका निर्देश किया गया है। कालमान बताया गया है। तत्पश्चात् प्राप्त लक्षणोंके अनुसार चौदह भुवनोंका वर्णन किया गया है। फिर विपरीत कर्मोंके आचरणसे नरकोंकी प्राप्तिका कथन है। मनोमयपुरका आख्यान और प्राकृत प्रलयका प्रतिपादन किया गया है। तदनन्तर [illegible] आदि गुणोंके सम्बन्धसे जीवोंकी त्रिविध [illegible] किया गया है। इसके बाद [illegible] अनिर्देश्य एवं अतर्क्य परब्रह्म [illegible] पादन किया गया है। इस प्रकार [illegible] उपसंहारपादका वर्णन किया गया है। [illegible] तुम्हें चार पादवाले ब्रह्माण्डपुराणका परिचय दिया। [illegible] अठारहवाँ पुराण [illegible] भी उपमा नहीं है। मानद! ब्रह्माण्डपुराण [illegible] श्लोकमें कहा गया है, वास्तवमें उसीको [illegible] उपदेशक पराशरनन्दन व्यासमुनिने अठारह [illegible] करके पृथक्-पृथक् कहा है। दीनोंपर अनुग्रह [illegible] धर्मशील मुनियोंने मुझसे सभी पुराण सुनकर [illegible] लोकोंके लिये प्रकाशन किया है। [illegible] इस पुराणका उपदेश दिया था। [illegible] पराशरको और पराशरने जातूकर्ण्यको यह पुराण सुनाया। फिर जातूकर्ण्यसे वायुदेवके मुखसे प्रकट हुए इस उत्तम पुराणको पाकर व्यासदेवने इसे [illegible] और इस लोकमें इसका प्रचार किया। वत्स! जो [illegible] इस पुराणका पाठ एवं श्रवण करता है, वह इस [illegible] सारे पापोंका नाश करके अनामय लोक ([illegible] परम धाम) में जाता है। जो इस पुराणको [illegible] सिंहासनपर रखता और इसको [illegible] दान कर देता है, वह ब्रह्मलोकमें [illegible] है। [illegible] अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। [illegible] जो ये अठारह पुराण [illegible] हैं, उन सबको [illegible] सुनना चाहिये। जो श्रेष्ठ मानव इन अठारह पुराणोंको विधिपूर्वक सुनता अथवा पढ़ता है, वह फिर इस [illegible] जन्म नहीं लेता। मैंने इस समय जो [illegible] पुराणोंका सूत्ररूप है। [illegible] इसका नित्य अनुशीलन करना चाहिये। जो [illegible] पापाचारी, देवता और गुरुकी निन्दा करनेवाला, [illegible] महात्माओंसे द्वेष रखनेवाला और शठ है, उसे [illegible] उपदेश कदापि नहीं देना चाहिये। जो [illegible] युक्त, सेवापरायण, द्वेषरहित तथा पवित्र है, उसे [illegible] वैष्णव पुरुषको ही इसका उपदेश देना चाहिये।

बारह मासोंकी प्रतिपदाके व्रत एवं आवश्यक कृत्योंका वर्णन

श्रीनारदजी बोले—प्रभो! मैंने आपके मुखसे समस्त पुराणोंका सूत्र, जैसा कि परमेष्ठी ब्रह्माजीने महर्षि मरीचिसे कहा था, सुन लिया। महाभाग! अब मुझसे क्रमशः तिथियोंके विषयमें निरूपण कीजिये, जिससे व्रतका ठीक-ठीक निश्चय हो जाय। जिस मासमें, जिस पुण्य तिथिको जिसने उपासना की है और उसकी पूजा आदिका जो विधान है, वह सब इस समय बताइये।

श्रीसनातनजीने कहा—नारद! सुनो, अब मैं तुमसे तिथियोंके पृथक्-पृथक् व्रतका वर्णन करता हूँ। तिथियोंके जो स्वामी हैं, उन्हींके क्रमसे पृथक्-पृथक् व्रत बताया जाता है, जो सम्पूर्ण सिद्धियोंकी प्राप्ति करानेवाला है। चैत्रमासके शुक्ल पक्षमें प्रथम दिन सूर्योदयकालमें ब्रह्माजीने सम्पूर्ण जगत्‌की सृष्टि की थी, इसलिये वर्ष और वसंत ऋतुके आदिमें बलिराज्य-सम्बन्धी तिथि—अमावास्याको जो प्रतिपदा तिथि प्राप्त होती है, उसीमें सदा विद्वानोंको व्रत करना चाहिये। प्रतिपदा तिथि पूर्वविद्धा होनेपर ही व्रत आदिमें ग्रहण करने योग्य है। उस दिन महाशान्ति करनी चाहिये। वह समस्त पापोंका नाश, सब प्रकारके उत्पातोंकी शान्ति तथा कलियुगके दुष्कर्मोंका निवारण करनेवाली होती है। साथ ही वह आयु देनेवाली, पुष्टिकारक तथा धन और सौभाग्यको बढ़ानेवाली है। वह परम मङ्गलमयी, शान्ति, पवित्र होनेके साथ ही इहलोक और परलोकमें भी सुख देनेवाली है। उस तिथिको पहले अग्निरूपधारी भगवान् ब्रह्माकी पूजा करनी चाहिये, फिर क्रमशः सब देवताओंकी पृथक्-पृथक् पूजा करे। इस तरह पूजा और ॐकारपूर्वक नमस्कार[1] करके कुश, जल, तिल और अक्षतके साथ सुवर्ण और वस्त्रसहित दक्षिणा लेकर वेदवेत्ता ब्राह्मणको व्रतकी पूर्तिके लिये दान करना चाहिये। इस प्रकार पूजा-विशेषसे 'सौरि' नामक व्रत सम्पन्न होता है। ब्रह्मन्! यह मनुष्योंको आरोग्य[2] प्रदान करनेवाला है। मुने! उसी दिन 'विद्याव्रत'[3] भी बताया गया है तथा इसी तिथिको श्रीकृष्णने अजातशत्रु युधिष्ठिरको तिलक[1]-व्रत करनेका उपदेश दिया है।

तदनन्तर ज्येष्ठ मासके शुक्ल पक्षकी प्रतिपदाको सूर्योदयकालमें देवमन्दिरसम्बन्धी वाटिकामें उगे हुए मनोहर कनेरवृक्षका पूजन करे। कनेरके वृक्षमें लाल डोरा लपेटकर उसपर गन्ध, चन्दन, धूप आदि चढ़ावे, उगे हुए सप्तधान्यके अङ्कुर, नारंगी और बिजौरा नींबू आदिसे उसकी पूजा करे। फिर अक्षत और जलसे उस वृक्षको सींचकर निम्नाङ्कित मन्त्रसे क्षमा-प्रार्थना करे।

> करवीरवृषावास नमस्ते भानुवल्लभ।
> मौलिमण्डन दुर्गादिदेवानां सततं प्रिय॥
> (ना० पूर्व० ११०। १७)

'करवीर! आप धर्मके निवास-स्थान और भगवान् सूर्यके पुत्र हैं। दुर्गादि देवताओंके मस्तकको विभूषित करनेवाले तथा उनके सदैव प्रिय हैं। आपको नमस्कार है।'

तत्पश्चात् 'आ कृष्णेन[2]०' इत्यादि वेदोक्त मन्त्रका उच्चारण करके इसी प्रकार क्षमा-प्रार्थना करे। इस प्रकार भक्तिपूर्वक पूजन करके ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे और वृक्षकी परिक्रमा करके अपने घर जाय*। श्रावण शुक्ला प्रतिपदाको परम उत्तम 'रोटक[3]व्रत' होता है, जो लक्ष्मी और बुद्धिको देनेवाला है तथा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षका कारण है। ब्रह्मन्! सोमवारयुक्त श्रावण शुक्ल प्रतिपदा या श्रावणके प्रथम सोमवारसे लेकर साढ़े तीन मासतक यह व्रत किया जाता है। इसमें प्रतिदिन सोमेश्वर भगवान् शिवकी बिल्वपत्रसे पूजा की जाती है। कार्तिक शुक्ला चतुर्दशीतक इस नियमसे पूजा करके उस दिन उपवासपूर्वक रहे और व्रतपरायण पुरुष पूर्णिमाके दिन पुनः भगवान् शङ्करकी पूजा करे। फिर बाँसके पात्रमें सुवर्णसहित पवित्र एवं अधिक वायन, जो

---

१. नामके आदिमें 'ॐ' और अन्तमें 'नमः' जोड़कर बोलना ही ॐकारपूर्वक नमस्कार है; यथा—'ॐ ब्रह्मणे नमः' इत्यादि। अथवा 'ॐ नमः' को एक साथ भी बोल सकते हैं; यथा—'ॐ नमो ब्रह्मणे' इत्यादि।

२. इसी तिथिको विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें 'आरोग्यव्रत'का विधान किया गया है और ब्रह्मपुराणमें 'संवत्सरारम्भ-विधि' दी गयी है।

३. 'विद्याव्रत'की विधि विष्णुधर्मोत्तरमें तथा गरुडपुराणमें भी उपलब्ध होती है।

१. 'तिलकव्रत'के विषयमें विशेष जानकारी भविष्योत्तरपुराणसे हो सकती है।

२. आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥

* निर्णयग्रन्थोंके अनुसार भविष्योत्तरपुराणमें इसकी विशेष विधि दी गयी है। वहाँ 'करवीर-व्रत' के नामसे इसका उल्लेख किया गया है।

३. व्रतराजमें इस व्रतका विस्तारपूर्वक वर्णन है।

देवताकी प्रसन्नताको बढ़ानेवाला हो, लेकर संकल्पपूर्वक ब्राह्मणको दान करे। मुनीश्वर! यह दान धनकी वृद्धि करनेवाला है। भाद्रपदके शुक्ल पक्षकी प्रतिपदाको कोई 'महत्तम व्रत' एवं कोई 'मौन-व्रत' बतलाते हैं। इसमें भगवान् शिवकी पूजा की जाती है। उस दिन मौन रहकर नैवेद्य तैयार करे। अड़तालीस फल और पूए एकत्र करके उनमेंसे सोलह तो ब्राह्मणको दे और सोलह देवताको भोग लगावे एवं शेष सोलह अपने उपयोगमें लावे। सुवर्णमयी शिवकी प्रतिमाको विधानवेत्ता पुरुष कलशके ऊपर स्थापित करके उसकी पूजा करे। फिर वह सब कुछ एक धेनुके सहित आचार्यको दान कर दे। ब्रह्मन्! देवदेव महादेवके इस व्रतका चौदह वर्षोंतक पालन करके नाना प्रकारके भोग भोगनेके पश्चात् देहावसान होनेपर शिवलोकमें जाता है।

ब्रह्मन्! आश्विन शुक्ला प्रतिपदाको 'अशोक-व्रत'का पालन करके मनुष्य शोकरहित तथा धन-धान्यसे सम्पन्न हो जाता है। उसमें नियमपूर्वक रहकर अशोक वृक्षकी पूजा करनी चाहिये। बारहवें वर्ष व्रतके अन्तमें अशोक वृक्षकी सुवर्णमयी मूर्ति बनाकर उसे भक्तिपूर्वक गुरुको समर्पित करनेपर मनुष्य शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इसी प्रतिपदाको 'नवरात्रव्रत' आरम्भ करे। पूर्वाह्णकालमें कलशस्थापनपूर्वक देवीकी पूजा करे। गेहूँ और जौके बीजसे अङ्कुर आरोपण करके प्रतिदिन

१–२. महत्तम और मौन—इन दोनों व्रतोंका विशेष विधान स्कन्दपुराणमें उपलब्ध होता है।

अपनी शक्तिके अनुसार [illegible] करके रहे और पूजा [illegible] मार्कण्डेयपुराणमें देवीके जो तीन [illegible] और मोक्षकी अभिलाषा [illegible] करे। नवरात्रमें भोजन, वस्त्र आदिके [illegible] माना गया है। ब्रह्मन्! इस प्रकार [illegible] मनुष्य इस पृथ्वीपर दुर्गाजीकी [illegible] आश्रय हो जाता है।

कार्तिक शुक्ला प्रतिपदाको [illegible] नियमोंका पालन करे। विशेषतः अन्नकूट [illegible] विष्णुकी प्रसन्नताको बढ़ानेवाला है। उस दिन [illegible] पूजनके लिये सब तरहके पाक और [illegible] करके सबको अन्नकूट करना चाहिये। [illegible] सिद्धि होती है। [illegible] गौओंसहित [illegible] पूजन करके जो उसकी प्रदक्षिणा [illegible] मोक्ष पाता है।

मार्गशीर्ष शुक्ला प्रतिपदाको [illegible] पालन करना चाहिये। रातमें भगवान् [illegible] होम करके अग्निदेवकी सुवर्णमयी [illegible] आच्छादित करके ब्राह्मणको दान दे। [illegible] इस पृथ्वीपर धनधान्यसे सम्पन्न [illegible] उसके समस्त पाप दग्ध हो [illegible] प्रतिष्ठित होता है।

पौष शुक्ला प्रतिपदाको [illegible] एकभुक्त-व्रत करनेवाला मनुष्य [illegible] माघशुक्ला प्रतिपदाके दिन [illegible] विधिपूर्वक पूजा करके मनुष्य [illegible] है। फाल्गुन शुक्ला प्रतिपदाको [illegible] दिगम्बर शिवको सब [illegible] भगवान् महेश्वर इस लौकिक [illegible] सायुज्य प्रदान करते हैं। फिर [illegible] होनेपर वे क्या नहीं दे [illegible]

विश्वव्यापक भगवान् विष्णुकी विधिपूर्वक पूजा करके व्रती पुरुष ब्राह्मणोंको भोजन करावे। इसी प्रकार आषाढ़ शुक्ला प्रतिपदाको जगद्गुरु ब्रह्मा एवं विष्णुका पूजन करके ब्राह्मण-भोजन करावे। ऐसा करनेसे विष्णुसहित सर्वलोकेश्वरेश्वर ब्रह्माजी अपना सायुज्य प्रदान करते हैं और वह सम्पूर्ण सिद्धियोंको प्राप्त कर लेता है। द्विजश्रेष्ठ ! बारह महीनोंकी प्रतिपदा तिथियोंमें होनेवाले जो व्रत तुम्हें बताये गये हैं, वे भोग और मोक्ष देनेवाले हैं। इन सब व्रतोंमें ब्रह्मचर्य-पालनका विधान है। भोजनके लिये सामान्यतः हविष्यान्न बताया गया है।
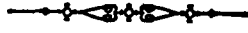
बारह मासोंके द्वितीयासम्बन्धी व्रतों और आवश्यक कृत्योंका निरूपण

सनातनजी कहते हैं—ब्रह्मन् ! सुनो, अब मैं तुम्हें द्वितीयाके व्रत बतलाता हूँ, जिनका भक्तिपूर्वक पालन करके मनुष्य ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। चैत्र शुक्ला द्वितीयाको ब्राह्मी शक्तिके साथ ब्रह्माजीका हविष्यान्न तथा गन्ध आदिसे पूजन करके व्रती पुरुष सम्पूर्ण यज्ञोंका फल पाता है और समस्त मनोवाञ्छित कामनाओंको पाकर अन्तमें ब्रह्मपद प्राप्त करता है। विप्रवर ! इसी दिन सायंकाल उगे हुए बालचन्द्रमाका[1] पूजन करनेसे भोग और मोक्षरूप फलकी प्राप्ति होती है। अथवा उस दिन भक्तिपूर्वक अश्विनीकुमारोंकी यत्नपूर्वक पूजा करके ब्राह्मणको सोने और चाँदीके नेत्रोंका दान करे[2]। इस व्रतमें दही अथवा घीसे प्राणयात्राका निर्वाह किया जाता है। द्विजेन्द्र ! बारह वर्षोंतक 'नेत्रव्रत'का अनुष्ठान करके मनुष्य पृथ्वीका अधिपति होता है। वैशाख शुक्ला द्वितीयाको सप्तधान्ययुक्त कलशके ऊपर विष्णुरूपी ब्रह्माका विधिपूर्वक पूजन करके मनुष्य मनोवाञ्छित भोग भोगनेके पश्चात् विष्णुलोक प्राप्त कर लेता है। ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीयाको सम्पूर्ण भुवनोंके अधिपति ब्रह्मस्वरूप भगवान् भास्करका विधिपूर्वक पूजन करके जो भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, वह सूर्यलोकमें जाता है। आषाढ़मासके शुक्ल पक्षमें जो पुष्यनक्षत्रसे युक्त द्वितीया तिथि आती है, उसमें सुभद्रादेवीके साथ श्रीबलराम और श्रीकृष्णको रथपर बिठाकर व्रती पुरुष ब्राह्मण आदिके साथ नगर आदिमें भ्रमण करावे और किसी जलाशयके निकट जाकर बड़ा भारी उत्सव मनावे। तदनन्तर देवविग्रहोंको विधिपूर्वक पुनः मन्दिरमें विराजमान करके उक्त व्रतकी पूर्तिके लिये ब्राह्मणोंको भोजन करावे। श्रावण कृष्णा द्वितीयाको प्रजापति विश्वकर्मा शयन करते हैं। अतः वह पुण्यमयी तिथि 'अशून्यशयन' नामसे प्रसिद्ध है। उस दिन अपनी शक्तिके साथ शय्यापर शयन किये हुए नारायणस्वरूप चतुर्मुख ब्रह्माजीकी पूजा करके उन जगदीश्वरको प्रणाम करे।

तदनन्तर सायंकालमें चन्द्रमाके लिये अर्घ्यदान भी आवश्यक बताया गया है, जो सम्पूर्ण सिद्धियोंकी प्राप्ति करानेवाला है। भाद्रपद शुक्ला द्वितीयाको इन्द्ररूपधारी जगद्विधाता ब्रह्माकी विधिपूर्वक पूजा करके मनुष्य सम्पूर्ण यज्ञोंका फल पाता है। आश्विन मासके शुक्लपक्षमें जो पुण्यमयी द्वितीया तिथि आती है, उसमें दिया हुआ दान अनन्त फल देनेवाला कहा जाता है। कार्तिक शुक्ला द्वितीयाको पूर्वकालमें यमुनाजीने यमराजको अपने घर भोजन कराया था, इसलिये यह यम-द्वितीया कहलाती है। इसमें बहिनके घर भोजन करना पुष्टिवर्धक बताया गया है। अतः बहिनको उस दिन वस्त्र और आभूषण देने चाहिये। उस तिथिको जो बहिनके हाथसे इस लोकमें भोजन करता है, वह सर्वोत्तम रत्न, धन और धान्य पाता है। मार्गशीर्ष शुक्ला द्वितीयाको श्राद्धके द्वारा पितरोंका पूजन करनेवाला पुरुष पुत्र-पौत्रोंसहित आरोग्य

१. विष्णुधर्मोत्तरपुराणके अनुसार यह 'बालेन्दुव्रत' कहा गया है।

२. विष्णुधर्ममें भी इस 'नेत्रव्रत'का वर्णन किया गया है।

लाभ करता है। पौष शुक्ला द्वितीयाको गायके सींगमें लिये हुए जलके द्वारा मार्जन करना और संध्याकालमें बालचन्द्रमाका दर्शन करना मनुष्योंके लिये सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला है। जो हविष्यान्न भोजन करके इन्द्रियसंयमपूर्वक रहकर अर्घ्यदानसे तथा घृतसहित पुष्प आदिसे बालचन्द्रमाका पूजन करता है, वह धर्म, काम और अर्थकी सिद्धि लाभ करता है। माघशुक्ला द्वितीयाको भानुरूपी प्रजापतिकी विधिपूर्वक अर्चना करके लाल फूल और लाल चन्दन आदिसे उनकी पूजा करनी चाहिये। अपनी शक्तिके अनुसार सोनेकी सूर्यमूर्तिका निर्माण कराकर ताँबेके पात्रको गेहूँ या चावलसे भर दे और वह पात्र भक्तिपूर्वक देवताको समर्पित करके मूर्तिसहित उसे ब्राह्मणको दान कर दे। ब्रह्मन्! इस प्रकार व्रतका पालन करनेपर वह मनुष्य उदित हुए साक्षात् सूर्यके समान इस पृथ्वीपर दुर्जय एवं दुर्धर्ष हो जाता है। इस लोकमें श्रेष्ठ कामनाओंका उपभोग करके अन्तमें वह ब्रह्मपदको प्राप्त होता है। फाल्गुन शुक्ला द्वितीयाको श्रेष्ठ द्विज श्वेत एवं सुगन्धित पुष्पोंसे भगवान् शिवकी पूजा करे। फूलोंसे चँदोवा बनाकर सुन्दर पुष्पमय आभूषणोंसे उनका शृङ्गार करे। फिर धूप, दीप, नाना प्रकारके नैवेद्य और आरती आदिके द्वारा भगवान्‌को प्रसन्न करके पृथ्वीपर पड़कर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम करे। इस प्रकार देवेश्वर शिवकी आराधना करके मनुष्य रोगसे रहित तथा धनधान्यसे सम्पन्न हो निश्चय ही सौ वर्षोंतक जीवित रहता है। शुक्लपक्षकी द्वितीया तिथियोंमें जो विधान बताया गया है, वही विधिज्ञ पुरुषोंको कृष्णपक्षकी द्वितीयामें भी करना चाहिये। पृथक्-पृथक् महीनोंमें नाना रूप धारण करनेवाले अग्निदेव ही द्वितीया तिथियोंमें पूजित होते हैं। इसमें भी पूर्ववत् ब्रह्मचर्य आदिका पालन आवश्यक है।

बारह महीनोंके तृतीया-सम्बन्धी व्रतोंका परिचय

सनातनजी कहते हैं—नारद! सुनो, अब मैं तुम्हें तृतीयाके व्रत बतलाता हूँ, जिनका विधिपूर्वक पालन करके नारी शीघ्र सौभाग्य लाभ करती है। ब्रह्मन्! वर-प्राप्तिकी इच्छा रखनेवाली कन्या तथा सौभाग्य, पुत्र एवं पतिकी मङ्गलकामना करनेवाली विवाहिता नारी चैत्र शुक्ला तृतीयाको उपवास करके गौरीदेवी तथा भगवान् शङ्करकी सोने, चाँदी, ताँबे या मिट्टीकी प्रतिमा बनावे और उसे गन्ध-पुष्प, दूर्वाकाण्ड आदि आचारों तथा सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे विधिपूर्वक पूजित करके सधवा ब्राह्मण-पत्नियों अथवा सुलक्षणा ब्राह्मण-कन्याओंको सिन्दूर, काजल और वस्त्राभूषणों आदिसे संतुष्ट करे। तदनन्तर उस प्रतिमाको जलाशयमें विसर्जन कर दे। स्त्रियोंको सौभाग्य देनेवाली जैसी गौरीदेवी हैं, वैसी तीनों लोकोंमें दूसरी कोई शक्ति नहीं है। वैशाख शुक्लपक्षकी जो तृतीया है उसे 'अक्षयतृतीया' कहते हैं। वह त्रेतायुगकी आदि तिथि है। उस दिन जो सत्कर्म किया जाता है, उसे वह अक्षय बना देती है। वैशाख शुक्ला तृतीयाको लक्ष्मीसहित जगद्गुरु भगवान् नारायणका पुष्प, धूप और चन्दन आदिसे पूजन करना चाहिये अथवा गङ्गाजीके जलमें स्नान करना चाहिये। ऐसा करनेवाला मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा सम्पूर्ण देवताओंसे वन्दित हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है।

ज्येष्ठ मासके शुक्लपक्षकी जो तृतीया है, वह 'रम्भा-तृतीया' के नामसे प्रसिद्ध है। उस दिन सपत्नीक श्रेष्ठ ब्राह्मणकी गन्ध, पुष्प और वस्त्र आदिसे विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिये।

यह व्रत धन, पुत्र और धर्मविषयक शुभकारक बुद्धि प्रदान करता है। आषाढ़ शुक्ला तृतीयाको सपत्नीक ब्राह्मणमें लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णुकी भावना करके वस्त्र, आभूषण, भोजन और धेनुदानके द्वारा उनकी पूजा करे; फिर प्रिय वचनोंसे उन्हें अधिक संतुष्ट करे। इस प्रकार सौभाग्यकी इच्छासे प्रेमपूर्वक इस व्रतका पालन करके नारी धन-धान्यसे सम्पन्न हो देवदेव श्रीहरिके प्रसादसे विष्णुलोक प्राप्त कर लेती है। श्रावण शुक्ला तृतीयाको 'स्वर्णगौरीव्रत'का आचरण करना चाहिये। उस दिन स्त्रीको चाहिये कि वह षोडश उपचारोंसे भवानीकी पूजा करे।

भाद्रपद शुक्ला तृतीयाको सौभाग्यवती स्त्री विधिपूर्वक पाद्य-अर्घ्य आदिके द्वारा भक्ति-भावसे पूजा करती हुई 'हरितालिकाव्रतका' पालन करे। सोने, चाँदी, ताँबे, बाँस अथवा मिट्टीके पात्रमें दक्षिणासहित पकवान रखकर फल और वस्त्रके साथ ब्राह्मणको दान करे। इस प्रकार व्रतका पालन करनेवाली नारी मनोरम भोगोंका उपभोग करके इस व्रतके प्रभावसे गौरीदेवीकी सहचरी होती है। आश्विन शुक्ला तृतीयाको 'बृहद् गौरीव्रत'का आचरण करे। नारद! इससे सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धि होती है।

कार्तिक शुक्ला तृतीयाको 'विष्णु-गौरीव्रत'का आचरण करे। उसमें भाँति-भाँतिके उपचारोंसे जगद्वन्द्या लक्ष्मीकी पूजा करके सुवासिनी स्त्रीका मङ्गल-द्रव्योंसे पूजन करनेके पश्चात् उसे भोजन करावे और प्रणाम करके विदा करे। मार्गशीर्ष शुक्ला तृतीयाको मङ्गलमय 'हरगौरीव्रत' करके पूर्वोक्तविधिसे जगदम्बाका पूजन करे। इस व्रतके प्रभावसे स्त्री मनोरम भोगोंका उपभोग करके देवीलोकमें जाती और गौरीके साथ आनन्दका अनुभव करती है। पौष शुक्ला तृतीयाको 'ब्रह्मगौरीव्रत'का आचरण करे। द्विजश्रेष्ठ! इसमें भी पूर्वोक्त विधिसे पूजन करके नारी ब्रह्मगौरीके प्रसादसे उनके लोकमें जाकर आनन्द भोगती है। माघ शुक्ला तृतीयाको व्रत रखकर पूर्वोक्त विधिसे सौभाग्यसुन्दरीकी पूजा करनी चाहिये और उनके लिये नारियलके साथ अर्घ्य देना चाहिये। इससे प्रसन्न होकर व्रतसे संतुष्ट हुई देवी अपना लोक प्रदान करती है। फाल्गुनके शुक्ल पक्षमें कुलसौख्यदा-तृतीयाका व्रत होता है, उसमें गन्ध, पुष्प आदिके द्वारा पूजित होनेपर देवी सबके लिये मङ्गलदायिनी होती हैं। मुने! सम्पूर्ण तृतीयाव्रतोंमें देवीपूजा, ब्राह्मणपूजा, दान, होम और विसर्जन—यह साधारण विधि है। इस प्रकार तुम्हें तृतीयाके व्रत बताये गये हैं, जो भक्तिपूर्वक पालित होनेपर मनकी अभीष्ट वस्तुएँ देते हैं।

बारह महीनोंके चतुर्थी-व्रतोंकी विधि और उनका माहात्म्य

सनातनजी कहते हैं—ब्रह्मन्! सुनो, अब मैं तुम्हें चतुर्थीके व्रत बतलाता हूँ, जिनका पालन करके स्त्री और पुरुष मनोवाञ्छित कामनाओंको प्राप्त कर लेते हैं। चैत्रमासकी चतुर्थीको वासुदेवस्वरूप गणेशजीकी भलीभाँति पूजा करके ब्राह्मणको सुवर्ण दक्षिणा देनेसे मनुष्य सम्पूर्ण देवताओंका वन्दनीय हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। वैशाखकी चतुर्थीको संकर्षण गणेशकी पूजा करके विधिज्ञ पुरुष गृहस्थ ब्राह्मणोंको शङ्ख दान करे तो वह संकर्षणलोकमें जाकर अनेक कल्पोंतक आनन्दका अनुभव करता है। ज्येष्ठ मासकी चतुर्थीको प्रद्युम्नरूपी गणेशका पूजन करके ब्राह्मणसमूहको फल-मूलका दान करनेसे मनुष्य स्वर्गलोक प्राप्त कर लेता है। आषाढ़की चतुर्थीको अनिरुद्धस्वरूप गणेशकी पूजा करके संन्यासियोंको तूँबीका पात्र दान करनेसे मनुष्य मनोवाञ्छित फल पाता है। ज्येष्ठकी चतुर्थीको एक दूसरा परम उत्तम व्रत होता है, जिसे 'सतीव्रत' कहते हैं। इस व्रतका पालन करके स्त्री गणेशमाता पार्वतीके लोकमें जाकर उन्हींके समान आनन्दकी भागिनी होती है। इसी प्रकार आषाढ़की चतुर्थीको एक दूसरा कल्याणकारी व्रत होता है, क्योंकि वह तिथि रथन्तर कल्पका प्रथम दिन है। उस दिन मनुष्य श्रद्धापूत हृदयसे विधिपूर्वक गणेशजीकी पूजा करके देवताओंके लिये दुर्लभ फल भी प्राप्त कर लेता है। मुने! श्रावणकी चतुर्थीको चन्द्रोदय होनेपर विधिज्ञोंमें श्रेष्ठ विद्वान् गणेशजीको अर्घ्य प्रदान करे। उस समय गणेशजीके स्वरूपका ध्यान करना चाहिये। ध्यानके पश्चात् आवाहन आदि सम्पूर्ण उपचारोंसे उनका पूजन करे। फिर लड्डूका नैवेद्य अर्पण करे, जो गणेशजीके लिये

प्रीतिदायक है । इस प्रकार व्रत पूरा करके स्वयं भी प्रसादस्वरूप लड्डू खाय तथा रातमें गणेशजीका पूजन करके भूमिपर ही सुखपूर्वक सोये । इस व्रतके प्रभावसे वह लोकमें मनोवाञ्छित कामनाओंको प्राप्त कर लेता है और परलोकमें भी गणेशजीका पद पाता है । तीनों लोकोंमें इसके समान दूसरा कोई व्रत नहीं है ।

तदनन्तर भाद्रपद कृष्णा चतुर्थीको बहुलागणेशका गन्ध, पुष्प, माला और घास आदिके द्वारा यत्नपूर्वक पूजन करना चाहिये । तत्पश्चात् परिक्रमा करके सामर्थ्य हो तो दान करे । दानकी शक्ति न हो तो इस बहुला गौको नमस्कार करके विसर्जन करे । इस प्रकार पाँच, दस या सोलह वर्षोंतक इस व्रतका पालन करके उद्यापन करे । उस समय दूध देनेवाली गौका दान करना चाहिये । इस व्रतके प्रभावसे मनुष्य मनोरम भोगोंका उपभोग करके देवताओंद्वारा सत्कृत हो गोलोकधाममें जाता है । भाद्रपद शुक्ल चतुर्थीको सिद्धिविनायक-व्रतका पालन करे । इसमें आवाहन आदि समस्त उपचारोंद्वारा गणेशजीका पूजन करना चाहिये । पहले एकाग्रचित्त होकर सिद्धिविनायकका ध्यान करे । उनके एक दाँत है । कान सूपके समान जान पड़ता है । उनका मुँह हाथीके मुखके समान है । वे चार भुजाओंसे सुशोभित हैं । उन्होंने हाथोंमें पाश और अङ्कुश धारण कर रक्खे हैं । उनकी अङ्गकान्ति तपाये हुए सुवर्णके समान देदीप्यमान है । उनके इक्कीस नाम लेकर उन्हें भक्तिपूर्वक इक्कीस पत्ते समर्पित करे । अब तुम उन नामोंको श्रवण करो । 'सुमुखाय नमः' कहकर शमीपत्र, 'गणाधीशाय नमः' से भँगरैयाका पत्ता, 'उमापुत्राय नमः' से बिल्वपत्र, 'गजमुखाय नमः' से दूर्वादल, 'लम्बोदराय नमः' से बेरका पत्ता, 'हरसूनवे नमः' से धतूरका पत्ता, 'शूर्पकर्णाय नमः' से तुलसीदल, 'वक्रतुण्डाय नमः' से सेमका पत्ता, 'गुहाग्रजाय नमः' से अपामार्गका पत्ता, 'एकदन्ताय नमः' से वनभंटा या भटकटैया-का पत्ता, 'हेरम्बाय नमः' से सिंदूर (सिंदूरचूर्ण अथवा सिंदूर-वृक्षका पत्ता), 'चतुर्होत्रे नमः' से तेजपात और 'सर्वेश्वराय नमः' से अगस्त्यका पत्ता चढ़ावे * । यह सब गणेशजीकी प्रसन्नताको बढ़ानेवाला है । तत्पश्चात् दो दूर्वादल लेकर गन्ध, पुष्प और अक्षतके साथ गणेशजीपर चढ़ावे । इस प्रकार पूजा करके भक्ति-भावसे नैवेद्यरूपमें पाँच लड्डू निवेदन करे । फिर आचमन कराकर नमस्कार और प्रार्थना करके देवताका विसर्जन करे । मुने ! सब सामग्रियोंसहित गणेशजीकी स्वर्णमयी प्रतिमा आचार्यको अर्पित करे और ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे । नारद ! इस प्रकार पाँच वर्षोंतक भक्तिपूर्वक गणेशजीकी पूजा और उपासना करनेवाला पुरुष इस लोक और परलोकके शुभ भोगोंको प्राप्त कर लेता है । इस चतुर्थीकी रातमें कभी चन्द्रमाकी ओर न देखे । जो देखता है उसे झूठा कलङ्क प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं है । यदि चन्द्रमा दीख जाय तो उस दोषकी शान्तिके लिये इस पौराणिक मन्त्रका पाठ करे—

सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः ।
सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः ॥
(ना० पूर्व० ११३ । ३०)

'सिंहने प्रसेनको मारा और सिंहको जाम्बवान्‌ने मार

---

* यहाँ इक्कीस नामोंसे इक्कीस पत्ते अर्पण करनेकी बात लिखकर तेरह नामोंका ही उल्लेख किया गया है । अन्य ग्रन्थोंमें उपर्युक्त नामोंके अतिरिक्त आठ नाम और आठ प्रकारके पत्तोंका निर्देश इस प्रकार किया गया है—'विकटाय नमः' से कनेरका पत्ता, 'इभतुण्डाय नमः' से अश्मान्तपत्र, 'विनायकाय नमः' से आकका पत्ता, 'कपिलाय नमः' से अर्जुनका पत्ता, 'वटवे नमः' से देवदारुका पत्ता, 'भालचन्द्राय नमः' से मरुआका पत्ता, 'सुराग्रजाय नमः' से गान्धारी-पत्र और 'सिद्धिविनायकाय नमः' से केतकी-पत्र अर्पण करे ।

गिराया। सुकुमार बालक ! तू रो मत। यह स्यमन्तक अब तेरा ही है।'

आश्विन शुक्ला चतुर्थीको पुरुषसूक्तद्वारा षोडशोपचारसे कपर्दीश विनायककी पूजा करे। कार्तिक कृष्ण चतुर्थीको 'कर्काचतुर्थी' (करवा चौथ) का व्रत बताया गया है। इस व्रतमें केवल स्त्रियोंका ही अधिकार है। इसलिये उसका विधान बताया है—स्त्री स्नान करके वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो गणेशजीकी पूजा करे। उनके आगे पकवानसे भरे हुए दस करवे रक्खे और भक्तिसे पवित्रचित्त होकर उन्हें देवदेव गणेशजीको समर्पित करे। समर्पणके समय यह कहना चाहिये कि 'भगवान् कपर्दि गणेश मुझपर प्रसन्न हों।' तत्पश्चात् सुवासिनी स्त्रियों और ब्राह्मणोंको इच्छानुसार आदरपूर्वक उन करवोंको बाँट दे। इसके बाद रातमें चन्द्रोदय होनेपर चन्द्रमाको विधिपूर्वक अर्घ्य दे। व्रतकी पूर्तिके लिये स्वयं भी मिष्टान्न भोजन करे। इस व्रतको सोलह या बारह वर्षोंतक करके नारी इसका उद्यापन करे। उसके बाद इसे छोड़ दे अथवा स्त्रीको चाहिये कि सौभाग्यकी इच्छासे वह जीवनभर इस व्रतको करती रहे; क्योंकि स्त्रियोंके लिये इस व्रतके समान सौभाग्यदायक व्रत तीनों लोकोंमें दूसरा कोई नहीं है।

मुनीश्वर ! मार्गशीर्ष शुक्ला चतुर्थीसे लेकर एक वर्षतकका समय प्रत्येक चतुर्थीको एकभुक्त (एक समय भोजन) करके बितावे और द्वितीय वर्ष उक्त तिथिको केवल रातमें एक बार भोजन करके व्यतीत करे। तृतीय वर्षमें प्रत्येक चतुर्थीको अयाचित (बिना माँगे मिले हुए) अन्न एक बार खाकर रहे और चौथा वर्ष उक्त तिथिको उपवासपूर्वक रहकर बितावे। इस प्रकार विधिपूर्वक व्रतका पालन करते हुए क्रमशः चार वर्ष पूरे करके अन्तमें व्रत-स्नान करे। उस समय महाव्रती मानव सोनेकी गणेशमूर्ति बनवावे। यदि असमर्थ हो तो वर्णक (हल्दी-चूर्ण) द्वारा ही गणेश-प्रतिमा बना ले। तदनन्तर विविध रंगोंसे धरतीपर सुन्दर दलोंसहित कमल अङ्कित करके उसके ऊपर कलश स्थापित करे। कलशके ऊपर ताँबेका पात्र रक्खे। उस पात्रको सफेद चावलसे भर दे। चावलके ऊपर युगल वस्त्रसे आच्छादित गणेशजीको विराजमान करे। तदनन्तर गन्ध आदि सामग्रियोंद्वारा उनकी पूजा करे। फिर गणेशजी प्रसन्न हों, इस उद्देश्यसे लड्डूका नैवेद्य अर्पण करे। रातमें गीत, वाद्य और पुराण-कथा आदिके द्वारा जागरण करे। फिर निर्मल प्रभात होनेपर स्नान करके तिल, चावल, जौ, पीली सरसों, घी और खाँड़ मिली हवनसामग्रीसे विधिपूर्वक होम करे। गण, गणाधिप, कूष्माण्ड, त्रिपुरान्तक, लम्बोदर, एकदन्त, रुक्मदंष्ट्र, विघ्नप, ब्रह्मा, यम, वरुण, सोम, सूर्य, हुताशन, गन्धमादी तथा परमेष्ठी—इन सोलह नामोंद्वारा प्रत्येकके आदिमें प्रणव और अन्तमें चतुर्थी विभक्ति और 'नमः' पद लगाकर अग्निमे एक-एक आहुति दे। इसके बाद 'वक्रतुण्डाय हुम्' इस मन्त्रके द्वारा एक-सौ आठ आहुति दे। तत्पश्चात् व्याहृतियोंद्वारा यथाशक्ति होम करके पूर्णाहुति दे। दिक्पालोंका पूजन करके चौबीस ब्राह्मणोंको लड्डू और खीर भोजन करावे। इसके बाद आचार्यको दक्षिणासहित सवत्सा गौ दान करे एवं दूसरे ब्राह्मणोंको यथाशक्ति भूयसी दक्षिणा दे। फिर प्रणाम और परिक्रमा करके उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको विदा करनेके पश्चात् स्वयं भी प्रसन्नचित्त होकर भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे। मनुष्य इस व्रतका पालन करके गणेशजीके प्रसादसे इहलोकमे उत्तम भोग भोगता और परलोकमें भगवान् विष्णुका सायुज्य-लाभ करता है। नारद ! कुछ लोग इसका नाम 'वरव्रत' कहते हैं। इसका विधान भी यही है और फल भी उसके समान ही है। पौष मासकी चतुर्थीको भक्तिपूर्वक विघ्नेश्वर गणेशकी प्रार्थना करके एक ब्राह्मणको लड्डू भोजन करावे और दक्षिणा दे। मुने ! ऐसा करनेसे व्रती पुरुष धन-सम्पत्तिका भागी होता है।

माघ कृष्णा चतुर्थीको 'संकष्टव्रत' बतलाया जाता है। उसमें उपवासका संकल्प लेकर व्रती पुरुष सबेरेसे चन्द्रोदयकालतक नियमपूर्वक रहे। मनको काबूमे रक्खे। चन्द्रोदय होनेपर मिट्टीकी गणेशमूर्ति बनाकर उसे पीढ़ेपर स्थापित करे। गणेशजीके साथ उनके आयुध और वाहन भी होने चाहिये। मूर्तिमे गणेशजीकी स्थापना करके षोडशोपचारसे विधिपूर्वक उनका पूजन करे। फिर मोदक तथा गुड़में बने हुए तिलके लड्डूका नैवेद्य अर्पण करे। तत्पश्चात् ताँबेके पात्रमें लाल चन्दन, कुश, दूर्वा, फूल, अक्षत, शमीपत्र, दधि और जल एकत्र करके चन्द्रमाको अर्घ्य दे। उस समय निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करे—

गगनार्णवमाणिक्य चन्द्र दाक्षायणीपते।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं गणेशप्रतिरूपक॥
(ना० पूर्व० ११३। ७७)

'गगनरूपी समुद्रके माणिक्य चन्द्रमा ! दक्षकन्या रोहिणीके प्रियतम ! गणेशके प्रतिबिम्ब ! आप मेरा दिया हुआ यह अर्घ्य स्वीकार कीजिये।'

इस प्रकार गणेशजीको यह दिव्य तथा पापनाशक अर्घ्य देकर यथाशक्ति उत्तम ब्राह्मणोंको भोजन करानेके पश्चात् स्वयं भी उनकी आज्ञा लेकर भोजन करे । ब्रह्मन् ! इस प्रकार कल्याणकारी 'संकष्टव्रत' का पालन करके मनुष्य धन-धान्यसे सम्पन्न होता है । वह कभी कष्टमें नहीं पड़ता । माघ शुक्ला चतुर्थीको परम उत्तम गौरी-व्रत किया जाता है । उस दिन योगिनी-गणोंसहित गौरीजीकी पूजा करनी चाहिये । मनुष्यों और उनमें भी विशेषतः स्त्रियोंको कुन्द, पुष्प, कुङ्कुम, लाल सूत्र, लाल फूल, महावर, धूप, दीप, बलि, गुड़, अदरख, दूध, खीर, नमक और पालक आदिसे गौरीजीकी पूजा करनी चाहिये । अपनी सौभाग्यवृद्धिके लिये सौभाग्यवती स्त्रियों और उत्तम ब्राह्मणोंकी भी पूजा करनी चाहिये । उसके बाद बन्धु-बान्धवोंके साथ स्वयं भी भोजन करे । विप्रवर ! यह सौभाग्य तथा आरोग्य बढानेवाला 'गौरीव्रत' है । स्त्रियों और पुरुषोंको प्रतिवर्ष इसका पालन करना चाहिये । कुछ लोग इसे 'ढुण्ढि-व्रत' कहते हैं । किन्हीं-किन्हींके मतमें इसका नाम 'कुण्ड-व्रत' है । कुछ दूसरे लोग इसे 'नन्दिता-व्रत' अथवा 'शान्ति-व्रत' भी कहते हैं । मुने ! इस तिथिमें किया हुआ स्नान, दान, जप और होम सब कुछ गणेशजीकी कृपासे सदाके लिये सहस्रगुना हो जाता है । फाल्गुन मासकी चतुर्थीको मङ्गलमय 'ढुण्ढिराज-व्रत' बताया गया है । उस दिन तिलके पीठेसे ब्राह्मणोंको भोजन कराकर मनुष्य स्वयं भी भोजन करे । गणेशजीकी आराधनामें संलग्न होकर तिलों-से ही दान, होम और पूजन आदि करनेपर मनुष्य गणेशके प्रसादसे सिद्धि प्राप्त कर लेता है । मनुष्यको चाहिये कि सोनेकी गणेशमूर्ति बनाकर यत्नपूर्वक उसकी पूजा करे और श्रेष्ठ ब्राह्मणको उसका दान कर दे । इससे समस्त सम्पदाओं-की वृद्धि होती है । विप्रेन्द्र ! जिस किसी मासमें भी चतुर्थी तिथि रविवार या मङ्गलवारसे युक्त हो तो वह विशेष फल देनेवाली होती है । शुक्ल या कृष्ण पक्षकी सभी चतुर्थी तिथियों-में भक्तिपरायण पुरुषोंको देवेश्वर गणेशका ही पूजन करना चाहिये ।

सभी मासोंकी पञ्चमी तिथियोंमें करनेयोग्य व्रत-पूजन आदिका वर्णन

सनातनजी कहते हैं—ब्रह्मन् ! सुनो, अब मैं तुम्हें पञ्चमीके व्रत कहता हूँ, जिनका भक्तिपूर्वक पालन करनेपर मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है । चैत्रके शुक्ल-पक्षकी पञ्चमी तिथिको 'मत्स्यजयन्ती' कहते हैं । इसमें भक्तोंको

मत्स्यावतार-विग्रहकी पूजा और तत्सम्बन्धी महोत्सव करने चाहिये । इसे श्रीपञ्चमी भी कहते हैं । अतः उस दिन गन्ध आदि उपचारों तथा खीर आदि नैवेद्योंद्वारा श्रीलक्ष्मीजीका भी पूजन करना चाहिये । जो उस दिन लक्ष्मीजीकी पूजा करता है, उसे लक्ष्मी कभी नहीं छोड़तीं । उसी दिन 'पृथ्वी-व्रत', 'चान्द्र-व्रत' तथा 'हयग्रीव-व्रत' भी होता है । अतः उनकी पृथक्-पृथक् सिद्धि चाहनेवाले पुरुषोंको शास्त्रोक्त विधिसे उन-उन व्रतोंका पालन करना चाहिये । जो मनुष्य वैशाखकी पञ्चमीको सम्पूर्ण नागगणोंसे युक्त शेषनागकी पूजा करता है, वह मनोवाञ्छित फल पाता है । इसी प्रकार विद्वान् पुरुष ज्येष्ठकी पञ्चमी तिथिको पितरोंका पूजन करे । उस दिन ब्राह्मण-भोजन करानेसे सम्पूर्ण कामनाओं और अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है । मुने ! आषाढ शुक्ल पञ्चमीको सर्वव्यापी वायु-की परीक्षा की जाती है । गाँवसे बाहर निकलकर धरतीपर खड़ा रहे और वहाँ एक बाँस खड़ा करे । बाँसके ऊपरके अग्रभागमें पञ्चाङ्गी पताका लगा ले । तदनन्तर बाँसके मूल भागमें सब दिशाओंकी ओर लोकपालोंकी स्थापना एवं पूजा करके वायुकी परीक्षा करे । प्रथम आदि यामों (प्रहरों) में जिस-जिस दिशाकी ओरसे वायु चलती है, उसी-उसी दिक्पाल या लोक-पालकी भलीभाँति पूजा करे । इस प्रकार चार प्रहरतक यहाँ

निराहार रहकर सायंकाल अपने घर आवे और थोड़ा भोजन करके एकाग्रचित्त हो लोकपालोंको नमस्कार करके पवित्र भूमिपर सो जाय। उस दिन रातके चौथे प्रहरमें जो स्वप्न होता है, वह निश्चय ही सत्य होता है—यह भगवान् शिवका कथन है। यदि अशुभ स्वप्न हो तो भगवान् शिवकी-पूजामें तत्पर हो उपवासपूर्वक आठ पहर वितावे। फिर आठ ब्राह्मणोंको भोजन कराकर मनुष्य शुभ फलका भागी होता है। यह 'शुभाशुभ-निदर्शन-व्रत' कहा गया है, जो मनुष्योंके इहलोक और परलोकमें भी सौभाग्यजनक होता है।

श्रावण मासके कृष्ण पक्षकी चतुर्थीको जब थोड़ा दिन शेप रहे तो कच्चा अन्न (जितना दान देना हो) पृथक्-पृथक् पात्रोंमें रखकर विद्वान् पुरुष उन पात्रोंमें जल भर दे। तदनन्तर वह सब जल निकाल दे। फिर दूसरे दिन सबेरे सूर्योदय होनेपर विधिवत् स्नान करके देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका भलीभाँति पूजन करे। उनके आगे नैवेद्य स्थापित करे और वह पहले दिनका धोया हुआ कच्चा अन्न प्रसन्नतापूर्वक याचकोंको देवे। तत्पश्चात् प्रदोषकालमें शिवमन्दिरमें जाकर लिङ्गस्वरूप भगवान् शिवका गन्ध, पुष्प आदि सामग्रियोंके द्वारा सम्यक् पूजन करे। फिर सहस्र या सौ बार पञ्चाक्षरी विद्या ('नमः शिवाय' मन्त्र) का जप करे। तदनन्तर उनका स्तवन करे। फिर सदा अन्नकी सिद्धिके लिये भगवान् शिवसे प्रार्थना करे। इसके बाद अपने घर आकर ब्राह्मण आदिको पकवान देकर स्वयं भी मौनभाव-से भोजन करे। विप्रवर! यह 'अन्न-व्रत' है, मनुष्योंद्वारा विधि-पूर्वक इसका पालन होनेपर यह सम्पूर्ण अन्नसम्पत्तियोंका उत्पादक और परलोकमें सद्गति देनेवाला होता है।

श्रावण मासके शुक्लपक्षकी पञ्चमीके दिन आस्तिक मनुष्यों-को चाहिये कि वे अपने दरवाजेके दोनों ओर गोबरसे सर्पोंकी आकृति बनावें और गन्ध, पुष्प आदिसे उनकी पूजा करें। तत्पश्चात् इन्द्राणी देवीकी पूजा करें। सोने, चाँदी, दही, अक्षत, कुश, जल, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य आदिसे उन सबकी पूजा करके परिक्रमा करे और उस द्रव्यको प्रणाम करके भक्तिभावसे प्रार्थनापूर्वक श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको समर्पित करे। नारद! इस प्रकार भक्ति-भावसे द्रव्य दान करनेवाले पुरुषपर स्वर्ण आदि समृद्धियोंके दाता धनाध्यक्ष कुबेर प्रसन्न होते हैं। फिर भक्ति-भावसे ब्राह्मणोंको भोजन करानेके पश्चात् स्वयं भी स्त्री-पुत्र और सगे-सम्बन्धियोंके साथ भोजन करे।

भाद्रपद-मासके कृष्ण-पक्षकी पञ्चमीको दूधसे नागोंको तृप्त करे। जो ऐसा करता है उसकी सात पीढ़ियोंतकके लोग साँपसे निर्भय हो जाते हैं। भाद्रपदके शुक्ल पक्षकी पञ्चमीको श्रेष्ठ ऋषियोंकी पूजा करनी चाहिये। प्रातःकाल नदी आदिके तट-पर जाकर सदा आलस्यरहित हो स्नान करे। फिर घर आकर यत्नपूर्वक मिट्टीकी वेदी बनावे। उसे गोबरसे लीपकर पुष्पोंसे सुशोभित करे। इसके बाद कुशा बिछाकर उसके ऊपर गन्ध, नाना प्रकारके पुष्प, धूप और सुन्दर दीप आदिके द्वारा सात ऋषियोंका पूजन करे। कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और वशिष्ठ—ये सात ऋषि माने गये हैं। इनके लिये विधिवत् अर्घ्य तैयार करके अर्घ्यदान दे। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि उनके लिये बिना जोते-बोये उत्पन्न हुए श्यामाक (साँवाके चावल) आदिसे नैवेद्य तैयार करे। वह नैवेद्य उन्हें अर्पण करके उन ऋषियोंका विसर्जन करनेके पश्चात् स्वयं भी वही प्रसादस्वरूप अन्न भोजन करे। इस व्रतका पालन करके मनुष्य मनोवाञ्छित फल भोगता और सप्तर्षियोंके प्रसादसे श्रेष्ठ विमानपर बैठकर दिव्यलोकमें जाता है।

आश्विन शुक्ला पञ्चमीको 'उपाङ्गललिता-व्रत' होता है। नारद! यथाशक्ति ललिताजीकी स्वर्णमयी मूर्ति बनाकर षोडशोपचारसे उनकी विधिवत् पूजा करे। व्रतकी पूर्तिके लिये श्रेष्ठ ब्राह्मणको पकवान, फल, घी और दक्षिणा दान करे। तत्पश्चात् निम्नाङ्कितरूपसे प्रार्थना एवं विसर्जन करे।

सवाहना शक्तियुता वरदा पूजिता मया।
मातर्मामनुगृह्याथ गम्यतां निजमन्दिरम्॥
(ना० पूर्व० ११४। ५२)

'मैंने वाहन और शक्तियोंसे युक्त वरदायिनी ललिता देवी-का पूजन किया है। माँ! तुम मुझपर अनुग्रह करके अपने मन्दिरको पधारो।'

द्विजश्रेष्ठ! कार्तिक शुक्ला पञ्चमीको सब पापोंका नाश करने-के लिये श्रद्धापूर्वक परम उत्तम 'जया-व्रत' करना चाहिये। ब्रह्मन्! एकाग्रचित्त हो विधिपूर्वक षोडशोपचारसे जयादेवीकी पूजा करके पवित्र तथा वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत हो एक ब्राह्मणको भोजन करावे और दक्षिणा देकर उसे विदा करे। तत्पश्चात् स्वयं मौन होकर भोजन करे। जो भक्तिपूर्वक जयाके दिन स्नान करता है, उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं। विप्रवर! अश्वमेध यज्ञके अन्तमें स्नान करनेसे जो फल बताया गया है, वही जयाके दिन भी स्नान करनेसे प्राप्त होता है। मार्गशीर्ष शुक्ला पञ्चमीको विधिपूर्वक नागोंकी पूजा करके मनुष्य

उनसे अभय पाकर बन्धु-बान्धवोंके साथ प्रसन्न रहता है। पौष मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमीको भगवान् मधुसूदनकी पूजा करके मनुष्य मनोवाञ्छित कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। (इसी प्रकार माघ और फाल्गुनके लिये समझना चाहिये।) नारद! प्रत्येक मासके शुक्ल और कृष्णपक्षमें भी पञ्चमीको पितरों और नागोंकी पूजा सर्वथा उत्तम मानी गयी है।

वर्षभरकी षष्ठी तिथियोंमें पालनीय व्रत एवं देवपूजन आदिकी विधि और महिमा

सनातनजी कहते हैं—विप्रवर! सुनो, अब मैं तुमसे षष्ठीके व्रतोंका वर्णन करता हूँ, जिनका यथार्थरूपसे अनुष्ठान करके मनुष्य यहाँ सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है। चैत्र शुक्ला षष्ठीको परम उत्तम 'कुमार-व्रत'[1] का विधान किया गया है। उसमे नाना प्रकारकी पूजा-विधिसे भगवान् षडाननकी आराधना करके मनुष्य सर्वगुणसम्पन्न एवं चिरंजीवी पुत्र प्राप्त कर लेता है। वैशाख शुक्ला षष्ठीको कार्तिकेयजीकी पूजा करके मनुष्य मातृसुखलाभ करता है। ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षकी षष्ठीको विधिपूर्वक सूर्यदेवकी पूजा करके उनकी कृपासे मनुष्य मनोवाञ्छित भोग पाता है। आषाढ़ शुक्ला षष्ठीको परम उत्तम 'स्कन्द-व्रत'[1] करना चाहिये। उस दिन उपवास करके शिव तथा पार्वतीके प्रिय पुत्र स्कन्दजीकी पूजा करनेसे मनुष्य पुत्र-पौत्रादि संतानों और मनोवाञ्छित भोगोंको प्राप्त कर लेता है। श्रावण शुक्ला षष्ठीको उत्तम भक्तिभावसे युक्त हो षोडशोपचारद्वारा शरजन्मा भगवान् स्कन्दकी आराधना करनी चाहिये। ऐसा करनेवाला पुरुष षडाननकी कृपासे अभीष्ट मनोरथ प्राप्त कर लेता है। भाद्रपद मासके कृष्ण पक्षकी षष्ठीको 'ललिता-व्रत' बताया गया है। उस दिन नारी विधिपूर्वक प्रातःकाल स्नान करनेके पश्चात् श्वेत वस्त्र धारण करके श्वेत मालासे अलकृत हो नदी-संगमकी बालुका लेकर उसके पिण्ड बनाकर बाँसके पात्रमें रक्खे। इस प्रकार पाँच पिण्ड रखकर उसमे वन-विलासिनी ललितादेवीका ध्यान करे। फिर कमल, कनेर, नेवारी (वनमल्लिका), मालती, नील कमल, केतकी और तगरका सग्रह करके इनमेसे एक-एकके एक सौ आठ या अट्ठाईस फूल ग्रहण करे। उन फूलोंकी अक्षत-कलिकाएँ ग्रहण करके उन्हींसे देवीकी पूजा करनी चाहिये। पूजनके पश्चात् सामने खड़े होकर उन शिवप्रिया ललितादेवीकी इस प्रकार प्रार्थना करे—

> गङ्गाद्वारे कुशावर्ते बिल्वके नीलपर्वते।
> स्नात्वा कनखले देवि हरं लब्धवती पतिम्॥
> ललिते सुभगे देवि सुखसौभाग्यदायिनि।
> अनन्तं देहि सौभाग्यं मह्यं तुभ्यं नमो नमः॥
> (ना० पूर्व० ११५।१३-१५)

'देवि! आपने गङ्गाद्वार, कुशावर्त, बिल्वक, नीलपर्वत और कनखल तीर्थमें स्नान करके भगवान् शिवको पतिरूपमें प्राप्त किया है। सुख और सौभाग्य देनेवाली सुन्दरी ललितादेवी! आपको बारबार नमस्कार है, आप मुझे अक्षय सौभाग्य प्रदान कीजिये।'

इस मन्त्रसे चम्पाके सुन्दर फूलोंद्वारा ललितादेवीकी विधिपूर्वक पूजा करके उनके आगे नैवेद्य रक्खे। खीरा, ककड़ी, कुम्हड़ा, नारियल, अनार, बिजौरा, नीबू, तुटीर, कारवेल्ल और चिर्भट आदि सामयिक फलोंसे देवीके आगे शोभा करके बढ़े हुए धानके अङ्कुर, दीपोंकी पक्ति, अगुरु, धूप, सौहालक, करञ्जक, गुड़, पुष्प, कर्णविष्ट (कानके आभूषण), मोदक, उपमोदक तथा अपने वैभवके अनुसार अनेक प्रकारके नैवेद्य आदिद्वारा विधिवत् पूजा करके रातमें जागरणका उत्सव मनावे। इस प्रकार जागरण करके सप्तमीको सबेरे ललिताजीको नदीके तटपर ले जाय। द्विजोत्तम! वहाँ गन्ध, पुष्पसे गाजे-बाजेके साथ पूजा करके वह नैवेद्य आदि सामग्री श्रेष्ठ ब्राह्मणको दे। फिर स्नान करके घर आकर अग्निमें होम करे। देवताओं, पितरों और मनुष्योंका पूजन करके सुवासिनी स्त्रियों, कन्याओं तथा पंद्रह ब्राह्मणोंको भोजन करावे। भोजनके पश्चात् बहुत-सा दान देकर उन सबको विदा करे। अनेकानेक व्रत, तपस्या, दान और नियमसे जो फल प्राप्त होता है, वह इसी व्रतसे यहीं उपलब्ध हो जाता है। तदनन्तर नारी मृत्युके पश्चात् सनातन शिव-धाममें पहुँचकर ललितादेवीके साथ उनकी सखी होकर चिरकालतक आनन्द भोगती है और पुरुष भगवान् शिवके समीप रहकर सुखी होता है।

भाद्रपद मासके शुक्लपक्षमें जो षष्ठी आती है, उसे 'चन्दन-षष्ठी' कहते हैं। उस दिन देवीकी पूजा करके मनुष्य देवी-लोकको प्राप्त कर लेता है। यदि वह षष्ठी रोहिणी नक्षत्र,

१. कार्तिकेय।

व्यतीपात योग और मङ्गलवारसे संयुक्त हो तो उसका नाम 'कपिलाषष्ठी' होता है। कपिलाषष्ठीके दिन व्रत एवं नियममें तत्पर होकर सूर्यदेवकी पूजा करके मनुष्य भगवान् भास्करके प्रसादसे मनोवाञ्छित कामनाओंको पा लेता है। देवर्षिप्रवर! उस दिन किया हुआ अन्नदान, होम, जप तथा देवताओं, ऋषियों और पितरोंका तर्पण आदि सब कुछ अक्षय जानना चाहिये। कपिलाषष्ठीको भगवान् सूर्यकी प्रसन्नताके लिये वस्त्र, माला और चन्दन आदिसे दूध

देनेवाली कपिला गायकी पूजा करके उसे वेदज्ञ ब्राह्मणको दान कर देना चाहिये। ब्रह्मन्! आश्विन शुक्ला षष्ठीको गन्ध आदि माङ्गलिक द्रव्यों और नाना प्रकारके नैवेद्योंसे कात्यायनी देवीकी पूजा करनी चाहिये। पूजाके पश्चात् देवेश्वरी कात्यायनी देवीसे क्षमा-प्रार्थना और उन्हें प्रणाम करके उनका विसर्जन करे। यहाँ बालूकी मूर्तिमें कात्यायनीकी प्रतिष्ठा करके उनकी पूजा करनी चाहिये। ऐसा करके कात्यायनी देवीकी कृपासे कन्या मनके अनुरूप वर पाती है और विवाहिता नारी मनोवाञ्छित पुत्र प्राप्त करती है। कार्तिक शुक्ला षष्ठीको महात्मा षडाननने सम्पूर्ण देवताओंद्वारा दी हुई महाभागा देवसेनाको प्राप्त किया था। अतः इस तिथिको सम्पूर्ण मनोहर उपचारोंद्वारा सुरश्रेष्ठा देवसेना और षडानन कार्तिकेयकी भलीभाँति पूजा करके मनुष्य अपने मनके अनुकूल अनुपम सिद्धि प्राप्त करता है। द्विजोत्तम! उसी तिथिको अग्निपूजा बतायी गयी है। पहले अग्निदेवकी पूजा करके नाना प्रकारके द्रव्योंसे होम करना चाहिये।

मार्गशीर्ष शुक्ला षष्ठीको गन्ध, पुष्प, अक्षत, फल, वस्त्र, आभूषण तथा भाँति-भाँतिके नैवेद्योंद्वारा स्कन्दका पूजन करना चाहिये। मुनिश्रेष्ठ! यदि वह षष्ठी रविवार तथा शतभिषा नक्षत्रसे युक्त हो तो उसे 'चम्पाषष्ठी' कहते हैं। उस दिन सुख चाहनेवाले पुरुषको पापनाशक भगवान् विश्वेश्वरका दर्शन, पूजन, ध्यान और स्मरण करना चाहिये। उस दिन किया हुआ स्नान-दान आदि सब शुभ कर्म अक्षय होता है। विप्रवर! पौषमासके शुक्लपक्षकी षष्ठीको सनातन विष्णुरूपी जगत्पालक भगवान् दिनेश प्रकट हुए थे। अतः सब प्रकारका सुख चाहनेवाले पुरुषोंको उस दिन गन्ध आदि द्रव्यों, नैवेद्यों तथा वस्त्राभूषण आदिके द्वारा उनका पूजन करना चाहिये। माघमासमें जो शुक्ल पक्षकी षष्ठी आती है उसे 'वरुणषष्ठी' कहते हैं। उसमें रक्त चन्दन, रक्त वस्त्र, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्यद्वारा विष्णु-स्वरूप सनातन वरुणदेवताकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार विधिपूर्वक पूजन करके मनुष्य जो-जो चाहता है, वही-वही फल वरुणदेवकी कृपासे प्राप्त करके प्रसन्न होता है। नारद! फाल्गुन मासके शुक्लपक्षकी षष्ठीको विधिपूर्वक भगवान् पशुपतिकी मृण्मयी मूर्ति बनाकर विविध उपचारोंसे उनकी पूजा करनी चाहिये। शतरुद्रीके मन्त्रोंसे पृथक्-पृथक् पञ्चामृत एवं जलद्वारा नहलाकर श्वेत चन्दन लगावे; फिर अक्षत, सफेद फूल, बिल्वपत्र, धतूरके फूल, अनेक प्रकारके फल और भाँति-भाँतिके नैवेद्योंसे भलीभाँति पूजा करके विधिवत् आरती उतारे। तदनन्तर क्षमा-प्रार्थना करके प्रणामपूर्वक उन्हें कैलासके लिये विसर्जन करे। मुने! जो स्त्री अथवा पुरुष इस प्रकार भगवान् शिवकी पूजा करते हैं, वे इहलोकमें श्रेष्ठ भोगोंका उपभोग करके अन्तमें भगवान् शिवके स्वरूपको प्राप्त होते हैं।

बारह मासोंके सप्तमीसम्बन्धी व्रत और उनके माहात्म्य

सनातनजी कहते हैं—सुनो, अब मैं तुम्हें सप्तमीके व्रत बतलाता हूँ। चैत्र शुक्ला सप्तमीको गाँवसे बाहर किसी नदी या जलाशयमें स्नान करे। फिर घर आकर एक वेदी बनावे और उसे गोबरसे लीपकर उसके ऊपर सफेद बालू फैला दे। उसपर अष्टदल कमल लिखकर उसकी कर्णिकामें भगवान् सूर्यकी स्थापना करे। पूर्वके दलमें यज्ञसाधक दो देवताओंका न्यास करे। अग्निकोणके दलमें दो यज्ञसाधक गन्धर्वोंका न्यास करे। दक्षिणदलमें दो अप्सराओंका न्यास करे। मुनिश्रेष्ठ! नैर्ऋत्य-दलमें दो राक्षसोंको स्थापित करे। पश्चिमदलमें यज्ञमें सहायता पहुँचानेवाले काद्रवेयसंज्ञक दो महानागोंका न्यास करे। द्विजोत्तम! वायव्यदलमें दो यातुधानोंका, उत्तरदलमें दो ऋषियोंका और ऐशान्यदलमें एक ग्रहका न्यास करे। इन सबका गन्ध, माला, चन्दन, धूप, दीप, नैवेद्य और पान-सुपारी आदिके द्वारा पूजन करना चाहिये। इस प्रकार पूजा करके सूर्यदेवके लिये घीसे एक सौ आठ आहुति दे तथा अन्य लोगोंके लिये नाम-मन्त्रसे वेदीपर ही क्रमशः आठ-आठ आहुतियाँ दे। द्विजश्रेष्ठ! तदनन्तर पूर्णाहुति दे और ब्राह्मणोंको अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणा अर्पित करे। इस प्रकार सब विधान करके मनुष्य पूर्ण सौख्य लाभ करता है और शरीरका अन्त होनेपर सूर्यमण्डल भेदकर परम पदको प्राप्त होता है।

वैशाख शुक्ला सप्तमीको राजा जह्नुने स्वयं क्रोधवश गङ्गाजीको पी लिया था और पुनः अपने दाहिने कानके छिद्रसे उनका त्याग किया था। अतः वहाँ प्रातःकाल स्नान करके निर्मल जलमें गन्ध, पुष्प, अक्षत आदि सम्पूर्ण उपचारोंद्वारा गङ्गाजीका पूजन करना चाहिये। तदनन्तर एक सहस्र घट दान करना चाहिये। 'गङ्गा-व्रत'में यही कर्तव्य है। यह सब भक्तिपूर्वक किया जाय तो गङ्गाजी सात पीढ़ियोंको निःसंदेह स्वर्गमें पहुँचा देती हैं। इसी तिथिको 'कमल-व्रत' भी बताया गया है। तिलसे भरे हुए पात्रमें सुवर्णमय सुन्दर कमल रखकर उसे दो वस्त्रोंसे ढँककर गन्ध, धूप आदिके द्वारा उसकी पूजा करे। तत्पश्चात्—

नमस्ते पद्महस्ताय नमस्ते विश्वधारिणे।
दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तु ते॥
(ना० पूर्व० ११६। १५-१६)

'हाथमें कमल धारण करनेवाले भगवान् सूर्यको नमस्कार है। सम्पूर्ण विश्वको धारण करनेवाले भगवान् सविताको नमस्कार है। दिवाकर! आपको नमस्कार है। प्रभाकर! आपको नमस्कार है।'

इस प्रकार देवेश्वर सूर्यको नमस्कार करके सूर्यास्तके समय जलसे भरे हुए घड़ेके साथ वह कमल और एक कपिला गाय ब्राह्मणको दान दे। उस दिन अखण्ड उपवास और दूसरे दिन भोजन करना चाहिये। ब्राह्मणोंको भक्तिभावसे भोजन करानेसे व्रत सफल होता है। उसी दिन 'निम्बसप्तमी' का व्रत बताया जाता है। द्विजश्रेष्ठ नारद! उसमें 'ॐ खखोल्काय नमः' इस मन्त्रद्वारा नीमके पत्तेसे भगवान् भास्करकी पूजाका विधान है। पूजनके पश्चात् नीमका पत्ता खाय और मौन होकर भूमिपर शयन करे। दूसरे दिन ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भी भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे। यह 'निम्बपत्र-व्रत' है, जो इसका पालन करनेवाले पुरुषोंको सब प्रकारका सुख देनेवाला है। इसी दिन 'शर्करा-सप्तमी' भी कही गयी है। शर्करासप्तमी अश्वमेध यज्ञका फल देनेवाली, सब दुःखोंको शान्त करनेवाली और संतानपरम्परा-को बढ़ानेवाली है। इसमें शक्करका दान करना, शक्कर खाना और खिलाना कर्तव्य है। यह व्रत भगवान् सूर्यको विशेष प्रिय है। जो परम भक्तिभावसे इसका पालन करता है, वह सद्गतिको प्राप्त होता है।

ज्येष्ठ शुक्ला सप्तमीको साक्षात् भगवान् सूर्यस्वरूप इन्द्र उत्पन्न हुए हैं। ब्रह्मन्! जो उपवासपूर्वक जितेन्द्रियभावसे विधि-विधानके साथ उनकी पूजा करता है, वह देवराज इन्द्रके प्रसादसे स्वर्गलोकमें स्थान पाता है। विप्रेन्द्र! आषाढ़ शुक्ला सप्तमीको विवस्वान् नामक सूर्य प्रकट हुए थे। अतः उस तिथिमें गन्ध, पुष्प आदि पृथक्-पृथक् सामग्रियोंद्वारा
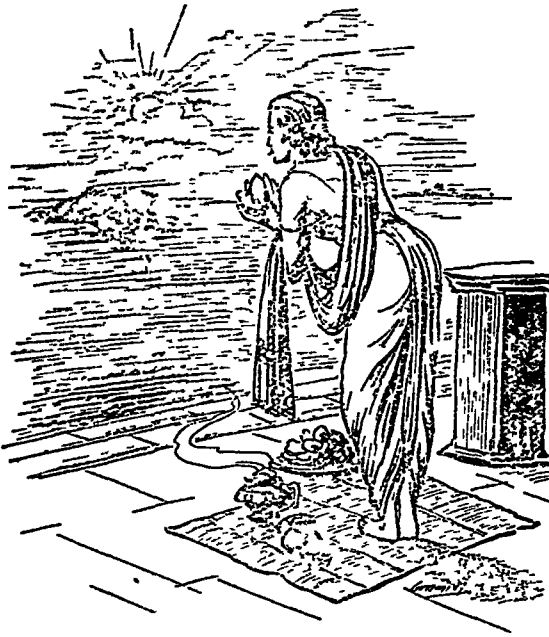
उनकी भलीभाँति पूजा करके मनुष्य भगवान् सूर्यका सायुज्य प्राप्त कर लेता है ।

श्रावण शुक्ला सप्तमीको 'अव्यङ्ग'नामक शुभ व्रत करना चाहिये । इसमें सूर्यदेवकी पूजाके अन्तमें उनकी प्रसन्नताके लिये कपासके सूतका बना हुआ साढ़े चार हाथका वस्त्र दान करना चाहिये । यह व्रत विशेष कल्याणकारी है । यदि यह सप्तमी हस्त नक्षत्रसे युक्त हो तो पापनाशिनी कही गयी है । इसमें किया हुआ दान, जप और होम सब अक्षय होता है । भाद्रपद शुक्ला सप्तमीको 'आमुक्ताभरण-व्रत' बतलाया गया है। इसमें उमासहित भगवान् महेश्वरकी पूजाका विधान है। गङ्गाजल आदि षोडशोपचारसे भगवान्का पूजन, प्रार्थना और नमस्कार करके सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके लिये उनका विसर्जन करना चाहिये । इसीको 'फलसप्तमी' भी कहते हैं। नारियल, बैगन, नारंगी, बिजौरा नीबू, कुम्हड़ा, बनभंटा और सुपारी—इन सात फलोंको महादेवजीके आगे रखकर सात तन्तुओं और सात गाँठोंसे युक्त एक डोरा भी चढ़ावे। फिर पराभक्तिसे उनका पूजन करके उस डोरेको स्त्री बायें हाथमें बाँध ले और पुरुष दाहिने हाथमें । जबतक वर्ष पूरा न हो जाय तबतक उसे धारण किये रहे । सात ब्राह्मणोंको खीर भोजन कराकर उन्हें विदा करे । उसके बाद बुद्धिमान् पुरुष व्रतकी पूर्णताके लिये स्वयं भी भोजन करे । पहले बताये हुए सातों फल सात ब्राह्मणोंको देने चाहिये । विप्रवर ! इस प्रकार सात वर्षोंतक व्रतका पालन करके विधिवत् उपासना करनेपर व्रतधारी मनुष्य महादेवजीका सायुज्य प्राप्त कर लेता है । आश्विनके शुक्लपक्षमें जो सप्तमी आती है, उसे 'शुभ सप्तमी' जानना चाहिये । उसमें स्नान और पूजा करके तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी आज्ञा ले व्रतका आरम्भ करके कपिला गायका पूजन एवं प्रार्थना करे—

त्वामहं दद्मि कल्याणि प्रीयतामर्यमा स्वयम् ।
पालय त्वं जगत्कृत्स्नं यतोऽसि धर्मसम्भवा ॥
(ना० पूर्व० ११६ । ४१-४२)

'कल्याणी ! मैं तुम्हारा दान करता हूँ; इससे साक्षात् भगवान् सूर्य प्रसन्न हों । तुम सम्पूर्ण जगत्का पालन करो; क्योंकि धर्मसे उत्पन्न हुई हो ।'

ऐसा कहकर वेदवेत्ता ब्राह्मणको नमस्कार करके उसे गाय और दक्षिणा दे । ब्रह्मन् ! फिर स्वयं पञ्चगव्य पान करके रहे । इस प्रकार व्रत करके दूसरे दिन उत्तम ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उनसे शेष बचे हुए प्रसादस्वरूप अन्नको स्वयं भोजन करे । जिसने श्रद्धापूर्वक इस शुभ सप्तमी-नामक व्रतको किया है, वह देवदेव महादेवजीके प्रसादसे भोग और मोक्ष प्राप्त कर लेता है ।

कार्तिकके शुक्लपक्षमे 'शाकसप्तमी नामक' व्रत करना चाहिये । उस दिन स्वर्णकमलसहित सात प्रकारके शाक सात ब्राह्मणोंको दान करे और स्वयं शाक भोजन करके ही रहे । दूसरे दिन ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें भोजन-दक्षिणा दे और स्वयं भी मौन होकर भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे । मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमीको 'मित्र-व्रत' बताया गया है। भगवान् विष्णुका जो दाहिना नेत्र है, वही साकार होकर कश्यपके तेज और अदितिके गर्भसे 'मित्र'नामधारी दिवाकरके रूपमे प्रकट हुआ है । अतः ब्रह्मन् ! इस तिथिमें शास्त्रोक्त विधिसे उन्हींका पूजन करना चाहिये । पूजन करके मधुर आदि सामग्रियोंसे सात ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उन्हें सुवर्ण-दक्षिणा देकर विदा करे । तत्पश्चात् स्वयं भी भोजन करे । विधिपूर्वक इस व्रतका पालन करके मनुष्य निश्चय ही सूर्यके लोकमें जाता है । पौष शुक्ला सप्तमीको 'अभय-व्रत' होता है। उस दिन उपवास करके पृथ्वीपर खड़ा हो तीनों समय सूर्यदेवकी पूजा करे । तत्पश्चात् दूधमिश्रित अन्नसे बँधा हुआ एक सेर मोदक ब्राह्मणको दान करके सात ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उन्हें सुवर्णकी दक्षिणा दे विदा करके स्वयं भी भोजन करे । यह सबको अभय देनेवाला माना गया है । दूसरे ब्राह्मण उसी

श्रीकृष्णका सायंकालीन ध्यान

[पृष्ठ १८७
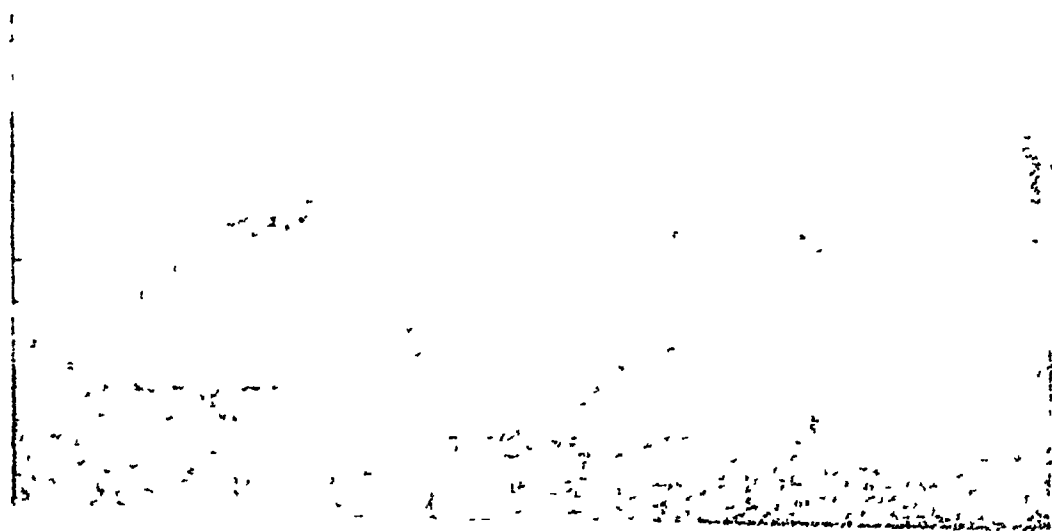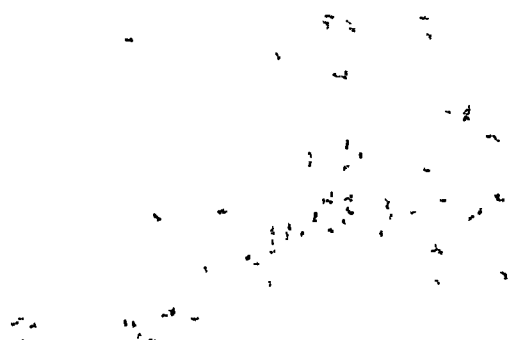
दिन 'मार्तण्ड-व्रत'का उपदेश करते हैं। दोनों एक ही देवता होनेके कारण विद्वानोंने उन्हें एक ही व्रत कहा है। माघमासके कृष्णपक्षकी सप्तमीको 'सर्वाप्ति'नामक व्रत होता है। उस दिन उपवास करके सुवर्णके बने हुए सूर्यबिम्बकी गन्ध, पुष्प आदिसे पूजा करे तथा रात्रिमें जागरण करके दूसरे दिन सात ब्राह्मणोंको खीर भोजन करावे। उन ब्राह्मणोंको दक्षिणा, नारियल और अगुरु अर्पण करके दूसरी दक्षिणाके साथ सुवर्णमय सूर्यबिम्ब आचार्यको समर्पित करे। फिर विशेष प्रार्थनापूर्वक उन्हें विदा करके स्वयं भोजन करे। यह व्रत सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला कहा गया है। इस व्रतके प्रभावसे सर्वथा अद्वैतज्ञान सिद्ध होता है।

माघ शुक्ला सप्तमीको 'अचला-व्रत' बताया गया है। यह 'त्रिलोचनजयन्ती' है। इसे सर्वपापहारिणी माना गया है। इसीको 'रथसप्तमी' भी कहते हैं, जो 'चक्रवर्ती' पद प्रदान करनेवाली है। उस दिन सूर्यकी सुवर्णमयी प्रतिमाको सुवर्णमय घोड़े जुते हुए सुवर्णके ही रथपर बिठाकर जो सुवर्ण दक्षिणाके साथ भावभक्तिपूर्वक उसका दान करता है, वह भगवान् शङ्करके लोकमें जाकर आनन्द भोगता है। यही 'भास्करसप्तमी' भी कहलाती है, जो करोड़ों सूर्य-ग्रहणोंके समान है। इसमें अरुणोदयके समय स्नान किया जाता है। आक और बेरके सात-सात पत्ते सिरपर रखकर स्नान करना चाहिये। इससे सात जन्मोंके पापोंका नाश होता है। इसी सप्तमीको 'पुत्रदायक' व्रत भी बताया गया है। स्वयं भगवान् सूर्यने कहा है—'जो माघ शुक्ला सप्तमीको विधिपूर्वक मेरी पूजा करेगा, उसपर अधिक संतुष्ट होकर मैं अपने अंशसे उसका पुत्र होऊँगा।' इसलिये उस दिन इन्द्रियसंयमपूर्वक दिन-रात उपवास करे और दूसरे दिन होम करके ब्राह्मणोंको दही, भात, दूध और खीर आदि भोजन करावे। फाल्गुन शुक्ला सप्तमीको 'अर्कपुट' नामक व्रतका आचरण करे। अर्कके पत्तोंसे अर्क (सूर्य) का पूजन करे और अर्कके पत्ते ही खाय तथा 'अर्क' नामका सदा जप करे। इस प्रकार किया हुआ यह अर्कपुट-व्रत धन और पुत्र देनेवाला तथा सब पापोंका नाश करनेवाला है। कोई-कोई विधिपूर्वक होम करनेसे इसे 'यज्ञ-व्रत' मानते हैं। द्विजश्रेष्ठ! सब मासोंकी सम्पूर्ण सप्तमी तिथियोंमें भगवान् सूर्यकी आराधना समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली बतायी गयी है।

बारह महीनोंके अष्टमी-सम्बन्धी व्रतोंकी विधि और महिमा

सनातनजी कहते हैं—नारद! चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमीको भवानीका जन्म बताया जाता है। उस दिन सौ परिक्रमा करके उनकी यात्राका महान् उत्सव मनाना चाहिये। उस दिन जगदम्बाका दर्शन मनुष्योंके लिये सर्वथा आनन्द देनेवाला है। उसी दिन अशोककलिका खानेका विधान है। जो लोग चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमीको पुनर्वसु नक्षत्रमें अशोककी आठ कलिकाओंका पान करते हैं, वे कभी शोक नहीं पाते। उस दिन रातमें देवीकी पूजाका विधान होनेसे वह तिथि 'महाष्टमी' भी कही गयी है। वैशाख मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमी तिथिको उपवास करके स्वयं जलसे स्नान करे और अपराजिता देवीको जटामाँसी तथा उशीर (खस) मिश्रित जलसे स्नान कराकर गन्ध आदिसे उनकी पूजा करे। फिर शर्करासे तैयार किया हुआ नैवेद्य भोग लगावे। दूसरे दिन नवमीको पारणासे पहले कुमारी कन्याओंको देवीका शर्करामय प्रसाद भोजन करावे। ब्रह्मन्! ऐसा करनेवाला मनुष्य देवीके प्रसादसे ज्योतिर्मय विमानमें बैठकर प्रकाशमान सूर्यकी भाँति दिव्य लोकोंमें विचरता है।

ज्येष्ठ मासके कृष्ण पक्षकी अष्टमीको भगवान् त्रिलोचनकी पूजा करके मनुष्य सम्पूर्ण देवताओंसे वन्दित हो एक कल्पतक शिवलोकमें निवास करता है। जो मनुष्य ज्येष्ठ शुक्ला अष्टमीको देवीकी पूजा करता है, वह गन्धर्वों और अप्सराओंके साथ विमानपर विचरण करता है। आषाढ मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमीको हल्दीमिश्रित जलसे स्नान करके वैसे ही जलसे देवीको भी स्नान करावे और विधिपूर्वक उनकी पूजा करे। तदनन्तर शुद्ध जलसे स्नान कराकर कपूर और चन्दनका लेप लगावे। तत्पश्चात् शर्करायुक्त नैवेद्य अर्पण करके आचमन करावे। फिर ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें सुवर्ण और दक्षिणा दे। तदनन्तर उन्हें विदा करके स्वयं मौन होकर भोजन करे।

इस व्रतका पालन करके मनुष्य देवीलोकमें जाता है। श्रावण शुक्ला अष्टमीको विधिपूर्वक देवीका यजन करके दूधसे उन्हें नहलावे और मिष्टान्न निवेदन करे, तत्पश्चात् दूसरे दिन ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भी भोजन करके व्रत समाप्त करे। यह संतान बढ़ानेवाला व्रत है। श्रावण मासके कृष्ण पक्षकी अष्टमीको 'दशाफल' नामका व्रत होता है*। उस दिन उपवास-व्रतका संकल्प लेकर स्नान और नित्यकर्म करके काली तुलसीके दस पत्तोंसे 'कृष्णाय नमः', 'विष्णवे नमः', 'अनन्ताय नमः', 'गोविन्दाय नमः', 'गरुडध्वजाय नमः', 'दामोदराय नमः', 'हृषीकेशाय नमः', 'पद्मनाभाय नमः', 'हरये नमः', 'प्रभवे नमः'—इन दस नामोंका उच्चारण करके प्रतिदिन भगवान् श्रीकृष्णका पूजन करे। तदनन्तर परिक्रमापूर्वक नमस्कार करे। इस प्रकार इस उत्तम व्रतको दस दिनतक करता रहे। इसके आदि, मध्य और अन्तमें श्रीकृष्ण-मन्त्रद्वारा चरुसे एक सौ आठ बार विधिपूर्वक होम करे। होमके अन्तमें विद्वान् पुरुष विधिके अनुसार भलीभाँति आचार्यकी पूजा करे। सोने, ताँबे, मिट्टी अथवा बाँसके पात्रमें सोनेका सुन्दर तुलसीदल बनवाकर रक्खे। साथ ही भगवान् श्रीकृष्णकी सुवर्णमयी प्रतिमा भी स्थापित करके उसकी विधिपूर्वक पूजा करे और वस्त्र तथा आभूषणोंसे विभूषित बछड़े-सहित गौका दान भी करे। दस दिनोंतक प्रतिदिन भगवान् श्रीकृष्णको दस-दस पूरी अर्पण करे। उन पूरियोंको व्रती पुरुष विधिज्ञ ब्राह्मणको दे डाले अथवा स्वयं भोजन करे। द्विजोत्तम! दसवें दिन यथाशक्ति शय्या दान करे। तत्पश्चात् द्रव्यसहित सुवर्णमयी मूर्ति आचार्यको समर्पित करे। व्रतके अन्तमें दस ब्राह्मणोंको प्रत्येकके लिये दस-दस पूरियाँ देवे। इस प्रकार दस वर्षोंतक उत्तम व्रतका पालन करके विधिपूर्वक उपवासका निर्वाह कर लेनेपर मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंसे सम्पन्न होता है और अन्तमे भगवान् श्रीकृष्णका सायुज्य प्राप्त कर लेता है।

यही 'कृष्ण-जन्माष्टमी' तिथि है, जो मनुष्योंके सब पापोंको हर लेनेवाली कही गयी है। श्रीकृष्णके जन्मके दिन केवल उपवास करनेमात्रसे मनुष्य सात जन्मोंके पापोंसे मुक्त हो जाता है। विद्वान् पुरुष उपवास करके नदी आदिके निर्मल जलमें तिलमिश्रित जलसे स्नान करे। फिर उत्तम स्थानमें बने हुए मण्डपके भीतर मण्डल बनावे। मण्डलके मध्यभागमे ताँबे या मिट्टीका कलश स्थापित करे। उसके ऊपर ताँबेका पात्र रक्खे। उस पात्रके ऊपर दो वस्त्रोंसे ढकी हुई श्रीकृष्णकी सुवर्णमयी सुन्दर प्रतिमा स्थापित करे। फिर वाद्य आदि उपचारोंद्वारा स्नेहपूर्ण हृदयसे उसकी पूजा करे। कलशके सब ओर पूर्व आदि क्रमसे देवकी, वसुदेव, यशोदा, नन्द, व्रज, गोपगण, गोपीवृन्द तथा गोसमुदायकी पूजा करे। तत्पश्चात् आरती करके अपराध क्षमा कराते हुए भक्तिपूर्वक प्रणाम करे। उसके बाद आधी राततक वहीं रहे। आधी रातमे पुनः श्रीहरिको पञ्चामृत तथा शुद्ध जलसे स्नान कराये और गन्ध-पुष्प आदिसे पुनः उनकी पूजा करे। नारद! धनिया, अजवाइन, सोंठ, खाँड और घीके मेलसे नैवेद्य तैयार करके उसे चाँदीके पात्रमें रखकर भगवान्‌को अर्पण करे। फिर दशावतारधारी श्रीहरिका चिन्तन करते हुए पुनः आरती करके चन्द्रोदय होनेपर चन्द्रमाको अर्घ्य दे। उसके बाद देवेश्वर श्रीकृष्णसे क्षमा-प्रार्थना करके व्रती पुरुष पौराणिक स्तोत्र-पाठ और गीत-वाद्य आदि अनेक कार्यक्रमोंद्वारा रात्रिका शेष भाग व्यतीत करे। तदनन्तर प्रातःकाल श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन करावे और उन्हें प्रसन्नतापूर्वक दक्षिणा देकर विदा करे। तत्पश्चात् भगवान्‌की सुवर्णमयी प्रतिमाको स्वर्ण, धेनु और भूमिसहित आचार्यको दान करे। फिर और भी दक्षिणा देकर उन्हें विदा करनेके पश्चात् स्वयं भी स्त्री, पुत्र, सुहृद् तथा भृत्यवर्गके साथ भोजन करे। इस प्रकार व्रत करके मनुष्य श्रेष्ठ विमानपर बैठकर साक्षात् गोलोकमें जाता है। इस जन्माष्टमीके समान दूसरा कोई व्रत तीनों लोकोंमें नहीं है, जिसके करनेसे करोड़ों एकादशियोंका फल प्राप्त हो जाता है। भाद्रपद शुक्ला अष्टमीको मनुष्य 'राधा-व्रत' करे। इसमें भी पूर्ववत् कलशके ऊपर स्थापित श्रीराधाकी स्वर्णमयी प्रतिमाका पूजन करना चाहिये। मध्याह्नकालमें श्रीराधाजीका पूजन करके एकभुक्त व्रत करे। यदि शक्ति हो तो भक्त पुरुष पूरा उपवास करे। फिर दूसरे दिन भक्तिपूर्वक सुवासिनी स्त्रियोंको भोजन कराकर आचार्यको प्रतिमा दान करे। तत्पश्चात् स्वयं भी भोजन

* अमावास्यान्त मास माननेवालोंकी दृष्टिसे यह श्रावण मासके कृष्ण पक्षकी अष्टमी कही गयी है। जो पूर्णिमान्त ही मास मानते हैं उनकी दृष्टिसे यह अष्टमी भाद्रपद कृष्णपक्षमें पड़ती है।

करे। इस प्रकार इस व्रतको समाप्त करना चाहिये। ब्रह्मर्षे!
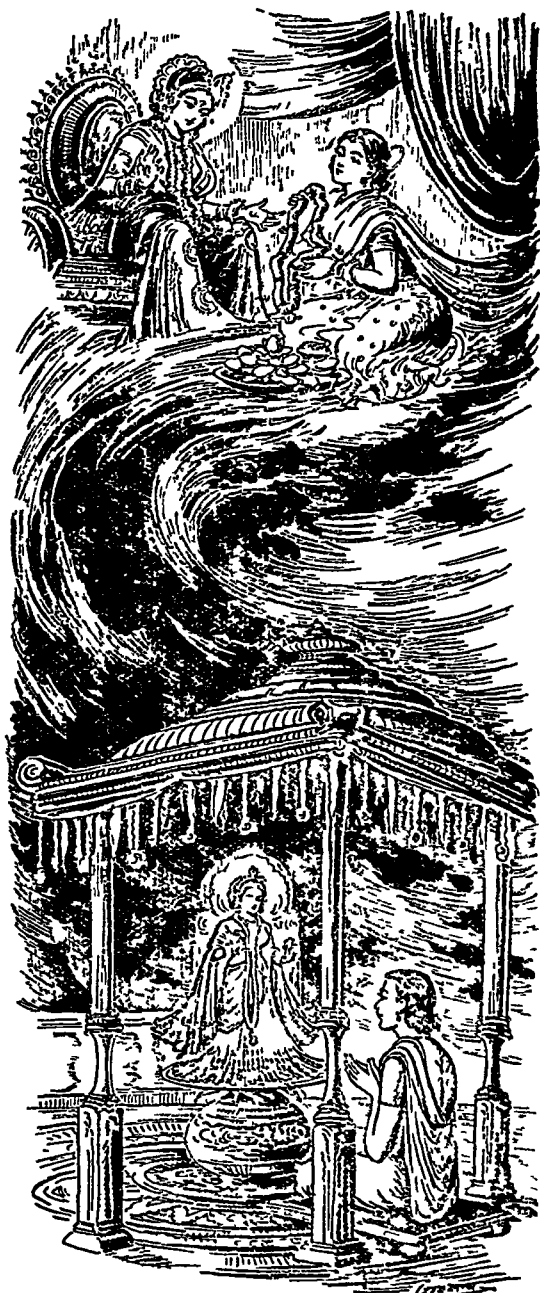
व्रती पुरुष विधिपूर्वक इस राधाष्टमी व्रतके करनेसे व्रजका रहस्य जान लेता तथा राधापरिकरोंमें निवास करता है।

इसी तिथिको 'दूर्वाष्टमी' व्रत भी बताया गया है। पवित्र स्थानमें उगी हुई दूबपर शिवलिङ्गकी स्थापना करके गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, दही, अक्षत और फल आदिके द्वारा भक्तिपूर्वक उसकी पूजा करे। पूजाके अन्तमें एकाग्रचित्त होकर अर्घ्य दे। अर्घ्य देनेके पश्चात् परिक्रमा करके सात ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उन्हें दक्षिणा, उत्तम फल तथा सुगन्धित मिष्टान्न देकर विदा करे; फिर स्वयं भी भोजन करके अपने घर जाय। विप्रवर! इस प्रकार यह दूर्वाष्टमी मनुष्योंके लिये पुण्यदायिनी तथा उनका पाप हर लेनेवाली है। यह चारों वर्णों और विशेषतः स्त्रियोंके लिये अवश्यकर्तव्य व्रत है। ब्रह्मन्! जब वह अष्टमी ज्येष्ठा नक्षत्रसे संयुक्त हो तो उसे 'ज्येष्ठा अष्टमी'के नामसे जानना चाहिये। वह पूजित होनेपर सब पापोंका नाश करनेवाली है। इस तिथिसे लेकर सोलह दिनोंतक महालक्ष्मीका व्रत बताया गया है। पहले इस प्रकार संकल्प करे—

करिष्येऽहं महालक्ष्मीव्रतं ते त्वत्परायणः।
तदविघ्नेन मे यातु समाप्तिं त्वत्प्रसादतः॥
(ना० पूर्व० ११७।५५)

'देवि! मैं आपकी सेवामें तत्पर होकर आपके इस महालक्ष्मीव्रतका पालन करूँगा। आपकी कृपासे यह व्रत बिना किसी विघ्न-बाधाके परिपूर्ण हो।'

ऐसा कहकर दाहिने हाथमें सोलह तन्तु और सोलह गाँठोंसे युक्त डोरा बाँध ले। तबसे व्रती पुरुष प्रतिदिन गन्ध आदि उपचारोंद्वारा महालक्ष्मीकी पूजा करे। पूजाका यह क्रम आश्विन कृष्णा अष्टमीतक चलाता रहे। व्रत पूरा हो जानेपर विद्वान् पुरुष उसका उद्यापन करे। वस्त्र घेरकर एक मण्डप बना ले। उसके भीतर सर्वतोभद्रमण्डलकी रचना करे और उस मण्डलमें कलशकी प्रतिष्ठा करके दीपक जला दे। फिर अपनी बाँहसे डोरा उतारकर कलशके नीचे रख दे। इसके बाद सोनेकी चार प्रतिमाएँ बनवावे, जो सब-की-सब महालक्ष्मीस्वरूपा हों। फिर पञ्चामृत और जलसे उन सबको स्नान करावे तथा षोडशोपचारसे विधिपूर्वक पूजा करके वहाँ जागरण करे। तदनन्तर आधी रातके समय चन्द्रोदय होनेपर श्रीखण्ड आदि द्रव्योंसे विधिपूर्वक अर्घ्य अर्पण करे। यह अर्घ्य चन्द्रमण्डलमें स्थित महालक्ष्मीके उद्देश्यसे देना चाहिये। अर्घ्य देनेके पश्चात् महालक्ष्मीकी प्रार्थना करे और फिर व्रत करनेवाली स्त्री श्रोत्रिय ब्राह्मणोंकी पतिव्रता गौरी, कज्जल और काजल आदि सौभाग्यसूचक द्रव्योंद्वारा भलीभाँति पूजन करके उन्हें भोजन करावे। तत्पश्चात् बिल्व, कमल और

खीरसे अग्निमें आहुति दे । ब्रह्मन् ! उक्त वस्तुओंके अभावमें केवल घीकी आहुति दे । ग्रहोंके लिये समिधा और तिलका हवन करे । सब रोगोंकी शान्तिके उद्देश्यसे भगवान् मृत्युञ्जयके लिये भी आहुति देनी चाहिये । चन्दन, तालपत्र, पुष्पमाला, अक्षत, दूर्वा, लाल सूत, सुपारी, नारियल तथा नाना प्रकारके भक्ष्य पदार्थ—सबको नये सूपेमें रक्खे । प्रत्येक वस्तु सोलहकी संख्यामें हो । उन सब वस्तुओंको दूसरे सूपसे ढक दे । तदनन्तर व्रती पुरुष निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़ते हुए उपर्युक्त सब वस्तुएँ महालक्ष्मीको समर्पित करे—

क्षीरोदार्णवसम्भूता लक्ष्मीश्चन्द्रसहोदरा ।
व्रतेनानेन संतुष्टा भवताद्विष्णुवल्लभा ॥
(ना० पूर्व० ११७ । ७०-७१)

'क्षीरसागरसे प्रकट हुई चन्द्रमाकी सहोदर भगिनी श्रीविष्णुवल्लभा महालक्ष्मी इस व्रतसे संतुष्ट हों ।'

पूर्वोक्त चार प्रतिमाएँ श्रोत्रिय ब्राह्मणको अर्पित करे । इसके बाद चार ब्राह्मणों और सोलह सुवासिनी स्त्रियोंको मिष्टान्न भोजन कराकर दक्षिणा दे उन्हें विदा करे । फिर नियम समाप्त करके इष्ट भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे । विप्रवर ! यह महालक्ष्मीका व्रत है । इसका विधिपूर्वक पालन करके मनुष्य इहलोकके इष्ट भोगोंका उपभोग करनेके बाद चिरकालतक लक्ष्मीलोकमें निवास करता है ।

विप्रवर ! आश्विन मासके शुक्लपक्षमें जो अष्टमी आती है, उसे 'महाष्टमी' कहा गया है । उसमें सभी उपचारोंसे दुर्गाजीके पूजनका विधान है । जो महाष्टमीको उपवास अथवा एकभुक्त व्रत करता है, वह सब ओरसे वैभव पाकर देवताकी भाँति चिरकालतक आनन्दमग्न रहता है । कार्तिक कृष्णपक्षमें अष्टमीको 'कर्काष्टमी' नामक व्रत कहा गया है । उसमे यत्नपूर्वक उमासहित भगवान् शङ्करकी पूजा करनी चाहिये । जो सर्वगुणसम्पन्न पुत्र और नाना प्रकारके सुखकी अभिलाषा रखते हैं, उन व्रती पुरुषोंको चन्द्रोदय होनेपर सदा चन्द्रमाके लिये अर्घ्यदान करना चाहिये । कार्तिकके शुक्लपक्षमें गोपाष्टमीका व्रत बताया गया है । उसमें गौओंकी पूजा करना, गोग्रास देना, गौओंकी परिक्रमा करना, गौओंके पीछे-पीछे चलना और गोदान करना आदि कर्तव्य है । जो समस्त सम्पत्तियोंकी इच्छा रखता हो, उसे उपर्युक्त कार्य अवश्य करने चाहिये । मार्गशीर्ष मासके कृष्णपक्षकी अष्टमीको 'अनघाष्टमी व्रत' कहा गया है । उसमें अनेक पुत्रोंसे युक्त अनघ और अनघा—इन दोनों पति-पत्नीकी कुशमयी प्रतिमा बनायी जाती है । उस युगल जोड़ीको गोबरसे लीपे हुए शुभ स्थानमें स्थापित करके गन्ध-पुष्प आदि विविध उपचारोंसे उनकी पूजा करे । फिर ब्राह्मण पति-पत्नीको भोजन कराकर दक्षिणा दे विदा करे । स्त्री हो या पुरुष विधिपूर्वक इस व्रतका अनुष्ठान करके उत्तम लक्षणोंसे युक्त पुत्र पाता है ।

मार्गशीर्ष शुक्ला अष्टमीको कालभैरवके समीप उपवासपूर्वक जागरण करके मनुष्य बड़े-बड़े पापोंसे मुक्त हो जाता है । पौष शुक्ला अष्टमीको अष्टकासंज्ञक श्राद्ध पितरोंको एक वर्षतक तृप्ति देनेवाला और कुल-संततिको बढ़ानेवाला है । उस दिन भक्तिपूर्वक शिवकी पूजा करके केवल भक्तिका आचरण करते हुए मनुष्य भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त कर लेता है । माघ मासके कृष्णपक्षकी अष्टमीको सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाली भद्रकाली देवीकी भक्तिभावसे पूजा करे । जो अविच्छिन्न संतति और विजय चाहता हो, वह माघमासके शुक्लपक्षकी अष्टमीको भीष्मजीका तर्पण करे । ब्रह्मन् ! फाल्गुन मासके कृष्णपक्षकी अष्टमीको व्रतपरायण पुरुष समस्त कामनाओंकी सिद्धिके लिये भीमादेवीकी आराधना करे । फाल्गुन शुक्ला अष्टमीको गन्ध आदि उपचारोंसे शिव और शिवाकी भलीभाँति पूजा करके मनुष्य सम्पूर्ण सिद्धियोंका अधीश्वर हो जाता है । सभी मासोंके दोनों पक्षोंमें अष्टमीके दिन विधिपूर्वक शिव और पार्वतीकी पूजा करके मनुष्य मनोवाञ्छित फल प्राप्त कर लेता है ।

नवमीसम्बन्धी व्रतोंकी विधि और महिमा

सनातनजी कहते हैं—विप्रेन्द्र ! अब मैं तुमसे नवमीके व्रतोंका वर्णन करता हूँ, लोकमें जिनका पालन करके मनुष्य मनोवाञ्छित फल पाते हैं । चैत्रके शुक्लपक्षमें नवमीको 'श्रीरामनवमी'का व्रत होता है । उसमें भक्तियुक्त पुरुष यदि शक्ति हो तो विधिपूर्वक उपवास करे । जो अशक्त हो, वह मध्याह्नकालीन जन्मोत्सवके बाद एक समय भोजन करके रहे । ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन कराकर भगवान् श्रीरामको प्रसन्न करे । गौ, भूमि, तिल, सुवर्ण, वस्त्र और आभूषण

आदिके दानसे भी श्रीरामप्रीतिका सम्पादन करे। जो मनुष्य इस प्रकार भक्तिपूर्वक श्रीरामनवमीव्रतका पालन करता है,
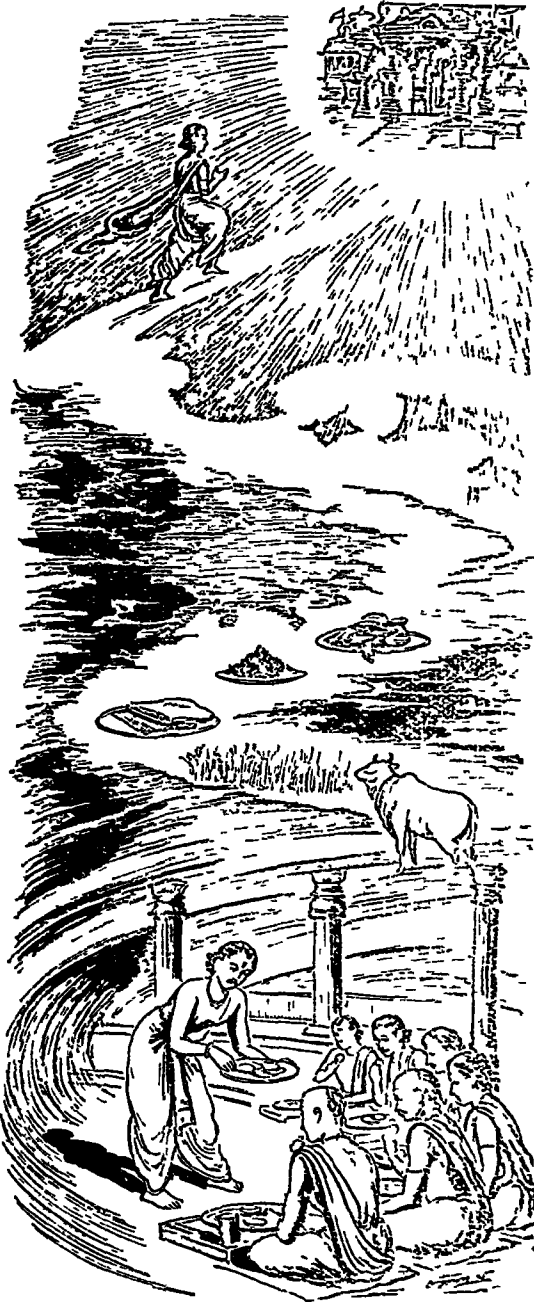
वह सम्पूर्ण पापोंका नाश करके भगवान् विष्णुके परम धाम-को जाता है। वैशाखमें दोनों पक्षोंकी नवमीको जो विधि-पूर्वक चण्डिका-पूजन करता है, वह विमानसे विचरण करता हुआ देवताओंके साथ आनन्द भोगता है। ज्येष्ठ शुक्ला नवमीको श्रेष्ठ मनुष्य उपवासपूर्वक उमादेवीका विधिवत् पूजन करके कुमारी कन्याओं तथा ब्राह्मणोंको भोजन कराके और उन्हें अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणा देकर जगदम्बाके नाम-का भात दूधके साथ खाय। जो मनुष्य इस 'उमा-व्रत'का विधि-पूर्वक पालन करता है, वह इस लोकमें श्रेष्ठ भोगोंको भोगकर अन्तमें स्वर्गलोकमें स्थान पाता है। विप्रेन्द्र! जो आषाढ़ मासके दोनों पक्षोंमें नवमीको रातमें ऐरावतपर विराजमान शुक्लवर्णा इन्द्राणीका भलीभाँति पूजन करता है, वह देवलोक-में दिव्य विमानपर विचरता हुआ दिव्य भोगोंका उपभोग करता है। विप्रवर! जो श्रावण मासके दोनों पक्षोंकी नवमी-को उपवास अथवा केवल रातमें भोजन करता और कौमारी चण्डिकाकी आराधना करता है, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, भाँति-भाँतिके नैवेद्य अर्पण करके और कुमारी कन्याओंको भोजन कराकर जो उस पापहारिणी देवीकी परिचर्यामें तत्पर रहता है और इस प्रकार भक्तिपूर्वक उस उत्तम 'कौमारी व्रत'का पालन करता है, वह विमानद्वारा सनातन देवीलोकमें जाता है।

भाद्रपद शुक्ला नवमीको 'नन्दानवमी' कहते हैं। उस दिन जो नाना प्रकारके उपचारोंद्वारा दुर्गादेवीकी विधिवत् पूजा करता है, वह अश्वमेध यज्ञका फल पाकर विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। कार्तिक मासके शुक्ल पक्षमें जो नवमी आती है, उसे 'अक्षय-नवमी' कहते हैं। उस दिन पीपलवृक्षकी जड़के समीप देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका विधिपूर्वक तर्पण करे और सूर्यदेवता-को अर्घ्य दे। तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा दे और स्वयं भी भोजन करे। इस प्रकार जो भक्तिपूर्वक अक्षयनवमीको जप, दान, ब्राह्मणपूजन और होम करता है, उसका वह सब कुछ अक्षय होता है, ऐसा ब्रह्माजी-का कथन है। मार्गशीर्ष शुक्ला नवमीको 'नन्दिनीनवमी' कहते हैं। जो उस दिन उपवास करके गन्ध आदिसे जगदम्बाका पूजन करता है, वह निश्चय ही अश्वमेध यज्ञके फलका भागी होता है। विप्रवर! पौषमासके शुक्लपक्षकी नवमीको एक समय भोजनके व्रतका पालन करते हुए महामायाका पूजन करे। इससे वाजपेय यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है। माघशुक्ला नवमी लोकपूजित 'महानन्दा'के नामसे विख्यात है, जो मानवोंके लिये सदा आनन्ददायिनी होती है। उस दिन किया हुआ स्नान, दान, जप, होम और उपवास सब अक्षय होता है। द्विजोत्तम! फाल्गुनमासके शुक्लपक्षकी जो नवमी तिथि है, वह परम पुण्यमयी 'आनन्दा नवमी' कहलाती है। वह सब पापोंका नाश करनेवाली मानी गयी है। जो उस दिन उपवास करके आनन्दाका पूजन करता है, वह मनोवाञ्छित कामनाओंको प्राप्त कर लेता है।

बारह महीनोंके दशमीसम्बन्धी व्रतोंकी विधि और महिमा

सनातनजी कहते हैं—नारद ! अब मैं तुम्हें दशमीके व्रत बतलाता हूँ, जिनका भक्तिपूर्वक पालन करके मनुष्य धर्मराजका प्रिय होता है । चैत्र शुक्ला दशमीको सामयिक फल, फूल और गन्ध आदिसे धर्मराजका पूजन करना चाहिये । उस दिन पूरा उपवास या एक समय भोजन करके रहे । व्रतके अन्तमें चौदह ब्राह्मणोंको भोजन करावे और अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणा दे । विप्रवर ! जो इस प्रकार धर्मराजकी पूजा करता है, वह धर्मकी आज्ञासे देवताओंकी समता प्राप्त कर लेता है और फिर उससे च्युत नहीं होता । जो मानव वैशाख शुक्ला दशमीको गन्ध आदि उपचारों तथा श्वेत और सुगन्धित पुष्पोंसे भगवान् विष्णुकी पूजा करके उनकी सौ परिक्रमा करता और यत्नपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, वह भगवान् विष्णुके लोकमें स्थान पाता है । सरिताओंमें श्रेष्ठ जह्नुपुत्री गङ्गा ज्येष्ठ शुक्ला दशमीको स्वर्गसे इस पृथ्वीपर उतरी थीं, इसलिये वह तिथि पुण्यदायिनी मानी गयी है । ज्येष्ठ मास, शुक्ल पक्ष, हस्त नक्षत्र, बुध दिन, दशमी तिथि, गर करण, आनन्द योग, व्यतीपात, कन्याराशिके चन्द्रमा और वृषराशिके सूर्य—इन दसोंका योग महान् पुण्यमय बताया गया है । इन दस योगोंसे युक्त दशमी तिथि दस पाप हर लेती है । इसलिये उसे 'दशहरा' कहते हैं । जो इस दशहरामें गङ्गाजीके पास पहुँचकर प्रसन्नचित्त हो विधिपूर्वक गङ्गाजीके जलमें स्नान करता है, वह

भगवान् विष्णुके धाममें जाता है । मनु आदि स्मृतिकारोंने आषाढ़ शुक्ला दशमीको पुण्य-तिथि कहा है, अतः उसमें किये जानेवाले स्नान, जप, दान और होम स्वर्गलोककी प्राप्ति करानेवाले हैं । श्रावण शुक्ला दशमी सम्पूर्ण आशाओंकी पूर्ति करनेवाली है । इसमें गन्ध आदि उपचारोंसे भगवान् शङ्करकी पूजा उत्तम मानी गयी है । उस दिन किया हुआ उपवास या नक्तव्रत, ब्राह्मणभोजन, जप, सुवर्णदान तथा धेनु आदिका दान सब पापोंका नाशक बताया गया है ।

द्विजश्रेष्ठ ! भाद्रपद शुक्ला दशमीको 'दशावतार-व्रत' किया जाता है। उस दिन जलाशयमें स्नान करके संध्यावन्दन तथा देवता, ऋषि और पितरोंका तर्पण करनेके पश्चात् एकाग्रचित्त हो दशावतार विग्रहोंकी पूजा करनी चाहिये । मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, त्रिविक्रम (वामन), परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि—इन दसोंकी सुवर्णमयी मूर्ति बनवाकर विधिपूर्वक पूजा करे और दस ब्राह्मणोंका सत्कार करके उन्हें उन मूर्तियोंका दान कर दे । नारद ! उस दिन उपवास या एक समय भोजनका व्रत करके ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उन्हें विदा करके एकाग्रचित्त हो स्वयं इष्टजनोंके साथ भोजन करे । जो भक्तिपूर्वक इस व्रतका पालन करता है, वह इस लोकमें उत्तम भोग भोगकर अन्तमें विमानद्वारा सनातन विष्णुलोकको जाता है । आश्विन शुक्ला दशमीको 'विजयादशमी' कहते हैं । उस दिन प्रातःकाल घरके आँगनमें गोबरके चार पिण्ड मण्डलाकार रक्खे । उनके भीतर श्रीराम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न इन चारोंकी पूजा करे । गोबरके ही बने हुए चार ढक्कनदार पात्रोंमें भीगा हुआ धान और चाँदी रखकर उसे धुले हुए वस्त्रसे ढक देना चाहिये । फिर पिता, माता, भाई, पुत्र, स्त्री और भृत्यसहित गन्ध, पुष्प और नैवेद्य आदिसे उस धान्यकी विधिपूर्वक पूजा करके नमस्कार करे । फिर पूजित ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भी भोजन करे । इस प्रकारकी विधिका पालन करके मनुष्य निश्चय ही एक वर्षतक सुखी और धनधान्यसे सम्पन्न होता है । नारद ! कार्तिक शुक्ला दशमीको 'सार्वभौम-व्रत'का पालन करे । उस दिन उपवास या एक समय भोजनका व्रत करके आधी रातके समय घर अथवा गाँवसे बाहर पूए आदिके द्वारा दसों दिशाओंमें बलि दे । गोबरसे लिपी हुई भूमिपर मण्डल बनाकर उसमें अष्टदल कमल अङ्कित करे और उसमें गणेश आदि देवताओंकी पूजा करे ।

मार्गशीर्ष शुक्ला दशमीको 'आरोग्य-व्रत'का आचरण करे। दस ब्राह्मणोंका गन्ध आदिसे पूजन करे और उन्हें दक्षिणा देकर विदा करे। स्वयं उस दिन एक समय भोजन करके रहे। इस प्रकार व्रत करके मनुष्य इस भूतलपर आरोग्य पाता और धर्मराजके प्रसादसे देवलोकमें देवताकी भाँति आनन्दका अनुभव करता है। पौष शुक्ला दशमीको विश्वेदेवों-की पूजा करनी चाहिये। विश्वेदेव दस हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—क्रतु, दक्ष, वसु, सत्य, काल, काम, मुनि, गुरु, विप्र और राम। इन सबमें भगवान् विष्णु भलीभाँति विराजमान हैं। विश्वेदेवोंकी कुशमयी प्रतिमाएँ बनाकर उन्हें कुशके ही आसनोंपर स्थापित करे। आसनोंपर स्थित हो जानेपर उनमेंसे प्रत्येकका गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य आदिके द्वारा पूजन करे। प्रत्येकको दक्षिणा देकर प्रणाम करनेके अनन्तर उन सबका विसर्जन करे। उनपर चढ़ी हुई दक्षिणाको श्रेष्ठ द्विजों अथवा गुरुको समर्पित करे। विप्रर्षे! इस प्रकार एक समय भोजनका व्रत करके जो व्रती पुरुष उक्त विधिका पालन करता है, वह उभय लोकके उत्तम भोगोंका अधिकारी होता है। नारद! माघ शुक्ला दशमीको इन्द्रियसंयमपूर्वक उपवास करके अङ्गिरा नामवाले दस देवताओंकी स्वर्णमयी प्रतिमा बनाकर गन्ध आदि उपचारोंसे उनकी भलीभाँति पूजा करनी चाहिये। आत्मा, आयु, मन, दक्ष, मद, प्राण, बर्हिष्मान्, गविष्ठ, दत्त और सत्य—ये दस अङ्गिरा हैं। उनकी पूजा करके दस ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन कराये और उन स्वर्ण-मयी मूर्तियाँ उन्हींको अर्पित कर दे। इससे स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है। फाल्गुन शुक्ला दशमीको चौदह यमोंकी पूजा करे। यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल, सर्वभूतक्षय, औदुम्बर, दध्न, नील, परमेष्ठी, वृकोदर, चित्र और चित्रगुप्त—ये चौदह यम हैं। गन्ध आदि उपचारोंसे इनकी भलीभाँति पूजा करके कुशसहित तिलमिश्रित जलकी तीन-तीन अञ्जलियोंसे प्रत्येकका तर्पण करे। तदनन्तर ताँबेके पात्रमें लाल चन्दन, तिल, अक्षत, जौ और जल रखकर उस पात्रके द्वारा सूर्यको अर्घ्य दे। अर्घ्यका मन्त्र इस प्रकार है—

एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं भक्त्या मामनुकम्पय॥
(ना० पूर्व० ११९ । ६२)

'सहस्रों किरणोंसे सुशोभित तेजोराशि जगदीश्वर सूर्यदेव! आइये, भक्तिपूर्वक मेरा दिया हुआ अर्घ्य स्वीकार कीजिये। साथ ही मुझे अपनी सहज कृपासे अपनाइये।'

इस मन्त्रसे अर्घ्य देकर चौदह ब्राह्मणोंको भोजन कराये तथा रजतमयी दक्षिणा दे। उन्हें विदा करके स्वयं भी भोजन करे। ब्रह्मन्! इस प्रकार विधिका पालन करके मनुष्य धर्मराजकी कृपासे इहलोकके धन, पुत्र आदि देवदुर्लभ भोगोंको भोगता है और देहावसान होनेपर श्रेष्ठ विमानपर बैठकर भगवान् विष्णुके लोकका भागी होता है।

द्वादश मासके एकादशी-व्रतोंकी विधि और महिमा तथा दशमी आदि तीन दिनोंके पालनीय विशेष नियम

सनातनजी कहते हैं—मुने! दोनों पक्षोंकी एकादशी-को मनुष्य निराहार रहे और एकाग्रचित्त हो नाना प्रकारके पुष्पोंसे शुभ एवं विचित्र मण्डप बनावे। फिर शास्त्रोक्त विधिसे भलीभाँति स्नान करके उपवास और इन्द्रियसंयमपूर्वक श्रद्धा और एकाग्रताके साथ नाना प्रकारके उपचार जप, होम, प्रदक्षिणा, स्तोत्रपाठ, दण्डवत्-प्रणाम तथा मनको प्रिय लगनेवाले जय-जयकारके शब्दोंसे विधिवत् श्रीविष्णुकी पूजा करे तथा रात्रिमें जागरण करे। ऐसा करनेसे मनुष्य भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त होता है। चैत्र शुक्ला एकादशीको उपवास करके श्रेष्ठ मनुष्य तीन दिनके लिये आगे बताये जानेवाले सभी नियमोंका पालन करनेके पश्चात् द्वादशीको भक्तिपूर्वक सनातन वासुदेवकी षोडशोपचारसे पूजा करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा दे और उनको विदा करके स्वयं भी भोजन करे। यह 'कामदा' नामक एकादशी है, जो सब पापोंका नाश करनेवाली है। यदि भक्तिपूर्वक इस तिथिको उपवास किया जाय तो वह भोग और मोक्ष देनेवाली होती है। वैशाख कृष्णा एकादशीको 'वरूथिनी' कहते हैं। उस दिन उपवास करके दूसरे दिन भगवान् मधु-सूदनकी पूजा करनी चाहिये। इसमें सुवर्ण, अन्न, फल और धेनुका दान उत्तम माना गया है। वरूथिनीका व्रत करके नियमपरायण मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो वैष्णवपद प्राप्त कर लेता है। वैशाख शुक्ला एकादशीको 'मोहिनी' कहते हैं। उस दिन उपवास करके दूसरे दिन स्नानके पश्चात् गन्ध आदिसे भगवान् पुरुषोत्तमकी पूजा करे। तदनन्तर ब्राह्मण-भोजन कराकर वह सब पातकोंसे मुक्त हो जाता है।

ज्येष्ठ कृष्णा एकादशीको 'अपरा' कहते हैं। उस दिन नियमपूर्वक उपवास करके द्वादशीको प्रातःकाल नित्यकर्मसे निवृत्त हो भगवान् त्रिविक्रमकी विधिवत् पूजा करे। तदनन्तर

श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा दे। ऐसा करनेवाला मानव सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। ज्येष्ठ शुक्ला एकादशीको 'निर्जला' एकादशी कहते हैं। द्विजोत्तम! सूर्योदयसे लेकर सूर्योदयतक निर्जल उपवास करके दूसरे दिन द्वादशीके प्रातःकाल नित्यकर्म करनेके अनन्तर विविध उपचारोंसे भगवान् हृषीकेशका पूजन करे। तदनन्तर भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराकर मनुष्य चौबीस एकादशियोंका फल प्राप्त कर लेता है। आषाढ़ कृष्णा एकादशीको 'योगिनी' कहते हैं। उस दिन उपवास करके द्वादशीको नित्यकर्मके पश्चात् भगवान् नारायणकी पूजा करे। तत्पश्चात् श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा दे। ऐसा करनेवाला पुरुष सम्पूर्ण दानोंका फल पाकर भगवान् विष्णुके धाममें आनन्दका अनुभव करता है। मुने! आषाढ़ शुक्ला एकादशीको उपवास करके सुन्दर मण्डप बनाकर उसमें विधिपूर्वक भगवान् विष्णुकी प्रतिमा स्थापित करे। वह प्रतिमा सोने या चाँदीकी बनी हुई अत्यन्त सुन्दर हो। उसकी चारों भुजाएँ शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे सुशोभित हों। उसे पीताम्बर

धारण कराया गया हो और वह अच्छी तरह बिछे हुए सुन्दर पलंगपर विराज रही हो। तदनन्तर मन्त्रपाठपूर्वक पञ्चामृत एवं शुद्ध जलसे स्नान कराकर पुरुषसूक्तके सोलह मन्त्रोंसे षोडशोपचार पूजन करे। पाद्यसमर्पणसे लेकर आरती उतारनेतक सोलह उपचार होते हैं। तत्पश्चात् श्रीहरिकी इस प्रकार प्रार्थना करे—

सुप्ते त्वयि जगन्नाथ जगत्सुप्तं भवेदिदम्।
विबुद्धे त्वयि बुद्धं च जगत्सर्वं चराचरम्॥
(ना० पूर्व० १२०। २३)

'जगन्नाथ! आपके सो जानेपर यह सम्पूर्ण जगत् सो जाता है और आपके जाग्रत् होनेपर यह सम्पूर्ण चराचर जगत् भी जाग्रत् रहता है।'

इस प्रकार प्रार्थना करके भक्त पुरुष चातुर्मास्यके लिये शास्त्रविहित नियमोंको यथाशक्ति ग्रहण करे। तदनन्तर द्वादशीको प्रातःकाल षोडशोपचारद्वारा भगवान् शेषशायीकी पूजा करे। तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें दक्षिणासे संतुष्ट करे। फिर स्वयं भी मौनभावसे भोजन करे। इस विधिसे भगवान्‌की 'शयनी' एकादशीका व्रत करके मनुष्य भगवान् विष्णुकी कृपासे भोग एवं मोक्षका भागी होता है। द्विजश्रेष्ठ! श्रावणके कृष्णपक्षमें एकादशीको 'कामिका' व्रत होता है। उस दिन श्रेष्ठ मनुष्य नियमपूर्वक उपवास करके द्वादशीको नित्यकर्मका सम्पादन करनेके अनन्तर षोडशोपचारसे भगवान् श्रीधरका पूजन करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको भोजन करा उन्हें दक्षिणा देकर विदा करनेके पश्चात् स्वयं भी भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे। जो इस प्रकार उत्तम कामिका-व्रत करता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्तकर भगवान् विष्णुके परम धाममें जाता है। श्रावण शुक्ला एकादशीको 'पुत्रदा' कहते हैं। उस दिन उपवास करके द्वादशीको नियमपूर्वक रहकर षोडशोपचारसे भगवान् जनार्दनकी पूजा करे। तदनन्तर ब्राह्मण-भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा दे। इस प्रकार करनेवाला इहलोकमें उनसे सद्गुण-सम्पन्न पुत्र पाकर सम्पूर्ण देवताओंसे वन्दित हो साक्षात् भगवान् विष्णुके धाममें जाता है।

भाद्रपद कृष्णा एकादशीको 'अजा' कहते हैं। उस दिन उपवास करके द्वादशीके दिन विभिन्न उपचारोंसे भगवान् उपेन्द्रकी पूजा करनी चाहिये। फिर ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन कराकर दक्षिणा दे विदा करे। इस प्रकार भक्तिपूर्वक एकाग्रभावसे 'अजा' एकादशीका व्रत करके मनुष्य इहलोकमें सम्पूर्ण उत्तम भोगोंको भोगता और अन्तमें वैष्णवधामको जाता है। भाद्रपद शुक्ला एकादशीका नाम 'पद्मा' है। उस दिन उपवास करके नित्य पूजन करनेके अनन्तर ब्राह्मणको जलसे भरा घट दान करे। द्विजोत्तम! पहलेसे स्थापित प्रतिमाका उत्सव करके उसे जलाशयके निकट ले जाय और जलसे स्पर्श कराकर उसकी विधिपूर्वक पूजा करे। फिर उसे घरमें लाकर बायीं करवटसे

सुला दे। तदनन्तर प्रातःकाल द्वादशीको गन्ध आदि उपचारोंद्वारा भगवान् वामनकी पूजा करे। तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजन कराकर दक्षिणा दे विदा करे। जो इस प्रकार पद्माका परम उत्तम व्रत करता है, वह इस लोकमें भोग पाकर अन्तमें इस प्रपञ्चसे मुक्त हो जाता है। आश्विन कृष्णा एकादशीको 'इन्दिरा' कहते हैं। उस दिन उपवास करके शालग्राम शिलाके सम्मुख मध्याह्नकालमें श्राद्ध करे। ब्रह्मन्! यह भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेवाला होता है। तदनन्तर द्वादशीको प्रातःकाल भगवान् पद्मनाभकी पूजा करके विद्वान् पुरुष ब्राह्मणोंको भोजन करावे और दक्षिणा देकर उन्हें विदा करनेके पश्चात् स्वयं भी भोजन करे। इस प्रकार इन्दिरा एकादशीका व्रत करनेवाला मनुष्य इस लोकमें मनोवाञ्छित भोगोंको भोगकर करोड़ों पितरोंका उद्धार करके अन्तमें भगवान् विष्णुके धाममें जाता है। विप्रवर! आश्विन शुक्ला एकादशीको 'पापाङ्कुशा' कहते हैं। उस दिन विधिपूर्वक उपवास करके द्वादशीके दिन भगवान् विष्णुकी पूजा करे। तदनन्तर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन करा उन्हें दक्षिणा दे भक्तिभावसे प्रणाम करके विदा करे। फिर स्वयं भी भोजन करे। जो मनुष्य इस प्रकार भक्तिपूर्वक पापाङ्कुशा एकादशीका व्रत करता है, वह इस लोकमें उत्तम भोगोंको भोगकर भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है।

द्विजश्रेष्ठ! कार्तिक कृष्णपक्षमे 'रमा' नामकी एकादशीको विधिवत् स्नान करके द्वादशीको प्रातःकाल केशी दैत्यका वध करनेवाले, देवताओंके भी देवता सनातन भगवान् केशवकी पूजा करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उन्हे दक्षिणा देकर विदा करे। इस प्रकार व्रत करके मनुष्य इस लोकमें मनोवाञ्छित भोग भोगनेके पश्चात् विमानद्वारा वैकुण्ठमें जाकर भगवान् लक्ष्मीपतिका सामीप्य लाभ करता है। कार्तिक शुक्ला एकादशीको 'प्रबोधिनी' कहते हैं। उस दिन उपवास करके रातमें सोये हुए भगवान्‌को गीत आदि माङ्गलिक उत्सवोंद्वारा जगावे। उस समय ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके विविध मन्त्रों और नाना प्रकारके वाद्योंके द्वारा भगवान्‌को जगाना चाहिये। द्राक्षा, ईख, अनार, केला और सिंघाड़ा आदि वस्तुएँ भगवान्‌को अर्पित करनी चाहिये। तत्पश्चात् रात बीतनेपर दूसरे दिन सवेरे स्नान और नित्यकर्म करके पुरुषसूक्तके मन्त्रोंद्वारा भगवान् गदादामोदरकी षोडशोपचारसे पूजा करनी चाहिये। फिर ब्राह्मणोंको भोजन करा उन्हें दक्षिणासे संतुष्ट करके विदा करे। इसके बाद आचार्यको भगवान्‌की स्वर्णमयी प्रतिमा और धेनुका दान करना चाहिये। इस प्रकार जो भक्ति और आदरपूर्वक प्रबोधिनी एकादशीका व्रत करता है, वह इस लोकमें श्रेष्ठ भोगोंका उपभोग करके अन्तमें वैष्णवपद प्राप्त कर लेता है।

मार्गशीर्षमासके कृष्णपक्षकी एकादशीको 'उत्पन्ना' एकादशी कहते हैं। उस दिन उपवास करके द्वादशीको गन्ध आदि उपचारोंसे भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा करे। तत्पश्चात् श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन करा उन्हें दक्षिणा दे विदा करके स्वजनोंके साथ एकाग्र होकर भोजन करे। इस प्रकार जो भक्तिपूर्वक उत्पन्नाका व्रत करता है, वह अन्तकालमें श्रेष्ठ विमानपर बैठकर भगवान् विष्णुके लोकमें चला जाता है। मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशीको 'मोक्षा' (मोक्षदा) एकादशी कहते हैं। उस दिन उपवास करके द्वादशीको प्रातःकाल सम्पूर्ण उपचारोंसे विश्वरूपधारी भगवान् अनन्तकी पूजा करे। फिर ब्राह्मणोंको भोजन करावे और दक्षिणा देकर विदा करनेके पश्चात् स्वयं भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे। इस प्रकार व्रत करके मनुष्य इहलोकमें मनोवाञ्छित भोगोंको भोगकर पहले और पीछेकी दस-दस पीढ़ियोंका उद्धार करके भगवान् श्रीहरिके धाममें जाता है। पौषमासके कृष्णपक्षकी एकादशीको 'सफला' कहते हैं। उस दिन उपवास करके द्वादशीको सभी उपचारोंसे भगवान् अच्युतकी पूजा करे। फिर ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन करावे और दक्षिणा देकर विदा करे। ब्रह्मन्! इस प्रकार सफला एकादशीका विधिपूर्वक व्रत करके मनुष्य इहलोकमें सम्पूर्ण भोगोंका उपभोग करके अन्तमें वैष्णवपदको प्राप्त होता है। पौष शुक्ला एकादशीको 'पुत्रदा' कहा गया है। उस दिन उपवास करके द्वादशीके दिन अर्घ्य आदि उपचारोंसे भगवान् चक्रपाणि विष्णुकी पूजा करे। फिर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन करा दक्षिणा दे विदा करके अपने इष्ट भाई-बन्धुओंके साथ बैठकर स्वयं भोजन करे। विप्रवर! इस प्रकार व्रत करनेवाला मनुष्य इहलोकमें मनोवाञ्छित भोग भोगकर अन्तमें श्रेष्ठ विमानपर आरूढ हो भगवान् विष्णुके धाममें जाता है।

द्विजश्रेष्ठ! माघके कृष्ण पक्षमें 'षट्तिला' एकादशीको उपवास करके तिलोंसे ही स्नान, दान, तर्पण, हवन, भोजन एवं पूजनका काम ले। फिर द्वादशीको प्रातःकाल सब उपचारोंसे भगवान् वैकुण्ठकी पूजा करे। फिर ब्राह्मणोंको भोजन करा उन्हें दक्षिणा देकर विदा करे। इस प्रकार एकाग्रचित्त हो विधिपूर्वक व्रत करके मनुष्य इहलोकमें मनोवाञ्छित भोग भोगकर अन्तमें विष्णुपद प्राप्त

कर लेता है। माघ शुक्ला एकादशीका नाम 'जया' है। उस दिन उपवास करके द्वादशीको प्रातःकाल परम पुरुष भगवान् श्रीपति-की अर्चना करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको भोजन करा दक्षिणा दे विदा करके शेष अन्न अपने भाई-बन्धुओंके साथ स्वयं एकाग्र-चित्त होकर भोजन करे। विप्रवर! जो इस प्रकार भगवान् केशवको संतुष्ट करनेवाला व्रत करता है, वह इहलोकमें श्रेष्ठ भोगोंको भोगकर अन्तमें भगवान् विष्णुके धाममें जाता है। फाल्गुन कृष्णा एकादशीका नाम 'विजया' है। उस दिन उपवास करके द्वादशीको प्रातःकाल गन्ध आदि उपचारोंसे भगवान् योगीश्वरकी पूजा करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको भोजन करा दक्षिणासे संतुष्ट करके उन्हें विदा करनेके पश्चात् स्वय मौन होकर भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे। इस प्रकार व्रत करनेवाला मानव इहलोकमें अभीष्ट भोगोंको भोगकर देहान्त होनेके बाद देवताओंसे सम्मानित हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। द्विजोत्तम! फाल्गुनके शुक्ल पक्षमें 'आमलकी' एकादशी-को उपवास करके द्वादशीको प्रातःकाल सम्पूर्ण उपचारोंसे भगवान् पुण्डरीकाक्षका भक्तिपूर्वक पूजन करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको उत्तम अन्न भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा दे। इस प्रकार फाल्गुनके शुक्ल पक्षमें आमलकी नामवाली एकादशीको विधिपूर्वक पूजन आदि करके मनुष्य भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त होता है। ब्रह्मन्! चैत्रके कृष्णपक्षमें 'पापमोचनी' नामवाली एकादशीको उपवास करके द्वादशीको प्रातःकाल षोडशोपचारसे भगवान् गोविन्दकी पूजा करे। तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजन करा दक्षिणा दे उन्हें विदा करके स्वय भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे। जो इस प्रकार इस पाप-मोचनीका व्रत करता है, वह तेजस्वी विमानद्वारा भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है।

ब्रह्मन्! इस प्रकार कृष्ण तथा शुक्ल पक्षमें एकादशीका व्रत मोक्षदायक कहा गया है। एकादशी व्रत तीन दिनमे साध्य होनेवाला बताया गया है। वह सब व्रतोंमे उत्तम और पापोंका नाशक है, अतः उसका महान् फल जानना चाहिये। नारद! इन तीन दिनके भीतर चार समय-का भोजन त्याग देना चाहिये। प्रथम और अन्तिम दिनमें एक-एक बारका और विचले दिनमे दोनों समयका भोजन त्याज्य है। अब मैं तुम्हें इस तीन दिनके व्रतमें पालन करने योग्य नियम बतलाता हूँ। काँसका बर्तन, मास, मसूर, चना, कोदो, शाक, मधु, पराया अन्न, पुनर्भोजन (दो बार भोजन) और मैथुन—दशमीके दिन इन दस वस्तुओंसे वैष्णव पुरुष दूर रहे। जुआ खेलना, नींद लेना, पान खाना, दाँतुन करना, दूसरेकी निन्दा करना, चुगली खाना, चोरी करना, हिंसा करना, मैथुन करना, क्रोध करना और झूठ बोलना—एकादशीको ये ग्यारह बातें न करे। काँस, मास, मदिरा, मधु, तेल, झूठ बोलना, व्यायाम करना, परदेशमें जाना, दुबारा भोजन, मैथुन, जो स्पर्श करने योग्य नहीं हैं उनका स्पर्श करना और मसूर खाना—द्वादशीको इन बारह वस्तुओंको न करे *। विप्रवर! इस प्रकार नियम करनेवाला पुरुष यदि शक्ति हो तो उपवास करे। यदि शक्ति न हो तो बुद्धिमान् पुरुष एक समय भोजन करके रहे, किंतु रातमें भोजन न करे। अथवा अयाचित वस्तु (बिना माँगे मिली हुई चीज) का उपयोग करे, किंतु ऐसे महत्त्वपूर्ण व्रतका त्याग न करे।

बारह महीनोंके द्वादशी-सम्बन्धी व्रतोंकी विधि और महिमा तथा आठ महाद्वादशियोंका निरूपण

सनातनजी कहते हैं—अनघ! अब मैं तुमसे द्वादशी-के व्रतोंका वर्णन करता हूँ, जिनका पालन करके मनुष्य भगवान् विष्णुका अत्यन्त प्रिय होता है। चैत्र शुक्ला द्वादशीको 'मदनव्रत'का आचरण करे। सफेद चावलसे भरे हुए एक नूतन कलशकी स्थापना करे, जिसमे कोई छेद न हो। वह अनेक प्रकारके फलोंसे युक्त इक्षुदण्डसंयुक्त दो श्वेत वस्त्रोंसे

* अथ ते नियमान् वच्मि व्रते ह्यस्मिन् दिनत्रये। कांस्यं मासं मसूरान्नं चणकान् कोद्रवास्तथा॥
शाकं मधु परान्नं च पुनर्भोजनमैथुने। दशम्या दश वस्तूनि वर्जयेद्वैष्णवः सदा॥
द्यूतक्रीडा च निद्रा च ताम्बूलं दन्तधावनम्। परापवादं पैशुन्यं स्तेयं हिंसा तथा रतिम्॥
कोपं ह्यनृतवाक्यं च एकादश्यां विवर्जयेत्। कांस्यं मांसं सुरा क्षौद्रं तैलं वितथभाषणम्॥
व्यायामं च प्रवासं च पुनर्भोजनमैथुने। अस्पृश्यस्पर्शमासूरे द्वादश्यां द्वादश त्यजेत्॥
(ना० पूर्व० १२० । ८६–९०)

आच्छादित, श्वेत चन्दनसे चर्चित, नाना प्रकारके भक्ष्य पदार्थोंसे सम्पन्न तथा अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्णसे सुशोभित हो। उसके ऊपर गुड़सहित ताँबेका पात्र रक्खे। उस पात्रमें कामस्वरूप भगवान् अच्युतका गन्ध आदि उपचारोंसे पूजन करे। द्वादशीको उपवास करके दूसरे दिन प्रातःकाल पुनः भगवान्‌की पूजा करे। वहाँ चढ़ी हुई वस्तुएँ ब्राह्मणको दे दे। फिर ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उन्हें दक्षिणा दे। इस प्रकार एक वर्षतक प्रत्येक द्वादशीको यह व्रत करके आचार्यको घृत-धेनुसहित सब सामग्रियोंसे युक्त शय्यादान दे। तदनन्तर वस्त्र आदिसे ब्राह्मण-दम्पतिकी पूजा करके उन्हें सुवर्णमय कामदेव तथा दूध देनेवाली श्वेत गौ दान करे। दान करते समय यह कहे कि 'कामरूपी श्रीहरि मुझपर प्रसन्न हों।' जो इस विधिसे 'मदनद्वादशी-व्रत' का पालन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुकी समता प्राप्त कर लेता है। इसी तिथिको 'भर्तृद्वादशी'का व्रत बताया गया है। इसमें सुन्दर शय्या बिछाकर उसपर लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णुको स्थापित करके उनके ऊपर फूलोंसे मण्डप बनावे। तत्पश्चात् व्रती पुरुष गन्ध आदि उपचारोंसे भगवान्‌की पूजा करे। माङ्गलिक गीत, वाद्य आदिके द्वारा रातमें जागरण करे, फिर दूसरे दिन प्रातःकाल शय्यासहित भगवान् विष्णुकी सुवर्णमयी प्रतिमाका श्रेष्ठ ब्राह्मणको दान करे। ब्राह्मणोंको भोजन कराकर दक्षिणाद्वारा उन्हें सतुष्ट करके विदा करे। इस तरह व्रत करनेवाले पुरुषका दाम्पत्यसुख चिरस्थायी होता है और वह सात जन्मोंतक इहलोक और परलोकके अभीष्ट भोगोंको भोगता रहता है।

वैशाख शुक्ल द्वादशीको उपवास और इन्द्रिय-संयमपूर्वक गन्ध आदि उपचारोंद्वारा भक्तिभावसे भगवान् माधवकी पूजा करे। फिर तृप्तिजनक मधुर पकवान और एक घड़ा जल ब्राह्मणको विधिपूर्वक देवे। 'भगवान् माधव मुझपर प्रसन्न हों' यही उसका उद्देश्य होना चाहिये। ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशीको गन्ध आदि उपचारोंके द्वारा भगवान् त्रिविक्रमकी पूजा करके व्रती पुरुष ब्राह्मणको मिष्टान्नसे भरा हुआ करवा निवेदन करे। तत्पश्चात् एक समय भोजनका व्रत करे। इस व्रतसे संतुष्ट होकर देवदेव भगवान् त्रिविक्रम जीवनमें विपुल भोग और अन्तमें मोक्ष भी देते हैं। आषाढ शुक्ला द्वादशीको गन्ध आदिसे पृथक्-पृथक् बारह ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन्हें मिष्टान्न भोजन करावे। फिर उनके लिये वस्त्र,

छड़ी, यज्ञोपवीत, अंगूठी और जलपात्र—इन वस्तुओंका भक्तिपूर्वक दान करे। 'भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हों'—यही उस दानका उद्देश्य होना चाहिये। श्रावण शुक्ला द्वादशीको व्रती पुरुष भगवत्परायण हो गन्ध आदि उपचारोंसे भक्तिपूर्वक भगवान् श्रीधरकी पूजा करे। फिर उत्तम ब्राह्मणोंको दही-भात भोजन कराकर चाँदीकी दक्षिणा दे, उन्हें नमस्कार करके विदा करे। मन-ही-मन यह भावना करे कि 'मेरे इस व्रतसे देवेश्वर भगवान् श्रीधर प्रसन्न हों।' भाद्रपद शुक्ला द्वादशीको व्रती पुरुष भगवान् वामनकी पूजा करके उनके आगे बारह ब्राह्मणोंको खीर भोजन करावे। तत्पश्चात् स्वर्णमयी दक्षिणा दे। यह भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताको बढ़ानेवाला होता है। आश्विन शुक्ला द्वादशीको गन्ध आदि उपचारोंसे भगवान् पद्मनाभकी पूजा करे और उनके आगे ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन करावे। साथ ही वस्त्र और सुवर्ण-दक्षिणा दे। द्विजोत्तम! इस व्रतसे संतुष्ट होकर भगवान् पद्मनाभ श्वेतद्वीपकी प्राप्ति कराते हैं और इहलोकमें भी मनोवाञ्छित भोग प्रदान करते हैं। कार्तिक मासके कृष्ण पक्षमें 'गोवत्सद्वादशी' का व्रत होता है। उसमें बछड़ेसहित गौकी आकृति लिखकर सुगन्धित चन्दन आदिके द्वारा तथा पुष्पमालाओंसे उनकी पूजा करे। फिर ताम्रपात्रमें फूल, अक्षत और तिल रखकर उन सबके द्वारा विधिपूर्वक अर्घ्य दान करे। नारद! निम्नाङ्कित मन्त्रसे उसके चरणोंमें अर्घ्य देना चाहिये—

क्षीरोदार्णवसम्भूते सुरासुरनमस्कृते ।
सर्वदेवमये देवि सर्वदेवैरलंकृते ॥
मातर्मातर्गवां मातर्गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥
(ना० पूर्व० १२१ । ३०-३१)

'क्षीरसागरसे प्रकट हुई, सर्वदेवभूषिता, देवदानववन्दिता, सम्पूर्ण देवस्वरूपा देवि ! तुम्हें नमस्कार है । मातः ! गोमातः ! यह अर्घ्य ग्रहण कीजिये ।'

तदनन्तर उड़द आदिसे बने हुए बड़े निवेदन करे । इस प्रकार अपने वैभवके अनुसार दस, पाँच या एक बड़ा अर्पण करना चाहिये । उस समय इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

सुरभे त्वं जगन्माता नित्यं विष्णुपदे स्थिता ।
सर्वदेवमयि ग्रासं मया दत्तमिमं ग्रस ॥
सर्वदेवमये देवि सर्वदेवैरलंकृते ।
मातर्ममाभिलषितं सफलं कुरु नन्दिनि ॥
(ना० पूर्व० १२१ । ३२-३४)

'सुरभी ! तुम सम्पूर्ण जगत्की माता हो और सदा भगवान् विष्णुके धाममें निवास करती हो । सर्वदेवमयी देवि ! मेरे दिये हुए इस ग्रासको ग्रहण करो । देवि ! तुम सर्वदेवस्वरूपा हो । सम्पूर्ण देवता तुम्हें विभूषित करते हैं । माता नन्दिनी ! मेरी अभिलाषा सफल करो ।'

द्विजोत्तम ! उस दिन तेलका पका हुआ और बटलोईका पका हुआ अन्न न खाय । गायका दूध, दही, घी और तक्र भी त्याग दे । ब्रह्मन् ! कार्तिक शुक्ला द्वादशीको गन्ध आदि उपचारोंसे एकाग्रचित्त हो भगवान् दामोदरकी पूजा करे और उनके आगे बारह ब्राह्मणोंको पकवान भोजन करावे । तदनन्तर जलसे भरे हुए घड़ोंको वस्त्रसे आच्छादित और पूजित करके सुपारी, लड्डू और सुवर्णके साथ उन सबको प्रसन्नतापूर्वक अर्पण करे । ऐसा करनेपर मनुष्य भगवान् विष्णुका प्रिय भक्त और सम्पूर्ण भोगोंका भोक्ता होता है और शरीरका अन्त होनेपर वह भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त कर लेता है ।

मार्गशीर्ष शुक्ला द्वादशीको परम उत्तम 'साध्य-व्रत'का अनुष्ठान करना चाहिये । मनोभव, प्राण, नर, अपान, वीर्यवान्, चिति, हय, नय, हंस, नारायण, विभु और प्रभु—ये बारह साध्यगण कहे गये हैं* । चावलोंपर इनका आवाहन करके गन्ध-पुष्प आदिके द्वारा पूजन करना चाहिये । तदनन्तर भगवान् नारायण प्रसन्न हों, इस भावनासे बारह श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें उत्तम दक्षिणा दे विदा करे । उसी दिन 'द्वादशादित्य' नामक व्रत भी विख्यात है । उस दिन बुद्धिमान् पुरुष बारह आदित्योंकी पूजा करे । धाता, मित्र, अर्यमा, पूषा, शक्र, अंश, वरुण, भग, त्वष्टा, विवस्वान्, सविता और विष्णु—ये बारह आदित्य बताये गये हैं* । प्रत्येक मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको यत्नपूर्वक बारह आदित्यों-की पूजा करते हुए एक वर्ष व्यतीत करे । व्रतके अन्तमें सोनेकी बारह प्रतिमाएँ बनवाये और विधिपूर्वक उनकी पूजा करके बारह श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको सत्कारपूर्वक मिष्टान्न भोजन करावे । तत्पश्चात् व्रती पुरुष प्रत्येक ब्राह्मणको एक-एक प्रतिमा दे । इस प्रकार द्वादशादित्य नामक व्रत करके मनुष्य सूर्यलोकमें जा वहाँके भोगोंका चिरकालतक उपभोग करनेके पश्चात् पृथ्वीपर धर्मात्मा मनुष्य होता है । मनुष्य-योनिमें उसे रोग नहीं होते । उस व्रतके पुण्यसे वह पुनः उसी व्रतको पाता है और पुनः उसके पुण्यसे सूर्यमण्डलको भेदकर निरञ्जन, निराकार एवं निर्द्वन्द्व ब्रह्मको प्राप्त होता है । द्विजोत्तम ! उक्त तिथिको ही 'अखण्ड' नामक व्रत कहा गया है । उसमें भगवान् जनार्दनकी सुवर्णमयी मूर्ति बनाकर गन्ध, पुष्प आदिसे उसकी पूजा करके भगवान्के आगे बारह ब्राह्मणोंको भोजन करावे । प्रत्येक मासकी द्वादशीको ऐसा करके स्वयं रातमें भोजन करे और जितेन्द्रिय भावसे रहे । तत्पश्चात् वर्ष पूरा होनेपर उस स्वर्ण-मूर्तिका विधिपूर्वक पूजन करके दूध देनेवाली गायके साथ उसका आचार्यको दान करे । तदनन्तर बारह श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको खाँड और खीर भोजन कराकर उन्हें बारह सुवर्णखण्डकी दक्षिणा दे नमस्कार करे । इस प्रकार व्रत पूरा करके जो भगवान् जनार्दनको प्रसन्न करता है, वह सुवर्णमय विमानसे श्रीविष्णुके परम धाममें जाता है ।

पौष मासके कृष्ण पक्षकी द्वादशीको 'रूप-व्रत' बताया गया है । ब्रह्मन् ! व्रती पुरुषको चाहिये कि वह दशमीको विधिपूर्वक स्नान करके सफेद या किसी एक रंगवाली गायके गोबरको धरतीपर गिरनेसे पहले आकाशमेंसे ही ले ले । उस गोबरसे एक सौ आठ पिण्ड बनाकर उन्हें ताँबे या मिट्टीके

* मनोभवस्तथा प्राणो नरोऽपानश्च वीर्यवान् ।
चितिर्हयो नयश्चैव हंसो नारायणस्तथा ॥
विभुश्चापि प्रभुश्चैव साध्या द्वादश कीर्तिताः ।
(ना० पूर्व० १२१ । ५१-५२)

* धाता मित्रोऽर्यमा पूषा शक्रोंऽशो वरुणो भग. ।
त्वष्टा विवस्वान् सविता विष्णुर्द्वादश ईरिता. ॥
(ना० पूर्व० १२१ । ५५-५६)

पात्रमें रखकर धूपमें सुखा ले। फिर एकादशीको उपवास करके भगवान् विष्णुकी स्वर्णमयी प्रतिमाका विधिपूर्वक पूजन और रात्रिमें जागरण करे। सुन्दर मङ्गलमय गीत-वाद्य, स्तोत्र-पाठ और जप आदिके द्वारा जागरणका कार्य सफल बनावे। तत्पश्चात् प्रातःकाल जलसे भरे हुए कलशपर तिलसे भरा पात्र रखकर उसके ऊपर उस स्वर्णमयी प्रतिमाको रक्खे और विभिन्न उपचारोंसे उसकी पूजा करे। इसके बाद दो काष्ठोंके रगड़ने आदिके द्वारा नूतन अग्नि उत्पन्न करके उसकी पूजा करे और विद्वान् पुरुष उस प्रज्वलित अग्निमें तिल और घीसहित एक-एक गोमय-पिण्डका विष्णु-सम्बन्धी द्वादशाक्षर[1] मन्त्रसे होम करे। तत्पश्चात् पूर्णाहुति करके प्रेमपूर्ण हृदयसे प्रसन्नतापूर्वक एक सौ आठ ब्राह्मणोंको खीर भोजन करावे। फिर कलशसहित वह प्रतिमा आचार्यको अर्पित करे। तदनन्तर दूसरे ब्राह्मणोंको यथाशक्ति दक्षिणा दे। पुरुष हो या स्त्री, इस व्रतका आदरपूर्वक पालन करके वह रूप और सौभाग्य प्राप्त कर लेती है।

माघ शुक्ला द्वादशीको शालग्रामशिलाकी विधिपूर्वक भक्तिभावसे पूजा करके उसके मुख्यभागमें सुवर्ण रक्खे। फिर उसे चाँदीके पात्रमें रखकर दो श्वेत वस्त्रोंसे ढक दे। तत्पश्चात् वेदवेत्ता ब्राह्मणको उसका दान दे। दान देनेके पश्चात् उस ब्राह्मणको खाँड और घीके साथ हितकर खीरका भोजन करावे, यह करके स्वय एक समय भोजनका व्रत करते हुए भगवान् विष्णुके चिन्तनमें लगा रहे। ऐसा करनेवाला पुरुष यहाँ मनोवाञ्छित भोग भोगनेके पश्चात् विष्णुधाम प्राप्त कर लेता है। ब्रह्मन् ! फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको श्रीहरिकी सुवर्णमयी प्रतिमाका गन्ध-पुष्प आदिसे पूजन करके उसे वेदवेत्ता ब्राह्मणको दान कर दे। फिर बारह ब्राह्मणोंको भोजन करा उन्हें दक्षिणा देकर विदा करे। उसके बाद स्वयं भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे। त्रिस्पृशा, उन्मीलनी, पक्षवर्धिनी, वञ्जुली, जया, विजया, जयन्ती तथा अपराजिता—ये आठ प्रकारकी द्वादशी तिथियाँ सब पापोंका नाश करनेवाली हैं। इनमें सदा उपवासपूर्वक व्रत रहना चाहिये।

श्रीनारदजीने पूछा—ब्रह्मन् ! इन सब द्वादशियोंका लक्षण कैसा है ? और उनका फल कैसा होता है, वह सब मुझे बताइये। इनके सिवा अन्य पुण्यदायक तिथियोंका भी परिचय दीजिये।

सूतजी कहते हैं—महर्षियो ! देवर्षि नारदने [illegible] सनातनजीसे जब इस प्रकार प्रश्न किया तो सनातनजीने अपने भाई महाभागवत नारदजीकी प्रशंसा करके कहा।

सनातनजी बोले—भैया ! तुम तो साधु पुरुषोंके संशयका निवारण करनेवाले हो। तुमने यह बहुत सुन्दर प्रश्न किया है। मैं तुम्हें महाद्वादशियोंके पृथक्-पृथक् लक्षण और फल बतलाता हूँ। जिस दिन एकादशी सूर्योदयसे पहले—अरुणोदयकालमें ही निवृत्त हो गयी हो (दिनभर द्वादशी हो और रातके अन्तिम भागमें त्रयोदशी आ गयी हो) उस दिन त्रिस्पृशा नामवाली द्वादशी होती है। उसका महान् फल होता है। नारद ! जो मनुष्य उसमें उपवास करके भगवान् गोविन्दका पूजन करता है, वह निश्चय ही एक हजार अश्वमेध-यज्ञका फल पाता है। जब अरुणोदयकालमें एकादशी तिथि दशमीसे विद्ध हो (और एकादशी पूरे दिन रहकर दूसरे दिन भी कुछ कालतक विद्यमान हो) तो उस प्रथम दिनकी एकादशीको छोड़कर दूसरे दिन महाद्वादशीको उपवास करे (उसे उन्मीलनी द्वादशी कहते हैं)। उस उन्मीलनी व्रतमें उत्तम पूजाकी विधिसे भगवान् वासुदेवका यजन करके मनुष्य एक सहस्र राजसूय यागका फल पाता है। जब सूर्योदयकालमें दशमी एकादशीका स्पर्श करती हो (और द्वादशीकी वृद्धि हुई हो) तो उस एकादशीको त्यागकर वञ्जुली नामवाली उस महाद्वादशीको ही सदा उपवास करना चाहिये। उसमें सबको सदा आनन्दित करनेवाले परम पुरुष संकर्षण देवका गन्ध आदि उपचारोंसे भक्तिपूर्वक पूजन करे। यह महाद्वादशी सम्पूर्ण कर्मोंका फल देनेवाली, सब पापोंको हर लेनेवाली तथा अनन्त सम्पत्तियोंको देनेवाली कही गयी है। विप्रवर ! जब पूर्णिमा अथवा अमावास्या नामकी तिथियाँ बढ़ जाती हैं तो उस समयकी द्वादशीका नाम पक्षवर्द्धिनी होता है, जो महान् फल देनेवाली है। उसमें सम्पूर्ण ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले तथा पुत्र और पौत्रोंको बढ़ानेवाले जगदीश्वर भगवान् प्रद्युम्नका पूजन करना चाहिये। जब शुक्ल पक्षमें द्वादशी तिथि मघा नक्षत्रसे युक्त हो तो उसका नाम जया होता है। यह समस्त शत्रुओंका विनाश करनेवाली है। उसमें समस्त कामनाओंके दाता और मनुष्योंको सम्पूर्ण सौभाग्य प्रदान करनेवाले [illegible] भगवान् अनिरुद्धकी आराधना करनी चाहिये। जब शुक्ल पक्षमें द्वादशी तिथि श्रवण नक्षत्रसे युक्त हो तो वह विजया नामसे प्रसिद्ध होती है। उसमें सदा समस्त भोगोंके [illegible] तथा सम्पूर्ण

[1] ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

सौख्य प्रदान करनेवाले भगवान् गदाधरकी पूजा करनी चाहिये। विप्रवर! विजयामें उपवास करके मनुष्य सम्पूर्ण तीर्थोंका फल पाता है। जब शुक्ल पक्षमें द्वादशी रोहिणी नक्षत्रसे युक्त होती है, तब वह महापुण्यमयी जयन्ती नामसे प्रसिद्ध होती है। उसमें मनुष्योंको सिद्धि देनेवाले भगवान् वामनकी अर्चना करनी चाहिये। यह तिथि उपवास करनेपर सम्पूर्ण व्रतोंका फल देती है, समस्त दानोंका फल प्रस्तुत करती है और भोग तथा मोक्ष देनेवाली होती है। जब शुक्ल पक्षमें द्वादशी तिथि पुष्य नक्षत्रसे युक्त हो तो उसे अपराजिता कहा गया है। वह सम्पूर्ण ज्ञान देनेवाली है। उसमें संसारबन्धनका नाश करनेवाले, ज्ञानके समुद्र तथा रोग-शोकसे रहित भगवान् नारायणकी आराधना करनी चाहिये। उस तिथिको उपवास करके ब्राह्मणभोजन करानेवाला मनुष्य उस व्रतके पुण्यसे ही संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है।

जब आषाढ़ शुक्ला द्वादशीको अनुराधा नक्षत्र हो, तब दो व्रत करने चाहिये। यहाँ एक ही देवता है, इसलिये दो व्रत करनेमें दोष नहीं है। जब भाद्रपद शुक्ला द्वादशीको श्रवण नक्षत्रका योग हो और कार्तिक शुक्ला द्वादशीको रेवती नक्षत्रका संयोग हो तो एकादशी और द्वादशी दोनों दिन व्रत रहने चाहिये। विप्रवर! इनके सिवा अन्यत्र द्वादशीको एक समय भोजन करके व्रत रहना चाहिये। यह व्रत स्वभावसे ही सब पातकोंका नाश करनेवाला बताया गया है। द्वादशीसहित एकादशीका व्रत नित्य माना गया है, अतः यहाँ उसका उद्यापन नहीं कहा गया। इसे जीवनपर्यन्त करते रहना चाहिये।

त्रयोदशी-सम्बन्धी व्रतोंकी विधि और महिमा

सनातनजी कहते हैं—नारद! अब मैं तुम्हें त्रयोदशीके व्रत बतलाता हूँ, जिनका भक्तिपूर्वक पालन करके मनुष्य इस पृथ्वीपर सौभाग्यशाली होता है। चैत्र कृष्ण पक्षकी त्रयोदशी शनिवारसे युक्त हो तो 'महावारुणी' मानी गयी है। यदि उसमें गङ्गा-स्नानका अवसर मिले तो वह कोटि सूर्यग्रहणोंसे अधिक फल देनेवाली है। चैत्रके कृष्ण पक्षमें त्रयोदशीको शुभ योग, शतभिषा नक्षत्र और शनिवारका योग हो तो वह 'महामहावारुणी'के नामसे विख्यात होती है। ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशीको 'दौर्भाग्यशमन-व्रत' होता है। उस दिन नदीके जलमें स्नान करके पवित्र स्थानमें उत्पन्न हुए सफेद मदार, आक और लाल कनेरकी पूजा करे। उस समय आकाशमें सूर्यकी ओर देखकर निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करते हुए प्रार्थना करे—

> मन्दारकरवीरार्का भवन्तो भास्करांशजाः।
> पूजिता मम दौर्भाग्यं नाशयन्तु नमोऽस्तु वः॥
>
> (ना० पूर्व० १२२। २०-२१)

'मदार! कनेर! और आक! आपलोग भगवान् भास्करके अंशसे उत्पन्न हुए हैं। अतः पूजित होकर मेरे दुर्भाग्यका नाश करें, आपको नमस्कार है।'

इस प्रकार जो भक्तिपूर्वक एक-एक वर्षतक इन तीनों वृक्षोंकी पूजा करता है, उसका दुर्भाग्य नष्ट हो जाता है। आषाढ़ शुक्ला त्रयोदशीको एक समय भोजनका व्रत करे। भगवती पार्वती और भगवान् शङ्कर—इन दोनों जगदीश्वरोंकी यथाशक्ति सोने, चाँदी अथवा मिट्टीकी मूर्ति बनाकर उनकी पूजा करे। भगवती उमा सिंहपर बैठी हों और

भगवान् शङ्कर वृषभपर। नारद! इन दोनों प्रतिमाओंको

देवमन्दिर, गोशाला अथवा ब्राह्मणके घरमें वेदमन्त्रद्वारा स्थापित करके लगातार पाँच दिनतक नित्य पूजन तथा एक समय भोजनके व्रतका पालन करे। तदनन्तर अन्तिम दिन प्रातःकाल स्नान करके पुनः उन दोनों प्रतिमाओंकी पूजा करे। फिर वेद-वेदाङ्गके ज्ञानसे सुशोभित ब्राह्मणको वे दोनों विग्रह समर्पित कर दे। पाँच वर्षोंतक प्रतिवर्ष इसी प्रकार करना चाहिये। पाँचवाँ वर्ष बीतनेपर दूध देनेवाली दो गौओंके साथ उन दोनों प्रतिमाओंका दान करे। स्त्री हो या पुरुष—जो इस प्रकार इस शुभ व्रतका पालन करता है, वह सात जन्मोंतक दाम्पत्यसुखसे वञ्चित नहीं होता—उसका दाम्पत्य-सम्बन्ध बीचमें खण्डित नहीं होता।

भाद्रपद शुक्ला त्रयोदशीको 'गो-त्रिरात्र-व्रत' बताया गया है। उस दिन भगवान् लक्ष्मीनारायणकी सोने या चाँदीकी प्रतिमा बनवाकर उसे पञ्चामृतसे स्नान करावे। तत्पश्चात् शुभ अष्टदल मण्डलमें पीठपर उस भगवद्विग्रहको स्थापित करके सुन्दर वस्त्र चढ़ाकर गन्ध आदिसे उसकी पूजा करे। तत्पश्चात् आरती करके अन्न और जलसहित घटदान करे। नारद! इस प्रकार तीन दिनतक सब विधिका पालन करके व्रतके अन्तमें गौका पूजन करे और भलीभाँति धनकी दक्षिणा देकर निम्नाङ्कित मन्त्रसे गौको नमस्कारपूर्वक दान दे—

पञ्च गावः समुत्पन्ना मथ्यमाने महोदधौ।
तासां मध्ये तु या नन्दा तस्यै धेन्वै नमो नमः॥
(ना० पूर्व० १२२ । ३६-३७)

'जब क्षीरसमुद्रका मन्थन होने लगा, उस समय उससे पाँच गौएँ उत्पन्न हुईं। उनके मध्यमें जो नन्दा नामवाली गौ है, उस धेनुको बारंबार नमस्कार है।'

तदनन्तर नीचे लिखे मन्त्रसे गायकी प्रदक्षिणा करके उसे ब्राह्मणको दान दे। (मन्त्र इस प्रकार है—)

गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावो मे पार्श्वतः सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥
(ना० पूर्व० १२२ । ३८)

'गौएँ मेरे आगे रहें, गौएँ मेरे पीछे रहें, गौएँ मेरे बगलमें रहें और मैं गौओंके बीचमें निवास करूँ।'

तत्पश्चात् ब्राह्मणदम्पतिका पूर्णतः सत्कार करके उन्हें भोजन करावे और उन्हें आदरपूर्वक लक्ष्मी-नारायणकी प्रतिमा दान करे। सहस्रों अश्वमेध और सैकड़ों राजसूय यज्ञोंका अनुष्ठान करके मनुष्य जिस फलको पाता है, उसीको वह गोत्रिरात्रव्रतसे पा लेता है। आश्विन शुक्ला त्रयोदशीको तीन राततक 'अशोक-व्रत' करे। उस दिन नारी उपवास-परायण हो अशोककी सुवर्णमयी प्रतिमा बनवाकर शास्त्रीय विधिसे उसकी प्रतिदिन पूजा और आदरपूर्वक एक सौ आठ परिक्रमा करे। उस समय इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये—

हरेण निर्मितः पूर्वं त्वमशोक कृपालुना।
लोकोपकारकरणस्त्वं प्रसीद शिवप्रिय॥
(ना० पूर्व० १२२ । ४१)

'अशोक! तुम्हें पूर्वकालमें परम कृपालु भगवान् शङ्करने उत्पन्न किया है। तुम सम्पूर्ण जगत्का उपकार करनेवाले हो; अतः शिवप्रिय अशोक! तुम मुझपर प्रसन्न होओ।'

तदनन्तर तीसरे दिन, उस अशोक वृक्षमें भगवान् शङ्करकी विधिवत् पूजा करके ब्राह्मणको भोजन करावे और उसे अशोक-प्रतिमाका दान करे। इस प्रकार व्रत करनेवाली नारी कभी वैधव्यका कष्ट नहीं पाती। वह पुत्र-पौत्र आदिके साथ रहकर अपने पतिकी अत्यन्त प्रियतमा होती है। कार्तिक कृष्णा त्रयोदशीको एकाग्रचित्त हो एक समय भोजनका व्रत करे। प्रदोषकालमें तेलका दीपक जलाकर उसकी यत्नपूर्वक पूजा करे और घरके द्वारपर बाहरके भागमें उस दीपकको इस उद्देश्यसे रक्खे कि इसके दानसे यमराज मुझपर प्रसन्न हों। विप्रेन्द्र! ऐसा करनेपर मनुष्यको यमराजकी पीड़ा नहीं प्राप्त होती। द्विजोत्तम! कार्तिक शुक्ला त्रयोदशीको मनुष्य एक समय भोजन करके व्रत रक्खे। प्रदोषकालमें पुनः स्नान करके मौन और एकाग्रचित्त हो बत्तीस दीपकोंकी पङ्क्तिसे भगवान् शिवको आलोकित करे। घीसे दीपकोंको जलावे और गन्ध आदिसे भगवान् शिवकी पूजा करे। फिर नाना प्रकारके फलों और नैवेद्यों-द्वारा उन्हें संतुष्ट करे। तदनन्तर निम्नलिखित नामोंसे देवेश्वर शिवकी स्तुति करे—

रुद्र, भीम, नीलकण्ठ और वेधा (स्रष्टा) को नमस्कार है। कपर्दी (जटाजूटधारी), सुरेश तथा व्योमकेशको नमस्कार है। वृषध्वज, सोम तथा सोमनाथको नमस्कार है। दिगम्बर, भृङ्ग, उमाकान्त और वर्द्धी (वृद्धि करनेवाले) शिवको नमस्कार है। तपोमय व्याप्त और शिपिविष्ट (तेजस्वी) भगवान् शङ्करको नमस्कार है। व्यालप्रिय (सर्पोंको पसन्द करनेवाले), व्याल (स-

स्वरूप) और व्यालपति शिवको नमस्कार है। महीधर (पर्वतरूप), व्योम (आकाशस्वरूप) और पशुपतिको नमस्कार है। त्रिपुरहन्ता, सिंह, शार्दूल तथा वृषभको नमस्कार है। मित, मितनाथ, सिद्ध, परमेष्ठी, वेदगीत, गुप्त और वेदगुह्य शिवको नमस्कार है। दीर्घ, दीर्घरूप, दीर्घार्थ, महीयान्, जगदाधार और व्योमस्वरूप शिवको नमस्कार है। कल्याणस्वरूप, विशिष्ट-पुरुष, शिष्ट (साधु-महात्मा), परमात्मा, गजकृत्तिधर (वस्त्ररूपसे हाथीका चमड़ा धारण करनेवाले); अन्धकासुरहन्ता भगवान् शिवको नमस्कार है। नील, लोहित एवं शुक्ल वर्णवाले, चण्डमुण्डप्रिय, भक्तिप्रिय, देवस्वरूप, दक्षयज्ञनाशक तथा अविनाशी शिवको नमस्कार है। महेश ! आपको नमस्कार है। महादेव ! सबका संहार करनेवाले आपको नमस्कार है। आपके तीन नेत्र हैं। आप तीनों वेदोंके आश्रय हैं। वेदाङ्गस्वरूप आपको बार-बार नमस्कार है। आप अर्थ हैं, अर्थस्वरूप हैं और परमार्थ हैं, आपको नमस्कार है। विश्वरूप, विश्वमय तथा विश्वनाथ भगवान् शिवको नमस्कार है। जो सबका कल्याण करनेवाले शङ्कर हैं, कालस्वरूप हैं तथा कालके कला-काष्ठा आदि छोटे-छोटे अवयवरूप हैं; जिनका कोई रूप नहीं है, जिनके विविध रूप हैं तथा जो सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म हैं, उन भगवान् शिवको नमस्कार है। प्रभो ! आप श्मशानमें निवास करनेवाले हैं, आप चर्ममय वस्त्र धारण करते हैं; आपको नमस्कार है। आपके मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट सुशोभित है, आप भयंकर भूमिमें निवास करते हैं, आपको नमस्कार है। आप दुर्ग (कठिनतासे प्राप्त होनेयोग्य), दुर्गपार (कठिनाइयोंसे पार लगानेवाले); दुर्गावयवसाक्षी (पार्वतीजीके अङ्ग प्रत्यङ्गका दर्शन करनेवाले), लिङ्गरूप, लिङ्गमय और लिङ्गोंके अधिपति हैं, आपको नमस्कार है। आप प्रभावरूप हैं। प्रभावरूप प्रयोजनके साधक हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। आप कारणोंके भी कारण, मृत्युञ्जय तथा स्वयम्भूस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आपके तीन नेत्र हैं। शितिकण्ठ ! आप तेजकी निधि हैं। गौरीजीके साथ नित्य संयुक्त रहनेवाले और मङ्गलके हेतुभूत हैं, आपको नमस्कार है।

विप्रवर ! पिनाकधारी महादेवजीके गुणोंका प्रतिपादन करनेवाले इन नामोंका पाठ करके महादेवजीकी परिक्रमा करनेसे मनुष्य भगवान्के निज धाममें जाता है। ब्रह्मन् ! इस प्रकार व्रत करके मनुष्य महादेवजीके प्रसादसे इहलोकके सम्पूर्ण भोग भोगकर अन्तमें शिवधाम प्राप्त कर लेता है। पौष शुक्ला त्रयोदशीको अच्युत श्रीहरिका पूजन करके सब मनोरथोंकी सिद्धिके लिये श्रेष्ठ ब्राह्मणको घीसे भरा हुआ पात्र दान करे। ब्रह्मन् ! माघ शुक्ला त्रयोदशीसे लेकर तीन दिनतक 'माघ-स्नान' का व्रत होता है, जो नाना प्रकारके मनोवाञ्छित फलको देनेवाला है। माघ मासमें प्रयागमें तीन दिन स्नान करनेवाले पुरुषको जो फल प्राप्त होता है, वह एक हजार अश्वमेध यज्ञ करनेसे भी इस पृथ्वीपर सुलभ नहीं होता। वहाँ किया हुआ स्नान, जप, होम और दान अनन्तगुना अथवा अक्षय हो जाता है। फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको उपवास करके भगवान् जगन्नाथको प्रणाम करे। तत्पश्चात् धनद-व्रत प्रारम्भ करे। नाना प्रकारके रंगोंसे एक पट्टपर यक्षपति महाराज कुबेरकी आकृति अङ्कित कर ले और भक्ति-भावसे गन्ध आदि उपचारोंद्वारा उसकी पूजा करे।

द्विजोत्तम ! इस प्रकार प्रत्येक मासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशीको मनुष्य कुबेरकी पूजा करे। उस दिन वह उपवास करके रहे या एक समय भोजन करे। तदनन्तर एक वर्षमें व्रतकी समाप्ति होनेपर पुनः सुवर्णमयी निधियोंके साथ धनाध्यक्ष कुबेरकी भी सुवर्णमयी प्रतिमा बनाकर पञ्चामृत आदि स्नानों, षोडश उपचारों और भाँति-भाँतिके नैवेद्योंसे भक्ति एवं एकाग्रताके साथ पूजन करे। तत्पश्चात् वस्त्र, माला, गन्ध और आभूषणोंसे बछड़ेसहित शुभ गौको अलंकृत करके वेदवेत्ता ब्राह्मणके लिये विधिपूर्वक दान करे। फिर बारह या तेरह ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन कराकर वस्त्र आदिसे आचार्यकी पूजा करके पूर्वोक्त प्रतिमा उन्हें अर्पण करे। फिर ब्राह्मणोंको यथाशक्ति दक्षिणा दे, उन्हें नमस्कार करके विदा करे। इसके बाद बुद्धिमान् पुरुष इष्ट-बन्धुओंके साथ एकाग्रचित्त हो स्वयं भोजन करे। विप्रवर ! इस प्रकार व्रत पूर्ण करनेपर निर्धन मनुष्य धन पाकर इस पृथ्वीपर दूसरे कुबेरकी भाँति विख्यात हो आनन्दका अनुभव करता है।

वर्षभरके चतुर्दशी-व्रतोंकी विधि और महिमा

सनातनजी कहते हैं—नारद ! सुनो; अब मैं तुम्हें चतुर्दशीके व्रत बतलाता हूँ, जिनका पालन करके मनुष्य इस लोकमें सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। चैत्र शुक्ला चतुर्दशीको कुङ्कुम, अगुरु, चन्दन, गन्ध आदि उपचार, वस्त्र तथा मणियोंद्वारा भगवान् शिवकी बड़ी भारी पूजा करनी चाहिये। चँदोवा, ध्वज एवं छत्र आदि देकर

मातृकाओंका भी पूजन करना चाहिये । विप्रवर ! जो उपवास अथवा एक समय भोजन करके इस प्रकार पूजन करता है, वह मनुष्य इस पृथ्वीपर अश्वमेध यज्ञसे भी अधिक पुण्यलाभ करता है । इसी तिथिको गन्ध, पुष्प आदिके द्वारा दमनक-पूजन करके पूर्णिमाको कल्याणस्वरूप भगवान् शिवकी सेवामें समर्पित करना चाहिये । वैशाख कृष्णा चतुर्दशीको उपवास करके प्रदोषकालमें स्नान करे और श्वेत वस्त्र धारण करके विद्वान् पुरुष गन्ध आदि उपचारों तथा बिल्वपत्रोंसे शिवलिङ्गकी पूजा करे । श्रेष्ठ ब्राह्मणको निमन्त्रण देकर उसे भोजन करानेके बाद दूसरे दिन स्वयं भोजन करे । द्विजश्रेष्ठ ! इसी प्रकार समस्त कृष्णा चतुर्दशियोंमें धन और संतानकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको यह शिवसम्बन्धी व्रत करना चाहिये । वैशाख शुक्ला चतुर्दशीको 'श्रीनृसिंह-व्रत'का अनुष्ठान करे । यदि शक्ति हो तो उपवासपूर्वक व्रत करना चाहिये और यदि शक्ति न हो तो एक समय भोजन करके करना चाहिये । सायंकालमें दैत्यसूदन भगवान् नृसिंहको पञ्चामृत आदिसे स्नान कराकर षोडशोपचारसे उनकी पूजा करे । तत्पश्चात्

इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए भगवान्से क्षमा-प्रार्थना करे—

तप्तहाटककेशान्त ज्वलत्पावकलोचन ।
वज्राधिकनखस्पर्श दिव्यसिंह नमोऽस्तु ते ॥
(ना० पूर्व० १२३ । ११)

'दिव्यसिंह ! आपके अयाल तपाये हुए सोनेके समान दमक रहे हैं, नेत्र प्रज्वलित अग्निके समान दहक रहे हैं और आपके नखोंका स्पर्श वज्रसे भी अधिक कठोर है, आपको नमस्कार है ।'

देवेश्वर भगवान् नृसिंहसे इस प्रकार प्रार्थना करके व्रती पुरुष मिट्टीकी वेदीपर सोये । इन्द्रियों और क्रोधको वशमें रक्खे और सब प्रकारके भोगोंसे अलग रहे । जो इस प्रकार प्रत्येक वर्षमें विधिपूर्वक उत्तम व्रतका पालन करता है, वह सम्पूर्ण भोगोंको भोगकर अन्तमें श्रीहरिके पदको प्राप्त कर लेता है । मुनीश्वर ! इसी तिथिको ॐकारेश्वरकी यात्रा करनी चाहिये । वहाँ ॐकारेश्वरके पूजनका अवसर दुर्लभ है । उनका दर्शन पापोंका नाश करनेवाला है । ॐकारेश्वरका पूजन, ध्यान, जप और दर्शन जो भी हो जाय, वह मनुष्योंके लिये ज्ञान और मोक्ष देनेवाला बताया गया है । इस तिथिमें पापनाशक 'लिङ्ग-व्रत' भी करना चाहिये । आटेका शिवलिङ्ग बनाकर उसे पञ्चामृतसे स्नान करावे । फिर उसपर कुङ्कुमका लेप करे और वस्त्र, आभूषण, धूप, दीप तथा नैवेद्यके द्वारा उसकी पूजा करे । जो इस प्रकार सब मनोरथोंकी सिद्धि प्रदान करनेवाले पिष्टमय शिवलिङ्गका पूजन करता है, वह महादेवजीकी कृपासे भोग और मोक्ष प्राप्त कर लेता है । ज्येष्ठ शुक्ला चतुर्दशीको दिनमें पञ्चाग्निका सेवन करे और सायंकाल सुवर्णमयी धेनुका दान करे । यह 'रुद्र-व्रत' कहा गया है । जो मनुष्य आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशीको देश-कालमें उत्पन्न हुए फूलोंद्वारा भगवान् शिवका पूजन करता है, वह समस्त सम्पदाओंको प्राप्त कर लेता है । द्विजश्रेष्ठ ! श्रावण शुक्ला चतुर्दशीको अपनी शाखामें बतायी हुई विधिके अनुसार पवित्रारोपण करना चाहिये । पहले पवित्रकको सौ बार अभिमन्त्रित करके देवीको समर्पित करे । स्त्री हो या पुरुष यदि वह पवित्रारोपण करता है तो महादेवजीके प्रसादसे भोग एवं मोक्ष प्राप्त कर लेता है ।

भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशीको उत्तम 'अनन्त व्रत'का पालन करना चाहिये । इसमें एक समय भोजन किया जाता है । एक सेर गेहूँका आटा लेकर उसे शक्कर और घीमें मिलाकर पकावे—पूआ तैयार करे और वह भगवान् अनन्तको अर्पण करे । इससे पहले कपास अथवा रेशमके सुन्दर सूत्रमें चौदह गाँठोंसे युक्त करके उसका गन्ध आदि उपचारोंसे पूजन करे । फिर पुराने सूतको बाँहसे उतारकर उसे किसी जलाशयमें डाल दे और नये अनन्त सूत्रको स्त्री बायीं भुजामें और पुरुष दायीं भुजामें बाँध ले । प्रत्येक

पूआ या पिट्ठी पकाकर दक्षिणासहित उसका दान करे। फिर स्वयं भी परिमित मात्रामें उसे भोजन करे। इस प्रकार इस उत्तम व्रतका चौदह वर्षोंतक पालन करना चाहिये। इसके बाद विद्वान् पुरुष उसका उद्यापन करे। मुने! रँगे हुए चावलोंसे सुन्दर सर्वतोभद्र मण्डल बनाकर उसमें ताँबेका कलश स्थापित करे। उस कलशके ऊपर रेशमी पीताम्बरसे आच्छादित भगवान् अनन्तकी सुन्दर सुवर्णमयी प्रतिमा स्थापित करे और उसका विधिपूर्वक यजन करे। इसके सिवा गणेश, मातृका, नवग्रह तथा लोकपालोंका भी पृथक्-पृथक् पूजन करे। फिर हविष्यसे होम करके पूर्णाहुति दे। द्विजोत्तम! तत्पश्चात् आवश्यक सामग्रियोंसहित शय्या, दूध देनेवाली गाय तथा अनन्तजीकी प्रतिमा आचार्यको भक्तिपूर्वक अर्पण करे और दूसरे चौदह ब्राह्मणोंको मीठे पकवान भोजन कराकर उन्हें दक्षिणाद्वारा संतुष्ट करे। इस प्रकार किये गये अनन्त-व्रतका जो आदरपूर्वक प्रत्यक्ष दर्शन करता है, वह भी भगवान् अनन्तके प्रसादसे भोग और मोक्षका भागी होता है।

आश्विन कृष्णा चतुर्दशीको विष, शस्त्र, जल, अग्नि, सर्प, हिंसक जीव तथा वज्रपात आदिके द्वारा मरे हुए मनुष्यों तथा ब्रह्महत्यारे पुरुषोंके लिये एकोद्दिष्टकी विधिसे श्राद्ध करना चाहिये और ब्राह्मणवर्गको मिष्टान्न भोजन कराना चाहिये। उस दिन तर्पण, गोग्रास, कुक्कुरबलि और काकबलि आदि देकर आचमन करनेके पश्चात् स्वयं भी भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे। जो इस प्रकार दक्षिणा देकर श्राद्ध करता है, वह पितरोंका उद्धार करके सनातन देवलोकमें जाता है। द्विजश्रेष्ठ! आश्विन शुक्ला चतुर्दशीको धर्मराजकी सुवर्णमयी प्रतिमा बनाकर गन्ध आदिसे उनकी विधिवत् पूजा करे और ब्राह्मणको भोजन कराकर उसे वह प्रतिमा दान कर दे। नारद! इस पृथ्वीपर धर्मराज उस दाता पुरुषकी रक्षा करते हैं। जो इस प्रकार धर्मराजकी प्रतिमाका उत्तम दान करता है, वह इस लोकमें श्रेष्ठ भोगोंको भोगकर धर्मराजकी आज्ञासे स्वर्गलोकमें जाता है। कार्तिक कृष्णा चतुर्दशीको सवेरे चन्द्रोदय होनेपर शरीरमें तेल और उबटन लगाकर स्नान करे। स्नानके पश्चात् वह धर्मराजकी पूजा करे। ऐसा करनेसे उस मनुष्यको नरकसे अभय प्राप्त होता है। प्रदोषकालमें तेलके दीपक जलाकर यमराजकी प्रसन्नताके लिये चौराहेपर या घरसे बाहरके प्रदेशमें एकाग्रचित्त हो दीपदान करे। हेमलम्ब नामक संवत्सरमें श्रीसम्पन्न कार्तिक मास आनेपर शुक्लपक्षकी चतुर्दशीको अरुणोदयकालमें भगवान् विश्वनाथजीने अन्य देवताओंके साथ मणिकर्णिका-तीर्थमें स्नान करके भस्मसे त्रिपुण्ड्र तिलक लगाया और स्वयं अपने-आपकी पूजा करके पाशुपत-व्रतका पालन किया था; अतः वहाँ गन्ध आदिके द्वारा शिवलिङ्गकी महापूजा करनी चाहिये। द्रोणपुष्प, बिल्वपत्र, अर्कपुष्प, केतकीपुष्प, भाँति-भाँतिके फल, मीठे पकवान एवं नाना प्रकारके नैवेद्योंद्वारा उस शिवलिङ्गकी पूजा करनी चाहिये। नारद! ऐसा करके भगवान् विश्वनाथके संतोषके लिये जो एक समय भोजनका व्रत करता है, वह इहलोक और परलोकमें मनोवाञ्छित भोगोंको प्राप्त करता है। समृद्धिकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको उस दिन 'ब्रह्मकूर्च-व्रत' भी करना चाहिये। दिनमें उपवास करके रातमें पञ्चगव्य पान करे और जितेन्द्रिय रहे। कपिला गायका मूत्र, काली गौका गोबर, सफेद गौका दूध, लाल गायका दही और कबरी गायका घी लेकर एकमें मिला दे। अन्तमें कुशोदक मिलावे (यही पञ्चगव्य एवं ब्रह्मकूर्च है, जिसको व्रतके दिन उपवास करके रातमें पीया जाता है)। तदनन्तर प्रातःकाल कुशयुक्त जलसे स्नान करके देवताओंका तर्पण करे और ब्राह्मणोंको भोजन आदिसे संतुष्ट करके स्वयं मौन होकर भोजन करे। यह ब्रह्मकूर्च-व्रत सब पातकोंका नाश करनेवाला है। बाल्यावस्था, कुमारावस्था और वृद्धावस्थामें भी जो पाप किया गया है, वह ब्रह्मकूर्च-व्रतसे तत्काल नष्ट हो जाता है। नारद! उसी दिन 'पाषाण-व्रत' भी बताया गया है। उसका परिचय सुनो, दिनमें उपवास करके रातमें भोजन करे। गन्ध आदिसे गौरी देवीकी पूजा करे और उन्हें घीमें पकायी हुई पाषाणके आकारकी पिट्ठी अर्पण करे। (उसी प्रसादको स्वयं भी ग्रहण करे।) द्विजश्रेष्ठ! शास्त्रोक्त विधिसे इस व्रतका आचरण करके मनुष्य ऐश्वर्य, सुख, सौभाग्य तथा रूप प्राप्त करता है।

मार्गशीर्ष शुक्ला चतुर्दशीको शिवजीका व्रत किया जाता है। इसमें पहले दिन एक समय भोजन करना चाहिये और व्रतके दिन निराहार रहकर सुवर्णमय वृषकी पूजा करके उसे ब्राह्मणको दान देना चाहिये। तदनन्तर दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर स्नानके पश्चात् कमलके फूल, गन्ध, माला और अनुलेपन आदिके द्वारा उमासहित भगवान् महेश्वरकी पूजा करे। उसके बाद ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा आदिसे संतुष्ट करे। विप्रवर! यह शिवव्रत जो करते हैं, जो इसका उपदेश देते हैं, जो इसमें सहायक होते या अनुमोदन करते हैं, उन सबको यह भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। पौष शुक्ला चतुर्दशीको

'विरूपाक्ष-व्रत' बताया गया है। उस दिन यह चिन्तन करके कि 'मैं भगवान् कपर्दीश्वरका सामीप्य प्राप्त करूँगा' अगाध जलमें स्नान करे। विप्रवर! स्नानके पश्चात् गन्ध, माल्य, नमस्कार, धूप, दीप तथा अन्न-सम्पत्तिके द्वारा विरूपाक्ष शिवका पूजन करे। वहाँ चढ़ी हुई सब वस्तुएँ ब्राह्मणको देकर मनुष्य देवलोकमें देवताकी भाँति आनन्दका अनुभव करता है। माघ कृष्णा चतुर्दशीको 'यमतर्पण' बताया गया है। उस दिन सूर्योदयसे पूर्व स्नान करके सब पापोंसे छुटकारा पानेके लिये शास्त्रोक्त चौदह नामोंसे यमका तर्पण करे। तिल, कुशा और जलसे तर्पण करना चाहिये। उसके बाद ब्राह्मणोंको खिचड़ी खिलावे और स्वयं भी मौन होकर वही भोजन करे। द्विजश्रेष्ठ! फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशीको 'शिवरात्रि-व्रत' बताया गया है। उसमें दिन-रात निर्जल उपवास करके एकाग्रचित्त हो गन्ध आदि उपचारोंसे तथा जल, बिल्वपत्र, धूप, दीप, नैवेद्य, स्तोत्रपाठ और जप आदिसे किसी स्वयम्भू आदि लिङ्गकी अथवा पार्थिव लिङ्गकी पूजा करनी चाहिये। फिर दूसरे दिन उन्हीं उपचारोंसे पुनः पूजन करके ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन करावे और दक्षिणा देकर विदा करे। इस प्रकार व्रत करके मनुष्य महादेवजीकी कृपासे [illegible] सम्मानित हो दिव्य भोग प्राप्त करता है। [illegible] चतुर्दशीको भक्तिपूर्वक गन्ध आदि उपचारोंसे दुर्गाजीकी पूजा करके ब्राह्मणोंको भोजन करावे और स्वयं एक समय भोजन करके रहे। नारद! जो इस प्रकार दुर्गाका व्रत करता है, वह इस लोक और परलोकमें भी मनोवाञ्छित भोगोंको प्राप्त कर लेता है। चैत्र कृष्णा चतुर्दशीको उपवास करके केदारतीर्थका जल पीनेसे अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। सम्पूर्ण चतुर्दशी-व्रतोंके उद्यापनकी सामान्य विधि बतायी जाती है। इसमें चौदह कलश रक्खे जाते हैं और सबके साथ सुपारी, अक्षत, मोदक, वस्त्र और दक्षिणा [illegible] होते हैं। घट ताँबेके हों या मिट्टीके, नये हों। टूटे फूटे नहीं होने चाहिये। बाँसके चौदह डंडों और उतने ही [illegible] आसन, पात्र तथा यज्ञोपवीतोंकी भी व्यवस्था करनी चाहिये। शेष बातें उन-उन व्रतोंके साथ जैसी कही गयी हैं, उसी प्रकार करे।

बारह महीनोंकी पूर्णिमा तथा अमावास्यासे सम्बन्ध रखनेवाले व्रतों तथा सत्कर्मों-की विधि और महिमा

सनातनजी कहते हैं—नारद! सुनो, अब मैं तुमसे पूर्णिमाके व्रतोंका वर्णन करता हूँ, जिनका पालन करके स्त्री और पुरुष सुख और संतति प्राप्त करते हैं। विप्रवर! चैत्रकी पूर्णिमा मन्वादि तिथि कही गयी है। उसमे चन्द्रमाकी प्रसन्नताके लिये कच्चे अन्नसहित जलसे भरा हुआ घट दान करना चाहिये। वैशाखकी पूर्णिमाको ब्राह्मणको जो-जो द्रव्य दिया जाता है, वह सब दाताको निश्चितरूपसे प्राप्त होता है। उस दिन 'धर्मराज-व्रत' कहा गया है। वैशाखकी पूर्णिमाको श्रेष्ठ ब्राह्मणके लिये जलसे भरा हुआ घट और पकवान दान करना चाहिये। वह गोदानका फल देनेवाला होता है और उससे धर्मराज संतुष्ट होते हैं। जो स्वच्छ जलसे भरे हुए कलशोंका श्रेष्ठ ब्राह्मणको सुवर्णके साथ दान करता है, वह कभी शोकमें नहीं पड़ता। ज्येष्ठकी पूर्णिमाको 'वट-सावित्री' का व्रत होता है। उस दिन स्त्री उपवास करके अमृतके समान मधुर जलसे वटवृक्षको सींचे और सूतसे उस वृक्षको एक सौ

आठ बार प्रदक्षिणापूर्वक लपेटे। तदनन्तर [illegible]

पतिव्रता सावित्री देवीसे इस प्रकार प्रार्थना करे—

जगत्पूज्ये जगन्मातः सावित्रि पतिदैवते।
पत्या सहावियोगं मे वटस्थे कुरु ते नमः॥
(ना० पूर्व० १२४। ११)

'जगन्माता सावित्री! तुम सम्पूर्ण जगत्के लिये पूजनीया तथा पतिको ही इष्टदेव माननेवाली पतिव्रता हो। वटवृक्षपर निवास करनेवाली देवि! तुम ऐसी कृपा करो, जिससे मेरा अपने पतिके साथ नित्यसंयोग बना रहे। कभी वियोग न हो। तुम्हें मेरा सादर नमस्कार है।'

जो नारी इस प्रकार प्रार्थना करके दूसरे दिन सुवासिनी स्त्रियोंको भोजन करानेके पश्चात् स्वयं भोजन करती है, वह सदा सौभाग्यवती बनी रहती है। आषाढ़की पूर्णिमाको 'गोपद्म-व्रत'का विधान है। उस दिन स्नान करके भगवान् श्रीहरिके स्वरूपका इस प्रकार ध्यान करे—भगवान्के चार भुजाएँ हैं। उनका शरीर विशाल है। उनकी अङ्गकान्ति जाम्बूनद सुवर्णके समान श्याम है। शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, लक्ष्मी तथा गरुड़ उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं तथा देवता, मुनि, गन्धर्व, यक्ष और किन्नर उनकी सेवामें लगे हैं। इस प्रकार श्रीहरिका चिन्तन करके गन्ध आदि उपचारोंद्वारा पुरुषसूक्तके मन्त्रोंसे उनकी पूजा करे। तत्पश्चात् वस्त्र और आभूषण आदिके द्वारा आचार्यको संतुष्ट करे और स्नेहयुक्त हृदयसे आचार्य तथा अन्यान्य ब्राह्मणोंको यथाशक्ति मीठे पकवान भोजन करावे। विप्रवर! इस प्रकार व्रत करके मनुष्य कमलापतिके प्रसादसे इहलोक और परलोकके भोगोंको प्राप्त कर लेता है।

श्रावण मासकी पूर्णिमाको 'वेदोंका उपाकर्म' बताया गया है। उस दिन यजुर्वेदी द्विजोंको देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका तर्पण करना चाहिये। अपनी शाखामें बतायी हुई विधिके अनुसार ऋषियोंका पूजन भी करना चाहिये। ऋग्वेदियोंको चतुर्दशीके दिन तथा सामवेदियोंको भाद्रपद मासके हस्त नक्षत्रमें विधिपूर्वक 'रक्षा-विधान' करना चाहिये। लाल कपड़ेके एक भागमें सरसों तथा अक्षत रखकर उसे लाल रंगके डोरेसे बाँध दे, इस प्रकार बनी हुई पोटली ही रक्षा है, उसे जलसे सींचकर काँसके पात्रमें रक्खे। उसीमें गन्ध आदि उपचारोंद्वारा श्रीविष्णु आदि देवताओंकी पूजा करके उनकी प्रार्थना करे। फिर ब्राह्मणको नमस्कार करके उसीके हाथसे प्रसन्नतापूर्वक अपनी कलाईमें उस रक्षा-पोटलिकाको बँधा ले। तदनन्तर ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे वेदोंका स्वाध्याय करे तथा सप्तर्षियोंका विसर्जन करके अपने हाथसे बनाकर कुंकुम आदिसे रँगे हुए नूतन यज्ञोपवीतको धारण करे। यथाशक्ति श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं एक समय भोजन करे। विप्रवर! इस व्रतके कर लेनेपर वर्षभरका वैदिक कर्म यदि भूल गया हो, विधिसे हीन हुआ हो या नहीं किया गया हो तो वह सब भलीभाँति सम्पादित हो जाता है। भाद्रपद मासकी पूर्णिमाको उमामाहेश्वर-व्रत किया जाता है। उसके लिये एक दिन पहले एक समय भोजन करके रहे और शिव-पार्वतीका यत्नपूर्वक पूजन करके हाथ जोड़ प्रार्थना करे—'प्रभो! मैं कल व्रत करूँगा।' इस प्रकार भगवान्से निवेदन करके उस उत्तम व्रतको ग्रहण करे। रातमें देवताके समीप शयन करके रातके पिछले पहरमें उठे। फिर संध्या-वन्दन आदि नित्यकर्म करके भस्म तथा रुद्राक्षकी माला धारण करे। तत्पश्चात् उत्तम गन्ध, बिल्वपत्र, धूप, दीप और नैवेद्य आदि विभिन्न उपचारोंद्वारा विधिपूर्वक भगवान् शङ्करकी पूजा करे। उसके बाद सबेरेसे लेकर प्रदोषकालतक विद्वान् पुरुष उपवास करे। चन्द्रोदय होनेपर पुनः पूजा करके वहीं देवताके समीप रातमें जागरण करे।

इस प्रकार प्रतिवर्ष आलस्य छोड़कर पंद्रह वर्षोंतक इस व्रतका निर्वाह करे। उसके बाद विधिपूर्वक व्रतका उद्यापन करना चाहिये। उस समय भगवती उमा और भगवान् शङ्करकी सुवर्णमयी दो प्रतिमाएँ बनवावे। यथाशक्ति सोने, चाँदी, ताँबे अथवा मिट्टीके पंद्रह उत्तम कलश स्थापित करे। वहाँ एक कलशके ऊपर वस्त्रसहित दोनों प्रतिमाओंकी स्थापना करनी चाहिये। उन प्रतिमाओंको पञ्चामृतसे स्नान कराकर फिर शुद्ध जलसे नहलाना चाहिये। तदनन्तर षोडशोपचारसे उनकी पूजा करनी चाहिये। इसके बाद पंद्रह ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन करावे और उन्हें दक्षिणा तथा एक-एक कलश दे। भगवान् शङ्करकी मूर्तिसे युक्त कलश आचार्यको अर्पण करे। इस प्रकार उमामाहेश्वर-व्रतका पालन करके मनुष्य इस पृथ्वीपर विख्यात होता है। वह समस्त सम्पत्तियोंकी निधि बन जाता है। उसी दिन शक्र-व्रतका भी विधान किया गया है। उसमें प्रातःकाल स्नान करके विधिपूर्वक गन्ध आदि

उपचारों तथा नैवेद्य-राशियोंसे देवराज इन्द्रकी पूजा करे। फिर निमन्त्रित ब्राह्मणोंको विधिवत् भोजन कराकर वहाँ आये हुए दूसरे लोगोंको तथा दीनों और अनाथोंको भी उसी प्रकार भोजन करावे। विप्रवर! धन-धान्यकी सिद्धि चाहनेवाले राजाको अथवा दूसरे धनी लोगोंको प्रतिवर्ष यह शक्र-व्रत करना चाहिये।

आश्विन मासकी पूर्णिमाको 'कोजागर-व्रत' कहा गया है। उसमें विधिपूर्वक स्नान करके उपवास करे और जितेन्द्रिय भावसे रहे। ताँबे अथवा मिट्टीके कलशपर वस्त्रसे ढकी हुई सुवर्णमयी लक्ष्मी-प्रतिमाको स्थापित करके भिन्न-भिन्न उपचारोंसे उनकी पूजा करे। तदनन्तर सायंकालमें चन्द्रोदय होनेपर सोने, चाँदी अथवा मिट्टीके घृतपूर्ण एक सौ दीपक जलावे। इसके बाद घी और शक्कर मिलायी हुई बहुत-सी खीर तैयार करे और बहुत-से पात्रोंमें उसे ढालकर चन्द्रमाकी चाँदनीमें रक्खे। जब एक पहर बीत जाय तो लक्ष्मीजीको वह सब अर्पण करे। तत्पश्चात् भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको वह खीर भोजन करावे और उनके साथ ही माङ्गलिक गीत तथा मङ्गलमय कार्योंद्वारा जागरण करे। तदनन्तर अरुणोदय-कालमें स्नान करके लक्ष्मीजीकी वह स्वर्णमयी मूर्ति आचार्यको अर्पित करे। उस रातमें देवी महालक्ष्मी अपने कर-कमलोंमें वर और अभय लिये निशीथ कालमें संसारमें विचरती हैं और मन-ही-मन संकल्प करती हैं कि 'इस समय भूतलपर कौन जाग रहा है? जागकर मेरी पूजामें लगे हुए उस मनुष्यको मैं आज धन दूँगी।' प्रतिवर्ष किया जानेवाला यह व्रत लक्ष्मीजीको संतुष्ट करनेवाला है। इससे प्रसन्न हुई लक्ष्मी इस लोकमें समृद्धि देती हैं और शरीरका अन्त होनेपर परलोकमें सद्गति प्रदान करती हैं। कार्तिककी पूर्णिमाको ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति और सम्पूर्ण शत्रुओंपर विजय पानेके लिये कार्तिकेयजीका दर्शन करे। उसी तिथिको प्रदोष-कालमें दीपदानके द्वारा सम्पूर्ण जीवोंके लिये सुखदायक 'त्रिपुरोत्सव' करना चाहिये। उस दिन दीपका दर्शन करके कीट, पतंग, मच्छर, वृक्ष तथा जल और स्थलमें विचरनेवाले दूसरे जीव भी पुनर्जन्म नहीं ग्रहण करते; उन्हें अवश्य मोक्ष होता है। ब्रह्मन्! उस दिन चन्द्रोदयके समय छहों कृत्तिकाओंकी, खड्गधारी कार्तिकेयकी तथा वरुण और अग्निकी गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, प्रचुर नैवेद्य, उत्तम अन्न, फल तथा शाक आदिके द्वारा एवं होम और ब्राह्मणभोजनके द्वारा पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार देवताओंकी पूजा करके घरसे बाहर दीप-दान करना चाहिये। दीपकोंके पास ही एक
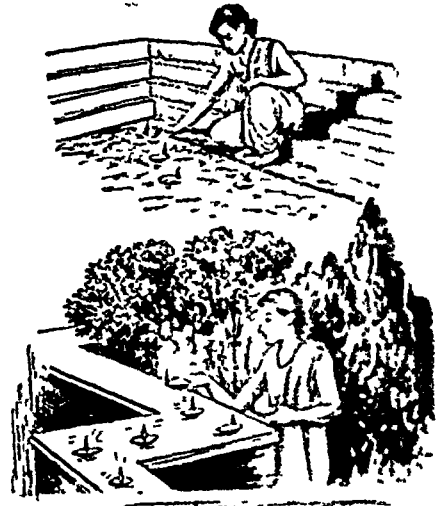
दीपावलीको अमावास्याको गोशाला, बगीचा, चौराहा, नदी, सागर आदिमें दीपदान

सुन्दर चौकोर गड्ढा खोदे। उसकी लंबाई-चौड़ाई और गहराई चौदह अंगुलकी रक्खे। फिर उसे चन्दन और जलसे सींचे। तदनन्तर उस गड्ढेको गायके दूधसे भरकर उसमें सर्वाङ्गसुन्दर सुवर्णमय मत्स्य डाले। उस मत्स्यके नेत्र मोतीके बने होने चाहिये। फिर 'महामत्स्याय नमः' इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए गन्ध आदिसे उसकी पूजा करके ब्राह्मणको उसका दान कर दे। द्विजश्रेष्ठ! यह मैंने तुमसे क्षीरसागर-दानकी विधि बतायी है। इस दानके प्रभावसे मनुष्य भगवान् विष्णुके समीप आनन्द भोगता है। नारद! इस पूर्णिमाको वृषोत्सर्ग-व्रत तथा नक्त-व्रत करके मनुष्य रुद्रलोक प्राप्त कर लेता है।

मार्गशीर्ष मासकी पूर्णिमाके दिन शान्त स्वभाववाले ब्राह्मण-को सुवर्णसहित एक आढक[1] नमक दान करे। इससे सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धि होती है। मनुष्य पूर्णिमाको पुष्यका योग होनेपर सम्पूर्ण सौभाग्यकी वृद्धिके लिये पीली सरसोंके उबटनसे अपने शरीरको मलकर सर्वौषधियुक्त जलसे स्नान करे। स्नानके पश्चात् दो नूतन वस्त्र धारण करे। फिर माङ्गलिक द्रव्यका दर्शन और स्पर्श कर विष्णु, इन्द्र, चन्द्रमा, पुष्य और बृहस्पतिको नमस्कार करके गन्ध आदि उपचारों-द्वारा उनकी पूजा करे। तदनन्तर होम करके ब्राह्मणोंको खीरके भोजनसे तृप्त करे। विप्रवर! लक्ष्मीजीकी प्रीति बढ़ानेवाले और दरिद्रताका नाश करनेवाले इस व्रतको करके मनुष्य इहलोक और परलोकमें आनन्द भोगता है। माघकी पूर्णिमाके दिन तिल, सूती कपड़े, कम्बल, रत्न, कंचुक, पगड़ी, जूते आदिका अपने वैभवके अनुसार दान करके मनुष्य स्वर्गलोकमें सुखी होता है। जो उस दिन भगवान् शङ्करकी विधिपूर्वक पूजा करता है, वह अश्वमेध यज्ञका फल पाकर भगवान् विष्णुके लोकमें प्रतिष्ठित होता है। फाल्गुनकी पूर्णिमाको सब प्रकारके काष्ठों और उपलों (कंडों)का संग्रह करना चाहिये। वहाँ रक्षोघ्न-मन्त्रोंद्वारा अग्निमें विधिपूर्वक होम करके होलिकापर काठ आदि फेंककर उसमें आग लगा दे। इस प्रकार दाह करके होलिकाकी परिक्रमा करते हुए उत्सव मनावे। यह होलिका प्रह्लादको भय देनेवाली राक्षसी है। इसीलिये गीत-मङ्गलपूर्वक काष्ठ आदिके द्वारा लोग उसका दाह करते हैं। विप्रेन्द्र! मतान्तरमें यह 'कामदेवका दाह' है।

पक्षान्त-तिथियाँ दो होती हैं—पूर्णिमा तथा अमावास्या। दोनोंके देवता पृथक्-पृथक् हैं। अतः अमावास्याका व्रत पृथक् बतलाया जाता है। नारद! इसे सुनो। यह पितरों-को अत्यन्त प्रिय है। चैत्र और वैशाखकी अमावास्याको पितरोंकी पूजा, पार्वणविधिसे धन-वैभवके अनुसार श्राद्ध, ब्राह्मणभोजन, विशेषतः गौ आदिका दान—ये सब कार्य सभी महीनोंकी अमावास्याको अत्यन्त पुण्यदायक बताये गये हैं। नारद! ज्येष्ठकी अमावास्याको ब्रह्म-सावित्रीका व्रत बताया गया है। इसमें भी ज्येष्ठकी पूर्णिमाके समान ही सब विधि कही गयी है। आषाढ, श्रावण और भादों मासमें पितृश्राद्ध, दान, होम और देवपूजा आदि कार्य अक्षय होते हैं। भाद्रपदकी अमावास्याको अपराह्णमें तिलके खेतमें पैदा हुए कुशोंको ब्रह्माजीके मन्त्रसे आमन्त्रित करके 'हुं फट्'[2] का उच्चारण करते हुए उखाड़ ले और उन्हें सदा सब कार्योंमें नियुक्त करे और दूसरे कुशोंको एक ही समय काममें लाना चाहिये। आश्विनकी अमावास्याको विशेषरूपसे गङ्गाजीके जलमें या गयाजीमें पितरोंका श्राद्ध-तर्पण करना चाहिये; वह मोक्ष देनेवाला है। कार्तिककी अमावास्याको देवमन्दिर, घर, नदी, बगीचा, पोखरा, चैत्य वृक्ष, गोशाला तथा बाजारमें दीपदान और श्रीलक्ष्मीजीका पूजन करना चाहिये। उस दिन गौओंके सींग आदि अङ्गोंमें रंग लगाकर उन्हें घास और अन्न देकर तथा नमस्कार और प्रदक्षिणा करके उनकी पूजा की जाती है। मार्गशीर्षकी अमावास्याको भी श्राद्ध और ब्राह्मणभोजनके द्वारा तथा ब्रह्मचर्य आदि नियमों और जप, होम तथा पूजनादिके द्वारा पितरोंकी पूजा की जाती है। विप्रवर! पौष और माघमें भी पितृश्राद्धका फल अधिक कहा गया है। फाल्गुनकी अमावास्यामें श्रवण, व्यतीपात और सूर्यका योग होनेपर केवल श्राद्ध और ब्राह्मणभोजन गयासे अधिक फल देनेवाला होता है। सोमवती अमावास्या-को किया हुआ दान आदि सम्पूर्ण फलोंको देनेवाला है। उसमें किये हुए श्राद्धका अधिक फल है। मुने! इस प्रकार मैंने तुम्हें संक्षेपसे तिथिकृत्य बताया है। सभी तिथियोंमें कुछ विशेष विधि है, जो अन्य पुराणोंमें वर्णित है।

---

१. चार सेरके बराबरका एक तौल।

२. कुशसम्बन्धी प्रार्थनाका मन्त्र इस प्रकार है—

विरञ्चिना सहोत्पन्न परमेष्ठिनिसर्गज। नुद सर्वाणि पापानि दर्भ स्वस्तिकरो भव॥

'दर्भ! तुम ब्रह्माजीके साथ उत्पन्न हुए हो, साक्षात् परमेष्ठी ब्रह्माके स्वरूप हो और तुम स्वभावतः प्रकट हुए हो। हमारे सब पाप दूर करो और हमारे लिये कल्याणकारी बनो।'

सनकादि और नारदजीका प्रस्थान, नारदपुराणके माहात्म्यका वर्णन और पूर्वभागकी समाप्ति

श्रीसूतजी कहते हैं—महर्षियो ! देवर्षि नारदजीके प्रश्न करनेपर उन्हें इस प्रकार उपदेश देकर वे सनकादि चारों कुमार, जो शास्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं, नारदजीसे पूजित हो, संध्या आदि नित्यकर्म करके भगवान् शङ्करके लोकमें चले गये। वहाँ देवताओं और दानवोंके अधीश्वर जिनके चरणारविन्दोंमें मस्तक झुकाते हैं, उन महेश्वरको प्रणाम करके उनकी आज्ञासे वे भूमिपर बैठे। तदनन्तर सम्पूर्ण शास्त्रोंके सारको, जो अज्ञानी जीवोंके अज्ञानमय बन्धनको खोलनेवाला है, सुनकर वे ज्ञानघनस्वरूप कुमार भगवान् शिवको नमस्कार करके अपने पिताके समीप चले गये। पिताके चरणकमलोंमें प्रणाम करके और उनका आशीर्वाद लेकर वे आज भी सम्पूर्ण लोकोंके तीर्थोंमें सदा विचरते रहते हैं। वास्तवमें वे स्वयं ही तीर्थस्वरूप हैं। ब्रह्मलोकसे वे बदरिकाश्रम-तीर्थमें गये और देवेश्वरसमुदायसे सेवित भगवान् विष्णुके उन अविनाशी चरणारविन्दोंका चिरकालतक चिन्तन करते रहे; जिनका वीतराग संन्यासी ध्यान करते हैं। ब्राह्मणो ! तत्पश्चात् नारदजी भी सनकादि कुमारोंसे मनोवाञ्छित ज्ञान-विज्ञान पाकर उस गङ्गातटसे उठकर पिताके निकट गये और प्रणाम करके खड़े रहे। फिर पिता ब्रह्माजीके द्वारा आज्ञा मिलनेपर वे बैठे। उन्होंने कुमारोंसे जो ज्ञान-विज्ञान श्रवण किया था, उसका ब्रह्माजीके समीप यथार्थरूपसे वर्णन किया। उसे सुनकर ब्रह्माजी बड़े प्रसन्न हुए। इसके बाद ब्रह्माजीके चरणोंमें मस्तक झुकाकर आशीर्वाद ले मुनिवर नारद मुनिसिद्ध-सेवित कैलास पर्वतपर आये। वह पर्वत नाना प्रकारके आश्चर्यजनक दृश्योंसे भरा हुआ था। सिद्ध और किन्नरोंने उस पर्वतको व्याप्त कर रक्खा था। जहाँ सुन्दर स्वर्णमय कमल खिले हुए हैं, ऐसे स्वच्छ जलसे भरे हुए सरोवर उस शैलशिखरकी शोभा बढ़ाते हैं। गङ्गाजीके प्रपातकी कलकल ध्वनि वहाँ सब ओर गूँजती रहती है। कैलासका एक-एक शिखर सफेद बादलोंके समान जान पड़ता है। उसी शिखरपर काले मेघके समान श्यामवर्णका एक वटवृक्ष है, जो सौ योजन विस्तृत है। उसके नीचे योगियोंकी मण्डलीके मध्यभागमें जटाजूटधारी भगवान् त्रिलोचन बाघाम्बर ओढ़े हुए बैठे थे। उनका सारा अङ्ग भस्माङ्गरागसे विभूषित हो रहा था। नागोंके आभूषण उनकी शोभा बढ़ाते थे। ब्राह्मणो ! रुद्राक्षकी मालासे सदा शोभायमान भगवान् चन्द्रशेखरको देखकर नारदजीने भक्तिभावसे नतमस्तक हो उन जगदीश्वरके चरणोंमें [illegible] प्रणाम किया और प्रसन्न मनसे उन श्रीवृषभध्वज शिवका स्तवन किया, तदनन्तर भगवान् शिवकी आज्ञासे वे आसनपर बैठे। उस समय योगियोंने उनका बड़ा सत्कार किया। [illegible] सदाशिवने नारदजीकी कुशल पूछी। नारदजीने [illegible]— भगवन् ! आपके प्रसादसे सब कुशल है। ब्राह्मणो ! [illegible] सब योगियोंके सुनते हुए नारदजीने पशुओं (जीवों) के अज्ञानमय पाशको छुड़ानेवाले पाशुपत (शाम्भव) ज्ञानके विषयमें प्रश्न किया। तब शरणागतवत्सल भगवान् शिवने उनकी भक्तिसे संतुष्ट हो उनसे आदरपूर्वक [illegible] वर्णन किया। लोककल्याणकारी भगवान् शङ्करसे शाम्भव ज्ञान प्राप्त करके प्रसन्नचित्त हो नारदजी [illegible] भगवान् नारायणके निकट गये। सदा आने-जानेवाले देवर्षि नारदने वहाँ भी सिद्धों और योगियोंसे सेवित भगवान् नारायणको बारंबार संतुष्ट किया।

ब्राह्मणो ! यह नारद-महापुराण है, जिसका मैंने तुमलोगोंके समक्ष वर्णन किया है। सम्पूर्ण शास्त्रोंका दिग्दर्शन करानेवाला यह उपाख्यान वेदके समान मान्य है। यह श्रोताओंके ज्ञानकी वृद्धि करनेवाला है। विप्रगण ! जो इस नारदीय महापुराणका शिवालयमें, श्रेष्ठ द्विजोंके समाजमें, भगवान् विष्णुके मन्दिरमें, मथुरा और प्रयागमें, पुरुषोत्तम जगन्नाथजीके मन्दिर, सेतुबन्ध रामेश्वरमें, काञ्ची, द्वारका, हरद्वार और कुरुक्षेत्रमें, त्रिपुष्कर तीर्थमें, किसी नदीके तटपर अथवा [illegible] भी, भक्तिभावसे कीर्तन करता है, वह सम्पूर्ण [illegible] महान् फल पाता है। सम्पूर्ण दानों और [illegible] भी पूरा-पूरा फल प्राप्त कर लेता है। जो [illegible] हविष्य भोजन करके इन्द्रियोंको काबूमें रखते हुए भगवान् नारायण या शिवकी भक्तिमें तत्पर हो इस पुराणका [illegible] अथवा प्रवचन करता है, वह सिद्धि पाता है। इस पुराणमें सब प्रकारके पुण्यों और सिद्धियोंके [illegible] वर्णन किया गया है, जो सदा पढ़ने और सुननेवाले पुरुषोंके [illegible] पापोंका नाश करनेवाला है। यह मनुष्योंके [illegible] दोषको हर लेता है और सब [illegible] वृद्धि करता है। यह सभीको अभीष्ट है। यह [illegible] मत और [illegible] प्रकाशक है। मन्त्र, यन्त्र, [illegible] वेदाङ्ग, [illegible],

शास्त्र और वेद—सबका इसमें संक्षेपसे संग्रह किया गया है। इस वेदसम्मित नारदीय महापुराणका श्रवण करके धन, रत्न और वस्त्र आदिके द्वारा भक्तिभावसे पुराणवाचक आचार्यकी पूजा करनी चाहिये। भूमिदान, गोदान, रत्नदान तथा हाथी, घोड़े और रथके दानसे आचार्यको सदैव संतुष्ट करना चाहिये। ब्राह्मणो! यह पुराण धर्मका संग्रह करनेवाला तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है। जो इसकी व्याख्या करता है, उसके समान मनुष्योंका गुरु दूसरा कौन हो सकता है। शरीर, मन, वाणी और धन आदिके द्वारा सदा धर्मोपदेशक गुरुका प्रिय करना चाहिये। इस पुराणको विधिपूर्वक सुनकर देवपूजन और हवन करके सौ ब्राह्मणोंको मिठाई और खीरका भोजन कराना चाहिये तथा भक्तिभावसे उन्हें दक्षिणा देनी चाहिये; क्योंकि भगवान् माधव भक्तिसे ही संतुष्ट होते हैं। जैसे नदियोंमें गङ्गा, सरोवरोंमें पुष्कर, पुरियोंमें काशीपुरी, पर्वतोंमें मेरु, तीनों देवताओंमें सबका पाप हरनेवाले भगवान् नारायण, युगोंमें सत्ययुग, वेदोंमें सामवेद, पशुओंमें धेनु, वर्णोंमें ब्राह्मण, देने योग्य तथा पोषक वस्तुओंमें अन्न और जल, मासोंमें मार्गशीर्ष, मृगोंमें सिंह, देहधारियोंमें पुरुष, वृक्षोंमें पीपल, दैत्योंमें प्रह्लाद, अङ्गोंमें मुख, अश्वोंमें उच्चैःश्रवा, ऋतुओंमें वसन्त, यज्ञोंमें जपयज्ञ, नागोंमें शेष, पितरोंमें अर्यमा, अस्त्रोंमें धनुष, वसुओंमें पावक, आदित्योंमें विष्णु, देवताओंमें इन्द्र, सिद्धोंमें कपिल, पुरोहितोंमें बृहस्पति, कवियोंमें शुक्राचार्य, पाण्डवोंमें अर्जुन, दास्य-भक्तोंमें हनुमान्, तृणोंमें कुश, इन्द्रियोंमें मन (चित्त), गन्धर्वोंमें चित्ररथ, पुष्पोंमें कमल, अप्सराओंमें उर्वशी तथा धातुओंमें सुवर्ण श्रेष्ठ है। जिस प्रकार ये सब वस्तुएँ अपने सजातीय पदार्थोंमें श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार पुराणोंमे श्रीनारदमहापुराण श्रेष्ठ कहा गया है। द्विजवरो! आप सब लोगोंको शान्ति प्राप्त हो, आपका कल्याण हो। अब मैं अमित तेजस्वी व्यासजीके समीप जाऊँगा।

ऐसा कहकर सूतजी शौनक आदि महात्माओंसे पूजित हो उन सबकी आज्ञा लेकर चले गये। वे शौनक आदि द्विज़ श्रेष्ठ महात्मा भी, जो यज्ञानुष्ठानमें लगे हुए थे, एकाग्रचित्त हो सुने हुए समस्त धर्मोंके अनुष्ठानमें तत्पर हो, वहीं रहने लगे। जो कलिके पाप-विषका नाश करनेवाले श्रीहरिके जप और पूजन-विधिरूप औषधका सेवन करता है, वह निर्मल चित्तसे भगवान्‌के ध्यानमे लगकर सदा मनोवाञ्छित लोक प्राप्त करता है।

॥ पूर्वभाग समाप्त ॥

ॐ

श्रीपरमात्मने नम

श्रीगणेशाय नमः

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीनारदमहापुराण

उत्तरभाग

महर्षि वसिष्ठका मान्धाताको एकादशी-व्रतकी महिमा सुनाना

पान्तु वो जलदश्यामाः शार्ङ्गज्याघातकर्कशाः ।
त्रैलोक्यमण्डपस्तम्भाश्चत्वारो हरिबाहवः ॥ १ ॥

'जो मेघके समान श्यामवर्ण हैं, शार्ङ्गधनुषकी प्रत्यञ्चाके आघात (रगड़) से कठोर हो गयी हैं तथा त्रिभुवनरूपी विशाल भवनको खड़े रखनेके लिये मानो खंभेके समान हैं, भगवान् विष्णुकी वे चारों भुजाएँ आपलोगोंकी रक्षा करें।'

सुरासुरशिरोरत्ननिघृष्टमणिरञ्जितम् ।
हरिपादाम्बुजद्वन्द्वमभीष्टप्रदमस्तु नः ॥ २ ॥

'भगवान् श्रीहरिके वे युगल चरणारविन्द हमारे अभीष्ट मनोरथोंकी पूर्ति करें, जो देवताओं और असुरोंके मस्तकपर स्थित रत्नमय मुकुटकी घिसी हुई मणियोंसे सदा अनुरञ्जित रहते हैं।'

मान्धाताने (वसिष्ठजीसे) पूछा—द्विजोत्तम ! जो भयंकर पापरूपी सूखे या गीले ईंधनको जला सके, ऐसी अग्नि कौन है ? यह बतानेकी कृपा करें । ब्रह्मपुत्र ! विप्र-शिरोमणे ! तीनों लोकोंमें त्रिविध पापतापके निवारणका कोई भी ऐसा सुनिश्चित उपाय नहीं है, जो आपको ज्ञात न हो । अज्ञानावस्थामें किये हुए पापको 'शुष्क' और जान-बूझकर किये हुए पातकको 'आर्द्र' कहा गया है । वह भूत, वर्तमान अथवा भविष्य कैसा ही क्यों न हो, किस अग्निसे दग्ध हो सकता है ? यह जानना मुझे अभीष्ट है ।

वसिष्ठजी बोले—नृपश्रेष्ठ ! सुनो, जिस अग्निसे शुष्क अथवा आर्द्र पाप पूर्णतः दग्ध हो सकता है, वह उपाय बताता हूँ । जो मनुष्य भगवान् विष्णुके दिन (एकादशी तिथि) आनेपर जितेन्द्रिय हो उपवास करके भगवान् मधुसूदन-की पूजा करता है, आँवलेसे स्नान करके रातमें जागता है, वह पापोंको भी जला देता है । राजन् ! एकादशी नामक

अग्निगे, पातकरूपी ईंधन सौ वर्षोंमें संचित हो तो भी, शीघ्र ही भस्म हो जाता है। नरेश्वर! मनुष्य जबतक भगवान् पद्मनाभके शुभदिवस—एकादशी तिथिको उपवासपूर्वक व्रत नहीं करता, तभीतक इस शरीरमें पाप ठहर पाते हैं। सहस्रों अश्वमेध और सैकड़ों राजसूय यज्ञ एकादशीव्रतकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हो सकते। प्रभो! एकादश इन्द्रियोंद्वारा जो पाप किया जाता है, वह सब-का-सब एकादशीके उपवाससे नष्ट हो जाता है। राजन्! यदि किसी दूसरे बहानेसे भी एकादशीको उपवास कर लिया जाय तो वह यमराजका दर्शन नहीं होने देती। यह एकादशी स्वर्ग और मोक्ष देनेवाली है। राज्य और पुत्र प्रदान करनेवाली है। उत्तम स्त्रीकी प्राप्ति करानेवाली तथा शरीरको नीरोग बनानेवाली है। राजन्! एकादशीसे अधिक पवित्र न गङ्गा है, न गया; न काशी है, न पुष्कर। कुरुक्षेत्र, नर्मदा, देविका, यमुना तथा चन्द्रभागा भी एकादशीसे बढ़कर पुण्यमय नहीं हैं। राजन्! एकादशीका व्रत करनेसे भगवान् विष्णुका धाम अनायास ही प्राप्त हो जाता है। एकादशीको उपवासपूर्वक रातमें जागरण करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। राजेन्द्र! एकादशी-व्रत करनेवाला पुरुष मातृकुल, पितृकुल तथा पत्नीकुलकी दस-दस पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। महाराज! वह अपनेको भी वैकुण्ठमें ले जाता है। एकादशी चिन्तामणि अथवा निधिके समान है। संकल्पसाधक कल्पवृक्ष एवं वेदवाक्योंके समान है। नरश्रेष्ठ! जो मनुष्य द्वादशी (एकादशीयुक्त) की शरण लेते हैं, वे चार भुजाओंसे युक्त हो गरुड़की पीठपर बैठकर वनमाला और पीताम्बरसे सुशोभित हो भगवान् विष्णुके धाममें जाते हैं। महीपते! यह मैंने द्वादशी (एकादशीयुक्त) का प्रभाव बताया है। यह घोर पापरूपी ईंधनके लिये अग्निके समान है। पुत्र-पौत्र आदि विपुल योगों (अप्राप्त वस्तुओं) अथवा भोगोंकी इच्छा रखनेवाले धर्मपरायण मनुष्योंको सदा एकादशीके दिन उपवास करना चाहिये। नरश्रेष्ठ! जो मनुष्य आदरपूर्वक एकादशी-व्रत करता है, वह माताके उदरमें प्रवेश नहीं करता (उसकी मुक्ति हो जाती है)। अनेक पापोंसे युक्त मनुष्य भी निष्काम या सकामभावसे यदि एकादशीका व्रत करता है तो वह लोकनाथ भगवान् विष्णुके अनन्त पद (वैकुण्ठ धाम) को प्राप्त कर लेता है।

तिथिके विषयमें अनेक ज्ञातव्य बातें तथा विद्धा तिथिका निषेध

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! एकादशी तथा भगवान् विष्णुकी महिमासे सम्बन्ध रखनेवाले सूतपुत्रके उस वचनको, जो समस्त पापराशियोंका निवारण करनेवाला था, सुनकर सम्पूर्ण श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने पुनः निर्मल हृदयवाले पौराणिक सूतपुत्रसे पूछा—मानद! आप व्यासजीकी कृपासे अठारह पुराण और महाभारतको भी जानते हैं। पुराणों और स्मृतियोंमें ऐसी कोई बात नहीं है, जिसे आप न जानते हों। हमलोगोंके हृदयमें एक संशय उत्पन्न हो गया है। आप ही विस्तारसे समझाकर यथार्थरूपसे उसका निवारण कर सकते हैं। तिथिके मूल भाग (प्रारम्भ) में उपवास करना चाहिये या अन्तमें? देवकर्म हो या पितृकर्म उसमें तिथिके किस भागमें उपवास करना उचित है? यह बतानेकी कृपा करें।

सौतिने कहा—महर्षियो! देवताओंकी प्रसन्नताके लिये तो तिथिके अन्तभागमें ही उपवास करना उचित है। वही उनकी प्रीति बढ़ानेवाला है। पितरोंको तिथिका मूलभाग ही प्रिय है—ऐसा कालज्ञ पुरुषोंका कथन है। अतः दमगुने फलकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको तिथिके अन्तभागमें ही उपवास करना चाहिये। धर्मकामी पुरुषोंको पितरोंकी तृप्तिके लिये तिथिके मूलभागको ही उत्तम मानना चाहिये। विप्रगण! धर्म, अर्थ तथा कामकी इच्छावाले मनुष्योंको चाहिये कि द्वितीया, अष्टमी, षष्ठी और एकादशी तिथियाँ यदि पूर्वविद्धा हों अर्थात् पहलेवाली तिथिसे संयुक्त हों तो उस दिन व्रत न करें। द्विजवरो! सप्तमी, अमावास्या, पूर्णिमा तथा पिताका वार्षिक श्राद्धदिन—इन दिनोंमें पूर्वविद्धा तिथि ही ग्रहण करनी चाहिये। सूर्योदयके समय यदि थोड़ी भी पूर्व तिथि हो तो उससे वर्तमान तिथिको पूर्वविद्धा माने, यदि उदयके पूर्वसे ही वर्तमान तिथि आ गयी हो तो उसे 'प्रभूता' समझे। पारण तथा मनुष्यके मरणमें तत्कालवर्तिनी तिथि ग्रहण करने योग्य मानी गयी है। पितृकार्यमें वही तिथि ग्राह्य है जो सूर्यास्तकालमें मौजूद रहे। विप्रवरो! तिथिका प्रमाण सूर्य और चन्द्रमाकी गतिपर निर्भर है। चन्द्रमा और सूर्यकी गतिका ज्ञान होनेसे कालवेत्ता विद्वान् तिथिके कालका मान समझते हैं।

इसके बाद, अब मैं स्नान, पूजा आदिकी विधिका क्रम

बताऊँगा, यदि दिन शुद्ध न मिले तो रातमें पूजा की जाती है। दिनका सारा कार्य प्रदोष (रात्रिके आरम्भकाल) में पूर्ण करना चाहिये। यह विधि व्रत करनेवाले मनुष्योंके लिये बतायी गयी है। विप्रवरो ! यदि अरुणोदयकालमें थोड़ी भी द्वादशी हो तो उसमें स्नान, पूजन, होम और दान आदि सारे कार्य करने चाहिये। द्वादशीमें व्रत करनेपर शुद्ध त्रयोदशीमें पारण हो तो पृथ्वीदानका फल मिलता है। अथवा वह मनुष्य सौ यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी अधिक पुण्य प्राप्त कर लेता है। विप्रगण ! यदि आगे द्वादशीयुक्त दिन न दिखायी दे तो (अर्थात् द्वादशीयुक्त त्रयोदशी न हो तो) प्रातःकाल ही स्नान करना चाहिये और देवताओं तथा पितरोंका तर्पण करके द्वादशीमें ही पारण कर लेना चाहिये। इस द्वादशीका यदि मनुष्य उल्लङ्घन करे तो वह बहुत बड़ी हानि करनेवाली होती है, ठीक उसी प्रकार जैसे विद्याध्ययन करके समावर्तन संस्कारद्वारा मनुष्य स्नातक न बने तो वह सरस्वती उस विद्वान्के धर्मका अपहरण करती है। क्षयमें, वृद्धिमें अथवा सूर्योदयकालमें भी पवित्र द्वादशी तिथि प्राप्त हो तो उसीमें उपवास करना चाहिये, किंतु पूर्व तिथिसे विद्ध होनेपर उसका अवश्य त्याग कर देना चाहिये।

ब्राह्मणोंने पूछा—सूतजी ! जब पहले दिनकी एकादशीमें द्वादशीका संयोग न प्राप्त होता हो, तो मनुष्योंको किस प्रकार उपवास करना चाहिये ? यह बतलाइये। उपवासका दिन जब पूर्व तिथिसे विद्ध हो और दूसरे दिन जब थोड़ी भी एकादशी न हो, तो उसमें किस प्रकार उपवास करनेका विधान है ? इसे भी स्पष्ट कीजिये।

सौतिने कहा—ब्राह्मणो ! यदि पहले दिनकी एकादशीमें आधे सूर्योदयतक भी द्वादशीका संयोग न मिलता हो तो दूसरे दिन ही व्रत करना चाहिये। अनेक शास्त्रोंमें परस्पर विरुद्ध वचन देखे जाते हैं और ब्राह्मण लोग भी विवादमें ही पड़े रहते हैं। ऐसी दशामें कोई निर्णय होता न देख पवित्र द्वादशी तिथिमें ही उपवास करे और त्रयोदशीमें पारण कर ले। जब एकादशी दशमीसे विद्ध हो और द्वादशीमें श्रवणका योग मिलता हो, तो दोनों पक्षोंमें केवल द्वादशी तिथिको ही उपवास करना चाहिये।

ऋषि बोले—सूतपुत्र ! अब आप युगादि तिथियों तथा सूर्यसंक्रान्ति आदिमें किये जानेवाले पुण्य कर्मोंकी विधिका यथावत् वर्णन कीजिये; क्योंकि आपसे कोई बात छिपी नहीं है।

सौतिने कहा—अयनका पुण्यकाल, जिस दिन अयनका आरम्भ हो उस पूरे दिनतक मानना चाहिये। संक्रान्तिका पुण्यकाल सोलह घटीतक होता है। वि[illegible]को अक्षय पुण्यजनक बताया गया है। द्विजश्रेष्ठगण ! दोनों पक्षोंकी दशमीविद्धा एकादशीका अवश्य त्याग करना चाहिये। जैसे वृषली स्त्रीसे सम्बन्ध रखनेवाला ब्राह्मण श्राद्धमें भोजन कर लेनेपर उस श्राद्धको और श्राद्धकर्ताके पुरातन पुण्यको भी नष्ट कर देता है, उसी प्रकार पूर्वविद्धा तिथिमें किये हुए दान, जप, होम, स्नान तथा भगवत्पूजन आदि कर्म सूर्योदयकालमें अन्धकारकी भाँति नष्ट हो जाते हैं।

रुक्माङ्गदके राज्यमें एकादशी-व्रतके प्रभावसे सबका वैकुण्ठगमन, यमराज आदिका चिन्तित होना, नारदजीसे उनका वार्तालाप तथा ब्रह्मलोक-गमन

ऋषि बोले—सूतजी ! अब भगवान् विष्णुके आराधन-कर्मका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये, जिससे भगवान् सतुष्ट होते और अभीष्ट वस्तु प्रदान करते हैं। भगवान् लक्ष्मीपति सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं। यह चराचर जगत् उन्हींका स्वरूप है। वे समस्त पापराशियोंका नाश करनेवाले भगवान् श्रीहरि किस कर्मसे प्रसन्न होते हैं ?

सौतिने कहा—ब्राह्मणो ! धरणीधर भगवान् हृषीकेश भक्तिसे ही वशमें होते हैं, धनसे नहीं। भक्तिभावसे पूजित होनेपर श्रीविष्णु सब मनोरथ पूर्ण कर देते हैं। अतः ब्राह्मणो ! चक्रसुदर्शनधारी भगवान् श्रीहरिकी सदा भक्ति करनी चाहिये। जलसे भी पूजन करनेपर भगवान् जगन्नाथ सम्पूर्ण क्लेशोंका नाश कर देते हैं। जैसे प्यासा मनुष्य जलसे तृप्त होता है, उसी प्रकार उस पूजनसे भगवान् शीघ्र सन्तुष्ट होते हैं। ब्राह्मणो ! इस विषयमें एक पापनाशक उपाख्यान सुना जाता है, जिसमें महर्षि गौतमके साथ राजा रुक्माङ्गदके संवादका वर्णन है। प्राचीन कालमें रुक्माङ्गद नामसे प्रसिद्ध एक

सार्वभौम राजा हो गये हैं। वे सब प्राणियोंके प्रति क्षमाभाव रखते थे। क्षीरसागरमें शयन करनेवाले भगवान् विष्णु उनके प्रिय आराध्यदेव थे। वे भगवद्भक्त तो थे ही, सदा एकादशी-व्रतके पालनमें तत्पर रहते थे। राजा रुक्माङ्गद इस जगत्में देवेश्वर भगवान् पद्मनाभके सिवा और किसीको नहीं देखते थे। उनकी सर्वत्र भगवद्दृष्टि थी। वे एकादशीके दिन हाथीपर नगाड़ा रखकर बजवाते और सब ओर यह घोषणा कराते थे कि 'आज एकादशी तिथि है। आजके दिन आठ वर्षसे अधिक और पचासी वर्षसे कम आयुवाला जो मन्दबुद्धि मनुष्य भोजन करेगा, वह मेरेद्वारा दण्डनीय होगा, उसे नगरसे निर्वासित कर दिया जायगा। औरोंकी तो बात ही क्या, पिता, भ्राता, पुत्र, पत्नी और मेरा मित्र ही क्यों न हो, यदि वह एकादशीके दिन भोजन करेगा तो उसे कठोर दण्ड दिया जायगा। आज गङ्गाजीके जलमें गोते लगाओ, श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दान दो।' द्विजवरो! राजाके इस प्रकार घोषणा करानेपर सब लोग एकादशी-व्रत करके भगवान् विष्णुके लोकमें जाने लगे। ब्राह्मणो! इस प्रकार वैकुण्ठधामका मार्ग लोगोंसे भर गया। उस राजाके राज्यमें जो लोग भी मृत्युको प्राप्त होते थे, वे भगवान् विष्णुके धाममें चले जाते थे।

ब्राह्मणो! सूर्यनन्दन प्रेतराज यम दयनीय स्थितिमें पहुँच गये थे। चित्रगुप्तको उस समय लिखने-पढ़नेके कामसे छुट्टी मिल गयी थी। लोगोंके पूर्व कर्मोंके सारे लेख मिटा दिये गये। मनुष्य अपने धर्मके प्रभावसे क्षणभरमें वैकुण्ठ-धामको चले जाते थे। सम्पूर्ण नरक सूने हो गये। कहीं कोई पापी जीव नहीं रह गया था। बारह सूर्योंके तेजसे तप्त होनेवाला यमलोकका मार्ग नष्ट हो गया। सब लोग गरुड़की पीठपर बैठकर भगवान् विष्णुके धामको चले जाते थे। मर्त्यलोकके मानव एकमात्र एकादशीको छोड़कर और कोई व्रत आदि नहीं जानते थे। नरकमें भी सन्नाटा छा गया। तब एक दिन नारदजीने धर्मराजके पास जाकर कहा।

नारदजी बोले—राजन्! नरकोंके आँगनमें भी किसी प्रकारकी चीख-पुकार नहीं सुनायी देती। आजकल लोगोंके पापकर्मोंका लेखन भी नहीं किया जा रहा है। क्यों चित्रगुप्तजी मुनिकी भाँति मौन साधकर बैठे हैं? क्या कारण है कि आजकल आपके यहाँ माया और दम्भके वशीभूत हो दुष्कर्मोंमें तत्पर रहनेवाले पापियोंका आगमन नहीं हो रहा है?

महात्मा नारदके ऐसा पूछनेपर सूर्यपुत्र धर्मराजने कुछ दयनीय भावसे कहा।

यम बोले—नारदजी! इस समय पृथ्वीपर जो राजा राज्य कर रहा है, वह पुराणपुरुषोत्तम भगवान् हृषीकेशका भक्त है। राजेश्वर रुक्माङ्गद अपने राज्यके लोगोंको नगाड़ा पीटकर सचेत करता है—'एकादशी तिथि प्राप्त होनेपर भोजन न करो, न करो। जो मनुष्य उस दिन भोजन करेंगे वे मेरे दण्डके पात्र होंगे।' अतः सब लोग (एकादशीसंयुक्त) द्वादशी-व्रत करते हैं। मुनिश्रेष्ठ! जो लोग किसी बहानेसे भी (एकादशीसंयुक्त) द्वादशीको उपवास कर लेते हैं, वे दाह और प्रलयसे रहित वैष्णवधामको जाते हैं। साराश यह है कि (एकादशीसंयुक्त) द्वादशी-व्रतके सेवनसे सब लोग वैकुण्ठधामको चले जा रहे हैं। द्विजश्रेष्ठ! उस राजाने इस समय मेरे लोकके मार्गोंका लोप कर दिया है। अतः मेरे लेखकोंने लिखनेका काम ढीला कर दिया है। महामुने! इस समय मैं काठके मृगकी भाँति निश्चेष्ट हो रहा हूँ इस तरहके लोकपाल-पदको मैं त्याग देना चाहता हूँ। अपना यह दुःख ब्रह्माजीको बतानेके लिये मैं ब्रह्मलोकमें जाऊँगा। किसी कार्यके लिये नियुक्त हुआ सेवक काम न होनेपर भी यदि उस पदपर बना रहता है और बेकार रहकर स्वामीके धनका उपभोग करता है, वह निश्चय ही नरकमें जाता है।

सौति कहते हैं—ब्राह्मणो! ऐसा कहकर यमराज देवर्षि नारद तथा चित्रगुप्तके साथ ब्रह्माजीके धाममें गये। वहाँ उन्होंने देखा कि ब्रह्माजी मूर्त और अमूर्त जीवोंसे घिरे बैठे हैं। वे सम्पूर्ण वेदोंके आश्रय जगत्की उत्पत्तिके बीज तथा सबके प्रपितामह हैं। उनका स्वतः प्रादुर्भाव हुआ है। वे सम्पूर्ण भूतोंके निवासस्थान और पापसे रहित हैं। ॐकार उन्हींका नाम है। वे पवित्र, पवित्र वस्तुओंके आधार, हंस (विशुद्ध आत्मा) और दर्भ (कुशा), कमण्डलु आदि चिह्नोंसे युक्त हैं। अनेकानेक लोकपाल और दिक्पाल भगवान् ब्रह्माजीकी उपासना कर रहे हैं। इतिहास, पुराण और वेद साकाररूपमें उपस्थित हो उनकी सेवा करते हैं। उन सबके बीचमें यमराजने लजाती हुई नववधूकी भाँति प्रवेश किया।

उनका मुँह नीचेकी ओर झुका था और वे नीचेकी ओर ही देख रहे थे। ब्रह्माजीकी सभामें बैठे हुए लोग देवर्षि नारद तथा चित्रगुप्तके साथ यमराजको वहाँ उपस्थित देख आश्चर्यचकित नेत्रोंसे देखते हुए आपसमें कहने लगे, 'क्या ये सूर्यपुत्र यमराज यहाँ लोककर्ता पितामह ब्रह्माजीका दर्शन करनेके लिये पधारे हुए हैं? क्या इनके पास इस समय कोई कार्य नहीं है? इनको तो [illegible] अवकाश नहीं मिलता है। ये सूर्यनन्दन [illegible] कार्योंमें ही व्यग्र रहते हैं। फिर भी आज [illegible] देवतालोग [illegible] तो हैं? [illegible] मालूम होता है कि ये केवल [illegible] ([illegible]) [illegible] दीनताके साथ यहाँ उपस्थित हुए हैं और [illegible] पट है, जिसपर जीवोंका शुभाशुभ कर्म [illegible] उसका सब लेख मिटा दिया गया है। [illegible] धर्मात्माने इनके पटपर लिखे हुए लेखको नहीं [illegible]। अबतक जो बात देखने और सुननेमें नहीं [illegible] यहाँ प्रत्यक्ष दिखायी देती है।'

ब्राह्मणो! ब्रह्माजीके सभासद् [illegible] कर रहे थे, उस समय सम्पूर्ण [illegible] सूर्यपुत्र यम पितामहके चरणोंमें गिर पड़े और [illegible]— 'देवेश्वर! मेरा बड़ा तिरस्कार हुआ है। मेरे [illegible] कुछ लिखा गया था, सब मिटा दिया गया। [illegible] आप-जैसे स्वामीके रहते हुए मैं [illegible] हूँ।' द्विजवरो! ऐसा कहकर धर्मराज [illegible] हो गये। फिर उदारचित्तवाले लोकमूर्ति वासुदेवने [illegible] भुजाओंसे यमराजके सदेहका निवारण करते हुए [illegible] धीरे उठाया और उन धर्मराज और चित्रगुप्तको आसनपर बिठाया।

यमराजके द्वारा ब्रह्माजीसे अपने कष्टका निवेदन और रुक्माङ्गदके प्रभावका वर्णन

तब यमराज बोले—पितामह! पितामह!! नाथ! मेरी बात सुनिये। देव! किसीके प्रभावका जो खण्डन है, वह मृत्युसे भी अधिक दुःखदायक होता है। कमलोद्भव! जो पुरुष कार्यमें नियुक्त होकर स्वामीके उस आदेशका पालन नहीं करता; किंतु उनसे वेतन लेकर खाता है, वह काठका कीड़ा होता है। जो लोभवश प्रजा अथवा राजासे धन लेकर खाता है, वह कर्मचारी तीन सौ कल्पोंतक नरकमें पड़ा रहता है। जो अपना काम बनाता और स्वामीको लूटता है, वह मन्दबुद्धि मानव तीन सौ कल्पोंतक घरका चूहा होता है। जो राजकर्मचारी राजाके सेवकोंको अपने घरके काममें लगाता है, वह बिल्ली होता है। देव! मैं आपकी आज्ञासे धर्मपूर्वक प्रजाका शासन करता था। प्रभो! मैं मुनियों तथा धर्मशास्त्र आदिके द्वारा भलीभाँति विचार करके पुण्य-कर्म करनेवालेको पुण्यफलसे और पाप [illegible] फलसे संयुक्त करता था। [illegible] आपका वह दिन पूरा होता है, तबतक [illegible] अनुसार मैं सब काम करता आता हूँ और [illegible] हूँ, किंतु आज राजा रुक्माङ्गदने मेरा [illegible] दिया है। जगन्नाथ! उस [illegible] हुई समूची पृथ्वीके लोग [illegible] भोजन नहीं करते हैं और उनके प्रभावसे [illegible] धाममें चले जाते हैं; वह भी [illegible] पितामहोंको भी साथ ले लेते हैं। [illegible] वालोंके पितर तो वैकुण्ठलोकमें रहते ही हैं [illegible] पितर तथा माताके पिता-माता [illegible] चले जाते हैं। फिर उन सबके भी जो [illegible]

उनके पूर्वज भी वैकुण्ठगामी हो जाते हैं। यही नहीं, उनकी पत्नियोंके पिता भी मेरी लिपिको मिटाकर विष्णुधामको चले जाते हैं। पिता आदिके साथ वीर्यका सम्बन्ध है और माताने तो गर्भमें ही धारण किया है। अतः उनकी सद्गति हो तो कोई अनुचित बात नहीं है। नियम यह है कि एक पुरुष जो कर्म करता है, उसका उपभोग भी वह अकेले ही करता है। ब्रह्मन्! कर्तासे भिन्न जो उसके पिता हैं, उनके वीर्यसे उसका जन्म हुआ है और माताके पेटसे वह पैदा हुआ है। इसलिये वह जिसको पिण्ड देनेका अधिकारी है और जिससे उसका शरीर प्रकट हुआ है, ऐसे पिता और माता इन दोनों पक्षोंको वह तार सकता है। किंतु वह पत्नीका वीर्य तो है नहीं और न पत्नीने उसे गर्भमें धारण किया है। अतः जगन्नाथ! पति या दामादके पुण्यकी महिमासे उसकी पत्नी तथा श्वशुर पक्षके लोग कैसे परम पदको प्राप्त होते हैं! इसीसे मेरे सिरमें चक्कर आ रहा है। पद्मयोने! वह अपने साथ पिता, माता और पत्नी—इन तीन कुलोंका उद्धार करके मेरे लोकका मार्ग त्यागकर विष्णुधाममें पहुँच जाता है। वैष्णव-व्रत एकादशीका पालन करनेवाला पुरुष जैसी गतिको पाता है, वैसी गति और किसीको नहीं मिलती। एकादशीके दिन अपने शरीरमें आँवलेके फलका लेपन करके भोजन छोड़कर मनुष्य दुष्कर्मोंसे युक्त होनेपर भी भगवान् धरणीधरके लोकमें चला जाता है। देव! अब मैं निराश हो गया हूँ। इसलिये आपके युगल चरणारविन्दोंकी सेवामें उपस्थित हुआ हूँ। आपकी सेवामें अपने दुःखका निवेदनमात्र कर देनेसे आप सबको अभयदान देते हैं। इस समय जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहारके लिये जो समयोचित कार्य प्रतीत हो, उसे आप करें। अब पृथ्वीपर वैसे पापी मनुष्य नहीं हैं, जो मेरे भूतगणोंद्वारा सांकल और पाशमें बाँधकर मेरे समीप लाये जायँ और मेरे अधीन हों। सूर्यके तापसे युक्त जो यमलोकका मार्ग था, उसे अत्यन्त तीन हाथवाले विष्णुभक्तोंने नष्ट कर दिया; अतः समस्त जन-समुदाय कुम्भीपाककी यातनाको त्यागकर परात्पर श्रीहरिके धाममें चला जा रहा है।

त्रिभुवनपूजित देव! निरन्तर जाते हुए मनुष्योंसे ठसाठस भरे रहनेके कारण भगवान् विष्णुके लोकका मार्ग घिस गया है। जगत्पते! मैं समझता हूँ कि भगवान् विष्णुके लोकका कोई माप नहीं है, वह अनन्त है। तभी तो सम्पूर्ण जीव-समुदायके जानेपर भी भरता नहीं है। राजा रुक्माङ्गदने एक हजार वर्षसे इस भूमण्डलका शासन प्रारम्भ किया है और इसी बीचमें असंख्य मानवोंको चतुर्भुज रूप दे पीत वस्त्र, वनमाला और मनोहर अङ्गरागसे सुशोभित करके उन्हें गरुड़की पीठपर बिठाकर वैकुण्ठधाममें पहुँचा दिया। देवेश! लक्ष्मीपतिका प्रिय भक्त रुक्माङ्गद यदि पृथ्वीपर रह जायगा तो वह सम्पूर्ण लोकको भगवान् विष्णुके अनामय धाम वैकुण्ठमें पहुँचा देगा। लीजिये यह रहा आपका दिया हुआ दण्ड और यह है पट; यह सब मैंने आपके चरणोंमें अर्पित कर दिया। देवेश्वर! राजा रुक्माङ्गदने मेरे अनुपम लोकपाल-पदको मिट्टीमें मिला दिया। धन्य है उसकी माता, जिसने उसे गर्भमें धारण किया था। मातासे उत्पन्न हुआ अधिक गुणवान् पुत्र सम्पूर्ण दुःखोंका विनाश करनेवाला होता है। माताको क्लेश देनेवाले पुत्रके जन्म लेनेसे क्या लाभ? देव! कुपुत्रको जन्म देनेवाली माताने व्यर्थ ही प्रसवका कष्ट भोगा है! विरञ्चे! निःसंदेह इस संसारमें एक ही नारी वीर पुत्रको जन्म देनेवाली है, जिसने मेरी लिपिको मिटा देनेके लिये रुक्माङ्गदको उत्पन्न किया है। देव! पृथ्वीपर अबतक किसी भी राजाने ऐसा कार्य नहीं किया था। अतः भगवन्! जो भयंकर नगाड़ा बजाकर मेरे लोकके मार्गका लोप कर रहा है और निरन्तर भगवान् विष्णुकी सेवामें लगा हुआ है, उस रुक्माङ्गदके पृथ्वीके राज्यपर स्थित रहते मेरा जीवन सम्भव नहीं!

ब्रह्माजीके द्वारा यमराजको भगवान् तथा उनके भक्तोंकी श्रेष्ठता बताना

ब्रह्माजी बोले—धर्मराज! तुमने क्या आश्चर्यकी बात देखी है? क्यों इतने खिन्न हो रहे हो? किसीके उत्तम गुणोंको देखकर जो मनमें संताप होता है, वह मृत्युके तुल्य माना गया है। सूर्यनन्दन! जिनके नामका उच्चारण करनेमात्रसे परम पद प्राप्त हो जाता है, उन्हींकी प्रीतिके लिये उपवास करके मनुष्य वैकुण्ठधामको क्यों न जाय? भगवान् श्रीकृष्णके लिये किया हुआ एक बारका प्रणाम दस अश्वमेध यज्ञोंके अवभृथ-स्नानके समान है। फिर भी इतना अन्तर है कि दस अश्वमेध यज्ञ करनेवाला मनुष्य पुण्यभोगके पश्चात् पुनः इस संसारमें जन्म लेता है; परंतु श्रीकृष्णको प्रणाम

करनेवाला पुरुष फिर संसार-बन्धनमें नहीं पड़ता*। जिसकी जिह्वाके अग्रभागपर 'हरि' यह दो अक्षर विराजमान है, उसे कुरुक्षेत्र, काशी और विरजतीर्थके सेवनकी क्या आवश्यकता है ? क्योंकि जो खिलवाड़में भी भगवान् विष्णुके नामका उच्चारण और श्रवण कर लेता है, वह मनुष्य गङ्गाजीके जलमें स्नान करनेसे प्राप्त हुई पवित्रताके तुल्य पवित्रता प्राप्त कर लेता है। त्रिभुवननाथ पुरुषोत्तम हमारे जन्मदाता हैं, उनके दिन (एकादशी) का सेवन करनेवाले पुरुषपर शासन कैसे चल सकता है ? जो राजकर्मचारी इस पृथ्वीपर राजाके श्रेष्ठ भक्तोंको नहीं जानता, वह उनके विरुद्ध सम्पूर्ण आयास करके भी फिर उन्हींके द्वारा दण्डनीय होता है। अतः राजकार्यमें नियुक्त हुए पुरुषको चाहिये कि वे अपराधी होनेपर भी राजाके प्रिय जनोंपर शासन न करें, क्योंकि वे स्वामीके प्रसादसे सिद्ध (कृतकार्य) होते हैं [illegible] भी शासन कर सकते हैं। सूर्यनन्दन ! [illegible] होनेपर भी भगवान् जनार्दनके [illegible] हैं, उनपर तुम्हारा शासन कैसे चल सकता है ? [illegible] शासन करना तो मूर्खताका ही सूचक है। [illegible] ! [illegible] भगवान् शिवके, सूर्यके अथवा मेरे भक्तों [illegible] हो तो मैं तुम्हारी कुछ सहायता कर सकता हूँ; [illegible] नन्दन ! विष्णुभक्तोंके साथ सामना होनेपर मैं कोई [illegible] नहीं कर सकूँगा; क्योंकि भगवान् पुरुषोत्तम सभी [illegible] आदि हैं। भगवान् मधुसूदनके भक्तोंको दण्ड देना [illegible] नहीं है। जिन्होंने किसी बहानेसे भी दोनों [illegible] ([illegible] संयुक्त) द्वादशीका सेवन किया है, उनके द्वारा यदि तुम्हारा अपमान हुआ है तो उसमें मैं तुम्हारा सहायक नहीं हो सकता।

यमराजकी इच्छा-पूर्ति और भक्त रुक्माङ्गदका गौरव बढ़ानेके लिये ब्रह्माजीका अपने मनसे एक सुन्दरी नारीको प्रकट करना, नारीके प्रति वैराग्यकी भावना तथा उस सुन्दरी 'मोहिनी' का मन्दराचलपर जाकर मोहक संगीत गाना

यमराजने कहा—तात ! वेद जिनके चरण हैं, उन भगवान्‌को नमस्कार करनेमें ही सबका हित है; इस बातको मैंने भी समझा है। जगत्पते ! फिर भी जबतक राजा रुक्माङ्गद पृथ्वीका शासन करता है, तबतक मेरा चित्त शान्त नहीं रह सकता। देवश्रेष्ठ ! यदि एकमात्र रुक्माङ्गदको ही आप एकादशीके दिन धैर्यसे विचलित कर दें, तो मैं आपका किङ्कर बना रहूँगा। देव ! उसने मेरे पटका लेख मिटा दिया है। आजसे जो मानव देवताओंके स्वामी भगवान् विष्णुका स्मरण, स्तवन अथवा उनके लिये उपवास-व्रत करेंगे, उनपर मैं कोई शासन नहीं करूँगा। जो मनुष्य किसी दूसरे व्याजसे भी सहसा हरि-नामका उच्चारण कर लेते हैं, वे माताके गर्भसे छुटकारा पा जाते हैं। वे चतुर मानव मेरे पटके [illegible] नहीं आते तथा देवताओंके समुदाय भी उन्हें नमस्कार करते हैं†।

सौति कहते हैं—वैवस्वत यमके [illegible] और उनके सम्मानकी रक्षा करनेके लिये (और रुक्माङ्गदका गौरव बढ़ानेके लिये) देवेश्वर ब्रह्माजीने कुछ देरतक विचार किया। सम्पूर्ण प्राणियोंके [illegible] भगवान् [illegible] क्षणभर चिन्तन करनेके पश्चात् सम्पूर्ण [illegible] डालनेवाली एक नारीको उत्पन्न किया। [illegible] निर्मित हुई वह देवी संसारकी समस्त सुन्दरियोंमें [illegible] प्रकाशमान थी। सम्पूर्ण आभूषणोंसे विभूषित हो [illegible] आगे खड़ी हुई। रूपके वैभवसे [illegible] उस सुन्दरीको [illegible] देख ब्रह्माजीने अपनी आँखें मूँद लीं। उन्होंने [illegible]

---

* एको हि कृष्णस्य कृतप्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः। दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म [illegible] न [illegible]॥
([illegible])

† हरिरिति सहसा ये संगृणन्ति च्छलेन जननिजठरमार्गाच्चे विमुक्ता हि मर्त्याः।
मम पटविलिपिं ते नो विशन्ति प्रवीणा दिविचरदरलब्धैरे [illegible]
([illegible])

भी लक्ष्य किया कि मेरे स्वजन काममोहित होकर इस सुन्दरी-की ओर देख रहे हैं। तब उन्होंने उन सबको समझाते हुए कहा—'जो यहाँ माता, पुत्री, पुत्रवधू, भौजाई, गुरुपत्नी तथा राजाकी रानीकी ओर रागयुक्त मन और आसक्तिपूर्ण दृष्टिसे देखता या उनका चिन्तन करता है, वह घोर नरकमें पड़ता है। जो मनुष्य इन प्रमदाओंको देखकर क्षोभको प्राप्त होता है, उसका जन्मभरका किया हुआ पुण्य व्यर्थ हो जाता है। यदि उन रमणियोंका सङ्ग करे तो दस हजार जन्मोंका पुण्य नष्ट होता है और पुण्यका नाश होनेसे पापी मनुष्य अवश्य ही पहाड़ी चूहा होता है; अतः विद्वान् पुरुष इन युवतियोंको न तो रागयुक्त दृष्टिसे देखे और न रागयुक्त हृदयसे इनका चिन्तन ही करे।

धर्मराज ! जो पुत्रवधू अपने श्वशुरको अपने खुले अङ्ग दिखाती है, उसके हाथ और पैर गल जाते हैं तथा वह 'कृमिभक्ष' नामक नरकमें पड़ती है। जो पापी मनुष्य पुत्रवधूके हाथसे पैर धुलवाता, स्नान करता अथवा शरीरमें तेल आदि मालिश कराता है, उसकी भी ऐसी ही गति होती है। वह एक हजार वर्षतक काले रंगके मुखवाले सूचीमुख नामक कीड़ोंका भक्ष्य बना रहता है। अतः मनुष्य कामनायुक्त मनसे किसी भी नारीकी ओर विशेषतः पुत्री अथवा पुत्रवधूकी ओर न देखे। जो देखता है, वह उसी क्षण पतित हो जाता है। इस प्रकार विचार करके ब्रह्माजीने अपनी दृष्टि और सूक्ष्म कर ली और कहा—'यह जो गोल गोल और कुछ ऊँचाई लिये हुए सुन्दर मुँह दिखायी देता है, वह हड्डियोंका ढाँचामात्र ही तो है, जो चर्म और माससे ढका हुआ है। स्त्रियोंके शरीरमें जो दो सुन्दर नेत्र स्थित हैं, वे वसा और मेदके सिवा और क्या हैं ? छातीपर दोनों स्तनोंमें यह अत्यन्त ऊँचा मास ही तो स्थित है। जघनदेशमें भी अधिक मास ही भरा हुआ है। जिस योनिपर तीनों लोकोंके प्राणी मुग्ध रहते हैं, वह छिपा हुआ मूत्रका ही तो द्वार है। वीर्य और हड्डियोंसे भरा हुआ शरीर केवल माससे ढका होनेके कारण कैसे सुन्दर कहा जा सकता है ? मांस, मेद और चर्बी ही जिसका सार-सर्वस्व है, देहधारियोंके उस शरीरमें सार-तत्त्व क्या है ? बताओ। विष्ठा, मूत्र और मलसे पुष्ट हुए शरीरसे कौन मनुष्य अनुरक्त होगा ?' इस प्रकार ब्रह्माजीने ज्ञानदृष्टिसे बहुत विचार करके उस नारीसे कहा—'सुन्दरी ! जिस प्रकार मैंने मनसे तुम श्रेष्ठ वर्णवाली नारीकी सृष्टि की है, उसके अनुरूप ही तुम मनको उन्मत्त बना देनेवाली उत्पन्न हुई हो।'

तब उस नारीने चतुर्मुख ब्रह्माजीको प्रणाम करके कहा—'नाथ ! देखिये, योगियोंसहित समस्त चराचर जगत् मेरे रूपसे मोहित हो गया है; तीनों लोकोंमें कोई भी ऐसा पुरुष नहीं है, जो मुझे देखकर क्षुब्ध न हो जाय। कल्याणकी इच्छा रखनेवाले किसी पुरुषको अपनी स्तुति नहीं करनी चाहिये; तथापि कार्यके उद्देश्यसे मुझे अपनी प्रशंसा करनी पड़ी है। ब्रह्मन् ! आपने किसीके चित्तमें क्षोभ उत्पन्न करनेके लिये ही मेरी सृष्टि की है; अतः जगन्नाथ ! उसका नाम बताइये, मैं निस्संदेह उसको क्षुब्ध कर डालूँगी। देव ! पृथ्वीपर मुझे देखकर पहाड़ भी मोहित हो जायगा; फिर साँस लेनेवाले जङ्गम प्राणीके लिये तो कहना ही क्या ? इसीलिये पुराणोंमें नारीकी ओर देखना, उसके रूपकी चर्चा करना मनुष्योंके लिये उन्मादकारी बतलाया गया है। वह कठिन-से-कठिन व्रतका भी नाश करनेवाला है। मनुष्य तभीतक सन्मार्गपर चलता रहता है, तभीतक इन्द्रियोंको काबूमें रखता है, तभीतक दूसरोंसे लज्जा करता है और तभीतक विनयका आश्रय लेता है, जबतक कि धैर्यको छीन लेनेवाले युवतियोंके नीली पाँखवाले नेत्ररूपी बाण हृदयमें गहरी चोट नहीं पहुँचाते। नाथ ! मदिराको तो जब मनुष्य पी लेता है, तब वह चतुर पुरुषके मनमें मोह उत्पन्न करती है; परंतु

युवती नारी दूरसे दर्शन और स्मरण करनेपर ही मोहमें डालती है; अतः वह मदिरासे बढ़कर है *।'

ब्रह्माजीने कहा—देवि ! तुमने ठीक कहा है । तुम्हारे लिये तीनों लोकोंमें कुछ भी असाध्य नहीं है । ऐसी शक्ति रखनेवाली तुम सम्पूर्ण लोकोंके चित्तका अपहरण क्यों न करोगी । यह सत्य है कि तुम्हारा रूप सबको मोह लेनेवाला है । मैंने जिस उद्देश्यसे तुम्हारी सृष्टि की है, उसे सिद्ध करो । शुभे ! वैदिश नगरमें रुक्माङ्गद नामसे प्रसिद्ध एक राजा हैं । उनकी पत्नीका नाम सन्ध्यावली है, जो रूपमें तुम्हारे ही समान है । उसके गर्भसे राजकुमार धर्माङ्गदका जन्म हुआ है, जो पितासे भी अत्यधिक प्रतापी है । उसमें एक लाख हाथीका बल है और प्रतापमें तो वह सूर्यके ही समान है । क्षमामें पृथ्वीके और गम्भीरतामें वह समुद्रके समान है । तेजसे अग्निके समान प्रज्वलित होता है । त्यागमें राजा बलि, गतिमें वायु, सौम्यतामें चन्द्रमा तथा रूपमें कामदेवके समान है । राजकुमार धर्माङ्गद राजनीतिमें बृहस्पति और शुक्राचार्यको भी परास्त करता है । वरानने ! पिताने केवल एक (अखण्ड) रूपमें समस्त जम्बूद्वीपका भोग किया है; किंतु धर्माङ्गदने अन्य द्वीपोंपर भी अधिकार प्राप्त कर लिया है । उसने माता-पिताके संकोचवश अभीतक स्त्रीसुखका अनुभव नहीं किया । सहस्रों राजकुमारियाँ उसकी पत्नी होनेके लिये स्वयं आयीं, किंतु उसने सबको त्याग दिया । वह घरमें रहकर कभी पिताकी आज्ञाके पालनसे विचलित नहीं होता । चारुहासिनि ! धर्माङ्गदके तीन सौ माताएँ हैं । वे सब-की-सब सोनेके महलोंमें रहती हैं । राजकुमार उन सबके प्रति समानरूपसे पूज्य दृष्टि रखता है । रुक्माङ्गदके जीवनमें धर्मकी ही प्रधानता है । वे पुत्ररत्नसे सम्पन्न हैं । मोहिनी ! तुम उत्तम मन्दराचलपर उन्हीं नरेशके समीप जाओ और उन्हें मोहित करो । सुन्दरी ! तुमने इस सम्पूर्ण जगत्को मोहित कर लिया है, अतः देवि ! तुम्हारे इस गुणके अनुरूप ही तुम्हारा 'मोहिनी' नाम होगा ।

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर मोहिनी ब्रह्माजीको प्रणाम करके मन्दराचलकी ओर प्रस्थित हुई । [illegible] ([illegible] घड़ी) में वह पर्वतके शिखरपर जा पहुँची । [illegible] पर्वत है, जिसे पूर्वकालमें भगवान् [illegible] अपनी पीठपर धारण किया था और [illegible] जिसके द्वारा क्षीरसागरका मन्थन किया गया [illegible] पर्वत भगवान्के कूर्म-शरीरसे रगड़ [illegible] तथा जिसने क्षीरसागरमें पड़कर उसकी गहराई [illegible] इसे स्पष्ट दिखा दिया । [illegible] भाँति-भाँतिकी धातुओंसे सम्पन्न है । [illegible] क्रीड़ा और विहारका स्थान है । [illegible] वह प्रमुख साधन है । उसका मूलभाग [illegible] तक नीचे गया है । इतना ही उसका विस्तार भी है और ऊँचाईमें भी उसका यही माप है । वह अपने [illegible] रत्नमय शिखरोंसे पृथ्वी और आकाशको प्रकाशित [illegible] है । मोहिनी उस मन्दराचलपर जा पहुँची । उसकी [illegible] प्रभा भी स्वर्णके ही समान थी; अतः वह अपनी [illegible] भी उस पर्वतके तेजको बढ़ा रही थी । वह राजा [illegible] मिलनेकी इच्छा रखकर पर्वतकी एक विशाल शिखर [illegible] जिसका विस्तार सात योजन था । वह [illegible] नीली कान्तिसे सुशोभित थी । राजेन्द्र ! उस शिखरपर वज्रमय शिवलिङ्ग स्थापित था, जिसकी ऊँचाई [illegible] थी । वह वृषलिङ्गके नामसे विख्यात था और [illegible] पड़ता था, मानो महलके ऊपर सुन्दर [illegible] पा रहा हो । द्विजवरो ! मोहिनीने उस शिवलिङ्गके [illegible] उत्तम संगीत प्रारम्भ किया । वीणाकी झंकार और [illegible] स्वरसे युक्त वह श्रेष्ठ गीत मानसिक क्लेशको दूर करनेवाला था । वह सुन्दरी शिवलिङ्गके अत्यन्त निकट होकर [illegible] और तालके साथ गान्धारस्वरमें गीत गा रही थी । [illegible] उसका वह गान कामवेदनाको बढ़ानेवाला था । [illegible] उस संगीतके प्रारम्भ होनेपर [illegible] स्पृहा हो गयी । देवताओं तथा दैत्योंके [illegible] वैसा मोहक संगीत नहीं हुआ था । मोहिनीके [illegible] हुआ वह गान चित्तको मोह लेनेवाला था ।

---

* पीतं हि मद्यं मनुजेन नाथ करोति मोहं सुविचक्षणस्य । स्मृता च दृष्टा युवती नरेण विमोहयेत् [illegible]

([illegible])

रुक्माङ्गद-धर्माङ्गद-संवाद, धर्माङ्गदका प्रजाजनोंको उपदेश और प्रजापालन तथा रुक्माङ्गदका रानी सन्ध्यावलीसे वार्तालाप

सौति कहते हैं—महाराज रुक्माङ्गदने मनुष्यलोकके उत्तम भोग भोगते हुए नाना प्रकारसे पीताम्बरधारी भगवान् श्रीहरिकी आराधना की। विप्रगण! युद्धमें पराक्रमसे सुशोभित होनेवाले शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर ली और वैवस्वत यमको जीतकर यमलोकका मार्ग सूना कर दिया। वैकुण्ठका मार्ग मनुष्योंसे भर दिया और उचित समय जानकर अपने पुत्र धर्माङ्गदको बुलाकर कहा—'बेटा! तुम अपने धर्मपर दृढतापूर्वक डटे रहकर अपने पराक्रमसे इस धनधान्यसम्पन्न पृथ्वीका सब ओरसे पालन करो। पुत्रके समर्थ हो जानेपर जो उसे राज्य नहीं सौंप देता, उस राजाके धर्म तथा कीर्तिका निश्चय ही नाश हो जाता है। अपने शक्तिशाली पुत्रके द्वारा यदि पिता सुखी न हो तो उस पुत्रको तीनों लोकोंमें अवश्य पातकी जानना चाहिये। पिताका भार हल्का करनेमें समर्थ होकर भी जो पुत्र उस भारको नहीं सँभालता, वह माताके मल-मूत्रकी भाँति पैदा हुआ है। पुत्र वही है, जो इस पृथ्वीपर पितासे भी अधिक ख्याति लाभ करे। यदि पुत्रके अन्यायजनित दुःखसे पिताको रातभर जागना पड़े तो वह पुत्र एक कल्पतक नरकमें पड़ा रहता है। जो पुत्र घरमें रहकर पिताकी प्रत्येक आज्ञाका पालन करता है, वह देवताओंद्वारा प्रशंसित हो भगवान्‌का सायुज्य प्राप्त करता है। पुत्र! मैं प्रजाजनोंकी रक्षाके लिये इस पृथ्वीपर सदा नाना प्रकारके कर्मोंमें आसक्त रहा। प्रजा-पालनमें संलग्न होकर मैंने कभी भोजन और शयनकी परवा नहीं की। कुछ लोग शिवकी उपासनामें तत्पर रहते हैं, कुछ लोग भगवान् सूर्यके भजन-ध्यानमें संलग्न हैं, कोई ब्रह्माजीके पथपर चलते हैं और दूसरे लोग पार्वतीजीकी आराधनामें स्थित हैं। कुछ लोग सायंकाल और सबेरे अग्निहोत्र कर्ममें लगे होते हैं। 'बालक हो या युवक, बूढ़ा हो या गर्भिणी स्त्री, कुमारी कन्या, रोगी पुरुष अथवा किसी कष्टसे व्याकुल मनुष्य—ये सब उपवास नहीं कर सकते।' इस तरहकी बातें जिन्होंने कहीं, उन सबकी बातोंका मैंने सब तरहसे खण्डन किया और बहुत दिनोंतक पुराणोंमें कहे हुए वचनोंद्वारा प्रजाके सुखके लिये उन्हें बार-बार समझाया। विद्वानोंको शास्त्रदृष्टिसे समझाकर और मूर्खोंको दण्डपूर्वक काबूमें करके मैं एकादशीके दिन सबको निराहार रखता आया हूँ।

'वत्स! अपने हों या पराये, कभी किसीको दुःख नहीं देना चाहिये। जो राजा प्रजाकी रक्षा करता है, उसे पुराणोंमें अक्षय लोकोंकी प्राप्ति बतायी गयी है। अतः सौम्य! मैं प्रजाके लिये सदा कर्तव्य पालनमें लगा रहा। अपने शरीरको विश्राम देनेका मुझे कभी अवसर नहीं मिला। बेटा! मुझे कभी मदिरा पीने और जूआ खेलने आदिके सुखकी इच्छा नहीं होती। वत्स! इन दुर्व्यसनोंमें फँसा हुआ राजा शीघ्र नष्ट हो जाता है। पुत्र! तुम्हारे ऊपर राज्यका भार रखकर मैं (प्रजाजनोंके रक्षार्थ) शिकार खेलने जाना चाहता हूँ और इसी बहाने अनेकानेक पर्वत, वन, नदी और भाँति-भाँतिके सरोवर देखना चाहता हूँ।'

धर्माङ्गदने कहा—पिताजी! मैं आपके राज्यसम्बन्धी भारी भारको आजसे अपने ऊपर उठाता हूँ। आपकी आज्ञापालन करनेके सिवा मेरे लिये दूसरा कोई धर्म नहीं है। जो पिताकी बात नहीं मानता, वह धर्मानुष्ठान करते हुए भी नरकमें पड़ता है। इसलिये मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा।

ऐसा कहकर धर्माङ्गद हाथ जोड़े खड़े रहे। उनके इस वचनको सुनकर राजा रुक्माङ्गद बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने (प्रजाके रक्षार्थ) मृगयाके लिये वनमें जानेका निश्चय किया और पुत्रकी अनुमति प्राप्त कर ली। इस बातको जानकर धर्माङ्गदने प्रसन्नचित्त हो प्रजावर्गको बुलाया और इस प्रकार कहा—'प्रजागण! पिताने मुझे आपलोगोंके पालन और हित-साधनके लिये नियुक्त किया है। सर्वथा धर्म-पालनकी इच्छा रखनेवाले मुझ-जैसे पुत्रको पिताकी आज्ञाका सदैव पालन करना चाहिये। पुत्रके लिये पिताके आदेशका पालन करनेके सिवा दूसरा कोई धर्म नहीं है। अब मैं दण्ड धारण करके राजाके पदपर स्थित हुआ हूँ। मेरे जीते-जी यहाँ कहीं यमराजका शासन नहीं चल सकता। ऐसा समझकर आप सब लोगोंको भगवान् गरुडध्वजका स्मरण तथा भगवदर्पणबुद्धिसे कर्म करते हुए उसके द्वारा भगवान् जनार्दनका यजन करते रहना चाहिये। संसारके भोगोंसे ममता हटाकर अपनी-अपनी जातिके लिये विहित कर्मद्वारा भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये। इससे आपको अक्षय लोकोंकी प्राप्ति होगी। प्रजाजनो! यह मैंने पिताजीके मार्गसे एक अधिक मार्ग आपको दिखाया है। ब्रह्मार्पणभावसे कर्ममें संलग्न होकर आप सब लोग ज्ञानमें निपुण

हो जायँ। एकादशीके दिन भोजन नहीं करना चाहिये—यह पिताजीका बताया हुआ सनातन मार्ग तो है ही; यह ब्रह्मनिष्ठारूप विशेष मार्ग आपके लिये मैंने बताया है। तत्त्ववेत्ता पुरुषोंको इस ब्रह्मनिष्ठारूप मार्गका अवलम्बन अवश्य करना चाहिये। इससे इस संसारमें पुनः नहीं आना पड़ता।'

इस प्रकार सम्पूर्ण प्रजाको अनुनयपूर्वक बारंबार आश्वासन देकर धर्माङ्गद उनके पालनमें लगे रहे। वे न तो दिनमें सोते थे और न रातमें ही। वे अपने शौर्यके बलसे पृथ्वीको निष्कण्टक बनाते हुए सर्वत्र भ्रमण करते थे। हाथीके मस्तकपर रक्खा हुआ उनका नगाड़ा प्रतिदिन बजता और कर्तव्यपालनकी घोषणा इस प्रकार करता रहता था—'लोगो!

(एकादशीसंयुक्त) द्वादशीको [illegible] करते हुए [illegible] रहित हो जाओ और नाना प्रकारके [illegible] [illegible] चिन्तन करते रहो। भगवान् पुरुषोत्तम ही [illegible] और [illegible] भोक्ता हैं। सूर्यमें, मुझे [illegible] [illegible] जगदीश्वर भगवान् विष्णु व्याप्त हो रहे हैं। धर्म, [illegible] कामरूप त्रिवर्गकी भी इच्छा रखनेवाले [illegible] [illegible] का स्मरण करना चाहिये। इसी प्रकार [illegible] कर्तव्य-कर्मका आचरण करते हुए भी उन्हीं [illegible] का चिन्तन करना चाहिये। वे भगवान् पुरुषोत्तम ही [illegible] और भोग्य हैं, सब कर्मोंमें उन्हींका [illegible]—उन्हींकी प्रसन्नताके लिये कर्मोंका अनुष्ठान करना उचित है।' इस प्रकार मेघकी गर्जनाके समान गम्भीर [illegible] श्रेष्ठ ब्राह्मण उपर्युक्त बातें दुहराया करते थे। राजन्! इस तरह धर्मका सम्पादन करके धर्माङ्गदके पिताने जब [illegible] लिया कि मेरा पुत्र मुझसे भी अधिक [illegible] है तो वे अत्यन्त प्रसन्न हो द्वितीय लक्ष्मीके समान [illegible] अपनी धर्मपत्नीसे बोले—'सन्ध्यावलि! मैं धन्य हूँ तथा [illegible] वाली देवि! तुम भी धन्य हो; क्योंकि [illegible] [illegible] किया हुआ पुत्र इस पृथ्वीपर चन्द्रमाके समान [illegible] कीर्तिसे प्रकाशित हो रहा है। सुन्दरी! यह निश्चय है कि सदाचार और पराक्रमसे [illegible] विनयशील एवं [illegible] पुत्र प्राप्त होनेपर पिताके लिये घरमें ही मोक्ष है। किंतु अब मैं प्रसन्नतापूर्वक शिकार खेलने एवं जंगली पशुओंको [illegible] लिये वनमें जाऊँगा। विशाललोचने! वहाँ स्वच्छन्द [illegible] हुए मैं जन-रक्षाका कार्य करूँगा।

रानी सन्ध्यावलीका पतिको मृगोंकी हिंसासे रोकना, राजाका वामदेवके आश्रमपर जाना तथा उनसे अपने पारिवारिक सुख आदिका कारण पूछना

वसिष्ठजी कहते हैं—पतिका यह वचन सुनकर विशाल नेत्रोंवाली रानी सन्ध्यावलीने कहा—'राजन्! आपने पुत्रपर सातों द्वीपोंके पालनका भार रख दिया। अब यह मृगोंकी हिंसा छोड़कर यज्ञोंद्वारा भगवान् जनार्दनकी आराधना कीजिये और भोगोंकी अभिलाषा त्यागकर देवनदी गङ्गाका सेवन कीजिये। आपके लिये अब यही न्यायोचित कर्तव्य है; मृगोंके प्राण लेना न्यायकी बात नहीं है। पुराणोंमें [illegible] है कि [illegible]—परम धर्म है। जो हिंसामें प्रवृत्त होता है, [illegible] व्यर्थ हो जाता है। राजन्! [illegible] [illegible] बतायी है। पहला हिंसक वह है, जो [illegible] अनुमोदन [illegible] है। दूसरा वह है, जो जीवको मारता है। जो [illegible] करके जीवको फँसाता है, वह तीसरे [illegible] हिंसक है। [illegible]

हुए, मृगका मार्ग बतानेवाला चौथा हिंसक है; उस मार्गको पकड़कर शिकार करनेवाला पाँचवाँ हिंसक है तथा राजन्! जो राजा उसका अनुमोदन करता है, वह छठा हिंसक है। विद्वान् पुरुषोंने हिंसायुक्त धर्मको अधर्म ही माना है। धर्मात्मा राजाओंमें भी मृगोंके प्रति दया-भावना होना ही श्रेष्ठ माना गया है। मैंने आपके हितकी भावनासे ही बार-बार आपको मृगयासे रोकनेका प्रयत्न किया है।'

ऐसी बातें करती हुई अपनी धर्मपत्नीसे राजा रुक्माङ्गदने कहा—'देवि! मैं मृगोंकी हत्या नहीं करूँगा। मृगयाके बहाने हाथमें धनुष लेकर वनमें विचरण करूँगा। वहाँ जो प्रजाके लिये कण्टकरूप हिंसक जन्तु हैं, उन्हींका वध करूँगा। जनपदमें मेरा पुत्र रहे और वनमें मैं। वरानने! राजाको हिंसक जन्तुओं और लुटेरोंसे प्रजाकी रक्षा करनी चाहिये। शुभे! अपने शरीरसे अथवा पुत्रके द्वारा प्रजाकी रक्षा करना अपना धर्म है। जो राजा प्रजाकी रक्षा नहीं करता, वह धर्मात्मा होनेपर भी नरकमें जाता है; अतः प्रिये! मैं हिंसाभावका परित्याग करके जन-रक्षाके उद्देश्यसे वनमें जाऊँगा।'

रानी सन्ध्यावलीसे ऐसा कहकर राजा रुक्माङ्गद अपने उत्तम अश्वपर आरूढ हुए। वह घोड़ा पृथ्वीका आभूषण, चन्द्रमाके समान धवल वर्ण और अश्वसम्बन्धी दोषोंसे रहित था। रूपमें उच्चैःश्रवाके समान और वेगमें वायुके समान था। राजा रुक्माङ्गद पृथ्वीको कम्पित करते हुए-से चले। वे नृपश्रेष्ठ अनेक देशोंको पार करते हुए वनमें जा पहुँचे। उनके घोड़ेके वेगसे तिरस्कृत हो कितने ही हाथी, रथ और घोड़े पीछे छूट जाते थे। वे राजा रुक्माङ्गद एक सौ आठ योजन भूमि लाँघकर सहसा मुनियोंके उत्तम आश्रमपर पहुँच गये। घोड़ेसे उतरकर उन्होंने आश्रमकी रमणीय भूमिमें प्रवेश किया, जहाँ पेड़ोंके बगीचे आश्रमकी शोभा बढ़ा रहे थे। अशोक, बकुल (मौलसिरी), पुन्नाग (नागकेसर) तथा सरल (अर्जुन) आदि वृक्षोंसे वह स्थान घिरा हुआ था। राजाने उस आश्रमके भीतर जाकर द्विजश्रेष्ठ महर्षि वामदेवका दर्शन किया, जो अग्निके समान तेजस्वी जान पड़ते थे। उन्हें बहुत-से शिष्योंने घेर रक्खा था। राजाने मुनिको देखकर उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम किया। उन महर्षिने भी अर्घ्य, पाद्य आदिके द्वारा राजाका सत्कार किया। वे कुशके आसनपर बैठकर हर्षभरी वाणीसे बोले—'मुने! आज मेरा पातक नष्ट

हो गया। भलीभाँति ध्यानमें तत्पर रहनेवाले आप-जैसे महात्माके युगल चरणारविन्दोंका दर्शन करके मैंने समस्त पुण्य-कर्मोंका फल प्राप्त कर लिया।' राजा रुक्माङ्गदकी यह बात सुनकर वामदेवजी बड़े प्रसन्न हुए और कुशल-मङ्गल पूछकर बोले—'राजन्! तुम अत्यन्त पुण्यात्मा तथा भगवान् विष्णुके भक्त हो। महाभाग! तुम्हारी दृष्टि पड़नेसे मेरा यह आश्रम इस पृथ्वीपर अधिक पुण्यमय हो गया। भूमण्डलमें कौन ऐसा राजा होगा, जो तुम्हारी समानता कर सके। तुमने यमराजको जीतकर उनके लोकमें जानेका मार्ग ही नष्ट कर दिया। राजन्! सब लोगोंसे पापनाशिनी (एकादशीसंयुक्त) द्वादशीका व्रत कराकर सबको तुमने अविनाशी वैकुण्ठधाममें पहुँचा दिया। साम, दान, दण्ड और भेद—इन चार प्रकारके सुन्दर उपायोंसे भूमण्डलकी प्रजाको संयममें रखकर अपने कर्म या विपरीत कर्ममें लगी हुई सब प्रजाको तुमने भगवान् विष्णुके धाममें भेज दिया। नरेश्वर! हम भी तुम्हारे दर्शनकी इच्छा रखते थे सो तुमने स्वयं दर्शन दे दिया। महीपाल! चाण्डाल भी यदि भगवान् विष्णुका भक्त है तो वह द्विजसे भी बढ़कर है और द्विज भी यदि विष्णुभक्तिसे रहित है तो वह चाण्डालसे भी अधिक नीच है। भूपाल!

इस पृथ्वीपर विष्णुभक्त राजा दुर्लभ है* । जो राजा भगवान् विष्णुका भक्त नहीं है, वह भूदेवी और लक्ष्मीदेवीकी कृपा नहीं प्राप्त कर सकता । तुमने भगवान् विष्णुकी आराधना करके न्यायोचित कर्तव्यका ही पालन किया है । नृपते ! भगवान्‌की आराधनासे तुम धन्य हो गये हो और तुम्हारे दर्शनसे हम भी धन्य हो गये ।'

वामदेवजीको ऐसी बातें करते देख नृपश्रेष्ठ रुक्माङ्गद, जो स्वभावसे ही विनयी थे, अत्यन्त नम्र होकर उनसे बोले—'द्विजश्रेष्ठ ! आपसे क्षमा माँगता हूँ । भगवन् ! आप जैसा कहते हैं, वैसा महान् मैं नहीं हूँ । विप्रवर ! आपके चरणोंकी धूलके बराबर भी मैं नहीं हूँ । इस जगत्‌में देवता भी कभी ब्राह्मणोंसे बढ़कर नहीं हो सकते; क्योंकि ब्राह्मणोंके सतुष्ट होनेपर जीवकी भगवान् विष्णुमें भक्ति होती है ।' तब वामदेवजीने उनसे कहा—'राजन् ! इस समय तुम मेरे घरपर आये हो । तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है, अतः बोलो, मैं तुम्हें क्या दूँ ? महीपाल ! इस भूतलपर जो सबको अभीष्ट वस्तु प्रदान करता है और एकादशीके दिन डंका पीटकर प्रजाको भोजन करनेसे रोकता है, उसके लिये क्या नहीं दिया जा सकता ।'

तब राजाने हाथ जोड़कर विप्रवर वामदेवजीसे कहा—'ब्रह्मन् ! आपके युगल चरणोंके दर्शनसे मैंने सब कुछ पा लिया । मेरे मनमें बहुत दिनोंसे एक सशय है । मैं उसीके विषयमें आपसे पूछता हूँ; क्योंकि आप सब सदेहोंका निवारण करनेवाले ब्राह्मणशिरोमणि हैं । मुझे किस सत्कर्मके फलसे त्रिभुवनसुन्दरी पत्नी प्राप्त हुई है, जो सदा मुझे अपनी दृष्टिसे कामदेवसे भी अधिक सुन्दर देखती है । परम सुन्दरी देवी सन्ध्यावली जहाँ-जहाँ पैर रखती है, वहाँ-वहाँ पृथ्वी छिपी हुई निधि प्रकाशित कर देती है । उसके अङ्गोंमें बुढ़ापेका प्रवेश नहीं होता । मुनिश्रेष्ठ ! वह सदा शरत्कालके चन्द्रमाकी प्रभाके समान सुशोभित होती है । विप्रवर ! बिना आगके भी वह षड्रस भोजन तैयार कर लेती है और यदि थोड़ी भी रसोई बनाती है तो उसमें करोड़ों मनुष्य भोजन कर लेते है । वह पतिव्रता, दानशीला तथा समस्त प्राणियोंको सुख देनेवाली है । [illegible] ! [illegible] द्वारा भी कभी मेरी [illegible] जो पुत्र उत्पन्न हुआ है, [illegible] तत्पर रहता है । द्विजश्रेष्ठ ! [illegible] केवल मैं ही पुत्रवान् हूँ, [illegible] गुणोंके संग्रहमें पितासे भी बढ़ [illegible] । [illegible] एक द्वीपके स्वामीरूपसे प्रसिद्ध था; [illegible] गया । वह सातों द्वीपोंकी पृथ्वीका [illegible] । [illegible] मेरे लिये विद्युल्लेखा नामसे [illegible] था और युद्धमें उसने [illegible] था । वह रूप-सम्पत्तिसे भी सुशोभित है । [illegible] होकर छः महीनेतक युद्ध किया और [illegible] जीतकर सबको अस्त्रहीन कर दिया । [illegible] वहाँकी स्त्रियोंको युद्धमें जीता और उनको [illegible] को लाकर मुझे समर्पित किया तथा उन [illegible] उसने बारंबार मस्तक झुकाया । पृथ्वीपर [illegible] वस्त्र तथा दिव्य रत्न प्राप्त किये, उन [illegible] दिया । इससे उसकी माताने उसकी बड़ी प्रशंसा की । [illegible] एक ही दिनमें अनेक योजन विस्तृत समूची पृथ्वीको [illegible] रातको मेरे पैरोंमें तेल मालिश करनेके लिये [illegible] आता है । आधी रातमें मेरे [illegible] कवच धारण करके [illegible] इन्द्रियोंवाले सेवकोंको जगाता रहता है । [illegible] शरीर भी नीरोग रहता है । [illegible] घरमें मेरी प्यारी पत्नी सदा [illegible] सब लोग मेरी आज्ञा पालन [illegible] प्रभावसे इस समय मुझे यह सुख [illegible] जन्मका किया हुआ है या दूसरे [illegible] अपनी बुद्धिसे विचारकर मेरा [illegible] । मेरे [illegible] रोग नहीं है । मेरी पत्नी मेरे [illegible] अनन्त ऐश्वर्य है । [illegible] विद्वानोंमें मेरा आदर है और [illegible] मुझमें शक्ति है । अतः मैं [illegible] किसी (विशेष) पुण्यकर्मका फल है ।'

---

* श्वपचोऽपि महीपाल विष्णुभक्तो द्विजाधिकः । विष्णुभक्तिविहीनस्तु [illegible]
दुर्लभं भूप राज्ञो विष्णुभक्ता महीतले ॥ ([illegible])

वामदेवजीका पूर्वजन्ममें किये हुए 'अशून्यशयन-व्रत'को राजाके वर्तमान सुखका कारण बताना, राजाका मन्दराचलपर जाकर मोहिनीके गीत तथा रूप-दर्शनसे मोहित होकर गिरना और मोहिनीद्वारा उन्हें आश्वासन प्राप्त होना

वसिष्ठजी कहते हैं—राजाका यह वचन सुनकर महात्मा मुनीश्वर वामदेवजीने एक क्षणतक कुछ चिन्तन किया। फिर राजाके सुख-सौभाग्यका कारण जानकर वे इस प्रकार बोले।

वामदेवजीने कहा—महीपाल! तुम पूर्वजन्ममें शूद्र-जातिमें उत्पन्न हुए थे। उस समय दरिद्रता तथा दुष्ट भार्याने तुम्हारा बड़ा तिरस्कार किया था। तुम्हारी स्त्री पर-पुरुषका सेवन करती थी। राजन्! तुम ऐसी स्त्रीके साथ बहुत वर्षोंतक निवास करते हुए दुःखसे सतप्त होते रहे। एक समय किसी ब्राह्मणके संसर्गसे तुम तीर्थयात्राके लिये गये; फिर सब तीर्थोंमें घूमकर ब्राह्मणकी सेवामें तत्पर हो, तुम पुण्यमयी मथुरापुरीमें जा पहुँचे। महीपते! वहाँ ब्राह्मणदेवताके सङ्गसे तुमने यमुनाजीके सब तीर्थोंमें उत्तम—विश्रामघाट नामक तीर्थमें स्नान करके भगवान् वाराहके मन्दिरमें होती हुई पुराणकी कथा सुनी, जो 'अशून्यशयन-व्रत'के विषयमें थी; चार पारणसे जिसकी सिद्धि होती है, जिसका अनुष्ठान कर लेनेपर मेघके समान श्यामवर्ण देवेश्वर लक्ष्मीभर्त्ता जगन्नाथ, जो अशेष पापराशिका नाश करनेवाले हैं, प्रसन्न होते हैं। राजन्! तुमने अपने घर लौटकर वह पवित्र अशून्यशयन-व्रत किया, जो घरमें परम अभ्युदय प्रदान करनेवाला है। महीपते! श्रावण मासकी द्वितीयाको यह पुण्यमय-व्रत ग्रहण करना चाहिये। इससे जन्म, मृत्यु और जरावस्थाका नाश होता है। पृथ्वीपते! इस व्रतमें फल, फूल, धूप, लाल चन्दन, शय्यादान, वस्त्रदान और ब्राह्मण-भोजन आदिके द्वारा लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णुकी पूजा करनी चाहिये। राजन्! तुमने यह सब दुष्कर कर्म भी पूरा किया। महीपते! तुमने जो पहले तुम्हारे पत्नीरूपसे सुख विस्तारपूर्वक बताये हैं, वे इसी व्रतसे प्राप्त हुए हैं, सुनो—जिसके ऊपर भगवान् जगन्नाथ प्रसन्न न हों, उसके यहाँ ये सुख निश्चय ही नहीं हो सकते। नरेन्द्र! इस जन्ममें भी तुम (एकादशीसंयुक्त) द्वादशी-व्रतके द्वारा श्रीहरिकी पूजा करते हो। राजन्! इससे तुम्हें निश्चितरूपसे भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त होगा।

राजा बोले—द्विजश्रेष्ठ! आपकी आज्ञा हो तो मैं मन्दराचलपर जानेको उत्सुक हूँ। राज्य-शासनका गुरुतर भार अपने पुत्रके ऊपर छोड़कर मैं हलका हो गया हूँ। अब मेरे कर्तव्यका पालन मेरा पुत्र करेगा।

राजाकी बात सुनकर वामदेवजी इस प्रकार बोले—'नृपश्रेष्ठ! पुत्रका यह सबसे महान् कर्तव्य है कि वह सदा प्रेमपूर्वक पिताको क्लेशसे मुक्त करता रहे। जो मन, वाणी और शरीरकी शक्तिसे सदा पिताकी आज्ञाका पालन करता है, उसे प्रतिदिन गङ्गास्नानका फल मिलता है। जो पिताकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके गङ्गास्नान करनेके लिये जाता है, उस पुत्रकी शुद्धि नहीं होती—यह वैदिक श्रुतिका कथन है *। भूपाल! तुम इच्छानुसार यात्रा करो। तुमने अपना सब कर्तव्य पूरा कर लिया।'

मुनिके ऐसा कहनेपर श्रीमान् राजा रुक्माङ्गद घोड़ेपर चढ़कर शीघ्र गतिसे चले, मानो साक्षात् वायुदेव जा रहे हों। मार्गमें अनेकानेक पर्वत, वन, नदी, सरोवर तथा उपवन आदि सम्पूर्ण आश्चर्यमय दृश्योंको देखते हुए वे राजाधिराज रुक्माङ्गद थोड़े ही समयमें श्वेतगिरि, गन्धमादन और महामेरुको लाँघकर उत्तर-कुरुवर्षको देखते हुए मन्दराचल-पर्वतपर जा पहुँचे, जो सब ओरसे सुवर्णसे आच्छादित था। वहाँ बहुत-से निर्झर झर रहे थे। अनेकानेक कन्दराएँ उस पर्वतकी शोभा बढ़ा रही थीं। सहस्रों नदियोंसे पूर्ण मन्दरा-चल गङ्गाजीके शुभ जलसे भी प्रक्षालित हो रहा था। यह सब देखते हुए राजा रुक्माङ्गद उस महापर्वतके समीप जा पहुँचे। तत्पश्चात् उन्होंने समस्त मृग आदि पशुओं और

---

* एतद्धि परमं कृत्यं पुत्रस्य नृपपुङ्गव।
यत्क्लेशात् पितरं प्रेम्णा विमोचयति सर्वदा॥
पितुर्वचनकारी च मनोवाक्कायशक्तितः।
तस्य भागीरथीस्नानमहन्यहनि जायते॥
निरस्य पितृवाक्यं तु मज्जत्स्नातुं सुरापगाम्।
नो शुद्धिस्तस्य पुत्रस्य इतीयं वैदिकी श्रुतिः॥
(ना० उत्तर० ११। २२ [illegible])

न कर सका और पृथ्वीपर गिर पड़ा। मुझपर कृपा करो! तुम्हारे मनमें जो भी अभिलाषा होगी, वह सब मैं तुम्हें दूँगा। मैं सम्पूर्ण पृथ्वीको तुम्हारी सेवामें दे दूँगा। इसके साथ ही कोष, खजाना, हाथी, घोड़े, मन्त्री और नगर आदि भी तुम्हारे अधीन हो जायँगे। तुम्हारे लिये मैं अपने-आपको भी तुम्हें अर्पण कर दूँगा; फिर धन, रत्न आदिकी तो बात ही क्या है? अतः मोहिनी! मुझपर प्रसन्न हो जाओ।'

राजाका मधुर वचन सुनकर मोहिनीने मुसकराते हुए उस समय उन्हें उठाया और इस प्रकार कहा—'वसुधापते! मैं आपसे पर्वतोंसहित पृथ्वी नहीं माँगती। मेरी इतनी ही इच्छा है कि मैं समयपर जो कुछ कहूँ, उसका निःशङ्क होकर आप पालन करते रहें। यदि यह शर्त आप स्वीकार कर लें तो मैं निःसंदेह आपकी सेवा करूँगी।'

राजा बोले—देवि! तुम जिससे संतुष्ट रहो, वही शर्त मैं स्वीकार करता हूँ।

मोहिनीने कहा—आप अपना दाहिना हाथ मुझे दीजिये; क्योंकि वह बहुत धर्म करनेवाला हाथ है। राजन्! उसके मिलनेसे मुझे आपकी बातपर विश्वास हो जायगा। आप धर्मशील राजा हैं। आप समय आनेपर कभी असत्य नहीं बोलेंगे।

राजन्! मोहिनीके ऐसा कहनेपर महाराज रुक्माङ्गदका मन प्रसन्न हो गया और वे इस प्रकार बोले—'सुन्दरि! जन्मसे लेकर अबतक मैंने कभी क्रीडाविहारमें भी असत्य भाषण नहीं किया है। लो, मैंने पुण्य-चिह्नसे युक्त यह दाहिना हाथ तुम्हें दे दिया। मैंने जन्मसे लेकर अबतक जो भी पुण्य किया है, वह सब, यदि तुम्हारी बात न मानूँ तो, तुम्हारा ही हो जाय। मैंने धर्मको ही साक्षीका स्थान दिया है। कल्याणी! अब तुम मेरी पत्नी बन जाओ! मैं इक्ष्वाकु-कुलमें उत्पन्न हुआ हूँ। मेरा नाम रुक्माङ्गद है। मैं महाराज ऋतध्वजका पुत्र हूँ और मेरे पुत्रका नाम धर्माङ्गद है। तुम मेरी प्रार्थनाका उत्तर देकर मेरे ऊपर कृपादृष्टि करो।'

राजाके ऐसा कहनेपर मोहिनीने उत्तर देते हुए कहा—'राजन्! मैं ब्रह्माजीकी पुत्री हूँ। आपकी कीर्ति सुनकर आपके लिये ही इस स्वर्णमय मन्दराचलपर आयी हूँ। केवल आपमें मन लगाये यहाँ तपस्यामें तत्पर थी और देवेश्वर भगवान् शङ्करका संगीतदानके द्वारा पूजन कर रही थी। मुझे विश्वास है कि संगीतका दान देवताओंको अधिक प्रिय है। संगीतसे संतुष्ट हो भगवान् पशुपति तत्काल फल देते हैं। तभी तो अपने प्रियतम आप महाराजको मैंने शीघ्र पा लिया है। राजन्! आपका मुझपर प्रेम है और मैं भी आपसे प्रेम करती हूँ।' राजासे ऐसा कहकर मोहिनीने उनका हाथ पकड़ लिया।

तदनन्तर राजाको उठाकर मोहिनी बोली—महाराज! मेरे प्रति कोई शङ्का न कीजिये! मुझे कुमारी एवं पापरहित जानिये। महीपाल! गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार मेरे साथ विवाह कीजिये। राजन्! यदि अविवाहिता कन्या गर्भ धारण कर ले तो वह सब वर्णोंमें निन्दित चाण्डाल पुत्रको जन्म देती है। पुराणमें विद्वान् पुरुषोंने तीन प्रकारकी चाण्डाल-योनि मानी है—एक तो वह जो कुमारी कन्यासे उत्पन्न हुआ है, दूसरा वह जो विवाहिता होनेपर भी सगोत्र कन्याके पेटसे पैदा हुआ है। नृपश्रेष्ठ! शूद्रके वीर्यद्वारा ब्राह्मणीके गर्भसे उत्पन्न हुआ पुत्र तीसरे प्रकारका चाण्डाल है*। महाराज! इस कारण मुझ कुमारीके साथ आप विवाह कर लें।

तब राजा रुक्माङ्गदने मन्दराचलपर उस चपलनयना मोहिनीके साथ विधिपूर्वक विवाह किया और उसके साथ हँसते हुए-से रहने लगे।

राजाने कहा—वरानने! स्वर्गकी प्राप्ति भी मुझे वैसा सुख नहीं दे सकती, जैसा सुख इस मन्दराचल पर्वतपर तुम्हारे मिलनेसे प्राप्त हो रहा है। बाले! तुम यहीं मेरे साथ रहोगी या मेरे राजमहलमें?

राजा रुक्माङ्गदकी बात सुनकर मोहिनीने अनुरागपूर्वक मधुर वाणीमें कहा—'राजन्! जहाँ आपको सुख मिले, वहीं मैं भी रहूँगी। स्वामीका निवासस्थान धन-वैभवसे रहित हो

---

* चाण्डालयोनयस्तिस्रः पुराणे कवयो विदुः ॥
कुमारीसम्भवा त्वेका सगोत्रापि द्वितीयका।
ब्राह्मण्यां शूद्रजनिता तृतीया नृपपुङ्गव ॥
(ना० उत्तर० १३। ३-४)

तो भी पत्नीको वहीं निवास करना चाहिये। उसके लिये पतिके सामीप्यको ही सुवर्णमय मेरु पर्वत बताया गया है। नारीके लिये पतिके निवासस्थानको छोड़कर अपने पिताके घर भी रहना वर्जित है। पिताके स्थान और आश्रयमें आसक्त होनेवाली स्त्री नरकमें डूबती है। वह सब धर्मोंसे रहित होकर सूकर-योनिमें जन्म लेती है*। इस प्रकार पतिके निवासस्थानसे अन्यत्र रहनेमें जो दोष है, उसे मैं जानती हूँ। अतः मैं आपके साथ ही चलूँगी। सुखमें और दुःखमें आप ही मेरे स्वामी हैं।'

मोहिनीका यह कथन सुनकर राजाका हृदय प्रसन्नतासे खिल उठा। वे उस सुन्दरीको हृदयसे लगाकर बोले—'प्रिये! मेरी समस्त पत्नियोंमें तुम्हारा स्थान सर्वोपरि होगा। मेरे घरमें तुम प्राणोंसे भी अधिक प्रिय बनकर रहोगी। आओ, अब हमलोग सुखपूर्वक राजधानीकी ओर चलें।' राजा रुक्माङ्गदने जब ऐसी बात कही, तब चन्द्रमाके समान मुखवाली मोहिनी उस पर्वतकी शोभाको अपने साथ खींचती हुई (राजा रुक्माङ्गदके साथ राजधानीकी ओर) चली।

घोड़ेकी टापसे कुचली हुई छिपकलीकी राजाद्वारा सेवा, छिपकलीकी आत्मकथा, पतिपर वशीकरणका दुष्परिणाम, राजाके पुण्यदानसे उसका उद्धार
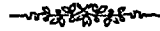
वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! वे दोनों पति-पत्नी मन्दराचलके शिखरसे पृथ्वीकी ओर प्रस्थित हुए। मार्गमें अनेकों मनोहर पर्वतीय दृश्योंको देखते हुए क्रमशः नीचे उतरने लगे। पृथ्वीपर आकर राजाने अपने श्रेष्ठ घोड़ेको देखा, जो वज्रके समान कठोर टापोंसे धरतीको वेगपूर्वक खोद रहा था। उस भू-भागके भीतर एक छिपकली रहती थी। जब तीखी टापसे वह घोड़ा धरती खोद रहा था, उसी समय वह छिपकली वहाँसे निकलकर जाने लगी। इतनेमें ही टापके आघातसे उसका शरीर विदीर्ण हो गया। दयालु राजा रुक्माङ्गदने जब उसकी यह दशा देखी तो वे बड़े वेगसे दौड़े और वृक्षके कोमल पत्तेसे उन्होंने स्वयं उसे खुरके नीचेसे उठाया तथा घास एवं तृणसे भरी हुई भूमिपर रख दिया। तत्पश्चात् उसे मूर्च्छित देख मोहिनीसे बोले—'सुन्दरी! शीघ्र पानी ले आओ। कमललोचने! यह छिपकली कुचलकर मूर्च्छित हो गयी है। इसे उस जलसे सींचूँगा।' स्वामीकी आज्ञासे मोहिनी शीघ्र शीतल जल ले आयी। राजाने उस जलसे बेहोश पड़ी हुई छिपकलीको सींचा। राजन्! शीतल जलके अभिषेकसे

उसकी खोयी हुई चेतना फिर लौट आयी। किसी प्रकारकी चोट क्यों न हो, सबमें शीतल जलसे सींचना उत्तम माना गया

---

* भर्तृस्थानं परित्यज्य स्वपितुर्वापि वर्जितम्॥ पितृस्थानाश्रयरता नारी तमसि मज्जति।
सर्वधर्मविहीनापि नारी भवति सूकरी॥

(ना० उत्तर० १३।१८-१९)

है अथवा भीगे हुए वस्त्रसे सहसा उसपर पट्टी बाँधना हितकर माना गया है। राजन्! जब छिपकली सचेत हुई तो राजाको सामने खड़े देख वेदनासे पीड़ित हो धीरे-धीरे इस प्रकार (मनुष्यकी बोलीमें) बोली—'महाबाहु रुक्माङ्गद ! मेरा पूर्वजन्मका चरित्र सुनिये। रमणीय शाकल नगरमें मैं एक ब्राह्मणकी पत्नी थी। प्रभो ! मुझमें रूप था, जवानी थी तो भी मैं अपने स्वामीकी अत्यन्त प्यारी न हो सकी। वे सदा मुझसे द्वेष रखते और मेरे प्रति कठोरतापूर्ण बातें कहते थे। महाराज ! तब मैंने क्रोधयुक्त हो वशीकरण औषध प्राप्त करनेके लिये ऐसी स्त्रियोंसे सलाह ली, जिन्हें उनके पतियोंने कभी त्याग दिया था (और फिर वे उनके वशमें हो गये थे)। भूपाल! मेरे पूछनेपर उन स्त्रियोंने कहा—'तुम्हारे पति अवश्य वशमें हो जायँगे। उसका एक उपाय है। यहाँ एक संन्यासिनी रहती हैं, उन्हींकी दी हुई दवाओंसे हमारे पति वशमें हुए थे। वरारोहे! तुम भी उन्हीं संन्यासिनीजीसे पूछो। वे तुम्हें कोई अच्छी दवा दे देंगी। तुम उनपर संदेह न करना।' राजन्! तब उन स्त्रियोंके कहनेसे मैं तुरंत वहाँ उनके पास पहुँची और उनसे चूर्ण और रक्षासूत्र लेकर अपने पतिके पास लौट आयी और प्रदोषकालमें दूधके साथ वह चूर्ण स्वामीको पिला दिया। साथ ही रक्षासूत्र, उनके गलेमें बाँध दिया। नृपश्रेष्ठ ! जिस दिन स्वामीने वह चूर्ण पीया उसी दिनसे उन्हें क्षयका रोग हो गया और वे प्रतिदिन दुबले होने लगे। उनके गुप्त अङ्गमें घाव हो जानेसे उसमें दूषित व्रणजनित कीड़े पड़ गये। कुछ ही दिन बीतनेपर मेरे स्वामी तेजोहीन हो गये। उनकी इन्द्रियाँ व्याकुल हो उठीं। वे दिन-रात क्रन्दन करते हुए मुझसे बार-बार कहने लगे—'सुन्दरी ! मैं तुम्हारा दास हूँ। तुम्हारी शरणमें आया हूँ, अब कभी परायी स्त्रीके पास नहीं जाऊँगा। मेरी रक्षा करो।' महीपते ! उनका वह रोदन सुनकर मैं उन तापसीके पास गयी और पूछा—'मेरे पति किस प्रकार सुखी होंगे?' अब उन्होंने उनके दाहकी शान्तिके लिये दूसरी दवा दी। उस दवाको पिला देनेपर मेरे पति तत्काल स्वस्थ हो गये। तबसे मेरे स्वामी मेरे अधीन हो गये और मेरे कथनानुसार चलने लगे। तदनन्तर कुछ कालके बाद मेरी मृत्यु हो गयी और मैं नरक-यातनामें पड़ी। मुझे ताँबेके भाड़में रखकर पंद्रह युगोंतक जलाया गया। जब थोड़ा-सा पातक शेष रह गया तो मैं इस पृथ्वीपर उतारी गयी और यमराजने मेरा छिपकलीका रूप बना दिया। राजन् ! उस रूपमें यहाँ रहते हुए मुझे दस हजार वर्ष बीत गये।

'भूपाल! यदि कोई दूसरी युवती भी पतिके लिये वशीकरणका प्रयोग करती है तो उसके सारे धर्म व्यर्थ हो जाते हैं और वह दुराचारिणी स्त्री ताँबेके भाड़में जलायी जाती है। पति ही नारीका रक्षक है, पति ही गति है तथा पति ही देवता और गुरु है। जो उसके ऊपर वशीकरणका प्रयोग करेगी, वह कैसे सुख पा सकती है? वह तो सैकड़ों बार पशु-पक्षियोंकी योनिमें जन्म लेती और अन्तमें गलित कोढ़के रोगसे युक्त स्त्री होती है। अतः महाराज ! स्त्रियोंको सदा अपने स्वामीके आदेशका पालन करना चाहिये *। राजन्! आज मैं आपकी शरणमें आयी हूँ। यदि आप विजया द्वादशीजनित पुण्य देकर मेरा उद्धार नहीं करेंगे तो मैं फिर पातकयुक्त कुत्सित योनिमें ही पड़ जाऊँगी। आपने जो सरयू और गङ्गाके पापनाशक एवं पुण्यमय संगम-तीर्थमें श्रवण नक्षत्रयुक्त द्वादशीका व्रत किया है, वह पुण्यमयी तिथि प्रेतयोनिसे छुड़ानेवाली तथा मनोवाञ्छित फल देनेवाली है। भूपाल ! उस तिथिको जो मनुष्य घरमें रहकर भी भगवान् श्रीहरिका स्मरण करते हैं, उन्हें भगवान् सब तीर्थोंके फलकी प्राप्ति करा देते हैं। भूपते ! विजयाके दिन जो दान, जप, होम और देवाराधन आदि किया जाता है, वह सब अक्षय होता है, जिसका ऐसा उत्कृष्ट फल है, उसीका पुण्य मुझे दीजिये। द्वादशीको उपवास करके त्रयोदशीको पारण करनेपर मनुष्य उस एक उपवासके बदले बारह वर्षोंके उपवासका फल पाता है। महीपाल ! आप इस पृथ्वीपर धर्मके साक्षात् स्वरूप तथा यमराजके मार्गका विध्वंस करनेवाले हैं; दया करके मुझ दुखियाका उद्धार कीजिये।'

छिपकलीकी बात सुनकर मोहिनी बोली—'प्रभो ! मनुष्य अपने ही कियेका सुख और दुःखरूप फल भोगता है; अतः स्वामीके प्रति दुष्ट भाव रखनेवाली इस पापिनीसे अपना क्या प्रयोजन है, जिसने रक्षासूत्र और चूर्ण आदिके द्वारा पतिको वशमें कर रक्खा था। इस पापिनीको छोड़िये, अब हम दोनों नगरकी ओर चलें। जो दूसरे लोगोंके व्यापारमें फँसते हैं, उनका अपना सुख नष्ट होता है।'

---

* यान्यापि युवतिर्भूप भर्तुर्वश्यं समाचरेत्।
वृथाधर्मा दुराचारा दह्यते ताम्रभ्राष्ट्रके ॥
भर्ता नाथो गतिर्भर्ता दैवतं गुरुरेव च।
तस्य वश्य चरेद्या तु सा कथं सुखमाप्नुयात् ॥
तिर्यग्योनिशतं याति कृमिकुष्ठसमन्विता।
तस्माद्भूपाल कर्तव्यं स्त्रीभिर्भर्तृवचः सदा ॥
(ना० उत्तर० १४। ३९—४१)

रुक्माङ्गदने कहा—ब्रह्मपुत्री ! तुमने ऐसी बात कैसे कही ? सुमुखि ! साधुपुरुषोंका बर्ताव ऐसा नहीं होता है। जो पापी और दूसरोंको सतानेवाले होते हैं, वे ही केवल अपने सुखका ध्यान रखते हैं। सूर्य, चन्द्रमा, मेघ, पृथ्वी, अग्नि, जल, चन्दन, वृक्ष और सत्पुरुष परोपकार करनेवाले ही होते हैं। वरानने ! सुना जाता है कि पहले राजा हरिश्चन्द्र हुए थे, जिन्हें (सत्यरक्षाके लिये) स्त्री और पुत्रको बेचकर चाण्डालके घरमें रहना पड़ा। वे एक दुःखसे दूसरे भारी दुःखमें फँसते चले गये, परंतु सत्यसे विचलित नहीं हुए। उनके सत्यसे संतुष्ट होकर इन्द्र आदि देवताओंने महाराज हरिश्चन्द्रको इच्छानुसार वर माँगनेके लिये प्रेरित किया; तब उन सत्यपरायण नरेशने ब्रह्मा आदि देवताओंसे कहा—देवगण ! यदि आप संतुष्ट हैं और मुझे वर देना चाहते हैं, तो यह वर दीजिये—'यह सारी अयोध्यापुरी बाल, वृद्ध, तरुण, स्त्री, पशु, कीट-पतंग और वृक्ष आदिके साथ पापयुक्त होनेपर भी स्वर्गलोकमे चली जाय और अयोध्याभरका पाप केवल मैं लेकर निश्चितरूपसे नरकमें जाऊँ। देवेश्वरो ! इन सब लोगों-को पृथ्वीपर छोडकर मै अकेला स्वर्गमें नहीं जाऊँगा। यह मैंने सच्ची बात बतायी है।' उनकी यह दृढता जानकर इन्द्र आदि देवताओंने आज्ञा दे दी और उन्हींके साथ वह सारी पुरी स्वर्गलोकमें चली गयी। देवि ! महर्षि दधीचिने देवताओं-को दैत्योंसे परास्त हुआ सुनकर दयावश उनके उपकारके लिये अपने शरीरकी हड्डियाँतक दे दीं। सुन्दरी ! पूर्वकालमें राजा शिविने कबूतरकी प्राणरक्षाके लिये भूखे बाजको अपना मांस दे दिया था। वरानने ! प्राचीन कालमें इस पृथ्वीपर जीमूतवाहन नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं, जिन्होंने एक सर्पकी प्राणरक्षाके लिये अपना जीवन समर्पित कर दिया था। इसलिये देवि ! राजाको सदा दयालु होना चाहिये। शुभे ! बादल पवित्र और अपवित्र स्थानमे भी समानरूपसे वर्षा करता है। चन्द्रमा अपनी शीतल किरणोसे चाण्डालों और पतितोको भी आह्लाद प्रदान करते हैं। अतः सुन्दरि ! इस दुखिया छिपकलीको मैं उसी प्रकार अपने पुण्य देकर उद्धार करूँगा, जैसे राजा ययातिका उद्धार उनके नातियों ने किया था।

इस प्रकार मोहिनीकी बातका खण्डन करके राजाने छिपकली-से कहा—'मैंने विजयाका पुण्य तुम्हें दे दिया, दे दिया। अब तुम समस्त पापोंसे रहित हो विष्णुलोकको चली जाओ।' भूपाल ! राजा रुक्माङ्गदके ऐसा कहनेपर उस स्त्रीने सहसा छिपकलीके उस पुराने शरीरको त्याग दिया और दिव्य शरीर धारण करके दिव्य वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो वह दसों दिशाओंको

प्रकाशित करती हुई राजाकी आज्ञा ले अद्भुत वैष्णव धामको चली गयी। वह वैकुण्ठधाम योगियोंके लिये भी अगम्य है। वहाँ अग्नि आदिका प्रकाश काम नहीं देता। वह स्वयं प्रकाश, श्रेष्ठ, वरणीय तथा परमात्म-स्वरूप है; अतः राजन् ! यह अग्निको भी प्रकाश देनेवाली विजया-द्वादशी (वामन-द्वादशी) सम्पूर्ण जगत्‌को प्रकाश देनेके लिये प्रकट हुई है।

मोहिनीके साथ राजा रुक्माङ्गदका वैदिश नगरको प्रस्थान, राजकुमार धर्माङ्गदका स्वागतके लिये मार्गमें आगमन तथा पिता-पुत्र-संवाद

वसिष्ठजी कहते हैं—छिपकलीको पापसे मुक्त करके राजा रुक्माङ्गद बड़े प्रसन्न हुए और वे मोहिनीसे हँसते हुए बोले—'घोड़ेपर शीघ्र सवार हो जाओ।' राजाकी बात सुन-कर मोहिनी वायुके समान वेगवाले उस अश्वपर पतिके साथ सवार हुई। राजा रुक्माङ्गद बड़े हर्षके साथ मार्गमें जाते हुए वृक्ष, पर्वत, नदी, अत्यन्त विचित्र वन, नाना प्रकारके

मृग, ग्राम, दुर्ग, देश, शुभ नगर, विचित्र सरोवर तथा परम मनोहर भूभागका दर्शन करते हुए वैदिश नगरमें आये, जो उनके अपने अधीन था। गुप्तचरोंके द्वारा महाराजके आगमनका समाचार सुनकर राजकुमार धर्माङ्गद हर्षमें भर गये और अपने वशवर्ती राजाओंसे पिताके सम्बन्धमें इस प्रकार बोले—'नृपवरो! मेरे पिताका अश्व इधर आ पहुँचा है। इसलिये हम सब लोग महाराजके सम्मुख चलें। जो पुत्र पिताके आनेपर उनकी अगवानीके लिये सामने नहीं जाता, वह चौदह इन्द्रोंके राज्यकालतक घोर नरकमें पड़ा रहता है। पिताके स्वागतके लिये सामने जानेवाले पुत्रको पग-पगपर यज्ञका फल प्राप्त होता है—ऐसा पौराणिक द्विज कहते हैं*। अतः उठिये, मैं आपलोगोंके साथ पिताजीको प्रेमपूर्वक प्रणाम करनेके लिये चल रहा हूँ, क्योंकि ये मेरे लिये देवताओंके भी देवता हैं।'

तदनन्तर उन सब राजाओने 'तथास्तु' कहकर धर्माङ्गदकी आज्ञा स्वीकार की। फिर राजकुमार धर्माङ्गद उन सबके साथ एक कोसतक पैदल चलकर पिताके सम्मुख गये। मार्गमें दूरतक बढ़ जानेके बाद उन्हे राजा रुक्माङ्गद मिले। पिताको पाकर धर्माङ्गदने राजाओंके साथ धरतीपर मस्तक रखकर भक्ति-भावसे उन्हें प्रणाम किया। राजन्! महाराज रुक्माङ्गदने देखा कि मेरा पुत्र प्रेमवश अन्य सब नरेशोंके साथ स्वागतके लिये आया है और प्रणाम कर रहा है, तब वे घोडेसे उतर पड़े और अपनी विशाल भुजाओंसे पुत्रको उठाकर उन्होंने हृदयसे लगा लिया। उसका मस्तक सूँघा और उस समय धर्माङ्गदसे इस प्रकार कहा—'पुत्र! तुम समस्त प्रजाका पालन करते हो न? शत्रुओंको दण्ड तो देते हो न? खजानेको न्यायोपार्जित धनसे भरते रहते हो न? ब्राह्मणोंको अधिक संख्यामें स्थिर वृत्ति तुमने दी है न? तुम्हारा शील-स्वभाव सबको रुचिकर प्रतीत होता है न? तुम किसीसे कठोर बातें तो नहीं कहते? अपने राज्यके भीतर प्रत्येक पुत्र पिताकी आज्ञाका पालन करनेवाला है न? बहुएँ सासका कहना मानती है न? अपने स्वामीके अनुकूल चलती हैं न? तिनके और घाससे भरी हुई गोचरभूमिमें जानेसे गौओंको रोका तो नहीं जाता? अन्न आदिके तोल और माप आदिका तुम सदा निरीक्षण तो करते हो न? वत्स! किसी बड़े कुटुम्बवाले गृहस्थको उसपर अधिक कर लगाकर कष्ट तो नहीं देते? तुम्हारे राज्यमें कहीं भी मदिरापान और जूआ आदिका खेल तो नहीं होता? अपनी सब माताओंको समानभावसे देखते हो न? वत्स! लोग एकादशीके दिन भोजन तो नहीं करते? अमावास्याके दिन लोग श्राद्ध करते हैं न? प्रतिदिन रातके पिछले पहरमें तुम्हारी नींद खुल जाती है न? क्योंकि (अधिक) निद्रा अधर्मका मूल है। निद्रा पाप बढ़ानेवाली है। निद्रा दरिद्रताकी जननी तथा कल्याणका नाश करनेवाली है। निद्राके वशमें रहनेवाला राजा अधिक दिनोंतक पृथ्वीका शासन नहीं कर सकता। निद्रा व्यभिचारिणी स्त्रीकी भाँति अपने स्वामीके लोक-परलोक दोनोंका नाश करनेवाली है।'

पिताके इस प्रकार पूछनेपर राजकुमार धर्माङ्गदने महाराजको बार-बार प्रणाम करके कहा—'तात! इन सब बातोंका पालन किया गया है और आगे भी आपकी आज्ञाका पालन करूँगा। पिताकी आज्ञा पालन करनेवाले पुत्र तीनों लोकोंमें धन्य माने जाते हैं। राजन्! जो पिताकी बात नहीं मानता, उसके लिये उससे बढ़कर और पातक क्या हो सकता है? जो पिताके वचनोंकी अवहेलना करके गङ्गा-स्नान करनेके लिये जाता है और पिताकी आज्ञाका पालन नहीं करता, उसे उस तीर्थ-सेवनका फल नहीं मिलता*। मेरा यह शरीर आपके अधीन है। यह जीवन भी आपके ही अधीन है। मेरे धर्मपर भी आपका ही अधिकार है और आप ही मेरे सबसे बड़े देवता हैं।' अनेकों राजाओंसे घिरे हुए अपने पुत्र धर्माङ्गदकी यह बात सुनकर महाराज रुक्माङ्गदने पुनः उसे छातीसे लगा लिया और इस प्रकार कहा—'बेटा! तुमने ठीक कहा है; क्योंकि तुम धर्मके ज्ञाता हो। पुत्रके लिये पितासे बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है। बेटा! तुमने अनेक राजाओंसे सुरक्षित सात द्वीपवाली पृथ्वीको जीतकर जो उसकी भलीभाँति रक्षा की है, इससे तुमने मुझे अपने मस्तकपर बिठा लिया। लोकमें

---

* सम्मुखं व्रजमानस्य पुत्रस्य पितर प्रति।
पदे पदे यज्ञफल प्रोचु. पौराणिका द्विजा. ॥
(ना० उत्तर० १५। १४)

* पितुर्वचनकर्तारः पुत्रा धन्या जगत्त्रये।
किं तत. पातक राजन् यो न कुर्यात्पितुर्वच. ॥
पितृवाक्यमनादृत्य व्रजेत्स्नातु त्रिमार्गगाम्।
न तत्तीर्थफल भुङ्क्ते यो न कुर्यात् पितुर्वच. ॥
(ना० उत्तर० १५। ३४-३५)

यही सबसे बड़ा सुख है, यही अक्षय स्वर्गलोक है कि पृथ्वीपर पुत्र अपने पितासे अधिक यशस्वी हो। तुम सद्गुणपर चलनेवाले तथा समस्त राजाओंपर शासन करनेवाले हो। तुमने मुझे कृतार्थ कर दिया, ठीक उसी तरह जैसे शुभ एकादशी तिथिने मुझे कृतार्थ किया है।'

पिताकी यह बात सुनकर राजपुत्र धर्माङ्गदने पूछा—'पिताजी! सारी सम्पत्ति मुझे सौंपकर आप कहाँ चले गये थे? ये कान्तिमयी देवी किस स्थानपर प्राप्त हुई हैं? मन्त्रिवर! मालूम होता है, ये साक्षात् गिरिराजनन्दिनी उमा हैं अथवा क्षीरसागर-कन्या लक्ष्मी हैं? अहो! ब्रह्माजी रूप-रचनामें कितने कुशल हैं, जिन्होंने ऐसी देवीका निर्माण किया है। राजराजेश्वर! ये स्वर्णगौरी देवी आपके घरकी शोभा बढ़ाने-योग्य हैं। यदि इनकी-जैसी माता मुझे प्राप्त हो जायँ तो मुझसे बढ़कर पुण्यात्मा दूसरा कौन होगा।'

धर्माङ्गदद्वारा मोहिनीका सत्कार तथा अपनी माताको मोहिनीकी सेवाके लिये एक पतिव्रता नारीका उपाख्यान सुनाना

वसिष्ठजी कहते हैं—धर्माङ्गदकी बात सुनकर रुक्माङ्गदको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे बोले—'बेटा! सचमुच ही ये तुम्हारी माता हैं। ये ब्रह्माजीकी पुत्री हैं। इन्होंने बाल्यावस्थासे ही मुझे प्राप्त करनेका निश्चय लेकर देवगिरिपर कठोर तपस्या प्रारम्भ की थी। आजसे पद्रह दिन पूर्व मैं घोड़ेपर सवार हो अनेक धातुओंसे सुशोभित गिरिश्रेष्ठ मन्दराचलपर गया था। उसीके शिखरपर यह बाला भगवान् महेश्वरको प्रसन्न करनेके लिये संगीत सुना रही थी। वहीं मैंने इस सुन्दरीका दर्शन किया और इसने कुछ प्रार्थनाके साथ मुझे पतिरूपमें वरण किया। मैंने भी इन्हें दाहिना हाथ देकर इनकी मुँहमाँगी वस्तु देनेकी प्रतिज्ञा की और मन्दराचलके शिखरपर ही विशाल नेत्रोंवाली ब्रह्मपुत्रीको अपनी पत्नी बनाया। फिर पृथ्वीपर उतरकर घोड़ेपर चढ़ा और अनेक पर्वत, देश, सरोवर एवं नदियोंको देखता हुआ तीन दिनमें वेगपूर्वक चलकर तुम्हारे समीप आया हूँ।'

पिताका यह कथन सुनकर शत्रुदमन धर्माङ्गदने घोड़ेपर चढ़ी हुई माताके उद्देश्यसे धरतीपर मस्तक रखकर प्रणाम करते हुए कहा—'देवि! आप मेरी माँ हैं, प्रसन्न होइये। मैं आपका पुत्र और दास हूँ। माता! अनेक राजाओंके साथ मैं आपको प्रणाम करता हूँ।' राजन्! मोहिनी राजपुत्र धर्माङ्गदको धरतीपर गिरकर प्रणाम करते देख घोड़ेसे उतर पड़ी और उसने दोनों बाहोंसे उसे उठाकर हृदयसे लगा लिया। फिर कमलनयन धर्माङ्गदने मोहिनीको अपनी पीठपर पैर रखवाकर उस उत्तम घोड़ेपर चढ़ाया। राजन्! इसी विधिसे उसने पिताको भी घोड़ेपर बिठाया। तत्पश्चात् राजकुमार धर्माङ्गद अन्य राजाओंसे घिरकर पैदल ही चलने लगे। अपनी माता मोहिनीको देखकर उनके शरीरमें हर्षातिरेकसे रोमाञ्च हो आया और मेघके समान गम्भीर वाणीमें अपने भाग्यकी सराहना करते

हुए वे इस प्रकार बोले—'एक माताको प्रणाम करनेपर पुत्रको समूची पृथ्वीकी परिक्रमाका फल प्राप्त होता है; इसी प्रकार बहुत-सी माताओंको प्रणाम करनेपर मुझे महान् पुण्यकी प्राप्ति होगी।' राजाओंसे घिरकर इस प्रकारकी बातें करते हुए धर्माङ्गदने परम समृद्धिशाली, रमणीय वैदिश नगरमें प्रवेश किया। मोहिनीके साथ घोड़ेपर चढ़े हुए राजा रुक्माङ्गद भी तत्काल वहाँ जा पहुँचे। तदनन्तर राजमहलके समीप पहुँचकर परिचारकोंसे पूजित हो राजा घोड़ेसे उतर गये और मोहिनीसे इस प्रकार बोले—'सुन्दरि! तुम अपने पुत्र धर्माङ्गदके घरमें जाओ। ये गुणोंके अनुरूप तुम्हारी गुरुजनोचित सेवा करेंगे।'

पतिके ऐसा कहनेपर मोहिनी पुत्रके महलकी ओर चली। धर्माङ्गदने देखा, पतिकी आज्ञासे माता मोहिनी मेरे महलकी ओर जा रही हैं। तब उन्होंने राजाओंको वहीं छोड़ दिया और कहा, 'आपलोग ठहरें। मैं पिताकी आज्ञासे माताजीकी सेवा करूँगा।' ऐसा कहकर वे गये और माताको घरमें ले गये। पन्द्रह पग चलनेके बाद एक पलंगके पास पहुँचकर उन्होंने माताको उसपर बिठाया। वह पलंग सोनेका बना और रेशमी सूतसे बुना हुआ था। अतः मजबूत होनेके साथ ही कोमल भी था। उस पलंगमें जहाँ-तहाँ मणि और रत्न जड़े हुए थे। मोहिनीको पलंगपर बैठाकर धर्माङ्गदने उसके चरण धोये। संध्यावलीके प्रति राजकुमारके मनमें जो गौरव था, उसी भावसे वे मोहिनीको भी देखते थे। यद्यपि वे सुकुमार एवं तरुण थे और मोहिनी भी तन्वङ्गी तरुणी थी तथापि मोहिनीके प्रति उनके मनमें तनिक भी दोष या विकार नहीं उत्पन्न हुआ। उसके चरण धोकर उन्होंने उस चरणोदकको मस्तकपर चढ़ाया और विनम्र होकर कहा—'माँ! आज मैं बड़ा पुण्यात्मा हूँ।' ऐसा कहकर धर्माङ्गदने स्वयं तथा दूसरे नर-नारियोंके संयोगसे मोहिनी माताके श्रमका निवारण किया और प्रसन्नतापूर्वक उनके लिये सब प्रकारके उत्तम भोग अर्पण किये। क्षीरसागरका मन्थन होते समय जो दो अमृतवर्षी कुण्डल प्राप्त हुए थे, उन्हें धर्माङ्गदने पातालमें जाकर दानवोंको पराजित करके प्राप्त किया था। उन दोनों कुण्डलोंको उन्होंने स्वयं मोहिनीके कानोंमें पहना दिया। आँवलेके फल बराबर सुन्दर मोतीके एक हजार आठ दानोंका बना हुआ सुन्दर हार मोहिनी देवीके वक्षःस्थलपर धारण कराया। सौ भर सुवर्णका एक निष्क (पदक) तथा सहस्रों हीरोंसे विभूषित एक सुन्दर लघूत्तर हार भी उस समय राजकुमारने माताको भेंट किया। दोनों हाथोंमें सोलह-सोलह रत्नमयी चूड़ियाँ, जिनमें हीरे जड़े हुए थे, पहनाये। उनमेंसे एक-एकका मूल्य उसकी कीमतको समझनेवाले लोगोंने एक-एक करोड़ स्वर्ण-मुद्रा निश्चित किया था। केयूर और नूपुर भी जो सूर्यके समान चमकनेवाले थे, राजकुमारने उसे अर्पित कर दिये। उस समय धर्माङ्गदका अङ्ग-अङ्ग आनन्दसे पुलकित हो उठा था। पूर्वकालमें हिरण्यकशिपुकी जो त्रिलोकसुन्दरी पत्नी थी, उसके पास विद्युत्के समान प्रकाशमान एक जोड़ा सीमन्त (शीशफूल) था। वह पतिव्रता नारी जब पतिके साथ अग्निमें प्रवेश करने लगी तो अपने सीमन्तको अत्यन्त दुःखके कारण समुद्रमें फेंक दिया। कालान्तरमें धर्माङ्गदके पराक्रमसे संतुष्ट हो समुद्रने उन्हें वे दोनों रत्न भेंट कर दिये। धर्माङ्गदने प्रसन्नतापूर्वक वे दोनों सीमन्त भी मोहिनी माताको दे दिये। अत्यन्त मनोहर दो सुन्दर साड़ियाँ और दो चोलियाँ, जिनकी कीमत कोटि सहस्र स्वर्णमुद्रा थी, धर्माङ्गदने मोहिनीको भेंट कीं। दिव्य माल्य, उत्तम गन्धसे युक्त दिव्य अनुलेपन जो सम्पूर्ण देवताओंके गुरु बृहस्पतिजीके सिद्ध हाथसे तैयार किया हुआ तथा परम दुर्लभ था और जिसे वीर धर्माङ्गदने सम्पूर्ण द्वीपोंकी विजयके समय प्राप्त किया था, मोहिनी देवीको दे दिया। राजन्! इस प्रकार मोहिनीको विभूषित करके राजकुमारने बड़ी भक्तिके साथ षड्रस भोजन मँगाया और अपनी माताके हाथसे मोहिनीको भोजन कराया।

बहुत समझा-बुझाकर माता संध्यावलीको इस सपत्नीसेवाके लिये तैयार कर लिया था। उन्होंने कहा था—'देवि! मेरा और तुम्हारा कर्तव्य है कि राजाकी आज्ञाका पालन करें। स्वामीको स्नेहकी दृष्टिसे जो अधिक प्रिय है, उसके साथ स्वामीका स्नेह छुड़ानेके लिये जो सौतिया-डाह करती है, वह यमलोकमें जाकर ताँबेके भाड़में भूँजी जाती है। अतः पतिव्रता पत्नीका कर्तव्य है कि जिस प्रकार स्वामीको सुख मिले, वैसा ही करे। श्रेष्ठ वर्णवाली माँ! स्वामीकी ही भाँति उनकी प्रियतमा पत्नीको भी आदरकी दृष्टिसे देखना चाहिये। जो सपत्नी अपनी सौतको पतिकी प्यारी देख उसकी सदा सेवा-शुश्रूषा करती है, उसे अक्षय लोक प्राप्त होता है।

'प्राचीन कालकी बात है, एक दुष्ट प्रकृतिका शूद्र था, जिसने अपने सदाचारका परित्याग कर दिया था। उसने अपने घरमें एक वेश्या लाकर रख ली। शूद्रकी विवाहिता पत्नी भी थी, किंतु वह वेश्या ही उसको अधिक प्रिय थी। उसकी स्त्री पतिको प्रसन्न रखनेवाली सती थी। वह वेश्याके

साथ पतिकी सेवा करने लगी। दोनोंसे नीचे स्थानमें सोती और उन दोनोंके हितमें लगी रहती थी। वेश्याके मना करनेपर भी वह उसकी सेवासे मुँह नहीं मोड़ती थी और सदाचारके पावन पथपर दृढ़तापूर्वक स्थित रहती थी। इस प्रकार वेश्याके साथ पतिकी सेवा करते हुए उस सतीके बहुत वर्ष बीत गये। एक दिन खोटी बुद्धिवाले उसके पतिने मूलीके साथ भैंसका दही और तैल मिलाया हुआ 'निष्पाव' खा लिया। अपनी पतिव्रता स्त्रीकी बात अनसुनी करके उसने यह कुपथ्य भोजन कर लिया। परिणाम यह हुआ कि उसकी गुदामें भगंदर रोग हो गया। अब वह दिन-रात उसकी जलनसे जलने लगा। उसके घरमें जो धन था, उसे लेकर वह वेश्या चली गयी। तब वह शूद्र लज्जामें डूबकर दीनतापूर्ण मुखसे रोता हुआ अपनी पत्नीसे बोला। उस समय उसका चित्त बड़ा व्याकुल था। उसने कहा—'देवि! वेश्यामें फँसे हुए मुझ निर्दयीकी रक्षा करो। मुझ पापीने तुम्हारा कुछ भी उपकार नहीं किया। बहुत वर्षोंतक उस वेश्याके ही साथ जीवन बिताता रहा। जो पापी अपनी विनीत भार्याका अहंकारवश अनादर करता है, वह पंद्रह जन्मोंतक उस पापके अशुभ फलको भोगता है।' पतिकी यह बात सुनकर शूद्रपत्नी उससे बोली—'नाथ! पूर्वजन्मके किये हुए पाप ही दुःखरूपमें प्रकट होते हैं। जो विवेकी पुरुष उन दुःखोंको धैर्यपूर्वक सहन करता है, उसे मनुष्योंमें श्रेष्ठ समझना चाहिये।' ऐसा कहकर उसने स्वामीको धीरज बँधाया। वह सुन्दरी नारी अपने पिता और भाइयोंसे धन माँग लायी। वह अपने पतिको क्षीरशायी भगवान् मानती थी। प्रतिदिन दिनमें और रातमें भी उसकी गुदाके घावको धोकर शुद्ध करती थी। रजनीकर नामक वृक्षका गोंद लेकर उसपर लगाती और नखद्वारा धीरे-धीरे स्वामीके कोढ़से कीड़ोंको नीचे गिराती थी। फिर मोरपंखका व्यजन लेकर उनके लिये हवा करती थी। माँ! वह श्रेष्ठ नारी न रातमें सोती थी न दिनमें। थोड़े दिनोंके बाद उसके पतिको त्रिदोष हो गया। अब वह बड़े यत्नसे सोंठ, मिर्च और पीपल अपने स्वामीको पिलाने लगी। एक दिन सर्दीसे पीड़ित हो काँपते हुए पतिने पत्नीकी अँगुली काट ली। उस समय सहसा उसके दोनों दाँत आपसमें सट गये और वह कटी हुई अँगुली उसके मुँहके भीतर ही रह गयी। महारानी! उसी दशामें उसकी मृत्यु हो गयी। अब वह अपना कंगन बेचकर काठ खरीद लायी और उसकी चिता तैयार की। चितापर उसने घी छिड़क दिया और बीचमें पतिको सुलाकर स्वयं भी उसपर चढ़ गयी। वह सुन्दर

अङ्गोंवाली सती प्रज्वलित अग्निमें देहका परित्याग करके पति को साथ ले सहसा देवलोकको चली गयी। उसने, जिनका साधन कठिन है, ऐसे दुष्कर कर्मद्वारा बहुत-सी पापात्माओं को शुद्ध कर दिया था।'

संध्यावलीका मोहिनीको भोजन कराना और धर्माङ्गदके मातृभक्तिपूर्ण वचन

धर्माङ्गद कहते हैं—माँ ! इस बातपर विचार करके मोहिनीको भोजन कराओ। ऐसा धर्म तीनों लोकोंमें कहीं नहीं मिलेगा। श्रेष्ठ वर्णवाली माताजी ! पिताको सुख पहुँचाना ही हम दोनोंका कर्तव्य है। इससे इस लोकमें हमारे पापोंका भलीभाँति नाश होगा और परलोकमें अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होगी।

पुत्रकी यह बात सुनकर देवी संध्यावलीने उसके साथ कुछ विचार-विमर्श किया। फिर पुत्रको बार-बार हृदयसे लगाकर उसका मस्तक सूँघा और इस प्रकार कहा—'बेटा! तुम्हारी बात धर्मसे युक्त है। अतः मैं उसका पालन करूँगी। ईर्ष्या और अभिमान छोड़कर मोहिनीको अपने हाथसे भोजन कराऊँगी। बेटा! व्रतराज एकादशीके अनुष्ठानसे तुझ-जैसा पुत्र मुझे प्राप्त हुआ है। लोकमें ऐसा फलदायक व्रत दूसरा नहीं देखा जाता। यह बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला तथा तत्काल फल देकर अपने प्रति विश्वास बढ़ानेवाला है। शोक और संताप देनेवाले अनेक पुत्रोंके जन्मसे क्या लाभ ? समूचे कुलको सहारा देनेवाला एक ही पुत्र श्रेष्ठ है, जिसके भरोसे समस्त कुल सुख-शान्तिका अनुभव करता है*। तुम्हें अपने गर्भमें पाकर मैं तीनों लोकोंसे ऊपर उठ गयी। पुत्र! तुम शूरवीर, सातो द्वीपोंके अधिपति तथा पिताके आज्ञापालक हो एवं पिता और माता दोनोंको आह्लाद प्रदान करते हो। ऐसे पुत्रको ही विद्वानोंने पुत्र कहा है। दूसरे सभी नाममात्रके पुत्र हैं।'

ऐसा वचन कहकर उस समय देवी संध्यावलीने षड्रस भोजन रखनेके लिये पात्रोंकी ओर दृष्टिपात किया। राजन्! उसकी दृष्टि पड़नेमात्रसे वे सभी पात्र उत्तम भोजनसे भर गये। महीपते! मोहिनीको भोजन करानेके लिये कुछ-कुछ गरम और षड्रसयुक्त भोजनकी तथा अमृतके समान स्वादिष्ट जलकी व्यवस्था हो गयी। तदनन्तर रत्नजटित सुवर्णमयी चम्मच लेकर मनोहर हास्यवाली रानी संध्यावलीने शान्तभावसे मोहिनीको भोजन परोसा। सोनेके चिकने पात्रमें, जिसमे उचितमात्रामें सब प्रकारका भोज्य पदार्थ रक्खा हुआ था, मोहिनी देवी सोनेके सुन्दर आसनपर बैठकर अपनी रुचिके अनुकूल सुसंस्कृत अन्न धीरे-धीरे भोजन करने लगी। उस समय धर्माङ्गदके द्वारा व्यजन डुलाया जा रहा था।

मोहिनीके भोजन कर लेनेके अनन्तर राजकुमारने उसे प्रणाम करके कहा—'देवि! इन सध्यावली देवीने मुझे तीन वर्षतक अपने गर्भमें धारण किया है तथा आपके पतिदेवके प्रसादसे पलकर मैं इतना बड़ा हुआ हूँ। मनोहर अङ्गोंवाली देवि! तीनों लोकोंमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे देकर पुत्र अपनी मातासे उऋण हो सके।'

पुत्र धर्माङ्गदके ऐसा कहनेपर मोहिनीको बड़ा आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगी—'जिसमें पिताकी सेवाका भाव है, उसके समान इस पृथ्वीपर दूसरा कोई नहीं है। जो इस प्रकार गुणोंमें बढ़ा-चढ़ा है, उस धर्मात्मा पुत्रके प्रति मैं माता होकर कैसे कुत्सित बर्ताव कर सकती हूँ।' मोहिनी इस तरह नाना प्रकारके विचार करके पुत्रसे बोली—'तुम मेरे पतिको शीघ्र बुला लाओ, मैं उनके बिना दो घड़ी भी नहीं रह सकती।' तब उसने तुरत ही पिताके पास जा उन्हें प्रणाम करके कहा—'तात! मेरी छोटी माँ आपका शीघ्र दर्शन करना चाहती है।' पुत्रकी यह बात सुनकर राजा रुक्माङ्गद तत्काल वहाँ जानेको उद्यत हुए। उनके मुखपर प्रसन्नता छा गयी। उन्होंने महलमें प्रवेश करके देखा, मोहिनी पलगपर सो रही है। उसके शरीरसे तपाये हुए सुवर्णकी-सी प्रभा फैल रही है और उस बालाकी महारानी संध्यावली धीरे-धीरे सेवा कर रही हैं। प्रचुर दक्षिणा देनेवाले राजा रुक्माङ्गदको शय्याके समीप आया देख सुन्दरी मोहिनीका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा और उसने राजासे कहा—'प्राणनाथ! कोमल बिछौनोंसे युक्त इस पलंगपर बैठिये। जो मानव दूसरे-दूसरे कार्योंमें आसक्त होकर अपनी युवती भार्याका सेवन नहीं करता, उसकी वह भार्या कैसे रह सकती है ? जिसका दान नहीं किया जाता, वह धन भी चला जाता है, जिसकी रक्षा नहीं की जाती, वह राज्य अधिक कालतक नहीं टिक पाता और जिसका अभ्यास नहीं किया जाता, वह शास्त्रज्ञान भी टिकाऊ नहीं होता। आलसी लोगोंको विद्या नहीं मिलती। सदा व्रतमें ही लगे रहनेवालोंको पत्नीकी प्राप्ति नहीं होती। पुरुषार्थके विना लक्ष्मी नहीं मिलती।

* किं जातैर्बहुभिः पुत्रैः शोकसंतापकारकैः।
वरमेकः कुलालम्बी यत्र विश्रमते कुलम्॥
(ना० उत्तर० १७। १०)

भगवान्‌की भक्तिके बिना यशकी प्राप्ति नहीं होती। बिना उद्यमके सुख नहीं मिलता और बिना पत्नीके संतानकी प्राप्ति नहीं होती। अपवित्र रहनेवालेको धर्म-लाभ नहीं होता। अप्रिय वचन बोलनेवाला ब्राह्मण धन नहीं पाता। जो गुरुजनोंसे प्रश्न नहीं करता, उसे तत्त्वका ज्ञान नहीं होता तथा जो चलता नहीं, वह कहीं पहुँच नहीं सकता। जो सदा जागता रहता है, उसे भय नहीं होता। भूपाल! प्रभो! आप राज्यकाजमें समर्थ पुत्रके होते हुए भी मुझे धर्माङ्गदके सुन्दर महलमें अकेली छोड़ राजका कार्य क्यों देखते हैं? तब राजा रुक्माङ्गद उसे सान्त्वना देते हुए बोले।

धर्माङ्गदका माताओंसे पिता और मोहिनीके प्रति उदार होनेका अनुरोध तथा पुत्रद्वारा माताओंका धन-वस्त्र आदिसे समादर

राजाने कहा—भीरु! मैंने राजलक्ष्मी तथा राजकीय वस्तुओंपर पुनः अधिकार नहीं स्थापित किया है। मैंने धर्माङ्गदको पुकारकर यह आदेश दिया था कि 'कमलनयन! तुम मोहिनीको सम्पूर्ण रत्नोंसे विभूषित अपने महलमें ले जाओ और इसकी सेवा करो; क्योंकि यह मेरी सबसे प्यारी पत्नी है। तुम्हारा महल हवादार भी है और उसमें हवासे बचनेका भी उपाय है। वह सभी ऋतुओंमें सुख देनेवाला है, अतः वहीं ले जाओ।' पुत्रको इस प्रकार आदेश देकर मैं कष्टसे बचनेके लिये बिछौनेपर गया। शय्यापर पहुँचते ही मुझे नींद आ गयी और अभी-अभी ज्यों ही जगा हूँ, सहसा तुम्हारे पास चला आया हूँ। देवि! तुम जो कुछ भी कहोगी, उसे निस्सदेह पूर्ण करूँगा।

मोहिनी बोली—राजेन्द्र! मेरे विवाहसे अत्यन्त दुःखित हुई इन अपनी पत्नियोंको धीरज बँधाओ। इन पतिव्रताओंके आँसुओंसे दग्ध होनेपर मेरे मनमें क्या शान्ति होगी? भूपाल! ये पतिव्रता देवियाँ तो मेरे पिता ब्रह्माजीको भी भस्म कर सकती हैं। फिर आप-जैसे प्राकृत नरेशको और मेरी-जैसी स्त्रीको जला देना इनके लिये कौन बड़ी बात है? भूमिपाल! महारानी सध्यावलीके समान नारी तीनों लोकोंमें कहीं नहीं है। इनका एक-एक अङ्ग आपके स्नेहपाशसे बँधा हुआ है; इसीलिये ये मुझे बड़े प्यारसे षड्रस भोजन कराती हैं और आपके ही गौरवसे मुझे प्रिय लगनेवाली मीठी-मीठी बातें सुनाती हैं। इन्हींके स्वभावकी सैकड़ों देवियाँ आपके घरकी शोभा बढ़ा रही हैं। महीपते! मैं कभी इन सबके चरणोंकी धूलके बराबर भी नहीं हो सकती।

पुत्रके साथ खड़ी हुई जेठी रानीके समीप मोहिनीका यह वचन सुनकर राजा रुक्माङ्गद बहुत लज्जित हुए। तब धर्माङ्गदने कहा—'माताओ! मेरे पिताको मोहिनी देवी तुम सबसे अधिक प्रिय है। वे मन्दराचलके शिखरसे उन बालाको अपने साथ क्रीडाके लिये ले आये हैं। (अतः ईर्ष्या छोड़कर तुम सब लोग पिताके सुखमें योग दो।')

पुत्रकी यह बात सुनकर सब माताएँ बोलीं—'बेटा! तुम्हारे न्याययुक्त वचनका पालन हम अवश्य करेंगी।'

माताओंकी यह बात सुनकर राजकुमार धर्माङ्गदने प्रसन्नचित्तसे एक-एकके लिये एक-एक करोड़से अधिक स्वर्णमुद्राएँ, हजार-हजार नगर और गाँव तथा आठ-आठ सुवर्णमण्डित रथ प्रदान किये। एक-एक रानीको उन्होंने दस-दस हजार बहुमूल्य वस्त्र दिये, जिनमेंसे प्रत्येकका मूल्य सौ स्वर्णमुद्रासे अधिक था। मेरुपर्वतकी खानसे निकले हुए

शुद्ध एवं अक्षय सुवर्णकी ढाली हुई एक-एक लाख मुद्राएँ उन्होंने प्रत्येक माताको अर्पित कीं। साथ ही एक-एकके लिये सौसे अधिक दास-दासियाँ भी दीं। घड़ेके समान थनवाली दस-दस हजार दुधारू गायें और एक-एक हजार बैल भी दिये। तदनन्तर भक्तिभावसे राजकुमारने सभी माताओंको एक-एक हजार सोनेके आभूषण दिये, जिनमें हीरे जड़े हुए थे। आँवले बराबर मोतीके बने हुए प्रकाशमान हारोंकी कई ढेरियाँ लगाकर उन माताओंको दे दीं। सभीको पाँच-पाँच या सात-सात वलय (कड़े) भी दिये। महीपते! महारानी संध्यावलीके पास चन्द्रमाके समान चमकीले ढाई सौ मोतीके हार थे। धर्माङ्गदने एक-एक माताको दो-दो मनोहर हार दिये। प्रत्येकको चौबीस सौ सोनेकी थालियाँ और इतने ही घड़े प्रदान किये। राजन्! हर एक माताके लिये सौ-सौ सुन्दर पालकियाँ और उनके ढोनेवाले मोटे-ताजे शीघ्रगामी कहार दिये। इस प्रकार कुबेरके समान शोभा पानेवाले उस धन्य राजकुमारने बहुत-सी माताओंको बहुत-सा धन देकर उन सबकी परिक्रमा की और हाथ जोड़कर यह वचन कहा—'माताओ! मैं आपके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम करता हूँ। आप सब लोग मेरे अनुरोधसे पतिके सुखकी इच्छा रखकर मेरे पितासे आज ही चलकर कहें कि—'नरेश्वर! ब्रह्मकुमारी मोहिनी बड़ी सुशीला हैं। आप इनके साथ सैकड़ों वर्षोंतक सुखसे एकान्तमें निवास करें।'

पुत्रका यह वचन सुनकर सबके शरीरमें हर्षातिरेकसे रोमाञ्च हो आया। उन सबने महाराजसे जाकर कहा—'आर्यपुत्र! आप ब्रह्मकुमारी मोहिनीके साथ दीर्घकालतक निवास करें। आपके पुत्रके तेजसे हमारी हार्दिक भावना दुःखरहित हो गयी है, इसलिये हमने आपसे यह बात कही है। आप इसपर विश्वास कीजिये।'

राजाका अपने पुत्रको राज्य सौंपकर नीतिका उपदेश देना और धर्माङ्गदके सुराज्यकी स्थिति

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! अपनी पत्नियोंके इस प्रकार अनुमति देनेपर महाराज रुक्माङ्गदके हर्षकी सीमा न रही। वे अपने पुत्र धर्माङ्गदसे इस प्रकार बोले—'बेटा! इस सात द्वीपोंवाली पृथ्वीका पालन करो। सदा उद्यमशील और सावधान रहना। किस अवसरपर क्या करना उचित है, इसका सदा ध्यान रखना। सदाचारका पालन हो रहा है या नहीं, इसकी ओर दृष्टि रखना। सदा सचेत रहना और वाणिज्य-व्यवसायको सदा प्रिय कार्य समझकर उसे बढ़ाना। राज्यमें सदा भ्रमण करते रहना, निरन्तर दानमें अनुरक्त रहना, कुटिलतासे सदा दूर ही रहना और नित्य-निरन्तर सदाचारके पालनमें संलग्न रहना। बेटा! राजाओंके लिये सर्वत्र अविश्वास रखना ही उत्तम बताया जाता है। खजानेकी जानकारी रखना आवश्यक है।'

पिताकी यह बात सुनकर उत्तम बुद्धिवाले धर्माङ्गदने भक्तिभावसे मातासहित उन्हें प्रणाम किया। फिर उस राजकुमारने उन नृपश्रेष्ठ रुक्माङ्गदको असंख्य धन दिया। उनकी आज्ञाका पालन करनेके लिये बहुत-से सेवकों और कण्ठमें सुवर्णका हार धारण करनेवाली बहुत-सी दासियोंको नियुक्त किया। इस प्रकार पिताको सुख पहुँचानेके लिये पुत्रने सारी व्यवस्था की। फिर उसने पृथ्वीकी रक्षाका कार्य सँभाला। तदनन्तर अनेक राजाओंसे घिरे हुए राजा धर्माङ्गद सातों द्वीपोंसे युक्त सम्पूर्ण पृथ्वीपर भ्रमण करने लगे। उनके भ्रमण करनेसे परिणाम यह होता था कि जनताके मनमें पापबुद्धि नहीं आती थी। उनके राज्यमें कोई भी वृक्ष फल और फूलसे हीन नहीं था। कोई भी खेत ऐसा नहीं था जिसमें जौ या धान आदिकी खेती लहलहाती न हो। उस राज्यकी सभी गौएँ घड़ाभर दूध देती थीं। उस दूधमें घीका अंश अधिक होता था और उसमें शक्करके समान मिठास रहती थी। वह दूध उत्तम पेय, सब रोगोंका नाशक, पापनिवारक तथा पुष्टिवर्धक होता था। कोई भी मनुष्य अपने धनको छिपाकर नहीं रखता था। पत्नी अपने पतिसे कटुवचन नहीं बोलती थी। पुत्र विनयशील तथा पिताकी आज्ञाके पालनमें तत्पर होता था। पुत्रवधू सासके हाथमें रहती थी। साधारण लोग ब्राह्मणोंके उपदेशके अनुसार चलते थे। श्रेष्ठ द्विज वेदोक्त धर्मोंका पालन करते थे। मनुष्य एकादशीके दिन भोजन नहीं करते थे। पृथ्वीपर नदियाँ कभी सूखती नहीं थीं। धर्माङ्गदके राज्यपालनमें प्रवृत्त होनेपर सम्पूर्ण जगत् पुण्यात्मा हो गया था। भगवान्के दिन एकादशी-व्रतका सेवन करनेसे सब लोग इस जगत्में सुख भोगकर अन्तमें भगवान् विष्णुके वैकुण्ठधाममें जाते थे। भूपाल! चोर और लुटेरोंका भय नहीं था। अतः अँधेरी रातमें भी कोई अपने घरके दरवाजे नहीं बंद करते थे। इच्छानुसार विचरनेवाले अतिथि घरपर आकर ठहरते थे। (किसीके लिये कहीं रोक-टोक नहीं थी।) हल चलाये बिना ही सब ओर अन्नकी अच्छी उपज होती थी। केवल माताके दूधसे बच्चे खूब हृष्ट-पुष्ट रहते थे और पतिके संयोगसे

युवतियाँ भी पुष्ट और संतुष्ट रहती थीं। राजाओंसे सुरक्षित होकर समस्त जनता हृष्ट-पुष्ट रहती थी तथा शक्तिसहित धर्मका भी भलीभाँति पोषण होता था। इस प्रकार सब लोगोंमें धर्म-प्रेमकी प्रधानता थी। सभी भगवान् विष्णुकी भक्तिमें लगे रहते थे। राजकुमार धर्माङ्गदके द्वारा सारी जनता सुरक्षित थी और सबका समय बड़े सुखसे बीत रहा था।

उधर राजा रुक्माङ्गद नीरोग रहकर सब प्रकारके ऐश्वर्यसे सम्पन्न हो प्रचुर दानकी वर्षा करते और उत्सव मनाते थे। वे मोहिनीकी चेष्टाओंके सुखसे अत्यन्त मुग्ध थे।

धर्माङ्गदका दिग्विजय, उसका विवाह तथा उसकी शासनव्यवस्था

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार मोहिनीके विलाससे मोहित हुए राजा रुक्माङ्गदके आठ वर्ष बड़े सुखसे बीते। नवम वर्ष आनेपर उनके बलवान् पुत्र धर्माङ्गदने मलयपर्वतपर पाँच विद्याधरोंको परास्त किया और उनसे पाँच मणियोंको छीन लिया, जो सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाली और शुभकारक थीं। एक मणिमें यह गुण था कि वह प्रतिदिन कोटि-कोटि गुना सुन्दर सुवर्ण दिया करती थी। दूसरी लाखकोटि वस्त्राभूषण आदि दिया करती थी। तीसरी अमृतकी वर्षा करती और बुढ़ापेमें भी पुनः नयी जवानी ला देती थी। चौथीमें यह गुण था कि वह सभाभवन तैयार कर देती और उसमें इच्छानुसार अन्न प्रस्तुत किया करती थी। पाँचवीं मणि आकाशमें चलनेकी शक्ति देती और तीनों लोकोंमें भ्रमण करा देती थी। उन पाँचों मणियोंको लेकर धर्माङ्गद मनःशक्तिसे पिताके पास आये। राजकुमारने पिता रुक्माङ्गद और माता मोहिनीके चरणोंमें प्रणाम किया और उनके चरणोंमें पाँचों मणि समर्पित करके विनीत भावसे कहा—'पिताजी! पर्वतश्रेष्ठ मलयपर मैंने वैष्णवास्त्रद्वारा पाँच विद्याधरोंपर विजय पायी है। नृपश्रेष्ठ! वे अपनी स्त्रियोंसहित आपके सेवक हो गये हैं। आप ये मणियाँ मोहिनी देवीको दे दीजिये। वे इनके द्वारा अपनी बाँहोंको विभूषित करेंगी। ये मणियाँ समस्त कामनाओंको देनेवाली हैं। भूपते! आपके ही प्रतापसे मैंने सातों द्वीपोंको बड़े कष्टसे अपने अधिकारमें किया है।' तदनन्तर कुमार धर्माङ्गदने नागोंकी भोगपुरी, विशाल दानवपुरी और वरुणलोकके विजयकी बात सुनाकर वहाँसे जीतकर लाये हुए करोड़ों रत्न, हजारों श्वेतरगके श्यामकर्ण घोड़े और हजारों कुमारियोंको पिताको दिखाया और कहा—'पिताजी! मैं और ये सारी सम्पत्तियाँ आपके अधीन हैं। तात! पुत्रको पिताके सामने आत्मप्रशंसा नहीं करनी चाहिये। पिताके ही पराक्रमसे पुत्रकी धनराशि बढती है। अतः आप अपनी इच्छाके अनुसार इनका दान अथवा संरक्षण कीजिये। मेरी माताएँ भी अपनी इस सम्पदाको देखें।'

वसिष्ठजीने कहा—पुत्रकी बात सुनकर नृपश्रेष्ठ रुक्माङ्गद बड़े प्रसन्न हुए और अपनी प्रियाके साथ उठकर खड़े हो गये। उन्होंने वह सारी धन-सम्पत्ति देखी। उन विष्णुपरायण राजाने एक क्षणतक हर्षमें मग्न रहकर बड़े प्रेमके सहित वरुण-कन्यासहित समस्त नागकन्याओंको अपने पुत्र धर्माङ्गदके अधिकारमें दे दिया। शेष सब वस्तुएँ बहुत-से रत्नों तथा दानव-नारियोंके साथ उन्होंने मोहिनीको अर्पित कर दीं। धर्माङ्गदके लाये हुए धन-वैभवका यथायोग्य विभाजन करके राजाने समयपर पुरोहितजीको बुलाया और कहा—'ब्रह्मन्! मेरा पुत्र सदा मेरी आज्ञाके पालनमें स्थित रहा है और अभीतक यह कुमार ही है। अतः इन सब कुमारियोंका यह धर्मपूर्वक पाणिग्रहण करे। धर्मकी इच्छा रखनेवाले पिताको पुत्रका विवाह अवश्य कर देना चाहिये। जो पिता पुत्रोंको पत्नी और धनसे संयुक्त नहीं करता, उसे इस लोक और परलोकमें भी निन्दित बनना

चाहिये । अतः पुत्रोंको स्त्री तथा जीवननिर्वाहके योग्य धनसे सम्पन्न अवश्य कर देना चाहिये ।'

राजाका यह वचन सुनकर पुरोहितजी बड़े प्रसन्न हुए और धर्माङ्गदका विवाह करानेके उद्योगमें लग गये । धर्माङ्गद युवा होनेपर भी लज्जावश स्त्री-सुखकी इच्छा नहीं रखते थे तथापि पिताके आदेशसे उन्होंने उस समय स्त्री-संग्रह स्वीकार कर लिया । तदनन्तर महाबाहु धर्माङ्गदने वरुणकन्याके साथ, मनोहर नागकन्याओंके साथ भी विवाह किया, जो पृथ्वीपर अनुपम रूपवती थीं । शास्त्रीय विधिके अनुसार उन सबका विवाह करके धर्माङ्गदने ब्राह्मणोंको धन, रत्न तथा गौओंका प्रसन्नतापूर्वक दान किया । विवाहके पश्चात् उन्होंने माता और पिताके चरणोंमें हर्षके साथ प्रणाम किया । तदनन्तर राजकुमार धर्माङ्गदने अपनी माता संध्यावलीसे कहा—'देवि ! पिताजीकी आज्ञासे मेरा वैवाहिक कार्य सम्पन्न हुआ है । मुझे दिव्य भोगों तथा स्वर्गसे भी कोई प्रयोजन नहीं है । पिताजीकी तथा तुम्हारी दिन-रात सेवा करना ही मेरा कर्तव्य है ।'

संध्यावली बोली—बेटा ! तुम दीर्घकालतक सुखपूर्वक जीते रहो । पिताके प्रसादसे मनके अनुरूप भोगोंका उपभोग करो । वत्स ! तुम-जैसे गुणवान् पुत्रके द्वारा मैं इस पृथ्वीपर श्रेष्ठ पुत्रवाली हो गयी हूँ और सपत्नियोंके हृदयमें मेरे लिये उच्चतम स्थान बन गया है ।

ऐसा कहकर माताने पुत्रको हृदयसे लगाकर बार-बार उसका मस्तक सूँघा । तत्पश्चात् उसे राजकाज देखनेके लिये विदा किया । माता संध्यावलीसे विदा लेकर राजकुमारने अन्य माताओंको भी प्रणाम किया और पिताकी आज्ञाके अधीन रहकर वे राज्यशासनका समस्त कार्य देखने लगे । वे दुष्टोंको दण्ड देते, साधु-पुरुषोंका पालन करते और सब देशोंमें घूम-घूमकर प्रत्येक कार्यकी देखभाल किया करते थे । सर्वत्र पहुँचकर प्रत्येक मासमें वहाँके कार्योंका निरीक्षण करते थे । उन्होंने हाथी और घोड़ोंके पालन-पोषणकी अच्छी व्यवस्था की थी । गुप्तचर-मण्डलपर भी उनकी दृष्टि रहती थी । इधर-उधरसे प्राप्त समाचारोंको वे देखते और उनपर विचार करते थे । प्रतिदिन माप और तौलकी भी जाँच करते रहते थे । राजा धर्माङ्गद प्रत्येक घरमें जाकर वहाँके लोगोंकी रक्षाका प्रबन्ध करते थे । उनके राज्यमें कहीं दूध पीनेवाला बालक माताके स्तन न मिलनेसे रोता हो, ऐसा नहीं देखा गया । सास अपनी पुत्रवधूसे अपमानित होकर कहीं भी रोती नहीं सुनी गयी । कहीं भी समर्थ पुत्र पितासे याचना नहीं करता था । उनके राज्यभरमें किसीके यहाँ वर्णसंकर संतानकी उत्पत्ति नहीं हुई । लोग अपना धन-वैभव छिपाकर नहीं रखते थे । कोई भी धर्मपर दोषारोपण नहीं करता था । सधवा नारी कभी भी बिना चोलीके नहीं रहती थी । उन्होंने यह घोषणा करायी थी कि 'मेरे राज्यमें स्त्रियाँ घरोंमें सुरक्षित रहें । विधवा केश न रखावे और सौभाग्यवती कभी केश न कटावे । जो दूसरोंको साधारणवृत्ति (जीवननिर्वाहके लिये अन्न आदि) नहीं देता, वह निर्दयी मेरे राज्यमें निवास न करे । दूसरोंको सद्गुणोंका उपदेश देनेवाला पुरुष स्वयं सद्गुण-शून्य हो और ऋत्विग् यदि शास्त्रज्ञानसे वञ्चित हो तो वह मेरे राज्यमें निवास न करे । जो नीलका उत्पादन करता है अथवा जो नीलके रंगसे अधिकतर वस्त्र रँगा करता है, उन दोनोंको मेरे राज्यसे निकाल देना चाहिये । जो मदिरा बनाता है, वह भी यहाँसे निर्वासित होने योग्य ही है । जो मांस भक्षण करता है तथा जो अपनी स्त्रीका अकारण परित्याग करता है, उसका मेरे राज्यमें निवास न हो । जो गर्भवती अथवा सद्यःप्रसूता युवतीसे समागम करता है, वह मनुष्य मुझ-जैसे शासकोंके द्वारा दण्डनीय है ।'

राजा रुक्माङ्गदका मोहिनीसे कार्तिकमासकी महिमा तथा चातुर्मास्यके नियम, व्रत एवं उद्यापन बताना

वसिष्ठजी कहते हैं—राजेन्द्र ! इस प्रकार पिताकी आज्ञासे एकादशी-व्रतका पालन करते हुए धर्माङ्गद इस पृथ्वीका राज्य करने लगे । उस समय उनके राज्यमें कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं था, जो धर्म-पालनमें तत्पर न हो । महीपते ! कोई भी व्यक्ति दुखी, संतानहीन अथवा कोढ़ी नहीं था । नरेश्वर ! उस राज्यमें सब लोग हृष्ट-पुष्ट थे । पृथ्वी निधि देनेवाली थी, गौएँ बछड़ोंको दूध पिलाकर तृप्त रखतीं और एक-एक घड़ा दूध देती थीं । वृक्षोंके पत्ते-पत्तेमें मधु भरा था ।

एक-एक वृक्षपर एक-एक दोन मधु सुलभ था। सर्वथा प्रसन्न रहनेवाली पृथ्वीपर सब प्रकारके धान्योंकी उपज होती थी। त्रेताके अन्तका द्वापरयुग सत्ययुगसे होड़ लगाता था। वर्षाकाल बीत चला, शरद्-ऋतुका आकाश और गृहस्थोंका घर धूल-पङ्कसे रहित स्वच्छ हो गया। राजा रुक्माङ्गद मोहिनीके प्रेमसे अत्यन्त मुग्ध होनेपर भी एकादशी-व्रतकी अवहेलना नहीं करते थे। दशमी, एकादशी और द्वादशी—इन तीन दिनोंतक राजा रतिक्रीडा त्याग देते थे। इस प्रकार क्रीडा करते हुए उन्हें लगभग एक वर्ष पूरा हो गया। कालज्ञोंमें श्रेष्ठ नरेश! उस समय परम मङ्गलमय श्रेष्ठ कार्तिक मास आ पहुँचा था, जो भगवान् विष्णुकी निद्राको दूर करनेवाला परम पुण्यदायक मास है। राजन्! उसमें वैष्णव मनुष्योंद्वारा किया हुआ सारा पुण्य अक्षय होता है और विष्णुलोक प्रदान करता है। कार्तिकके समान कोई मास नहीं है, सत्ययुगके समान कोई युग नहीं है, दयाके तुल्य कोई धर्म नहीं है और नेत्रके समान कोई ज्योति नहीं है। वेदके समान दूसरा शास्त्र नहीं है, गङ्गाके समान दूसरा तीर्थ नहीं है। भूमिदानके समान अन्य दान नहीं है और पत्नी-सुखके समान कोई (लौकिक) सुख नहीं है। खेतीके समान कोई धन नहीं है, गाय रखनेके समान कोई लाभ नहीं है, उपवासके समान कोई तप नहीं है और (मन और) इन्द्रियोंके संयमके समान कोई कल्याणमय साधन नहीं है। रसनातृप्तिके समान कोई (सांसारिक) तृप्ति नहीं है, ब्राह्मणके समान कोई वर्ण नहीं है, धर्मके समान कोई मित्र नहीं है और सत्यके समान कोई यश नहीं है। आरोग्यके समान कोई ऐश्वर्य नहीं है, भगवान् विष्णुसे बढ़कर कोई देवता नहीं है तथा लोकमें कार्तिक-व्रतके समान दूसरा कोई पावन व्रत नहीं है। ऐसा ज्ञानी पुरुषोंका कथन है। कार्तिक सबसे श्रेष्ठ मास है और वह भगवान् विष्णुको सदा ही प्रिय है।

राजन्! कार्तिक मासको आया देख अत्यन्त मुग्ध हुए महाराज रुक्माङ्गदने मोहिनीसे यह बात कही—'देवि! मैंने तुम्हारे साथ बहुत वर्षोंतक रमण किया। शुभानने! इस समय मैं कुछ कहना चाहता हूँ। उसे सुनो। देवि! तुम्हारे प्रति आसक्त होनेके कारण मेरे बहुत-से कार्तिक मास व्यर्थ बीत गये। कार्तिकमें मैं केवल एकादशीको छोड़कर और किसी दिन व्रतका पालन न कर सका। अतः इस बार मैं व्रतके पालनपूर्वक कार्तिक मासमें भगवान्‌की उपासना करना चाहता हूँ। कार्तिकमें सदा किये जानेवाले भोज्योंका परित्याग कर देनेपर साधकको अवश्य ही भगवान् विष्णुका सारूप्य प्राप्त होता है। पुष्करतीर्थमें कार्तिक-पूर्णिमाको व्रत और स्नान करके मनुष्य आजन्म किये हुए पापसे मुक्त हो जाता है। जिसका कार्तिक मास व्रत, उपवास तथा नियमपूर्वक व्यतीत होता है, वह विमानका अधिकारी देवता होकर परम गतिको

प्राप्त होता है। अतः मोहिनी! तुम मेरे ऊपर मोह छोड़कर आज्ञा दो, जिससे इस समय मैं कार्तिकका व्रत आरम्भ करूँ।'

मोहिनी बोली—नृपशिरोमणे! कार्तिक मासका माहात्म्य विस्तारपूर्वक बताइये। मैं कार्तिक-माहात्म्य सुनकर जैसी मेरी इच्छा होगी, वैसा करूँगी।

रुक्माङ्गदने कहा—वरानने! मैं इस कार्तिक मासकी महिमा बताता हूँ। सुन्दरी! कार्तिक मासमें जो कृच्छ्र अथवा प्राजापत्य व्रत करता है अथवा एक दिनका अन्तर देकर उपवास करता है अथवा तीन रातका उपवास स्वीकार करता है अथवा दस दिन, पंद्रह दिन या एक मासतक निराहार रहता है, वह मनुष्य भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य कार्तिकमें एकभुक्त (केवल दिनमें एक समय भोजन) या नक्त-व्रत (केवल रातमें एक बार भोजन) अथवा अयाचित-व्रत (बिना माँगे स्वतः प्राप्त हुए अन्नका दिन या रातमें केवल एक बार भोजन) करते हुए भगवान्‌की आराधना करते हैं, उन्हें सातों द्वीपोंसहित यह पृथ्वी प्राप्त होती है। विशेषतः पुष्करतीर्थ, द्वारकापुरी तथा सूकरक्षेत्र-में यह कार्तिक मास व्रत, दान और भगवत्पूजन आदि करनेसे भक्ति देनेवाला बताया गया है। कार्तिकमें एकादशीका दिन तथा भीष्मपञ्चक अधिक पुण्यमय माना गया है। मनुष्य कितने ही पापोंसे भरा हुआ क्यों न हो, यदि वह रात्रिजागरण-पूर्वक प्रबोधिनी एकादशीका व्रत करे तो फिर कभी माताके गर्भमें नहीं आता। वरारोहे! उस दिन जो वाराहमण्डलका दर्शन करता है, वह बिना साङ्ख्ययोगके परमपदको प्राप्त होता है। शुभे! कार्तिकमें शूकरमण्डल या कोकवाराहका दर्शन करके मनुष्य फिर किसीका पुत्र नहीं होता। उसके दर्शनसे मनुष्योंका आध्यात्मिक आदि तीनों प्रकारके पापोंसे छुटकारा हो जाता है। ब्रह्मकुमारी! उक्त मण्डल, श्रीधर तथा कुब्जकका दर्शन करके भी मनुष्य पापमुक्त होते हैं। कार्तिकमें तैल छोड़ दे। कार्तिकमें मधु त्याग दे। कार्तिकमें स्त्रीसेवनका भी त्याग कर दे। देवि! इन सबके त्यागद्वारा तत्काल ही वर्षभरके पापसे छुटकारा मिल जाता है। जो थोड़ा भी व्रत करनेवाला है, उसके लिये कार्तिक मास सब पापोंका नाशक होता है। कार्तिकमें ली हुई दीक्षा मनुष्योंके जन्मरूपी बन्धनका नाश करनेवाली है। अतः पूरा प्रयत्न करके कार्तिकमें दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये। जो तीर्थमें कार्तिक-पूर्णिमाका व्रत करता है या कार्तिकके शुक्लपक्षकी एकादशीको व्रत करके मनुष्य यदि सुन्दर कलशोंका दान करता है तो वह भगवान् विष्णुके धाममें जाता है। सालभर-तक चलनेवाले व्रतोंकी समाप्ति कार्तिकमें होती है। अतः मोहिनी! मैं कार्तिक मासमे समस्त पापोंके नाश तथा तुम्हारी प्रीतिकी वृद्धिके लिये व्रत-सेवन करूँगा।

मोहिनीने कहा—पृथ्वीपते! अब चातुर्मास्यकी विधि और उद्यापनका वर्णन कीजिये, जिससे सब व्रतोंकी पूर्णता होती है। उद्यापनसे व्रतकी न्यूनता दूर होती है और वह पुण्यफलका साधक होता है।

राजा बोले—प्रिये! चातुर्मास्यमें नक्त-व्रत करनेवाला पुरुष ब्राह्मणको षड्रस भोजन करावे। अयाचित-व्रतमें सुवर्णसहित वृषभ दान करे। जो प्रतिदिन आँवलेके फलसे स्नान करता है, वह मनुष्य दही और खीर दान करे। सुभ्रु! यदि फल न खानेका नियम ले तो उस अवस्थामें फलदान करे। तेलका त्याग करनेपर घीदान करे और घीका त्याग करनेपर दूधका दान करे। यदि धान्यके त्याग-का नियम लिया हो तो उस अवस्थामें अगहनीके चावल या दूसरे किसी धान्यका दान करे। भूमिशयनका नियम लेनेपर गद्दा, रजाई और तकियासहित शय्यादान करे। पत्तेमें भोजनका नियम लेनेवाला मनुष्य घृतसहित पात्रदान करे। मौनव्रती पुरुष घण्टा, तिल और सुवर्णका दान करे। व्रतकी पूर्तिके लिये ब्राह्मण पति-पत्नीको भोजन करावे। दोनोंके लिये उपभोगसामग्री तथा दक्षिणासहित शय्यादान करे। प्रातःस्नानका नियम लेनेपर अश्वदान करे और स्नेह-रहित (बिना तेलके) भोजनका नियम लेनेपर घी और सत्तू दान करे। नख और केश न कटाने—धारण करनेका नियम लेनेपर दर्पण दान करे। पादत्राण (जूता, खड़ाऊँ आदि) के त्यागका नियम लेनेपर जूता दान करे। नमक-का त्याग करनेपर गोदान करे। प्रिये! जो इस अभीष्ट व्रतमें प्रतिदिन देवमन्दिरमें दीप-दान करता है, वह सुवर्ण अथवा ताँबेका घृतयुक्त दीपक दान करे तथा व्रतकी पूर्तिके लिये वैष्णवको वस्त्र एवं छत्र दान करे। जो एक दिनका अन्तर देकर उपवास करता है, वह रेशमी वस्त्र दान करे। त्रिरात्र-व्रतमें सुवर्ण तथा वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत शय्यादान करे। षड्रात्र आदि उपवासोंमें छत्रसहित शिबिका (पालकी) दान करे। साथ ही हाँकनेवाले पुरुषके साथ मोटा-ताज़ा

गाड़ी खींचनेवाला बैल दान करे। एकभक्त (आठ पहर-में केवल एक बार भोजन करनेके) व्रतका नियम लेनेपर बकरी और भेड़ दान करे। फलाहारका नियम ग्रहण करनेपर सुवर्णका दान करे। शाकाहारके नियममें फल, घी और सुवर्ण दान करे। सम्पूर्ण रसों तथा अबतक जिनकी चर्चा नहीं की गयी, ऐसी वस्तुओंका त्याग करनेपर अपनी शक्तिके अनुसार सोने-चाँदीका पात्र दान करे। सुभ्रु! जिनके लिये जो दान कर्तव्य बताया गया है, उनका पालन न हो सके तो भगवान् विष्णुके स्मरणपूर्वक ब्राह्मणकी आज्ञाका पालन करे। सुन्दरी! देवता, तीर्थ और वन भी ब्राह्मणोंके वचनका पालन करते हैं, फिर कल्याणकी इच्छा रखनेवाला कौन विद्वान् मनुष्य उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन करेगा। प्रिये! भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीसे जिस प्रकार यह धर्म-रहस्यसे युक्त उपदेश दिया था, वही मैंने तुमसे प्रकाशित किया है। यह दूसरे अनधिकारियोंके सामने प्रकट करनेयोग्य नहीं है। यह दान और व्रत भगवान् विष्णुकी प्रसन्नता-का हेतु और मनोवाञ्छित फल देनेवाला है।

राजा रुक्माङ्गदकी आज्ञासे रानी संध्यावलीका कार्तिक मासमें कृच्छ्रव्रत प्रारम्भ करना, धर्माङ्गदकी एकादशीके लिये घोषणा, मोहिनीका राजासे एकादशीको भोजन करनेका आग्रह और राजाकी अस्वीकृति

मोहिनी बोली—राजेन्द्र! आपने कार्तिक मासमें उपवास-के विषयमें जो बातें कही हैं, वे बहुत उत्तम हैं। पर राजाओंके लिये तीन ही कर्म प्रधान रूपसे बताये गये हैं। पहला कर्म है दान देना, दूसरा प्रजाका पालन करना तथा तीसरा है विरोधी राजाओंसे युद्ध करना। आपको यह व्रत नहीं करना चाहिये। मैं तो आपके बिना कहीं दो घड़ी भी नहीं रह सकती; फिर तीस दिनोंतक मैं आपसे अलग कैसे रह सकती हूँ। वसुधापते! आप जहाँ उपवास करना उचित मानते हैं, वहाँ उपवास न करके महात्मा ब्राह्मणोंको भोजन-दान करें अथवा यदि उपवास ही आवश्यक हो तो आपकी जो ज्येष्ठ पत्नी हैं, वे ही यह सब व्रत आदि करें।

मोहिनीके ऐसा कहनेपर राजा रुक्माङ्गदने संध्यावलीको बुलाया। बुलानेपर वे प्रचुर दक्षिणा देनेवाले महाराजके पास तत्काल आ पहुँचीं और हाथ जोड़कर बोलीं—'प्राणनाथ! दासीको किसलिये बुलाया है? आज्ञा कीजिये, मैं उसका पालन करूँगी।'

रुक्माङ्गदने कहा—भामिनि! मैं तुम्हारे शील-स्वभाव और कुलको जानता हूँ। तुम्हारे आदेशसे ही मैंने मोहिनीके साथ दीर्घकालतक निवास किया है। इस तरह चिरकालतक प्रियाके समागम-सुखसे मुग्ध हो निवास करते-करते मेरे बहुत-से कार्तिक मास व्यर्थ बीत गये। तथापि मेरा एकादशी-व्रत कभी भङ्ग नहीं होने पाया है। अब सम्पूर्ण पापोंका विनाश करनेवाला यह कार्तिक मास आया है। देवि! मैं उत्तम पुण्य प्रदान करनेवाले इस कार्तिक व्रतको करना चाहता हूँ। परंतु शुभे! ये ब्रह्मकुमारी मुझे इस व्रतसे रोकती हैं। इसलिये शरीरको सुखानेवाले कृच्छ्र नामक व्रतका पालन मेरी ओरसे तुम करो।

रानी संध्यावलीने उस समय पतिदेवका यह प्रस्ताव सुनकर कहा—'प्रभो! मैं आपके संतोषके लिये व्रतका पालन अवश्य करूँगी। आपके लिये मैं अपने शरीरको आगमें भी झोंक सकती हूँ। भूमिपाल! आपने जो आज्ञा दी है, वह तो बहुत उत्तम है। नरदेवनाथ! मैं इसका

पालन करूँगी ।' यमराजके शत्रु राजा रुक्माङ्गदसे ऐसा कहकर मनोहर एवं विशाल नेत्रोंवाली रानी संध्यावलीने उन्हें प्रणाम किया और समस्त पापराशिका विनाश करनेके लिये उस उत्तम व्रतका पालन आरम्भ किया । अपनी प्रियाद्वारा उत्तम कृच्छ्रव्रत प्रारम्भ किये जानेपर राजाको बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने ब्रह्माजीकी पुत्री मोहिनीसे यह बात कही— 'सुभ्रु ! मैंने तुम्हारी आज्ञाका पालन किया । देवि ! मेरे प्रति तुम्हारे मनमें जो-जो कामनाएँ निहित हैं, उन सबको सफल कर लो । मैं तुम्हारे संतोषके लिये राज्यशासनके समस्त कार्योंसे अलग हो गया हूँ । तुम्हारे सिवा दूसरी कोई नारी मुझे सुख देनेवाली नहीं है ।'

अपने प्राणवल्लभके मुखसे ऐसी बात सुनकर मोहिनीके हर्षकी सीमा न रही । उसने राजासे कहा—'देवता, दैत्य, गन्धर्व, यक्ष, नाग तथा राक्षस सब मेरी दृष्टिमें आये, किंतु मैं सबको त्यागकर केवल आपके प्रति स्नेहयुक्त हो मन्दराचलपर आयी थी । लोकमें कामकी सफलता इसीमें है कि प्रिया और प्रियतम दोनों एकचित्त हों—परस्पर एक-दूसरेको चाहते हों ।' उस समय महाराज रुक्माङ्गदके कानोंमें डंकेकी चोट सुनायी दी, जो मतवाले गजराजके मस्तकपर रखकर धर्माङ्गदके आदेशसे बजाया जा रहा था । उस पटह-ध्वनिके साथ यह घोषणा हो रही थी—'लोगो ! कल प्रातःकालसे भगवान् विष्णुका दिन (एकादशी) है, अतः आज केवल एक समय भोजन करके रहो । क्षार नमक छोड़ दो । सब-के-सब हविष्यान्नका सेवन करो । भूमिपर शयन करो । स्त्री-संगमसे दूर रहो और पुराणपुरुषोत्तम देवदेवेश्वर भगवान् विष्णुका स्मरण करो । आज एक समय भोजन करके कल दिन-रात उपवास करना होगा । ऐसा करनेसे तुम्हारे लिये श्राद्ध चाहे न किया गया हो, तुम्हें पिण्ड न मिला हो और तुम्हारे पुत्र गयामें जाकर श्राद्ध न कर सके हों, तो भी तुम्हें भगवान् श्रीहरिके वैकुण्ठधामकी प्राप्ति होगी । यह कार्तिक शुक्ला एकादशी भगवान् श्रीहरिकी निद्रा दूर करनेवाली है । प्रातःकाल एकादशी प्राप्त होनेपर तुम कदापि भोजन न करो । इस प्रबोधिनी एकादशीको उपवास करनेसे इच्छानुसार किये हुए ब्रह्महत्या आदि सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जायँगे । यह तिथि धर्मपरायण तथा न्याययुक्त सदाचारका पालन करनेवाले पुरुषोंको प्रबोध (ज्ञान) देती है और इसमें भगवान् विष्णुका प्रबोध (जागरण) होता है, इसलिये इसका नाम प्रबोधिनी है । इस एकादशीको जो एक बार भी उपवास कर लेता है, वह मनुष्य फिर संसारमें जन्म नहीं लेता । मनुष्यो ! तुम अपने वैभवके अनुसार इस एकादशीको चक्रसुदर्शनधारी भगवान् विष्णुकी पूजा करो । वस्त्र, उत्तम चन्दन, रोली, पुष्प, धूप, दीप तथा हृदयको अत्यन्त प्रिय लगनेवाले सुन्दर फल एवं उत्तम गन्धके द्वारा भगवान् श्रीहरिके चरणारविन्दोंकी अर्चना करो । जो भगवान् विष्णुका लोक प्रदान करनेवाले मेरे इस धर्मसम्मत वचनका पालन नहीं करेगा, निश्चय ही उसे कठोर दण्ड दिया जायगा ।'

इस प्रकार मेघके समान गम्भीर शब्द करनेवाले नगाड़ेको बजाकर जब उक्त घोषणा की जा रही थी, उस समय वे भूपाल मोहिनीकी शय्या छोड़कर उठ गये । फिर मोहिनीको मधुर वचनोंसे सान्त्वना देते हुए बोले—'देवि ! कल प्रातःकाल पापनाशक एकादशी तिथि होगी । अतः आज मैं संयमपूर्वक रहूँगा । तुम्हारी आज्ञासे मैंने कृच्छ्र-व्रत तो संध्यावली देवीके द्वारा कराया है, किंतु यह प्रबोधिनी एकादशी मुझे स्वयं भी करनी है । यह सम्पूर्ण पापबन्धनोंका उच्छेद करनेवाली तथा उत्तम गति देनेवाली है । अतः मोहिनी देवी ! आज मैं हविष्य भोजन करूँगा और संयम-नियमसे रहूँगा । विशाललोचने ! तुम भी मेरे साथ उपवास-पूर्वक समस्त इन्द्रियोंके स्वामी भगवान् अधोक्षजकी आराधना करो, जिससे निर्वाणपदको प्राप्त करोगी ।'

मोहिनी बोली—राजन् ! चक्रधारी भगवान् विष्णुका पूजन जन्म-मृत्यु तथा जरावस्थाका नाश करनेवाला है—यह बात आपने ठीक कही है, किंतु पहले मन्दराचलके शिखरपर आपने मुझे अपना दाहिना हाथ देकर प्रतिज्ञा की है, उसके पालनका समय आ गया है । अतः मुझे आप वर दीजिये, यदि नहीं देते हैं तो जन्मसे लेकर अबतक आपने बड़े यत्नसे जो पुण्यसंचय किया है, वह सब शीघ्र नष्ट हो जायगा ।

रुक्माङ्गदने कहा—प्रिये ! आओ, तुम्हारे मनमें जो इच्छा होगी, उसे मैं पूर्ण करूँगा । मेरे पास कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जो तुम्हारे लिये देने योग्य न हो, मेरा यह जीवनतक तुम्हें अर्पित है, फिर ग्राम, धन और पृथ्वीके राज्य आदिकी तो बात ही क्या है ।

मोहिनी बोली—राजन् ! यदि मैं आपकी प्रिया हूँ तो आप एकादशीके दिन उपवास न करके भोजन करें । यही वर मुझे देना चाहिये । जिसके लिये मैंने पहले ही

आपसे प्रार्थना कर ली है। महाराज ! यदि आप वर नहीं देंगे तो असत्यवादी होकर घोर नरकमें जायँगे और एक कल्पतक उसीमें पड़े रहेंगे।

राजाने कहा—कल्याणी ! ऐसी बात न कहो। यह तुम्हें शोभा नहीं देती। अहो ! तुम ब्रह्माजीकी पुत्री होकर धर्ममें विघ्न क्यों डालती हो ? शुभे ! जन्मसे लेकर अबतक मैंने कभी एकादशीको भोजन नहीं किया, तब आज जब कि मेरे बाल सफेद हो गये हैं, मैं कैसे भोजन कर सकता हूँ। जिसकी जवानी बीत चुकी है और जिसकी इन्द्रियोंकी शक्ति नष्ट हो गयी है, उस मनुष्यके लिये यही उचित है कि वह गङ्गाजीका सेवन या भगवान् विष्णुकी आराधना करे। सुन्दरी ! मुझपर प्रसन्न होओ। मेरे व्रतको भङ्ग न करो। मैं तुम्हें राज्य और सम्पत्ति दे दूँगा अथवा इसकी इच्छा न हो तो और कोई कार्य कहो उसे पूरा करूँगा। अमावास्याके दिन मैथुन करनेपर जो पाप होता है, चतुर्दशीको हजामत बनवानेसे मनुष्यमें जिस पापका संचार होता है और षष्ठीको तेल खाने या लगानेसे जो दोष होता है, वे सब एकादशीको भोजन करनेसे प्राप्त होते हैं। गोचरभूमिका नाश करनेवाले, झूठी गवाही देनेवाले, धरोहर हड़पनेवाले, कुमारी कन्याके विवाहमें विघ्न डालनेवाले, विश्वासघाती, मरे हुए बछड़ेवाली गायको दुहनेवाले तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणको कुछ देनेकी प्रतिज्ञा करके न देनेवाले पुरुषको जो पाप लगता है, मणिकूट[1], तुलाकूट[2], कन्यानृत[3] और गवानृत[4]में जो पातक होता है, वही एकादशीको अन्नमें विद्यमान रहता है। चारुलोचने ! मैं इन सब बातोंको जानता हूँ, अतः एकादशी-को पापमय भोजन कैसे करूँगा ?

मोहिनी बोली—राजेन्द्र ! एकभुक्त-व्रत, नक्त-व्रत, अयाचित-व्रत अथवा उपवासके द्वारा एकादशी-व्रतको सफल बनावे। उसका उल्लङ्घन न करे, यह बात ठीक हो सकती है; किंतु जिन दिनों मैं मन्दराचलपर रहती थी, उन दिनों महर्षि गौतमने मुझे एक बात बतायी थी, जो इस प्रकार है—गर्भिणी स्त्री, गृहस्थ पुरुष, क्षीणकाय रोगी शिशु, वलिगात्र (झुर्रियोंसे जिसका शरीर भरा हुआ है, ऐसा), यज्ञके आयोजनके लिये उद्यत पुरुष एवं संग्रामभूमिमें रहनेवाले योद्धा तथा पतिव्रता स्त्री—इन सबके लिये निराहार व्रत करना उचित नहीं है। नरश्रेष्ठ ! एकादशीको बिना व्रतके नहीं व्यतीत करना चाहिये—यह आज्ञा उपर्युक्त व्यक्तियोंपर लागू नहीं होती। अतः जब आप एकादशीको भोजन कर लेंगे, तभी मुझे प्रसन्नता होगी। अन्यथा यदि आप अपना सिर काटकर भी मुझे दे दें तो भी मुझे प्रसन्नता न होगी। राजन् ! यदि आप एकादशीको भोजन नहीं करेंगे तो आप-जैसे असत्यवादीके शरीरका मैं स्पर्श नहीं करूँगी। महाराज ! समस्त वर्णों और आश्रमोंमें सत्यकी ही पूजा होती है। महीपते ! आप-जैसे राजाओंके यहाँ तो सत्यका विशेष आदर होना चाहिये। सत्यसे ही सूर्य तपता है, सत्यसे ही चन्द्रमा प्रकाशित होते हैं। भूपाल ! सत्यपर ही यह पृथ्वी टिकी हुई है और सत्य ही सम्पूर्ण जगत्को धारण करता है। सत्यसे वायु चलती है, सत्यसे आग जलती है और इस सम्पूर्ण चराचर जगत्का आधार सत्य ही है। सत्यके ही बलसे समुद्र अपनी मर्यादाके आगे नहीं बढ़ता। राजन् ! सत्यसे ही बँधकर विन्ध्यपर्वत ऊँचा नहीं उठता और सत्यके ही प्रभावसे युवती स्त्री समय बीतनेपर कभी गर्भ नहीं धारण करती। सत्यमें स्थित होकर ही वृक्ष समयपर फूलते फलते दिखायी देते हैं। महीपते ! मनुष्योंके लिये दिव्यलोक आदिके साधनका आधार भी सत्य ही है। सहस्रों अश्वमेध यज्ञोंसे भी बढ़कर सत्य ही है। यदि आप असत्यका आश्रय लेंगे तो मदिरापानके तुल्य पातकसे लिप्त होंगे।

१. जो रत्नोंकी बिक्री करनेवाला पुरुष असलीका दाम लेकर नकली रत्न दे दे उसका वह कर्म 'मणिकूट' नामक पाप है।

२. तौलमें ग्राहकको धोखा देकर कम माल देना 'तुलाकूट' नामक पाप है।

३. ब्याहके लिये एक कन्याको दिखाकर दूसरी सदोष कन्याको विवाह देना अथवा कन्याके सम्बन्धमें झूठ कहना 'कन्यानृत' नामक दोष है।

४. किसीको एक गाय देनेकी बात कहकर देते समय उसे बदलकर दूसरी दे देना अथवा गायके सम्बन्धमें झूठी गवाही देना 'गवानृत' कहा गया है।

राजा रुक्माङ्गदद्वारा मोहिनीके आक्षेपोंका खण्डन, एकादशी-व्रतकी वैदिकता, मोहिनीद्वारा गौतम आदि ब्राह्मणोंके समक्ष अपने पक्षकी स्थापना

राजा बोले—वरानने ! गिरिश्रेष्ठ मन्दराचलपर एकादशीको भोजन करनेके विषयमें तुमने जो महर्षि गौतमकी कही हुई बात बतायी है, वह कथन पुराणसम्मत नहीं है। पुराणमें तो विद्वानोंका किया हुआ यह निर्णय स्पष्टरूपसे बताया गया है कि एकादशी तिथिको भोजन न करे। फिर मैं एकादशीको भोजन कैसे करूँगा ? एकादशीके दिन क्षीणकाय पुरुषोंके लिये मुनीश्वरोंने फल, मूल, दूध और जलको अनुकूल एवं भोज्य बताया है। एकादशीको किसीके लिये अन्नका भोजन किन्हीं महापुरुषोंने नहीं कहा है। जो लोग ज्वर आदि रोगोंके शिकार हैं, उनके लिये तो उपवास और उत्तम बताया गया है। धार्मिक पुरुषोंके लिये एकादशीके दिन उपवास शुभ एवं सद्गति देनेवाला कहा गया है। अतः तुम भोजन करनेके लिये आग्रह न करो, इससे मेरा व्रत भङ्ग हो जायगा। इसके सिवा, तुम्हें जो भी रुचिकर प्रतीत हो, वह कार्य मैं अवश्य करूँगा।

मोहिनीने कहा—राजन् ! आप एकादशीको भोजन करें, इसके सिवा दूसरी कोई बात मुझे अच्छी नहीं लगती। एकादशीके दिन यह उपवासका विधान वेदोंमें नहीं देखा जाता है।

भूपते ! मोहिनीकी यह बात सुनकर वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ राजा रुक्माङ्गद मनमें तो कुपित हुए; परंतु बाहरसे हँसते हुए-से बोले—'मोहिनी ! मेरी बात सुनो! वेद अनेक रूपोंमें स्थित है। यज्ञ आदि कर्मकाण्ड वेद है, स्मृति वेद है और ये दोनों प्रकारके वेद पुराणोंमें प्रतिष्ठित हैं। अतः वरानने ! मैं वेदार्थसे अधिक पुराणार्थको मान्यता देता हूँ। जो शास्त्रको बहुत कम जानता है, उससे वेद डरता है कि 'यह कहीं मुझपर ही प्रहार न कर बैठे।' सब विषयोंका निर्णय इतिहास और पुराणोंने पहलेसे ही कर रक्खा है। वेदोंमें जो नहीं देखा गया, वह सब स्मृतिमें दृष्टिगोचर होता है। वेदों और स्मृतियोंमें भी जो बात नहीं देखी गयी है, उसका वर्णन पुराणोंने किया है। प्रिये ! हत्या आदि पापोंका प्रायश्चित्त तथा रोगीके औषधका वर्णन भी पुराणोंमें मिलता है। उन प्रायश्चित्तोंके बिना पापकी शुद्धि नहीं हो सकती। सुभ्रु ! वेदों, वेदके उपाङ्गों, पुराणों तथा स्मृतियोंद्वारा जो कुछ कहा जाता है, वह सब वेदमें ही बताया गया है—ऐसा मानना चाहिये। वरानने ! पुराण बार-बार यह दुहराते हैं कि 'एकादशी प्राप्त होनेपर भोजन नहीं करना चाहिये, नहीं करना चाहिये।' पिताको कौन नहीं प्रणाम करेगा, कौन माताकी पूजा नहीं करेगा, कौन सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गाके समीप नहीं जायगा और कौन है जो एकादशीको भोजन करेगा ? कौन वेदकी निन्दा करेगा, कौन ब्राह्मणको नीचे गिरायेगा, कौन पर-स्त्री-गमन करेगा और कौन एकादशीको अन्न खायेगा ?'

मोहिनीने कहा—घूर्णिके ! तुम शीघ्र जाकर वेद-विद्याके पारङ्गत ब्राह्मणोंको यहाँ बुला लाओ, जिनके वाक्यसे प्रेरित होकर ये राजा एकादशीको भोजन करें।

उसकी बात सुनकर घूर्णिका गयी और वेद-विद्यासे सुशोभित गौतम आदि ब्राह्मणोंको बुलाकर मोहिनीके पास ले आयी। उन वेद-वेदाङ्गके पारङ्गत ब्राह्मणोंको आया देख राजासहित मोहिनीने प्रणाम किया। वह अपना काम बनानेके प्रयत्नमें लग गयी थी। महीपाल ! प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी वे सब ब्राह्मण सोनेके सिंहासनोंपर बैठे। तदनन्तर उनमेंसे वयोवृद्ध ब्राह्मण गौतमने कहा—'देवि ! सब प्रकारके संदेहका निवारण करनेवाले तथा अनेक शास्त्रोंमें कुशल हम सब ब्राह्मण यहाँ आ गये हैं। जिसके लिये हमें बुलाया गया है, वह कारण बताइये।' उनकी बात सुनकर मोहिनी बोली।

मोहिनीने कहा—ब्राह्मणो ! हमारा यह संदेह तो जडतापूर्ण है; साथ ही छोटा भी है। इसपर अपनी बुद्धिके अनुसार आपलोग प्रकाश डालें। ये राजा कहते हैं, मैं एकादशीके दिन भोजन नहीं करूँगा, किंतु यह सम्पूर्ण चराचर जगत् अन्नके ही आधारपर टिका है। मरे हुए पितर भी अन्नद्वारा श्राद्ध करनेपर स्वर्गलोकमें तृप्ति एवं प्रसन्नताका अनुभव करते हैं। द्विजवरो ! स्वर्गके देवता बेरके बराबर पुरोडाशकी भी आहुति पानेकी इच्छा रखते हैं, अतः अन्न सर्वोत्तम अमृत है। भूखी हुई चींटी भी मुखसे चावल लेकर बड़े कष्टसे अपने बिलके भीतर जाती है। भला, अन्न किसको अच्छा नहीं लगता ! ये महाराज एकादशी प्राप्त होनेपर खाना-पीना बिल्कुल छोड़

देते हैं; किंतु व्रतका सेवन विधवाओं और यतियोंके लिये ही उचित होता है। राजाका धर्म है प्रजाकी रक्षा करना। वह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंका फल देनेवाला है। स्त्रियोंके लिये पति-सेवा, पुत्रोंके लिये माता-पिताकी सेवा, शूद्रोंके लिये द्विजोंकी सेवा तथा राजाओं-के लिये सम्पूर्ण जगत्‌की रक्षा स्वधर्म है। जो अपने धर्मा-नुकूल कर्मका परित्याग करके अज्ञान अथवा प्रमादवश पर-धर्मके लिये कष्ट उठाता है, वह निश्चय ही पतित है। इन राजाका शरीर तो अत्यन्त क्षीण हो गया है; फिर ये एकादशीके दिन संयम-नियमका पालन कैसे करेंगे ? अन्नसे ही प्राणकी पुष्टि होती है और प्राणसे शरीरमें विशेषरूपसे चेष्टाकी शक्ति आती है। चेष्टासे शत्रु-का नाश होता है। जो चेष्टा या पुरुषार्थसे रहित है, उसका पराभव होता है। ऐसा जानकर मैं राजाको बराबर समझाती हूँ, परंतु ये समझ नहीं पाते।

राजाके द्वारा एकादशीके दिन भोजनविषयक मोहिनी तथा ब्राह्मणोंके वचनका खण्डन, मोहिनीका रुष्ट होकर राजाको त्यागकर जाना और धर्माङ्गदका उसे लौटाकर लाना एवं पितासे मोहिनीको दी हुई वस्तु देनेका अनुरोध करना

वसिष्ठजी कहते हैं—मोहिनीकी कही हुई बात सुनकर वे ब्राह्मणलोग 'यह ठीक ही है' ऐसा कहकर राजासे बोले।

ब्राह्मणोंने कहा—राजन्! आपने जो यह पुण्यमय शपथ कर ली है कि दोनों पक्षोंकी एकादशीको भोजन नहीं करना चाहिये, वह निश्चय शास्त्रदृष्टिसे नहीं, अपनी बुद्धिसे ही किया गया है। जो अग्निहोत्री हैं, उनके लिये दोनों सध्याओंमें भोजनका विधान है। ब्राह्मण आदि तीन वर्णके लोग होमावशिष्ट (यज्ञशिष्ट) अन्नके भोक्ता बताये गये हैं। प्रभो! जो सदा अस्त्र-शस्त्र उठाये ही रहते हैं और दुष्ट पुरुषोंको संयममें रखते हैं, ऐसे भूपालोंके लिये विशेषतः उपवास-कर्म कैसे उचित हो सकता है? शास्त्रसे या अशास्त्रसे आपने इस व्रतके लिये जो प्रतिज्ञा कर ली है, वह ठीक है; किंतु आप ब्राह्मणोंके साथ भोजन करें, इससे आपका व्रत-भङ्ग नहीं हो सकता।

यह वचन सुनकर राजाके मनमें बड़ा क्षोभ हुआ। पर वे उन ब्राह्मणोंसे मधुर वाणीमें बोले—'विप्रवरो! आपलोग सब प्राणियोंको मार्ग दिखानेवाले हैं, अतः आपको ऐसी बातें नहीं कहनी चाहिये। जो लोग एकादशीके दिन उपवासका विधान करनेवाले वचनको (केवल) यतियों और विधवाओं-के लिये ही विहित बताते हैं, वे ठीक नहीं करते हैं। वेदमें तो कहीं ऐसा मत नहीं है। आपलोगोंने जो यह कहा है कि राजाओंके लिये उपवासका विधान नहीं है, उसके विषयमें मैं वैष्णवाचार-लक्षणके वचन सुनाता हूँ आप लोग सुनें। 'मदिरा कभी नहीं पीना चाहिये, ब्राह्मणको कभी नहीं मारना चाहिये। धर्मज्ञ पुरुषको जूएका खेल नहीं खेलना चाहिये और एकादशीके दिन भोजन नहीं करना चाहिये। नहीं करने योग्य कार्यको करके कौन सौ वर्षोंतक जीवित रहता है! कौन सचेष्ट मनुष्य है, जो एकादशीके दिन भोजन करे।

उत्तर दिशामें रहनेवाले विष्णुधर्मपरायण ब्राह्मणोंको तो उचित है कि वे एकादशीके दिन पशुओंको भी अन्न न दें। द्विजोत्तमो! मेरा शरीर क्षीण नहीं है और मैं रोगी भी नहीं हूँ, अतः ब्राह्मणके कहनेमात्रसे मैं एकादशीके व्रतका त्याग कैसे करूँगा? मेरा पुत्र धर्माङ्गद इस भूतलकी रक्षा कर रहा है। अतः मैं लोक या प्रजाकी रक्षारूप धर्मसे भी शून्य नहीं हूँ। मेरा कोई भी शत्रु नहीं है। द्विजवरो! ऐसा जानकर आपलोगोंको वैष्णव-व्रतका पालन करनेवाले मेरे प्रतिकूल कोई व्रतनाशक वचन नहीं कहना चाहिये। देवता, दानव, गन्धर्व, राक्षस, सिद्ध, ब्राह्मण, हमारे पिता, भगवान् विष्णु, भगवान् शिव अथवा मोहिनीके पिता श्रीब्रह्माजी, सूर्य अथवा और कोई लोकपाल स्वयं आकर कहें तो भी मैं एकादशीको भोजन नहीं करूँगा। द्विजो! इस पृथ्वीपर विख्यात यह राजा रुक्माङ्गद अपनी सच्ची प्रतिज्ञाको कभी निष्फल नहीं कर सकता। ब्राह्मणो! इन्द्रका तेज क्षीण हो जाय, हिमालय बदल जाय, समुद्र सूख जाय तथा अग्नि अपनी स्वाभाविक उष्णताको त्याग दे तथापि मैं एकादशीके दिन उपवासरूप व्रतका त्याग नहीं करूँगा। विप्रगण! तीनों लोकोंमें यह बात प्रसिद्ध हो चुकी है और डंकेकी चोटसे दुहरायी जाती है कि जो लोग रुक्माङ्गदके गाँव, देश तथा अन्य स्थानोंमें एकादशीको भोजन करेंगे, वे पुत्रसहित दण्डनीय एवं वध्य होंगे और उनके लिये इस राज्यमें ठहरनेका स्थान नहीं होगा। एकादशीका दिन सब यज्ञोंसे प्रधान, पापनाशक, धर्मवर्धक, मोक्षदायक तथा जन्मरूपी बन्धनको काटनेवाला है। यह तेजकी निधि है और सब लोगोंमें इसकी प्रसिद्धि भी है। इस तरहके शब्दकी घोषणा होनेपर भी यदि मैं एकादशीको भोजन करता हूँ तो पापका प्रवर्तक होऊँगा। मेरा व्रत भङ्ग हो जानेपर मुझे जन्म देनेवाली माता अपनेको व्यर्थ मानेगी तथा ब्राह्मण, देवता तथा पितर निराश होंगे। जो वेद, पुराण और शास्त्रोंको नहीं मानता, वह अन्तमें सूर्यपुत्र यमराजकी पुरीमें जाता है। जो वमन करके फिर उसे खाता है, उसीके समान वह भी है, जो अपनी प्रतिज्ञा तथा व्रतको भङ्ग कर देता है। वेद, शास्त्र, पुराण, संत-महात्मा तथा धर्मशास्त्र कोई भी ऐसे नहीं हैं, जो भगवान् विष्णुके प्रिय कार्यके योग्य एकादशीके दिन भोजनका विधान करते हों। एकादशीके दिनका व्रत भगवान् विष्णुके पदको देनेवाला है। उस दिन क्षयाह तिथि होनेपर भी अन्न-भोजनकी बात मूढ़ पुरुष ही कह सकते हैं।'

राजाकी यह बात सुनकर मोहिनी भीतर-ही-भीतर जल उठी और क्रोधसे आँखें लाल करके पतिसे बोली—'राजन्! तुम मेरी बात नहीं स्वीकार करते हो तो धर्मभ्रष्ट हो जाओगे। पृथ्वीपते! तुमने वर देनेके लिये अपना हाथ सौंपा था। अपनी उस प्रतिज्ञाका उल्लङ्घन करके यदि दिये हुए वचनका पालन न करोगे तो मै चली जाऊँगी। नरेश! अब मै न तो तुम्हारी प्यारी पत्नी हूँ और न तुम मेरे पति। तुम अपने वचनको मिटाकर धर्मका नाश करनेवाले हो। तुम्हें धिक्कार है।'

ऐसा कहकर मोहिनी बड़ी उतावलीके साथ उठी और जिस प्रकार सती देवी महादेवजीको छोड़कर गयी थीं, उसी प्रकार वह राजाको छोड़कर ब्राह्मणोंको साथ ले उसी समय वहाँसे चल दी। उस समय ब्रह्माजीकी मानसपुत्री मोहिनी 'हा तात! हा जगन्नाथ! जगत्की सृष्टि, स्थिति और संहार करनेवाले परमेश्वर! मेरी सुध लो'—इन शब्दोंका जोर-जोरसे उच्चारण करती हुई विलाप कर रही थी।

इसी समय धर्माङ्गद सारी पृथ्वीका परिभ्रमण करके घोड़ेपर चढ़े हुए आये। उनके मनमें कोई ईर्ष्या-द्वेष नहीं था। उन्होंने मोहिनीकी वह पुकार अपने कानों सुन ली थी। धर्माङ्गद बड़े पितृभक्त थे। धर्ममूर्ति रुक्माङ्गदकुमार तुरंत घोड़ेसे उतर पड़े और पिताके चरणोंके समीप गये। उन्हें प्रणाम करके धर्माङ्गदने फिर उठकर हाथ जोड़, उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको प्रणाम किया। राजन्! तदनन्तर रोषयुक्त हृदय-वाली मोहिनीको शीघ्र-गतिसे बाहर जाती देख धर्माङ्गद बड़े वेगसे सामने गये और हाथ जोड़कर बोले—'माँ! किसने तुम्हारा अपमान किया है? देवि! तुम तो पिताजीको अधिक प्रिय हो, आज रुष्ट कैसे हो गयी? इन ब्राह्मणोंके साथ इस समय तुम कहाँ जा रही हो?' धर्माङ्गदकी बात सुनकर मोहिनी बोली—'बेटा! तुम्हारे पिता झूठे हैं, जिन्होंने अपना हाथ मुझे देकर भी उसे व्यर्थ कर दिया। अतः तुम्हारे पिता रुक्माङ्गदके साथ रहनेका अब मेरे मनमें कोई उत्साह नहीं है।'

धर्माङ्गदने कहा—देवि! तुम जो कहोगी, उसे मैं तुरंत करूँगा। माँ! तुम क्रोध न करो। तुम पिताजीको अधिक प्रिय हो; अतः उनके पास लौट चलो।

मोहिनी बोली—वत्स! मुँहमाँगा वरदान देनेकी शर्त रखकर तुम्हारे पिताने मन्दराचलपर मुझे अपनी पत्नी बनाया था। देवेश्वर भगवान् शिव इसके साक्षी हैं, किंतु तुम्हारे पिता रुक्माङ्गद अब उस प्रतिज्ञासे गिर गये हैं। राजकुमार!

मैं उनसे सुवर्ण, धान, हाथी, घोड़े, गाँव या बहुमूल्य वस्त्र नहीं माँगती हूँ, जिससे उनकी आर्थिक हानि हो। देहधारियोंमें श्रेष्ठ बेटा धर्माङ्गद! जिससे वे अपने शरीरको पीड़ा दे रहे हैं, वही वस्तु मैंने उनसे माँगी है; किंतु वे मोहवश उसे भी नहीं दे रहे हैं। नृपनन्दन! उन्हींके शरीरकी भलाईके लिये, उन्हींके सुखके लिये मैंने वर माँगा है, किंतु वे नृपश्रेष्ठ उसे न देकर आज भयंकर असत्यके दलदलमें फँस गये हैं। असत्य मदिरापानके समान घृणित पाप है। इस कारण तुम्हारे पिताको मैं त्याग रही हूँ। अब उनके साथ मेरा रहना नहीं हो सकता।

मोहिनीका यह वचन सुनकर पुत्र धर्माङ्गदने कहा—'मेरे जीते-जी मेरे पिता कभी झूठे नहीं हो सकते। वरारोहे! तुम लौटो। मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगा। देवि! मेरे पिताने पहले कभी असत्यभाषण नहीं किया है; फिर वे महाराज मुझ पुत्रके होते हुए असत्य कैसे बोलेंगे? जिनके सत्यपर देवता, असुर तथा मानवोंसहित सम्पूर्ण लोक स्थित हैं, जिन्होंने यमराजके घरको पापियोंसे शून्य कर दिया है, जिनकी कीर्ति रोज बढ़ रही है और उससे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड-मण्डल व्याप्त हो गया है, वे ही भूपालशिरोमणि असत्य-भाषणमें तत्पर कैसे हो सकते हैं? मैंने महाराजका वचन सुना नहीं है, फिर उनके परोक्षमें तुम्हारी बातपर कैसे विश्वास कर लूँ? शुभानने! मुझपर दया करके लौट चलो।

राजन्! धर्माङ्गदका यह कथन सुनकर मोहिनी लौटी। सूर्यके समान तेजस्वी रुक्माङ्गद जिस शय्यापर सुखपूर्वक लेटे थे, उसीपर धर्माङ्गदने मोहिनीको बिठाया। वह शय्या सुवर्णसे विभूषित, अनुपम और मनोहर थी। जब मोहिनी उसपर बैठ गयी, तब धर्माङ्गदने हाथ जोड़कर पिताजीसे मधुर वाणीमें कहा—'तात! ये मेरी माता मोहिनी आज आपको असत्यवादी बता रही हैं। महाराज! इस पृथ्वीपर आप असत्यवादी क्यों होंगे? आप सातों समुद्रोंसे युक्त भूमण्डलका शासन करते हैं। आपके पास खजाना है, रत्नोंकी राशि सञ्चित है। प्रभो! यह सब आप इन्हें दे दीजिये। और भी जो कुछ देनेकी प्रतिज्ञा आपने की हो, वह दे दीजिये। पिताजी! जब मैं धनुष-बाण धारण करके खड़ा हूँ तो आपके प्रतिकूल आचरण कौन कर सकता है? आप चाहें तो देवीको इन्द्रपद दे दीजिये और इन्द्रको जीता हुआ ही समझिये। ब्रह्माजीका पद अत्यन्त दुर्लभ है, वह योगियोंके ही अनुभवमें आनेयोग्य तथा निरञ्जन है। यदि देवी चाहें तो मैं तपस्यासे ब्रह्माजीको संतुष्ट करके वह भी इन्हें दे दूँगा। राजेन्द्र! इस त्रिलोकीमें जो दुष्कर हो अथवा अधिक प्रिय होनेसे जो देनेयोग्य न हो, वह भी मोहिनी देवीको दे दीजिये। ये चाहें तो मेरा अथवा मेरी जननीका जीवन भी इन्हें दे सकते हैं। इससे आप तत्काल ही इस लोकमें सदाके लिये उत्तम कीर्तिसे सुशोभित होंगे।'

राजा रुक्माङ्गदका एकादशीको भोजन न करनेका ही निश्चय

राजा बोले—बेटा! मेरी कीर्ति नष्ट हो जाय, मैं असत्यवादी हो जाऊँ अथवा घोर नरकमें ही पड़ जाऊँ, किंतु एकादशीके दिन भोजन कैसे करूँगा? पुत्र! यह मोहिनी देवी ब्रह्माजीके लोकमें चली जाय, यह मुझसे बार-बार यही कहती है कि मैं पापनाशिनी एकादशी-के दिन तुम्हें भोजन करानेके सिवा राज्य, वसुधा और धन आदि दूसरी कोई वस्तु नहीं चाहती। यह जो हमारी दुंदुभी स्वयं गुरुतर होकर गम्भीर नाद करती हुई लोगोंको शिक्षा देती है, वह आज असत्य कैसे हो जाय? अभक्ष्यभक्षण, अगम्या स्त्रीके साथ संगम तथा न पीने योग्य मदिरा आदिका पान करके कोई सौ वर्ष क्यों जीयेगा? इस चञ्चल कटाक्षवाली मोहिनीके वियोगसे यदि मेरी मृत्यु हो जाय तो वह भी यहाँ अच्छा ही है; किंतु मैं एकादशीके दिन भोजन नहीं करूँगा। तात! नरकोंकी जो पङ्क्तियाँ मैंने सूनी कर दी हैं, वे मेरे भोजन करते ही पुनः ज्यों-की-त्यों लोगोंसे भर जायँगी। मेरा रुक्माङ्गद नाम तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है और एकादशीके उपवाससे ही मैंने इस यशका सञ्चय किया है, वही अब मैं एकादशीको भोजन करके अपने ही द्वारा फैलाये हुए यशका नाश कैसे कर दूँगा। मोहिनी मर जाय या चली जाय, गिर जाय या नष्ट हो जाय तथापि मेरा मन इसके लिये एकादशी-के उपवाससे विरत नहीं हो सकता। स्त्री-पुत्र आदि कुटुम्बी-जनोंके साथ मैं अपने शरीरका त्याग कर सकता हूँ, परंतु भगवान् मधुसूदनके पुण्यमय दिवस एकादशीको अन्नका सेवन नहीं करूँगा।

संध्यावली-मोहिनी-संवाद, रानी संध्यावलीका मोहिनीको पतिकी इच्छाके विपरीत चलनेमें दोष बताना

वसिष्ठजी कहते हैं—पिताकी बात सुनकर पुत्र धर्माङ्गदने अपनी कल्याणमयी माता संध्यावलीको शीघ्र ही बुलाया। पुत्रके कहनेसे वे उसी क्षण महाराजके समीप आयीं। धर्माङ्गदने उनसे मोहिनी तथा पिताकी भी बातें कह सुनायीं और निवेदन किया—'माँ! दोनोंकी बातोंपर विचार करके मोहिनीको सान्त्वना दो। यह एकादशीके दिन राजाको भोजन करानेपर तुली हुई है। मेरे पिता जिस प्रकार सत्यसे विचलित न हों और एकादशीको भोजन भी न करें—ऐसा कोई उपाय निकालो, ऐसा होनेपर ही दोनोंका मङ्गल होगा।' राजन्! पुत्रकी बात सुनकर संध्यावली देवी ब्रह्मपुत्री मोहिनीसे उस समय मधुर वाणीमें बोलीं—'वामोरु! आग्रह न करो। एकादशी प्राप्त होनेपर अन्नमात्रमें पापका सम्पर्क हो जाता है, अतः महाराज किसी प्रकार भी उसका आस्वादन नहीं कर सकते। तुम राजाका अनुसरण करो। ये हमलोगोंके सनातन गुरु हैं। जो नारी सदा अपने पतिकी आज्ञाका पालन करती है, उसे सावित्रीके समान अक्षय तथा निर्मल लोक प्राप्त होते हैं। देवि! यदि इन्होंने पहले मन्दराचलपर कामसे पीड़ित होकर तुम्हें अपना हाथ दिया है तो उस समय इन्होंने योग्यायोग्यका विचार नहीं किया। जो देनेलायक वस्तु है, उसे तो वे दे ही रहे हैं और जो नहीं देनेयोग्य वस्तु है, उसको तुम माँगो भी मत। जो सन्मार्गमें स्थित है उसे यदि विपत्ति भी प्राप्त हो तो वह कल्याणमयी ही होती है। सुभगे! जिन्होंने बचपनमें भी एकादशीके दिन भोजन नहीं किया है, वे इस समय वृद्धावस्थामें भगवान् विष्णुके पुण्यमय दिवसको अन्न कैसे ग्रहण करेंगे? तुम इच्छानुसार कोई दूसरा अत्यन्त दुर्लभ वर माँग लो। उसे महाराज अवश्य दे देंगे। उन्हें भोजन करानेके हठसे निवृत्त हो जाओ। देवि! मैं धर्माङ्गदकी जननी हूँ। यदि तुम मुझे विश्वसनीय मानती हो तो सातों द्वीप, नदी, वन और पर्वतसहित इस सम्पूर्ण राज्यको और मेरे जीवनको भी माँग लो। विशाललोचने! यद्यपि मैं ज्येष्ठ हूँ तथापि पतिके लिये छोटी सपत्नीकी भी चरण-वन्दना करूँगी। तुम प्रसन्न हो जाओ। जो वचनसे और शपथ-दोषसे पतिको विवश करके उनसे न करनेयोग्य कार्य करा लेती है, वह पापपरायणा नारी नरकमें निवास करती है। वह भयंकर नरकसे निकलनेके बाद बारह जन्मोंतक शूकरीकी योनिमें जन्म लेती है। तत्पश्चात् चाण्डाली होती है। सुन्दरि! इस प्रकार पापका परिणाम जानकर मैंने तुम्हें सखी-भावसे मना किया है। कमलानने! धर्मकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको उचित है कि वह शत्रुको भी अच्छी बुद्धि (नेक सलाह) दे; फिर तुम तो मेरी सखीके रूपमें स्थित हो। अतः तुम्हें क्यों न अच्छी सलाह दी जाय?'

संध्यावलीकी बात सुनकर मोहकारिणी मोहिनी सुवर्णके समान सुन्दर कान्तिवाली पतिकी ज्येष्ठ प्रियासे उस समय इस प्रकार बोली—'सुभ्रु! तुम मेरी माननीया हो, मैं तुम्हारी बात मानूँगी। नारदादि विद्वान् महर्षियोंने ऐसा ही कहा है। देवि! यदि राजा एकादशीके दिन भोजन न करें तो उसके बदले एक दूसरा कार्य करें, जो तुम्हारे लिये मृत्युसे अधिक कष्टदायक है। शुभे! वह कार्य मेरे लिये भी दुःखदायक है तथापि दैववश मैं वह बात कहूँगी, जो तुम्हारे प्राण लेनेवाली है। तुम्हारे ही नहीं, पतिदेवके, प्रजावर्गके तथा पुत्रवधुओंके भी प्राण हर लेनेवाली वह बात है। उससे मेरे धर्मका नाश तो होगा ही, मुझे भारी कलंककी भी प्राप्ति होगी। उस बातको कर दिखाना तो दूर है, मनमें उसे करनेका विचार लाना भी सम्भव नहीं है। यदि तुम मेरे उस वचनका पालन करोगी तो इस संसारमें तुम्हारी बड़ी भारी कीर्ति फैलेगी, पतिदेवको भी यश मिलेगा, तुम्हें स्वर्गलोककी प्राप्ति होगी, तुम्हारे पुत्रकी सब लोग प्रशंसा करेंगे और मुझे चारों ओरसे धिक्कार मिलेगा।'

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! मोहिनीकी बात सुनकर देवी सन्ध्यावलीने किसी तरह धैर्य धारण किया और उस मोहिनीसे कहा—'कहो, कहो क्या बात है? तुम कैसा वचन बोलोगी, जिससे मुझे दुःख होगा। मुझे अपने पतिके सत्यकी रक्षामें कभी कोई दुःख नहीं हो सकता। स्वामीके हितका साधन करते समय मेरे इस शरीरका अन्त हो जाय, मेरे पुत्रकी मृत्यु हो जाय अथवा सम्पूर्ण राज्यका नाश हो जाय; तथापि मुझे कोई व्यथा नहीं होगी। सुन्दरी! जिस पत्नीके पति उसके व्यवहारसे दुखी होते हैं, वह समृद्धिशालिनी हो तो भी उस पापिनीकी अधोगति ही कही गयी है। वह सत्तर युगोंतक पूय नामक नरकमें पड़ी रहती है। तत्पश्चात् भारतवर्षमें सात जन्मोंतक छछूँदर होती है। उसके बाद

काकयोनिमें जन्म लेती है; फिर क्रमशः शृगाली, गोधा और गाय होकर शुद्ध होती है। अतः तुम माँगो, मैं पतिके हितके लिये तुम्हें अवश्य अभीष्ट वस्तु प्रदान करूँगी। वरानने! मेरा धन, शरीर, पुत्र अथवा अन्य कोई वस्तु हो तो उसे माँगो, स्त्रियोंके लिये एकमात्र पतिके सिवा दूसरा कौन देवता है?'

मोहिनीका संध्यावलीसे उसके पुत्रका मस्तक माँगना और संध्यावलीका उसे स्वीकार करते हुए विरोचनकी कथा सुनाना

वसिष्ठजी कहते हैं—संध्यावलीकी बात सुनकर ब्रह्माजीकी पुत्री मोहिनी अपने कार्यसाधनमें तत्पर होकर बोली—'शुभे! यदि तुम इस प्रकार धर्म और अधर्मकी गति जानती हो और स्वामीके लिये धन तथा जीवनका भी दान करनेको उद्यत हो तो मैं तुमसे उस धनकी याचना करती हूँ, जो तुम्हारे लिये जीवनसे भी अधिक महत्त्व रखता है। तुम्हारे पति राजा रुक्माङ्गद यदि एकादशीके दिन भोजन नहीं करेंगे तो वे अपने हाथमें तलवार लेकर धर्माङ्गदके चन्द्रमण्डल-सदृश सुन्दर एवं मनोहर कुण्डलभूषित मस्तकको, जिसमें अभी मूँछ नहीं उगी है, काटकर तुरत मेरी गोदमें गिरा दें।'

मोहिनीका वह कड़वे अक्षरोंसे युक्त वचन सुनकर देवी संध्यावली शीतपीड़ित कदलीके समान क्षणभरके लिये काँप उठी। तदनन्तर श्रेष्ठ वर्णवाली महारानी धैर्य धारण कर हँसती हुई सुन्दर मुखवाली मोहिनीसे बोली—'सुभ्रु! पुराणोंमें द्वादशी (एकादशी) के सम्बन्धमें वर्णित कुछ गाथाएँ सुनी जाती हैं, जो स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं—धनको त्याग दे; स्त्री, जीवन और घरको भी छोड़ दे; देश, राजा और मित्रको भी त्याग दे; अत्यन्त प्रिय व्यक्तिको भी त्याग दे; परंतु दोनों पक्षोंकी पवित्र द्वादशी (एकादशी) का त्याग न करे; क्योंकि पुत्र, भाई, सुहृद् और प्रियजन—सब सम्बन्धी यहीं काम देते हैं, किंतु द्वादशी (एकादशी) इहलोक और परलोकमें भी अभीष्ट साधन करती है। अतः द्वादशी (एकादशी) के प्रभावसे सब मङ्गल ही होगा। शुभे! मैं तुम्हारी प्रसन्नताके लिये धर्माङ्गदका मस्तक दिलाऊँगी। शोभने! मेरी बातपर विश्वास करो और सुखी हो जाओ। भद्रे! इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास सुना जाता है, उसे मैं कहती हूँ, तुम सावधान होकर सुनो।

पूर्वकालमें विरोचन नामसे प्रसिद्ध एक धर्मपरायण दैत्य थे। उनकी पत्नी विशालाक्षी ब्राह्मणपूजनमें तत्पर रहती थी। सुभ्रु! वह प्रतिदिन प्रातःकाल एक ब्राह्मणको बुलाकर विधिपूर्वक उनकी पूजा करती और प्रसन्नचित्त हो, भक्तिभाव-से उनका चरणोदक लेती थी। उन दिनों हिरण्यकशिपु-के मारे जानेपर सब देवता प्रह्लादपुत्र विरोचनसे भी सदा शंकित रहते थे। एक दिन वे इन्द्र आदि देवता बृहस्पतिजी-की सलाह लेते हुए बोले—'हमलोग शत्रुओंसे बहुत पीड़ित हैं, इस समय हमें क्या करना चाहिये?' उनका यह वचन सुनकर देवगुरु बृहस्पतिने कहा—'देवताओ! आज दुःखमें पड़े हुए तुम सब लोगोंको अपना यह कष्ट भगवान् विष्णुसे निवेदन करना चाहिये।' अमित-तेजस्वी गुरुका यह भाषण सुनकर सब देवता विरोचनके प्राणनाशका मन्त्र लेकर भगवान् विष्णुके समीप गये। वहाँ जाकर उन्होंने अनेक प्रकारकी स्तुतियोंसे सुरश्रेष्ठ श्रीहरिका स्तवन किया।

देवता बोले—देवताओंके भी अधिदेवता अमिततेजस्वी भगवान् विष्णुको नमस्कार है। भक्तोंके दुःखका निवारण करनेवाले नरहरिको नमस्कार है। महात्मा वामनको नमस्कार है। वाराहरूपधारी भगवान्‌को नमस्कार है। प्रलयकालीन समुद्रमें निवास करनेवाले मत्स्यरूप माधवको नमस्कार है। पीठपर मन्दराचलको धारण करनेवाले भगवान् कूर्मको नमस्कार है। भृगुनन्दन परशुराम तथा श्रीकृष्णस्वरूपधारी भगवान् नारायणको नमस्कार है। सम्पूर्ण जगत्के स्वामी श्रीरामको नमस्कार है। विश्वके पालक तथा कल्किरूपधारी श्री-हरिको नमस्कार है। शुद्ध दत्तात्रेयस्वरूप और दूसरोंकी पीड़ा दूर करनेवाले कपिलरूपधारी भगवान्‌को नमस्कार है। धर्मको धारण करनेवाले सनकादि महात्मा जिनके स्वरूप हैं, उन यज्ञमय भगवान्‌को नमस्कार है। ध्रुवको उत्तम पद देनेवाले नारायणको नमस्कार है। महान् यशस्वी पृथुको प्रणाम है। विशुद्ध अन्तःकरणवाले ऋषभको और हयग्रीव-अवतारधारी श्रीहरिको नमस्कार है। आनन्दस्वरूप भगवान् हंसको नमस्कार है तथा अमृत कलश धारण करनेवाले धन्वन्तरिको

नमस्कार है एवं वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध जिनके व्यूहमय शरीर हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है। ब्रह्मा, शङ्कर, स्वामिकार्तिकेय, गणेश, नन्दी और भृङ्गी-रूपमें भगवान् विष्णुको नमस्कार है। जो बदरिकाश्रममें नर-नारायणरूपसे गन्धमादन पर्वतपर निवास करते हैं, उन भगवान्‌को नमस्कार है। जो जगदीश्वरपुरीमें जगन्नाथ नाम धारण करते हैं, सेतुबन्धमें रामेश्वर नामसे विख्यात होते हैं तथा द्वारका और वृन्दावनमें श्रीकृष्णरूपसे रहते हैं, उन परमेश्वरको नमस्कार है। जिनकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है, उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है। प्रभो! आपके चरण, हाथ और नेत्र सभी कमलके समान हैं। आपको नमस्कार है। आप कमला देवीके प्रतिपालक भगवान् केशवको बारंबार नमस्कार है। सूर्यरूपमें आपको नमस्कार है। चन्द्रमारूप धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। इन्द्रादि लोकपाल आपके स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। प्रजापतिस्वरूप धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण प्राणियोंका समुदाय आपका स्वरूप है, आप जीवस्वरूप, तेजोमय, जय, विजयी, नेता, नियम और क्रियारूप हैं; आपको नमस्कार है। निर्गुण, निरीह, नीतिज्ञ तथा निष्क्रियरूप आपको नमस्कार है। बुद्ध और कल्कि—ये दोनों आपके सुप्रसिद्ध अवतार-विग्रह हैं, आप ही क्षेत्रज्ञ जीव तथा अक्षर परमात्मा हैं, आपको नमस्कार है। आप गोविन्द, विश्वम्भर, अनन्त, आदिपुरुष, शार्ङ्गधनुषधारी, शङ्खधारी, गदाधर, चक्रसुदर्शन-धारी, खड्गहस्त, शूलपाणि, समस्त शस्त्रास्त्रधाती, शरणदाता, वरणीय तथा सबसे परे परमात्मा हैं, आपको नमस्कार है। आप इन्द्रियोंके स्वामी और विश्वमय हैं। यह सम्पूर्ण जगत् आपका स्वरूप है, आपको नमस्कार है। काल आपकी नाभि है, आप कालस्वरूप हैं, चन्द्रमा और सूर्य आपके नेत्र हैं, आपको नमस्कार है। आप सर्वत्र परिपूर्ण, सबके सेव्य तथा परात्पर पुरुष हैं, आपको नमस्कार है। आप इस जगत्‌के कर्ता, भर्ता तथा धर्ता हैं। यमराज भी आपके ही रूप हैं। आप ही सबको मोह और क्षोभमें डालनेवाले है। अजन्मा होते हुए भी इच्छानुसार अनेक रूप धारण करते हैं। आप सर्वश्रेष्ठ विद्वान् हैं; आपको नमस्कार है। भगवन्! हम सब देवता दैत्योंसे सताये हुए हैं और इस समय आपकी शरणमें आये हैं। जगदाधार! आप ऐसी कृपा कीजिये, जिससे हम स्त्री, पुत्र और मित्र आदिके साथ सुखी होकर रह सकें।

दैत्योंसे सताये हुए देवताओंका यह स्तवन सुनकर भगवान् विष्णु मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। स्नेहपूर्ण हृदयवाले देवदेवेश्वर भगवान् विष्णुका दर्शन करके उन देवताओंने विरोचनका शीघ्र वध करनेके लिये उनसे सादर प्रार्थना की। कार्यसिद्धिका उपाय जाननेवालोंमें श्रेष्ठ श्रीहरिने इन्द्रादि देवताओंकी आवश्यकता सुनकर उन्हें आश्वासन दिया और उन्हें प्रसन्न करके प्रेम-पूर्वक विदा किया। देववर्गके चले जानेपर भगवान् विष्णु देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारणकर विरोचनके घर गये और ब्राह्मण-पूजनके समय वहाँ पहुँचे। जो पहले कभी नहीं आये थे, ऐसे ब्राह्मणको आया देख विशालाक्षी मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुई। उसने भक्ति-भावसे उनका सत्कार करके उन्हें बैठनेके लिये आसन दिया। शुभे! ब्राह्मणने उसके दिये हुए आसनको स्वीकार न करके कहा—'देवि! मैं तुम्हारे दिये हुए इस उत्तम आसनको ग्रहण नहीं करूँगा। मानिनि! जो मेरे मनोगत कार्यको समझकर उसे पूर्ण करनेकी स्वीकृति दे, उसीकी पूजा मैं ग्रहण करूँगा।' बूढ़े ब्राह्मणकी यह बात सुनकर बातचीत करनेमें निपुण विशालाक्षी बड़ी प्रसन्न हुई। भगवान् विष्णुकी मायाने उसे मोहित कर लिया था। अपने स्त्री-स्वभावके कारण भी वह इस विषयमें अधिक विचार न कर सकी और बोली।

विशालाक्षीने कहा—ब्रह्मन् ! आपका जो मनोगत कार्य है, उसे मैं पूर्ण करूँगी । मेरा दिया हुआ आसन ग्रहण कीजिये और अपना चरणोदक दीजिये ।

उसके ऐसा कहनेपर ब्राह्मण बोले—'मैं स्त्रीकी बातपर विश्वास नहीं करता । यदि तुम्हारे पति यह बात कहें तो मुझे विश्वास हो सकता है ।' ब्राह्मणका यह वचन सुनकर विरोचनकी गृहस्वामिनीने वहीं उनके समीप पतिको बुलवाया । दूतके मुखसे सब बात सुनकर प्रह्लादपुत्र विरोचन हर्षभरे हृदयसे अन्तःपुरमें आये, जहाँ महारानी विशालाक्षी विराजमान थीं । पतिको आया देख धर्मपरायणा विशालाक्षी उठकर खड़ी हो गयी । उसने उस श्रेष्ठ ब्राह्मणको नमस्कार करके पुनः आसन समर्पित किया । जब उन्होंने आदरपूर्वक दिये हुए उस आसनको ग्रहण नहीं किया तब उसने अपने पति दैत्यराज विरोचनसे सब हाल कह सुनाया । सब बातें जानकर दैत्यराजने पत्नीके प्रेमसे मुग्ध होकर उस समय ब्राह्मणकी शर्त स्वीकार कर ली । विरोचनके स्वीकार कर लेनेपर ब्राह्मणने प्रसन्नतापूर्वक कहा—'मुझे अपनी आयु समर्पित कर दो ।' तब वे दोनों पति-पत्नी स्वनिर्मित शोकसे मोहित हो दो घड़ीतक कुछ चिन्तन करते रहे । फिर उन दम्पतीने हाथ जोड़कर ब्राह्मणसे कहा—'विप्रवर ! हमारा आसन ग्रहण कीजिये और अपना चरणोदक दीजिये । आपकी कही हुई बात हम सत्य करेंगे । आप प्रसन्न होइये ।'

तब ब्राह्मणने प्रसन्नचित्त होकर आसन ग्रहण किया । विशालाक्षीने प्रसन्नतापूर्वक ब्राह्मणके दोनों चरण पखारे और उनका चरणोदक पतिसहित अपने मस्तकपर धारण किया । फिर तो वे दोनों दम्पती सहसा (दैत्य-शरीर छोड़) दिव्य रूप धारण करके श्रेष्ठ विमानपर बैठे और भगवान्‌के वैकुण्ठधाममें चले गये । इस प्रकार देवताओंका कण्टक दूर करके भगवान् अत्यन्त प्रसन्न हुए और सम्पूर्ण देवताओंद्वारा अपनी स्तुति सुनते हुए वैकुण्ठलोकको चले गये । देवि ! इसी प्रकार मैंने भी जो तुम्हें देनेकी प्रतिज्ञा की है, वह अवश्य दूँगी । देवि ! मैं अपने पति महाराज रुक्माङ्गदको सत्यसे विचलित न होने दूँगी; क्योंकि सत्य ही मनुष्योंको उत्तम गति देनेवाला बताया गया है । सत्यसे भ्रष्ट हुए मनुष्यको चाण्डालसे भी नीच माना गया है ।

रानी संध्यावलीका राजाको पुत्रवधके लिये उद्यत करना, राजाका मोहिनीसे अनुनय-विनय, मोहिनीका दुराग्रह तथा धर्माङ्गदका राजाको अपने वधके लिये प्रेरित करना

वसिष्ठजी कहते हैं—भूपते ! तदनन्तर देवी संध्यावलीने पतिके दोनों चरण पकड़कर धर्माङ्गदके विनाशसे सम्बन्ध रखनेवाली बात कही—'महाराज ! आपकी ही भाँति मैंने भी इसे बहुत समझाया है; किंतु इस मोहरूपा मोहिनीको इस समय दूसरी कोई बात अच्छी ही नहीं लगती । इसका एक ही आग्रह है, एकादशीके दिन राजा भोजन करें अथवा अपने पुत्रका वध कर डालें । नाथ ! धर्म छोड़नेकी अपेक्षा तो पुत्रका वध ही श्रेष्ठ है । राजन् ! गर्भ धारण करनेमें माताको ही अधिक क्लेश सहना पड़ता है और बालकपर उसीका स्नेह भी अधिक होता है । खेद और स्नेह जैसा माताका होता है, वैसा पिताका नहीं हो सकता । राजेन्द्र ! इस भूतलपर पिताको बीज-वपन करनेवाला कहा गया है, माता उसको धारण करनेवाली है; अतः उसके पालन-पोषणमें अधिक क्लेश उसीको उठाना पड़ता है । पुत्रपर पितासे सौगुना स्नेह माताका होता है । उसके स्नेहकी अधिकतापर ही दृष्टि रखकर गौरवमें माताको पितासे बड़ी माना गया है, किंतु नृपश्रेष्ठ ! आज मैं माता होकर भी सत्यके पालनसे परलोकको जीतनेकी इच्छा रखकर पुत्र-स्नेहको तिलाञ्जलि दे चुकी हूँ । भूपाल ! स्नेहको दूर करके पुत्रका वध कीजिये । राजन् ! वे आपत्तियाँ भी धन्य हैं, जो सत्यका पालन करानेवाली हैं । सत्यका संरक्षण करनेवाली होनेसे वे मनुष्योंके लिये मोक्षदायिनी हैं । अतः [illegible] ! संतप्त होनेसे कोई लाभ नहीं, आप सत्यकी रक्षा कीजिये । राजन् ! सत्यके पालनसे भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त होता है । देवताओंने आपकी परीक्षाके लिये इस मोहिनीको कसौटीके रूपमें उत्पन्न किया है । अतः भूपाल ! आप दृढ़ होकर प्रिय पुत्रका वध कीजिये । अपने [illegible] उद्देश्यसे मोहिनीके वचनकी पूर्ति कीजिये ।'

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन् ! पत्नीकी यह बात सुनकर महाराज रुक्माङ्गदने मोहिनीके [illegible] इस प्रकार कहा—'प्रिये ! पुत्रकी हत्या बहुत बड़ा पाप है । वह ब्रह्महत्यासे भी बढ़कर है । यहाँसे वहाँ मैं [illegible]

गया और न जाने कहाँसे यह मोहिनी मुझे वहाँ मिली। देवि! यह स्त्री नहीं, धर्माङ्गदका नाश करनेके लिये साक्षात् कालप्रिया काली है। धर्माङ्गद धर्मज्ञ, विनयशील तथा प्रजाको प्रसन्न रखनेवाला है, अभीतक उसे कोई संतान भी नहीं हुई है। ऐसे पुत्रको मारकर मेरी क्या गति होगी? देवि! कुपुत्रको भी मारनेसे पिताके मनमें दुःख होता है, फिर जो धर्मशील तथा गुरुजनोंका सेवक है, उसके मरनेसे कितना दुःख होगा। वरवर्णिनि! इस समय तुम्हारे पुत्रके प्रतापसे ही मैंने सातों द्वीपोंके राज्यका उपभोग किया है। अपना यह पुत्र धर्माङ्गद इस पृथ्वीपर सबसे श्रेष्ठ है। मनोहराङ्गी! वह मेरे समूचे कुलका सम्मान बढ़ानेवाला है। सुन्दरि! मोहिनी मोहमें डूबकर केवल मुझे दुःख दे रही है, तुम पुनः शुभ वचनोंद्वारा उसे समझाओ।'

अपनी प्रिय पत्नी संध्यावलीसे ऐसा कहकर राजा उस समय मोहिनीसे इस प्रकार बोले—'शुभे! मैं एकादशीको भोजन नहीं करूँगा और पुत्रकी हत्या भी नहीं कर सकूँगा। अपनेको और संध्यावली देवीको आरेसे चीर सकता हूँ अथवा तुम्हारे कहनेसे कोई और भी भयंकर कर्म कर सकता हूँ। सुभ्रु! पुत्रके सम्बन्धमें यह दुष्टतापूर्ण आग्रह छोड़ दो। बताओ, पुत्र धर्माङ्गदको मार देनेसे तुम्हें क्या फल मिलेगा? मुझे एकादशीको भोजन करा देनेसे तुम्हारा क्या लाभ होगा? वरानने! मैं तुम्हारा दास हूँ, सेवक हूँ और सर्वथा तुम्हारे अधीन हूँ। सौभाग्यशालिनि! मैं तुम्हारी शरणमें आया हूँ। सुन्दरि! कोई दूसरा वर माँग लो। देवि! मुझपर कृपा करो। पुत्रकी भिक्षा दे दो। गुणवान् पुत्र दुर्लभ है और एकादशीका व्रत भी दुर्लभ है। इस पृथ्वीपर गङ्गाजीका जल दुर्लभ है, भगवान् विष्णुका पूजन दुर्लभ है तथा स्मृतियोंका संग्रह भी दुर्लभ है एवं भगवान् विष्णुका स्मरण एवं चिन्तन भी अत्यन्त दुर्लभ है। साधु पुरुषोंका सङ्ग दुर्लभ है तथा भगवान्‌की भक्ति भी दुर्लभ ही बतायी गयी है। वरवर्णिनि! मृत्युकालमें भगवान् विष्णुका स्मरण भी दुर्लभ ही है, ऐसा समझकर मेरा धर्मरक्षाविषयक वचन स्वीकार करो। मैंने सब विषय भोग लिये, निष्कण्टक राज्य भी कर लिया; किंतु मेरे पुत्रने तो अभी संसारके विषयोंका सुख देखा ही नहीं, अतः उसकी हत्या कदापि नहीं करूँगा। मोहिनी! अपने ही हाथसे अपने पुत्रका वध! ओह! इससे बढ़कर पाप और क्या होगा?'

मोहिनीने कहा—राजन्! मैंने तो पहले ही कह दिया है, एकादशीको भोजन करो और इच्छानुसार बहुत वर्षोंतक पृथ्वीका शासन करते रहो। मैं पुत्रका वध नहीं कराऊँगी। एकादशीको तुम्हारे भोजन कर लेनेमात्रसे ही मेरा प्रयोजन सिद्ध हो जायगा। पृथ्वीपते! तुम्हारे पुत्रकी मृत्युसे मेरा कोई मतलब नहीं है। राजन्! यदि पुत्र प्रिय है तो एकादशीके दिन भोजन करो। महीपाल! इस धर्मविरोधी विलापसे क्या लाभ? मेरी बात मानो और यत्नपूर्वक सत्यकी रक्षा करो।

राजन्! मोहिनी जब ऐसी बात कह रही थी, उसी समय धर्माङ्गद वहाँ आ गये और मोहिनीकी ओर देखकर उसे प्रणाम करके सामने खड़े हो विनीतभावसे बोले—'भामिनि! तुम यही लो (मेरे वधरूपी वरको ही ग्रहण करो); इसके विषयमें तनिक भी शङ्का न करो।' ऐसा कहकर उन्होंने राजाके आगे एक चमकती हुई तलवार रख दी और अपने-आपको भी समर्पित कर दिया। तत्पश्चात् सत्य-धर्ममें स्थित हो पितासे कहा—'पिताजी! अब आपको मुझे मारनेमें विलम्ब नहीं करना चाहिये। महाराज! आपने मेरी माता मोहिनीके समक्ष जो प्रतिज्ञा की है, उसे सत्य कर दिखाइये। आपके हितके लिये मेरा मरना मुझे अक्षय गति देनेवाला है और अपने वचनके पालनसे आपको भी तेजस्वी लोक प्राप्त होंगे। अतः पुत्रके मारे जानेका जो महान् दुःख है, उसको त्यागकर अपने धर्मका पालन कीजिये। इस मर्त्यशरीरका त्याग करनेपर मेरे भावी जीवनका आरम्भ अमर देहमें होगा। वह मेरा दिव्य शरीर सब प्रकारके रोगोंसे रहित होगा। प्रभो! जो पुत्र पिता अथवा माताके हितके लिये मारे जाते हैं तथा राजन्! जो गाय, ब्राह्मण, स्त्री, भूमि, राजा, देवता, बालक तथा आर्तजनोंके लिये प्राण त्याग करते हैं, वे अत्यन्त प्रकाशमय लोकोंमें जाते हैं। अतः शोक-संतापसे कोई लाभ नहीं, आप श्रेष्ठ तलवारसे मेरा वध कीजिये। राजेन्द्र! सत्यका पालन कीजिये और एकादशीको भोजन न कीजिये। मैंने अपने शरीरके वधके लिये जो बात कही है, उसे सत्य कीजिये। महाराज! आपने मोहिनीको दाहिना हाथ देकर जो वचन दिया है, उसका पालन न करनेसे असत्यका दोष लगेगा। उस भयंकर असत्य-भाषणके पापसे अपनेको बचाइये।

राजाको पुत्रवधके लिये उद्यत देख मोहिनीका मूर्च्छित होना और पत्नी, पुत्र-सहित राजा रुक्माङ्गदका भगवान्‌के शरीरमें प्रवेश करना

वसिष्ठजी कहते हैं—पुत्रका यह वचन सुनकर राजा रुक्माङ्गदने उस समय संध्यावलीके मुखकी ओर देखा, जो कमलके समान प्रसन्नतासे खिल उठा था। फिर मोहिनीकी बात सुनी, जिसमें एकादशीको भोजन करो, पुत्रको न मारो, यदि भोजन न करना हो तो पुत्रका वध करो। यही बार-बार आग्रह किया जा रहा था। नृपश्रेष्ठ! इसी समय कमल-नयन भगवान् विष्णु अदृश्यरूपसे आकाशमें आकर ठहर गये। उनकी अङ्ग-कान्ति मेघके समान श्याम थी। वे स्वभावतः निर्मल—निर्दोष हैं। भगवान् श्रीहरि गरुड़की पीठपर बैठकर वीर धर्माङ्गद, राजा रुक्माङ्गद तथा देवी सध्यावली—तीनोंके धैर्यका अवलोकन कर रहे थे। जब मोहिनीने पुनः 'एकादशीके दिन भोजन करो, भोजन करो' की बात दुहरायी, तब राजाने हर्षयुक्त हृदयसे भगवान् गरुडध्वजको प्रणाम करके पुत्र धर्माङ्गदको मारनेके लिये चमचमाती हुई तलवार हाथमें ले ली। पिताको खड्गहस्त देख धर्माङ्गदने माता, पिता तथा भगवान्‌को प्रणाम किया। तदनन्तर माताके उदार मुखपर दृष्टि डालकर राजकुमारने अपनी गरदन धरतीसे सटा ली। धर्माङ्गदने उसे ठीक तलवारकी धारके सामने रक्खा। वे पिताके भक्त तो थे ही, माताके भी महान् भक्त थे।

राजन्! जब पुत्रने चन्द्रमाके समान मनोहर मुखको प्रसन्न रखते हुए अपनी गरदन समर्पित कर दी और सम्पूर्ण जगत्‌के शासक महाराज रुक्माङ्गदने हाथमें तलवार उठा ली, उस समय वृक्षों और पर्वतोंसहित सम्पूर्ण पृथ्वी काँपने लगी। समुद्रमें ज्वार आ गया, मानो वह तीनों लोकोंको तत्क्षण डुबो देनेके लिये उद्यत हो गया हो। पृथ्वीपर सैकड़ों उल्काएँ गिरने लगीं। आकाशमें बिजली चमक उठी और गड़गड़ाहट-की आवाज होने लगी। मोहिनीका रंग फीका पड़ गया। उसने सोचा, 'जगत्स्रष्टा विधाताने इस समय मुझे व्यर्थ ही जन्म दिया। मेरा यह विमोहक रूप विडम्बनामात्र बनकर रह गया; क्योंकि इससे प्रभावित होकर राजाने पापनाशिनी एकादशीके दिन अन्न नहीं खाया। अब तो स्वर्गलोकमें मैं तिनकेके समान हो जाऊँगी। राजामें सत्त्वगुण एवं धैर्य अधिक होनेसे ये मोक्षमार्गको चले जायँगे, किंतु मैं पापिनी भयंकर नरकमें पड़ूँगी।' नृपश्रेष्ठ! इसी समय महाराज रुक्माङ्गदने तलवार ऊपर उठायी। यह देख मोहिनी मोहसे मूर्च्छित होकर धरतीपर गिर पड़ी। राजा धैर्य और हर्षसे युक्त हो पुत्रका चन्द्रमाके समान प्रकाशमान कुण्डलमण्डित मनोहर मुखयुक्त मस्तक काटना ही चाहते थे कि उसी समय भगवान् श्रीहरिने अपने हाथसे उन्हें पकड़ लिया और कहा—'राजन्! मैं तुमपर

बहुत प्रसन्न हूँ, बहुत प्रसन्न हूँ, अब तुम मेरे वैकुण्ठधामको चलो। अकेले ही नहीं, अपनी प्रिया रानी सन्ध्यावली और पुत्र धर्माङ्गदको भी साथ ले लो। तीनों लोकोंके लिये पुण्यमय निर्मल तथा उज्ज्वल कीर्तिकी स्थापना करके यमराजके मस्तकपर पाँव रखकर मेरे शरीरमें मिल जाओ।' ऐसा कह कर चक्रधारी भगवान्‌ने राजाको अपने हाथसे छू दिया। भगवान्‌के स्पर्शमात्रसे उनका (मोहिनीमें आसक्तिरूप) रजो-गुण धुल गया। वे महात्मा नरेश अपनी पत्नी और पुत्रके साथ वेगपूर्वक समीप जा भगवान्‌के दिव्य शरीरमें समा गये। उस समय आकाशसे पुष्पसमूहकी वर्षा होने लगी। हर्षमें भरे हुए सिद्ध तथा देवताओंके लोकपाल दुन्दुभियाँ बजाने लगे, जिनकी आवाज सब ओर गूँज उठी। दुःखयुक्त यमराजने यह अद्भुत दृश्य अपनी आँखोंसे देखा। राज

उनकी लिपिको मिटाकर अपनी स्त्री और पुत्रके साथ भगवान्‌के शरीरमें समा गये थे और सर्वसाधारण लोग भी राजाके सिखाये हुए मार्गपर स्थित होकर एकादशीका व्रत एवं भगवान्‌का कीर्तन आदि करते हुए वैकुण्ठके ही मार्गपर जाते थे। यह सब देखकर भयभीत हुए यमराज चतुर्मुख ब्रह्माजीके समीप पुनः जाकर बोले—'सुरलोकनाथ! अब मैं यमराजके पदपर नियुक्त नहीं होना चाहता, क्योंकि मेरी आज्ञा जगत्‌से उठ गयी। तात! मेरे लिये कोई दूसरा कार्य करनेकी आज्ञा प्रदान की जाय। दण्ड देनेका कार्य अब मेरे जिम्मे न रहे।'

यमराजका ब्रह्माजीसे कष्ट-निवेदन, वर देनेके लिये उद्यत देवताओंको रुक्माङ्गदके पुरोहितकी फटकार तथा मोहिनीका ब्राह्मणके शापसे भस्म होना

यमराज बोले—देवेश्वर! जगन्नाथ! चराचरगुरो! प्रभो! राजा रुक्माङ्गदकी चलायी हुई पद्धतिसे सब लोग वैकुण्ठमें ही जा रहे हैं। मेरे पास कोई नहीं आता। पितामह! कुमारावस्थासे ही सब मनुष्य एकादशीको उपवास करके पाप-शून्य हो भगवान् विष्णुके परम धाममें चले जाते हैं। आपकी पुत्री मोहिनी देवी लज्जावश मूर्च्छित होकर पड़ी है, अतः आपके पास नहीं आती। सब लोग उसे धिक्कारते हैं, इसलिये वह भोजनतक नहीं कर रही है। मेरा तो सारा व्यापार ही बंद हो गया है। आज्ञा कीजिये, मैं क्या करूँ?

सूर्यपुत्र यमकी बात सुनकर कमलासन ब्रह्माजीने कहा—'हम सब लोग साथ ही मोहिनीको होशमें लानेके लिये चलें।' तदनन्तर इन्द्र आदि सब देवता ब्रह्माजीके साथ दिव्य विमानोंपर बैठकर पृथ्वीपर आये। उन्होंने विमानोंद्वारा मोहिनीको सब ओरसे घेर लिया। वह मन्त्रहीन विधि, धर्म और दयासे रहित युद्ध, भूपालरहित पृथ्वी और मन्त्रणारहित राजाकी भाँति शोचनीय अवस्थामे पड़ी थी। ममत्वयुक्त ज्ञान और दम्भयुक्त धर्मकी जैसी अवस्था होती है, वैसी ही उसकी भी थी। देवताओंने उसे सर्वथा तेजोहीन देखा। प्रभो! वह उत्साहशून्य होकर किसी गम्भीर चिन्तनमें निमग्न थी, सब लोग उसे देखते हुए निन्दायुक्त कटुवचन सुना रहे थे। वह धर्मसे गिर गयी थी। पतिके वचनको उलटकर अपनी बात मनवानेका दुराग्रह रखनेवाली और अत्यन्त क्रोधी थी। उस अवस्थामें उससे देवताओंने कहा—'वामोरु! तुम शोक न करो। तुमने पुरुषार्थ किया है, किंतु जो भगवान् विष्णुके भक्त हैं, उनके मानका कभी खण्डन नहीं हो सकता। इसका एक कारण है, वैशाख मासके शुक्लपक्षमें जो परम पुण्यमयी मोहिनी नामवाली एकादशी आती है, वह सम्पूर्ण विघ्नोका विध्वंस करनेवाली है। राजा रुक्माङ्गदने पहले उस एकादशीका व्रत किया था। विशाललोचने! उन्होंने एक वर्षतक पादकृच्छ्र-व्रत करते हुए उसका पूजन किया था। उसीका यह अनुपम अध्यवसाय (सामर्थ्य) है कि वे सत्यसे विचलित न हो सके। लोकमें नारीको समस्त विघ्नोंकी रानी कहा जाता है। तुम्हारे विघ्न डालनेपर भी राजा रुक्माङ्गदने मन, वाणी और क्रियाद्वारा एकादशीको अन्न न खानेका निश्चय करके पुत्रको मारनेका विचार कर लिया और स्नेहको दूरसे ही त्यागकर तलवार उठा ली। इस कसौटीपर कसकर भगवान् मधुसूदनने देख लिया कि 'ये प्रिय पुत्रका वध कर डालेंगे, किंतु एकादशीको भोजन नहीं करेंगे।' पुत्र, पत्नी तथा राजा तीनोंका विलक्षण भाव देखकर भगवान् बहुत संतुष्ट हुए। तदनन्तर वे सब भगवान्‌में मिल गये। देवि! सुभगे! यदि सब प्रकारसे प्रयत्नपूर्वक कर्म करनेपर भी फलकी सिद्धि नहीं हो सकी तो अब इसमें तुम्हारा क्या दोष है? इसलिये शुभे! सब देवता तुम्हें वर देनेके लिये यहाँ आये हैं। सद्भावपूर्वक प्रयत्न करनेवाले पुरुषका कार्य यदि नहीं सिद्ध होता तो भी उसको वेतनमात्र तो दे ही देना चाहिये। नहीं तो, उसे संतोष नहीं होगा।'

देवताओंके ऐसा कहनेपर सम्पूर्ण विश्वको मोहनेवाली मोहिनी आनन्दशून्य, पतिहीन एवं अत्यन्त दुःखित होकर बोली—'देवेश्वरो! मेरे इस जीवनको धिक्कार है, जो मैंने यमलोकके मार्गको मनुष्योंसे भर नहीं दिया, एकादशीके महत्त्वका लोप नहीं किया और राजाको एकादशीके दिन भोजन नहीं करा दिया। वह वीर भूपाल रुक्माङ्गद प्रसन्नतापूर्वक भगवान् श्रीहरिमें मिल गये। जिनके कल्याणमय गुणोंका कोई माप नहीं है, जो स्वभावतः निर्मल तथा शुद्ध अन्तःकरणवाले संतोंके आश्रय हैं। सर्वव्यापी, हंसस्वरूप, पवित्र पद, परम व्योमरूप, ओङ्कारमय, सबके कारण, अविनाशी, निराकार, निराभास, प्रपञ्चसे परे तथा निरञ्जन (निर्दोष)

हैं, जो आकाशस्वरूप तथा ध्येय और ध्यानसे रहित हैं, जिन्हें सत् और असत् कहा गया है, जो न दूर हैं, न निकट हैं, मन जिनको ग्रहण नहीं कर सकता, जो परम-धामस्वरूप, परम पुरुष एवं जगन्मय हैं, जो सनातन तेजःस्वरूप हैं, उन्हीं भगवान् विष्णुमें राजा रुक्माङ्गद लीन हो गये । देवताओ ! जो भृत्य स्वामीके कार्यकी सिद्धि नहीं करते और वेतन भोगते रहते हैं, वे इस पृथ्वीपर घोड़े होते हैं । आपकी यह मोहिनी तो पति और पुत्रका नाश करनेवाली है । इसके द्वारा कार्यकी सिद्धि भी नहीं हुई है, फिर यह आप स्वर्गवासियोंसे वर कैसे ग्रहण करे ?'

देवताओंने कहा—मोहिनी ! तुम्हारे हृदयमें जो अभिलाषा हो उसे कहो, हम अवश्य उसकी पूर्ति करेंगे ।

महीपते ! जब देवतालोग इस तरहकी बातें कह रहे थे, उसी समय राजा रुक्माङ्गदके पुरोहित जो अग्निके समान तेजस्वी थे, वहाँ आये । वे मुनि पहले जलमें बैठकर योगकी साधनामें तत्पर थे । बारहवाँ वर्ष पूर्ण होनेपर पुनः जलसे निकले थे । जलसे निकलनेपर उन्होंने मोहिनीकी सारी करतूतें सुनीं । इससे क्रोधमें भरकर वे मुनिश्रेष्ठ देवसमुदायके पास आये और मोहिनीको वर देनेवाले सम्पूर्ण देवताओंसे इस प्रकार बोले—'इस मोहिनीको धिक्कार है, देवसमूहको भी धिक्कार है और इस पापकर्मको धिक्कार है । आपलोग धिक्कारके पात्र इसलिये हैं कि आप मोहिनीको मनोवाञ्छित वर देनेवाले हैं । इसपर हत्याका पाप सवार है । इसमें नारीजनोचित साधु बर्ताव नहीं रह गया है । यह स्त्री नहीं, राक्षसी है । देवताओ ! यदि यह जलती हुई आगमें कूद पड़े तो भी इस लोकमें इसकी शुद्धि नहीं हो सकती; क्योंकि इसने इस पृथ्वीको राजासे शून्य कर दिया । देवगण ! इस खोटी बुद्धिवाली पापिनीके लिये तो नरकोंमें भी रहनेका अधिकार नहीं है । फिर स्वर्गमें इसकी स्थिति कैसे हो सकती है ? यह राजाके निकट नहीं जा सकती है । लोकापवादसे यह इतनी दूषित हो चुकी है कि लोकमें कहीं भी इसका रहना सम्भव नहीं है । देवताओ ! जो सदा पापमें ही डूबी रही है और अपने दुष्कर्मोंके कारण जिसकी सर्वत्र निन्दा होती है, उस पापिनीके जीवनको धिक्कार है । यह वैष्णवधर्मका लोप करनेवाली तथा भारी पापराशिसे दबी हुई है । देवेश्वरो ! यह तो स्पर्श करनेयोग्य भी नहीं है, इसे आपलोग वर कैसे दे रहे हैं ? जो लोग न्यायपरायण तथा धर्ममार्गपर चलनेवाले हैं, उन्हींको वर देनेके लिये आपको सदा तत्पर रहना चाहिये । देवतालोग कभी धर्मकी रक्षा नहीं करते; उन्हें धर्मका आधार माना गया है और धर्मका प्रतिपादन वेदमें किया गया है । वेदोंने पतिकी सेवाको ही स्त्रियोंका धर्म बताया है । पति जो कुछ भी कहे, उसे निःशङ्क होकर करना चाहिये । इसीको धर्म जानना चाहिये । केवल शारीरिक सेवाका ही नाम शुश्रूषा नहीं है । देवगण ! इसने अपनी आज्ञा स्वाधीन रखनेकी इच्छासे पतिकी आज्ञाका उल्लङ्घन किया है, इसलिये मोहिनी सम्पूर्ण स्त्रियोंमें पापिनी है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है । इसकी शपथोंसे बँधे हुए राजा रुक्माङ्गदने पुत्रकी रक्षाके लिये नाना प्रकारकी अनुनय-विनयभरी बातें कहीं, किंतु इसने उनकी ओरसे अनिच्छा प्रकट कर दी, अतः राजा इसके ऊपर पाप डालकर स्वयं मोक्षको प्राप्त हुए हैं । इसलिये इसपर हजारों हत्याका पाप सवार है । इसका शरीर ही पापमय है । जो सब प्रकारके उत्तम दान देनेवाले, ब्राह्मणभक्त, भगवान् विष्णुके आराधक, प्रजाको प्रसन्न रखनेवाले तथा एकादशी-व्रतके सेवी थे, परायी स्त्रियोंके प्रति जिनके मनमें आसक्ति नहीं थी, जो विषयोंकी ओरसे विरक्त हो चले थे, परोपकारके लिये सारा भोग त्याग चुके थे और सदा यज्ञानुष्ठानमें लगे रहते थे, इस पृथ्वीपर जो सदा दुष्टोंका दमन करनेमें तत्पर रहते थे और सात प्रकारके भयंकर व्यसनोंने कभी जिनपर आक्रमण नहीं किया, उन्हीं महाराज रुक्माङ्गदको इस जगत्से हटाकर दुराचारिणी मोहिनी वर पानेके योग्य कैसे हो सकती है ? सुरेश्वरगण ! जो इस मोहिनीके पक्षमें होगा, वह देवता हो या दानव, मैं उसको भी क्षणभरमें भस्म कर दूँगा । जो मोहिनीकी रक्षाका प्रयत्न करेगा, उसको वही पाप लगेगा, जो मोहिनीमें स्थित है ।'

राजन् ! ऐसा कहकर उन द्विजेन्द्रने हाथमें जल ले लिया और ब्रह्मपुत्री मोहिनीकी ओर क्रोधपूर्वक देखकर उसके मस्तकपर वह जल डाल दिया । उस जलसे अग्निके समान लपट उठ रही थी । महीपते ! उस जलके छोड़ते ही मोहिनीका शरीर स्वर्गवासियोंके देखते-देखते तत्काल प्रज्वलित हो उठा, मानो तिनकोंकी राशिमें आगकी लपटें उठ रही हों । 'प्रभो ! अपना रोष रोकिये, रोकिये ।' यह देवताओंकी वाणी जबतक आकाशमें गूँजी, तबतक तो ब्राह्मणके वचनसे प्रकट हुई अग्निने उस स्त्रीको जलाकर राख कर दिया !

मोहिनीकी दुर्दशा, ब्रह्माजीका राजपुरोहितके समीप जाकर उनको प्रसन्न करना, मोहिनीकी याचना

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! मोहिनी मोहमय शरीर त्यागकर देवताओंके लोकमें गयी। वहाँ देवदूत (वायुदेव) ने उसे डाँटा—'पापिनी! तेरा स्वभाव पापमय है। तेरी बुद्धि अत्यन्त खोटी है। तू सदा एकादशी-व्रतके लोपमें संलग्न रही है, अतः स्वर्गमें तेरा रहना असम्भव है।' इस प्रकार कठोर वचन कहकर वायुदेवने उसे डंडेसे पीटा और यातनामय नरकमें भेज दिया। राजन्! देवदूत (वायुदेव)से इस प्रकार ताडित होनेपर मोहिनी नरकमें गयी। वहाँ धर्मराजकी आज्ञासे दूतोंने उसे खूब पीटा और दीर्घकालतक क्रमशः सभी नरकोंमें उसे गिराया; साथ ही उससे यह बात भी कही—'ओ पापिनी! तूने पतिके हाथों अपने पुत्र धर्माङ्गदकी हत्या करनेको कहा, अतः अपने किये हुए उस पापकर्मका फल यहाँ अच्छी तरह भोग ले।' नृपश्रेष्ठ! यमदूतोंके इस प्रकार धिक्कारनेपर यमकी आज्ञाके अनुसार वह क्रमशः सब नरकोंकी यातनाएँ भोगती रही। मोहिनी ब्राह्मणके शापसे मरी थी, अतः उसके शरीरके स्पर्शसे उन नरक-यातनाओंकी अभिमानिनी चेतनशक्तियोंका सारा अङ्ग जलने लगा। वे अधिष्ठात्री देवियाँ उसको धारण करनेमें असमर्थ हो गयीं। राजन्! तब वे सभी नरक (नरकके अभिमानी देवता) धर्मराजके समीप आये और हाथ जोड़कर भयभीत हो बोले—'देवदेव! जगन्नाथ! धर्मराज! हमपर दया कीजिये और इस मोहिनीको हमारी यातनाओंसे शीघ्र अलग कीजिये, जिससे हमें सुख मिले। नाथ! इसके शरीरके स्पर्शसे हमलोग क्षणभरमें भस्म हो जायँगे; अतः इसे यहाँसे निकाल बाहर कीजिये।' उनकी बात सुनकर धर्मराज बड़े विस्मित हुए और अपने दूतोंसे बोले—'इसे मेरे लोकसे निकाल बाहर करो। जो ब्रह्मशापसे दग्ध हुआ है, वह स्त्री हो, पुरुष हो या चोर ही क्यों न हो, उस पापीका स्पर्श हमारी नरक-यातनाएँ भी नहीं करना चाहती हैं। अतः इस पापिनीको, जो पतिके वचनका लोप करनेवाली, पुत्रघातिनी, धर्मनाशिनी तथा ब्रह्मदण्डसे मारी गयी है, यहाँसे जल्दी निकालो।'

भूपते! धर्मराजके ऐसा कहनेपर वे दूत अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करते हुए मोहिनीको यमलोकसे बाहर कर आये। राजन्! तब मोहयुक्त मोहिनी अत्यन्त दुःखित होकर पाताल-लोकमें गयी, किंतु पातालवासियोंने भी उसे रोक दिया। तब मोहिनीने अत्यन्त लज्जित हो अपने पिताके समीप जाकर सारा दुःख निवेदन किया—'तात! चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकीमें मेरे रहनेके लिये कोई स्थान नहीं है। जहाँ-जहाँ जाती हूँ, वहाँ-वहाँ सब लोग मेरी निन्दा और तिरस्कार करते हैं। नाना प्रकारके आयुधोंसे मुझे खूब मारकर लोगोंने अपने स्थानसे बाहर निकाल दिया है। पिताजी! मैं तो आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके ही रुक्माङ्गदके समीप गयी थी और वहाँ ऐसी-ऐसी चेष्टाएँ कीं, जो सम्पूर्ण लोकोंमें निन्दित हैं। पतिको कष्टमें डाला, पुत्रको तीखी तलवारसे कटवा देना चाहा और संध्यावलीको भी क्षोभमें डाल दिया, इसीसे मेरी यह दशा हुई है। देव! मुझ पापिनीके लिये अब कहीं कोई सहारा नहीं है। विशेषतः ब्राह्मणके शापसे मुझे अधिक दुःख भोगना पड़ रहा है। पिताजी! जो ब्राह्मणके शापसे मरे हैं, आगसे जले हैं, चाण्डालके हाथों मारे गये हैं, व्याघ्र-सिंह आदि वन जन्तुओंद्वारा भक्षण किये गये हैं तथा बिजली गिरनेसे नष्ट हुए हैं, उन सबको मोक्ष देनेवाली केवल गङ्गा नदी है। यदि आप जाकर मुझे शाप देनेवाले उस ब्राह्मणको प्रसन्न कर लें तो मेरी सद्गति हो सकती है।'

राजन्! तब लोकपितामह ब्रह्माजी शिव, इन्द्र, धर्म, सूर्य तथा अग्नि आदि देवेश्वरों और मुनियोंको साथ ले उपर्युक्त बातें कहनेवाली मोहिनीको आगे करके ब्राह्मणके समीप गये। वहाँ जाकर देवता आदिसे घिरे हुए स्वयं ब्रह्माजीने बड़े गौरवसे उन्हें नमस्कार किया। यद्यपि ब्रह्माजी रुद्र आदि देवताओंके लिये भी पूजनीय और माननीय हैं, तथापि मोहिनीके स्नेहके कारण उन्होंने स्वयं ही नमस्कार किया। राजन्! जब तीनों लोकोंमें असाध्य एवं महान् कार्य प्राप्त हो जाय, तब बड़ेके द्वारा छोटेका अभिवादन दूषित नहीं माना जाता। वे ब्राह्मण देवता वेद-वेदाङ्गोंके पारदर्शी विद्वान् और तपस्वी थे। लोककर्ता ब्रह्माजीको

देवताओंके साथ आया देख ब्राह्मणने उठकर मुनियोंसहित उन सबको प्रणाम किया और आसनपर बिठाकर भक्तिपूर्वक ब्रह्माजीका स्तवन किया, तब प्रसन्न होकर लोककर्ता जगद्गुरु भगवान् ब्रह्माने मोहिनीके लिये उन राजपुरोहित ब्राह्मणसे इस प्रकार प्रार्थना की—'तात ! आप ब्राह्मण हैं, सदाचारी हैं और परलोकमें उपकार करनेवाले हैं। कृपासिन्धो ! कृपा कीजिये और मोहिनीको उत्तम गति प्रदान कीजिये। ब्रह्मन् ! मोहिनी मेरी पुत्री है। मानद ! यमलोकको सूना देखकर रुक्माङ्गदको मोहनेके लिये (प्रकारान्तरसे उस भक्तका गौरव बढ़ानेके लिये) मैंने ही उसे भेजा था। धर्मकी गति अत्यन्त सूक्ष्म है। वह सम्पूर्ण लोकका कल्याण करनेवाली है। यह मोहिनी एक कसौटी थी, जिसपर सुवर्णरूपी राजा रुक्माङ्गदकी परीक्षा करके उन्हें स्त्री-पुत्रसहित भगवान्‌के धामको भेज दिया गया है। राजाने अविचल भक्तिसे एकादशी-व्रतका पालन करने और करानेके कारण यमराजकी लिपिको मिटाकर यमपुरीको सूना कर दिया था। ब्रह्मन् ! शास्त्रवेत्ताओंको जिसकी प्राप्ति दुर्लभ है, अष्टाङ्गयोगके साधनसे भी जो मिलनेवाला नहीं है, उस भक्तिगम्य परम पदकी प्राप्ति राजा, राजकुमार और देवी संध्यावलीको हुई है। मोहिनीने जो उस पुण्यात्मा भूपशिरोमणिके प्रतिकूल आचरण किया है, उस पापसे उसकी बड़ी दुर्दशा हुई है। आपके शापसे दग्ध होकर यह राखकी ढेरमात्र रह गयी है। इसके द्वारा जो अपराध हुआ है, उसे क्षमा कर दीजिये। दया कीजिये, शान्त होइये ! आपके शाप देनेसे यह अधोगतिमें डाली गयी है। इसपर प्रसन्न होइये और इसे उत्तम गति दीजिये।'

ब्रह्माजीके द्वारा ऐसा कहे जानेपर उन विप्रशिरोमणिने बुद्धिसे विचार करके क्रोध त्याग दिया और मोहिनीके पिता देवेश्वर श्रीब्रह्माजीसे इस प्रकार कहा—'देव ! आपकी पुत्री मोहिनी बहुत पापसे भरी हुई है, अतः प्राणियोंसे परिपूर्ण लोकोंमें उसकी स्थिति नहीं हो सकती। सुरेश्वर ! जिस प्रकार आपका और मेरा भी वचन सत्य हो, देवताओंका कार्य सिद्ध हो और मोहिनीकी आवश्यकता भी पूर्ण हो जाय, वही करना चाहिये। अतः जो भूतसमुदायसे कभी आक्रान्त न हुआ हो, उसी स्थानपर मोहिनी रहे।'

नृपश्रेष्ठ ! तब ब्रह्माजीने सम्पूर्ण देवताओंसे सलाह लेकर मोहिनी देवीसे कहा—'तुम्हारे लिये यहाँ स्थान नहीं है।' यह सुनकर मोहिनी सम्पूर्ण देवताओंको प्रणाम करके बोली—'सुरश्रेष्ठगण ! आप सब देवता सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी हैं। पुरोहितजीके साथ आपलोगोंको सौ-सौ बार प्रणाम करके मैं हाथ जोड़ती हूँ। आप प्रसन्न हृदयसे मेरी याचना पूर्ण करें। मुझे वह स्थान दें जो मेरे लिये प्रीतिकर हो। दूसरोंको मान देनेवाले महात्माओ ! किसी दोषसे दूषित एकादशीका दिन जिस प्रकार मेरा हो जाय, ऐसा कीजिये—यही मेरी याचना है। इसे आप अवश्य पूर्ण कर दें। यह माँग मैंने स्वार्थसिद्धिके लिये की है।'

मोहिनीको दशमीके अन्तभागमें स्थानकी प्राप्ति तथा उसे पुनः शरीरकी प्राप्ति

देवता बोले—मोहिनी ! निशीथकालमें जिसका दशमीसे वेध हो, वह एकादशी देवताओंका उपकार करनेवाली होती है और सूर्योदयमें दशमीसे वेध होनेपर वह असुरोंके लिये लाभदायक होती है। यह व्यवस्था स्वयं भगवान् विष्णुने की है। त्रयोदशीमें पारण हो तो वह उपवास सबका नाश करनेवाला होता है। वेद-शास्त्रोंमें जो कुछ

महाद्वादशियाँ बतायी गयी हैं, वे एकादशीसे भिन्न हैं। वैष्णवलोग उनमें उपवास करते हैं। वैष्णव महात्माओंका एकादशी-व्रत भिन्न है। दोनों पक्षोंमें वह नित्य बताया गया है। विधिपूर्वक किये जानेपर वह तीन दिनमें पूरा होता है। एकादशीके पहले दिन सायंकालका भोजन छोड़ दे और दूसरे दिन प्रातःकालका भोजन त्याग दे। यदि एकादशी दो दिन हो या प्रथम दिन विद्ध होनेके कारण त्याज्य हो तो दूसरे दिन उपवास करना चाहिये। द्वादशीमें निर्जल उपवास करना उचित है। जो सर्वथा उपवास करनेमें असमर्थ हों, उनके लिये जल, शाक, फल, दूध अथवा भगवान्‌के नैवेद्यको ग्रहण करनेका विधान है; किंतु वह अपने स्वाभाविक आहार-की मात्राके चौथाई भागके बराबर होना चाहिये। साध्वी ! स्मार्त (स्मृतियोंके अनुसार चलनेवाले गृहस्थ) लोग सूर्योदयकालमें दशमीविद्धा एकादशीका त्याग करते हैं, परंतु निष्काम एवं विरक्त वैष्णवजन आधी रातके समय भी दशमीसे विद्ध होनेपर उस एकादशीको त्याग देते हैं। सम्पूर्ण लोकोंमें यह बात विदित है कि दशमी यमराजकी तिथि है। अनघे ! उस दशमीके अन्तिम भागमें तुम्हें निवास करना चाहिये। तुम दशमी तिथिके अन्तिम भागमें स्थित होकर सूर्य और चन्द्रमाकी किरणोंके साथ सचरण करोगी। अब तुम अपने पापका नाश करनेके लिये पृथ्वीपर सब तीर्थोंमें भ्रमण करो। अरुणोदयसे लेकर सूर्योदयतकका जो समय है, उसके भीतर तुम व्रतमें स्थित होकर एकादशीका फल प्राप्त करो। जो कोई मनुष्य तुमसे विद्ध एकादशीका व्रत करता है, वह उस व्रत-द्वारा तुम्हें लाभ पहुँचानेवाला होगा। यहाँ अरुणोदयका समय दो मुहूर्त्ततक जानना चाहिये। रात और दिनके पृथक्-पृथक् पन्द्रह मुहूर्त्त माने गये हैं। दिन और रात्रिकी छोटाई-बड़ाईके अनुसार त्रैराशिककी विधिसे रात या दिनके मुहूर्त्तों-को समझना चाहिये। रात्रिके तेरहवें मुहूर्त्तके बाद तुम दशमीके अन्त भागमें स्थित होकर उस दिन उपवास करनेवाले लोगों-के पुण्यको प्राप्त कर लोगी। शुचिस्मिते ! यह वर पाकर तुम निश्चिन्त हो जाओ। मोहिनी ! जो व्रत करनेवाले लोग तुमसे विद्ध हुई एकादशीका व्रत यहाँ प्रयत्नपूर्वक करते हैं, उनके उस व्रतसे जो पुण्य होता है, उसका फल तुम भोगो !

ब्रह्मा आदि देवताओंद्वारा इस प्रकार आदेश प्राप्त होने-पर मोहिनी बहुत प्रसन्न हुई। अपने पाप दूर करनेके लिये तीर्थ-सेवनकी आज्ञा मिल जानेपर उसने जीवनको कृतार्थ माना। राजन् ! ऐसा सोचकर हर्षमें भरी हुई मोहिनी देवताओं तथा पुरोहितको प्रणाम करके सूर्योदयसे पूर्ववर्ती दशमीके अन्त भागमें स्थित हो गयी। मोहिनीको अपनी तिथिके अन्तमें स्थित देख सूर्यपुत्र यमका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। वे बोले—'चारुलोचने ! तुमने इस लोकमें फिर मेरी अच्छी प्रतिष्ठा कर दी। राजा रुक्माङ्गदके मतवाले हाथीपर रखकर जो नगाड़ा बजाया जाता था, वह तो तुमने बद करा ही दिया। यह दशमी तिथि यदि सूर्योदयकालका स्पर्श करे तो सदा निन्दित मानी गयी है। यदि दशमीसे उदयकालका स्पर्श न हो तो भी अरुणोदयकालमें रहनेपर वह मनुष्योंको मोहमें डालनेवाली होगी। उस दशमीको त्याग करके व्रत करनेपर मनुष्यको प्रिय वस्तुओंका संयोग एवं भोग प्राप्त होता है।' ऐसा कहकर सूर्यपुत्र यम प्रसन्नतापूर्वक ब्रह्मकुमारी मोहिनीको प्रणाम करके देवताओंके साथ अपने चित्रगुप्तका हाथ पकड़े हुए स्वर्गलोकको चले गये। देवताओंके चले जानेपर मोहिनी ब्रह्माजीसे बोली—'पिताजी ! मेरे इन पुरोहितने क्रोधपूर्वक मेरे शरीरको जला दिया है। मैं पुनः उसे प्राप्त कर लूँ—ऐसा प्रयत्न कीजिये।'

मोहिनीका यह वचन सुनकर लोकस्रष्टा ब्रह्माजी पुत्रीके हितके लिये ब्राह्मणदेवताको पुनः शान्त करते हुए बोले—'तात ! वसो ! मेरी बात सुनो। महाभाग ! मैं तुम्हारे, इस मोहिनीके तथा सम्पूर्ण लोकोंके हितके लिये हितकारक वचन

१. आठ महाद्वादशियोंके नाम इस प्रकार हैं—उन्मीलनी, वञ्जुली, त्रिस्पृशा, पक्षवर्धिनी, जया, विजया, जयन्ती और पापनाशिनी। इनमेंसे प्रारम्भकी चार द्वादशियाँ तिथियोगसे विशेष सज्ञा धारण करती हैं और अन्तकी चार द्वादशियोंके नामकरणमें भिन्न-भिन्न नक्षत्रोंका योग कारण है। दशमी-वेधरहित एकादशी जब एक दिनसे बढ़कर दूसरे दिन भी कुछ समयतक दिखायी दे और द्वादशी न बढ़े तो वह 'उन्मीलनी' महाद्वादशी कहलाती है। जब एकादशी एक ही दिन हो और द्वादशी बढ़कर दूसरे दिनतक चली गयी हो तो वह 'वञ्जुली' द्वादशी कहलाती है। इसमें द्वादशीमें उपवास और द्वादशीमें ही पारण होता है। जब अरुणोदयकालमें एकादशी, दिनभर द्वादशी और दूसरे दिन प्रात काल त्रयोदशी हो तो 'त्रिस्पृशा' नामक महाद्वादशी होती है। जिस पक्षमें अमावास्या या पूर्णिमा एक दिन साठ दण्ड रहकर दूसरे दिनमें भी कुछ समयतक चली गयी हो, उस पक्षकी द्वादशीको 'पक्षवर्धिनी' कहते हैं। द्वादशीके साथ पुनर्वसु-नक्षत्रका योग हो तो वह 'जया', श्रवण-नक्षत्रका योग हो तो 'विजया', पुष्यका योग हो तो 'पापनाशिनी' तथा रोहिणीका योग हो तो 'जयन्ती' कहलाती है।

कहता हूँ। मानद! तुमने क्रोधवश मोहिनीको भस्मावशेष कर दिया है। अब यह पुनः अपने लिये शरीरकी याचना करती है, अतः आज्ञा दो। तात! मेरी पुत्री और तुम्हारी यजमान होकर यह दुर्गतिमें पड़ी है। तुम्हारा और मेरा कर्तव्य है कि इसका पालन करें। मानद! यदि तुम शुद्ध भावसे मुझे आज्ञा दो तो मैं इसके लिये पुनः नूतन शरीर उत्पन्न कर दूँगा, किंतु यह एकादशीसे वैर रखनेवाली होनेके कारण पापाचारिणी है। विप्रवर! जिस प्रकार यह पापसे शीघ्र शुद्ध हो सके, वही उपाय कीजिये।' ब्रह्माजीका यह कथन सुनकर राजपुरोहितने अपनी यजमानपत्नीके शरीरकी प्राप्तिके लिये प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा दे दी। ब्राह्मणका अनुमोदक वचन सुनकर लोकपितामह ब्रह्माने मोहिनीके शरीरकी राखको कमण्डलुके जलसे सींच दिया। लोककर्ता ब्रह्माके सींचते ही मोहिनी पूर्ववत् शरीरसे सम्पन्न हो गयी। उसने अपने पिता ब्रह्माजीको प्रणाम करके विनयसे नतमस्तक हो पुरोहित वसुके दोनों पैर पकड़ लिये। इससे राजपुरोहित वसु प्रसन्न हो गये। उन्होंने पति और पुत्रसे रहित संकटमें पड़ी हुई विधवा रुक्माङ्गदपत्नी मोहिनीसे इस प्रकार कहा।

वसु बोले—देवि! मैंने ब्रह्माजीके कहनेसे क्रोध त्याग दिया। अब तीर्थ-स्नानादि पुण्य-कर्मसे तुम्हारी सद्गति कराऊँगा।

मोहिनीसे ऐसा कहकर ब्राह्मणने उसके पिता लोकपितामह ब्रह्माजीको नमस्कार करके प्रसन्नतापूर्वक विदा किया। तब ब्रह्माजी अपने लोकको चले गये, जो परम ज्योतिर्मय है। रुक्माङ्गदके पुरोहित विप्रवर वसु मोहिनीको इसके योग्य मानकर मन-ही-मन उसकी सद्गतिका उपाय सोचने लगे। दो घड़ीतक ध्यानमें स्थित होकर उन्होंने उसकी सद्गतिका उपाय जान लिया।

मोहिनी-वसु-संवाद—गङ्गाजीके माहात्म्यका वर्णन

वसिष्ठजी कहते हैं—नृपश्रेष्ठ! सम्पूर्ण लोकोंके हितमें तत्पर रहनेवाले पुरोहित वसु यजमानपत्नी मोहिनीसे मधुर वाणीमें बोले।

पुरोहित वसुने कहा—मोहिनी! सुनो, मैं तुम्हें तीर्थोंके पृथक्-पृथक् लक्षण बतलाता हूँ। जिसके जान लेनेमात्रसे पापियोंकी उत्तम गति होती है। पृथ्वीपर सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ गङ्गा हैं। गङ्गाके समान पापनाशक तीर्थ दूसरा कोई नहीं है।

अपने पुरोहित वसुका यह वचन सुनकर मोहिनीके मनमें गङ्गा-स्नानके प्रति आदर बढ़ गया। वह पुरोहितजीको प्रणाम करके बोली।

मोहिनीने कहा—भगवन्! सम्पूर्ण पुराणोंकी सम्मतिके अनुसार इस समय गङ्गाजीका उत्तम माहात्म्य बताइये। पहले गङ्गाजीके अनुपम तथा पापनाशक माहात्म्यको सुनकर फिर आपके साथ पापनाशिनी गङ्गाजीमें स्नान करनेके लिये चलूँगी। वसु सब पुराणोंके ज्ञाता थे। उन्होंने मोहिनीका वचन सुनकर गङ्गाजीके पापनाशक माहात्म्यका इस प्रकार वर्णन किया।

पुरोहित वसु बोले—देवि! वे देश, वे जनपद, वे पर्वत और वे आश्रम भी धन्य हैं, जिनके समीप सदा पुण्यसलिला भगवती भागीरथी बहती रहती हैं*। जीव गङ्गाजीका सेवन करके जिस गतिको पाता है, उसे तपस्या, ब्रह्मचर्य, यज्ञ अथवा त्यागके द्वारा भी नहीं पा सकता। जो मनुष्य पहली अवस्थामें पापकर्म करके अन्तिम अवस्थामें गङ्गाजीका सेवन करते हैं, वे भी परम गतिको प्राप्त होते हैं। इस संसारमें दुःखसे व्याकुल जो जीव उत्तम गतिकी खोजमें लगे हैं, उन सबके लिये गङ्गाके समान दूसरी कोई गति नहीं है। गङ्गाजी बड़े-बड़े भयंकर पातकोंके कारण अवश्य नरकमें गिरनेवाले नराधम पापियोंको जबरन तार देती हैं। गङ्गा देवी अंधों, जड़ों तथा द्रव्यहीनोंको भी पवित्र बनाती हैं। मोहिनी! (विशेषरूपसे) पक्षोंके आदि अर्थात् कृष्ण पक्षकी षष्ठीसे लेकर पुण्यमयी अमावास्यातक दस दिन गङ्गाजी इस पृथ्वीपर निवास करती हैं। शुक्ल पक्षकी प्रतिपदासे लेकर दस दिनतक वे स्वयं ही पातालमें निवास करती हैं। फिर शुक्ल पक्षकी एकादशीसे कृष्ण पक्षकी पञ्चमीतक जो दस दिन होते हैं, उनमें गङ्गाजी सदा स्वर्गमें रहती हैं। [इसीलिये इन्हें 'त्रिपथगा' कहते हैं] सत्ययुगमें सब तीर्थ उत्तम हैं।

* ते देशास्ते जनपदास्ते शैलास्तेऽपि चाश्रमाः।
येषां भागीरथी पुण्या समीपे वर्तते सदा॥
(ना० उत्तर० ३८।८)

त्रेतामें पुष्कर तीर्थ सर्वोत्तम है, द्वापरमें कुरुक्षेत्रकी विशेष महिमा है और कलियुगमें गङ्गा ही सबसे बढ़कर है। कलियुगमें सब तीर्थ स्वभावतः अपनी-अपनी शक्तिको गङ्गाजीमें छोड़ते हैं, परंतु गङ्गादेवी अपनी शक्तिको कहीं नहीं छोड़तीं। गङ्गाजीके जलकणोंसे परिपुष्ट हुई वायुके स्पर्श-से भी पापाचारी मनुष्य भी परम गतिको प्राप्त होते हैं। जो सर्वत्र व्यापक हैं, जिनका स्वरूप चिन्मय है, वे जनार्दन भगवान् विष्णु ही द्रवरूपसे गङ्गाजीके जल हैं, इसमें संशय नहीं है। महापातकी भी गङ्गाजीके जलमें स्नान करनेसे पवित्र हो जाते हैं, -इस विषयमें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। गङ्गाजीका जल अपने क्षेत्रमें हो या निकालकर लाया गया हो, ठंडा हो या गरम हो, वह सेवन करनेपर आमरण किये हुए पापोंको हर लेता है। बासी जल और बासी दल त्याग देने योग्य माना गया है, परंतु गङ्गाजल और तुलसीदल बासी होनेपर भी त्याज्य नहीं है। मेरुके सुवर्णकी, सब प्रकारके रत्नोंकी, वहाँके प्रस्तर और जलके एक-एक कणकी गणना हो सकती है, परंतु गङ्गाजलके गुणोंका परिमाण बतानेकी शक्ति किसीमें भी नहीं है*। जो मनुष्य तीर्थयात्राकी पूरी विधि न कर सके वह भी केवल गङ्गाजलके माहात्म्यसे यहाँ उत्तम फलका भागी होता है। गङ्गाजीके जलसे एक बार भक्तिपूर्वक कुल्ला कर लेनेपर मनुष्य स्वर्गमें जाता और वहाँ कामधेनुके थनोंसे प्रकट हुए दिव्य रसोंका आस्वादन करता है। जो शालग्राम शिलापर गङ्गाजल डालता है, वह पापरूपी तीव्र अन्धकारको मिटाकर उदयकालीन सूर्यकी भाँति पुण्यसे प्रकाशित होता है। जो पुरुष मन, वाणी और शरीरद्वारा किये हुए अनेक प्रकारके पापोंसे ग्रस्त हो, वह भी गङ्गाजीका दर्शन करके पवित्र हो जाता है; इसमें संशय नहीं है। जो सदा गङ्गाजीके जलसे सींचकर पवित्र की हुई भिक्षा भोजन करता है, वह केंचुलका त्याग करनेवाले सर्पकी भाँति पापसे शून्य हो जाता है। हिमालय और विन्ध्यके समान पापराशियाँ भी गङ्गाजीके जलसे उसी प्रकार नष्ट हो जाती हैं जिस प्रकार भगवान् विष्णुकी भक्तिसे सब प्रकारकी आपत्तियाँ। गङ्गाजीमें भक्तिपूर्वक स्नानके लिये प्रवेश करनेपर मनुष्योंके ब्रह्महत्या आदि पाप 'हाय-हाय' करके भाग जाते हैं। जो प्रतिदिन गङ्गाजीके तटपर रहता और सदा गङ्गाजीका जल पीता है, वह पुरुष पूर्वसंचित पातकोंसे मुक्त हो जाता है। जो गङ्गाजीका आश्रय लेकर नित्य निर्भय रहता है, वही देवताओं, ऋषियों और मनुष्योंके लिये पूजनीय है*। प्रभासतीर्थमें सूर्यग्रहणके समय सहस्र गोदान करनेसे मनुष्य जो फल पाता है, वह गङ्गाजीके तटपर एक दिन रहनेसे ही मिल जाता है। जो अन्य सारे उपायोंको छोड़कर मोक्षकी कामना लिये दृढ़-निश्चयके साथ गङ्गाजीके तटपर सुखपूर्वक रहता है, वह अवश्य ही मोक्षका भागी होता है। विशेषतः काशीपुरीमें गङ्गाजी तत्काल मोक्ष देनेवाली हैं। यदि जीवनभर प्रतिमास-की चतुर्दशी और अष्टमी तिथिको सदा गङ्गाजीके तटपर

---

* कृते तु सर्वतीर्थानि त्रेतायां पुष्करं परम्।
द्वापरे तु कुरुक्षेत्रं कलौ गङ्गा विशिष्यते॥
कलौ तु सर्वतीर्थानि स्वं स्वं वीर्यं स्वभावतः।
गङ्गायां प्रतिमुञ्चन्ति सा तु देवी न कुत्रचित्॥
गङ्गाम्भःकणदिग्धस्य वायोः संस्पर्शनादपि।
पापशीला अपि नराः परां गतिमवाप्नुयुः॥
योऽसौ सर्वगतो विष्णुश्चित्स्वरूपी जनार्दनः।
स एव द्रवरूपेण गङ्गाम्भो नात्र संशयः॥
ब्रह्महा गुरुहा गोघ्नः स्तेयी च गुरुतल्पगः।
गङ्गाम्भसा च पूयन्ते नात्र कार्या विचारणा॥
क्षेत्रस्थमुद्धृतं वापि शीतमुष्णमथापि वा।
गाङ्गेयं तु हरेत्तोयं पापमामरणान्तिकम्॥
वर्ज्यं पर्युषितं तोयं वर्ज्यं पर्युषितं दलम्।
न वर्ज्यं जाह्नवीतोयं न वर्ज्यं तुलसीदलम्॥
मेरोः सुवर्णस्य च सर्वरत्नैः संख्योपलानामुदकस्य वापि।
गङ्गाजलानां न तु शक्तिरस्ति वक्तुं गुणाख्यापरिमाणमत्र॥
(ना० उत्तर० ३८। २०—२७)

* मनोवाक्कायजैर्ग्रस्तः पापैर्बहुविधैरपि।
वीक्ष्य गङ्गां भवेत् पूतः पुरुषो नात्र संशयः॥
गङ्गातोयाभिषिक्तां तु भिक्षामश्नाति यः सदा।
सर्पवत्कञ्चुकं मुक्त्वा पापहीनो भवेत् स वै॥
हिमवद्विन्ध्यसदृशा राशयः पापकर्मणाम्।
गङ्गाम्भसा विनश्यन्ति विष्णुभक्त्या यथापदः॥
प्रवेशमात्रे गङ्गायां स्नानार्थं भक्तितो नृणाम्।
ब्रह्महत्यादिपापानि हाहेत्युक्त्वा प्रयान्त्यलम्॥
गङ्गातीरे वसेन्नित्यं गङ्गातोयं पिबेत् सदा।
यः पुमान् स विमुच्येत पातकैः पूर्वसंचितैः॥
यो वै गङ्गां समाश्रित्य नित्यं तिष्ठति निर्भयः।
स एव देवैर्मर्त्यैश्च पूजनीयो महर्षिभिः॥
(ना० उत्तर० ३८। ३२—३७)

भगवान् श्रीरामका ध्यान

निवास किया जाय तो वह उत्तम सिद्धि देनेवाला है । मनुष्य सदा कृच्छ्र और चान्द्रायण करके सुखपूर्वक जिस फलका अनुभव करता है, वही उसे गङ्गाजीके तटपर निवास करनेमात्रसे मिल जाता है । ब्रह्मपुत्री ! इस लोकमें गङ्गाजीकी सेवामें तत्पर रहनेवाले मनुष्यको आधे दिनके सेवनसे जो फल प्राप्त होता है, वह सैकड़ों यज्ञोंद्वारा भी नहीं मिल सकता । सम्पूर्ण यज्ञ, तप, दान, योग तथा स्वाध्याय-कर्मसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही भक्तिभावसे गङ्गाजीके तटपर निवास करनेमात्रसे मिल जाता है । सत्य-भाषण, नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका पालन तथा अग्निहोत्रके सेवनसे मनुष्योंको जो पुण्य प्राप्त होता है, वह गङ्गातटपर निवास करनेसे ही मिल जाता है । गङ्गाजीके भक्तको संतोष, उत्तम ऐश्वर्य, तत्त्वज्ञान, सुखस्वरूपता तथा विनय एवं सदाचार-सम्पत्ति प्राप्त होती है । मनुष्य केवल गङ्गाजीको ही पाकर कृतकृत्य हो जाता है* । जो भक्तिभावसे गङ्गाजीके जलका स्पर्श करता और गङ्गाजल पीता है, वह मनुष्य अनायास ही मोक्षका उपाय प्राप्त कर लेता है† । जिनके सम्पूर्ण कृत्य सदा गङ्गाजलसे ही सम्पन्न होते हैं, वे मनुष्य शरीर त्यागकर भगवान् शिवके समीप आनन्दका अनुभव करते हैं‡ । जैसे इन्द्र आदि देवता अपने मुखसे चन्द्रमाकी किरणोंमें स्थित अमृतका पान करते हैं, उसी प्रकार मनुष्य गङ्गाजीका जल पीते हैं । विधिपूर्वक कन्यादान और भक्तिपूर्वक भूमिदान, अन्नदान, गोदान, स्वर्णदान, रथदान, अश्वदान और गजदान आदि करनेसे जो पुण्य बताया गया है, उससे सौ गुना अधिक पुण्य चुल्लूभर गङ्गाजल पीनेसे होता है । सहस्रों चान्द्रायण-व्रतका जो फल कहा गया है, उससे अधिक फल गङ्गाजल पीनेसे मिलता है । चुल्लूभर गङ्गाजल पीनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है । जो इच्छानुसार गङ्गाजीका पानी पीता है, उसकी मुक्ति हाथमें ही है । सरस्वती नदीका

जल तीन महीनेमें, यमुनाजीका जल [illegible] जल दस महीनेमें तथा गङ्गाजीका जल [illegible] है । अर्थात् शरीरमें उसका प्रभाव [illegible] है । [illegible] देहधारी मनुष्य यहाँ अज्ञात [illegible] लिये शास्त्रीय विधिसे तर्पण नहीं किया [illegible] गङ्गाजीके जलसे उनकी [illegible] संतोष [illegible]

---

* संतोषः परमैश्वर्यं तत्त्वज्ञानं सुखात्मता ॥
विनयाचारसम्पत्तिर्गङ्गाभक्तस्य जायते ।
(ना० उत्तर० ३८ । ४९-५०)

† भक्त्या तज्जलसंस्पर्शी तज्जलं पिबते च यः ॥
अनायासेन हि नरो मोक्षोपायं स विन्दति ।
(ना० उत्तर० ३८ । ५१-५२)

‡ सर्वाणि येषां गङ्गायास्तोयैः कृत्यानि सर्वदा ।
देहं त्यक्त्वा नरास्ते तु मोदन्ते शिवसंनिधौ ॥
(ना० उत्तर० ३८ । ५३)

उत्तम फलकी प्राप्ति होती है*। जो शरीरकी शुद्धि करनेवाले चान्द्रायण-व्रतका एक सहस्र बार अनुष्ठान कर चुका है और जो केवल इच्छाभर गङ्गा-जल पीता है, वही पहलेवालेसे बढ़कर है। जो गङ्गाजीका दर्शन और स्तुति करता है, जो भक्तिपूर्वक गङ्गामें नहाता और गङ्गाका ही जल पीता है, वह स्वर्ग, निर्मल ज्ञान, योग तथा मोक्ष सब कुछ पा लेता है†।

गङ्गाजीके दर्शन, स्मरण तथा उनके जलमें स्नान करनेका महत्त्व

पुरोहित वसु कहते हैं—मोहिनी! सुनो, अब मैं गङ्गाजीके दर्शनका फल बतलाता हूँ, जिसका वर्णन तत्त्वदर्शी मुनियोंने पुराणोंमें किया है। ज्ञान, अनुपम ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा, आयु, यश तथा शुभ आश्रमोंकी प्राप्ति गङ्गाजीके दर्शनका फल है। गङ्गाजीके दर्शनमात्रसे सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी चञ्चलता, दुर्व्यसन, पातक तथा निर्दयता आदि दोष नष्ट हो जाते हैं। दूसरोंकी हिंसा, कुटिलता, परदोष आदिका दर्शन तथा मनुष्योंके दम्भ आदि दोष गङ्गाजीके दर्शनमात्रसे दूर हो जाते हैं। मनुष्य यदि अविनाशी सनातन पदकी प्राप्ति करना चाहता है तो वह भक्तिपूर्वक बार-बार गङ्गाजीकी ओर देखे और बार-बार उनके जलका स्पर्श करे। अन्यत्र बावड़ी, कुआँ और तालाब आदि बनवाने, पौंसले चलाने तथा अन्न-सत्र आदिकी व्यवस्था करनेसे जो पुण्य होता है, वह गङ्गाजीके दर्शनमात्रसे मिल जाता है। परमात्माके दर्शनसे मानवोंको जो फल प्राप्त होता है, वह भक्तिभावसे गङ्गाजीका दर्शनमात्र करनेसे सुलभ हो जाता है। नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र, नर्मदा तथा पुष्करतीर्थमें स्नान, स्पर्श और सेवन करके मनुष्य जिस फलको पाता है, वह कलियुगमें गङ्गाजीके दर्शनमात्रसे प्राप्त हो जाता है—ऐसा महर्षियोंका कथन है।

राजपत्नी! जो अशुभ कर्मोंसे युक्त हो संसारसमुद्रमें डूब रहे हों और नरकमें गिरनेवाले हों, उनके द्वारा यदि गङ्गाजीका स्मरण कर लिया जाय तो वह दूरसे ही उनका उद्धार कर देती है। चलते, खड़े होते, सोते, ध्यान करते, जागते, खाते और हँसते-रोते समय जो निरन्तर गङ्गाजीका स्मरण करता है, वह बन्धनसे मुक्त हो जाता है। जो सहस्रों योजन दूरसे भी भक्तिपूर्वक गङ्गाका स्मरण करते हैं तथा 'गङ्गा-गङ्गा' की रट लगाते हैं, वे भी पातकसे मुक्त हो जाते हैं। विचित्र भवन, विचित्र आभूषणोंसे विभूषित स्त्रियाँ, आरोग्य और धन-सम्पत्ति—ये गङ्गाजीके स्मरणजनित पुण्यके फल हैं। मनुष्य गङ्गाजीके नामकीर्तनसे पापमुक्त होता है और दर्शनसे कल्याणका भागी होता है। गङ्गामें स्नान और जलपान करके वह अपनी सात पीढ़ियोंको पवित्र कर देता है। जो अश्रद्धासे भी पुण्यवाहिनी गङ्गाका नामकीर्तन करता है, वह भी स्वर्गलोकका भागी होता है।

देवि! अब मैं गङ्गाजीके जलमें स्नानका फल बतलाता हूँ। जो गङ्गाजीके जलमें स्नान करता है, उसका सारा पाप तत्काल नष्ट हो जाता है और मोहिनी! उसे उसी क्षण अपूर्व पुण्यकी प्राप्ति होती है। गङ्गाजीके पवित्र जलसे स्नान करके शुद्धचित्त हुए पुरुषोंको जिस फलकी प्राप्ति होती है, वह सैकड़ों यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी सुलभ नहीं है। जैसे सूर्य उदयकालमें घने अन्धकारका नाश करके प्रकाशित होते हैं, उसी प्रकार गङ्गाजलसे अभिषिक्त हुआ पुरुष पापराशिका नाश करके प्रकाशमान होता है। गङ्गामें स्नान करनेमात्रसे मनुष्यके अनेक जन्मोंका पाप नष्ट हो जाता है और वह तत्काल पुण्यका भागी होता है। सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेसे और समस्त इष्टदेव-मन्दिरोंमें पूजा करनेसे जो पुण्य होता है,

---

* कन्यादानैश्च विधिवद्भूमिदानैश्च भक्तितः। अन्नदानैश्च गोदानैः स्वर्णदानादिभिस्तथा ॥
रथाश्वगजदानैश्च यत्पुण्यं परिकीर्तितम्। ततः शतगुणं पुण्यं गङ्गाम्भश्चुलुकाशनात् ॥
चान्द्रायणसहस्रांगां यत्फलं परिकीर्तितम्। ततोऽधिकफलं गङ्गातोयपानादवाप्यते ॥
गण्डूषमात्रपाने तु अश्वमेधफलं लभेत्। स्वच्छन्दं यः पिबेदम्भस्तस्य मुक्तिः करे स्थिता ॥
त्रिभिः सारस्वतं तोयं सप्तभिस्त्वथ यामुनम्। नार्मदं दशभिर्मासैर्गाङ्गं वर्षेण जीर्यति ॥
शास्त्रेणाहृततोयानां मृतानां क्वापि देहिनाम्। तदुत्तरफलावाप्तिर्गङ्गायामस्थियोगतः ॥
(ना० उत्तर० ३८। ५५—६०)

† गङ्गां पश्यति यः स्तौति स्नाति भक्त्या पिबेज्जलम्। स स्वर्गं ज्ञानममलं योगं मोक्षं च विन्दति ॥
(ना० उत्तर० ३८। ६२)

वही केवल गङ्गास्नानसे मनुष्य प्राप्त कर लेता है। कोई महापातकोंसे युक्त हो या सम्पूर्ण पातकोंसे, विधिपूर्वक गङ्गा-स्नान करनेसे वह सभी पातकोंसे मुक्त हो जाता है। गङ्गा-स्नानसे बढ़कर दूसरा कोई स्नान न हुआ है, न होगा। विशेषतः कलियुगमें गङ्गादेवी सब पाप हर लेती हैं। जो मानव नित्य-निरन्तर गङ्गामें स्नान करता है, वह यहीं जीवन्मुक्त हो जाता है और मरनेपर भगवान् विष्णुके धाममें जाता है। गङ्गामें मध्याह्नकालमें स्नान करनेसे प्रातःकालकी अपेक्षा दस गुना पुण्य होता है, सायंकालमें सौ गुना तथा भगवान् शिवके समीप अनन्तगुना पुण्य होता है। करोड़ों [illegible] दान करनेसे भी गङ्गास्नान बढ़कर है। [illegible] भी स्नान किया जाय, वह कुरुक्षेत्रके समान पुण्य [illegible] किंतु हरिद्वार, प्रयाग तथा गङ्गासागर-संगममें [illegible] देनेवाली होती है। भगवान् सूर्य गङ्गाजीसे [illegible] जाह्नवि! जो लोग मेरी किरणोंसे तपे हुए [illegible] स्नान करते हैं, वे मेरा मण्डल भेदकर मोक्षको प्राप्त होते हैं। वरुणने भी गङ्गासे कहा है कि 'जो मनुष्य [illegible] रहकर भी स्नानकालमें तुम्हारे नामका कीर्तन करेगा [illegible] वैकुण्ठलोकमें चला जायगा।'

कालविशेष और स्थलविशेषमें गङ्गास्नानकी महिमा

पुरोहित वसु कहते हैं—वामोरु! अब मैं काल-विशेषमें किये जानेवाले गङ्गा-स्नानका फल बतलाऊँगा। जो मनुष्य माघ मासमें निरन्तर गङ्गा-स्नान करता है, वह दीर्घकालतक अपने समस्त कुलके साथ इन्द्रलोकमें निवास करता है। तदनन्तर दस लाख करोड़ कल्पोंतक ब्रह्मलोकमें जाकर रहता है। सम्पूर्ण संक्रान्तियोंमें जो मनुष्य गङ्गाजीके जलमें स्नान करता है, वह सूर्यके समान तेजस्वी विमानद्वारा वैकुण्ठधामको जाता है। विषुव योगमें उत्तरायण या दक्षिणायन आरम्भ होनेके दिन तथा संक्रान्तिके समय विशेषरूपसे उसका फल बताया गया है। माघके ही समान कार्तिकमें भी गङ्गा-स्नानका महान् फल माना गया है। मोहिनी! जब सूर्य मेष राशिमें प्रवेश करते हैं, उस समय तथा कार्तिककी पूर्णिमाको गङ्गा-स्नान करनेसे ब्रह्मा आदि देवताओंने माघस्नानकी अपेक्षा अधिक पुण्य बताया है। कार्तिक अथवा वैशाखमें अक्षय-तृतीया तिथिको गङ्गा-स्नान करनेसे एक वर्षतक स्नान करनेका पुण्यफल प्राप्त होता है। मन्वादि और युगादि तिथियोंमें गङ्गा-स्नानका जो फल बताया गया है, तीन मासके निरन्तर स्नानसे भी वही फल प्राप्त होता है। द्वादशीको श्रवण, अष्टमीको पुष्य और चतुर्दशीको आर्द्रा नक्षत्रका योग होनेपर गङ्गा-स्नान अत्यन्त दुर्लभ है। वैशाख, कार्तिक और माघकी पूर्णिमा और अमावास्या बड़ी पवित्र मानी गयी हैं। इनमें गङ्गा-स्नानका सुयोग अत्यन्त दुर्लभ है। कृष्णाष्टमी (भाद्रपद कृष्णा अष्टमी) को गङ्गा-स्नान करनेसे (साधारण तिथिके स्नानकी अपेक्षा) सहस्रगुना फल होता है। सभी पर्वोंमें सौगुना पुण्य प्राप्त होता है। माघ कृष्णा अष्टमी तथा अमावास्याको भी गङ्गा-स्नानसे सौगुना पुण्य होता है। उक्त दोनों तिथियोंको सूर्य-के आधा उदय होनेपर 'अर्धोदय' योग होता है और [illegible] से कुछ कम उदय होनेपर 'महोदय' कहा गया है। महोदयमें गङ्गा-स्नान करनेसे सौगुना और अर्धोदयमें [illegible] पुण्य बताया गया है। देवि! फाल्गुन और [illegible] तथा सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहणके समय [illegible] गङ्गा-स्नान तीन मासके स्नानका फल देनेवाला है। [illegible] जन्मके नक्षत्रमें भक्तिभावसे गङ्गा-स्नान करनेसे [illegible] सञ्चित पापोंका नाश हो जाता है। माघ कृष्णा चतुर्दशीको व्यतीपात योग तथा कृष्णाष्टमी (भाद्रपद कृष्णा अष्टमी) को विशेषतः वैधृतियोग गङ्गा-स्नानके लिये दुर्लभ है। जो मनुष्य पूरे माघभर विधिपूर्वक अरुणोदयकालमें गङ्गा-स्नान करता है, वह जातिस्मर (पूर्वजन्मकी बातोंको [illegible] रखनेवाला) होता है। इतना ही नहीं, [illegible] अर्थवेत्ता, ज्ञानी तथा नीरोग भी [illegible] है। संक्रान्तिमें, दोनों पक्षोंकी अन्तिम तिथियों तथा चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणमें इच्छानुसार गङ्गा-स्नान करनेवाला [illegible] ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। [illegible] बताया गया है और [illegible] गुना अधिक माना गया है। [illegible] ([illegible]) युक्त चैत्र कृष्णा त्रयोदशी यदि गङ्गा-स्नान [illegible] तो वह सौ सूर्यग्रहणोंके समान पुण्य देनेवाली है। [illegible] के शुक्ल पक्षमें दशमी तिथिको [illegible] योगमें भगवती भागीरथी [illegible] थीं। इस तिथिको वह [illegible] पाप हर लेती हैं और अश्वमेध [illegible] पुण्य [illegible]

करती हूँ। 'हे जाह्नवी ! मेरे जो महापातक-समुदायरूप पाप हैं, उन सबको तुम गोविन्द-द्वादशीके दिन स्नान करनेसे नष्ट कर दो।' यदि माघकी पूर्णिमाको मघा नक्षत्र या बृहस्पतिका योग हो तो उक्त तिथिका महत्त्व बहुत बढ जाता है। यदि यह योग गङ्गाजीमें सुलभ हो तब तो सौ सूर्यग्रहणके समान पुण्य होता है।

अब देशविशेषके योगसे गङ्गा-स्नानका फल बतलाया जाता है। गङ्गाजीमें जहाँ-कहीं भी स्नान किया जाय, वह कुरुक्षेत्रसे दसगुना पुण्य देनेवाली है; किंतु जहाँ वे विन्ध्याचल पर्वतमे संयुक्त होती हैं, वहाँ कुरुक्षेत्रकी अपेक्षा सौगुना पुण्य होता है। काशीपुरीमें गङ्गाजीका माहात्म्य विन्ध्याचलकी अपेक्षा सौगुना बताया गया है। यों तो गङ्गाजी सर्वत्र ही दुर्लभ हैं, किंतु गङ्गाद्वार, प्रयाग और गङ्गासागर-संगम—इन तीन स्थानोंमें उनका माहात्म्य बहुत अधिक है। गङ्गाद्वारमें कुशावर्ततीर्थके भीतर स्नान करनेसे सात राजसूय और दो अश्वमेध यज्ञोंका फल मिलता है। उस तीर्थमें पंद्रह दिन निवास करनेसे छः विश्वजित् यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। साथ ही विद्वानोंने वहाँ रहनेसे एक लाख गोदानका पुण्य बताया है। कुशावर्तमें भगवान् गोविन्दका और कनखलमें भगवान् रुद्रका दर्शन-पूजन करनेसे अथवा इन स्थानोंमें गङ्गास्नान करनेसे अक्षय पुण्यकी प्राप्ति होती है। जहाँ पूर्वकालमे वाराहरूपधारी भगवान् विष्णु प्रकट हुए थे, वहाँ स्नान करके मनुष्य सौ अग्निहोत्रका, दो ज्योतिष्टोम यज्ञका और एक हजार अग्निष्टोम यज्ञोका पुण्य-फल पाता है। वहीं ब्रह्मतीर्थमें स्नान करनेवाला पुरुष दस हजार ज्योतिष्टोम यज्ञोंका और तीन अश्वमेध यज्ञोंका पुण्य प्राप्त करता है। मोहिनी ! कुब्ज नामसे प्रसिद्ध जो पापनाशक तीर्थ है, वहाँ स्नान करनेसे सम्पूर्ण रोग और सब जन्मोंके पातक नष्ट हो जाते हैं। हरिद्वारक्षेत्रमें ही एक दूसरा तीर्थ है, जो कापिलतीर्थके नामसे प्रसिद्ध है। शुभे ! उसमें स्नान करनेवाला मानव अस्सी हजार कपिला गौओंके दानके समान पुण्य-फल पाता है। गङ्गाद्वार, कुशावर्त, बिल्वक, नीलपर्वत तथा कनखल-तीर्थमें स्नान करके मनुष्य पापरहित हो स्वर्गलोकमें जाता है। तदनन्तर पवित्र नामक तीर्थ है, जो सब तीर्थोंमें परम उत्तम है। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य दो विश्वजित् यज्ञोंका पुण्य पाता है। तदनन्तर वेगीराज्य नामक तीर्थ है, जहाँ महापुण्यमयी सरयू उत्तम पुण्यस्वरूपा गङ्गामें इस प्रकार मिली हैं, जैसे एक बहिन अपनी दूसरी बहिनसे मिलती है। भगवान् विष्णुके दाहिने चरणारविन्दके पखारनेसे देवनदी गङ्गा प्रकट हुई हैं और बायें चरणसे मानस-नन्दिनी सरयूका प्रादुर्भाव हुआ है। उस तीर्थमें भगवान् शिव और विष्णुकी पूजा करनेवाला पुरुष विष्णुस्वरूप हो जाता है। वहाँका स्नान पाँच अश्वमेध यज्ञोंका फल देनेवाला बताया गया है। तत्पश्चात् गाण्डवतीर्थ है, जहाँ गङ्गासे गण्डकी नदी मिली है। वहाँका स्नान और एक हजार गौओंका दान दोनों बराबर हैं। तदनन्तर रामतीर्थ है, जिसके समीप पुण्यमय वैकुण्ठ है। तत्पश्चात् परम पवित्र सोमतीर्थ है, जहाँ नकुल मुनि भगवान् शिवकी पूजा करके उनका ध्यान करते हुए गणस्वरूप हो गये। उसके बाद चम्पक नामक पुण्य तीर्थ है, जहाँ गङ्गाकी धारा उत्तर दिशाकी ओर बहती है। उसे मणिकर्णिकाके समान महापातकोंका नाश करनेवाला बताया गया है। तदनन्तर कलश-तीर्थ है, जहाँ कलशसे मुनिवर अगस्त्य प्रकट हुए थे। वहीं भगवान् रुद्रकी आराधना करके वे श्रेष्ठ मुनीश्वर हो गये। इसके बाद परम पुण्यमय सोमद्वीप-तीर्थ है, जिसका महत्त्व काशीपुरीके समान है। वहाँ भगवान् शङ्करकी आराधना करनेवाले चन्द्रमाको भगवान् रुद्रने सिरपर धारण किया था। यहीं विश्वामित्रकी भगिनी गङ्गामें मिली हैं। उसमें गोता लगानेवाला मनुष्य इन्द्रका प्रिय अतिथि होता है। मोहिनी ! जह्नुकुण्ड नामक महातीर्थमें स्नान करनेवाला मनुष्य निश्चय ही अपनी इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धारक होता है। सुभगे ! तदनन्तर अदिति-तीर्थ है, जहाँ अदितिने कश्यपसे भगवान् विष्णुको वामनरूपमे प्राप्त किया था। वहाँ किये जानेवाले स्नानका फल महान् अभ्युदय बताया गया है। तत्पश्चात् शिलोच्चय नामक महातीर्थ है, जहाँ तपस्या करके समस्त प्रजा तृण आदिके साथ स्वर्गको चली जाती है; क्योंकि वह स्थान अनेक तीर्थोंका आश्रय है। तदनन्तर इन्द्राणी नामक तीर्थ है, जहाँ इन्द्राणीने तपस्या करके इन्द्रको पतिरूपमें प्राप्त किया था। यह स्थान प्रयागके तुल्य सेवन करनेयोग्य है। उसके बाद पुण्यदायक स्नातक तीर्थ है, जहाँ क्षत्रिय विश्वामित्रने तपस्या करके तीर्थसेवनके प्रभावसे ब्रह्मर्षि-पदको प्राप्त किया था। तत्पश्चात् प्रद्युम्न-तीर्थ है, जो तपस्याके लिये प्रसिद्ध है। वहाँ कामदेव तपस्या करके भगवान् श्रीकृष्णके प्रद्युम्न नामक पुत्र हुए। उस तीर्थमें स्नान करनेसे महान् अभ्युदयकी प्राप्ति होती है। तदनन्तर दक्षप्रयाग है, जहाँ गङ्गासे यमुना मिली हैं। वहाँ स्नान करनेसे प्रयागकी ही भाँति अक्षय पुण्य प्राप्त होता है।

गङ्गाजीके तटपर किये जानेवाले स्नान, तर्पण, पूजन तथा विविध प्रकारके दानोंकी महिमा

पुरोहित वसु कहते हैं—राजपत्नी मोहिनी! अब गङ्गाजीमें स्नान-तर्पण आदि कर्मोंका फल बतलाया जाता है। देवि! यदि गङ्गाजीके तटपर सन्ध्योपासना की जाय तो द्विजोंको पवित्र करनेवाली गायत्रीदेवी किसी साधारण स्थानकी अपेक्षा वहाँ लाख गुना पुण्य प्रकट करनेमें समर्थ होती हैं। मोहिनी! यदि पुत्रगण श्रद्धापूर्वक गङ्गाजीमें पितरोंको जलाञ्जलि दें तो वे उन्हें अक्षय तथा दुर्लभ तृप्ति प्रदान करते हैं। गङ्गाजीमें तर्पण करते समय मनुष्य जितने तिल हाथमें लेता है, उतने सहस्र वर्षोंतक पितृगण स्वर्गवासी होते हैं। सब लोगोंके जो कोई भी पितर पितृलोकमें विद्यमान हैं, वे गङ्गाजीके शुभ जलसे तर्पण करनेपर परम तृप्तिको प्राप्त होते हैं। शुभानने! जो जन्मकी सफलता अथवा संतति चाहता है, वह गङ्गाजीके समीप जाकर देवताओं तथा पितरोंका तर्पण करे। जो मनुष्य मृत्युको प्राप्त होकर दुर्गतिमें पड़े हैं, वे अपने वंशजोंद्वारा कुश, तिल और गङ्गाजलसे तृप्त किये जानेपर वैकुण्ठधाममें चले जाते हैं। जो कोई पुण्यात्मा पितर स्वर्गलोकमें निवास करते हैं, उनके लिये यदि गङ्गाजलसे तर्पण किया जाय तो वे मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं, ऐसा ब्रह्माजीका कथन है। जो मनुष्य गङ्गाजीमें स्नान करके प्रतिदिन शिवलिङ्गकी पूजा करता है, वह निश्चय ही एक ही जन्ममें मोक्ष प्राप्त कर लेता है। अग्निहोत्र, वेद तथा बहुत दक्षिणावाले यज्ञ भी गङ्गाजीपर शिवलिङ्ग-पूजाके करोड़वें अंशके बराबर भी नहीं हैं। जो पितरों अथवा देवताओंके उद्देश्यसे गङ्गाजलद्वारा अभिषेक करता है, उसके नरकनिवासी पितर भी तत्काल तृप्त हो जाते हैं। मिट्टीके घड़ेकी अपेक्षा ताँबेके घड़ेसे किया हुआ स्नान दसगुना उत्तम माना गया है। इसी प्रकार अर्घ्य, नैवेद्य, बलि और पूजा आदिमें भी क्रमशः समझने चाहिये। उत्तरोत्तर पात्रमें विशेषता होनेके कारण फलमें भी विशेषता होती है। जो धन होते हुए भी मोहवश विस्तृत विधिका पालन नहीं करता, वह उस कर्मके फलका भागी नहीं होता।

देवताओंका दर्शन पुण्यमय होता है। दर्शनसे स्पर्श उत्तम है। स्पर्शसे पूजन श्रेष्ठ है और पूजनमें भी घृतके द्वारा कराया हुआ देवताका स्नान परम उत्तम माना गया है। गङ्गाजलसे जो स्नान कराया जाता है, उसे विद्वान् पुरुष घृतस्नानके ही तुल्य कहते हैं। जो ताँबेके पात्रमें [illegible] मापके अनुसार एक प्रस्थ गङ्गाजल लेकर और उसमें दूसरे-दूसरे विशेष द्रव्य मिलाकर उस मिश्रित जलके द्वारा [illegible] पितरोंसहित देवताओंको एक बार भी अर्घ्य देता है, वह पुत्र-पौत्रोंके साथ स्वर्गलोकको जाता है। जल, क्षीर, कुशाग्र, घृत, दधि, मधु, लाल कनेरके फूल तथा लाल चन्दन—इन आठ अङ्गोंसे युक्त अर्घ्य सूर्यके लिये [illegible] गया है। जो श्रेष्ठ मानव गङ्गाजीके तटपर भगवान् विष्णु, शिव, सूर्य, दुर्गा तथा ब्रह्माजीकी स्थापना करता है और अपनी शक्तिके अनुसार उनके लिये मन्दिर बनवाता है, उसे अन्य तीर्थोंमें वह सब करनेकी अपेक्षा गङ्गाजीके तटपर कोटि-कोटिगुना पुण्य प्राप्त होता है। जो प्रतिदिन गङ्गाजीके तटकी मिट्टीसे यथाशक्ति उत्तम [illegible] शिवलिङ्ग बनाकर उनकी प्रतिष्ठा करके गन्ध तथा पत्र पुष्प आदिसे यथाशास्त्र पूजा करता और अन्तमें [illegible] उन्हें गङ्गामें ही डाल देता है, उसे अनन्त पुण्यकी प्राप्ति होती है। जो नरश्रेष्ठ सर्वानन्ददायिनी गङ्गाजीमें स्नान करके भक्तिपूर्वक 'ॐ नमो नारायणाय' इस अष्टाक्षर मन्त्रका जप करता है, मुक्ति उसके हाथमें ही आ जाती है। जो नियमपूर्वक छः मासतक गङ्गाजीमें 'ॐ नमो नारायणाय' इस मन्त्रका जप करता है, उसके पास सब सिद्धियाँ उपस्थित हो जाती हैं। जो गङ्गाजीके समीप प्रासादसहित 'नमः शिवाय' मन्त्रका विधिपूर्वक चौबीस लाख जप करता है, वह भगवान् शङ्कर (के समान) है। 'नमः शिवाय'—यह पञ्चाक्षर मन्त्र सिद्ध-विद्या है। उसको जपनेवाला भगवान् शिव (के समान) ही है, इसमें संशय नहीं है। 'अपवित्रः पवित्रो वा'* —इस मन्त्रका जप करनेवाला पुरुष पापरहित हो जाता है। गङ्गाजीके पूजित होनेपर सब देवताओंकी पूजा हो जाती है अतः सर्वथा प्रयत्न करके देवनदी गङ्गाकी पूजा करनी चाहिये। गङ्गाजीके चार भुजाएँ और तीन नेत्र हैं। [illegible] सुशोभित होती हैं। उनके एक हाथमें रत्नमय कलश, दूसरे

* अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥

श्वेत कमल, तीसरेमें वर और चौथेमें अभय है। वे शुभ-स्वरूपा हैं। उनके श्रीअङ्गोंपर श्वेत वस्त्र सुशोभित होता है। मोती और मणियोंके हार उनके आभूषण हैं। उनका मुख परम सुन्दर है। वे सदा प्रसन्न रहती हैं। उनका हृदय-कमल करुणारससे सदा आर्द्र बना रहता है। उन्होंने वसुधा-पर सुधाधारा बहा रक्खी है। तीनों लोक सदा उनके चरणोंमें नमस्कार करते हैं। इस प्रकार जलमयी गङ्गाका ध्यान करके उनकी पूजा करनेवाला पुरुष पुण्यका भागी होता है। जो इस प्रकार पंद्रह दिन भी निरन्तर पूजा करता है, वही देवताओंके समान हो जाता है और दीर्घकालतक पूजा करनेसे फलमें भी अधिकता होती है। पूर्वकालमें राजा जह्नुने वैशाख शुक्ला सप्तमीको क्रोधपूर्वक गङ्गाजीको पी लिया था और फिर अपने कानके दाहिने छिद्रसे उन्हें निकाल दिया। शुभानने! उस स्थानपर आकाशकी मेखलारूप गङ्गाजीका पूजन करना चाहिये। वैशाख मासकी अक्षयतृतीयाको तथा कार्तिकमें भी रातको जागरण करते हुए जौ और तिलसे भक्तिभावपूर्वक विष्णु, गङ्गा और शिवकी पूजा करनी चाहिये। उक्त सामग्रियोंके सिवा उत्तम गन्ध, पुष्प, कुंकुम, अगरु, चन्दन, तुलसीदल, बिल्वपत्र, बिजौरा नीबू आदि, धूप, दीप और नैवेद्यसे वैभव-विस्तारके अनुसार पूजा करनी उचित है। गङ्गाजीके तटपर किया हुआ यज्ञ, दान, तप, जप, श्राद्ध और देवपूजा आदि सब कर्म कोटि-कोटिगुना फल देनेवाला होता है। जो अक्षयतृतीयाको गङ्गाजीके तटपर विधिपूर्वक घृतमयी धेनुका दान करता है, वह पुरुष सहस्रों सूर्योंके समान तेजस्वी और सम्पूर्ण भोगोंसे सम्पन्न हो हंस-भूषित सुवर्ण-रत्नमय विचित्र विमानपर बैठकर अपने पितरोंके साथ कोटि-सहस्र एवं कोटिशत कल्पोंतक ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। इसी प्रकार जो (कभी) गङ्गातटपर शास्त्रीय विधिसे गोदान करता है, वह उस गायके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है। यदि गङ्गातटपर वेदवेत्ता ब्राह्मणको विधिपूर्वक कपिला गौका दान दिया जाय तो वह गौ नरकमें पड़े हुए सम्पूर्ण पितरोंको तत्काल स्वर्ग पहुँचा देती है। जो गङ्गातटपर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, दुर्गा तथा सूर्य भगवान्‌की प्रीतिके लिये ब्राह्मणोंको ग्रामदान करता है, उसे सम्पूर्ण दानोंका जो पुण्य है, समस्त यज्ञोंका जो फल है तथा सब प्रकारके तप, व्रत और पुण्य-कर्मोंका जो फल बताया गया है, वह सहस्रगुना होकर मिलता है। उस दानके प्रभावसे दाता पुरुष करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी विमानपर बैठकर अपनी रुचिके अनुसार श्रीविष्णुधाम-में अथवा श्रीशिवधाममें प्रसन्नतापूर्वक क्रीडा-विहार करता है। देवता उसकी स्तुति करते रहते हैं। देवि! जो अक्षय-तृतीयाके दिन गङ्गातटपर श्रेष्ठ ब्राह्मणको सोलह माशा सुवर्ण दान करता है, वह भी दिव्यलोकोंमें पूजित होता है। अन्नदान करनेसे विष्णुलोककी और तिलदानसे शिवलोककी प्राप्ति होती है। रत्नदानसे ब्रह्मलोक, गोदान और सुवर्णदानसे इन्द्रलोक, तथा सुवर्णसहित वस्त्रदानसे गन्धर्वलोककी प्राप्ति होती है। विद्यादानसे मुक्तिदायक ज्ञान पाकर मनुष्य निरञ्जन ब्रह्मको प्राप्त कर लेता है।

एक वर्षतक गङ्गार्चन-व्रतका विधान और माहात्म्य, गङ्गातटपर नक्त-व्रत करके भगवान् शिवका पूजन, प्रत्येक मासकी पूर्णिमा और अमावास्याको शिवाराधन तथा गङ्गा-दशहराके पुण्य-कृत्य एवं उनका माहात्म्य

पुरोहित वसु बोले—मोहिनी! एकाग्रचित्त हो विधि-पूर्वक गङ्गाजीकी पूजा करनी चाहिये। दिव्यस्वरूपा गङ्गादेवी-का ध्यान करके एक सेर अगहनीके चावलको दो सेर दूधमें पकाकर खीर तैयार करावे, उसमें मधु और घी मिला दे, वे दोनों पृथक्-पृथक् एक-एक तोला होने चाहिये। तदनन्तर भक्तिभावसे परिपूर्ण हो खीर, पूआ, लड्डू, मण्डल, आधा

गुंजा सुवर्ण, कुछ चाँदी, चन्दन, अगरु, कर्पूर, कुंकुम, गुग्गुल, बिल्वपत्र, दूर्वा, रोचना, श्वेत चन्दन, नील कमल तथा अन्यान्य सुगन्धित पुष्प यथाशक्ति गङ्गाजीमें छोड़े और अत्यन्त भक्तिभावसे निम्नाङ्कित पौराणिक मन्त्रोंका उच्चारण करता रहे—'ॐ गङ्गायै नमः, ॐ नारायण्यै नमः, ॐ शिवायै नमः।' मोहिनी! प्रत्येक मासकी पूर्णिमा और अमावास्याको प्रातःकाल एकाग्रचित्त हो इसी विधिसे गङ्गाजी-की पूजा करनी चाहिये। जो मनुष्य एक वर्षतक हविष्यभोजी, मिताहारी तथा ब्रह्मचारी रहकर दिनमें अथवा रात्रिके समय नियमपूर्वक भक्ति और प्रसन्नताके साथ यथाशक्ति गङ्गाजीकी पूजा करता है, उसे वर्षके अन्तमें ये गङ्गादेवी दिव्य शरीर धारण करके दिव्य माला, दिव्य वस्त्र तथा दिव्य रत्नोंसे विभूषित हो प्रत्यक्ष दर्शन देती हैं और वर देनेके लिये उसके सामने खड़ी हो जाती हैं। शुभे! इस प्रकार दिव्य देहधारिणी प्रत्यक्षरूपा गङ्गाजीका अपने नेत्रोंसे दर्शन करके मनुष्य कृत-कृत्य होता है। वह मानव जिन-जिन भोगोंकी कामना करता है, उन सबको प्राप्त कर लेता है और जो ब्राह्मण निष्काम-भावसे गङ्गाकी आराधना करता है, वह उसी जन्ममें मोक्ष पा जाता है। गङ्गाजीके पूजनका यह सांवत्सर-व्रत भगवान् लक्ष्मीपतिको संतुष्ट करनेवाला एवं मोक्ष देनेवाला है।

वसिष्ठजी कहते हैं—राजेन्द्र! वसुका यह गङ्गा-माहात्म्यसूचक वचन सुनकर मोहिनीने पुनः अपने पुरोहित विप्रवर वसुसे पूछा।

मोहिनी बोली—ब्रह्मन्! गङ्गाजीके तटपर गङ्गा आदि-के स्थापन और पूजनका क्या फल है? मुझ अबलाको गङ्गा-जीके माहात्म्यसे युक्त देवाराधनकी विधि बताइये, जिसे सुनकर पापसे छुटकारा मिल जाता है।

पुरोहित वसु बोले—देवि! तुमने सब लोकोंके हित-की कामनासे बहुत उत्तम बात पूछी है। गङ्गाजीका सम्पूर्ण माहात्म्य बड़े-बड़े पापोंका नाश करनेवाला है। पूर्वकालमें वृषध्वज भगवान् शिवने कृपापूर्वक इसका वर्णन किया था। देवी पार्वतीने प्रेमपूर्वक उनसे प्रश्न किया था और उन्होंने गङ्गाजीके तटपर बैठकर गङ्गाजीका माहात्म्य उन्हें सुनाया था। देवताओंने पूर्वाह्णकालमें, ऋषियोंने मध्याह्नकालमें, पितरोंने अपराह्णकालमें तथा गुह्यक आदिने रात्रिके प्रथम भागमें भोजन किया है। इन सब वेलाओंका उल्लंघन करके रातमें भोजन करना उत्तम है। अतः नक्त-व्रतका आचरण करना चाहिये। रातको भोजन करनेवाले नक्त-व्रतीको ये छः कर्म अवश्य करने चाहिये—स्नान, [illegible] भोजन, [illegible] भाषण, स्वल्पाहार, अग्निहोत्र तथा भूमिशयन। जो कोई [illegible] साधक हो, वह माघ मासमें गङ्गातटपर शिवलिङ्गको [illegible] रातमें घी मिलायी हुई खिचड़ी भोजन करे। भोजन [illegible] करनेसे पहले भगवान् शिवको खिचड़ीका ही नैवेद्य [illegible]। काष्ठ-मौन होकर भोजन करे और खिचड़ी [illegible] दे। भगवान् शिवको स्मरण करके [illegible] पत्तेमें नियमपूर्वक भोजन करे। धर्मराज तथा [illegible] पृथक्-पृथक् पिण्ड दे। दोनों पक्षोंकी चतुर्दशीको [illegible] करे। पूर्णिमाके दिन गन्ध और गङ्गाजल तथा दूध, [illegible] घी, शहद (और शर्करा)से भगवान् शिवको [illegible] लिङ्गके मस्तकपर धतूरका फूल चढ़ावे। तत्पश्चात् [illegible] घीका पकाया हुआ पूआ निवेदन करे। [illegible] तिल लेकर शिवलिङ्गके ऊपर चढ़ावे। नील तथा [illegible] के फूलोंसे सर्वेश्वर शिवका पूजन करे। [illegible] तो सुवर्णमय कमलसे महादेवजीकी पूजा करे। मधुयुक्त [illegible]का भोग लगावे। घृतमिश्रित गुग्गुलका धूप दे। [illegible] दीपक जलावे। चन्दन आदिसे अनुलेपन करे। [illegible] महेश्वरको बिल्वपत्र और फल चढ़ावे। उनकी प्रसन्नताके लिये काले रंगकी गौ और काले रंगका बैल दान करे। उन गाय-बैलों-की शकल-सूरत एक-सी होनी चाहिये। [illegible] पर आठ ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उन्हें दक्षिणा दे। ब्रह्मचर्य-पालनपूर्वक रहे। इस प्रकार [illegible] श्रद्धा और भक्तिसे युक्त होकर जो एक बार भी [illegible] विधिसे इस व्रत-का पालन करता है, वह इस लोकमें उत्तम भोगोंको भोगता है और मृत्युके पश्चात् परम उत्तम गतिका भागी होता है।

वैशाख शुक्ला चतुर्दशीको एकाग्रचित्त होकर [illegible] चावलका भात और दूध रातमें भोजन करे। पुष्प [illegible] भगवान् शिवकी पूजा करे। उन्हें भोजन [illegible] निवेदन करे। काष्ठ-मौन होकर भोजन करे। उस दिन पवित्र हो मौन [illegible] बरगदकी लकड़ीद्वारा दन्तधावन करे। [illegible] शिवलिङ्गके समीप सोवे। प्रातःकाल [illegible] गङ्गामें स्नान करके [illegible] जागरण करे। शिवलिङ्गको [illegible] पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिके द्वारा उनका पूजन करके [illegible] श्वेत पुष्प, वस्त्र, हल्दी और चन्दन [illegible] पूर्वक भगवान् शिवके लिये निवेदन करे। [illegible] शक्ति भर भोजन करावे। [illegible]

के साथ एक बार भी उक्त नियमका पालन करता है, वह अन्तमें मुक्त हो जाता है।

ज्येष्ठ मासके शुक्ल पक्षमें दशमी तिथिको हस्त नक्षत्रका योग होनेपर स्त्री हो या पुरुष, भक्तिभावसे गङ्गाजीके तटपर जाकर रात्रिमें जागरण करना चाहिये और दस प्रकारके फूलोंसे, दस प्रकारकी गन्धसे, दस तरहके नैवेद्योंसे तथा दस-दस ताम्बूल एवं दीप आदिसे श्रद्धापूर्वक गङ्गाजीकी पूजा करनी चाहिये। पूजनके पहले भक्तिपूर्वक शास्त्रोक्त विधिके अनुसार गङ्गाजीमें दस बार स्नान करके जलमें दस पसर काले तिल और घी छोड़ना चाहिये। इसी प्रकार सत्तू तथा गुड़के दस-दस पिण्ड भी गङ्गाजीके जलमें डालने चाहिये। तदनन्तर गङ्गाके रमणीय तटपर अपनी शक्तिके अनुसार सोने या चाँदीसे गङ्गाजीकी प्रतिमा निर्माण कराकर उसकी स्थापना करे। पहले भूमिपर कमल या स्वस्तिकका चिह्न बनाकर उसके ऊपर कलश स्थापित करे। कलशपर भी पद्म एवं स्वस्तिकका चिह्न होना चाहिये। उसके कण्ठमें वस्त्र और पुष्पहार लपेट देना चाहिये। कलशको गङ्गाजलसे भरकर उसमें अन्य आवश्यक पदार्थ छोड़े। उसके ऊपर पूर्णपात्र रखकर उसमें गङ्गाजीकी पूर्वोक्त प्रतिमा स्थापित करनी चाहिये। सुवर्ण आदिकी प्रतिमा न मिले तो मिट्टी आदिकी बनवानी चाहिये। इसकी भी शक्ति न हो तो आटासे पृथ्वीपर ही गङ्गाजीका स्वरूप अङ्कित करना चाहिये। उनका स्वरूप इस प्रकार है—गङ्गादेवीके चार भुजाएँ और सुन्दर नेत्र हैं। उनके श्रीअङ्गोंसे दस हजार चन्द्रमाओंके समान उज्ज्वल चाँदनी-सी छिटकती रहती है। दासियाँ उन्हें चवँर डुलाती हैं। मस्तकपर तना हुआ श्वेत छत्र उनकी शोभा बढ़ाता है। वे अत्यन्त प्रसन्न और वरदायिनी हैं। करुणासे उनका अन्तःकरण सदा द्रवीभूत रहता है। वे वसुधातलपर सुधाधारा बहाती हैं। देवता आदि सदा उनकी स्तुति करते रहते हैं। वे दिव्य रत्नोंके आभूषण, दिव्य हार और दिव्य अनुलेपनसे विभूषित हैं। जलमें उनके उपर्युक्त स्वरूपका ध्यान करके प्रतिमामें उनकी विशेषरूपसे पूजा करनी चाहिये। प्रतिमाको पञ्चामृतसे स्नान कराना उत्तम है। प्रतिमाके आगे एक वेदी बनाकर उसको गोबरसे लीपे। उसपर भगवान् नारायण, शिव, ब्रह्मा, सूर्य, राजा भगीरथ तथा गिरिराज हिमालयकी स्थापना करके गन्ध-पुष्प आदि उपचारोंसे यथाशक्ति उनकी पूजा करे; फिर दस ब्राह्मणोंको दस सेर तिल दे। इसी प्रकार दस सेर जौ दे और उनके साथ अलग-अलग दस पात्रोंमें गव्य (दही-घी आदि) भी दे। तत्पश्चात् पहलेसे तैयार करायी हुई मछली, कछुआ, मेढक, मगर आदि जलचर जीवोंकी यथाशक्ति सुवर्णमयी अथवा रजतमयी प्रतिमा स्थापित करके उनकी पूजा करे, वैसी प्रतिमा न मिलनेपर आटेकी प्रतिमा बनावे और मन्त्रज्ञ पुरुष पुष्प आदिसे पूर्वनिर्दिष्ट मन्त्रद्वारा ही उनकी पूजा करके उन्हें गङ्गाजीमें छोड़ दे। यदि अपने पास वैभव हो तो उस दिन गङ्गाजीकी रथयात्रा भी करावे। रथपर गङ्गाजीकी प्रतिमा या चित्र हो, उसका मुख उत्तर दिशाकी ओर रहे। रथपर भ्रमण करती हुई गङ्गाजीका दर्शन इस लोकमें पापी मनुष्योंके लिये अत्यन्त दुर्लभ है। इस प्रकार विधिपूर्वक रथयात्रा सम्पन्न करके मनुष्य आगे बताये जानेवाले दस प्रकारके पापोंसे तत्काल ही मुक्त हो जाता है। बिना दिये हुए किसीकी वस्तु ले लेना, हिंसा करना और परायी स्त्रीके साथ सम्बन्ध रखना—ये तीन प्रकारके शारीरिक पाप माने गये हैं। कठोरतापूर्ण वचन, असत्य, चुगली तथा अनाप-शनाप बातें बकना—ये चार प्रकारके वाचिक पाप कहे गये हैं। दूसरेका धन हड़पनेकी बात सोचना, मनसे किसीका अनिष्ट-चिन्तन करना और झूठा अभिनिवेश (मरण-भय)—ये तीन प्रकारके मानसिक पाप हैं। ये दस प्रकारके पाप करोड़ों जन्मोंद्वारा संचित हों तो भी पूर्वोक्त विधिसे रथयात्रा करनेवाला पुरुष उनसे मुक्त हो जाता है।

पूजाका मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ नमो दशहरायै नारायण्यै गङ्गायै नमः।' जो मनुष्य उस दिन रातमें और दिनमें भी उक्त मन्त्रका पाँच पाँच हजार जप करता है, वह मनुके बताये हुए दस धर्मों* का फल प्राप्त करता है। आगे बताये जानेवाले स्तोत्रको विधिपूर्वक ग्रहण करके उस दिन गङ्गाजीके आगे उसका पाठ करे। फिर भगवान् विष्णुकी पूजा करे। वह स्तोत्र इस प्रकार है—

ॐ शिवस्वरूपा गङ्गाको नमस्कार है। कल्याण प्रदान करनेवाली गङ्गाको नमस्कार है। विष्णुरूपिणी देवीको

---

* श्रीमनुके बतलाये हुए दस धर्म ये हैं—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥
(६। ९२)

'धैर्य, क्षमा, मनका निग्रह, चोरी न करना, बाहर-भीतरकी पवित्रता, इन्द्रियनिग्रह, सात्त्विक बुद्धि, अध्यात्मविद्या, सत्य, अक्रोध—ये दस धर्मके लक्षण हैं।'

नमस्कार है। आप भगवती गङ्गाको बारंबार नमस्कार है। सम्पूर्ण देवता आपके स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। आपका स्वरूपभूत जल उत्तम औषध है, आपको नमस्कार है। आप समस्त जीवोंके सम्पूर्ण रोगोंका निवारण करनेके लिये श्रेष्ठ वैद्यके समान हैं, आपको नमस्कार है। आप स्थावर और जङ्गम जीवोंसे उत्पन्न होनेवाले विषका नाश करनेवाली हैं, आपको नमस्कार है। संसाररूपी विषका नाश करनेवाली जीवनदायिनी गङ्गादेवीको बारंबार नमस्कार है। आप आध्यात्मिक आदि तीनों तापोंका निवारण करनेवाली एवं सबके प्राणोंकी अधीश्वरी हैं, आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप शान्तिस्वरूपा तथा सबका संताप दूर करनेवाली हैं, सब कुछ आपका ही स्वरूप है, आपको नमस्कार है। सबको पूर्णतः शुद्ध करनेवाली और सब पापोंसे छुटकारा दिलानेवाली आपको नमस्कार है। आप भोग और मोक्ष देनेवाली भोगवती (नामक पातालगङ्गा) हैं, आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप ही मन्दाकिनी नामसे प्रसिद्ध आकाशगङ्गा हैं, आपको नमस्कार है। आप स्वर्ग देनेवाली हैं, आपको नमस्कार है, नमस्कार है। तीनों लोकोंमें मूर्तरूपसे प्रकट होनेवाली आप गङ्गादेवीको बारंबार नमस्कार है। शुक्लरूपसे स्थित होनेवाली आपको नमस्कार है। सबका क्षेम चाहनेवाली क्षेमवतीको नमस्कार है, नमस्कार है। देवताओंके सिंहासनपर विराजमान होनेवाली तेजोमयी आप गङ्गादेवीको नमस्कार है। आप मन्द गति धारण करके मन्दा और शिवलिङ्गका आधार होनेसे लिङ्गधारिणी कहलाती हैं। भगवान् नारायणके चरणारविन्दोंसे प्रकट होनेके कारण आप नारायणी कहलाती हैं, आपको नमस्कार है, नमस्कार है। सम्पूर्ण जगत्को मित्र माननेवाली आप विश्वमित्राको नमस्कार है। रेवती नामसे प्रसिद्ध गङ्गाको नमस्कार है, नमस्कार है। आप बृहती देवीको नित्य नमस्कार है। लोकधात्रीको बारंबार नमस्कार है। विश्वमें प्रधान होनेसे आपका नाम विश्वमुख्या है, आपको नमस्कार है। जगत्को आनन्दित करनेके कारण नन्दिनी हैं, आपको नमस्कार है, नमस्कार है। पृथ्वी, शिवोमृता और

१. पृथ्वीपर स्थित होने अथवा पृथुल जलराशि धारण करनेके कारण गङ्गाजीका नाम 'पृथ्वी' है। भगवदीय शक्ति होनेसे गङ्गा और पृथ्वीमें अभेद भी है।

२. शिव (कल्याणमय) हैं अमृत (जल) जिनका, वे गङ्गाजी 'शिवामृता' हैं। शिवस्वरूपा और अमृतस्वरूपा होनेके कारण इनका यह नाम सार्थक है।

विरजा[1] नामवाली गङ्गादेवीको बारंबार [illegible] है। परावरगता[2], आद्या[3] एवं तारा[4] नामवाली आपको [illegible] है, नमस्कार है। स्वर्गमें विराजमान गङ्गादेवी [illegible] है। आप सबसे अभिन्न हैं, आपको नमस्कार है, [illegible] है। आप शान्तस्वरूपा, प्रतिष्ठा ([illegible]) [illegible] वरदायिनी हैं, आपको नमस्कार है, नमस्कार है। [illegible] मुक्तजल्या और संजीवनी हैं, आपको नमस्कार है, [illegible] है। आपकी ब्रह्मलोकतक पहुँच है। आप ब्रह्मकी प्राप्ति [illegible] तथा पापनाशिनी हैं, आपको नमस्कार है, नमस्कार है। [illegible] जनोंकी पीड़ाका नाश करनेवाली जगन्माता गङ्गाको [illegible] है, नमस्कार है। देवि! आप जल[illegible] [illegible] हैं, दुर्गम संकटका नाश करनेवाली तथा जगत्‌के [illegible] हैं, आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण विपत्तियोंका निरोध करने-वाली मङ्गलमयी गङ्गादेवीको नमस्कार है, नमस्कार है। [illegible] और अपर सब आपके ही स्वरूप हैं, आप ही [illegible] हैं, मोक्षदायिनी देवि! आपको सदा नमस्कार है। गङ्गा मेरे आगे रहें, गङ्गा मेरे दोनों पार्श्वमें रहें, गङ्गा मेरे [illegible] रहें और हे गङ्गे! आपमें ही मेरी स्थिति हो। पृथ्वीपर [illegible] हुई शिवस्वरूपा देवि! आदि, मध्य और अन्तमें आप ही हैं। आप सर्वस्वरूपा हैं। आप ही मूल प्रकृति हैं। आप ही सर्वसमर्थ नर-नारायण हैं। गङ्गे! आप ही परमात्मा और आप ही शिव हैं, आपको नमस्कार है, नमस्कार है*।

१. रजोगुणरहित, निर्मलस्वरूप होनेके कारण [illegible] कहते हैं। गोलोकस्थित विरजासे [illegible] होनेके कारण [illegible] नाम विरजा है।

२. पर (ऊपर स्वर्गलोक) और अवर ([illegible]) में स्थित।

३. आदिशक्तिस्वरूपा।

४. सबको संसार-सागरसे तारनेवाली [illegible] शक्तिसे अभिन्न।

५. पाप-समुदायके लिये भयंकर।

६. अपने सोमरूप [illegible] निरन्तर [illegible]।

७. सेवकोंको जन्म-मृत्युसे छुड़ाकर [illegible] प्रदान करनेवाली।

* ॐ नमः शिवायै गङ्गायै शिवदायै [illegible]।
नमोऽस्तु विष्णुरूपिण्यै [illegible]
सर्वदेवस्वरूपिण्यै नमो [illegible]।
सर्वस्य सर्वव्याधीनां भिषक्[illegible] [illegible]।

जो प्रतिदिन भक्तिमात्रसे इस स्तोत्रका पाठ करता है अथवा जो श्रद्धापूर्वक इसे सुनता है, वह मन, वाणी और शरीरद्वारा होनेवाले पूर्वोक्त दस पापों तथा सम्पूर्ण दोषोंसे मुक्त हो जाता है। रोगी रोगसे और विपत्तिका मारा पुरुष विपत्तिसे छुटकारा पा जाता है। शत्रुओंसे, बन्धनसे तथा सब प्रकारके भयसे भी वह मुक्त हो जाता है। इस लोकमें सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त करता है और मृत्युके पश्चात् परब्रह्म परमात्मामें लीन हो जाता है। जिसके घरमें

स्थाणुजङ्गमसम्भूतविषहन्त्रि नमोऽस्तु ते।
संसारविषनाशिन्यै जीवनायै नमो नमः॥
तापत्रितयहन्त्र्यै च प्राणेश्वर्यै नमो नमः।
शान्त्यै संतापहारिण्यै नमस्ते सर्वमूर्तये॥
सर्वसंशुद्धिकारिण्यै नमः पापविमुक्तये।
भुक्तिमुक्तिप्रदायिन्यै भोगवत्यै नमो नमः॥
मन्दाकिन्यै नमस्तेऽस्तु स्वर्गदायै नमो नमः।
नमस्त्रैलोक्यमूर्तायै त्रिदशायै नमो नमः॥
नमस्ते शुक्लसंस्थायै क्षेमवत्यै नमो नमः।
त्रिदशासनसंस्थायै तेजोवत्यै नमोऽस्तु ते॥
मन्दायै लिङ्गधारिण्यै नारायण्यै नमो नमः।
नमस्ते विश्वमित्रायै रेवत्यै ते नमो नमः॥
बृहत्यै ते नमो नित्यं लोकधात्र्यै नमो नमः।
नमस्ते विश्वमुख्यायै नन्दिन्यै ते नमो नमः॥
पृथ्व्यै शिवामृतायै च विरजायै नमो नमः।
परावरशताद्यायै तारायै ते नमो नमः॥
नमस्ते स्वर्गसंस्थायै अभिन्नायै नमो नमः।
शान्तायै ते प्रतिष्ठायै वरदायै नमो नमः॥
उस्रायै सुखजल्पायै संजीविन्यै नमो नमः।
ब्रह्मगायै ब्रह्मदायै दुरितघ्न्यै नमो नमः॥
प्रणतार्तिप्रभञ्जिन्यै जगन्मात्रे नमो नमः।
विप्लुपायै दुर्गहन्त्र्यै दक्षायै ते नमो नमः॥
सर्वापत्प्रतिपक्षायै मङ्गलायै नमो नमः।
परापरे परे तुभ्यं नमो मोक्षप्रदे सदा।
गङ्गा ममाग्रतो भूयाद् गङ्गा मे पार्श्वयोस्तथा॥
गङ्गा मे सर्वतो भूयात्त्वयि गङ्गेऽस्तु मे स्थितिः।
आदौ त्वमन्ते मध्ये च सर्वा त्वं गाङ्गते शिवे॥
त्वमेव मूलप्रकृतिस्त्वं हि नारायणः प्रभुः।
गङ्गे त्वं परमात्मा च शिवस्तुभ्यं नमो नमः॥
(ना० उत्तर० ४३। ६९—८४)

इस स्तोत्रको लिखकर इसकी पूजा की जाती है, वहाँ आग और चोरका भय नहीं है। वहाँ पापसे भी भय नहीं होता। ज्येष्ठ शुक्ला दशमीको गङ्गाजीके जलमें खड़ा होकर जो इस स्तोत्रका दस बार जप या पाठ करता है, वह दरिद्र अथवा असमर्थ होनेपर भी वही फल पाता है, जो पूर्वोक्त विधिसे भक्तिपूर्वक गङ्गाजीकी पूजा करनेसे प्राप्त होने योग्य बताया गया है। जैसी गौरी देवीकी महिमा है, वैसी ही गङ्गा देवीकी भी है, अतः गौरीके पूजनमें जो विधि कही गयी है, वही गङ्गाजीके पूजनके लिये भी उत्तम विधि है। जैसे भगवान् शिव हैं, वैसे ही भगवान् विष्णु हैं, जैसे भगवान् विष्णु हैं, वैसी ही भगवती उमा हैं और जैसी भगवती उमा हैं, वैसी ही गङ्गाजी हैं—इनमें कोई भेद नहीं है। जो भगवान् विष्णु और शिवमें, गङ्गा और गौरीमें तथा लक्ष्मी और पार्वतीमें भेद मानता है, वह मूढबुद्धि है। उत्तरायणमें किसी उत्तम मासका शुक्ल पक्ष हो, दिनका समय हो और गङ्गाजीके तटकी भूमि हो, साथ ही हृदयमें भगवान् जनार्दनका चिन्तन हो रहा हो—ऐसी अवस्थामें जो शरीरका त्याग करते हैं, वे धन्य हैं *। विधिनन्दिनी! जो मनुष्य गङ्गामें

प्राणत्याग करते हैं, वे देवताओंद्वारा अपनी स्तुति सुनते

* शुक्लपक्षे दिवा भूमौ गङ्गायामुत्तरायणे।
धन्या देहं विमुञ्चन्ति हृदयस्थे जनार्दने॥
(ना० उत्तर० ४३। ९४)

हुए विष्णुलोकको जाते हैं। जो मनुष्य गङ्गाके तटपर आमरण उपवासका व्रत लेकर मर जाता है, वह निश्चय ही अपने पितरोंके साथ परमधामको प्राप्त होता है। गङ्गाजीमें मृत्युके लिये दो योजन दूरकी भूमि और समीपका स्थान दोनों समान हैं। जो मनुष्य गङ्गामें मर जाता है, वह स्वर्ग और मोक्षको प्राप्त होता है। जो मानव प्राण-त्यागके समय गङ्गाका स्मरण अथवा गङ्गाजलका स्पर्श करता है, वह पापी होनेपर भी परमगतिको प्राप्त होता है। जिन धीर पुरुषोंने गङ्गाजीके समीप जाकर अपने शरीरका त्याग किया है, वे देवताओंके समान हो गये। इसलिये मुक्ति देनेवाले दूसरे सब साधनोंको छोड़कर देहपातपर्यन्त गङ्गाजीका ही सेवन करे। जो महान् पापी होकर भी गङ्गाके समीपवर्ती आकाशमें, गङ्गातटकी भूमिपर अथवा गङ्गाजीके जलमें मरा है, वह ब्रह्मा, विष्णु और शिवके द्वारा पूजनीय अक्षयपदको प्राप्त कर लेता है। जो धर्मात्मा, पवित्र एवं साधुसम्मत प्राणधारी मनुष्य मन-ही-मन गङ्गाजीका चिन्तन करता है, वह परम गतिको प्राप्त कर लेता है। कोई कहीं भी मर रहा हो, परन्तु मृत्युकाल उपस्थित होनेपर यदि वह गङ्गाजीका स्मरण करता है, तो वह शिवलोक अथवा विष्णुधामको जाता है। भगवान् शंकरके अत्यन्त कर्कश जटाकलापसे निकलकर पापी सगर-पुत्रोंके शरीरकी राखको बहाकर गङ्गाजीने उन्हें स्वर्गलोक पहुँचाया था। पुरुषके शरीरकी जितनी हड्डियाँ गङ्गाजीमें मौजूद रहती हैं, उतने हजार वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। मनुष्यकी हड्डी जब गङ्गाजीके जलमें ले जाकर छोड़ी जाती है, उसी समयसे प्रारम्भ करके उसकी स्वर्ग-लोकमें स्थिति होती है। जिस पुण्यकर्मा पुरुषकी हड्डी गङ्गाजीके जलमें पहुँचायी जाती है, उसकी ब्रह्मलोकसे किसी प्रकार पुनरावृत्ति नहीं होती। जिस मृतक पुरुषकी हड्डी दशाहके भीतर गङ्गाजीके जलमें पड़ जाती है, उसे गङ्गामें मरनेका जैसा फल बताया गया है, उसी फलकी प्राप्ति होती है। अतः स्नान करके पञ्चगव्य छिड़ककर सुवर्ण, मधु, घी और तिलके साथ उस अस्थि-पिण्डको दोनेमें रख ले और प्रेतगणोंसे युक्त दक्षिण दिशाकी ओर देखते हुए 'नमोऽस्तु धर्माय' (धर्मराजको नमस्कार है) ऐसा कहकर जलमें प्रवेश करे और 'धर्मराज मुझपर प्रसन्न हों' ऐसा कहकर उस हड्डीको जलमें फेंक दे। तदनन्तर स्नान करके तीर्थवासी अक्षयवटका दर्शन करे और ब्राह्मणको दक्षिणा दे। ऐसा करनेपर यमलोकमें स्थित हुए पुरुषका स्वर्गलोकमें गमन होता है और वहाँ उसे देवराज इन्द्रके समान प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। गङ्गाजीकी बहती हुई सुन्दर धाराके निकट चार हाथतकका जो भाग है, उसके स्वामी भगवान् नारायण हैं। प्राण कण्ठतक आ जायँ तो भी उसमें प्रतिग्रह स्वीकार न करे। भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशीको गङ्गाजीका जल जहाँतक बढ़ जाता है, वहाँतककी भूमिको उनका गर्भ समझना चाहिये। उससे दूरका स्थान 'तीर' कहलाता है। [illegible] जहाँतक जल रहता है, उससे डेढ़ सौ हाथ दूरतक तीरकी सीमा है। उससे परेका भू-भाग तट है। देवि! विद्वानोंका ऐसा ही मत है तथा यह श्रुतियों और स्मृतियोंको भी अभिमत है। तीरसे दो-दो कोस दोनों ओरका स्थान क्षेत्र कहलाता है। तीरको छोड़कर क्षेत्रमें वास करना चाहिये; क्योंकि तीरपर निवास अभीष्ट नहीं है। दोनों तटोंसे एक योजन विस्तृत भू-भाग क्षेत्रकी सीमा कहा गया है। जितने पाप हैं, वे सब-के-सब गङ्गाजीकी सीमा नहीं लाँघते। वे गङ्गाको देखकर उसी प्रकार दूर भागते हैं, जैसे सिंहको देखकर वनमें रहनेवाले दूसरे जीव। महाभागे! जहाँ गङ्गा हैं, जहाँ श्रीराम और श्रीशिवका तपोवन है, उसके चारों ओर तीन योजनतक सिद्धक्षेत्र जानना चाहिये। तीर्थमें कभी दान न ले। पवित्र देव-मन्दिरोंमें भी प्रतिग्रह न ले। ग्रहण आदि सभी निमित्तोंमें मनुष्य प्रतिग्रहसे बचता रहे। जो तीर्थमें दान लेता है तथा पुण्यमय देवमन्दिरोंमें भी प्रतिग्रह स्वीकार करता है, उसके पास जबतक प्रतिग्रहका धन है, तबतक उसका तीर्थ-व्रत निष्फल कहा जाता है। देवि! गङ्गाजीमें दान लेना मानो गङ्गाको बेचना है। गङ्गाके विक्रयसे भगवान् विष्णुका विक्रय हो जाता है और भगवान् विष्णुका विक्रय होनेपर तीनों लोकोंका विक्रय हो जाता है। जो गङ्गाजीके तीरकी मिट्टी लेकर उसे मस्तकपर धारण करता है, वह केवल तम (अन्धकार, अज्ञान एवं तमोगुण) का नाश करनेके लिये मानो सूर्यका स्वरूप धारण करता है। जो मनुष्य गङ्गाजीके तटकी धूलि लेकर उससे अपने पितरोंके लिये पिण्ड देता है, वह अपने पितरोंको तृप्त करके स्वर्गलोकमें पहुँचा देता है। भद्रे! इस प्रकार मैंने तुम्हें गङ्गाका उत्तम माहात्म्य बताया है। जो मनुष्य इसको पढ़ता अथवा सुनता है, वह भगवान् विष्णुके परमपदको प्राप्त होता है। विधिनन्दिनि! जो भगवान् विष्णु अथवा शिवका लोक प्राप्त करना चाहते हों, उन्हें एकाग्रचित्त हो श्रद्धा और भक्तिके साथ इस माहात्म्यका पाठ करना चाहिये।

गयातीर्थकी महिमा

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर पापनाशिनी गङ्गाका यह उत्तम माहात्म्य सुनकर मोहिनीने पुनः अपने पुरोहितसे पूछा।

मोहिनी बोली—भगवन्! आपने मुझे गङ्गाका पुण्यमय आख्यान (माहात्म्य) सुनाया है। अब मैं यह सुनना चाहती हूँ कि संसारमें गयातीर्थ कैसे विख्यात हुआ?

पुरोहित वसुने कहा—गया पितृतीर्थ है। उसे सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ माना गया है, जहाँ देवदेवेश्वर पितामह ब्रह्माजी स्वयं निवास करते हैं। जहाँ याग (श्राद्ध) की अभिलाषा रखनेवाले पितरोंने यह गाथा गायी है—'बहुत-से पुत्रोंकी अभिलाषा करनी चाहिये, क्योंकि उनमेंसे एक भी तो गया जायगा अथवा अश्वमेध यज्ञ करेगा या नीलवृषभका उत्सर्ग करेगा।' देवि! गयाका उत्तम माहात्म्य सारसे भी सारतर वस्तु है। मैं उसका संक्षेपसे वर्णन करूँगा। वह भोग और मोक्ष देनेवाला है। सुनो, पूर्वकालकी बात है। गयासुर नामसे प्रसिद्ध एक असुर हुआ था, जो बड़ा पराक्रमी था। उसने बड़ा भयंकर तप किया जो सम्पूर्ण भूतोंको पीड़ित करनेवाला था। उसकी तपस्यासे संतप्त हुए देवतालोग उसके वधके लिये भगवान् विष्णुकी शरणमें गये। तब भगवान्‌ने उसको गदासे मार दिया। अतः गदाधर भगवान् विष्णु ही गया-तीर्थमें मुक्तिदाता माने गये हैं। भगवान् विष्णुने इस तीर्थकी मर्यादा स्थापित की। जो मनुष्य यहाँ यज्ञ, श्राद्ध, पिण्डदान एवं स्नानादि कर्म करता है, वह स्वर्ग अथवा ब्रह्मलोकमें जाता है। गयातीर्थको उत्तम जानकर ब्रह्माजीने वहाँ यज्ञ किया तथा उन्होंने वहाँ सरस्वती नदीकी भी सृष्टि की और समस्त दिशाओंमें व्याप्त होकर उस तीर्थमें निवास किया। तदनन्तर ब्राह्मणोंके प्रार्थना करनेपर ब्रह्माजीने वहाँ अनेक तीर्थ निर्माण किये और कहा—ब्राह्मणो! गयामें श्राद्ध करनेसे पवित्र हुए लोग ब्रह्मलोकगामी होंगे और जो लोग तुम्हारा पूजन और सत्कार करेंगे, उनके द्वारा सदा मैं पूजित होऊँगा। ब्रह्मज्ञान, गयाश्राद्ध, गोशालामें प्राप्त होनेवाली मृत्यु तथा कुरुक्षेत्रमें निवास—यह मनुष्योंके लिये चार प्रकारकी मुक्ति (के साधन) हैं। ब्रह्महत्या, मदिरापान, चोरी और गुरुपत्नीगमन तथा इन सबके संसर्गसे होनेवाला पाप—ये सब-के-सब गयाश्राद्धसे नष्ट हो जाते हैं। मरनेपर जिनका दाह-संस्कार नहीं हुआ है, जो पशुओंद्वारा मारे गये हैं अथवा जिन्हें सर्पने डँस लिया है, वे सब लोग गयाश्राद्धसे मुक्त होकर स्वर्गलोकमें जाते हैं।

देवि! इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास सुना जाता है। त्रेतायुगमें विशाल नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं, जो विशालापुरीमें रहते थे। वे अपने सद्गुणोंके कारण धन्य समझे जाते थे। उनमें धैर्यका विलक्षण गुण था। उन्होंने श्रेष्ठ तीर्थ गयाशिरमें आकर पितृयाग प्रारम्भ किया। उन्होंने विधिपूर्वक पितरोंको पिण्डदान दिया। इतनेमें ही उन्होंने आकाशमें उत्तम आकृतिसे युक्त तीन पुरुषोंको देखा, जो क्रमशः श्वेत, लाल और काले रंगके थे। उन्हें देखकर राजाने पूछा—'आपलोग कौन हैं?'

सित (श्वेत) ने कहा—राजन्! मैं तुम्हारा पिता सित हूँ। मेरा नाम तो सित है ही, मेरे शरीरका वर्ण भी सित (श्वेत) है। साथ ही मेरे कर्म भी सित (उज्ज्वल) हैं और ये जो लाल रंगके पुरुष दिखायी देते हैं, ये मेरे पिता हैं। इन्होंने बड़े निष्ठुर कर्म किये हैं। ये ब्रह्महत्यारे और पापाचारी रहे हैं और इनके बाद ये जो तीसरे सज्जन हैं, ये तुम्हारे प्रपितामह हैं। ये नामसे तो कृष्ण हैं ही, कर्म और वर्णसे भी कृष्ण हैं। इन्होंने पूर्वजन्ममें अनेक प्राचीन ऋषियोंका वध किया है। ये दोनों पिता और पुत्र अवीचि-नामक नरकमें पड़े हुए हैं, अतः ये मेरे पिता और ये दूसरे इनके पिता, जो दीर्घकालतक काले मुखसे युक्त हो नरकमें रहे हैं और मैं, जिसने अपने शुद्ध कर्मके प्रभावसे इन्द्रका परम दुर्लभ सिंहासन प्राप्त किया था, तुझ मन्त्रज्ञ पुत्रके द्वारा गयामें पिण्डदान करनेसे हम तीनों ही बलात् मुक्त हो गये।

एक बार गया जाना और एक बार वहाँ पितरोंको पिण्ड देना भी दुर्लभ है; फिर नित्य वहीं रहनेका अवसर मिले, इसके लिये तो कहना ही क्या है! देश-कालके प्रमाणानुसार कहीं-कहीं मृत्युकालसे एक वर्ष बीतनेके बाद अपने भाई-बन्धु पतित पुरुषोंके लिये गयाकूपमें पिण्डदान करते हैं। एक समय किसी प्रेतराजने एक वैश्यसे अपनी मुक्तिके लिये अनुरोध करते हुए कहा—तुम गयातीर्थका दर्शन करके स्नान कर लेना और पवित्र होकर मेरा नाम ले मेरे लिये पिण्डदान करना। वहाँ पिण्ड देनेसे मैं अनायास ही प्रेतभावसे मुक्त हो सम्पूर्ण दाताओंको प्राप्त होनेवाले शुभ लोकोंमें चला

जाऊँगा । वैश्यसे ऐसा कहकर अनुयायियों सहित प्रेतराजने एकान्तमें विधिपूर्वक अपने नाम आदि अच्छी तरह बताये । वैश्य धनोपार्जन करके परम उत्तम गयातीर्थ नामक तीर्थमें गया । उस महाबुद्धि वैश्यने वहाँ पहले अपने पितरोंको पिण्ड आदि देकर फिर सब प्रेतोंके लिये क्रमशः पिण्डदान और धनदान किया । उसने अपने पितरों तथा अन्य कुटुम्बीजनोंके लिये भी पिण्डदान किया था । वैश्यद्वारा इस प्रकार पिण्ड दिये जानेपर वे सभी प्रेत प्रेतभावसे छूटकर द्विजत्वको प्राप्त हो ब्रह्मलोकमें चले गये । गयामें किये हुए श्राद्ध, जप, होम और तप अक्षय होते हैं । यदि पिताकी क्षयाह-तिथिको पुत्रोंद्वारा ये कर्म किये जायँ तो वे मोक्षकी प्राप्ति करानेवाले होते हैं । पितृगण नरकके भयसे पीड़ित हो पुत्रकी अभिलाषा करते हैं और सोचते हैं—जो कोई पुत्र गया जायगा, वह हमें तार देगा ।

गयामें धर्मपृष्ठ, ब्रह्मसभा, गयाशीर्ष तथा अक्षयवटके समीप पितरोंके लिये जो कुछ दिया जाता है, वह अक्षय होता है । ब्रह्मारण्य, धर्मपृष्ठ और धेनुकारण्य—इनका दर्शन करके वहाँ पितरोंकी पूजा करनेसे मनुष्य अपनी बीस पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है । महान् कल्पपर्यन्त किया हुआ पाप गयामें पहुँचनेपर नष्ट हो जाता है । गोतीर्थ और गृध्रवटतीर्थमें किया हुआ श्राद्धदान महान् फल देनेवाला होता है । वहाँ सब मनुष्य मतङ्गके आश्रमका दर्शन करते हैं और सब लोकोंके समक्ष 'धर्मसर्वस्व'की घोषणा करते हैं* । वहाँ पवित्र पङ्कजवन नामक तीर्थ है, जो पुण्यात्मा पुरुषोंसे सेवित है, जिसमें पिण्डदान दिया जाता है । वह सबके लिये दर्शनीय तीर्थ है । तृतीयातीर्थ, पादतीर्थ, निःक्षीरामण्डलतीर्थ, महाह्रद तथा कौशिकीतीर्थ—इन सबमें किया हुआ श्राद्ध महान् फल देनेवाला होता है । मुण्डपृष्ठमें परम बुद्धिमान् महादेवजीने अपना पैर दे रक्खा है । अन्य तीर्थोंमें अनेक सौ वर्षोंतक जो दुष्कर तपस्या की जाती है, उसके समान फल यहाँ थोड़े ही समयके तीर्थसेवनसे प्राप्त हो जाता है । धर्मपरायण मनुष्य इस तीर्थमें आकर अपनी समस्त पापराशिको तत्काल दूर कर देता है, ठीक उसी तरह जैसे साँप पुरानी केंचुलको त्याग देता है । वहाँ मुण्डपृष्ठतीर्थके उत्तर भागमें [illegible] नामसे विख्यात तीर्थ है, जहाँ ब्रह्मर्षिगण निवास करते हैं । वहाँ स्नान करके मनुष्य अपने शरीरके साथ स्वर्गलोकको जाते हैं । वहाँ किया हुआ श्राद्ध, दान सदा अक्षय [illegible] है । सुलोचने ! वहाँ निःक्षीरामें तीन दिनतक स्नान करके मानसरोवरमें नहाकर श्राद्ध करे । उत्तरमानसमें जाकर मनुष्य परम उत्तम सिद्धि प्राप्त कर लेता है । जो अपनी शक्ति और बलके अनुसार वहाँ श्राद्ध करता है, वह दिव्य भोगों और मोक्षके सम्पूर्ण उपायोंको प्राप्त कर लेता है । तदनन्तर ब्रह्मसरोवरतीर्थमें जाय, जो ब्रह्मयूपसे सुशोभित है । वहाँ श्राद्ध करनेसे मनुष्य ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है । सुभगे ! तदनन्तर लोकविख्यात धेनुकतीर्थमें जाय । वहाँ एक रात रहकर तिलमयी धेनुका दान करे । ऐसा करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो निश्चय ही चन्द्रलोकमें जाता है । तत्पश्चात् परम बुद्धिमान् महादेवजीके गृध्रवट नामक स्थानको जाय । वहाँ भगवान् शङ्करके समीप जाकर अपने अङ्गोंमें भस्म लगावे । देवि ! ऐसा करनेसे ब्राह्मणोंको तो बारह वर्षोंतक किये जानेवाले व्रतका पुण्य प्राप्त होता है और अन्य वर्णके लोगोंका सारा पाप नष्ट हो जाता है ।

तत्पश्चात् उदयगिरि पर्वतपर जाय; जहाँ दिव्य संगीतकी ध्वनि गूँजती रहती है । वहाँ सावित्री देवीका परम पुण्यदायक पदचिह्न दृष्टिगोचर होता है । उत्तम व्रतका पालन करनेवाला ब्राह्मण वहाँ संध्योपासना करे । इससे बारह वर्षोंतक संध्योपासना करनेका फल प्राप्त होता है । विधिनन्दिनि ! वहीं योनिद्वार है । वहाँ जानेसे मनुष्य योनि-संकटसे सदाके लिये मुक्त हो जाता है । जो मनुष्य शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षोंमें गयातीर्थमें निवास करता है, वह अपने कुलकी सात पीढ़ियोंको पवित्र कर देता है । सुभगे ! तदनन्तर महान् फलदायक धर्मपृष्ठ नामक तीर्थमें जाय, जहाँ पितृलोकका पालन करनेवाले साक्षात् धर्मराज विराजमान हैं । वहाँ जानेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता है । तदनन्तर मनुष्य परम उत्तम ब्रह्मतीर्थमें जाय, वहाँ ब्रह्माजीके समीप जानेसे राजसूय यज्ञका फल मिलता है । तदनन्तर फल्गुतीर्थमें जाय । यह [illegible] मूलसे सम्पन्न और विख्यात है । वहाँ कौशिकी नदी है, जहाँ किया हुआ श्राद्ध अक्षय माना गया है । वहाँसे उस पर्वतपर जाय, जो परम पुण्यात्मा, धर्मज्ञ राजर्षि गयके द्वारा सुरक्षित रहा है । वहाँ गयशिर नामक [illegible]

---

* अग्निपुराणमें 'धर्मसर्वस्व'की घोषणाका स्वरूप इस प्रकार स्पष्ट किया गया है । मतङ्गवापीमें स्नान करके श्राद्धकर्ता पुरुष वहाँ पिण्डदान करे और मतङ्गेश्वरको, जो सुसिद्धोंके अधीश्वर हैं, नमस्कार करके इस प्रकार कहे—'सब देवता प्रमाण देनेवाले और समस्त लोकपाल भी साक्षी रहें, मैंने इस मतङ्गतीर्थमें आकर पितरोंका उद्धार किया है ।' (देखिये अग्निपुराण अध्याय ११५ श्लोक ३४-३५)

पुण्यसलिला महानदी विद्यमान हैं। ऋषियोंसे सेवित परम पुण्यमय ब्रह्मसरोवर नामक तीर्थ भी वहीं है, जहाँ भगवान् अगस्त्य वैवस्वत यमसे मिले थे और जहाँ सनातन धर्मराज निरन्तर निवास करते हैं। वहाँ सब सरिताओंका उद्गम दिखायी देता है और पिनाकपाणि महादेव वहाँ नित्य निवास करते हैं। लोकविख्यात अक्षयवट भी वहीं है। पूर्वकालमें यजमान राजा गयने वहाँ यज्ञ किया था। वहाँ प्रकट हुई सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गा गयके यज्ञोंमें सुरक्षित थीं। मुण्डपृष्ठ, गया, रैवत, देवगिरि, तृतीय, क्रौञ्चपाद—इन सबका दर्शन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। शिवनदीमें शिवकरका, गयामें गदाधरका और सर्वत्र परमात्माका दर्शन करके मनुष्य पापराशिसे मुक्त हो जाता है। काशीमें विशालाक्षी, प्रयागमें ललिता देवी, गयामें मङ्गलादेवी तथा कृतशौचतीर्थमें सैंहिका देवीका दर्शन करनेसे भी उक्त फलकी प्राप्ति होती है। गयामें रहकर मनुष्य जो कुछ दान करता है, वह सब अक्षय होता है। उसके उत्तम कर्मसे पितर प्रसन्न होते हैं। पुत्र गयामें स्थित होकर जो अन्नदान करता है, उसीसे पितर अपनेको पुत्रवान् मानते हैं।

गयामें प्रथम और द्वितीय दिनके कृत्यका वर्णन, प्रेतशिला आदि तीर्थोंमें पिण्डदान आदिकी विधि और उन तीर्थोंकी महिमा

पुरोहित वसु कहते हैं—मोहिनी! सुनो, अब मैं प्रेतशिलाका पवित्र माहात्म्य बतलाता हूँ, जहाँ पिण्डदान करके मनुष्य अपने पितरोंका उद्धार करता है। प्रभास-अग्निने शिलाके चरणप्रान्तको आच्छादित कर रक्खा है। मुनियोंसे संतुष्ट हुए प्रभास शिलाके अङ्गुष्ठभागसे प्रकट हुए। अङ्गुष्ठभागमें ही भगवान् शंकर स्थित हैं। इसलिये वे प्रभासेश कहे गये हैं। शिलाके अङ्गुष्ठका जो एक देश है, उसीमें प्रभासेशकी स्थिति है और वहीं प्रेतशिलाकी स्थिति है। वहाँ पिण्डदान करनेसे मनुष्य प्रेतयोनिसे मुक्त हो जाता है, इसीलिये उसका नाम प्रेतशिला है। महानदी तथा प्रभासाग्निके सङ्गममें स्नान करनेवाला पुरुष साक्षात् वामदेव (शिव) स्वरूप हो जाता है। इसीलिये उक्त सङ्गमको वामतीर्थ कहा गया है। देवताओंके प्रार्थना करनेपर भगवान् श्रीरामने जब महानदीमें स्नान किया, तभीसे वहाँ सम्पूर्ण लोकोंको पवित्र करनेवाला 'रामतीर्थ' प्रकट हुआ। मनुष्य अपने सहस्रों जन्मोंमें जो पापराशि संग्रह करते हैं, वह सब रामतीर्थमें स्नान करनेमात्रसे नष्ट हो जाती है। जो मनुष्य—

> राम राम महाबाहो देवानामभयंकर ॥
> त्वां नमस्ये तु देवेश मम नश्यतु पातकम्।
> (ना० उत्तर० ४५। ८-९)

'महाबाहु राम! देवताओंको अभय देनेवाले श्रीराम! आपको नमस्कार करता हूँ। देवेश! मेरा पातक नष्ट हो जाय।'

—इस मन्त्रद्वारा रामतीर्थमें स्नान करके श्राद्ध एव पिण्डदान करता है, वह विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। प्रभासेश्वरको नमस्कार करके भासमान शिवके समीप जाना चाहिये और उन भगवान् शिवको नमस्कार करके यमराजको बलि दे और इस प्रकार कहे—'देवेश! आप ही जल हैं तथा आप ही ज्योतियोंके अधिपति हैं। आप मेरे मन, वचन, शरीर और क्रियाद्वारा उत्पन्न हुए समस्त पापोंका शीघ्र नाश कीजिये।' शिलाके जघन प्रदेशको यमराजने दबा रक्खा है। धर्मराजने पर्वतसे कहा—'न गच्छ' (गमन न करो—हिलो-डुलो मत), इसलिये पर्वतको 'नग' कहते हैं। यमराजको बलि देनेके पश्चात् उनके दो कुत्तोंको भी अन्नकी बलि या पिण्ड देना चाहिये। उस समय इस प्रकार कहे—'वैवस्वतकुलमें उत्पन्न जो दो श्याम और सबल नामवाले कुत्ते हैं, उनके लिये मैं पिण्ड दूँगा। ये दोनों हिंसा न करें।' तत्पश्चात् प्रेतशिला आदि तीर्थमें घृतयुक्त चरुके द्वारा पिण्ड बनावे और पितरोंका आवाहन करके मन्त्रोच्चारणपूर्वक उनके लिये पिण्ड दे। प्रेतशिलापर पवित्रचित्त हो जनेऊको अपसव्य करके दक्षिण दिशाकी ओर मुँह किये हुए पितरोंका ध्यान एवं स्मरण करे—'कव्यवाहक, अनल, सोम, यम, अर्यमा, अग्निष्वात्त, बर्हिषद् और सोमपा—ये सब पितृ-देवता हैं। हे महाभाग पितृदेवताओ! आप यहाँ पधारें और आपके द्वारा सुरक्षित मेरे पितर एवं मेरे कुलमें उत्पन्न हुए जो भाई-बन्धु हों, वे भी यहाँ आवें। मैं उन सबको पिण्ड देनेके लिये इस

गयातीर्थमें आया हूँ। वे सब-के-सब इस श्राद्ध-दानसे अक्षय तृप्तिलाभ करें।'

तत्पश्चात् आचमन करके पञ्चाङ्ग-न्यासपूर्वक यत्नतः प्राणायाम करे; फिर देश-काल आदिका उच्चारण करके 'अस्मत् पितॄणां पुनरावृत्तिरहितब्रह्मलोकाप्तिहेतवे गयाश्राद्धमहं करिष्ये' (अपने पितरोंको पुनरावृत्ति-रहित ब्रह्मलोककी प्राप्ति करानेके लिये मैं गया-श्राद्ध करूँगा) ऐसा संकल्प करके शास्त्रोक्त क्रमसे विधिपूर्वक श्राद्ध करे। पहले श्राद्धके स्थानको पृथक्-पृथक् पञ्चगव्यसे सींचकर पितरोका आवाहन-पूजन करे। तत्पश्चात् मन्त्रोंद्वारा पिण्ड-दान करे। पहले सपिण्ड पितरोंको श्राद्धका पिण्ड देकर उनके दक्षिण भागमें कुश बिछाकर उनके लिये एक बार तिल और जलकी अञ्जलि दे। अञ्जलिमें तिल और जल लेकर यत्नपूर्वक पितृतीर्थसे उनके लिये अञ्जलि देनी चाहिये; फिर एक मुट्ठी सत्तूसे अक्षय्य पिण्ड दे। पिण्ड-द्रव्योंमें तिल, घी, दही और मधु आदि मिलाना चाहिये। सम्बन्धियोंका तिल आदिके द्वारा कुशोंपर आवाहन करना चाहिये। श्राद्धमें माता, पितामही और प्रपितामहीके लिये जो तीन मन्त्र-वाक्य बोले जाते हैं, उनमें यथास्थान स्त्रीलिङ्गका उच्चारण करना चाहिये। सम्बन्धियोंके लिये भी पूर्ववत् पितरों-का आवाहन करते हुए पहलेकी ही भाँति पिण्ड दे। अपने गोत्रमें या पराये गोत्रमें पति-पत्नीके लिये पिण्ड देते समय यदि पृथक्-पृथक् श्राद्ध, पिण्ड-दान और तर्पण नहीं किया गया तो वह व्यर्थ है। पिण्डपात्रमें तिल देकर उसे शुभ जलसे भर दे और मन्त्रपाठपूर्वक उस जलसे प्रदक्षिण-क्रमसे उन सब पिण्डोंको तीन बार सींचे। तत्पश्चात् प्रणाम करके क्षमा-प्रार्थना करे। तदनन्तर पितरोंका विसर्जन करके आचमन करनेके पश्चात् साक्षी देवताओंको सुना दे। मोहिनी! सब स्थानोंमें इसी प्रकार पिण्डदान करना चाहिये।

गयामें पिण्डदानके लिये समय एवं मुहूर्तका विचार नहीं करना चाहिये। मलमास हो, जन्मदिन हो, गुरु और शुक्र अस्त हों, अथवा बृहस्पति सिंहराशिपर स्थित हों तो भी गया-श्राद्ध नहीं छोड़ना चाहिये। संन्यासी गयामें जाकर दण्ड दिखावे, पिण्डदान न करे। वह विष्णुपदमें दण्ड रखकर पितरोंसहित मुक्त हो जाता है। गयामें खीर, सत्तू, आटा, चरु अथवा चावल आदिसे भी पिण्डदान किया जाता है। सुभगे! गयाजीका दर्शन करके महापापी और पातकी भी पवित्र एवं श्राद्ध-कर्मका अधिकारी हो जाता है और श्राद्ध करनेपर वह ब्रह्मलोकका भागी होता है। फल्गुतीर्थमें [illegible] करनेवाला मनुष्य जिस फलको पाता है, उसे जो एक [illegible] अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान करता है, वह भी नहीं पाता। मनुष्यको गयामें जाकर अवश्य पिण्डदान करना चाहिये।

वहाँके पिण्ड पितरोंको अत्यन्त प्रिय हैं। इस कार्यमें न तो विलम्ब करना चाहिये और न विघ्न डालना चाहिये।

(श्राद्धकर्त्ताको गयामें इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—) पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, पितामही, प्रपितामही, मातामह, मातामहके पिता प्रमातामह आदि (अर्थात् वृद्धप्रमातामह, मातामही, प्रमातामही और वृद्धप्रमातामही)—इन सबके लिये मेरा दिया हुआ पिण्डदान अक्षय [illegible] प्राप्त हो। मेरे कुलमें जो मरे हैं, जिनकी उत्तम गति नहीं हुई है, उनके उद्धारके लिये मैं यह पिण्ड देता हूँ। मेरे भाई-बन्धुओंके कुलमें जो लोग मरे हैं और जिनकी उत्तम गति नहीं हुई है, उनके उद्धारके लिये मैं यह पिण्ड देता हूँ। जो फाँसीपर लटककर मरे हैं, जहर खाने या शस्त्रोंके आघात-से जिनकी मृत्यु हुई है और जो आत्मघाती हैं, उनके लिये मैं पिण्ड देता हूँ। जो यमदूतोंके अधीन होकर घोर नरकोंमें यातनाएँ भोगते हैं, उनके उद्धारके लिये मैं यह पिण्डदान करता हूँ। जो पशुयोनिमें पड़े हैं, पक्षी, कीट एवं सर्पका शरीर धारण कर चुके हैं अथवा जो वृक्षोंकी योनिमें स्थित हैं, उन सबके लिये मैं यह पिण्ड देता हूँ। द्युलोक,

अन्तरिक्ष और पृथ्वीपर स्थित जो पितर और भाई-बन्धु आदि हैं तथा संस्कारहीन अवस्थामें जिनकी मृत्यु हुई है, उनके लिये मैं पिण्ड देता हूँ। जो मेरे भाई-बन्धु हों अथवा न हों या दूसरे जन्ममें मेरे भाई-बन्धु रहे हों, उन सबके लिये मेरा दिया हुआ पिण्ड अक्षय होकर मिले। जो मेरे पिताके कुलमें मरे हैं, जो माताके कुलमें मरे हैं, जो गुरु, श्वशुर तथा बन्धु-बान्धवोंके कुलमें मरे हैं एवं इनके सिवा जो दूसरे भाई-बन्धु मृत्युको प्राप्त हुए हैं, मेरे कुलमें जिनका पिण्डदान-कर्म नहीं हुआ है, जो स्त्री-पुत्रसे रहित हैं, जिनके श्राद्धकर्मका लोप हो गया है, जो जन्मसे अन्धे और पङ्गु रहे हैं, जो विकृत रूपवाले या कच्चे गर्भकी दशामें मरे हैं, मेरे कुलमें मरे हुए जो लोग मेरे परिचित या अपरिचित हों, उन सबके लिये मेरा दिया हुआ पिण्ड अक्षयभावसे प्राप्त हो। ब्रह्मा और शिव आदि सब देवता साक्षी रहें। मैंने गयामें आकर पितरोंका उद्धार किया है। देव गदाधर! मैं पितृकार्य (श्राद्ध) के लिये गयामें आया हूँ। भगवन्! आप ही इस बातके साक्षी हैं। मैं तीनों ऋणोंसे मुक्त हो गया*।

दूसरे दिन पवित्र होकर प्रेतपर्वतपर जाय और वहाँ ब्रह्मकुण्डमें स्नान करके विद्वान् पुरुष देवता आदिका तर्पण करे। फिर पवित्र होकर प्रेतपर्वतपर पितरोंका आवाहन करे और पूर्ववत् संकल्प करके पिण्ड दे। परम उत्तम पितृ-देवताओंकी उनके नाम-मन्त्रोंद्वारा भलीभाँति पूजा करके उनके लिये पिण्ड-दान करे। मनुष्य पितृ-कर्ममें जितने तिल ग्रहण करता है, उतने ही असुर भयभीत होकर इस प्रकार भागते हैं, जैसे गरुड़को देखकर सर्प भाग जाते हैं। मोहिनी! उस प्रेतपर्वतपर पूर्ववत् सब कार्य करे। तत्पश्चात् वहाँ तिलमिश्रित सत्तू दे और इस प्रकार प्रार्थना करे—

ये केचित्प्रेतरूपेण वर्तन्ते पितरो मम॥
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु सक्तुभिस्तिलमिश्रितैः।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं यत्किञ्चित् सचराचरम्॥
मया दत्तेन पिण्डेन तृप्तिमायान्तु सर्वशः।
(ना० उत्तर० ४५। ६४—६६)

'जो कोई मेरे पितर प्रेतरूपमें विद्यमान हैं, वे सब इन तिलमिश्रित सत्तुओंके दानसे तृप्तिलाभ करें। ब्रह्माजीसे लेकर कीटपर्यन्त जो कुछ भी चराचर जगत् है, वह मेरे दिये हुए पिण्डसे पूर्णतः तृप्त हो जाय।'

सबसे पहले पाँच तीर्थोंमें तथा उत्तरमानसमें श्राद्ध करनेकी विधि है। हाथमें कुश लेकर आचमन करके कुशयुक्त जलसे अपना मस्तक सींचे और उत्तरमानसमें जाकर मन्त्रोच्चारणपूर्वक स्नान करे। उस समय इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

उत्तरे मानसे स्नानं करोम्यात्मविशुद्धये।
सूर्यलोकादिसम्प्राप्तिसिद्धये पितृमुक्तये॥६८॥

'मैं उत्तरमानसमें आत्मशुद्धि, सूर्यादि लोकोंकी प्राप्ति तथा पितरोंकी मुक्तिके लिये स्नान करता हूँ।'

इस प्रकार स्नान करके विधिपूर्वक देवता आदिका तर्पण करे और अन्तमें इस प्रकार कहे—

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः।
तृप्यन्तु पितरः सर्वे मातृमातामहादयः॥६९-७०॥

'ब्रह्माजीसे लेकर कीटपर्यन्त समस्त जगत्, देवता, ऋषि, दिव्य पितर, मनुष्य, पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, पितामही, प्रपितामही, मातामह और प्रमातामह आदि सब लोग तृप्त हो जायँ।'

अपनी शाखाके गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार पिण्डदानसहित श्राद्ध करना चाहिये। अष्टकाश्राद्ध, आभ्युदयिकश्राद्ध, गया-श्राद्ध तथा क्षयाह तिथिको किये जानेवाले एकोद्दिष्ट श्राद्धमें माताके लिये पृथक् श्राद्ध करना चाहिये और अन्यत्र पतिके साथ ही संयुक्तरूपसे उसके लिये श्राद्ध करना उचित है। तदनन्तर—

ॐ नमोऽस्तु भानवे भर्त्रे सोमभौमज्ञरूपिणे।
जीवभार्गवशनैश्चरराहुकेतुस्वरूपिणे॥७२॥

'सोम, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु तथा केतु—ये सब जिनके स्वरूप हैं, सबका भरण-पोषण करनेवाले उन भगवान् सूर्यको नमस्कार है।'

—इस मन्त्रसे भगवान् सूर्यको नमस्कार करके उनकी पूजा करे। ऐसा करनेवाला पुरुष अपने पितरोंको सूर्यलोकमें पहुँचा देता है। मानसरोवर पूर्वोक्त प्रेतपर्वत आदिसे यहाँ उत्तरमें स्थित है, इसलिये इसे उत्तरमानस कहते हैं। उत्तर-

---

* साक्षिणः सन्तु मे देवा ब्रह्मेशानादयस्तथा।
मया गयां समासाद्य पितॄणां निष्कृतिः कृता॥
आगतोऽस्मि गयां देव पितृकार्ये गदाधर।
त्वमेव साक्षी भगवन्ननृणोऽहमृणत्रयात्॥
(ना० उत्तर० ४५। ५८-५९)

मानससे मौन होकर दक्षिणमानसकी यात्रा करनी चाहिये। उत्तरमानससे उत्तर दिशामें उदीची नामक तीर्थ है, जो पितरोंको मोक्ष देनेवाला है । उदीची और मुण्डपृष्ठके मध्य-भागमें देवताओं, ऋषियों तथा मनुष्योंको तृप्त करनेवाला कनखलतीर्थ है, जो पितरोंको उत्तम गति देनेवाला है। वहाँ स्नान करके मनुष्य बुकनककी भाँति प्रकाशित होता है और अत्यन्त पवित्र हो जाता है; इसीलिये वह परम उत्तम तीर्थ लोकमें कनखल नामसे विख्यात है । कनखलसे दक्षिण भागमें दक्षिणमानसतीर्थ है । दक्षिणमानसमें तीन तीर्थ बताये गये हैं । उन सबमें विधिपूर्वक स्नान करके पृथक्-पृथक् श्राद्ध करना चाहिये । स्नानके समय निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करे—

दिवाकर करोमीह स्नानं दक्षिणमानसे ।
ब्रह्महत्यादिपापौघघातनाय विमुक्तये ॥७८-७९॥

'भगवन् दिवाकर ! मैं ब्रह्महत्या आदि पापोंके समुदाय-का नाश करने और मोक्ष पानेके लिये यहाँ दक्षिणमानस-तीर्थमें स्नान करता हूँ ।'

यहाँ स्नान-पूजन आदि करके पिण्डसहित श्राद्ध करे और अन्तमें पुनः भगवान् सूर्यको प्रणाम करते हुए निम्नाङ्कित वाक्य कहे—

नमामि सूर्यं तृप्त्यर्थं पितॄणा तारणाय च ।
पुत्रपौत्रधनैश्वर्यायुरारोग्यवृद्धये ॥८०॥

'मैं पितरोंकी तृप्ति तथा उद्धारके लिये और पुत्र, पौत्र, धन, ऐश्वर्य आदि आयु तथा आरोग्यकी वृद्धिके लिये भगवान् सूर्यको प्रणाम करता हूँ ।'

इस प्रकार मौनभावसे सूर्यका दर्शन और पूजन करके नीचे लिखे मन्त्रका उच्चारण करे—

कव्यवाडादयो ये च पितॄणा देवतास्तथा ।
मदीयैः पितृभिः सार्द्धं तर्पिताः स्थ स्वधाभुजः ॥८१-८२॥

'कव्यवाड्, अनल आदि जो पितरोंके देवता हैं, वे मेरे पितरोंके साथ तृप्त होकर स्वधाका उपभोग करें ।'

वहाँसे सब तीर्थोंमें परम उत्तम फल्गुतीर्थको जाय । वहाँ श्राद्ध करनेसे सदा पितरोंकी तथा श्राद्धकर्त्ताकी भी मुक्ति होती है । पूर्वकालमें ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे भगवान् विष्णु स्वयं फल्गुरूपसे प्रकट हुए थे । दक्षिणाग्निमें ब्रह्माजीके द्वारा जो होम किया गया, निश्चय ही उसीसे फल्गुतीर्थका प्रादुर्भाव हुआ; जिसमें स्नान आदि करनेसे घरकी लक्ष्मी फलती-फूलती है, गौ कामधेनु होकर मनोवाञ्छित फल देती है तथा वहाँका जल और भूतल भी मनोवाञ्छित फल देता है । सृष्टिके अन्तर्गत फल्गुतीर्थ कभी निष्फल नहीं होता । समस्त लोकोंमें जो सम्पूर्ण तीर्थ हैं, वे सब फल्गुतीर्थमें स्नान करनेके लिये आते हैं । गङ्गाजी भगवान् विष्णुका चरणोदक हैं और फल्गुरूपमें साक्षात् भगवान् आदिगदाधर प्रकट हुए हैं । वे स्वयं ही द्रव (जल) रूपमें विराजमान हैं अतः फल्गुतीर्थको गङ्गासे अधिक माना गया है । फल्गुके जलमें स्नान करनेसे सहस्र अश्वमेध यज्ञोंका फल प्राप्त होता है । (उसमें स्नान करते समय निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये—)

फल्गुतीर्थे विष्णुजले करोमि स्नानमद्य वै ।
पितॄणां विष्णुलोकाय भुक्तिमुक्तिप्रसिद्धये ॥८८॥

'भगवान् विष्णु ही जिसके जल हैं, उस फल्गुतीर्थमें आज मैं स्नान करता हूँ । इसका उद्देश्य यह है कि पितरोंको विष्णुलोककी और मुझे भोग एवं मोक्षकी प्राप्ति हो ।'

फल्गुतीर्थमें स्नान करके मनुष्य अपने गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार तर्पण एवं पिण्डदानपूर्वक श्राद्ध करे । तत्पश्चात् शिवलिङ्गरूपमें स्थित ब्रह्माजीको नमस्कार करे—

नमः शिवाय देवाय ईशानपुरुषाय च ।
अघोरवामदेवाय सद्योजाताय शम्भवे ॥९०॥

'ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव तथा सद्योजात—इन पाँच नामोंसे प्रसिद्ध कल्याणमय भगवान् शिवको नमस्कार है ।'

इस मन्त्रसे पितामहको नमस्कार करके उनकी पूजा करनी चाहिये । फल्गुतीर्थमें स्नान करके यदि मनुष्य भगवान् गदाधरका दर्शन और उनको नमस्कार करे तो वह पितरोंसहित अपने-आपको वैकुण्ठधाममें ले जाता है । (भगवान् गदाधरको नमस्कार करते समय निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़ना चाहिये—)

ॐ नमो वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च ।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय श्रीधराय च विष्णवे ॥९१-९२॥

'वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध—इन चार व्यूहोंवाले सर्वव्यापी भगवान् श्रीधरको नमस्कार है ।'

पाँच तीर्थोंमें स्नान करके मनुष्य अपने पितरोंको ब्रह्मलोकमें पहुँचाता है । जो भगवान् गदाधरको पञ्च तीर्थोंके जलसे स्नान कराकर उन्हें पुष्प और वस्त्र आदिसे सुशोभित

नहीं करता, उसका किया हुआ श्राद्ध व्यर्थ होता है। नागकूट, गृध्रकूट, भगवान् विष्णु तथा उत्तरमानस—इन चारोंके मध्यका भाग 'गयाशिर' कहलाता है। इसीको फल्गुतीर्थ कहते हैं। मुण्डपृष्ठ पर्वतके नीचे परम उत्तम फल्गुतीर्थ है। उसमें श्राद्ध आदि करनेसे सब पितर मोक्षको प्राप्त होते हैं। यदि मनुष्य गयाशिर-तीर्थमें शमीपत्रके बराबर भी पिण्डदान करता है तो वह जिसके नामसे पिण्ड देता है, उसे सनातन ब्रह्मपदको पहुँचा देता है। जो भगवान् विष्णु अव्यक्त रूप होते हुए भी मुण्डपृष्ठ पर्वत तथा फल्गु आदि तीर्थोंके रूपमें सबके सामने अभिव्यक्त हैं, उन भगवान् गदाधरको मैं नमस्कार करता हूँ। शिला पर्वत तथा फल्गु आदि रूपमें अव्यक्तभावसे स्थित हुए भगवान् श्रीहरि आदिगदाधररूपसे सबके समक्ष प्रकट हुए हैं।

तदनन्तर धर्मारण्यतीर्थको जाय, जहाँ साक्षात् धर्म विराजमान हैं। वहाँ मतङ्गवापीमें स्नान करके तर्पण और श्राद्ध करे। फिर मतङ्गेश्वरके समीप जाकर उन्हें नमस्कार करते हुए निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करे—

प्रमाणं देवताः शम्भुर्लोकपालाश्च साक्षिणः।
मयागत्य मतङ्गेऽस्मिन् पितॄणां निष्कृतिः कृता ॥१०१-१०२॥

'सब देवता और भगवान् शङ्कर प्रमाणभूत हैं तथा समस्त लोकपाल भी साक्षी हैं। मैंने इस मतङ्गतीर्थमें आकर पितरोंका उद्धार किया है—उनका ऋण चुकाया है।'

पहले ब्रह्मतीर्थमें, फिर ब्रह्मकूपमें श्राद्ध आदि करे। कूप और यूपके मध्यभागमें श्राद्ध करनेवाला पुरुष पितरोंका उद्धार कर देता है। धर्मेश्वर धर्मको नमस्कार करके महाबोधि वृक्षको प्रणाम करे। मोहिनी! यह दूसरे दिनका कृत्य मैंने तुम्हें बताया है। स्नान, तर्पण, पिण्डदान, पूजन और नमस्कार आदिके साथ किया हुआ श्राद्धकर्म पितरोंको सुख देनेवाला होता है।

गयामें तीसरे और चौथे दिनका कृत्य, ब्रह्मतीर्थ तथा विष्णुपद आदिकी महिमा

पुरोहित वसु कहते हैं—मोहिनी! अब मैं तुम्हें गयाजीमें तीसरे दिनका कृत्य बतलाता हूँ, जो भोग और मोक्ष देनेवाला है। उसका श्रवण गया-सेवनका फल देनेवाला है। 'ब्रह्मसर' में स्नान करके पिण्डसहित श्राद्ध करना चाहिये। (स्नानके समय इस प्रकार कहे—)

स्नानं करोमि तीर्थेऽस्मिन्नृणत्रयविमुक्तये ॥
श्राद्धाय पिण्डदानाय तर्पणायार्थसिद्धये।
(ना० उत्तर० ४६ । २-३)

'मैं तीनों ऋणोंसे मुक्ति पाने, श्राद्ध, तर्पण एवं पिण्डदान करने तथा अभीष्ट मनोरथोंकी सिद्धिके लिये इस तीर्थमें स्नान करता हूँ।'

ब्रह्मकूप और ब्रह्मयूपके मध्यभागमें स्नान, तर्पण एवं श्राद्ध करनेवाला पुरुष अपने पितरोंका उद्धार कर देता है। स्नान करके 'ब्रह्मयूप' नामसे प्रसिद्ध जो ऊँचा यूप है, वहाँ श्राद्ध करे। ब्रह्मसरमें श्राद्ध करके मनुष्य अपने पितरोंको ब्रह्मलोकमें पहुँचा देता है। गोप्रचारतीर्थके समीप ब्रह्माजीके द्वारा उत्पन्न किये हुए आम्रवृक्ष हैं, उनको सींचनेमात्रसे पितृगण मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। [आम्रवृक्षको सींचते समय निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करे—]

आम्रं ब्रह्मसरोद्भूतं सर्वदेवमयं विभुम्।
विष्णुरूपं प्रसिञ्चामि पितॄणां चैव मुक्तये ॥ ६ ॥

'ब्रह्मसरमें प्रकट हुआ आम्रवृक्ष सर्वदेवमय है, वह सर्वव्यापी भगवान् विष्णुका स्वरूप है। मैं पितरोंकी तृप्तिके लिये उसका अभिषेक करता हूँ।'

एक मुनि हाथमें जलसे भरा हुआ घड़ा और कुशका अग्रभाग लेकर आमकी जड़में पानी दे रहे थे। उन्होंने आमको भी सींचा और पितरोंको भी तृप्त किया। उनकी एक ही क्रिया दो प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाली हुई। ब्रह्मयूपकी परिक्रमा करके मनुष्य वाजपेय यज्ञका फल पाता है और ब्रह्माजीको नमस्कार करके अपने पितरोंको ब्रह्मलोकमें ले जाता है। (निम्नाङ्कित मन्त्रसे ब्रह्माजीको नमस्कार करना चाहिये—)

ॐ नमो ब्रह्मणेऽजाय जगज्जन्मादिकारिणे।
भक्तानां च पितॄणां च तारकाय नमो नमः ॥ ९ ॥

'जगत्की सृष्टि, पालन आदि करनेवाले सच्चिदानन्दस्वरूप अजन्मा ब्रह्माजीको नमस्कार है। भक्तों और पितरोंके उद्धारक पितामहको बारंबार नमस्कार है।'

तत्पश्चात् निम्नाङ्कित मन्त्रसे इन्द्रिय-संयमपूर्वक यमराजके लिये बलि दे—

यमराजधर्मराजौ निश्चलार्थौ इति स्थितौ ।
ताभ्यां बलिं प्रयच्छामि पितॄणां मुक्तिहेतवे ॥१०-११॥

'यमराज और धर्मराज—दोनों सुस्थिर प्रयोजनवाले हैं। मैं पितरोंकी मुक्तिके लिये उन दोनोंको बलि अर्पित करता हूँ।'

मोहिनी! इसके बाद 'द्वौ श्वानौ श्यामशबलौ'—इत्यादि पूर्वोक्त मन्त्रसे कुत्तोंके लिये बलि देकर नीचे लिखे मन्त्रद्वारा संयमपूर्वक काकबलि समर्पित करे—

ऐन्द्रवारुणवायव्या याम्या वै नैर्ऋतास्तथा ।
वायसाः प्रतिगृह्णन्तु भूमौ पिण्डं मयार्पितम् ॥१२-१३॥

'पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, वायव्य कोण तथा नैर्ऋत्यकोणके कौए भूमिपर मेरे दिये हुए इस पिण्डको ग्रहण करें।'

तत्पश्चात् हाथमें कुश लेकर ब्रह्मतीर्थमें स्नान करे। इस प्रकार विद्वान् पुरुष तीसरे दिनका नियम समाप्त करके भगवान् गदाधरको नमस्कार करे और ब्रह्मचर्य पालन करता रहे। चौथे दिन फल्गुतीर्थमें स्नान आदि कार्य करे। फिर गयाशिरमें 'पद' पर पिण्डदानसहित श्राद्ध करे। वहाँ फल्गुतीर्थमें साक्षात् 'गयाशिर'का निवास है। क्रौञ्चपादसे लेकर फल्गुतीर्थतक—साक्षात् गयाशिर है। गयाशिरपर वृक्ष, पर्वत आदि भी हैं, किंतु वह साक्षात् रूपसे फल्गुतीर्थ-स्वरूप है। फल्गुतीर्थ गयासुरका मुख है। अतः वहाँ स्नान करके श्राद्ध करना चाहिये। आदिदेव भगवान् गदाधर व्यक्त और अव्यक्त रूपका आश्रय ले पितरोंकी मुक्तिके लिये विष्णुपद आदिके रूपमें विद्यमान हैं। वहाँ जो दिव्य विष्णुपद है, वह दर्शनमात्रसे पापका नाश करनेवाला है। स्पर्श और पूजन करनेपर वह पितरोंको मोक्ष देनेवाला है। विष्णुपदमें पिण्डदानपूर्वक श्राद्ध करके मनुष्य अपनी सहस्र पीढ़ियोंका उद्धार करके उन्हें विष्णुलोक पहुँचा देता है। रुद्रपद अथवा शुभ ब्रह्मपदमें श्राद्ध करके पुरुष अपने ही साथ अपनी सौ पीढ़ियोंको शिवधाममें पहुँचा देता है। दक्षिणाग्निपदमें श्राद्ध करनेवाला वाजपेय यज्ञका और गार्हपत्यपदमें श्राद्ध करनेवाला राजसूय यज्ञका फल पाता है। चन्द्रपदमें श्राद्ध करके अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। सत्यपदमें श्राद्ध करनेसे ज्योतिष्टोम यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है। आवसथ्यपदमें श्राद्ध करनेवाला चन्द्रलोकको जाता है और इन्द्रपदमें श्राद्ध करके मनुष्य अपने पितरोंको इन्द्रलोक पहुँचा देता है। दूसरे-दूसरे देवताओंके जो पद हैं, उनमें श्राद्ध करनेवाला पुरुष अपने पितरोंको ब्रह्मलोकमें पहुँचा देता है। उनमें काश्यपपद श्रेष्ठ है। विष्णुपद, रुद्रपद तथा ब्रह्मपदको भी सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। मोहिनी! प्रारम्भ और समाप्तिके दिनमें इनमेंसे किसी एक पदपर श्राद्ध करना श्राद्धकर्ताके लिये भी श्रेयस्कर होता है।

पूर्वकालमें भीष्मजीने विष्णुपदपर श्राद्ध करते समय अपने पितरोंका आवाहन करके विधिपूर्वक श्राद्ध किया और जब वे पिण्डदानके लिये उद्यत हुए, उस समय गयाशिरमें उनके पिता शान्तनुके दोनों हाथ सामने निकल आये। परंतु भीष्मजीने भूमिपर ही पिण्ड दिया, क्योंकि शास्त्रमें हाथपर पिण्ड देनेका अधिकार नहीं दिया गया है। भीष्मके इस व्यवहारसे संतुष्ट होकर शान्तनु बोले—'बेटा! तुम शास्त्रीय सिद्धान्तपर दृढ़तापूर्वक डटे हुए हो, अतः त्रिकाल-दर्शी होओ और अन्तमें तुम्हें भगवान् विष्णुकी प्राप्ति हो, साथ ही जब तुम्हारी इच्छा हो, तभी मृत्यु तुम्हारा स्पर्श करे।' ऐसा कहकर शान्तनु मुक्त हो गये।

भगवान् श्रीराम रमणीय रुद्रपदमें आकर जब पिण्डदान करनेको उद्यत हुए, उस समय पिता दशरथ स्वर्गसे हाथ फैलाये हुए वहाँ आये। किंतु श्रीरामने उनके हाथमें पिण्ड नहीं दिया। शास्त्रकी आज्ञाका उल्लङ्घन न हो जाय, इसलिये

उन्होंने रुद्रपदपर ही उस पिण्डको रक्खा। तब दशरथने श्रीरामसे कहा—'पुत्र! तुमने मुझे तार दिया। रुद्रपदपर पिण्ड

देनेसे मुझे रुद्रलोककी प्राप्ति हुई है। तुम चिरकालतक राज्यका शासन, अपनी प्रजाका पालन तथा दक्षिणासहित यज्ञोंका अनुष्ठान करके अपने विष्णुलोकको जाओगे। तुम्हारे साथ अयोध्याके सब लोग, कीड़े-मकोड़ेतक वैकुण्ठधाममें जायँगे।' श्रीरामसे ऐसा कहकर राजा दशरथ परम उत्तम रुद्रलोकको चले गये।

कनकेश, केदार, नारसिंह और वामन—इनकी रथमार्गमें पूजा करके मनुष्य अपने समस्त पितरोंका उद्धार कर देता है। जो गयाशिरमें जिनके नामसे पिण्ड देते हैं, उनके वे पितर यदि नरकमें हों तो स्वर्गमें जाते हैं और स्वर्गमें हों तो मोक्ष-लाभ करते हैं। जो गयाशिरमें कन्द, मूल, फल आदिके द्वारा शमीपत्रके बराबर भी पिण्ड देता है, वह अपने पितरोंको स्वर्गलोकमें पहुँचा देता है। जहाँ विष्णु आदिके पद दिखायी देते हैं, वहाँ उनके आगे जिनके पदपर श्राद्ध किया जाता है, उन्हींके लोकोंमें मनुष्य अपने पितरोंको भेजता है। इन पदों-के द्वारा सर्वत्र मुण्डपृष्ठ पर्वत ही लक्षित होता है। वहाँ पूजित होनेवाले पितर ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं। एक मुनि मुण्डपृष्ठ-में क्रौञ्चरूपसे तपस्या करते थे। उनके चरणोंका चिह्न जहाँ लक्षित होता है, वह क्रौञ्चपद माना गया है। भगवान् विष्णु आदिके पद यहाँ लिङ्गरूपमें स्थित हैं। देवता आदिका तर्पण करके रुद्रपदसे प्रारम्भ करके श्राद्ध करना चाहिये। मोहिनी! यह चौथे दिनका कृत्य बताया गया है। इसे करके मनुष्य पवित्र एवं श्राद्ध-कर्मका अधिकारी होता है और श्राद्ध करने-पर वह ब्रह्मलोकका भागी होता है। शिलापर स्थित तीर्थोंमें स्नान और तर्पण करके जिनके लिये पिण्डदानपूर्वक श्राद्ध किया जाता है, वे ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं और वहाँ कल्पपर्यन्त सानन्द निवास करते हैं।

गयामें पाँचवें दिनका कृत्य, गयाके विभिन्न तीर्थोंकी पृथक्-पृथक् महिमा

पुरोहित वसु कहते हैं—मोहिनी! पाँचवें दिन मनुष्य गदालोल-तीर्थमें पूर्ववत् स्नान आदि करके अक्षयवटके समीप पिण्डदानपूर्वक श्राद्ध करे। वहाँ श्राद्ध आदि करके वह अपने पितरोंको ब्रह्मलोकमें पहुँचा देता है। वहाँ ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उनकी पूजा करे। अक्षयवटके निकट श्राद्ध करके एकाग्रचित्त हो वटेश्वरका दर्शन, नमस्कार तथा पूजन करे। ऐसा करनेसे श्राद्धकर्ता पुरुष अपने पितरोंको अक्षय तथा सनातन ब्रह्मलोकमें भेज देता है। (गदालोल-तीर्थमें स्नान करते समय इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—)

गदालोले महातीर्थे गदाप्रक्षालने वरे ॥
स्नानं करोमि शुद्ध्यर्थमक्षय्याय सुरालये।
एकान्तरे वटस्याग्रे यः शेते योगनिद्रया ॥
बालरूपधरस्तस्मै नमस्ते योगशायिने।
संसारवृक्षशस्त्रायाशेषपापक्षयाय च ॥
अक्षय्यब्रह्मदात्रे च नमोऽक्षय्यवटाय वै।
(ना० उत्तर० ४७। ४—७)

'जहाँ भगवान्‌की गदा धोयी गयी है, उस गदालोल नामक श्रेष्ठ महातीर्थमें मैं आत्मशुद्धि तथा अक्षय स्वर्गकी प्राप्तिके लिये स्नान करता हूँ। जो बालरूप धारण करके वटकी शाखाके अग्रभागपर एकान्त स्थलमें योगनिद्राके द्वारा शयन करते हैं, उन योगशायी श्रीहरिको नमस्कार है। जो संसाररूपी वृक्षका उच्छेद करनेके लिये शस्त्ररूप हैं, जो समस्त पापोंका नाश तथा अक्षय ब्रह्मलोक प्रदान करनेवाले हैं, उन अक्षयवटस्वरूप श्रीहरिको नमस्कार है।'

(इसके बाद लिङ्गस्वरूप प्रपितामहको नमस्कार करे—)

कलौ माहेश्वरा लोका येन तस्माद् गदाधरः।
लिङ्गरूपोऽभवत्तं च वन्दे त्वां प्रपितामहम् ॥७-८॥

'कलियुगमें लोग प्रायः शिवभक्त होते हैं, इसलिये भगवान् गदाधर वहाँ शिवलिङ्गरूपमें प्रकट हुए हैं। प्रभो! आप पितामह ब्रह्माके भी पिता होनेसे प्रपितामहरूप हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ।'

इस मन्त्रसे उन प्रपितामहदेवको नमस्कार करके मनुष्य अपने पितरोंको रुद्रलोकमें पहुँचा देता है। हेति नामसे प्रसिद्ध एक असुर था; भगवान्‌ने अपनी गदासे उस असुरके मस्तकके दो टुकड़े कर दिये। तत्पश्चात् जहाँ वह गदा धोयी गयी, वह गदालोल नामसे विख्यात श्रेष्ठ तीर्थ हो गया। हेति राक्षस ब्रह्माजीका पुत्र था। उसने बड़ी अद्भुत तपस्या की। तपस्यासे वरदायक ब्रह्मा आदि देवताओंको संतुष्ट करके यह वर माँगा—'मैं दैत्य आदिसे, शस्त्र आदिसे, नाना प्रकारके मनुष्योंसे तथा विष्णु और शिव आदिके चक्र एवं त्रिशूल आदि आयुधोंद्वारा अवध्य और महान् बलवान् होऊँ।' 'तथास्तु' कहकर देवता अन्तर्धान

हो गये। तब हेतिने देवताओंको जीत लिया और स्वयं इन्द्रपदका उपभोग करने लगा। तब ब्रह्मा और शिव आदि देवता भगवान् विष्णुकी शरणमें गये और बोले—'भगवन्! हेतिका वध कीजिये।'

भगवान्ने कहा—'देवताओ! हेति तो समस्त सुर और असुरोंके लिये अवध्य है। तुमलोग मुझे कोई ब्रह्माजी-का अस्त्र दो, जिससे मैं हेतिको मारूँ।'

उनके ऐसा कहनेपर ब्रह्मादि देवताओंने भगवान् विष्णुको वह गदा दे दी और कहा—'उपेन्द्र! आप हेतिको मार डालिये।' देवताओंके ऐसा कहनेपर भगवान्ने वह गदा धारण की। फिर युद्धमें गदाधरने गदासे हेतिको मारकर देवताओंको स्वर्गलोक लौटा दिया।

तदनन्तर महानदीमें स्थित गायत्री-तीर्थमें उपवासपूर्वक स्नान करके गायत्री देवीके समक्ष संध्योपासना करे। वहाँ पिण्डदानपूर्वक श्राद्ध करके मनुष्य अपने कुलको ब्राह्मणत्वकी ओर ले जाता है। समुन्नत-तीर्थमें स्नान करके सावित्री देवीके समक्ष मध्याह्नकालकी संध्योपासना करके द्विज अपने पितरों-को ब्रह्मलोकमें पहुँचा देता है। तत्पश्चात् प्राची सरस्वतीमें स्नान करके सरस्वती देवीके समक्ष सायंकालीन सध्योपासना करके मनुष्य अपने कुलको सर्वज्ञताकी प्राप्ति कराता है। वह अनेक जन्मोंतक किये हुए संध्यालोपजनित पापसे सर्वथा शुद्ध हो जाता है। विशालामें लेलिहान-तीर्थमें, भरताश्रममे पदाङ्कित-तीर्थमें, मुण्डपृष्ठमे गदाधरके समीप, आकाशगङ्गा-तीर्थमें तथा गिरिकर्ण आदिमें श्राद्ध एवं पिण्डदान करनेवाला, गोदा वैतरणीमे स्नान करनेवाला एव देवनदीमें, गोप्रचारमें, मानसतीर्थमें, पदस्वरूप-तीर्थोंमें, पुष्करिणीमें, गदालोल-तीर्थमें, अमरतीर्थमें, कोटितीर्थमे तथा रुक्मकुण्डमें पिण्ड देनेवाला पुरुष अपने पितरोंको स्वर्गलोकमें पहुँचा देता है। सुलोचने! मार्कण्डेयेश्वर तथा कोटीश्वरको नमस्कार करके मनुष्य अपने पितरोको तार देता है तथा पुण्यदायिनी पाण्डुशिलाका दर्शन-मात्र करनेसे मानव अपने नरकनिवासी पितरोंको भी पवित्र करके उन्हे स्वर्गलोकमें पहुँचाता है। पाण्डुशिलाके विषयमें यह उद्गार प्रकट करके राजा पाण्डु अविनाशी शाश्वत पदको प्राप्त हुए थे। घृतकुल्या, मधुकुल्या, देविका और महानदी—ये शिलामें संगत होकर मधुस्रवा कही गयी हैं। वहाँ स्नान करनेसे मानव दस हजार अश्वमेध यज्ञोंका फल पाता है।

दशाश्वमेधतीर्थ और हंसतीर्थमें श्राद्ध करनेसे श्राद्धकर्ता स्वर्ग-लोकमें जाता है। मतङ्गपदमें श्राद्ध करनेवाला पुरुष ब्रह्मलोक-का निवासी होता है। ब्रह्माजीने विष्णु आदिके साथ [illegible] गर्भमें अग्निका मन्थन करके एक नूतन तीर्थको उत्पन्न किया, जो मन्थोकुण्डके नामसे विख्यात है। वह पितरोंको मोक्ष देनेवाला तीर्थ है। वहाँ स्नान करके तर्पण और पिण्डदान करनेसे मनुष्य मोक्षका भागी होता है। गदेश्वर और करकेश्वरको नमस्कार करके मानव अपने पितरोंको स्वर्गमें भेज देता है। गयाकूपमें पिण्डदान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। भस्मकूटमें भस्मस्नान करनेसे मनुष्य अपने पितरोंका उद्धार कर देता है। निश्चीरा संगममें स्नान करनेवाले मनुष्यके सारे पाप धुल जाते हैं। [illegible] श्राद्ध करनेवाला पुरुष अपने पितरोंको ब्रह्मलोकमें पहुँचाता है। वशिष्ठतीर्थमें वशिष्ठेश्वरको प्रणाम करके मनुष्य अश्वमेध यज्ञके पुण्यका भागी होता है। धेनुकारण्यमें कामधेनु-पदोंपर स्नान करके पिण्ड देनेवाला पुरुष वहाँके देवताको नमस्कार करके पितरोंको ब्रह्मलोकमें पहुँचाता है। [illegible]तीर्थमें, गयानाभिमें और मुण्डपृष्ठके समीप स्नान करके श्राद्ध करने-वाला पुरुष अपने पितरोंको स्वर्गलोकमें पहुँचा देता है। चण्डी-देवीको नमस्कार तथा फल्गुचण्डीश नामक [illegible] पूजन करनेसे भी पूर्वोक्त फलकी ही प्राप्ति होती है। गया-गज, गयादित्य, गायत्री, गदाधर, गया और गयाशिर—ये छः प्रकारकी गया मुक्ति देनेवाली है। श्राद्धकर्ता जिस जिस तीर्थमें जाय, वहाँ जितेन्द्रिय भावसे आदिगदाधरका ध्यान करते हुए ब्राह्मणके कथनानुसार श्राद्ध एवं पिण्डदान करे। तदनन्तर भगवान् जनार्दनका विधिपूर्वक पूजन करके दही और भातका उत्तम नैवेद्य अर्पण करे—तत्पश्चात् पिण्डदान करके भगवत्प्रसादसे ही जीवननिर्वाह करे। दैत्यके मुण्ड-पृष्ठपर वह शिला स्थित है, इसलिये मुण्डपृष्ठ नामक पर्वत पितरोंको ब्रह्मलोक देनेवाला है। श्रीरामचन्द्रजीके वनमें जाने-के बाद उनके भाई भरत उस पर्वतपर आये थे। उन्होंने पिताको पिण्ड आदि देकर वहाँ रामेश्वरकी स्थापना की थी। जो एकाग्रचित्त होकर वहाँ स्नान करके रामेश्वरको तथा राम और सीताको नमस्कार करता और श्राद्ध एवं पिण्डदान देता है, वह धर्मात्मा अपने पितरोंके साथ भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। शिलाके दक्षिण हाथमें स्थापित मुण्डपृष्ठ-तीर्थके समीप श्राद्ध आदि करनेसे मनुष्य अपने समस्त पितरों-को ब्रह्मलोक पहुँचा देता है। कुण्डने [illegible] पर्वतपर बड़ी भारी तपस्या की थी, अतः उसीके नामपर कुण्डपृष्ठतीर्थ विख्यात हुआ।

पुष्करिणी मतङ्गपदमें पिण्ड देनेवाला पुरुष अपने पितरोंको स्वर्गमें पहुँचा देता है। शिलाके बायें हाथमें उद्यन्तक गिरिकी स्थापना हुई। वहाँ महात्मा अगस्त्यजीने उदयाचलको ले आकर स्थापित किया था। वहाँ पिण्ड देनेवाला पुरुष अपने पितरोंको ब्रह्मलोक भेज देता है। अगस्त्यजीने अपनी तपस्याके लिये वहाँ उद्यन्तक नामक कुण्डका निर्माण किया था। वहाँ ब्रह्माजी अपनी देवी सावित्री और सनकादि कुमारोंके साथ विराजमान हैं। हाहा, हूहू आदि गन्धर्वोंने वहाँ सङ्गीत और वाद्यका आयोजन किया था। अगस्त्यतीर्थमें स्नान करके मध्याह्नकालमें सावित्रीकी उपासना करनेपर पुरुष कोटि जन्मोंतक धनाढ्य तथा वेदवेत्ता ब्राह्मण होता है। अगस्त्यपदमें स्नान करके पिण्ड देनेवाला पुरुष पितरोंको स्वर्गकी प्राप्ति कराता है। जो मनुष्य ब्रह्मयोनिमें प्रवेश करके निकलता है, वह योनिसंकटसे मुक्त हो परब्रह्म परमात्माको प्राप्त होता है। गयाकुमारको प्रणाम करके मनुष्य ब्राह्मणत्व पाता है। सोमकुण्डमें स्नान आदि करनेसे वह पितरोंको चन्द्रलोककी प्राप्ति कराता है। काकशिलामें कौओंके लिये दी हुई बलि क्षणभरमें मोक्ष देनेवाली है। स्वर्गद्वारेश्वरको नमस्कार करके मनुष्य अपने पितरोंको स्वर्गसे ब्रह्मलोकको भेज देता है। आकाश-गङ्गामें पिण्ड देनेवाला पुरुष स्वयं निर्मल होकर पितरोंको स्वर्गलोकमें भेज देता है। शिलाके दाहिने हाथमें धर्मराजने भस्मकूट धारण किया था। अतः वहाँ महादेवजीने अपना वही नाम रक्खा है। मोहिनी! जहाँ भस्मकूट पर्वत है, वहीं भस्म नामधारी भगवान् शिव हैं। जहाँ वट है वहाँ वटेश्वर ब्रह्माजी स्थित हैं। उनके सामने रुक्मिणी-कुण्ड है और पश्चिममें कपिला नदी है। नदीके तटपर कपिलेश्वर महादेव हैं, वहीं उमा और सोमकी भेंट हुई थी। मनुष्य कपिलामें स्नान करके कपिलेश्वरको प्रणाम एवं उनका पूजन करे। वहाँ श्राद्धका दान करनेवाला पुरुष स्वर्गलोकका भागी होता है। मतङ्गीकुण्डपर मङ्गलागौरीका निवास है, जो पूजित होनेपर पूर्ण सौभाग्यको देनेवाली है। भस्मकूटमें भगवान् जनार्दन हैं। उनके हाथमें अपने या दूसरेके लिये बिना तिलके और मन्त्रभावसे भी पिण्ड देनेवाला पुरुष जिनके लिये दधिमिश्रित पिण्ड देता है, वे सब विष्णुलोकगामी होते हैं। (वहाँ पिण्ड देकर भगवान्‌से इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—)

एष पिण्डो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्दन।
गयाश्राद्धे त्वया देयो मह्यं पिण्डो मृते मयि॥
तुभ्यं पिण्डो मया दत्तो यमुद्दिश्य जनार्दन।
देहि देव गयाशीर्षे तस्मै तस्मै मृते ततः॥
जनार्दन नमस्तुभ्यं नमस्ते पितृरूपिणे।
पितृपात्र नमस्तुभ्यं नमस्ते मुक्तिहेतवे॥
गयायां पितृरूपेण स्वयमेव जनार्दनः।
तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं मुच्यते च ऋणत्रयात्॥
नमस्ते पुण्डरीकाक्ष ऋणत्रयविमोचन।
लक्ष्मीकान्त नमस्तेऽस्तु नमस्ते पितृमोक्षद॥६३–६७॥

'जनार्दन! मैंने आपके हाथमें यह पिण्ड दिया है। मेरे मरनेपर आप गयाश्राद्धमें मुझे पिण्ड दीजियेगा। जनार्दन! जिसके उद्देश्यसे मैंने आपको पिण्ड दिया है, देव! उसके मरनेपर आप गयाशीर्षमें उसके लिये अवश्य पिण्ड दें। जनार्दन! आप पितृस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है, बारंबार नमस्कार है। पितरोंके पात्ररूप नारायण! आपको नमस्कार है। आप सबकी मुक्तिके हेतुभूत हैं, आपको नमस्कार है। गयामें साक्षात् जनार्दन ही पितृरूपसे विद्यमान हैं। उन कमलनेत्र श्रीहरिका दर्शन करके मनुष्य तीनों ऋणोंसे मुक्त हो जाता है। पुण्डरीकाक्ष! आपको नमस्कार है। तीनों ऋणोंसे मुक्त करनेवाले लक्ष्मीकान्त! आपको नमस्कार है। पितरोंको मोक्ष देनेवाले प्रभो! आपको नमस्कार है।'

इस प्रकार कमलनयन भगवान् जनार्दनका पूजन करके मनुष्य स्वर्गलोकमें जाता है। पृथ्वीपर बायाँ घुटना गिराकर भगवान् जनार्दनको नमस्कार करे। तत्पश्चात् पिण्डदानपूर्वक श्राद्ध करनेवाला पुरुष भाइयोंसहित विष्णुलोकमें जाता है। शिलाके वाम भागमें प्रेतकूटगिरि स्थित है। प्रेतकूटगिरिको धर्मराजने धारण किया है। वहाँ प्रेतकुण्ड है जहाँ पर्दोंके साथ देवता विद्यमान हैं। उसमें स्नान करके श्राद्ध-तर्पण आदि करनेवाला पुरुष पितरोंको प्रेतभावसे मुक्त कर देता है। कीकट प्रदेशमें गया, राजगृह वन, महर्षि च्यवनका आश्रम, पुनपुना नदी, वैकुण्ठ, लोहदण्ड तथा गौणग गिरिकूट—ये सब पवित्र हैं। उनमें श्राद्ध-पिण्डदान आदि करनेवाला पुरुष पितरोंको ब्रह्मधाममें पहुँचा देता है। शिलाके दक्षिण पादमें गृध्रकूटगिरि रक्खा गया है। धर्मराजने शिलाको स्थिर रखनेके लिये वहाँ उस पर्वतको स्थापित किया है। वह शीघ्र पवित्र करनेवाला है। वहाँ 'गृध्रेश्वर' नामक भगवान शिव विराजमान हैं। गृध्रेश्वरका दर्शन और उनके समीप स्नान

करके मनुष्य शिवधाममें जाता है। ऋणमोक्ष एवं पापमोक्ष नामवाले शिवजीका दर्शन करके मनुष्य शिवलोकमें जाता है। वहाँ विघ्नोंका नाश करनेवाले विघ्नेश्वर गणेशजी गजरूपसे निवास करते हैं। उनका दर्शन करके मनुष्य विघ्नोंसे मुक्त होता है और पितरोंको भगवान् शिवके लोकमें पहुँचा देता है। स्नान करके गायत्री और गयादित्यका दर्शन करनेसे मनुष्य स्वर्गलोकमें जाता है। प्रथम पादमें विराजमान ब्रह्माजीका दर्शन करके पुरुष अपने पितरोंका उद्धार कर देता है। जो नाभिमें पिण्ड देता है, वह पितरोंको ब्रह्मलोकमें पहुँचाता है। मुण्डपृष्ठकी शोभाके लिये श्रेष्ठ कमल उत्पन्न हुआ है। मुण्डपृष्ठ और अरविन्द दोनोंका दर्शन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

जो हाथियों अथवा सर्पोंका अपराध करके मारा गया है; जो परायी स्त्रियोंसे रमण करते समय उनके पतियोंद्वारा मारे गये हैं; जो गौओंको आगमें जलाने या विष देनेवाले हैं; पाखण्डी तथा क्रूर बुद्धिवाले हैं, जो [illegible] आकर प्रायः विष खा लेते, आगमें जल मरते, अपने ऊपर हथियार चला लेते, फाँसी लगाकर मर जाते, पानीमें डूब मरते तथा वृक्ष एवं पर्वतसे नीचे कूदकर प्राण दे देते हैं; जो पाँच प्रकारकी हत्याके अधिकारी हैं तथा जो [illegible] हैं; वे सब-के-सब पतित कहे गये हैं। वे गयाकूपके दर्शनसे तथा वहाँकी भस्म रमानेसे अवश्य शुद्ध हो जाते हैं। देवि! इस प्रकार गयातीर्थका उत्तम माहात्म्य सब पापोंको हरनेवाला तथा पितरोंको मुक्ति देनेवाला है। जो मनुष्य इसे प्रतिदिन अथवा श्राद्ध एवं पर्वके दिन भक्तिपूर्वक सुनता या सुनाता है, वह भी ब्रह्मलोकका भागी होता है। यह कल्याणका आश्रय, पवित्र, धन्य तथा मानवोंको स्वर्गीय गति प्रदान करनेवाला है। यह माहात्म्य यश, आयु तथा पुत्र-पौत्रकी वृद्धि करनेवाला है।

अविमुक्त क्षेत्र—काशीपुरीकी महिमा

मान्धाता बोले—भगवन्! मोहिनीने पितरोंको उत्तम गति देनेवाले गया-माहात्म्यको सुनकर वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ विप्रवर वसुसे पुनः क्या पूछा?

वसिष्ठजी बोले—राजन्! सुनो, मोहिनीने पुनः जो प्रश्न किया वह बतलाता हूँ।

मोहिनीने कहा—लोकोद्धारपरायण द्विजश्रेष्ठ! आपको बारंबार साधुवाद है, आप बड़े दयालु हैं। ब्रह्मन्! मैंने गया-जीका परम उत्तम पवित्र माहात्म्य सुना, जो परम गोपनीय और पितरोंको सद्गति देनेवाला है। विप्रेन्द्र! अब काशीका उत्तम माहात्म्य बताइये।

वसिष्ठजी कहते हैं—मोहिनीका यह कथन सुनकर उसके पुरोहित वसु बोले—सुनो।

पुरोहित वसुने कहा—कल्याणमयी काशीपुरी धन्य है। भगवान् महेश्वर भी धन्य हैं, जो मुक्तिदायिनी वैष्णवपुरी काशीको श्रीहरिसे माँगकर निरन्तर उसका सेवन करते हैं। सनातनदेव भगवान् शङ्कर श्रीहरिके क्षेत्रमें ही विद्यमान हैं। वे भगवान् हृषीकेशकी पूजा करते हुए स्वयं भी देवता आदिसे पूजित होते हैं। काशीपुरी तीनों लोकोंका सार है। उस रमणीय नगरीका यदि सेवन किया जाय तो वह मनुष्योंको उत्तम गति देनेवाली है। नाना प्रकारके पापकर्म करनेवाले मनुष्य भी यहाँ आकर अपने पापोंका नाश करके रजोगुणरहित तथा शुद्ध अन्तःकरणके प्रकाशसे युक्त हो जाते हैं। इसे वैष्णवक्षेत्र तथा शैवक्षेत्र भी कहते हैं। यह सब प्राणियोंको मोक्ष देनेवाला है। महापातकी मनुष्य भी जब भगवान् शिवकी नगरी काशीपुरीमें आता है, तब उसका शरीर गंगाजलसे शुद्ध बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है। जो पुण्यात्मा मनुष्य भगवान् विष्णु या भगवान् शिवके भक्त होकर सबको प्रतिदिन आत्म-बुद्धिसे देखते हुए इस क्षेत्रमें निवास करते हैं, वे शुद्ध मन पुरुष भगवान् शङ्करके समान हैं। वे भय, दुःख और पापसे रहित हो जाते हैं। उनके कर्मकलाप पूर्णतः शुद्ध होते हैं और वे जन्म-मृत्युके गहन जालका भेदन करके परम मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। काशीका विस्तार पूर्वसे पश्चिमकी ओर ढाई योजनतक है और दक्षिणसे उत्तरकी ओर असीसे वरणातक आधे योजनका विस्तार है। शुभे! असी शुष्क नदी है। भगवान् शिवने इस क्षेत्रका यही विस्तार बताया है। काशीमें जो तिमिचण्डेश्वर नामक शिवलिङ्ग है, उसे उत्तरायण जानना चाहिये और शङ्कुकर्णको दक्षिणायन। यह [illegible] है। तदनन्तर पिङ्गला नामक तीर्थ आग्नेय कोणमें स्थित बताया गया है। सूखी हुई नदी जो असी नामसे प्रसिद्ध है,

उसीको पिङ्गला नाड़ी समझना चाहिये। उसीके आसपास लोलार्कतीर्थ विद्यमान है। इडा नामकी नाड़ी सौम्या कही गयी है। उसीको वरणाके नामसे जानना चाहिये, जहाँ भगवान् केशवका स्थान है। इन दोनोंके बीचमें सुषुम्णा नाड़ीकी स्थिति कही गयी है। मत्स्योदरीको ही सुषुम्णा जानना चाहिये। इस महाक्षेत्रको भगवान् शिव और भगवान् विष्णुने कभी विमुक्त (परित्यक्त) नहीं किया है और न भविष्यमें भी करेंगे। इसीलिये इसका नाम 'अविमुक्त' है। शुभे! प्रयाग आदि दुस्तर (दुर्लभ) तीर्थमें भी काशीका माहात्म्य अधिक है, क्योंकि वहाँ सबको अनायास ही मोक्षकी प्राप्ति होती है।

निषिद्ध कर्म करनेवाले जो नाना वर्णके लोग हैं तथा महान् पातकों और पापोंसे परिपूर्ण शरीरवाले जो घृणित चाण्डाल आदि हैं, उन सबके लिये विद्वानोंने अविमुक्त क्षेत्रको उत्तम औषध माना है। वहाँ दुष्ट, अंधे, दीन, कृपण, पापी और दुराचारी सबको भगवान् शिव अपनी कृपाशक्तिके द्वारा शीघ्र ही परम गतिकी प्राप्ति करा देते हैं। उत्तरवाहिनी गङ्गा और पूर्ववाहिनी सरस्वती अत्यन्त पवित्र मानी गयी हैं। वहीं कपालमोचन है। उस तीर्थमें जाकर जो श्राद्धमें पिण्डदानके द्वारा पितरोंको तृप्त करेंगे, उन्हें परम प्रकाशमान लोकोंकी प्राप्ति होती है। जो ब्रह्महत्यारा है, वह भी यदि कभी अविमुक्तक्षेत्र काशीकी यात्रा करे तो उस क्षेत्रके माहात्म्यसे उसकी ब्रह्महत्या निवृत्त हो जाती है। जो परम पुण्यात्मा मानव काशीपुरीमें गये हैं, वे अक्षय, अजर एवं शरीररहित परमात्मस्वरूप हो जाते हैं। कुरुक्षेत्र, हरिद्वार और पुष्करमें भी वह सद्गति सुलभ नहीं है, जो काशीवासी मनुष्योंको प्राप्त होती है। वहाँ रहनेवाले प्राणियोंको सब प्रकारसे तप और सत्यका फल मिलता है, इसमें संशय नहीं है। काशीपुरीमें रहनेवाले दुष्कर्मी और वायुद्वारा उड़ायी हुई वहाँकी धूलिका स्पर्श पाकर परम गतिको प्राप्त कर लेते हैं। जो एक मासतक वहाँ जितेन्द्रियभावसे नियमित भोजन करते हुए निवास करता है, उसके द्वारा भलीभाँति महापाशुपत व्रतका अनुष्ठान सम्पन्न हो जाता है। वह जन्म और मृत्युके भयको जीतकर परम गतिको प्राप्त होता है। वह पुण्यमयी निःश्रेयसगति तथा योगगतिको पा लेता है। सैकड़ों जन्मोंमें भी योगगति नहीं प्राप्त की जा सकती; परंतु काशीक्षेत्रके माहात्म्य तथा भगवान् शङ्करके प्रभावसे उसकी प्राप्ति हो जाती है। शुभानने! जो प्रतिदिन एक समय भोजन करके एक मासतक काशीमें निवास करता है, वह जीवनभरके पापको एक ही महीनेमें नष्ट कर देता है। जो मानव मृत्युपर्यन्त अविमुक्त क्षेत्रको नहीं छोड़ता और ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक वहाँ निवास करता है, वह साक्षात् शङ्कर होता है। जो विघ्नोंसे आहत होकर भी काशी नहीं छोड़ता, वह जरा-मृत्यु तथा इस नश्वर जन्मसे छूट जाता है। जो इस देहका अन्त होनेतक निरन्तर काशीपुरीका सेवन करते हैं, वे मृत्युके पश्चात्

हंसयुक्त विमानसे दिव्यलोकोंमें जाते हैं । जिसका चित्त विषयोंमें आसक्त है, जिसने भक्ति और सद्बुद्धि त्याग दी है, ऐसा मनुष्य भी इस काशीक्षेत्रमें मरकर फिर संसार-बन्धनमें नहीं पड़ता । पृथ्वीपर यह काशी नामक श्रेष्ठ तीर्थ स्वर्ग तथा मोक्षका हेतु है । जो वहाँ मृत्युको प्राप्त होता है, उसकी मुक्तिमें कोई संशय नहीं है । सहस्रों जन्मोंतक योग-साधन करके योगी जिस पदको पाता है, वही परम मोक्षरूप पद काशीमें मृत्यु होनेमात्रसे मनुष्य प्राप्त कर लेता है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णसंकर, म्लेच्छ, कीट-पतंग आदि पाप-योनिके जीव, कीड़े, चींटियाँ तथा दूसरे-दूसरे मृग और पक्षी आदि जीव काशीमें समयानुसार (अपने-आप) मृत्यु होनेपर देवेश्वर शिवरूप माने गये हैं । शुभे ! जो जीव वास्तवमें वहाँ प्राण-त्याग करते हैं, वे रुद्र-शरीर पाकर भगवान् शिवके समीप आनन्द भोगते हैं । मनुष्य सकाम हो या निष्काम अथवा वह पशु-पक्षीकी योनिमें क्यों न पड़ा हो, अविमुक्तक्षेत्र (काशी) में प्राण-त्याग करनेपर वह अवश्य ही मोक्षका भागी होता है, इसमें संशय नहीं है । जो मानव सदा भगवान् शिवकी भक्तिमें तत्पर रहनेवाले और उनके अनन्य भक्त हैं, उन्हींके चिन्तनमें जिनका चित्त आसक्त है और भगवान् शिवमें ही जिनके प्राण बसते हैं, वे निःसंदेह जीवन्मुक्त हैं । अविमुक्त क्षेत्रमें मृत्युके समय साक्षात् भगवान् भूतनाथ कर्मप्रेरित जीवोंके कानमें मन्त्रोपदेश देते हैं । स्वयं भगवान् श्रीरामने अत्यन्त प्रसन्नचित्त हो अविमुक्तनिवासी कल्याणकारी शिवसे यह कहा है कि 'शिव ! तुम जिस-किसी भी मुमूर्षु जीवके दाहिने कानमें मेरे मन्त्रका उपदेश करोगे, वह मुक्त हो जायगा ।' अतः भगवान् शिवकी कृपाशक्तिसे अनुगृहीत हो सभी जीव वहाँ परम गतिको प्राप्त होते हैं । मोहिनी ! यह मैंने अविमुक्त क्षेत्रके संक्षेपमें बहुत थोड़े गुण बताये हैं । समुद्रके रत्नोंकी भाँति अविमुक्त क्षेत्रके गुणोंका विस्तार अनन्त है । जो ज्ञान-विज्ञानमें निष्ठा रखनेवाले तथा परमानन्दकी प्राप्तिके इच्छुक हैं, उनके लिये जो गति बतायी गयी है, निश्चय ही काशीमें मरे हुएको वही गति प्राप्त होती है ।

काशीका योगपीठ है श्मशान-तीर्थ, जिसे मणिकर्णिका कहते हैं । अपने कर्मसे भ्रष्ट हुए मनुष्योंको भी काशीके श्मशानादि तीर्थोंमें मोक्षकी प्राप्ति बतायी गयी है । काशीमें भी अन्य सब तीर्थोंकी अपेक्षा मणिकर्णिका उत्तम मानी गयी है । वहाँ नित्य भगवान् शिवका निवास माना गया है । वरानने ! दस अश्वमेध यज्ञोंका जो फल बताया गया है, उसे धर्मात्मा पुरुष मणिकर्णिकामें स्नान करके प्राप्त कर लेता है । जो वहाँ वेदवेत्ता ब्राह्मणको अपना धन दान करता है, वह शुभगतिको पाता और अग्निकी भाँति तेजसे उद्दीप्त होता है । जो मनुष्य वहाँ उपवास करके ब्राह्मणोंको तृप्त करता है, वह निश्चय ही सौत्रामणी यज्ञका फल प्राप्त करता है । जो मनुष्य वहाँ चार बछड़ियोंसे युक्त साँड़ को उत्सर्ग-विधानसे तथा वृषभको छत्र आदिसे चिह्नित करके छोड़ता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है । इसमें संदेह नहीं कि वह पितरोंके साथ मोक्षको प्राप्त होता है । इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या लाभ, भगवान् शिवकी प्रसन्नताके उद्देश्यसे वहाँ जो कुछ भी धर्म आदि किया जाता है, उसका फल अनन्त है । जो अविमुक्त-क्षेत्रमें महादेवजीकी पूजा और स्तुति करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त एवं अजर-अमर होकर स्वर्गमें निवास करते हैं । जो मुक्तात्मा पुरुष एकाग्रचित्त हो इन्द्रिय-समुदायको संयममें रखकर ध्यान लगाये हुए शतरुद्रीका जप करते हैं और अविमुक्त-क्षेत्रमें सदा निवास करते हैं, वे उत्तम द्विज कृतार्थ हो जाते हैं । यशस्विनी ! जो काशीमें एक दिन उपवास करेगा, उसे सौ वर्षोंतक उपवास करनेका फल प्राप्त होगा ।

इससे आगे गङ्गा और वरणाका संगमरूप उत्तम तीर्थ है, जो सायुज्य मुक्ति देनेवाला है । जब बुधवारको श्रवण और द्वादशीका योग हो, उस समय उसमें स्नान करके मनुष्य मोक्षरूप फल पाता है । शुभानने ! जो वहाँ उस समय श्राद्ध करता है, वह अपने समस्त पितरोंका उद्धार करके विष्णुलोकमें जाता है । गङ्गाके साथ वरणा और असीका जो संगम है, वह समस्त लोकोंमें विख्यात है; वहाँ विधिपूर्वक अन्नदान करके मनुष्य फिर इस संसारमें जन्म नहीं लेता । जो मनुष्य वहाँ भक्तिपूर्वक संगमेश्वरका पूजन करता है, वह निग्रह और अनुग्रहमें समर्थ साक्षात् देवदेवेश्वर शिव (-तुल्य) है । देवेश्वरसे पूर्वमें भगवान् केशव विराजमान हैं और केशवके पूर्वमें जगद्विख्यात संगमेश्वर विराजमान हैं ।

काशीके तीर्थ एवं शिवलिङ्गोंके दर्शन-पूजन आदिकी महिमा

पुरोहित वसु कहते हैं—सुन्दरि ! संगमेश्वर पीठके पश्चिम भागमें राजा सगरके द्वारा स्थापित किया हुआ चतुर्मुख शिवलिङ्ग है। उससे वायव्य कोणमें भद्रदेह नामक तालाब है, जो गौओंके दूधसे भरा गया है। वह सम्पूर्ण पातकोंका नाश करनेवाला है । मोहिनी ! सहस्रों कपिला गौओंके विधिपूर्वक दान करनेका जो फल है, उसे मनुष्य वहाँ स्नान करनेमात्रसे पा लेता है । जब पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रसे युक्त पूर्णिमा हो, उस समय वहाँके लिये अतिशय पुण्यकाल माना गया है, जो अश्वमेध यज्ञका फल देनेवाला है । वहीं श्मशानभूमिमें विख्यात देवी भीष्मचण्डिकाका दर्शन होता है। उनकी पूजा करनेसे मनुष्य कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता । अन्तकेश्वरसे पूर्व, सर्वेश्वरके दक्षिणभागमें और मातलीश्वरसे उत्तर दिशामें कृत्तिवासेश्वर नामक शिवलिङ्ग है। देवि ! कृत्तिवासेश्वरका दर्शन और पूजन करके मनुष्य एक ही जन्ममें शिवके समीप परम गति प्राप्त कर लेता है। सत्ययुगमें पहले उसका नाम त्र्यम्बकेश्वर था, त्रेतामें वही कृत्तिवासेश्वरके नामसे प्रसिद्ध हुआ। द्वापरमें उन्हीं भगवान् शिवका नाम महेश्वर कहा जाता है तथा कलियुगमें सिद्ध पुरुष उन्हें हस्तिपालेश्वर कहते हैं। यदि सनातन मोक्षप्रद तारकज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा हो तो बारंबार भगवान् कृत्तिवासेश्वरका दर्शन करना चाहिये। उन देवाधिदेवका दर्शन करनेसे ब्रह्महत्यारा भी पापमुक्त हो जाता है । उनका स्पर्श और पूजन करनेपर सम्पूर्ण यज्ञोंका फल मिलता है। जो उन सनातन महादेवजीका बड़ी श्रद्धासे पूजन करते हैं और फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशीको एकाग्रचित्त हो पुष्प, फल, बिल्वपत्र, उत्तम और साधारण भक्ष्यपदार्थ दूध, दही, घी, मधु और जलसे उस उत्तम शिवलिङ्गका अर्चन तथा डमरूके डिंडिम घोष, नमस्कार, नृत्य, गीत, अनेक प्रकारके सुवाद्य, स्तोत्र एवं मन्त्रोंद्वारा शुभस्वरूप भगवान् शिवको तुष्ट करते हैं और मोहिनी ! एक रात उपवास करके परम भक्तिभावसे पूजन करके श्रीमहादेवजीको संतुष्ट करते हैं, वे परम पदको प्राप्त कर लेते हैं।

जो चैत्र मासकी चतुर्दशीको परमेश्वर शिवकी पूजा करता है, वह धनके स्वामी कुबेरके समीप जाकर उन्हींकी भाँति क्रीड़ा करता है। जो वैशाखकी चतुर्दशीको पवित्रचित्तसे भगवान् शिवकी अर्चना करता है, वह स्वामिकार्तिकेयके लोकमें जाकर उन्हींका अनुचर होता है । जो ज्येष्ठ मासकी चतुर्दशीको श्रद्धापूर्वक भगवान् शङ्करकी पूजा करता है, वह स्वर्गलोकमें जाता है और प्रलयकाल आनेतक वहाँ निवास करता है। भद्रे! जो आषाढ मासकी चतुर्दशीको पवित्रभावसे कृत्तिवासेश्वर शिवकी पूजा करता है, वह सूर्यलोकमें जाकर इच्छानुसार क्रीड़ा करता है। जो श्रावणकी चतुर्दशीको वहाँ प्रकट हुए कामेश्वर शिवकी पूजा करता है, उसे भगवान् शिव वरुणलोक देते हैं। जो भाद्रपद मासकी चतुर्दशीको भाँति-भाँतिके पुष्पों और फलोंद्वारा भगवान् शङ्करकी पूजा करता है, उसे इन्द्रका सालोक्य प्राप्त होता है । जो आश्विन कृष्णा चतुर्दशीको भगवान् शिवकी पूजा करता है, वह पितरोंके लोकमें जाता है । जो कार्तिक मासकी चतुर्दशीको देवेश्वर महादेवजीकी पूजा करता है, वह चन्द्रलोकमें जाकर जबतक इच्छा हो, तबतक वहाँ क्रीड़ा करता है। जो मार्गशीर्ष कृष्णा चतुर्दशीको पिनाकधारी भगवान् शिवकी पूजा करता है, वह भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है और वहाँ अनन्त कालतक क्रीड़ा-सुखमें निमग्न रहता है। जो पौष मासमें प्रसन्नचित्त होकर भगवान् शिवकी अर्चना करता है, वह नैर्ऋत्यलोकमें जाता है और निर्ऋतिके साथ ही आनन्दका अनुभव करता है। जो माघ मासमें सुन्दर पुष्प एवं मूल-फल आदिके द्वारा भगवान् शङ्करकी आराधना करता है वह संसार-सागरका त्याग करके भगवान् शिवके लोकमें जाता है । अतः यदि शिवधाममें जानेकी इच्छा हो तो यत्नपूर्वक कृत्तिवासेश्वरका पूजन तथा अविमुक्त क्षेत्रमें निवास करना चाहिये। काशीमें व्यासेश्वरके पश्चिम घण्टाकर्ण (या कर्णघण्टा) नामक सरोवर है। देवि ! उस सरोवरमें स्नान करके व्यासेश्वरका दर्शन करनेसे मनुष्यकी जहाँ-कहीं भी मृत्यु हो, उसे काशीमें मरनेका ही फल प्राप्त होता है । मोहिनी ! यदि मनुष्य दण्डखात-तीर्थमें स्नान करके अपने पितरोंका तर्पण करे तो उसके नरक-निवासी पितर वहाँसे निकलकर पितृलोकमें चले जाते हैं। देवि ! जो पापकर्मी मनुष्य पिशाचयोनिको प्राप्त हो गये हैं, उनके लिये यदि वहाँ पिण्डदान किया जाय तो उनका उस पिशाच-शरीरसे उद्धार हो जाता है । उस खातके दर्शनसे मानव कृतकृत्य हो जाता है । वहीं लोकको कल्याण प्रदान करनेवाली ललिता देवी विद्यमान हैं। यह मनुष्य-जन्म

दुर्लभ है। विद्युत्पातके समान चञ्चल है, उसे पाकर जिसने ललिता देवीका दर्शन कर लिया, उसे जन्मका भय कहाँसे हो सकता है? पृथ्वीकी परिक्रमा करके मनुष्य जिस फलको पाता है, वही फल उसे काशीमें ललिता देवीके दर्शनसे मिल जाता है। प्रत्येक मासकी चतुर्थीको उपवास करके ललिता देवीकी पूजा और उनके समीप रातमें जागरण करे। देवि! ऐसा करनेसे उसे सम्पूर्ण समृद्धियाँ प्राप्त होती हैं। मोहिनी! तीनों लोकोंद्वारा पूजित नलकूबरकेश्वर सब सिद्धियोंके दाता हैं। उनकी पूजा करके मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। देवि! उनके दक्षिणभागमें मणिकर्णी नामसे प्रसिद्ध शिवलिङ्ग है। उसके आगे एक महान् तीर्थ (जलाशय) है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। भगवान् मणिकर्णीश्वर कुण्डमें विराजमान हैं। उनका दर्शन, नमस्कार और पूजन करनेसे फिर गर्भमें निवास नहीं करना पड़ता। मणिकर्णीश्वरके दक्षिण पार्श्वमें गङ्गाजीके जलमें स्थापित परम उत्तम गङ्गेश्वर-लिङ्ग है। उसकी पूजा करनेसे देवलोककी प्राप्ति होती है।

मोहिनी! अब मैं काशीके दूसरे मन्दिरका वर्णन करता हूँ, जहाँ देवाधिदेव महादेवजीका रुचिर एवं अभीष्ट स्थान है। सुभगे! पूर्वकालमें कुछ राक्षस भगवान् चन्द्रमौलिका शुभ लिङ्ग साथ ले अन्तरिक्ष-मार्गसे बड़ी उतावलीके साथ जा रहे थे। जिस समय वह शिवलिङ्ग इस काशी-क्षेत्रमें पहुँचा, उस समय महादेवजीने सोचा—'क्या उपाय किया जाय, जिससे मेरा अविमुक्त-क्षेत्रसे वियोग न हो।' शुभे! देवेश्वर भगवान् शिव इस बातका विचार कर ही रहे थे कि उस स्थानपर मुर्गेका शब्द सुनायी दिया। देवि! उस शब्दको सुनकर राक्षसोंके मनमें भय समा गया और वे प्रातःकाल उस शिवलिङ्गको वहीं छोड़कर वहाँसे भाग गये। राक्षसोंके चले जानेपर वहीं अत्यन्त रुचिर एवं सुन्दर स्थानमें वह लिङ्ग स्थित हुआ। साक्षात् देवदेव भगवान् शिव उस अविमुक्त-क्षेत्रमें उस शिवलिङ्गके रूपमें विराजमान हुए। इसीलिये उसे अविमुक्त कहते हैं। उस समय देवताओंने महादेवजीका नाम अविमुक्त रख दिया, जो परम पवित्र अक्षरोंसे युक्त है। जो प्राणी वहाँ मृत्युको प्राप्त होते हैं, वे स्थावर हों या जङ्गम, उन सबको [illegible] देनेवाला है। भगवान् अविमुक्तके [illegible] सुन्दर बावड़ी है, उसका जल पीनेसे इस लोकमें पुनरावृत्ति नहीं होती। जिन मनुष्योंने उक्त बावड़ीका जल पीया है, वे कृतार्थ हैं। उन्हें निश्चय ही तत्त्वज्ञान प्राप्त होता है। मनुष्य बावड़ीके जलमें स्नान करके यदि दण्डेश्वर एवं अविमुक्तेश्वरका दर्शन करे तो वह क्षणमात्रमें [illegible] भागी होता है। काशीपुरी, श्मशानघाट, अविमुक्तस्थान और अविमुक्तेश्वर लिङ्गका दर्शन करके मनुष्य शिवगणोंका अधिपति होता है। अविमुक्तेश्वर लिङ्गका दर्शन करनेसे मानव सम्पूर्ण पापों, रोगों तथा पशुपाश (जीवके अज्ञानमय बन्धन) से मुक्त हो जाता है।

अविमुक्तके आगे एक शिवलिङ्ग स्थित है, जिसका मुख पश्चिमकी ओर है। भद्रे! वह ज्ञानेश्वर नामसे विख्यात है। उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य ज्ञानी हो जाता है। देवि! उसके उत्तरमें चतुर्मुख लिङ्ग है, जो चतुर्थेश्वरके नामसे प्रसिद्ध है। वह श्रेष्ठ शिवलिङ्ग पाप-भयका निवारण करनेवाला है। वाराणसी नामक क्षेत्र पृथ्वीपर प्राणियोंके लिये मुक्तिदायक है। उसमें भी अविमुक्तेश्वर तो जीवन्मुक्त कहा गया है (वह जीवन्मुक्ति देनेवाला है)। काशीमें जहाँ कहीं भी जो [illegible] है, उसके लिये गणपति-पदकी प्राप्ति बतायी गयी है और जो वहाँ प्राण-त्याग करता है, वह आत्यन्तिक मोक्षको प्राप्त करता है। उपर्युक्त सीमाके भीतरी क्षेत्रमें प्रथम आवरण बताया गया है। द्वितीय आवरणमें पूर्व दिशामें [illegible] है। उस स्थानमें सात करोड़ शिवलिङ्ग विद्यमान हैं। उनके दर्शनमात्रसे यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। वे सब सिद्ध लिङ्ग हैं। काशीमें जो पवित्र कूप, सरोवर, बावड़ी, नदी और कुण्ड कहे गये हैं, वे ही सिद्धपीठ हैं। जो एकाग्रचित्त हो इन सबमें स्नान करेगा और वहाँके शिवलिङ्गोंका दर्शन करेगा, वह फिर इस संसारमें जन्म नहीं ले सकता। पृथ्वीपर और अन्तरिक्षमें जो-जो तीर्थ हैं, उनमें मुख्य तीर्थोंका मैंने तुमसे वर्णन किया है। वरारोहे! तीर्थयात्राको सब पापोंका नाश करनेवाली कहा गया है।

काशी-यात्राका काल, यात्राकालमें यात्रियोंके लिये आवश्यक कृत्य, अवान्तर तीर्थ और शिवलिङ्गोंका वर्णन

पुरोहित वसु कहते हैं—मोहिनी! अब मैं यात्रा-कालका वर्णन करता हूँ, जिसे देवता आदिने नियत किया है। वह यात्रा यथायोग्य फलकी प्राप्ति करानेवाली है। पूर्वकालमें देवताओंने काशीमें रहकर चैत्र मासमें यह तीर्थयात्रा की थी। वे कामकुण्डपर स्थित होकर स्नान एवं पूजनमें तत्पर रहते थे। शुभानने! ज्येष्ठ मासमें [illegible] स्नान-पूजामें तत्पर रहनेवाले सिद्धोंने यहाँकी शुभ यात्रा की है। गन्धर्वोंने आषाढ़ मासमें यहाँकी यात्रा की थी। वे नित्य देव[illegible]

कुण्डपर रहकर स्नान-पूजन किया करते थे। मोहिनी! विद्याधरोंने भाद्र मासमें यह यात्रा की थी। वे लक्ष्मीकुण्डपर रहकर स्नान-पूजन करते थे। वरानने! यक्षोंने आश्विन मासमें यह यात्रा सम्पन्न की है। वे मार्कण्डेय-कुण्डपर रहकर स्नान-पूजनमें संलग्न थे। मोहिनी! नागोंने मार्गशीर्ष मासमें यह यात्रा की है। वे कोटितीर्थमें रहकर स्नान-पूजन आदि करते थे। शुभलोचने! गुह्यकोंने कपालमोचनतीर्थमें रहकर स्नान ध्यान एवं पूजन आदि करते हुए पौष मासमें यहाँकी यात्रा सम्पन्न की है। शोभने! पिशाचोंने फाल्गुन मासमें काशीकी यात्रा की थी। वे कालेश्वर-कुण्डपर रहकर स्नान-पूजन आदिमें तत्पर रहते थे। देवि! शुभ फाल्गुन मासमें शुक्ल पक्षकी जो चतुर्दशी है, उसीमें पिशाचोंने यात्रा की थी। इसीलिये उसे पिशाच-चतुर्दशी कहते हैं।

शुभानने! अब मैं यात्राका आवश्यक कृत्य बतलाऊँगा, जिसके करनेसे मनुष्य यात्राका फल पाता है। यात्राके समय जलसे भरे हुए सुन्दर घड़ोंको वस्त्रसे ढककर फल, फूल और मिष्टान्नके साथ उनका दान करना चाहिये। चैत्रके शुक्लपक्षमें महान् फल देनेवाली जो तृतीया है, उसमें मनुष्योंको भक्ति-भावसे गौरी देवीका दर्शन करना चाहिये। वरानने! स्नान करके गोप्रेक्षतीर्थमें जाना चाहिये और स्वर्गद्वारमें जो कालिका देवी हैं, उनकी यत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये।

इनके सिवा गंगा और वरणा भी श्रेष्ठ एवं कल्याणमयी देवी कही गयी हैं, उनका भी भक्तिभावसे दर्शन करना चाहिये। वे सम्पूर्ण कामनाओंका फल देनेवाली हैं। तदनन्तर पवित्र व्रतका पालन करनेवाले शिवभक्त ब्राह्मणोंको भोजन कराना और वस्त्र तथा भरपूर दक्षिणाद्वारा उनका यथायोग्य सत्कार करना चाहिये।

अब मैं उन विनायकोंका परिचय देता हूँ, जो काशी-क्षेत्रके निवासमें विघ्न डालनेवाले हैं। देवि! उनका पूजन करके मनुष्य काशीवासका निर्विघ्न फल प्राप्त करता है। पहले ढुंढिविनायक, फिर किलिविनायक, देवीविनायक, गोप्रेक्षविनायक, हस्तिहस्तीविनायक तथा सिन्दूर्यविनायकका दर्शन करना चाहिये। देवि! चतुर्थीको इन सभी विनायकों-का दर्शन करे और इनकी प्रसन्नताके लिये ब्राह्मणको मिठाई खिलावे। इस कार्यसे मनुष्यको सिद्धि प्राप्त होती है।

अब मैं काशीक्षेत्रकी रक्षा करनेवाली चण्डिकाओंका वर्णन करता हूँ। दक्षिण दिशामें दुर्गा रक्षा करती हैं। नैर्ऋत्य कोणमें अन्तरेश्वरी, पश्चिममें अङ्गारेश्वरी, वायव्य कोणमें भद्रकाली, उत्तर दिशामें भीमचण्डा, ईशानकोणमें महामत्ता, पूर्व दिशामें ऊर्ध्वकेशीसहित शाङ्करी देवी, अग्निकोणमें अधःकेशी तथा मध्यभागमें चित्रघण्टा देवी रक्षा करती हैं। जो मानव इन चण्डिका देवियोंका दर्शन करता है, उसपर प्रसन्न होकर वे सब-की-सब तत्परतापूर्वक उसके लिये क्षेत्रकी रक्षा करती हैं। देवि! ये पापियोंके लिये सदा विघ्न उपस्थित करती हैं, अतः रक्षाके लिये विनायकोंसहित उक्त देवियोंकी सदा पूजा करनी चाहिये।

भीष्मजी काशीपुरीमें आकर उत्तम पञ्चायतनरूपसे देवेश्वर शिवकी आराधना करते हुए कुछ कालतक यहाँ रहे। सुभगे! उस स्थानपर भगवान् शिव स्वयं प्रकट हुए थे, जो गोप्रेक्षकके नामसे विख्यात हुए। सम्पूर्ण देवता उनकी स्तुति करते हैं। गोप्रेक्षेश्वरके पास आकर उनका दर्शन और पूजन करके मनुष्य कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता और सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। एक समय वनकी गौएँ दावानलसे दग्ध हो इधर-उधर भटकती हुई इस कुण्डके समीप आयीं और यहाँका जल पीकर शान्त हुईं। तबसे यह कपिलाह्रद कहलाता है। यहाँ प्रकट होकर साक्षात् भगवान् शिव वृषध्वज नामसे विख्यात हुए। भगवान् शिवने न केवल वहाँ निवास किया, वे वहाँ सबको प्रत्यक्ष दर्शन देते हुए शिवलिङ्गरूपमें विराजमान हैं। जो एकाग्रचित्त हो इस कपिलाह्रद-तीर्थमें स्नान करके वृषध्वज शिवका दर्शन करता

है, वह सम्पूर्ण यज्ञोंका फल पाता है। वह स्वर्गलोकमें जाता है। भगवान् वृषभध्वजकी पूजा करके वहाँ मरा हुआ पुरुष शिवरूप हो जाता है। अथवा शरीर-भेदसे अत्यन्त दुर्लभ शिवगणका स्वरूप धारण करता है। इसी प्रदेशमें गौओंने स्वयं ब्रह्माजीके अनुरोधसे सम्पूर्ण लोकोंकी शान्तिके लिये तथा सबको पवित्र करनेके उद्देश्यसे अपना दुग्ध दान किया था; जिससे भद्रदोह नामक सरोवर प्रकट हुआ, जो पवित्र, पापहारी एवं शुभ है। उस स्थानमें स्नान करनेवाला मनुष्य साक्षात् वागीश्वर होता है। वहाँ परमेष्ठी ब्रह्माजीने स्वयं ले आकर एक शिवलिङ्ग स्थापित किया है। फिर ब्रह्माजीसे लेकर भगवान् विष्णुने दूसरा शिवलिङ्ग स्थापित किया, जो हिरण्यगर्भके नामसे वहाँ विद्यमान है। तदनन्तर ब्रह्माजीने पुनः इसी कारणसे स्वर्लोकेश्वर नामक शिवलिङ्ग स्थापित किया; जो स्वर्गीय लीलाका दर्शन करानेवाला है। देवताओंके स्वामी उन स्वर्लोकेश्वरका दर्शन करके मनुष्य शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। यहाँ प्राणत्याग करनेसे फिर कभी वह संसारमें जन्म नहीं लेता। उसकी वह अक्षयगति होती है, जो केवल योगियोंके लिये सुलभ बतायी गयी है।

भूमण्डलके उसी प्रदेशमें देवताओंके लिये कण्टकरूप दैत्य व्याघ्रका रूप धारण करके रहता था। वह बड़ा बलवान् और अभिमानी था। भगवान् शङ्करने उसे मारा और उस स्थानपर व्याघ्रेश्वर नामसे प्रसिद्ध होकर नित्य निवास किया। उन देवेश्वरका दर्शन करके मनुष्य कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता। हिमवान्के द्वारा स्थापित एक शिवलिङ्ग है, जो शैलेश्वरके नामसे विख्यात है। भद्रे! शैलेश्वरका दर्शन करके मनुष्य कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता। उत्पल और विदल नामके जो दो दैत्य ब्रह्माजीके वरदानसे [illegible] वे दोनों स्त्री-विषयक लोलुपताके [illegible] मारे गये। एक शार्ङ्गधनुषसे मारा गया और दूसरा [illegible] अर्थात् भालेसे। इन दोनों शस्त्रोंके नामसे दो [illegible] स्थापित किये गये हैं। भद्रे! जो मनुष्य [illegible] विद्यमान उक्त दोनों लिङ्गोंका दर्शन करता है, [illegible] जन्ममें सिद्ध होकर कभी शोक नहीं करता। [illegible] उनके सब ओर बहुत-से शिवलिङ्ग स्थापित किये हैं। [illegible] दर्शन करके मनुष्य देहत्यागके पश्चात् भगवान् शिवका [illegible] होता है। वाराणसी नदी परम पवित्र और [illegible] करनेवाली है। यह इस पवित्र क्षेत्रसे सुशोभित [illegible] गङ्गामें मिली है। उसके सङ्गमपर ब्रह्माजीने उत्तम शिवलिङ्ग की स्थापना की है, जो सङ्गमेश्वरके नामसे [illegible] है, उसका दर्शन करना चाहिये। शुभे! जो मानव इन देवनदियोंके सङ्गममें स्नान करके सङ्गमेश्वरका पूजन करता है, उसे जन्म लेनेका भय कैसे हो सकता है! [illegible] भृगुपुत्र शुक्राचार्यने यहाँ एक शिवलिङ्ग स्थापित किया है जो शुक्रेश्वरके नामसे विख्यात है। सम्पूर्ण सिद्ध और देवता भी उसकी पूजा करते हैं। इसका दर्शन करके मनुष्य तत्काल सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और मरनेपर फिर इस संसारमें जन्म नहीं लेता। मोहिनी! महादेवजीने यहाँ [illegible] नामक दैत्यका वध किया था। तत्सम्बन्धी शिवलिङ्गका दर्शन करके मानव सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। इन्द्र आदि देवताओंके द्वारा स्थापित किये हुए इन शिवलिङ्गों-को तुम पुण्यलिङ्ग समझो। ये समस्त कामनाओंको देनेवाले हैं। मोहिनी! इस प्रकार इस अविमुक्त-क्षेत्रमें मैंने तुम्हें ये सब शिवलिङ्ग बताये हैं।

काशीकी गङ्गाके वरणा-संगम, असी-संगम तथा पञ्चगङ्गा आदि तीर्थोंका माहात्म्य

पुरोहित वसु कहते हैं—भद्रे! अब मैं तुम्हें काशीकी गङ्गाका उत्तम माहात्म्य बताता हूँ, जो भोग और मोक्षरूप फल देनेवाला है। अविमुक्त-क्षेत्रमें जो भी कर्म किया जाता है, वह अक्षय हो जाता है। कोई भी पापी अविमुक्त-क्षेत्र (काशी) में जाकर पापरहित हो जानेके कारण कभी नरकमें नहीं पड़ता। शुभे! अविमुक्त-क्षेत्रमें किया हुआ पाप वज्रतुल्य हो जाता है। तीनों लोकोंमें जो मोक्षदायक तीर्थ हैं, वे सम्पूर्ण सदा काशीकी उत्तरवाहिनी गङ्गाका सेवन करते हैं। जो दशाश्वमेधघाटमें स्नान करके [illegible] दर्शन करता है, वह शीघ्र ही पापमुक्त होकर [illegible] छूट जाता है। यों तो पुण्यसलिला गङ्गा सर्वत्र ही [illegible] जैसे पापोंका निवारण करनेवाली हैं, तथापि काशीमें जहाँ उनकी धारा उत्तरकी ओर बहती है, वहाँ उनकी [illegible] महिमा प्रकट होती है। वरणा और गङ्गाके तथा [illegible] गङ्गाके सङ्गममें स्नान करनेमात्रसे मनुष्य [illegible] मुक्त हो जाता है। काशीकी उत्तरवाहिनी गङ्गामें [illegible]

और उस कुण्डमें स्नान करके मनुष्य महापाप आदि पातकोंसे मुक्त हो जाते हैं। सुन्दरी! वहाँ धर्मनद नामसे विख्यात एक कुण्ड है। उसमें धर्म स्वरूपतः प्रकट होकर बड़े-बड़े पातकोंका नाश करते हैं। वहीं धूली एवं धूतपापा भी है जो सर्वतीर्थमयी एवं शुभकारक है। जैसे नदीका वेग तटवर्ती वृक्षोंको गिरा देता है, उसी प्रकार वह धूतपापा समस्त पापराशिको हर लेती है।

काशीमें किरणा, धूतपापा, पुण्य-सलिला सरस्वती, गङ्गा और यमुना—ये पाँच नदियाँ एकत्र बतायी गयी हैं। इनसे त्रिभुवनविख्यात पञ्चनद (पञ्चगङ्गा) तीर्थ प्रकट हुआ है। उसमें डुबकी लगानेवाला मानव फिर पाञ्चभौतिक शरीर नहीं धारण करता। यह पाँच नदियोंका संगम समस्त पापराशियोंका नाश करनेवाला है। उसमें स्नान करनेमात्रसे मनुष्य ब्रह्माण्डमण्डपका भेदन करके परम पदको प्राप्त होता है। प्रयागमें माघमासमें विधिपूर्वक स्नान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह काशीके पञ्चगङ्गातीर्थमें एक ही दिनके स्नानसे मिल जाता है। पञ्चगङ्गामें स्नान और पितरोंका तर्पण करके माधव नामसे प्रसिद्ध भगवान् विष्णुकी पूजा करनेवाला पुरुष फिर इस संसारमें जन्म नहीं लेता। जिन्होंने पञ्चगङ्गामें श्रद्धापूर्वक श्राद्ध किया है, उनके पितर अनेक योनियोंमें पड़े होनेपर भी मुक्त हो जाते हैं। पञ्चनदतीर्थमें श्राद्धकर्मकी महिमाका प्रत्यक्ष दर्शन करके यमलोकमें पितर-लोग यह गाथा गाया करते हैं कि 'क्या हमारे वंशमें भी कोई ऐसा होगा, जो काशीके पञ्चनदतीर्थमें आकर श्राद्ध करेगा! जिससे हमलोग मुक्त हो जायँगे।' पञ्चनदतीर्थमें जो कुछ धन दान किया जाता है, कल्पके अन्ततक उसके पुण्यका क्षय नहीं होता। वन्ध्या स्त्री भी एक वर्षतक पञ्चगङ्गा-तीर्थमें स्नान करके यदि मङ्गलागौरीका पूजन करे तो वह अवश्य ही पुत्रको जन्म देती है। वस्त्रसे छाने हुए पञ्चगङ्गा-के पवित्र जलसे यहाँ दिक्‌श्रुता देवीको स्नान कराकर मनुष्य महान् फलका भागी होता है। पञ्चामृतके एक सौ आठ कलशोंके साथ तुलना करनेपर पञ्चगङ्गाका एक बूँद जल भी उनसे श्रेष्ठ सिद्ध होता है। इस लोकमें पञ्चकूर्च (पञ्चगव्य) पीनेसे जो शुद्धि कही गयी है, वही शुद्धि श्रद्धापूर्वक पञ्चगङ्गा-के जलकी एक बूँद पीनेसे प्राप्त होती है और उसके कुण्डमें स्नान करनेसे राजसूय तथा अश्वमेधयज्ञका जो फल कहा गया है, उससे सौगुना उत्तम फल उपलब्ध होता है। राजसूय और अश्वमेधयज्ञ केवल स्वर्गके साधक हैं, किंतु पञ्चगङ्गाके जलसे ब्रह्मलोकतकके सम्पूर्ण द्वन्द्वोंसे मुक्ति मिल जाती है। सत्ययुगमें वह 'धर्मनद' के नामसे प्रसिद्ध हुआ, त्रेतामें उसीका नाम 'धूतपापा' हुआ। द्वापरमें उसे 'बिन्दु-तीर्थ' कहा जाने लगा और कलियुगमें 'पञ्चनद' के नामसे उसकी ख्याति होती है। पञ्चनद-तीर्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंका शुभ आश्रय है, उसकी अनन्त महिमाका कोई भी वर्णन नहीं कर सकता। भद्रे! इस प्रकार मैंने तुम्हें काशीका उत्तम माहात्म्य बताया है। वह मनुष्योंके लिये सुखद, मोक्षप्रद तथा बड़े बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। महापातकी एवं उपपातकी मानव भी अविमुक्त-क्षेत्रके इस माहात्म्यको सुनकर शुद्ध हो जाता है। ब्राह्मण इसको सुनने और पढ़नेसे वेदोंका विद्वान् होता है। क्षत्रिय युद्धमें विजय पाता है, वैश्य धन-सम्पत्तिसे भरपूर होता है और शूद्रको वैष्णव भक्तोंका सङ्ग प्राप्त होता है। सम्पूर्ण यज्ञोंमें जो फल मिलता है, समस्त तीर्थोंमें जो फल प्राप्त होता है, वह सब इसके पाठसे और श्रवणसे भी मनुष्य प्राप्त कर लेता है। विद्यार्थी इससे विद्या पाता है, धनार्थी धन पाता है, पत्नी चाहनेवाला पत्नी और पुत्रकी इच्छावाला पुरुष पुत्र पाता है।

उत्कलदेशके पुरुषोत्तम-क्षेत्रकी महिमा, राजा इन्द्रद्युम्नका वहाँ जाकर मोक्ष प्राप्त करना

मोहिनी बोली—विप्रवर! मैंने आपके मुखारविन्दसे काशीका उत्तम माहात्म्य सुना। पुराणोंमें मुनियों और आचार्योंका यह वर्णन सुना जाता है कि पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु भी मोक्ष देनेवाले हैं। महाभाग! अब उस पुरुषोत्तम क्षेत्रका माहात्म्य कहिये।

पुरोहित वसुने कहा—देवि! सुनो, मैं तुम्हें ब्रह्माजीके द्वारा कहा हुआ पुरुषोत्तम-क्षेत्रका उत्तम माहात्म्य बतलाता हूँ। भारतवर्षमें दक्षिण समुद्रके तटतक फैला हुआ एक उत्कल नामका प्रदेश है, जो स्वर्ग और मोक्ष देनेवाला है। समुद्रसे उत्तर विरज-मण्डलतकका जो प्रदेश है, वह पुण्यात्माओंका देश है। वह भूभाग सम्पूर्ण गुणोंसे अलंकृत है। विशालाक्षि! समुद्रके उत्तर तटवर्ती उस सर्वोत्तम उत्कल प्रदेशमें सभी पुण्य तीर्थ और पवित्र मन्दिर आदि हैं, जिनका परिचय जाननेयोग्य है। मुक्ति देनेवाला परम उत्तम एवं

पापनाशक पुरुषोत्तम-क्षेत्र परम गोपनीय है। सर्वत्र बालुका-आच्छादित भू-भागमें वह पवित्र एवं धर्म और कामकी पूर्ति करनेवाला परम दुर्लभ क्षेत्र दस योजनतक फैला हुआ है। जैसे नक्षत्रोंमें चन्द्रमा और सरोवरोंमें सागर श्रेष्ठ है, उसी प्रकार समस्त तीर्थोंमें पुरुषोत्तम-क्षेत्र सबसे श्रेष्ठ है। भगवान् पुरुषोत्तमका एक बार दर्शन करके, सागरके भीतर एक बार स्नान करनेसे तथा ब्रह्मविद्याको एक बार जान लेनेसे मनुष्यको गर्भमें नहीं आना पड़ता। देवेश्वर पुरुषोत्तम समस्त जगत्में व्यापक और सम्पूर्ण विश्वके आत्मा हैं। वे जगत्की उत्पत्तिके कारण तथा जगदीश्वर हैं। सब कुछ उन्हींमें प्रतिष्ठित है। जो देवताओं, ऋषियों और पितरोंद्वारा सेवित तथा सर्वभोगसम्पन्न है, ऐसे पुण्यात्मा प्रदेशमें निवास करना किसको नहीं अच्छा लगेगा। इससे बढ़कर इस देशकी श्रेष्ठताके विषयमें और क्या कहा जा सकता है ? जहाँ सबको मुक्ति देनेवाले जगदीश्वर भगवान् पुरुषोत्तम निवास करते हैं, उस उत्कल देशमें जो मनुष्य निवास करते हैं, वे देवताओंके समान तथा धन्य हैं। जो तीर्थराज समुद्रके जलमें स्नान करके भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन करते हैं, वे मनुष्य स्वर्गमें निवास करते हैं। जो उत्कलमें परम पवित्र श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्रके भीतर निवास करते हैं, उन उत्तम बुद्धिवाले उत्कलवासियोंका ही जीवन सफल है; क्योंकि वे भगवान् श्रीकृष्णके उस मुखारविन्दका दर्शन करते हैं, जो तीनों लोकोंको आनन्द देनेवाला है। भगवान्का मुख लाल ओष्ठ और प्रसन्नतासे खिले हुए विशाल नेत्रोंसे सुशोभित है। मनोहर भौंहों, सुन्दर केशों और दिव्य मुकुटसे अलंकृत है। सुन्दर कर्णलतासे उसकी शोभा और बढ़ गयी है। उस मुखपर मन्द-मन्द मुसकान बड़ी मनोहर लगती है। दन्तावली भी बड़ी सुन्दर है। कपोलोंपर मनोहर कुण्डल झिलमिला रहे हैं। नासिका, कपोल सभी परम सुन्दर और उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न हैं।

देवि ! प्राचीन कालकी बात है। सत्ययुगमें इन्द्रके तुल्य पराक्रमी एक राजा थे, जो श्रीमान् इन्द्रद्युम्नके नामसे प्रसिद्ध हुए। वे बड़े सत्यवादी, पवित्र, कार्यदक्ष, सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ, सौभाग्यशाली, शूर, दाता, भोक्ता, प्रिय वचन बोलनेवाले, सम्पूर्ण यज्ञोंके याजक, ब्राह्मण-भक्त, सत्य-प्रतिज्ञ, धनुर्वेद तथा वेद-शास्त्रके निपुण विद्वान् एवं चन्द्रमाकी भाँति मधुर प्रकृतिके थे। राजा इन्द्रद्युम्न भगवान् विष्णुके भक्त, सत्यपरायण, क्रोधको जीतनेवाले, जितेन्द्रिय, अध्यात्म-विद्यातत्पर, न्यायप्राप्त युद्धके लिये उत्सुक तथा धर्म-परायण थे। इस प्रकार सम्पूर्ण गुणोंसे सम्पन्न राजा इन्द्रद्युम्न सारी पृथ्वीका पालन करते थे। एक बार उनके मनमें भगवान् विष्णुकी आराधनाका विचार उठा। वे सोचने लगे—'मैं देवदेव भगवान् जनार्दनकी किस प्रकार आराधना करूँ ? किस क्षेत्रमें, किस नदीके तटपर, किस तीर्थमें अथवा किस आश्रममें मुझे भगवान्की आराधना करनी चाहिये ?' इस प्रकार विचार करते हुए वे मन-ही-मन सम्पूर्ण पृथ्वीपर दृष्टिपात करने लगे। जो-जो पापहारी तीर्थ हैं, उन सबका मानसिक अवलोकन और चिन्तन करके अन्तमें वे परम विख्यात मुक्तिदायक पुरुषोत्तम-क्षेत्रमें गये। अधिकाधिक सेना और वाहनोंके साथ पुरुषोत्तम-क्षेत्रमें जाकर राजाने विधिपूर्वक अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान किया और उसमें पर्याप्त दक्षिणाएँ दीं। तदनन्तर बहुत ऊँचा मन्दिर बनवाकर अधिक दक्षिणाके साथ श्रीकृष्ण, बलभद्र और सुभद्राको स्थापित किया। फिर उन पराक्रमी नरेशने विधिपूर्वक पञ्चतीर्थ करके वहाँ प्रतिदिन स्नान, दान, जप, होम, देवदर्शन तथा भक्तिभावसे भगवान् पुरुषोत्तमकी सविधि आराधना करते हुए देव-देव जगन्नाथके प्रसादसे मोक्ष प्राप्त कर लिया।

राजा इन्द्रद्युम्नके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति

मोहिनी बोली—मुनिश्रेष्ठ ! पूर्वकालमें महाराज इन्द्रद्युम्नने श्रीकृष्ण आदिकी प्रतिमाओंका निर्माण कैसे कराया ? भगवान् लक्ष्मीपति उनपर किस प्रकार संतुष्ट हुए ? ये सब बातें मुझे बताइये।

पुरोहित वसुने कहा—चारुनयने ! वेदके तुल्य माननीय पुराणकी बातें सुनो। मैं श्रीकृष्ण आदिकी प्रतिमाओंके प्रकट होनेका प्राचीन वृत्तान्त कहता हूँ, सुनो। राजा इन्द्रद्युम्नके अश्वमेध नामक महायज्ञके अनुष्ठान और प्रासाद-निर्माणका कार्य पूर्ण हो जानेपर उनके मनमें दिन-रात प्रतिमाके लिये चिन्ता रहने लगी। वे सोचने लगे—'कौन-सा उपाय करूँ, जिससे सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले, सम्पूर्ण लोकोंके उत्पादक देवेश्वर भगवान् पुरुषोत्तमका मुझे दर्शन हो'—इसी चिन्तामें निमग्न रहनेके कारण महाराजको न रात में नींद आती थी, न दिनमें। वे न तो भोग-सामग्री भोगते और न स्नान एवं शृङ्गार ही करते थे। इस दुविधामें पत्थर, लकड़ी अथवा धातु, किससे भगवान् विष्णुकी प्रतिमा

प्रत्यक्ष हो जाती हैं, जिनमें भगवान्‌के सभी लक्षणोंका अङ्कन ठीक-ठीक हो गया है। इन तीनोंमेंसे जिसकी प्रतिमा भगवान्‌को प्रिय तथा सम्पूर्ण देवताओंद्वारा पूजित होगी, जिसकी स्थापना करनेसे भगवान् प्रसन्न हो जायँगे।' इस प्रकारकी चिन्तामें पड़े-पड़े उन्होंने पाञ्चरात्रकी विधिसे भगवान् पुरुषोत्तमका पूजन किया और अन्तमें ध्यानमग्न हो राजाने इस प्रकार स्तुति प्रारम्भ की।

इन्द्रद्युम्न बोले—वासुदेव! आपको नमस्कार है। आप मोक्षके कारण हैं, आपको मेरा नमस्कार है। सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी परमेश्वर! आप इस जन्म-मृत्युरूपी संसार-सागरसे मेरा उद्धार कीजिये। पुरुषोत्तम! आपका स्वरूप निर्मल आकाशके समान है। आपको नमस्कार है। सबको अपनी ओर खींचनेवाले संकर्षण! आपको प्रणाम है। धरणीधर! आप मेरी रक्षा कीजिये। भगवन्! आपका श्रीअङ्ग मेघके समान श्याम है। भक्तवत्सल! आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण देवताओंके निवासस्थान! आपको नमस्कार है। देवप्रिय! आपको प्रणाम है। नारायण! आपको नमस्कार है। आप मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये। नील मेघके समान आभा-वाले घनश्याम! आपको नमस्कार है। देवपूजित परमेश्वर! आपको प्रणाम है। विष्णो! जगन्नाथ! मैं भवसागरमें डूबा हुआ हूँ। मेरा उद्धार कीजिये। पूर्वकालमें महावराहरूप धारण करके आपने जिस प्रकार जलमें डूबी हुई पृथ्वीका रसातलसे उद्धार किया था, उसी प्रकार मेरा भी दुःखके समुद्रसे उद्धार कीजिये। कृष्ण! आपकी वरदायक मूर्तियों-का मैंने स्तवन किया है। ये बलदेव आदि जो पृथक्‌रूपसे स्थित हैं, इन सबके रूपमें आप ही विराजमान हैं। देवेश! प्रभो! अच्युत! गरुड़ आदि पार्षद आयुधोंसहित इन्द्र आदि दिक्पाल आपके ही अङ्ग हैं। देवेश! आप मुझे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष देनेवाला वर प्रदान करें। हरे! आप परमात्मा, अक्षर, चेतनस्वरूप तथा निरञ्जन हैं। आपका जो परम स्वरूप है, वह भाव और अभावसे रहित, निर्लेप, निर्मल, सूक्ष्म, सुदुर्लभ, अचल, ध्रुव, समस्त उपाधियोंसे विमुक्त और सुखस्वरूपसे स्थित है। प्रभो! उसे देवता भी नहीं जानते, फिर मैं कैसे जान सकता हूँ। उससे भिन्न जो आपका दूसरा स्वरूप है, वह पीताम्बरधारी और चार भुजाओंसे युक्त है। उसके हाथों-में शङ्ख, चक्र और गदा सुशोभित हैं। वह मुकुट और अङ्गद धारण करता है। उसका वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्नसे युक्त है तथा वह वनमालासे विभूषित रहता है। देवता तथा आपके अन्यान्य शरणागत भक्त उसीकी पूजा करते हैं। देव! आप सम्पूर्ण देवताओंमें श्रेष्ठ एवं भक्तोंको अभय देनेवाले हैं। मनोहर कमलके समान नेत्रोंवाले प्रभो! मैं विषयोंके समुद्रमें डूबा हूँ, आप मेरी रक्षा कीजिये। लोकेश! मैं आपके सिवा और किसीको नहीं देखता, जिसकी शरणमें जाऊँ। कमलाकान्त! मधुसूदन! आप मुझपर प्रसन्न होइये। मैं बुढ़ापे और सैकड़ों व्याधियोंसे युक्त हो नाना प्रकारके दुःखोंसे पीड़ित हूँ तथा अपने कर्मपाशमें बँधकर हर्ष-शोकमें मग्न हो विवेकशून्य हो गया हूँ। अत्यन्त भयंकर घोर संसार-समुद्रमें गिरा हूँ। यह भवसागर विषयरूपी जलराशिके कारण दुस्तर है। इसमें राग-द्वेषरूपी मत्स्य भरे पड़े हैं। इन्द्रियरूपी भँवरोंसे यह बहुत गहरा प्रतीत होता है। इसमें तृष्णा और शोकरूपी लहरें व्याप्त हैं। यहाँ न कोई आश्रय है, न अवलम्ब। यह सारहीन एवं अत्यन्त चञ्चल है। प्रभो! मैं मायासे मोहित होकर इसके भीतर चिरकालसे भटक रहा हूँ। हजारों भिन्न-भिन्न योनियों-में बारबार जन्म लेता हूँ। प्रभो! देवता, पशु, पक्षी, मनुष्य तथा अन्य चराचर भूतोंमें ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ मेरा जाना न हुआ हो। सुरश्रेष्ठ! जैसे रहटमें रस्सीसे बँधी हुई घटी कभी ऊपर जाती, कभी नीचे आती और कभी बीच-में ठहरी रहती है, उसी प्रकार मैं कर्मरूपी रज्जुमें बँधकर दैवयोगसे ऊपर, नीचे तथा मध्यवर्ती लोकमें भटकता रहता हूँ। इस प्रकार यह संसार-चक्र बड़ा ही भयानक एवं रोमाञ्चकारी है। मैं इसमें दीर्घकालसे घूम रहा हूँ, किंतु कभी मुझे इसका अन्त नहीं दिखायी देता। समझमें नहीं आता, अब मैं क्या करूँ? हरे! मेरी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ व्याकुल हो गयी हैं। मैं शोक और तृष्णासे आक्रान्त होकर अब कहाँ जाऊँ? मेरी चेतना लुप्त हो रही है। देव! इस समय व्याकुल होकर मैं आपकी शरणमें आया हूँ। श्रीकृष्ण! मैं संसार-समुद्रमें डूबकर दुःख भोग रहा हूँ, मुझे बचाइये। जगन्नाथ! यदि आप मुझे अपना भक्त मानते हैं तो मुझपर कृपा कीजिये। आपके सिवा दूसरा कोई ऐसा बन्धु नहीं है जो मेरी तरफ खयाल करेगा। देव! प्रभो! आप-जैसे स्वामीकी शरणमें आकर अब मुझे जीवन-मरण अथवा योगक्षेमके लिये कहीं भी भय नहीं होता। हरे! अपने कर्मोंसे बँधे रहनेके कारण मेरा जहाँ-कहीं भी जन्म हो, वहाँ सर्वदा आपमें मेरी अविचल भक्ति बनी रहे। देव! आपकी आराधना करके देवता, दैत्य, मनुष्य तथा अन्य संयमी पुरुषोंने परम सिद्धि प्राप्त की है, फिर कौन आपकी पूजा नहीं करेगा? भगवन्! ब्रह्मा आदि देवता भी आपकी

स्तुति करनेमें समर्थ नहीं हैं, फिर मानवी बुद्धिसे मैं आपकी स्तुति कैसे कर सकता हूँ; क्योंकि आप प्रकृतिसे परे हैं। अतः देवेश्वर ! आप भक्त-स्नेहके वशीभूत होकर मुझपर प्रसन्न होइये। देव ! मैंने [illegible] स्तुति की है, वह [illegible] हो। [illegible] नमस्कार है।

राजाको स्वप्नमें और प्रत्यक्ष भी भगवान्‌के दर्शन तथा भगवत्प्रतिमाओंका निर्माण, वरप्राप्ति और प्रतिष्ठा

पुरोहित वसु कहते हैं—सुभगे ! राजा इन्द्रद्युम्नके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् गरुडध्वज बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने राजाका सब मनोरथ पूर्ण किया। जो मनुष्य भगवान् जगन्नाथका पूजन करके प्रतिदिन इस स्तोत्रसे उनका स्तवन करता है, वह बुद्धिमान् निश्चय ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है। जो निर्मल हृदयवाले मनुष्य उन परम सूक्ष्म, नित्य, पुराणपुरुष मुरारि श्रीविष्णु भगवान्‌का ध्यान करते हैं, वे मुक्तिके भागी हो भगवान् विष्णुमें प्रवेश कर जाते हैं। एकमात्र वे देवदेव भगवान् विष्णु ही संसारके दुःखोंका नाश करनेवाले तथा परोंसे भी पर हैं। उनसे भिन्न कोई नहीं है। वे ही सबकी सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले हैं। भगवान् विष्णु ही सबके सारभूत एवं सम हैं। मोक्ष-सुख प्रदान करनेवाले जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णमें यहाँ जिनकी भक्ति नहीं होती, उन्हें विद्यासे, अपने गुणोंसे तथा यज्ञ, दान और कठोर तपस्यासे क्या लाभ हुआ ? जिस पुरुषकी भगवान् पुरुषोत्तमके प्रति भक्ति है, वही संसारमें धन्य, पवित्र और विद्वान् है। वही यज्ञ, तपस्या और गुणोंके कारण श्रेष्ठ है तथा वही ज्ञानी, दानी और सत्यवादी है।

ब्रह्मपुत्री मोहिनी ! इस प्रकार स्तुति करके राजाने सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाले सनातन पुरुष जगन्नाथ भगवान् वासुदेवको प्रणाम किया और चिन्तामग्न हो पृथ्वीपर कुश और वस्त्र बिछाकर भगवान्‌का चिन्तन करते हुए वे उसीपर सो गये। सोते समय उनके मनमें यही संकल्प था कि सबकी पीडा दूर करनेवाले देवाधिदेव भगवान् जनार्दन कैसे मुझे प्रत्यक्ष दर्शन देंगे। सो जानेपर चक्र धारण करनेवाले जगद्गुरु भगवान् वासुदेवने राजाको स्वप्नमें अपने स्वरूपका दर्शन कराया। राजाने स्वप्नमें देवदेव जगन्नाथका दर्शन किया। वे शङ्ख, चक्र धारण किये शान्तभावसे विराजमान थे। उनके दो हाथोंमें गदा और पद्म सुशोभित
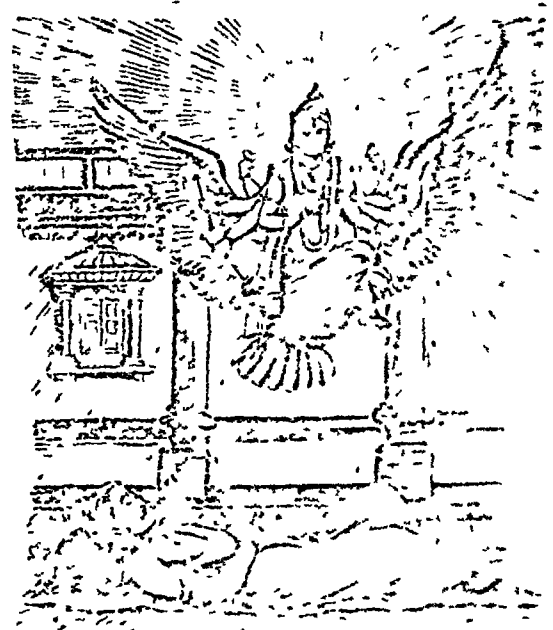
थे। शार्ङ्गधनुष, बाण और खड्ग भी उन्होंने [illegible] रक्खे थे। उनके सब ओर तेजका दिव्य [illegible] हो रहा था। प्रलयकालीन [illegible] समान उनकी [illegible] उद्भासित हो रही थी। उनका [illegible] समान श्याम था। आठ [illegible] श्रीहरि गरुड़की पीठपर बैठे हुए थे। [illegible] उनकी ओर देखते हुए कहा—[illegible] तुम्हें साधुवाद है। तुम्हारे [illegible] भक्तिसे मैं बहुत संतुष्ट हूँ। [illegible] ! [illegible] क्यों पड़े हो ! राजन् ! [illegible] है, उसे तुम जिस प्रकार प्राप्त [illegible] तुम्हें बतलाता हूँ। [illegible] जब सूर्योदय हो [illegible] समुद्रके [illegible] प्रान्तमें [illegible]

दिखायी देती है, वहाँ तटपर ही एक बहुत बडा वृक्ष खड़ा है, जिसका कुछ भाग तो जलमें है और कुछ स्थलमें। वह समुद्रकी लहरोंकी थपेड़ें खाकर भी कम्पित नहीं होता। तुम हाथमें कुल्हाड़ी लेकर लहरोंके बीचसे होते हुए अकेले ही वहाँ चले जाना। तुम्हें वह वृक्ष दिखायी देगा। मेरे बताये अनुसार उसे पहचानकर निःशङ्कभावसे उस वृक्षको काट डालना। उस ऊँचे वृक्षको काटते समय तुम्हें वहाँ कोई अद्भुत वस्तु दिखायी देगी। उसी वृक्षसे भलीभाँति सोच-विचारकर तुम दिव्य प्रतिमाका निर्माण करो। मोहमें डालनेवाली इस चिन्ताको छोड दो।'

ऐसा कहकर महाभाग श्रीहरि अदृश्य हो गये। यह स्वप्न देखकर राजाको बड़ा विस्मय हुआ। उस रात्रिके बीतनेकी प्रतीक्षा करते हुए वे भगवान्‌में मन लगाकर उठ बैठे और वैष्णव-मन्त्र एवं विष्णुसूक्तका जप करने लगे। प्रभात होनेपर वे उठे और भगवान्‌का स्मरण करते हुए विधिपूर्वक उन्होंने समुद्रमें स्नान किया, फिर पूर्वाह्णकृत्य पूरा करके वे नृपश्रेष्ठ समुद्रके तटपर गये। महाराज इन्द्रद्युम्नने अकेले ही समुद्रकी महावेलामें प्रवेश किया और उस तेजस्वी महावृक्षको देखा, जिसकी अन्तिम ऊपरी सीमा बहुत बड़ी थी। वह बहुत ऊँचेतक फैला हुआ था। वह पुण्यमय वृक्ष फलसे रहित था। स्निग्ध मजीठके समान उसका लाल रंग था। उसका न तो कुछ नाम था और न यही पता था कि वह किस जातिका वृक्ष है। उस वृक्षको देखकर राजा इन्द्रद्युम्न बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने दृढ़ एवं तीक्ष्ण फरसेसे उस वृक्षको काट गिराया। उस समय इन्द्रद्युम्नने जब काष्ठका भलीभाँति निरीक्षण किया, तब उन्हें वहाँ एक अद्भुत बात दिखायी दी। विश्वकर्मा और भगवान् विष्णु दोनों ब्राह्मण-का रूप धारण करके वहाँ आये। दोनों ही उत्तम तेजसे प्रज्वलित हो रहे थे। राजा इन्द्रद्युम्नसे उन्होंने पूछा— 'महाराज! आप यहाँ कौन कार्य करेंगे? इस परम दुर्गम, गहन एवं निर्जन वनमें इस महासागरके तटपर यह अकेला ही महान् वृक्ष था। इसको आपने क्यों काट दिया?'

मोहिनी! उन दोनोंकी बात सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुए। उन दोनों जगदीश्वरोंको देखकर राजाने पहले तो उन्हें नमस्कार किया और फिर विनीतभावसे नीचे मुँह किये खड़े होकर कहा—'विप्रवरो! मेरा विचार है कि मैं अनादि, अनन्त, अमेय तथा देवाधिदेव जगदीश्वरकी आराधना करने-के लिये प्रतिमा बनाऊँ। इसके लिये परमपुरुष देवदेव परमात्माने स्वप्नमें मुझे प्रेरित किया है।' राजा इन्द्रद्युम्नका यह वचन सुनकर भगवान् जगन्नाथने प्रसन्नतापूर्वक हँसकर उनसे कहा—'महीपाल! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा; आप-का यह विचार बहुत उत्तम है। यह भयंकर संसार-सागर केलेके पत्तेकी भाँति सारहीन है। इसमें दुःखकी ही अधिकता है। यह काम और क्रोधसे भरा हुआ है। इन्द्रियरूपी भँवर और कीचड़के कारण इसके पार जाना कठिन है। इसे देखकर रोमाञ्च हो आता है। नाना प्रकारके सैकड़ों रोग यहाँ भँवरके समान हैं तथा यह संसार पानीके बुलबुलेके समान क्षणभंगुर है। नृपश्रेष्ठ! इसमें रहते हुए जो आपके मनमें विष्णुकी आराधनाका विचार उत्पन्न हुआ, उसके कारण आप धन्य हैं। सम्पूर्ण गुणोंसे अलंकृत हैं। प्रजा, पर्वत, वन, नगर, पुर तथा ग्रामोंसहित एवं चारों वर्णोंसे सुशोभित यह धरती धन्य है, जहाँके शक्तिशाली प्रजापालक आप हैं। महाभाग! आइये, आइये! इस वृक्षकी सुखद एवं शीतल छायामें हम दोनोंके साथ बैठिये और धार्मिक कथा-वार्ताद्वारा धर्मका सेवन कीजिये। ये मेरे साथी शिल्पियों-में श्रेष्ठ हैं और प्रतिमाके निर्माणकार्यमें आपकी सहायता करनेके लिये यहाँ आये हैं। ये मेरे बताये अनुसार प्रतिमा अभी तैयार कर देते हैं।'

उन ब्राह्मणदेवकी ऐसी बात सुनकर राजा इन्द्रद्युम्न समुद्रका तट छोडकर उनके पास चले गये और वृक्षकी छायामें बैठे।

ब्रह्मपुत्री मोहिनी! तदनन्तर ब्राह्मणरूपधारी विश्वात्मा भगवान्‌ने शिल्पियोंमें श्रेष्ठ विश्वकर्माको आज्ञा दी, 'तुम प्रतिमा बनाओ। उसमें श्रीकृष्णका रूप परम शान्त हो। उनके नेत्र कमलदलके समान विशाल होने चाहिये। वे वक्षःस्थलपर श्रीवत्सचिह्न तथा कौस्तुभमणि और हाथोंमें शङ्ख, चक्र एवं गदा धारण किये हुए हों। दूसरी प्रतिमाका विग्रह गो-दुग्धके समान गौरवर्ण हो। उसमें स्वस्तिकका चिह्न होना चाहिये। वह अपने हाथमें हल धारण किये हुए हों। वही महाबली भगवान् अनन्तका स्वरूप है। देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, विद्याधर तथा नागोंने भी उनका अन्त नहीं जाना है, इसलिये वे अनन्त कहलाते हैं। तीसरी प्रतिमा बलरामजीकी बहिन सुभद्रादेवीकी होगी। उनके शरीरका रंग सुवर्णके समान गौर एवं शोभासे सम्पन्न होना चाहिये। उनमें समस्त शुभ लक्षणोंका समावेश होना आवश्यक है।'

भगवान्‌का यह कथन सुनकर उत्तम कर्म करनेवाले

विश्वकर्माने तत्काल शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न प्रतिमाएँ तैयार कर दीं। पहले उन्होंने बलभद्रजीकी मूर्ति बनायी। वे विचित्र कुण्डलमण्डित दोनों कानों तथा चक्र एवं हलके चिह्नसे युक्त हाथोंसे सुशोभित थे। उनका वर्ण शरत्कालके चन्द्रमाके समान श्वेत था। नेत्रोंमें कुछ-कुछ लालिमा थी। उनका शरीर विशाल और मस्तक फणाकार होनेसे विकट जान पड़ता था। वे नील वस्त्र धारण किये, बलके अभिमानसे उद्धत प्रतीत होते थे। उन्होंने हाथोंमें महान् हल और महान् मुसल धारण कर रक्खा था। उनका स्वरूप दिव्य था। द्वितीय विग्रह साक्षात् भगवान् वासुदेवका था। उनके नेत्र प्रफुल्ल कमलके समान सुशोभित थे। शरीरकी कान्ति नील मेघके समान श्याम थी। वे तीसीके फूलके समान सुन्दर प्रभासे उद्भासित हो रहे थे। उनके बड़े-बड़े नेत्र कमलदलकी शोभाको छीने लेते थे। श्रीअङ्गोंपर पीताम्बर शोभा पाता था। वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न तथा हाथोंमें शङ्ख, चक्र सुशोभित थे। इस प्रकार वे सर्वपापहारी श्रीहरि दिव्य शोभासे सम्पन्न थे। तीसरी प्रतिमा सुभद्रादेवीकी थी, जिनके देहकी दिव्य कान्ति सुवर्णके समान दमक रही थी, नेत्र कमलदलके समान विशाल थे। उनका अङ्ग विचित्र वस्त्रसे आच्छादित था। वे हार और केयूर आदि आभूषणोंसे विभूषित थीं। इस प्रकार विश्वकर्माने उनकी बड़ी रमणीय प्रतिमा बनायी।

राजा इन्द्रद्युम्नने यह बड़ी अद्भुत बात देखी कि सब प्रतिमाएँ एक ही क्षणमें बनकर तैयार हो गयीं। वे सभी दो दिव्य वस्त्रोंसे आच्छादित थीं। उन सबका भाँति-भाँतिके रत्नोंसे शृङ्गार किया गया था और वे सभी अत्यन्त मनोहर तथा समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थीं। उन्हें देखकर राजा अत्यन्त आश्चर्यमग्न होकर बोले—'आप दोनों ब्राह्मणके रूपमें साक्षात् ब्रह्मा और विष्णु तो नहीं हैं? आपके यथार्थ रूपको मैं नहीं जानता। मैं आप दोनोंकी शरणमें आया हूँ, आप मुझे अपने स्वरूपका ठीक-ठीक परिचय दें।'

ब्राह्मण बोले—राजन्! तुम मुझे पुरुषोत्तम समझो। मैं समस्त लोकोंकी पीड़ा दूर करनेवाला अनन्त बल-पौरुषसे सम्पन्न तथा सम्पूर्ण भूतोंका आराध्य हूँ। मेरा कभी अन्त नहीं होता। जिसका सब शास्त्रोंमें प्रतिपादन किया जाता है, उपनिषदोंमें जिसके स्वरूपका वर्णन मिलता है, योगिजन जिसे ज्ञानगम्य वासुदेव कहते हैं, वह परमात्मा मैं ही हूँ। स्वयं मैं ही ब्रह्मा, मैं ही शिव और मैं ही विष्णु हूँ। देवताओंका राजा इन्द्र और सम्पूर्ण जगत्‌का नियन्त्रण करनेवाला यम भी मैं ही हूँ। पृथ्वी आदि पाँच भूत, हविष्यका भोग लगानेवाले त्रिविध अग्नि, [illegible] [illegible], सबको धारण करनेवाली धरती और धरतीको भी धारण करनेवाले पर्वत भी मैं ही हूँ। संसारमें जो कुछ भी [illegible] कहा जानेवाला स्थावर-जङ्गम भूत है, वह मेरा ही स्वरूप है। सम्पूर्ण विश्वके रूपमें मुझे ही प्रकट हुआ समझो। मुझसे भिन्न कुछ भी नहीं है। नृपश्रेष्ठ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। सुव्रत! मुझसे कोई वर माँगो। तुम्हारे हृदयको जो अभीष्ट हो, वह तुम्हें दूँगा। जो पुण्यात्मा नहीं हैं, उन्हें स्वप्नमें भी मेरा दर्शन नहीं होता। तुम्हारी तो मुझमें दृढ़ भक्ति है, इसलिये तुमने मेरा प्रत्यक्ष दर्शन किया है।

मोहिनी! भगवान् वासुदेवका यह वचन सुनकर राजाके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। वे इस प्रकार स्तोत्रगान करने लगे।

राजाने कहा—लक्ष्मीकान्त! आपको नमस्कार है। श्रीपते! आपके दिव्य विग्रहपर पीताम्बर शोभा पा रहा है; आपको नमस्कार है। आप श्रीद (धन-सम्पत्तिके देनेवाले), श्रीश (लक्ष्मीके पति), श्रीनिवास (लक्ष्मीके आश्रय) तथा श्रीनिकेतन (लक्ष्मीके धाम) हैं; आपको नमस्कार है। आप आदिपुरुष, ईशान, सबके ईश्वर, [illegible] और [illegible], निष्कल एवं सनातन परमदेव हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप शब्द और गुणोंसे अतीत, भाव और अभावसे रहित, निर्लेप, निर्गुण, सूक्ष्म, सर्वज्ञ तथा सबके [illegible] हैं। आपके श्रीअङ्गोंकी कान्ति नील कमलदलके समान श्याम है। आप क्षीरसागरके भीतर निवास करनेवाले तथा शेषनागकी शय्यापर सोनेवाले हैं। इन्द्रियोंके नियन्ता तथा सम्पूर्ण पापोंको हर लेनेवाले आप श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ। देवदेवेश्वर! आप सबको वर देनेवाले, [illegible], [illegible] लोकोंके ईश्वर, मोक्षके कारण तथा अविनाशी विष्णु हैं; मैं पुनः आपको प्रणाम करता हूँ।

इस प्रकार स्तुति करके राजाने हाथ जोड़कर भगवान्‌को प्रणाम किया और विनीतभावसे धरतीपर मस्तक टेककर कहा—'नाथ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मोक्षमार्ग-ज्ञाता पुरुष जिस निर्गुण, निर्मल एवं शान्त परमपदका ध्यान करते हैं, साक्षात्कार करते हैं, उस परम दुर्लभ पदको मैं आपके प्रसादसे प्राप्त करना चाहता हूँ।'

श्रीभगवान् बोले—राजन्! तुम्हारा कल्याण हो।

तुम्हारी कही हुई सब बातें सफल हों। मेरे प्रसादसे तुम्हें अभिलषित वस्तुकी प्राप्ति होगी। नृपश्रेष्ठ! तुम दस हजार नौ सौ वर्षोंतक अपने अखण्ड एवं विशाल साम्राज्यका उपभोग करो, इसके बाद उस दिव्य पदको प्राप्त होओगे, जो देवता और असुरोंके लिये भी दुर्लभ है और जिसे पाकर सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। जो शान्त, गूढ, अव्यक्त, अव्यय, परसे भी पर, सूक्ष्म, निर्लेप, निर्गुण, ध्रुव, चिन्ता और शोकसे मुक्त तथा कार्य और कारणसे वर्जित, जाननेयोग्य परम पद है, उसका तुम्हें साक्षात्कार कराऊँगा। उस परमानन्दमय पदको पाकर तुम परम गति—मोक्षको प्राप्त हो जाओगे। राजेन्द्र! जबतक पृथ्वी और आकाश है, जबतक चन्द्रमा, सूर्य और तारे प्रकाशित होते हैं, जबतक सात समुद्र तथा मेरु आदि पर्वत मौजूद हैं तथा जबतक स्वर्गलोकमें अविनाशी देवगण सब ओर विद्यमान हैं, तबतक इस भूतलपर सर्वत्र तुम्हारी अक्षय कीर्ति छायी रहेगी। तुम्हारे यज्ञके घृतसे प्रकट हुआ तालाब इन्द्रद्युम्न-सरोवरके नामसे विख्यात होगा और उसमें एक बार भी स्नान कर लेनेपर मनुष्य इन्द्रलोकको प्राप्त होगा। सरोवरके दक्षिण भागमें नैर्ऋत्य कोणकी ओर जो बरगदका वृक्ष है, उसके समीप केवड़ेके वनसे आच्छादित एक मण्डप है, जो नाना प्रकारके वृक्षोंसे घिरा हुआ है। आषाढ मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमीको मघा नक्षत्रमें भक्तजन हमारी इन प्रतिमाओंकी सवारी निकालेंगे और इन्हें ले जाकर उक्त मण्डपमें सात दिनोंतक रक्खेंगे। ब्रह्मचारी, संन्यासी, स्नातक, श्रेष्ठ ब्राह्मण, वानप्रस्थ, गृहस्थ, सिद्ध तथा अन्य द्विज नाना प्रकारके अक्षर और पदवाले स्तोत्रोंसे तथा ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदकी ध्वनियोंसे श्रीबलराम तथा श्रीकृष्णकी बारंबार स्तुति करेंगे।

भद्रे! इस प्रकार राजाको वरदान दे और उनके लिये इस लोकमें रहनेका समय निर्धारित करके भगवान् विष्णु विश्वकर्माके साथ अन्तर्धान हो गये। उस समय राजा बड़े प्रसन्न थे। उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया था। भगवान्के दर्शनसे उन्होंने अपनेको कृतकृत्य माना। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण, बलराम तथा वरदायिनी सुभद्राको मणिकाञ्चनजटित विमानाकार रथोंमें बिठाकर वे बुद्धिमान् नरेश अमात्य और पुरोहितके साथ मङ्गलपाठ, जय-जयकार, अनेक प्रकारके वैदिक मन्त्रोंके उच्चारण और भाँति-भाँतिके गाजे-बाजेके सहित ले आये और उन्हें परम मनोहर पवित्र स्थानमें पधराया। फिर शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र, शुभ समय और शुभ मुहूर्तमें ब्राह्मणोंके द्वारा उनकी प्रतिष्ठा करायी। उत्तम प्रासाद (मन्दिर) में वेदोक्त विधिसे आचार्यकी आज्ञाके अनुसार प्रतिष्ठा करके विश्वकर्माके द्वारा बनाये हुए उन सब विग्रहोंको विधिवत् स्थापित किया। प्रतिष्ठासम्बन्धी सब कार्य पूरा करके राजाने आचार्य तथा दूसरे ऋत्विजोंको विधिपूर्वक दक्षिणा दे अन्य लोगोंको भी धनदान किया। तत्पश्चात् भाँति-भाँतिके सुगन्धित पुष्पोंसे तथा सुवर्ण, मणि, मुक्ता और नाना प्रकारके सुन्दर वस्त्रोंसे भगवद्विग्रहोंकी विधिपूर्वक पूजा करके ब्राह्मणोंको ग्राम, नगर तथा राज्य आदि दान किया। फिर कृतकृत्य होकर समस्त परिग्रहोंका त्याग कर दिया और वे भगवान् विष्णुके परम धाम—परम पदको प्राप्त हो गये।

पुरुषोत्तम-क्षेत्रकी यात्राका समय, मार्कण्डेयेश्वर शिव, वटवृक्ष, श्रीकृष्ण, बलभद्र तथा सुभद्राके और भगवान् नृसिंहके दर्शन-पूजन आदिका माहात्म्य

मोहिनीने पूछा—द्विजश्रेष्ठ! पुरुषोत्तमक्षेत्रकी यात्रा किस समय करनी चाहिये? और मानद! पाँचों तीर्थोंका सेवन भी किस विधिसे करना उचित है? एक-एक तीर्थके भीतर स्नान, दान और देव-दर्शन करनेका जो-जो फल है, वह सब पृथक्-पृथक् बताइये।

पुरोहित वसु बोले—श्रेष्ठ मनुष्यको उचित है कि ज्येष्ठ मासमें शुक्ल पक्षकी द्वादशीको विधिपूर्वक पञ्चतीर्थोंका सेवन करके श्रीपुरुषोत्तमका दर्शन करे। जो ज्येष्ठकी द्वादशीको अविनाशी देवता भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन करते हैं, वे विष्णुलोकमें पहुँचकर वहाँसे कभी लौटकर वापस नहीं आते। मोहिनी! अतः ज्येष्ठमें प्रयत्नपूर्वक पुरुषोत्तम-क्षेत्रकी यात्रा करनी चाहिये और वहाँ पञ्चतीर्थसेवनपूर्वक श्रीपुरुषोत्तमका दर्शन करना चाहिये। जो अत्यन्त दूर होनेपर भी प्रतिदिन प्रसन्नचित्त हो भगवान् पुरुषोत्तमका चिन्तन करता है, अथवा जो श्रद्धापूर्वक एकाग्रचित्त हो पुरुषोत्तम-क्षेत्रमें भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनार्थ यात्रा करता है,

वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। जो दूरसे भगवान् पुरुषोत्तमके प्रासादशिखरपर स्थित नील चक्रका दर्शन करके उसे भक्तिपूर्वक प्रणाम करता है, वह सहसा पापसे मुक्त हो जाता है।

मोहिनी! अब मैं पञ्चतीर्थोंके सेवनकी विधि बतलाता हूँ, सुनो। उसके कर लेनेपर मनुष्य भगवान् विष्णुका अत्यन्त प्रिय होता है। पहले मार्कण्डेय-सरोवरमें जाकर मनुष्य उत्तराभिमुख हो, तीन बार डुबकी लगाये और निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करे—

संसारसागरे मग्नं पापग्रस्तमचेतनम्।
त्राहि मां भगनेत्रघ्न त्रिपुरारे नमोऽस्तु ते॥
नमः शिवाय शान्ताय सर्वपापहराय च।
स्नानं करोमि देवेश मम नश्यतु पातकम्॥

(ना० उत्तर० ५५ । १४-१५)

'भगके नेत्रोंका नाश करनेवाले त्रिपुरनाशक भगवान् शिव! मैं संसार-सागरमें निमग्न, पापग्रस्त एवं अचेतन हूँ। आप मेरी रक्षा कीजिये, आपको नमस्कार है। समस्त पापोंको दूर करनेवाले शान्तस्वरूप शिवको नमस्कार है। देवेश्वर! मैं यहाँ स्नान करता हूँ, मेरा सारा पातक नष्ट हो जाय।'

यों कहकर बुद्धिमान् पुरुष नाभिके बराबर जलमें स्नान करनेके पश्चात् देवताओं और ऋषियोंका विधिपूर्वक तर्पण करे। फिर तिल और जल लेकर पितरोंकी भी तृप्ति करे। उसके बाद आचमन करके शिवमन्दिरमें जाय। उसके भीतर प्रवेश करके तीन बार देवताकी परिक्रमा करे। तदनन्तर 'मार्कण्डेयेश्वराय नमः' इस मूल मन्त्रसे शङ्करजीकी पूजा करके उन्हें प्रणाम करे और निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़कर उन्हें प्रसन्न करे—

त्रिलोचन नमस्तेऽस्तु नमस्ते शशिभूषण।
त्राहि मां त्वं विरूपाक्ष महादेव नमोऽस्तु ते॥

(ना० उत्तर० ५५ । १९)

'तीन नेत्रोंवाले शङ्कर! आपको नमस्कार है। चन्द्रमाको भूषणरूपमें धारण करनेवाले! आपको नमस्कार है। विकट नेत्रोंवाले शिवजी! आप मेरी रक्षा कीजिये। महादेव! आपको नमस्कार है।'

इस प्रकार मार्कण्डेय-ह्रदमें स्नान करके भगवान् शङ्करका दर्शन करनेसे मनुष्य अश्वमेधयज्ञोंका फल पाता है तथा सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् शिवके लोकमें जाता है।

तत्पश्चात् कल्पान्तस्थायी वटवृक्षके पास जाकर उसकी तीन बार परिक्रमा करे; फिर निम्नाङ्कित मन्त्रद्वारा [illegible] भावके साथ उस वटकी पूजा करे—

ॐ नमोऽव्यक्तरूपाय महते [illegible]।
महोदकोपविष्टाय न्यग्रोधाय नमोऽस्तु ते॥
भवसम्त्वं सदा कल्पे हरेश्चायतनं वट।
न्यग्रोध हर मे पापं कल्पवृक्ष नमोऽस्तु ते॥

(ना० उत्तर० [illegible])

'जो अव्यक्तस्वरूप, महान् एवं [illegible] हैं, महान् एकार्णवके जलमें जिनकी स्थिति है, उन वटवृक्षको नमस्कार है। हे वट! आप प्रत्येक कल्पमें [illegible] करते हैं। आपकी शाखापर श्रीहरिका निवास है। न्यग्रोध! मेरे पाप हर लीजिये। कल्पवृक्ष! आपको नमस्कार है।'

इसके बाद भक्तिपूर्वक परिक्रमा करके उस [illegible] वटवृक्षको नमस्कार करना चाहिये। उस कल्पवृक्षकी [illegible] पहुँच जानेपर मनुष्य ब्रह्महत्यासे भी मुक्त हो जाता है, फिर अन्य पापोंकी तो बात ही क्या है! ब्रह्मपुत्री! भगवान् श्रीकृष्णके अङ्गसे प्रकट हुए ब्रह्मतेजोमय वटवृक्षरूपी विष्णुको प्रणाम करके मानव राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञसे भी अधिक फल पाता है और अपने कुलका उद्धार करके विष्णुलोकमें जाता है। भगवान् श्रीकृष्णके सामने खड़े हुए गरुड़को भी नमस्कार करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो श्रीविष्णुके वैकुण्ठ धाममें जाता है। जो वटवृक्ष और गरुड़जीका दर्शन करके पश्चात् पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण, बलभद्र और सुभद्रादेवीका दर्शन करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। जगन्नाथ श्रीकृष्णके मन्दिरमें प्रवेश करके उनकी तीन बार परिक्रमा करे। फिर नाममन्त्रसे बलभद्र और सुभद्रादेवीकी भक्तिपूर्वक पूजा करके निम्नाङ्कित रूपसे बलरामजीसे प्रार्थना करे—

नमस्ते हलधृग् राम नमस्ते मुसलायुध।
नमस्ते रेवतीकान्त नमस्ते भक्तवत्सल॥
नमस्ते बलिनां श्रेष्ठ नमस्ते धरणीधर।
प्रलम्बारे नमस्तेऽस्तु त्राहि मां कृष्णपूर्वज॥

(ना० उत्तर० [illegible])

'हल धारण करनेवाले राम! आपको नमस्कार है। मुसलको आयुधरूपमें रखनेवाले! आपको नमस्कार है। रेवतीरमण! आपको नमस्कार है। भक्तवत्सल! आपको नमस्कार है। बलवानोंमें श्रेष्ठ! आपको नमस्कार है। पृथ्वीको धारण

पर धारण करनेवाले शेषजी ! आपको नमस्कार है । प्रलम्ब-शत्रो ! आपको नमस्कार है । श्रीकृष्णके अग्रज ! मेरी रक्षा कीजिये ।'

इस प्रकार कैलासशिखरके समान गौर शरीर तथा चन्द्रमासे भी कमनीय श्रेष्ठ मुखवाले, नीलवस्त्रधारी, देवपूजित, अनन्त, अजेय, एक कुण्डलसे विभूषित और फणोंके द्वारा विकट मस्तकवाले रोहिणीनन्दन महाबली हलधरको भक्तिपूर्वक प्रसन्न करे । ऐसा करनेवाला पुरुष मनोवाञ्छित फल पाता है और समस्त पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके धाममे जाता है । बलरामजीकी पूजाके पश्चात् विद्वान् पुरुष एकाग्रचित्त हो द्वादशाक्षर-मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) से भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा करे । जो धीर पुरुष द्वादशाक्षर-मन्त्रसे भक्तिपूर्वक भगवान् पुरुषोत्तमकी सदा पूजा करते हैं, वे मोक्षको प्राप्त होते हैं । मोहिनी ! देवता, योगी तथा सोम-पान करनेवाले याज्ञिक भी उस गतिको नहीं पाते, जिसे द्वादशाक्षर-मन्त्रका जप करनेवाले पुरुष प्राप्त करते हैं । अतः उसी मन्त्रसे भक्तिपूर्वक गन्ध-पुष्प आदि सामग्रियोंद्वारा जगद्गुरु श्रीकृष्णकी पूजा करके उन्हें प्रणाम करे । तत्पश्चात् इस प्रकार प्रार्थना करे—

जय कृष्ण जगन्नाथ जय सर्वाघनाशन ।
जय चाणूरकेशिघ्न जय कंसनिषूदन ॥
जय पद्मपलाशाक्ष जय चक्रगदाधर ।
जय नीलाम्बुदश्याम जय सर्वसुखप्रद ॥
जय देव जगत्पूज्य जय संसारनाशन ।
जय लोकपते नाथ जय वाञ्छाफलप्रद ॥
संसारसागरे घोरे निःसारे दुःखफेनिले
क्रोधग्राहाकुले रौद्रे विषयोदकसम्प्लवे ॥
नानारोगोर्मिकलिले मोहावर्तसुदुस्तरे ।
निमग्नोऽहं सुरश्रेष्ठ त्राहि मां पुरुषोत्तम ॥

(ना०उत्तर० ५५ । ४४—४८)

'जगन्नाथ श्रीकृष्ण ! आपकी जय हो । सब पापोंका नाश करनेवाले प्रभो ! आपकी जय हो । चाणूर और केशीके नाशक ! आपकी जय हो । कंसनाशन ! आपकी जय हो । कमललोचन ! आपकी जय हो । चक्रगदाधर ! आपकी जय हो । नील मेघके समान श्यामवर्ण ! आपकी जय हो । सबको सुख देनेवाले परमेश्वर ! आपकी जय हो । जगत्पूज्य देव ! आपकी जय हो । संसारसंहारक ! आपकी जय हो । लोकपते ! नाथ ! आपकी जय हो । मनोवाञ्छित फल देनेवाले देवता ! आपकी जय हो । यह भयंकर संसार-सागर सर्वथा निःसार है । इसमें दुःखमय फेन भरा हुआ है । यह क्रोधरूपी ग्राहसे पूर्ण है । इसमें विषयरूपी जलराशि भरी हुई है । भाँति-भाँतिके रोग ही इसमे उठती हुई लहरें हैं । मोहरूपी भँवरोंके कारण यह अत्यन्त दुस्तर जान पड़ता है । सुरश्रेष्ठ ! मैं इस संसाररूपी घोर समुद्रमें डूबा हुआ हूँ । पुरुषोत्तम ! मेरी रक्षा कीजिये ।'

मोहिनी ! इस प्रकार प्रार्थना करके जो देवेश्वर, वरदायक, भक्तवत्सल, सर्वपापहारी, द्युतिमान्, सम्पूर्ण कमनीय फलोंके दाता, मोटे कंधे और दो भुजाओंवाले, श्यामवर्ण, कमलदलके समान विशाल नेत्रोंवाले, चौडी छाती, विशाल भुजा, पीत वस्त्र और सुन्दर मुखवाले, शङ्ख-चक्र-गदाधर, मुकुटाङ्गद-भूषित, समस्त शुभलक्षणोंसे युक्त और वनमाला-विभूषित भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करके हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम करता है, वह हजारों अश्वमेध यज्ञोंका फल पाता है । सब तीर्थोंमें स्नान और दान करनेका अथवा सम्पूर्ण वेदोंके स्वाध्याय तथा समस्त यज्ञोंके अनुष्ठानका जो फल है, उसी-को मनुष्य भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन और प्रणाम करके पा लेता है । सब प्रकारके दान, व्रत और नियमोंका पालन करके मनुष्य जिस फलको पाता है, अथवा ब्रह्मचर्य-व्रतका

विधिपूर्वक पालन करनेसे जो फल बताया गया है, उसी फलको मनुष्य भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन और प्रणाम करके प्राप्त कर लेता है । भामिनि ! भगवद्दर्शनके माहात्म्यके सम्बन्धमें अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता ? भगवान् श्रीकृष्णका भक्तिपूर्वक दर्शन करके मनुष्य दुर्लभ मोक्षतक प्राप्त कर लेता है ।

ब्रह्मकुमारी मोहिनी ! तदनन्तर भक्तोंपर स्नेह रखनेवाली सुभद्रादेवीका भी नाममन्त्रसे पूजन करके उन्हें प्रणाम करे और हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना करे—

नमस्ते सर्वगे देवि नमस्ते शुभसौख्यदे ।
त्राहि मां पद्मपत्राक्षि कात्यायनि नमोऽस्तु ते ॥
(ना० उत्तर० ५५ । ६७)

'देवि ! तुम सर्वत्र व्याप्त रहनेवाली और शुभ सौख्य प्रदान करनेवाली हो । तुम्हें बारबार नमस्कार है । पद्मपत्रोंके समान विशाल नेत्रोंवाली कात्यायनी-स्वरूपा सुभद्रे ! मेरी रक्षा करो । तुम्हें नमस्कार है ।'

इस प्रकार सम्पूर्ण जगत्को धारण करनेवाली लोक-हितकारिणी, वरदायिनी एवं कल्याणमयी बलभद्रभगिनी सुभद्रादेवीको प्रसन्न करके मनुष्य इच्छानुसार चलनेवाले विमानके द्वारा श्रीविष्णुलोकमें जाता है ।

इस प्रकार बलराम, श्रीकृष्ण और सुभद्रादेवीको प्रणाम करके भगवान्‌के मन्दिरसे बाहर निकले । उस समय मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है । तत्पश्चात् जगन्नाथजीके मन्दिरको प्रणाम करके एकाग्रचित्त हो उस स्थानपर जाय, जहाँ भगवान् विष्णुकी इन्द्रनीलमयी प्रतिमा बालूके भीतर छिपी है । वहाँ अदृश्यरूपसे स्थित भगवान् पुरुषोत्तमको प्रणाम करके मनुष्य श्रीविष्णुके धाममें जाता है । देवि ! जो भगवान् सर्वदेवमय हैं, जिन्होंने आधा शरीर सिंहका बनाकर हिरण्यकशिपुका उद्धार किया था, वे भगवान् नृसिंह भी पुरुषोत्तमतीर्थमें नित्य निवास करते हैं । शुभे ! जो भक्तिपूर्वक उन भगवान् नृसिंहदेवका दर्शन करके उन्हें प्रणाम करता है, वह मनुष्य समस्त पातकोंसे मुक्त हो जाता है । जो मानव इस पृथ्वीपर भगवान् नृसिंहके भक्त होते हैं, उन्हें कोई पाप छू नहीं सकता और मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है । अतः सब प्रकारसे यत्न करके भगवान् नृसिंहकी शरण ले; क्योंकि वे धर्म, अर्थ, काम और मोक्षसम्बन्धी फल प्रदान करते हैं । ब्रह्मपुत्री ! अतः सम्पूर्ण कामनाओं और फलोंके देनेवाले महापराक्रमी श्रीनृसिंहदेवकी सदा भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री, शूद्र और अन्त्यज आदि सभी मनुष्य भक्तिभावसे सुरश्रेष्ठ भगवान् नृसिंहकी आराधना करके करोड़ों जन्मोंके अशुभ एवं दुःखसे छुटकारा पा जाते हैं । विधिनन्दिनि ! मैं अजित, अप्रमेय तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले भगवान् नृसिंहका प्रभाव बतलाता हूँ, सुनो ! सुव्रते ! उनके समस्त गुणोंका वर्णन कौन कर सकता है ? अतः मैं भी श्रीनृसिंहदेवके गुणोंका संक्षेपसे ही वर्णन करूँगा । इस लोकमें जो कोई दैवी अथवा मानुषी सिद्धियाँ सुनी जाती हैं, वे सब भगवान् नृसिंहके प्रसादसे ही सिद्ध होती हैं । भगवान् नृसिंहदेवके कृपाप्रसाद-से स्वर्ग, मर्त्यलोक, पाताल, अन्तरिक्ष, जल, असुरलोक तथा पर्वत—इन सब स्थानोंमें मनुष्यकी अबाध गति होती है । सुभगे ! इस सम्पूर्ण चराचर जगत्में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जो भक्तोंपर निरन्तर कृपा करनेवाले भगवान् नृसिंह-के लिये असाध्य हो ।

अब मैं श्रीनृसिंहदेवके पूजनकी विधि बतलाता हूँ, जो भक्तोंके लिये उपकारक है, जिससे वे भगवान् नृसिंह प्रसन्न होते हैं । भगवान् नृसिंहका यथार्थ तत्त्व देवताओं और असुरोंको भी ज्ञात नहीं है । उत्तम साधकको चाहिये कि साग, जौकी लपसी, मूल, फल, खली अथवा सत्तूसे भोजनकी आवश्यकता पूरी करे अथवा भद्रे ! दूध पीकर रहे । घास-फूस या कौपीनमात्र वस्त्रसे अपने शरीरको ढक ले । इन्द्रियोंको वशमें करके (भगवान् नृसिंहके) ध्यानमें तत्पर रहे । वनमें, एकान्त प्रदेशमें, नदीके सङ्गम या पर्वतपर, सिद्धिक्षेत्रमें, ऊसरमें तथा भगवान् नृसिंहके आश्रममें जाकर अथवा जहाँ कहीं भी स्वयं भगवान् नृसिंहकी स्थापना करके जो विधिपूर्वक उनकी पूजा करता है, देवि ! वह उपपातकी हो या महापातकी, उन समस्त पातकोंसे वह साधक मुक्त हो जाता है । वहाँ नृसिंहजीकी परिक्रमा करके उनकी गन्ध, पुष्प और धूप आदि सामग्रियोंद्वारा पूजा करनी चाहिये । तत्पश्चात् धरतीपर मस्तक टेककर भगवान्‌को प्रणाम करे और कर्पूर एवं चन्दन लगे हुए चमेलीके फूल भगवान् नृसिंहके मस्तकपर चढ़ावे । इससे सिद्धि प्राप्त होती है । भगवान् नृसिंह किसी भी कार्यमें कभी प्रतिहत नहीं होते । नृसिंह-कवचका एक बार जप करनेसे मनुष्य आगकी लपटद्वारा सम्पूर्ण उपद्रवोंका नाश कर सकता है । तीन बार जप करनेपर वह दिव्य कवच दैत्यों और दानवोंसे रक्षा करता है । तीन बार जप करके सिद्ध

किया हुआ कवच भूत, पिशाच, राक्षस, अन्यान्य लुटेरे तथा देवताओं और असुरोंके लिये भी अभेद्य होता है। ब्रह्मपुत्री मोहिनी! सम्पूर्ण कामनाओं और फलोंके दाता महापराक्रमी नृसिंहजीकी सदा भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। शुभे! भगवान् नृसिंहका दर्शन, स्तवन, नमस्कार और पूजन करके मनुष्य राज्य, स्वर्ग तथा दुर्लभ मोक्ष भी प्राप्त कर लेते हैं। भगवान् नृसिंहका दर्शन करके मनुष्यको मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है तथा वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। जो भक्तिपूर्वक नृसिंहरूपधारी भगवान्‌का एक बार भी दर्शन कर लेता है, वह मन, वाणी और शरीरद्वारा होनेवाले सम्पूर्ण पातकोंसे मुक्त हो जाता है। दुर्गम संकटमें, चोर और व्याघ्र आदिकी पीडा उपस्थित होनेपर, दुर्गम प्रदेशमें, प्राणसंकटके समय, विष, अग्नि और जलसे भय होनेपर, राजा आदिसे भय प्राप्त होनेपर, घोर संग्राममें और ग्रह तथा रोग आदिकी पीड़ा प्राप्त होनेपर जो पुरुष भगवान् नृसिंहका स्मरण करता है, वह संकटोंसे छूट जाता है। जैसे सूर्योदय होनेपर भारी अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार भगवान् नृसिंहका दर्शन होनेपर सब प्रकारके उपद्रव मिट जाते हैं। भगवान् नृसिंहके प्रसन्न होनेपर गुटिका, अञ्जन, पातालप्रवेश, पैरोंमें लगाने योग्य दिव्यलेप, दिव्य रसायन तथा अन्य मनोवाञ्छित पदार्थ भी मनुष्य प्राप्त कर लेता है। मानव जिन-जिन कामनाओंका चिन्तन करते हुए भगवान् नृसिंहका भजन करता है, उन-उनको अवश्य प्राप्त कर लेता है।

श्वेतमाधव, मत्स्यमाधव, कल्पवृक्ष और अष्टाक्षर-मन्त्र, स्नान, तर्पण आदिकी महिमा

पुरोहित वसु कहते हैं—महाभागे! उस पुरुषोत्तम-क्षेत्रमें तीर्थोंका समुदायरूप एक दूसरा तीर्थ है, जो परम पुण्यमय तथा दर्शनमात्रसे पापोंका नाश करनेवाला है, उसका वर्णन करता हूँ, सुनो। उस तीर्थके आराध्य हैं—अनन्त नामक वासुदेव। उनका भक्तिपूर्वक दर्शन और प्रणाम करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो परम पदको प्राप्त होता है। जो मनुष्य श्वेतगङ्गामें स्नान करके श्वेतमाधव तथा मत्स्यमाधवका दर्शन करता है, वह श्वेतद्वीपमें जाता है। जो हिमके समान श्वेतवर्ण और शुद्ध हैं, जिन्होंने शङ्ख, चक्र और गदा धारण कर रक्खे हैं, जो समस्त शुभ लक्षणोंसे संयुक्त तथा विकसित कमलके समान विशाल नेत्रवाले हैं, जिनका वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्नसे सुशोभित है, जो अत्यन्त प्रसन्न एवं चार भुजाधारी हैं, जिनका वक्षःस्थल वनमालासे अलंकृत है, जो माथेपर मुकुट और भुजाओंमें अङ्गद धारण करते हैं, जिनके कंधे हृष्ट-पुष्ट हैं और जो पीताम्बरधारी तथा कुण्डलोंसे अलंकृत हैं, उन भगवान् (श्वेतमाधव)का जो लोग कुशके अग्रभागसे भी स्पर्श कर लेते हैं, वे एकाग्रचित्त विष्णुभक्त मानव दिव्यलोकमें जाते हैं। जो शङ्ख, गोदुग्ध और चन्द्रमाके समान उज्ज्वल कान्तिवाली सर्व-पापहारिणी माधव नामक प्रतिमाका दर्शन करता है तथा विकसित कमलके सदृश नेत्रवाली उस भगवन्मूर्तिको एक बार भक्तिभावसे प्रणाम कर लेता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंका त्याग करके विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

श्वेतमाधवका दर्शन करके उनके समीप ही मत्स्यमाधवका दर्शन करे। वे ही पूर्वकालमें एकार्णवके जलमें मत्स्यरूप धारण करके प्रकट हुए और वेदोंका उद्धार करनेके लिये रसातलमें स्थित थे। पहले पृथ्वीका चिन्तन करके प्रतिष्ठित हुए भगवान् मत्स्यावतारका चिन्तन करना चाहिये। भगवान् लक्ष्मीपति तरुणावस्थासे युक्त मत्स्यमाधवका रूप धारण करके विराज रहे हैं। जो पवित्रचित्त होकर उन्हें प्रणाम करता है, वह सब प्रकारके क्लेशोंसे छूट जाता है और उस परमधामको जाता है, जहाँ साक्षात् श्रीहरि विराजमान हैं।

शुभे! अब मैं मार्कण्डेय-सरोवर एवं समुद्रमें मार्जन आदिकी विधि बतलाता हूँ। तुम भक्तिभावसे तन्मय होकर पुण्य एवं मुक्ति देनेवाले इस पुराण-प्रसङ्गको सुनो। मार्कण्डेय-सरोवरमें सब समय स्नान उत्तम माना गया है, किंतु चतुर्दशीको उसका विशेष माहात्म्य है, उस दिनका स्नान सब पापोंका नाश करनेवाला है। उसी प्रकार समुद्रका स्नान हर समय उत्तम बताया गया है, किंतु पूर्णिमाको उस स्नानका विशेष महत्त्व है। उस दिन समुद्र-स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। जब ज्येष्ठ मासकी पूर्णिमाको ज्येष्ठा नक्षत्र हो उस समय परम कल्याणमय तीर्थराज समुद्रमें स्नान करनेके लिये विशेषरूपसे जाना चाहिये। समुद्र-स्नानके लिये जाते समय मन, वाणी, शरीरसे शुद्ध रहना चाहिये। भीतरका भाव भी शुद्ध हो, मन भगवत्-चिन्तनके सिवा अन्यत्र न जाय। सब प्रकारके

द्वन्द्वोंसे मुक्त, वीतराग एवं ईर्ष्यासे रहित होकर स्नान करना चाहिये।

कल्पवृक्ष नामक वट बड़ा रमणीय है। उसके ऊपर साक्षात् भगवान् बालमुकुन्द विराजते हैं। वहाँ स्नान करके एकाग्रचित्तसे तीन बार भगवान्‌की परिक्रमा करे। मोहिनी!

उनके दर्शनसे सात जन्मोंका पाप नष्ट हो जाता है और प्रचुर पुण्य तथा अभीष्ट गतिकी प्राप्ति होती है। अब मैं उन वटस्वरूप भगवान्‌के प्रत्येक युगके अनुसार प्रामाणिक नाम बतलाऊँगा। वट, वटेश्वर, कृष्ण तथा पुराणपुरुष—ये सत्य आदि युगोंमें क्रमशः वटके नाम कहे गये हैं। इसी प्रकार सत्ययुगमें वटका विस्तार एक योजन, त्रेतामें पौन योजन, द्वापरमें आधा योजन और कलियुगमें चौथाई योजनका माना गया है। पहले बताये हुए मन्त्रसे वटको नमस्कार करके वहाँसे तीन सौ धनुषकी दूरीपर दक्षिण दिशाकी ओर जाय। वहाँ भगवान् विष्णुका दर्शन होता है। उसे मनोरम स्वर्गद्वार कहते हैं।

पहले उग्रसेनका दर्शन करके स्वर्गद्वारसे समुद्रतटपर जाकर आचमन करे; फिर पवित्र भावसे भगवान् नारायणका ध्यान करे। मनीषी पुरुष 'ॐ नमो नारायणाय' इस मन्त्रको ही अष्टाक्षर-मन्त्र कहते है। मनको भुलावेमें डालनेवाले अन्य बहुत-से मन्त्रोंकी क्या आवश्यकता; 'ॐ नमो नारायणाय' यह अष्टाक्षर मन्त्र ही सब मनोरथोंको [illegible] करनेवाला है। नरसे प्रकट होनेके कारण जलको 'नार' कहा गया है। वह पूर्वकालमें भगवान् विष्णुका अयन ('निवास-स्थान) रहा है; इसलिये उन्हें 'नारायण' कहते हैं। सम्पूर्ण वेदोंका तात्पर्य भगवान् नारायणमें ही है। सम्पूर्ण [illegible] भगवान् नारायणकी ही उपासनामें तत्पर रहते हैं। सबके परम आश्रय भगवान् नारायण ही हैं तथा यज्ञकर्म भी भगवान् नारायणकी ही प्रीतिके लिये किये जाते हैं। धर्मके परम [illegible] भगवान् नारायण ही हैं। तपस्या भगवान् नारायणकी ही प्राप्तिका उत्कृष्ट साधन है। दान भगवान् नारायणकी प्रसन्नताके लिये ही किया जाता है और सत्यके परम आधार भी भगवान् नारायण ही हैं। सम्पूर्ण लोक भगवान् नारायणसे ही उत्पन्न हैं। देवता भगवान् नारायणके ही आश्रित हैं। यज्ञका चरम फल भगवान् नारायणकी ही प्राप्ति है तथा परम पद भी नारायणस्वरूप ही है। पृथ्वी नारायणपरक है, जल नारायणपरक है, अग्नि नारायणपरक है और आकाश भी नारायणपरक है। वायुके परम आश्रय नारायण ही हैं। मनके आराध्यदेव नारायण ही हैं। अहंकार और बुद्धि दोनों नारायणस्वरूप हैं। भूत, वर्तमान तथा भविष्य जो कुछ भी जीव नामक तत्त्व है, जो स्थूल, सूक्ष्म तथा दोनोंसे विलक्षण है, वह सब नारायणस्वरूप है। मोहिनी! मैं नारायणसे बढ़कर यहाँ कुछ भी नहीं देखता। यह स्थावर-जङ्गम, चर-अचर सब उन्हींके द्वारा व्याप्त है। जल भगवान् विष्णुका घर है और वे विष्णु ही जलके स्वामी हैं, अतः जलमें सर्वदा पापहारी नारायणका स्मरण करना चाहिये। विशेषतः स्नानके समय जलमें उपस्थित हो पवित्र मनसे भगवान् नारायणका स्मरण एवं ध्यान करे। फिर विधिपूर्वक स्नान करना चाहिये। जिनके देवता जल हैं, ऐसे वैदिक मन्त्रोंसे अभिषेक और मार्जन करके जलमें डुबकी लगा तीन बार अघमर्षण मन्त्रका जप करे। जैसे अश्वमेध यज्ञ सब पापोंको दूर करनेवाला है, वैसे ही अघमर्षण मन्त्र सब पापोंका नाशक है। स्नानके पश्चात् जलसे निकलकर दो निर्मल वस्त्र धारण करे। फिर प्राणायाम, आचमन एवं संध्योपासन करके ऊपरकी ओर फूल और जलकी अञ्जलि दे सूर्योपस्थान करे। उस समय अपनी दोनों भुजाएँ ऊपरकी ओर उठाये रक्खे और सूर्यदेवता-सम्बन्धी मन्त्रोंका पाठ करे। सबको पवित्र करनेवाली गायत्री देवीका एक सौ आठ बार जप करे। गायत्रीके अतिरिक्त सूर्यदेवतासम्बन्धी अन्य मन्त्रोंका भी

एकाग्रचित्तसे खड़ा होकर जप करे। फिर सूर्यकी प्रदक्षिणा और उन्हें नमस्कार करके पूर्वाभिमुख बैठकर स्वाध्याय करे। उसके बाद देवता और ऋषियोंका तर्पण करके दिव्य मनुष्यों और पितरोंका भी तर्पण करे। मन्त्रवेत्ता पुरुषको चाहिये कि चित्तको एकाग्र करके तिलमिश्रित जलके द्वारा नाम-गोत्रोचारणपूर्वक पितरोंकी विधिवत् तृप्ति करे। श्राद्धमें और हवनकालमें एक हाथसे सब वस्तुएँ अर्पित करे, परंतु तर्पणमें दोनों हाथोंका उपयोग करना चाहिये। यही सनातन विधि है। बायें और दायें हाथकी सम्मिलित अञ्जलिसे नाम और गोत्रके उच्चारणपूर्वक 'तृप्यताम्' कहे और मौनभावसे जल दे*। यदि दाता जलमें स्थित होकर पृथ्वीपर जल दे अथवा पृथ्वीपर खड़ा होकर जलमें तर्पणका जल डाले तो वह जल पितरोंतक नहीं पहुँचता। जो जल पृथ्वीपर नहीं दिया जाता, वह पितरोंको नहीं प्राप्त होता। ब्रह्माजीने पितरोंके लिये अक्षय स्थानके रूपमें पृथ्वी ही दी है। अतः पितरोंकी प्रीति चाहनेवाले मनुष्योंको पृथ्वीपर ही जल देना चाहिये। पितर भूमिपर ही उत्पन्न हुए, भूमिपर ही रहे और भूमिमें ही उनके शरीरका लय हुआ; अतः भूमिपर ही उनके लिये जल देना चाहिये। अग्रभाग-सहित कुशोंको बिछाकर उसपर मन्त्रोंद्वारा देवताओं और पितरोंका आवाहन करना चाहिये। पूर्वाग्र कुशोंपर देवताओंका और दक्षिणाग्र कुशोंपर पितरोंका आवाहन करना उचित है।

भगवान् नारायणके पूजनकी विधि

पुरोहित वसु कहते हैं—ब्रह्मपुत्री मोहिनी! देवताओं, ऋषियों, पितरों तथा अन्य प्राणियोंका तर्पण करनेके पश्चात् मौनभावसे आचमन करके समुद्रके तटपर एक चौकोर मण्डप बनाये। उसमें चार दरवाजे रक्खे। उसकी लंबाई-चौड़ाई एक हाथकी होनी चाहिये। मण्डप बहुत सुन्दर बनाया जाय। इस प्रकार मण्डप बनाकर उसके भीतर कर्णिकासहित अष्टदल कमल अङ्कित करे। उसमें अष्टाक्षर-मन्त्रकी विधिसे अजन्मा भगवान् नारायणका पूजन करे। हृदयमें उत्तम ज्योतिःस्वरूप ॐकारका चिन्तन करके कमलकी कर्णिकामें विराजमान ज्योतिःस्वरूप सनातन विष्णुका ध्यान करे; फिर अष्टदल कमलके प्रत्येक दलमें क्रमशः मन्त्रके एक-एक अक्षरका न्यास करे। मन्त्रके एक-एक अक्षरद्वारा अथवा सम्पूर्ण मन्त्र-द्वारा भी पूजन करना उत्तम माना गया है। सनातन परमात्मा विष्णुका द्वादशाक्षर-मन्त्रसे पूजन करे। तदनन्तर हृदयके भीतर भगवान्‌का ध्यान करके बाहर कमलकी कर्णिकामें भी उनकी भावना करे। भगवान्‌की चार भुजाएँ हैं। वे महान् सत्त्वमय हैं। उनके श्रीअङ्गोंकी प्रभा कोटि-कोटि सूर्योंके समान है। वे महायोगस्वरूप हैं। इस प्रकार उनका चिन्तन करके क्रमशः आवाहन आदि उपचारद्वारा पूजन करे।

आवाहन-मन्त्र

मीनरूपो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः ॥
आयातु देवो वरदो मम नारायणोऽग्रतः ।
ॐ नमो नारायणाय नमः

(ना० उत्तर० ५७ । २६-२७)

'मीन, वराह, नृसिंह एवं वामनअवतारधारी वरदायक देवता भगवान् नारायण मेरे सम्मुख पधारें। सच्चिदानन्द-स्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है।'

आसन-मन्त्र

कर्णिकायां सुपीठेऽत्र पद्मकल्पितमासनम् ॥
सर्वसत्त्वहितार्थाय तिष्ठ त्वं मधुसूदन ।
ॐ नमो नारायणाय नमः

(ना० उत्तर० ५७ । २७-२८)

'यहाँ कमलकी कर्णिकामें सुन्दर पीठपर कमलका आसन बिछा हुआ है। मधुसूदन! सब प्राणियोंका हित करनेके लिये आप इसपर विराजमान हों। सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है।'

* श्राद्धे हवनकाले च पाणिनैकेन निर्वपेत्। तर्पणे तूभय कुर्यादेष एव विधिः सदा ॥
अन्वारब्धेन सव्येन पाणिना दक्षिणेन तु। तृप्यतामिति सिञ्चेत्तु नामगोत्रेण वाग्यतः ॥

(ना० उत्तर० ५६ । ६२—६४)

अर्घ्य-मन्त्र

ॐ त्रैलोक्यपतीनां पतये देवदेवाय हृषीकेशाय विष्णवे नमः ।
ॐ नमो नारायणाय नमः

'त्रिभुवनपतियोंके भी पति, देवताओंके भी देवता, इन्द्रियोंके स्वामी भगवान् विष्णुको नमस्कार है । सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है ।'

पाद्य-मन्त्र

ॐ पाद्यं ते पादयोर्देव पद्मनाभ सनातन ॥
विष्णो कमलपत्राक्ष गृहाण मधुसूदन ।
ॐ नमो नारायणाय नमः
(ना० उत्तर० ५७ । २८-२९)

'देव पद्मनाभ ! सनातन विष्णो !! कमलनयन मधुसूदन !!! आपके चरणोंमें यह पाद्य (पाँव पखारनेके लिये जल) समर्पित है, आप इसे स्वीकार करें । सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है ।'

मधुपर्क-मन्त्र

मधुपर्कं महादेव ब्रह्माद्यैः कल्पितं तव ॥
मया निवेदितं भक्त्या गृहाण पुरुषोत्तम ।
ॐ नमो नारायणाय नमः
(ना० उत्तर० ५७ । २९-३०)

'महादेव ! पुरुषोत्तम ! ब्रह्मा आदि देवताओंने आपके लिये जिसकी व्यवस्था की थी, वही मधुपर्क मैं भक्तिपूर्वक आपको निवेदन करता हूँ । कृपया स्वीकार कीजिये । सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है ।'

आचमनीय-मन्त्र

मन्दाकिन्याः सितं वारि सर्वपापहरं शिवम् ॥
गृहाणाचमनीयं त्वं मया भक्त्या निवेदितम् ।
ॐ नमो नारायणाय नमः
(ना० उत्तर० ५७ । ३०-३१)

'भगवन् ! मैंने गङ्गाजीका स्वच्छ जल जो सब पापोंको दूर करनेवाला तथा कल्याणमय है, आचमनके लिये भक्तिपूर्वक आपको अर्पित किया है, कृपया ग्रहण कीजिये । सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है ।'

स्नान-मन्त्र

त्वमापः पृथिवी चैव ज्योतिस्त्वं वायुरेव च ॥
लोकेश वृत्तिमात्रेण वारिणा स्नापयाम्यहम् ।
ॐ नमो नारायणाय नमः
(ना० उत्तर० ५७ । ३१-३२)

'लोकेश्वर ! आप ही जल, पृथ्वी तथा [illegible] और [illegible] रूप हैं । मैं [illegible] आपको [illegible] हूँ । सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है ।'

वस्त्र-मन्त्र

देव तन्तुसमायुक्ते [illegible] ॥
स्वर्णवर्णप्रभे देव वाससी तव [illegible] ।
ॐ नमो नारायणाय नमः
(ना० उत्तर० ५७ । ३२-३३)

'देव केशव ! यह दिव्य तन्तुओंसे युक्त [illegible] तथा सुनहले रंग और सुनहली प्रभावाले दो वस्त्र आपकी सेवामें समर्पित हैं। सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है ।'

विलेपन-मन्त्र

शरीरं ते न जानामि चेष्टां चैव न केशव ॥
मया निवेदितो गन्धः प्रतिगृह्य विलिप्यताम् ।
ॐ नमो नारायणाय नमः
(ना० उत्तर० ५७ । ३३-३४)

'केशव ! मुझे आपके शरीर और चेष्टाका ज्ञान नहीं है । मैंने जो यह गन्ध (रोली-चन्दन आदि) निवेदन किया है, इसे लेकर अपने अङ्गमें लगावें । सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है ।'

यज्ञोपवीत-मन्त्र

ऋग्यजुःसाममन्त्रेण त्रिवृतं पद्मयोनिना ॥
सावित्रीग्रन्थिसंयुक्तमुपवीतं तवार्पये ।
ॐ नमो नारायणाय नमः
(ना० उत्तर० ५७ । ३४-३५)

'भगवन् ! ब्रह्माजीने ऋक्, यजुः और सामवेदके मन्त्रोंसे जिसको त्रिवृत् (त्रिगुण) बनाया है, वह सावित्री ग्रन्थिसे युक्त यज्ञोपवीत मैं आपकी सेवामें अर्पित करता हूँ । सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है ।'

अलंकार-मन्त्र

दिव्यरत्नसमायुक्ता वह्निभानुसमप्रभाः ॥
गात्राणि शोभयिष्यन्ति अलंकारास्तु माधव ।
ॐ नमो नारायणाय नमः ॥
(ना० उत्तर० ५७ । ३५-३६)

'माधव ! अग्नि और सूर्यके समान [illegible] रत्नोंसे जटित ये दिव्य आभूषण आपके श्रीअङ्गोंकी शोभा बढ़ायेंगे । सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है ।'

पूर्वोक्त अष्टदलकमलके पूर्व दलमें भगवान् वासुदेवका और दक्षिण दलमें श्रीसंकर्षणका न्यास करे। पश्चिम दलमें प्रद्युम्नका तथा उत्तर दलमें अनिरुद्धका न्यास करे। अग्निकोणवाले दलमें भगवान् वराहका तथा नैर्ऋत्य दलमें नृसिंहका न्यास करे। वायव्य दलमें माधवका तथा ईशान दलमें भगवान् त्रिविक्रमका न्यास करे। अष्टाक्षर देवस्वरूप भगवान् विष्णुके सम्मुख गरुड़जीकी स्थापना करनी चाहिये। भगवान्के वामभागमें चक्र और दक्षिणभागमें शङ्खकी स्थापना करे। इसी प्रकार उनके दक्षिणभागमें महागदा कौमोदकी और वामभागमें शार्ङ्गनामक धनुपको स्थापित करे। दक्षिणभागमें दो दिव्य तरकस और वामभागमें खड्गका न्यास करे। फिर दक्षिणभागमें श्रीदेवी और वामभागमें पुष्टिदेवीकी स्थापना करे। भगवान्के सम्मुख वनमाला, श्रीवत्स और कौस्तुभ रक्खे; फिर पूर्व आदि चारों दिशाओंमें हृदय आदिका न्यास करे। कोणमें देवदेव विष्णुके अस्त्रका न्यास करे। पूर्व आदि आठ दिशाओंमें तथा नीचे और ऊपर क्रमशः इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, अनन्त तथा ब्रह्माजीका उनके नाममन्त्रोंद्वारा पूजन करे। इसी विधिसे पूजित मण्डलस्थ भगवान् जनार्दनका जो दर्शन करता है, वह भी अविनाशी विष्णुमें प्रवेश करता है। जिसने उपर्युक्त विधिसे एक बार भी श्रीकेशवका पूजन किया है, वह जन्म, मृत्यु और जरावस्थाको लाँघकर भगवान् विष्णुके पदको प्राप्त होता है। जो आलस्य छोड़कर निरन्तर भक्तिभावसे भगवान् नारायणका स्मरण करता है, उसके नित्य निवासके लिये श्वेतद्वीप बताया गया है। नमः सहित ॐकार जिसके आदिमें है और जो अन्तमें भी नमः पदसे सुशोभित है, ऐसा नारायणका 'नारायण' नाम सम्पूर्ण तत्त्वोंका प्रकाशक मन्त्र कहलाता है। (उसका स्वरूप है—ॐ नमो नारायणाय नमः) इसी विधिसे प्रत्येकको गन्ध-पुष्प आदि वस्तुएँ क्रमशः निवेदन करनी चाहिये। इसी क्रमसे आठ मुद्राएँ बाँधकर दिखावे। तदनन्तर मन्त्रवेत्ता पुरुप 'ॐ नमो नारायणाय' इस मूलमन्त्रका एक सौ आठ बार या अट्ठाईस बार अथवा आठ बार जप करे। किसी कामनाके लिये जप करना हो तो उसके लिये शास्त्रोंमें जितना बताया गया हो, उतनी संख्यामें जप करे अथवा निष्कामभावसे जितना हो सके उतना एकाग्र चित्तसे जप करे। पद्म, शङ्ख, श्रीवत्स, गदा, गरुड़, चक्र, खड्ग और शार्ङ्गधनुष—ये आठ मुद्राएँ बतायी गयी हैं।

शुभे! जो लोग शास्त्रोक्त मन्त्रोंद्वारा श्रीहरिकी पूजाका विधान न जानते हों वे 'ॐ नमो नारायणाय' इस मूल-मन्त्रसे ही सदा भगवान् अच्युतका पूजन करें।

समुद्र-स्नानकी महिमा और श्रीकृष्ण-बलराम आदिके दर्शन आदिकी महिमा तथा श्रीकृष्णसे जगत्-सृष्टिका कथन एवं श्रीराधाकृष्णके उत्कृष्ट स्वरूपका प्रतिपादन

पुरोहित वसु कहते हैं—मोहिनी! इस प्रकार भक्तिपूर्वक भगवान् पुरुषोत्तमकी विधिवत् पूजा करके उनके चरणोंमें मस्तक झुकाये। फिर समुद्रसे प्रार्थना करे—

प्राणस्त्वं सर्वभूतानां योनिश्च सरितां पते।
तीर्थराज नमस्तेऽस्तु त्राहि मामच्युतप्रिय॥

(ना० उत्तर० ५८। २)

'सरिताओंके स्वामी तीर्थराज! आप सम्पूर्ण भूतोंके प्राण और योनि हैं। आपको नमस्कार है। अच्युतप्रिय! मेरी रक्षा कीजिये।'

इस प्रकार उस उत्तम क्षेत्र समुद्रमें भलीभाँति स्नान करके तटपर अविनाशी भगवान् नारायणकी विधिपूर्वक पूजा करे। तदनन्तर समुद्रको प्रणाम करके बलराम, श्रीकृष्ण और सुभद्राके चरणोंमें मस्तक झुकाना चाहिये। ऐसा करनेवाला मानव सौ अश्वमेध यज्ञोंका फल पाता है और सब पापोंसे मुक्त हो सब प्रकारके दुःखोंसे छुटकारा पा जाता है। अन्तमें सूर्यके समान तेजस्वी विमानपर बैठकर श्रीविष्णुलोकमें जाता है। ग्रहण, संक्रान्ति, अयनारम्भ, विपुवयोग, युगादि तिथि, मन्वादि तिथि, व्यतीपातयोग, तिथिक्षय, आषाढ़, कार्तिक और माघकी पूर्णिमा तथा अन्य शुभ तिथियोंमें जो उत्तम बुद्धिवाले पुरुष वहाँ ब्राह्मणोंको दान देते हैं, वे अन्य तीर्थोंकी अपेक्षा हजार गुना फल पाते हैं। जो लोग वहाँ विधिपूर्वक पितरोंको पिण्डदान देते हैं, उनके पितर अक्षय तृप्ति लाभ करते हैं।

देवि! इस प्रकार मैंने समुद्रमें स्नान, दान एवं पिण्डदान करनेका फल बतलाया। यह धर्म, अर्थ एव मोक्षरूप फल देनेवाला, आयु, कीर्ति तथा यशको बढ़ानेवाला, मनुष्योंको भोग और मोक्ष देनेवाला तथा उनके बुरे स्वप्नोंका नाश करनेवाला धन्य साधन है। यह सब पापोंको दूर करनेवाला, पवित्र तथा इच्छानुसार सब फलोंको देनेवाला है। इस पृथ्वीपर जितने तीर्थ, नदियाँ और सरोवर हैं, वे सब समुद्रमें

प्रवेश करते हैं, इसलिये वह सबसे श्रेष्ठ है। सरिताओंका स्वामी समुद्र सब तीर्थोंका राजा है, अतः वह सभी तीर्थोंसे श्रेष्ठ है। जैसे सूर्योदय होनेपर अन्धकारका नाश हो जाता है, उसी प्रकार तीर्थराज समुद्रमें स्नान करनेपर सब पापोंका क्षय हो जाता है। जहाँ निन्यानवे करोड़ तीर्थ रहते हैं, उस तीर्थराजके गुणोंका वर्णन कौन कर सकता है। अतः वहाँ स्नान, दान, होम, जप तथा देवपूजन आदि जो कुछ सत्कर्म किया जाता है, वह अक्षय बताया गया है।

मोहिनीने पूछा—गुरुदेव! पुराणोंमें राधामाधवका वर्णन रहस्यरूप है। सुव्रत! आप सब कुछ यथार्थरूपसे जानते हैं; अतः उसे बताइये।

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! मोहिनीका यह वचन सुनकर महात्मा वसु, जो भगवान् गोविन्दके अत्यन्त भक्त थे, उनके चिन्तनमें निमग्न हो गये। उनके सम्पूर्ण अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया। हृदयमें हर्षकी बाढ़-सी आ गयी; अतः वे द्विजश्रेष्ठ मुग्ध होकर मोहिनीसे प्रसन्नतापूर्वक बोले।

पुरोहित वसुने कहा—देवि! भगवान् श्रीकृष्णका चरित्र परम गोपनीय तथा रहस्योंमें भी अत्यन्त रहस्यभूत है। मैं बताता हूँ, सुनो। जो प्रकृति और पुरुषके भी नियन्ता, विधाताके भी विधाता और संहारकारी कालके भी संहारक हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णको मैं नमस्कार करता हूँ। देवि! ब्रह्म श्रीकृष्णस्वरूप है। सब अवतार उसीके हैं। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही अवतारी हैं। वे स्वय ही सगुण भी हैं और निर्गुण भी। वस्तुतः वे ही श्रीराम हैं और वे ही

श्रीकृष्ण। सम्पूर्ण लोक प्राकृत गुणोंसे उत्पन्न हुए हैं। स्वयं गोलोकधाम निर्गुण है। भद्रे! गोलोकमें जो [illegible] है, उसका अर्थ है तेज अथवा [illegible]। [illegible] पुराणोंमें [illegible] ही निरूपण किया है। देवि! वह तेजोमय ब्रह्म [illegible] है। गुणोंका उत्पादक भी वही माना गया है। [illegible] उस परमात्माकी शक्ति मानी गयी है। प्रधान महत्तत्त्व कार्य-कारणरूप बताया गया है। पुरुषको [illegible] निर्गुण कहते हैं। पुरुषने प्रकृतिमें तेजका आधान किया। इससे सत्त्व आदि गुण उत्पन्न हुए। उन गुणोंसे [illegible] प्रादुर्भाव हुआ। पुरुषके [illegible] वह महत्तत्त्व [illegible] प्रकट हुआ। भद्रे! वह अहंकार द्रव्य, ज्ञान और [illegible] से तथा वैकारिक, तैजस और तामस [illegible] तीन प्रकारका है। वैकारिक अहंकारसे मन तथा दस वैकारिक देवता प्रकट हुए, जिनके नाम इस प्रकार हैं—दिशा, वायु, सूर्य, [illegible], अश्विनीकुमार, ब्रह्मा, इन्द्र, उपेन्द्र, मित्र और [illegible]। तैजस अहंकारसे इन्द्रियोंकी उत्पत्ति बतायी गयी है। उनके दो भेद हैं—ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ। श्रोत्र, त्वचा, [illegible] नेत्र तथा जिह्वा—ये ज्ञानेन्द्रियाँ हैं तथा सुभगे! वाणी, हाथ, पैर, शिश्न तथा गुदा—ये कर्मेन्द्रियाँ हैं। [illegible]! तामस अहंकारसे शब्दकी उत्पत्ति हुई। उस शब्दसे [illegible] प्रकट हुआ। आकाशसे स्पर्श हुआ और स्पर्शसे [illegible] प्रादुर्भाव हुआ। वायुसे रूप प्रकट हुआ तथा [illegible] उत्पत्ति हुई। सती! तेजसे रस हुआ तथा [illegible] उत्पत्ति हुई। जलसे गन्धकी उत्पत्ति हुई और [illegible] उत्पन्न हुई। इस पृथ्वीपर ही चराचर प्राणियोंकी [illegible] जाती है। आकाश आदि तत्त्वोंमें क्रमशः एक, दो, तीन और चार गुण हैं। भूमिमें पाँच गुण बताये गये हैं। [illegible] पाँचों भूत विशेष कहे गये हैं। [illegible] और [illegible] प्रेरित हुए इन पाँच भूतोंने अचेतन अण्डकी [illegible] की। सती मोहिनी! उसमें पुरुषके प्रवेश करनेसे वह [illegible] हो उठा। उस अण्डसे विराट् पुरुष उत्पन्न हुआ और वह जलके भीतर शयन करने लगा। [illegible]! [illegible] विराट् पुरुषके बोलने आदि [illegible] आदि अङ्ग तथा भिन्न-भिन्न अवयव प्रकट हुए। उस पुरुषकी नाभिसे एक कमल उत्पन्न हुआ, जो [illegible] प्रकाशमान था। उस कमलसे [illegible] स्वयम्भू ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। उन्होंने [illegible] पुरुष परमात्माकी आज्ञा ले [illegible] और [illegible] की। ब्रह्माजीने घट आदि [illegible] और उसके अङ्गोंसे [illegible] आदि [illegible]

इन चौदह भुवनोंसे युक्त ब्रह्माण्ड बताया गया है। ब्रह्माजीने इस चतुर्दशभुवनात्मक ब्रह्माण्डमें समस्त चराचर भूतोकी सृष्टि की है। ब्रह्माजीके मनसे चार सनकादि महात्मा उत्पन्न हुए हैं। देवि ! ब्रह्माजीके शरीरसे भृगु आदि पुत्र उत्पन्न हुए हैं, जिन्होंने इस जगत्को बढाया है।

पुरोहित वसु कहते हैं—महाभागे ! वे जो निरञ्जन, सच्चिदानन्दस्वरूप, ज्योतिर्मय, जनार्दन भगवान् श्रीकृष्ण हैं, उनका लक्षण सुनो। वे सर्वव्यापी हैं और ज्योतिर्मय गोलोक-के भीतर नित्य निवास करते हैं। एकमात्र श्रीकृष्ण ही दृश्य तथा अदृश्यरूपधारी परब्रह्म हैं। मोहिनी ! गोलोकमें गौएँ, गोप और गोपियाँ हैं। वहाँ वृन्दावन, सैकड़ो शिखरोंवाला गोवर्धन पर्वत, विरजा नदी, नाना वृक्ष, भाँति-भाँतिके पक्षी आदि वस्तुएँ विद्यमान हैं। विधिनन्दिनी ! जबतक प्रकृति जागती है, तबतक गोलोकमें सर्वव्यापी भगवान् श्रीकृष्ण प्रत्यक्षरूपसे ही विराजमान होते हैं। प्रलयकालमें गौएँ आदि सो जाती हैं, अतः वे परमात्माको नहीं जान पातीं। वे परमात्मा तेजःपुञ्जके भीतर कमनीय शरीर धारण करके किशोररूपसे विराजमान होते हैं। उनके श्रीअङ्गोंकी कान्ति मेघके समान श्याम है। उन्होंने रेशमी पीताम्बर धारण कर रक्खा है। उनके दो हाथ है। हाथमें मुरली सुशोभित है। वे भगवान् किरीट-कुण्डल आदिसे विभूषित हैं। श्रीराधा उन्हें प्राणोंसे भी अधिक प्यारी है। श्रीराधिकाजी उनकी आराधिका हैं। उनका वर्ण सुवर्णके समान उद्भासित होता है। देवी श्रीराधा प्रकृतिसे परे स्थित सच्चिदानन्दमयी हैं। वे दोनों भिन्न-भिन्न देह धारण करके स्थित हैं, तो भी उनमें कोई भेद नहीं है। उनका स्वरूप नित्य है। जैसे दूध और उसकी धवलता, पृथ्वी और उसकी गन्ध एक और अभिन्न हैं, उसी प्रकार वे दोनो प्रिया-प्रियतम एक हैं। जो कारणका भी कारण है, उसका निर्देश नहीं किया जा सकता। जो वेदके लिये भी अनिर्वचनीय है, उसका वर्णन कदापि सम्भव नहीं है।

इन्द्रद्युम्न-सरोवरमें स्नानकी विधि, ज्येष्ठ मासकी पूर्णिमाको श्रीकृष्ण, बलराम तथा सुभद्राके अभिषेकका उत्सव

पुरोहित वसु कहते हैं—ब्रह्मपुत्री मोहिनी ! वहाँसे उस तीर्थमें जाय जो अश्वमेध यज्ञके अङ्गसे उत्पन्न हुआ है। उसका नाम है इन्द्रद्युम्न-सरोवर। वह पवित्र एव शुभ तीर्थ है। बुद्धिमान् पुरुष वहाँ जाकर पवित्रभावसे आचमन करे और मन-ही-मन भगवान् श्रीहरिका ध्यान करके जलमें उतरे। उस समय इस मन्त्रका उच्चारण करे—

अश्वमेधाङ्गसम्भूत तीर्थ सर्वाघनाशन।
स्नानं त्वयि करोम्यद्य पापं हर नमोऽस्तु ते॥
(ना० उत्तर० ६० । ३)

'अश्वमेधयज्ञके अङ्गसे प्रकट हुए तथा सम्पूर्ण पापोंके विनाशक तीर्थ ! आज मैं तुम्हारे जलमें स्नान करता हूँ। मेरे पाप हर लो। तुमको नमस्कार है।'

इस प्रकार मन्त्रका उच्चारण करके विधिपूर्वक स्नान करे और देवताओं, ऋषियों, पितरों तथा अन्यान्य लोगोंका तिल और जलसे तर्पण करके मौनभावसे आचमन करे। फिर पितरोंको पिण्डदान दे भगवान् पुरुषोत्तमका पूजन करे। ऐसा करनेवाला मानव दस अश्वमेध-यज्ञोंका फल पाता है। इस प्रकार पञ्चतीर्थका सेवन करके एकादशीको उपवास करे। जो मनुष्य ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमाको भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन करता है, वह पूर्वोक्त फलका भागी होकर दिव्यलोकमें क्रीडा करके उस परम पदको प्राप्त होता है, जहाँसे पुनः लौटकर नहीं आता। पृथ्वीपर जितने तीर्थ, नदी, सरोवर, पुष्करिणी, तालाव, बावड़ी, कुआँ, ह्रद और समुद्र हैं, वे सब ज्येष्ठके शुक्लपक्षकी दशमीसे लेकर पूर्णिमातक एक सप्ताह प्रत्यक्षरूपसे पुरुषोत्तम-तीर्थमें जाकर रहते हैं। यह उनका सदाका नियम है। सती मोहिनी ! इसीलिये वहाँ स्नान, दान, देव-दर्शन आदि जो कुछ पुण्यकार्य उस समय किया जाता है, वह अक्षय होता है। मोहिनी ! ज्येष्ठ मासके शुक्लपक्षकी दशमी तिथि दस प्रकारके पापोंको हर लेती है। इसलिये उसे 'दशहरा' कहा गया है। जो उस दिन उत्तम व्रतका पालन करते हुए बलराम, श्रीकृष्ण एवं सुभद्रादेवीका दर्शन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकमें जाता है। जो मनुष्य फाल्गुनकी पूर्णिमाके दिन एकचित्त हो पुरुषोत्तम श्रीगोविन्दको झूलेपर विराजमान देखता है, वह उनके धाममें जाता है। सुलोचने!

जिस दिन विषुव-योग हो, वह दिन प्राप्त होनेपर विधिपूर्वक पञ्चतीर्थका सेवन करके बलराम, श्रीकृष्ण और सुभद्राका दर्शन करनेवाला मनुष्य समस्त यज्ञोंका दुर्लभ फल पाता है और सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकमें जाता है। जो वैशाखके शुक्लपक्षमें तृतीयाको श्रीकृष्णके चन्दनचर्चित स्वरूपका दर्शन करता है, वह उनके धाममें जाता है। ज्येष्ठ मासकी पूर्णिमाको यदि वृषराशिके सूर्य और ज्येष्ठा नक्षत्रका योग हो तो उसे 'महाज्येष्ठी' पूर्णिमा कहते हैं। उस समय मनुष्योंको प्रयत्नपूर्वक पुरुषोत्तम-क्षेत्रकी यात्रा करनी चाहिये। मोहिनी! महाज्येष्ठी पर्वको श्रीकृष्ण, बलराम और सुभद्राका दर्शन करके मनुष्य बारह यात्राओंका फल पाता है। प्रयाग, कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य, पुष्कर, गया, हरिद्वार, कुशावर्त, गङ्गासागर-सङ्गम, कोकामुख—शूकरतीर्थ, मथुरा, मरुस्थल, शालग्रामतीर्थ, वायुतीर्थ, मन्दराचल, सिन्धुसागर-सङ्गम, पिण्डारक, चित्रकूट, प्रभास, कनखल, शङ्खोद्धार, द्वारका, बदरिकाश्रम, लोहकूट, सर्वपापमोचन—अश्वतीर्थ, कर्दमाल, कोटितीर्थ, अमरकण्टक, लोलार्क, जम्बूमार्ग, सोमतीर्थ, पृथूदक, उत्पलावर्तक, पृथुतुङ्ग, कुब्जतीर्थ, एकाम्रक, केदार, काशी, विरज, कालञ्जर, गोकर्ण, श्रीशैल, गन्धमादन, महेन्द्र, मलय, विन्ध्य, पारियात्र, हिमालय, सह्य, शुक्तिमान्, गोमान्, अर्बुद, गङ्गा, यमुना, सरस्वती, गोमती तथा ब्रह्मपुत्र आदि तीर्थोंमें जो पुण्य होता है और महाभागे! गोदावरी, भीमरथी, तुङ्गभद्रा, नर्मदा, तापी, पयोष्णी, कावेरी, क्षिप्रा, चर्मण्वती, वितस्ता (झेलम), चन्द्रभागा (चनाव), शतद्रू (शतलज), बाहुदा, ऋषिकुल्या, मरुद्वृधा, विपाशा (व्यास), दृषद्वती, सरयू, आकाशगङ्गा, गण्डकी, महानदी, कौशिकी (कोसी), करतोया, त्रिस्रोता, मधुवाहिनी तथा महानदी वैतरणी और अन्यान्य नदियाँ, जिनका नाम यहाँ नहीं लिया गया है, वे सभी पुण्यमें श्रीकृष्णदर्शनकी समानता नहीं कर सकतीं। सूर्य-ग्रहणके समय स्नान और दानसे जो फल होता है, महाज्येष्ठी पर्वको भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करके मनुष्य उसी फलको प्राप्त कर लेता है।

वहाँ एक सजल कूप है, जो बड़ा ही पवित्र और सर्वतीर्थमय है। ज्येष्ठकी पूर्णिमाको उसमें पातालगङ्गा, भोगवती निश्चितरूपसे प्रत्यक्ष हो जाती हैं। अतः मोहिनी! ज्येष्ठकी पूर्णिमाको श्रीकृष्ण, बलराम और सुभद्राको स्नान करानेके लिये सुवर्ण आदिके कलशोंमें उस कूपसे जल निकाला जाता है। इसके लिये एक सुन्दर मञ्च बनवाकर उसे पताका आदिसे अलंकृत किया जाता है। वह सुदृढ़ और सुन्दर स्नानके योग्य बना होता है। वस्त्र और फूलोंसे उसे सजाया जाता है। वह खूब विस्तृत होता है और धूपसे सुवासित किया जाता है। उसपर श्रीकृष्ण और बलरामको स्नान करानेके लिये श्वेत वस्त्र बिछाया जाता है। उसे सजानेके लिये मोतियोंके हार लटकाये जाते हैं। भाँति-भाँतिके बाजोंकी ध्वनि होती रहती है। सती! उस मञ्चपर एक ओर भगवान् श्रीकृष्ण और दूसरी ओर भगवान् बलराम विराजते हैं। बीचमें सुभद्रादेवीको पधराकर जयजयकार और मङ्गलपाठके साथ स्नान कराया जाता है। मोहिनी! उस समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्य जातिके लाखों स्त्री-पुरुष उन्हें घेरे रहते हैं। गृहस्थ, स्नातक, संन्यासी और ब्रह्मचारी सभी मञ्चपर विराजमान भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामको स्नान कराते हैं। सुन्दरी! पूर्वोक्त सभी तीर्थ अपने पुष्पमिश्रित जलसे पृथक्-पृथक् भगवान्‌को स्नान कराते हैं। उस समय मुनिलोग वेद-पाठ और मन्त्रोच्चारण करते हैं। आकाशमें सब ओर भाँति-भाँतिकी स्तुतियोंके पुण्यमय शब्द होते रहते हैं। आकाशमें यक्ष, विद्याधर, सिद्ध, किंनर, अप्सराएँ, देव, गन्धर्व, चारण, आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, विश्वेदेव, मरुद्गण, लोकपाल तथा अन्य लोग भी भगवान् पुरुषोत्तमकी स्तुति करते हैं—'देवदेवेश्वर! पुराणपुरुषोत्तम! आपको नमस्कार है। जगत्पालक भगवान् जगन्नाथ! आप सृष्टि, स्थिति और संहार करनेवाले हैं। जो त्रिभुवनको धारण करनेवाले, ब्राह्मणभक्त, मोक्षके कारणभूत और समस्त मनोवाञ्छित फलोंके दाता हैं, उन भगवान्‌को हम प्रणाम करते हैं*।' मोहिनी! इस प्रकार आकाशमें खड़े हुए देवता श्रीकृष्ण-

---

* नमस्ते देवदेवेश पुराणपुरुषोत्तम।
सर्गस्थित्यन्तकृद्देव लोकनाथ जगत्पते॥
त्रैलोक्यधारिणं देव ब्रह्मण्यं मोक्षकारणम्।
तं नमस्यामहे सर्वे सर्वकामफलप्रदम्॥
(ना० उत्तर० ६०। ४१—४२)

महाबली बलराम और सुभद्रादेवीकी स्तुति करते हैं। देवताओंके बाजे बजते और शीतल वायु चलती है। उस समय आकाशमें उमड़े हुए मेघ पुष्पमिश्रित जलकी वर्षा करते हैं। मुनि, सिद्ध और चारण जय-जयकार करते हैं। तत्पश्चात् इन्द्र आदि समस्त देवता, ऋषि, पितर, प्रजापति, नाग तथा अन्य स्वर्गवासी मङ्गल सामग्रियोंके साथ विधि और मन्त्रयुक्त अभिषेकोपयोगी द्रव्य लेकर भगवान्‌का अभिषेक करते हैं।

अभिषेककालमें देवताओंद्वारा जगन्नाथजीकी स्तुति, गुण्डिचा-यात्राका माहात्म्य तथा द्वादश यात्राकी प्रतिष्ठाविधि

पुरोहित वसु कहते हैं—ब्रह्मपुत्री मोहिनी! उस समय इस प्रकार श्रीकृष्ण, बलराम तथा सुभद्राका अभिषेक करके प्रसन्नतासे भरे हुए महाभाग देवगण उनकी स्तुति करते हैं।

देवता कहते हैं—सम्पूर्ण लोकोंका पालन करनेवाले जगन्नाथ! आपकी जय हो, जय हो। पद्मनाभ! धरणीधर! आदिदेव! आपकी जय हो। वासुदेव! दिव्य मत्स्य रूप धारण करनेवाले परमेश्वर! आपकी जय हो। देवश्रेष्ठ! समुद्रमें शयन करनेवाले माधव! योगेश्वर! आपकी जय हो। विश्वमूर्ते! चक्रधर! श्रीनिवास! आपकी जय हो। कच्छपावतार! आपकी जय हो। शेषशायिन्! धर्मवास! गुणनिधान! आपकी जय हो। शान्तिकर! ज्ञानमूर्ते! भाववेद्य! मुक्तिकर! आपकी जय हो, जय हो। विमलदेह! सत्त्वगुणके निवासस्थान! गुणसमूह! आपकी जय हो, जय हो। निर्गुणरूप! मोक्षसाधक! आपकी जय हो। लोक-शरण! लक्ष्मीपते! कमलनयन! सृष्टिकर! आपकी जय हो, जय हो। आपका श्रीविग्रह तीसीके फूलकी भाँति श्याम एवं सुन्दर है; आपकी जय हो। आपका श्रीअङ्ग शेषनागके शरीरपर शयन करता है; आपकी जय हो। भक्तिभावन! आपकी जय हो, जय हो। परमशान्त! आपकी जय हो। नीलाम्बरधारी बलराम! आपकी जय हो। सांख्यवन्दित! आपकी जय हो। पापहारी हरे! आपकी जय हो। जगन्नाथ श्रीकृष्ण! आपकी जय हो। बलरामजीके अनुज! आपकी जय हो। मनोवाञ्छित फल देनेवाले देव! आपकी जय हो। वनमालासे आवृत वक्षवाले नारायण! आपकी जय हो। विष्णो! आपकी जय हो। आपको नमस्कार है।

इस प्रकार स्तुति करके इन्द्र आदि देवता, सिद्ध, चारण, गन्धर्व तथा अन्य स्वर्गवासी मन-ही-मन बड़े प्रसन्न होते हैं। वे तन्मय चित्तसे श्रीकृष्ण, बलराम और सुभद्रा देवीका दर्शन, स्तवन एवं नमस्कार करके अपने-अपने निवासस्थानको चले जाते हैं। पुष्करतीर्थमें सौ बार कपिला गौका दान करनेसे अथवा सौ कन्याओंका दान करनेसे जो फल कहा गया है, उसीको मनुष्य मञ्चपर विराजमान श्रीकृष्णका दर्शन करनेसे पा लेता है। सबका आतिथ्य-सत्कार करनेसे, विधिपूर्वक वृषोत्सर्ग करनेसे, ग्रीष्मऋतुमें जलदान देनेसे, चान्द्रायण करनेसे, एक मासतक निराहार रहनेसे तथा सब तीर्थोंमें जाकर व्रत और दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह सब मञ्चपर विराजमान सुभद्रासहित श्रीकृष्ण और बलरामका दर्शन करनेसे मिल जाता है। अतः स्त्री हो या पुरुष सबको उस समय पुरुषोत्तमका दर्शन करना चाहिये। मोहिनी! भगवान् श्रीकृष्णके स्नान किये हुए शेष जलसे यदि विधिपूर्वक अभिषेक किया जाय तो वन्ध्या, मृतवत्सा, दुर्भगा, ग्रहपीड़िता, राक्षसगृहीता तथा रोगिणी स्त्रियाँ तत्काल शुद्ध हो जाती हैं। और सुभ्रु! जिन-जिन मनोरथोंको वे चाहती हैं, उन सबको शीघ्र प्राप्त कर लेती हैं। अतः जलशायी भगवान् श्रीकृष्णके स्नानावशेष जलसे, अपने सम्पूर्ण अङ्गोंको सींचना चाहिये। जो लोग स्नानके पश्चात् दक्षिणाभिमुख जाते हुए भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करते हैं, वे ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। पृथ्वीके सम्पूर्ण तीर्थोंकी यात्रा करनेका जो फल कहा गया है तथा गङ्गाद्वार, कुब्जाम्र तथा कुरुक्षेत्रमें एवं पुष्कर आदि अन्य तीर्थोंमें सूर्यग्रहणके समय स्नान करनेसे जो फल बताया गया है एवं वेद, शास्त्र, पुराण, महाभारत तथा संहिता आदि ग्रन्थोंमें पुण्यकर्मका जो फल बताया गया है, उसे मनुष्य दक्षिणाभिमुख जाते हुए श्रीकृष्ण, बलराम तथा सुभद्राका दर्शनमात्र करके पा लेता है।

भगवान् श्रीकृष्ण, बलराम और सुभद्रा—ये रथपर विराजमान होकर जब गुण्डिचा[1] मण्डपकी यात्रा करते हैं, उस समय जो उनका दर्शन करते हैं, वे श्रीहरिके धाममें जाते हैं। गुण्डिचा-यात्राके समय फाल्गुनकी पूर्णिमाको विषुव योगमें जो मनुष्य एक बार पुरुषोत्तमपुरीकी यात्रा करता है, वह विष्णुलोकमें जाता है। ब्रह्मपुत्री! जब वहाँकी बारह यात्राएँ पूर्ण हो जायँ, उस समय विधिपूर्वक उसकी प्रतिष्ठा (उद्यापन) करनी चाहिये, जो सब पापोंका नाश करनेवाली है। ज्येष्ठ मासके शुक्लपक्षकी चतुर्दशी तिथिको एकाग्रचित्तसे किसी तीर्थमें जाकर आचमन करे और इन्द्रिय-संयमपूर्वक भक्तिभावसे सब तीर्थोंका आवाहन करके भगवान् नारायणका ध्यान करते हुए मार्जन करके स्नान करे। स्नानके पश्चात् विधिपूर्वक देवताओं, ऋषियों, अपने पितरों तथा अन्य लोगोंका उनके नाम और गोत्रका उच्चारण करते हुए तर्पण करे। फिर जलसे निकलकर दो स्वच्छ वस्त्र धारण करे और फिरसे आचमन करके सूर्योपस्थानके पश्चात् पुण्यमयी वेदमाता गायत्रीका एक सौ आठ बार जप करे। साथ ही सूर्यदेवतासम्बन्धी अन्य मन्त्रोंका जप करके तीन बार परिक्रमाके पश्चात् सूर्यदेवको प्रणाम करे। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन तीन वर्णोंके लिये वेदोक्त विधिसे स्नान और जपका विधान है। वरारोहे! स्त्री और शूद्रोंके स्नान और जप वैदिक विधिसे रहित होते हैं।

इसके बाद भक्तिभावसे मन्दिरमें स्थित श्रीपुरुषोत्तमके समीप जाय। वहाँ हाथ-पैर धोकर विधिपूर्वक आचमन करके भगवान्को पहले घीसे स्नान करावे, उसके बाद दूधसे। तत्पश्चात् मधु, गन्धोदक एवं तीर्थचन्दनके जलसे उन्हें स्नान कराकर दो श्रेष्ठ वस्त्र भक्तिपूर्वक भगवान्को पहनावे। चन्दन, अगुरु, कपूर तथा कुङ्कुमका लेप लगावे। फिर कमलके फूलोंसे भक्तिपूर्वक भगवान् पुरुषोत्तमकी पूजा करे। इस प्रकार भोग और मोक्ष देनेवाले जगन्नाथ श्रीहरिकी पूजा करके उनके समक्ष अगुरु, पवित्र गुग्गुल तथा अन्य सुगन्धित पदार्थों एवं घृतके साथ धूप जलावे। फिर अपनी शक्तिके अनुसार घीसे भक्तिपूर्वक दीपक जलाकर रक्खे। देवि! एकाग्रचित्त होकर गायके घी अथवा तिलके तेलसे दूसरा दीपक और जलाकर रक्खे। तदनन्तर नैवेद्यके रूपमें खीर, पूआ, पूड़ी, बड़ा, लड्डू, खाँड और फल निवेदन करे। इस प्रकार पञ्चोपचारसे श्रीपुरुषोत्तमकी पूजा करके 'ॐ नमः पुरुषोत्तमाय' इस मन्त्रका एक सौ आठ बार जप करे। तत्पश्चात् दण्डकी भाँति पृथ्वीपर पड़कर भगवान्को साष्टाङ्ग प्रणाम करे। फिर एकाग्रचित्त हो भगवान्के ऊपर भाँति-भाँतिके पुष्पोंसे एक सुन्दर एवं विचित्र [illegible]

---

१. गुण्डिचा नामक उद्यान-मन्दिर, जो पुरीमें इन्द्रद्युम्न-सरोवरके तटपर स्थित है। इसके गुण्डिचा, गुडिचा आदि नाम भी मिलते हैं।

प्रकार पुष्पमण्डप बनावे और भगवच्चिन्तन करते हुए रातमें जागरण करे। भगवान् वासुदेवकी कथा और गीतका भी आयोजन करे। इस प्रकार विद्वान् पुरुष भगवान्का ध्यान, पाठ और स्तवन करते हुए रात बितावे। तदनन्तर निर्मल प्रभात-काल आनेपर द्वादशीको बारह ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। वे ब्राह्मण स्नातक, वेदोंके पारगामी, इतिहास-पुराणके ज्ञाता, श्रोत्रिय और जितेन्द्रिय होने चाहिये। इसके बाद स्वयं भी विधिपूर्वक स्नान करके धुला हुआ वस्त्र पहने और इन्द्रियसंयमपूर्वक भक्तिभावसे पहलेकी भाँति वहाँ विराजमान पुरुषोत्तमको स्नान करावे; फिर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, उपहार आदि नाना प्रकारके उपचारोंसे तथा प्रणाम, परिक्रमा, जप, स्तुति, नमस्कार और मनोहर गीत-वाद्योंद्वारा भगवान् जगन्नाथकी पूजा करे। भगवत्पूजनके पश्चात् ब्राह्मणों-की भी पूजा करे। उनके लिये बारह गौएँ दान करके भक्ति-पूर्वक सुवर्ण, छतरी, जूते और काँसपात्र आदि समर्पित करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको खीरसहित पक्वान्न भोजन करावे। उन भोज्यपदार्थोंमें गुड़ और शक्करका मेल होना चाहिये। जब ब्राह्मणलोग भोजन करके भलीभाँति तृप्त एवं प्रसन्नचित्त हो जायँ, तब उनके लिये जलसे भरे हुए बारह घट दान करे। उन घड़ोंके साथ लड्डू और यथाशक्ति दक्षिणा भी होनी चाहिये। ब्रह्मपुत्री! तत्पश्चात् विष्णुतुल्य ज्ञानदाता गुरुकी पूर्ण भक्तिके साथ पूजा करनी चाहिये। विद्वान् पुरुष उन्हें सुवर्ण, वस्त्र, गौ, धान्य, द्रव्य तथा अन्य मनोवाञ्छित वस्तुएँ देकर उनकी पूजा सम्पन्न करे; फिर नमस्कार करके निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करे—

सर्वव्यापी जगन्नाथः शङ्खचक्रगदाधरः।
अनादिनिधनो देवः प्रीयतां पुरुषोत्तमः॥
(ना० उत्तर० ६१। ७४)

'शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले, सर्वव्यापी, अनादि और अनन्त देवता जगदीश्वर भगवान् पुरुषोत्तम मुझपर प्रसन्न हों।'

यों कहकर गुरु एवं ब्राह्मणोंकी आदरपूर्वक तीन बार परिक्रमा करे; फिर चरणोंमें भक्तिपूर्वक सिर नवाकर आचार्यसहित ब्राह्मणोंको विदा करे। तत्पश्चात् गाँवकी सीमातक भक्तिपूर्वक उन ब्राह्मणोंके साथ-साथ जाय और उन्हें नमस्कार करके लौटे। फिर स्वजनों और बान्धवोंके साथ स्वयं भी मौन होकर भोजन करे। ऐसा करके स्त्री हो या पुरुष वह एक हजार अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञोंका फल पाता है एवं सूर्यतुल्य विमानके द्वारा विष्णुलोकको जाता है। इस प्रकार मैंने तुम्हें श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्रकी यात्राका फल बताया है, जो मनुष्योंको भोग और मोक्ष देनेवाला है।

प्रयाग-माहात्म्यके प्रसङ्गमें तीर्थयात्राकी सामान्य विधिका वर्णन

वसिष्ठजी कहते हैं—भूपाल! भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले इस पुरुषोत्तम-माहात्म्यको सुनकर ब्रह्मपुत्री मोहिनीने अपने पुरोहित विप्रवर वसुसे पुनः प्रश्न किया।

मोहिनी बोली—विप्रवर! मैंने पुरुषोत्तमतीर्थका अद्भुत माहात्म्य सुना। सुव्रत! अब प्रयागका भी माहात्म्य कहिये।

पुरोहित वसुने कहा—भद्रे! सुनो, मैं तीर्थयात्राकी विधि बतलाता हूँ; जिसका आश्रय लेनेपर मनुष्य यात्राका शास्त्रोक्त फल पा सकता है। तीर्थयात्रा पुण्यकर्म है। इसका महत्त्व यज्ञोंसे भी बढ़कर है। बहुत दक्षिणावाले अग्निष्टोमादि यज्ञोंका अनुष्ठान करके भी मनुष्य उस फलको नहीं पाता, जो तीर्थयात्रासे सुलभ होता है। जो अनजानमें भी कभी यहाँ तीर्थयात्रा कर लेता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंसे सम्पन्न हो स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। उसे सदा धन-धान्यसे भरा हुआ स्थान प्राप्त होता है। वह भोगसम्पन्न और सदा ऐश्वर्य-ज्ञानसे परिपूर्ण होता है। उसने नरकसे अपने पितरों और पितामहोंका उद्धार कर दिया। जिसके हाथ, पैर और मन अपने वशमें हैं तथा जो विद्या, तपस्या और कीर्तिसे सम्पन्न है, वही तीर्थके पूर्ण फलका भागी होता है। जो प्रतिग्रहसे दूर रहता है और जो कुछ मिल जाय उसीसे संतुष्ट होता है तथा जिसमें अहंकारका सर्वथा अभाव है, वह तीर्थके फलका भागी होता है। जो संकल्परहित, प्रवृत्तिशून्य, स्वल्पाहारी, जितेन्द्रिय तथा सब प्रकारकी आसक्तियोंसे मुक्त है, वह तीर्थके फलका भागी होता है। धीर पुरुष श्रद्धा और एकाग्रतापूर्वक यदि तीर्थोंमें भ्रमण करता है तो वह पापी

होनेपर भी उस पापसे शुद्ध हो जाता है। फिर जो शुद्ध कर्म करनेवाला है, उसके लिये तो कहना ही क्या है? अश्रद्धालु, पापपीड़ित, नास्तिक, संशयात्मा और केवल युक्तिवादी—ये पाँच प्रकारके मनुष्य तीर्थ-फलके भागी नहीं होते। पापी मनुष्योंके तीर्थमें जानेसे उनके पापकी शान्ति होती है। जिनका अन्तःकरण शुद्ध है, ऐसे मनुष्योंके लिये तीर्थ यथोक्त फलको देनेवाला है। जो काम, क्रोध और लोभको जीतकर तीर्थमें प्रवेश करता है, उसे उस तीर्थयात्रासे कोई भी वस्तु अलभ्य नहीं रहती। जो यथोक्त विधिसे तीर्थयात्रा करते हैं, सम्पूर्ण द्वन्द्वोंको सहन करनेवाले वे धीर पुरुष स्वर्गगामी होते हैं। गङ्गा आदि तीर्थोंमें मछलियाँ निवास करती हैं, पक्षीगण देवालयमें वास करते हैं; किंतु उनके चित्त भक्तिभावसे रहित होनेके कारण तीर्थसेवन तथा श्रेष्ठ देव-मन्दिरमें रहनेसे कोई फल नहीं पाते। अतः हृदयकमलमें भावका संग्रह करके एकाग्रचित्त हो तीर्थोंका सेवन करना चाहिये।

मुनीश्वरोंने तीन प्रकारकी तीर्थयात्रा बतायी है—कृत, प्रयुक्त तथा अनुमोदित। ब्रह्मचारी बालक संयमपूर्वक गुरुकी आज्ञामें संलग्न रहकर उक्त तीनों प्रकारकी तीर्थयात्राको विधिपूर्वक सम्पन्न कर लेता है। (अर्थात् ब्रह्मचर्यपालन, इन्द्रियसंयम तथा गुरु-सेवनसे उसको गुरुकुलमें ही तीर्थयात्राका पूरा फल मिल जाता है।) जो कोई भी पुरुष तीर्थयात्राको जाय, वह पहले घरमें ही रहकर पूर्ण सयमका अभ्यास करे और पवित्र एव सावधान होकर भक्तिभावसे विनम्र हो गणेशजीकी पूजा करे। तत्पश्चात् देवताओं, पितरों, ब्राह्मणों तथा साधुपुरुषोंका भी अपने वैभव और शक्तिके अनुसार प्रयत्नपूर्वक सत्कार करे। बुद्धिमान् ब्राह्मण तीर्थयात्रासे लौटनेपर भी पुनः पूर्ववत् देवताओं, पितरों और ब्राह्मणोंका पूजन करे। ऐसा करनेपर उसे तीर्थसे जिस फलकी प्राप्ति बतायी गयी है, वह सब यहाँ प्राप्त होता है। प्रयागमें, तीर्थयात्रामें तथा माता-पिताकी मृत्यु होनेपर अपने केशोंका मुण्डन करा देना चाहिये। ऐसा कोई कारण न होनेपर व्यर्थ ही सिर न मुड़ावे। जो गया जानेको उद्यत हो, वह विधिपूर्वक श्राद्ध करके तीर्थयात्रीका वेश बना ले और अपने समूचे गाँवकी परिक्रमा करे। उसके बाद [illegible] लेकर पैदल यात्रा करे। [illegible] पुरुषको [illegible] अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। जो ऐश्वर्य, [illegible] अथवा लोभ या मोहसे किसी सवारी* [illegible] यात्रा करता है, उसकी वह तीर्थयात्रा निष्फल है। इसलिये [illegible] करे। गोयान (बैलगाड़ी आदि) पर तीर्थमें जानेसे [illegible] पाप कहा गया है। अश्वयान (घोड़े या [illegible]) पर जानेसे वह यात्रा निष्फल होती है। नरयान (पालकी, रिक्शा आदि) पर जानेसे तीर्थका आधा फल मिलता है, किंतु पैदल चलनेसे चौगुने फलकी प्राप्ति होती है। [illegible] और धूप आदिमें छाता लगाकर [illegible] और कंकड़ तथा काँटोंमें शरीरको कष्टसे बचानेकी इच्छासे मनुष्य सदा जूता पहनकर चले। जो दूसरेके धनसे तीर्थयात्रा करता है, उसे पुण्यका सोलहवाँ अंश प्राप्त होता है तथा जो दूसरे कार्यके प्रसंगसे तीर्थमें जाता है, उसे उसका आधा फल मिलता है। तीर्थमें [illegible] कदापि परीक्षा न करे। वहाँ [illegible] हुए ब्राह्मणको भी भोजन कराना चाहिये, ऐसा मनुका कथन है। तीर्थमें किया हुआ श्राद्ध पितरोंके लिये तृप्तिदायक [illegible] गया है। समयमें या असमयमें मनुष्य जब भी तीर्थमें पहुँचे तभी उसे तीर्थश्राद्ध और पितृतर्पण अवश्य करना चाहिये।

पृथ्वीपर जो तीर्थ हैं, वे साधारण भूमिकी अपेक्षा अधिक पुण्यमय क्यों हैं? इसका कारण सुनो—जैसे शरीरके कुछ अवयव प्रधान माने गये हैं, उसी प्रकार पृथ्वीके [illegible] तेजके प्रभावसे तथा मुनियोंके [illegible] अधिक पवित्र कहा गया है। देवि! जो गङ्गाजीके समीप [illegible] मुण्डन नहीं कराता, उसका समस्त शुभ कर्म [illegible] हुएके समान हो जाता है। सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गाजीके समीप [illegible] पर कल्पभरके पापोंका समूह मनुष्यके केशोंका आश्रय लेकर स्थित होता है। अतः उन केशोंका त्याग कर देना चाहिये। मनुष्यके जितने नख और रोएँ गङ्गाजीमें [illegible] हैं, उतने सहस्र वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। सती मोहिनी! जिसके पिता जीवित हैं, वह [illegible] तीर्थमें जानेपर क्षौर तो कराये, परंतु मूँछ न मुड़ाये।

---

* मूलमें 'यान' शब्द आया है, अपने यहाँ 'यान' उस सवारीके लिये प्रयुक्त हुआ करता है जो [illegible] खींची या ढोयी जाती है। जैसे नरयान, अश्वयान, वृषभयान आदि। मूलमें आगे इन्हींका नाम लेकर [illegible] वर्तमान रेलगाड़ी या मोटरके लिये निषेध नहीं मानना चाहिये। फिर भी जो सर्वथा पैदल [illegible] कही जायगी।

प्रयागमें माघ-मकरके स्नानकी महिमा तथा वहाँके भिन्न-भिन्न तीर्थोंका माहात्म्य
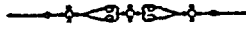
पुरोहित वसु कहते हैं—मोहिनी! सुनो, अब मैं प्रयागके वेदसम्मत माहात्म्यका वर्णन करता हूँ, जहाँ स्नान करके मानव सर्वथा शुद्ध हो जाता है। गङ्गामें जहाँ कहीं भी स्नान किया जाय, वह कुरुक्षेत्रके समान पुण्यदायिनी है। उससे दसगुना पुण्य देनेवाली गङ्गा वह बतायी गयी है, जहाँ वह विन्ध्यपर्वतसे संयुक्त होती है। काशीकी उत्तरवाहिनी गङ्गा विन्ध्यपर्वतके निकटवर्तिनी गङ्गासे सौगुनी पुण्यदायिनी कही गयी है। काशीसे भी सौ गुना पुण्य वहाँ बताया गया है, जहाँ गङ्गा यमुनासे मिलती है। वह भी जहाँतक पश्चिमवाहिनी हैं, वहाँ उसमें सहस्रगुना पुण्य प्राप्त होता है। देवि! पश्चिमवाहिनी गङ्गा दर्शनमात्रसे ही ब्रह्महत्या आदि पापोंका निवारण करनेवाली है। देवि! पश्चिमाभिमुखी गङ्गा यमुनाके साथ मिली हैं। वे सौ कल्पोंका पाप हर लेती हैं। माघ मासमें तो वे और भी दुर्लभ हैं। भद्रे! पृथ्वीपर वे अमृतरूप कही जाती हैं। गङ्गा और यमुनाके सङ्गमका जल वेणीके नामसे प्रसिद्ध है, जिसमें माघ मासमें दो घड़ीका स्नान देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। सती! पृथ्वीपर जितने तीर्थ तथा जितनी पुण्यपुरियाँ हैं, वे मकर राशिपर सूर्यके रहते हुए माघ मासमें वेणीमें स्नान करनेके लिये आती हैं। शुभे! ब्रह्मपुत्री मोहिनी! ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, रुद्र, आदित्य, मरुद्गण, गन्धर्व, लोकपाल, यक्ष, किन्नर, गुह्यक, अणिमादि गुणोंसे युक्त अन्यान्य तत्त्वदर्शी पुरुष, ब्रह्माणी, पार्वती, लक्ष्मी, शची, मेधा, अदिति, रति, समस्त देवपत्नियाँ, नागपत्नियाँ तथा समस्त पितृगण—ये सब-के-सब माघ मासमें त्रिवेणी-स्नानके लिये आते हैं। सत्ययुगमें तो उक्त सभी तीर्थ प्रत्यक्षरूप धारण करके आते थे, किंतु कलियुगमें वे छिपे रूपसे आते हैं। पापियोंके सङ्गदोषसे काले पड़े हुए सम्पूर्ण तीर्थ प्रयागमें माघ मासमें स्नान करनेसे श्वेत वर्णके हो जाते हैं।

> मकरस्थे रवौ माघे गोविन्दाच्युत माधव॥
> स्नानेनानेन मे देव यथोक्तफलदो भव।
> (ना० उत्तर० ६३। १३-१४)

'गोविन्द! अच्युत! माधव! देव! मकर राशिपर सूर्यके रहते हुए माघ मासमें त्रिवेणीके जलमें किये हुए मेरे इस स्नानसे संतुष्ट हो आप शास्त्रोक्त फल देनेवाले हों।'

—इस मन्त्रका उच्चारण करके मौनभावसे स्नान करे। 'वासुदेव, हरि, कृष्ण और माधव' आदि नामोंका बार-बार स्मरण करे। मनुष्य अपने घरपर गरम जलसे साठ-वर्षोंतक जो स्नान करता है, उसके समान फलकी प्राप्ति सूर्यके मकर राशिपर रहते समय एक बारके स्नानसे हो जाती है। बाहर बावडी आदिमें किया हुआ स्नान बारह वर्षोंके स्नानका फल देनेवाला है। पोखरेमें स्नान करनेपर उससे दूना और नदी आदिमें स्नान करनेपर चौगुना फल प्राप्त होता है। देवकुण्डमें वही फल दसगुना और महानदीमें सौगुना होता है। दो महानदियोंके संगममें स्नान करनेपर चार सौ गुने फलकी प्राप्ति होती है; किंतु सूर्यके मकर राशिपर रहते समय प्रयागकी गङ्गामें स्नान करनेमात्रसे वह सारा फल सहस्र-गुना होकर मिलता है—ऐसा बताया गया है। इस प्रयाग तीर्थको पूर्वकालमें ब्रह्माजीने प्रकट किया था। जिसके गर्भमें सरस्वती छिपी हैं, वह श्वेत और श्याम जलकी धारा ब्रह्मलोकमें जानेका मार्ग है। हिमालयकी घाटियोंमें जो तीर्थ हैं, उनमें माघ मासका स्नान सब पापोंका नाश करनेवाला है। सब मासोंमें उत्तम माघ मास यदि बदरीवनमें प्राप्त हो तो वह मोक्ष देनेवाला है। नर्मदाके जलमें माघका स्नान पापनाशक, दुःखहारी, सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंका दाता तथा रुद्रलोककी प्राप्ति करानेवाला कहा गया है। सरस्वतीके जलमें वह सब पापराशियोंका नाशक तथा सम्पूर्ण लोकोंके सुखोंकी प्राप्ति करानेवाला बताया गया है। गङ्गाका जल यदि माघ मासमें सुलभ हो तो वह पापरूपी ईंधनको जलानेके लिये दावानल, गर्भवासके कष्टका नाश करनेवाला तथा विष्णुलोक एवं मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला बताया गया है।

सरयू, गण्डकी, सिन्धु, चन्द्रभागा, कौशिकी, तापी, गोदावरी, भीमा, पयोष्णी, कृष्णवेणी, कावेरी, तुङ्गभद्रा तथा अन्य जो समुद्रगामिनी नदियाँ हैं, उनमें स्नान करने-वाला मनुष्य पापरहित हो स्वर्गलोकमें जाता है। नैमिषारण्यमें माघ-स्नान करनेसे भगवान् विष्णुका सारूप्य प्राप्त होता है। पुष्करमें नहानेसे ब्रह्माका सामीप्य मिलता है। विधिनन्दिनी! गोमतीमें माघ नहानेसे फिर जन्म नहीं होता। हेमकूट, महाकाल, ॐकार, नीलकण्ठ तथा अर्बुद तीर्थमें माघ मासका स्नान रुद्रलोककी प्राप्ति करानेवाला माना गया है। देवि! सूर्यके मकर राशिपर रहते समय सम्पूर्ण सरिताओंके संगममें माघ-स्नान करनेसे सम्पूर्ण कामनाओंकी प्राप्ति होती है। स्वर्गवासी देवता सदा यह गाया करते हैं कि 'क्या प्रयागमें कभी माघ मास हमें मिलेगा, जहाँ स्नान करनेवाले मानव फिर कभी गर्भकी वेदनाका अनुभव नहीं करते और भगवान् विष्णुके समीप स्थित होते हैं।' जल और वायु पीकर रहने,

पत्ते चबाने, देह सुखाने, दीर्घकालतक घोर तपस्या करने और योग साधनेसे मनुष्य जिस गतिको प्राप्त होते हैं, उसे प्रयागके स्नानमात्रसे ही पा लेते हैं। प्रयागमण्डलका विस्तार पाँच योजन है। सुभगे! वहाँ तीन कुण्ड हैं। उनके बीचमें गङ्गा हैं। प्रयागमें प्रवेश करनेमात्रसे पापोंका तत्काल नाश हो जाता है। जो पवित्र है, वह मन और इन्द्रियोंको संयममें रखकर, हिंसासे दूर हो यदि श्रद्धापूर्वक स्नान करता है तो पापमुक्त होता और परम पदको प्राप्त करता है। नैमिष, पुष्कर, गोतीर्थ, सिन्धुसागरसगम, गया, धेनुक और गङ्गा-सागरसगम—ये तथा और भी जो बहुत-से पुण्यमय पर्वत हैं, वे सब मिलकर तीन करोड़ दस हजार तीर्थ प्रयागमें विद्यमान हैं। सूर्यपुत्री यमुना देवी तीनों लोकोंमें विख्यात हैं। वे लोकपावनी यमुना प्रयागमें गङ्गासे मिली हैं। गङ्गा और यमुनाके बीचका भू-भाग पृथ्वीपर सर्वोत्तम माना गया है। सुन्दरी! तीनों लोकोंमें प्रयागसे बढ़कर परम पवित्र तीर्थ नहीं है। प्रयाग परम पद-स्वरूप है। उसका दर्शन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं।

अतः सम्पूर्ण देवताओंसे सुरक्षित प्रयागतीर्थमें जाकर जो ब्रह्मचर्यका पालन तथा देवता और पितरोंका तर्पण करते

हुए एक मासतक वहाँ निवास करता है, वह जहाँ कहीं भी रहकर सम्पूर्ण मनोवाञ्छित कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। गङ्गा और यमुनाका सगम [illegible] लोगोंमें विख्यात है। वहाँ भक्तिपूर्वक स्नान करनेसे जिसके जिसके मनमें जो जो कामना होती है, उसकी वह कामना अवश्य पूर्ण हो जाती है। हरिद्वार, प्रयाग और गङ्गासागरसंगममें स्नान करनेमात्रसे मनुष्य अपनी रुचिके अनुसार ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवके धाममें चला जाता है। मुनीश्वरो! जो मनुष्य सितासितसंगमके जलमें जो स्नान किया करता है, उसकी कोटि कल्पोंमें भी कभी पुनरावृत्ति [illegible] नहीं होती। जो सत्यवादी तथा क्रोधको जीतनेवाला है, जो [illegible] अहिंसाका आश्रय ले चुका है, जो धर्मका अनुसरण करनेवाला, तत्त्वज्ञ, गौ-ब्राह्मणके हितमें तत्पर रहनेवाला है तथा गङ्गा-यमुनाके सङ्गममें स्नान करनेवाला है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

वहाँ प्रतिष्ठानपुर (झूँसी) में एक अत्यन्त विख्यात कूप है। वहाँ मनको संयममें रखकर स्नान करनेके पश्चात् देवताओं और पितरोंका तर्पण करे और ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए क्रोधको जीते। इस प्रकार जो तीन रात वहाँ निवास करता है, वह सब पापोंसे शुद्धचित्त हो अश्वमेध यज्ञका फल पाता है। प्रतिष्ठानसे उत्तर और भागीरथीसे पूर्व हंस-प्रतपन नामक लोकविख्यात तीर्थ है। वहाँ स्नान करनेमात्रसे अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है और जबतक चन्द्रमा और सूर्य रहते हैं, तबतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तदनन्तर वासुकिनागसे उत्तर भोगवतीसे [illegible] दशाश्वमेधतीर्थ है। वह परम उत्तम माना गया है। वहाँ स्नान करके मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता है और इहलोकमें धनाढ्य, रूपवान्, दक्ष, दाता एवं धार्मिक होता है। चारों वेदोंका स्वाध्याय करनेवाले पुरुषोंको जो पुण्य प्राप्त होता है, सत्यवादियोंको जो फल मिलता है और अहिंसाके पालनसे जो धर्म होता है, उन सबका फल दशाश्वमेधतीर्थमें जानेमात्रसे मिल जाता है। [illegible] और प्रयागके दक्षिण तटपर ऋणप्रमोचन नामक तीर्थ है, जो परम उत्तम माना गया है। वहाँ स्नान करके एक रात रहनेसे मनुष्य सब ऋणोंसे मुक्त हो जाता है और [illegible] होकर स्वर्गलोकमें जाता है।

प्रयागमें मुण्डन करावे, गयामें पिण्डदान करे, कुरुक्षेत्रमें दान दे और काशीमें शरीरका त्याग करे। [illegible] केशोंकी जड़का आश्रय लेकर रहते हैं, [illegible] स्नान करनेके पहले उन सबका वहाँ मुण्डन करा दे। [illegible]

पौष और माघके महीनेमें श्रवण नक्षत्र, व्यतीपातयोग तथा रविवारसे युक्त अमावास्या तिथि हो तो उसे अर्धोदय पर्व समझना चाहिये। इसका महत्त्व सौ सूर्यग्रहणोंसे भी अधिक है। विधिनन्दिनी! इसमें कुछ कमी हो तो महोदय पर्व माना गया है। यदि प्रयागतीर्थमें अरुणोदयके समय माघ शुक्ला सप्तमी प्राप्त हो तो वह एक हजार सूर्यग्रहणोंके समान है। यदि अयनारम्भके दिन प्रयागका स्नान मिले तो कोटिगुना पुण्य होता है और विषुवयोगमें लाखगुने फलकी प्राप्ति होती है। षडशीति तथा विष्णुपदीमें सहस्रगुना पुण्य प्राप्त होता है। अपने वैभव-विस्तारके अनुसार सबको प्रयागमें दान करना चाहिये। विधिनन्दिनी! इससे तीर्थका फल बढ़ता है। भद्रे! जो गङ्गा और यमुनाके बीचमें सुवर्ण, मणि, मोती या दूसरा कोई प्रतिग्रह देता है एवं जो वहाँ लाल या कपिल वर्णकी ऐसी गौ देता है, जिसकी सींगमें सोना, खुरोंमें चाँदी, गलेमें वस्त्र हो, जो दूध देती हो और बछड़ा उसके साथ हो; शुक्ल वस्त्र धारण करनेवाले, शान्त, धर्मज्ञ, वेदज्ञ एवं श्रोत्रिय ब्राह्मणको विधिपूर्वक जो पूर्वोक्त गौ देकर स्वीकार कराता है तथा उसके साथ बहुमूल्य वस्त्र और नाना प्रकारके रत्न भी देता है; उस गौ तथा बछड़ेके शरीरमें जितने रोमकूप होते हैं, उतने सहस्र वर्षोंतक वह दाता स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। उस दानकर्मसे दातालोग कभी नरकका दर्शन नहीं करते। सामान्य लाखों गौओंकी अपेक्षा एक ही दूध देनेवाली गौ दान करे। वह एक ही गौ स्त्री-पुत्र तथा भृत्यवर्गका उद्धार कर देती है। इसलिये सब दानोंमें गोदानका महत्त्व अधिक है। दुर्गम स्थानमें, विषम परिस्थितिमें तथा घोर संकटके समय अथवा महापातकोंके संक्रमणकालमें गौ ही मनुष्यकी रक्षा करती है। अतः श्रेष्ठ ब्राह्मणको गौ देनी चाहिये।

तीर्थमें तथा पुण्यमय देवमन्दिरोंमें दान नहीं लेना चाहिये। ब्राह्मणको चाहिये कि वह सभी निमित्तोंमें सावधान रहे। अपने कामके लिये, पितरोंके श्राद्धके लिये अथवा देवताके पूजनके लिये भी किसीसे कुछ दान न ले। जबतक वह दूसरेके धनका उपभोग या ग्रहण करता है, तबतक उसका तीर्थसेवन व्यर्थ होता है। जो गङ्गा और यमुनाके सङ्गमपर कन्यादान करता है, वह उस पुण्यकर्मके प्रभावसे कभी भयंकर नरकका दर्शन नहीं करता। प्रयाग-प्रतिष्ठानसे लेकर वासुकि नागके तालाबसे आगेतक कम्बल और अश्वतर नामक जो दोनों नाग हैं वहाँसे बहुमूलक नागतकका जो भूभाग है, यही प्रजापतिक्षेत्र है, जो तीनों लोकोंमें विख्यात है। इस क्षेत्रमें जो स्नान करते हैं, वे स्वर्गमें जाते हैं और मर जाते हैं, उनका फिर जन्म नहीं होता। सन्मार्गमें स्थित बुद्धिमान् योगीको जो गति प्राप्त होती है, वही गङ्गा-यमुनाके सङ्गममें प्राणत्याग करनेवालेको भी मिलती है।

प्रयागके दक्षिण यमुना-तटपर विख्यात अग्नितीर्थ है। पश्चिममें धर्मराजतीर्थ है। वहाँ जो स्नान करते हैं, वे स्वर्गमें जाते हैं और जो मरते हैं, उनका फिर संसारमें जन्म नहीं होता। मोहिनी! यमुनाके उत्तर तटपर बहुत-से पापनाशक तीर्थ हैं, जो बड़े-बड़े मुनीश्वरोंसे सेवित हैं, उनमें स्नान करनेवाले स्वर्गलोकको जाते हैं और जो मर जाते हैं उनका मोक्ष हो जाता है। गङ्गा और यमुना दोनोंका पुण्यफल एक समान है। केवल जेठी होनेसे गङ्गा सर्वत्र पूजी जाती हैं।

कुरुक्षेत्र-माहात्म्य

मोहिनी बोली—पुरोहितजी! आप बड़े कृपालु और धर्मज्ञ हैं। आपको बहुत-से विषयोंका ज्ञान है। आपने मुझे तीर्थराज प्रयागका माहात्म्य बताया है। समस्त मुख्य तीर्थोंमें जो शुभकारक कुरुक्षेत्र है, वह सम्पूर्ण लोकोंमें परम पवित्र है; अतः आप उसीका मुझसे वर्णन कीजिये।

पुरोहित वसुने कहा—मोहिनी! सुनो; मैं उत्तम पुण्य देनेवाले कुरुक्षेत्रका वर्णन करता हूँ, जहाँ जाकर स्नान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। कुरुक्षेत्रमें मुनीश्वरोंद्वारा सेवित अनेक तीर्थ हैं। उन सबका मैं तुम्हें परिचय देता हूँ। वे श्रोताओंको भी मोक्ष देनेवाले हैं। ब्रह्मज्ञान, गयाश्राद्ध, गायको संकटसे बचाते समय मृत्युको प्राप्त होना और कुरुक्षेत्रमें निवास करना—इन चारों साधनोंसे मोक्ष प्राप्त होता है। सरस्वती और दृषद्वती—इन दोनों देवनदियोंके बीचका जो देश है, उसे देवसेवित ब्रह्मावर्त (कुरुक्षेत्र) कहते हैं। जो दूर रहकर भी 'मैं कुरुक्षेत्रमें जाऊँगा और वहीं निवास करूँगा' इस प्रकार सदा कहा करता है, वह भी पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो धीर पुरुष वहाँ सरस्वतीके तटपर निवास करेगा, उसे निस्सन्देह ब्रह्मज्ञान प्राप्त होगा। देवि! देवता, महर्षि और सिद्धगण कुरुक्षेत्रका सेवन करते हैं; उसके सेवनसे मनुष्य अपने-आपमें ही ब्रह्मका साक्षात्कार करता है।

पहले उस स्थानपर पुण्यमय ब्रह्मसरोवर प्रकट हुआ। तत्पश्चात् वहाँ परशुरामकुण्ड हुआ और उसके बाद वह कुरुक्षेत्रके नामसे प्रसिद्ध हुआ। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने जिसका निर्माण किया था, वह सरोवर आज भी वहाँ स्थित है। तदनन्तर जो यह ब्रह्मवेदी है, वह उसकी वायव्यदिशामें स्थित है। मुनिवर मार्कण्डेयने जहाँ उत्तम तपस्या की, वहाँ प्लक्ष (पाकरके वृक्ष) से प्रकट होकर सरस्वती नदी आयी है। धर्मात्मा मुनिने सरस्वतीका पूजन करके उनकी स्तुति की। वहाँ उनके समीप जो तालाब था, उसको अपने जलसे भरकर सरस्वती नदी पश्चिम दिशाकी ओर चली गयीं। तदनन्तर राजा कुरुने आकर चारों [illegible] उसका विस्तार पाँच योजनका था। [illegible] क्षमा आदि गुणोंका उद्गम है। [illegible] क्षेत्रको कुरुक्षेत्र कहा जाने लगा। [illegible] मानव अक्षय पुण्य लाभ करते हैं और [illegible] विमानपर बैठकर ब्रह्मलोकमें जाते हैं। [illegible] दान, होम, जप और देव[illegible] प्राप्त होते हैं। कुरुक्षेत्रकी ब्रह्मवेदीमें [illegible] इस संसारमें जन्म नहीं लेते। मोहिनी! [illegible] तीर्थों और सरिताओंकी पुण्यदायिनी [illegible] लिये इहलोक और परलोकमें भी [illegible]।

कुरुक्षेत्रके वन, नदी और भिन्न-भिन्न तीर्थोंका माहात्म्य तथा यात्राविधिका क्रमिक वर्णन

मोहिनीने पूछा—विप्रवर! कुरुक्षेत्रमें कौन-कौन-से वन हैं और कौन-सी शुभकारक सरिताएँ हैं? सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाली कुरुक्षेत्र-यात्राकी विधि मुझे क्रमसे बताइये। अत्यन्त पुण्यदायक कुरुक्षेत्रमें जो-जो तीर्थ हैं, उन सबका मुझसे वर्णन कीजिये।

पुरोहित वसु बोले—मोहिनी! पवित्र काम्यकवन, महान् अदितिवन, पुण्यदायक व्यासवन, फलकीवन, सूर्यवन, पुण्यमय मधुवन तथा सुविख्यात सीतावन—कुरुक्षेत्रमें ये सात वन हैं और उन वनोंमें अनेक तीर्थ हैं। पुण्यसलिला सरस्वती नदी, वैतरणी नदी, पुण्यमयी मन्दाकिनी गङ्गा, मधुस्रवा, दृषद्वती, कौशिकी तथा पुण्यमयी हैरण्वती नदी—इनमें सरस्वती नदीको छोड़कर शेष सब नदियाँ केवल वर्षाकालमें बहनेवाली हैं। इनका जल स्पर्श करने, पीने एव नहानेके लिये सदा पवित्र माना गया है। पुण्यक्षेत्रके प्रभावसे इनमें रजस्वलापनका दोष नहीं आता। पहले महाबली द्वारपाल रन्तुकके समीप जाकर यक्षको प्रणाम करके वहाँकी यात्रा प्रारम्भ करे। भद्रे! तदनन्तर पुण्यमय महान् अदितिवनमें जाय। यदि नारी वहाँ स्नान करके देवमाता अदितिकी पूजा करे तो वह समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त और महान् शूरवीर पुत्रको जन्म देती है। वरारोहे! वहाँसे भगवान् विष्णुके परम उत्तम विमल नामसे विख्यात तीर्थस्थानको जाय, जहाँ भगवान् श्रीहरि सदा विद्यमान रहते हैं। जो मनुष्य विमलतीर्थमें स्नान करके भगवान् विमलेश्वरका दर्शन करता है, वह विमल होकर देवाधिदेव चक्रधारी भगवान् विष्णुके लोकको प्राप्त कर लेता है। मोहिनी! वहाँ भगवान् श्रीहरि और बलदेवजीको एक [illegible] मनुष्य सब पापोंसे तत्काल मुक्त हो जाता है।

फिर वहाँके लोकविख्यात पा[illegible] स्नान और जलपान करके जो वेदोंके [illegible] को दक्षिणा आदिसे सन्तुष्ट करता है, [illegible] है। भद्रे! जहाँ कौशिकी नदीका [illegible] भक्तिपूर्वक स्नान करके मनुष्य [illegible] है। महाभागे! तदनन्तर [illegible] भक्तिपूर्वक स्नान करे तो वह उत्तम [illegible]। [illegible] के द्वारा इस पृथ्वीपर जितने [illegible] देहधारी जीवके वहाँ स्नान करनेपर [illegible] है। तत्पश्चात् परम पुण्यमय [illegible] दर्शन करनेसे मनुष्यको अश्वमेध [illegible] है। उसके बाद शालकिनीतीर्थमें [illegible] की सिद्धिके लिये भगवान् [illegible] करे। तत्पश्चात् विधिको [illegible] स्नान करे और वहाँ [illegible] प्राप्त करे। उसके बाद [illegible] वहाँ भगवान् [illegible] असुरोंको [illegible] किये थे; इससे वह सम्पूर्ण [illegible] पञ्चनद नामसे विख्यात हुआ। [illegible] निर्भय हो जाता है। मोहिनी! [illegible] जहाँ [illegible] उस तीर्थमें स्नान और [illegible] तभीसे पञ्च[illegible] है

वहीं सम्पूर्ण देवताओंने भगवान् वामनकी भी स्थापना की है। अतः उनका पूजन करके मानव अग्निष्टोम यज्ञका फल पा लेता है। वहाँसे अश्वितीर्थमें जाकर श्रद्धालु एवं जितेन्द्रिय पुरुष वहाँ स्नान करे। इससे वह यशस्वी तथा रूपवान् होता है। वहाँसे भगवान् विष्णुद्वारा निर्मित वाराहतीर्थमें जाकर श्रद्धापूर्वक डुबकी लगानेवाला मनुष्य उत्तम गतिको पाता है। वरानने! वहाँसे सोमतीर्थमें जाय, जहाँ सोम तपस्या करके नीरोग हुए थे। वहाँ स्नान करना चाहिये। उस तीर्थमें एक गोदान करके मनुष्य राजसूय यज्ञका फल पाता है। वहीं भूतेश्वर, ज्वालामालेश्वर तथा ताण्डेश्वर शिवलिङ्ग हैं। उनकी पूजा करके मनुष्य फिर संसारमें जन्म नहीं लेता। एकहंस तीर्थमें स्नान करके मनुष्य सहस्र गोदानका फल पाता है और कृतशौचतीर्थमें स्नान करनेपर उसे पुण्डरीक यज्ञका फल प्राप्त होता है। तदनन्तर भगवान् शिवके मुञ्जवट नामक तीर्थमें जाकर वहाँ एक रात निवास करे। फिर दूसरे दिन भगवान् शिवकी पूजा करके वह उनके गणोंका अधिपति होता है। तदनन्तर उस तीर्थमें परिक्रमा करके पुष्करतीर्थमें जाय। वहाँ स्नान और पितरोंका पूजन करके मनुष्य कृत-कृत्य हो जाता है। तदनन्तर रामह्रदको जाय और वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके देवताओं, ऋषियों तथा पितरों-का पूजन (तर्पण) आदि करे। इससे वह भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त कर लेता है। जो उत्तम श्रद्धापूर्वक परशु-रामजीकी पूजा करके वहाँ सुवर्ण-दान करता है, वह धनी होता है। वंशमूलतीर्थमें जाकर स्नान करनेसे तीर्थयात्री अपने वंशका उद्धार करता है और कायशोधनतीर्थमें स्नान करके शुद्धशरीर हो श्रीहरिमें प्रवेश करता है।

तत्पश्चात् लोकोद्धारतीर्थमें जाकर वहाँ स्नान करके भगवान् जनार्दनका पूजन करे। ऐसा करनेवाला पुरुष उस शाश्वत लोकको प्राप्त होता है, जहाँ सनातन भगवान् विष्णु विराजमान हैं। वहाँसे श्रीतीर्थ एवं परम उत्तम शालग्राम-तीर्थमें जाकर, जो वहाँ स्नान करके श्रीहरिका पूजन करता है, वह प्रतिदिन भगवान्‌को अपने समीप विद्यमान देखता है। कपिलाह्रदतीर्थमें जाकर वहाँ स्नान और देवता, पितरों-का पूजन करके मनुष्य सहस्र कपिलादानका पुण्य पाता है। भद्रे! वहाँ जगदीश्वर कपिलका विधिपूर्वक पूजन करके मनुष्य देवताओंके द्वारा सत्कृत हो साक्षात् भगवान् शिवका पद प्राप्त कर लेता है। तदनन्तर सूर्यतीर्थमें जाकर उपवासपूर्वक भगवान् सूर्यका पूजन करे। इससे यात्री अग्निष्टोम यज्ञका फल पाकर स्वर्गलोकमें जाता है। पृथ्वीके विवरद्वारपर साक्षात् गणेशजी विराजमान हैं। उनका दर्शन और पूजन करके मनुष्य यज्ञानुष्ठानका फल पाता है। देवी-तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्यको उत्तम रूपकी प्राप्ति होती है और ब्रह्मावर्तमें स्नान करके वह ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लेता है। सुतीर्थमें स्नान करके देवताओं, ऋषियों, पितरों तथा मनुष्योंका पूजन करनेपर मानव अश्वमेध यज्ञका फल पाता है। कामेश्वरतीर्थमें श्रद्धापूर्वक स्नान करके सब व्याधियोंसे मुक्त पुरुष शाश्वत ब्रह्मको प्राप्त कर लेता है। देवि! मातृतीर्थमें श्रद्धापूर्वक स्नान और पूजन करनेवाले पुरुषके घर सात पीढ़ियोंतक उत्तम लक्ष्मी बढ़ती रहती है। शुभे! तदनन्तर सीतावन नामक महान् तीर्थमें जाय। वहाँ अपना केश मुँडाकर मनुष्य पापसे शुद्ध हो जाता है। वहीं तीनों लोकोंमें विख्यात दशाश्वमेध नामक तीर्थ है, जिसके दर्शन-मात्रसे मानव पापमुक्त हो जाता है। विधिनन्दिनी! यदि पुनः मनुष्य-जन्म पानेकी इच्छा हो तो मानुषतीर्थमें जाकर स्नान करना चाहिये। मानुषतीर्थसे एक कोसकी दूरीपर आपगा नामसे विख्यात एक महानदी है। वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको सावाँके चावलकी खीर भोजन करावे। ऐसा करनेवाले पुरुषके पापोंका नाश हो जाता है और वहाँ श्राद्ध करनेसे पितरोंकी सद्गति होती है। भाद्रपद[1] मासके कृष्णपक्षमें, जिसे पितृपक्ष एवं महालय भी कहते हैं, चतुर्दशीको मध्याह्नमें आपगाके तटपर पिण्डदान करनेवाला मनुष्य मोक्ष पाता है।

वहाँसे ब्रह्माजीके स्थान ब्राह्मोदुम्बरकतीर्थमें जाय। वहाँ ब्रह्मर्षियोंके कुण्डोंमें स्नान करके मनुष्य सोमयागका फल पाता है। वृद्धकेदारकतीर्थमें दण्डीसहित स्थाणुकी पूजा करके कलशीतीर्थमें जाय, जहाँ साक्षात् अम्बिकादेवी विराजमान हैं। वहाँ स्नान करके अम्बिकाजीकी पूजा करनेसे मानव भवसागरके पार हो जाता है। सरकतीर्थमें कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको भगवान् महेश्वरका दर्शन करके श्रद्धालु मनुष्य शिवधाममें जाता है। भामिनि! सरकमें तीन करोड़ तीर्थ हैं। सरोवरके मध्यमें जो कूप है, उसमें कोटि रुद्रोंका निवास है। जो मानव उस सरोवरमें स्नान करके उन कोटिरुद्रोंका स्मरण करता है, उसके द्वारा वे करोड़ों रुद्र पूजित होते हैं। वहीं इडास्पद नामक तीर्थ है, जो सब

1. पूर्णिमान्त मासकी मान्यताके अनुसार पितृपक्ष आश्विनमें पड़ता है। अत: यहाँ भाद्रपदका अर्थ आश्विन समझना चाहिये।

पापोंका नाश करनेवाला है। उस तीर्थमें जाकर उनके दर्शनमात्रसे मानव मोक्ष प्राप्त कर लेता है। वहाँके देवताओं और पितरोंका पूजन करके वह कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता और मनचाही वस्तुओंको प्राप्त कर लेता है। केदार नामक महातीर्थ मनुष्यके सब पापोंका नाश कर देता है। वहाँ स्नान करके पुरुष सब दानोंका फल पाता है। सरकके पूर्व दिशामें अन्यजन्म नामसे विख्यात तथा स्वच्छ जलसे भरा हुआ एक सरोवर है, जहाँ भगवान् विष्णु और शिव दोनों स्थित हैं। भगवान् विष्णु तो वहाँ चतुर्भुजरूपसे विराजमान हैं और भगवान् शिव लिङ्गरूपमें स्थित हैं। वहाँ स्नान करके उन दोनोंका दर्शन और स्तवन करनेपर मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है। तदनन्तर नागह्रदमें जाकर स्नान करे। वहाँ चैत्र शुक्ला पूर्णिमाको श्राद्धका दान करनेवाला पुरुष यमलोक नहीं देखता। उसे मोक्ष प्राप्त हो जाता है। तत्पश्चात् देवसेवित त्रिविष्टप-तीर्थमें जाय, जहाँ सब पापोंसे मुक्त करनेवाली वैतरणी नामकी पवित्र नदी है। उसमें स्नान करके शूलपाणि भगवान् वृषध्वजका पूजन करनेपर सब पापोंसे शुद्धचित्त हो मनुष्य परम गति प्राप्त कर लेता है। रसावर्ततीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्यको परम उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है। चैत्रमास-के शुक्लपक्षकी चतुर्दशीको विलेपकतीर्थमें स्नान करके जो भक्तिभावसे भगवान् शिवकी पूजा करता है, वह सब पापोंसे छूट जाता है।

देवि! तत्पश्चात् मनुष्य परम उत्तम फलकीवनमें जाय, जहाँ देवता और गन्धर्व बड़ी भारी तपस्या करते हैं। वहाँ दृषद्वती नदीमें विधिपूर्वक स्नान करके मनुष्य देवताओं और पितरोंका तर्पण करनेपर अग्निष्टोम और अतिरात्र यज्ञका फल पाता है। जो वहाँ अमावास्या तथा पूर्णिमाको श्राद्ध करता है, उसे गयाश्राद्धके समान उत्तम फल प्राप्त होता है। श्राद्धमें फलकीवनके स्मरणका फल पितरोंको तृप्ति देनेवाला है। तदनन्तर पाणिघाततीर्थमें पितरोंका तर्पण करके मानव राज-सूय यज्ञका फल पाता और सांख्य एवं योगको भी प्राप्त कर लेता है। तत्पश्चात् मिश्रकतीर्थमें विधिपूर्वक स्नान करके मनुष्य सम्पूर्ण तीर्थोंके फलका भागी होता और उत्तम गति पाता है। वहाँसे व्यासवनमें जाकर जो मनोजवतीर्थमें स्नान और मनीषी प्रभुका दर्शन करता है, वह मनचाही वस्तु प्राप्त कर लेता है। तदनन्तर मधुवनमें जाकर देवीतीर्थमें स्नान करके शुद्ध हुआ मनुष्य देवताओं तथा ऋषियोंकी पूजा करके उत्तम सिद्धि (मोक्ष) प्राप्त कर लेता है। [illegible] तीर्थमें जाकर दृषद्वती नदीमें स्नान करके [illegible] नियमित आहार करके नियमपूर्वक रहे तो [illegible] हो जाता है। वहाँसे व्यासस्थली [illegible] शोकका भागी नहीं होता। [illegible] तिल दान करके मानव परम सिद्धि प्राप्त करता है और [illegible] पर मुक्त हो जाता है। [illegible] भूतलपर विख्यात हैं। इनमें स्नान करके [illegible] मानव सूर्यलोकको प्राप्त कर लेता है। [illegible] जाकर जो गङ्गाको प्रणाम करके [illegible] जीका पूजन करके अश्वमेध [illegible]

इसके बाद तीनों लोकोंमें विख्यात [illegible] बलिके यज्ञमें उनके राज्यको हर [illegible] का प्रादुर्भाव हुआ था। वहाँ विष्णुपदमें स्नान और [illegible] पूजन करके सब पापोंसे शुद्धचित्त हुआ मनुष्य भगवान् [illegible] लोकमें प्रतिष्ठित होता है। [illegible] ज्येष्ठाश्रमतीर्थ है। ज्येष्ठ शुक्ला एकादशीको उपवास [illegible] दूसरे दिन द्वादशीको वहाँ विधिपूर्वक स्नान करनेवाला [illegible] मनुष्योंमें श्रेष्ठता प्राप्त कर लेता है। देवि! [illegible] हुआ श्राद्ध पितरोंको अत्यन्त [illegible] है। वहाँ सूर्यतीर्थ है, उसमें स्नान करके मानव [illegible] होता है। कुलोत्तारणतीर्थमें जाकर स्नान [illegible] अपने कुलका उद्धार करके [illegible] है। पवनकुण्डमें स्नान करके भगवान् महेश्वरका [illegible] मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् शिवके धाममें [illegible] है। हनुमत्तीर्थमें स्नान करके मानव मोक्ष प्राप्त कर [illegible] है। राजर्षि शालिहोत्रके तीर्थमें स्नान करनेसे [illegible] हैं। सरस्वतीके [illegible] नामक तीर्थमें स्नान करके [illegible] भागी होता है। नैमिषकुण्डमें स्नान करनेसे नैमिषारण्य[illegible] का पुण्य प्राप्त होता है। [illegible] धर्मके पालनका पुण्य प्राप्त कर लेते हैं। [illegible] करनेसे मनुष्य ब्राह्मणत्व प्राप्त करता है और [illegible] परम धाममें जाता है, जहाँ जाकर [illegible] सोमतीर्थमें स्नान करके मनुष्य [illegible] सप्तसारस्वततीर्थमें जाकर स्नान [illegible] भागी होता है। सप्तसारस्वततीर्थ [illegible] सरस्वतीकी धाराओंका [illegible] है। [illegible] नाम इस प्रकार हैं—सुप्रभा, काञ्चनाक्षी, विशाला, [illegible]

सुनन्दा, सुवेणु तथा सातवीं विमलोदका । उसी प्रकार औशनमतीर्थमें स्नान करके मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है। कपालमोचनमें स्नान करके ब्रह्महत्यारा भी शुद्ध हो जाता है। विश्वामित्रतीर्थमें स्नान करनेवाला मानव ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लेता है। तदनन्तर पृथूदकतीर्थमें स्नान करके तीर्थसेवी पुरुष भवबन्धनसे मुक्त हो जाता है और अवकीर्णमें स्नान करनेसे उसे ब्रह्मचर्यका फल मिलता है। जो मधुस्रावमें जाकर स्नान करता है, वह पातकोंसे मुक्त हो जाता है। वसिष्ठतीर्थमें स्नान करनेसे वसिष्ठलोककी प्राप्ति होती है। अरुणासङ्गममें स्नान करके तीन रात उपवास करनेवाला मनुष्य पुनः स्नान करके मोक्षका भागी होता है।

मोहिनी! वहाँ दूसरा सोमतीर्थ है। उसमें स्नान करके चैत्र शुक्ला षष्ठीको श्राद्ध करनेवाला पुरुष अपने पितरोंका उद्धार कर देता है। पञ्चवटमें स्नान करके योग-मूर्तिधारी भगवान् शिवकी विधिपूर्वक पूजा करनेसे मानव देवताओंके साथ आनन्दका भागी होता है। कुरुतीर्थमें स्नान करनेवाला मनुष्य सम्पूर्ण सिद्धियोंको पा लेता है। स्वर्गद्वारमें गोता लगानेवाला मानव स्वर्ग-लोकमें पूजित होता है। अनरकतीर्थमें स्नान करनेवाला पुरुष सब पापोंसे छूट जाता है। देवि! तदनन्तर उत्तम काम्यकवनमें जाना चाहिये। जिसमें प्रवेश करते ही सब पाप-राशियोंसे छुटकारा मिल जाता है। फिर आदित्यवनमें जाकर आदित्यके दर्शनसे ही मानव मोक्षका भागी होता है। रविवारको वहाँ स्नान करके मनुष्य मनोवाञ्छित फल पा लेता है और यज्ञोपवीतिकतीर्थमें स्नान करके वह स्वधर्मफलका भागी होता है। तत्पश्चात् श्रेष्ठ मानव चतुःप्रवाह नामक तीर्थमें स्नान करे। इससे वह सम्पूर्ण तीर्थोंका फल पाकर स्वर्गलोकमें देवताकी भाँति आनन्दित होता है। विहारतीर्थमें स्नान करनेवाला पुरुष सब प्रकारके सुख पाता है। दुर्गातीर्थमें स्नान करके मानव कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता। तदनन्तर पितृतीर्थ नामक सरस्वती कूपमें स्नान करके देवता आदिका तर्पण करनेवाला पुरुष उत्तम गतिको पाता है। प्राची सरस्वतीमें स्नान और विधिपूर्वक श्राद्ध करके मनुष्य दुर्लभ कामनाओंको प्राप्त कर लेता है और शरीरका अन्त होनेपर वह स्वर्गलोकमें जाता है। शुक्रतीर्थमें स्नान करके श्राद्धदान करनेवाला पुरुष अपने पितरोंका उद्धार कर देता है। विशेषतः चैत्र मासके कृष्णपक्षमें अष्टमी या चतुर्दशी तिथिको वहाँ श्राद्ध करना चाहिये। ब्रह्मतीर्थमें उपवास करनेवाला पुरुष निःसन्देह मोक्षका भागी होता है। तदनन्तर स्थाणुतीर्थमें स्नान करके स्थाणुवटका दर्शन करनेसे कुरुक्षेत्रकी यात्रा पूरी हो जाती है।

देवि! मैंने तुम्हें कुरुक्षेत्रका माहात्म्य ठीक-ठीक बताया है। कुरुक्षेत्रके समान दूसरा कोई तीर्थ न हुआ है न होगा। वहाँ किया हुआ इष्टापूर्त कर्म, तप, विधिपूर्वक होम और दान आदि सब कुछ अक्षय होता है। मन्वादि तिथि, युगादि तिथि, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, महापात (व्यतीपात), संक्रान्ति तथा अन्य पुण्यपर्वोंके दिन कुरुक्षेत्रमें स्नान करनेवाला पुरुष अक्षय फलका भागी होता है। महात्मा पुरुषोंके कलियुगजनित पापोंका शोधन करनेके लिये ब्रह्माजीने सुखदायक कुरुक्षेत्रतीर्थका निर्माण किया है। जो मनुष्य इस पापनाशक पुण्यकथाका भक्तिभावसे कीर्तन अथवा श्रवण करता है, वह भी सब पापोंसे छूट जाता है। जो मनुष्य सूर्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्रमें जो-जो वस्तुएँ देता है, उसी-उसीको वह सदा प्रत्येक जन्ममें पाता है। ब्रह्मपुत्री मोहिनी! बहुत कहनेसे क्या लाभ! मेरा निश्चित विचार सुनो, यदि कोई संसारबन्धनसे मुक्त होना चाहे तो उसे कुरुक्षेत्रका सेवन करना ही चाहिये।

गङ्गाद्वार (हरिद्वार) और वहाँके विभिन्न तीर्थोंका माहात्म्य

[illegible] बोली—द्विजश्रेष्ठ ! मैंने आपके मुखसे कुरुक्षेत्र-[illegible] माहात्म्य सुना है । गुरुदेव ! अब गङ्गाद्वार नामसे विख्यात जो पुण्यदायक तीर्थ है, उसका वर्णन कीजिये ।

पुरोहित वसुने कहा—भद्रे ! राजा भगीरथके रथके पीछे चलनेवाली अलकनन्दा गङ्गा सहस्रों पर्वतोंको विदीर्ण करती हुई जहाँ भूमिपर उतरी हैं, जहाँ पूर्वकालमें दक्ष प्रजापतिने यज्ञेश्वर भगवान् विष्णुका यजन किया है, वह पुण्यदायक क्षेत्र (हरिद्वार) ही गङ्गाद्वार है, जो मनुष्योंके समस्त पातकोंका नाश करनेवाला है । प्रजापति दक्षके उस यज्ञमें इन्द्रादि सब देवता बुलाये गये थे और वे सब अपने-अपने गणोंके साथ यज्ञमें भाग लेनेकी इच्छासे वहाँ आये थे । शुभे ! उसमें देवर्षि, शिष्य-प्रशिष्योंसहित शुद्ध अन्तःकरणवाले ब्रह्मर्षि तथा राजर्षि भी पधारे थे । पिनाकपाणि भगवान् शङ्करको छोड़कर अन्य सब देवताओंको निमन्त्रित किया गया था । वे सब देवता विमानोंपर बैठकर अपनी प्रिय पत्नियोंके साथ दक्ष प्रजापतिके यज्ञोत्सवमें जा रहे थे और प्रसन्नतापूर्वक आपसमें उस उत्सवका वर्णन भी करते थे । कैलासपर रहनेवाली देवी सतीने उनकी बातें सुनीं । सुनकर वे पिताका यज्ञोत्सव देखनेके लिये उत्सुक हुईं । उस समय सतीने महादेवजीसे उस उत्सवमें चलनेकी प्रार्थना की । उनकी बात सुनकर भगवान् शिवने कहा—'देवि ! वहाँ जाना कल्याणकर नहीं होगा ।' किंतु सतीजी अपने पिताका यज्ञोत्सव देखनेके लिये चल दीं । भद्रे ! सतीदेवी वहाँ पहुँच तो गयीं, किंतु किसीने उनका स्वागत-सत्कार नहीं किया । तब तन्वङ्गी सतीने वहाँ अपने प्राण त्याग दिये । अतः वह स्थान एक उत्तम क्षेत्र बन गया । जो उस तीर्थमें स्नान करके देवताओं तथा पितरोंका तर्पण करते हैं, वे देवीके अत्यन्त प्रिय होते हैं । वे भोग और मोक्षके प्रधान अधिकारी हो जाते हैं ।

तदनन्तर देवर्षि नारदसे अपनी प्रिया सतीजीके प्राणत्यागका समाचार सुनकर भगवान् शङ्करने वीरभद्रको उत्पन्न किया । वीरभद्रने सम्पूर्ण प्रमथगणोंके साथ जाकर उस यज्ञका नाश कर दिया । फिर ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे तुरंत प्रसन्न होकर भगवान् शङ्करने उस विकृत यज्ञको पुनः सफल किया । तबसे वह अनुपम तीर्थ सम्पूर्ण पातकोंका नाश करनेवाला हुआ । मोहिनी ! उस तीर्थमें विधिपूर्वक स्नान करके मनुष्य जिस कामनाका चिन्तन करता है, [illegible] है । जहाँ दक्ष तथा देवताओंने [illegible] भगवान् विष्णुका स्तवन किया था, [illegible] के नामसे प्रसिद्ध है । [illegible] हरिपदतीर्थ (हरिकी पैड़ी) में [illegible] है वह भगवान् विष्णुका प्रिय [illegible] भोग और मोक्षका [illegible] अधिकारी होता है । उससे पूर्व दिशामें [illegible] क्षेत्र है, जहाँ सब लोग निरन्तर गङ्गाका [illegible] । वहाँ स्नान करके देवताओं, ऋषियों, पितरों और [illegible] श्रद्धापूर्वक तर्पण करनेवाले पुरुष [illegible] भाँति आनन्दित होते हैं । वहाँसे दक्षिण दिशामें [illegible] में जाय । वहाँ दिन-रात उपवास और स्नान [illegible] सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । देवि ! जो वहाँ [illegible] विद्वान् ब्राह्मणको गोदान देता है, वह कभी [illegible] और यमराजको नहीं देखता है । वहाँ किये गये [illegible] तप और दान अक्षय होते हैं ।

सुमध्यमे ! वहाँसे पश्चिम दिशामें [illegible] है, जहाँ भगवान् कोटीश्वरका दर्शन करनेसे [illegible] पुण्य प्राप्त होता है और एक रात वहाँ निवास करनेसे पुण्डरीक [illegible] मिलता है । इसी प्रकार वहाँसे उत्तर दिशामें [illegible] ([illegible] सरोवर) नामसे विख्यात उत्तम तीर्थ है । देवि ! [illegible] पातकोंका नाश करनेवाला है । [illegible] वहाँ सप्तर्षियोंके पवित्र आश्रम हैं, [illegible] स्नान और देवताओं एवं पितरोंका तर्पण करके मनुष्य [illegible] लोकको प्राप्त होता है । राजा भगीरथ जब [illegible] ले आये, उस समय उन सप्तर्षियोंकी [illegible] सात धाराओंमें विभक्त हो गयीं । [illegible] नामक तीर्थ विख्यात हो गया । भद्रे ! [illegible] कपिलाह्रद नामक तीर्थमें [illegible] है, उसे सहस्र गोदानका फल मिलता है । [illegible] ललित नामक उत्तम तीर्थमें [illegible] आदिका तर्पण करके मनुष्य [illegible] शान्तनुने मनुष्यरूपमें [illegible] गङ्गाने प्रतिवर्ष एक-एक पुत्रको [illegible] उनके शरीरको [illegible]

वहाँ वृक्ष पैदा हो गया। जो मनुष्य वहाँ स्नान करता और उस ओषधिको खाता है, वह गङ्गादेवीके प्रसादसे कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता। वहाँसे भीमस्थल (भीमगोड़ा) में जाकर जो पुण्यात्मा पुरुष स्नान करता है, वह इस लोकमें उत्तम भोग भोगकर शरीरका अन्त होनेपर स्वर्गलोकमें जाता है। यह संक्षेपमें तुम्हें थोड़े-से तीर्थोंका परिचय दिया गया है। जो इस क्षेत्रमें बृहस्पतिके कुम्भ राशिपर और सूर्यके मेषराशिपर रहते समय स्नान करता है, वह साक्षात् बृहस्पति और दूसरे सूर्यके समान तेजस्वी होता है *। प्रयाग आदि पुण्यतीर्थमें एवं पृथोदकतीर्थमें जानेपर जो वारुण, महावारुण तथा महामहावारुण योगमें वहाँ विधिपूर्वक स्नान करता है और भक्तिभावसे ब्राह्मणोंका पूजन करता है, वह ब्रह्मपदको प्राप्त होता है। संक्रान्ति, अमावास्या, व्यतीपात, युगादि तिथि तथा और किसी पुण्य दिनको जो वहाँ थोड़ा भी दान करता है, वह कोटिगुना हो जाता है। यह मैंने तुमसे सच्ची बात बतायी है। जो मानव दूर रहकर भी गङ्गाद्वारका स्मरण करता है, वह उसी प्रकार सद्गति पाता है, जैसे अन्तकालमें श्रीहरिको स्मरण करनेवाला पुरुष। मनुष्य शुद्धचित्त होकर हरिद्वारमें जिस-जिस देवताका पूजन करता है, वह-वह परम प्रसन्न होकर उसके मनोरथोंको पूर्ण करता है। जहाँ गङ्गा भूतलपर आयी हैं, वही तपस्याका स्थान है। यही जपका स्थल है और यही होमका स्थान है। जो मनुष्य नियमपूर्वक रहकर तीनों समय स्नान करके वहाँ गङ्गासहस्रनामका पाठ करता है, वह अक्षय संतति पाता है। महाभागे! जो नियमपूर्वक भक्तिभावसे गङ्गाद्वारमें पुराण सुनता है, वह अविनाशी पदको प्राप्त होता है। जो श्रेष्ठ मानव हरिद्वारका माहात्म्य सुनता है अथवा भक्तिभावसे उसका पाठ करता है, वह भी स्नानका फल पाता है।

बदरिकाश्रमके विभिन्न तीर्थोंकी महिमा

मोहिनी बोली—विप्रवर! आपने गङ्गाद्वारका माहात्म्य बताया, अब बदरीतीर्थके पापनाशक माहात्म्यका वर्णन कीजिये।

पुरोहित वसुने कहा—भद्रे! सुनो; मैं बदरीतीर्थका माहात्म्य बतलाता हूँ; जिसे सुनकर जीव जन्म-मृत्युरूप संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। भगवान् विष्णुका बदरी नामक क्षेत्र सब पातकोंका नाश करनेवाला है और संसार-भयसे डरे हुए मनुष्योंके कलिसम्बन्धी दोषोंका अपहरण करके उन्हें मुक्ति देनेवाला है; जहाँ भगवान् नारायण तथा नर ऋषि, जिन्होंने धर्मसे उनकी पत्नी मूर्तिके गर्भसे अवतार ग्रहण किया है, गन्धमादन पर्वतपर तपस्याके लिये गये थे और जहाँ बहुत सुगन्धित फलसे युक्त बेरका वृक्ष है। महाभागे! वे दोनों महात्मा उस स्थानपर कल्पभरके लिये तपस्यामें स्थित हैं। कलापग्रामवासी नारद आदि मुनिवर तथा सिद्धोंके समुदाय उन्हें घेरे रहते हैं और वे दोनों लोकरक्षाके लिये तपस्यामें संलग्न हैं। वहाँ सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला सुविख्यात अग्नितीर्थ है। उसमें स्नान करके महापातकी भी पातकसे शुद्ध हो जाते हैं। सहस्रों चान्द्रायण और करोड़ों कृच्छ्रव्रतसे मनुष्य जो फल पाता है, उसे अग्नितीर्थमें स्नान करनेमात्रसे पा लेता है। उस तीर्थमें पाँच शिलाएँ हैं। जहाँ भगवान् नारदने अत्यन्त भयंकर तपस्या की, वह शिला नारदी नामसे विख्यात है, जो दर्शनमात्रसे मुक्ति देनेवाली है। सुलोचने! वहाँ भगवान् विष्णुका नित्य निवास है। उस तीर्थमें नारदकुण्ड है, जहाँ स्नान करके पवित्र हुआ मनुष्य भोग, मोक्ष, भगवान्की भक्ति आदि जो-जो चाहता है, वही-वही प्राप्त कर लेता है। जो मानव भक्तिपूर्वक इस नारदी शिलाके समीप स्नान, दान, देवपूजन, होम, जप तथा अन्य शुभकर्म करता है, वह सब अक्षय होता है। इस क्षेत्रमें दूसरी शुभकारक शिला वैनतेय शिलाके नामसे विख्यात है, जहाँ महात्मा गरुड़ने भगवान् विष्णुके दर्शनकी इच्छासे तीस

* योऽस्मिन्क्षेत्रे नरः स्नायात्कुम्भेज्येऽजगे रवौ ॥ स तु स्याद्वाक्पतिः साक्षात्प्रभाकर इवापरः ।
(ना० उत्तर० ६६ । ४४-४५)

का नाश करनेवाला है। तदनन्तर किसी समय अविनाशी भगवान् विष्णुने पुनः वेदोंका अपहरण करनेवाले दो मतवाले असुर मधु और कैटभको हयग्रीवरूपसे मारकर फिर ब्रह्माजीको वेद लौटाये। अतः ब्रह्मकुमारी! यह तीर्थ स्नानमात्रसे सब पापोंका नाश करनेवाला है। भद्रे! मत्स्य और हयग्रीव-तीर्थमें ब्रह्मरूपधारी वेद सदा विद्यमान रहते हैं। अतः वहाँका जल सब पापोंका नाश करनेवाला है। वहीं एक दूसरा मनोरम तीर्थ है, जो मानसोद्भेदक नामसे विख्यात है। वह हृदयकी गाँठें खोल देता है, मनके समस्त संशयोंका नाश करता है और सारे पापोंको भी हर लेता है। इसीलिये वह मानसोद्भेदक कहलाता है। वरानने! वहाँ कामाकाम नामक दूसरा तीर्थ है, जो सकाम पुरुषोंकी कामना पूर्ण करनेवाला और निष्कामभाववाले पुरुषोंको मोक्ष देनेवाला है। भद्रे! वहाँसे पश्चिम वसुधारातीर्थ है। वहाँ भक्तिपूर्वक स्नान करके मनुष्य मनोवाञ्छित फल पाता है। इस वसुधारातीर्थमें पुण्यात्मा पुरुषोंको जलके भीतरसे ज्योति निकलती दिखायी देती है, जिसे देखकर मनुष्य फिर गर्भवासमें नहीं आता।

वहाँसे नैर्ऋत्य कोणमें पाँच धाराएँ नीचे गिरती हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—प्रभास, पुष्कर, गया, नैमिषारण्य और कुरुक्षेत्र। उनमें पृथक्-पृथक् स्नान करके मनुष्य उन-उन तीर्थोंका फल पाता है। उसके बाद एक दूसरा विमलतीर्थ है, जो सोमकुण्डके नामसे भी विख्यात है, जहाँ तीव्र तपस्या करके सोम ग्रह आदिके अधीश्वर हुए हैं। भद्रे! वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य दोषरहित हो जाता है। वहाँ एक दूसरा द्वादशादित्य नामक तीर्थ है, जो सब पापोंको हर लेनेवाला और उत्तम है। वहाँ स्नान करके मनुष्य सूर्यके समान तेजस्वी होता है। वहीं चतुःस्रोत नामका एक दूसरा तीर्थ है, जिसमें डुबकी लगानेवाला मानव धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारोंमेंसे जिसको चाहता है, उसीको पा लेता है। सती मोहिनी! तदनन्तर वहीं सप्तपद नामक मनोहर तीर्थ है, जिसके दर्शनमात्रसे बड़े-बड़े पातक भी अवश्य नष्ट हो जाते हैं। फिर उसमें स्नान करनेकी तो बात ही क्या! उस कुण्डके तीनों कोणोंपर ब्रह्मा, विष्णु और महेश स्थित रहते हैं। वहाँ मृत्यु होनेसे मनुष्य सत्यपद-स्वरूप भगवान् विष्णुको प्राप्त करता है। शुभे! वहाँसे दक्षिणभागमें परम उत्तम अस्त्र-तीर्थ है, जहाँ भगवान् नर और नारायण अपने अस्त्र शस्त्र रखकर तपस्यामें संलग्न हुए थे। महाभागे! वहाँ पुण्यात्मा पुरुषोंको शङ्ख, चक्र आदि दिव्य आयुध मूर्तिमान् दिखायी देते हैं। वहाँ भक्तिपूर्वक स्नान करनेसे मनुष्यको शत्रुका भय नहीं प्राप्त होता। शुभे! वहीं मेरुतीर्थ है, जहाँ स्नान और धनुर्धर श्रीहरिका दर्शन करके मनुष्य सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है। जहाँ भागीरथी और अलकनन्दा मिली हैं, वह पुण्यमय (देवप्रयाग) बदरिकाश्रममें सबसे श्रेष्ठ तीर्थ है। वहाँ स्नान, देवताओं और पितरोंका तर्पण तथा भक्तिभावसे भगवत्पूजन करके मनुष्य सम्पूर्ण देवताओंद्वारा वन्दित हो विष्णुधामको प्राप्त कर लेता है। शुभानने! संगमसे दक्षिण-भागमें धर्मक्षेत्र है। मैं उसे सब तीर्थोंमें परम उत्तम और पावन क्षेत्र मानता हूँ। भद्रे! वहीं कर्मोद्धार नामक दूसरा तीर्थ है, जो भगवान्‌की भक्तिका एकमात्र साधन है। ब्रह्मावर्त नामक तीर्थ ब्रह्मलोककी प्राप्तिका प्रमुख साधन है। मोहिनी! ये गङ्गाके आश्रित तीर्थ तुम्हें बताये गये हैं। बदरिकाश्रमके तीर्थोंका पूरा पूरा वर्णन करनेमें ब्रह्माजी भी समर्थ नहीं हैं। जो मनुष्य भक्ति-भावसे ब्रह्मचर्य आदि व्रतका पालन करते हुए एक मासतक यहाँ निवास करता है, वह नर-नारायण श्रीहरिका साक्षात् दर्शन पाता है।

सिद्धनाथ-चरित्रसहित कामाक्षा-माहात्म्य

मोहनी बोली—विप्रवर! मैं कामाक्षा देवीका माहात्म्य सुनना चाहती हूँ।

पुरोहित वसुने कहा—मोहिनी! कामाक्षा बड़ी उग्र देवी हैं। वे पूर्व दिशामें रहती हैं। वे कलियुगमें मनुष्योंको सिद्धि प्रदान करनेवाली हैं। भद्रे! जो वहाँ [illegible] निरन्तर भोजन करते हुए कामाक्षा देवीका पूजन करता है और दृढ़ आसनसे बैठकर वहाँ एक रात व्यतीत करता है, वह साधक देवीका दर्शन कर लेता है। व
देवी भयंकर रूपसे मनुष्योंके सामने प्रकट होती है। उ
समय उसे देखकर जो विचलित नहीं होता, वह मनोवाञ्छि
सिद्धिको पा लेता है। वरानने! वहाँ पार्वतीजीके पु
सिद्धनाथ रहते हैं, जो उग्र तपस्यामें स्थित हैं। लोगोंको
कभी दर्शन नहीं देते हैं। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर—इन ती
युगोंमें तो सब लोग उन्हें प्रत्यक्ष देखते हैं, किंतु कलियुग
जबतक उसका एक चरण स्थित रहता है, वे अन्तर्धान

जाते हैं। जो वहाँ जाकर भक्तिभावसे युक्त हो कामाक्षा देवीकी नित्य पूजा करते हुए एक वर्षतक सिद्धनाथजीका चिन्तन करता है, वह स्वप्नमें उनका दर्शन पाता है। दर्शनके अन्तमें एकाग्रचित्त होकर उनके द्वारा सूचित की हुई सिद्धिको पाकर इस पृथ्वीपर सिद्ध होता है। शुभे! फिर वह सब लोगोंकी कामना पूर्ण करता हुआ [illegible] लोकोंमें जो-जो वस्तुएँ हैं, उन [illegible] खींच लेता है। भद्रे! [illegible] सिद्धनाथके नामसे वहाँ विराजमान [illegible] वस्तुएँ देते हुए अनन्त [illegible] है।

प्रभासक्षेत्रका माहात्म्य तथा उसके अवान्तर तीर्थोंकी महिमा

मोहिनी बोली—द्विजश्रेष्ठ! अब मुझे प्रभासक्षेत्रका माहात्म्य बताइये; जिसे सुनकर मेरा चित्त प्रसन्न हो जाय और मैं आपके कृपा-प्रसादसे अपनेको धन्य समझूँ।

पुरोहित वसुने कहा—देवि! सुनो, मैं उत्तम पुण्यदायक प्रभासतीर्थका वर्णन करता हूँ। वह मनुष्योंके सब पापोंको हर लेनेवाला और भोग एवं मोक्ष देनेवाला है। विधिनन्दिनी! जिसमें असंख्य तीर्थ हैं और जहाँ गिरिजापति भगवान् विश्वनाथ सोमनाथके नामसे प्रसिद्ध हैं, उस प्रभासतीर्थमें स्नान करके सोमनाथकी पूजा करनेपर मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है। प्रभासमण्डलका विस्तार बारह योजनका है। उसके मध्यमें इस तीर्थकी पीठिका है, जो पाँच योजन विस्तृत कही गयी है। उसके मध्य भागमें गोचर्ममात्र तीर्थ है, जिसका महत्त्व कैलाससे भी अधिक है। वहीं एक दूसरा परम सुन्दर पुण्यतीर्थ है, जिसे अर्कस्थल कहते हैं। उस तीर्थमें सिद्धेश्वर आदि सहस्रों लिङ्ग हैं। उसमें स्नान करके भक्तिभावसे देवता, पितरोंका तर्पण तथा शिवलिङ्गोंका पूजन करके मनुष्य भगवान् रुद्रके लोकमें जाता है। इसके सिवा समुद्रतटपर दूसरा तीर्थ, जिसको अग्नितीर्थ कहते हैं, विद्यमान है। देवि! उसमें स्नान करके मनुष्य अग्निलोकमें जाता है। वहाँ उपवासपूर्वक भगवान् कपर्दीश्वरकी पूजा करके मानव इहलोकमें मनोवाञ्छित भोगोंका उपभोग करता और अन्तमें शिवलोकको प्राप्त होता है। तदनन्तर केदारेश्वरके समीप जाकर विधिपूर्वक उनकी पूजा करके मनुष्य देवपूजित हो विमानद्वारा स्वर्गलोकमें जाता है। कपर्दीश्वर और केदारेश्वरके पश्चात् क्रमशः भीमेश्वर, भैरवेश्वर, चण्डीश्वर, भास्करेश्वर, अङ्गारेश्वर, गुर्वीश्वर, सोमेश्वर, भृगुजेश्वर, शनीश्वर, राहीश्वर तथा केत्वीश्वरकी पूजा करे। इस प्रकार क्रमशः [illegible] चाहिये। विधिज्ञ पुरुष भक्तिभावसे [illegible] पूजा करके भगवान् शिवका [illegible] में समर्थ हो जाता है। [illegible] ललितेश्वरी—इन देवियोंका क्रमशः [illegible] निष्पाप हो जाता है। [illegible] कामकेश्वरका भक्तिपूर्वक पूजन करके मानव [illegible] का पद प्राप्त कर लेता है। [illegible] वरुणेश्वर तथा उमेश्वरका पूजन करके मानव [illegible] है। जो मानव गणेश, [illegible] वहीश, गौतम तथा [illegible] वह कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता। तदनन्तर [illegible] वहाँ विधिपूर्वक स्नान और [illegible] मनोवाञ्छित फल पाता है। [illegible] वहाँ स्नान तथा देवता आदिका [illegible] पाता है। जो [illegible] वह इस लोकमें उत्तम भोग [illegible] रुद्रके लोकमें जाता है। देवि! [illegible] आदिनारायणकी पूजा करता है, [illegible]

नरेश्वरि! तत्पश्चात् मानव [illegible] देवताओंसे पूजित हो भोग [illegible] तदनन्तर [illegible] पूजा करनेसे [illegible] मनोवाञ्छित कामनाएँ प्राप्त कर लेता है। [illegible] नदीमें जाकर वहाँ भक्तिभावसे [illegible] देवता आदिका पूजन करनेसे [illegible] तदनन्तर पाण्डुकूपमें स्नान करके [illegible] चाहिये। ऐसा करनेवाला [illegible] तत्पश्चात् यादवस्थलमें जाकर मानव [illegible]

१. २१०० हाथ लंबी और इतनी ही चौड़ी भूमिको गोचर्म भूमि कहते हैं। (हिंदी-शब्दसागर)

अभीष्ट वस्तु देती हैं। दुर्वासेश्वर और विघ्नेश्वरकी पूजा करनेसे मनुष्य पापमुक्त हो जाता है । भद्रासङ्गममें स्नान करके मनुष्य सैकड़ों कल्याणकी बातें देखता है । मोक्षतीर्थमें स्नान करके मानव भवसागरसे मुक्त हो जाता है । नारायणगृहमें जाकर मानव फिर कभी शोक नहीं करता । हुङ्कारतीर्थमें स्नान करनेवाला पुरुष गर्भवासका कष्ट नहीं पाता तथा चण्डीश्वरका पूजन करनेसे सब तीर्थोंका फल मिल जाता है । आशापुरनिवासी विघ्नेश्वरका पूजन करनेसे विघ्नकी प्राप्ति नहीं होती । कलाकुण्डमें स्नान करनेवाला मानव निस्संदेह मोक्षका भागी होता है । नारदेश्वरका पूजक भगवान् विष्णु और शङ्करका भक्त होता है । भल्लतीर्थमें स्नान करके मानव समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है और कर्दमालतीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्यके समस्त पातक दूर हो जाते हैं । गुप्त सोमनाथका दर्शन करके मनुष्य फिर कभी शोकमें नहीं पड़ता । शृङ्गेश्वरका पूजन करनेवाला पुरुष दुःखोंसे पीड़ित नहीं होता । नारायणतीर्थमें स्नान करनेवाला मानव मोक्ष प्राप्त कर लेता है । मार्कण्डेयेश्वरके पूजनसे मनुष्य दीर्घायु होता है । कोटिहृदमें स्नान करके कोटीश्वरका पूजन करनेसे मानव सुखी होता है । फिर सिद्धस्थानमें स्नान करके जो मनुष्य वहाँके [illegible] करता है, वह इस पृथ्वीपर सिद्ध होता है । [illegible] गृहका दर्शन करके मनुष्य [illegible] है । [illegible] प्रभासके नाभिस्थानमें [illegible]तीर्थ है । यहाँ [illegible] शङ्करकी आराधना करनेसे मनुष्य [illegible] समान हो जाता है । दामोदरमें [illegible] ब्रह्मकुण्ड, उज्जयन्ततीर्थमें कुन्तीश्वर और [illegible] तथा [illegible]क्षेत्रमें मृगीकुण्डतीर्थ सर्वश्रेष्ठ माना गया है । इनमें क्रमशः स्नान करके देवताओंका [illegible] जलसे पितरोंका तर्पण करनेसे मनुष्य [illegible] पाता है । तदनन्तर गङ्गेश्वरका पूजन करनेसे मनुष्यको गङ्गास्नानका फल मिलता है । देवि ! रैवतक पर्वतपर बहुत से तीर्थ हैं । उनमें स्नान करके भक्तिपूर्वक ब्रह्मा, विष्णु, शिव और इन्द्र आदि लोकपालोंकी पूजा करनेसे मनुष्य भोग और मोक्ष दोनों पा लेता है । सुन्दरि ! ये सब तीर्थ तुम्हें बहुत थोड़ेमें बताये गये हैं । इनमें अवान्तरतीर्थ तो अनन्त हैं, जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता । मोहिनि ! तीनों लोकोंमें प्रभासक्षेत्रके समान दूसरा कोई तीर्थ नहीं है ।

पुष्कर-माहात्म्य

मोहिनी बोली—द्विजश्रेष्ठ ! प्रभासक्षेत्रका अत्यन्त पुण्यदायक माहात्म्य सुना । अब पुष्करतीर्थका, जो कि मेरे पिता ब्रह्माजीका यज्ञसदन है, माहात्म्य विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ।

पुरोहित वसुने कहा—भद्रे ! सुनो; मैं पुष्करके पवित्र माहात्म्यका, जो मनुष्योंको सदा अभीष्ट वस्तु देनेवाला है, वर्णन करता हूँ । इसमें अनेक तीर्थोंका माहात्म्य सम्मिलित है । जहाँ भगवान् विष्णुके साथ इन्द्र आदि देवता, गणेश, रैवत और सूर्य विराजमान हैं, उस पुष्करवनमें जो बिना किसी साधनके भी निवास करता है, वह अष्टाङ्गयोग-साधनका पुण्य पाता है । पृथ्वीपर इससे बढ़कर दूसरा कोई क्षेत्र नहीं है । अतः श्रेष्ठ मानवोंको सर्वथा प्रयत्न करके इस उत्तम क्षेत्रका सेवन करना चाहिये । जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र इस क्षेत्रमें निवास करते हुए सर्वतोभावेन ब्रह्माजीमें भक्ति रखते और सभी जीवोंपर दया करते हैं, वे ब्रह्माजीके लोकमें जाते हैं । पुष्करवनमें, जहाँ प्राची सरस्वती बहती हैं, जानेसे मनुष्यको मति (मननशक्ति), स्मृति (स्मरणशक्ति), दया, प्रज्ञा (उत्कृष्ट ज्ञानशक्ति), मेधा (धारणाशक्ति) और बुद्धि (निश्चयात्मक वृत्ति) प्राप्त होती हैं । जो वहाँ तत्पर स्थित होकर प्राची सरस्वतीके उस जलको पीते हैं, वे भी अश्वमेध यज्ञका फल पाकर [illegible] ब्रह्मको प्राप्त होते हैं । पुष्करमें तीन उज्ज्वल शिखर हैं, तीन निर्मल [illegible] हैं तथा ज्येष्ठ, मध्य और कनिष्ठ—ये तीन सरोवर हैं । [illegible] ! वहाँ नन्दासरस्वतीके नामसे सुप्रसिद्ध महान् तीर्थ है, जो पुष्करसे एक योजन दूर पश्चिम दिशामें [illegible] है । वहाँ विधिपूर्वक स्नान और वेदवेत्ता ब्राह्मणको दूध देनेवाली [illegible] दान करनेसे मनुष्य ब्रह्मलोकमें जाता है । इसके [illegible] वहाँ कोटितीर्थ है, जहाँ करोड़ों [illegible] । वहाँ स्नान और ब्राह्मणोंका पूजन करके मनुष्य [illegible] मुक्त हो जाता है । उसके बाद अगस्त्याश्रममें [illegible] और कुम्भज ऋषिका पूजन करके मनुष्य [illegible] सम्पन्न और दीर्घायु होता है तथा [illegible] स्वर्गलोकमें जाता है । [illegible] दित हो स्नान तथा भक्तिभावसे उनका पूजन करके [illegible] सप्तर्षिलोकमें जाता है । मनुके आश्रममें स्नान करके [illegible] सर्वत्र पूजा प्राप्त करता है । [illegible] करनेसे गङ्गास्नानका फल मिलता है । [illegible] पुष्करमें स्नान करके ब्राह्मणको गोदान देनेसे मनुष्य [illegible] भोगोंको भोगनेके पश्चात् ब्रह्मलोकमें [illegible] है ।

मध्यम पुष्करमें स्नान करके ब्राह्मणको भूदान करनेवाला पुरुष श्रेष्ठ विमानपर बैठकर भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। कनिष्ठ पुष्करमें स्नान और ब्राह्मणको सुवर्ण दान करके मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंको पाता और अन्तमें भगवान् रुद्रके लोकमें प्रतिष्ठित होता है। तदनन्तर विष्णुपदमें स्नान और ब्राह्मणको कुछ दान करके मनुष्य भगवान् विष्णुके प्रसादसे समस्त कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। तत्पश्चात् नागतीर्थमें स्नान और नागोंका पूजन करके ब्राह्मणोंको दान देनेसे मनुष्य एक युगतक स्वर्गमें आनन्द भोगता है। आकाशमें पुष्करका चिन्तन करके 'आपो हिष्ठा' इत्यादि मन्त्रोंद्वारा जो पुष्करवनमें स्नान करता है, वह शाश्वत ब्रह्मपदको प्राप्त कर लेता है।

जब कभी कार्तिककी पूर्णिमाको कृत्तिका नक्षत्र हो तो वह महातिथि समझी जाती है। उस समय आकाश पुष्करमें स्नान करना चाहिये। भरणी नक्षत्रसे युक्त कार्तिककी पूर्णिमाको मध्यम पुष्करमें स्नान करनेवाला मानव आकाश पुष्करमें स्नान करनेका पुण्यफल पाता है। रोहिणीनक्षत्रसे युक्त कार्तिककी पूर्णिमाको कनिष्ठ पुष्करमें स्नान करनेवाला पुरुष आकाश पुष्करजनित पुण्यफलका भागी होता है। जब सूर्य भरणीनक्षत्रपर, बृहस्पति कृत्तिकापर तथा चन्द्रमा रोहिणीनक्षत्रपर हों और नन्दा तिथिका योग हो तो उस समय पुष्करमें स्नान करनेपर आकाश पुष्करका सम्पूर्ण फल प्राप्त होता है। जब विशाखानक्षत्रपर सूर्य और कृत्तिका नक्षत्रपर चन्द्रमा हों तब आकाश पुष्कर नामक योग होता है। उसमें स्नान करनेवाला पुरुष स्वर्गलोकमें जाता है। आकाशसे उतरे हुए इस कल्याणमय पितामहतीर्थमें जो मनुष्य स्नान करते हैं, उन्हें महान् अभ्युदयकारी लोक प्राप्त होते हैं। सती मोहिनी! पुष्करवनमें पञ्चस्रोता सरस्वती नदीमें सिद्ध महर्षियोंने बहुत-से तीर्थ और देवस्थान स्थापित किये हैं। जो मनुष्य वहाँ श्रेष्ठ ब्राह्मणको धान्य और तिल दान करता है, वह इहलोक और परलोकमें परम गतिको प्राप्त होता है। जो गङ्गा-सरस्वतीके सङ्गममें स्नान करके ब्राह्मणोंका पूजन करता है, वह इहलोकमें मनोवाञ्छित भोग भोगनेके पश्चात् श्रेष्ठ गतिको प्राप्त होता है। सती मोहिनी! जो मानव अवियोगा बावड़ीमें स्नान करके विधिपूर्वक पिण्डदान देता है, वह अपने पितरोंको स्वर्गलोकमें पहुँचा देता है। जो अजगन्ध शिवके समीप जाकर उनकी विधिपूर्वक पूजा करता है, वह इहलोक और परलोकमें भी मनोवाञ्छित भोग पाता है। पुष्करतीर्थमें सरोवरसे दक्षिण भागमें एक पर्वतशिखरपर सावित्री देवी विराजमान हैं। जो उनकी पूजा करता है, वह वेदोंके तत्त्वका ज्ञाता होता है। मोहिनी! वहाँ भगवान् वाराह, नृसिंह, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, चन्द्रमा, कार्तिकेय, पार्वती तथा अग्निके पृथक्-पृथक् तीर्थ हैं। महाभागे! जो मनुष्य एकाग्रचित्त होकर उनमें स्नान करके ब्राह्मणोंको दान देता है, वह उत्तम गति पाता है। पुष्करमें स्नान दुर्लभ है, पुष्करमें तपस्याका अवसर भी दुर्लभ है, पुष्करमें दान दुर्लभ है और पुष्करमें रहनेका सुयोग भी दुर्लभ है। सौ योजन दूर रहकर भी जो मनुष्य स्नानके समय भक्तिभावसे पुष्करका चिन्तन करता है, वह उसमें स्नानका फल पाता है।

गौतमाश्रम-माहात्म्यमें गोदावरीके प्राकट्यका तथा पञ्चवटीके माहात्म्यका वर्णन

मोहिनी बोली—वसुजी! मैंने पुष्करका पापनाशक माहात्म्य सुन लिया। प्रभो! अब गौतम-आश्रमका माहात्म्य कहिये।

पुरोहित वसुने कहा—देवि! महर्षि गौतमका आश्रम परम पवित्र तथा देवर्षियोंद्वारा सेवित है। वह सब पापोंका नाशक तथा सब प्रकारके उपद्रवोंकी शान्ति करनेवाला है। जो मनुष्य भक्तिभावसे युक्त हो बारह वर्षोंतक गौतम आश्रमका सेवन करता है, वह भगवान् शिवके धाममें जाता है, जहाँ जाकर मनुष्य शोकका अनुभव नहीं करता। ब्रह्मपुत्री मोहिनी! महर्षि गौतमके तपस्या करते समय एक बार बारह वर्षोंतक घोर अनावृष्टि हुई, जो समस्त जीवोंका संहार करनेवाली थी। शुभे! उस भयानक दुर्भिक्षके आरम्भ होते ही सब मुनि अनेक देशोंसे गौतमके आश्रमपर आये। उन्होंने तपस्वी गौतमको इस बातकी जानकारी करायी कि 'आप हमें भोजन दें, जिससे हमारे प्राण शरीरमें रह सकें।' उन मुनियोंके इस प्रकार सूचना देनेपर महर्षि गौतमको बड़ी दया आयी। वे अपने ऊपर विश्वास करनेवाले उन ऋषियोंसे अपनी तपस्याके बलपर बोले।

गौतमने कहा—मुनियो! आप सब लोग मेरे आश्रमके समीप ठहरें। जबतक यह दुर्भिक्ष रहेगा, तबतक मैं आदरपूर्वक आपको भोजन दूँगा।

ऐसा कहकर गौतमने तपोबलसे गङ्गादेवीका ध्यान किया। उनके स्मरण करते ही गङ्गादेवी पृथ्वीतलसे प्रकट हुईं। महर्षिने गङ्गाजीको प्रकट हुई देख प्रातःकाल

पृथ्वीपर अगहनीके बीज रोपे और दोपहर होते-होते वे धानके पौधे बढ़कर उनमें फल लग गये। उसी समय वे पक भी गये; अतः मुनिने उन सबको काट लिया। फिर उसी अगहनीके चावलसे रसोई तैयार करके उन्होंने उन ऋषियोंको भोजन कराया। भद्रे! इस प्रकार प्रतिदिन पके हुए अगहनी धानके चावलोंसे गौतमजीने भक्तिभावसे युक्त हो उन अतिथियोंका अतिथिसत्कार किया। तदनन्तर नित्य-प्रति ब्राह्मण-भोजन कराते हुए मुनीश्वर गौतमके बारह वर्ष बीत जानेपर दुर्भिक्षकाल समाप्त हो गया। इसलिये वे सब मुनि मुनिश्रेष्ठ गौतमसे पूछकर अपने-अपने देशको चले गये। मोहिनी! गौतम मुनि बहुत वर्षोंतक वहाँ तपस्यामें लगे रहे।

तदनन्तर अम्बिकापति भगवान् शिवने उनकी तपस्यासे संतुष्ट हो उन्हें अपने पार्षदगणोंके साथ दर्शन दिया और कहा—'वर माँगो।' तब मुनिवर गौतमने भगवान्

त्र्यम्बकको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और कहा— [illegible] करनेवाले भगवन्! आपके चरणोंमें मेरी [illegible] रहे और मेरे आश्रमके समीप इसी पर्वतपर [illegible] में सदा विराजमान देखूँ, यही मेरे लिये अभीष्ट वर है।' मुनिके ऐसा कहनेपर भक्तोंको मनोवाञ्छित वर [illegible] वल्लभ भगवान् शिवने उन्हें अपना सामीप्य प्रदान किया। भगवान् त्र्यम्बक उसी पर्वतपर निवास करते हैं। तभीसे वह पर्वत त्र्यम्बक कहलाने लगा। [illegible] भक्तिभावसे गोदावरी गङ्गामें जाकर स्नान करते हैं [illegible] भवसागरसे मुक्त हो जाते हैं। जो लोग गोदावरीमें स्नान करके उस पर्वतपर विराजमान भगवान् [illegible] विविध उपचारोंसे पूजन करते हैं, वे [illegible] हैं। मोहिनी! भगवान् त्र्यम्बकका यह माहात्म्य मैंने [illegible] है। तदनन्तर जहाँतक गोदावरीका साक्षात् दर्शन होता है, वहाँतक बहुत-से पुण्यमय आश्रम हैं। उन सबमें स्नान करके देवताओं तथा पितरोंका विधिपूर्वक तर्पण करके मनुष्य मनोवाञ्छित कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। भद्रे! गोदावरी कहीं प्रकट है और कहीं गुप्त है। [illegible] पुण्यमयी गोदावरी नदीने इस पृथ्वीको [illegible] है। मनुष्योंकी भक्तिसे जहाँ वे महेश्वरी देवी प्रकट हुई हैं [illegible] महान् पुण्यतीर्थ है, जो स्नानमात्रसे [illegible] है। तदनन्तर गोदावरीकी [illegible] प्रवाहमें आयी हैं। [illegible] प्रदान करती हैं। [illegible]! [illegible] व्रतका पालन करते हुए [illegible] है, वह अभीष्ट कामनाओंको प्राप्त कर [illegible] है। [illegible] त्रेतायुगमें भगवान् श्रीराम [illegible] भाई लक्ष्मणके साथ आकर रहने [illegible] को और भी पुण्यमयी बना दिया। [illegible]! [illegible] सब गौतमाश्रमका माहात्म्य [illegible] है।

पुण्डरीकपुरका माहात्म्य, जैमिनिद्वारा भगवान् शङ्करकी स्तुति

मोहिनी बोली—गुरुदेव! आपने जो गौतम-आश्रम तथा महर्षि गौतमका पवित्र उपाख्यान कहा है, उसे मैंने सुना। अब मैं पुण्डरीकपुरका माहात्म्य सुनना चाहती हूँ।

पुरोहित वसुने कहा—महादेवजी भक्तोंके [illegible] रहते हैं और [illegible] प्रकट होने और [illegible] एक [illegible] अभिषेक [illegible]

पुण्डरीकपुरमे गये, जो साक्षात् देवराज इन्द्रकी अमरावती-पुरीके समान सुशोभित था। उस नगरकी शोभा देखकर महर्षि जैमिनि बड़े प्रसन्न हुए। वहाँ सरोवरमें मुनिने स्नान करनेके पश्चात् संध्या-वन्दन आदि नित्यकर्म तथा देवताओं, ऋषियों और पितरोंका तर्पण किया। फिर पार्थिव लिङ्गका निर्माण करके पाद्य, अर्घ्य आदि विविध उपचारोंसे विधि-पूर्वक उसका पूजन किया। पूजनके समय उनका चित्त पूर्णतः शान्त था; मनमें कोई व्यग्रता नहीं थी। गन्ध, सुगन्धित पुष्प, धूप, दीप तथा भाँति-भाँतिके नैवेद्योंसे भली-भाँति पूजन करके ज्यों ही महर्षि जैमिनि स्थिर होकर बैठे, त्यों ही प्रसन्न होकर भगवान् शिव उनके नेत्रोंके समक्ष प्रकट हो गये।

तदनन्तर जैमिनि साक्षात् भगवान् उमापतिको प्रकट हुआ देख उनके आगे दण्डकी भाँति पृथ्वीपर पड़ गये। फिर सहसा उठकर हाथ जोड़ शरणागतोंकी पीड़ा दूर करनेवाले तथा आधे अङ्गमें हरि और आधेमें हररूपसे प्रकट हुए भगवान् शिवसे बोले।

जैमिनिने कहा—देवदेव जगत्पते! मैं धन्य हूँ, कृतकृत्य हूँ; क्योंकि आप ब्रह्मा आदिके भी ध्यान करने-योग्य साक्षात् महेश्वर मेरी दृष्टिके सम्मुख प्रकट हैं।

तब प्रसन्न होकर भगवान् शिवने उनके मस्तकपर अपना हाथ रक्खा और कहा—'बेटा! बोलो, तुम क्या चाहते हो?' भगवान् शिवका यह वचन सुनकर जैमिनिने उत्तर दिया—'भगवन्! मैं माता पार्वती, विघ्नराज गणेश तथा कुमार कार्तिकेयजीके साथ आपका दर्शन करना चाहता हूँ।' तब पार्वती देवी तथा अपने दोनों पुत्रोंके साथ भगवान् शङ्करने उन्हें दर्शन दिया। तत्पश्चात् प्रसन्नचित्त हो भगवान् शिवने फिर पूछा—'बेटा! कहो, अब क्या चाहते हो?' जैमिनिने जगद्गुरु शङ्करकी यह दयालुता देखकर मुसकराते हुए कहा—'मैं आपके ताण्डव नृत्यकी झाँकी देखना चाहता हूँ।' तब उनकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये भगवान् अम्बिका-पतिने भाँति-भाँतिकी क्रीडामें कुशल समस्त प्रमथगणोंका स्मरण किया। उनके स्मरण करते ही वे नन्दी-भृङ्गी आदि सब लोग कौतूहलमें भरकर वहाँ आये और गणेश, कार्तिकेय तथा पार्वतीसहित भगवान् शिवको नमस्कार करके देवदेव महादेवजीके आदेशकी प्रतीक्षा करते हुए चुपचाप हाथ जोड़कर खड़े हो गये।

तदनन्तर भगवान् रुद्र अद्भुत रूप बनाकर ताण्डव नृत्य करनेको उद्यत हुए। उस समय वे विचित्र वेष-भूषासे विभूषित हो अद्भुत शोभा पा रहे थे। उन्होंने चञ्चल नागरूपी बेल्टसे अपनी कमर कस ली थी। मुखपर कुछ-कुछ मुसकराहट खेल रही थी। ललाटमें आधे चन्द्रमाकी रेखा सुशोभित थी। सिरके बाल ऊपरकी ओर खड़े थे। उन्होंने अपने सुन्दर नेत्रकी तथा शरीरमें रमायी हुई विभूतिकी उज्ज्वल प्रभासे चन्द्रमा और उसकी चाँदनीको मात कर दिया था। नृत्यके समय उनके जटा-जूटसे झरती हुई गङ्गाके जलसे भगवान्‌का सारा अङ्ग भीग रहा था। ताण्डवकालमें बार-बार अपने चरणारविन्दोंके आघातसे वे समूची पृथ्वीको कम्पित किये देते थे। उत्तम वाद्य बज रहे

भगवान शिव का ताण्डव नृत्य

थे और हर्षातिरेकसे भगवान्‌के अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया था । देवताओं तथा दैत्योंके अधिपतिगण अपने मुकुटकी मणियोंके प्रकाशसे भगवान् शिवके चरणकमलोंकी शोभा बढ़ाते थे । गणेश, कार्तिकेय तथा गिरिराजनन्दिनी पार्वतीके नेत्र भगवान्‌के मुखपर लगे थे । भक्तोंके हृदयमें हर्षकी बाढ़-सी आ गयी थी और वे बड़े उत्साहसे जय-जयकार कर रहे थे । इस प्रकार भगवान् शिव अपने ताण्डवनृत्यसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करते हुए शोभा पा रहे थे ।

तदनन्तर महेश्वरका ताण्डवनृत्य देखकर महर्षि जैमिनि आनन्दके समुद्रमें डूब गये और एकाग्रचित्त हो वेद-पादस्तोत्रसे उनकी स्तुति करने लगे—'काम्पिल्य देशमें निवास करनेवाली देवि ! ब्रह्मा, विष्णु और शिव तुम्हारे चरणारविन्दोंमें मस्तक झुकाते हैं । जगदम्ब ! तुम्हें नमस्कार है । विघ्नराज ! ब्रह्मा, सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्र और विष्णु आदि आपकी वन्दना करते हैं । गणपते ! आप ब्राह्मणों तथा ब्रह्माजीके अधिपति हैं, आपको नमस्कार है । उमादेवी अपने कोमल करारविन्दोंसे जिनके ललाटमें तिलक लगाती है, जो कानोंमें कुण्डल तथा गलेमें कमलपुष्पोंकी माला धारण करते हैं, उन कुमार कार्तिकेयको मैं प्रणाम करता हूँ । ब्रह्मा आदिके लिये भी जिनका दर्शन करना अत्यन्त कठिन है, उन भगवान् शिवकी स्तुति कौन कर सकता है ? तथापि प्रभो ! आपके दर्शनसे मेरे द्वारा स्वतः स्तुति होने लगी है, ठीक उसी तरह जैसे मेघोंकी घटासे स्वतः वर्षा होने लगती है । अम्बा पार्वतीसहित भगवान् शिवको नमस्कार है । संहारकारी शर्व एवं कल्याणकारी शम्भुको नमस्कार है । ताण्डवनृत्य करनेवाले सभापति रुद्रदेवको नमस्कार है । जिनके पैरोंकी धमकसे सम्पूर्ण लोक विदीर्ण होने लगते हैं, मस्तकके आघातसे ब्रह्माण्डकी दीवार फट जाती है और भुजाओंके आघातसे समस्त दिगन्त विभ्रान्त हो उठता है, उन भगवान् भूतनाथको नमस्कार है । ताण्डवके समय जिनके युगलचरणोंमें नूपुरकी छम छम ध्वनि होती रहती है, जिनके कटिभागमें चर्ममय वस्त्र सुशोभित होता है और जो नागराजकी मेखला धारण करते हैं, उन भगवान् पशुपतिको नमस्कार है । जो कालके भी काल हैं, सोमस्वरूप, भोगशक्ति-सम्पन्न तथा हाथमें शूल धारण करनेवाले हैं, उन जगत्पति शिवको नमस्कार है । भगवन् ! आप सम्पूर्ण जगत्‌के पालक, समस्त देवताओंके नेता तथा पर्वतों और क्षेत्रोंके अधिपति हैं, आपको नमस्कार है । लोककल्याणकारी [illegible] भगवान् शङ्करको नमस्कार है । मङ्गलस्वरूप शिवको नमस्कार है । आत्माके अधिपति ! आपको नमस्कार है । समस्त कामनाओंकी वर्षा करनेवाले ! आपको नमस्कार है । आप आठ [illegible]से युक्त और अत्यन्त मनोरम स्वरूपवाले हैं; [illegible] हुए भक्तोंको अभीष्ट वस्तु प्रदान करनेवाले हैं; आप (दक्ष) [illegible]के नाशक और परम सन्तुष्ट हैं; आप पाँचों भूतोंके स्वामी [illegible] नियन्ता, आत्माके अधीश्वर तथा सम्पूर्ण [illegible] हैं; आपको बारंबार नमस्कार है । जो सम्पूर्ण [illegible] जगत्‌का भरण पोषण करनेवाले तथा [illegible] हैं; अग्नि जिनका नेत्र और विश्व जिनका स्वरूप है; उन भगवान् महेश्वरको नमस्कार है । [illegible] ! [illegible] ! [illegible] ! सद्योजात ! आपको नमस्कार है । भस्म ही जिनका [illegible] है, जो भक्तोंका भयभञ्जन करनेवाले हैं, जो भव (जगत्‌की उत्पत्तिके कारण), भर्ग (तेजःस्वरूप), रुद्र (दुःख [illegible] करनेवाले) तथा मीढ्वान् (भक्तोंकी [illegible] वाले) हैं, उन भगवान् शिवको नमस्कार है । [illegible] ललाट, भौंहें तथा शरीर सभी परम सुन्दर हैं, [illegible] हैं; उन भगवान् शिवको नमस्कार है । भगवन् ! [illegible] क्लेशके कारण होनेवाले महान् भयका [illegible] उच्छेद करनेवाले हैं । [illegible] आपको नमस्कार है । जो [illegible] लालके द्वारा परम सुन्दर [illegible] स्वामी तथा देवसभाके अधीश्वर [illegible] नमस्कार करता हूँ । [illegible] मानते हैं, उन अविनाशी परम प्रभु [illegible] करता हूँ । जो एक बार भी [illegible] संसाररूपी महासागरसे तर [illegible] स्वामी भगवान् ईशानको मैं [illegible] धारण पोषण करनेवाले और ईश्वर हैं, [illegible] दाता हैं, [illegible] न होनेवाले हैं; उन [illegible] जो [illegible] करते हैं उन [illegible] मैं वन्दना करता हूँ । [illegible] सामवेद भी प्रकट हुए हैं, [illegible] विद्वान् एवं ईश्वर [illegible]

---

१. इस स्तुतिमें प्रत्येक श्लोकके अन्तमें वैदिक मन्त्रका एक पाद रक्खा गया है, इसलिये इसे 'वेदपादशिवस्तुति' कहते हैं ।

कहीं अन्त नहीं है; जो अव्यक्त, अचिन्त्य, एक, दिगम्बर, आकाशस्वरूप, अजन्मा, पुराणपुरुष तथा यज्ञरूपमय हैं, उन भगवान् हरको मैं प्रणाम करता हूँ । पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण तथा ऊपर-नीचे सब ओर वे ही तो हैं । जो चन्द्रमाका मुकुट धारण करते हैं तथा जो परमानन्दस्वरूप एवं शोक-दुःखसे रहित हैं; सबके हृदयकमलमें परमात्मरूपसे जिनका निवास है; जिनसे सम्पूर्ण दिशाएँ और अवान्तर दिशाएँ प्रकट हुई हैं; उन शिवस्वरूप भगवान् महेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ । चन्द्रमौले ! राग आदि कपट-दोषके कारण प्रकट हुए भवरूपी महारोगसे मैं बड़ी घबराहटमें हूँ । अपनी कृपादृष्टिसे मुझे देखकर आप मेरी रक्षा कीजिये; क्योंकि वैद्योंमें आप सबसे बड़े वैद्य हैं ।

'मेरे मनमें दुःखका महासागर उमड़ आया है, मैं लेशमात्र सुखसे भी वञ्चित हूँ, पुण्यका तो मैंने कभी स्पर्श भी नहीं किया है और मेरे पातक असंख्य हैं; मैं मृत्युके हाथमें आ गया हूँ और बहुत डरा हुआ हूँ; भगवान् भव ! आप आगे-पीछे, ऊपर-नीचे सब ओरसे मेरी रक्षा कीजिये । महेश ! मैं असार-संसाररूपी महासागरमें डूबकर जोर-जोरसे क्रन्दन कर रहा हूँ; मेरा राग बहुत बढ़ गया है; मैं सर्वथा असमर्थ हो गया हूँ; आप अपनी कृपादृष्टिसे मेरी रक्षा कीजिये । जिनके मुखपर मनोहर मुसकानकी छटा छा रही है, चन्द्रमाकी कला जिनके मस्तकका आभूषण बनी हुई है तथा जो अन्धकारसे परे हैं, उन सूर्यके समान तेजस्वी भगवान् शिवका माता पार्वतीके साथ कब दर्शन करूँगा ? अनादिकालसे मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले जीवो ! तुम सब लोग यहाँ आओ और अपने हृदयकमलमें भगवान् शिवका चिन्तन करो; क्योंकि जिन्होंने वेदान्त-शास्त्र (उपनिषद्) के विज्ञानद्वारा उसके अर्थभूत परमात्माको पूर्ण निश्चयपूर्वक जान लिया है, वे ज्ञानीजन मोक्षके लिये सदा उन्हींका ध्यान करते हैं । जो उत्तम पुत्रकी इच्छा रखनेवाले हैं, वे मनुष्य भी इन नित्य तरुण भगवान् शिवकी आराधना करें । इन्हींसे सृष्टिके आरम्भमें जगद्विधाता स्वयम्भू ब्रह्माजी प्रकट हुए थे । बहुत कहनेसे क्या लाभ ? इन भगवान् शिवकी शरणमें जानेसे समस्त कामनाएँ सिद्ध होती हैं । पूर्वकालमें इन्हींकी शरण लेकर महर्षि अगस्त्य दिन-रातमें वृद्धावस्थासे युवा हो गये थे । ऐ मेरे नेत्ररूपी भ्रमरो ! तुम और सब कुछ छोड़कर सदा इन भगवान् शिवका ही आश्रय लो । ये आमोदवान् (सुगन्ध और आनन्दसे परिपूर्ण) और मृदु (कमलसे भी कोमल) हैं । परम स्वादिष्ट एवं मधुर हैं; ये [illegible] । ओ मनुष्य ! तुम भगवान् शिवकी [illegible] जाओगे कि तुम्हारी स्थिति भी [illegible] । तुम समस्त मनुष्यों और देवताओंको भी [illegible] कर दोगे । वाणी ! तुम्हें नमस्कार है; तुम [illegible] करनेवाले इन नित्य-तरुण भगवान् [illegible] । मन ! तू जिस जिस अभीष्ट वस्तुका चिन्तन करता है, वह सब तुझे अवश्य प्राप्त होगी । [illegible] छुटकारा नहीं मिल सकता । [illegible] भगवान् रुद्रकी आराधना करेंगे । [illegible] पूर्वकालमें अज्ञानवश जो [illegible] दुष्कर्मका अनुष्ठान किया है, [illegible] पिता अपने पुत्रोंको आश्रय देता है, उसी प्रकार आप हमें भी अपनाइये ।

'संसार नामक रोगसे भरे हुए [illegible] उन्माद और लोभ आदिरूप [illegible] लिया है । इस अवस्थामें मुझे देखकर [illegible] करनेवाले दयालु देवता पिनाकधारी भगवान् शिव मेरी रक्षा करें । रुद्रदेव ! जो लोग [illegible] कहकर आपको नमस्कार करते हैं, वे जन्म-मृत्युरूपी [illegible] हुए लोग [illegible] होकर आपको प्राप्त होते हैं । [illegible] ! मैं जीवात्मारूपसे [illegible] आपकी ही शरणमें आता हूँ । [illegible] सांसारिक चिन्ताके भीतर [illegible] ग्रस्त हो गये हैं; समस्त धातुएँ [illegible] हैं; कालकी दृष्टि हमसे दूर नहीं है; [illegible] औषधरूप हाथसे हमारा स्पर्श करें । [illegible] ! [illegible] चराचर सब प्रकारकी सिद्धियोंका हेतु है । [illegible] काल हैं । संसारकी उत्पत्तिके हेतुभूत भगवान् [illegible] है । भस्मभूषित [illegible] इनको नमस्कार है । [illegible] पराभव और भयमें साथ देनेवाले पिनाकधारी रुद्रको नमस्कार है । विश्वके पालक [illegible] शिवको नमस्कार है । [illegible] सनातन सखा उन महेश्वरको नमस्कार है, जिनके [illegible] जीवको न तो कोई नष्ट कर सकता है और न कोई परास्त ही कर सकता है । देवताओंके [illegible] भगवान् शिवको नमस्कार है । [illegible] भी अधिपति भगवान् शिवको नमस्कार है । [illegible] उमापतिको नमस्कार है, नमस्कार है ।

कर कि राजा दशरथके दो पुत्र और हैं, जनकने उन पुत्रोंके साथ महाराजको बुलवाया और अपने भाईकी दो पुत्रियोंका उन दोनों भाइयोंके साथ ब्याह कर दिया। तदनन्तर मिथिला-नरेशके द्वारा भलीभाँति सम्मानित हो मुनिकी आज्ञा ले अपने चारों विवाहित पुत्रोंके साथ महाराज दशरथ अयोध्यापुरीके लिये प्रस्थित हुए। मार्गमें श्रीरामचन्द्रजीने भृगुपति परशुराम-जीके गर्वको शान्त किया और पिता तथा भाइयोंके साथ वे बहुत वर्षोंतक आनन्दपूर्वक रहे।

तदनन्तर राजा दशरथ यह देखकर कि मेरे पुत्र श्रीराम जाननेयोग्य सभी तत्त्वोंको जान चुके हैं, उन्हें प्रसन्नतापूर्वक युवराजपदपर अभिषिक्त करनेके लिये उद्यत हुए। यह जान-कर राजाकी सबसे अधिक प्रियतमा छोटी रानी कैकेयीने हठ-पूर्वक रामके राज्याभिषेकको रोका और अपने पुत्र भरतके लिये उस अभिषेकको पसंद किया। शुभे! तब माता कैकेयी-की प्रसन्नताके लिये पिताकी आज्ञा ले, श्रीरामचन्द्रजी अपनी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मणके साथ चित्रकूट पर्वतपर चले गये और वहीं मुनिवेष धारण करके उन्होंने कुछ कालतक निवास किया।

इधर भरतजी पिताके मरनेका समाचार सुनकर अपने नानाके घरसे अयोध्या आये। यहाँ उन्हें मालूम हुआ कि पिताजी 'हा राम! हा राम!!' की रट लगाते हुए परलोक-वासी हुए हैं; तब भरतजीने कैकेयीको धिक्कार देकर श्रीराम-चन्द्रजीको लौटा लानेके लिये वनको प्रस्थान किया; किंतु वहाँसे श्रीरामने भरतको अपनी चरण-पादुका देकर अयोध्या लौटा दिया। श्रीराम क्रमशः अत्रि, सुतीक्ष्ण तथा अगस्त्यके आश्रमोंपर गये। इन सब स्थानोंमें बारह वर्ष बिताकर श्रीरघुनाथजी भाई और पत्नीके साथ पञ्चवटीमें गये और वहाँ रहने लगे। जनस्थानमें शूर्पणखा नामकी राक्षसी रहती थी। श्रीरामकी प्रेरणासे लक्ष्मणने उसकी नाक काटकर उसे विकृत बना दिया। तब उस राक्षसीसे प्रेरित होकर युद्धके लिये आये हुए चौदह हजार राक्षसोंसहित खर, दूषण और त्रिशिराको श्रीरामचन्द्रजीने नष्ट कर दिया। यह समाचार सुनकर राक्षसों-का राजा रावण वहाँ आया। उसने मारीचको सुवर्णमय मृगके रूपमें दिखाकर उसके पीछे दोनों भाइयोंको आश्रमसे दूर हटा दिया और सीताको हर लिया। उस समय जटायुने उसका मार्ग रोका, परंतु रावण उसे मारकर सीताको लंकामें ले गया। दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण जब लौटकर आश्रमपर आये तो सीताका हरण हो चुका था। अब वे सब ओर उनकी खोज करने लगे। मार्गमें [illegible] दोनों भाइयोंने उसका [illegible] किया। [illegible] मारकर शबरीपर कृपा की। [illegible] तत्पश्चात् हनुमान्जीके [illegible] शत्रु वालिका वध करके श्रीरामने [illegible] फिर सुग्रीवकी आज्ञासे सीताकी खोज [illegible] गये। हनुमान् आदि वानर सीताको [illegible] के तटपर गये। वहाँ सम्पातिके [illegible] गया कि सीताजी लंकामें हैं।

तदनन्तर अकेले हनुमान्जी [illegible] लंकापुरीमें गये और वहाँ [illegible] देखा तथा श्रीरामचन्द्रजीकी अँगूठी [illegible] उनके मनमें विश्वास उत्पन्न किया। [illegible] कुशल-समाचार सुनाकर [illegible] अशोकवाटिकाको उजाड़कर [illegible] और मेघनादके बन्धनमें [illegible] तत्पश्चात् सम्पूर्ण लंकापुरीको [illegible] सीताका दर्शन किया और [illegible] श्रीरामचन्द्रजीसे उनका समाचार निवेदन [illegible]।

सीता राक्षसराज [illegible] सुनकर श्रीरामचन्द्रजी भी [illegible]

उन्हें आया देख लक्ष्मणने प्रणाम करके कहा—'भगवन्! दो घड़ी प्रतीक्षा कीजिये। इस समय श्रीरघुनाथजी मन्त्रणामें लगे हैं।' उन्होंने लक्ष्मणकी बात सुनकर उनसे क्रोधपूर्वक कहा—'मुझे भीतर जाने दो; नहीं तो मैं अभी तुम्हें भस्म कर दूँगा।' दुर्वासाका वचन सुनकर लक्ष्मणजी घबरा गये। वे मुनिसे भयभीत हो अपने बड़े भाईको उनके आगमनकी

सूचना देनेके लिये स्वयं भीतर चले गये। लक्ष्मणको आया देख कालदेव उठे। उनकी मन्त्रणा पूरी हो चुकी थी। वे श्रीरामसे बोले—'आप अपनी प्रतिज्ञाका पालन कीजिये।' ऐसा कहकर श्रीरामसे विदा ले वे चले गये। तब धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीराम राजभवनसे निकले और दुर्वासा मुनिको संतुष्ट करके उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक उन्हें भोजन कराया। भोजन कराकर उन्हें प्रणाम किया और विदा करके लक्ष्मणसे कहा—'भैया लक्ष्मण! धर्मके कारण बड़ा भारी संकट आ गया, क्योंकि तुम मेरे वध्य हो गये। दैव बड़ा प्रबल है। वीर! मैंने तुझे त्याग दिया (यही तुम्हारे लिये वध है)। अब तुम जहाँ चाहो, चले जाओ।' तब सत्य-धर्ममें स्थित रहनेवाले श्रीरामको प्रणाम करके लक्ष्मणजी दक्षिण दिशामें जाकर एक पर्वतके ऊपर तपस्या करने लगे। तदनन्तर भगवान् श्रीराम भी ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे साकेतपुरी और कौसल्या-प्रान्तके समस्त प्राणियोंके साथ शान्तभावसे अपने परमधामको चले गये। उस समय सरयूके गोप्रतार-घाटमें श्रीरामका चिन्तन करके जिन लोगोंने गोता लगाया, वे दिव्य शरीर धारण करके योगिदुर्लभ श्रीराम-धाममें चले गये। लक्ष्मणजी कुछ कालतक तपमें लगे रहे; फिर तपस्या एवं योगबलसे युक्त हो श्रीरामका अनुगमन करते हुए अविनाशी धाममें प्रवेश कर गये। सुमित्रानन्दन लक्ष्मणने उस पर्वतको प्रतिदिन अपने सान्निध्यका वर दिया और उसपर अपना अधिकार रक्खा; अतः वह लक्ष्मणजीका उत्तम क्षेत्र है। जो मनुष्य लक्ष्मणपर्वतपर भक्तिभावसे लक्ष्मणजीका दर्शन करते हैं, वे कृतार्थ होकर श्रीहरिके धाममें जाते हैं। उस तीर्थमें सुवर्ण, गौ, भूमि तथा अश्वके दानकी प्रशंसा की जाती है। वहाँ किया हुआ दान, होम, जप और पुण्यकर्म सब अक्षय होता है।

सेतु-क्षेत्रके विभिन्न तीर्थोंकी महिमा

मोहिनी बोली—द्विजश्रेष्ठ! आपको बार-बार साधुवाद है! क्योंकि आपने मुझे पूरी रामायणकी कथा सुना दी, जो मनुष्योंके समस्त पापोंका नाश और उनके पुण्यकी वृद्धि करनेवाली है। अब मैं आपसे सेतु (सेतुबन्ध रामेश्वर) का उत्तम माहात्म्य सुनना चाहती हूँ।

पुरोहित वसुने कहा—देवि! सुनो, मैं तुम्हें उस सेतुका उत्तम माहात्म्य बतलाता हूँ, जिसका दर्शन करके मनुष्य संसार-सागरसे मुक्त हो जाता है। सेतुतीर्थका दर्शन परम पुण्यमय है, जहाँ भगवान् रामेश्वर विराजमान हैं। वे दर्शनमात्रसे मनुष्योंको अमरत्व प्रदान करते हैं। जो मनुष्य अपने मनको वशमें करके श्रीरामेश्वरका पूजन करता है, वह समस्त ऐश्वर्योंका भागी होता है। वहाँ दूसरा चक्रतीर्थ भी है, जो पापोंका नाश करनेवाला है। वहाँ स्नान, दान, जप और होम करनेपर वह अनन्तगुना हो जाता है। शुभे! वहाँसे पापविनाशनतीर्थमें जाकर स्नान करनेसे मनुष्यके सारे पाप धुल जाते हैं और वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

अवन्ती—महाकालवनके तीर्थोंकी महिमा

मोहिनी बोली—विप्रवर ! आपने नर्मदाका जो माहात्म्य बताया है, यह मनुष्योंके पापका नाश करनेवाला है। महाभाग ! प्रभो ! अब मुझे अवन्तीतीर्थका तथा देववन्द्य भगवान् महाकालका माहात्म्य बताइये।

पुरोहित वसुने कहा—भद्रे ! सुनो, मैं तुम्हें अवन्तीका माहात्म्य बतलाता हूँ, जो मनुष्योंको पुण्य देनेवाला है। महाकालवन पवित्र एवं परम उत्तम तपोभूमि है। महाकालवनसे बढ़कर दूसरा कोई क्षेत्र इस पृथ्वीपर नहीं है। वहाँ कपालमोचन नामक तीर्थ है, जिसमें भक्तिपूर्वक स्नान करनेसे ब्रह्महत्यारा मनुष्य भी शुद्ध हो जाता है। रुद्र-सरोवरमें स्नान करनेवाला मानव रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। स्वर्गद्वारमें जाकर स्नान और भगवान् सदाशिवकी पूजा करनेवाला मनुष्य कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता; वह स्वर्गलोकमें पूजित होता है। राजस्थलमें जाकर सामुद्रिकतीर्थमें नहानेवाला मनुष्य सब तीर्थोंमें स्नान करनेका उत्तम फल पाता है। शङ्करवापीमें नियमपूर्वक स्नान करनेवाला मानव इहलोकमें मनोवाञ्छित भोग भोगकर अन्तमें रुद्रलोकमें जाता है। जो मनुष्य नीरगङ्गामें नहाकर भक्तिभावसे गन्धवती देवीकी पूजा करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। दशाश्वमेधिक-तीर्थमें स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। तदनन्तर मनुष्य देवेश्वरी एकानंशाके समीप जाकर गन्ध-पुष्प आदिसे उनकी पूजा करके सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। जो मानव रुद्रसरोवरमें स्नान करके श्रद्धापूर्वक हनुमत्केश्वरका पूजन करता है, वह सम्पूर्ण सम्पत्तियोंको पा लेता है। वाल्मीकेश्वरकी पूजा करनेसे मानव सम्पूर्ण विद्याओंकी निधि होता है। पञ्चेश्वरकी पूजा करनेसे मानव समस्त सिद्धियोंका भागी होता है। कुशस्थलीकी परिक्रमा करनेसे मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है। मन्दाकिनीमें गोता लगानेसे गङ्गा-स्नानका फल मिलता है। अङ्कपादका पूजन करके मनुष्य भगवान् शिवका अनुचर होता है। यज्ञवापीमें स्नान और मार्कण्डेयेश्वरका पूजन करनेसे सम्पूर्ण यज्ञोंका फल पाकर मनुष्य एक युगतक स्वर्गमें निवास करता है। सती मोहिनी! सोमवती अमावास्याको स्नान और गोपीश्वरका पूजन करके मनुष्य इहलोक और परलोकमें मनोवाञ्छित भोग पाता है। फिर केदारेश्वर, रामेश्वर, सौभाग्येश्वर तथा नगरादित्यकी पूजा करके मनुष्य मनोवाञ्छित फल पाता है। केशवादित्यकी पूजा करनेसे मानव भगवान् केशवका प्रिय होता है। शक्तिभेद-तीर्थमें स्नान करके बड़े भयंकर संकटोंसे छुटकारा मिल जाता है। जो मनुष्य ॐकारेश्वर आदि लिङ्गोंकी विधिपूर्वक पूजा करता है, वह भगवान् महेश्वरके प्रसादसे सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। देवि ! महाकालवनमें शिवलिङ्गोंकी कोई नियत संख्या नहीं है। जहाँ-कहीं भी विद्यमान शिवलिङ्गका पूजन करके मनुष्य भगवान् शङ्करका प्रिय होता है। अवन्तीके प्रत्येक कल्पमें भिन्न-भिन्न नाम होते हैं। यथा—कनकशृङ्गा, कुशस्थली, अवन्तिका, पद्मावती, कुमुद्वती, उज्जयिनी, विशाला और अमरावती। जो मनुष्य शिप्रा नदीमें स्नान करके भगवान् महेश्वरका पूजन करता है, वह महादेवजी तथा महादेवीकी कृपासे सम्पूर्ण कामनाओंको पा लेता है। जो वामनकुण्डमें स्नान करके विष्णुसहस्रनाम-स्तोत्रके द्वारा सम्पूर्ण देवताओंके स्वामी भगवान् श्रीधर (विष्णु) की स्तुति करता है, वह इस पृथ्वीपर साक्षात् श्रीहरिके समान है। जो देवप्रयाग-सरोवरमें स्नान करके भगवान् माधवकी आराधना करता है, वह भगवान् माधवकी भक्ति पाकर विष्णुधाममें जाता है। जो अन्तर्गृहकी यात्रामें विघ्नेश, भैरव, उमा, रुद्रादित्य तथा अन्यान्य देवताओंकी श्रद्धापूर्वक प्राप्त उपचारोंसे पूजा करता है, वह स्वर्गलोकका भागी होता है। भामिनि ! रुद्रसरोवर आदि स्थलोंमें जो अन्य बहुत-से तीर्थ हैं, उन सबमें भगवान् शङ्करकी पूजा करके मनुष्य सुखी होता है। वहाँके आठ तीर्थोंमें स्नान करके मानव महाकालवनकी यात्राका साङ्गोपाङ्ग फल पाता है। इस प्रकार अवन्तीपुरीका यह सब माहात्म्य तुम्हें बताया गया है। इसे सुनकर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

सुना जो मनुष्योंके पाप दूर करनेवाले हैं । अब मैं मथुराका माहात्म्य सुनना चाहती हूँ ।

पुरोहित वसुने कहा—मोहिनी ! सुनो, मैं मथुराके कल्याणकारी वैभवका वर्णन करता हूँ, जहाँ ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर साक्षात् भगवान् अवतीर्ण हुए हैं । वहाँ प्रकट होकर भगवान् नन्दके गोकुलमें गये और वहीं रहकर उन्होंने गोपोंके साथ सब लीलाएँ कीं । वनोंमें तथा मथुरामें जो तीर्थ हैं, उनका तुमसे इस समय वर्णन करता हूँ, सुनो । पहला मधुवन है, जहाँ स्नान करनेवाला श्रेष्ठ मानव देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका तर्पण करके विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है । दूसरा उत्तम तालवन है, जहाँ भक्तिपूर्वक स्नान करनेवाला मानव कृतकृत्य होता है । तीसरा कुमुदवन है, जहाँ स्नान करके मनुष्य मनोवाञ्छित भोगोंको पाता है और इहलोक तथा परलोकमें आनन्दित होता है । चौथेका नाम काम्यवन है; उसमें बहुत-से तीर्थ हैं; वहाँकी यात्रा करनेवाला पुरुष विष्णुलोकका भागी होता है । भद्रे ! वहाँ जो विमलकुण्ड है, वह सब तीर्थोंमें उत्तम-से-उत्तम है; वहाँ दान करनेवाला मनुष्य वैकुण्ठधाम पाता है । पाँचवाँ बहुलावन है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है; वहाँ स्नान करनेवाला मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है । छठा भद्रवन-नामक वन है, जहाँ स्नान करनेवाला मानव भगवान् श्रीकृष्णके प्रसादसे सब कल्याण-ही-कल्याण देखता है । वहाँ सातवाँ खदिरवन है, जिसमें स्नान करनेमात्रसे मनुष्य भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त कर लेता है । आठवाँ महावन है, जो भगवान् श्रीहरिको सदैव प्रिय है; उसका भक्तिपूर्वक दर्शन करके मनुष्य इन्द्रलोकमें आदर पाता है । नवाँ लोहजङ्घवन है, जहाँ स्नान करके मनुष्य भगवान् महाविष्णुके प्रसादसे भोग और मोक्ष पाता है । दसवाँ बिल्ववन है, जहाँ स्नान करनेवाला मनुष्य अपनी इच्छाके अनुसार शिवलोक अथवा विष्णुलोकमें जाता है । ग्यारहवाँ भाण्डीरवन है, जो योगियोंको अत्यन्त प्रिय है; वहाँ भक्तिपूर्वक स्नान करनेवाला मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है । बारहवाँ वृन्दावन है, जो समस्त पापोंका उच्छेद करनेवाला है । सती मोहिनी ! इस पृथ्वीपर उसके समान दूसरा कोई वन नहीं है । वहाँ स्नान करनेवाला

मथुरा-मण्डलका विस्तार बीस योजन है; उसमें जहाँ-कहीं भी स्नान करनेवाला पुरुष भगवान् विष्णुकी भक्ति पाता है । उसके मध्यभागमें मथुरा नामकी पुरी है, जो सर्वोत्तम पुरियोंसे भी उत्तम है; जिसके दर्शनमात्रसे मनुष्य भगवान् माधवकी भक्ति प्राप्त कर लेता है । नरेश्वरी ! वहाँ विश्रान्ति (विश्रामघाट) नामसे प्रसिद्ध एक तीर्थरत्न है, जिसमें भक्तिपूर्वक स्नान

करनेवाला मानव विष्णुधाममें जाता है । विश्रामघाटसे दक्षिण उसके पास ही विमुक्त नामका उत्तम तीर्थ है, जहाँ भक्तिपूर्वक स्नान करनेपर मनुष्य निश्चय ही मोक्ष पाता है । वहाँसे दक्षिण भागमें रामतीर्थ है, जहाँ स्नान करनेवाला मनुष्य अज्ञानबन्धन-

से अवश्य मुक्त हो जाता है। वहाँसे दक्षिण संसारमोक्षण नामक उत्तम तीर्थ है, उसमें स्नान करके मनुष्य विष्णुलोकमें सम्मानित होता है। उससे दक्षिण भागमें देवदुर्लभ प्रयागतीर्थ है, जहाँ स्नान करनेवाला मानव अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता है। उससे दक्षिण तिन्दुक-तीर्थ है, जिसमें स्नान करनेवाला श्रेष्ठ मानव राजसूय यज्ञका फल पाकर देवलोकमें देवताकी भाँति प्रसन्न रहता है। उससे दक्षिण पटुस्वामितीर्थ है, जो सूर्यदेवको अत्यन्त प्रिय है। वहाँ स्नान करनेके पश्चात् सूर्यदेवका दर्शन करनेसे मनुष्य भोग भोगनेके पश्चात् देवलोकमें जाता है। भद्रे! उससे दक्षिण परम उत्तम ध्रुव-तीर्थ है, जहाँ स्नान करके ध्रुवका दर्शन करनेसे मनुष्य विष्णुधामको प्राप्त कर लेता है। ध्रुव-तीर्थसे दक्षिण भागमें सप्तर्षिसेवित-तीर्थ है, जहाँ स्नान करके मुनियोंका दर्शन करनेसे मनुष्य ऋषिलोकमें आनन्दका अनुभव करता है। ऋषितीर्थसे दक्षिण परम उत्तम मोक्ष-तीर्थ है, जहाँ स्नान करनेमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। उससे दक्षिण बोधिनी-तीर्थ है, जहाँ स्नान करके पितरोंको पिण्डदान देनेवाला पुरुष उन्हें स्वर्गलोकमें पहुँचा देता है। उससे दक्षिण कोटि-तीर्थ है, जहाँ स्नान करनेसे मानव सब पापोंसे छूटकर विष्णुलोक पाता है। विश्रामघाटके उत्तर भागमें असिकुण्ड-तीर्थ है, जहाँ स्नान करनेवाला मनुष्य वैष्णवपद प्राप्त कर लेता है। उससे उत्तर संयमन-तीर्थ है, जहाँ स्नान और दान करनेसे मनुष्यको यमलोकका दर्शन नहीं होता। उससे उत्तर घण्टाभरण नामक ब्रह्मलोक है, जो स्नान करनेमात्रसे समस्त पापोंका नाश करनेवाला और ब्रह्मलोककी प्राप्ति करानेवाला तीर्थ है। उससे उत्तर परम उत्तम सोम-तीर्थ है, जहाँ गोता लगानेवाला श्रेष्ठ मानव पापरहित हो चन्द्रलोकमें जाता है। उससे उत्तर प्राचीसरस्वती तीर्थ है, जिसमें स्नान करनेमात्रसे मनुष्य वाणीका अधीश्वर होता है। उससे उत्तर दशाश्वमेध-तीर्थ है, जहाँ स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। जो मनुष्य वहाँ गोपर्ण नामक शिवकी विधिपूर्वक पूजा करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको पाकर अन्तमें शिवलोकमें सम्मानित होता है। उससे उत्तर अनन्त-तीर्थ है, जहाँ स्नान करनेवाला मानव मथुराके चौबीस तीर्थोंका फल पाता है। महाभागे! मथुरामें साक्षात् विष्णु चतुर्व्यूहरूपसे विराजमान हैं, जो मथुरावासियोंको मोक्ष प्रदान करते हैं। उन चार व्यूहोंमें पहली वाराह-मूर्ति है, दूसरी नारायणमूर्ति है, तीसरी वामन-मूर्ति है और चौथी हलधर-मूर्ति है। जो मनुष्य चतुर्व्यूहरूपधारी भगवान्‌का दर्शन करके उनकी विधिपूर्वक पूजा करता है, वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है। रङ्गेश्वर, भूतेश्वर, महाविद्या तथा भैरवका विधिपूर्वक दर्शन और पूजन करके मनुष्य तीर्थयात्राका फल पाता है। चतुःसामुद्रिक-कूप, कुब्जा-कूप, गणेश-कूप तथा श्रीकृष्णगङ्गामें स्नान करके मनुष्य पापमुक्त हो जाता है। शुभानने! समस्त मथुरामण्डलके अधिपति हैं भगवान् केशव, जो सम्पूर्ण क्लेशोंका नाश करनेवाले हैं। पवित्र मथुरामण्डलमें जिसने भगवान् केशवका दर्शन नहीं किया, उसका जन्म व्यर्थ है। मथुरामें और भी असंख्य तीर्थ हैं, उनमें स्नान करके वहाँ रहनेवाले ब्राह्मण पुरोहितको कुछ दान करना चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्य कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता।

वृन्दावन-क्षेत्रके विभिन्न तीर्थोंके सेवनका माहात्म्य

मोहिनी बोली—मथुरा और द्वादश वनोंका माहात्म्य मैंने सुना। अब कुछ वृन्दावनका रहस्य भी बताइये।

पुरोहित वसुने कहा—देवि! मुझसे वृन्दावनका रहस्य सुनो। मथुरा-मण्डलमें स्थित श्रीवृन्दावन जाग्रत् आदि तीनों अवस्थाओंसे परे, चिन्मय तुरीयास्वरूप है। वह गोपीवल्लभ श्यामसुन्दरकी एकान्त लीलाओंका निगूढ स्थल है; जहाँ सखीस्थलके समीप गिरिराज गोवर्धन शोभा पाता है। वृन्दावन वृन्दादेवीका तपोवन है। वह नन्दगाँवसे लेकर यमुनाके किनारे-किनारे दूरतक फैला हुआ है। यमुनाके सुरम्य तटपर रमणीय तथा पवित्र वृन्दावन सुशोभित है। वृन्दावनमें भी कुसुमसरोवर परम पुण्यमय स्थल है। उसके मनोहर तटपर वृन्दादेवीका अत्यन्त सुखदायक आश्रम है, जहाँ मध्याह्नकालमें सखाओंके साथ श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण नित्य विश्राम करते हैं।

मोहिनी! जहाँ भगवान्‌ने तुम्हारे पिताको तत्त्वका साक्षात्कार कराया था, वह पुण्यस्थान वृन्दावनमें ब्रह्मकुण्डके नामसे प्रसिद्ध है। जो मनुष्य वहाँ मूलवेशका चिन्तन करते हुए स्नान करता है, वह नित्यविहारी श्यामसुन्दरके वैभवका कुछ चमत्कार देखता है। जहाँ श्रीकृष्णका तत्त्व जानकर इन्द्रने उन गोविन्ददेवका चिन्तन किया था, उस स्थानको गोविन्द-कुण्ड कहते हैं।

श्रीकृष्णका वैभव देखा था, वह यमुनाजीके जलमें तत्त्व-प्रकाश-नामक तीर्थ कहा गया है। जहाँ गोपोंने कालियमर्दनकी लीला देखी थी, वह भी पुण्यतीर्थ बताया गया है, जो मनुष्योंके पापका नाश करनेवाला है। जहाँ स्त्री, बालक, गोधन और बछड़ोंसहित गोपोंको श्रीकृष्णने दावानलसे मुक्त किया, वह पुण्यतीर्थ स्नानमात्रसे सब पापोंका नाश करनेवाला है। जहाँ भगवान् श्रीकृष्णने घोड़ेका रूप धारण करनेवाले केशी नामक दैत्यको खेल-ही-खेलमें मार डाला था, वहाँ स्नान करनेवाला मानव विष्णुधामको पाता है। जहाँ भगवान्ने दुष्ट वृषभासुरको मारा था, वह पुण्यतीर्थ अरिष्टकुण्डके नामसे विख्यात है, जो स्नान करनेमात्रसे मुक्ति देनेवाला है। जहाँ भगवान्ने शयन, भोजन, विचरण, श्रवण, दर्शन तथा विलक्षण कर्म किया, वह पुण्य क्षेत्र है, जो स्नानमात्रसे दिव्य गति प्रदान करनेवाला है। जहाँ पुण्यात्मा पुरुषोंने भगवान्का श्रवण, चिन्तन, दर्शन, नमस्कार, आलिङ्गन, स्तवन और प्रार्थना की है, वह भी उत्तम गति देनेवाला तीर्थ है। जहाँ श्रीराधाने अत्यन्त कठोर तपस्या की थी, वह श्रीराधाकुण्ड स्नान, दान और जपके लिये परम पुण्यमय तीर्थ है। वत्स-तीर्थ, चन्द्रसरोवर, अप्सरातीर्थ, रुद्रकुण्ड तथा कामकुण्ड—ये भगवान् श्रीहरिके उत्तम निवासस्थान हैं। विशाला, अलकनन्दा, मनोहर कदम्बखण्ड, विमलतीर्थ, धर्मकुण्ड, भोजनस्थल, बलस्थान, बृहत्सानु (बरसाना), सकेतस्थान, नन्दिग्राम (नन्दगाँव), किशोरीकुण्ड, कोकिलवन, शेषशायी-तीर्थ, क्षीरसागर, क्रीडादेश, अक्षयवट, रामकुण्ड, चीरहरण, भद्रवन, भाण्डीरवन, बिल्ववन, मानसरोवर, पुष्पपुलिन, भक्तभोजन, अक्रूरघाट, गरुडगोविन्द तथा बहुलावन—यह सब वृन्दावन नामक क्षेत्र है, जो सब ओरसे पाँच योजन विस्तृत है। वह परम पुण्यमय तीर्थ पुण्यात्मा पुरुषोंसे सेवित है और दर्शनमात्रसे ही मोक्ष देनेवाला है। वह अत्यन्त दुर्लभ है। देवतालोग भी उसका दर्शन चाहते हैं। वहाँकी आन्तरिक लीलाका दर्शन करनेमें देवतालोग तपस्यासे भी समर्थ नहीं हो पाते। जो सब ओरकी आसक्तियोंका त्याग करके वृन्दावनकी शरण लेते हैं, उनके लिये तीनों लोकोंमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है। जो वृन्दावनके नामका भी उच्चारण करता है, उसकी मलसे मलिन हो रहा है, ऐसे पुरुषोंको स्वप्नमें भी वृन्दावनका दर्शन दुर्लभ है। जिन पुण्यात्मा पुरुषोंने श्रीवृन्दावनका दर्शन किया है, उन्होंने अपना जन्म सफल कर लिया। वे श्रीहरिके कृपापात्र हैं। विधिनन्दिनि! बहुत कहने-सुननेसे क्या लाभ, मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको भव्य एवं पुण्य वृन्दावनका सेवन करना चाहिये। सदा वृन्दावनका दर्शन करना चाहिये, सदा वहाँकी यात्रा करनी चाहिये तथा सदैव उसका सेवन और ध्यान करना चाहिये। इस पृथ्वीपर वृन्दावनके समान कीर्ति-वर्धक स्थान दूसरा कोई नहीं है।

प्राचीन कल्पकी बात है। वृन्दावनमें गोवर्धन नामके एक द्विजने बड़ी भारी तपस्या की। वह समस्त संसारसे विरक्त हो गया था। देवताओंके स्वामी अविनाशी भगवान् विष्णु अपनी लीलाभूमिमें उस ब्राह्मणको वर देनेके लिये गये। ब्राह्मणने देखा देवदेवेश्वर श्रीहरिने अपने हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण कर रक्खे हैं। उनका वक्षःस्थल सुन्दर कौस्तुभमणिसे सुशोभित है। कानोंमें मकराकृति कुण्डल झलमला रहे हैं। माथेपर सुन्दर किरीट चमक रहा है। हाथोंमें कड़े शोभा पाते हैं। पैरोंमें मधुर रुनझुन करनेवाले नूपुर शोभा दे रहे हैं। उनका आगेका पूरा अङ्ग वनमालासे घिर गया है। वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्नसे सुशोभित है। नूतन मेघके समान श्यामवर्ण शरीरपर विद्युत्की-सी कान्तिवाला रेशमी पीताम्बर प्रकाशित हो रहा है। नाभि और ग्रीवा सुन्दर हैं। कपोल और नासिका सुघर हैं। दाँतोंकी पङ्क्ति स्वच्छ है। मुखपर मनोहर मुसकानकी छटा छा रही है। जानु, ऊरु, भुजाएँ तथा शरीरका मध्यभाग सुन्दर हैं। कृपाके तो वे महासागर ही हैं। सदा आनन्दमें डूबे रहते हैं। इनके मुखारविन्दसे सदा प्रसन्नता बरसती रहती है। इस प्रकार भगवान्की झाँकी देखकर ब्राह्मण सहसा उठ खड़े हुए और पृथ्वीपर दण्डकी भाँति लेटकर उन्होंने भगवान्को साष्टाङ्ग प्रणाम किया। फिर भगवान्के द्वारा वर माँगनेकी आज्ञा मिलनेपर गोवर्धन ब्राह्मण श्रीहरिसे बोले—'प्रभो! आप मुझे दोनों चरणोंसे दबाकर मेरी पीठपर खड़े रहें, यही मेरे लिये वर है।' गोवर्धनका यह वचन सुनकर भक्तवत्सल भगवान्ने बार-बार इसपर विचार किया; फिर वे उसकी पीठपर चढ़कर खड़े हो गये। तब ब्राह्मणने फिर कहा—

'देव ! जगत्पते ! मेरी पीठपर खडे हुए आपको अब मैं उतार नहीं सकता; इसलिये इसी रूपमें स्थित हो जाइये ।' तभीसे विश्वात्मा भगवान् पर्वतरूपधारी गोवर्धन ब्राह्मणका त्याग न

करके प्रतिदिन योगीवनमें जाते हैं । कृष्णावतारमें भगवान्‌ने गोवर्धन ब्राह्मणको अपने सारूप्यभावको प्राप्त हुआ जानकर उसे नन्द आदिके द्वारा गिरिराज-पूजनके व्याजसे भोजन कराया । अन्नकूट तथा दुग्ध आदिके द्वारा पर्वतरूपधारी ब्राह्मणको तृप्त करनेके पश्चात् उसे प्यासा जानकर भगवान्‌ने नूतन मेघोंका जल पिलाया । इस कार्यसे भगवान् वासुदेवका वह मित्र हो गया । देवि ! जो मनुष्य भक्तिपूर्वक विभिन्न उपचारोंसे गोवर्धन पर्वतकी पूजा और प्रदक्षिणभावसे परिक्रमा करता है, उसका फिर इस ससारमें जन्म नहीं होता । भगवान्‌के निवाससे गोवर्धन पर्वत परम पवित्र हो गया है ।

सुभगे ! तुम्हीं बताओ । इस पृथ्वीपर श्रीकृष्णकी विविध क्रीडाओंसे सुशोभित यमुनाका रमणीय पुलिन वृन्दावनके सिवा और कहाँ है ? इसलिये सब प्रकारसे प्रयत्न करके दूसरे पवित्र तथा पुण्यदायक वनों, नदियों और पर्वतोंको छोड़कर मनुष्योंको सदा वृन्दावनका सेवन करना चाहिये । जहाँ यमुना-जैसी पुण्यदायिनी नदी है, जहाँ गिरिराज गोवर्धन-जैसा पुण्यमय पर्वत है, उस वृन्दावनसे बढ़कर पावन वन इस पृथ्वीपर दूसरा कौन है ? उस वृन्दावनमें मोरपखका मुकुट धारण किये, कनेरके फूलोंसे कानोंका श्रृङ्गार किये, नटवर-वेषधारी श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण गोपों, गौओं तथा गोपाङ्गनाओंके साथ नित्य विचरण करते हैं । उनकी वंशीकी मधुर ध्वनिके सामने हंसीका मधुर कलरव फीका लगता है । वैजयन्ती-माला उनके सारे अङ्गोंको घेरे रहती है । जहाँ स्वभावसे ही क्रूर जीव-जन्तु अपना सहज वैर छोड़कर अकारण स्नेह करनेवाले सुहृदोंकी भाँति रहते हुए भगवत्सुखका ही आश्रय लेते हैं, उस वृन्दावनमें जाकर, जैसे जीव भगवान्‌को पा ले, उस प्रकार भगवत्सुखका अनुभव करके जो फिर वृन्दावनको छोड़कर कहीं अन्यत्र चला जाता है, वह श्रीकृष्णकी मायाकी पिटारीरूप इस जगत्‌में क्या कहीं भी सुखी हो सकता है ? यह वृन्दावनधाम समस्त वसुधाका पुण्यरूप है । उसका आश्रय लेकर मेरा चित्त इस अज्ञानान्धकारमय जगत्‌को नीचे करके स्वय सदाके लिये सबके ऊपर स्थित है । भगवान् गोपीनाथ यहाँ पग पगपर प्रेमसे द्रवितचित्त हो नीच-ऊँचका विचार नहीं करते; अपने सब भक्तोंका उद्धार कर ही देते हैं । जो व्रजके गोपों, गोपियों, खगों, मृगों, पर्वतों, गौओं, भृङ्गों तथा धूलकणोंका भी दर्शन एवं स्मरण करके उन्हें प्रणाम करता है, उसके प्रेमपाशमें आबद्ध हो भगवान् श्रीकृष्ण उस भक्तके अन्तःकरणमें अपने प्रति दास्यभावका उदय करा देते हैं, उन व्रजराज श्यामसुन्दरके सिवा दूसरा कौन देवता सेवनके योग्य हो सकता है ? मोहिनी ! यह वृन्दावनका माहात्म्य तुम्हें सक्षेपसे बताया गया है । संसार-भयसे डरे हुए पापहीन मनुष्योंको सदा इस वृन्दावनका ही श्रवण, कीर्तन स्मरण तथा ध्यान करना चाहिये । जो मनुष्य पवित्रभावसे वृन्दावनके माहात्म्यका श्रवण करता है, वह भी निस्सन्देह साक्षात् विष्णुरूप ही है ।

पुरोहित वसु कहते हैं—देवि ! महाभागे ! यह जो तीर्थोंका उत्तम माहात्म्य बताया है, उसे तुम सब तीर्थोंमें घूमकर प्राप्त करो।

सूतजी बोले—ब्राह्मणो ! मोहिनीसे ऐसा कहकर उसके पुरोहित वसु उसके द्वारा बारबार किये हुए सत्कार और पूजाको स्वीकार करके ब्रह्मलोकको चले गये। वहाँ जगत्स्रष्टा विधाता ब्रह्माजीके समीप जाकर उन्होंने प्रणाम किया और मोहिनीका सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। ब्राह्मण वसुका वचन सुनकर ब्रह्माजी प्रसन्न हो गये और बोले—'वत्स ! तुमने बड़े पुण्यका कार्य किया है। तुमने मुझे मोहिनीका उत्तम वृत्तान्त बताया है, उससे प्रसन्न होकर मैं तुम्हें कोई वर दूँगा। तुम इच्छानुसार कोई वर माँगो।' जगद्विधाता ब्रह्माजीके द्वारा ऐसा कहनेपर विप्रवर वसुने उन्हें प्रणाम करके वृन्दावनवासका वर माँगा।

मुनीश्वरो ! यह सुनकर जगत्की सृष्टि करनेवाले शरणागतक्लेशहारी ब्रह्माजी चारों मुखोंसे मुसकराते हुए बोले—'तथास्तु—ऐसा ही हो।' वसुका मन प्रसन्न हो गया। उन्होंने विधाताको प्रणाम करके वृन्दावनको प्रस्थान किया और वहाँ एकाग्रचित्त हो वे तपस्या करने लगे। तपस्या करते-करते ब्राह्मण वसुके पाँच हजार वर्ष व्यतीत हो गये। इससे संतुष्ट होकर साक्षात् भगवान् श्यामसुन्दर अपने दो-तीन प्रिय सखाओंके साथ आकर उन श्रेष्ठ द्विजसे

बोले—'विप्रवर ! मैं तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट हूँ। बोलो, क्या चाहते हो ?' तब वसुने उठकर भगवान्‌को साष्टाङ्ग प्रणाम किया। वे बोले—'देव ! मैं सदा वृन्दावनमें निवास करना चाहता हूँ।' द्विजवरो ! तदनन्तर श्रीकृष्णने उन्हें मनोवाञ्छित वर दिया। फिर वसुने उन्हें प्रणाम किया और भगवान् पुनः अन्तर्धान हो गये। तभीसे ब्राह्मण वसु इच्छानुसार रूप धारण करके भगवान् श्रीकृष्णकी वृन्दावनीय लीलाओंका चिन्तन करते हुए वहाँ सदा निवास करते हैं।

एक दिनकी बात है, विप्रवर वसु भगवान्‌का चिन्तन करते हुए यमुनाजीके किनारे बैठे हुए थे। इतनेमें ही उन्होंने देखा—ब्रह्माजीके पुत्र नारदजी वृन्दावनमें आये हुए हैं। अपने परमगुरु नारदजीको देखकर उन्होंने नमस्कार किया और भगवद्भक्ति बढ़ानेवाले नाना प्रकारके धर्म पूछे। उनके इस प्रकार पूछनेपर अध्यात्मदर्शी नारदजीने उनसे भगवान् विष्णुके भावी चरित्रके विषयमें सब बातें इस प्रकार कहीं—'ब्रह्मन् ! एक दिन मैं कैलासवासी भगवान् शङ्करका दर्शन करने और वृन्दावनके भावी रहस्यके विषयमें पूछनेके लिये उनके समीप गया था। जिन्होंने अपनी महिमासे समस्त ब्रह्माण्डमण्डलको व्याप्त कर रक्खा है; सिद्धसमुदायसे घिरे हुए उन देवेश महेश्वरको प्रणाम करके मैंने अपना कल्याणमय अभीष्ट प्रश्न उनके सामने रक्खा। तब महादेवजी मुसकराते हुए मुझसे बोले—'ब्रह्मकुमार ! तुमने भगवान् श्रीहरिके भविष्य चरित्रके विषयमें जो बात पूछी है, उसे मैं बता रहा हूँ। एक समय मैंने गोलोकमें रहनेवाली सुरभिका दर्शन किया और गोमाता सुरभिसे भविष्यके विषयमें प्रश्न किया। मेरे प्रश्नके उत्तरमें सुरभिने श्रीहरिके भविष्य चरित्रके विषयमें इस प्रकार कहा—'महेश्वर ! इस समय राधाके साथ भगवान् श्रीकृष्ण इस गोलोकधाममें सुखपूर्वक रहते हैं और गोपों तथा गोपियोंको सुख देते हैं। शिव ! वे किसी समय भूलोकके भीतर मथुरामण्डलमें प्रकट हो वृन्दावनमें अद्भुत लीला करेंगे। तत्पश्चात् ब्रह्माजीके द्वारा भूभारहरणके लिये प्रार्थना करनेपर श्रीहरि भी पृथ्वीपर वासुदेवरूपसे प्रकट होंगे। वसुदेवके घरमें जन्म लेकर, यादवनन्दन श्रीकृष्ण पीछे कंसासुरके भयसे नन्दके व्रजमें चले जायँगे। वहाँ

जाकर श्रीहरि अपने निकट आयी हुई बालघातिनी पूतनाको प्राणहीन कर देंगे। दानव चक्रवात (तृणावर्त) को तथा देवपीडक महाकाय वत्सासुरको भी मौतके घाट उतार देंगे। कालियनागका दमन करके उसे यमुनासे उजाड देंगे। दुःसह धेनुकासुरको मारकर बकासुर और अघासुरके भी प्राण हर लेंगे। दाव, प्रदाव तथा प्रलम्बासुरका भी वध करेंगे। ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण तथा मतवाले कुबेर-पुत्रोंका भी दर्प चूर्ण करके श्रीहरि वृषासुरका वध करेंगे। तदनन्तर मथुरामें जाकर धनुष तोड़कर श्रेष्ठ हाथी कुवलयापीडका वध करेंगे। तत्पश्चात् चाणूर आदि मल्लों और अपने मामा कंसको भी श्रीकृष्ण मार गिरायेंगे। फिर कैदमें पड़े हुए माता-पिताको मुक्त करके कालयवनको मारकर वे जरासन्धके भयसे द्वारकामें जा बसेंगे। तदनन्तर भगवान् श्रीहरि क्रमशः रुक्मिणी, सत्यभामा, सत्या, जाम्बवती, केकयराजकुमारी भद्रा, लक्ष्मणा, मित्रवृन्दा तथा कालिन्दीके साथ विवाह करेंगे। फिर भौमासुरको मारकर सोलह हजार स्त्रियोंका पाणिग्रहण करेंगे। इसके बाद पौण्ड्रक, शिशुपाल, दन्तवक्त्र, विदूरथ और शाल्वको मारकर बलभद्ररूपसे द्विविद बंदर और बल्वलका सहार करेंगे। फिर षट्पुरवासी दैत्योंके साथ वज्रनाभ, सुनाभ और वरदानसे बढ़े हुए त्रिशरीर दैत्यका वध करेंगे। शिवजी! फिर पृथ्वीका भार उतारनेको उत्सुक हो श्रीकृष्ण कौरव और पाण्डवपक्षके वीरोंको परस्पर एक-दूसरेको निमित्त बनाकर मार डालेंगे। इसी प्रकार यदुवंशियोंको यदुवंशियों-से आपसमें ही लड़ाकर श्रीहरि अपने कुलका संहार कर डालेंगे और अपने अनुगामी बलरामजीके साथ फिर अपने परम धाममें चले जायँगे। शम्भो! इस प्रकार मैंने श्रीहरिके भविष्य चरित्रका वर्णन किया है। जाओ, जब भूतलपर भगवान् अवतार लेंगे, उस समय तुम वह सब कुछ देखोगे।' ब्रह्मकुमार नारद! सुरभिका वह वचन सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और मैं पुनः अपने स्थानपर आ गया। वही बात मैंने तुम्हें भी बतायी है। समय आनेपर तुम भी गोकुलपति श्रीकृष्णके चरित्रका अवलोकन करोगे।' वसुजी! त्रिशूलधारी भगवान् शङ्करका यह वचन सुनकर मेरा रोम-रोम हर्षसे खिल उठा है। मैं वीणा बजाकर भगवान्‌के गुण गाता और उसीमें मग्न रहता हुआ इस आतुर जगत्‌को आनन्द प्रदान करता रहता हूँ। द्विजश्रेष्ठ! यह भविष्यमें होनेवाली बात है, जो मैंने तुम्हें बतायी है।'

सूतजी कहते हैं—विप्रवर वसुसे ऐसा कहकर देवर्षि नारदजी वीणा बजाते और यदुनन्दन श्रीकृष्णका चिन्तन करते हुए वहाँसे चले गये। ब्राह्मणो! ब्रजमें नारदजीका यह वचन सुनकर विप्रवर वसुका चित्त प्रसन्न हो गया और वे भावी श्रीकृष्णलीलाके दर्शनके लिये उत्सुक हो सदा वृन्दावनमें रहने लगे।

मोहिनीका सब तीर्थोंमें घूमकर यमुनामें प्रवेशपूर्वक दशमीके अन्तभागमें स्थित होना तथा नारदपुराणके पाठ एवं श्रवणकी महिमा

ऋषि बोले—साधु सूतजी! आपने भगवान् श्रीकृष्णके अमृतमय चरित्रका वर्णन किया और उसे हमने सुना। अतः आपकी कृपासे हम सब कृतार्थ हो गये। वसुके ब्रह्मलोक चले जानेपर ब्रह्मपुत्री मोहिनीने पीछे कौन-कौन-सा कार्य किया, यह हमें बतानेकी कृपा करें।

सूतजीने कहा—महर्षियो! आप सब लोग मोहिनीका शुभ चरित्र सुनें। विप्रवर वसुने जिस प्रकार उपदेश दिया था, उसीके अनुसार विधिपूर्वक तीर्थयात्रा करनेके लिये ब्रह्मपुत्री मोहिनी गङ्गाजीके तटपर गयी। वहाँ जाकर विधिनन्दिनीने गङ्गा आदि तीर्थोंमें स्नान करके सब कार्य विधिपूर्वक सम्पन्न किया और हर्षमें भरकर उसने वहाँके महात्मा ब्राह्मणोंका सत्सङ्ग किया। पुरोहित वसुने जिस तीर्थकी जैसी विधि बतायी थी, उसी प्रकार उसका सेवन करती हुई वह तीर्थोंमें घूमने लगी। उन तीर्थोंमें वह विष्णु आदि देवताओंकी पूजा करती और ब्राह्मणोंको नाना प्रकारके दान देती थी। गयामें जाकर उसने पतिको विधिपूर्वक पिण्डदान किया; फिर काशीमें विश्वनाथजीकी पूजा करके वह पुरुषोत्तम-क्षेत्रमें गयी। उस क्षेत्रमें जगन्नाथजीका प्रसाद भोजन करके शुद्ध शरीर हो वहाँसे लक्ष्मणपर्वतपर गयी। वहाँ विधिपूर्वक लक्ष्मणजीकी पूजा करके सेतु-तीर्थमें जाकर उसने रामेश्वर शिवका पूजन किया और महेन्द्रपर्वतपर जाकर भृगुनन्दन परशुरामजीकी वन्दना की। तत्पश्चात् शिवजीके क्षेत्र गोकर्णमें जाकर गोकर्णनाथ भगवान् शिवका पूजन किया। ब्राह्मणो! तदनन्तर उन श्रेष्ठ द्विजोंके साथ उसने प्रभासको प्रस्थान किया और वहाँ स्नान करके देवता आदिका तर्पण करनेके पश्चात् उस तीर्थकी यात्रा पूरी करके द्वारकामें भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन किया। उसके बाद वह कुरुक्षेत्रमें गयी। वहाँ भी विधिपूर्वक यात्रा सम्पन्न करके महारानी मोहिनीने गङ्गाद्वारको प्रस्थान किया

और उस तीर्थमें शास्त्रोक्त विधिके अनुसार स्नान, दान आदि कार्य किये। तदनन्तर कामोदाका दर्शन और नमस्कार करके वह बड़ी प्रसन्नताके साथ बदरिकाश्रम-तीर्थको गयी। वहाँ नर-नारायण ऋषिकी पूजा करके उसने बड़ी उतावलीके साथ कामाक्षी देवीका दर्शन करनेके लिये वहाँकी यात्रा की। उस तीर्थमें सिद्धनाथको प्रणाम करके (आदियात्रा पूर्ण करनेके पश्चात्) वहाँसे अयोध्या आयी। वहाँ सरयूमें स्नान करके उसने विधिपूर्वक सीतापति श्रीरामचन्द्रजीकी पूजा की और वहाँसे मध्ययात्रा प्रारम्भ करके वह अमरकण्टक पर्वतपर गयी। वहाँ नर्मदाके स्रोतके समीप ॐकारेश्वर महादेवकी पूजा, सेवा और दर्शन करके मोहिनीने माहिष्मतीपुरीकी यात्रा की। वहाँसे त्र्यम्बकेश्वरका पूजन करके वह त्रिपुष्करतीर्थमें आयी। तीनों पुष्करोंमें विधिपूर्वक अनेक प्रकारके दान दे, वह सब तीर्थोंमें उत्तम मथुरापुरीको गयी। वहाँ बीस योजनकी आभ्यन्तरिक यात्रा सम्पन्न करके मथुरापुरीकी परिक्रमाके पश्चात् उसने चार व्यूहोंका दर्शन किया। तदनन्तर बीस तीर्थोंमें स्नान करके पुनः प्रदक्षिणा की। वहाँ मथुराके ब्राह्मणोंको समस्त अलंकारोंसे अलंकृत दस हजार गौएँ दान दीं और उन्हें उत्तम अन्न भोजन कराकर भक्तिविह्वल चित्तसे नमस्कार करनेके पश्चात् विदा किया। फिर यमुनाके तटपर जा बैठी। तदनन्तर मोहिनी पापनाशिनी यमुनादेवीके जलमें समा गयी
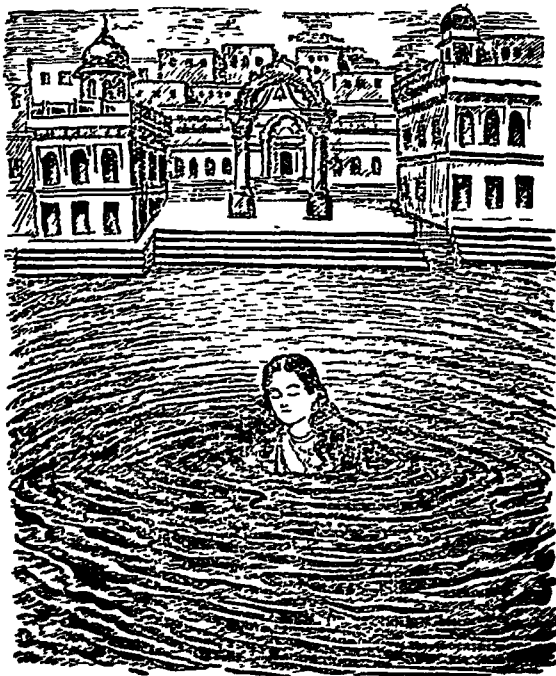
और फिर आजतक नहीं निकली। उसने दशमी तिथिके अन्तिम भागमें अपना आसन जमा लिया। यदि सूर्योदयकालमें एकादशीका दशमीसे वेध हो तो स्मृतिके अनुसार चलनेवाले गृहस्थोंके पास पहुँचकर मोहिनी उनके व्रतको दूषित कर देती है। इसी प्रकार अरुणोदयकालमें दशमीवेध होनेपर वह वैदिकोंके और निशीथकालमें दशमीसे वेध होनेपर वैष्णवोंके निकट पहुँचकर वह उनके व्रतको दूषित करती है। अतः ब्राह्मणो! जो मनुष्य मोहिनीके वेधसे रहित एकादशीको उपवास करके द्वादशीको भगवान् विष्णुकी पूजा करता है, वह निश्चय ही वैकुण्ठधाममें जाता है। विप्रवरो! इस प्रकार मैंने मोहिनीका चरित्र सुनाया है।

नारदमहापुराणका यह उत्तरभाग भोग तथा मोक्ष देनेवाला है। यह मैंने तुम्हें सुना दिया। इसमें पद-पदपर मनुष्योंके लिये भगवान् श्रीहरिकी भक्तिका साधन होता है। जो मनुष्य भक्तिभावसे इसका श्रवण करता है, वह वैकुण्ठधामको जाता है। सभी पुराणोंका यह सनातन बीज है। द्विजवरो! इस पुराणमें परम बुद्धिमान् पराशरनन्दन व्यासजीने प्रवृत्ति और निवृत्ति धर्मका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। नारदीय पुराण अलौकिक चरित्रसे भरा हुआ है। व्यासजीने मुझसे कहा था कि जिस-किसी व्यक्तिको इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। पूर्वकालमें महाभाग सनकादि मुनियोंने विद्वान् नारदजीके समक्ष यह पुराणसंहिता प्रकाशित की थी। हंसस्वरूपी भगवान् श्रीहरिने जब शाश्वत ब्रह्मका उपदेश किया था, उसी समय उन्होंने इन सनकादिको इस विस्तृत विज्ञानसे युक्त नारदपुराणका भी उपदेश कर दिया था। वही यह नारद महापुराण है, जिसे अध्यात्मदर्शी साक्षात् भगवान् नारदने मुनिवर वेदव्यासको रहस्यसहित सुनाया था। अब मैंने इस रहस्यमय पुराणको आपलोगोंके समक्ष प्रकाशित किया है। पृथ्वीपर यह परम दुर्लभ है। जो मनुष्य सदा इसका श्रवण एवं पाठ करते हैं, उनके लिये यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थ देनेवाला है। इसके पाठ अथवा श्रवणसे ब्राह्मण वेदोंका भण्डार होता है, क्षत्रिय इस भूतलपर विजय पाता है, वैश्य धन-धान्यसे सम्पन्न होता है तथा शूद्र सब प्रकारके दुःखोंसे छूट जाता है। भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायनने इस संहिताका सम्पादन किया है। इसके सुननेपर सब प्रकारके संदेहोंका निवारण हो जाता है। यह सकाम भक्त पुरुषों तथा निष्काम पुरुषोंको भी मोक्ष देनेवाला है। ब्राह्मणो! नैमिषारण्य, पुष्कर, गया, मथुरा, द्वारका, नर-नारायणाश्रम, कुरुक्षेत्र,

नर्मदा तथा पुरुषोत्तमक्षेत्र आदि पुण्यक्षेत्रोंमें जाकर जो मनुष्य हविष्यान्न-भोजन और भूमि-शयन करते हुए अनासक्त और जितेन्द्रिय-भावसे इस संहिताका पाठ करता है, वह भवसागरसे मुक्त हो जाता है। जैसे व्रतोंमें एकादशी, नदियोंमें गङ्गा, वनोंमें वृन्दावन, क्षेत्रोंमें कुरुक्षेत्र, पुरियोंमें काशीपुरी, तीर्थोंमें मथुरा तथा सरोवरोंमें पुष्कर श्रेष्ठ है, उसी प्रकार समस्त पुराणोंमें यह नारदपुराण श्रेष्ठ है। गणेशजीके भक्त, सूर्यदेवताके उपासक, विष्णुभक्त, शक्तिके उपासक तथा शिव-भक्त और सकाम अथवा निष्काम—ये सभी इस पुराणके अधिकारी हैं। स्त्री हो या पुरुष, वह जिस-जिस कामनाका चिन्तन करते हुए आदरपूर्वक इस पुराणको सुनता या सुनाता है, वह उस-उस कामनाको निश्चय ही प्राप्त कर लेता है। नारदीय पुराणके अनुशीलनसे रोगसे पीडित मनुष्य रोगमुक्त हो जाता है। भयातुर मनुष्य निर्भय होता है और विजयकी इच्छावाला मनुष्य अपने शत्रुओंपर विजय पाता है।

जो सृष्टिके प्रारम्भमें रजोगुणद्वारा इस विश्वकी रचना करते हैं, मध्यमें सत्त्वगुणद्वारा इसका पालन करते हैं और अन्तमें तमोगुणद्वारा इस जगत्को ग्रस लेते हैं, उन सर्वात्मा परमेश्वरको नमस्कार है। जिन्होंने ऋषि, मनु, सिद्ध, लोकपाल एवं ब्रह्मा आदि प्रजापतियोंकी रचना की है, उन ब्रह्मात्माको नमस्कार है। जहाँसे वाणी निवृत्त हो जाती है और जहाँतक मन पहुँच नहीं पाता, वही रूपरहित सच्चिदानन्दघन परमात्माका स्वरूप जानना चाहिये। जिनकी सत्यतासे यह जगत् सत्य-सा प्रतीत होता है, जो निर्गुण तथा अज्ञानान्धकारसे परे हैं, उन विचित्ररूप परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ। जो अजन्मा सनातन आदि, मध्य और अन्तमें भी एक एवं अविनाशी होते हुए भी नाना रूपोंमें प्रकाशित हो रहे हैं, उन निरञ्जन भगवान्‌को मैं वन्दना करता हूँ। जिन निरञ्जन परमात्मासे यह चराचर जगत् उत्पन्न हुआ है, जिनमें यह स्थित है और जिनमें ही इसका लय होता है, वही सत्य तथा अद्वैत ज्ञान है। जिन्हें शिवोपासक शिव कहते हैं और सांख्यवेत्ता विद्वान् प्रधान कहते हैं। ब्राह्मणो! योगी जिन्हें पुरुष कहते हैं, मीमांसक-लोग कर्म मानकर जिनकी उपासना करते हैं, वैशेषिक मतावलम्बी जिन्हें विभु और शक्तिका चिन्तन करनेवाले जिन्हें चिन्मयी आद्याशक्ति कहते हैं, नाना प्रकारके रूप और क्रियाओंके चरम आश्रय उन अद्वितीय ब्रह्मकी मैं वन्दना करता हूँ *। भगवान्‌की भक्ति मनुष्योंको भगवत्-स्वरूपकी प्राप्ति करानेवाली है। उसे पाकर पशुके सिवा दूसरा कौन होगा, जो अन्य किसी लाभकी इच्छा करता हो। ब्राह्मणो! जो मनुष्य भगवान्‌से विमुख होकर संसारमें आसक्त होते हैं, उन्हें सत्सङ्गके सिवा और किसी उपायसे इस भवरूपी गहनवनसे छुटकारा नहीं मिलता। विप्रवरो! साधुपुरुष उत्तम आचारवाले, सर्वलोकहितैषी तथा दीन जनोंपर कृपा रखनेवाले होते हैं। वे अपनी शरणमें आये हुए लोगोंका उद्धार कर देते हैं। मुनियो! संसारमें आप-लोग साधुपुरुषोंके द्वारा सम्मान पानेयोग्य और परम धन्य हैं; क्योंकि आप भगवान् वासुदेवकी नूतन पदोंसे युक्त कीर्तिलताका बारंबार सेवन करते हैं। आपलोगोंने समस्त कारणोंके भी कारण तथा जगत्‌का मङ्गल करनेवाले साक्षात् भगवान् श्रीहरिका मुझे स्मरण दिलाया है, इसलिये मैं भी धन्य और अनुगृहीत हूँ॥ ॐ॥

॥ उत्तर भाग सम्पूर्ण ॥

॥ श्रीनारदमहापुराण समाप्त ॥

* शिवं शैवा वदन्त्येनं प्रधानं सांख्यवेदिनः। योगिनः पुरुषं विप्राः कर्म मीमांसका जनाः॥
विभुं वैशेषिकाद्याश्च चिच्छक्तिं शक्तिचिन्तकाः। ब्रह्माद्वितीयं तद्वन्दे नानारूपक्रियास्पदम्॥
(ना० उत्तर० ८२। ५६-५७)
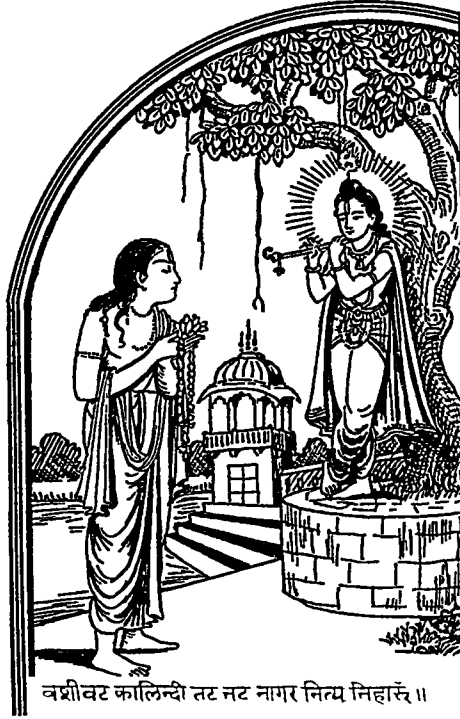
वंशीवट कालिन्दी तट नट नागर नित्य निहारूँ ॥

भगवान् श्रीविष्णु

ॐ श्रीमन्नारायणाय नमः

कल्याण

संक्षिप्त विष्णुपुराण

भगवान्का स्तवन

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते पुरुषोत्तम ।
नमस्ते सर्वलोकात्मन् नमस्ते तिग्मचक्रिणे ॥
नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥
रूपं महत्ते स्थितमत्र विश्वं
ततश्च सूक्ष्मं जगदेतदीश ।
रूपाणि सर्वाणि च भूतभेदा-
स्तेष्वन्तरात्माख्यमतीव सूक्ष्मम् ॥
तस्माच्च सूक्ष्मादिविशेषणाना-
मगोचरे यत्परमात्मरूपम् ।
किमप्यचिन्त्यं तव रूपमस्ति
तस्मै नमस्ते पुरुषोत्तमाय ॥

(वि० पु० १ । १९ । ६४-६५, ७४-७५)

भक्त प्रह्लादद्वारा स्तुति

देव प्रपन्नार्त्तिहर प्रसादं कुरु केशव।
अवलोकनदानेन भूयो मां पावयाच्युत ॥
नाथ योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम्।
तेषु तेष्वच्युता भक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि ॥
या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी।
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मापसर्पतु ॥

× × ×

मयि द्वेषानुबन्धोऽभूत् संस्तुतावुद्यते तव।
मत्पितुस्तत्कृतं पापं देव तस्य प्रणश्यतु ॥
शस्त्राणि पातितान्यङ्गे क्षिप्तो यच्चाग्निसंहतौ।
दंशितश्चोरगैर्दत्तं यद्विषं मम भोजने ॥
बद्ध्वा समुद्रे यत्क्षिप्तो यच्चितोऽस्मि शिलोच्चयैः।
अन्यानि चाप्यसाधूनि यानि पित्रा कृतानि मे ॥
त्वयि भक्तिमतो द्वेषादघं तत्सम्भवं च यत्।
त्वत्प्रसादात् प्रभो ! सद्यस्तेन मुच्येत मे पिता ॥

× × ×

कृतकृत्योऽस्मि भगवन् वरेणानेन यत्त्वयि।
भवित्री त्वत्प्रसादेन भक्तिरव्यभिचारिणी ॥
धर्मार्थकामैः किं तस्य मुक्तिस्तस्य करे स्थिता।
समस्तजगतां मूले यस्य भक्तिः स्थिरा त्वयि ॥

केशव ! आप शरणागतोंके दु ख हरण करनेवाले हैं, मुझपर कृपा कीजिये। अच्युत ! मुझे पुनः (पुनः) अपने पुण्यदर्शन देकर पवित्र कीजिये। नाथ ! सहस्रों योनियोंमेसे मैं जिस-जिसमें भी जाऊँ, उसी-उसीमे हे अच्युत ! आपमें सदा मेरी अटल भक्ति बनी रहे। अविवेकी विषयी लोगोंकी जैसी अनपायिनी (सहज) प्रीति विषयोंमें रहती है, वैसी ही प्रीति आपका स्मरण करते हुए मेरे हृदयमें (सदा बनी रहे) कभी दूर न हो।

देव ! आपकी स्तुतिमें लगे रहनेके कारण मेरे पिताके चित्तमे जो मेरे प्रति द्वेष हो गया और इस कारण उन्हें जो पाप लगा, वह नष्ट हो जाय। (मेरे प्रति इसी द्वेषके कारण पिताजीकी आज्ञासे) मेरे शरीरपर जो शस्त्रोंसे चोट पहुँचायी गयी, मुझे अग्नियोंमें डाला गया, साँपोंसे डँसवाया गया, भोजनमें जहर दिया गया, बाँधकर समुद्रमें डाला गया, शिलाओंसे दबाया गया तथा और भी पिताजीने मेरे साथ जो-जो बुरे व्यवहार किये, उनके कारण उनको बड़ा पाप लगा है, क्योंकि यह सब उन्होंने आपमें भक्ति रखनेवाले (मुझ) से द्वेष रखकर किये हैं। प्रभो ! आपकी कृपासे मेरे पिताजी (इन सब पापोंसे) शीघ्र छूट जायँ।

भगवन् ! मै तो आपके इस वरसे कृतकृत्य हो गया कि आपकी कृपासे मेरी अव्यभिचारिणी (अनन्य) भक्ति आपमें निरन्तर रहेगी। प्रभो ! आप समस्त जगत्के मूल हैं, जिसकी आपमे स्थिर भक्ति है, मुक्ति भी उसके करतलगत रहती है, फिर धर्म, अर्थ, कामसे तो उसे प्रयोजन ही क्या है ?

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीगणेशाय नमः

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीविष्णुपुराण

प्रथम अंश

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

ग्रन्थका प्रारम्भ (उपक्रम)

श्रीसूतजी शौनकादि ऋषियोंसे बोले—मैत्रेयजीने मुनिवर पराशरजीको प्रणाम और अभिवादन कर उनसे पूछा—गुरुदेव! मैंने आपसे ही सम्पूर्ण वेद, वेदाङ्ग और सकल धर्मशास्त्रोंका क्रमशः अध्ययन किया है। धर्मज्ञ! अब मैं आपसे यह सुनना चाहता हूँ कि यह जगत् किस प्रकार उत्पन्न हुआ और आगे भी (दूसरे कल्पके आरम्भमें) कैसे होगा? इस संसारका उपादान-कारण क्या है? यह सम्पूर्ण चराचर किससे उत्पन्न हुआ है? यह पहले किसमें लीन था और आगे किसमें लीन हो जायगा? मुनिसत्तम! इसके अतिरिक्त [आकाश आदि] भूतोंका परिमाण, समुद्र, पर्वत तथा देवता आदिकी उत्पत्ति, पृथिवीका अधिष्ठान और सूर्य आदिका परिमाण तथा उनका आधार, देवता आदिके वंश, मनु, मन्वन्तर, [बार-बार आनेवाले] चारों युगोंमें विभक्त कल्प और कल्पोंके विभाग, प्रलयका स्वरूप, युगोंके पृथक्-पृथक् सम्पूर्ण धर्म, देवर्षि और राजर्षियोंके चरित्र, श्रीव्यासजीकृत वैदिक शाखाओंकी यथावत् रचना तथा ब्राह्मणादि वर्ण और ब्रह्मचर्यादि आश्रमोंमें रहनेवाले मनुष्योंके धर्म—ये सब विषय मैं आपसे सुनना चाहता हूँ।

श्रीपराशरजी बोले—मैत्रेय! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी; धर्मज्ञ! मेरे पितामह श्रीवसिष्ठजीने जिसका वर्णन किया था, उस प्राचीन प्रसङ्गका तुमने आज मुझे स्मरण करा दिया।

मैत्रेय ! जब मैंने सुना कि पिताजीको विश्वामित्रकी प्रेरणासे राक्षसने खा लिया है तो मुझको असीम क्रोध हुआ। तब राक्षसोंका ध्वंस करनेके लिये मैंने यज्ञ करना आरम्भ किया। उस यज्ञमें सैकड़ों राक्षस जलकर भस्म हो गये। इस प्रकार उन राक्षसोंको सर्वथा नष्ट होते देख मेरे महाभाग पितामह वसिष्ठजी मुझसे बोले—'वत्स ! क्रोध करना ठीक नहीं, अब तुम इस कोपको त्याग दो। राक्षसोंका कुछ अपराध नहीं है, तुम्हारे पिताके लिये तो ऐसा ही होना था। भैया ! भला कौन किसको मारता है ? पुरुष अपने कियेका ही फल भोगता है। वत्स ! यह क्रोध तो मनुष्यके अत्यन्त कष्टसे संचित यश और तपका भी प्रबल नाशक है। तात ! स्वर्ग और मोक्ष दोनोंको बिगाड़नेवाले इस क्रोधका महर्षिगण सर्वदा त्याग करते हैं; इसलिये तुम इसके वशीभूत मत होओ *। अब इन बेचारे निरपराध राक्षसोंको दग्ध करनेसे कोई लाभ नहीं; तुम्हारा यह यज्ञ बंद हो जाना चाहिये; क्योंकि साधुओंका बल केवल क्षमा है।'

महात्मा दादाजीके इस प्रकार समझानेपर उनकी बातोंके गौरवका विचार करके मैंने वह यज्ञ समाप्त कर दिया। इससे मुनिश्रेष्ठ भगवान् वसिष्ठजी बहुत प्रसन्न हुए। उसी समय ब्रह्माजीके पुत्र पुलस्त्यजी वहाँ आये। मैत्रेय ! पितामह वसिष्ठजीने उन्हें अर्घ्य दिया, तब वे महाभाग पुलस्त्यजी आसन ग्रहण करके मुझसे बोले।

पुलस्त्यजीने कहा—तुमने चित्तमें महान् वैरभावके रहते हुए भी अपने गुरुजन वसिष्ठजीके कहनेसे क्षमाका आश्रय लिया है, इसलिये तुम सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता होओगे। महाभाग ! अत्यन्त क्रुद्ध होनेपर भी तुमने मेरी संतानका सर्वथा मूलोच्छेद नहीं किया; अतः मैं तुम्हें एक और उत्तम वर देता हूँ। वत्स ! तुम पुराणसंहिताके रचयिता होओगे और परमात्माके वास्तविक स्वरूपको यथावत् जानोगे तथा मेरे प्रसादसे तुम्हारी निर्मल बुद्धि प्रवृत्ति और निवृत्ति-सम्बन्धी कर्मोंमें संदेहरहित हो जायगी। पुलस्त्यजीके इस तरह कहनेके अनन्तर मेरे पितामह भगवान् वसिष्ठजी बोले—'वत्स ! पुलस्त्यजीने तुम्हारे लिये जो कुछ कहा है, वह सब सत्य होगा।'

मैत्रेय ! इस प्रकार पूर्वकालमें बुद्धिमान् वसिष्ठजी और पुलस्त्यजीने जो कुछ कहा था, वह सब तुम्हारे प्रश्नसे मुझे स्मरण हो आया है। अतः तुम्हारे पूछनेपर मैं उस सम्पूर्ण पुराण-संहिताको तुम्हें सुनाता हूँ; तुम उसे भलीभाँति ध्यान देकर सुनो। यह जगत् विष्णुसे उत्पन्न हुआ है, उन्हींमें स्थित है, वे ही इसकी स्थिति और लयके कर्ता हैं तथा यह जगत् भी वे ही हैं†।

चौबीस तत्त्वोंके विचारके साथ जगत्के उत्पत्ति-क्रमका वर्णन और विष्णुकी महिमा

श्रीपराशरजी कहते हैं—जो ब्रह्मा, विष्णु और शंकररूपसे जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहारके कारण हैं तथा अपने भक्तोंको संसार-सागरसे तारनेवाले हैं, उन विकाररहित, शुद्ध, अविनाशी, सर्वदा एकरूप, परमात्मा सर्वविजयी भगवान् वासुदेवसंज्ञक विष्णुको नमस्कार है। जो एक होकर भी नाना रूपवाले हैं, स्थूल (कार्य) और सूक्ष्म (कारण) स्वरूप हैं, अव्यक्त (निराकार) एवं व्यक्त (साकार) रूप हैं तथा मुक्तिके एकमात्र हेतु हैं, उन श्रीविष्णुभगवान्‌को नमस्कार है। जो विश्वरूप प्रभु विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और संहारके मूलकारण हैं, उन परमात्मा विष्णुभगवान्‌को नमस्कार है। जो विश्वके आधार हैं, अति सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म हैं, सर्वप्राणियोंमें स्थित, पुरुषोत्तम और अविनाशी हैं; जो वास्तवमें अति निर्मल ज्ञानस्वरूप हैं तथा जो जगत्की उत्पत्ति और स्थितिमें समर्थ एवं उसका संहार करनेवाले हैं; उन जगदीश्वर, अजन्मा, अक्षय और अव्यय भगवान् विष्णुको प्रणाम करके तुम्हें वह सारा प्रसङ्ग क्रमशः सुनाता हूँ; जो दक्ष आदि मुनिश्रेष्ठोंके पूछनेपर पितामह भगवान् ब्रह्माजीने उनसे कहा था।

वह प्रसङ्ग दक्ष आदि मुनियोंने नर्मदा-तटपर राजा पुरुकुत्सको सुनाया था तथा पुरुकुत्सने सारस्वतसे और सारस्वतने मुझसे कहा था। जो श्रेष्ठोंसे भी अत्यन्त श्रेष्ठ, आत्मा-

---

* हन्यते तात कः केन यतः स्वकृतभुक् पुमान् ॥
संचितस्यापि महता वत्स क्लेशेन मानवैः । यशसस्तपसश्चैव क्रोधो नाशकरः परः ॥
स्वर्गापवर्गव्यासेधकारणं परमर्षयः । वर्जयन्ति सदा क्रोधं तात मा तद्वशो भव ॥
(वि० पु० १ । १ । १७–१९)

† विष्णोः सकाशादुद्भूतं जगत्तत्रैव च स्थितम् । स्थितिसंयमकर्तासौ जगतोऽस्य जगच्च सः ॥
(वि० पु० १ । १ । ३१)

में स्थित परमात्मा रूप, वर्ण, नाम और विशेषण आदिसे रहित है; जिसमें जन्म, वृद्धि, परिणाम, क्षय और नाश इन विकारोंका अभाव है; जिसको सर्वदा केवल 'है' इतना ही कह सकते हैं तथा जिसके लिये यह प्रसिद्ध है कि 'वह सर्वत्र है और उसमें समस्त विश्व वास करता है—इसलिये ही विद्वान् जिसको वासुदेव कहते हैं' वही नित्य, अजन्मा, अक्षय, अव्यय तथा एकरूप है और हेय गुणोंका अभाव होनेके कारण निर्मल परब्रह्म है *। वही व्यक्त (प्रकट) और अव्यक्त (अप्रकट) रूप तथा पुरुषरूपसे और कालके रूपसे स्थित है।

जो प्रकृति, पुरुष, दृश्य और काल—इन चारोंसे परे है और जिसे ज्ञानीजन ही प्रत्यक्ष अनुभव कर सकते हैं, वही भगवान् विष्णुका विशुद्ध परम पद है। भगवान् विष्णु व्यक्त, अव्यक्त, पुरुष और कालरूप भी हैं; उन भगवान्‌की लीला श्रवण करो।

उनमेंसे जो अव्यक्त कारणरूप प्रधान है, उस नित्य-तत्त्वको श्रेष्ठ मुनिजन सूक्ष्म प्रकृति कहते हैं। वह त्रिगुणमय और जगत्‌का कारण है तथा स्वयं अनादि है। यह सम्पूर्ण प्रपञ्च प्रलयकालसे लेकर सृष्टिके आदितक उसीसे व्याप्त था। विद्वन्! श्रुतिके मर्मको जाननेवाले, श्रुतिपरायण ब्रह्मवेत्ता महात्मागण इसी अर्थको लक्ष्य करके प्रधानके प्रतिपादक इस (निम्नलिखित) श्लोकको कहा करते हैं—'उस समय (प्रलयकालमें) न दिन था, न रात्रि थी, न आकाश था, न पृथिवी थी, न अन्धकार था, न प्रकाश था और न इनके अतिरिक्त कुछ और ही था। बस, श्रोत्रादि इन्द्रियोंका और बुद्धि आदिका अविषय एक परम ब्रह्म पुरुष ही प्रधान तत्त्वके रूपमें था †।'

विप्र ! विष्णुके परम (उपाधिरहित [illegible]) [illegible] प्रधान और पुरुष—ये दो रूप हुए; ये दोनों [illegible], एक अव्यक्तरूपमें रहते हैं और सृष्टिकालमें [illegible] प्रकट हो जाते हैं; उस रूपान्तरका ही नाम '[illegible]' है। [illegible] हुए प्रलयकालमें यह व्यक्त-प्रपञ्च प्रकृतिमें स्थित था [illegible], प्रपञ्चके इस प्रलयको 'प्राकृत प्रलय' कहते हैं। द्विज ! [illegible] भगवान् अनादि हैं, इनका अन्त नहीं है; [illegible] उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय भी कभी नहीं रुकते [illegible] बराबर होते रहते हैं।

मैत्रेय ! जब प्रकृति साम्यावस्थामें स्थित हो जाती है और उसमें पुरुष पृथक् स्थित हो जाता है, तब विष्णुभगवान्‌का कालरूप विचरता रहता है। तदनन्तर [illegible] उपस्थित होनेपर उन परब्रह्म परमात्मा विश्वरूप सर्वव्यापी सर्वभूतेश्वर सर्वात्मा परमेश्वर हरिने अपनी इच्छासे क्षर-तत्त्व प्रधान और अक्षर-तत्त्व-पुरुषमें (मानो) प्रविष्ट होकर उनको क्षोभित किया। जिस प्रकार क्रियाशील न होनेपर भी गन्ध अपनी संनिधिमात्रसे ही मनको क्षुभित कर देता है, उसी प्रकार परमेश्वर अपनी संनिधिमात्रसे ही प्रधान और पुरुषको क्षुभित कर देते हैं। ब्रह्मन् ! वह पुरुषोत्तम ही इनको क्षोभित करनेवाले हैं और वे ही क्षुब्ध होनेवाले हैं तथा संकोच (कारण-अवस्था) और विकास (कार्य-अवस्था) युक्त प्रधानरूपसे भी वे ही स्थित हैं। ब्रह्मादि समस्त ईश्वरोंके ईश्वर वे विष्णु ही कार्य-कारणरूपसे हिरण्यगर्भ आदिके रूपमें तथा महत्तत्त्व आदिके रूपमें स्थित हैं।

द्विजश्रेष्ठ ! सर्गकालके प्राप्त होनेपर विष्णुके [illegible] गुणोंकी साम्यावस्थारूप प्रधानसे महत्तत्त्वकी उत्पत्ति हुई। उत्पन्न हुए महान्‌को प्रधानतत्त्वने आवृत किया; महत्तत्त्व सात्त्विक, राजस और तामस भेदसे तीन प्रकारका है। यह त्रिविध महत्तत्त्व प्रधान-तत्त्वसे सब ओर व्याप्त है। फिर महत्तत्त्वसे ही वैकारिक (सात्त्विक), तैजस (राजस) और भूतादिरूप तामस—तीन प्रकारका अहंकार उत्पन्न हुआ। महामुने ! वह त्रिगुणात्मक होनेसे भूत और इन्द्रिय आदिका कारण है। प्रधानसे जैसे महत्तत्त्व व्याप्त है वैसे ही महत्तत्त्वसे वह (अहंकार) व्याप्त है। भूतादि नामक तामस अहंकारने विकृत होकर शब्द-तन्मात्रा और उससे शब्द-गुणवाले आकाशकी रचना की। उस भूतादि तामस अहंकारने शब्द-तन्मात्रा तथा आकाशको व्याप्त किया। फिर आकाशने विकृत होकर स्पर्श-तन्मात्राको रचा। उस

---

* परः पराणां परमः परमात्मात्मसंस्थितः।
रूपवर्णादिनिर्देशविशेषणविवर्जितः ॥
अपक्षयविनाशाभ्यां परिणामर्धिजन्मभिः।
वर्जितः शक्यते वक्तुं यः सदास्तीति केवलम् ॥
सर्वत्रासौ समस्तं च वसत्यत्रेति वै यतः।
ततः स वासुदेवेति विद्वद्भिः परिपठ्यते ॥
तद्ब्रह्म परमं नित्यमजमक्षयमव्ययम्।
एकस्वरूपं तु सदा हेयाभावाच्च निर्मलम् ॥
(वि० पु० १।२।१०—१३)

† नाहो न रात्रिर्न नभो न भूमिर्नासीत्तमोज्योतिरभूच्च नान्यत्।
श्रोत्रादिबुद्ध्यानुपलभ्यमेकं प्राधानिकं ब्रह्म पुमांस्तदासीत् ॥
(वि० पु० १।२।२३)

(स्पर्श-तन्मात्रा) से बलवान् वायु हुआ, उसका गुण स्पर्श माना गया है। शब्द-तन्मात्रायुक्त आकाशने स्पर्श-तन्मात्रावाले वायुको आवृत किया। फिर स्पर्श-तन्मात्रायुक्त वायुने विकृत होकर रूप-तन्मात्राकी सृष्टि की। (रूप-तन्मात्रायुक्त) वायुसे तेज उत्पन्न हुआ है, उसका गुण रूप कहा जाता है। स्पर्श-तन्मात्रायुक्त वायुने रूप-तन्मात्रावाले तेजको आवृत किया। फिर रूप-तन्मात्रामय तेजने भी विकृत होकर रस-तन्मात्राकी रचना की। उस (रस-तन्मात्रा) से रस-गुणवाला जल हुआ। रस-तन्मात्रावाले जलको रूप-तन्मात्रामय तेजने आवृत किया। रस-तन्मात्रायुक्त जलने विकारको प्राप्त होकर गन्ध-तन्मात्राकी सृष्टि की। उससे पृथिवी उत्पन्न हुई है जिसका गुण गन्ध माना जाता है। उन-उन आकाशादि भूतोंमें शब्द आदिकी मात्रा है, इसलिये वे तन्मात्रा ही कहे गये हैं। तन्मात्राओंमें विशेष भाव नहीं है इसलिये उनकी 'अविशेष' संज्ञा है। इस प्रकार तामस अहंकारसे यह भूत-तन्मात्रा-रूप सर्ग हुआ है।

इन्द्रियाँ तैजस अर्थात् राजस अहंकारसे और उनके अधिष्ठाता दस देवता वैकारिक अर्थात् सात्विक अहंकारसे उत्पन्न हुए कहे जाते हैं। इस प्रकार इन्द्रियोंके अधिष्ठाता दस देवता और ग्यारहवाँ मन वैकारिक (सात्त्विक) हैं। द्विज! त्वक्, चक्षु, नासिका, जिह्वा और श्रोत्र—ये पाँचों बुद्धिकी सहायतासे शब्दादि विषयोंको ग्रहण करनेके लिये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। मैत्रेय! पायु (गुदा), उपस्थ (लिङ्ग), हस्त, पाद और वाक्—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। इनके कर्म क्रमशः मल-त्याग, मूत्र-त्याग, शिल्प, गति और वचन बतलाये जाते हैं। आकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवी—ये पाँचों भूत उत्तरोत्तर (क्रमशः) शब्द, स्पर्श, रूप, रस आदि पाँच गुणोंसे युक्त हैं। ये पाँचों भूत शान्त, घोर और मूढ हैं; अतः ये 'विशेष' कहलाते हैं।

इन भूतोंमें पृथक्-पृथक् नाना शक्तियाँ हैं। अतः वे परस्पर पूर्णतया मिले बिना संसारकी रचना नहीं कर सके। इसलिये एक दूसरेके आश्रय रहनेवाले और एक ही संघातकी उत्पत्तिके लक्ष्यवाले महत्तत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त—प्रकृतिके इन सभी विकारोंने पुरुषसे अधिष्ठित होनेके कारण परस्पर मिलकर सर्वथा एक होकर प्रधान (प्रकृति) के अनुग्रहसे ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति की। महाबुद्धे! जलके बुलबुलेके समान क्रमशः भूतोंसे बढ़ा हुआ वह गोलाकार और महान् अण्ड ब्रह्म-रूप विष्णुका अति उत्तम प्राकृत वासस्थान हुआ। उसमें वे अव्यक्तस्वरूप जगत्पति विष्णु ही व्यक्तरूपसे स्वयं ही विराजमान हुए। विप्र! उस अण्डमें ही पर्वत और द्वीपादिके सहित समुद्र, ग्रहगणके सहित सम्पूर्ण लोक तथा देव, असुर और मनुष्य आदि विविध प्राणिवर्ग प्रकट हुए। वह अण्ड पूर्व-पूर्वकी अपेक्षा दस-दस गुना अधिक जल, अग्नि, वायु, आकाश आदि भूतोंसे और अहंकारसे आवृत है तथा वे सब भूत और अहंकार महत्तत्त्वसे घिरे हुए हैं और इन सबके सहित वह महत्तत्त्व भी अव्यक्त प्रधानसे आवृत है। इस प्रकार यह अण्ड इन सात प्राकृत आवरणोंसे घिरा हुआ है।

उसमें स्थित हुए स्वयं विश्वेश्वर भगवान् श्रीहरि ब्रह्मारूपसे रजोगुणका आश्रय लेकर इस संसारकी रचनामें प्रवृत्त होते हैं तथा रचना हो जानेपर वे श्रीहरि ही सत्त्वगुण-विशिष्ट अतुल पराक्रमी भगवान् विष्णुरूपसे उसका कल्पान्त-पर्यन्त युग-युगमें पालन करते हैं। मैत्रेय! फिर कल्पका अन्त होनेपर वे श्रीहरि ही अति दारुण तमःप्रधान जनार्दन रुद्ररूप धारण कर समस्त भूतोंका भक्षण कर लेते हैं*। इस प्रकार समस्त भूतोंका भक्षण करके उसके बाद वे परमेश्वर संसारको जलमय करके शेष-शय्यापर शयन करते हैं। जगनेपर ब्रह्मारूप होकर वे फिर जगत्की रचना करते हैं। वह एक ही भगवान् श्रीहरि जगत्की सृष्टि, स्थिति और संहारके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीन संज्ञाओंको धारण करते हैं। वे प्रभु हरि ही स्रष्टा (ब्रह्मा) होकर अपनी ही सृष्टि करते हैं, पालक विष्णु होकर पाल्यरूप अपना ही पालन करते हैं और अन्तमें स्वयं ही संहारक (रुद्र) तथा स्वयं ही उपसंहृत (लीन) होते हैं। पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश तथा समस्त इन्द्रियाँ और अन्तःकरण आदि जितना जगत् है सब पुरुषरूप है, क्योंकि वह विश्वरूप अव्यय हरि ही सब भूतोंके आत्मा हैं। वे सर्वस्वरूप, श्रेष्ठ, वरदायक और

---

* जुषन् रजोगुणं तत्र स्वयं विश्वेश्वरो हरिः।
ब्रह्मा भूत्वास्य जगतो विसृष्टौ सम्प्रवर्तते॥
सृष्टं च पात्यनुयुगं यावत्कल्पविकल्पना।
सत्त्वभृद्भगवान् विष्णुरप्रमेयपराक्रमः॥
तमोद्रेकी च कल्पान्ते रुद्ररूपी जनार्दनः।
मैत्रेयाखिलभूतानि भक्षयत्यतिदारुणः॥
(वि० पु० १।२।६१—६३)

वरेण्य (प्रार्थनाके योग्य) भगवान् हरि ही ब्रह्मा आदि रूपोंद्वारा रचनेवाले हैं, वे ही रचे जाते हैं, वे ही पालते हैं, वे ही पालित होते हैं तथा वे ही संहार करते हैं और वे स्वयं ही संहृत होते हैं *।

ब्रह्मादिकी आयु और कालका स्वरूप तथा वाराह भगवान्‌द्वारा पृथिवीका उद्धार

श्रीमैत्रेयजीने पूछा—भगवन् ! जो ब्रह्म निर्गुण, अप्रमेय, शुद्ध और निर्मलात्मा है उसका सर्गादिका कर्ता होना कैसे माना जा सकता है ?

श्रीपराशरजी बोले—तपस्वियोंमें श्रेष्ठ मैत्रेय ! समस्त भाव-पदार्थोंकी शक्तियाँ अचिन्त्य-ज्ञानकी विषय होती हैं; अतः अग्निकी शक्ति उष्णताके समान ब्रह्मकी भी सर्गादि-रचनारूप शक्तियाँ स्वाभाविक हैं। अब, जिस प्रकार भगवान् सृष्टिकी रचनामें प्रवृत्त होते हैं, सो सुनो। विद्वन् ! नारायण-स्वरूप लोकपितामह भगवान् ब्रह्माजी सदा उपचारसे ही 'उत्पन्न हुए' कहलाते हैं। उनके अपने परिमाणसे उनकी आयु सौ वर्षकी कही जाती है। उस (सौ वर्ष) का नाम 'पर' है, इसका आधा 'परार्द्ध' कहलाता है।

अनघ ! मैंने जो तुमसे विष्णुभगवान्‌का कालस्वरूप कहा था, उसीके द्वारा उस ब्रह्माकी तथा और भी जो पृथिवी, पर्वत, समुद्र आदि चराचर जीव हैं, उनकी आयुका परिमाण बताया जाता है; उसे सुनो। मुनिश्रेष्ठ ! पंद्रह निमेषको काष्ठा कहते हैं, तीस काष्ठाकी एक कला तथा तीस कलाका एक मुहूर्त होता है। तीस मुहूर्तका मनुष्यका एक दिन-रात कहा जाता है और उतने ही दिन-रातका दो पक्षयुक्त एक मास होता है। छः महीनोंका एक अयन और दक्षिणायन तथा उत्तरायण दो अयन मिलकर एक वर्ष होता है। दक्षिणायन देवताओंकी रात्रि है और उत्तरायण दिन। देवताओंके बारह हजार वर्षोंके सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग नामक चार युग होते हैं। उनका अलग-अलग परिमाण मैं तुम्हें सुनाता हूँ। पुराणवेत्ता विद्वान् सत्ययुग आदिका परिमाण क्रमशः चार, तीन, दो और एक हजार दिव्य वर्ष बतलाते हैं।

प्रत्येक युगके पूर्व उतने ही सौ वर्षकी संध्या बतायी जाती है और युगके पीछे उतने ही परिमाणवाले संध्यांश होते हैं अर्थात् सत्ययुग आदिके पूर्व क्रमशः चार, तीन, दो और एक सौ दिव्य वर्षकी संध्याएँ और इतने ही वर्षके संध्यांश होते हैं। मुनिश्रेष्ठ ! इन संध्या और संध्यांशोंके बीचका जितना काल होता है, उसे ही सत्ययुग आदि नामवाले युग जानना चाहिये। मुने ! सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि—ये मिलकर चतुर्युग कहलाते हैं; ऐसे हजार चतुर्युगका ब्रह्माका एक दिन होता है। ब्रह्मन् ! ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मनु होते हैं। उत्तम ! इकहत्तर चतुर्युगसे कुछ अधिक† कालका एक मन्वन्तर गिना जाता है। यही मनु और देवता आदिका काल है। इस प्रकार दिव्य वर्ष-गणनासे एक मन्वन्तरमें इकहत्तर चतुर्युगके हिसाबसे आठ लाख बावन हजार वर्ष बताये जाते हैं। तथा महामुने ! मानवी वर्ष-गणनाके अनुसार मन्वन्तरका परिमाण पूरे तीस करोड सरसठ लाख बीस हजार वर्ष है। इस कालका चौदह गुना ब्रह्माका दिन होता है, इसके अनन्तर नैमित्तिक नामवाला 'ब्राह्म प्रलय' होता है।

उस समय ब्रह्माजी दिनके बराबर ही परिमाणवाली उस रात्रिमें शयन करते हैं और उसके बीत जानेपर पुनः संसारकी सृष्टि करते हैं। इसी प्रकार (पक्ष, मास आदि) गणनासे ब्रह्माका एक वर्ष और फिर सौ वर्ष होते हैं। ब्रह्माके सौ वर्ष ही उस महात्मा

* स एव सृज्य: स च सर्गकर्ता स एव पात्यत्ति च पाल्यते च।
ब्रह्माद्यवस्थाभिरशेषमूर्तिर्विष्णुर्वरिष्ठो वरदो वरेण्य: ॥

(वि० पु० १।२।७०)

† इकहत्तर चतुर्युगके हिसाबसे चौदह मन्वन्तरोंमें ९९४ चतुर्युग होते हैं। और ब्रह्माके एक दिनमें एक हजार चतुर्युग होते हैं, अत: छ: चतुर्युग और बचे। संध्या और संध्यांशसहित छ: चतुर्युगका अर्थात् ७२००० दिव्य वर्षोंका चौदहवाँ भाग पाँच हजार एक सौ बियालीस दिव्य वर्ष, दस मास और आठ दिन होता है, इस प्रकार एक मन्वन्तरमें इकहत्तर चतुर्युगके अतिरिक्त इतने दिव्य वर्ष और अधिक होते हैं।

(ब्रह्मा) की परमायु है । अनघ ! उन ब्रह्माजीका एक परार्द्ध बीत चुका है । उसके अन्तमें 'पाद्म' नामसे विख्यात महाकल्प हुआ था । द्विज ! इस समय वर्तमान उनके दूसरे परार्द्धका यह 'वाराह' नामक पहला कल्प कहा गया है ।

[अब, इस कल्पके वाराह नाम पड़नेका हेतु बतलाते हैं ।] वे भगवान् नारायण पर हैं, अचिन्त्य हैं, ब्रह्मा, शिव आदि ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं, ब्रह्मस्वरूप हैं, अनादि हैं और सबकी उत्पत्तिके स्थान हैं* ।

जब सम्पूर्ण जगत् जलमय हो रहा था, उस समय भगवान् नारायणने पृथिवीको जलके भीतर जान उसे बाहर निकालनेका विचार किया । तब उन्होंने पूर्व-कल्पोंके आदिमें जैसे मत्स्य, कूर्म आदि रूप धारण किये थे वैसे ही इस वाराह-कल्पके आरम्भमें वेदयज्ञमय वाराह-शरीर ग्रहण किया और सम्पूर्ण जगत्की स्थितिमें तत्पर हो सबके आत्मस्वरूप और अविचल-रूप वे परमात्मा प्रजापालक हरि जलमें प्रविष्ट हुए । तब उन साक्षात् भगवान् हरिको पाताललोकमें आये देख देवी वसुन्धरा भक्तिभावसे मस्तक झुकाकर प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगी ।

पृथिवी बोली—शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले कमलनयन भगवन् ! आपको नमस्कार है । आज आप इस पातालतलसे मेरा उद्धार कीजिये । पूर्वकालमें आपसे ही मैं उत्पन्न हुई थी । जनार्दन ! पहले भी आपने ही मेरा उद्धार किया था और प्रभो ! मेरे तथा आकाशादि अन्य सब भूतोंके भी आप ही उपादान-कारण हैं । परमात्मस्वरूप ! आपको नमस्कार है । पुरुषात्मन् ! आपको नमस्कार है । प्रधान (कारण) और व्यक्त (कार्य) रूप ! आपको नमस्कार है । कालस्वरूप ! आपको बारंबार नमस्कार है । प्रभो ! जगत्की सृष्टि आदिके लिये ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रका रूप धारण करनेवाले आप ही सम्पूर्ण भूतोंके उत्पादक, पालक और संहारक हैं* । गोविन्द ! जगत्के एकार्णवमग्न हो जानेपर, सबको उदरस्थ करके अन्तमें आप ही उस जलमें शयन करते हैं । मनीषीजन आपके उस स्वरूपका सदा चिन्तन करते रहते हैं । प्रभो ! आपका जो परम तत्त्व है, उसे कोई नहीं जानता; अतः आपका जो रूप मत्स्य, कूर्म आदि अवतारोंमें प्रकट होता है, उसीकी ब्रह्मादि देवगण पूजा करते हैं । आप परब्रह्मकी ही आराधना करके मुमुक्षुजन मुक्त होते हैं । भला वासुदेवकी आराधना किये बिना कौन मोक्ष प्राप्त कर सकता है † ! मनसे जो कुछ ग्रहण (संकल्प) किया जाता है, चक्षु आदि इन्द्रियोंसे जो कुछ ग्रहण करनेयोग्य है तथा बुद्धिद्वारा जो कुछ निर्णय करनेयोग्य है, वह सब आपका ही रूप है । माधव ! मैं आपहीका रूप हूँ, आपके ही आश्रित हूँ और आपके ही द्वारा रची गयी हूँ तथा आपकी ही शरणमें हूँ । इसीलिये यह जगत् मुझे 'माधवी' कहता है । सम्पूर्ण ज्ञानमय ! आपकी जय हो । स्थूलमय ! अव्यक्त ! आपकी जय हो । अनन्त ! आपकी जय हो । अव्यय ! आपकी जय हो और व्यक्तस्वरूप प्रभो ! आपकी जय हो । परापर-स्वरूप ! विश्वात्मन् ! यज्ञपते ! अनघ ! आपकी जय हो । प्रभो ! आप ही यज्ञ हैं, आप ही वषट्कार हैं, आप ही ओंकार हैं और आप ही आहवनीयादि अग्नि है । हरे ! आप ही

* नारायणः परोऽचिन्त्यः परेषामपि स प्रभुः ।
ब्रह्मस्वरूपी भगवाननादिः सर्वसम्भवः ॥
(वि० पु० १ । ४ । ४)

* त्वं कर्ता सर्वभूतानां त्वं पाता त्वं विनाशकृत् ।
सर्गादिषु प्रभो ब्रह्मविष्णुरुद्रात्मरूपधृक् ॥
(वि० पु० १ । ४ । १५)

† त्वामाराध्य परं ब्रह्म याता मुक्तिं मुमुक्षवः ।
वासुदेवमनाराध्य को मोक्षं समवाप्स्यति ॥
(वि० पु० १ । ४ । १८)

वेद, आप ही वेदाङ्ग और आप ही यज्ञपुरुष हैं तथा सूर्य आदि ग्रह, तारे, नक्षत्र और सम्पूर्ण जगत् भी आप ही हैं। पुरुषोत्तम! परमेश्वर! मूर्त-अमूर्त, दृश्य-अदृश्य तथा जो कुछ मैंने यहाँ कहा है और जो नहीं कहा है, वह सब आप ही हैं। अतः आपको नमस्कार है, बारंबार नमस्कार है, नमस्कार है*।

श्रीपराशरजी बोले—पृथिवीद्वारा इस प्रकार स्तुति किये जानेपर, सामस्वर ही जिनकी ध्वनि है, उन भगवान् धरणीधरने घर्घर शब्दसे गर्जना की। फिर विकसित कमलके समान नेत्रोंवाले उन महावराहने अपनी डाढ़ोंसे पृथिवीको उठा लिया और वे कमलदलके समान श्याम तथा नीलाचलके सदृश विशालकाय भगवान् बाहर निकले। निकलते समय उनके मुखके श्वाससे टकराकर ऊपरकी ओर उछले हुए जलने महातेजस्वी और निष्पाप सनन्दनादि मुनीश्वरोंको भिगो दिया। उस समय सनन्दनादि योगीश्वरोंने प्रसन्नचित्त हो अत्यन्त नम्रतापूर्वक मस्तक झुकाकर उनकी इस प्रकार स्तुति की।

'ब्रह्मादि ईश्वरोंके भी परम ईश्वर! केशव! शङ्ख-गदाधर! खड्ग-चक्रधारी प्रभो! आपकी जय हो। आप ही संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और नाशके कारण हैं तथा आप ही ईश्वर हैं और जिसे परम पद कहते हैं वह भी आपसे भिन्न नहीं है†। प्रभो! आप ही यज्ञपुरुष हैं। आपके चरणोंमें चारों वेद हैं, डाढ़ोंमें यूप हैं, दाँतोंमें यज्ञ हैं, मुखमें श्येनचित आदि चितियाँ (यज्ञवेदियाँ) हैं। हुताशन (यज्ञाग्नि) आपकी जिह्वा है तथा कुशाएँ रोमावलि हैं। महात्मन्! रात और दिन आपके नेत्र हैं तथा सबका आधारभूत परब्रह्म आपका सिर है। देव! वैष्णव आदि समस्त सूक्त आपके सटाकलाप (स्कन्धके रोम-गुच्छ) हैं और समग्र हवि आपके प्राण हैं। प्रभो! स्रुक् आपका तुण्ड (थूथनी) है, सामस्वर धीर-गम्भीर शब्द है, प्राग्वंश (यजमानगृह) शरीर है तथा सत्र शरीरकी संधियाँ हैं। देव! इष्ट (श्रौत) और पूर्त (स्मार्त) धर्म आपके कान हैं। नित्यस्वरूप भगवन्! प्रसन्न होइये। अक्षर! विश्वमूर्ते! अपने पाद-प्रहारसे भूमण्डलको व्याप्त करनेवाले आपको हम विश्वके आदिकारण समझते हैं। आप सम्पूर्ण विश्वके परमेश्वर और बड़े-छोटे सबके नाथ हैं; अतः प्रसन्न होइये। नाथ! आपकी डाढ़ोंके अग्रभागपर रक्खा हुआ यह सम्पूर्ण भूमण्डल ऐसा प्रतीत होता है मानो कमलवनमें प्रविष्ट हो निकले हुए गजराजके दाँतोंसे कीचड़में सना हुआ कोई कमलका पत्ता लगा हो। अनुपम प्रभावशाली प्रभो! पृथिवी और आकाशके बीचमें जितना अन्तर है वह आपके शरीरसे ही व्याप्त है। विश्वको व्याप्त करनेमें समर्थ तेजयुक्त प्रभो! आप विश्वका कल्याण कीजिये। जगत्पते! परमार्थ (सत्य वस्तु) तो एकमात्र आप ही हैं, आपके अतिरिक्त और कोई भी नहीं है। यह आपकी ही महिमा है जिससे यह सम्पूर्ण चराचर जगत् व्याप्त है। यह जो कुछ भी मूर्तिमान् जगत् दिखायी देता है, ज्ञानस्वरूप आपका ही शरीर है। अजितेन्द्रिय लोग भ्रमसे इसे जगत्‌रूप देखते हैं*। इस सम्पूर्ण ज्ञानस्वरूप जगत्‌को अज्ञानीलोग अर्थरूप देखते हैं, अतः वे निरन्तर मोहमय संसार-सागरमें भटकते रहते हैं। परमेश्वर! जो लोग शुद्धचित्त और विज्ञानवेत्ता हैं, वे इस सम्पूर्ण संसारको आपका ज्ञानात्मक स्वरूप ही देखते हैं†। सर्व! सर्वात्मन्! प्रसन्न होइये। अप्रमेयात्मन्! कमलनयन! हमारे निवासके लिये पृथिवीका उद्धार करके हमको शान्ति प्रदान कीजिये। भगवन्! गोविन्द! इस समय आप सत्त्वप्रधान हैं; अतः ईश! जगत्‌के उद्भवके लिये आप इस पृथिवीका उद्धार कीजिये और कमलनयन! हमको शान्ति प्रदान कीजिये। आपके द्वारा यह सर्गकी प्रवृत्ति संसारका उपकार करनेवाली हो। कमलनयन! आपको नमस्कार है, आप हमको शान्ति प्रदान कीजिये।'

---

* यच्चोक्तं यच्च नैवोक्तं मयात्र परमेश्वर।
तत्सर्वं त्वं नमस्तुभ्यं भूयो भूयो नमो नमः॥
(वि० पु० १।४।२४)

† जयेश्वराणां परमेश केशव प्रभो गदाशङ्खधरासिचक्रधृक्।
प्रसूतिनाशस्थितिहेतुरीश्वरस्त्वमेव नान्यत्परमं च यत्पदम्॥
(वि० पु० १।४।३१)

* परमार्थस्त्वमेवैको नान्योऽस्ति जगतः पते।
तवैष महिमा येन व्याप्तमेतच्चराचरम्॥
यदेतद् दृश्यते मूर्तमेतज्ज्ञानात्मनस्तव।
भ्रान्तिज्ञानेन पश्यन्ति जगद्रूपमयोगिनः॥
(वि० पु० १।४।३८-३९)

† ये तु ज्ञानविदः शुद्धचेतसस्तेऽखिलं जगत्।
ज्ञानात्मकं प्रपश्यन्ति त्वद्रूपं परमेश्वर॥
(वि० पु० १।४।४१)

श्रीपराशरजी कहते हैं—इस प्रकार स्तुति किये जानेपर पृथिवीको धारण करनेवाले परमात्मा वराहजीने उसे शीघ्र ही उठाकर अपार जलके ऊपर स्थापित कर दिया। उस जलसमूहके ऊपर वह एक बहुत बड़ी नौकाके समान स्थित है और बहुत विस्तृत आकार होनेके कारण उसमें डूबती नहीं है। फिर उन अनादि परमेश्वर वराह भगवान्‌ने ही पृथिवीको समतल कर उसपर जहाँ-तहाँ पर्वतोंको विभाग करके स्थापित कर दिया। सत्यसंकल्प भगवान्‌ने अपने अमोघ प्रभावसे पूर्वकल्पके अन्तमें दग्ध हुए समस्त पर्वतोंको पृथिवी-तलपर यथास्थान रच दिया। तदनन्तर उन्होंने सप्तद्वीपादि-क्रमसे पृथिवीका यथायोग्य विभाग करके भूर्लोकादि लोकोंकी पूर्ववत् कल्पना कर दी।

विविध सर्गोंका वर्णन

श्रीमैत्रेयजी बोले—द्विजराज! सर्गके आदिमें भगवान् ब्रह्माजीने पृथिवी, आकाश और जल आदिमें रहनेवाले देव, ऋषि, पितृगण, दानव, मनुष्य, तिर्यक् और वृक्षादिको जिस प्रकार रचा तथा जैसे गुण, स्वभाव और रूपवाले जगत्‌की रचना की, वह सब आप मुझसे कहिये।

श्रीपराशरजीने कहा—मैत्रेय! सर्वव्यापी भगवान् ब्रह्माने जिस प्रकार इस सर्गकी रचना की, वह मैं तुमसे कहता हूँ, सावधान होकर सुनो। सर्गके आदिमें ब्रह्माजीके पूर्ववत् सृष्टिका चिन्तन करनेपर पहले तमोगुणी सृष्टिका आविर्भाव हुआ। उस महात्मासे प्रथम तम (अज्ञान), मोह (अस्मिता), महामोह (भोगासक्ति), तामिस्र (द्वेष) और अन्धतामिस्र (अभिनिवेश अर्थात् मरण-भय) नामक पञ्चपर्वा (पाँच प्रकारकी) अविद्या उत्पन्न हुई। फिर चिन्तन करनेपर ज्ञानशून्य, बाहर-भीतरसे तमोमय और जड नगादि (वृक्ष-गुल्म-लता-तृण और पर्वत) रूप पाँच प्रकारका सर्ग हुआ। नगादिको मुख्य कहा गया है, इसलिये यह सर्ग भी 'मुख्य सर्ग' कहलाता है।

उस मुख्य सर्गको पुरुषार्थ (मुक्ति) के साधनमें असमर्थ देखकर उन्होंने फिर अन्य सर्गके लिये ध्यान किया तो तिर्यक्-स्रोता सृष्टि उत्पन्न हुई। यह सर्ग वायुके समान तिरछा चलनेवाला है इसलिये 'तिर्यक्-स्रोता' कहलाता है। ये पशु, पक्षी आदि नामसे प्रसिद्ध हैं—और प्रायः तमोमय (अज्ञानी), विवेकरहित होते हैं। ये सब अहंकारी, अभिमानी, आन्तरिक ज्ञानयुक्त और परस्पर एक दूसरेके कुल, शील और सम्बन्धको न जाननेवाले होते हैं।

उस सर्गको भी पुरुषार्थ (मुक्ति) के साधनमें असमर्थ समझ पुनः चिन्तन करनेपर एक और सर्ग हुआ। वह 'ऊर्ध्व-स्रोत' नामक तीसरा सात्त्विक सर्ग ऊपरके लोकोंमें रहने लगा। वे ऊर्ध्व-स्रोता सृष्टिमें उत्पन्न हुए प्राणी विषय-सुखके प्रेमी, बाह्य और आन्तरिक दृष्टिसम्पन्न तथा बाह्य और आन्तरिक ज्ञानयुक्त थे। यह तीसरा 'देवसर्ग' कहलाता है। इस सर्गके प्रादुर्भूत होनेसे संतुष्ट-चित्त ब्रह्माजीको अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

फिर, इन तीनों प्रकारकी सृष्टियोंमें उत्पन्न हुए प्राणियोंको पुरुषार्थ (मुक्ति) के साधनमें असमर्थ जान उन्होंने एक और उत्तम मोक्ष साधक सर्गके लिये चिन्तन किया। उन सत्यसंकल्प ब्रह्माजीके इस प्रकार चिन्तन करनेपर अव्यक्तसे पुरुषार्थका साधक 'अर्वाक्-स्रोता' नामक सर्ग प्रकट हुआ। इस सर्गके प्राणी नीचे (पृथिवीपर) रहने लगे, इसलिये वे 'अर्वाक्-स्रोता' कहलाये। उनमें सत्त्व, रज और तम तीनोंकी ही अधिकता होती है। इसलिये वे दुःखबहुल, अत्यन्त क्रियाशील एवं बाह्य-आभ्यन्तर ज्ञानसे युक्त और साधक हैं। इस सर्गके प्राणी मनुष्य हैं।

मुनिश्रेष्ठ! महत्तत्त्वको ब्रह्माका पहला सर्ग जानना चाहिये। दूसरा सर्ग तन्मात्राओंका है, जिसे भूत सर्ग भी कहते हैं और तीसरा वैकारिक सर्ग है जो ऐन्द्रियक (इन्द्रिय-सम्बन्धी) सर्ग कहलाता है। इस प्रकार बुद्धिपूर्वक उत्पन्न हुआ यह प्राकृत (प्रकृतिसे उत्पन्न) सर्ग हुआ। (जिसका वर्णन दूसरे अध्यायमें किया जा चुका है।) चौथा मुख्य सर्ग है। पर्वत-वृक्षादि स्थावर ही मुख्य सर्गके अन्तर्गत हैं। पाँचवाँ जो तिर्यक्स्रोता सर्ग बतलाया उसे तिर्यक् (कीट-पतंगादि) योनि भी कहते हैं। फिर छठा सर्ग ऊर्ध्व-स्रोताओंका है जो 'देवसर्ग' कहलाता है। उसके पश्चात् सातवाँ सर्ग अर्वाक्-स्रोताओंका है, वह मनुष्य-सर्ग है।

श्रीमैत्रेयजी बोले—मुने! आपने इन देवादिके सर्गोंका संक्षेपसे वर्णन किया। अब, मुनिश्रेष्ठ! मैं इन्हें आपके मुखारविन्दसे विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ।

श्रीपराशरजीने कहा—मैत्रेय ! इन सबकी रचना करके भगवान् ब्रह्माजीने पक्षियोंको, उनके पूर्व-कर्मोंसे प्रेरित होकर स्वच्छन्दतापूर्वक रचा । तदनन्तर अपने वक्षःस्थलसे भेड़ और मुखसे बकरियोंकी रचना की । फिर प्रजापति ब्रह्माजीने उदर और पार्श्व भागसे गौ, पैरोंसे घोड़े, हाथी, गधे, वनगाय, मृग, ऊँट, खच्चर और न्यङ्कु (मृगविशेष) आदि पशुओंकी रचना की तथा उनके रोमोंसे फल-मूलसहित ओषधियाँ (अन्न आदि) उत्पन्न हुईं ! गौ, बकरी, मेड़, घोडे, खच्चर और गधे—ये सब ग्राम्य (गाँवोंमें रहनेवाले) पशु कहे जाते हैं । अब जंगली पशुओंके नाम सुनो—श्वापद (व्याघ्र आदि), दो खुरवाले (वनगाय आदि), हाथी, बंदर और पाँचवें पक्षी, छठे जलके जीव तथा सातवें सरीसृप आदि । फिर अपने प्रथम (पूर्व) मुखसे ब्रह्माजीने गायत्री छन्द, ऋग्वेद, त्रिवृत्स्तोम, रथन्तर साम और यज्ञोंमेंसे अग्निष्टोम यज्ञको प्रकट किया । दक्षिण मुखसे यजुर्वेद, त्रिष्टुप्छन्द, पञ्चदश स्तोम, बृहत्साम तथा उक्थ्य नामक यज्ञकी रचना की । पश्चिम मुखसे सामवेद, जगती छन्द, सप्तदश स्तोम, वैरूप साम और अतिरात्र यज्ञको उत्पन्न किया तथा उत्तर मुखसे उन्होंने एकविंशति स्तोम, अथर्ववेद, आप्तोर्याम नामक यज्ञ, अनुष्टुप् छन्द और वैराजसामकी सृष्टि की ।

इस प्रकार उनके शरीरसे समस्त ऊँच-नीच प्राणी उत्पन्न हुए । तदनन्तर कल्पका आरम्भ होनेपर उन [illegible] प्रजापति भगवान् ब्रह्माजीने देव, असुर, पितृगण और मनुष्योंकी सृष्टि कर फिर यक्ष, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरागण, किन्नर, राक्षस, पशु, पक्षी, मृग और सर्प आदि सम्पूर्ण नित्य और अनित्य जगत्की रचना की । उनमेंसे जिन्होंने पूर्वकल्पोंमें जिन कर्मोंको अपनाया था, नूतन सृष्टिमें पुनः जन्म लेनेपर वे फिर उन्हीं कर्मोंमें प्रवृत्त होते हैं । उस समय पूर्वसंस्कारोंसे प्रभावित हो वे हिंसा-अहिंसा, मृदुता-कठोरता, धर्म-अधर्म तथा सत्य-मिथ्या आदिको अपनाते हैं । अतः वे ही उन्हें अच्छे लगते हैं ।

इस प्रकार ब्रह्माने ही स्वयं इन्द्रियोंके विषय, भूत और शरीर आदिमें पूर्वसंस्कारके अनुसार विभिन्नता और [illegible]को उत्पन्न किया है । उन्होंने कल्पके आरम्भमें देवता आदि प्राणियोंके वेदानुसार नाम और रूप तथा कार्य-विभागको निश्चित किया है । ऋषियों तथा अन्य प्राणियोंके भी वेदानुकूल नाम और यथायोग्य कर्मोंको उन्होंने नियत किया है । जिस प्रकार भिन्न-भिन्न ऋतुओंके पुनः-पुनः आनेपर उनके चिह्न और नाम-रूप आदि पूर्ववत् रहते हैं, उसी प्रकार युगादिमें भी उनके पूर्वभाव ही देखे जाते हैं । वे ब्रह्माजी कल्पोंके आरम्भमें बारंबार इसी प्रकार सृष्टिकी रचना किया करते हैं ।

चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था, पृथिवी-विभाग और अन्नादिकी उत्पत्तिका वर्णन

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवन् ! आपने जो अर्वाक्स्रोता नामक मानव सर्गका वर्णन किया है, उसकी सृष्टि ब्रह्माजीने किस प्रकार की—यह विस्तारपूर्वक कहिये । श्रीप्रजापतिने ब्राह्मण आदि वर्णोंको जिन-जिन गुणोंसे युक्त और जिस प्रकार रचा तथा उनके जो-जो कर्तव्य-कर्म निर्धारित किये—वे सब वर्णन कीजिये ।

श्रीपराशरजीने कहा—द्विजश्रेष्ठ ! जगत्-रचनाकी इच्छासे युक्त सत्यसंकल्प श्रीब्रह्माजीके मुखसे पहले सत्त्वप्रधान (ब्राह्मण) प्रजा उत्पन्न हुई । तदनन्तर उनके वक्षःस्थलसे रजःप्रधान (क्षत्रिय) तथा जंघाओंसे रज और तमविशिष्ट (वैश्य) प्रजा उत्पन्न हुई । द्विजोत्तम ! चरणोंसे ब्रह्माजीने एक और प्रकारकी प्रजा उत्पन्न की, वह तमःप्रधान (शूद्र) थी । ये ही सब चारों वर्ण हुए । इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये चारों क्रमशः ब्रह्माजीके मुख, वक्षःस्थल, जानु और चरणोंसे उत्पन्न हुए* ।

महाभाग ! ब्रह्माजीने यज्ञानुष्ठानके लिये ही यज्ञके उत्तम साधनरूप इस सम्पूर्ण चातुर्वर्ण्यकी रचना की थी । मैत्रेय ! यज्ञसे तृप्त होकर देवगण जल बरसाकर प्रजाको तृप्त करते हैं; अतः यज्ञ सर्वथा कल्याणका हेतु है । जो मनुष्य सदा स्वधर्म-परायण, सदाचारी, सज्जन और सुमार्गगामी होते हैं, उन्हींसे यज्ञका यथावत् अनुष्ठान हो सकता है । हे मुने ! मनुष्य इस मानव-शरीरसे ही स्वर्ग और अपवर्ग प्राप्त कर सकते हैं तथा

---

* ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च द्विजसत्तम ।
पादोरुवक्षःस्थलतो मुखतश्च समुद्गताः ॥
(वि० पु० १ । ६ । ६)

और भी जिस स्थानकी उन्हें इच्छा हो उसीको जा सकते हैं* ।

मुनिसत्तम ! ब्रह्माजीद्वारा रची हुई वह चार वर्णोंमें विभक्त प्रजा (कल्पके आदिमें) अति श्रद्धायुक्त आचरणवाली, स्वेच्छानुसार रहनेवाली, सम्पूर्ण बाधाओंसे रहित, शुद्ध अन्तःकरणवाली, सत्कुलोत्पन्न और पुण्य-कर्मोंके अनुष्ठानसे परम पवित्र थी । उसका चित्त शुद्ध होनेके कारण उसमें निरन्तर शुद्धस्वरूप श्रीहरिके विराजमान रहनेसे उन्हें शुद्ध ज्ञान प्राप्त होता था, जिससे वे भगवान्‌के उस 'विष्णु' नामक परम पदको प्राप्त होते थे । मैत्रेय ! फिर उस प्रजामें पुरुषार्थके विघातक तथा अज्ञान और लोभको उत्पन्न करनेवाले रागादिरूप अधर्म-बीजके उत्पन्न होने और पापके बढ़ जानेसे सम्पूर्ण प्रजा द्वन्द्व, ह्रास और दुःखसे आतुर हो गयी । तब उसने मरुभूमि, पर्वत और जल आदिके स्वाभाविक तथा कृत्रिम दुर्ग बनाये और पुर तथा खर्वट† आदि स्थापित किये । महामते ! उन पुर आदिमें शीत और घाम आदि बाधाओंसे बचनेके लिये उसने यथायोग्य घर बनाये ।

इस प्रकार शीतोष्णादिसे बचनेका उपाय करके उस प्रजाने जीविकाके साधनरूप कृषि तथा कला-कौशल आदिकी रचना की । मुने ! धान, जौ, गेहूँ, छोटे धान्य, तिल, कॉगनी, ज्वार, कोदो, छोटी मटर, उड़द, मूँग, मसूर, बड़ी मटर, कुलथी, अरहर, चना और सन—ये सत्रह ग्राम्य अन्न आदि ओषधियोंकी जातियाँ हैं । ग्राम्य और वन्य दोनों प्रकारकी मिलाकर कुल चौदह ओषधियाँ याज्ञिक हैं । उनके नाम ये हैं—धान, जौ, उड़द, गेहूँ, छोटे धान्य, तिल, कॉगनी और कुलथी—ये आठ तथा श्यामाक (सॉवा), नीवार, वनतिल, गवेधु, वेणुयव और मर्कट (मक्का) । ये चौदह ग्राम्य और वन्य अन्न आदि ओषधियाँ यज्ञानुष्ठानकी सामग्री हैं और यज्ञ इनकी उत्पत्तिका प्रधान हेतु है । यज्ञोंके सहित ये ओषधियाँ प्रजाकी वृद्धिका परम कारण हैं, इसलिये इहलोक-परलोकके ज्ञाता पुरुष यज्ञोंका अनुष्ठान किया करते हैं । मुनिश्रेष्ठ ! नित्यप्रति किया जानेवाला यज्ञानुष्ठान मनुष्योंका परम उपकारक और उनके किये हुए पापोको शान्त करनेवाला है ।

धर्मवानोंमें श्रेष्ठ मैत्रेय ! कृषि आदि जीविकाके साधनोंके निश्चित हो जानेपर प्रजापति ब्रह्माजीने प्रजाकी रचना कर उनके स्थान और गुणोंके अनुसार मर्यादा, वर्ण और आश्रमोंके धर्म तथा अपने धर्मका अच्छी तरह पालन करनेवाले समस्त वर्णोंके लोक आदिकी स्थापना की । कर्मनिष्ठ ब्राह्मणोंका स्थान ब्रह्मलोक है, युद्ध-क्षेत्रसे कभी न हटनेवाले क्षत्रियोंका इन्द्रलोक है, अपने धर्मका पालन करनेवाले वैश्योंका वायुलोक और सेवाधर्मपरायण शूद्रोंका गन्धर्वलोक है । अठासी हजार ऊर्ध्वरेता मुनि हैं; उनका जो स्थान बताया गया है, वही गुरुकुलवासी ब्रह्मचारियोंका स्थान है । इसी प्रकार वनवासी वानप्रस्थोंका स्थान सप्तर्षिलोक, गृहस्थोंका प्राजापत्यलोक और संन्यासियोंका ब्रह्मलोक है तथा आत्मानुभवसे तृप्त योगियोंका स्थान अमरपद (मोक्ष) है । जो निरन्तर एकान्तसेवी और ब्रह्मचिन्तनमें मग्न रहनेवाले योगिजन हैं, उनका जो परम स्थान है उसे ज्ञानीजन ही देख पाते हैं । चन्द्रमा और सूर्य आदि ग्रह भी अपने गन्तव्य स्थानोंमें जा-जाकर फिर लौट आते हैं, किंतु द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) का चिन्तन करनेवाले कभी मोक्षपदसे नहीं लौटते । तामिस्र, अन्धतामिस्र, महारौरव, रौरव, असिपत्रवन, घोर, कालसूत्र और अवीचि आदि जो नरक हैं, उनमें वेदोंकी निन्दा और यज्ञोंका उच्छेद करनेवाले तथा स्वधर्मविमुख पुरुष जाते हैं ।

मरीचि आदि प्रजापतिगण, स्वायम्भुव मनु और शतरूपा तथा उनकी संतानका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—उन प्रजापतिके ध्यान करनेपर उनके देहस्वरूप भूतोंसे उत्पन्न हुए शरीर और इन्द्रियोंके सहित मानस प्रजा उत्पन्न हुई । जब महाबुद्धिमान् प्रजापतिकी वह प्रजा पुत्र-पौत्रादि क्रमसे अधिक न बढ़ी तब उन्होंने भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अङ्गिरा, मरीचि, दक्ष, अत्रि और वसिष्ठ—इन अपने ही सदृश अन्य मानस-पुत्रोंकी सृष्टि की ।

ब्रह्माजीने पहले जिन सनन्दनादिको उत्पन्न किया था,

* स्वर्गापवर्गौ मानुष्यात्प्राप्नुवन्ति नरा मुने । यद्याभिरुचितं स्थानं तद्यान्ति मनुजा द्विज ॥

(वि० पु० १ । ६ । १०)

† पहाड़ या नदीके तटपर बसे हुए छोटे-छोटे टोलोंको 'खर्वट' कहते हैं ।

वे संतान आदिकी अपेक्षा न रखनेके कारण सांसारिक व्यवहारोंमें प्रवृत्त नहीं हुए। वे सभी ज्ञानसम्पन्न, विरक्त और मत्सरादि दोषोंसे रहित थे। उनको संसार-रचनासे उदासीन देखकर महात्मा ब्रह्माजीको बड़ा क्रोध हुआ।

उस समय उनकी टेढ़ी भृकुटि और क्रोध-संतप्त ललाट-से दोपहरके सूर्यके समान तेजस्वी रुद्र उत्पन्न हुए। उनका शरीर बहुत बड़ा था। उनकी आधी देह स्त्रीकी और आधी पुरुषकी थी, वे अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए थे। ब्रह्माजीने उनसे कहा—'तुम अपने शरीरका विभाग करो' ऐसा कहकर वे अन्तर्धान हो गये।

ऐसा कहे जानेपर रुद्रने अपने शरीरस्थ स्त्री और पुरुष दोनों भागोंको अलग-अलग कर दिया और फिर पुरुषभाग-को ग्यारह भागोंमें विभक्त किया तथा स्त्री-भागको भी सौम्य, क्रूर, शान्त, अशान्त और श्याम, गौर आदि कई रूपोंमें विभक्त कर दिया।

तदनन्तर ब्रह्माजीने अपनेसे उत्पन्न अपने ही स्वरूपभूत स्वायम्भुवको प्रजा-पालनके लिये प्रथम मनु बनाया। उन स्वायम्भुव मनुने अपने ही साथ उत्पन्न हुई तपके कारण निष्पाप शतरूपा नामकी स्त्रीको अपनी पत्नीरूपसे ग्रहण किया। धर्मज्ञ! उन स्वायम्भुव मनुसे शतरूपा देवीने प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र तथा उदार, रूप और गुणोंसे सम्पन्न प्रसूति और आकूति नामकी दो कन्याएँ उत्पन्न कीं। उनमेंसे प्रसूतिको दक्षके साथ तथा आकूतिको रुचि प्रजापतिके साथ विवाह दिया।

महाभाग! रुचि प्रजापतिने उसे ग्रहण कर लिया। तब उन दम्पतीके यज्ञ और दक्षिणा—ये युगल (जुड़वाँ) सन्तान उत्पन्न हुईं। तथा दक्षने प्रसूतिसे चौबीस कन्याएँ उत्पन्न कीं। उनके शुभ नाम सुनो—श्रद्धा, लक्ष्मी ([illegible]), धृति, तुष्टि, मेधा, पुष्टि, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि और तेरहवीं कीर्ति—इन दक्ष-कन्याओंको धर्मने पत्नीरूपसे ग्रहण किया। इनसे छोटी शेष ग्यारह कन्याएँ ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्नति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा और स्वधा थीं। मुनिसत्तम! इन ख्याति आदि कन्याओंको क्रमशः भृगु, शिव, मरीचि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अत्रि, वसिष्ठ, अग्नि और पितरोंने ग्रहण किया।

श्रद्धाने काम, चलाने दर्प, धृतिने नियम, तुष्टिने सन्तोष और पुष्टिने लोभको उत्पन्न किया। तथा मेधाने श्रुत, क्रियाने दण्ड, नय और विनय, बुद्धिने बोध, लज्जाने विनय, वपुने अपने पुत्र व्यवसाय, शान्तिने क्षेम, सिद्धिने सुख और कीर्तिने यशको जन्म दिया; ये ही धर्मके पुत्र हैं। रतिने कामसे धर्मके पौत्र हर्षको उत्पन्न किया।

अधर्मकी स्त्री हिंसा थी; उससे अनृत नामक पुत्र और निकृति नामकी कन्या उत्पन्न हुई। उन दोनोंसे भय और नरक नामके पुत्र तथा उनकी पत्नियाँ माया और वेदना नामकी कन्याएँ हुईं। उनमेंसे मायाने समस्त प्राणियोंका संहारकर्ता मृत्यु नामक पुत्र उत्पन्न किया। वेदनाने भी रौरव (नरक) के द्वारा अपने पुत्र दुःखको जन्म दिया और मृत्युसे व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा और क्रोधकी उत्पत्ति हुई। ये सब अधर्मरूप हैं और 'दुःखोत्तर' नामसे प्रसिद्ध हैं; इनके न कोई स्त्री है और न संतान; ये सब ऊर्ध्वरेता हैं। मुनिकुमार! ये ही संसारके नित्य प्रलयके कारण होते हैं। महाभाग! दक्ष, मरीचि, अत्रि और भृगु आदि प्रजापतिगण इस जगत्‌के नित्य-सर्गके कारण हैं तथा मनु और मनुके पराक्रमी, सन्मार्गपरायण और शूरवीर पुत्र राजागण इस संसारकी सदा रक्षा करनेवाले हैं।

श्रीमैत्रेयजी बोले—ब्रह्मन्! आपने जो नित्य-स्थिति, नित्य-सर्ग और नित्य-प्रलयका उल्लेख किया सो कृपा करके मुझसे इनका स्वरूप वर्णन कीजिये।

श्रीपराशरजीने कहा—जिनकी गति कहीं नहीं रुकती, वे अचिन्त्यात्मा सर्वव्यापक भगवान् श्रीहरि निरन्तर इन मनु आदि रूपोंसे संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और नाश करते रहते हैं। द्विज ! समस्त भूतोंका प्रलय चार प्रकारका है—नैमित्तिक, प्राकृतिक, आत्यन्तिक और नित्य । उनमेंसे 'नैमित्तिक प्रलय' ही ब्राह्म-प्रलय है, जिसमें जगत्पति ब्रह्माजी कल्पान्तमें शयन करते हैं तथा 'प्राकृतिक प्रलय'में (ब्रह्माजी-सहित) ब्रह्माण्ड प्रकृतिमें लीन हो जाता है । ज्ञानके द्वारा योगीका परमात्मामे लीन हो जाना 'आत्यन्तिक प्रलय' है और रात-दिन जो भूतोंका क्षय होता है वही 'नित्य प्रलय' है । प्रकृतिसे महत्तत्त्वादि-क्रमसे जो सृष्टि होती है, वह 'प्राकृतिक सृष्टि' कहलाती है और अवान्तर-प्रलयके अनन्तर जो ब्रह्माके द्वारा चराचर जगत्की उत्पत्ति होती है वह 'दैनन्दिनी (नैमित्तिक) सृष्टि' कही जाती है और मुनिश्रेष्ठ ! जिसमें प्रतिदिन प्राणियोंकी उत्पत्ति होती रहती है उसे 'नित्य सृष्टि' कहा गया है ।

इस प्रकार समस्त शरीरोंमें स्थित भूतभावन भगवान् श्रीहरि जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करते रहते हैं। मैत्रेय ! सृष्टि, स्थिति और विनाशसम्बन्धी इन श्रीहरिकी शक्तियोंका समस्त शरीरोंमें समान भावसे अहर्निश संचार होता रहता है । ब्रह्मन् ! ये तीनों महती शक्तियाँ त्रिगुणमयी हैं; अतः जो उन तीनों गुणोंका अतिक्रमण कर जाता है वह परम पदको ही प्राप्त कर लेता है, फिर जन्म-मरणादिके चक्रमें नहीं पड़ता ।

रौद्र-सृष्टि और भगवान् तथा लक्ष्मीजीकी सर्वव्यापकताका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—महामुने ! मैंने तुमसे ब्रह्माजीके तामस सर्गका वर्णन किया; अब मैं रुद्र-सर्गका वर्णन करता हूँ, सो सुनो । कल्पके आदिमें अपने समान पुत्र उत्पन्न होनेके लिये चिन्तन करते हुए ब्रह्माजीकी गोदमें नीललोहित वर्णके एक कुमारका प्रादुर्भाव हुआ । द्विजोत्तम ! जन्मके अनन्तर ही वह जोर-जोरसे रोने और इधर-उधर दौड़ने लगा । उसे रोता देख ब्रह्माजीने उससे पूछा—'तू क्यों रोता है ?' उसने कहा—'मेरा नाम रक्खो ।' तब ब्रह्माजी बोले—'देव ! तेरा नाम 'रुद्र' है; अब तू मत रो, धैर्य धारण कर ।' ऐसा कहनेपर भी वह सात बार और रोया तब भगवान् ब्रह्माजीने उसके सात नाम और रक्खे तथा उन आठोंके स्थान, स्त्री और पुत्र भी निश्चित किये । द्विज ! प्रजापतिने उसे भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र और महादेव कहकर सम्बोधन किया; यही उसके नाम रक्खे और इनके स्थान भी निश्चित किये । सूर्य, जल, पृथिवी, वायु, अग्नि, आकाश, यज्ञमें दीक्षित ब्राह्मण और चन्द्रमा—ये क्रमशः उनकी मूर्तियाँ हैं । द्विजश्रेष्ठ ! रुद्र आदि नामोंके साथ उन सूर्य आदि मूर्तियोंकी क्रमशः सुवर्चला, ऊषा, विकेशी, अपरा, शिवा, स्वाहा, दिशा, दीक्षा और रोहिणी नामकी पत्नियाँ हैं । महाभाग ! अब उनके पुत्रोंके नाम सुनो । उन्हींके पुत्र-पौत्रादिसे यह सम्पूर्ण जगत् परिपूर्ण है । शनैश्चर, शुक्र, लोहिताङ्ग, मनोजव, स्कन्द, सर्ग, संतान और बुध—ये क्रमशः उनके पुत्र हैं। ऐसे भगवान् रुद्रने प्रजापति दक्षकी अनिन्दिता पुत्री सतीको अपनी भार्यारूपसे ग्रहण किया । उस सतीने दक्षपर कुपित होनेके कारण अपना शरीर त्याग दिया था । द्विजसत्तम ! फिर वह मेनाके गर्भसे हिमाचलकी पुत्री (उमा) हुई । भगवान् शङ्करने उस अनन्यपरायणा उमासे विवाह किया । भृगुके

द्वारा ख्यातिने धाता और विधाता नामक दो देवताओंको तथा लक्ष्मीजीको जन्म दिया, जो देवाधिदेव भगवान् विष्णुकी पत्नी हुईं।

द्विजोत्तम ! जिनका कभी तिरोभाव नहीं होता, वे जगज्जननी लक्ष्मीजी तो नित्य ही हैं और जिस प्रकार श्रीविष्णुभगवान् सर्वव्यापक हैं, वैसे ही ये भी हैं। विष्णु अर्थ हैं और ये वाणी हैं, हरि न्याय हैं और ये नीति हैं, भगवान् विष्णु बोध हैं और ये बुद्धि हैं तथा वे धर्म हैं और ये सत्क्रिया हैं। मैत्रेय ! भगवान् विष्णु जगत्के स्रष्टा हैं और लक्ष्मीजी सृष्टिशक्ति हैं; भगवान् संतोष हैं और लक्ष्मीजी नित्य-तुष्टि हैं। भगवान् काम हैं और लक्ष्मीजी इच्छा हैं। वे यज्ञ हैं और ये दक्षिणा हैं। जगत्पति भगवान् वासुदेव हुताशन हैं और लक्ष्मीजी स्वाहा हैं। भगवान् विष्णु शङ्कर हैं और श्रीलक्ष्मीजी गौरी हैं; श्रीकेशव सूर्य हैं और श्रीलक्ष्मीजी उनकी प्रभा हैं। श्रीविष्णु पितृगण हैं और श्रीकमला स्वधा हैं; भगवान् श्रीधर चन्द्रमा हैं और श्रीलक्ष्मीजी उनकी अक्षय कान्ति हैं। महामुने ! श्रीगोविन्द समुद्र हैं और लक्ष्मीजी उसकी तरंग हैं। भगवान् मधुसूदन देवराज इन्द्र हैं और लक्ष्मीजी इन्द्राणी हैं। चक्रपाणि भगवान् यम हैं और श्रीकमला यमपत्नी धूमोर्णा हैं; देवाधिदेव श्रीविष्णु कुबेर हैं और श्रीलक्ष्मीजी साक्षात् ऋद्धि हैं। श्रीकेशव स्वयं वरुण हैं और महाभागा लक्ष्मीजी गौरी हैं। हे द्विजराज ! श्रीहरि देवसेनापति स्वामिकार्तिकेय हैं और श्रीलक्ष्मीजी देवसेना हैं। सर्वेश्वर सर्वपति श्रीहरि दीपक हैं और श्रीलक्ष्मीजी ज्योत्स्ना (रोशनी) हैं। श्रीविष्णु वृक्षरूप हैं और श्रीलक्ष्मीजी लता हैं। चक्रगदाधरदेव श्रीविष्णु दिन हैं और लक्ष्मीजी रात्रि हैं। वरदायक श्रीहरि वर हैं और पद्मनिवासिनी श्रीलक्ष्मीजी वधू हैं। भगवान् नद हैं और श्रीजी नदी हैं। हे मैत्रेय ! अधिक क्या कहा जाय ! संक्षेपमें यों कहा जाता है कि देव, तिर्यक् और मनुष्य आदिमें पुरुषवाची भगवान् हरि हैं और स्त्रीवाची श्रीलक्ष्मीजी हैं; इनके परे और कोई नहीं है *।

दुर्वासाजीके शापसे इन्द्रका श्रीहीन होना, ब्रह्माजीकी स्तुतिसे प्रसन्न हुए भगवान्का प्रकट होकर देवताओंको समुद्र-मन्थनके लिये प्रेरित करना तथा देवता और दैत्योंका समुद्रमन्थन एवं देवताओंका पुनः श्रीसम्पन्न होना

श्रीपराशरजी कहते हैं—मैत्रेय ! एक बार शंकरके अंशावतार श्रीदुर्वासाजी पृथिवीतलमें विचर रहे थे। घूमते-घूमते उन्होंने एक विद्याधरीके हाथोंमें सन्तानक पुष्पोंकी एक दिव्य माला देखी । ब्रह्मन् ! उसकी गन्धसे सुवासित होकर वह वन वनवासियोंके लिये अति सेवनीय हो रहा था। तब उन विप्रवरने वह सुन्दर माला देखकर उसे उस विद्याधर-सुन्दरीसे माँगा । उनके माँगनेपर उस विद्याधरीने उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम करके वह माला दे दी।

उन विप्रवरने उसे लेकर अपने मस्तकपर डाल लिया और वे पृथिवीपर विचरने लगे। इसी समय उन्होंने उन्मत्त ऐरावतपर चढ़कर देवताओंके साथ आते हुए शचीपति इन्द्रको देखा। उन्हें देखकर मुनिवर दुर्वासाने वह माला अपने सिरपरसे उतारकर देवराज इन्द्रके ऊपर फेंक दी । देवराजने उसे लेकर ऐरावतके मस्तकपर डाल दिया; उस मदोन्मत्त हाथीने भी उसकी गन्धसे आकर्षित हो उसे सूँडसे सूँघकर पृथिवीपर फेंक दिया । मैत्रेय ! यह देखकर मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाजी अति क्रोधित हुए और देवराज इन्द्रसे इस प्रकार बोले ।

* देवतिर्यङ्मनुष्यादौ पुन्नामा भगवान् हरिः । स्त्रीनाम्नी श्रीश्च विज्ञेया नानयोर्विद्यते परम् ॥ (वि० पु० १।८।३५)

इसी भावको प्रकट करते हुए श्रीतुलसीदासजी महाराज कहते हैं—

सीय राममय सब जग जानी । करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥

दुर्वासाजीने कहा—अरे ऐश्वर्यके मदसे दूषितचित्त इन्द्र ! तू बड़ा ढीठ है, तूने मेरी दी हुई मालाको पृथिवीपर फेंका है। इसलिये तेरा यह त्रिभुवन भी शीघ्र ही श्रीहीन हो जायगा।

श्रीपराशरजी कहते हैं—तब तो इन्द्र तुरंत ही ऐरावत हाथीसे उतरकर सरल हृदय मुनिवर दुर्वासाजीको अनुनय-विनय करके मनाने लगे। इस प्रकार प्रणामादिपूर्वक उनके मनानेपर मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाजीने यों कहा।

दुर्वासाजी बोले—अरे ! आज त्रिलोकीमें ऐसा कौन है जो मेरे प्रज्वलित जटाकलाप और टेढी भृकुटिको देखकर भयभीत न हो जाय ? रे शतक्रतो ! तू बारंबार अनुनय-विनय करनेका ढोंग क्यों करता है ? तेरे इस कहने-सुननेसे क्या होगा ? मै क्षमा नहीं कर सकता।

श्रीपराशरजी कहते हैं—ब्रह्मन् ! इस प्रकार कहकर वे विप्रवर वहाँसे चल दिये और इन्द्र भी ऐरावतपर चढ़कर अमरावतीको चले गये। मैत्रेय ! तभीसे इन्द्रके सहित तीनों लोक वृक्ष-लता आदिके क्षीण हो जानेसे श्रीहीन और नष्ट-भ्रष्ट होने लगे। तबसे यज्ञोंका होना बंद हो गया और सम्पूर्ण लोक लोभादिके वशीभूत हो जानेसे सत्त्वशून्य (सामर्थ्यहीन) हो गये। श्रीहीनोंमें भला सत्त्व कहाँ ? और बिना सत्त्वके गुण कैसे ठहर सकते हैं ? बिना गुणोंके पुरुषमें बल, शौर्य आदि सभीका अभाव हो जाता है और निर्बल तथा अशक्त पुरुष सभीसे अपमानित होता है। अपमानित होनेपर प्रतिष्ठित पुरुषकी बुद्धि बिगड़ जाती है।

इस प्रकार त्रिलोकीके श्रीहीन और सत्त्वरहित हो जानेपर दैत्य और दानवोंने देवताओंपर चढ़ाई कर दी। दैत्योंने लोभवश निःसत्त्व और श्रीहीन देवताओंसे घोर युद्ध ठाना। अन्तमें दैत्योंद्वारा देवतालोग परास्त हुए। तब इन्द्रादि समस्त देवगण अग्निदेवको आगे कर महाभाग पितामह श्रीब्रह्माजीकी शरण गये। देवताओंसे सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर श्रीब्रह्माजीने उनसे कहा, 'देवताओ ! तुम दैत्य-दलन परावरेश्वर भगवान् विष्णुकी शरणमें जाओ, जो संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और संहारके कारण हैं, जो चराचरके ईश्वर, प्रजापतियोंके स्वामी, सर्वव्यापक, अनन्त और अजेय हैं तथा जो अजन्मा एवं शरणागतवत्सल हैं। शरणमें जानेपर वे अवश्य तुम्हारा मङ्गल करेंगे।'

मैत्रेय ! सम्पूर्ण देवगणोंसे इस प्रकार कह लोकपितामह श्रीब्रह्माजी भी उनके साथ क्षीरसागरके उत्तरी तटपर गये। वहाँ पहुँचकर पितामह ब्रह्माजीने समस्त देवताओंके साथ परावरनाथ श्रीविष्णुभगवान्‌की अति मङ्गलमय वाक्योंसे स्तुति की।

ब्रह्माजी बोले—जो समस्त अणुओंसे भी अणु और समस्त गुरुओंसे भी गुरु (भारी) हैं, उन निखिललोक-विश्राम, पृथिवीके आधारस्वरूप, सर्वेश्वर, अनन्त, अज और अव्यय नारायणको मैं नमस्कार करता हूँ। मेरे सहित सम्पूर्ण जगत् जिसमें स्थित है, जिससे उत्पन्न हुआ है, मुक्ति-लाभके लिये मोक्षकामी मुनिजन जिसका ध्यान करते हैं तथा जिस ईश्वरमें सत्त्वादि प्राकृतिक गुणोंका सर्वथा अभाव है, जो समस्त शुद्ध पदार्थोंसे भी परम शुद्ध परमात्मस्वरूप आदिपुरुष और समस्त देहधारियोंके आत्मा हैं, वे श्रीविष्णुभगवान् हमपर प्रसन्न हों। जो विशुद्ध बोधस्वरूप, नित्य, अजन्मा, अक्षय, अव्यय, अव्यक्त और अविकारी है वही विष्णुका परम पद (परस्वरूप) है। जो न स्थूल है न सूक्ष्म और न किसी अन्य विशेषणका विषय है, वही भगवान् विष्णुका नित्यनिर्मल परम पद है; हम उसको प्रणाम करते हैं। नित्ययुक्त योगिगण अपने पुण्य-पापादिका क्षय हो जानेपर ॐकारद्वारा चिन्तनीय जिस अविनाशी पदका साक्षात्कार करते हैं, वही भगवान् विष्णुका परम पद है। जिसको देवगण, मुनिगण, शंकर और मैं—कोई भी नहीं जान सकते, वही परमेश्वर श्रीविष्णुका परम पद है। जिस अभूतपूर्व देवकी ब्रह्मा, विष्णु और शिव-रूप शक्तियाँ हैं, वही भगवान् विष्णुका परम पद है। सर्वेश्वर !

सर्वभूतात्मन्! सर्वरूप! सर्वाधार! अच्युत! विष्णो! हम भक्तोंपर प्रसन्न होकर हमें दर्शन दीजिये।

श्रीपराशरजी कहते हैं—ब्रह्माजीके इन उद्गारोंको सुनकर देवगण भी प्रणाम करके बोले—'प्रभो! हमपर प्रसन्न होकर हमें दर्शन दीजिये। जगद्धाम सर्वगत अच्युत! जिसे ये भगवान् ब्रह्माजी भी नहीं जानते, आपके उस परम पदको हम प्रणाम करते हैं।'

तदनन्तर समस्त देवर्षिगण कहने लगे—'जो परम स्तवनीय आद्य यज्ञ-पुरुष हैं और पूर्वजोंके भी पूर्वपुरुष हैं, उन जगत्के रचयिता निर्विशेष परमात्माको हम नमस्कार करते हैं। अव्यय! हम सब शरणागतोंपर आप प्रसन्न होइये और दर्शन दीजिये। नाथ! हमारे सहित ये ब्रह्माजी, रुद्रोंके सहित भगवान् शंकर, बारहों आदित्योंके सहित भगवान् पूषा, अग्नियोंके सहित पावक और ये दोनों अश्विनीकुमार, आठों वसु, समस्त मरुद्गण, साध्यगण, विश्वेदेव तथा देवराज इन्द्र—ये सभी देवगण दैत्य-सेनासे पराजित होकर अति प्रणत हो आपकी शरणमें आये हैं।'

मैत्रेय! इस प्रकार स्तुति किये जानेपर शङ्ख-चक्रधारी भगवान् परमेश्वर उनके सम्मुख प्रकट हुए। तब उस शङ्ख-चक्र-गदाधारी उत्कृष्ट तेजोराशिमय अपूर्व दिव्य मूर्तिको देखकर पितामह आदि समस्त देवगण अति विनयपूर्वक प्रणाम कर उन कमलनयन भगवान्‌की फिर स्तुति करने लगे।

देवगण बोले—प्रभो! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप निर्विशेष हैं तथापि आप ही ब्रह्मा हैं, आप ही शंकर हैं तथा आप ही इन्द्र, अग्नि, पवन, वरुण, सूर्य और यमराज हैं। देव! वसुगण, मरुद्गण, साध्यगण और विश्वेदेवगण भी आप ही हैं तथा आपके सम्मुख जो यह देवसमुदाय है तथा वह जगत्स्रष्टा ब्रह्मा भी आप ही हैं। सर्वात्मन्! सम्पूर्ण जगत् आपका ही स्वरूप है। विष्णो! दैत्योंसे परास्त हुए हम आतुर होकर आपकी शरणमें आये हैं; प्रभो! जबतक जीव सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाले आपकी शरणमें नहीं जाता, तभीतक उसमें पीड़ा, चिन्ता, इच्छा, मोह और दुःख आदि रहते हैं। प्रसन्नात्मन्! हम शरणागतोंपर आप प्रसन्न होइये और नाथ! अपनी शक्तिसे हम सब देवताओंके खोये हुए तेजको फिर बढ़ाइये।

श्रीपराशरजी कहते हैं—शरणागत देवताओंद्वारा इस प्रकार स्तुति किये जानेपर विश्वकर्ता भगवान् हरि प्रसन्न होकर इस प्रकार बोले—देवगण! मैं तुम्हारे तेजको फिर बढ़ाऊँगा; तुम, इस समय मैं जो कुछ कहता हूँ वह करो। तुम दैत्योंके साथ सम्पूर्ण ओषधियाँ लाकर अमृतके लिये क्षीर-सागरमें डालो और मन्दराचलको मथानी तथा वासुकि नागको नेती बनाकर उसे दैत्य और दानवोंके सहित मेरी सहायतासे मथकर अमृत निकालो।

देवदेव भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेपर सभी देवगण दैत्योंसे सन्धि करके अमृतप्राप्तिके लिये यत्न करने लगे। मैत्रेय! देव, दानव और दैत्योंने नाना प्रकारकी ओषधियाँ लाकर उन्हें शरद्-ऋतुके आकाशकी-सी निर्मल कान्तिवाले क्षीरसागरके जलमें डाला और मन्दराचलको मथानी तथा वासुकि नागको नेती बनाकर बड़े वेगसे मथना आरम्भ किया। भगवान्‌ने जिस ओर वासुकिकी पूँछ थी उस ओर देवताओंको तथा जिस ओर मुख था उधर दैत्योंको नियुक्त किया। महामते! भगवान् स्वयं कूर्मरूप धारणकर क्षीर-सागरमें घूमते हुए मन्दराचलके आधार हुए और वे ही चक्र-गदाधर भगवान् अपने एक अन्य रूपसे देवताओंमें और एक रूपसे दैत्योंमें मिलकर नागराजको खींचने लगे। मैत्रेय! एक अन्य विशालरूपसे जो देवता और दैत्योंको दिखायी नहीं देता था, श्रीकेशवने ऊपरसे पर्वतको दबा रक्खा था। भगवान् श्रीहरि अपने तेजसे नागराज वासुकिमें बलका संचार करते थे और अपने अन्य तेजसे वे देवताओंका बल बढ़ा रहे थे।

इस प्रकार देवता और दानवोंद्वारा क्षीरसमुद्रके मथे जानेपर पहले हवि (यज्ञ-सामग्री) की आश्रयरूपा सुरभि (कामधेनु) उत्पन्न हुई। फिर मदसे घूमते हुए नेत्रोंवाली वारुणीदेवी प्रकट हुई और पुनः मन्थन करनेपर उस क्षीरसागरसे अपनी गन्धसे त्रिलोकीको सुगन्धित करनेवाला कल्पवृक्ष उत्पन्न हुआ। मैत्रेय! तत्पश्चात् क्षीरसागरसे अप्सराएँ प्रकट हुईं। फिर चन्द्रमा प्रकट हुआ, जिसे महादेवजीने ग्रहण कर लिया। इसी प्रकार क्षीरसागरसे उत्पन्न हुए विषको नागोंने ग्रहण किया। फिर श्वेतवस्त्रधारी साक्षात् भगवान् धन्वन्तरिजी अमृतसे भरा कमण्डलु लिये प्रकट हुए। मैत्रेय! उस समय मुनिगणके सहित समस्त दैत्य और दानवगण स्वस्थ-चित्त होकर अति प्रसन्न हुए।

उसके पश्चात् श्रीलक्ष्मीदेवी हाथमें कमल धारण किये क्षीरसमुद्रसे प्रकट हुईं। उस समय महर्षिगण अति प्रसन्नतापूर्वक श्रीसूक्तद्वारा उनकी स्तुति करने लगे तथा विश्वावसु

आदि गन्धर्वगण उनके सम्मुख गाने लगे। उन्हें अपने जलसे स्नान करानेके लिये गङ्गा आदि नदियाँ स्वय उपस्थित हुईं और दिग्गजोंने सोनेके कलशोंमें निर्मल जल लेकर उसके

द्वारा सर्वलोकमहेश्वरी श्रीलक्ष्मीदेवीको स्नान कराया। क्षीर-सागरने मूर्तिमान् होकर उन्हें कमल-पुष्पोंकी एक ऐसी माला दी जिसके कमल कभी कुम्हलाते न थे। विश्वकर्माने उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें विविध आभूषण पहनाये। इस प्रकार दिव्य माला और वस्त्र धारण कर, दिव्य जलसे स्नान कर, दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हो श्रीलक्ष्मीजी सम्पूर्ण देवताओंके देखते-देखते श्रीविष्णुभगवान्‌के वक्षःस्थलमें विराजमान हुईं।

मैत्रेय! श्रीहरिके वक्षःस्थलमें विराजमान श्रीलक्ष्मीजीके दृष्टिपात करनेसे देवताओंको अकस्मात् अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त हुई और भगवान् विष्णुसे विमुख रहनेवाले दैत्यगण अत्यन्त उद्विग्न हो उठे। तब उन महाबलवान् दैत्योंने श्रीधन्वन्तरिजीके हाथमें स्थित वह कमण्डलु छीन लिया, जिसमें अति उत्तम अमृत भरा हुआ था। तदनन्तर स्त्री (मोहिनी) रूपधारी भगवान् विष्णुने अपनी मायासे दानवोंको मोहित करके उनसे वह कमण्डलु लेकर देवताओंको दे दिया।

तब इन्द्र आदि देवगण उस अमृतको पी गये; इससे दैत्यलोग अति तीक्ष्ण खड्ग आदि शस्त्रोंसे सुसज्जित हो उनके ऊपर टूट पड़े; किंतु अमृत-पानके कारण बलवान् हुए देवताओंद्वारा मारी-काटी जाकर दैत्योंकी सम्पूर्ण सेना दिशा-विदिशाओंमें भाग गयी और पाताललोकमें चली गयी। फिर देवगण प्रसन्नतापूर्वक शङ्ख-चक्र-गदाधारी भगवान्‌को प्रणाम कर पहलेके ही समान स्वर्गका शासन करने लगे।

मुनिश्रेष्ठ! उसी समयसे समस्त प्राणियोंकी धर्ममें प्रवृत्ति हो गयी तथा त्रिलोकी श्रीसम्पन्न हो गयी। तदनन्तर इन्द्रने स्वर्गलोकमें जाकर फिरसे देवराज्यपर अधिकार पाया और राजसिंहासनपर आरूढ़ हो पद्महस्ता श्रीलक्ष्मीजीकी इस प्रकार स्तुति की।

इन्द्र बोले—सम्पूर्ण लोकोंकी जननी, विकसित कमलके सदृश नेत्रोंवाली, भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें विराजमान कमलोद्भवा श्रीलक्ष्मीदेवीको मैं नमस्कार करता हूँ। कमल ही जिनका निवासस्थान है, कमल ही जिनके कर-कमलोंमें सुशोभित है तथा कमल-दलके समान ही जिनके नेत्र हैं, उन कमलमुखी कमलनाभ-प्रिया श्रीकमलादेवीकी मैं वन्दना करता हूँ। देवि! तुम सिद्धि हो, स्वधा हो, स्वाहा हो, सुधा हो और त्रिलोकीको पवित्र करनेवाली हो तथा तुम ही संध्या, रात्रि, प्रभा, विभूति, मेधा, श्रद्धा और सरस्वती हो। शोभने! यज्ञविद्या (कर्मकाण्ड), महाविद्या (उपासना) और गुह्यविद्या (इन्द्रजाल) तुम्हीं हो तथा देवि! तुम्हीं मुक्ति-फल-दायिनी आत्मविद्या हो। देवि! आन्वीक्षिकी (तर्कविद्या), वेदत्रयी, वार्ता (शिल्प-वाणिज्यादि) और दण्डनीति (राजनीति) भी तुम्हीं हो। तुम्हींने अपने शान्त और उग्र रूपोंसे यह समस्त संसार व्याप्त कर रक्खा है। देवि! तुम्हारे सिवा दूसरी कौन स्त्री है जो देवदेव भगवान् गदाधरके योगिध्येय सर्वयज्ञमय शरीरका आश्रय पा सके। देवि! तुम्हारे छोड़ देनेपर सम्पूर्ण त्रिलोकी नष्टप्राय हो गयी थी; अब तुम्हींने उसे पुनः अभ्युदय एवं जीवन-दान दिया है। महाभागे! स्त्री, पुत्र, गृह, धन, धान्य तथा सुहृद्—ये सब सदा तुम्हारे ही दृष्टिपातसे मनुष्योंको मिलते हैं। देवि! तुम्हारी कृपा-दृष्टिके पात्र पुरुषोंके लिये शारीरिक आरोग्य, ऐश्वर्य, शत्रु-पक्षका नाश और सुख आदि कुछ भी दुर्लभ नहीं हैं। तुम सम्पूर्ण लोकोंकी माता हो और देवदेव भगवान् हरि पिता हैं। मातः! तुमसे और श्रीविष्णुभगवान्‌से यह सकल चराचर जगत् व्याप्त है। सबको पवित्र करनेवाली देवि! हमारे कोश (खजाना), गोष्ठ (पशु-शाला), गृह, भोगसामग्री, शरीर

और स्त्री आदिको तुम कभी मत त्यागना अर्थात् इनमें सदा भरपूर रहना। विष्णुवक्षःस्थल-निवासिनि! हमारे पुत्र, सुहृद्, पशु और भूषण आदिको तुम कभी न छोड़ना। अमले! जिन मनुष्योंको तुम छोड़ देती हो, उन्हें सत्त्व (मानसिक बल), सत्य, शौच और शील आदि गुण भी शीघ्र ही त्याग देते हैं और तुम्हारी कृपा-दृष्टि होनेपर तो गुणहीन पुरुष भी शीघ्र ही शील आदि सम्पूर्ण गुण और कुलीनता तथा ऐश्वर्य आदिसे सम्पन्न हो जाते हैं। देवि! जिसपर तुम्हारी कृपा-दृष्टि है—वही प्रशंसनीय है, वही गुणी है, वही धन्य है, वही कुलीन और बुद्धिमान् है तथा वही शूरवीर और पराक्रमी है। विष्णुप्रिये! जगज्जननि! तुम जिससे विमुख होती हो, उसके तो शील आदि सभी गुण तुरंत अवगुणरूप हो जाते हैं। देवि! तुम्हारे गुणोंका वर्णन करनेमें तो श्रीब्रह्माजीकी रसना भी समर्थ नहीं है। फिर मैं क्या कर सकता हूँ? अतः कमलनयने! अब मुझपर प्रसन्न होओ और मुझे कभी न छोड़ो*।

इस प्रकार स्तुति करनेपर श्रीलक्ष्मीजी बोलीं—हे शतक्रतो इन्द्र! मैं तुम्हारे इस स्तोत्रसे अति प्रसन्न हूँ; तुमको जो अभीष्ट हो वही वर माँग लो। मैं तुम्हें वर देनेके लिये ही यहाँ आयी हूँ।'

इन्द्र बोले—देवि! यदि आप वर देना चाहती हैं और मैं भी यदि वर पाने योग्य हूँ तो मुझको पहला वर तो यही दीजिये कि आप इस त्रिलोकीका कभी त्याग न करें और समुद्रसम्भवे! दूसरा वर मुझे यह दीजिये कि जो कोई आपकी इस स्तोत्रसे स्तुति करे, उसे आप कभी न त्यागें।

श्रीलक्ष्मीजी बोलीं—देवश्रेष्ठ इन्द्र! मैं अब इस त्रिलोकीको कभी त्याग नहीं करूँगी तथा जो कोई प्रातःकाल और सायंकालके समय इस स्तोत्रसे मेरी स्तुति करेगा उससे भी मैं कभी विमुख न होऊँगी।

श्रीपराशरजी बोले—मैत्रेय! लक्ष्मीजी पहले भृगुजीके द्वारा ख्याति नामक स्त्रीसे उत्पन्न हुई थीं, फिर अमृत-मन्थनके समय देव और दानवोंके प्रयत्नसे ये समुद्रसे प्रकट हुईं। इस प्रकार संसारके स्वामी देवाधिदेव श्रीविष्णुभगवान् जब-जब अवतार धारण करते हैं, तब-तब लक्ष्मीजी उनके साथ रहती हैं। श्रीहरिके राम होनेपर ये सीताजी हुईं और श्रीकृष्णावतारमें श्रीरुक्मिणीजी हुईं। इसी प्रकार अन्य अवतारोंमें भी ये भगवान्से कभी पृथक् नहीं होतीं। भगवान्के देवरूप होनेपर ये दिव्य शरीर धारण करती हैं और मनुष्यरूप होनेपर मानवीरूपसे प्रकट होती हैं। विष्णुभगवान्के शरीरके अनुरूप ही ये अपना शरीर भी प्रकट कर देती हैं। जो मनुष्य लक्ष्मीजीके जन्मकी इस कथाको सुनेगा

---

* नमस्ये सर्वलोकानां जननीमब्जसम्भवाम्।
श्रियमुन्निद्रपद्माक्षीं विष्णुवक्षःस्थलस्थिताम्॥
पद्मालयां पद्मकरां पद्मपत्रनिभेक्षणाम्।
वन्दे पद्ममुखीं देवीं पद्मनाभप्रियामहम्॥
त्वं सिद्धिस्त्वं स्वधा स्वाहा सुधा त्वं लोकपावनी।
सन्ध्या रात्रिः प्रभा भूतिर्मेधा श्रद्धा सरस्वती॥
यज्ञविद्या महाविद्या गुह्यविद्या च शोभने।
आत्मविद्या च देवि त्वं विमुक्तिफलदायिनी॥
आन्वीक्षिकी त्रयी वार्त्ता दण्डनीतिस्त्वमेव च।
सौम्यासौम्यैर्जगद्रूपैस्त्वयैतद्देवि पूरितम्॥
का त्वन्या त्वामृते देवि सर्वयज्ञमयं वपुः।
अध्यास्ते देवदेवस्य योगिचिन्त्यं गदाभृतः॥
त्वया देवि परित्यक्तं सकलं भुवनत्रयम्।
विनष्टप्रायमभवत्त्वयेदानीं समेधितम्॥
दाराः पुत्रास्तथागारसुहृद्धान्यधनादिकम्।
भवत्येतन्महाभागे नित्यं त्वद्वीक्षणान्नृणाम्॥
शरीरारोग्यमैश्वर्यमरिपक्षक्षयः सुखम्।
देवि त्वद्दृष्टिदृष्टानां पुरुषाणां न दुर्लभम्॥
त्वं माता सर्वलोकानां देवदेवो हरिः पिता।
त्वयैतद्विष्णुना चाम्ब जगद्व्याप्तं चराचरम्॥
मा नः कोशं तथा गोष्ठं मा गृहं मा परिच्छदम्।
मा शरीरं कलत्रं च त्यजेथाः सर्वपावनि॥
मा पुत्रान्मा सुहृद्वर्गं मा पशून्मा विभूषणम्।
त्यजेथा मम देवस्य विष्णोर्वक्षःस्थलालये॥
सत्त्वेन सत्यशौचाभ्यां तथा शीलादिभिर्गुणैः।
त्यज्यन्ते ते नराः सद्यः सन्त्यक्ता ये त्वयामले॥
त्वया विलोकिताः सद्यः शीलाद्यैरखिलैर्गुणैः।
कुलैश्वर्यैश्च युज्यन्ते पुरुषा निर्गुणा अपि॥
स श्लाघ्यः स गुणी धन्यः स कुलीनः स बुद्धिमान्।
स शूरः स च विक्रान्तो यस्त्वया देवि वीक्षितः॥
सद्यो वैगुण्यमायान्ति शीलाद्याः सकला गुणाः।
पराङ्मुखी जगद्धात्री यस्य त्वं विष्णुवल्लभे॥
न ते वर्णयितुं शक्ता गुणाञ्जिह्वापि वेधसः।
प्रसीद देवि पद्माक्षि मास्मांस्त्याक्षीः कदाचन॥

(वि० पु० १।९।११७—१३३)

अथवा पढ़ेगा उसके घरमें तीनों कुलोंके रहते हुए कभी लक्ष्मीका नाश न होगा। मुने! जिन घरोंमें लक्ष्मीजीके इस स्तोत्रका पाठ होता है, उनमें कलहकी आधारभूता दरिद्रता कभी नहीं ठहर सकती।

श्रीपराशरजी कहते हैं—भृगुजीके द्वारा ख्यातिसे विष्णुपत्नी लक्ष्मीजी और धाता, विधाता नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। महात्मा मेरुकी आयति और नियति नाम्नी कन्याएँ धाता और विधाताकी स्त्रियाँ थीं; उनसे उनके प्राण और मृकण्डु नामक दो पुत्र हुए। मृकण्डुसे मार्कण्डेय और उनसे वेदशिराका जन्म हुआ। प्राणका पुत्र द्युतिमान् और उसका पुत्र राजवान् हुआ। महाभाग! उस राजवान्से फिर भृगुवंशका बड़ा विस्तार हुआ। मरीचिकी पत्नी सम्भूतिने पौर्णमासको उत्पन्न किया। उस महात्माके विरजा और पर्वत दो पुत्र थे। अङ्गिराकी पत्नी स्मृति थी। उसके सिनीवाली, कुहू, राका और अनुमति नामकी कन्याएँ हुईं। अत्रिकी भार्या अनसूयाने चन्द्रमा, दुर्वासा और योगी दत्तात्रेय—इन निष्पाप पुत्रोंको जन्म दिया। पुलस्त्यकी स्त्री प्रीतिसे दत्तोलिका जन्म हुआ, जो अपने पूर्व जन्ममें स्वायम्भुव मन्वन्तरमें अगस्त्य कहा जाता था। प्रजापति पुलहकी पत्नी क्षमासे कर्दम, उर्वरीयान् और सहिष्णु—ये तीन पुत्र हुए। क्रतुकी संतति नामक भार्याने वालखिल्यादि साठ हजार ऊर्ध्वरेता मुनियोंको जन्म दिया। वसिष्ठकी ऊर्जा नाम स्त्रीसे रज, गोत्र, ऊर्ध्वबाहु, सवन, अनघ, सुतपा और शुक्र—ये सात पुत्र उत्पन्न हुए। ये निर्मल स्वभाववाले समस्त मुनिगण [तीसरे मन्वन्तरमें] सप्तर्षि हुए।

द्विज! अग्निदेव, जो ब्रह्माजीका ज्येष्ठ पुत्र है, उसके द्वारा स्वाहा नामक पत्नीसे अति तेजस्वी पावक, पवमान और शुचि—ये तीन पुत्र हुए। इन तीनोंके [प्रत्येकके पद्रह-पंद्रह पुत्रके क्रमसे] पैंतालीस संतान हुईं। पिता अग्नि और उसके तीन पुत्रोंको मिलाकर ये सब अग्नि ही कहलाते हैं इस प्रकार कुल उनचास (४९) अग्नि कहे गये हैं। द्विज! ब्रह्माजीद्वारा रचे गये अनग्निक, अग्निष्वात्त और साग्निक बर्हिषद् पितरोंके द्वारा स्वधाने मेना और धारिणी नामकी दो कन्याएँ उत्पन्न कीं। वे दोनों ही उत्तम ज्ञानसे सम्पन्न और सभी गुणोंसे युक्त ब्रह्मवादिनी तथा योगिनी थीं।

इस प्रकार यह दक्षकन्याओंकी वंशपरम्पराका वर्णन किया गया। जो कोई श्रद्धापूर्वक इसका स्मरण करता है, वह संतानहीन नहीं होता।

ध्रुवका वनगमन और मरीचि आदि ऋषियोंसे भेंट

श्रीपराशरजी कहते हैं—मैत्रेय! मैंने तुम्हें स्वायम्भुव मनुके प्रियव्रत एवं उत्तानपाद नामक दो महाबलवान् और धर्मज्ञ पुत्र बतलाये थे। ब्रह्मन्! उनमेंसे उत्तानपादकी प्रेयसी पत्नी सुरुचिसे पिताका अत्यन्त लाडला उत्तम नामक पुत्र हुआ। द्विज! उस राजाकी जो सुनीति नामकी राजमहिषी थी, उसमें उसका विशेष प्रेम न था। उसका पुत्र ध्रुव हुआ।

एक दिन राजसिंहासनपर बैठे हुए पिताकी गोदमें अपने भाई उत्तमको बैठे देख ध्रुवकी इच्छा भी गोदमें बैठनेकी हुई; किंतु राजाने अपनी प्रेयसी सुरुचिके सामने, गोदमें चढ़नेके लिये उत्कण्ठित होकर प्रेमवश आये हुए उस पुत्रका आदर नहीं किया। अपनी सौतके पुत्रको गोदमें चढ़नेके लिये उत्सुक और अपने पुत्रको गोदमें बैठे देख सुरुचि इस प्रकार कहने लगी—'अरे लल्ला! बिना मेरे पेटसे उत्पन्न हुए किसी अन्य स्त्रीका पुत्र होकर भी तू व्यर्थ क्यों ऐसा

बड़ा मनोरथ करता है ? तू मूर्ख है, इसीलिये ऐसी अलभ्य उत्तमोत्तम वस्तुकी इच्छा करता है। यह ठीक है कि तू भी इन्हीं राजाका पुत्र है, पर तुझे अपने गर्भमें तो मैंने धारण नहीं किया ! समस्त चक्रवर्ती राजाओंका आश्रयरूप यह राजसिंहासन तो मेरे ही (गर्भसे उत्पन्न) पुत्रके योग्य है; तू व्यर्थ क्यों अपने चित्तको संताप देता है। मेरे पुत्रके समान तुझे वृथा ही यह ऊँचा मनोरथ क्यों होता है ? क्या तू नहीं जानता कि तेरा जन्म सुनीतिसे हुआ है ?'

श्रीपराशरजी कहते हैं—द्विज ! विमाताके ऐसे कठोर वचन सुन वह बालक कुपित हो पिताको छोड़कर अपनी माताके महलको चल दिया। मैत्रेय ! जिसके ओष्ठ कुछ-कुछ काँप रहे थे, ऐसे अपने पुत्रको क्रोधयुक्त देख सुनीतिने उसे गोदमें बिठाकर पूछा—'बेटा ! तेरे क्रोधका क्या कारण है ? तेरा किसने आदर नहीं किया ? तेरा अपराध करके कौन तेरे पिताजीका अपमान करने चला है ?'

माताके ऐसा पूछनेपर ध्रुवने उनसे वे सब बातें कह दीं जो गर्वमें भरी हुई सुरुचिने उससे पिताके सामने कही थीं। अपने पुत्रके सिसक-सिसककर यों कहनेपर दुःखिनी सुनीतिने खिन्न-चित्त हो लंबी साँस खींचकर कातर दृष्टिसे देखते हुए कहा।

सुनीति बोली—बेटा ! सुरुचिने ठीक ही कहा है, अवश्य ही तू मन्दभाग्य है। तात ! तू व्याकुल मत हो, क्योंकि तूने पूर्वजन्मोंमें जो कुछ किया है, उसे दूर कौन कर सकता है ? और जो नहीं किया, वह तुझे दे भी कौन सकता है ? इसलिये तुझे उसके वाक्योंसे खेद नहीं करना चाहिये। बेटा ! जिसका पुण्य होता है उसीको राजासन, राजच्छत्र आदि मिलते हैं—ऐसा जानकर तू शान्त हो जा। पूर्वजन्मोंमें किये हुए पुण्य-कर्मोंके कारण ही सुरुचिमें राजाकी विशेष प्रीति है और पुण्यहीना होनेसे ही मुझ-जैसी स्त्री केवल 'भार्या' मात्र कही जाती है। उसी प्रकार उसका पुत्र उत्तम भी बड़ी पुण्यराशिसे सम्पन्न है और तू मेरा पुत्र मेरे समान ही अल्प पुण्यवाला है। तथापि बेटा ! तुझे दुखी नहीं होना चाहिये, क्योंकि जिस मनुष्यको जितना मिलता है, वह अपने उतनेमें ही मग्न रहता है और यदि सुरुचिके वाक्योंसे तुझे अत्यन्त दुःख ही हुआ है तो तू सर्वफलदायक पुण्यके संग्रह करनेका प्रयत्न कर। तू सुशील, पुण्यात्मा, प्रेमी और समस्त प्राणियोंका हितैषी बन; क्योंकि जैसे नीचेकी ओर ढलकता हुआ जल अपने-आप ही नीची भूमिपर [illegible] मनुष्यके पास स्वत ही [illegible]।

ध्रुव बोला—माताजी ! तुमने [illegible] करनेके लिये जो बात कही है [illegible] हृदयमें तनिक भी नहीं [illegible]। [illegible] प्रयत्न करूँगा जिससे सम्पूर्ण लोकोंसे [illegible] को प्राप्त कर सकूँ। यद्यपि [illegible] ही है और मैंने उसके उदरसे जन्म भी नहीं [illegible] माँ ! तुम्हारे ही गर्भमें बढ़े हुए होनेपर भी [illegible] देखना। उत्तम, जिसको उसने अपने गर्भमें धारण किया है, मेरा भाई है। पिताका दिया हुआ राजसिंहासन [illegible] करे। माताजी ! मैं किसी दूसरेके दिये हुए पदका [illegible] हूँ; मैं तो अपने पुरुषार्थसे ही उस पदकी [illegible] जिसको पिताजीने भी प्राप्त नहीं किया है।

श्रीपराशरजी कहते हैं—माताते [illegible] ध्रुव उसके महलसे निकल पड़ा और फिर नगरसे [illegible] बाहरी उपवनमें पहुँचा। वहाँ ध्रुवने पहलेसे ही [illegible] मुनीश्वरोंको काले मृगचर्मके बिछौनोंसे युक्त [illegible] देखा। उस राजकुमारने उन सबको प्रणाम करके [illegible] नम्रतापूर्वक कहा।

ध्रुवने कहा—महात्माओ ! मुझे आप सुनीतिसे [illegible] हुआ राजा उत्तानपादका पुत्र जानें। मैं [illegible] आपके निकट आया हूँ।

ऋषि बोले—राजकुमार ! [illegible] तो तू [illegible] बालक है। अभी तेरे निर्वेदका कोई [illegible] पड़ता। तेरे कोई चिन्ताका भी कारण नहीं है [illegible] पिता राजा जीवित हैं; और [illegible] गयी हो, ऐसा भी हमें दिखायी नहीं [illegible] शरीरमें कोई व्याधि भी नहीं दीख पड़ती। [illegible] का क्या कारण है ? यदि कोई हेतु हो तो [illegible]।

श्रीपराशरजी कहते हैं—[illegible] कुछ कहा था वह सब उसने [illegible] सुनाया। [illegible] ऋषिगण आपसमें इस प्रकार [illegible] कैसा प्रबल है जिससे बालकमें भी [illegible] अपनी विमाताके वचन [illegible] ध्रुवसे बोले—[illegible] जो कुछ करनेका निश्चय किया है [illegible]

यह भी कह कि हम तेरी क्या सहायता करें; क्योंकि हमें ऐसा प्रतीत होता है कि तू कुछ कहना चाहता है।'

ध्रुवने कहा—द्विजवरो ! मुझे न तो धनकी इच्छा है और न राज्यकी; मैं तो केवल एक उसी स्थानको चाहता हूँ जिसको अबसे पहले कभी किसीने प्राप्त न किया हो। मुनिश्रेष्ठ ! आपकी यही सहायता होगी कि आप मुझे भली प्रकार यह बता दें कि क्या करनेसे वह सबसे अग्रगण्य स्थान प्राप्त हो सकता है।

मरीचि बोले—राजपुत्र ! भगवान् श्रीगोविन्दकी आराधना किये बिना मनुष्यको वह श्रेष्ठ स्थान नहीं मिल सकता। अतः तू श्रीअच्युतकी आराधना कर।

अत्रि बोले—जो परा प्रकृति आदिसे भी परे हैं, वे परम पुरुष जनार्दन जिससे संतुष्ट होते हैं, उसीको वह अक्षय पद मिलता है, यह मैं सत्य-सत्य कहता हूँ*।

अंगिरा बोले—यदि तू अग्रयस्थानका इच्छुक है तो जिन अव्ययात्मा अच्युतमें यह सम्पूर्ण जगत् ओतप्रोत है, उन गोविन्दकी ही आराधना कर।

पुलस्त्य बोले—जो परब्रह्म, परम धाम और परस्वरूप हैं, उन हरिकी आराधना करनेसे मनुष्य अति दुर्लभ मोक्षपदको भी प्राप्त कर लेता है।

पुलह बोले—सुव्रत ! जिन जगत्पतिकी आराधनासे इन्द्रने अत्युत्तम इन्द्रपद प्राप्त किया है, तू उन यज्ञपति भगवान् विष्णुकी ही आराधना कर।

क्रतु बोले—जो परम पुरुष यज्ञपुरुष, यज्ञ और योगेश्वर हैं, उन जनार्दनके संतुष्ट होनेपर ऐसी कौन वस्तु है जो प्राप्त न हो सकती हो ?

वसिष्ठ बोले—वत्स ! विष्णुभगवान्‌की आराधना करनेपर तू अपने मनसे जो कुछ चाहेगा वही प्राप्त कर लेगा; फिर त्रिलोकीके उत्तमोत्तम स्थानकी तो बात ही क्या है !

ध्रुवने कहा—महर्षिगण ! मुझ विनीतको आपने आराध्यदेव तो बता दिया। अब उसको प्रसन्न करनेके लिये मुझे किस मन्त्रको जपना चाहिये—सो बताइये। उस महापुरुषकी किस प्रकार आराधना करनी चाहिये, वह आपलोग मुझसे प्रसन्नतापूर्वक कहिये।

ऋषिगण बोले—राजकुमार ! विष्णुभगवान्‌की आराधनामें तत्पर पुरुषोंको जिस प्रकार उनकी उपासना करनी चाहिये, वह तू हमसे यथावत् श्रवण कर। मनुष्यको चाहिये कि चित्तको सम्पूर्ण बाह्य विषयोंसे हटाकर उसे एकमात्र उन जगदाधारमें ही स्थिर कर दे। राजकुमार ! इस प्रकार एकाग्रचित्त होकर तन्मयभावसे जो कुछ जपना चाहिये, वह हमसे सुन—'ॐ पुरुष, प्रधान हिरण्यगर्भ, अव्यक्तरूप, शुद्धज्ञानस्वरूप वासुदेवको नमस्कार है।' इस (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) मन्त्रको पूर्वकालमें तेरे पितामह भगवान् स्वायम्भुव मनुने जपा था। तब उनसे संतुष्ट होकर श्रीजनार्दनने उन्हें त्रिलोकीमें दुर्लभ मनोवाञ्छित सिद्धि दी थी। उसी प्रकार तू भी इस (मन्त्र)का निरन्तर जप करता हुआ श्रीगोविन्दको प्रसन्न कर।

ध्रुवकी तपस्यासे प्रसन्न हुए भगवान्‌का आविर्भाव और उसे ध्रुवपद-दान

श्रीपराशरजी कहते हैं—मैत्रेय ! यह सब सुनकर ध्रुव उन ऋषियोंको प्रणामकर उस वनसे चल दिया और अपनेको कृतकृत्य-सा मानकर वह यमुनातटवर्ती अति पवित्र मधु नामक वनमें आया, जहाँ (पीछे) मधुके पुत्र लवण नामक महाबली राक्षसको मारकर शत्रुघ्नने मधुरा (मथुरा) नामकी पुरी बसायी। जिस (मधुवन)में निरन्तर देवदेव श्रीहरिकी सन्निधि रहती है, उसी सर्वपापापहारी तीर्थमें ध्रुवने तपस्या की। मरीचि आदि मुनीश्वरोंने उसे जिस प्रकार उपदेश किया था, उसने उसी प्रकार अपने हृदयमें विराजमान निखिलदेवेश्वर श्रीविष्णुभगवान्‌का ध्यान करना आरम्भ किया। इस प्रकार अनन्यचित्त होकर ध्यान करते रहनेसे उसके हृदयमें सर्वभूतान्तर्यामी भगवान् हरि सर्वतोभावसे प्रकट हुए।

मैत्रेय ! योगी ध्रुवके चित्तमें भगवान् विष्णुके स्थित हो जानेपर सर्वभूतोंको धारण करनेवाली पृथिवी उसका भार न सँभाल सकी। उसके बायें चरणसे खड़े होनेपर पृथिवीका बायाँ आधा भाग झुक गया और फिर दायें चरणसे खड़े

* परः पराणां पुरुषो यस्य तुष्टो जनार्दनः। स प्राप्नोत्यक्षयं स्थानमेतत्सत्यं मयोदितम्॥ (वि० पु० १।११।४४)

होनेसे दायाँ भाग झुक गया और जब वह पैरके अँगूठेसे पृथिवीको (बीचसे) दबाकर खड़ा हुआ, तब पर्वतोंके सहित समस्त भूमण्डल विचलित हो गया । महामुने ! उस समय नदी, नद और समुद्र आदि सभी अत्यन्त क्षुब्ध हो गये और उनके क्षोभसे देवताओंमें भी बड़ी हलचल मच गयी । मैत्रेय ! तब याम नामक देवताओंने अत्यन्त व्याकुल हो इन्द्रके साथ परामर्श कर उसके ध्यानको भङ्ग करनेका आयोजन किया । महामुने ! इन्द्रके साथ अति आतुर कूष्माण्ड नामक उपदेवताओंने नाना रूप धारणकर उसकी समाधि भङ्ग करनेका प्रयत्न किया ।

उस समय मायासे ही रची हुई उसकी माता सुनीति नेत्रोंमें आँसू भरे उसके सामने प्रकट हुई और 'हे पुत्र ! हे पुत्र !'—यों पुकारकर वह करुणायुक्त वचन बोलने लगी । उसने कहा—'बेटा ! तू शरीरको नष्ट करनेवाले इस भयकर तपका आग्रह छोड़ दे । मैंने बड़ी-बड़ी कामनाओं-द्वारा तुझे प्राप्त किया है । अरे ! मुझ अकेली, अनाथा, दुखियाको सौतके कटु वाक्योंसे छोड़ देना तुझे उचित नहीं है । बेटा ! मुझ आश्रयहीनाका तो एकमात्र तू ही सहारा है । कहाँ तो तू पाँच वर्षका शिशु और कहाँ तेरा यह अति उग्र तप ! अरे ! इस निष्फल क्लेशकारी आग्रहसे अपना मन मोड़ ले । अभी तो तेरे खेलने-कूदनेका समय है, फिर अध्ययनका समय आयेगा, तदनन्तर समस्त भोगोंके भोगने-का और फिर अन्तमें तपस्या करना भी ठीक होगा । बेटा ! तुझ सुकुमार बालकका जो खेल-कूदका समय है उसीमें तू तपस्या करना चाहता है । तू क्यों इस प्रकार अपना सर्वनाश करनेपर तुल गया है ? तेरा परम धर्म तो मुझको प्रसन्न रखना ही है; अतः तू अपनी आयु और अवस्थाके अनुकूल कर्मोंमें ही लग, मोहका अनुवर्तन न कर और इस तपरूपी अधर्मसे निवृत्त हो जा । बेटा ! यदि आज तू इस तपस्याको न छोड़ेगा तो देख, तेरे सामने ही मैं अपने प्राण छोड़ दूँगी ।'

श्रीपराशरजी कहते हैं—मैत्रेय ! आँखोंमें आँसू भरकर इस प्रकार विलाप करती (माया-माताको) भगवान् विष्णुमें चित्त स्थिर रहनेके कारण ध्रुवने देखकर भी नहीं देखा ।

तब, अरे बेटा ! यहाँसे भाग भाग ! देख, इस महाभयंकर वनमें ये कैसे घोर राक्षस अस्त्र-शस्त्र उठाये आ रहे हैं—यों कहती हुई वह चली गयी और वहाँ जिनके मुखसे अग्निकी लपटें निकल रही थीं, ऐसे अनेक राक्षसगण अस्त्र-शस्त्र उठाये प्रकट हो गये । उन राक्षसोंने अपने अति चमकीले शस्त्रोंको घुमाते हुए उस राजपुत्रके सामने बड़ा भयंकर कोलाहल किया । उस नित्य-योगयुक्त बालकको भयभीत करनेके लिये अपने मुखसे अग्निकी लपटें निकालती हुई सैकड़ों स्यारियाँ घोर नाद करने लगीं । वे राक्षसगण भी 'मारो-मारो, काटो-काटो, खाओ-खाओ' इस प्रकार चिल्लाने लगे । फिर सिंह, ऊँट और मकर आदिके-से मुख-वाले राक्षस राजपुत्रको त्रास देनेके लिये नाना प्रकारसे गरजने लगे ।

किंतु भगवान्में आसक्तचित्तवाले उस बालकको वे राक्षस, उनके शब्द, स्यारियाँ और अस्त्र-शस्त्रादि कुछ भी दिखायी नहीं दिये । वह राजपुत्र एकाग्रचित्तसे निरन्तर अपने आश्रयभूत विष्णुभगवान्को ही देखता रहा और उसने किसीकी ओर किसी भी प्रकार दृष्टिपात नहीं किया ।

तब सम्पूर्ण मायाके लीन हो जानेपर उससे हार होनेकी आशंकासे देवताओंको बड़ा भय हुआ । अतः उसके तपसे संतप्त हो वे सब मिलकर जगत्के आदिकारण, शरणागतवत्सल, अनादि और अनन्त श्रीहरिकी शरणमें गये ।

देवता बोले—देवाधिदेव, जगन्नाथ, परमेश्वर, पुरुषोत्तम ! जनार्दन ! उस उत्तानपादके पुत्रकी तपस्यासे भयभीत होकर हम आपकी शरणमें आये हैं, आप उसे तपसे निवृत्त कीजिये। हम नहीं जानते, वह इन्द्रत्व चाहता है या सूर्यत्व अथवा उसे कुबेर, वरुण या चन्द्रमाके पदकी अभिलाषा है। अतः ईश ! आप हमपर प्रसन्न होइये और उस उत्तानपादके पुत्रको तपसे निवृत्त कीजिये।

श्रीभगवान् बोले—देवताओ ! उसे इन्द्र, सूर्य, वरुण अथवा कुबेर आदि किसीके पदकी अभिलाषा नहीं है, उसकी जो कुछ इच्छा है वह सब मैं पूर्ण करूँगा। देवगण ! तुम निश्चिन्त होकर इच्छानुसार अपने-अपने स्थानोंको जाओ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—देवाधिदेव भगवान्‌के ऐसा कहनेपर इन्द्र आदि समस्त देवगण उन्हें प्रणामकर अपने-अपने स्थानोको चले गये। सर्वात्मा भगवान् हरिने भी ध्रुवकी तन्मयतासे प्रसन्न हो उसके निकट चतुर्भुजरूपसे जाकर इस प्रकार कहा।

श्रीभगवान् बोले—उत्तानपादके पुत्र ध्रुव ! तेरा कल्याण हो। मैं तेरी तपस्यासे प्रसन्न होकर तुझे वर देनेके लिये प्रकट हुआ हूँ। तेरा चित्त बाह्य विषयोंसे उपरत होकर मुझमें ही लगा हुआ है। अतः मैं तुझसे बहुत संतुष्ट हूँ। अब तू अपनी इच्छानुसार श्रेष्ठ वर माँग।

श्रीपराशरजी कहते हैं—देवाधिदेव भगवान्‌के ऐसे बचन सुनकर बालक ध्रुवने आँखें खोलीं और अपनी ध्यानावस्थामें देखे हुए भगवान् हरिको साक्षात् अपने सम्मुख खड़े देखा। श्रीअच्युतको किरीट तथा शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनुष और खड्ग धारण किये देख उसने पृथिवीपर सिर रखकर प्रणाम किया और सहसा रोमाञ्चित होकर उसने देवदेवकी स्तुति करनेकी इच्छा की।

ध्रुवने कहा—भगवन् ! आप यदि मेरी तपस्यासे संतुष्ट हैं तो मै आपकी स्तुति करना चाहता हूँ। आप मुझे यही वर दीजिये [जिससे मैं स्तुति कर सकूँ]। देव ! जिनकी गति ब्रह्मा आदि वेदज्ञजन भी नहीं जानते, उन्हीं आपका मैं बालक कैसे स्तवन कर सकता हूँ। प्रभो ! आपकी भक्तिसे द्रवीभूत मेरा चित्त आपके चरणोंकी स्तुति करनेमें प्रवृत्त हो रहा है। अतः आप उसके लिये बुद्धि प्रदान कीजिये।

श्रीपराशरजी कहते हैं—द्विजवर्य ! तब जगत्पति श्रीगोविन्दने अपने सामने हाथ जोड़े खड़े हुए उस उत्तानपादके पुत्रको अपने शङ्खके अग्रभागसे छू दिया। तब तो एक क्षणमे ही वह राजकुमार प्रसन्न-मुखसे अति विनीत हो सर्वभूताधिष्ठान श्रीअच्युतकी स्तुति करने लगा।

ध्रुव बोला—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार और मूल-प्रकृति—ये सब जिनके रूप हैं, उन भगवान्‌को मैं नमस्कार करता हूँ। जो अति शुद्ध, सूक्ष्म, सर्वव्यापक हैं और प्रधानसे भी परे जिनका रूप है, उन गुण-भोक्ता परमपुरुषको मैं नमस्कार करता हूँ *। परमेश्वर! पृथ्वी आदि समस्त भूत, गन्धादि उनके गुण, बुद्धि आदि तेरह करण तथा प्रधान और पुरुष (जीव) से भी परे जो सनातन पुरुष हैं, उन आप निखिलब्रह्माण्डनायकके ब्रह्मभूत शुद्धस्वरूप परमात्माकी मैं शरण हूँ। सर्वात्मन्! योगियोंके चिन्तनीय! आपका जो ब्रह्म नामक स्वरूप है, उस विकाररहित रूपको मैं नमस्कार करता हूँ। प्रभो! आप हजारों मस्तकोंवाले, हजारों नेत्रोंवाले और हजारों चरणोंवाले परमपुरुष हैं, आप सर्वत्र व्याप्त हैं। पुरुषोत्तम! भूत और भविष्यत् जो कुछ पदार्थ हैं, वे सब आप ही हैं तथा विराट्, स्वराट्, सम्राट् और अधिपुरुष (ब्रह्मा) आदि भी सब आपसे ही उत्पन्न हुए हैं। वे ही आप इस पृथ्वीके नीचे-ऊपर और इधर-उधर सब ओर बढ़े हुए हैं। यह सम्पूर्ण जगत् आपसे ही उत्पन्न हुआ है तथा आपसे ही भूत और भविष्यत् हुए हैं। यह सम्पूर्ण जगत् आपके स्वरूपभूत ब्रह्माण्डके अन्तर्गत है। आपसे ही ऋक्, साम और गायत्री आदि छन्द प्रकट हुए हैं, आपसे ही यजुर्वेदका प्रादुर्भाव हुआ है। आपके ही मुखसे ब्राह्मण, बाहुओंसे क्षत्रिय, ऊरुओंसे वैश्य और चरणोंसे शूद्र प्रकट हुए हैं तथा आपके ही नेत्रोंसे सूर्य, प्राणसे वायु, मनसे चन्द्रमा, भीतरी छिद्र (नासारन्ध्र) से प्राण, मुखसे अग्नि, नाभिसे आकाश, सिरसे स्वर्ग, श्रोत्रसे दिशाएँ और चरणोंसे पृथ्वी आदि उत्पन्न हुए हैं; इस प्रकार प्रभो! यह सम्पूर्ण जगत् आपसे ही प्रकट हुआ है। जिस प्रकार नन्हेंसे बीजमें बड़ा भारी वट-वृक्ष रहता है, उसी प्रकार प्रलय-कालमें यह सम्पूर्ण जगत् बीज-स्वरूप आपमें ही लीन रहता है। जिस प्रकार बीजसे अङ्कुररूपमें प्रकट हुआ वट-वृक्ष बढ़कर अत्यन्त विस्तारवाला हो जाता है, उसी प्रकार सृष्टिकालमें यह जगत् आपसे ही प्रकट होकर फैल जाता है। सबके आधारभूत आपमें ह्लादिनी (निरन्तर आह्लादित [illegible]) [illegible] सन्धिनी (विच्छेदरहित) [illegible] ([illegible]) [illegible] रूपसे रहती हैं। आपमें ([illegible]) [illegible] देनेवाली (सात्त्विकी या तामसी) [illegible] (राजसी) कोई भी संवित् नहीं है, क्योंकि आप निर्गुण हैं। भूतान्तरात्मन्! ऐसे आपको मैं नमस्कार [illegible]। सर्वेश्वर! आप सर्वात्मक हैं; क्योंकि सम्पूर्ण भूतोंमें व्याप्त हैं; अतः मैं आपसे क्या कहूँ? आप स्वयं ही हृदयकी सभी बातोंको जानते हैं। सर्वात्मन्! सर्वभूतेश्वर! सब भूतोंके [illegible]-स्थान! आप सर्वभूतरूपसे सभी प्राणियोंके मनोरथोंको जानते हैं। नाथ! मेरा जो कुछ मनोरथ [illegible] आपने सफल कर दिया और जगत्पते! मेरी तपस्या भी सफल हो गयी, क्योंकि मुझे आपका साक्षात् दर्शन प्राप्त हुआ।

श्रीभगवान् बोले—ध्रुव! तुमको मेरा साक्षात् दर्शन प्राप्त हुआ, इससे अवश्य ही तेरी तपस्या तो सफल हो गयी, परंतु राजकुमार! मेरा दर्शन भी तो कभी निष्फल नहीं होता; इसलिये तुझको जिस वरकी इच्छा हो, वह माँग ले। मेरा दर्शन हो जानेपर पुरुषको सभी कुछ प्राप्त हो सकता है।

ध्रुव बोले—भूतभव्येश्वर भगवन्! आप सभीके अन्तःकरणोंमें विराजमान हैं। ब्रह्मन्! मेरे मनकी जो कुछ अभिलाषा है वह क्या आपसे छिपी हुई है? देवेश्वर! मैं दुर्विनीत जिस अति दुर्लभ वस्तुकी [illegible] इच्छा करता हूँ, उसे आपकी आज्ञानुसार आपके प्रति निवेदन करूँगा। समस्त संसारको रचनेवाले परमेश्वर! आपके प्रसन्न होनेपर (संसारमें) क्या दुर्लभ है? अतः प्रभो! आपके प्रसादसे मैं उस सर्वोत्तम एवं अव्यय स्थानको प्राप्त करना चाहता हूँ, जो सम्पूर्ण विश्वका आधारभूत हो।

श्रीभगवान् बोले—बालक! तूने अपने पूर्वजन्ममें भी मुझे सन्तुष्ट किया था, इसलिये तू जिस वस्तुकी इच्छा करता है, उसे अवश्य प्राप्त करेगा। पूर्व-जन्ममें तू एक ब्राह्मण था और मुझमें निरन्तर एकाग्रचित्त रहनेवाला, माता-पिताका सेवक तथा स्वधर्मका पालन करनेवाला था। कालान्तरमें एक राजपुत्र तेरा मित्र हो गया। [illegible] युवावस्थामें सम्पूर्ण भोगोंसे सम्पन्न और [illegible] रूप-लावण्यसे युक्त था। उसके [illegible] देखकर तेरी ऐसी इच्छा हुई कि मैं भी राजपुत्र होऊँ। अतः ध्रुव! तुझको अपनी मनोवाञ्छित [illegible] हुई

---

* भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
भूतादिरादिप्रकृतिर्यस्य रूपं नतोऽस्मि तम्॥
शुद्धः सूक्ष्मोऽखिलव्यापी प्रधानात्परतः पुमान्।
यस्य रूपं नमस्तस्मै पुरुषाय गुणाशिने॥
(वि० पु० १। १२। ५३-५४)

और जिन स्वायम्भुव मनुके कुलमें और किसीको स्थान मिलना अत्यन्त कठिन है, उन्हींके घरमें तूने उत्तानपादके यहाँ जन्म लिया । बालक ! जिसने मुझे संतुष्ट किया है, उसके लिये तो यह अत्यन्त तुच्छ है । मेरी आराधना करनेसे तो मोक्षपद भी तत्काल प्राप्त हो सकता है । ध्रुव ! मेरी कृपासे तू निःसन्देह उस स्थानमें, जो त्रिलोकीमें सबसे उत्कृष्ट है, सम्पूर्ण ग्रह और तारामण्डलका आश्रय बनेगा । ध्रुव ! मैं तुझे वह ध्रुव (निश्चल) स्थान देता हूँ जो सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि आदि ग्रहों, सभी नक्षत्रों, समस्त सप्तर्षियों और सम्पूर्ण विमानचारी देवगणोंसे ऊपर है । देवताओंमेंसे कोई तो केवल चार युगतक और कोई एक मन्वन्तरतक ही रहते हैं; किंतु तुझे एक कल्पतककी स्थिति देता हूँ । तेरी माता सुनीति भी अति स्वच्छ तारारूपसे उतने ही समयतक तेरे पास एक विमानपर निवास करेगी और जो लोग समाहित-चित्तसे सायंकाल और प्रातःकाल तेरा गुण-कीर्तन करेंगे, उनको महान् पुण्य होगा ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—महामते ! इस प्रकार पूर्वकालमें जगत्पति देवाधिदेव भगवान् जनार्दनसे वर पाकर ध्रुव उस अत्युत्तम स्थानमें स्थित हुए । मुने ! अपने माता पिताकी धर्मपूर्वक सेवा करनेसे तथा 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'— इस द्वादशाक्षर-मन्त्रके माहात्म्य और तपके प्रभावसे उनके मान, वैभव एवं प्रभावकी वृद्धि देखकर देव और असुरोंके आचार्य शुक्रदेवने ये श्लोक कहे हैं ।

'अहो ! इस ध्रुवके तपका कैसा प्रभाव है ? अहो ! इसकी तपस्याका कैसा अद्भुत फल है, जो इस ध्रुवको ही आगे रखकर सप्तर्षिगण स्थित हो रहे हैं । इसकी यह सुनीति नामवाली माता भी अवश्य ही सत्य और हितकर वचन बोलनेवाली है*, जिसने अपनी कोखमें उस ध्रुवको धारण करके त्रिलोकीका आश्रयभूत अति उत्तम स्थान प्राप्त कर लिया, जो भविष्यमें भी स्थिर रहनेवाला है, उस सुनीति माताकी महिमाका वर्णन कर सके, संसारमें ऐसा कौन है ?'

राजा वेन और पृथुका चरित्र

श्रीपराशरजी कहते हैं—मैत्रेय ! ध्रुवसे उसकी पत्नीने शिष्टि और भव्यको उत्पन्न किया और भव्यसे शम्भुका जन्म हुआ तथा शिष्टिके द्वारा उसकी पत्नी सुच्छायाने रिपु, रिपुजय, विप्र, वृकल और वृकतेजा नामक पाँच निष्पाप पुत्र उत्पन्न किये । उनमेंसे रिपुके द्वारा बृहतीके गर्भसे महातेजस्वी चाक्षुषका जन्म हुआ । चाक्षुषने अपनी भार्या पुष्करिणीसे, जो वरुण-कुलमें उत्पन्न और महात्मा वीरण प्रजापतिकी पुत्री थी, मनुको उत्पन्न किया, जो छठे मन्वन्तरके अधिपति हुए । तपस्वियोंमें श्रेष्ठ मनुसे वैराज प्रजापतिकी पुत्री नड्वलाके गर्भमें दस महातेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए । नड्वलासे कुरु, पुरु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवान्, शुचि, अग्निष्टोम, अतिरात्र तथा नवाँ सुद्युम्न और दसवाँ अभिमन्यु—इन महातेजस्वी पुत्रोंका जन्म हुआ । कुरुके द्वारा उसकी पत्नी आग्नेयीने अङ्ग, सुमना, ख्याति, क्रतु, अङ्गिरा और शिबि—इन छः परम तेजस्वी पुत्रोंको उत्पन्न किया । अङ्गसे सुनीथाके वेन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । ऋषियोंने उस (वेन) के दाहिने हाथका संतानके लिये मन्थन किया था । महामुने ! वेनके हाथका मन्थन करनेपर उससे वैन्य नामक महीपाल उत्पन्न हुए, जो पृथु नामसे विख्यात हैं और जिन्होंने प्रजाके हितके लिये पूर्वकालमें पृथिवीको दुहा था ।

श्रीमैत्रेयजीने पूछा—मुनिश्रेष्ठ ! परमर्षियोंने वेनके हाथको क्यों मथा ? जिससे महापराक्रमी पृथुका जन्म हुआ ।

श्रीपराशरजीने कहा—मुने ! मृत्युकी सुनीथा नामवाली जो प्रथम पुत्री थी, वह अङ्गको पत्नीरूपसे दी गयी थी । उसीसे वेनका जन्म हुआ । मैत्रेय ! वह मृत्युकी कन्याका पुत्र अपने मातामह (नाना) के दोषसे स्वभावसे ही दुष्ट हुआ । उस वेनका जिस समय महर्षियोंद्वारा राजपदपर अभिषेक हुआ, उसी समय उसने संसारभरमें यह घोषणा कर दी कि 'यज्ञपुरुष भगवान् मैं ही हूँ, मुझसे अतिरिक्त यज्ञका भोक्ता और स्वामी दूसरा हो ही कौन सकता है ? इसलिये कभी कोई यज्ञ, दान और हवन आदि न करे ।' मैत्रेय ! तब ऋषियोंने उस राजा वेनके पास उपस्थित हो पहले उसकी खूब प्रशंसा कर सान्त्वनायुक्त मधुर वाणीसे कहा ।

ऋषिगण बोले—राजन् ! पृथिवीपते ! तुम्हारे राज्य

* सुनीतिने ध्रुवको पुण्योपार्जन करनेका उपदेश दिया था, जिसके आचरणसे उन्हें उत्तम लोक प्राप्त हुआ । अतएव 'सुनीति' सत्सूना कही गयी है ।

और देहके उपकार तथा प्रजाके हितके लिये हम जो बात कहते हैं, उसे सुनो । तुम्हारा कल्याण हो; देखो, हम बड़े-बड़े यज्ञोंद्वारा जो सर्व-यज्ञेश्वर देवाधिपति भगवान् हरिका पूजन करेंगे, उसके फलमेंसे तुमको भी (छठा) भाग मिलेगा । नृप ! इस प्रकार यज्ञोंके द्वारा यज्ञपुरुष भगवान् विष्णु प्रसन्न होकर हमलोगोंके साथ तुम्हारी भी सकल कामनाएँ पूर्ण करेंगे । राजन् ! जिन राजाओंके राज्यमें यज्ञेश्वर भगवान् हरिका यज्ञोंद्वारा पूजन किया जाता है, वे उनकी सभी कामनाओंको पूर्ण कर देते हैं ।

वेन (डाँटता हुआ) बोला—ब्राह्मणो ! भला, मुझसे

बढकर दूसरा है कौन जो मेरा भी पूजनीय हो ? जिसे तुम यज्ञेश्वर मानते हो, वह 'हरि' कहलानेवाला कौन है ? ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, धाता, पूषा, पृथिवी और चन्द्रमा तथा इनके अतिरिक्त और भी जितने देवता शाप और कृपा करनेमें समर्थ हैं, वे सभी राजाके शरीरमें निवास करते हैं, इस प्रकार राजा सर्वदेवमय है । ब्राह्मणो ! ऐसा जानकर मैंने जैसी जो कुछ आज्ञा की है, वैसा ही करो । देखो, कोई भी दान, यज्ञ और हवन आदि न करे । द्विजगण ! स्त्रीका परम धर्म जैसे अपने पतिकी सेवा करना ही माना गया है, वैसे ही तुमलोगोंका धर्म भी मेरी आज्ञाका पालन करना ही है ।

ऋषि बोले—महाराज ! आप ऐसी [illegible] जिससे धर्मका ह्रास न हो । देखिये, [illegible] (यज्ञमें हवन की हुई सामग्री) का ही [illegible] है ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—[illegible] बारबार समझाने और कहने-सुननेपर [illegible] आज्ञा नहीं दी तो वे अत्यन्त क्रुद्ध और [illegible] आपसमें कहने लगे—'इस पापीको मारो, मारो ! [illegible] और अनन्त यज्ञपुरुष प्रभु विष्णुकी निन्दा [illegible] अनाचारी किसी प्रकार पृथिवीपति होने योग्य नहीं [illegible] कह मुनियोंने भगवान्‌की निन्दा आदि [illegible] ही मरे हुए उस राजाको मन्त्रसे पवित्र किये हुए [illegible] द्वारा मार डाला ।

तदनन्तर उन सब मुनीश्वरोंने आपसमें [illegible] पुत्रहीन राजाकी जङ्घाका पुत्रके लिये [illegible] मन्थन किया । उसकी जङ्घाके मथनेपर उससे एक पुरुष उत्पन्न हुआ, जो [illegible] ठूँठके समान काला, बहुत नाटा और छोटे [illegible] । उसने अति आतुर होकर उन सब ब्राह्मणोंसे कहा '[illegible] करूँ ?' उन्होंने कहा—'निषीद (बैठ)' अतः वह [illegible] कहलाया । इसलिये उससे उत्पन्न हुए लोग [illegible] निषादगण हुए ।

फिर उन ब्राह्मणोंने उसके दाहिने हाथका मन्थन किया । उसका मन्थन करनेसे परम प्रतापी [illegible] प्रकट हुए, जो अपने शरीरसे प्रज्वलित अग्निके समान देदीप्यमान [illegible] समय आजगव नामक आद्य (सर्वप्रथम) [illegible] दिव्य बाण तथा कवच आकाशसे गिरे । [illegible] सभी जीवोंको अति आनन्द हुआ और [illegible] होने मात्रसे वेन भी स्वर्गलोकको चला गया । [illegible] पुत्रके कारण ही उसकी पुम् नामक [illegible] हुई ।

महाराज पृथुके अभिषेकके लिये [illegible] सब प्रकारके रत्न और जल [illegible] आङ्गिरस देवगणोंके सहित [illegible] स्थावर जङ्गम प्राणियोंने [illegible]

* [illegible]

का राज्याभिषेक किया। उनके दाहिने हाथमें चक्रका चिह्न देखकर उन्हें विष्णुका अंश जान पितामह ब्रह्माजीको परम

आनन्द हुआ। यह श्रीविष्णुभगवान्‌के चक्रका चिह्न सभी चक्रवर्ती राजाओंके हाथमें हुआ करता है, इसका प्रभाव देवताओंसे भी कुण्ठित नहीं होता।

इस प्रकार महातेजस्वी और परम प्रतापी वेनपुत्र, धर्मकुशल महानुभावोंद्वारा विधिपूर्वक अति महान् राजराजेश्वरपदपर अभिषिक्त हुए। जब वे समुद्रमें चलते थे तो जल स्थिर हो जाता था, पर्वत उन्हें मार्ग देते थे और उनकी ध्वजा कभी भंग नहीं हुई। पृथिवी बिना जोते-बोये धान्य पकानेवाली थी; केवल चिन्तनमात्रसे ही अन्न सिद्ध हो जाता था, गौएँ कामधेनुरूप थीं और पुट-पुटमें मधु भरा रहता था।

राजा पृथुने उत्पन्न होते ही पैतामह-यज्ञ किया; उससे सोमाभिषवके दिन सूति (सोमाभिषवभूमि) से महामति सूतकी उत्पत्ति हुई। उसी महायज्ञमें बुद्धिमान् मागधका जन्म हुआ। तब मुनिवरोंने उन दोनों सूत और मागधोंसे कहा—'तुम इन प्रतापवान् वेनपुत्र महाराज पृथुकी स्तुति करो। तुम्हारे योग्य यही कार्य है तथा राजा भी स्तुतिके ही योग्य हैं।' तब उन्होंने हाथ जोड़कर सब ब्राह्मणोंसे कहा—'ये महाराज तो आज ही उत्पन्न हुए हैं, हम इनके कोई कर्म तो जानते ही नहीं हैं। अभी इनके न तो कोई गुण प्रकट हुए हैं और न यश ही विख्यात हुआ है; फिर कहिये, हम किस आधारपर इनकी स्तुति करें ?'

ऋषिगण बोले—ये महाबली चक्रवर्ती महाराज भविष्यमें जो-जो कर्म करेंगे और इनके जो-जो भावी गुण होंगे, उन्हींसे तुम इनका स्तवन करो।

श्रीपराशरजी कहते हैं—यह सुनकर राजाको भी परम संतोष हुआ; उन्होंने सोचा—'मनुष्य सद्‌गुणोंके कारण ही प्रशंसाका पात्र होता है; अतः मुझको भी गुण उपार्जन करने चाहिये। इसलिये अब स्तुतिके द्वारा ये जिन गुणोंका वर्णन करेंगे, मैं भी सावधानतापूर्वक वैसा ही करूँगा। यदि यहाँपर ये कुछ त्याज्य अवगुण बतायेंगे तो मैं उनका त्याग करूँगा।' इस प्रकार राजाने अपने चित्तमें निश्चय किया। तदनन्तर उन (सूत और मागध) दोनोंने परम बुद्धिमान् वेननन्दन महाराज पृथुका उनके भावी कर्मोंके आश्रयसे स्वरसहित भलीभाँति स्तवन किया। उन्होंने कहा—'ये महाराज सत्यवादी, दानशील, सत्यमर्यादावाले, लज्जाशील, सुहृद्, क्षमाशील, पराक्रमी और दुष्टोंका दमन करनेवाले हैं। ये धर्मज्ञ, कृतज्ञ, दयावान्, प्रियभाषी, माननीयोंको मान देनेवाले, यज्ञपरायण, ब्रह्मण्य, साधुसमाजमें सम्मानित तथा व्यवहार पड़नेपर शत्रु और मित्रके प्रति समान रहनेवाले हैं।' इस प्रकार सूत और मागधके कहे हुए गुणोंको उन्होंने अपने चित्तमें धारण किया और उसी प्रकारके कार्य किये। तदनन्तर उन पृथिवीपतिने पृथिवीका पालन करते हुए बड़ी-बड़ी दक्षिणाओंवाले अनेक महान् यज्ञ किये। अराजकताके समय ओषधियोंके नष्ट हो जानेसे भूखसे व्याकुल हुई प्रजा पृथिवीनाथ पृथुके पास आयी और उनके पूछनेपर प्रणाम करके उनसे अपने आनेका कारण निवेदन किया।

प्रजाने कहा—प्रजापते नृपश्रेष्ठ ! अराजकताके समय पृथिवीने समस्त ओषधियाँ अपनेमें लीन कर ली हैं, अतः आपकी सम्पूर्ण प्रजा क्षीण हो रही है। विधाताने आपको हमारा जीवनदायक प्रजापति बनाया है; अतः क्षुधारूप महारोगसे पीड़ित हम प्रजाजनोंको आप जीवनरूप ओषधि दीजिये।

श्रीपराशरजी कहते हैं—यह सुनकर महाराज पृथु अपना आजगव नामक दिव्य धनुष और दिव्य बाण लेकर अत्यन्त क्रोधपूर्वक पृथिवीके पीछे दौड़े, तब भयसे अत्यन्त व्याकुल हुई पृथिवी गौका रूप धारणकर भागी और ब्रह्मलोक आदि सभी लोकोंमें गयी। समस्त भूतोंको धारण करनेवाली

दक्षकी साठ कन्याओंके वंशका वर्णन

श्रीमैत्रेयजी बोले—ब्रह्मन् ! आप मुझसे देव, दानव, गन्धर्व, सर्प और राक्षसोंकी उत्पत्ति विस्तारपूर्वक कहिये ।

श्रीपराशरजीने कहा—महामुने ! स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माजीकी ऐसी आज्ञा होनेपर कि 'तुम प्रजा उत्पन्न करो' दक्षने पूर्वकालमें जिस प्रकार प्राणियोंकी रचना की थी, वह सुनो । उस समय पहले तो दक्षने ऋषि, गन्धर्व, असुर और सर्प आदि मानसिक प्राणियोंको ही उत्पन्न किया । परंतु यों करनेपर जब उनकी वह प्रजा और न बढ़ी तो उन प्रजापतिने सृष्टिकी वृद्धिके लिये मनमें विचारकर मैथुनधर्मसे नाना प्रकारकी प्रजा उत्पन्न करनेकी इच्छासे वीरण प्रजापतिकी अति तपस्विनी और लोकधारिणी पुत्री असिक्नीसे विवाह किया ।

तदनन्तर वीर्यवान् प्रजापति दक्षने सर्गकी वृद्धिके लिये वीरणसुता असिक्नीसे पाँच सहस्र पुत्र उत्पन्न किये । उन्हें प्रजावृद्धिके इच्छुक देख प्रियवादी देवर्षि नारदने उनके निकट जाकर इस प्रकार कहा—'महापराक्रमी हर्यश्वगण ! तुमलोगोंकी ऐसी चेष्टा प्रतीत होती है कि तुम प्रजा उत्पन्न करोगे, सो मेरा यह कथन सुनो । खेदकी बात है, तुमलोग अभी निरे अनभिज्ञ हो; क्योंकि तुम इस पृथिवीका मध्य, ऊर्ध्व (ऊपरी भाग) और अधः (नीचेका भाग) कुछ भी नहीं जानते, फिर प्रजाकी रचना किस प्रकार करोगे ? जब तुम्हारी गति इस ब्रह्माण्डमें ऊपर-नीचे और इधर-उधर सब ओर बे-रोक-टोक है तो अज्ञानियो ! तुम सब मिलकर इस पृथिवीका अन्त क्यों नहीं देखते ?' नारदजीके ये वचन सुनकर वे सब भिन्न-भिन्न दिशाओंको चले गये ।

हर्यश्वोंके इस प्रकार चले जानेपर दक्षने वीरणपुत्री असिक्नीसे एक सहस्र पुत्र और उत्पन्न किये । वे शबलाश्वगण भी प्रजा बढ़ानेके इच्छुक हुए, किंतु ब्रह्मन् ! जब नारदजीने उनसे भी पूर्वोक्त बातें कहीं तो वे सब भी आपसमें एक दूसरेसे कहने लगे—'महामुनि नारदजी ठीक कहते हैं; हमको भी अपने भाइयोंके मार्गका ही अवलम्बन करना चाहिये । हम भी पृथिवीका परिमाण जानकर ही सृष्टि करेंगे ।' इस प्रकार वे भी उसी मार्गसे समस्त दिशाओंको चले गये ।

महाभाग दक्ष प्रजापतिने उन पुत्रोंको भी गये जान नारदजीपर बड़ा क्रोध किया और उन्हें शाप दे दिया । मैत्रेय ! हमने सुना है कि फिर उस विद्वान् प्रजापतिने सर्गवृद्धिकी इच्छासे वीरणकुमारी असिक्नीमें साठ कन्याएँ उत्पन्न कीं । उनमेंसे उन्होंने दस धर्मको, तेरह कश्यपको, सत्ताईस सोम (चन्द्रमा) को और चार अरिष्टनेमिको ब्याह दीं तथा दो बहुपुत्र, दो अङ्गिरा और दो विद्वान् कृशाश्वको विवाहीं । अब उनके नाम सुनो । अरुन्धती, वसु, यामि, लम्बा, भानु, मरुत्वती, संकल्पा, मुहूर्ता, साध्या और विश्वा—ये दस धर्मकी पत्नियाँ थीं; अब तुम इनके पुत्रोंका विवरण सुनो । विश्वाके पुत्र विश्वेदेव थे, साध्यासे साध्यगण हुए । मरुत्वतीसे मरुत्वान् और वसुसे वसुगण हुए तथा भानुसे भानु और मुहूर्तासे मुहूर्ताभिमानी देवता हुए । लम्बासे घोष, यामिसे नागवीथी और अरुन्धतीसे समस्त पृथिवी-विषयक प्राणी हुए तथा संकल्पासे सर्वात्मक संकल्पकी उत्पत्ति हुई ।

नाना प्रकारका वसु (तेज अथवा धन) ही जिनका प्राण है, ऐसे ज्योति आदि जो आठ वसुगण विख्यात हैं, अब मैं उनके वंशका विस्तार बताता हूँ । उनके नाम आप, ध्रुव, सोम, धर्म, अनिल (वायु), अनल (अग्नि), प्रत्यूष और प्रभास कहे जाते हैं । आपके पुत्र वैतण्ड, श्रम, शान्त और ध्वनि हुए तथा ध्रुवके पुत्र लोक-संहारक भगवान् काल हुए । भगवान् वर्चा सोमके पुत्र थे, जिनसे पुरुष वर्चस्वी (तेजस्वी) हो जाता है और धर्मके उनकी भार्या मनोहरासे द्रविण, हुत, हव्यवह, शिशिर, प्राण और वरुण नामक पुत्र हुए । अनिलकी पत्नी शिवा थी; उससे अनिलके मनोजव और अविज्ञातगति—ये दो पुत्र हुए । अग्निके पुत्र कुमार हुए, जिनका जन्म शरस्तम्ब (सरकंडे) में हुआ था । शाख, विशाख और नैगमेय—ये उनके छोटे भाई थे । कुमार कृत्तिकाओंके पुत्र होनेसे कार्तिकेय कहलाये । देवल नामक ऋषिको प्रत्यूषका पुत्र कहा जाता है । इन देवलके भी दो क्षमाशील और मनीषी पुत्र हुए ।

बृहस्पतिजीकी बहिन वरस्त्री, जो ब्रह्मचारिणी और सिद्ध योगिनी थी तथा अनासक्तभावसे समस्त भूमण्डलमें विचरती थी, आठवें वसु प्रभासकी भार्या हुई । उससे महाभाग प्रजापति विश्वकर्माका जन्म हुआ, जो सहस्रों शिल्पों (कारीगरियों) के कर्ता, देवताओंके शिल्पी, समस्त शिल्पकारोंमें श्रेष्ठ और सब प्रकारके आभूषण बनानेवाले हुए । जिन्होंने देवताओंके सम्पूर्ण विमानोंकी रचना की और जिन महात्माकी (आविष्कृत)

शिल्पविद्याके आश्रयसे बहुत-से मनुष्य जीवन-निर्वाह करते हैं। उन विश्वकर्माके चार पुत्र थे; उनके नाम सुनो—वे अजैकपाद्, अहिर्बुध्न्य, त्वष्टा और परमपुरुषार्थी रुद्र थे। उनमेंसे त्वष्टाके पुत्र महातपस्वी विश्वरूप हुए। महामुने! हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी, रैवत, मृगव्याध, शर्व और कपाली—ये त्रिलोकीके अधीश्वर ग्यारह रुद्र कहे गये हैं।

जो दक्षकन्याएँ कश्यपजीकी स्त्रियाँ हुईं, उनके नाम सुनो—वे अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, खसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रु और मुनि थीं। धर्मज्ञ! अब तुम उनकी सतानोंका विवरण श्रवण करो।

पूर्व (चाक्षुष) मन्वन्तरमें तुषित नामक बारह श्रेष्ठ देवगण थे। वे यशस्वी सुरश्रेष्ठ चाक्षुष-मन्वन्तरके पश्चात् वैवस्वत-मन्वन्तरके उपस्थित होनेपर एक दूसरेके पास जाकर मिले और परस्पर कहने लगे—'देवगण! आओ, हमलोग शीघ्र ही अदितिके गर्भमें प्रवेश कर इस वैवस्वत-मन्वन्तरमें जन्म लें, इसीमें हमारा हित है।' इस प्रकार चाक्षुष-मन्वन्तरमें निश्चयकर उन सबने मरीचिपुत्र कश्यपजीके यहाँ दक्षकन्या अदितिके गर्भसे जन्म लिया। वे अति तेजस्वी देवता उससे उत्पन्न होकर विष्णु, इन्द्र, अर्यमा, धाता, त्वष्टा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मैत्र, वरुण, अंशु और भग नामक द्वादश आदित्य कहलाये। इस प्रकार पहले चाक्षुष-मन्वन्तरमें जो तुषित नामक देवगण थे, वे ही वैवस्वत-मन्वन्तरमें द्वादश आदित्य हुए।

सोमकी जिन सत्ताईस सुव्रता पत्नियोंके विषयमें पहले कह चुके हैं, वे सब नक्षत्रयोगिनी हैं और उन नामोंसे ही विख्यात हैं। उन अति तेजस्विनियोंसे अनेक प्रतिभाशाली पुत्र उत्पन्न हुए। अरिष्टनेमिकी पत्नियोंके सोलह पुत्र हुए। बुद्धिमान् बहुपुत्रकी भार्या कपिला, अतिलोहिता, पीता और सिता* नामक चार प्रकारकी विद्युत् कही जाती हैं। ब्रह्मर्षियोंसे

---

* ज्योतिःशास्त्रमें कहा है—

वाताय कपिला विद्युदातपायातिलोहिता।
पीता वर्षाय विज्ञेया दुर्भिक्षाय सिता भवेद्॥

अर्थात् कपिल (भूरी) वर्णकी बिजली वायु लानेवाली, अत्यन्त लोहित धूप निकालनेवाली, पीतवर्णा वृष्टि लानेवाली और सित (श्वेत) दुर्भिक्षकी सूचना देनेवाली होती है।

सत्कृत ऋचाओंके अभिमानी देवता [illegible] हैं तथा शास्त्रोंके अभिमानी देवगण [illegible] कृशाश्वकी संतान कहे जाते हैं। [illegible] फिर भी उत्पन्न होते हैं। तात! ये [illegible] अपने इच्छानुसार जन्म [illegible] इनके उत्पत्ति और निरोध [illegible] जिस प्रकार लोकमें सूर्यके उदय और अस्त [illegible] करते हैं, उसी प्रकार ये देवगण भी युग-युगमें उत्पन्न होते रहते हैं।

हमने सुना है, दितिके [illegible] हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नामक दो [illegible] नामकी एक कन्या हुई, जो [illegible] हिरण्यकशिपुके अति तेजस्वी और [illegible] ह्लाद, बुद्धिमान् प्रह्लाद और संह्लाद नामक चार पुत्र हुए जो दैत्य-वंशको बढ़ानेवाले थे। [illegible] सर्वत्र समदर्शी और जितेन्द्रिय थे [illegible] परम भक्तिसे [illegible] किया था। [illegible] किये हुए अग्निसे [illegible] वासुदेव भगवान्‌के स्थित [illegible]

---

* [illegible] वषट्कार।

महाबुद्धिमान्‌के पाशबद्ध होकर समुद्रके जलमें पड़े-पड़े इधर-उधर हिलने-डुलनेसे सारी पृथ्वी हिलने लगी थी। जिनका पर्वतके समान कठोर शरीर, सर्वत्र भगवच्चित्त रहनेके कारण दैत्यराजके चलाये हुए अस्त्र-शस्त्रोंसे भी छिन्न-भिन्न नहीं हुआ। दैत्यराजद्वारा प्रेरित विषाग्निसे प्रज्वलित मुखवाले सर्प भी जिन महातेजस्वीका अन्त नहीं कर सके। जिन्होंने भगवत्-स्मरणरूपी कवच धारण किये रहनेके कारण पुरुषोत्तम भगवान्‌का स्मरण करते हुए पत्थरोंकी मार पड़नेपर भी अपने प्राणोंको नहीं छोड़ा। स्वर्गनिवासी दैत्यपतिद्वारा ऊपरसे गिराये जानेपर जिन महामतिको पृथिवीने पास जाकर बीचमें ही अपनी गोदमें धारण कर लिया। चित्तमें श्रीमधुसूदन भगवान्‌के स्थित रहनेसे दैत्यराजका नियुक्त किया हुआ सबका शोषण करनेवाला वायु जिनके शरीरमें लगनेसे शान्त हो गया। दैत्येन्द्रद्वारा आक्रमणके लिये नियुक्त उन्मत्त दिग्गजोंके दाँत जिनके वक्षःस्थलमें लगनेसे टूट गये और उनका सारा मद चूर्ण हो गया। पूर्वकालमें दैत्यराजके पुरोहितोंकी उत्पन्न की हुई कृत्या भी जिन गोविन्दासक्तचित्त भक्तराजके अन्तका कारण नहीं हो सकी। जिनके ऊपर प्रयुक्त की हुई अति मायावी शम्बरासुरकी हजारों मायाएँ श्रीकृष्णचन्द्रके चक्रसे व्यर्थ हो गयीं। जिन मतिमान् और निर्मत्सरने दैत्यराजके रसोइयोंके लाये हुए हलाहल विषको निर्विकार-भावसे पचा लिया। जो इस संसारमें समस्त प्राणियोंके प्रति समानचित्त और अपने समान ही दूसरोंके लिये भी परमप्रेमयुक्त थे और जो परम धर्मात्मा महापुरुष सत्य एवं शौर्य आदि गुणोंकी खान तथा समस्त साधु-पुरुषोंके लिये उपमास्वरूप हुए थे।

प्रह्लादके प्रभावके विषयमें प्रश्न

श्रीमैत्रेयजीने पूछा—भगवन्! आपने जो कहा कि दैत्यश्रेष्ठ प्रह्लादजीको न तो अग्निने ही भस्म किया और न उन्होंने अस्त्र-शस्त्रोंसे आघात किये जानेपर ही अपने प्राणोंको छोड़ा तथा पाशबद्ध होकर समुद्रके जलमें पड़े रहनेपर उनके हिलते-डुलते हुए अङ्गोंसे आहत होकर पृथिवी डगमगाने लगी और शरीरपर पत्थरोंकी बौछार पड़नेपर भी वे नहीं मरे। इस प्रकार जिन महाबुद्धिमान्‌का आपने बहुत ही माहात्म्य वर्णन किया है, मुने! जिन अति तेजस्वी महात्माके ऐसे चरित्र हैं, मैं उन परम-विष्णुभक्तका अतुलित प्रभाव सुनना चाहता हूँ। मुनिवर! वे तो बड़े ही धर्मपरायण थे; फिर दैत्योंने उन्हें क्यों अस्त्र-शस्त्रोंसे पीड़ित किया और क्यों समुद्रके जलमे डाला? उन्होंने किसलिये उन्हें पर्वतोंसे दबाया? किस कारण सर्पोंसे डँसाया? क्यों पर्वत-शिखरसे गिराया और क्यों अग्निमें डलवाया? उन महादैत्योंने उन्हें दिग्गजोंके दाँतोंसे क्यो रूँधवाया और क्यों सर्वशोषक वायुको उनके लिये नियुक्त किया? मुने! उनपर दैत्यगुरुओंने किसलिये कृत्याका प्रयोग किया और शम्बरासुरने क्यों अपनी सहस्रों मायाओंका वार किया? उन महात्माको मारनेके लिये दैत्यराजके रसोइयोंने, जिसे वे महाबुद्धिमान् पचा गये थे ऐसा, हलाहल विष क्यों दिया?

महाभाग! महात्मा प्रह्लादका यह सम्पूर्ण चरित्र, जो उनके महान् माहात्म्यका सूचक है, मैं विस्तारसे सुनना चाहता हूँ। यदि दैत्यगण उन्हें नहीं मार सके तो इसका मुझे कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि जिसका मन अनन्यभावसे भगवान् विष्णुमें लगा हुआ है, उसको भला कौन मार सकता है? आश्चर्य तो इसीका है कि जो नित्यधर्मपरायण और भगवदाराधनमें तत्पर रहते थे, उनसे उनके ही कुलमें उत्पन्न हुए दैत्योंने ऐसा अति दुष्कर द्वेष किया! उन धर्मात्मा, महाभाग, मत्सरहीन विष्णु-भक्तको दैत्योंने किस कारणसे इतना कष्ट दिया, सो आप मुझसे कहिये।

हिरण्यकशिपुकी दिग्विजय और प्रह्लाद-चरित

श्रीपराशरजीने कहा—मैत्रेय! उन सर्वदा उदार-चरित परमबुद्धिमान् महात्मा प्रह्लादजीका चरित्र तुम ध्यानपूर्वक श्रवण करो। पूर्वकालमें दितिके पुत्र महाबली हिरण्यकशिपुने ब्रह्माजीके वरसे गर्वयुक्त होकर सम्पूर्ण त्रिलोकीको अपने वशीभूत कर लिया था। वह दैत्य इन्द्रपदका भोग करता था। वह महान् असुर स्वयं ही सूर्य, वायु, अग्नि, वरुण और चन्द्रमा बना हुआ था। वह स्वयं ही कुबेर और यमराज भी था और वह असुर स्वयं ही सम्पूर्ण यज्ञ-भागोंको भोगता था। मुनिसत्तम! उसके भयसे देवता स्वर्गको छोड़कर मनुष्य-शरीर धारणकर भूमण्डलमें विचरते रहते थे। इस प्रकार सम्पूर्ण त्रिलोकीको जीतकर त्रिभुवनके वैभवसे गर्वित हुआ और गन्धर्वोंसे अपनी स्तुति सुनता हुआ वह अपने अभीष्ट भोगोंको भोगता था।

उस समय उस मद्यपानासक्त महाकाय हिरण्यकशिपु-

की ही समस्त सिद्ध, गन्धर्व और नाग आदि उपासना

करते थे। उस दैत्यराजके सामने कोई सिद्ध-गण तो बाजे बजाकर उसका यशोगान करते और कोई अति प्रसन्न होकर जय-जयकार करते थे। वह असुरराज वहाँ स्फटिक एवं अभ्र-शिलाके बने हुए मनोहर महलमें, जहाँ अप्सराओंका उत्तम नृत्य हुआ करता था, प्रसन्नताके साथ मद्यपान करता रहता था। उसका प्रह्लाद नामक महाभाग्यवान् पुत्र था। वह बालक गुरुके यहाँ जाकर बालोचित पाठ पढ़ने लगा। एक दिन वह धर्मात्मा बालक गुरुजीके साथ अपने पिता दैत्यराजके पास गया तो उस समय वह मद्यपानमें लगा हुआ था। उसने अपने चरणोंमें झुके हुए परम तेजस्वी पुत्र प्रह्लादजीको उठाकर कहा।

हिरण्यकशिपु बोला—वत्स! अबतक अध्ययनमें निरन्तर तत्पर रहकर तुमने जो कुछ पढ़ा है, उसका सारभूत शुभ भाषण हमें सुनाओ।

प्रह्लादजीने कहा—पिताजी! मेरे मनमें जो सबके साररूपसे स्थित है, वह मैं आपके आज्ञानुसार सुनाता हूँ, सावधान होकर सुनिये। जो [illegible] अजन्मा, वृद्धि-क्षयशून्य और अच्युत हैं, [illegible] कारण तथा जगत्‌की स्थिति एवं [illegible] श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ*।

श्रीपराशरजी कहते हैं—[illegible] कशिपुके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये [illegible] और उसने प्रह्लादके गुरुकी ओर देखकर [illegible]।

हिरण्यकशिपु बोला—[illegible] दुर्बुद्धि [illegible]! [illegible] क्या! तूने मेरी अवज्ञा कर [illegible] स्तुतिसे युक्त असार शिक्षा दी है!

गुरुजीने कहा—दैत्यराज! आपको [illegible] न होना चाहिये। आपका यह पुत्र मेरी [illegible] नहीं कह रहा है।

हिरण्यकशिपु बोला—बेटा प्रह्लाद! [illegible] तुमको यह शिक्षा किसने दी है? तुम्हारे गुरुजी कहते हैं कि मैंने तो इसे ऐसा उपदेश नहीं दिया है।

प्रह्लादजी बोले—पिताजी! हृदयमें स्थित भगवान् विष्णु ही तो सम्पूर्ण जगत्‌के उपदेशक हैं। उन [illegible] छोड़कर और कौन किसीको कुछ सिखा सकता है?

हिरण्यकशिपु बोला—अरे मूर्ख! [illegible]

* अनादि[illegible] ।
प्रणतोऽस्म्यन्त[illegible] [illegible] ॥
(वि० पु० १ । १७ । १५)

मुझ जगदीश्वरके सामने धृष्टतापूर्वक निःशङ्क होकर वारंवार वर्णन करता है, वह कौन है ?

प्रह्लादजी बोले—योगियोंके ध्यान करनेयोग्य जिसका परम पद वाणीका विषय नहीं हो सकता तथा जिससे विश्व प्रकट हुआ है और जो स्वयं विश्वरूप है, वह परमेश्वर ही विष्णु है* ।

हिरण्यकशिपु बोला—अरे मूढ़ ! मेरे रहते हुए दूसरा कौन परमेश्वर कहा जा सकता है ? फिर भी तू मौतके मुखमें जानेकी इच्छासे बारंबार ऐसा बक रहा है ।

प्रह्लादजी बोले—पिताजी ! वह ब्रह्मभूत विष्णु तो केवल मेरा ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण प्रजा और आपका भी धारण-पोषण करनेवाला विधाता और परमेश्वर है। आप प्रसन्न होइये, व्यर्थ क्रोध क्यों करते हैं ?

हिरण्यकशिपु बोला—अरे ! इस दुर्बुद्धि बालकके हृदयमें कौन पापी घुसा बैठा है, जिससे आविष्ट-चित्त होकर यह ऐसे अमङ्गलमय वचन बोलता है ?

प्रह्लादजी बोले—पिताजी ! वे विष्णुभगवान् तो मेरे ही हृदयमें नहीं, बल्कि सम्पूर्ण लोकोंमें स्थित हैं। वे सर्वव्यापी प्रभु ही मुझको, आप सबको और समस्त प्राणियोंको अपनी-अपनी चेष्टाओंमें प्रवृत्त करते हैं† ।

हिरण्यकशिपु बोला—इस पापीको यहाँसे निकालो और गुरुके यहाँ ले जाकर इसका अच्छी तरह शासन करो। इस दुर्बुद्धिको न जाने किसने मेरे विपक्षीकी प्रशंसामें लगा दिया है ?

श्रीपराशरजी कहते हैं—उसके ऐसा कहनेपर दैत्यगण उस बालकको फिर गुरुजीके यहाँ ले गये। प्रह्लाद वहाँ गुरुजीकी रात-दिन भलीप्रकार सेवा-शुश्रूषा करते हुए विद्याध्ययन करने लगे। बहुत काल व्यतीत हो जानेपर दैत्यराजने प्रह्लादजीको फिर बुलाया और कहा—'बेटा ! आज कोई बात सुनाओ।'

प्रह्लादजी बोले—जिनसे प्रधान, पुरुष और यह चराचर जगत् उत्पन्न हुआ है, वे सकल प्रपञ्चके कारण श्रीविष्णुभगवान् हमपर प्रसन्न हों* ।

हिरण्यकशिपु बोला—अरे ! यह बड़ा दुरात्मा है ! इसको मार डालो; अब इसके जीनेसे कोई लाभ नहीं है, क्योंकि स्वपक्षकी हानि करनेवाला होनेसे यह तो अपने कुलके लिये अङ्गाररूप हो गया है ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—उसकी ऐसी आज्ञा होनेपर सैकड़ों-हजारों दैत्यगण बड़े-बड़े अस्त्र-शस्त्र लेकर उन्हें मारनेके लिये तैयार हो गये ।

प्रह्लादजी बोले—अरे दैत्यो ! भगवान् विष्णु तो शस्त्रोंमें, तुमलोगोंमें और मुझमें—सर्वत्र ही स्थित हैं। इस सत्यके प्रभावसे ये अस्त्र-शस्त्र मुझे चोट न पहुँचावें ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—तब तो उन सैकड़ों दैत्योंके शस्त्रसमूहका आघात होनेपर भी प्रह्लादको तनिक-सी भी वेदना नहीं हुई, वे फिर भी ज्यों-के-त्यों नवीन बलसम्पन्न ही रहे ।

---

* न शब्दगोचरं यस्य योगिध्येयं परं पदम् ।
यतो यश्च स्वयं विश्वं स विष्णुः परमेश्वरः ॥
(वि० पु० १ । १७ । २२)

† न केवलं मद्धृदयं स विष्णु-
राक्रम्य लोकानखिलानवस्थितः ।
स मां त्वदादींश्च पितः समस्तान्
समस्तचेष्टासु युनक्ति सर्वगः ॥
(वि० पु० १ । १७ । २६)

* यतः प्रधानपुरुषौ यतश्चैतच्चराचरम् ।
कारणं सकलस्यास्य स नो विष्णुः प्रसीदतु ॥
(वि० पु० १ । १७ । ३०)

हिरण्यकशिपु बोला—रे दुर्बुद्धे ! अब तो तू शत्रुकी स्तुति करना छोड़ दे; जा, मैं तुझे अभय-दान देता हूँ, अब और अधिक नादान मत हो ।

प्रह्लादजी बोले—तात ! जिनके स्मरण-मात्रसे जन्म, जरा और मृत्यु आदिके समस्त भय दूर हो जाते हैं, उन सकल-भयहारी अनन्तके हृदयमें स्थित रहते मुझे भय कहाँ रह सकता है* ?

हिरण्यकशिपु बोला—अरे सर्पो ! इस अत्यन्त दुर्बुद्धि और दुराचारीको अपने विषाग्निसंतप्त मुखोंसे काटकर शीघ्र ही नष्ट कर दो ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—ऐसी आज्ञा होनेपर अति क्रूर और विषधर तक्षक आदि सर्पोंने उनके समस्त अङ्गोंमें काटा, किंतु उनका चित्त तो श्रीकृष्णमें आसक्त था और वे भगवत्स्मरणके परमानन्दमें डूब रहे थे, अतः उन महासर्पोंके काटनेपर भी अपने शरीरका ख्याल नहीं किया ।

सर्प बोले—दैत्यराज ! देखो, [illegible] मणियाँ चटखने लगीं, फणोंमें पीड़ा [illegible] काँपने लगा, तथापि इसकी त्वचा तो [illegible] इसलिये अब आप हमें कोई और [illegible] ।

हिरण्यकशिपु बोला—दिग्गजो ! तुम [illegible] दाँतोंको मिलाकर मेरे शत्रु [illegible] इस बालकको मार डालो ! देखो, [illegible] अग्नि उसीको जला डालता है, उसी प्रकार [illegible] उत्पन्न होते हैं, उसीके नाश करनेवाले [illegible] !

श्रीपराशरजी कहते हैं—तब [illegible] विशालकाय दिग्गजोंने उस बालकको [illegible] अपने दाँतोंसे खूब रौंदा, किंतु श्रीगोविन्दका [illegible] रहनेसे हाथियोंके हजारों दाँत उनके वक्षःस्थलसे टकराकर [illegible] टूट गये, तब उन्होंने पिता हिरण्यकशिपुसे [illegible] हाथियोंके वज्रके समान कठोर दाँत टूट गये हैं, [illegible] मेरा कोई बल नहीं है; यह तो श्रीजनार्दन भगवान्‌के [illegible] और क्लेशोंके नष्ट करनेवाले स्मरणका ही प्रभाव है ।[1]

---

* भय भयानामपहारिणि स्थिते
  मनस्यनन्ते मम कुत्र तिष्ठति ।
यस्मिन् स्मृते जन्मजरान्तकादि-
  भयानि सर्वाण्यपयान्ति तात ॥
(वि० पु० १ । १७ । ३६)

[1] दन्ता गजानां [illegible]
  [illegible]
महाविपत्पापविनाशनोऽयं
  जनार्दनानुस्मरणानुभावः ॥
(वि० पु० १ । १७ । [illegible])

हिरण्यकशिपु बोला—अरे दिग्गजो ! तुम हट जाओ। दैत्यो ! तुम अग्नि जलाओ और वायु ! तुम अग्निको प्रज्वलित करो; जिससे इस पापीको जला डाला जाय।

श्रीपराशरजी कहते हैं—तब दानवगण अपने स्वामीकी आज्ञासे काठके एक बड़े ढेरमें उस असुरराजकुमारको बैठा दिया और वे अग्नि प्रज्वलित करके जलाने लगे।

प्रह्लादजी बोले—तात ! पवनसे प्रेरित हुआ भी यह अग्नि मुझे नहीं जलाता। मुझको तो सभी दिशाएँ ऐसी शीतल प्रतीत होती हैं, मानो मेरे चारों ओर कमल बिछे हुए हों*।

श्रीपराशरजी कहते हैं—तदनन्तर, शुक्रजीके पुत्र बड़े वाग्मी महात्मा षण्डा-मर्क आदि पुरोहितगण सामनीतिसे दैत्यराजकी बड़ाई करते हुए बोले।

पुरोहित बोले—राजन् ! अपने इस बालक पुत्रके प्रति अपना क्रोध शान्त कीजिये; आपको तो देवताओंपर ही क्रोध करना चाहिये, क्योंकि उसकी सफलता तो वहीं है। राजन् ! हम आपके इस बालकको ऐसी शिक्षा देंगे, जिससे यह विपक्षके नाशका कारण होकर आपके प्रति विनीत हो जायगा। दैत्यराज ! बाल्यावस्था तो सब प्रकारके दोषोंका आश्रय होती ही है, इसलिये आपको इस बालकपर अत्यन्त क्रोधका प्रयोग नहीं करना चाहिये। यदि हमारे कहनेसे भी यह विष्णुका पक्ष नहीं छोड़ेगा तो हम इसको नष्ट करनेके लिये किसी प्रकार न टलनेवाली कृत्या उत्पन्न करेंगे।

श्रीपराशरजी कहते हैं—पुरोहितोंके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर दैत्यराजने दैत्योंद्वारा प्रह्लादको अग्निसमूहसे बाहर निकलवाया। फिर प्रह्लादजी गुरुजीके यहाँ रहते हुए उनके पढ़ा चुकनेपर अन्य दानवकुमारोंको बार-बार उपदेश देने लगे।

प्रह्लादजी बोले—दैत्यकुलोत्पन्न असुर-बालको ! सुनो, मैं तुम्हें परमार्थका उपदेश करता हूँ, तुम इसे अन्यथा न समझना, क्योंकि मेरे ऐसा कहनेमें किसी प्रकारका लोभादि कारण नहीं है। सभी जीव जन्म, बाल्यावस्था और फिर यौवन प्राप्त करते हैं, तत्पश्चात् दिन-दिन वृद्धावस्थाकी प्राप्ति भी अनिवार्य ही है। और दैत्यराजकुमारो ! फिर यह जीव मृत्युके मुखमें चला जाता है; यह हम और तुम सभी प्रत्यक्ष देखते हैं। मरनेपर पुनर्जन्म होता है, यह नियम भी कभी नहीं टलता। इस विषयमें श्रुति-स्मृतिरूप आगम भी प्रमाण

---

* तातैष वह्निः पवनेरितोऽपि
न मां दहत्यत्र समन्ततोऽहम्।
पश्यामि पद्मास्तरणास्तृतानि
शीतानि सर्वाणि दिशा मुखानि॥
(वि० पु० १।१७।४७)

है कि विना उपादानके कोई वस्तु उत्पन्न नहीं होती अर्थात् विना कारणके किसी कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती* । पुनर्जन्म प्राप्त करानेवाली गर्भवास आदि जितनी अवस्थाएँ हैं, उन सबको दुःखरूप ही जानो । मनुष्य मूर्खतावश क्षुधा, तृष्णा और शीतादिकी शान्तिको सुख मानते हैं; परंतु वास्तवमें तो वे दुःखमात्र ही हैं । जिनका शरीर वातादि दोषसे अत्यन्त शिथिल हो जाता है, उन्हें जिस प्रकार व्यायामसे सुख प्रतीत होता है, उसी प्रकार जिनकी दृष्टि भ्रान्तिज्ञानसे ढकी हुई है, उन्हें दुःख ही सुखरूप जान पड़ता है । अहो ! कहाँ तो कफ आदि महाघृणित पदार्थोंका समूहरूप शरीर और कहाँ कान्ति, शोभा, सौन्दर्य एवं रमणीयता आदि दिव्य गुण ? तथापि मनुष्य इस घृणित शरीरमें कान्ति आदिका आरोप कर सुख मानने लगता है । यदि किसी मूढ पुरुषकी मांस, रुधिर, पीब, विष्ठा, मूत्र, स्नायु, मज्जा और अस्थियोंके समूहरूप इस शरीरमें प्रीति हो सकती है तो उसे नरक भी प्रिय लग सकता है । शीतके कारण अग्नि, प्यासके कारण जल और क्षुधाके कारण भात सुखकारी होता है और इनके प्रतियोगी जल आदि भी अपनेसे भिन्न अग्नि आदिके कारण ही सुखके हेतु होते हैं ।

दैत्यकुमारो ! विषयोंका जितना-जितना संग्रह किया जाता है, उतना-उतना ही वे मनुष्यके चित्तमें दुःख बढाते हैं । जीव अपने मनको प्रिय लगनेवाले जितने ही सम्बन्धोंको बढाता जाता है, उतने ही उसके हृदयमें शोकरूपी शल्य (काँटे) गड़ते जाते हैं† । घरमें जो कुछ धन-धान्यादि होते हैं, मनुष्यके जहाँ-तहाँ (परदेशमें) रहनेपर भी वे पदार्थ उसके चित्तमें बने रहते हैं और उनके नाश और दाह आदिकी सामग्री भी उसीमें मौजूद रहती है । अर्थात् घरमें स्थित पदार्थोंके सुरक्षित रहनेपर भी मनःस्थित पदार्थोंके नाश आदिकी भावनासे पदार्थ-नाशका दुःख प्राप्त हो जाता है । इस प्रकार जीते-जी तो यहाँ महान् दुःख होता ही है, मरनेपर भी यमयातनाओंमें और गर्भप्रवेशमें उग्र कष्ट [illegible] है। यदि तुम्हें गर्भवासमें लेशमात्र भी सुखका अनुमान [illegible] तो कहो ! सारा संसार इसी प्रकार अत्यन्त दुःखमय है । इसलिये दुःखोंके परम आश्रय इस संसार-समुद्रमें [illegible] विष्णुभगवान् ही आपलोगोंकी परम गति हैं—यह मैं [illegible] सत्य कहता हूँ ।

ऐसा मत समझो कि हम तो अभी बालक हैं, क्योंकि [illegible], यौवन और जन्म आदि अवस्थाएँ तो देहके ही धर्म हैं [illegible] का अधिष्ठाता आत्मा तो नित्य है, उसमें कोई धर्म [illegible] है । जो मनुष्य ऐसी दुराशाओंसे विक्षिप्तचित्त रहता है कि 'अभी मैं बालक हूँ, इसलिये इच्छानुसार [illegible] वस्था प्राप्त होनेपर कल्याण-साधन [illegible] करूँगा' [illegible] होनेपर कहता है कि 'अभी तो मैं युवक हूँ, [illegible] कल्याण कर लूँगा' और वृद्ध होनेपर सोचता है कि [illegible] बूढा हो गया, अब तो मेरी इन्द्रियाँ अपने कर्मोंमें प्रवृत्त नहीं होतीं, शरीरके शिथिल हो जानेपर अब मैं क्या कर [illegible] हूँ ? सामर्थ्य रहते तो मैंने कुछ किया ही नहीं—वह [illegible] कल्याणपथपर कभी अग्रसर नहीं होता, [illegible] भोगतृष्णामें ही व्याकुल रहता है ।

मूर्खलोग अपनी बाल्यावस्थामें [illegible] रहते हैं, युवावस्थामें विषयोंमें फँस जाते हैं और बुढापा आनेपर उसे बड़ी असमर्थतासे काटते हैं । इसलिये [illegible] पुरुषको चाहिये कि देहकी बाल्य, यौवन और वृद्ध आदि अवस्थाओंकी अपेक्षा न करके बाल्यावस्थामें ही अपने [illegible] यत्न करे । मैंने तुमलोगोंसे जो कुछ कहा है, उसे यदि तुम [illegible] नहीं समझते तो मेरी प्रसन्नताके लिये ही [illegible] श्रीविष्णुभगवान्का स्मरण करो । उनका [illegible] परिश्रम भी क्या है ? और स्मरणमात्रसे ही वे [illegible] फल देते हैं तथा रात-दिन उन्हींका स्मरण [illegible] पाप भी नष्ट हो जाता है । उन [illegible]

* यह पुनर्जन्म होनेमें युक्ति है, क्योंकि जबतक पूर्व जन्मके किये हुए शुभाशुभ कर्मरूप कारणका होना न माना जाय, तबतक वर्तमान जन्म भी सिद्ध नहीं हो सकता, इसी प्रकार जब इस जन्ममें शुभाशुभका आरम्भ हुआ है तो इसका कार्यरूप पुनर्जन्म भी अवश्य होगा ।

† यावतः कुरुते जन्तुः सम्बन्धान्मनसः प्रियान् ।
तावन्तोऽस्य निखन्यन्ते हृदये शोकशङ्कवः ॥
(वि० पु० १ । १७ । ६६)

* [illegible]
[illegible]
(वि० पु० १ । १७ । [illegible])

† [illegible]
[illegible]
[illegible]

अहर्निश लगी रहे और उनमें निरन्तर तुम्हारा प्रेम बढ़े; इस प्रकार तुम्हारे समस्त क्लेश दूर हो जायँगे* ।

जब कि यह सभी संसार तापत्रयसे दग्ध हो रहा है तो इन बेचारे शोचनीय जीवोंसे कौन बुद्धिमान् द्वेष करेगा ? यदि ऐसा दिखायी दे कि 'और जीव तो आनन्दमें हैं, मैं ही परम शक्तिहीन हूँ' तब भी प्रसन्न ही होना चाहिये, क्योंकि द्वेषका फल तो दुःखरूप ही है । यदि कोई प्राणी वैरभावसे द्वेष भी करें तो विचारवानोंके लिये तो वे 'अहो ! ये महामोहसे व्याप्त हैं !' इस प्रकार अत्यन्त शोचनीय ही हैं ।

दैत्य भाइयो ! ये मैंने भिन्न-भिन्न दृष्टिवालोंके विकल्प (भिन्न-भिन्न उपाय) कहे । अब उनका समन्वयपूर्वक संक्षिप्त विचार सुनो । यह सम्पूर्ण जगत् सर्वभूतमय भगवान् विष्णुका विस्तार है, अतः विचक्षण पुरुषोंको इसे अभेदरूपसे आत्मवत् देखना चाहिये । इसलिये दैत्यभावको छोड़कर हम और तुम ऐसा यत्न करें, जिससे शान्ति-लाभ कर सकें† ।

दैत्यो ! मैं आग्रहपूर्वक कहता हूँ, तुम इस असार संसारके विषयोंमें कभी संतुष्ट मत होना । तुम सर्वत्र समदृष्टि करो, क्योंकि समता ही श्रीअच्युतकी वास्तविक आराधना है । उन अच्युतके प्रसन्न होनेपर फिर संसारमें दुर्लभ ही क्या है ! तुम धर्म, अर्थ और कामकी इच्छा कभी न करना । वे तो अत्यन्त तुच्छ हैं । उस ब्रह्मरूप महावृक्षका आश्रय लेनेपर तो तुम निःसंदेह मोक्षरूप महाफल प्राप्त कर लोगे ।‡

प्रह्लादको मारनेके लिये विष, शस्त्र और अग्नि आदिका प्रयोग एवं प्रह्लादकृत भगवत्-स्तुति

श्रीपराशरजी कहते हैं—उनकी ऐसी चेष्टा देख दैत्योंने डरकर दैत्यराज हिरण्यकशिपुसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया और हिरण्यकशिपुने भी तुरंत अपने रसोइयोंको बुलाकर कहा ।

हिरण्यकशिपु बोला—अरे रसोइयालोगो ! मेरा यह दुष्ट और दुर्मति पुत्र औरोंको भी कुमार्गका उपदेश देता है, अतः तुम शीघ्र ही इसे मार डालो । तुम उसे उसके बिना जाने समस्त खाद्यपदार्थोंमें हलाहल विष मिलाकर दो और किसी प्रकारका सोच-विचार न कर उस पापीको मार डालो ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—तब उन रसोइयोंने महात्मा प्रह्लादको, उनके पिताके आज्ञानुसार विष दे दिया । मैत्रेय ! प्रह्लादजी उस घोर हलाहल विषमिश्रित अन्नको भगवन्नामके उच्चारणसे अभिमन्त्रित कर खा गये । भगवन्नामके प्रभावसे विष निस्तेज हो गया था, अतः उस विषको खाकर उसे बिना किसी विकारके पचाकर वे स्वस्थचित्तसे स्थित रहे । उस महान् विषको पचा हुआ देख रसोइयोंने भयसे व्याकुल हो हिरण्यकशिपुके पास जा उसे प्रणाम करके कहा ।

सूदगण बोले—दैत्यराज ! हमने आपकी आज्ञासे

---

* बाल्ये क्रीडनकासक्ता यौवने विषयोन्मुखाः । अज्ञा नयन्त्यशक्त्या च वार्द्धकं समुपस्थितम् ॥
तस्माद्बाल्ये विवेकात्मा यतेत श्रेयसे सदा । बाल्ययौवनवृद्धाद्यैर्देहभावैरसंयुतः ॥
तदेतद्वो मयाख्यातं यदि जानीत नानृतम् । तदस्मत्प्रीतये विष्णुः स्मर्यतां बन्धमुक्तिदः ॥
प्रयासः स्मरणे कोऽस्य स्मृतो यच्छति शोभनम् । पापक्षयश्च भवति स्मरतां तमहर्निशम् ॥
सर्वभूतस्थिते तस्मिन्मतिर्मैत्री दिवानिशम् । भवतां जायतामेवं सर्वक्लेशान् प्रहास्यथ ॥
(वि० पु० १ । १७ । ७५–७९)

† विस्तारः सर्वभूतस्य विष्णोः सर्वमिदं जगत् । द्रष्टव्यमात्मवत्तस्मादभेदेन विचक्षणैः ॥
समुत्सृज्यासुरं भावं तस्माद्यूयं तथा वयम् । तथा यत्नं करिष्यामो यथा प्राप्स्याम निर्वृतिम् ॥
(वि० पु० १ । १७ । ८४-८५)

‡ असारसंसारविवर्तनेषु मा यात तोषं प्रसभं ब्रवीमि । सर्वत्र दैत्याः समतामुपेत समत्वमाराधनमच्युतस्य ॥
तस्मिन्प्रसन्ने किमिहास्त्यलभ्यं धर्मार्थकामैरलमल्पकास्ते । समाश्रिताद्ब्रह्मतरोरनन्तान्निःसंशयं प्राप्स्यथ वै महत्फलम् ॥
(वि० पु० १ । १७ । ९०-९१)

ऐसा कहकर वे उनका गौरव रखनेके लिये चुप हो गये और फिर हँसकर कहने लगे—मुझे अनन्तसे क्या प्रयोजन है ? इस विचारको धन्यवाद है ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चार पुरुषार्थ कहे जाते हैं । ये चारों ही जिनसे सिद्ध होते हैं, उनसे क्या प्रयोजन ? आपके इस कथनको क्या कहा जाय ! अतः सम्पत्ति, ऐश्वर्य, माहात्म्य, ज्ञान, सतति और कर्म तथा मोक्ष इन सबकी एकमात्र मूलभूता श्रीहरिकी आराधना ही उपार्जनीय है* । द्विजगण ! इस प्रकार जिनसे अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—ये चारों ही फल प्राप्त होते हैं, उनके लिये भी आप ऐसा क्यों कहते हैं कि 'अनन्तसे मुझे क्या प्रयोजन है ?' इस विषयमें अधिक क्या कहा जाय ? मेरे विचारसे तो वे ही संसारके स्वामी हैं तथा सबके अन्तःकरणोंमें स्थित एकमात्र वे ही उसके रचयिता, पालक और संहारक हैं । वे ही भोक्ता और भोज्य हैं तथा वे ही एकमात्र जगदीश्वर हैं । गुरुगण ! मैंने बाल्यभावसे यदि कुछ अनुचित कहा हो तो आप क्षमा करें ।

पुरोहितगण बोले—अरे बालक ! हमने तो यह समझकर कि तू फिर ऐसी बात न कहेगा तुझे अग्निमें जलनेसे बचाया था। हम यह नहीं जानते थे कि तू ऐसा बुद्धिहीन है ? अरे दुर्मते ! यदि तू हमारे कहनेसे अपने इस मोहमय आग्रहको नहीं छोड़ेगा तो हम तुझे नष्ट करनेके लिये कृत्या उत्पन्न करेंगे ।

प्रह्लादजी बोले—कौन जीव किससे मारा जाता है और कौन किससे रक्षित होता है ? शुभ और अशुभ आचरणोंके द्वारा आत्मा स्वयं ही अपनी रक्षा और नाश करता है । कर्मोंके कारण ही सब उत्पन्न होते हैं और कर्म ही उनकी शुभाशुभ गतियोंके साधन हैं, इसलिये प्रयत्नपूर्वक शुभकर्मोंका ही आचरण करना चाहिये ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—उनके ऐसा कहनेपर उन दैत्यराजके पुरोहितोंने क्रुद्ध होकर अग्निशिखाके समान प्रज्वलित शरीरवाली कृत्या उत्पन्न कर दी। उस अति भयंकरी कृत्याने अपने पादाघातसे पृथिवीको कम्पित करते हुए वहाँ प्रकट होकर बड़े क्रोधसे प्रह्लादजीकी छातीमें त्रिशूलसे प्रहार किया, किंतु उस बालकके वक्षःस्थलमें लगते ही वह तेजोमय त्रिशूल टूटकर पृथिवीपर गिर पड़ा और वहाँ गिरनेसे भी उसके सैकड़ों टुकड़े हो गये । जिस हृदयमें निरन्तर अक्षुण्णभावसे श्रीहरिभगवान् विराजते हैं, उसमें लगनेसे तो वज्रके भी टूक-टूक हो जाते हैं, त्रिशूलकी तो बात ही क्या है* ?

उन पापी पुरोहितोंने उस निष्पाप बालकपर कृत्याका प्रयोग किया था; इसलिये तुरंत ही उस कृत्याने उनपर वार किया और स्वयं भी नष्ट हो गयी। अपने गुरुओंको कृत्याके द्वारा जलाये जाते देख महामति प्रह्लाद 'हे कृष्ण ! रक्षा करो । हे अनन्त ! बचाओ ।' ऐसा कहते हुए उनकी ओर दौड़े ।

प्रह्लादजी कहने लगे—सर्वव्यापी, विश्वरूप, विश्वस्रष्टा जनार्दन ! इन ब्राह्मणोंकी इस मन्त्राग्निरूप दुःसह दुःखसे रक्षा करो । 'सर्वव्यापी जगद्गुरु भगवान् विष्णु सभी प्राणियोंमें व्याप्त हैं'—इस सत्यके प्रभावसे ये पुरोहितगण जीवित हो जायँ । यदि मैं सर्वव्यापी और अक्षय श्रीविष्णुभगवान्‌को अपने विपक्षियोंमें भी देखता हूँ तो ये पुरोहितगण जीवित हो जायँ । जो लोग मुझे मारनेके लिये आये, जिन्होंने मुझे विष दिया, जिन्होंने आगमें जलाया, जिन्होंने दिग्गजोंसे पीडित

* सम्पदैश्वर्यमाहात्म्यज्ञानसंततिकर्मणाम् ।
विमुक्तेश्चैको लभ्यं मूलमाराधनं हरेः ॥
(वि० पु० १ । १८ । २४)

* यत्रानपायी भगवान् हृद्यास्ते हरिरीश्वरः ।
भङ्गो भवति वज्रस्य तत्र शूलस्य का कथा ॥
(वि० पु० १ । १८ । ३६)

कराया और जिन्होंने सर्पोंसे डँसाया, उन सबके प्रति यदि मैं समान मित्रभावसे रहा हूँ और मेरी कभी पाप-बुद्धि नहीं हुई है तो उस सत्यके प्रभावसे ये दैत्यपुरोहित जी उठें ।*

श्रीपराशरजी कहते हैं—यों कहकर उनके स्पर्श करते ही वे ब्राह्मण स्वस्थ होकर उठ बैठे और उस विनयावनत बालकसे कहने लगे ।

पुरोहितगण बोले—वत्स ! [illegible] दीर्घायु, निर्द्वन्द्व, बल-वीर्यसम्पन्न तथा [illegible] ऐश्वर्यादिसे सम्पन्न हो ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—महामुने ! [illegible] पुरोहितोंने दैत्यराज हिरण्यकशिपुके पास [illegible] ज्यों-का-त्यों सुना दिया ।

प्रह्लादकृत भगवद्-गुण-वर्णन और प्रह्लादकी रक्षाके लिये भगवान्‌का सुदर्शनचक्रको भेजना

श्रीपराशरजी कहते हैं—हिरण्यकशिपुने कृत्याको भी विफल हुई सुन अपने पुत्र प्रह्लादको बुलाकर उनके इस प्रभावका कारण पूछा ।

हिरण्यकशिपु बोला—अरे प्रह्लाद ! तू बड़ा प्रभावशाली है ! तेरी ये चेष्टाएँ मन्त्रादिजनित हैं या स्वाभाविक ही हैं ?

श्रीपराशरजी कहते हैं—पिताके इस प्रकार पूछनेपर दैत्यकुमार प्रह्लादजीने उसके चरणोंमें प्रणाम कर इस प्रकार कहा—'पिताजी ! मेरा यह प्रभाव न तो मन्त्रादिजनित है और न स्वाभाविक ही है, बल्कि जिस-जिसके हृदयमें श्रीअच्युत-भगवान्‌का निवास होता है, उसके लिये यह सामान्य बात है । जो मनुष्य अपने समान दूसरोंका बुरा नहीं सोचता, तात ! कोई कारण न रहनेसे उसका भी कभी बुरा नहीं होता । जो मनुष्य मन, वचन या कर्मसे दूसरोंको [illegible] परपीड़ारूप बीजसे ही उत्पन्न हुआ अनन्त अशुभ [illegible] है । अपनेसहित समस्त प्राणियोंमें [illegible] मैं न तो किसीका बुरा चाहता हूँ और न [illegible] ही हूँ† । इस प्रकार सर्वत्र शुभचित्त होनेसे मुझको शारीरिक, मानसिक, दैविक अथवा भौतिक दुःख किस प्रकार प्राप्त हो सकता है ? इसी प्रकार भगवान्‌को सर्वभूतमय जानकर [illegible] को सभी प्राणियोंमें अविचल भक्ति (प्रीति) करनी [illegible]

श्रीपराशरजी कहते हैं—अपने [illegible] बैठे हुए उस दैत्यराजने यह सुनकर क्रोधान्ध [illegible] अनुचरोंसे कहा ।

हिरण्यकशिपु बोला—[illegible] सौ योजन ऊँचे महलसे गिरा दो । [illegible] गिरे और शिलाओंसे इसके अंग शतधा चूर-चूर हो [illegible] ।

---

* सर्वव्यापिन् जगद्रूप जगत्स्रष्टर्जनार्दन । पाहि विप्रानिमानस्माद् दु[illegible] ॥
यथा सर्वेषु भूतेषु सर्वव्यापी जगद्गुरुः । विष्णुरेव तथा सर्वे जीवन्त्वेते पुरोहिताः ॥
यथा सर्वगतं विष्णुं मन्यमानोऽनपायिनम् । चिन्तयाम्यरिपक्षेऽपि जीवन्त्वेते पुरोहिताः ॥
ये हन्तुमागता दत्तं यैर्विषं यैर्हुताशनः । यैर्दिग्गजैरहं क्षुण्णो दष्टः सर्पैश्च यैरपि ॥
तेष्वहं मित्रभावेन समः पापोऽस्मि न क्वचित् । यथा तेनाद्य सत्येन जीवन्त्वसुरयाजकाः ॥
(वि० पु० १ । १८ । [illegible])

† न मन्त्रादिकृतं तात न च नैसर्गिको मम । प्रभाव एष सामान्यो यस्य यस्याच्युतो हृदि ॥
अन्येषां यो न पापानि चिन्तयत्यात्मनो यथा । तस्य पापागमस्तात हेत्वभावान्न विद्यते ॥
कर्मणा मनसा वाचा परपीडां करोति यः । तद्बीजं जन्म फलति प्रभूतं तस्य चाशुभम् ॥
सोऽहं न पापमिच्छामि न करोमि वदामि वा । चिन्तयन्सर्वभूतस्थमात्मन्यपि च केशवम् ॥
(वि० पु० [illegible])

‡ शारीरं मानसं दुःखं दैवं भूतभवं तथा । सर्वत्र शुभचित्तस्य तस्य मे जायते कुतः ॥
एवं सर्वेषु भूतेषु भक्तिरव्यभिचारिणी । कर्तव्या पण्डितैर्ज्ञात्वा सर्वभूतमयं हरिम् ॥
(वि० पु० [illegible])

तब उन समस्त दैत्य और दानवोंने उन्हें महलसे गिरा दिया और वे भी उनके ढकेलनेसे हृदयमें श्रीहरिका स्मरण करते करते नीचे गिर गये। जगत्कर्ता भगवान् केशवके परम भक्त प्रह्लादजीके गिरते समय उन्हें जगद्धात्री पृथिवीने निकट जाकर अपनी गोदमें ले लिया। तब बिना किसी हड्डी-पसलीके टूटे उन्हें स्वस्थ देख दैत्यराज हिरण्यकशिपुने परम मायावी शम्बरासुरसे कहा।

हिरण्यकशिपु बोला—यह दुर्बुद्धि बालक हमसे नहीं मारा जा सकता; आप माया जानते हैं, अतः इसे मायासे ही मार डालिये।

शम्बरासुर बोला—दैत्येन्द्र! इस बालकको मैं अभी मारे डालता हूँ, तुम मेरी मायाका बल देखो। देखो, मैं तुम्हें सैकड़ों हजारों-करोड़ों मायाएँ दिखलाता हूँ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—तब उस दुर्बुद्धि शम्बरासुरने सर्वत्र समदर्शी प्रह्लादके लिये, उनके नाशकी इच्छासे बहुत-सी मायाएँ रचीं। किंतु, मैत्रेय! शम्बरासुरके प्रति भी सर्वथा द्वेषहीन रहकर प्रह्लादजी सावधान चित्तसे श्रीमधुसूदनभगवान्‌का स्मरण करते रहे। उस समय भगवान्‌की आज्ञासे उनकी रक्षाके लिये वहाँ ज्वालामालाओंसे युक्त सुदर्शनचक्र आ गया। उस शीघ्रगामी सुदर्शनचक्रने उस बालककी रक्षा करते हुए शम्बरासुरकी सहस्रों मायाओंको एक-एक करके नष्ट कर दिया।

तब दैत्यराजने सबको सुखा डालनेवाले वायुसे कहा कि मेरी आज्ञासे तुम शीघ्र ही इस दुरात्माको नष्ट कर दो। अतः उस अति तीव्र शीतल और रूक्ष वायुने, जो अति असहनीय था—'जो आज्ञा' कह उनके शरीरको सुखानेके लिये उसमें प्रवेश किया। अपने शरीरमें वायुका आवेश हुआ जान दैत्यकुमार प्रह्लादने भगवान् धरणीधरको हृदयमें धारण किया। उनके हृदयमें स्थित हुए श्रीजनार्दनने क्रुद्ध होकर उस भीषण वायुको पी लिया, इससे वह क्षीण हो गया।

इस प्रकार पवन और सम्पूर्ण मायाओंके क्षीण हो जानेपर महामति प्रह्लादजी अपने गुरुके घर चले गये। तदनन्तर गुरुजी उन्हें नित्यप्रति शुक्राचार्यजीकी बनायी हुई राज्यफल-प्रदायिनी राजनीतिका अध्ययन कराने लगे। जब गुरुजीने उन्हें नीतिशास्त्रमें निपुण और विनयसम्पन्न देखा तो आकर उनके पितासे कहा—'अब यह सुशिक्षित हो गया है।'

आचार्य बोले—दैत्यराज! अब हमने तुम्हारे पुत्रको नीतिशास्त्रमें पूर्णतया निपुण कर दिया है, भृगुनन्दन शुक्राचार्यजीने जो कुछ कहा है, उसे प्रह्लाद तत्त्वतः जानता है।

हिरण्यकशिपु बोला—प्रह्लाद ! यह तो बता, राजाको मित्रोंसे कैसा बर्ताव करना चाहिये और शत्रुओंसे कैसा ? तथा त्रिलोकीमें जो मध्यस्थ (दोनों पक्षोंके हितचिन्तक) हों, उनसे किस प्रकार आचरण करना चाहिये ? मन्त्रियों, अमात्यों, बाह्य और अन्तःपुरके सेवकों, गुप्तचरों, पुरवासियों, शङ्कितों (जिन्हें जीतकर बलात्कारसे दास बना लिया गया हो) तथा अन्यान्य जनोंके प्रति किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये ? प्रह्लाद ! यह ठीक-ठीक बता कि करने और न करनेयोग्य कार्योंका विधान किस प्रकार करे, दुर्ग और आटविक (जंगली मनुष्य) आदिको किस प्रकार वशीभूत करे और गुप्त शत्रुरूप काँटेको कैसे निकाले ? यह सब तथा और भी जो कुछ तूने पढ़ा हो वह सब मुझे सुना, मैं तेरे मनके भावोंको जाननेके लिये बहुत उत्सुक हूँ ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—तब विनयभूषण प्रह्लादजीने पिताके चरणोंमें प्रणाम कर दैत्यराज हिरण्यकशिपुसे हाथ जोड़कर कहा ।

प्रह्लादजी बोले—पिताजी ! इसमें संदेह नहीं, गुरुजीने तो मुझे इन सभी विषयोंकी शिक्षा दी है और मैं उन्हें समझ भी गया हूँ; परंतु मेरा विचार है कि वे नीतियाँ अच्छी नहीं हैं । साम, दान तथा दण्ड और भेद—ये सब उपाय मित्रादिके साधनेके लिये बतलाये गये हैं । किंतु, पिताजी ! आप क्रोध न करें, मुझे तो कोई शत्रु-मित्र आदि दिखायी ही नहीं देते; और महाबाहो ! जब कोई साध्य ही नहीं है तो इन साधनोंसे लेना ही क्या है ? तात ! सर्वभूतात्मक [illegible] परमात्मा गोविन्दमें भला शत्रु-मित्रकी बात ही कहाँ है ? श्रीविष्णुभगवान् तो आपमें, मुझमें और अन्यत्र भी सभी जगह वर्तमान हैं, फिर यह 'मेरा मित्र है और यह शत्रु है' ऐसे भेदभावको स्थान ही कहाँ है ? इसलिये तात ! [illegible] दुष्कर्मोंमें प्रवृत्त करनेवाले इन वाग्जालोंको [illegible] अपने शुभके लिये ही यत्न करना चाहिये । दैत्यराज ! [illegible] कारण ही मनुष्योंकी अविद्यामें विद्या-बुद्धि होती है । [illegible] क्या अज्ञानवश खद्योतको ही अग्नि नहीं समझ लेता ? [illegible] वही है जो बन्धनका कारण न हो और विद्या भी वही है जो मुक्तिकी साधिका हो । इसके अतिरिक्त और कर्म तो [illegible] तथा अन्य विद्याएँ कला-कौशलमात्र ही हैं ।

महाभाग ! इस प्रकार इन सबको असार समझकर [illegible] आपको प्रणाम कर मैं उत्तम सार बतलाता हूँ, आप [illegible] कीजिये । राज्य पानेकी चिन्ता किसे नहीं होती और धनकी अभिलाषा भी किसको नहीं है ? तथापि ये दोनों मिलते उन्हींको हैं, जिन्हें मिलनेवाले होते हैं । पिताजी ! महत्त्व-प्राप्तिके लिये सभी यत्न करते हैं, तथापि वैभवका कारण तो मनुष्यका भाग्य ही है, उद्यम नहीं । प्रभो ! जड, अविवेकी, निर्बल और अनीतिज्ञोंको भी भाग्यवश नाना प्रकारके भोग और राज्यादि प्राप्त होते हैं । इसलिये जिसे महान् वैभवकी इच्छा हो उसे केवल पुण्यसंचयका ही यत्न करना चाहिये; और जिसे मोक्षकी इच्छा हो उसे समत्व-लाभका ही प्रयत्न करना चाहिये । देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष और सरीसृप—ये सब भगवान् विष्णुसे भिन्न-से स्थित हुए भी वास्तवमें [illegible] के ही रूप हैं । इस बातको जाननेवाला पुरुष सम्पूर्ण चराचर जगत्को आत्मवत् देखे, क्योंकि यह विश्वरूपधारी भगवान् विष्णु ही हैं । ऐसा जान लेनेपर वे अनादि परमेश्वर भगवान् अच्युत प्रसन्न होते हैं और उनके प्रसन्न होनेपर सभी क्लेश क्षीण हो जाते हैं* ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—यह सुनकर हिरण्यकशिपु ने क्रोधपूर्वक अपने राजसिंहासनसे उठकर पुत्र प्रह्लादके वक्षःस्थलमें लात मारी और क्रोध तथा अमर्षसे जलते हुए मानो सम्पूर्ण संसारको मार डालेगा, इस प्रकार हाथ मलता हुआ बोला ।

---

* देवा मनुष्याः पशवः पक्षिवृक्षसरीसृपाः ।
रूपमेतदनन्तस्य विष्णोर्भिन्नमिव स्थितम् ॥
एतद्विजानता सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
द्रष्टव्यमात्मवद्विष्णुर्यतोऽयं विश्वरूपधृक् ॥
एवं ज्ञाते स भगवाननादिः परमेश्वरः ।
प्रसीदत्यच्युतस्तस्मिन् प्रसन्ने क्लेशसंक्षयः ॥
(वि० पु० १ । १९ । ४७—४९)

हिरण्यकशिपुने कहा—विप्रचित्ते ! राहो ! बल ! तुमलोग इसे भलीभाँति नागपाशसे बाँधकर महासागरमें डाल दो, देरी मत करो। नहीं तो सम्पूर्ण लोक और दैत्य-दानव आदि भी इस मूढ़ दुरात्माके मतका ही अनुगमन करेंगे अर्थात् इसकी तरह वे भी विष्णुभक्त हो जायँगे। हमने इसे बहुतेरा रोका, तथापि यह दुष्ट शत्रुकी ही स्तुति किये जाता है। ठीक है, दुष्टोंको तो मार देना ही लाभदायक होता है।

श्रीपराशरजी कहते हैं—तब उन दैत्योंने अपने स्वामीकी आज्ञाको शिरोधार्य कर तुरंत ही उन्हें नागपाशसे बाँधकर समुद्रमें डाल दिया। उस समय प्रह्लादजीके हिलने-

डुलनेसे सम्पूर्ण महासागरमें हलचल मच गयी और अत्यन्त क्षोभके कारण उसमें सब ओर ऊँची-ऊँची लहरें उठने लगीं। महामते ! उस महान् जल-पूरसे सम्पूर्ण पृथिवीको डूबती देख हिरण्यकशिपुने दैत्योंसे इस प्रकार कहा।

हिरण्यकशिपु बोला—अरे दैत्यो ! तुम इस दुर्मतिको इस समुद्रके भीतर ही किसी ओरसे खुला न रखकर सब ओरसे सम्पूर्ण पर्वतोंसे दबा दो। देखो, इसे न तो अग्निने जलाया, न यह शस्त्रोंसे कटा, न सर्पोंसे नष्ट हुआ और न वायु, विष और कृत्यासे ही क्षीण हुआ तथा न यह मायाओंसे, ऊपरसे गिरानेसे अथवा दिग्गजोंसे ही मारा गया। यह बालक अत्यन्त दुष्टचित्त है, अब इसके जीवनका कोई प्रयोजन नहीं है। अतः अब यह पर्वतोंसे लदा हुआ हजारों वर्षतक जलमें ही पड़ा रहे, इससे यह दुर्मति स्वयं ही प्राण छोड़ देगा।

तब दैत्य और दानवोंने उसे समुद्रमें ही पर्वतोंसे ढककर उसके ऊपर हजारों योजनका ढेर कर दिया। उन महामतिने

समुद्रमें पर्वतोंसे लाद दिये जानेपर अपने नित्यकर्मोंके समय एकाग्रचित्तसे श्रीअच्युत भगवान्‌की इस प्रकार स्तुति की।

प्रह्लादजी बोले—कमलनयन ! आपको नमस्कार है। पुरुषोत्तम ! आपको नमस्कार है। सर्वलोकात्मन् ! आपको नमस्कार है। तीक्ष्ण-चक्रधारी प्रभो ! आपको बारंबार नमस्कार है। गो-ब्राह्मण-हितकारी ब्रह्मण्यदेव ! श्रीभगवान् कृष्णको नमस्कार है। जगत्-हितकारी श्रीगोविन्दको बारंबार नमस्कार है।

आप ब्रह्मारूपसे विश्वकी रचना करते हैं, फिर उसके स्थित हो जानेपर विष्णुरूपसे पालन करते हैं और अन्तमें रुद्ररूपसे संहार करते हैं—ऐसे त्रिमूर्तिधारी आपको नमस्कार है। अच्युत ! देव, यक्ष, असुर, सिद्ध, नाग, गन्धर्व, किन्नर, पिशाच, राक्षस, मनुष्य, पशु, पक्षी, स्थावर, पिपीलिका (चींटी), सरीसृप, पृथिवी, जल, अग्नि, आकाश, वायु, शब्द, स्पर्श,

रूप, रस, गन्ध, मन, बुद्धि, आत्मा, काल और गुण—इन सबके पारमार्थिक रूप आप ही हैं, वास्तवमें आप ही ये सब हैं। आप ही विद्या और अविद्या, सत्य और असत्य तथा विष और अमृत हैं तथा आप ही वेदोक्त प्रवृत्त और निवृत्त कर्म हैं। विष्णो! आप ही समस्त कर्मोंके भोक्ता और उनकी सामग्री हैं तथा सर्वकर्मोंके जितने भी फल हैं, वे सब भी आप ही हैं। प्रभो! मुझमें तथा अन्यत्र समस्त भूतों और भुवनोंमें आपके ही गुण और ऐश्वर्यकी सूचिका व्याप्त हो रही है। योगिगण आपका ही ध्यान धरते हैं और याज्ञिकगण आपका ही यजन करते है तथा पितृगण और देवगणके रूपसे एक आप ही हव्य और कव्यके भोक्ता हैं।

ईश! यह निखिल ब्रह्माण्ड ही आपका स्थूल रूप है, उससे सूक्ष्म यह संसार (पृथ्वीमण्डल) है, उससे भी सूक्ष्म ये भिन्न-भिन्न रूपधारी समस्त प्राणी हैं; उनमें भी जो अन्तरात्मा है वह और भी अत्यन्त सूक्ष्म है। उससे भी परे जो सूक्ष्म आदि विशेषणोंका अविषय आपका कोई अचिन्त्य परमात्मस्वरूप है, उन पुरुषोत्तमरूप आपको नमस्कार है। सर्वात्मन्! समस्त भूतोंमें आपकी जो गुणाश्रया पराशक्ति है, सुरेश्वर! उस नित्यस्वरूपिणीको नमस्कार है। जो वाणी और मनके परे है, विशेषणरहित तथा ज्ञानियोंके ज्ञानसे परिच्छेद्य है, उस स्वतन्त्रा पराशक्तिकी मैं वन्दना करता हूँ। ॐ उन भगवान् वासुदेवको सदा नमस्कार है, जिनसे [illegible] कोई वस्तु नहीं है तथा जो स्वयं सबसे अतिरिक्त ([illegible]) हैं, जिनका कोई भी नाम अथवा रूप नहीं है और [illegible] सत्तामात्रसे ही उपलब्ध होते हैं, उन [illegible] नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है। जिनके [illegible] ही देवतागण उनके अवतार-शरीरका [illegible], उन महात्माको नमस्कार है। जो ईश्वर [illegible] स्थित होकर उनके शुभाशुभ कर्मोंको [illegible] विश्वरूप परमेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ।

जिनसे यह जगत् सर्वथा अभिन्न है [illegible] को नमस्कार है, वे जगत्के आदि[illegible] और [illegible] अव्यय हरि मुझपर प्रसन्न हों, जिनमें यह [illegible] प्रोत है, वे अक्षर अव्यय और [illegible] प्रसन्न हों। ॐ उन श्रीविष्णुभगवान्को नमस्कार है—[illegible] वारंवार नमस्कार है, जिनमें सब [illegible], [illegible] उत्पन्न हुआ है और जो स्वयं सब [illegible] हैं। भगवान् अनन्त सर्वगामी हैं, अतः वे ही [illegible] हैं, इसलिये यह सम्पूर्ण जगत् मुझहीसे हुआ है [illegible] कुछ हूँ और मुझ सनातनमें ही यह सब स्थित है। [illegible] नित्य और आत्माधार परमात्मा हूँ; तथा [illegible] और अन्तमें स्थित ब्रह्मसंज्ञक परमपुरुष हूँ*।

---

* नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते पुरुषोत्तम। नमस्ते सर्वलोकात्मन्नमस्ते [illegible]॥
नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च। जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो न[illegible]॥
ब्रह्मत्वे सृजते विश्वं स्थितौ पालयते पुनः। रुद्ररूपाय कल्पान्ते नमस्तुभ्यं [illegible]॥
देवा यक्षासुराः सिद्धा नागा गन्धर्वकिन्नराः। पिशाचा राक्षसाश्चैव मनुष्याः [illegible]॥
पक्षिणः स्थावराश्चैव पिपीलिकासरीसृपाः। भूम्यापोऽग्निर्नभो वायुः शब्दः [illegible]।
रूपं गन्धो मनो बुद्धिरात्मा कालस्तथा गुणाः। एतेषां परमार्थश्च [illegible]॥
विद्याविद्ये भवान्सत्यमसत्यं त्वं विषामृते। प्रवृत्तं च निवृत्तं च कर्म वेदोदितं [illegible]॥
समस्तकर्मभोक्ता च कर्मोपकरणानि च। त्वमेव विष्णो सर्वाणि सर्वकर्म[illegible]।
मय्यन्यत्र तथान्येषु भूतेषु भुवनेषु च। तवैव व्याप्तिरैश्वर्यगुण[illegible]॥
त्वां योगिनश्चिन्तयन्ति त्वां यजन्ति च याजकाः। हव्यकव्यभुगेकस्त्वं [illegible]।
रूपं महत्ते स्थितमत्र विश्वं ततश्च सूक्ष्मं जगदेतदीश।
रूपाणि सर्वाणि च भूतभेदास्तेष्वन्तरात्माख्यमतीव [illegible]॥
तस्माच्च सूक्ष्मादिविशेषणानामगोचरे यत्परमात्मरूपम्।
किमप्यचिन्त्यं तव रूपमस्ति तस्मै नमस्ते पुरुषोत्तमाय॥
सर्वभूतेषु सर्वात्मन्या शक्तिरपरा तव। गुणाश्रया नमस्तस्यै [illegible]॥
यातीतगोचरा वाचां मनसां चाविशेषणा। ज्ञानिज्ञानपरिच्छेद्या [illegible]।
ॐ नमो वासुदेवाय तस्मै भगवते सदा। व्यतिरिक्तं न यस्यास्ति [illegible]।

प्रह्लादकृत भगवत्-स्तुति और भगवान्‌का आविर्भाव
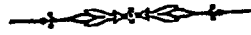
श्रीपराशरजी कहते हैं—द्विज ! इस प्रकार भगवान् विष्णुको अपनेसे अभिन्न चिन्तन करते-करते पूर्ण तन्मयता प्राप्त हो जानेसे उन्होंने अपनेको अच्युतरूप ही अनुभव किया । वे अपने-आपको भूल गये; उस समय उन्हें श्रीविष्णुभगवान्‌के अतिरिक्त और कुछ भी प्रतीत न होता था । बस, केवल यही भावना चित्तमें थी कि मैं ही अव्यय और अनन्त परमात्मा हूँ । उस भावनाके योगसे वे क्षीणपाप हो गये और उनके शुद्ध अन्तःकरणमें ज्ञानस्वरूप अच्युत श्रीविष्णुभगवान् विराजमान हुए ।

मैत्रेय ! इस प्रकार योगबलसे असुर प्रह्लादजीके विष्णुमय हो जानेपर उनके विचलित होनेसे वे नागपाश एक क्षणभरमें ही टूट गये । भ्रमणशील ग्राहगण और तरल-तरंगोंसे पूर्ण सम्पूर्ण महासागर क्षुब्ध हो गया तथा पर्वत और वनोपवनोंसे पूर्ण समस्त पृथिवी हिलने लगी । महामति प्रह्लादजी अपने ऊपर दैत्योंद्वारा लादे गये उस सम्पूर्ण पर्वत-समूहको दूर फेंककर जलसे बाहर निकल आये । तब आकाशादिरूप जगत्‌को फिर देखकर उन्हें चित्तमें यह पुनः भान हुआ कि मैं प्रह्लाद हूँ और उन महाबुद्धिमान्‌ने मन, वाणी और शरीरके संयमपूर्वक धैर्य धारणकर एकाग्रचित्तसे पुनः भगवान् अनादि पुरुषोत्तमकी स्तुति की ।

प्रह्लादजी कहने लगे—ॐ परमार्थ ! अर्थ (दृश्यरूप) ! स्थूल-सूक्ष्म (जाग्रत्-स्वप्न दृश्यस्वरूप) ! क्षराक्षर (कार्य-कारणरूप) ! व्यक्ताव्यक्त (दृश्यादृश्यस्वरूप) ! कलातीत ! सकलेश्वर ! निरञ्जनदेव ! आपको नमस्कार है । गुणोंको अनुरञ्जित करनेवाले ! गुणाधार ! निर्गुणात्मन् ! गुणस्थित ! मूर्त और अमूर्तरूप महामूर्तिमन् ! सूक्ष्ममूर्ते ! प्रकाशाप्रकाश-स्वरूप ! आपको नमस्कार है* । विकराल और सुन्दररूप ! विद्या और अविद्यामय अच्युत ! सदसत् (कार्य-कारण) रूप जगत्‌के उद्भवस्थान और सदसज्जगत्‌के पालक ! आपको नमस्कार है । नित्यानित्य प्रपञ्चात्मन् ! प्रपञ्चसे पृथक् रहनेवाले ! ज्ञानियोंके आश्रयरूप ! एकानेकरूप आदिकारण वासुदेव ! आपको नमस्कार है । जो स्थूल-सूक्ष्मरूप और स्फुट प्रकाशमय हैं, जो अधिष्ठानरूपसे सर्वभूतस्वरूप तथापि वस्तुतः सम्पूर्ण भूतादिसे परे हैं, विश्वके कारण न होनेपर भी जिनसे यह समस्त विश्व उत्पन्न हुआ है, उन पुरुषोत्तम भगवान्‌को नमस्कार है† ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—उनके इस प्रकार तन्मयता-पूर्वक स्तुति करनेपर पीताम्बरधारी देवाधिदेव भगवान् श्रीहरि प्रकट हुए । द्विज ! उन्हें सहसा प्रकट हुए देख वे खड़े हो गये और गद्गद वाणीसे 'विष्णुभगवान्‌को नमस्कार है ! विष्णुभगवान्‌को नमस्कार है !' ऐसा बारंबार कहने लगे ।

नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै महात्मने । नाम रूपं न यस्यैको योऽस्तित्वेनोपलभ्यते ॥
यस्यावताररूपाणि समर्चन्ति दिवौकसः । अपश्यन्तः पर रूप नमस्तस्मै महात्मने ॥
योऽन्तस्तिष्ठन्नशेषस्य पश्यतीशः शुभाशुभम् । त सर्वसाक्षिणं विश्वं नमस्ये परमेश्वरम् ॥
नमोऽस्तु विष्णवे तस्मै यस्याभिन्नमिदं जगत् । ध्येयः स जगतामाद्यः स प्रसीदतु मेऽव्यय. ॥
यत्रोतमेतत्प्रोत च विश्वमक्षरमव्ययम् । आधारभूत· सर्वस्य स प्रसीदतु मे हरिः ॥
ॐ नमो विष्णवे तस्मै नमस्तस्मै पुनः पुन· । यत्र सर्वं यत. सर्वं यः सर्वं सर्वसंश्रयः ॥
सर्वगत्वादनन्तस्य स एवाहमवस्थितः । मत्तः सर्वमहं सर्वं मयि सर्वं सनातने ॥
अहमेवाक्षयो नित्य. परमात्मात्मसश्रयः । ब्रह्मसंज्ञोऽहमेवाग्रे तथान्ते च परः पुमान् ॥

(वि० पु० १ । १९ । ६४—८६)

* ॐ नम परमार्थार्थ स्थूलसूक्ष्म क्षराक्षर । व्यक्ताव्यक्त कलातीत सकलेश निरञ्जन ॥
गुणाञ्जन गुणाधार निर्गुणात्मन् गुणस्थित । मूर्तामूर्तमहामूर्ते सूक्ष्ममूर्ते स्फुटास्फुट ॥

(वि० पु० १ । २० । ९-१०)

† करालसौम्यरूपात्मन् विद्याविद्यामयाच्युत । सदसद्रूपसद्भाव सदसद्भावभावन ॥
नित्यानित्यप्रपञ्चात्मन्निष्प्रपञ्चामलाश्रित । एकानेक नमस्तुभ्यं वासुदेवादिकारण ॥
य स्थूलसूक्ष्मः प्रकटप्रकाशो य सर्वभूतो न च सर्वभूत· ।
विश्व यतश्चैतदविश्वहेतोर्नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ॥

(वि० पु० १ । २० । ११—१३)

प्रह्लादजी बोले—शरणागत-दुःखहारी श्रीकेशवदेव ! प्रसन्न होइये । अच्युत ! अपने पुण्य-दर्शनोंसे मुझे पुनः पवित्र कीजिये ।

श्रीभगवान् बोले—प्रह्लाद ! मैं तेरी अनन्य-भक्तिसे अति प्रसन्न हूँ; तुझे जिस वरकी इच्छा हो माँग ले ।

प्रह्लाद बोले—नाथ ! सहस्रों योनियोंमेंसे मैं जिस-जिसमें भी जाऊँ, उसी-उसीमें अच्युत ! आपमें मेरी सर्वदा अक्षुण्ण भक्ति रहे। अविवेकी पुरुषोंकी विषयोंमें जैसी अविचल प्रीति होती है वैसी ही आपका स्मरण करते हुए मेरे हृदयसे कभी दूर न हो ।

श्रीभगवान् बोले—प्रह्लाद ! मुझमें तो तेरी भक्ति है ही और आगे भी ऐसी ही रहेगी; किंतु इसके अतिरिक्त भी तुझे और जिस वरकी इच्छा हो, मुझसे माँग ले ।

प्रह्लादजी बोले—देव ! आपकी स्तुतिमें प्रवृत्त होनेसे मेरे पिताके चित्तमें मेरे प्रति जो द्वेष हुआ है, उन्हें उससे जो पाप लगा है, वह नष्ट हो जाय । इसके अतिरिक्त उनकी आज्ञासे मेरे शरीरपर जो शस्त्राघात किये गये—मुझे अग्नि-समूहमें डाला गया, सर्पोंसे कटवाया गया, भोजनमें विष दिया गया, बाँधकर समुद्रमें डाला गया, शिलाओंसे दबाया गया तथा और भी जो-जो दुर्व्यवहार पिताजीने मेरे साथ किये हैं, वे सब आपमें भक्ति रखनेवाले पुरुषके प्रति द्वेष होनेसे उन्हें उनके कारण जो पाप लगा है, प्रभो ! आपकी कृपासे मेरे पिता उससे शीघ्र ही मुक्त हो जायँ ।

श्रीभगवान् बोले—प्रह्लाद ! मेरी कृपासे तुम्हारी ये सब इच्छाएँ पूर्ण होंगी । असुरकुमार ! मैं तुमको [illegible] और भी देता हूँ, तुम्हें जो इच्छा हो माँग लो ।

प्रह्लादजी बोले—भगवन् ! मैं तो आपके इस [illegible] कृतकृत्य हो गया कि आपकी कृपासे आपमें मेरी [illegible] अविचल भक्ति रहेगी । प्रभो ! [illegible] आपमें जिसकी निश्चल भक्ति है, मुक्ति भी उसकी [illegible] रहती है; फिर धर्म, अर्थ, कामसे तो उसे लेना ही क्या है ?

श्रीभगवान् बोले—प्रह्लाद ! मेरी भक्तिसे युक्त [illegible] चित्त जैसा निश्चल है, उसके कारण तू मेरी [illegible] निर्वाणपद प्राप्त करेगा * ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—मैत्रेय ! [illegible] उनके देखते-देखते अन्तर्धान हो गये और उन्होंने भी फिर आकर अपने पिताके चरणोंकी वन्दना की । मैत्रेय ! [illegible] नृसिंहरूपधारी भगवान् विष्णुद्वारा पिताके [illegible]

---

* यथा ते निश्चलं चेतो [illegible]
तथा त्वं मत्प्रसादेन [illegible]
([illegible])

दैत्योंके राजा हुए। द्विज ! फिर राज्यलक्ष्मी, बहुत-से पुत्र-पौत्रादि तथा परम ऐश्वर्य पाकर, पुण्य-पापसे रहित हो भगवान्‌का ध्यान करते हुए उन्होंने परम निर्वाणपद प्राप्त किया।

उन महात्मा प्रह्लादजीके इस चरित्रको जो पुरुष सुनता है, उसके पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। जिस प्रकार भगवान्‌ने प्रह्लादजीकी सम्पूर्ण आपत्तियोंसे रक्षा की थी, उसी प्रकार वे सर्वदा उसकी भी रक्षा करते हैं, जो उनका चरित्र सुनता है।

कश्यपजीकी अन्य स्त्रियोंके वंश एवं मरुद्गणकी उत्पत्तिका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—प्रह्लादके पुत्र विरोचन थे और विरोचनसे बलिका जन्म हुआ। महामुने ! बलिके सौ पुत्र थे जिनमें बाणासुर सबसे बड़ा था।

कश्यपजीकी एक दूसरी स्त्री दनुके पुत्र द्विमूर्द्धा, शम्बर, अयोमुख, शङ्कुशिरा, कपिल, शङ्कर, महाबाहु, एकचक्र, महाबली तारक, स्वर्भानु, वृषपर्वा, महाबली पुलोम और परम पराक्रमी विप्रचित्ति थे। ये सब दनुके पुत्र कहे गये हैं। स्वर्भानुकी कन्या प्रभा थी तथा शर्मिष्ठा, उपदानी और हयशिरा—ये वृषपर्वाकी सुन्दरी कन्याएँ कही गयी हैं। वैश्वानरकी पुलोमा और कालका दो पुत्रियाँ थीं। महाभाग ! वे दोनों कन्याएँ मरीचिनन्दन कश्यपजीकी भार्या हुईं। उनके पुत्र साठ हजार दानव-श्रेष्ठ हुए। मरीचिनन्दन कश्यपजीके वे सभी पुत्र पौलोम और कालकेय कहलाये। इनके सिवा, विप्रचित्तिके सिंहिकाके गर्भसे और भी बहुत-से महाबलवान्, भयंकर और अतिक्रूर पुत्र उत्पन्न हुए। वे व्यंश, बलवान् शल्य, महाबली नभ, वातापी, नमुचि, इल्वल, खसृम, अन्धक, नरक, कालनाभ, महावीर स्वर्भानु और महादैत्य वक्त्रयोधी थे। ये सब दानवश्रेष्ठ दनुके वंशको बढ़ानेवाले थे। इनके और भी सैकड़ों-हजारों पुत्र-पौत्रादि हुए। महान् तपस्याद्वारा आत्मज्ञानसम्पन्न दैत्यवर प्रह्लादजीके कुलमें निवातकवच नामक दैत्य उत्पन्न हुए।

कश्यपजीकी स्त्री ताम्राकी शुकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, शुचि और गृद्धिका—ये छः अति प्रभावशालिनी कन्याएँ कही जाती हैं। शुकीने शुक, उलूक एवं उलूकोंके प्रतिपक्षी काक आदिको जन्म दिया तथा श्येनीने श्येन (बाज), भासीने भास और गृद्धिकाने गृध्रोंको उत्पन्न किया। शुचिने जलके पक्षियों और सुग्रीवीने अश्व, उष्ट्र तथा गर्दभोंको जन्म दिया। इस प्रकार यह ताम्राका वंश कहा जाता है। विनताके गरुड और अरुण ये दो पुत्र विख्यात हैं। इनमें पक्षियोंमें श्रेष्ठ सुपर्ण (गरुडजी) अति भयंकर और सर्पोंको खानेवाले हैं। ब्रह्मन् ! सुरसासे सहस्रों सर्प उत्पन्न हुए, जो बड़े ही प्रभावशाली, आकाशमें विचरनेवाले, अनेक सिरोंवाले और बड़े विशालकाय थे और कद्रूके पुत्र भी महाबली और अमित तेजस्वी अनेक सिरवाले सहस्रों सर्प ही हुए, जो गरुडजीके वशवर्ती थे। उनमेंसे शेष, वासुकि, तक्षक, शङ्ख, श्वेत, महापद्म, कम्बल, अश्वतर, एलापुत्र नाग, कर्कोटक, धनञ्जय तथा और भी अनेकों उग्र विषधर एवं काटनेवाले सर्प प्रधान हैं। क्रोधवशाके पुत्र क्रोधवशगण हैं, वे सभी बड़ी-बड़ी दाढ़ोंवाले, भयंकर और कच्चा मांस खानेवाले जलचर, स्थलचर एवं पक्षिगण हैं। महाबली पिशाचोंको भी क्रोधाने ही जन्म दिया है।

सुरभिने गौओं और महिषोंको उत्पन्न किया तथा इराने वृक्ष, लता, बेल और सब प्रकारकी तृण-जातियोंको प्रकट किया है। खसाने यक्षों तथा राक्षसोंको, मुनिने अप्सराओंको और अरिष्टाने महाबली गन्धर्वोंको जन्म दिया। ये सब स्थावर-जङ्गम प्राणी कश्यपजीकी संतान कहे गये हैं। इनके भी पुत्र-पौत्रादि सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें उत्पन्न हुए। ब्रह्मन् ! यह स्वारोचिष-मन्वन्तरकी सृष्टिका वर्णन किया गया है।

वैवस्वतमन्वन्तरके आरम्भमें महान् वारुण यज्ञ हुआ, उसमें ब्रह्माजी होता थे, अब मैं उनकी प्रजाका वर्णन करता हूँ। साधुश्रेष्ठ ! पूर्व-मन्वन्तरमें जो सप्तर्षिगण स्वयं ब्रह्माजीके मानस-पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए थे, उन्हींको ब्रह्माजीने इस कल्पमें गन्धर्व, नाग, देव और दानवादिके पितृरूपसे निश्चित किया। पुत्रोंके नष्ट हो जानेपर दितिने कश्यपजीको प्रसन्न किया। उसकी सम्यक् आराधनासे संतुष्ट हो तपस्वियोंमें श्रेष्ठ कश्यपजीने उसे वर देकर प्रसन्न किया। उस समय उसने इन्द्रके वधके लिये एक अत्यन्त तेजस्वी एवं शक्तिशाली पुत्रका वर माँगा। मुनिश्रेष्ठ कश्यपजीने अपनी भार्या दितिको वह वर दिया और उस अति उग्र वरको देते हुए वे उससे बोले—'यदि तुम भगवान्‌के ध्यानमें तत्पर रहकर अपना गर्भ शौच* और

---

* शौच आदि नियम मत्स्यपुराणमें इस प्रकार बतलाये गये हैं—

संध्यायां नैव भोक्तव्यं गर्भिण्या वरवर्णिनि।
न स्थातव्यं न गन्तव्यं वृक्षमूलेषु सर्वदा॥
वर्जयेत् कलहं लोके गात्रभङ्गं तथैव च।
नोन्मुक्तकेशी तिष्ठेच्च नाशुचिः स्यात् कदाचन।

संयमपूर्वक सौ वर्षतक धारण कर सकोगी तो तुम्हारा पुत्र इन्द्रको मारनेवाला होगा।' ऐसा कहकर मुनि कश्यपजीने उस देवीसे समागम किया और उसने बड़े शौचपूर्वक रहते हुए वह गर्भ धारण किया।

उस गर्भको अपने वधका कारण जान देवराज इन्द्र भी विनयपूर्वक उसकी सेवा करनेके लिये आ गये। उसके शौचादिमें कभी कोई अन्तर पड़े—यही देखनेकी इच्छासे इन्द्र वहाँ हर समय उपस्थित रहते थे। अन्तमें सौ वर्षमें कुछ ही दिन शेष थे कि इन्द्रने एक अन्तर देख ही लिया। एक दिन दिति बिना चरण-शुद्धि किये ही अपनी शय्यापर लेट गयी। उस समय निद्राने उसे घेर लिया। तब इन्द्र हाथमें वज्र लेकर उसकी कुक्षिमें घुस गये और उन्होंने उस गर्भके सात टुकड़े कर डाले। इस प्रकार वज्रसे पीड़ित होनेसे वह गर्भ जोर-जोरसे रोने लगा। इन्द्रने उससे पुनः-पुनः कहा कि 'मत रो'। किंतु जब वह गर्भ सात भागोंमें विभक्त हो गया (और फिर भी न मरा) तो इन्द्रने अत्यन्त कुपित हो अपने शत्रु-विनाशक वज्रसे पुनः एक-एकके सात-सात टुकड़े और कर दिये। वे ही अति वेगवान् मरुत् नामक देवता हुए। भगवान् इन्द्रने जो उससे कहा था कि 'मा रोदीः' (मत रो) इसीलिये वे 'मरुत्' कहलाये। ये उनचास मरुद्गण इन्द्रके सहायक देवता हुए।

विष्णुभगवान्‌की विभूति और जगत्‌की व्यवस्थाका वर्णन

श्रीपराशरजी बोले—पूर्वकालमें महर्षियोंने जब महाराज पृथुको राज्यपदपर अभिषिक्त किया तो लोक-पितामह श्रीब्रह्माजीने भी क्रमसे राज्योंका बँटवारा किया। ब्रह्माजीने नक्षत्र, ग्रह, ब्राह्मण, सम्पूर्ण वनस्पति और यज्ञ तथा तप आदिके राज्यपर चन्द्रमाको नियुक्त किया। इसी प्रकार विश्रवाके पुत्र कुबेरजीको राजाओंका, वरुणको जलोंका, विष्णुको आदित्योंका और अग्निको वसुगणोंका अधिपति बनाया। दक्षको प्रजापतियोंका, इन्द्रको मरुद्गणका तथा प्रह्लादजीको दैत्य और दानवोंका आधिपत्य दिया। पितृगणके राज्यपदपर धर्मराज यमको अभिषिक्त किया और सम्पूर्ण गजराजोंका स्वामित्व ऐरावतको दिया। गरुडको पक्षियोंका, इन्द्रको देवताओंका, उच्चैःश्रवाको घोड़ोंका और वृषभको गौओंका अधिपति बनाया। ब्रह्माजीने समस्त मृगों—वन्यपशुओंका राज्य सिंहको दिया और सर्पोंका स्वामी शेषनागको बनाया। स्थावरोंका स्वामी हिमालयको और मुनिजनोंका कपिलदेवजीको बनाया। तथा प्लक्ष (पाकर) को वनस्पतियोंका राजा किया। इसी प्रकार ब्रह्माजीने और-और जातियोंमें जो प्रधान थे, उनकी प्रधानताको दृष्टिमें रखकर उन्हें उन जातियोंका अधिपति बना दिया।

इस प्रकार राज्योंका विभाग करनेके अनन्तर प्रजापतियोंके स्वामी ब्रह्माजीने सब ओर दिक्पालोंकी स्थापना की। उन्होंने पूर्व-दिशामें वैराज प्रजापतिके पुत्र राजा सुधन्वाको दिक्पाल पदपर अभिषिक्त किया। दक्षिण-दिशामें कर्दम प्रजापतिके पुत्र राजा शङ्खपदकी नियुक्ति की। रजसके पुत्र महात्मा केतुमान्‌को उन्होंने पश्चिम-दिशाके राजपदपर अभिषिक्त किया और पर्जन्य प्रजापतिके पुत्र अति दुर्द्धर्ष हिरण्यरोमाको उत्तर-दिशाके राजाके पदपर अभिषेक किया। वे आजतक सात द्वीप और अनेकों नगरोंसे युक्त इस सम्पूर्ण पृथिवीका अपने-अपने विभागानुसार धर्मपूर्वक पालन करते हैं।

मुनिसत्तम! ये तथा अन्य भी जो सम्पूर्ण राजालोग हैं वे सभी विश्वके पालनमें प्रवृत्त परमात्मा श्रीविष्णुभगवान्‌के विभूतिरूप हैं। द्विजोत्तम! जो-जो भूताधिपति पहले हो गये हैं और जो-जो आगे होंगे वे सभी सर्वभूत भगवान् विष्णुके अंश हैं। जो-जो भी देवताओं, दैत्यों और दानवोंके अधिपति हैं, जो जो पशुओं, पक्षियों, मनुष्यों, सर्पों और नागोंके नायक हैं, जो-जो वृक्षों, पर्वतों और ग्रहोंके स्वामी हैं तथा और भी भूत, भविष्यत् एवं वर्तमानकालीन जितने भूतेश्वर हैं वे सभी सर्वभूत भगवान् विष्णुके अंशसे उत्पन्न हुए हैं। महाभाग!

हे सुन्दरि! गर्भिणी स्त्रीको चाहिये कि सायंकालमें भोजन न करे, वृक्षोंके नीचे न जाय और न वहाँ ठहरे ही तथा लोगोंके साथ कलह करना और अँगड़ाई लेना छोड़ दे, कभी केश खुला न रखे और न अपवित्र ही रहे।

श्रीमद्भागवतमें भी कहा है—'न हिंस्यात्सर्वभूतानि न शपेन्नानृतं वदेत्' इत्यादि, अर्थात् गर्भिणी स्त्री किसी जीवको न मारे, किसीको बुरा-भला न कहे और कभी झूठ न बोले।

सृष्टिके पालन-कार्यमें प्रवृत्त सर्वेश्वर श्रीहरिको छोडकर और किसीमें भी पालन करनेकी शक्ति नहीं है। रजः और सत्त्वादि गुणोंके आश्रयसे वे सनातन प्रभु ही जगत्‌की रचनाके समय रचना करते हैं, स्थितिके समय पालन करते हैं और अन्तसमयमें कालरूपसे संहार करते हैं।

वे जनार्दन चार विभागसे सृष्टिके और चार विभागसे ही स्थितिके समय रहते हैं तथा चार रूप धारण करके ही अन्तमें प्रलय करते हैं। वे अव्यक्तस्वरूप भगवान् अपने एक अंशसे ब्रह्मा होते हैं, दूसरे अंशसे मरीचि आदि प्रजापति होते हैं, उनका तीसरा अंश काल है और चौथा सम्पूर्ण प्राणी। इस प्रकार वे रजोगुणविशिष्ट होकर चार प्रकारसे सृष्टिके समय स्थित होते हैं। फिर वे पुरुषोत्तम सत्त्वगुणका आश्रय लेकर जगत्‌की स्थिति करते हैं। उस समय वे एक अंशसे विष्णु होकर पालन करते हैं, दूसरे अंशसे मनु आदि होते हैं तथा तीसरे अंशसे काल और चौथेसे सर्वभूतोंमें स्थित होते हैं। और अन्तकालमें वे अजन्मा भगवान् तमोगुणकी वृत्तिका आश्रय ले एक अंशसे रुद्ररूप, दूसरे भागसे अग्नि और अन्तकादिरूप, तीसरेसे कालरूप और चौथेसे सम्पूर्ण भूतस्वरूप हो जाते हैं। ब्रह्मन्! विनाश करनेके लिये उन महात्माकी यह चार प्रकारकी सार्वकालिक विभाग-कल्पना कही जाती है।

द्विज! जगत्‌के आदि और मध्यसे लेकर प्रलयकालतक ब्रह्मा, मरीचि आदिसे एवं भिन्न-भिन्न जीवोंसे सृष्टि हुआ करती है। सृष्टिके आरम्भमें पहले ब्रह्माजी रचना करते हैं, फिर मरीचि आदि प्रजापतिगण और तदनन्तर समस्त जीव क्षण-क्षणमें संतान उत्पन्न करते रहते हैं। द्विज! कालके बिना ब्रह्मा, प्रजापति एवं अन्य समस्त प्राणी भी सृष्टि-रचना नहीं कर सकते। जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और अन्तके समय जब तीनों गुणोंमें क्षोभ होता है, तब वे श्रीहरि इसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र—इन तीनो रूपोंमें स्थित हो सृष्टि आदि कार्य करते हैं तथापि उनका परम पद महान् निर्गुण है। परमात्माका वह स्वरूप ज्ञानमय, व्यापक, स्वसंवेद्य और अनुपम है तथा वह भी चार प्रकारका ही है।

श्रीमैत्रेयजीने पूछा—मुने! आपने जो भगवान्‌का परम पद कहा, वह चार प्रकारका कैसे है? यह आप मुझसे विधिपूर्वक कहिये।

श्रीपराशरजीने कहा—मैत्रेय! सब वस्तुओंका जो कारण होता है, वही उनका साधन कहा गया है और अपनेको जिसकी सिद्धि अभीष्ट हो, वही अपनी साध्य वस्तु कहलाती है। मुक्तिकी इच्छावाले योगिजनोंके लिये प्राणायाम आदि साधन हैं और परब्रह्म ही साध्य है, जहाँसे फिर लौटना नहीं पड़ता। मुने! जो योगीकी मुक्तिका कारण है, वह 'साधनालम्बन (साधनविषयक) ज्ञान' ही उस ब्रह्मभूत परम पदका प्रथम भेद है*। महामुने! क्लेश-बन्धनसे मुक्त होनेके लिये योगाभ्यास करनेवाले योगीका साध्यरूप जो ब्रह्म है, उसका ज्ञान ही 'साध्यालम्बन-विज्ञान' है, वही उक्त ब्रह्मभूत पदका दूसरा भेद है। इन दोनों साध्य-साधनोंका अभेदपूर्वक जो 'अद्वैतमय ज्ञान' है, उसीको मैंने तीसरा भेद कहा है। महामुने! उक्त तीनों प्रकारके ज्ञानकी जो विशेषता (अन्तर) है, उसका निराकरण करनेपर अनुभव हुए आत्मस्वरूपके समान ज्ञानस्वरूप भगवान् विष्णुका जो निर्व्यापार, अनिर्वचनीय, व्याप्तिमात्र, अनुपम, आत्मबोधस्वरूप, सत्तामात्र, अलक्षण, शान्त, अभय, शुद्ध, अचिन्त्य और आश्रयहीन रूप है, वह 'ब्रह्म' नामक ज्ञान [उसका चौथा भेद] है। द्विज! योगिजन अन्य ज्ञानोंका निरोध कर इसीमें लीन हो जाते हैं। इस प्रकार वह निर्मल, नित्य, व्यापक, अक्षय और समस्त हेय-गुणोंसे रहित विष्णु नामक परम पद है। पुण्य-पापका क्षय और क्लेशोंकी निवृत्ति होनेपर जो अत्यन्त निर्मल हो जाता है, वही योगी उस परब्रह्मका आश्रय लेता है, जहाँसे वह फिर नहीं लौटता।

उस ब्रह्मके मूर्त और अमूर्त दो रूप हैं, जो क्षर और अक्षररूपसे समस्त प्राणियोंमें स्थित हैं। अक्षर ही वह परब्रह्म है और क्षर सम्पूर्ण जगत् है। जिस प्रकार एकदेशीय अग्निका प्रकाश सर्वत्र फैला रहता है, उसी प्रकार यह सम्पूर्ण जगत् परब्रह्मकी ही शक्ति है। मैत्रेय! अग्निकी निकटता और दूरताके भेदसे जिस प्रकार उसके प्रकाशमे भी अधिकता और न्यूनताका भेद रहता है, उसी प्रकार ब्रह्मकी शक्तिमें भी तारतम्य है। ब्रह्मन्! ब्रह्मा, विष्णु और शिव ब्रह्मकी प्रधान शक्तियाँ हैं, उनसे न्यून दक्ष आदि प्रजापतिगण है तथा उनके अनन्तर देवगण है। उनसे भी न्यून मनुष्य, पशु, पक्षी, मृग और सरीसृपादि हैं तथा उनसे भी अत्यन्त न्यून वृक्ष, गुल्म और लता आदि हैं। अतः मुनिवर! आविर्भाव (उत्पन्न होना), तिरोभाव (छिप जाना), जन्म और नाश आदि विकल्पोंसे युक्त होनेपर भी यह सम्पूर्ण जगत् वास्तवमे (प्रवाहरूपसे) नित्य और अक्षय ही है।

---

* प्राणायामादि साधनविषयक ज्ञानको 'साधनालम्बन-ज्ञान' कहते हैं।

सर्वशक्तिमय विष्णु ही परब्रह्म-स्वरूप तथा मूर्तरूप हैं, जिनका योगिजन योगारम्भके पूर्व चिन्तन करते हैं। मुने! जिनमें मनको सम्यक् प्रकारसे निरन्तर एकाग्र करनेवालोंको आलम्बनयुक्त सबीज (सम्प्रज्ञात) महायोगकी प्राप्ति होती है, वे सर्वब्रह्ममय श्रीविष्णुभगवान् समस्त परा शक्तियोंमें प्रधान और मूर्त ब्रह्मस्वरूप हैं। मुने! उन्हींमें यह सम्पूर्ण जगत् ओतप्रोत है, उन्हींसे उत्पन्न हुआ है, उन्हींमें स्थित है और स्वयं वे ही समस्त जगत् हैं।

मैत्रेय! जो कुछ भी विद्या-अविद्या, सत्-असत् तथा अव्ययरूप है, वह सब सर्वभूतेश्वर श्रीमधुसूदनमें ही स्थित है। कला, काष्ठा, निमेष, दिन, ऋतु, अयन और वर्षरूपसे वे कालस्वरूप निष्पाप अव्यय श्रीहरि ही विराजमान हैं।

मुनिश्रेष्ठ! भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक तथा मह, जन, तप और सत्य आदि सातों लोक भी सर्वव्यापक भगवान् ही हैं। सभी पूर्वजोंके पूर्वज तथा समस्त विद्याओंके आधार श्रीहरि ही स्वयं लोकमयस्वरूपसे स्थित हैं। निराकार और सर्वेश्वर श्रीअनन्त ही भूतस्वरूप होकर देव, मनुष्य [illegible] पशु आदि नानारूपोंमें स्थित हैं। ऋक्, यजुः [illegible] अथर्ववेद, इतिहास (महाभारतादि), उपवेद ([illegible]) वेदान्तवाक्य, समस्त वेदाङ्ग, मनु आदि [illegible] शास्त्र, पुराणादि सकल शास्त्र, आख्यान [illegible] समस्त काव्य-चर्चा और रागरागिनी आदि [illegible] वे सब शब्दमूर्तिधारी परमात्मा विष्णुका ही [illegible]। [illegible] लोकमें अथवा कहीं और भी जितने मूर्त [illegible] सब उन्हींका शरीर हैं। 'मैं तथा यह सम्पूर्ण जगत् [illegible] श्रीहरि ही हैं; उनसे भिन्न और कुछ भी [illegible] है'—जिसके चित्तमें ऐसी भावना है, उसे फिर [illegible] द्वेषादि द्वन्द्वरूप रोगकी प्राप्ति नहीं होती*।

द्विज! इस प्रकार तुमसे इस पुराण [illegible] यथावत् वर्णन किया, इसका श्रवण करनेसे मनुष्य [illegible] पापोंसे मुक्त हो जाता है। मैत्रेय! [illegible] मासमें पुष्करक्षेत्रमें स्नान करनेसे जो फल होता है, वह [illegible] मनुष्यको इसके श्रवणमात्रसे मिल जाता है।

॥ प्रथम अंश समाप्त ॥

* अहं हरिः सर्वमिदं जनार्दनो [illegible] [illegible]।
ईदृङ्मनो यस्य न तस्य भूयो भवोद्भवा [illegible] [illegible]॥
(वि० पु० [illegible] ८७)
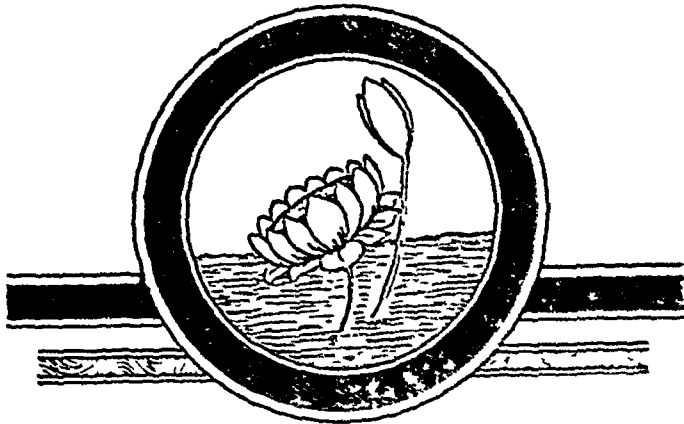
द्वितीय अंश

प्रियव्रतके वंशका वर्णन

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवन् ! गुरो ! स्वायम्भुव मनुके जो प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र थे, उनमेंसे उत्तानपादके पुत्र ध्रुवके विषयमें तो आपने कहा; किंतु द्विज ! आपने प्रियव्रतकी संतानके विषयमें कुछ भी नहीं कहा, अतः मैं उसका वर्णन सुनना चाहता हूँ, आप प्रसन्नतापूर्वक कहिये।

श्रीपराशरजीने कहा—प्रियव्रतने कर्दमजीकी पुत्रीसे विवाह किया था। उससे उनके सम्राट् और कुक्षि नामकी दो कन्याएँ तथा दस पुत्र हुए। प्रियव्रतके पुत्र बड़े बुद्धिमान्, बलवान्, विनयसम्पन्न और अपने माता-पिताके अत्यन्त प्रिय कहे जाते हैं; उनके नाम थे—आग्नीध्र, अग्निबाहु, वपुष्मान्, द्युतिमान्, मेधा, मेधातिथि, भव्य, सवन और पुत्र। दसवाँ यथार्थनामा ज्योतिष्मान् था। वे प्रियव्रतके पुत्र अपने बल-पराक्रमके कारण विख्यात थे। उनमें महाभाग मेधा, अग्निबाहु और पुत्र—ये तीन योगपरायण तथा अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त जाननेवाले थे। उन्होंने राज्य आदि भोगोंमें अपना चित्त नहीं लगाया। मुने ! वे निर्मल-चित्त और कर्म-फलकी इच्छासे रहित थे तथा समस्त विषयोंमें सदा न्यायानुकूल ही प्रवृत्त होते थे।

मुनिश्रेष्ठ ! राजा प्रियव्रतने अपने शेष सात पुत्रोंको सात द्वीप बाँट दिये। महाभाग ! पिता प्रियव्रतने आग्नीध्रको जम्बूद्वीप और मेधातिथिको प्लक्ष नामक दूसरा द्वीप दिया। उन्होंने शाल्मलद्वीपमें वपुष्मान्को अभिषिक्त किया; ज्योतिष्मान्को कुशद्वीपमें राजा बनाया। द्युतिमान्को क्रौञ्च-द्वीपके शासनपर नियुक्त किया, भव्यको प्रियव्रतने शाकद्वीपका स्वामी बनाया और सवनको पुष्करद्वीपका अधिपति निश्चित किया।

मुनिसत्तम ! उनमें जो जम्बूद्वीपके अधीश्वर राजा आग्नीध्र थे, उनके प्रजापतिके समान नौ पुत्र हुए। वे नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्य, हिरण्वान्, कुरु, भद्राश्व और सत्कर्मशील राजा केतुमाल थे। विप्र ! अब उनके जम्बूद्वीपके विभाग सुनो। पिता आग्नीध्रने दक्षिणकी ओरका हिमवर्ष, जिसे अब 'भारतवर्ष' कहते हैं, नाभिको दिया। इसी प्रकार किम्पुरुषको हेमकूटवर्ष तथा हरिवर्षको तीसरा नैषधवर्ष दिया। जिसके मध्यमें मेरुपर्वत है, वह इलावृतवर्ष उन्होंने इलावृतको दिया तथा नीलाचलसे लगा हुआ वर्ष रम्यको दिया। पिता आग्नीध्रने उसका उत्तरवर्ती श्वेतवर्ष हिरण्वान्को तथा जो वर्ष शृङ्गवान् पर्वतके उत्तरमें स्थित है, वह कुरुको दिया और जो मेरुके पूर्वमें स्थित है, वह भद्राश्वको दिया तथा केतुमालको गन्धमादनवर्ष दिया। इस प्रकार राजा आग्नीध्रने अपने पुत्रोंको ये वर्ष दिये। मैत्रेय ! अपने पुत्रोंको इन वर्षोंमें अभिषिक्त कर वे तपस्याके लिये शालग्राम नामक महापवित्र क्षेत्रको चले गये।

महामुने ! किम्पुरुष आदि जो आठ वर्ष हैं, उनमें सुखकी बहुलता है और बिना यत्नके स्वभावसे ही समस्त भोग-सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। उनमें किसी प्रकारके असुख या अकाल-मृत्यु आदि तथा जरा-मृत्यु आदिका कोई भय नहीं है। और न धर्म, अधर्म अथवा उत्तम, अधम और मध्यम आदिका ही भेद है। उन आठ वर्षोंमें कभी कोई युग-परिवर्तन भी नहीं होता।

महात्मा नाभिका हिम नामक वर्ष था; उनके मेरुदेवीसे अतिशय कान्तिमान् ऋषभ नामक पुत्र हुआ। ऋषभजीके भरतका जन्म हुआ, जो उनके सौ पुत्रोंमें सबसे बड़े थे। महाभाग पृथ्वीपति ऋषभदेवजी धर्मपूर्वक राज्य-शासन तथा विविध यज्ञोंका अनुष्ठान करनेके अनन्तर अपने वीर पुत्र भरतको राज्याधिकार सौंपकर तपस्याके लिये पुलहाश्रमको चले गये। महाराज ऋषभने वहाँ भी वानप्रस्थ-आश्रमकी विधि-से रहते हुए निश्चयपूर्वक तपस्या की तथा नियमानुकूल यज्ञानुष्ठान किये। वे तपस्याके कारण सूखकर अत्यन्त कृश हो गये और उनके शरीरकी शिराएँ (रक्तवाहिनी नाड़ियाँ) दिखायी देने लगीं। अन्तमें अपने मुखमें एक पत्थरका गोला रखकर उन्होंने नग्नावस्थामें महाप्रस्थान किया।

पिता ऋषभदेवजीने वन जाते समय अपना राज्य भरत-जीको दिया था; अतः तबसे यह (हिमवर्ष) इस लोकमें भारतवर्ष नामसे प्रसिद्ध हुआ। भरतजीके सुमति नामक परम धार्मिक पुत्र हुआ। पिता (भरत) ने यज्ञानुष्ठानपूर्वक न्यायतः राज्यका पालन करके अन्तमें उसे सुमतिको सौंप दिया।
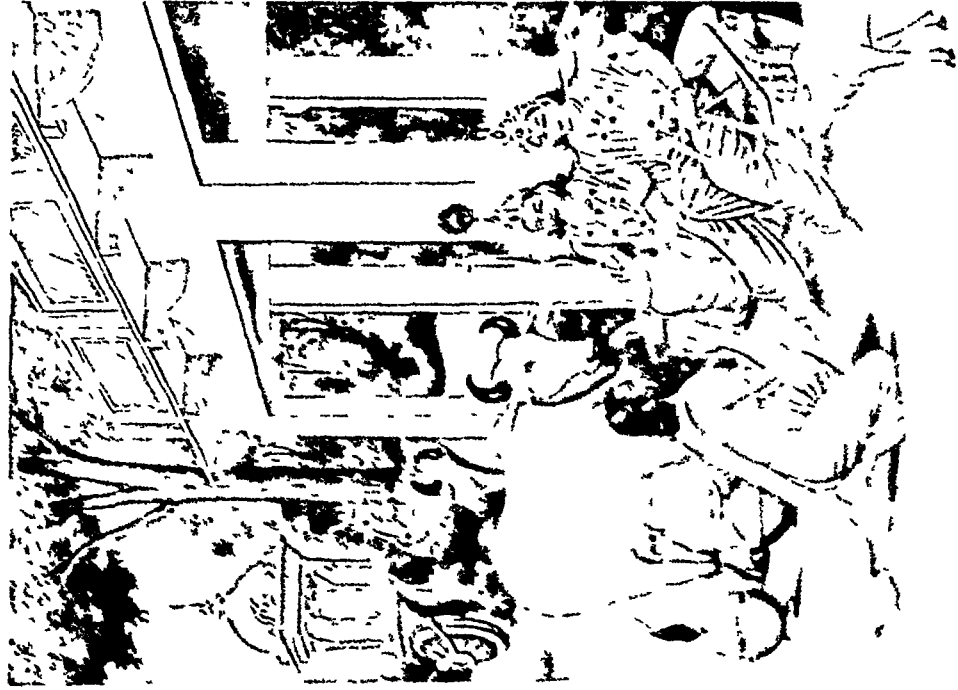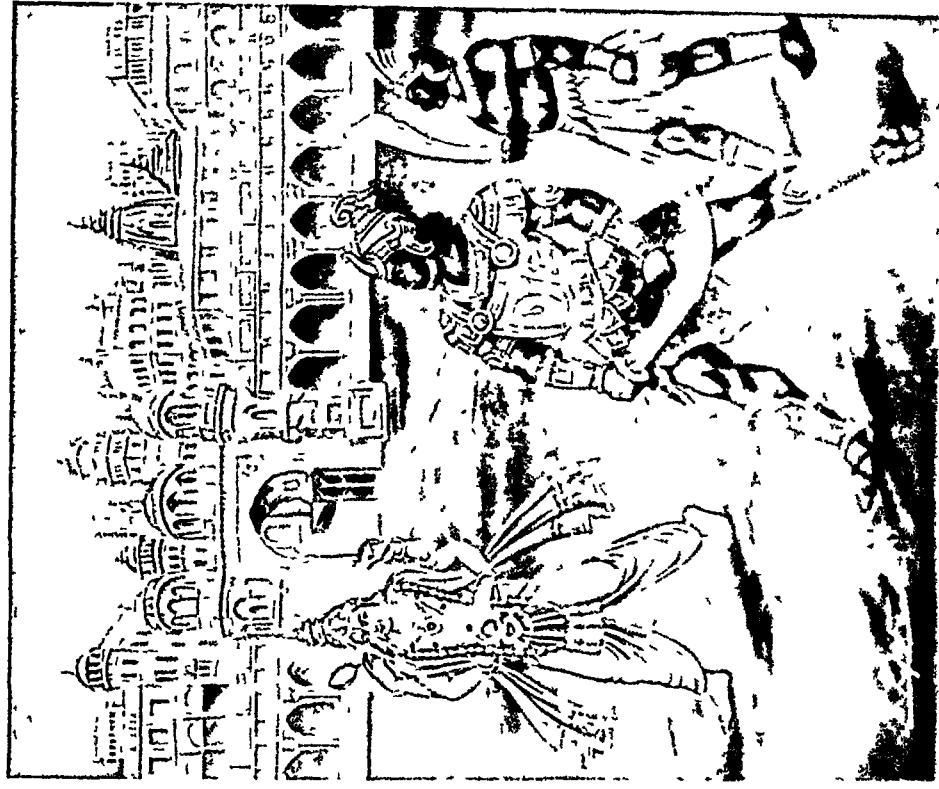
मुने! महाराज भरतने पुत्रको राज्यलक्ष्मी सौंपकर योगाभ्यासमें तत्पर हो शालग्रामक्षेत्रमें अपने प्राण छोड़ दिये। फिर इन्होंने योगियोंके पवित्र कुलमें ब्राह्मणरूपसे जन्म लिया। मैत्रेय! इनका वह चरित्र मैं तुमसे फिर कहूँगा।

तदनन्तर सुमतिके वीर्यसे इन्द्रद्युम्नका जन्म हुआ, उससे परमेष्ठी और परमेष्ठीका पुत्र प्रतिहार हुआ। प्रतिहारके प्रतिहर्ता नामसे विख्यात पुत्र उत्पन्न हुआ तथा प्रतिहर्ताका पुत्र भव, भवका उद्गीथ और उद्गीथका पुत्र अतिसमर्थ प्रस्ताव हुआ। प्रस्तावका पृथु, पृथुका नक्त और नक्तका पुत्र गय हुआ। गयके नर और उसके विराट् नामक पुत्र हुआ। उसका पुत्र महावीर्य था, उससे धीमान्‌का जन्म हुआ तथा धीमान्‌का पुत्र महान्त और उसका पुत्र मनस्यु हुआ। मनस्युका पुत्र त्वष्टा, त्वष्टाका विरज और विरजका पुत्र रज हुआ। मुने! रजके पुत्र शतजित्‌के सौ पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें विष्वग्ज्योति प्रधान था। उन सौ पुत्रोंसे यह प्रजा-सृष्टि बहुत बढ़ गयी। तब उन्होंने इस भारतवर्षको नौ विभागोंसे विभूषित किया। अर्थात् वे सब इसको नौ भागोंमें बाँटकर भोगने लगे। उन्हींके वंशधरोंने पूर्वकालमें सत्य-त्रेतादि युगक्रमसे इकहत्तर युगपर्यन्त इस भारतभूमिको भोगा था। मुने! यही स्वायम्भुव मनुका, जो इस वाराह-कल्पमें सबसे पहले मन्वन्तराधिप थे, वंश बताया गया है, जिसने इस सम्पूर्ण संसारको व्याप्त कर रक्खा है।

भूगोलका विवरण

श्रीमैत्रेयजी बोले—ब्रह्मन्! आपने मुझसे स्वायम्भुव मनुके वंशका वर्णन किया। अब मैं आपके मुखारविन्दसे सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलका विवरण सुनना चाहता हूँ। मुने! जितने भी सागर, द्वीप, वर्ष, पर्वत, वन, नदियाँ और देवता आदिकी पुरियाँ हैं, उन सबका जितना-जितना परिमाण है, जो आधार है, जो उपादान-कारण है और जैसा आकार है, वह सब आप यथावत् वर्णन कीजिये।

श्रीपराशरजीने कहा—मैत्रेय! सुनो, मैं इन सब बातोंका सक्षेपसे वर्णन करता हूँ, इनका विस्तारपूर्वक वर्णन तो सौ वर्षमें भी नहीं हो सकता। द्विज! जम्बू, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौञ्च, शाक और सातवाँ पुष्कर—ये सातों द्वीप खारे जल, इक्षुरस, मदिरा, घृत, दधि, दुग्ध और मीठे जलके सात समुद्रोंसे घिरे हुए हैं।

मैत्रेय! जम्बूद्वीप इन सबके मध्यमें स्थित है और उसके भी बीचोबीचमें सुवर्णमय सुमेरुपर्वत है। इसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है और नीचेकी ओर यह सोलह हजार योजन पृथिवीमें घुसा हुआ है तथा ऊपरी भागमें इसका विस्तार बत्तीस हजार योजन है। इसी प्रकार नीचे (तलैटीमें) उसका सारा विस्तार सोलह हजार योजन है। इस तरह यह पर्वत इस पृथिवीरूप कमलकी कर्णिका (कोश) के समान स्थित है। इसके दक्षिणमें हिमवान्, हेमकूट और निषध तथा उत्तरमें नील, श्वेत और शृङ्गी नामक वर्षपर्वत हैं, जो भिन्न-भिन्न वर्षोंका विभाग करते हैं। उनमें बीचके दो पर्वत निषध और नील एक-एक लाख योजनतक फैले हुए हैं, उनसे दूसरे-दूसरे दस-दस हजार योजन कम हैं। अर्थात् हेमकूट और श्वेत नब्बे-नब्बे हजार योजन तथा हिमवान् और शृङ्गी अस्सी-अस्सी सहस्र योजनतक फैले हुए हैं। वे सभी दो-दो सहस्र योजन ऊँचे और इतने ही चौड़े हैं।

द्विज! मेरुपर्वतके दक्षिणकी ओर पहला भारतवर्ष है तथा दूसरा किम्पुरुषवर्ष और तीसरा हरिवर्ष है। उत्तरकी ओर प्रथम रम्यक, फिर हिरण्मय और तदनन्तर उत्तरकुरु-वर्ष है, जो द्वीपमण्डलकी सीमापर होनेके कारण भारतवर्षके समान धनुषाकार है। द्विजश्रेष्ठ! इनमेंसे प्रत्येकका विस्तार नौ-नौ हजार योजन है तथा इन सबके बीचमें इलावृतवर्ष है जिसमें सुवर्णमय सुमेरुपर्वत खड़ा हुआ है। महाभाग! यह इलावृतवर्ष सुमेरुके चारों ओर नौ हजार योजनतक फैला हुआ है। इसके चारों ओर चार पर्वत हैं। ये चारों पर्वत मानो सुमेरुको धारण करनेके लिये ईश्वरकृत कीलियाँ हैं; क्योंकि इनके बिना ऊपरसे विस्तृत और मूलमें संकुचित होनेके कारण सुमेरुके गिरनेकी सम्भावना है। इनमेंसे मन्दराचल पूर्वमें, गन्धमादन दक्षिणमें, विपुल पश्चिममें और सुपार्श्व उत्तरमें है। ये सभी दस-दस हजार योजन ऊँचे हैं। इनपर पर्वतोंकी ध्वजाओंके समान क्रमशः ग्यारह-ग्यारह सौ योजन ऊँचे कदम्ब, जम्बू, पीपल और वटके वृक्ष हैं।

महामुने! इनमें जम्बू (जामुन) वृक्ष जम्बूद्वीपके नामका कारण है। उसके फल महान् गजराजके समान बड़े होते हैं। जब वे पर्वतपर गिरते हैं तो फटकर सब ओर फैल जाते हैं। उनके रससे निकली जम्बू नामकी प्रसिद्ध नदी

बहती है, जिसका जल वहाँके रहनेवाले पीते हैं। उसका पान करनेसे वहाँके सुखचित्त लोगोंको पसीना, दुर्गन्ध, बुढ़ापा अथवा इन्द्रियक्षय नहीं होता। उसके किनारेकी मृत्तिका उस रसमें मिलकर मन्द-मन्द वायुसे सूखनेपर जाम्बूनद नामक सुवर्ण हो जाती है। मेरुके पूर्वमें भद्राश्ववर्ष और पश्चिममें केतुमालवर्ष है तथा मुनिश्रेष्ठ! इन दोनोंके बीचमें इलावृतवर्ष है। इसी प्रकार उसके पूर्वकी ओर चैत्ररथ, दक्षिणकी ओर गन्धमादन, पश्चिमकी ओर वैभ्राज और उत्तरकी ओर नन्दन नामक वन है। तथा सर्वदा देवताओंसे सेवनीय अरुणोद, महाभद्र, असितोद और मानस—ये चार सरोवर हैं।

मैत्रेय! शीताम्भ, कुमुन्द, कुररी, माल्यवान् तथा वैकङ्क आदि पर्वत भूपद्मकी कर्णिकारूप मेरुके पूर्व-दिशाके केसराचल हैं। त्रिकूट, शिशिर, पतङ्ग, रुचक और निषध आदि केसराचल उसके दक्षिण ओर हैं। शिखिवासा, वैडूर्य, कपिल, गन्धमादन और जारुधि आदि उसके पश्चिमीय केसरपर्वत हैं तथा मेरुके अति समीपस्थ इलावृतवर्षमें और जठरादि देशोंमें स्थित शङ्खकूट, ऋषभ, हंस, नाग तथा कालञ्ज आदि पर्वत उत्तरदिशाके केसराचल हैं।

मैत्रेय! मेरुके ऊपर अन्तरिक्षमें चौदह सहस्र योजनके विस्तारवाली ब्रह्माजीकी महापुरी (ब्रह्मपुरी) है। उसके सब ओर दिशा एव विदिशाओंमें इन्द्रादि लोकपालोंके आठ अति रमणीक और विख्यात नगर हैं। विष्णुपादोद्भवा श्रीगङ्गाजी चन्द्रमण्डलको चारों ओरसे आप्लावित कर स्वर्गलोकसे ब्रह्मपुरीमें गिरती हैं। वहाँ गिरनेपर वे चारों दिशाओंमें क्रमसे सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा नामसे चार भागोंमें विभक्त हो जाती हैं। उनमेंसे सीता पूर्वकी ओर आकाशमार्गसे एक पर्वतसे दूसरे पर्वतपर जाती हुई अन्तमें पूर्वस्थित भद्राश्ववर्षको पारकर समुद्रमें मिल जाती है। इसी प्रकार महामुने! अलकनन्दा दक्षिण-दिशाकी ओर भारतवर्षमें आती है और सात भागोंमें विभक्त होकर समुद्रमें मिल जाती है। चक्षु पश्चिमदिशाके समस्त पर्वतोंको पारकर केतुमाल नामक वर्षमें बहती हुई अन्तमें सागरमें जा गिरती है। तथा महामुने! भद्रा उत्तरके पर्वतों और उत्तरकुरुवर्षको पार करती हुई उत्तरीय समुद्रमें मिल जाती है। माल्यवान् और गन्धमादनपर्वत उत्तर तथा दक्षिणकी ओर नीलाचल और निषधपर्वततक फैले हुए हैं। उन दोनोंके बीचमें कर्णिकाकार मेरुपर्वत स्थित है।

मैत्रेय! मर्यादापर्वतोंके बहिर्भागमें स्थित भारत, केतुमाल, भद्राश्व और कुरुवर्ष इस लोकपद्मके पत्तोंके समान हैं। जठर और देवकूट—ये दोनों मर्यादापर्वत हैं, जो उत्तर और दक्षिणकी ओर नील तथा निषधपर्वततक फैले हुए हैं। पूर्व और पश्चिमकी ओर फैले हुए गन्धमादन और कैलास—ये दो पर्वत, जिनका विस्तार अस्सी योजन है, समुद्रके भीतर स्थित हैं। पूर्वके समान मेरुसे पश्चिम ओर भी निषध और पारियात्र नामक दो मर्यादापर्वत स्थित हैं। उत्तरकी ओर त्रिशृङ्ग और जारुधि नामक वर्षपर्वत हैं। ये दोनों पूर्व और पश्चिमकी ओर समुद्रके गर्भमें स्थित हैं। इस प्रकार मुनिवर! तुमसे जठर आदि मर्यादापर्वतोंका वर्णन किया, जिनमेंसे दो-दो मेरुकी चारों दिशाओंमें स्थित हैं।

मुने! मेरुके चारों ओर स्थित जिन शीतान्त आदि केसरपर्वतोंके विषयमें तुमसे कहा था, उनके बीचमें सिद्धचारणादिसे सेवित अति सुन्दर कन्दराएँ हैं। मुनिसत्तम! उनमें सुरम्य नगर तथा उपवन हैं और लक्ष्मी, विष्णु, अग्नि एवं सूर्य आदि देवताओंके अत्यन्त सुन्दर मन्दिर हैं, जो सदा किन्नरश्रेष्ठोंसे सेवित रहते हैं। उन सुन्दर पर्वतद्रोणियोंमें गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, दैत्य और दानवादि अहर्निश क्रीडा करते हैं। मुने! ये सम्पूर्ण स्थान भौम (पृथिवीके) स्वर्ग कहलाते हैं; ये धार्मिक पुरुषोंके निवासस्थान हैं। पापकर्मा पुरुष इनमें सौ जन्ममें भी नहीं जा सकते।

द्विज! श्रीविष्णुभगवान् भद्राश्ववर्षमें हयग्रीवरूपसे, केतुमालवर्षमें वराहरूपसे और भारतवर्षमें कूर्मरूपसे रहते हैं। वे भक्तप्रतिपालक श्रीगोविन्द कुरुवर्षमें मत्स्यरूपसे रहते हैं। इस प्रकार वे सर्वमय सर्वगामी हरि विश्वरूपसे सर्वत्र ही रहते हैं। मैत्रेय! वे सबके आधारभूत और सर्वात्मक हैं। महामुने! किम्पुरुष आदि जो आठ वर्ष हैं, उनमें शोक, श्रम, उद्वेग और क्षुधाका भय आदि कुछ भी नहीं है। वहाँकी प्रजा स्वस्थ, आतङ्कहीन और समस्त दुःखोंसे रहित है तथा वहाँके लोग दस-बारह हजार वर्षकी स्थिर आयुवाले होते हैं। उनमें वर्षा कभी नहीं होती, केवल पार्थिव जल ही है। द्विजोत्तम! इन सभी वर्षोंमें सात-सात कुलपर्वत हैं और उनसे निकली हुई सैकड़ों नदियाँ हैं।

भारतादि नौ खण्डोंका विभाग

श्रीपराशरजी कहते हैं—मैत्रेय ! जो समुद्रके उत्तर तथा हिमालयके दक्षिणमें स्थित है, वह देश भारतवर्ष कहलाता है । उसमें भरतकी संतान बसी हुई है । महामुने ! इसका विस्तार नौ हजार योजन है । इसमें महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य और पारियात्र—ये सात कुल-पर्वत हैं । मुने ! इसी देशमें मनुष्य शुभ कर्मोंद्वारा स्वर्ग अथवा मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं और यहींसे पाप-कर्मोंमें प्रवृत्त होनेपर वे नरक अथवा तिर्यग्योनिमें पड़ते हैं । यहींसे कर्मानुसार स्वर्ग, मोक्ष, अन्तरिक्ष अथवा पाताल, नरक आदि लोकोंको प्राप्त किया जा सकता है, पृथिवीमें यहाँके सिवा और कहीं भी मनुष्यके लिये कर्मकी विधि नहीं है ।

इस भारतवर्षके नौ भाग हैं; उनके नाम ये हैं—इन्द्रद्वीप, कसेरु, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व और वारुण तथा यह समुद्रसे घिरा हुआ द्वीप उनमें नवाँ है । यह द्वीप उत्तरसे दक्षिणतक सहस्र योजन है । इसके पूर्वीय भागमें किरात लोग और पश्चिमीयमें यवन बसे हुए हैं तथा यज्ञ शस्त्रधारण और व्यापार आदि अपने-अपने कर्मोंकी व्यवस्थाके अनुसार आचरण करते हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रगण वर्ण-विभागानुसार मध्यमें रहते हैं । मुने ! इसकी शतद्रू और चन्द्रभागा आदि नदियाँ हिमालयकी तलैटीसे, वेद और स्मृति आदि पारियात्र पर्वतसे, नर्मदा और सुरसा आदि विन्ध्याचलसे तथा तापी, पयोष्णी और निर्विन्ध्या आदि ऋक्षगिरिसे निकली हैं । गोदावरी, भीमरथी और कृष्णवेणी आदि पापहारिणी नदियाँ सह्यपर्वतसे उत्पन्न हुई कही जाती हैं । कृतमाला और ताम्रपर्णी आदि मलयाचलसे, त्रिसामा और आर्यकुल्या आदि महेन्द्रगिरिसे तथा ऋषिकुल्या और कुमारी आदि नदियाँ शुक्तिमान् पर्वतसे निकली हैं । इनकी और भी सहस्रों शाखा नदियाँ और उपनदियाँ हैं । इन नदियोंके तटपर कुरु, पाञ्चाल और मध्यदेशादिके रहनेवाले, पूर्वदेश और कामरूपके निवासी, पुण्ड्र, कलिंग, मगध और दाक्षिणात्यलोग, अपरान्तदेशवासी, सौराष्ट्रगण तथा शूर, आभीर और अर्बुदगण [illegible] और पारियात्रनिवासी, सौवीर, [illegible] कोशल-देशवासी तथा माद्र आराम, [illegible] रहते हैं । महाभाग ! वे लोग [illegible] और इन्हींका जल पान करते हैं । इनकी [illegible] बड़े हृष्ट-पुष्ट रहते हैं ।

मुने ! इस भारतवर्षमें ही [illegible] कलि नामक चार युग हैं, अन्यत्र [illegible] परलोकके लिये मुनिजन तपस्या [illegible] यज्ञानुष्ठान करते हैं और दानीजन [illegible] हैं । जम्बूद्वीपमें [illegible] भगवान् [illegible] यज्ञोंद्वारा यजन किया जाता है, [illegible] द्वीपोंमें उनकी और-और प्रकारसे उपासना [illegible] । महामुने ! इस जम्बूद्वीपमें भी भारतवर्ष [illegible] कर्मभूमि है । इसके अतिरिक्त अन्यान्य देश भोग-[illegible] । सत्तम ! जीवको सहस्रों जन्मोंके अनन्तर [illegible] होनेपर ही कभी इस देशमें मनुष्य-जन्म प्राप्त [illegible] गण भी निरन्तर यही गान करते हैं कि [illegible] अपवर्गके मार्गभूत भारतवर्षमें जन्म [illegible] कर्मभूमिमें जन्म लेकर अपने [illegible] परमात्मस्वरूप श्रीविष्णुभगवान्‌को [illegible] (पाप-पुण्यसे रहित) होकर उन अनन्तमें ही [illegible] हैं, वे पुरुष हम देवताओंकी [illegible] (बड़भागी) हैं* ।

'पता नहीं, अपने स्वर्गप्रद [illegible] जन्म ग्रहण करेंगे ! धन्य तो वे ही मनुष्य [illegible] उत्पन्न होकर इन्द्रियोंकी [illegible] ।'

मैत्रेय ! इस प्रकार [illegible] विशिष्ट इस जम्बूद्वीपका मैंने तुम्हें [illegible] मैत्रेय ! इस जम्बूद्वीपको बाहर चारों ओर [illegible] विस्तारवाले वलयाकार खारे पानीके [illegible] ।

---

* गायन्ति देवा किल गीतकानि धन्यास्तु ते [illegible] ।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूय पुरुषा [illegible] ॥
कर्माण्यसंकल्पिततत्फलानि संन्यस्य विष्णौ [illegible] ।
अवाप्य तां कर्ममहीमनन्ते तस्मिँल्लयं ये त्वमलाः प्रयान्ति ॥
[illegible]

प्लक्ष तथा शाल्मल आदि द्वीपोंका विशेष वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—जम्बूद्वीपका विस्तार एक लक्ष योजन है; और ब्रह्मन्! प्लक्षद्वीपका उससे दूना कहा जाता है। प्लक्षद्वीपके स्वामी मेधातिथिके सात पुत्र हुए। उनमें सबसे बड़ा शान्तहय था और उससे छोटा शिशिर। उनके अनन्तर क्रमशः सुखोदय, आनन्द, शिव और क्षेमक हुए। सातवाँ पुत्र ध्रुव था। ये सब प्लक्षद्वीपके अधीश्वर हुए। उनके अपने-अपने अधिकृत वर्षोंमें प्रथम शान्तहयवर्ष है तथा अन्य शिशिरवर्ष, सुखोदयवर्ष, आनन्दवर्ष, शिववर्ष, क्षेमकवर्ष और ध्रुववर्ष हैं तथा उनकी मर्यादा निश्चित करनेवाले अन्य सात पर्वत हैं। मुनिश्रेष्ठ! उनके नाम हैं—गोमेद, चन्द्र, नारद, दुन्दुभि, सोमक, सुमना और सातवाँ वैभ्राज।

इन अति सुरम्य वर्ष-पर्वतों और वर्षोंमें देवता और गन्धर्वोंके सहित सदा निष्पाप प्रजा निवास करती है। वहाँके निवासीगण पुण्यवान् होते और वे चिरकालतक जीवित रहकर मरते हैं; उनको किसी प्रकारकी आधि-व्याधि नहीं होती, निरन्तर सुख ही रहता है। उन वर्षोंकी सात ही समुद्र-गामिनी नदियाँ हैं। उनके नाम मैं तुम्हें बतलाता हूँ, जिनके श्रवणमात्रसे वे पापोंको दूर कर देती हैं। वहाँ अनुतप्ता, शिखी, विपाशा, त्रिदिवा, अक्लमा, अमृता और सुकृता—ये ही सात नदियाँ हैं। यह मैंने तुमसे प्रधान-प्रधान पर्वत और नदियोंका वर्णन किया है; वहाँ छोटे-छोटे पर्वत और नदियाँ तो और भी सहस्रों हैं। उस देशके हृष्ट-पुष्ट लोग सदा उन नदियोंका जल पान करते हैं। द्विज! उन लोगोंमें ह्रास अथवा वृद्धि नहीं होती। महामते! ब्रह्मन्! प्लक्षद्वीपसे लेकर शाकद्वीपपर्यन्त छहों द्वीपोंमें सदा त्रेतायुगके समान समय रहता है। इन द्वीपोंके मनुष्य सदा नीरोग रहकर पाँच हजार वर्षतक जीते हैं और इनमें वर्णाश्रम-विभागानुसार पाँचों धर्म (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह) वर्तमान रहते हैं।

वहाँ जो चार वर्ण हैं वह मैं तुमको सुनाता हूँ। मुनिसत्तम! उस द्वीपमें जो आर्यक, कुरर, विदिश्य और भावी नामक जातियाँ हैं, वे ही क्रमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं। द्विजोत्तम! उसीमें जम्बूवृक्षके ही परिमाणवाला एक प्लक्ष (पाकर) का वृक्ष है, जिसके नामसे उसकी संज्ञा प्लक्षद्वीप हुई है। वहाँ आर्यकादि वर्णोंद्वारा जगत्स्रष्टा, सर्वरूप, सर्वेश्वर भगवान् हरिका सोमरूपसे यजन किया जाता है। प्लक्षद्वीप अपने ही बराबर परिमाणवाले वृत्ताकार इक्षुरसके समुद्रसे घिरा हुआ है। मैत्रेय! इस प्रकार मैंने तुमसे संक्षेपमें प्लक्षद्वीपका वर्णन किया, अब तुम शाल्मलद्वीपका विवरण सुनो।

शाल्मलद्वीपके स्वामी वीरवर वपुष्मान् थे। उनके पुत्रोंके नाम सुनो। महामुने! वे श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस और सुप्रभ थे। उनके सात वर्ष उन्हींके नामानुसार संज्ञावाले हैं। यह (प्लक्षद्वीपको घेरनेवाला) इक्षुरसका समुद्र अपनेसे दूने विस्तारवाले इस शाल्मलद्वीपसे चारों ओरसे घिरा हुआ है। वहाँ भी रत्नोंके उद्भवस्थानरूप सात पर्वत हैं, जो उसके सातों वर्षोंके सूचक हैं तथा सात ही नदियाँ हैं। पर्वतोंमें पहला कुमुद, दूसरा उन्नत, तीसरा बलाहक तथा चौथा द्रोणाचल है, जिसमें नाना प्रकारकी महौषधियाँ हैं। पाँचवाँ कङ्क, छठा महिष और सातवाँ गिरिवर ककुद्मान् है। अब नदियोंके नाम सुनो। वे योनि, तोया, वितृष्णा, चन्द्रा, मुक्ता, विमोचनी और निवृत्ति हैं तथा स्मरणमात्रसे ही सारे पापोंको शान्त कर देनेवाली हैं। श्वेत, हरित, वैद्युत, मानस, जीमूत, रोहित और अति शोभायमान सुप्रभ—ये उसके चारों वर्णोंसे युक्त सात वर्ष हैं। महामुने! शाल्मलद्वीपमें कपिल, अरुण, पीत और कृष्ण—ये चार वर्ण पृथक्-पृथक् निवास करते हैं जो क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं। ये यजनशील लोग सबके आत्मा, अव्यय और यज्ञके आश्रय वायुरूप विष्णुभगवान्‌का श्रेष्ठ यज्ञोंद्वारा यजन करते हुए पूजन करते हैं। इस अत्यन्त मनोहर द्वीपमें देवगण सदा विराजमान रहते हैं। इसमें शाल्मल (सेमल) का एक महान् वृक्ष है जो अपने नामसे ही अत्यन्त शान्तिदायक है। यह द्वीप अपने समान ही विस्तारवाले एक मदिराके समुद्रसे सब ओरसे पूर्णतया घिरा हुआ है और यह सुरासमुद्र शाल्मलद्वीपसे दूने विस्तारवाले कुशद्वीपद्वारा सब ओरसे परिवेष्टित है।

कुशद्वीपमें वहाँके अधिपति ज्योतिष्मान्‌के सात पुत्र थे, उनके नाम सुनो। वे उद्भिद, वेणुमान्, वैरथ, लम्बन, धृति, प्रभाकर और कपिल थे। उनके नामानुसार ही वहाँके वर्षोंके नाम पड़े। उसमें दैत्य और दानवोंके सहित मनुष्य तथा देव, गन्धर्व, यक्ष और किन्नर आदि निवास करते हैं। महामुने! वहाँ भी अपने-अपने कर्मोंमें तत्पर दमी, शुष्मी

स्नेह और मन्देहनामक चार ही वर्ण हैं, जो क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ही हैं । अपने प्रारब्धक्षयके निमित्त शास्त्रानुकूल कर्म करते हुए वहाँ कुशद्वीपमें ही वे ब्रह्मरूप जनार्दनकी उपासनाद्वारा अपने प्रारब्धफलके देनेवाले अत्युग्र अहंकारका क्षय करते हैं । महामुने ! उस द्वीपमें विद्रुम हेमशैल, द्युतिमान्, पुष्पवान्, कुशेशय, हरि और सातवाँ मन्दराचल—ये सात वर्षपर्वत हैं । तथा उसमें सात ही नदियाँ हैं, उनके नाम क्रमशः सुनो । वे धूतपापा, शिवा, पवित्रा, सम्मति, विद्युत्, अम्भा और मही हैं । ये सम्पूर्ण पापोंको हरनेवाली हैं । वहाँ और भी सहस्रों छोटी-छोटी नदियाँ और पर्वत हैं । कुशद्वीपमें एक कुशका झाड़ है । उसीके कारण इसका यह नाम पड़ा है । यह द्वीप अपने ही बराबर विस्तारवाले घीके समुद्रसे घिरा हुआ है और वह घृत-समुद्र अपनेसे द्विगुण विस्तारवाले क्रौञ्चद्वीपसे परिवेष्टित है ।

महाभाग ! अब इसके अगले क्रौञ्च नामक महाद्वीपके विषयमें सुनो, जिसका विस्तार कुशद्वीपसे दूना है । क्रौञ्चद्वीपमें महात्मा द्युतिमान्‌के जो पुत्र थे, उनके नामानुसार ही महाराज द्युतिमान्‌ने उनके वर्ष नियत किये । मुने ! उसके कुशल, मन्दग, उष्ण, पीवर, अन्धकारक, मुनि और दुन्दुभि—ये सात पुत्र थे । वहाँ भी देवता और गन्धर्वोंसे सेवित अति मनोहर सात वर्षपर्वत हैं । महाबुद्धे ! उनके नाम सुनो । उनमें पहला क्रौञ्च, दूसरा वामन, तीसरा अन्धकारक, चौथा रत्नमय स्वाहिनी पर्वत, पाँचवाँ दिवावृत, छठा पुण्डरीकवान् और सातवाँ महापर्वत दुन्दुभि है । वे द्वीप परस्पर एक-दूसरेसे दूने हैं और उन्हींकी भाँति उनके पर्वत भी उत्तरोत्तर द्विगुण है । इन सुरम्य वर्षों और पर्वतश्रेष्ठोंमें देवगणोंके सहित सम्पूर्ण प्रजा निर्भय होकर रहती है । महामुने ! वहाँके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र क्रमसे पुष्कर, पुष्कल, धन्य और तिष्य कहलाते हैं । मैत्रेय ! वहाँ जिनका जल पान किया जाता है, उन नदियोंका विवरण सुनो । उस द्वीपमें सात प्रधान तथा अन्य सैकड़ों क्षुद्र नदियाँ हैं । वे सात वर्ष-नदियाँ गौरी, कुमुद्वती, संध्या, रात्रि, मनोजवा, क्षान्ति और पुण्डरीका हैं । वहाँ भी रुद्ररूपी जनार्दन भगवान् विष्णुकी पुष्करादि वर्णोंद्वारा यज्ञादिसे पूजा की जाती है । यह क्रौञ्चद्वीप चारों ओरसे अपने तुल्य परिमाणवाले दधिमण्ड (मट्ठे) के समुद्रसे घिरा हुआ है और महामुने ! यह मट्ठेका समुद्र भी शाकद्वीपसे घिरा हुआ है, जो विस्तारमें क्रौञ्चद्वीपसे दूना है ।

शाकद्वीपके राजा महात्मा भव्यके भी सात ही पुत्र थे । उनको भी उन्होंने पृथक्-पृथक् [illegible] । [illegible] पुत्र जलद, कुमार, सुकुमार, मरीचक, कुसुमोद, मौदाकि और महाद्रुम थे । उन्हींके नामानुसार [illegible] वर्ष हैं और वहाँ भी वर्षोंका विभाग करनेवाले [illegible] हैं । द्विज ! वहाँ पहला पर्वत उदयाचल है और [illegible] जलाधार है, इनके अतिरिक्त रैवतक, श्याम, [illegible] आम्बिकेय और अति सुरम्य गिरिश्रेष्ठ केसरी है । [illegible] और गन्धर्वोंसे सेवित एक अति महान् शाकवृक्ष है । [illegible] वायुका स्पर्श करनेसे हृदयमें परम आह्लाद उत्पन्न होता है । वहाँ चातुर्वर्ण्यसे युक्त अति पवित्र देश हैं और [illegible] तथा भयको दूर करनेवाली सुकुमारी, कुमारी, नलिनी, [illegible] इक्षु, वेणुका और गभस्ती—ये सात महानदियाँ हैं । महामुने ! इनके सिवा, उस द्वीपमें और भी सैकड़ों छोटी-छोटी नदियाँ और सैकड़ों हजारों पर्वत हैं । स्वर्ग-भोगके [illegible] जिन्होंने पृथिवी-तलपर आकर जलद आदि वर्षोंमें जन्म ग्रहण किया है, वे लोग प्रसन्न होकर उनका जल पान करते हैं । उन सातों वर्षोंमें धर्मका ह्रास, पारस्परिक संघर्ष ([illegible]) अथवा मर्यादाका उल्लङ्घन कभी नहीं होता । [illegible] ([illegible]) मागध, मानस और मन्दग—ये चार वर्ण हैं । इनमें मग ([illegible]) सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण हैं, मागध क्षत्रिय हैं, मानस वैश्य हैं तथा मन्दग शूद्र हैं । मुने ! शाकद्वीपमें शास्त्रानुकूल कर्म करनेवाले पूर्वोक्त चारों वर्णोंद्वारा संयतचित्तसे विधिपूर्वक [illegible] भगवान् विष्णुकी उपासना की जाती है । मैत्रेय ! [illegible] द्वीप अपने ही बराबर विस्तारवाले [illegible] समुद्रसे घिरा हुआ है और ब्रह्मन् ! वह [illegible] द्वीपसे दूने परिमाणवाले पुष्करद्वीपसे परिवेष्टित है ।

पुष्करद्वीपमें वहाँके अधिपति महाराज [illegible] और धातकि नामक दो पुत्र हुए । उन दोनोंके [illegible] उसमें महावीरखण्ड और धातकीखण्ड नामक दो वर्ष हैं । महाभाग ! इसमें मानसोत्तरनामक एक ही वर्ष-पर्वत कहा जाता है, जो इसके मध्यमें वलयाकार स्थित है [illegible] सहस्र योजन ऊँचा और इतना ही [illegible] हुआ है । यह पर्वत पुष्करद्वीपरूप [illegible] रहा है और इससे विभक्त होनेसे [illegible] । उनमेंसे प्रत्येक वर्ष और वह पर्वत [illegible] ही है । [illegible] मनुष्य रोग, शोक और राग-द्वेषादिसे रहित हुए [illegible] वर्षतक जीवित रहते हैं । द्विज ! उनमें उत्तम-अधम [illegible] वध्य-वधक आदि (विरोधी) भाव नहीं हैं और न [illegible]

ईर्ष्या, असूया, भय, द्वेष और लोभादि दोष ही हैं। महावीरवर्ष मानसोत्तर पर्वतके बाहरकी ओर है और धातकीखण्ड भीतरकी ओर। इनमें देव और दैत्य आदि निवास करते हैं। दोनों वर्षोंसे युक्त उस पुष्करद्वीपमें सत्य और मिथ्याका व्यवहार नहीं है और न उसमें पर्वत तथा नदियाँ ही हैं। वहाँके मनुष्य और देवगण समान वेष और समान रूपवाले होते हैं। मैत्रेय! वर्णाश्रमाचारसे हीन, काम्य कर्मोंसे रहित तथा वेदत्रयी, कृषि, दण्डनीति और शुश्रूषा आदिसे शून्य वे दोनों वर्ष तो मानो अत्युत्तम भौम (पृथिवीके) स्वर्ग हैं। मुने! उन महावीर और धातकीखण्ड नामक वर्षोंमें काल (समय) समस्त ऋतुओंमें सुखदायक और जरा तथा रोगादिसे रहित रहता है। पुष्करद्वीपमें ब्रह्माजीका उत्तम निवासस्थान एक न्यग्रोध (वट) का वृक्ष है, जहाँ देवता और दानवादिसे पूजित श्रीब्रह्माजी विराजते हैं। पुष्करद्वीप चारों ओरसे अपने ही समान विस्तारवाले मीठे पानीके समुद्रसे मण्डलके समान घिरा हुआ है।

इस प्रकार सातों द्वीप सात समुद्रोंसे घिरे हुए हैं और वे द्वीप तथा उन्हें घेरनेवाले समुद्र परस्पर समान हैं और उत्तरोत्तर दूने होते गये हैं। सभी समुद्रोंमें सदा समान जल रहता है, उसमें कभी न्यूनता अथवा अधिकता नहीं होती। मुनिश्रेष्ठ! पात्रका जल जिस प्रकार अग्निका संयोग होनेसे उबलने लगता है उसी प्रकार चन्द्रमाकी कलाओंके बढ़नेसे समुद्रका जल भी बढ़ने लगता है। शुक्ल और कृष्ण पक्षोंमें चन्द्रमाके उदय और अस्तसे न्यूनाधिक न होते हुए ही जल घटता और बढ़ता है। महामुने! समुद्रके जलकी वृद्धि और क्षय पाँच सौ दस (५१०) अंगुलतक देखी जाती है। विप्र! पुष्करद्वीपमें सम्पूर्ण प्रजावर्ग सर्वदा बिना प्रयत्नके अपने-आप ही प्राप्त हुए षड्रस भोजनका आहार करते हैं।

स्वादूदक (मीठे पानीके) समुद्रके चारों ओर लोक निवाससे शून्य और समस्त जीवोंसे रहित उससे दूनी सुवर्णमयी भूमि दिखायी देती है। वहाँ दस सहस्र योजन विस्तारवाला लोकालोक-पर्वत है। वह पर्वत ऊँचाईमें भी उतने ही सहस्र योजन है। उसके आगे उस पर्वतको सब ओरसे आवृतकर घोर अन्धकार छाया हुआ है तथा वह अन्धकार चारों ओरसे ब्रह्माण्ड-कटाहसे आवृत है। महामुने! अण्डकटाहके सहित द्वीप, समुद्र और पर्वतादियुक्त यह समस्त भूमण्डल पचास करोड योजन विस्तारवाला है। मैत्रेय! आकाशादि समस्त भूतोंसे अधिक गुणवाली यह पृथिवी सम्पूर्ण जगत्की आधारभूता और उसका पालन तथा उद्भव करनेवाली है।

सात पाताललोकोंका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—द्विज! मैंने तुमसे यह पृथ्वीका विस्तार कहा; इसकी ऊँचाई भी सत्तर सहस्र योजन कही जाती है। मुनिसत्तम! अतल, वितल, नितल, गभस्तिमान, महातल, सुतल और पाताल—इन सातोंमेंसे प्रत्येक पाताल दस-दस सहस्र योजनकी दूरीपर है। मैत्रेय! सुन्दर महलोंसे सुशोभित वहाँकी भूमियाँ शुक्ल, कृष्ण, अरुण और पीत वर्णकी तथा शर्करामयी (कँकरीली), शैली (पत्थरकी) और सुवर्णमयी हैं। महामुने! उनमें दानव, दैत्य, यक्ष और बड़े-बड़े नाग आदिकी सैकड़ों जातियाँ निवास करती हैं। एक बार नारदजीने पातालोंसे स्वर्गमें जाकर वहाँके निवासियोंसे कहा था कि 'पाताल तो स्वर्गसे भी अधिक सुन्दर है। जहाँ नागोंके आभूषणोंमें सुन्दर प्रभायुक्त आह्लादकारिणी शुभ्र मणियाँ जड़ी हुई हैं, उस पातालको किसके समान कहें? जहाँ-तहाँ दैत्य और दानवोंकी कन्याओंसे सुशोभित पाताललोकमें किस मुक्त पुरुषकी भी प्रीति न होगी। जहाँ दिनमें सूर्यकी किरणें केवल प्रकाश ही करती हैं, घाम नहीं करतीं, तथा रातमें चन्द्रमाकी किरणोंसे शीत नहीं होता, केवल चाँदनी ही फैलती है। जहाँ भक्ष्य, भोज्य और महापानादिके भोगोंसे आनन्दित सर्पों तथा दानवादिको समय जाता हुआ भी प्रतीत नहीं होता। जहाँ सुन्दर वन, नदियाँ, रमणीय सरोवर और कमलोंके वन हैं, जहाँ नरकोकिलोंकी सुमधुर कूक गूँजती है, एवं आकाश मनोहारी है। और द्विज! जहाँ पातालनिवासी दैत्य, दानव एवं नागोंद्वारा अति स्वच्छ आभूषण, सुगन्धमय अनुलेपन, वीणा, वेणु और मृदंगादिके स्वर तथा तूर्य—ये सब एवं भाग्यशालियोंके भोगनेयोग्य और भी अनेक भोग भोगे जाते हैं।

[illegible] बेचनेवाला, कारागृहरक्षक, अश्वविक्रेता और भक्त पुरुषका त्याग करनेवाला—ये सब लोग तप्तलोह नरकमें गिरते हैं। पुत्रवधू और पुत्रीके साथ विषय करनेसे मनुष्य महाज्वाल नरकमें गिराया जाता है तथा जो नराधम गुरुजनोंका अपमान करनेवाला और उनसे दुर्वचन बोलनेवाला होता है तथा जो वेदकी निन्दा करनेवाला, वेद बेचनेवाला या अगम्या स्त्रीसे सम्भोग करता है, हे द्विज! वे सब लवण नरकमें जाते हैं। चोर तथा मर्यादाका उल्लङ्घन करनेवाला पुरुष विमोहित नरकमें गिरता है। जो पुरुष देव, द्विज और पितृगणसे द्वेष करनेवाला तथा रत्नको दूषित करनेवाला होता है, वह कृमिभक्ष नरकमें और अनिष्ट यज्ञ करनेवाला कृमीश नरकमें जाता है।

जो नराधम पितृगण, देवगण और अतिथियोंको छोड़कर उनसे पहले भोजन कर लेता है, वह अति उग्र लालाभक्ष नरकमें पड़ता है; और बाण बनानेवाला वेध नरकमें जाता है। जो मनुष्य कर्णी नामक बाण बनाते हैं और जो खड्गादि शस्त्र बनानेवाले हैं, वे अति दारुण विशसन नरकमें गिरते हैं। असत्-प्रतिग्रह लेनेवाला, अयाज्य-याजक और नक्षत्रोपजीवी पुरुष अधोमुख नरकमें पड़ता है। साहस (निष्ठुर कर्म) करनेवाला पुरुष पूयवह नरकमें जाता है तथा अकेले ही स्वादु भोजन करनेवाला मनुष्य और लाख, मांस, रस, तिल तथा लवण आदि बेचनेवाला ब्राह्मण उसी (पूयवह) नरकमें गिरता है। द्विजश्रेष्ठ! बिलाव, कुक्कुट, छाग, कुत्ता, शूकर तथा पक्षियोंको पालनेसे भी पुरुष उसी नरकमें जाता है। लीलगर, धीवरका कर्म करनेवाला, कुण्ड (उपपतिसे उत्पन्न संतान) का अन्न खानेवाला, विष देनेवाला, चुगलखोर, माहिषक (स्त्रीकी असद्वृत्तिके आश्रयसे रहनेवाला), धन आदिके लोभसे बिना पर्वके अमावास्या आदि पर्वदिनोंका कार्य करानेवाला द्विज, घरमें आग लगानेवाला, मित्रकी हत्या करनेवाला, शकुन आदि बतानेवाला, ग्रामका पुरोहित तथा सोम (मदिरा) बेचनेवाला—ये सब रुधिरान्ध नरकमें गिरते हैं। यज्ञ अथवा ग्रामको नष्ट करनेवाला पुरुष वैतरणी नरकमें जाता है तथा जो लोग हस्त मैथुनादिसे वीर्यपात करनेवाले, शास्त्रमर्यादाको तोड़नेवाले, अपवित्र और छलवृत्तिके आश्रय रहनेवाले होते हैं, वे कृष्ण नरकमें गिरते हैं। जो वृथा ही वनोंको काटता है, वह असिपत्रवन नरकमें जाता है।

मेषोपजीवी (गड़रिये) और व्याधगण वह्निज्वाल नरकमें गिरते हैं तथा द्विज! जो कच्चे घड़े पकानेवाले अथवा ईंट और चूना आदिका भट्ठा लगानेवाले हैं, वे भी उस (वह्निज्वाल नरक) में ही जाते हैं। व्रतोंको लोप करनेवाले तथा अपने आश्रमसे पतित दोनों ही प्रकारके पुरुष संदंश नामक नरकमें गिरते हैं। जिन ब्रह्मचारियोंका दिनमें तथा सोते समय बुरी भावनासे वीर्यपात हो जाता है अथवा जो अपने ही पुत्रोंसे पढ़ते हैं, वे लोग श्वभोजन नरकमें गिरते हैं।

इस प्रकार, ये तथा अन्य सैकड़ों हजारों नरक हैं, जिनमें दुष्कर्मीलोग नाना प्रकारकी यातनाएँ भोगा करते हैं। इन उपर्युक्त पापोंके समान और भी सहस्रों पाप-कर्म हैं, उनके फल मनुष्य भिन्न-भिन्न नरकोंमें भोगा करते हैं। जो लोग अपने वर्णाश्रम-धर्मके विरुद्ध मन, वचन अथवा कर्मसे कोई पापाचरण करते हैं, वे नरकमें गिरते हैं। पापीलोग नरक-भोगके अनन्तर क्रमसे स्थावर, कृमि, जलचर, पक्षी, पशु, मनुष्य, धार्मिक पुरुष, देवता तथा मुमुक्षु आदिका जन्म ग्रहण करते हैं। महाभाग! मुमुक्षुपर्यन्त इन सबमें पहलेकी अपेक्षा उत्तरोत्तर प्राणी सहस्रगुण श्रेष्ठ हैं। जो पापी पुरुष अपने पापका प्रायश्चित्त नहीं करते, वे ही नरकमें जाते हैं।

भिन्न-भिन्न पापोंके अनुरूप जो-जो प्रायश्चित्त हैं, उन्हीं-उन्हींको महर्षियोंने वेदार्थका स्मरण करके बताया है। मैत्रेय! स्वायम्भुव मनु आदि स्मृतिकारोंने महान् पापोंके लिये महान् और अल्पोंके लिये अल्प प्रायश्चित्तोंकी व्यवस्था की है, किंतु जितने भी तपस्यात्मक और कर्मात्मक प्रायश्चित्त हैं उन सबमें श्रीकृष्णस्मरण सर्वश्रेष्ठ है। जिस पुरुषके चित्तमें पाप-कर्मके अनन्तर पश्चात्ताप होता है, उसके लिये तो एकमात्र हरिस्मरण परम प्रायश्चित्त है। प्रातःकाल, सायंकाल, रात्रिमें और मध्याह्नादिके समय भगवान्का स्मरण करनेसे पाप क्षीण हो जानेपर मनुष्य श्रीनारायणको प्राप्त कर लेता है। श्रीविष्णुभगवान्के स्मरणसे समस्त पापराशिके भस्म हो जानेसे पुरुष मोक्षपद प्राप्त कर लेता है, स्वर्ग-लाभ तो उसके लिये विघ्नरूप माना जाता है। मैत्रेय! जिसका चित्त जप, होम और अर्चनादि करते हुए निरन्तर भगवान् वासुदेवमें लगा रहता है, उसके लिये इन्द्रपद आदि फल तो अन्तराय (विघ्न) हैं। कहाँ तो पुनर्जन्मके चक्रमें डालनेवाली स्वर्ग-प्राप्ति और कहाँ मोक्षका सर्वोत्तम बीज 'वासुदेव' नामका जप! इसलिये मुने! श्रीविष्णुभगवान्का अहर्निश स्मरण करनेसे सम्पूर्ण पाप क्षीण

हो जानेके कारण मनुष्य फिर नरकमें नहीं जाता* ।

जब कि एक ही वस्तु सुख और दुःख तथा ईर्ष्या और कोपका कारण हो जाती है तो उसमें वस्तुता (नियत-स्वभावत्व) ही कहाँ है ? क्योंकि एक ही वस्तु कभी प्रीतिकी कारण होती है तो वही दूसरे समय दुःखदायिनी हो जाती है और वही कभी क्रोधकी हेतु [illegible] वाली हो जाती है । अतः कोई भी [illegible] और न कोई सुखमय है । [illegible]

द्विज ! इस प्रकार मैंने तुमसे [illegible] पाताललोक और नरकोंका वर्णन कर दिया ।

भूर्भुवः आदि सात ऊर्ध्वलोकोंका वृत्तान्त

श्रीमैत्रेयजी बोले—मुने ! अब मैं भुवर्लोक आदि समस्त लोकोंके विषयमें सुनना चाहता हूँ । महाभाग ! उन ग्रहोंकी जैसी-जैसी स्थिति और परिमाण हैं, उन सबको आप मुझ जिज्ञासुसे यथावत् वर्णन कीजिये ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—जितनी दूरतक सूर्य और चन्द्रमाकी किरणोंका प्रकाश जाता है, समुद्र, नदी और पर्वतादिसे युक्त उतना प्रदेश पृथिवी कहलाता है । द्विज ! जितना पृथिवीका विस्तार और परिमण्डल (घेरा) है, उतना ही विस्तार और परिमण्डल भुवर्लोकका भी है । मैत्रेय ! पृथिवीसे एक लाख योजन दूर सूर्यमण्डल है और सूर्यमण्डलसे भी एक लक्ष योजनके अन्तरपर चन्द्रमण्डल है । चन्द्रमासे पूरे सौ हजार (एक लाख) योजन ऊपर सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डल प्रकाशित हो रहा है ।

ब्रह्मन् ! नक्षत्रमण्डलसे दो लाख योजन ऊपर बुध और बुधसे भी दो लक्ष योजन ऊपर शुक्र स्थित हैं । शुक्रसे इतनी ही दूरीपर मङ्गल हैं और मङ्गलसे भी दो लाख योजन ऊपर बृहस्पतिजी हैं । द्विजोत्तम ! बृहस्पतिजीसे दो लाख योजन ऊपर शनि हैं और शनिसे एक लक्ष योजनके अन्तरपर सप्तर्षिमण्डल है तथा सप्तर्षियोंसे भी सौ हजार योजन ऊपर समस्त ज्योतिश्चक्रका नाभिरूप ध्रुवमण्डल स्थित है । महामुने ! मैंने तुमसे यह त्रिलोकीकी उच्चताके विषयमें [illegible] त्रिलोकी यज्ञफलकी भोग-भूमि है और [illegible] इस भारतवर्षमें ही है ।

ध्रुवसे एक करोड़ योजन ऊपर महर्लोक है [illegible] कल्पान्तपर्यन्त रहनेवाले भृगु आदि सिद्धगण रहते हैं । मैत्रेय ! उससे भी दो करोड़ योजन ऊपर [illegible] ब्रह्माजीके प्रख्यात पुत्र निर्मलचित्त [illegible] जनलोकसे चौगुना अर्थात् आठ करोड़ योजन ऊपर [illegible] है; वहाँ वैराज नामक देवगणोंका निवास है [illegible] छःगुना अर्थात् बारह करोड़ योजनके [illegible] सुशोभित है, जो ब्रह्मलोक भी कहलाता है [illegible] न मरनेवाले अमरगण निवास करते हैं ।

जो भी पार्थिव वस्तु चरणसञ्चार [illegible] ही है । उसका विस्तार मैं कह चुका [illegible] और सूर्यके मध्यमें जो सिद्धगण और [illegible] वही दूसरा भुवर्लोक है । सूर्य और ध्रुवके बीचमें [illegible] लक्ष योजनका अन्तर है, उसे [illegible] करनेवालोंने स्वर्लोक कहा है । [illegible] 'कृतक' त्रैलोक्य कहलाते हैं और [illegible]—तीनों 'अकृतक' लोक हैं । [illegible]

* प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपःकर्मात्मकानि वै । यानि तेषामशेषाणां [illegible]
कृते पापेऽनुतापो वै यस्य पुंसः प्रजायते । प्रायश्चित्तं तु तस्यैकं हरि[illegible]
प्रातर्निशि तथा संध्यामध्याह्नादिषु संस्मरन् । नारायणमवाप्नोति [illegible]
विष्णुसंस्मरणात् क्षीणसमस्तक्लेशसंचय । मुक्तिं प्रयाति स्वर्गाप्तिस्तस्य [illegible]
वासुदेवे मनो यस्य जपहोमार्चनादिषु । तस्यान्तरायो मैत्रेय देवेन्द्रत्वादिकं [illegible]
क्व नाकपृष्ठगमनं पुनरावृत्तिलक्षणम् । क्व जपो वासुदेवेति मुक्तिबीजम्[illegible]
तस्मादहर्निशं विष्णुं संस्मरन् पुरुषो मुने । न याति नरकं [illegible]

[illegible]

त्रिलोकीके मध्यमें महर्लोक कहा जाता है, जो कल्पान्तमें केवल जनशून्य हो जाता है, अत्यन्त नष्ट नहीं होता, इसलिये यह 'कृतकाकृतक' कहलाता है।

मैत्रेय! इस प्रकार मैंने तुमसे ये सात लोक और सात ही पाताल कहे। इस ब्रह्माण्डका बस इतना ही विस्तार है। यह ब्रह्माण्ड कपित्थ (कैथे) के बीजके समान ऊपर नीचे सब ओर अण्डकटाहसे घिरा हुआ है। मैत्रेय! यह अण्ड अपनेसे दसगुने जलसे आवृत है और वह जलका सम्पूर्ण आवरण अग्निसे घिरा हुआ है। अग्नि वायुसे और वायु आकाशसे परिवेष्टित है तथा आकाश भूतोंके कारण अहंकारसे और अहंकार महत्तत्त्वसे घिरा हुआ है। मैत्रेय! ये सातों उत्तरोत्तर एक-दूसरेसे दसगुने हैं। महत्तत्त्वको भी प्रधानने आवृत कर रखा है। वह अनन्त है, उसका कभी अन्त (नाश) नहीं होता है; क्योंकि मुने! वह अनन्त, अपरिमेय और सम्पूर्ण जगत्‌का कारण है और वही अपरा प्रकृति है। उसमें ऐसे-ऐसे हजारों, लाखों तथा सैकड़ों करोड़ ब्रह्माण्ड हैं। जिस प्रकार काष्ठमें अग्नि और तिलमें तैल रहता है, उसी प्रकार प्रधानमें स्वप्रकाश चेतनात्मा व्यापक है। महाबुद्धे! ये प्रधान और पुरुष भी समस्त भूतोंकी स्वरूपभूता विष्णु-शक्तिसे आवृत हैं। महामते! वह विष्णु-शक्ति ही प्रलयके समय उनके पार्थक्य और स्थितिके समय उनके सम्मिलनकी हेतु है तथा सर्गारम्भके समय वही उनके क्षोभकी कारण है।

मुने! जिस प्रकार आदि बीजसे ही मूल, स्कन्ध और शाखा आदिके सहित वृक्ष उत्पन्न होता है और तदनन्तर उससे और भी बीज उत्पन्न होते हैं तथा उन बीजोंसे अन्यान्य वृक्ष उत्पन्न होते हैं और वे भी उन्हीं लक्षण, द्रव्य और कारणोंसे युक्त होते हैं; उसी प्रकार पहले अव्याकृत (प्रधान) से महत्तत्त्वसे लेकर पञ्चभूतपर्यन्त सम्पूर्ण विकार उत्पन्न होते हैं तथा उनसे देव, असुर आदिका जन्म होता है और फिर उनके पुत्र तथा उन पुत्रोंके अन्य पुत्र होते हैं। अपने बीजसे अन्य वृक्षके उत्पन्न होनेसे जिस प्रकार पूर्ववृक्षकी कोई क्षति नहीं होती, उसी प्रकार अन्य प्राणियोंके उत्पन्न होनेसे उनके जन्मदाता प्राणियोंका ह्रास नहीं होता।

जिस प्रकार आकाश और काल आदि संनिधिमात्रसे ही वृक्षके कारण होते हैं, उसी प्रकार भगवान् श्रीहरि भी बिना परिणामके ही विश्वके कारण हैं। मुनिसत्तम! जिस प्रकार धानके बीजमें मूल, नाल, पत्ते, अङ्कुर, तना, कोष, पुष्प, क्षीर, तण्डुल, तुष और कण सभी रहते हैं तथा अङ्कुरोत्पत्तिकी हेतुभूत भूमि एवं जल आदि सामग्रीके प्राप्त होनेपर वे प्रकट हो जाते हैं, उसी प्रकार अपने अनेक पूर्वकर्मोंमें स्थित देवता आदि विष्णु-शक्तिका आश्रय पानेपर आविर्भूत हो जाते हैं। जिससे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है, जो स्वयं जगत्‌रूपसे स्थित है। जिसमें यह स्थित है तथा जिसमें यह लीन हो जायगा, वह परब्रह्म ही विष्णुभगवान् हैं। वह ब्रह्म है, वही [श्रीविष्णुका] परम धाम (परस्वरूप) है, वह पद सत् और असत् दोनोंसे विलक्षण है तथा उससे अभिन्न हुआ ही यह सम्पूर्ण चराचर जगत् उससे उत्पन्न हुआ है। वही अव्यक्त मूलप्रकृति है, वही व्यक्तस्वरूप संसार है, उसीमें यह सम्पूर्ण जगत् लीन होता है तथा उसीके आश्रय स्थित है। यज्ञादि क्रियाओंका कर्ता वही है, यज्ञरूपसे उसीका यजन किया जाता है और उन यज्ञादिका फलस्वरूप भी वही है तथा यज्ञके साधनरूप जो स्रुवा आदि हैं, वे सब भी हरिसे अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं।

सूर्यद्वारा होनेवाले कालचक्र और गङ्गाविर्भावका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—सुव्रत! मैंने तुमसे यह ब्रह्माण्डकी स्थिति कही, अब सूर्य आदि ग्रहोंकी स्थिति और उनके परिमाण सुनो।

भगवान् सूर्यदेव दिन और रात्रिकी व्यवस्थाके कारण हैं। मैत्रेय! सभी द्वीपोंमें सर्वदा मध्याह्न तथा मध्य रात्रिके समय सूर्यदेव मध्य आकाशमें सामनेकी ओर रहते हैं*। इसी प्रकार उदय और अस्त भी सदा एक दूसरेके सम्मुख ही होते हैं। ब्रह्मन्! समस्त दिशा और विदिशाओंमें जहाँके लोग रात्रिका अन्त होनेपर सूर्यको जिस स्थानपर देखते हैं, उनके लिये वहाँ उसका उदय होता है और जहाँ दिनके अन्तमें सूर्यका तिरोभाव होता है, वहीं उसका अस्त कहा जाता है। सर्वदा एक

* अर्थात् जिस द्वीपका जहाँ सूर्यदेव मध्याह्नके समय सम्मुख पड़ते हैं, उसकी समान रेखापर दूसरी ओर स्थित द्वीपान्तरमें वे उसी प्रकार मध्यरात्रिके समय रहते हैं।

रूपसे स्थित सूर्यदेवका वास्तवमें न उदय होता है और न अस्त। बस, उनका दीखना और न दीखना ही उनके उदय और अस्त कहलाते हैं। मध्याह्नकालमें इन्द्रादिमेंसे किसीकी पुरीपर प्रकाशित होते हुए सूर्यदेव पार्श्ववर्ती दो पुरियोंके सहित तीन पुरियों और दो कोणों (विदिशाओं) को प्रकाशित करते हैं, इसी प्रकार अग्नि आदि कोणोंमेसे किसी एक कोणमे प्रकाशित होते हुए वे पार्श्ववर्ती दो कोणोंके सहित तीन कोण और दो पुरियोंको प्रकाशित करते हैं। सूर्यदेव उदय होनेके अनन्तर मध्याह्नपर्यन्त अपनी बढ़ती हुई किरणोंसे तपते हैं और फिर क्षीण होती हुई किरणोंसे अस्त हो जाते हैं*।

सूर्यके उदय तथा अस्तसे ही पूर्व तथा पश्चिम दिशाओंकी व्यवस्था हुई है। वास्तवमें तो वे जिस प्रकार पूर्वमें प्रकाश करते हैं, उसी प्रकार पश्चिम तथा पार्श्ववर्तिनी उत्तर और दक्षिण दिशाओंमें भी करते है। सूर्यदेव देवपर्वत सुमेरुके ऊपर स्थित ब्रह्माजीकी सभाके अतिरिक्त और सभी स्थानोको प्रकाशित करते हैं। उनकी जो किरणें ब्रह्माजीकी सभामें जाती हैं, वे उसके तेजसे निरस्त होकर उलटी लौट आती हैं।

इस प्रकार जब सूर्य पुष्करद्वीपके मध्यमें पहुँचकर पृथ्वीका तीसवाँ भाग पार कर लेता है तो उसकी वह गति एक मुहूर्तकी होती है। अर्थात् उतने भागके अतिक्रमण करनेमें उसे जितना समय लगता है, वही मुहूर्त कहलाता है। द्विज! कुलाल-चक्र (कुम्हारके चाक) के सिरेपर घूमते हुए जीवके समान भ्रमण करता हुआ यह सूर्य पृथिवीके तीसों भागोंका अतिक्रमण करनेपर एक दिन-रात्रि पूर्ण करता है। द्विज! उत्तरायणके आरम्भमें सूर्य सबसे पहले मकरराशिमें जाता है। उसके पश्चात् वह कुम्भ और मीन राशियोंमें एक राशिसे दूसरी राशिमें जाता है। इन तीनों राशियोंको भोग चुकनेपर सूर्य रात्रि और दिनको समान करता हुआ वैषुवती गतिका अवलम्बन करता है, अर्थात् वह भूमध्य-रेखाके बीचमे ही चलता है। उसके अनन्तर नित्यप्रति रात्रि क्षीण होने लगती है और दिन बढ़ने लगता है। फिर मेष तथा वृष राशिका अतिक्रमण कर मिथुन राशिसे निकलकर उत्तरायणकी अन्तिम सीमापर उपस्थित हो वह कर्कराशिमें पहुँचकर दक्षिणायनका आरम्भ करता है।

इस प्रकार उत्तर तथा दक्षिण सीमाओंके मध्यमे मण्डलाकार घूमते रहनेसे सूर्यकी गति दिन अथवा रात्रिके समय मन्द अथवा शीघ्र हो जाती है। [illegible] समय मन्द होती है [illegible] जिस समय रात्रिकालमें शीघ्र होती है [illegible] हो जाती है। द्विज! [illegible] करना पड़ता है; एक दिन रात्रिमें [illegible] कर लेता है। [illegible] और छःको दिनके समय। [illegible] परिमाणानुसार ही होता है [illegible] राशियोंके परिमाणसे ही होती है। [illegible] दिन अथवा रात्रिकी लघुता अथवा दीर्घता [illegible]।

पद्रह निमेष मिलकर एक काष्ठा [illegible] एक कला गिनी जाती है। तीन [illegible] और तीस मुहूर्तोंके सम्पूर्ण रात्रि-दिन होते हैं। [illegible] अथवा वृद्धि क्रमशः प्रातःकाल, मध्याह्नकाल आदि [illegible] ह्रास-वृद्धिके कारण होता है; किंतु दिनोंके घटते [illegible] संध्या सर्वदा समान भावसे एक मुहूर्तकी ही होती है। [illegible] से लेकर सूर्यकी तीन मुहूर्तकी गतिके [illegible] कहते हैं, वह सम्पूर्ण दिनका पाँचवाँ भाग होता है। [illegible] प्रातःकालके अनन्तर तीन मुहूर्तका समय [illegible] तथा सङ्गवकालके पश्चात् तीन मुहूर्तका [illegible] मध्याह्नकालसे पीछेका समय 'अपराह्न' [illegible] काल-भागको भी बुधजन तीन मुहूर्तका ही मानते हैं। [illegible] के बीतनेपर 'सायाह्न' आता है। [illegible] पंद्रह मुहूर्त और प्रत्येक दिनभागमें तीन [illegible]।

वैषुवत दिवस पद्रह मुहूर्तका होता है [illegible] और दक्षिणायनमें क्रमशः उसकी वृद्धि और ह्रास [illegible] है। इस प्रकार उत्तरायणमें दिन [illegible] है और दक्षिणायनमें रात्रि [illegible] शरद् और वसन्तऋतुके मध्यमें [illegible] मे जानेपर 'विषुव' होता है। [illegible] समान होते है। [illegible] कहा जाता है और [illegible] पड़ता है।

ब्रह्मन्! मैंने जो तीस मुहूर्तका [illegible] ऐसे पंद्रह रात्रि-दिनका एक [illegible] का एक 'मास' होता है। [illegible] ऋतुका एक 'अयन' होता है [illegible] वर्ष कहा जाता है। [illegible]

---

* किरणोंकी वृद्धि, ह्रास एवं तीव्रता-मन्दता आदि सूर्यके समीप और दूर होनेसे मनुष्यके अनुभवके अनुसार कही गयी हैं।

भाग अर्थात् मेषराशिके अन्तमें तथा चन्द्रमा निश्चय ही विशाखा-के चतुर्थांश अर्थात् वृश्चिकके आरम्भमें हों; अथवा जिस समय सूर्य विशाखाके तृतीय भाग अर्थात् तुलाके अन्तिमांश-का भोग करते हों और चन्द्रमा कृत्तिकाके प्रथम भाग अर्थात् मेषान्तमें स्थित जान पड़ें तभी यह 'विषुव'नामक अति पवित्र काल कहा जाता है। इस समय देवता, ब्राह्मण और पितृगण-के उद्देश्यसे संयतचित्त होकर दानादि देने चाहिये। यह समय दानग्रहणके लिये मानो देवताओंके खुले हुए मुख-के समान है, अतः 'विषुव' कालमें दान करनेवाला मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। यागादिके काल-निर्णयके लिये दिन, रात्रि, पक्ष, कला, काष्ठा और क्षण आदिका विषय भलीभाँति जानना चाहिये। राका और अनुमति दो प्रकारकी पूर्णमासी* तथा सिनीवाली और कुहू दो प्रकारकी अमावास्या† होती हैं। माघ-फाल्गुन, चैत्र-वैशाख तथा ज्येष्ठ-आषाढ़—ये छः मास उत्तरायण होते हैं और श्रावण-भाद्र, आश्विन-कार्तिक तथा अगहन-पौष—ये छः दक्षिणायन कहलाते हैं।

मैंने पहले तुमसे जिस लोकालोकपर्वतका वर्णन किया है, उसीपर चार व्रतशील लोकपाल निवास करते हैं। द्विज! सुधामा, कर्दमके पुत्र शङ्खपाद और हिरण्यरोमा तथा केतुमान्—ये चारों निर्द्वन्द्व, निरभिमान, निरालस्य और निष्परिग्रह लोकपालगण लोकालोकपर्वतकी चारों दिशाओंमें स्थित हैं।

मैत्रेय! जितने प्रदेशमें ध्रुव स्थित है, पृथिवीसे लेकर उस प्रदेशपर्यन्त सम्पूर्ण देश प्रलयकालमें नष्ट हो जाता है। सप्तर्षियोंसे उत्तर दिशामें ऊपरकी ओर जहाँ ध्रुव स्थित है, वह अति तेजोमय स्थान ही आकाशमें विष्णु-भगवान्का तीसरा दिव्यधाम है। विप्र! पुण्य-पापके क्षीण हो जानेपर दोष-पङ्कशून्य संयतात्मा मुनिजनोंका यही परम स्थान है। पाप-पुण्यके निवृत्त हो जाने तथा देह-प्राप्तिके सम्पूर्ण कारणोंके नष्ट हो जानेपर प्राणिगण जिस स्थानपर जाकर फिर शोक नहीं करते, वही भगवान् विष्णुका परम पद है। जहाँ भगवान्के समान ऐश्वर्यसे प्राप्त हुए योगद्वारा सतेज होकर धर्म और ध्रुव आदि लोकसाक्षिगण निवास करते हैं, वही भगवान् विष्णुका परम पद है। मैत्रेय! जिसमें यह भूत, भविष्यत् और वर्तमान चराचर जगत् ओतप्रोत हो रहा है, वही भगवान् विष्णुका परम पद है। जो तल्लीन योगिजनोंको आकाशमण्डलमें देदीप्यमान सूर्यके समान, सबके प्रकाशकरूपसे प्रतीत होता है तथा जिसका विवेक-ज्ञानसे ही प्रत्यक्ष होता है, वही भगवान् विष्णुका परम पद है। द्विज! उस विष्णुपदमें ही सबके आधारभूत परम तेजस्वी ध्रुव स्थित हैं तथा ध्रुवजीमें समस्त नक्षत्र, नक्षत्रोंमें मेघ और मेघोंमें वृष्टि आश्रित है। महामुने! उस वृष्टिसे ही समस्त सृष्टिका पोषण और सम्पूर्ण देव-मनुष्यादि प्राणियोंकी पुष्टि होती है। तदनन्तर गौ आदि प्राणियोंसे उत्पन्न दुग्ध और घृत आदिकी आहुतियोंसे परिपुष्ट अग्निदेव ही प्राणियोंकी स्थितिके लिये पुनः वृष्टिके कारण होते हैं। इस प्रकार विष्णुभगवान्का यह निर्मल तृतीय लोक (ध्रुव) ही त्रिलोकीका आधारभूत और वृष्टिका आदि कारण है।

ब्रह्मन्! विष्णुभगवान्के वाम चरण-कमलके अँगूठेके नखरूप स्रोतसे निकली हुई श्रीगङ्गाजीको ध्रुव दिन-रात अपने मस्तकपर धारण करता है। तदनन्तर जिनके जलमें खड़े होकर प्राणायामपरायण सप्तर्षिगण उनकी तरङ्गभङ्गीसे जटा-कलापके कम्पायमान होते हुए, अघमर्षण मन्त्रका जप करते हैं तथा जिनके विस्तृत जलसमूहसे आप्लावित होकर चन्द्र-मण्डल क्षयके अनन्तर पुनः पहलेसे भी अधिक कान्ति धारण करता है, वे श्रीगङ्गाजी चन्द्रमण्डलसे निकलकर मेरुपर्वतके ऊपर गिरती हैं और संसारको पवित्र करनेके लिये चारों दिशाओंमें जाती हैं। चारों दिशाओंमें जानेसे वे एक ही सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा—इन चार भेदोंवाली हो जाती हैं। जिसके अलकनन्दा नामक दक्षिणीय भेदको भगवान् शङ्करने अत्यन्त प्रीतिपूर्वक सौ वर्षसे भी अधिक अपने मस्तकपर धारण किया था। जिसने श्रीशङ्करके जटाकलापसे निकलकर पापी सगरपुत्रोंके अस्थिचूर्णको आप्लावित कर उन्हें स्वर्गमें पहुँचा दिया। मैत्रेय! जिसके जलमें स्नान करनेसे शीघ्र ही पापका नाश हो जाता है और अपूर्व पुण्यकी प्राप्ति होती है, जिसके प्रवाहमें पुत्रोंद्वारा पितरोंके लिये श्रद्धापूर्वक किया हुआ एक दिनका भी तर्पण उन्हें सौ वर्षतक दुर्लभ तृप्ति देता है। जिसके जलमें स्नान करनेसे निष्पाप हुए यतिजनोंने भगवान् केशवमें चित्त लगाकर अत्युत्तम निर्वाणपद प्राप्त किया है। जो अपना श्रवण, इच्छा, दर्शन, स्पर्श,

* जिस पूर्णिमामें पूर्ण चन्द्र विराजमान होता है वह 'राका' कहलाती है तथा जिसमें एक कला हीन होती है, वह 'अनुमति' कहलाती है।

† जिसमें चन्द्रमाकी एक कलाका दर्शन हो, उस चतुर्दशीयुक्त अमावास्याका नाम 'सिनीवाली' है और जिसमें सर्वथा चन्द्रदर्शन न हो, उस अमावास्याका नाम 'कुहू' है।

जलपान, स्नान तथा यशोगान करनेसे ही नित्यप्रति प्राणियोंको पवित्र करती रहती है। जिसका 'गङ्गा, गङ्गा' ऐसा नाम सौ योजनकी दूरीसे भी उच्चारण किये जानेपर जीवके तीन जन्मोंके संचित पापोंको [illegible] त्रिलोकीको पवित्र करनेमें समर्थ [illegible] है, वही भगवान्‌का तीसरा परम पद है।

शिशुमारचक्र और सूर्यके द्वारा होनेवाली वृष्टिका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—आकाशमें भगवान् विष्णुका जो तारामय स्वरूप शिशुमारचक्र देखा जाता है, उसके पुच्छ-भागमें ध्रुव अवस्थित है। यह ध्रुव स्वयं घूमता हुआ चन्द्रमा और सूर्य आदि ग्रहोंको घुमाता है। उस भ्रमणशील ध्रुवके साथ नक्षत्रगण भी चक्रके समान घूमते रहते हैं। सूर्य, चन्द्रमा, तारे, नक्षत्र और अन्यान्य समस्त ग्रह वायु-मण्डलमयी डोरीसे ध्रुवके साथ बँधे हुए हैं।

मैंने तुमसे आकाशमें ग्रहोंके जिस शिशुमारस्वरूपका वर्णन किया है, अनन्त तेजके आश्रय स्वयं भगवान् नारायण ही उसके हृदयस्थित आधार हैं। उत्तानपादके पुत्र ध्रुवने उन जगत्पतिकी आराधना करके तारामय शिशुमारके पुच्छस्थानमें स्थिति प्राप्त की है। शिशुमारके आधार सर्वेश्वर श्रीनारायण हैं, शिशुमार ध्रुवका आश्रय है और ध्रुवमें सूर्यदेव स्थित हैं तथा विप्र! जिस प्रकार देव, असुर और मनुष्यादिके सहित यह सम्पूर्ण जगत् सूर्यके आश्रित है, वह तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो।

सूर्य आठ मासतक अपनी किरणोंद्वारा रसस्वरूप जलको ग्रहण करके उसे चार महीनोंमें बरसा देता है। उससे अन्नकी उत्पत्ति होती है और अन्नसे ही सम्पूर्ण जगत् पोषित होता है। सूर्य अपनी तीक्ष्ण रश्मियोंसे संसारका जल खींचकर उससे चन्द्रमाका पोषण करता है और चन्द्रमा आकाशमें वायुमयी नाड़ियोंके मार्गसे उसे धूम, अग्नि और वायुमय मेघोंमें पहुँचा देता है। यह चन्द्रमाद्वारा प्राप्त जल मेघोंसे तुरंत ही भ्रष्ट नहीं होता, इसलिये वे 'अभ्र' कहलाते हैं। मैत्रेय! कालजनित संस्कारके प्राप्त होनेपर यह अभ्रस्थ जल निर्मल होकर वायुकी प्रेरणासे पृथिवीपर बरसने लगता है।

मुने! कभी-कभी सूर्य आकाशगङ्गाके जलको ग्रहण करके उसे बिना मेघादिके अपनी किरणोंसे [illegible] बरसा देते हैं। द्विजोत्तम! उसके स्पर्शमात्रसे [illegible] जानेसे मनुष्य नरकमें नहीं जाता। [illegible] कहलाता है। सूर्यके दिखलायी देते हुए [illegible] जल बरसता है, वह सूर्यकी किरणोंद्वारा [illegible] आकाशगङ्गाका ही जल होता है। [illegible] (अयुग्म) नक्षत्रोंमें जो जल सूर्यके [illegible] बरसता है, उसे दिग्गजोंद्वारा बरसाया हुआ [illegible] समझना चाहिये। रोहिणी और आर्द्रा आदि [illegible] नक्षत्रोंमें जिस जलको सूर्य बरसाता है [illegible] आकाशगङ्गासे ग्रहण करके ही बरसाया जाता है। [illegible]! आकाशगङ्गाके ये सम तथा विषम नक्षत्रोंमें [illegible] प्रकारके जलमय दिव्य स्नान अत्यन्त पवित्र और मनुष्योंके पापभयको दूर करनेवाले हैं।

द्विज! जो जल मेघोंद्वारा बरसाया जाता है [illegible] जीवनके लिये अमृतरूप होता है और [illegible] करता है। विप्र! उस वृष्टिसे [illegible] समस्त ओषधियाँ और फल पकनेपर [illegible] यव आदि अन्न प्रजावर्गके शरीरकी [illegible] आदिके साधक होते हैं। उनके द्वारा [illegible] नित्यप्रति यथाविधि यज्ञानुष्ठान करके [illegible] हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण [illegible] देवसमूह और प्राणिगण वृष्टिके ही आश्रित हैं। [illegible] अन्नको उत्पन्न करनेवाली वृष्टि ही [illegible] है तथा उस वृष्टिकी उत्पत्ति सूर्यसे होती है।

मुनिवरोत्तम! सूर्यका आधार ध्रुव है, ध्रुवका [illegible] है तथा शिशुमारके आधार श्रीनारायण हैं। [illegible]

---

* स्नानाद्विधूतपापाश्च [illegible] यज्जलैर्दतवत्सथा। [illegible]
क्षुताभिलषिता दृष्टा स्पृष्टा पीतावगाहिता। या पावयति भूतानि [illegible]
गङ्गा गङ्गेति यैर्नाम योजनानां शतेष्वपि। स्थितैरुच्चारितं हन्ति [illegible]
([illegible] ८।११२—११४)

हृदयमें भगवान् स्थित हैं, जो समस्त प्राणियोंके पालनकर्ता तथा आदिभूत सनातन पुरुष हैं।

द्विज ! दिन और रात्रिके कारणस्वरूप भगवान् सूर्य पितृगण, देवगण और मनुष्यादिको सदा तृप्त करते घूमते रहते हैं। सूर्यकी जो सुषुम्ना नामकी किरण है, उससे शुक्लपक्षमें चन्द्रमाका पोषण होता है और फिर कृष्णपक्षमें उस अमृतमय चन्द्रमाकी एक-एक कलाका देवगण निरन्तर पान करते हैं। द्विज ! कृष्णपक्षके क्षय होनेपर चतुर्दशीके अनन्तर दो कलायुक्त चन्द्रमाका पितृगण पान करते हैं। इस प्रकार सूर्यद्वारा पितृगणका तर्पण होता है।

सूर्य अपनी किरणोंद्वारा पृथिवीसे जितना जल खींचते हैं, उस सबको प्राणियोंकी पुष्टि और अन्नकी वृद्धिके लिये बरसा देते हैं। उससे भगवान् सूर्य समस्त प्राणियोंको आनन्दित कर देते हैं और इस प्रकार वे देव, मनुष्य और पितृगण आदि सभीका पोषण करते हैं। मैत्रेय ! इस रीतिसे सूर्यदेव देवताओंकी पाक्षिक, पितृगणकी मासिक तथा मनुष्योंकी नित्यप्रति तृप्ति करते रहते हैं।

सुरगणके पान करते रहनेसे क्षीण हुए कलामात्र चन्द्रमाका प्रकाशमय सूर्यदेव अपनी किरणसे पुनः पोषण करते हैं। जिस क्रमसे देवगण चन्द्रमाका पान करते हैं, उसी क्रमसे सूर्यदेव उन्हें शुक्ला प्रतिपदासे प्रतिदिन पुष्ट करते हैं। मैत्रेय ! इस प्रकार आधे महीनेमें एकत्रित हुए चन्द्रमाके अमृतको देवगण फिर पीने लगते हैं; क्योंकि देवताओंका आहार तो अमृत ही है। तैंतीस हजार, तैंतीस सौ, तैंतीस (३६३३३) देवगण चन्द्रस्थ अमृतका पान करते हैं। जिस समय दो कलामात्र रहा हुआ चन्द्रमा सूर्यमण्डलमें प्रवेश करता है अर्थात् सूर्यसे आच्छादित हो जाता है, उस समय वह उसकी अमा नामक किरणमें रहता है, वह तिथि अमावास्या कहलाती है। उस दिन रात्रिमें वह पहले तो जलमें प्रवेश करता है, फिर वृक्ष-लता आदिमें निवास करता है और तदनन्तर सूर्यमें चला जाता है अर्थात् सूर्यमण्डलसे आच्छादित हो जाता है। वृक्ष और लता आदिमें चन्द्रमाकी स्थितिके समय अमावास्याको जो उन्हें काटता है अथवा उनका एक पत्ता भी तोड़ता है, उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है। केवल पंद्रहवीं कलारूप यत्किञ्चित् भागके बच रहनेपर उस क्षीण हुए चन्द्रमाकी बची हुई कलाका मनोहर कालमें पितृगण पान करते हैं। अमावास्याके दिन चन्द्र-रश्मिसे निकले हुए उस सुधामृतका पान करके अत्यन्त तृप्त हुए सौम्य, बर्हिषद् और अग्निष्वात्त तीन प्रकारके पितृगण एक मासपर्यन्त संतुष्ट रहते हैं। इस प्रकार चन्द्रदेव शुक्लपक्षमें देवताओंकी और कृष्णपक्षमें पितरोंकी पुष्टि करते हैं तथा अमृतमय शीतल जलकणोंसे लता-वृक्षादिका और लता-ओषधि आदि उत्पन्न करके तथा अपनी चन्द्रिकाद्वारा आह्लादित करके वे मनुष्य, पशु एवं कीट-पतंगादि सभी प्राणियोंका पोषण करते हैं।

मैत्रेय ! समस्त ग्रह, नक्षत्र और तारामण्डल वायुमयी रज्जुसे ध्रुवके साथ बँधे हुए यथोचित प्रकारसे घूमते रहते हैं। जितने तारागण हैं, उतनी ही वायुमयी डोरियाँ हैं। उनसे बँधकर वे सब स्वयं घूमते तथा ध्रुवको घुमाते रहते हैं। जिस प्रकार तेलीलोग स्वयं घूमते हुए कोल्हूको भी घुमाते रहते हैं, उसी प्रकार समस्त ग्रहगण वायुसे बँधकर घूमते रहते हैं।

जिस शिशुमारचक्रका पहले वर्णन कर चुके हैं तथा जहाँ ध्रुव स्थित है, मुनिश्रेष्ठ ! अब तुम उसकी स्थितिका वर्णन सुनो। रात्रिके समय उनका दर्शन करनेसे मनुष्य दिनमें जो कुछ पापकर्म करता है, उनसे मुक्त हो जाता है। उत्तानपाद उसकी ऊपरकी हनु (ठोड़ी) है और यज्ञ नीचेकी तथा धर्मने उसके मस्तकपर अधिकार कर रक्खा है, उसके हृदय-देशमें नारायण हैं, पूर्वके दोनों चरणोंमें अश्विनीकुमार है तथा जङ्घाओंमें वरुण और अर्यमा हैं। संवत्सर उसका शिश्न है, मित्रने उसके अपान-देशको आश्रित कर रक्खा है तथा अग्नि, महेन्द्र, कश्यप और ध्रुव पुच्छभागमें स्थित हैं। शिशुमारके पुच्छभागमें स्थित ये अग्नि आदि चार तारे कभी अस्त नहीं होते। इस प्रकार मैंने तुमसे पृथिवी, द्वीप, समुद्र, पर्वत, वर्ष और नदियोंका तथा जो-जो उनमें बसते हैं, उन सभीके स्वरूपका वर्णन कर दिया। अब इसे संक्षेपसे फिर सुनो।

विप्र ! भगवान् विष्णुका जो मूर्तरूप जल है, उससे पर्वत और समुद्रादिके सहित कमलके समान आकारवाली पृथिवी उत्पन्न हुई। विप्रवर्य ! तारागण, त्रिभुवन, वन, पर्वत, दिशाएँ, नदियाँ और समुद्र सभी भगवान् विष्णु ही हैं तथा और भी जो कुछ है, अथवा नहीं है, वह सब भी एकमात्र वे ही हैं*। क्योंकि भगवान् विष्णु ज्ञानस्वरूप हैं; इसलिये

* ज्योतींषि विष्णुर्भुवनानि विष्णुर्वनानि विष्णुर्गिरयो दिशश्च।
नद्यः समुद्राश्च स एव सर्वं यदस्ति यन्नास्ति च विप्रवर्य ॥
(वि० पु० २ । १२ । ३८)

वे सर्वमय हैं, अतः इन पर्वत, समुद्र और पृथिवी आदि भेदोंको तुम एकमात्र विज्ञानका ही विलास जानो। जिस समय जीव आत्मज्ञानके द्वारा दोषरहित होकर सम्पूर्ण कर्मोंका क्षय हो जानेसे अपने शुद्ध परमात्मस्वरूपमें स्थित हो जाता है, उस समय संसारके किसी भी पदार्थकी प्रतीति नहीं होती।

आदि, मध्य और अन्तसे रहित नित्य चेतनरूप ही तो सर्वत्र है। जो वस्तु पुनः-पुनः बदलती रहती है, पूर्ववत् नहीं रहती, उसमें वास्तविकता क्या है? जैसे मृत्तिका ही घटरूप हो जाती है और फिर वही घटसे कपाल, कपालसे चूर्णरज और रजसे अणुरूप हो जाती है। वैसे ही द्विज! विज्ञानसे अतिरिक्त कभी कहीं कोई पदार्थादि नहीं है। अपने-अपने कर्मोंके भेदसे भिन्न-भिन्न चित्तोंद्वारा एक ही विज्ञान नाना प्रकारसे मान [illegible] है। [illegible] विज्ञान अति विशुद्ध, निर्मल, नि[illegible] और [illegible] दोषोंसे रहित है। वही एक [illegible] है, जिससे पृथक् और कोई पदार्थ नहीं है।

इस प्रकार मैंने तुमसे यह [illegible] केवल एक ज्ञान ही सत्य है [illegible] है। इसके अतिरिक्त जो केवल [illegible] विषयमें भी मैं तुमसे कह चुका। [illegible] गत लोकोंका वर्णन किया है [illegible] है, ऐसा जानकर इससे विरक्त हो [illegible] चाहिये जिससे ध्रुव, अचल [illegible] वासुदेवमें लीन हो जाय।

भरत-चरित्र

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवन्! मैंने पृथिवी, समुद्र, नदियों और ग्रहोंकी स्थिति आदिके विषयमें जो कुछ पूछा था सो सब आपने वर्णन कर दिया। उसके साथ ही आपने यह भी बतला दिया कि किस प्रकार यह समस्त त्रिलोकी भगवान् विष्णुके ही आश्रित है और कैसे परमार्थस्वरूप ज्ञान ही सबमें प्रधान है, किंतु भगवन्! आपने पहले जिसकी चर्चा की थी, वह राजा भरतका चरित्र मैं सुनना चाहता हूँ, कृपा करके कहिये। कहते हैं, वे राजा भरत निरन्तर योगयुक्त होकर भगवान् वासुदेवमें चित्त लगाये शालग्राम-क्षेत्रमें रहा करते थे। इस प्रकार पुण्यदेशके प्रभाव और हरि-चिन्तनसे भी उनकी मुक्ति क्यों नहीं हुई, जिससे उन्हें फिर ब्राह्मणका जन्म लेना पड़ा। मुनिश्रेष्ठ! ब्राह्मण होकर भी उन महात्मा भरतजीने फिर जो कुछ किया, वह सब आप कृपा करके मुझसे कहिये।

श्रीपराशरजीने कहा—मैत्रेय! वे महाभाग पृथिवीपति भरतजी भगवान्‌में चित्त लगाये चिरकालतक शालग्राम-क्षेत्रमें रहे। गुणवानोंमें श्रेष्ठ वे भरतजी अहिंसा आदि सम्पूर्ण गुणों और मनके संयममें चरम सीमाको पहुँच गये थे। 'यज्ञेश! अच्युत! गोविन्द! माधव! अनन्त! केशव! कृष्ण! विष्णो! हृषीकेश! वासुदेव! आपको नमस्कार है*।' इस प्रकार राजा भरत निरन्तर [illegible] किया करते थे। मैत्रेय! वे स्वप्नमें भी इस नाम[illegible] और कुछ नहीं कहते थे और न कभी [illegible] और कुछ चिन्तन ही करते थे। वे [illegible] तपस्वी राजा भगवान्‌की पूजाके लिये [illegible] कुशाका ही संचय करते थे। [illegible] कर्म नहीं करते थे।

एक दिन वे स्नानके लिये [illegible] और वहाँ स्नान करनेके अनन्तर उन्होंने [illegible] कीं। ब्रह्मन्! इतनेमें [illegible] जो कुछ ही दिनोंमें बच्चा देनेवाली थी [illegible] आयी। उस समय [illegible] सब प्राणियोंको भयभीत कर [illegible] सुनायी पड़ी। इससे वह अत्यन्त भय[illegible] नदीके तटपर चढ़ गयी और [illegible] उसका गर्भ नदीमें गिर गया। नदीमें [illegible] बहते हुए उस गर्भको [illegible] लिया। मैत्रेय! गर्भ[illegible] कारण वह हरिणी भी [illegible] उस हरिणीको मरी हुई [illegible] अपने आश्रमपर ले [illegible]।

मुने! फिर राजा भरत [illegible]

---

* यज्ञेशाच्युत गोविन्द माधवानन्त केशव।
कृष्ण विष्णो हृषीकेश वासुदेव नमोऽस्तु ते॥
(वि० पु० २। १३। ९)

पोषण करने लगे और वह भी उनसे पोषित होकर दिनोंदिन बढ़ने लगा। वह बच्चा कभी तो उस आश्रमके आसपास ही घास चरता रहता और कभी वनमें दूरतक जाकर फिर सिंहके भयसे लौट आता। प्रातःकाल वह बहुत दूर भी चला जाता तो भी सायंकालको फिर आश्रममें ही लौट आता और भरतजीके आश्रमकी पर्णशालाके आँगनमें पड़ रहता।

द्विज ! इस प्रकार कभी पास और कभी दूर रहनेवाले उस मृगमें ही राजाका चित्त सर्वदा आसक्त रहने लगा, जिन्होंने सम्पूर्ण राज-पाट और अपने पुत्र तथा बन्धु-बान्धवोंको छोड़ दिया था, वे ही भरतजी उस हरिणके बच्चेपर अत्यन्त ममता करने लगे। उसे बाहर जानेके अनन्तर यदि लौटनेमें देर हो जाती तो वे मन-ही-मन सोचने लगते—'अहो ! उस बच्चेको आज भेड़िये और व्याघ्रोंने तो नहीं खा लिया ? किसी सिंहने तो उसे नहीं मार गिराया ?' देरके गये हुए उस बच्चेके निमित्त भरत मुनि इसी प्रकार चिन्ता करने लगते थे और जब वह उनके निकट आ जाता तो उसके प्रेमसे उनका मुख खिल जाता था। इस प्रकार उसीमें आसक्तचित्त रहनेसे राज्य, भोग, समृद्धि और स्वजनोंको त्याग देनेवाले भी राजा भरतकी समाधि भङ्ग हो गयी।

कालान्तरमें उस मृगबालकने अपने प्राणोंका त्याग किया। मैत्रेय ! राजा भी प्राण छोड़ते समय स्नेहवश मरे हुए उस मृगको ही देखते रहे तथा उसीमें तन्मय रहनेसे उन्होंने और कुछ भी चिन्तन नहीं किया। तदनन्तर उस समयकी सुदृढ भावनाके कारण वे जम्बूमार्ग (कालञ्जरपर्वत) के घोर वनमें अपने पूर्वजन्मकी स्मृतिसे युक्त एक मृग हुए। द्विजोत्तम ! अपने पूर्वजन्मका स्मरण रहनेके कारण वह मृग संसारसे उपरत हो गया और अपनी माताको छोड़कर फिर शालग्रामक्षेत्रमें आकर ही रहने लगा। वहाँ सूखे घास-फूस और पत्तोंसे ही अपना शरीर-पोषण करता रहा।

तदनन्तर, उस शरीरको छोड़कर उसने सदाचारसम्पन्न योगियोंके पवित्र कुलमें ब्राह्मण-जन्म ग्रहण किया। उस देहमें भी उसे अपने पूर्वजन्मका स्मरण बना रहा। मैत्रेय ! वह सर्वविज्ञानसम्पन्न और समस्त शास्त्रोंके मर्मको जाननेवाला था तथा अपने आत्माको निरन्तर प्रकृतिसे परे देखता था। महामुने ! आत्मज्ञानसम्पन्न होनेके कारण वह देवता आदि सम्पूर्ण प्राणियोंको अपनेसे अभिन्नरूपसे देखता था। उपनयन-संस्कार हो जानेपर वह गुरुके पढ़ानेपर भी वेदपाठ नहीं करता था तथा न किसी कर्मकी ओर ध्यान देता और न कोई अन्य शास्त्र ही पढ़ता था। जब कोई उससे बहुत पूछ-ताछ करता तो जडके समान कुछ असंस्कृत, असार एवं ग्रामीण वाक्योंसे मिले हुए वचन बोल देता। निरन्तर मैला-कुचैला शरीर, मलिन वस्त्र और मैले दाँतवाला रहनेके कारण वह ब्राह्मण सदा अपने नगरनिवासियोंसे अपमानित होता रहता था।

मैत्रेय ! योगप्राप्तिके लिये सबसे अधिक हानिकारक सम्मान ही है, जो योगी अन्य मनुष्योंसे अपमानित होता है वह शीघ्र ही सिद्धिलाभ कर लेता है*। अतः योगीको सन्मार्गको दूषित न करते हुए ऐसा आचरण करना चाहिये, जिससे लोग अपमान करें और संगतिसे दूर रहें। हिरण्यगर्भके इस सारयुक्त वचनको स्मरण रखते हुए वे महामति विप्रवर अपने-आपको लोगोंमें जड और उन्मत्त-सा ही प्रकट करते थे। कुल्माष (जौ आदि), धान, साग, जंगली फल अथवा कण आदि जो कुछ भी खानेको मिल जाता, उस थोड़े-सेको भी बहुत मानकर वे उसीको खा लेते और अपना कालक्षेप करते रहते।

फिर पिताके शान्त हो जानेपर उनके भाई, भतीजे और बन्धुजन उनका सड़े-गले अन्नसे पोषण करते हुए उनसे खेती-बारीका कार्य कराने लगे। वे भी बैलके समान पुष्ट शरीरवाले और कर्ममें जडवत् निश्चेष्ट होनेके कारण केवल आहारमात्रसे ही सब लोगोंके यन्त्र बन जाते थे। अर्थात् लोग उन्हें खाने-भरको देकर अपना-अपना मनचाहा काम करा लिया करते थे।

तदनन्तर एक दिन सौवीरराज कहीं जा रहे थे। उस समय उनके बेगारियोंने इनको देखकर समझा कि यह भी बेगारके ही योग्य है। राजाके सेवकोंने भी भस्ममें छिपे हुए अग्निके समान उन महात्माको न पहचानकर उनका बाहरका रंग-ढंग देखकर उन्हें बेगारके योग्य समझा। द्विज ! उन सौवीरराजने मोक्षधर्मके ज्ञाता महामुनि कपिलसे यह पूछनेके लिये कि 'इस दुःखमय संसारमें मनुष्योंका श्रेय किसमें है' शिबिकापर चढ़कर इक्षुमती नदीके किनारे उन महर्षिके आश्रमपर जानेका विचार किया था।

तब राजसेवकके कहनेसे भरतमुनि भी उसकी पालकीको दूसरे बेगार करनेवालोंके साथ लगकर ढोने लगे। इस प्रकार बेगारमें पकड़े जाकर सम्पूर्ण विज्ञानके एकमात्र पात्र वे

---

* सम्मानना परा हानिं योगर्द्धेः कुरुते यतः।
जनेनावमतो योगी योगसिद्धिं च विन्दति॥
(वि० पु० २ । १३ । ४२)

विप्रवर उस शिविकाको उठाकर चलने लगे। वे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ द्विजवर तो चार हाथ भूमि देखते हुए मन्दगतिसे चलते थे, किंतु उनके दूसरे साथी जल्दी-जल्दी चल रहे थे।

इस प्रकार शिविकाकी विषम गति देखकर राजाने कहा—'अरे शिविकावाहको! यह क्या कर रहे हो? समान चालसे चलो।' किंतु फिर भी उसकी चाल उसी प्रकार विषम देखकर राजाने फिर कहा—'अरे क्या है? इस प्रकार टेढ़े-मेढ़े क्यों चल रहे हो?' राजाके बार-बार ऐसे वचन सुनकर वे शिविकावाहक भरतजीको दिखाकर कहने लगे—'हममेंसे एक यही धीरे-धीरे चलता है।'

राजाने कहा—अरे, तूने तो अभी मेरी शिविकाको थोड़ी ही दूर वहन किया है; क्या इतनेमें ही थक गया? तू वैसे तो बहुत मोटा-ताजा दिखायी देता है, फिर क्या तुझसे इतना भी श्रम नहीं सहा जाता?

ब्राह्मण बोले—राजन्! मैं न मोटा हूँ और न मैंने आपकी शिविका ही उठा रक्खी है। मैं थका भी नहीं हूँ और न मुझे श्रम सहन करनेकी ही आवश्यकता है।

राजा बोला—अरे, तू तो प्रत्यक्ष ही मोटा दिखायी दे रहा है, इस समय भी शिविका तेरे कंधेपर रक्खी हुई है और बोझा ढोनेसे देहधारियोंको श्रम होता ही है।

ब्राह्मण बोले—राजन्! तुम्हें प्रत्यक्ष क्या दिखायी दे रहा है, मुझे पहले यही बताओ। उसके 'बलवान्' अथवा 'निर्बल' आदि विशेषणोंकी बात तो पीछे करना। 'तूने मेरी शिविकाका वहन किया है, इस समय भी वह तेरे ही कंधोंपर रक्खी हुई है।' तुम्हारा ऐसा कहना सर्वथा मिथ्या है। अच्छा मेरी बात सुनो—देखो, पृथ्वीपर तो पैर रक्खे हैं, पैरोंके ऊपर जंघाएँ हैं और जंघाओंके ऊपर दोनों ऊरु तथा ऊरुओंके ऊपर उदर है। उदरके ऊपर वक्षःस्थल, बाहु और कंधोंकी स्थिति है, तथा कंधोंके ऊपर यह शिविका रखी है। इसमें मेरे ऊपर कैसे बोझा रहा? इस शिविकामें वह शरीर रक्खा हुआ है जिसे भ्रमसे तुमने अपना स्वरूप समझ रक्खा है। वास्तवमें तो 'तुम वहाँ (शिविकामें) हो और मैं यहाँ (पृथिवीपर) हूँ'—ऐसा कहना सर्वथा मिथ्या है। राजन्! मैं, तुम और अन्य भी समस्त जीव पञ्चभूतोंसे ही वहन किये जाते हैं तथा यह भूतवर्ग भी गुणोंके प्रवाहमें पड़कर ही बहा जा रहा है। पृथिवीपते! ये सत्त्वादि गुण भी कर्मोंके वशीभूत हैं और समस्त जीवोंमें कर्म अविद्याजन्य ही हैं। आत्मा तो शुद्ध, [illegible] शान्त, [illegible] है तथा समस्त जीवोंमें [illegible] है। [illegible] क्षय कभी नहीं होते। नृप! [illegible] ([illegible]) अपचय (क्षय) ही नहीं होते [illegible] युक्तिसे कहा कि 'तू मोटा है?' [illegible]! [illegible] कारणोंसे पुरुष सर्वथा भिन्न है तो मुझे [illegible] कैसे हो सकता है? और जिस ([illegible]) [illegible] यह शिविका बनी हुई है [illegible] और उनका शरीर भी बना है [illegible] किया हुआ है।

श्रीपराशरजी कहते हैं—[illegible] शिविकाको धारण किये हुए ही मौन हो गये; [illegible] भी तुरत पृथ्वीपर उतरकर उनके [illegible]।

राजा बोले—अहो द्विजवर! [illegible] छोड़कर आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये। प्रभो! [illegible] बताइये, आप छिपे हुए वेषमें कौन हैं? [illegible] हैं? किस निमित्तसे यहाँ आपका आना हुआ? [illegible] क्या कारण है? यह सब आप मुझसे कहिये। [illegible] विषयमें सुननेकी बड़ी उत्कण्ठा हो रही है।

ब्राह्मण बोले—राजन्! सुनो, मैं अमुक हूँ—यह बात कही नहीं जा सकती और तुमने जो [illegible] कारण पूछा सो आना-जाना आदि [illegible] उपभोगके लिये ही हुआ करती है। [illegible] आदिकी प्राप्ति करानेवाला है तथा धर्माधर्म [illegible] भोगनेके लिये ही जीव देहादि धारण करता है। [illegible] जीवोंकी सम्पूर्ण अवस्थाओंके [illegible] हैं, फिर विशेषरूपसे मेरे आगमनका [illegible]?

राजा बोला—[illegible] ही [illegible] अधर्म ही कारण हैं और [illegible] एक देहसे दूसरे देहमें [illegible] है। [illegible] जो कहा कि मैं कौन हूँ—[illegible] बातको सुननेकी [illegible] है। [illegible] वही मैं हूँ—ऐसा क्यों नहीं [illegible]! [illegible] 'अहं' शब्द तो आत्मामें [illegible] होता।

ब्राह्मण बोले—राजन्! [illegible] आत्मामें कोई दोष नहीं [illegible] है [illegible]

अनात्मामें ही आत्मत्वका ज्ञान करानेवाला भ्रान्तिमूलक 'अहं' शब्द ही दोषका कारण है। नृप! 'अहं' शब्दका उच्चारण जिह्वा, दन्त, ओठ और तालुसे ही होता है, किन्तु ये सब 'अहं' नहीं हैं; क्योंकि ये तो उस शब्दके उच्चारणके हेतु या करणमात्र हैं। तो क्या जिह्वादि हेतुओंके द्वारा यह वाणी ही स्वयं अपनेको 'अहं' कहती है? नहीं। सिर तथा कर-चरणादिरूप यह शरीर भी आत्मासे पृथक् ही है। अतः राजन्! इस 'अहं' शब्दका मैं कहाँ प्रयोग करूँ? तथा नृपश्रेष्ठ! यदि मुझसे भिन्न कोई और भी सजातीय आत्मा हो तो भी 'यह मैं हूँ और यह अन्य है'—ऐसा कहा जा सकता था। किन्तु जब समस्त शरीरोंमें एक ही आत्मा विराजमान है, तब 'आप कौन हैं? मैं वह हूँ' ये सब वाक्य निष्फल ही हैं।

'तुम राजा हो, यह शिबिका है, ये सामने शिबिकावाहक हैं तथा ये सब तुम्हारी प्रजा हैं'—नृप! इनमेंसे कोई भी बात परमार्थतः सत्य नहीं है। राजन्! वृक्षसे लकड़ी हुई और उससे तुम्हारी यह शिबिका बनी; तो बताओ इसे लकड़ी कहा जाय या वृक्ष? किन्तु 'महाराज वृक्षपर बैठे हैं' ऐसा कोई नहीं कहता और न कोई तुम्हें लकड़ीपर बैठा हुआ ही बताता है! सब लोग शिबिकामें बैठा हुआ ही कहते हैं। नृपश्रेष्ठ! रचनाविशेषमें स्थित लकड़ियोंका समूह ही तो शिबिका है। यदि वह उससे कोई भिन्न वस्तु है तो काष्ठको अलग करके उसे ढूँढो। यही न्याय तुझमें और मुझमें लागू होता है अर्थात् मेरे और तुम्हारे शरीर भी पञ्चभूतसे अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं हैं। राजन्! पुरुष तो न देवता है, न मनुष्य है, न पशु है और न वृक्ष है। ये सब तो कर्मजन्य शरीरोंकी आकृतियोंके ही भेद हैं।

लोकमें राजा, राजाके सैनिक तथा और भी जो-जो वस्तुएँ हैं, राजन्! वे परमार्थतः नहीं हैं, केवल कल्पनामय ही हैं। जिस वस्तुकी परिणामादिके कारण कालान्तरमें भी दूसरी संज्ञा नहीं होती, वही परमार्थ-वस्तु है। तुम अपनेको ही देखो—समस्त प्रजाके लिये तुम राजा हो, पिताके लिये पुत्र हो, शत्रुके लिये शत्रु हो, पत्नीके पति हो और पुत्रके पिता हो, राजन्! बतलाओ, मैं तुमको क्या कहूँ? महीपते! तुम क्या यह सिर हो अथवा ग्रीवा हो या पेट अथवा पादादिमेंसे कोई हो? तथा ये सिर आदि भी क्या 'तुम्हारे' हैं? पृथ्वीनाथ! तुम इन समस्त अवयवोंसे पृथक् हो, अतः सावधान होकर विचारो कि 'मैं कौन हूँ'। महाराज! आत्मतत्त्व इस प्रकार व्यवस्थित है। उसे सबसे पृथक् करके ही बताया जा सकता है। तो फिर, मैं उसे 'अहं' शब्दसे कैसे बतला सकता हूँ?

जडभरत और सौवीरनरेशका संवाद

श्रीपराशरजी कहते हैं—उनके ये परमार्थमय वचन सुनकर राजाने विनयावनत होकर उन विप्रवरसे कहा—

परमार्थज्ञ! यह बात मेरे कानोंमें पड़ते ही मेरा मन परमार्थका जिज्ञासु होकर बड़ा विह्वल हो रहा है। द्विज! मैं तो पहले ही महाभाग कपिलमुनिसे यह पूछनेके लिये कि बताइये 'संसारमें मनुष्योंका श्रेय किसमें है' उनके पास जानेको तत्पर हुआ हूँ, किंतु बीचमें ही आपने जो वाक्य कहे हैं, उन्हें सुनकर मेरा चित्त परमार्थ-श्रवण करनेके लिये आपकी ओर झुक गया है। द्विज! ये कपिलमुनि सर्वमय भगवान् विष्णुके ही अंश हैं। इन्होंने संसारका मोह दूर करनेके लिये ही पृथिवीपर अवतार लिया है, किंतु आप जो इस प्रकार भाषण कर रहे हैं, उससे मुझे निश्चय होता है कि वे ही भगवान् कपिलदेव मेरे हितकी कामनासे यहाँ आपके रूपमें प्रकट हो गये हैं। अतः द्विज! हमारा जो परम श्रेय हो, वह आप मुझ विनीतसे कहिये। प्रभो! आप सम्पूर्ण विज्ञान-तरंगोंके मानो समुद्र ही हैं।

ब्राह्मण बोले—राजन्! तुम श्रेय पूछना चाहते हो या परमार्थ? क्योंकि भूपते! श्रेय तो सब अपारमार्थिक ही हैं। नृप! जो पुरुष देवताओंकी आराधना करके धन, सम्पत्ति, पुत्र और राज्यादिकी इच्छा करता, उसके लिये तो वे ही श्रेय हैं। जिसका फल स्वर्गलोककी प्राप्ति है, वह यज्ञात्मक कर्म भी श्रेय है; किंतु प्रधान श्रेय तो उसके फलकी इच्छा न करनेमें ही है। अतः राजन्! योगयुक्त पुरुषोंको प्रकृति आदिसे अतीत उस आत्माका ही ध्यान करना चाहिये, क्योंकि उस परमात्माका संयोगरूप श्रेय ही वास्तविक श्रेय है।

इस प्रकार श्रेय तो सैकड़ों-हजारों प्रकारके अनेकों हैं, किंतु ये सब परमार्थ नहीं हैं। अब जो परमार्थ है सो सुनो—यदि धन ही परमार्थ है तो धर्मके लिये उसका त्याग क्यों किया जाता है? तथा इच्छित भोगोंकी प्राप्तिके लिये उसका व्यय क्यों किया जाता है? अतः वह परमार्थ नहीं है। नरेश्वर! यदि पुत्रको परमार्थ कहा जाय तो वह तो

अन्य (अपने पिता) का परमार्थभूत है तथा उसका पिता भी दूसरेका पुत्र होनेके कारण उस (अपने पिता) का परमार्थ होगा । अतः इस चराचर जगत्में पिताका कार्यरूप पुत्र भी परमार्थ नहीं है; क्योंकि फिर तो सभी कारणोंके कार्य परमार्थ हो जायँगे । यदि संसारमें राज्यादिकी प्राप्तिको परमार्थ कहा जाय तो ये कभी रहते हैं और कभी नहीं रहते । अतः परमार्थ भी आगमापायी हो जायगा । इसलिये राज्यादि भी परमार्थ नहीं हो सकते । यदि ऋक्, यजुः और सामरूप वेदत्रयीसे सम्पन्न होनेवाले यज्ञकर्मको परमार्थ मानते हो तो उसके विषयमें मैं जो कहता हूँ सो सुनो—नृप ! जो वस्तु कारणरूपा मृत्तिकाका कार्य होती है, वह कारणकी अनुगामिनी होनेसे मृत्तिकारूप ही जानी जाती है । अतः जो क्रिया समिधा, घृत और कुशा आदि नाशवान् द्रव्योंसे सम्पन्न होती है, वह भी नाशवान् ही होगी; किंतु परमार्थको तो प्राज्ञ पुरुष अविनाशी बतलाते हैं और नाशवान् द्रव्योंसे निष्पन्न होनेके कारण कर्म नाशवान् ही हैं—इसमें संदेह नहीं । यदि फलाशासे रहित निष्काम कर्मको परमार्थ मानते हो तो वह तो मुक्तिरूप फलका साधन होनेसे साधन ही है, साध्य नहीं । यदि आत्माका ध्यान करनेको परमार्थ कहा जाय तो वह तो आत्माका भेद [illegible] और [illegible] अतः वह भी परमार्थ नहीं हो [illegible] ।

अतः राजन् ! नि[illegible] नहीं । अब जो परमार्थ है [illegible] आत्मा एक, व्यापक, [illegible], [illegible], निर्गुण और [illegible] है; वह जन्म-वृद्धि आदिसे [illegible] राजन् ! वह परम ज्ञानमय है । [illegible] उस सर्वव्यापकका संयोग न कभी हुआ, न [illegible] वह अपने और अन्य प्राणियोंके [illegible] भी एक ही है—इस प्रकारका जो [illegible] है; द्वैत-भावनावाले पुरुष तो [illegible] है ० । [illegible] प्रकार अभिन्न भावसे व्याप्त [illegible] के भेदसे षड्ज आदि भेद [illegible] परमात्माके देवता-मनुष्यादि [illegible] है । एकरूप आत्माके जो नाना भेद हैं [illegible] प्रवृत्तिके कारण ही हुए हैं । देवादि [illegible] हो जानेपर वह नहीं रहता; उसकी स्थिति [illegible] आवरणतक ही है ।

ऋभुका निदाघको अद्वैतज्ञानोपदेश

जडभरत बोले—राजशार्दूल ! पूर्वकालमें महर्षि ऋभुने महात्मा निदाघको उपदेश करते हुए जो कुछ कहा था, वह सुनो । भूपते ! परमेष्ठी श्रीब्रह्माजीके ऋभु नामक एक पुत्र थे, जो स्वभावसे ही परमार्थ तत्त्वको जाननेवाले थे । पूर्वकालमें महर्षि पुलस्त्यका पुत्र निदाघ उन ऋभुका शिष्य था। उसे उन्होंने अति प्रसन्न होकर सम्पूर्ण तत्त्वज्ञानका उपदेश दिया था । नरेश्वर ! ऋभुने देखा कि सम्पूर्ण शास्त्रोंका ज्ञान होते हुए भी निदाघकी अद्वैतमें निष्ठा नहीं है ।

उस समय देविका नदीके तीरपर पुलस्त्यजीका बसाया हुआ वीरनगर नामक एक अति रमणीक और समृद्धिसम्पन्न नगर था । पार्थिवोत्तम ! उस पुरमें पूर्वकालमें ऋभुका शिष्य योगवेत्ता निदाघ रहता था । महर्षि ऋभु अपने शिष्य निदाघको देखनेके लिये एक [illegible] गये । [illegible] पर अतिथियोंकी प्रतीक्षा [illegible] हुए और वह उन्हें [illegible] ले गया । [illegible] आसनपर बिठाकर आदरपूर्वक [illegible]

ऋभु बोले—[illegible] भोजन करना होगा—[illegible] मेरी रुचि नहीं है ।

निदाघने कहा—[illegible] लपसी, सत्तू तथा पूए बने हैं । [illegible] वही भोजन कीजिये ।

---

* एको व्यापी सम शुद्धो निर्गुण प्रकृते. पर. । [illegible]
परमात्मयोऽस्तद्भिर्नामजात्यादिभिर्विभुः । न [illegible]
तस्यात्मपरदेहेषु सतोऽप्येकमयं हि [illegible] । [illegible]
([illegible])

ऋभु बोले—द्विज ! ये तो सभी कुत्सित अन्न हैं, मुझे तो तुम हलवा, खीर तथा मट्ठा और खाँड़के पदार्थ आदि स्वादिष्ट भोजन कराओ ।

तब निदाघने अपनी स्त्रीसे कहा—गृहदेवि ! हमारे घरमें जो अच्छी-से-अच्छी वस्तु हो, उसीसे इनके लिये इनकी इच्छाके अनुकूल अति स्वादिष्ट भोजन बनाओ ।

ब्राह्मण (जडभरत) ने कहा—उसके ऐसा कहनेपर उसकी पत्नीने अपने पतिकी आज्ञाका आदर करते हुए उन विप्रवरके लिये अति स्वादिष्ट अन्न तैयार किया ।

राजन् ! ऋभुके यथेच्छ भोजन कर चुकनेपर निदाघने अति विनीत होकर उन महामुनिसे कहा ।

निदाघ बोले—द्विज ! कहिये भोजन करके आपका चित्त स्वस्थ हुआ न ? आप पूर्णतया तृप्त और संतुष्ट हो गये न ? विप्रवर ! कहिये आप कहाँ रहनेवाले हैं ? कहाँ जानेकी तैयारीमें हैं ? और कहाँसे पधारे हैं ?

ऋभु बोले—ब्राह्मण ! जिसको क्षुधा लगती है, उसीको अन्न भोजन करनेपर तृप्ति हुआ करती है । मुझको तो कभी क्षुधा ही नहीं लगी, फिर तृप्तिके विषयमें मुझसे तुम क्यों पूछते हो ? जठराग्निके द्वारा पार्थिव (ठोस) धातुओंके क्षीण हो जानेसे देहमें क्षुधाकी उत्पत्ति होती है और जलके क्षीण होनेसे प्यास लगती है । द्विज ! ये क्षुधा और तृषा तो देहके ही धर्म हैं, मेरे नहीं; अतः कभी क्षुधित न होनेके कारण मैं तो सर्वदा तृप्त ही हूँ । स्वस्थता और तुष्टि भी मनमें ही होते हैं, अतः ये मनके ही धर्म हैं, पुरुष (आत्मा) से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है । इसलिये द्विज ! ये जिसके धर्म हैं उसीसे इनके विषयमें पूछो और तुमने जो पूछा कि 'आप कहाँ रहनेवाले हैं ? कहाँ जा रहे हैं ? तथा कहाँसे आये हैं' सो इन तीनोंके विषयमें मेरा मत सुनो । आत्मा सर्वगत है, क्योंकि यह आकाशके समान व्यापक है; अतः 'कहाँसे आये हो, कहाँ रहते हो और कहाँ जाओगे ?' यह कथन भी कैसे बन सकता है ? मैं तो न कहीं जाता हूँ, न आता हूँ और न किसी एक देशमें रहता हूँ । तू, मैं और अन्य पुरुष भी देहादिके कारण जैसे पृथक्-पृथक् दिखायी देते हैं, वास्तवमें वैसे नहीं हैं, वस्तुतः तू तू नहीं है, अन्य अन्य नहीं है और मैं मैं नहीं हूँ ।

वास्तवमें मधुर मधुर है भी नहीं; देखो, मैंने तुमसे जो मधुर अन्नकी याचना की थी, उससे भी मैं यही देखना चाहता था कि 'तुम क्या कहते हो ?' द्विजश्रेष्ठ ! भोजन करनेवालेके लिये स्वादु और अस्वादु भी क्या है ? क्योंकि स्वादिष्ट पदार्थ ही जब समयान्तरसे अस्वादु हो जाता है तो वही उद्वेगजनक होने लगता है । इसी प्रकार कभी अरुचिकर पदार्थ रुचिकर हो जाते हैं और रुचिकर पदार्थोंसे मनुष्यको उद्वेग हो जाता है । ऐसा अन्न भला कौन-सा है जो आदि, मध्य और अन्त तीनों कालमें रुचिकर ही हो ? जिस प्रकार मिट्टीका घर मिट्टीसे लीपने-पोतनेसे स्थिर रहता है, उसी प्रकार यह पार्थिव देह पार्थिव परमाणुओंसे पुष्ट होती है । जौ, गेहूँ, मूँग, घृत, तैल, दूध, दही, गुड और फल आदि सभी पदार्थ पार्थिव परमाणु ही तो हैं । अतः ऐसा जानकर तुम्हें इस स्वादु-अस्वादुका विचार करनेवाले चित्तको समदर्शी बनाना चाहिये, क्योंकि मोक्षका एकमात्र उपाय समता ही है ।

ब्राह्मण बोले—राजन् ! उनके ऐसे परमार्थमय वचन सुनकर महाभाग निदाघने उन्हें प्रणाम करके कहा—'प्रभो ! आप प्रसन्न होइये । कृपया बतलाइये, मेरे कल्याणकी कामनासे आये हुए आप कौन हैं ? द्विज ! आपके इन वचनोंको सुनकर मेरा सम्पूर्ण मोह नष्ट हो गया है ।'

ऋभु बोले—द्विज ! मैं तेरा गुरु ऋभु हूँ; तुझको सदसद्विवेकिनी बुद्धि प्रदान करनेके लिये मैं यहाँ आया था । अब मैं जाता हूँ; जो कुछ परमार्थ है, वह मैंने तुझसे कह ही दिया है । इस परमार्थतत्त्वका विचार करते हुए तू इस सम्पूर्ण जगत्‌को एक वासुदेव परमात्माका ही स्वरूप जान, इसमें भेद-भाव बिल्कुल नहीं है * ।

ब्राह्मण बोले—तदनन्तर निदाघने 'बहुत अच्छा' कह उन्हें प्रणाम किया और फिर उससे परम भक्तिपूर्वक पूजित हो ऋभु स्वेच्छानुसार चले गये ।

ब्राह्मण बोले—नरेश्वर ! तदनन्तर सहस्र वर्ष व्यतीत होनेपर महर्षि ऋभु निदाघको ज्ञानोपदेश करनेके लिये फिर उसी नगरको गये । वहाँ पहुँचनेपर उन्होंने देखा कि वहाँका राजा बहुत-सी सेना आदिके साथ बड़ी धूम-धामसे नगरमें प्रवेश कर रहा है और वनसे कुशा तथा समिधा लेकर आया हुआ महाभाग निदाघ जनसमूहसे हटकर भूखा-प्यासा दूर खड़ा है ।

---

* एवमेकमिदं विद्धि न भेदि सकलं जगत् ।
वासुदेवाभिधेयस्य स्वरूपं परमात्मनः ॥
(वि० पु० २ । १५ । ३५)

निदाघको देखकर ऋभु उनके निकट गये और उनको अभिवादन करके बोले—'द्विज ! यहाँ एकान्तमें आप कैसे खड़े हैं ?'

निदाघ बोले—विप्रवर ! आज इस अति रमणीक नगरमें राजा जाना चाहता है, सो मार्गमें बड़ी भीड़ हो रही है; इसलिये मैं यहाँ खड़ा हूँ ।

ऋभु बोले—द्विजश्रेष्ठ ! मालूम होता है आप यहाँकी सब बातें जानते हैं; अतः कहिये, इनमें राजा कौन है ? और अन्य पुरुष कौन हैं ?

निदाघ बोले—यह जो पर्वतके समान ऊँचे मत्त गजराजपर चढ़ा हुआ है, वही राजा है, तथा दूसरे लोग परिजन हैं ।

ऋभु बोले—आपने राजा और गज, दोनों एक साथ ही दिखाये, किंतु इन दोनोंके पृथक्-पृथक् विशेष चिह्न अथवा लक्षण नहीं बतलाये । अतः महाभाग ! इन दोनोंमें क्या-क्या विशेषताएँ हैं, यह बतलाइये । मैं यह जानना चाहता हूँ कि इनमें कौन राजा है और कौन गज है ?

निदाघ बोले—इनमें जो नीचे है वह गज है और उसके ऊपर राजा है । द्विज ! इन दोनोंका वाह्य वाहक-सम्बन्ध है—इस बातको कौन नहीं जानता ?

ऋभु बोले—ठीक है, किंतु ब्रह्मन् ! मुझे इस प्रकार समझाइये, जिससे मैं यह जान सकूँ कि 'नीचे' इस शब्दका वाच्य क्या है ? और 'ऊपर' किसे कहते हैं ?

ब्राह्मण कहते हैं—ऋभुके ऐसा कहनेपर निदाघने अकस्मात् उनके ऊपर चढ़कर कहा—'सुनिये, आपने जो पूछा है, वही बतलाता हूँ । इस समय राजाकी भाँति मैं तो ऊपर हूँ और गजकी भाँति आप नीचे हैं । ब्रह्मन् ! आपको समझानेके लिये ही मैंने यह दृष्टान्त दिखलाया है ।'

ऋभु बोले—द्विजश्रेष्ठ ! यदि आप राजाके समान हैं और मैं गजके समान हूँ तो यह बताइये कि आप कौन हैं ? और मैं कौन हूँ ?

ब्राह्मण कहते हैं—[illegible] तुरत ही उनके दोनों चरण पकड़ लिये और [illegible] ही आप आचार्यचरण महर्षि ऋभु हैं । [illegible] समान अद्वैत-संस्कारयुक्त [illegible] मेरा विचार है कि आप हमारे गुरुजी ही [illegible] हुए हैं ।

ऋभु बोले—निदाघ ! [illegible] तुमने [illegible] मेरा बहुत आदर किया था; [illegible] नामक तुम्हारा गुरु ही तुमको उपदेश [illegible] महामते ! 'समस्त पदार्थोंमें अद्वैत [illegible] परमार्थका सार है' जो मैंने तुम्हें [illegible] उपदेश कर [illegible]

ब्राह्मण कहते हैं—[illegible] भगवान् ऋभु चले गये और उनके उपदेशसे [illegible] अद्वैत-चिन्तनमें तत्पर हो गया और समस्त प्राणियोंको [illegible] अभिन्न देखने लगा । धर्मज्ञ ! पृथिवीपते ! [illegible] ब्रह्मपरायण ब्राह्मणने [illegible] प्राप्त किया [illegible] तुम भी आत्मा, शत्रु और मित्रादिमें [illegible] अपनेको सर्वगत जानते हुए [illegible] रहो । [illegible] प्रकार एक ही आकाश [illegible] दिखायी देता है, उसी प्रकार [illegible] पृथक्-पृथक् दीखता है । [illegible] आत्मा ही है और वह [illegible] कुछ भी नहीं है; [illegible] अतः भेदज्ञानको छोड़ो* ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—[illegible] राजने परमार्थदृष्टिका [illegible] और वे जातिस्मर ब्राह्मण [illegible] उसी जन्ममें मुक्त हो गये । [illegible] इस सारभूत वृत्तान्तको जो [illegible] है उसकी बुद्धि निर्मल हो जाती है, [illegible] नहीं होती और वह [illegible] है ।

॥ द्वितीय अंश समाप्त ॥

* एक समस्तं यदिहास्ति किंचित्तदच्युतो नास्ति परं ततोऽन्यत् ।
सोऽहं स च त्वं स च सर्वमेतदात्मस्वरूपं त्यज भेदमोहम् ॥

([illegible])

तृतीय अंश

पहले सात मन्वन्तरोंके मनु, इन्द्र, देवता, सप्तर्षि और मनुपुत्रोंका वर्णन

श्रीमैत्रेयजी बोले—गुरुदेव! आपने पृथ्वी और समुद्र आदिकी स्थिति तथा सूर्य आदि ग्रहगणके संस्थानका मुझसे भली प्रकार विस्तारपूर्वक वर्णन किया। देवता आदि और ऋषिगणोंकी सृष्टि तथा चातुर्वर्ण्य एवं तिर्यग्योनिगत जीवोंकी उत्पत्तिका भी वर्णन किया, साथ ही ध्रुव और प्रह्लादके चरित्रोंको भी विस्तारपूर्वक सुना दिया। गुरो! अब मैं आपके मुखारविन्दसे सम्पूर्ण मन्वन्तर तथा इन्द्र और देवताओंके सहित मन्वन्तरोंके अधिपति समस्त मनुओंका वर्णन सुनना चाहता हूँ, आप वर्णन कीजिये।

श्रीपराशरजीने कहा—भूतकालमें जितने मन्वन्तर हुए हैं तथा आगे भी जो-जो होंगे, उन सबका मैं तुमसे क्रमशः वर्णन करता हूँ। प्रथम मनु स्वायम्भुव थे। उनके अनन्तर क्रमशः स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष मनु हुए, ये छः मनु पूर्वकालमें हो चुके हैं। इस समय सूर्यपुत्र वैवस्वत मनु हैं, जिनका यह सातवाँ मन्वन्तर वर्तमान है।

कल्पके आदिमें जिस स्वायम्भुवमन्वन्तरके विषयमें मैंने कहा है, उसके देवता और सप्तर्षियोंका तो मैं पहले ही यथावत् वर्णन कर चुका हूँ। अब आगे स्वारोचिषमनुके मन्वन्तराधिकारी देवता, ऋषि और मनुपुत्रोंका स्पष्टतया वर्णन करूँगा। मैत्रेय! स्वारोचिषमन्वन्तरमें पारावत और तुषितगण देवता थे, महाबली विपश्चित् देवराज इन्द्र थे, ऊर्ज्ज, स्तम्भ, प्राण, वात, ऋषभ, निरय और परीवान्—ये उस समय सप्तर्षि थे तथा चैत्र और किम्पुरुष आदि स्वारोचिषमनुके पुत्र थे। इस प्रकार तुमसे द्वितीय मन्वन्तरका वर्णन कर दिया।

ब्रह्मन्! तीसरे मन्वन्तरमें उत्तम नामक मनु और सुशान्ति नामक देवाधिपति इन्द्र थे। उस समय सुधाम, सत्य, जप, प्रतर्दन और वशवर्ती—ये पाँच बारह बारह देवताओंके गण थे तथा वसिष्ठजीके सात पुत्र सप्तर्षिगण और अज, परशु एवं दीप्त आदि उत्तममनुके पुत्र थे।

तामस मन्वन्तरमें सुपार, हरि, सत्य और सुधी—ये चार देवताओंके वर्ग थे और इनमेंसे प्रत्येक वर्गमें सत्ताईस-सत्ताईस देवता थे। सौ अश्वमेध यज्ञवाला राजा शिबि इन्द्र था तथा उस समय जो सप्तर्षि थे, उनके नाम मुझसे सुनो—ज्योतिर्धामा, पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, वनक और पीवर—ये उस मन्वन्तरके सप्तर्षि थे तथा नर, ख्याति, केतुरूप और जानुजङ्घ आदि तामसमनुके महाबली पुत्र ही उस समय राज्याधिकारी थे।

मैत्रेय! पाँचवें मन्वन्तरमें रैवत नामक मनु और विभु नामक इन्द्र हुए तथा उस समय जो देवगण थे, उनके नाम सुनो—उस मन्वन्तरमें चौदह-चौदह देवताओंके अमिताभ, भूतरय, वैकुण्ठ और सुमेधा नामक गण थे। विप्र! इस रैवतमन्वन्तरमें हिरण्यरोमा, वेदश्री, ऊर्ध्वबाहु, वेदबाहु, सुधामा, पर्जन्य और महामुनि—ये सात सप्तर्षि थे। मुनिसत्तम! उस समय रैवतमनुके महावीर्यशाली पुत्र बलबन्धु, सम्भाव्य और सत्यक आदि राजा थे।

मैत्रेय! स्वारोचिष, उत्तम, तामस तथा रैवत—ये चार मनु राजा प्रियव्रतके वंशधर कहे जाते हैं। राजर्षि प्रियव्रतने तपस्याद्वारा भगवान् विष्णुकी आराधना करके अपने वंशमें उत्पन्न हुए इन चार मन्वन्तराधिपोंको प्राप्त किया था।

छठे मन्वन्तरमें चाक्षुष नामक मनु और मनोजव नामक इन्द्र थे। उस समय जो देवगण थे, उनके नाम सुनो। उस समय आप्य, प्रसूत, भव्य, पृथुक और लेख—ये पाँच प्रकारके महानुभाव देवगण वर्तमान थे और इनमेंसे प्रत्येक गणमें आठ-आठ देवता थे। उस मन्वन्तरमें सुमेधा, विरजा, हविष्मान्, उत्तम, मधु, अतिनामा और सहिष्णु—ये सात सप्तर्षि थे तथा चाक्षुषके अति बलवान् पुत्र ऊरु, पूरु और शतद्युम्न आदि राज्याधिकारी थे।

विप्र! इस समय इस सातवें मन्वन्तरमें सूर्यके पुत्र महातेजस्वी और बुद्धिमान् श्राद्धदेवजी मनु हैं। महामुने! इस मन्वन्तरमें आदित्य, वसु और रुद्र आदि देवगण हैं तथा पुरन्दर नामक इन्द्र है। इस समय वसिष्ठ, काश्यप, अत्रि, जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र और भरद्वाज—ये सात सप्तर्षि हैं तथा वैवस्वतमनुके इक्ष्वाकु, नृग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, अरिष्ट, करूष और पृषध्र—ये अत्यन्त लोकप्रसिद्ध और धर्मात्मा नौ पुत्र हैं।

समस्त मन्वन्तरोंमें देवरूपसे स्थित भगवान् विष्णुकी

अनुपम और सत्त्वप्रधाना शक्ति ही संसारकी स्थितिमें उसकी अधिष्ठात्री होती है। सबसे पहले स्वायम्भुवमन्वन्तरमें मानसदेव यज्ञपुरुष उस विष्णुशक्तिके अंशसे ही आकूतिके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। फिर स्वारोचिषमन्वन्तरके उपस्थित होनेपर वे मानसदेव श्रीअजित ही तुषित नामक देवगणोंके साथ तुषितासे उत्पन्न हुए। फिर उत्तममन्वन्तरमें वे तुषितदेव ही देवश्रेष्ठ सत्यगणके सहित सत्यरूपसे सत्याके उदरसे प्रकट हुए; तामसमन्वन्तरके प्राप्त होनेपर वे हरि-नाम देवगणके सहित हरिरूपसे हर्याके गर्भसे उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् वे देवश्रेष्ठ हरि, रैवतमन्वन्तरमें तत्कालीन देवगणके सहित सम्भूतिके उदरसे प्रकट होकर मानस नामसे विख्यात हुए तथा चाक्षुषमन्वन्तरमें वे पुरुषोत्तम भगवान् वैकुण्ठ नामक देवगणोंके सहित विकुण्ठासे उत्पन्न होकर वैकुण्ठ कहलाये और हे द्विज! [illegible] प्राप्त होनेपर भगवान् विष्णु [illegible] वामनरूप होकर प्रकट हुए। उन [illegible] तीन डगोंसे सम्पूर्ण लोकोंको [illegible] इन्द्रको दे दी थी।

विप्र! इस प्रकार सातों मन्वन्तरोंमें [illegible] मूर्तियाँ प्रकट हुईं, जिनसे [illegible] हुई। यह सम्पूर्ण विश्व उन [illegible] अतः वे विष्णु कहलाते हैं, क्योंकि [illegible] करना है। समस्त देवता, मनु, सप्तर्षि तथा [illegible] देवताओंका अधिपति है वह इन्द्र—ये [illegible] ही विभूतियाँ हैं।

सावर्णि मनुकी उत्पत्ति तथा आगामी सात मन्वन्तरोंके मनु, मनुपुत्र, देवता, इन्द्र और सप्तर्षियोंका वर्णन

श्रीमैत्रेयजी बोले—विप्रर्षे! आपने यह बीते हुए एवं वर्तमान सात मन्वन्तरोंकी कथा कही, अब आप मुझसे आगामी मन्वन्तरोंका भी वर्णन कीजिये।

श्रीपराशरजीने कहा—महाभाग! सुनो, अब मैं सावर्णिकनामक आठवें मन्वन्तरका, जो आगे होनेवाला है, वर्णन करता हूँ। मैत्रेय! यह सावर्णि ही उस समय मनु होंगे तथा सुतप, अमिताभ और मुख्यगण देवता होंगे, उन देवताओंका प्रत्येक गण बीस-बीसका समूह कहा जाता है। मुनिसत्तम! अब मैं आगे होनेवाले सप्तर्षि भी बतलाता हूँ। उस समय दीप्तिमान्, गालव, राम, कृप, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, मेरे पुत्र व्यास और सातवें ऋष्यशृङ्ग—ये सप्तर्षि होंगे तथा पाताल-लोकवासी विरोचनके पुत्र बलि श्रीविष्णुभगवान्‌की कृपासे तत्कालीन इन्द्र और सावर्णिमनुके पुत्र विरजा, ऊर्वरीवान् एवं निर्मोक आदि तत्कालीन राजा होंगे।

मुने! नवें मनु दक्षसावर्णि होंगे। उनके समयमें पार, मरीचिगर्भ और सुधर्मा नामक तीन देववर्ग होंगे। जिनमें प्रत्येक वर्गमें बारह-बारह देवता होंगे तथा द्विज! उनका नायक महापराक्रमी अद्भुत नामक इन्द्र होगा। सवन, द्युतिमान्, भव्य, वसु, मेधातिथि, ज्योतिष्मान् और सातवें सत्य—ये उस समयके सप्तर्षि होंगे तथा धृतकेतु, दीप्तिकेतु, पञ्चहस्त, निरामय और पृथुश्रवा आदि दक्षसावर्णिमनुके पुत्र होंगे।

मुने! दसवें मनु ब्रह्मसावर्णि होंगे। उनके समयमें सुधामा और विशुद्ध नामक सौ-सौ देवताओंके दो गण होंगे। [illegible] बलवान् शान्ति उनका इन्द्र होगा तथा उस [illegible] सप्तर्षिगण होंगे, उनके नाम सुनो—उनके नाम [illegible] सुकृत, सत्य, तपोमूर्ति, नाभाग, अप्रतिमौजा और [illegible] हैं। उस समय ब्रह्मसावर्णिमनुके सुक्षेत्र, [illegible] भूरिषेण आदि दस पुत्र पृथ्वीकी रक्षा करेंगे।

ग्यारहवाँ मनु धर्मसावर्णि होगा। [illegible] देवताओंके विहङ्गम, कामगम और निर्वाणरति [illegible] गण होंगे—इनमेंसे प्रत्येकमें तीस-तीस देवता [illegible] नामक इन्द्र होगा। उस समय होनेवाले सप्तर्षि [illegible] निःस्वर, अग्नितेजा, वपुष्मान्, [illegible] और अनघ हैं तथा धर्मसावर्णिमनुके सर्वत्रग, सुधर्मा [illegible] देवानीक आदि पुत्र उस समयके [illegible]

रुद्रपुत्र सावर्णि बारहवाँ मनु होगा। [illegible] धामा नामक इन्द्र होगा, [illegible] सुनो—द्विज! उस समय [illegible] सुमना, सुधर्मा और सुकर्मा [illegible] सुतपा, तपोमूर्ति, तपोरति, तपोधृति [illegible]—ये सात सप्तर्षि होंगे। [illegible] समय उस मनुके देववान्, उपदेव और [illegible] शाली पुत्र सम्राट् होंगे।

मुने! तेरहवाँ रुचि नामक मनु होगा। [illegible] सुत्रामा, सुकर्मा और सुधर्मा नामक [illegible]

प्रत्येकमें तैंतीस तैंतीस देवता होंगे तथा महाबलवान् दिवस्पति उनका इन्द्र होगा। निर्मोह, तत्त्वदर्शी, निष्प्रकम्प, निरुत्सुक, धृतिमान्, अव्यय और सुतपा—ये तत्कालीन सप्तर्षि होंगे। अब मनुपुत्रोंके नाम भी सुनो—उस मन्वन्तरमें चित्रसेन और विचित्र आदि मनुपुत्र राजा होंगे।

मैत्रेय! चौदहवाँ मनु भौत्य होगा। उस समय शुचि नामक इन्द्र और पाँच देवगण होंगे; उनके नाम सुनो—वे चाक्षुष, पवित्र, कनिष्ठ, भ्राजिक और वाचावृद्ध नामक देवता हैं। अब तत्कालीन सप्तर्षियोंके नाम भी सुनो। उस समय अग्निबाहु, शुचि, शुक्र, मागध, अग्निध्र, युक्त और जित—ये सप्तर्षि होंगे। अब मनुपुत्रोंके विषयमें सुनो। मुनिशार्दूल! कहते हैं, उस मनुके ऊरु और गम्भीरबुद्धि आदि पुत्र होंगे, जो राज्याधिकारी होकर पृथ्वीका पालन करेंगे।

प्रत्येक चतुर्युगके अन्तमें वेदोंका लोप हो जाता है, उस समय सप्तर्षिगण ही स्वर्गलोकसे पृथ्वीमें अवतीर्ण होकर उनका प्रचार करते हैं। प्रत्येक सत्ययुगके आदिमें मनुष्योंकी धर्म-मर्यादा स्थापित करनेके लिये स्मृति-शास्त्रके रचयिता मनुका प्रादुर्भाव होता है और उस मन्वन्तरके अन्तपर्यन्त तत्कालीन देवगण यज्ञ-भागोंको भोगते हैं तथा जो मनुके पुत्र होते हैं, वे और उनके वंशधर मन्वन्तरके अन्ततक पृथ्वीका पालन करते रहते हैं। इस प्रकार मनु, सप्तर्षि, देवता, इन्द्र तथा मनुपुत्र राजागण—ये प्रत्येक मन्वन्तरके अधिकारी होते हैं।

द्विज! इन चौदह मन्वन्तरोंके बीत जानेपर एक सहस्र युगतक रहनेवाला कल्प समाप्त हुआ कहा जाता है। साधुश्रेष्ठ! फिर इतने ही समयकी रात्रि होती है। उस समय ब्रह्मरूपधारी श्रीविष्णुभगवान् प्रलयकालीन जलके भीतर शेषशय्यापर शयन करते हैं। विप्र! तब आदिकर्ता सर्वव्यापक सर्वभूत भगवान् जनार्दन सम्पूर्ण त्रिलोकीका ग्रास कर अपनी मायामें स्थित रहते हैं। फिर प्रलय-रात्रिका अन्त होनेपर प्रत्येक कल्पके आदिमें अव्ययात्मा भगवान् जाग्रत् होकर रजोगुणका आश्रय ले सृष्टिकी रचना करते हैं। द्विजश्रेष्ठ! मनु, मनुपुत्र राजागण, इन्द्र, देवता तथा सप्तर्षि—ये सब जगत्‌का पालन करनेवाले भगवान्‌के सात्त्विक अंश हैं।

मैत्रेय! स्थितिकारक भगवान् विष्णु चारों युगोंमें जिस प्रकार व्यवस्था करते हैं, सो सुनो—समस्त प्राणियोंके कल्याणमें तत्पर वे सर्वभूतात्मा सत्ययुगमें कपिल आदि रूप धारणकर परम ज्ञानका उपदेश करते हैं। त्रेतायुगमें वे सर्वसमर्थ प्रभु चक्रवर्ती भूपाल होकर दुष्टोंका दमन करके त्रिलोकीकी रक्षा करते हैं। तदनन्तर द्वापर-युगमें वे वेदव्यासरूप धारणकर एक वेदके चार विभाग करते हैं और फिर सैकड़ों शाखाओंमें बाँटकर उसका बहुत विस्तार कर देते हैं। इस प्रकार द्वापरमें वेदोंका विस्तारकर कलियुगके अन्तमें भगवान् कल्किरूप धारणकर दुराचारी लोगोंको सन्मार्गमें प्रवृत्त करते हैं। इसी प्रकार अनन्तात्मा प्रभु निरन्तर इस सम्पूर्ण जगत्‌की उत्पत्ति, पालन और नाश करते रहते हैं। इस संसारमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो उनसे भिन्न हो। विप्र! इहलोक और परलोकमें भूत, भविष्यत् और वर्तमान जितने भी पदार्थ हैं वे सब महात्मा भगवान् विष्णुसे ही उत्पन्न हुए हैं—यह सब मैं तुमसे कह चुका हूँ। मैंने तुमसे सम्पूर्ण मन्वन्तरों और मन्वन्तराधिकारियोंका भी वर्णन कर दिया। कहो, अब और क्या सुनाऊँ?

चतुर्युगानुसार भिन्न-भिन्न व्यासोंके नाम तथा ब्रह्मज्ञानके माहात्म्यका वर्णन

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवन्! आपके कथनसे मैं यह जान गया कि किस प्रकार यह सम्पूर्ण जगत् विष्णुरूप है, विष्णुमें ही स्थित है, विष्णुसे ही उत्पन्न हुआ है तथा विष्णुसे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है! अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि भगवान्‌ने वेदव्यासरूपसे किस प्रकार वेदोंका विभाग किया?

श्रीपराशरजीने कहा—मैत्रेय! वेदरूप वृक्षके सहस्रों शाखा-भेद हैं, उनका विस्तारसे वर्णन करनेमें तो कोई भी समर्थ नहीं है, अतः संक्षेपसे सुनो—महामुने! प्रत्येक द्वापरयुगमें भगवान् विष्णु व्यासरूपसे अवतीर्ण होते हैं और संसारके कल्याणके लिये एक वेदके अनेक भेद कर देते हैं। मनुष्योंके बल, वीर्य और तेजको अल्प जानकर वे समस्त प्राणियोंके हितके लिये वेदोंका विभाग करते हैं। जिस शरीरके द्वारा वे प्रभु एक वेदके अनेक विभाग करते हैं, भगवान् मधुसूदनकी उस मूर्तिका नाम वेद-व्यास है।

ॐ यह अविनाशी एकाक्षर ही ब्रह्म है। यह बृहत् और व्यापक है, इसलिये 'ब्रह्म' कहलाता है। भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक—ये तीनों प्रणवरूप ब्रह्ममें ही स्थित हैं तथा प्रणव ही ऋक्, यजुः, साम और अथर्वरूप है; अतः उस ओंकाररूप ब्रह्मको नमस्कार है। जो संसारकी उत्पत्ति और प्रलयका कारण कहलाता है तथा महत्तत्त्वसे भी परम गुह्य

है, उस ओंकाररूप ब्रह्मको नमस्कार है। जो अगाध, अपार और अक्षय है, संसारको मोहित करनेवाले तमोगुणका आश्रय तथा प्रकाशमय सत्त्वगुण और प्रवृत्तिरूप रजोगुणके द्वारा पुरुषोंके भोग और मोक्षरूप परमपुरुषार्थका हेतु है, जो सांख्यज्ञानियोंकी परमनिष्ठा है, शम-दमशालियोंका गन्तव्य स्थान है, जो अव्यक्त और अविनाशी है तथा सक्रिय ब्रह्म होकर भी सदा रहनेवाला है। जो स्वयम्भू, प्रधान और अन्तर्यामी कहलाता है तथा अविभाग, दीप्तिमान्, अक्षय और अनेकरूप है और जो परमात्मस्वरूप भगवान् वासुदेवका ही रूप है, उस ओंकाररूप परब्रह्मको सर्वदा बारंबार नमस्कार है। यह ओंकाररूप ब्रह्म [illegible] और महेश्वरके तीन भेदोंवाला है। [illegible] अभिन्नरूपसे स्थित है तथापि भेदबुद्धिवालोंको [illegible] प्रतीत होता है। यह [illegible] ऋङ्मय, [illegible] यजुर्मय है तथा ऋग्यजुःसाममय [illegible] शरीरधारियोंका आत्मा है। [illegible] वेदरूपको नाना शाखाओंमें विभक्त करता है [illegible] भगवान् ही समस्त शाखाओंका [illegible] ज्ञानस्वरूप है।

ऋग्वेदकी शाखाओंका विस्तार

श्रीपराशरजी कहते हैं—सृष्टिके आदिमें ईश्वरसे आविर्भूत वेद चार पादोंसे युक्त और एक लक्ष मन्त्रवाला था। उसीसे समस्त कामनाओंको देनेवाले अग्निहोत्रादि दस प्रकारके यज्ञोंका प्रचार हुआ। तदनन्तर अट्ठाईसवें द्वापरयुगमें मेरे पुत्र कृष्णद्वैपायनने इस चतुष्पादयुक्त एक ही वेदके चार भाग किये। अतः द्विज! समस्त चतुर्युगोंमें इन्हीं शाखाभेदोंसे वेदका पाठ होता है—ऐसा जानो। भगवान् कृष्णद्वैपायनको तुम साक्षात् नारायण ही समझो, क्योंकि मैत्रेय! संसारमें नारायणके अतिरिक्त और कौन महाभारतका रचयिता हो सकता है?

मैत्रेय! द्वापरयुगमें मेरे पुत्र महात्मा कृष्णद्वैपायनने जिस प्रकार वेदोंका विभाग किया था, वह यथावत् सुनो। जब ब्रह्माजीकी प्रेरणासे व्यासजीने वेदोंका विभाग करनेका उपक्रम किया तो उन्होंने वेदका अन्ततक अध्ययन करनेमें समर्थ चार शिष्योंको लिया। उनमेंसे उन महामुनिने पैलको ऋग्वेद, वैशम्पायनको यजुर्वेद और जैमिनिको सामवेद पढ़ाया तथा उन मतिमान् व्यासजीका सुमन्तु नामक शिष्य अथर्ववेदका ज्ञाता हुआ। इनके सिवा सूतजातीय महाबुद्धिमान् रोमहर्षणको महामुनि व्यासजीने अपने इतिहास और पुराणके विद्यार्थीरूपसे ग्रहण किया।

पूर्वकालमें यजुर्वेद एक ही था। उसके उन्होंने चार विभाग किये, अतः उसमें चातुर्होत्रकी प्रवृत्ति हुई और इस चातुर्होत्र-विधिसे ही उन्होंने यज्ञानुष्ठानकी व्यवस्था की। व्यासजीने यजुःसे अध्वर्युके, ऋक्से होताके, सामसे उद्गाताके तथा अथर्ववेदसे ब्रह्माके कर्मकी स्थापना की। तदनन्तर उन्होंने ऋक् तथा यजुःश्रुतियोंका उद्धार करके ऋग्वेद एवं यजुर्वेदकी और सामश्रुतियोंसे सामवेदकी रचना की। मैत्रेय! अथर्ववेदके द्वारा भगवान् [illegible] कर्म और ब्रह्मत्वकी यथावत् व्यवस्था की। [illegible] व्यासजीने वेदरूप एक वृक्षके चार विभाग कर दिये, [illegible] विभक्त हुए उन चारोंसे वेदरूपी वृक्षोंका वन उत्पन्न हुआ।

विप्र! पहले पैलने ऋग्वेदरूप वृक्षके दो विभाग [illegible] और उन दोनों शाखाओंको अपने शिष्य इन्द्रप्रमिति और बाष्कलको पढ़ाया। फिर बाष्कलने भी अपनी शाखाके [illegible] भाग किये और उन्हें बोध्य आदि अपने शिष्योंको [illegible]। मुने! बाष्कलकी शाखाकी उन [illegible] शिष्य बोध्य, आग्निमाढक, याज्ञवल्क्य और पराशरने [illegible] किया। मैत्रेयजी! इन्द्रप्रमितिने अपनी [illegible] पुत्र महात्मा माण्डूकेयको पढ़ाया। [illegible] क्रमसे उस शाखाका उनके पुत्र और शिष्योंमें प्रचार हुआ। इस शिष्य-परम्परासे ही शाकल्य वेदमित्रने [illegible] पढ़ा और उसको पाँच [illegible] पाँच शिष्योंको पढ़ाया। उनके जो [illegible] नाम सुनो। मैत्रेय! वे मुद्गल, गोमुख [illegible] तथा पाँचवें महामति शैशिर [illegible]। [illegible] दूसरे शिष्य शाकपूर्णिने तीन वेद [illegible] निरुक्त ग्रन्थकी रचना की। उन [illegible] करनेवाले उनके शिष्य [illegible] बलाक [illegible] तथा [illegible] शिष्य वेद [illegible] वेदरूप [illegible] द्विजोत्तम! [illegible] की। उनके उन [illegible] गार्ग्य तथा [illegible] का प्रचार किया [illegible]

शुक्लयजुर्वेद तथा उसकी शाखाओंका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—महामुने ! व्यासजीके शिष्य वैशम्पायनने यजुर्वेदरूपी वृक्षकी सत्ताईस शाखाओंकी रचना की और उन्हें अपने शिष्योंको पढ़ाया तथा शिष्योंने भी उन्हें क्रमशः ग्रहण किया । द्विज ! उनका एक परम धार्मिक और सदैव गुरुसेवामें तत्पर रहनेवाला शिष्य ब्रह्मरातका पुत्र याज्ञवल्क्य था । एक समय समस्त ऋषिगणने मिलकर यह नियम किया कि जो कोई महामेरुपर स्थित हमारे इस समाजमें सम्मिलित न होगा, उसको सात रात्रियोंके भीतर ही ब्रह्महत्या लगेगी । द्विज ! इस प्रकार मुनियोंने पहले जिस समयको नियत किया था, उसका केवल एक वैशम्पायनने ही अतिक्रमण किया । इसके पश्चात् उनका चरणस्पर्श हो जानेसे ही उसके भानजेकी हत्या हो गयी । तब उन्होंने अपने शिष्योंसे कहा—'शिष्यगण ! तुम सब लोग किसी प्रकारका विचार न करके मेरे लिये ब्रह्महत्याको दूर करनेवाला व्रत करो ।'

तब याज्ञवल्क्य बोले—'भगवन् ! ये सब ब्राह्मण अल्पतेजवाले हैं, इन्हें कष्ट देनेकी क्या आवश्यकता है ? मैं अकेला ही इस व्रतका अनुष्ठान करूँगा ।' इससे गुरु वैशम्पायनजीने महामुनि याज्ञवल्क्यसे कहा—'अरे ब्राह्मणोंका अपमान करनेवाले ! तूने मुझसे जो कुछ पढ़ा है, वह सब त्याग दे । तू इन समस्त द्विजश्रेष्ठोंको निस्तेज बताता है, मुझे तुझ जैसे शिष्यसे कोई प्रयोजन नहीं है ।' याज्ञवल्क्यने कहा 'द्विज ! मैंने तो भक्तिवश आपसे ऐसा कहा था, मैंने आपसे जो कुछ पढ़ा है, वह लीजिये ।' ऐसा कह महामुनि याज्ञवल्क्यजी स्वेच्छानुसार चले गये । मुनिसत्तम ! फिर जिन विप्रगणने गुरुकी प्रेरणासे ब्रह्महत्या-विनाशक व्रतका अनुष्ठान किया था, वे सब व्रताचरणके कारण यजुःशाखाध्यायी चरकाध्वर्यु हुए । तदनन्तर, याज्ञवल्क्यने भी यजुर्वेदकी प्राप्तिकी इच्छासे प्राणोंका संयम कर संयतचित्तसे सूर्यभगवान्‌की स्तुति की ।

याज्ञवल्क्यजी बोले—अतुलित तेजस्वी, मुक्तिके द्वारस्वरूप तथा वेदत्रयरूप तेजसे सम्पन्न एवं ऋक्, यजुः तथा सामस्वरूप सवितादेवको नमस्कार है । जो अग्नि और चन्द्रमारूप, जगत्‌के कारण और सुषुम्न नामक परम तेजको धारण करनेवाले हैं, उन भगवान् भास्करको नमस्कार है । कला, काष्ठा, निमेष आदि कालका ज्ञान करानेवाला आत्मा जिनका स्वरूप है, उन ध्यान करनेयोग्य परब्रह्मस्वरूप, विष्णुमय श्रीसूर्यदेवको नमस्कार है । जो अपनी किरणोंसे चन्द्रमाको पोषित करते हुए देवताओंको तथा स्वधारूप अमृतसे पितृगणको तृप्त करते हैं, उन तृप्तिरूप सूर्यदेवको नमस्कार है । जो हिम, जल और उष्णताके कर्ता अर्थात् शीत, वर्षा और ग्रीष्म आदि ऋतुओंके कारण हैं और जगत्‌का पोषण करनेवाले हैं, उन त्रिकालमूर्ति विधाता भगवान् सूर्यको नमस्कार है । जो जगत्पति इस सम्पूर्ण जगत्‌के अन्धकारको दूर करते हैं, उन सत्त्वमय तेजोरूपधारी विवस्वान्‌को नमस्कार है । जिनके उदित हुए बिना मनुष्य सत्कर्ममें प्रवृत्त नहीं हो सकते और जल शुद्धिका कारण नहीं हो सकता, उन भास्वान् देवको नमस्कार है । जिनके किरण-समूहका स्पर्श होनेपर लोक कर्मानुष्ठानके योग्य होता है, उन पवित्रताके कारण, शुद्धस्वरूप सूर्यदेवको नमस्कार है । भगवान् सविता, सूर्य, भास्कर और विवस्वान्‌को नमस्कार है । देवता आदि समस्त भूतोंके आदिभूत आदित्यदेवको बारंबार नमस्कार है । जिनका तेजोमय रथ है, प्रज्ञारूप ध्वजाएँ हैं, जिन्हें छन्दोमय अमर अश्वगण वहन करते हैं तथा जो त्रिभुवनको प्रकाशित करनेवाले नेत्ररूप हैं, उन सूर्यदेवको मैं नमस्कार करता हूँ ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—उनके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् सूर्य अश्वरूपसे प्रकट होकर बोले—'तुम अपना अभीष्ट वर माँगो ।' तब याज्ञवल्क्यजीने उन्हें प्रणाम करके कहा—'आप मुझे उन यजुःश्रुतियोंका उपदेश कीजिये जिन्हें मेरे गुरुजी भी न जानते हों ।' उनके ऐसा कहनेपर भगवान् सूर्यने उन्हें अयातयाम नामक यजुःश्रुतियोंका उपदेश दिया, जिन्हें उनके गुरु वैशम्पायनजी भी नहीं जानते थे । द्विजोत्तम ! उन श्रुतियोंको जिन ब्राह्मणोंने पढ़ा था, वे वाजी नामसे विख्यात हुए; क्योंकि उनका उपदेश करते समय सूर्य अश्वरूप थे । महाभाग ! उन वाजि-श्रुतियोंकी काण्व आदि पंद्रह शाखाएँ हैं; वे सब शाखाएँ महर्षि याज्ञवल्क्यद्वारा प्रवृत्त की हुई कही जाती हैं ।

साम और अथर्ववेदकी शाखाओं तथा अठारह पुराण और चौदह विद्याओंके विभागका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—मैत्रेय ! जिस क्रमसे व्यासजीके शिष्य जैमिनिने सामवेदकी शाखाओंका विभाग किया था, वह मुझसे सुनो । जैमिनिका पुत्र सुमन्तु था और उसका पुत्र सुकर्मा हुआ । उन दोनों महामति पुत्र-पौत्रोंने सामवेदकी एक-एक शाखाका अध्ययन किया । तदनन्तर सुमन्तुके पुत्र सुकर्माने अपनी सामवेदसंहिताके एक सहस्र शाखाभेद किये और द्विजोत्तम ! उन्हें उसके कौसल्य, हिरण्यनाभ तथा पौष्पिञ्जि नामक महाव्रती शिष्योंने ग्रहण किया । हिरण्यनाभके पाँच सौ शिष्य थे, जो उदीच्य सामग कहलाये । इसी प्रकार जिन अन्य द्विजोत्तमोंने इतनी ही संहिताएँ हिरण्यनाभसे और ग्रहण कीं, उन्हें पण्डितजन प्राच्यसामग कहते हैं । पौष्पिञ्जिके शिष्य लोकाक्षि, नौधमि, कक्षीवान् और लाङ्गलि थे । उनके शिष्य-प्रशिष्योंने अपनी-अपनी संहिताओंके विभाग करके उन्हें बहुत बढ़ा दिया । महामुनि कृति नामक हिरण्यनाभके एक और शिष्यने अपने शिष्योंको सामवेदकी चौबीस संहिताएँ पढ़ायीं । फिर उन्होंने भी इस सामवेदका शाखाओंद्वारा खूब विस्तार किया ।

अथर्ववेदको सर्वप्रथम अमित तेजोमय सुमन्तु मुनिने अपने शिष्य कबन्धको पढ़ाया था, फिर कबन्धने उसके दो भाग कर उन्हें देवदर्श और पथ्य नामक अपने शिष्योंको दिया । द्विजसत्तम ! देवदर्शके शिष्य मेध, ब्रह्मबलि, शौल्कायनि और पिप्पलाद थे । द्विज ! पथ्यके भी जाबालि, कुमुदादि और शौनक नामक तीन शिष्य थे, जिन्होंने संहिताओंका विभाग किया । शौनकने भी अपनी संहिताके दो विभाग करके उनमेंसे एक बभ्रुको तथा दूसरी सैन्धव नामक अपने शिष्यको दी । सैन्धवसे पढ़कर मुञ्जिकेशने अपनी संहिताके पहले दो और फिर तीन इस प्रकार पाँच विभाग किये । नक्षत्रकल्प, वेदकल्प, संहिताकल्प, आङ्गिरसकल्प और शान्तिकल्प—उनके रचे हुए ये पाँच विशिष्ट कल्प अथर्ववेदकी संहिताओंमें सर्वश्रेष्ठ हैं ।

तदनन्तर, पुराणार्थविशारद व्यासजीने आख्यान, उपाख्यान, गाथा और कल्पशुद्धिके सहित पुराणसंहिताकी रचना की । रोमहर्षण सूत व्यासजीके प्रसिद्ध शिष्य थे । महामति व्यासजीने उन्हें पुराणसंहिताका अध्ययन कराया । उन सूतजीके सुमति, अग्निवर्चा, मित्रायु, शांशपायन, अकृतव्रण और सावर्णि—ये छः शिष्य थे । [illegible] अठारह पुराण बतलाते हैं; उन [illegible] है । प्रथम पुराण ब्राह्म है, दूसरा पाद्म [illegible] शैव, पाँचवाँ भागवत छठा नारदीय और [illegible] है । इसी प्रकार आठवाँ आग्नेय [illegible] ब्रह्मवैवर्त्त और ग्यारहवाँ पुराण [illegible] बारहवाँ वाराह, तेरहवाँ स्कन्द, [illegible] कौर्म तथा इनके पश्चात् मात्स्य [illegible] हैं । महामुने ! ये ही अठारह महापुराण हैं[*] । [illegible] अतिरिक्त मुनिजनोंने और भी अनेक उपपुराण [illegible] इन सभीमें सृष्टि, प्रलय, देवता आदि [illegible] और भिन्न-भिन्न राजवंशोंके चरित्रका [illegible]

मैत्रेय ! जिस पुराणको मैं तुम्हें सुना रहा [illegible] नामक महापुराण है । साधुश्रेष्ठ ! इसमें सर्ग, प्र[illegible] और मन्वन्तरादिका वर्णन करते हुए [illegible] भगवान्‌का ही वर्णन किया गया है ।

छः वेदाङ्ग, चार वेद, मीमांसा, न्याय, पुराण [illegible] शास्त्र—ये ही चौदह विद्याएँ हैं । [illegible] और गान्धर्व इन तीनोंको तथा चौथे [illegible] कुल अठारह विद्याएँ हो जाती हैं[†] । [illegible]

* [illegible]

† [illegible]

हैं—प्रथम ब्रह्मर्षि, द्वितीय देवर्षि और फिर राजर्षि। इस प्रकार मैंने तुमसे वेदोंकी शाखा, शाखाओंके भेद, उनके रचयिता तथा शाखाभेदके कारणोंका भी वर्णन कर दिया। इसी प्रकार समस्त मन्वन्तरोंमें एक-से शाखाभेद रहते हैं; द्विज! प्रजापति ब्रह्माजीसे प्रकट होनेवाली श्रुति तो नित्य है, ये तो उसके विकल्पमात्र हैं।

यम-गीता

श्रीमैत्रेयजी बोले—महामुने! सातों द्वीप, सातों पाताल और सातों लोक—ये सभी स्थान जो इस ब्रह्माण्डके अन्तर्गत हैं, स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथा स्थूल और स्थूलतर जीवोंसे भरे हुए हैं। मुनिसत्तम! एक अङ्गुलका आठवाँ भाग भी कोई ऐसा स्थान नहीं है, जहाँ कर्म-बन्धनसे बँधे हुए जीव न रहते हों, किंतु भगवन्! आयुके समाप्त होनेपर ये सभी यमराजके वशीभूत हो जाते हैं, अतः आप मुझे वह कर्म बताइये, जिसे करनेसे मनुष्य यमराजके वशीभूत नहीं होता; मैं आपसे यही सुनना चाहता हूँ।

श्रीपराशरजीने कहा—मुने! यही प्रश्न महात्मा नकुलने पितामह भीष्मसे पूछा था। उसके उत्तरमें उन्होंने जो कुछ कहा था, वह सुनो।

भीष्मजीने कहा—वत्स! पूर्वकालमें मेरे पास एक कलिङ्गदेशीय ब्राह्मण-मित्र आया और मुझसे बोला—'मेरे पूछनेपर एक जातिस्मर मुनिने बतलाया था कि ये सब बातें अमुक-अमुक प्रकार ही होंगी।' वत्स! उस बुद्धिमान्‌ने जो-जो बातें जिस जिस प्रकार होनेको कही थीं, वे सब ज्यों-की-त्यों हुईं। इस प्रकार उसमें श्रद्धा हो जानेसे मैंने उससे फिर कुछ और भी प्रश्न किये और उनके उत्तरमें उस द्विजश्रेष्ठने जो-जो बातें बतलायीं, उनके विपरीत मैंने कभी कुछ नहीं देखा। एक दिन, जो बात तुम मुझसे पूछते हो वही मैंने उस कलिङ्ग ब्राह्मणसे पूछी। उस समय उसने उस मुनिके वचनोंको याद करके कहा कि उस जातिस्मर ब्राह्मणने, यम और उनके दूतोंके बीचमें जो संवाद हुआ था, वह अति गूढ़ रहस्य मुझे सुनाया था, वही मैं तुमसे कहता हूँ।

कलिङ्ग बोला—अपने अनुचरको हाथमें पाश लिये देखकर यमराजने उसके कानमें कहा—'भगवान् मधुसूदनके

शरणागत व्यक्तियोंको छोड़ देना, क्योंकि मैं, जो विष्णुभक्त नहीं हैं, ऐसे अन्य पुरुषोंका ही स्वामी हूँ। देव-पूज्य विधाताने मुझे 'यम' नामसे लोकोंके पाप-पुण्यका विचार करनेके लिये नियुक्त किया है। मैं अपने गुरु श्रीहरिके वशीभूत हूँ, स्वतन्त्र नहीं हूँ। भगवान् विष्णु मेरा भी नियन्त्रण करनेमें समर्थ हैं। जो भगवान्‌के चरणकमलोंकी परमार्थ-बुद्धिसे वन्दना करता है, घृताहुतिसे प्रज्वलित अग्निके समान समस्त पाप-बन्धनसे मुक्त हुए उस पुरुषको तुम दूरहीसे छोड़कर निकल जाना'*।

---

* हरिममरवरार्चिताङ्घ्रिपद्मं
प्रणमति यः परमार्थतो हि मर्त्यः।
तमपगतसमस्तपापबन्धं
व्रज परिहृत्य यथाग्निमाज्यसिक्तम्॥
(वि० पु० ३।७।१८)

[illegible] मानते। वह (भगवद्भक्त) तो वैकुण्ठादि लोकोंका पात्र है।

श्रीभीष्मजी बोले—नकुल ! पूर्वकालमें कलिङ्गदेशसे आये हुए उस ब्राह्मणने प्रसन्न होकर मुझे यह सब विषय सुनाया था। वत्स ! वही सम्पूर्ण वृत्तान्त मैंने ज्यों-का-त्यों तुम्हें सुना दिया। इस संसार-सागरमे एक विष्णु-भगवान्‌को छोड़कर जीवका और कोई भी रक्षक नहीं है। जिसका हृदय निरन्तर भगवत्परायण रहता है, उसका यम, यमदूत, यमपाश, यमदण्ड अथवा यम-यातना कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते।

विष्णुभगवान्‌की आराधना और चातुर्वर्ण्य-धर्मका वर्णन

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवन् ! जो लोग संसारको जीतना चाहते हैं, वे जिस प्रकार जगत्पति भगवान् विष्णुकी उपासना करते हैं, वह वर्णन कीजिये। और महामुने ! उन गोविन्दकी आराधना करनेपर आराधनपरायण पुरुषोंको जो फल मिलता है, वह भी मैं सुनना चाहता हूँ।

श्रीपराशरजीने कहा—मैत्रेय ! तुम जो कुछ पूछते हो, यही बात महात्मा सगरने और्वसे पूछी थी। उसके उत्तरमें उन्होंने जो कुछ कहा, वह मैं तुमको सुनाता हूँ, श्रवण करो।

और्व बोले—भगवान् विष्णुकी आराधना करनेसे मनुष्य भूमण्डल-सम्बन्धी समस्त मनोरथ, स्वर्ग, स्वर्गलोक-निवासियोंके लिये भी वन्दनीय ब्रह्मपद और परम निर्वाण-पद भी प्राप्त कर लेता है। राजेन्द्र ! वह जिस-जिस फलकी जितनी-जितनी इच्छा करता है, अल्प हो या अधिक, श्रीअच्युतकी आराधनासे निश्चय ही सब प्राप्त कर लेता है†। जो पुरुष वर्णाश्रम धर्मका पालन करनेवाला है, वही परमपुरुष विष्णुकी आराधना कर सकता है। नृप ! भगवान् हरि सर्वभूतमय हैं। इसलिये यज्ञोंका यजन करनेवाला पुरुष उन (विष्णु) का ही यजन करता है, जप करनेवाला उन्हींका जप करता है और दूसरोंकी हिंसा करनेवाला उन्हींकी हिंसा करता है; अतः सदाचारयुक्त पुरुष अपने वर्णके लिये विहित धर्मका आचरण करते हुए श्रीजनार्दनहीकी उपासना करता है। पृथ्वीपते ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने-अपने धर्मका पालन करते हुए ही विष्णुकी आराधना करते हैं।

जो पुरुष दूसरोंकी निन्दा, चुगली अथवा मिथ्याभाषण नहीं करता तथा ऐसा वचन भी नहीं बोलता, जिससे दूसरोंको खेद हो, उससे निश्चय ही भगवान् केशव प्रसन्न रहते हैं। राजन् ! जो पुरुष दूसरोंकी स्त्री, धन और हिंसामें रुचि नहीं करता, उससे सर्वदा ही भगवान् केशव संतुष्ट रहते हैं। नरेन्द्र ! जो मनुष्य किसी प्राणी अथवा वृक्षादि अन्य देहधारियोंको पीड़ित अथवा नष्ट नहीं करता, उससे श्रीकेशव संतुष्ट रहते हैं। जो पुरुष देवता, ब्राह्मण और गुरुजनोंकी सेवामें सदा तत्पर रहता है, नरेश्वर ! उसपर गोविन्द सदा प्रसन्न रहते हैं। जो व्यक्ति स्वयं अपने और अपने पुत्रोंके समान ही समस्त प्राणियोंका भी हितचिन्तक होता है, वह सुगमतासे ही श्रीहरिको प्रसन्न कर लेता है। नृप ! जिसका चित्त राग-द्वेषादि दोषोंसे दूषित नहीं है, उस विशुद्ध-चित्त पुरुषसे

---

* अशुभमतिरसत्प्रवृत्तिसक्तः सततमनार्यकुशीलसङ्गमत्तः ।
अनुदिनकृतपापबन्धयुक्तः पुरुषपशुर्न हि वासुदेवभक्तः ॥
सकलमिदमहं च वासुदेवः परमपुमान् परमेश्वरः स एकः ।
इति मतिरचला भवत्यनन्ते हृदयगते व्रज तान् विहाय दूरात् ॥
कमलनयन वासुदेव विष्णो धरणिधराच्युत शङ्खचक्रपाणे ।
भव शरणमितीरयन्ति ये वै त्यज भट दूरतरेण तानपापान् ॥
वसति मनसि यस्य सोऽव्ययात्मा पुरुषवरस्य न तस्य दृष्टिपाते ।
तव गतिरथवा ममास्ति चक्रप्रतिहतवीर्यबलस्य सोऽन्यलोक्यः ॥

(वि० पु० ३ । ७ । ३१–३४)

† यद्यदिच्छति यावच्च फलमाराधितेऽच्युते । तत्तदाप्नोति राजेन्द्र भूरि स्वल्पमथापि वा ॥

(वि० पु० ३ । ८ । ७)

भगवान् विष्णु सदा संतुष्ट रहते हैं*। नृपश्रेष्ठ ! शास्त्रोंमें जो-जो वर्णाश्रम-धर्म कहे हैं, उन-उनका ही आचरण करके पुरुष विष्णुकी आराधना कर सकता है।

सगर बोले—द्विजश्रेष्ठ ! अब मैं सम्पूर्ण वर्णधर्म और आश्रमधर्मोंको सुनना चाहता हूँ, कृपा करके वर्णन कीजिये।

और्व बोले—जिनका मैं वर्णन करता हूँ, उन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके धर्मोंका तुम एकाग्रचित्त होकर क्रमशः श्रवण करो। ब्राह्मणका कर्तव्य है कि दान दे, यज्ञोंद्वारा देवताओंका यजन करे, स्वाध्यायशील हो, नित्य स्नान-तर्पण करे और अग्न्याधान आदि कर्म करता रहे। ब्राह्मणको उचित है कि वृत्तिके लिये दूसरोंसे यज्ञ करावे, औरोंको पढावे और न्यायोपार्जित शुद्ध धनमेंसे न्यायानुकूल द्रव्य संग्रह करे। ब्राह्मणको कभी किसीका अहित नहीं करना चाहिये और सर्वदा समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहना चाहिये। सम्पूर्ण प्राणियोंमें मैत्री रखना ही ब्राह्मणका परम धन है। पत्थरमें और पराये रत्नमें ब्राह्मणको समानबुद्धि रखनी चाहिये। राजन् ! पत्नीके विषयमें ऋतुगामी होना ही ब्राह्मणके लिये प्रशंसनीय कर्म है।

क्षत्रियको उचित है कि ब्राह्मणोंको यथेच्छ दान दे, विविध यज्ञोंका अनुष्ठान करे और अध्ययन करे—यह क्षत्रियका सामान्यधर्म है तथा शस्त्र धारण करना और पृथ्वीकी रक्षा करना ही क्षत्रियकी उत्तम आजीविका है; इनमें भी पृथ्वीपालन ही उत्कृष्टतर है। निःस्वार्थभावपूर्वक पृथ्वीपालनसे ही राजालोग कृतकृत्य हो जाते हैं; क्योंकि पृथ्वीमें होनेवाले यज्ञादि कर्मोंका अंश राजाको मिलता है। जो राजा अपने वर्णधर्मको स्थिर रखता है, वह दुष्टोंको दण्ड देने और साधुजनोंका पालन करनेसे अपने अभीष्ट लोकोंको प्राप्त कर लेता है।

नरनाथ ! लोकपितामह ब्रह्माजीने वैश्योंको पशु-पालन, वाणिज्य और कृषि—ये [illegible] यज्ञ, दान और [illegible] कर्म उसके लिये भी [illegible] हैं।

शूद्रका कर्तव्य यही है कि [illegible] लिये कर्म करे और उसीसे [illegible] आपत्कालमें, जब उक्त [illegible] तो वस्तुओंके लेने-देनेसे [illegible] करे। अति नम्रता, शौच, [illegible] यज्ञ, अस्तेय, सत्सङ्ग और [illegible] शूद्रके प्रधान कर्म हैं। राजन् ! [illegible] दान दे, बिना मन्त्रके [illegible] अल्प यज्ञोंका अनुष्ठान करे, [illegible] कर्म करे, अपने आश्रित कुटुम्बियोंके [illegible] सकल वर्णोंके द्रव्य-संग्रह करे और [illegible] स्त्रीसे प्रसङ्ग करे।

नरेश्वर ! इनके अतिरिक्त समस्त [illegible] सहन-शीलता, अमानिता, [illegible] करना, मङ्गलाचरण, प्रियवादिता, मैत्री, [illegible] और किसीके दोष न देखना—ये [illegible] गुण हैं। सब आश्रमोंके भी ये ही [illegible] गुण हैं। अब ब्राह्मणादि चारों वर्णोंके [illegible] आपत्तिके समय ब्राह्मणको क्षत्रिय और [illegible] वृत्तिका अवलम्बन करना चाहिये [illegible] केवल वैश्यवृत्तिका ही आश्रय लेना चाहिये। [illegible] कर्म (सेवा आदि) कभी न करें। [illegible] वृत्तियोंको भी समर्थ होनेके [illegible] में ही इनका आश्रय [illegible] इस प्रकार वर्णधर्मोंका वर्णन तो [illegible] आश्रमधर्मोंका निरूपण और [illegible]

---

* परापवादं पैशुन्यमनृतं च न भाषते। अन्योद्वेगकरं चापि तोष्यते [illegible]
परदारपरद्रव्यपरहिंसासु यो रतिम्। न करोति पुमान्भूप तोष्यते [illegible]
न ताडयति नो हन्ति प्राणिनोऽन्यांश्च देहिनः। यो मनुष्यो मनुष्येन्द्र तोष्यते [illegible]
देवद्विजगुरूणां च शुश्रूषासु सदोद्यतः। तोष्यते तेन गोविन्दः पुरुषेण [illegible]
यथात्मनि च पुत्रे च सर्वभूतेषु यस्तथा। हितकामो हरिस्तेन सर्वदा तोष्यते [illegible]
यस्य रागादिदोषेण न दुष्टं नृप मानसम्। विशुद्धचेतसा विष्णुस्तोष्यते तेन [illegible]
([illegible])

† ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च यथाक्रमम्। [illegible]
दानं दद्याद्यजेद्देवान् यज्ञैः स्वाध्यायतत्परः। नित्योदकी भवेत्तद्वदग्न्याधानं [illegible]
वृत्त्यर्थं याजयेच्चान्यानन्यानध्यापयेत्तथा। कुर्यात्प्रतिग्रहादानं [illegible]
सर्वभूतहितं कुर्यान्नाहितं कस्यचिद् द्विज। मैत्री समस्तभूतेषु [illegible]

ब्रह्मचर्य आदि आश्रमोंका वर्णन

और्व बोले—भूपते ! बालकको चाहिये कि उपनयन-संस्कारके अनन्तर वेदाध्ययनमें तत्पर होकर ब्रह्मचर्यका अवलम्बन कर सावधानतापूर्वक गुरुगृहमें निवास करे । वहाँ रहकर उसे शौच और आचार-व्रतका पालन करते हुए गुरुकी सेवा-शुश्रूषा करनी चाहिये तथा व्रतादिका आचरण करते हुए स्थिर बुद्धिसे वेदाध्ययन करना चाहिये । राजन् ! प्रातःकाल और सायंकाल दोनों संध्याओंमें एकाग्रचित्त होकर सूर्य और अग्निकी उपासना करे तथा गुरुका अभिवादन करे । गुरुके खड़े होनेपर खड़ा हो जाय, चलनेपर पीछे-पीछे चलने लगे तथा बैठ जानेपर नीचे बैठ जाय । नृपश्रेष्ठ ! इस प्रकार कभी गुरुके विरुद्ध कोई आचरण न करे । गुरुजीके कहनेपर ही उनके सामने बैठकर एकाग्रचित्तसे वेदाध्ययन करे और उनकी आज्ञा होनेपर ही भिक्षान्न भोजन करे । जलमें प्रथम आचार्यके स्नान कर चुकनेपर फिर स्वयं स्नान करे तथा प्रतिदिन प्रातःकाल गुरुजीके लिये समिधा, जल, कुश और पुष्पादि लाकर जुटा दे ।

इस प्रकार अपना अभिमत वेदपाठ समाप्त कर चुकनेपर बुद्धिमान् शिष्य गुरुजीकी आज्ञासे उन्हें गुरुदक्षिणा देकर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करे । राजन् ! फिर विधिपूर्वक पाणिग्रहण कर अपनी वर्णानुकूल वृत्तिसे द्रव्योपार्जन करता हुआ सामर्थ्यानुसार समस्त गृहकार्य करता रहे । पिण्ड-दानादिसे पितृगणकी, यज्ञादिसे देवताओंकी, अन्नदानसे अतिथियोंकी, स्वाध्यायसे ऋषियोंकी, पुत्रोत्पत्तिसे प्रजापतिकी, बलिवैश्वदेवसे भूतगणोंकी तथा वात्सल्यभावसे सम्पूर्ण जगत्की पूजा करते हुए पुरुष अपने कर्मोंद्वारा मिले हुए उत्तमोत्तम लोकोंको प्राप्त कर लेता है । जो केवल भिक्षावृत्तिसे ही रहनेवाले परिव्राजक और ब्रह्मचारी आदि हैं, उनका आश्रय भी गृहस्थाश्रम ही है, अतः यह सर्वश्रेष्ठ है । राजन् ! विप्रगण वेदाध्ययन, तीर्थस्नान और देश-दर्शनके लिये पृथ्वी-पर्यटन किया करते हैं । उनमेंसे जिनका कोई निश्चित गृह अथवा भोजन-प्रबन्ध नहीं होता और जो जहाँ सायंकाल हो जाता है, वहीं ठहर जाते हैं, उन सबका आधार और मूल गृहस्थाश्रम ही है । राजन् ! ऐसे लोग जब घर आवें तो उनका कुशल-प्रश्न और मधुर वचनोंसे स्वागत करे तथा शय्या, आसन और भोजनके द्वारा यथाशक्ति उनका सत्कार करे । जिसके घरसे अतिथि निराश होकर लौट जाता है, उसे अपने समस्त दुष्कर्म देकर वह (अतिथि) उसके पुण्य कर्मोंको स्वयं ले जाता है* । गृहस्थके लिये अतिथिके प्रति अपमान, अहंकार

ग्राम्यि रक्षे च पारक्ये समुद्धिर्भेद् द्विजः । ऋतावभिगम पत्न्यां शस्यते चास्य पार्थिव ॥
दानानि दद्यादिच्छातो द्विजेभ्य. क्षत्रियोऽपि वा । यजेच्च विविधैर्यज्ञैरधीयीत च पार्थिव ॥
शस्त्राजीवो महीरक्षा प्रवरा तस्य जीविका । तत्रापि प्रथमः कल्प. पृथिवीपरिपालनम् ॥
धरित्रीपालनेनैव कृतकृत्या नराधिपा. । भवन्ति नृपतेरंशा यतो यज्ञादिकर्मणाम् ॥
दुष्टानां शासनाद्राजा शिष्टानां परिपालनात् । प्राप्नोत्यभिमताँल्लोकान् वर्णसंस्था करोति यः ॥
पाशुपाल्य च वाणिज्यं कृषिं च मनुजेश्वर । वैश्याय जीविकां ब्रह्मा ददौ लोकपितामहः ॥
तस्याप्यध्ययनं यज्ञो दानं धर्मश्च शस्यते । नित्यनैमित्तिकादीनामनुष्ठानं च कर्मणाम् ॥
द्विजातिसंश्रितं कर्म तादर्थ्यं तेन पोषणम् । क्रयविक्रयजैर्वापि धनैः कारुद्भवेन वा ॥
शूद्रस्य सन्ततिश्शौच सेवा स्वामिन्यमायया । अमन्त्रयज्ञो ह्यस्तेयं सत्सङ्गो विप्ररक्षणम् ॥
दानं च दद्याच्छूद्रोऽपि पाकयज्ञैर्यजेत च । पित्र्यादिकं च तत्सर्वं शूद्र कुर्वीत तेन वै ॥
भृत्यादिभरणार्थाय सर्वेषां च परिग्रह. । ऋतुकालेऽभिगमनं स्वदारेषु महीपते ॥
दया समस्तभूतेषु तितिक्षा नातिमानिता । सत्य शौचमनायासो मङ्गल प्रियवादिता ॥
मैत्र्यस्पृहा तथा तद्वदकार्पण्यं नरेश्वर । अनसूया च सामान्यवर्णानां कथिता गुणाः ॥
आश्रमाणां च सर्वेषामेते सामान्यलक्षणाः । गुणांस्तथापद्धर्मांश्च विप्रादीनामिमाञ्छृणु ॥
क्षात्रं कर्म द्विजस्योक्तं वैश्यं कर्म तथापदि । राजन्यस्य च वैश्योक्तं शूद्रकर्म न चैतयोः ॥
सामर्थ्ये सति तत्त्याज्यमुभाभ्यामपि पार्थिव । तदेवापदि कर्तव्यं न कुर्यात्कर्मसंकरम् ॥

(वि० पु० ३ । ८ । २१—४०)

* अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते । स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति ॥

(वि० पु० ३ । ९ । १५)

और दम्भका आचरण करना, उसे देकर पछताना, उसपर प्रहार करना अथवा उससे कटुभाषण करना उचित नहीं है। इस प्रकार जो गृहस्थ अपने परम धर्मका पूर्णतया पालन करता है, वह समस्त बन्धनोंसे मुक्त होकर अत्युत्तम लोकोंको प्राप्त कर लेता है।

राजन्! इस प्रकार गृहस्थोचित कार्य करते करते जिसकी अवस्था ढल गयी हो, उस गृहस्थको उचित है कि स्त्रीको पुत्रोंके प्रति सौंपकर अथवा अपने साथ लेकर वनको चला जाय। वहाँ पत्र, मूल, फल आदिका आहार करता हुआ लोम, श्मश्रु (दाढ़ी-मूँछ) और जटाओंको धारण कर पृथ्वीपर शयन करे और मुनिवृत्तिका अवलम्बन कर सब प्रकार अतिथिकी सेवा करे। उसे मृगचर्म, काश और कुशाओंसे अपना बिछौना तथा ओढ़नेका वस्त्र बनाना चाहिये। नरेश्वर! उस मुनिके लिये त्रिकालस्नानका विधान है। इसी प्रकार देवपूजन, होम, सब अतिथियोंका सत्कार, भिक्षा और बलिवैश्वदेव भी उसके विहित कर्म हैं। राजेन्द्र! वन्य तैलादिको शरीरमें मलना और शीतोष्णका सहन करते हुए तपस्यामें लगे रहना उसके प्रशस्त कर्म हैं। जो वानप्रस्थ मुनि इन नियत कर्मोंका आचरण करता है, वह अपने समस्त दोषोंको अग्निके समान भस्म कर देता है और नित्य-लोकोंको प्राप्त कर लेता है।

नृप! पण्डितगण जिस चतुर्थ आश्रमको भिक्षु-आश्रम कहते हैं, अब मैं उसके स्वरूपका वर्णन करता हूँ, सावधान होकर सुनो—नरेन्द्र! तृतीय आश्रमके अनन्तर पुत्र, द्रव्य और स्त्री आदिके [illegible] कर चतुर्थ आश्रममें प्रवेश करे। [illegible] कि अर्थ, धर्म और [illegible] छोड़ दे, शत्रु मित्रादिमें समान [illegible] सुहृद् हो। निरन्तर समाहित [illegible] स्वेदज आदि समस्त जीवोंसे मन [illegible] कभी द्रोह न करे तथा सब प्रकार[illegible] ग्राममें एक रात और पुरमें पाँच [illegible] दिन भी तो इस प्रकार रहे [illegible] हो। जिस समय घरोंमें अग्नि शान्त हो [illegible] भोजन कर चुकें, उस समय प्राण[illegible] घरपर भिक्षाके लिये जाय। परिव्राजकको [illegible] तथा दर्प, लोभ और मोह आदि [illegible] ममताशून्य होकर रहे। जो मुनि [illegible] देकर विचरता है, उसको भी [illegible] होता*। जो ब्राह्मण चतुर्थ आश्रममें [illegible] प्राणादिसहित जठराग्निके उद्देश्यसे [illegible] हविसे हवन करता है, वह ऐसा अग्निहोत्र [illegible] के लोकोंको प्राप्त हो जाता है। जो [illegible] भगवान्‌का ही संकल्प है'—ऐसे [illegible] मोक्षाश्रमका पवित्रता और [illegible] करता है, वह निरिन्धन अग्निके समान [illegible] अन्तमें ब्रह्मलोक प्राप्त करता है।

जातकर्म, नामकरण, उपनयन और विवाह-संस्कार

सगर बोले—द्विजश्रेष्ठ! आपने चारों आश्रम और चारों वर्णोंके कर्मोंका वर्णन किया। अब मैं आपके द्वारा मनुष्योंके षोडश संस्काररूप कर्मोंको सुनना चाहता हूँ।

और्व बोले—राजन्! पुत्रके उत्पन्न होनेपर पिताको चाहिये कि उसके जातकर्म, नामकरण आदि सकल क्रियाकाण्ड और आभ्युदयिक (नान्दीमुख) श्राद्ध करे। नरेश्वर! पूर्वाभिमुख बिठाकर युग्म ब्राह्मणोंको भोजन करावे तथा द्विजातियोंके व्यवहारके अनुसार प्रसन्नतापूर्वक दैवतीर्थ (अँगुलियोंके अग्रभाग) द्वारा नान्दीमुख पितृगणको दही, जौ और बदरीफल मिलाकर बनाये हुए पिण्ड दे। अथवा प्राजापत्य-तीर्थ (कनिष्ठिकाके मूल) द्वारा सम्पूर्ण उपचारद्रव्योंका दान करे। इसी प्रकार कन्या अथवा पुत्रोंके [illegible] वृद्धिकालोंमें भी करे।

तदनन्तर पुत्रोत्पत्तिके दसवें दिन [illegible] संस्कार करे। पुरुषका नाम [illegible] उसके पूर्वमें देववाचक शब्द हो। [illegible] शर्मा, क्षत्रियके वास्ते वर्मा [illegible] में क्रमशः गुप्त और दास [illegible] नाम अर्थहीन, [illegible] निन्दनीय न होना चाहिये [illegible] होने चाहिये। अति दीर्घ [illegible] गुरु नाम न रखे। [illegible]

* अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा यश्चरते मुनिः। तस्यापि सर्वभूतेभ्यो न भयं विद्यते क्वचित्॥ [illegible]

और जिनके पीछेके वर्ण लघु हों; ऐसे नामका व्यवहार करे।

तदनन्तर उपनयन-संस्कार हो जानेपर गुरुगृहमें रहकर विधिपूर्वक विद्याध्ययन करे। भूपाल ! फिर विद्याध्ययन कर चुकनेपर गुरुको दक्षिणा देकर यदि गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेकी इच्छा हो तो विवाह कर ले। या दृढ़ संकल्पपूर्वक नैष्ठिक ब्रह्मचर्य ग्रहणकर गुरुकी सेवा-शुश्रूषा करता रहे। अथवा अपने इच्छानुसार वानप्रस्थ या संन्यास ग्रहण कर ले।

गृहस्थसम्बन्धी सदाचारका वर्णन

सगर बोले—मुने ! मैं गृहस्थके सदाचारोंको सुनना चाहता हूँ, जिनका आचरण करनेसे वह इहलोक और परलोक दोनों जगह पतित नहीं होता।

और्व बोले—पृथ्वीपाल ! तुम सदाचारके लक्षण सुनो। सदाचारी पुरुष इहलोक और परलोक दोनोंको ही जीत लेता है। 'सत्' शब्दका अर्थ साधु है और साधु वही है जो दोषरहित हो। उस साधु (श्रेष्ठ) पुरुषका जो आचरण होता है, उसीको सदाचार कहते हैं। राजन् ! इस सदाचारके वक्ता और कर्ता सप्तर्षिगण, मनु एवं प्रजापति हैं।

नृप ! बुद्धिमान् पुरुष स्वस्थ चित्तसे ब्राह्ममुहूर्तमें जगकर अपने धर्म और धर्माविरोधी अर्थका चिन्तन करे तथा जिसमें धर्म और अर्थकी क्षति न हो, ऐसे कामका भी चिन्तन करे। नृप ! धर्मविरुद्ध अर्थ और काम दोनोंका त्याग कर दे।

नरेश्वर ! तदनन्तर ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर ग्रामसे नैर्ऋत्य-कोणमें अपने निवासस्थानसे दूर जाकर मल-मूत्र त्याग करना चाहिये। पैर धोया हुआ और जूठा जल अपने घरके आँगनमें न डाले। अपनी या वृक्षकी छायाके ऊपर तथा गौ, सूर्य, अग्नि, तेज, हवा, गुरु और द्विजातीय पुरुषके सामने बुद्धिमान् पुरुष कभी मल-मूत्र त्याग न करे। इसी प्रकार पुरुषर्षभ ! जोते हुए खेतमें, सस्यसम्पन्न भूमिमें, गौओंके गोष्ठमें, जन-समाजमें, मार्गके बीचमें, नदी आदि तीर्थ-स्थानोंमें, जल अथवा जलाशयके तटपर और श्मशानमें भी कभी मल-मूत्रका त्याग न करे*। राजन् ! कोई विशेष आपत्ति न हो तो प्राज्ञ पुरुषको चाहिये कि दिनके समय उत्तर-मुख और रात्रिके समय दक्षिण-मुख होकर मल-मूत्र-त्याग करे। मल-त्यागके समय पृथ्वीको तिनकोंसे और सिरको वस्त्रसे ढँक ले तथा उस स्थानपर अधिक समयतक न रहे और न कुछ बोले ही।

राजन् ! बाँबीकी, चूहोंद्वारा बिलसे निकाली हुई, जलके भीतरकी, शौचकर्मसे बची हुई, घरके लीपनकी, चींटी आदि छोटे-छोटे जीवोंद्वारा निकाली हुई और हलसे उखाड़ी हुई—इन सब प्रकारकी मृत्तिकाओंका शौच-कर्ममें उपयोग न करे। नृप ! लिंगमें एक बार, गुदामें तीन बार, बायें हाथमें दस बार और दोनों हाथोंमें सात बार मृत्तिका लगानेसे शौच सम्पन्न होता है। उससे चरणशुद्धि करनेके अनन्तर फिर पैर धोकर कुल्ला करे, तत्पश्चात् नित्यकर्मोंके सम्पादनके लिये नदी, नद, तड़ाग, देवालयोंकी बावड़ी और पर्वतीय झरनोंमें स्नान करना चाहिये। अथवा कुएँसे जल खींचकर उसके पासकी भूमिपर स्नान करे और यदि वहाँ भूमिपर स्नान करना सम्भव न हो तो कुएँसे खींचकर लाये हुए जलसे घरमें ही नहा ले।

स्नान करनेके अनन्तर पवित्र अधोवस्त्र और उत्तरीय वस्त्र धारण कर देवता, ऋषिगण और पितृगणका उन्हींके तीर्थोंसे तर्पण करे। पृथ्वीपते ! पितृगण और पितामहोंकी प्रसन्नताके लिये तीन-तीन बार जल छोड़े तथा इसी प्रकार प्रपितामहोंको भी संतुष्ट करे एवं मातामह (नाना) और उनके पिता तथा उनके पिताको भी सावधानतापूर्वक पितृ-तीर्थसे जल-दान करे।

'यह जल माताके लिये हो, यह प्रमाताके लिये हो, यह वृद्धा प्रमाताके लिये हो, यह गुरुपत्नीको, यह गुरुको, यह मामाको, यह प्रिय मित्रको तथा यह राजाको प्राप्त हो'—राजन् ! यह जपता हुआ समस्त भूतोंके हितके लिये देवादितर्पण करके अपने इच्छानुसार प्रिय सम्बन्धियोंके लिये जलदान करे। देवादि-तर्पणके समय इस प्रकार कहे—'देव, असुर, यक्ष, नाग, गन्धर्व, राक्षस, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, कूष्माण्ड, पशु, पक्षी, जलचर, स्थलचर और वायु-भक्षक आदि सभी प्रकारके जीव मेरे दिये हुए इस जलसे तृप्त हों। जो प्राणी सम्पूर्ण नरकोंमें नाना प्रकारकी यातनाएँ भोग रहे

* न कृष्टे शस्यमध्ये वा गोव्रजे जनसंसदि।
न वर्त्मनि न नद्यादितीर्थेषु पुरुषर्षभ॥
नाप्सु नैवाम्भसस्तीरे श्मशाने न समाचरेत्।
उत्सर्गं वै पुरीषस्य मूत्रस्य च विसर्जनम्॥
(वि० पु० ३।११।११-१२)

उन सबकी तृप्तिके लिये मैंने यह अन्न प्रस्तुत किया है; वे इससे प्रसन्न हों।' इस प्रकार उच्चारण करके गृहस्थ पुरुष श्रद्धापूर्वक समस्त जीवोंके उपकारके लिये पृथ्वीपर अन्नदान करे, क्योंकि गृहस्थ ही सबका आश्रय है। नरेश्वर! तदनन्तर कुत्ता, चाण्डाल, पक्षिगण तथा और भी जो कोई पतित एवं पुत्रहीन पुरुष हों, उनकी तृप्तिके लिये पृथ्वीपर बलिभाग रखे।

फिर गो-दोहनकालपर्यन्त अथवा इच्छानुसार इससे भी कुछ अधिक देरतक अतिथि ग्रहण करनेके लिये घरके आँगनमें प्रतीक्षा करे। यदि अतिथि आ जाय तो उसका स्वागतादिसे तथा आसन देकर और चरण धोकर सत्कार करे। फिर श्रद्धापूर्वक भोजन कराकर मधुर वाणीसे प्रश्नोत्तर करके तथा उसके जानेके समय पीछे-पीछे जाकर उसको प्रसन्न करे। जिसके कुल और नामका कोई पता न हो तथा अन्य देशसे आया हो, उसी अतिथिका सत्कार करे, अपने ही गाँवमें रहनेवाले पुरुषकी अतिथिरूपसे पूजा नहीं करनी चाहिये। जिसके पास कोई सामग्री न हो, जिससे कोई सम्बन्ध न हो, जिसके कुल-शीलका कोई पता न हो और जो भोजन करना चाहता हो, उस अतिथिका सत्कार किये बिना भोजन करनेसे मनुष्य अधोगतिको प्राप्त होता है। गृहस्थ पुरुषको चाहिये कि आये हुए अतिथिके अध्ययन, गोत्र, आचरण और कुल आदिके विषयमें कुछ भी न पूछकर हिरण्यगर्भ-बुद्धिसे उसकी पूजा करे। नृप! मिल सके तो अतिथि-सत्कारके अनन्तर अपने ही देशके एक और श्रोत्रिय ब्राह्मणको जिसके आचार और कुल आदिका ज्ञान हो, पितृगणके लिये भोजन करावे। भूपाल! मनुष्ययज्ञकी विधिसे 'मनुष्येभ्यो हन्त' इत्यादि मन्त्रोच्चारणपूर्वक पहले ही निकालकर अलग रक्खे हुए हन्तकार नामक अन्नसे उस श्रोत्रिय ब्राह्मणको भोजन करावे।

इस प्रकार देवता, अतिथि और ब्राह्मणको अन्न देकर, यदि सामर्थ्य हो तो परिव्राजक और ब्रह्मचारियोंको भी अपने इच्छानुसार भिक्षा दे। तीन पहले तथा भिक्षुगण—ये चारों अतिथि कहलाते हैं। राजन्! इन चारोंका भोजन आदिसे पूजन करके मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। जिसके घरसे अतिथि निराश होकर लौट जाता है, उसे वह अपने पाप देकर उसके शुभ कर्मोंको ले जाता है। नरेश्वर! धाता, प्रजापति, इन्द्र, अग्नि, वसुगण और अर्यमा—ये समस्त देवगण अतिथिमें प्रविष्ट होकर अन्न भोजन करते हैं। अतः मनुष्यको अतिथि-पूजाके लिये निरन्तर प्रयत्न करना चाहिये। जो पुरुष अतिथिको दिये बिना भोजन करता है, वह तो केवल पाप ही भोग करता है। तदनन्तर गृहस्थ पुरुष पितृगृहमें रहनेवाली विवाहिता कन्या, दुखिया (विधवा) और गर्भिणी स्त्री तथा वृद्ध और बालकोंको संस्कृत अन्नसे भोजन कराकर अन्तमें स्वयं भोजन करे। जो मनुष्य इन सबको भोजन कराये बिना स्वयं भोजन कर लेता है, वह पापमय भोजन करता है और अन्तमें मरकर नरकमें कफ भक्षण करनेवाला कीड़ा होता है। जो व्यक्ति स्नान किये बिना भोजन करता है, वह मल भक्षण करता है, जप किये बिना भोजन करनेवाला रक्त पान करता है, संस्कारहीन अन्न खानेवाला मूत्र पान करता है तथा जो बालक-वृद्ध आदिसे पहले आहार करता है, वह विष्ठाहारी है। इसी प्रकार बिना होम किये भोजन करनेवाला मानो कीड़े खाता है और बिना दान किये खानेवाला विषभोजी है*।

अतः राजेन्द्र! गृहस्थको जिस प्रकार भोजन करना चाहिये—जिस प्रकार भोजन करनेसे पुरुषको पाप-बन्धन नहीं होता तथा इहलोकमें अत्यन्त आरोग्य, बल-बुद्धिकी प्राप्ति और अरिष्टोंकी शान्ति होती है—वह भोजन-विधि सुनो। गृहस्थको चाहिये कि स्नान करनेके अनन्तर यथाविधि देव, ऋषि और पितृगणका तर्पण करके हाथमें उत्तम रत्न (मुद्रिका) धारण किये पवित्रतापूर्वक भोजन करे। नृप! संध्यापूर्वक गायत्रीजप तथा अग्निहोत्रके अनन्तर शुद्ध वस्त्र धारण कर हाथ-पाँव और मुँह धोकर प्रीतिपूर्वक भोजन करे। राजन्! भोजनके समय इधर-उधर न देखे। मनुष्यको चाहिये कि पूर्व अथवा उत्तरकी ओर मुख करके, अन्यमना न होकर उत्तम और पथ्य अन्नको प्रोक्षणके लिये रखे हुए मन्त्रपूत जलसे छिड़ककर भोजन करे। जो अन्न दुराचारी व्यक्तिका लाया हुआ हो, घृणाजनक हो, अथवा बलिवैश्वदेव आदि संस्कारशून्य हो उसको ग्रहण न करे। नरेश्वर! किसी बेंत आदिके आसन (कुर्सी आदि) पर रक्खे हुए पात्रमें, अयोग्य स्थानमें, असमय (संध्या आदि काल) में अथवा अत्यन्त संकुचित स्थानमें भोजन न करे। मनुष्यको चाहिये कि परोसे हुए भोजनका अग्रभाग अग्निको देकर भोजन करे। नृप! जो अन्न मन्त्रसे पवित्र किया हुआ और श्रेष्ठ हो तथा जो बासी न हो, उसीको भोजन करे। परंतु फल, मूल तथा बिना पकाये हुए लेह्य (चटनी) आदि और गुड़के लिये ऐसा नियम नहीं है। नरेश्वर! सारहीन पदार्थों-

* अस्नानाशी मलं भुङ्क्ते ह्यजपी पूयशोणितम्।
असंस्कृतान्नभुङ्मूत्रं बालादिप्रथमं शकृत्॥
अहोमी च कृमीन् भुङ्क्ते अदत्त्वा विषमश्नुते।
(वि० पु० ३। ११। ७१-७२)

को कभी न खाय । पृथ्वीपते ! विवेकी पुरुष पवित्र मधु, जल, दही, घी और सत्तूके सिवा और किसी पदार्थको पूरा न खाय ।

भोजन एकाग्रचित्त होकर करे तथा प्रथम मधुर रस, फिर लवण और अम्ल (खट्टा) रस तथा अन्तमें कटु और तीखे पदार्थोंको खाय । जो पुरुष पहले द्रव पदार्थोंको, बीचमें ठोस वस्तुओंको तथा अन्तमें फिर द्रव पदार्थोंको ही खाता है, वह कभी बल तथा आरोग्यसे हीन नहीं होता । इस प्रकार वाणीका संयम करके शास्त्रविहित अन्न भोजन करे । अन्नकी निन्दा न करे । प्रथम पाँच ग्रास अत्यन्त मौन होकर ग्रहण करे, उनसे पञ्चप्राणोंकी तृप्ति होती है । भोजनके अनन्तर भली प्रकार आचमन करे और फिर पूर्व या उत्तरकी ओर मुख करके हाथोंको उनके मूलदेशतक धोवे ।

तदनन्तर स्वस्थ और शान्तचित्तसे आसनपर बैठकर अपने इष्टदेवोंका चिन्तन (ध्यान) करे । तत्पश्चात् सावधान होकर न्याययुक्त आजीविकाके कार्योंमें लग जाय । फिर सच्छास्त्रोंके अवलोकन आदिसे शेष दिनको व्यतीत करे और सायंकालके समय सावधानतापूर्वक संध्योपासन करे ।

राजन् ! बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि सायकालके समय सूर्यके रहते हुए और प्रातःकाल तारागणके चमकते हुए ही भली प्रकार आचमनादि करके विधिपूर्वक सन्ध्योपासन और गायत्रीजप करे* । जो पुरुष रुग्णावस्थाको छोड़कर और कभी सूर्यके उदय अथवा अस्तके समय सोता है, वह प्रायश्चित्तका भागी होता है । नृप ! जो द्विज प्रातः अथवा सायंकालीन संध्योपासन नहीं करते, वे दुरात्मा अन्धतामिस्र नरकमें जाते हैं† ।

तदनन्तर पृथ्वीपते ! सायंकालके समय सिद्ध किये हुए अन्नसे गृहपत्नी मन्त्रहीन बलिवैश्वदेव करे । बुद्धिमान् पुरुष उस समय आये हुए अतिथिका भी सामर्थ्यानुसार सत्कार करे । राजन् ! प्रथम पाँव धुलाने, आसन देने और स्वागतसूचक विनम्र वचन कहनेसे तथा फिर भोजन कराने और शयन करानेसे अतिथिका सत्कार किया जाता है । नृप ! दिनके समय अतिथिके लौट जानेसे जितना पाप लगता है, उससे आठगुना पाप [illegible] अतः राजेन्द्र ! [illegible] पुरुष अपनी सामर्थ्यानुसार [illegible] क्योंकि उसका पूजन करनेसे [illegible] हो जाता है । मनुष्यको [illegible] उसे भोजनके लिये अन्न, शाक [illegible] लिये शय्या या घास-फूसका बिछौना [illegible] उसका सत्कार करे ।

नृप ! तदनन्तर गृहस्थ पुरुष [illegible] तथा हाथ-पाँव धोकर [illegible] पायी बड़ी न हो, टूटी हुई हो, [illegible] अथवा जिसमें जीव हों या जिसपर [illegible] उस शय्यापर न सोवे । नृप ! [illegible] दक्षिणकी ओर सिर रखना चाहिये । [illegible] ओर सिर रखना रोगदायक है ।

पृथिवीपते ! ऋतुकालमें अपनी ही [illegible] उचित है । पुंल्लिङ्ग नक्षत्रमें युग्म और [illegible] रात्रियोंमें शुभ समयमें स्त्रीप्रसङ्ग करे । [illegible] रोगिणी, रजस्वला, निरभिलाषिणी, [illegible] अथवा गर्भिणी हो तो उसका सङ्ग न करे । [illegible] चतुर न हो, परामिलाषिणी [illegible] क्षुधार्ता हो, अधिक भोजन किये हुए हो [illegible] उसके पास न जाय, और यदि स्वयं [illegible] स्त्रीगमन न करे । पुरुषको [illegible] अनन्तर माला और गन्ध धारणकर [illegible] युक्त होकर स्त्रीगमन करे । [illegible] हो अथवा क्षुधित हो, उस समय [illegible]

राजेन्द्र ! चतुर्दशी, [illegible] सूर्यकी संक्रान्ति—ये सब पर्वदिन हैं । [illegible] और स्त्रीका भोग करनेवाला पुरुष [illegible] मूत्रसे भरे नरकमें पड़ता है । [illegible] इन समस्त पर्वदिनोंमें [illegible] पुराण, ध्यान और [illegible] पपरी आदि अन्य [illegible] अथवा अनादर [illegible] न करे । पृथ्वीपते ! [illegible] पशुशालामें, चैत्यवृक्ष, [illegible] भी मैथुन करना उचित नहीं है । [illegible] पर्वदिनोंमें प्रातःकाल और [illegible] के समय बुद्धिमान् पुरुष मैथुनमें प्रवृत्त न हो [illegible]

---

* दिनान्तसन्ध्यां सूर्येण पूर्वामृक्षैर्युतां बुधः ।
उपतिष्ठेद्यथान्याय्यं सम्यगाचम्य पार्थिव ॥
(वि० पु० ३ । ११ । ९८)

† उपतिष्ठन्ति वै संध्यां ये न पूर्वां न पश्चिमाम् ।
व्रजन्ति ते दुरात्मानस्तामिस्रं नरकं नृप ॥
(वि० पु० ३ । ११ । १०२)

नृप ! दिनमें स्त्रीगमन करनेसे पाप होता है, पृथ्वीपर करनेसे रोग होते हैं और जलाशयमें स्त्रीप्रसङ्ग करनेसे अमङ्गल होता है। परस्त्रीसे तो वाणीसे क्या, मनसे भी प्रसङ्ग न करे; क्योंकि उनसे मैथुन करनेवालोंको सर्प और कीटादि होना पड़ता है। परस्त्रीकी आसक्ति पुरुषको इहलोक और परलोक दोनों जगह भय देनेवाली है; इहलोकमें उसकी आयु क्षीण हो जाती है और मरनेपर वह नरकमें जाता है। ऐसा जानकर बुद्धिमान् पुरुष उपर्युक्त दोषोंसे रहित अपनी स्त्रीसे ही ऋतुकालमें प्रसङ्ग करे तथा उसकी विशेष अभिलाषा हो तो बिना ऋतुकालके भी गमन करे।

गृहस्थसम्बन्धी सदाचारका वर्णन

और्व बोले—गृहस्थ पुरुषको नित्यप्रति देवता, गौ, ब्राह्मण, सिद्धगण, वयोवृद्ध तथा आचार्यकी पूजा करनी चाहिये और दोनों समय संध्यावन्दन तथा अग्निहोत्रादि कर्म करने चाहिये*। गृहस्थ पुरुष सदा ही संयमपूर्वक रहकर बिना कहींसे कटे हुए दो वस्त्र धारण करे। किसीका किञ्चित्-मात्र भी धन हरण न करे और थोड़ा-सा भी अप्रिय भाषण न करे। जो मिथ्या हो ऐसा प्रिय वचन भी कभी न बोले और न कभी दूसरोंके दोषोंको ही कहे। पुरुषश्रेष्ठ ! दूसरोंकी स्त्री अथवा दूसरोंके साथ वैर करनेमें कभी रुचि न करे, निन्दित सवारीमें कभी न चढ़े और नदी तीरकी छायाका कभी आश्रय न ले। बुद्धिमान् पुरुष लोकविद्विष्ट, पतित, उन्मत्त और जिसके बहुत-से शत्रु हों, ऐसे पर-पीडक पुरुषोंके साथ तथा कुलटा, कुलटाके स्वामी, क्षुद्र, मिथ्यावादी, अति-व्ययशील, निन्दापरायण और दुष्ट पुरुषोंके साथ कभी मित्रता न करे और न कभी मार्गमें अकेला चले। नरेश्वर ! जलप्रवाहके वेगमें सामने पड़कर स्नान न करे, जलते हुए घरमें प्रवेश न करे और वृक्षकी चोटीपर न चढ़े। दाँतोंको परस्पर न घिसे, नाकको न कुरेदे तथा मुखको बंद किये हुए जमुहाई न ले और न बंद मुखसे खाँसे। बुद्धिमान् पुरुष जोरसे न हँसे और शब्द करते हुए अधोवायु न छोड़े; तथा नखोंको न चबावे, तिनका न तोड़े और पृथ्वीपर रेखा न करे।

राजन् ! विचक्षण पुरुष मूँछ-दाढ़ीके बालोंको न चबावे, दो ढेलोंको परस्पर न रगड़े और अपवित्र एव निन्दित नक्षत्रोंको न देखे। नग्न परस्त्रीको और उदय अथवा अस्त होते हुए सूर्यको न देखे। चौराहा, चैत्यवृक्ष, श्मशान, उपवन और दुष्टा स्त्रीकी समीपता—इन सबका रात्रिके समय सर्वदा त्याग करे। बुद्धिमान् पुरुष अपने पूजनीय देवता, ब्राह्मण और तेजोमय पदार्थोंकी छायाको कभी न लाँघे तथा शून्य वनखण्डी और शून्य घरमें कभी अकेला न रहे। केश, अस्थि, कण्टक, अपवित्र वस्तु, बलि, भस्म, तुष तथा स्नानके जलसे भीगी हुई पृथ्वीका दूरहीसे त्याग करे। प्राज्ञ पुरुषको चाहिये कि अनार्य व्यक्तिका सङ्ग न करे, कुटिल पुरुषमें आसक्त न हो, सर्पके पास न जाय और नींद खुलनेपर अधिक देरतक लेटा न रहे। नरेश्वर ! बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि न तो बिल्कुल जागे ही और न बिल्कुल सोता ही रहे। स्नान करने, बैठने, शय्यासेवन करने और व्यायाम करनेमें अधिक समय न लगावे। राजेन्द्र ! प्राज्ञ पुरुष दाँत और सींगवाले पशुओंको, ओसको तथा सामनेकी वायु और धूपको सर्वदा परित्याग करे। नग्न होकर स्नान, शयन और आचमन न करे तथा केश खोलकर आचमन और देव-पूजन न करे। होम तथा देवार्चन आदि क्रियाओंमें, आचमनमें, पुण्याहवाचन-में और जपमें एक वस्त्र धारण करके प्रवृत्त न हो। संशय-शील व्यक्तियोंके साथ कभी न रहे। सदाचारी पुरुषोंका तो आधे क्षणका सङ्ग भी अति प्रशंसनीय होता है। बुद्धिमान् पुरुष उत्तम अथवा अधम व्यक्तियोंसे विरोध न करे। राजन् ! विवाह और विवाद सदा समान व्यक्तियोंसे ही होना चाहिये। प्राज्ञ पुरुष कलह न बढ़ावे तथा वैरका भी त्याग करे। थोड़ी-सी हानि सह ले, किंतु वैरसे कुछ लाभ होता हो तो उसे भी छोड़ दे। स्नान करनेके अनन्तर स्नानसे भीगी हुई धोती अथवा हाथोंसे शरीरको न पोंछे तथा खड़े-खड़े केशोंको न झाड़े और खड़े होकर आचमन भी न करे। पैरके ऊपर पैर न रक्खे, गुरुजनोंके सामने पैर न फैलावे और धृष्टतापूर्वक उनके सामने कभी उच्चासनपर न बैठे।

देवालय, चौराहा, माङ्गलिक द्रव्य और पूज्य व्यक्ति—इन सबको बायीं ओर रखकर न निकले। चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, जल, वायु और पूज्य व्यक्तियोंके सम्मुख बुद्धिमान् पुरुष मल-मूत्र-त्याग न करे और न थूके ही। खड़े-खड़े अथवा मार्गमें मूत्र-त्याग न करे तथा श्लेष्मा (थूक), विष्ठा, मूत्र और रक्तको कभी न लाँघे। भोजन, देव-पूजा, माङ्गलिक कार्य और जप-होमादिके समय तथा महापुरुषोंके सामने थूकना

---

* देवगोब्राह्मणान् सिद्धान् वृद्धाचार्यांस्तथार्चयेत्।
द्विसन्ध्यं च नमेत् सन्ध्यामग्नीनुपचरेत्तथा ॥
(वि० पु० ३ । १२ । १)

और छींकना उचित नहीं है । बुद्धिमान् पुरुष स्त्रियोंका अपमान न करे, उनका विश्वास भी न करे तथा उनसे ईर्ष्या और उनका तिरस्कार भी कभी न करे । सदाचारपरायण, प्राज्ञ पुरुष माङ्गलिक द्रव्य और पूज्य व्यक्तियोंका अभिवादन किये बिना कभी अपने घरसे न निकले । चौराहोंको नमस्कार करे, यथासमय अग्निहोत्र करे, दीन-दुखियोंका दुःखसे उद्धार करे और बहुश्रुत साधु पुरुषोंका सत्सङ्ग करे ।

जो पुरुष देवता और ऋषियोंकी पूजा करता है, पितृगणको पिण्डोदक देता है और अतिथिका सत्कार करता है, वह पुण्यलोकोंको जाता है । जो व्यक्ति जितेन्द्रिय होकर समयानुसार हित, मित और प्रिय भाषण करता है, राजन्! वह आनन्दके हेतुभूत अक्षय लोकोंको (नित्य धामको) प्राप्त होता है । बुद्धिमान्, लज्जावान्, क्षमाशील, आस्तिक और विनयी पुरुष विद्वान् और कुलीन पुरुषोंके योग्य उत्तम लोकोंमें जाता है । अकाल मेघगर्जनके समय, पर्वदिनोंपर, अशौच-कालमें तथा चन्द्र और सूर्यग्रहणके समय बुद्धिमान् पुरुष विद्याध्ययन न करे । जो व्यक्ति क्रोधमें भरे हुएको शान्त करता है, सबका बन्धु है, मत्सरशून्य है, भयभीतको सान्त्वना देनेवाला है और साधु-स्वभाव है, उसके लिये स्वर्ग तो बहुत थोड़ा फल है । जिसे शरीर-रक्षाकी इच्छा हो, वह पुरुष वर्षा और धूपमें [illegible] दण्ड लेकर [illegible] पहनकर जाय । बुद्धिमान् पुरुषको [illegible] अथवा दूरके पदार्थोंको देखते हुए [illegible] युगमात्र (चार हाथ) [illegible]

जो जितेन्द्रिय होकर [illegible] उसके धर्म, अर्थ और कामकी [illegible] जो विद्या-विनय-सम्पन्न, सदाचारी प्राज्ञ पुरुष, [illegible] पापमय व्यवहार नहीं करता, [illegible] करता है तथा जिसका अन्तःकरण मैत्री [illegible] मुक्ति उसकी मुट्ठीमें रहती है । जो [illegible] काम, क्रोध और लोभादिके वशीभूत नहीं होते [illegible] सदाचारमें स्थित रहते हैं, उनके प्रभावसे [illegible] है । अतः प्राज्ञ पुरुषको [illegible] प्रसन्नताका कारण हो । यदि किसी [illegible] दूसरोंको दुःख होता जाने तो मौन रहे । [illegible] भी अहितकर समझे तो उसे न कहे, [illegible] अच्छा है, भले ही वह अत्यन्त अप्रिय क्यों न हो । [illegible] इहलोक और परलोकमें प्राणियोंके [illegible] पुरुष मन, वचन और कर्मसे उनका [illegible]

आभ्युदयिक श्राद्ध, प्रेतकर्म तथा श्राद्धादिका विचार

और्व बोले—पुत्रके उत्पन्न होनेपर पिताको सचैल (वस्त्रोंसहित) स्नान करना चाहिये । उसके पश्चात् जातकर्म-संस्कार और आभ्युदयिक (नान्दीमुख) श्राद्ध करने चाहिये । फिर तन्मयभावसे अनन्यचित्त होकर देवता और पितृगणके लिये क्रमशः दायीं और बायीं ओर बिठाकर दो-दो ब्राह्मणोंका पूजन करे और उन्हें भोजन करावे । राजन्! पूर्व अथवा उत्तरकी ओर मुख करके दधि, अक्षत और बदरीफलसे बने हुए पिण्डोंको देवतीर्थ[1] या प्रजापति-तीर्थसे[2] दान करे । पृथ्वीनाथ ! इस आभ्युदयिक श्राद्धसे नान्दीमुख नामक पितृगण प्रसन्न होते हैं । अतः सब प्रकारकी अभिवृद्धिके समय पुरुषोंको इसका अनुष्ठान करना चाहिये । कन्या और पुत्रके विवाहमें, गृह-प्रवेशमें, बालकोंके नामकरण तथा चूडाकर्म आदि संस्कारोंमें सीमन्तोन्नयन-संस्कारमें और पुत्र आदिके मुख देखनेके समय [illegible] नामक पितृगणका पूजन करे । [illegible] पितृपूजाका यह सनातन क्रम [illegible] की विधि सुनो ।

[illegible]

अनन्तर [illegible] करें और फिर [illegible] होकर [illegible] करते हुए [illegible] दें ।

तदनन्तर [illegible] मानमें प्रवेश करती हैं, [illegible]

[1] अंगुलियोंके अग्रभाग । [2] कनिष्ठिकाका मूलभाग ।

* [illegible] नहीं [illegible] हैं ।

[illegible] अपने ग्राममें प्रवेश करें और कटकर्म[1] समाप्त करके पृथ्वीपर तृण आदि बिछाकर शयन करें। मृत पुरुषके लिये नित्यप्रति पृथ्वीपर पिण्डदान करना चाहिये और केवल दिनके समय पवित्र अन्न खाना चाहिये। अशौच-कालमें यदि ब्राह्मणोंकी इच्छा हो तो उन्हें भोजन कराना चाहिये, क्योंकि उस समय ब्राह्मण और बन्धुवर्गके भोजन करनेसे मृत जीवकी तृप्ति होती है; अशौचके पहले, तीसरे, सातवें अथवा नवें दिन वस्त्र त्यागकर और बहिर्देशमें स्नान करके तिलोदक दे।

नृप! अशौचके चौथे दिन अस्थिचयन करना चाहिये; उसके अनन्तर अपने सपिण्ड बन्धुजनोंका अङ्ग स्पर्श किया जा सकता है। राजन्! उस समयसे समानोदक* पुरुष चन्दन और पुष्प-धारण आदि क्रियाओंके सिवा, पञ्चयज्ञादि अन्य सब कर्म कर सकते हैं। भस्म और अस्थिचयनके अनन्तर सपिण्ड पुरुषोंद्वारा शय्या और आसनका उपयोग तो किया जा सकता है, किंतु स्त्री-संसर्ग नहीं किया जा सकता। बालक, देशान्तरस्थित व्यक्ति, पतित और तपस्वीके मरनेपर तथा जल, अग्नि और उद्बन्धन (फाँसी लगाने) आदिद्वारा आत्मघात करनेपर शीघ्र ही अशौचकी निवृत्ति हो जाती है†। मृतकके कुटुम्बका अन्न दस दिनतक न खाना चाहिये तथा अशौच कालमें दान, परिग्रह, होम और स्वाध्याय आदि कर्म भी नहीं करने चाहिये। यह दस दिनका अशौच ब्राह्मणका है; क्षत्रियका अशौच बारह दिन और वैश्यका पंद्रह दिन रहता है तथा शूद्रकी अशौचशुद्धि एक मासमें होती है। अशौचके अन्तमें इच्छानुसार अयुग्म (तीन, पाँच, सात, नौ आदि) ब्राह्मणोंको भोजन करावे तथा उनकी उच्छिष्ट (जूठन) के निकट प्रेतकी तृप्तिके लिये कुशापर पिण्डदान करे। अशौच शुद्धि हो जानेपर ब्रह्मभोजके अनन्तर ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंको क्रमशः जल, शस्त्र, कोड़ा और लाठीका स्पर्श करना चाहिये।

तदनन्तर ब्राह्मण आदि वर्णोंके जो-जो जातीय धर्म बतलाये गये हैं, उनका आचरण करे और स्वधर्मानुसार न्याययुक्त उपार्जित जीविकासे निर्वाह करे। फिर प्रतिमास मृत्युतिथिपर एकोद्दिष्ट-श्राद्ध करे, जो आवाहनादि क्रिया और विश्वेदेव-सम्बन्धी ब्राह्मणके आमन्त्रण आदिसे रहित होने चाहिये। उस समय एक अर्घ्य और एक पवित्रक देना चाहिये तथा बहुत-से ब्राह्मणोंके भोजन करनेपर भी मृतकके लिये एक ही पिण्ड-दान करना चाहिये। तदनन्तर यजमानके 'अभिरम्यताम्' ऐसा कहनेपर ब्राह्मणगण 'अभिरताः स्मः' ऐसा कहे और फिर पिण्डदान समाप्त होनेपर 'अमुकस्य अक्षय्यमिदमुपतिष्ठताम्' इस वाक्यका उच्चारण करें। इस प्रकार एक वर्षतक प्रतिमास एकोद्दिष्ट कर्म करनेका विधान है। राजेन्द्र! वर्षके समाप्त होनेपर सपिण्डीकरण करे; उसकी विधि सुनो।

पृथ्वीपते! इस सपिण्डीकरण कर्मको भी एक वर्ष, छः मास अथवा बारह दिनके अनन्तर एकोद्दिष्टश्राद्धकी विधिसे ही करना चाहिये। इसमें तिल, गन्ध और जलसे युक्त चार पात्र रक्खे। इनमेंसे एक पात्र मृत पुरुषका होता है तथा तीन पितृगणके होते हैं। फिर मृत पुरुषके पात्रमें स्थित जलादिसे पितृगणके पात्रोंका सेचन करे। इस प्रकार मृत पुरुषको पितृत्व प्राप्त हो जानेपर सम्पूर्ण श्राद्धधर्मोंके द्वारा उस मृत पुरुषसे ही आरम्भ कर पितृगणका पूजन करे। राजन्! पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, भाई, भतीजा अथवा अपनी सपिण्ड संततिमें उत्पन्न हुआ पुरुष ही श्राद्धादि क्रिया करनेका अधिकारी होता है। यदि इन सबका अभाव हो तो समानोदककी संतति या मातृपक्षके सपिण्ड अथवा समानोदकको इसका अधिकार है। राजन्! मातृकुल और पितृकुल दोनोंके नष्ट हो जानेपर स्त्री ही इस क्रियाको करे। अथवा यदि स्त्री भी न हो तो साथियोंमेंसे ही कोई करे या बान्धवहीन मृतकके धनसे राजा ही उसके सम्पूर्ण प्रेत-कर्म करे।

सम्पूर्ण प्रेत-कर्म तीन प्रकारके हैं—पूर्वकर्म, मध्यमकर्म तथा उत्तरकर्म। इनके पृथक्-पृथक् लक्षण सुनो। दाहसे लेकर जल और शस्त्र आदिके स्पर्शपर्यन्त जितने कर्म हैं, उनको पूर्वकर्म कहते हैं; तथा प्रत्येक मासमें जो एकोद्दिष्टश्राद्ध किया जाता है, वह मध्यमकर्म कहलाता है। नृप! सपिण्डीकरणके पश्चात् मृतक व्यक्तिके पितृत्वको प्राप्त हो जानेपर जो पितृकर्म किये जाते हैं, वे उत्तरकर्म कहलाते हैं। माता, पिता, सपिण्ड, समानोदक, समूहके लोग अथवा उसके धनका

---

१. [illegible] किये जानेवाले प्रेतसम्बन्धी कृत्यको [illegible] कहते हैं।

* समानोदक (संततिमें समान जलाधिकारी अर्थात् सगोत्र) और सपिण्ड (पिण्डाधिकारी)।

† [illegible] विषयमें यह नियम नहीं है, जैसा कि कहा है—

[illegible] हि पुत्रक।
[illegible] भवेत्॥

अधिकारी राजा पूर्वकर्म कर सकते हैं; किंतु उत्तरकर्म केवल पुत्र, दौहित्र आदि अथवा उनकी सन्तानको ही करना चाहिये। राजन्! प्रतिवर्ष मरण-दिनपर स्त्रियोंका भी उत्तर-कर्म पुरोहित [illegible] अनघ! वे उत्तर [illegible] करनी चाहिये, यह सुनो।

श्राद्ध-प्रशंसा, श्राद्धमें पात्रापात्रका विचार

और्व बोले—राजन्! श्रद्धासहित श्राद्धकर्म करनेसे मनुष्य ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, अश्विनीकुमार, सूर्य, अग्नि, वसुगण, मरुद्गण, विश्वेदेव, पितृगण, पक्षी, मनुष्य, पशु, सरीसृप, ऋषिगण तथा भूतगण आदि सम्पूर्ण जगत्‌को प्रसन्न कर देता है। नरेश्वर! प्रत्येक मासके कृष्णपक्षकी पञ्चदशी (अमावास्या) और अष्टका (हेमन्त और शिशिर ऋतुओंके चार महीनोंकी शुक्ला अष्टमियों) पर श्राद्ध करे। यह नित्यश्राद्धकाल है। अब काम्यश्राद्धका काल बतलाता हूँ, श्रवण करो।

जिस समय श्राद्धयोग्य पदार्थ या किसी विशिष्ट ब्राह्मणको घरमें आया जाने, अथवा जब उत्तरायण या दक्षिणायनका आरम्भ या व्यतीपात हो, तब काम्यश्राद्धका अनुष्ठान करे। विषुवसंक्रान्तिपर, सूर्य और चन्द्रग्रहणपर, सूर्यके प्रत्येक राशिमें प्रवेश करते समय, नक्षत्र अथवा ग्रहकी पीडा होनेपर दुःस्वप्न देखनेपर और घरमें नवीन अन्न आनेपर भी काम्यश्राद्ध करे। जो अमावास्या अनुराधा, विशाखा या स्वातिनक्षत्रयुक्ता हो, उसमें श्राद्ध करनेसे पितृगण आठ वर्षतक तृप्त रहते हैं तथा जो अमावास्या पुष्य, आर्द्रा या पुनर्वसु नक्षत्रयुक्ता हो, उसमें पूजित होनेसे पितृगण बारह वर्षतक तृप्त रहते हैं। जो पुरुष पितृगण और देवगणको तृप्त करना चाहते हों, उनके लिये धनिष्ठा, पूर्वभाद्रपदा अथवा शतभिषा नक्षत्रयुक्त अमावास्या अति दुर्लभ है। पृथ्वीपते! जब अमावास्या इन नौ नक्षत्रोंसे युक्त होती है, उस समय किया हुआ श्राद्ध पितृगणको अत्यन्त तृप्तिदायक होता है। इनके अतिरिक्त पितृभक्त इलापुत्र महात्मा पुरूरवाके अति विनीत भावसे पूछनेपर श्रीसनत्कुमारजीने जिनका वर्णन किया था, वे अन्य तिथियाँ भी सुनो।

श्रीसनत्कुमारजी बोले—वैशाख मासकी शुक्ला तृतीया, कार्तिक शुक्ला नवमी, भाद्रपद कृष्णा त्रयोदशी तथा माघ मासकी अमावास्या—इन चार तिथियोंको पुराणोंमें 'युगाद्या' कहा है। ये चारों तिथियाँ अनन्त पुण्यदायिनी हैं। चन्द्रमा या सूर्यके ग्रहणके समय, तीन अष्टकाओंमें अथवा उत्तरायण या दक्षिणायनके आरम्भमें जो पुरुष [illegible] तिलसहित जल भी दान करता है [illegible] वर्षके लिये श्राद्ध कर देता है; यह [illegible] ही कहते हैं। यदि [illegible] शतभिषा नक्षत्रका योग हो [illegible] यह परम उत्कृष्ट [illegible] होता है। [illegible] पुरुषोंको ऐसा समय नहीं [illegible] (माघकी अमावास्यामें) धनिष्ठा [illegible] तो अपने ही कुलमें उत्पन्न हुए [illegible] अन्नोदकसे पितृगणको [illegible] तथा यदि उसके साथ पूर्वभाद्रपद [illegible] समय पितृगणके लिये [illegible] प्राप्त होती है और वे [illegible] हैं। गङ्गा, शतद्रु, यमुना, [illegible] नैमिषारण्यस्थिता गोमतीमें [illegible] अर्चन (तर्पण) करनेसे [illegible] देता है। पितृगण [illegible] (भाद्रपदशुक्ला [illegible]) [illegible] फिर माघकी [illegible] पुण्यतीर्थोंकी [illegible] चित्त, शुद्ध धन, प्रशस्त [illegible] परम भक्ति—[illegible]

पार्थिव! अब [illegible] [illegible] करना चाहिये। [illegible] कहते हैं—[illegible] [illegible] होकर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

होनेपर वे ब्राह्मणश्रेष्ठोंको तथा धान्य और थोड़ी-सी दक्षिणा ही देगा। और यदि इसमें भी असमर्थ होगा तो किन्हीं द्विजश्रेष्ठोंको प्रणाम कर एक मुट्ठी तिल ही देगा। अथवा हमारे उद्देश्यसे पृथ्वीपर भक्तिविनम्र चित्तसे सात-आठ तिलोंसे युक्त जलाञ्जलि ही देगा। और यदि इसका भी अभाव होगा तो कहीं-न-कहींसे एक दिनका चारा लाकर प्रीति और श्रद्धापूर्वक हमारे उद्देश्यसे गौको खिलायेगा। तथा इन सभी वस्तुओंका अभाव होनेपर जो वनमें जाकर अपने कक्षमूल (बगल) को दिखाता हुआ सूर्य आदि दिक्पालोंसे उच्चस्वरसे यह कहेगा—'मेरे पास श्राद्धकर्मके योग्य न वित्त है, न धन है और न कोई अन्य सामग्री है, अतः मैं अपने पितृगणको नमस्कार करता हूँ, वे मेरी भक्तिसे ही तृप्तिलाभ करें। मैंने अपनी दोनों भुजाएँ आकाशमें उठा रक्खी हैं।''

और्व बोले—राजन्! धनके होने अथवा न होनेपर पितृगणने जिस प्रकार बतलाया है, वैसा ही, जो पुरुष आचरण करता है, वह उस आचारसे विधिपूर्वक श्राद्ध ही कर देता है।

श्राद्ध-विधि

और्व बोले—राजन्! श्राद्धकालमें जैसे गुणवाले ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये वह बतलाता हूँ, सुनो। त्रिणाचिकेत[1], त्रिमधु[2], त्रिसुपर्ण[3], छहों वेदाङ्गोंके जाननेवाले, वेदवेत्ता, श्रोत्रिय, योगी और ज्येष्ठसामग; तथा ऋत्विक्, भानजे, दौहित्र, जामाता, श्वशुर, मामा, तपस्वी, पञ्चाग्नि तपनेवाले, शिष्य, सम्बन्धी और माता-पिताके प्रेमी—इन ब्राह्मणोंको श्राद्धकर्ममें नियुक्त करे। इनमेंसे त्रिणाचिकेत आदि पहले कहे हुओंको पूर्वकालमें नियुक्त करे और ऋत्विक् आदि पीछे बतलाये हुओंको पितरोंकी तृप्तिके लिये उत्तरकर्ममें भोजन करावे। मित्रघाती, स्वभावसे ही विकृत नखोंवाला, नपुंसक, काले दाँतोंवाला, कन्यागामी, अग्नि और वेदका त्याग करनेवाला, सोमरस बेचनेवाला, लोकनिन्दित, चोर, चुगलखोर, ग्रामपुरोहित, वेतन लेकर पढ़ानेवाला अथवा पढ़नेवाला, पुनर्विवाहिताका पति, माता-पिताका त्याग करनेवाला, शूद्रकी संतानका पालन करनेवाला, शूद्राका पति तथा देवोपजीवी ब्राह्मण श्राद्धमें निमन्त्रण देने योग्य नहीं है।

श्राद्धसे पहले दिन बुद्धिमान् पुरुष श्रोत्रिय आदि विहित ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे और उनसे यह कह दे कि 'आपको पितृ-श्राद्धमें और आपको विश्वेदेव-श्राद्धमें नियुक्त होना है' उन निमन्त्रित ब्राह्मणोंके सहित श्राद्ध करनेवाला पुरुष उस दिन क्रोधादि तथा स्त्रीगमन और परिश्रम आदि न करे, क्योंकि श्राद्ध करनेमें यह महान् दोष माना गया है। श्राद्धमें निमन्त्रित होकर या भोजन करके अथवा निमन्त्रण करके या भोजन कराकर जो पुरुष स्त्रीप्रसङ्ग करता है, वह अपने पितृगणको मानो वीर्यके कुण्डमें डुबोता है। अतः श्राद्धके प्रथम दिन पहले तो उपर्युक्त गुणविशिष्ट द्विजश्रेष्ठोंको निमन्त्रित करे और यदि उस दिन कोई अनिमन्त्रित तपस्वी ब्राह्मण घर आ जायँ तो उन्हें भी भोजन करावे।

घर आये हुए ब्राह्मणोंका पहले पाद-शुद्धि आदिसे सत्कार करे। फिर हाथ धोकर उन्हें आचमन करानेके अनन्तर आसनपर बिठावे। अपनी सामर्थ्यानुसार पितृगणके लिये अयुग्म और देवगणके लिये युग्म ब्राह्मण नियुक्त करे अथवा दोनों पक्षोंके लिये एक-एक ब्राह्मणकी ही नियुक्ति करे। और इसी प्रकार वैश्वदेवके सहित मातामह-श्राद्ध करे अथवा पितृपक्ष और मातामह-पक्ष दोनोंके लिये भक्तिपूर्वक एक ही वैश्वदेव-श्राद्ध करे। देव-पक्षके ब्राह्मणोंको पूर्वाभिमुख बिठाकर और पितृ-पक्ष तथा मातामह-पक्षके ब्राह्मणोंको उत्तर-मुख बिठाकर भोजन करावे। नृप! कोई तो पितृ-पक्ष और मातामह-पक्षके श्राद्धोंको अलग-अलग करनेके लिये कहते हैं और कोई महर्षि दोनोंका एक साथ एक पाकमें ही अनुष्ठान करनेके पक्षमें हैं। विज्ञ व्यक्ति प्रथम निमन्त्रित ब्राह्मणोंके बैठनेके लिये कुशा बिछाकर फिर अर्घ्यदान आदिसे विधि-

1. यजुर्वेदके अन्तर्गत 'अयं वाव यः पवते' इत्यादि तीन अनुवाकोंको 'त्रिणाचिकेत' कहते हैं, उसको पढ़नेवाला या उसका अनुष्ठान करनेवाला।

2. 'मधुव्रता' इत्यादि ऋचाका अध्ययन और मधुव्रतका आचरण करनेवाला।

3. 'ब्रह्ममेतु माम्' इत्यादि तीन अनुवाकोंका अध्ययन और तत्सम्बन्धी व्रत करनेवाला।

पूर्वक पूजाकर उनकी अनुमतिसे देवताओंका आवाहन करे। तदनन्तर श्राद्धविधिको जाननेवाला पुरुष यवमिश्रित जलसे देवताओंको अर्घ्यदान करे और उन्हें विधिपूर्वक धूप, दीप, गन्ध तथा माला आदि निवेदन करे। ये समस्त उपचार पितृगणके लिये अपसव्यभावसे* निवेदन करे; और फिर ब्राह्मणोंकी अनुमतिसे दो भागोंमें बँटे हुए कुशाओंका दान करके मन्त्रोच्चारणपूर्वक पितृगणका आवाहन करे तथा राजन्! अपसव्यभावसे तिलोदकसे अर्घ्यादि दे।

नृप! उस समय यदि कोई भूखा पथिक अतिथि-रूपसे आ जाय तो निमन्त्रित ब्राह्मणोंकी आज्ञासे उसे भी यथेच्छ भोजन करावे। अनेक अज्ञातस्वरूप योगिगण मनुष्योंके कल्याणकी कामनासे नाना रूप धारण कर पृथ्वीतलपर विचरते रहते हैं। अतः विज्ञ पुरुष श्राद्धकालमें आये हुए अतिथिका सत्कार अवश्य करे। नरेन्द्र! उस समय अतिथिका सत्कार न करनेसे वह श्राद्ध-क्रियाके सम्पूर्ण फलको नष्ट कर देता है।

पुरुषश्रेष्ठ! तदनन्तर उन ब्राह्मणोंकी आज्ञासे शाक और लवणहीन अन्नसे अग्निमें तीन बार आहुति दे। राजन्! उनमें-से 'अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा' इस मन्त्रसे पहली आहुति, 'सोमाय पितृमते स्वाहा' इससे दूसरी और 'वैवस्वताय स्वाहा' इस मन्त्रसे तीसरी आहुति दे। तदनन्तर आहुतियोंसे बचे हुए अन्नको थोड़ा-थोड़ा सब ब्राह्मणोंके पात्रोंमें परोस दे।

फिर रुचिके अनुकूल अति संस्कारयुक्त मधुर अन्न सबको परोसे और अति मृदुल वाणीसे कहे कि 'आप भोजन कीजिये।' ब्राह्मणोंको भी तद्गतचित्त और मौन होकर प्रसन्न मुखसे सुखपूर्वक भोजन करना चाहिये तथा यजमानको क्रोध और उतावलेपनको छोड़कर भक्तिपूर्वक परोसते रहना चाहिये। फिर 'रक्षोघ्न'† मन्त्रका पाठकर श्राद्धभूमिपर तिल छिड़के तथा अपने पितृरूपसे उन द्विजश्रेष्ठोंका ही चिन्तन करे और कहे कि 'इन ब्राह्मणोंके शरीरोंमें स्थित मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह आदि आज तृप्तिलाभ करें। होमद्वारा सबल होकर मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह आज तृप्तिलाभ करें। मैंने जो पृथ्वीपर पिण्डदान किया है, उससे मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह तृप्तिलाभ करें।

श्राद्धरूपसे कुछ भी निवेदन न कर सकनेके कारण मैंने भक्तिपूर्वक जो कुछ कहा है, उस मेरे भक्ति-भावसे ही मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह तृप्तिलाभ करें। मेरे मातामह (नाना), उनके पिता और उनके भी पिता [illegible] तृप्तिलाभ करें तथा [illegible] हों। [illegible] हव्य-कव्यके भोक्ता [illegible] अतः उनकी सन्निधिसे [illegible] यहाँसे तुरत भाग जायँ।'

तदनन्तर ब्राह्मणोंके तृप्त हो जानेपर [illegible] पृथ्वीपर डाले और आचमनके लिये उन्हें [illegible] और जल दे। फिर भली प्रकार तृप्त हुए उन [illegible] आज्ञा होनेपर समाहित चित्तसे पृथ्वीपर [illegible] पिण्डदान करे और पितृतीर्थसे [illegible] मातामह आदिको भी उस पितृतीर्थसे ही पिण्डदान [illegible] ब्राह्मणोंके उच्छिष्ट (जूठन) के निकट [illegible] भाग करके बिछाये हुए कुशाओंपर [illegible] पुष्प धूपादिसे पूजित पिण्ड-दान करे। तत्पश्चात् [illegible] पितामहके लिये और एक प्रपितामहके लिये [illegible] कुशाओंके मूलमें हाथमें लगे अन्नको [illegible] स्तृप्यन्तु' ऐसा उच्चारण करते हुए [illegible] इसी प्रकार गन्ध और मालादियुक्त [illegible] पूजन कर फिर द्विजश्रेष्ठोंको आचमन [illegible] इसके पीछे भक्तिभावसे तन्मय होकर [illegible] ब्राह्मणोंका 'सुस्वधा' कह आशीर्वाद [illegible] यथाशक्ति दक्षिणा दे। फिर वैश्वदेविक ब्राह्मणोंके [illegible] दक्षिणा देकर कहे कि 'इस दक्षिणासे [illegible] उन ब्राह्मणोंके 'तथास्तु' कहनेपर [illegible] प्रार्थना करे और फिर पहले पितृपक्षके [illegible] ब्राह्मणोंको विदा करे। [illegible] श्राद्धमें भी ब्राह्मण भोजन, दान और [illegible] विधि बतलायी गयी है। [illegible] पक्षोंके श्राद्धोंमें पादशौच [illegible] ब्राह्मणोंसे करे। परंतु [illegible] मातामहपक्षीय ब्राह्मणोंसे ही करे।

तदनन्तर [illegible] विदा करे और उनके [illegible] तथा [illegible] वैश्वदेव [illegible] तथा [illegible]

[illegible] श्राद्धका अनुष्ठान करे। [illegible]

---

* यज्ञोपवीतको दायें कंधेपर करके।

† 'ॐ अपहता असुरा रक्षाᳬसि वेदिषदः' इत्यादि।

कामनाओंको पूर्ण कर देते हैं। दौहित्र (लड़कीका लड़का), कुतप (दिनका आठवाँ मुहूर्त) और तिल—ये तीन तथा चाँदीका दान और उसकी चर्चा तथा उसका कीर्तन-दर्शन आदि (अथवा भगवत्कथा-कीर्तन आदि) करना—ये सब श्राद्धकर्ममें पवित्र माने गये हैं। राजेन्द्र! श्राद्धकर्ताके लिये क्रोध, मार्गगमन और उतावलापन—ये तीन बातें वर्जित हैं; तथा श्राद्धमें भोजन करनेवालोंको भी इन तीनोंका करना उचित नहीं है। राजन्! श्राद्ध करनेवाले पुरुषसे विश्वेदेवगण, पितृगण, मातामह तथा कुटुम्बीजन—सभी संतुष्ट रहते हैं। भूपाल! पितृगणका आधार चन्द्रमा है और चन्द्रमाका आधार योग है, इसलिये श्राद्धमें योगिजनको नियुक्त करना अति उत्तम है। राजन्! यदि श्राद्धभोजी एक सहस्र ब्राह्मणोंके सम्मुख एक योगी भी हो तो वह यजमानके सहित उन सबका उद्धार कर देता है।

श्राद्ध-कर्ममें विहित और अविहित वस्तुओंका विचार

और्व बोले—हवि तथा गव्य (गौके दूध-घी आदि) से पितृगण क्रमशः एक-एक मास अधिक तृप्ति लाभ करते हैं। नरेश्वर! श्राद्धकर्ममें मधु अत्यन्त प्रशस्त और तृप्तिदायक है। पृथ्वीपते! जो पुरुष गयामें जाकर श्राद्ध करता है, उसका पितृगणको तृप्ति देनेवाला वह जन्म सफल हो जाता है। पुरुषश्रेष्ठ! देवधान्य, नीवार और श्याम तथा श्वेत वर्णके श्यामाक (समा) एवं प्रधान-प्रधान वनौषधियाँ श्राद्धके उपयुक्त द्रव्य हैं। जौ, काँगनी, मूँग, गेहूँ, धान, तिल, मटर, कचनार और सरसों—इन सबका श्राद्धमें होना अच्छा है।

नरेश्वर! जिस अन्नसे नवान्न यज्ञ न किया गया हो तथा बड़े उड़द, छोटे उड़द, मसूर, कद्दू, गाजर, प्याज, शलजम, गान्धारक (शालिविशेष), बिना तुषके गिरे हुए धान्यका आटा, ऊसर भूमिमें उत्पन्न हुआ लवण, हींग आदि कुछ-कुछ लाल रंगकी वस्तुएँ, शाकादिमें मिले हुएसे भिन्न केवल लवण और कुछ अन्य वस्तुएँ जिनका शास्त्रमें विधान नहीं है, श्राद्धकर्ममें त्याज्य हैं।

राजन्! जो रात्रिके समय लाया गया हो, अप्रतिष्ठित जलाशयका हो, जिसमें गौ तृप्त न हो सकती हो, ऐसे गड्ढेका अथवा दुर्गन्ध या फेनयुक्त जल श्राद्धके योग्य नहीं होता। एक खुरवालोंका, ऊँटनीका, भेड़का, मृगीका तथा भैंसका दूध श्राद्धकर्ममें काममें न ले।

पुरुषर्षभ! नपुंसक, अपविद्ध (सत्पुरुषोंद्वारा बहिष्कृत), चाण्डाल, पापी, पाखण्डी, रोगी, कुक्कुट, श्वान, नग्न (वैदिक कर्मको त्याग देनेवाला पुरुष), वानर, ग्राम्यशूकर, रजस्वला स्त्री, जन्म अथवा मरणके अशौचसे युक्त व्यक्ति और शव ले जानेवाले पुरुष—इनमेंसे किसीकी भी दृष्टि पड़ जानेसे देवता अथवा पितृगण कोई भी श्राद्धमें अपना भाग नहीं लेते। अतः किसी घिरे हुए स्थानमें श्रद्धापूर्वक श्राद्धकर्म करे तथा पृथ्वीमें तिल छिड़ककर राक्षसोंको निवृत्त कर दे।

राजन्! श्राद्धमें ऐसा अन्न न दे, जिसमें नख, केश या कीड़े आदि हों, या जो निचोड़कर निकाले हुए रससे युक्त हो या बासी हो। श्रद्धायुक्त व्यक्तियोंद्वारा नाम और गोत्रके उच्चारणपूर्वक दिया हुआ अन्न पितृगणको, वे जैसे आहारके योग्य होते हैं वैसा ही होकर, उन्हे मिलता है। राजन्! इस सम्बन्धमें एक गाथा सुनी जाती है जो पूर्वकालमें मनुपुत्र महाराज इक्ष्वाकुके प्रति पितृगणने कलाप-उपवनमें कही थी।

'क्या हमारे कुलमें ऐसे सन्मार्गशील व्यक्ति होंगे जो गयामें जाकर हमारे लिये आदरपूर्वक पिण्डदान करेंगे? क्या हमारे कुलमें कोई ऐसा पुरुष होगा जो वर्षाकालकी मघानक्षत्र-युक्त त्रयोदशीको हमारे उद्देश्यसे मधु और घृतयुक्त पायस (खीर) देगा अथवा गौरी[1] कन्याका दान करेगा, नील साँड़ छोड़ेगा या दक्षिणासहित विधिपूर्वक अश्वमेध यज्ञ करेगा?'

---

१. दस वर्षकी अवस्थावाली कुमारी कन्याको 'गौरी' कहते हैं।

नग्नविषयक प्रश्नोत्तर

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवन् ! नपुंसक, अपविद्ध और रजस्वला आदिको तो मैं अच्छी तरह जानता हूँ, किंतु यह नहीं जानता कि 'नग्न' किसको कहते हैं। मैं आपके द्वारा नग्नके स्वरूपका यथावत् वर्णन सुनना चाहता हूँ।

श्रीपराशरजीने कहा—ब्रह्मन् ! समस्त वर्णोंका संवरण (ढँकनेवाला वस्त्र) वेदत्रयी ही है; इसलिये उसका त्याग कर देनेपर पुरुष 'नग्न' हो जाता है।

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी—ये चार ही आश्रमी हैं। इनके अतिरिक्त पाँचवाँ आश्रमी और कोई नहीं है। मैत्रेय! जो पुरुष गृहस्थाश्रमको छोड़नेके अनन्तर वानप्रस्थ या संन्यासी नहीं होता, वह पापी नग्न है।

विप्र ! सामर्थ्य रहते हुए भी जो शास्त्रविहित कर्म नहीं करता, वह उसी दिन पतित हो जाता है और मैत्रेय ! आपत्ति-कालको छोड़कर और किसी समय एक पक्षतक नित्यकर्मका त्याग करनेवाला पुरुष महान् प्रायश्चित्तसे ही शुद्ध हो सकता है। जो पुरुष एक वर्षतक नित्य-क्रिया नहीं करता, उसपर दृष्टि पड़ जानेसे साधु पुरुषको सदा सूर्यका दर्शन करना चाहिये। महामते ! ऐसे पुरुषका स्पर्श होनेपर वस्त्रसहित स्नान करनेसे शुद्धि हो सकती है।

जिस मनुष्यके घरसे देवगण, ऋषिगण, पितृगण और भूतगण बिना पूजित हुए निःश्वास छोड़ते अन्यत्र चले जाते हैं, लोकमें उससे [illegible] और [illegible] ऐसे पुरुषके साथ एक [illegible] उठने-बैठनेसे मनुष्य [illegible] जिसका शरीर अथवा [illegible] उसके साथ अपने गृह, आसन [illegible] जो पुरुष उसके घरमें भोजन करता है, [illegible] करता है, अथवा उसके साथ एक ही [illegible] वह शीघ्र ही उसीके समान हो जाता है। [illegible] पितर, भूतगण और [illegible] भोजन करता है, वह पातकी [illegible] नहीं हो सकती।

जो ब्राह्मणादि वर्ण स्वधर्मको छोड़कर [illegible] होते हैं अथवा हीनवृत्तिका अवलम्बन करते हैं, [illegible] कहलाते हैं। मैत्रेय ! जिन [illegible] मिश्रण हो, उसमें रहनेसे पुरुषकी [illegible] है। जो पुरुष ऋषि, देव, पितृ, भूत और [illegible] पूजन किये बिना भोजन करता है, [illegible] लोग नरकमें पड़ते हैं। [illegible] नग्नोंके साथ प्राज्ञ पुरुष [illegible] भी त्याग कर दे। यदि इनकी [illegible] पुरुषोंका [illegible] बिना [illegible] पितामहगणकी तृप्ति नहीं करता।

॥ तृतीय अंश समाप्त ॥

चतुर्थ अंश

वैवस्वत मनुके वंशका विवरण

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवन्! अब मुझे राजवंशोंका विवरण सुननेकी इच्छा है, अतः उनका वर्णन कीजिये।

श्रीपराशरजीने कहा—मैत्रेय! अब तुम अनेकों यज्ञकर्ता, शूरवीर और धैर्यशाली भूपालोंसे सुशोभित इस मनुवंशका वर्णन सुनो, जिसके आदिपुरुष श्रीब्रह्माजी हैं।

सकल संसारके आदिकारण भगवान् विष्णु हैं। वे अनादि तथा ऋक्-साम-यजुःस्वरूप हैं। उन ब्रह्मस्वरूप भगवान् विष्णुके मूर्तरूप ब्रह्माण्डमय हिरण्यगर्भ भगवान् ब्रह्माजी सबसे पहले प्रकट हुए। ब्रह्माजीके दायें अँगूठेसे दक्षप्रजापति हुए, दक्षसे अदिति हुई तथा अदितिसे विवस्वान् और विवस्वान्से मनुका जन्म हुआ। मनुके इक्ष्वाकु, नृग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु, नाभाग, दिष्ट, करूष और पृषध्र नामक दस पुत्र हुए।

मनुने पुत्रकी इच्छासे मित्रावरुण नामक दो देवताओंके यज्ञका अनुष्ठान किया, किंतु होताके विपरीत संकल्पसे यज्ञमें विपर्यय हो जानेसे उनके 'इला' नामकी कन्या हुई। मैत्रेय! मित्रावरुणकी कृपासे वह इला ही मनुका 'सुद्युम्न' नामक पुत्र हुई। फिर महादेवजीके कोप (कोपप्रयुक्त शाप) से वह पुनः स्त्री होकर चन्द्रमाके पुत्र बुधके आश्रमके निकट घूमने लगी। बुधने उस स्त्रीसे पुरूरवा नामक पुत्र उत्पन्न किया। पुरूरवाके जन्मके अनन्तर भी परमर्षिगणने सुद्युम्नको पुरुषत्वलाभकी आकांक्षासे क्रतुमय, ऋग्यजुःसामाथर्वमय, सर्ववेदमय, मनोमय, ज्ञानमय, अन्नमय और परमार्थतः अकिंचिन्मय भगवान् यज्ञपुरुषका यथावत् यजन किया। तब उनकी कृपासे इला फिर भी सुद्युम्न हो गयी। उस (सुद्युम्न) के भी उत्कल, गय और विनत नामक तीन पुत्र हुए। पहले स्त्री होनेके कारण सुद्युम्नको राज्याधिकार प्राप्त नहीं हुआ। वसिष्ठजीके कहनेसे उनके पिताने उन्हें प्रतिष्ठान नामक नगर दे दिया था, वही उन्होंने पुरूरवाको दिया।

मनुका पृषध्र नामक पुत्र गुरुकी गौका वध करनेके कारण शूद्र हो गया। मनुका पुत्र करूष था। करूषसे कारूष नामक महाबली और पराक्रमी क्षत्रियगण उत्पन्न हुए। दिष्टका पुत्र नाभाग वैश्य हो गया था; उससे बलन्धन नामक पुत्र हुआ। बलन्धनसे महान् कीर्तिमान् वत्सप्रीति, वत्सप्रीतिसे प्रांशु और प्रांशुसे प्रजापति नामक पुत्र हुआ। प्रजापतिसे खनित्र, खनित्रसे चाक्षुप तथा चाक्षुपसे अतिबल-पराक्रम-सम्पन्न विंश हुआ। विंशसे विविंशक, विविंशकसे खनिनेत्र, खनिनेत्रसे अतिविभूति और अतिविभूतिसे करन्धम नामक पुत्र हुआ। करन्धमसे अविक्षित् हुआ और अविक्षित्के मरुत्त नामक अतिबल पराक्रमयुक्त पुत्र हुआ, जिसके विषयमें आजकल भी ये दो श्लोक गाये जाते हैं—

'मरुत्तका जैसा यज्ञ हुआ था वैसा इस पृथिवीपर और किसका हुआ है, जिसकी सभी याज्ञिक वस्तुएँ सुवर्णमय और अति सुन्दर थीं। उस यज्ञमें इन्द्र सोमरससे और ब्राह्मणगण दक्षिणासे परितृप्त हो गये थे तथा उसमें मरुद्गण परोसनेवाले और देवगण सदस्य थे।'

उस चक्रवर्ती मरुत्तके नरिष्यन्त नामक पुत्र हुआ तथा नरिष्यन्तके दम और दमके राजवर्द्धन हुआ। राजवर्द्धनसे सुवृद्धि, सुवृद्धिसे केवल और केवलसे सुधृतिका जन्म हुआ। सुधृतिसे नर, नरसे चन्द्र और चन्द्रसे केवल हुआ। केवलसे बन्धुमान्, बन्धुमान्‌से वेगवान्, वेगवान्‌से बुध, बुधसे तृणबिन्दु तथा तृणबिन्दुसे इलविला नामकी एक कन्या तथा विशाल नामक पुत्र हुआ, जिसने विशाला नामकी पुरी बसायी।

विशालका पुत्र हेमचन्द्र हुआ, हेमचन्द्रका चन्द्र, चन्द्रका धूम्राक्ष, धूम्राक्षका सृञ्जय, सृञ्जयका सहदेव और सहदेवका पुत्र कृशाश्व हुआ। कृशाश्वके सोमदत्त नामक पुत्र हुआ, जिसने सौ अश्वमेध-यज्ञ किये थे। उससे जनमेजय हुआ और जनमेजयसे सुमतिका जन्म हुआ। ये सब विशालवंशीय राजा हुए। इनके विषयमें यह श्लोक प्रसिद्ध है—'तृणबिन्दुके प्रसादसे विशालवंशीय समस्त राजालोग दीर्घायु, महात्मा, वीर्यवान् और अति धर्मपरायण हुए।'

मनुपुत्र शर्यातिके एक तो सुकन्या नामवाली कन्या हुई, जिसका विवाह च्यवन ऋषिके साथ हुआ तथा एक आनर्त्त नामक परम धार्मिक पुत्र हुआ। आनर्त्तके रेवत नामका पुत्र हुआ, जिसने कुशस्थली नामकी पुरीमें रहकर आनर्त्तदेशका राज्यभोग किया।

रेवतका भी रैवत ककुद्मी नामक एक अति धर्मात्मा पुत्र था, जो अपने सौ भाइयोंमें सबसे बड़ा था। उसके रेवती नामकी एक कन्या हुई। महाराज रैवत उसे अपने साथ लेकर ब्रह्माजीसे यह पूछनेके लिये कि 'यह कन्या किस वरके योग्य है' ब्रह्मलोकको गये। उस समय ब्रह्माजीके समीप हाहा और हूहू नामक दो गन्धर्व अतितान नामक दिव्य गान गा रहे थे। वहाँ गान-सम्बन्धी चित्रा, दक्षिणा और धात्री नामक त्रिमार्गके परिवर्तनके साथ उनका विलक्षण गान सुनते हुए अनेकों युगोंके परिवर्तन-कालतक ठहरनेपर भी रैवतजीको केवल एक मुहूर्त ही बीता-सा मालूम हुआ।

गान समाप्त हो जानेपर रैवतने भगवान् कमलयोनिको प्रणाम कर उनसे अपनी कन्याके योग्य वर पूछा। ब्रह्माने कहा—'तुम्हें जो वर अभिमत हों, उन्हें बताओ।' तब उन्होंने ब्रह्माजीको पुनः प्रणाम कर अपने समस्त अभिमत वरोंका वर्णन किया और पूछा कि 'इनमेंसे आपको कौन वर पसंद है, जिसे मैं यह कन्या दूँ?'

इसपर कमलयोनि कुछ सिर झुकाकर मुसकराते हुए बोले—'तुमको जो-जो वर अभिमत हैं, उनमेंसे तो अब पृथ्वीपर किसीके पुत्र-पौत्रादिकी संतान भी नहीं है; क्योंकि यहाँ गन्धर्वोंका गान सुनते हुए तुम्हें कई चतुर्युग बीत चुके हैं। इस समय पृथिवीतलपर वैवस्वत मनुका अट्ठाईसवाँ चतुर्युग प्रायः समाप्त हो चुका है तथा कलियुगका प्रारम्भ होनेवाला है। अब तुम अकेले ही रह गये हो, अतः यह कन्या-रत्न किसी

और योग्य वरको दो। [illegible] भी सर्वथा [illegible] रैवत! ब्रह्माजीसे [illegible] [illegible] नामकी पुरी [illegible] वे बलदेव नामक भगवान् [illegible] नरेन्द्र! तुम यह कन्या उन [illegible] वे बलदेवजी संसारमें [illegible] भी त्रिलोकीमें [illegible]

श्रीपराशरजी कहते हैं—[illegible] रैवत पृथिवीतलपर [illegible] कुकुद्मी [illegible] अतुलबुद्धि महाराज रैवतने अपनी कन्या [illegible] ही [illegible] स्फटिक-पर्वतके समान [illegible] हलायुधको अपनी कन्या [illegible] बहुत ऊँची देखकर अपने [illegible] कर लिया। तब रेवती भी [illegible] शरीरकी) हो गयी। [illegible] कन्या रेवतीके [illegible] दान करनेके [illegible] पर चले गये।

इक्ष्वाकुके वंशका वर्णन तथा सौभरि-चरित्र

श्रीपराशरजी कहते हैं—मनुपुत्र धृष्टके वंशमें धार्ष्टक नामक क्षत्रिय हुए। मनुपुत्र नाभागके नाभाग नामक पुत्र हुआ, नाभागका अम्बरीष और अम्बरीषका पुत्र विरूप हुआ। विरूपसे पृषदश्वका जन्म हुआ; तथा उससे रथीतर हुआ।

मनुपुत्र इक्ष्वाकुके सौ पुत्र हुए। उन सौ पुत्रोंमेंसे विकुक्षि, निमि और दण्ड नामक तीन पुत्र प्रधान हुए। पिताके मरनेके अनन्तर विकुक्षि (शशाद) ने इस पृथ्वीका धर्मानुसार शासन किया। उस शशादके पुरञ्जय नामक पुत्र हुआ।

पूर्वकालमें त्रेतायुगमें एक बार अति भीषण देवासुर-संग्राम हुआ। उसमें महाबलवान् दैत्यगणसे पराजित हुए देवताओंने भगवान् विष्णुकी आराधना की। तब आदि-अन्त-

[illegible]

[illegible] युद्ध कर सकूँ तो आपलोगोंका सहायक हो सकता हूँ।'

यह सुनकर समस्त देवगण और इन्द्रने 'बहुत अच्छा'—ऐसा कहकर उनका कथन स्वीकार कर लिया। फिर वृषभरूपधारी इन्द्रकी पीठपर चढ़कर चराचरगुरु भगवान् अच्युतके तेजसे परिपूर्ण होकर राजा पुरञ्जयने सभी दैत्योंको मार डाला। उस राजाने बैलके ककुद् (कंधे) पर बैठकर दैत्यसेनाका वध किया था, अतः उसका नाम ककुत्स्थ पड़ा। ककुत्स्थके अनेना नामक पुत्र हुआ। अनेनाके पृथु, पृथुके विष्टराश्व, उनके चान्द्र युवनाश्व तथा उस चान्द्र युवनाश्वके शावस्त नामक पुत्र हुआ, जिसने शावस्ती पुरी बसायी थी। शावस्तके बृहदश्व तथा बृहदश्वके कुवलयाश्वका जन्म हुआ, जिसने वैष्णव-तेजसे पूर्णता लाभ कर अपने इक्कीस सहस्र पुत्रोंके साथ मिलकर महर्षि उदङ्कके अपकारी धुन्धु नामक दैत्यको मारा था; अतः उनका नाम धुन्धुमार हुआ। उनके सभी पुत्र धुन्धुके मुखसे निकले हुए निःश्वासाग्निसे जलकर मर गये थे। उनमेंसे केवल दृढाश्व, चन्द्राश्व और कपिलाश्व—ये तीन ही बचे थे।

दृढाश्वसे हर्यश्व, हर्यश्वसे निकुम्भ, निकुम्भसे अमिताश्व, अमिताश्वसे कृशाश्व, कृशाश्वसे प्रसेनजित् और प्रसेनजित्से युवनाश्वका जन्म हुआ। युवनाश्व निःसंतान होनेके कारण खिन्न चित्तसे मुनीश्वरोंके आश्रमोंमें रहा करता था; उसके दुःखसे द्रवीभूत होकर दयालु मुनिजनोंने उसके पुत्र उत्पन्न होनेके लिये यज्ञानुष्ठान किया। आधी रातके समय उस यज्ञके समाप्त होनेपर मुनिजन मन्त्रपूत जलका कलश वेदीपर रखकर सो गये। उनके सो जानेपर अत्यन्त पिपासाकुल होकर राजाने उस स्थानमें प्रवेश किया और सोये होनेके कारण उन ऋषियोंको उन्होंने नहीं जगाया तथा उस अपरिमित माहात्म्यशाली कलशके मन्त्रपूत जलको पी लिया। जागनेपर ऋषियोंने पूछा—'इस मन्त्रपूत जलको किसने पिया है? इसका पान करनेपर ही युवनाश्वकी पत्नी महाबलविक्रमशील पुत्र उत्पन्न करेगी।' यह सुनकर राजाने कहा—'मैंने ही बिना जाने यह जल पी लिया है।' अतः युवनाश्वके उदरमें गर्भ स्थापित हो गया और क्रमशः बढ़ने लगा। यथासमय बालक राजाकी दायीं कोख फाड़कर निकल आया, किंतु इससे राजाकी मृत्यु नहीं हुई।

उसके उत्पन्न होनेपर मुनियोंने कहा—'यह बालक किसको पान करेगा?' उसी समय देवराज इन्द्रने आकर कहा—'मामयं धास्यति' 'यह मुझे (मेरी अङ्गुलिको) पान करेगा'। इन्द्रके 'मां धाता' या 'मां धास्यति' कहनेसे उसका नाम 'मान्धाता' हुआ। देवेन्द्रने उसके मुखमें अपनी तर्जनी (अंगूठेके पासकी) अँगुली दे दी और वह उसे पीने लगा। उस अमृतमयी अँगुलीका आस्वादन करनेसे वह एक ही दिनमें बढ़ गया। तभीसे चक्रवर्ती मान्धाता सप्तद्वीपा पृथ्वीका राज्य भोगने लगा। इसके विषयमें यह कहा जाता है—

'जहाँसे सूर्य उदय होता है और जहाँ अस्त होता है, वह सभी क्षेत्र युवनाश्वके पुत्र मान्धाताका है।'

मान्धाताने शतबिन्दुकी पुत्री बिन्दुमतीसे विवाह किया और उससे पुरुकुत्स, अम्बरीष और मुचुकुन्द नामक तीन पुत्र उत्पन्न किये तथा उसी (बिन्दुमती) से उनके पचास कन्याएँ हुईं।

उसी समय बह्वृच सौभरि नामक महर्षिने बारह वर्षतक जलमें निवास किया। उस जलमें सम्मद नामक एक बहुत सी संतानोंवाला और अति दीर्घकाय मत्स्यराज था। वह अपनी संतानके सुकोमल स्पर्शसे अत्यन्त हर्षयुक्त होकर अपने पुत्र, पौत्र और दौहित्र आदिके साथ अहर्निश क्रीडा करता रहता था। इस प्रकार जलमें स्थित सौभरि ऋषिने एकाग्रतारूप समाधिको छोड़कर रात-दिन उस मत्स्यराजकी अपने पुत्र, पौत्र और दौहित्र आदिके साथ अति रमणीय क्रीडाओंको देखकर विचार किया—'अहो! यह धन्य है, जो ऐसी अनिष्ट योनिमें उत्पन्न होकर भी अपने इन पुत्र, पौत्र और दौहित्र आदिके साथ निरन्तर क्रीडा करता रहता है। हम भी इसी प्रकार अपने पुत्रादिके साथ अति ललित क्रीडाएँ करेंगे।'

ऐसी अभिलाषा करते हुए वे उस जलके भीतरसे निकल आये और संतानार्थ गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेकी कामनासे कन्या ग्रहण करनेके लिये राजा मान्धाताके पास आये।

मुनिवरका आगमन सुन राजाने उठकर अर्घ्य-दानादिसे उनका भली प्रकार पूजन किया; तदनन्तर सौभरि मुनिने आसन ग्रहण करके राजासे कहा।

सौभरिजी बोले—राजन्! मैं कन्या-परिग्रहका अभिलाषी हूँ, अतः तुम मुझे एक कन्या दो; ककुत्स्थवंशमें कार्यवश आया हुआ कोई भी प्रार्थी पुरुष कभी खाली हाथ नहीं लौटता। राजन्! तुम्हारे पचास कन्याएँ हैं, उनमेंसे तुम मुझे केवल एक ही दे दो।

श्रीपराशरजी कहते हैं—ऋषिके ऐसे वचन सुनकर राजा उनके जराजीर्ण शरीरको देखकर शापके भयसे अस्वीकार करनेमें कातर हो उनसे डरते हुए कुछ नीचेको मुख करके मन ही-मन चिन्ता करने लगे।

सौभरिजी बोले—नरेन्द्र ! तुम चिन्तित क्यों होते हो ? मैंने इसमें कोई असह्य बात तो कही नहीं है।

श्रीपराशरजी कहते हैं—तब सौभरिके शापसे भयभीत हो राजा मान्धाताने नम्रतापूर्वक उनसे कहा।

राजा बोले—भगवन् ! हमारे कुलकी यह रीति है कि जिस सत्कुलोत्पन्न वरको कन्या पसद करती है, वह उसीको दी जाती है। ऐसी अवस्थामें मैं क्या करूँ ! बस, मुझे यही चिन्ता है। महाराज मान्धाताके ऐसा कहनेपर मुनिवर सौभरिने विचार किया—'यह बूढ़ा है; प्रौढ़ा स्त्रियाँ भी इसे पसद नहीं कर सकतीं, फिर कन्याओंकी तो बात ही क्या है !' ऐसा सोचकर ही राजाने यह बात कही है। अच्छा ऐसा ही सही, मैं भी ऐसा ही उपाय करूँगा। यह सब सोचकर उन्होंने मान्धातासे कहा—'यदि ऐसी बात है तो कन्याओंके अन्तःपुररक्षक नपुंसकको वहाँ मेरा प्रवेश करानेके लिये आज्ञा दो। यदि कोई कन्या ही मेरी इच्छा करेगी तो ही मैं स्त्रीग्रहण करूँगा, नहीं तो इस ढलती अवस्थामें मुझे इस व्यर्थ उद्योगका कोई प्रयोजन नहीं है।' ऐसा कहकर वे मौन हो गये।

तब मुनिके शापकी आशङ्कासे मान्धाताने कन्याओंके अन्तःपुररक्षकको आज्ञा दे दी। उसके साथ अन्तःपुरमें प्रवेश करते हुए सौभरिमुनिने अपना रूप सिद्ध और गन्धर्वगणसे भी अतिशय मनोहर बना लिया। उन ऋषिवरको अन्तःपुरमें ले जाकर अन्तःपुररक्षकने उन कन्याओंसे कहा—'तुम्हारे पिता महाराज मान्धाताकी आज्ञा है कि ये ब्रह्मर्षि हमारे पास एक कन्याके लिये पधारे हैं और मैंने इनसे प्रतिज्ञा की है कि मेरी जो कोई कन्या श्रीमान्‌को वरण करेगी, उसकी स्वच्छन्दतामें मैं किसी प्रकारकी बाधा नहीं डालूँगा।' यह सुनकर उन सभी कन्याओंने अनुराग और आनन्दपूर्वक 'अकेली मैं ही—अकेली मैं ही वरण करती हूँ' ऐसा कहते हुए उन्हें वरण कर लिया।

जब उन समस्त कन्याओंने अतिशय अनुरागवश उन अनिन्द्यकीर्ति मुनिवरको वरण कर लिया तो कन्यारक्षकने नम्रतापूर्वक राजाने सम्पूर्ण वृत्तान्त ज्यों-का-त्यों कह सुनाया।

श्रीपराशरजी कहते हैं—यह जानकर राजाने [illegible]

[illegible]

[illegible] मिले और उनसे भी इसी प्रकार पूछा । उसने भी इसी प्रकार महल आदि सम्पूर्ण उपभोगोंके [illegible] और कहा कि 'अतिशय प्रीतिके कारण [illegible] ही पास रहते हैं, और किसी पत्नियोंके पास [illegible] ।' इस प्रकार [illegible] राजा एक एक करके [illegible] और [illegible] इसी प्रकार पूछा और उन सबने भी वैसा ही उत्तर दिया । अन्तमें आनन्द और [illegible] निरमचित्त होकर उन्होंने एकान्तमें [illegible] पूजा करनेके अनन्तर उनसे कहा— 'भगवन् ! आपकी ही योगसिद्धिका यह महान् प्रभाव देखा है । इस प्रकारके महान् वैभवके साथ और किसीको भी विलास करते हुए हमने नहीं देखा, यह सब आपकी तपस्याका ही फल है ।' इस प्रकार उनका अभिवादन कर वे कुछ कालतक वहाँ रहे और अन्तमें अपने नगरको चले आये ।

कालक्रमसे उन राजकन्याओंके द्वारा सौभरि मुनिके डेढ़ सौ पुत्र हुए । इस प्रकार दिन दिन स्नेहका प्रसार होनेसे उनका हृदय अतिशय ममतामय हो गया । वे सोचने लगे—

'अहो ! मेरे मोहका कैसा विस्तार है ! मनोरथोंकी तो [illegible] भी समाप्ति नहीं हो सकती । उनमेंसे यदि कुछ पूर्ण भी हो जाते हैं तो उनके स्थानपर अन्य नये मनोरथों-की उत्पत्ति हो जाती है* । मेरे पुत्र पैरोंसे चलने लगे, फिर वे युवा हुए, उनका विवाह हुआ तथा उनके संतानें हुईं—यह सब तो मैं देख चुका; किंतु अब मेरा चित्त उन पौत्रोंके पुत्र-जन्मको भी देखना चाहता है ! यदि उनका जन्म भी मैंने देख लिया तो फिर मेरे चित्तमें दूसरा मनोरथ उठेगा और यदि वह भी पूरा हो गया तो अन्य मनोरथकी उत्पत्तिको ही कौन रोक सकता है ? मैंने अब भली प्रकार समझ लिया है कि मृत्युपर्यन्त मनोरथोंका अन्त तो होना नहीं है; और जिस चित्तमें मनोरथोंकी आसक्ति होती है, वह कभी परमार्थमें लग नहीं सकता† । अहो ! मेरी वह समाधि जलवासके साथी मत्स्यके सङ्गसे अकस्मात् नष्ट हो गयी और उस सङ्गके कारण ही मैंने स्त्री और धन आदिका परिग्रह किया तथा परिग्रहके कारण ही अब मेरी तृष्णा बढ़ गयी है । एक शरीरका ग्रहण करना ही महान् दुःख है और मैंने तो इन राजकन्याओंका परिग्रह करके पचास रूप धारण कर लिया । अब आगे भी पुत्रोंके पुत्र तथा उनके पुत्रोंसे और उनका पुनः-पुनः विवाहसम्बन्ध करनेसे वह परिग्रह और भी बढ़ेगा । यह ममतारूप विवाह-सम्बन्ध अवश्य बड़े ही दुःखका कारण है । जलाशयमें रहकर मैंने जो तपस्या की थी, उसकी फलस्वरूपा यह सम्पत्ति तपस्याकी बाधक है । मत्स्यके सङ्गसे मेरे चित्तमें जो पुत्र आदिका राग उत्पन्न हुआ था, उसीने मुझे ठग लिया । निःसङ्गता ही यतियोंको मुक्ति देनेवाली है । सम्पूर्ण दोष सङ्गसे ही उत्पन्न होते हैं । सङ्गके कारण तो योगमें आरूढ योगी भी गिर जाते हैं, फिर जिन्हें थोड़ी ही सिद्धि प्राप्त हुई है, उनकी तो बात ही क्या है ? परिग्रहरूपी ग्राहने मेरी बुद्धिको पकड़ रक्खा है । इस समय मैं ऐसा उपाय करूँगा, जिससे दोषोंसे मुक्त होकर फिर अपने कुटुम्बियोंके दुःखसे दुखी न होऊँ । अब मैं सबके विधाता, अचिन्त्यरूप, अणुसे भी अणु, प्रमाणसे अतीत, शुक्ल

* मनोरथाना न समाप्तिरस्ति
वर्षायुतेनापि तथाब्दलक्षैः ।
पूर्णेषु पूर्णेषु मनोरथाना-
मुत्पत्तय. सन्ति पुनर्नवानाम् ॥
(वि० पु० ४ । २ । ११८)

† आमृत्युतो नैव मनोरथाना
मन्तोऽस्ति विज्ञातमिद मयाद्य ।
मनोरथासक्तिपरस्य चित्त
न जायते वै परमार्थसङ्गि ॥
(वि० पु० ४ । २ । ११९)

[illegible] नामक पुत्र उत्पन्न किया। [illegible] हुआ, जिसे दिग्विजयके समय रावणने [illegible]। [illegible] पृषदश्व, पृषदश्वके हर्यश्व, हर्यश्वके हस्त [illegible] [illegible] निधन्वाके त्रय्यारुणि और [illegible] नामक पुत्र हुआ, जो पीछे त्रिशङ्कु कहलाया।

त्रिशङ्कु [illegible] हरिश्चन्द्रसे रोहिताश्व, रोहिताश्वसे [illegible], [illegible] चञ्चुसे विजय और वसुदेव, विजयसे [illegible] और [illegible] वृकका जन्म हुआ। वृकके बाहु नामक पुत्र हुआ, जो हैहय और तालजङ्घ आदि क्षत्रियोंसे पराजित होकर अपनी गर्भवती पटरानीके सहित वनमें चला गया था। पटरानीकी सौतने उसका गर्भ रोकनेकी इच्छासे उसे विष खिला दिया। उसके प्रभावसे उसका गर्भ सात वर्षतक गर्भाशयहीमें रहा। अन्तमें बाहु वृद्धावस्थाके कारण और्व मुनिके आश्रमके समीप मर गया। तब उसकी उस पटरानीने चिता बनाकर उसपर पतिका शव स्थापित कर उसके साथ सती होनेका निश्चय किया। उसी समय तीनों कालके जाननेवाले और्वमुनिने अपने आश्रमसे निकलकर उससे कहा—'अयि साध्वि! तेरे उदरमें सम्पूर्ण भूमण्डलका स्वामी, अत्यन्त बल-पराक्रमशील, अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाला और शत्रुओंका नाश करनेवाला चक्रवर्ती राजा है। तू ऐसे दुस्साहसका उद्योग न कर।' ऐसा कहे जानेपर वह सती होनेके आग्रहसे विरत हो गयी और भगवान् और्व उसे अपने आश्रमपर ले आये।

वहाँ कुछ ही दिनोंमें उसके गर्भसे उस गर (विष) के साथ ही एक अति तेजस्वी बालकने जन्म लिया। भगवान् और्वने उसके जातकर्म आदि संस्कार कर उसका नाम 'सगर' रखा तथा उसका उपनयन-संस्कार होनेपर और्वने ही उसे वेद, शास्त्र एवं भार्गव नामक आग्नेय शस्त्रोंकी शिक्षा दी।

बुद्धिका विकास होनेपर उस बालकने अपनी मातासे कहा—'माँ! यह तो बता, इस तपोवनमें हम क्यों रहते हैं और हमारे पिता कहाँ हैं?' इसी प्रकारके और भी प्रश्न पूछनेपर माताने उससे सम्पूर्ण वृत्तान्त ज्यों-का-त्यों कह दिया, तब तो पिताके राज्यापहरणको सहन न कर सकनेके कारण उसने हैहय और तालजङ्घ आदि क्षत्रियोंको मार डालनेकी प्रतिज्ञा की और प्रायः सभी हैहय एवं तालजङ्घवंशीय राजाओंको नष्ट कर दिया। तदनन्तर महाराज सगर अपनी राजधानीमें आकर अप्रतिहत सैन्यसे युक्त हो इस सम्पूर्ण सप्तद्वीपवती पृथ्वीका शासन करने लगे।

सगर, खट्वाङ्ग और भगवान् रामके चरित्रका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—काश्यपसुता सुमति और विदर्भराज कन्या केशिनी ये राजा सगरकी दो स्त्रियाँ थीं। उनसे सन्तानोत्पत्तिके लिये परम समाधिद्वारा आराधना किये जानेपर और्वने [illegible] कर दिया। 'एकसे वंशकी वृद्धि करनेवाला एक पुत्र तथा दूसरीसे साठ हजार पुत्र उत्पन्न होंगे, इनमेंसे जिसको जो अभीष्ट हो, वह इच्छापूर्वक उसीको ग्रहण कर सकती है।' उनके ऐसा कहनेपर केशिनीने एक तथा सुमतिने साठ हजार पुत्रोंका वर माँगा।

महर्षिके 'तथास्तु' कहनेपर कुछ ही दिनोंमें केशिनीने [illegible] असमञ्जस नामक एक पुत्रको जन्म दिया और [illegible] सुमतिसे साठ सहस्र पुत्र उत्पन्न हुए। [illegible] अंशुमान् नामक पुत्र हुआ। यह [illegible] ही बड़ा दुराचारी था। पिताने सोचा कि [illegible] आनेपर यह समझदार होगा, किंतु [illegible] भी जब उसका आचरण न सुधरा [illegible] दिया। उनके साठ हजार पुत्रोंने भी [illegible] ही अनुकरण किया।

तब असमञ्जसके चरित्रका अनुकरण करनेवाले उन सगरपुत्रोंद्वारा संसारमें सन्मार्ग उच्छेद हो जानेपर भगवान् पुरुषोत्तमके अंशभूत श्रीकपिलदेवसे देवताओंने प्रणाम करनेके अनन्तर उनके विषयमें कहा—'भगवन्! राजा सगरके ये सभी पुत्र असमञ्जसके चरित्रका ही अनुसरण कर रहे हैं। इन सबके असन्मार्गमें प्रवृत्त रहनेसे संसारकी क्या दशा होगी! प्रभो! संसारमें दीनजनोंकी रक्षाके लिये ही आपने अवतार लिया है, अतः इस घोर आपत्तिसे संसारकी रक्षा कीजिये।' यह सुनकर भगवान् कपिलने कहा—'ये सब थोड़े ही दिनोंमें नष्ट हो जायँगे।'

इसी समय सगरने अश्वमेध यज्ञ आरम्भ किया। उसमें उनके पुत्रोंद्वारा सुरक्षित घोड़ेको कोई व्यक्ति चुराकर पृथिवीमें घुस गया, तब उस घोड़ेके खुरोंके चिह्नोंका अनुसरण करते हुए उनके पुत्रोंमेंसे प्रत्येकने एक-एक योजन पृथिवी खोद डाली तथा पातालमें पहुँचकर उन राजकुमारोंने अपने घोड़ेको फिरता हुआ देखा। पासहीमें सूर्यके समान अपने

तेजसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करते हुए परमर्षि कपिलको बैठे देखा।

तब तो वे दुरात्मा अपने अस्त्र-शस्त्रोंको उठाकर 'यही हमारा अपकारी और यज्ञमें विघ्न डालनेवाला है, इस घोड़ेको चुरानेवालेको मारो, मारो' ऐसा चिल्लाते हुए उनकी ओर दौड़े। तब भगवान् कपिलदेवके कुछ आँख बदलकर देखते ही वे सब अपने ही शरीरसे उत्पन्न अग्निमें जलकर नष्ट हो गये।

महाराज सगरको जब मालूम हुआ कि घोड़ेका अनुसरण करनेवाले उनके समस्त पुत्र महर्षि कपिलके तेजसे दग्ध हो गये हैं तो उन्होंने असमञ्जसके पुत्र अंशुमान्को घोड़ा ले आनेके लिये नियुक्त किया। वह सगर-पुत्रोंद्वारा खोदे हुए मार्गसे कपिलजीके पास पहुँचा और भक्तिविनम्र होकर उनकी स्तुति की। तब भगवान् कपिलने उससे कहा, 'बेटा! जा, इस घोड़ेको ले जाकर अपने दादाको दे और तेरी जो इच्छा हो वही वर माँग ले।' इसपर अंशुमान्ने यही कहा कि 'मुझे ऐसा वर दीजिये जो ब्रह्मदण्डसे आहत होकर मरे हुए मेरे अस्वर्ग्य पितृगणको स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला हो।' यह सुनकर भगवान्ने कहा—'तेरा पौत्र गङ्गाजीको स्वर्गसे पृथिवीपर लायेगा। उनके जलसे इनकी अस्थियोंकी भस्मका स्पर्श होते ही ये सब स्वर्गको चले जायँगे। भगवान् विष्णुके चरणनखसे निकले हुए उस जलका ऐसा माहात्म्य है कि वह कामनापूर्वक केवल स्नानादि कार्योंमें ही उपयोगी हो—सो नहीं, अपि तु, बिना कामनाके मृतक पुरुषके अस्थि, चर्म, स्नायु अथवा केश आदिका स्पर्श हो जानेसे या उसके शरीरका कोई अङ्ग गिरनेसे भी वह गङ्गाजल देहधारीको तुरंत स्वर्गमें ले जाता है।' भगवान् कपिलके ऐसा कहनेपर वह उन्हें प्रणाम कर घोड़ेको लेकर अपने पितामहकी यज्ञशालामें आया। राजा सगरने भी घोड़ेके मिल जानेपर अपना यज्ञ समाप्त किया और अपने पुत्रोंके खोदे हुए सागरको ही अपत्य-स्नेहसे अपना पुत्र माना। उस अंशुमान्के दिलीप नामक पुत्र हुआ और दिलीपके भगीरथ हुआ, जिसने गङ्गाजीको स्वर्गसे पृथिवीपर लाकर उनका नाम भागीरथी कर दिया।

भगीरथसे सुहोत्र, सुहोत्रसे श्रुति, श्रुतिसे नाभाग, नाभागसे अम्बरीष, अम्बरीषसे सिन्धुद्वीप, सिन्धुद्वीपसे अयुतायु और अयुतायुसे ऋतुपर्ण नामक पुत्र हुआ, जो राजा नलका सहायक और द्यूतक्रीडाका पारदर्शी था।

ऋतुपर्णका पुत्र सर्वकाम था, उसका सुदास और सुदासका पुत्र सौदास हुआ। सौदासके अश्मक हुआ। अश्मकके मूलक नामक पुत्र हुआ। जब परशुरामजीद्वारा

वह पृथ्वी [illegible] उस (मूलक) [illegible] 'नारीकवच' भी [illegible]।

मूलकसे दशरथ, [illegible] और विश्वसहसे [illegible] संग्राममें देवताओंद्वारा प्रार्थना [illegible] इस प्रकार स्वर्गमें देवताओंद्वारा [illegible] माँगनेके लिये प्रेरित किये [illegible] वर ग्रहण करना ही पड़े [illegible] तब देवताओंके [illegible] मुहूर्त और नहीं है [illegible] विमानपर बैठकर [illegible] लगा—'यदि मुझे [illegible] प्रियतर नहीं हुआ [illegible] किया और सम्पूर्ण [illegible] श्रीअच्युतके अतिरिक्त [illegible] निर्विघ्नतापूर्वक उन [illegible] ऐसा करते हुए [illegible] अकथनीयस्वरूप, परमात्मा [illegible] लगा दिया और उन्हीं [illegible]।

इस विषयमें [illegible] श्लोक सुना जाता है। [illegible] पृथिवीतलमें [illegible] मुहूर्तमात्र जीवनके [illegible] अपनी बुद्धिद्वारा [illegible] वासुदेवको प्राप्त [illegible]।

खट्वाङ्गसे दीर्घबाहु [illegible] रघुसे अज और [illegible] भगवान् [illegible] शत्रुघ्न, भरत और [illegible] प्राप्त हुए।

[illegible] जाते हुए मार्गमें ही [illegible] यज्ञशालामें [illegible] वह [illegible]

* [illegible]

डाला। उन्होंने अपने दर्शनमात्रसे अहल्याको निष्पाप किया, जनकजीके राजभवनमें बिना श्रम ही महादेवजीका धनुष तोड़ा और पुरुषार्थसे ही प्राप्त होनेवाली अयोनिजा जनकराज-नन्दिनी श्रीसीताजीको पत्नीरूपसे प्राप्त किया। तदनन्तर सम्पूर्ण क्षत्रियोंको नष्ट करनेवाले परशुरामजीके बल-वीर्यका गर्व नष्ट किया।

फिर पिताके वचनसे राज्यलक्ष्मीको कुछ भी न गिनकर भाई लक्ष्मण और धर्मपत्नी सीताके सहित वे वनमें चले गये। वहाँ श्रीरामने विराध, खर, दूषण तथा कबन्ध आदि राक्षस और वालीका वध किया तथा समुद्रका पुल बाँधकर सम्पूर्ण राक्षस-कुलका विध्वस किया। फिर रावणद्वारा हरी हुई और कलङ्क-रहित होनेपर भी अग्नि-प्रवेशसे शुद्ध हुई समस्त देवगणोंसे प्रशंसित स्वभाववाली अपनी भार्या जनकराजकन्या सीताको वे अयोध्यामें ले आये। मैत्रेय! उस समय उनके राज्याभिषेकका जैसा मङ्गल हुआ, उसका तो सौ वर्षोंमें भी वर्णन नहीं किया जा सकता; तथापि संक्षेपसे सुनो।

दशरथ-नन्दन श्रीरामचन्द्रजी, प्रसन्नवदन लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, विभीषण, सुग्रीव, अङ्गद, जाम्बवान् और हनुमान् आदिसे छत्र-चामरादिद्वारा सेवित हो, ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर और महादेवजी आदि सम्पूर्ण देवगण, वसिष्ठ, वामदेव, वाल्मीकि, मार्कण्डेय, विश्वामित्र, भरद्वाज और अगस्त्य आदि मुनिजन तथा ऋक्, यजुः, साम और अथर्ववेदोंसे स्तुति किये जाते हुए तथा नृत्य, गीत, वाद्य आदि सम्पूर्ण मङ्गल-सामग्रियोंसहित वीणा, वेणु, मृदङ्ग, भेरी, पटह, शङ्ख, काहल और गोमुख आदि बाजोंके घोषके साथ समस्त राजाओंके मध्यमें सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षाके लिये विधि-पूर्वक अभिषिक्त हुए। इस प्रकार दशरथकुमार कोसलाधि-पति, रघुकुलतिलक, जानकीवल्लभ, तीनों भ्राताओंके प्रिय श्रीरामचन्द्रजीने सिंहासनारूढ होकर ग्यारह हजार वर्ष राज्य-शासन किया।

भरतजीने भी गन्धर्वलोकको जीतनेके लिये जाकर युद्धमें तीन करोड़ गन्धर्वोंका वध किया और शत्रुघ्नजीने भी अतुलित बलशाली महापराक्रमी मधुपुत्र लवण राक्षसका संहार किया तथा मथुरा नामक नगरकी स्थापना की। इस प्रकार अपने अतिशय बल-पराक्रमसे महान् दुष्टोंको नष्ट करनेवाले भगवान् राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न सम्पूर्ण जगत्की यथोचित व्यवस्था करनेके अनन्तर फिर परमधामको पधारे। उनके साथ ही जो अयोध्यानिवासी उन भगवदंशस्वरूपोंके अतिशय अनुरागी थे, उन्होंने भी तन्मय होनेके कारण सालोक्य-मुक्ति प्राप्त की।

दुष्ट-दलन भगवान् रामके कुश और लव नामक दो पुत्र हुए। इसी प्रकार लक्ष्मणजीके अङ्गद और चन्द्रकेतु, भरतजीके तक्ष और पुष्कल तथा शत्रुघ्नजीके सुबाहु और शूरसेन नामक पुत्र हुए। कुशके अतिथि, अतिथिके निषध, निषधके अनल, अनलके नभ, नभके पुण्डरीक, पुण्डरीकके क्षेमधन्वा, क्षेमधन्वाके देवानीक, देवानीकके अहीनक, अहीनकके रुरु, रुरुके पारियात्रक, पारियात्रकके देवल, देवलके वच्चल, वच्चलके उत्क, उत्कके वज्रनाभ, वज्रनाभके

शङ्खण, शङ्खणके युषिताश्व और युषिताश्वके विश्वसह् नामक पुत्र हुआ। विश्वसहके हिरण्यनाभ नामक पुत्र हुआ, जिसने जैमिनिके शिष्य महायोगीश्वर याज्ञवल्क्यजीसे योगविद्या प्राप्त की थी। हिरण्यनाभका पुत्र पुष्य था, उसका ध्रुवसन्धि, ध्रुवसन्धिका सुदर्शन, सुदर्शनका अग्निवर्ण, अग्निवर्णका शीघ्रग तथा शीघ्रगका पुत्र मरु हुआ जो इस समय भी योगाभ्यासमें तत्पर हो कलापग्राममें स्थित है। आगामी युगमें यह सूर्यवंशीय क्षत्रियोंका प्रवर्तक होगा। [illegible] सुसन्धि, सुसन्धिका [illegible] विश्वसह तथा विश्वसह [illegible] युद्धमें अर्जुनने [illegible]।

इस प्रकार मैंने [illegible] का वर्णन किया। [illegible] मुक्त हो जाता है।

निमि-वंशका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—इक्ष्वाकुका जो निमि नामक पुत्र था, उसने एक सहस्र वर्षमें समाप्त होनेवाले यज्ञका आरम्भ किया। उस यज्ञमें उसने वसिष्ठजीको होता वरण किया। वसिष्ठजीने उससे कहा कि 'पाँच सौ वर्षके यज्ञके लिये इन्द्रने मुझे पहले ही वरण कर लिया है।' तब राजा निमि उसी समय गौतमादि अन्य होताओंद्वारा अपना यज्ञ करने लगे।

यज्ञ समाप्त होनेपर जब देवगण अपना भाग ग्रहण करनेके लिये आये तो उनसे ऋत्विग्गण बोले 'यजमानको वर दीजिये।' देवताओंद्वारा प्रेरणा किये जानेपर राजा निमिने उनसे कहा—'भगवन्! मैं समस्त लोगोंके नेत्रोंमें ही वास करना चाहता हूँ।' राजाके ऐसा कहनेपर देवताओंने उनको समस्त जीवोंके नेत्रोंमें अवस्थित कर दिया। तभीसे प्राणी निमेषोन्मेष (पलक खोलना-मूँदना) करने लगे हैं।

तदनन्तर राजा निमिके 'जनक' उत्पन्न हुआ। उसके उदावसु नामक पुत्र हुआ। उदावसुके नन्दिवर्द्धन, नन्दिवर्द्धनके सुकेतु, सुकेतुके देवरात, देवरातके बृहदुक्थ, बृहदुक्थके महावीर्य, महावीर्यके सुधृति, सुधृतिके धृष्टकेतु, धृष्टकेतुके हर्यश्व, हर्यश्वके मनु, मनुसे प्रतिक, प्रतिकसे कृतरथ, कृतरथके देवमीढ, देवमीढके विबुध, विबुधके महाधृति, महाधृतिके [illegible] सुवर्णरोमा, सुवर्णरोमाके [illegible] नामक पुत्र हुआ। [illegible] रहा था। इसी समय [illegible] कन्या उत्पन्न हुई।

सीरध्वजका भाई [illegible] के भानुमान् नामक पुत्र हुआ। [illegible] द्युम्नके शुचि, शुचिके [illegible] ध्वजके कृति, कृतिके [illegible] के अरिष्टनेमि, अरिष्टनेमिके [illegible] के सुपार्श्व, सुपार्श्वके [illegible] भौमरथ, भौमरथके [illegible] श्रुत, उपगुके [illegible] सुवर्चा, सुवर्चाके सुभाष, [illegible] सुश्रुतके जय, [illegible] सुनयके वीतहव्य, [illegible] बहुलाश्वके कृति नामक पुत्र [illegible] की समाप्ति हो जाती है। [illegible] मैथिल कहलाते हैं। [illegible]

चन्द्रवंशका वर्णन, जह्नुका गङ्गापान तथा जमदग्नि और विश्वामित्रकी उत्पत्ति

श्रीपराशरजी कहते हैं—मुनिशार्दूल! अब परम तेजस्वी चन्द्रमाके वंशका क्रमशः वर्णन करो जिसमें अनेकों विख्यात राजालोग हुए हैं।

यह वंश नहुष, ययाति, कार्तवीर्य और अर्जुन आदि अनेकों अति बल-पराक्रमशील, कान्तिमान्, क्रियावान् और सद्गुणसम्पन्न राजाओंसे अलंकृत हुआ है। [illegible]

अमावसुके भीम, भीमके काञ्चन, काञ्चनके सुहोत्र और सुहोत्रके जह्नु नामक पुत्र हुआ, जिसने अपनी सम्पूर्ण यज्ञशालाको गङ्गाजलसे आप्लावित देख क्रोधसे रक्तनयन हो भगवान् यज्ञपुरुषको परम समाधिके द्वारा अपनेमें स्थापित कर सम्पूर्ण गङ्गाजीको पी लिया था, तब देवर्षियोंने इन्हें प्रसन्न किया। अतः गङ्गाजी इनके पुत्रीरूपसे प्रकट हुईं।

फिर राजर्षि जह्नुके सुमन्तु नामक पुत्र हुआ। सुमन्तुके अजक, अजकके बलाकाश्व, बलाकाश्वके कुश और कुशके कुशाम्ब, कुशनाभ, अधूर्त्तरजा और वसु नामक चार पुत्र हुए। उनमेंसे कुशाम्बने इस इच्छासे कि मेरे इन्द्रके समान पुत्र हो; तपस्या की। उसके उग्र तपको देखकर 'बलमें कोई अन्य मेरे समान न हो जाय' इस भयसे इन्द्र स्वयं ही इनका पुत्र हो गया। वह गाधि नामक पुत्र कौशिक कहलाया।

गाधिने सत्यवती नामकी कन्याको जन्म दिया। उसे भृगुपुत्र ऋचीकने वरण किया। गाधिने अति क्रोधी और अति वृद्ध ब्राह्मणको कन्या न देनेकी इच्छासे ऋचीकसे कन्याके मूल्यमें जो चन्द्रमाके समान कान्तिमान् और पवनके तुल्य वेगवान् हों, ऐसे एक सहस्र श्यामकर्ण घोड़े माँगे, किंतु महर्षि ऋचीकने अश्वतीर्थसे उत्पन्न हुए एक सहस्र श्यामकर्ण घोड़े उन्हें वरुणसे लेकर दे दिये।

तब ऋचीकने उस कन्यासे विवाह किया। तत्पश्चात् एक समय उन्होंने संतानकी कामनासे सत्यवतीके लिये चरु (यज्ञीय खीर) तैयार किया। तथा सत्यवतीके द्वारा प्रसन्न किये जानेपर एक क्षत्रियश्रेष्ठ पुत्रकी उत्पत्तिके लिये एक और चरु उसकी माताके लिये भी बनाया। फिर 'यह चरु तुम्हारे लिये है तथा यह तुम्हारी माताके लिये—इनका तुम यथोचित उपयोग करना'—ऐसा कहकर वे वनको चले गये।

उनका उपयोग करते समय सत्यवतीकी माताने उससे कहा—'बेटी! सभी लोग अपने ही लिये सबसे अधिक गुणवान् पुत्र चाहते हैं, अपनी पत्नीके भाईके गुणोंमें किसीकी भी विशेष रुचि नहीं होती। अतः तू अपना चरु तो मुझे दे दे और मेरा तू ले ले; क्योंकि मेरे पुत्रको तो सम्पूर्ण भूमण्डलका पालन करना होगा और ब्राह्मणकुमारको तो बल, वीर्य तथा सम्पत्ति आदिसे लेना ही क्या है।' ऐसा कहनेपर सत्यवतीने अपना चरु अपनी माताको दे दिया और माताका चरु स्वयं ले लिया।

वनसे लौटनेपर ऋषिने सत्यवतीको देखकर कहा—'अरी पापिनि! तूने ऐसा क्या अकार्य किया है, जिससे तेरा शरीर ऐसा भयानक प्रतीत होता है। अवश्य ही तूने अपनी माताके लिये तैयार किये चरुका उपयोग किया है, सो ठीक नहीं है। मैंने उसमें सम्पूर्ण ऐश्वर्य, पराक्रम, शूरता और बलकी सम्पत्तिका आरोपण किया था तथा तेरेमें शान्ति, ज्ञान, तितिक्षा आदि सम्पूर्ण ब्राह्मणोचित गुणोंका समावेश किया था। उनका विपरीत उपयोग करनेसे तेरे अति भयानक अस्त्र-शस्त्रधारी पालन-कर्ममें तत्पर क्षत्रियके समान आचरणवाला पुत्र होगा और उसके शान्तिप्रिय ब्राह्मणाचारयुक्त पुत्र होगा।' यह सुनते ही सत्यवतीने उनके चरण पकड़ लिये और प्रणाम करके कहा—'भगवन्! अज्ञानसे ही मैंने ऐसा किया है, अतः प्रसन्न होइये और ऐसा कीजिये जिससे मेरा पुत्र ऐसा न हो, भले ही पौत्र ऐसा हो जाय।' इसपर मुनिने कहा—'ऐसा ही हो।'

तदनन्तर उसने जमदग्निको जन्म दिया और उसकी माताने विश्वामित्रको उत्पन्न किया तथा सत्यवती कौशिकी नामकी नदी हो गयी।

जमदग्निने इक्ष्वाकुकुलोद्भव रेणुकी कन्या रेणुकासे विवाह किया। उससे जमदग्निके सम्पूर्ण क्षत्रियोंका ध्वंस करनेवाले भगवान् परशुरामजी उत्पन्न हुए, जो सकल लोक-गुरु भगवान् नारायणके अंश थे तथा विश्वामित्रजीके मधुच्छन्द, धनञ्जय, कृतदेव, अष्टक कच्छप एवं हारीतक नामक पुत्र हुए।

क्षत्रवृद्ध और रजिके वंशका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—आयु नामक जो पुरूरवाका ज्येष्ठ पुत्र था, उसने राहुकी कन्यासे विवाह किया। उससे उसके पाँच पुत्र हुए, जिनके नाम क्रमशः नहुष, क्षत्रवृद्ध, रम्भ, रजि और अनेना थे। क्षत्रवृद्धके सुहोत्र नामक पुत्र हुआ और सुहोत्रके काश्य, काश तथा गृत्समद नामक तीन पुत्र हुए। गृत्समदका पुत्र शौनक चातुर्वर्ण्यका विस्तार करनेवाला हुआ। काश्यका पुत्र काशिराज काशेय हुआ। उसके राष्ट्र, राष्ट्रके दीर्घतपा और दीर्घतपाके धन्वन्तरि नामक पुत्र हुआ। इस धन्वन्तरिके शरीर और इन्द्रियाँ जरा आदि विकारोंसे रहित थे तथा सभी जन्मोंमें यह सम्पूर्ण शास्त्रोंका जाननेवाला था। पूर्वजन्ममें भगवान् नारायणने उसे यह वर दिया था कि 'काशिराजके वंशमें उत्पन्न होकर तुम सम्पूर्ण आयुर्वेदको

कंसकी मल्लशालामें श्रीबलराम

[पृष्ठ ७६१]

कंसकी मल्लशालामें श्रीकृष्ण

आठ भागोंमें विभक्त करोगे और यज्ञ-भागके भोक्ता होगे ।'

धन्वन्तरिका पुत्र केतुमान्, केतुमान्‌का भीमरथ, भीमरथका दिवोदास तथा दिवोदासका पुत्र प्रतर्दन हुआ । उसने भद्रश्रेण्यवंशका नाश करके समस्त शत्रुओंपर विजय प्राप्त की थी, इसलिये उसका नाम 'शत्रुजित्' हुआ । दिवोदासने अपने इस पुत्र (प्रतर्दन) से अत्यन्त प्रीतिवश 'वत्स ! वत्स !' कहा था, इसलिये इसका नाम 'वत्स' भी हुआ । अत्यन्त सत्यपरायण होनेके कारण इसीका नाम 'ऋतध्वज' हुआ । तदनन्तर इसने कुवलय नामक अपूर्व अश्व प्राप्त किया । इसलिये यह इस पृथिवीतलपर 'कुवलयाश्व' नामसे भी विख्यात हुआ । इस वत्सके मदालसासे अलर्क नामक पुत्र हुआ, जिसके विषयमें यह श्लोक आजतक गाया जाता है—

'पूर्वकालमें अलर्कके अतिरिक्त और किसीने भी छाछठ सहस्र वर्षतक युवावस्थामें रहकर पृथिवीका भोग नहीं किया ।'

उस मदालसापुत्र अलर्कके भी सन्नति नामक पुत्र हुआ, सन्नतिके सुनीथ, सुनीथके सुकेतु, सुकेतुके धर्मकेतु, धर्मकेतुके सत्यकेतु, सत्यकेतुके विभु, विभुके सुविभु, सुविभुके सुकुमार, सुकुमारके धृष्टकेतु, धृष्टकेतुके वीतिहोत्र, वीतिहोत्रके भार्ग और भार्गके भार्गभूमि नामक पुत्र हुआ; भार्गभूमिसे भी चातुर्वर्ण्यका विस्तार हुआ ।

रजिके अतुलित बल पराक्रमशाली पाँच सौ पुत्र थे । एक बार देवासुर-संग्रामके आरम्भमें एक दूसरेको मारनेकी इच्छावाले देवता और दैत्योंने ब्रह्माजीके पास जाकर पूछा—'भगवन् ! हम दोनोंके पारस्परिक कलहमें कौन-सा पक्ष जीतेगा ?' तब भगवान् ब्रह्माजी बोले—'जिस पक्षकी ओरसे

[illegible] होगी ।'

[illegible]

नहुषपुत्र ययातिका चरित्र

श्रीपराशरजी कहते हैं—नहुषके यति, ययाति, संयाति, आयाति, वियाति और कृतिनामक छः महाबलविक्रमशाली पुत्र हुए । यतिने राज्यकी इच्छा नहीं की, इसलिये ययाति ही राजा हुआ । ययातिने शुक्राचार्यजीकी पुत्री देवयानी और वृषपर्वाकी कन्या शर्मिष्ठासे विवाह किया था । उनके वंशके सम्बन्धमें यह श्लोक प्रसिद्ध है—

'देवयानीने यदु और तुर्वसुको जन्म दिया तथा वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाने द्रुह्यु, अनु और पूरुको उत्पन्न किया ।'

ययातिको शुक्राचार्यजीके शापसे युवावस्थामें ही वृद्धावस्थाने घेर लिया था । पीछे शुक्रजीके प्रसन्न होकर आज्ञा देनेपर उन्होंने अपनी वृद्धावस्थाको ग्रहण करनेके लिये बड़े पुत्र

[illegible]

दिया। अन्तमें सबसे छोटे शर्मिष्ठाके पुत्र पूरुसे भी वही बात कही

तो उसने अति नम्रता और आदरके साथ पिताको प्रणाम करके उदारतापूर्वक कहा—'यह तो हमारे ऊपर आपका महान् अनुग्रह है।' ऐसा कहकर पूरुने अपने पिताकी वृद्धावस्था ग्रहण कर उन्हें अपनी युवावस्था दे दी।

राजा ययातिने पूरुकी युवावस्था लेकर समयानुसार प्राप्त हुए यथेच्छ विषयोंको अपने उत्साहके अनुसार धर्मपूर्वक भोगा और अपनी प्रजाका भली प्रकार पालन किया। फिर शर्मिष्ठा और देवयानीके साथ विविध भोगोंको भोगते हुए 'मैं कामनाओंका अन्त कर दूँगा'—ऐसा सोचते-सोचते वे क्षुब्धचित्त हो गये तथा उन्होंने इस प्रकार अपना उद्गार प्रकट किया—

'भोगोंकी तृष्णा उनके भोगनेसे कभी शान्त नहीं होती, बल्कि घृताहुतिसे अग्निके समान वह बढ़ती ही जाती है। सम्पूर्ण पृथ्वीमें जितने भी धान्य, यव, सुवर्ण, पशु और स्त्रियाँ हैं, वे सब एक मनुष्यके लिये भी पर्याप्त नहीं हैं, इसलिये तृष्णाको सर्वथा त्याग देना चाहिये। जिस समय कोई पुरुष किसी भी प्राणीके लिये पापमयी भावना नहीं करता, उस समय उस समदर्शीके लिये सभी दिशाएँ सुखमयी हो जाती हैं। दुर्मतियोंके लिये जो अत्यन्त दुस्त्यज है तथा वृद्धावस्थामें भी जो शिथिल नहीं होती, बुद्धिमान् पुरुष उस तृष्णाको त्यागकर सुखसे परिपूर्ण हो जाता है। अवस्थाके जीर्ण होनेपर केश और दाँत तो जीर्ण हो जाते हैं; किंतु जीवन और धनकी आशाएँ उसके जीर्ण होनेपर भी जीर्ण नहीं होतीं*। विषयोंमें आसक्त रहते हुए मुझे एक सहस्र वर्ष बीत गये, फिर भी नित्य ही उनमें मेरी कामना होती है। अतः अब मैं इसे छोड़कर अपने चित्तको भगवान्‌में ही स्थिर कर निर्द्वन्द्व और निर्मम होकर वनमें विचरूँगा।

तदनन्तर राजा ययातिने पूरुसे अपनी वृद्धावस्था वापस लेकर उसकी युवावस्था लौटा दी। फिर उन्होंने दक्षिण-पूर्व दिशामें तुर्वसुको, पश्चिममें द्रुह्युको, दक्षिणमें यदुको और उत्तरमें अनुको (पूरुके अधीनस्थ) माण्डलिकपदपर नियुक्त किया तथा पूरुको सम्पूर्ण भूमण्डलके राज्यपर अभिषिक्त कर स्वयं वनको चले गये।

यदुवंशका वर्णन और सहस्रार्जुनका चरित्र

श्रीपराशरजी कहते हैं—अब मैं ययातिके प्रथम पुत्र यदुके वंशका वर्णन करता हूँ, जिस वंशमें कि मनुष्य, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, गुह्यक, किंपुरुष, अप्सरा, सर्प, पक्षी, दैत्य, दानव, आदित्य, रुद्र, वसु, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, देवर्षि, मुमुक्षु तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके अभिलाषी पुरुषोंद्वारा सर्वदा स्तुति किये जानेवाले, अखिललोक-विश्राम आद्यन्तहीन भगवान् विष्णुने अपने अपरिमित महत्त्वशाली अंशसे अवतार लिया था। इस विषयमें यह श्लोक प्रसिद्ध है—

* न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः। एकस्यापि न पर्याप्तं तस्मात्तृष्णां परित्यजेत् ॥
यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेषु पापकम्। समदृष्टेस्तदा पुंसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥
या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः। तां तृष्णां सत्यजेत्प्राज्ञः सुखेनैवाभिपूर्यते ॥
जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः। धनाशा जीविताशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यतः ॥

(वि० पु० ४। १०। २३—२७)

'जिसमें श्रीकृष्ण नामक निराकार परब्रह्मने अवतार लिया था, उस यदुवंशका श्रवण करनेसे मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है * ।'

यदुके सहस्रजित्, क्रोष्टु, नल और नहुष नामक चार पुत्र हुए । सहस्रजित्के शतजित् और शतजित्के हैहय, हैहय तथा वेणुहय नामक तीन पुत्र हुए । हैहयका पुत्र धर्म, धर्मका धर्मनेत्र, धर्मनेत्रका कुन्ति, कुन्तिका सहजित् तथा सहजित्का पुत्र महिष्मान् हुआ, जिसने माहिष्मती पुरीको बसाया । महिष्मान्के भद्रश्रेण्य, भद्रश्रेण्यके दुर्दम, दुर्दमके धनक तथा धनकके कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतधर्म और कृतौजा नामक चार पुत्र हुए ।

कृतवीर्यके सहस्र भुजाओंवाले सप्तद्वीपाधिपति अर्जुनका जन्म हुआ । सहस्रार्जुनने अत्रिकुलमें उत्पन्न भगवदंशरूप श्रीदत्तात्रेयजीकी उपासना कर 'सहस्र भुजाएँ, पापाचरणका निवारण, स्वधर्मका सेवन, युद्धके द्वारा सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलकी विजय, धर्मानुसार प्रजा-पालन, शत्रुओंसे अपराजय तथा त्रिलोकप्रसिद्ध पुरुषसे मृत्यु'—ऐसे कई वर माँगे और प्राप्त किये थे । सहस्रबाहु अर्जुनने इस सम्पूर्ण सप्तद्वीपवती पृथ्वीका पालन तथा दस हजार यज्ञोंका अनुष्ठान किया था । उसके विषयमें यह श्लोक आजतक कहा जाता है—

'यज्ञ, दान, तप, विनय और विद्यामें कार्तवीर्य—सहस्रार्जुनकी समता कोई भी राजा नहीं कर सकता ।'

उसके राज्यमें कोई भी पदार्थ नष्ट नहीं होता था । इस प्रकार उसने बल, पराक्रम, आरोग्य और सम्पत्तिको सर्वथा सुरक्षित रखते हुए पचासी हजार वर्ष राज्य किया । एक दिन जब वह नर्मदा नदीमें जल क्रीडा कर रहा था, उसकी राजधानी माहिष्मती पुरीपर दिग्विजयके लिये आये हुए सम्पूर्ण देव दानव, गन्धर्व और राजाओंके विजय-मदसे उन्मत्त रावणने आक्रमण किया, उस समय उसने अनायास ही रावणको पशुके समान बाँधकर अपने नगरके एक निर्जन स्थानमें रख दिया । इस सहस्रार्जुनका भगवान् नारायणके अंशावतार परशुरामजीने वध किया था । इसके सौ पुत्रोंमेंसे शूर, शूरसेन, वृषसेन, मधु और जयध्वज—ये पाँच प्रधान थे ।

जयध्वजका पुत्र तालजङ्घ हुआ और तालजङ्घके तालजङ्घ

* यदोर्वंशं नरः श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
यत्रावतीर्णं कृष्णाख्यं परं ब्रह्म निराकृति ॥
(वि० पु० ४ । ११ । १)

नामक सौ पुत्र हुए [illegible]
था । [illegible]
पुत्र हुए । वृष्णिके [illegible]
कारण इसकी मधु[illegible]
के लोग यादव कहलाये ।

यदुपुत्र क्रोष्टुके [illegible]
स्वाति, स्वातिके [illegible]
शशिबिन्दु नामक पुत्र हुआ [illegible]
चक्रवर्ती सम्राट् था । शशिबिन्दु[illegible]
लाख पुत्र थे । उनमें पृथुश्रवा, [illegible]
पृथुजय और पृथुदान—ये [illegible]
पृथुतम और उसका पुत्र उशना [illegible]
किये थे । उशनाके शितपु[illegible]
रुक्मकवच, रुक्मकवचके परावृत [illegible]
पृथु, ज्यामघ, पलित और हरित [illegible]
इनमेंसे ज्यामघके विषयमें [illegible]

'स्त्रियोंके वशीभूत [illegible]
पहले हो चुके हैं, उनमें [illegible]
बढ़कर स्त्रीके वशीभूत है ।'

ज्यामघके एक पुत्र [illegible]
[illegible] । विदर्भके [illegible]
किये, फिर [illegible]
नारदजीके उपदेशसे [illegible]
के बभ्रु, बभ्रुके [illegible]
नामक पुत्र हुए, [illegible]
जन्म लिया ।

ज्यामघके [illegible]
धृति, धृतिके [illegible]

* [illegible]

व्योमाके जीमूत, जीमूतके विकृति, विकृतिके भीमरथ, भीमरथके नवरथ, नवरथके दशरथ, दशरथके शकुनि, शकुनिके करम्भि, करम्भिके देवरात, देवरातके देवक्षत्र, देवक्षत्रके मधु, मधुके कुमारवंश, कुमारवंशके अनु, अनुके राजा पुरुमित्र, पुरुमित्रके अंशु और अंशुके सत्वत नामक पुत्र हुआ तथा सत्वतसे सात्वतवंशका प्रादुर्भाव हुआ।

सत्वतकी संततिका वर्णन और स्यमन्तकमणिकी कथा

श्रीपराशरजी कहते हैं—सत्वतके भजन, भजमान, दिव्य, अन्धक, देवावृध, महाभोज हुए और एक पुत्रका नाम वृष्णि भी था। भजमानके निमि और कृकण हुए तथा कृकणके भी एक पुत्रका नाम वृष्णि था। तथा इनके तीन सौतेले भाई शतजित्, सहस्रजित् और अयुतजित्—ये छः पुत्र हुए। देवावृधके बभ्रु नामक पुत्र हुआ। इन दोनों (पिता-पुत्रों) के विषयमें यह श्लोक प्रसिद्ध है—

'जैसा हमने दूरसे सुना था वैसा ही पास जाकर भी देखा, वास्तवमें बभ्रु मनुष्योंमें श्रेष्ठ है और देवावृध तो देवताओंके समान है। बभ्रु और देवावृधके उपदेशसे चौदह हजार छाछठ (१४०६६)* मनुष्योंने परमपद प्राप्त किया था।'

महाभोज बड़ा धर्मात्मा था, उसकी संतानमें भोजवंशी तथा मृत्तिकावरपुरनिवासी मार्त्तिकावर नृपतिगण हुए। वृष्णिके दो पुत्र सुमित्र और युधाजित् हुए, उनमेंसे सुमित्रके अनमित्र, अनमित्रके निघ्न तथा निघ्नसे प्रसेन और सत्राजित्का जन्म हुआ।

उस सत्राजित्के मित्र भगवान् आदित्य हुए। एक दिन समुद्र-तटपर बैठे हुए सत्राजित्ने सूर्यभगवान्की स्तुति की। उसके तन्मय होकर स्तुति करनेसे भगवान् भास्कर उसके सम्मुख प्रकट हुए। उस समय उनको अस्पष्ट मूर्ति धारण किये हुए देखकर सत्राजित्ने सूर्यसे कहा—'आकाशमें अग्निपिण्डके समान आपको जैसा मैंने देखा है, वैसा ही सम्मुख आनेपर भी देख रहा हूँ। यहाँ आपकी कुछ विशेषता मुझे नहीं दीखती।' सत्राजित्के ऐसा कहनेपर भगवान् सूर्यने अपने गलेसे स्यमन्तक नामकी उत्तम महामणि उतारकर अलग रख दी।

तब सत्राजित्ने भगवान् सूर्यको देखा—उनका शरीर किंचित् ताम्रवर्ण, अति उज्ज्वल और लघु था तथा उनके नेत्र कुछ पिंगलवर्ण थे। तदनन्तर सत्राजित्के प्रणाम तथा स्तुति आदि कर चुकनेपर सहस्रांशु भगवान् आदित्यने उससे कहा—'तुम अपना अभीष्ट वर माँगो।' सत्राजित्ने उस स्यमन्तकमणिको ही माँगा। तब भगवान् सूर्य उसे वह मणि देकर अपने स्थानको चले गये।

फिर सत्राजित्ने उस निर्मल मणिरत्नसे अपना कण्ठ सुशोभित होनेके कारण तेजसे सूर्यके समान समस्त दिशाओंको प्रकाशित करते हुए द्वारकामें प्रवेश किया। द्वारकावासी लोगोंने उसे आते देख, पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अंशरूपसे अवतीर्ण हुए मनुष्यरूपधारी आदिपुरुष भगवान् पुरुषोत्तमसे प्रणाम करके कहा—'भगवन्! आपके दर्शनोंके लिये निश्चय ही ये भगवान् सूर्यदेव आ रहे हैं।' उनके ऐसा कहनेपर भगवान्ने उनसे कहा—'ये भगवान् सूर्य नहीं हैं; सत्राजित् है। यह सूर्यभगवान्से प्राप्त हुई स्यमन्तक-नामकी महामणिको धारणकर यहाँ आ रहा है। तुमलोग अब विश्वस्त होकर इसे देखो।' भगवान्के ऐसा कहनेपर द्वारकावासी उसे उसी प्रकार देखने लगे।

सत्राजित्ने वह स्यमन्तकमणि अपने घरमें रख दी। वह मणि प्रतिदिन आठ भार सोना देती थी। उसके प्रभावसे सम्पूर्ण राष्ट्रमें रोग, अनावृष्टि तथा सर्प, अग्नि, चोर या दुर्भिक्ष आदिका भय नहीं रहता था। भगवान् अच्युतको भी ऐसी इच्छा हुई कि यह दिव्य रत्न तो राजा उग्रसेनके योग्य है।

सत्राजित्को जब यह मालूम हुआ कि भगवान् मुझसे यह रत्न माँगनेवाले हैं तो उसने लोभवश उसे अपने भाई

---

* इस संख्यामें बड़ा मतभेद है। मूलमें 'पुरुषा षट् च षष्टिश्च षट् सहस्राणि चाष्ट च।' पाठ है। इसका अर्थ कुछ लोग यों करते हैं—६+६०+६०००+८=६०७४। दूसरे लोग ६+६०+६०००+८०००=१४०६६ संख्या मानते हैं। तीसरे विद्वान् पहली तीन संख्याओंको सहस्र मानते हैं और अन्तिमको इकाईके स्थानमें रखते हैं, उस दशामें ७२००८ संख्या होती है। अन्य कितने ही लोग 'अङ्कानां वामतो गतिः'के अनुसार इस संख्याका उल्लेख इस प्रकार करते हैं—८६०००६०६। कुछ लोग '६०००' के स्थानमें केवल ६ लिखते हैं, क्योंकि वह स्वतः ही सहस्रके स्थानमें है, वैसी दशामें यह संख्या आती है—८६६०६। अन्य विद्वान् पाठक भी अपनी रुचिके अनुसार संख्या नियत कर सकते हैं।

प्रसेनको दे दिया, किंतु इस बातको न जानते हुए कि पवित्रतापूर्वक धारण करनेसे तो यह मणि सुवर्ण-दान आदि अनेक गुण प्रकट करती है और अशुद्धावस्थामें धारण करनेसे घातक हो जाती है, प्रसेन उसे अपने गलेमें बाँधे हुए घोड़ेपर चढ़कर मृगयाके लिये वनको चला गया। वहाँ उसे एक सिंहने मार डाला। जब वह सिंह घोड़ेके सहित उसे मारकर उस निर्मल मणिको अपने मुँहमें लेकर चलनेको तैयार हुआ तो उसी समय ऋक्षराज जाम्बवान्‌ने उसे देखकर मार डाला। तदनन्तर उस निर्मल मणिरत्नको लेकर जाम्बवान् अपनी गुफामें आया और उसे सुकुमार नामक अपने बालकके लिये खिलौना बना लिया।

प्रसेनके न लौटनेपर सब यादवोंमें आपसमें यह कानाफूँसी होने लगी कि 'कृष्ण इस मणिरत्नको लेना चाहते थे, अवश्य ही इन्होंने उसे ले लिया है।'

इस लोकापवादका पता लगनेपर सम्पूर्ण यादव-सेनाके सहित भगवान्‌ने प्रसेनके घोड़ेके चरण-चिह्नोंका अनुसरण किया और आगे जाकर देखा कि प्रसेनको घोड़ेसहित सिंहने मार डाला है। फिर सब लोगोंके बीच सिंहके चरण-चिह्न देख लिये जानेसे अपनी सफाई हो जानेपर भी भगवान्‌ने उन चिह्नों-का अनुसरण किया और थोड़ी ही दूरीपर ऋक्षराजद्वारा उन्होंने मारे हुए सिंहको देखा; किंतु उस रत्नके महत्त्वके कारण उन्होंने जाम्बवान्‌के पद-चिह्नोंका भी अनुसरण किया और सम्पूर्ण यादव-सेनाको पर्वतके तटपर छोड़कर ऋक्षराजके चरणोंका अनुसरण करते हुए स्वयं उनकी गुफामें घुस गये।

भीतर जानेपर भगवान्‌ने सुकुमारको बहलाती हुई धायकी यह वाणी सुनी—

'सिंहने प्रसेनको मारा और सिंहको जाम्बवान्‌ने; सुकुमार! तू रो मत, यह स्यमन्तकमणि तेरी ही है।'

यह सुननेसे स्यमन्तकका पता लगनेपर भगवान्‌ने भीतर जाकर देखा कि सुकुमारके लिये खिलौना बनी हुई स्यमन्तकमणि धात्रीके हाथपर अपने तेजसे देदीप्यमान हो रही है। स्यमन्तक-मणिकी ओर अभिलाषापूर्ण दृष्टिसे देखते हुए एक विलक्षण पुरुषको वहाँ आया देख धात्री 'त्राहि, त्राहि' करके चिल्लाने लगी।

उसकी आर्त-वाणीको सुनकर जाम्बवान् क्रोधपूर्ण हृदयसे वहाँ आया। फिर परस्पर उन दोनोंका इक्कीस दिनतक घोर युद्ध हुआ। पर्वतके पास भगवान्‌की प्रतीक्षा करनेवाले यादव-सैनिक सात-आठ दिनतक उनके गुफासे बाहर आनेकी बाट देखते रहे; किंतु जब इतने दिनोंतक वे उसमेंसे न निकले तो वे द्वारकामें चले आये, इधर श्रीकृष्णके अत्यन्त निठुर प्रहारोंके आघातसे पीडित शरीरवाले जाम्बवान्‌का बल क्षीण हो गया। अन्तमें भगवान्‌से पराजित होकर जाम्बवान्‌ने उन्हें प्रणाम करके कहा—'भगवन्! आपको तो देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस आदि कोई भी नहीं जीत सकते, फिर पृथिवीतलपर रहनेवाले अल्पवीर्य मनुष्य अथवा मनुष्योंके अवयवभूत हम-जैसे तिर्यग्-योनिगत जीवोंकी तो बात ही क्या है? अवश्य ही आप हमारे प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके समान सकल लोक-प्रतिपालक भगवान् नारायणके ही अंशसे प्रकट हुए हैं।' जाम्बवान्‌के ऐसा कहनेपर भगवान्‌ने पृथिवीका भार उतारनेके लिये अपने अवतार लेनेका सम्पूर्ण वृत्तान्त उससे कह दिया और उसे प्रीतिपूर्वक अपने हाथसे छूकर युद्धके श्रमसे रहित कर दिया।

तदनन्तर जाम्बवान्‌ने पुनः प्रणाम करके भगवान्‌को प्रसन्न किया और उन्हें अपनी जाम्बवती नामकी कन्या दे दी तथा उन्हें मणिरत्न स्यमन्तक भी दे दिया। भगवान् अच्युतने भी लेने योग्य न होनेपर भी अपने कलङ्क-शोधनके लिये वह मणिरत्न ले लिया और जाम्बवतीके सहित द्वारकामें आये।

उस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके आगमनसे जिनके हर्षका वेग अत्यन्त बढ़ गया है, उन द्वारकावासियोंमेंसे बहुत ढली हुई अवस्थावालोंमें भी उनके दर्शनके प्रभावसे तत्काल ही मानो नवयौवनका संचार हो गया तथा सम्पूर्ण यादवगण और उनकी स्त्रियाँ 'अहोभाग्य! अहोभाग्य!!' ऐसा कहकर उनका अभिवादन करने लगीं। भगवान्‌ने भी जो-जो बात जैसे-जैसे हुई थी, वह ज्यों-की-त्यों यादव-समाजमें सुना दी और सत्राजित्‌को स्यमन्तकमणि देकर मिथ्या कलङ्कसे छुटकारा पा लिया। फिर जाम्बवतीको अपने अन्तःपुरमें पहुँचा दिया।

सत्राजित्‌ने भी यह सोचकर कि मैंने ही श्रीकृष्णचन्द्रको मिथ्या कलङ्क लगाया था, उन्हें पत्नीरूपसे अपनी कन्या सत्यभामा विवाह दी।

भगवान्‌के मिथ्या-कलङ्क-शोधनरूप इस प्रसङ्गका जो कोई स्मरण करेगा, उसे कभी थोडा-सा भी मिथ्या कलङ्क न लगेगा, उसकी समस्त इन्द्रियाँ समर्थ रहेंगी तथा वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जायगा।

अनमित्र और अन्धक तथा वसुदेवजीकी संततिका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—अनमित्रके शिनि नामक पुत्र हुआ, शिनिके सत्यक और सत्यकसे सात्यकिका जन्म हुआ, जिसका दूसरा नाम युयुधान था। तदनन्तर सात्यकिके सञ्जय, सञ्जयके कुणि और कुणिसे युगन्धरका जन्म हुआ। ये सब शैनेय नामसे विख्यात हुए।

अनमित्रके वंशमें ही पृश्निका जन्म हुआ और पृश्निसे श्वफल्ककी उत्पत्ति हुई। श्वफल्कका चित्रक नामक एक छोटा भाई और था। श्वफल्कके गान्दिनीसे अक्रूरका जन्म हुआ तथा उपमद्गु, मृदामृद, विश्वारि, मेजय, गिरिक्षत्र, उपक्षत्र, शतघ्न, अरिमर्दन, धर्मदृक्, दृष्टधर्म, गन्धमोज, वाह और प्रतिवाह नामक पुत्र तथा सुतारा नाम्नी कन्याका जन्म हुआ। देववान् और उपदेव ये दो अक्रूरके पुत्र थे। तथा चित्रकके पृथु, विपृथु आदि अनेक पुत्र थे।

कुकुर, भजमान, शुचिकम्बल और बर्हिष ये चार अन्धकके पुत्र हुए। इनमेंसे कुकुरसे धृष्ट, धृष्टसे कपोतरोमा, कपोतरोमासे विलोमा तथा विलोमासे तुम्बुरुके मित्र अनुका जन्म हुआ। अनुसे आनकदुन्दुभि, उससे अभिजित्, अभिजित्से पुनर्वसु और पुनर्वसुसे आहुक नामक पुत्र और आहुकी नाम्नी कन्याका जन्म हुआ। आहुकके देवक और उग्रसेन नामक दो पुत्र हुए। उनमेंसे देवकके देववान्, उपदेव, सहदेव और देवरक्षित नामक चार पुत्र हुए। इन चारोंकी वृकदेवा, उपदेवा, देवरक्षिता, श्रीदेवा, शान्तिदेवा, सहदेवा और देवकी ये सात भगिनियाँ थीं। ये सब वसुदेवजीको विवाही गयी थीं। उग्रसेनके भी कंस, न्यग्रोध, सुनाम, आनकाह्व, शङ्कु, सुभूमि, राष्ट्रपाल, युद्धतुष्टि और सुतुष्टिमान् नामक पुत्र तथा कंसा, कंसवती, सुतनु और राष्ट्रपालिका नामकी कन्याएँ हुईं।

भजमानका पुत्र विदूरथ हुआ; विदूरथके शूर, शूरके शमी, शमीके प्रतिक्षत्र, प्रतिक्षत्रके स्वयभोज, स्वयभोजके हृदिक तथा हृदिकके कृतवर्मा, शतधन्वा, देवार्ह और देवगर्भ आदि पुत्र हुए। देवगर्भके पुत्र शूरसेन थे। शूरसेनकी मारिषा नामकी पत्नी थी। उससे उन्होंने वसुदेव आदि दस पुत्र उत्पन्न किये। वसुदेवके जन्म लेते ही देवताओंने अपनी अव्याहत दृष्टिसे यह देखकर कि इनके घरमें भगवान् अंशावतार लेंगे, आनक और दुन्दुभि आदि बाजे बजाये थे; इसीलिये इनका नाम आनक-दुन्दुभि भी हुआ। इनके देवभाग, देवश्रवा, अष्टक, ककुच्चक्र, वत्सधारक, सृञ्जय, श्याम, शमिक और गण्डूप नामक नौ भाई थे तथा इन वसुदेव आदि दस भाइयोंकी पृथा, श्रुतदेवा, श्रुतकीर्ति, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी ये पाँच बहिनें थीं।

शूरसेनके कुन्ति नामक एक मित्र थे। वे निःसंतान थे, अतः शूरसेनने दत्तक-विधिसे उन्हें अपनी पृथा नामकी कन्या दे दी थी। उसका राजा पाण्डुके साथ विवाह हुआ। उसके धर्म, वायु और इन्द्रके द्वारा क्रमशः युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन नामक तीन पुत्र हुए। इनके पहले इसके अविवाहितावस्थामें ही भगवान् सूर्यके द्वारा कर्ण नामक एक कानीन* पुत्र और हुआ था। इसकी माद्री नामकी एक सपत्नी थी। उसके अश्विनीकुमारोंद्वारा नकुल और सहदेव नामक पाण्डुके दो पुत्र हुए।

शूरसेनकी दूसरी कन्या श्रुतदेवाका कारूष-नरेश वृद्धधर्मासे विवाह हुआ था। उससे दन्तवक्र नामक महादैत्य उत्पन्न हुआ। श्रुतकीर्तिको केकयराजने विवाहा था। उससे केकय-नरेशके संतर्दन आदि पाँच पुत्र हुए। राजाधिदेवीसे अवन्ति-देशीय विन्द और अनुविन्दका जन्म हुआ। श्रुतश्रवाका भी चेदिराज दमघोषने पाणिग्रहण किया। उससे शिशुपालका जन्म हुआ। पूर्वजन्ममें यह अतिशय पराक्रमी हिरण्यकशिपु नामक दैत्योंका मूलपुरुष हुआ था, जिसे सकल लोकगुरु भगवान् नृसिंहने मारा था। तदनन्तर यह अक्षय वीर्य, शौर्य, सम्पत्ति और पराक्रम आदि गुणोंसे सम्पन्न तथा समस्त त्रिभुवनके स्वामी इन्द्रके भी प्रभावको दबानेवाला दशानन हुआ। स्वयं भगवान्के हाथसे ही मारे जानेके पुण्यसे प्राप्त हुए नाना भोगोंको वह बहुत समयतक भोगते हुए अन्तमें राघवरूपधारी भगवान्के ही द्वारा मारा गया।

फिर सम्पूर्ण भूमण्डलमें प्रशंसित चेदिराजके कुलमें शिशुपालरूपसे जन्म लेकर भी अक्षय ऐश्वर्य प्राप्त किया। उस जन्ममें वह भगवान्के प्रत्येक नामोंमें तुच्छताकी भावना करने लगा। उसका हृदय अनेक जन्मके द्वेषानुबन्धसे युक्त था, अतः वह उनकी निन्दा और तिरस्कार आदि करते हुए भगवान्के सम्पूर्ण समयानुसार लीलाकृत नामोंका द्वेषभावसे निरन्तर उच्चारण करता था। खिले हुए कमलदलके समान

* अविवाहिता कन्याके गर्भसे उत्पन्न हुए पुत्रको 'कानीन' कहते हैं।

जिसकी निर्मल आँखें हैं, जो उज्ज्वल पीताम्बर तथा निर्मल किरीट, केयूर, हार और कटकादि धारण किये हुए है तथा जिसकी लंबी-लंबी चार भुजाएँ हैं और जो शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए है, भगवान्‌का वह दिव्य रूप अत्यन्त वैरानुबन्धके कारण भ्रमण, भोजन, स्नान, आसन और शयन आदि सम्पूर्ण अवस्थाओंमें कभी उसके चित्तसे दूर न होता था। फिर गाली देते समय उन्हींका नामोच्चारण करते हुए और हृदयमें भी उन्हींका ध्यान धरते हुए जिस समय वह अपने वधके लिये हाथमें धारण किये चक्रके उज्ज्वल किरणजालसे सुशोभित, अक्षय तेजस्वरूप, द्वेषादि सम्पूर्ण दोषोंसे रहित, ब्रह्मभूत भगवान्‌को देख रहा था, उसी समय तुरंत भगवच्चक्रसे मारा गया; भगवत्स्मरणके कारण सम्पूर्ण पापराशिके दग्ध हो जानेसे भगवान्‌के द्वारा उसका अन्त हुआ और वह उन्हींमें लीन हो गया। इस प्रकार इस सम्पूर्ण रहस्यका मैंने तुमसे वर्णन किया। अहो! वे भगवान् तो द्वेषानुबन्धके कारण भी कीर्तन और स्मरण करनेसे सम्पूर्ण देवता और असुरोंको दुर्लभ परम फल देते हैं, फिर सम्यक् भक्तिसम्पन्न पुरुषोंकी तो बात ही क्या है?

आनकदुन्दुभि वसुदेवजीके पौरवी, रोहिणी, मदिरा, भद्रा और देवकी आदि बहुत-सी स्त्रियाँ थीं। उनमें रोहिणीसे वसुदेवजीने बलभद्र, शठ, सारण और दुर्मद आदि कई पुत्र उत्पन्न किये तथा बलभद्रजीके रेवतीसे निशठ और उल्मुक नामक दो पुत्र हुए। सार्ष्टि, मार्ष्टि, शिशु, सत्य और धृति आदि सारणके पुत्र थे। इनके अतिरिक्त भद्राश्व, भद्रबाहु, दुर्दम और भूत आदि भी रोहिणीकी ही संतानमें थे। नन्द, उपनन्द और कृतक आदि मदिराके तथा उपनिधि और गद आदि भद्राके पुत्र थे। वैशालीके गर्भसे कौशिक नामक केवल एक ही पुत्र हुआ।

आनकदुन्दुभिके देवकीसे कीर्तिमान्, सुषेण, उदायु, भद्रसेन, ऋजुदास तथा भद्रदेव नामक छः पुत्र हुए। इन सबको कंसने मार डाला था। पीछे भगवान्‌की प्रेरणासे योगमायाने देवकीके सातवें गर्भको आधी रातके समय खींचकर रोहिणीकी कुक्षिमें स्थापित कर दिया। आकर्षण करनेसे इस गर्भका नाम संकर्षण हुआ। तदनन्तर सम्पूर्ण संसाररूप महावृक्षके मूलस्वरूप भूत, भविष्यत् और वर्तमानकालीन सम्पूर्ण देव, असुर और मुनिजनकी बुद्धिके अगम्य तथा ब्रह्मा और अग्नि आदि देवताओंद्वारा प्रणाम करके भूभारहरणके लिये प्रसन्न किये गये आदि, मध्य और अन्तहीन भगवान् वासुदेवने देवकीके गर्भसे अवतार लिया तथा उन्हींकी कृपासे बढ़ी हुई महिमावाली योगनिद्रा भी नन्दगोपकी पत्नी यशोदाके गर्भमें स्थित हुई। उन कमलनयन भगवान्‌के प्रकट होनेपर यह सम्पूर्ण जगत् प्रसन्न हुए सूर्य, चन्द्र आदि ग्रहोंसे सम्पन्न, सर्पादिके भयसे शून्य, अधर्मादिसे रहित तथा स्वस्थचित्त हो गया। उन्होंने प्रकट होकर इस सम्पूर्ण संसारको सन्मार्गावलम्बी कर दिया।

इस मर्त्यलोकमें अवतीर्ण हुए भगवान्‌की सोलह हजार एक सौ एक रानियाँ थीं। उनमें रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती

आदि आठ मुख्य थीं। अनादि भगवान् अखिलमूर्तिने उनसे एक लाख अस्सी हजार पुत्र उत्पन्न किये। उनमेंसे प्रद्युम्न, चारुदेष्ण और साम्ब आदि तेरह पुत्र प्रधान थे। प्रद्युम्नने भी रुक्मीकी पुत्री रुक्मवतीसे विवाह किया था। उससे अनिरुद्धका जन्म हुआ। अनिरुद्धने भी रुक्मीकी पौत्री सुभद्रासे विवाह किया था। उससे वज्र उत्पन्न हुआ। वज्रका पुत्र प्रतिबाहु तथा प्रतिबाहुका सुचारु था। इस प्रकार सैकड़ों हजार पुरुषोंकी संख्यावाले यदुकुलकी संतानोंकी गणना नहीं की जा सकती; क्योंकि इस विषयमें ये दो श्लोक चरितार्थ हैं—

'जो गृहाचार्य यादवकुमारोंको धनुर्विद्याकी शिक्षा देनेमें तत्पर रहते थे, उनकी संख्या तीन करोड़ अट्ठासी लाख थी, फिर उन महात्मा यादवोंकी गणना तो कर ही कौन सकता है ? जहाँ लाखों-करोड़ोंके साथ सर्वदा यदुराज उग्रसेन रहते थे।'

देवासुर-संग्राममें जो महाबली दैत्यगण मारे गये थे, वे मनुष्यलोकमें उपद्रव करनेवाले राजालोग होकर उत्पन्न हुए। उनका नाश करनेके लिये देवताओंने यदुवंशमें जन्म लिया, जिसमें कि एक सौ एक कुल थे। उनके नियन्त्रण और स्वामित्वपर भगवान् विष्णु ही अधिष्ठित हुए और वे समस्त यादवगण उन्हींके आज्ञानुसार वृद्धिको प्राप्त हुए। इस प्रकार जो पुरुष इस वृष्णिवंशकी उत्पत्तिके विवरणको सुनता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकको प्राप्त कर लेता है।

तुर्वसु, द्रुह्यु और अनुके वंशका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—इस प्रकार मैंने तुमसे सक्षेपसे यदुके वंशका वर्णन किया। अब तुर्वसुके वंशका वर्णन सुनो। तुर्वसुका पुत्र वह्नि था, वह्निका भार्ग, भार्गका भानु, भानुका त्रयीसानु, त्रयीसानुका करन्दम और करन्दमका पुत्र मरुत्त था। मरुत्त निस्संतान था, इसलिये उसने पुरुवंशीय दुष्यन्तको पुत्ररूपसे स्वीकार कर लिया। इस प्रकार ययातिके शापसे तुर्वसुके वंशने पुरुवंशका ही आश्रय लिया।

(अब द्रुह्युके वंशका वर्णन सुनो—) द्रुह्युका पुत्र बभ्रु था, बभ्रुका सेतु, सेतुका आरब्ध, आरब्धका गान्धार, गान्धारका धर्म, धर्मका घृत, घृतका दुर्दम, दुर्दमका प्रचेता तथा प्रचेताका पुत्र शतधर्म था। इसने उत्तरवर्ती बहुत-से म्लेच्छोंका आधिपत्य किया।

ययातिके चौथे पुत्र अनुके सभानल, चक्षु और परमेषु नामक तीन पुत्र थे। सभानलका पुत्र कालानल हुआ तथा कालानलके सृञ्जय, सृञ्जयके पुरञ्जय, पुरञ्जयके जनमेजय, जनमेजयके महाशाल, महाशालके महामना और महामनाके उशीनर तथा तितिक्षु नामक दो पुत्र हुए।

उशीनरके शिबि, नृग, नर, कृमि और वर्म नामक पाँच पुत्र हुए। उनमेंसे शिबिके पृषदर्भ, सुवीर, केकय और मद्रक—ये चार पुत्र थे। तितिक्षुका पुत्र रुशद्रथ हुआ। उसके हेम, हेमके सुतपा तथा सुतपाके बलि नामक पुत्र हुआ। इस बलिके क्षेत्र (रानी) में दीर्घतमा नामक मुनिने अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, सुह्म और पौण्ड्र नामक पाँच बालेय क्षत्रिय उत्पन्न किये। इन बलि-पुत्रोंकी संततिके नामानुसार पाँच देशोंके भी ये ही नाम पड़े। इनमेंसे अङ्गसे अनपान, अनपानसे दिविरथ, दिविरथसे धर्मरथ और धर्मरथसे चित्ररथका जन्म हुआ, जिसका दूसरा नाम रोमपाद था। इस रोमपादके मित्र दशरथजी थे, अजके पुत्र दशरथजीने रोमपादको संतानहीन देखकर उन्हें पुत्रीरूपसे अपनी शान्ता नामकी कन्या गोद दे दी थी।

रोमपादका पुत्र चतुरङ्ग था। चतुरङ्गके पृथुलाक्ष तथा पृथुलाक्षके चम्प नामक पुत्र हुआ, जिसने चम्पा नामकी पुरी बसायी थी। चम्पके हर्यङ्ग नामक पुत्र हुआ, भद्ररथसे बृहद्रथ, बृहद्रथसे बृहत्कर्मा, बृहत्कर्मासे बृहद्भानु, बृहद्भानुसे बृहन्मना, बृहन्मनासे जयद्रथका जन्म हुआ। जयद्रथकी ब्राह्मण और क्षत्रियके संसर्गसे उत्पन्न हुई पत्नीके गर्भसे विजय नामक पुत्रका जन्म हुआ। विजयके धृति नामक पुत्र हुआ, धृतिके धृतव्रत, धृतव्रतके सत्यकर्मा और सत्यकर्माके अतिरथ (अधिरथ) का जन्म हुआ, जिसने कि स्नानके लिये गङ्गाजीमें जानेपर पिटारीमें रखकर पृथाद्वारा बहाये हुए कर्णको पुत्ररूपसे पाया था। इस कर्णका पुत्र वृषसेन था। बस, अङ्गवंश इतना ही है। इसके आगे पुरुवंशका वर्णन सुनो।

पुरु-वंश

श्रीपराशरजी कहते हैं—पुरुका पुत्र जनमेजय था। जनमेजयका प्रचिन्वान्, प्रचिन्वान्का प्रवीर, प्रवीरका मनस्यु, मनस्युका अभयद, अभयदका सुद्यु, सुद्युका बहुगत, बहुगतका संयाति, संयातिका अहंयाति तथा अहंयातिका पुत्र रौद्राश्व था।

रौद्राश्वके ऋतेषु, कक्षेषु, स्थण्डिलेषु, कृतेषु, जलेषु, धर्मेषु, धृतेषु, स्थलेषु, सन्नतेषु और वनेषु नामक दस पुत्र थे। ऋतेषुका पुत्र अन्तिनार हुआ तथा अन्तिनारके सुमति, अप्रतिरथ और ध्रुव नामक तीन पुत्रोंने जन्म लिया। इनमेंसे अप्रतिरथका पुत्र कण्व और कण्वका मेधातिथि हुआ। अप्रतिरथका दूसरा पुत्र ऐलीन था। इस ऐलीनके दुष्यन्त आदि चार पुत्र हुए। दुष्यन्तके यहाँ चक्रवर्ती सम्राट् भरतका जन्म हुआ।

भरतका पुत्र वितथ हुआ। वितथका पुत्र मन्यु हुआ और मन्युके बृहत्क्षत्र, महावीर्य, नर और गर्ग आदि कई पुत्र हुए। नरका पुत्र संकृति और संकृतिके गुरुप्रीति एवं रन्तिदेव नामक दो पुत्र हुए। गर्गसे शिनिका जन्म हुआ, जिससे कि गार्ग्य और शैन्य हुए। महावीर्यका पुत्र दुरुक्षय हुआ। उसके त्रय्यारुणि, पुष्करिण्य और कपि नामक तीन पुत्र हुए। ये तीनों पुत्र पीछे ब्राह्मण हो गये थे। बृहत्क्षत्रका पुत्र सुहोत्र और सुहोत्रका पुत्र हस्ती था, जिसने यह हस्तिनापुर नामक नगर बसाया था।

हस्तीके तीन पुत्र अजमीढ, द्विजमीढ और पुरुमीढ थे। अजमीढके कण्व और कण्वके मेधातिथि नामक पुत्र हुआ। अजमीढका दूसरा पुत्र बृहदिषु था। उसके बृहद्धनु, बृहद्धनुके बृहत्कर्मा, बृहत्कर्माके जयद्रथ, जयद्रथके विश्वजित् तथा विश्वजित्के सेनजित्का जन्म हुआ। सेनजित्के रुचिराश्व, काश्य, दृढहनु और वत्सहनु नामक चार पुत्र हुए। रुचिराश्वके पृथुसेन, पृथुसेनके पार और पारके नीलका जन्म हुआ। इस नीलके सौ पुत्र थे, जिनमें काम्पिल्यनरेश समर प्रधान था। समरके पार, सुपार और सदश्व नामक तीन पुत्र थे। सुपारके पृथु, पृथुके सुकृति, सुकृतिके विभ्राज और विभ्राजके अणुह नामक पुत्र हुआ, जिसने शुककन्या कीर्तिसे विवाह किया था। अणुहसे ब्रह्मदत्तका जन्म हुआ। ब्रह्मदत्तसे विष्वक्सेन, विष्वक्सेनसे उदक्सेन तथा उदक्सेनसे भल्लाभ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

द्विजमीढका पुत्र यवीनर था। उसका धृतिमान्, धृतिमान्का सत्यधृति, सत्यधृतिका दृढनेमि, दृढनेमिका सुपार्श्व, सुपार्श्वका सुमति, सुमतिका सन्नतिमान् तथा सन्नतिमान्का पुत्र कृत हुआ, जिसे हिरण्यनाभने योगविद्याकी शिक्षा दी थी तथा जिसने प्राच्य सामग श्रुतियोंकी चौबीस संहिताएँ रची थीं। कृतका पुत्र उग्रायुध था, जिसने अनेकों नीपवंशीय क्षत्रियोंका नाश किया। उग्रायुधके क्षेम्य, क्षेम्यके सुधीर, सुधीरके रिपुञ्जय और रिपुञ्जयसे बहुरथने जन्म लिया। ये सब पुरुवंशीय राजागण हुए।

अजमीढकी नलिनी नाम्नी एक भार्या थी। उसके नील नामक एक पुत्र हुआ। नीलके शान्ति, शान्तिके सुशान्ति, सुशान्तिके पुरञ्जय, पुरञ्जयके ऋक्ष और ऋक्षके हर्यश्व नामक पुत्र हुआ। हर्यश्वके मुद्गल, सृञ्जय, बृहदिषु, यवीनर और काम्पिल्य नामक पाँच पुत्र हुए। पिताने कहा था कि मेरे ये पुत्र मेरे आश्रित पाँचों देशोंकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं, इसलिये वे पाञ्चाल कहलाये।

मुद्गलसे मौद्गल्य द्विजोंकी परम्परा चली। मुद्गलसे बृहदश्व और बृहदश्वसे दिवोदास नामक पुत्र एवं अहल्या नामकी एक कन्याका जन्म हुआ। (अहल्या गौतम ऋषिको विवाही गयी थी) और उस अहल्यासे महर्षि गौतमके द्वारा शतानन्दका जन्म हुआ। शतानन्दसे धनुर्वेदका पारदर्शी सत्यधृति उत्पन्न हुआ। एक बार अप्सराओंमें श्रेष्ठ उर्वशीको देखनेसे सत्यधृतिका वीर्य स्खलित होकर शरस्तम्ब (सरकंडे) पर पड़ा। उससे दो भागोंमें बँट जानेके कारण पुत्र और पुत्रीरूप दो संतानें उत्पन्न हुईं। उन्हें मृगयाके लिये गये हुए राजा शान्तनु कृपावश ले आये। तदनन्तर पुत्रका नाम कृप हुआ और कन्या अश्वत्थामाकी माता द्रोणाचार्यकी पत्नी कृपी हुई।

दिवोदासका पुत्र मित्रायु हुआ। मित्रायुका पुत्र च्यवन नामक राजा हुआ, च्यवनका सुदास, सुदासका सौदास, सौदासका सहदेव, सहदेवका सोमक और सोमकके सौ पुत्र हुए, जिनमें जन्तु सबसे बड़ा और पृषत सबसे छोटा था। पृषतका पुत्र द्रुपद, द्रुपदका धृष्टद्युम्न और धृष्टद्युम्नका पुत्र धृष्टकेतु था।

अजमीढका ऋक्ष नामक एक पुत्र और था। उसका पुत्र संवरण हुआ तथा संवरणका पुत्र कुरु था, जिसने कि धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्रकी स्थापना की। कुरुके पुत्र सुधनु, जह्नु और परीक्षित् आदि हुए। सुधनुका पुत्र सुहोत्र था, सुहोत्रका च्यवन, च्यवनका कृतक और कृतकका पुत्र उपरिचर वसु हुआ। वसुके बृहद्रथ, प्रत्यग्र, कुशाम्बु, कुचेल और मात्स्य

आदि सात पुत्र थे। इनमेंसे वृहद्रथके कुशाग्र, कुशाग्रके वृषभ, वृषभके पुष्पवान्, पुष्पवान्के सत्यहित, सत्यहितके सुधन्वा और सुधन्वाके जतुका जन्म हुआ। वृहद्रथके दो खण्डोंमें विभक्त एक पुत्र और हुआ था, जो कि जराके द्वारा जोड़ दिये जानेपर जरासन्ध कहलाया। उससे सहदेवका जन्म हुआ तथा सहदेवसे सोमप और सोमपसे श्रुतिश्रवाकी उत्पत्ति हुई। इस प्रकार मैंने तुमसे यह मागध-भूपालोंका वर्णन किया है।

कुरुके वंशका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—कुरुपुत्र परीक्षित्के जनमेजय, श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन नामक चार पुत्र हुए तथा जह्नुके सुरथ नामक एक पुत्र हुआ। सुरथके विदूरथका जन्म हुआ। विदूरथके सार्वभौम, सार्वभौमके जयत्सेन, जयत्सेनके आराधित, आराधितके अयुतायु, अयुतायुके अक्रोधन, अक्रोधनके देवातिथि तथा देवातिथिके अजमीढ-पुत्र ऋक्षसे भिन्न दूसरे ऋक्षका जन्म हुआ। ऋक्षसे भीमसेन, भीमसेनसे दिलीप और दिलीपसे प्रतीप नामक पुत्र हुआ।

प्रतीपके देवापि, शान्तनु और बाह्लीक नामक तीन पुत्र हुए। इनमेंसे देवापि बाल्यावस्थामें ही वनमें चला गया था, अतः शान्तनु ही राजा हुआ। उसके विषयमें पृथिवीतलपर यह श्लोक कहा जाता है—

'राजा शान्तनु जिसको-जिसको अपने हाथसे स्पर्श कर देते थे, वे वृद्ध पुरुष भी युवावस्था प्राप्त कर लेते थे तथा उनके स्पर्शसे सम्पूर्ण जीव अत्युत्तम शान्ति-लाभ करते थे, इसीलिये वे शान्तनु कहलाते थे।'

बाह्लीकके सोमदत्त नामक पुत्र हुआ तथा सोमदत्तके भूरि, भूरिश्रवा और शल्य नामक तीन पुत्र हुए। शान्तनुके गङ्गाजीसे अतिशय कीर्तिमान् तथा सम्पूर्ण शास्त्रोंका जाननेवाला भीष्म नामक पुत्र हुआ। शान्तनुने सत्यवतीसे चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य नामक दो पुत्र और भी उत्पन्न किये। उनमेंसे चित्राङ्गदको तो बाल्यावस्थामें ही चित्राङ्गद-नामक गन्धर्वने युद्धमें मार डाला। विचित्रवीर्यने काशिराजकी पुत्री अम्बिका और अम्बालिकासे विवाह किया। उनके उपभोगमें अत्यन्त व्यग्र रहनेके कारण वह राजरोग यक्ष्मासे अकालहीमें मर गया। तदनन्तर मेरे पुत्र कृष्णद्वैपायनने सत्यवतीके नियुक्त करनेसे माताका वचन टालना उचित न जान विचित्रवीर्यकी पत्नियोंसे धृतराष्ट्र और पाण्डु नामक दो पुत्र उत्पन्न किये और उनकी भेजी हुई दासीसे विदुर नामक एक पुत्र उत्पन्न किया।

धृतराष्ट्रने भी गान्धारीसे दुर्योधन और दुःशासन आदि सौ पुत्रोंको जन्म दिया। पाण्डु वनमें आखेट करते समय ऋषिके शापसे संतानोत्पादनमें असमर्थ हो गये थे; अतः उनकी स्त्री कुन्तीसे धर्म, वायु और इन्द्रने क्रमशः युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन नामक तीन पुत्र तथा माद्रीसे दोनों अश्विनीकुमारोंने नकुल और सहदेव नामक दो पुत्र उत्पन्न किये। इस प्रकार उनके पाँच पुत्र हुए। उन पाँचोंके द्रौपदीसे पाँच ही पुत्र हुए। उनमेंसे युधिष्ठिरसे प्रतिविन्ध्य, भीमसेनसे श्रुतसेन, अर्जुनसे श्रुतकीर्ति, नकुलसे श्रुतानीक तथा सहदेवसे श्रुतकर्माका जन्म हुआ था।

इनके अतिरिक्त पाण्डवोंके और भी कई पुत्र हुए। जैसे—युधिष्ठिरसे यौधेयीके देवक नामक पुत्र हुआ, भीमसेनसे हिडिम्बाके घटोत्कच और काशीसे सर्वग नामक पुत्र हुआ, सहदेवसे विजयाके सुहोत्रका जन्म हुआ, नकुलने रेणुमतीसे

निरमित्रको उत्पन्न किया। अर्जुनके नागकन्या उलूपीसे इरावान् नामक पुत्र हुआ। मणिपुर-नरेशकी पुत्रीसे अर्जुनने पुत्रिका-धर्मानुसार बभ्रुवाहन नामक एक पुत्र उत्पन्न किया तथा उसके सुभद्रासे अभिमन्युका जन्म हुआ, जो कि बाल्यावस्थामें ही बड़ा बल-पराक्रम-सम्पन्न तथा अपने सम्पूर्ण शत्रुओंको जीतनेवाला था। तदनन्तर, कुरुकुलके क्षीण हो जानेपर जो अश्वत्थामाके प्रहार किये हुए ब्रह्मास्त्रद्वारा गर्भमें ही भस्मीभूत हो चुका था, किंतु फिर, जिन्होंने अपनी इच्छासे ही माया-मानव-देह धारण किया है, उन सकल सुरासुरवन्दित-चरणारविन्द श्रीकृष्णचन्द्रके प्रभावसे पुनः जीवित हो गया; उस परीक्षित्‌ने अभिमन्युके द्वारा उत्तराके गर्भसे जन्म लिया, जो कि इस समय इस प्रकार धर्मपूर्वक सम्पूर्ण भूमण्डलका शासन कर रहा है कि जिससे भविष्यमें भी उसकी सम्पत्ति क्षीण न हो।

भविष्यमें होनेवाले कुरुवंशीय, इक्ष्वाकुवंशीय और मगधवंशीय राजाओंका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—अब मैं भविष्यमें होनेवाले राजाओंका वर्णन करता हूँ। इस समय जो परीक्षित् नामक महाराज हैं, इनके जनमेजय, श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन नामक चार पुत्र होंगे। जनमेजयका पुत्र शतानीक होगा जो याज्ञवल्क्यसे वेदाध्ययन कर, कृपसे शस्त्रविद्या प्राप्तकर विषयोंसे विरक्तचित्त हो महर्षि शौनकके उपदेशसे आत्मज्ञानमें निपुण होकर परमनिर्वाण-पद प्राप्त करेगा। शतानीकका पुत्र अश्वमेधदत्त होगा। उसके अधिसीमकृष्ण तथा अधिसीमकृष्णके निचक्नु नामक पुत्र होगा जो कि गङ्गाजीद्वारा हस्तिनापुरके बहा ले जानेपर कौशाम्बीपुरीमें निवास करेगा।

निचक्नुका पुत्र उष्ण होगा, उष्णका विचित्ररथ, विचित्ररथका शुचिरथ, शुचिरथका वृष्णिमान्, वृष्णिमान्‌का सुषेण, सुषेणका सुनीथ, सुनीथका नृप, नृपका चक्षु, चक्षुका सुखावल, सुखावलका पारिप्लव, पारिप्लवका सुनय, सुनयका मेधावी, मेधावीका रिपुञ्जय, रिपुञ्जयका मृदु, मृदुका तिग्म, तिग्मका बृहद्रथ, बृहद्रथका वसुदान, वसुदानका दूसरा शतानीक, शतानीकका उदयन, उदयनका अहीनर, अहीनरका दण्डपाणि, दण्डपाणिका निरमित्र तथा निरमित्रका पुत्र क्षेमक होगा। इस विषयमें यह प्रसिद्ध है—

'जो कुरुवंश ब्राह्मण और क्षत्रियोंकी उत्पत्तिका कारणरूप तथा नाना राजर्षियोंसे सभाजित है, वह कलियुगमें राजा क्षेमकके उत्पन्न होनेपर समाप्त हो जायगा।'

अब मैं भविष्यमें होनेवाले इक्ष्वाकुवंशीय राजाओंका वर्णन करता हूँ। बृहद्बलका पुत्र बृहत्क्षण होगा, उसका उरुक्षय, उरुक्षयका वत्सव्यूह, वत्सव्यूहका प्रतिव्योम, प्रतिव्योमका दिवाकर, दिवाकरका सहदेव, सहदेवका बृहदश्व, बृहदश्वका भानुरथ, भानुरथका प्रतीताश्व, प्रतीताश्वका सुप्रतीक, सुप्रतीकका मरुदेव, मरुदेवका सुनक्षत्र, सुनक्षत्रका किन्नर, किन्नरका अन्तरिक्ष, अन्तरिक्षका सुपर्ण, सुपर्णका अमित्रजित्, अमित्रजित्‌का बृहद्राज, बृहद्राजका धर्मी, धर्मीका कृतञ्जय, कृतञ्जयका रणञ्जय, रणञ्जयका सञ्जय, सञ्जयका शाक्य, शाक्यका शुद्धोदन, शुद्धोदनका राहुल[1], राहुलका प्रसेनजित्, प्रसेनजित्‌का क्षुद्रक, क्षुद्रकका कुण्डक, कुण्डकका सुरथ और सुरथका सुमित्र नामक पुत्र होगा। ये सब इक्ष्वाकुके वंशमें बृहद्बलकी सतान होंगे।

इस वंशके सम्बन्धमें यह प्रसिद्ध है—'यह इक्ष्वाकुवंश राजा सुमित्रतक रहेगा, क्योंकि कलियुगमें राजा सुमित्रके होनेपर फिर यह समाप्त हो जायगा।'

अब मैं मगधदेशीय बृहद्रथकी भावी सतानका अनुक्रमसे वर्णन करूँगा। इस वंशमें महाबलवान् और पराक्रमी जरासन्ध आदि राजागण प्रधान थे।

जरासन्धका पुत्र सहदेव है। सहदेवके सोमापि नामक पुत्र होगा, सोमापिके श्रुतश्रवा, श्रुतश्रवाके अयुतायु, अयुतायुके निरमित्र, निरमित्रके सुनेत्र, सुनेत्रके बृहत्कर्मा, बृहत्कर्माके सेनजित्, सेनजित्‌के श्रुतञ्जय, श्रुतञ्जयके विप्र तथा विप्रके शुचि नामक एक पुत्र होगा। शुचिके क्षेम्य, क्षेम्यके सुव्रत, सुव्रतके धर्म, धर्मके सुश्रवा, सुश्रवाके दृढसेन, दृढसेनके सुबल, सुबलके सुनीत, सुनीतके सत्यजित्, सत्यजित्‌के विश्वजित् और विश्वजित्‌के रिपुञ्जयका जन्म होगा। इस प्रकार ये बृहद्रथवंशीय राजागण एक सहस्र वर्षपर्यन्त मगधमें शासन करेंगे।

१. यहाँ शुद्धोदनका पुत्र सिद्धार्थ और सिद्धार्थका राहुल समझना चाहिये। मूलमें एक पीढ़ी छूट गयी जान पड़ती है।

कलियुगी राजाओं और कलिधर्मोंका वर्णन तथा राजवंश-वर्णनका उपसंहार

श्रीपराशरजी कहते हैं—बृहद्रथवंशका रिपुञ्जय नामक जो अन्तिम राजा होगा, उसका सुनिक नामक एक मन्त्री होगा। वह अपने स्वामी रिपुञ्जयको मारकर अपने पुत्र प्रद्योतका राज्याभिषेक करेगा। उसका पुत्र बलाक होगा, बलाकका विशाखयूप, विशाखयूपका जनक, जनकका नन्दिवर्द्धन तथा नन्दिवर्द्धनका पुत्र नन्दी होगा। ये पाँच प्रद्योतवंशीय नृपतिगण एक सौ अड़तीस वर्ष पृथ्वीका पालन करेंगे।

नन्दीका पुत्र शिशुनाभ होगा, शिशुनाभका काकवर्ण, काकवर्णका क्षेमधर्मा, क्षेमधर्माका क्षतौजा, क्षतौजाका विधिसार, विधिसारका अजातशत्रु, अजातशत्रुका अर्भक, अर्भकका उदयन, उदयनका नन्दिवर्द्धन और नन्दिवर्द्धनका पुत्र महानन्दी होगा। ये शिशुनाभवंशीय नृपतिगण तीन सौ बासठ वर्ष पृथ्वीका शासन करेंगे।

महानन्दीके शूद्राके गर्भसे उत्पन्न महापद्म नामक नन्द होगा। तबसे शूद्रजातीय राजा राज्य करेंगे। राजा महापद्म सम्पूर्ण पृथ्वीका एकच्छत्र और अनुल्लङ्घित राज्य-शासन करेगा। उसके सुमाली आदि आठ पुत्र होंगे, जो महापद्मके पीछे पृथ्वीका राज्य भोगेंगे। महापद्म और उसके पुत्र सौ वर्षतक पृथ्वीका शासन करेंगे। तदनन्तर इन नवों नन्दोंको कौटिल्य नामक एक ब्राह्मण नष्ट करेगा, उनका अन्त होनेपर मौर्य नृपतिगण पृथ्वीको भोगेंगे। कौटिल्य ही मुरानामकी दासीसे नन्दद्वारा उत्पन्न हुए चन्द्रगुप्तको राज्याभिषिक्त करेगा।

चन्द्रगुप्तका पुत्र बिन्दुसार, बिन्दुसारका अशोकवर्द्धन, अशोकवर्द्धनका सुयशा, सुयशाका दशरथ, दशरथका संयुत, सयुतका शालिशूक, शालिशूकका सोमशर्मा, सोमशर्माका शतधन्वा तथा शतधन्वाका पुत्र बृहद्रथ होगा। इस प्रकार एक सौ सैंतीस वर्षतक ये दस मौर्यवंशी राजा राज्य करेंगे। इनके अनन्तर पृथ्वीमें दस शुङ्गवंशीय राजागण होंगे। उनमें पहला पुष्यमित्र नामक सेनापति अपने स्वामीको मारकर स्वयं राज्य करेगा, उसका पुत्र अग्निमित्र होगा। अग्निमित्रका पुत्र सुज्येष्ठ, सुज्येष्ठका वसुमित्र, वसुमित्रका उदङ्क, उदङ्कका पुलिन्दक, पुलिन्दकका घोषवसु, घोषवसुका वज्रमित्र, वज्रमित्रका भागवत और भागवतका पुत्र देवभूति होगा। ये शुङ्गनरेश एक सौ बारह वर्ष पृथ्वीका भोग करेंगे।

इसके अनन्तर यह पृथ्वी कण्व-भूपालोंके अधिकारमें चली जायगी। शुङ्गवंशीय अति व्यसनशील राजा देवभूतिको कण्ववंशीय वसुदेव नामक उसका मन्त्री मारकर स्वयं राज्य भोगेगा। उसका पुत्र भूमित्र, भूमित्रका नारायण तथा नारायणका पुत्र सुशर्मा होगा। ये चार काण्व भूपतिगण पैंतालीस वर्ष पृथ्वीके अधिपति रहेंगे।

कण्ववंशीय सुशर्माको उसका बलिपुच्छक नामवाला आन्ध्रजातीय सेवक मारकर स्वय पृथ्वीका भोग करेगा। उसके पीछे उसका भाई कृष्ण पृथ्वीका स्वामी होगा। उसका पुत्र शान्तकर्णि होगा। शान्तकर्णिका पुत्र पूर्णोत्संग, पूर्णोत्सगका शातकर्णि, शातकर्णिका लम्बोदर, लम्बोदरका पिलक, पिलकका मेघस्वाति, मेघस्वातिका पटुमान्, पटुमान्का अरिष्टकर्मा, अरिष्टकर्माका हालाहल, हालाहलका पललक, पललकका पुलिन्दसेन, पुलिन्दसेनका सुन्दर, सुन्दरका शातकर्णि [दूसरा], शातकर्णिका शिवस्वाति, शिवस्वातिका गोमतिपुत्र, गोमतिपुत्रका अलिमान्, अलिमान्का शान्तकर्णि [दूसरा], शान्तकर्णिका शिवश्रित, शिवश्रितका शिवस्कन्ध, शिवस्कन्धका यज्ञश्री, यज्ञश्रीका द्वियज्ञ, द्वियज्ञका चन्द्रश्री तथा चन्द्रश्रीका पुत्र पुलोमाचि होगा। इस प्रकार ये तीस आन्ध्रभृत्य राजागण चार सौ छप्पन वर्ष पृथ्वीको भोगेंगे। इनके पीछे सात आभीर और दस गर्दभिल राजा होंगे। फिर सोलह शक राजा होंगे। उनके पीछे आठ यवन, चौदह तुर्क, तेरह मुण्ड (गुरुण्ड) और ग्यारह मौनजातीय राजालोग एक हजार नब्बे वर्ष पृथ्वीका शासन करेंगे। इनमेंसे भी ग्यारह मौन राजा पृथ्वीको तीन सौ वर्षतक भोगेंगे।

इनके बाद कैंकिल नामक अभिषेकरहित राजा होंगे। उनका वंशधर विन्ध्यशक्ति होगा। विन्ध्यशक्तिका पुत्र पुरञ्जय होगा। पुरञ्जयका रामचन्द्र, रामचन्द्रका धर्मवर्मा, धर्मवर्माका वङ्ग, वङ्गका नन्दन तथा नन्दनका पुत्र सुनन्दी होगा। सुनन्दीके नन्दियशा, शुक्र और प्रवीर—ये तीन भाई होंगे। ये सब एक सौ छः वर्षतक राज्य करेंगे। इसके पीछे तेरह इनके वंशके और तीन बाह्लिक राजा होंगे। उनके बाद तेरह पुष्पमित्र और पटुमित्र आदि तथा सात आन्ध्र माण्डलिक भूपतिगण होंगे तथा नौ राजा क्रमशः कोशलदेशमें राज्य करेंगे। निषधदेशके स्वामी भी ये ही होंगे।

मगधदेशमें विश्वस्फटिक नामक राजा होगा। वह कैवर्त्त, वटु, पुलिन्द और ब्राह्मणोंको राज्यमें नियुक्त करेगा। सम्पूर्ण क्षत्रिय-जातिको उच्छिन्न कर पद्मावतीपुरीमें नागगण तथा गङ्गाके निकटवर्ती प्रयाग और गयामें मागध और गुप्त राजालोग राज्य भोग करेंगे। कोशल, आन्ध्र, पुण्ड्र, ताम्रलिप्त और समुद्रतटवर्तिनी पुरीकी देवरक्षित नामक एक राजा रक्षा करेगा। कलिङ्ग, माहिष, महेन्द्र और भौम आदि देशोंको गुहनरेश भोगेंगे। नैषध, नैमिषक और कालकोशक आदि जनपदोंको मणि-धान्यक-वंशीय राजा भोगेंगे। त्रैराज्य और मुषिक देशोंपर कनक नामक राजाका राज्य होगा। सौराष्ट्र, अवन्ति, शूद्र, आभीर तथा नर्मदा-तटवर्ती मरुभूमिपर व्रात्य, द्विज, आभीर और शूद्र आदिका आधिपत्य होगा। समुद्रतट, दाविकोर्वी, चन्द्रभागा और काश्मीर आदि देशोंका व्रात्य, म्लेच्छ और शूद्र आदि राजागण भोग करेंगे।

ये सम्पूर्ण राजालोग पृथिवीमें एक ही समयमें होंगे। ये थोड़ी प्रसन्नतावाले, अत्यन्त क्रोधी, सर्वदा अधर्म और मिथ्या भाषणमें रुचि रखनेवाले, स्त्री, बालक और गौओंकी हत्या करनेवाले, परधन-हरणमें रुचि रखनेवाले, अल्पशक्ति तमःप्रधान उत्थानके साथ ही पतनशील, अल्पायु, महती कामनावाले, अल्पपुण्य और अत्यन्त लोभी होंगे। ये सम्पूर्ण देशोंको परस्पर मिला देंगे तथा उन राजाओंके आश्रयसे ही बलवान् और उन्हींके स्वभावका अनुकरण करनेवाले म्लेच्छ तथा आर्यविपरीत आचरण करते हुए सारी प्रजाको नष्ट-भ्रष्ट कर देंगे।

तब दिन-दिन धर्म और अर्थका थोड़ा-थोड़ा ह्रास तथा क्षय होनेके कारण संसारका क्षय हो जायगा। उस समय अर्थ ही कुलीनताका हेतु होगा; बल ही सम्पूर्ण धर्मका हेतु होगा; पारस्परिक रुचि ही दाम्पत्य-सम्बन्धकी हेतु होगी, स्त्रीत्व ही उपभोगका हेतु होगा अर्थात् स्त्रीकी जाति-कुल आदिका विचार न होगा; मिथ्या भाषण ही व्यवहारमें सफलता प्राप्त करनेका हेतु होगा; जलकी सुलभता और सुगमता ही पृथिवीकी स्वीकृतिका हेतु होगा अर्थात् पुण्यक्षेत्रादिका कोई विचार न होगा। जहाँकी जलवायु उत्तम होगी वही भूमि उत्तम मानी जायगी; यज्ञोपवीत ही ब्राह्मणत्वका हेतु होगा; रत्नादि धारण करना ही प्रशंसाका हेतु होगा; बाह्य चिह्न ही आश्रमोंके हेतु होंगे; अन्याय ही आजीविकाका हेतु होगा; दुर्बलता ही बेकारीका हेतु होगा; निर्भयतापूर्वक धृष्टताके साथ बोलना ही पाण्डित्यका हेतु होगा; निर्धनता ही साधुत्वका हेतु होगी; स्नान ही साधनका हेतु होगा; दान ही धर्मका हेतु होगा; स्वीकार कर लेना ही विवाहका हेतु होगा अर्थात् संस्कार आदिकी अपेक्षा न कर पारस्परिक स्नेहबन्धनसे ही दाम्पत्य-सम्बन्ध स्थापित हो जायगा; भली प्रकार बन-ठनकर रहनेवाला ही सुपात्र समझा जायगा; दूर देशका जल ही तीर्थोदकत्वका हेतु होगा तथा छद्मवेश-धारण ही गौरवका कारण होगा। इस प्रकार पृथिवीमण्डलमें विविध दोषोंके फैल जानेसे सभी वर्णोंमें जो-जो बलवान् होगा, वही-वही राजा बन बैठेगा।

इस प्रकार अतिलोलुप राजाओंके कर-भारको सहन न कर सकनेके कारण प्रजा पर्वत-कन्दराओंका आश्रय लेगी तथा मधु, शाक, मूल, फल, पत्र और पुष्प आदि खाकर दिन काटेगी। वृक्षोंके पत्र और वल्कल ही उनके पहनने तथा ओढ़नेके कपड़े होंगे। अधिक सन्तानें होंगी। सब लोग शीत, वायु, घाम और वर्षा आदिके कष्ट सहेंगे। कोई भी तेईस वर्षतक जीवित न रह सकेगा। इस प्रकार कलियुगमें यह सम्पूर्ण जनसमुदाय निरन्तर क्षीण होता रहेगा। इस तरह श्रौत और स्मार्तधर्मका अत्यन्त ह्रास हो जाने तथा कलियुगके प्रायः बीत जानेपर शम्बल (शम्भल) ग्रामनिवासी ब्राह्मणश्रेष्ठ विष्णुयशाके घर सम्पूर्ण संसारके रचयिता, चराचरगुरु, आदिमध्यान्तशून्य, ब्रह्ममय, आत्मस्वरूप भगवान् वासुदेव अपने अंशसे अष्टैश्वर्ययुक्त कल्किरूपसे संसारमें अवतार लेकर असीम शक्ति और माहात्म्यसे सम्पन्न हो सकल म्लेच्छ, दस्यु, दुष्टाचारी तथा दुष्टचित्तोंका क्षय करेंगे और समस्त प्रजाको अपने-अपने धर्ममें नियुक्त करेंगे। इसके पश्चात् समस्त कलियुगके समाप्त हो जानेपर रात्रिके अन्तमें जागे हुओंके समान तत्कालीन लोगोंकी बुद्धि स्वच्छ, स्फटिकमणिके समान निर्मल हो जायगी। उन बीजभूत समस्त मनुष्योंसे उनकी अधिक अवस्था होनेपर भी उस समय संतान उत्पन्न हो सकेगी। उनकी वे सन्तानें सत्ययुगके ही धर्मोंका अनुसरण करनेवाली होंगी।

इस विषयमें ऐसा कहा जाता है कि—जिस समय चन्द्रमा, सूर्य और बृहस्पति पुष्यनक्षत्रमें स्थित होकर एक राशिपर एक साथ आवेंगे, उस समय सत्ययुगका आरम्भ हो जायगा*।

मुनिश्रेष्ठ ! तुमसे मैंने यह समस्त वंशोंके भूत, भविष्यत् और वर्तमान सम्पूर्ण राजाओंका वर्णन कर दिया।

---

* यद्यपि प्रति बारहवें वर्ष जब बृहस्पति कर्कराशिमें आते हैं, तो अमावास्या तिथिको पुष्यनक्षत्रपर इन तीनों ग्रहोंका योग होता है, तथापि जब सत्ययुगका आरम्भ होगा, उस समय भी इन तीनों ग्रहोंका एक साथ योग होगा।

परीक्षित्के जन्मसे नन्दके अभिषेकतक एक हजार पाँच सौ (पंद्रह सौ) वर्षका समय जानना चाहिये। सप्तर्षियोंमेंसे जो पुलस्त्य और क्रतु दो नक्षत्र आकाशमें पहले दिखायी देते हैं, उनके बीचमें रात्रिके समय जो दक्षिणोत्तर-रेखापर समदेशमें स्थित अश्विनी आदि नक्षत्र हैं, उनमेंसे प्रत्येक नक्षत्रपर सप्तर्षिगण एक-एक सौ वर्ष रहते हैं। द्विजोत्तम! परीक्षित्के समयमें वे सप्तर्षिगण मघानक्षत्रपर थे। उसी समय बारह सौ दिव्य वर्ष प्रमाणवाला कलियुग आरम्भ हुआ था। द्विज! जिस समय श्रीविष्णुके अंशावतार एवं वसुदेवजीके वंशधर भगवान् श्रीकृष्ण निजधामको पधारे थे, उसी समय पृथिवीपर कलियुगका आगमन हुआ था।

जबतक भगवान् अपने चरणकमलोंसे इस पृथिवीका स्पर्श करते रहे, तबतक पृथिवीसे संसर्ग करनेकी कलियुगकी हिम्मत न पड़ी।

सनातन पुरुष भगवान् विष्णुके अंशावतार श्रीकृष्णचन्द्रके पधारनेपर भाइयोंके सहित धर्मपुत्र महाराज युधिष्ठिरने अपने राज्यको छोड दिया। श्रीकृष्णचन्द्रके अन्तर्धान हो जानेपर विपरीत लक्षणोंको देखकर पाण्डवोंने परीक्षित्को राज्यपदपर अभिषिक्त कर दिया। जिस समय ये सप्तर्षिगण पूर्वाषाढा-नक्षत्रपर जायँगे, उसी समय राजा नन्दके समयसे कलियुगका प्रभाव बढ़ेगा। जिस दिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र परमधामको गये थे, उसी दिन कलियुग उपस्थित हो गया था। अब तुम कलियुगकी वर्ष-संख्या सुनो।

द्विज! मानवी वर्षगणनाके अनुसार कलियुग तीन लाख साठ हजार वर्ष रहेगा *। बारह सौ दिव्य वर्ष बीतनेपर कृतयुग आरम्भ होगा। द्विजश्रेष्ठ! प्रत्येक युगमें हजारों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र महात्मागण हो गये हैं। उनके बहुत अधिक संख्यामें होनेसे तथा जाति और नामकी समानता होनेके कारण कुलोंमें पुनरुक्ति हो जानेके भयसे मैंने उन सबके नाम नहीं बतलाये हैं।

पुरुवंशीय राजा देवापि तथा इक्ष्वाकुकुलोत्पन्न राजा मरु—ये दोनों अत्यन्त योगबलसम्पन्न हैं और कलापग्राममें रहते हैं। सत्ययुगका आरम्भ होनेपर ये पुनः मर्त्यलोकमें आकर क्षत्रिय-कुलके प्रवर्तक होंगे। वे आगामी मनुवंशके बीजरूप हैं। सत्ययुग, त्रेता और द्वापर इन तीनों युगोंमें इसी क्रमसे मनुपुत्र पृथिवीका भोग करते हैं। फिर कलियुगमें उन्हींमेंसे कोई-कोई आगामी मनुसंतानके बीजरूपसे स्थित रहते हैं, जिस प्रकार कि आजकल देवापि और मरु हैं।

इस प्रकार मैंने तुमसे सम्पूर्ण राजवंशोंका यह संक्षिप्त वर्णन कर दिया है। इस हेय शरीरके मोहसे अन्धे हुए ये तथा और भी ऐसे अनेक भूपतिगण हो गये हैं, जिन्होंने इस पृथिवीमण्डलमें ममता की थी। 'यह पृथिवी किस प्रकार अचलभावसे मेरी, मेरे पुत्रकी अथवा मेरे वंशकी होगी?' इसी चिन्तामें व्याकुल हुए इन सभी राजाओंका अन्त हो गया। इसी चिन्तामें डूबे रहकर इन सम्पूर्ण राजाओंके पूर्व-पूर्वतरवर्ती राजा चले गये और इसीमें मग्न रहकर आगामी भूपतिगण भी मृत्यु-मुखमें चले जायँगे। इस प्रकार अपनेको जीतनेके लिये राजाओंको अथक उद्योग करते देखकर वसुन्धरा शरत्कालीन पुष्पोंके रूपमें मानो हँस रही है।

मैत्रेय! अब तुम पृथिवीके कहे हुए कुछ श्लोकोंको सुनो। पूर्वकालमें इन्हें असित मुनिने राजा जनकको सुनाया था।

पृथिवी कहती है—अहो! बुद्धिमान् होते हुए भी इन राजाओंको यह कैसा मोह हो रहा है, जिसके कारण ये बुल्बुलेके समान क्षणस्थायी होते हुए भी अपनी स्थिरतामें इतना विश्वास रखते हैं। ये लोग प्रथम अपनेको जीतते हैं और फिर अपने मन्त्रियोंको तथा इसके अनन्तर ये क्रमशः अपने भृत्य, पुरवासी एवं शत्रुओंको जीतना चाहते हैं। 'इसी क्रमसे हम समुद्रपर्यन्त इस सम्पूर्ण पृथिवीको जीत लेंगे' ऐसी बुद्धिसे मोहित हुए ये लोग अपनी निकटवर्तिनी मृत्युको नहीं देखते। यदि समुद्रसे घिरा हुआ यह सम्पूर्ण भूमण्डल अपने वशमें हो ही जाय तो भी मनोजयके सामने इसका मूल्य भी क्या है; क्योंकि मोक्ष तो मनोजयसे ही प्राप्त होता है। जिसे छोडकर इनके पूर्वज चले गये तथा जिसे अपने साथ लेकर इनके पिता भी नहीं गये, उसी मुझको अत्यन्त मूर्खताके कारण ये राजा लोग जीतना चाहते हैं। जिनका चित्त ममतामय है, उन पिता-पुत्र और भाइयोंमें अत्यन्त मोहके कारण मेरे ही लिये परस्पर कलह होता है। जो-जो राजालोग यहाँ हो चुके हैं, उन सभी-की ऐसी कुबुद्धि रही है कि यह पृथिवी मेरी है—यह सारी-की-सारी मेरी ही है और मेरे पीछे भी यह सदा मेरी संतानकी ही रहेगी। इस प्रकार मुझमें ममता करनेवाले एक राजाको, मुझे छोड़कर मृत्युके मुखमें जाते हुए देखकर भी न जाने कैसे उसका उत्तराधिकारी अपने हृदयमें मेरे लिये ममताको स्थान देता है? जो राजालोग दूतोंके द्वारा अपने शत्रुओंसे इस प्रकार कहलाते हैं कि 'यह पृथिवी मेरी है, तुमलोग इसे तुरंत छोड़-कर चले जाओ' उनपर मुझे बड़ी हँसी आती है और फिर उन मूढ़ोंपर मुझे दया भी आ जाती है।

श्रीपराशरजी कहते हैं—मैत्रेय! पृथिवीके कहे हुए इन श्लोकोंको जो पुरुष सुनेगा, उसकी ममता इसी प्रकार लीन

---

* संध्या और सध्यांशोंके बहत्तर हजार वर्ष और जोडनेपर चार लाख बत्तीस हजार वर्ष होंगे। चार लाख बत्तीस हजार मानव वर्ष देवताओंके बारह सौ दिव्य वर्ष होते हैं।

हो जायगी, जैसे सूर्यके तपते समय बर्फ पिघल जाता है* ।

इस प्रकार मैंने तुमसे भली प्रकार मनुके वंशका वर्णन कर दिया । जो पुरुष इस मनुवंशका क्रमशः श्रवण करता है, उस शुद्धात्माके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं । जो मनुष्य जितेन्द्रिय होकर सूर्य और चन्द्रमाके इन प्रशंसनीय वंशोंका सम्पूर्ण वर्णन सुनता है, वह अतुलित धन-धान्य और सम्पत्ति प्राप्त करता है । महाबलवान्, महावीर्यशाली, अनन्त धन संचय करनेवाले तथा परम निष्ठावान् इक्ष्वाकु, जह्नु, मान्धाता, सगर, आविक्षित (मरुत्त), रघुवंशीय राजागण तथा नहुष और ययाति आदिके चरित्रोंको सुनकर, जिन्हें कि कालने आज कथामात्र ही शेष रखा है, प्रज्ञावान् मनुष्य पुत्र, स्त्री, गृह, क्षेत्र और धन आदिमें ममता न करेगा ।

जिन पुरुषश्रेष्ठोंने ऊर्ध्वबाहु होकर अनेक वर्षपर्यन्त कठिन तपस्या की थी तथा विविध प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान किया था, आज उन अति बलवान् और वीर्यशाली राजाओंकी कालने केवल कथामात्र ही छोड़ दी है । जो पृथु अपने शत्रुसमूहको जीतकर स्वच्छन्द-गतिसे समस्त लोकोंमें विचरता था, आज वही काल-वायुकी प्रेरणासे अग्निमें फेंके हुए सेमरकी रूईके ढेरके समान नष्ट-भ्रष्ट हो गया है । जो कार्तवीर्य अपने शत्रु-मण्डलका संहारकर समस्त द्वीपोंको वशीभूतकर उन्हें भोगता था, जो मान्धाता सम्पूर्ण भूमण्डलका चक्रवर्ती सम्राट् था, आज उनका केवल कथामें ही पता चलता है । ऐसा कौन मन्दबुद्धि होगा जो यह सुनकर अपने शरीरमें भी ममता करेगा ? भगीरथ, सगर, ककुत्स्थ, रावण, श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मण और युधिष्ठिर आदि पहले हो गये हैं, यह बात सर्वथा सत्य है, किसी प्रकार भी मिथ्या नहीं है; किंतु अब वे कहाँ हैं, इसका हमें पता नहीं ।

विप्रवर ! वर्तमान और भविष्यत्कालीन जिन-जिन महावीर्यशाली राजाओंका मैंने वर्णन किया है, ये तथा अन्य लोग भी पूर्वोक्त राजाओंकी भाँति कथामात्र शेष रहेंगे; ऐसा जानकर पुत्र, पुत्री और क्षेत्र आदि तथा अन्य प्राणी तो अलग रहें, बुद्धिमान् मनुष्यको अपने शरीरमें भी ममता नहीं करनी चाहिये † ।

॥ चतुर्थ अंश समाप्त ॥

* कथमेष नरेन्द्राणां मोहो बुद्धिमतामपि । येन फेनसधर्माणोऽप्यतिविश्वस्तचेतसः ॥
पूर्वमात्मजयं कृत्वा जेतुमिच्छन्ति मन्त्रिणः । ततो भृत्यांश्च पौरांश्च जिगीषन्ते तथा रिपून् ॥
क्रमेणानेन जेष्यामो वयं पृथ्वीं ससागराम् । इत्यासक्तधियो मृत्युं न पश्यन्त्यविदूरगम् ॥
समुद्रावरणं याति भूमण्डलमथो वशम् । कियदात्मजयस्यैतन्मुक्तिरात्मजये फलम् ॥
उत्सृज्य पूर्वजा याता यां नादाय गतः पिता । तां मामतीवमूढत्वाज्जेतुमिच्छन्ति पार्थिवाः ॥
मत्कृते पितृपुत्राणां भ्रातॄणां चापि विग्रहः । जायतेऽत्यन्तमोहेन ममत्वादृतचेतसाम् ॥
पृथ्वी ममेयं सकला ममैषा मदन्वयस्यापि च शाश्वतीयम् ।
यो यो मृतो ह्यत्र बभूव राजा कुबुद्धिरासीदिति तस्य तस्य ॥
दृष्ट्वा ममत्वादृतचित्तमेकं विहाय मां मृत्युवशं व्रजन्तम् ।
तस्यानु यस्तस्य कथं ममत्वं हृद्यास्पदं मत्प्रभवं करोति ॥
पृथ्वी ममैषाशु परित्यजैनां वदन्ति ये दूतमुखैः स्वशत्रून् ।
नराधिपास्तेषु ममातिहासः पुनश्च मूढेषु दयाभ्युपैति ॥

श्रीपराशर उवाच

इत्येते धरणीगीताः श्लोका मैत्रेय यैः श्रुताः । ममत्वं विलयं याति तपत्यर्के यथा हिमम् ॥
(वि० पु० ४ । २४ । १२८–१३७)

† ये साम्प्रतं ये च नृपा भविष्याः प्रोक्ता मया विप्रवरोग्रवीर्याः ।
एते तथान्ये च तथाभिधेया सर्वे भविष्यन्ति यथैव पूर्वे ॥
एतद्विदित्वा न नरेण कार्यं ममत्वमात्मन्यपि पण्डितेन ।
तिष्ठन्तु तावत्तनयात्मजाद्याः क्षेत्रादयो ये च शरीरिणोऽन्ये ॥
(वि० पु० ४ । २४ । १५०–१५१)

पञ्चम अंश

वसुदेव-देवकीका विवाह, भारपीडिता पृथिवीका देवताओंके सहित क्षीरसमुद्रपर जाना और भगवान‍्का प्रकट होकर उसे धैर्य बँधाना

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवन् ! आपने राजाओंके सम्पूर्ण वंशोंका विस्तार तथा उनके चरित्रोंका क्रमशः यथावत् वर्णन किया, अब ब्रह्मर्षे ! यदुकुलमें जो भगवान् विष्णुका अंशावतार हुआ था, उसे मैं विस्तारपूर्वक यथावत् सुनना चाहता हूँ। मुने ! भगवान् पुरुषोत्तमने पृथिवीपर अवतीर्ण होकर जो-जो कर्म किये थे, उन सबका आप मुझसे वर्णन कीजिये ।

श्रीपराशरजीने कहा—मैत्रेय ! तुमने मुझसे जो पूछा है, वह संसारमें परम मङ्गलकारी भगवान् विष्णुके अंशावतारका चरित्र सुनो । महामुने ! पूर्वकालमें देवककी महाभाग्यशालिनी पुत्री देवीस्वरूपा देवकीके साथ वसुदेवजी-ने विवाह किया । वसुदेव और देवकीके वैवाहिक सम्बन्ध होनेके अनन्तर विदा होते समय भोजनन्दन कंस सारथि बन-कर उन दोनोंका माङ्गलिक रथ हाँकने लगा । उसी समय मेघके समान गम्भीर घोष करती हुई आकाशवाणी कंसको ऊँचे स्वरसे सम्बोधन करके यों बोली—'अरे मूढ ! पतिके साथ रथपर बैठी हुई जिस देवकीको तू लिये जा रहा है, इसका आठवाँ गर्भ तेरे प्राण हर लेगा ।'

यह सुनते ही महाबली कंस खड्ग निकालकर देवकीको मारनेके लिये उद्यत हुआ । तब वसुदेवजीने यों कहा—'महाभाग ! आप देवकीका वध न करें; मैं इसके गर्भसे उत्पन्न हुए सभी बालक आपको सौंप दूँगा ।'

द्विजोत्तम ! तब सत्यके गौरवसे कंसने वसुदेवजीसे 'बहुत अच्छा' कह देवकीका वध नहीं किया । इसी समय अत्यन्त भारसे पीडित होकर पृथिवी गौका रूप धारणकर सुमेरुपर्वतपर देवताओंकी सभामें गयी । वहाँ उसने ब्रह्माजीके सहित समस्त देवताओंको प्रणामकर खेदपूर्वक करुणस्वरसे बोलते हुए अपना सारा वृत्तान्त कहा ।

पृथिवी बोली—समस्त लोकोंके गुरु श्रीनारायण मेरे गुरु हैं । देवश्रेष्ठगण ! आदित्य, मरुद्गण, साध्यगण, रुद्र, वसु, अश्विनीकुमार, अग्नि, पितृगण और लोकोंकी सृष्टि करनेवाले अत्रि आदि प्रजापतिगण—ये सब अप्रमेय महात्मा विष्णुके ही रूप हैं । ग्रह, नक्षत्र तथा तारागणोंसे चित्रित आकाश, अग्नि, जल, वायु, मैं और इन्द्रियोंके सम्पूर्ण विषय—यह सारा जगत् विष्णुमय ही है ।

इस समय कालनेमि आदि दैत्यगण मर्त्यलोकपर अधिकार जमाकर अहर्निश जनताको क्लेश पहुँचा रहे हैं । इन दिनों वह कालनेमि ही उग्रसेनके पुत्र महान् असुर कंसके रूपमें उत्पन्न हुआ है । अरिष्ट, धेनुक, केशी, प्रलम्ब, नरक, सुन्द, बलिका पुत्र अति भयंकर बाणासुर आदि दैत्य उत्पन्न हो गये हैं तथा अन्य महाबलवान् दुरात्मा राक्षस राजाओंके घरमें उत्पन्न हो गये हैं, उनकी मैं गणना नहीं कर सकती । दिव्यमूर्तिधारी देवगण ! इस समय मेरे ऊपर महाबलवान् और गर्वीले दैत्यराजोंकी अनेक अक्षौहिणी सेनाएँ हैं । अमरेश्वरो ! मैं आपलोगोंको यह बतलाये देती हूँ कि अब उनके अत्यन्त भारसे पीडित होनेके कारण मुझमें अपनेको धारण करनेकी भी शक्ति नहीं रह गयी है । अतः महाभागगण ! आपलोग मेरा भार उतारिये; जिससे मैं अत्यन्त व्याकुल होकर रसातलको न चली जाऊँ ।

पृथिवीके इन वाक्योंको सुनकर उसके भार उतारनेके विषयमें समस्त देवताओंकी प्रेरणासे भगवान् ब्रह्माजीने कहना आरम्भ किया ।

ब्रह्माजी बोले—देवगण ! पृथिवीने जो कुछ कहा है, वह सब सत्य ही है, वास्तवमें मैं, शङ्कर और आप सब लोग नारायणस्वरूप ही हैं । इसलिये आओ, अब हमलोग क्षीरसागरके पवित्र तटपर चलें और वहाँ श्रीहरिकी आराधना करके यह सम्पूर्ण वृत्तान्त उनसे निवेदन कर दें । वे विश्वरूप सर्वात्मा सर्वथा संसारके हितके लिये ही अवतीर्ण होकर पृथिवीपर धर्मकी स्थापना करते हैं ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—ऐसा कहकर देवताओंके सहित पितामह ब्रह्माजी वहाँ गये और एकाग्रचित्तसे श्रीगरुड-ध्वज भगवान‍्की इस प्रकार स्तुति करने लगे ।

ब्रह्माजी बोले—अत्यन्त सूक्ष्म ! विराट्स्वरूप ! स ! सर्वज्ञ ! शब्दब्रह्म और परब्रह्म—ये दोनों आप ब्रह्ममयके ही रूप हैं* । आप ही ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद हैं तथा आप ही शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द और ज्योतिषशास्त्र हैं । प्रभो ! अधोक्षज ! इतिहास, पुराण, व्याकरण, मीमांसा, न्याय और धर्मशास्त्र—ये सब भी आप ही हैं ।

आद्यपते ! जीवात्मा, परमात्मा, स्थूल-सूक्ष्म-देह तथा उनका कारण अव्यक्त—इन सबके विचारसे युक्त जो अन्तरात्मा और परमात्माके स्वरूपका बोधक वेदान्त-वाक्य है, वह भी आपसे भिन्न नहीं है । आप अव्यक्त, अनिर्वाच्य, अचिन्त्य, नाम और वर्णसे रहित, हाथ-पाँव और रूपहीन, शुद्ध, सनातन और परसे भी पर हैं । आप कर्णहीन होकर भी सुनते हैं, नेत्रहीन होकर भी देखते हैं, एक होकर भी अनेक रूपोंमें प्रकट होते हैं, हस्तपादादिसे रहित होकर भी बड़े वेगशाली और ग्रहण करनेवाले हैं तथा सबके अवेद्य होकर भी सबको जाननेवाले हैं । परात्मन् ! जिस धीर पुरुषकी बुद्धि आपके श्रेष्ठतम रूपसे पृथक् और कुछ भी नहीं देखती, आपके अणुसे भी अणु अदृश्य स्वरूपको देखनेवाले उस पुरुषकी आत्यन्तिक अज्ञाननिवृत्ति हो जाती है । आप विश्वके केन्द्र और त्रिभुवनके रक्षक हैं; सम्पूर्ण भूत आपहीमें स्थित हैं तथा जो कुछ भूत, भविष्यत् और अणुसे भी अणु हैं, वह सब आप प्रकृतिसे परे एकमात्र परमपुरुष ही हैं ।†

ईश ! जिस प्रकार एक ही अविकारी अग्नि विकृत होकर नाना प्रकारसे प्रज्वलित होता है, उसी प्रकार सर्वगतरूप एक आप ही सम्पूर्ण रूप धारण कर लेते हैं । जो एकमात्र श्रेष्ठ परमपद है, वह आप ही हैं । ज्ञानदृष्टिसे देखे जाने योग्य आपको ही ज्ञानी पुरुष देखा करते हैं । परात्मन् ! भूत और भविष्यत् जो कुछ स्वरूप है, वह आपसे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है । आप व्यक्त और अव्यक्तस्वरूप हैं, समष्टि और व्यष्टिरूप हैं तथा आप ही सर्वज्ञ, सर्वसाक्षी, सर्वशक्तिमान् एवं सम्पूर्ण ज्ञान, बल और ऐश्वर्यसे युक्त हैं ।* आप अनिन्द्य, अप्राप्य, निराधार और अव्याहतगति हैं, आप सबके स्वामी, अन्य ब्रह्मादिके आश्रय तथा सूर्यादि तेजोंके तेज एवं अविनाशी हैं । आप समस्त आवरण-शून्य, असहायोंके पालक और सम्पूर्ण महाविभूतियोंके आधार हैं, पुरुषोत्तम ! आपको नमस्कार है । आप किसी कारण, अकारण अथवा कारणाकारणसे शरीर-ग्रहण नहीं करते, बल्कि केवल धर्म-रक्षाके लिये ही करते हैं ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—इस प्रकार स्तुति सुनकर भगवान् अज अपना विश्वरूप प्रकट करते हुए ब्रह्माजीसे प्रसन्नचित्त होकर कहने लगे ।

श्रीभगवान् बोले—ब्रह्मन् ! देवताओंके सहित तुम्हें मुझसे जिस वस्तुकी इच्छा हो, वह सब कहो और उसे सिद्ध हुआ ही समझो ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—तब श्रीहरिके उस दिव्य विश्वरूपको देखकर ब्रह्माजी पुनः स्तुति करने लगे ।

ब्रह्माजी बोले—सहस्रबाहो ! अनन्त मुख एवं चरणवाले ! आपको हजारों बार नमस्कार हो । जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश करनेवाले ! अप्रमेय ! आपको बारंबार नमस्कार हो । भगवन् ! आप सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म, गुरुसे भी गुरु और अति बृहत् प्रमाण हैं, तथा प्रधान (प्रकृति), महत्तत्त्व और अहंकारादिमें प्रधानभूत मूल पुरुषसे भी परे हैं; भगवन् ! आप हमपर प्रसन्न होइये । देव ! इस पृथिवीके पर्वतरूपी

---

* द्वे ब्रह्मणी त्वणीयोऽतिस्थूलात्मन् सर्व सर्ववित् ।
शब्दब्रह्म परं चैव ब्रह्म ब्रह्ममयस्य यत् ॥
(वि० पु० ५ । १ । ३५)

† त्वमव्यक्तमनिर्देश्यमचिन्त्यानामवर्णवत् ।
अपाणिपादरूपं च शुद्धं नित्यं परात्परम् ॥
शृणोष्यकर्णः परिपश्यसि त्व-
मचक्षुरेको बहुरूपरूप. ।
अपादहस्तो जवनो ग्रहीता
त्वं वेत्सि सर्वं न च सर्ववेद्य. ॥
अणोरणीयासमसत्स्वरूपं
त्वा पश्यतोऽज्ञाननिवृत्तिरग्र्या ।
धीरस्य धीरस्य बिभर्ति नान्य-
द्वरेण्यरूपात् परतः परात्मन् ॥
त्वं विश्वनाभिर्भुवनस्य गोप्ता
सर्वाणि भूतानि तवान्तराणि ।
यद्भूतभव्य यदणोरणीय
पुमांस्त्वमेकः प्रकृतेः परस्तात् ॥
(वि० पु० ५ । १ । ३९—४२)

* एकं त्वमग्र्यं परमं पदं यत्
पश्यन्ति त्वां सूरयो ज्ञानदृश्यम् ।
त्वत्तो नान्यत्किञ्चिदस्ति स्वरूपं
यद्वा भूतं यच्च भव्यं परात्मन् ॥
व्यक्ताव्यक्तस्वरूपस्त्वं समष्टिव्यष्टिरूपवान् ।
सर्वज्ञ. सर्ववित्सर्वशक्तिज्ञानबलर्द्धिमान् ॥
(वि० पु० ५ । १ । ४५-४६)

मूलबन्ध इसपर उत्पन्न हुए महान् असुरोंके उत्पातसे शिथिल हो गये हैं। अतः अपरिमितवीर्य! यह अपना भार उतरवानेके लिये आपकी शरणमें आयी है। देवेश्वर! हम और यह इन्द्र, अश्विनीकुमार तथा वरुण, ये रुद्रगण, वसुगण, सूर्य, वायु और अग्नि आदि अन्य समस्त देवगण यहाँ उपस्थित हैं; इन्हें अथवा मुझे जो कुछ करना उचित हो, उन सब बातोंके लिये आज्ञा कीजिये। ईश! आपहीकी आज्ञाका पालन करते हुए हम सम्पूर्ण दोषोंसे मुक्त हो सकेंगे।

श्रीपराशरजी कहते हैं—महामुने! इस प्रकार स्तुति किये जानेपर भगवान् परमेश्वर देवताओंसे बोले—'मेरे ये दोनों केश पृथिवीपर अवतार लेकर पृथिवीके भाररूप कष्टको दूर करेंगे। सब देवगण अपने-अपने अंशोंसे पृथिवीपर अवतार लेकर अपनेसे पूर्व उत्पन्न हुए उन्मत्त दैत्योंके साथ युद्ध करें। तब मेरे दृष्टिपातसे दलित होकर पृथिवीतलपर सम्पूर्ण दैत्यगण निःसंदेह क्षीण हो जायँगे। वसुदेवजीकी जो देवीके समान देवकी नामकी भार्या है, उसके आठवें गर्भसे मैं अवतार लूँगा और इस प्रकार वहाँ अवतार लेकर उस कंसका, जिसके रूपमें कालनेमि दैत्य ही उत्पन्न हुआ है, वध करूँगा।' ऐसा कहकर श्रीहरि अन्तर्धान हो गये। महामुने! भगवान्‌के अदृश्य हो जानेपर उन्हें प्रणाम करके देवगण सुमेरुपर्वतपर चले गये और फिर पृथिवीपर अवतीर्ण हुए।

इसी समय भगवान् नारदजीने कंससे आकर कहा कि 'देवकीके आठवें गर्भमें भगवान् जन्म लेंगे।' नारदजीसे यह समाचार पाकर कंसने कुपित हो वसुदेव और देवकीको कारागृहमें बंद कर दिया। द्विज! वसुदेवजी भी, जैसा कि उन्होंने पहले कह दिया था, अपना प्रत्येक पुत्र कंसको सौंपते रहे। जिस अविद्या-रूपिणीसे सम्पूर्ण जगत् मोहित हो रहा है, वह योगनिद्रा भगवान् विष्णुकी महामाया है। उससे भगवान् श्रीहरिने कहा—

श्रीभगवान् बोले—निद्रे! जा, मेरी आज्ञासे तू पातालमें स्थित छः गर्भोंको एक-एक करके देवकीकी कुक्षिमें स्थापित कर दे। कंसद्वारा उन सबके मारे जानेपर शेषनामक मेरा अंश अपने अंशांशसे देवकीके सातवें गर्भमें स्थित होगा। देवि! गोकुलमें वसुदेवजीकी जो रोहिणी नामकी दूसरी भार्या रहती है, उसके उदरमें उस सातवें गर्भको ले जाकर तू इस प्रकार स्थापित कर देना, जिससे वह उसीके जठरसे उत्पन्न हुएके समान जान पड़े। उसके विषयमें संसार यही कहेगा कि 'कारागारमें बंद होनेके कारण भोजराज कंसके भयसे देवकीका सातवाँ गर्भ गिर गया।' वह शैलशिखरके समान वीर पुरुष गर्भसे आकर्षण किये जानेके कारण संसारमें 'संकर्षण' नामसे प्रसिद्ध होगा।

तदनन्तर शुभे! देवकीके आठवें गर्भमें मैं स्थित होऊँगा। उस समय तू भी तुरंत ही यशोदाके गर्भमें चली जाना। वर्षाऋतुमें भाद्रपद कृष्ण अष्टमीको रात्रिके समय मैं जन्म लूँगा और तू नवमीको उत्पन्न होगी। अनिन्दिते! उस समय मेरी शक्तिसे अपनी मति फिर जानेके कारण वसुदेवजी मुझे तो यशोदाके और तुझे देवकीके शयनगृहमें ले जायँगे। तब देवि! कंस तुझे पकड़कर पर्वत-शिलापर पटक देगा; उसके पटकते ही तू आकाशमें स्थित हो जायगी।

उस समय मेरे गौरवसे सहस्रनयन इन्द्र सिर झुकाकर प्रणाम करनेके अनन्तर तुझे भगिनीरूपसे स्वीकार करेगा। फिर तू भी शुम्भ, निशुम्भ आदि सहस्र दैत्योंको मारकर अपने अनेक स्थानोंसे समस्त पृथ्वीको सुशोभित करेगी। तू ही भूति, सन्नति, क्षान्ति और कान्ति है; तू ही आकाश, पृथ्वी, धृति, लज्जा, पुष्टि और उषा है; इनके अतिरिक्त संसारमें और भी जो कोई शक्ति है, वह सब तू ही है।

जो लोग प्रातःकाल और सायंकालमें अत्यन्त नम्रतापूर्वक तुझे आर्या, दुर्गा, वेदगर्भा, अम्बिका, भद्रा, भद्रकाली, क्षेमदा और भाग्यदा आदि कहकर तेरी स्तुति करेंगे, उनकी समस्त कामनाएँ मेरी कृपासे पूर्ण हो जायँगी। देवि! अब तू मेरे बतलाये हुए स्थानको जा।

भगवान्‌का आविर्भाव तथा योगमायाद्वारा कंसका तिरस्कार

श्रीपराशरजी कहते हैं—मैत्रेय! देवदेव श्रीविष्णु भगवान्‌ने जैसा कहा था, उसके अनुसार जगद्धात्री योगमायाने छः गर्भोंको देवकीके उदरमें स्थित किया और सातवेंको उसमेंसे निकाल लिया। इस प्रकार सातवें गर्भके रोहिणीके उदरमें पहुँच जानेपर श्रीहरिने तीनों लोकोंका उद्धार करनेकी इच्छासे देवकीके गर्भमें प्रवेश किया। जैसा कि

भगवान् परमेश्वरने उससे कहा था। योगमाया भी उसी दिन यशोदाके गर्भमें स्थित हुई। द्विज! विष्णु-अंशके पृथ्वीमें पधारनेपर आकाशमें ग्रहगण अच्छी प्रकारसे चलने लगे और ऋतुगण भी मङ्गलमय होकर शोभा पाने लगे। उस समय अत्यन्त तेजसे देदीप्यमाना देवकीजी-को देखकर दर्शकोंके चित्त थकित हो जाते थे; क्योंकि देवकीजीने संसारकी रक्षाके कारण भगवान् पुण्डरी-काक्षको गर्भमें धारण किया था। तदनन्तर देवकीसे महात्मा अच्युतका आविर्भाव हुआ। चन्द्रमाकी चाँदनीके समान भगवान्‌का जन्म-दिन सम्पूर्ण जगत्‌को आह्लादित करनेवाला हुआ और उस दिन सभी दिशाएँ अत्यन्त निर्मल हो गयीं।

श्रीजनार्दनके जन्म लेनेपर संतजनोंको परम संतोष हुआ, प्रचण्ड वायु शान्त हो गया तथा नदियाँ अत्यन्त स्वच्छ हो गयीं। समुद्रगण अपने घोषसे बाजोंके-से मनोहर शब्द करने लगे, श्रीजनार्दनके प्रकट होनेपर आकाशगामी देवगण पृथिवी-पर पुष्प बरसाने लगे तथा शान्त हुए यज्ञाग्नि फिर प्रज्वलित हो गये। द्विज! अर्द्धरात्रिके समय सर्वाधार भगवान् जनार्दन-के आविर्भूत होनेपर पुष्पवर्षा करते हुए मेघगण मन्द-मन्द गर्जना करने लगे।

उन्हें खिले हुए कमलदलकी-सी आभावाले, चतुर्भुज और वक्षःस्थलमें श्रीवत्स चिह्नसहित उत्पन्न हुए देख वसुदेवजीने प्रसन्नतायुक्त वचनोंसे भगवान्‌की स्तुति की और कंससे भयभीत रहनेके कारण इस प्रकार निवेदन किया।

वसुदेवजी बोले—देवदेवेश्वर! यद्यपि आप साक्षात् परमेश्वर प्रकट हुए हैं, तथापि देव! मुझपर कृपा करके अब अपने इस शङ्ख-चक्र-गदाधारी दिव्य रूपका उपसंहार कीजिये। देव! यह पता लगते ही कि आप मेरे इस गृहमें अवतीर्ण हुए हैं, कंस इसी समय मेरा सर्वनाश कर देगा।

देवकीजी बोलीं—जो अनन्तरूप और अखिलविश्व-स्वरूप हैं, जो गर्भमें स्थित होकर भी अपने शरीरसे सम्पूर्ण लोकोंको धारण करते हैं तथा जिन्होंने अपनी मायासे ही बालरूप धारण किया है, वे देवदेव हमपर प्रसन्न हों। सर्वात्मन्! आप अपने इस चतुर्भुज रूपका उपसंहार कीजिये। भगवन्! यह राक्षसके अंशसे उत्पन्न* कंस आपके इस अवतारका वृत्तान्त न जानने पावे।

श्रीभगवान् बोले—देवि! पूर्व-जन्ममें तूने जो पुत्रकी कामनासे मुझसे पुत्ररूपसे उत्पन्न होनेके लिये प्रार्थना की थी, आज मैंने तेरे गर्भसे जन्म लिया है—इससे तेरी वह कामना पूर्ण हो गयी।

श्रीपराशरजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ! ऐसा कहकर भगवान् मौन हो गये तथा वसुदेवजी भी भगवान्‌की प्रेरणासे उन्हें उस रात्रिमें ही लेकर बाहर निकले। वसुदेवजीके बाहर जाते समय कारागृहरक्षक और मथुराके द्वारपाल योगनिद्राके प्रभावसे अचेत हो गये। उस रात्रिके समय वर्षा करते हुए मेघोंकी जलराशिको अपने फणोंसे रोककर श्रीशेषजी वसुदेवजीके पीछे-पीछे छत्रछाया किये हुए चले। भगवान् विष्णुको ले जाते हुए वसुदेवजी नाना प्रकारके सैकड़ों जल-भँवरोंसे युक्त अत्यन्त गम्भीर यमुनाजीको पार कर गये। उस समय यमुनाजी घुटनोंतक जलवाली हो गयी थीं। मैत्रेय! इसी समय योगनिद्राके प्रभावसे सब मनुष्योंके मोहित हो जानेपर मोहित हुई यशोदाने भी उसी कन्याको जन्म दिया।

तब वसुदेवजी भी उस बालकको सुलाकर और कन्याको लेकर तुरत यशोदाके शयन-गृहसे चले आये। जब यशोदाने

जागनेपर देखा कि उसके एक नीलकमलदलके समान श्याम-वर्ण पुत्र उत्पन्न हुआ है तो उसे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। इधर वसुदेवजीने कन्याको ले जाकर अपने महलमें देवकीके शयन-गृहमें सुला दिया और पूर्ववत् स्थित हो गये।

* द्रुमिल नामक राक्षसने राजा उग्रसेनका रूप धारण कर उनकी पत्नीसे संसर्ग किया था। उसीसे कंसका जन्म हुआ। यह कथा हरिवंशमें आयी है।

द्विज ! तदनन्तर बालकके रोनेका शब्द सुनकर कारागृह-रक्षक सहसा उठ खड़े हुए और देवकीके संतान उत्पन्न होनेका वृत्तान्त कंसको सुना दिया। यह सुनते ही कंसने तुरंत जाकर देवकीके रुँधे हुए कण्ठसे 'छोड़, छोड़'—ऐसा कहकर रोकनेपर भी उस बालिकाको पकड़ लिया और उसे एक शिलापर पटक दिया। उसके पटकते ही वह आकाशमें स्थित हो गयी और उसने शस्त्रयुक्त एक महान् अष्टभुजरूप धारण कर लिया।

तब उसने ऊँचे स्वरसे अट्टहास किया और कंससे रोषपूर्वक कहा—'अरे कंस ! मुझे पटकनेसे तेरा क्या प्रयोजन सिद्ध हुआ ? जो तेरा वध करेगा, उसने तो पहले ही जन्म ले लिया है। देवताओंके सर्वस्वरूप वे हरि ही पूर्वजन्ममें भी तेरे काल थे। अतः ऐसा जानकर तू शीघ्र ही अपने हितका उपाय कर।' ऐसा कह, वह दिव्य माला और चन्दनादिसे विभूषिता तथा सिद्धगणद्वारा स्तुति की जाती हुई देवी भोजराज कंसके देखते-देखते आकाशमार्गसे चली गयी।

कंसका असुरोंको आदेश तथा वसुदेव-देवकीका कारागारसे मोक्ष

श्रीपराशरजी कहते हैं—तब कंसने खिन्न-चित्तसे प्रलम्ब और केशी आदि समस्त मुख्य-मुख्य असुरोंको बुलाकर कहा।

कंस बोला—प्रलम्ब ! महाबाहो केशिन् ! धेनुक ! पूतने ! तथा अरिष्ट आदि अन्य असुरगण ! मेरा वचन सुनो—यह बात प्रसिद्ध हो रही है कि दुरात्मा देवताओंने मेरे मारनेके लिये कोई यत्न किया है; किंतु मैं वीर पुरुष इन लोगोंको कुछ भी नहीं गिनता हूँ। अल्पवीर्य इन्द्र, अकेले घूमनेवाले महादेव अथवा छिद्र (असावधानीका समय) ढूँढ़कर दैत्योंका वध करनेवाले विष्णुसे उनका क्या कार्य सिद्ध हो सकता है ? मेरे बाहुबलसे दलित आदित्यों, अल्पवीर्य वसुगणों, अग्नियों अथवा अन्य समस्त देवताओंसे भी मेरा क्या अनिष्ट हो सकता है ?

आपलोगोंने क्या देखा नहीं था कि मेरे साथ युद्धभूमिमें आकर देवराज इन्द्र, अपनी पीठपर बाणोंकी बौछार सहता हुआ भाग गया था। जिस समय इन्द्रने मेरे राज्यमें वर्षाका होना बंद कर दिया था, उस समय क्या मेघोंने मेरे बाणोंसे विंधकर ही यथेष्ट जल नहीं बरसाया ? हमारे श्वशुर जरासन्धको छोड़कर क्या पृथ्वीके और सभी नृपतिगण मेरे बाहुबलसे भयभीत होकर मेरे सामने सिर नहीं झुकाते ?

दैत्यश्रेष्ठगण ! देवताओंके प्रति मेरे चित्तमें अवज्ञा होती है और वीरगण ! उन्हें अपने (मेरे) वधका यत्न करते देखकर तो मुझे हँसी आती है। तथापि दैत्येन्द्रो ! उन दुष्ट और दुरात्माओंके अपकारके लिये मुझे और भी अधिक प्रयत्न करना चाहिये। अतः पृथ्वीमें जो कोई यशस्वी और यज्ञकर्ता हों, उनका देवताओंके अपकारके लिये सर्वथा वध कर देना चाहिये।

देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुई बालिकाने यह भी कहा है कि 'वह तुझे मारनेवाला निश्चय ही उत्पन्न हो चुका है। अतः जिस बालकमें विशेष बलका उद्रेक हो, उसे यत्नपूर्वक मार डालना चाहिये। असुरोंको ऐसी आज्ञा दे कंसने कारागृहमें जाकर तुरंत ही वसुदेव और देवकीको बन्धनसे मुक्त कर दिया।

कंस बोला—मैंने अबतक आप दोनोंके बालकोंकी तो वृथा ही हत्या की, मेरा नाश करनेके लिये तो कोई और ही बालक उत्पन्न हो गया है। परंतु आपलोग इसका कुछ दुःख न मानें; क्योंकि उन बालकोंकी होनहार ऐसी ही थी।

श्रीपराशरजी कहते हैं—द्विजश्रेष्ठ ! उन्हें इस प्रकार ढाँढस बँधा और बन्धनसे मुक्त कर कंसने शङ्कित चित्तसे अपने अन्तःपुरमें प्रवेश किया।

पूतना-वध

श्रीपराशरजी कहते हैं—बन्दीगृहसे छूटते ही वसुदेवजी मथुरामें आये हुए नन्दजीके छकड़ेके पास गये तो उन्हें इस समाचारसे अत्यन्त प्रसन्न देखा कि 'मेरे पुत्रका जन्म हुआ है'। तब वसुदेवजीने भी उनसे आदरपूर्वक कहा—'अब वृद्धावस्थामें भी आपने पुत्रका मुख देख लिया यह बड़े ही सौभाग्यकी बात है। आपलोग जिस लिये यहाँ

आये थे, वह राजाका सारा वार्षिक कर दे ही चुके हैं। यहाँ धनवान् पुरुषोंको और अधिक न ठहरना चाहिये। अतः नन्दजी! आपलोग शीघ्र ही अपने गोकुलको जाइये। वहाँपर रोहिणीसे उत्पन्न हुआ जो मेरा पुत्र है, उसकी भी आप उसी तरह रक्षा करें जैसे कि अपने इस बालककी।'

वसुदेवजीके ऐसा कहनेपर नन्द आदि महाबलवान् गोपगण चले गये। उनके गोकुलमें रहते समय बालघातिनी पूतनाने रात्रिके समय सोये हुए कृष्णको गोदमें लेकर उसके मुखमें अपना स्तन दे दिया। रात्रिके समय पूतना जिस-जिस बालकके मुखमें अपना स्तन दे देती थी, उसीका शरीर तत्काल नष्ट हो जाता था, किंतु श्रीकृष्णचन्द्रने क्रोधपूर्वक उसके स्तनको अपने हाथोंसे खूब दबाकर पकड़ लिया और उसे उसके प्राणोंके सहित पीने लगे। तब स्नायु-बन्धनोंके शिथिल हो जानेसे पूतना घोर शब्द करती हुई मरते समय अपना महाभयंकर रूप धारणकर पृथिवीपर गिर पड़ी। उसके घोर नादको सुनकर भयभीत हुए व्रजवासीगण जाग उठे और देखा कि श्रीकृष्ण पूतनाकी गोदमें हैं और वह मारी गयी है।

द्विजोत्तम! तब भयभीता यशोदाने श्रीकृष्णको गोदमें लेकर उन्हें गौकी पूँछसे झाड़कर बालकका ग्रहदोष निवारण किया। नन्दगोपने भी आगेके वाक्य कहकर विधिपूर्वक रक्षा करते हुए श्रीकृष्णके मस्तकपर गोबरका चूर्ण लगाया।

नन्दगोप बोले—जिनकी नाभिसे प्रकट हुए कमलसे सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है, वे समस्त भूतोंके आदिस्थान श्रीहरि तेरी रक्षा करें। जिनकी दाढ़ोंके अग्रभागपर स्थापित होकर भूमि सम्पूर्ण जगत्को धारण करती है, वे वराहरूप-धारी श्रीकेशव तेरी रक्षा करें। जिन विभुने अपने नखाग्रोंसे शत्रुके वक्षःस्थलको विदीर्ण कर दिया था, वे नृसिंहरूपी जनार्दन तेरी सर्वत्र रक्षा करें। जिन्होंने क्षणमात्रमें सानन्द त्रिविक्रमरूप धारण करके अपने तीन पगोंसे त्रिलोकीको नाप लिया था, वे वामनभगवान् तेरी सर्वदा रक्षा करें। तेरे मुख, बाहु, प्रबाहु, मन और सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी अखण्ड ऐश्वर्य-से सम्पन्न अविनाशी श्रीनारायण रक्षा करें। तेरे अनिष्ट करने-वाले जो प्रेत, कूष्माण्ड और राक्षस हों वे शार्ङ्ग धनुष, चक्र और गदा धारण करनेवाले विष्णुभगवान्की शङ्ख-ध्वनिसे नष्ट हो जायँ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—इस प्रकार स्वस्तिवाचन कर नन्दगोपने बालक श्रीकृष्णको छकड़ेके नीचे एक खटोलेपर सुला दिया। मरी हुई पूतनाके महान् कलेवरको देखकर उन सभी गोपोंको अत्यन्त भय और विस्मय हुआ।

शकटभञ्जन, यमलार्जुन-उद्धार, व्रजवासियोंका गोकुलसे वृन्दावनमें जाना

श्रीपराशरजी कहते हैं—एक दिन छकड़ेके नीचे सोये हुए मधुसूदनने दूधके लिये रोते-रोते ऊपरको लात मारी। उनकी लात लगते ही वह छकड़ा लोट गया। उसमें रखे हुए कुम्भ और भाण्ड आदि फूट गये और वह उलटा जा पड़ा। द्विज! उस समय हाहाकार मच गया, गोप-गोपीगण वहाँ आ पहुँचे और उस बालकको उतान सोये हुए देखा। तब गोपगण पूछने लगे कि 'इस छकड़ेको किसने उलट दिया? किसने उलट दिया?' तो वहाँ खेलते हुए बालकोंने कहा—'इस श्रीकृष्णने ही गिराया है। हमने अपनी आँखोंसे देखा है कि रोते-रोते इसकी लात लगनेसे ही यह छकड़ा गिरकर उलट गया है। यह और किसीका काम नहीं है।'

यह सुनकर गोपगणके चित्तमें अत्यन्त विस्मय हुआ तथा नन्दगोपने अत्यन्त चकित होकर बालकको उठा लिया।

इसी समय वसुदेवजीके कहनेसे गर्गाचार्यने गोपोंसे छिपे-छिपे, गोकुलमें आकर उन दोनों बालकोंके द्विजोचित संस्कार किये। उन दोनोंके नामकरण-संस्कार करते हुए महामति गर्गजीने बड़ेका नाम राम और छोटेका श्रीकृष्ण बतलाया। विप्र! वे दोनों बालक थोड़े ही दिनोंमें गौओंके गोष्ठमें रेंगते-रेंगते हाथ और घुटनोंके बल चलनेवाले हो गये। कभी वे गौओंके घोसमें खेलते और कभी बछड़ोंके मध्यमें चले जाते।

एक दिन जब यशोदा सदा एक ही स्थानपर साथ खेलनेवाले उन दोनों अत्यन्त चञ्चल बालकोंको न रोक

१. कोहनीसे नीचेका भाग।

सकी तो उसने श्रीकृष्णको रस्सीसे कटिभागमें कसकर ऊखलमें

बाँध दिया और रोषपूर्वक इस प्रकार कहने लगी—'अरे चञ्चल! अब तुझमें सामर्थ्य हो तो चला जा।' ऐसा कहकर यशोदा अपने घरके धंधेमें लग गयी।

उसके गृहकार्यमें व्यग्र हो जानेपर कमलनयन श्रीकृष्ण ऊखलको खींचते-खींचते यमलार्जुनके बीचमें गये और उन दोनों वृक्षोंके बीचमें तिरछी पडी हुई ऊखलको खींचते हुए उन्होंने ऊँची शाखाओंवाले यमलार्जुन नामक दो वृक्षोंको उखाड़ डाला। तब उनके उखड़नेका कट-कट शब्द सुनकर वहाँ व्रजवासी लोग दौड़ आये और उन दोनों महावृक्षोंको तथा उनके बीचमें कमरमें रस्सीसे कसकर बँधे हुए बालकको नन्हे-नन्हे अल्प दाँतोंकी श्वेत किरणोंसे शुभ्र हास करते देखा। तभीसे उदरमें दाम (रस्सी) द्वारा बँधनेके कारण उनका नाम 'दामोदर' पड़ा।

तब नन्दगोप आदि समस्त वृद्ध गोपोंने महान् उत्पातोंके कारण अत्यन्त भयभीत होकर आपसमें यह सलाह की—'अब इस स्थानपर रहनेका हमारा कोई प्रयोजन नहीं है, हमें किसी और महावनको चलना चाहिये; क्योंकि यहाँ पूतना-वध, छकड़ेका लोट जाना तथा आँधी आदि किसी दोषके बिना ही वृक्षोंका गिर पड़ना इत्यादि बहुतसे उत्पात दिखायी देने लगे हैं।'

तब वे व्रजवासी वत्सपाल दल बाँधकर एक क्षणमें ही छकड़ों और गौओंके साथ उन्हें हाँकते हुए चल दिये।

तब लीलाविहारी भगवान् श्रीकृष्णने गौओंकी अभिवृद्धिकी इच्छासे वृन्दावनका चिन्तन किया। इससे, द्विजोत्तम! अत्यन्त रूक्ष ग्रीष्मकालमें भी वहाँ वर्षाऋतुके समान सब ओर नवीन दूब उत्पन्न हो गयी। तब वह व्रज चारों ओर अर्द्धचन्द्राकार छकड़ोंकी बाड़ लगाकर स्थित हुए व्रजवासियोंसे बस गया।

तदनन्तर राम और श्रीकृष्ण भी बछड़ोंके रक्षक हो गये और एक स्थानपर रहकर गोष्ठमें बाललीला करते हुए विचरने लगे। वे दोनों बालक सिरपर मयूर-पिच्छका मुकुट धारणकर तथा वन्यपुष्पोंके कर्णभूषण पहन ग्वालोचित वंशी आदिसे सब प्रकारके बाजोंकी ध्वनि करते तथा पत्तोंके बाजेसे ही नाना प्रकारकी ध्वनि निकालते तथा हँसते और खेलते हुए उस महावनमें विचरने लगे। कभी एक-दूसरेको अपनी पीठपर ले जाते हुए खेलते तथा कभी अन्य ग्वालबालों-के साथ खेलते हुए वे बछड़ोंको चराते साथ-साथ घूमते रहते। इस प्रकार उस महाव्रजमें रहते-रहते कुछ समय बीतनेपर वे निखिललोकपालक वत्सपाल सात वर्षके हो गये।

तब मेघसमूहसे आकाशको आच्छादित करता हुआ तथा अतिशय वारिधाराओंसे दिशाओंको एकरूप करता हुआ वर्षाकाल आया। उस समय नवीन दूर्वाके बढ़ जाने और वीरबहूटियोंसे* व्याप्त हो जानेके कारण पृथ्वी पद्मरागविभूषिता मरकतमयी-सी जान पड़ने लगी।

उस समय उन्मत्त मयूर और चातकगणसे सुशोभित महावनमें श्रीकृष्ण और बलराम प्रसन्नतापूर्वक गोपकुमारोंके साथ विचरने लगे। वे दोनों कभी गौओंके साथ मनोहर गान और तान छेड़ते तथा कभी अत्यन्त शीतल वृक्षतलका आश्रय लेते हुए विचरते रहते। वे कभी तो कदम्ब-पुष्पोंके हारसे विचित्र वेष बना लेते, कभी मयूर-पिच्छकी मालासे सुशोभित होते और कभी नाना प्रकारकी पर्वतीय धातुओंसे अपने शरीरको लिप्त कर लेते। कभी दूसरे गोपोंके गानेपर आप दोनों उसकी प्रशंसा करते और कभी ग्वालोंकी-सी बाँसुरी बजाते।

इस प्रकार वे दोनों अत्यन्त प्रीतिके साथ नाना प्रकारके भावोंसे परस्पर खेलते हुए प्रसन्नचित्तसे उस वनमें विचरने लगे। सायंकालके समय वे महाबली बालक वनमें यथायोग्य विहार करनेके अनन्तर गौ और ग्वालबालोंके साथ व्रजमें लौट आते थे।

---

* एक प्रकारके लाल कीड़े, जो वर्षाकालमें उत्पन्न होते हैं, उन्हें इन्द्रगोप या वीरबहूटी कहते हैं।

कालिय-दमन

श्रीपराशरजी कहते हैं—एक दिन बलरामजीको बिना साथ लिये श्रीकृष्ण अकेले ही वृन्दावनको गये और वहाँ वन्य पुष्पोंकी मालाओंसे सुशोभित हो गोपगणसे घिरे हुए विचरने लगे। घूमते-घूमते वे यमुनाजीके तटपर जा पहुँचे। यमुनाजीमें उन्होंने विषाग्निसे संतप्त जलवाला कालियनागका महाभयंकर कुण्ड देखा। उसकी विषाग्निके प्रसारसे किनारेके वृक्ष जल गये थे।

मृत्युके दूसरे मुखके समान उस महाभयकर कुण्डको देखकर भगवान् मधुसूदनने विचार किया—इसमें दुष्टात्मा कालियनाग रहता है, जिसका विष ही शस्त्र है और जो दुष्ट मुझसे अर्थात् मेरी विभूति गरुडसे पराजित हो समुद्रको छोडकर भाग आया है। इसने इस समुद्रगामिनी सम्पूर्ण यमुनाको दूषित कर दिया है, अब इसका जल प्यासे मनुष्यों और गौओंके भी काममें नहीं आता। अतः मुझे इस नागराजका दमन करना चाहिये, जिससे व्रजवासीलोग निर्भय होकर सुखपूर्वक रह सकें। इसलिये ही तो मैंने इस लोकमें अवतार लिया है। ऐसा विचारकर भगवान् ऊँची-ऊँची शाखाओंवाले पासहीके कदम्बवृक्षपर चढ़कर और अपनी कमर कसकर वेगपूर्वक नागराजके कुण्डमें कूद पड़े। उनके कूदनेसे उस महाह्रदने अत्यन्त क्षुब्ध होकर दूरस्थित वृक्षोंको भी भिगो दिया। उस सर्पके विषम विषकी ज्वालासे तपे हुए जलसे भीगनेके कारण वे वृक्ष तुरंत ही जल उठे और उनकी ज्वालाओंसे सम्पूर्ण दिशाएँ व्याप्त हो गयीं।

तब श्रीकृष्णचन्द्रने उस नागकुण्डमें अपनी भुजाओंको ठोंका; उनका शब्द सुनते ही वह नागराज तुरत उनके सम्मुख आ गया। उसके नेत्र क्रोधसे कुछ ताम्रवर्ण हो रहे थे, मुखोंसे अग्निकी लपटें निकल रही थीं और वह महाविषैले अन्य वायुभक्षी सर्पोंसे घिरा हुआ था। उसके साथमें मनोहर हारोंसे भूषिता और शरीर-कम्पनसे हिलते हुए कुण्डलोंकी कान्तिसे सुशोभिता सैकड़ों नागपत्नियाँ थीं। तब सर्पोंने कुण्डलाकार होकर श्रीकृष्णचन्द्रको अपने शरीरसे बाँध लिया और अपने विषाग्निज्वालासे व्याप्त मुखोंद्वारा काटने लगे।

तदनन्तर गोपगण श्रीकृष्णचन्द्रको नागकुण्डमें गिरा हुआ और सर्पोंके फणोंसे पीडित होता देख व्रजमें दौडे आये और शोकसे व्याकुल होकर लोगोंको पुकारने लगे।

गोपगण बोले—आओ, आओ, देखो! यह कृष्ण कालीदहमें डूबकर मूर्छित हो गया है, देखो इसे नागराज खाये जाता है!

वज्रपातके समान उनके इन अमङ्गल वाक्योंको सुनकर गोपगण और यशोदा आदि गोपियाँ तुरंत ही कालीदहपर दौड़ आयीं। नन्दजी तथा अन्यान्य गोपगण और अद्भुत विक्रमशाली बलरामजी भी श्रीकृष्णदर्शनकी लालसासे शीघ्रतापूर्वक यमुना-तटपर आये। वहाँ आकर उन्होंने देखा कि श्रीकृष्णचन्द्र सर्पराजके चंगुलमें फँसे हुए हैं और उसने उन्हें अपने शरीरसे लपेटकर निरुपाय कर दिया है। मुनिसत्तम! महाभागा यशोदा और नन्दगोप भी पुत्रके मुखपर टकटकी लगाकर चेष्टाशून्य हो गये। अन्य गोपियोंने भी जब श्रीकृष्णचन्द्रको इस दशामें देखा तो वे शोकाकुल होकर रोने लगीं और प्रीतिवश भय तथा व्याकुलताके कारण गद्गदवाणीसे कहने लगीं।

गोपियाँ बोलीं—अब हम सब भी यशोदाजीके साथ इस सर्पराजके महाकुण्डमें समा जायँ, अब हमारे लिये व्रजमें जाना उचित नहीं है। सूर्यके बिना दिन कैसा? चन्द्रमाके बिना रात्रि कैसी? ऐसे ही श्रीकृष्णके बिना व्रजमें भी क्या रक्खा है? श्रीकृष्णको बिना साथ लिये अब हम गोकुल नहीं जायँगी; क्योंकि इनके बिना वह जलहीन सरोवरके समान अत्यन्त अभव्य और असेव्य है। अरी! खिले हुए कमलदलके सदृश कान्तियुक्त नेत्रोंवाले श्रीहरिको देखे बिना अत्यन्त दीन हुई तुम किस प्रकार व्रजमें रह सकोगी? अरी गोपियो! देखो, सर्पराजके फणसे आवृत होकर भी श्रीकृष्णका मुख हमें देखकर मधुर मुसकानसे सुशोभित हो रहा है।

श्रीपराशरजी कहते हैं—गोपियोंके ऐसे वचन सुनकर तथा भयविह्वल चकितनेत्र गोपोंको, पुत्रके मुखपर दृष्टि लगाये अत्यन्त दीन नन्दजीको और मूर्च्छाकुल यशोदाको देखकर महाबली रोहिणीनन्दन बलरामजीने अपने संकेतसे श्रीकृष्णचन्द्रसे कहा—'देवदेवेश्वर! क्या आप अपनेको अनन्त नहीं जानते? फिर किस लिये यह अत्यन्त मानवभाव व्यक्त कर रहे हैं। आप ही जगत्के आश्रय, कर्ता, हर्ता और रक्षक हैं तथा आप ही त्रैलोक्यस्वरूप और वेदत्रयीमय हैं। अचिन्त्यात्मन्! इन्द्र, रुद्र, अग्नि, वसु, आदित्य, मरुद्गण और अश्विनीकुमार तथा समस्त योगिजन आपका ही चिन्तन

करते हैं। जगन्नाथ ! संसारके हितके लिये पृथ्वीका भार उतारनेकी इच्छासे ही आपने मर्त्यलोकमें अवतार लिया है; आपका अग्रज मैं भी आपहीका अंश हूँ। श्रीकृष्ण ! यहाँ अवतीर्ण होनेपर हम दोनोंके तो ये गोप और गोपियाँ ही बान्धव हैं; फिर अपने इन दुखी बान्धवोंकी आप क्यों उपेक्षा करते हैं। श्रीकृष्ण ! यह मनुष्यभाव और बालचापल्य तो आप बहुत दिखा चुके, अब तो शीघ्र ही इस दुष्टात्माका, जिसके शस्त्र दाँत ही हैं, दमन कीजिये।'

श्रीपराशरजी कहते हैं—इस प्रकार स्मरण कराये जानेपर, मधुर मुसकानसे अपने ओष्ठसम्पुटको खोलते हुए श्रीकृष्णचन्द्रने उछलकर अपने शरीरको सर्पके बन्धनसे छुड़ा लिया और फिर अपने दोनों हाथोंसे उसका बीचका फण झुकाकर उस नतमस्तक सर्पके ऊपर चढ़कर बड़े वेगसे नाचने लगे।

श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंकी धमकसे उसके प्राण मुखमें आ गये, वह अपने जिस मस्तकको उठाता उसीपर कूदकर भगवान् उसे झुका देते। श्रीकृष्णचन्द्रजीकी भ्रान्ति (भ्रम), रेचक तथा दण्डपात नामकी नृत्यसम्बन्धिनी गतियोंके द्वारा ताडनसे वह महासर्प मूर्छित हो गया और उसने बहुत-सा रुधिर वमन किया। इस प्रकार उसके सिर और ग्रीवाओंको झुके हुए तथा मुखोंसे रुधिर बहता देख उसकी पत्नियाँ करुणासे भरकर श्रीकृष्णचन्द्रके पास आयीं।

नागपत्नियाँ बोलीं—देवदेवेश्वर ! हमने आपको पहचान लिया; आप सर्वज्ञ और सर्वश्रेष्ठ हैं; जो अचिन्त्य और परम ज्योति है, आप उसीके अंश परमेश्वर हैं। जिन स्वयम्भू और व्यापक प्रभुकी स्तुति करनेमें देवगण भी समर्थ नहीं हैं, उन्हीं आपके स्वरूपका हम स्त्रियाँ किस प्रकार वर्णन कर सकती हैं ? पृथिवी, आकाश, जल, अग्नि और वायुस्वरूप यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जिनका छोटे-से-छोटा अंश है, उनकी स्तुति हम किस प्रकार कर सकेंगी। योगिजन जिनके नित्य-स्वरूपको यत्न करनेपर भी नहीं जान पाते तथा जो परमार्थ-रूप अणुसे भी अणु और स्थूलसे भी स्थूल है, उसे हम नमस्कार करती हैं *। जिनके जन्ममें विधाता और अन्तमें काल हेतु नहीं हैं तथा जिनका स्थितिकर्ता भी कोई अन्य नहीं है, उन्हें सर्वदा नमस्कार है। इस कालियनागके दमनमें आपको थोड़ा-सा भी क्रोध नहीं है, केवल लोकरक्षा ही इसका हेतु है; अतः हमारा निवेदन सुनिये। क्षमाशीलोंमें श्रेष्ठ ! साधु पुरुषोंको स्त्रियों तथा मूढ और दीन जन्तुओंपर सदा ही कृपा करनी चाहिये; अतः आप इस दीनका अपराध क्षमा कीजिये। प्रभो ! आप सम्पूर्ण संसारके अधिष्ठान हैं और यह सर्प तो आपकी अपेक्षा अत्यन्त बलहीन है। आपके चरणोंसे पीड़ित होकर तो यह आधे मुहूर्तमें ही अपने प्राण छोड़ देगा।

अव्यय ! प्रीति समानसे और द्वेष उत्कृष्टसे देखे जाते हैं; फिर कहाँ तो यह अल्पवीर्य सर्प और कहाँ अखिलभुवनाश्रय आप ? अतः जगत्स्वामिन् ! इस दीनपर दया कीजिये। भुवनेश्वर ! जगन्नाथ ! महापुरुष ! पूर्वज ! यह नाग अब अपने प्राण छोड़ना ही चाहता है; कृपया आप हमें पतिकी भिक्षा दीजिये।

श्रीपराशरजी कहते हैं—नागपत्नियोंके ऐसा कहनेपर थका-माँदा होनेपर भी नागराज कुछ धीरज धरकर धीरे-धीरे कहने लगा—'देवदेव ! प्रसन्न होइये।'

कालियनाग बोला—नाथ ! आपका स्वाभाविक अष्ट-गुणविशिष्ट परम ऐश्वर्य निरतिशय है अर्थात् आपसे बढकर किसीका भी ऐश्वर्य नहीं है, अतः मैं किस प्रकार आपकी स्तुति कर सकूँगा ? आप पर हैं, पर (मूलप्रकृति) के भी आदिकारण हैं, परात्मक ! परकी प्रवृत्ति भी आपहीसे हुई है।

---

* यतन्तो न विदुर्नित्यं यत्स्वरूपं हि योगिनः।
परमार्थमणोरल्पं स्थूलात् स्थूलं नताः स तम् ॥
(वि० पु० ५।७।५१)

अतः आप परसे भी पर हैं; फिर मैं किस प्रकार आपकी स्तुति कर सकूँगा* ? जिनसे ब्रह्मा, रुद्र, चन्द्र, इन्द्र, मरुद्गण, अश्विनीकुमार, वसुगण और आदित्य आदि सभी उत्पन्न हुए हैं, उन आपकी मैं किस प्रकार स्तुति कर सकूँगा ? यह सम्पूर्ण जगत् जिनके काल्पनिक अवयवका एक सूक्ष्म अवयवांशमात्र है, उन आपकी मैं किस प्रकार स्तुति कर सकूँगा ? जिन सदसत् (कार्य-कारण) स्वरूपके वास्तविक रूपको ब्रह्मा आदि देवेश्वर-गण भी नहीं जानते, उन आपकी मैं किस प्रकार स्तुति कर सकूँगा ! जिनकी पूजा ब्रह्मा आदि देवगण नन्दनवनके पुष्प, गन्ध और अनुलेपन आदिसे करते हैं, उन आपकी मैं किस प्रकार पूजा कर सकता हूँ । देवराज इन्द्र जिनके अवताररूपों-की सर्वदा पूजा करते हैं तथा यथार्थ रूपको नहीं जान पाते, उन आपकी मैं किस प्रकार पूजा कर सकता हूँ ? योगिगण अपनी समस्त इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे खींचकर जिन-का ध्यानद्वारा पूजन करते हैं, उन आपकी मैं किस प्रकार पूजा कर सकता हूँ । जिन प्रभुके स्वरूपकी चित्तमें भावना करके योगिजन भावमय पुष्प आदिसे ध्यानद्वारा उपासना करते हैं, उन आपकी मैं किस प्रकार पूजा कर सकता हूँ ?

देवदेवेश्वर ! आपकी पूजा अथवा स्तुति करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ, मेरी चित्तवृत्ति तो केवल आपकी कृपाकी ओर ही लगी हुई है, अतः आप मुझपर प्रसन्न होइये । केशव ! मेरा जिसमें जन्म हुआ है, वह सर्पजाति अत्यन्त क्रूर होती है, यह मेरा जातीय स्वभाव है । अच्युत ! इसमें मेरा कोई अपराध नहीं है । इस सम्पूर्ण जगत्की रचना और संहार आप ही करते हैं । संसारकी रचनाके साथ उसके जाति, रूप और स्वभावोंको भी आप ही बनाते हैं ।

ईश्वर ! आपने मुझे जाति, रूप और स्वभावसे युक्त करके जैसा बनाया है, उसीके अनुसार मैंने यह चेष्टा भी की है। देवदेव ! यदि मेरा आचरण विपरीत हो, तब तो अवश्य आपके कथनानुसार मुझे दण्ड देना उचित है । तथापि जगत्स्वामिन् ! आपने मुझ अज्ञको जो दण्ड दिया है, वह आपसे मिला हुआ दण्ड मेरे लिये कहीं अच्छा है, किंतु दूसरेका वर भी अच्छा नहीं । अच्युत ! आपने मेरे पुरुषार्थ और विषको नष्ट करके मेरा भली प्रकार मान-मर्दन कर दिया है । अब केवल मुझे प्राणदान दीजिये और आज्ञा कीजिये कि मैं क्या करूँ ?

श्रीभगवान् बोले—सर्प ! अब तुझे इस यमुनाजलमें नहीं रहना चाहिये । तू शीघ्र ही अपने पुत्र और परिवारके सहित समुद्रके जलमें चला जा । तेरे मस्तकपर मेरे चरण-चिह्नोंको देखकर समुद्रमें रहते हुए भी सर्पोंका शत्रु गरुड तुझपर प्रहार नहीं करेगा ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—सर्पराज कालियसे ऐसा कह भगवान् हरिने उसे छोड़ दिया और वह उन्हें प्रणाम करके समस्त प्राणियोंके देखते-देखते अपने सेवक, पुत्र, बन्धु और समस्त स्त्रियोंके सहित समुद्रको चला गया । सर्पके चले जाने-पर गोपगण श्रीकृष्णचन्द्रको आलिङ्गनकर प्रीतिपूर्वक उनके मस्तकको नेत्रजलसे भिगोने लगे । कुछ अन्य गोपगण यमुनाको स्वच्छ जलवाली देख प्रसन्न होकर लीलाविहारी श्रीकृष्णचन्द्रकी विस्मित-चित्तसे स्तुति करने लगे । तदनन्तर अपने उत्तम चरित्रोंके कारण गोपियोंसे गीयमान और गोपोंसे प्रशंसित होते हुए श्रीकृष्णचन्द्र व्रजमें चले आये ।

धेनुकासुर-वध और प्रलम्ब-वध

श्रीपराशरजी कहते हैं—एक दिन बलराम और श्रीकृष्ण साथ-साथ गौ चराते अति रमणीय तालवनमें आये । उस दिव्य तालवनमें धेनुक-नामक एक गधेके आकारवाला दैत्य मृगमांसका आहार करता हुआ सदा रहा करता था ।

गोपोंने कहा—भैया राम और श्रीकृष्ण ! इस भूमिप्रदेश-की रक्षा सदा धेनुकासुर करता है, इसीलिये यहाँ ऐसे पके-पके फल लगे हुए हैं । ये ताल-फल तो देखो, हमें इन्हें खानेकी इच्छा है; यदि आपको अच्छा लगे तो थोड़े-से झाड़ दीजिये ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—गोपकुमारोंके ये वचन सुनकर बलरामजीने 'ऐसा ही करना चाहिये' यह कहकर फल गिरा दिये और पीछे कुछ फल श्रीकृष्णचन्द्रने भी पृथ्वीपर गिराये । गिरते हुए फलोंका शब्द सुनकर वह दुर्द्धर्ष और दुरात्मा गर्दभासुर क्रोधपूर्वक दौड़ आया । उस महा-बलवान् असुरने अपने पिछले दो पैरोंसे बलरामजीकी छातीमें लात मारी । बलरामजीने उसके उन पैरोंको पकड़ लिया और आकाशमें घुमाने लगे । जब वह निर्जीव हो

* त्वं परस्त्वं परस्याद्य परं त्वत्तः परात्मक। परस्मात्परमो यस्त्वं तस्य स्तोष्यामि किन्वहम् ॥

(वि० पु० ५ । ७ । ६८)

गया तो उसे अत्यन्त वेगसे उस तालवृक्षपर ही दे मारा। उसके सजातीय अन्य गर्दभासुरोंके आनेपर भी श्रीकृष्ण और बलरामने उन्हें अनायास ही तालवृक्षोंपर पटक दिया। द्विज! तबसे उस तालवनमें गौएँ निर्विघ्न होकर सुखपूर्वक नवीन तृण चरने लगीं।

तदनन्तर धेनुकासुरको मारकर वे दोनों वसुदेवपुत्र प्रसन्न-मनसे भाण्डीर नामक वटवृक्षके तले आये। वे समस्त लोकपालोंके प्रभु पृथ्वीपर अवतीर्ण होकर नाना प्रकारकी लौकिक लीलाओंसे परस्पर खेल रहे थे। इसी समय उन दोनों खेलते हुए बालकोंको उठा ले जानेकी इच्छासे प्रलम्ब नामक दैत्य गोपवेषमें अपनेको छिपाकर वहाँ आया। दानवश्रेष्ठ प्रलम्ब मनुष्य न होनेपर भी मनुष्यरूप धारणकर निश्शङ्कभावसे उन बालकोंके बीच घुस गया।

तदनन्तर वे समस्त ग्वालबाल हरिणाक्रीडन* नामक खेल खेलते हुए आपसमें एक साथ दो-दो बालक उठे। तब श्रीदामाके साथ श्रीकृष्णचन्द्र, प्रलम्बके साथ बलराम और इसी प्रकार अन्यान्य गोपोंके साथ और-और ग्वालबाल होड़ बदकर उछलते हुए चलने लगे। अन्तमें श्रीकृष्णचन्द्रने श्रीदामाको, बलरामजीने प्रलम्बको तथा अन्यान्य कृष्णपक्षीय गोपोंने अपने प्रतिपक्षियोंको हरा दिया।

उस खेलमें जो-जो बालक हारे थे वे सब जीतनेवालोंको अपने-अपने कंधोंपर चढाकर भाण्डीरवटतक ले जाकर वहाँसे फिर लौट आये, किंतु प्रलम्बासुर अपने कंधेपर बलरामजीको चढाकर अत्यन्त वेगसे आकाशमण्डलको चल दिया। वह दानवश्रेष्ठ श्रीबलभद्रजीके भारको सहन न कर सकनेके कारण वर्षाकालीन मेघके समान बढ़कर अत्यन्त स्थूल शरीरवाला हो गया। तब गाड़ीके पहियोंके समान भयानक नेत्रोंवाले, अपने पादप्रहारसे पृथ्वीको कम्पायमान करते हुए तथा दग्धपर्वतके समान आकारवाले उस दैत्यको देखकर उस निर्भय राक्षसके द्वारा ले जाये जाते हुए बलभद्रजीने श्रीकृष्णचन्द्रसे कहा—'भैया कृष्ण! देखो, छद्मपूर्वक गोपवेष धारण करनेवाला कोई पर्वतके समान महाकाय दैत्य मुझे हरे लिये जाता है। मधुसूदन! अब मुझे क्या करना चाहिये।'

श्रीकृष्णचन्द्र बोले—सर्वात्मन्! आप अपने उस स्वरूपका स्मरण कीजिये जो समस्त संसारका कारण तथा कारणका भी पूर्ववर्ती है और प्रलयकालमें भी स्थित रहनेवाला है। क्या आपको मालूम नहीं है कि आप और मैं दोनों ही इस संसारके एकमात्र कारण हैं और पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही मर्त्यलोकमें आये हैं। संसारके हितके लिये ही हमने अपने भिन्न-भिन्न रूप धारण किये हैं। अतः अमेयात्मन्! आप अपने स्वरूपको स्मरण कीजिये और इस दैत्यको मारकर बन्धुजनोंका हित-साधन कीजिये।

श्रीपराशरजी कहते हैं—विप्र! महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रद्वारा इस प्रकार स्मरण कराये जानेपर महाबलवान् बलरामजी हँसते हुए प्रलम्बासुरको पीडित करने लगे। उन्होंने क्रोधसे

नेत्र लाल करके उसके मस्तकपर एक घूँसा मारा, जिसकी चोटसे उस दैत्यके दोनों नेत्र बाहर निकल आये। तदनन्तर वह दैत्यश्रेष्ठ मस्तक फट जानेपर मुखसे रक्त वमन करता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा और मर गया। अद्भुतकर्मा बलरामजीद्वारा प्रलम्बासुरको मरा हुआ देखकर गोपगण प्रसन्न होकर 'साधु, साधु' कहते हुए उनकी प्रशंसा करने लगे।

---

* एक निश्चित लक्ष्यके पास दो-दो बालक एक-एक साथ हिरनकी भाँति उछलते हुए जाते हैं। जो दोनोंमें पहले पहुँच जाता है, वह विजयी होता है, हारा हुआ बालक जीते हुएको अपनी पीठपर चढ़ाकर मुख्य स्थानतक ले आता है। यही हरिणाक्रीडन है।

शरद्-वर्णन तथा गोवर्धनकी पूजा
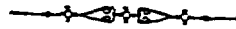
श्रीपराशरजी कहते हैं—इस प्रकार उन बलराम और श्रीकृष्णके व्रजमें विहार करते-करते वर्षाकाल बीत गया और प्रफुल्ल कमलोंसे युक्त शरद्-ऋतु आ गयी। संसारकी असारताको जानकर जिस प्रकार योगिजन शान्त हो जाते हैं, उसी प्रकार मयूरगण मदहीन होकर मौन हो गये। विविध पदार्थोंमें ममता करनेसे जैसे देहधारियोंके हृदय सारहीन हो जाते हैं, वैसे ही शरत्कालीन सूर्यके तापसे सरोवर सूख गये।

जिस प्रकार क्षेत्र और पुत्र आदिमें बढ़ी हुई ममताको विवेकीजन शनैः-शनैः त्याग देते हैं, वैसे ही जलाशयोंका जल धीरे-धीरे अपने तटको छोड़ने लगा। क्रमशः महायोग (सम्प्रज्ञातसमाधि) प्राप्त कर लेनेपर जैसे यति निश्चलात्मा हो जाता है, वैसे ही जलके स्थिर हो जानेसे समुद्र निश्चल हो गया। सर्वगत भगवान् विष्णुको जान लेनेपर मेधावी पुरुषोंके चित्तोंके समान समस्त जलाशयोंका जल स्वच्छ हो गया।

योगाग्निद्वारा जिनके क्लेशसमूह नष्ट हो गये हैं, उन योगियोंके चित्तोंके समान शीतके कारण मेघोंके लीन हो जानेसे आकाश निर्मल हो गया। जिस प्रकार अहंकारजनित महान् दुःखको विवेक शान्त कर देता है, उसी प्रकार सूर्य-किरणोंसे उत्पन्न हुए तापको चन्द्रमाने शान्त कर दिया। प्रत्याहार जैसे इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे खींच लेता है, वैसे ही शरत्कालने आकाशसे मेघोंको, पृथ्वीसे धूलिको और जलसे मलको दूर कर दिया।

इस प्रकार व्रजमण्डलमें निर्मल आकाश और नक्षत्रमय शरत्कालके आनेपर श्रीकृष्णचन्द्रने समस्त व्रजवासियोंको इन्द्रका उत्सव मनानेके लिये तैयारी करते देख कुतूहलवश अपने बड़े-बूढ़ोंसे पूछा।

नन्दगोप बोले—मेघ और जलके स्वामी देवराज इन्द्र हैं। उनकी प्रेरणासे ही मेघगण जलरूप रसकी वर्षा करते हैं। ये पर्जन्यदेव (इन्द्र) पृथ्वीके जलको सूर्यकिरणोंद्वारा खींचकर सम्पूर्ण प्राणियोंकी वृद्धिके लिये उसे मेघोंद्वारा पृथ्वीपर बरसा देते हैं। इसलिये वर्षा-ऋतुमें समस्त राजालोग, हम और अन्य मनुष्यगण देवराज इन्द्रकी यज्ञोंद्वारा प्रसन्नतापूर्वक पूजा किया करते हैं।

श्रीपराशरजी कहते हैं—इन्द्रकी पूजाके विषयमें नन्दजीके ऐसे वचन सुनकर श्रीदामोदर इस प्रकार कहने लगे— हमारे देवता तो गौएँ ही हैं; क्योंकि हमलोग वनचर हैं। आन्वीक्षिकी (तर्कशास्त्र), त्रयी (कर्मकाण्ड) दण्डनीति और वार्ता—ये चार विद्याएँ हैं। महाभाग ! वार्ता नामकी यह एक विद्या ही कृषि, वाणिज्य और पशुपालन इन तीन वृत्तियोंकी आश्रयभूता है। वार्ताके इन तीनों भेदोंमें कृषि किसानोंकी, वाणिज्य व्यापारियोंकी और गोपालन हम-लोगोंकी उत्तम वृत्ति है। जो व्यक्ति जिस विद्यासे युक्त है उसकी वही इष्टदेवता है, वही पूजा-अर्चाके योग्य है और वही परम उपकारिणी है। जो पुरुष एक व्यक्तिसे फल लाभ करके अन्यकी पूजा करता है, उसका इहलोक अथवा परलोकमें कहीं भी शुभ नहीं होता। हमलोग न तो किवाड़ तथा भित्तिके अंदर रहनेवाले हैं और न निश्चित गृह अथवा खेतवाले किसान ही हैं; अतः हमें इन्द्रसे क्या प्रयोजन है? हमारे देवता तो गौएँ और पर्वत ही हैं। ब्राह्मणलोग मन्त्र-यज्ञ तथा कृषकगण सीरयज्ञ (हलका पूजन) करते हैं, अतः पर्वत और वनोंमें रहनेवाले हमलोगोंको गिरियज्ञ और गोयज्ञ करने चाहिये।

'अतएव आपलोग विधिपूर्वक विविध सामग्रियोंसे गोवर्धन-पर्वतकी पूजा करें। आज सम्पूर्ण व्रजका दूध एकत्रित कर लें और उससे ब्राह्मणों तथा अन्यान्य याचकोंको भोजन करावें। गोवर्धनकी पूजा, होम और ब्राह्मण-भोजन समाप्त होनेपर शरद्-ऋतुके पुष्पोंसे सजे हुए मस्तकवाली गौएँ गिरिराजकी प्रदक्षिणा करें। गोपगण! आपलोग यदि प्रीतिपूर्वक मेरी इस सम्मतिके अनुसार कार्य करेंगे तो इससे गौओंको, गिरि-राजको और मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होगी।' तब नन्द आदि गोप बोले—वत्स! तुमने अपना जो मत प्रकट किया है, वह बड़ा ही सुन्दर है, हम सब ऐसा ही करेंगे; आजसे गिरियज्ञका प्रचार किया जाय।

तदनन्तर उन व्रजवासियोंने गिरियज्ञका अनुष्ठान किया तथा दही और खीर आदिसे पर्वतराजको नैवेद्य लगाया। सैकड़ों, हजारों ब्राह्मणोंको भोजन कराया तथा पुष्पार्चित गौओं और सजल जलधरके समान [illegible] साँड़ोंने गोवर्धनकी परिक्रमा की। द्विज ! उस समय श्रीकृष्णचन्द्रने पर्वतके शिखरपर अन्य रूपसे प्रकट होकर

यह दिखलाते हुए कि मैं मूर्तिमान् गिरिराज हूँ; उन गोपश्रेष्ठोंके चढ़ाये हुए विविध व्यञ्जनोंका भोजन किया। श्रीकृष्णचन्द्रने अपने निजरूपसे गोपोंके साथ पर्वतराजके शिखर-पर चढ़कर अपने ही दूसरे स्वरूपका पूजन किया। तदनन्तर उनके अन्तर्धान होनेपर गोपगण अपने अभीष्ट वर पाकर गिरियज्ञ समाप्त करके फिर अपने-अपने गोष्ठोंमें चले आये।

इन्द्रका कोप और श्रीकृष्णका गोवर्धन-धारण तथा इन्द्रका आगमन और इन्द्रकृत श्रीकृष्णाभिषेक

श्रीपराशरजी कहते हैं—मैत्रेय! अपने यज्ञके रुक जानेसे इन्द्रने अत्यन्त रोषपूर्वक संवर्तक नामक मेघोंके दलसे इस प्रकार कहा—'अरे मेघो! देखो, अन्य गोपोंके सहित दुर्बुद्धि नन्दगोपने श्रीकृष्णकी सहायताके बलसे अंधे होकर मेरा यह यज्ञ भङ्ग कर दिया है। अतः जो उनकी परम जीविका और उनके गोपत्वका कारण है, उन गौओंको तुम मेरी आज्ञासे वर्षा और वायुके द्वारा पीड़ित कर दो।

द्विज! इन्द्रकी ऐसी आज्ञा होनेपर गौओंको नष्ट करनेके लिये मेघोंने अति प्रचण्ड वायु और वर्षा छोड़ दी। मेघगण महान् शब्दसे दिशाओंको व्याप्त करते हुए मूसलाधार पानी बरसाने लगे। इस प्रकार मेघोंके अहर्निश बरसनेसे संसारके अन्धकारपूर्ण हो जानेपर ऊपर-नीचे और सब ओरसे समस्त लोक जलमय-सा हो गया।

वर्षा और वायुके वेगपूर्वक चलते रहनेसे गौओंके कटि, जङ्घा और ग्रीवा आदि सुन्न हो गये और काँपते-काँपते वे अपने प्राण छोड़ने लगीं। महामुने! कोई गौएँ तो अपने बछड़ोंको अपने नीचे छिपाये खड़ी रहीं और कोई जलके वेगसे वत्सहीना हो गयीं। वायुसे काँपते हुए दीनवदन बछड़े मानो व्याकुल होकर मन्द-स्वरसे श्रीकृष्णचन्द्रसे 'रक्षा करो, रक्षा करो' ऐसा कहने लगे।

मैत्रेय! उस समय गौ, गोपी और गोपगणके सहित सम्पूर्ण गोकुलको अत्यन्त व्याकुल देखकर श्रीहरिने विचारा—यज्ञ-भङ्गके कारण विरोध मानकर यह सब करतूत इन्द्र ही कर रहा है; अतः अब मुझे सम्पूर्ण व्रजकी रक्षा करनी चाहिये।

श्रीकृष्णचन्द्रने ऐसा विचारकर गोवर्धनपर्वतको उखाड़ लिया और उसे लीलासे ही अपने एक हाथपर उठा लिया तथा गोपोंसे कहा—'आओ, शीघ्र ही इस पर्वतके नीचे आ जाओ, मैंने वर्षासे बचनेका प्रबन्ध कर दिया है। यहाँ वायुहीन स्थानोंमें आकर सुखपूर्वक बैठ जाओ; निर्भय होकर प्रवेश करो, पर्वतके गिरने आदिका भय मत करो।'

श्रीकृष्णचन्द्रके ऐसा कहनेपर जलकी धाराओंसे पीड़ित गोप और गोपी अपने बर्तन-भाँड़ोंको छकड़ोंमें रखकर गौओंके साथ पर्वतके नीचे चले गये। उस समय व्रजवासियों-द्वारा हर्ष और आश्चर्यपूर्वक टकटकी लगाकर देखे जाते हुए और अपने चरित्रोंका स्तवन होते हुए श्रीकृष्णचन्द्र पर्वतको धारण किये खड़े रहे।

विप्र! गोपोंके नाशकर्ता इन्द्रकी प्रेरणासे नन्दजीके गोकुल-में सात रात्रितक महाभयंकर मेघ बरसते रहे, किंतु जब श्री-कृष्णचन्द्रने पर्वत धारणकर गोकुलकी रक्षा की तो अपनी प्रतिज्ञा व्यर्थ हो जानेसे इन्द्रने मेघोंको रोक दिया। तब समस्त गोकुलवासी वहाँसे निकलकर प्रसन्नतापूर्वक फिर अपने-अपने स्थानोंपर आ गये और श्रीकृष्णचन्द्रने भी उन व्रजवासियोंके विस्मयपूर्वक देखते-देखते गिरिराज गोवर्धनको अपने स्थानपर रख दिया।

श्रीपराशरजी कहते हैं—इस प्रकार गोवर्धनपर्वतका धारण और गोकुलकी रक्षा हो जानेपर देवराज इन्द्रको श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन करनेकी इच्छा हुई। अतः देवराज ऐरावतपर चढ़कर गोवर्धन-पर्वतपर आये और वहाँ सम्पूर्ण जगत्के रक्षक गोपवेषधारी महाबलवान् श्रीकृष्णचन्द्रको ग्वालबालोंके साथ गौएँ चराते देखा। द्विज! उन्होंने यह भी देखा कि पक्षिश्रेष्ठ गरुड अदृश्यभावसे उनके ऊपर रहकर अपने पंखोंसे उनकी छाया कर रहे हैं। तब वे ऐरावतसे उतर पड़े और एकान्तमें श्रीमधुसूदनसे प्रीतिपूर्वक बोले—'श्रीकृष्णचन्द्र! महाबाहो! अखिलाधार परमेश्वर! आपने पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही पृथ्वीपर अवतार लिया है। यज्ञभङ्गसे विरोध मानकर ही मैंने गोकुलको नष्ट करनेके लिये महामेघोंको आज्ञा दी थी, उन्होंने यह सहार मचाया था; किंतु आपने पर्वतको उखाडकर गौओंको बचा लिया। वीर! आपके इस अद्भुत कर्मसे मैं अति प्रसन्न हूँ। श्रीकृष्ण! आपने जो अपने एक हाथपर गोवर्धन धारण किया

है, इससे मैं देवताओंका प्रयोजन आपके द्वारा सिद्ध हुआ ही समझता हूँ।

तदनन्तर इन्द्रने अपने वाहन गजराज ऐरावतका घण्टा लिया और उसमें पवित्र जल भरकर उससे श्रीकृष्णचन्द्रका उपेन्द्रपदपर अभिषेक किया। श्रीकृष्णचन्द्रका अभिषेक होते समय गौओंने तुरत ही अपने स्तनोंसे टपकते हुए दुग्धसे पृथ्वीको भिगो दिया।

तत्पश्चात् इन्द्रने पुनः प्रीति और विनयपूर्वक कहा—'महाभाग! अर्जुन नामक मेरे अंशने पृथ्वीपर अवतार लिया है; वह वीर पृथ्वीका भार उतारनेमें आपका साथ देगा, अतः आप उसकी अपने शरीरके समान ही रक्षा करें।'

श्रीभगवान् बोले—भरतवंशमें पृथाके पुत्र अर्जुनने तुम्हारे अंशसे अवतार लिया है—यह मैं जानता हूँ। मैं जबतक पृथ्वीपर रहूँगा, उसकी रक्षा करूँगा। अतः तबतक अर्जुनको युद्धमें कोई भी न जीत सकेगा। देवेन्द्र! विशाल भुजाओंवाला कंस नामक दैत्य, अरिष्टासुर, केशी, कुवलयापीड और नरकासुर आदि अन्यान्य दैत्योंका नाश होनेपर यहाँ महाभारत-युद्ध होगा। सहस्राक्ष! उसी समय पृथ्वीका भार उतरा हुआ समझना। अब तुम प्रसन्नतापूर्वक जाओ।

श्रीकृष्णचन्द्रके ऐसा कहनेपर देवराज इन्द्र उनका आलिङ्गन कर ऐरावत हाथीपर आरूढ हो स्वर्गको चले गये। तदनन्तर श्रीकृष्णचन्द्र भी गोपकुमारों और गौओंके साथ व्रजको लौट आये।

गोपोंद्वारा भगवान्‌का प्रभाव-वर्णन तथा भगवान्‌का गोपियोंके साथ रासक्रीडा करना

श्रीपराशरजी कहते हैं—इन्द्रके चले जानेपर गोपगण श्रीकृष्णचन्द्रसे प्रीतिपूर्वक बोले—'भगवन्! महाभाग! आपने गिरिराजको धारण कर हमारी और गौओंकी इस महान् भयसे रक्षा की है। तात! कहाँ आपकी यह अनुपम बाललीला, कहाँ निन्दित गोपजाति और कहाँ ये दिव्य कर्म! यह सब क्या है, कृपया हमें बतलाइये। अमितविक्रम! आपके ऐसे बल वीर्यको देखकर हम आपको मनुष्य नहीं मान सकते। केशव! स्त्री और बालकोंके सहित सभी व्रजवासियोंकी आपपर अत्यन्त प्रीति है। आपका यह कर्म तो देवताओंके लिये भी दुष्कर है। हमारे तो आप बन्धु ही हैं, अतः आपको नमस्कार है।'

श्रीभगवान्‌ने कहा—गोपगण! यदि मुझमें आपकी प्रीति है और यदि मैं आपकी प्रशंसाका पात्र हूँ तो आपलोग मुझमें बान्धव-बुद्धि ही करें। मैं तो आपके बान्धवरूपसे ही उत्पन्न हुआ हूँ; आपलोगोंको इस विषयमें और कुछ विचार न करना चाहिये।

श्रीपराशरजी कहते हैं—महाभाग! श्रीहरिके इन वाक्योंको सुनकर वे समस्त गोपगण चुपचाप व्रजको चले गये।

तब निर्मल आकाश, शरच्चन्द्रकी चन्द्रिका और दिशाओंको सुरभित करनेवाली विकसित कुमुदिनी तथा वन-खण्डीको मुखर मधुकरोंसे मनोहर देखकर श्रीगोविन्द अत्यन्त मधुर, अस्फुट एवं मृदुल पद ऊँचे और धीमे स्वरसे गाने लगे। उनकी उस सुरम्य गीतध्वनिको सुनकर गोपियाँ अपने-अपने घरोंको छोड़कर तत्काल जहाँ श्रीमधुसूदन थे, वहाँ चली आयीं।

वहाँ आकर कोई गोपी तो उनके स्वरमें स्वर मिलाकर धीरे-धीरे गाने लगी और कोई मन-ही-मन उन्हींका स्मरण करने लगी। कोई 'हे कृष्ण! हे कृष्ण!

ऐसा कहती हुई लज्जावश संकुचित हो गयी और कोई प्रेमोन्मादिनी होकर तुरंत उनके पास जा खड़ी हुई। कोई गोपी बाहर गुरुजनोंको देखकर अपने घरमें ही रहकर आँख मूँदकर तन्मयभावसे श्रीगोविन्दका ध्यान करने लगी। तथा कोई गोपकुमारी जगत्के कारण परब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण-चन्द्रका चिन्तन करते-करते मुक्त हो गयी। तदनन्तर गोपियोंसे घिरे हुए श्रीगोविन्दने उस शरच्चन्द्रसुशोभिता रात्रिमें रास-लीला की।

फिर भगवान् श्रीकृष्णके अन्यत्र चले जानेपर श्रीकृष्णचेष्टाके अधीन हुई गोपियाँ यूथ बनाकर वृन्दावनके भीतर विचरने लगीं। श्रीकृष्णमें निबद्धचित्त हुई वे व्रजाङ्गनाएँ परस्पर इस प्रकार वार्तालाप करने लगीं—उनमेंसे एक गोपी भगवान्‌का अनुकरण करती हुई बोली—'मैं ही श्रीकृष्ण हूँ; देखो, कैसी सुन्दर चालसे चलता हूँ; तनिक मेरी गति तो देखो।' दूसरी कहने लगी—'कृष्ण तो मैं हूँ, अहा! मेरा गाना तो सुनो।' ऐसा कहकर वे श्रीकृष्णके सारे चरित्रोंका लीलापूर्वक अनुकरण करने लगीं। कोई दूसरी गोपी श्रीकृष्णलीलाओंका अनुकरण करती हुई कहने लगी—'मैंने धेनुकासुरको मार दिया है, अब यहाँ गौएँ स्वच्छन्द होकर विचरें।'

इस प्रकार समस्त गोपियाँ श्रीकृष्णचन्द्रकी नाना प्रकार-की चेष्टाओंमें संलग्न होकर अति सुरम्य वृन्दावनमें विचरने लगीं। खिले हुए कमल-जैसे नेत्रोंवाली एक सुन्दरी गोपाङ्गना सर्वाङ्गमें पुलकित हो पृथिवीकी ओर देखकर कहने लगी—'अरी आली! ये लीलाललितगामी श्रीकृष्णचन्द्रके ध्वजा, वज्र, अंकुश और कमल आदिकी रेखाओंसे सुशोभित पदचिह्न तो देखो। और देखो, उनके साथ कोई पुण्यवती युवती भी गयी है, उसके ये घने छोटे-छोटे और पतले चरण-चिह्न दिखायी दे रहे हैं। यहाँ निश्चय ही दामोदरने ऊँचे होकर पुष्पचयन किया है; इसीसे यहाँ उन महात्माके चरणोंके केवल अग्रभाग ही अङ्कित हुए हैं। यहाँ वह सखी उनके हाथमें अपना पाणि-पल्लव देकर चली है, इसीसे उसके चरण-चिह्न पराधीन-से दिखलायी देते हैं। यहाँसे श्रीकृष्णचन्द्र गहन वनमें चले गये हैं; इसीसे उनके चरण-चिह्न दिखलायी नहीं देते; अब लौट चलो; इस स्थानपर चन्द्रमाकी किरणें नहीं पहुँच सकतीं।

तदनन्तर वे गोपियाँ श्रीकृष्ण-दर्शनसे निराश होकर लौट आयीं और यमुनातटपर आकर उनके चरितोंको गाने लगीं। तब गोपियोंने प्रसन्नमुखारविन्द त्रिभुवनरक्षक श्रीकृष्णचन्द्र-को वहाँ आते देखा। उस समय कोई गोपी तो श्रीगोविन्दको आते देखकर अति हर्षित हो केवल 'कृष्ण! कृष्ण!! कृष्ण!!!' इतना ही कहती रह गयी और कुछ न बोल सकी। कोई अपनी भ्रूभङ्गीसे ललाट सिकोडकर श्रीहरिको देखते हुए अपने नेत्ररूप भ्रमरोंद्वारा उनके मुखकमलका मकरन्द पान करने लगी। कोई गोपी गोविन्दको देख नेत्र मूँदकर उन्हींके रूपका ध्यान करती हुई योगारूढ-सी भासित होने लगी।

तब श्रीमाधव किसीसे प्रिय भाषण करके, किसीकी ओर भ्रूभङ्गीसे देखकर और किसीका हाथ पकड़कर उन्हें मनाने लगे। फिर उदारचित्त श्रीहरिने उन प्रसन्नचित्त गोपियोंके साथ रासमण्डल बनाकर आदरपूर्वक रास किया, किंतु उस समय कोई भी गोपी श्रीकृष्णचन्द्रसे अलग नहीं रहना चाहती थी; इसलिये श्रीहरिने उन गोपियोंमेंसे प्रत्येकका हाथ पकड़कर रासमण्डलकी रचना की। उस समय उनके करस्पर्शसे प्रत्येक गोपीकी आँखें आनन्दसे मुँद जाती थीं।

तदनन्तर रासक्रीडा आरम्भ हुई। उसमें गोपियोंके चञ्चल कङ्कणोंकी झनकार होने लगी और फिर क्रमशः शरद्वर्णन-सम्बन्धी गीत गाये जाने लगे। उस समय गोपियोंने बारबार केवल श्रीकृष्णनामका ही गान किया। श्रीकृष्णचन्द्र जितने उच्चस्वरसे रासोचित गान गाते थे, उससे दूने शब्दसे गोपियाँ 'धन्य कृष्ण! धन्य कृष्ण!!' की ही ध्वनि लगा रही थीं। भगवान्‌के आगे जानेपर गोपियाँ उनके पीछे जातीं और लौटनेपर सामने चलतीं। इस प्रकार (नृत्य और गानमें) वे अनुलोम और प्रतिलोम-गतिसे श्रीहरिका साथ देती थीं। श्रीमधुसूदन भी गोपियोंके साथ इस प्रकार रासक्रीडा कर रहे थे कि उनके बिना एक क्षण भी गोपियोंको करोड़ों वर्षोंके समान बीतता था।

वृषभासुर-वध और कंसका श्रीकृष्णको बुलानेके लिये अक्रूरको भेजना तथा केशि-वध

श्रीपराशरजी कहते हैं—एक दिन सायंकालके समय जब श्रीकृष्णचन्द्र रासक्रीडामें सलग्न थे, अरिष्ट नामक एक मदोन्मत्त असुर वृषभरूप धारणकर सबको भयभीत करता व्रजमें आया। अपने खुरोंकी चोटसे वह मानो पृथिवीको फाड़े डालता था। वह दाँत पीसता हुआ पुनः-पुनः अपनी जिह्वासे ओठोंको चाट रहा था, उसने क्रोधवश

अपनी पूँछ उठा रखी थी तथा वह समस्त गौओंको भयभीत कर रहा था। वह वृषभरूपधारी दैत्य गौओंके गर्भोंको गिराता और तपस्वियोंको मारता हुआ सदा वनमें विचरा करता था।

तब उस अति भयानक नेत्रोंवाले दैत्यको देखकर, गोप और गोपाङ्गनाएँ भयभीत होकर 'कृष्ण, कृष्ण' पुकारने लगीं। उनका शब्द सुनकर श्रीकेशवने घोर सिंहनाद किया और ताली बजायी। उसे सुनते ही वह श्रीदामोदरके पास आया। दुरात्मा वृषभासुर आगेको सींग करके तथा श्रीकृष्णचन्द्रकी कुक्षिमें दृष्टि लगाकर उनकी ओर दौडा, किंतु महाबली श्रीकृष्ण वृषभासुरको अपनी ओर आता देख अवहेलनासे लीलापूर्वक मुसकराते हुए उस स्थानसे विचलित न हुए। निकट आनेपर श्रीमधुसूदनने उसे पकड लिया तथा सींग पकडनेसे अचल हुए उस दैत्यकी कोखमें घुटनेसे प्रहार किया।

तदनन्तर उसका एक सींग उखाड़कर उसीसे उसपर आघात किया, जिससे वह महादैत्य मुखसे रक्त वमन करता हुआ मर गया। अरिष्टासुरके मरनेपर गोपगण श्रीजनार्दनकी प्रशंसा करने लगे।

श्रीपराशरजी कहते हैं—वृषभरूपधारी अरिष्टासुर, धेनुक और प्रलम्ब आदिका वध, गोवर्धनपर्वतका धारण करना, कालियनागका दमन, दो विशाल वृक्षोंका उखाड़ना, पूतनावध तथा शकटका उलट देना आदि अनेक लीलाएँ हो जानेपर एक दिन नारदजीने कंसको, यशोदा और देवकीके गर्भ-परिवर्तनसे लेकर जैसा-जैसा हुआ था, वह सब वृत्तान्त क्रमशः सुना दिया।

देवर्षि नारदजीसे ये सब बातें सुनकर दुर्बुद्धि कंसने वसुदेवजीके प्रति अत्यन्त क्रोध प्रकट किया। उसने अत्यन्त कोपसे वसुदेवजीको सम्पूर्ण यादवोंकी सभामें डाँटा तथा समस्त यादवोंकी भी निन्दा की और यह कार्य विचारने लगा—"ये अत्यन्त बालक बलराम और श्रीकृष्ण जबतक पूर्ण बल प्राप्त नहीं करते हैं, तभीतक मुझे इन्हें मार देना चाहिये; क्योंकि युवावस्था प्राप्त होनेपर तो ये अजेय हो जायँगे। मेरे यहाँ महावीर्यशाली चाणूर और महाबली मुष्टिक-जैसे मल्ल हैं। मैं इनके साथ मल्लयुद्ध कराकर उन दोनों दुर्बुद्धियोंको मरवा डालूँगा। उन्हें महान् धनुर्यज्ञके मिससे व्रजसे बुलाकर ऐसे-ऐसे उपाय करूँगा, जिससे वे नष्ट हो जायँ। उन्हें लानेके लिये मैं श्वफल्कके पुत्र यादवश्रेष्ठ शूरवीर अक्रूरको गोकुल भेजूँगा। साथ ही वृन्दावनमें विचरनेवाले घोर असुर केशीको भी आज्ञा दूँगा, जिससे वह महाबली दैत्य उन्हें वहीं नष्ट कर देगा; अथवा यदि किसी प्रकार बचकर वे दोनों वसुदेव-पुत्र गोप मेरे पास आ भी गये तो उन्हें मेरा कुवलयापीड हाथी मार डालेगा।"

ऐसा सोचकर उस दुष्टात्मा कंसने वीरवर बलराम और श्रीकृष्णको मारनेका निश्चय कर अक्रूरजीसे कहा।

कंस बोला—दानपते! मेरी प्रसन्नताके लिये आप मेरी एक बात स्वीकार कर लीजिये। यहाँसे रथपर चढ़कर आप नन्दके गोकुलको जाइये। वहाँ वसुदेवके विष्णु-अंशसे उत्पन्न दो पुत्र हैं। मेरे नाशके लिये उत्पन्न हुए वे दुष्ट बालक वहाँ पोषित हो रहे हैं। मेरे यहाँ चतुर्दशीको धनुषयज्ञ होनेवाला है; अतः आप वहाँ जाकर उन्हें मल्ल-युद्धके लिये ले आइये। मेरे चाणूर और मुष्टिक नामक मल्ल युग्म-युद्ध (कुश्ती) में अति कुशल हैं, उस धनुर्यज्ञके दिन उन दोनोंके साथ मेरे इन पहलवानोंका द्वन्द्वयुद्ध यहाँ सब लोग देखें; अथवा महावतसे प्रेरित हुआ कुवलयापीड नामक गजराज उन दोनों दुष्ट वसुदेव-पुत्र बालकोंको नष्ट कर देगा। इस प्रकार उन्हें मारकर मैं दुर्मति वसुदेव, नन्दगोप और इस अपने मन्दमति पिता उग्रसेनको भी मार डालूँगा। तदनन्तर मेरे वधकी इच्छावाले इन समस्त दुष्ट गोपोंके सम्पूर्ण गोधन तथा धनको मैं छीन लूँगा। दानपते! आपके अतिरिक्त ये सभी यादवगण मुझसे द्वेष करते हैं, अतः मैं क्रमशः इन सभीको नष्ट करनेका प्रयत्न करूँगा। फिर मैं आपके साथ मिलकर इस यादवहीन राज्यको निर्विघ्नतापूर्वक भोगूँगा। अतः वीर! मेरी प्रसन्नताके लिये आप शीघ्र ही जाइये। गोकुलमें पहुँचकर गोपगणोंसे इस प्रकार कहें, जिससे वे माहिष्य (भैंसके) घृत और दधि आदि उपहारोंके सहित शीघ्र ही यहाँ आ जायँ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—द्विज! कंससे ऐसी आज्ञा पा महाभागवत अक्रूरजी 'कल मैं शीघ्र ही श्रीकृष्णचन्द्रको देखूँगा'—यह सोचकर अति प्रसन्न हुए। माधवप्रिय अक्रूरजी राजा कंससे 'जो आज्ञा' कह एक अति सुन्दर रथपर चढ़े और मथुरापुरीसे बाहर निकल आये।

श्रीपराशरजी कहते हैं—मैत्रेय! इधर कंसके दूतद्वारा भेजा हुआ महाबली केशी भी श्रीकृष्णचन्द्रके वधकी इच्छासे घोड़ेका रूप धारणकर वृन्दावनमें आया। वह अपने खुरोंसे पृथिवीतलको खोदता हुआ, सटाओंसे

दौड़ा। उस अश्वरूप दैत्यके हिनहिनानेके शब्दसे भयभीत होकर समस्त गोप और गोपियाँ श्रीगोविन्दकी शरणमें आये। तब उनके 'त्राहि-त्राहि' शब्दको सुनकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र गम्भीर वाणीसे बोले—'गोपालगण! आपलोग केशीसे न डरें।'

इस प्रकार गोपोंको धैर्य बँधाकर वे केशीसे कहने लगे—'अरे दुष्ट! इधर आ' ऐसा कहकर श्रीगोविन्द उछलकर केशीके सामने आये और वह अश्वरूपधारी दैत्य भी मुँह खोलकर उनकी ओर दौड़ा। तब जनार्दनने अपनी बाँह फैलाकर उस अश्वरूपधारी दुष्ट दैत्यके मुखमें डाल दी। केशीके मुखमें घुसी हुई भगवान् श्रीकृष्णकी बाहुसे टकराकर उसके समस्त दाँत शुभ्र मेघखण्डोंके समान टूटकर बाहर गिर पड़े।

द्विज! केशीके देहमें प्रविष्ट हुई श्रीकृष्णचन्द्रकी भुजा बढ़ने लगी। अन्तमें ओठोंके फट जानेसे वह फेनसहित रुधिर वमन करने लगा और मल-मूत्र छोड़ता हुआ पृथिवी-पर पैर पटकने लगा तथा निश्चेष्ट हो गया एवं दो खण्ड होकर पृथिवीपर गिर पड़ा।

तब केशीके मारे जानेसे विस्मित हुए गोप और गोपियों-ने अनुरागवश अत्यन्त मनोहर प्रतीत होनेवाले कमलनयन श्रीश्यामसुन्दरकी स्तुति की।

विप्र! उसे मरा देख मेघपटलमें छिपे हुए श्रीनारदजी हर्षितचित्तसे कहने लगे—'जगन्नाथ! अच्युत!! आप धन्य हैं, धन्य हैं। अहा! आपने देवताओंको दुःख देनेवाले इस केशीको लीलासे ही मार डाला। मधुसूदन! आपने अपने इस अवतारमें जो-जो कर्म किये हैं, उनसे मेरा चित्त अत्यन्त विस्मित और संतुष्ट हो रहा है। केशिनिषूदन! आपका कल्याण हो, अब मैं जाता हूँ। परसों कंसके साथ आपका युद्ध होनेके समय मैं फिर आऊँगा।'

तदनन्तर नारदजीके चले जानेपर गोपगणसे सम्मानित गोपियोंके नेत्रोंके एकमात्र पेय श्रीकृष्णचन्द्रने ग्वालबालोंके साथ गोकुलमें प्रवेश किया।

अक्रूरजीकी गोकुलयात्रा

श्रीपराशरजी कहते हैं—अक्रूरजी भी तुरंत ही मथुरापुरीसे निकलकर श्रीकृष्ण-दर्शनकी लालसासे एक शीघ्रगामी रथद्वारा नन्दजीके गोकुलको चले। अक्रूरजी सोचने लगे—'आज मुझ-जैसा बड़भागी और कोई नहीं है, क्योंकि अपने अंशसे अवतीर्ण चक्रधारी श्रीविष्णुभगवान्‌का मुख मैं अपने नेत्रोंसे देखूँगा। आज मेरा जन्म सफल हो गया; आजकी रात्रि अवश्य सुन्दर प्रभातवाली थी, जिससे कि मैं आज खिले हुए कमलके समान नेत्रवाले श्रीविष्णु-भगवान्‌के मुखका दर्शन करूँगा। जो स्मरणमात्रसे पुरुषोंके पापोंको दूर कर देता है, आज मैं विष्णुभगवान्‌के उसी कमल-नयन मुखको देखूँगा। जिससे सम्पूर्ण वेद और वेदाङ्गोंकी उत्पत्ति हुई है, आज मैं सम्पूर्ण तेजस्वियोंके परम आश्रयरूप उसी भगवद्-मुखारविन्दका दर्शन करूँगा। जिनके स्वरूपको ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, अश्विनीकुमार, वसुगण, आदित्य और मरुद्गण आदि कोई भी नहीं जानते, आज वे ही हरि मेरे नेत्रोंके विषय होंगे। जो सर्वात्मा, सर्वज्ञ, सर्वस्वरूप और सब भूतोंमें अवस्थित हैं तथा जो अचिन्त्य, अव्यय और सर्वव्यापक हैं, अहो! आज स्वयं वे ही मेरे साथ बातें करेंगे। जिन अजन्माने मत्स्य, कूर्म, वराह, हयग्रीव और नृसिंह आदि रूप धारणकर जगत्‌की रक्षा की है, आज वे ही मुझसे वार्तालाप करेंगे। जो अनन्त (शेषजी) अपने मस्तक-पर रखी हुई पृथ्वीको धारण करते हैं, संसारके हितके लिये अवतीर्ण हुए हैं, वे ही आज मुझसे 'अक्रूर' कहकर बोलेंगे। जिनमें हृदयको लगा देनेसे पुरुष इस योग-मायारूप विस्तृत अविद्याको पार कर जाता है, उन विद्यास्वरूप श्रीहरिको नमस्कार है। जिन्हें याज्ञिक लोग 'यज्ञपुरुष', सात्वत (यादव अथवा भगवद्भक्त) गण 'वासुदेव' और वेदान्तवेत्ता 'विष्णु' कहते हैं, उन्हें बारबार नमस्कार है। जिनके स्मरणमात्रसे पुरुष सर्वथा कल्याणपात्र हो जाता है, मैं सर्वदा उन अजन्मा श्रीहरिकी शरणमें जाता हूँ*।'

श्रीपराशरजी कहते हैं—मैत्रेय! भक्तिविनम्रचित्त अक्रूरजी इस प्रकार श्रीविष्णुभगवान्‌का चिन्तन करते कुछ-कुछ सूर्य रहते ही गोकुलमें पहुँच गये। वहाँ पहुँचनेपर पहले उन्होंने खिले हुए नीलकमलकी-सी कान्तिवाले

* स्मृते सकलकल्याणभाजनं यत्र जायते।
पुरुषस्तमजं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम्॥
(वि० पु० ५।१७।१७)

श्रीकृष्णचन्द्रको गौओंके दोहनस्थानमें बछड़ोंके बीच विराजमान देखा। जिनके नेत्र खिले हुए कमलके समान थे, वक्षःस्थलमें श्रीवत्स-चिह्न सुशोभित था, भुजाएँ लंबी-लंबी थीं, वक्षःस्थल विशाल और ऊँचा था तथा नासिका उन्नत थी। जो सविलास हासयुक्त मनोहर मुखारविन्दसे सुशोभित थे तथा उन्नत और रक्तनखयुक्त चरणोंसे पृथ्वीपर विराजमान थे, जिन्होंने दो पीताम्बर धारण किये थे, जो वन्यपुष्पोंसे विभूषित थे तथा जिनका श्वेत कमलके आभूषणोंसे युक्त श्याम शरीर सचन्द्र नीलाचलके समान सुशोभित था।

द्विज! श्रीव्रजचन्द्रके पीछे उन्होंने हंस, कुन्द और चन्द्रमाके समान गौरवर्ण नीलाम्बरधारी यदुनन्दन श्रीबलभद्रजीको देखा, जिनकी भुजाएँ विशाल थीं, कंधे उन्नत थे और मुखारविन्द खिला हुआ था।

मुने! उन दोनों बालकोंको देखकर महामति अक्रूरजीका मुखकमल प्रफुल्लित हो गया तथा उनके सर्वाङ्गमें पुलकावली छा गयी और वे मन ही मन कहने लगे—इन दो रूपोंमें जो यह भगवान् वासुदेवका अंश स्थित है, वही परमधाम है और वही परमपद है। इन जगद्विधाताके दर्शन पाकर आज मेरे नेत्रयुगल तो सफल हो गये, किंतु क्या अब भगवत्कृपासे इनका अङ्ग-सङ्ग पाकर मेरा शरीर भी कृतकृत्य हो सकेगा? जिनकी अङ्गुलीके स्पर्शमात्रसे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हुए पुरुष निर्दोष सिद्धि (कैवल्यमोक्ष) प्राप्त कर लेते हैं, क्या वे अनन्तमूर्ति श्रीमान् हरि मेरी पीठपर अपना करकमल रक्खेंगे? मैं उन ईश्वरोंके ईश्वर, आदि, मध्य और अन्तरहित, पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुके अंशावतार श्रीकृष्णचन्द्रके पास भक्तिविनम्र चित्तसे जाता हूँ।

भगवान्का मथुराको प्रस्थान, गोपियोंकी विरह-कथा और अक्रूरजीको जलमें आश्चर्यमय भगवद्दर्शन

श्रीपराशरजी कहते हैं—मैत्रेय! यदुवंशी अक्रूरजीने इस प्रकार चिन्तन करते श्रीगोविन्दके पास पहुँचकर उनके चरणोंमें सिर झुकाते हुए 'मैं अक्रूर हूँ' ऐसा कहकर प्रणाम किया। भगवान्ने भी अपने ध्वजा-वज्र-पद्माङ्कित करकमलोंसे उन्हें स्पर्शकर और प्रीतिपूर्वक अपनी ओर खींचकर गाढ आलिङ्गन किया। तदनन्तर अक्रूरजीके यथायोग्य प्रणामादि कर चुकनेपर श्रीबलरामजी और श्रीकृष्णचन्द्र अति आनन्दित हो उन्हें साथ लेकर अपने घर आये। फिर उनके द्वारा सत्कृत होकर यथायोग्य भोजनादि कर चुकनेपर अक्रूरने उनसे वह सम्पूर्ण वृत्तान्त कहना आरम्भ किया, जैसे कि दुरात्मा कंसने आनकदुन्दुभि वसुदेव और देवी देवकीको डाँटा था तथा जिस प्रकार वह दुरात्मा अपने पिता उग्रसेनसे दुर्व्यवहार कर रहा है और जिस लिये उसने उन्हें (अक्रूरजीको) वृन्दावन भेजा है।

भगवान् देवकीनन्दनने यह सम्पूर्ण वृत्तान्त विस्तारपूर्वक सुनकर कहा—'दानपते! ये सब बातें मुझे मालूम हो गयीं। महाभाग! इस विषयमें मुझे जो उपयुक्त जान पड़ेगा, वही करूँगा। अब तुम कंसको मेरेद्वारा मरा हुआ ही समझो। भैया बलराम और मैं दोनों ही कल तुम्हारे साथ मथुरा चलेंगे, हमारे साथ ही दूसरे बड़े-बूढ़े गोप भी बहुत-सा उपहार लेकर जायँगे। वीर! आप यह रात्रि सुखपूर्वक बिताइये, मैं कंसको उसके अनुचरोंसहित अवश्य मार डालूँगा।'

तदनन्तर अक्रूरजी, श्रीकृष्णचन्द्र और बलरामजी सम्पूर्ण गोपोंको कंसकी आज्ञा सुना नन्दगोपके घर सो गये। दूसरे दिन निर्मल प्रभातकाल होते ही महातेजस्वी राम और श्रीकृष्णको अक्रूरके साथ मथुरा चलनेकी तैयारी करते देख गोपियाँ नेत्रोंमें आँसू भरकर तथा दुःखार्त होकर दीर्घ निःश्वास छोड़ती हुई परस्पर कहने लगीं—'अब मथुरापुरी जाकर श्रीकृष्णचन्द्र फिर गोकुलमें क्यों आने लगे? क्योंकि वहाँ तो ये अपने कानोंसे नगरनारियोंके मधुर वार्तालापरूप मधुका ही पान करेंगे। फिर इनका चित्त गँवारी गोपियोंकी ओर क्यों जाने लगा? आज निर्दयी दुरात्मा विधाताने समस्त व्रजके सारभूत (सर्वस्वस्वरूप) श्रीहरिको हरकर हम गोपनारियोंपर घोर आघात किया है। देखो, देखो, क्रूर एवं निर्दयी अक्रूरके बहकानेमें आकर ये श्रीकृष्णचन्द्र रथपर चढ़े हुए मथुरा जा रहे हैं। यह नृशंस अक्रूर क्या अनुरागी जनोंके हृदयका भाव तनिक भी नहीं जानता? जो यह इस प्रकार हमारे नयनानन्दवर्धन नन्दनन्दनको अन्यत्र लिये जाता है। देखो, यह अत्यन्त निष्ठुर गोविन्द रामके साथ रथपर चढ़कर जा रहे हैं, अरी! इन्हें रोकनेमें शीघ्रता करो।'

इसपर गुरुजनोंके सामने ऐसा कहनेमें असमर्थता प्रकट करनेवाली किसी गोपीको लक्ष्य करके उसने फिर कहा—'अरी! तू क्या कह रही है कि अपने गुरुजनोंके सामने हम

ऐसा नहीं कर सकतीं !' भला अब विरहाग्निसे भस्मीभूत हुई हमलोगोंका गुरुजन क्या करेंगे ? देखो, यह नन्दगोप आदि गोपगण भी उन्हींके साथ जानेकी तैयारी कर रहे हैं। इनमेंसे भी कोई गोविन्दको लौटानेका प्रयत्न नहीं करता। आजकी रात्रि मथुरावासिनी स्त्रियोंके लिये सुन्दर प्रभातवाली हुई है, क्योंकि आज उनके नयन-भृङ्ग श्रीअच्युतके मुखारविन्दका मकरन्द पान करेंगे।

'जो लोग इधरसे बिना रोक-टोक श्रीकृष्णचन्द्रका अनुगमन कर रहे हैं; वे धन्य हैं; क्योंकि वे उनका दर्शन करते हुए अपने रोमाञ्चयुक्त शरीरका वहन करेंगे। आज श्रीगोविन्दके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंको देखकर मथुरावासियोंके नेत्रोंको अत्यन्त महोत्सव होगा। आज न जाने उन भाग्य-शालिनियोंने ऐसा कौन शुभ स्वप्न देखा है जो वे कान्तिमय विशाल नयनोंवाली मथुरापुरीकी स्त्रियाँ स्वच्छन्दतापूर्वक श्रीअधोक्षजको निहारेंगी ? अहो ! निष्ठुर विधाताने गोपियों-को महानिधि दिखलाकर आज उनके नेत्र निकाल लिये। देखो ! हमारे प्रति श्रीहरिके अनुरागमें शिथिलता आ जानेसे हमारे हाथोंके कंकण भी तुरंत ही ढीले पड़ गये हैं। भला हम-जैसी दुःखिनी अबलाओंपर किसे दया न आयेगी ? परंतु देखो, यह क्रूर-हृदय अक्रूर तो बड़ी शीघ्रतासे घोड़ोंको हाँक रहा है ! देखो, यह श्रीकृष्णचन्द्रके रथकी धूलि दिखलायी दे रही है; किंतु हा ! अब तो श्रीहरि इतनी दूर चले गये कि वह धूलि भी नहीं दीखती।'

इस प्रकार गोपियोंके अति अनुरागसहित देखते-देखते बलराम, श्रीकृष्ण और अक्रूर शीघ्रगामी घोड़ोंवाले रथसे चलते हुए मध्याह्नके समय यमुनातटपर आ गये। वहाँ पहुँचने-पर अक्रूरने श्रीकृष्णचन्द्रसे कहा—'जबतक मैं यमुना-जलमें मध्याह्नकालीन उपासनासे निवृत्त होऊँ, तबतक आप दोनों यहाँ विराजें।'

विप्र ! तब भगवान्के 'बहुत अच्छा' कहनेपर महामति अक्रूरजी यमुनाजलमें घुसकर स्नान और आचमन आदिके अनन्तर परब्रह्मका ध्यान करने लगे। उस समय उन्होंने देखा कि बलभद्रजी सहस्रफणावलिसे सुशोभित हैं, उनका शरीर कुन्दमालाओंके समान शुभ्रवर्ण है तथा नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान विशाल हैं। वे अत्यन्त सुगन्धित वनमालाओंसे विभूषित हैं। दो श्याम वस्त्र धारण किये, कमलोंके बने हुए सुन्दर आभूषण पहने तथा मनोहर कुण्डली (गेंडुली) मारे जलके भीतर विराजमान हैं।

उनकी गोदमें उन्होंने आनन्दमय कमलभूषण श्रीकृष्ण-चन्द्रको देखा, जो मेघके समान श्यामवर्ण, कुछ लाल-लाल विशाल नयनोंवाले, चतुर्भुज मनोहर अङ्गोपाङ्गोंवाले तथा शङ्ख-चक्रादि आयुधोंसे सुशोभित हैं; जो पीताम्बर पहने हुए हैं और विचित्र वनमालासे विभूषित हैं तथा जिनके वक्षः-स्थलमें श्रीवत्सचिह्न और कानोंमें देदीप्यमान मकराकृत कुण्डल विराजमान हैं। अक्रूरजीने यह भी देखा कि सनकादि मुनिजने और निष्पाप सिद्ध तथा योगिजन उस जलमें ही स्थित होकर नासिकाग्र-दृष्टिसे उन श्रीकृष्णचन्द्रका ही चिन्तन कर रहे हैं।

इस प्रकार वहाँ राम और श्रीकृष्णको पहचानकर अक्रूरजी बड़े ही विस्मित हुए और सोचने लगे कि ये यहाँ इतनी शीघ्रतापूर्वक रथसे कैसे आ गये ? जब उन्होंने कुछ कहना चाहा तो भगवान्ने उनकी वाणी रोक दी। तब वे जलसे निकलकर रथके पास आये और देखा कि वहाँ भी बलराम और श्रीकृष्ण दोनों ही मनुष्य-शरीरसे पूर्ववत् रथपर बैठे हुए हैं। तदनन्तर उन्होंने जलमें घुसकर उन्हें फिर गन्धर्व, सिद्ध, मुनि और नागादिकोंसे स्तुति किये जाते देखा। तब तो दानपति अक्रूर-जी वास्तविक रहस्य जानकर उन सर्वविज्ञानमय अच्युत भगवान्की स्तुति करने लगे।

अक्रूरजी बोले—जो सत्तामात्रस्वरूप, अचिन्त्य महिमा-वाले, सर्वव्यापक तथा कार्यरूपसे अनेक और कारणरूपसे एकरूप हैं, उन परमात्माको नमस्कार है, नमस्कार है। अचिन्तनीय प्रभो ! आप बुद्धिसे अतीत और प्रकृतिसे परे हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। सर्व ! सर्वात्मन् ! क्षराक्षरमय ईश्वर ! आप प्रसन्न होइये। एक आप ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि रूपोंसे वर्णन किये जाते हैं। परमेश्वर ! आपके स्वरूप, प्रयोजन और नाम आदि सभी अनिर्वचनीय हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

नाथ ! जहाँ नाम और जाति आदि कल्पनाओंका सर्वथा अभाव है, आप वही नित्य अविकारी और अजन्मा परब्रह्म हैं। प्रभो ! इन सम्पूर्ण पदार्थोंमें आपसे भिन्न और कुछ भी नहीं है। आप ही ब्रह्मा, महादेव, अर्यमा, विधाता, धाता, इन्द्र, वायु, अग्नि, वरुण, कुबेर और यम हैं। इस प्रकार एक आप ही भिन्न-भिन्न कार्यवाले अपनी शक्तियोंके भेदसे इस सम्पूर्ण जगत्की रक्षा कर रहे हैं। 'सत्' पद 'ॐ तत् सत्' इस रूपसे जिसका वाचक है, वह 'ॐ' अक्षर आपका परम स्वरूप है, आपके उस ज्ञानात्मा सदसत्स्वरूपको नमस्कार है।

भगवान्‌का मथुरा-प्रवेश तथा मालीपर कृपा

श्रीपराशरजी कहते हैं—यदुकुलोत्पन्न अक्रूरजीने श्रीविष्णुभगवान्‌का जलके भीतर इस प्रकार स्तवनकर उन सर्वेश्वरका मानसिक धूप, दीप और पुष्पादिसे पूजन किया। उन्होंने अपने मनको अन्य विषयोंसे हटाकर उन्हींमें लगा दिया और चिरकालतक उन ब्रह्मस्वरूपमें ही समाहितभावसे स्थित रहकर फिर समाधिसे जाग गये। तदनन्तर महामति अक्रूरजी अपनेको कृतकृत्य-सा मानते हुए यमुनाजलसे निकलकर फिर रथके पास चले आये। वहाँ आकर उन्होंने आश्चर्ययुक्त नेत्रोंसे बलराम और श्रीकृष्णको पूर्ववत् रथमें बैठे देखा। उस समय श्रीकृष्णचन्द्रने अक्रूरजीसे कहा।

श्रीकृष्णजीने कहा—अक्रूरजी! आपने अवश्य ही यमुना-जलमें कोई आश्चर्यजनक बात देखी है, क्योंकि आपके नेत्र आश्चर्यचकित दीख पड़ते हैं।

अक्रूरजी बोले—अच्युत! मैंने यमुनाजलमें जो आश्चर्य देखा है, उसे मैं इस समय भी अपने सामने मूर्तिमान् देख रहा हूँ। श्रीकृष्ण! यह महान् आश्चर्यमय जगत् जिस महात्माका स्वरूप है, उन्हीं परम आश्चर्यस्वरूप आपके साथ मेरा समागम हुआ है। मधुसूदन! अब उस आश्चर्यके विषयमें और अधिक कहनेसे लाभ ही क्या है? चलो, हमें शीघ्र ही मथुरा पहुँचना है।

ऐसा कहकर अक्रूरजीने अति वेगवाले घोड़ोंको हाँका और सायंकालके समय वे मथुरापुरीमें पहुँच गये। मथुरापुरीको देखकर अक्रूरने बलराम और श्रीकृष्णसे कहा—'वीरवरो! अब मैं अकेला ही रथसे जाऊँगा, आप दोनों पैदल चले आवें। मथुरामें पहुँचकर आप वसुदेवजीके घर न जायँ, क्योंकि आपके कारण ही उन वृद्ध वसुदेवजीका कंस सर्वदा निरादर करता रहता है।'

श्रीपराशरजी कहते हैं—ऐसा कह अक्रूरजी मथुरापुरीमें चले गये। उनके पीछे श्रीराम और श्रीकृष्ण भी नगरमें प्रवेशकर राजमार्गपर आये। वहाँके नर-नारियोंसे आनन्दपूर्वक देखे जाते हुए वे दोनों वीर लीलापूर्वक जा रहे थे। मार्गमें वे एक मालीके घरपर पहुँचे। उन्हें देखते ही उस मालीके नेत्र आनन्दसे खिल गये और वह आश्चर्यचकित होकर सोचने लगा कि 'ये किसके पुत्र हैं और कहाँसे आये हैं?' पीले और नीले वस्त्र धारण किये उन अति मनोहर बालकोंको देखकर उसने समझा, मानो दो देवगण ही पृथ्वीतलपर पधारे हैं। जब उन विकसित मुखकमल बालकोंने उससे पुष्प माँगे तो उसने अपने दोनों हाथ पृथ्वीपर टेककर शिरसे भूमिको स्पर्श किया और उन दोनोंसे कहा—'नाथ! आप बड़े ही कृपालु हैं, जो मेरे घर पधारे। मैं धन्य हूँ, क्योंकि आज मैं आपका पूजन कर सकूँगा।' तदनन्तर उसने उन दोनों पुरुषश्रेष्ठोंको पुनः पुनः प्रणामकर 'देखिये ये

बहुत सुन्दर हैं, ये बहुत सुन्दर हैं'—इस प्रकार प्रसन्नतासे लुभा-लुभाकर इच्छानुसार अति निर्मल और सुगन्धित मनोहर पुष्प दिये।

तब श्रीकृष्णचन्द्रने भी प्रसन्न होकर उस मालीको यह वर दिया कि 'सौम्य! तेरे बल और धनका नाश कभी न होगा और जबतक दिन (सूर्य) की सत्ता रहेगी तबतक तेरी संतानका उच्छेद न होगा। तू भी यावज्जीवन नाना प्रकारके भोग भोगता हुआ अन्तमें मेरी कृपासे मेरा स्मरण करनेके कारण दिव्य लोकको प्राप्त होगा। भद्र! तेरा मन सर्वदा धर्मपरायण रहेगा तथा तेरे वंशमें जन्म लेनेवालोंकी आयु दीर्घ होगी।'

श्रीपराशरजी कहते हैं—हे मैत्रेय! ऐसा कहकर श्रीकृष्णचन्द्र बलभद्रजीके सहित मालाकारसे पूजित हो, उसके घरसे चल दिये।

धनुर्भङ्ग, कुवलयापीड हाथी और चाणूरादि मल्लोंका नाश तथा कंस-वध

श्रीपराशरजी कहते हैं—तदनन्तर बलराम और श्रीकृष्ण क्रमशः नीलाम्बर और पीताम्बर धारण किये हुए यज्ञशालापर पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने यज्ञरक्षकोंसे उस यज्ञके उद्देश्यस्वरूप धनुषके विषयमें पूछा और उनके बतलानेपर श्रीकृष्णचन्द्र उसे सहसा उठाकर उसपर प्रत्यञ्चा (डोरी) चढाने लगे। उसपर बलपूर्वक प्रत्यञ्चा चढाते समय वह धनुष टूट गया, उस समय उसने ऐसा घोर शब्द किया कि उससे सम्पूर्ण मथुरापुरी गूँज उठी। तब धनुष टूट जानेपर उसके रक्षकोंने उनपर आक्रमण किया, उस रक्षकसेनाका संहारकर वे दोनों बालक धनुश्शालासे बाहर आये।

तदनन्तर अक्रूरके आनेका समाचार पाकर तथा उस महान् धनुषको भग्न हुआ सुनकर कंसने चाणूर और मुष्टिकसे कहा।

कंस बोला—यहाँ दोनों गोपालबालक आ गये हैं। वे मेरा प्राण-हरण करनेवाले हैं, अतः तुम दोनों मल्लयुद्धसे उन्हें मेरे सामने मार डालो। यदि तुमलोग मल्लयुद्धमें उन दोनोंका विनाश करके मुझे संतुष्ट कर दोगे तो मै तुम्हारी समस्त इच्छाएँ पूर्ण कर दूँगा; तुम न्यायसे अथवा अन्यायसे मेरे इन महाबलवान् अपकारियोंको अवश्य मार डालो।

मल्लोको इस प्रकार आज्ञा दे कंसने अपने महावतको बुलाया और उसे आज्ञा दी कि 'तू कुवलयापीड हाथीको मल्लोंकी रङ्गभूमिके द्वारपर खड़ा रख और जब वे गोपकुमार युद्धके लिये यहाँ आवें तो उन्हे इससे नष्ट करा दे।' इस प्रकार उसे आज्ञा देकर कंस सूर्योदयकी प्रतीक्षा करने लगा।

प्रातःकाल होनेपर समस्त मञ्चोंपर नागरिक लोग और राजमञ्चोंपर अपने अनुचरोंके सहित राजालोग बैठे। तदनन्तर रङ्गभूमिके मध्य भागके समीप कंसने युद्धपरीक्षकों-को बैठाया और फिर स्वयं आप भी एक ऊँचे सिंहासनपर बैठा। वहाँ अन्तःपुरकी स्त्रियोंके लिये पृथक् मचान बनाये गये थे तथा नगरकी महिलाओंके लिये भी अलग-अलग मञ्च थे। कुछ अन्य मञ्चोंपर नन्दगोप आदि गोपगण बिठाये गये थे और उन मञ्चोंके पास ही अक्रूर और वसुदेवजी बैठे थे। नगरकी नारियोंके बीचमें पुत्रके लिये मङ्गलकामना करती हुई देवकीजी बैठी थीं।

तदनन्तर तूर्य आदिके बजनेपर जब चाणूर अत्यन्त उछल रहा था और मुष्टिक ताल ठोंक रहा था, गोपवेषधारी वीर बालक बलभद्र और श्रीकृष्ण कुछ हँसते हुए रङ्गभूमिके द्वारपर आये। वहाँ आते ही महावतकी प्रेरणासे कुवलयापीड नामक हाथी उन दोनों गोपकुमारोंको मारनेके लिये बड़े वेगसे दौड़ा। द्विजश्रेष्ठ! उस समय रङ्गभूमिमें महान् हाहाकार मच गया तथा बलदेवजीने अपने अनुज श्रीकृष्णकी ओर देखकर कहा—'महाभाग! इस हाथीको शत्रुने ही प्रेरित किया है; अतः इसे मार डालना चाहिये।'

ज्येष्ठ भ्राता बलरामजीके ऐसा कहनेपर शत्रुसूदन श्रीश्यामसुन्दरने बड़े जोरसे सिंहनाद किया। फिर केशीका वध करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने बलमें ऐरावतके समान उस महाबली हाथीकी सूँड अपने हाथसे पकड़कर उसे घुमाया। भगवान् श्रीकृष्ण यद्यपि सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं, तथापि उन्होंने बहुत देरतक उस हाथीके दाँत और चरणोके बीचमें खेलते-खेलते अपने दायें हाथसे उसका बायाँ दाँत उखाडकर उससे महावतपर प्रहार किया। इससे उसके शिरके सैकड़ो टुकडे हो गये। उसी समय बलभद्रजीने भी क्रोधपूर्वक उसका दायाँ दाँत उखाड़कर उससे आस-पास खड़े हुए महावतोंको मार डाला। तदनन्तर महाबली रोहिणी-नन्दनने रोषपूर्वक अति वेगसे उछलकर उस हाथीके मस्तकपर अपनी बायीं लात मारी। इस प्रकार वह हाथी बलभद्रजीद्वारा लीलापूर्वक मारा जाकर गिर पडा।

तब महावतसे प्रेरित कुवलयापीडको मारकर उसके मद और रक्तसे लथ-पथ बलराम और श्रीकृष्ण उसके दाँतोंको लिये हुए गर्वयुक्त लीलामयी चितवनसे निहारते उस महान् रङ्गभूमिमें इस प्रकार आये, जैसे मृग-समूहके बीचमे सिंह चला जाता है। उस समय महान् रङ्गभूमिमें बडा कोलाहल होने लगा और सब लोगोंमें 'ये श्रीकृष्ण हैं, ये बलभद्र हैं' ऐसा विस्मय छा गया।

वे कहने लगे—'जिसने बालघातिनी घोर राक्षसी पूतनाको मारा था, शकटको उलट दिया था और यमलार्जुनको उखाड़ डाला था, वह यही है। जिस बालकने कालियनागके ऊपर चढकर उसका मान-मर्दन किया था और सात रात्रितक महापर्वत गोवर्धनको अपने हाथपर धारण किया था, वह यही है। जिस महात्माने अरिष्टासुर, धेनुकासुर और केशी आदि दुष्टोंको लीलासे ही मार डाला था, वह यही हैं। इसके आगे ये बड़े भाई महाबाहु बलभद्रजी हैं, जो बड़े लीलापूर्वक

चल रहे हैं। ये सर्वलोकमय और सर्वकारण भगवान् विष्णुके ही अंश हैं, इन्होंने पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही भूमिपर अवतार लिया है।'

बलराम और श्रीकृष्णके विषयमें पुरवासियोंके इस प्रकार कहते समय देवकीके स्तनोंसे स्नेहके कारण दूध बहने लगा। पुत्रोंका मुख देखनेसे अत्यन्त उल्लास-सा प्राप्त होनेके कारण वसुदेवजी भी मानो आये हुए बुढ़ापेको छोड़कर फिरसे नवयुवक-से हो गये।

राजाके अन्तःपुरकी स्त्रियाँ तथा नगरनिवासिनी महिलाएँ भी उन्हें एकटक देखते-देखते न छकीं। वे परस्पर कहने लगीं—'अरी सखियो! अरुण-नयनसे युक्त श्रीकृष्णचन्द्रका अति सुन्दर मुख तो देखो, अरी! इनका दर्शन करके अपने नेत्रोंका होना सफल कर लो।'

एक स्त्री बोली—भामिनि! इस बालकका यह श्रीवत्साङ्कयुक्त परम तेजस्वी वक्षःस्थल तथा शत्रुओंको पराजित करनेवाली दोनों भुजाएँ तो देखो।

दूसरी बोली—अरी! क्या तुम नीलाम्बर धारण किये इन दुग्ध अथवा चन्द्र-शुभ्रवर्ण बलदेवजीको आते हुए नहीं देखती हो?

तीसरी बोली—सखियो! ये दोनों नवयुवक तो बड़े ही सुकुमार शरीरवाले हैं, किंतु इनके प्रतिपक्षी ये चाणूर आदि दैत्य मल्ल अत्यन्त दारुण हैं। मल्लयुद्धके परीक्षकगणोंका यह बहुत बड़ा अन्याय है।

श्रीपराशरजी कहते हैं—नगरकी स्त्रियोंके इस प्रकार वार्तालाप करते समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपनी कमर कसकर उन समस्त दर्शकोंके बीचमें पृथिवीको कम्पायमान करते हुए रङ्गभूमिमें कूद पड़े। श्रीबलभद्रजी भी अपने भुजदण्डोंको ठोंकते हुए अति मनोहर भावसे उछलने लगे। उस समय उनके पद-पदपर पृथिवी नहीं फटी, यही बड़ा आश्चर्य है।

तदनन्तर अमित-विक्रम श्रीकृष्णचन्द्र चाणूरके साथ और द्वन्द्वयुद्धमें कुशल राक्षस मुष्टिक बलभद्रजीके साथ युद्ध करने लगे। श्रीकृष्णचन्द्र चाणूरके साथ परस्पर भिड़कर, नीचे गिराकर, उछालकर, घूँसे और वज्रके समान कोहनी मारकर, पैरोंसे ठोकर मारकर तथा एक-दूसरेके अङ्गोंको रगड़कर लड़ने लगे। उस समय उनमें महान् युद्ध होने लगा।

इस प्रकार उस समाजोत्सवके समीप केवल बल और प्राणशक्तिसे ही सम्पन्न होनेवाला उनका अति भयंकर और दारुण शस्त्रहीन युद्ध हुआ। चाणूर जैसे-जैसे भगवान्‌से भिड़ता गया, वैसे-ही-वैसे उसकी प्राणशक्ति थोड़ी थोड़ी [illegible] क्षीण होती गयी। उस समय चाणूरके [illegible] श्रीकृष्णचन्द्रके बलका उदय देख कंसने [illegible] बाजे बंद करा दिये। तब आकाशमें देवताओंके [illegible] आदि अनेक दिव्य बाजे एक साथ बजने लगे और देवगण अत्यन्त हर्षित होकर अलक्षित-भावसे कहने लगे—'गोविन्द! आपकी जय हो। केशव! आप शीघ्र ही इस चाणूर दानवको मार डालिये।'

भगवान् मधुसूदन बहुत देरतक चाणूरके साथ [illegible] करते रहे, फिर उसका वध करनेके लिये उद्यत होकर [illegible] उठाकर घुमाया। श्रीकृष्णचन्द्रने उस दैत्य मल्लको [illegible] बार घुमाकर आकाशमें ही निर्जीव हो जानेपर पृथिवीपर पटक दिया। भगवान्‌के द्वारा पृथिवीपर गिराये जाते ही चाणूरके शरीरके सैकड़ों टुकड़े हो गये और उस समय उसने रक्तस्रावसे पृथिवीको अत्यन्त कीचड़मय कर दिया। उधर, महाबली बलभद्रजी भी उस समय दैत्य मल्ल मुष्टिकसे भिड़े हुए थे। बलरामजीने उसके मस्तकपर घूँसोंसे तथा वक्षःस्थलमें [illegible] प्रहार किया और उस गतायु दैत्यको पृथिवीपर पटककर रौंद डाला।

तदनन्तर श्रीकृष्णचन्द्रने महाबली मल्लराज [illegible]को बायें हाथसे घूँसा मारकर पृथिवीपर गिरा दिया। उस मल्लके मारे जानेपर अन्य समस्त मल्लगण भाग गये। तब श्रीकृष्ण और सकर्षण अपने समवयस्क गोपोंको [illegible] रङ्गभूमिमें उछलने लगे।

तत्पश्चात् कंसने क्रोधसे नेत्र लाल करके [illegible] हुए पुरुषोंसे कहा—'अरे! इस समाजसे इन दोनों [illegible] बालोंको बलपूर्वक निकाल दो। पापी नन्दको [illegible] में बाँधकर पकड़ लो तथा वसुदेवको भी मार डालो। मेरे सामने श्रीकृष्णके साथ ये जितने गोपगण उछल रहे हैं, इन सबको भी मार डालो तथा इनकी गौएँ और जो कुछ [illegible] धन हो वह सब छीन लो।' जिस समय कंस [illegible] आज्ञा दे रहा था, उसी समय श्रीमधुसूदन हँसते-हँसते [illegible] कर मञ्चपर चढ़ गये और शीघ्रतासे उसे [illegible] उसे केशोंद्वारा खींचकर पृथिवीपर पटक दिया [illegible] ऊपर आप भी कूद पड़े; भगवान् [illegible] कंसके प्राण निकल गये। तब महाबली [illegible] कंसके केश पकड़कर उसके देहको [illegible] देह बहुत भारी था; इसलिये उसे [illegible] के वेगसे बने हुए गड्ढेके समान पृथिवीपर [illegible]।

श्रीकृष्णचन्द्रद्वारा कंसके पकड लिये जानेपर उसके भाई सुमालीने क्रोधपूर्वक आक्रमण किया । उसे बलरामजीने लीलासे ही मार डाला । उसी समय महाबाहु श्रीकृष्णचन्द्रने बलदेवजीसहित वसुदेव और देवकीके चरण पकड लिये । तब, जन्मके समय कहे हुए भगवद्वाक्योंका स्मरण हो आनेसे वसुदेव और देवकीने श्रीजनार्दनको पृथिवीपरसे उठा लिया तथा उनके सामने वे प्रणत-भावसे खड़े हो गये ।

श्रीवसुदेवजी बोले—प्रभो ! अब आप हमपर प्रसन्न होइये । केशव ! आपने आर्त्त देवगणोंको जो वर दिया था, वह हम दोनोंपर अनुग्रह करके पूर्ण कर दिया । भगवन् ! आपने जो मेरी आराधनासे दुष्टजनोंके नाशके लिये मेरे घरमें जन्म लिया, उससे हमारे कुलको पवित्र कर दिया है । आप सर्वभूतमय हैं और समस्त भूतोंके भीतर स्थित हैं । समस्तात्मन् ! भूत और भविष्यत् आपसे ही प्रवृत्त होते हैं । अचिन्त्य ! सर्वदेवमय ! अच्युत ! समस्त यज्ञोंसे आपका ही यजन किया जाता है ।

परमेश्वर ! वही आप हमपर प्रसन्न होइये और अपने अंशावतारसे विश्वकी रक्षा कीजिये । ईश ! ब्रह्मासे लेकर वृक्षादिपर्यन्त यह सम्पूर्ण जगत् आपसे ही उत्पन्न हुआ है, निर्भय ! 'आप मेरे पुत्र हैं' इस मायासे मोहित होकर मैंने कंससे अत्यन्त भय माना था और उस शत्रुके भयसे ही मैं आपको गोकुल ले गया था । अबतक मैंने आपके ऐसे अनेक कर्म देखे हैं, जो रुद्र, मरुद्गण, अश्विनीकुमार और इन्द्रके लिये भी साध्य नहीं हैं । अब मेरा मोह दूर हो गया है, ईश ! मैंने निश्चयपूर्वक जान लिया है कि आप साक्षात् श्रीविष्णुभगवान् ही जगत्के उपकारके लिये प्रकट हुए हैं ।

उग्रसेनका राज्याभिषेक तथा भगवान्का विद्याध्ययन

श्रीपराशरजी कहते हैं—अपने ईश्वरीय कर्मोंको देखनेसे वसुदेव और देवकीको विज्ञान उत्पन्न हुआ देख भगवान्ने यदुवंशियोंको मोहित करनेके लिये अपनी वैष्णवी मायाका विस्तार किया और बोले—'माँ ! पिताजी ! मैं

और बलरामजी बहुत दिनोंसे आपके दर्शनोंके लिये उत्कण्ठित थे, सो आज आपके दर्शन हुए हैं । जो समय माता-पिताकी सेवा किये बिना बीतता है, वह असाधु पुरुषोंकी आयुका भाग व्यर्थ ही जाता है । तात ! गुरु, देवता, ब्राह्मण और माता-पिताका पूजन करते रहनेसे देहधारियोंका जीवन सफल हो जाता है* । अतः तात ! कंसके बल और प्रतापसे परवश होनेके कारण हमसे जो कुछ अपराध हुआ हो, वह क्षमा करें ।'

बलराम और श्रीकृष्णने इस प्रकार कह माता-पिताको प्रणाम किया और फिर क्रमशः समस्त यदुवृद्धोंका यथायोग्य अभिवादनकर पुरवासियोंका सम्मान किया । उस समय कंसकी पत्नियाँ और माताएँ पृथिवीपर पड़े हुए मृतक कंसको घेरकर दुःख-शोकसे पूर्ण हो विलाप करने लगीं । तब श्रीकृष्णचन्द्रने भी आँखोंमें आँसू भरकर उन्हें अनेकों प्रकारसे ढाढ़स बँधाया ।

तदनन्तर श्रीमधुसूदनने जिनका पुत्र मारा गया है, उन राजा उग्रसेनको बन्धनसे मुक्त किया और उन्हें अपने राज्यपर अभिषिक्त कर दिया । तब यदुश्रेष्ठ उग्रसेनने अपने पुत्र तथा और भी जो लोग वहाँ मारे गये थे, उन सबके और्ध्वदैहिक कर्म किये । फिर उग्रसेनसे श्रीहरि बोले—'विभो ! हमारे योग्य जो सेवा हो, उसके लिये हमें निश्शङ्क होकर आज्ञा दीजिये । ययातिका शाप होनेसे यद्यपि हमारा वंश

* कुर्वता याति यः कालो मातापित्रोरपूजनम् ।
तत्खण्डमायुषो व्यर्थमसाधूना हि जायते ॥
गुरुदेवद्विजातीना मातापित्रोश्च पूजनम् ।
कुर्वता सफलः कालो देहिना तात जायते ॥
(वि० पु० ५ । २१ । ३-४)

राज्यका अधिकारी नहीं है, तथापि इस समय मुझ दासके रहते हुए राजाओंको तो क्या, आप देवताओंको भी आज्ञा दे सकते हैं।'

तत्पश्चात् धर्मसंस्थापनादि कार्यसिद्धिके लिये मनुष्यरूप धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने वायुका स्मरण किया और वह उसी समय वहाँ उपस्थित हो गया। तब भगवान्‌ने उससे कहा—'वायो! तुम जाओ और इन्द्रसे कहो कि वासव! तुम उग्रसेनको अपना सुधर्मा-नामका सभा-भवन दो, उसमें यादवोंका विराजमान होना उपयुक्त है।'

भगवान्‌की ऐसी आज्ञा होनेपर वायुने यह सारा समाचार इन्द्रसे जाकर कह दिया और इन्द्रने भी तुरंत ही अपना सुधर्मा-नामका सभाभवन वायुको दे दिया। वायुद्वारा लाये हुए उस सर्वरत्नसम्पन्न दिव्य सभाभवनका सम्पूर्ण श्रेष्ठ यादव श्रीकृष्णचन्द्रकी भुजाओंके आश्रित रहकर उपभोग करने लगे।

तदनन्तर समस्त विज्ञानोंको जानते हुए और सर्वज्ञानसम्पन्न होते हुए भी वीरवर श्रीकृष्ण और बलराम गुरु-शिष्य-प्रणालीको प्रसिद्ध करनेके लिये उपनयन-संस्कारके पश्चात् विद्योपार्जनके लिये काशगोत्रीय अवन्तिपुरवासी सान्दीपनि मुनिके यहाँ गये। वीर संकर्षण और जनार्दन सान्दीपनिका शिष्यत्व स्वीकारकर वेदाभ्यासपरायण हो यथायोग्य गुरु-शुश्रूषादिमें प्रवृत्त रह सम्पूर्ण लोकोंको यथोचित शिष्टाचार प्रदर्शित करने लगे। द्विज! यह बड़े आश्चर्यकी बात हुई कि उन्होंने केवल चौसठ दिनोंमें रहस्य (अस्त्रमन्त्रोपनिषत्) और संग्रह (अस्त्रप्रयोग) [illegible] सम्पूर्ण धनुर्वेद सीख लिया। सान्दीपनिने जब उनके [illegible] असम्भव और अतिमानुष कर्मको देखा तो [illegible] साक्षात् सूर्य और चन्द्रमा ही मेरे घर आ गये हैं। उन [illegible] अङ्गोंसहित चारों वेद, सम्पूर्ण शास्त्र और [illegible] अस्त्रविद्या एक बार सुनते ही प्राप्त कर ली और [illegible] गुरुजीसे कहा—'कहिये, आपको क्या गुरुदक्षिणा [illegible] महामति सान्दीपनिने उनके अतीन्द्रिय[illegible] प्रभास-क्षेत्रके खारे समुद्रमें डूबकर मरे हुए अपने पुत्रको [illegible]। तदनन्तर जब वे शस्त्र ग्रहणकर समुद्रके पास पहुँचे तो [illegible] अर्घ्य लेकर उनके सम्मुख उपस्थित हुआ और कहा—[illegible] सान्दीपनिका पुत्र हरण नहीं किया। दैत्यदमन! [illegible] ही पञ्चजन नामक एक दैत्य शङ्खरूपसे रहता है, उसीने उस बालकको पकड़ लिया था।'

इसके पश्चात् श्रीकृष्णचन्द्रने जलके भीतर जाकर पञ्चजन का वध किया और पाञ्चजन्य शङ्खको ले लिया, जिसके शब्दसे दैत्योंका बल नष्ट हो जाता है, देवताओंका तेज बढ़ता है और अधर्मका क्षय होता है। तदनन्तर उस पाञ्चजन्य शङ्खको बजाते हुए श्रीकृष्णचन्द्र और बलवान् बलराम यमपुरको गये और सूर्यपुत्र यमको जीतकर यमयातना भोगते हुए उस बालकको पूर्ववत् शरीरयुक्त कर उसके पिताको दे दिया।

इसके पश्चात् वे बलराम और श्रीकृष्ण राजा उग्रसेनद्वारा परिपालित मथुरापुरीमें, जहाँके स्त्री-पुरुष उनके [illegible] आनन्दित हो रहे थे, पधारे।

जरासन्धकी पराजय, द्वारका-दुर्गकी रचना, कालयवनका भस्म होना तथा मुचुकुन्दकृत भगवत्स्तुति

श्रीपराशरजी कहते हैं—मैत्रेय! महाबली कंसने जरासन्धकी पुत्री अस्ति और प्राप्तिसे विवाह किया था, अतः उनको दुःखित समझकर अत्यन्त बलिष्ठ मगधराज क्रोधपूर्वक एक बहुत बड़ी सेना लेकर अपनी पुत्रियोंके स्वामी कंसको मारनेवाले श्रीहरिको यादवोंके सहित मारनेकी इच्छासे मथुरापर चढ़ आया। मगधेश्वर जरासन्धने तेईस अक्षौहिणी सेनाके सहित आकर मथुराको चारों ओरसे घेर लिया।

तब महाबली श्रीराम और जनार्दन थोड़ी-सी सेनाके साथ नगरसे निकलकर जरासन्धके प्रबल सैनिकोंसे युद्ध करने लगे। मुनिश्रेष्ठ! उस समय श्रीराम और श्रीकृष्णने अपने पुरातन शस्त्रोंको ग्रहण करनेका विचार किया। विप्र! [illegible] करते ही उनका शार्ङ्ग धनुष, अक्षय [illegible] और कौमोदकी नामकी गदा आकाशसे आकर [illegible] गये। द्विज! बलभद्रजीके पास भी उनका [illegible] महान् हल और सुनन्द नामक [illegible]।

तदनन्तर दोनों वीर राम और कृष्ण [illegible] मगधराजको युद्धमें हराकर मथुरापुरीमें [illegible]।

द्विजोत्तम! जरासन्ध फिर उनसे [illegible] किंतु बलराम और श्रीकृष्णसे पराजित [illegible]। [illegible] प्रकार अत्यन्त दुर्धर्ष मगधराज जरासन्धके [illegible]

आदि यादवोंसे अठारह बार युद्ध किया। इन सभी युद्धोंमें अधिक सैन्यशाली जरासन्ध थोड़ी-सी सेनावाले यदुवंशियोंसे हारकर भाग गया। यादवोंकी थोडी-सी सेना भी जो उसकी अनेक बडी सेनाओंसे पराजित न हुई, यह सब भगवान् विष्णुके अवतार श्रीकृष्णचन्द्रकी संनिधिका ही माहात्म्य था। उन मानवधर्मशील जगत्पतिकी यह लीला ही है कि वे अपने शत्रुओंपर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र छोडते हैं। जो केवल संकल्पमात्रसे ही संसारकी उत्पत्ति और संहार कर देते हैं, उन्हें अपने शत्रुपक्षका नाश करनेके लिये विशेष उद्योग करनेकी क्या आवश्यकता है? तथापि वे बलवानोंसे संधि और बलहीनोंसे युद्ध करके मानव-धर्मोंका अनुवर्तन कर रहे हैं। वे कहीं साम, कहीं दान और कहीं भेदनीतिका व्यवहार करते हैं तथा कहीं दण्ड देते और कहींसे स्वयं भाग भी जाते हैं। इस प्रकार मानवदेहधारियोंकी चेष्टाओंका अनुवर्तन करते हुए जगत्पति श्रीकृष्णकी अपनी इच्छानुसार लीलाएँ होती रहती थीं।

एक समयकी बात है, वीर्यमदोन्मत्त यवनराज कालयवनने नारदजीसे पूछा कि 'पृथ्वीपर बलवान् राजा कौन-कौन-से हैं?' इसपर नारदजीने उसे यादवोंको ही बतला दिया। यह सुनकर कालयवनने हजारों हाथी, घोड़े और रथोंके सहित करोड़ों म्लेच्छ-सेनाको साथ ले बड़ी भारी तैयारी की और यादवोंके प्रति क्रुद्ध होकर वह प्रतिदिन हाथी, घोड़े आदिके थक जानेपर उन वाहनोंका त्याग करता हुआ अन्य वाहनोंपर चढ़कर अविच्छिन्न-गतिसे मथुरापुरीपर चढ़ आया।

यह देखकर श्रीकृष्णचन्द्रने सोचा—'यवनोंके साथ युद्ध करनेसे क्षीण हुई यादव-सेना अवश्य ही मगधनरेशसे पराजित हो जायगी और यदि प्रथम मगधनरेशसे लड़ते हैं तो उससे क्षीण हुई यादवसेनाको बलवान् कालयवन नष्ट कर देगा। अहो! इस प्रकार यादवोंपर एक ही साथ यह दो तरहकी आपत्ति आ पड़ी। अतः मैं यादवोंके लिये एक ऐसा दुर्जय दुर्ग तैयार करता हूँ, जिसमें बैठकर वृष्णिश्रेष्ठ यादवोंकी तो बात ही क्या है, स्त्रियाँ भी युद्ध कर सकें।'

ऐसा विचारकर श्रीगोविन्दने समुद्रसे बारह योजन भूमि माँगी और उसमें द्वारकापुरी निर्माण की। जो इन्द्रकी अमरावतीपुरीके समान महान् उद्यान, गहरी खाईं, सैकड़ों सरोवर तथा अनेकों महलोंसे सुशोभित थी। कालयवनके समीप आ जानेपर श्रीजनार्दन सम्पूर्ण मथुरानिवासियोंको द्वारकामें ले आये और फिर स्वयं मथुरा लौट गये। जब कालयवनकी सेनाने मथुराको घेर लिया तो श्रीकृष्णचन्द्र बिना शस्त्र लिये मथुरासे बाहर निकल आये। तब यवनराज कालयवन उन्हें देखकर उनके पीछे दौड़ा।

कालयवनसे पीछा किये जाते हुए श्रीकृष्णचन्द्र उस महा-गुहामें घुस गये, जिसमें महावीर्यशाली राजा मुचुकुन्द सो रहे थे। उस दुर्मति यवनने भी उस गुफामें जाकर सोये हुए राजाको श्रीकृष्ण समझकर लात मारी। उसके लात मारनेसे उठकर राजा मुचुकुन्दने उस यवनराजको देखा। मैत्रेय! उनके देखते ही वह यवन उनकी क्रोधाग्निसे जलकर तत्काल भस्मीभूत हो गया।

पूर्वकालमें राजा मुचुकुन्द देवताओंकी ओरसे देवासुर-संग्राममें गये थे; असुरोंको मार चुकनेपर अत्यन्त निद्रालु होनेके कारण उन्होंने देवताओंसे बहुत समयतक सोनेका वर माँगा था। उस समय देवताओंने कहा था कि 'तुम्हारे शयन करनेपर तुम्हें जो कोई जगावेगा, वह तुरंत ही अपने शरीरसे उत्पन्न हुई अग्निसे जलकर भस्म हो जायगा।'

इस प्रकार पापी कालयवनको दग्ध कर चुकनेपर राजा मुचुकुन्दने श्रीमधुसूदनको देखकर पूछा—'आप कौन हैं?' तब भगवान्ने कहा—'मैं चन्द्रवंशके अन्तर्गत यदुकुलमें वसुदेवजीके पुत्ररूपसे उत्पन्न हुआ हूँ।' तब मुचुकुन्दको वृद्ध गार्ग्य मुनिके वचनोंका स्मरण हुआ। उनका स्मरण होते ही उन्होंने सर्वरूप सर्वेश्वर श्रीहरिको प्रणाम करके कहा—'परमेश्वर! मैंने आपको जान लिया है; आप साक्षात् भगवान् विष्णुके अंश हैं। पूर्वकालमें गार्ग्य मुनिने कहा था कि 'अट्ठाईसवें युगमें द्वापरके अन्तमें यदुकुलमें श्रीहरिका जन्म होगा। निस्संदेह आप भगवान् विष्णुके अंश हैं और मनुष्योंके उपकारके लिये ही अवतीर्ण हुए हैं, तथापि मैं आपके महान् तेजको सहन करनेमें समर्थ नहीं हूँ। भगवन्! आपका शब्द सजल मेघकी घोर गर्जनाके समान अति गम्भीर है तथा आपके चरणोंसे पीडिता होकर पृथ्वी झुकी हुई है। संसारमें पतित जीवोंके एकमात्र आप ही परम आश्रय हैं। शरणागतोंका दुःख दूर करनेवाले! आप प्रसन्न होइये और मेरे अमङ्गलोंको नष्ट कीजिये।

'आप ही समुद्र हैं, आप ही पर्वत हैं, आप ही नदियाँ हैं और आप ही वन हैं तथा आप ही पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, अग्नि और मन हैं। आप ही बुद्धि, अव्याकृत, प्राण और प्राणोंके अधिष्ठाता पुरुष हैं तथा-पुरुषसे भी परे जो

व्यापक और जन्म तथा विकारसे शून्य तत्त्व है, वह भी आप ही हैं। जो शब्दादिसे रहित, अजर, अमेय, अक्षय और नाश तथा वृद्धिसे रहित है, वह आद्यन्तहीन ब्रह्म भी आप ही हैं। प्रभो! मूर्त अमूर्त, स्थूल-सूक्ष्म तथा और भी जो कुछ है, वह सब आप जगत्कर्ता ही हैं, आपसे भिन्न और कुछ भी नहीं है*।

'भगवन्! तापत्रयसे अभिभूत होकर सर्वदा इस संसार-चक्रमें भ्रमण करते हुए मुझे कभी शान्ति प्राप्त नहीं हुई। नाथ! जलकी आशासे मृगतृष्णाके समान मैंने दुःखोंको ही सुख समझकर ग्रहण किया था; परंतु वे मेरे संतापके ही कारण हुए। प्रभो! राज्य, पृथ्वी, सेना, कोश, मित्रपक्ष, पुत्रगण, स्त्री तथा सेवक आदि और शब्दादि विषय इन सबको मैंने अविनाशी तथा सुख-बुद्धिसे ही अपनाया था; किंतु ईश! परिणाममें वे ही दुःखरूप सिद्ध हुए। नाथ! जब देवलोक प्राप्त करके भी देवताओंको मेरी सहायताकी इच्छा हुई तो उस (स्वर्गलोक) में भी नित्य-शान्ति कहाँ है? परमेश्वर! सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्तिके आदि-स्थान आपकी आराधना किये बिना कौन शाश्वत-शान्ति प्राप्त कर सकता है? प्रभो! आपकी मायासे मूढ हुए पुरुष जन्म, मृत्यु और जरा आदि संतापोंको भोगते हुए अन्तमें यमलोकको जाते हैं। आपके स्वरूपको न जाननेवाले पुरुष नरकोंमें पड़कर अपने कर्मोंके फलस्वरूप नाना प्रकारके दारुण क्लेश पाते हैं। परमेश्वर! मैं अत्यन्त विषयी हूँ और आपकी मायासे मोहित होकर ममत्वाभिमानके गड्ढेमें भटकता रहा हूँ। वही मैं आज अपार और अप्रमेय परमपदरूप आप परमेश्वरकी शरणमें आया हूँ, जिससे भिन्न दूसरा कुछ भी नहीं है और संसारभ्रमणके खेदसे खिन्न-चित्त होकर मैं निरतिशय तेजोमय निर्वाणस्वरूप आपका ही अभिलाषी हूँ।'

मुचुकुन्दका तपस्याके लिये प्रस्थान तथा बलरामजीकी व्रजयात्रा और रेवतीसे विवाह

श्रीपराशरजी कहते हैं—परम बुद्धिमान् राजा मुचुकुन्दके इस प्रकार स्तुति करनेपर सर्वभूतोंके ईश्वर अनादि-निधन भगवान् श्रीहरि बोले।

श्रीभगवान्ने कहा—नरेश्वर! तुम अपने इच्छानुसार दिव्य लोकोंको जाओ; मेरी कृपासे तुम्हें नित्य परम ऐश्वर्य प्राप्त होगा।

भगवान्के इस प्रकार कहनेपर राजा मुचुकुन्दने जगदीश्वर श्रीअच्युतको प्रणाम किया और गुफासे निकलकर देखा कि लोग बहुत छोटे-छोटे हो गये हैं। उस समय कलियुगको वर्तमान समझकर राजा तपस्या करनेके लिये श्रीनर-नारायण-के स्थान हिमालयके गन्धमादन-पर्वतपर चले गये। इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रने उपायपूर्वक शत्रुको नष्टकर फिर मथुरामें आ, उसके हाथी, घोड़े और रथादिसे सुशोभित सैन्यको अपने अधीन कर लिया और उसे द्वारकामें लाकर राजा उग्रसेनको अर्पण कर दिया। तबसे यदुवंश शत्रुओंके दमनसे निःशङ्क हो गया।

मैत्रेय! तत्पश्चात् बलदेवजी अपने बान्धवोंके दर्शनकी उत्कण्ठासे नन्दजीके गोकुलको गये। वहाँ पहुँचकर शत्रुजित् बलभद्रजीने गोप और गोपियोंका पहलेकी ही भाँति अति आदर और प्रेमके साथ यथायोग्य अभिवादन किया। गोपोंने बलरामजीसे अनेकों प्रिय वचन कहे तथा गोपियोंमेंसे कोई प्रणयकुपित होकर बोलीं और किन्हींने उपालम्भयुक्त बातें कीं।

किन्हीं अन्य गोपियोंने पूछा—'क्या श्रीकृष्णचन्द्र कभी हमारे गीतानुयायी मनोहर स्वरका स्मरण करते हैं? क्या वे एक बार अपनी माताको भी देखनेके लिये यहाँ आवेंगे? अथवा अब उनकी बात करनेसे हमें क्या प्रयोजन है, कोई और बात करो। जब उनकी हमारे बिना निभ गयी तो हम भी उनके बिना निभा ही लेंगी। तथापि बलरामजी! सच-सच बतलाइये, क्या श्रीकृष्ण कभी यहाँ आनेके विषयमें भी कोई बातचीत करते हैं?'

श्रीपराशरजी कहते हैं—तदनन्तर बलरामजीने श्रीकृष्णचन्द्रका अति मनोहर और शान्तिमय, प्रेमपूर्ण और गर्वरहित संदेश सुनाकर गोपियोंको सान्त्वना दी तथा गोपोंके साथ विनोद करते हुए उन्होंने पहलेकी भाँति बहुत-सी मनोहर बातें कीं और उनके साथ व्रजभूमिमें कुछ कालतक [illegible]। फिर दो मास पश्चात् द्वारकापुरीको चले आये। वहाँ आकर बलदेवजीने राजा रेवतकी पुत्री रेवतीसे विवाह किया, उससे उनके निशठ और उल्मुक नामक दो पुत्र हुए।

---

* मूर्तामूर्त तथा चापि स्थूलं सूक्ष्मतरं तथा। तत्सर्वं त्वं जगत्कर्तर्नास्ति किञ्चित्त्वया विना॥
(वि० पु० ५। २३। ३७)

रुक्मिणीका विवाह तथा प्रद्युम्न-हरण और शम्बर-वध

श्रीपराशरजी कहते हैं—विदर्भदेशान्तर्गत कुण्डिनपुर नामक नगरमें भीष्मक नामक एक राजा थे। उनके रुक्मी नामक पुत्र और रुक्मिणी नामकी एक सुमुखी कन्या थी। श्रीकृष्णने रुक्मिणीकी और चारुहासिनी रुक्मिणीने श्रीकृष्णचन्द्रकी अभिलाषा की, किंतु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके माँगनेपर भी उनसे द्वेष करनेके कारण रुक्मीने उन्हें रुक्मिणी न दी। महापराक्रमी भीष्मकने जरासन्धकी प्रेरणासे रुक्मीसे सहमत होकर शिशुपालको रुक्मिणी देनेका निश्चय किया। तब शिशुपालके हितैषी जरासन्ध आदि सम्पूर्ण राजागण विवाहमें सम्मिलित होनेके लिये भीष्मकके नगरमें गये। इधर श्रीकृष्णचन्द्र भी कुण्डिनपुर गये और विवाहके एक दिन पूर्व ही उन्होंने उस कन्याका हरण कर लिया। तब श्रीमान् पौण्ड्रक, दन्तवक्र, विदूरथ, शिशुपाल, जरासन्ध और शाल्व आदि राजाओंने कुपित होकर श्रीकृष्णको मारनेका महान् उद्योग किया, किंतु वे सब बलराम आदि यदुश्रेष्ठोंसे मुठभेड़ होनेपर पराजित हो गये। तब रुक्मीने यह प्रतिज्ञा कर कि 'मैं युद्धमें कृष्णको मारे बिना कुण्डिनपुरमें प्रवेश न करूँगा' श्रीकृष्णको मारनेके लिये उनका पीछा किया, किंतु श्रीकृष्णने लीलासे ही हाथी, घोड़े, रथ और पदातियोंसे युक्त उसकी सेनाको नष्ट करके उसे जीत लिया और पृथिवीमें गिरा दिया।

इस प्रकार रुक्मीको युद्धमें परास्तकर श्रीमधुसूदनने रुक्मिणीका सम्यक् (वेदोक्त) रीतिसे पाणिग्रहण किया। उससे उनके वीर्यवान् प्रद्युम्नजीका जन्म हुआ, जिन्हें शम्बरासुर हर ले गया था और फिर काल-क्रमसे जिन्होंने शम्बरासुरका वध किया था।

श्रीमैत्रेयजीने पूछा—मुने ! वीरवर प्रद्युम्नको शम्बरासुरने कैसे हरण किया था ? और फिर उस महाबली शम्बरको प्रद्युम्नने कैसे मारा ?

श्रीपराशरजीने कहा—मुने ! कालके समान विकराल शम्बरासुरने प्रद्युम्नको, जन्म लेनेके छठे ही दिन 'यह मेरा मारनेवाला है' ऐसा जानकर सूतिकागृहसे हर लिया। उसको हरण करके शम्बरासुरने लवणसमुद्रमें डाल दिया, वहाँ फेंके हुए उस बालकको एक मत्स्यने निगल लिया, किंतु वह उसकी जठराग्निसे जलकर भी न मरा।

कालान्तरमें कुछ मछेरोंने उसे अन्य मछलियोंके साथ अपने जालमें फँसाया और असुरश्रेष्ठ शम्बरको निवेदन किया। उसकी नाममात्रकी पत्नी मायावती सम्पूर्ण अन्तःपुरकी स्वामिनी थी। उस मछलीका पेट चीरते ही उसमें एक अति सुन्दर बालक दिखायी दिया। 'तब यह कौन है और किस प्रकार इस मछलीके पेटमें डाला गया' इस प्रकार अत्यन्त आश्चर्यचकित हुई उस सुन्दरीसे देवर्षि नारदने आकर कहा—'सुन्दर भृकुटिवाली ! यह भगवान् श्रीकृष्णका पुत्र है; इसे शम्बरासुरने सूतिकागृहसे चुराकर समुद्रमें फेंक दिया था। वहाँ इसे यह मत्स्य निगल गया और अब इसीके द्वारा यह तेरे घर आ गया है। तू इस नररत्नका पालन कर।'

नारदजीके ऐसा कहनेपर मायावतीने उस बालककी अतिशय सुन्दरतासे मोहित हो बाल्यावस्थासे ही उसका अति अनुरागपूर्वक पालन किया। महामते ! जिस समय वह नवयौवनके समागमसे सुशोभित हुआ, तब वह गजगामिनी उसके प्रति कामनायुक्त अनुराग प्रकट करने लगी। महामुने ! जो अपना हृदय और नेत्र प्रद्युम्नमें अर्पित कर चुकी थी, उस मायावतीने अनुरागसे मोहित होकर उसे सब प्रकारकी माया सिखा दी और कहा—'तुम भगवान् श्रीकृष्णके तनय हो। तुम्हें कालशम्बरने हरकर समुद्रमें फेंक दिया था; तुम मुझे एक मत्स्यके उदरमें मिले हो। तुम्हारे वियोगमें तुम्हारी पुत्रवत्सला जननी आज भी रोती होगी।'

मायावतीके इस प्रकार कहनेपर महाबलवान् प्रद्युम्नजीने क्रोधसे विह्वल हो शम्बरासुरको युद्धके लिये ललकारा और उससे युद्ध करने लगे। यादवश्रेष्ठ प्रद्युम्नजीने उस दैत्यकी सम्पूर्ण सेना मार डाली और उसकी सात मायाओंको जीतकर स्वयं आठवीं मायाका प्रयोग किया। उस मायासे उन्होंने दैत्यराज कालशम्बरको मार डाला और मायावतीके साथ उड़कर आकाशमार्गसे अपने पिताके नगरमें आ गये।

मायावतीके सहित अन्तःपुरमें उतरनेपर रुक्मिणीके नेत्रोंमें प्रेमवश आँसू भर आये और वे कहने लगीं—'बेटा ! जैसा मुझे तेरे प्रति स्नेह हो रहा है और जैसा तेरा स्वरूप है, उससे मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तू भगवान् श्रीकृष्णका ही पुत्र है।'

इसी समय श्रीकृष्णचन्द्रके साथ वहाँ नारदजी आ गये। उन्होंने अन्तःपुरनिवासिनी देवी रुक्मिणीको आनन्दित करते हुए कहा—'सुभ्रु ! यह तेरा ही पुत्र है।

शम्बरासुरको मारकर आ रहा है, जिसने कि इसे बाल्यावस्थामें सूतिकागृहसे हर लिया था । यह सती मायावती भी तेरे पुत्रकी ही स्त्री है; इसका कारण सुन । पूर्वकालमें कामदेवके भस्म हो जानेपर उसके पुनर्जन्मकी प्रतीक्षा करती हुई इसने अपने मायामय रूपसे शम्बरासुरको मोहित किया था । कामदेवने ही तेरे पुत्ररूपसे जन्म लिया है और यह सुन्दरी उसकी प्रिया रति ही है । शोभने ! यह तेरी पुत्रवधू है ।

यह सुनकर रुक्मिणी और श्रीकृष्णको अतिशय आनन्द हुआ ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—मैत्रेय ! रुक्मिणीसे प्रद्युम्नके अतिरिक्त चारुदेष्ण, सुदेष्ण, वीर्यवान् चारुदेह, सुषेण, चारुगुप्त, भद्रचारु, चारुविन्द, सुचारु और बलवानोंमें श्रेष्ठ चारु नामक पुत्र तथा चारुमती नामकी एक कन्या हुई । पटरानी रुक्मिणीके अतिरिक्त श्रीकृष्णचन्द्रके कालिन्दी, मित्रविन्दा, नग्नजित्‌की पुत्री नग्नजिती, जाम्बवान्‌की पुत्री कामरूपिणी रोहिणी देवी, अतिशीलवती मद्रराजसुता सुशीला भद्रा, सत्राजित्‌की पुत्री सत्यभामा और चारुहासिनी लक्ष्मणा—ये अति सुन्दरी सात पटरानियाँ और थीं । इनके सिवा उनके और भी सोलह हजार स्त्रियाँ थीं ।

नरकासुरका वध

श्रीपराशरजी कहते हैं—मैत्रेय ! एक बार जब श्रीभगवान् द्वारकामें ही थे, देवराज इन्द्र अपने गजराज ऐरावतपर चढ़कर उनके पास आये और उनसे बोले—'मधुसूदन ! इस समय मनुष्यरूपमें स्थित होकर भी आप सम्पूर्ण देवताओंके स्वामीने हमारे समस्त दुःखोंको शान्त कर दिया है । जो अरिष्ट, धेनुक और केशी आदि असुर सर्वदा तपस्वियोंको तंग करनेमें ही तत्पर रहते थे तथा कंस, कुवलयापीड और बालघातिनी पूतना एवं और भी जो-जो संसारके उपद्रवरूप थे, उन सबको आपने नष्ट कर दिया । आपके बाहुदण्डके प्रभावसे त्रिलोकीके सुरक्षित हो जानेके कारण याजकोंके दिये हुए यज्ञभागोंको प्राप्तकर देवगण तृप्त हो रहे हैं ।

'शत्रुदमन ! पृथ्वीका पुत्र नरकासुर प्राग्ज्योतिषपुरका स्वामी है; इस समय वह सम्पूर्ण जीवोंका घात कर रहा है । जनार्दन ! उसने देवता, सिद्ध, असुर और राजा आदिकोंकी कन्याओंको बलात्कारसे लाकर अपने अन्तःपुरमें बंद कर रखा है । इस दैत्यने वरुणका जल बरसानेवाला छत्र और मन्दराचलका मणिपर्वतनामक शिखर भी हर लिया है ।

'श्रीकृष्ण ! उसने मेरी माता अदितिके अमृतस्रावी दोनों दिव्य कुण्डल भी ले लिये हैं । गोविन्द ! मैंने आपको उसकी ये सब अनीतियाँ सुना दी हैं; इनका जो प्रतीकार होना चाहिये, वह आप स्वयं विचार लें ।'

इन्द्रके ये वचन सुनकर श्रीदेवकीनन्दन मुसकराये और इन्द्रका हाथ पकड़कर उठे । फिर स्मरण करते ही उपस्थित हुए आकाशगामी गरुडपर सत्यभामाको चढ़ाकर स्वयं चढ़े और प्राग्ज्योतिषपुरको चले । तदनन्तर इन्द्र भी ऐरावतपर चढ़कर देवलोकको गये ।

द्विजोत्तम ! प्राग्ज्योतिषपुरके चारों ओर पृथिवी सौ योजनतक मुर दैत्यके बनाये हुए छुरेकी धाराके समान अति तीक्ष्ण पाशोंसे घिरी हुई थी । भगवान्‌ने उन पाशोंको सुदर्शनचक्र फेंककर काट डाला; फिर मुर दैत्य भी सामना करनेके लिये उठा, तब श्रीकेशवने उसे भी मार डाला । तदनन्तर श्रीहरिने मुरके सात हजार पुत्रोंको भी अपने चक्रकी धाररूप अग्निमें पतंगके समान भस्म कर दिया । फिर प्राग्ज्योतिषपुरमें प्रवेश किया । वहाँ पहुँचकर भगवान्‌का अधिक सेनावाले नरकासुरसे युद्ध हुआ, जिसमें श्रीगोविन्दने उसके सहस्रों दैत्योंको मार डाला । भगवान् चक्रपाणिने भूमिपुत्र नरकासुरके सुदर्शनचक्र फेंककर दो टुकड़े कर दिये । नरकासुरके मरते ही पृथिवी अदितिके कुण्डल लेकर उपस्थित हुई और भगवान् श्रीकृष्णसे कहने लगी ।

पृथिवी बोली—नाथ ! जिस समय [illegible]

आपने मेरा उद्धार किया था, उसी समय आपके स्पर्शसे मेरे यह पुत्र उत्पन्न हुआ था। इस प्रकार आपने ही मुझे यह पुत्र दिया था और अब आपहीने इसको नष्ट किया है; आप ये कुण्डल लीजिये और अब इसकी संतानकी रक्षा कीजिये। प्रभो! मेरे ऊपर प्रसन्न होकर ही आप मेरा भार उतारनेके लिये इस लोकमें अवतीर्ण हुए हैं। अच्युत! इस जगत्के आप ही कर्ता, आप ही विकर्ता (पोषक) और आप ही हर्ता (संहारक) हैं; आप ही इसकी उत्पत्ति और लयके स्थान हैं तथा आप ही जगद्रूप हैं। फिर हम आपकी किस बातकी स्तुति करें? सर्वभूतात्मन्! आप प्रसन्न होइये और इस नरकासुरके सम्पूर्ण अपराध क्षमा कीजिये। आपने निर्दोष करनेके लिये ही इसे स्वयं मारा है।

श्रीपराशरजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ! तदनन्तर भगवान्ने पृथिवीसे कहा—'तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो।' फिर भगवान्ने अन्तःपुरमें जाकर सोलह हजार एक सौ कन्याएँ देखीं तथा चार दाँतवाले छः हजार गजश्रेष्ठ और इक्कीस लाख काम्बोजदेशीय अश्व देखे। उन कन्याओं, हाथियों और घोड़ोंको श्रीकृष्णचन्द्रने नरकासुरके सेवकोंद्वारा तुरंत ही द्वारकापुरी पहुँचवा दिया। तत्पश्चात् भगवान्ने वरुणका छत्र और मणिपर्वत देखा, उन्हें उठाकर उन्होंने पक्षिराज गरुडपर रख लिया और सत्यभामाके सहित स्वयं भी उसीपर चढ़कर अदितिके कुण्डल देनेके लिये स्वर्गलोकको गये।

पारिजात-हरण तथा भगवान्का सोलह हजार एक सौ कन्याओंसे विवाह करना

श्रीपराशरजी कहते हैं—पक्षिराज गरुड उस वारुण-छत्र, मणिपर्वत और सत्यभामाके सहित श्रीकृष्णचन्द्रको लीलासे ही लेकर चलने लगे। स्वर्गके द्वारपर पहुँचते ही श्रीहरिने अपना शङ्ख बजाया। उसका शब्द सुनते ही देवगण अर्घ्य लेकर भगवान्के सामने उपस्थित हुए। देवताओंसे पूजित होकर श्रीकृष्णचन्द्रजीने देवमाता अदितिके श्वेत मेघ-शिखरके समान गृहमें जाकर उनका दर्शन किया। तब श्रीजनार्दनने इन्द्रके साथ देवमाताको प्रणामकर उनके अत्युत्तम कुण्डल दिये और उन्हें नरकासुरके वधका वृत्तान्त सुनाया। तदनन्तर जगन्माता अदितिने प्रसन्नतापूर्वक तन्मय होकर जगद्धाता श्रीहरिकी स्तुति की।

अदिति बोली—कमलनयन! भक्तोंको अभय करनेवाले! सनातनस्वरूप! सर्वात्मन्! भूतस्वरूप! भूतभावन! आपको नमस्कार है। मन, बुद्धि और इन्द्रियोंके रचयिता! गुणस्वरूप! त्रिगुणातीत! निर्द्वन्द्व! शुद्धसत्त्व! अन्तर्यामिन्! आपको नमस्कार है। ईश्वर! आप ब्रह्मा, विष्णु और शिव नामक अपनी मूर्तियोंद्वारा जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और नाश करनेवाले हैं तथा आप कर्ताओंके भी स्वामी हैं। प्रभो! आपकी माया ही परमार्थतत्त्वके न जाननेवाले पुरुषोंको मोहित करनेवाली है, जिससे मूढ पुरुष अनात्मामें आत्मबुद्धि करके बन्धनमें पड़े हुए हैं। नाथ! प्रायः पुरुषको जो अनात्मामें आत्मबुद्धि और 'मैं-मेरा' आदि भाव होते हैं, वह सब आपकी जगज्जननी मायाका ही प्रभाव है। नाथ! जो स्वधर्मपरायण पुरुष आपकी आराधना करते हैं, वे अपने मोक्षके लिये इस सम्पूर्ण मायाको पार कर जाते हैं। भगवन्! जन्म और मरणके चक्रमें पड़े हुए ये पुरुष जीवके भव-बन्धनको नष्ट करनेवाले आपकी आराधना करके भी जो नाना प्रकारकी कामनाएँ ही माँगते हैं, यह आपकी माया ही है। अखिल जगन्माया-मोहकारी अव्यय प्रभो! आप प्रसन्न होइये और भूतेश्वर! मेरे ज्ञानाभिमानजनित अज्ञानको नष्ट कीजिये। चक्रपाणे! शार्ङ्गधर! गदाधर! शङ्खपाणे! विष्णो! आपको बारंबार नमस्कार है। मैं स्थूल चिह्नोंसे प्रतीत होनेवाले आपके इस रूपको देखती हूँ; आपके वास्तविक परस्वरूपको मैं नहीं जानती; परमेश्वर! आप प्रसन्न होइये।

श्रीपराशरजी कहते हैं—अदितिद्वारा इस प्रकार स्तुति किये जानेपर भगवान् विष्णु देवमातासे हँसकर बोले—'देवि! तुम तो हमारी माता हो।'

तदनन्तर शक्रपत्नी शचीके सहित श्रीकृष्णप्रिया सत्यभामाने अदितिको पुनः-पुनः प्रणाम करके कहा—'माता! आप प्रसन्न होइये।'

अदिति बोली—सुन्दर भृकुटिवाली! मेरी कृपासे तुझे कभी वृद्धावस्था या विरूपता व्याप्त न होगी। अनिन्दिताङ्गि! तेरा नवयौवन सदा स्थिर रहेगा।

तत्पश्चात् अदितिकी आज्ञासे देवराजने अत्यन्त आदर-सत्कारके साथ श्रीकृष्णचन्द्रका पूजन किया, किंतु कल्पवृक्षके पुष्पोंसे अलंकृता इन्द्राणीने सत्यभामाको मानुषी समझकर वे पुष्प न दिये। साधुश्रेष्ठ! फिर सत्यभामाके

सहित श्रीकृष्णचन्द्रने भी देवताओंके नन्दन आदि मनोहर वन-बगीचोंको देखा । वहाँपर जगन्नाथ श्रीकृष्णने सुगन्धपूर्ण मञ्जरी-पुञ्जधारी, नित्याह्लादकारी, ताम्रवर्णवाले नूतन पल्लवोंसे सुशोभित अमृत-मन्थनके समय प्रकट हुआ तथा सुनहरी छालवाला पारिजात-वृक्ष देखा ।

द्विजोत्तम ! उस अत्युत्तम वृक्षराजको देखकर परम प्रीतिवश सत्यभामा अति प्रसन्न हुई और श्रीगोविन्दसे बोली—'श्रीकृष्ण ! यदि आपका यह वचन कि 'तुम ही मेरी अत्यन्त प्रिया हो' सत्य है तो मेरे गृहोद्यानमें लगानेके लिये इस वृक्षको ले चलिये । मेरी ऐसी इच्छा है कि मैं अपने केश-कलापोंमें पारिजातपुष्प गूँथकर अपनी अन्य सपत्नियोंमें सुशोभित होऊँ ।'

सत्यभामाके इस प्रकार कहनेपर श्रीहरिने हँसते हुए उस पारिजात-वृक्षको गरुडपर रख लिया; तब नन्दनवनके रक्षकोंने कहा—'गोविन्द ! देवराज इन्द्रकी पत्नी जो महारानी शची हैं, यह पारिजात-वृक्ष उनकी सम्पत्ति है, आप इसका हरण न कीजिये । क्षीर-समुद्रसे उत्पन्न होनेके अनन्तर यह देवराजको दिया गया था; फिर देवराजने कुतूहलवश इसे अपनी महिषी शची-देवीको दे दिया है । इसे लेकर आप कुशलपूर्वक नहीं जा सकेंगे । श्रीकृष्ण ! देवराज इन्द्र इस वृक्षका बदला चुकानेके लिये अवश्य ही वज्र लेकर उद्यत होंगे और फिर देवगण भी अवश्य ही उनका अनुगमन करेंगे । अतः अच्युत ! समस्त देवताओंके साथ रार बढ़ानेसे आपका कोई लाभ नहीं ।'

उद्यान-रक्षकोंके इस प्रकार कहनेपर सत्यभामाने कहा—'अरे वनरक्षको ! यदि पतिके बाहुबलसे गर्विता होकर शचीने ही इसपर अपना अधिकार जमा रखा है तो उससे कहना कि सत्यभामा उस वृक्षको हरण कराकर लिये जाती है, तुम्हें क्षमा करनेकी आवश्यकता नहीं है ।'

श्रीपराशरजी कहते हैं—सत्यभामाके इस प्रकार कहनेपर वनरक्षकोंने शचीके पास जाकर उससे सम्पूर्ण वृत्तान्त ज्यों-का-त्यों कह दिया । यह सब सुनकर शचीने अपने पति देवराज इन्द्रको उत्साहित किया । द्विजोत्तम ! तब देवराज इन्द्र पारिजात-वृक्षको छुडानेके लिये सम्पूर्ण देवसेनाके सहित श्रीहरिसे लड़नेके लिये चले । जिस समय इन्द्रने अपने हाथमें वज्र लिया, उसी समय सम्पूर्ण देवगण परिघ, निस्त्रिंश, गदा और शूल आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हो गये । तदनन्तर देवसेनासे घिरे हुए ऐरावतारूढ इन्द्रको युद्धके लिये उद्यत देख श्रीगोविन्दने सम्पूर्ण दिशाओंको शब्दायमान करते हुए शङ्खध्वनि की और हजारों-लाखों तीखे बाण छोड़े । [illegible] सम्पूर्ण दिशाओं और आकाशको सैकड़ों बाणोंसे [illegible] देवताओंने अनेकों अस्त्र-शस्त्र छोड़े ।

त्रिलोकीके स्वामी श्रीमधुसूदनने देवताओंके छोड़े हुए प्रत्येक अस्त्र-शस्त्रके लीलासे ही हजारों टुकड़े कर दिये ।

फिर जिस प्रकार दो मेघ जलकी धाराएँ बरसाते हैं, उसी प्रकार देवराज इन्द्र और श्रीमधुसूदन एक दूसरेपर बाण बरसाने लगे । उस युद्धमें गरुडजी ऐरावतके साथ और श्रीकृष्णचन्द्र इन्द्र तथा सम्पूर्ण देवताओंके साथ लड़ रहे थे । सम्पूर्ण बाणोंके चुक जाने और अस्त्र-शस्त्रोंके कट जानेपर इन्द्रने शीघ्रतासे वज्र और श्रीकृष्णने सुदर्शनचक्र हाथमें लिया। श्रीहरिने इन्द्रके छोड़े हुए वज्रको अपने हाथोंसे पकड़ लिया और स्वयं चक्र न छोडकर इन्द्रसे कहा—'अरे ! ठहर !'

इस प्रकार वज्र छिन जाने और अपने वाहन ऐरावतके गरुडद्वारा क्षत-विक्षत हो जानेके कारण भागते हुए वीर इन्द्रसे सत्यभामाने कहा—'त्रैलोक्येश्वर ! तुम शचीके पति हो, तुम्हें इस प्रकार युद्धमें पीठ दिखलाना उचित नहीं है । इन्द्र ! अब तुम्हें अधिक प्रयास करनेकी आवश्यकता नहीं है, तुम संकोच मत करो; इस पारिजात-वृक्षको ले जाओ । इसे पाकर देवगण सन्तापरहित हों । मैंने अपने पतिका गौरव प्रकट करनेके लिये ही तुमसे यह लड़ाई ठानी थी । मुझे दूसरेकी सम्पत्ति इस पारिजातको ले जानेकी क्या आवश्यकता है ?'

द्विज ! सत्यभामाके इस प्रकार कहनेपर देवराज लौट आये और बोले—'देवि ! जो सम्पूर्ण जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेवाले हैं, उन विश्वरूप प्रभुसे पराजित होनेमें भी मुझे कोई संकोच नहीं है । जिस आदि और मध्यरहित प्रभुसे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है, जिसमें यह स्थित है और फिर जिसमें लीन होकर अन्तमें यह न रहेगा, जगत्‌की उत्पत्ति, प्रलय और पालनके कारण उस परमात्मासे ही पराजित होनेमें मुझे कैसे लज्जा हो सकती है ? जिसकी [illegible] और सूक्ष्म मूर्तिको, जो सम्पूर्ण जगत्‌को उत्पन्न करनेवाली है, सम्पूर्ण वेदोंको जाननेवाले अन्य पुरुष भी नहीं [illegible] तथा जिसने जगत्‌के उपकारके लिये अपनी इच्छासे ही [illegible] रूप धारण किया है, उन अजन्मा, [illegible] और नित्य ईश्वरको जीतनेमें कौन समर्थ है ?'

इन्द्रने जब इस प्रकार स्तुति की तो भगवान् [illegible] गम्भीर भावसे हँसते हुए इस प्रकार बोले ।

श्रीकृष्णजी बोले—जगत्पते ! आप [illegible] हैं और हम मरणधर्मा मनुष्य । हमने [illegible]

किया है, उसे आप क्षमा करें । इस पारिजात-वृक्षको इसके योग्य स्थान (नन्दनवन) को ले जाइये । शक्र ! मैंने तो इसे सत्यभामाकी बात रखनेके लिये ही ले लिया था और आपने जो वज्र फेंका था, उसे भी ले लीजिये; क्योंकि शक्र ! यह शत्रुओंको नष्ट करनेवाला शस्त्र आपका ही है ।

इन्द्र बोले—ईश ! 'मैं मनुष्य हूँ' ऐसा कहकर मुझे क्यों मोहित करते हैं ? भगवन् ! मैं तो आपके इस सगुण स्वरूपको ही जानता हूँ, हम आपके सूक्ष्म स्वरूपको जाननेवाले नहीं हैं । नाथ ! आप जो हैं वही हैं, हम तो इतना ही जानते हैं कि दैत्यदलन ! आप लोकरक्षामें तत्पर हैं और इस संसारके काँटोंको निकाल रहे हैं । श्रीकृष्ण ! इस पारिजात-वृक्षको आप द्वारकापुरी ले जाइये, जिस समय आप मर्त्यलोक छोड़ देंगे, उस समय यह पृथ्वीपर नहीं रहेगा अर्थात् मेरे पास आ जायगा । देवदेव ! जगन्नाथ ! श्रीकृष्ण ! विष्णो ! महाबाहो ! शङ्खचक्रगदापाणे ! मेरी इस धृष्टताको क्षमा कीजिये ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—तदनन्तर श्रीहरि देवराजसे 'तुम्हारी जैसी इच्छा है, वैसा ही सही' ऐसा कहकर सिद्ध, गन्धर्व और देवर्षिगणसे स्तुत हो पृथ्वी-लोकमें चले आये । द्विज ! द्वारकापुरीके ऊपर पहुँचकर श्रीकृष्णचन्द्रने अपने आनेकी सूचना देते हुए शङ्ख बजाकर द्वारकावासियोंको आनन्दित किया । तत्पश्चात् सत्यभामाके सहित गरुडसे उतरकर उस पारिजात-महावृक्षको सत्यभामाके गृहोद्यानमें लगा दिया । जिसके पास आकर सब मनुष्योंको अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो आता है और जिसके पुष्पोंसे निकली हुई गन्धसे तीन योजनतक पृथ्वी सुगन्धित रहती है, यादवोंने उस वृक्षके पास जाकर अपना मुख देखा तो उन्हें अपना शरीर अमानुष (दिव्य) दिखलायी दिया ।

इसके बाद महामति श्रीकृष्णचन्द्रने नरकासुरके सेवकोंद्वारा लाये हुए हाथी-घोड़े आदि धनको अपने बन्धु-बान्धवोंमें बाँट दिया और नरकासुरकी हरण करके लायी हुई कन्याओंको स्वयं ले लिया । शुभ समय प्राप्त होनेपर श्रीगोविन्दने एक ही समय पृथक्-पृथक् भवनोंमें उन सबके साथ विधिवत् धर्मपूर्वक पाणिग्रहण किया । वे सोलह हजार एक सौ स्त्रियाँ थीं । उन सबके साथ पाणिग्रहण करते समय श्रीमधुसूदनने इतने ही रूप बना लिये । मैत्रेय ! परंतु उस समय प्रत्येक कन्या 'भगवान्‌ने मेरा ही पाणिग्रहण किया है' इस प्रकार उन्हें एक ही समझ रही थी । विप्र ! जगत्स्रष्टा श्रीहरि पृथक्-पृथक् रूप धारण करके रात्रिके समय उन सभीके घरोंमें रहते थे ।

उषा-चरित्र तथा श्रीकृष्ण और बाणासुरका युद्ध

श्रीपराशरजी कहते हैं—रुक्मिणीके गर्भसे उत्पन्न हुए भगवान्‌के प्रद्युम्न आदि पुत्रोंका वर्णन हम पहले ही कर चुके हैं; सत्यभामाने भानु और भौमेरिक आदिको जन्म दिया । श्रीहरिके रोहिणीके[1] गर्भसे दीप्तिमान् और ताम्रपक्ष आदि तथा जाम्बवतीसे बलशाली साम्ब आदि पुत्र हुए । नाग्नजिती (सत्या) से महाबली भद्रविन्द आदि और शैब्या (मित्रविन्दा) से संग्रामजित् आदि उत्पन्न हुए । माद्रीसे वृक आदि, लक्ष्मणासे गात्रवान् आदि तथा कालिन्दीसे श्रुत आदि पुत्रोंका जन्म हुआ । इसी प्रकार भगवान्‌की अन्य स्त्रियोंके भी आठ अयुत आठ हजार आठ सौ (अट्ठासी हजार आठ सौ) पुत्र हुए ।

इन सब पुत्रोंमें श्रीरुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न सबसे बड़े थे; प्रद्युम्नसे अनिरुद्धका जन्म हुआ और अनिरुद्धसे वज्र उत्पन्न हुआ । द्विजोत्तम ! महाबली अनिरुद्ध युद्धमें किसीसे रोके नहीं जा सकते थे । उन्होंने बलिकी पौत्री एवं बाणासुरकी पुत्री उषासे विवाह किया था ।

विप्र ! एक बार बाणासुरकी पुत्री उषाके द्वारा पति-प्राप्तिके विषयमें पूछनेपर पार्वतीजीने उससे कहा—'राजपुत्रि ! वैशाख-शुक्ला द्वादशीकी रात्रिको जो पुरुष स्वप्नमें तुझसे मिलेगा, वही तेरा पति होगा ।'

तदनन्तर पार्वतीजीकी बतायी हुई उसी तिथिको उषाकी स्वप्नावस्थामें किसी पुरुषके साथ उसका मिलन हुआ और उसमें अनुराग हो गया । मैत्रेय ! तब स्वप्नसे जगनेपर जब उसने उस पुरुषको न देखा तो वह उसे देखनेके लिये अत्यन्त उत्सुक होकर अपनी सखी चित्रलेखाकी, जो बाणासुरके मन्त्री कुम्भाण्डकी पुत्री थी, ओर लक्ष्य करके निर्लज्जतापूर्वक कहने लगी—'नाथ ! आप कहाँ चले गये ?' चित्रलेखाने पूछा—'यह तुम किसके विषयमें कह रही हो ?' तब उषाने जो कुछ श्रीपार्वतीजीने कहा था, वह उसे सुना दिया और कहा कि 'अब जिस प्रकार उसका पुनः समागम हो, वही उपाय करो ।'

---

१. पहले पृष्ठ ७६७ में पटरानियोंकी गणनामें जो 'रोहिणी' नाम आया है, वह जाम्बवतीका ही है । यहाँ जाम्बवतीसे भिन्न 'रोहिणी' नाम पटरानियोंसे भिन्न रोहिणीका वाचक है ।

चित्रलेखाने कहा—प्रिये ! इस विषयमें मैं तुम्हारा कुछ-न-कुछ उपकार करूँगी । तुम सात-आठ दिनतक मेरी प्रतीक्षा करना ।

ऐसा कहकर वह अपने घरके भीतर गयी और उस पुरुषको ढूँढ़नेका उपाय करने लगी ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—तदनन्तर सात-आठ दिन पश्चात् लौटकर चित्रलेखाने चित्रपटपर मुख्य-मुख्य देवता, दैत्य, गन्धर्व और मनुष्योंके चित्र लिखकर उषाको दिखलाये। तब उषाने गन्धर्व, नाग, देवता और दैत्य आदिको छोड़कर केवल मनुष्योंपर और उनमें भी विशेषतः अन्धक और वृष्णिवंशी यादवोंपर ही दृष्टि दी । उनमें अनिरुद्धजीको देखते ही उषाकी लज्जा मानो कहीं चली गयी । वह बोल उठी—'वह यही है, वह यही है ।' उसके इस प्रकार कहनेपर योगगामिनी चित्रलेखाने उस बाणासुरकी कन्यासे कहा ।

चित्रलेखा बोली—देवीने प्रसन्न होकर यह श्रीकृष्णका पौत्र ही तेरा पति निश्चित किया है; इसका नाम अनिरुद्ध है और यह अपनी सुन्दरताके लिये प्रसिद्ध है । यदि तुझको यह पति मिल गया, तब तो तूने मानो सभी कुछ पा लिया; सखि ! किसी उपायसे मैं तेरे पतिको लाऊँगी ही, तू इस गुप्त रहस्यको किसीसे भी न कहना ।

अपनी सखी उषाको इस प्रकार ढाढस बँधाकर चित्रलेखा द्वारकापुरीको गयी ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—मैत्रेय ! एक बार बाणासुरने भी भगवान् त्रिलोचनको प्रणाम करके कहा था, 'देव ! बिना युद्धके इन हजार भुजाओंसे मुझे बड़ा ही खेद हो रहा है । क्या कभी मेरी इन भुजाओंको सफल करनेवाला युद्ध होगा ?'

श्रीशङ्करजी बोले—बाणासुर ! जिस समय तेरी मयूर-चिह्नवाली ध्वजा टूट जायगी, उसी समय तेरे सामने युद्ध उपस्थित होगा ।

तदनन्तर वरदायक श्रीशङ्करको प्रणामकर बाणासुर अपने घर आया और फिर कालान्तरमें उस ध्वजाको टूटी देखकर अति आनन्दित हुआ । इसी समय चित्रलेखा अपने योगबलसे अनिरुद्धको वहाँ ले आयी । अनिरुद्धको अन्तःपुरमें उषाके साथ रहते हुए जान अन्तःपुररक्षकोंने सम्पूर्ण वृत्तान्त दैत्यराज बाणासुरसे कह दिया । तब महावीर बाणासुरने अपने सेवकोंको उससे युद्ध करनेकी आज्ञा दी; किंतु शत्रु-दमन अनिरुद्धने अपने सम्मुख आनेपर उस सम्पूर्ण सेनाको एक लोहमय दण्डसे मार डाला ।

अपने सेवकोंके मारे जानेपर बाणासुर अनिरुद्धको मार डालनेकी इच्छासे रथपर चढ़कर उनके साथ युद्ध करने लगा; किंतु शक्तिभर युद्ध करनेपर भी वह यदुवीर अनिरुद्धजीसे परास्त हो गया । तब मन्त्रियोंकी प्रेरणासे मायापूर्वक युद्ध करने लगा और यदुनन्दन अनिरुद्धको उसने नागपाशसे बाँध लिया ।

इधर, द्वारकापुरीमें जिस समय समस्त यादवोंमें यह चर्चा हो रही थी कि 'अनिरुद्ध कहाँ गये ?' उसी समय देवर्षि नारदने उनके बाणासुरद्वारा बाँधे जानेकी सूचना दी । तब स्मरणमात्रसे उपस्थित हुए गरुडपर चढ़कर श्रीहरि बलराम और प्रद्युम्नके सहित बाणासुरकी राजधानीमें आये । नगरमें घुसते ही उन तीनोंका भगवान् शङ्करके पार्षद प्रमथ गणोंसे युद्ध हुआ; उन्हें नष्ट करके श्रीहरि बाणासुरकी राजधानीके समीप चले गये ।

तत्पश्चात् बाणासुरकी रक्षाके लिये तीन सिर और तीन पैरवाला माहेश्वर नामक महान् ज्वर आगे बढ़कर श्रीभगवान्से लड़ने लगा । इस प्रकार भगवान् शार्ङ्गधरके साथ उनके शरीरमें व्याप्त होकर युद्ध करते हुए उस माहेश्वर ज्वरको वैष्णव ज्वरने तुरत उनके शरीरसे निकाल दिया । उस समय श्रीनारायणकी भुजाओंके आघातसे उस माहेश्वर ज्वरको पीड़ित और विह्वल हुआ देखकर पितामह ब्रह्माजीने भगवान्से कहा—'इसे क्षमा कीजिये ।' तब भगवान् मधुसूदनने 'अच्छा, मैंने क्षमा की' ऐसा कहकर उस वैष्णव ज्वरको अपनेमें ही लीन कर लिया ।

ज्वर बोला—जो मनुष्य आपके साथ मेरे इस युद्धका स्मरण करेंगे, वे ज्वरहीन हो जायँगे ।

ऐसा कहकर वह चला गया । तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र दानवसेनाको नष्ट करने लगे । तब सम्पूर्ण दैत्यसेनाके सहित बलि-पुत्र बाणासुर, भगवान् शङ्कर और स्वामिकार्तिकेयजी भगवान् श्रीकृष्णके साथ युद्ध करने लगे । श्रीहरि और श्रीमहादेवजीका परस्पर बड़ा घोर युद्ध हुआ । इस युद्धमें प्रयुक्त शस्त्रास्त्रोंके किरणजालसे संतप्त होकर सम्पूर्ण लोक क्षुब्ध हो गये । श्रीगोविन्दने जृम्भकास्त्र छोड़ा, जिससे महादेवजी निद्रित-से होकर जमुहाई लेने लगे; उनकी ऐसी दशा देखकर दैत्य और प्रमथगण चारों ओर भागने लगे । भगवान् शङ्कर निद्राभिभूत होकर रथके पिछले भागमें बैठ गये । इसके बाद गरुडद्वारा वाहनके नष्ट हो जानेसे, प्रद्युम्नजीके शस्त्रोंसे पीडित होनेपर तथा श्रीकृष्णचन्द्रके हुंकारसे शक्तिहीन हो जानेपर स्वामिकार्तिकेय भी भागने लगे ।

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न और बलभद्रजीसे युद्ध करनेके लिये वहाँ बाणासुर साक्षात् नन्दीश्वरद्वारा हाँके जाते हुए महान् रथपर चढ़कर आया । उसके आते ही महावीर्यशाली बलभद्रजीने अनेकों बाण बरसाकर बाणासुरकी सेनाको छिन्न-भिन्न कर डाला; तब वह वीरधर्मसे भ्रष्ट होकर भागने लगी । बाणासुरने देखा कि उसकी सेनाको बलभद्रजी बड़ी फुर्तीसे हलद्वारा खींच-खींचकर मूसलसे मार रहे हैं और

चन्द्र उसे बाणोंसे बींधे डालते हैं, तब बाणासुरका श्रीकृष्णचन्द्रके साथ घोर युद्ध छिड गया। उस समय परस्पर चोट करनेवाले बाणासुर और श्रीकृष्ण दोनों ही विजयकी इच्छासे निरन्तर शीघ्रतापूर्वक अस्त्र-शस्त्र छोड़ने लगे।

अन्तमें, समस्त बाणोंके छिन्न और सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंके निष्फल हो जानेपर श्रीहरिने बाणासुरको मार डालनेका विचार किया। तब भगवान् श्रीकृष्णने सैकड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान अपने सुदर्शनचक्रको हाथमें ले लिया और बाणासुरको लक्ष्य करके छोडा। भगवान् अच्युतके द्वारा प्रेरित उस चक्रने दैत्योंके छोड़े हुए अस्त्रसमूहको काटकर क्रमशः बाणासुरकी भुजाओंको काट डाला, केवल दो भुजाएँ छोड़ दीं। तब त्रिपुरशत्रु भगवान् शङ्कर जान गये कि श्रीमधुसूदन बाणासुरके बाहुवनको काटकर अपने हाथमें आये हुए चक्रको उसका

वध करनेके लिये फिर छोड़ना चाहते हैं। अतः श्रीउमापतिने गोविन्दके पास आकर शान्तिपूर्वक कहा।

श्रीशङ्करजी बोले—श्रीकृष्ण! श्रीकृष्ण! जगन्नाथ! मैं यह जानता हूँ कि आप पुरुषोत्तम परमेश्वर परमात्मा और आदि-अन्तसे रहित श्रीहरि हैं। आप सर्वभूतमय हैं। आप जो देव, तिर्यक् और मनुष्यादि योनियोंमें शरीर धारण करते हैं, यह आपकी लीला ही है। प्रभो! आप प्रसन्न होइये। मैंने इस बाणासुरको अभयदान दिया है। नाथ! मैंने जो वचन दिया है, उसे आप मिथ्या न करें। इस दैत्यको मैंने ही वर दिया था, इसलिये मैं ही इसे आपसे क्षमा कराता हूँ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—त्रिशूलपाणि भगवान् उमापतिके इस प्रकार कहनेपर श्रीगोविन्दने बाणासुरके प्रति क्रोधभाव त्याग दिया और प्रसन्नवदन होकर उनसे कहा।

श्रीभगवान् बोले—शङ्कर! यदि आपने इसे वर दिया है तो यह बाणासुर जीवित रहे। आपके वचनका मान रखनेके लिये मैं इस चक्रको रोके लेता हूँ। आपने जो अभय दिया है, वह सब मैंने भी दे दिया। शङ्कर! आप अपनेको मुझसे सर्वथा अभिन्न देखें। आप यह भली प्रकार समझ लें कि जो मैं हूँ सो आप हैं तथा यह सम्पूर्ण जगत्, देव, असुर और मनुष्य आदि कोई भी मुझसे भिन्न नहीं हैं। हर! जिन लोगोंका चित्त अविद्यासे मोहित है, वे भिन्नदर्शी पुरुष ही हम दोनोंमें भेद देखते और बतलाते हैं*। वृषभध्वज! मैं प्रसन्न हूँ, आप पधारिये, मैं भी अब जाऊँगा।

इस प्रकार कहकर भगवान् श्रीकृष्ण जहाँ प्रद्युम्नकुमार अनिरुद्ध थे, वहाँ गये। उनके पहुँचते ही अनिरुद्धके बन्धनरूप समस्त नागगण गरुडके वेगसे उत्पन्न हुए वायुके प्रहारसे नष्ट हो गये। तदनन्तर सपत्नीक अनिरुद्धको गरुडपर चढ़ाकर बलराम, प्रद्युम्न और श्रीकृष्णचन्द्र द्वारकापुरीमें लौट आये।

पौण्ड्रक तथा काशिराजका वध

श्रीमैत्रेयजी बोले—गुरो! श्रीविष्णुभगवान्ने मनुष्य-शरीर धारणकर इनके सिवा और भी जो कर्म किये थे, वे सब मुझे सुनाइये।

श्रीपराशरजी कहते हैं—ब्रह्मर्षे! पौण्ड्रकवंशीय वासुदेव नामक एक राजाको कुछ अज्ञानमोहित पुरुष 'आप वासुदेवरूपसे पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं' ऐसा कहकर स्तुति

* अविद्यामोहितात्मानः पुरुषा भिन्नदर्शिनः। वदन्ति भेदं पश्यन्ति चावयोरन्तरं हर॥ (वि० पु० ५। ३३। ४९)
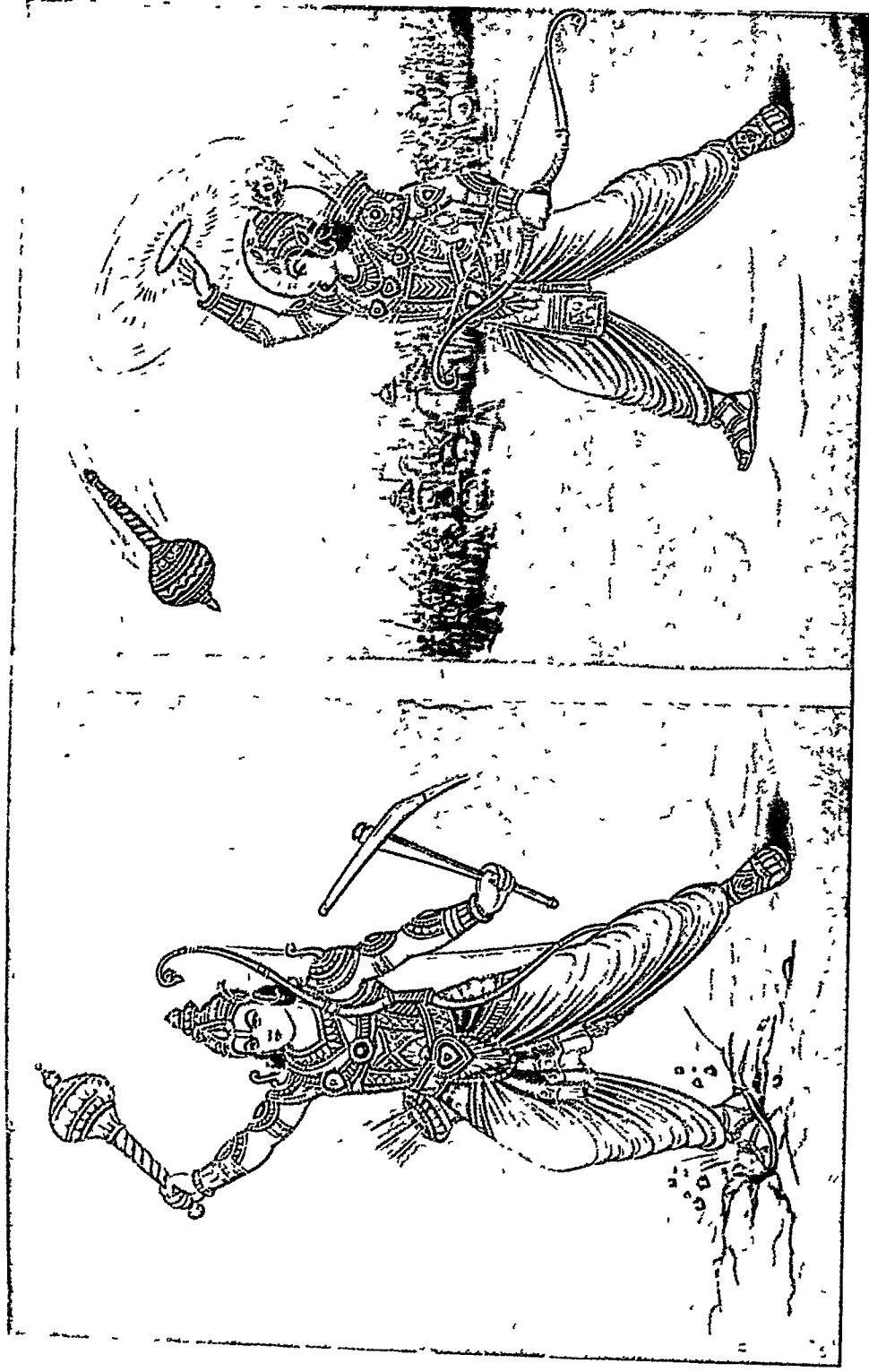
श्रीबलरामजीकी लातसे धरती फट गयी

पौंड्रकपर श्रीकृष्णका प्रहार

किया करते थे। अन्तमें वह भी यही मानने लगा कि 'मैं वासुदेवरूपसे पृथ्वीमें अवतीर्ण हुआ हूँ।' इस प्रकार अज्ञानसे मोहित होनेके कारण उसने विष्णुभगवान्‌के समस्त चिह्न धारण कर लिये और महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रके पास यह सदेश देकर दूत भेजा कि 'मूढ ! अपने वासुदेव नामको छोड़कर मेरे चक्र आदि सम्पूर्ण चिह्नोंको छोड दे और यदि तुझे जीवनकी इच्छा है तो मेरी शरणमें आ।'

दूतने जब इसी प्रकार जाकर कहा तो श्रीजनार्दन उससे हँसकर बोले—'ठीक है, मैं अपने चिह्न धारणकर तेरे नगरमें आऊँगा ! और निस्सदेह अपने चिह्नरूप चक्रको तेरे ऊपर छोड़ूँगा। जिससे फिर तुझसे मुझे कोई भय न रहे।'

श्रीकृष्णचन्द्रके ऐसा कहनेपर जब दूत चला गया तो भगवान् स्मरण करते ही उपस्थित हुए गरुडपर चढ़कर तुरत उसकी राजधानीको चले। भगवान्‌के आक्रमणका समाचार सुनकर काशीनरेश भी पौण्ड्रकका सहायक होकर अपनी सम्पूर्ण सेना ले उसके नगरमें उपस्थित हुआ। तदनन्तर अपनी महान् सेनाके सहित काशीनरेशकी सेना लेकर पौण्ड्रक वासुदेव श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख आया। भगवान्‌ने दूरसे ही उसे हाथमें चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनुष और पद्म लिये एक उत्तम रथपर बैठे देखा। श्रीहरिने देखा कि उसके कण्ठमें वैजयन्तीमाला है, शरीरमें पीताम्बर है, गरुडरचित ध्वजा है और वक्षःस्थलमें श्रीवत्सचिह्न हैं। उसे नाना प्रकारके रत्नोंसे सुसज्जित किरीट और कुण्डल धारण किये देख श्रीगरुडध्वज भगवान् गम्भीर भावसे हँसने लगे और द्विज ! उसकी हाथी-घोड़ोंसे बलिष्ठ तथा खड्ग, गदा, शूल, शक्ति और धनुष आदिसे सुसज्जित सेनाके साथ युद्ध करने लगे। श्रीभगवान्‌ने अपने शार्ङ्ग-धनुषसे छोड़े हुए शत्रुओंको विदीर्ण करनेवाले तीक्ष्ण बाणों तथा गदा और चक्रद्वारा उसकी सम्पूर्ण सेनाको नष्ट कर डाला। इसी प्रकार काशिराजकी सेनाको भी नष्ट करके श्रीजनार्दनने अपने चिह्नोंसे युक्त मूढमति पौण्ड्रकसे कहा।

श्रीभगवान् बोले—पौण्ड्रक ! मेरे प्रति तूने जो दूतके मुखसे यह कहलाया था कि 'मेरे चिह्नोंको छोड दे' सो मैं तेरे सम्मुख उस आज्ञाको सम्पन्न करता हूँ। देख, यह मैंने चक्र छोड़ दिया, यह तेरे ऊपर गदा भी छोड दी और यह गरुड भी छोड़े देता हूँ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—ऐसा कहकर छोड़े हुए चक्रने पौण्ड्रकको विदीर्ण कर डाला, गदाने नीचे गिरा दिया और गरुडने उसकी ध्वजा तोड़ डाली। तदनन्तर सम्पूर्ण सेनामें हाहाकार मच जानेपर अपने मित्र[illegible] लिये खडा हुआ काशीनरेश श्रीवासुदेव[illegible]। [illegible] भगवान्‌ने शार्ङ्ग-धनुषसे छोड़े हुए एक [illegible] काटकर सम्पूर्ण लोगोंको विस्मित करते हु[illegible] दिया। इस प्रकार पौण्ड्रक और काशीनरेशको [illegible] मारकर भगवान् फिर द्वारकाको लौट आये।

इधर काशीपुरीमें काशिराज[illegible] नगरनिवासी विस्मयपूर्वक कहने लगे—'[illegible] इसे किसने काट डाला ?' जब उसके पुत्रको [illegible] उसे श्रीवासुदेवने मारा है तो उसने अपने पुरो[illegible] मिलकर भगवान् शङ्करको संतुष्ट किया। [illegible] उस राजकुमारसे सतुष्ट होकर श्रीशङ्करने [illegible]।' वह बोला—'भगवन् ! महेश्वर ! आपकी कृपासे मेरे पिता[illegible] वध करनेवाले श्रीकृष्णका नाश करने[illegible] उत्पन्न हो* ।'

भगवान् शङ्करने कहा—'ऐसा ही होगा।' [illegible] कहनेपर दक्षिणाग्निका चयन करनेके अनन्तर [illegible] उत्पन्न हुई। उसका कराल मुख ज्वालामाला[illegible] उसके केश अग्निशिखाके समान दीप्तिमान् [illegible]। वह क्रोधपूर्वक 'कृष्ण ! कृष्ण !!' [illegible] आयी।

मुने ! उसे देखकर लोगोंने भय[illegible] मधुसूदनकी शरण ली। जब भगवान् [illegible] श्रीशङ्करकी उपासना कर काशिराजके पुत्र[illegible] उत्पन्न की है तो उन्होंने यह [illegible] मयी जटाओंवाली भयंकर [illegible] चक्र छोड़ा।

तब भगवान् विष्णुके सुदर्शन चक्रने [illegible] किया। उस चक्रके तेजसे दग्ध होकर [illegible] वह माहेश्वरी कृत्या अति वेगसे दौड़ने [illegible] उतने ही वेगसे उसका पीछा करने लगा। [illegible] विष्णुचक्रसे हतप्रभाव हुई कृत्याने शीघ्र[illegible]

* स वो [illegible]
सञ्जहिद्ध [illegible]
([illegible])

इस वाक्यका अर्थ यह भी [illegible] पिताके मारनेवाले श्रीकृष्णके पास [illegible] इस वरका विपरीत परिणाम हुआ [illegible] चाहिये।

किया। उस समय काशीनरेशकी सम्पूर्ण सेना और प्रमथगण अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित होकर चक्रके सम्मुख आये।

तब वह चक्र अपने तेजसे शस्त्रास्त्र-प्रयोगमें कुशल उस सम्पूर्ण सेनाको दग्धकर कृत्याके सहित सम्पूर्ण वाराणसीको जलाने लगा तथा काशीपुरीको भगवान् विष्णुके उस चक्रने उसके गृह, कोट और चबूतरों आदिमें अग्निकी ज्वालाएँ प्रकटकर जला डाला। अन्तमें वह चक्र फिर लौटकर भगवान् विष्णुके हाथमें आ गया।

साम्बका विवाह और द्विविद-वध

श्रीमैत्रेयजी बोले—ब्रह्मन्! अब मैं फिर मतिमान् बलभद्रजीके पराक्रमकी वार्ता सुनना चाहता हूँ, अतः उन्होंने जो-जो विक्रम दिखलाये हैं, उनका वर्णन कीजिये।

श्रीपराशरजीने कहा—मैत्रेय! शेषावतार श्रीबलरामजीने जो कर्म किये थे, वह सुनो—एक बार जाम्बवती-नन्दन वीरवर साम्बने स्वयंवरके अवसरपर दुर्योधनकी पुत्रीको बलात्कारसे हरण किया। तब महावीर कर्ण, दुर्योधन, भीष्म और द्रोण आदिने क्रुद्ध होकर उसे युद्धमें हराकर बाँधकर कैद कर लिया। यह समाचार पाकर श्रीकृष्णचन्द्र आदि समस्त यादवोंने दुर्योधनादिपर क्रुद्ध होकर उन्हें मारनेके लिये बड़ी तैयारी की। उनको रोककर श्रीबलरामजीने कहा—'कौरवगण मेरे कहनेसे साम्बको छोड़ देंगे, अतः मैं अकेला ही उनके पास जाता हूँ।'

तदनन्तर श्रीबलदेवजी हस्तिनापुरके समीप पहुँचकर उसके बाहर एक उद्यानमें ठहर गये। बलरामजीको आया जान दुर्योधन आदि राजाओंने उन्हें गौ, अर्घ्य और पाद्यादि निवेदन किये। उन सबको विधिवत् ग्रहण कर बलभद्रजीने कौरवोंसे कहा—'राजा उग्रसेनकी आज्ञा है, आपलोग साम्बको तुरंत छोड़ दें।'

द्विजसत्तम! बलरामजीके इन वचनोंको सुनकर भीष्म, द्रोण, कर्ण और दुर्योधन आदि राजाओंको बड़ा क्षोभ हुआ, और यदुवंशको राज्यपदके अयोग्य समझ बाह्लिक आदि सभी कौरवगण कुपित होकर बलभद्रजीसे कहने लगे—'बलभद्र! तुम यह क्या कह रहे हो; ऐसा कौन यदुवंशी है जो कुरु-कुलोत्पन्न वीरोंको आज्ञा दे? यदि उग्रसेन भी कौरवोंको आज्ञा दे सकते हैं तो राजाओंके योग्य कौरवोंके इस श्वेत छत्रका क्या प्रयोजन है? अतः बलराम! हमलोग तुम्हारी या उग्रसेनकी आज्ञासे अन्यायकर्मा साम्बको नहीं छोड़ सकते। पूर्वकालमें कुकुर और अन्धकवंशीय यादवगण हम माननीयोंको प्रणाम किया करते थे, सो अब वे ऐसा नहीं करते तो न सही; किंतु स्वामीको यह सेवककी ओरसे आज्ञा देना कैसा? बलराम! हमने जो तुम्हें यह अर्घ्य आदि निवेदन किया है, यह सब प्रेमवश ही है, वास्तवमें हमारे कुलकी ओरसे तुम्हारे कुलको अर्घ्यादि देना न्यायसंगत नहीं है।

ऐसा कहकर कौरवगण तुरंत हस्तिनापुरमें चले गये।' तत्पश्चात् हलायुध श्रीबलरामजीने उनके तिरस्कारसे उत्पन्न हुए क्रोधसे मत्त होकर पृथिवीमें लात मारी। महात्मा बलरामजीके पाद-प्रहारसे पृथिवी फट गयी और वे अपने शब्दसे सम्पूर्ण दिशाओंको गुँजाकर कम्पायमान करने लगे तथा लाल-लाल नेत्र और टेढ़ी भृकुटि करके बोले—'अहो! इन सारहीन दुरात्मा कौरवोंको यह कैसा राजमदका अभिमान है। कौरवोंका महीपालत्व तो स्वतःसिद्ध है और हमारा सामयिक—ऐसा समझकर ही आज ये महाराज उग्रसेनकी आज्ञा नहीं मानते; बल्कि उसका उल्लङ्घन कर रहे हैं। वे उग्रसेन ही सम्पूर्ण राजाओंके महाराज बनकर रहें। आज मैं अकेला ही पृथिवीको कौरवहीन करके उनकी द्वारकापुरीको जाऊँगा। आज कर्ण, दुर्योधन, द्रोण, भीष्म, बाह्लिक, दुश्शासनादि समस्त कौरवोंको उनके हाथी-घोड़े और रथके सहित मारकर तथा नववधूके साथ वीरवर साम्बको लेकर ही मैं द्वारकापुरीमें जाकर उग्रसेन आदि अपने बन्धु-बान्धवोंको देखूँगा। अथवा समस्त कौरवोंके सहित उनके निवासस्थान इस हस्तिनापुर नगरको ही अभी गङ्गाजीमें फेंके देता हूँ।'

ऐसा कहकर अरुणनयन श्रीबलभद्रजीने हलकी नोंकको हस्तिनापुरके खाईं और दुर्गसे युक्त प्राकारके मूलमें लगाकर खींचा। उस समय सम्पूर्ण हस्तिनापुर सहसा डगमगाता देख समस्त कौरवगण भयभीत हो गये और बलरामजीसे कहने लगे—'राम! राम! महाबाहो! क्षमा कीजिये, क्षमा कीजिये! अपना कोप शान्त करके प्रसन्न होइये। बलराम! हम आपको पत्नीके सहित इस साम्बको सौंपते हैं। हम आपका प्रभाव

नहीं जानते थे, इसीसे आपका अपराध किया; कृपया क्षमा कीजिये ।'

मुनिश्रेष्ठ ! तदनन्तर कौरवोंने तुरंत ही अपने नगरसे बाहर आकर पत्नीसहित साम्बको श्रीबलरामजीके अर्पण कर दिया । तब प्रणामपूर्वक प्रिय वाक्य बोलते हुए भीष्म, द्रोण, कृप आदिसे वीरवर बलरामजीने कहा—'अच्छा मैंने क्षमा किया ।' द्विज ! इस समय भी हस्तिनापुर गङ्गाकी ओर कुछ झुका हुआ-सा दिखायी देता है, यह श्रीबलरामजीके बल और शूरवीरताका परिचय देनेवाला उनका प्रभाव है । तत्पश्चात् कौरवोंने बलरामजी और साम्बका पूजन किया तथा बहुत-से दहेज और वधूके सहित उन्हें द्वारकापुरी भेज दिया ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—मैत्रेय ! बलशाली बलरामजीका ऐसा ही पराक्रम था । अब उन्होंने जो और एक महान् कर्म किया था, वह भी सुनो । द्विविद नामक एक महावीर्यशाली वानरश्रेष्ठ देव-द्रोही दैत्यराज नरकासुरका मित्र था । भगवान् श्रीकृष्णने देवराज इन्द्रकी प्रेरणासे नरकासुरका वध किया था, इसलिये वीर वानर द्विविदने देवताओंसे वैर ठाना । उसने निश्चय किया कि 'मैं मर्त्यलोकका क्षय कर दूँगा और इस प्रकार यज्ञ-यागादिका उच्छेद करके सम्पूर्ण देवताओंसे इसका बदला चुका लूँगा ।' तबसे वह अज्ञानमोहित होकर यज्ञोंको विध्वंस करने लगा और साधुमर्यादाको मिटाने तथा देहधारी जीवोंको नष्ट करने लगा । वह वन, देश, पुर और भिन्न-भिन्न ग्रामोंको जला देता तथा कभी पर्वत गिराकर ग्रामादिकोंको चूर्ण कर डालता और कभी समुद्रमें [illegible] कर देता था । द्विज ! उससे क्षोभित हुआ [illegible] तरङ्गोंसे उठकर अति वेगसे युक्त हो अपने [illegible] और पुर आदिको डुबो देता था ।

एक दिन श्रीबलभद्रजी रैवतक पर्वतके [illegible] आदि स्त्रियोंके साथ विचरण कर रहे थे, [illegible] द्विविद वानर आया और वह दुरात्मा उन [illegible] देखकर हँसने लगा ।

तब श्रीहलधरने क्रुद्ध होकर उसे धमकाया, [illegible] उनकी अवज्ञा करके किलकारी मारने लगा । [illegible] श्रीबलरामजीने मुसकाकर क्रोधसे अपना [illegible] तथा उस वानरने भी एक भारी चट्टान ले [illegible] बलरामजीके ऊपर फेंकी; किंतु यदुवीर [illegible] उसके हजारों टुकड़े कर दिये; तब उस वानरने [illegible] मूसलका वार बचाकर रोषपूर्वक अत्यन्त वेगसे उनकी [illegible] घूँसा मारा । तत्पश्चात् बलभद्रजीने भी क्रुद्ध होकर [illegible] सिरमें घूँसा मारा, जिससे वह रुधिर वमन करता हुआ [illegible] होकर पृथिवीपर गिर पड़ा ।

उस समय देवतालोग बलरामजीके ऊपर [illegible] लगे और उनकी प्रशंसा करने लगे । वीर ! [illegible] उपकारक इस दुष्ट वानरने संसारको बड़ा कष्ट दे रक्खा था, यह बड़े ही सौभाग्यका विषय है कि आज यह [illegible] । ऐसा कहकर देवगण अत्यन्त हर्षपूर्वक स्वर्गलोकको [illegible] ।

ऋषियोंका शाप, यदुवंशविनाश तथा भगवान्‌का परम धाम सिधारना

श्रीपराशरजी कहते हैं—मैत्रेय ! इसी प्रकार संसारके उपकारके लिये बलभद्रजीके सहित श्रीकृष्णचन्द्रने दैत्यों और दुष्ट राजाओंका वध किया तथा अन्तमें अर्जुनके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णने अठारह अक्षौहिणी सेनाको मारकर पृथिवीका भार उतारा । फिर ब्राह्मणोंके शापके मिषसे अपने कुलका भी उपसंहार कर दिया ।

श्रीमैत्रेयजी पूछे—मुने ! श्रीजनार्दनने विप्रशापके मिषसे किस प्रकार अपने कुलका नाश किया ?

श्रीपराशरजीने कहा—एक बार कुछ यदुकुमारोंने महातीर्थ पिण्डारक-क्षेत्रमें विश्वामित्र, कण्व और नारद आदि महामुनियोंको देखा । तब यौवनसे उन्मत्त हुए उन बालकोंने होनहारकी प्रेरणासे जाम्बवतीके पुत्र साम्बका [illegible] उन मुनीश्वरोंको प्रणाम करनेके अनन्तर [illegible]—'इस स्त्रीको पुत्रकी इच्छा है, मुनिजन ! [illegible] जनेगी ?'

यदुकुमारोंके इस प्रकार धोखा देनेपर उन [illegible] सम्पन्न मुनिजनोंने कुपित होकर कहा—'यह [illegible] जनेगी, जो समस्त यादवोंके नाशका [illegible] ।'

मुनिगणके इस प्रकार कहनेपर उन [illegible] वृत्तान्त ज्यों-का-त्यों राजा उग्रसेनसे [illegible] पेटसे एक मूसल उत्पन्न हुआ । [illegible] मूसलका चूर्ण करा डाला और उसे उन [illegible]

दिया, उससे वहाँ बहुत-से एरक (सरकडे) उत्पन्न हो गये । यादवोंद्वारा चूर्ण किये गये इस मूसलका एक खण्ड चूर्ण करनेसे बचा, उसे भी समुद्रहीमें फेंकवा दिया । उसे एक मछली निगल गयी । उस मछलीको मछेरोंने पकड़ लिया । उसके चीरनेपर उस मूसलखण्डको जरा नामक व्याधने ले लिया ।

उस समय भगवान्‌ने देखा कि द्वारकापुरीमें रात-दिन नाशके सूचक महान् उत्पात हो रहे हैं । उन उत्पातोंको देखकर भगवान्‌ने यादवोंसे कहा—'देखो ये कैसे घोर उपद्रव हो रहे हैं, चलो, शीघ्र ही इनकी शान्तिके लिये प्रभासक्षेत्रको चलें ।'

श्रीकृष्णचन्द्रके ऐसा कहनेपर महाभागवत यादवश्रेष्ठ उद्धवने श्रीहरिको प्रणाम करके कहा—'भगवन् ! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अब आप इस कुलका नाश करेंगे, क्योंकि अच्युत ! इस समय सब ओर इसके नाशके सूचक कारण दिखायी दे रहे हैं; अतः मुझे आज्ञा कीजिये कि मैं क्या करूँ ?'

श्रीभगवान् बोले—उद्धव ! अब तुम मेरी कृपासे प्राप्त हुई दिव्य गतिसे नर-नारायणके निवासस्थान हिमालयके गन्धमादनपर्वतपर जो पवित्र बदरिकाश्रम क्षेत्र है, वहाँ जाओ । पृथिवीतलपर वही सबसे पावन स्थान है । वहाँपर मुझमें चित्त लगाकर तुम मेरी कृपासे परम सिद्धि प्राप्त करोगे ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—भगवान्‌के ऐसा कहनेपर उद्धवजी उन्हें प्रणामकर तुरंत ही उनके बतलाये हुए तपोवन श्रीनर-नारायणके स्थानको चले गये । द्विज ! तदनन्तर श्रीकृष्ण और बलराम आदिके सहित सम्पूर्ण यादव शीघ्रगामी रथोंपर चढ़कर प्रभासक्षेत्रमें आये । वहाँ पहुँचकर कुकुर, अन्धक और वृष्णि आदि वंशवाले समस्त यादवोंके भोजन करते समय परस्पर कुछ विवाद हो जानेपर वहाँ कुवाक्यरूप ईंधनसे युक्त प्रलयकारिणी कलहाग्नि धधक उठी ।

श्रीमैत्रेयजी बोले—द्विज ! अपना-अपना भोजन करते हुए उन यादवोंमें किस कारणसे कलह अथवा संघर्ष हुआ ? सो आप कहिये ।

श्रीपराशरजी बोले—'मेरा भोजन शुद्ध है, तेरा अच्छा नहीं है' इस प्रकार भोजनके अच्छे-बुरेकी चर्चा करते-करते उनमें परस्पर संघर्ष और कलह हो गया । तब वे दैवी प्रेरणासे विवश होकर आपसमें क्रोधसे रक्तनेत्र हुए एक दूसरेपर शस्त्रप्रहार करने लगे और जब शस्त्र समाप्त हो गये तो पासहीमें उगे हुए एरक (सरकंडे) ले लिये । उन वज्रतुल्य सरकंडोंसे ही वे उस दारुण युद्धमें एक दूसरेपर प्रहार करने लगे ।

द्विज ! प्रद्युम्न और साम्ब आदि कृष्णपुत्रगण, कृतवर्मा, सात्यकि और अनिरुद्ध आदि तथा पृथु, विपृथु, चारुवर्मा, चारुक और अक्रूर आदि यादवगण एक दूसरेपर एरकारूपी वज्रोंसे प्रहार करने लगे । जब श्रीहरिने उन्हें आपसमें लड़नेसे रोका तो उन्होंने उन्हें अपने प्रतिपक्षीका सहायक होकर आये हुए समझा और उनकी बातकी अवहेलनाकर एक दूसरेको मारने लगे । श्रीकृष्णचन्द्रने भी कुपित होकर उनका वध करनेके लिये एक मुट्ठी सरकडे उठा लिये । वे मुट्ठीभर सरकंडे लोहेके मूसलरूप हो गये । उन मूसलरूप सरकंडोंसे श्रीकृष्णचन्द्र सम्पूर्ण आततायी यादवोंको मारने लगे तथा अन्य समस्त यादव भी वहाँ आ-आकर एक दूसरेको मारने लगे । द्विज ! तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका जैत्र नामक रथ घोड़ोंसे आकृष्ट हो दारुकके देखते-देखते समुद्रके मध्यपथसे चला गया । इसके पश्चात् भगवान्‌के शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्गधनुष, तरकस और खड्ग आदि आयुध श्रीहरिकी प्रदक्षिणा कर सूर्यमार्गसे चले गये ।

महामुने ! यहाँ महात्मा श्रीकृष्णचन्द्र और उनके सारथि दारुकको छोड़कर और कोई यदुवंशी जीवित न बचा । उन दोनोंने वहाँ घूमते हुए देखा कि श्रीबलरामजीके मुखसे एक बहुत बड़ा सर्प निकल रहा है । वह विशाल फणधारी सर्प उनके मुखसे निकलकर सिद्ध और नागोंसे पूजित हुआ समुद्रकी ओर गया । उसी समय समुद्र अर्घ्य लेकर उस (महासर्प) के सम्मुख उपस्थित हुआ और वह नागश्रेष्ठोंसे पूजित हो समुद्रमें घुस गया ।

इस प्रकार श्रीबलरामजीका प्रयाण देखकर श्रीकृष्णचन्द्रने दारुकसे कहा—'तुम यह सब वृत्तान्त उग्रसेन और वसुदेवजीसे जाकर कहो । बलभद्रजीका निर्याण, यादवोंका क्षय और मैं भी योगस्थ होकर शरीर छोड़ूँगा—यह सब समाचार उन्हें जाकर सुनाओ । सम्पूर्ण द्वारकावासी और आहुक (उग्रसेन) से कहना कि अब इस सम्पूर्ण नगरीको समुद्र डुबो देगा । इसलिये आप सब केवल अर्जुनके आगमनकी प्रतीक्षा और करें तथा अर्जुनके यहाँसे लौटते ही फिर कोई भी व्यक्ति द्वारकामें न रहे; जहाँ वे कुरुनन्दन जायँ वहीं सब लोग चले जायँ । कुन्तीपुत्र अर्जुनसे तुम मेरी ओरसे कहना कि 'अपनी सामर्थ्यानुसार तुम मेरे परिवारके लोगोंकी रक्षा करना' और दारुक तुम द्वारकावासी सभी लोगोंको लेकर अर्जुनके

साथ चले जाना। हमारे पीछे वज्र यदुवंशका राजा होगा।'

श्रीपराशरजी कहते हैं—भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके इस प्रकार कहनेपर दारुकने उन्हें बारंबार प्रणाम किया और उनकी अनेक परिक्रमाएँ कर उनके कथनानुसार चला गया। उस महाबुद्धिने द्वारकामें पहुँचकर सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना दिया।

इधर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने समस्त भूतोंमें व्याप्त वासुदेवस्वरूप परब्रह्मको अपने आत्मामें आरोपित कर उनका ध्यान किया तथा महाभाग! वे पुरुषोत्तम लीलासे ही अपने चित्तको गुणातीत परमात्मामें लीनकर तुरीयपदमें स्थित हुए जानुओंपर चरण रखकर योगयुक्त होकर बैठे। इसी समय, जिसने मूसलके बचे हुए लोहखण्डको अपने बाणकी नोंकपर लगा लिया था, वह जरा नामक व्याध वहाँ आया। द्विजोत्तम! उस चरणको मृगाकार देख उस व्याधने उसे दूरसे ही खड़े-खड़े उसी लोह-खण्डवाले बाणसे बींध डाला, किंतु वहाँ पहुँचनेपर उसने एक चतुर्भुजधारी [illegible] यह देखते ही वह चरणोंमें गिरकर बारंबार उन्हें [illegible] लगा—'प्रभो! प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये। मैंने [illegible] ही मृगकी आशङ्कासे यह अपराध किया है, [illegible] कीजिये। मैं अपने पापसे दग्ध हो रहा हूँ। आ[illegible] रक्षा कीजिये।'

तब भगवान्‌ने उससे कहा—'लुब्धक! तू [illegible] न डर; मेरी कृपासे तू अभी देवताओंके स्थान स्वर्गलोक[illegible] चला जा।' इन भगवद्वाक्योंके समाप्त होते ही [illegible] विमान आया, उसपर चढ़कर वह व्याध भगवान्‌की [illegible] उसी समय स्वर्गको चला गया। उसके चले जानेपर भग[illegible] श्रीकृष्णचन्द्रने अपने आत्माको अव्यय, अचिन्त्य, [illegible] स्वरूप, अमल, अजन्मा, अमर, अप्रमेय [illegible] ब्रह्मस्वरूप विष्णुभगवान्‌में लीनकर त्रिगुणात्मक गतिको [illegible] कर इस मनुष्य शरीरको छोड़ दिया।

यादवोंका अन्त्येष्टि-संस्कार, परीक्षित्‌का राज्याभिषेक तथा पाण्डवोंका वनगमन

श्रीपराशरजी कहते हैं—अर्जुनने बलराम और श्रीकृष्ण तथा अन्यान्य मुख्य-मुख्य यादवोंके देहोंकी खोज कराकर क्रमशः उन सबके और्ध्वदैहिक संस्कार किये। भगवान् श्रीकृष्णकी जो रुक्मिणी आदि आठ पटरानियाँ बतलायी गयी हैं, उन सबने उनके शरीरका आलिङ्गन कर अग्निमें प्रवेश किया। सती रेवतीजी भी बलरामजीके देहका आलिङ्गन कर, उनके अङ्ग-सङ्गके आह्लादसे शीतल प्रतीत होती हुई प्रज्वलित अग्निमें प्रवेश कर गयीं। इस सम्पूर्ण अनिष्टका समाचार सुनते ही भगवान्‌में प्रेमके कारण उग्रसेन, वसुदेव, देवकी और रोहिणीने भी अग्निमें प्रवेश किया।

तदनन्तर अर्जुन उन सबका विधिपूर्वक श्राद्ध-कर्म कर वज्र तथा अन्यान्य कुटुम्बियोंको साथ लेकर द्वारकासे बाहर आये। द्वारकासे निकली हुई श्रीकृष्णचन्द्रकी सहस्रों पत्नियों तथा वज्र और अन्यान्य बान्धवोंकी रक्षा करते हुए अर्जुन धीरे-धीरे चले। मैत्रेय! श्रीकृष्णचन्द्रके मर्त्यलोकका त्याग करते ही सुधर्मा सभा और पारिजात-वृक्ष भी स्वर्गलोकको चले गये तथा कलियुग पृथिवीपर आ गया। तब जनशून्य द्वारकाको समुद्रने डुबो दिया, केवल एक श्रीकृष्णचन्द्रके भवनको ही वह नहीं डुबाया। ब्रह्मन्! उसे डुबानेमें समुद्र आज भी समर्थ नहीं है; क्योंकि उसमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र [illegible] करते हैं। वह स्थान अति पवित्र और समस्त पापोंको नष्ट करनेवाला है; उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे [illegible] जाता है।

मुनिश्रेष्ठ! अर्जुनने उन समस्त द्वारकावासियोंको [illegible] धन-धान्य-सम्पन्न पञ्चनद (पंजाब) देशमें [illegible]। [illegible] समय अनाथा स्त्रियोंको अकेले धनुर्धारी अर्जुनको [illegible] देख लुटेरोंको लोभ उत्पन्न हुआ। तब उन [illegible] दस्युओंने परस्पर मिलकर सम्मति [illegible]—'[illegible] अर्जुन अकेला ही हमारा अतिक्रमण करके इन अनाथा [illegible] लिये जाता है; हमारे ऐसे बल-पुरुषार्थको धिक्कार है।'

ऐसी सम्मतिपर वे सहस्रों [illegible] उन अनाथ द्वारकावासियोंपर टूट पड़े। तब [illegible] युद्धमें अक्षीण अपने गाण्डीव धनुषको [illegible] वे ऐसा न कर सके। उन्होंने [illegible] प्रत्यञ्चा (डोरी) चढ़ा भी दी तो [illegible] बहुत कुछ सोचनेपर भी उन्हें अपने [illegible] तब वे क्रुद्ध होकर अपने [illegible] गाण्डीवधारी अर्जुनके छोड़े हुए उन [illegible]

त्वचाको ही बींधा। अर्जुनका उद्भव क्षीण हो जानेके कारण अग्निके दिये हुए उनके अक्षय बाण भी उन अहीरोंके साथ लड़ते समय नष्ट हो गये।

तब अर्जुनने सोचा कि मैंने जो अपने शरसमूहसे अनेकों राजाओंको जीता था, वह सब श्रीकृष्णचन्द्रका ही प्रभाव था। अर्जुनके देखते-देखते वे अहीर उन स्त्रीरत्नोंको खींच-खींचकर ले जाने लगे तथा दूसरी बहुत-सी स्त्रियाँ अपने इच्छानुसार इधर-उधर भाग गयीं।

मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार अर्जुनके देखते-देखते वे म्लेच्छगण वृष्णि और अन्धकवंशकी उन स्त्रियोंको लेकर चले गये। तब सर्वदा जयशील अर्जुन अत्यन्त दुखी होकर बोले—'अहो! मुझे उन भगवान्‌ने ठग लिया। देखो, वही धनुष है, वे ही शस्त्र हैं, वही रथ है और वे ही अश्व हैं; किंतु आज सभी एक साथ नष्ट हो गये। अहो! दैव बड़ा प्रबल है, जिसने आज उन महात्मा श्रीकृष्णके न रहनेपर असमर्थ और नीच अहीरोंको जय दे दी। देखो! मेरी वे ही भुजाएँ हैं, वही मेरी मुष्टि (मुट्ठी) है, वही (कुरुक्षेत्र) स्थान है और मैं भी वही अर्जुन हूँ, तथापि पुण्यदर्शन श्रीकृष्णके बिना आज सब सारहीन हो गये। अवश्य ही मेरा अर्जुनत्व और भीमका भीमत्व भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे ही था। देखो, उनके बिना आज महारथियोंमें श्रेष्ठ मुझको तुच्छ आभीरोंने जीत लिया।'

श्रीपराशरजी कहते हैं—अर्जुन इस प्रकार कहते हुए अपनी राजधानी इन्द्रप्रस्थमें आये और वहाँ यादवनन्दन वज्रका राज्याभिषेक किया। तदनन्तर वे विपिनवासी व्यासमुनिसे मिले और उन महाभाग मुनिवरके निकट जाकर उन्हे विनयपूर्वक प्रणाम किया। अर्जुनको बहुत देरतक अपने चरणोंकी वन्दना करते देख मुनिवरने कहा—'आज तुम ऐसे कान्तिहीन क्यों हो रहे हो? क्या तुमने ब्रह्महत्या की है या तुम्हारी कोई सुदृढ आशा भङ्ग हो गयी है? जिसके दुःखसे तुम इस समय इतने श्रीहीन हो रहे हो। अर्जुन! तुम ब्राह्मणोंको बिना दिये अकेले ही तो मिष्टान्न नहीं खा लेते, अथवा तुमने किसी कृपणका धन तो नहीं हर लिया है? अर्जुन! क्या तुम्हें किसीने मारा है? अथवा तुम्हें किसी हीनबल पुरुषने युद्धमें पराजित तो नहीं किया? फिर तुम इस तरह हतप्रभ कैसे हो रहे हो?'

तब अर्जुनने दीर्घ निःश्वास छोडते हुए अपनी पराजयका सम्पूर्ण वृत्तान्त व्यासजीको ज्यों-का-त्यों सुना दिया।

अर्जुन बोले—जो श्रीहरि मेरे एकमात्र बल, तेज, वीर्य, पराक्रम, श्री और कान्ति थे, वे हमें छोड़कर चले गये। जो सब प्रकार समर्थ होकर भी हमसे मित्रवत् हँस-हँसकर बातें किया करते थे। मुने! उन श्रीहरिके बिना हम आज तृणमय पुतलेके समान निःसत्त्व हो गये हैं। जो मेरे दिव्यास्त्रों, दिव्यबाणों और गाण्डीव धनुषके मूर्तिमान् सार थे, वे पुरुषोत्तम भगवान् हमें छोड़कर चले गये हैं। जिनकी कृपा-दृष्टिने श्री, जय, सम्पत्ति और उन्नतिने कभी हमारा साथ नहीं छोडा, वे ही भगवान् गोविन्द हमें छोड़कर चले गये हैं। तात! उन चक्रपाणि श्रीकृष्णचन्द्रके विरहमें एक मैं ही क्या, सम्पूर्ण पृथिवी ही यौवन, श्री और कान्तिसे हीन प्रतीत होती है। जिनके प्रभावसे अग्निरूप मुझमें भीष्म आदि महारथीगण पतंगवत् भस्म हो गये थे, आज उन्हीं श्रीकृष्णके बिना मुझे गोपोंने हरा दिया। जिनके प्रभावसे यह गाण्डीव धनुष तीनों लोकोंमें विख्यात हुआ था, उन्हींके बिना आज यह अहीरोंकी लाठियोंसे तिरस्कृत हो गया। महामुने! यदुवंशकी जो सहस्रों स्त्रियाँ मेरी देख-रेखमें आ रही थीं, उन्हें मेरे सब प्रकार यत्न करते रहनेपर भी दस्युगण अपनी लाठियोंके बलसे ले गये। ऐसी अवस्थामें मेरा श्रीहीन होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; पितामह! आश्चर्य तो यह है कि नीच पुरुषोंद्वारा अपमान-पङ्कमें सनकर भी मैं निर्लज्ज अभी जीवित ही हूँ।

श्रीव्यासजी बोले—पार्थ! तुम्हारी लज्जा व्यर्थ है, तुम्हे शोक करना उचित नहीं है। तुम सम्पूर्ण भूतोंमें कालकी ऐसी ही गति जानो। नदियाँ, समुद्र, गिरिगण, सम्पूर्ण पृथिवी, देव, मनुष्य, पशु, वृक्ष और सरीसृप आदि सम्पूर्ण पदार्थ कालके ही रचे हुए हैं और फिर कालसे ही ये क्षीण हो जाते हैं, अतः इस सारे प्रपञ्चको कालात्मक जानकर शान्त होओ।

धनञ्जय! तुमने श्रीकृष्णचन्द्रका जैसा माहात्म्य बतलाया है, वह सब सत्य ही है; क्योंकि कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् कालस्वरूप ही हैं। उन्होंने पृथिवीका भार उतारनेके लिये ही मर्त्यलोकमे अवतार लिया था। एक समय पूर्वकालमे पृथिवी भाराक्रान्त होकर देवताओंकी सभामें गयी थी। श्रीजनार्दनने उसीके लिये अवतार लिया था। अब सम्पूर्ण दुष्ट राजा मारे जा चुके, अतः वह कार्य सम्पन्न हो गया। पार्थ! वृष्णि और अन्धक आदि सम्पूर्ण यदुकुलका भी उपसंहार हो गया; इसलिये उन प्रभुके लिये अब पृथिवीतल-पर और कुछ भी कर्तव्य नहीं रहा। अतः अपना कार्य समाप्त हो चुकनेपर भगवान् स्वेच्छानुसार चले गये, ये देवदेव प्रभु सर्गके आरम्भमें सृष्टि-रचना करते हैं, स्थितिके समय पालन करते हैं और अन्तमें ये ही उसका नाश करनेमें समर्थ हैं, जैसे इस समय वे राक्षस आदिका संहार करके चले गये हैं।

अतः पार्थ ! तुम्हें अपनी पराजयसे दुखी न होना चाहिये । पार्थ ! यह सब सर्वात्मा भगवान्‌की लीलाका ही कौतुक है कि तुम अकेलेने कौरवोंको नष्ट कर दिया और फिर स्वयं तुम अहीरोंसे पराजित हो गये ।

पाण्डव ! तुमलोगोंका अन्त भी अब निकट ही है; इसलिये उन सर्वेश्वरने तुम्हारे बल, तेज, वीर्य और माहात्म्यका सकोच कर दिया है । 'जो उत्पन्न हुआ है उसकी मृत्यु निश्चित है, उन्नतिका पतन अवश्यम्भावी है, संयोगका अन्त वियोग ही है तथा संचय (एकत्र करने) के अनन्तर क्षय (व्यय) होना सर्वथा निश्चित ही है'—ऐसा जानकर जो बुद्धिमान् पुरुष लाभ या हानिमें हर्ष अथवा शोक नहीं करते, उन्हींकी चेष्टाका अवलम्बन कर अन्य मनुष्य भी अपना वैसा आचरण बनाते हैं* । इसलिये नरश्रेष्ठ ! तुम ऐसा जानकर अपने भाइयोंसहित सम्पूर्ण राज्यको छोड़कर तपस्याके लिये वनको जाओ । अब तुम जाओ तथा [illegible] ये सारी बातें कहो और जिस तरह परसों [illegible] चले जा सको, वैसा यत्न करो ।

मुनिवर व्यासजीके ऐसा कहनेपर अर्जुनने [illegible] (युधिष्ठिर और भीमसेन) तथा यमजों (नकुल और [illegible]) को उन्होंने जो कुछ जैसा-जैसा देखा और सुना था [illegible] ज्यों-का-त्यों सुना दिया । उन सब पाण्डुपुत्रोंने [illegible] व्यासजीका संदेश सुनकर (हस्तिनापुर [illegible]) [illegible] परीक्षित्को अभिषिक्त किया और स्वयं वनको [illegible] ।

मैत्रेय ! भगवान् वासुदेवने यदुवंशमें [illegible] लीलाएँ की थीं, वह सब मैंने विस्तारपूर्वक तुम्हें सुना दीं । [illegible] पुरुष भगवान् श्रीकृष्णके इस चरित्रको [illegible] सुनता है [illegible] सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर अन्तमें [illegible] ।

॥ पञ्चम अंश समाप्त ॥
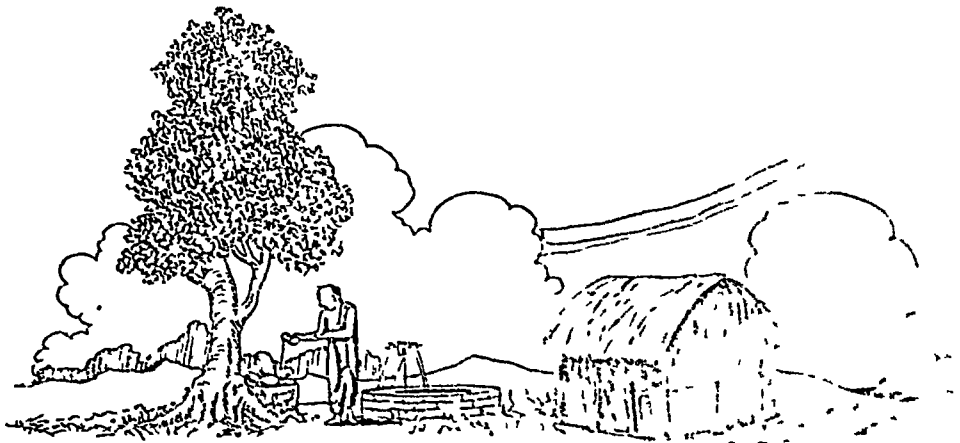
* जातस्य नियतो मृत्युः पतनं च तथोन्नतेः । विप्रयोगावसानस्तु संयोगः [illegible] ।
विज्ञाय न बुधाः शोकं न हर्षमुपयान्ति ये । तेषामेवेतरे चेष्टां [illegible]
([illegible])

षष्ठ अंश

कलिधर्मनिरूपण

श्रीमैत्रेयजी बोले—महामुने ! आपने सृष्टि-रचना, वंश-परम्परा और मन्वन्तरोंकी स्थितिका तथा वंशोंके चरित्रों आदिका विस्तारसे वर्णन किया। अब मैं आपसे कल्पान्तमें होनेवाले महाप्रलय नामक संसारके उपसंहारका यथावत् वर्णन सुनना चाहता हूँ।

श्रीपराशरजीने कहा—मैत्रेय ! कल्पान्तके समय प्राकृत प्रलयमें जिस प्रकार जीवोंका उपसंहार होता है, वह सुनो। द्विजोत्तम ! मनुष्योंका एक मास पितृगणका, एक वर्ष देवगणका और दो सहस्र चतुर्युग ब्रह्माका एक दिन-रात होता है। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि—ये चार युग हैं, इन सबका काल मिलाकर बारह हजार दिव्य वर्ष कहा जाता है। मैत्रेय ! ब्रह्माके दिनके आदि कृतयुग और अन्तिम कलियुग-को छोड़कर शेष सब चतुर्युग स्वरूपसे एक समान हैं। जिस प्रकार आद्य (प्रथम) सत्ययुगमें ब्रह्माजी जगत्की रचना करते हैं, उसी प्रकार अन्तिम कलियुगमें वे उसका उपसंहार करते हैं।

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवन् ! कलिके स्वरूपका विस्तार-से वर्णन कीजिये, जिसमें चार चरणोंवाले धर्मका प्रायः लोप हो जाता है।

श्रीपराशरजी कहते हैं—महामुने ! तुम कलियुगका स्वरूप सुनना चाहते हो; अतः उस समय जो कुछ होता है, वह संक्षेपसे सुनो। कलियुगमें मनुष्योंकी प्रवृत्ति वर्णाश्रम-धर्मानुकूल नहीं रहती और न वह ऋक्-साम-यजुरूप त्रयी-धर्मका सम्पादन करनेवाली ही होती है। उस समय धर्म-विवाह, गुरु-शिष्य-सम्बन्धकी स्थिति, दाम्पत्यक्रम और अग्नि-में देवयज्ञक्रियाका क्रम (अनुष्ठान) भी नहीं रहता।

कलियुगमें जो बलवान् होगा वही सबका स्वामी होगा, चाहे किसी भी कुलमें क्यों न उत्पन्न हुआ हो। उस समय उपवास, तीर्थाटनादि कायक्लेश, धन-दान तथा तप आदि अपनी रुचिके अनुसार अनुष्ठान किये हुए ही धर्म समझे जायँगे।

कलियुगमें अल्प धनसे ही लोगोंको धनाढ्यताका गर्व हो जायगा और केशोंसे ही स्त्रियोंको सुन्दरताका अभिमान होगा। उस समय सुवर्ण, मणि, रत्न आदि और वस्त्रोंके क्षीण हो जानेसे स्त्रियाँ केशोंसे ही अपनेको विभूषित करेंगी। जो पति धनहीन होगा, उसे स्त्रियाँ छोड़ देंगी। कलियुगमें धनवान् पुरुषको ही स्त्रियाँ पति मानेंगी। जो मनुष्य अधिक धन देगा, वही लोगोंका स्वामी होगा; उस समय स्वामित्वका कारण सम्बन्ध नहीं होगा और न कुलीनता ही उसका कारण होगी।

कलिमें सारा द्रव्य-संग्रह घर बनानेमें ही समाप्त हो जायगा, बुद्धि धन-संचयमें ही लगी रहेगी तथा सारी सम्पत्ति अपने उपभोगमें ही नष्ट होगी।

कलिकालमें स्त्रियाँ सुन्दर पुरुषकी कामनासे स्वेच्छा-चारिणी होंगी तथा पुरुष अन्यायोपार्जित धनके इच्छुक होंगे। द्विज ! कलियुगमें अपने सुहृदोंके प्रार्थना करनेपर भी लोग एक-एक दमड़ीके लिये भी स्वार्थ-हानि नहीं करेंगे। कलिमें ब्राह्मणोंके साथ शूद्र आदि समानताका दावा करेंगे और दूध देनेके कारण ही गौओंका सम्मान होगा।

उस समय सम्पूर्ण प्रजा क्षुधाकी व्यथासे व्याकुल हो प्रायः अनावृष्टिके भयसे सदा आकाशकी ओर दृष्टि लगाये रहेगी तथा अनावृष्टिके कारण दुखी होकर लोग आत्मघात करेंगे। कलियुगके असमर्थ लोग सुख और आनन्दके नष्ट हो जानेसे प्रायः सर्वदा दुर्भिक्ष तथा क्लेश ही भोगेंगे। कलिके आनेपर लोग बिना स्नान किये ही भोजन करेंगे, अग्नि, देवता और अतिथिका पूजन न करेंगे और न पिण्डोदकक्रिया ही करेंगे।

उस समयकी स्त्रियाँ विषयलोलुप, छोटे शरीरवाली, अति भोजन करनेवाली, बहुत संतान पैदा करनेवाली और मन्दभागिनी होंगी। वे दोनों हाथोंसे सिर खुजाती हुई अपने बड़ोंके और पतियोंके आदेशका अनादरपूर्वक खण्डन करेंगी। कलियुगकी स्त्रियाँ अपना ही पेट पालनेमें तत्पर, क्षुद्र चित्त-वाली, शारीरिक पवित्रतासे हीन तथा कटु और मिथ्या भाषण

करनेवाली होंगी। उस समयकी कुलाङ्गनाएँ निरन्तर दुश्चरित्र पुरुषोंकी इच्छा रखनेवाली एवं दुराचारिणी होंगी तथा पुरुषोंके साथ असद्व्यवहार करेंगी।

ब्रह्मचारिगण वैदिक व्रत आदिसे हीन रहकर ही वेदाध्ययन करेंगे तथा गृहस्थगण न तो हवन करेंगे और न सत्पात्रको उचित दान ही देंगे। वानप्रस्थ ग्राम्यभोजन स्वीकार करेंगे और संन्यासी अपने मित्रादिके स्नेहबन्धनमें ही बँधे रहेंगे।

कलियुगके आनेपर राजालोग प्रजाकी रक्षा नहीं करेंगे, बल्कि कर लेनेके बहाने प्रजाका ही धन छीनेंगे। उस समय जिस-जिसके पास बहुत-से हाथी, घोड़े और रथ आदि सेना होंगी, वह-वह ही राजा होगा तथा जो-जो शक्तिहीन होगा, वह-वह ही सेवक होगा। वैश्यगण कृषि-वाणिज्यादि अपने कर्मोंको छोड़कर शिल्पकारी आदिसे जीवन-निर्वाह करते हुए शूद्र-वृत्तियोंमें ही लग जायँगे। अधम शूद्रगण संन्यास-आश्रमके चिह्न धारण कर भिक्षावृत्तिमें तत्पर रहेंगे और लोगोंसे सम्मानित होकर पाखण्ड-वृत्तिका आश्रय लेंगे। प्रजाजन दुर्भिक्ष और करकी पीड़ासे अत्यन्त खिन्न और दुःखित होकर ऐसे देशोंमें चले जायँगे जहाँ गेहूँ और जौकी अधिकता होगी।

उस समय वेद-मार्गका लोप, मनुष्योंमें दम्भ-पाखण्डकी प्रचुरता और अधर्मकी वृद्धि हो जानेसे प्रजाकी आयु अल्प हो जायगी। लोगोंके शास्त्रविरुद्ध घोर तपस्या करनेसे तथा राजाके दोषसे प्रजाओंकी बाल्यावस्थामें मृत्यु होने लगेगी। कलिमें पाँच-छः अथवा सात वर्षकी स्त्री और आठ-नौ या दस वर्षके पुरुषोंके ही संतान हो जायगी। बारह वर्षकी अवस्थामें ही लोगोंके बाल पकने लगेंगे और कोई भी व्यक्ति बीस वर्षसे अधिक जीवित न रहेगा। कलियुगमें लोग मन्द-बुद्धि, मिथ्या चिह्न धारण करनेवाले और दुष्ट चित्तवाले होंगे, इसलिये वे अल्पकालमें ही नष्ट हो जायँगे।

मैत्रेय! जब-जब धर्मकी अधिक हानि दिखलायी दे, तभी-तभी बुद्धिमान् मनुष्यको कलियुगकी वृद्धिका अनुमान करना चाहिये। मैत्रेय! जब-जब दम्भ-पाखण्ड बढ़ा हुआ दीखे, तभी-तभी महात्माओंको कलियुगकी [illegible] चाहिये। जब-जब वैदिक मार्गका [illegible] सत्पुरुषोंका अभाव हो, तभी-तभी बुद्धिमान् [illegible] वृद्धि हुई जाने। मैत्रेय! जब धर्मात्मा पुरुषोंके [illegible] किये हुए कार्योंमें असफलता हो, तब [illegible] प्रधानता समझें। जब-जब [illegible] अधीश्वर भगवान् [illegible] त्तमका लोग यज्ञोंद्वारा यजन न करें, तब [illegible] ही समझना चाहिये। जब वेद-वादमें प्रीतिका अभाव हो [illegible] दम्भ-पाखण्डमें प्रेम हो, तब बुद्धिमान प्राज्ञ पुरुष [illegible] बढ़ा हुआ जानें।

मैत्रेय! कलियुगमें लोग [illegible] जानेसे सबके रचयिता और प्रभु जगत्पति भगवान् [illegible] पूजन नहीं करेंगे। विप्र! उस समय लोग [illegible] वशीभूत होकर कहेंगे—'[illegible] होनेवाले शौचादिमें क्या रक्खा है?' विप्र! [illegible] वृष्टि अल्प जलवाली होगी, खेती थोड़ी [illegible] और फलादि अल्प सारयुक्त होंगे। कलियुगमें प्रायः [illegible] बने हुए सबके वस्त्र होंगे, अधिकतर [illegible] चारों वर्ण बहुधा शूद्रवत् हो जायँगे। [illegible] अत्यन्त अणु होंगे, प्रायः [illegible] दूध [illegible]।

मुनिश्रेष्ठ! कलियुगमें सास और ससुरको ही [illegible] मानेंगे और हृदयहारिणी भार्या तथा [illegible] लोग अपने ससुरके अनुगामी होकर [illegible] पिता है और कौन किसकी माता, [illegible] नुसार जन्मते-मरते रहते हैं।' उस समय [illegible] वाणी, मन और शरीरादिके दोषोंके [illegible] पुनः-पुनः पापकर्म करेंगे। [illegible] पुरुषोंको जो-जो दुःख हो सकते [illegible] उपस्थित होंगे। उस समय [illegible] से हीन तथा स्वधा और स्वाहासे वर्जित [illegible] कुछ-कुछ धर्म रहेगा। [illegible] उत्तम पुण्यराशि प्राप्त की जाती है, [illegible] थोड़ा-सा प्रयत्न करनेसे ही प्राप्त [illegible] है*।

* तत्राल्पेनैव यत्नेन पुण्यस्कन्धमनुत्तमम्। [illegible]
([illegible])

श्रीव्यासजीद्वारा कलियुग, शूद्र और स्त्रियोंका महत्त्व-वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—महाभाग ! इसी विषयमे महामति व्यासदेवने जो कुछ कहा है, वह मै यथावत् वर्णन करता हूँ, सुनो। एक बार मुनियोंमें परस्पर पुण्यके विषयमें यह वार्तालाप हुआ कि 'किस समयमें थोड़ा-सा पुण्य भी महान् फल देता है और कौन उसका सुखपूर्वक अनुष्ठान कर सकते हैं ?' मैत्रेय ! वे समस्त मुनिश्रेष्ठ इस संदेहका निर्णय करनेके लिये महामुनि व्यासजीके पास यह प्रश्न पूछने गये।

उस समय गङ्गाजीमें डुबकी लगाये मेरे पुत्र व्यासने जलसे उठकर उन मुनिजनोंके सुनते हुए 'कलियुग ही श्रेष्ठ है, शूद्र ही श्रेष्ठ है' यह वचन कहा। यह कहकर वे महामुनि फिर जलमें मग्न हो गये और फिर खड़े होकर बोले—'स्त्रियाँ ही साधु हैं, वे ही धन्य हैं, उनसे अधिक धन्य और कौन है ?' तदनन्तर जब व्यासजी स्नान करनेके अनन्तर नियमानुसार नित्यकर्मसे निवृत्त होकर आये तो वे मुनिजन उनके पास पहुँचे। वहाँ आकर जब वे यथायोग्य अभिवादनादिके अनन्तर आसनोंपर बैठ गये तो सत्यवती-नन्दन व्यासजीने उनसे पूछा—'आपलोग कैसे आये हैं ?'

तब मुनियोंने उनसे कहा—'पहले एक बात हमें बतलाइये। भगवन् ! आपने जो स्नान करते समय कई बार कहा था कि 'कलियुग ही श्रेष्ठ है, शूद्र ही श्रेष्ठ है, स्त्रियाँ ही साधु और धन्य हैं', सो क्या बात है ? महामुने ! यदि गोपनीय न हो तो कहिये।'

मुनियोंके इस प्रकार पूछनेपर व्यासजीने हँसते हुए कहा।

श्रीव्यासजी बोले—द्विजगण ! जो फल सत्ययुगमें दस वर्ष तपस्या, ब्रह्मचर्य और जप आदि करनेसे मिलता है, उसे मनुष्य त्रेतामें एक वर्ष, द्वापरमें एक मास और कलियुगमें केवल एक दिन-रातमें प्राप्त कर लेता है, इस कारण ही मैंने कलियुगको श्रेष्ठ कहा है। जो फल सत्ययुगमें ध्यान, त्रेतामें यज्ञ और द्वापरमें देवार्चन करनेसे प्राप्त होता है, वही कलियुगमे केशवका नाम-कीर्तन करनेसे मिल जाता है। धर्मज्ञगण ! कलियुगमें थोड़े-से परिश्रमसे ही पुरुषको महान् धर्मकी प्राप्ति हो जाती है, इसीलिये मैं कलियुगसे अति संतुष्ट हूँ*।

द्विजातियोंको पहले ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हुए वेदाध्ययन करना पड़ता है और फिर स्वधर्माचरणसे उपार्जित धनके द्वारा विधिपूर्वक यज्ञ करने पड़ते हैं। इस प्रकार वे अत्यन्त क्लेशसे पुण्यलोकोंको प्राप्त करते हैं, किंतु जिसे केवल मन्त्रहीन पाक-यज्ञका ही अधिकार है, वह शूद्र द्विजोंकी सेवा करनेसे ही सद्गति प्राप्त कर लेता है, इसलिये वह अन्य जातियोंकी अपेक्षा धन्यतर है†।

द्विजोत्तमगण ! पुरुषोंको अपने धर्मानुकूल प्राप्त किये हुए धनसे ही सर्वदा सुपात्रको दान और विधिपूर्वक यज्ञ

---

* यत्कृते दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां हायनेन तत्।
द्वापरे तच्च मासेन ह्यहोरात्रेण तत् कलौ ॥
तपसो ब्रह्मचर्यस्य जपादेश्च फलं द्विजाः।
प्राप्नोति पुरुषस्तेन कलिः साध्विति भाषितम् ॥
ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ सकीर्त्य केशवम् ॥
धर्मोत्कर्षमतीवात्र प्राप्नोति पुरुषः कलौ।
अल्पायासेन धर्मज्ञास्तेन तुष्टोऽस्म्यहं कलेः ॥
(वि० पु० ६ । २ । १५—१८)

† द्विजशुश्रूषयैवैष पाकयज्ञाधिकारवान्।
निजाञ्जयति वै लोकाञ्छूद्रो धन्यतरस्ततः ॥
(वि० पु० ६ । २ । २३)

करना चाहिये। इस द्रव्यके उपार्जन तथा रक्षणमें महान् क्लेश होता है और उसको अनुचित कार्यमें लगानेसे भी मनुष्योंको जो दुःख भोगना पड़ता है, वह मालूम ही है। इस प्रकार पुरुषगण इन तथा ऐसे ही अन्य कष्टसाध्य उपायोंसे क्रमशः प्राजापत्य आदि शुभ लोकोंको प्राप्त करते हैं; किंतु स्त्रियाँ तो तन-मन-वचनसे पतिकी सेवा करनेसे ही उनकी हितकारिणी होकर पतिके समान शुभ लोकोंको अनायास ही प्राप्त कर लेती हैं, जो कि पुरुषोंको अत्यन्त परिश्रमसे मिलते हैं, इसीलिये मैंने तीसरी बार यह कहा था कि 'स्त्रियाँ साधु हैं*।'

विप्रगण ! अब आप जिस लिये पधारे हैं, वह इच्छानुसार पूछिये। तब ऋषियोंने कहा—'महामुने ! हमें जो कुछ पूछना था, उसका यथावत् उत्तर आपने इसी प्रश्नमें दे दिया है।'

श्रीपराशरजी कहते हैं—तब मुनिवर कृष्णद्वैपायनने विस्मयसे खिले हुए नेत्रोंवाले उन समागत तपस्वियोंसे हँसकर कहा—'मैं दिव्य दृष्टिसे आपके इस प्रश्नको [illegible] इसीलिये मैंने आपलोगोंके प्रसङ्गसे ही 'साधु साधु' [illegible] जिन पुरुषोंने गुणरूप जलसे अपने समस्त दोष धो डाले हैं उनके थोड़े-से प्रयत्नसे ही कलियुगमें धर्म सिद्ध हो जाता है। द्विजश्रेष्ठो ! शूद्रोंको द्विजसेवापरायण होनेसे और स्त्रियोंको पतिकी सेवामात्र करनेसे ही अनायास धर्मकी सिद्धि हो जाती है†। इसीलिये मेरे विचारसे ये तीनों [illegible] ब्राह्मणो ! इस प्रकार आपलोगोंका जो अभिप्राय था, वह [illegible] आपके बिना पूछे ही कह दिया। तदनन्तर उन्होंने [illegible] पूजनकर उनकी बारबार प्रशंसा की और उनके [illegible] निश्चयकर जहाँसे आये थे, वहाँ चले गये। [illegible] आपसे भी मैंने यह रहस्य कह दिया। [illegible] कलियुगमें यही एक महान् गुण है कि इस युगमें [illegible] श्रीकृष्णचन्द्रका नाम-सङ्कीर्तन करनेसे ही मनुष्य [illegible] मुक्त हो परमपद प्राप्त कर लेता है‡। अब तुमने [illegible] संसारके उपसंहार—प्राकृत प्रलय और [illegible] विषयमें पूछा था, वह भी सुनाता हूँ।

निमेषादि काल-मान तथा नैमित्तिक और प्राकृत प्रलयका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—सम्पूर्ण प्राणियोंका प्रलय नैमित्तिक, प्राकृतिक और आत्यन्तिक तीन प्रकारका होता है। उनमेंसे जो कल्पान्तमें ब्राह्म प्रलय होता है, वह नैमित्तिक, जो मोक्ष नामक प्रलय है, वह आत्यन्तिक और जो दो परार्द्धके अन्तमें होता है, वह प्राकृत प्रलय कहलाता है।

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवन् ! आप मुझे परार्द्धकी संख्या बतलाइये, जिसको दूना करनेसे प्राकृत प्रलयका परिमाण जाना जा सके।

श्रीपराशरजीने कहा—द्विज ! [illegible] दसगुना गिनते-गिनते जो अठारहवीं बार§ गिनी [illegible] संख्या परार्द्ध कहलाती है। द्विज ! [illegible] संख्यावाला प्राकृत प्रलय है उस [illegible] अपने कारण अव्यक्तमें लीन हो जाता है। [illegible] ही एक मात्रावाले अक्षरके उच्चारण [illegible] वाला होनेसे मात्रा कहलाता है, [illegible] काष्ठा होती है और तीन [illegible]

* योषिच्छुश्रूषणाद्भर्तुः कर्मणा मनसा गिरा। तद्धिता शुभमाप्नोति तत्सालोक्यं यतो द्विजाः॥
नातिक्लेशेन महता तानेव पुरुषो यथा। तृतीयं व्याहृतं तेन मया साध्वीति योषितः॥
([illegible])

† स्वल्पेन हि प्रयत्नेन धर्मः सिद्ध्यति वै कलौ। नरैरात्मगुणाम्भोभिः क्षालिताखिलकिल्बिषैः॥
शूद्रैश्च द्विजशुश्रूषातत्परैर्द्विजसत्तमाः। तथा स्त्रीभिरनायासात् पतिशुश्रूषयैव हि॥
([illegible])

‡ अत्यन्तदुष्टस्य कलेरयमेको महान् गुणः। कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबन्धः परं व्रजेत्॥
([illegible])

१. श्रीमद्भागवतके तृतीय स्कन्धमें बतलाया है कि ब्रह्माजीकी आयुके आधे भागको [illegible]

§ वायुपुराणमें इन अठारह संख्याओंके इस प्रकार नाम हैं—एक, दश, शत, सहस्र, [illegible] खर्व, निखर्व, शङ्कु, पद्म, समुद्र, मध्य, अन्त, परार्द्ध।

पंद्रह कला एक नाडिका (घडी) का प्रमाण है। वह नाडिका साढ़े बारह पल ताँबेके बने हुए जलके पात्रसे जानी जा सकती है। मगधदेशीय मापसे वह पात्र जलप्रस्थ कहलाता है; उसमें चार अंगुल लंबी चार मासेकी सुवर्ण-शलाकासे छिद्र किया रहता है, उसके छिद्रको ऊपर करके जलमें डुबो देनेसे जितनी देरमें वह पात्र भर जाय उतने ही समयको एक घडी समझना चाहिये। द्विजसत्तम! ऐसी दो घड़ियोंका एक मुहूर्त होता है, तीस मुहूर्तका एक दिन-रात होता है तथा इतने (तीस) ही दिन-रातका एक मास होता है। बारह मासका एक वर्ष होता है, देवलोकमें यही एक दिन-रात होता है। ऐसे तीन सौ साठ वर्षोंका देवताओंका एक वर्ष होता है। ऐसे बारह हजार दिव्य वर्षोंका एक चतुर्युग होता है और एक हजार चतुर्युगका ब्रह्माका एक दिन होता है।

महामुने! यही एक कल्प है। इसमें चौदह मनु बीत जाते हैं। इस दिनके अन्तमें ब्रह्माका नैमित्तिक प्रलय होता है। मैत्रेय! सुनो, मैं उस नैमित्तिक प्रलयका अत्यन्त भयानक रूप वर्णन करता हूँ। इसके पीछे मैं तुमसे प्राकृत प्रलयका भी वर्णन करूँगा। एक सहस्र चतुर्युग बीतनेपर जब पृथिवी क्षीणप्राय हो जाती है तो सौ वर्षतक अति घोर अनावृष्टि होती है। मुनिश्रेष्ठ! उस समय जो पार्थिव जीव अल्प शक्तिवाले होते हैं, वे सब अनावृष्टिसे पीड़ित होकर सर्वथा नष्ट हो जाते हैं। तदनन्तर, रुद्ररूपधारी अव्ययात्मा भगवान् विष्णु संसारका क्षय करनेके लिये सम्पूर्ण प्रजाको अपनेमें लीन कर लेनेका प्रयत्न करते हैं। उस समय भगवान् विष्णु सूर्यकी सातों किरणोंमें स्थित होकर सम्पूर्ण जलको सोख लेते हैं और समस्त भूमण्डलको शुष्क कर भस्म कर डालते हैं।

तब, सबको नष्ट करनेके लिये उद्यत हुए श्रीहरि कालाग्निरुद्ररूपसे शेषनागके मुखसे प्रकट होकर नीचेसे पातालोंको जलाना आरम्भ करते हैं। वह महान् अग्नि समस्त पातालोंको जलाकर पृथिवीपर पहुँचता है और सम्पूर्ण भूतलको भस्म कर डालता है। वह दारुण अग्नि भुवर्लोक तथा स्वर्गलोकको जला डालता है। तब समस्त त्रिलोकी एक तप्त कटाहके समान प्रतीत होने लगती है। तदनन्तर भुवर्लोक और स्वर्गलोकमें रहनेवाले अधिकारिगण अग्निज्वालासे संतप्त होकर महर्लोकमें और फिर जनलोकमें चले जाते हैं।

मुनिश्रेष्ठ! तदनन्तर रुद्ररूपी भगवान् विष्णु सम्पूर्ण संसारको दग्ध करके अपने मुख-निःश्वाससे मेघोंको उत्पन्न करते हैं। तब विद्युत्से युक्त भयंकर गर्जना करनेवाले गजसमूहके समान बृहदाकार संवर्तक नामक घोर मेघ आकाशमें उठते हैं। वे घनघोर शब्द करनेवाले महाकाय मेघगण आकाशको आच्छादित कर लेते हैं और मूसलाधार जल बरसाकर त्रिलोकव्यापी भयंकर अग्निको शान्त कर देते हैं। द्विज! अपनी अति स्थूल धाराओंसे भूर्लोकको जलमें डुबोकर वे भुवर्लोक तथा उसके भी ऊपरके लोकोंको जलमग्न कर देते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण संसारके अन्धकारमय हो जानेपर तथा सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गम जीवोंके नष्ट हो जानेपर भी वे महामेघ सौ वर्ष अधिक कालतक बरसते रहते हैं।

महामुने! जब जल सप्तर्षियोंके स्थानको भी पार कर जाता है, तो यह सम्पूर्ण त्रिलोकी एक महासमुद्रके समान हो जाती है। मैत्रेय! तदनन्तर, भगवान् विष्णुके मुख-निःश्वाससे प्रकट हुआ वायु उन मेघोंको नष्ट करके पुनः सौ वर्षतक चलता रहता है। इस प्रलयके होनेमें ब्रह्माका शयन करना ही निमित्त है; इसलिये यह नैमित्तिक प्रलय कहलाता है। जिस प्रकार ब्रह्माजीका दिन एक हजार चतुर्युगका होता है, उसी प्रकार संसारके एकार्णवरूप हो जानेपर उनकी रात्रि भी उतनी ही बड़ी होती है। उस रात्रिका अन्त होनेपर ब्रह्मा जागते हैं और जैसा तुमसे पहले कहा था, उसी क्रमसे फिर सृष्टि रचते हैं।

द्विज! इस प्रकार तुमसे कल्पान्तमें होनेवाले नैमित्तिक प्रलयका वर्णन किया। अब दूसरे प्राकृत प्रलयका वर्णन सुनो। मुने! अनावृष्टि आदिके संयोगसे सम्पूर्ण लोक और निखिल पातालोंके नष्ट हो जानेपर तथा भगवदिच्छासे उस प्रलयकालके उपस्थित होनेपर जब महत्तत्त्वसे लेकर पृथिवी आदि पञ्च विशेषपर्यन्त सम्पूर्ण विकार क्षीण हो जाते हैं तो प्रथम जल पृथिवीके गुण गन्धको अपनेमें लीन कर लेता है। इस प्रकार गन्ध छिन जानेसे पृथिवीका प्रलय हो जाता है। गन्ध-तन्मात्राके नष्ट हो जानेपर पृथिवी जलमय हो जाती है, तदनन्तर जलके गुण रसको तेज अपनेमें लीन कर लेता है। फिर रस-तन्मात्राका क्षय हो जानेसे जल भी नष्ट हो जाता है। तब रसहीन हो जानेसे जल अग्निरूप हो जाता है तथा अग्निके सब ओर व्याप्त हो जानेसे जलके अग्निमें स्थित हो जानेपर वह अग्नि सब ओर फैलकर सम्पूर्ण जलको सोख लेता है और धीरे-धीरे यह सम्पूर्ण जगत् ज्वालासे पूर्ण हो जाता है। उस समय अग्निके प्रकाशक स्वरूपको वायु अपनेमें लीन कर लेता है। तब रूप-तन्मात्राके नष्ट हो जानेसे अग्नि रूपहीन हो जाता है। उस समय संसारके प्रकाशहीन और तेजके वायुमें लीन हो जानेसे अग्नि शान्त हो जाता है

और अति प्रचण्ड वायु चलने लगता है। तदनन्तर वायुके गुण स्पर्शको आकाश लीन कर लेता है; तब वायु शान्त हो जाता है और आकाश आवरणहीन हो जाता है। उस समय रूप, रस, स्पर्श, गन्ध तथा आकारसे रहित अत्यन्त महान् एक आकाश ही रह जाता है। तदनन्तर, आकाशके गुण शब्दको भूतादि (सूक्ष्म तन्मात्राएँ) ग्रस लेता है। इस भूतादिमें ही एक साथ पञ्चभूत और इन्द्रियोंका भी लय हो जानेपर केवल अहङ्कार रह जाता है। फिर इस अहङ्कारसहित भूतादिको भी बुद्धिरूप महत्तत्त्व ग्रस लेता है।

इस प्रकार पृथिवी और महत्तत्त्व ब्रह्माण्डके अन्तर्जगत्‌की आदि और अन्तिम सीमाएँ हैं। महाबुद्धे! इसी तरह जो सात[1] आवरण बताये गये हैं, वे सब भी प्रलयकालमें लीन हो जाते हैं। सम्पूर्ण भूमण्डल सातों द्वीप, सातों समुद्र, सातों लोक और सकल पर्वत-श्रेणियोंके सहित अपने कारणरूप जलमें लीन हो जाता है। फिर जो जलका आवरण है, उसे अग्नि पी जाता है तथा अग्नि वायुमें और वायु आकाशमें लीन हो जाता है। द्विज! आकाशको भूतादि (भूतोंकी आदिकारणरूपा तन्मात्राएँ), भूतादिको (अहङ्कार और अहङ्कारको) महत्तत्त्व और इन सबके सहित महत्तत्त्वको मूल प्रकृति अपनेमें लीन कर लेती है। महामुने! न्यूनाधिकसे रहित जो सत्त्वादि तीनों गुणोंकी साम्यावस्था है, उसीको प्रकृति कहते हैं; इसीका नाम प्रधान भी है। यह प्रधान ही सम्पूर्ण जड जगत्‌का परम कारण है। यह प्रकृति व्यक्त और अव्यक्तरूपसे सर्वमयी है। मैत्रेय! इसीलिये अव्यक्तमें व्यक्तरूप लीन हो जाता है।

इससे पृथक् जो एक शुद्ध, अक्षर, नित्य और सर्वव्यापक पुरुष है, वह भी सर्वभूत परमात्माका अंश ही है। जिस सत्तामात्रस्वरूप आत्मा (देहादि संघात) से पृथक् रहनेवाले ज्ञानात्मा एवं ज्ञातव्य सर्वेश्वरमें नाम और जाति आदिकी कल्पना नहीं है, वही सबका परम आश्रय परब्रह्म परमात्मा है और वही ईश्वर है। वह विष्णु ही इस अखिल विश्वमें अवस्थित है। उस परमात्माको प्राप्त हो जानेपर योगिजन फिर इस संसारमें नहीं लौटते। जिस व्यक्त और अव्यक्त-स्वरूपिणी प्रकृतिका मैंने वर्णन किया है, वह तथा पुरुष—ये दोनों ही उस परमात्मामें लीन हो जाते हैं। वह परमात्मा सबका आधार और एकमात्र अधीश्वर है; उसीका वेद और वेदान्तोंमें 'विष्णु' नामसे वर्णन किया है। वैदिक कर्म दो प्रकार का है—प्रवृत्तिरूप और निवृत्तिरूप। इन दोनों प्रकारके कर्मोंसे उस सर्वभूत पुरुषोत्तमका ही यजन किया जाता है। मनुष्योंद्वारा ऋक्, यजुः और सामवेदोक्त प्रवृत्ति-मार्गसे उन यज्ञपति पुरुषोत्तम यज्ञपुरुषका ही पूजन किया जाता है। तथा निवृत्तिमार्गमें स्थित योगिजन भी उन्हीं ज्ञानात्मा ज्ञानस्वरूप मुक्ति-फल दायक भगवान् विष्णुका ही ज्ञानयोगद्वारा यजन करते हैं। वह विश्वरूपधारी विश्वरूप परमात्मा श्रीहरि ही व्यक्त, अव्यक्त एवं अविनाशी पुरुष हैं।

मैत्रेय! मैंने तुमसे जो द्विपरार्द्धकाल कहा है वह उन विष्णुभगवान्‌का केवल एक दिन है। महामुने! व्यक्त जगत्‌के अव्यक्त प्रकृतिमें और प्रकृतिके पुरुषमें लीन हो जानेपर इतने ही कालकी विष्णुभगवान्‌की रात्रि होती है। द्विज! वास्तवमें तो उन नित्य परमात्माका न कोई दिन है और न रात्रि, तथापि केवल उपचारसे ऐसा कहा जाता है। मैत्रेय! इस प्रकार मैंने तुमसे यह प्राकृत प्रलयका वर्णन किया, अब तुम आत्यन्तिक प्रलयका वर्णन और सुनो।

आध्यात्मिकादि त्रिविध तापोंका वर्णन, भगवान् तथा वासुदेव शब्दोंकी व्याख्या और भगवान्‌के सगुण-निर्गुण स्वरूपका वर्णन

श्रीपराशरजी कहते हैं—मैत्रेय! आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीनों तापोंको जानकर ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न होनेपर पण्डितजन आत्यन्तिक प्रलय प्राप्त करते हैं। आध्यात्मिक ताप शारीरिक (व्याधि) और मानसिक (आधि) दो प्रकारके होते हैं; उनमें [illegible] कितने ही भेद हैं, वह सुनो। शिरोरोग, प्रतिश्याय ([illegible]) ज्वर, शूल, भगदर, गुल्म, अर्श ([illegible]) [illegible] श्वास (दमा), छर्दि तथा नेत्ररोग [illegible]

1. पृथिवीके चारों ओर जलका आवरण है, उसके चारों ओर अग्निका, अग्निके चारों ओर वायुका, वायुके [illegible] आकाशके चारों ओर भूतोंकी कारणरूपा तन्मात्राओंका, उनके चारों ओर अहङ्कारका और अहङ्कारके चारों ओर [illegible] इस प्रकार ये सात आवरण हैं। ये सातों अपने कार्यमें बाहर-भीतर व्यापक भी हैं।

आदि शारीरिक कष्ट-भेदसे दैहिक तापके कितने ही भेद हैं। अब मानसिक तापोंको सुनो—द्विजश्रेष्ठ! काम, क्रोध, भय, द्वेष, लोभ, मोह, विषाद, शोक, असूया (गुणोंमें दोषारोपण), अपमान, ईर्ष्या और मात्सर्य आदि भेदोंसे मानसिक तापके अनेक भेद हैं। ऐसे ही नाना प्रकारके भेदोंसे युक्त तापको आध्यात्मिक कहते हैं। मनुष्योंको जो दुःख मृग, पक्षी, मनुष्य, पिशाच, सर्प, बिच्छू, राक्षस आदिसे प्राप्त होता है, उसे आधिभौतिक कहते हैं तथा द्विजवर! शीत, उष्ण, वायु, वर्षा, जल और विद्युत् आदिसे प्राप्त हुए दुःखको श्रेष्ठ पुरुष आधिदैविक कहते हैं।

मुनिश्रेष्ठ! इनके अतिरिक्त गर्भ, जन्म, जरा, अज्ञान, मृत्यु और नरकसे उत्पन्न हुए दुःखके भी सहस्रों प्रकारके भेद हैं। अत्यन्त मलपूर्ण गर्भाशयमें उल्व (गर्भकी झिल्ली) से लिपटा हुआ यह सुकुमार-शरीर जीव, जिसकी पीठ और ग्रीवाकी अस्थियाँ कुण्डलाकार मुड़ी रहती हैं, माताके खाये हुए अत्यन्त तापप्रद खट्टे, कड़वे, चरपरे, गरम और खारे पदार्थोंसे जिसकी वेदना बहुत बढ़ जाती है, जो मल-मूत्ररूप महापङ्कमें पड़ा-पड़ा सम्पूर्ण अङ्गोंमें अत्यन्त पीड़ित होनेपर भी अपने अङ्गोंको फैलाने या सिकोड़नेमें समर्थ नहीं होता और चेतनायुक्त होनेपर भी श्वास नहीं ले सकता, अपने सैकड़ों पूर्वजन्मोंका स्मरण कर कर्मोंसे बँधा हुआ अत्यन्त दुःखपूर्वक गर्भमें पड़ा रहता है। उत्पन्न होनेके समय उसका मुख मल, मूत्र, रक्त और वीर्य आदिमें लिपटा रहता है और उसके सम्पूर्ण अस्थिबन्धन प्राजापत्य (गर्भको संकुचित करनेवाली) वायुसे अत्यन्त पीड़ित होते हैं। प्रबल प्रसूतिवायु उसका मुख नीचेको कर देती है और वह आतुर होकर बड़े क्लेशके साथ माताके गर्भाशयसे बाहर निकल पाता है।

मुनिसत्तम! उत्पन्न होनेके अनन्तर बाह्य वायुका स्पर्श होनेसे अत्यन्त मूर्च्छित होकर वह बेसुध हो जाता है। उस समय वह जीव दुर्गन्धयुक्त फोड़ेमेंसे गिरे हुए किसी कण्टक-विद्ध अथवा आरेसे चीरे हुए कीड़ेके समान पृथिवीपर गिरता है। उसे स्वयं खुजलाने अथवा करवट लेनेकी भी शक्ति नहीं रहती। वह स्नान तथा दुग्धपानादि आहार भी दूसरेकी ही इच्छापर निर्भर करता है। अपवित्र (मल-मूत्रादिमें सने हुए) बिस्तरपर पड़ा रहता है, उस समय कीड़े और मच्छर आदि उसे काटते हैं, तथापि वह उन्हें दूर करनेमें भी असमर्थ रहता है।

इस प्रकार जन्मके समय और उसके अनन्तर बाल्यावस्थामें जीव आधिभौतिक, आध्यात्मिक आदि अनेकों दुःख भोगता है। अज्ञानरूप अन्धकारसे आवृत होकर मूढहृदय पुरुष यह नहीं जानता कि 'मैं कहाँसे आया हूँ? कौन हूँ? कहाँ जाऊँगा? मेरा स्वरूप क्या है? मैं किस बन्धनसे बँधा हुआ हूँ? इस बन्धनका क्या कारण है अथवा यह अकारण ही प्राप्त हुआ है? मुझे क्या करना चाहिये और क्या न करना चाहिये? क्या कहना चाहिये और क्या न कहना चाहिये? धर्म क्या है? अधर्म क्या है? किस अवस्थामें मुझे किस प्रकार रहना चाहिये? मेरा क्या कर्तव्य है और क्या अकर्तव्य है? अथवा क्या गुणमय और क्या दोषमय है?' इस प्रकार पशुके समान विवेकशून्य शिश्नोदरपरायण पुरुष अज्ञानजनित महान् दुःख भोगते हैं*।

द्विज! अज्ञान तामसिक भावरूप विकार है; अतः अज्ञानी पुरुषोंकी तामसिक कर्मोंके आरम्भमे प्रवृत्ति होती है; इससे वैदिक कर्मोंका लोप हो जाता है। मनीषिजनोंने कर्म-लोपका फल नरक बतलाया है; इसलिये अज्ञानी पुरुषोंको इहलोक और परलोक दोनों जगह अत्यन्त ही दुःख भोगना पड़ता है। शरीरके जरा-जर्जरित हो जानेपर पुरुषके अङ्ग-प्रत्यङ्ग शिथिल हो जाते हैं, उसके दाँत पुराने होकर उखड़ जाते हैं और शरीर झुर्रियों तथा नस-नाडियोंसे आवृत हो जाता है। उसकी दृष्टि दूरस्थ विषयके ग्रहण करनेमें असमर्थ हो जाती है, नेत्रोंके तारे गोलकोंमें घुस जाते हैं, नासिकाके रन्ध्रोंमेंसे बहुत-से रोम बाहर निकल आते हैं और शरीर काँपने लगता है। उसकी समस्त हड्डियाँ दिखलायी देने लगती हैं, मेरुदण्ड झुक जाता है तथा जठराग्निके मन्द पड़ जानेसे उसके आहार और पुरुषार्थ कम हो जाते हैं। उस समय उसकी चलना-फिरना, उठना-बैठना और सोना आदि सभी चेष्टाएँ बड़ी कठिनतासे होती हैं। उसके श्रोत्र और नेत्रोंकी शक्ति मन्द पड़ जाती है तथा लार बहते रहनेसे उसका मुख मलिन हो जाता

* अज्ञानतमसाच्छन्नो मूढान्तःकरणो नरः।
न जानाति कुतः कोऽहं क्वाहं गन्ता किमात्मकः॥
केन बन्धेन बद्धोऽहं कारणं किमकारणम्।
किं कार्यं किमकार्यं वा किं वाच्यं किं च नोच्यते॥
को धर्मः कश्च वाधर्मः कस्मिन् वर्तेऽथ वा कथम्।
किं कर्तव्यमकर्तव्यं किं वा किं गुणदोषवत्॥
एवं पशुसमैर्मूढैरज्ञानप्रभवं महत्।
अवाप्यते नरैर्दुःखं शिश्नोदरपरायणैः॥
(वि० पु० ६।५।२१—२४)

है। अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ स्वाधीन न रहनेके कारण वह सब प्रकार मरणासन्न हो जाता है तथा स्मरणशक्तिके क्षीण हो जानेसे वह उसी समय अनुभव किये हुए समस्त पदार्थोंको भी भूल जाता है। उसे एक वाक्य उच्चारण करनेमें भी महान् परिश्रम होता है तथा श्वास और खाँसी आदिके महान् कष्टके कारण वह दिन-रात जागता रहता है। वृद्ध पुरुष दूसरोंकी सहायतासे ही उठता तथा दूसरोंके बिठानेसे ही बैठ सकता है, अतः वह अपने सेवक और स्त्री-पुत्रादिके लिये सदा अनादरका पात्र बना रहता है। उसका समस्त शौचाचार नष्ट हो जाता है तथा भोग और भोजनकी लालसा बढ़ जाती है; उसके परिजन भी उसकी हँसी उड़ाते हैं और समस्त बन्धुजन उससे उदासीन हो जाते हैं। अपनी युवावस्थाकी चेष्टाओंको अन्य जन्ममें अनुभव की हुई-सी स्मरण करके वह अत्यन्त संतापवश दीर्घ निःश्वास छोड़ता रहता है।

इस प्रकार वृद्धावस्थामें ऐसे ही अनेकों दुःख अनुभव कर उसे मरणकालमें जो कष्ट भोगने पड़ते हैं, वे भी सुनो। उसके कण्ठ और हाथ-पैर शिथिल पड़ जाते है, शरीरमें अत्यन्त कम्प छा जाता है, उसे बार-बार ग्लानि होती और कभी कुछ चेतना भी आ जाती है। उस समय वह अपने हिरण्य (सोना), धान्य, पुत्र-स्त्री, भृत्य और गृह आदिके प्रति 'इन सबका क्या होगा?' इस प्रकार अत्यन्त ममतासे व्याकुल हो जाता है। उस समय मर्मभेदी क्रकच (आरे) तथा यमराजके विकराल बाणके समान महाभयंकर रोगोंसे उसके प्राण-बन्धन कटने लगते हैं। उसकी आँखोंके तारे चढ़ जाते हैं, वह अत्यन्त पीड़ासे बारंबार हाथ-पैर पटकता है तथा उसके तालु और ओंठ सूखने लगते हैं। फिर क्रमशः दोष-समूहसे उसका कण्ठ रुक जाता है; अतः वह 'घर्घर' शब्द करने लगता है तथा ऊर्ध्वश्वाससे पीडित और महान् तापसे व्याप्त होकर क्षुधा-तृष्णासे व्याकुल हो उठता है। ऐसी अवस्थामें भी यमदूतोंसे पीड़ित होता हुआ वह बड़े क्लेशसे शरीर छोड़ता है और अत्यन्त कष्टसे कर्मफल भोगनेके लिये यातना-देह प्राप्त करता है। मरणकालमें मनुष्योंको ये और ऐसे ही अन्य भयानक कष्ट भोगने पड़ते हैं; अब, मरणोपरान्त उन्हें नरकमें जो यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं, वह सुनो।

प्रथम यम-किङ्कर अपने पाशोंमें बाँधते हैं, फिर उनके दण्ड-प्रहार सहने पड़ते हैं, तदनन्तर यमराजका दर्शन होता है और वहाँतक पहुँचनेमें बड़ा दुर्गम मार्ग देखना पड़ता है। द्विज! फिर तप्त बालुका, अग्नि-यन्त्र और शस्त्रादिसे महाभयंकर नरकोंमें जो यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं, वे [illegible] असह्य होती हैं। आरेसे चीरे जाने, [illegible] आग) में तपाये जाने, कुल्हाड़ीसे काटे जाने, [illegible] जाने, शूलीपर चढ़ाये जाने, [illegible] मुखमें डाले जाने, [illegible] नोचने, हाथियोंसे दलित होने, तेलमें पकाये जाने, [illegible] दलदलमें फँसने, ऊपर ले जाकर नीचे गिराये जाने और [illegible] यन्त्रद्वारा दूर फेंके जानेसे नरकनिवासियोंको [illegible] कारण जो-जो कष्ट उठाने पड़ते हैं, उनकी गणना नहीं हो सकती।

द्विजश्रेष्ठ! केवल नरकमें ही दुःख हों, सो [illegible] स्वर्गमें भी पतनके भयसे डरे हुए [illegible] जीवको कभी शान्ति नहीं मिलती। [illegible] भोगके अनन्तर बार-बार वह गर्भमें जाता है और [illegible] ग्रहण करता है तथा फिर कभी गर्भमें ही नष्ट हो [illegible] और कभी जन्म लेते ही मर जाता है। जो उत्पन्न हुआ है वह जन्मते ही, बाल्यावस्थामें, युवावस्थामें, [illegible] जराग्रस्त होनेपर अवश्य मर जाता है। [illegible] तबतक नाना प्रकारके कष्टोंसे घिरा रहता है, [illegible] कपासका बीज तन्तुओंके कारण सूत्रोंसे घिरा रहता है। [illegible] उपार्जन, रक्षण और नाशमें तथा इष्ट [illegible] होनेपर भी मनुष्योंको अनेकों दुःख उठाने पड़ते हैं*।

मैत्रेय! मनुष्योंको जो-जो वस्तुएँ प्रिय हैं, [illegible] दुःखरूपी वृक्षका बीज हो जाती हैं। स्त्री, पुत्र, मित्र, [illegible] गृह, क्षेत्र और धन आदिसे पुरुषोंको जैसा दुःख होता है, वैसा सुख नहीं होता। इस प्रकार सांसारिक दुःख[illegible] तापसे जिनका अन्तःकरण तप्त हो रहा है, उन [illegible] मोक्षरूपी वृक्षकी घनी छायाको छोड़कर और [illegible] सकता है? अतः मेरे मतमें गर्भ, जन्म और [illegible] स्थानोंमें प्रकट होनेवाले आध्यात्मिकादि त्रिविध दुः[illegible] एकमात्र सनातन ओषधि भगवत्प्राप्ति ही है, [illegible] लक्षण निरतिशय आनन्दरूप सुखकी प्राप्ति ही है। [illegible] पण्डितजनोंको भगवत्प्राप्तिका प्रयत्न करना चाहिये। [illegible] निष्काम कर्मयोग और ज्ञानयोग ये दो ही [illegible] की प्राप्तिके कारण कहे गये हैं†।

---

* द्रव्यनाशे तथोत्पत्तौ पालने च [illegible]
भवन्त्यनेकदुःखानि [illegible]
([illegible])

† यथा प्र[illegible] [illegible]
तदेव [illegible]

ज्ञान दो प्रकारका है—शास्त्रजन्य तथा विवेकजन्य। शब्दब्रह्मका ज्ञान शास्त्रजन्य है और परब्रह्मका बोध विवेकजन्य। विप्रर्षे! अज्ञान घोर अन्धकारके समान है। उसको नष्ट करनेके लिये इन्द्रियोद्भव* ज्ञान दीपकवत् और विवेकज ज्ञान सूर्यके समान है। मुनिश्रेष्ठ! इस विषयमें वेदार्थका स्मरण कर मनुजीने जो कुछ कहा है, वह बतलाता हूँ, श्रवण करो। ब्रह्म दो प्रकारका है—शब्दब्रह्म और परब्रह्म। शब्दब्रह्म (शास्त्रजन्य ज्ञान) में निपुण हो जानेपर जिज्ञासु विवेकजन्य ज्ञानके द्वारा परब्रह्मको प्राप्त कर लेता है †।

अथर्ववेदकी श्रुति है कि विद्या दो प्रकारकी है—परा और अपरा। परासे अक्षर (सच्चिदानन्द) ब्रह्मकी प्राप्ति होती है और अपरा ऋगादि वेदत्रयीरूपा है। जो अव्यक्त, अजर, अचिन्त्य, अज, अव्यय, अनिर्देश्य, अरूप, पाणि-पादादिशून्य, व्यापक, सर्वगत, नित्य, भूतोंका आदिकारण, स्वय कारणहीन तथा जिससे सम्पूर्ण व्याप्य और व्यापक प्रकट हुआ है और जिसे पण्डितजन ज्ञाननेत्रोंसे देखते हैं, वह परम धाम ही अक्षर ब्रह्म है, मुमुक्षुओंको उसीका ध्यान करना चाहिये और वही भगवान् विष्णुका वेदवचनोंसे प्रतिपादित अति सूक्ष्म परम पद है। परमात्माका वह स्वरूप ही 'भगवत्' शब्दका वाच्य है और 'भगवत्' शब्द ही उस आद्य एवं अक्षय स्वरूपका वाचक है *।

जिसका ऐसा स्वरूप बतलाया गया है, उस परमात्माके तत्त्वका जिसके द्वारा वास्तविक ज्ञान होता है, वही परम ज्ञान (परा विद्या) है। त्रयीमय ज्ञान (कर्मकाण्ड) इससे पृथक् (अपरा विद्या) है। द्विज! वह ब्रह्म यद्यपि शब्दका विषय नहीं है, तथापि उपासनाके लिये उसका 'भगवत्' शब्दसे उपचारतः कथन किया जाता है। मैत्रेय! समस्त कारणोंके कारण, महाविभूतिसंज्ञक परब्रह्मके लिये ही 'भगवत्' शब्दका प्रयोग हुआ है। इस ('भगवत्' शब्द) में भकारके दो अर्थ हैं—पोषण करनेवाला और धारण करनेवाला तथा गकारके अर्थ कर्म-फल प्राप्त करानेवाला, लय करनेवाला और रचयिता हैं। सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य—इन छःका नाम 'भग' है। उस अखिल-भूतात्मामें समस्त भूतगण निवास करते हैं और वह स्वयं भी समस्त भूतोंमें विराजमान है, इसलिये वह अव्यय (परमात्मा) ही वकारका अर्थ है †। मैत्रेय! इस प्रकार यह महान् 'भगवान्' शब्द परब्रह्मस्वरूप श्रीवासुदेवका ही वाचक है, किसी औरका नहीं। पूज्य पदार्थोंको सूचित करनेके लक्षणसे युक्त इस

कलत्रपुत्रमित्रार्थगृहक्षेत्रधनादिकैः ।
क्रियते न तथा भूरि सुखं पुंसां यथासुखम् ॥
इति संसारदुःखार्कतापतापितचेतसाम् ।
विमुक्तिपादपच्छायामृते कुत्र सुखं नृणाम् ॥
तदस्य त्रिविधस्यापि दुःखजातस्य वै मम ।
गर्भजन्मजराद्येषु स्थानेषु प्रभविष्यतः ॥
निरस्तातिशयाह्लादसुखभावैकलक्षणा ।
भेषजं भगवत्प्राप्तिरेकान्तात्यन्तिकी मता ॥
तस्मात्तत्प्राप्तये यत्नः कर्तव्यः पण्डितैर्नरैः ।
तत्प्राप्तिहेतुर्ज्ञानं च कर्म चोक्तं महामुने ॥
(वि० पु० ६ । ५ । ५५—६०)

* श्रवण-इन्द्रियद्वारा शास्त्रका ग्रहण होता है; इसलिये शास्त्रजन्य ज्ञान ही 'इन्द्रियोद्भव' शब्दसे कहा गया है।

† द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत् ।
शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥
(वि० पु० ६ । ५ । ६४)

* यत्तदव्यक्तमजरमचिन्त्यमजमव्ययम् ।
अनिर्देश्यमरूपं च पाणिपादाद्यसंयुतम् ॥
विभुं सर्वगतं नित्यं भूतयोनिरकारणम् ।
व्याप्यव्याप्तं यतः सर्वं यद् वै पश्यन्ति सूरयः ॥
तद् ब्रह्म तत् परं धाम तद् ध्येयं मोक्षकाङ्क्षिभिः ।
श्रुतिवाक्योदितं सूक्ष्मं तद् विष्णोः परमं पदम् ॥
तदेव भगवद्वाच्यं स्वरूपं परमात्मनः ।
वाचको भगवच्छब्दस्तस्याद्यस्याक्षयात्मनः ॥
(वि० पु० ६ । ५ । ६६—६९)

† शुद्धे महाविभूत्याख्ये परे ब्रह्मणि शब्द्यते ।
मैत्रेय भगवच्छब्दः सर्वकारणकारणे ॥
सम्भर्तेति तथा भर्ता भकारोऽर्थद्वयान्वितः ।
नेता गमयिता स्रष्टा गकारार्थस्तथा मुने ॥
ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥
वसन्ति तत्र भूतानि भूतात्मन्यखिलात्मनि ।
स च भूतेष्वशेषेषु वकारार्थस्ततोऽव्ययः ॥
(वि० पु० ६ । ५ । ७२—७५)

'भगवान्' शब्दका परमात्मामें मुख्य प्रयोग है तथा औरोंके लिये गौण; क्योंकि जो समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति और नाश, आना और जाना तथा विद्या और अविद्याको जानता है, वही 'भगवान्' कहलाने योग्य है। त्याग करनेयोग्य राजस-तामस गुण और क्लेश आदिको छोड़कर सम्पूर्ण ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज ही 'भगवत्' शब्दके वाच्य हैं। उन परमात्मामें ही समस्त भूत बसते हैं और वे स्वयं भी सबके आत्मारूपसे सकल भूतोंमें विराजमान हैं, इसलिये उन्हें वासुदेव भी कहते हैं *।

पूर्वकालमें खाण्डिक्य जनकके पूछनेपर केशिध्वजने उनसे भगवान् अनन्तके 'वासुदेव' नामकी यथार्थ व्याख्या इस प्रकार की थी। 'प्रभु समस्त भूतोंमें व्याप्त हैं और सम्पूर्ण भूत भी उन्हींमें रहते हैं तथा वे ही संसारके रचयिता और रक्षक हैं; इसलिये वे 'वासुदेव' कहलाते हैं।' मुने! वे सर्वात्मा समस्त आवरणोंसे परे हैं। समस्त भूतोंकी प्रकृति और प्रकृतिके विकार तथा गुण और उनके कार्य आदि दोषोंसे विलग हैं। पृथिवी और आकाशके बीचमें जो कुछ स्थित है, वह सब उनसे व्याप्त है। वे सम्पूर्ण कल्याण-गुणोंके स्वरूप हैं, उन्होंने अपनी शक्तिके लेशमात्रसे ही सम्पूर्ण प्राणियोंको व्याप्त किया है और वे अपनी इच्छासे स्वमनोऽनुकूल महद्विग्रहरूप अवतार धारणकर समस्त संसारका परम हित करते हैं। तेज, बल, ऐश्वर्य, महाविज्ञान, वीर्य और शक्ति आदि गुणोंकी वे एकमात्र राशि हैं। प्रकृति आदिसे भी परे हैं और उन परावरेश्वरमें अविद्यादि सम्पूर्ण क्लेशोंका अत्यन्ताभाव है। वे ईश्वर ही समष्टि और व्यष्टिरूप हैं, वे ही व्यक्त और अव्यक्तस्वरूप हैं, वे ही सबके स्वामी, सबके साक्षी और सब कुछ जाननेवाले हैं तथा उन्हींकी सर्वशक्तिमान् परमेश्वर-संज्ञा है। जिसके द्वारा वे निर्दोष, विशुद्ध, निर्मल और एकरूप परमात्मा देखे या जाने जाते हैं, उसीका नाम 'ज्ञान' है और जो इसके विपरीत है, वही 'अज्ञान' है †।

केशिध्वज और खाण्डिक्यका संवाद

श्रीपराशरजी कहते हैं—वे पुरुषोत्तम स्वाध्याय और संयमद्वारा देखे जाते हैं, ब्रह्मकी प्राप्तिका कारण होनेसे ये भी ब्रह्म ही कहलाते है। स्वाध्यायसे योगका और योगसे स्वाध्याय-का आश्रय करे; क्योंकि एक-दूसरेके सहायक होनेसे ये दोनों परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। इस प्रकार स्वाध्याय और योगरूप सम्पत्तिसे परमात्मा जाने जाते हैं। निराकार परब्रह्म परमात्मा-को चर्म-चक्षुओंसे नहीं देखा जा सकता, उन्हें देखनेके लिये स्वाध्याय और योग ही दो नेत्र हैं।

---

* उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामागतिं गतिम्। वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति॥
ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः। भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः॥
सर्वाणि तत्र भूतानि वसन्ति परमात्मनि। भूतेषु च स सर्वात्मा वासुदेवस्ततः स्मृतः॥
(वि० पु० ६।५।७८—८०)

† भूतेषु वसते सोऽन्तर्वसन्त्यत्र च तानि यत्। धाता विधाता जगतां वासुदेवस्ततः प्रभुः॥
स सर्वभूतप्रकृतिं विकारान् गुणादिदोषांश्च मुने व्यतीतः।
अतीतसर्वावरणोऽखिलात्मा तेनास्तृतं यद्भुवनान्तराले॥
समस्तकल्याणगुणात्मकोऽसौ स्वशक्तिलेशावृतभूतवर्गः।
इच्छागृहीताभिमतोरुदेहः संसाधिताशेषजगद्धितो यः॥
तेजोबलैश्वर्यमहावबोधसुवीर्यशक्त्यादिगुणैकराशिः।
परः पराणां सकला न यत्र क्लेशादयः सन्ति परावरेशे॥
स ईश्वरो व्यष्टिसमष्टिरूपो व्यक्तस्वरूपोऽप्रकटस्वरूपः।
सर्वेश्वरः सर्वदृक् सर्ववेत्ता समस्तशक्तिः परमेश्वराख्यः॥
संज्ञायते येन तदस्तदोषं शुद्धं परं निर्मलमेकरूपम्।
संदृश्यते वाप्यवगम्यते वा तज्ज्ञानमज्ञानमतोऽन्यदुक्तम्॥
(वि० पु० ६।५।८२—८७)

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवन् ! जिसे जान लेनेपर मैं अखिलाधार परमेश्वरको देख सकूँगा, उस योगको जानना चाहता हूँ; उसका वर्णन कीजिये ।

श्रीपराशरजीने कहा—पूर्वकालमें जिस प्रकार इस योगका केशिध्वजने महात्मा खाण्डिक्य जनकसे वर्णन किया था, मैं तुम्हें वही बतलाता हूँ ।

श्रीमैत्रेयजीने पूछा—ब्रह्मन् ! ये खाण्डिक्य और विद्वान् केशिध्वज कौन थे और उनका योगसम्बन्धी संवाद किस प्रकार हुआ था ?

श्रीपराशरजीने कहा—पूर्वकालमें धर्मध्वज जनक नामक एक राजा थे । उनके अमितध्वज और कृतध्वज नामक दो पुत्र हुए । इनमें कृतध्वज सर्वदा अध्यात्मशास्त्रमें रत रहता था । कृतध्वजका पुत्र केशिध्वज नामसे विख्यात हुआ और अमितध्वजका पुत्र खाण्डिक्य जनक हुआ । पृथिवीमण्डलमें खाण्डिक्य कर्म-मार्गमें अत्यन्त निपुण था और केशिध्वज अध्यात्मविद्याका विशेषज्ञ था । वे दोनों परस्पर एक-दूसरेको पराजित करनेकी चेष्टामें लगे रहते थे । अन्तमें, कालक्रमसे केशिध्वजने खाण्डिक्यको राज्यच्युत कर दिया । राज्यभ्रष्ट होनेपर खाण्डिक्य पुरोहित और मन्त्रियोंके सहित थोड़ी-सी सामग्री लेकर दुर्गम वनोंमें चला गया । केशिध्वज ज्ञानयोगका आश्रय लेनेवाला था तो भी कर्मद्वारा मृत्युको पार करनेके लिये ज्ञान-दृष्टि रखते हुए अर्थात् निष्कामभावसे उसने अनेकों यज्ञोंका अनुष्ठान किया ।

योगिश्रेष्ठ ! एक दिन जब राजा केशिध्वज यज्ञानुष्ठानमें स्थित थे, उनकी धर्मधेनु (हविके लिये दूध देनेवाली गौ) को निर्जन वनमें एक भयंकर सिंहने मार डाला । व्याघ्रद्वारा गौको मारी गयी सुन राजाने ऋत्विजोंसे पूछा कि 'इसमें क्या प्रायश्चित्त करना चाहिये ?' ऋत्विजोंने कहा—'हम इस विषयमें नहीं जानते; आप कशेरुसे पूछिये ।' जब राजाने कशेरुसे यह बात पूछी तो उन्होंने भी उसी प्रकार कहा कि 'राजेन्द्र ! मैं इस विषयमें नहीं जानता । आप भृगुपुत्र शुनकसे पूछिये ।' मुने ! जब राजाने शुनकसे जाकर पूछा तो उन्होंने भी कहा—'इस समय भूमण्डलमें इस बातको केवल वह तुम्हारा शत्रु खाण्डिक्य ही जानता है ।' यह सुनकर केशिध्वजने कहा—'मुनिश्रेष्ठ ! मैं अपने शत्रु खाण्डिक्यसे ही यह बात पूछने जाता हूँ ।'

ऐसा कह राजा केशिध्वज, कृष्ण मृगचर्म धारणकर रथपर आरूढ हो वनमें, जहाँ महामति खाण्डिक्य रहते थे, आये । खाण्डिक्यने अपने शत्रुको आते देखकर धनुष चढा लिया और क्रोधसे नेत्र लाल करके कहा ।

खाण्डिक्य बोले—अरे ! क्या तू कृष्णाजिनरूप कवच बाँधकर हमलोगोंको मारेगा ? क्या तू यह समझता है कि कृष्ण मृगचर्म धारण किये हुए मुझपर यह प्रहार नहीं करेगा ? किंतु तू मेरे हाथसे जीवित बचकर नहीं जा सकता; क्योंकि तू मेरा राज्य छीननेवाला शत्रु है ।

केशिध्वजने कहा—खाण्डिक्य ! मैं आपसे एक संदेह पूछनेके लिये आया हूँ, आपको मारनेके लिये नहीं आया ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—यह सुनकर महामति खाण्डिक्यने अपने सम्पूर्ण पुरोहित और मन्त्रियोंसे एकान्तमें सलाह की । मन्त्रियोंने कहा कि 'इस समय शत्रु आपके वशमें है, इसे मार डालना चाहिये । इसको मार देनेपर यह सम्पूर्ण पृथिवी आपके अधीन हो जायगी ।' खाण्डिक्यने कहा—'इसके मारे जानेपर अवश्य सम्पूर्ण पृथिवी मेरे अधीन हो जायगी; किंतु इसे पारलौकिक जय प्राप्त होगी और मुझे सम्पूर्ण पृथिवी । परंतु यदि इसे नहीं मारूँगा तो मुझे पारलौकिक जय प्राप्त होगी और इसे सारी पृथिवी । मैं पारलौकिक जयसे पृथिवीको अधिक नहीं मानता; क्योंकि परलोक-जय अनन्तकालके लिये होती है और पृथिवी तो थोड़े ही दिन रहती है । । इसलिये मैं इसे मारूँगा नहीं, यह जो कुछ पूछेगा, बतला दूँगा ।'

तब खाण्डिक्य जनकने अपने शत्रु केशिध्वजके पास आकर कहा—'तुम्हें जो कुछ पूछना हो, पूछ लो; मैं उसका उत्तर दूँगा ।'

द्विज ! तब केशिध्वजने जिस प्रकार धर्मधेनु मारी गयी थी, वह सब वृत्तान्त खाण्डिक्यसे कहा और उसके लिये प्रायश्चित्त पूछा । खाण्डिक्यने भी वह सम्पूर्ण प्रायश्चित्त, जिसका कि उसके लिये विधान था, केशिध्वजको विधिपूर्वक बतला दिया । तदनन्तर महात्मा खाण्डिक्यकी आज्ञा लेकर वे यज्ञभूमिमें आये और क्रमशः उन्होंने सम्पूर्ण कर्म समाप्त किया ।

फिर कालक्रमसे यज्ञ समाप्त होनेपर अवभृथ (यज्ञान्त) स्नानके अनन्तर कृतकृत्य होकर राजा केशिध्वजने सोचा । 'मैंने सम्पूर्ण ऋत्विज् ब्राह्मणोंका पूजन किया, समस्त सदस्योंका मान किया, याचकोंको उनकी इच्छित वस्तुएँ दीं, लोकाचारके अनुसार जो कुछ कर्तव्य था, वह सभी मैंने किया तथापि न जाने, क्यों मेरे चित्तमें किसी क्रियाका अभाव खटक रहा है ?' इस प्रकार सोचते-सोचते राजाको स्मरण हुआ कि 'मैंने अभीतक खाण्डिक्यको गुरु-दक्षिणा नहीं दी ।' मैत्रेय ! तब वे रथपर

चढ़कर फिर उसी दुर्गम वनमें गये, जहाँ खाण्डिक्य रहते थे। खाण्डिक्य भी उन्हें फिर शस्त्र धारण किये आते देख मारनेके लिये उद्यत हुए। तब राजा केशिध्वजने कहा—'खाण्डिक्य! तुम क्रोध न करो, मैं तुम्हारा कोई अनिष्ट करनेके लिये नहीं आया। मैंने तुम्हारे उपदेशानुसार अपना यज्ञ भली प्रकार समाप्त कर दिया है, अब मैं तुम्हें गुरु-दक्षिणा देना चाहता हूँ, तुम्हें जो इच्छा हो माँग लो।'

तब खाण्डिक्यने फिर अपने मन्त्रियोंसे परामर्श किया कि 'यह मुझे गुरु-दक्षिणा देना चाहता है, मैं इससे क्या माँगूँ?' मन्त्रियोंने कहा—'आप इससे सम्पूर्ण राज्य माँग लीजिये।'

तब महामति राजा खाण्डिक्यने उनसे [illegible] जैसे लोग कुछ ही दिन रहनेवाला [illegible] है? यह ठीक है, आपलोग स्वार्थ-[illegible] देनेवाले हैं; किंतु 'परमार्थ क्या और कैसा है?' [illegible] आपको विशेष ज्ञान नहीं है।'

यह कहकर राजा खाण्डिक्य केशिध्वजके [illegible] बोले—'आप अध्यात्मज्ञानरूप परमार्थ-[illegible] हैं। सो यदि आप मुझे गुरु-दक्षिणा देना ही चाहते हैं तो [illegible] कर्म (साधन) समस्त क्लेशोंकी शान्ति [illegible] वह बतलाइये।'

अष्टाङ्ग-योगका प्रतिपादन

केशिध्वज बोले—क्षत्रियोंको तो राज्य-प्राप्तिसे अधिक प्रिय और कुछ भी नहीं होता, फिर तुमने मेरा निष्कण्टक राज्य क्यों नहीं माँगा?

खाण्डिक्यने कहा—केशिध्वज! इन राज्यादिकी आकाङ्क्षा तो मूर्खोंको हुआ करती है। क्षत्रियोंका धर्म तो यही है कि प्रजाका पालन करें और अपने राज्यके विरोधियोंका धर्म-युद्धसे वध करें। याचना करना उनका धर्म नहीं है, यह महात्माओंका मत है। इसीलिये मैंने अविद्याके अन्तर्गत समझकर आपका राज्य नहीं माँगा। जो लोग अहंकाररूपी मदिराका पान करके उन्मत्त हो रहे हैं तथा जिनका चित्त ममताग्रस्त हो रहा है, वे मूढ़जन ही राज्यकी अभिलाषा करते हैं; मेरे-जैसे लोग राज्यकी इच्छा कभी नहीं करते।

श्रीपराशरजी कहते हैं—तब राजा केशिध्वजने प्रसन्न होकर खाण्डिक्य जनकको साधुवाद दिया और प्रीतिपूर्वक कहा, मेरा वचन सुनो; मैं शास्त्र-विहित कर्मद्वारा ही मृत्युको पार करनेकी इच्छासे राज्य तथा विविध यज्ञोंका अनुष्ठान करता हूँ और नाना भोग भोगकर अपने पुण्योंका क्षय कर रहा हूँ। कुलनन्दन! बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुम्हारा मन विवेकसम्पन्न हुआ है, अतः तुम अविद्याका स्वरूप सुनो। संसार-वृक्षकी बीजभूता यह अविद्या दो प्रकारकी है—देहादि अनात्म-पदार्थोंमें आत्मबुद्धि और जो अपना नहीं है, उस सांसारिक पदार्थको अपना मानना। यह कुमति जीव मोहरूपी अन्धकारसे आवृत होकर इस पञ्चभूतात्मक देहमें 'मैं' और 'मेरेपन' का भाव करता है। जब कि आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी आदिसे आत्मा सर्वथा पृथक् है तो कौन बुद्धिमान् व्यक्ति शरीरमें आत्मबुद्धि करेगा? और आत्माके देहसे परे होनेपर भी देहके उपभोग्य [illegible] को कौन प्राज्ञ पुरुष 'अपना' मान सकता है? इस प्रकार इस शरीरके अनात्मा होनेसे इससे उत्पन्न हुए [illegible] भी कौन विद्वान् अपनापन करेगा? मनुष्य [illegible] ही उपभोगके लिये करता है, किंतु [illegible] पृथक् है, तो वे कर्म केवल बन्धनके ही हेतु होते हैं। [illegible] मिट्टीके घरको जल और मिट्टीसे लीपते-पोतते हैं, उसी प्रकार यह पार्थिव शरीर भी अन्न[illegible] और [illegible] ही स्थिर रहता है। यदि यह पञ्चभूतात्मक शरीर [illegible] पदार्थोंसे पुष्ट होता है तो पुरुषने [illegible] भोग ही क्या किया। यह जीव अनेक सहस्र जन्मोंतक सांसारिक भोगोंमें [illegible] उन्हींकी वासनारूपी धूलिसे आच्छादित हो [illegible] केवल मोहरूपी श्रमको ही प्राप्त होता है। [illegible] गरम जलसे उसकी वह धूलि धो दी जाती है [illegible] पथके पथिकका मोहरूपी श्रम शान्त हो जाता है। [illegible] शान्त हो जानेपर पुरुष स्वस्थ-चित्त हो जाता है और [illegible] एवं निर्बाध परम निर्वाणपद प्राप्त कर लेता है। [illegible] ज्ञानमय निर्मल आत्मा निर्वाण-स्वरूप ही है, दुःख [illegible] अज्ञानमय धर्म हैं, वे प्रकृतिके हैं [illegible]। [illegible] जिस प्रकार स्थाली (बटलोई) [illegible] नहीं होता, तथापि स्थालीके [illegible] ही [illegible] आदि धर्म प्रकट हो जाते हैं, उसी प्रकार [illegible] ही आत्मा अहंकारादिसे दूषित होकर प्राकृत [illegible] करता है; वास्तवमें तो वह [illegible]

है। इस प्रकार मैंने तुम्हें यह अविद्याका बीज बतलाया; इस अविद्यासे प्राप्त हुए क्लेशोंको नष्ट करनेवाला योगसे अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

खाण्डिक्य बोले--योगवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महाभाग केशिध्वज ! तुम निमिवंशमें योगशास्त्रके मर्मज्ञ हो, अतः उस योगका वर्णन करो।

केशिध्वजने कहा--खाण्डिक्य ! जिसमें स्थित होकर ब्रह्ममें लीन हुए मुनिजन फिर स्वरूपसे च्युत नहीं होते, मैं उस योगका वर्णन करता हूँ; श्रवण करो।

मनुष्यके बन्धन और मोक्षका कारण केवल मन ही है। विषयका सङ्ग करनेसे वह बन्धनकारी और विषयशून्य होनेसे मोक्षकारक होता है; अतः विवेकज्ञानसम्पन्न मुनि अपने चित्तको विषयोंसे हटाकर मोक्षप्राप्तिके लिये ब्रह्मस्वरूप परमात्माका चिन्तन करे* । जिस प्रकार अयस्कान्तमणि (लोह-चुम्बक) अपनी शक्तिसे लोहेको खींचकर अपनेमें संयुक्त कर लेता है, उसी प्रकार ब्रह्मचिन्तन करनेवाले मुनिको परमात्मा स्वभावसे ही अपने स्वरूपमें लीन कर देता है। अपने प्रयत्नकी अपेक्षा रखनेवाली जो मनकी विशिष्ट गति है, उसका ब्रह्मके साथ संयोग होना ही 'योग' कहलाता है, जिसका योग इस प्रकारके विशिष्ट धर्मसे युक्त होता है, वह मुमुक्षु योगी कहा जाता है। जब मुमुक्षु पहले-पहल योगाभ्यास आरम्भ करता है तो उसे 'योगयुक्त योगी' कहते हैं और जब उसे परब्रह्मकी प्राप्ति हो जाती है तो वह 'विनिष्पन्नसमाधि' कहलाता है। यदि किसी विघ्नवश उस योगयुक्त योगीका चित्त दूषित हो जाता है, तो जन्मान्तरमें भी उसी पूर्वके अभ्यासको करते रहनेसे वह मुक्त हो जाता है। विनिष्पन्नसमाधि योगी तो योगाग्निसे कर्मसमूहके भस्म हो जानेके कारण उसी जन्ममें तत्काल मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

योगीको चाहिये कि अपने चित्तको ब्रह्म-चिन्तनके योग्य बनाता हुआ ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रहका निष्कामभावसे सेवन करे। संयत-चित्त हुआ स्वाध्याय, शौच, संतोष और तपका आचरण करे तथा मनको निरन्तर परब्रह्ममें लगाता रहे। ये पाँच-पाँच यम और नियम बतलाये गये हैं। इनका सकाम आचरण करनेपर पृथक्-पृथक् फल मिलते हैं और निष्कामभावसे सेवन करनेपर मोक्ष प्राप्त होता है *।

यतिको चाहिये कि भद्रासन, स्वस्तिकासन, पद्मासन, सिद्धासन आदि आसनोंमेंसे किसी एकका अवलम्बन कर यम-नियमादि गुणोंसे युक्त हो योगाभ्यास करे। अभ्यासके द्वारा जो प्राणवायुको वशमें किया जाता है, उसे 'प्राणायाम' समझना चाहिये। वह सबीज (सगुण-साकारके आलम्बनपूर्वक) और निर्बीज (निर्गुण-निराकारके आलम्बनपूर्वक) भेदसे दो प्रकारका है। सत्-शास्त्र और सत्पुरुषोंद्वारा बतलायी हुई विधिके अनुसार जब योगी प्राण और अपान वायुका एक दूसरेके द्वारा निरोध करता है तब क्रमशः रेचक और पूरक नामक दो प्राणायाम होते हैं और इन दोनोंका एक ही समय संयम करनेसे कुम्भक नामक तीसरा प्राणायाम होता है। द्विजोत्तम ! जब योगी सबीज प्राणायामका अभ्यास आरम्भ करता है तो उसका आलम्बन भगवान् अनन्त आदि सगुण-साकार रूप होता है। तदनन्तर वह प्रत्याहारका अभ्यास करते हुए शब्दादि विषयोंमें अनुरक्त हुई अपनी इन्द्रियोंको रोककर अपने चित्तकी अनुगामिनी बनाता है। ऐसा करनेसे अत्यन्त चञ्चल इन्द्रियाँ उसके वशीभूत हो जाती हैं। इन्द्रियोंको वशमें किये बिना कोई योगी योग-साधन नहीं कर सकता। इस प्रकार प्राणायामसे वायु और प्रत्याहारसे इन्द्रियोंको वशीभूत करके चित्तको शुभ आश्रयमें स्थित करे।

खाण्डिक्य बोले--महाभाग ! यह बतलाइये कि जिसका आश्रय करनेसे चित्तके सम्पूर्ण दोष नष्ट हो जाते हैं, वह चित्तका शुभाश्रय क्या है ?

केशिध्वजने कहा—राजन् ! चित्तका आश्रय ब्रह्म है, जो कि साकार और निराकार तथा सगुण और निर्गुण रूपसे स्वभावसे ही दो प्रकारका है।

---

* मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।
बन्धाय विषयासङ्गि मुक्त्यै निर्विषयं मनः ॥
विषयेभ्यः समाहृत्य विज्ञानात्मा मनो मुनिः ।
चिन्तयेन्मुक्तये तेन ब्रह्मभूतं परेश्वरम् ॥
(वि० पु० ६ । ७ । २८-२९)

* ब्रह्मचर्यमहिंसा च सत्यास्तेयापरिग्रहान् ।
सेवेत योगी निष्कामो योग्यतां स्वमनो नयन् ॥
स्वाध्यायशौचसंतोषतपांसि नियतात्मवान् ।
कुर्वीत ब्रह्मणि तथा परस्मिन् प्रवणं मनः ॥
एते यमाः सनियमाः पञ्च पञ्च च कीर्तिताः ।
विशिष्टफलदाः काम्या निष्कामाणां विमुक्तिदाः ॥
(वि० पु० ६ । ७ । ३६-३८)

भूप ! इस जगत्‌में ब्रह्म, कर्म और उभयात्मक नामसे तीन प्रकारकी भावनाएँ हैं। इनमें पहली कर्मभावना, दूसरी ब्रह्म-भावना और तीसरी उभयात्मिका भावना कहलाती है। इस प्रकार ये त्रिविध भावनाएँ हैं। सनन्दनादि मुनिजन ब्रह्मभावनासे युक्त हैं और देवताओंसे लेकर स्थावर-जंगमपर्यन्त समस्त प्राणी कर्म-भावनायुक्त हैं। हिरण्यगर्भ प्रजापति आदिमें ब्रह्मकर्ममयी उभयात्मिका-भावना है; क्योंकि वे बोध (ब्रह्मभावना) और अधिकार (कर्म-भावना) दोनोंसे युक्त हैं।

राजन् ! जबतक सांसारिक पदार्थोंका भिन्नरूपसे ज्ञान और कर्म सम्पूर्णतया क्षीण नहीं होते, तभीतक भिन्न दृष्टि रखनेवाले मनुष्योंको परब्रह्म और जगत्‌की भिन्नता प्रतीत होती है। किंतु जिस ज्ञानमें सम्पूर्ण भेद शान्त हो जाते हैं, जो सत्तामात्र और वाणीका अविषय है तथा स्वयं ही अनुभव करनेयोग्य है, वही ब्रह्मज्ञान कहलाता है। वही परमात्मा विष्णुका अरूप नामक परम रूप है, जो उनके विश्वरूपसे विलक्षण है।

राजन् ! योगाभ्यासी जन पहले-पहल उस रूपका चिन्तन नहीं कर सकते, इसलिये उन्हें श्रीहरिके विश्वमय स्थूल रूपका ही चिन्तन करना चाहिये। यह सम्पूर्ण चराचर जगत्, परब्रह्मस्वरूप भगवान् विष्णुका, उनकी शक्तिसे सम्पन्न 'विश्व' नामक रूप है।

विष्णुकी क्षेत्रज्ञ नामक चेतन शक्ति तो परा है तथा उससे भिन्न दूसरी जड शक्ति अपरा है और कर्म नामकी तीसरी शक्ति अविद्या कहलाती है। राजन् ! इस अविद्या-शक्तिसे आवृत होकर वह सर्वगामिनी क्षेत्रज्ञ-शक्ति सब प्रकारके अति विस्तृत सांसारिक कष्ट भोगा करती है। भूपाल ! अविद्या-शक्तिसे तिरोहित रहनेके कारण ही क्षेत्रज्ञ-शक्ति सम्पूर्ण चराचर प्राणियोंमें तारतम्यसे दिखलायी देती है। वह सबसे कम व्रीहि, यव आदि प्राणरहित पदार्थोंमें है। उनसे अधिक वृक्ष-पर्वतादि स्थावरोंमें, स्थावरोंसे अधिक सरीसृपादिमें और उनसे अधिक पक्षियोंमें है। पक्षियोंसे मृगोंमें और मृगोंसे पशुओंमें वह शक्ति अधिक है तथा पशुओंकी अपेक्षा मनुष्य भगवान्‌की उस शक्तिसे अधिक प्रभावित हैं। मनुष्योंसे नाग, गन्धर्व और यक्ष आदि समस्त देवगणोंमें, देवताओंसे इन्द्रमें, इन्द्रसे प्रजापतिमें और प्रजापतिसे हिरण्यगर्भमें उस (चेतन) शक्तिका विशेष प्रकाश है। राजन् ! ये सम्पूर्ण रूप उस परमेश्वरके ही शरीर हैं, क्योंकि ये सब आकाशके समान उनकी शक्तिसे व्याप्त हैं।

महामते ! विष्णु नामक ब्रह्मका दूसरा अमूर्त (निराकार) रूप है, जिसका योगिजन ध्यान करते हैं और जिसे बुधजन 'सत्' कहकर पुकारते हैं। नृप ! जिसमें कि ये सम्पूर्ण शक्तियाँ प्रतिष्ठित हैं, वही भगवान्‌का विश्वरूपसे विलक्षण द्वितीय रूप है। नरेश ! भगवान्‌का वही रूप अपनी लीलासे देव, तिर्यक् और मनुष्यादिकी योनियोंमें सर्व-शक्तिमयरूपसे प्रकट होकर चेष्टा करता है। इन रूपोंमें अप्रमेय भगवान्‌की जो व्यापक एवं अव्याहत चेष्टा होती है, वह संसारके हितके लिये ही होती है, कर्मजन्य नहीं होती। राजन् ! योगाभ्यासीको आत्म-शुद्धिके लिये भगवान् विश्व-रूपके उस सर्वपापनाशक रूपका ही चिन्तन करना चाहिये। जिस प्रकार वायुसहित अग्नि ऊँची ज्वालाओंसे युक्त होकर शुष्क तृणसमूहको जला डालता है, उसी प्रकार चित्तमें स्थित हुए भगवान् विष्णु योगियोंके समस्त पाप नष्ट कर देते हैं*। इसलिये सम्पूर्ण शक्तियोंके आधार भगवान् विष्णुमें चित्तको स्थिर करे, यही शुद्ध धारणा है।

राजन् ! तीनों भावनाओंसे अतीत भगवान् विष्णु ही योगिजनोंकी मुक्तिके लिये उनके चल-अचलरूप चित्तके उत्तम आश्रय हैं। भगवान्‌का यह सगुण-साकाररूप चित्तको अन्य आलम्बनोंसे निःस्पृह कर देता है अर्थात् उसे फिर दूसरे आश्रयकी आवश्यकता नहीं रहती। इस प्रकार चित्तका भगवान्‌में स्थिर करना ही 'धारणा' कहलाती है।

नरेन्द्र ! धारणा बिना किसी आधारके नहीं हो सकती; इसलिये भगवान्‌के जिस सगुण-साकाररूपका जिस प्रकार ध्यान करना चाहिये, वह सुनो। जो प्रसन्नवदन और कमलदलके समान सुन्दर नेत्रोंवाले हैं, सुन्दर कपोल और विशाल भालसे अत्यन्त सुशोभित हैं तथा अपने सुन्दर कानोंमें मनोहर कुण्डल पहने हुए हैं, जिनकी ग्रीवा शङ्खके समान और विशाल वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्नसे सुशोभित है, जो तरङ्गाकार त्रिवली तथा नीची नाभिवाले उदरसे सुशोभित हैं, जिनके लंबी-लंबी आठ अथवा चार भुजाएँ हैं तथा जिनके जङ्घा एवं ऊरु समानभावसे स्थित हैं और मनोहर चरणारविन्द सुघड़तासे विराजमान हैं, उन निर्मल पीताम्बरधारी ब्रह्मस्वरूप भगवान् विष्णुका चिन्तन करे। राजन् ! किरीट, हार, केयूर और कटक आदि आभूषणोंसे विभूषित, शार्ङ्ग-धनुष, शङ्ख, गदा,

* यथाग्निरुद्धतशिखः कक्षं दहति सानिलः।
तथा चित्तस्थितो विष्णुर्योगिनां सर्वकिल्बिषम्॥
(वि० पु० ६। ७। ७४)

खड्ग, चक्र तथा अक्षमालासे युक्त वरद और अभययुक्त हाथोंवाले* तथा अँगुलियोंमें धारण की हुई रत्नमयी मुद्रिकासे शोभायमान भगवान्‌के दिव्य रूपका योगीको अपना चित्त एकाग्र करके तन्मयभावसे तबतक चिन्तन करना चाहिये, जबतक यह धारणा दृढ़ न हो जाय। जब चलते-फिरते, उठते-बैठते अथवा स्वेच्छानुकूल कोई और कर्म करते हुए भी ध्येय-मूर्ति अपने चित्तसे दूर न हो तो इसे सिद्ध हुई माननी चाहिये †।

इसके दृढ़ होनेपर बुद्धिमान् व्यक्ति शङ्ख, चक्र, गदा और शार्ङ्ग आदिसे रहित भगवान्‌के स्फटिकाक्षमाला और यज्ञोपवीतधारी शान्त स्वरूपका चिन्तन करे। जब यह धारणा भी पूर्ववत् स्थिर हो जाय तो भगवान्‌के किरीट, केयूरादि आभूषणोंसे रहित रूपका स्मरण करे। तदनन्तर विज्ञ पुरुष अपने चित्तमें एक (प्रधान) अवयवविशिष्ट भगवान्‌का हृदयसे चिन्तन करे और फिर सम्पूर्ण अवयवोंको छोड़कर केवल अवयवीका ध्यान करे।

राजन्! जिसमें परमेश्वरके रूपकी ही प्रतीति होती है, ऐसी जो विषयान्तरकी स्पृहासे रहित एक अनवरत धारा है, उसे ही ध्यान कहते हैं; यह अपनेसे पूर्व यम-नियमादि छः अङ्गोंसे निष्पन्न होता है। उस ध्येय पदार्थका ही जो मनके द्वारा ध्यानसे सिद्ध होनेयोग्य कल्पनाहीन (शब्द, अर्थ और ज्ञानके संकल्पसे रहित) स्वरूप ग्रहण किया जाता है, उसे ही समाधि कहते हैं। राजन्! उस निर्विकल्प समाधिसे उत्पन्न हुआ विज्ञान प्राप्तव्य परब्रह्मतक पहुँचानेवाला है तथा सम्पूर्ण भावनाओंसे रहित एकमात्र परमात्मा ही प्रापणीय है। मुक्ति-लाभमें क्षेत्रज्ञ कर्ता है और ज्ञान करण है; ज्ञानरूपी करणके द्वारा क्षेत्रज्ञके मुक्तिरूपी कार्यको सिद्ध करके वह विज्ञान कृतकृत्य होकर निवृत्त हो जाता है। उस समय वह क्षेत्रज्ञ ब्रह्मभावसे भावित होकर परमात्मासे अभिन्न हो जाता है। भेद-ज्ञान वास्तवमें अज्ञान-जनित ही है, इसलिये भेद उत्पन्न करनेवाले अज्ञानके सर्वथा नष्ट हो जानेपर ब्रह्म और आत्मामें मिथ्या भेद कौन कर सकता है? खाण्डिक्य! इस प्रकार तुम्हारे पूछनेके अनुसार मैंने संक्षेप और विस्तारसे भी योगका वर्णन किया है।

खाण्डिक्य बोले—राजन्! आपके उपदेशसे मेरे चित्तका सम्पूर्ण मल नष्ट हो गया है। मैंने जो 'मेरा' कहा, यह भी असत्य ही है, अन्यथा ज्ञेय वस्तुको जाननेवाले तो यह भी नहीं कह सकते। 'मैं' और 'मेरा' ऐसी बुद्धि और इनका व्यवहार भी अविद्या ही है, वास्तवमें परमार्थ तो कहने-सुननेकी बात नहीं है; क्योंकि वह वाणीका अविषय है। केशिध्वज! आपने इस मुक्तिप्रद योगका वर्णन करके मेरे कल्याणके लिये सब कुछ कर दिया, अब आप सुखपूर्वक पधारिये।

श्रीपराशरजी कहते हैं—ब्रह्मन्! तदनन्तर खाण्डिक्य-द्वारा यथोचित रूपसे पूजित हो राजा केशिध्वज अपने नगरमें चले आये तथा खाण्डिक्य भी श्रीगोविन्दमें चित्त लगाकर योग सिद्ध करनेके लिये घोर वनको चले गये। वहाँ यमादि गुणोंसे युक्त होकर एकाग्रचित्तसे ध्यान करते हुए राजा खाण्डिक्य विष्णुरूप निर्मल ब्रह्ममें लीन हो गये, किंतु केशिध्वजने फलकी इच्छा न करके अनेकों शुभ कर्म किये। तथा उससे पाप और मलका क्षय हो जानेपर तापत्रयको दूर करनेवाली आत्यन्तिक सिद्धि प्राप्त कर ली।

---

* चतुर्भुज मूर्तिके ध्यानमें चारों हाथमें क्रमशः शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मकी भावना करे तथा अष्टभुजरूपका ध्यान करते समय छः हाथोंमें तो शार्ङ्ग आदि छः आयुधोंकी भावना करे तथा शेष दो हाथोंमें वरद और अभय-मुद्राका चिन्तन करे।

† प्रसन्नवदनं चारुपद्मपत्रोपमेक्षणम्। सुकपोलं सुविस्तीर्णललाटफलकोज्ज्वलम्॥
समकर्णान्तविन्यस्तचारुकुण्डलभूषणम्। कम्बुग्रीवं सुविस्तीर्णश्रीवत्साङ्कितवक्षसम्॥
वलित्रिभङ्गिना मग्ननाभिना ह्युदरेण च। प्रलम्बाष्टभुजं विष्णुमथवापि चतुर्भुजम्॥
समस्थितोरुजङ्घं च सुस्थिताङ्घ्रिवराम्बुजम्। चिन्तयेद्ब्रह्मभूतं तं पीतनिर्मलवाससम्॥
किरीटहारकेयूरकटकादिविभूषितम्॥
शार्ङ्गशङ्खगदाखड्गचक्राक्षवलयान्वितम्। वरदाभयहस्तं च मुद्रिकारत्नभूषितम्॥
चिन्तयेत्तन्मयो योगी समाधायात्ममानसम्। तावद्यावद् दृढीभूता तत्रैव नृप धारणा॥
व्रजतस्तिष्ठतोऽन्यद् वा स्वेच्छया कर्म कुर्वतः। नापयाति यदा चित्तात् सिद्धां मन्येत तां तदा॥
(वि० पु० ६। ७। ८०-८७)

शिष्यपरम्परा, माहात्म्य और उपसंहार

श्रीपराशरजी कहते हैं—मैत्रेय ! इस प्रकार मैंने तुमसे तीसरे आत्यन्तिक प्रलयका वर्णन किया, जो सनातन ब्रह्ममें लय होना रूप मोक्ष है । मैत्रेय ! मैंने तुम्हें सुननेके लिये उत्सुक देखकर यह सम्पूर्ण शास्त्रोंमें श्रेष्ठ सर्वपापविनाशक और परम पुरुषार्थका प्रतिपादक वैष्णवपुराण सुना दिया । अब तुम्हें जो और कुछ पूछना हो पूछो ।

श्रीमैत्रेयजी बोले—भगवन् ! मैंने आपसे जो कुछ पूछा था, वह सभी आप कह चुके और मैंने भी उसे श्रद्धाभक्तिपूर्वक सुना । अब मुझे और कुछ भी पूछना नहीं है । मुने ! आपकी कृपासे मेरे समस्त संदेह निवृत्त हो गये और मेरा चित्त निर्मल हो गया तथा मुझे संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयका ज्ञान हो गया । गुरो ! मैं चार प्रकारकी राशि[1] और तीन प्रकारकी शक्तियाँ[2] जान गया तथा मुझे त्रिविध भाव-भावनाओं[3]का भी सम्यक् बोध हो गया । द्विज ! आपकी कृपासे मैं, जो जानना चाहिये, वह भली प्रकार जान गया कि यह सम्पूर्ण जगत् श्रीविष्णुभगवान्‌से भिन्न नहीं है, इसलिये अब मुझे अन्य बातोंके जाननेसे कोई प्रयोजन नहीं है । महामुने ! आपके प्रसादसे मैं निस्संदेह कृतार्थ हो गया; क्योंकि मैंने वर्ण-धर्म आदि सम्पूर्ण धर्म और प्रवृत्ति तथा निवृत्तिरूप समस्त कर्म जान लिये । विप्रवर ! आप प्रसन्न हों; गुरो ! मैंने आपको जो इस सम्पूर्ण पुराणके कथन करनेका कष्ट दिया है, उसके लिये आप मुझे क्षमा करें ।

श्रीपराशरजी कहते हैं—मुने ! मैंने तुमको जो यह वेदसम्मत पुराण सुनाया है, इसके श्रवणमात्रसे सम्पूर्ण दोषोंसे उत्पन्न हुआ पापपुञ्ज नष्ट हो जाता है । इसमें मैंने तुमसे सृष्टिकी उत्पत्ति, प्रलय, वंश, मन्वन्तर और वंशोंके चरित—इन सभीका वर्णन किया है । इस ग्रन्थमें देवता, दैत्य, यक्ष और राक्षस आदिका भी वर्णन किया गया है । आत्माराम और तपोनिष्ठ मुनिजनोंके चरित्र, महापुरुषोंके विशिष्ट चरित, पृथिवीके पवित्र क्षेत्र, पवित्र नदी और समुद्र, अत्यन्त पावन पर्वत, बुद्धिमान् पुरुषोंके चरित, वर्ण-धर्म आदि धर्म तथा वेद और शास्त्रोंका भी इसमें सम्यक्‌रूपसे निरूपण हुआ है, जिनके स्मरणमात्रसे मनुष्य समस्त पापों [illegible]

जो अव्ययात्मा भगवान् [illegible] और प्रलयके एकमात्र कारण हैं उन [illegible] भी इसमें कीर्तन किया गया है । [illegible] कीर्तन करनेसे भी मनुष्य समस्त पापों [illegible] जिनका भक्तिपूर्वक लिया हुआ नाम [illegible] पिघलानेवाले अग्निके समान [illegible] अर्थात् लीन कर देनेवाला है, [illegible] करनेसे मनुष्योंको नरक-यातनाएँ [illegible] कल्मष तुरंत नष्ट हो जाता है [illegible] ब्रह्माण्ड जिनके आगे सुमेरुके [illegible] जो इसके उपादान कारण हैं, उन [illegible] रूपरहित और पापनाशक भगवान् विष्णुका [illegible] गया है ।

मुनिसत्तम ! अश्वमेध-यज्ञमें [illegible] ([illegible] करनेसे जो फल मिलता है, वही फल मनुष्य [illegible] प्राप्त कर लेता है । प्रयाग, पुष्कर, [illegible] रहकर उपवास करनेसे जो फल मिलता है, [illegible] सुननेसे प्राप्त हो जाता है । एक वर्षतक [illegible] करनेसे मनुष्यको जो महान् पुण्य [illegible] बार सुननेसे हो जाता है । [illegible] पुरीमें यमुना-स्नान करके मन्दिरमें [illegible] करनेसे जो फल मिलता है, [illegible] लगाकर इस पुराणके एक [illegible] मिल जाता है ।

यह पुराण [illegible] रक्षक, अत्यन्त [illegible] मनुष्योंके दुःस्वप्नोंको नष्ट [illegible] करनेवाला, माङ्गलिक वस्तुओंमें [illegible] तथा सम्पत्तिका देनेवाला है ।

इस आर्षपुराणको [illegible] सुनाया था । ऋभुने [illegible]

1. देखिये—प्रथम अंश अध्याय २२ श्लोक २३—३३ ।
2. „ षष्ठ अंश अध्याय ७ श्लोक ६१—६३ ।
3. „ षष्ठ अंश अध्याय ७ श्लोक ४८—५१ ।

* [illegible]
[illegible]
[illegible]

भागुरिसे कहा। फिर इसे भागुरिने स्तम्भमित्रको, स्तम्भमित्रने दधीचको, दधीचने सारस्वतको और सारस्वतने भृगुको सुनाया तथा भृगुने पुरुकुत्ससे, पुरुकुत्सने नर्मदासे और नर्मदाने धृतराष्ट्र एवं पूरणनागसे कहा। द्विज! इन दोनोंने यह पुराण नागराज वासुकिको सुनाया। वासुकिने वत्सको,वत्सने अश्वतरको, अश्वतरने कम्बलको और कम्बलने एलापुत्रको सुनाया। इसी समय मुनिवर वेदशिरा पाताललोकमें पहुँचे, उन्होंने यह समस्त पुराण प्राप्त किया और फिर प्रमतिको सुनाया और प्रमतिने उसे परम बुद्धिमान् जातुकर्णको दिया तथा जातुकर्णने अन्यान्य पुण्यशील महात्माओंको सुनाया।

पूर्वजन्ममें सारस्वतके मुखसे सुना हुआ यह पुराण पुलस्त्यजीके वरदानसे मुझे भी स्मरण हो आया। सो मैंने ज्यों-का-त्यों तुम्हें सुना दिया। अब तुम भी कलियुगके अन्तमें इसे शिनीकको सुनाओगे।

जो पुरुष इस अति गुह्य और कलिकल्मषनाशक पुराणको भक्तिपूर्वक सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य इसका प्रतिदिन श्रवण करता है, उसने सभी तीर्थोंमें स्नान कर लिया और सभी देवताओंकी स्तुति कर ली। जो पुरुष सम्पूर्ण जगत्के आधार, जीवात्माके लिये एकमात्र शरण लेने योग्य सर्वस्वरूप सर्वमय, ज्ञान और ज्ञेयरूप आदि-अन्तरहित तथा समस्त देवताओंके हितकारक अच्युत भगवान्का चित्तमें ध्यानकर इस सम्पूर्ण पुराणको सुनता है, उसे निःसदेह अश्वमेध-यज्ञका समग्र फल प्राप्त होता है। जिसके आदि, मध्य और अन्तमें अखिल जगत्की सृष्टि, स्थिति तथा सहारमें समर्थ ब्रह्मज्ञानमय चराचर रूप जगत्के गुरु भगवान् अच्युतका ही कीर्तन हुआ है, उस निर्मल और परम शुद्ध पुराणको सुनने, पढ़ने और धारण करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह सम्पूर्ण त्रिलोकीमें और कहीं प्राप्त नहीं हो सकता; क्योंकि एकान्त मुक्तिरूप सिद्धिको देनेवाले भगवान् विष्णु ही इसके प्राप्तव्य फल हैं। जिनमें चित्त लगानेवाला कभी नरकमें नहीं जा सकता, जिनके स्मरणमें स्वर्ग भी विघ्नरूप है, जिनमें चित्त लग जानेपर ब्रह्मलोक भी अति तुच्छ प्रतीत होता है तथा जो अव्यय प्रभु विशुद्धचित्त पुरुषोंके हृदयमें स्थित होकर उन्हें मोक्ष देते हैं, उन्हीं अच्युत-का कीर्तन करनेसे यदि पाप विलीन हो जाते हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? यज्ञवेत्ता कर्मनिष्ठलोग यज्ञोंद्वारा जिनका यज्ञेश्वररूपसे यजन करते हैं, ज्ञानीजन जिनका परावरमय ब्रह्मस्वरूपसे ध्यान करते हैं, जिनका स्मरण करनेसे पुरुष न जन्मता है, न मरता है, न बढ़ता है और न क्षीण ही होता है तथा जो न सत् हैं और न असत् ही हैं अर्थात् सत्-असत् दोनोंसे परे हैं, उन श्रीहरिके कीर्तनके अतिरिक्त और क्या सुना जाय? जो अनादिनिधन भगवान् विभु पितृरूप धारणकर स्वधासंज्ञक कव्यको और देवता होकर अग्निमें विधिपूर्वक हवन किये हुए स्वाहा नामक हव्यको ग्रहण करते हैं तथा जिन समस्त शक्तियोंके आश्रयभूत भगवान्के विषयमें बड़े-बड़े प्रमाणकुशल पुरुषोंके प्रमाण भी इयत्ता करनेमें समर्थ नहीं होते, वे श्रीहरि श्रवण-पथमें जाते ही समस्त पापोंको नष्ट कर देते हैं अर्थात् उनके नाम, रूप, गुण आदिके कीर्तनका श्रवण सब पापोका नाश कर देता है।

जिन परिणामहीन प्रभुका न आदि है, न अन्त है, न वृद्धि है और न क्षय ही होता है, जो नित्य निर्विकार पदार्थ हैं, उन स्तवनीय प्रभु पुरुषोत्तमको मै नमस्कार करता हूँ *। जिन नित्य सनातन परमात्माके अनेक रूप हैं, वे भगवान् हरि समस्त पुरुषोंको जन्म और जरा आदिसे रहित (मुक्ति-रूप) सिद्धि प्रदान करें।

॥ षष्ठ अंश समाप्त ॥

॥ श्रीविष्णुमहापुराण सम्पूर्ण ॥

श्रीकृष्णार्पणमस्तु

* नान्तोऽस्ति यस्य न च यस्य समुद्भवोऽस्ति वृद्धिर्न यस्य परिणामविवर्जितस्य।
नापक्षय च समुपैत्यविकारि वस्तु यस्त नतोऽस्मि पुरुषोत्तममीशमीड्यम्॥
(वि० पु० ६। ८। ९५)

भगवान् विष्णु—एक झाँकी

(लेखक—पं० श्रीरामनिवासजी शर्मा)

भारतवर्षमें तो शायद ही ऐसी कोई हिंदू-संतान हो जो 'विष्णु'—इस शुभ नामसे अनभिज्ञ हो। वेदोंमें भी विष्णुका नाम और कीर्तन पर्याप्त है। पुराण-साहित्य तो इस नामसे ओतप्रोत है। यह भी लोकविश्रुत बात है कि शेषनाग अपने सहस्र मुखसे निरन्तर भगवान् विष्णुका गुणगान करते हुए भी उनके गुणोंका पार नहीं पाते।

त्रिदेव—ब्रह्मा-विष्णु-महेशमें कौन बड़ा-छोटा है, इसका निर्णय महर्षि भृगुकी त्रिदेव-परीक्षासे स्पष्ट हो चुका है। उसमें ब्रह्मा क्रोधग्रस्त हो गये हैं और महादेव भृगुको मारनेको उद्यत, किंतु भगवान् विष्णुने भृगुकी लात खाकर भी उनका स्वागत किया और कहा—

'प्रभो! आपके शुभागमनका मुझे पता नहीं था, इसीलिये आपकी अगवानी न कर सका। मेरा अपराध क्षमा कीजिये। भगवन्! आपके चरण अत्यधिक कोमल हैं और मेरा हृदय अत्यन्त कठोर।' इतना कहकर महर्षिके चरणोंको अपने हाथोंसे सहलाते हुए इस तरह निवेदन करने लगे—'महात्मन्! आपके चरणोंका जल तीर्थोंको भी तीर्थ बनानेवाला है। आप उससे वैकुण्ठलोकको, मुझे और मेरे अंदर रहनेवाले लोकपालोंको पवित्र कीजिये।'

परंतु सच तो यह है कि भगवान् विष्णुकी देवताभिवन्द्य, व्यक्ति-गुण-मूलक, सर्वतोभद्र, वास्तविक किंतु वस्तुप्रधान विशेषता तो भागवतके समुद्र-मन्थन-कालीन लक्ष्मीस्वयंवर-सम्बन्धी आख्यानमें निहित है।

उसमें विश्व-ब्रह्माण्डकी पुराणोक्त गन्धर्व, यक्ष, असुर, देवता आदि समुपस्थित जातियोंकी जातिगत विशेषताका एवं प्रमुख व्यक्ति-समुदायकी विशेषताओंका उल्लेख हुआ है।

किंतु ऐसी विशेष स्थितिमें विष्णु भगवान् ही सर्वश्रेष्ठ माने गये हैं। उनका व्यक्तित्व ही सर्वाधिक उत्कृष्ट स्वीकार किया गया है। वह भी महामाया भगवती लक्ष्मीजीके द्वारा वर-वरणके निर्णय-कालमें।

भगवान् विष्णुके सर्वश्रेष्ठ होनेका निश्चय अकारण ही नहीं किया गया है; अपितु इसमें लक्ष्मीजीकी तुलनात्मक दृष्टि रही है। उन्होंने मन-ही-मन इस प्रकार निर्णय किया है—प्रत्येकमें कुछ-न-कुछ गुण अवश्य है; परंतु फिर भी इनमें एक भी सर्वथा निर्दोष, पूर्ण और [illegible] विचारार्थ—

१. दुर्वासा आदि तपस्वी तो हैं, परंतु [illegible] विजय प्राप्त नहीं किया। २. बृहस्पति आदि [illegible] परन्तु वे पूरे अनासक्त नहीं हैं। ३. [illegible] महत्त्वशाली, परंतु कामको [illegible] नहीं [illegible]। ४. [illegible] आदिमें ऐश्वर्य भी बहुत है, परंतु [illegible] जब उन्हें दूसरोंका आश्रय लेना पड़ता है। ५. [illegible] आदिके धर्मात्मा होनेमें कोई [illegible] नहीं, परंतु [illegible] प्रति प्रेमका वे पूरा बर्ताव नहीं करते। ६. [illegible] त्यागी होनेमें संदेह नहीं, परंतु [illegible] कारण नहीं। ७. [illegible] आदिमें [illegible] परन्तु वे कालके पंजेसे बाहर नहीं हैं। ८. [illegible] महात्माओंमें विषयासक्ति नहीं है, परन्तु वे [illegible] समाधिमें तल्लीन रहते हैं। उनको [illegible] सकता है। ९. किसी-किसी मार्कण्डेय आदिने [illegible] लंबी प्राप्त की है, परंतु उनका [illegible] १०. हिरण्यकशिपु आदिमें [illegible] आयुका कोई ठिकाना नहीं। और ११. [illegible] दोनों ही बातें (शील मङ्गल और आयु) हैं [illegible] अमङ्गल-वेषमें रहते हैं।

उपर्युक्त प्रसङ्गका भाव यही है कि [illegible] करने योग्य पुरुष सम्पूर्ण [illegible] और [illegible] वर्जित ही है, परन्तु उनका अपना [illegible] पर भी संतोष नहीं कर सका। [illegible] कुछ और चाहा। [illegible] निर्दोष और समस्त उत्तम [illegible] पुरुष मिले तो मैं उसे अपना [illegible]— इतना ही नहीं, [illegible] स्पर्श नहीं कर सकते हों। [illegible] हों, परन्तु वह उनकी [illegible] आदि प्रत्येक बातमें अपना [illegible] जिसे दूसरेके आश्रयकी आवश्यकता न हो।

इतने विचार-विमर्शके बाद [illegible] श्रीविष्णुको ही वरण किया। [illegible] चरित्र इस विष्णुपुराणमें गाया गया है।

क्षमा-प्रार्थना

भारतीय संस्कृतसाहित्य-सागर अनन्त रत्नराशिसे पूर्ण है। उन रत्नोंमें पुराणका स्थान अत्यन्त महत्त्वका है। पुराण अध्यात्मशास्त्र है, पुराण दर्शनशास्त्र है, पुराण धर्मशास्त्र है, पुराण नीतिशास्त्र है, पुराण तन्त्रमन्त्र-शास्त्र है, पुराण कलाशास्त्र है, पुराण इतिहास है, पुराण जीवनी-कोष है, पुराण सनातन आर्यसंस्कृतिका स्वरूप है और पुराण वेदकी सरस और सरलतम व्याख्या है। पुराणमें तीर्थरहस्य और तीर्थमाहात्म्य है, पुराणमें तीर्थोंका इतिहास और उनकी विस्तृत सूची है, पुराणमें परलोक-विज्ञान, प्रेत-विज्ञान, जन्मान्तर और लोकान्तर-रहस्य, कर्म-रहस्य तथा कर्मफलनिरूपण, नक्षत्रविज्ञान, रत्नविज्ञान, प्राणिविज्ञान, आयुर्वेद और शकुनशास्त्र आदि इतने महत्त्वपूर्ण और उपादेय विषय हैं कि जिनकी पूरी जानकारीके साथ व्याख्या करना तो बहुत दूरकी बात है, बिना पढ़े पूरी सूची बना पाना भी प्रायः असम्भव है। इतने महत्त्वपूर्ण विषयोंपर इतनी गम्भीर गवेषणा तथा सफल अनुसंधान करके उनका रहस्य सरल भाषामें खोल देना पुराणोंका ही काम है। पुराणोंको आधुनिक मानने और बतलानेवाले विद्वान् केवल बाहरी प्रमाणोंपर ही ध्यान देते हैं। पुराणोंके अंदर प्रवेश करके उन्होंने उनको नहीं देख पाया है और न पुराणोंकी ज्ञान-परम्परापर ही उनका दृष्टिपात हुआ है। यह सत्य है कि पुराणोंमें कहीं-कहीं कुछ न्यूनाधिकता हुई है एवं विदेशी तथा विधर्मियोंके आक्रमण-अत्याचारसे बहुत-से अंश आज उपलब्ध भी नहीं हैं, परंतु इससे पुराणोंकी मूल-महत्ता तथा प्राचीनतामें कोई बाधा नहीं आती।

इन पुराणोंमें नारदमहापुराण और विष्णुपुराण बड़े महत्त्वके सात्त्विक पुराण माने जाते हैं। नारदपुराणमें इतने महत्त्वके विषय हैं कि उनको पढ़-सुनकर चमत्कृत होना पड़ता है। यद्यपि इसकी श्लोकसंख्या भी कुछ न्यून ही मिलती है। इसीसे विद्वानोंने इसे 'सम्भाव्य पूर्णपुराण' कहा है। विष्णुपुराण भी पूर्ण तेईस हजार श्लोकोंका बताया गया है। वर्तमान उपलब्ध विष्णुपुराण मूलमहापुराणका पूर्वभाग है, जो वर्णनके अनुसार ही प्राप्त है। 'विष्णुधर्मोत्तर-पुराण' को विष्णुपुराणका उत्तरभाग बताया गया है और हमारे विश्वासके अनुसार है भी यही बात। परतु इन दोनोंकी श्लोकसंख्या मिलाकर भी सोलह हजार ही होती है, इससे ऐसा प्रतीत होता है कि 'विष्णुधर्मोत्तर'का भी बहुत-सा अंश उपलब्ध नहीं है अथवा श्लोक-गणनाकी शैली कोई दूसरी होगी। किन्हीं महानुभावके पास नारदपुराण, विष्णुपुराण तथा विष्णुधर्मोत्तर-पुराणकी प्राचीन हस्तलिखित प्रति हों तो उन्हें भेजकर इस काममें उन्हें हमारी सहायता करनी चाहिये—यह विनीत प्रार्थना है। ऐसी प्रतियाँ मिलनेपर गीताप्रेससे इसके पूर्ण संस्करण प्रकाशित करनेकी चेष्टा हो सकती है।

'कल्याण'के विशेषाङ्कके रूपमें इन दो महापुराणोंका संक्षिप्त अनुवाद प्रकाशित करनेका कारण एक तो ग्राहकोंकी पुराण-प्रकाशनकी अत्यधिक माँग है और दूसरे इन पुराणोंका महत्त्वपूर्ण कथा-प्रसङ्ग है। नारदपुराणमें पुराणोचित महत्त्वके प्रसङ्ग तो हैं ही, उसमें वेदके छः अङ्ग—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्यौतिष (गणित, जातक और संहिता) और छन्दका भी बडा विशद, महत्त्वपूर्ण और मौलिक वर्णन है। ज्यौतिषके प्रसङ्गका सम्पादन करनेवाले विद्वानोंमें काशीके ज्यौतिषशास्त्रके प्रसिद्ध परमादरणीय वयोवृद्ध विद्वान्, जिन्होंने पचासों ग्रन्थोंका स्वयं निर्माण तथा सम्पादन, अनुवाद किया है और जिनके कई ग्रन्थ उच्च श्रेणीकी पाठ्य-पुस्तकोंके रूपमें स्वीकृत हैं, मुग्ध होकर लिखते हैं—

"ज्यौतिषशास्त्रके तीन स्कन्ध हैं—(१) जातक—जिसमें अपने-अपने उत्पत्तिकालके आधारपर जीवनके शुभाशुभ फलोंका आदेश है। (२) संहिता—जिसमें ग्रह-नक्षत्रोंके परस्पर योग, उदय, अस्त आदिवश सर्वसाधारणके शुभाशुभ फलोंका निर्देश है तथा (३) सिद्धान्त—जिसमें ग्रहोके योग-उदय-अस्त आदिका गणितद्वारा ज्ञान होता है। इन तीनों स्कन्धोंके प्रचलित (पठन-पाठनमें निर्धारित) अधिक ग्रन्थ आधुनिक ही हैं। वे सब आर्षग्रन्थोंके आधारपर ही बनाये माने जाते हैं। आधुनिक ग्रन्थोंकी टीकामें वसिष्ठ, कश्यप, नारद, गर्ग, पराशर आदिके वचन-प्रमाणरूपमें मिलते हैं; परंतु पूर्ण प्रायः ग्रन्थ नहीं मिलते और वे वचन भी केवल जातक और संहिताके ग्रन्थोंमें ही हैं। जो कुछ ग्रन्थ उपलब्ध भी हैं, वे लेखकादिके दोषसे शुद्ध नहीं मिलते हैं। सिद्धान्त-ग्रन्थोंमें प्राचीन या आर्ष 'सूर्यसिद्धान्त' माना जाता है, जिसके आधारपर आधुनिक समस्त सिद्धान्त-ग्रन्थोका निर्माण हुआ है, जिनमें सम्प्रति भास्कराचार्यका

'सिद्धान्तशिरोमणि' सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। हम तो यही जानते थे कि सिद्धान्तमें आर्षग्रन्थ 'सूर्यसिद्धान्त' ही है। ऋषियोंद्वारा प्रणीत जातक-संहितासे भिन्न सिद्धान्त ग्रन्थ है ही नहीं। पर जबसे इस नारदमहापुराणके अन्तर्गत ज्यौतिषमें उक्त तीनों स्कन्धोंके समस्त विषयोंका परिपूर्ण और विशद विवरण देखनेमें आया है, तबसे तो समस्त आधुनिक ज्यौतिष-ग्रन्थ हमें तुच्छ-से प्रतीत होने लगे हैं। कारण यह कि संहिता और जातकको तो सब आर्षके आधारपर मानते ही हैं। इसलिये नारदपुराणोक्त-संहिता और जातकमें यदि समस्त विषयोंका पूर्ण वर्णन है तो आश्चर्य नहीं; किंतु सिद्धान्त-भागमें भी आधुनिक ग्रन्थ या सूर्यसिद्धान्तके सब विषयोंका स्पष्ट सरल शब्दोंमें प्रतिपादन किया गया है। अपितु व्यवहारगणितमें बड़े-बड़े तालावोंके पानीका तौलपरिमाण, बड़े-बड़े पहाड़ोंके और बड़े-बड़े लोह-पिण्डोंके वजन-परिमाण जाननेकी रीति दी गयी है, जो आधुनिक ग्रन्थोंमें नहीं है। हमारी समझसे तो आलस्यवश हमलोगोंके द्वारा पुराणोंकी उपेक्षा ही इसका कारण है, जो ऐसे-ऐसे ग्रन्थरत्न अनुपलब्ध हैं। इस नारद-महापुराणके इन तीनों स्कन्धोंको देखकर सबको स्वीकार करना पड़ेगा कि ज्यौतिषशास्त्रका मूल आधार नारद-पुराणान्तर्गत ज्यौतिष ही है। इस पुण्य प्रसङ्गका संक्षिप्त नारदपुराणमें उदाहरणोंसहित पूर्ण सरल भाषानुवाद प्रकाशित करके 'गीताप्रेस' ने जो सनातनधर्म जगत्का परमोपकार किया है, वह प्रशंसनीय है।

आपका—सीताराम झा''

इससे पता लगता है, इसमें कितने महत्त्वका विषय है। हमारा तो यह कहना है कि इस एक नारदपुराणके अध्ययनसे ही सैकड़ों ज्ञातव्य विषयोंका सहज ही ज्ञान हो सकता है। पर इन दोनों पुराणोंमें इतनी ही बात नहीं है, इनमें आध्यात्मिक प्रसङ्ग भी बहुत महत्त्वके हैं, जिनके श्रद्धापूर्वक अध्ययन, मनन और आचरणसे मनुष्यको मानवजीवनकी चरम सफलता सहज ही प्राप्त हो सकती है।

इसके अतिरिक्त नारदपुराणके तीसरे पादमें सकाम उपासनाका भी बड़ा विशद वर्णन है, जो सकाम उपासकोंके लिये बड़े महत्त्वका है। यद्यपि मानवजीवनका प्रधान उद्देश्य 'भगवत्प्राप्ति' ही है, इसलिये उपासनामें सकाम भाव रखना कल्याणकामी पुरुषोंके लिये कदापि वाञ्छनीय नहीं है। यह एक प्रकारकी अज्ञता ही है। अपनी-अपनी रुचि, अधिकार तथा परिस्थितिके अनुसार उपासना अवश्य करनी चाहिये; परन्तु करनी चाहिये [illegible] सकाम उपासना पाप नहीं है। [illegible] अपेक्षा लौकिक [illegible] है; क्योंकि इनसे [illegible] निर्माण सम्भव है। [illegible] सात्त्विक देवताओंका तथा [illegible] ही। तामस देवताओंकी उपासना [illegible] होती है। सकाम उपासना करनी [illegible] एक नाम-स्मरणी करनी चाहिये। [illegible] से सकाम उद्देश्यकी सिद्धि होने [illegible] इच्छाकी सिद्धि न होनेपर भी [illegible] प्राप्ति और अन्तमें भगवत्प्राप्ति [illegible] कहा है—'मद्भक्ता यान्ति मामपि।'

सकाम प्रसङ्गके सम्बन्धमें हमारा [illegible] निवेदन यह है कि मूल पाठमें [illegible] का जो सांकेतिक वर्णन था, [illegible] बुद्धि काम कर सकती थी, [illegible] करनेका प्रयत्न किया गया है। [illegible] हमारा अननुभूत विषय होनेके [illegible] इसके लिये हम क्षमा-प्रार्थी हैं। [illegible] सकाम उपासनाके सम्बन्धमें [illegible] है, उससे अधिक हम कुछ भी नहीं [illegible] प्रकारकी उपासनाका हमारा निजी [illegible] अतएव पाठकगण हमें पूछनेका [illegible] करनेका कष्ट न करें।

कुछ पाठक महानुभावोंका [illegible] अनुवाद नहीं निकालकर [illegible] महानुभाव [illegible] आदरणीय हैं और [illegible] होगा, वहाँ [illegible] इनके लिये हम [illegible] प्रकाशित करते हैं [illegible]—

१—[illegible] करते हैं।

२—[illegible] बहुत-से पुराण [illegible] चाहते हैं।

३–पुराणोंमें कई जगह एक ही विषयकी पुनरावृत्ति है, उसे देना उचित नहीं है ।

४–पुराणोंमें सत्य इतिहास होनेके कारण कई प्रसङ्ग ऐसे भी आते हैं, जिनसे जनताका लाभ न होकर हानिकी सम्भावना है।

५–पुराणोंमें सकाम उपासना आदिमें तामसी उपासनाका भी प्रसङ्ग आता है, जिसका सर्वसाधारणमें प्रचार हानिकर है ।

६–पुराणोंके साररूपमें उनमें वर्णित सुन्दर उपदेशप्रद तथा जीवनको उच्च स्तरपर ले जानेवाली कथाओंको पढ़नेसे लोगोंमें पुराणोंकी पठन-पाठनकी रुचि बढ़ेगी और वे पुराणों-से प्रेम करके उनसे लाभ उठावेंगे । दोष-दृष्टिको बहुत कम अवकाश रहेगा ।

७–जब 'संक्षिप्त' शब्द प्रत्येक तीसरे पृष्ठपर आ जाता है, तब यह संदेह तो रह ही नहीं जाता कि पुराणोंका इतना ही पाठ है।

८–संक्षेप अनुवाद छापकर उसका अङ्गच्छेद नहीं किया जाता, वरं साररूप प्रकाशित करके उसकी सेवा तथा प्रसार किया जाता है । प्राचीन कालमें भी ऐसा होता था । चतुः-श्लोकी भागवत, सप्तश्लोकी गीता, सप्तश्लोकी चण्डी आदि इसके प्रमाण है ।

ऐसे ही अन्यान्य कारण भी है, इन्ही सब कारणोंसे हम-लोग पुराणोंका संक्षिप्त अनुवाद निकालते है, पूरे सालभरतक एक ही पुराणको चलाना नहीं चाहते तथा प्रतिवर्ष ही पुराण-साहित्य नहीं निकालते । इसमें हमारा अभिप्राय पुराणोंकी अवज्ञा नहीं, परंतु रुचिकर-रीतिसे पुराणोंका सुन्दर प्रचार ही है । कृपालु पाठकगण हमारे दृष्टिकोणको समझकर हमें क्षमा करेंगे ।

इस नारदपुराण और विष्णुपुराणका देनेयोग्य पाठ चुननेका कार्य सदाकी भाँति हमारे श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाने किया है और वेदके छः अङ्गोंके पूरे अनुवादके संशोधन करने तथा उदाहरण आदि देनेमें भी उन्होंने अपना अमूल्य समय देकर बड़ी भारी सहायता की है । नारदपुराण-का सारा अनुवाद हमारे प्रेसके आदरणीय विद्वान् पं० श्री-रामनारायणदत्तजी शास्त्री महोदयने किया है । विष्णुपुराणके श्रीमुनिलालजी (पूर्वाश्रमका नाम—वर्तमानका नाम स्वामी सनातनदेवजी) द्वारा किये हुए अनुवादका भी यत्र-तत्र संशोधन श्रीशास्त्रीजीने ही किया है । नारदपुराणकी मुद्रित प्रतिमें बहुत अधिक अशुद्धियाँ थीं तथा बहुत-से अध्यायोंके पाठमें केवल सांकेतिक अक्षर या शब्दमात्र थे, उनका संशोधन और आविष्कार करनेमें शास्त्रीजीने जो परिश्रम किया, वह उनकी विद्वत्ता तथा बुद्धिमत्ताका द्योतक, सर्वथा सराहनीय और अभिनन्दनीय है। ज्यौतिष-सम्बन्धी तीनों स्कन्धोंके अनुवाद, संशोधन, पाठनिर्णय, व्याख्या, टिप्पणी आदिके कार्यमें हमें काशीनिवासी विद्वान् श्रद्धेय पं० सीतारामजी झा ज्यौतिषाचार्यसे जो अनुपम सहायता प्राप्त हुई है, इसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं । इनके सिवा, इसमें पं० श्रीरामनिहोरजी द्विवेदी ज्यौतिषाचार्य (काशी) और प० श्रीसुवंशजी झा ज्यौतिषाचार्य (गोरखपुर) से भी बड़ी सहायता मिली है । इन्हें भी धन्यवाद है । प्रेस-कापी बनानेमें भाई वासुदेव काबराने बडा सहयोग दिया और प्रूफ-संशोधन तथा अन्यान्य सभी कार्योंमें हमारे सभी साथियोंने भी सदाकी भाँति बड़ी सहायता की है । इस सारी सहायताके लिये हम सबके हृदयसे कृतज्ञ हैं ।

इतनेपर भी अनुवाद, छपाई, संशोधन आदिमें बहुत-सी भूलें रही हैं, इन भूलोंके लिये हमारा अपना अज्ञान तथा प्रमाद ही कारण है । अतएव उनके लिये हम अपने पाठक-पाठिकाओंसे करबद्ध क्षमा चाहते हैं ।

पाठक-पाठिकागण इन पुण्य पुराणोके सारको पढ़कर लाभ उठावें और लोक-परलोकमें सुख-शान्ति और मानव-जीवनके परम और चरम लक्ष्य भगवान्‌को प्राप्त करें । यही प्रार्थना है । हमारा धर्म है—'अभ्युदय और निःश्रेयसकी सिद्धि' और ये दोनो ही सिद्धियाँ इन पुराणोंमें वर्णित आचारोंके श्रद्धापूर्वक सेवनसे प्राप्त हो सकती हैं । पुनः क्षमा-प्रार्थना ।

विशेषाङ्कमें प्रकाशित करनेके लिये कई महानुभावोंने लेख-कविता आदि भेजनेकी कृपा की है। स्थानाभावसे उनको विशेषाङ्कमें नहीं दिया जा सका । उनमेंसे जो लेखादि स्वीकृत होंगे, वे अगले अङ्कोंमें प्रकाशित होंगे । लेखक महानुभाव कृपया क्षमा करें ।

विनीत, क्षमाप्रार्थी

पोद्दार }
गोस्वामी } सम्पादक

*

*

श्रीविष्णु-चालीसा

(रचयिता—डॉ० कृष्णदत्तजी भारद्वाज, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, आचार्य, शास्त्री, साहित्यरत्न)

नीलवर्ण पीताम्बर सोहै । भक्त जनोंके मनको मोहै ॥ १ ॥
चरण-सरोरुह अतिशय सुन्दर । नानाविध भव-संभव भय हर ॥ २ ॥
पीत वसन अभिराम मनोहर । तडित्कान्ति सुर-चाप-विभा-कर ॥ ३ ॥
कटि तनु शोभित वक्ष विशाला । उर सज्जित सुन्दर वन-माला ॥ ४ ॥
वरद हस्त चारों अति साजैं । करतल जिनके अरुण विराजैं ॥ ५ ॥
अंगुलि सकल मुद्रिका-युक्ता । जिनमें जड़ीं विविध मणि मुक्ता ॥ ६ ॥
एक हाथमें शंख विराजै । कुंद इंदु-सी शोभा छाजै ॥ ७ ॥
चक्र दूसरे करमें धारी । दानव-सेनाका संहारी ॥ ८ ॥
गदा तीसरे हाथ विराजै । सूर्य समान सदा जो भ्राजै ॥ ९ ॥
पद्म चतुर्थ हाथमें लीन्हे । भक्त-मनोरथ पूरन कीन्हे ॥ १० ॥
चिबुक भक्तके भयकी हारी । शरणागतकी रक्षाकारी ॥ ११ ॥
मन्द मधुर मुसकान अनोखी । देख देख सुर धारैं नोखी ॥ १२ ॥
दंत-पंक्ति अति शुभ्र कली-सी । हंसी विद्रुम-मध्य पली-सी ॥ १३ ॥
नासा नरक-भीतिकी नासी । पुण्यरूपकी कीर्त्ति-लता-सी ॥ १४ ॥
नयन युगल है कमल समाना । भृकुटि चापके सम अनुमाना ॥ १५ ॥
मुकुट मनोहर रवि सम शोभी । रत्न-जटित स्वर्णिम सुर-लोभी ॥ १६ ॥
अंगद कंकण चारु विचित्रा । कांची नूपुर नित्य पवित्रा ॥ १७ ॥
उज्ज्वल चमचम चमकैं भूषण । भागैं दर्शकके सब दूषण ॥ १८ ॥
गरुड़ मनोगति वाहन प्यारा । संसृति-सर्प-निवारण-हारा ॥ १९ ॥
आप सदा पर-पदके वासी । निज जन हृदय-सरोज विकासी ॥ २० ॥

त्रिगुणातीत परम पद शोभा। मुनि जन मनमें अतिशय लोभा ॥२१॥
अमितौजा पर नित्य विराजैं। माँ भी सँगमें वहीं विराजैं ॥२२॥
वाम अंगमें वे छबि छाजैं। अपनी द्युतिसे हरिको साजैं ॥२३॥
भक्त-अनुग्रह-विग्रह देवी। रमा-विष्णुके हैं हम सेवी ॥२४॥
रमा इन्दिरा लक्ष्मी माता। नाम उन्हींके वेद बताता ॥२५॥
जो लक्ष्मी नारायण सोई। उनमें भेद कहीं नहिं कोई ॥२६॥
जो माधव सो राधा प्यारी। वृन्दावनमें कुंज-विहारी ॥२७॥
जो सीता सो राघव भी हैं। इनमें भेद कदापि नहीं है ॥२८॥
लैं अवतार जभी प्रभु भू पै। धरैं रमा भी रूप अनूपै ॥२९॥
जहाँ सूर्य है कान्ति वहीं है। जहाँ चन्द्र है शान्ति वहीं है ॥३०॥
विष्णु जहाँ हैं वहीं रमा हैं। सदा माधवी विष्णु-समा हैं ॥३१॥
विश्व-नियन्ता अन्तर्यामी। लोकविनत त्रिभुवनके स्वामी ॥३२॥
भव्य रूप मंगलमय शीला। सदा करैं रुचिकर शुभ लीला ॥३३॥
जो नर हरि-गुण-गणको गावै। सो निज हृदय मनोरथ पावै ॥३४॥
धार्मिक धर्म करै मन लाई। धन-रुचि द्रव्य अनेक कमाई ॥३५॥
और अनेक कामना-कारी। पावै प्रभुसे सम्पति सारी ॥३६॥
जो चाहै सब बंधन नाशा। पूर्ण करैं प्रभु वह भी आशा ॥३७॥
जो हरि-पदमें ही रति लावै। कृपा करैं प्रभु, वह भी पावै ॥३८॥
जय जय नारायण श्रीवासा। कीजै नित मम उर-पुर वासा ॥३९॥
हरिये प्रभु मम संकट भारी। हे गजराज-विपत्ति-विदारी ॥४०॥

त्रिगुण-रहित निज गुण-सहित दिव्य-रूप श्री-वास।
रमा-सहित मम हृदयमें करिये नित्य निवास ॥